

ब्रह्मपुराणम्

[हिन्दीअनुवादसहितम्]

○

अनुवादक
तारणीश झा
ध्याकरण-वेदान्ताचार्य

○



शक १८९८ : सन् १९७६

हिन्दी साहित्य सम्मेलन • प्रयाग

प्रकाशकीय

भारतीय वाङ्मय में पुराणों की व्यापकता एवं महत्ता अमिट है और वे भारत की अतीतकालीन हिन्दू-मस्तिष्क के मूर्तमान गौरव प्रतीक हैं। आज के वैज्ञानिक युग में यात्रिक सभ्यता भी पुराणों के प्रभाव और उनके महत्व को रचमात्र भी कम नहीं कर पायी है। आज भी उनके प्रति वही श्रद्धा और सम्मान का भाव दृष्टिगोचर होता है, जैसा आदि-काल से प्रचलित रहा है।

सम्मेलन के प्रतिष्ठापक स्वर्गीय राजपि पुरपोत्तमदास जी टडन ने सम्मेलन द्वारा पुराणों के हिन्दी अनुवाद तथा उनके मुद्रण की योजना बनायी थी, जिससे वे घर-घर सुगमता से पहुँच सकें और जन जन उनके अध्ययन से लाभान्वित हो सकें। कार्य श्रममाध्य व्ययसाध्य और समयसाध्य था, फिर भी सम्मेलन ने इस दिशा में सक्रिय पग उठाया और मत्स्य पुराण और वायु पुराण का प्रामाणिक हिन्दी अनुवाद प्रकाशित किया।

अनेक अप्रत्याशित कारणों कठिनाइयों और बाधाओं के कारण यह कार्य उस गति से न चलता रह सका, जैसा कि इसके प्रणेता चाहते थे। फलतः इसमें शिथिलता आने लगी। पर सौभाग्य से सम्मेलन के वर्तमान प्रजातांत्रिक प्रशासन ने अपने निवापिक कार्यक्रम के अन्तर्गत इस महत्वपूर्ण कार्य को यथाशीघ्र सम्पन्न करन का संकल्प लिया है। परिणामस्वरूप ब्रह्मपुराण का प्रामाणिक हिन्दी अनुवाद विज्ञ पाठकों को देते हुए हम अत्यन्त हर्ष का अनुभव हो रहा है।

मत्स्य एवं वायु पुराणों का केवल अनुवाद मात्र प्रकाशित किया गया था। वर्तमान स्थायी समिति ने, अनेक विद्वानों के सुझाव पुर, मूल पाठ पाठान्तर क साथ अनुवाद सहित पुराण-प्रकाशन का निश्चय किया। तदनुसार ब्रह्मपुराण का सम्पादन प्रकाशन इसी आधार पर किया गया है। भविष्य में अन्य पुराणों को भी इसी पद्धति से सम्पादित एवं प्रकाशित करने की योजना है, जिसके लिए विज्ञपज्ञ विद्वानों का सहयोग प्राप्त करने का प्रयास किया जा रहा है।

आशा ही नहीं प्रत्युत विश्वास है कि हमारा इस महत्वपूर्ण प्रकाशन का विज्ञ जन महोदयता से अपनाकर हमें बल प्रदान करेंगे कि हम अपनी इस बृहद् योजना को निर्बाध गति से आगे बढ़ा कर राजपि टडन जी के स्वप्न का साकार कर सकें।

प्रभात शास्त्री

प्रधानमन्त्री

आपा, मवत् २०३३

हिन्दी साहित्य सम्मेलन

प्रयाग

आदर्श पुस्तकों का नामोल्लेख

७०

[प्रस्तुत सस्वरण की पाद-टिप्पणी में जिन महान्यायों की पुस्तकों से 'क' 'ख' आदि सकेतों में पाठभेद दिये गये हैं उनके नाम तथा सकेत इस प्रकार हैं—]

क सकेत वाली पुस्तक जनस्थाननिवासी वे० शा० स० साठे नारायण शास्त्री की है और पूर्ण है।

ख सकेत वाली पुस्तक आष्टे ग्रामनिवासी लिये महोदय की है जो गीतमी माहात्म्य से रहित पूर्ण है।

ग सकेतवाली पुस्तक दक्षिणापथवर्ती विद्यालय के पुस्तकालय की है। यह भी गीतमी माहात्म्य से रहित पूर्ण है।

घ. सकेत वाली पुस्तक रा० रा० भाऊसाहेब नगरकर की है। इसमें केवल गीतमी माहात्म्य है।

ङ. सकेत वाली पुस्तक श्री 'पतसजिव सस्थान भोर' की है। इसमें भी केवल गीतमी माहात्म्य है।

च सकेत वाली पुस्तक चोपडे ग्रामनिवासी वे० रा० रा० 'वामनबुआ अयाचित' की है। इसमें भी केवल गीतमी-माहात्म्य है।

भूमिका

००

यो विद्याच्चतुरो वदान् सागोपनिषदो द्विज ।

न चेत्पुराणं सविद्यानैव स स्याद्विचक्षण ॥

(ब्रह्माण्डपुराण अ० १)

अर्थात् या० कि० मागापाग चारा वदा और उपनिषदा को जानता है पर पुराणा को नहीं जानता वह विद्वान् नही हो सकता।

उपधुका कथन सत्य प्रतीत होता है कारण पुराण सब क एहलौकिक और पारलौकिक कल्याण-सम्पदा के अक्षय भाण्डार है। ज्ञान वराध्य मकिन प्रम श्रद्धा विश्वास वन दान तप सयम यम नियम सेवा भक्त दया वणधन आश्रमधन राजधन मानवधन धर्मधन सत्र धम सदाचार अर नाता धनिया के पुरषा के विभिन्न कल्याणकार उपदेश सुन्दर सरल अर उपादेय भाषा म इनम निवे गये हैं। एतदतिरिक्त पुत्र्य प्रवृत्ति महत्त्व प्रवृत्ति विद्वति भूगोल खगोल ऋषिवश तथा राजवश का वणन अर स्वावर-जगम सप्टि का बहुत सुन्दर र ति स सूक्ष्म विवेचन किया गया है। कौन दान ध्वारण छन्द ज्योतिष निदक शिक्षा कला आपुवद गचववेद स्थापयवद राजन ति समाजनीति योग तत्र आदि शास्त्रो का भी परिचान हमे इनसे प्राप्त होता है। आध्यात्मिक एव आधिदैविक विषया के अतिरिक्त आधिभौतिकवाद क भा प्रचर सामग्र पुराणा म पाय जात है।

हरिदत्त शास्त्र क गवदा म पुराणा से ह अनुशक्ति का ज्ञान प्राप्त करके बनेपिक दान व प्रवर्तक मनीषि वणाद ने आकाश म तिष्ठष्ट परमाणु के परस्पर सम्मिश्रण से सात पदार्थों क उत्पत्ति का सिद्धान्त स्व काया है इस समय अणुवक्पणा पर भौतिक अनुसंधान के विवेचना ने सत्कारक अणुशक्ति का पता लगाया है किन्तु अभी प्रजनन अर पालन अणुशक्ति का पता उनका नही है १६ विज्ञान पुराणादि म उल्लिखित है। इस पर ध्यान दनर यत्रा द्वारा अनुसंधान करके प्रत्यक्षीकरण किया जाये तो समार का महान् उपकार हो सकता है। दक्षिण शकराचार्यरिचि सैदयल्लूर मे महाशक्ति स अणु क उत्पत्ति का रूपक किस प्रकार ५ या गया है—

दनीवात पासु तव चरणपकेदहभयम
विरञ्चि सञ्चिचन विरचयति ल कानविकलम।
वहयन शौरि कपमपि सहस्रव शिरसा
हर सक्षुभ्यन भजति भक्ति दलनविधिम्॥

अर्थात् आरागारुणि अथवा महाशक्ति से अणुओ की वट्टि हुई। उन अणुओ म से सजनात्मक अणुओ को सचिन् वरके सत्कार के रचना क गई। इसे ब्राह्मा अणुशक्ति कहते हैं। दूसरे प्रकार के अणुओ को सचिन्

करके वैष्णव अणु स सत्ता के। पालनात्मक सामर्थ्य बना है। फिर सहायतात्मक अणु (विस्फोटक पदार्थ) एकत्र करके रौद्र अणुओं का पिण्डीकरण से सत्ता के विनाश को यत्नि बना है। इस प्रकार ब्राह्मी, वैष्णवी और रौद्रा अणुसक्ति—य तीन प्रकार के अणु बताये गये हैं। यदि वर्तमान अणुपरक्षण समिति सर्वोत्तम वैज्ञानिक उपलब्ध साधना से इनका गंभीर परीक्षण करे तो वर्तमान काल भी पुरुष-काल के समान वैज्ञानिक महत्त्व को प्राप्त कर सकता है।

पुराणा म सिद्धपीठस्थली भूमण्डल के विभाग पुरुषसंस्थितार्थ महानन्द सरोवर भस्वला और शस्य-श्यामल भूभाग—इत्यादि का वर्णन आया है। इनसे प्रचुर मात्रा में ब्राह्मी वैष्णवी और रौद्रा अणुसक्ति के विषय में जानकारी प्राप्त की जा सकती है।

स्कन्दपुराण में एक कथा आती है कि चकर नाम का एक राजकुमार था, जिसका मुख बकर के मुख के समान था। वह शारीरिक निर्माण में वारणा का ज्ञान प्राप्त करके अपने मुखमण्डल को वैज्ञानिक प्रक्रियाओं से ढाकर उसी शरीर में बकरी के मुख से सुन्दर मानवमुख के रूप में बदलकर चन्द्रमुखी हो गई। उस राजकुमारी के आठ भाई और एक बहन थी। उसके पिता ने सम्पूर्ण देश को नौ भागों में विभक्त करके प्रत्येक को एक एक खण्ड दे दिया। तब से भारतवर्ष नवखण्ड नाम से कहा जाने लगा। उन पुत्र-पुत्रक खण्डों में अनेक प्रकार के भूधर्मजट घातुभावा का वर्णन है। इससे अतिरिक्त पुराणा में आकाशवाणी ब्रह्मक्षत्रा की दूरी और उनकी गति, विष्णुमास्वरूप भूवस्थान उत्तरापथ दक्षिणापथ ऋतु मास आदि का विज्ञान भी मिलता है।

पुराणा का प्रमुख उद्देश्य यह है कि साधारण तक पहुँचाना है। वेद में सूत्ररूप में जो बातें बनी गई हैं उन्हीं का व्याख्या पुराणा में भाष्यरूप से की गई है। यह ज्ञान पुराण-रचयिता व्यास जी ने स्वयं ब्रह्मा से—इतिहासपुराण(म्यां वेद संपन्नहृदये) अर्थात् इतिहास (रामायण महाभारत) और पुराणा की सहायता से वेदा का अर्थ समझना चाहिए। यहाँ कारण है कि वेदा में जिन बातों की सूचना मात्र है पुराणा में उपाख्याता के द्वारा उन्हीं का विस्तार है। जैव श्रुतिवेद के 'इदं विष्णुविचक्रमे श्रेष्ठा निवर्त्ते परम्' विष्णु के अवतार की सूचना मात्र है पर रामनपुराण में त्रिविक्रम नामक नामनावतार के प्रथम में तथा अथ पुराणा में भी विष्णु के वामना वतार का विस्तार से वर्णन किया गया है। इसी तरह अथर्ववेद (ब० ८० सू० प्र० ३।४।५) में राजा पृथु का पूर्वदाहृत सभ्य में वर्णन है पर श्रीमद्भागवत में उसी का विस्तृत रूप में वर्णन है।

पुराणा में जिनकी सरलता से धर्म अथ, काम और मोक्ष रूप जन्तुवर्ग की सिद्धि का साधन मिलेगा उतना अन्यत्र नहीं है। १८ पुराणा में परास्परिक रूप से सब धर्मों का सादृश्य पुरुष बताया गया है और परस्पर का महा पाप। यह पाप-पुण्य का परिभाषा मानवता का चित्तना सुन्दर और मौलिक आधार बना रह है।

पुराणा में मत्स्य का अन्वेषण करने की दृष्टि से, मयबादी, हरिदत्त आदि के उपाख्यान में ज्ञान होना है कि उन्होंने मत्स्य की सूक्ष्मबुद्धि का चित्तना कामगार किया था। सती अनयूया गीता भाविर्त्त मुक्त्या आदि द्रवियों में ज्ञान, निष्ठा और सत्य से बलविक्रम समतार की सिद्धि प्राप्त की थी। भगवान् राम की अर्द्धतत्त्वों से उनके चरित्र की विशेषता और मयादा-प्राप्त की मयादापुण्य एक दृढ-ब्राह्म विद्या मिलती है। राम ने जनमन का सम्मान कर अपनी धर्मार्थी मत्स्य गीता का छात्र दिया था। चैतन्य अनुग्रहण और आत्मा का आदा स्थिर करने के लिए राम का भी स्थापन किया एवं अत्याचार का समन करने के लिए एक स्वेच्छाकारी अधिनायक का विषय दिया। यो राम के चरित्र में जो आदर्श हैं तथा जिस उच्च भूमिका पर समाज के जन का चरित्र सामाजिक चरित्रिता धार्मिक व्यावहारिक आध्यात्मिक और आधिभौतिक स्तर प्रतिष्ठित करने का अर्थ है। उसका दर्शन

अन्यत्र कुलम् है। रामराज्य के सम्बन्ध में व्यास जी ने लिखा है—'न पुत्रवरणं केचिद्रामे राज्यं प्रयासति।' इसी बात को महर्षि वाल्मीकि ने इस प्रकार लिखा है—

न पुत्रवरणं केचिद्रक्ष्यन्ति पुरुषा वञ्चितः।
नार्यश्चाविधवा नित्यं भविष्यन्ति पतिव्रताः॥

अर्थात् राम के राज्य में कोई पुरुष पुत्र की मृत्यु नहीं देखता था, कोई स्त्री विधवा नहीं होती। यी और सभी पतिव्रता होती थी।

पुष्पसासन का यही आदर्श है। क्या राम के शासन के अनिरिक्त सत्कार के किसी भी शासन का यह आदर्श मिलता है?

इसी प्रकार मार्कण्डेय मुनि के जीवन से दीर्घायु तथा दीर्घायु, सिद्धि आदि के परित्र से त्याग आदि का आदर्श पुराणा के द्वारा ही मिलता है। इसलिए पुराण अन्य भारतवर्ष की बहुत बड़ी निधि है।

पुराणों का आविर्भाव

महर्षि वाल्मीकि ने अपने न्यायदर्शनभाष्य में लिखा है कि वेदों और पुराणा का आविर्भावकाल समान ही है। जैन वेद अर्थात् वेद हैं, गौतम, वसिष्ठ अत्रि वश्यप, भारद्वाज, कामदेव आदि ऋषि वेद-मन्त्रों के द्रष्टा मात्र हैं वरतों नहीं, बैसे ही पुराणों की मौलिक सामर्थ्य का वरतों कोई भी नहीं है, किन्तु वेद-प्रतिपादित पुराणा के स्मर्ता ब्रह्मदेव हैं और ब्रह्मा अनेक ऋषि हैं। नास्त्यं यह है कि जो वेद के द्रष्टा हैं वे ही पुराणा के स्मर्ता एवं वक्ता हैं। जिस प्रकार वेद का आरम्भ ब्रह्मा से है उसी प्रकार पुराणा का आरम्भ भी ब्रह्मा से ही हुआ है। विशेषतः इतनी है कि मन्त्रोपदेश से पूर्व विनियोग आवश्यक है तथा विनियोग की पूर्णता के लिए ऋषि, देवता, छन्द तथा परित्र का ज्ञान भी आवश्यक है। अब पहले पुराणों को जान लेने पर ही मन्त्रोपदेश सफल हो सकता है, अन्यथा नहीं। इसी अभिप्राय से पद्मपुराण के सृष्टिसूत्र में अध्याय १०४ में निम्न किया गया है कि सर्वप्रथम ब्रह्मा ने मृग से पुराणा का ही स्मरण हुआ, पश्चात् उनके मुख से वेदमन्त्र निकले—

पुराणं सर्वशास्त्राणां प्रथमं ब्रह्मणा स्मृतम्।
मन्त्रश्च अथर्ववेदो वेदास्तस्य विनिर्णयः॥

इस सम्बन्ध में अपने समय के अद्वितीय विद्वान् विज्ञावाचस्पति मधुसूदन ओझा का अभिमत है कि मन्त्र-ब्राह्मणालम्बक वेद-ग्रन्थों के आविर्भाव से पहले या उनके समकाल ही ब्रह्माण्डपुराण नामक वेद-विशेष था, जिसमें सृष्टि और प्रलय का निरूपण था। इसीलिए सत्त्वयज्ञाद्वारा के 'ऋग्वेदो यजुर्वेदो सामवेदोऽथर्ववेदो' इति-इति-पुराणं विद्या उपनिषद् इत्यादि सूत्रादयश्च व्याख्यानानि व्याख्यानानि वाक्य में 'पुराण' शब्द का उल्लेख मिलता है। मत्स्यपुराण के निम्नलिखित श्लोक भी इस बात को पुष्ट करते हैं—

पुराणमेवमेवासात्सदा ब्रह्मण्यन्तरात्।
त्रिर्वासायनं पुण्यं शतकोटिप्रविस्तरम्॥१॥
कालेनाग्रहम् दृष्ट्वा पुराणाय तदा नृपः।
तद्व्याख्याय कृत्वा भूतलोकैर्मम प्रकाशयाम्॥२॥

पद्मपुराण एवं बृहन्नारदीयपुराण में भी इस तरह के उक्त पाये जाते हैं। इसमें निम्न होता है कि पहले क प्रसिद्ध पुराण ग्रंथ का आधार पर ही अठारह पुराणों का उत्पत्ति हुई है। उसी आदिम ब्रह्माण्डपुराण से मात्रा योंपयागा आधिमौक्तिक आधिदैविक और आध्यात्मिक उपाख्यान को लेकर महर्षया ने बाह्यार्णवयो में सन्निविष्ट कर दिया। इस लिए एतरेय ब्राह्मण का निम्नलिखित मंत्र में सिद्ध आख्याना के वक्ताओं का ही प्रतिपादन किया गया है—

सामो य राजाऽमुक्तिन लोके अस्तेत्यदवसत्त ऋषयश्चाम्यव्यायन—कथमयमस्मान् सः स राजा गच्छदिति ते ऋक्वज्र छन्दसि श्रया म इम सीम राजानवाहृतति तथति ते सुपर्णा भूबोदतपन स यत सपर्णा भूबोदतपन तदतत सोपणमिति आख्यानविद आचक्षत ।

मार्ग्य ब्राह्मण ग्रन्थों में महापया ने ही आख्यानों को कहा है किन्तु वे आख्यान ब्राह्मणप्रवक्ता महर्षियों द्वारा प्रणीत नहीं हैं क्योंकि मन्त्राय के उपाख्यान में उन आख्यानों का उपादान होने से उन्हें मन्त्र रचना के बाद की कल्पना का विषय नहीं माना जा सकता। इसलिए ब्रह्मा द्वारा प्रस्तुत चिरान्न ब्रह्माण्डपुराण सह ये आख्यान संकलित किये गए हैं एसा मानना चाहिए। ब्राह्मणग्रन्थों में उल्लिखित पुराणार्थ—आख्याना को ब्रह्महृत मानकर ही पद्मपुराण का सन्निविष्टन म किया गया है—

सूतेतानकमेणद पुराण सम्प्रकाशितम् ।

ब्राह्मणेषु पुरा ण्येष ब्रह्मणोक्त सविस्तरम् ॥

इन ब्राह्मणग्रन्थों में प्रायः सभी विद्याया का उल्लेख है किन्तु वे कमबड्ढा में रहित सूत्ररूप में अस्पष्ट हैं। अतएव उन्हें बुद्धिपात्र बनाने के लिए विगिण्डबड्ढाला महर्षयो ने अपन प्रतिभा के बल पर उन ब्राह्मण ग्रन्थों से उन विद्याओं को अलग करके युक्ति प्रयुक्ति अर सिद्धि का द्वारा विवाद करने लोचन-वल्पाणाय प्रसारित किया। उस कथित आर पतञ्जलि आदि ने साम्य अर ध्यान का बाल्पायन आदि ने कामसूत्र का मनु आदि ने धर्मसूत्र को धन्वन्तरि आदि ने आयुर्वेद को याज्ञिक आदि ने निरुक्त का और इ पाणिनि आदि ने व्याकरण का प्रवर्तित किया इसी प्रकार कसिष्ठ के प्रवर्तित गणित का वाच और पराशर के पुत्र सत्यवन का गण स उत्पन्न भगवान् कृष्णदत्तायन ने ठाकुरवार का लिए समस्त ब्राह्मणग्रन्थों से सभी उपाख्याना एवं गाथाओं का संकलन करके कथा प्रयोग में लाये। हुई कापुष्टिया को भी ठाकुरवार जोड़कर ठाकुर आख्याना में मिश्रित तथा सगनिबद्ध करके पूर्वोक्त ब्रह्माण्डपुराण में कहे गये जगत्पुष्टि-प्रलयकण पत्नीयों का आख्याना उपाख्यान गाथा और बलापुष्टि में गुम्फित करके अठारह स्रष्टा में विभक्त एवं पुराण-संहिता का निर्माण किया। उन पुराण संहिता इसलिए कहे हैं कि उसमें पुराण ग्रन्थों में अभिहित तथा ब्राह्मण आदि ग्रन्थों में उल्लिखित किन्तु सन्निविष्ट विद्याओं का एक जगह सफेद करके महाहार किया गया है। फिर कृष्णदत्तायन ने अपने गिण्ड मूलात्पन्न कामहृषण को बह संहिता पद्मादी। कामहृषण ने श्री सत्पूज संहिता का पत्रकर १ सप्त (सन्धि) २ प्रतिपद्य (प्रलय) ३ का (द्वयार्थ एवं पितृय का वगावत्) ४ मन्त्रर (विम मनु का कव त्व अधिकार रहता है) तथा ५ वागनुवर्तिन (मूय चन्द्र प्रभूति राजकाय में उत्पन्न होने वाले राजाओं का वर्णन) —इन पाँच विषयों में विभक्त करके एक लोमपण नाम का संहिता बनाया। उन्हें अपने छह गिण्डा—१ सुमति २ अग्निवचन ३ मित्रयु ४

१ स्वयं दम गर विद्या का वर्णन। २ कण-परम्परा द्वारा मुक्त गये विषयों का वर्णन। ३ पितरपण परमाक अवस्था अत्याम्य विभिन्न विषयों का वर्णन का अनुभूतियों। ४ आद्यकण्य आदि का विषय।

मुद्रा ५ अष्टमत्रय आर ६ सामदत्ति को पदा दिया। यह छह अक्षर गण-नाम व क्रम से १ आनय २ भार-
डात्र ३ वसिष्ठा ४ गाणपायन ५ वासिष्ठा आर ६ सावर्णि कहे जाते हैं। इन छह ने भा पूर्वोक्त संहिताद्वय
का आधार पर स्वच्छानुसार क्रम रखकर छह संहिताओं का निर्माण किया। उन छह संहिताओं में विज्ञाता आभ्यास
मवाद एवं प्रवृत्ति व अनुराग स प्रमगता सन्निध और विष्णु अन्त कथानक जान दिये गये। जिससे उनके
आकार में भिन्नता आ गया, परसग प्रतिपत्ता आनि सामान्य वम उनम बराबर हा बने रह। इस प्रकार पुराणा
का आठ संहिताओं बन गई यह चिन्हा आचार्यों का मत है। वैम वायुपुराण आर विष्णुपुराण का मत स चार हा
संहिताओं है—१ लामहृषणिका वासिष्ठा सावर्णि आर गाणपायनिका। इन चार संहिताओं के आधार पर
ह वेदव्यास न ब्रह्मपुराण आदि प्रसिद्ध अठारह पुराणा का रचना का आर उनम उपश्रवा प्रमृति सूता न
सत्रुडि क।

आग चलकर उन चार संहिताओं में उल्लिखित कथाओं में भिन्नता आ गई। इसका कारण यह है कि
समय-समय पर मुनिया का यादगिआ में उन पर चर्चा होता रहा जिसमें सात्त्विक रागस और तामस उपासना
का भेद स उनका भिन्न भिन्न प्रकार स निरूपित किया गया फलतः मुख्य उद्देश्य में भिन्नता आ जान स इतिहास
आर प्रवचन में भा भेद हा गया। बाद में उन उन पुराणा में आर द्वय पुनरुक्त एवं भाग्य और परागर एवं मन्त्र
आदि के मन्त्रों का प्रकार बदल कर लिए कथा लामहृषणमूला नमिपारण्य में जाकर वेदव्यास हा के द्वारा विवक्त
किय गये अठारह पुराणा का गीतक आदि त्रिनामु मुनिया का सुनाने लगे। यद्यपि वेदव्यास द्वारा व्यक्त किये गये
पुराणा का पूर्वोक्त क्रम दूसरे प्रकार में निर्धारित था किन्तु लामहृषण सूत ने त्रिनामुओं के अनुरोध स निवारित
क्रम की उपेक्षा करते क्रम ब्रह्मपुराण पद्मपुराण विष्णुपुराण कूर्मपुराण मत्स्यपुराण वायव्यपुराण वायव्यपुराण
ब्रह्मवैवर्तपुराण नारदीयपुराण तथा मत्स्यपुराण—इन दस पुराणा का पूरा रूप स सुनाकर अग्निपुराण को आधा
हा सुनाया। इसा वाच मयाग से नमिपारण्य में आये हुए यलभद्र न अवशिष्ट अग्निपुराण को सुनाते हुए हा सूत
का यह बिना मरा अभिवादन किये गइ हेकर पुराण सुना रहा है—एसा सचकर कथावत्ता में मार डाला। ठव
लामहृषण व विवक्त हा जान पर गावाकृतित गीतक आदि मुनिया न लामहृषण का पुत्र उपश्रवा नामक सूत
का बुलाकर आम गइ। पर वठाकर उसम अग्निपुराण व अवशिष्ट आध भाग के साथ और भी सात पुराण सुन
किया। यह बात पद्मपुराण व उत्तरागम में आया है। लामहृषण का जिवितावस्था में भा निव वे हा मुनिया
का पुराण नहीं सुनान थे अपितु उनका आगा में उपश्रवा व नमिपारण्य में जाकर मुनिया का पुराण सुनाया
करत थे। यह बात भा पद्मपुराण स ह विनि हता है।

पहला पुराण

पूर्वोक्त चार संहिताओं पर आधारित अठारह पुराणा में प्रथम पुराण ब्रह्मपुराण ह है। इस वाद को भग
वान परागर न मन्त्र स कहा है—

चतुष्पन्थाप्यतन संहितानामि मूना।

आद्य सवपुराणाना पुराण ब्रह्ममूक्यत ॥

(विष्णुपुराण)

इस दलाक में ब्रह्मपुराण को आद्य मानकर इन पुराणा का अनुसरण एवं संहिताचतुष्पन्थमूलक प्रतिपादन

की सृष्टि, प्रलय आदि का निरूपण करते हैं। इसलिए १८ भाव विकास को व्यक्त करने के लिए पुराण भी १८ माने गये हैं। फिर कल्प भी १८ माने जाते हैं। एक एक कल्प में एक एक पुराण की प्रधानता रहती है। इस दृष्टि से विचार करने पर भी पुराणा की अष्टादश सम्ख्या ने रहस्य का उद्घाटन होता है।

उपपुराण और औपपुराण

पुराणा की तरह उपपुराण और औपपुराण भी सख्या में अष्टादश ही है। यथा—उपपुराण—(१) सनत्कुमारवृत्त आदिपुराण (२) नरसिंहपुराण (३) कुमारकृत स्कन्दपुराण (४) शिवधर्मपुराण (५) दुर्वास-पुराण (६) नारदपुराण (७) कपिलपुराण (८) वामनपुराण (९) अश्विनसपुराण (१०) ब्रह्माण्डपुराण (११) वाल्मीकिपुराण (१२) बह्मपुराण (१३) माहेश्वरपुराण (१४) साम्बपुराण (१५) सौरपुराण (१६) पाराशर पुराण, (१७) मारीचपुराण और (१८) भास्करपुराण हैं।

औपपुराण—(१) सनत्कुमारपुराण (२) मदनारदीयपुराण (३) आदित्यपुराण (४) सूर्यपुराण (५) नन्दिशेखरपुराण (६) कौर्मपुराण (७) भागवतपुराण (८) कसिष्ठपुराण (९) भार्गवपुराण (१०) मुद्गगल पुराण (११) कल्किपुराण (१२) देवपुराण (१३) महाभागवतपुराण (१४) बृहद्वर्मपुराण (१५) परानन्द पुराण (१६) कल्लिङ्गपुराण (१७) पशुपतिपुराण और (१८) हस्तिनापुराण हैं।

इन उपपुराणा और औपपुराणा की रचना पुराणा के आधार पर ही हुई है। प्राचीन काल के विभिन्न विद्वानों ने १८ महापुराण की छाया लेकर ही इनकी रचना की है। विस्तार के भय से इनमें कहीं-कहीं तो कथाय सूक्ष्म कर दी गई हैं वहीं-कहीं पर विलक्षण कथाओं का भी समावेश कर दिया गया है और कहीं-कहीं कथाओं में नवीन नये साने के लिए परिवर्तन भी कर दिया गया है। इनका अन्तर होने पर भी इनका मूल अष्टादश पुराण ही है। श्रीमद्भागवत के यशस्वी टीकाकार श्रीधर स्वामी के प्रधान सिद्ध नीलकण्ठ ने दर्वीभागवत की टीका में इस विषय का स्पष्ट संकेत भी किया है—

अष्टादशसम्बन्धस्तु येषु पुराणं यत्प्रदृश्यते।
विज्ञानीष्व द्विअष्टोत्तया तस्मै विनिर्गतम् ॥

पुराण शब्द की व्युत्पत्ति तथा अर्थ

ब्रह्माण्डपुराण में लिखा है—

मरमात्पुरा ह्यनन्तोद पुराण तंन तत्स्मृतम्।
निश्चयमस्य यः वेद सर्वपापे प्रमुच्यते ॥

अर्थात् सर्वप्रथम ज्ञान का प्रवास करने में कारण इनका 'पुराण' मन्त्रा हुई। इनकी निरुक्ति या व्युत्पत्ति जो जानने हैं वे सब पापी से छूट जाते हैं।

पुराण शब्द की व्युत्पत्ति इस प्रकार की जाती है—पुरा नं यो इति पुराणम् पुरा+नो+इ(अ) दीकार का लोप जल्ब। अथवा पुरा भवम् इति पुराणम् पुरा+इयु (यु) सामयिकप्रमाणप्रयोगेऽप्येयम्पुट्युनी तुट् च' इस मूल से। अन्तर में वे स्थान में भुवर्तनाय' मूल से अन आदेश नकार की 'अट्पु'त्वाद्भुम्बवायजि' मूल से गत्व। यही 'सामयिक'—इत्यादि मूल से इयु प्रत्यय का हाना है पर तुट् का आगम नहीं हो पाता है कारण, 'पूर्व

काव्यमवतरत्पुराणतत्त्ववत् समानाधिकरणत इव सूत्र म पाणिनि न पुराण शब्द का निर्णय किया है। यदि सुट हा जायगा तो उक्त सूत्र म पठित पुराण शब्द कये वनेगा ? अथवा पुराणप्राक्तरा ब्राह्मणतत्त्व इव सूत्र निर्देश म निपातन करके पुराण शब्द बन सकना है।

निश्चित म पुराण शब्द का निश्चयन इस प्रकार आया है—पुरा नव भवति जिसका नव घटित सबन प्रथम प्रवृत्त द्वेद वह पुराण है। इसलिये भगवान का भा पुराणरूप बन्ये है। पुराण का अर्थ जण नहा है अपितु जाति विकास है। गाथा म भगवान का प्रथमा म आया है—कवि पुराणमनुशासितार अथान भगवान् ज्ञानार्थी तथा पुराण होत स सबक अनुशासन हैं। अतः पुराण शब्द स आदि साहित्य का तात्पर्य है। आदि साहित्य वह है जिनम आदिशब्द आत्मा का प्रकाश हा। इस आदि विद्या का वेदव्यास ज न जगत्तत्त्वाना के लिए सर्गादि पात्र लक्षणा म प्रथित कर दिया। इस का पुराण कहत हैं। पुराण शब्द को मुनयः द्वे व्यामहृत अपाण्य पुराण कं स्मृति हा जाता है।

पुराण-लक्षण

स्वयं पुराणम हा पुराण क कई लक्षण विषय हैं। काव्याराधन अनुसार उसका मर्यादिक प्रचलित लक्षण यह है—

सगण्य प्रतिस्वयं यंगो म वस्तराणि च।

वसानुचरितञ्चैव पुराण पञ्चलक्षणम्॥

अर्थात् जिनम मग ईश्वरजन सष्टि (कारणमष्टि) प्रतिस्वयं पुन (काय) सष्टि अर लक्ष्य लक्षणा एव विवरा का बगानला समस्त मन्त्रादर (जिस मनु का वक्ता क अविवार रता है) तथा वसानुचरित (सूय चर प्रमति राजका म उत्तरन हान बाल राजाभा क सक्षिप्य वगन) पुराण का यह पञ्च लक्षण हैं। इस लक्षण स सर्वांगक पठित हान वाले प्रायः भविष्य म पुराण हैं पर कुछ ऐसे भा हैं जिनम मर लक्षण पठित नहा हात। पुराण शब्द का व्यवहार अथर्ववेद गणपदब्राह्मण छांदोग्य बृहदारण्यक तैत्तिरीयारण्यक आदि बगाननगण्यमूत्र आपण्य उममूत्र मनुसंहिता रामायण महाभारत प्रमति हिन्दू जानि क प्राक्कलन एव सम्मति प्राया म विद्या गया है। पर यह विवादास्पद है कि उस समय भा पुराण का यह लक्षण था। अथर्वमहिता के श्रुत सामानि छन्दांसि पुराण मनुषा सह (अथर्व ११ ७ २४) इस मत का श्रुत साम छन्द अर पुराण य साथ उत्तरन हुए यन् स्पृष्ट अर है। बृहदारण्यक अर गणपदब्राह्मण म एक स्थान पर यह वचन दिया गया है कि 'जिम प्रकाश गले बाण्ड म उत्तरन अग्नि म पुष्पक-युद्ध पुत्र निरलगा ह उस प्रकार इस भाग्य भूत क निश्वास म क्रमवद यनुवत् साम का अथर्ववेद इतिहास पुराण विद्या उपनियत इहाक सूत्र व्याख्यान अर अनुव्याख्यान निश्चय है। य सर्वा दना निश्वास हैं। इसम भा पुराण का इतिहासदि स पक्व वचन विद्य गया है। छांदोग्य उ० ७ १ १) इस वचन द्वारा पुराण भा वन्मसू म पाचवर्ष वन् माना गया है। इस प्रकार महाभारत और रामायण म भी पुराण शब्द का अनेक स्थान पर प्रयोग हुआ है। अथर्वानु शकुराचार न न दारण्यक क भाष्य म पुराण शब्द क व्याख्या क है। जन्म कता है कि ब्रह्म म उक्ता अर पुरुषा न कयावचन जाति ब्राह्मणमाग का नाम इतिहास अर मन्त्रे का एकमात्र अमनुषा इत्यादि सृष्टि प्रक्रिया क पठित पुनात का नाम पुराण है। इस प्रकार आचार्य

अर्थात् जो धर्म अर्थ काम और मोक्ष के उपदेशों से युक्त तथा पुरावृत्त कथाओं से संचालित हो, उसे इतिहास कहते हैं।

जैन आचर्य इतिहास में सन् सवत् सहित घटनाएँ रहती हैं अर्थात् सन् सवत् युक्त घटना-समूह या सूची का इतिहास कहते हैं, वैसे ही प्राचीन काल में भी था। किन्तु अतीत काल का इतिहास आधुनिक काल के इतिहास में पूर्णतया भिन्न था अर्थात् अतीत काल में इतिहास की वह परिभाषा न थी जो आज है। पूर्वकालीन इतिहास की व्युत्पत्त्यात्मक व्याख्या से यह विषय स्पष्ट हो जाएगा। देखिए विष्णुपुण्य में इतिहास की व्याख्या—

‘इतिहृत्यव्ययम् पारम्पर्योपदेशाध्यायो, तस्यासत्तम् आस. अवस्थितरेतेष्विति।’ अर्थात् ‘इतिह’ अव्यय है, जिसका अर्थ है परम्परागत उपदेशयुक्त कथाएँ और ‘आस’ का अर्थ है—अवस्थिति। अर्थात् जिसमें परम्परागत उपदेशपूर्ण कथाएँ हो, वह ‘इतिहास’ है। अमरकाल में भी ‘इतिहास’ का यही लक्षण दिया गया है। यथा, ‘पारम्पर्योपदेशो स्यादितिहासमितिहास्यम्। इतिहास पुरावृत्त’ अर्थात् परम्परागत प्राचीन घटनाओं का विवरण ही इतिहास है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि प्राचीन तथा प्राचीन इतिहास में भेद केवल काल या समय का है। आचर्य के इतिहास का तात्पर्य सन्, सवत्, तिथि सहित बहुन-सी घटनाओं के वृत्तान्त से है, परन्तु प्राचीन काल में सन्, सवत् आदि की उनकी आवश्यकता नहीं थी केवल सन् के समय में व्यक्ति तथा घटना-काल का अनुमान लगा लिया जाता था। अतः पुराण विदे धार्मिक ग्रन्थ हैं नही हैं अतः उनमें भारत के अतीत का इतिहास भरा पड़ा है। वे प्रागैतिहासिक काल के महत्वपूर्ण इतिहास हैं।

पुराणों का वर्गों में विभाजन

उन अष्टादश पुराणों का वर्गों में भी विभक्त किया गया है। स्कन्दपुराण का वेदाखण्ड में यह चर्चा आयी है कि अठारह महापुराणों में दस गीत चार ब्राह्मणों की शक्ति और दो वैष्णव हैं। फिर उसी पुराण का शिवरहस्य-खण्डान्तर्गत सम्भवखण्ड में लिखा है कि शिव, भविष्य, मार्कण्डेय जिन चारों स्कन्द मत्स्य कूर्म वामन और ब्रह्माण्ड—ये दस पुराण गीत हैं। इन सब की श्लोक संख्या ३ लाख है। विष्णु भागवत नारदाय और गरुड—ये चार वैष्णव हैं इनमें भगवान् विष्णु की महिमा वर्णित है। ब्रह्म और पद्म—ये दो पुराण ब्रह्मा में सम्बन्धित हैं। अग्निपुराण अग्नि की और ब्रह्मवैवर्त पुराण सूर्य की महिमा में पूर्ण हैं। चारों वैष्णव पुराणों में अधिकतर गीत और विष्णु का माहात्म्य वर्णित किया गया है। ब्रह्मपुराण में ब्रह्मा विष्णु और महेश का साम्प्रतिपादित करने हुए भी ब्रह्मा का थोड़ा और सूर्य का त्रिदेवात्मक मिश्र किया गया है। इसी प्रकार गीत पुराणों में शिव का सभी देवताओं में अधिक शक्तिशाली माना गया है। स्कन्दपुराण में यद्यपि विष्णु के भक्त्याचरण का ही वर्णन किया गया है, पर शिव के विविध अवतार एवं कथाएँ का भी इसमें वर्णन मिलता है। इसी प्रकार वायव्य, वामन और ब्रह्माण्ड में भी शिव की अनेक शक्ति का वर्णन किया गया है जिसमें सम्मुख विष्णु, ब्रह्मा प्रभृति सभी देवा एवं शक्तियों का कई बार प्रभावहीन होने दिखाया गया है। गीत मन की प्राचीनता एवं उमरे उदात्त विचारों का ही यह परिणाम है कि अतिवृत्त पुण्य में उमरों चर्चों की गई है। ऋत् यजु नाम आदि अथवा चारों वैदिक महिमाओं में रुद्र की स्तुति मिलती है। इनमें यजुर्वेदान्तर्गत ब्रह्माण्डाध्यायी का आद्य भी बहुत प्रकार है। यद्यपि इस काल में विवाद उठाया गया

है कि ब्रह्मिण स्वरूप। पर राणिक निब अथवा स्वरूप है पर यह परम्परा इतना प्रचलित हुआ है कि व० तक नहीं स्वीकार करता। वाजसनेया संहिता में वाचवाच में निब गिरण पशुपति न लघ व निबिण्ठ भव शव महात्मा इत्यादि नामा का दखने से स्वरूप निब का एकवचन अविश्वस नहीं रह जाता। अथवसंहिता में भी महादेव भव पशुपति आदि नामा का उल्लेख हुआ है। अस्तु शैव पुराणों में प्रायः इन्हीं उपयुक्त नामा का चरित्रावता मनोहर बताया गया है। इनके अतिरिक्त सांख्यिक राजस एवं तामस—इन तीन गुणा का आधार पर भी पुराणों का वर्ग विभाग किया गया है।

पुराणों की श्लोक संख्या और अध्यायों का विवरण

उपयुक्त अष्टादश पुराणों में आए हुए दशका एवं अध्यायों का संख्या तालिका पुराण एवं मत्स्यपुराण में उल्लिखित संख्या के अनुसार प्रस्तुत की जा रहा है—

	तारक्य पुराण के अनुसार (श्लोक संख्या)	मत्स्यपुराण के अनुसार (श्लोक संख्या)	(अध्याय संख्या)
१ ब्रह्मपुराण	१००००	१३०००	२४५
२ पद्मपुराण	५५०००	५५०००	६४१
३ विष्णुपुराण	२००००	२३०००	१२३
४ निबिण्ठपुराण	२४०००	२४०००	६६४
५ भागवत	१८०००	१८०००	४३२
६ तारक्यपुराण	२५०००	२५०००	२०७
७ भागवतपुराण	९०००	९०००	१०४
८ अग्निपुराण	१५०००	१५०००	२८३
९ भविष्यपुराण	१४०००	१४५००	६०५
१० ब्रह्मवर्णपुराण	१८०००	१८०००	२६६
११ विष्णुपुराण	११०००	११०००	१६०
१२ वाराणसीपुराण	२४०००	२४०००	२१८
१३ स्कन्दपुराण	८११००	८१०००	१६७१
१४ वामनपुराण	१००००	१००००	२५
१५ कथपुराण	१७०००	१८०००	७९
१६ मत्स्यपुराण	१५०००	१४०००	२९०
१७ गण्डपुराण	१९०००	१८०००	३१८
१८ ब्रह्माण्डपुराण	१००००	१२२००	१६१

इन पुराणों का जो सम्बरण आसक्त मिल रहे हैं उनमें सबसे भागवत विष्णुपुराण मत्स्यपुराण और ब्रह्माण्ड पुराण में उपयुक्त ज्ञान-मार्ग ठीक है पर साय पुराणों का ज्ञान मत्स्य में पर्याप्त अंतर है।

ब्रह्मपुराण

यह पुराण ब्रह्माण्डपुराण के अनुसार अष्टादश पुराणों में सबसे बड़ा पुराण है—

आद्य तत्त्वपुराणानां पुराणं ब्रह्मपुराणम्।

अष्टादश पुराणानि पुराणानां प्रधानम्॥

किन्तु दस भागवन के अनुसार ब्रह्मपुराण पञ्चवा पुराण है। नारद पुराण के अनुसार ब्रह्मपुराण में दस हजार श्लोक होते चाहिए किन्तु मन्वन्तरपुराण में ब्रह्मपुराण के तत्सह हजार श्लोकों का गणना उल्लिखित है। यहाँ महाविष्णुपुराण बारा पुराण कमपुराण अथ पद्मपुराण में भी उल्लिखित है। किन्तु प्रस्तुत सम्बन्ध में तत्सह हजार गान्धारी निगमा श्लोक उपर्युक्त हैं। यह सम्बन्ध आनन्दश्रम पूना में प्रकाशित प्रति के आधार पर तैयार किया गया है।

ब्रह्मपुराण के दो भाग हैं—पूवभाग और उत्तरभाग। दोनों भागों में मिलकर कुल २४६ अध्याय हैं। जिनमें पूवभाग में दस और अंगुरा प्रजापति का तथा दस आदि के उत्पत्ति का वर्णन है। फिर भगवान् मूय के वंश का वर्णन तथा भगवान् राम के अनुव्यवहार का उल्लेख है। तदनन्तर पद्मका का वर्णन एवं जगन्नाथ के कृष्ण का चरित्र चित्रित है। तत्पश्चात् देवा ददिया वर्षों पात्रा स्वर्ग और नरक का वर्णन मिलता है। फिर मूय के पुत्रों का जन्म और विवाह वर्णन है। इसके बाद दस का आश्विन और एकादश का वर्णन मिलता है। अन्त में पूवभाग में इतना ही विषय आया है।

उत्तरभाग में पुरुषात्मन्त्र का विचार में वर्णन तथा तायदात्रा का विचार निम्नित है। पत महा भा कृष्ण चरित्र पर प्रकाश डाला गया है। अन्त में ब्रह्मलोक का वर्णन किन्तुषाड का विधान वर्णनमय का निरूपण मुण्ड का आश्विन तथा प्रलय का वर्णन किया गया है। तदनन्तर पाण्डव तथा सायक का शम्भु ब्रह्मवाद का निरूपण और ब्रह्मपुराण के फलभुति का वर्णन किया गया है।

अन्त में गण प्रतिज्ञा का मन्वन्तर और कालचरित्र—य सभी पुराणों में प्रायः मिलते हैं। किन्तु ब्रह्मपुराण के आदि पुराण होने में इनके श्लोकों का कुछ पुराणों में उपाध-ध्याय रूप में मिल गया है। जब ब्रह्मपुराण के निम्नलिखित श्लोक विष्णुपुराण एवं नारदपुराण में अतिशय रूप में आये हैं—

गोपीपरिवृता रात्रि परब्रह्मद्वन्द्वोरमाय ।
मानयामास गाविन्दो रासारम्भरत्न स्तुक् ॥
गन्धर्व वृन्दो बृहस्पत्योऽप्यवतमूतय ।
अथरेण गत बृहन् चैव ब्रह्मवत्तत्तत्तय ॥
ब्रह्मस्तुतास्ततो गोप्यो निरागा बृहदग्नय ।
बृहस्पत्य चरन् रश्मि दृष्ट्वा बृहदावत द्विजा ॥
एवं मानाप्रहारायु बृहस्पत्यायु तासु च । (ब्रह्मपुराण अध्याय १८)

गोपीपरिवृता रात्रि परब्रह्मद्वन्द्वोरमाय ।
मानयामास गाविन्दो रासारम्भरत्न स्तुक् ॥
गन्धर्व वृन्दो बृहस्पत्योऽप्यवतमूतय ।
अथरेण गत बृहन् चैव ब्रह्मवत्तत्तत्तय ॥

एवं मानाप्रहारायु बृहस्पत्यायु तासु च । (विष्णुपुराण अध्याय १५ १३)
गन्धर्ववृन्दो गत ब्रह्मवत्तत्तत्तय ।
गन्धर्ववृन्दो गत ब्रह्मवत्तत्तत्तय ।

प्रथमं शुबलवर्णाभिं शारदेन्दुसमप्रभम् ।
 आरवताक्षं महाकायं जटाविकटमस्तकम् ॥
 मोलाम्बरपर चोषं बलं बलमदोद्धतम् ।
 कुण्डलंकुपरं दिव्यं महासुलधारिणम् ॥
 द्वितीयं पुण्डरीकाक्षं मोलजोमूतसमिभम् ।
 अतसोपुष्पसकाशं पद्मपत्रायतेक्षणम् ॥
 पोतवाससमरुणं शुभ्रं धोवत्सलक्षणम् ।
 चक्रपूर्णकरं दिव्यं सर्वपापहरं हरिम् ॥
 तृतीयां स्वर्णवर्णाभा पद्मपत्रायतेक्षणम् ।
 विचित्रवस्त्रसंश्रया हारकेयूरभूषिताम् ॥
 विचित्रभरणोपेतां रत्नहारविलम्बिताम् ।
 पोतोन्नतकुक्षीं रम्यां विश्वकर्मा विनिर्ममे ॥
 भूत्वंतद्वचनं तस्य विश्वकर्मा सुकर्मकृत् ।
 तत्क्षणात् कारयामास प्रतिमां शुभलक्षणां ॥
 कुण्डलाभ्यां दिशिष्ठाभ्यां कर्णाभ्यां मुविदाजिता ।
 चकलाङ्गुलविण्यासदृस्ताभ्यां सागुप्तसम्भृताः ॥
 प्रथमं शुबलवर्णाभिं शारदेन्दुसमप्रभम् ।
 मुरकाङ्गु महाकायं जटाविकटमस्तकम् ॥
 मोलाम्बरपर चोषं बलं बलमदोद्धतम् ।
 कुण्डलंकुपरं दिव्यं महासुलधारिणम् ॥
 द्वितीयं पुण्डरीकाक्षं मोलजोमूतसमिभम् ।
 अतसोपुष्पसकाशं पद्मपत्रायतेक्षणम् ॥
 धोवत्सलक्षणं भोजनोपेतवाससमरुणम् ।
 चक्रपूर्णकरं दिव्यं सर्वपापहरं हरिम् ॥
 तृतीयां स्वर्णवर्णाभा पद्मपत्रायतेक्षणम् ।
 विचित्रवस्त्रसंश्रया हारकेयूरभूषिताम् ॥
 विचित्रभरणोपेतां रत्नमालाविलम्बिताम् ।
 पोतोन्नतकुक्षीं रम्यां विश्वकर्मा विनिर्ममे ॥

(ब्रह्मपुराण, ५०, ४८-५९)

यह भूमिका लिखने में मुझ जिन विद्वानों की इच्छा से सहायता मिली है, उनमें प्रति तथा विशेष

रूप में १० श्रीश्रीहृणमणि जिगाडी के प्रति मैं अस्सी हादिव कृतज्ञता प्रकट करना हूँ।

सन् २०३३ वि०

रामनरमो

—तारणीश भा

विषय सूची

००

[ब्रह्मपुराण के अष्टादश अध्यायों के क्रम से विषय व अनुक्रमणिका]

अध्याय १

मगलावरण तथा निर्धारण-वर्णन

मगलावरण के द्वारा निर्धारण का वर्णन मुनियों का शुभागमन निर्धारण में मृत्यु का ज्ञान तथा ऋषियों का उनसे पुराण सुनने के लिए निवेदन करना लोमटूषण (मूत्र) के द्वारा पुच्छनकवा का आरम्भ। सृष्टि के सम्बन्ध में विवरण जल के उत्पत्ति ब्रह्मा का जाविर्भाव ब्रह्मा द्वारा अण्ड का दो भाग करना ब्रह्मा से मर वि आदि ऋषियों के उत्पत्ति एवं आदि का उद्भव पक्षस्वन् मनु का उत्पत्ति आदि सब के सुनने का फल। १-६

अध्याय २

स्वायम्भुव मनु का वर्णन

स्वायम्भुव मनु के साथ गुरुका का विवाह गुरुका से प्रियव्र उत्तमपादा पुत्र एवं कात्या नामक कन्या के जन्म का आश्वासन उत्तमपादा के वंश का वर्णन प्रसंग से पशु का जन्म प्रचलित का उत्पत्ति प्रचलित व मुरगिन सवक्षा का जन्म। उनका वध-पुत्र मारिया से विवाह मारिया से दशक उत्पत्ति एवं दक्ष का वर्णन इस कथा के सुनने का फल। ६-११

अध्याय ३

देव-दानव उत्पत्ति-वर्णन

देवात्पत्ति का वर्णन सवप्रथम दक्ष के मानव सन्तान का वर्णन पुत्र मयुज घम में अमिस्त नामक पत्नी में होना का जन्म। पिता व आमा से वंश वर्णन ५ इन्द्रक हयका का नारद का उत्पत्ति और उनका वंश में जाना। फिर गन्धर्व नामक पुत्र का जन्म उनका वंश नारद का उत्पत्ति में पूर्ववत् पुत्र वंश में जाना। अनन्तर दक्ष द्वारा पुत्र मातृ कन्या का जन्म दत्ता त्रिवा एवं उनका सन्तान का वर्णन। महर्षि का उत्पत्ति। भूज सृष्टि मुक्त का फल। ११-२१

अध्याय ४

देव-दानवों के राज्याभिषेक का वर्णन

पितामह द्वारा उन उन रूपाना में किए गए दक्षिणा का चकारिण-वर्णन। पूष-चरित का आरम्भ। वंश का चरित। वंश व दुश्चरित का देव-ऋषियों द्वारा धारण। ऋषियों का गण से मरे हुए वंश का दक्ष का

मन्यन से पूष का जन्म, पूष का राज्याभिषेक, पूष के राज्य की स्थिति का वर्णन, सूत, मागध एवं दन्दी जन द्वारा पूष की स्तुति। देवताओं के साथ पूष द्वारा पृथ्वी का दोहन, जिसमें बछड़े, पाव, दूध आदि का वर्णन है। २१-३१

अध्याय ५

मन्वन्तरो का वर्णन

मन्वन्तरा में देवपि, इन्द्र आदि का निरूपण। महाप्रलय एवं अल्प प्रलय का वर्णन।

३१-३६

अध्याय ६

सूर्यात्मिकता का वर्णन

सूर्य के पुत्र एवं कथा का वर्णन छाया एवं सत्ता का सवाद और उनका चरित्र-वर्णन। सूर्य एवं यम का सवाद। छाया का धार्मिक रूप धारण करना सूर्य का अरुण रूप से छाया के साथ संगम। देव-वैद्य भविर्ननुमारा की उत्पत्ति। सक्षेप से सूर्य-सन्तान यमुना शनैश्चर तथा सार्वणि का वर्णन। देव-सृष्टि के सुनने का माहात्म्य। ३६-४०

अध्याय ७

सूर्य-वंश का वर्णन

सूर्य-वंश में इला की उत्पत्ति इला एवं मैत्रावरुण का सवाद। इला का बुध के साथ समागम। सुद्युम्न आदि का जन्म, उनका वंश-वर्णन, इक्ष्वाकु आदि मनु-पुत्रा का वंश-वर्णन। बुध-स्वामी का निर्माण। बलदेव और रेवती का विवाह। बुधलयाश्व के चरित्र का वर्णन। पिता के द्वारा बुधलयाश्व का चरित्र-वर्णन। पिता के द्वारा बुधलयाश्व का राज्याभिषेक एवं बुधलयाश्व के घर में उत्तक मुनि का आगमन और उनसे द्वारा धुन्धु राक्षस के चरित्र का वर्णन। पिता की आज्ञा से बुधलयाश्व का उत्तक के साथ धुन्धु राक्षस को मारने के लिए जाना। धुन्धु राक्षस का वध। धुन्धुमार को उत्तक का वरदान। धुन्धुमार के वध में होने वाले राजाज्ञा का सक्षेप से चरित्र-वर्णन। सत्यत्रन राजा का चरित्र-वर्णन एवं गालव का चरित्र-वर्णन। ४१-५०

अध्याय ८

सूर्य-वंश का वर्णन

सत्यत्रन का त्रिगुप्त नाम पढ़ना त्रिगुप्त का सद्यौर स्वर्ग जाना। हरिश्चन्द्र का जन्म-वर्णन। राजा सगर का अरुणमेघ यज्ञ करना। घोड़े का राजा के लिए पृथ्वी को साहसे हुए साठ हजार सगर-पुत्रों को वपिल मुनि का दान। अवशिष्ट धार पुत्रा को वपिल का वरदान। साठ हजार पुत्रा का जन्म-वर्णन। भगीरथ की उत्पत्ति, गंगा का भागीरथी नाम पढ़ना। ५०-५७

अध्याय ९

चन्द्रमा की उत्पत्ति का वर्णन

अग्नि ऋषि का तार एवं अग्नि के नेत्रा से दत्त प्रकार की सृष्टि। चन्द्रमा की उत्पत्ति। चन्द्र का बीज एवं ओगपिया का स्वामी बनना। रात्रमुख यज्ञ का आरम्भ। चन्द्र द्वारा वृक्षपति की स्त्री तारा का हरण, उसके निमित्त

देव-दानवा का युद्ध। बृहस्पति का तारा की प्राप्ति, गर्भ-न्याय के लिए तारा से बृहस्पति का सत्राघ कथन, इषीका-स्तम्भ में तारा द्वारा गर्भ-न्याय एवं बुध का प्रभुत्वम्।

५७-६०

अध्याय १०

चन्द्रवश का वर्णन

साम-युव बुध के अश्व में पुरूरवा की उत्पत्ति। पुरूरवा के पुत्र का आख्यान-वर्णन। गाधि-राज का जन्म। गाधि-कन्या सत्यवती का ऋचीक ऋषि के साथ विवाह। ऋचीक द्वारा सत्यवती को दो धरु देना—एक उसके लिए और दूसरा उसकी माना के लिए। धरु के बदल जाने से उसके प्रभाव से उत्पन्न पुत्रा वैभुज-स्वभाव में व्यत्यय होगा—ऐसा ऋचीक द्वारा सत्यवती के प्रति कथन। सत्यवती का ऋचीक से वरदान की प्राप्ति। जमदग्नि की उत्पत्ति। रेणुका एवं जमदग्नि का विवाह। परशुराम की उत्पत्ति। विश्वामित्र का जन्म एवं तप आदि का वर्णन।

६०-६६

अध्याय ११

चन्द्र-वश-वर्णन

आयु के पाँच पुत्रों की उत्पत्ति। रजि का चरित्र-वर्णन। रजि से पाँच सौ पुत्रों की उत्पत्ति। देव-दानवा का युद्ध। दैत्या को जीतने के लिए देवताओं द्वारा रजि से प्रार्थना। रजि द्वारा इन्द्र पद की माँग। पश्चात् रजि से दैत्या का पराजय और रजि को इन्द्र-पद की प्राप्ति। रजि और इन्द्र का प्रमालाप। रजि के पुत्रों द्वारा इन्द्र पद का हरण एवं इन्द्र द्वारा उनका वध। इन्द्र की पुत्र अपने पद की प्राप्ति। राजा अन्ता की सन्तान का वर्णन। यमु नामक राजा से घन्धस्तदि का जन्म तथा भरद्वाज से आयुर्वेद की प्राप्ति। आयुर्वेद के आठ भाग कर के अपने शिष्या का वितरण करना। काशी को तिरुम्भ का शापदान तथा शाप के अन्त में अलकं द्वारा पुन स्थापन।

६६-७१

अध्याय १२

ययाति का चरित्र-वर्णन

नहुष से ययाति आदि पुत्रा का जन्म। ययाति के वन का वर्णन। ययाति से ५ पुत्रों का उत्पत्ति। यदु के प्रति ययाति की अपन-बृद्धावस्था ग्रहण करने की आज्ञा। बृद्धत्व का ग्रहण न करने पर यदु का ययाति का शाप। पुष्ट से ययाति को युवावस्था का दान और भोग करने के बाद ययाति का ज्ञान।

७१-७५

अध्याय १३

पुरु के वंश का वर्णन

पुरु-वंश का वर्णन। पुरु-वंश के अन्तर्गत वग-वंश का कथन। दुष्यन्त का जन्म। दुष्यन्त से शकुन्तला नामक पत्नी में भरत की उत्पत्ति। भरत के वंशजों की भारत उपाधि। जहनु के द्वारा गगार्श का शाप। मुष्ट से निमित्त कुशक्षेत्र का वर्णन। सोम-वंश में प्रसिद्ध राजाओं—शान्तानु से जनमज्ज तथा—का वर्णन। पुरुवंश की समाप्ति। कार्तवीर्यार्जुन का वर्णन, कार्तवीर्य का आपव मुनि का शाप।

७६-९२

विषय सूची

अध्याय १४

यइ पुत्र कऋ के वंश का वंश

यइ के पुत्र श्रेष्ठ के वंश का वंश। वसुदेव का जन्म। वसुदेव का चौदह पत्निया का नामावली। सक्षप मे कृष्ण जन्म-वर्णन। कालवर्णन के भय से कृष्ण सहित वादवा का भाग जाना। ९२-९७

अध्याय १५

वृष्णि के वंश का वंश

वृष्णि-वंश का वंश। धर्मकारणुका राजा जयामन का चरित्र वर्णन। कभू एवं दवावध का महिमा का वर्णन। देव के सात बन्धाओं का उपज होना एवं कस का जन्म। ९७-१०२

अध्याय १६

सत्राजित का उपाख्यान

सत्राजित का चरित्र का वर्णन। स्वमतक मणि का आख्यान। कृष्ण का जाम्बवत के साथ विवाह। ऋक्षराज जाम्बवान् स स्वमतक मणि का लाना। कृष्ण और सत्यभामा का विवाह-वर्णन। १०२-१०७

अध्याय १७

स्वमतक मणि का कथा

स्वमतक का लिए गतयन्त्रा बडाता सत्राजित् का मृत्यु। अकर के पास स्वमतक मणि का मिलना। १०७-११०

अध्याय १८

भुवन-कण का वर्णन

भुवनकाण्ड-वर्णन। मुनिया का लम्हपण का साथ सवाण। भूगोल का वर्णन। सात द्वीप का वर्णन। जम्ब द्वीप का वर्णन एवं मरु परत का वर्णन। भरत आदि राजा का वर्णन। मर्यादा-पर्वता का वर्णन। १११-११६

अध्याय १९

जम्बद्वीप का वर्णन

जम्बद्वीप का वर्णन। भारतवर्ष का वर्णन। नंद एवं उपनिषा का नामावली का वर्णन। जम्बद्वीप का प्रगासा। ११६-११८

अध्याय २०

जम्बूद्वीप-वर्णन

जम्बूद्वीप का वर्णन। प्ल इन्द्र का वर्णन तथा कर्ण पर इन्द्र का मनुष्या की आयु का प्रमाण। शाकल द्वीप कुण्डल शीशुवद्वीप सावद्वीप पुण्ड्रद्वीप और लाताशकपवन का वर्णन। ११९-१२६

अध्याय २१

पाताल के प्रदाण का वर्णन

पाताल आदि सात लोकों का वर्णन तथा अनन्त का पराक्रम-वर्णन।

१२६-१२८

अध्याय २२

नरका का वर्णन

नरक वर्णन—रौरव आदि नरकों की नामावली। पापा का वर्णन। पाप से नरक-प्राप्ति। पापी पुष्पा के पाप का नाश करने के लिए हरि-स्मरण ही प्रायश्चित्त है।

१२९-१३३

अध्याय २३

भूर्, भुवर् आदि लोकों का वर्णन

आकाश और पृथ्वी का वर्णन। सौरादि मण्डला का तथा भूर्भुवादि सात लोकों का प्रमाण-वर्णन। महादेव की उत्पत्ति का वर्णन।

१३३-१३७

अध्याय २४

भुव की स्थिति का वर्णन

मिशुमारचक्र का वर्णन, भुवस्थिति का वर्णन।

१३७-१३९

अध्याय २५

सकल तीर्थों के माहात्म्य का वर्णन

सौरादीर्घ का वर्णन। त्रितन्द्रिय पुरुष की प्रशंसा। सक्षप से तीर्थों का नामवचन। तीर्थों के माहात्म्य पठने का फल-वर्णन।

१३९-१४५

अध्याय २६

ब्रह्मा और महर्षि का संवाद-वर्णन

वेदव्यास से मुनियों का संवाद। मोक्ष के विषय में ब्रह्मा से मुनियों का प्रश्न।

१४५-१४८

अध्याय २७

भारतवर्ष का वर्णन

भरत-गण्ड की प्रशंसा। भरत-गण्ड में होने वाले पर्वत और नदियों का वर्णन और वहाँ पर होने वाले नाश देवा का वर्णन। भरत-गण्ड के माहात्म्य का पठन एवं श्रवण का फल।

१४८-१५५

अध्याय २८

काणादित्य का माहात्म्य-वर्णन

ओङ्क (उडीमा) का वर्णन तथा वहाँ पर रहने वाले बाह्यणा की प्रशंसा। काणादित्य नामक सूर्य की महिमा

का वर्णन। सूर्य की पूजा विधि का वर्णन। मदनभञ्जिका नामक यात्रा का प्रस्ताव। रामेश्वरम् नामक सिर्वालिंग की महिमा का वर्णन। १५५-१६०

अध्याय २६

सूर्य-पूजा का प्रकरण

सूर्य के ध्यान, पूजा और भक्ति के माहात्म्य का वर्णन। भाव भास में सप्तमी के दिन सूर्य की आराधना से विशेष फल प्राप्ति का वर्णन। १६१-१६६

अध्याय ३०

आदित्य का माहात्म्य-वर्णन

सम्पूर्ण जगत् की उत्पत्ति सूर्य से ही है, ऐसा वर्णन। इन्द्र पाता आदि बारह सूर्यों से शत्रुनाश एवं त्रिविध प्रजा की उत्पत्ति, आदित्यस्थान का फल-कथन। १६६-१७४

अध्याय ३१

आदित्य का नाम-माहात्म्य

त्रिलोकी का मूल एवं परम देव सूर्य ही है। आदित्य के सामान्यतः द्वादश नामा का वर्णन। विष्णु आदि बारह आदित्यों का चैत्र आदि द्वादश नामा में तदन-कथन। सूर्य के विकर्तनादि २१ नामों का वर्णन एवं फल-कथन। १७४-१७७

अध्याय ३२

सूर्य के जन्म का माहात्म्य

दैत्यो से पीड़ित देवों के दुःख-मास के लिए आदिति द्वारा सूर्य की आराधना एवं स्तुति। अदिति को सूर्य का दर्शन। अदिति की प्रार्थना से प्रसन्न सूर्य का वरदान माँगने के लिए प्रेरित करना। 'मेरे पुत्रों की वज्रभागी बनाइए'—ऐसा अदिति का वर माँगना। मैं तुमसे जन्म लेकर तुम्हारे धनुषों का नाश करूँगा—ऐसा कहते हुए सूर्य का अलङ्घित होता। देवमाना अदिति के गर्भ में सूर्य की स्थिति। वृच्छू एवं चाण्डाल्यादि व्रता में गर्भ धारण करती हुई अदिति से 'तुम इनके कठिन व्रतों के द्वारा गर्भ को क्या नष्ट कर रही हो'—इस प्रकार वरमप का कहना। तदनन्तर पति के वचना से कुपित अदिति का गर्भ-त्याग। गर्भगण्ड से प्रकट हुए आदित्य की वरमप द्वारा स्तुति। यह गर्भगण्ड नामक तुम्हारा पुत्र होगा—यह आकाशवाणी का कथन। आकाशवाणी मूल कर देवताओं का आगमन। गर्भगण्ड की सहायता में देवताओं का दैत्या के साथ युद्ध। युद्ध में दैत्या की पराजय। प्रसन्न हुए देवताओं द्वारा सूर्य की स्तुति। सूर्य का सत्ता के साथ विवाह। सूर्य की सत्ताना का वर्णन। सत्ता और छाया का संवाद। सत्ता का पिता के घर जाना। अनन्तर छाया की सत्ताना का वर्णन। छाया का सत्ता की सत्ताना के साथ विषम भाव। लक्ष्मण और यमराज के मन्त्रों में सूर्य-स्तुति-वर्णन। देवदूत सूर्यस्तुति। सूर्य के तेज का स्तुतीकरण। १७७-१८८

अध्याय ३३

सूर्य के नामों का माहात्म्य

अन्वकार से विमल ब्रह्मा आदि देवी के द्वारा सूर्य की स्तुति । देवताओं की सूर्यदेव का वरदान । सूर्य के १०८ नामों का माहात्म्य और उसका फल । १८८-१९२

अध्याय ३४

रुद्र का आस्थान-वर्णन

रुद्र की महिमा का वर्णन । मक्षेप से दक्षकन्या, सती आदि दक्ष-पुत्रियों का यज्ञोत्सव देखने के लिए पिता के घर जाना । दक्ष और सती का संवाद । क्रोधयुक्त सती का योगान्ति से शरीर-साह । शक्र और दक्ष का परस्पर शाप-दान । ब्रह्मा और मुनिषा का संवाद । पार्वती के आस्थान का आरम्भ । हिमालय से उमा की उत्पत्ति । कश्यप और हिमालय का संवाद । तप करने हुए हिमालय को ब्रह्मा का वरदान । हिमालय से मेना में तीन कन्याओं की उत्पत्ति एवं उनका नामकरण । तप करती हुई पार्वती को ब्रह्मा का वरदान । १९३-२०३

अध्याय ३५

पार्वती का उपास्थान-वर्णन

उमा का देवताओं के साथ संवाद । विकृतरूपधारी महादेव का पावता के पास जाना । विकृत रूप का वर्णन । शिव-पार्वती का संवाद । विकृतरूपधारी शिव का हिमालय के साथ वार्तालाप । ये शिव हैं ऐसा जानकर पार्वती द्वारा शिव का वरण । अशोक वृक्ष की प्रति शिव का वरदान । शिव का अन्वेषण होना । श्राद्ध से प्रसन्न बालक का राखन एवं पार्वती तथा श्राद्ध का संवाद । 'मेरा तप मल्ट हो गया' यह जानकर पार्वती का पुनः तप करना और पार्वती का शक्र का वरदान । २०३-२१०

अध्याय ३६

पार्वती का स्वयंवर-वर्णन

पार्वती के स्वयंवर में सम्पूर्ण देवताओं का आगमन । देवताओं द्वारा पार्वती की प्रशंसा । शिवरूप से शक्र का पार्वती की गोद में सेना । ऋषयुक्त इन्द्र आदि देवताओं द्वारा शिव पर शस्त्र प्रहार । शिव द्वारा समस्त देवों का सम्मन । सम्पूर्ण देवताओं को छुड़ाने के लिए ब्रह्मा द्वारा शिव की स्तुति । स्तुति सुनकर शक्र का प्रादुर्भाव । पार्वती द्वारा शक्र के चरणों में माला का अर्पण । ब्रह्मा द्वारा हिमालय की प्रशंसा । शिव के विवाह के लिए ब्रह्मा के द्वारा नगर का निर्माण । देव गन्धर्व आदि का आगमन एवं वसन्त आदि छह ऋतुओं का समागम । पार्वती और शक्र का विधिपूर्वक विवाह होना । २१०-२२३

अध्याय ३७

शिव की स्तुति का वर्णन

देवहूत महेश्वर की स्तुति । शिव के सम्मुख देवताओं का वर के लिए जाना । अपने गणों के साथ शक्र का अपने स्थान पर गमन । २२४-२२७

अध्याय ३८

मदन-दीह का वणन

महेश्वर की मयाम्बि से कामदेव का जलना। रति को महेश्वर का बरदान। पावत और गकरक का डा। पावत का माना के घर जाना। साना मेना के द्वारा पावत का उपहास। शिव के आगे माना के उपनाम का वणन। पावता के क्रोध को गान्त करने के लिए महादेव का सुन्दर हास्यालप। २३७-२३२

अध्याय ३९

दक्ष के यज्ञ का विवस

इन्द्र आदि देवताओं का दक्ष के पास जाना। देवताओं का साथ श्रुति दक्ष चि का सवाद। दक्ष चि का दक्ष के साथ सवाद। पावत और महेश्वर का सवाद-वणन। वरभद्र के उत्पत्ति और शिव के आना से वरभद्र का दक्ष के यज्ञ में जाना एवं यज्ञ का विवस। इन्द्र आदि का वरभद्र से प्रार्थन करना और वरभद्र का शिव के आना से यज्ञ मण्ड करने के लिए आगमन रूप उत्तर देना। मगरूप धारण कर के दक्ष का आकाश में जाना। क्रुद्ध गणगज के ललाट के स्वेद बिन्दु से अग्नि के उत्पत्ति। बह्म पर उत्पन्न हुए पुरुष के द्वारा यज्ञ का विवस। यज्ञ-कर्म में देवताओं को भाग देंगे—इस प्रकार ब्रह्मा का शक्ति के प्रति कथन। शक्ति से दक्ष का वर प्राप्ति। २३२-२४२

अध्याय ४०

दक्ष द्वारा शिव को स्तुति

दक्ष द्वारा शिव-सहस्र नाम का वणन तथा प्रसन्न होकर शक्ति का दक्ष को वरदान। सम्पूर्ण वस्तुओं में शक्ति के द्वारा शक्ति को विभक्त करना। ज्वरोत्पत्ति के पठन और श्रवण का फल। दक्षस्तोत्र का फल-कथन। २४२-२५३

अध्याय ४१

एकाग्रकक्षत्र-वणन

एकाग्रकक्षत्र का माहात्म्य-कथन।

२५३-२६०

अध्याय ४२

उत्कलक्षत्र का वणन

विद्वत्ता देव वनरणा और कपिला आदि जन्म तथों का वणन। उत्कलक्षत्र का वणन और बह्म पर पुण्यात्तम क्षत्र का माहात्म्य तथा स्वर्ग आदि देवी के स्थान का वणन।

२६६-२६४

अध्याय ४३

अवन्ति-वणन

ब्रह्मा के प्रति भुनिया का प्रश्न और अवन्ति-वणन का वणन। महाबल नामक शिव का महिमा का वणन तथा क्षिप्रा नाम का वणन। बह्म पर गोविन्द स्वामी नामक विष्णु का महिमा का वणन।

२६५-२७१

अध्याय ४४

इन्द्रद्युम्न का दक्षिण-समुद्र के तट पर जाना

अवनिदेश के राजा इन्द्रद्युम्न का वर्णन और सम्पूर्ण नगरवासियों के साथ दक्षिण समुद्र के तट पर जाना।

२७२-२७७

अध्याय ४५

पुरपोत-क्षेत्र का वर्णन

ब्रह्मा के प्रति मुनिना का प्रश्न। मुनिना का सदेह दूर करने के लिए इतिहास-कथन। सुमेधर्वत पर बैठ हुए ऋषी और विष्णु का संवाद। विष्णु के द्वारा पुरुषोत्तम नामक तैर्यवर्णन के प्रसंग में सृष्टि का वर्णन। ब्रह्मा और विष्णु का वातावरण। पुरपोतम क्षेत्र में स्थित बट वृक्ष का वर्णन। बट वृक्ष के दक्षिण की तरफ मन्दिर में विष्णु-मूर्ति के दर्शन से सप्त मनुष्या का बँटुण्ड-गमन। सदनन्तर यम के द्वारा विष्णु की स्तुति। मूर्ति को डकने के लिए यम की प्रार्थना। तत्पश्चात् यमराज का अपनी नगरी सयमनी का जाना।

२७८-२८५

अध्याय ४६

पुरपोत-क्षेत्र का वर्णन

पुरुषोत्तमक्षेत्र का वर्णन और वहाँ पर त्विन्नोत्पला नामक नदी का माहात्म्य। नदी के दोनों तरफ में गाँवों वहाँ पर रहने वाले एवं वर्णाश्रम धर्म को धारण करने वाले पुरपा और स्त्रिया का वर्णन। राजा इन्द्रद्युम्न द्वारा समर्पित स्थान दक्ष बट भवन कामना पूर्ण करने का संकल्प।

२८५-२८८

अध्याय ४७

मन्दिर बनवाने के लिए राजाओं का आह्वान

राजा इन्द्रद्युम्न द्वारा नगरियों को शुभ मूर्त में मन्दिर का निर्माण आरम्भ करने के लिए आज्ञा प्रदान। इन्द्रद्युम्न की आज्ञा से उत्तम शिला स्नान के लिए कलिगादि भाण्डलिक राजाओं का विन्यास के प्रति प्रस्थान। इन्द्रद्युम्न के दूत द्वारा सप्ताह के समस्त राजाओं को सूचना देने पर उस क्षण में आने का वर्णन। इन्द्रद्युम्न का राजाओं के साथ संवाद। राजा के द्वारा यज्ञ मित्रि के लिए सब सामग्रियों को जुटाना। इन्द्रद्युम्न की आज्ञा से उसके पुराहिण द्वारा यज्ञस्थल-निर्माण और वहाँ सब लोगों के प्रवेश का वर्णन। यज्ञ का आरम्भ नया यज्ञ क समार का दायर राजा का हर्ष की प्राप्ति। यज्ञ के पीछे आदि मय पदार्थ लाने के लिए राजा का आदेश। वाद्यवाजः वस्त्र आभूषण आदि अनेक दान देने का वर्णन। सबकी श्रम के द्वारा पूर्ण। यज्ञ और प्रासाद की समाप्ति।

२८८-२९६

अध्याय ४८

इन्द्रद्युम्न द्वारा प्रतिवा का निर्माण

प्रतिमा प्राप्ति के लिए दिन रात विन्ना से व्याकुल राजा द्वारा सब भोगों का परित्याग।

२९६-२९७

अध्याय ४९

इन्द्रमुनि द्वारा भगवान् की स्तुति

राजा के द्वारा भगवान् की स्तुति। स्तुति-पाठ का फल।

२९८-३०३

अध्याय ५०

प्रतिमोत्पत्ति का कथन

चिन्ताग्रस्त राजा को स्वप्न में भगवान् का दर्शन। प्रतिमा प्राप्ति का उपाय बताया। शान बाल उठ कर नित्यकर्म करने के बाद अग्राह्य राजा का मूर्ति दूढ़ने के लिए जाना। बंड युध का काटते हुए राजा के प्रति ब्राह्मण-वेशधारी विष्णु एवं विश्वकर्मा का प्रदन। प्रतिमा निर्माण के लिए यत्न कर रहा हूँ—ऐसा राजा के कहने पर भगवान् का प्रयत्न होना और विश्वकर्मा की तीन प्रतिमा बनाने की आज्ञा देना। विष्णु की आज्ञा से विश्वकर्मा द्वारा तीन मूर्तियों का निर्माण। कीर्तुष व साथ मूर्ति को देखने हुए राजा का 'आप वीर है यह प्रदन।

३०४-३०९

अध्याय ५१

भगवान् और इन्द्रमुनि का संवाद

सर्वजगन्निपण्ण आदि गुणा से युक्त मैं ही पुरुषोत्तम हूँ—ऐसा भगवान् का वचन। राजा का निर्गुण आदि गुण विशिष्ट भगवत्पद प्राप्ति के लिए स्तुतिपूर्वक प्रार्थना करना। भगवान् का 'तयास्तु बह्वर वरदान देना और अन्तर्धान हो जाना। पुरुषोत्तमभाष में तीन मूर्तियों का पुनः मुहूर्त में स्थापन। इस प्रकार राजा के मनोरथ की पूर्ति एवं विष्णुपद की प्राप्ति। ब्रह्मा द्वारा पुरुषोत्तम क्षण में आए हुए त्रिषों का वचन।

३१०-३१६

अध्याय ५२

मार्कण्डेय मुनि का वटवृक्ष-दर्शन

मार्कण्डेय ब्राह्मण का आरम्भ—वृक्षारण्य में अनेक प्रकार के वृक्षा में व्याकुलित मार्कण्डेय का वटवृक्ष का दर्शन।

३१७-३१८

अध्याय ५३

अध्याय ५६

विष्णु और मार्कण्डेय का संवाद

विस्तार से विष्णु एवं मार्कण्डेय का संवाद-वर्णन और भगवान् का अन्तर्धान ।

३२९-३३६

अध्याय ५७

पञ्चतोर्य की विधि का वर्णन

पञ्चतोर्यों का वर्णन तथा मार्कण्डेय नामक तालाव की प्रशंसा । षट्पृष्ठा की पूजा-विधि विशेष रूप से पञ्चतोर्यों का वर्णन तथा कृष्णदर्शन का माहात्म्य ।

३३६-३४१

अध्याय ५८

नरसिंह का माहात्म्य-वर्णन

ब्रह्मा और मुनियों के संवाद में नरसिंह-पूजा का विधान तथा नरसिंह-माहात्म्य का वर्णन ।

३४२-३४८

अध्याय ५९

द्वेतामाधव का माहात्म्य-वर्णन

कपाल गौतम ऋषि के पुत्रपुत्र की जिलाने के लिए द्वेता राजा की प्रतिज्ञा । ब्रह्मा के प्रति द्वेतामाधव की स्थापना के लिए मुनियों का प्रश्न । वैष्णव पद की प्राप्ति के लिए द्वेतावृत विष्णु-स्तुति । द्वेता राजा की विष्णु का वरदान ।

३४९-३५७

अध्याय ६०

समुद्र-स्नान की विधि का वर्णन

नारायण के अष्टाक्षर मंत्र की प्रशंसा एवं नारायण-कवच का वर्णन । समुद्र-स्नान की विधि का वर्णन । जल में ही स्नान के अंग सध्या आदि नित्यकर्म एवं देवता ऋषि और पित्रा का तर्पण करना ।

३५७-३६२

अध्याय ६१

पूजा की विधि का निर्देश

शरीर-शुद्धि का वर्णन । पादशोषचार सहित पूजन-विधि का वर्णन ।

३६३-३६९

अध्याय ६२

समुद्र स्नान का माहात्म्य

समुद्र में स्नान करने का माहात्म्य-वर्णन ।

३६९-३७१

अध्याय ६३

पञ्चतोर्य का माहात्म्य-वर्णन

पञ्चतोर्यों के माहात्म्य का निरूपण ।

३७१-३७३

अध्याय ६४

महावर्मण्डली की प्रशंसा

महावर्मण्डली (उद्वेष्टा नक्षत्रयुक्त चिह्न) की प्रशंसा का वर्णन । प्रयागादि तीर्थों तथा गंगा आदि नदियों में सूर्य और चन्द्र ग्रहण के अवसर पर स्नान-दान करने से प्राप्त होने वाले फल के समान महावर्मण्डली में स्नान, कृष्ण और सुवस्त्र का दान करने से फल की प्राप्ति ।

३७४-३७५

अध्याय ६५

कृष्ण-स्नान का माहात्म्य-वर्णन

कृष्ण के स्नान का विधि तथा स्नान का माहात्म्य। दशनाभा का कृष्ण का स्तुति करना। कृष्ण की मूर्ति का दर्शन करने से फल-प्राप्ति। ३७६-३८४

अध्याय ६६

गुडिनाथात्रा का माहात्म्य-कथन

हू भगवन् ! मेरे तालाब के निकट आपका यात्रा सात दिना तक हुई। चाहिए—इस प्रकार राजा इन्द्रधम्म द्वारा भगवान् से प्रार्थना करने पर भगवान् का स्वोच्चारित का नाम गुडिनाथात्रा पठना। ३८५-३८७

अध्याय ६७

बारह यात्राओं का माहात्म्य-वर्णन

प्रत्येक यात्रा का फल-कथन। यात्रा के प्रसंग से पूजा विधि का वर्णन। द्वादश यात्राओं का फल-वर्णन। ३८७-३९४

अध्याय ६८

विष्णुलोक का वर्णन

विष्णुमन्दिर विष्णुस्वरूप और विष्णुलोक के महत्त्व का वर्णन। वहाँ पर जाने वाला का निर्णय। ३९४-४००

अध्याय ६९

पुरुषोत्तम का माहात्म्य-निर्णय

पुरुषोत्तमक्षत्र का माहात्म्य-वर्णन। ४०१-४०४

अध्याय ७०

तीर्थसंस्थाविषयक प्रश्न

ब्रह्मा से नारद का तारीफ़ की सम्बन्ध के सबब में प्रश्न करना। ४०४-४०८

अध्याय ७१

गंगा की उत्पत्ति की कथा

गंगा की उत्पत्ति का वर्णन। वारुणाशुर ने भय से देवताओं का विष्णु की स्तुति करना। विष्णु की आज्ञा से दशनाभा की हिमाञ्च के निकट भवन। वृत्तार्ति की आज्ञा से कामदेव को शहर के पास जाना और शहर के नैर्बान्ध से कामदेव का बाह। ४०९-४१३

अध्याय ७२

हिमालय का वर्णन

हिमालय का वर्णन। निच के विवाह का वर्णन। गौरी के रूप-दान में ब्रह्मा का वीर्यपात तथा उससे वर्य से बालिल्या की उत्पत्ति। ४१४-४१७

अध्याय ७३

वर्धन की प्रशंसा का वर्णन

राजा बलि की प्रशंसा। राजा बलि के एङ्कय का सहज नगर दशनाभा का विष्णु के पास जाना। देवताओं

द्वारा विष्णु की स्तुति। माना अदिनि के गम से वामन की उत्पत्ति। राजा बलि के यज्ञ में वामन का गमन। राजा बलि और द्यूताधर्म का संधाद। वामन का युधिष्ठिर तथा बलि और वामन का परस्पर संधाद। भगवान् वामन से राजा बलि का वन्दन की प्राप्ति। गंगा का महेश्वर की जटा में समा जाना। ४१७-४२४

अध्याय ७४

गंगा के दो भेदा का कथन

गंगा का दो रूप का कथन। शक्र का जटा से गंगा का अलग करने के लिए पार्वती और गणेश का बोती। गान्धर्व की प्रशंसा तथा आश्रम का वर्णन। स्वामी का विवेक के साथ गणेश का गतिम के आश्रम में जाना। गणेश की आज्ञा से गणेश धारण करके जघा का गतिम के आश्रम में जाना गतिम के दोहन पर जघा का गिरना। गान्धर्व के पाप का दूर करने के लिए गतिम का उपाय बतलाना। अपने सकल्य की सिद्धि के लिए गतिम की प्रार्थना। स्वर्ग अपने अपने स्थान में जाना। शक्र का प्रसन्न करने के लिए गतिम का कौलस पर्वत पर गमन। ४२५-४३४

अध्याय ७५

गौतम द्वारा उमा और महेश्वर की स्तुति

गौतम का उमा-महेश्वर की स्तुति करना। गतिम का उमा-महेश्वर का दर्शन। तदन्तर गंगा प्राप्ति के लिए गतिम की प्रार्थना। गंगा की प्रशंसा और गतिम का लाना। ४३४-४४०

अध्याय ७६

स्वर्ग आदि में गंगा का गमन

स्वर्ग मत्स्य और पानाल में विभक्त होकर १५ आकृतिया से गंगा का गमन। गादाधरी तीर्थ की स्थान-निधि। ४४१-४४३

अध्याय ७७

गौतमी का महत्त्व-वर्णन

गौ. म. का महत्त्व वर्णन करके गौ. नदिमा में गौतमी का श्रेष्ठ सिद्ध कराना। ४४३-४४५

अध्याय ७८

सगर का आस्थान

पुत्रहर्ष राजा सगर का वशिष्ठ से सन्तान विषयक प्रश्न पूछना। वशिष्ठ ने वरदाता से सगर का पुत्रा की प्राप्ति। इंद्र द्वारा चुराये गए पींडे की खोज के लिए सगर-पुत्रा का इषट-उत्तर जाना। निद्रा-सुप्त के अनुन्ध के लिए देवताओं की आज्ञा से कपिल गुफा में गमन। कपिल ने प्रति सगर-पुत्रा का पुत्रवत। कपिल के श्रेष्ठ से सगर का पुत्रा का भस्म हुला। सगर का नारद से अपने पुत्रा के नष्ट हुए का वृत्तान्त सुनना। असमञ्जस का स्वधर्म से निवृत्तना। कपिल की आज्ञा से पुत्रा को उद्धार के लिए भर्गोरथ का कर्णम के प्रति गमन। भर्गोरथ की स्तुति से प्रसन्न होकर सगर का वर देना। कपिल ने शाप से मृत पुत्रा का पवित्र करने के लिए गंगा के साथ भर्गोरथ का स्थानत में आना। ४४५-४५२

अध्याय ७९

वराहतीय का वचन

वराहतीय का माहात्म्य-वचन।

४५३-४५४

अध्याय ८०

कपोततीय का वचन

लुब्धक-चरित्र का वचन। कपाता के विरह से दुःख। कपोत का विलाप। कपात के विलाप को सुनकर पति के प्रति कपोत का वचन। कपात द्वारा अनिवार्य का प्रस्ताव। लुब्धक के लिए कपोत का अग्नि प्रवर्ण। लुब्धक से कपोत की मुक्ति। कपातीकृत पतिव्रता धर्म की प्रशंसा। कपाती का दह-याग। कपात और कपाता का स्वर्ग-गमन। पाप दूर करने के लिए लुब्धक का प्रायश्चित्त। तदनन्तर मातृमा-स्नान से तथा पाप-कर्म से स्वर्ग प्राप्ति का वचन।

४५५-४६३

अध्याय ८१

कुमारतीय का वचन

स्वामी कातिकेय का विषयो म आसक्ति। कुमारताय का वचन।

४६३-४६५

अध्याय ८२

कृतिकातीय का वचन

मार्ग के वचन से कृतिकाया का पञ्चम के पान जाना। कृतिकाय-वचन का उपसंहार।

४६६-४६७

अध्याय ८३

दत्तात्रयमन्त्रीय का वचन

भौवन का वक्ष्य का प्रति किस देश में पति का सम्पत्ति प्राप्त होगा यह प्रश्न। गुरु और गौतमा का प्रस्ताव से भौवन का एक अवयव से दस अवयवों का फल का प्राप्ति। आकाशवाणी का वचन। दत्तात्रयमन्त्रीय का विधान।

४६७-४७०

अध्याय ८४

पद्मावतिय का वचन

वेमरा वानर का दक्षिण समुद्र का प्रति गमन। अञ्जना पवन के ऊपर अगस्त्य का गाना। अगस्त्य से अञ्जना और अद्रिशा का पुत्र प्राप्ति का वचन। निरुक्ति और वायु का सम्पर्क से अञ्जना और अद्रिशा का पुत्र प्राप्ति। पद्मावतिय का विधान एवं प्रमाणन।

४७१-४७२

अध्याय ८५

शुपातिय का वचन

गौतम के शिष्य का नमन करने हुए वन्द्य का सम्पत्ति उत्पन्न के लिए गमन। वन्द्य द्वारा गंगा एक शुषा का स्तुति और उनका सन्निधि में दाव-पाना का प्रायश्चित्त। शुपातिय का प्रमाणन-वचन।

४७३-४७५

अध्याय ८६

शक्राचार्य और गणिका के सायम का वचन

विश्वपरवन्द्य का पुत्र क मरने पर गौतमपुत्र होता। शक्राचार्य का सम्पत्ति से गौतम का प्रति गमन। पुष्पा

वा इन्द्र के पास जाना । पृथ्वी और इन्द्र का संवाद । इन्द्र की आज्ञा से सिद्धिकित्रो का वैवस्वतपुर से यमराज को लाने के लिए जाना । यम कहाँ है ?—इस प्रकार इन्द्र का सूर्य के प्रति प्रश्न । सूर्य से यह पता चलने पर कि यम गौतमी-तट पर तप करने के लिए गया है इन्द्र द्वारा अप्सराओं से पूछना कि यमराज के तप को नष्ट करने के लिए उन (अप्सराओं) में से कौन समर्थ है । चक्रीयों का कारण-वर्णन । तप भग करने के लिए इन्द्र की प्रेरणा से गणिका का यमराज के पास गमन । प्रजाओं का नाश करने का काम करने लिए यमराज से सूर्य का वचन । यमराज द्वारा अस्वीकार । अनन्तर दोनों का आप-अपन स्थान पर गमन । ४७६-४८१

अध्याय ८७

अहत्या-समम या इन्द्रतीर्थ का वर्णन

अहत्या की याचना प्राप्त पश्य उत्सा करने के लिए गौतमी को ब्रह्मा का आदेश । जो पुरुष पूर्वियों की परित्रमा करके सबसे पहले ब्रह्मा के पास पहुँच जाएगा उसी का अहत्या दी जाएगी—ऐसी ब्रह्मा की प्रतिज्ञा । अनन्तर अहत्या का प्राप्ति के लिए देवताओं का पृथ्वी की परिक्रमा करना । फिर ब्रह्मा द्वारा समस्त देवा का छाड़कर गौतमी को अहत्या-प्राप्ति का उपाय-कथन । विवाह के पश्चात् ब्रह्मा के पास देवताओं का आगमन । विष्वक् में इन्द्र का अहत्या के लिए गौतमी के आश्रम में जाना । तत्पश्चात् गौतमी का इन्द्र को शाप पुन इन्द्र की गौतमी से शापोद्धार के लिए प्रार्थना । गौतमी-स्नान से पापा को दूर करने का गौतमी द्वारा उपाय-कथन । इन्द्रतीर्थ के आख्यान का वर्णन । ४८२-४८८

अध्याय ८८

जनस्थानतीर्थ का वर्णन

राजा जनक द्वारा याज्ञवल्क्य से सुत्र से मुक्ति कैसे होगी यह प्रश्न पूछना । वरुण से पूछने के लिए याज्ञवल्क्य के कहने पर जनक और याज्ञवल्क्य का वरुण के पास जाकर वही प्रश्न दुहराना । गृहस्थ धर्म पालन से ही भुक्ति और मुक्ति मिलती है—ऐसा वरुण का मत-दर्शन । जनक और याज्ञवल्क्य के यह पूछने पर कि भुक्ति मुक्ति-दाना कौन द्या और काल तीर्थ है वरुण द्वारा गौतमी को ही सब से श्रेष्ठ तीर्थ घोषित करना । अनन्तर जनक और याज्ञवल्क्य का अपने अपने स्थानों पर जाना । जनस्थानतीर्थ का प्रयोगन । ४८९-४९१

अध्याय ८९

अरुणा-वरुण-समम और अरुणानु तीर्थ का वर्णन

छाया से यह कह कर कि मैं पिता के घर जाती हूँ मेरे जोड़ने तक बन्धा की देव रेख करो सूर्य-यली उपा का पिता के घर जाना । त्वष्टा का पुत्र पनि के घर जाने का आदेश । उपा का उत्तर कुक्षेत्र देश में तप करने के लिए जाना । छाया की सन्तान का जन्म-कथन । छाया द्वारा यमराज को शाप । यमराज का पिता से यह कहना कि यह मुझे शाप का दृष्टि से देखनी है अथ मरी माता बड़ा है । उत्तरकुक्षेत्र का रूप धारण कर उपा खड़ी है—ऐसा जानकर घोड़े का रूप बनाकर सूर्य का बहाना जाना । आलम्बन के लिए गौतमी पर बडवा का जाना और उसके पीछे सूर्य का भी बहाना जाना । ऋषियों के प्रति सूर्य का शाप-कथन । पुन अश्विनाशुमारा की उत्पत्ति । उपा के निमित्त तेज का समन करने के लिए सूर्य से त्वष्टा का कहना । ४९२-४९६

अध्याय ९०

गणेशतीर्थ का वर्णन

गणेश ने अमरदान प्राप्ति के लिए अजिनाम नामक गेय-युग द्वारा निव की स्तुति । गणेश से वरदान प्राप्त

अध्याय ९७

पौलस्त्यतीथ का वणन

माता के वचन से रावण कुम्भारण और विभीषण का त्तन करने के लिए वन म जाना। रावण द्वारा कुबेर की पराजय। रावण को पुण्यवादि की प्राप्ति। भाई द्वारा निवाले गये बन्धवण का पुलस्त्य के पास जाना। पुलस्त्य की आज्ञा से स्त्री सहित गौतमी पर गमन और वहाँ कुबेर द्वारा शंकर की स्तुति। पश्चात आकाशवाणी। शंकर का अपने स्थान पर गमन। पौलस्त्य तीर्थ का माहात्म्य।

५२३-५२६

अध्याय ९८

अग्नितीथ का वणन

मणुदेव द्वारा जातवेदा और दक्ष का वष। भाई के मरने पर अग्नि का गंगा म प्रवेश। अग्नि के पास देवताओं का जाना। अग्नितीथ का माहात्म्य वणन।

५२७-५२८

अध्याय ९९

ऋषभमन्त्रतत्त्व का वणन

ऋषभमन्त्र से मुक्त होने के लिए विवाह करना आवश्यक है—एसा वंशीवान् का अपने पुत्र से कहना। पुत्रों को विवाह के लिए उत्तमोत्तम देखकर स्नान के लिए गौतमी पर जान का आज्ञा प्रदान करना। ऋषभोक्त तीथ का माहात्म्य।

५२९-५३०

अध्याय १००

बद्ध-मुष्ण-सगन्धतत्त्व का वणन

बद्धन से बालकित्वा का यह कहना कि हमारे लिये हुए आप सब से इन्द्र का गर्व चूर करने वाला पुत्र उत्पन्न करना। पुत्र प्रजापति कश्यप द्वारा अथ तप को ग्रहण कर मुष्ण एव बद्ध से गम की स्थापना करने वही भी न जाने की आज्ञा प्रदान करना। बद्ध और मुष्ण का ऋषियन्त्र से जाना। वहाँ पर दोनों को नगी हान का शाप। गौतमी पर जाकर शंकर की स्तुति करने से फिर स्त्री होगी—यह कश्यप से बालकित्वा का वणन। स्तुति करने पर कश्यप को स्त्रियों की प्राप्ति। बद्ध को ऋषि का शाप।

५३१-५३४

अध्याय १०१

सरस्वती-सगम आदि तार्यों का वणन

ब्रह्मा की समा में पुरुष का जाना। उवशी और पुरुष का समापण। पुरुष का पास सरस्वती का गमन। ब्रह्मा के शाप से भयभीत सरस्वती का गौतमी पर गमन। सरस्वती के शाप को दूर करने के लिए ब्रह्मा के प्रति गया का वणन। स्त्रिया के स्वभाव का वर्णन।

५३५-५३६

अध्याय १०२

पञ्चनीय का माहात्म्य-वणन

हरिण रूप घाटी ब्रह्मा से व्याघ्र रूप घाटी निव का वणन। सार्वभौ आदि पाँच नदियों का ब्रह्मा के पास जाना। पञ्चनीयों का माहात्म्य।

५३६-५३७

पर बुध के आश्रम में जाता। इला का बुध के साथ सवाद और दोनों का विवाह। बुध से इला में पुनोत्पत्ति तथा देवताओं का वहाँ आना। बालव का पुनरुत्था नामकरण। इला के साथ उसका सवाद। गुरुत्वा से इक्ष्वाकु-कुल का वर्णन और अरुना पहले का वृत्तान्त-वर्णन। बुध और ऐल का सवाद। इला को पुस्त्य की प्राप्ति के लिए गुरुत्वा का प्रयत्न। ऐल और इला का हिमालय पर जाना और वहाँ पर शंकर की स्तुति। देवी से पुस्त्य की याचना। शंकर और पार्वती के अनुग्रह से पुस्त्य की प्राप्ति। ऐल का अभिषेक। ५६५-५७८

अध्याय १०९

चतुर्थी का वर्णन

पार्वती का दश के यज्ञ में जाना। वहाँ पर शिव-निन्दा सुनकर पार्वती का देहत्याग। महेश्वर का दश के यज्ञ में आना। यज्ञ का वर्णन। वीरमद द्वारा यज्ञ-विध्वंस। देवताओं द्वारा शिव-स्तुति। दशहृत शिव-स्तुति। देवताओं द्वारा विष्णु की स्तुति। देवता से उत्पन्न मय को जानकर देवताओं के साथ विष्णु का परामर्श। विष्णु के द्वारा चक्र-प्राप्ति के लिए शिव की आराधना। विष्णु को शंकर का वरदान और चक्र का होना। ५७९-५८४

अध्याय ११०

पिप्पलीय का वर्णन

पिप्पलीय का वर्णन। दधीचि ऋषि एव लोषामुद्रा का वर्णन। दधीचि ऋषि के आश्रम में सब देवताओं का आगमन। अरुना को रखने के लिए देवताओं का दधीचि से प्रश्न। लोषामुद्रा का दधीचि के साथ वार्तालाप। देवताओं का दधीचि के पास अस्त्र रखना। दैत्यों के डर से दधीचि द्वारा अस्त्रों के तेज का पाना। दैत्यों से देवताओं को मय-प्राप्ति। देवताओं का दधीचि के पास अस्त्रों के लिए जाना। देवों के लिए दधीचि का अस्थि-दान। देवताओं का अस्त्र निर्माण। दधीचि ऋषि की पत्नी का आगमन और उसका अग्नि के साथ सवाद। तदनन्तर अग्निहुन समाधान। प्रातिघेयी के द्वारा वृत्तिस्थ पुत्र का निकालना। प्रातिघेयी का अग्नि प्रवेश, आश्रम में स्थित वृक्षा का विलाप। दधीचि के पुत्र की अमृत-प्राप्ति तथा पिण्लाद नाम की प्राप्ति। पिण्लाद के साथ वृक्षा का सवाद और अपने माता-पिता का पूर्ववृत्तान्त-श्रवण। सोम से पिण्लाद को विद्या की प्राप्ति और सोम की आत्मा से शंकर की स्तुति में प्रवृत्त होना। प्रसन्न हुए शंकर से देवताओं का नाश करने के लिए वर माँगना। पिण्लाद के तप का वर्णन और शंकर के तृतीय नेत्र का दर्शन। तृतीय नेत्र से उत्पन्न कन्या को देवताओं के सहार के लिए आदेश। वृत्त्या से अग्नि की उत्पत्ति तथा अग्नि के डर से देवताओं का शंकर के पास जाना। देवताओं द्वारा शंकर की स्तुति। शंकर एव देवताओं का सवाद। देवताओं का पिण्लाद के साथ सवाद। अपने माता-पिता को दिखाने के लिए पिण्लाद का देवताओं से अनुरोध। पिण्लाद का स्वर्णलाभ में जाना। वहाँ पर माता-पिता का दर्शन। विवाह करने के लिए दधीचि और पिण्लाद का सवाद। देवताओं के सहार के लिए उत्पन्न वृत्त्या का समाधान। वृत्त्या को नदीरूप की प्राप्ति। शंकर के साथ देवताओं का सवाद। दधीचि की अस्थिया, देवताओं तथा मायों का पवित्र होना। देवताओं का अपने अपने स्थानों पर जाना एव मृत्यु का वृद्धि रहना। पिण्लाद का योगम की मूर्ती के साथ विवाह। पिप्पलीयकीय पर पिप्पलीयवतनाम की प्राप्ति। ५८५-६१२

अध्याय १११

नागनीय का वर्णन

नागनीय का वर्णन। रामवसोत्तर पुरातेन के चरित्र का वर्णन। मूरमेन से शर्प की उत्पत्ति। शर्प एव मूरमेन

अध्याय १२०

धाम्यतीर्थ का वर्णन

धाम्यतीर्थ का वर्णन। गया तट पर दान का महात्म्य।

६४६-६४८

अध्याय १२१

विदर्भा-सवन आदि तीर्थों का वर्णन

विदर्भा और रेवती का गया व साथ सवम। रेवती व साथ वठ का विवाह।

६४८-६५१

अध्याय १२२

पूष आदि तीर्थों का वर्णन

पूषादि तीर्थों का वर्णन। ब्रह्मा के साथ राजा धन्वतरि का सवाह। धन्वतरि का तपामग। धन्वतरि-
इन विष्णु स्तुति और उसको देवराज्य की प्राप्ति। ब्रह्मा, बृहस्पति और इन्द्र का सवाह। इन्द्र द्वारा हरिहर
की स्तुति। हरिहर के साथ इन्द्र का सवाह। बृहस्पति व द्वारा इन्द्र का अभिषेक।

६५१-६६२

अध्याय १२३

रामतीर्थ का वर्णन

रामतीर्थ का वर्णन। राजा दारण का वर्णन। देव दानवा का युद्ध। देव-दानवा का दारण के पास
आना। दारण द्वारा देवताओं की सहायता। युद्ध में कैश्यी का वर्णन। दारण के द्वारा मुनि-बाल्य की मृत्यु।
पुत्र का मृत्यु से माता-पिता का क्लेश और उसी शाप से मृत्यु। राम आदि का जन्म वर्णन। विरधामिन का
पुत्र मर्माण। अहल्या का उद्धार और राक्षस का वध। सीता का विवाह। दारण की मृत्यु और मरणा की
प्राप्ति तथा नरका से मुक्ति। दारण का यम विचरों व साथ सवाह। राम, लक्ष्मण और दारण का सवाह।
दारण का दुःख भोग करना। शाप-निवृत्ति से णि सीता का वर्णन। देवताओं व साथ राम का सवाह। राम
के द्वारा शरणा की स्तुति।

६६३-६८४

अध्याय १२४

गुप्ततीर्थ का वर्णन

गुप्ततीर्थ का वर्णन। वरुण व साथ दिति का सवाह। दिति और दनु का सवाह। मय के साथ इन्द्र का
सवाह और मरणा का जन्म।

६८५-६९९

अध्याय १२५

यमतीर्थ का वर्णन

यमा और उल्हा का युद्ध। हवि नामक यवान का अग्नि की स्तुति करना और उल्हा व द्वारा यम
की स्तुति। उल्हा व साथ यम का सवाह। यमतीर्थ का वर्णन।

७००-७०६

अध्याय १२६

तपस्तीर्थ का वर्णन

अग्नि का वर्णन। दक्ष, ब्रह्मा और मुनिवर्ग का सवाह। तपस्तीर्थ का वर्णन।

७०६-७१०

अध्याय १२७

देवतीर्थ का वर्णन

आष्टिवेण राजा का आख्यान एवं हयमेघ का वर्णन। मित्र नामक दैत्य के द्वारा पुरोहित सहित दीक्षित राजा को रसातल में ले जाना। पुरोहित-पुत्र देवापि के द्वारा पिता के बारे में माता से पूछना। माता द्वारा पुत्र को सारे वृत्तान्त स अन्वगत कराना। देवापि की प्रतिज्ञा। नन्दि द्वारा मित्र का बंध। रसातल से देवापि के पिता का आगमन। हयमेघ की समाप्ति। अनेक तीर्थों का वर्णन। ७११-७१८

अध्याय १२८

तपस्वन आदि तीर्थों का वर्णन

सक्षेप में कार्तिकेय का आख्यान। सन्तान के विषय में अग्नि और इवाहा का संवाद। सारवासुर के मय से द्रुक्षित देवी द्वारा अग्नि की प्रार्थना। शुक्ररूप से अग्नि का शिव के पास जाना। शिव-पार्वती का संवाद। अग्नि-पत्नी स्वाहा के गर्म से मियुन (युग्म) की उत्पत्ति और उनका नामकरण (सुवर्ग-सुवर्णा) एवं विवाह। सुवर्णा और सुवर्ण को सुतासुर का शाप। शाप-विमोचन के लिए ब्रह्मा के वचन से अग्नि का गौतमी के पास जाना। वहाँ पर अग्नि द्वारा शिव की स्तुति। शाप-मुक्ति के लिए शंकर का धरदान। गौतमी-तट पर शिवलिंग की स्थापना। तपोवन आदि तीर्थों का वर्णन। ७१८-७२६

अध्याय १२९

इन्द्रतीर्थ का वर्णन

गंगा और फेन का संगम। इन्द्र द्वारा भमुचि दैत्य का वध। हिरण्य दैत्य के पुत्र महाशनि से इन्द्र की पराजय। इन्द्र की पाताल में स्थिति। वरुण को पराजित करने के लिए महाशनि का प्रस्थान। वाकणी और महाशनि का विवाह। इन्द्र की मुक्ति के लिए देव और विष्णु का संवाद। विष्णु की आज्ञा से महाशनि के पास वरुण का जाना। वरुण के वचन से इन्द्र की मुक्ति। इन्द्र और इन्द्राणी का संवाद। इन्द्राणी के वचन से इन्द्र का गौतमी के प्रति जाना। इन्द्र द्वारा शंकर की स्तुति। शिव और इन्द्र का संवाद। शिव के वचन से इन्द्र द्वारा विष्णु की आराधना। प्रसन्न होकर भगवान् विष्णु द्वारा महाशनि दैत्य का वध। ७२६-७३९

अध्याय १३०

आपस्तम्बतीर्थ का वर्णन

आपस्तम्ब मुनि की प्रशंसा और उनके आश्रम में अग्रस्त्य मुनि का गमन। आपस्तम्ब द्वारा अग्रस्त्य का पूजन और तीनों देवों में गौतम श्रेष्ठ है, यह प्रश्न। तीनों देवों में भेद न होते हुए भी शिव ही सब सिद्धियों के दाता है—ऐसा अग्रस्त्य का उत्तर। अग्रस्त्य के वचन से आपस्तम्ब का गौतमी पर जाना और वहाँ शंकर की स्तुति करना। तदनन्तर आपस्तम्ब को शंकर का धरदान और आपस्तम्ब तीर्थ की महिमा का वर्णन। ७३९-७४३

अध्याय १३१

यतीर्थ का वर्णन

यपतीर्थ के प्रश्न में सरमा के आख्यान का वर्णन। देव-गाथा की रक्षा करने वाली सरमा को लोभ देकर दैत्या द्वारा गायों का हरण। 'मुझे बौधकर दैत्य गायों को ले गये—ऐसा इन्द्र के प्रति सरमा का कथन।' पश्चात् 'सरमा मिथ्या बोलती है' ऐसा बृहस्पति द्वारा इन्द्र के प्रति कथन। तब इन्द्र द्वारा सरमा पर पाद प्रहार और

गापदान। गाया को लाने के लिए इंद्र द्वारा विष्णु की स्तुति। विष्णु और दैत्या का युद्ध तथा दैत्या की पराजय। देवताओं को गाया की प्राप्ति। अपनी माता को क्षाण से छड़ाने के लिए सरमा के पुत्र का यम से प्रश्न। सूर्य और यम का संवाद। सूर्य के वचन से यम का गौतमी धर जाना। गौतमीतटवर्ती वसिष्ठ तीर्थों का वणन। वहाँ स्नान करने वाला का अनेक फल की प्राप्ति।

७४४-७४९

अध्याय १३२

यक्षिणी-संगम का माहात्म्य-वचन

यज्ञ करने वाले ऋषियों का विस्वावसु की कहन पिप्पला को क्षाण। विस्वावसु की प्रार्थना से गाप का निवारण। दुर्गातीर्थ का वणन और यक्षिणी संगम तीर्थ का माहात्म्य।

७५०

अध्याय १३३

गुह्यतोष का वणन

गुह्यतोष में भरद्वाज का यज्ञ वणन। यज्ञ में पुरोडाश भक्षण करते हुए हव्यध्न नामक राक्षस को मुनि का वचन। भरद्वाज और हव्यध्न का संवाद। सम्पूर्ण अमृता (जल) में गौतमी जल की विशेषता। गौतमी जल से हव्यध्न का अमिषा और कृष्ण रूप से गुह्यत्व की प्राप्ति एवं यज्ञ की समाप्ति। शुरुगणि तीर्थों का वणन।

७५१-७५३

अध्याय १३४

चक्रताप का वणन

चक्रतोष में वशिष्ठादि सप्तर्षियों का मंगारम। राक्षसी के विघ्न करने पर ब्रह्मा के पास जाना। ब्रह्मा की आज्ञा से माया द्वारा विघ्न का निवारण फिर यज्ञारम। गम्बर दैत्य द्वारा माया का भक्षण कर लिये जाने पर ऋषियों द्वारा विष्णु की प्रार्थना। पदबाह् उनको रक्षा के लिए विष्णु द्वारा चक्र प्रदान और उस चक्र से राक्षसी का वध एवं यज्ञ की समाप्ति। गंगाजल में चक्र का प्रक्षालन। चक्रतीय आदि पाँच तीर्थों का वणन।

७५४-७५५

अध्याय १३५

बाणी-संगम-ताप का वणन

ब्रह्मा और विष्णु का अपने अपने महत्त्व पर संवाद। ब्रह्मा और विष्णु के प्रति आकाशवाणी की उक्ति उत्तरवाह् ज्योतिर्मूर्तिसन्नक शिवलिंग के अन्त का पता लगाने के लिए ब्रह्मा विष्णु का प्रश्न। अन्त को न देखते हुए विष्णु और ब्रह्मा का गिर के पास क्रम से सत्य और अज्ञत्य कहना। ब्रह्मा के मुख से निचली हुई वाणी को हरिहर का क्षाण। पुनः गाप का निवारण। गौतमी और बाणी संगम का अनेक प्रकार से वणन। दोनों के तटों पर स्थित एवं सौ जमीस तारों का माहात्म्य।

७५६-७५८

अध्याय १३६

विष्णुताप का वणन

मादगल्य चरित्र का वर्णन। मौग्गल्य द्वारा सदाचार का वणन। विष्णु और मौग्गल्य का संवाद। मौग्गल्य द्वारा दान की प्रशंसा। विष्णुतीय की प्रशंसा।

७५९-७६२

अध्याय १४४

पद्मण्यो-संसम-तीर्थ का वर्णन

अत्रि ऋषि का उपाख्यान। अत्रि को चार पुत्ररत्ना की प्राप्ति। अत्रि ऋषि की कन्या आनन्द का चरित्र। आनन्द और ज्वलन का आख्यान। पद्मण्य सुमन के निकटवर्ती तान हजार तीर्थों का वर्णन। ७८८-७९१

अध्याय १४५

भार्कण्डेयतीर्थ का वर्णन

भार्कण्डेय आदि मुनियों का ब्रह्मा के साथ सवाद। भार्कण्डेयवर्चस्व का महिमा का निरूपण। उसके निकट वता अट्टानवे तीर्थों का वर्णन। ७९२-७९३

अध्याय १४६

कालकन्दरतीर्थ का वर्णन

ययानि का आख्यान। कालकन्दर के निकटवर्ती एक सौ आठ तीर्थों का वर्णन। ७९३-७९८

अध्याय १४७

अप्सरसगमतीर्थ का वर्णन

दो अप्सराओं द्वारा विश्वामित्र ऋषि के तपोमग का वर्णन। विश्वामित्र के शाप से अप्सराओं का तबीयत की प्राप्ति। ७९९-८०१

अध्याय १४८

कालतीर्थ का वर्णन

प्रसगानुसार कण्व के पुत्र बाल्मीकि का आख्यान। कण्वनक्षत्र के निकट पचास तीर्थों का वर्णन। ८०१-८०३

अध्याय १४९

नारसिंहतीर्थ का वर्णन

द्विरण्यकशिपु की प्रशंसा। नारसिंह द्वारा द्विरण्यकशिपु का वध। नारसिंह का गौतमा के प्रति आग्रह तथा अम्बय सन्नत दैत्य का हवन। नारसिंह का भस्मान्नाशन राजा आदि करने वाला का नामा फलों की प्राप्ति का वर्णन। नारसिंहादि आठ तीर्थों का वर्णन। ८०४-८०५

अध्याय १५०

पैशाचतीर्थ का वर्णन

पैशाचतीर्थ का वर्णन। अर्जुन का आख्यान। अर्जुन द्वारा गुनशेष नामक अपने पुत्र का वेषना। पुत्र का वेषने का पाप से अज्ञात का नरक की प्राप्ति। राते हुए पिशाच के प्रति गुनशेष का प्रदत्त। पिशाच की योगि में पड़े हुए अपने पिता का वचन श्रुतकर दुःखित और करुण बाले गुनशेष द्वारा पिशाच के ऊपर गौतमा का जल छिड़कना। गौतमी-जल का स्पर्श होने ही अजीमृत का विष्णुपद की प्राप्ति। पैशाचानन्द की महिमा पैशाच आदि तान सौ तीर्थों का वर्णन। ८०६-८०८

अध्याय १५१

निम्नभेदतोर्य का वर्णन

उर्वशीगमन से दुःखित गुरूत्वा ने प्रति वसिष्ठ का उपदेश। निम्नभेद आदि सात सौ तीर्थों का वर्णन।

८०८-८११

अध्याय १५२

आनन्दतोर्य का वर्णन

चन्द्र द्वारा तारा का हरण। गुरु के पास मुद्ग का जाना। गुरु के लिए स्त्री-हरण कथन। तारा का लाने के लिए गुरु की प्रतिज्ञा। चन्द्र का गुरु का दाप। तारा की शुद्धि के लिए देवताओं के प्रति शुक्रवा प्रश्न। गंगा के मुह का वर्णन आनन्दतोर्य का वर्णन।

८११-८१५

अध्याय १५३

भावतोर्य का वर्णन

भावतोर्य आदि सात सौ तीर्थों का वर्णन।

८१५-८१७

अध्याय १५४

सहस्रकुण्ड नागक तोर्य का वर्णन

राक्षस आदि को मारकर अयोध्या के प्रति परिवार सहित राम का गमन। लोकापवाद के कारण राम की आज्ञा से वाल्मीकि के आश्रम के पास लक्ष्मण द्वारा सीता का रक्षण। राम के अश्वमेध में लव-कुश का जाना। सहस्रकुण्ड आदि दस सौ तीर्थों का वर्णन।

८१७-८२०

अध्याय १५५

कशिकातोर्य का वर्णन

अगिरा को दक्षिण में आदित्य द्वारा भूमिदान। कपिला सममादि १०० तीर्थों का वर्णन।

८२०-८२१

अध्याय १५६

शालग्रह नागक तोर्य का वर्णन

ब्रह्मा का खाने के लिए आते हुए राक्षसा का जिष्णु-भक्त द्वारा वध। शालग्रह आदि अयुत तीर्थों का वर्णन।

८२२-८२३

अध्याय १५७

विष्णिन्वासीय तोर्य का वर्णन

रावण-वध के उपरान्त सीता और लक्ष्मण सहित श्रीराम का गौतमी पर जाना। रामकृत गौतमी की प्रशंसा। राम एवं वानरों का गौतमी पर स्नान और शिवलिंगपूजादि वर्णन। राम के प्रति विनीषण का वर्णन। विष्णिन्वासीय का महत्त्व।

८२३-८२७

अध्याय १५८

व्यासतोर्य का वर्णन

अगिरसा का उत्पत्ति। माता की आज्ञा के बिना तप करने के लिये गये हुए अगिरसो को विघ्न होना।

अगस्त्य ने आश्रम में अगिरसा का गमन व सवाद। अगस्त्य ने आज्ञा से उनका गौतमी पर जाना। व्यासजीयों की महिमा ।

८२७-८३१

अध्याय १५९

वज्रर-सगम नामक तार्य का वर्णन

दानपात्र का प्राप्त हुए गृह्य का अपनी माता विन्ता के प्रति प्रसन्न। 'मैं अपने हा अपराध से दार्ढ्यभाव का प्राप्त हुई हूँ—एसा माना का उत्तर। बहू के वचन से गृह्य का सर्पों का सूर्यलाक म ले जाना और उनका अघ-पतन। तदर्थ बहू का विन्ता के प्रति दुर्वचन। सर्पों को जल दूर करने के लिए गृह्य का रसातल से जल लाना। उस जल के प्रादण से सर्पों की जरा का दूर करना और उसी से वज्रर की उत्पत्ति। वज्रर-सगमादि तवा हाउ तीर्थों का वर्णन।

८३१-८३७

अध्याय १६०

देवगम नामक तीर्थ का वर्णन

घन के निमित्त दध-दानको की ईर्ष्या। ब्रह्मा की आज्ञा से देवताशा का अमुरा व साय युद्धारम्भ। युद्ध के आरम्भ में गौतमी-उट पर देवताशा का विष्णु एवं शक्र की स्तुति करना। गौतमी, हरि एवं शक्र की कृपा से देवताओं की विजय।

८३७-८३९

अध्याय १६१

कुशतपनतीर्थ का वर्णन

कुशतपनतीर्थ का वर्णन। ब्रह्मा की उत्पत्ति और सृष्टि का क्रम। यज्ञ-सामग्री का वर्णन। विराट् पुरुष की उत्पत्ति। प्रणीता-सगम कुशताय आदि त्रियासी हजार तीर्थों का वर्णन।

८४०-८४६

अध्याय १६२

मन्युतार्य का वर्णन

अभन। विजय के लिए और शूकर पुरुष की प्राप्ति के लिए देवताशा द्वारा महेश्वर का स्तुति। शक्र की कृपा से प्राप्त मन्यु नामक पुरुष के प्रति सामर्थ्य-परिधा के लिए देवताशा का वचन। मन्यु व स्वर्ष का वर्णन। दर्वों द्वारा मन्यु की स्तुति। मन्यु के आश्रम से देवताशा का विजय प्राप्ति।

८४७-८५०

अध्याय १६३

सारस्वततीर्थ का वर्णन

शाहण का रूप पारण करने परन्तु नामक राक्षस के द्वारा शाकल्य मुनि से भाजन माँगना। भाजन के समय 'मैं शाहण नहीं हूँ तुम्हारा शत्रु हूँ तुम्हें मारने के लिए आया हूँ—एसा परन्तु का शाकल्य से कहना। परन्तु शाकल्य द्वारा अपना अपूर्व शरीर दिखलाना। परन्तुराक्षस द्वारा शाकल्य की स्तुति। शाकल्य की आज्ञा से परन्तु द्वारा सारस्वती की स्तुति और उसका स्वर्ग की प्राप्ति।

८५०-८५५

अध्याय १६४

चिञ्चिकतीर्थ का वर्णन

पवमान राजा का चिञ्चिक नामक पर्व से सवाद। पवमान राजा के प्रति चिञ्चिक पर्वों का पूर्वजन्मकृत

वयन। ब्रह्मरूपा सदा पापा का वधन। चिन्मित्र का मुक्ति व नष्ट राजा का प्रश्न। अपन मुक्ति के लिए श्वेतपवन स्थित भगवान् महाधर के पास ले चलन के लिए चिन्मित्र द्वारा राजा से प्रार्थना। राजा के साथ गया और महाधर के दान के लिए चिन्मित्र का गमन। चिन्मित्र द्वारा गया का स्तवन एवं स्वर्ग की प्राप्ति। राजा पद्मान का अपने सवतों के साथ अपने नगर में आना। ८५५-८६०

अध्याय १६५

भद्रतीय का वधन

कन्या के विवाह के विषय में सूर्य का विचार। विवाह की अवधि का कथन। वनादान के लिए कुल आदि का विचार। वनाक प्रार्थना। कन्या आदि का विषय में निषेध। विवाह-काल के उत्सवों में दास-वधन। विश्व रूप और विष्टि का विवाह। भद्रतीय का वधन। ८६१-८६५

अध्याय १६६

पतत्रितोय-वधन

सूर्य के किरणों से जलते हुए जटासु और सपाति को विष्णु द्वारा आश्वासन। पतत्रितोय का वर्णन। ८६६-८६७

अध्याय १६७

विप्रतीय का वधन

साले हुए ब्राह्मण पुत्र आसदिब का लेकर राक्षस का भागना। आसदिब और राक्षस का संवाद। कित्ता ब्राह्मण-कन्या के साथ आसदिब का विवाह। नारायण द्वारा राक्षस का वध। विप्रतीय का वधन। ८६७-८७१

अध्याय १६८

भानुतीय का वधन

राजा अभिष्टुत का हृदयेश आरम्भ। याचना का लघुस्व-वधन। ब्राह्मणवेशधर दसों का यज्ञ में जाना। भावादि सी सीधों का वधन। ८७१-८७४

अध्याय १६९

भिल्लताय का वर्णन

बद नामक ब्राह्मण का शिवपूजा के अनन्तर भिक्षाटन के लिए गमन। व्याघ्र का शिवपूजा प्रकार। विधान से का हुई पूजा का विवेक करने वाले के प्रति वेद के धन में श्रवण उत्पत्ति। आदिके और वेदों का संवाद। व्याघ्र की भक्ति का वधन। व्याघ्र का वर का प्राप्ति। ८७५-८७९

अध्याय १७०

वधुस्तोय का वधन

वधुस्तोय का वधन। गन्धर्व कुण्डल का धन उत्पन्न विषयक संवाद। पुत्र धर्म का वर्णन। धर्म का प्रशंसा। धर्म का प्रशंसा करने वाले कुण्डल का नेत्रों का नाश। विमलपण का पुत्र का साथ संवाद। कुण्डल वर्य को नेत्रादि का प्राप्ति। महाराजा नामक राजा का पुत्र का नेत्रों का प्राप्ति। कुण्डल का राजकन्या का प्राप्ति। ८७९-८८९

अध्याय १७१

उवशीतोष का वणन

इन्द्र अर प्रमिति का सवाण। इन्द्र भीर प्रमिति का वाहन-वणन। प्रमिति आर चित्रसन का काहन वणन। मयुच्छन्द क साथ प्रमिति-युव सुमति क द्वारा प्रमिति का वन बड़ा स विनष्ट राज्य की प्राप्ति। अछ ८८९-८९४

अध्याय १७२

सामुद्रतीक्ष का वणन

गंगा अर सागर का सवाण। गंगा के सप्त रूप का वणन। ८९५-८९७

अध्याय १७३

भीमश्वरतीक्ष का वणन

गंगा के सात नामा का वणन। श्रुति-यन मे देव गन्तु विस्वरूप का आगमन। विस्वरूप और श्रुति का सवाण। ८९७-९०१

अध्याय १७४

गंगा और सागर के सगम का वणन

गंगा-सागर-सगम-वणन। देवतात्रा द्वारा हरि-हर का स्तवन। साम-साय का माहात्म्य। नारद-हृत्त साम श्रुति। आदित्य और बाहस्पत्यदि तपों का वणन। ९०१-९०५

अध्याय १७५

तीक्ष आदि के चार प्रकार के होने का वणन

ब्रह्मा के कमण्डलु म विष्णु के करण म शिव के पटाश्रट म ब्रह्मगिरि म आर पूव समुद्र म क्रमन गंगा का निषिदि का वणन। चार प्रकार के तपों का निरूपण। तपों का सत्ययुगादि म क्रम से त्रिनेत्रत्वमात्र होने स कल्पियुग म भ दव भाव का निरूपण। तपों का युगक्रम से दव आमुर् आप अर मनुष्यत्व प्राप्ति का वणन। गणन गजर का जटा स गंगावनरण का पावत द्वारा वणन। पावता अर गणन के सवाण म ब्रह्मगिरि पवत स समन पवन ग म के दना सटा व स्थिति का वणन। गौतम के प्रति ह्यपुलकित शिव का वरप्रदान। शिव द्वारा वणन गौतम क यात्रा का वणन। विस्तारमयित गौतमा माहात्म्य का पल-वणन। ९०५-९१३

अध्याय १७६

अनंत वामुद्व का माहात्म्य निरूपण

अनंत वामुद्व भगवान् का माहात्म्य। ब्रह्मा व विष्णु-वर्मा का वामुद्व भगवान् क मति बनाने क लिए आना। देवतात्रा के साथ रावण का संग्राम। रावण स इन्द्र क पराजय। रावण का इन्द्रपुरी म गमन। वहाँ पर स्थित भगवान् वामुद्व की मात का पुष्पक विमान द्वारा लका मे ले जाना। रावण से विभीषण का माल का प्राप्ति। राम आर रावण का यद्ध। यद्ध म रावण क मृत्यु। भगवान राम का अयोध्या क प्रति गमन। ९१३-९१८

अध्याय १७७

पुरुषोत्तमसत्त्व का माहात्म्य-वणन

पुरुष-समस्ताव क महिला का वणन।

अध्याय १७८

वण्ड ऋषि के चरित्र का वर्णन

वण्ड व आश्रम में मुनि का तप भंग करने व लिए प्रयत्नोत्साह का जाना। वण्ड और प्रयत्नोत्साह का संघर्ष। तप नष्ट होने से वण्ड का पुरुषोत्तम क्षत्र में जाना और विष्णु व स्तुति एवं वरदान व प्राप्ति तदनन्तर मुक्ति। वण्ड व आख्यायिका का पठन एवं श्रवण का फल और पुरुष तम क्षत्र का मर्मा का वर्णन। ९२२-९३८

अध्याय १७९

कृष्णवतार के सम्बन्ध में व्यास से मुनियों का प्रश्न

सायाविष्ट मुनियों द्वारा व्यास से कृष्णवतार व सम्बन्ध में प्रश्न करना। ९३९-९४४

अध्याय १८०

श्रीकृष्ण-चरित्र का आरंभ

मुनियों व प्रश्नात्तर में व्यासकृत भगवत्स्तुति व नानावतारा का वर्णन। अनुव्यह-वर्णन। ९४५-९४८

अध्याय १८१

अवतार का प्रयोजन-वर्णन

भगवान् व अवतार धारण करने का प्रयोजन वर्णन। भार से पीड़ित पृथिवी का ब्रह्मा के पास जाना और अपने दुःख का निवेदन। भगवान् का प्रसन्न हो गेहिन दत्तात्रेय व प्रति ब्रह्मा का वचन। ब्रह्मा द्वारा विष्णु का स्तुति। स्तुति-श्रवण के अनन्तर ब्रह्मा का विष्णु द्वारा स्वतः और कृष्ण को दत्तात्रेय का दान। विष्णु का सहायता के लिए ब्रह्मा आदि दत्तात्रेयों का अवतार। गरुड के मुख से यह मुनिकर कि देवक के आठवें गर्भ से कंस का मय हृग कुविपत्त कंस द्वारा बामुदव तथा दक्ष को कारागार में डालना। देवक के छठे पुत्र का वध द्वारा वध। विष्णु और माया के संवाद में माया के प्रति भगवान् का आशा। ९४८-९५३

अध्याय १८२

श्रीकृष्ण की उत्पत्ति-कथा का निरूपण

भगवान् का आज्ञा से माया द्वारा देवकी के गम का आन्वेषण और रोहिणी के गम में स्थापन। यशोदा व उदर में माया के स्थिति। देवका व उदर में भगवान् का प्रवेश। भगवान् के अवतार के समय दत्तात्रेय द्वारा पुष्प-चट्टि वसुदेव देवक द्वारा भगवान् का स्तुति। देवका के प्रति भगवान् का वचन। गांधुल में जाकर वसुदेव द्वारा यशोदा के गह में पुत्र का स्थापना कर कन्या के लाना। बालक का राता मुनिकर देवक व पुत्रवर्जित का दूता द्वारा वर्णन। कारागार में वस का आगमन। कंस द्वारा रात हुई देवक से हठपूर्वक कन्या का छन लेना और पश्चात् माया का स्वयं-ममन। ९५३-९५७

अध्याय १८३

कंस का अपना विचार बहना

अशान्त कंस द्वारा प्रलम्ब आदि दत्तात्रेय का कन्या का वृत्तान्त कथन। कंस द्वारा दत्तात्रेय को बालकी को मारने का आदेश। ९५७-९५८

अध्याय १८४

शोकृष्ण का बाल-चरित्र-वर्णन

मथुरा में ही नन्द के पास बमुदेव वा जाना। बमुदेव और नन्द का प्रेम-मवाद। बमुदेव की आज्ञा से नन्द आदि गोपों का गोष्ठुठ में आना। कृष्ण के द्वारा पूजना का वच। गोष्ठुच्छादि से कृष्ण की रक्षा। नन्द द्वारा कृष्ण का स्वस्ति-वाचन करवाना। बालक के चरण-श्रृङ्गार से शकट का भिरना। उमने गोपियों का आश्चर्य। तदनन्तर यमोदा द्वारा शास्त्र की पूजा। बमुदेव से प्रेरित गर्ग द्वारा गुप्त रूप से बालकों का नामकरण। बाललीला का वर्णन। यम-लार्जुन का उद्धार। उत्तानों के भय से गोप-गोपियों वा वृन्दावन में प्रवेश। वृन्दावन की भोमा का वर्णन। बालकों की क्रीड़ा का वर्णन।...

१५९-१६४

अध्याय १८५

कालीय-दमन का आख्यान

बलराम के विना गोपों के साथ कृष्ण का कालीयहृद पर आगमन। उसको विप्लववा देखकर कृष्ण का कालीयहृद में बूढ़ना। वहाँ सपरिवार-कालीय का आ घमकना एवं कृष्ण को डँसना। गोपियों का विलाप। नन्द आदि के दुःख को मिटाने के लिए बलदेव का कृष्ण के प्रति स्फुटीकरण। नागपत्नी द्वारा कृष्ण की स्तुति। कालीय द्वारा कृष्ण की स्तुति। समुद्र में जाने के लिए कालीय के प्रति कृष्ण की आज्ञा। सपरिवार कालीय का समुद्र के प्रति गमन। कृष्ण का हृद से बाहर आना।...

१६४-१६९

अध्याय १८६

धेनूक नामक असुर का वध

गोपों के साथ बलराम और कृष्ण का तालकल के प्रति जाना। ताल-कल की इच्छा से गोपों का रामकृष्ण के प्रति विज्ञापन। रामकृष्ण द्वारा तालकल को गिराना। धेनूकामुर के द्वारा राम-कृष्ण के बध स्थल पर ताड़न। कृष्ण द्वारा धेनूकामुर का वध।

१७०-१७१

अध्याय १८७

राव और कृष्ण को अनेक लीलाओं का वर्णन

बाह्यबाहक नामक मेल के बहाने बलदेव द्वारा प्रलम्बामुर का वध। गोपों द्वारा बलराम की प्रशंसा। वज्र के प्रति गमन। शरद् का वर्णन। गोवर्धनलीला का वर्णन।...

१७१-१७६

अध्याय १८८

गोवर्धन का आख्यान

कृष्ण द्वारा गोवर्धन पर्वत का उद्धार और इन्द्र का मान-भग। इन्द्र द्वारा कृष्ण-स्तुति। कृष्ण को गोविन्द नाम की प्राप्ति। इन्द्र द्वारा अर्जुन के विषय में प्रार्थना। इन्द्र और कृष्ण का अपने-अपने स्थान से जाना।...

१७७-१८१

अध्याय १८९

अरिष्ट नामक असुर का वध

रासक्रीडा का वर्णन और अरिष्टामुर का वध।...

१८१-१८६

अध्याय २०४

इन्द्र और कृष्ण के संवाद का वर्णन

इन्द्र के साथ श्व कृष्ण का संवाद। द्वारका में भगवान् का आगमन। कल्पवृक्ष का वर्णन। १०४२ १०४४

अध्याय २०५

अनिरुद्ध का चरित्र-वर्णन

रविमणि। आदि स्त्रियां व पुत्र एवं पत्नी व नामा का वर्णन। उपा और अनिरुद्ध के विवाह का वर्णन। बाणामुर का पुत्र। उपा का गायक से संबंध। चित्रलेखा का लेखन-कला व चतुरंगा का वर्णन। १०४४ १०४७

अध्याय २०६

बाण के युद्ध का वर्णन

भगवान् गजर के साथ बाणामुर का संवाद और युद्ध के लिए प्रायश्चित्त। उपा के अश्व-पुर में चित्रलेखा द्वारा अनिरुद्ध का जाना। बाणामुर और अनिरुद्ध का युद्ध। अनिरुद्ध का वर्णन। कृष्ण और धर्मदेव का युद्ध के लिए आना। बाणामुर के साथ भगवान् का युद्ध। भगवान् और गजर का युद्ध। हरिहर-संवाद। भगवान् का संपत्तिक अनिरुद्ध के साथ द्वारका में आना। १०४७-१०५१

अध्याय २०७

पौण्ड्रक-वध-वर्णन

कानियाज पौण्ड्रक के दूत का द्वारका में आगमन। दूत के साथ कृष्ण का संवाद। श्व कृष्ण के साथ पण्ड्रक का युद्ध। पण्ड्रक का वध। गजर के वरदान से कानियाज व पुत्र द्वारा कृष्ण का उत्पादन। युद्ध में चक्र के भंग से कृष्ण का वाराणसी में प्रवेश। चक्रद्वारा वाराणसी का दाह परचात चक्र का कृष्ण के हाथ में वापिस आना। १०५२ १०५६

अध्याय २०८

बलदेव का इह-मध्य-वर्णन

भ्यास और ऋषियों के संवाद में बलदेव के पराक्रम का वर्णन। साम्ब द्वारा दुर्योधन की नैया का हरण। दुर्योधनादिका द्वारा साम्ब का वर्णन। बलदेव का हस्तिनापुर में आगमन। कौरवों के साथ बलदेव का संवाद। बलदेवकृत हस्तिनापुर का आक्रमण। कौरवों द्वारा बलदेव की प्रायश्चित्त। १०५६ १०६०

अध्याय २०९

द्विविध वाक्-वातर् का वध-वर्णन

भ्यास और ऋषियों का संवाद। बलदेवकृत द्विविध वातर् का वध। १०६० १०६२

अध्याय २१०

पञ्चों के भार उतारने का वर्णन

भ्यास और ऋषियों के संवाद में भूमि के भारोत्थरण का वर्णन। यादव-कुल के उपसंहार का वर्णन। भगवान् का द्वारका स्थाय तथा निजधाम-गमन। यादवा व शाप का हेतु-वर्णन। देवताओं द्वारा भेजे हुए वृक्ष का अक्षय्य लक्ष्मी कृष्ण के साथ संवाद। शशीस्तोत्र के गायन के लिए यक्ष-राज का प्रयास के फल। अक्षय्य का उद्घाटन के साथ संवाद। यादवा का नाश-वर्णन। १०६२ १०६८

अध्याय २११

कृष्ण का अनुष्ण देह-त्याग

भगवान् का कृपा से व्याघ्र का स्वयं-गमन।

१०६८ १०६९

अध्याय २१२

हस्तिनयो आदि का परलोक-गमन

हस्तिनयो आदि रानिया का स्वगाराहण। आनार और अजुन का सवाद एवं युद्ध। अजुन का पराजय। म्नेच्छा द्वारा श्रेष्ठ स्त्रिया का हरण। अजुन के विवाद का वणन। आस और अजुन के सवाद में व्याम द्वारा अजुन का समाधान। अष्टावक्र के अस्वियन का वणन। अष्टावक्र के तप का वणन। त्रिशोत्तमा रमा आदि अपराधा द्वारा अष्टावक्र के प्रताप। रमा का पुरुषात्तम पति प्राप्ति रूप अष्टावक्र का धर प्रदान। जल से बाहर बाधे मुनि के गरार का देगवन दत्तक रमा द्वारा होस्व। रमा के हास्य से कुपित मुनि का गाय परवान् प्रसन्न होकर धर प्रदान। सवायव पाण्डवा का महाप्रस्थान। पराशित का च-ध-दान लकुपयत्त वन-गमन। कृष्ण चरित का समाप्ति का कथन।

१०७० १०७८

अध्याय २१३

वाराह-अवनार का वणन

वाराह अवनार का वणन। वाराहकृपा परमेश्वर के गरार के अगा का वणन। दानवराहहत पुष्पा का उद्धरण। नृसिंह अवनार का वणन। हिरण्यकशिपु के तप का वणन एवं वरप्रदान। ब्रह्मा के साथ देवताओं का भगवान् का समाप गमन। देवताओं द्वारा भगवान् का स्तुति। भगवान् का नृसिंहरूप में अवतरण होना। नृसिंह भगवान् द्वारा हिरण्यकशिपु का वध। वामन अवनार का वणन। दया के नामावली का वणन। दत्तात्रय के अवतार का वणन। पराशुराम के अवनार का वणन। महाभय शंकरामचरित का वणन। श्री कृष्णावनार का वणन। शक्ति अवनार का वणन। भगवान् के अवतार के चरित्र का वणन एवं वणन का फल।

१०७८ १०९२

अध्याय २१४

नरका का वणन

नरका के नाम तथा वणन। देहत्याग का वणन। समुद्रोत्था का वणन। धार्मिक एवं पाप-जनों का वणन। यमपुरा का वणन एवं पुर के द्वारा का वणन।

१०९२ ११०२

अध्याय २१५

दक्षिण माग का वणन

दक्षिण माग से जान बाल प्राणिया के दुःखा का वणन। विजयुष द्वारा पापिया का वणन। मयकर नरका का वणन। अनेक प्रकार के पाप का वणन। पाप के अनुसार नरक प्राप्ति का वणन।

११०२ १११३

अध्याय २१६

नारक य कुलक्षितार धर्मावरण का वणन

नरका के दुःख-निवारण के लिए मुनियों द्वारा व्याम के प्रति प्रार्थना। व्याम द्वारा घम के आवरण से मुक्ति प्राप्ति का वणन।

१११४ ११२०

अध्याय १९०

बेसी नामक अमुर का वध

कस और नारद का संवाद। बलराम और कृष्ण को खाने के लिए कस का अमुर को भेजना। बलराम और कृष्ण को मारने के लिए कस की मल्लयुद्ध योजना। कृष्ण के वध के लिए बेसिका का वृन्दावन जाना। बेसि के शब्दों से गोपीों को भय। कृष्ण द्वारा बेसी का वध। नारदवृत्त कृष्ण-वर्णन। ९८७-९९१

अध्याय १९१

अमुर के जाने का वर्णन

अमुर का गोठुल गमन। अमुर द्वारा कृष्ण का वधन। ९९१-९९४

अध्याय १९२

अमुर के लौटने का वर्णन

अमुर द्वारा कृष्ण का नमस्कार। अमुर द्वारा कस को उक्ति का वधन। कस के वध के लिए कृष्ण की इच्छा। मयुरा के लिए राम कृष्ण और अमुर का गमन। कृष्ण के गमन से दुखित गारिया का परस्पर सभाषण। यमुना-जल में अमुर का भगवान् का दर्शन। अमुर द्वारा कृष्ण की स्तुति। कृष्ण और अमुर का संवाद। मयुरा में बलराम और कृष्ण-नराक्रम-वर्णन। ९९५-१००२

अध्याय १९३

कुम्भा का उद्धार-वर्णन

कुम्भा के प्रति कृष्ण का कथन। कृष्णवृत्त अनुग्रह का वधन। बलराम और कृष्ण को मारने के लिए चाणूर और मुष्टिक को कस की आज्ञा। नागरिका द्वारा बलराम और कृष्ण का वधन। कृष्ण और चाणूर का युद्ध। मुष्टिक और बलराम का युद्ध। चाणूर और मुष्टिक का वध। वसन्त-वध। वसुदेव द्वारा भगवत्स्तुति। १००२-१०१०

अध्याय १९४

देवकी और वसुदेव के साथ कृष्ण का संवाद

देवकी और वसुदेव के साथ कृष्ण का संवाद। कृष्ण द्वारा कस को पत्नी का समाधान। कृष्ण द्वारा उग्र सेन का राज्याधिकार। उग्रसेन को सुधर्मा नामक सभा की प्राप्ति। बलदेव और कृष्ण को गृह सादीपति द्वारा अस्त्रप्रदान। सान्दीपनि को पुत्र प्राप्ति। १०१०-१०१३

अध्याय १९५

जरासन्ध के साथ राम-कृष्ण का युद्ध-वर्णन

जरासन्ध के साथ राम जनादन का युद्ध। जरासन्ध का विरहकार। जरासन्ध का युद्ध के लिए फिर आना। जरासन्ध की पराजय। १०१३-१०१५

अध्याय १९६

कालव्यवहारी का उपाख्यान

कालव्यवहारी की उत्पत्ति का वर्णन। कालव्यवहारी द्वारा यज्ञधरो का राज्य, यज्ञधरो की पत्नी के लिए कृष्ण द्वारा दारुका का निर्माण। मुचुकुन्द द्वारा कालव्यवहारी का नाश। मुचुकुन्द द्वारा भगवत्संरक्षण का वर्णन। १०१५-१०१९

अध्याय १९७

मेरुज्ज में बन्धराज का संतान

मुचुकुन्द को भगवान् का वर प्रदान। तब के लिए मुचुकुन्द का वधमादन व प्रति गमन। बलदेव का गातुल
म आना। १०१९ १०२१

अध्याय १९८

बलराज की घोडा का वधन

वरुण और वाष्णी का संवाद। यमुना और बलदेव का संवाद। बलदेव का मयूर म गमन।

१०२१ १०२३

अध्याय १९९

रविमणी के विवाह का वधन

कृष्ण द्वारा रविमणी का हरण। कृष्ण से हनम को पता चल। रविमणी विवाह ०४ प्रद्युम्न की उत्पत्ति।

१०२३ १०२४

अध्याय २००

प्रद्युम्न का अस्थान-वर्णन

शम्बरामुर द्वारा प्रद्युम्न का हरण। शम्बर का प्रद्युम्न को समुद्र म फेंकना। मत्स्य के उद्धार से शम्बर का
रुषी का प्रद्युम्न का प्राप्ति। शम्बर को रुषी से नारद का संवाद। शम्बर और प्रद्युम्न का युद्ध। शम्बर का वध।
शरीरा म प्रद्युम्न का आगमन। प्रद्युम्न नारद संवाद। १०२५-१०२८

अध्याय २०१

अनिन्द के विवाह में वधवा का वध

रविमणी के पुत्रा का नाम। कृष्ण का विष्णु का नाम। अनिन्द का विवाह। रुषी और बलदेव का युद्ध
वधन। बलदेव द्वारा वधवा का वध। १०२८ १०३१

अध्याय २०२

नरकासुर के वध का वधन

इन्द्र का शेरका म आना। इन्द्र द्वारा नरकासुर की वधन का वधन। श्यामिन्धुर के प्रति कृष्ण का गमन।
कृष्ण द्वारा मुरद्वीप का वध। कृष्ण द्वारा नरकासुर का वध। पुत्र का कृष्ण का कुण्डल दान। अग्नि की
कुण्डल देने के लिए भगवान् का स्वयममन। १०३१ १०३४

अध्याय २०३

अग्नि द्वारा भगवान् का मृत्पति

अग्निपति भगवान्। कृष्ण और अग्नि का संवाद। अत्यन्तमा के वधन म कृष्ण द्वारा बलदेव का लाता।
वधवा का साथ श्रीकृष्ण का संवाद। वधवा का साथ सत्यभामा का गर्वविह। श्वशुरा का साथ श्रीकृष्ण का
पुत्र। इन्द्र के साथ सत्यभामा का संवाद। इन्द्र द्वारा भगवान्। १०३५-१०४२

अध्याय २१७

धर्म की श्रद्धा का वर्णन

धर्म का श्रद्धा का वर्णन। "१२२२" उत्पत्ति का वर्णन। पुण्य एवं पाप का अनुरोध से अनन्त मानिया
म जन्म होने का वर्णन। अनन्तर पाप पुण्य का वर्णन। ११२१ ११३०

अध्याय २१८

अन्नदान की प्रशंसा का वर्णन

शुभप्राप्तिविषयक मुनियों का व्यास का प्रति प्रश्न अन्न का प्रशंसा। अन्नदान से शुभ प्राप्ति का वर्णन।
११३० ११३३

अध्याय २१९

श्राद्धविधि का वर्णन

श्राद्धविधि का विवरण पितरों के साथ चन्द्र-कन्या का संवाद। चन्द्रमा का पितरों को शाप। सामन्तों
का कोका नामक नंद वर्णन। पितरों द्वारा भगवान् का स्तुति। पिता का उद्धार का वर्णन। अग्निकरण और
पिण्डदान का विधि। ११३३ ११४४

अध्याय २२०

श्राद्धकल्प का वर्णन

श्राद्धकल्प का वर्णन। प्रतिष्ठा आदि विधि क्रम से श्राद्ध करने का फल वर्णन। सपिण्डकरण का
विधान श्राद्ध में ब्राह्मण विचार। ११४४-११३२

अध्याय २२१

सदाचार का वर्णन

सदाचार का वर्णन धर्म वर्णन। भालादि उद्योग एवं आचमन के विधि का वर्णन। अनन्तकालीन निष्क
पण। कर्माचरण तथा श्रुतिकाल में वर्णन प्रकार। देव पूजा वर्णन। देवता तथा पितरों के स्तुति का वर्णन।
शिवदेव का विधान। विष्णु के निवासस्थान देवों का वर्णन। भूतक का विचार। ११६२ ११७७

अध्याय २२२

वर्णाश्रमधर्म का वर्णन

वर्णाश्रम और मुनियों के संवाद में वर्णधर्म का वर्णन। ११७७ ११८१

अध्याय २२३

सकल जाति का लक्षण-वर्णन

उमा अथ महेश्वर के संवाद में ब्राह्मणों का महत्त्व प्राप्ति का वर्णन। शूद्र आदि को उत्तम-वर्ग की प्राप्ति
का वर्णन। ११८२ ११८७

अध्याय २२४

मनुष्यों का उत्तम गति मिलने का वर्णन

उमा और महेश्वर के संवाद में मनुष्या को उत्तम गति मिलने का वर्णन। स्वर्ग-प्राप्ति के हेतुभूत धर्म का कथन। धर्म के फल का कथन। . ११८८-११९३

अध्याय २२५

देवलोक की प्राप्ति का कारण कथना

उमा और महेश्वर के संवाद में देवलोक की प्राप्ति का कथन। कृपण आदि के नरक में जाने का वर्णन। स्वर्धर्मरत प्राणियों का वर्णन। पारिष्ट प्राणियों की नरक-प्राप्ति का कथन। . ११९२-११९८

अध्याय २२६

वासुदेव की महिमा का वर्णन

मुनि और महेश्वर के संवाद में वासुदेव भगवान् की महिमा एवं भगवत्स्वरूप का वर्णन। मनु के वत्ता का वर्णन। आसक्तों और मुनियों के संवाद में कृष्णपूजा के फल का कथन। . ११९९-१२०४

अध्याय २२७

मुनिया और व्यास के संवाद में विष्णु-पूजकों की गति का निरूपण

विष्णु की उपासना करने वालों का दिव्य लोकों की प्राप्ति एवं उत्तमोत्तम भोगों की प्राप्ति के पश्चात् मोक्ष की प्राप्ति। १२०४-१२०८

अध्याय २२८

विष्णु-पूजा आदि का वर्णन

षाण्डाल और राक्षस के संवाद का वर्णन। उर्वशी और मूर्धे ब्राह्मण का संवाद। विष्णु भगवान् के जागरण में भगवद्भजन का फल। षाण्डाल और राक्षस का संवाद। जागरण की पुण्य प्राप्ति के लिए राक्षस द्वारा मानव की प्रार्थना। ब्रह्मराक्षस के पूर्वजन्म का कथन एवं राक्षसत्व की प्राप्ति। षाण्डाल के पूर्वजन्म का कथन। मूर्धे ब्राह्मण और उर्वशी का संवाद। शकटदान का महत्त्व। १२०८-१२२२

अध्याय २२९

विष्णु-भक्ति का कारण-वर्णन

व्यास और मुनिया के संवाद में विष्णुभक्ति का हेतु-कथन। मूर्धे आदि देवा के आराधना का वर्णन। अर्ध-पुनरुत्पत्ति की प्राप्ति का कारण-वर्णन। भगवान् की भाषा का वर्णन। कामदहन का आख्यायन। कथानुभावनार्थ के उत्पत्ति का वर्णन। कामदहन का स्वर्ग-नामन। १२२३-१२३२

अध्याय २३०

महाप्रलय का वर्णन

व्यास और मुनिया के संवाद में महाप्रलय का वर्णन। बलि के स्वरूप का वर्णन। कल्पियुग में अविध्य का वर्णन। . १२३३-१२४०

अध्याय २३१

दावरयुग के अन्त का वर्णन

मष्ट धर्म के निर्मित का कथन। अविध्य का कथन। .

१२४०-१२४८

अध्याय २३२

सहार के लक्षण का वर्णन

स्थान और मृत्तिया व सवात में सहार-लक्षण का वर्णन। वलय का मान-वर्णन। नम्रित्व लय का स्वरूप वर्णन। १२४८ १२५१

अध्याय २३३

प्राकृत लय का निरूपण

प्राकृत लय का स्वरूप-वर्णन।

१२५२ १२५५

अध्याय २३४

आत्यन्तिक लय का निरूपण

आव्यामिक आदि तानो तैयों का वर्णन। गिर-जकम मौगा आदि आव्यामिक लय का निरूपण। काम प्राय आदि मानसिक लय का निरूपण। मृग पक्ष आदि से हुने वाले आधिर्मात्र लय का वर्णन। गग जम बद्धावस्था आदि से उत्पन्न आधिद्विक लय का वर्णन। यम म स्थित प्राणा का दुःसावस्था का निरूपण। बाल अवस्था बुद्धावस्था और मरणावस्था का वर्णन। पाप यमों में नरक प्राप्ति का वर्णन एवं मुक्ति और ज्ञान का महिमा का वर्णन। १२५६ १२६२

अध्याय २३५

योगाभ्यास निरूपण

योगाभ्यास का वर्णन।

१२६२ १२६५

अध्याय २३६

साध्य-यथ-निरूपण

विस्तारपूर्वक योग और साध्य का निरूपण।

१२६५ १२७१

अध्याय २३७

ज्ञानियों को मोक्ष प्राप्ति का निरूपण

ज्ञानियों का मोक्षप्राप्ति का निरूपण एवं कम करने वाला व बगानुसार स्वर्गादि लोकों का प्राप्ति का वर्णन। आकाश आदि पञ्च भूतमयों के गुणों का वर्णन। १२७१ १२७९

अध्याय २३८

गुणों को सृष्टि का प्रतिपादन

गणा का रचना का वर्णन। विद्वान् को ज्ञान और मूख का भय का प्राप्ति का वर्णन। सब यमों में विनिष्ट यम का वर्णन। क्षमा आदि के द्वारा कोष वादि का नाश-वर्णन। १२८० १२८५

अध्याय २३९

यथर्विधि का निरूपण

योग और साध्य के विद्वान् के दशा आदि आचरणा व समता का वर्णन। योग का विशेष प्रशंसा। योग के विहित और निषिद्ध आहारा का वर्णन। काम आदि सम्पूर्ण शत्रुता व जय का वर्णन। योग व अभ्यास से नारायण-भक्त की प्राप्ति। १२८५ १२९०

अध्याय २४०

सांख्य-विधि का निरूपण

सांख्यविधि का निरूपण। मनुष्य आदि के विषय-ज्ञान का कथन। सत्त्व आदि गुण और सांख्य के ज्ञान का निरूपण। दृष्टि आदि के रूप आदि में ससक्त होने का कथन। मोक्ष की दुर्लभता का निरूपण। सांख्य-ज्ञान की महिमा का वर्णन। सांख्य-योग से भ्रष्ट जनों की उत्तम कुल में उत्पत्ति।... १२९१-१३००

अध्याय २४१

वसिष्ठ और करालजनक के संवाद में शर और अक्षर का निरूपण

शर (नागवान्) और अक्षर (ध्रुव) का वर्णन। मुनियों द्वारा व्यास जी की प्रशंसा। वसिष्ठ और कराल-जनक का संवाद। ससार का क्षरत्व से प्रतिपादन और ईश्वर का अक्षरत्व से प्रतिपादन। चौबीस तत्त्वों का वर्णन तथा सामसादिकों की नरकप्राप्ति और निर्गुण की मोक्ष-प्राप्ति का कथन।... १३००-१३०४

अध्याय २४२

वसिष्ठ और करालजनक का संवाद-वर्णन

वसिष्ठ और करालजनक का संवाद। शर और अक्षर का ज्ञान न होने से बहुविध जन्मों की प्राप्ति। अभिमानों पुरुषों के बन्धन-से साधनों का कथन।... १३०४-१३०९

अध्याय २४३

श्रीशधर्म के सम्बन्ध में वसिष्ठ से जनक का प्रश्न

वसिष्ठ के प्रति मोक्ष-धर्म के विषय में जनक का प्रश्न। धन्य का अर्थ जाने बिना धन्य का धारण करना केवल भार है—यह कथन। धन्य के तत्त्व को न जानकर लोग से विवाद करने वाले को नरक की प्राप्ति। अक्षर और शर का लक्षण। योगलक्षण का वर्णन। सांख्यज्ञानकथन। क्षेत्र-क्षेत्रज्ञ का लक्षण।... १३०९-१३१६

१

अध्याय २४४

विद्या और अविद्या के स्वरूप का वर्णन

विद्या और अविद्या का स्वरूप-कथन। शर और अक्षर का विस्तार से वर्णन। प्रवृत्ति के त्याग से विमुक्ति का कथन। अनेद से सांख्ययोग का कथन।... १३१७-१३२१

अध्याय २४५

ब्रह्म का अनेक होना

ब्रह्म परमात्मा भी विकारों से अनेक रूपों में भागित होता है। एतत्त्व और तात्मात्त्व का लक्षण। ज्ञान और विज्ञान से सज्जन मोक्ष का वर्णन। इन ज्ञान के दानार्थ अविद्या का निर्णय। जनक के प्रति वसिष्ठ का यह कथन कि उन्हें यह ज्ञान ब्रह्मा से प्राप्त हुआ था। ज्ञान-प्राप्ति की परम्परा का कथन।... १३२१-१३२७

अध्याय २४६

इस पुराण के अथर्व और पाठ का फल-वर्णन

पुराण-श्रवण के उत्तरान्त मुनियों द्वारा व्यास जी की प्रशंसा। अनन्तर समस्त मुनियों का अपने-अपने आश्रमों में जाना। ब्रह्मपुराण के श्रोता एवम् अन्तेज को मिलने वाली फल का कथन। धर्म की प्रशंसा।... १३२७-१३३१

○
ब्रह्मपुराणम्
(हिन्दी-अनुवाद सहितम्)
○

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

ब्रह्मपुराणम्

प्रथमोऽध्यायः

तत्रादौ नैमिषारण्य-वर्णनम् ,

यस्मात् सत्त्वमिदं 'प्रपञ्चरचितं मायाजगज्जायते, यस्मिंस्तिष्ठति' याति, चान्तसमये, कल्पानुवृत्ते पुनः ।
यं ध्यात्वा मुनयः, प्रपञ्चरहितं विन्दन्ति मोक्षं भूय, तं वन्दे पुण्योत्तमाध्यममलं नित्यं विभुं' निश्चलम् ॥१॥
यं ध्यायन्ति युधाः समाधिसमये शुद्धं विद्यत्सन्निभं, नित्यानन्दमयं प्रसन्नममलं सत्त्वैश्वरं निर्गुणम् ।
ध्वक्ताध्वक्तरं प्रपञ्चरहितं 'ध्यानैकगम्यं' विभु, तं संसारविनाशहेतुमजरं वन्दे हरिं भुवितदम् ॥२॥
सुपुण्ये नैमिषारण्ये पवित्रे सुमनोहरे । नानामुनिजनाकीर्णं नानापुण्योपशोभिते ॥३॥
सरलं कर्णिकारंश्च पतसंघं वज्रादिरे । आग्नजम्बूकपिर्यंश्च न्यग्रोधैर्देवदारभिः ॥४॥
अश्वत्थं, पारिजातंश्च चन्दनागुरपाटलैः । कुलैः सप्तपर्णैश्च पुद्गलैर्नागकेशरैः ॥५॥
शालैस्तालैस्तमालैश्च 'नारिकेलैस्तथाजर्जुनैः । अन्यैश्च बहुभिर्वृक्षैश्च पक्ष्पाद्यैश्च शोभिते ॥६॥
नानापक्षिगणाकीर्णं नानामृगगणैर्पुते । नानाजलाशयैः 'पुण्यैर्दोषिकाद्यैरलङ्कृतैः ॥७॥

अध्याय १

जिससे यह विस्तार के साथ रहा हुआ मायामय सम्पूर्ण सत्त्वरहित होता है, जिसमें स्थित रहता है तथा प्रत्येक कल्प के अन्त में लीन हो जाता है और जिसका ध्यान करते मुनिगण प्रपञ्चरहित मोक्ष को प्राप्त करते हैं उस निर्मल, नित्य, व्यापक, अवल, पुण्योत्तमसङ्ग श्रेष्ठ का प्रणाम करता हूँ ॥१॥ समाधि की अवस्था में विद्वान् (साधक) जिसका ध्यान करते हैं, उस आकाश के समान स्वच्छ, आनन्दमय, सदा प्रसन्न, निर्मल, भवैश्वर, निर्गुण, स्पष्ट और अस्पष्ट रूप से परे, सृष्टि से रहित, केवल ध्यानपीथ से प्राप्त करते योग्य, व्यापक, सत्त्वर के प्रलय के कारण, अजर और मोक्षदायक हरि को प्रणाम करता हूँ ॥२॥ मुनिगणों से व्याप्त, अनेक प्रकार के पुष्पा से सुशोभित, पुष्परूप, पवित्र और मनोहर नैमिषारण्य की वनस्पती सरल (सहज), आभ्रानक (अमन्ताय), कटहल, पत्र, खदिर (खैर), आम, जामुन, बटवेल, बरगद, देवदारु, पीपल, पारिजात, चन्दन, अगर, पाटला, मोलसिरी, सातला, पुत्राय, नागवैशद, शाल (छाया), ताल, तमाल, नारिकेल, अर्जुन और चम्पा आदि नानाविध वृक्षों से भी सुशोभित थी ॥३-६॥ बहु अनेक प्रकार के पशु-पक्षियों, पवित्र धावली आदि अनेक जलाशयों से

१. य. ०ञ्चरचितं मा। २. ०नि लीयते तु यः। ३. ०ति लीयते च यः। ३. निष्पन्नः।
४. शानैकगम्य। ५. प्रमू। ६. ०म् ॥२॥ ये पुः। ७. ०लैः। यः। ८. ०नार्गं पञ्चार्गः।
९. क. ड. नालिकेरस्तः। १०. क. पुण्ये वैदिरः।

ब्राह्मणः क्षत्रियेर्वैश्येः शूद्रेश्चान्येश्च जातिभिः। वानप्रस्थेर्गृहस्थेश्च यतिभिर्ब्रह्मचारिभिः॥८॥
 सम्पन्नैर्गोक्षुलेश्चैव सर्वत्र समदृढकृते। यवगोधूमचणकेर्मयिमुद्गतिलेक्षुभिः॥९॥
 चीनकाष्ठैस्तथा मेघैः शरयश्चान्येश्च शोभिते। तत्र दीप्ते हृतवहे हूपमाने महामखे॥१०॥
 यजतां नैमिषेयाणां सत्रे द्वादशवार्षिके। आजगमुस्तत्र मुनयस्तथाऽप्येऽपि द्विजातयः॥११॥
 तानागतान् द्विजांस्ते तु पूजा चप्रयुज्योचिताम्। तेषु तत्रोपविष्टेषु ऋत्विग्भिः सहितेषु च॥१२॥
 तत्राजगाम सूतस्तु मतिमालोमहर्षणः॥ तं दृष्ट्वा ते मुनिवरा। पूजां चप्रमुंदा निवता॥१३॥
 सोऽपि तान् प्रतिपूज्यैव सविवेश वरासने। कथा चप्रमुस्तदान्योन्यं सूतेन सहिता द्विजाः॥१४॥
 कथान्ते व्याससिष्यं ते पप्रच्छ। सशयं मुदा। ऋत्विग्भिः सहिताः सर्वे सवस्यैः सह दीक्षिताः॥१५॥

मुनय ऊचुः ।

पुराणागमशास्त्राणि सेतिहासतानि सत्तम। जानासि देवदैत्यानां चरितं जन्म कर्म च॥१६॥
 न तेऽस्त्यविदितं किञ्चिद्देवे। शास्त्रे च भारते। पुराणे मोक्षशास्त्रे च सध्वंसोऽसि महामते॥१७॥

अलंकृत या ॥७॥ ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र तथा ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ और सन्यासी—चागे वर्ण और आश्रम के लागे वही निवास करते थे ॥८॥ पर्याप्त पशुपद एवं जौ, गेहूँ, चना, उड़द, मूँग, तिल ईल और चीन आदि पवित्र अन्नो से वह क्षेत्र सज्ज था ॥९॥ उस क्षेत्र में नैमिषारण्यवासी बारह वर्षों में समाप्त होने वाले यज्ञ का अनुष्ठान कर रहे थे। महायज्ञ की प्रज्वलित अग्नि में आहुतियी पड़ रही थी। उस यज्ञ में ब्रह्म से मुनि और दूसरे ब्राह्मण लोग भी आए हुए थे ॥१०-११॥ उन आगन्तुकों का नैमिषारण्यवासियों ने यथोचित आतिथ्य-सत्कार किया। ऋत्विजों के सहित आए हुए ब्राह्मणों, मुनियों के बैठ जाने पर सुप्रसिद्ध मेधावी सूत लोमहर्षण वहाँ उपस्थित हुए ॥१२॥ उन्हें देखते ही अगस्त्य मुनिगण ने यथोचित सत्कार किया। तदनंतर लोमहर्षण सूतजी भी उनके प्रति यथोचित सम्मान प्रकट करते हुए व्याख्येय पर आसीन हो गये। फिर सूतजी सहित उपस्थित विप्रबृन्द परस्पर कथा वार्ता करने लगे ॥१३-१४॥ कथा के समाप्त होने पर सदस्यो सहित दीक्षित हुए ऋत्विग् और मुनिबृन्द अपनी शकाओं के समाधान हेतु सूतजी से नम्रतापूर्वक प्रश्न करने लगे ॥१५॥

मुनियों ने कहा—मगवन् । पुराण, अगम, शास्त्र और इतिहास एवं देवता राक्षसों के जन्म, कर्म और चरित्र के आप विज्ञाता हैं ॥१६॥ वेद, शास्त्र, महाभारत, पुराण, मोक्षशास्त्र—इनमें से कोई भी ऐसा विषय नहीं है, जिससे आप न जानते हो। महाधीमन् । आप सर्वज्ञ हैं ॥१७॥ हे सूतजी । प्रारम्भ में देवता, राक्षस, गन्धर्व,

१क ०भि। समर्प्यो०। ख. ०भि। धृष्टर्षो०। २ग ०भि। शालिमिश्र तथा। ३क ०न्ये च द्वि। ४क स ०योदिता०। ५क. ०मात्रोम०। ६ग ०पि ता प्रतिगृह्येव। ७क ०स्तथाऽप्यो। ८ग सह ते द्वि०। ९ख। ०न्ते च व्या०। १०क. तु। ११क. ०प्रचुस्त्येऽप्य मु०। १२क. ०देवशास्त्रेषु मा०।

यथापूर्वमिदं सर्वमुत्पन्नं चराचरम् । ससुरासुरेण्यर्वं सेयशोरगराक्षसम् ॥१८॥
 धोतुमिच्छामहे सूत ब्रूहि सर्वं यथा जगत् । बभूव भूयश्च यथा महाभाग भविष्यति ॥१९॥
 यतश्चैव जगत् सूत यतश्चैव चराचरम् । लीनमासीत्तथा यत्र लयमेत्यति यत्र च ॥२०॥

लीमहर्षेण उवाच

अविकाराय शुद्धाय नित्याय परमात्मने । सदैवरूपरूपाय विष्णवे सर्वजिष्णवे ॥२१॥
 नमो हिरण्यगर्भाय हरये शङ्कराय च । वासुदेवाय ताराय सर्गस्थित्यन्तकर्मणे ॥२२॥
 एकानेकस्वरूपाय स्थूलसूक्ष्मात्मने । नम । अद्यवतारव्यवतभूताय विष्णवे मुक्तिहेतवे ॥२३॥
 सर्गस्थितिविनाशाय जगतो षोडशरामर । मूलभूतो नमस्तस्मै विष्णवे परमात्मने ॥२४॥
 आधारभूतं विश्वस्याप्यणीयासमर्णोयसाम् । प्रणम्य सर्वभूतस्यमच्युतं पुरयोत्तमम् ॥२५॥
 ज्ञानस्वरूपमत्यन्त निर्मलं परमार्थतः । तमेवार्थस्वरूपेण भ्रान्तिदर्शनतः स्थितम् ॥२६॥
 विष्णुं प्रसिष्णुं विश्वस्य स्थितो सर्गं तथा प्रभुम् । सर्वज्ञं जगतामोशमजमक्षयमव्ययम् ॥२७॥
 आद्यं सुसूक्ष्मं विश्वेश ब्रह्मादीन् प्रणिपत्य च । इतिहासपुराणतं वेदवेदाङ्गपारगम् ॥२८॥
 सर्वशास्त्रार्थतत्त्वज्ञ पराशरसूत प्रभुम् । गुरुं प्रणम्य यस्यामि पुराणं वेदसम्मितम् ॥२९॥

यस्य, सर्ग, वैद्य आदि योनियो सहित यह चराचर जगत् जिस प्रकार उत्पन्न हुआ उस प्रक्रिया को हम लोग भुतना कहा है इत्यादि मुनाइए ॥१८॥ महाभाग सूतजी । जिस प्रकार सृष्टि की उत्पत्ति हुई है और प्रलय के बाद जिस प्रकार फिर उत्पन्न होगी तथा चराचर सहित जगत् जिसमे लीन रहकर उत्पन्न हुआ और फिर जिसमे लीन होगा उसका समस्त उत्पत्ति सब लयवत् हम बतलाइये ॥१९-२०॥

लीमहर्षेण बोले—निविहार गढ़ वृद्ध, नित्य सर्वात्मा, साक्षर, सर्वव्यापक सर्वजयी हिरण्यगर्भ, हरि, गङ्गा, वासुदेव—नामधारी अनिल उदार सृष्टि स्थिति प्रलय के कारणभूत एक और अनेक स्वरूप धारण करने वाले, स्थूल और सूक्ष्म आत्मा वाले, व्यवत और अव्यवत तथा मोक्ष के कारण भगवान् विष्णु को नमस्कार है । ॥२१-२३॥ सृष्टि की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय के कारणभूत अजर, अमर, नित्य परब्रह्म विष्णु को भगवन्कार है । ॥२४॥ विश्व के आधार मूढमात्तिमूढम् एक सभी प्राणियों में स्थित पुरुषोत्तम भगवान् अच्युत को प्रणाम है । ॥२५॥ तत्त्वन ज्ञानस्वरूप और अत्यन्त निर्मल होत हुए भी भ्रम से पदार्थरूप से भ्रान्त सबको प्रसन्नवाले विश्व की उत्पत्ति स्थिति करन में समर्थ सबज्ञ सशर के स्वामी जगत् मरण द्वारा से रहित सब के आदि और अत्यन्त सूक्ष्म ब्रह्माण्डनाथ विष्णु को तथा ब्रह्मा आदि देवों को प्रणाम है । ॥२६-२७॥ वेद और वेदाङ्ग में निष्णान इतिहास, पुराण तथा सभी शास्त्रों के तत्त्वन पराशर मुनि के पुत्र परमगुरु व्यासजी को प्रणाम है । मैं जो कुछ

१८ ०पापनम् । य० २९ ०गल्लवे य० । ३९ भविष्यति । ४९ या । ५९ न गुरुणम् ।
 ६९ ०धाम्य त न० । ७९ व्यक्तहेतवे । ८९ न ०धाना ज० । ९९ न या जगन्मय । सू० ।
 १०९ ०तो जगत्तमः । ११९ ०मूतयम० । १२९ तमेव स्वरूप० । १३९ ०वाङ्मयस्व० । १४९ स्थितिर्गर्भ ।
 न स्थितिर्यो । १५९ ०द सू० । १६९ ०दय च वि० । १७९ वै ।

कथयामि यथापूर्वं दक्षाद्यैर्मुनिसत्तमैः । पृष्टं प्रोवाच भगवानग्नयोनिः । पितामहः ॥३०॥
 शृणुष्व सम्प्रत्यक्ष्यामि कथं पापप्रणाशिनीम् । कथ्यमानां मया तन्निघ्नं चतुर्धा ॥३१॥
 यस्त्विवमा धारयेन्नित्यं शृणुयाद्वाप्यभोक्षणं । स्ववशधारणं कृत्वा स्वर्गलोके महीयते ॥३२॥
 अव्यक्त कारणं यत्तन्निघ्नं सदसदात्मकम् । प्रधानं परमस्तस्मात्प्रिममे विदवमोऽश्वरः ॥३३॥
 तं बुध्यध्वं मुनिश्रेष्ठा ब्रह्माणममितीजसम् । स्रष्टारं सर्वभूतानां नारायणपरायणम् ॥३४॥
 अहङ्कारस्तु महत्तस्तस्मादभूतानि जग्निरे । भूतभवाश्च भूतेभ्य इति सर्गं सनातनं ॥३५॥
 विस्तरावयव चैव यथाप्रज्ञं यथाश्रुतिः । कोत्स्यमानं शृणुष्व यः सर्वेषां कीर्तिवद्धनम् ॥३६॥
 कीर्तितं स्थिरकीर्त्तितं सर्वेषां पुण्यवद्धनम् । तत् स्वयम्भूभगवान् तिस्रक्षुर्विधा प्रजा ॥३७॥
 अप एव ससज्जार्दो तासु धीर्यमयासृजतः । आपो नारा इति प्रोक्ता आपो वं नरसूनवः ॥३८॥
 अयनं तस्य सा पूर्व तेन नारायणं स्मृतं । हिरण्यवर्णमभवत्तदण्डमुदकेशयम् ॥३९॥
 तत्र जले स्वयं ब्रह्मा स्वयम्भूरिति न भूतम् । हिरण्यवर्णो भगवानुपित्वा परितस्तत्परम् ॥४०॥

क्यों वेदों के अनुकूल कहेंगे। ॥२८-२९॥ पूर्वकाल में दक्ष आदि मुनियों द्वारा पूछ जाते पर उन्हें पितामह ब्रह्मा ने जिस प्रकार बताया था वैसे ही मैं बताने करता हूँ मुनिये। मैं पापनाशिनी क्या बतलाऊँगा ॥३०॥ यदि वह स्ववाद एवं श्लेष-निमित्त कथा को जो व्यक्त बार-बार सुनेगा या धारण करेगा वह अपने वश का वशपर बनकर स्वर्गलोक में पूजित होगा ॥३१-३२॥ जो अव्यक्त कारण है वह सत-असत नियम प्रकृति और परम है। उसी से ईश्वर ने विश्व की रचना की है ॥३३॥ मुनिश्रेष्ठ ! उस ईश्वर को आप सब प्राणियों का स्रष्टा तथा नारायण का अभित अत्यन्त तेजस्वी ब्रह्मा समझिये। ॥३४॥ महान्-स्वरूप ने अहंकार उत्पन्न हुआ अहंकार से पंचमहाभूत और उनसे उनके मंद उपद्रव हुए। यही सनातन सृष्टि है ॥३५॥ अब जसा मैं न बता रहा हूँ और जसी मेरी गति मति है तदनुसार सब विस्तृत वर्णन करता हूँ आप लोग सुन। यशः शरीर से अमर व्यक्तियों का स्मरण पुण्यप्रद होता है यह सृष्टि क्या आप लोगों की प्रतिष्ठा को बढ़ाने वाली है ॥३६॥ स्वयम्भू भगवान् ने अनक प्रकार की प्रजाओं को उत्पन्न करने की इच्छा रखकर पहले जल की ही सृष्टि की। उसमें बीज डाला। नारः शब्द जल राशि और नर-भूत इन दो अर्थों में प्रयुक्त होता है ॥३७-३८॥ उस परम परम का आत्म्य पहले जल राशि ही थी। इसलिए उसको नारायण कहा गया। जल में सोये हुए परम परम की नाम से एक सुवर्णमय अण्ड उत्पन्न हुआ ॥३९॥ उससे स्वयम्भू ब्रह्मा उत्पन्न हुए — एका हमने सुना है।

१क ०नजो नियम पि०। २क ०प्रमोचिनी०। ३प तिसमिताम। ४य ०मोदशम। त।
 ५क व। ६क्ष ग ०न्यकमणाम। ७क्ष ०मवास०। ८क ०ति विभ०।

१ नार जल तस्य अयनं स्थानं नारायण — इस व्यक्तित्व के अनुसार जल के धाम को नारायण कहा जाता है। नार का तात्पर्य ज्ञान से है अर्थात् भौतिक सृष्टि से पूर्व ब्रह्मा न ज्ञान-सृष्टि की। २ ब्रह्म ने अत्यन्त हित मानने वाला कहलित होना सुवर्णमय अण्ड है। इस प्रकार इस कथा के श्लेष का भी ध्यान रखना चाहिए।

तदण्डमकरोद्दधं दिवं भुवमयापि च। तयोः शकलयोर्मध्य आकाशमकरोत्प्रभुः ॥४१॥
 अप्सु पारिप्लवां पृथ्वीं दिशश्च दशया दधे। तत्र कालं मनो वाचं यामं क्रोधमयो रतिम् ॥४२॥
 ससर्जं सृष्टिं तद्रूपी स्रष्टुमिच्छन् प्रजापतीन्। सरोचिमश्याङ्गिरसीं पुलस्त्यं पुलहं ऋतुम् ॥४३॥
 यस्मिच्छं महातेजाः सोऽसृजत्सत्त्व मानसान्। सप्त ब्रह्माण इत्येते पुराणे निश्चयं गताः ॥४४॥
 नारायणात्मकानां तु सप्तानां ब्रह्मजन्मनाम्। ततोऽसृजत् पुरा ब्रह्मा रुद्रं रोपात्मसम्भवम् ॥४५॥
 सनत्कुमारं च विभुं पृथ्व्यामपि पृथ्व्यजम्। सप्तस्वेता अजायन्त प्रजा रुद्राश्च भो द्विजा ॥४६॥
 स्कन्दः सनत्कुमारश्च तेजः संक्षिप्य तिष्ठतः। तेषां गत महावंशा दिव्या देवगणान्विताः ॥४७॥
 क्रियावन्तः प्रजावन्तो महर्षिभिरलङ्कृताः। विद्युतोऽग्निमेघाश्च रोहितेन्द्रधनूयि च ॥४८॥
 धर्मासि च सप्तर्षादो पञ्चगव्यश्च सप्तर्जं ह। ऋचो यजूंयि सामानि निम्ममे यज्ञसिद्धये ॥४९॥
 साध्यान्जनयद्देवानित्येवमनुसञ्जगुः। उच्चावचानि भूतानि गात्रेभ्यस्तस्य जनिरे ॥५०॥
 आपवह्यः प्रजासर्गं सृजतो हि प्रजापते। सृज्यमानाः प्रजा नैव विवर्द्धन्ते यदा तदा ॥५१॥
 द्विधा कृत्वात्मनो देहमर्द्धेन पुरयोऽभवत्। अर्द्धेन नारी तस्यां तु सोऽसृजद्विविधाः प्रजाः ॥५२॥
 विवश्च पृथिवीं चैव महिम्ना ध्याप्य तिष्ठति। विराजमसृजद्विष्णुः सोऽसृजत् पुर्यं विराट् ॥५३॥

हिरण्यगर्भे भगवान् ने वर्षों तक वायु करने उग्र अडे को स्वर्ग और पृथ्वी इन दो दुबडों में विभक्त कर दिया ॥४०॥ परमात्मा ने उन दोनों दुबडों के मध्य भाग में आकाश बनाया और जल में डूबी हुई पृथ्वी तथा दशों दिशाओं को धारण किया ॥४१॥ तदनन्तर काल, मन, वाणी, काम, क्रोध और रति की रचना की और फिर प्रजापतियों की सृष्टि की इष्टा रखकर मरीचि, अग्नि, यमिरा, पुलस्त्य, पुलह ऋतु, और यमिष्ठ—इन छत ऋषियों की मानकी सृष्टि की ॥४२-४३॥ पुराणा में ये छान ब्रह्मा निरिचन हैं। नारायण ने अश ने उत्पन्न हुए इन छान प्रजापतियों से पहले ब्रह्मा ने क्रोध से रुद्र का उत्पन्न किया ॥४४-४५॥ फिर पूर्वजों के भी पूर्वज तथा सर्वत्र व्यापन सनत्कुमार को भी उत्पन्न किया। इन सप्तर्षियों से, ब्राह्मणों। प्रजाओं और रुद्रों की उत्पत्ति हुई ॥४६॥ स्कन्द और सनत्कुमार अपने अपने तेज को समेट कर स्थित हैं। उनके दिव्य और देवगणों से युक्त छान महावंश विद्यावान् प्रजावान् और महर्षियों से अङ्कित हैं ॥४७॥ आदि में बिजली, वय, लाल इन्द्रधनुष जल और मेघ को रखकर यज्ञसिद्धि के लिये ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेद की निर्माण ब्रह्मा ने किया ॥४८-४९॥ परवान उन्हाल छाव्यों और देवताओं को भी उत्पन्न किया। फिर छोटे-बड़े सब प्राणी ब्रह्माओं के अश से उत्पन्न हुए ॥५०॥ 'आपव' नामक प्रजापति जब सृष्टि करते हैं, सब सर्जन की जाने वाली प्रजा जब-तब नहीं बनती है ॥५१॥ ब्रह्मा ने अपनी देह के दो भाग लिए। आधे भाग से पुरुष बना और आधे भाग से स्त्री बना। उग्र स्त्री ने उर्ध्वने अनेक प्रकार की प्रजाओं की सृष्टि की ॥५२॥ अपनी महिमा से स्वर्ग और पृथिवी को ध्यात करने के स्थित है। विष्णु ने विराट् की सृष्टि की। विराट् ने पुरुष को उत्पन्न किया ॥५३॥ उग्र पुरुष को मनु समायित। उगी का

१४. दधी। २४. पति। ३०। ३१ न ०२१ पु०। ४४ न। ५५ ०मुनंरं। ६४ ०म्।
 तपार्थेना। ७५. ०७ खेप अ०। ८५ रुद्रश्च। ९४ तिष्ठति। १० ०नक्षिता। १११ ०ध्यानान्विता
 देश०। १२ न ०मुन्युम्। ३०। न ०मुन्युम्। ४३०। १२५ अयं च प्र०। १४४ न तिष्ठति।

पुरुष त मनु विद्यात्तस्य मन्वन्तर स्मृतम् । द्वितीय धानसस्येतन्मनोरन्तरमुच्यते ॥५४॥
 स वैराज प्रजासर्गं ससर्जं पुरुषं प्रभु । नारायणविसर्गस्य प्रजास्तस्याध्ययीनिजा ॥५५॥
 आयुष्मान् कीर्तिमान् पुण्यप्रजावांस्र भवेन्नर । आदिसर्गं विदित्वेम यथेष्टा घातुयाद् गतिम् ॥५६॥
 इति श्रीब्राह्मे महापुराणे आदिसर्गवर्णनं नाम प्रथमोऽध्यायः ॥१॥

द्वितीयोऽध्यायः

तत्रादौ स्वायम्भुवमनुवशवर्णनम्

लोमहर्षण उवाच

त 'सृष्ट्वा तु प्रजास्त्वेवमापवो वै प्रजापति । लेभे वै पुरुषः पत्नीं शतरूपामयोनिजाम् ॥१॥
 आपवस्य महिम्ना तु दिवमावृत्य तिष्ठत । धर्मैर्नैव मृनिधेष्टा शतरूपा व्यजायत ॥२॥
 सा तु वर्णयुत सप्तधा तप परमदुश्चरम् । भर्तार दीप्ततपस पुरुषं प्रत्यपद्यत ॥३॥
 स वै स्वायम्भुवो विप्रा पुरुषो मनुश्च्यते । तस्यैकसप्ततिमुग मन्वन्तरमिहोच्यते ॥४॥

मन्वन्तर (कल्प) होता है और मानस मनु का वह दूसरा अन्तर कहा जाता है ॥५४॥ विराट् से उत्पन्न शक्तिशाली पुरुष ने प्रजा की सृष्टि की । नारायण के अंश से उत्पन्न हुए उस पुरुष की भी प्रजाई अयोनिज हुई ॥५५॥ जो व्यवित इस प्रकार आदि सृष्टि की रचना की सम्मन्धा, वह आयुष्मान् कीर्तिमान् तथा पवित्रप्रजावान् होगा और मयाभि-
 रुषित गति की प्राप्ति करेगा ॥५६॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में आदिसर्गवर्णन नामक पहला अध्याय समाप्त ॥१॥

अध्याय २

स्वायम्भुव मनु का वश-वर्णन

लोमहर्षण बोले—इस प्रकार आपव नामक प्रजापति ने प्रजा की रचना कर अयोनिज कन्या शतरूपा को अपनी पत्नी बनाया ॥१॥ मुनिवर्दवृन्द ! अपनी महिमा से स्वयं को ढककर स्थित हुए आपव के धर्म से ही शतरूपा उत्पन्न हुई थी ॥२॥ उसने दस हजार वर्षों तक अत्यन्त उग्र तपस्या करके अतितेजस्वी पुरुष को पति के रूप में प्राप्त किया था ॥३॥ ब्राह्मण ! वही पुरुष स्वायम्भुव मनु कहलगाता है । इन्हत्तर युग का उसका एक मन्वन्तर कहा जाता है ॥४॥ उस पुरुष से शतरूपा ने चार नामक पुत्र को उत्पन्न किया । चार की स्त्री काम्या से प्रियव्रत

वैराजात् पुरुषाद्वीरं शतरूपा व्यजायत । प्रियव्रतोत्तानपादो धीरात् काम्या व्यजायत ॥५॥
 काम्या नाम सुता श्रेष्ठा कर्दमस्य प्रजापतेः । काम्यापुत्रास्तु चत्वारः सम्राट् कुक्षिविराट्प्रभुः ॥६॥
 उत्तानपादं जग्राह पुत्रमग्निः प्रजापतिः । उत्तानपादाच्चतुरः सूनृता सुपुत्रे सुतान् ॥७॥
 धर्मस्य कन्या सुश्रोणी सूनृता नाम विश्रुता । उत्पन्ना धाजिमधेन ध्रुवस्य जननी शुभा ॥८॥
 ध्रुवश्च कीर्त्तिमन्तश्च आयुष्मन्तं वसुं तथा । उत्तानपादोऽज्जनयत् सूनृतायां प्रजापतिः ॥९॥
 ध्रुवो वर्पसहस्राणि त्रीणि विष्णानि भरो द्विजाः । तपस्तेषु महाभागः प्रार्थयन् सुमहद्यशः ॥१०॥
 तस्मै ब्रह्मा ददौ प्रीतः स्थानमात्मसमं प्रभुः । अमलञ्चैव पुरतः सप्तर्षीणां प्रजापतिः ॥११॥
 तस्याभिमानमुद्दिञ्च महिमानं निरीक्ष्य च । देवासुराणामाचार्यः इलोकं प्रागुशना जगौ ॥१२॥
 अहोजय तपसो बोध्यमहा धृतमहोऽबभूतम् । यमद्य पुरतः कृत्वा ध्रुवं सप्तर्षयः स्थिताः ॥१३॥
 तामाच्छिदलितं च भव्यं च ध्रुवाच्छम्भुव्यं जायत । शिल्पेरापत्तमुच्छाया पञ्चपुत्रानवत्मयान् ॥१४॥
 रिपुं रिपुञ्जयं चोरं वृकलं वृकतेजसम् । रिपोराधत् बृहती चक्षुषं सर्वतेजसम् ॥१५॥
 भोजीजनत् पुष्करिण्यां वैरिण्यां चाक्षुषं मनुम् । प्रजापतेरात्मजायां चोरणस्य महात्मनः ॥१६॥
 मनोरजायन्त दश नट्वलायां महोजसः । कन्यायां मुनिशार्दूला वैराजस्य प्रजापतेः ॥१७॥

और उत्तानपाद उत्पन्न हुए ॥५॥ काम्या कर्दम नामक प्रजापति की ज्येष्ठ कन्या थी। काम्या ने चार पुत्र हुए—
 सम्राट्, कुक्षि, विराट् और प्रभु ॥६॥ पुत्र उत्तानपाद को अग्नि प्रजापति ने ग्रहण किया। उत्तानपाद से सूनृता
 ने चार पुत्रों को प्रभव किया ॥७॥ अस्वमेध यज्ञ से उत्पन्न और सूनृता नाम से विख्यात सुन्दर कटि वाली धम की
 कन्या ध्रुव की कन्याणी माता हुई ॥८॥ प्रजापति उत्तानपाद ने ध्रुव, कीर्त्तिमान्, आयुष्मान् और वसु नामक पुत्रों
 को सूनृता से उत्पन्न किया ॥९॥ विप्रबृन्द ! ध्रुव ने महान् यश की इच्छा से तीन हजार देववर्ष पर्वन्त
 तपस्या की ॥१०॥ ब्रह्मा ने संतुष्ट होकर सप्तर्षियों के आगे उसे अपने समान अचल स्थान दिया ॥११॥
 ध्रुव ने अभिमान, ऐश्वर्य और माहात्म्य को देखकर देवता और दैत्यो के आचार गुप्त उसकी प्रशंसा
 करने लगे—॥१२॥ अहो ! ध्रुव की तपस्या शक्ति आश्चर्य है ! इसका धृत (शास्त्र-ज्ञान या कीर्त्ति) आश्चर्य
 है ! आज इसी ध्रुव को आगे करने सत्तर्षि अवस्थित हैं ॥१३॥ ध्रुव से शिल्पि और मध्य को शम्भु ने उत्पन्न किया ।
 शिल्पि से मुच्छाया ने पाँच निष्पाप पुत्रों को जन्म दिया—॥१४॥ रिपु, रिपुजय, चोर, वृकल और
 वृकलेजया । रिपु से बृहती ने बड़े तेजस्वी चक्षुष को उत्पन्न किया ॥१५॥ चक्षुष से वैरिणी पुष्करिणी
 ने चाक्षुष मनु की जन्म दिया । पुष्करिणी महत्त्वा प्रजापति चोरण की कन्या थी ॥१६॥ नट्वला से
 चाक्षुष मनु के बड़े तेजस्वी दश पुत्र हुए । मुनिश्रेष्ठ ! नट्वला वैराज प्रजापति की पुत्री थी ॥१७॥ अपने

कुत्स १ 'पु६ शतद्युम्नस्तपस्वी सत्यवाक्कवि । अग्निष्टुतिरात्रश्च' 'सुद्युम्नश्चेति ते नव ॥१८॥
 अभिम-युश्च' दशमो नड्वलाया १ महोजस १। पुरोरजनयत् पुत्रान् षडाम्नेयो महाप्रभान् ॥१९॥
 अङ्ग सुमनस 'स्वाति त्रुमङ्गिरस 'मयम्' अङ्गात् सुनीयापस्य व वेनमेक व्यजायत ॥२०॥
 अपचारेण वेनस्य प्रकोप सुमहानभूत् । प्रजार्थमूषयो यस्य ममन्युर्दक्षिण करम् ॥२१॥
 वेनस्य मयिते पाणौ सबभूव 'महान्नुप । त दृष्ट्वा मुनय प्राहुरेय वै मुदिता प्रजा ॥२२॥
 करिष्यति महातेजा यशश्च प्राप्त्यते महत् । स धन्वी कवचो जातो ॥ उवलज्ज्वलनसन्निभ ॥२३॥
 पृथुर्वैनस्तथा 'चेमो ररक्ष 'क्षत्रपूर्वज । राजसूयाभिषिक्तानामाद्य स वसुधाधिप ॥२४॥
 तस्माच्चैव समुत्पन्नो निपुणो सूतमागथो । 'तेनेय गोमर्मुनिधेष्ठा दुग्धा शस्यानि भूभृता ॥२५॥
 प्रजाना वृत्तिकामेन 'देवं सर्पिगणं सह । पितृभिर्दानवैश्चैव 'गन्धर्वैरप्सरोगणं ॥२६॥
 सर्पे पुण्ड्रजनेदचैव क्षीरिद्भि पवतस्तथा । तेषु तेषु च पात्रेषु दुह्यमाना वसुन्धरा ॥२७॥
 प्रादाव्ययेप्सित क्षीर तेन प्राणानधारयन् । पृथोस्तु पुत्रो धर्मज्ञो जज्ञातेऽन्तर्धियातिनो ॥२८॥
 शिखिण्डिनो हविर्धानमन्तर्धानाद्यजायत । हविर्धानात् षडाम्नेयो १ धिपणाजनयत् सुतान् ॥२९॥
 प्राचीनवर्हिष शुक्र गय कृष्ण गजाजिनो । प्राचीनवर्हिर्भगवान्महानासीत्प्रजापति ॥३०॥

पुत्र। क नाम गुरु पुर शतद्युम्न तपस्वी सत्यवाक् कवि अग्निष्टुति रात्रि च सुद्युम्न और अभिम-यु ये ॥१८॥
 पुत्र से आगन्था ने छह महातपस्वी पुत्रो को उत्पन्न किया। वे अग सुमनस् स्वाति नड अभिरस और
 मय नाम से रचात हुए ॥१९॥ अग स सुनीय न वन नामक एक पुत्र उत्पन्न किया ॥२०॥ वेन के अनाचार से मुनिगण
 असन्तुष्ट हुए और उन्होने सन्तान के लिए उषा दाहिने हाथ का मयन किया ॥२१॥ उसमे एक महान् राजा उत्पन्न
 हुआ। उसे देखकर मुनिया ने कहा— यह प्रजा को आनन्दित करेगा महान् तपस्वी होगा और बड़ी प्रतिष्ठा
 प्राप्त करेगा ॥ २२॥ उठन धनुष और बन्ध धारण लियेये। वह अग्नि ने समान कान्तिमान् था ॥२३॥ उसका नाम पृथु
 मयः। उत राजा न पृथ्वी की रक्षा की। वह राजसूय यज्ञ करने वाले राजाओ में पहला राजा हुआ ॥२४॥ उत से
 श्वीण सूत और मगय उत्पन्न हुए। मुनिभट्ट राजा पृथु ने प्रजाओ को जीविका देन की इच्छा ने इस पृथिवी
 से अन्ना का दाहन किया ॥२५॥ उसका साथ देवता ऋषिगण तितर रागस बध्व अपहराए, सपगण पुण्ड्रजन,
 रता और पवत भी (दहन में लगे हुए) थे ॥२६॥ उन जन पात्रा में दही गई पृथिवी ने बध्व दूध दिया। उसमे
 प्रजाओ न प्राण धारण किए। मय क अन्त में पृथु के अन्तर्धि और पतिन् नामक दो धमजाता पुत्र हुए ॥२७-२८॥
 शिखिण्डिनो न अन्तर्धान स हविर्धान को उत्पन्न किया। अग्नि की पुत्री धिपणा ने हविर्धान ने छह पुत्र पैदा
 किया ॥२९॥ प्राचीनवर्हिष शुक्र गय कृष्ण यज्ञ और अजिन। उनमें भगवान् प्राचीनवर्हिष महान् प्रजापति

१ न ररक्ष । २ ग ऊर । ३ ग गुरु । ४ ग अष्टुति । ५ ग अमन्यवापि ते । ६ ग
 अभिम । ७ ग नडग । ८ ग अय । ९ ग ऊरो । १० ग स्वाति । ११ ग मयम् । १२ ग हानुपि ।
 १३ ग राजा । १४ ग वेमो । १५ ग दसपूज । १६ ग तन पृथ्वी मुनि । १७ ग देव ऋषिग ।
 १८ ग अर्षा । १९ ग अपहरा य । २० ग ऋषी पुण्यानव ।

हविर्धानान्मुनिश्रेष्ठा येन संबद्धिताः प्रजाः। प्राचीनवर्हिर्भगवान् पृथिवीतलचारिणीः॥३१॥
समुद्रतनयायां तु कृतदारोऽभवत् प्रभुः। महतस्तपसः पारे सवर्णायां प्रजापतिः॥३२॥
सवर्णाधस्त सामुद्री दश प्राचीनवर्हिषः। सवर्णान् प्राचेतसो नाम धनुष्वेदस्य पारगान्॥३३॥
अपृथाघम्मचिरणास्तेऽतप्यन्त महत्तपः। दश वर्षसहस्राणि समुद्रसलिलेशयाः॥३४॥
तपश्चरत्सु पृथिवीं प्रचेतासु महीरुहाः। अरक्ष्यमाणामावब्रूवन्भूवाय प्रजाक्षयः॥३५॥
नाशकन्मास्तो यातुं वृत्तं खमभवद्दुर्मैः। दश वर्षसहस्राणि न शोकुश्चेष्टितुं प्रजाः॥३६॥
तदुपश्रुत्य तपसा युक्ता सर्वे प्रचेतसः। मूढेभ्यो वायुमग्निं च ससृजुर्जातमग्नयवः॥३७॥
'उन्मूलानय' वृक्षास्तु कृत्वा वायुरशोपयत्*। तानग्निरदहद्घोर* एवमासौद्द्रुमक्षयः॥३८॥
द्रुमक्षयमयो ब्रूध्वा 'किञ्चिच्छिद्येत्' दाक्षिण्यं। उपगम्याश्रवोदेतास्तदा सोमः प्रजापतिन्॥३९॥
कोपं घञ्छत राजानः सर्वे प्राचीनवर्हिषः। वृक्षाङ्ग्या कृता पृथ्वी शाम्येतामग्निमास्तौ॥४०॥
रत्नभूता च कप्येयं वृक्षाणां वरर्यणिनी। भविष्यं जानता तात धृता गर्भेण च मया॥४१॥
मारिया नाम ताम्नेया वृक्षाणामिति निर्मिता। भार्या वीजतु महाभागा सोमवंशविबद्धिनी॥४२॥
युष्माकं तेजसोऽष्टेन मम धाद्वेन तेजसः। अस्यानृपत्स्यते विद्वान् दक्षो नाम प्रजापतिः॥४३॥
स इमां दाधभूमिष्ठां युष्मत्तेजोमयेन च। अग्निनाग्निसमो भूयः प्रजाः संबद्धमिष्यति॥४४॥

हुए॥३०॥ मुनिश्रेष्ठ! हविर्धान से प्रजाओं की वृद्धि हुई। भगवान् प्राचीनवर्हिस् पृथिवी के नीचे गये॥३१॥ बहुत तपस्या करने के बाद सवर्णा नाम की समुद्र-कन्या से प्रभु प्रजापति ने विवाह किया॥३२॥ समुद्र-पुत्री सवर्णा ने प्राचीनवर्हिस् से दस पुत्र उत्पन्न किये। धनुर्वेद में पारगत् के सब पुत्र प्रचेता नाम से विख्यात हुए॥३३॥ एक ही वर्ष के अनुष्ठान करने वाले प्रचेताओं ने दस हजार वर्षों तक समुद्र के जल में शयन करते हुए वठिन तपस्या की॥३४॥ प्रचेतागण की तपस्या के समय वृक्षों ने अमुराधिन पृथ्वी को आच्छादित कर दिया। तब प्रजा का नाश होने लगा॥३५॥ वृक्षों के ढके हुए आकाश में वायु नहीं बह सका। दस सहस्र वर्षों तक प्रजा निश्चेष्ट पड़ी रह गई॥३६॥ यह सुनकर तपस्वी प्रचेताओं की क्रोध हुआ। उन्होंने मूल से वायु और अग्नि की सृष्टि की॥३७॥ वायु ने वृक्षों को उखाड़ कर सुखा दिया। उनको अग्नि में जला दिया। इस प्रकार वृक्षों का महान् वन नष्ट हो गया॥३८॥ जब कुछ ही वृक्ष बच गये, तब वृक्षों का विनाश जानकर सोम उन प्रचेतागण प्रजापतियों के पास जाकर बोले—॥३९॥ 'हे प्राचीनवर्हिस् राजाओं! आप क्रोध का स्थान करें। पृथिवी वृक्षा से शून्य हो गई है। अग्नि और वायु को आप शान्त करें॥४०॥ हे तात! वृक्षों की इस सर्वश्रेष्ठ सुन्दरी कन्या को भविष्य जानने हुए मैंने गर्भ में धारण किया था॥४१॥ मारिया नाम की यह कन्या वृक्षों द्वारा रची गई है। महान्मावयण! सोमवश को बझाने वाली यह मारिया आपसी पत्नी ही॥४२॥ आपने और मेरे आपे-आपे तेज से दक्ष नाम का विद्वान् प्रजापति इससे उत्पन्न होगा॥४३॥ अग्नि के समान

१४. य. ०रिण। य०। २४. च। ३४. ०त्तं सप०। ४४. ०चचपितु। ५४. ०हान्य ततो वृक्षान्मृत्वा। ६४. ०य तान्मृत्वा। ७४. ०त्तु दिव्यामि०। ८४. ०रमेव०। ९४. दुष्टवा। १०४. ०वृषो दिवाः। ३०। ११४. ०देवाग्रा सो०। १२४. ४. ०एतं वायु वृ०। १३४. ०माता सो०।

ततः सोमस्य वचनाञ्जगृह्णते प्रचेतसः^१। संहृत्य कोपं वृक्षेभ्यः^२ पत्नीं धम्मणे^३ मारिषाम् ॥४५॥
 वशम्यस्तु प्रचेतोभ्यो मारिषाया प्रजापतिः। दक्षो जज्ञे महातेजाः^४ सोमस्याशेन भो द्विजाः ॥४६॥
 अचराश्च चराश्चैव द्विपदोऽप्य चतुष्पदः। स सष्ट्वा^५ मनसा^६ दक्षः षड्चादसृजत स्त्रियः ॥४७॥
 ददौ^७ दश स धर्माय कश्यपाय त्रयोदश। शिष्टाः सोमाय राज्ञे च^८ नक्षत्राख्या ददौ प्रभुः ॥४८॥
 ताम् देवाः खगा गावो नागा दितिजदानवाः। गन्धर्वाप्सरसश्चैव जज्ञिरेऽन्याश्च जातयः ॥४९॥
 ततः प्रभूति विप्रेन्द्राः प्रजा मय्युनसंभवाः। सङ्कल्पाद्दर्शनात्पश्चात्पूध्वेषां प्रोच्यते प्रजा ॥५०॥

भुनय ऊचुः

देवानां दानवानाञ्च गन्धर्वोरगरक्षसाम्। सम्भवस्तु भुताऽऽमाभिर्दक्षस्य च महात्मनः ॥५१॥
 'अद्भुगुष्ठाद्ब्रह्मणो' जज्ञे दक्षः किल शुभव्रतः। वामाद्भुगुष्ठात्तया चैवं तस्य पत्नी व्यजायत ॥५२॥
 कथं प्राचेतसत्वं स' पुनर्लभे महातपाः। 'एतन्नः संशयं सूत घ्याख्यातुं' त्वमिहार्हसि ॥
 द्यौर्हित्रश्चैव सोमस्य कथं इवश्रुतां गतः ॥५३॥

लोमहर्षण उवाच

'उत्पत्तिश्च निरोधश्च' नित्यं भूतेषु भो द्विजाः। ऋषयोऽत्र न मुह्यन्ति विद्यावन्तश्च ये जनाः ॥५४॥

तेजस्वी दक्ष आपने तेजस्व अग्नि से दण्ड हुई इस पृथिवी पर फिर प्रजा की ब्रह्मणा ॥४५॥ तब सोम के वचन से प्रचेतागण ने कोप त्याग कर वृक्षों से मारिषा की धर्मपूर्वक पत्नी रूप में ग्रहण किया ॥४५॥ विप्रवृन्द ! दक्षो प्रचेताओं से मारिषा ने महान् तेजस्वी प्रजापति दक्ष की सोम के अंग से उत्पन्न किया ॥४६॥ उस दक्ष ने स्वावर्गों और दो पैर वाले सुपा चार पैर वाले जगमा की मानसी सृष्टि कर पीछे स्त्रियों की रचना की ॥४७॥ उस प्रभु ने दश बन्ध्यायें धर्म की और तेरह कश्यप की दीं। अवशिष्ट नक्षत्ररूपी बन्ध्यायें साम राजा की दी ॥४८॥ उन बन्ध्याओं से देव, पक्षी, गो, नाग, बिल्व, दानव, गन्धर्व, अप्सरा और दूधरी जातियाँ उत्पन्न हुई ॥४९॥ विप्रवर्दवृन्द ! तभी से मैयूनी सृष्टि का प्रारम्भ हुआ। पहले सबल्य, दर्शन और स्वयं से प्रजा उत्पन्न हुआ करती थी ॥५०॥

भुनिगण बोले—देवता, दानव, गन्धर्व, नाग, राक्षस योनियों और महात्मा दक्ष की भी उत्पत्ति हम ने सुनी ॥५१॥ ब्रह्मा के अंगूठे से शुभांशु दक्ष का जन्म हुआ। उसी प्रकार बायें अंगूठे से उसकी पत्नी की उत्पत्ति हुई ॥५२॥ फिर उस महान् तपस्वी ने प्रचेताओं का पुत्रत्व कैसे प्राप्त किया ? सूतजी ! आप हमारी इस दावा का समाधान करें कि चन्द्रमा का दीहित्र (दक्ष) चन्द्रमा का समुद्र कैसे बना ? ॥५३॥

सोमहर्षण बोले—विप्रवृन्द ! प्राणियों में उत्पत्ति और निरोध (परण) नित्य होत रहत हैं। भूनि और विश्वान् लोग इसमें माहित नहीं हुआ करते ॥५४॥ ये दक्ष आदि राजा लोग हर युग में उत्पन्न हात हैं और फिर मृत्त

१। स। सरोयता। २। स। सुषेपु। ३। स। मत्तयाऽऽमृषयो द्वि०। ४। स। ०ष्ट्वा मानसांश्च।

५। स। मय्य ५०। ६। स। ०श्चात्पुनस्त्रियः। ७। स। ०दौ स दक्ष ५०। ८। स। तु। ९। स। ऋषयः।

१०। स। ०ष्ट्वादिषाग्नाता ६०। ११। स। ०णो जाता ६०। १२। स। १३। स। एव। स। एव तु ६०।

१४। स। ०दु र्वै त्वमर्ह०। १५। स। विप्रवृत्तश्च।

युगे युगे भवन्त्येते पुनर्दक्षादयो नृपा । पुनश्चैव निरध्वन्ते विद्वास्तत्र न मुह्यति ॥५५॥
ज्येष्ठ्य कानिष्ठ्यमप्येषां पूर्व्वं नासीद्विजोत्तमा । तप एव गरीयोऽभूत्प्रभावश्चैव कारणम् ॥५६॥
इमा विस्मृष्टि दक्षस्य यो विद्यात् सचराचराम् । प्रजावानामुत्तीर्णं स्वर्गलोके महीयते ॥५७॥
इति ब्राह्ममहापुराणे स्मृटिकथन नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥२॥

तृतीयोऽध्यायः

देवदानवोत्पत्ति-वर्णनम्

मुनय ऊचुः

देवाना दानवाना च गन्धर्व्वोरगरक्षसाम् । उत्पत्तिं विस्तरेणैव लोमहर्षण कीर्तय ॥१॥

लोमहर्षण उवाच

प्रजा सृजति व्यादिष्ट पूर्व्वं दक्ष स्वयम्भुवा । मया ससर्ज भूतानि तथा शृणुत भो द्विजा ॥२॥

हो जाते हैं । विद्वान् इक्ष्म मीहित नहीं होता ॥५५॥ द्विजगण ! पहले इनमें ज्येष्ठता तथा कनिष्ठता का भेद नहीं था प्रत्युत तप और तप का प्रभाव ही मुख्य कारण माना जाता था ॥५६॥ दक्ष को इस चराचर सृष्टि को जो जानता है वह प्रजावान् और आपत्मान् होकर स्वर्ग में पूजित होता है ॥५७॥

श्री ब्रह्ममहापुराण में स्मृटि कथन नामक द्वादश अध्याय समाप्त ॥२॥

अध्याय ३

देवो और दानवो की उत्पत्ति का वर्णन

मुनिगण बोले—आय लोमहर्षण ! देवता दानव मयव नाग और राक्षसा की उत्पत्ति तथा विस्तार पूर्वक सुनान की इया करें ॥१॥

लोमहर्षण बोले—विप्रगण ! ब्रह्मा द्वारा प्रजा की सृष्टि रचना का आदेश प्राप्त कर दक्ष ने जिस प्रकार प्रजापति की सृष्टि की वह (रचना विधान पहले) सुनिये ॥२॥ आरम्भ में प्रभु के आनन्द की सृष्टि की रचना की,

१ क रा ० त सर्वे दशा ० । २ क विषयन्ते । ३ क ० ति । जय येव विपतिदच पू ० । ४ क ० मा पु सू ॥ ५ क ग ० चरम् । ६ क सूत । ७ क य पूर्व ० ।

मानसान्ध्र्यं भूतानि^१ पूज्यमेवासुजत् प्रभुः। श्रेयोन्वेवान्^२ सगन्धर्वानिसुरान्यक्षराक्षसान् ॥३॥
 यदास्य मानसी^३ विप्रा न व्यवर्द्धत ये प्रजा। तदा सञ्चित्य धर्मात्मा प्रजाहेनोः प्रजापतिः ॥४॥
 स मयुनेन धर्मेण सिसृक्षुर्विविधाः प्रजाः। असिकनीमावहत् पत्नीं वीरणस्य प्रजापतेः ॥५॥
 सुतां सुतपसा^४ द्रुक्ता महतीं लोकधारिणीम्। अयं पुत्रसहस्राणि वीरण्यां^५ पञ्च धीर्यवान् ॥६॥
 असिकन्यां जनयामास दक्ष एव प्रजापतिः। तांस्तु दृष्ट्वा महाभागान्संविबर्द्धयिषून् प्रजाः ॥७॥
 देवर्षिः प्रियसंब्राह्मो नारदः प्राब्रवीदितम्। नाशाय वचनं तेषां शापायैवात्मनस्तथा ॥८॥
 यं कश्यपः सुतवरं परमेष्ठीं प्यजीजनत्। दक्षस्य वै दुहितरि दक्षशापभयान्मुनिः ॥९॥
 पूज्यं स हि समुत्पन्नो नारदः परमेष्ठिनः। असिकन्यामयं वीरण्यां^६ भूयो देवर्षिस्ततम् ॥१०॥
 तं भूयो जनयामास पितेऽथ मुनिपुङ्गवम्। तेन दक्षस्य ये पुत्रा हर्षंश्वा इति विभ्रुताः ॥११॥
 निर्म्मम्य नाशिताः सर्वे विधिता च न संशयः। तस्योद्यतस्तदा दक्षो नाशायामितविक्रमः ॥१२॥
 ब्रह्मर्षीन् पुरतः कृत्वा पाचितः परमेष्ठिना। ततोऽभिसन्धिःक्रे वं दक्षस्य परमेष्ठिना ॥१३॥
 कन्यायां नारदो^७ मह्यं तव पुत्रो भवेदिति। ततो दक्षः सुतां प्रादात् प्रियां ये परमेष्ठिने ॥
 स तस्यां नारदो जज्ञे भूयः शापभयाद्भुविः ॥१४॥

फिर मुनि, देवता, गन्धर्व, दैत्य, यदा और राक्षस योनिषो की रचना की ॥३॥ किन्तु जब मानसी सृष्टि से प्रजा नहीं बढ़ी, तब धर्मात्मा प्रजापति ने प्रजा की वृद्धि के कारण पर अच्छी तरह विचार किया और मयुन धर्म से अनेक प्रकार की प्रजाओं के रचने की इच्छा की ॥४॥ फिर वीरण प्रजापति की अत्यन्त तपस्विनी और लोकधारिणी कन्या असिकनी को पत्नी बनाया। ॥५॥ धनितशाली दक्ष प्रजापति ने वीरण-पुत्री असिकनी से पाँच हजार पुत्र उत्पन्न किये ॥६॥ प्रजाओं की बढ़ाने की इच्छा करने वाले उन महामार्गों को देखकर प्रियभायी देवर्षि नारद ने उनसे नाश के लिये और अपने शाप के लिये बहुत बात बड़ी ॥७-८॥ पितामह कश्यप ने जिस पुत्र-श्रेष्ठ को उत्पन्न किया, वह मुनि नारद दक्ष शाप के भय से कश्यप से दक्ष की कन्या के गृहले उत्पन्न हो गया था ॥९॥ फिर देवर्षियों में श्रेष्ठ कश्यप ने उस मुनिश्रेष्ठ नारद को वीरण प्रजापति की कन्या अधिष्ठी से पिता की तरह उत्पन्न किया ॥१०॥ नारद ने हर्षंश्वा नाम के विष्णुदत्त दक्ष के पुत्रों को मयकर निःसन्देह विनष्ट किया था। तब अत्यन्त पराक्रमी दक्ष नारद का नाश करने के लिये तैयार हो गया ॥११-१२॥ कश्यप ने ब्रह्मर्षियों को आगे बढ़ते दक्ष से पाचना की। इससे बाद कश्यप ने दक्ष से प्रतिज्ञा की—॥१३॥ 'आपकी कन्या से मेरा पुत्र नारद उत्पन्न होगा।' तब दक्ष ने अपनी प्रिय कन्या कश्यप की दे दी। वह मुनि नारद शाप के भय से फिर उससे उत्पन्न हुआ ॥१४॥

१ग ०ति प्रजापतिस्वामुखम्। २श ०। ३ग ०। ४ग ०। ५ग ०। ६ग ०। ७ग ०। ८ग ०। ९ग ०। १०ग ०। ११ग ०। १२ग ०। १३ग ०। १४ग ०।

भुनक्तु ऊचुः

कथं प्रणाशिताः पुत्रा नारदेन महर्षिणा । प्रजापतेः सूर्यस्य श्रोतुमिच्छाम तत्त्वतः ॥१५॥

लोमहर्षण उवाच

दक्षस्य पुत्रा ह्ययं दवा विबद्धमिषवः प्रजाः । समागता महावीर्या नारदस्तानुवाच ह ॥१६॥

नारद उवाच

बालिशा दत्त सूर्यं वै नास्या जानीत वै भुवः । प्रमाणं स्रष्टुकामा वै प्रजाः प्राचेतसात्मजाः ॥१७॥
अन्तरुद्ध्वंमघश्चैव कथं सृजय वै प्रजाः । ते तु तद्वचनं श्रुत्वा प्रयाताः सर्वतो दिशः ॥१८॥
अद्यापि न नियतन्ते समुद्रेभ्य इवापगाः । ह्ययं दवा नरपुं दक्षः प्राचेतसः पुनः ॥१९॥
वैरण्यामय पुत्राणां सहस्रमसृजत्प्रभुः । विबद्धमिषवस्ते तु शबलाश्वास्तथा प्रजाः ॥२०॥
पूर्वोक्तं वचनं ते तु नारदेन प्रचोदिताः । अन्योन्यमूचुरते सर्वे सम्मगाह महानृपिः ॥२१॥
भ्रातृणां पदवीं ज्ञातुं गन्तव्यं नात्र संशयः । ज्ञात्वा प्रमाणं पृथ्वादाच सुखं श्रव्यामहे प्रजाः ॥२२॥
तेऽपि तेनैव मार्गेण प्रयाताः सर्वतो दिशम् । अद्यापि न निवर्तन्ते समुद्रेभ्य इवापगाः ॥२३॥

मुनिगण बोले—आर्य सूरजी ! महर्षि नारद ने प्रजापति के पुत्रों का वैसे नाश किया—महाबात हम लोग यथार्थ रूप से सुनना चाहते हैं ॥१५॥

लोमहर्षण बोले—प्रजाओं की बढाने की इच्छा रखने वाले दक्ष के पुत्र महाबली ह्यंश्व नारद के पास भाये । नारद ने उनसे कहा—॥१६॥

नारद बोले—दक्ष-पुत्रों ! तुम लोग मूर्ख हो । प्रजा की सृष्टि करना चाहते हो, किन्तु इस पृथिवी के प्रमाण—ऊपर, नीचे और मध्य—को नहीं जानते । कैसे प्रजाओं की सृष्टि-रचना कर सकोगे ? ॥१७॥
मुनि की ऐसी बात सुनकर वे सब विभिन्न दिशाओं की ओर चले गये और जिस प्रकार नदियाँ समुद्र में मिल जाने के बाद फिर नहीं लौटती उसी प्रकार वे आज तक अपने-अपने स्थानों से नहीं लौटे ॥१८॥ ह्यंश्व ने मूठ हो जाने पर प्रचेता के पुत्र समर्थ दक्ष ने फिर वैरणी से हजार पुत्रों की उत्पन्न किया । उनकी शबलाश्व सजा पड़ी । उन्होंने प्रजाओं को बढाना चाहा ॥१९-२०॥ उनसे भी नारद ने वही बात कही । वे परस्पर कहने लगे—‘मुनि ने ठीक कहा ॥२१॥ भाइयों का मार्ग जानने के लिये जाना चाहिये । इसमें कोई संदेह नहीं कि पृथिवी का प्रमाण जानकर हम लोग सुख से प्रजाओं की सृष्टि करेंगे ॥२२॥ वे भी उसी मार्ग से विभिन्न दिशाओं की ओर प्रस्थित हुए और समुद्र से नदियों की तरह आज तक नहीं लौटे ॥२३॥ तब से माई की खोज में गया हुआ माई भीख नष्ट हो जता

१क. ऋषयः । २क. ख ० पतस्तु शयवज्योतु ० । ३. ० वास्ते सर्वे वि ० । ४क. मूयो । ५क. रक्षय ।
६क. दिशम् । ७क. ० न । ८क. विरिण्या ० । ९क. ० चनात्ते तु । १०क. ० देनैव यो ० । ११क. ० हामुनि । आ ० ।

तदा प्रभृति वै ग्याता भ्रातृस्त्वेषणे द्विजाः^१। प्रयातो नश्यति क्षिप्रं तन्न कार्यं विपश्चिता ॥२४॥
 तांश्चैव नष्टान् विज्ञाय पुत्रान् दक्षः प्रजापतिः। यष्टिं ततोऽसृजत् कन्या^२ वैरण्यामिति नः श्रुतम् ॥२५॥
 तास्तदा प्रतिजग्राह 'आग्यार्थं कश्यपः प्रभुः। सोमो धर्मश्च भो विप्रास्तथैवाग्ये महर्षयः ॥२६॥
 ददौ स दश धर्माय कश्यपाय त्रयोदश। सप्तविंशतिं सोमाय चतस्रोऽरिष्टनेमिने^३ ॥२७॥
 द्वे चैव बहुपुत्राय चेवाङ्गिरसे तथा। द्वे कृशाश्वाय विदुषे तासां नामानि^४ मे श्रुणु ॥२८॥
 अरुन्धती वसुयामि^५ लम्बा^६ भानुमरत्वती^७। सङ्कल्पा च मुहूर्ता च साध्या विश्वा च भो द्विजाः ॥२९॥
 धर्मपत्न्यो दश त्वेतास्तास्वपत्यानि^८ बोधत। विश्वेदेवास्तु विश्वायाः साध्या साध्यान् ध्यजयात ॥३०॥
 मरत्वत्या मरत्वन्तो वसोस्तु वसवः^९ सुता^{१०}। भानोस्तु भानवः पुत्रा मुहूर्तास्तु मुहूर्तजाः ॥३१॥
 लम्बायाश्चैव^{११} 'घोषोऽथ नागवीर्यो च^{१२} 'यामिजा^{१३}। 'पृथिवीविषयं सध्वमरुन्धत्या^{१४} ध्यजयात ॥३२॥
 'सङ्कल्पायास्तु^{१५} 'विदवात्मा जने सङ्कल्प एव हि^{१६}। 'नागवीर्याञ्च^{१७} 'यामिन्या वृषलश्च ध्यजयात ॥३३॥
 परा याः सोमपत्नीश्च दक्षः प्राचेतसो ददौ। सर्व्वा नक्षत्रनाम्न्यस्ता ज्योतिषे परिकीर्त्तिता ॥३४॥
 ये ह्यन्ये ह्यातिमन्तो वै देवा ज्योतिष्पुरोगमा^{१८}। वसवोऽष्टौ समाख्यातास्तेषां वक्ष्यामि विस्तरम् ॥३५॥
 आपो ध्रुवश्च^{१९} 'सोमश्च^{२०} 'ध्रुवश्चैवानिलोऽमलः। प्रत्यूषश्च प्रभासश्च वसवो नामभिः स्मृताः ॥३६॥
 आपस्म पुत्रो वैतण्ड्य^{२१}। 'धमः^{२२} 'आन्तो मुनिस्तथा। ध्रुवस्म पुत्रो भगवान् कालो^{२३} 'लोकप्रकालनः ॥३७॥

हे। विद्वान् को ऐसा नहीं करता चाहिए ॥२४॥ दक्ष प्रजापति ने उन पुत्री को नष्ट जानकर वैरणी से साठ कन्यायें उत्पन्न की—ऐसा हमने सुना है ॥२५॥ उन कन्याओं को प्रभु कश्यप, सोम, धर्म तथा हूमने महर्षियों ने पत्नी बनाने के निमित्त ग्रहण किया ॥२६॥ दक्ष ने दश कन्यायें धर्म को, तेरह कश्यप को, सत्ताईस सोम को, चार अरिष्टनेमि को, दो बहुपुत्र को, दो अंगिरा को और दो विद्वान् कृशाश्व को दी। अब उनके नाम मूलसे सुनिये—॥२७-२८॥ विप्रवृद्ध^१ अरुन्धती, वसु, यामी, लम्बा, भानु, मरत्वती, मरत्वन्तो, साध्या और विदवा—ये दश कन्यायें धर्म की पत्नी हुईं, उनकी उत्पत्ती के नाम सुनें—॥२९,३०॥ विश्वा से विश्वेदेव, साध्या से साध्या, मरत्वती से मरत्वान्, वसु से वसु, भानु से भानु, मुहूर्ता से मुहूर्त और लम्बा से घोष उत्पन्न हुए। यामि से नागवीर्य उत्पन्न हुई ॥३१-३२॥ पृथिवी के सब विषय अरुन्धती से उत्पन्न हुए। सध्वार के सब सत्त्व सत्त्व्या से उत्पन्न हुए। नागवीर्य यामिनी से वृषल उत्पन्न हुआ ॥३२-३३॥ प्राचेतान् पुत्र दक्ष ने बाद में जो कन्यायें सोम को दीं, वे सब नक्षत्र नाम से ज्योतिष में बड़ी बयी हैं ॥३४॥ जो दूसरे ख्यातिप्राप्त तथा ज्योति के आगे चलने वाले देव हैं, वे साठ वसु कहलाये। उनका मैं यहाँ पर विलुप्त-वर्णन करूँगा ॥३५॥ वे वसु आप, ध्रुव, सोम, धव, अनिल, अनन, प्रत्यूष और प्रभास—इन नामों से ख्यात हुए ॥३६॥ आपके वैतण्ड्य, धम, आन्त और मुनि नामक पुत्र हुए।

१कन्य २१। २क न्या वैरिण्याः। ३क न्या वैरिण्याः। ४क भार्यायै। ५ भार्यायै। ४ अरिषनः। ५स ननि बोधत। ६क। ६न मुर्धामि। ७न नदवा। ८न नि यानि च। ९क। १० सवन्नया। ११क। १२न स्मृता। १३स घापदव। १४न. जामिजा। १५क. पृथिव्या विषये सः। १६न न्यायां तु वर्धमा। १७स वर्धमा। १८स षीषी च जामिः। १९न. न्या विदवा-न्यायाः। २०स वसवः। २१न. वसवः। २२क. वैतण्ड्य। २३न. कालो। २४न. कालनः।

सोमस्य भगवान् वचर्च वचर्चस्वी येन जायते । घबस्य पुत्रो द्रविणो हृतहव्यवहस्तया ॥३८॥
मनोहराया शिशिर प्राणोऽय रमणस्तस्या । अनिलस्य शिवा भार्या तस्या पुत्रो मनोजव ।
अविज्ञातगतिश्चैव द्वौ पुत्रावनिलस्य च ॥३९॥
अग्निपुत्र कुमारस्तु शरस्तम्बेऽभिया वृत । तस्य शाखो विशालश्च नगमेयश्च पृष्ठज ॥४०॥
अपत्य कृत्तिकानां तु कार्तिकेय इति स्मृत । प्रत्यूषस्य विदु पुत्रमृषि नाम्नाय देवलम् ॥४१॥
द्वौ पुत्रो देवलस्यापि क्षमावन्तो मनोविणो । बृहस्पतेस्तु भगिनी वरस्त्री ब्रह्मवादिनी ॥४२॥
योगसिद्धा जगत् कृतस्नमसवता विचचार ह । प्रभासस्य तु सा भार्या वसूनामष्टमस्य तु ॥४३॥
विदेवकर्मा महाभागो यस्या जते प्रजापति । कर्ता शिल्पसहस्राणां त्रिदशानाञ्च वादिकि ॥४४॥
भूषणानाञ्च सर्वेषां कर्ता शिल्पवतां वर । य सर्वेषां विमानानि देवतानां चकार ह ॥४५॥
मानुषाश्चोपजीवन्ति यस्य शिल्प महात्मन । सुरभी कश्यपाद्ब्रह्मनेकादश विनिष्क्रमे ॥४६॥
महादेवप्रसवेन तपसा भाविता सती । अजंकपादहिबुधैर्यत्त्वष्टा ॥ ४७॥
हरश्च बहुरूपश्च श्रृग्वक्त्रश्चापराजित । मृषाकपिश्च शम्भुश्च कपर्दी रैवतस्तथा ॥४८॥
मृगव्याधश्च शर्वश्च कपाली च द्विजोत्तमा । एकैकादशैते विख्याता रक्षास्त्रिभुवनेश्वरा ॥४९॥
दात स्वैव सप्ताख्यात रक्षाणाममितीजसाम् । पुराणे मुनिशादूर्ध्वा यंध्यन्ति सचराचरम् ॥५०॥

श्रुतं का पुत्र लोक-संहारक तथा शक्ति सम्पन्न काल हुआ ॥३७॥ सोम का (पुत्र) भगवान् वचस् हुआ जिससे लोग तेजस्वी बनते हैं । घब के पुत्र द्रविण और हृतहव्यवह हुए । मनोहरा से शिशिर, प्राण और रमण हुए । अनिल की स्त्री शिवा थी । उसके पुत्र मनोजव और अविज्ञातगति हुए । वरपत्न के सुच्छो में सुषमा सम्पन्न अग्नि का पुत्र कुमार उत्पन्न हुआ । उसने शाख विनाल (नामक) पुत्रों के अलावा पीठ से उत्पन्न नगमेय (नामक पुत्र) हुआ ॥३८-४०॥ कृत्तिका से उत्पन्न होनेवाली क्षतान कार्तिकेय कहलायी । प्रत्यूष का पुत्र देवल ऋषि हुआ ॥४१॥ देवल के भी क्षमावान् और मनोपीयो पुत्र हुए । स्त्रियों में अष्ट ब्रह्मवादिनी याग से सिद्ध और आशक्ति से रहित बृहस्पति का बहनसपुत्र ससार में विचरने लगी ॥४२॥ वह प्रभास नामक आठवें वसु की स्त्री हुई जिससे महामाग प्रजापति विदेवकर्मा की उत्पत्ति हुई जो हजारों शिल्पों का निर्माता देवताओं का शिल्पी सब आभरणों का विमाता और सर्वथष्ट शिल्पी हुआ ॥४३-४४॥ उसने देवताओं के सारे विमान बनाये और उस महा-मा की शिल्पविद्या से मनुष्य भीविका उपार्जन करते हैं ॥४५॥ महादेव जी की प्रसन्नता से तप्त सिद्धा सती सुरभी ने कश्यप से ग्यारह रत्नों की रचना की ॥४६॥ ब्राह्मणश्रष्टी । अजंकपाद नहिबुधय त्वष्टा शक्तिशाली रक्ष हर, चरुहृष श्रृग्वक्त्र अपराजित मृषाकपि शम्भु कपर्दी रैवत मृगव्याध शर्व और कपाली—ये ग्यारह रक्ष तीनों लोकों के ईश्वर कहलाये ॥४७-४९॥ मुनिवचन । इस तरह पुराण में अत्यन्त तेजस्वी एक ही रत्न प्रसिद्ध हुए, जिन्हें चराचर सहित ससार को व्याप्त किया ॥५०॥

१क वल्स्य । २घ वरस्य । ३ख तु । ४ख ०म्बेवु यो घृत । ५घ ०ह्यचारिणी । यो० । ६कतप सिद्धा । ६क ०मथान्ता वि० । ७ख ०सन्त वि० । ८ख हि । ९क यस्या । १०ख जात । ११ख पुत्रपति । १२ सुरभि । १३ ०बुधस्त्य० । १४ख ०देशेति वि० ।

दारान् शृणुध्वं विप्रेन्द्राः कश्यपस्य प्रजापतेः । अदितिदितिदंनुश्चैव अरिष्टा सुरसा खसा ॥५१॥
 सुरभिर्धनता चैव ताम्रा क्रोधवशा इरा । कद्रुर्मुनिश्च भो विप्रास्तास्वपत्यानि बोधत ॥५२॥
 पूर्वमन्वन्तरे श्रेष्ठा द्वादशासन् सुरोत्तमाः । सुषिता नाम तेऽन्योन्यमूचुर्वैवस्वतोऽन्तरे ॥५३॥
 उपस्थितेऽतिथशसदक्षाक्षुपस्यान्तरे मनोः । हितार्थं सव्वलोकानां समागम्य परस्परम् ॥५४॥
 आगच्छत द्रुत देवा अदिति सम्प्रविश्य चै । मन्वन्तरे प्रसूयामस्तत्रः श्रेयो भविष्यति ॥५५॥

लोमहर्षण उवाच

एवमुक्ता तु ते सर्वे चाक्षुपस्यान्तरे मनोः । भारीचात् कश्यपाज्जातास्त्वदित्या दसकन्यया ॥५६॥
 तत्र विष्णुश्च शक्रश्च जज्ञते पुनरेव हि । अयममा चैव धाता च त्वष्टा पूषा तथैव च ॥५७॥
 विवस्वान् सविता चैव मित्रो वरुण एव च । अंशो भगश्चातितेजा आदित्या द्वादश स्मृताः ॥५८॥
 सप्तविंशति याः प्रोक्ताः सोमपत्न्यो महाव्रताः । तासामपत्यान्यभवन् 'दीप्तान्यमिततेजसः ॥५९॥
 अरिष्टनेमिपत्नीनामपत्यानीह पौडश । मरुपुत्रस्य विदुषदत्तस्यो 'विद्युतः स्मृताः' ॥६०॥
 धाक्षुपस्यान्तरे पूर्व्यं ऋचो ब्रह्मर्षिसत्कृताः । कृशादवरय च देवपदेवप्रहरणाः स्मृताः ॥६१॥
 एते युगसहस्रान्ते जायन्ते पुनरेव हि । सर्वे देवगणाश्चात्र त्रयस्त्रिंशत् कामजाः ॥६२॥
 तेषामपि च भो विप्रा निरोधोत्पत्तिदृष्यते । यथा सूर्यस्य गगन उदयास्तमयाविह ॥६३॥
 एवं देवनिकायास्ते सम्भवन्ति युगे युगे । दित्याः पुत्रद्वयं जज्ञे कश्यपाविति नः धृतम् ॥६४॥

टिप्पण्येष्टो । प्रजापति कश्यप की पत्नियो के नाम मुनिये—अदिति, दिति, दनु, अरिष्टा, सुरसा, खसा, सुरभि, विनता, ताम्रा, क्रोधवशा, इरा, कद्रु और मुनि । विप्रगण ! उनकी संतानों के सम्बन्ध में मुन लीजिये ॥५१-५२॥ पूर्व मन्वन्तर में सुषिण नामक बारह उत्तम देवता हुए । वे वैवस्वत मन्वन्तर में एक-दूसरे से कहने लगे—॥५३॥ 'देव-ताम्रो ! चाक्षुप मन्वन्तर आने पर सब लोगों के बस्याण के लिये परस्पर एकत्रित होकर पीछ आओ । अदिति में प्रवेश कर मन्वन्तर में हम लोग जन्म लें । इससे हमारा बत्वाण होगा ॥५४-५५॥

लोमहर्षण बोले—ये सब इस तरह कहकर चाक्षुप मन्वन्तर में श्रीवि-मुत्र कश्यप से दस की ब्या आदिति में उत्पन्न हुए ॥५६॥ कश्यप से फिर विष्णु और इंद्र की उत्पत्ति हुई । अयमा, धाता, त्वष्टा, पूषा, विवस्वान्, सविता, मित्र, वरुण, अश और महातेजस्वी भग—ये बारह आदित्य कहलाये ॥५७-५८॥ सोम की छत्तारह महावती पत्नियों की सत्तानें अत्यन्त तेजस्वी हुई ॥५९॥ अरिष्टनेमि की स्त्रियों के सोलह संतानें हुई । विद्वान् मरुपुत्र के चार विद्युत संतान हुई ॥६०॥ पहले चाक्षुप मन्वन्तर में ब्रह्मर्षियों से सप्तानित ऋचायें प्रकाशित हुई । देवाय कृशादय से देवप्रहरण नामक गण उत्पन्न हुए ॥६१॥ ये देवगण हजार युगों के अन्त में फिर जन्म ग्रहण करते हैं । इनमें तैवीय नाम से उत्पन्न होते हैं ॥६२॥ ब्राह्मणों ! उनकी भी उत्पत्ति और लय होता है । जैसे आकाश में सूर्य का उदय और अस्त होता है, उसी तरह देव-समूह पुन-पुन में होते हैं ॥६३॥ हमने सुना है कि

१ग. ०प्तानामतित० । २ग. वंशता । ३ग. ०रा । प्रत्यङ्गिरसवाः श्रेष्ठा ऋ० । ४ग. पूर्वमुक्ता वीतिष० । ५ग. ०मने विह । ६ग. ०मने इह । ६ग. दित्या ।

हिरण्यकशिपुश्चैव हिरण्याक्षश्च वीर्यवान् । सिंहिका चामवत् कन्या विप्रचित्तेः परिग्रहः ॥६५॥
 संहिकेया इति श्रुता यस्याः पुत्रा महाबलाः । हिरण्यकशिपोः पुत्राश्चत्वारः प्रयितो जसः ॥६६॥
 ह्लादश्च अनुह्लादश्च प्रह्लादश्चैव वीर्यवान् । संह्लादश्च चतुर्योऽभूद् ह्लादपुत्रो ह्लादस्तथा ॥६७॥
 ह्लादस्य पुत्रो द्वौ वीरो शिवः कालस्तथैव च । विरोचनस्तु प्राह्लादिवर्जितं विरोचनात् ॥६८॥
 बलेः पुत्रशतं त्वासीद् बाणज्येष्ठं तपोधनाः । घृतराष्ट्रश्च सूर्यश्च चन्द्रमाश्चन्द्रतापनः ॥६९॥
 कुम्भनाभो गर्दभाक्षः कुक्षिस्त्रिपेधमादयः । बाणतपोमातिबलो ज्येष्ठः पञ्चपतेः प्रियः ॥७०॥
 पुरा कल्पे तु बाणेन प्रसाद्यो मापतिं प्रभुम् । पार्श्वतो विहरिष्यामि इत्येवं याचितो धरः ॥७१॥
 'हिरण्याक्षसुताश्चैव विद्वांसश्च महाबलाः । अभरः शकुनिश्चैव भूतसन्तापनस्तथा ॥७२॥
 'महानाभश्च विश्रान्तः कालनाभस्तथैव च । अभवन् दनुपुत्राश्च शतं सौम्रपराक्रमाः ॥७३॥
 तपस्विनो महावीर्याः प्राधान्येन ब्रवीमि तान् । द्विमूर्धा शंकुकर्णश्च तथा ह्यशिरा विभुः ॥७४॥
 अपोमुखः शम्बरश्च कपिलो वामनस्तथा । मारीचिर्मघवांश्चैव ह्रस्वलः स्वसुमस्तथा ॥७५॥
 विशोभणश्च केतुश्च केतुवीर्यशतहृदो । इन्द्रजित्सर्वजिच्चैव वज्रनाभस्तथैव च ॥७६॥
 'एकचक्रो महाबाहूस्तारकश्च महाबलः । वैश्वानरः पुलोमा च विद्रावणमहाशिराः ॥७७॥
 स्वभानुवृषपर्व्या च विप्रचित्सिश्च वीर्यवान् । सध्वं एते दनोः पुत्राः कदयपादभिर्जतिरे ॥७८॥

कल्पसे इति के दो शक्तिशाली पुत्र हुए—हिरण्यकशिपु और हिरण्याक्ष । तथा सिंहिका नाम की कन्या उत्पन्न हुई, जो विप्रचित्ति की ब्याही गई, और जिसके महाशाली पुत्र संहिकेय (राहु) गण के नाम से प्रसिद्ध हुए ॥६४-६५॥
 हिरण्यकशिपु के महादेवशरी चार पुत्र—ह्लाद, अनुह्लाद, पराक्रमी प्रह्लाद और बीया सह्लाद हुए । उसी तरह ह्लाद का पुत्र ह्लाद हुआ ॥६६-६७॥ ह्लाद के दो वीर पुत्र हुए—शिव और काल । प्रह्लाद का पुत्र विरोचन हुआ । विरोचन से बलि नामक पुत्र उत्पन्न हुआ ॥६८॥ मुनिवृन्द । बलि के घृतराष्ट्र, सूर्य, चन्द्रमा, चन्द्रतापन, कुम्भनाभ, गर्दभाक्ष, कुक्षि इत्यादि नाम से विख्यात सौ पुत्र हुए ॥६९॥ उन सब में ज्येष्ठ बाण अत्यन्त धलवान् और शिव की प्रिय पान था ॥७०॥ पहले कल्प में बाण ने उमापति मगवान् शिव को प्रसन्न कर में 'आपके पाम ही विहार करें' ऐसा वरदान उनके मागा ॥७१॥ हिरण्याक्ष के पुत्र मरुत, शकुनि, मृतसन्तापन, महानाभ, विश्रान्त और कालनाभ सठे बचवान् और विद्वान् हुए ॥७२॥ दनु के अत्यन्त पराक्रमी, तपस्वी और महाशक्तिशाली सौ पुत्र हुए । उनमें से प्रमुखों के नाम बताता हूँ—॥७३॥ द्विमूर्धा, शंकुकर्ण, शक्तिशाली ह्यशिरा, अपोमुख, शम्बर, कपिल, वामन, मारीचि, मघवान्, ह्रस्वल, स्वसुम, विशोभण, केतु, केतुवीर्य, शतहृद, इन्द्रजित्, सर्वजित्, वज्रनाभ, एकचक्र, महाबाहु, महावक्रवान् तारक, वैश्वानर, पुलोमा, विद्रावण, महाशिरा, स्वभानु वृषपर्वी, शक्तिशाली विप्रचित्ति । ये सब दनु के पुत्र कल्प में उत्पन्न हुए ॥७४-७८॥ इन सब महाबली दानवा में विप्रचित्ति प्रधान था ।

१ श पुत्रोऽप्यायुर्वे शि० । २ क गर्दभश्च । ३ ख मुता पञ्च वि० । ४ ख ऊर्जरा । ग. हर्षवि ।

५ ख ०ह्लादगदश्च । ६ क य शङ्खुशिरा । ७ क द्विजा । ८ ख एकचक्रो । ९ ग ०हृत्पावकश्च ।

विप्रचित्तिप्रधानास्ते दानवाः^१ सुमहाबलाः। एतेषां पुत्रपौत्रन्तु न तच्छक्यं द्विजोत्तमाः ॥७९॥
 प्रसंहयान्तु बहून्वाच च पुत्रपौत्रमनन्तकम्। स्वर्भानोस्तु प्रभा कन्या पुलोम्नस्तु शची सुता ॥८०॥
 'उपदीप्तिर्हृषतिराः शर्मिष्ठा वार्यपर्वणी। पुलोमा कालिका चैव वैश्वानरसुते उभे ॥८१॥
 बह्वपत्ये 'महापत्ये' मरीचेस्तु परिग्रहः। तयोः पुत्रसहस्राणि पण्डितानवचन्दनाः ॥८२॥
 चतुर्दशशतानन्यान् हिरण्यपुरवासिनः^२। मारीचिर्जनयामास महता तपसाग्नितः ॥८३॥
 पौलोमा, कालकेयाश्च दानवास्ते महाबलाः। अवध्या देवतानां हि हिरण्यपुरवासिनः ॥८४॥
 पितामहप्रसादेन ये हताः सव्यसाचिना। ततोऽपरे महावीर्या दानवास्त्वतिदारणाः ॥८५॥
 सिहिक्वायामथोत्पन्ना विप्रचित्तेः सुतास्तथा। दैत्यदानवसंयोगाज्जातास्ततोऽपराजमाः ॥८६॥
 'संहिकेया इति स्यातास्त्रयोदश महाबलाः'। वंशः शल्यश्च^३ बलिनी नलश्चैव तथाबलः ॥८७॥
 'वातापिर्नमुचिश्चैव' इत्यलः स्वसूतस्तथा। 'अञ्जिको नरकश्चैव कालनाभस्तथैव च ॥८८॥
 'सरमानस्तथा चैव स्वरकल्पश्च वीर्यवान्। एते यैः दानवाः' श्रेष्ठा दनोर्वशविवर्धनाः ॥८९॥
 तेषां पुत्राश्च पौत्राश्च शतशोऽप्य सहस्रशः। संहारद्वयं तु दैत्यस्य निवातकवचां कुले ॥९०॥
 समुत्पन्नाः सुमहता तपसा भावितारमनः। तिष्ठ कोट्य सुतारतेषां मणिवर्षा निवासिनः ॥९१॥
 अवध्यास्तेऽपि देवानामर्जुनेन निपातिताः। पट्सुताः सुमहाभागास्ताम्रायाः परिकीर्तिताः ॥९२॥

द्विजवर्षः। बहुत और अन्त होने के कारण इनके पुत्र-पौत्रों की नहीं गिना सजता हूँ ॥७९॥ स्वर्मानु की कन्या प्रभा हुई। पुत्रोमा की शची हुई। उद्धानवी हृषतिरा की और शर्मिष्ठा कृपवती की (कन्या) हुई ॥८०॥ वैश्वानर की पुलोमा और कालिका—ये दो कन्याएँ बहुत-सी सतान वाली हुई। उनका विवाह मरीचि से हुआ। साठ हजार दानव पुत्र इनसे उत्पन्न हुए ॥८१-८२॥ महान् तपस्वी मरीचि ने दूधरे पीदहू सो हिरण्यपुर वासिदा की उत्पन्न किया ॥८३॥ वे हिरण्यपुत्रासी महाबलवान् दानव पौत्रोम और बालकेव नाम से स्थान हुए, जो ब्रह्माग्नी की दृष्टा से देवताओं से अवध्य (न मारने योग्य) होने हुए भी अर्जुन के द्वारा मारे गये थे ॥८४॥ उनके अनिरित्त बटन से महामातिवाली ममरर दानव विप्रचित्ति से सिट्टिग से उत्पन्न हुए। विप्रचित्ति के तेरह पुत्र दैत्य और दानव के गयान से बड़े पराक्रमी और संहिष्य नाम से प्रसिद्ध हुए ॥८५-८६॥ उनके नाम थे हैं—
 वली बल और शाय, नल, बल, वातापि, नमूर्चि, इन्वल, स्वगुण, अञ्जि, नरक, बालनाभ, सरमान और दानि-
 शाही स्वरकल्प। वे श्रेष्ठ दानव दनु के वंश की ब्राह्मि बाले हुए ॥८७-८८॥ उनके सैबडो और हजारों पुत्र और पौत्र हुए। संहार नामक दैत्य के कुल में निवातकवच नामक बड़े तपस्वी पुत्रगण उत्पन्न हुए ॥९०॥ उनके मणिवती से निवास करने वाले तीस करोड़ पुत्र उत्पन्न हुए। वे भी देवताओं से न मारने योग्य हुए और अर्जुन के द्वारा मारे गये।

१ वं श्रेष्ठा वं म०। २ यं श्रेष्ठा वरुण म०। ३ वं वं श्रेष्ठा वरुण म०। ४ वं वं श्रेष्ठा वरुण म०।
 ५ वं श्रेष्ठा मरी०। ६ श्रेष्ठ दिन०। ७ वं श्रेष्ठा मरी०। ८ बालकेया। ९ वं श्रेष्ठा मरी०।
 १० वं श्रेष्ठा मरी०। ११ वं श्रेष्ठा मरी०। १२ वं श्रेष्ठा मरी०। १३ वं श्रेष्ठा मरी०।
 १४ वं श्रेष्ठा मरी०। १५ वं श्रेष्ठा मरी०। १६ वं श्रेष्ठा मरी०।

'श्रीञ्जी श्येनी च भासी च सुग्रीवी शुचिगृधिका । श्रीञ्जी 'तु जनयामास उलूकप्रत्यलूककान् ॥९३॥
 श्येनी श्येनास्तथा भासी भासानृगधाश्च गृध्यापि । शुचिरोदकानृपक्षिणानृसुग्रीवी तु द्विजोत्तमाः ॥९४॥
 अश्वानृष्टानृ गदर्शभाश्च ताम्रावशः' प्रकीर्तितः । 'विनतायास्तु द्वौ पुत्रौ विख्यातौ गरुडाश्चणौ ॥९५॥
 'गरुडः पततां श्रेष्ठो दाहणः स्वेन कर्मणा । सुरसायाः सहस्रन्तु सर्पाणाममितौजसाम् ॥९६॥
 अनेकशिरसां विप्राः खचराणां महात्मनाम् । कद्रवेयास्तु बलिनः' सहस्रममितौजसः ॥९७॥
 सृपण्वशगा मत्स्य जशिरे नैकमस्तकाः । येषां प्रधानाः सततं शेषवासुकिस्तक्षकाः ॥९८॥
 ऐरावतो महापद्मः कम्बलाश्वतरावुभौ । एलापश्च शङ्खश्च कर्कोटकधनञ्जयो ॥९९॥
 महानीलमहाकर्णौ 'धृतराष्ट्रबलाहकौ । कुहरः पुष्पदंष्ट्रश्च दुर्मुखः सुमुखस्तथा ॥१००॥
 शङ्खश्च शङ्खपालश्च कपिलौ' वामनस्तथा । नट्टपः शङ्खरोमा च मणिरित्येवमादयः ॥१०१॥
 तेषां पुत्राश्च पौत्राश्च शतशोऽप्य सहस्रशः । चतुर्दशसहस्राणि' कूराणामनिलाशिताम् ॥१०२॥
 गणं श्रीपद्मं विप्रास्तस्य सर्वेषु च दंष्ट्रिणः । स्थलजाः पक्षिणोऽन्नाश्च धरायाः प्रसवाः स्मृताः ॥१०३॥
 पास्तु वै जनयामास 'सुरभिर्महिषीस्तथा । इरां वृक्षलता वल्लीस्तृणजातीश्च सर्व्वशः' ॥१०४॥
 खसा तु यक्षरक्षांसि मुनिरप्सरस्तथा । अरिष्टा तु' महासिद्धा गंधर्वाणामितौजसः ॥१०५॥

ताम्रा के छह भाव्यवालिनौ कन्धाय हुई ॥९१-९२॥ श्रीञ्जी, श्येनी, भासी, सुग्रीवी, शुचि और गृध्रिका । ब्राह्मण-
 सिरोमणि । श्रीञ्जी ने उलूको (उलूक पक्षी) और प्रत्यलूकका को, श्येनी ने श्येनी (शार्ङ्ग) को, भासी ने भासी को,
 गृध्री न गिद्धो को, शुचि न जल पक्षियो को और सुग्रीवी ने घोरो, जैडो और गधो को उत्पन्न किया । यह ताम्रा-
 वश कहलाया ॥९३-९४॥ विनता क दो प्रसिद्ध पुत्र हुए—गरुड और अरण ॥९५॥ पक्षियो मे श्रेष्ठ गरुड अपन
 कम से सफर हुआ । द्विजवृन्द । सुरसा से उत्पन्न तेजस्वी, आकाशचारी, मनस्वी और अनक फन वाले हजार
 सौप हुए । कद्र के महान् शक्तिशाली निन्तु गट्ट के अधीनस्थ और अनेक शिरवाले नाम हुए, जिनमे सदा शेष,
 धार्मुकि और तक्षक प्रधान रहे ॥९६-९७॥ ऐरावत, मत्स्यपद्म, कम्बल, अश्वतर, एलापद्म, शङ्ख, कर्कोटक, धनञ्जय,
 महानील, महाकर्ण, धृतराष्ट्र, बलाहक, कुहर, पुष्पदंष्ट्र दुर्मुख, सुमुख, शङ्ख, शङ्खपाल, कपिल, वामन, नट्टप, शङ्खरोमा,
 मणि इत्यादि नामो के नाम है ॥९९-१०१॥ उनके सैकड़ो हजारो पुत्र-पौत्र हुए । द्विजगण । उन कूर सार्पो की
 सख्या चाँदह हजार थी ॥१०२॥ ये सब श्रीपद्म और वट्टे वट्टे दाँतो वाले थे । जल और स्थल मे उत्पन्न पक्षी गृध्रिको की
 सत्ता मान गये है ॥१०३॥ सुरभि ने गायो और मेमोका उत्पन्न किया । इरा न वृक्षो, लताओ और सपूर्ण तृण जाति
 को उत्पन्न किया ॥१०४॥ खसा देवयक्ष और राक्षसो की एवम् मुनि से अप्सरा की उत्पत्ति हुई । महासिद्ध अरिष्टा ने
 अत्यन्त तेजस्वी गन्धर्वो का उत्पन्न किया ॥१०५॥ ये स्थावर और जगम कश्यपजी के वंशज कहाँता है, जिनक

१ ख ऋची । २ ख ऋची । ३ ग ०ञ्जी श्रीञ्जाननयदुलू । ४ ख ग ०वशा प्र० ।
 ५ रा ग ०तिता । वि० १६ न ख ०गार्श्व पुत्री द्वावरणी गरुडस्तथा । ७ ख ग सुपर्ण । ८ व ०ष्ट्रमहाबली । कु० ।
 ९ ख ०लो मानस्त० । १० व ०णि सर्पाणा० । ११ ग ०हिपास्त० । १२ व ०दा । शरमा य० ।
 १३ व. ख महासत्ता ।

एते कश्यपदायादाः कीर्त्तितः स्वाणुजङ्गमाः। येषां पुत्राश्च पौत्राश्च शतशोऽथ सहस्रशः ॥१०६॥
 एषां भगवन्तरे विप्राः सर्गः। स्वारोचिषे स्मृतः। वैवस्वतेऽतिमहतिं वारुणे यितते क्रतौ ॥१०७॥
 जुह्वानस्य ब्रह्मणो वै प्रजासर्गं इहोच्यते। पूर्वं यत्र समुत्पन्नान्ब्रह्मर्षीन्सप्त मानसान् ॥१०८॥
 पुत्रत्वे कल्पयामास स्वयमेव पितृमहः। ततो विरोधे देवानां दानवानां च भो द्विजाः ॥१०९॥
 दितिर्विनष्टपुत्रा वै तोषयामास कश्यपम्। कश्यपस्तु प्रसन्नार्त्ता सम्पन्नाराधितस्तथा ॥११०॥
 घरेण च्छन्दयामास सा च वज्रे वरं तदा। पुत्रमिन्द्रवधार्थाय समर्थममितौजसम् ॥१११॥
 स च तस्मै वरं प्रादात् प्रार्थितः सुमहातपा। दत्त्वा च प्ररमत्युषो नारीं च समभाषत ॥११२॥
 इन्द्रं पुत्रो निहन्ता ते गर्भं वै शरदो दत्तम्। यदि धारयसे क्षौचतत्परा व्रतमास्थिता ॥११३॥
 तथेदमभिहितो भर्ता तया देव्या महातपाः। धारयामास गर्भं तु क्षुचिः सा मुनिसत्तमाः ॥११४॥
 ततोऽभ्युपागमद्वित्यां गर्भमाधाय कश्यपः। रोधयन् वै गण धोष्टं देवानाममितौजसम् ॥११५॥
 तेजः संहृत्य दुर्धयं मवध्यमरैरपि। जगाम परवर्तायैव तपसे शशितप्रता ॥११६॥
 तस्मादचं वागन्तरप्रेतुरभवत् पाकदासनः। जज्ञते वर्षं शते चास्मा ददक्षांस्तरमध्युतः ॥११७॥
 अहुरवा पावयोः क्षौचं दितिः क्षयनमाविशत्। निद्रां चाहारयामास तरयां कुक्षिं प्रविश्य सः ॥११८॥
 यद्यपानिस्ततो गर्भं सप्तधा तं म्यकुन्तयत्। स पाटघमानो गर्भोऽयं यज्जेग प्रररोद ह ॥११९॥

सैवर्षी-हजारों पुत्रयोगी हैं ॥१०६॥ द्विअगण! स्वारोचिष नामक मन्वन्तर में यह मृष्टि हुई। अब धैवरवन नामक अयन्त महान् मन्वन्तर में वरुण के विष्मन् यज्ञ में आहुति देते हुए ब्रह्मर्षी की प्रजा-मृष्टि के बारे में मैं कहूँगा ॥१०७॥ ब्रह्मा न पट्टे हात महाविषों की मांगनी मृष्टि की थी ॥१०८॥ द्विजगुन्द! देव-दानव-मुञ्च में अपने वैश्य-पुत्रों के मर जाने पर दिति ने कश्यप का गनुष्ट किया ॥१०९॥ दिति द्वारा सम्पूजित प्रसन्न ऋषि कश्यप ने उससे वर मांगने के लिए कहा। जब उसने इन्द्र के वध के लिये अयन्त मेजरवी समर्थ पुत्र की वर-दान रूप में माता को उस महान् सपत्नी में उस अमीष्ट बलदान दे दिया। वर देने के बाद अति उग्र होकर कश्यप ने दिति में कहा— ॥११०—११२॥ 'तुम्हारा पुत्र इन्द्र हन्ता होगा, यदि तुम पवित्रतापूर्वक व्रत करते हुए ही क्यों तब गर्भ पारण कर। ॥११३॥ मुनिधोष्ट! उस देवी ने महान् सपत्नी स्वामी ने 'ऐसा ही करेगी' कहकर पवित्रतापूर्वक गर्भ पारण किया ॥११४॥ जब कश्यप अयन्त मेजरवी और धोष्ट देवमूढ़ की रीतिसे हुए देवताओं से भी अवश्य अपने उद्गुष्ट तेज की दिति के गर्भ में स्थापित करने लग्या के लिये पर्वत पर चले गये ॥११५-११६॥ इन्द्र दिति के गर्भ में प्रवेश करने का अवसर लाङ्घने लगा। तीसरे दिन जाते पर इन्द्र की अवसर मिला ॥११७॥ (एक दिन) दिति बिना पैर धोये राग्य पर जाकर सा बर्तन हाथ में बस्य लिए हुए इन्द्र ने उससे वेष्ट में पैर डर (बस्य में) उस गर्भ के घात टुकड़े कर दिव ॥११८॥ बस्य में स्थापित किए जाते माता गर्भ (स्थित

१ क. १११। २ क. ११३। ३ क. सर्वे। ४ क. स्मृता। ५ क. न विगाया। ६ क. मन्वयो।
 ७ क. वारिष्यामः। ८ क. नायमापाव स्मन्नानाय वागः। ९ क. ०३५। १० क. १०। ११ क. ११।

मा रोदीरिति तं शक्रः पुनः पुनरथाश्वतीत् । सोऽभवत् सप्तधा गर्भस्तमिन्द्रो रपितः पुनः ॥१२०॥
 एकैकं सप्तधा चक्रेः वज्रैर्गैवारिकर्षणः । मरुतो नाम ते देवाः बभूवुर्द्विजसत्तमाः ॥१२१॥
 यथोक्तं वै मघवता तथैव मरुतोऽभवन् । देवाश्चेकोनपञ्चाशत्सहाया वज्रपाणिनः ॥१२२॥
 तेषामेवं प्रवृत्तानां भूतानां द्विजसत्तमाः । रोचयन् वै गणश्रेष्ठान् देवानाममितीजसाम् ॥१२३॥
 निकायेषु निकायेषु हरिः प्रादात् प्रजापतीन् । यमशस्तानि राज्यानि पृथुपूष्वर्वाणि भो द्विजा ॥१२४॥
 स हरिः पुरयो वीरः कृष्णो जिष्णुः प्रजापतिः । पञ्चन्यस्तपनोऽभ्यस्तस्तस्य सध्वमिदं जगत् ॥१२५॥
 भूतसर्गमिमं सम्यग्जानतो द्विजसत्तमाः । नावृत्तिभयमस्तीह परलोकभयं कुतः ॥१२६॥
 इति श्रीब्राह्मे महापुराणे देवसुराणामुत्पत्तिकथनं नाम तृतीयोऽध्यायः ॥३॥

चतुर्थोऽध्यायः

पृथुमारभ्य सर्वदेवदानवादीनां राज्याभिषेक-वर्णनम्

लोमहर्षण उवाच

‘अभिविष्ट्याधिराजेन्द्र’ पृथुं वीर्यं पितामहः । ततः क्रमेण राज्यानि द्यादेदमुपचक्रमे ॥१॥

शिव) रोने लगा ॥११९॥ इन्द्र ने उगमे उठा—‘मन रोओ!’ उस गर्भ के सात मास हो गये। शत्रु को दमन करने वाले इन्द्र ने जीय करके धनु ही से एक एक के सान सान दुकने कर दिये ॥१२०॥ विप्रवर्ग के मरुत् (याम्) नामक देवता हुए ॥१२१॥ जैसे इन्द्र ने कहा, वैसे ही वे उनवासो बापु देवता इन्द्र के सहायक बन गये ॥१२२॥ द्विजवर्ग। इस प्रकार उत्पन्न हुए प्राणिमो तथा अत्यन्त मेजस्वी देवताओ के समूह का प्रसन्न करने वाले हरि न राजा पृथु के बाद के राज्या को प्रत्येक समूह में प्रजापतिया को दे दिया ॥१२३-१२४॥ द्विजवर। बही हरि पुरण, वीर, कृष्ण, जिष्णु, प्रजापति मय, सूर्य और अमन्त (निप) कहलाता है। उसमे यह सपूर्ण जगत् उत्पन्न हुआ है ॥१२५॥ जो व्यक्ति इस प्राणि-सृष्टि को जानता है, उसका फिर जन्म नहीं होता, परलोक का भी उस भय ही क्या है? ॥१२६॥

श्री ब्रह्ममहापुराण में देवता और राक्षस का उत्पत्ति कथन नामक तीसरा अध्याय समाप्त ॥३॥

अध्याय ४

पृथु से लेकर सभी देव-दानवों के राज्याभिषेक का वर्णन

लोमहर्षण बोले—वेन ने पुत्र पृथु का राज्याभिषेक कर ब्रह्म क्रम से राज्यों का वितरण करने लगे ॥१॥

१ क ०नरवाच ह। २ स बाह्य। ३ क हरि। ग हवि। ४ क ०पनिम्। ५ ०। ग ०पनि। ५ ०। ५ व ०पदा स्यक्त कृष्ण स०। ६ ग ०नी व्यक्तत०। ७ क मया। ८ क अभापयन्व रा०। ९ ग ०द्याऽऽदिश०।

द्विजानां वीरधा चैव नक्षत्रग्रहयोस्तथा । यजानां तपसां चैव सोमं राज्येऽभ्यषेचयत् ॥२॥
 'अपां तु वरुणं राज्ये राज्ञां वैश्वरपं' पतिम् । आदित्यानां तथा विष्णुं वसूनामथ पावकम् ॥३॥
 प्रजापतीनां दक्षं तु भरतामथ वासवम् । दैत्यानां दानवानां वै प्रह्लादममितोजसम् ॥४॥
 वैवस्वतं पितृणाञ्च यमं राज्येऽभ्यषेचयत् । यक्षाणां राक्षसानाञ्च पार्थिवानां तथैव च ॥५॥
 सर्वभूतपिशाचानां गिरीशं शूलपाणिनम् । झीलानां हिमवन्तञ्च नदीनामथ सागरम् ॥६॥
 गंधर्वाणामधिपतिं चक्रे चित्ररथं प्रभुम् । नागाणां वासुकिं चक्रे सर्पाणामथ तक्षकम् ॥७॥
 वारणानां तु राजानमेरावतमथादिशत् । उच्चैःश्रवसमश्वानां गरुडञ्चैव पक्षिणाम् ॥८॥
 मृपाणामथ शादूर्दूलं गोवृषण्तु गवा पतिम् । वनस्पतीनां राजानं प्लक्षमेवाभ्यषेचयत् ॥९॥
 एवं विभज्य राज्यानि 'क्रमेणैव' पितामहः । दिशां पालानथ ततः स्थापयामास स प्रभुः ॥१०॥
 पूर्वस्यां दिशि पुत्रं तु वैराजस्य प्रजापतेः । दिशं पालं सुघन्वानं राजानं सोऽभ्यषेचयत् ॥११॥
 दक्षिणस्यां दिशि तथा वर्द्धमस्य प्रजापतेः । पुत्रं 'शङ्खपर्वं' नाम राजानं सोऽभ्यषेचयत् ॥१२॥
 पश्चिमस्यां दिशि तथा रजसः पुत्रमच्युतम् । केतुमन्तं महात्मानं राजानं सोऽभ्यषेचयत् ॥१३॥
 तथा हिरण्यरोमाणं पर्जन्यस्य प्रजापतेः । उदीर्चमां दिशि दुर्द्धयं राजानं सोऽभ्यषेचयत् ॥१४॥
 तैरियं पृथिवीं सर्वार्थं सप्तद्वीपां सप्ततना । यथाप्रदेशमद्यापि धर्मेण प्रतिपाल्यते ॥१५॥
 'राजसूयाभिषिक्तस्तु पृथुरेतेन' राधिपैः । वेदवृष्टेन विधिना 'राजा राज्ये नराधिपः' ॥१६॥

ब्राह्मण, रत्ना, नक्षत्र, ग्रह यम और तपस्या का राज्य में उन्होंने सोम को अभिषिक्त किया ॥२॥ जल का राज्य वरुण को दिया और कुबेर को राजा का वासना बनाया । विष्णु को आदित्या का राजा, अग्नि को वसुओं का, दक्ष को प्रजापतियों का, इन्द्र को मरुतो का और अश्वत्थ सेजस्वी प्रह्लाद को दैत्यो और दानवों का, सूर्यपुत्र यम को पितरों का तथा यक्ष, राक्षस राजा, सम्पूर्ण मत्त और पिशाचों का स्वामी शूलपाणि महादेव जी को बनाया ॥३॥ हिमालय को पहाड़ों का राजा, समुद्र को नदियों का, चित्ररथ को गन्धर्वों का, वासुकि को नागों का, तक्षक को साँपों का, ऐरावत हाथिया का, उच्चैः श्रवा को घोड़ों का, गरुड को पक्षियों का, वायु को मृगों का, बिल्व को गीतों का और वरगद को वनस्पतियों का राजा बनाया ॥४॥ इस प्रकार क्रमशः राज्या को बाँटकर प्रभु ब्रह्मा ने दिशाओं की स्थापना की ॥१०॥ पूर्व दिशा का राजा वैराज प्रजापति के पुत्र सुघन्वा को बनाया ॥११॥ दक्षिण दिशा में वर्द्धम प्रजापति के पुत्र रासपद को राजा बनाया ॥१२॥ पश्चिम दिशा का राजा रजसु के पुत्र महात्मा केतुमान् को बनाया ॥१३॥ और उत्तर दिशा में पर्जन्य प्रजापति के पुत्र प्रचण्ड तजस्वी हिरण्यरोमा को राजा बनाया ॥१४॥ उन राजाओं द्वारा अब तब सातों द्वीप, नगर और प्रदेश सहित इस पृथिवी का धर्मपूर्वक पालन हो रहा है ॥१५॥ इन राजाओं ने राजसूय धारा में अभिषिक्त पृथु को वेद में वतलाये हुए विधान के अनुसार राजा बनाया ॥१६॥

१ ग अपि । २ क प्रभुम् । ३ क ग ऽभ्येण प्रणि० । ४ क ए ऽस्या महात्मान क० । ५ क दास्यप्रद । ६ ऽभ्युपेयि० । ७ क. ए राजरा० ।

ततो मन्वन्तरेऽतीते चाक्षुषेऽमिततेजसि। वैवस्वताय मनवे पृथिव्यां^१ राज्यमादिशत् ॥१७॥
तस्य विस्तरमाह्वयस्ये मनोर्वैवस्वतस्य ह। भवतां चानुकूल्याय यदि श्रोतुमिहच्छय।
महदेतदधिष्ठानं पुराणे तदधिष्ठितम् ॥१८॥

मुनय ऊचुः

विस्तरेण पृथोजन्म लोमहर्षण कीर्तय। यया महात्मना तेन दुग्धा^२ वेयं वसुधरा ॥१९॥
यया^३ वापि नृभिर्दुग्धा यया^४ देवैर्महर्षिभिः। यया देवैश्च नागैश्च ग्रन्था यक्षैर्यया द्रुमैः ॥२०॥
यया शैलैः पिशाचैश्च गन्धर्वैश्च द्विजोत्तमं^५। राक्षसैश्च महासत्त्वैर्यया दुग्धा वसुधरा ॥२१॥
तेषां पात्रविशेषांश्च चतुर्मुहं^६सि सुव्रत। अत्सक्षीरविशेषाश्च दोग्धारं^७ चानुध्वंशं ॥२२॥
यस्माच्च कारणात् पाणिर्वैणस्य सञ्चितः पुरा। बृद्धैर्महर्षिभिस्तात कारणं तच्च कीर्तय ॥२३॥

लोमहर्षण उवाच

शृणुष्व कीर्तयिष्यामि पृथोर्वैण्यस्य विस्तरम्। एकाप्रा^८ प्रयताश्चैव पुण्यार्थं च^९ 'द्विजपंभा' ॥२४॥
नाशुचे^{१०} क्षुद्रमनसो नाशित्वस्याश्रतस्य च^{११}। कीर्तयेयमिदं विप्राः कृतघ्नायाहिताय च ॥२५॥
स्वार्थं^{१२} यशस्यमायुष्य धन्यं देवैश्च सम्मितम्। रहस्यमृषिभिः प्रोक्तं शृणुष्व वै दध्यातयम् ॥२६॥
यश्वेनं^{१३} कीर्तयेत्त्रिंशं पृथोर्वैण्यस्य विस्तरम्। ब्राह्मणेभ्यो नमस्कृत्य न स शोचेत्कृताकृतम् ॥२७॥

इष्टवे अनंतर अत्यंत तेजस्वी चाक्षुष भवन्तर योत जाने पर वैवस्वत मनु को पृथिवी का राज्य चलाने के लिए प्रह्ला ने आदेश दिया ॥१७॥ यदि आप मुनना चाहेंगे तो उस वैवस्वत मनु का विस्तृत वर्णन मैं आप लोगों के बख्शान के लिये कहूँगा। यह महान् चरित्र पुराण में चित्रित किया गया है ॥१८॥

मुनियो ने कहा—आर्थ लोमहर्षण! पृथु की जन्म क्या का विस्तृत वर्णन कीजिये। जिस प्रकार उस महामा ने इस पृथिवी का दोहन किया, या जन्म राजाभा ने दत्तजो ने महर्षिया ने दैत्या ने, नागा ने यक्षा ने, दूशो ने, पृच्छो ने, पिशाचा ने गणधो ने, द्विजवरो ने और महापराक्रमी राक्षस न पृथिवी का दुग्धा उनको मित्र मित्र पात्रा को, बड़ो तथा दूध को और दुहने वाला का त्रयश बतलाइये ॥१९२०॥ भगवन! पहले जिस कारण बृद्ध होकर महर्षिया ने वेण ने हाथ का भजन किया था वह कारण भी बतलाइये ॥२३॥

लोमहर्षण बोले—ब्राह्मणश्रेष्ठो! वेण के पुत्र मृग का वर्णन मैं विस्तार से कहूँगा। धर्म के लिये आप लोग एकाग्र और सावधान होकर सुनिये ॥२४॥ ब्राह्मणो! अपवित्र हृदयहीन, अशाय अत्रती, कृतघ्न और घनू को यह नहीं मनाऊँगा ॥२५॥ ऋषिया ने इस रहस्य को स्वर्गप्रद यय, घन और आयु देने वाला तथा वेद-सम्मत कहा है। इसे ययार्थ रूप से सुनिये ॥२६॥ जो व्यक्ति ब्राह्मणा को नमस्कार करे वेण के पुत्र पृथु की कथा का विस्तृत वर्णन प्रतिदिन करेगा, वह विहित और अविहित नषों से दुखी नहीं होगा ॥२७॥

१ ग ०थिवीरा०। २ ग ०वतमानु०। ३ छ मृता। ४ स ०या च पितृभिः०। ५ व स ०वैयंयि०।
६ स ०वत्सानीर०। ७ व तत्परी०। ८ व मृत। ९ स प्रणता०। १० व स द्विजोत्तमा। ११ स वा।
१२ स ०यं परममा०। १३ स ०म यय०॥

आसीद्धर्मस्य संगोप्ता पूर्वमग्रिसमः प्रभुः। अत्रिंशो समुत्पन्नस्त्वङ्गो नाम प्रजापतिः ॥२८॥
 तस्य पुत्रोऽभवद्वेणो मातृपर्यं धर्मकोविदः। जातो मृत्युसुतायां वै सुनीथायां प्रजापतिः ॥२९॥
 'स मातामहदोषेण तेन कालात्मजात्मजः। स्वधर्मं पृच्छतः कृत्वा 'कामलोभेत्ववर्त्तत ॥३०॥
 मर्यादां' भेदयामास 'धर्मोपेतां स पार्थिवः। वेदधर्मानतिक्रम्य सोऽधर्मनिरतोऽभवत् ॥३१॥
 नि.स्वाध्यायव्यपट्काराः प्रजास्तस्मिन् प्रजापतेः। प्रवृत्तं न षण्णु सोमं दूत यज्ञेषु देवताः ॥३२॥
 न यष्टव्यं न होतव्यमिति तस्य प्रजापतेः। आसीत् प्रतिज्ञा क्रूरैः विनाशं प्रत्युपस्थिते ॥३३॥
 अहमिज्यश्च यष्टा च यज्ञश्चेति भृगुद्वह'। मयि'यज्ञो' विघातधो मयि होतव्यमिहयि ॥३४॥
 तमतिक्रान्तमर्थादिमाददानमस्तमप्रतम् । ऊचुर्महर्षयः सर्वे मरीचिप्रमुखास्तदा ॥३५॥
 ययं दीक्षां प्रवेक्ष्यामः संवत्सरगणान् बहून्। अधर्मं कुरु मा वेण एष' धर्मः सनातनः ॥३६॥
 निघनेऽग्रेः प्रसूतस्त्वं प्रजापतिरसंशयम्। प्रजादश्च पालयिष्येऽहमितिह' समयः कृतः ॥३७॥
 तांस्तथा ब्रुवतः सर्वान्महर्षानिब्रवीत्तदा। वेण. प्रहस्य दुष्कुण्डिरिन्द्रधर्मनर्यदित् ॥३८॥

वेण उवाच

'यष्टा धर्मस्य कश्चान्य. श्रुतव्यं कस्य वा मया। श्रुतवीर्यतप सत्त्वैर्मया वा वः समो भुवि ॥३९॥

पूर्वजाल मे धर्मेनरखत भीरु अत्रिचुषा पेरगंगायार्गे अग नामक प्रजापति अत्रिंश म उत्पन्न हुआ।
 ॥२८॥ उमरा पुत्र वेण नामक पर्यन्त प्रजापति, मृत्यु की पुत्री सुनीथा से उत्पन्न हुआ ॥२९॥ वह मृत्युवत्यापुत्र अपने मातामह के दोष से स्वधर्म का छाड़कर काम और लोभ से प्रवृत्त हुआ ॥३०॥ और पार्थिव सीमाओं का तोड़-भारकर, वेद धर्मों का उल्लंघन कर पाण्डचरण से अनुरक्त हो गया ॥३१॥ उस प्रजापति के बात से प्रजा वेश्यावपन और मय-त्रय से बलित हो गई थी। यज्ञ में आहुति दिनु हुए योग का पान देवगण नहीं करते थे ॥३२॥ सर्वनाग उगमित होने पर उस प्रजापति की यह बुर आज्ञा थी—“बोई याग न करे, काई हवन न करे” ॥३३॥ भृगुश्रेष्ठ । उमरी घोषणा थी कि—“मैं ही यज्ञ हूँ, यज्ञ करने याग और यागिन हूँ। मुझे ही त्वय्यर यज्ञ और हवन करे” ॥३४॥ मर्यादा का उल्लंघन करने काहे और यज्ञ में अनुचित माग लेने काहे उस प्रजापति ने मरीचि-आदि मुनियोंने उसे समझाते हुए कहा— ॥३५॥ वेण । हम लोग अभी बहुत वर्षों तक यज्ञ की भा प्राप्त करते। तुम अपने मन करो। यह यज्ञान धर्म है ॥३६॥ निमिदेह मुझ अग्नि में उपास प्रजापति है। अग्नि में देहात होने पर तुमने प्रतिज्ञा की थी कि मैं यज्ञ का पालन करूँगा ॥३७॥ मर्त्यपिता इन्द्र इस प्रकार बड़े ज्ञान पर अर्थ में अनभिन्न दुष्कुण्डि वेण न हँसर रहा ॥३८॥

वेण ने कहा—मुझे छोड़ धर्म का निमिदा दूसरा कौन है? मैं किसका उपदेश मुन? धनि, क्षत्रिय, क्षत्रिय और यज्ञ में मर करार सत्तार में कौन है? ॥३९॥ यज्ञ प्राणिना का विशेषकर धर्मों का उपासिन यज्ञ

१ य म निता०। २ य म कामात्मजः०। ३ व म ०दा स्वप्राप्ता०। ४ व म धर्मि०। ५, म अत्रुद्वह।
 ६ य यज्ञा। ७ य विपाप्या। ८ य मीन। ९ व ०मिति मृग०। म ०मिति मे ग०। १० व म वर्ता।

प्रभव सर्वभूताना धर्माणां च विदोषत । सम्मूढा न विदुर्नूनं भवतो मा विचेतस ॥४०॥
 इच्छन् दहेयं पृथिवीं राजावेयं ललंस्तथा । चा वै भुव च रुधेयं नात्र कार्या विचारणा ॥४१॥
 यदा न शक्यते मोहादबलेषाञ्च पायिव । अपनेतु तदा वेणस्तत कुट्टा महर्षेय ॥४२॥
 त निगूह्य महात्मानो विस्फुरन्त महावलम् । ततोऽस्य सव्यमूर ते ममन्युर्जातमन्यव ॥४३॥
 तस्मिन्निर्मयमाने धं राजं हरी तु जज्ञिवान् । हूरयोऽतिमात्रं पुरषं कृष्णश्चेति बभूव ह ॥४४॥
 स भीत प्राञ्जलिर्भूत्वा तस्यिदानं द्विजसत्तमा । तमन्निर्वहन् वृष्टवा निपीदंत्यस्त्रवीतदा ॥४५॥
 निपादवशकर्त्तासौ बभूव यदता चरा । धीवरानसृजच्चापि वेणकल्मषसम्भवान् ॥४६॥
 ये चाये विन्ध्यनिलयास्तथा पर्वतसंश्रया । अधर्मरुचयो विप्रास्ते तु धं वेणकल्मषा ॥४७॥
 तत पुनर्महात्मान पाणि वेणस्य दक्षिणम् । अरणीमिव शरधा ममन्युर्जातमन्यव ॥४८॥
 पुपुस्तस्मात् समुत्पन्नं कराज्ज्वलनसन्निभम् । दीप्यमानं स्वयंपुष्पांश्चाक्ष्वादिनिरिवं ज्वलन् ॥४९॥
 अथ सोऽजगव नाम धनुर्गूह्यं महारदनम् । दाराश्च दिद्यान् रक्षार्थं कवचं च महाप्रभम् ॥५०॥
 तस्मिन् जातेऽस्य भूतानि सम्प्रहृष्टानि सध्वज । सगापेर्मुर्महाभागा वेणस्तु त्रिविधं ययौ ॥५१॥
 समुत्पन्नेन भो किप्रा सप्तपुत्रेण महात्मना । त्रात स पुरषस्याद्य पुष्तामनो नरदात्तदा ॥५२॥
 स समुद्राश्च नद्यश्च रत्नाग्रादाय सध्वज । तोयानि चाभिपेकाय सध्व एवोपतिस्थिरे ॥५३॥

मैं हूँ। आप लोग मूल और हृदयगय है निश्चय हो मन नहा पट्टचान्त है ॥४०॥ मैं जाऊ तो पृथिवी को
 जला में जल से वहाँ पृथिवी पर आकाश को रोक दूँ इसमें सन्देह न काश्चि ॥४१॥ जब
 भनि लोग राजा वेण को अनान अर अङ्कार मे अलग नहा कर सब तब जासी बोध आ गया ॥४२॥ और उस
 तजस्वी महाबली को दन्ता स पर्वत वरत्रोच से उसकी बायां आप का मथन किया ॥४३॥ मथन पर उसकी जघा
 से एक बहुत छोटा और कृष्णवर्ण पुरुष उत्पन्न हुआ ॥४४॥ द्विजवर ! वह नवजात पुरुष डरा हुआ मा हाथ
 जोर कर लडा हो गया । उसे व्याकुल देकर अग्नि न बँठ जान को कहा ॥४५॥ मनिवध ! वह निपादवश
 का कर्ता हुआ तथा वेण के पाप से उत्पन्न धीवर (मलाहो) का भा ब्याटा हुआ ॥४६॥ विप्रबृद्ध वेण
 के पाप से उत्पन्न अधमपरायण व धीवर विन्ध्यपर्वत एवं अथ पहाड़ों के आश्रय में रहने लगे ॥४७॥
 उसके बाद शूद्रमनिगण वेण के दाहिने हाथ की अरणी (यज्ञीय अग्नि मथन काष्ठ) की तरफ मथन लगे ॥४८॥
 उस हाथ से साक्षात् अग्नि के समान दीप्यमान वध उत्पन्न हुआ ॥४९॥ प्रजा की रक्षा के लिये उसने मथनर अग्नि
 का एक अजगध नामक धनुष तथा दिय बाणों अर अग्निमान कवच को धारण किया ॥५०॥ महानुभावगण !
 पशु के उत्पन्न होने पर मम प्राण हृष्टि होकर उसके पास पहुँचे । वेण तो स्वर्ण चला गया था ॥५१॥ द्विजवर !
 महात्मा सप्तपुत्र के जन्म होने से व पुरुष लब्ध वेण पनामक नरक से बच गया ॥५२॥ एवं नार के समुद्र आर
 नित्यी पशु के अभिषेक के लिये रत्न और जल लेकर उपस्थित हुई ॥५३॥ दवारा अर अगिरा-मुद्रा के साथ

१ स ०न्तोमामच० । २ व ०तोपख० । ३ व ख ०स्मिस्तु म० । ४ ख वर । ५ ख ०यास्तुपारास्तमुस्तथा ।
 ७० । ग ०यास्तुपारास्तमुस्तथा । ७० । ६ क ए सवदा । ७ क ०स्त्रिपर । ८० । ८ ग ०न् । ९ अकमज० ।
 ९ ग ०प्रहृष्टा० ।

पितामहश्च भगवान् देवैराङ्गिरसैः सह। स्यावराणि च भूतानि जङ्गमानि च सर्वशः ॥५४॥
 समागम्य तदा वैष्णवम्यपिञ्चन्नराधिपम्। महता राजराजेन प्रजास्तेनानुरञ्जिताः ॥५५॥
 सोऽभिषिक्तो महातेजा विधिबद्धर्मकोविदः। आधिराज्ये तदा राज्ञां पृथुर्वैष्णवः प्रतापवान् ॥५६॥
 पित्रापरञ्जितास्तस्य प्रजास्तेनानुरञ्जिताः। अनुरागात्तत्तस्य नाम राजाभ्यजायत ॥५७॥
 आपस्तस्तम्भिरे तस्य समुद्रमभियास्यतः। पर्वताश्च ददुर्मार्गं ध्वजभङ्गश्च नाभवत् ॥५८॥
 अकृष्टपक्ष्या पृथिवी सिध्यन्त्यन्नाति चिन्तनात्। सर्वकामदुधा गावः पुटके पुटके मधु ॥५९॥
 एतस्मिन्नेव काले तु यजे पेंतामहे शुभे। सूतः सूर्यां समुत्पन्नः सौत्येऽहनि महामतिः ॥६०॥
 तस्मिन्नेव महायजे यजे प्राज्ञोऽय मागध। पृथोः स्तवार्यं तो तत्र समाहूतो महर्षिभिः ॥६१॥
 तावच्चतुष्टयः सर्वे स्तूयतामेव पार्थिव। कर्मतदनुष्ठपं वा पात्रं चार्थं नराधिपः ॥६२॥
 तावच्चतुस्तदा सर्वास्तानुपीन् सूतमागधो। आवां देवानुपीडिष्व प्रीणयावः स्वकर्मभिः ॥६३॥
 न चास्य विद्वानो वै कर्म नाम वा लक्षणं यशः। स्तोत्रं येनास्य कुर्व्याव राजस्तेजस्विनो द्विजाः ॥६४॥
 ऋषिभिस्तो निपुनतो नु भविष्यः स्तूयतामिति। यानि कर्माणि कृतवान् पृथुः पञ्चान्महाबलः ॥६५॥
 ततः प्रभृति वं लोके स्तवेपु मुनिसत्तमा। आशीर्वादाः प्रयुज्यन्ते सूतमागधवन्दिभिः ॥६६॥
 तयोः स्तवाग्ने सुप्रीत पृथु प्रादात्प्रजेश्वरः। अनूपदेशं सूताय मगधं मागधाय च ॥६७॥

ब्रह्मा, स्यावर और जगम प्राणी सब तरफ से आकर वैष्णु-पुत्र (पृथु) का राज्याभिषेक करने लगे ॥५४॥ महाराज पृथु ने प्रजावर्ग को हर जीति से प्रसन्न किया ॥५५॥ तब धर्मज्ञ ने महान् तेजस्वी पृथु का सविधि राज्याभिषेक किया ॥५६॥ (आचरण से) जो प्रजा उनके पिता से विरक्त थी, उसे उन्होंने पुनः अनुरक्त बना लिया। प्रजा द्वारा अनुराग किये जाने के कारण पृथु का नाम राजा पड़ गया। ॥५७॥ महाप्रतापी राजा पृथु जब समुद्र की तरफ गमन करता था तो समुद्र का जल तस्मिन् ही जाता था और सर्वतः उसे उस्ता दे देते थे। उसकी पताका बनी नहीं झुकी ॥५८॥ बिना बीज बोये ही केवल चिन्तन से ही पृथिवी अन्न उत्पन्न करती थी। शयें इच्छानुसार रूप देती थी। दोना घर घर बाह्य मिलती थी ॥५९॥ इसी समय ब्रह्मा के मगलमय यज्ञ में भूती से महामति सूत सौर्य नामक दिन में उत्पन्न हुआ ॥६०॥ और उसी महायज्ञ में विद्वान् मागध भी उत्पन्न हुआ। महर्षियों ने गूत और मागध को पृथु की स्तुति करने के लिये वही आमन्त्रित किया ॥६१॥ ऋषियों ने गूत और मागध से पृथु की स्तुति करने के लिए प्रार्थना करते हुए कहा—
 'यह कार्य आपके योग्य है और यह राजा भी युवा है' ॥६२॥ तब गूत और मागध ने ऋषियों से कहा—
 'द्विजगण! हम दोना अपन बनों में देवताओं और ऋषियों को समुष्ट करेंगे ॥६३॥ जित्नु तेजस्वी राजा के कर्म, नाम, लक्षण, और यज्ञ से आश्चर्य होन के कारण हम कैसे स्तुति करें' ॥६४॥ ऋषिया ने उनसे कहा—
 'भविष्यन् बर्षों में आप स्तुति करिये' मुनिप्रेत। तब से लेकर महाकल्पान् पृथु ने जितने जो कर्म किये, उन सब का प्रयोग गूत, मागध और बर्षा जन आशीर्वाद के रूप में करने लगे ॥६५-६६॥ उसकी स्तुति के अन्त में प्रजा ने स्वामी पृथु ने प्रसन्न

तं दृष्ट्वा परमप्रीताः प्रजाः प्रोचुर्मनीषिणः । वृत्तीनामेव वो दाता भविष्यति नराधिप ॥६८॥
 ततो वैष्णं महात्मानं प्रजा समभिदुद्रुवः । त्वं नो वृत्तिं विधत्स्वेति महर्षिवचनात्तदा ॥६९॥
 सोऽभिद्वृतः प्रजाभिस्तु प्रजाहितचिकीर्षया । घनुर्गृह्य पृथक्काश्च पृथिवीमाद्रवद्बली ॥७०॥
 ततो वैष्णभयत्रस्ता गोभूत्वा प्राद्रवन्महो । तां पृथुधनुरादाय द्रवन्तीमन्वधावत ॥७१॥
 सा लोकान् ब्रह्मलोकादीन् गत्वा वैष्णभयात्तदा । प्रददर्शप्रतो वैष्णं प्रगृहीतशरासनम् ॥७२॥
 ज्वलद्भिर्निशितैर्वर्णदोषततेजसमन्ततः । महायोगं महात्मानं दुर्द्धयममररपि ॥७३॥
 अलभन्तो तु सा त्राणं वैष्णमेवान्वपद्यत । कृताञ्जलिपुटा भूत्वा पूज्या लोकेस्त्रिभिरतदा ॥७४॥
 'उवाच वैष्णं' नायममं स्त्रीवधे परिपश्यसि । कथं धारयिता चासि प्रजा राजन् बिना मया ॥७५॥
 मयि लोकाः स्थिताः राजन्मयेदं धाम्यंते जगत् । मद्भिन्नास्ते विनश्येयः प्रजा पार्थिव विद्धि तत् ॥७६॥
 न मामहंसि हन्तुं वै । श्येयश्चेत्वं चिकीर्षसि । प्रजानां पृथिवीपाल शृणु चेदं वचो मम ॥७७॥
 उपायतः । समारब्धाः सर्वे सिध्यन्त्युपक्रमाः । उपायं पश्य येन त्वं धारयेथा प्रजामिमाम् ॥७८॥
 हृत्वापि । मां न क्षतस्त्वं प्रजानां पोषणं नृप । अनुकूला भविष्यामि यच्छ कोपं । महामते ॥७९॥
 अवध्यां च स्त्रियं । प्राहुस्तिव्यंग्योनिगतेष्वपि । श्येयं पृथिवीपाल । न धर्मं त्यक्तुमहंसि ॥८०॥

होकर अनूप देश सूत को दिया और मगध देश मागध को ॥६८॥ पूषु को देखकर अत्यन्त प्रसन्न विद्वानो ने प्रजाओं से कहा—'यह राजा तुम्हें जीविका प्रदान करेगा' ॥६८॥ तब महारजा पूषु के पास जाकर प्रजा कहने लगी—'आप हमें जीविका दें' तब महर्षियों के वचन से प्रजाओं से घिरे हुए बली पूषु ने प्रजा के कल्याण की इच्छा से घनूप और बाण लेकर पृथिवी को छेदेगा ॥६९-७०॥ पूषु के मगध से कापती हुई पूषी गाय का रूप धारण कर मागध लगी । मागती हुई पूषी के पीछे घनूप लेकर पूषु भी दौड़ने लगा ॥७१॥ वधभीत पृथिवी ब्रह्म-लोका आदि सभी लोकों में गई, विन्तु उसने अन्त तक बमकते हुए तीक्ष्ण बाणों से बान्तिमान्, महायोगी, महात्मा और देवताओं से भी अजेय पूषु को अपने घामने घनूप लिए हुए देखा ॥७२-७३॥ वही बाण न पाकर (अन्ततः) पूषु को ही धारण में जाकर वह त्रिभुवन-पूण्या पृथ्वी हाथ जोड़कर उससे कहने लगी—॥७४॥ 'स्त्री के मारने में अधर्म को आप नहीं देखते? राजन् । मेरे बिना प्रजाओं का धारण आप कैसे करेंगे? ॥७५॥ सब लोक मुझमें स्थित हैं । मैं सत्तार को धारण करती हूँ । राजन् । मेरा नाश हो जाने पर प्रजाओं का भी नाश ही समझिये ॥७६॥ यदि आप प्रजाओं का कल्याण करना चाहते हैं, तो मुझे न मारें । पृथ्वीपति । मेरी बात सुनिये ॥७७॥ उपाय करन से सब काम सिद्ध हो जाते हैं । इसलिये आप उपाय कीजिए, जिससे प्रजाओं का धारण कर सकेंगे ॥७८॥ राजन् । मुझे मारकर भी प्रजाओं के पालन में आप समय नहीं हो सकते । महामतिमान् । श्रेय त्यागिये । मैं आपका कहना मानूँगी ॥७९॥ पत्नी-योनि में जाने पर भी स्त्रियाँ अवध्य नहीं बँई हैं । राजन् । यदि ऐसा है, तो आपके लिए धर्म का परित्याग करना

१ व स ० जा प्राहुर्म । २ व वृत्ति तामे ० । ३ स ० मादद्व ० । ४ व वैष्वाद्यप ० । ५ व ० दा । ६ व ० नापि ततो वै ० । ७ व स ० मय्युत्तम् । म ० । ८ व चैन । ९ व ० ण्य मागध ० । १० स स्थिरा । ११ व श्रेया यत्न । १२ व ० यद्विहा रम्या स ० । १३ व ० नि मामध ० । १४ स ० महीपते । ग ० महायुत । १५ क ० गता अपि । १६ स नि । तपस्यनृपि ० । १७ क ० तपस्य । १८ क ० ल जप ।

एव बहुविध वाक्य श्रुत्वा राजा महामना । कोप निगूह्य घर्म्मर्त्ता चतुर्धामिदमब्रवीत् ॥८१॥

पृथुस्वाच

एकस्यायै^१ तु यो हन्यादात्मनो वा परस्य वा । दहून् वा प्राणिनोऽनन्त भवेत्तस्येह पातकम् ॥८२॥
सुखमेधन्ति बहवो यस्मिन्सु निहतेऽशुभे । तस्मिन् हते नास्ति भद्रे^२ पातकं चोपपातकम् ॥८३॥
सोऽहं प्रजानिमित्तं^३ त्वा हनिष्यामि वसुधरे । यदि मे ध्वजनान्नाहं करिष्यसि जगद्धितम् ॥८४॥
त्वा निहत्याहं बाणेन मच्छासनपराङ्मुखो^४म् । आत्मानं प्रययित्वाहं प्रजा धारयिता स्थयम् ॥८५॥
सा त्वं शासनमास्याय मम धर्मभृता वरे । सञ्जोष्य प्रजा सर्व्वां समर्था ह्यसि धारणे ॥८६॥
दुहितृत्वं च मे गच्छ तत एनमहं शरम् । नियच्छेय त्वद्वधार्थमुद्यन्तं घोरदर्शनम् ॥८७॥

पशुधोवाच

सर्व्वमेतदहं क्षीरं विधास्यामि न सशयं ।^५ उत्तं तु मम^६ सम्पदय क्षरेय येन वत्सला ॥८८॥
समाञ्च कुरु सर्व्वत्र मा त्वं धर्मभृता वर । यथा^७ विस्पन्दमानं मे क्षीरं सर्व्वत्र भावयेत् ॥८९॥

लोमहर्षण उवाच

तत उत्सारयामास शैलान्शतसहस्रशः । धनुःकोटजा तदा वैष्णवस्तेन शैला विवर्द्धिता ॥९०॥
न हि पूर्व्वं विसर्गो^८ वै विपमे पृथिवीतले^९ । सविभारपुराणा वा ग्रामाणां बाभ्रवत्तदा ॥९१॥

उचित नहीं है ॥८०॥ इस तरह की बहुत सी बात मुनवर महामना धर्मात्मा राजा शान्त हो पृथ्वी से कहन लगा ॥८१॥

पृथु ने कहा—भद्र^१ । एक अणु लिए अथवा दूसरे के लिए बहुत प्राणिमा को अथवा एक को भी मारता है, उसको अनन्त पाप लगता है ॥८२॥ जिन प्राणी के मरने में बन्दरे सुख हो उगम मारने में पाप और उपपाप नहीं लगता ॥८३॥ पृथ्वी^२ । मेरी जान मैं यदि तुम सत्कार का कल्याण नहीं करती हो तो प्रजा के कारण मैं तुम्हें मार डालूंगा ॥८४॥ शासन को मैं मानन क्षात्र तुमको आज मार कर मैं प्रजा को धारण करने के लिए अपना विस्तार करूंगा ॥८५॥ अतः हे धर्मधरण शुभ मेरा शासन स्वीकार कर प्रजा का पालन पोषण करो । प्राज्ञ को धारण करने में तुम पूण समय हो ॥८६॥ यदि तुम्हें मेरी पुत्री यन्त्रा स्वीकार है तो तुम्हारे वध के लिये तैयार इस मयवर बाण को मैं रोज़ डू ॥८७॥

पृथिवी न कहा—क्षीर^३ । निश्चन्द्रेष्ठ मग्न सब स्वात्मार है । पर आप मेरे बछड़े को देखिये जिससे मैं मात्सल्ययुक्त होकर दूध दू ॥८८॥ धर्मधरीण^४ । आप मुझे सब ओर से उपलब्ध बना दें जिससे मेरा शरीर हुआ दूध सब जगह पहुँच सके ॥८९॥

लोमहर्षण न कहा—नय पृथु न धनुष न गिर न सैन्धवा ह्वारा पवता को उखाड़ दिया । इससे पहाड़ बढ़ गये ॥९०॥ पहली सृष्टि में जब पृथ्वी पर साहू ऊबन्-ग्राह्य की नव गाँवा या नगर का विभाग नहीं

१ क० नृत् । ए० । २ ग० । स्वर्गाय यो । ग० स्वर्गाय यो । ३ क० नीमद्रे म० । ४ य० सुभे । ५ क० मित त्वा । ६ य० वन नाश । ७ य० तत् त्वमयुत य० । ८ य० मय य० । ९ क० चत्या । १० म० ले । प्रवि० ।

म शस्यानि न गोरक्ष्यं न कृषिर्न वणिक्पथः । नैव सत्यानृतं चासीन्न लोभो न च मत्सरः ॥९२॥
 वैवस्वतेऽन्तरे तस्मिन् साम्प्रतं समुपस्थिते । वैष्णवात्प्रभृति वै विप्राः सर्वस्यैतत्तम सम्भवः ॥९३॥
 यत्र यत्र सामं स्वस्या भूमेरासीत्तदा द्विजाः । तत्र तत्र प्रजाः सर्वा विदासं समरोचयन् ॥९४॥
 आहारः फलमूलानि प्रजानामभवत्तदा । कृच्छ्रेण महता युक्त इत्येवमनुशुश्रुम ॥९५॥
 साकल्पयित्वा वत्सं तु भन्तुं स्वयम्भुवं प्रभुम् । स्वपाणी पुरुषध्याप्तो बुद्धोऽपृथिवीं ततः ॥९६॥
 शस्यजातानि सर्वाणि पृथर्वेण्यः प्रतापवान् । तेनाश्रिते प्रजाः सर्वा वतन्तेऽद्यापि सर्वशः ॥९७॥
 ऋषयश्च तदा देवाः पितरोऽप्य सरोसृपाः । दंत्या यक्षाः पुण्यजना गन्धर्वाः पद्मवन्त नगाः ॥९८॥
 एते पुरा द्विजश्रेष्ठा दुर्बुद्धे रणां किल । क्षीरं वत्सश्च पात्रं च तेषां दोग्धा पृथक्पृथक् ॥९९॥
 श्रुत्वा नामभवत्सोमो यत्सो दोग्धा दृहस्पतिः । क्षीरं तेषां तपो ब्रह्म पात्रं छन्दासि भो द्विजाः ॥१००॥
 देवानां काञ्चनं पात्रं वत्सस्तेषां शतश्रुतुः । क्षीरमोजस्करं चैव दोग्धा च भगवान् रविः ॥१०१॥
 पितॄणां राजतं पात्रं धर्मो वत्सः प्रतापवान् । अन्तर्कक्षोऽभवद्दोग्धा क्षीरं तेषां सुधा स्मृता ॥१०२॥
 नागानां तक्षको वत्सः पात्रं चालाबुराजकम् । दोग्धा त्वैरावतो नागस्तेषां क्षीरं विप स्मृतम् ॥१०३॥
 असुराणां मधुर्दोग्धा क्षीरं नायामयं स्मृतम् । विरोचनरतु वत्सोऽभूदायस पात्रमेव च ॥१०४॥
 यक्षाणामायमपात्रं तु वत्सो वैश्रवणः प्रभुः । दोग्धा रजतनाभस्तु क्षीरान्तर्धानमेव च ॥१०५॥
 सुमाली राक्षसेन्द्राणां वत्सं क्षीरं च शोणितम् । दोग्धा रजतनाभस्तु कपालं पात्रमेव च ॥१०६॥

हुता था ॥९१॥ अत्र गोरक्षा, सेती वणिग्य सत्य मित्या, लोभ, डाह—ये सब नहीं थे ॥९२॥ द्विजवर्ग ।
 वैवस्वत मन्वन्तर होने पर पुनः-बाल मही इनकी उत्पत्ति हुई ॥९३॥ विप्रबुद्ध । जहाँ-जहाँ पृथ्वी बराबर थी, वहाँ
 सर्वत्र प्रजा बसने लगी ॥९४॥ उस समय की जनता परिश्रम और कष्ट से फल-मूल भोजन प्राप्त करती थी—
 ऐसा हमने सुना है ॥९५॥ पुष्प-पुष्प पुनः नमस्व स्वायम्भुव मनु की बछड़ा बनाकर अपने हाथ से पृथ्वी को
 जब दुहा तो सभी प्रकार के अन्न पैदा हुए । उन्हीं माज्यपदार्थों से जनता का पोषण अब भी हो रहा है ॥९६-९७॥ द्विजवर ।
 ऋषि, वैष्णव, पितर, नाग, इत्येव यक्ष राक्षस गन्धर्व गृह्य, वृक्ष—इन्होंने पहले पृथिवी को दुहा ॥९८॥ विप्रबुद्ध ।
 जनार्ण दूध, बछड़ा, पात्र, दुहने वाला—ये सब अलग अलग स्थिति हुए ॥९९॥ ऋषिया न सोम को बछड़ा वृहस्पति
 को दुहनेवाला, और वैशः को दोहने । वनाकर तपस्या रूप दूध को दुहा ॥१००॥ देवता आ न स्वर्ग की दोहनी मन्त्र
 को बछड़ा और मगधान् सूय को दुहनेवाला बनाकर तेजस्कर दूध को दुहा ॥१०१॥ पितर ने चाँदी को पात्र, प्रतापी
 यम को बछड़ा, अन्तः (नाल) को दुहनेवाला बनाकर अमृत रूप दूध का दोहन किया ॥१०२॥ नागों ने तक्षक को
 बछड़ा, सुवी को पात्र, ऐरावत नाग को दुहनेवाला बनाकर विप रूप दूध को दुहा ॥१०३॥ दंत्या ने मधु (दंत्य)
 को दुहनेवाला, विरोचन (मृद्धादि-पुत्र) को बछड़ा और लोहा को पात्र बनाकर माया रूप दूध को दुहा ॥१०४॥ यक्षों ने
 चाँच को पात्र, कुबेर को बछड़ा, रजतनाभ को दुहनेवाला बना कर अन्तर्धान (छिप जात की विद्या) रूप दूध को
 दुहा ॥१०५॥ राक्षसों ने सुमाली को बछड़ा, रजतनाभ को दुहनेवाला और कपाल को पात्र बनाकर शोणित रूप

१ ग गोरक्षा । २ ल कृच्छ्र । ३ य म । सक० । ४ व ० यिचितलम् । स ० । ५ स सर्वत । ६ व ० त्र । सप्तमव
 ० तरोऽपि स ० । ७ स ० र्मूर्जस्व ० ८ क ० वाक्चि । ९ ग स्वधा । १० थ सुमना ।

गन्धर्वाणां त्रिप्ररयो वत्सः पात्रं च पञ्चजम् । दोग्धा च सुदृचि क्षीरं तेषां गन्धः शुचिः स्मृतः ॥१०७॥
 शैलं पात्रं पर्वतानां क्षीरं रत्नोपधीस्तथा । वत्सस्तु हिमवानासीद्दोग्धा मेरुमहागिरिः ॥१०८॥
 प्लक्षो वत्सस्तु वृक्षाणां दोग्धा शालस्तु पुष्पितः । पालाशपात्रं क्षीरञ्च छिन्नदाधप्ररोहणम् ॥१०९॥
 सेपं घात्रो विघात्रो च पावनी च वसुन्धरा । चराचरस्य सत्त्वस्य प्रतिष्ठा धोनिरेव च ॥११०॥
 सर्वकामदुधा दोग्ध्री सर्वशस्यप्ररोहणी । आसीदिय समुद्रान्ता मेदिनी परिविश्रुता ॥१११॥
 मधुकटभयोः कृत्स्ना मेदसा समभिप्लुता । तेनेय मेदिनी देवो उच्यते बह्मवादिभिः ॥११२॥
 ततोऽभ्युपगमाद्वाजः पृथोर्वण्यस्य भो द्विजाः । दुर्हितृत्वमनुप्राप्ता देवो पृथ्वीति चोच्यते ॥११३॥
 पृथुना प्रविभक्ता च शोधिता च वसुन्धरा । शस्याकरवती स्फीता पुरपत्तनशालिनी ॥११४॥
 एवमप्रभावो वैष्णवः स राजासीद्वाजसत्तमः । नमस्त्यक्तैव पूजयन्न भूतप्रार्थनं संशयः ॥११५॥
 ब्राह्मणैश्च महाभागवैदवेदाङ्गपारगैः । पृथुरेव नमस्कार्यो ब्रह्मयोनिः सनातनः ॥११६॥
 पार्थिवैश्च महाभागैः पार्थिवत्वमिहेच्छुभिः । आदिराजो नमस्कार्यः पृथुर्वैष्णवः प्रतापवान् ॥११७॥
 योधैरपि च विक्रान्तैः प्राप्तुर्कर्मजयं युधि । आदिराजो नमस्कार्यो योयानां प्रथमो नृपः ॥११८॥
 यो हि योद्धारणं याति कीर्त्तयित्वा पृथुं नृपम् । स घोररूपसंग्रामात् क्षेमो भवति कीर्त्तिमान् ॥११९॥
 वैश्यैरपि च विस्तार्यवैश्यवृत्तिविधायिभिः । पृथुरेव नमस्कार्यो वृत्तिदाता महायशः ॥१२०॥

दूध को दुहा ॥१०६॥ तन्मयों ने चित्ररथ को बछड़ा कमल को पात्र, मुहूर्ति को दुहनेवाला बनाकर पवित्र गन्ध रूप
 दूध को दुहा ॥१०७॥ पहाड़ों ने शिला को पात्र, हिमालय को बछड़ा और मुमेर को दुहनेवाला बनाकर पल और
 ओषधि रूप दूध दुहा ॥१०८॥ वृक्षों ने पाकर को बछड़ा, पुष्पित शाल को दुहनेवाला पलास को पात्र बनाकर कटे-
 जले हुए वृक्षों से निकला कोपलरूप दूध दुहा ॥१०९॥ वहीं पृथ्वी विघात्री, पावनी वसुंधरा, जननी, सर्वकामदोग्ध्री,
 सर्वमस्यप्ररोहणी और मेदिनी नाम से विख्यात है और समुद्र तक फैली हुई है ॥११०॥ १११॥ मधु-कटभ के मेद से व्याप्त
 होने से कारण ब्रह्मवादी इसे मेदिनी कहते हैं ॥११२॥ त्रिप्रण १ राजा पृथु द्वारा दुषीरूप में स्वीकार की जाने से यह
 रूखी कहलाई ॥११३॥ पृथु ने पृथ्वी को विभक्त कर उसका तत्कार किया, जिससे यह घन, प्राण्य, मौव, नगर
 आदि से समृद्ध हुई ॥११४॥ इस तरह प्रतापी और नृपधेष्ठ राजा पृथु प्राणियों में पूज्य और प्रणम्य बन, इसमें
 शयन नहीं ॥११५॥ वैद-वेदांगों में पारगण महाभाग ब्राह्मणों को चाहिए कि खतानन और ब्रह्मयानिपुण को ही नमस्कार
 करें ॥११६॥ राजत्व चाहने वाले महामाग राजाओं को भी परम प्रतापी आदिराजा पृथु को नमस्कार करना चाहिये ।
 ॥११७॥ युद्ध में जय की इच्छा रखने वाले पराक्रमी योद्धाओं को भी आदि राजा पृथु को नमस्कार करना
 चाहिये ॥११८॥ जो सैनिक राजा पृथु का स्मरण करने में युद्ध में जाता है, वह घोर संग्राम में भी विजयी होता है ।
 ॥११९॥ महायजनान् वैश्य भी जीविका देनेवाले महायज्ञस्वी पृथु को ही नमस्कार करें ॥१२०॥ उर्मा तरह

१ न. वित्तस्य । २ क. सा च पटिष्ठु । ३ क. रथाधवती च सा । ए० १४ ग. ०२४ नमस्कार्यो म ० १५ ग. ० मै
 फलेष्पुमि । १० ना-नराणु । १३ ग. ० यो वृत्तिदाता महायशः । या । ८ ग. ० गतार्ति बह्वी । १९ न. ० साय
 वैश्यः ।

तथैव शूद्रेः^१ शुचिभिस्त्रिवर्णपरिचारिभिः। पृथुरेव नमस्कार्यः श्रेयः परमिहेप्सुभिः॥१२१॥
एते वत्सविशेषाश्च दोग्धारः क्षीरमेव च। पात्राणि च मयोक्तानि किं भूयो वर्णयामि वः॥१२२॥

इति श्रीब्राह्मे महापुराणे पृथोर्जन्ममाहात्म्यकथनं

नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥४॥

पञ्चमोऽध्यायः

मन्वन्तर-वर्णनम्

श्रुयय ऊचुः

मन्वन्तराणि क्षत्र्याणि विस्तरेण महामते। तेषां पूर्व्वदिसृष्टिं च लोमहर्षण कीर्तय॥१॥
मावन्तो मनवश्चैव यावन्तं कालमेव च। मन्वन्तराणि भो सूत श्रोतुमिच्छाम तत्त्वतः॥२॥

लोमहर्षण उवाच

न क्षयो विस्तरो विप्रा वक्तुं वपंशतैरपि। मन्वन्तराणां सध्वेषा सक्षेपाच्छृणुत द्विजा॥३॥
स्वायम्भुवो मनुः पूर्व्वं मनुः स्वारोचिपस्तथा^१। उत्तमस्तामसश्चैव रैवतश्चाक्षुपस्तथा॥४॥

तीनों वर्णों की सेवा करने वाले पवित्र शूद्र भी परम कल्याण के लिए पृथु को ही नमस्कार करे॥१२१॥ ये विशेष बछड़े, दुहने वाले, दूध और पात्र देने वतला दिये। अब और क्या वर्णन कहें, कहिये॥१२२॥

श्री ब्रह्ममहापुराण में पृथु का जन्म माहात्म्य-वचन नामक चौथा अध्याय समाप्त ॥४॥

अध्याय ५

मन्वन्तरो का वर्णन

मुनियों ने कहा—महाप्राज्ञ लोमहर्षण, सभी मन्वन्तरो और उनकी पूर्व्वसृष्टि का वर्णन विस्तार से कीजिये॥१॥
महामाग सूत^१। जितने मनु, जितने काल और जितने मन्वन्तर हुए हैं, उनको तत्त्वतः हम श्रुतना चाहते हैं॥२॥

लोमहर्षण बोले—विप्रवृन्द^२। सभी मन्वन्तरो का विस्तार पूर्व्वक वर्णन मैं तो वर्षों में भी नहीं कर सकता। इसलिये संक्षेपतः श्रवण कीजिए॥३॥

सर्वप्रथम स्वायम्भुव मनु हुआ। उसके बाद क्रमशः स्वारोचिप, उत्तम, तामस, रैवत और चाक्षुप—ये मनु हुए॥४॥

वेवस्वतश्च भो विप्रा साम्प्रत मनुहृष्यते। सार्वणिश्च मनुस्तद्वैश्यो^१ रोच्यस्तथैव च॥५॥
 तथैव मेहसावर्ण्यश्चत्वारो मनव स्मृता। अतीता वर्त्तमानाश्च तथैवानागता द्विजा॥६॥
 कीर्त्तिता मनवस्तुभ्य मयैवंते यथाश्रुता। ऋषीस्त्वेषा प्रवक्ष्यामि पुत्रान्देवगणास्तथा॥७॥
 मरीचिरत्रिभंगवानङ्गिरा पुत्रह क्तु। पुलस्त्यश्च वशिष्ठश्च सप्तंते ब्रह्मण सुता॥८॥
 उत्तरस्या विशि तथा द्विजा सप्तर्षयस्तथा। अग्निधरश्चाग्निबाहुश्च मेधो^२ मेधातिथिर्वसु^३॥९॥
 ज्योतिष्मान्द्युतिमान्हव्य^४ सबल पुत्रसप्तक। मनो स्वायम्भुवर्यंते दश पुत्रा महोजस॥१०॥
 एतदं प्रथम विप्रा मन्वन्तरमुदाहृतम्। और्वो वसिष्ठपुत्रश्च स्तम्भ^५ रुद्रय एव च॥११॥
 प्राणो बृहस्पतिश्चैव दत्तोऽग्निश्चयनस्तथा। एते महर्षयो विप्रा वायुप्रोक्ता महामता॥१२॥
 देवाश्च तुषिता गाय स्मृता स्वारोचिरेऽन्तरे। हविष्ठा^६ सुवृत्तिर्ज्योतिरापोमूर्तिरपि स्मृत॥१३॥
 प्रतीतश्च नभस्यश्च नभ^७ ऊर्जस्तथैव च। स्वारोचिस्त्वपुत्रास्ते मनोर्विप्रा महामन॥१४॥
 कीर्त्तिता नृषिवीर्या महावीर्यपराक्रमा। द्वितीयमेतत्कथित विप्रा मन्वन्तर मया॥१५॥
 इव तृतीय वक्ष्यामि तदुद्ध्यध्य द्विजोत्तमा। वसिष्ठपुत्रा सप्तासन् वासिष्ठा इति विश्रुता॥१६॥
 हिरण्यगर्भस्य सुता ऊर्जा जाता^८ सुतेजस। ऋषयोऽत्र मया प्रोक्ता कीर्यमानास्त्रिवीधतः॥१७॥
 औत्तमेमा मुनिधेष्ठा दश पुत्रात्मनोरिमान्। इप ऊर्जस्तनूर्जस्तु मधुर्माधव एव च॥१८॥
 शुचि शुक्र सहस्रैव नभस्यो नभ एव च। मानवस्तत्र देवाश्च मन्वन्तरमुदाहृतम्॥१९॥

द्विजवृन्दः इति गम्य वैदम्बन मनु है। सार्वणि रैस्य रच्य और सारगावण्य—य चारो मा मनु बहलगत हैं॥५॥
 द्विजवृन्दः अतत वनमान और मयिष्य म हान वास मनुआपो मैन अनुभुनि वै अनुसार आप लाया म बनला दिया,
 अत्र इनने कपि पुत्र और दवताआ का वणन कहेंगा॥६॥ मर नि अत्र भगवान् अगिरा पुत्रह क्तु पुस्त्य
 और वशिष्ठ—य सता ब्रह्मा वै पुत्र कहेंगा॥८॥ ब्रह्मणवृन्द उत्तर दित्त म य सता सप्तर्षि कहेंगा हैं।
 आग्नीध्र अग्निबाहु मध्य मेधातिथि वसु ज्योतिष्मान् रुनिमान् हव्य रव और पुत्र—ये महापराक्रमी दद्या
 पुत्र स्वायम्भु मनु व हुए॥९॥ ब्रह्मण्यगः यह पद्वन मन्तर का वणन मैन दिया है। वसिष्ठ का पुत्र और्व,
 स्तम्भ रुद्रय प्राण द्युम्पनि दत्त अत्रि अत्र ध्वषन—य वायु स कहें माए महाप्रवी महर्षि और तुषिति नामक
 देवता स्वाराचिष मन्वन्तर म हुए॥११॥ हविष्ठा सुवृत्ति ज्योति आग मुनि प्रतीत नभस्य नभ और ऊर्ज—
 य महर्मा स्वाराचिष मन्वन्तर म पुत्र व पणनमा सता हुए॥१३॥ यह दूगर मन्वन्तर का वणन मैन दिया॥१५॥
 विपवरः अत्र तयार मन्तर का दणत मै बरगा मुनिय। वशिष्ठ व माता पुत्र वासिष्ठ नाम म प्रशिष्ठ
 हुए॥१६॥ निष्पणगा व नभस्य दश ऊर्ज नाम म ग्याल हुए। मुनिष्यः अगिरा व चार म मैन बनला गिया॥१७॥
 अत्र अतिमि द दश पुत्रा नाम मुनिय—एव ऊर्ज ननुव मधु माधव गुचि शुक्र सह नभस्य और नभ। उग (मन्व
 न्तर) म मान् देवता हुए। यह मन्वन्तर मैन कह दिया॥१८॥ अत्र वायु मन्वन्तर व विषय म मै आपन कहेंगा।

१ ग ऋक्षोऽप्यार ०। २ ग म मरुता। ३ व ऋषिर्भु। ज्या ०। ४ ग ० मरुता मनुजन्तयैव च। ५ ०।
 ६ ग वरुणा। ६ व त्रिभिर्दया। ७ ग महावृत्ता। ८ व हविष्य। ९ व हविष्ठा ०। १० ग मन्वन्तर ०। ११ ग नाम।

मन्वन्तरं चतुर्थं व । कथयिष्यामि साम्प्रतम् । काव्यं पृथुस्तयंवाग्निर्जहन्नुर्धाता द्विजोत्तमा ॥२८॥
 'रूपोवानरूपोवाश्च तत्र सप्तपथो द्विजा । पुराणे कीर्तिता विप्रा पुत्रा योत्राश्च भो द्विजा ॥२९॥
 'तथा देवगणाश्चैव तामसस्यान्तरे मनो । द्युतिस्तपस्य सुतपास्तपोभूत । सनातन ॥३०॥
 तपोरतिरकल्माषस्तन्वी' धन्वी' परन्तप । तामसरय मनोरेते दश पुत्रा प्रकीर्तिता ॥३१॥
 वायुप्रोक्ता' मुनिश्रेष्ठाश्चतुर्थं चैतदन्तरम् । देवबाहुयं बुधश्च मुनिर्धैवदशिरास्तथा ॥३२॥
 हिरण्यरोमा पञ्चन्य ऊर्ध्वबाहुश्च सोमज । सत्यनेत्रस्तथात्रेय एते सप्तपथोऽपरे ॥३३॥
 'वेवाश्चाभूतरजस्तस्या प्रकृतय स्मृता । वारिण्यश्च रन्ध्रश्च' मनोरन्तरमुच्यते ॥३४॥
 'अथ पुत्रानिमास्तस्य बुध्यध्वं यदतो मम । घृतिमानव्ययो मुक्तस्तत्त्वदर्शी निहस्तुक ॥३५॥
 आरण्यश्च प्रकाशश्च 'निर्मोह' सत्यवाक्कृती । रैवतस्य मनो पुत्रा षड्व्यम चैतदन्तरम् ॥३६॥
 षष्ठं तु सम्प्रवक्ष्यामि तदबुध्यध्वं द्विजोत्तमा । भृगुर्नभो विस्त्वाश्च सुधामा विरजास्तथा ॥३७॥
 'प्रतिनामा सहिष्णुश्च सप्तमे' च महर्षय । चाक्षुषस्यान्तरे विप्रा' मनोर्देवास्त्वमे स्मृता ॥३८॥
 आबालप्रथितास्ते वै पृथक्त्वेन दिवोक्त । लेखाश्च नामतो विप्रा' पञ्च देवगणा स्मृता ॥३९॥
 शृपेरङ्गिरस पुत्रा महात्मा नमोऽस्य । नाडवलेया' मुनिश्रेष्ठा दश पुत्रास्तु विभृता ॥४०॥
 दशप्रभृतयो विप्राश्चाक्षुषस्यान्तरे मनो । षष्ठं मन्वन्तरं प्रोषत सप्तमं तु निबोधत ॥४१॥

ब्राह्मणपथो । काव्यं पृथु अग्नि जहन्नु धता कपीवान अर अकपावान—ये सातो ऋषि चतुथ मन्वन्तर मे हूए । तामस
 मन्वन्तरम मन के पुत्र पात्र तथा देवसमुह का भी वणन पुराण मे किया गया है ॥२० २१॥ द्युति तपस्य सुतपस तपो
 मन सनातन तप अतिकल्माष तन्वी धन्वी आर परतप—ये दगा पुत्र तामस मनु के कहलाये—एसा बापु का कहना
 है । यह बापा मन्वन्तर मैं वतला दिया ॥२२ २३२॥ (पाव मन्वन्तर म) देवबाहु बुधश्च मुनि धैवदशिरा हिरण्य
 रोमा पञ्चय सोम से उत्पन्न ऊर्ध्वबाहु अर अग्नि-पुत्र सयनत्र—ये सातो ऋषि हूए ॥२४ २५॥ रजोविह न प्रकृतियों
 देवता हूइ । वारिण्य आर रन्ध्र भी मनु के अन्तर कहलाते हैं ॥२६॥ अब मनु के पुत्रों के नाम मुनिये । घृतिमान
 व्यय मुक्त तत्त्वदर्शी निहस्तुक आरण्य प्रकाश निर्मोह सत्यवाक् अर कृती—ये रक्त मन के पुत्र हूए । यह पाँचवा
 मन्वन्तर मैं वणन किया ॥२७ २८॥ ब्राह्मणपथो । अब छठ के बारे मे कहूंगा मुनिये । भग नम विस्त्वा
 सुधामा विरजा अतिनामा आर सहिष्णु—ये सातो महर्षि चाक्षुष मन्वन्तर मे हूए ॥२९ ३०॥ लेखा नाम से प्रसिद्ध
 पाच देवता हूए जिनके नाम पृथक् रूप से बालन तक भी जानत हैं ॥३१॥ मुनिवर' अगिरा मुनि के महा
 पराजमी सह प्रमति दश पुत्र नाडवलेय नाम से प्रसिद्ध हूए ॥३२॥ चाक्षुष मन्वन्तर नामक छठा मन्वन्तर मैं वणन

१ क तु । ए चा २ क नश वं कथिवाश्च त ० । ३ ख सत्या । ४ व ० नो । घृतिस्तप सुतपस्यस्तपोभूत स ० ।
 ५ ख । ० पोमल २० । ६ व ० स्तविप ० । ७ क ० विविप ० । ८ क ० ० पा । ० ० । ९ ख ० क्तान्च भो विप्रश्च ० ।
 १० क भो नप । ११ व वारच भू ० । १२ ख ० ता । पारि ० । १३ ग वैश्वरच । १४ ख ग अरण्यच । १५ क
 निर्मो' । १६ व ० तिय मा । १७ ग ० प्तप्रतिम ० । १८ ख ० त्ते । १९ क ० ता । अग्रमन्त्रश्च चक्षुष पृथुगज्या
 निवाक्च । २० ख नाडले ० । २१ क ० ता । शु ० ।

अत्रिर्वसिष्ठो भगवान् कश्यपश्च महानृपिः। गौतमोऽथ भरद्वाजो विश्वामित्रस्तथैव च॥३४॥
 तथैव पुत्रो भगवान्चीकश्य महात्मनः। सप्तमो जमदग्निश्च ऋषयः साम्प्रतं दिवि॥३५॥
 साध्या रुद्राश्च विश्वे च वसवो मरुतस्तथा। आदित्याश्चाश्विनौ चापि देवौ वैवस्वतौ स्मृतौ॥३६॥
 मनोर्वैवस्वतस्येते वर्तन्ते साम्प्रतेऽन्तरे। इक्ष्वाकुप्रमुखाश्चैव दश पुत्रा महात्मनः॥३७॥
 एतेषां कीर्तितानान्तु महर्षीणां महोजसाम्। तेषां पुत्राश्च पौत्राश्च दिक्षु सर्व्वासु भो द्विजाः॥३८॥
 मन्वन्तरेषु सर्व्वेषु प्रागासन् सप्त सप्तकाः। लोके धर्मव्यवस्थार्थं लोकसंरक्षणाय च॥३९॥
 मन्वन्तरे ध्यतिक्रान्ते चत्वारः सप्तका गणाः। कृत्वा कर्म दिवं यान्ति ब्रह्मलोकमनामयम्॥४०॥
 ततोऽन्ये तपसा मुक्ताः स्थानं तत्पूरयन्पुत। अतीता वर्तमानाश्च ऋषेर्भजेन भो द्विजाः॥४१॥
 अनागताश्च सन्ति स्मृता दिवि महर्षयः। मनोरन्तरमासाद्य सावर्णस्येह भो द्विजाः॥४२॥
 रामो ध्यासस्तयात्रेयो दीप्तिमन्तो बृहस्पताः॥ भारद्वाजस्तथा द्रौणिरद्वत्यामा महाद्युतिः॥४३॥
 गौतमश्चाज्रश्चैव शरद्वात्राम गौतमः। कौशिको गालवश्चैव और्व्वः काश्यप एव च॥४४॥
 एते सप्त महात्मानो भविष्या मुनिसत्तमा। वैरो चैवाध्यरीर्वाश्च शमनो धृतिमान् वसुः॥४५॥
 अरिष्टश्चाप्यधृष्टश्च वाजी सुमतिरेव च। सावर्णस्य मनोः पुत्रा भविष्या मुनिसत्तमा॥४६॥
 एतेषां कल्पमुत्थाय कीर्तनात् सुखमेधते। यशश्चान्नोति सुमहाद्युत्माश्च भवेन्नरः॥४७॥

कर दिया। अब सातवें के विषय में सुनिये। ॥३३॥ अत्रि, वसिष्ठ, सगवान् कश्यप, गौतम, भरद्वाज, विश्वामित्र और ऋचीव महात्मा का सातवां पुत्र जमदग्नि—ये सब ऋषि इस समय स्वर्ग में हैं ॥३४-३५॥ साध्य, रुद्र, विश्वे-देव, वसु, मरुत् आदित्य और अश्विनीकुमार—ये सब देवता वर्तमान वैवस्वत मन्वन्तर के हैं ॥३६॥ इस मनु के इच्छाकु आदि दश पुत्र हैं ॥३७॥ ब्राह्मणवृन्द। पहले सभी मन्वन्तरो में लोक में धर्म व्यवस्था तथा लोक-संरक्षण के लिए दत्त कथित महान् तेजस्वी मर्त्यिया के तथा इनके पुत्र-पौत्रा के सब दिशाओं में सप्त सप्तक अर्थात् विभिन्न शात शात दल थे ॥३८-३९॥ मन्वन्तर बीत जाने पर बार सप्तक-गण कार्य समाप्त करके रोगादि से रहित ब्रह्मलोक को चले जाते थे ॥४०॥ तब दूसरे तपस्वी उस स्थान की वृत्ति करते थे। विप्रवृन्द। अतीत, वर्तमान और भविष्यत् इस त्रय में ये सात महर्षि स्वर्ग में बहे गये हैं ॥४१॥ विप्रवृन्द। सावर्ण मन्वन्तर में राम, व्यास, अत्रि-पुत्र, भारद्वाज, द्रोणाचार्य के पुत्र महातेजस्वी अवस्थामा, गौतम, अज्र, शरद्वाज नामक गौतम, कौशिक, गालव, और्व्व, काश्यप—य सात महात्मा होंगे ॥४२-४३॥ मुनिप्रेष्ठो। वैरी, अध्वरीवान्, शयन, धृतिमान्, वसु, अरिष्ट, अधृष्ट, वाजी, सुमति—ये सात महर्षि सावर्ण मनु के पुत्र होंगे ॥४४-४६॥ प्रातर्वाल उज्जर इनके नाम लेन से मनुष्य मुक्त, यश और पूर्ण आयु प्राप्त करता है ॥४७॥ विप्रवृन्द। य सप्तक गण मीने सत्त्वना बतला दिये। अब जाने वाले मन्वन्तरा

१ क ऋषियस्माच्च जहिरै। छा०। २ ख. ०पु प्रथिना सप्त। ३ क. ०श्च ऋषयाणि च मो। ४ क ०म्यस्याऽदितो दि०। म परयादितर दि०। ५ क ०सा। मर०। क. म. ०दस्याऽद्वजस्यै०। ७ क ०व भरद्वाजोऽथ गो०। ८ ख प्राप्य। ९ क सुमन्तो। १० ख. ०वैसदा। ए०।

एतान्युक्तानि भो विप्राः सप्तसप्त च तत्त्वतः । मन्वन्तराणि संक्षेपाच्छृणुतानागतान्यपि ॥४८॥
 सावर्णा मनवो^१ विप्राः पञ्च तद्वच्च निबोधत । एको वैवस्वतस्तेषां चत्वारस्तु प्रजापतेः ॥४९॥
 परमेष्ठिसुता^२ विप्रा मेरुसावर्ण्यांतां गताः । दक्षस्येते हि दौहित्राः प्रियायास्तनया नृपाः ॥५०॥
 महता तपसा युक्ता मेरुपृष्ठे सहोजसः । रुचेः प्रजापतेः पुत्रो रौच्यो नाम मनुः स्मृतः ॥५१॥
 भूत्यां चोत्पादितो देव्यां भौह्यो नाम^३ रुचेः सुतः । अनागताश्च सप्तैते कल्पेऽस्मिन्मनवः स्मृताः ॥५२॥
 तैरियं पृथिवी सर्वा सप्तद्वीपा सप्ततनू । पूर्णं युगसहस्रन्तु परिपाल्या द्विजोत्तमाः ॥५३॥
 प्रजापति (ते) इव तपसा संहारं तेषु नित्यशः । युगानि सप्ततिस्तानि साक्षाणि कथितानि च ॥५४॥
 कृतत्रेतादियुक्तानि मनोरन्तरमुच्यते । चतुर्दशैते मनवः कथिताः कीर्तिवर्धनाः ॥५५॥
 वेदेषु सपुराणेषु सर्वेषु प्रभविष्णवः । प्रजानां पतयो विप्रा धन्यमेषां प्रकीर्तनम् ॥५६॥
 मन्वन्तरेषु संहाराः संहारान्तेषु सम्भवाः । न श्रवयतेऽन्तस्तेषां वै वक्तुं वर्षशतैरपि ॥५७॥
 विसर्गस्य प्रजानां वै संहारस्य च भो द्विजाः । मन्वन्तरेषु संहाराः ध्रुयन्ते द्विजसत्तमाः ॥५८॥
 सदोपास्तत्र तिष्ठन्ति देवाः सप्तार्यभिः सह । तपसा ब्रह्मचर्येण धृतेन च समन्विताः ॥५९॥
 पूर्णं^४ युगसहस्रे तु कल्पो निःशेष उच्यते । तत्र भूतानि सर्वाणि इष्टान्यादित्यरदिमभिः ॥६०॥
 ब्रह्माणमप्रतः कृत्या सहादित्यर्णैर्द्विजाः । प्रविशन्ति सुरभ्रेष्ठं हरिनारायणं प्रभुम् ॥६१॥
 स्रष्टारं सर्वभूतानां कल्पाप्तेषु पुन पुनः । अव्ययं शाश्वतो देवस्तस्य सर्वमिदं जगत् ॥६२॥

के बारे में भी संक्षेप से सुन लीजिये ॥४८॥ ब्रह्माणवृन्द^१ सावर्णं मनु पाँच हैं, उन्हें सुनिये। उनमें से एक तो वैवस्वत मनु है और चार प्रजापति परमेष्ठी के पुत्र कहलाते हैं, जो मेरुसावर्ण्यान्त को प्राप्त हो गये हैं ॥४९॥ ये महोत्तमजी राजा, जिन्होंने सुमेरुपर्वत पर बड़ी तपस्या की है, प्रजापति दक्ष के दौहित्र हैं और प्रिया से इनकी उत्पत्ति हुई है ॥५०॥ प्रजापति रुचि का पुत्र रौच्य नामक मनु कहलाया ॥५१॥ रुचि का वह पुत्र, जो भूति नामक देवी से उत्पन्न हुआ था, भौह्य नाम से प्रसिद्ध हुआ। इस कल्प में ये सातों मनु होने वाले हैं ॥५२॥ ब्रह्माणवर^२ इनसे सातों द्वीप और नगरी सृष्टि यह सम्पूर्ण पृथिवी पूरे हजार युग तक चाली जायेगी है। प्रजापति की तपस्या से इनका तप भी नित्य होता रहता है ॥५३॥ सत्ययुग, त्रेता आदि सत्तर युग मन्वन्तर कहलाते हैं। वेदों और पुराणों में कीर्ति-वर्धक ये चंदिहा मनु प्रजा के स्वामी माने गये हैं। ब्रह्माणवृन्द^३ इनका वर्णन कल्पाण-नायक है ॥५४॥ मन्वन्तरी का संहार हुआ करता है और संहार के बाद फिर मन्वन्तर होते हैं। इनके अन्त का वर्णन संक्षेपों में भी नहीं किया जा सकता ॥५५॥ विप्रवर^४ मन्वन्तरी में प्रजा की सृष्टि तथा सत्तर सुते जाते हैं ॥५६॥ वहाँ सप्तार्यियों के साथ देवता लोग तपस्या, ब्रह्मचर्य और वेदों के प्रभाव से बच जाते हैं ॥५७॥ हजार युग पूर्ण हो जाने पर निःशेष नामक कल्प होता है, जिसमें सूर्य की चिरणों से सब प्राणी दग्ध हो जाते हैं ॥५८॥ ब्रह्माणवृन्द^५ तब समस्त प्राणी आदित्य-गणों के साथ ब्रह्मा जी आगे कल्पों कल्पा के अन्त में पुन पुन प्राणियों के सृष्टि-कर्ता, देव-भ्रेष्ठ तथा व्यापक हरि-नारायण में प्रविष्ट हो जाते हैं ॥५९॥ हरि भगवान् अव्यक्त और सनातन हैं। उन्हीं के अधीन यह सम्पूर्ण ससार

१ क. ० नवस्तावपञ्च । ख. नवस्ताव प० । २ क. ० प्रा मनुज० । ३ क. ० द्विजा । ४ क. ० म मनु स्मृत । ५ क. ० सप्तमुदा । ६ ग. पूर्णवर्ष० । ७ क. ग. ० अयमन्तर तेषा व० । ८ भरतर्ष० । ९ ग० ० वर्ष० ।

अत्र व.¹ कीर्तयिष्यामि मनोर्व्वस्वतस्य वै। विसर्गं मुनिशार्दूलः साभ्रप्रतस्य महाद्युतेः॥६३॥
 अत्र धंशप्रसङ्गेन कथ्यमानं पुरातनम्। यत्रोत्पन्नो महात्मा स हरिवृष्णिकुले¹ प्रभुः॥६४॥
 इति श्रीब्राह्मे महापुराणे मन्वन्तरकीर्तनं नाम
 पञ्चमोऽध्यायः॥५॥

षष्ठोऽध्यायः

आदित्योत्पत्ति-कथनम्

लोमहर्षण उवाच

विष्वक्वान् कश्यपाज्जज्ञे दाक्षायण्यां द्विजोत्तमाः। तस्य भार्याभक्तसंज्ञा स्वाष्ट्रो देवो विष्वक्वतः॥१॥
 सुरेश्वरोति¹ विष्वक्ता त्रिषु सोकेषु भाविनी¹। सा वै भार्या भगवतो मात्स्येण्डस्य महात्मनः॥२॥
 भर्तृरूपेण नातुष्यद्रूपयौवनशालिनी। संज्ञा नाम¹ सुतपसा सुदीप्तेन समन्विता॥३॥
 आदित्यस्य हि सद्रूपं मण्डलस्य सुतेजसा¹। गात्रेषु परिदग्धं वै नातिक्रान्तिमिवाभवत्॥४॥
 न खल्वसं भृतोऽण्डस्य इति स्नेहादभायत। अजानन् काश्यपस्तस्मात्मात्स्येण्ड इति चोच्यते॥५॥
 तेजस्त्रयधिकं तस्य नित्यमेव विष्वक्वतः। येनातितापयामास त्रीलोकान् कश्यपात्मजः॥६॥

है॥६२॥ मुनिवर्यं¹। अत्र मैं वर्तमान महातेजस्वी वैष्वक्वत मनु की सृष्टि का वर्णन आपसे करूँगा॥६३॥ वरा ने प्रसंग से मैं उस प्राचीन वृष्णि-कुल की वर्णन करूँगा, जिसमें वे सर्वसन्तिमान भगवान् हरि उत्पन्न हुए थे॥६४॥

श्री ब्रह्म महापुराण में मन्वन्तर-कीर्तन नामक पाँचवाँ अध्याय समाप्त॥५॥

अध्याय ६

सूर्य की उत्पत्ति का वर्णन

लोमहर्षण ने कहा—विप्रवर¹। कश्यप और दक्ष की पुत्री के संयोग से विष्वक्वान् (सूर्य) उत्पन्न हुआ। उस विष्वक्वान् की पत्नी त्वष्टा की पुत्री सज्ञा हुई॥१॥ भगवान् सूर्य की स्त्री (सज्ञा) तीव्र लोक में सुरेश्वरी नाम से विख्यात है॥२॥ तपस्या और कान्ति से युक्त सज्ञा सौन्दर्य और यौवन से परिपूर्ण थी। स्वामी का रूप उसे पसन्द न था॥३॥ जगत् में जलन पैदा करने वाला सूर्यमण्डल का वह तेजस्वी रूप उसे नहीं मालूम था॥४॥ उसने स्नेह से कहा कि यह अण्डस्थ मरना नहीं है। इसलिए कश्यप पुत्र (सूर्य) का नाम मात्स्येण्ड पड़ा॥५॥ उस विष्वक्वान् में अत्यन्त तेज होने के कारण वह तीनों लोकों को तपाने लगा॥६॥ विप्रवृन्द¹ अतितेजस्वी सूर्य ने

१ क. ते। २ क. ख. ऋक्षोद्भवः। ३०। ३ क. उरेणुरितं। ख. सुरेणुरितं। ४ क. मार्मिनी। ५ ख.

• म. स्वतः०। ६ क. ख. सुतेजसः।

श्रीण्यपत्यानि' भो विप्राः 'संज्ञायां तपतां वरः। आदित्यो जनयामास कन्यां द्वौ च प्रजापती ॥७॥
मनुर्वैवस्वतः पूर्व्वं धाद्वदेवः प्रजापतिः। यमश्च यमुना चैव यमजो सम्बभूवतुः ॥८॥
श्यामवर्णन्तु तद्रूपं संज्ञा दृष्ट्वा विवस्वतः। असह्यती तु स्वां छायां सवर्णां निर्म्ममे ततः ॥९॥
मायामयो तु सा संज्ञा तस्यां छायासमुत्थिताम्। प्राञ्जलिः प्रणता भूत्वा छाया संज्ञां द्विजोत्तमाः ॥१०॥
उवाच किं मया कार्यं कथयस्व शुचिस्मिते। स्थितास्मि तव निर्देशे शाधि मां वरवर्णिन ॥११॥

संज्ञोवाच

अहं यास्यामि भद्रं ते स्वमेव' भवनं पितुः। त्वयैव' भवने महां' वस्तव्यं निर्विशङ्कया ॥१२॥
इमो न बालको महां कन्या चैर्यं सुमध्यमा। सम्भाव्यास्ते न चास्येयमिदं भगवते क्वचित् ॥१३॥

सवर्णोवाच

आ कचप्रहणाद्देवि आ शापाग्रं व कहिचित्। आस्थास्यामि' नमस्तुभ्यं गच्छ देवि ययातुलम् ॥१४॥

लोमहर्षण उवाच

समादिश्य सवर्णान्तु तयैत्युक्ता तदा' च सा। त्वष्टुः' 'समीपमगमद्भ्रीडितेव तपस्विनी ॥१५॥
वितुः समीपना सा तु पित्रा निर्भत्सिता शुभा'। भर्तुः' 'समीपं गच्छेति नियुक्ता च पुनः पुनः ॥१६॥
आगच्छद्ब्रजया भूत्वाच्छाया रूपमनिन्दिता। कुरुनयोत्तरान् गत्वा तृणान्यय चचार ह ॥१७॥

सज्ञा से एक कन्या और दो प्रजापतिया को उत्पन्न किया। ॥७॥ पहले प्रजापति धाद्वदेव मनु विवस्वान् से उत्पन्न हुए। फिर यम और यमुना दोनों यमज (जुड़वा) उत्पन्न हुए। ॥८॥ विवस्वान् के श्यामवर्ण रूप को न सहती हुई सज्ञा ने अमन छाया सवर्णा को रचा ॥९॥ ब्राह्मणवर्य! माया से रची हुई वह छाया अजलि बौचकर सज्ञा के सामन खड़ी हो गई थीर बोली—हे गुहरी! मैं आपने अभीन हूँ आपने लिए मुझे क्या करना है? आज्ञा दीजिए ॥१०-११॥

सज्ञाबोली—वैरा बल्याण हो। मैं अपने पिता के घर जाऊँगी। तू मेरे घर में निभक होकर रह ॥१२॥
इन दोनों बालका तथा इस सुन्दरी कन्या का पालन-पोषण करता। चिन्तु यह रहस्य बभी मगधान् सूर्य से नहीं कहना ॥१३॥

सवर्णा बोली—जब तक मेरी चीटी नहीं पकड़ी जायगी और शाप नहीं पड़ेगा, तब तक मैं इस रहस्य को प्रकट नहीं करूँगी। देवि, सादर प्रणाम। आप आनन्द से जाइये ॥१४॥

लोमहर्षण ने कहा—इस तरह सवर्णा ने कहने पर उसको आज्ञा देकर तपस्विनी सज्ञा लज्जित-मौ होती हुई त्वष्टा के पास गई ॥१५॥ पिता ने समीप जाने पर पिता ने निडरत हुए, उस साध्वी से कहा—'तू अपने पति के पास जा।' और बार-बार इसके लिए प्रेरित किया ॥१६॥ तब वह अपने रूप को छिपा कर घोड़ी का स्वरूप धारण कर उत्तर दिशा म कुरुरेश से आकर पास चरन रणी ॥१७॥ 'यह सज्ञा है' ऐसा समझते हुए सूर्य ने दूधरी सज्ञा से

१ म ० नि र्दोष्य स०। २ क ० या मगवास्तत। आ०। ३ स ० रा ततो द्विजा। उ०। ४ स त्वयेद् म०। ५ स मन्वे। ६ स ध शुभे। ७ न ग ० मि मत तुभ्य। ८ स त्वयैव सा। ९ क पितु। १० क ० मद्भीतिव च त०। ११ क ख पुष्ट। १२ ग खे।

द्वितीयाया तु सजायां सजेयमिति चितयन्। आदित्यो जनयामास पुत्रमात्मसम तदा ॥१८॥
 पूर्वजस्य मनोविप्रा सदृशोऽयमिति प्रभु। मनुरेवाभयप्राप्ता साधन' इति चोच्यते ॥१९॥
 द्वितीयो य सुतस्तस्या ' स विज्ञेय शनैर्दधर। सजा तु पार्थिवी दिप्रा स्वस्य पुत्रस्य वै तदा ॥२०॥
 चक्षुराम्पदिक स्नेह न तथा पूर्वजेषु वै। मनुस्तस्या क्षमत्तु यमस्तस्या ' वक्षमे ॥२१॥
 स वै रोयाच्च बाल्याच्च भाविनोऽयस्य वानघ। पदा ' स तज्जयामास सजा वयस्वतो दम ॥२२॥
 त ' शशाप तत क्रोधात 'सायर्जनवदी तदा। चरण पततामेष तवेति भृशदु खिता ॥२३॥
 यमस्तु 'ततपितु सव्यं प्राञ्जलि' प्रत्यवेदयत। भृश शापभयोद्विग्न सजावायवैविर्वाङ्मुत ॥२४॥
 शापोऽय विनिवर्त्तत' प्रोवाच पितर द्विजा '। माप्रा स्नेहेन सव्येषु वर्त्तितव्य सुतेषु य ॥२५॥
 'सेयमन्मानपास्येह' विवस्वन सम्बभूवपति। तस्या भयोघात' पादो न तु देहे निपातित' ॥२६॥
 बाल्याद्वा यदि वा ॥ लोत्पा'मोहात्तत्क्षन्तुमहसि'। शप्तोऽहमस्मि लोकेश जनमा तपता वर।
 तव प्रसादाच्चरणो न पतेन्मम गोपते ॥२७॥

विवस्वानुवाच

असंशय पुत्र मद्बभूवविषयस्य कारणम। येन स्वामाविशत क्रोधो धम्मज्ञ सत्यवादिनम ॥२८॥
 न शापयेतमित्या मु कर्त्त मातृयचस्तव। कुमयो मासमादाय यास्यन्त्यवननिमेव च ॥२९॥

अपन समान पुत्र उत्पन्न किया ॥१८॥ ब्राह्मणो यह (बालक) अपने पूर्वज मनु व समान था। इसलिए मनु ही इसका नाम पड़ा। यह सावण भी कहलाता है ॥१९॥ उस (सवर्णा) के दूसरे पुत्र को शनश्चर समझिये। निम्न'। सवर्णा सजा के पुत्रों की अपेक्षा अपन पुत्रों से अधिक स्नेह करता थी ॥२०॥ मनु ने तो छाया का यह व्यवहार सह लिया पर यम नहीं सह सका ॥२१॥ उस सून-पुत्र यम न काय व वारण या ध्वषण के कारण या होनहार के बल से सवर्णा को पैर से ताड़न किया ॥२२॥ तब अत्यन्त दुःखी होकर क्रोध से सवर्णा न उसको शाप दिया—
 तेरा यह पर गिर जाए ॥२३॥ ब्राह्मणो! शाप के भय से अथवा जबल होकर छाया के वचनों से शक्ति होत हुए यम ने हाथ जोड़कर अपने पिता से निवेदन किया— ॥२४॥ मेरा शाप दूर कीजिये। माता को सब पुत्रों ने समान भाव से बतना चाहिये। पर यह हमको छोड़कर छोटी पर अधिक स्नेह करती है। इसलिए बालमाव से या मूलता से मैंने उसपर पर तो उठाया पर देह पर गिराया नहीं ॥२५ २६॥ यह मेरा अपराध क्षमा कीजिये। लोक-पति महातजस्विन माता न मुझ शाप दिया है आप कृपा कर जिससे कि मेरा पर न गिरे पाये ॥२७॥

सून ने कहा—पुत्र! नि सन्देह इसमें कोई महान कारण होगा जिससे कि तुम जैसे धर्मिमा अर सत्यवादी को क्रोध उत्पन्न हो गया ॥२८॥ तुम्हारी माता के वचन को मैं मिथ्या नहीं कर सकता। कुमि (छोटे वीर) तुम्हारे पर से मास ले लेकर पृथ्वी पर जायगे ॥२९॥ इस तरह तुम्हारी माता का वचन सत्य होगा। शाप का

१ क ग सावण्य। २ ख ०स्तस्या ख। ३ ख सताड्यामास। ४ ख सा। ५ क ग ०व्यञ्ज०। ६ ख स्वपितु ७ ग ०ति प्रो०। ८ क ख तदा। ९ ख ०नप्राप्य यवायास। १० ग ०ह यवायास। ११ ख वा मोहात्तद भवान् क्षनु०। १२ ख ०हति। ख०।

कृतमेवं वचस्तथ्यं मातुस्तव भविष्यति। शापस्य परिहारेण त्वं च त्रातो भविष्यसि॥३०॥
आदित्यश्चाब्रवीत् संज्ञां किमयं तनयेषु वै। तुल्येष्वभ्यधिकः स्नेह एकस्मिन् क्रियते त्वया॥३१॥
सा तत् परिहरन्ती तु नाचक्षते विवस्वते। स चात्मानं समाधाय योगात्तथ्यमपश्यत्॥३२॥
तां शप्नुकामो भगवान्नाशपन्मुनिसत्तमाः। मूर्द्धजेयु निजग्राह स तु तां मुनिसत्तमाः॥३३॥
ततः सध्वं ययावत्तमाचक्षते विवस्वते। विवस्वानय तच्छ्रुत्वा नुद्धस्तवष्टारमभ्यगात्॥३४॥
दृष्ट्वा तु तं ययान्यायमच्चञ्चयित्वा विभावसुम्। निर्वन्धुकाम रोषेण सान्त्वयामास वै तदा॥३५॥

त्वष्टीवाच

तयातितेजसाविष्टमिदं रूपं न शोभते। असहन्ती च संज्ञा सा वने चरति शङ्खले॥३६॥
द्रष्टा हि तां भवानद्य स्वा भाव्यां शुभचारिणीम्। इलाध्यां योगबलोपेतां योगमास्थाय गोपते॥३७॥
अनुकूलं तु ते देव यदि स्यान्मम। सम्मतम्। रूपं निर्वन्त्याभ्यद्य तव कान्तमरिन्दम॥३८॥
ततोऽभ्युपागमह्यष्टा मात्संश्रय विवरवत्। भूमिमारोप्य तत्तेजः। सातयामास भो द्विजाः॥३९॥
ततो निर्भासितं रूपं तेजसा सहतेन वै। कान्तात् कान्ततरं। द्रष्टुमधिकं शुशुभे तदा॥४०॥
ददर्श योगमास्थाय स्वा भाव्यां ब्रह्मा ततः। अधृष्या सर्वभूतानां तेजसा नियमेन च॥४१॥
ब्रह्मावपुषा विप्राश्चरन्तीमकुतोभयाम्। सोऽवहरेण भगवास्ता मुखे समभावयत्॥४२॥

निबारण करके तुम भी सुरक्षित हो जाओगे' ॥३०॥ सूर्य ने छाया से कहा—'क्यों तुम समान पुत्रों में से एक पर अधिक स्नेह करती हो?' ॥३१॥ उसने उस रहस्य को गुप्त करती हुई सूर्य को उत्तर नहीं दिया। सूर्य ने भी योग से समाधि लगाकर सत्य का पता लगा लिया। ॥३२॥ मुनिश्रेष्ठो! भगवान् सूर्य ने उसको शाप देने की इच्छा रखने हुए भी शाप नहीं दिया, बल्कि उसका देश पकड़ लिया ॥३३॥ तब छाया ने सूर्य से सब वृत्तान्त कह दिया। सूर्य यह सुनकर क्रोध से त्वष्टा के पास गया ॥३४॥ जलान की इच्छा रखने वाले कुपित सूर्य को देखकर त्वष्टा ने समयाचित मत्कार करते उसको शान्त किया ॥३५॥

त्वष्टा ने कहा—'आपने इस अत्यन्त तेजस्वी रूप को न सहती हुई सज्ञा छोड़ी बनकर वन को दूरियाली में चली है ॥३६॥ हे सूर्य! आज आप ब्रह्माण्डमयी, प्रसथा के योग्य और योगचल से युक्त अपनी पत्नी को देखोगे ॥३७॥ हे शत्रु-नाशन! हे देव! यदि मेरी सलाह को आप अनुकूल समझें तो आज मैं आपने रूप को सुन्दर बना दूँ ॥३८॥ ब्राह्मणो! तब सूर्य की स्वीकृति पाकर त्वष्टा ने आम्रण-यन्त्र के द्वारा सूर्य के तज को छिन्न भिन्न अर्थात् सूक्ष्म कर दिया ॥३९॥ इससे (अर्थात् तज के सन्निपत्त हो जाने से) अत्यन्त भव्य रूप हो गया। तब वह सुन्दर से सुन्दर रूप पहने से अधिक मुगोभित होने लगा ॥४०॥ ब्राह्मणो! तत्पश्चात् सूर्य ने समाधि लगाकर अपनी पत्नी छोड़ी को देखा। वह तेज और नियमों में सब प्राणियों से बढ़कर थी ॥४१॥ छोड़ी का शरीर धारण कर निर्भय होकर वह चर रही थी। भगवान् सूर्य ने अब न स्वयं बनाकर मय्युन के लिए चेष्टा करती हुई अपनी पत्नी के मुख में

मधुनाय विचेष्टन्तीं परपुंसोऽयशङ्कया । सा तन्निरवमच्छृङ्ग नासिकाम्यां विवस्वत ॥४३॥
 देवी तस्यामजायेतामश्विनो भिषजां यरो । नासत्यश्चेव दत्तश्च स्मृतो द्वावश्विनविति ॥४४॥
 'मातं०डस्यात्मजायेतावष्टमस्य प्रजापते । ता तु रूपेण कातेन दशंयामास भास्वर ॥४५॥
 सा तु दृष्ट्वैव भर्तारं ततोय मुनिसत्तमा । यमस्तु कर्मणा तेन भूश पीडितमानस ॥४६॥
 घर्मेण रञ्जयामास घर्म्मराज इमा प्रजा । स लेभे कर्मणा तेन शुभेन परमद्युति ॥४७॥
 पितृणामाधिपस्य च लोकपालत्वमेव च । मनु प्रजापतिस्त्वासीत्सार्वाणः स तपोधना ॥४८॥
 भाव्यः समागते तस्मिन्मनु सार्वणिजेऽन्तरे । मेरुपृष्ठे तपो नित्यमद्यापि स चरत्युत ॥४९॥
 ज्ञाता शनैश्चरस्तस्य ग्रहस्य स तु लब्धवान् । त्वष्टा तु तेजसा तेन विष्णोश्चक्रमवत्पयत् ॥५०॥
 तदप्रतिहृतं पृष्ठे दानवान्तर्चिकीर्षया । ययोयसी तु साध्यासीदयामो रुद्रा यशस्थिनो ॥५१॥
 अभवच्च तारिच्छेष्टा यमुना लोमपायनी । मनुरित्युच्यते लोके सावर्णं इति चोच्यते ॥५२॥
 द्वितीयो य सुतस्तस्य मनोभर्ता दानैश्चर । ग्रहस्य स च लेभे यै सध्वंलोकाभिपूजित ॥५३॥
 य इदं जन्म देवानां श्रुणुयात्परसत्तम । थापद प्राप्य मृधेत प्राप्नुयाच्च महद्यशः ॥५४॥

इति श्रीब्राह्मे महापुराणे आदित्योत्पत्तिकथन

नाम षष्ठोऽध्यायः ॥६॥

मैधुन किया ॥४२॥ उसने दूसरे पुरुष की शक्ता से मूय के घाय को अपनी नाक के द्वारा बाहर निकाल दिया ॥४३॥
 उससे वैद्यो ने श्रष्ट और निर्व्यरूप वाले अश्विनीकुमार उत्पन्न हुए । दाना अश्विनीकुमार नामय अरु दत्त नाम से
 विख्यात हुए ॥४४॥ ये दाना अठिब प्रजापति मातृशु क पुत्र हुए । पदवात मूय न दिश्य रूप से अपनी भर्मा को
 देवा ॥४५॥ ब्राह्मणश्रष्टी ! वह अपन स्वामी को देखत ही सन्तुष्ट हो गई । यम उस कम से अत्यन्त दुखी
 हुआ और घमराज नाम से ख्यात होत हुए घमपुत्र प्रजा का पालन करने लगा ॥४६॥ प्रजापालनरूप शुभ कम
 के द्वारा अत्यन्त कान्तिमान् यम ने पितरो का स्वामित्व तथा लोकपाल का पद प्राप्त किया । वह तपस्वा सवगा
 पुत्र सार्वणि मन्वन्तर मे प्रजापति मनु होगा ॥४७ ४८॥ वह आज भा मेरुपर्वत के पृष्ठभाग मे तप कर रहा
 है ॥४९॥ उसका भाई शनैश्चर यह हुआ । त्वष्टा न दैत्या के नाश करे की इच्छा से मूय क उस ऋज से युद्ध म
 नष्ट न होत बाला विष्णु का चक्र बनाया ॥५०॥ वह भी प्रशस्त यशवाली यम का छोटी बहन नदिया मे श्रष्ट अरु
 लोगो को पवित्र करने वाली यमुना नाम से ख्यात हुई ॥५१॥ लोग मनु अरु सावर्ण दोना नाम कहत हैं ॥५२॥
 मूय का दूसरा पुत्र जो मनु का भाई शनैश्चर कहलाता है सध्वं लोको क पूजन योग्य ग्रहमात्र को प्राप्त हुआ ॥५३॥
 जो मनुष्य देवताया के इस जन्म को सुनना वह सब विपत्तियो से बचकर महान् यश प्राप्त करेगा ॥५४॥

श्री ब्रह्म महापुराण मे मूय-जन्म कथन नामक छठा अध्याय समाप्त ॥६॥

सप्तमोऽध्यायः ।

सूर्यवश वर्णनम्

लोमहर्षण उवाच

मनोर्व्वस्वतस्यासन पुत्रा वै नव तत्समा १। इक्ष्वाकुश्चैव नाभागो धृष्ट शर्पातिरेव च ॥१॥
नरिष्यन्तश्च १ पाठो १ वै प्राज्ञ रिष्टश्च सप्तमः । कल्पश्च १पृषधश्च नवते मुनिसत्तमा ॥२॥
अकरोत् पुत्रकामस्तु १ मनुरिष्टि प्रजापति । मित्रावरुणयोर्विप्रा पृथ्वमेव महामति ॥३॥
अनुत्पन्नेषु बहुषु पुत्रेष्वेतेषु भो द्विजा । तस्या च वर्त्तमानायामिष्टया च द्विजसत्तमा ॥४॥
मित्रावरुणयोरोशो १नुराहुतिमावहत् १ तत्र दिव्याम्बरधरा दिव्याभरणभूषिता ॥५॥
दिव्यसहनना चैव इला जज्ञ इति श्रुति । तामिलेत्येव १ होवाच मनुर्वण्डधरस्तदा ॥६॥
अनुगच्छस्व मा भद्रे तमिला प्रत्युवाच ह । धर्मयुवतमिद वाक्य पुत्रकाम प्रजापतिम् ॥७॥

इलोवाच

मित्रावरुणयोरोशो जातास्मि वदता वर । तयो सकाशं यास्यामि न मा धर्महता कुह ॥८॥
संबन्धत्वा मनु देव मित्रावरुणयोरिला । शत्वान्तिक वरारोहा प्राञ्जलिर्वाक्यमब्रवीत् ॥९॥

अध्याय ७

सूर्यवशका वर्णन

लोमहर्षण ने कहा—द्विस्वत मनु के अपन ही समान इक्ष्वाकु नामाग धृष्ट शर्पाति नरिष्यन्त प्राज्ञ, रिष्ट कल्प आरपुषध—ये न, पुत्र ये ॥१॥ २॥ विप्रवृद्ध । इन पुत्रो की उत्पत्ति से पहले बुद्धिमान् प्रजापति मनु ने पुत्र की इच्छा से मित्रावरुण का यज्ञ किया ॥३॥ द्विजवध । उस वर्तमान यज्ञ में मनु ने मित्रावरुण के अश से अग्नि में बहुत-सी आहुतियाँ दी ॥४॥ उस यज्ञ में दिव्य वस्त्राभरण से अलङ्कृत तथा दिव्यरूपवती कन्या उत्पन्न हुई ॥५॥ दण्डधारी मनु ने उसका नाम इला रखकर कहा—पुत्रि । तुम मेरे साथ चलो । तब पुत्रार्थी प्रजापति से इला ने यह धर्म-युक्त वाक्य कहा ॥६॥ ७॥

इला बोली—हृ श्रुत वक्ता । मैं मित्रावरुण के अश से जनयी हूँ । इसलिये उन्हीं के पास जाऊँगी । आप मुझ धर्म से च्युत न कर ॥८॥ ऐसा कहकर वह सुन्दरी इला मित्रावरुण के पास चली गई और अञ्जलि बाँधकर बहने लगी ॥९॥

१ क श सप्तमा । २ स ० तस्तु ५० । ३ स ० ७० नामो गोरिष्टश्च सप्तमा । ४ ० । ४ ग पुरषश्च
५ व ० त्सु मुनिरि० । ६ क ० मात्राहोत् । ७ स ० वपत् । ८ व स ० ऐतीति हो० ।

इलोवाच

अंशोऽस्मि' युवयोजांता देवो किं करवाणि वाम्। मनुना चाहमुक्ता वा अनुगच्छस्य मामिति ॥१०॥
तो तथावादिनीं साध्वीमिलां धर्मपरायणाम्। मित्रश्च वरुणश्चोभावूचतुस्तां द्विजोत्तमाः ॥११॥

मित्रावरुणावूचतुः

अनेन तव धर्मेण प्रथयेण दमेन च। सत्येन चैव सुश्रोणि प्रीतो स्वो वरवर्णिनि ॥१२॥
आवयोस्त्व महाभागे ह्यातिं कथ्येति मास्पसि। मनोर्व्वंशकटः पुत्रस्तवमेव च भद्रिष्यसि ॥१३॥
सुद्युम्न इति विहृमातस्त्रिषु लोकेषु शोभने। जगत्प्रियो धर्मशीलो मनोर्व्वंशविचर्द्धनः ॥१४॥
निवृत्ता सा तु तच्छ्रुत्वा गच्छन्ती पितुरन्तिकात् ॥१५॥
घुधेनान्तरमासाद्य भैयुनापोपमन्त्रिता। सोमपुत्राद्बुधाद्विप्रास्तस्यां जतो पुह्ररवाः ॥१६॥
जनयित्वा ततः सा तमिला सुद्युम्नतां गता। सुद्युम्नस्य तु दायादास्त्रयः परमधार्मिकाः ॥१७॥
उत्कलश्च गयश्चैव विनताश्च ॥ भो द्विजाः। उत्कलश्चोरकला विप्रा विनताश्च ॥ पश्चिमाः ॥१८॥
विक्रूष्णां भुनिशाद्दूला गयस्य तु गया स्मृता। प्रविष्टे तु मनो विप्रा दिवाकरमरिन्दमम् ॥१९॥
दशधा तत्पुनः क्षत्रमकरोत् पृथिवीमिमाम्। इक्ष्वाकुर्गच्छेत्तदायादो मध्यदेशमवाप्तवान् ॥२०॥
कन्याभावात् सुद्युम्नो नैतन्नायमवाप्तवान्। वसिष्ठश्च नारदासीत् ॥ प्रतिष्ठाने महात्मनः ॥२१॥

इला ने कहा—हे देवताओ! आप दोनों के अश से मैं उत्पन्न हुई हूँ। किन्तु मनु न मुझे अपन साथ चलने के लिए कहा था ॥१०॥ अब आप मुझे आदेश दे, क्या करूँ? द्विजवर्द! उस धर्म-परायण साध्वी इला के ऐसा कहने पर मित्रा-वरुण ने उससे कहा ॥११॥

मित्रावरुण बोले—हे सुन्दर कटि वाली! हे महाभागे! तुम्हारे इस धर्म, विनय, शान्ति और सत्य से हम प्रसन्न हैं ॥१२॥ तुम हमारी पुत्री रूप में सद्यार में ह्याति होगी। हे शोभने! मनु का वश-वर्षक पुत्र तुम्हीं होगी ॥१३॥ जगत् प्रिय, धर्मात्मा और मनु-वश-वर्षक सुद्युम्न—इस नाम से तीनो लोक में विख्यात होगी। यह सुन्दर वह पिता के यहाँ से लौट पड़ी ॥१४—१५॥ तो अचरस पाकर चन्द्रमा के पुत्र वृष ने उससे रति की प्रार्थना की। और वृष से इला ने पुह्ररवा नाम का पुत्र उत्पन्न हुआ ॥१६॥ उसको उत्पन्न कर इला सुद्युम्न बन गई। विप्रवृद्ध! सुद्युम्न के परम धार्मिक तीन पुत्र हुए—उत्कल, गय और विनताश्च ॥१७३॥ सुनिश्चष्टो! उत्कल की उत्कला, विनताश्च की दिक्पश्चिमा और गय की गया नामक नगरी बनी ॥१८३॥ द्विजवृद्ध! जब मनु ने शत्रुसूदन सूर्य में प्रवेश किया, तब उसके पुत्रों न इस पृथिवी की फिर दस भागों में बाँट दिया ॥१९३॥ ज्येष्ठ पुत्र इक्ष्वाकु को मध्यदेश मिला ॥२०॥ कन्याभाव होने के कारण सुद्युम्न को यह राज्य नहीं मिला। ब्राह्मणवर! वसिष्ठ के वचन से धर्मराज सुद्युम्न की प्रतिष्ठा महात्मा पुरुषों के समान होने लगी ॥२१॥

१ ख. स्मि युव०। २ क. मनुवश०। ३ क. पयसिता। ४ ख. षाद्राज्ञा तस्माज्जसे। ५ क. विजिता०। ६ क. विजिता०। ७ क. धातदमूक्षत्र०। ८ क. तु कुक्षेत्रम०। ८ ख. कुक्षेत्रद०। ९ ग. तद्गुणम०। १० ख० नान्चाज्जती०।

प्रतिष्ठा धर्मराजस्य सुद्युम्नस्य द्विजोत्तमाः। तत्पुत्रवरवत् प्रादाद्राज्यं प्राप्य महायशः॥२२॥
मानवेयो मुनिश्रेष्ठाः स्त्रीपुंसोर्लक्षणैर्युतः। धृतवास्तामिलेत्येवं सुद्युम्नेति च विश्रुतः॥२३॥
नारिरप्यन्ताः शकाः पुत्रा नाभागस्य तु भो द्विजाः। अम्बरीषोऽभवत् पुत्रः पार्थिववर्षभसत्तमः॥२४॥
घृष्टस्य घाष्टिकं क्षत्रं रणदूतं बभूव ह। करूपस्य च फारुषाः क्षत्रिया युद्धकुर्मदाः॥२५॥
नाभागघृष्टपुत्राश्च क्षत्रिया वैश्यतां गताः। प्राञ्चोरेकोऽभवत्पुत्रः प्रजापतिरिति स्मृतः॥२६॥
नरिरप्यन्तस्य दायादो राजा दण्डधरो यमः। शयतिमियुनं त्वासीदानर्तो नाम विश्रुतः॥२७॥
पुत्रः कन्या सुकन्या च या पत्नी च्यवनस्य ह। आनर्तस्य तु दायादो रैवो नाम महावृत्तिः॥२८॥
आनर्तविषयश्चैव पुरी चास्य कुशस्थली। रैवस्य रैवतः पुत्रः ककुद्मो नाम धार्मिकः॥२९॥
ज्येष्ठः पुत्रः स तस्यासीद्राज्यं प्राप्य कुशस्थलीम्। स कन्यासहितः श्रुत्वा गान्धर्वं ब्रह्मणोऽन्तिके॥३०॥
मुहूर्तभूतं देवस्य तस्यो बहुयुगं द्विजाः। आजगाम स चैवाय स्वां पुरीं यादवैर्धृताम्॥३१॥
कृतां द्वारवतीं नाम घट्टद्वारीं मनोरमां। भोजवृष्णधर्कगुप्तां वसुदेवपुरोगमं॥३२॥
तत्रैव रैवतो ज्ञात्वा ययातस्वं द्विजोत्तमाः। कन्यां तां चलदेवाय सुभद्रां नाम रैवतोम्॥३३॥
दृष्ट्वा जगाम शिखरं मेरोस्तपसि संस्थितः। रमे रामोऽपि धर्मात्मा रैवत्या सहितः सुखी॥३४॥

महान् यशस्वी सुद्युम्न ने राज्य प्राप्त कर पुत्रवत् को दे दिया॥२२॥ मुनिवर । स्त्री-पुत्रप उभय लक्षणो से युक्त सुद्युम्न को देखकर लोग उसे हला और सुद्युम्न दोनों नाम से पुकारने लगे॥२३॥ विप्रबृन्द । नरिरप्यन्त के शक जाति वाले पुत्र हुए। नामाग के राजाओं में श्रेष्ठ अम्बरीष पुत्र हुआ॥२४॥ घृष्ट के युद्ध-गर्भी घाष्टिक नामक क्षत्रिय-पुत्र हुआ। करप के मुद्रामिमानी फारुष नामक क्षत्रिय-पुत्र थे॥२५॥ नामाग और घृष्ट के क्षत्रिय-पुत्र वैश्य बन गये। प्राञ्च के एक पुत्र हुआ जो प्रजापति कहलाया॥२६॥ नरिरप्यन्त का पुत्र यम दण्डकारी राजा हुआ। शयति के आनर्त नामक पुत्र और सुकन्या नामक पुत्री हुई। सुकन्या च्यवन मुनि की पत्नी बनी। आनर्त का पुत्र महातेजस्वी रैव हुआ॥२७-२८॥ आनर्त देव ने इसका राज्य था और कुशस्थली (द्वारका) राजधानी थी। रैव का धर्मार्ता पुत्र रैवत और ककुद्मी दोनों नाम से प्रसिद्ध हुआ॥२९॥ यह ज्येष्ठ पुत्र था और उसी को द्वारका का राज्य मिला। गान्धर्व वेद को सुनकर वह अपनी कन्या सहित ब्रह्मा के पास चला गया॥३०॥ वहाँ यह देवताओं की दो भर्तों के बराबर बहुत युगों तक उनके पास बहर गया। फिर यादवों से व्याप्त अपनी नगरी द्वारका पुरी नामक लौट आया॥३१॥ नगरी घट्टद्वारो वाली और मनोहर थी। भोज, वृष्णि और अन्धक वंशवाले, जिनमें वसुदेव प्रधान थे, उसकी रक्षा करते थे॥३२॥ विप्रवर । उसी नगर में श्रीकृष्ण के बड़े भाई चलराम ने ययाय तत्त्व की जानकारी रैवत रैवती नामक अपनी सुन्दरी कन्या चलदेव को समर्पित कर तपस्या करन के लिए मुनेश पर्वत पर चला गया। धर्मात्मा चलराम भी रैवती के साथ सुखपूर्वक रमण करने लगे॥३३-३४॥

१ ख ०त्येव मु०। २ ग विश्रुति। ३ ख. ०वस्तुविप्रतमा। घृ०। ४ ग रैवो। ५ ख ग. पुत्रगत०। ६ ख ०री पादपर्व०। ७ ख ०ता द्वारवती नाम्ना व०। ८ ख सततद्वैव०। ९ ग यायातस्य। १० ग. सभित।

मुनय उचुः

वथं बहुयुगे काले रमतीते महापते। न जरा रेवतीं प्राप्ता रघवं च ककुद्मिनम् ॥३५॥
मेरं गतस्य वा तस्य शर्यातिः सन्ततिः कथम्। स्थिता पृथिव्यामद्यापि श्रोतुमिच्छाम तत्त्वतः ॥३६॥

लोमहर्षण उवाच

न जरा क्षुत्पिपासा वा न मृत्युर्मनिसत्तमाः। ऋतुचक्रं प्रभवति ब्रह्मलोकं सदानपाः।
ककुद्मिनः स्वलोकं तु रेवतस्य गतस्य ह ॥३७॥
हुता पुण्यजनैर्विप्रा राक्षसैः सा कुशस्थली। तस्य भ्रातृशतं त्वासीद्दार्ढ्यमस्य महात्मनः ॥३८॥
तद्वक्ष्यमानं रक्षोभिर्दिशः प्राशामदच्युतः। विद्वतस्य च विप्रेन्द्रास्तस्य भ्रातृशतस्य वै ॥३९॥
अन्ववापस्तु सुमहास्तत्र तत्र द्विजोत्तमाः। तेषां ह्येते मुनिधेष्ठाः शर्याता इति विभृताः ॥४०॥
क्षत्रिया गुणसम्पन्ना दिक्षु सर्व्यासु विधृताः। सर्व्वशः सर्व्वगहनं प्रदिष्टारते महीजसः ॥४१॥
नाभागरिष्टपुत्रो द्वौ बंद्यौ ब्राह्मणता गतौ। वरुणस्य तु कारपाः क्षत्रिया मुष्टदुर्मन्दाः ॥४२॥
पुष्यद्रो हिंसयित्वा तु गुरोर्गां द्विजसत्तमाः। शपाच्छूद्रत्वमापन्नो नर्बते परिकीर्त्तिता ॥४३॥
वैवस्वतस्य तनया मुनेष्वं मुनिसत्तमाः। क्षुवतस्तु मनोर्विप्रा इक्ष्वाकुरभवत् सुतः ॥४४॥
तस्य पुत्रशतं त्वासीद्विषाकोर्भूरिदक्षिणम्। तेषां विकुक्षिज्येष्ठस्तु विकुक्षिरवादयोपताम् ॥४५॥

मुनिर्षो ने पूछ—महाप्रज! बहुत युग बीत जाने पर रेवती और ककुप्ती रेवत को बृद्धता क्यों नहीं प्राप्त हुई? ॥३५॥ या मेरु पर्वत पर उनके चले जाने पर शर्याति राजा की सन्तान आज भी पृथ्वी पर कैसे अवस्थित है? यह बात हम लोग तत्त्वत मुनना चाहते हैं ॥३६॥

लोमहर्षण बोले—निष्पाप मुनिवृन्द! बुद्धि, मूल, व्यास, मृत्यु और ऋतु-परिवर्तन आदि ब्रह्मलोक में नहीं हुआ करते हैं। ककुप्ती रेवत के देव-लोक चले जाने पर राक्षसों ने द्वारका पर अधिकार कर लिया ॥३७॥ उस धार्मिक राजा के सौ भाई थे, जो राक्षसों से पीड़ित होकर निमिष दिशाओं में भाग गये ॥३८॥ ब्राह्मणधेष्ठो! उन भागे हुए नदियों का वश बहुत बढ़ा था। उसी वश के लोग सब दिशाओं में शर्यात नाम से विख्यात सर्वगुण संपन्न क्षत्रिय थे। वे महान् तजस्वी क्षत्र और से सब वनों में प्रविष्ट हुए ॥३९-४१॥ नामागरिष्ट के वैश्य जाति वाले दो पुत्र ब्रह्मण बन गये। कश्यप के कश्यप नाम से प्रसिद्ध बुद्धिमानी क्षत्रिय उत्पन्न हुए ॥४२॥ विप्रवर! पुष्यद्र गुरु की गाय को मारने के कारण शाप से शूद्र हो गया। मुनिधेष्ठो! ये नौ पुत्र वैवस्वत मनु के कहलाये ॥४३॥ ब्राह्मणो! मनु की छीक से इक्ष्वाकु उत्पन्न हुआ ॥४४॥ इक्ष्वाकु के बहुत-सी दक्षिणा देने वाले सौ पुत्र हुए। उनमें विकुक्षि सबसे ज्येष्ठ था। वह पेट की गड़बड़ी के कारण युद्ध करने में अयमर्थ रहा ॥४५॥ परम धर्मज्ञ

१ क ०ति तत्र लो०। २ स ०दिमभवत् स्व०। ३ क म हता। ४ स ०त चाऽसी०। ५ स. ०दप्युत।
वि०। ६ क ०मा। एव ते तु मु०। ७ क तथामेते। ८ क ०ष्टाश्च म०। ९ म ०क्षिषा। १०। १० क. ०कुक्षि
धेष्ठ०। ११ क विकर्म रुद्रमतिम्। स विक्षयेण समन्वित। प्रा०।

प्राप्तः परमधम्मन्तः। सोऽप्योघ्याधिपतिः प्रभुः। शकुनिप्रमुखास्तस्य पुत्राः पञ्चशतं स्मृताः॥४६॥
उत्तरापथदेशस्य रक्षितारो महाबलाः। चत्वारिंशद्विंशत्यो च दक्षिणस्यां तथा दिशि॥४७॥
वशातिप्रमुखाश्चान्ये रक्षितारो द्विजोत्तमाः। इक्ष्वाकुस्तु विकुक्षि वा अष्टकायामयादिशत्॥४८॥
मांसमानय आढ्यायं मृगान् हत्वा महाबलः। आढ्यकर्मणि चोद्विष्टो अकृत्ये आढ्यकर्मणि॥४९॥
भक्षयित्वा शशं विप्रा शशादो मृगयां गतः। इक्ष्वाकुणा परित्यक्तो वसिष्ठवचनात् प्रभुः॥५०॥
इक्ष्वाको संस्थिते विप्राः शशादस्तु नृपोऽभवत्। शशादस्य तु दायादः वकुत्स्यो नाम वीर्यवान्॥५१॥
अनेनास्तु ककुत्स्थस्य पृथुश्चानेन स स्मृतः। विष्टराक्षः पृथोः पुत्रस्तस्मादाद्रस्तवजायत॥५२॥
आर्द्रस्य युवनाक्षस्तु आवस्तस्तत्सुतो द्विजाः। उज्जे आवस्तको राजा आवस्तो धेन निर्मिता॥५३॥
आवस्तस्य तु दायादो बृहद्वयो महोपतिः। कुवलाक्षः सुतस्तस्य राजा परमधार्मिकः॥५४॥
यः स धुन्धुदधाद्राजा धुन्धुमारत्वमागतः॥५५॥

मुनय उचुः

धुन्धोर्वधः महाप्राज्ञ श्रोतुमिच्छाम तत्स्वतः। दध्पात्कुवलाक्षोऽसौ धुन्धुमारत्वमागतः॥५६॥

लोमहर्षण उवाच

कुवलाक्षस्य पुत्राणां शतमुत्तमधन्विनाम्। सर्वे विद्यासु निष्णाता बलवन्तो दुरासदाः॥५७॥

विकुक्षि अयोध्या का शामक था। उसके शकुनि आदिपाँच सा पुत्र हुए॥४६॥ जिनमे से चालीस उत्तरापथ के और
अठारह दक्षिणापथ के महाबली रक्षक थे॥४७॥ ब्राह्मणश्रेष्ठो। वशाति आदि दूसरे भी रक्षक थे। एक समय
अष्टका (पितर और देवताओं का कर्म ब दिन) में इक्ष्वाकु ने विकुक्षि से कहा—‘महाबली! आढ्य के लिए मृगा
को मारकर मांस ले आओ’॥४८॥ ब्राह्मणो! आढ्यकर्म में निपुण विकुक्षि आढ्यकर्म के सम्पन्न हुए बिना
ही शरणांश को खाकर शिकार खेलने के लिए चला गया। तब वसिष्ठ ने आदेश से राजा इक्ष्वाकु ने (शरणांश खान
थाले) शशाद विकुक्षि का परित्याग कर दिया॥४९॥ इक्ष्वाकु के बाद शशाद राजा हुआ। शशाद का पुत्र
अतिशक्तिशाली वकुत्स्य हुआ।॥५१॥ वकुत्स्य से अन्नम् और अन्नम् से पृथु उत्पन्न हुआ। पृथु से विष्टराक्ष
और उममे आर्द्र हुआ।॥५२॥ विप्रवन्द! आर्द्र का पुत्र युवनाक्ष और उसका पुत्र आव्य हुआ। आव्य के पुत्र
आवस्तक ने आवस्त। नाम की नगरी बनायी।॥५३॥ आवस्तक का पुत्र राजा बृहद्वय हुआ। उसका पुत्र परम
धर्मात्मा राजा कुवलाक्ष हुआ, जिसका नाम धुन्धु नामक दैत्य का मारने से धुन्धुमार पड़ गया॥५४-५५॥

मुनिर्यो ने कहा—हे महाविद्वन्! हम धुन्धु के मारने का आख्यान तत्त्वबुद्धि के सुनना चाहते हैं, जिसके
मारने से कुवलाक्ष धुन्धुमार बहलामा॥५६॥

लोमहर्षण बोले—कुवलाक्ष के उत्तम अनुपम, सब विद्या-विशारद, बलवान्, सुन्दर, धर्मात्मा, यज्ञ-वर्ता और

१ न ० मंस पृथिव्याधि०। २ ख ० शिः। इन्द्र०। ३ ख ० अन्नस्य ०। ४ ख ० तः। दायादस्तु ५०।
५ क विष्णोरस ५०। ६ न. ख. यस्तु ५०। ७ क. ० य नय ब्रह्मज्यातु०।

बभूवुर्धार्मिकाः सर्वे यज्वानो भूरिवक्षिणाः। कुबलाश्वं पिता राज्ये बृहदश्वो न्ययोजयत् ॥५८॥
पुत्रसंक्रामितधीस्तु वनं राजा विवेश ह। तमुत्तङ्कोऽथ विप्रिषिः प्रयान्तं प्रत्यवारयत् ॥५९॥

उत्तङ्क उवाच

भवता रक्षणं कार्यं तच्च कर्तुं स्वमर्हसि। निरुद्धिमस्तपश्चतुं नहि शक्नोमि पार्थिव ॥६०॥
ममाश्रमसमीपे वं समेषु मरुधन्वसु। समुद्रो बालुकापूर्ण उद्दालक इति स्मृतः ॥६१॥
देवतानामवध्यश्च महाकायो महाबल। अन्तर्भूमिगतस्तत्र बालुकान्तहितो महान् ॥६२॥
राक्षसस्य मधोः पुत्रो धुन्धुर्नाम महासुरः। शेते लोकाविनाशाय तप आस्थाय दाहणम् ॥६३॥
संवत्सरस्य पय्यन्ते स निद्रवासे विमुञ्चति। यदा तदा भूमी तत्र चलति स्म नराधिप ॥६४॥
तस्य निद्रासवातेन रज उद्गच्छते महत्। आदित्यपथमावृत्य सप्ताहं भूमिकम्पनम् ॥६५॥
सविस्फुलिङ्ग साज्जारं सधूममतिदाहणम्। तेन तात न शक्नोमि तस्मिन् स्थातुं स्व आश्रमे ॥६६॥
तं मारय महाकायं लोकानां हितकाय्यया। लोका स्वस्था भवन्त्यद्य तस्मिन् विनिहते त्वया ॥६७॥
त्वं हि तस्य वधायकः समर्थः पृथिवीपते। विष्णुना च वरो दत्तो मह्यं पूर्व्वयुगे नृप ॥६८॥
यस्तं महासुरं रौद्रं हनिष्यति महाबलम्। तस्य त्वं वरदानेन तेजसाद्यापमिष्यसि ॥६९॥
न हि धुन्धुर्महते जास्तेजसाल्पेन शक्यते। निर्दग्धु पृथिवीपाल चिरं युगशतैरपि ॥७०॥

बहु-वक्षिणा-वाता सी पुत्र हुए ॥५७३॥ पिता बृहदश्व ने कुबलाश्व को राज्य प्रदान किया। इस प्रकार राज्य-जन्मी पुत्र ने अधीन कर राजा ने वन में प्रवेश किया। पर उत्तङ्क नामक ब्रह्मर्षि ने उसको आगे से रोक दिया ॥५८-५९॥

उत्तङ्क ने कहा—राजन्। तुम्हें रक्षा करनी चाहिये तुम उसके योग्य हो, मैं निश्चिन्ततापूर्वक तपस्या नहीं कर पाता ॥६०॥ क्योंकि मेरे आश्रम के समीप मरुधन्वा नामक देश में बालू से भरा हुआ समुद्र उद्दालक नाम से स्थात है ॥६१॥ वहाँ पृथ्वी के भीतर प्रवेश कर रेत से आच्छादित, देवताओं से भी अवध्य, महाकाय और महाबली गन्ध नामक राक्षस का पुत्र घुघु नामक महाराक्षस कठिन तपस्या करके लोक विनाश के लिए शयन करता है ॥६२-६३॥ पृथिवी-पाल। वर्षों के अन्त में जब वह गति छोड़ता है तब वहाँ भू-कम्प हो जाता है ॥६४॥ उसकी साँस में वायु से छड़कर घूल सूर्य के मार्ग को आच्छादित कर देती है। सात दिन तक पृथ्वी काँपती रहती है ॥६५॥ भूर्पू से युक्त अग्नि से अमानक चिनगादियाँ निकलने लगती हैं। तात। इसी कारण मैं अपने आश्रम में नहीं ठहर पाता हूँ ॥६६॥ जन-वत्याण की कामना से तुम उस महाकाय राक्षस को मारो। तुम्हारे द्वारा उसका वध हो जाने पर जनता स्वस्थ, सन्तुष्ट हो जायगी। ॥६७॥ राजन्। उसका वध करने में तुम्हीं समर्थ हो। पूर्व युग में विष्णु ने मुझे वरदान दिया था कि जो उस भयंकर महाराक्षस को मारेगा, उसने जेब की वरदान से तुम बड़ाओगे ॥६८-६९॥ पृथिवीपते। महातेजस्वी घुघु अल्प तेज से सैंकड़ों युगों तक वध नहीं किया जा सकता ॥७०॥ उसका महापराक्रम

१ क म सुग। २ क. ख ०श्वोऽमपेचय०। ३ ग प्रयात। ४ क. ख कर्तुमिदमर्ह०। ५ ख ०मुद्रवा०।
६ ख उज्जामक०। ७ ख ०त। दैव०। ८ ख अनुभूमि०। ९ ख ०सन्तुम०। १० ख ०र। सन्तुलो०।
११ क. लोकाश्च मुचमेयन्ते त०।

वीर्यञ्च सुमहत्तस्य देवरपि दुरासदम् । स एवमुक्तो राजपितृत्वेन महात्मना ।
कुवलाश्व सुत प्रादात्तस्मै धुन्धुनिवर्हणे ॥७१॥

बृहदश्व उवाच

भगवन्त्यस्तशस्त्रोऽहमय तु तनयो मम । भविष्यति द्विजश्रेष्ठ धुन्धुमारो न सशय ॥७२॥
स त व्यादिश्य तनय राजपिर्धुन्धुमारणे । जगाम पर्वतार्यैव नृपति सशितप्रत ॥७३॥

लोमहर्षण उवाच

कुवलाश्वस्तु पुत्राणा शतेन सह भो द्विजा । प्रायादुत्तङ्कसहितो धुन्धोस्तस्य निवर्हणे ॥७४॥
समाविशत्तदा विष्णुस्तेजसा भगवान् प्रभु । उत्तङ्कस्य नियोगाद्वै लोकाना हितकाम्यया ॥७५॥
तस्मिन् प्रयाते दुष्टपै दिवि हृद्यो महानभूत् । एष श्रीमानवधोऽद्य धुन्धुमारो भविष्यति ॥७६॥
दिव्यैरग्न्यैश्च माल्यैश्च त देवा समवाकिरन् । देवदुग्धभयदत्तैव 'प्रणेदुर्द्विजसत्तमा ॥७७॥
स गत्वा जयता 'श्रेष्ठस्तनयं सह वीर्यवान् । समुद्र खानयामास बालुकान्तरमव्ययम् ॥७८॥
तस्य पुत्रं जनद्भिश्च बालुकान्तरहितस्तवा । धुधुरासावितो विप्रा दिशमावृत्य पश्चिमागम् ॥७९॥
मुखजेनाग्निना क्रोधात्लोकानुद्वसंपन्निव । वारि सुव्राघ येनेन महोदधिरिवोरये ॥८०॥
सोमस्य मुनिशावर्बूला वरोन्मिकलिलो महान् । तस्य पुत्रशत दाय त्रिभिरननु रक्षसा ॥८१॥

वदतात्रा से मा अजय है । महात्मा उत्तक क एसा कहन पर राजपि न अपन पुत्र कुवलाश्व को धुधु-वध क निमित्त उस मुनि को दे दिया ॥७१॥

बृहदश्व ने कहा—भगवन् । मैं तब का ह्याम कर दिया है । किन्तु मरा यह पुत्र निसन्नेह धुधु को मारगा ॥७२॥ इसक बाद अपन पुत्र को धुधु-वध का आदेश देकर वह राजपि तपस्या करने क लिए पर्वत पर चला गया ॥७३॥

लोमहर्षण बोले—ब्राह्मणो । स धुवा को सग ले कुवलाश्व ने उत्तक के साथ धुधु का मारन के लिए प्रस्थान किया तो लोकहित के लिए उत्तक की आत्मा स भगवान् विष्णु उस कुवलाश्व के शरीर में प्रविष्ट हुए ॥७४॥ ७५॥ राजा के प्रस्थान करते ही आवागवाणा का महानाद हुआ कि यह राजा अवध्य है अर धुधु का मारगा ॥७६॥ देवताओं न उसक ऊपर दिव्य मुग्धित पुष्पा की वटि की । दुग्धमा वजन लगा ॥७७॥ जय गीला म थप्ट यह पराक्रमी राजा अपन पुत्रा के साथ जाकर बालू स परिपूर्ण समुद्र को मुन्दान लगा ॥७८॥ ब्राह्मणो । राजा-धुवा के शान्त के समय बालू के भीतर छिपा धुधु पश्चिम दिशा को दक कर खड़ा हो गया ॥७९॥ अर त्रोज से विश्व का सहार करने क लिए मुख स अग्नि निकलत हुए चन्द्रोदय म अत्यन्त तरंगित महासागर की तरह वेग से जल बढान लगा ॥८०॥ मुनिवन्द । राक्षस म तान को छो-कर सब धुवा को जला दिया ॥८१॥

ततः स राजा द्युतिमान् राक्षसं तं महाबलम् । आससाद महातेजा धुञ्धुं धुञ्धुविनाशनः ॥८२॥
 तस्य वारिमयं वेगमापीय स नराधिपः । योगेन वल्लिञ्च शमयामास वारिणा ॥८३॥
 निहत्य तं महाशायं बलेनोदकराक्षसम् । उत्तङ्कं दशयामास कृतकर्मा नराधिपः ॥८४॥
 उत्तङ्कस्तु वरं प्रादात्तस्मै राक्षसे महात्मने । ददौ तस्याक्षयं वित्तं शत्रुभिश्चापराजितम् ॥८५॥
 धर्मे रतिञ्च सततं स्वर्गं वासं तयाक्षयम् । पुत्राणां चाक्षयं लोकांश्च स्वर्गं ये रक्षसा हताः ॥८६॥
 तस्य पुत्राश्चयः शिष्टाः । द्वादशवो ज्येष्ठ उच्यते । चन्द्राश्वकपिलाश्वौ तु कनोयांती कुमारकी ॥८७॥
 धौन्धुमारैर्द्वादशस्य हर्म्यश्वदवात्मजः स्मृतः । हर्म्यश्वस्य निवृम्भोऽभूत् क्षत्रधर्म्मरतः । तदा ॥८८॥
 संहताश्वो निवृम्भस्य सुतो रणविशारदः । अक्रुशाश्वकृशाश्वौ तु संहताश्वसुतो द्विजाः ॥८९॥
 तस्य हंसवती जय्या सतां मता द्युपदती । विरुधाता प्रियु लोकेषु पुत्रशवास्याः प्रसेनजित् ॥९०॥
 लोमे प्रसेनजिद्भाय्या गौरी नाम पतिव्रताम् । अभिज्ञस्ता तु सा भर्मा नदी वं बाहृदाभवत् ॥९१॥
 तस्य पुत्रो महानासोद्युवनाश्वो नराधिपः । मान्धाता युवनाश्वस्य त्रिलोकविजयी सुतः ॥९२॥
 तस्य चैत्ररथो भार्या शशविन्दोः सुताभवत् । साखी विन्दुमती नाम रूपेणासदृशो भुवि ॥९३॥
 पतिव्रता च अयेष्टा च ज्ञातृणामपुत्रस्य वै । तस्यापुत्रपादयामास मान्धाता द्वौ सुतौ द्विजाः ॥९४॥
 पुरपुरसं च धर्म्मजं मुञ्चकुन्दं च पायिवम् । पुरकुत्ससुतरवासीरप्रसदरघुर्महीपतिः ॥९५॥

तब बालिमान् एव महानेक्षकी यह धुन्धुनाम राजा उस महाबली धुञ्धु के पाग पहुँचा ॥८२॥ उस योगी राजा ने
 बाणविषा के बल ने उसने जन्मय वेग को पीरकर जल में अग्नि को घाल दिया ॥८३॥ उस महाशाय जन्म-राक्षस
 को बल ने मारकर वृत्त रूप राजा ने उसको दिलाया ॥८४॥ उत्तङ्क ने उस राजपति का यह वरदान दिया—
 'अश्व धन मुझसे पाय होगा, शत्रुओं में पराजय मही होगा, धर्म में सदा अनुत्तम रहेगा, अश्व रूप में स्वर्ग में
 पाय होगा और तिन पुत्री को रणवने मार, उन्हें स्वर्ग में अश्व लोक मिले' ॥८५-८६॥ उस राजा के अर्वागष्ट
 तीन पुत्रों में द्वादश ज्येष्ठ था । कुशिर चन्द्राश्व और कपिलाश्व छोटे थे ॥८७॥ धुञ्धुमारपुत्र द्वादश के हर्म्यश्व
 नामक पुत्र उत्पन्न हुआ । हर्म्यश्व का महा क्षत्रिय-धर्म में उत्तर निवृम्भ नामक पुत्र हुआ ॥८८॥ निवृम्भ के पुत्र-
 कुशाश्व मन्धातव्य पुत्र हुआ । विरुद्ध । मन्धातव्य के दो पुत्र हुए—अक्रुशाश्व और कृशाश्व ॥८९॥ मन्धातव्य के
 धौन्धुमार के आश्वनामा और लोकाश्वनाम द्वादशी नाम में विख्यात हेमवती नामक जन्मा हुई । इनके प्रसेनजित्
 नामक पुत्र हुआ ॥९०॥ प्रसेनजित् की पतिव्रता जन्मी का नाम गौरी था । पति के साथ में मही गौरी बहूदा
 नामक नदी बन ॥९१॥ प्रसेनजित् का पुत्र युवनाश्व महान् राजा हुआ । युवनाश्व के त्रिलोक विजयी माधवा
 पुत्र हुआ ॥९२॥ शशविन्दु की जयरा चैत्ररथी उत्तरी भार्या हुई । वह अनुत्तम मुन्दरी, विन्दुनी नाम में प्रख्यात,
 पतिव्रता और दस हजार मातया में खल बनी थी ॥९३॥ द्विजपति । माधवा ने अपने दो पुत्र उत्पन्न किए—
 पुरपुरसं और राजा मुञ्चकुन्द । पुरपुरसं का पुत्र वधस्यु नामक राजा था ॥९४-९५॥ उनसे सदा में उत्पन्न

नम्मंदायामधोत्पन्नः 'सम्भूतस्तस्य चात्मजः। सम्भूतस्य तु दायवस्त्रिधन्वा रिपुमर्दनः॥९६॥
 राजस्त्रिधन्वनस्त्वासीद्विद्वान्त्रय्यारुणः' प्रभुः। तस्य सत्यव्रतो नाम कुमारोऽभूमहाबलः॥९७॥
 परिग्रहणमन्त्राणां विघ्नं चक्रे सुदुर्मतिः। येन भार्या कृतोद्वाहा हता' चंच परस्य ह॥९८॥
 बाल्यात् कामाच्च मोहाच्च साहसोच्चपलेन च। जहार कन्यां कामार्तः कस्यचित् पुरवासिनः॥९९॥
 अधर्मशङ्कुना तेन तं स त्रय्यारुणोऽप्यजत्। अपयंसेति बहुशो यदन् कोधस्तमन्वितः॥१००॥
 सोऽब्रवीत् पितरं त्यक्तः क्व गच्छामीति वै मुहुः। पिता च तमयोवाच श्वपार्कः सह वर्तय॥१०१॥
 नाहं पुत्रेण पुत्रार्या स्वयाद्य कुलपासन। इत्युक्तः स निराक्रामग्नराद्वचनात् पितुः॥१०२॥
 न च तं धारयामास वसिष्ठो भगवान्पुिः। स तु सत्यव्रतो विप्राः श्वपाकावसथान्तिके॥१०३॥
 पिना त्यक्तोऽवसद्द्वोरः पिताप्यस्य धनं ययौ। ततस्तस्मिंस्तु विषये मावर्पत् पाकशासनः॥१०४॥
 समा द्वादश भो विप्रास्तेनाधर्म्येण वै तदा। दारास्तु तस्य विषये विश्वामित्रो महातपाः॥१०५॥
 सन्यस्य सागरान्ते तु चकार विपुलं तपः। तस्य पत्नी गले बद्ध्वा मध्यमं पुत्रमौरसम्॥१०६॥
 शेषस्य भरणार्थाय श्यक्रोणाद्गोशतेन वै। तं च बद्धं गले दृष्ट्वा विक्रयार्थं नृपात्मजः॥१०७॥
 महाविपुत्रं धर्मात्मा मोक्षयामास भो द्विजाः। सत्यव्रतो महाबाहुर्भरणं तस्य चाकरोत्॥१०८॥
 विश्वामित्रस्य दुष्टपथं ननु कथयामेव च। सोऽभयद्गालघो नाम गले बन्धान्महातपाः।

समूत नामक पुत्र हुआ। समूत का पुत्र विजयवा शत्रु का मर्दन करनेवाला था॥९६॥ राजा विजयवा के त्रय्यारुण नामक विद्वान् पुत्र हुआ। उसने सत्यव्रत नामक महाबली कुमार हुआ॥९७॥ वह बड़ा दुष्टबुद्धि था, लोगों के विवाहों में बिघ्न करता था, दूसरे की विवाहिता पत्नी का अपहरण कर लेता था॥९८॥ उसने बचपन, काम, मोह, चाहस तथा सबलता के कारण काम से वीरित हो किसी नगरवासी की कन्या चुरा ली।॥९९॥ उसके अधर्माचरण के कारण त्रय्यारुण ने क्रोध से बहुत गालियाँ बकते हुए उसका परित्याग कर दिया। परित्यक्त पुत्र पिता से बारम्बार कहने लगा—'मैं कहाँ जाऊँगा?' तब पिता ने कहा—'बाडालों में साय रह। रे कुलागार! आज तुव जैसे पुत्र से मुझे कोई प्रयोजन नहीं है।'॥१००-१०१॥ इस प्रकार पिता के वचन से वह नगर से निकल गया॥१०२॥ भगवान् वसिष्ठ ने भी उसे जाने से नहीं रोका। विप्रगण! वह वीर सत्यव्रत पिता से त्यक्त होकर बाडाल के घर रहने लगा। उसका पिता भी वन चला गया॥१०३॥ बाह्यणो! तब इन्द्र ने बाह्य धर्मों तक उसने राज्य में दृष्टि नहीं की। महातपस्वी विश्वामित्र अपनी पत्नी को उसके राज्य में छोड़कर समुद्र-तट पर धीरे तपस्या करने लगे॥१०४-१०५॥ उनकी स्त्री अपने मझले पुत्र के गले को बाँध कर शेष कुटुम्ब के पालन के लिए उसे भी गावों के मूल्य में बेचने को चली॥१०६॥ विप्रवृन्द! इस प्रकार बेधे हुए महापुत्र को देखकर धर्मात्मा सत्यव्रत ने उसे छुड़ा दिया और विश्वामित्र की प्रसन्नता तथा अनुकम्पा के निमित्त उसका भरण-पोषण भी किया॥१०७-

महर्षिः कौशिको धीमांस्तेन] वीरेण मोक्षितः ।

इति श्रीब्राह्म महापुराणे सूर्यवंशनिर्णय नाम
सप्तमोऽध्यायः ॥७॥

अष्टमोऽध्यायः

सूर्यवंश वर्णनम्

लोमहर्षेण उवाच

सत्यव्रतस्तु भवत्या च कृपया च प्रतितया । विद्वामित्रकलत्र तु बभारु विनये स्थितः ॥१॥
हत्वा मुगान् घराहांश्च महिषाश्च घनेचरान् । विद्वामित्राश्रमाभ्यासे मासं धुक्षे बबन्ध च ॥२॥
उषानुवनमास्याय दीक्षां द्वादशवार्यिकीम् । पितृनिमोगादवसत्तस्मिन् धनगते नृपे ॥३॥
अयोध्यां चैव राज्यं च तयंथात् पुरं मुनिः । याज्ञोपाध्यायसमोपाध्यायसिष्ठः पर्यरक्षत ॥४॥
सत्यव्रतस्तु धात्याच्च भाविनोऽयं स्य वै बलात् । वसिष्ठेऽभ्यधिकं मयुः पारयामास नित्यदा ॥५॥
पित्रा हि तं तदा राष्ट्रात्पश्यमानं प्रियं तुतम् । निवारयामास मुनिबहुना कारणेन च ॥६॥

१०८॥ गले में मधुमन्त्र पढ़ने के कारण वह मुनि पुत्र गालव नाम से विख्यात महातपस्वी हुआ । विद्वान् महर्षि कौशिक की रक्षक बन कर ब्रह्मा जन्म के गये ॥१०९॥

श्री ब्रह्म-महापुराण में सूर्यवंश निरूपण नामक शास्त्रों अध्याय समाप्त ॥७॥

अध्याय ८

सूर्यवंश वा वर्णनं

लोमहर्षेण नै ब्रह्मा—उपवन में रह कर, विनय तथा प्रशिक्षण से विद्वामित्र की पत्नी का पालन करने लगा ॥१॥ वह मृग मूषक भैरव और जलो की जानवरों को मारकर मोक्ष के विद्वामित्र के आश्रम में पुनः परीक्षा देता था ॥२॥ राजा के बने जाने के बाद वह उषानुवन (अथ कोई नहीं जान रहा था नियम) स्वर्गारोहण यात्रा की दीक्षा लेकर पिता की आज्ञा के अनुसार रहने लगा ॥३॥ याज्ञोपाध्याय के सम्पर्क से वसिष्ठ जी अपाध्यायुरी, राज्य तथा अन्नपुर (उनिशठ) की देण्ड भरण करने लगे ॥४॥ सूर्यवंश बचान तथा मांसी के कारण वसिष्ठ जी के प्रति अविशेषित भय घालने लगे ॥५॥ जब पिता ने प्रिय पुत्र का राज्य से निवारण किया था तब वसिष्ठ जी ने अनेक कारणों से उत्तरा निवारण नहीं किया था ॥६॥ ब्रह्म-महापुराण (अर्थात् विवाह का

पाणिग्रहणमन्त्राणां निष्ठा स्यात् सप्तमे पदे। न च सत्यव्रतस्तस्माद्भूतवान् सप्तमे पदे ॥७॥
 जानन् धर्मवसिष्ठस्तु न मात्रातीति भो द्विजाः। सत्यव्रतस्तदा रोषं वसिष्ठे मनसाकरोत् ॥८॥
 गुणबुद्ध्या तु भगवान् वसिष्ठः कृतवांस्तथा। न च सत्यव्रतस्तस्य तमुपांशुमबुध्यत ॥९॥
 तस्मिन्नपरितोषश्च पितुरासीन्महात्मनः। तेन द्वादश वर्षाणि नावर्षत् पाकशासनम् ॥१०॥
 तेन त्विदानीं विहितां दीक्षां तां दुर्वहं भुवि। कुलस्य निष्कृतिर्विप्राः कृता सा वै भवेदिति ॥११॥
 न तं वसिष्ठो भगवान् पित्रा त्यक्तं न्यवारयत्। अभिवेक्ष्याम्यहं पुत्रमस्येत्येवंमतिमुनिम् ॥१२॥
 स तु द्वादश वर्षाणि तां दीक्षामवहद्वली। अविद्यमाने मांते तु वसिष्ठस्य महात्मनः ॥१३॥
 सर्वकामबुद्ध्या दोग्ध्रौ स ददर्श नृपालमजः। तां वै क्रोधाच्च मोहाच्च श्रमाच्चैव क्षुधान्वितः ॥१४॥
 देशधर्मगतो राजा जघात मुनिसत्तमा। तन्मांसं स स्वयं चैव विश्वामित्रस्य चात्मजान् ॥१५॥
 भोजयामास तच्छ्रुत्वा वसिष्ठोऽप्यस्य चक्रुधे ॥१६॥

वसिष्ठ उवाच

पातयेयमहं क्रूर तव शङ्कुमसंशयम्। यदि ते द्वाविमो शङ्कु न स्यातां वै कृतौ पुनः ॥१७॥
 पितुश्चापरितोषेण शूद्रदोग्ध्रीवधेन च। अप्रोक्षितोपयोगाच्च त्रिविधस्तं व्यतिक्रमः ॥१८॥
 एवं त्रीण्यस्य शङ्कूनि तानि दृष्ट्वा महातपः। त्रिशङ्कुरिति शोवाच्च त्रिशङ्कुस्तेन सस्मृतः ॥१९॥
 विश्वामित्रस्य च दाराणामनेन भरणं कृतम्। तेन तस्मै वरं प्रादामुनिः प्रीतिस्त्रिशङ्कुवे ॥२०॥

पर्यवसान) सप्तपदी मे जाकर होती है। इसलिए सत्यव्रत ने सप्तपदी मे कन्या का अपहरण नहीं किया ॥७॥
 विप्रवृत्त। 'वसिष्ठ धर्म को जानते हुए भी मेरी रक्षा नहीं कर रहे हैं' ऐसा सोचकर सत्यव्रत ने वसिष्ठ के प्रति
 मन मे क्रोध किया ॥८॥ भगवान् वसिष्ठ ने तो उसका हित समझ करके ऐसा किया था। पर सत्यव्रत ने उनका
 आशय नहीं समझा ॥९॥ उसके ऊपर महात्मा पिता का पूर्ण असंतोष था। इसलिए बारह वर्षों तक इन्द्र ने वर्षा
 नहीं की ॥१०॥ द्विजगण। 'बारह वर्ष की कठिन दीक्षा से इसके कुल का परिशोध (अर्थात् प्रायश्चित्त) हो
 जायगा। तब इसके पुत्र का अभिषेक मैं कर दूँगा।' ऐसा सोचकर भगवान् वसिष्ठ ने उसे नहीं रोका था, जब पिता
 ने उसका परित्याग कर दिया था ॥११॥१२॥ वह बारह वर्षों तक दीक्षा धारण किए रहा। (एकदिन) मांस मिलने
 पर महात्मा वसिष्ठ की कामधेनु गाय को राजपुत्र (सत्यव्रत) ने देखा ॥१३॥ मुनिश्रेष्ठो। भूले राजा ने
 क्रोध, मोह, और श्रम के कारण देशधर्म के अनुसार उस गाय को मार डाला ॥१४॥ उसके मांस को स्वयं भी
 खाया और विश्वामित्र के पुत्रों को भी खिलाया। यह सुनकर वसिष्ठ जी आय खड़ा हो गये ॥१५-१६॥

वसिष्ठ ने कहा—'दुष्ट। मैं तेरे शङ्कु (पाप या अपराध) को दूर कर देता, यदि तूने ये दो शङ्कु नहीं चिपे
 होते ॥१७॥ पिता का असंतोष, गुरु की गाय का वध और असंकृत मांस का भक्षण—ये तीन प्रतिकूल कार्य तूने
 चिपे हैं ॥१८॥ इस प्रकार उसके तीन शङ्कुओं को देखकर मुनि ने उसे 'त्रिशङ्कु' कहा। इसी से उसका नाम त्रिशङ्कु
 पड़ा ॥१९॥ विश्वामित्र ने स्त्री-बच्चों का पालन उसने किया था। इससे मुनि (विश्वामित्र) ने प्रसन्न होकर त्रिशङ्कु को

१ ख ०त। हत्वा मेनु ततो रा०। २ ख जयाम। ३ ख तु। ४ ख शङ्कुन सशयः। य०। ५ क ख गुरो-
 दोग्ध्री०। ६ क ख ०त्रस्तु दा०। ७ क ख ०यामागती भरणे इते। तदस्तस्मै।

छन्दमानो वरेणाय वर वध्रे नृपात्मज । सशरीरो ब्रजे स्वर्गमित्येव याचितो वर ॥२१॥
 अनावृष्टिभये तस्मिन् गते द्वादशवार्षिके । पित्र्ये राज्येऽभिषिध्याय याजयामास पार्थिवम् ॥२२॥
 मिषता देवतानां च वसिष्ठस्य च कौशिकः । दिवमारोपयामास सशरीरो महातपा ॥२३॥
 तस्य सत्यरथा नाम पत्नी कंकयवन्जा । कुमार जनयामास हरिश्चन्द्रमकल्मषम् ॥२४॥
 स ये राजा हरिश्चन्द्रस्यैशकुव इति स्मृतः । आहर्ता राजसूयस्य सम्पादिति ह विभ्रुतः ॥२५॥
 हरिश्चन्द्रस्य पुत्रोऽभूद्रोहितो नाम पार्थिवः । हरितो रोहितस्याथ चञ्चुर्हारित उच्यते ॥२६॥
 विजयश्च मुनिश्रेष्ठाश्चञ्चुपुत्रो बभूव ह । जेता स सत्वपृथिवीं विजयस्तेन स स्मृतः ॥२७॥
 'दक्षस्तनयस्तस्य राजा धर्मार्थकोविदः । दक्षस्य वृकः पुत्रो दृकादबाहुस्तु जज्ञिवान् ॥२८॥
 'हंह्यास्तालाद्दघादच निरस्यति स्म त नृपम् । तत्पत्नी गभमादाय और्वस्याश्रममाविशत् ॥२९॥
 'नासयो धार्मिकश्चैव स हि धर्मपुण्ड्रभवत् । सगरस्तु सुतो बाहोयज्ञे सह गरेण वै ॥३०॥
 और्वस्याश्रममासाद्य भागवेणाभिरक्षितः । आग्नेयमस्य लब्ध्वा च भागंवात् सगरो नृपः ॥३१॥
 जिगाय पृथिवीं हत्या तालजडपान सहहयानः । शकानां षट्पदानां च धर्मं निरसदध्युतः ॥
 क्षत्रियाणां मुनिश्रेष्ठा पारदानां च धम्मवित् ॥३२॥

मुनय ऊचुः

अथ स सगरो जातो गरेण्य सहाध्युतः । क्रिमर्यं च गवादीनां क्षत्रियाणां महोजस्तान् ॥३३॥

धर्मान्नुलोचितान राजा क्रुद्धो निरसदच्युत । एतन्न सव्यमाचदय विस्तरेण महामते ॥३४॥

लोमहर्षण उवाच

बाहोर्व्यसनिन पूर्वं हृत राज्यमभूत किल । हैहयैस्तालडजघैश्च शकं सार्द्धं द्विजोत्तमा ॥३५॥
यवना पारदाश्चैव काम्बोजा पल्लवास्तथा । एते ह्यपि गणा पञ्च हैहयार्यै पराक्रमम ॥३६॥
हूतराज्यस्तदा राजा स वै बाहोर्व्यसनिन । पत्न्या चानुगतो दुखी तत्र प्राणानवासृजत ॥३७॥
पत्नी तु यादवी तस्य सगर्भा पृष्ठतोऽज्ययात । सपत्न्या च यरस्तस्य दत्तं पूर्वं किलाप्या ॥३८॥
सा तु भर्तुश्चित्ता कृत्वा यने तामभ्यरोहत् । और्व्वस्तां भार्गवो विप्रा कारण्यात समवारयत ॥३९॥
तस्याश्रमे च गर्भं स गरेणैव सहाच्युत । ध्यजायत महाबाहु सगरो नाम पार्थिव ॥४०॥
और्व्वस्तु जातकर्मर्दिस्तस्य कृत्वा महात्मन । लघ्याप्य वेदशास्त्राणि ततोऽन्यत्र प्रत्यपादयत ॥४१॥
आनेय तु महाभागा अमरैरपि दुःसहम् । स तेनास्त्रबलेनाजो बलेन च समन्वित ॥४२॥
हैहयान विजयानान् क्रुद्धो रुद्र पशुनिव । आजहार च लोकेषु कीर्तिं कीर्त्तिमता यर ॥४३॥
ततः शकाश्च यवनान् काम्बोजान् पारदास्तथा । पहलवाश्चैव नि शोषान् कर्त्तुं ध्यवसितो नृप ॥४४॥
ते वध्यमाना घोरैरेण सगरेण महात्मना । दसिष्ठ शरण गत्वा प्रणिपेतुर्भनीयिणम् ॥४५॥
वसिष्ठस्तस्य सान दृष्ट्वा समयेन महाद्युति । सगर वारयामास तेषा इस्वामय तदा ॥४६॥
सगरः स्वा प्रतिज्ञा तु गुरोर्विक्रिय निशम्य च । धर्मे अघान तेषा वै वेशान यादयदार ह ॥४७॥

राजाजो को जनक कुल घनों से च्युत किया ? हे महाविद्वान् ! यह सब विस्तार से हमलोगों का बतलाये ॥३३॥ ३४॥

लोमहर्षण बोले—ब्राह्मणपटो ! पहिले हैहय तालजघ आर गन न दय्यसनी बाह्र के साथ बा अपहरण कर

लिया था ॥३५॥ शक घवन पारद काम्बोज आर पहलवा—ये भी पाच गण हैहय के सहायक थे ॥३६॥ तब राज्य
से वंचित बाहु बन चला गया । पत्नी भी पीछे से गई । दुखी होकर बाहु न बही पर प्राण त्याग कर दिया ॥३७॥
राजा की गमिणी पत्नी यादवी (यदवज में उत्पन्न) को सत न विष दे दिया ॥३८॥ वह बन में पति की चिता
पर जलन लगी । पर मनुष्यही आव न दयावान उसको जलन नहीं दिया ॥३९॥ मनि के आश्रम में विष के साथ
ही उसने गम स राजा मगर उत्पन्न हुआ ॥४०॥ आव न वालन का जातकम आदि सरकार करने उसे वेद शास्त्र
पढ़ाया । महामान् ! तब मनि न देवताओं से भी सहन न करने योग्य आन्यात्म उसको दिया ॥४१॥ सैना
से एक ही सगर मनि प्रदत्त अस्त्र से हैह्या को उधरे तरह मारन लगा जिस तरह कड़ हुए रुद्र न पाजो को मारा
था । मगस्थिया में श्रष्ट वह राजा ससार म अपनी काति फैलन लगा ॥४२॥ ४३॥ पश्चात् शको यवना काम्बोजो
पारदा आर पहलवा को नि नेप करने में राजा प्रवृत्त हुआ ॥४४॥ महामा वीर सगर के द्वारा विनष्ट हान हुए वे
सब विद्वान् वसिष्ठ की शरण में गये आर उनको दण्डवत् प्रणाम करने लगे ॥४५॥ तब महातजस्वी वसिष्ठ न उनसे
प्रतिज्ञा कराकर सगर को रोव दिया आर उधे जमयदान दिया ॥४६॥ सगर न अपनी प्रतिज्ञा याद कर आर गरु
के वाक्य सुनकर उनके धर्म का नाश किया आर उनसे वेशा को बदल दिया ॥४७॥ शका क आप शिर को आर

१ स ०मध्यरो० । २ स ०व । ३ स ०यदा स लो० । ३ स ०यस० । ४ स ०तदा स य० । ५ स ०नामजा
काम्बो० । ६ स ०गरस्ता प्र० ।

अद्वं शत्रूनां शिरसो मुण्डयित्वा व्यसर्जयत् । यवनानां शिरः सर्व्वं काम्बोजानां तथैव च ॥४८॥
 पारदा मुक्तकेशश्च पल्लवाः इमश्रुधारिणः । निःस्वाध्यायवपट्काराः कृतास्तेन महात्मना ॥४९॥
 शका यवनकाम्बोजाः पारदाश्च द्विजोत्तमाः* । कोणिसर्पा माहिषका दर्व्वदिचोलाः सकेरलाः ॥५०॥
 सर्व्वे ते क्षत्रिया विप्रा धर्मस्तेषां निराकृतः । वसिष्ठवचनाद्राज्ञा* सगरेण महात्मना ॥५१॥
 स धर्मविजयी राजा विजित्येषां वसुन्धराम् । अद्वं प्रचारयामास वाजिमेधाय दीक्षितः ॥५२॥
 तस्य चारयतः सोऽश्वः समुद्रे पूर्व्वदक्षिणे । घेलासमीपेऽपहृतो भूमिं चैव प्रवेशितः ॥५३॥
 स तं वेशं तदा पुत्रः खानयामास पायिवः । आसेदुस्ते तदा तत्र खन्यमाने महर्णवे ॥५४॥
 तमादिपुरुषं देवं हरिं कृष्णं प्रजापतिम् । विष्णुं कपिलरूपेण* स्वपन्तं पुरुषं तदा ॥५५॥
 तस्य चक्षुःसमुत्थेन तेजसा प्रतिबुध्यतः । दग्धाः सर्व्वे मुनिश्रेष्ठाश्चत्वारस्त्ववशेषिताः ॥५६॥
 बह्विकेतुः सुकेतुश्च तथा धर्मरथो नृपः । शूरः पञ्चनदश्चैव* तस्य वंशकरा* नृपाः ॥५७॥
 प्रादाच्च तस्मै भगवान् हरिर्नारायणो वरम् । अक्षयं वंशमिश्वाकोः कीर्त्तिं चाप्यनिर्व्वर्त्तनीम् ॥५८॥
 पुत्रं समुद्रं च विभुः स्वर्गं दासं तयासयम् । समुद्रद्रक्षाधर्ममादाय बबन्वे तं महीपतिम् ॥५९॥
 सागरत्वं च लेभे स कर्मणा तेन तस्य ह । तं चाश्वमेधिकं सोऽद्वं समुद्रादुपलब्धवान् ॥६०॥
 आजहारान्वमेधानां* शतं स सुमहात्मा* । पुत्राणां च सत्त्वाणि घटिस्तत्सर्व्वेति नः श्रुतम् ॥६१॥

यवनो तथा काम्बोजो वै सम्पूर्णं शिर को मुँडवा कर छोड़ दिया । ॥४८॥ पारदो को मुक्तवेश (बिखरे बालो वाले) और पल्लवो को दाढ़ी-मूँल-मुक्त बनाकर छोड़ दिया । विप्रवर ! शक, यवन, काम्बोज, पारद, कोणिसर्प, माहिषक, दर्व, चोल, केरल—ये सब क्षत्रिय वेदाध्ययन, जप आदि से बन्धित कर दिये गये । वसिष्ठ ने बचन से राजा सगर ने इनके धर्मों का नाश कर दिया ॥४९-५१॥ धर्म-विजयी राजा ने सम्पूर्णपृथिवी को जीतकर अश्वमेध यज्ञ की सीक्षा लेकर अश्व को छोड़ दिया ॥५२॥ वह अश्व पूर्व्व-दक्षिण समुद्र के समीप अपहृत होकर पृथिवी में प्रविष्ट हुआ तो राजा ने अपने पुत्रो के द्वारा उस प्रदेश को सुदयाया ॥५३॥ अहासमुद्र को खोदते हुए वे राजपुत्र वहाँ पहुँचे, जहाँ आदि पुरय, देव, हरि, कृष्ण, प्रजापति—सबका विष्णु भगवान कपिल मुनि के रूप में ध्यान कर रहे थे ॥५४-५५॥ मुनिवर ! भगवान् ने जगन पर उनको आँखो ने तेज से सगर ने सब पुत्र दग्ध हो गये । केवल बह्विकेतु, सुकेतु, राजा धर्मरथ, वीर पञ्चनद—ये चार राजपुत्र बच बचने के लिए बच गये ॥५६-५७॥ पदचात् भगवान् नारायण ने सगर को वरदान दिया—‘इस्वाङ्ग का अण्य बरा रहेगा, तुम्हारी कीर्त्ति बडेगी, तुम्हें समुद्र पुत्र होगा और तुम अक्षय स्वर्गवास प्राप्त करोगे’ ॥५८॥ समुद्र भी अर्घ्य लेकर राजा की वन्दना करने लगा ॥५९॥ उमी बर्ष से समुद्र सागर कहलाया । उस अश्व को राजा ने समुद्र से प्राप्त किया और सौ अश्वमेध यज्ञो को सम्पन्न किया । उसने साठ हजार पुत्र हुए—ऐसा हमने सुना है ॥६०-६१॥

१ न ० मा । केल्सर्पा महापति ओर्व्विचोडा स० । स ० मा । केल्सर्पा माहिषका दार्व्वोलाश्च स० ।
 २ न ग वृताश्रेण । ३ न ग स्वयम् । ४ न ग बह्वे० । ५ न बह्विष्यो । स बाह्वेयो । ६ स ग. खर । ७ न
 उवन्नरत्न० । ८ स ० वीरोमव । प्रा० । ९ न स ० हयगा । पु० ।

मुनय ऊचुः

सगरास्यात्मजा धीराः कथं जाता महाबलाः । विक्रान्ताः पट्टिसाहस्रा. विधिना केन सत्तमः ॥६२॥

लोमहर्षण उवाच

द्वे भाग्ये सगरस्यास्तां तपसा दग्धकित्तिवये । ज्येष्ठा विदम्बुहिता केशिनी नाम नामतः ॥६३॥
कनोपसी तु महती पत्नी परमधर्म्मिणी । अरिष्टनेमिदुहिता रूपेणाप्रतिमा भुवि ॥६४॥
भोव्वंस्ताभ्यां वरं प्रादात्तद्वृष्यध्वं द्विजोत्तमाः । पट्टि पुत्रसहस्राणि गृह्णात्वेका नितम्बिनी ॥६५॥
एकं वंशधरं त्वेका यजेष्टं वरपत्नित्विति । तत्रैका जगृहे पुत्रान् पट्टिसाहस्रसम्मितान् ॥६६॥
एकं वंशधरं त्वेका तयत्पाह ततो मुनिः । राजा पञ्चजनो नाम बभूव स महाद्युतिः ॥६७॥
इतरा सुपुत्रे तुम्बी बोजपूर्णमिति ध्रुतिः । तत्र पट्टिसहस्राणि गर्भास्ते तिलसम्मिताः ॥६८॥
संबभूवुर्यथाकालं यवयुद्धं यथासुखम् । घृतपूर्णं कुम्भेषु तान् गर्भाग्निदधे ततः ॥६९॥
धात्रीश्चर्कैकशः प्रादात्तावती. पोषणे नृपः । ततो दशसु भासेषु समुत्सूर्ययाक्रमम् ॥७०॥
कुमारास्ते यथाकालं सगरप्रोतिवर्दनाः । पट्टिपुत्रसहस्राणि तस्यैवमभवन् द्विजाः ॥७१॥
गर्भादिलाबुमध्याह्ने जातानि पृथिवीपतेः । तेषां नारायण तेजः प्रविष्टानां महात्मनान् ॥७२॥
एकः पञ्चजनो नाम पुत्रो राजा बभूव ह । शूरः पञ्चजनस्यासीदशुमान्नाम ॥७३॥

मुनयो ने पूछा—हे सूतजी । सगर के बीर, महाबली तथा पराक्रमी साठ हजार पुत्र कैसे हुए ? ॥६२॥

लोमहर्षण बोले—तपस्या से निष्पाप हुई दो भाग्यिणी सगर की थी । केशिनी नामक विदम्बुहिता नाम की पत्नी ने ज्येष्ठा नामक विदम्बुहिता नाम की पत्नी से सगर की थी । जो अनुपम सुन्दरी और परम धर्मात्मा थी ॥६४॥
विप्रवृन्द । और मुनि ने उन्हें जो वरदान दिया था, उसे सुनिये ।

मुनि ने कहा—एक स्त्री साठ हजार पुत्रों को उत्पन्न करेगी और दूसरी वंश का धारण करने वाले एक ही पुत्र को । जिसको जो पसन्द हो, वह माँग ले ॥६५॥ तब मुनि की स्वीकृति से अनुसार एक स्त्री ने साठ हजार पुत्रों को और दूसरी ने एक ही वंशधर पुत्र की याचना की । वंशधर पुत्र पञ्चजन नामक महतेजस्वी राजा हुआ ॥६६-६७॥ ऐसी प्रसिद्धि है कि दूसरी स्त्री ने बीज से भरी हुई एक तुम्बी (तुम्बरी) का प्रयत्न किया । उसमें से एक तिल के बराबर साठ हजार गर्भ (पुत्र) उत्पन्न हुए ॥६८॥ समय और सुख के अनुसार वे सब बढ़ने लगे । उनको भी वे भरे हुए बर्तनों में रख दिया गया ॥६९॥ राजा ने, प्रत्येक बच्चों के लिए एक एक दई नियुक्त की । दस महीने बीत जाने पर वे कुमार कमल खड़े होने लगे ॥७०॥ यथासमय वे सभी राजकुमार सगर के लिए प्रीतिवर्धक हुए । द्विजगण । इस प्रकार उस राजा के साठ हजार पुत्र हुए ॥७१॥ उन बच्चों की उत्पत्ति तुम्बी के मीतल से हुई थी । उन मनस्वी बालकों ने नारायण का तेज निहित था ॥७२॥ पञ्चजन नामक पुत्र राजा हुआ । पञ्चजन का पुत्र अत्यन्त वीर अशुमान् था ॥७३॥ उसका पुत्र दिलीप था, जिसका नाम खट्वाण भी था,

दिलीपस्तस्य तनयः सदाज्ञ इति विद्युतः । येन स्वर्गादिहागत्य मुहूर्तं प्राप्य 'जोवितम् ॥७४॥
 त्रयोभिः स्थिता लोका ब्रह्मा सत्येन चानघा । दिलीपस्य तु दायदो 'महाराजो भगोरय' ॥७५॥
 य स गङ्गा सरिच्छेष्टामवातारयत प्रभुः । समुद्रमनयचर्चना दुहितृत्वेऽप्यकल्पयत् ॥७६॥
 तस्माद्भगोरयो गङ्गा कथ्यते 'वशचिन्तक' । भगोरयसुतो राजा श्रुत इत्यभिविद्युतः ॥७७॥
 नाभागस्तु श्रुतस्यासीत् पुत्र परमधार्म्मिकः । अम्बरीषस्तु नाभागि सिन्धुद्वीपपिताभवत् ॥७८॥
 अयुताजित् दायदः सिन्धुद्वीपस्य धीर्यवान् । अयुताजित्सुतस्त्वासीदनुपर्णो महामया ॥७९॥
 दिव्याक्षहृदयजो वै राजा नलसखो बलीः । ऋतुपर्णसुतस्त्वासीदात्तपर्णिर्महायशः ॥८०॥
 सुदासस्तस्य तनयो राजा इन्द्रसखोऽभवत् । सुदासस्य सुतः प्रोवतः सीदासो नाम पाथिवः ॥८१॥
 स्यात् कल्पापपादो वै राजा मित्रसहोऽभवत् । कल्मापपादस्य सुतः सर्वकर्मन्ति विभ्रुतः ॥८२॥
 अनरण्यस्तु पुनोऽभूद्विभ्रुतः सर्वकर्मणः । अनरण्यसुतो निघ्नो निघ्नतो द्वौ बभूवतु ॥८३॥
 अनमित्रो रघुराजैव पाथिवयंभसत्तमौ । अनमित्रसुतो राजा विद्वान् 'दुलिदुहोऽभवत् ॥८४॥
 दिलीपस्तनयस्तस्य रामस्य प्रपितामहः । दीर्घबाहुदिलीपस्य रघुर्नाम्ना सुतोऽभवत् ॥८५॥
 अयोध्याया महाराजो य पुरासोऽन्महाबलः । अजस्तु राघवो जज्ञे 'तथा दशरथोऽप्यजात् ॥८६॥
 रामो दशरथापजज्ञे धर्मात्मना सुमहायशः । रामस्य तनयो जज्ञे बुध इत्यभिसजितः ॥८७॥

आरजिष्ठने स्वर्ग से पृथ्वी पर आकर दो घण्टी भर जीवित रहकर बुद्धि और सत्य से तीनों लोक को जीत दिया ॥७४॥
 विगीत के महाराज भगोरय पुत्र हुआ, जिस नदियों में भण्ड गंगाजी को इस लोक में अवतरित किया और पुत्री-
 भाव से उस मानित हुए समुद्र में मिला दिया ॥७५॥ ७६॥ इसलिये वश को समझने वाले लोग गंगा को भागीरथी
 कहते हैं। भगोरय के श्रुत नामक परम विख्यात पुत्र हुआ ॥७७॥ श्रुत का पुत्र नाभाग परम धर्मात्मा था।
 नाभाग का पुत्र अम्बरीष सिन्धुद्वीप का पिता हुआ ॥७८॥ सिन्धुद्वीप का पुत्र अयुताजित् शक्तिशाली हुआ। अयुता-
 जित् का पुत्र महामयास्वी ऋतुपर्ण था ॥७९॥ वह राजा पासो के खेलन में अतिचतुर (या दूरदर्शी तथा हृदयज्ञ)
 और नल नामक राजा का मित्र था। ऋतुपर्ण का पुत्र आत्तपर्णि महायशस्वी था ॥८०॥ उसका सुदास नामक
 पुत्र इन्द्र का मित्र था। सुदास का पुत्र सदास नामक राजा था ॥८१॥ यही कल्मापपाद और मित्रसह नामा से भी
 प्रसिद्ध हुआ। कल्मापपाद का पुत्र का नाम सर्वकर्मा था ॥८२॥ सर्वकर्मा के अनरण्य नामक पुत्र हुआ। अनरण्य
 के निघ्न नामक पुत्र हुआ। निघ्न न दोनूपश्च पुत्र हुए— ॥८३॥ अनमित्र और रघु। अनमित्र का पुत्र दुलिदुह हुआ,
 जो राजा और विद्वान् दोनों था ॥८४॥ उसके पुत्र दिलीप हुआ, जो राम का प्रपितामह (परदादा) था। दिलीप
 का लम्बी बाहुआ वाला रघु नामक पुत्र हुआ ॥८५॥ जो पूवकाल में अयोध्या का महाराज था। रघु से अज
 उत्पन्न हुआ और अज से दशरथः ॥८६॥ दशरथ से अत्यन्त धनस्वी और धर्मात्मा राम की उत्पत्ति हुई। राम के बुध
 नामक पुत्र उत्पन्न हुआ ॥८७॥ बुध से अति यशस्वा और धर्मात्मा अतिथि उत्पन्न हुआ। अतिथि के निषध

- १ क ०मु। सती मि०। २ ख ०मिश्रिता। ३ ग महारथो। ४ क ०य। स्वर्गोऽनुस०। ५ क धर्मचिन्तकं।
 ६ ख ०णस्य तस्याऽप्या०। ७ ग ०दासमूत्रान्ता मि०। ८ क ०दुलिदुहो०। ९ ख ०जो रघुरासी०।
 १० ख तस्माद्विषयोऽभवत्।

अतिथिस्तु कुशाज्जज्ञे धर्मात्मा सुमहायशः। अतिथेस्त्वभवत्पुत्रो निषधो नाम धीर्यवान् ॥८८॥
 निषधस्य नलः पुत्रो नभः पुत्रो नलस्य तु। नभस्य पुण्डरीकस्तु क्षेमघन्वा ततः स्मृतः ॥८९॥
 क्षेमघन्वसुतस्त्वासीद्देवानीकः प्रतापवान्। आसीदहीनगुर्नाम देवानीकात्मजः प्रभुः ॥९०॥
 अहीनगोस्तु वायादः सुघन्वा नाम पार्थिवः। सुघन्वनः सुतश्चापि ततो जज्ञे शलो नृपः ॥९१॥
 उव्यो नाम स धर्मात्मा शलपुत्रो बभूव ह। वज्रनाभः सुतस्तस्य नलस्तस्य महात्मनः ॥९२॥
 नलो द्वावेव विख्यातो पुराणे मुनिसत्तमाः। वीरसेनात्मजश्चैव यश्चेक्ष्वाकुलोद्बहः ॥९३॥
 इक्ष्वाकुवंशप्रभवाः प्राधान्येन प्रकीर्तिताः। एते विवस्वतो वंशे राजानो भूरितेजसः ॥९४॥
 पठन् सम्यग्भिर्मां सृष्टिमादित्यस्य विवस्वतः। आद्विदेवस्य देवस्य प्रजानां पुष्टिदस्य च।
 प्रजावानेति सायुज्यमादित्यस्य विवस्वतः ॥९५॥

इति श्रीब्राह्मे महापुराणे आदित्यवंशानुकीर्तनं
 नामाष्टमोऽध्यायः ॥८॥

नवमोऽध्यायः

तत्रादौ सोमोत्पत्ति-वर्णनम्

लोमहर्षण उवाच

पिता सोमस्य भो विप्रा जज्ञेऽत्रिभंगवानृषिः। ब्रह्मणो मानसापूध्वं प्रजासर्गं विधिरसतः ॥१॥

नामक पञ्चमी पुत्र हुआ। ॥८८॥ निषध के पुत्र नल और नल के पुत्र नभ हुआ। नभ से पुण्डरीक और उससे क्षेमघन्वा उत्पन्न हुआ ॥८९॥ क्षेमघन्वा का पुत्र प्रताप देवानीक था। देवानीक के पुत्र का नाम अहीनगु था ॥९०॥ अहीनगु का पुत्र सुघन्वा नामक राजा हुआ। सुघन्वा से राजा शल की उत्पत्ति हुई ॥९१॥ शल के उव्य नामक धर्मात्मा पुत्र हुआ। वज्रनाभ उससे पुत्र हुआ। उस महात्मा के नल नामक पुत्र हुआ ॥९२॥ मुनिवर! पुराणों में दो ही नल प्रसिद्ध हैं—एक वीरसेन का पुत्र और दूसरा इक्ष्वाकु-वंश में समुद्भूत ॥९३॥ इक्ष्वाकु-वंश में उत्पन्न प्रमुख राजा का वर्णन कर दिया गया। ये सभी परम तेजस्वी राजा सूर्यवंशी हैं ॥९४॥ प्रजा के पोषक और आद्विदेव भगवान् सूर्य की इस सृष्टि का पढ़ने वाला यन्त्र सूर्य की समानता प्राप्त करता है ॥९५॥

धी ब्रह्मपुराण में आदित्य-वंश-कीर्तन नामक आठवां अध्याय समाप्त ॥८॥

अध्याय ६

चन्द्रवश-वर्णनं

लोमहर्षण बोले—विप्रवृन्द! पूर्वकाल में प्रजा-सृष्टि के इच्छुक ब्रह्मा ने मन से चन्द्रमा के पिता

अनुत्तर नाम तपो येन तप्तः हि तत्पुरा । त्रेणि वर्षसहस्राणि दिव्यानीति हि न श्रुतम् ॥२॥
 ऊर्ध्वमाचक्रमे तस्य रेत सोमत्वमीयिवान् । नेत्राम्या वारि सुखाव दशधा द्योतयन् दिशः ॥३॥
 त गर्भं विधिनादिष्टा दश देव्यो दधुस्ततः । समेत्य धारयामासुर्न च ता समशवनुवन ॥४॥
 यदा न धारणे श्रवतास्तस्य गर्भस्य ता दिशः । ततस्ताभि स त्ववतस्तु निपपात वसुन्धराम् ॥५॥
 पतित सोममालोक्य ब्रह्मा लोकपितामह । रथमारोपयामास लोकाना हितकाम्यया ॥६॥
 तस्मिन्निपतिते देवा पुत्रेऽग्रे परमात्मनि । तुष्टुब्रह्मण पुत्रास्तथान्ये मुनिसत्तमा ॥७॥
 तस्य सस्तूयमानस्य तेज सोमस्य भास्वत । आप्यायनाय लोकाना भावयामास सध्वत ॥८॥
 स तेन रथमुत्प्रेने सागरान्ता वसुन्धराम् । त्रि सप्तकृत्वोऽस्ति यशश्चकाराभिप्रदक्षिणाम् ॥९॥
 तस्य प्रचरित तेज पृथिवीमन्वपद्यत । ओषध्यस्ता समुद्भूता याभि सन्धायते जगत् ॥१०॥
 स लब्धतेजा भगवान् सस्तवदच स्वकर्मभि । तपस्तेपे महाभाग पद्मना दशनाय स ॥११॥
 ततस्तस्मै ददौ राज्य ब्रह्मा ब्रह्मविदावर । धीजीवघोना विप्राणामपा च मुनिसत्तमा ॥१२॥
 स तत्प्राप्य महाराज्य सोम सौम्यवतावर । समाजह्ने राजसूय सहस्रशतदक्षिणम् ॥१३॥
 दक्षिणामददात् सोमस्त्रैस्तलोकानिति न श्रुतम् । तेभ्यो ब्रह्मपिमुह्येभ्य सदस्येभ्य दक्ष भो द्विजा ॥१४॥
 हिरण्यगर्भो ब्रह्मात्रिभृगुदच श्रुतिवजोऽभवत् । सदस्योऽभूद्रिरस्तन मुनिभिर्बहुभिद्युत ॥१५॥

भगवान् अत्रि मुनि उत्पन्न हुए ॥१॥ मुनि १ हजार देव वष तक उष तपस्या का—एसा हमन मुना है ॥२॥ उनका वीं शरीर के ऊर्ध्वभाग में जाकर अमृत बन गया । दशो दिशाओं को प्रकाशित करत हुए जल दोनो ओर स बहने लगा ॥३॥ ब्रह्मा की आज्ञा स उस ० ज सयुक्त जल रूप गम को दशो दिशाओं में मिलकर धारण किया । पर वे धारण करन में समर्थ नहीं हुई ॥४॥ तब उन्होंने गम को त्याग दिया । गम पृथ्वी पर गिर पड़ा ॥५॥ गिरे हुए अमृत सपा गम को देखकर लोक पितामह ब्रह्मा १ लोकों के कल्याण के लिये गम को रथ पर स्थापित कर दिया ॥६॥ मुनिवर ! अत्रि के उस परमात्मा पुत्र व गिर जान पर देवता अ ब्रह्मा के दूसरे पुत्र उसकी स्तुति करन लगे ॥७॥ स्तुति वि य जान वाले उस प्रशंगमान सोम (चंद्रमा) का तब लोकों की वृद्धि के लिए सब तरफ फैल गया ॥८॥ चंद्रमा उस रथ स समुद्र पयत्त पृथिवी की इक स बार परिक्रमा का ॥९॥ चंद्रमा का जो तब पृथ्वी में व्याप्त हुआ उससे सब ओषधियाँ उत्पन्न हुई । जिनसे संधार वा पापण होता है ॥१०॥ अपन कर्मों से तब प्राप्त कर भगवान् चंद्रमा १ पचास दान व लिए (पच सख्या वाले वर्षों तक ?) तपस्या की ॥११॥ तब ब्रह्मवेत्ताशम म गेष्ट ब्रह्मा १ चंद्रमा को बीज अपच ब्राह्मण अ ब्रह्म का राज्य दिया ॥१२॥ उस महाराज्य को प्राप्त कर चंद्रमा १ एव लाख दाना वाले राजसूय यज्ञ को ध्वस्त किया ॥१३॥ द्विजगण ! ब्रह्मपि आदि सदस्या को सोपे १ दक्षिणा म तना लोक दिय एसा हमन मुना है ॥१४॥ गम म साक्षात् ब्रह्मा ब्रह्मा हुए । अत्रि आर मुन कृत्विज हुए । बहुत मुनियों से युक्त साक्षात्

१ त ० प्त महत् ० । २ स ० क ॥ स्ता गमस्य दिना दान । त ० । ३ य सहस्रवा ऽपु नि ० । ४ स देवे । ५ स ० य च सुप्रशम ० । ६ स ० धातुम् ० । ७ क यत्सर्वित । स ० व्याधित । ८ स ० विधी सम ० । ९ य दाना दाना । १० । १० ० ना राजान निममे मु ० ।

तं सिनीश्च कुहूश्चैव द्युतिः पुष्टिः प्रभा वसुः । कीर्त्तयन्तिश्च लक्ष्मीश्च नव देव्यः सियेविरे ॥१६॥
 प्राणायवभूयमप्यग्र्यं सध्वंदेवर्षिपूजितः । विरराजाधिराजेन्द्रो दशधा भासयन् दिशः ॥१७॥
 तस्य तत्प्राप्य दुष्प्राप्यमंश्वर्यमप्यसिक्तम् । विब्राम मतिस्ताताविनयादनयाहृता ॥१८॥
 बृहस्पतेः स वै भाष्यमंश्वर्यमदमोहितः । जहार तरसा सोमो विमत्याङ्गिरसः सुतम् ॥१९॥
 स याच्यमानो देवैश्च 'तथा 'देवर्षिभिर्मुहुः । नैव द्यसज्जयन्तारां 'तस्मा अङ्गिरसे तदा ॥२०॥
 उशना तस्य जग्राह पार्ष्णिमङ्गिरसस्तथा । रुद्रश्च पार्ष्णिं जग्राह गृहीत्वाजगवं धनुः ॥२१॥
 तेन ब्रह्मशिरो नाम परमास्थं महात्मना । उद्दिश्य देवानुत्सृष्टं येनैषां नाशितं यशः ॥२२॥
 तत्र तदपुद्गमभयत् प्रख्यातं तारकामयम् । देवानां दानधानाञ्च लोकक्षयकरं महत् ॥२३॥
 तत्र शिष्टाश्च ये देवास्तुपिताश्चैव ये द्विजाः । ब्रह्माणं शरणं जम्बुरादिदेवं सनातनम् ॥२४॥
 तदा निवार्योशनसं तं वै रुद्रञ्च शङ्करम् । ददावाङ्गिरसे तारां स्वयमेव पितामहः ॥२५॥
 तामन्त प्रसवां दृष्ट्वा क्रुद्धः प्राह बृहस्पति । मदोयायां न ते योनौ गर्भो धार्यः कथञ्चन ॥२६॥
 ह्योकास्तम्बमासाद्य गर्भं सा धोतस्तज्जं ह । जातमात्रः स भगवान् देवानामाक्षिपद्रुः ॥२७॥
 सत संशयमापन्नास्तारामूचुः सुरोत्तमा । सत्यं ब्रूहि सुतः कस्य सोमस्याय बृहस्पते ॥२८॥
 पृच्छ्यमाना यदा देवैर्नाह सा विबुधान् किल । तदा तां शप्नुमारब्धः कुमारो 'दस्युहृतमः ॥२९॥

हरि सवस्य हृष्ट ॥१५॥ सिनीवाली (पूर्व अमावास्या), कुहू (उत्तर अमावास्या) द्युति, पुष्टि, प्रभा, वसु, कीर्त्ति, श्रुति, लक्ष्मी—ये नौ देवियां चन्द्रमा की सेवा करती थी ॥१६॥ यश को समाप्त कर देवता और कवियों से पूजित हो राजाओं में प्रधान चन्द्रमा दशो दिशाओं को प्रकाशित करते हुए सुशोभित होने लगा ॥१७॥ ऋषियों से सहित उस अलम्प ऐश्वर्य को प्राप्त कर चन्द्रमा की बुद्धि अतीति से उच्छृङ्खल हो उठी ॥१८॥ ऐश्वर्य के मय से भक्त चन्द्रमा ने बृहस्पति की पत्नी का अपहरण कर लिया ॥१९॥ देवताओं और मुनियों द्वारा बारबार मनझाया जाने पर भी उनसे बृहस्पति को तारा नहीं लौटायी ॥२०॥ तब चन्द्रमा का पक्ष शुक्राचार्य ने लिया और बृहस्पति का पक्ष अजयन नामक धनुष धारण कर महादेवजी ने लिया ॥२१॥ महात्मा शिव ने ब्रह्मशिर नामक एक महास्व दैत्यो ने ऊपर फेंका, जिससे दैत्यो का यश नष्ट हो गया ॥२२॥ वहाँ पर लोकक्षय करने के लिए तारकामय नाम से विरमात देव-दानव युद्ध हुआ ॥२३॥ द्विजगण उस युद्ध में जो तुपित नामक देवता बच गये, वे सब आदिदेव और सनातन ब्रह्मा की शरण में गये ॥२४॥ तब शुक्राचार्य और महादेव जी का हठावर स्वयं ब्रह्मा ने बृहस्पति का तारा लौटा दी ॥२५॥ गर्भवती तारा को देखकर बृहस्पति ने क्रोध से कहा—'मूत्रसे सर्वान्वित योनि में तुम कभी गर्भ धारण नहीं कर सकती ॥२६॥ तब मूत्र के गुच्छों पर तारा ने गर्भ का त्याग कर दिया । जन्म लेते ही वह बालक दिव्यरूपधारी हो गया ॥२७॥ देवताओं ने सदेह करने लगे तारा से पूछा—'सत्य बोलो कि यह पुत्र चन्द्रमा का है या बृहस्पति का ? ॥२८॥ देवताओं से पूछी जाने पर जब वह नहीं बोली, तब चोरो का नाश करने वाला बालक उसको

१ ग तदा । २ क ग ०पि सह । नं ० । ३ ख तस्यैवानिरस्तदा । ४ ख ०ष्ट तथा नाशाय क्षमना । त ० । ५ क ख मुनियसत्ता ।

तं निवार्यं ततो ब्रह्मा तारां प्रपच्छ संशयम् । यदत्र तथ्यं तद्ब्रूहि तारे वस्य सुतस्त्वयम् ॥३०॥
 उवाच प्राञ्जलिः सा तं सोमस्येति पितामहम् । तदा तं मूर्ध्नि चाधाय सोमो राजासुतं प्रति ॥३१॥
 बुध इत्यकरोन्नाम तस्य धाजस्य धीमतः । प्रतिकूलञ्च गगने समभ्युत्तिष्ठते बुधः ॥३२॥
 उत्पादयामास तदा पुत्रं वै राजपुत्रिषम् । तस्यापत्यं महातेजा बभूवेल । पुरुरवाः ॥३३॥
 उर्व्वशीयां जजिरे यस्य पुत्राः सप्त महात्मनः । एतत् सोमस्य वो जन्म कीर्त्तितं कीर्त्तिवर्द्धनम् ॥३४॥
 वंशमस्य मुनिश्रेष्ठा कीर्त्त्यमानं निबोधत । धन्यमायुष्यमारोग्यं पुण्यं सङ्कल्पसाधनम् ॥३५॥
 सोमस्य जन्म श्रुत्वा पापेभ्यो विप्रमुच्यते ॥३६॥

इति श्रीब्राह्मे महापुराणे सोमोत्पत्तिकथनं नाम

नवमोऽध्यायः ॥९॥

दशमोऽध्यायः

तत्रादौ सोमोत्पत्ति-वर्णनम्

लोमहर्षण उवाच

बुधस्य तु मुनिश्रेष्ठा विद्वान् पुत्रः पुरुरवा । तेजस्वी दानशीलश्च यश्च विपुलदक्षिणः ॥१॥

पाप देने के लिए तैयार हो गया ॥२९॥ उसको निवृत्त कर ब्रह्मा ने तारा से सबेह पूछा—‘तारे’ सत्य बतलाना । यह किछक पुत्र है?’ ॥३०॥ उसने हाथ जोड़कर ब्रह्माजी से कहा—‘चन्द्रमा वा ।’ तब राजा सोम ने बालक के मस्तक को सूँप कर उस बुद्धिमान् बालक का नाम ‘बुध’ रखा । अतएव बुध का आकाश में प्रतिकूल उदय होता है ॥३१-३२॥ वैराज मनु की कन्या से बुध ने पुत्र उत्पन्न किया । उसका इला से उत्पन्न पुरुरवा नामक पुत्र महातेजस्वी हुआ ॥३३॥ पुरुरवा से उर्व्वशी में सात पुत्र उत्पन्न हुए । मुनिश्रेष्ठो । चन्द्रमा की यह कीर्त्ति बढ़ाने वाली उत्पत्ति मैंने आपसे कही ॥३४॥ अब इसके वंश का वर्णन मुनिये । धन्यवाद के पात्र, आयु और आरोग्य के दायक तथा अमिलापा को पूर्ण करने वाले चन्द्रमा के जन्म की सुतने से मनुष्य के सब पाप दूर हो जाते हैं ॥३५-३६॥

श्री ब्रह्ममहापुराण में सोमोत्पत्तिकथन नामक नवा अध्याय समाप्त ॥९॥

अध्याय १०

लोमहर्षण बोले—‘मुनिवर’ बुध के विद्वान्, तेजस्वी दानी, यज्ञ करनेवाला, बहुत दक्षिणा देने वाला,

ब्रह्मवादी पराक्रान्तः शत्रुभिर्मुग्धि दुर्दमः। आहर्ता चाग्निहोत्रस्य यज्ञानाञ्च महोपतिः॥२॥
 सत्यवादी पुण्यमतिः सम्यक् संवृत्तमैयुनः। अतोव त्रिषु लोकेषु यज्ञसाप्रतिमः सदा॥३॥
 तं ब्रह्मवादिनं शान्तं धर्म्मज्ञं सत्यवादिनम्। उर्वशी चरयामास हित्वा मानं यशस्विनी॥४॥
 तथा सहस्रसद्राजा दश वर्षाणि पञ्च च। षट्पञ्च सप्त चाष्टौ च दश द्वाष्टौ च भो द्विजाः॥५॥
 वने चैत्ररये रम्ये तथा मन्दाकिनीतटे। अलकायां विशालायां नन्दने च वनोत्तमे॥६॥
 उत्तरान् स कुरुन् प्राप्य मनोरमफलद्रुमान्। गन्धमादनपादेषु मेरुशृङ्गे तथोत्तरे॥७॥
 एतेषु वनमुद्देषु सुरैराचरितेषु च। उर्वशीया सहितो राजा रेमे परमया मृदा॥८॥
 देशे पुण्यतमे चैव महर्षिभिरभिष्टुते। राज्यं स कारयामास प्रयागे पृथिवीपतिः॥९॥
 एवम्प्रभावो राजासिद्धिलस्तु नरसत्तमः॥१०॥

लोमहर्षण उवाच

ऐलपुत्रा बभूवुस्ते॥ सप्त॥ देवसुतोत्तमाः॥ गन्धर्व्वलोके विदिता आयुर्वीमानमावसुः॥१॥
 विश्वायुश्चैव धर्म्मार्त्मा श्रुतायुश्च तयापरः। दृढायुश्च वनायुश्च बह्वायुश्चोर्व्वशीसुताः॥२॥
 अमावसोस्तु दायादो भीमो राजाथ राजराट्। श्रीमान् भीमस्य दायादो राजासीत्काञ्चनप्रभः॥३॥

ब्रह्म-वैता, युद्ध मे शत्रुओं से अजेय, अग्निहोत्री, राजा, सत्यवक्ता, पवित्र विचार वाला मैयुन मे समयी और तीनो लोकों मे सदा अनुपमेय यशस्वी पुरुरवा नामक पुत्र उत्पन्न हुआ ॥१-३॥ उस ब्रह्मवादी, सत्यवादी, शान्त और धर्म्मज्ञ पुरुरवा को यशस्विनी उर्वशी ने मान त्याग कर करण किया ॥४॥ विप्रवृन्द! राजा ने उर्वशी के साथ चैत्ररथ नामक सुन्दर वन मे दश वर्ष, मन्दाकिनी नदी के तट पर पञ्च वर्ष, अलकापुरी मे छह वर्ष, बदरी पुरी मे पाँच वर्ष नन्दन वन मे सात वर्ष, मनोरम फल-वृक्षों से युक्त उत्तर कुशों के देश मे आठ वर्ष, गणमादन पर्वत पर दस वर्ष और सुमेरु पर्वत के उत्तर भाग मे आठ वर्ष तक वास किया ॥५-७॥ इन प्रयाग वनों मे और देवताओं के क्रीडा-स्थानों मे उर्वशी के संग राजा परम हर्ष से रमण करता रहा ॥८॥ राजा ने पवित्रतम और महर्षियों से स्तुत प्रयाग-क्षेत्र मे अपनी राजधानी बनायी ॥९॥ इस प्रकार प्रभावशाली, महामानव और महायशस्वी पुरुरवा गंगाजी के उत्तर तट पर रहता था ॥१०॥

लोमहर्षण ने कहा—देव-युगों के समान पुरुरवा के सात पुत्र हुए। आयु विद्वान् अमावसु विश्वायु धर्म्मार्त्मा श्रुतायु, दृढायु, वनायु और बह्वायु—ये उर्वशी के पुत्र थे ॥१२-१२॥ अमावसु के, राजाभा का भी राजा भीम नामक पुत्र हुआ। भीम के श्रीमान् काचनप्रभ पुत्र हुआ ॥१३॥ काचनप्रभ के महाबली मुहोत्र पुत्र हुआ। मुहोत्र का पुत्र जह्नु,

१ ख शत्रूणा मुधि दुर्दमः। २ ख सुमक्या। ३ क ०म्यन्निमृत०। ४ क ०तिनो मुधि। त। ५ ख ०दा।
 विरव हि ब्रह्मस्तस्य कर्मापि विलय गतम्। उर्वशी व०। ६ ख ०नीम्। त०। ७ ख वा ष्टौ। ८ ख ०ष्टौ।
 ९ क देशे। त तदः। १० ग ०रयफ०। ११ न ०स्पृष्टान्तरेषु च। ए०। १२ ख ०स्ते स्मरदे०। १३ क सर्वे। १४
 ख ०गा। दिवि जाता महात्मान् वा०। १५ ख ०गान्निभाव०।

विद्वास्तु काञ्चनस्यापि सहोत्रोऽभून्महाबलः । सहोत्रस्याभवज्जहन् केशिया गर्भसम्भव ॥१४॥
 धाजह्ने यो महत् सत्र सर्पमेधं महामखम् । पतिलोभेन यं गङ्गा पतित्वेन ससार ह ॥१५॥
 नेच्छत प्लावयामास तस्य गङ्गा तदा सद । स तथा प्लावित दष्टवा यज्ञवाट समतत ॥१६॥
 सोहोत्रिरशपदगङ्गाः क्रुद्धो राजा द्विजोत्तमा । एष ते विफल यत्नः पिवन्नम्भं करोम्यहम् ॥१७॥
 अस्य गङ्गोऽवलेपस्य सद्यः फल्मवाप्नुहि । जहन्नुरार्जयिषा पीता गङ्गा दृष्टवा महर्षय ॥१८॥
 उपनियुमहाभागाः दुहितृत्वेन जाह्नवीम् । युवनाश्वस्य पुत्रीं तु कावेरीं जहन्नुरावहत् ॥१९॥
 युवनाश्वस्य नापेन गङ्गाद्धेन विनिगताः । कावेरीं सरिता श्रष्टा जह्लोर्भाष्यामिनिविताम् ॥२०॥
 जहन्नुरसु दयित पुत्र सनद्यः नाम धार्मिर्मयम् । कावेर्यां जनयामास अजयस्तस्य सात्मज ॥२१॥
 "अजयस्य तु दायादो बलाकाश्वो महोपतिः । बभूव भृगुयाशीन् कुशस्तस्यात्मजोऽभवत् ॥२२॥
 कुशपुत्रा बभूवर्हि चत्वारो देववस्चंस । कुशिक कुशनाभश्च कुशाग्रम्भो भूतिमास्तथा ॥२३॥
 बल्लवं सह सपुटो राजा यनचर सदा । कुशिकस्तु तपस्तेपे पुत्रमिद्वयम् प्रभुः ॥२४॥
 रुभेयमिति तं शत्रुशत्रासादभ्येत्य जग्मिवान् । पूर्णं दर्पसहस्रे यं तत् शत्रो ह्यपश्यत् ॥२५॥
 अत्युग्रतपस दृष्टवा सहस्राक्षं पुरन्दर । समयं पुत्रजनने स्वयमेवास्य शाश्वतः ॥२६॥

कनिजी ब गम स उत्पन्न हुआ जिसन सर्पमेध अर महामय सत्र मन्त्राय विष अर जिसने पास पति बनाने के लोभ से गंगाजी गई थी ॥१४॥१५॥ गंगा जी से विरक्त जन्मु ब यन-रघुल को गंगा डरो दिया। चारों तरफ यन-रघुल को जलमय देखकर राजा जहन्नु ने क्रोध में आकर गंगा को शाप दिया कि गम! मैं जल पीकर तुम्हारे यन्त्र को विफल करता हूँ। तूम जपन का अभिमान का फल तत्काल प्राप्त करो। ॥१६॥१७॥ राजपि जहन्नु ने द्वारा गिरी गई गंगा को देखकर महर्षिया ने उसको जपन को पुत्र बना लिया ॥१८॥ पत्नी जहन्नु ने युवनाश्व को पुत्री कावेरी स विवाह किया ॥१९॥ युवनाश्व का नाप से बसा आध भाग में भदिया में अथत् तथा अनिर्नय जन्मु का पत्नी कावेरी में मिश्र गई ॥२०॥ जन्मु न युवय नामक धर्मात्मा पुत्र को कावेरी स उत्पन्न किया। २१॥ उसने अजय नामक पुत्र हुआ। अजय का पुत्र राजा बभूवर्हि गतिर नेत्र में बूझा था। उसने कुश नामक पुत्र हुआ। २२॥ कुश का देवता का श्रमान तत्काली तार पुत्र हुआ—कुशिक कुशनाभ कुशाग्र अर भूतिमान् ॥२३॥ राजा कनिज मय यन ही में अर्धरा ने साध पाया गया। मैं हूँ का श्रमान का प्राण कर इस स्थान में था तप करने लगा। यह जाकर भयवत् उसका पाप था। हजार वर्ष बाद जान पड़े न उमरगा। मग अजय उस तपस्वी का दण्डकर पुत्रापात्र में समय मुग्धभट्ट इन्द्र स्वयं उमर पुत्र बना। कुशिक

१ ग ०१५ चतुर्थः २ क ०२५५० ३ क ० त्रिप ओषध गतिप्याप पिव म्य ० ४ ग जम।
 ५ ग ० जयग्यापि ग ० ६ क ग ० माया ० ७ क ० न। गंगापेन मन्त्र नदी गंगादिनिमः ८ ग
 निमिः। ९ क ० ग मगा ० १० क ० अरुह ० ११ क ० अरुह ० १२ ग ० गंगासूनि ० १३ ग ० गंगा मू ०
 १४ ग ० गंगा गंगा गतिरामागजा। १५ ग ० प्रभुः।

पुत्रार्थं कल्पयामास देवेन्द्र सुरसत्तम । स गाधिरभवद्राजा मघवान् कौशिक स्वयम् ॥२७॥
 पीरा यस्याभवद्भार्या गाधिस्तस्यामजायत । गाधे कन्या महाभागा नाम्ना सत्यवती शुभा ॥२८॥
 सा गाधि काव्यपुत्राय ऋचीकाय ददौ प्रभु । तस्या प्रीत स वै भर्ता भार्गवो भृगुनन्दन ॥२९॥
 पुत्रार्थं साधयामास चरु गाधेस्तथैव च । उवाचाहूय ता भार्यामृचीको भार्गवस्तदा ॥३०॥
 उपयोज्यश्चरय त्वया मात्रा स्वयं शुभे । तस्या जनिष्यते पुत्रो दीप्तिमानृक्षत्रियपम ॥३१॥
 अजेय क्षत्रियैर्लोकैः क्षत्रियैर्बभूवुः । तवापि पुत्रं कल्याणि धृतिमतं तपोधनम् ॥३२॥
 शमात्मकं द्विज्येष्ठं चरयेत् विधास्यति । एवमुक्त्वा तु ता भार्यामृचीको भृगुनन्दन ॥३३॥
 तपस्यभिरतो नित्यमरण्यं प्रविशेत् । गाधिं सदारं तु तदा ऋचीकाश्चममग्नात् ॥३४॥
 तीर्थयात्राप्रसङ्गेन सुता द्रष्टुं नरेश्वर । चरद्वयं गृहीत्वा सा ऋषे सत्यवती तदा ॥३५॥
 चरमावाप यत्नेन सा तु मात्रे श्यवेदयत् । माता तु तस्या देवेन दुहिते स्वं चरं ददौ ॥३६॥
 तस्याश्चरमयाजानादात्मसंस्थं चकार ह । अयं सत्यवती सध्वं क्षत्रियान्तकरं तदा ॥३७॥
 धारयामास दीप्तेन यपुषा घोरदर्शना । तामृचीकस्ततो दृष्ट्वा योगेनाभ्युपसृत्य च ॥३८॥
 सतोऽश्वीद्विज्येष्ठे ह्वा भार्यां वरवर्णिनीम् । मात्रासि वञ्चिता भद्रे चरं यथासहैतुना ॥३९॥
 जनिष्यति हि पुत्रस्ते क्रूरकर्म्मोत्तिदात्म । आता जनिष्यते चापि ब्रह्मभूतस्तपोधन ॥४०॥

पुत्र इन्द्र गाधि नामक राजा हुए ॥२४२७॥ कुशिक की पत्नी पुरा से गाधिक उत्पत्ति हुई था । गाधि ने महामाग्य भार्गवी सत्यवती नामक कन्या हुई । ॥२८॥ गाधि ने उस पुत्री को भृगु-पुत्र ऋचीक को समर्पित किया । ऋचीक ने गाधि का कन्या से प्रसन्न होकर अपना अरु गाधि ने पुत्र होने के लिए वह बनाया और अपना पत्नी को सुलाकर कहा—॥२९३०॥ प्रिये ! यह वह तुम अपनी माता को देना । इस खाल से तुम्हारी माता अत्यन्त उत्कृष्टी क्षत्रिय-अष्ट पुत्र को उत्पन्न करेगी जो इस लोक में राजाओं से अजेय तथा नृप-अष्टा का सत्पति होगा ॥३१॥ कल्याण ! तुम्हें मैं इस दूसरे चर के खाल से धीरे, तपस्वी शान्त और द्विजवर पुत्र उत्पन्न होगा । ॥३२३३॥ इस प्रकार पत्नी से कहकर भृगु-पुत्र ऋचीक तपस्या में निरत हो बन में प्रविष्ट हुआ । तदुपरान्त तीर्थयात्रा के प्रसंग से पुत्री को देखन के लिए राजा गाधि अपनी माया सहित ऋचीक के आश्रम में गया ॥३३३४॥ सत्यवती ने ऋषि के बोला चरों को लाकर माता को समर्पित किया ॥३५३६॥ परन्तु दक्षयोग से माता ने पुत्रा का अपना चर दे दिया और अनानता से उसका चर स्वयं खा लिया ॥३६३७॥ इसका बाद सत्यवती ने सब क्षत्रिया का नाम करन वाला गम धारण किया । शरीर में तन रहत हुए मैं वह देखन में मग्न कर लगता थी ॥३७३८॥ ऋचाक उस देखत ही योग-बल से सब कुछ समझ गया और बोला—भद्रे ! माता ने तुम्हें ठग लिया । चर बदल जान के कारण तुम्हें अत्यन्त मग्न कर और क्रूर कर्म करन वाला पुत्र उत्पन्न होगा पर तुम्हारा माई ब्रह्मपत्ता तपस्या होगा ॥३८४०॥

१ स अभ्ययत् । २ क चरं विप्रां गृहीत तमुप । ३ क अदा । विषयवात्तदा त वै सा । ४ क स त्रभवेन । ५ क अश्वत्था आत्मः ।

विश्व' हि ब्रह्म तपसा मया तस्मिन् समर्पितम् । एवमुक्ता महाभागा भर्त्रा सत्यवती तदा ॥४१॥
प्रसादयामास पतिं पुत्रो मे नेदृशो भवेत् । ब्राह्मणापसदस्त्वत्त इत्युक्तो मुनिरब्रवीत् ॥४२॥

ऋचीक उवाच

नेप सकल्पत कामो मया भद्रे तथास्त्विति । उपकर्मा भवेत् पुत्रं पितुर्मातुश्च कारणात् ॥४३॥
पुन सत्यवती वाक्यमेवमुक्त्वाब्रवीदिदम् । इच्छलोकानपि मुने सूजेथा किं पुन सुतम् ॥४४॥
शमात्मकमूजु त्वमे पुत्रं दातुमिहार्हसि । काममेवविध पौत्रो मम स्यात्तव च प्रभो ॥४५॥
यद्यन्यथा न शक्य वे कर्तुमेतद्द्विजोत्तम । तत प्रसादमकरोत् स तस्यास्तपसो बलात् ॥४६॥
पुत्रे नास्ति विशेषो मे पौत्रे चाश्वरर्वाणि । त्वया यथोक्तं वचनं तथा भद्रे भविष्यति ॥४७॥
तत सत्यवती पुत्रं जनयामास भगवम् । तपस्यभिरत दान्त जमदग्निं शमात्मकम् ॥४८॥
'भृगोजंगत्या बशोऽस्मिञ्जमदग्निरजायत । सा हि सत्यवती पुण्या सत्यधर्मपरायणा ॥४९॥
कौशिकीति समाख्याता प्रवृत्तेषु महानदी । इक्ष्वाकुवशप्रभवो रेणुर्नाम नराधिप ॥५०॥
तस्य कन्या महाभागा कामलो नाम रेणुका । रेणुकाया तु कामत्या तपोविद्यासमन्वित ॥५१॥
आर्चीको जनयामास जामदग्न्य सुदारणम् । पितृर्विद्यान्तग श्वेठं धनुर्वेदस्य पारगम् ॥५२॥

ययावि उक्तं चर मे मैन तपस्या वे बल से विद्वत्स्वी ब्रह्म को निहित कर दिया था।' पति से यह बात सुनकर सीमाग्यवती सत्यवती ने उनसे यह प्रश्नना की कि आप जैसे ब्राह्मण-श्वेठ से मुझे इस तरह का पुत्र न हो ऐसी कृपा करें। तब मुनि ने कहा ॥४१-४२॥

ऋचीक बोला—भद्रे । तुम्हें इस तरह का पुत्र हो—ऐसा सकल्प मैंने नहीं किया था। पिता माता के कारण उपक्रम करनेवाला पुत्र होगा ॥४३॥ फिर सत्यवती बोली—'मुन' आप चाहें, तो सीमा कोव भी सृष्टि कर सकते हैं, फिर एका पुत्र को तो बात ही क्या ॥४४॥ प्रभो । शान्त तथा कोमल स्वभाव वाला पुत्र मुझे दीजिये । द्विज-धर्म । यदि आप ऐसा नहीं कर सकते, तो कम से कम इतना कीजिये कि मेरा पौत्र ऐसा (प्रापित पुत्र की तरह) हो । ॥४५॥ तब मुनि ने तपस्या के बल से सप्तम ऊपर कृपा की और कहा—'मुन्दरि । मैं पुन और पौत्र मन्वीर्ध भेद नहीं मानता । भद्रे । तुमने जैसा कहा वैसा ही होगा ॥४६-४७॥ तब सत्यवती ने तपस्या में निरत, इन्द्रिया को दमन करने वाले जमदग्नि नामक भृगुवर्गी पुत्र को उत्पन्न किया ॥४८॥ सप्तरा म भृगु के इस वश म जमदग्नि मुनि उत्पन्न हुए । सत्य तथा धर्म म परायेण और पवित्र यह सत्यवती कीर्तिस्वी नाम स विख्यात महानदी हुई ॥४९॥ इक्ष्वाकु वश म उत्पन्न रेणु नामक राजा की कन्या, कामकी और रेणुका नाम से प्रसिद्ध थी ॥५०॥ उस रेणुका म तपस्वी मार विद्वान् जमदग्नि के अतिप्रयत्नक सब विद्याशा म निष्णात, धनुर्वेद म पारग, क्षत्रियो के विनाशक मर अग्नि के समान दंडस्वी राम (परगुराम) नामक पुत्र को उत्पन्न किया ॥५१-५२॥ इस

१ स हि तपसा ब्रह्म म० । २ व० ॥ ३ न संस० । ४ य सुतो । ५ व० स भद्रे । ६ व० गोश्वरविपर्यति जम० । ७ गोश्वरविपर्यति रोदधण्यया पुरा । यजनाद्विषयवाय जम० । ८ क स० धानुगये० ।

रामं क्षत्रियहन्तारं प्रदोप्तमिव पावकम् । ओर्वर्त्यवमुचोक्तस्य सत्यवत्यां महायशाः ॥५३॥
जमदग्निस्तपोबीर्य्यग्नज्जे ब्रह्मविदांबरः । मध्यमश्च शुनःशेषः शुनःपुच्छः कनिष्ठकः ॥५४॥
विश्वामित्रं तु दायादं गाधिः कुशिकनन्दनः । जनयामास पुत्रं तु तपोविद्याशमात्मकम् ॥५५॥
प्राप्य ब्रह्मर्षिसमतां योऽयं ब्रह्मर्षितां गतः । विश्वामित्रस्तु धर्मात्मा नाम्ना विश्वरथः स्मृतः ॥५६॥
ज्जे भृगुप्रसादेन कौशिकद्वंशवर्द्धनः । विश्वामित्रस्य च सुता देवरातादयः स्मृताः ॥५७॥
प्रह्मपातास्त्रिषु लोकेषु तेषां नामान्यतः परम् । देवरातः कतिश्चैव यस्मात् कात्यायनाः स्मृताः ॥५८॥
शालावत्यां हिरण्याक्षो रेणुजंतेऽय रेणुकः । सांकृतिगर्भवश्चैव मुद्गलश्चैव विभ्रुतः ॥५९॥
मधुच्छन्दो जयश्चैव देवलश्च तथाष्टमः । कच्छपो हरितश्चैव विश्वामित्रस्य ते सुताः ॥६०॥
तेषां स्यादतिनि गोत्राणि कौशिकानां महात्मनाम् । पाणिनो बभ्रवश्चैव ध्यानजप्यास्तथैव च ॥६१॥
शर्य्यावा देवराताश्च शालङ् कायनवाकलाः । लोहिता थमद्रुताश्च तथा कारुषकाः स्मृताः ॥६२॥
धोरवस्य मुनिश्रेष्ठा ब्रह्मर्षेः कौशिकस्य च । सम्बन्धोऽप्यस्य वंशोऽस्मिन् ब्रह्मक्षत्रस्य विभ्रुतः ॥६३॥
विश्वामित्रात्मजानां तु शुनःशेषोऽग्रजः स्मृतः । भार्गवः कौशिकश्च हि प्राप्तः स मुनिसत्तमः ॥६४॥
विश्वामित्रस्य पुत्रस्तु शुनःशेषोऽभवत् किल । हरिदश्वस्य यजे तु पशून्वे विनियोजितः ॥६५॥
देवैर्देतः शुनःशेषो विश्वामित्राय वै पुनः । देवैर्देतः स वै यस्माद्देवरातस्ततोऽभवत् ॥६६॥

प्रकारतः शक्ति से ब्रह्मवेत्ताओ म श्रेष्ठ और महायशस्वी जमदग्नि मुनि सत्यवती से उत्पन्न हुए । मन्त्रके पुत्र का नाम शुनः शेष और छोटे पुत्र का नाम शुनः पुच्छ हुआ ॥५३-५४॥ कुशिक के पुत्र गाधि ने तपस्वी, विद्वान् और दान्त विश्वामित्र नामक पुत्र को उत्पन्न किया ॥५५॥ यमर्किया विश्वामित्र, जिसका नाम विश्वरथ भी था, ब्रह्मर्षियों की समानता को प्राप्त करके ब्रह्मर्षि बन गया ॥५६॥ भृगु की कृपा से कौशिक के वंश को बढ़ाने वाला पुत्र हुआ । विश्वामित्र के पुत्र देवरात आदि नाम से विख्यात हुए ॥५७॥ तीनों छोको में प्रख्यात उन पुत्रों के नाम मुनिप्रे—देवरात और कति, जिसमे कति के कात्यायन नाम से प्रसिद्ध पुत्र हुए ॥५८॥ शालावती नामक स्त्री से हिरण्यक्ष उत्पन्न हुआ । रेणु, रेणुज, सांकृति, गल्लव, मुद्गल, मधुच्छन्द, जय, देवल, अष्टक, बच्छप, हार्जि—ये विश्वामित्र के पुत्र कहलाये ॥५९-६०॥ उन महात्मा नौसिकों के योग प्रसिद्ध हैं । मुनिश्रेष्ठो ! पाणिन, बभ्रव, ध्यान, जप्य, पाथिव, देवरात, शालवायन, बज्जल, लोहित, यमद्रुत, कारुषक—ये सब ब्रह्मर्षि कौशिक के वंशज कहलाते हैं ॥६१-६२॥ इस वंश में ब्राह्मण और क्षत्रिय का सम्बन्ध प्रसिद्ध है । विश्वामित्र के पुत्रों में शुनःशेष श्रेष्ठ था । मुनि-श्रेष्ठ मार्गव कौशिकत्व को प्राप्त हुआ ॥६३-६४॥ विश्वामित्र का पुत्र शुनःशेष हुआ । हरिदश्व (हरिदश्वन्) के यज्ञ में शुनःशेष पशु की जगह नियुक्त किया गया था ॥६५॥ देवताओं ने फिर शुनःशेष को विश्वामित्र को दे दिया । देवताओं के द्वारा दिया जाने के कारण उसका नाम 'देवरात' पड़ा ॥६६॥ विश्वामित्र के

१ घ ० व श्रुची ० । २ ख ० दासमन्वितम् । ३ व ख ० व दे ० । ४ व ० तेषामास्यामि गो ० । ५ क ० तादय-
शपीतावष्टदायाजना स्मृ ० । ६ व ० याम-भूदावच । ७ व ० कायेश्व ।

देवरातादयः सप्त विश्वामित्रस्य वै सुताः। दृषद्वतीसुतश्चापि। विश्वामित्रस्तथाष्टकः॥६७॥
 अष्टकस्य सुतो लोहिः। प्रोक्तो जहनुषणो मया। अत उर्ध्वं प्रवक्ष्यामि वंशमापोर्महात्मनः॥६८॥
 इति श्रीब्राह्मे महापुराणे सोमवंशोऽमावसुवंशानुकीर्तनं नाम दशमोऽध्यायः॥१०॥

एकादशोऽध्यायः

तत्रादौ सोमवंशवर्णनम्

लोमहर्षण उवाच

आपोः पुत्राश्च ते पञ्च सध्वं घोरा। महारथाः। स्वर्भानुतनपायां च प्रभायां जजिरे नृपाः॥१॥
 नहुषः प्रथमं जज्ञे बृद्धशर्मा ततः परम्। रम्भो रजिरनेनाश्च त्रिषु लोकेषु विश्रुताः॥२॥
 रजिः पुत्रशतानोह जनपामास पञ्च वै। राजेयमिति विख्यातं क्षत्रमिन्द्रमयावहम्॥३॥
 यत्र देवासुरे युद्धे समुत्पन्ने सुदारणे। देवाश्चैवासुराश्चैव पितामहमयाश्रुवन्॥४॥

देवासुरा ऊचुः

आवयोर्भगवन् युद्धे को विजेता भविष्यति। ब्रूहि नः सार्वभूतेषां श्रोतुमिच्छाम सत्त्वतः॥५॥

देवरात आदि छान पुत्र थे। विश्वामित्र के दृषद्वती से अष्टक नामक पुत्र उत्पन्न हुआ॥६७॥ अष्टक के लोहि नामक पुत्र हुआ। मैंने जहनुष-परिवार को बतला दिया। अब इसके बाद महारथा आशु नामक राजा के वंश का वर्णन करेगा॥६८॥

श्री ब्रह्मपुराण के सोमवंश के वर्णन-प्रकरण में अमावसु-वंशानुकीर्तन नामक दसवाँ अध्याय समाप्त॥१०॥

अध्याय ११

लोमहर्षण बोले—आशु के चार और महारथी पाँच पुत्र स्वर्भानु की प्रमा नामक बन्धा से उत्पन्न हुए॥१॥
 पहले नहुष उत्पन्न हुआ। इसके परवान् वंशो राजा मरिष्याय बृद्धशर्मा, रम्भ, रजि और अनेना उत्पन्न हुए॥२॥
 रजि ने पाँचवाँ पुत्र उत्पन्न किया, जो इन्द्र को बघने वाले राजेय नामसे प्रसिद्ध क्षत्रिय हुए॥३॥ एन बाद मयावह देवाशु-नामक छिद्र जान पर देवराजा और राजाओं ने ब्रह्मा के पास जानकर यह निवेदन किया॥४॥

देवासुरों ने कहा—भगवन्! आप क्षत्रीयों के राजा हैं, हम राजा यह जानना चाहते हैं कि हम राजा में से कौन पराजित होना? कृपया बताइए?॥५॥

१ क ० वि विश्वामित्राष्टकः० २ क ख लोहिः। ३ क विज्या।

ब्रह्मोवाच

येषामर्थाय संप्रामे रजिरात्तायुधः प्रभुः। योत्स्यते ते विजेष्यन्ति श्रील्लोकाधरा संशयः॥६॥
यतो रजिर्धृतिस्तत्र श्रीश्च तत्र यतो धृतिः। यतो धृतिश्च श्रीश्चैव धर्मस्तत्र जयस्तथा॥७॥
ते देवा दानवाः प्रीता देवेनोक्ता रजि तदा। अग्न्ययुर्जयमिच्छन्तो वृष्वानास्तं नरर्षभम्॥८॥
स हि स्वर्भानुदोहित्रः प्रभायां सम्पद्यत। राजा परमतेजेस्वी सोमवंशधिवर्द्धनः॥९॥
ते हृष्टमनसः सख्यं रजिं च देवदानवाः। ऊचुरत्समज्जयाय त्वं गृहाण वरकाम्मुक्मम्॥१०॥
अयोवाच रजिस्तत्र तयोर्वै देवदेवयोः। अर्थतः स्वार्थमुद्दिश्य यशः त्वं च प्रकाशयन्॥११॥

रजिश्वाच

यदि दैत्यगणान् सर्वान् जित्वा धीर्य्येण वास्तवः। इन्द्रो भवामि धर्मेण ततो योत्स्यामि संयुगे॥१२॥
देवाः प्रयमतो विप्राः प्रतीयुष्टमानसाः। एवं यथेष्टं नृपते कामः सम्पद्यतां तव॥१३॥
भूत्वा सुरगणानान्तु वाक्यं राजा रजिस्तदा। पप्रच्छासुरमुखास्तु यया देवानपुच्छत॥१४॥
दानवा इयंसम्पूर्णाः स्वार्थमेवावागम्य ह। प्रत्युचुस्तं नृपवरं साभिमानमिदं वचः॥१५॥

दानवा ऊचुः

अस्माकमिन्द्रः प्रह्लादो यस्यायं विजयापहे। अस्मिंस्तु समरे राजंस्तिष्ठ त्वं राजसत्तम॥१६॥

ब्रह्मा ने कहा—युद्ध मे जिसके पक्ष से दास्य पारण कर रजि युद्ध करेगा नि सदेह वही श्रीलोकय विजयी होगा ॥१॥ क्योंकि जहाँ रजि होगा वहाँ धैर्य, जहाँ धैर्य वहाँ लक्ष्मी, जहाँ लक्ष्मी वहाँ धर्म और जहाँ धर्म होगा वहाँ विजय निश्चित होगी॥७॥ ब्रह्मा के वचन को सुनकर देवता और दानव प्रसन्न हो विजय की अभिलाषा करते हुए रजि को बरण करने के लिए उसके पास गये॥८॥ स्वर्भानु का नाती रजि, जो सोमवंश के बड़ाने वाला परम तेजस्वी राजा था, प्रभा से उत्पन्न हुआ था॥९॥ प्रसन्नचित्त देवता और राक्षस रजि से कहने लगे कि आप हमारी जय के लिये मनुष्य पारण कीजिये॥१०॥ तब अग्निप्राय को जाननेवाले रजि ने स्वार्थ का उद्देश्य सम्मुख रखकर अपनी बीति को प्रकाशित करते हुए देव-दानवों से कहा॥११॥

रजि ने कहा—‘यदि मैं शक्ति से दैत्यगणों को जीत कर धर्म से इन्द्र हो जाऊँ तो मैं सप्राम म युद्ध करूँगा’ ॥१२॥ देवताओं ने प्रयमन प्रसन्न होकर कहा—‘गर्वन्’ आपकी इच्छा पूरी होगी॥१३॥ देवताओं की बात सुनकर राजा रजि ने प्रमुख राक्षसों से भी वही बात पूछी जो देवताओं से पूछी थी॥१४॥ तब धर्म से पूर्ण दानवों ने केवल अपने ही स्वार्थ को जानकर राजा से अभिमानपूर्वक यह कहा॥१५॥

दानवों ने कहा—‘हमारे इन्द्र तो प्रह्लाद हैं, जिनके लिए हम विजय चाहते हैं। राजन्’ यदि आप हमारे इन्द्र होने की इच्छा रखते हैं तो आप इस युद्ध में हमारे विपरीत बनिये’॥१६॥ राजा ने कहा—

स तथेति ब्रुवन्नेव देवंप्रपत्तिचोदितः। भविष्यसीन्द्रो जित्वैनं देवंस्ततस्तु पार्थिवः॥१७॥
 जघान दानवान् सर्वान् येऽवध्या वज्रपाणिनः। स विप्रनष्टां देवानां परमश्रोः श्रिमं वशी॥१८॥
 निहत्य दानवान् सर्वानाजहार रजिः प्रभुः। ततो रजिं महावीर्य्यं देवैः सह शतक्रतुः॥१९॥
 रजिपुत्रोऽहमित्यूक्त्वा पुनरेवाब्रवीद्वचः। इन्द्रोऽसि तात देवानां सर्वेषां नात्र संशयः॥२०॥
 यस्याहमिन्द्रः पुत्रस्ते स्थातिं यास्यामि कर्मभिः। स तु शत्रुवचः श्रुत्वा वञ्चितस्तेन मायया॥२१॥
 तथैवेत्यब्रवीद्राजा प्रीयमाणः शतश्रतुम्। तस्मिंस्तु देवैः सदृशे दिवं प्राप्ते महीपतौ॥२२॥
 द्वायाद्यमिन्द्रादाजहः राज्यं तत्तनया रजेः। पञ्च पुत्रशतान्यस्य तद्वै स्थानं शतक्रतोः॥२३॥
 समाक्रामन्त बहुधा स्वर्गलोकं त्रिविष्टपम्। ते यदा तु स्वसम्मूढा रामोन्मत्ता विघर्मिणः॥२४॥
 ब्रह्मद्विषद्वच संवृत्ता हतवीर्य्यपराक्रमाः। ततो लेभे स्वमैश्वर्य्यमिन्द्रः स्थानं तथोत्तमम्॥२५॥
 हत्वा रजिसुतान् सर्वान् कामक्रोधपरायणान्। य इदं ध्यावनं स्थानात्प्रतिष्ठानं शतक्रतोः।
 शृणुयाद्धारयेद्वापि न स दोगंत्यमाप्नुयात्॥२६॥

लोमहर्षण उवाच

रम्भोऽनपत्यस्तवासीच्च वंशं वक्ष्याम्यनेमसः। अनेनसः सुतो राजा प्रतिसत्रो महायशः॥२७॥
 'प्रतिसत्रसुतश्चासीत्' सञ्जयो नाम विभ्रुतः। सञ्जयस्य जयः पुत्रो विजयस्तस्य चात्मजः॥२८॥

‘एशमस्तु’। तब देवताओं ने राजा से कहा—‘आप इनको मार कर इन्द्र हो जायेंगे’॥१७॥
 राजा ने उन सब दैत्यों को, जो इन्द्र से अवध्य थे, मार कर चिरकाल से नष्ट देवताओं की श्री की राक्षसों से ग्रहण किया॥१८॥ तदुपरान्त इन्द्र ने देवताओं के साथ आकर रजि से कहा—‘मैं रजि का पुत्र हूँ। तात! निःसंदेह आप सब देवताओं ने इन्द्र हैं। जिन आप का पुत्र मैं इन्द्र हूँ—इस स्थाति को मैं ज्यों से प्राप्त करूँगा’॥१९-२०॥ बड़ राजा इन्द्र की बात सुनकर माया से मोहित हो संतुष्ट हो गया और इन्द्र से बोला—‘ऐसा ही सही!’॥२१॥ तब देवताओं के समान उस राजा के स्वर्ग चले जाने पर उसके पुत्रों ने इन्द्र से राज्य छीन लिया। उनके पाँचवाँ पुत्रों ने अनेक बार स्वर्गलोक पर आक्रमण किया॥२२-२३॥ जब उन भूत, रामोन्मत्त, विघर्मी और ब्रह्म-द्रोही रजि-पुत्रों का पराक्रम नष्ट हो गया, तब इन्द्र ने काम क्रोध से रत इन सब रजिपुत्रों को मारकर अपने ऐश्वर्य और उत्तम स्थान को प्राप्त किया॥२४-२५॥ जो आदमी इन्द्र के इस उत्थान-पतन को सुनेगा या धारण करेगा, उसकी अपोगति बुरी नहीं होगी॥२६॥

लोमहर्षण बोले—रम्भ तो सन्तानहीन था, इसलिये अनेक के वंश का वर्णन मैं करूँगा। अनेक का पुत्र प्रतिदान महान् यशस्वी राजा हुआ॥२७॥ प्रतिसत्र का सञ्जय नामक पुत्र बड़ा प्रसिद्ध था। सञ्जय का पुत्र

१ क तावद्देवा०। २ स सुमपुष्टा। ३ य. प्रतिश्रेयो। ४ य. तिस्रोत्रसु०। ५ क स ० नीत्सुञ्जयो०।

६ क स ० त। सृञ्जय०।

विजयस्य कृतिः पुत्रस्तस्य हर्ष्यत्वतः^१ सुतः। हर्ष्यत्वतसुतो राजा सहदेवः प्रतापवान्॥२९॥
 सहदेवस्य घर्मात्मा नदीन^२ इति विश्रुतः। नदीनस्य^३ जयत्सेनो जयत्सेनस्य सङ्कृतिः॥३०॥
 सङ्कृतेरपि^४ घर्मात्मा शत्रवृद्धो महायशः। अनेनतः समाख्याताः शत्रवृद्धस्य चापरः॥३१॥
 शत्रवृद्धात्मजस्तत्र सुनहोत्रो महायशः। सुनहोत्रस्य दाय्यादास्त्रयः पमघामिकाः॥३२॥
 काशः शालश्च द्वावेतौ तथा गृत्समदः प्रभुः। पुत्रौ गृत्समदस्यापि शुनको यस्य शौनकः॥३३॥
 ब्राह्मणाः क्षत्रियाश्चैव वैश्याः शूद्रास्तथैव च। शालात्मज^५ आष्टित्सेनस्तनयस्तस्य काश्यपः॥३४॥
 काशस्य काशिपो राजा पुत्रो दीर्घतपास्तथा। धनुस्तु^६ दीर्घतपसो विद्वान् घन्वन्तरिस्ततः॥३५॥
 तपसोऽन्ते सुमहतो जातो वृद्धस्य घीमतः। पुनर्घन्वन्तरिद्वौ मानुषेष्टिवह जन्मनि॥३६॥
 यस्य गेहे समुत्पन्नो देवो घन्वन्तरिस्तदा। काशिराजो महाराजः सार्वरोगप्रणाशनः॥३७॥
 तामुर्व्वेदं भरद्वाजात् प्राप्येह स शिष्यक्रियः। तमष्टया पुनर्व्व्यस्य शिष्येभ्यः प्रत्यपादयत्॥३८॥
 घन्वन्तरेस्तु तनयः केतुमानिति विश्रुतः। अयं केतुमतः पुत्रो घीरो भीमरयः स्मृतः॥३९॥
 पुत्रो भीमरयस्यापि दिवोदासः प्रजेश्वरः। दिवोदासस्तु घर्मात्मा वाराणस्यधिपोऽभवत्॥४०॥
 एतस्मिन्नेव काले तु पुरीं वाराणसीं द्विजाः। शून्यां निवेशयामास क्षेमकौ नाम राजसः॥४१॥

जय और उसका पुत्र विजय हुआ ॥२८॥ विजय के कृति नामक पुत्र और उसके हर्ष्यत्व नामक पुत्र हुआ। हर्ष्यत्व का पुत्र सहदेव प्रतापी राजा हुआ ॥२९॥ सहदेव का घर्मात्मा पुत्र नदीन नाम से विख्यात हुआ। नदीन के जयत्सेन नामक पुत्र और जयत्सेन के सङ्कृति नामक पुत्र हुआ ॥३०॥ सङ्कृति के भी महायशस्वी और घर्मात्मा शत्रवृद्ध नामक पुत्र हुआ। अनेना का वंश बतला दिया, अब शत्रवृद्ध का सुनिये ॥३१॥ शत्रवृद्ध के सुनहोत्र नामक महायशस्वी पुत्र हुआ। सुनहोत्र के काश, शाल और गृत्समद नामक तीन घर्मात्मा पुत्र थे ॥३२॥ गृत्समद का पुत्र शुनक और उसका शौनक था। उसी से ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र के चार वर्ण उत्पन्न हुए। आष्टित्सेन शाल का पुत्र था। उसका पुत्र काश्यप था ॥३३-३४॥ काश के पुत्र राजा काशिप और दीर्घतपा थे। दीर्घतपा के धनु नामक पुत्र हुआ और उसके विद्वान् घन्वन्तरि उत्पन्न हुए ॥३५॥ वृद्ध और घीमान् धनु के कटिन तप के अन्त में देवता घन्वन्तरि मनुष्य योनि में उत्पन्न हुए ॥३६॥ इस जन्म में उसके घर में उत्पन्न देव घन्वन्तरि ने, जो सर्वरोग-विनाशक तथा महाराज काशिराज कहलाते थे भरद्वाज मुनि से आयुर्व्वेदको प्राप्त कर उससे आठ मास रहके शिष्यो को पढ़ा दिया ॥३७-३८॥ घन्वन्तरि का पुत्र केतुमान् नाम से प्रसिद्ध था। केतुमान् का पुत्र भीमरय तथा वीर हुआ ॥३९॥ भीमरय का पुत्र दिवोदास प्रजापति का स्वामी हुआ। घर्मात्मा दिवोदास काशी-नरेश हुआ ॥४०॥ निप्रवृत्त^७ इसी समय क्षेमक नामक राजस ने नून्य काशीपुरी में प्रवेश किया ॥४१॥ क्योंकि महात्मा

१ क हर्ष्यत्वतः। ख हर्ष्यत्वन। २ क नदीनस्य। ३ क नदीन। ४ क नदीनस्य। ५ क नदीनस्य। ६ क नदीनस्य। ७ क नदीनस्य।
 १ ग सहति। २ ग सहते। ३ ग इत्यर्था। ४ ग नदीनस्य। ५ ग नदीनस्य। ६ ग नदीनस्य। ७ ग नदीनस्य।
 १ ग नदीनस्य। २ ग नदीनस्य। ३ ग नदीनस्य। ४ ग नदीनस्य। ५ ग नदीनस्य। ६ ग नदीनस्य। ७ ग नदीनस्य।

शप्ता हि सा मतिमता निकुम्भेन महात्मना । शून्या वर्षसहस्रं वै भवित्री तु न संशयः ॥४२॥
 तस्यां हि शप्तमात्रायां दिवोदासः प्रजैश्वरः । विषयान्ते पुरीं रम्यां गोमत्या संन्यवेशयत् ॥४३॥
 भद्रश्रेण्यस्य पूर्वं तु पुरीं वाराणसीं ह्यभूत् । भद्रश्रेण्यस्य पुत्राणां शतमुत्तमघन्विनाम् ॥४४॥
 हत्वा निवेशयामास दिवोदासो नराधिपः । भद्रश्रेण्यस्य तद्वाज्यं हृतं येन बलीयसा ॥४५॥
 भद्रश्रेण्यस्य पुत्रस्तु दुर्दमो नाम विश्रुतः । दिवोदासेन बालेति घृणया स विसर्जितः ॥४६॥
 हेह्यस्य तु दायाद्यं हृतवान् यं महोपतिः । आजह्ने पितृदायाद्यं दिवोदासहृतं बलात् ॥४७॥
 भद्रश्रेण्यस्य पुत्रेण दुर्दमेन महात्मना । वैरस्यान्तो महाभागा, कृतश्चात्मीयतेजसा ॥४८॥
 दिवोदासाद्दुष्टद्वयौ वीरो जज्ञे प्रतर्दनः । तेन बालेन पुत्रेण प्रहृतं तु पुनर्बलम् ॥४९॥
 प्रतर्दनस्य पुत्री द्वौ घत्सभयो^१ सुविश्रुतौ । वत्सपुत्रो ह्यलर्कस्तु सन्नतिस्तस्य चात्मजः ॥५०॥
 अलर्कस्तस्य पुत्रस्तु ब्रह्मण्यः सत्यसङ्गरः । अलर्कं प्रति राज्ञिं श्लोको गीतः पुरातनः ॥५१॥
 पण्डितवर्षसहस्राणि पण्डितवर्षशतानि च । युवा रूपेण सम्पन्नः प्रागासीच्च कुलोद्भवः ॥५२॥
 लोपामुद्राप्रसादेन परमापुरवाप्तवान् । तस्यासीत् सुमहद्वाज्यं रूपयौवनशालिनः ॥५३॥
 शापस्यान्ते महाबाहुर्हत्वा क्षेमकराक्षसम् । रम्यां निवेशयामास पुरीं वाराणसीं पुनः ॥५४॥
 सन्नतेरपि दामादः सुनीयो नाम धार्मिकः । सुनीयस्य तु दायादः क्षेमो नाम महायशः ॥५५॥
 क्षेमस्य केतुमान् पुत्रः सुकेतुस्तस्य चरमजः । सुकेतोस्तनयश्चापि धर्मकेतुरिति स्मृतः ॥५६॥

निकुम्भ ने काशी पुरी को शाप दिया था कि तुम हजार वर्ष तक नि सदेह धून् रहोगी । ॥४२॥ जब काशीपुरी
 शापपस्त हो गयी तब राजा दिवोदास ने गोमती नदी के तट पर सुन्दर नगर रववर प्रजा को बसाया ॥४३॥
 पहले भद्रश्रेण्य की काशीपुरी हो गई थी । भद्रश्रेण्य के सा उत्तम घनुर्घांगी पुत्रों को मारकर राजा दिवोदास ने
 बलपूर्वक भद्रश्रेण्य की राज्य-हरण कर अपना बना लिया ॥४४-४५॥ भद्रश्रेण्य के दुर्दम नाम से विख्यात पुत्र को दिवो-
 दास ने बार-बार समझ कर दयावश छोड़ दिया ॥४६॥ राजा ने हेह्य की पितृ-सपत्ति छीन ली । महाभाग ! भद्र-
 श्रेण्य के पुत्र महात्मा दुर्दम ने दिवोदास से बलपूर्वक हरण किये गये पितृ-घन पर अपना प्रभुत्व फिर स्थापित कर
 लिया और अपने पराक्रम से शत्रु का अन्त कर दिया ॥४७-४८॥ दिवोदास की दुष्टपत्नी से और प्रतर्दन उत्पन्न हुआ ।
 प्रतर्दन ने फिर उस राज्य को अपने अधीन कर लिया ॥४९॥ प्रतर्दन से वत्स और सगे नामक दो पुत्रों की उत्पत्ति
 हुई । वत्स के पुत्र का नाम अलर्क और उसके पुत्र का नाम सनति था ॥५०॥ अलर्क ब्रह्मचारी तथा सत्यवादी था ।
 राजपि अलर्क के विषय में ऐसा सुना जाता है कि छोट्ट हजार वर्षों तक वह पुत्र ही बना रहा ॥५१-५२॥ लोप-
 मुद्रा की कृपा से उसने परमाप् प्राप्त की थी । रूपयौवनशाली प्रतर्दन का राज्य बूट बिलुप्त था ॥५३॥ शाप के
 अन्त में प्रतर्दन ने क्षेमक राजश्वर को मारकर रमणीय काशी पुरी को फिर से बसाया ॥५४॥ सनति का भी सुनीय
 नामक पुत्र पैदा हुआ । सुनीय के क्षेम नामक महायशस्वी पुत्र हुआ ॥५५॥ क्षेम के पुत्र केतुमान् से सुकेतु उत्पन्न
 हुआ । सुकेतु का पुत्र धर्मकेतु कहलाया ॥५६॥ धर्मकेतु का पुत्र महारथी सत्यकेतु हुआ । सत्यकेतुने किम्

धर्मकेतोस्तु दायादः सत्यकेतुर्महारथः। सत्यकेतुसुतश्चापि विभुर्नाम प्रजेश्वरः॥५७॥
 आनसंतु विभोः पुत्रः सुकुमारश्च तत्सुतः। सुकुमारस्य पुत्रस्तु घृष्टकेतुः सुधार्मिकः॥५८॥
 घृष्टकेतोस्तु दायादो वेंणुहोत्रः प्रजेश्वरः। वेंणुहोत्रसुतश्चापि भार्गो नाम प्रजेश्वरः॥५९॥
 वत्सस्य वत्सभूमिस्तु भार्गभूमिस्तु भार्गजः। एते त्वङ्गिरसः पुत्रा जाता वंशेऽय भार्गवे॥६०॥
 ब्राह्मणाः क्षत्रिया वंश्यास्तत्रयः पुत्राः सहस्रशः। इत्येते काश्यपाः प्रोक्ता नहुषस्य निबोधत॥६१॥
 इति श्रीब्राह्मे महापुराणे सोमवंशे वृद्धक्षत्रप्रसूतिनिरूपणं नामैकादशोऽध्यायः॥११॥

द्वादशोऽध्यायः

सोमवंशवर्णन आयुवंश-वर्णनम्

लोमहर्षण उवाच

उत्पन्नाः पितृकन्यायां विरजायां महोजसः। नहुषस्य तु दायादाः षड्विंशोपमतेजसः॥१॥
 यतिर्वयातिः सयातिरायातिर्यातिरेव च। स्यातिः पृच्छतेपां च ययातिः पार्थिवोऽभवत्॥२॥

नामक प्रजेश्वर पुत्र हुआ॥५७॥ विभु के पुत्र का नाम आनसंत और उसके पुत्र का नाम सुकुमार था। सुकुमार का पुत्र घृष्टकेतु बड़ा धार्मिक था॥५८॥ घृष्टकेतु का पुत्र वेंणुहोत्र प्रजाओं का स्वामी हुआ। वेंणुहोत्र का पुत्र भार्ग नामक प्रजेश्वर हुआ॥५९॥ वत्स के वत्सभूमि नामक पुत्र हुआ। भार्ग के पुत्र का नाम भार्गभूमि था। ये अगिरा के पुत्र स्रगुवश में उत्पन्न हुए॥६०॥ ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य—ये तीन पुत्र हजारों की संख्या में उत्पन्न हुए। अब नहुष के वंश को सुनिए॥६१॥

श्री ब्रह्ममहापुराण के सोम-वंश के वर्णन-अंग में वृद्धक्षत्र-प्रसूति-निरूपण नामक प्यारङ्गवां अध्याय समाप्त॥११॥

अध्याय १२

ययाति का चरित्र-वर्णन

लोमहर्षण ने कहा—महातेजस्वी नहुष के इन्द्र के समान तेजस्वी बृह पुत्र विरजा नामक पितृकन्या से उत्पन्न हुए—यति, ययाति, सयाति, अयाति याति और छठा सुयाति। उनमें से ययाति राजा हुआ॥१-२॥ परम धार्मिक ययाति ने ऋतुत्प की गो नामक कन्या को प्राप्त किया। यति मोक्ष भक्ति लगाकर ब्रह्मनिष्ठ मूनि बन

१ ग ०८। स्वविभुस्तु २ ख ययौ। ३ ख ०स्तु ययौ। ४ क भूतिस्तु। ५ ग भार्गवात्। ६ क ०श्या आयो पुत्रा। ७ ख. ०न्द्रोपेन्द्रते०।

ककुत्स्थकन्यां गां नाम लभ परमधार्मिकः। यतिस्तु मोक्षमास्थाय ब्रह्मभूतोऽभवत् मुनिः॥३॥
 तेषां ययातिः पञ्चानां विजित्य वसुधामिमाम्। देवयानीमुशनसः सुतो भार्यामवाप सः॥४॥
 शर्मिष्ठाभासुरीं चैव तनयां वृषपर्वणः। यदुञ्च तुर्वंसुञ्चैव देवयानी व्यजयित॥५॥
 द्रुह्यं चानुं च पुवं च शर्मिष्ठा वार्यपर्वणो। तस्मै शाक्री ददौ प्रीतो रथं परमभास्वरम्॥६॥
 अङ्गदं काञ्चनं दिव्यं दिव्यं परमधार्जिभिः। युधत् मनोजवं शूश्रंषेन कार्प्यं समुद्रहन्॥७॥
 स तेन रथमुत्थेन पद्माश्रेणाजयन्महोम्। ययातिर्युधि दुर्धर्पस्तथा देवान् सदानवान्॥८॥
 स रथः कोरवाणां तु सर्वेषामभवत्तदा। संवत्तंयसुनामस्तु कीरवाज्जनमेजयात्॥९॥
 कुरोः पुत्रस्य राजेन्द्रराजः पारिक्षितस्य ह। जगाम स रथो नाशं शापाद्वर्गस्तम धीमतः॥१०॥
 गर्गस्य हि सुतं बालं स राजा जनमेजयः। कालेन हिसयामास ब्रह्महत्यामवाप सः॥११॥
 स लोहगन्धो राजर्षिः परिषाद्यन्नितस्ततः। पौरजानपदेस्तथतो न लेभे शर्मं कर्हिचित्॥१२॥
 ततः स दुःखस्तप्तो नालभत्तंविदं क्वचित्। विप्रेन्द्रं शौनकं राजा शरणं प्रत्यपद्यत॥१३॥
 याजयामास च ज्ञानो शौनको जनमेजयम्। अश्वमेधेन राजानं पावनार्थं द्विजोत्तमः॥१४॥
 स लोहगन्धो ध्वनन्नात्सवावभूषमेत्य ह। स च दिव्यरथो राज्ञो यशश्चेदितस्ततदा॥१५॥
 वत्तः शाक्रेण सुष्टेन लेभे तस्माद्बृहद्रथः। बृहद्रथास्त्रमेर्षव गतो बार्हद्रथं नृपम्॥१६॥

गया। ययाति ने पाँचों भार्या की रूची को जीतकर पुत्राचार्य की देवयानी नामक कन्या से विवाह किया॥३॥
 पञ्चाक्षु उज्ज्वल कृष्णवर्णा नामक राक्षस की दामिण्या नामक पुत्री को पत्नी बनाया। यदु और सुर्वेसु नामक दो पुत्र देवयानी से उत्पन्न हुए॥४॥ दामिण्या ने द्रुह्य, अनु और पुर्व नामक पुत्रों को उत्पन्न किया। ययाति को द्रुह्य ने प्रथम होकर मन के वेग के समान वेग वाले तथा सफेद रंग वाले दिव्य घोड़े से युक्त और परम प्रकाश से सुसज्जित सुवर्ण-निर्मित रथ दिया॥५॥ उक्त रथ से युद्ध में अथर्व ययाति ने उक्त रात्रि में देवता और राक्षस सहित सगुणं पुष्पी को जीत लिया॥६॥ सर्ववशु नामक बृहत् रथ कुरवर्षियों के पास रहा। परन्तु महावीर परीक्षित के पुत्र—जनमेजय के समय बृहत् रथ महारथ गण के हाथ से नष्ट हो गया॥७॥ कदाचित् राजा जनमेजय द्वारा गण के पुत्र की हत्या हो जाने से उसे ब्रह्महत्या का दोष लग गया॥८॥ तब लोह-गन्ध से युक्त राजा जनमेजय श्वर-उपर भागने लगा। जनता ने उसका परित्याग कर दिया। उसे कहीं भी शान्ति नहीं मिल रही थी॥९॥ अतएव अचान्त, उत्पत्त राजा विदवर्ष शौनक के पास गया॥१०॥ ब्राह्मण-श्रेष्ठ ज्ञानी शौनक ने राजा जनमेजय को पवित्र करने के लिए उससे अश्वमेध यज्ञ कराया॥११॥ यज्ञान्त में राजा का लोह-गन्ध नष्ट हो गया। उक्त समय द्रुह्य ने तत्पुत्र होकर यही दिव्यरथ राजा केन्द्रित (सिन्धु-गत) को दे दिया। उससे बृहद्रथ ने प्राप्त किया॥१५॥ अतएव बृहत् रथ बृहद्रथ के हाथ से बार्हद्रथ (जटायु) नामक राजा के हाथ में पड़ा॥१६॥ तब कुरवर्षी भीम ने जटायु को मारकर यही उत्तम रथ

१ ग गूढः। २ ग ०म्। महाराजक ३०। ३ ग ० न च दिव्यं। ४ ग मनोरथं। ५ ग ० न दिग्गवेन ७०। ६ ग न विदवर्षाद्वारः। ७ ग न कीरवाणां। ८ ग ० न विप्रेन्द्रः। ९ ग भाकूर। ग वाक्कूरः। १० ग सः। सुर्वेसुपुत्री रा०। ११ ग होतारः। ग इन्द्रावः। १२ ग ० न केन्द्रेण यो०। १३ ग सगारवे०।

ततो हत्वा जरासन्धं भीमस्तं रथमुत्तमम् । प्रददौ वासुदेवाय प्रोत्था कौरवमन्दनः ॥१७॥
 सप्तद्वीपां ययातिस्तु जित्वा पृथ्वीं ससागराम् । विभज्य पञ्चधा राज्यं पुत्राणां नाहुपस्तदा ॥१८॥
 ययातिर्विंशि पूर्व्वस्यां यद्वं ज्येष्ठं न्ययोजयत् । मध्ये शुभं च राजानमभ्यदिञ्चत् स नाहुपः ॥१९॥
 विंशि दक्षिणपूर्व्वस्यां तुर्व्वस्तु मतिमान्मृगः । तैरियं पृथिवी सर्वा सप्तद्वीपा रुपतना ॥२०॥
 ययाप्रदेशमद्यापि धर्मेण प्रतिपाल्यते । प्रजातयेया पुरस्तात् वक्ष्यामि मुनिसत्तमाः ॥२१॥
 धनुर्न्यस्य पृथक्कांश्च पञ्चभिः पुरुषपंभैः । जरावानभद्राज्जा भारमावेदय बन्धुषु ॥२२॥
 विक्षिप्तशस्त्रः पृथिवीं चचार पृथिवीपतिः । प्रीतिमानभवद्राजा ययातिरपराजितः ॥२३॥
 एवं विभज्य पृथिवीं ययातिपंडुमश्वदीत् । जरां मे प्रतिगृणीष्व पुत्र हृत्पान्तरं वै ॥२४॥
 तद्व्यस्तव रूपेण चरेयं पृथिवीमिमाम् । जरां त्वयि समापाय तं यदुः प्रत्युवाच ह ॥२५॥

यदुःखाच्च

अनिर्दिष्टा भया भिक्षा ब्राह्मणस्य प्रतिभृता । अनपाकृत्य तां राज्ञं ग्रहीष्यामि ते जराम् ॥२६॥
 जरायां बहवो दोषाः पानभोजनकारिताः । तस्मान्जरां न ते राजन् ग्रहीषुमहमुत्तरे ॥२७॥
 सन्ति ते बहवः पुत्रा मत्तः प्रियतरा नृप । प्रतिग्रहीतुं धर्मज्ञ पुत्रमयं वृणीष्व वै ॥२८॥
 स एवमुक्त्वो यदुना राजा कोपसमन्वितः । उवाच वरतां श्रेष्ठो ययातिर्गर्हन् सुतम् ॥२९॥

प्रीतिपूर्व्वकं वासुदेव (कृष्ण) को दिया ॥१६-१७॥ ययाति ने समूह सहित सप्तद्वीप वाली इस पृथिवी को जीतकर इसकी पींच भाग करते पुत्रों में बाँट दिया ॥१८॥ नहुप-पुत्र ययाति ने पूर्वे दिशा में ज्येष्ठ पुत्र यदु को नियुक्त किया, मध्य देश में राजा पुत्र का अभिषेक किया और दक्षिण-पूर्व दिशा का राज्य तुर्व्व को दिया ॥१९॥ वे आज भी नगर सहित इस सप्तद्वीपा पृथ्वी का अपन-अपन प्रदेश में धर्मपूर्व्वक प्रतिपालन कर रहे हैं। मुनिवर । उनकी प्रजाओं का धर्म आगे चलकर बर्हेगा ॥२०-२१॥ धनुष और बाणों का त्याग कर पांचों पुरुष-ज्येष्ठ पुत्रों को सब मार खीप कर राजा ययाति बुढ़ावस्था को प्राप्त हुआ ॥२२॥ शस्त्रों का त्याग कर अजेय राजा ययाति प्रव्रजता से पृथ्वी का परिभ्रमण करने लगा ॥२३॥ इस प्रकार पृथिवी का विभाग करते ययाति ने अपने पुत्र यदु से कहा— 'पुत्र ! मेरी बुढ़ावस्था को ग्रहण करो । मैं अपना बुढ़ावा तुम्हें देकर तुम्हारी युवावस्था को स्वयं लेकर वायन्तिर से इस पृथिवी पर विचरण बर्हेगा।' पिता की बात सुनकर यदु ने उत्तर दिया ॥२४-२५॥

यदु बोला—मैंने अप्रकाश मिला देने के लिए एक ब्राह्मण से प्रतिज्ञा की थी। राजन् ! उसकी पूर्ति किए बिना मैं अपना बुढ़ावा ग्रहण नहीं कर सकता ॥२६॥ राजन् ! खल-पान से उत्पन्न अनेक प्रकार के रोग बुढ़ावस्था में होते हैं। इसलिए मैं उसे ग्रहण करने का उत्साह नहीं दिखा सकता ॥२७॥ मुझसे बड़कर प्रिय आपके अनेक पुत्र हैं। हे परमंत ! उनमें से किसी को आप उसकी जवानी लेने के लिए चुन लें ॥२८॥ यदु के इस प्रकार बहने पर राजा क्रुपित हुआ। बकाजों में ज्येष्ठ ययाति ने पुत्र की शर्तना करते हुए कहा ॥२९॥

ययातिरुवाच

‘कञ्जाश्रमस्तवान्योऽस्ति को वा धर्मो विधीयते। मामनादृत्य दुर्वृद्धे यदहं तव देशिकः॥३०॥
 एवमुक्त्वा यदं विप्राः शशापेन स मन्दमान्। जराग्या ते प्रजा मूढ भवित्रीति न’ संशयः॥३१॥
 द्रुह्यं च तुर्वंसं चैवाप्यनं च द्विजसत्तमाः। एवमेवाह्नवीद्राजा प्रत्याख्यातश्च तैरपि॥३२॥
 शशाप तानतिक्रुद्धो ययातिरपराजितः। ययावत् कथितं सर्व्वं मयास्य द्विजसत्तमाः॥३३॥
 एवं शप्त्वा सुतान् सर्व्वादच्चतुरः। पुरुषपूर्व्वजान्। तदेव वचनं राजा पुष्कम्प्याह भो द्विजाः॥३४॥
 तपणस्तव रूपेण चरेयं पृथिवीमिमाम्। जरां त्वमि समाधाय त्वं पुरो यदि मन्यसे॥३५॥
 स जरां प्रतिजग्राह पितुः पुरुः प्रतापवान्। ययातिरपि रूपेण पुरोः पर्य्वचरन् महीम्॥३६॥
 ‘स मागंमाणः’ कामानामन्तं नृपतिसत्तमः। विश्वाच्या सहितो रेमे वने चंन्रये प्रभुः॥३७॥
 यदा स तूतः कामेषु भोगेषु च नराधिपः। तदा पुरोः सकाशाहं रथं जरां प्रत्यपद्यत॥३८॥
 यत्र गायामुनिश्रेष्ठा गीताः किल ययातिना। याभिः प्रत्याहरेत्कामान् सर्व्वशोऽङ्गानि कूर्म्मवत्॥३९॥
 न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति। हविषा कृष्णवर्म्वेभ्य भूय एवाभिवर्द्धते॥४०॥
 यत्पुत्रिभ्यां श्रोत्रियवं हिरण्यं पशवः स्त्रियः। नाल्मेकस्य तत्सर्व्वमिति वृत्त्वा न मुह्यति॥४१॥

ययाति बोलत—‘दुर्वृद्धे! मेरा अनारद करने कीन ऐसा आश्रम या धर्म है, जिसका तुम आचरण करोगे? क्योंकि मैं तुम्हारा गुरु हूँ॥३०॥ विप्रवृन्द! ऐसा बहुर बोलो राजा ने बहुत को शाप दिया—‘मूर्ख! तेरी प्रजा, राज्यरहित होगी, इसमें कोई संदेह नहीं॥३१॥ द्विजवर! राजा ने इसी प्रकार द्रुप, तुर्वंसु और अनु से भी कहा और उन लोगों ने भी स्पष्ट अस्वीकार कर दिया॥३२॥ द्विजश्रेष्ठ! अनेक ययाति ने अत्यन्त जोष में आकर उन को भी वही शाप दिया। इनके बारे में मैंने सब कुछ धर्षाया कहा॥३३॥ पुरु से ज्येष्ठ चार पुत्रों को इस तरह शाप देकर राजा ने पुरु से भी कहा—‘पुरु! यदि तुम स्वीकार करो तो मैं अपनी बुढ़ाई तुम्हें देकर और तुम्हारी युवावस्था को प्रहृत कर पृथिवी-मण्डल का चक्रार लगाऊँ॥३४-३५॥ प्रजापी पुरु ने पिता को बुढ़ाई ले ली। ययाति भी पुरु का रूप लेकर पृथ्वी पर विचरने लगा॥३६॥ कामों का अन्त करने के विचार से राजा ययाति विदवाली के सग चैत्ररथ नामक वन में रमण करने लगा॥३७॥ परन्तु जब कामों के योग से यह मुक्त नहीं हुआ, तब उसने पुरु से अपनी बुढ़ावस्था को लेकर उसकी ज्वलती लौटा दी॥३८॥ मुनिश्रेष्ठो! उस समय राजा ययाति ने गाथाएँ, गाने, जिनकी सुनकर मनुष्य कामों को छोड़ प्रसारसमुचित कर के जिस प्रकार बहूधा अपने अगा को सब आर से घेरेट होता है॥३९॥ ‘कामों का उपभोग करने रहने से काम नहीं मिटता, बल्कि यों बाल्य से आय की तरह वह और भी बढ़ जाता है॥४०॥ पृथ्वी पर जिनन अन्न, सत्ता, धन और स्त्रियाँ हैं, वे सब एक आदमी के लिए भी पर्याप्त नहीं हैं। इसलिए मनुष्य को मोह में नहीं पड़ना चाहिए॥४१॥ जिस व्यक्ति का मनया वाचा-कर्मणा प्राणिमान में

१ ग ग नराधिप। २ ग पुरुषपूर्वजान्। ३ स ०६ पुरु पुद्गल। ४ ग ०माणस्तपणी मुपतो नृपत०।
 ५ ग स पुरो।

यदा भावं न कुर्वते सर्व्वभूतेषु पापकम् । कर्मणा मनसा वाचा ब्रह्म सम्पद्यते तदा ॥४२॥
यदा तेभ्यो न विभेति यदा चास्मात्त्र विभ्यति । यदा नेच्छति न द्वेष्टि ब्रह्म सम्पद्यते तदा ॥४३॥
या दुस्त्यजा दुर्मन्तिभिर्या न जीव्यन्ति जीव्यन्तः । योऽसौ प्राणान्तिको रोगस्तां तृष्णां त्यजतः सुप्तम् ॥४४॥
जीव्यन्ति जीव्यन्तः केशा दन्ता जीव्यन्ति जीव्यन्तः । घनाशा जीविताशा च जीव्यन्तोऽपि न जीव्यन्ति ॥४५॥
यच्च कामसुखं लोके यच्च दिव्यं महत्सुखम् । तृष्णाक्षयसुखस्येते नाहन्ति षोडशीं बलाम् ॥४६॥
एवमुक्त्वा स राजर्षिः सदारः प्राविशद्वनम् । कालेन महता चार्यं चचार विपुलं तपः ॥४७॥
भृगुतुङ्गे गतिं प्राप तपसोऽन्ते महायशः । अनन्यं देहमुत्सृज्य सदारः स्वर्गमाप्तवान् ॥४८॥
तस्य धर्मो मुनिश्रेष्ठाः पञ्च राजर्षिसत्तमाः । यैर्याप्ता पृथिवी सर्वा सूर्यस्येव गमस्तिभिः ॥४९॥
यदोस्तु धर्मं वक्ष्यामि शृणुध्वं राजसरवृतम् । यत्र नारायणो जते हरिर्बुध्निपुलोद्बहः ॥५०॥
सुख्यः प्रजावानायुस्मान् कौत्तिमाश्च भवेन्नरः । ययातिचरितं नित्यमिदं शृण्वन् द्विजोत्तमाः ॥५१॥

इति श्रीब्राह्मे महापुराणे सोमवंशे ययातिचरितनिरूपणं नाम द्वादशोऽध्यायः ॥१२॥

पाप-नाशना नदी होती, वही ब्रह्म को प्राप्त करता है । ॥४२॥ जो न विभी से डरता है, न बर्षी से कोई डरता है, न कुछ चाहता है और न किसी से द्रोह करता है, वही ब्रह्म में लीन होता है ॥४३॥ जो तृष्णा बुद्धिधानों से दुस्त्या-
ण है, बुद्धावस्था के साथ बुद्ध नहीं होती और प्राणों का नाश करने वाला रोग है, उस तृष्णा को त्यागन में मुक्त
मिलता है ॥४४॥ शरीर के जीर्ण होने पर वेग और दौन जीर्ण हो जाते हैं, पर धन और प्राणा की आशा (शरीर
के जीर्ण हो जाने पर भी) जीर्ण नहीं होती । ॥४५॥ लक्ष में जो काम-मुक्त है और जो स्वर्गीय महान् मुक्त है,
वे सब मुक्त तृष्णाक्षयसुख मुक्त के सोऽहं हस्ते के बराबर भी नहीं हैं ॥४६॥ इस प्रकार बह्मर राजर्षि ययाति
वन में प्रविष्ट हुआ । दीर्घकाल तक उसने महान् तपस्या की ॥४७॥ तप के अन्त में पवन के गिरने
पर निरुत्तर रहकर उठने शरीर को त्याग दिया । उस महायशस्वी राजाने पत्नी सहित स्वर्ग को प्राप्त किया ॥४८॥
मुनिवर ! उठने वर में पाँच राजर्षि-श्रेष्ठ हुए, जिनसे यह संपूर्ण पृथ्वी वैश्व ही ध्यात हुई जैसे सूर्य
को गिरणों से वह व्याप्त रहती है ॥४९॥ राजाओं से सहित यदु का वन में बह्मण, जहाँ बुध्नि-पुत्र के हाथान् नाश-
यण अवतीर्ण हुए थे ॥५०॥ आप लोग सुनें । द्विजवर ! जो व्यक्ति उच्च ययाति-चरित का नियम श्रवण करेगा,
वह स्वस्थ, प्रजावान्, आयुस्मान् और कीर्तिमान् होगा ॥-१॥

श्री ब्रह्ममहापुराण के अष्टावधार्मिक प्रथम म ययाति चरित निरूपण नामक ब्राह्मण अध्याय समाप्त ॥१२॥

त्रयोदशोऽध्यायः

पुरुवंश-वर्णनम्

ब्राह्मणा ऊचुः

पुरोवंशं वयं सूत श्रोतुमिच्छाम तत्त्वतः। द्रुह्यस्थानोर्यदोश्चैव तुवंसोश्च पृथक् पृथक्॥१॥

लोमहर्षण उवाच

धृगुध्वं मुनिशादूलाः पुरोवंशं महात्मनः। विस्तरणानुपूव्या च प्रथमं वदतो मम॥२॥
पुरोः पुत्रः सुवीरोऽभून्मनस्पुस्तस्य^१ चात्मजः। राजा चाभयदो नाम भनरयोरभवत् सुतः॥३॥
तयंवाभयदस्यासीत् सुधन्वा^२ नाम पार्थिवः। सुधन्वनः सुबाहुश्च रौद्राश्वरतस्य चात्मजः॥४॥
रौद्राश्वस्य दशार्णवैः^३ कृकणैःपुस्तथैव च। कक्षेयश्च षडिलेयश्च स्रुतेयस्तथैव च॥५॥
ऋचेयश्च जलेयश्च स्थलेयश्च महाबलः। धनेयश्च वनेयश्च पुत्रकाश्च दश स्त्रियः॥६॥
भद्रा^४ शूद्रा च मद्रा घशल्दा मलदा तथा^५। खजदा च ततो विप्रा नलदा सुरसापि च॥७॥
तथा गोविपला च स्त्रीरत्नकूटा च ता दश। ऋषिर्जातोऽत्रिंशो च तासां भर्ता प्रभाकरः॥८॥
भद्रायां^६ जनयामास सुतं सोमं यशस्विनम्। स्वर्भानुना हते सूर्यं पतमाने दिवो महीम्॥९॥

अध्याय १३

पुरु के वंश का वर्णन

ब्राह्मणों ने कहा—सूतजी! पुरु, द्रुह्य, अनु, यदु और तुवंसु के वंशों को हमलोग तत्त्वपूर्वक पृथक्-पृथक् सुनता चाहते हैं॥१॥

लोमहर्षण बोले—मुनिश्रेष्ठो! पहले आप पुरुवंश का वंश विस्तृत वर्णन सुनिए, मैं कह रहा हूँ॥२॥
पुरु के सुवीर नाम का पुत्र हुआ। उसका पुत्र भनस्पु और मनस्पु का पुत्र अभयद नाम का राजा हुआ॥३॥ उसी तरह अभयद का पुत्र सुधन्वा नाम का राजा हुआ। सुधन्वा का पुत्र सुबाहु और उसका पुत्र रौद्राश्व था॥४॥ रौद्राश्व के दशार्णव, कृकणैयु, कक्षेयु, स्थण्डिलेयु, सप्तनेयु, ऋचेयु, जलेयु, महाजली स्थलेयु, धनेयु वनेयु—ये दस पुत्र थे। उसकी कन्याएँ भी दस थी—॥५-६॥ भद्रा, शूद्रा, मद्रा, घालदा, मलदा, खलदा, नलदा, सुरसा, गोविपला और स्त्रीरत्नकूटा॥७॥ अत्रि-वंश में उत्पन्न प्रभाकर नाम का ऋषि इनका पति था॥८॥ भद्रा से यशस्वी योग की उत्पत्ति हुई। राहु ने जब सूर्य को प्रथम लिता और सूर्य आकाश से पृथ्वी पर गिराने लगे तब प्रभाकर ने ही अनेक से युवक लोक में प्रकाश डाला और

१ य ननस्पु०। २ य ननस्पुस्य०। ३ य न्वा च दशार्णवः। सु०। ४ य दशार्णवः। य. दशार्णवः। ५ क कणापु०। ६ य सनुते०। ७ य महायसा। ८ क य वननित्यो। ९ क धनेयुश्च। १० य हद्रा। ११ य ० या। सगवलात०। १२ क खलदा। १३ क य खरदा। १४ य रद्राया।

तमोऽभिभूते लोके च प्रभा येन प्रवर्त्तिता । स्वस्ति तेऽस्त्विति चोचत्वा ये पतमानो दिवाकरः ॥१०॥
 वचनात्तस्य विप्रर्षेण पपात दिवो महीम् । अत्रिभ्रेष्ठानि गोत्राणि यदचकार महातपा ॥११॥
 'यज्ञेष्वग्नेर्बलञ्चैव देव्यस्य प्रतिष्ठितम् । स तासु जनयामास पुत्रिकास्वधामकामजान्' ॥१२॥
 दश पुत्रान् महासत्त्वास्तपस्युपे रतास्तथा । ते तु भोत्रकरा विप्रा ऋषयो वेदपारगा ॥१३॥
 स्वस्त्यात्रेया इति ख्याता किञ्च त्रिधनवर्जिताः । कस्योस्तनयास्त्वास्तस्यैव एव महारथाः ॥१४॥
 सभानरदचाक्षुषश्च परमन्यस्तथैव च । सभानरस्य पुत्रस्तु विद्वान् कालानलो नृपः ॥१५॥
 कालानलस्य धर्मजः सृञ्जयो नाम वै सुत । सृञ्जयस्याभवत् पुत्रो वीरो राजा पुरञ्जयः ॥१६॥
 जनमेजयो मुनिभ्रेष्ठा पुरञ्जयसुतोऽभवत् । जनमेजयस्य राज्यमहाशालोऽभवत् सुत ॥१७॥
 देवेषु स परिज्ञातः प्रतिष्ठितयशो भुवि । महामना नाम सुतो महाशालस्य विश्रुतः ॥१८॥
 जने धीरः सुरगणैः पूजितः सुमहामना । महामनास्तु पुत्रो द्वौ जनयामास भौ द्विजाः ॥१९॥
 उशीनरञ्च धर्मजं तिसिञ्च महाबलम् । उशीनरस्य पत्न्यस्तु यञ्च राजपिवंशजाः ॥२०॥
 नृगा कृमिर्नवा दर्व्या पञ्चमो च दृपद्वती । उशीनरस्य पुत्रास्तु यञ्च तासु क्लोद्दृष्टाः ॥२१॥
 तपसा च महता जाता वृद्धस्य चात्मजा । नृगायारस्तु नृग पुत्रः कृन्वा कृमिरजायत ॥२२॥
 मवापास्तु नवः पुत्रो दर्व्याया सुप्रतोऽभवत् । दृपद्वयास्तु सञ्जज्ञे शिविरीशीनरी नृप ॥२३॥

सूर्य से कहा—“तुम्हारा कल्याण हो” ॥१-१०॥ उस विप्रि के वचन से सूर्य पृथ्वी पर नहीं गिरे । उशी तपस्वी ने अत्रि के आज्ञेय नाम से विख्यात गोत्रों को बढ़ाया और यज्ञों में देवताओं के साथ अत्रि को भाग दिलाया ॥११॥ उसने उन कन्याओं से महासत्त्वशाली और तपस्या में निरत दस पुत्रों को उत्पन्न किया । वे पुत्र वेदपारंगत, स्वस्त्यात्रेय नाम से विख्यात, तीन प्रकार के यनों से वर्जित और योगवर्धक हुए ॥१२-१३॥ कश्यप के तीन ही महारथी पुत्र थे—सभानर चाक्षुष और परमन्यु । सभानर का पुत्र कालानल विद्वान् तथा राजा था ॥१४-१५॥ कालानल का सृञ्जय नामक पुत्र धर्मज था । सृञ्जय का पुत्र पुरञ्जय वीर राजा हुआ ॥१६॥ मुनिवर । पुरञ्जय के जनमेजय नामक पुत्र हुआ । राजपि जनमेजय के महाशाल नामक पुत्र हुआ ॥१७॥ वह देवताओं में विख्यात और सत्कार में महायशस्वी हुआ । महाशाल के महामना नामक पुत्र उत्पन्न हुआ, जो देवताओं से पूजित तथा महावीर था ॥१८॥ विप्रबुद्ध । महामना न दो पुत्र उत्पन्न किये—धर्मज उशीनर और महाबली तिसिञ्च । उशीनर ने राजपिवंश में समुत्पन्न पाँच परित्याग्ये थी— ॥१९-२०॥ नृगा कृमि, नवा, दर्व्या और दृपद्वती । उशीनर ने उनसे वध को कारण करन वाले पाँच पुत्र उत्पन्न किये ॥२१॥ वही तपस्या करने में बादवृद्ध उशीनर के ये पाँचों पुत्र उत्पन्न हुए थे । नृगा से नृग कृमि से कृमि, नवा से नव और दर्व्या से सुव्रत उत्पन्न हुए ॥२२॥ दृपद्वती से शिवि नामक औशीनर राजा की उत्पत्ति हुई । शिवि के शिवि नामक और नृग के मवाप

१ क. यज्ञे ह्यग्नेर्षेण च ० । २ क. अत्रिभ्रेष्ठानि । ३ क. ऋषा । पुत्रयोः ० । ४ क. ऋषाचारमते वपश्च म० । ५ क. अमन्युः ० । ६ क. जनमेज० । ७ क. मना सुतो जने म० । ८ क. स धामिकः । ९ क. दर्व्या । १० क. कृन्वा । ११ क. दर्व्याया

शिवेस्तु शिवयो विप्रा योधेयास्तु नृगत्य ह। नवस्य 'नवराष्ट्रन्तु' कृमेस्तु 'कृमिला पुरी' ॥२१॥
 सुव्रतस्य 'तथाभ्वष्टा' शिविपुत्रान्निबोधत। शिवेस्तु शिवय' पुत्राश्चत्वारो लोकविश्रुता ॥२५॥
 नृपदमं' सुवीरश्च केकयो मद्रकस्तथा। तेषां जनपदा स्फीता केकया मद्रकास्तथा ॥२६॥
 वृषदर्मा' सुवीराश्च तितिक्षोस्तु प्रजास्त्विमा'। नितिशुरभवंद्राजा पूर्वस्यां दिशि भो द्विजा ॥२७॥
 उपद्रयो महावीर्यं' फेनस्तस्य सुतोऽभवत्। फेनस्य' सुतया जज्ञे ततः सुतपसो बलिः ॥२८॥
 जातो मानुषयोनि तु स राजा काञ्चनेपुधि'। महायोगी स तु बल्विबूध नृपतिः पुरा ॥२९॥
 पुत्रानुत्पादयामास पञ्च वंशकरान् भुवि। अङ्ग प्रथमतो जज्ञे बङ्गः सृष्टस्तथैव च ॥३०॥
 पुण्ड्रः कलिङ्गश्च तथा बालेयं' क्षत्रमुच्यते। बालेया ब्राह्मणाश्चैव तस्य वंशकरा' भुवि ॥३१॥
 बलेश्च ब्रह्मणा दत्तो वर' प्रीतेन भो द्विजा। महायोगित्वमायुश्च कल्पस्य परिमाणत ॥३२॥
 'बले चाप्रतिमत्वं वै धर्मतत्त्वायं दर्शनम्। संप्रामे चाप्यजेमत्वं धर्मं चैव प्रधानताम् ॥३३॥
 त्रैलोक्यदर्शनञ्चापि प्राधान्यं' प्रसवे तथा। चतुरो नियतान् वर्णास्त्वञ्च स्थापयितेति च ॥३४॥
 इत्युक्तो विभुना राजा बलिः शान्तिं परां ययौ। कालेन बहुता विप्राः' स्वञ्च स्थानमुपागमत् ॥३५॥

नामक पुत्र उत्पन्न हुए। नव का राष्ट्र नव नामक या और कृमि की राजधानी कृमिला पुरी नाम से
 विख्यात थी ॥२३-२४॥ सुव्रत के अम्बष्ट नाम से स्यात पुत्र हुए। अथ शिव के पुत्रों के नाम सुनिधे।
 शिव के शिवि सभा वाले चार पुत्र लोक में प्रसिद्ध हैं ॥२५॥ जिनका नाम वृषदर्म, सुवीर, केकय और
 मद्रक है। उनके धन पाय-मपत्र देश केकय, मद्रक, वृषदर्म और सुवीर नाम से प्रसिद्ध हैं। ये प्रजायें तितिक्षु
 की हैं ॥२६॥ विप्रबुद्ध। तितिक्षु पूर्व दिशा का राजा हुआ। उसका पुत्र महाशक्तिशाली उपद्रव हुआ। उपद्रव
 के फेन नामक पुत्र हुआ। फेन के सुतपसा नामक पुत्र उत्पन्न हुआ और सुतपसा से बलि की उत्पत्ति हुई ॥२७-२८॥
 सुवर्ण का तरुण धारण करने वाला राजा बलि मनुष्य-योनि में उत्पन्न हुआ। वह राजा बलि महायोगी था ॥२९॥
 चरणे भग, वग गृह्य, पुण्ड्र और कलिङ्ग नामक वंश की बढ़ाने वाले पाँच पुत्रों को उत्पन्न किया। यह प्रसिद्ध क्षत्रिय-
 वंश बालेय नाम से कहा जाता है। बलि के वंश में बालेयनाम से स्यात ब्राह्मण भी पुत्र हुए ॥३०-३१॥ द्विजगण।
 ब्रह्मा न प्रथम होकर बलि को वरदान दिया—'उज्ज्व'। तुम महायोगी होगे, एक कल्प की तुम्हारी आयु होगी ॥३२॥
 बल म तुम्हारे समान कोई नहीं होगा, तुम धर्म के सार को धारण करने वाले होगे, युद्ध में तुम्हें कोई नहीं पीत दरेगा।
 धर्म में तुम्हारी प्रधानता रहेगी ॥३३॥ तुम तीनों लोक में दर्शन करोगे। तुम्हारे पुत्रों की स्याति बनेंगी और
 तुम चारों वर्णों की स्थापना करोगे ॥३४॥ इस प्रकार ब्रह्मा के कहने पर राजा बलि परम शान्ति को प्राप्त हुआ।
 विप्रबुद्ध। चिरकाल के बाद राजा अपने स्थान पर आया ॥३५॥ उससे पुत्रों के देश भग, वग, गृह्य, कलिङ्ग और

१ क ०राष्ट्रास्तु ह०। २ क कृमिला। ३ स ०या त्वेष्टा दि०। ४ क वृषदर्म। ५ क वृषदर्मा।
 ६ म ०या। तैति०। ७ ०मा। तैति०बोध०। ७ क ०यं द्यास्त०। ८ क द्यास्त०। ९ क बली। १० क बालेय।
 ११ क ०गगुद्रमवा। १२ क १२ क च' चाप्रतिम तस्य दश धर्मायचितनम्। १३ क ०यं सर्वतन्मवा।
 १४ क विप्रवर्णा०।

तेषां जनपदाः पञ्चभङ्गा बङ्गाः ससुहाकाः । कालिङ्गाः पुण्ड्रकाश्चैव प्रजास्त्वङ्गस्य साम्प्रतम् ॥३६॥
 अङ्गपुत्रो महानासीद्राजोन्द्रो दधिवाहनः । दधिवाहनपुत्रस्तु राजा दिविरयोऽभवत् ॥३७॥
 पुत्रो दिविरयस्यासीच्छत्रसुल्यपराक्रमः । विद्वान् धम्मरयो^१ नाम तस्य चित्ररयः सुतः ॥३८॥
 तेन धम्मरयेनाथ तदा कालञ्जरे गिरौ । यज्ञता सह शयेण सोमः पीतो महात्मना ॥३९॥
 अथ^२ चित्ररयस्यापि पुत्रो दशरयोऽभवत् । लोमपादः इति ह्यातो यस्य शान्ता सुताभवत् ॥४०॥
 तस्य दाशरयिर्वारश्चतुरङ्गो महायशः । ऋष्यशृङ्गप्रसादेन जज्ञे वशाविवर्द्धन ॥४१॥
 चतुरङ्गस्य पुत्रस्तु पृथुलाक्ष इति स्मृतः । पृथुलाक्षसुतो राजा चम्पो नाम महायशः ॥४२॥
 चम्पस्य तु पुरो चम्पा या मालिङ्ग्यभवत् पुरा । पूर्णभद्रप्रसादेन हर्ष्यङ्गोऽस्य सुतोऽभवत् ॥४३॥
 सुतो वंभाण्डकिस्तस्य वारण शक्रवारणम् । अवतारयामास महौ मन्त्रं वाहिनमुत्तमम् ॥४४॥
 हर्ष्यङ्गस्य^३ सुतस्तत्र राजा भद्ररयः स्मृतः । पुत्रो भद्ररयस्यासीद्वृहत्कर्मा प्रजेश्वरः ॥४५॥
 बृहद्वर्धः सुतस्तस्य यस्माज्जज्ञे बृहन्मना । बृहन्मनास्तु राजोन्द्रो जनयामास वं सुतम् ॥४६॥
 नाम्ना जयद्रथं नाम यस्माद्बृहदरयो नृपः । आसीद्बृहदरयस्यापि दिवविजिज्जनमेजयो ॥४७॥
 दामादस्तस्य वैकर्णो विकर्णस्तस्य चारमजः । तस्य पुत्रशतं स्यासीदङ्गानां कुलवर्द्धनम् ॥४८॥
 एतेऽङ्गवशजा सर्वे राजानः कीर्तिता भया । सत्यव्रता महात्मानः प्रजावन्तो महारथा ॥४९॥

पुण्ड्रक नाम ते विश्यात है । अब अय की सतान का वर्णन मुनिये ॥३६॥ अग का पुत्र महान् राजा दधिवाहन
 सा । दधिवाहन का पुत्र राजा दिविरय हुआ ॥३७॥ दिविरय का पुत्र इन्द्र क सुल्य पराक्रमी था ।
 वंशका पुत्र विद्वान् धर्मरय था । धर्मरय का पुत्र चित्ररय था ॥३८॥ कालञ्जर नामक पहाड पर इन्द्र ने छाप
 यज्ञ कएत हुए धर्मरय ने सोम (अमृत) का पान किया ॥३९॥ चित्ररय का पुत्र दशरय हुआ, जिसकी स्वाति
 लोमपाद नाम से थी, और जिसने शान्ता नामक बच्चा हुई ॥४०॥ ऋष्यशृङ्ग मुनि की कृपा से दशरय के
 चतुरंग नामक महायशस्वी और वंश-वर्धक पुत्र उत्पन्न हुआ ॥४१॥ चतुरंग क पृथुलाक्ष नामक पुत्र
 हुआ । पृथुलाक्ष का पुत्र महायशस्वी चम्प हुआ ॥४२॥ चम्प ने मालिनी पुरी का नाम चम्पा रख दिया ।
 पूर्णभद्र मुनि की कृपा से चम्प के हर्ष्य नामक पुत्र हुआ ॥४३॥ उसी के समय वैमलङ्कि (ऋष्यशृङ्ग मुनि) ने
 मन्था के बल से इन्द्र के ऐरावत नामक हाथी को पृथ्वी पर उतारा था ॥४४॥ हर्ष्य का पुत्र राजा मद्रय हुआ ।
 मद्रय का पुत्र प्रजापति का स्वामी बृहत्कर्मा था ॥४५॥ बृहत्कर्मा का पुत्र बृहद्वर्ध और उनका पुत्र बृहन्मना
 था । राजेश बृहन्मना ने जयद्रथ नामक पुत्र को उत्पन्न किया, जिसने बृहत्थ नामक राजा उत्पन्न हुआ ॥४६॥
 इन्द्रय के पुत्र दिवविजिन् का नाम सुनकर लोग कांपते थे । उसका पुत्र वैकर्ण और वैकर्ण का पुत्र विकर्ण था ।
 उदरु सो पुत्र थे, जो अग-वय को बढ़ाने वाले हुए ॥४७-४८॥ अग-वय य उत्पन्न शत्यवन्त, महात्मा, प्रजावान्

ऋचेषोस्तु मुनिश्रेष्ठा रोद्रादवतनयस्य वै । शृणुध्वं सम्प्रवक्ष्यामि वंशं राज्ञस्तु भो, द्विजाः ॥५०॥
 ऋचेषोस्तनयो राजा मतिनारो महीपतिः । मतिनारसुतारत्वासरश्मयः परमधार्मिकः ॥५१॥
 वसुरोधः । प्रतिरथः । सुबाहुश्चैव धार्मिकः । सध्वं । वेदविदश्चैव ब्रह्मण्याः । सत्यवादिनः ॥५२॥
 इला नाम तु यस्यासीत् शन्या वै मुनिसत्तमाः । ब्रह्मवादिन्यधिरात्री सा तंसुस्तामभ्यगच्छत् ॥५३॥
 तंसोः सुतोऽयं राजर्षिर्धर्ममेतः प्रतापवान् । दह्यावादी पराश्रान्तस्तस्य भाष्योपदानवी ॥५४॥
 उपदानवी ततः पुत्राश्चतुरोऽजनयच्छुभान् । दुष्यन्तमथ शुष्मन्तं प्रवीरमनघं तथा ॥५५॥
 दुष्यन्तस्य तु बायादो भरतो नाम धीर्यवान् । स सव्यदमनो नाम नागायुतदलो महान् ॥५६॥
 चक्रवर्त्तो सुतो जज्ञे दुष्यन्तस्य महात्मनः । शत्रुन्तलायां भरतो यस्य नाम्ना तु भारताः ॥५७॥
 भरतस्य विनष्टेषु तनयेषु महीपतेः । मातृणां तु प्रकोपेण मया कृतकथितं पुरा ॥५८॥
 बृहस्पतेरङ्गिरसः पुत्रो विश्वो महामुनिः । अयाजयद्भरद्वाजो महद्भिः यतुभिर्विभुः ॥५९॥
 पूर्वं तु वितथे तस्य कृते यं पुत्रजन्मनि । ततोऽयं वितथो नाम भरद्वाजासुतोऽभवत् ॥६०॥
 तथोऽयं वितथे जाते भरतस्तु दिवं ददौ । वितथं चाभियिष्याथ भरद्वाजो वनं ददौ ॥६१॥
 स चापि वितथः पुत्रान् जनयामास दन्ध्व वै । सुहोत्रश्च सुहोतारं गर्भं गर्भं तर्पय च ॥६२॥

कपिलञ्च महात्मानं सुहोत्रस्य सुतद्वयम् । काशिकञ्च महासत्यं तथा गृत्समतिं नृपम् ॥६३॥
 तथा गृत्समतेः पुत्रा ब्राह्मणाः क्षत्रिया विदः । काशिकस्य तु काशेयः पुत्रो दीर्घतपास्तथा ॥६४॥
 बभूव दीर्घतपसो विद्वान् घन्वन्तरिः सुतः । घन्वन्तरेस्तु तनयः केतुमानिति विश्रुतः ॥६५॥
 तथा केतुमतः पुत्रो विद्वान् भीमरथः स्मृतः । पुत्रो भीमरथस्यापि वाराणस्यधिपोऽभवत् ॥६६॥
 दिवोदास इति स्थातः सत्वंशश्च प्रणाशनः । दिवोदासस्य पुत्रस्तु धीरो राजा प्रतर्दनः ॥६७॥
 प्रतर्दनस्य पुत्रो द्वौ वत्सो भर्गव एव च । अलर्को राजपुत्रस्तु राजा सन्मतिमान् भुवि ॥६८॥
 हृह्यस्य तु दायाद्यं हृतवान् वै महोपतिः । आजह्रे पितृदायाद्यं दिवोदासहृतं बलात् ॥६९॥
 भद्रश्रेष्ठस्य पुत्रेण दुर्दमेन महात्मना । दिवोदासेन बालेति घृणयासौ विसर्जितः ॥७०॥
 अष्टारथो नाम नृपः सुतो भीमरथस्य वै । तेन पुत्रेण बालस्य प्रहृतं तस्य भो द्विजाः ॥७१॥
 वरस्यान्तं मुनिश्रेष्ठाः क्षत्रियेण विधितस्ता । अलर्कः काशिराजस्तु ब्रह्मण्यः सत्यसङ्गरः ॥७२॥
 पटिं वर्षसहस्राणि पटिं वर्षशतानि च । मुदा हपेण सम्पन्न आसीत्काशिकुलोद्बहः ॥७३॥
 लोषामुद्राप्रसादेन परमायुरवाप सः । वयसोऽन्ते मुनिश्रेष्ठा हत्वा क्षेमकराक्षसम् ॥७४॥
 रम्यां निवेशयामास पुरीं वाराणसीं नृपः । अलर्कस्य तु दायादं क्षेमको नाम पार्थिवः ॥७५॥
 क्षेमकस्य तु पुत्रो वै शर्पकेतुस्ततोऽभवत् । शर्पकेतोश्च दायादो विभूनां प्रजेदवरः ॥७६॥

वे दो पुत्र हुए—सत्यवादी काशिक और राजा गृत्समति ॥६१-६३॥ गृत्समति के पुत्र ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य हुए । काशिक के दीर्घतपा नामक पुत्र हुआ ॥६४॥ दीर्घतपा के विद्वान् घन्वन्तरि पुत्र हुआ । घन्वन्तरि का पुत्र केतुमान् नाम से प्रसिद्ध हुआ ॥६५॥ केतुमान् का पुत्र भीमरथ हुआ । भीमरथ का पुत्र काशीपुरी का स्वामी हुआ, जो दिवादास नाम से प्रख्यात और सब शत्रुओं का विनाशक था ॥६६॥ दिवोदास का पुत्र राजा प्रतर्दन था । प्रतर्दन के दो पुत्र थे—अस्य और भर्गव ॥६७॥ अस्य का पुत्र अलर्क बहुत बुद्धिमान् राजा हुआ । राजा (दिवोदास) ने हृह्य की पितृ-सपत्ति छीन ली ॥६८॥ भद्रश्रेष्ठ के दुर्दम नाम से स्थात पुत्र थे, जिसको दिवोदास ने बालक जानकर समान्य छोट दिया था, दिवोदास से बलपूर्वक हर्षण किये गये अपने पितृ धन पर फिर अविचार कर लिया ॥६९-७०॥ भीमरथ के पुत्र का नाम अष्टारथ भी था । उसके पुत्र प्रतर्दन ने शत्रु का नाश करने हुए फिर अपना पितृ-धन प्राप्त कर लिया ॥७१॥ काशिराज अलर्क, जो ब्रह्मवादी तथा सत्यवादी था, छाछट हजार वर्ष तक युवक ही बना रहा ॥७२-७३॥ लोषामुद्रा की वृषा से उसने परमायु प्राप्त की थी । मुनिवर ! आयु के अन्तिम भाग में प्रतर्दन ने क्षेमक नामक राक्षस को मारकर रमणीय काशीपुरी को फिर से वधायी ॥७४॥ अलर्क का पुत्र क्षेमक नामक राजा हुआ । क्षेमक का पुत्र शर्पकेतु हुआ । शर्पकेतु का पुत्र विभु नामक प्रजापति

१ क वाशिक । २ क मृगमति । ३ क मृगमते । ४ क वाशिकस्य । ५ अय क स । ६ स्थातो योगदुष्टनिर्बर्हण । दि० । ७ स वंशाय० । ८ स पुत्रोऽमूदीरो । ९ क ०स्तु सत्यवादी प्र० । १० स वसो । ११ स ०मानपि । १२ क स दायादो । १३ ग ०च वृत्त० । १४ क ०वाप्तवान् । १५ क पुन । १६ क तु दायादो व० । १७ क ०तुर्महीपतिः व० ।

आनतस्तु विभो पुत्र सुकुमारस्ततोऽभवत् । सुकुमारस्य पुत्रस्तु सत्यकेतुर्महारथ ॥७७॥
 सुतोऽभवमहातेजा राजा परमधार्मिक । वत्सस्य वत्सभूमिस्तु भर्गभूमिस्तु^१ भागवात् ॥७८॥
 एते त्वङ्गिरस पुत्रा जाता वशेऽयं भागवे । ब्राह्मणा क्षत्रिया वैश्या शूद्राश्च मुनिसत्तमा ॥७९॥
 आजमीढोऽपरो वश धृतता द्विजसत्तमा । सुहोत्रस्य बृहत्पुत्रो बृहत्स्तनधास्त्रय^२ ॥८०॥
 अजमीढो द्विमीढश्च पुष्मीढश्च वीर्यवान् । अजमीढस्य पत्न्यस्तु तिस्रो^३ वै वशसान्विता ॥८१॥
 नीलो^४ च केशिनी चैव धूमिनी च वराङ्गना । अजमीढस्य^५ केशिया जने जह्नु प्रतापवान् ॥८२॥
 आजह्ने यो महासन्नः सत्वमेधमख विभुम् । पतिलोभेन य गङ्गा विनीतेव ससार ह ॥८३॥
 नेच्छत प्लावकामास तस्य गङ्गा च तत्सद । ततया प्लावित दृष्ट्वा यज्ञघाट समतत ॥८४॥
 जह्नुर्गन्धर्वोदगङ्गा क्रुद्धो विप्रास्तदा नृप । एष ते त्रिषु लोकेषु सक्षिप्याप पिबाम्यहम् ॥८५॥
 अस्य गङ्गोऽवलेपस्य सद्यः फलमवाप्नुहि । सत पीता महात्मानो दृष्ट्वा गङ्गा महपय ॥८६॥
 उपनिष्पुमहाभागा इहितृत्वन जाह्नुवोम् । युवनायस्य पुत्रीं तु कावेरीं जह्नुरायवहत् ॥८७॥
 गङ्गाशापेन देहादे^६ यस्या पश्चाद्भदोकृतम्^७ । जह्नुस्तु दमित पुनो अजको नाम वीर्यवान् ॥
 अजकस्य तु बापादो चलाकाशवो महोपति ॥८८॥
 शबूव मुगधानोल^८ कुशिकस्तस्य चात्मज । पल्लवं सह सवृद्धो राजा यनचरं सह ॥८९॥

हुआ ॥७५ ७६॥ विभु वा पुत्र आनत अर उक्ता पुत्र सुकुमार हुआ । सुकुमार वा पुत्र महारथी महातजस्वी अर
 परमधर्मी राजा सत्यकेतु हुआ ॥७७॥ वत्सभूमि से वत्स अर भागव स भूमि उत्पन्न हुआ ॥७८॥ मुनिश्रेष्ठो ।
 भागव-वर्ग म य सब अगिर के पुत्र ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य और शूद्र हुए ॥७९॥ द्विजश्रेष्ठो ! अब आजमीढ नामक
 दूसरे वर के विषय मे आप लोग सुनिये । सुहोत्र व यहत नामक पुत्र हुआ । वहन व तीन पुत्र थे—अजमीढ
 द्विमीढ अर क्षत्रिसम्पन्न पुष्मीढ ॥८०॥ अजमीढ की तीन वरारिणी एव सुदरी पत्नियाँ थीं—नीला केशिनी
 और धूमिनी ॥८१॥ केशिनी से प्रतापी जह्नु उत्पन्न हुआ जिसने सबसय नामक मन्त्रालय किया अर जिसने
 पाण्ड पति के लोभ से (अर्पण स्वीकरी बनाये के लिए) गंगा मानो विनष्ट होकर गई य ॥८२ ८३॥ गंगा का पत्नी
 रूप भन स्वीकार करन पर गंगा ने जह्नु से यन-रूप को हुयो लिया । विप्रवृत् ! चारा तरफ म यज्ञ-मयल
 की जलमग्न देखकर ज न गंगा से बड़ा—अमी मैं तीना लोकों मे तरे जह्नु को बस करन पी जाता हूँ ।
 गये ! तू अपने इस बर का तलवार पल पा ॥ तदुपराय महापाय महारिया न पीयी हुई गंगा को
 देखकर उसने जह्नु की पत्नी बना लिया । जह्नु ने युवनाय की पुत्री कावेरी से विवाह किया जिसका
 आधा शरीर गंगा व आध मे तनी बन गया था । जह्नु व अजक नामक गविस मयत्र पुत्र हुआ । अजक वा
 पुत्र राजा कलकाव गिरार गेलन म आसक्त था । उसका पुत्र राजा कुशिक हुआ जो पल्लव गणक वनचरा
 व साथ पाला-मोठा गया था ॥८४ ८५॥ कुशिक न द्रव्य व संपन्न पराक्रमी पुत्र को प्राप्त करन के

१ वं अनु प्यवनी नाम भार्गव । ए० । २ वं व्यास । अ० । ३ वं श्रेष्ठो रूपशान्ति० ।
 ४ वं नीलिनी के० । ५ वं श्रेष्ठ पश्यतु जह्नु-वर्ण प्र० । ६ यं श्रेष्ठ महारथ । प० । ७ यं तस्य । ८ वं
 हाषादाय प० । ९ वं शूद्रता । अ० । १० कं निषा ।

कुशिकस्तु तपस्तेपे। पुत्रमिन्द्रसमं विभुम्। लभेयमिति तं शक्रस्त्रासादभ्यस्य जज्ञिवान्॥९०॥
 स गाधिरभवद्वाजा मधवा कौशिकः स्वयम्। विश्वामित्रस्तु गाधयो विश्वामित्रात्तथापदकः॥९१॥
 अष्टकस्य सुतो लोहिः प्रोक्तो ज गणो मया। आजमीढोऽपरो वंशः धूयतां मुनिसत्तमाः॥९२॥
 अजमीढात् नील्यां धं सुशान्तिरुदपद्यत। पुरुजातिः वाह्यादवः पुरुजातिः॥९३॥
 बाह्यादवतनयाः पञ्च स्फीता जनपदावृताः। मुद्गलः सूञ्जयश्चैव राजा बृहद्विपुस्तया॥९४॥
 यवीनरश्च विक्रान्तः कृमिलादवश्च पञ्चमः। पञ्चैते रक्षणायालं देशानामिति विश्रुताः॥९५॥
 पञ्चानां ते तु पञ्चालाः स्फीता जनपदावृताः। अलं संरक्षणे तेषां पञ्चाला इति विश्रुताः॥९६॥
 मुद्गलस्य तु द्यापादो मोद्गल्यः सुमहायशाः। इन्द्रसेना यतो गर्भं ब्रध्नश्च प्रत्यपद्यत॥९७॥
 आसीत् पञ्चजनः पुत्रः सूञ्जयस्य महत्तमनः। सुतः पञ्चजनस्यापि सोमदत्तो महीपतिः॥९८॥
 सोमदत्तस्य द्यापादः सहदेवो महायशाः। सहदेवसुतश्चापि सोमको नाम विश्रुतः॥९९॥
 अजमीढसुतो जातः क्षीणे वंशे तु सोमकः। सोमकस्य सुतो जन्तुर्यस्य पुत्रशतं बभूव॥१००॥
 तेषां पवीयान् पृथतो द्रुपदस्य पिता प्रभुः। आजमीढाः स्मृताश्चैते महात्मास्तु सोमकाः॥१०१॥
 महिषो रवजमीढस्य धूमिनो पुत्रपुट्टिनो। पतिव्रता महाभागा कुलजा मुनिसत्तमाः॥१०२॥
 सा च पुनायिनो देवी व्रतचर्य्यसमन्विता। ततो वर्षायुतं तपसा तपः परमदुश्चरम्॥१०३॥

लिए तपस्या की। इन्द्र डर कर स्वयं उसका पुत्र बन गये और गाधि नाम से प्रख्यात हुए। गाधि के पुत्र विश्वामित्र हुए। विश्वामित्र के अष्टक नामक पुत्र हुआ॥९०-९१॥ अष्टक का पुत्र लोहि नाम से ख्यात हुआ। मुनिश्रेष्ठो मैंने बहुत-गण को बतला दिया। अब अजमीढ का वंश-वर्णन मुनिये॥९२॥ अजमीढ से नीली में सुशान्ति नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। सुशान्ति से पुरुजाति और पुदजाति से बाह्यादव की उत्पत्ति हुई॥९३॥ बाह्यादव के पाँच पुत्र हुए—मुद्गल, सूञ्जय राजा बृहद्विपु, पराक्रमी यवीनर और पवित्र कृमिलादव॥९४॥ ये पाँचो देशो की रक्षा करने में समर्थ थे। उन पाँचों के पञ्चाल देश जनपदो से आवृत तथा समृद्ध थे। उनकी रक्षा करने में समर्थ होने के कारण वे देश पञ्चाल नाम से प्रसिद्ध हुए॥९५-९६॥ मुद्गल का पुत्र महायशस्वी मोद्गल्य हुआ, जिससे इन्द्रसेना में ब्रध्नद्व नामक पुत्र की उत्पत्ति विया (?)॥९७॥ महात्मा सूञ्जय का पुत्र पञ्चजन हुआ। पञ्चजन का पुत्र राजा सोमदत्त और उसका पुत्र महायशस्वी सहदेव हुआ॥९८॥ सहदेव का पुत्र सोमक नाम से प्रख्यात हुआ। वंश के क्षीण होने पर अजमीढ के सोमक नामक पुत्र हुआ॥९९॥ सोमक के जन्तु नामक पुत्र उत्पन्न हुआ, जिसके सौ पुत्र थे॥१००-१००॥ उनमें मुक्क पृथत के द्रुपद नामक पुत्र हुआ। ये सब महात्मा सोमक के पुत्र अजमीढ-वंश के कहलाये॥१०१॥ मुनिवर! अजमीढ की धूमिनी नामक पत्नी पतिव्रता, कुलीन और महाभाग्यशालिनी थी॥१०२॥ पुत्र की आकांक्षा से धूमिनी ने व्रत-विषमार्थ से समन्वित होकर दस हजार वर्षों तक उग्र तपस्या की॥१०३॥ वह

१ क ०पे रम्भमिन्द्रपद प्रभु। ७०। २ क यो राजा विश्वरथस्तथा। ३ ख अलकस्य। ४ ख ग ०या। अज०। ५ क ख नीलिन्या मु०। ६ क ०जानिमु०। ख ०जातिमुशान्ते च वा०। ७ क बाह्यादव। ८ ख ०ह्यादव पुरजातिना। बाह्यादव तनया पदच बभूवुरमरीम। म०। ९ क बाह्यस्य त०। १० क ०ञ्च बभूवुरमरीम। म०।

हृत्वानि 'विधिवत्सा तु 'पवित्रामितभोजना । अग्निहोत्रकुशेषेव सुष्वाप मुनिसत्तमाः ॥१०४॥
 धूमिन्या स तथा देव्या त्वजमोढः समीपिवान् । ऋक्षं सज्जनयामास धूमवर्णं 'सुदर्शनम् ॥१०५॥
 ऋक्षात् संवरणो जने कुरुः संवरणात्तया' । यः प्रयागादतिक्रम्य कुरुक्षेत्रं चकार ह ॥१०६॥
 पुण्यं च रमणीयं च पुण्यकृद्भिर्निपेक्षितम् । तस्यान्ववायः सुमहान् यस्य नाम्नाय कोरवाः ॥१०७॥
 कुरोश्च पुत्रादचत्वारः सुधन्वा सुयनुस्तथा । 'परीक्षितश्च महाबाहुः प्रवरश्चारिमेजयः ॥१०८॥
 परीक्षितस्तु दायादो धार्मिको जनमेजयः । श्रुतसन्तोऽप्तेनश्च भीमसेनश्च नामतः ॥१०९॥
 एते सर्वे महाभागा विक्रान्ता बलशालिनः । 'जनमेजयस्य पुत्रस्तु' सुरयो मतिमांस्तथा ॥११०॥
 सुरयस्य तु विक्रान्तः पुत्रो जने विदूरयः । विदूरयस्य दायाद ऋक्षः एव महारयः ॥१११॥
 द्वितीयस्तु 'भरद्वाजाप्राप्ता तेनेव विश्रुतः । द्वावृक्षौ सोमवंशोऽस्मिन्' द्वावेव च परीक्षितौ ॥११२॥
 भीमसेनास्त्रयो विप्रा द्वौ चापि जनमेजयौ । ऋक्षश्च तु द्वितीयस्य भीमसेनोऽभवत्सुतः ॥११३॥
 प्रतीपौ भीमसेनात् प्रतीपस्य तु 'शान्तनुः । देवापिर्बाहिलकश्चैव त्रय एव महारयाः ॥११४॥
 शान्तनोरस्यभवद्भीष्मस्तस्मिन्वंशो द्विजोत्तमाः । बाह्लिकस्य तु राजर्षत्वंशं श्रुणुत भो द्विजाः ॥११५॥
 बाह्लिकस्य 'सुतश्चैव सोमवत्सो महायशः । अक्षिरौ सोमवत्तात्' भूरिभूरिभ्रात्रा' शलः ॥११६॥
 उपाध्यायस्तु देवानां देवापिरभवन्मुनि । 'व्ययनपुत्र' कृतक इष्ट' आसीन्महात्मनः ॥११७॥

अग्निं म हवन करती, पवित्रता से रहती परिमित भोजन करती और अग्निहोत्र के कुशोपर ही सीती थी। एक समय राक्षस धूमिनी से रागम किया, जिससे सुन्दर धूमवर्ण वाला ऋक्ष नामक पुत्र उत्पन्न हुआ ॥१०४ १०५॥ राक्षस के संवरण नामक पुत्र हुआ और संवरण से कुरु की उत्पत्ति हुई। कुरु ने प्रयाग से जाकर पवित्र, सुन्दर तथा धर्मिणा व्यक्तिवर्ण से सुशोषित कुरुक्षेत्र का निर्माण किया ॥१०६॥ उसने महान् बल म उत्पन्न लीज और व नाम से विख्यात हुए ॥१०७॥ कुरु के चार पुत्र थे—सुधन्वा, सुयनु, परीक्षित और अरिभयजय ॥१०८॥ परीक्षित का धर्मिणा पुत्र जनमेजय था, सिन्धु धृतसेन अप्रसेन और भीमसेन भी (उनके) पुत्र थे ॥१०९॥ ये सब बड़े महारथ, यवान् तथा पराक्रमी थे। जनमेजय का पुत्र बुद्धिमान् सुरय था ॥११०॥ सुरय के विदूरय नामक पराक्रमी पुत्र उत्पन्न हुआ। विदूरय के महारथी पुत्र का नाम ऋक्ष था ॥१११॥ ऋक्ष नाम से ही प्रशिद्ध दूषण धर्मिण मरुद्वज से उत्पन्न हुआ था। सोमवत्स म दा कुरु और दो परीक्षित उत्पन्न हुए थे ॥११२॥ तीन भीमसेन और दो जनमेजय भी हुए थे। द्वितीय कदा के भीमसेन नामक पुत्र हुआ ॥११३॥ भीमसेन से प्रवीण और प्रवीण से शान्तनु दशार्ज और बाह्लिक—ये तीन ही महारथी पुत्र उत्पन्न हुए ॥११४॥ विप्रवर। उद्य बध म शान्तनु से भीष्म उत्पन्न हुआ। द्विजगण। अब राजर्षि बाह्लिक का वध-वधन सुनिष ॥११५॥ बाह्लिक का पुत्र महायशस्वी नामदत्त हुआ। सोमदत्त से भूरि भूरियश और शल की उत्पत्ति हुई ॥११६॥ मुनि देवर्षि देवताश्र का उपाध्याय हुआ।

१ क ०विप्रः प०। २ क ०विप्रः०। ३ ग सुदर्शनः। ४ क ग ०तनः। ५। ५ क परीक्षितो। ग परीक्षितः। ६ ग जनमेजयः। ७ ग पुत्रोऽस्यसुरः०। ग पुत्रोऽस्यसुरः०। ८ ग शत्रुः। ९ ग ग महायशः। १० क ग ०यत्नः राक्षसा नाम्ना। ११ क ०विप्रःस्थानी द्विजगणः। भी०। १२ क ग शान्तनुः। १३ क ०नन्दार्जुनाय०। १४ ग ०पु हविर्भूरिः। १५ ग ०वन पुत्रः०। १६ ग इन्द्रजित्वाऽसीमहात्मनि। दा०।

शान्तनुस्त्वभवद्राजा कीरवाणां धुरन्धरः। शान्तनोः सम्प्रवक्ष्यामि वंशं त्रैलोक्यविश्रुतम्॥११८॥
 गाङ्गं देवव्रतं नाम पुत्रं सोऽजनयत् प्रभुः। स तु भीष्म इति ह्यात पाण्डवानां पितामहः॥११९॥
 काली विवित्रवीर्यं तु जनयामास भो द्विजाः। शान्तनोर्दयितं पुत्रं धर्म्मतिमानमकल्मषम्॥१२०॥
 कृष्णद्वैपायनाच्चैव शत्रे धैवित्रवीर्यके। धृतराष्ट्रं च पाण्डुं च विदुरं चाध्यजोजनत्॥१२१॥
 धृतराष्ट्रस्तु गान्धार्या पुत्रानुत्पादयच्छतम्। तेषां दुर्योधनः श्रेष्ठः। शत्रुर्वामपि स प्रभुः॥१२२॥
 पाण्डोर्धनञ्जयः पुत्रः सौभद्रस्तस्य चात्मजः। अभिमन्योः परीक्षितुः पिता पारीक्षितस्य ह॥१२३॥
 पारिक्षितस्य कादयाया द्वौ पुत्रौ सम्भवूवतु। चन्द्रापीडस्तु नृपतिः सूर्यापीडश्च मोक्षवित्॥१२४॥
 चन्द्रापीडस्य पुत्राणां शतमुत्तमधन्विनाम्। जानमेजयमित्येवं क्षात्रं भुवि पतिश्रुतम्॥१२५॥
 तेषां ज्येष्ठस्तु तत्रासीत् पुरे वाराणसाह्वये। सत्यकर्णो महाबाहुर्ध्रुवा विपुलदक्षिणः॥१२६॥
 सत्यकर्णस्य दायाद इवेतकर्णः प्रतापवान्। अपुत्रः स तु धर्म्मतिमा प्रविवेश तपोवनम्॥१२७॥
 तस्माद्वनगता गर्भं दादवी प्रत्यपद्यत। सुचारोर्दुहिता सुधूर्मालिनी ग्राहमालिनी॥१२८॥
 सम्भूते स च गर्भे य इवेतकर्णः प्रजेदवरः। अन्वगच्छत् इत पूर्व महाप्रस्थानमच्युतम्॥१२९॥
 सा तु दृष्ट्वा प्रियं तं च लिलीपूच्छतोऽज्यगात्। सुचारोर्दुहिता साध्वी वने राजीवलोचना॥१३०॥
 पयि सा सुपुत्रे बाला सुकुमार कुमारकम्। तमपास्वाय तत्रैव राजानं सान्वगच्छत्॥१३१॥

अथ वन मुनि के कृतक नामक पुत्र के साथ इसकी मित्रता थी॥११७॥ वीरवा मे राजा शान्तनु बड़ा प्रतापी हुआ। उसने त्रैलोक्य मे प्रयात वश का वर्णन मैं कर्षणा॥११८॥ उसन देवव्रत नामक पुत्र को गया मे उत्पन किया। देवव्रत पाण्डवो का पितामह भीष्म नाम से प्रसिद्ध हुआ॥११९॥ द्विजगण। काली न धर्म्मतिमा, निष्पाप तथा प्रियपुत्र विवित्रवीर्य को शांतनु से उत्पन किया॥१२०॥ वैदव्याश न विवित्रवीर्य की पत्नी मे धृतराष्ट्र पाण्डु और विदुर को उत्पन किया॥१२१॥ धृतराष्ट्र ने गान्धारी मे सौ पुत्र उत्पन किये। उनमे दुर्योधन सबसे बड़ा था॥१२२॥ पाण्डु का पुत्र धनञ्जय (अर्जुन) हुआ और उसका पुत्र साम्द्र (अभिमन्यु)। अभिमन्यु का पुत्र परीक्षित और पारीक्षित का पुत्र पारिक्षित (जन्मेजय) हुआ॥१२३॥ पारीक्षित न कादया से दो पुत्र उत्पन किये—राजा चन्द्रापीड और मोक्षवि सूर्यापीड॥१२४॥ चन्द्रापीड के उत्तम धनूर्ध्वी सा पुत्र हुए जिनका जन्मेजय नाम से प्रसिद्ध क्षत्रियवश सक्षार मे प्रचलित हुआ॥१२५॥ उनम सबसे ज्येष्ठ सत्यकर्ण, जो बहुत दक्षिणा देन वाला, यज्ञ करने वाला और पराक्रमी था वाराणसी पुरी मे नास करता था॥१२६॥ सत्यकर्ण के इवेतकर्ण नामक प्रतापी पुत्र हुआ। धर्म्मतिमा सत्यकर्ण पुत्र की अभिलाषा से तपोवन मे पत्नी सहित प्रविष्ट हुआ॥१२७॥ वन मे यदुवश, सुचार की मालिनी नामक सुन्दरी कन्या ने उससे गर्भ धारण किया॥१२८॥ गर्भ प्रकाशित होने पर राजा इवेतकर्ण स्वर्ग गयी यात्रा करने लगा॥१२९॥ मालिनी न भी पति का अनुगमन किया। वन मे (जाती हुई) कमलनयना पतिव्रता मालिनी ने मार्ग मे सुविमल बालक को प्रयव किया॥१३०॥ बालक को वही पर छोड़कर वह महामाया मालिनी राजा के पीछे-पीछे उसी प्रकार चलने लगी जिस प्रकार पतिव्रता द्रौपदी ने अपने पतियो के

पतिव्रता महाभागा 'द्रौपदीव' पुरा सती। कुमारः सुकुमारोऽसौ गिरिपृष्ठे हरोद ह॥१३२॥
 दयार्थं तस्य मेधास्तु प्रादुरासन्महात्मनः। श्रविष्ठायास्तु पुत्री द्वौ वैष्णवादिश्च कौशिकः॥१३३॥
 दृष्ट्वा कृपान्वितौ गृह्यती प्राक्षात्स्वयं जले। निष्पद्येतस्य पार्वो तु शिलायां दधिरप्लुतौ॥१३४॥
 अजश्यामः स पार्वान्याः धृष्टान्यां सुतामाहितः। अजश्यामौ तु तत्पार्श्वौ देवेन सम्बभूवतुः॥१३५॥
 अयाजपारवं इति यं चक्राते नाम तस्य तौ। स तु रमकशालाया द्विजाम्यामभिर्वाद्धतः॥१३६॥
 रमकस्य तु भार्या तमुद्रहत् पुत्रकारणात्। रमत्या स तु पुनोऽभूद्राक्षणौ सचिवौ तु तौ॥१३७॥
 तेषां पुत्राश्च पौत्राश्च युगपत्तुल्यजीविनः। स एष पौरवो वंशः पाण्डवानां महात्मनाम्॥१३८॥
 इलोकौर्षि चात्र गतोऽयं नाहुयेन ययातिना। जरासंक्रमणे पूर्वं तदा प्रीतेन धीमता॥१३९॥
 अवन्नाकिंप्रहा भूमिर्भवेदियमसंशयम्। अपौरवा मही नैव भविष्यति कदाचन॥१४०॥
 एष च पौरवो वंशो विलपातः कथितो मया। तुर्वंसोस्तु प्रवक्ष्यामि द्रुहोदवानोर्म्यदोस्तथा॥१४१॥
 तुर्वंसोऽस्तु सुतो बह्निर्गोभानुस्तस्य चात्मजः। गोभानोरतु सुतो राजा ऐशानुरपराजितः॥१४२॥
 कार्ण्यमस्तु ऐशानोर्म्यस्तस्य चात्मजः। अग्न्यस्तवाविक्षितो राजा भरतः कथितो मया॥१४३॥
 अनरयोऽभवद्राजा यशवा विपुलदक्षिणः। दुहिता संयता नाम तस्यासीत् पथिवीपते॥१४४॥

पीछे-पीछे स्वर्ग का प्रस्थान किया पा॥१३१३॥ यह सुकोमल बालक पर्वत-पृष्ठ पर रोने लगा। उसके ऊपर दया करने के लिये मेघ बहो प्रादुर्भूत हुए॥१३१३॥ श्रविष्ठा के दो पुत्र थे—वैष्णवादि और कौशिक॥१३३॥ दोनों व्यक्तिप्री ने सब प्रसूत बालक को देखकर दया से द्रवित हो उसे जल से पो डाला। बालक के दोनों पार्वं शिला पर पिस जाने के कारण शोणित से रक्त-यय हो गये॥१३४॥ पार्वं के पिस जाने पर देव सयोग से पार्वंस्तहित उसका शरीर बकरे के समान बाला पड गया॥१३५॥ इसलिए उन दोनों व्यक्तिप्री ने उसका नाम 'अजपारवं' रख दिया। रमक मुनि के आश्रम मे उन दोनों ब्राह्मणों ने उसका पालन-भोषण किया॥१३६॥ रमक की पत्नी ने अपना पुत्र बचाने के लिए उसे पाला। अत रमकी का बहुत पुत्र कहलाया और वाना ब्राह्मण उसने मंत्री बने॥१३७॥ उनमे पुत्र और पौत्र भी एक जैसे जीवन धारण करने वाले हुए। यही महात्मा पाण्डव का पौरव वंश है॥१३८॥ इस वंश के बारे मे वृन्दावस्था से पूर्व नहुष-युग ययाति ने एक भाषा बड़ी थी कि "कदाचित् पुष्पी सूर्य-चन्द्रभा से रहित होगी सत्य है, पर पौरव वंश से रहित नहीं हो सक्ती"॥१३९-१४०॥ यह प्रसिद्ध पौरव वंश मैंन कहा, अत तुर्वंसु, द्रुह्य, अग्न और यदु का वंश-वर्णन करूँगा॥१४१॥ तुर्वंसु का पुत्र बह्नि और उसका पुत्र गोभानु हुआ। गोभानु का पुत्र ऐशानु नामक अजय राजा हुआ॥१४२॥ ऐशानु का पुत्र करषम और उरगा पुत्र भरत हुआ। दूसरे अविक्षित के पुत्र राजा भरत का वंशन पटले ही किया जा चुका है॥१४३॥ पटल के सत्ताज न पी। उसने बड़े-बड़े यज्ञ किये, बहुत सी दक्षिणा दी। यशवात् उसने सयना नामक कन्या उत्पन्न हुई जिसे उसने सयनं नामक महात्मा

१ ग ०पती च पु०। २ स ०दी च दुरातनी। बु० ३स कुमार। ४ त गिरिकुम्भे। ५ क ह। पारवं-
 तस्तस्य। ६ स ०पन्यादि। ७ क ख त। ८ क दधिरप्लुतौ। ९ ग ०दयामस्य पा०। १० क ०द्वान्या-
 मुमाभ्या।

दक्षिणायं तु सा दत्ता सवर्त्ताय महामने । दुष्यन्त पीरव चापि लेभे पुत्रमकल्मषम् ॥१४५॥
 एष यथातिशयेन जरासक्रमणे तदा । पीरव तुर्वंसोर्वंश प्रविदेश द्विजोत्तमा ॥१४६॥
 दुष्यन्तस्य तु दाय्याद करारोम प्रजेदवर । 'कहरोमादयाह्नीदश्चत्वारस्तस्य चात्मजा ॥१४७॥
 पाण्ड्यश्च केरलश्चैव कालश्चोलश्च पाण्डिव । द्रुहोश्च तनयो राजन बभूवसेतुश्च पाण्डिव ॥१४८॥
 अङ्गारसेतुस्तत्पुत्रो मरुता पतिरुच्यते । यौवनाद्येन समरे कृच्छ्रेण निहतो बली ॥१४९॥
 युद्धं सुमहदप्यासीन्मासान् परिचतुर्दश । अङ्गारसेतोर्दयादो गान्धारो नाम पाण्डिव ॥१५०॥
 ख्यायते । यस्य नाम्ना ये गान्धारविषयो महान् । गान्धारदेशजाश्चैव तुरगा वाजिना वरा ॥१५१॥
 अनोस्तु पुत्रो 'धम्मोऽभूद्युतस्तस्यात्मजोऽभयत्' । घृतादिनद्रुहो जज्ञे प्रचेतास्तस्य चात्मज ॥१५२॥
 प्रचेतस सुचेतास्तु कीर्त्तितस्तुर्वंसोर्मया । बभूवुरते यदो पुत्रा पञ्च देवसुतोपमा ॥१५३॥
 सहस्राव पयोदश्च श्रोष्टा । नीलोऽञ्जिकस्तथा । सहस्रादस्य दाय्यादाश्चैव परमधार्मिका ॥१५४॥
 हैहयश्च ह्यदश्चैव राजा येणुह्यस्तथा । हैह्यस्याभवत् पुत्रो धम्मनेत्र इति श्रुत ॥१५५॥
 धम्मनेत्रस्य कात्तस्तु साहज्यस्तस्य चात्मज । साहज्यनी नाम पुरीतेन राजा निवेशिता ॥१५६॥
 आसीन्महिष्मत पुत्रो भद्रश्रेण्य प्रतापवान् । भद्रश्रेण्यस्य दाय्यादो दुर्वमो नाम विश्रुत ॥१५७॥
 दुर्वमस्य सुतो धीमान्कनको नाम नामत । कनकस्य तु दाय्यादाश्चत्वारो लोकविश्रुता ॥१५८॥
 कृतवीर्यः कृताज्ञश्च कृतधन्वा । तथैव च । कृताग्निस्तु । चतुर्योऽभूत् कृतवीर्यदियाज्जुन ॥१५९॥

को दक्षिणा मे दे दिमा ॥१५४॥ सयता से दप्यत नामक पीरव वशी निष्पाप पुत्र उत्पन्न हुआ ॥१५५॥
 द्विजवर । इस प्रकार बटावस्था मे राजा यथाति के शाप से तुवमु का वंश पीरव वंश मे मिल गया ॥१५६॥
 दप्यत का पुत्र कहरोम प्रजाजी का स्वामी हुआ । कहरोम का पुत्र अयाह्याद अर उरुके चार पुत्र हुए—
 पाण्ड्य करल काल अर शोल ॥१५७॥ द्रुह्य का पुत्र राजा बभूवसेतु हुआ ॥१५८॥ बभूवसेतु अ अंगारसेत नामक पुत्र
 हुआ जो मरुतो का स्वामी कहा गया है अ र जिसे युद्ध म यौवनाश्च न बड़ी कठिनार् से मारा था ॥१५९॥ चादह
 मास तक उन धेनो म यमासान युद्ध हुआ था । अंगारसेतु का पुत्र गान्धार नामक राजा हुआ जिसका नाम से गान्धार
 देश प्रसिद्ध है ॥१५०॥ गान्धार देश के धीर अहुत अच्छे होते हैं । अनु का पुत्र धम अर उसका पुत्र दत्त हुआ । दत्त से
 वनद्रुह उत्पन्न हुआ अर उसका प्रचेता ॥१५१॥ प्रचेता के सुचेता नामक पुत्र हुआ । तुवस का वंश धनन मैने
 कर दिया । यद के देव-पुत्र के समान पाण्ड पुत्र उत्पन्न हुए—॥१५३॥ सहस्राव पयोव श्रोष्टा नील तथा अञ्जिक ।
 सहस्राव के तीन परम धर्मात्मा पुत्र हुए—हैह्य ह्य अर येणुह्य ॥१५४॥ हैह्य का पुत्र धमनेत्र हुआ ॥१५५॥
 धमनेत्र का वार्ता अर उसका साहज्य । उस राजा न साहज्यनी नामक नगर बसाया ॥१५६॥ महिष्मान् का पुत्र
 मद्रथण्य प्रतापी था । मद्रथण्य का पुत्र दुर्वम नाम से विख्यात था ॥१५७॥ दुर्वम का विद्वान पुत्र कनक नाम से प्रसिद्ध
 था । कनक के लोक प्रसिद्ध चार पुत्र थे—॥१५८॥ कृतवीर्य कृताज्ञ कृतधन्वा आर वीर्य कृताग्नि ॥१५९॥

१ ग ० ह्यामा ० । २ क ० परिचरह्य ३ स ख्यातस्तु । ४ न ० भूदधृत ० । ५ ख ० तु । घृता
 च्छतद्रुहो । ६ ख ० ष्टा ५ मिलो ५ ० । ७ ख ० ह्यव हैह्यस्व ० । ८ ग ० स्तु कर्तापुत्रास्तथा ५ भवन् । कृ० ।
 ९ ख कृतकर्मा । १० क कृताग्निश्चतुः ।

योऽसौ बाहुसहस्रेण सप्तद्वीपेश्वरोऽभवत् । जिगाय पृथिवीमेको रथेनावित्यवर्चसा ॥१६०॥
 स हि वर्णायुत तपसा तप परमदुश्चरम । दत्तमाराधयामास कात्तवीर्योऽत्रिसप्तभयम् ॥१६१॥
 तस्मै दत्तो वरान प्रादाच्चतुरो भूरिजेस । पूर्वं बाहुसहस्र तु प्रायित सुमहद्वरम् ॥१६२॥
 अयम्वैऽधीयमानस्य सद्भिस्तत्र निवारणम् । उप्रेण पृथिवीं जित्वा धर्मेणैवानुरुज्जमम् ॥१६३॥
 सप्रामान सुबहून् जित्वा हृत्वा धारोन् सहस्रशः । सप्रामे वर्तमानस्य वध चाभ्यधिजाद्रेण ॥१६४॥
 तस्य बाहुसहस्र तु द्यूयत क्रिन् भ्रा द्विजा । योगादयोगोऽवरस्येव प्रादुभवति मायया ॥१६५॥
 तनेय पृथिवी सध्वं सप्तद्वीपा सप्तना । सप्तमुद्रा सनगरा उप्रेण विधिना जिता ॥१६६॥
 तेन सप्तसु द्वीपेषु सप्त यत्तशतानि वै । प्राप्तानि विधिना राजा धूयते मुनिसत्तमा ॥१६७॥
 सध्वं यज्ञा मुनिश्रेष्ठा सहस्रशतदक्षिणा । सध्वं काञ्चनयूपाश्च सध्वं पाञ्चनवेदय ॥१६८॥
 सध्वं देवैर्मुनिश्रेष्ठा यिमानस्थैरलङ्कृतैः । गन्धर्वरसरोभिश्च नित्यमेवापशोभिता ॥१६९॥
 यस्य यज्ञो जगौ गार्वा गन्धर्वा नारदस्तथा । वरोदासात्मजो विद्वा मर्हिन्ना तस्य विस्मिता ॥१७०॥

नारद उवाच

म नून कातवीर्यस्य गति यास्यग्नि पाथिवा । यज्ञैर्दानैस्तपोभिश्च विक्रमेण धुतेन च ॥१७१॥
 स हि सप्तसु द्वीपेषु धर्मा एतयो दारासनी । रथो द्वीपाननुचरन् योगो सद्दश्यते नृभिः ॥१७२॥

कृतवाय स अजून की उत्पत्ति हुई जो हजार मुनाभा व प्रनाप से साता द्वीपा का अथ वर बन गया था । उसने
 ग्य ५ समान तजसा रथ स अपेले मयूष पूषा को जाल लिया ॥१६०॥ अ र उसने दस हजार वर्षों तक कठिन
 तपस्या करके अत्रि मुनि व मृग दत्त का प्रसन्न किया ॥१६१॥ तत् ५ उस चार अथत तजसा करदान दिया ।
 अर्जुन ५ प्रायता का— मुग हजार मुनाएँ हो जाएँ सलुग्य मुझ अपम स यचाएँ अपन उप कसध्य स धृषवी को
 जीत कर मचात घम स मैं प्रजाभा का अनुरज्जन करे ॥१६२ १६३॥ अन् धृत स साम्राजा को जीतकर हजारों
 सधृषा को मार कर युद्ध म जीवन स अत्रि दलगाता पूष व हाथ स धने ॥१६४॥ द्विजवृन् । जिस प्रकार
 यात माया व वन स पागोवर का घम दृत गति हो जाती है उग प्रतर युद्ध करके समय उपयव हजार मुनाएँ
 प्रकट हो जाता था ॥१६५॥ एग मुना जाता है कि उसने अपन उप कसध्य स भाता द्वीप पवन मयूष अर नगर सन्नि
 इम पूषवी को जाल दिया आर गता द्रषा म सान म यज्ञ किया ॥१६६ १६७॥ उग्न एक-एक ताद दक्षिणा दी
 था । राय यज्ञ म मुवग व यज्जन्म अ र मुवग की दो वनी यज्ञाई गई थी ॥१६८॥ अलङ्कृत विमाना पर स्थित
 धर्मा दवना गन्धर्व अर अमराण यज्जन्म का सुगोभित करत थी ॥१६९॥ अजून व यज्ञ म गन्धर्व अर वर दाय
 के पुत्र विद्वान् नारद ५ उगरी मर्हिना स विस्मिय हावर माया मार ॥१७०॥

नारद ने कहा— यह दान तप पशयम और साधक गान म कृतवाय व पुत्र (अजून) का गति को कई राजा
 नहीं प्राप्त कर सक्ता है ॥१७१॥ बाल तजवार धनुष बाण को धारण कर आर रथ म स्थित हो द्वीपद्वीपान्तर म

१ ग ० र्हापाथिना ५ म० । २ ग ० र्हा स्वधर्मोपानु० । ३ ग ० म भारत । यो० । ४ रा दटना० ।
 ५ रा मिर्वा वि० ।

अनष्टद्रव्यता चैव न शोको न च विग्रहः। प्रभावेण भया राज्ञः प्रजा धर्म्मण रक्षत ॥१७३॥
 'स सध्वरन्तभाक्' सग्राह्य चक्रवर्ती बभूव ह। स एव पशुपालोभूत् क्षेत्रपाल स एव च ॥१७४॥
 स एव वृद्ध्या पञ्चव्यो योगित्वादज्जुनोऽभवत्। स वै बाहुसहस्रेण ज्याघातपठितवचा ॥१७५॥
 भाति रश्मिसहस्रेण शरदोद्य च भास्करः। स हि नागान्मनुष्येषु माहिष्मत्या महाद्युति ॥१७६॥
 'ककोटिकुसुमान् जित्वा पुण्यां तस्या न्यवेशयत्। स वै वेग समुद्रस्य प्रायूढकालेऽम्बुजेक्षण ॥१७७॥
 क्रीडन्निव भूर्जोऽक्षुन्न प्रतिलोतवचकार ह। रुण्डिता क्रीडता तेन नदी तद्ग्राममालिनी ॥१७८॥
 चन्द्रमिंसहस्रेण 'शङ्खिताम्येति नमन्दा। तस्य बाहुसहस्रेण क्षिप्यमाणे महोदधौ ॥१७९॥
 भयान्निलीना निदचेष्टा पातालस्था महासुरा। चूर्णाकृतमहावीचि' चलन्मीनमहातिमिम् ॥१८०॥
 'भाक्ताद्यिद्विकेनोद्यमावर्तक्षोभसङ्कुलम्'। प्रावर्तयत्तदा राजा सहस्रेण ॥१८१॥
 देवासुरसमाक्षिप्त क्षीरोदमिव मन्दर ॥ मन्दरक्षोभचकिता ॥ अमृतोत्पादशङ्कित ॥१८२॥
 सहस्रोत्पत्तिना भीता भीम इष्ट्वा नृपोत्तमम्। क्ता निश्चलमूर्ध्ना नो यभूवुस्ते महोरगा ॥१८३॥
 सायाह्ने कदलीखण्डा कम्पिता इव वायुना। स वै ब्रह्मवा घनुर्गर्भभिरुत्सितव पञ्चभि शरै ॥१८४॥

पिचरण करता हुआ वह वाणी अर्जुन सत्ताहोपो म मनुष्यो से देखा जाता है ॥१७२॥ प्रजाया का धमपूजक पालन कर। रूप महाराज अनु न का द्रव्य-शय बन्ध नहीं होता याव अर भ्रम भी नहीं होता ॥१७३॥ उक्त पात सब प्रकार के रत्न थे। वह चक्रवर्ती राजा था। वह पशुपाल अर क्षेत्रपाल भी था ॥१७४॥ योग के प्रताप से अग्नि मेघ रूप होकर वर्षा भी करता था। वही शरद् ऋतु म सूप की सहस्र किरणों से समान द्रव्य न आयात के कठिन त्वचा वाली हजार गुजाओं स सुशोभित था ॥१७५॥ उसी न ककोटक के पुत्रो को जितकर माहिष्मती परी मे मनुष्यो का बीच नागो को बसाया अर वर्षाकाल मे समुद्र के वेग म बर्ता करत हुए अपनी गुजाओं से समुद्र के बहुत-से स्रोत बना दिये ॥१७६॥ उसी की शीश के समय नमदा नदी जिसमे हजारो तरंग उठ रही थी शानित होकर सम्मुख आर ॥१७८॥ जव उस न हजार बाहुआ से समुद्र को क्षोभित किया तब पातालवासी महाराज मय से निश्चेष्ट होकर छिप गये ॥१७९॥ पूव काल मे जैसे देवता अर असुर। न मन्दराचल स समुद्र का मयन किया था उसी प्रकार उस राजा न हजार गुजाओं स समुद्र घसन किया। समुद्र की महातरंग भूर-भूर कर वी गई मच्छ और महामच्छ वर्षा न लगे, पवन के वेग से यथा का समुद्र उत्पन्न हो गया, आवत (मैवर) फैल न लगे ॥१८०-१८१॥ मन्दराचल के सचालन से चकित अर अमृत की उत्पत्ति से शक्ति मे समुद्रवासी महासर्प हठात् उठकर चारा ओर निहारने लगे। उस भयानक राज-शब्द को देखकर डर से उनके सिर निश्चल हो गये अर सायबाल मे बाण से कपित केले न पत वी तरह वे घटपटान लगे ॥१८२॥ उर्मी राजा न धनुष की शरी से मुक्त पाँच वाणी से सेनासहित रणापति रावण को मोहित कर अपने वश म करके माहिष्मती

१ क सहस्र । ग रक्षित । २ क स तु सर्वत्र भोगादयश्चक्रः । ३ ख मरुतोपादयश्चक्रः । ४ ख ऋक्षुत्पत्तिवत्वा पु० । ५ ग न केनचोद्गमः । ६ ग न्नी । वल० । ७ ग ऋक्षुत्पत्तिवत्वा पु० । ८ ग ऋक्षुत्पत्तिवत्वा पु० । ९ क ऋक्षुत्पत्तिवत्वा पु० । १० ग मनुसहम् । ११ क ऋक्षुत्पत्तिवत्वा पु० । १२ मर । तत्सक्षोभेणाऽऽचरितास्ताड्यमिमतशः । १३ क तास्ताड्यमिमतशः ।

लङ्घेत् मोहयित्वा तु सबलं रावणं बलात् । निजित्य वशमानीय माहिष्मत्या बबन्ध तम् ॥ १८५ ॥
 श्रुत्वा तु बद्धं पोलस्त्यं रावणं त्वर्जुनेन च । ततो गत्वा पुलस्त्यस्तमर्जुनं ददौ स्वयम् ॥ १८६ ॥
 मुमोच रक्षः पोलस्त्यं पुलस्त्येनाभिधातितः । यस्य बाहुसहस्रस्य बभूव ज्योतलस्त्वनः ॥ १८७ ॥
 युगान्ते तोयदस्येव स्फुटतो ह्यशनेरिव । अहो बत भूधे वीर्यं भागंवस्य यदच्छिनत् ॥ १८८ ॥
 राज्ञो बाहुसहस्रस्य हंमं तालवनं यथा । तृपितेन कदाचित् स भिक्षितश्चित्रभानुना ॥ १८९ ॥
 स भिक्षामदवाहीरः सप्त द्वीपान् विभावसोः । पुराणि ग्रामघोषांश्च विषयांश्चैव सर्व्वशः ॥ १९० ॥
 जज्वाल तस्य सर्व्वानि चित्रभानुर्विदुक्षया । स तस्य पुरुषेक्षस्य प्रभावेण महात्मनः ॥ १९१ ॥
 ददाह क्रांतवीर्य्यस्तु शलांश्चैव धनानि च । सन्नूयमाश्रमं रम्यं वरुणस्यात्मजस्य वै ॥ १९२ ॥
 ददाह बलवद्भूतिश्चित्रभानुः सहैहयः । यं लेभे वरुणः पुत्रं पुरा भास्वन्तमुत्तमम् ॥ १९३ ॥
 वशिष्ठं नाम स मुनिः स्यात् आपव इत्युत । तत्रापवस्तु तं क्रोधाच्छतवानर्जुनं विभुः ॥ १९४ ॥
 यस्माद्र यज्जितमिवं वनं ते मम हैहय । तस्मात्ते दुष्करं कर्म कृतमन्यो हनिष्यति ॥ १९५ ॥
 रानो नाम महाबाहुर्जामदग्नयः प्रतापवान् । छित्त्वा बाहुसहस्रान्ते प्रमथ्य तरसा बली ॥ १९६ ॥
 तपस्वी ब्राह्मणस्त्वां तु हनिष्यति स भागवः । अनष्टदृश्यता मय्यं बभूवामित्रकर्पिणः ॥ १९७ ॥
 प्रतापेन नरेन्द्रस्य प्रजा धर्म्मोण रक्षतः । प्राप्तस्ततोऽस्य मृत्युर्वै तस्य शापान्महामुने ॥ १९८ ॥

पुत्री मे बाँपा था ॥ १८४-१८५ ॥ परन्तु अर्जुन के द्वारा बोधे गये पुलस्त्य-युध रावण की बान सुन्दर पुलस्त्य-मुनि स्वयम् अर्जुन के पास गये ॥ १८६ ॥ पुलस्त्य की याचना करने पर अर्जुन ने, जिसके हजार भुजाओं के अनुप की टहल प्रलयकालीन मेघों के गर्जन के समान तथा निजली की कटक के समान होती थी, रावण का मुक्त कर दिया ॥ १८७ ॥ पर आश्चर्य तो यह है कि परमुराम न सप्रथम में उमी राजा की हजार भुजाओं को तालवन के समान काट दिया ॥ १८८ ॥ किसी समय अग्नि ने तुष्णा से मुक्त हो अर्जुन से किया माँग ॥ उस वीर ने अग्नि को सार्ती द्वीप मिला म दे दिये ॥ १८९ ॥ तब अग्नि उसने नगर, ग्राम और देवों को सब ओर से जलाने लगे ॥ १९० ॥ उस महात्मा पुरुषेन्द्र अर्जुन के प्रभाव से अग्नि न पर्वती और वनों को जला डाला ॥ उमी हैहय (अर्जुन) के साथ होकर अत्यन्त प्रयत्नीत अग्नि ने वरुण के पुत्र के सुन्य तथा रमणीय आश्रम को भी जला डाला ॥ १९१-१९२ ॥ पहले जिस तेजस्वी तथा उत्तम पुत्र को वरुण ने प्राप्त किया था, वह वशिष्ठ नामक मुनि आपव नाम से भी प्रख्यात था ॥ १९३ ॥ उस शक्तिमत्पर आपव ने क्रोध से अर्जुन को शाप दिया— हैहय ॥ जिस उद्देश्य से तुमन मेरे आश्रम की रक्षा नहीं की उगे वीर तुम्हारे दुष्कर्मों को कोई दूसरा नष्ट करेगा ॥ १९४-१९५ ॥ प्रतापी तथा शक्तिशाली जमदग्नि-युध परमुराम तुम्हारी हजार भुजाओं को काटकर वेध से मथ कर तुमको मारेगा ॥ १९६ ॥ जिस राजा के द्रव्य का साथ नहीं होता था, जो शत्रुओं का महार और धर्मपूर्वक प्रजा का पालन करता था, उसकी मृत्यु महामुनि

१ ग सप्तमः । २ ग तेजस्वी । ३ स ग वशिष्यति । ४ क तस्य । ५ क ग प्रभावः । ६ क ग.

वरस्तथैव भो विप्राः स्वयमेव वृतः पुरा । तस्य पुत्रशतं त्वासीत् पञ्च शया महात्मनः ॥१९९॥
 कृतास्त्रा धलिनः शूरा धर्मात्मानो यशस्विनः । शूरसेनश्च शूरश्च धृपणो मधुपध्वजः ॥२००॥
 जयध्वजश्च नाम्नासोदाबन्धो नृपतिर्महान् । कार्तवीर्यस्य तनया वीर्यवन्तो महाबलाः ॥२०१॥
 जयध्वजस्य पुत्रस्तु तालजङ्घो महाबलः । तस्य पुत्रशतं ह्यातास्तालजङ्घा इति स्मृताः ॥२०२॥
 तेषां कुले मुनिश्रेष्ठा हंह्यानां महात्मनाम् । वीतिहोत्राः सुजाताश्च भोजाश्चावन्तयः स्मृताः ॥२०३॥
 श्लोण्डिकेराश्च विद्यातास्तालजङ्घास्तथैव च । भरताश्च सुजाताश्च बहुत्वान्नानुकीर्त्तिताः ॥२०४॥
 धृपप्रभृतयो विप्रा यादवाः पुण्यकर्मिणः । धृपो वंशधरस्तत्र तस्य पुत्रोऽभवन्मधुः ॥२०५॥
 मधोः पुत्रशतं त्वासीद्वृषणस्तस्य वंशकृत् । वृषणाद्वृषणयः सत्वं मधोस्तु माधवाः स्मृताः ॥२०६॥
 यादवा यदुनाम्ना ते निरुच्यन्ते च हंह्याः । न तस्य वित्तनाशः स्यान्नष्टं प्रतिलभेच्च सः ॥२०७॥
 कार्तवीर्यस्य यो जन्म कथयेदिह नित्यशः । एते ययातिपुत्रार्णा पञ्च वंशा द्विजोत्तमाः ॥२०८॥
 कीर्त्तिता लोकवीर्याणां ये लोकान् धारयन्ति वै । भूतानो व मुनिश्रेष्ठाः पञ्च स्यावरजङ्गमान् ॥२०९॥
 धृत्वा पञ्च वितर्पास्तु राजा धर्मार्यकोविदः । यशोभवति पञ्चानामात्मजानां तथेश्वरः ॥२१०॥
 लभेत् पञ्च वराश्चैव दुर्लभानिह लौकिकान् । आपु कीर्त्तिं तथा पुत्रानेदवर्ष्य भूतिमेव च ॥२११॥

के शाप से हो गई ॥१९७-१९८॥ विप्रवृन्द । उसने स्वयं ही ऐसा वरदान पहले मागा था । उसके सौ पुत्रों में से पाँच ही बली, अस्त्र-शस्त्रों से सुवर्जित, धर्मात्मा, वीर, यशस्वी और महात्मा पुत्र बच गये थे; जिनका नाम था—शूरसेन, शूर, वृषण, मधुपध्वज और जयध्वज । जयध्वज अवन्तीपुरी का राजा हुआ ॥१९९-२००॥ कार्तवीर्य (अर्जुन) के सब पुत्र महाबलवान् तथा शक्तिपन्न थे ॥२०१॥ जयध्वज के तालजघ नामक महाबली पुत्र हुआ । उसके सौ पुत्र हुए, जो तालजघ नाम से प्रसिद्ध थे ॥२०२॥ मुनिवर । उन महात्मा हंह्यों के वंश में वीतिहोत्र, सुजात, भोज, श्लोण्डिकेरा, तालजघ और भरत—इन नामों से विख्यात पुत्र उत्पन्न हुए, जो विस्तार-मय से यहाँ नहीं गिनाये जा सकते हैं ॥२०३-२०४॥ विप्रवृन्द । धृप नामक राजा से लेकर यदुवशी धर्मात्मा हुए । यह वंशधर हुआ । उसके पाँच वंशज हुए ॥२०५॥ मधु के सौ पुत्र थे । उसका वंशधर वृषण हुआ । वृषण के वंशज वृष्णि कहलाये और मधु के माधव ॥२०६॥ यदु के वंश में उत्पन्न वे हंह्य यादव नाम से प्रख्यात हैं । जो व्यक्ति कृतवीर्य के पुत्र अर्जुन की जन्म-कथा नित्यप्रति पढ़ेगा, सुनेगा, करेगा, उसका वित्तनाश नहीं होगा और नष्ट हुआ भी द्रव्य पुनर्भल जायगा ॥२०७॥ द्विजवर । ये पाँचो वंश उन महावीर ययाति-पुत्रों के हैं, जो पंचमहामृतों की तरह स्थावर-जगम सहित त्रैलोक्य को धारण करते हैं ॥२०८-२०९॥ इन पाँचो वंशों को सुनकर धर्म-अर्थों को जानने वाला राजा पाँचो वंशों के अधीन सत्कार से दुर्लभ आयु, कीर्ति, पुत्र, ऐश्वर्य और धिर्मूर्तिरूप पाँच वरों को प्राप्त करता है ॥२१०॥ मुनिश्रेष्ठ । अब

१ क ख ०शतान्यासन्पञ्च । २ क धन्विन । ३ ग ०श्च द्रुष्टोक्तं कृप एव च । ज ० ४ ख महावीर्या । ५ ग ०जात्याश्च । ६ क तौडिके । ख तौण्डिके । ७ क ख । मार ० । ८ ख ०पमष्टतपो वि ० । ९ क ०णा लोकधारणहेतव । मू ० । १० ख लोकस्तार ० । ११ ख वा ।

लङ्केशं मोहयित्वा तु सबलं रावणं बलात्। निजित्य वशमान्नीय माहिष्मत्यां बबन्ध तम्॥१८५॥
 श्रुत्वा तु बद्धं पौलस्त्यं रावणं त्वज्जुनेन च। ततो गत्वा पुलस्त्यस्तमज्जुनं ददौ स्वयम्॥१८६॥
 मुमोच रक्षः पौलस्त्यं पुलस्त्येनाभियाचितः। यस्य बाहुसहस्रस्य बभूव ज्यातलस्वनः॥१८७॥
 युगान्ते तोयदस्येव स्फुटतो ह्यशनेरिव। अहो बत मूढे वीर्यं भार्गवस्य यदच्छिनत्॥१८८॥
 राज्ञो बाहुसहस्रस्य हेमं तालवनं यया। तूयितेन कदाचित् स भिक्षितश्चित्रभानुना॥१८९॥
 स भिक्षामददाद्वीरः सप्त द्वीपान् विभावसोः। पुराणि ग्रामघोषांश्च विपर्ययिष्व सत्त्वशः॥१९०॥
 जञ्वाल तस्य सर्वाणि चित्रभानुर्ददक्षया। स तस्य पुष्ट्येन्द्रस्य प्रभावेण महात्मनः॥१९१॥
 द्वाह कान्तव्योऽस्तु शलांश्चैव वनानि च। सन्न्ययमाश्रमं रम्यं वरुणस्यात्मजस्य वै॥१९२॥
 ददाह बलवद्भूतिश्चित्रभानुः सहैहयः। यं लेभे वरुणः पुत्रं पुरा भास्वन्तमुत्तमम्॥१९३॥
 वशिष्ठं नाम स मुनिः हयात् आपव इत्युत। तत्रापवस्तु तं क्रोधाच्छप्तवानज्जुनं विभुः॥१९४॥
 यस्मान्न वज्जितमिदं धनं ते मम हंहय। तस्मात्ते दुष्करं कर्म कृतमन्यो हनिष्यति॥१९५॥
 रामो नाम महाबाहुर्जामदग्न्यः प्रतापवान्। छित्त्वा बाहुसहस्रान्ते प्रमथ्य तरसा बली॥१९६॥
 तपस्वी ब्राह्मणस्त्वांस्तु हनिष्यति। स भार्गव। अनटद्रथ्यता यस्य बभूवामिन्द्रकपिणः॥१९७॥
 प्रतापेन नरेन्द्रस्य प्रजा धर्मेण रक्षतः। प्राप्तस्ततोऽस्य मृत्युर्वै तस्य शापान्महामुनेः॥१९८॥

पुरी में बाँपा था॥१८४-१८५॥ परन्तु अर्जुन के डाटा बाँधे गये पुलस्त्य-पुत्र रावण की बात सुनकर पुलस्त्य-मुनि स्वयम् अर्जुन के पास गया॥१८६॥ पुलस्त्य की याचना करने पर अर्जुन ने, जिसके हजार भुजाओं के धनुष की टकार प्रलयकालीन मैघों के गर्जन के समान तथा बिजली की कड़क के समान होती थी, रावण को मुक्त कर दिया॥१८७॥ पर आश्चर्य तो यह है कि परापुराम न सगर में उसी राजा की हजार भुजाओं को तालवन के समान बाँट दिया।॥१८८॥ किसी समय अग्नि ने तुष्णा से मुक्त हो अर्जुन से मित्रा मागी। उस वीर ने अग्नि को सातों द्वीप मित्रा में दे दिए॥१९१॥ सब अग्नि उसने नगर, ग्राम और देवों को सब ओर से जलाने लगे॥१९०॥ उस महात्मा पुष्ट्येन्द्र अर्जुन के प्रभाव से अग्नि ने पर्वतों और धनों को जला डाला। उसी हेतु (अर्जुन) के साथ होकर अप्रमत्त मयभीत अग्नि न वरुण के पुत्र के राज्य तथा रमणीय आश्रम को भी जला डाला॥१९१-१९२॥ पहले जिस तेजस्वी तथा उत्तम पुत्र को वरुण ने प्राप्त किया था वह वशिष्ठ नामक मुनि आपव नाम से भी प्रख्यात था॥१९३॥ उस क्षत्रियपुत्र आपव ने क्रोध से अर्जुन का साथ दिया—‘हेतु’ जिस उद्देश्य से तुमने मेरे आश्रम को रक्षा नहीं की। उगे और तुम्हारे दुष्कर्म को कोई दूसरा नष्ट करेगा॥१९४-१९५॥ प्रतापी तथा क्षत्रियाली जमदग्नि-पुत्र परापुराम तुम्हारी हजार भुजाओं को बाँटकर बेग स मय कर तुमको मारेगा॥१९६॥ जिस राजा के इच्छा का क्षय नहीं होना था, जो शत्रुओं का महार और धर्मपूर्वक प्रजा का धारण करता था, उसी मृत्यु महामुनि

१ ग रावण। २ ग तेजस्वी। ३ रा ग वशिष्ठा। ४ क तप्य। ५ क ग प्रभावेण। ६ क ग.

वरस्तयैव भो विप्रा स्वयमेव द्यूतः पुरा। तस्य पुत्रशतं त्वासीत् पञ्च शपा महात्मनः॥१९९॥
 कृतास्त्रा बलिनः। शूरा धर्मात्मानो यशस्विनः। शूरसेनश्च शूरश्च वृषणो मधुपध्वजः॥२००॥
 जयध्वजश्च नाम्नासीदावन्त्यो नृपतिर्महान्। कास्तंबीर्यस्य तनया वीर्य्यवन्तो महाबलाः॥२०१॥
 जयध्वजस्य पुत्रस्तु तालजङ्घो महाबलः। तस्य पुत्रशतं स्यातास्तालजङ्घा इति स्मृताः॥२०२॥
 तेषां कुले मुनिश्रेष्ठाः हंहयानां महात्मनाम्। वीतिहोत्राः सुजाताश्च भोजाश्चावन्त्यः स्मृताः॥२०३॥
 शौण्डिकेराश्च विख्यातास्तालजङ्घास्तयैव च। भरताश्च सुजाताश्च बहूवाभ्रानुकीर्त्तिताः॥२०४॥
 वृषप्रभृतयो विप्रा यादवा पुण्यकर्मिणः। वृषो वंशधरस्तत्र तस्य पुत्रोऽभवन्मधुः॥२०५॥
 मधो पुत्रशतं त्वासीद्वृषणस्तस्य वंशकृत्। वृषणाद्वृष्णयः सध्वं मधोस्तु माधवाः स्मृताः॥२०६॥
 यादवा यदुनाम्ना ते निरुच्यन्ते च हंहया। न तस्य वित्ताशः स्यान्नष्टं प्रतिलभेच्च सः॥२०७॥
 कास्तंबीर्यस्य यो जन्म कथयेदिह नित्यशः। एते ययातिपुत्राणां पञ्च वंशा द्विजोत्तमाः॥२०८॥
 कीर्त्तिता लोकेवीराणां ये लोकान्। धारयन्ति वै भूतानो व मुनिश्रेष्ठाः पञ्च स्यावरजङ्गमान्॥२०९॥
 श्रुत्वा पञ्च वितर्गास्तु राजा धर्मार्यकोविदः। वशीभवति पञ्चानामात्मजानां तयेश्वरः॥२१०॥
 लभेत् पञ्च वराश्चैव दुर्लभानिह लौकिकान्। आयुः कीर्त्तिं तथा पुत्रानैश्वर्यं भूतिमेव च॥२११॥

के शाप से हो गई॥१९७-१९८॥ विप्रवृन्द। उसन स्वय ही ऐसा वरदान पहले मागा था। उसके सौ पुत्रों में से पाँच ही बनी, अश्व-नास्त्रों से सुसज्जित, धर्मात्मा, वीर, यशस्वी और महात्मा पुत्र बच गये थे, जिनका नाम था—शूरसेन, शूर, वृषण, मधुपध्वज और जयध्वज। जयध्वज अवन्तीपुरी का राजा हुआ॥१९९-२००३॥ कर्तवीर्य (अर्जुन) के सब पुत्र महाबलवान् तथा शक्तिसंपन्न थे॥२०१॥ जयध्वज के तालजय नामक महाबली पुत्र हुआ। उसके सौ पुत्र हुए, जो तालजय नाम से प्रसिद्ध थे॥२०२॥ मुनिवर। उन महात्मा हंहया के वंश में वीतिहोत्र, सुजात भोज, शौण्डिकेरा, तालजय और भरत—इन नामों से विख्यात पुत्र उत्पन्न हुए, जो विस्तार-मय से यहाँ नहीं गिनाने जा सकते हैं॥२०३-२०४॥ विप्रवृन्द। वृष नामक राजा से लेकर यदुवशी धर्मात्मा हुए। वह वंशधर हुआ। उसने मधु नामक पुत्र हुआ॥२०५॥ मधु के सौ पुत्र थे। उसका वंशधर वृष्ण हुआ। वृष्ण के वंशज वृष्णि कहलाये और मधु के माधव॥२०६॥ यदु के वंश में उत्पन्न वे हंहय यादव नाम से प्रख्यात हैं। जो व्यक्ति कृतवीर्य के पुत्र अर्जुन की जन्म-स्था नित्यप्रति पड़ेगा, मुग्धा, बरोगा, उसका वित्तनाश नहीं होगा और नष्ट हुआ भी द्रव्य पुनः मिल जायगा॥२०७३॥ द्विजवर। ये पाँचा वंश उन महावीर ययाति-पुत्रों के हैं, जो पंचमहाभूतों की तट्ट स्यावर-जगम सहित त्रैलोक्य को धारण करते हैं॥२०८-२०९॥ इन पाँचा वंशों को मुनिकर धर्म-अर्थ को जानने वाला राजा पाँचों वंशों के अर्थात् अर्वाच प्रियवंश तथा विमुनिमान् हो जाता है॥२१०॥ द्विजगण। इन पाँच वंशों के धारण और श्रवण से मनुष्य यद्यपि म दुर्लभ आयु, कीर्ति, पुत्र, ऐश्वर्य और विमुनिरूप पाँच वरों को प्राप्त करता है॥२११३॥ मुनिश्रेष्ठो। अब

१ क स ०शातयास्तपञ्च। २ क यन्विन। ३ क ०द्वय द्यूतान् हृष एव च। ज०। ४ स महावीर्या। ५ ग ०जात्याश्च। ६ क शौण्डिके०। ग शौण्डिके०। ७ क. च.। भार०। ८ स ०यमष्टतपो वि०। ९ क ०णां लात्पाणहृव। मू०। १० य लोनास्त्रा०। ११ स या।

धारणाच्छ्रवणाच्चेव पञ्चवर्गस्य भो द्विजाः। क्रोष्टोर्व्वंशं मुनिध्रेष्ठा शृणुध्वं गदतो मम ॥२१२॥
यदोर्व्वंशधरस्याथ यज्विनः पुण्यकम्मिणः। क्रोष्टोर्व्वंशं हि श्रुत्वैव सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥२१३॥
यस्यान्ववायजो विष्णुर्हरिर्वृष्णिकुलोद्बहः।

इति श्रीब्राह्मे महापुराणे यदातिर्वंशानुकीर्तनं नाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥१३॥

चतुर्दशोऽध्यायः

तत्रादौ यदुपुत्र-क्रोष्टुवंश-वर्णनम्

लोमहर्षण उवाच

गान्धारी चैव माद्री च क्रोष्टोर्भाग्यं बभूवतु। गान्धारी जनयामास अनमित्रं महाबलम् ॥१॥
माद्री युषाजितं पुत्रं ततोऽप्यं देवमीदृशम्। तेषां वंशस्त्रिधा भूतो बृष्णीनां कुलवर्द्धनः ॥२॥
माद्रीयाः पुत्री तु जज्ञाते 'भुतौवृष्ण्यन्धकावभौ। जज्ञाते तनयौ बृष्णे श्वकल्कश्चित्रकरतथा ॥३॥
'श्वकल्कस्तु मुनिध्रेष्ठा धर्मात्मा' यत्र वर्तते। नास्ति ध्याधिभयं तत्र' नावर्पस्तपमेव च ॥४॥

क्रोष्टु का वंश-वर्णनं मुनिसे मुनिसे, जिस वंश में बृष्णि-वंश-उद्धारक साक्षात् विष्णु भगवान् अवतीर्ण हुए। यज्ञवर्ती, धर्मात्मा तथा 'गान्धार' यदु और क्रोष्टु के वंश-व्यवस्था से ही मनुष्य सब पापों से दूर हो जाते हैं ॥२१२-२१३॥

धी ब्रह्ममहापुराण में यदाति-वंशानुकीर्तन नामक चतुर्दशोऽध्याय समाप्त ॥१३॥

अध्याय १४

यदु-पुत्र क्रोष्टु के वंश का वर्णन

लोमहर्षण बोले—क्रोष्टु की दो पत्नियाँ थी—गान्धारी और माद्री। गान्धारी ने अनमित्र नामका महाबली

पुत्र उत्पन्न किया ॥१॥ माद्री ने युषाजित् और देवमीदृश नामक दो पुत्र हुए। उनके तीन प्रकार के वंश चले, जो बृष्णिगो के वंश को बढ़ाने वाले हुए ॥२॥ माद्री ने बृष्णि और अन्धक नामक और दो पुत्रों को उत्पन्न किया। बृष्णि ने श्वकल्क और चित्रक नामक पुत्र उत्पन्न हुए ॥३॥ मुनिवर! धर्मात्मा श्वकल्क जहाँ रहता है, वहाँ ध्याधि तथा अनावृष्टि का भय नहीं होता ॥४॥ मुनिगण! ऐसा सुना है कि किसी समय काशिराज ने राज्य में

१ त्रयोदश। २ यत्र यत्पूर्व। ३ यत्र यत्पूर्व। ४ यत् ०कल्पात् मु० १५ धर्मो नैवात्यवर्णनं। ना०।

५ यत् ०त्र न चावृष्टिभय तथा। य०।

कदाचित् काशिराजस्य विषये मुनिसत्तमाः^१। त्रीणि वर्षाणि^२ पूर्णानि नावयन्त पाकशासनः^३॥५॥
 स तत्र चानयामास श्वफल्कं परमाच्चितम्^४। श्वफल्कपरिवर्त्तेन^५ वर्षं हरिवाहनः^६॥६॥
 श्वफल्कः काशिराजस्य सुता भाष्यमिविन्दत^७। गान्दिनी नाम गं सा च ददौ विप्राय नित्यशः^८॥७॥
 दाता यज्वा च वीरदच भृतवानतिथिप्रियः^९। अकूरः सुपुत्रे तस्माच्छ्वफल्काद्भूरिदक्षिण^{१०}॥८॥
 उपमद्गुप्तया मद्गुप्तदुरदचारिमेजयः^{११}। अविक्षितस्तयाक्षेपः शत्रुघ्नश्चारिमर्दन^{१२}॥९॥
 धम्मंभूय यतिधर्मा च^{१३}। धर्म्मोक्षान्धकरस्तया^{१४}। आवाहप्रतिवाहो च सुन्दरी च वराङ्गना^{१५}॥१०॥
 अकूरणोप्रसेनाया सुगात्र्या द्विजसत्तमा^{१६}। प्रसेनश्चोपदेवदच जज्ञाते देववर्चसौ^{१७}॥११॥
 विन्नकरुषाभवन् पुत्राः पृथुद्विपुत्रुरेव च^{१८}। अश्वघ्रीवोऽश्वबाहुश्च स्वपाश्वरकवेपणौ^{१९}॥१२॥
 अरिष्टनेमिरश्वदच सुधर्मा धम्मंभूतया^{२०}। सुबाहुर्वह्नुबाहुश्च ध्विष्ठाश्रवणे स्त्रियो^{२१}॥१३॥
 अतिव्या जनयामास शूरं वै देवमोदुपम्^{२२}। महिष्यां जज्ञिरे शूरा भोज्यायां पुरुषा दश^{२३}॥१४॥
 वसुदेवो महाबाहुः पूर्वमानकदुन्दुभिः^{२४}। जज्ञे यस्य प्रसूतस्य दुन्दुभ्यः प्राणदन् दिवि^{२५}॥१५॥
 आनकानां च संह्लादः सुमहानभवद्विदिवि^{२६}। पपात गुणवर्षदश्च शूरस्य जननी महान्^{२७}॥१६॥
 मनुष्यलोके कृत्स्नेऽपि रूपे नास्ति सनो भुवि^{२८}। यस्यासीत्युपपाद्यस्य कान्तिश्चन्द्रमतो यया^{२९}॥१७॥

कृतातरतीन वर्षं तत्र अनावृष्टि रहीं ॥५॥ तो काशिराज श्वफल्क को सम्मानपूर्वक अपने साथ ले आए। उनके
 आते ही वृष्टि प्रारम्भ हो गई ॥६॥ प्रसन्न काशिराज ने अपनी कन्या गान्दिनी का विवाह श्वफल्क के साथ कर
 दिया। गान्दिनी नित्यप्रति ब्राह्मणों को गोदान शिवा करती थी ॥७॥ श्वफल्क ने अकूर नामक दाता, यज्जनी,
 वीर, विद्वान्, अतिथि-भूजक तथा भूरि-दक्षिणा देने वाला पुत्र उत्पन्न हुआ ॥८॥ उपमद्गु मद्गु, मेदुद, अरिमेजय,
 अविक्षित, अक्षेप, शत्रुघ्न, अरिमर्दन, धर्मभूय, यतिधर्मा, धर्मोक्ष अश्वक, आवाह, प्रतिवाह—ये पुत्र तथा सुन्दरी
 नाम की एक कन्या भी श्वफल्क से उत्पन्न हुई ॥९-१०॥ विप्रवर। अकूर की सुशामना पत्नी उपसेना से प्रसन्न
 और उपदेव नाम के दो देव-समान तेजस्वी पुत्र उत्पन्न हुए ॥११॥ विन्नक के पृथु विपुत्र, अश्वघ्रीव
 अश्वबाहु, स्वपाश्वरक, कवेपण; अरिष्टनेमि, अश्व, सुधर्मा, धर्मभूत, सुबाहु और वह्नुबाहु नामक पुत्र तथा
 ध्विष्ठा और श्रवणा नामक दो कन्यायें उत्पन्न हुई ॥१२-१३॥ देवमोदुप ने अमिकनी मे शूर नामक
 पुत्र उत्पन्न किया। शूर की भोज्या नामक रानी मे शूर नाम वाले दस पुरुष उत्पन्न हुए, जिनमें पटले वसुदेव
 की उत्पत्ति हुई ॥१४॥ वसुदेव के जन्म-समय आवाज मे दुन्दुभियाँ बजी थीं, इसलिए उन्हें 'आनकदुन्दुभि'
 की कहा जाता है। शूर के घर मे गुण-वर्षा के साथ अन्तरिक्ष मे बजते हुए ढाला की ध्वनि सुनाई
 पड़ी ॥१५-१६॥ मनुष्य लोक मे वसुदेव अप्रतिम सौन्दर्यशाली थे। चाँदनी-सी चमकती हुई उनमे प्रभा थी ॥१७॥

१ क ०मा। पुरा द्वादशवर्षाणि ना०। २ ग वर्षसहस्राणि ना०। ३ स ०य वासया०। ग ०य
 याजया०। ४ ग परमाचित। ५ क ०रिवायेण व०। ६ स ०मवाप ह। ग०। ७ क ०रा। जाता
 यत्रप्रिया दशा भृतसा चातिथिप्रिया। अ०। ८ क ०मन्युस्तथा मन्युर्व०। ९ स ०दुर्मुदर०। ग ०दुर्मुदरवा०।
 १ ग ०य। परिशिपस्तया इत्यथ स०। १० स अरिजिपस्तयोपेश स०। ११ ग व ०धर्मो जातवस्त०।
 १२ क वरानना। १३ स कुलन्दनी। १४ क. ख मुनिवर्चसौ। १५ ग ०रम्यदच। १६ स ०दुरवास्वा०।

वायसानां सहस्राणि यं यान्तुं पृथतोऽन्वयुः। चाहन्वोपभोक्ष्यामश्चाह्णेणहतानिति ॥३१॥
तन्निजस्तन्निपालश्च सुतो फनवरस्य तो। बीह्ववाश्वहनुश्चैव वीरो तावय गृज्जिमा ॥३२॥
श्यामपुत्रः शमीकस्तु शमीको राज्यमावहत्। जुगुप्समानो भोजत्वाद्राजसूयमवाप सः ॥३३॥
अजातशत्रुः शत्रूणां जज्ञे तस्य विनाशनः। वसुदेवसुतान् धीरान् कीर्त्तयिष्याम्यतः परम् ॥३४॥
वृष्णेस्त्रिविधमेवन्तु बह्वशाखं महोजसम्। धारयन् विपुलं वंशं नानर्थैरिह युज्यते ॥३५॥
याः पत्न्यो वसुदेवस्य चतुर्दश वराङ्गनाः। पौरवो रोहिणी नाम मदिराविस्तयापरा ॥३६॥
यैशास्त्री च तथा भद्रा सुनाम्नी चैव पञ्चमी। सहदेवा शान्तिदेवा श्रीदेवी देवरक्षिता ॥३७॥
सूकदेव्युपदेवी च देवकी चैव सप्तमी। सुतनुवंडवा चैव द्वे एते परिवारिके ॥३८॥
पौरवो रोहिणी नाम बाह्लिकस्यात्मजाभवत्। ज्येष्ठा पत्नी मुनिश्रेष्ठा दयितानकदुन्दुभेः ॥३९॥
लोभे ज्येष्ठं सुतं रामं शारण्यं शठमेव च। दुर्दमं दमनं शुभ्रं पिण्डारकमुशीनरम् ॥४०॥
वित्रा नाम कुमारी च 'रोहिणीतनया नव'। बित्रा सुभद्रेति पुर्नाविख्याता मुनिसत्तमाः ॥४१॥
वसुदेवाच्च देवक्या जज्ञे शौरिर्महायशा। रामाच्च निशठो जज्ञे रेवत्यां दयितः सुतः ॥४२॥
सुभद्राया रथो पार्यावभिमन्युरज्जायत। अक्रूरस्तकाशिकम्याया सत्यकेतुरज्जारतः ॥४३॥
वसुदेवस्य भाव्यास्तु महाभागस्तु सप्तसु। ये पुत्रा जज्ञिरे शूराः समस्तास्तान्निबोधत ॥४४॥

वा और जिसके पीछे-पीछे 'आज चाहेदण के द्वारा मारे गए वीरों के' मास का स्वादिष्ट भोजन करेंगे, ऐसा सोचते हुए
हजारों काँपे चला करत थे ॥३०-३१॥ कनक के दो पुत्र थे—तन्निज और तन्निपाल। गृज्जिम के बौक और
अश्वत्थु नामक दो पुत्र थे ॥३२॥ श्याम वा पुत्र शमीक था। शमीक ने राज्य-प्राप्ति की और भोज-नामा से अपने
को निहित मानते हुए राजसूय यज्ञ किया ॥३३॥ उसने अजातशत्रु नामक शत्रु विनाशक पुत्र उत्पन्न हुआ। अथ वसुदेव
के वीर पुत्रों का वर्णन करेंगे ॥३४॥ इस प्रकार अनेक शास्त्रों में विस्तृत एवं शुक्ति अथवा मात्र—इन तीन वर्णों
में विभक्त महापराक्रमी वरा का धारण करते हुए वसुदेव किसी प्रकार के अनर्थ में मारी नहीं हुए ॥३५॥ पूर वशी
रोहिणी, मदिरा, वैशाखी, भद्रा, सुनाम्नी, सहदेवा, शान्तिदेवा, श्रीदेवी देवरक्षिता, सूकदेवी, उपदेवी और देवकी
ये चौदह पत्नियाँ थी और सुतनु और वडवा—उनकी दो सेविकाएँ थी ॥३६-३८॥ पुरवशी रोहिणी बाह्लिक की पुत्री
ये चौदह पत्नियाँ थी और सुतनु और वडवा—उनकी दो सेविकाएँ थी ॥३६-३८॥ पुरवशी रोहिणी बाह्लिक की पुत्री
पी। मुनिवर। वसुदेव की प्रिय ज्येष्ठा पत्नी से राम तथा शारण्य, शठ दुर्दम, दमन, शुभ्र, पिण्डारक और उशीनर
नामके पुत्र उत्पन्न हुए ॥३९-४०॥ और रोहिणी से बित्रा सुभद्रा आदि प्रख्यात नौ कन्याएँ पैदा हुई ॥४१॥ मुनिवर।
वसुदेव की छोटी पत्नी देवकी से महायशस्वी शौरि (वृष्ण) उत्पन्न हुए। राम की पत्नी रेवती से निशठ नामक
पुत्र उत्पन्न हुआ ॥४२॥ अर्जुन की पत्नी सुभद्रा से रथो अभिमन्यू की उत्पत्ति हुई। अक्रूर की पत्नी काशिक्या से
से सत्यकेतु हुआ ॥४३॥ वसुदेव की महाभाग्यवती सात पत्नियों से मूल नाम वाले जो पुत्र पैदा हुए, उन सबके नाम

१ क ०जिहनी। धर्मपत्नी तयोवित्रा अमीकी राजमस्तमः। जुगुप्समानो भोजस्तु राजः०। २ ग
महोदमः। ३ स शारण्य। ४ स शठमे०। ५ ग दमन। ६ क ०नीदयिता दस। वि०।
७ ग दस। ८ क वित्रा। ९ क निपयो। ग निपयो। १० क स रोहिण्या। ११ क रमून। ग पुन।
१२ क ०राजज०। १३ क ०सु तामु सप्तसु भो जिज्ञा। ये। १४ स शूरा नामवन्ता०।

भोजश्च विजयश्चैव शान्तिदेवासुताबुभौ। वृकदेवः सुनामायां गदश्चातां सुताबुभौ॥४५॥
 अगावहं महात्मानं वृकदेवो व्यजायत। कन्या त्रिगर्त राजस्य भार्या धीः शिशिरायणे॥४६॥
 जिज्ञासां पौरुषे चक्रे न चत्कन्दे च पौरुषम्॥ कृष्णायसत्समप्रख्यो धर्मे द्वादशमे तथा॥४७॥
 मिथ्याभिज्ञस्तो गार्ग्यस्तु भन्यूनातिसमीरितः॥ घोषकन्यामुपादाय मंथुनापोषचक्रमे॥४८॥
 गोपाली॥ चाप्सरास्तस्य गोपस्त्रीवेशधारिणी। धारयामास गार्ग्यस्य॥ गर्भं दुर्द्धरमच्युतम्॥४९॥
 मानुष्यां॥ गर्गभार्यायां नियोगाच्छूचपाणिनः। स कालयवनो नाम यज्ञे राजा महाबलः॥५०॥
 "युत्तपूर्ववर्द्धिकायस्तु" सिंहसंहननो युवा। अपुत्रस्य स राजस्तु ववृधेज्जतपुरे शिशुः॥५१॥
 यवनस्य मुनिध्रेष्ठाः स कालयवनोऽभवत्॥ आमुष्यमानो नृपतिः पर्यपृच्छद्विजोत्तमम्॥५२॥
 वृष्ण्यन्धककुलं॥ तस्य नारदोऽकथयद्विभुः। अक्षौहिण्या तु संन्यस्य मथुरामग्नयात्तदा॥५३॥
 दूतं सम्प्रेषयामास वृष्ण्यन्धकनिवेशनम्। ततो वृष्ण्यन्धकाः कृष्णं पुरस्कृत्य महामतिम्॥५४॥
 समेता मन्त्रयामासुर्धनस्य भयात्तदा। कृत्वा विनिश्चयं सध्वं पलायनमरोचयन्॥५५॥
 बिहाय मथुरा रम्यां मानयन्त॥ पिनाकिनम्। कुशस्थलीं द्वारवतीं निवेशयितुमोत्सवः॥५६॥

सुनिये॥४४॥ शान्तिदेवा के दो पुत्र हुए—भोज और विजय। सुनामा से वृकदेव और गद पैदा हुए। वृकदेव ने महात्मा अगावह को उत्पन्न किया॥४५॥ किसी समय त्रिगर्त राज की कन्या ने, जो शिशिरायणि की भार्या थी, गार्ग्य मुनि का बौर्य की परीक्षा की। पर मुनि का बौर्य-स्खलन नहीं हुआ। ता बारको ने नपुंसक वह कर उनकी हँसी उड़ाई। जिससे क्रुद्ध हुए मुनि का शरीर लोहे के तवे के समान काला पड़ गया। बारह धर्म धीत जाने पर मुनि ने किसी गोप-कन्या के साथ मैथुन करने का निश्चय किया॥४६-४८॥ गोपी-वेष धारण किए हुए गोपाली नाम की अप्सरा न, गार्ग्य से समागम किया और नष्ट न होन वाले प्रचण्ड गर्भ को धारण कर लिया॥४९॥ शक्र की प्रेरणा से गर्गमुनि की मानुषी भार्या न कालयवन नामक महाबलवान् राजा को उत्पन्न किया, जिसका शरीर सिंह का बैसा था और देह का पूर्णवर्ण वृत्ताकार था॥५०॥ पुत्र-विहीन यवनराज के अन्तपुर में पालन-पोषण होने के कारण उसका नाम कालयवन पड़ गया॥५१॥ युद्ध की वायता रखते हुए कालयवन ने मुनिध्रेष्ठ नारद से पूछा कि किससे युद्ध करूँ? नारद ने उसे वृष्णि और अन्धक कुल के योद्धाओं से लड़ने का सुझाव दिया॥५२॥ तदनुसार कालयवन एक अक्षौहिणी सेना लेकर मथुरा की ओर चल पड़ा॥५३॥ पहले उसने वृष्णि और अन्धक कुल के योद्धाओं के पास अपना दूत भेजा। उसका युद्ध-नदश पाकर वृष्णि-अन्धक-वर्षिणी न नीति-निपुण दृष्ण को अगुवा बना कर परामर्श किया। और फिर कालयवन ने भय से मथुरा छोड़ देने का निश्चय किया॥५४-५५॥ शक्र को मानने वाले उन सब लोगो ने मुरम्ब मथुरा पुरी को

१ ग भर्ता। २ क ईरपरायणा। जि०। ३ ग म्भया। जि०। ४ ग पौरवे। ५ क म्स्तदास्य
 पी०। ६ ख म्। स्तन्दाय०। ७ क म्प्रत्येव०। ग म्प्रत्येवैषे। ८ क तदः। मिशस्तो गार्ग्ये शालेन
 म०। ९ क णा समुदीरि०। रा णामिस०। १० ग म्। गोपक०। ११ णी तस्य नद्रा तु गी०।
 १२ क मर्गस्य। १३ ग गर्दभा०। १४ ख ग वृषपू०। १५ ग म्स्तुमवत्त्वात्रिनी रणे। अ०। १६ क
 म्मुष्यमानो। ग अयुष्यमानो। १७ ख ग म्तामान्। वृ०। १८ क म्कुले त०। १९ ख म्पद्विजा।
 अ०। २० ख भावयन्तः।

इति कृष्णस्य जन्मेइ० य शुविनिपतेन्द्रिय० पर्वसु श्वायेद्विद्वाननृण स सुखी भवेत् ॥५७॥
इति श्रीब्राह्मे महापुराणे कृष्णजन्मानुकीर्तन नाम चतुर्दशोऽध्यायः ॥१४॥

पञ्चदशोऽध्यायः

वृष्णिवश-वर्णनम्

लोमहर्षण उवाच

कोष्ठोरयाभन्त् पुनो वृजिनीवान्महायशा । वाजिनीवतमिच्छन्ति स्वाहि स्वाहाकृता वरम् ॥१॥
स्वाहिपुत्रोऽभयद्राजा० उपदग्धंश्ता० दर । महाकनुभिरीजे यो विविधैर्भूरिवक्षिणं ॥२॥
तत प्रसूतिमिच्छन् यं० उपदग्धो सोऽयमात्मजम् । जज्ञे चित्ररथस्तस्य पुत्र कर्मभिरन्यित ॥३॥
आसीच्चित्ररथिर्वीरो यज्ञा त्रिपुन्दक्षिण । शशकिन्दु पर घृत् ० राजर्षीणामनुष्ठित ॥४॥
पृथुथवा पृथुयशा राजासीच्छाशकिन्दव ० शसन्ति च पुराणज्ञा पार्यश्रवसमन्तरम् ॥५॥
अन्तरस्य सुयज्ञस्तु सुयज्ञतनयोऽभन्त् । उपतो० यज्ञमखिल स्वधर्मं० च कृतावर ॥६॥
शिनेयुरभवत् पुन उपत ० शत्रुतापन । मरुतस्तस्य तनयो राजर्षिरभवन्नृप ॥७॥

छात्र कर द्वारका पुरी में हा रहने का निश्चय कर लिया ॥५६॥ जो पवित्र अरु जितद्विज होकर कृष्ण व इस
जन्म करिज को पद ने दिन सुनाएगा वह सब प्रकार के ऋणों से मुक्त होकर सुखी होगा ॥५७॥

श्री ब्रह्महृदपुराण मे कृष्ण जन्मानुकीर्तन नामक चौदहवाँ अध्याय समाप्त ॥१४॥

अध्याय १५

वृष्णि-वश का वर्णन

लोमहर्षण बोले—कोष्ठा का पुत्र वृजिनीवान परम यशस्वी हुआ । वृजिनीवान् का पुत्र स्वाहि सर्वोच्च यज्ञकर्ता
प्रसिद्ध हुआ ॥१॥ स्वाहि का पुत्र वराजा मेघेष्ट राजा उपदग्ध था, जिसने भूरि दक्षिणा सम्पन्न अनेक महयज्ञ क्रिये ॥२॥
पुत्रो रति की कामना से उपदग्ध ने चित्ररथ नामक अपने प्रथम पुत्र को उत्पन्न किया, जो वभस ल था ॥३॥ चित्ररथ का
पुत्र शशकिन्दु यज्ञकर्ता बिभुलक्षिणादाता, नमिष्ठ तथा राजर्षि श्रेष्ठ था ॥४॥ शशकिन्दु का पुत्र महायशस्व
पृथुथवा था । पुराणज्ञा का कहना है कि पृथुथवा का पुत्र अन्तर अन्तर का पुत्र सुयज्ञ अरु सुयज्ञ का पुत्र उपन् हुआ
जो निगिल-यज्ञ-वर्ता तथा निष्ठावान् धार्मिक था ॥५-६॥ उपत् से परतप शिनेयु उत्पन्न हुआ । अरु शिनेयु का

१ व ०मेहय । २ क जा पडवाँ वद० - ३ ख वगुर्व० । ४ क नै पडवाँ आप चाऽम० । ५ ख उपगु ।
६ ख ०रञ्जित । ७ व कृत्य । ८ ख ०सीच्छा० । ९ ख ०विदुज । १० । १० व उपितो । ११ ख धममुवता वर ।
० ग धर्ममुवता वर । १२ व ०र । सितधुर० । १३ उपित ।

लोमहर्षण उवाच

उप्रेण तपसा तस्याः कन्यायाः सा व्यजायत । पुत्रं विदर्भं सुभगा शैब्या परिणता सती ॥२०॥
 'राजपुत्र्यां तु विद्वांसो स्नुषायां ऋकैशिकी । पञ्चाद्विदर्भोऽजनयच्छूरो रणविशारदो ॥२१॥
 भीमो विदर्भस्य सुतः कुन्तिस्तस्यात्मजोऽभवत् । कुन्तेर्घृष्टः सुतो जज्ञे रणघृष्टः प्रतापवान् ॥२२॥
 घृष्टस्य जज्ञिरे शूरास्त्रयः परमधार्मिकाः । 'जावन्तश्च दशाहंश्च बली विपहरश्च' सः ॥२३॥
 दशाहंस्य सुतो द्योमा द्योम्नो जीमूत उच्यते । जीमूतपुत्रो विकृतिस्तस्य भीमरयः स्मृतः ॥२४॥
 अथ भीमरयस्यासीत् पुत्रो नवरयस्तथा । तस्य चासीद्दशरयः 'शकुनिस्तस्य चात्मजः' ॥२५॥
 'तस्मात्करम्भः कारम्भिर्देवरातोऽभवद्रूपः । देवक्षत्रोऽभवत्तस्य' वृद्धक्षत्रो महायशः ॥२६॥
 देवगर्भसमो जज्ञे देवक्षत्रस्य नन्दनः । मधूनां वंशकुट्टाजा मधुर्मधुरवागपि ॥२७॥
 मधोजज्ञेऽय वेदम्यां पुष्टान्पुष्टपोत्तमः । ऐश्याकी क्षामवद्भार्या मधोस्तस्यां व्यजायत ॥२८॥
 'सत्त्वान् सत्त्वगुणोपेतः सात्वतो कीर्त्तिवर्द्धनः । इमां विसृष्टिं विज्ञाय 'ज्यामघस्य महात्मनः ॥
 युज्यते 'परमप्रीत्या प्रजावाञ्छ च भवेत्' सदा ॥२९॥

लोमहर्षण उवाच

सत्त्वतः सत्त्वसम्पन्नान् कौशश्यां सुपुत्रे सुतान् । भगिन् 'भजमानं च दिव्यं 'देवानुधं नृपम् ॥३०॥

लोमहर्षण बोले—उक्त कथा की उग्र तपस्या से सीमागवती पतिव्रता शैब्या ने विदर्भ नामक पुत्रको उत्पन्न किया ॥२०॥ पश्चात् विदर्भ ने उन्हीं राजपुत्री में विद्वान्, वीर तथा युद्धविशारद ऋष और कैशिक नामक वी पुत्र उत्पन्न किये ॥२१॥ विदर्भ का पुत्र भीम और उसका पुत्र कुन्ति हुआ । कुन्ति के घृष्ट नामक प्रतापी तथा युद्ध-नुशल पुत्र उत्पन्न हुआ ॥२२॥ घृष्ट के तीन वीर तथा परम धर्मात्मा पुत्र हुए—जावन्त, दशाहं और बली विपहर ॥२३॥ दशाहं का पुत्र द्योमा और द्योमा का जीमूत कहा जाता है । जीमूत का पुत्र विकृति और उसका पुत्र भीमरय कहा जाता है ॥२४॥ भीमरय का पुत्र नवरय था । नवरय का दशरय और उसका पुत्र शकुनि था ॥२५॥ शकुनि से करम्भ और करम्भ से राजा देवरात की उत्पत्ति हुई । देवरात का पुत्र देवक्षत्र और उसका पुत्र महायशस्वी तथा देवपुत्र के समान तेजस्वी वृद्धक्षत्र था ॥२६॥ वृद्धक्षत्र के देवपुत्र के समान मधु नामक मधुरस्वक्ता तथा मधु-वश वर्त्ता पुत्र उत्पन्न हुआ ॥२७॥ मधु से वेदम्यां म पुष्टपोत्तम पुष्टान् की उत्पत्ति हुई । पुष्टान् की ऐश्याकी नामक भार्या में सत्त्व गुणों से युक्त सत्त्वतो का यशोवर्धक सत्त्वान् नामक पुत्र उत्पन्न हुआ ॥२८॥ महात्मा ज्यामघ की इस सृष्टि की जानकर मनुष्य अत्यन्त प्रयत्न तथा सदा प्रजावान् होता है ॥२९॥

लोमहर्षण बोले—सत्त्वान् से कौशल्या ने सत्त्वसत्त्व भागी, भजमान, दिव्य, राजा देवानुध, महासन्तिशाली

१ क राजपुत्री । २ ग ऋकैशिकम् । ५० । ३ ग ऋतेवृष्णिमु० । ४ क अचरश्च । ५ क ऋषर० । ६ क स य । ७ क स ऋतेवृत्तिस्त० । ८ य सुत । ९ ग नरर० । १० ग तथा । ११ क शकुनुत्पत्तस्य । १२ क तत करम्भस्तस्माच्च देव० । १३ स ग ऋय देवक्षत्रिर्महा० । १४ क. शा । हेमय० । १५ क वेदमिस्तस्य च प्रियपूर्वह । ऐश्याकिमवद्वाराजासत्त्वस्तस्य व्य० । १६ स ऋसावस्त० । १७ स सत्त्वात्सत्त्वगु० । १८ क माच सु० । १९ ग ज्यामघस्य । २० स रम प्रि० । २१ क मवेद्विज । २२ स ऋ । सात्वतासत्त्व० । २३ क ऋकैशिकी मु० । २४ क. भगिन् । स. भजिन । २५ ग देववृध ।

अन्धकं च 'महागात्रं धृष्टि' च धनुजन्दनम्। सेनां विसर्पादिवत्वारो विस्तरेणेह कीर्तिताः॥३१॥
 भजमानस्य सृञ्जयो बाह्यरायोपबाह्यः॥ अस्तां भाग्यं तयोस्तस्माज्जितरे बाहुः सुताः॥३२॥
 क्रिमिद्व 'श्रमणद्वय' धृष्टः शूरः पुरञ्जयः। एते बाह्यसृञ्जया भजमानाद्विजितरे॥३३॥
 'अपुताजित्' 'सहस्राजित्' 'नाजित्स्य' दासकः। उपबाह्यसृञ्जयां भजमानाद्विजितरे॥३४॥
 यज्ञा देवायुषो राजा घचार विपुलं तपः। पुत्रः सत्सङ्गुणोपेतो मम ह्यादिति निश्चितः॥३५॥
 'संयुज्यमानस्तपसा' पर्णाशया जलं स्पृशन्। 'सदोपपुत्रातस्तस्य' चचार प्रियमापगा॥३६॥
 'चिन्तयामिपरोता' सा न जगामिव' निन्दयम्। बह्म्याणस्वाग्रपतेस्तस्य सा निम्नगोक्षमा॥३७॥
 नाप्यगच्छतु तां नारीं यस्यामेवैक्षिपः सुतः। भवेत्तस्मात् स्वयं गरया भयाम्भस्य सत्पानुगा॥३८॥
 अथ भूत्वा कुमारी सा विभ्रतो परमं ययुः। यस्यामात नृपतिं तामिषेयं च स प्रभुः॥३९॥
 'यस्यामापत्त' गर्भे स तेजस्यिनमुदारयोः। अथ सा दशमे मासि सुपुत्रे सतितां धरा॥४०॥
 पुत्र सत्सङ्गुणोपेतं यधुं देवायुषं द्विजाः। अत्र यज्ञे पुराणज्ञा गायन्तीति परिश्रुतम्॥४१॥
 गुणान् वेदायुषस्यापि कीर्त्तयन्तो महात्मनः। ययैवाप्रे तया दूरात्पदमागस्ताश्चान्तिभ्यात्॥४२॥
 बभ्रुः धेरठो मनुष्याणां देवैर्वेदायुषं समः। पण्डितश्च 'धृष्ट' च पुत्रयोः सहस्राणि च सप्त च'॥४३॥
 एतेऽमृतत्वं प्राप्ता ये बभ्रुर्वेदायुषादपि। यज्ञा 'दानपतिर्धोमान्' यज्ञ्यः सुदुदायुषः॥४४॥

अन्धक और यधु इन धृष्टि की उताह्र किया॥३०३॥ उनसे चार बचो का विलुप्त-वर्जन मैंने कर दिया॥३१॥ भजमान की मृञ्जय-युत्री बाह्यरा और उरबाह्यरा नामक दो भाग्यवै थी। उन्होंने अनेक पुत्र उत्पन्न किये॥३२॥ भजमान से बाह्यरा ने विनि, वमण, धृष्ट, शूर और पुरञ्जय नामक पुत्र उत्पन्न हुए। उरबाह्यरा ने भजमान से अपुताजित् सहस्राजित्, नाजित् और दासक नामक पुत्रों को उत्पन्न किया॥३३-३४॥ 'सब गुणों से युक्त पुत्र मुझे हों' ऐसा निश्चय कर मज्जता राजा देवायुष उष तप करने लगा॥३५॥ तपस्या से सयमी होकर वह पर्णाश्रम नदी के जल का स्नान करता था। उदा स्नान करने से नदी उससे प्रेम करने लगी॥३६॥ पर राजा ने विषय में सीधती हुई वह बाई निश्चय नही कर पती। तब उस राजा का वरवाण चाहने वाली उस उत्तम नदी ने सोचा—'राजा की जो स्त्री है उसमें इतत तरह का पुत्र ही नहीं सता। इसलिए मैं स्वयं जाकर उसकी पत्नी बन जाती हूँ'॥३७-३८॥ तदनन्तर उसने परम सुन्दरी कुमारी का रूप धारण कर राजा का वरण किया। राजा ने भी स्वीकृति दे दी॥३९॥ उदार राजा से उस नदी, धेष्ठ न तेजस्वी गर्भ का धारण किया और दशवें मास में बभ्रुदेवायुष नामक प्रसिद्ध पुत्र उत्पन्न किया॥४०३॥ निप्रवृन्द। दस वश के बारे में पुराणशो का कहना है कि—'महात्मा देवायुष ने गुणों का गान करते हुए हम लोग जैसे उसकी सामने देखते हैं वैसे दूर से भी बिलकुल पास ही में देखते हैं'॥४१-४२॥ मनुष्य-धेष्ठ बभ्रुदेवायुष देवता के समान है। सप्त हजार छाछठपरपो ने बभ्रुदेवायुष से अमृत प्राप्त किया॥४३३॥ बभ्रु का विशाल वश यह कदा महादानी, ब्रह्मादी और महायोदा हुआ, जिसमें सतिवाक्य आदि भोज हुए।

१ क० हृप्रथित य०। २ ख वृजि। ३ क० ता। ४ मि०। ५ न वमिण। ५ ख वृष। ६ क० धृष्ट गुरसुतोपम।
 ए०। ७ ख० धृत्तजि०। ८ य० हृत्तजि०। ९ क० सजुष्टकायस्त०। १० क० 'दोप्रतपस्त०'। ११ क० चितेन परिताप
 सा। १२ ख० 'ताजमा ज०'। १३ क० 'मैका विनि०'। ख० 'मैक विनि०'। १४ ख० सहवता० अ०। १५ क० तस्मादागत्य
 सा गर्भं दधार परया मुदा। अ०। १६ क० पण्डित पु०। ख० पण्डित पु०। १७ ख० च। १८ क० ख० 'तिविद्वान्'।

तस्यान्ववायः सुमहान्भोजः। सति कावताः। अन्वकात्काश्यदुहिता चतुरोऽलभतात्मजान् ॥४५॥
 कुकुरं भजमानं च सत्सकं बलबहिम्। कुकुरस्य सती वृष्टिर्वृष्टेस्तु तनयस्तथा ॥४६॥
 कपोतरोमा तस्यायः तिलिरिस्तनयोऽभवत्। ज्ञे पुनर्वसुस्तस्मावभिजिच्च पुनर्वसोः ॥४७॥
 तथा वे पुत्रमियुनं वभूवाभिजितः किल। आहुकः आहुकश्चैव क्वातो ह्यातिमतां वरो ॥४८॥
 इमां चोदाहरन्त्यत्र गार्गां प्रति तमाहुकम्। ज्वेतेन परिवारेण किशोरप्रतिमो महान् ॥४९॥
 "अशीतिवर्मेणा युक्त आहुकः प्रथमं वजेत्। नागुवत्रात्राशतदो नासहस्रशतायुयः ॥५०॥
 नागुदरुर्मा नायज्वा यो भोजमभितो वजेत्। पुण्वस्यां दिशि नागानां भोजस्य प्रययुः किल ॥५१॥
 सोमात्सङ्गातुर्कृपाणां ध्वजिनां सवरूपिनाम्। रथानां मेघघोषाणां सहस्राणि दशैव तु ॥५२॥
 रोग्यकाञ्चनशलाणां सहस्राण्येकैर्विशतिः। तावत्येव सहस्राणि उत्तरस्यां तथा दिशि ॥५३॥
 आभूमिपाला भोजास्तु सन्ति ज्याकिङ्खणीकिनः। आहुः किं चाप्यवन्तिभ्यः स्वसारं ददुरन्धकाः ॥५४॥
 आहुकस्य तु काश्यायाः द्वौ पुत्रौ सम्बभूवतु। देवकश्चोपसेनश्च देवगर्भमावभूौ ॥५५॥
 देवकस्याभवन् पुत्रादक्षत्वारस्त्रिदशोपमाः। देवानुपदेवश्च सदेवो देवरक्षितः ॥५६॥
 सुमार्यः सप्त वास्याय वसुदेवाय ता ददौ। देवकी शान्तिदेवा च सुदेवा देवरक्षिता ॥५७॥
 वृकदेव्युपदेवौ च सुतामनी चैव सप्तमी। नवोपसेनस्य सुतास्तेषां कंसस्तु पृथक् ॥५८॥

काश्य की कास्या ने अन्वक ने कुकुर, भजमान, सवक और बलबहिम् नामक चार पुत्र उत्पन्न किए ॥४५॥ कुकुर का पुत्र वृष्टि और वृष्टि का पुत्र कपोतरोमा था। कपोतरोमा की पुत्र तिलिरि दूमा। उससे पुनर्वसु की उत्पत्ति हुई। पुनर्वसु से अभिजित उत्पन्न हुआ ॥४६॥ अभिजित के आहुक और आहुक नामक महाप्रसिद्ध दो पुत्र हुए ॥४८॥ आहुक के विषय में यह गाथा प्रसिद्ध है कि 'वह स्वेत परिवार से युक्त निघोर के समान था ॥४९॥ अर्थात् कवचों से युक्त वह अग्रणी बनकर चलता था और उसके चारों तरफ पुत्रवान् वज्रकर्ता, सैकड़ों दानवाता, सैकड़ों हजारी वर्ष जीन वाले और शुद्ध कर्म करने वाले लोग बमन करते थे ॥५०॥ भोज के साथ पूर्व दिशा में दक्ष हज्जार हारी, दक्ष हज्जार सेना, मेघ के समान शब्द करने वाले दक्ष हज्जार रथ और दक्ष हज्जार मोने-चाँदी के बल रहते थे। उत्तर दिशा में भी उसने छाय उत्पन्न की। सत्या में उक्त चीजें रहती थी ॥५१-५३॥ भोजन के सभी राजा प्रत्यक्षा के शब्द से युक्त रहते थे। और भी कहा जाता है कि अन्वकार ने अवन्तिमो को अपनी बहन दी ॥५४॥ आहुक की पत्नी काश्या से देवक और उपसेन नामक देवसदृश लैकाओं दो पुत्र उत्पन्न हुए ॥५५॥ देवक के देवता के समान चार पुत्र—देवानु, उपदेव, सदेव और देवरक्षित उत्पन्न हुए ॥५६॥ इसकी सात कथायें देवकी, शान्तिदेवा, सुदेवा, देवरक्षिता, वृकदेवी, उपदेवी और सुतामनी वसुदेव के साथ ग्याही गई ॥५७॥ उपसेन के बल, न्यग्रोच,

१ व जानामाति कावताम्। अ०। १० जावेमाति कारता। अ०। २ क० वाङ्मस्य दु०। ख० काश्यस्य दु०।
 ३ स० समक दल०। ४ क० वृष्णवृष्टेस्तु। ५ क० श्वततिरि०। ६ क० दन्दिमिच्च। ७ क० अहुक आहुकी चैव। ८ व० मतिमता। ९ ख० अहुकम्। १० क० निनर्म०। ख० तिचर्म०। ११ ख० वज्रन्। १२ व० कल्पना स०। १३ क० जाश्या।
 स। ख० जाशे सा तिष्ठन्निङ्खणी किल। अ०। १४ क० व० आहुकी चा०। १५ ख० अश्वका। १६ ग० काश्याया।
 १७ ख० अंमुतावु०। १८ ग० वरानु०। १९ ग० श्व सदे०। २० ख० अत्पास्या०। २१ क० सदेवी।

न्यग्रोधश्च सुतामा चतया कडकः^१ सुभूषणः । राष्ट्रपालोऽयं सुतनुरनावृष्टिस्तु पुष्टिमान् ॥५९॥
 तेषां स्वसारं पञ्चासन् कसा कसवती तथा । सुतनू राष्ट्रपात्री च कडका चैव वराङ्गना ॥६०॥
 उपसेन सहापत्यो व्याख्यातः कुकुरोद्भवः । कुकुराणामिमं वशं धारयन्प्रमितोजसाम् ॥६१॥
 आत्मनो विपुलं वशं प्रजायान्तापुन्याक्षरं^२ ॥६२॥

इति श्रीब्राह्मे महापुराणे यूष्णिग्वशनिरूपणं नाम षष्ठदशोऽध्यायः ॥१५॥

षोडशोऽध्यायः

सत्रादौ सत्राजिदुपाख्यानवर्णनम्

लोमहर्षण उवाच

भजमानस्य पुत्रोऽयं रथमुख्यो विदूरथः । रागाधिदेव शूरस्तु विदूरथसुतोऽभवत् ॥१॥
 राजाधिदेवस्य सुता गतिरे वोय्यवतरा । श्वत्तातिदत्तो यत्नो शोणादव श्वेतवाहा ॥२॥
 शमी च दण्डशर्म्मा च श्वत्तशत्रुश्च शत्रुजितः । श्वणा^३ च श्वविष्टा च स्वसारौ सम्भूभवतु ॥३॥
 शमिपुत्रं प्रतिक्षत्रं प्रतिक्षत्रस्य जातम्^४ । स्वयम्भोजं स्वयम्भोजदत्तमिदं^५ सम्भूभव ॥४॥

सुताया कक सुभूषण राष्ट्रपाल सुतनु जनावृष्टि और पुष्टिमान् नामक नी पुत्र हुए जि में वस सबसे ज्येष्ठ था ॥५८५९॥ उनको कसा कसवती सुतनु राष्ट्रपाली अ कसा नामक पाच रूपवती दहन थी ॥६०॥ इन सतानो क सहित उपसेन कुकुर का वशन कहलाया। कुकुरो व अर्थात् तबस्वी वश को सुनने से मनुष्य महान प्रजायान होता है ॥६१६२॥

अ। ब्रह्ममहापुराण में यूष्णिग्वश निम्नवत् नामक पदद्वयों अव्याय समाप्त ॥१५॥

अध्याय १६

सत्राजित् का उपारथान

लोमहर्षण ने कहा—भजमान क विदूरथ नामक महारथी पुत्र हुआ और विदूरथ के राजाधिदेव नामक पुत्र हुआ ॥१॥ राजाधिदेव के दत्त गतिदत्त शोणादव श्वेतवाहन शमी दण्डशर्मा दन्तशत्रु अ र शत्रुजित् एव अर्थात् शक्तिशाली पुत्र एवं श्वणा वारः^३ विष्टा नाम की दो कन्याएँ उत्पन्न हुई ॥२३॥ शमी का पुत्र प्रति और प्रतिक्षत्र का स्वयम्भोज था। स्वयम्भोज से अधिक उत्पन्न हुआ ॥४॥ अधिक के महापराक्रमी पुत्रा मे

१ क काङ्क । २ क वाप्राणुः । ३ क जग्गमानो । ४ क अत्तामिदः । ५ क अन्तचक्रश्च । ६ क वीरा । ७ क ख गमी पुः । ८ क जाद्वदीकः । ख जाद्वदिः ।

तस्य पुत्रा बभूवुर्हि सर्वे भीमपराक्रमाः। कृतवर्माप्रजस्तेषां शतघन्या तु मध्यमः॥५॥
 देवान्तश्च नरान्तश्च भियर्ग्वतरणश्च यः। सुदान्तश्चातिदान्तश्च निकाशः कामदम्भकः॥६॥
 देवान्तस्थाभवत् पुत्रो विद्वान् कम्बलबर्हिषः। असमोजा सुतस्तस्य नासमोजाश्च तावुभौ॥७॥
 अजातपुत्राय सुतान् प्रददावसमोजसे। सुदंष्ट्रश्च सुचारश्च वृष्ण इत्यन्धकाः स्मृताः॥८॥
 गान्धारी चैव माद्री च क्रोष्टुभार्य्ये बभूवतु। गान्धारी जनयामास अनमित्रं महाबलम्॥९॥
 माद्री युवाजितं पुत्रं ततो वै देवमीदृषम्। अनमित्रममित्राणा जेतास्मपराजितम्॥१०॥
 अनमित्रसूतो निघ्नो निघ्नतो द्वौ बभूवतुः। प्रसेनश्चाथ सत्राजिच्छत्रुसेनाजितावुभौ॥११॥
 प्रसेनो द्वारकत्यां तु निघसन् यो महामणिम्। दिव्यं स्यमन्तकं नाम स सूर्यादिपञ्चवान्॥१२॥
 तस्य सत्राजितः सूर्यः यथा प्राणतमोऽभवत्। स कदाचिन्निशापायै रथेन रथिना वरः॥१३॥
 "तौमकूलमपः स्पष्टमुपस्थातुं ययौ रविम्। तस्योपतिष्ठतः सूर्यं विवस्थानप्रतः स्थितः"॥१४॥
 विस्पष्टमूर्तिर्भगवास्तैजोमण्डलवान् विभुः। अथ राजा विवस्वस्तमुवाच स्थितमप्रतः॥१५॥
 ययैव ध्योमिनि पश्यामि सदा त्वा ज्योतिषा पते। तेजोमण्डलिनं देवं तयैव पुरतः स्थितम्॥१६॥
 को विशेषोऽस्ति मे त्वत्तः "सहस्रेनोपगतस्य वै। एतच्छ्रुत्वा तु भगवान्मणिरत्नं स्यमन्तकम्॥१७॥

सबसे ज्येष्ठ कृतवर्मा और महला शतघन्या था ॥५॥ इनसे छोटे देवान् नरान्, सुदान्, अतिदान्, भियर्ग्वतरण, निका-
 श तथा कामदम्भक थे ॥६॥ देवान् का पुत्र विद्वान् कम्बलबर्हिष था। उसके असमोजा और नासमोजा नामक
 दो पुत्र थे ॥७॥ पुत्र-विहीन असमोजा को अन्धका न सुदंष्ट्र सुचार अर वृष्ण नामक पुत्र दिये, जो अन्धका नाम
 से ही प्रख्यात हुए ॥८॥ क्रोष्टु की गान्धारी और माद्री नामक दो स्त्रियाँ थीं। गान्धारी ने अनमित्र नामक महाबली
 पुत्र को उत्पन्न किया ॥९॥ माद्री से युवाजित् अर देवमीदृष नामक पुत्रो की उत्पत्ति हुई। देवमीदृष शत्रुओं
 का भी मित्र तथा सर्वदा विजयशाली था ॥१०॥ अनमित्र का पुत्र निघ्न था। निघ्न ने के दो पुत्र थे—प्रसेन और
 सत्राजित्। दोनों शत्रु विजयी थे ॥११॥ प्रसेन द्वारकापुरी से बलि कर लेता। सत्राजित् ने सूर्य से स्यमन्तक नामक
 दिव्य महामणि को प्राप्त किया था ॥१२॥ उस सत्राजित् का प्राणप्रिय आराध्य सूर्य था। जिस समय राजा के अवसान
 में सूर्योपस्थान करने के लिए महारथो सत्राजित् रथ पर अरुद्ध हुआ तब दे बिनासे गया ॥१३॥ जब वह
 सूर्योपस्थान कर रहा था तब स्पष्ट मूर्तिवान् तेजोमण्डल से युक्त तथा शक्ति-सम्पन्न भगवान् सूर्य उसने सामने
 स्थित हो गए। राजा ने सूर्य से निवेदन किया ॥१४॥ हे ज्योतिष्य! जैसे आकाश में मैं आपकी सदा
 तेजोमण्डल से युक्त देखता हूँ वैसे ही अपने सामने भी देख रहा हूँ ॥१५॥ इसलिए आप सदा मेरी घनिष्ठता
 में कोई विशेष अन्तर नहीं हुआ? यह सुनकर भगवान् सूर्य ने अपना गले से स्यमन्तक मणि को उतार कर एकान्त

१ क य। युवागश्चापि निष्कोशयो निष्कोशाल्काम०। २ क तामसोजाश्च। स नामसोजाश्च। ३ ख
 ०यज्वज्ज। ४ क ख कोष्टोमर्ये। ५ क ब्रह्मपुत्री। ६ क तथा। ७ ख ०मित्र च शत्रूणां। ८ क ०श्चापि स०। ९ ख
 ०वसश्च म०। १० क ग समुद्रादु०। ११ स ०स्मपराजितु स राजा च य०। १२ ग ०त। अरय०। १३ क देव।
 १४ ख. महायत्न य०।

स्वकण्ठादवमुच्चाय' एकान्ते न्यस्तवान् विभुः। ततो विग्रहवन्तं तं ददर्श नृपतिस्तदा॥१८॥
 प्रीतिमानय तं दृष्ट्वा मुहूर्तं कृतवान् कयाप्। तमभिप्रस्थितं भूपो विवस्वत स सत्रजित्॥१९॥
 लोकान् भासयसे सर्वान् येन एवं सततं प्रभो। तदेतन्मणिरत्न मे भगवन् दातुमर्हसि॥२०॥
 ततः स्यमन्तकमणिं दत्तवान् भास्करस्तदा। स तमावधाय नगरीं प्रविवेश महोपतिः॥२१॥
 तं जनाः पर्ययथावन्तः सूर्योऽयं गच्छतीतिह'। स्यां पुरीं स विसिप्मय राजा त्वन्त पुरं तथा॥२२॥
 तं प्रसेनजितं दिव्यं मणिरत्नं स्यमन्तकम्। ददौ आश्रे नरपतिः प्रेम्णा सत्राजिदुत्तमम्॥२३॥
 स मणिः स्यन्दते स्वमं वृण्वन्धकतिवेशने। फाल्गवर्षी च पर्जन्यो न च व्याधिभयं ह्यभूत्॥२४॥
 लिप्तां ध्वजे प्रसेनस्य मणिरत्ने स्यमन्तके। गोविन्दो न च त लेभे भक्तोऽपि न जहार सः॥२५॥
 फदाविन्मृगयां यातः प्रसेनस्तेन भूयितः। स्यमन्तककृते सिंहादधं प्राप पनेचरात्॥२६॥
 अयं सिंहं प्रयावन्तमृक्षराजो महाबलः। निहत्य मणिरत्नं तदादाय प्राविशद्गुहाम्॥२७॥
 ततो वृण्वन्धकाः कृष्णं प्रसेनवधकारणात्। प्रार्थनां ता मणेर्यदध्या सध्वं एव शशङ्किरे॥२८॥
 स "शङ्कयमानो धर्मात्मा अकारो तस्य कर्मणः। आहूरिष्ये मणिमिति प्रतिज्ञाय वनं ययी॥२९॥
 यत्र प्रसेनो मृगयां व्याचरत्तत्र चाप्यय। प्रसेनस्य पद गृह्य पुरपरिप्राप्तकारिभिः॥३०॥

स्थान में रख दिया॥१७३॥ तब राजा ने शरीरधारी सूर्य को देखा और प्रसन्नता से दो घड़ी तक उसके वार्ता-
 लाप किया॥१८३॥ जब सूर्य चलने लगे तब सत्राजित् ने फिर कहा—'भगवन्' जिस मणिश्रेष्ठ है आप सब
 लोका को सदा प्रकाशित करते हैं, वह मुझ दे दीजिये॥१९२०॥ तब सूर्य ने स्यमन्तकमणि उसे दे दी। उसने
 भी मणिको बाँधकर अपने नगर में प्रवेश किया॥२१॥ नगर के लोग 'यह सूर्य आ रहा है' ऐसा मन्त्र कर भागने
 लगे। इस प्रकार नगरवासियों को विस्मित करते हुए राजा अन्तपुर में चला गया॥२२॥ राजा सत्राजित् ने
 अपना भाई प्रसेन को वह दिव्य मणिरत्न स्यमन्तक प्रेम से दे दिया॥२३॥ युगिन्-अन्वध कुल बालों के घर में वह
 मणि सोना झरती थी। मणि के रहते द्वारिकापुरी में वर्षा अबुष्टि या अत्यावृष्टि नहीं होती थी, व्याधि का
 भय तो बतई नहीं था॥२४॥ कृष्ण को स्यमन्तक मणि की लालसा थी, पर उन्हें नहीं मिली। शमभ्यवान् हते
 हुए भी वे हरण नहीं कर सकते थे॥२५॥ किसी समय मणि से विमूषित होकर प्रसेन शिकार खेलने गया। वन में
 विचरते हुए एक सिंह प्रसेन को मारकर स्यमन्तक मणि लेकर भाग गया॥२६॥ दौड़ते हुए उस सिंह को महाबलवान्
 ऋक्षराज (जाम्बवान्) ने मार डाला और मणि लेकर वह अपनी गुहा में प्रविष्ट हो गया॥२७॥ पश्चात् कृष्ण
 स्यमन्तक लेना चाहते थे, ऐसी आशंका कर वृष्णिन्-अन्वध-वधियों ने श्रीकृष्ण पर प्रसेन के चक्का आरोप लगाया॥२८॥
 धर्मात्मा कृष्ण दोषरहित होते हुए भी मिथ्यारोप से बचने के लिए 'मैं मणि लालूँ' ऐसी प्रतिज्ञा कर वन में गये॥२९॥
 जहाँ प्रसेन शिकार खेलने गया था उस (स्थान) को आप्त व्यक्तियों के द्वारा निश्चित कराकर उसके पद-चिह्नों के ऊपर

१ ख ०मुत्पेवमेका०। ग मुत्पेनमेका०। २ क ग कानुद्भासययेतान्ये०। ३ ख ०मामुच्य न०। ४ ख ह।
 पुरी विरमापयित्वा तु स राजाज्त्०। ५ क ख तयो। ६ ग ०सेनात्तुम०। ७ क ०द्वधमाप। ८ ग ०तु अदाय
 वनमाविशत्। त। ९ क ०शद्विलम्। १० क प्रावित त मणि वुद्घ्वा। ११ क शङ्कुमा०। १२ ख, ०रत्नका०।

ऋक्षवन्तं गिरिवरं विन्ध्यं च गिरिमुत्तम् । अन्वेषयन् परिश्रान्तः स ददर्श महामनाः ॥३१॥
साश्वं हतं प्रसेनं तु नाविन्दत च तन्मणिम् । अयं सिंहः प्रसेनस्य शरीरस्याविवूरतः ॥३२॥
ऋक्षेण निहतो दृष्टः पदं ऋक्षस्तु सूचितः । पदं स्तैरन्विधायाथ गुहामृक्षस्य माधवः ॥३३॥
स हि ऋक्षविले वाणीं शुश्राव प्रमदेरितम् । धात्र्या कुमारमादाय सुतं जाम्बवतो द्विजाः ॥३४॥
क्रोडयन्त्या च मणिना मा रोदीरित्यथेरितम् ॥३५॥

धात्र्युवाच

सिंहः प्रसेनमवधीत् सिंहो जाम्बवता हतः । सुकुमारक मा रोदीस्तव ह्येष स्वमन्तकः ॥३६॥
अप्यक्षितस्तस्य शब्दस्य तूष्णमेव बिलं ययौ । प्रविश्य तत्र भगवांस्तद्वक्षबिलमञ्जसा ॥३७॥
स्यापयित्वा बिलद्वारे यदूलाङ्गलिना सह । शाङ्गधन्वा विलस्यं तु जाम्बवन्त ददर्श सः ॥३८॥
ध्रुपुधे बासुदेवस्तु बिले जाम्बवता सह । बाहुभ्यामेव गोविन्दो दिवसानेकविंशतिम् ॥३९॥
प्रविष्टेऽयं बिले कृष्णे बलदेवपुरःसराः । पुरीं द्वारवतीमेत्य हतं कृष्णं न्यवेदयन् ॥४०॥
बासुदेवोऽपि निर्जित्य जाम्बवन्तं महाबलम् । लेभे जाम्बवतीं कन्यामुक्षराजस्य सम्मताम् ॥४१॥
मणि स्वमन्तकं चैव जग्राहारमविशुद्धये । अनुनीयशरराजं तु निर्ययौ च ततो बिलात् ॥४२॥
उपायाद्द्वारकां कृष्णः सन्निवर्तितः पुरःसरैः । एवं स मणिराहूतस्य विशोऽध्यात्मानमच्युतः ॥४३॥

कृष्ण चलन लगे । पर्वत-श्रेष्ठ ऋक्षवान् और पर्वतोत्तम विन्ध्य पर्वत में मणि को ढूँढत हुए जब वे धक गये तो अथर्व सहित निहत प्रसेन विलायी पड़ा किन्तु मणि वहाँ भी नहीं थी ॥३०-३१॥ इपर-उपर देखने पर प्रसेन के शव के पास ही रीछ द्वारा निहत सिंह बिलाई पड़ा ॥३२॥ रीछ के पदबिह्वो का अनुसरण करत हुए श्रीकृष्ण उसकी गुहा तक पहुँच गए । रीछ की खोह में श्रीकृष्ण को जाम्बवान् के बालक को मणि से खेलती हुई पात्री के मुख से निकली हुई 'मत रोओ' यह बाणी सुनाई पड़ी ॥३३-३५॥

धात्री ने कहा—सिंह ने प्रसेन को मारा और सिंह को जाम्बवान् ने । हे सुपुत्र ! मत रोओ, यह तुम्हारी ही स्वमन्तक मणि है ॥३६॥ उसने शब्द स्पष्ट सुनते ही कृष्ण ने उस खोह में प्रविष्ट होने से पूर्व बिल-द्वार पर बल्लभ सहित यदुवशियो को खड़ा कर दिया । शाङ्ग नामक धनुष को धारण करके बाले कृष्ण ने खोह में स्थित जाम्बवान् को देखा ॥३७-३८॥ बिल में बासुदेव जाम्बवान् के साथ मल्लयुद्ध करने लगे । इन्कोस दिनों तक दोनों बाहु-युद्ध करते रहे ॥३९॥ कृष्ण के खोह में प्रविष्ट हो जाने पर बलदेव सहित यदुवशियो ने द्वारका आकर लागा से कह दिया कि कृष्ण मारे गये ॥४०॥ कृष्ण ने महाबलशाली जाम्बवान् को जीतकर ऋक्षराज की इच्छानुसार उसकी कन्या जाम्बवती से विवाह कर आत्मशुद्धि के लिए (देहेज में) उसी स्वमन्तक मणि को प्राप्त किया । फिर वे जाम्बवान् को सत्य ना देकर बिल में बाहर निकले ॥४१-४२॥ तब अपने विनयी अनुयायियों के साथ कृष्ण द्वारका पहुँचे । इस प्रकार मणि

१ ग अक्षवन्त । २ क. ग अन्वेषय परि० । ३ ख ०ष्ट पादे० । ४ ०क्षस्य मावित । ख ०क्षस्य मू० । ५ ख व्यक्तीकृतस्य श० । ग व्यक्तीकृतस्य श० । ६ ख शब्दश्च । ७ ख ०विष्टस्तत्र । ८ ख ०भ्यामय गो० । ९ क. महाबल । १० ख समतम् । ११ ख जहाराऽऽम० ।

ददौ सत्राजिते' तं ये सर्वसात्वततंसदि'। एवं मिथ्याभिशास्तेन कृष्णेनाभिघ्रातिना ॥४४॥
 आत्मा विशोधितः पापाद्विनिर्जित्य स्यमन्तकम् । सत्राजितो दशत्वासन् भार्यास्तासां शतं सुताः ॥४५॥
 ह्यातिमन्तस्त्रयस्तेषां भङ्गकारस्तु पूर्व्वजः'। वीरो वातपतिश्चैव वसुमेघस्तथैव च ॥४६॥
 कुमार्यश्चापि तिलो घे दिक्षु ह्याता द्विजोत्तमाः । सत्यभामोत्तमा तासां घतिनी च दृढघ्नता ॥४७॥
 तथा प्रस्वापिनी चैव भार्याः कृष्णाय ता ददौ । सभाशो भङ्गकारिस्तु नावेयश्च नरोत्तमो ॥४८॥
 जज्ञाते गुणसम्पन्नो विश्रुतो रूपसम्पदा । मादयाः पुत्रोऽय जज्ञेऽय वृष्णिपुत्रो युधाजितः ॥४९॥
 जज्ञाते तनयो वृष्णे, श्वफल्कश्चित्रकस्तथा । श्वफल्कः काशिराजस्य सुतां भार्यामिविन्दत ॥५०॥
 गान्दिनीं नाम तस्यादच गाः सदा प्रददौ पिता । तस्यां जज्ञे महाबाहुः श्रुतवानतिविप्रियः ॥५१॥
 अकूरोऽय महाभागो जज्ञे विपुलदक्षिणः । उपमद्गुस्तथा मद्गुम्भुदरश्चारिमर्दनः' ॥५२॥
 अरिक्षेपस्तयोपेशः' शत्रुहा चारिमेजयः । धर्मभृच्छापि 'धर्मा च' गृध्रभोजान्यकस्तथा ॥५३॥
 'आवाहप्रतिवाहो च सुन्दरी च धराङ्गना । विश्रुताश्वस्य' महिषो कन्या चास्य 'वसुधरः ॥५४॥
 रुद्रयोवनसम्पन्ना सर्व्वसारवमनोहरा । अकूरैरुपसेनाया' सुतो वै कुलगन्धर्वो' ॥५५॥
 वसुदेवश्चोपदेवश्च जज्ञाते देवदत्तसौ । चित्रकस्याभवन् पुत्रा, पृथुध्वपृथुरेव च ॥५६॥

ऐकर आत्म-शुद्धि के लिए वासुदेव ने यादवों से भरी हुई सभा में वह मणि सत्राजित् को दे दी ॥४३॥ इस प्रकार मिथ्या-
 पवाद को प्राप्त शत्रु-नाशन कृष्ण ने स्यमन्तक मणि को ओत कर पाप से अपनी शुद्धि की ॥४४॥ सत्राजित् के दस
 पतिनी और सी पुत्र थे । उन पुत्रों में तीन ही प्रसन्न हुए । भङ्गकार उपेष्ठ था और वीर वातपति तथा वसुमेघ
 छोटे थे ॥४५-४६॥ विप्रवर । सर्व्वत्र दिक्ष्वात सरयभामा, दृढघ्नता तथा प्रस्वापिनी नामक तीन कन्यायें भी
 उसकी थीं । सत्राजित् ने उन कन्याओं का विवाह कृष्ण के साथ कर दिया ॥४७॥ भगकार के सभाश और नावेय
 नामक रूप-गुण-सम्पन्न नरोत्तम पुत्र उत्पन्न हुए ॥४८॥ माद्री का पुत्र युधाजित् हुआ । वृष्णि के श्वफल्क और चित्रक
 नामक दो पुत्र हुए । श्वफल्क ने काशिराज की गान्दिनी नामक पुत्री से विवाह किया ॥४९, ५०॥ पिता गान्दिनी
 ने सदा गायें दिया करता था । गान्दिनी से अकूर नामक वीर, विद्वान्, अतिविप्र पूजक, महाभयशाली तथा
 बहुत्र दक्षिणा देन वाला पुत्र उत्पन्न हुआ ॥५१॥ अकूर के उपमद्गु, मद्गु, मुदर, अरिमर्दन, अरिक्षेप, उपेश,
 शत्रुहा, अरिमेजर, धर्मभृत्, धर्मा, गृध्रभोजान्यक, आवाह और प्रतिवाह—ये पुत्र थे । उसकी वसुधरा नामक कन्या,
 जो रुद्र-योवन आदि सर्व्वगुणों से सम्पन्न थी, राजा अश्व की रानी बनी ॥५२-५३॥ अकूर की पत्नी उपसेना से वसुदेव
 तथा उपदेव नामक दो देवसदृश तेजस्वी कुल-सर्व्वक पुत्र उत्पन्न हुए ॥५४॥ चित्रक के पृथु, विपुथु अश्वघ्रीव,

१ ख ० ते चैव स० । २ क ० वेयादवस० । ३ ग ० पां नगक० । ४ क ० ज । विरोधाधिप० । ५ क ० व
 उपश्रवस्त० । ६ क ग स्त्रीणा । ७ ख ० क्षोमाङ्ग० । ८ ख सारयेव । ९ ख रूपसद्वृत् । १० क ग ० न । गिरि० ।
 ११ क ग ० स्तयालोप० घ० । १२ ग धर्मी । १३ क ० धर्मो जाम्बवस्त० । ग ० धर्मो जानुवस्त० । १४ क आवाह
 प्रतिवाहपुत्र सु० । १५ ० ता सा च महिषक० । ग ता० स्वस्य ग० । १६ ख धराङ्गना । १७ ग ० सेन्या तु सु० ।
 १८ क ० नी । वृपदे० ।

‘अश्वघोषोऽश्वबाहुश्च सुपादवंकगवेपणौ। अरिष्टनेमिश्च सुता धर्मो धर्मभूदेव च॥५७॥
सुबाहुर्वहुबाहुश्च श्रविष्ठाश्ववणे स्त्रियौ। इमा मिथ्याभिज्ञस्ति य कृष्णस्य समुदाहृताम्॥५८॥
वेद मिथ्याभिज्ञापास्त न स्पृशन्ति कदाचन
इति श्रीब्राह्मे महापुराणे स्यमन्तकप्रत्यानयननिरूपण नाम धोडशोऽध्याय ॥१६॥

सप्तदशोऽध्यायः

स्यमन्तकोपाख्यातवर्णनम्

लोमहर्षण उवाच

यत्तु सत्राजिते कृष्णो मणिरत्न स्यमन्तकम्। ददावहारयद्वभ्रुर्भोजेन शतघन्वा॥१॥
तदा हि प्राययामास सत्यभामामनिन्दिताम्। अकूरोऽतरमन्विष्यन्मणिं खं स्यमन्तकम्॥२॥
सत्राजित ततो हत्वा शतघन्वा महाबल। रात्रौ त मणिमादाय ततोऽकूराय दत्तवान्॥३॥
अकूरस्तु तदा विप्रा रत्नमावाप्य चोत्तमम्। समय कारयाञ्चक्रे नाबेद्योऽह त्वयेत्युत॥४॥
‘वपनम्यूतप्रपत्स्याम कृष्णेन’ इवा प्रघर्षितम्। ममाद्य द्वारका सर्वा वशे तिष्ठत्यसशयम्॥५॥
हते पितरि दुःखार्ता सत्यभामा मनस्विनी। प्रययौ रथमारुह्य नगर वारणावतम्॥६॥

अश्वबाहु सुपादवंक, गवेपण धर्म धर्मभूत् सुबाहु और बहुबाहु पुत्र उत्पन्न हुए। उसके श्रविष्ठा और श्ववणा नामक दो बन्धायें भी थीं॥५६ ५७॥ कृष्ण क इस मिथ्यापवाद की वया की जो जानता है, उसे मिथ्यापवाद कभी नहीं लगता॥५८ ५९॥

श्री ब्रह्मपुराण में स्यमन्तक प्रत्यानयन निरूपण नामक सोलहवा अध्याय समाप्त॥१६॥

अध्याय १७

स्यमन्तक मणि की कथा

लोमहर्षण बोले—जिस स्यमन्तक मणि की कृष्ण न सत्राजित् को दिया, उसे भोजवशा शतघवा ने चुरा लिया॥१॥ अश्वघरद्वृद्धता हुआ अकूर सदैव अनिय मुदरी सयमामा से स्यमन्तक मणि को लिए प्रायना किया करता था॥२॥ एक रात महाबली शतघवा न सत्राजित् को मारकर स्यमन्तक मणि लेकर अकूर को दे दिया॥३॥ विप्रवृन्द। उस उत्तम मणि को प्राप्त कर अकूर न शतघवा से यह प्रशिक्षा कराया कि अकूर व पास मणि है—यह रहस्य तुम निर्गति नहीं बतलाना॥४॥ यदि कृष्ण तुम्हारा कोई अनिष्ट करे तो हम तुम्हारी सहायता करेंगे। आज सारी द्वारका मेरे अधीन है इसमें कोई संशय नहीं॥५॥ निदान सत्राजित् व वय से दुखी मनस्विना सत्यभामा रथ पर

१ छ ०२वसेनोऽश्व०। २ क ०शामणि मा०। ३ छ वय कृष्ण प्रप०। ४ क ०ण्य चत्वा। ५ क प्रघर्षति।
६ य ०मा यन्स्वि०।

सत्यभामा तु तद्वृत्तं भोजस्य शतघन्वनम् । भर्तुर्निषेधं दुःखार्तां पार्श्वस्थाभूषण्यवर्त्तयत् ॥७॥
पाण्डयानां च दग्धानां हृदिः कृतबोधकक्रियाम् । कुल्यायै चापि पाण्डूनां न्यषोजयत् सत्यकिम् ॥८॥
ततस्तत्वरितमामय्य द्वारकां मधुसूदनम् । पूर्य्यजं हृलितं श्रीमानिदं वचनमब्रवीत् ॥९॥

श्रीकृष्ण उवाच

हृत् प्रसेनः सिंहेन सत्राजिच्छतघन्वना । स्वमन्तवस्तु मदगामी तस्य प्रभुरहं विभो ॥१०॥
तदारोहं रयं शीघ्रं भोजं हत्वा महारयम् । स्वमन्तको महाबाहो अस्माकं स भविष्यति ॥११॥

लोमहर्षण उवाच

ततः प्रववृत्ते युद्धं तुमुलं भोजकृष्णयोः । शतघन्वा ततोऽक्रूरं सर्व्वतोविशमंशत ॥१२॥
संरब्धो तावुभी तत्र दृष्ट्वा भोजजनादिनी । श्वतोऽपि शापाद्वादिषयमक्रूरो नावपद्यत ॥१३॥
अपदाने ततो बुद्धिं भोजश्चक्रे भयादितः । भोजनानां शतं साप्रं हृदया प्रत्यपद्यत ॥१४॥
विख्याता हृदया नाम शतयोजनगामिनी । भोजस्य वडवा विप्रा यया कृष्णमयोधयत् ॥१५॥
क्षीणा जवेन हृदयामप्यवनः शतयोजने । दृष्ट्वा रथस्य रथां बुद्धिं शतघन्वानमवर्द्धयत् ॥१६॥
ततस्तस्या हतापास्तु ध्रमात् सेदोच्च भो द्विजा । खमुत्सेतुरथ प्राणाः कृष्णो राममयाब्रवीत् ॥१७॥

षडंबर नारणावत नामक नगर को चली गई ॥६॥ सत्यभामा शतघन्वा का संपूर्ण वृत्तान्त अपने स्वामी से निवेदन कर उन्हीं के पास खड़ी होकर राने लगी ॥७॥ श्री कृष्ण ने दग्ध पाण्डवों को जलाजलि देकर उनके अस्थि-संस्कार के लिए सत्यकि को नियुक्त कर दिया और फिर द्वारका पहुँच कर अपने ज्येष्ठ भाई बलभद्र से कहा ॥८-९॥

श्रीकृष्ण बोले—प्रभो ! सिंह ने प्रसेन को मार डाला और शतघन्वा ने सत्राजित् को । अब स्वमन्तक मणि का स्वामी मैं हूँ ॥१०॥ इसलिए हम लोग शीघ्र रथारुढ होकर शतघन्वा को मारकर स्वमन्तक मणि ग्रहण कर ॥११॥

लोमहर्षण बोले—हृदयवन्द, डूबने बाद कृष्ण और शतघन्वा ने घोर युद्ध प्रारम्भ हो गया । शतघन्वा चारों तरफ अक्रूर को ताकन लगा ॥१२॥ परन्तु जब युद्ध में प्रवृत्त शतघन्वा और कृष्ण को देखकर सामर्थ्यवान् होते हुए भी अक्रूर शाप के कारण शतघन्वा की सहृदयता करने के लिए न आया तब भय से पीड़ित शतघन्वा ने भागने का विचार किया ॥१३॥ विप्रमण ! तब हृदया चार सौ कोस दूर चली गई ॥१४॥ भोज की हृदया नाम से विख्यात घोड़ी सौ योजन तक चलन वाली थी जिस पर सवार होकर शतघन्वा कृष्ण से युद्ध कर रहा था ॥१५॥ परन्तु चार सौ कोस पहुँचने पर हृदया का वेग क्षीण हो गया । तब अपने रथ को आगे जवाहर श्रीकृष्ण शतघन्वा को पीड़ित करने लगे ॥१६॥ परन्तु अथर्व वेद के कारण हृदया ने प्राणपक्षे उड़ गये । तब कृष्ण ने राम से कहा ॥१७॥

श्रीकृष्ण उवाच

निष्ठेह त्वं महाबाहो दृष्टवोपा ह्या मया । पद्भ्यां गत्वा हरिध्यामि मणिरत्नं स्वमन्तकम् ॥१८॥
पद्भ्यामेव ततो गत्वा शतधन्वानमव्युतः । मिथिलामभितो विप्रा जघान परमास्त्रवित् ॥१९॥
स्वमन्तकं च नापश्यद्वत्वा भोजं महाबलम् । निवृत्तं चाब्रवीत् कृष्णं भणिं देहीति लाङ्गली ॥२०॥
नास्तीति कृष्णश्चोवाच ततो रामो वयान्वितः । धिक्शब्दपूर्वमसकृत् प्रत्युवाच जनाद्द्वन्द्वम् ॥२१॥

बलराम उवाच

भ्रातृत्वान्मर्यादाभ्येयं स्वस्ति तेऽस्तु ब्रजाम्यहम् । कृत्यं न मे द्वारकया न त्वया न च वृष्णिभिः ॥२२॥
प्रविवेश ततो रामो मिथिलामरिमद्वन्द्वः । सर्व्वकामैरुपहृतैर्मिथिलेनाभिपूजितः ॥२३॥
एतस्मिन्नेव काले तु बभ्रुमन्तिमतां धरः । नानाहयान् कृतुन् सर्व्वानाजहार निरयलान् ॥२४॥
द्वीक्षामयं स कबचं रक्षायं प्रविवेश ह । स्वमन्तककृते प्राज्ञो गान्धोबुत्रो महायशः ॥२५॥
अथ रत्नानि चान्यानि धनानि विविधानि च । पण्डितं वर्धाणि धर्म्मात्मा यज्ञेष्वेव न्ययोजयत् ॥२६॥
अक्रूरयज्ञा इति ते ह्यतीतस्तस्य महात्मनः । बह्वृषदक्षिणाः सर्व्वे सर्व्वकामप्रदायिनः ॥२७॥
अथ दुर्ध्याधनो राजा गत्वा स मिथिला प्रभुः । गदाशिक्षा ततो दिश्या बलदेवादवाप्तवान् ॥२८॥
सम्प्राप्त्य ततो रामो दृष्ट्व्यन्धकमहारथैः । अनीतो द्वारकामेव कृष्णेन च महात्मना ॥२९॥
अक्रूरश्चाप्यकौ सार्द्धमायातः पुरुषद्वयभः । हृथा सत्राजितं मुपतं सहवष्णु महाबल ॥३०॥

श्रीकृष्ण बोले—महावक्त्रिवालिन् । आप यही रहिये, धोही नष्ट हो चुका है, अब मैं पैदल ही जाकर मणिरत्न स्वमन्तक को ले आऊँगा ॥१८॥ तब परमस्वयं कृष्ण ने पैदल जाकर मिथिलापुरी के पास शतधन्वा को मार पर महाबली भोज के मारने पर भी स्वमन्तक मणि नहीं मिली । कृष्ण के लीटने पर बलराम ने उनसे मणि मांगी बाला ॥१९॥ ॥२०॥ उन्होंने जवाब दिया कि मिली ही नहीं। यह सुन बलराम क्रुद्ध होकर कृष्ण को बार-बार पिनोदने लगे ॥२१॥

बलराम ने कहा—मानु-सेह के कारण मैं तुम्हारा यह अपराध क्षमा कर रहा हूँ । अच्छा, तुम्हारा बल्याण हो, मैं जाता हूँ । मुझे न तो द्वारका से, न तुमसे, न वृष्णियो सेही कोई कार्य है ॥२२॥ तब शत्रु-तान राम ने मिथिलापुरी में प्रवेश किया । मिथिलापति ने अनेक उग्रशरीरों से राम की पूजा की ॥२३॥ इसी समय बुद्धिमानों ने श्रेष्ठ अनूर ने नाना प्रकार के यज्ञ विये और स्वमन्तक की रक्षा के निमित्त दीक्षामय कबच भी धारण किया ॥२४॥ स्वमन्तक के लिए उस महायशस्वी तथा बुद्धिमान् शान्दीबुत्र अनूर ने साठ वर्षों तक अनेक प्रकार के रत्न तथा धन उन यज्ञों में लगाये ॥२५-२६॥ उस महात्मा के बहुत अप्र और दक्षिण वाले तथा सब कामनाओं को देने वाले वे यज्ञ 'अनूर-यज्ञ' नाम से विख्यात हुए ॥२७॥ इसके बाद राजा दुर्ध्याधन मिथिलापुरी जाकर बलदेव जी से दिव्य गदा-शिखा प्राप्त करने लगे ॥२८॥ कुछ दिनों बाद महारथी वृष्णि-अय्य वशिष्ठों के साथ कृष्ण बलराम को द्वारका लावा लाये ॥२९॥ बन्धु सहिन सोये सत्राजित को मारकर

जातिभेदभयात्कृष्णस्तमुपेक्षितयास्तदा । अपयाते तदाकूरे नावर्पत्पाकशासनं ॥३१॥
 अनावृष्ट्या तदा राष्ट्रमभवद्बहुधा कृशम् । ततः प्रसादयामासुरकूरं कुकुरान्धकः ॥३२॥
 पुनर्द्वारवतीं प्राप्ते तस्मिन् दानपती ततः । प्रववर्ध सहस्राक्षः कक्षे जलनिधेस्तदा ॥३३॥
 कन्यां च वासुदेवाय स्वसारं शीलसम्मताम् । अकूरः प्रददौ घोमान् प्रीत्यर्थं मुनिसत्तमा ॥३४॥
 अयं विनायः योगेन कृष्णो बभूव गतं मणिम् । सभामध्यगतः प्राह तमकूर जनार्दनः ॥३५॥

श्रीकृष्ण उवाच

यत्तद्व्रलं भणिवरं तव हस्तगतं विभो । तत्प्रयच्छ च मानाहं मयि मानार्थकं कृया ॥३६॥
 पण्डितवर्गते काले यो रोषोऽभून्मानव । स सख्योऽसकृत् प्राप्तस्ततः कालात्ययो महान् ॥३७॥
 स ततः कृष्णवचनात् सर्व्वसात्वतसंतदि । प्रददौ त मणिं बभ्रुरलेखेन महामति ॥३८॥
 ततस्तमार्जवात् प्राप्त च भ्रोहस्तादरिन्दम । ददौ हृष्टमना कृष्णस्तं मणिं बभ्रवे पुनः ॥३९॥
 स कृष्णहस्तान् सम्प्राप्तं मणिरत्नं स्वमन्तकम् । आबध्य गान्दिनीपुत्रो विरराजाशुमानिव ॥४०॥
 इति श्रीब्राह्मे महापुराणे सोमवशकयन नाम सप्तदशोऽध्यायः ॥१७॥

महाबली अकूर भी अन्धक वशिष्ठों के साथ आया ॥३०॥ उस समय बन्धु-भेद के भय से कृष्ण ने उसका प्रतिपाप कट दिया । अकूर के चले जाने पर इन्द्र ने वर्षा नहीं की ॥३१॥ अनावृष्टि के कारण राष्ट्र विप्लव हो गया । तब कुकुर और अन्धक बगवालों ने अकूर को प्रसन्न किया ॥३२॥ फिर उस दानपति के आने पर इन्द्र ने द्वारका में वृष्टि की ॥३३॥ मृणिवर । बुद्धिमान् अकूर ने कृष्ण को प्रसन्न करने के लिए स्वसा नामक अपनी सुशिल कन्या को समर्पित कर दी ॥३४॥ पर योगबल से कृष्ण अकूर के पास मणि का जानकर समा मध्य में स्थित अकूर से कहने लगे ॥३५॥

श्री कृष्ण ने कहा—हे शक्ति-भूषण ! आपके पास जो मणि रत्न है, उसे आप समर्पित कर दीजिये, मेरे साथ अनार्य वंश-का व्यवहार न कीजिये ॥३६॥ हे निष्ठा ! मणि सबही जो मेरा कोव था, वह अब शान्त हो गया है, क्योंकि इस बीच महान् काल व्यतीत हो गया अर्थात् तब से आज तक साठ वर्ष बीत गये ॥३७॥ तब कृष्ण के वचन सुनकर महाबुद्धिमान् अकूर ने यादवों की समा में प्रसन्नतापूर्वक मणि कृष्ण को लौटा दी ॥३८॥ अकूर के हाथ से मणि प्राप्त कर कृष्ण ने पुनः बड़ी प्रसन्नता से मणि उसी को लौटा दी ॥३९॥ वह गान्दिनी-पुत्र (अकूर) स्वमन्तक मणि को अपने गले में बाँध कर सूर्य की तरह सुशोभित होने लगा ॥४०॥

श्री ब्रह्महंपुराण में चन्द्र-वश-कयन नामक सप्तहर्ष अध्याय समाप्त ॥१७॥

१ ग ०दी श्रीमा० । २ क ०य चातिपि० । ३ क बन्धुग० । ४ क ०गत प्रा० । ५ स मणिमय । ६ स ग ०चस्व मा० । ७ ग ०ले यज्ञोपो० । ८ क मी यज्ञोऽभूत्तवान् । ९ क सनुष्टीज्यत प्राप्त० । १० ग ०स्तदाका० । ११ क तत् । १२ क ग महापुति । १३ स ग ०प्राप्यम० ।

अष्टादशोऽध्यायः

तत्रादौ भुवनकोशद्वीपवर्णनम्

मुनय ऊचुः

अहो सुमहदाख्यानं भवता परिकीर्तितम् । भारतानां च सर्वेषां पाथिवानां तथैव च ॥१॥
देवानां दानवानां च गन्धर्व्वोरगरक्षसां । दैत्यानामपि सिद्धानां गुह्यकानां तथैव च ॥२॥
अत्यद्भुतानि कर्माणि विक्रमा धर्मनिश्चयाः । विविधाश्च कथा दिव्या जन्म चाग्र्यमनुत्तमम् ॥३॥
सृष्टिः प्रजापतेः सम्यक्स्वरथा प्रोक्ता महामते । प्रजापतीनां सर्वेषां गुह्यकाप्सरसां तथा ॥४॥
स्थावरं जङ्गमं सर्व्वमुरपन्न विविधं जगत् । स्वया प्रोषतं महाभाग श्रुतं चैतन्मनोहरम् ॥५॥
कथितं पुण्यफलद पुराण इलक्षण्या गिरा । मनःकर्णसुखं सम्यक् प्रीणात्यमृतसम्मितम् ॥६॥
इदानीं श्रोतुमिच्छामः सकल मण्डलं भुवः । दत्तुमर्हसि सर्व्वज्ञ पर कौतूहलं हि नः ॥७॥
यावन्तः सागरा द्वीपास्तथा वर्षाणि पर्व्वताः । वनानि सरितः पुण्यदेवादीनां महामते ॥८॥
यत्प्रमाणमिदं सर्व्वं यदाधारं यदात्मकम् । संस्थानमस्य जगतो यथावद्वक्तुमर्हसि ॥९॥

अध्याय १८

भुवन-कोश-द्वीप का वर्णन

मुनियो ने कहा—आपने भारती (भरत-वंशोत्पन्न) तथा सब राजाओं का महान् आख्यान एकम् देवता, दानव, गन्धर्व्व, सर्प, राक्षस, दैत्य, गुह्य और सिद्ध के अद्भुत कर्म, पराक्रम, धर्म निश्चय, अनेक प्रकार की दिव्य-कथा और उत्तम जन्म वर्णन किये ॥१-३॥ हे महायुद्धिष्ठिर ! प्रजापति का सृष्टि-वर्णन भी आपने अच्छी तरह किया । सब प्रजापतियो, गुह्यको, अप्सराओ, स्थावर, जंगम और विविध प्रकार के जगत् का वर्णन भी आपने सुब दिया । हमने मन और कर्ण को सुख देने वाला, मनोहर तथा पुण्यफल प्रद अमृत सुख पुराण आपने मुख से श्रवण किया ॥४-६॥ अब पुण्यो के सम्पूर्ण मण्डल का वर्णन श्रवण करने की हमारी इच्छा है । हे सर्वज्ञ ! हमें बड़ी उत्कण्ठा है । अतः आप मुनाने की कृपा करें ॥७॥ हे महामते ! जितने समुद्र, द्वीप, वर्ष, पर्वत, वन, नदियाँ और पवित्र देवस्थल हैं एकम् जितने प्रमाण वाला, जिस आधार वाला और जिस स्वरूपवाला इस जगत् का संस्थान है, उन सबका यथोचित वर्णन करें ॥८-९॥

लोमहर्षण उवाच

मुनयः श्रूयतामेतत् 'संक्षेपाद्वदतो मम। नास्य वर्षशतेनापि यवतुं 'शवयोऽतिविस्तरः॥१०॥
 'जम्बूद्वीपा द्वीपो 'शाल्मलिद्वीपापरो द्विजाः। कुशः श्रीञ्चस्तथा शाकः पुष्करदक्षेय सप्तमः॥११॥
 एते द्वीपाः 'समुद्रंस्तु सप्तसप्तभिरावृताः। रुवणेक्षुसुरोर्सापिर्दधिदुग्धजलैः 'समम्॥१२॥
 जम्बूद्वीपः 'समस्तानामेतेषां 'मध्यसंस्थितः। तस्यापि मध्ये विप्रेन्द्राः मेरुः कनकपर्वतः॥१३॥
 चतुरशीतिसाहस्रैर्योजनेस्तस्य चोच्छ्रयः। प्रविष्टः षोडशाधस्ताद्द्वात्रिंशन्मूर्ध्नि' विस्तृतः॥१४॥
 मूले षोडशाहस्रैर्विस्तारस्तस्य सत्वंतः। 'भूपदस्यास्य शैलोऽसौ कणिकाकारसंस्थितः॥१५॥
 हिमवान् हेमकूटश्च निपथस्तस्य दक्षिणे। नीलः श्वेतश्च श्रृङ्गौ च उत्तरे वर्षपर्वताः॥१६॥
 लक्षप्रमाणौ द्वौ मध्ये' दशहीनास्तथापरे। सहस्रद्वितीयोच्छ्रायस्तावद्विराट्पिण्डश्च ते'॥१७॥
 भारतं प्रथमं वर्षं ततः किपुरप स्मृतम्'। हरिवर्षं तथैवायन्मेरोर्दक्षिणतो द्विजाः॥१८॥
 रम्यकं चोत्तरं वर्षं तस्यैव' तु हिरण्यम्। उत्तरा कुरवश्चैव यया वै भारत' तथा॥१९॥
 नवसाहस्रमेकैरुमेतेषां द्विजसत्तमाः। 'इलावृतं च तमध्ये' सौवर्णो मेरुश्चिह्नतः॥२०॥
 मेरोरधत्तुदिशं तत्र' नवसाहस्रविस्तृतम्। इलावृतं 'महाभागाद्व्यत्यारश्चाप पर्वताः॥२१॥

लोमहर्षण बोले—मुनिवृन्द । इसका विस्तृत वर्णन सा. वर्ष में भी नहीं हो सकता, इसलिये संक्षेपतः सुन ॥१०॥
 द्विजगण । जम्बू, प्लक्ष, शाल्मल, कुश, श्रीञ्च, शाक तथा पुष्कर नामक सात द्वीप हैं ॥११॥ सातों द्वीप लवण, ईक्ष, मदिरा, घृत, दही दूध और जल के साथ सात समुद्रों से वेष्टित हैं ॥१२॥ इन सब द्वीपों में मध्य में जम्बूद्वीप स्थित है।
 द्विजवर । उसके भी बीच में सुवर्ण का मेरुपर्वत है ॥१३॥ मेरुपर्वत चौत्तसी हजार योजन ऊँचा सोलह हजार योजन पूर्वी के भीतर प्रविष्ट दत्तात्रेय हजार योजन मस्तक (चाटी) में और सोलह हजार योजन मूल में विस्तृत है ॥१४॥ पूर्वी रूपी कमल में लिये मेरु कणिका (कमल का छत्ता या पेंखुरी) है। दक्षिण भाग में हिमवान्, हेमकूट और निपथ नामक पर्वत स्थित हैं। उत्तर में नील, श्वेत, और शृणुवान् नामक वर्ष पर्वत स्थित है ॥१५-१६॥ बीच में एक-एक लाख योजन विस्तृत दो पर्वत हैं तथा अन्य हजार विस्तृत अन्य पर्वत भी हैं। उन पर्वतों की ऊँचाई तथा चौड़ाई दो हजार योजन की है ॥१७॥ द्विजगण । मेरु से दक्षिण पहले भारतवर्ष तब किपुरप वर्ष, हरिवर्ष तथा अन्य वर्ष भी स्थित हैं ॥१८॥ उत्तर की ओर रम्यक वर्ष, हिरण्यवर्ष और उत्तरकुक्ष्य भारत ही की तरफ स्थित है ॥१९॥ द्विजवर । इलावृतवर्ष समेत यह सब नौ हजार योजन विस्तृत है। उनमें बीच सुवर्ण का ऊँचा मेरु पर्वत स्थित है ॥२०॥ महाभाग ऋषिवृन्द । मेरु न चारों तरफ नौ हजार योजन विस्तृत इलावृत वर्ष है। इलावृत वर्ष में मेरु तब फैले हुए दश हजार योजन विस्तृत चार पर्वत भी है ॥२१॥ मेरु से पूर्व मन्दरा-

१ ख ग ०पाद्गद० । २ क श्वेत विस्तरम् । ज० । ३ ग जम्बूद्वीपः । ४ क ख शाल्मलिद्वीपः । ५ क ख ०द्वेष सप्तमि परिवारिता । ६ क समा । ७ ग जम्बूद्वीपः । ८ क फ समुद्राणां । ९ क ०ध्यत स्थि० । १० ख ०द्वाविंशमूर्ध्नि । ११ ख मूमिपदमस्य । १२ ग मध्यो । १३ क ये । १४ क द्विजा । १५ ग ०स्यैवानु हि० । १६ क ०रतास्तथा । १७ क ०वृत्तवतम् । १८ क ०ध्ये योजनयुतविस्तृत । १९ क दण्व । २० क महद्वीप चत्वा० ।

विष्कम्भा' वितता मेरोर्योजनापुतविस्तृताः। पूर्व्वेण मन्दरो' नाम दक्षिणे गन्धमादनः॥२२॥
विपुलः पश्चिमे पादर्व सुपादर्वश्चोत्तरे स्थितः। कदम्बस्तेषु जम्बूद्वीपे पिप्पलो वट एव च॥२३॥
एकादशशतायामाः पादपा गिरिकेतवः। जम्बूद्वीपस्य सा जम्बूनमहेतुद्विजोत्तमाः॥२४॥
महागजप्रमाणानि जम्बास्तस्याः कलानि चै। पतन्ति भूमतः पृष्ठे शीर्यमाणानि सत्त्वतः॥२५॥
रसेन तेषां विख्याता तत्र जम्बूनदीति वै। सरित्प्रवर्तते सा च पीयते तत्रिवातिभिः॥२६॥
न खेदो' न च दौर्गन्ध्यं न जरा नेन्द्रियक्षयः। तस्यानस्त्वस्थमनसा जनानां तत्र जायते॥२७॥
तोरमुत्तमसं प्राप्य सुखवायुविशोपिता'। जम्बूनदास्यं भवति सुवर्णं सिद्धभूषणम्॥२८॥
भद्राश्वं' पूर्व्वतो मेरोः केतुमालञ्च' पश्चिमे। वर्षे द्वे तु मुनिभ्येऽस्तयोर्मध्ये' त्विलावृतम्॥२९॥
यनं चैत्ररथं पूर्व्वे' दक्षिणे गन्धमादनम्। वैभ्राजं पश्चिमे तद्बहुतरे नन्दनं' रमुतम्॥३०॥
अरुणोदं' महाभद्रमसितोदं समानसम्। सरांस्थेतानि चत्वारि देवभोग्यानि 'सर्व्वदा॥३१॥
शान्तवांश्चक्रकुञ्जश्च कुररो माल्यवास्तथा'। वंककप्रमुखा मेरोः पूर्व्वतः 'केसराचला॥३२॥
त्रिकूटः 'शिशिरश्चैव पतङ्गी हृक्षस्तथा। निपघादयो दक्षिणतस्तस्य केसरपर्व्वता॥३३॥
शिशिवास्त'। सर्व्वद्वयः कपिलो गन्धमादनः। 'जानुभिप्रमुखास्तद्वत्' पश्चिमे केसराचलाः॥३४॥
'मेरोरन्तरास्ते च 'जटाराविधवस्थिताः। 'शङ्खकूटोऽथ ऋषभो हंसो नागस्तथापराः॥३५॥

चल, दक्षिण गन्धमादन, पश्चिम विपुल और उत्तर सुपादर्व स्थित हैं ॥२२॥ इन चारों पर्वतों पर बध्म, जामुन, पीपल और वट ग्यारह सी योजन लम्बी पतङ्गा के रूप में स्थित हैं ॥२३॥ द्विजवर' वहीं जामुन 'जम्बूद्वीप' नाम होने का कारण है। उस जामुन के विशाल हाथों के बराबर-बराबर फल पककर पर्वत के पृष्ठ भाग में गिरते रहते हैं ॥२४-२५॥ उन फलों के रस से जम्बूनदी नाम से विख्यात नदी बह रही है, जिसका रस बहों में निवासी पीते हैं ॥२६॥ उस रस के पान करने वालों को खेद, दुर्गन्ध, बुढ़ापा, और इन्द्रिय-क्षय नहीं होता ॥२७॥ वहीं के उत्तम वायु में तट की मृत्तिका मूलकर जम्बूनद नाम से ख्यात सुवर्ण बनकर सिद्धों का आभूषण होती है ॥२८॥ मुनिगण। मेघ से पूर्व भद्राश्वपर्व, पश्चिम केतुमालपर्व और इन दोनों के मध्य में इलावृतपर्व हैं ॥२९॥ पुरव के चैत्ररथ, दक्षिण में गन्धमादन, पश्चिम में वैभ्राज और उत्तर में नन्दन नामक चतुर्गण हैं ॥३०॥ अरुणोद, महाभद्र, असितोद और मानस नामक चारो देव-भोग्य चार सरोवर हैं ॥३१॥ शान्तवान्, चक्रकुञ्ज, कुरार, माल्यवान् और वंकक नामक चैत्र पर्वत मेघ के पूर्व में स्थित हैं ॥३२॥ त्रिकूट, शिशिर, पतङ्ग, च और निपघ नामक केसरपर्वत दक्षिण में स्थित हैं ॥३३॥ शिशिवास्त, सर्व्वद्वय, कपिल, गन्धमादन और जानुभि नामक केसरपर्वत पश्चिम में स्थित हैं। शङ्खकूट, ऋषभ, हंस, नाग और कालञ्जर नामक केसरपर्वत उत्तर में स्थित हैं ॥३४-३५॥

१क ०म्भारविता। २ख ०रो मेरोदंति०। ३क जम्बूद्वीप। ४ख सर्व्वदा। ५ख स स्वेदो।
६क नराणा। ७ख ०पितम्। जा०। ८क स ०दाश्व पू०। ९क स ०मालद्वय प०। १०क ०मध्य
इला०। ११क पूर्व०। १२क ०भद्र श्वितोय स०। ग ०भद्र सधीतो०। १३क ०दा। दक्षिणतः कुरग च
कुप्री मा०। ग ०दा। शीताम्भय कुमुदश्च कुवरी। १४क ०पा। पानेन्दुप्र०। १५म केसराचला।
१६म शिखर०। १७म वासा स०। १८म जारवि०। १९म ०नविप्र०। २०क ०रान्तरे श्रेष्ठज०।
२१क ०रावी ध्यवस्थि०। २२क ०द्वस्तपञ्चोऽथ।

कालञ्जराद्याश्च तथा उत्तरे केसराचलाः । चतुर्दश सहस्राणि योजनानां महापुरी ॥३६॥
मेरोरुपरि विप्रेन्द्रा ब्रह्मणः कथिता विवि । तस्यां समन्ततश्चाष्टी दिशास्तु विविदिशास्तु च ॥३७॥
इन्द्रादिलोरुपालानां प्रख्याताः । प्रवराः पुरः । विष्णुपादविनिष्कान्ता प्लावयन्तीन्दुमण्डलम् ॥३८॥
समन्ताद्ब्रह्मणः पुथ्यां गङ्गा पतति चे दिवि । सा तत्र पतिता दिक्षु चतुर्था प्रत्यपद्यत ॥३९॥
सीता चालकनन्दा च चक्षुर्भद्रा च वै क्रमात् । पूर्व्वेण सीता शैलाच्च शैलं यान्त्यन्तरिक्षगाः ॥४०॥
ततश्च पूर्व्ववर्षेण भद्राद्वेनेति सार्णवम् । तथैवाल्कनन्दा च दक्षिणेनेत्य भारतम् ॥४१॥
प्रयाति सागरं भूत्वा सप्तभेदा द्विजोत्तमाः । चक्षुश्च पश्चिमगिरीनुत्तराश्च सक्लांस्ततः ॥४२॥
पश्चिम केतुमालाख्यं वर्षमन्वेति सार्णवम् । भद्रा तथोत्तरगिरीनुत्तराश्च तथा कुहू ॥४३॥
अतोत्योत्तरमभोधिं समन्थेति द्विजोत्तमा । आनीलनिपघायामो मार्यावद्गन्धमादनौ ॥४४॥
तयोर्मध्यगतो मेरुः कर्णिकाकारसंस्थितः । भारताः केतुमालाश्च भद्राश्च कुरवस्तथा ॥४५॥
पत्राणि लोकांशैस्तथ मर्यादाशैलबाहुयतः । जठरो देवकूटश्च मर्यादापर्व्वतावभौ ॥४६॥
तौ दक्षिणोत्तरायामावानीलनिपघायतौ । गन्धमादनकैलासौ पूर्व्वपश्चात् तावभौ ॥४७॥
अशीतियोजनायामावर्णवाभ्रतर्पणस्थितौ । निपघ पारियात्रश्च मर्यादापर्व्वतावभौ ॥४८॥
तौ दक्षिणोत्तरायामावानीलनिपघायतौ । मेरोः पश्चिमदिग्भागे यया पूर्व्वं तथा स्थितौ ॥४९॥

३५३॥ निप्रवर । भर पर ब्रह्मा की चौदह हजार योजन विस्तृत महापुरी स्थित है ॥३६॥ उसके चारों ओर दिशाओं और कोणी मङ्गल आदि लोक-पालों की आठ नगरियाँ प्रख्यात हैं ॥३७॥ विष्णु के पैर से समुद्रभूत आकाश-नगा पत्र-मन्त्र को प्लावित करती हुई ब्रह्मा की नगरी के चारों तरफ़ गिरती है ॥३८॥ वहाँ से गया चार दिशाओं में क्रमशः सीता, अलकनन्दा, चक्षु, और भद्रा भाग से निकलती हैं ॥३९॥ सीता नामक आकाश-नगा पर्वत से पूर्व की ओर जाकर पर्वत में ही मिलती है । फिर वही गया भद्राश्च नामक वर्ष-मन्त्र से मिलकर समुद्र में मिल जाती है ॥४०॥ द्विजगणधेय । उत्तरी तरफ़ अलकनन्दा सात भागा में बँटकर दक्षिण की ओर भारतखण्ड होते हुए समुद्र में मिल जाती है ॥४१॥ चक्षु नामक गया पश्चिम दिशा के सब पर्वतों का अतिरमण कर केतुमाल नामक वर्ष-पर्वत हो । हुए समुद्र में मिल जाती है ॥४२॥ भद्रा नामक आकाश-नगा उत्तर के पर्वतों तथा कुहू देवा का अतिरमण कर उत्तर समुद्र में मिल जाती है ॥४३॥ द्विजवर । नील से निपघ तब एक म् मार्यावान से गन्धमादन तब मरुपर्वत कनैल के आकार में स्थित है ॥४४॥ मर्यादापर्वत के बाहर लोकापर्वत के भारत, केतुमाल, भद्राश्च और कुहू पत्र हैं । जठर और देवकूट मर्यादापर्वत हैं ॥४५-४६॥ ये दोनों दक्षिण-उत्तर में नील और निपघ तब विस्तृत हैं । पूर्व-पश्चिम की ओर गन्धमादन और कैलास असीं योजन लम्बे तथा समुद्र तब विस्तृत हैं ॥४७॥ निपघ और पारियात्र दोनों मर्यादापर्वत कहलते हैं । ये दोनों भी दक्षिण-उत्तर में नील-निपघ तब विस्तृत हैं तथा मेरु के पश्चिमदिग्भागे ये दोनों पूर्व की तरफ़ ही अवस्थित हैं ॥४८-४९॥ त्रिगुण और

१ग प्रपिता । २ग दिव । ३ग ०णहर्माच्छीताल दी० । ४ग ०न्दाग्रि दी० । ५ग मर्यामने ।

६ग ०वर्षपय । ७ग तवरो । ८ग ०श्चायता० । ९ग ०न्तव्यव० ।

त्रिशृङ्गो जाह्नविदचंव उत्तरी । वर्षपर्वतो । पूर्वपश्चायतावेतावर्णवान्तव्यवस्थितौ ॥५०॥
 इत्येते हि मया प्रोक्ता मय्यादापर्वता द्विजाः । जठरावस्थिता मेरोर्ध्वेषा द्वौ द्वौ चतुर्विंशम् ॥५१॥
 मेरोश्चतुर्विंश ये तु प्रोक्ताः कैसरपर्वताः । सीतान्ताद्या द्विजारतेषामतीव हि मनोहराः ॥५२॥
 शैलानामन्तरद्रोण्यः सिद्धचारणसेविताः । सुरभ्याणि तथा ताम् काननानि पुराणि च ॥५३॥
 लक्ष्मीविष्णवग्निसूय्येन्द्रदेवानां मुनिसत्तमाः । तस्वायतनवर्षाणि जुष्टानि नरकिन्नरैः ॥५४॥
 गन्धर्ववक्षरक्षासि तथा दंतैर्यदानवाः । क्रोडन्ति ताम् रम्यासु शैलद्रोणीष्वर्हानिजम् ॥५५॥
 भीमा ह्येते स्मृताः सर्गा धर्मिणाभालया द्विजाः । नैतेषु पापकर्तारो यान्ति जन्मशतरपि ॥५६॥
 भद्राश्वे भगवान् विष्णुरास्ते ह्यशिरा द्विजाः । वाराहः केतुमाले तु भारते कूर्मरूपधृक् ॥५७॥
 मत्सररूपश्च गोविन्दः क्रूरवास्ते सनातनः । विश्वरूपेण सर्वत्र सर्वं सर्वेश्वरो हरिः ॥५८॥
 सर्वस्याधारभूतोऽसौ द्विजा आस्तेऽखिलतमकः । यानि किमुपहाराणि धर्षण्यष्टौ द्विजोत्तमाः ॥५९॥
 न तेषु शोको नायासो नोद्वेगः क्षुद्रयादिकम् । सुस्थाः प्रजा निरातडकाः सर्वदुःखविवर्जिताः ॥६०॥
 वनद्रादशवर्षाणां सहस्राणि स्थिरायुषः । नैतेषु भीमान्यग्यानि क्षुत्पिपासादि नो द्विजाः ॥६१॥

जायषि नामक पर्वत पूर्व-पश्चिम की ओर विस्तृत होकर समुद्र तक चला गया है ॥५०॥ द्विजगण । उन मय्यादा-पर्वतो के बारे में मैंने बतला दिया, जो दो-दो करके मेरा पर्वत की चारों दिशाओं में स्थित हैं ॥५१॥ मेरा के चारों तरफ स्थित कैसर पर्वत के विषय में भी मैंने बतला दिया, जिनके आदि-अन्त शैल एव मनोहर हैं ॥५२॥ निप्रवृन्द । उन पर्वता के मध्य में सिद्ध-चारणों से सेवित अन्तर द्रोणिया (पर्वतो के बीच की भूमि) है । जहाँ लक्ष्मी, विष्णु, अग्नि, सूर्य, इन्द्र आदि देवताओं के रमणीय वन तथा नगर हैं ॥५३॥ मुनिवर । नरकिन्नरों से सुशोभित उन उत्तम स्थानों में गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, दैत्य और दानव निवास करते हुए उन रमणीय पर्वत-द्रोण्या में दिनरात क्रीड़ा किया करते हैं ॥५४-५५॥ द्विजगण । धर्मिमाओं के लिए उस भूमि के गृह स्वर्गीय गृह हैं । पापात्मा लोग संकष्टों जन्म के बाद भी वहाँ नहीं जा सकते ॥५६॥ निप्रवर । भद्राश्ववर्ष में ह्यशिरा तथा केतु-माल में वाराह नाम से प्रसिद्ध विष्णु रहते हैं । भारत में कूर्म तथा मत्सररूपधारी विष्णु रहते हैं । क्रूर देशों में सनातन गोविन्द वास करते हैं ॥५७॥ सर्वेश्वर हरि विश्वरूप से सब जगह रहते हैं ॥५८॥ निप्रवर्ध । अखिलात्मा विष्णु सब के आधार हैं । किपुरुष आदि आठ वर्षों जो पहले बने गये हैं, उनमें शोक, परिश्रम, उद्वेग और दुःखा-भय का लेख भी नहीं है ॥५९॥ वहाँ की प्रजा स्वस्थ, आतंक-रहित और सब प्रकार के दुःखों से विवर्जित रहती है ॥६०॥ वहाँ मनुष्यों की आयु दस हजार अथवा बारह हजार वर्षों की होती है । निप्रवृन्द । यहाँ के लोगों की तरह उन्हें मूल-म्यास नहीं खतायी ॥६१॥ उन स्थानों में वृत्तयुग, श्रेता आदि

१५५ च । २५५ अठराव्यास्थिः । ३६५ व्यवस्थितौ । ४६५ वेपथुः । ५६५ अता । सीता० । ग० अता । पीता० । ६५५ अनामुत्तरो । ७६५ अग्नि च सर्वतः । ल० । ८६५ तान्याय० । ९६५ अनामु-स्यानि धु० । १०६५ अरि । अस्त्रोत्त० । ११६५ अथा गन्धर्वविनरा । जो० । १२६५ वाराह । १३६५ अथ । न तेषु पर्वते देवो भीमान्यग्यानि तेषु च । कु० ।

कृतत्रेतादिका नव तेषु स्थानेषु कल्पनाः सर्व्वेऽवेषु वर्षेषु सप्त सप्त कुलीचला
नवदशशतशस्तेभ्य प्रसूता या द्विजोत्तमा ।

॥६२॥

इति श्रीब्राह्मे महापुराणे भुवनकोशद्वीपवर्णनं नामाष्टादशोऽध्यायः ॥१८॥

एकोनविंशोऽध्यायः

जम्बूद्वीपवर्णनम्

लोमहर्षण उवाच

उत्तरेण समुद्रस्य हिमाद्रेश्चैव दक्षिणे। ययं तद्भारतं नाम भारती यत्र सतति ॥१॥
मवधोऽनताह्रस्त्रो विस्तारश्च द्विजोत्तमा । कर्मभूमिरियं स्वर्गमपवर्गञ्च इच्छताम् ॥२॥
महेन्द्रो मलय सहा शशितमानुषध्वजः । विन्ध्यश्च पारियात्रश्च सप्तात्र कुलपध्वजः ॥३॥
अतः सम्प्राप्यते स्वर्गो भुक्तिमत्समाप्त प्रयाति यः । तिर्य्यग्वैव नरकश्चापि मात्स्यतः पुरया द्विजा ॥४॥
इतः स्वर्गश्च भोक्षश्च मध्यं चातेऽप्युच्यते । मध्वत्स्वयत्र मर्यादा कर्मभूमौ विधीयते ॥५॥
भारतस्यास्य वर्षस्य नव भेदास्त्रिशमसः । इन्द्रद्वीपः कसेतुमास्तान्नवर्णो गमस्तिमान् ॥६॥

युगों की कल्पना नहीं है। विप्रवच । इन सब वर्षों में भी सात सात पवत स्थित हैं और उन पवतों से सैकड़ों नदियाँ निकलती हैं ॥६२॥

श्री ब्रह्ममहापुराण में भुवन कोश-द्वीप वर्णन नामक अष्टादशवाँ अध्याय समाप्त ॥१८॥

अध्याय १९

जम्बूद्वीप का वर्णन

समुद्र से उत्तर और हिमालय से दक्षिण भारतवर्ष है जहाँ की सतति भारती नाम से पुकारी जाती है ॥१॥ विप्रवच । भारतवर्ष नाम हस्तर योजन विस्तृत है । स्वर्ग और माध के इच्छुका के लिए यह बरम भूमि है ॥२॥ यहाँ पर महेन्द्र मलय सहा शशितमानुषध्वज विन्ध्य और पारियात्र—ये सात कुलपवत हैं ॥३॥ यहाँ के मनुष्य स्वर्ग और मोक्ष प्राप्त करने हैं । यहाँ से पुण्य पणायोनि में और नरक में भी जाते हैं ॥४॥ यहाँ से मध्यमाल मध्व और मध्वत्स्व म मोक्ष की भी प्राप्त करने हैं । मनुष्या के त्रिदशमे अतिरिक्त कमभूमि बड़ी नहीं

नागद्वीपस्तथा सौम्यो गन्धर्वस्तथैव वारणः । अयं तु नवमस्तेषां द्वीपः सागुरसंवृतः ॥७॥
 योजनानां सहस्रं च द्वीपोऽयं दक्षिणोत्तरात् । पूर्वं किरातास्तिष्ठन्ति पश्चिमे यवनाः स्थिताः ॥८॥
 ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्या मध्ये ब्रह्मादश्च भागशः । इज्यायुद्धवणिज्याद्यवृत्तिमान्तो व्यवस्थिताः ॥९॥
 शतद्रुचन्द्रभागाद्या हिमवत्पादनिःसृताः । वेदस्मृतिमुखाश्चान्याः पारियात्रोद्भवा मुने ॥१०॥
 नभमंदासुरमाद्याश्च नद्यो विन्ध्यविनिःसृताः । तापोपयोष्णीर्निर्विन्ध्याकावेरोप्रमुखा नदीः ॥११॥
 ऋक्षपादोद्भवा ह्येताः श्रुताः पापं हरन्ति याः । गोदावरोभीमरथोऽकृष्णावेण्यादिकास्तथा ॥१२॥
 सह्यापादोद्भवा नद्यः स्मृताः पापभयापहाः । कृतमालातार्पणीप्रमुखा मलयोद्भवाः ॥१३॥
 त्रिसांध्यऋषिकुल्याद्याः महेंद्रप्रभवाः स्मृताः । ऋषिकुल्याकुमाराद्याः शुक्तिमत्पादसम्भवाः ॥१४॥
 आसां नद्युपनद्याश्च सन्त्यग्यास्तु सहस्रशः । तास्विने कुरुपञ्चालमध्यदेशादयो जनाः ॥१५॥
 पूर्वदेशादिकाश्चैव कामरूपनिवासिनः । प्रोण्डा, कलिङ्गा मगधा दाक्षिणात्याश्च सर्वशः ॥१६॥
 तयापरान्त्याः सोराष्ट्रा, शूद्राभीरास्तथाऽर्ध्वदाः । भारुका मालवाश्चैव पारियात्रनिवासिनः ॥१७॥
 सौवीराः सैन्धवापन्नाः शात्वा, शाकलवासिनः । मद्रारामास्तथाऽम्बष्ठाः पारसोकादयस्तथा ॥१८॥
 आसां पिबन्ति सलिलं वसन्ति सरिताः सदा । समोपेता महाभागा हृष्टपुष्टजनाकुलाः ॥१९॥
 वसन्ति भारते वर्षे युगाय्यत्र महामुने । कृतं त्रेता द्वापर च कलिश्चाय्यत्र न ववञ्चित् ॥२०॥
 तपस्तप्पन्ति यतयो जुह्वते चान् यजिनः । दानानि चात्र दीयन्ते परलोकार्यमादरात् ॥२१॥

है । इस भारतवर्ष के नाँव भेद हैं—इन्द्रद्वीप, कसेतुमान्, तापसर्ग, यमस्तिमान्, नागद्वीप, सौम्य, गन्धर्व, वारण आदि स्वयं नवों द्वीप भारत है, जो समुद्रों से घिरा हुआ है ॥५॥ दक्षिण उत्तर की तरफ यह एक हजार योजन विस्तृत है । इसके पूर्व में किरात, पश्चिम में यवन और मध्य में यक्ष, युद्ध, व्यापार और सेवा वृत्ति वाले क्रमशः ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र रहते हैं ॥८-९॥ शतद्रु (सतलज), चन्द्रभागा आदि नदियाँ हिमालय से निकली हैं । तथा मुने । वेद, स्मृति प्रधान अन्य नदियाँ पारियात्र से उत्पन्न हुई हैं ॥१०॥ नभंदा, सुरमा आदि नदियाँ विन्ध्य से उद्भूत हुई हैं । तापो, पयोष्णी, निर्विन्ध्या, वावेरो आदि नदियाँ ऋक्षपर्वत से निकली हैं जो पाषाण का हरण करती हैं ॥११॥ पाप भय की मिटान वाली गोदावरी, भीमरथो कृष्णा, वेणी आदि नदियाँ सह्य पर्वत से उत्पन्न हुई हैं ॥१२॥ कृतमाला, तारपणी आदि नदियाँ मलयाचल से निकली हैं ॥१३॥ त्रिसांध्य, ऋषिकुल्या आदि नदियाँ महेंद्र पर्वत से उत्पन्न हैं । ऋषिकुल्या-कुमारा आदि नदियाँ शुक्तिमान् पर्वत से समुत्पन्न हैं । इन नदियों की हजारों उपनदियाँ हैं ॥१४॥ कुरु, पञ्चाल, मध्यदेश, पूर्वदेश काकरुप, पण्डु, कलिङ्ग, मगध, दक्षिणदेश, पण्डित्य, सोराष्ट्र, शूद्र, आभीर अर्बुद, भारुक, मालव, पारियात्र, सौवीर, सैन्धव शात्वा, शाकल, मद्र, राम, अम्बष्ठ, पारसीक (फारस) आदि देश निवासी जन इन नदियों के जल पीते हैं ॥१५-१८॥ महामुन । इस भारतवर्ष में महाभागवान् हृष्ट-पुष्ट मनुष्य मुण्डे से बस रहे हैं । सत्ययुग, त्रेता द्वापर और कलियुग भारतवर्ष के अतिरिक्त कहीं नहीं होते ॥१९-२०॥ यहाँ मुनि लोग तपस्या करते हैं, यज्ञकर्त्ता लोग याग करते हैं और परलोक के लिए धर्मानुपूर्वक दान दिया करते हैं ॥२१॥ जन्मद्वीप में मनुष्य सदा विष्णु-यज्ञ करते हैं । यहाँ मनो द्वारा यतमय

पूरुषर्षंजपुरुषो जम्बूद्वीपे सदेज्यते। यज्ञयंजतमयो विष्णुरन्यद्वीपेषु चान्यथा ॥२२॥
 अत्रापि भारतं श्रेष्ठं जम्बूद्वीपे महामुने। यतो हि कर्मभूरेषा यतोऽन्या भोगभूमयः ॥२३॥
 अत्र जन्मसहस्राणां सहस्रैरपि सत्तम। कदाचित्कलभते जन्तुर्मानुष्यं पुण्यसंचयात् ॥२४॥

गायन्ति देवाः किल गीतकानि
 धन्यास्तु ये भारतभूमिभागे।
 स्वर्गापवर्गास्पदहेतुभूते, , ,
 भवन्ति भूयः पुरुषा मनुष्याः ॥२५॥
 कर्मण्यसंकल्पिततत्फलानि, , ,
 संन्यस्य विष्णो परमात्मरूपे।
 अवाप्य तां कर्ममहीमनन्ते, ,
 तस्मिँल्लयं ये स्वमलाः प्रयान्ति ॥२६॥
 जानीम नो तत्तु वयं विलीने,
 स्वर्गप्रदे कर्मणि देहवन्धम्।
 प्राप्स्यन्ति धन्याः क्षलु ते मनुष्यः,
 ये भारते नेन्द्रियविग्रहीनाः ॥२७॥

नववर्षञ्च भो विप्रा जम्बूद्वीपमिदं मया। लक्षयोजनविस्तारं संक्षेपात् प्रयितं द्विजाः ॥२८॥
 जम्बूद्वीपं समावृत्य लक्षयोजनविस्तरः। भो द्विजा बलयाकारः स्थितः क्षीरोदधिर्बहिः ॥२९॥
 इति श्रीब्राह्मे महापुराणे जम्बूद्वीपनिर्णयः नामैकोनविंशोऽध्यायः ॥१९॥

विष्णु की आराधना की जाती है और अन्य द्वीपों में अन्य प्रकार से यज्ञ होत है ॥२२॥ महामुनि ! इस जम्बूद्वीप में भारतवर्ष सर्वश्रेष्ठ है, यह (भारतभूमि) कर्मभूमि है और दूसरे (वर्ष या द्वीप) भोग-भूमि हैं ॥२३॥ यहाँ पर हजारों जन्मों बाद कदाचित् जीव पुण्य-संचय के बल में मनुष्य शरीर प्राप्त करता है ॥२४॥ भारत की महिमा गाते हुए देवगण, कहते हैं—'ये मनुष्य धन्य हैं जाम्बवं और माता की प्राप्ति के कारणभूत भारत-भूमि पर जन्म लेने हैं और उस कर्म-भूमि को प्राप्त कर निमित्त कर्मों तथा उनके अत्यन्त फलों को परमात्मरूप विष्णु को समर्पित करने निमित्त बन जाते हैं और फिर अनन्त मत्स्य हो जाते हैं ॥२५-२६॥ हम यह नहीं जानते कि स्वर्गप्रद कर्मों के (विष्णु से) विरल हो जाने पर जीव शरीर का वचन प्राप्त करते हैं, किन्तु वे मनुष्य धन्य हैं जो भारत में इन्द्रियों में अत्यन्त हीन (अर्थात् अपव) नहीं हैं ॥२७॥ विप्रवृन्द ! नी सगण सहित जम्बू द्वीप तथा उसके लक्षयोजन परिमित विस्तार का भी वर्णन मैंने संक्षेप कर दिया। इस जम्बूद्वीप को लक्षयोजन विष्णु क्षीर समुद्र घेर कर बलयाकार में स्थित है ॥२८-२९॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में जम्बूद्वीप-निर्णय नामक उन्नीसवाँ अध्याय समाप्त ॥१९॥

विंशोऽध्यायः

जम्बूद्वीपवर्णनम्

लोमहर्षण उवाच

'क्षीरोदेन यथा द्वीपो जम्बूसंज्ञोऽभिधेयितः । सवैष्ट्य क्षारमुदधिं प्लक्षद्वीपस्तथा स्थितः ॥१॥
'जम्बूद्वीपस्य विस्तारः शतसाहस्रतम्यितः । स एव द्विगुणो विप्राः प्लक्षद्वीपेऽप्युदाहृतः ॥२॥
सप्त भेषातिथेः पुत्राः प्लक्षद्वीपेश्वरस्य वै । श्रेष्ठः शान्तमयो नाम शिशिरस्तदनन्तरम् ॥३॥
सुखोदयस्तथानन्दः शिवः क्षेमक एव च । ध्रुवश्च सप्तमस्तेषां प्लक्षद्वीपेश्वरा हि ते ॥४॥
पूर्वं शान्तमयं वर्षं शिशिरं सुखं तथा । आनन्दञ्च शिवञ्चैव क्षेमकं ध्रुवमेव च ॥५॥
मर्यादाकारकास्तेषां तथान्ये वर्षपञ्चमेतः । सप्तैव तेषां नामानि शृणुष्व मुनिसत्तमाः ॥६॥
गोमेदश्चैव चन्द्रश्च नारदो दुन्दुभिस्तथा । सोमकः सुमनाः शैलो वैभ्राजश्चैव सप्तमः ॥७॥
वर्षाचलेषु रम्येषु वर्षेण्वेतेषु चानघा । दक्षति देवगणध्वंसहिताः 'रहितं प्रजाः ॥८॥
तेषु पुण्या जनपदा' वीरा न भिषते जनः । नाघयो व्याघयो वापि 'सर्वकारसुखं हि सत् ॥९॥
तेषां मलयश्च सप्तैव वर्षाणाम्बु समुद्रगाः । नामतरताः प्रवक्ष्यामि धृताः पापं हरन्ति यः ॥१०॥
अनुत्पत्ता शिखा चैव विप्राशा त्रिदिवा क्रमुः । अमृता सुहृता चैव सप्तैतारतत्र निम्नगाः ॥११॥

अध्याय २०

जम्बू-द्वीप का वर्णन

लोमहर्षण बोले—जैसे क्षीर समुद्र से जम्बूद्वीप वेष्टित है वैसे ही प्लक्ष-द्वीप क्षार-समुद्र से वेष्टित है ॥१॥ विप्रवृन्द । जम्बूद्वीप सप्त-योजन-विस्तृत है और प्लक्ष-द्वीप उससे द्विगुण विस्तृत है ॥२॥ प्लक्षद्वीप के स्वामी भेषातिथि के सात पुत्र हैं । उनमें सबसे ज्येष्ठ शान्तमय है और उससे छोटे शिशिर, सुखादय, आनन्द, शिव, क्षेमक और ध्रुव हैं । ये सब प्लक्ष-द्वीप के अधिपति हैं तथा मर्यादापर्वत कहलाते हैं । मुनिवर । इनके अतिरिक्त दूसरे वर्षपर्वत भी सात ही हैं । उनके नाम सुनि ॥३-६॥ गोमेद, चन्द्र, नारद, दुन्दुभि, सोमक, सुमना, और वैभ्राज ॥७॥ पुण्यलोक मुनिवृन्द । इन रमणीय वर्षपर्वतों पर प्रजासहित देव-गण्यव वास करते हैं ॥८॥ वहाँ स्थित देश पवित्र तथा और हैं, वहाँ के निवासी अमर हैं । उन्हे आधि-व्याधि का बिजुल डर नहीं है । वहाँ सदा सुख ही सुख का साम्राज्य रहता है ॥९॥ उन पर्वतों से निस्तृत तथा समुद्र में दिल्हे वाली अनुत्पत्ता, शिखा, विप्राशा, त्रिदिवा, अमृता, सुहृता और क्रमु—ये पापनाशिनी सात नदियाँ हैं ॥१०-११॥

१ स क्षीरोदेन । २ क जम्बुसः । ३ स ०सा निवेः । ४ क ग जम्बुद्वीः । ५ स ०भेषातिः । ६ स सप्त । ७ क ०दा चिरादुद्भिपते । ख ० दधिचरावधियः । ८ स ०काल सुः । ९ ग प्रसृता ।

एते शैलास्तथा नद्यः प्रथानाः कथिता द्विजाः। क्षुद्रनद्यस्तथा शैलास्तत्र सन्ति सहस्रशः॥१२॥
 ताः पिबन्ति सदा हृष्टा नदीर्जनपदास्तु ते। अवर्षाणी नदी तेषां न चंबोत्सर्पिणी द्विजा॥१३॥
 न तेऽवस्ति युगावस्था तेषु स्थानेषु सप्तयु। त्रेतायुगसमः कालः सत्सर्वदेव द्विजोत्तमाः॥१४॥
 प्लक्षद्वीपादिके विप्राः शाकद्वीपान्तिकेषु वै। पञ्चवर्षसहस्राणि जना जीवन्त्यनामया॥१५॥
 धर्मश्चतुर्विधस्तेषु वर्णाश्रमविभागजः। वर्णाश्च तत्र चत्वारस्तान् बुधा प्रवदामि वः॥१६॥
 आर्यका 'कुरुवश्चैव' विविधा भाविनश्च ये। विप्रक्षत्रियवंश्यास्ते शूद्राश्च मुनिसत्तमाः॥१७॥
 जम्बूद्वीपप्रमाणान्तु तन्मध्ये सुमहातरुः। प्लक्षस्तन्नामसंज्ञोऽयं प्लक्षद्वीपो द्विजोत्तमाः॥१८॥
 इज्यते तत्र 'भगवांस्तत्त्वैर्नारायणैकादिभिः। सोमरूपो 'जगत्स्रष्टा सत्सर्वः सत्सर्वेश्वरो हरिः॥१९॥
 प्लक्षद्वीपप्रमाणेन प्लक्षद्वीपः समावृतः। तयैवैश्वरसोदेन परिषेपानुकारिणा॥२०॥
 इत्येतद् वो मुनिश्रेष्ठाः प्लक्षद्वीप उदाहृत। सक्षेपेण मया भूयः शाल्मलं तं निबोधत॥२१॥
 शाल्मलस्येश्वरो वीरो 'वपुष्मांस्तत्सुता' द्विजाः। तेषान्तु नाम संज्ञानि सप्त वर्षाणि तानि वै॥२२॥
 इवेतोऽय 'हरितश्चैव' जीमूतो' रोहितस्तथा। वैद्युतो मानसश्चैव सुप्रभश्च द्विजोत्तमाः॥२३॥
 शाल्मलश्च समुद्रोऽसौ द्वीपेनेश्वरसोवकः। 'विस्ताराद्द्विगुणेनाय सत्सर्वतः संवृतः स्थितः॥२४॥

द्विजगणः प्रवान् पर्वतो तथा नदियो के नाम तो मीने पित्त दिये हैं। इनके अतिरिक्त हजारों क्षुद्र नदियाँ तथा पर्वत हैं॥१२॥ वहाँ के निवासी सर्व उन्हीं नदियों का जल सङ्ग्रह पीते हैं। द्विजगण। उनकी नदियाँ घटती-बढ़ती नहीं हैं॥१३॥ उन सप्त स्थानों में युगों की कल्पना भी नहीं है, बल्कि त्रेतायुग के समान काल वहाँ सर्वत्र घटता है॥१४॥ शिप्रबुधः प्लक्षद्वीप से लेकर शाकद्वीप तक में अनुप्य पर्वत हजारों वर्ष रोगहित होकर जीते हैं॥१५॥ वहाँ वर्णाश्रमविभाग के अनुसार चार प्रकार के धर्म प्रचलित हैं। वहाँ के चार वर्णों के धर्म में आपस घटलाता है॥१६॥ मुनिवर। वहाँ जो आर्यक, कुरु, विमिश्र और भार्या हैं, वे शाहण, क्षत्रिय वंश्य और शूद्र हैं॥१७॥ जम्बूद्वीप में जामुन का वृक्ष जितना बड़ा है उतना ही बड़ा पावर का वृक्ष प्लक्षद्वीप में है। इसी से इसका नाम प्लक्षद्वीप पड़ा॥१८॥ त्रिषथ्रेष्ठा। वहाँ आर्यक आदि जाति के लोग जगत्स्रष्टा सर्वेश्वर सोमरूपी हरि के लिए याग करते हैं॥१९॥ प्लक्षद्वीप के बराबर विस्तृत मण्डलाकार में इक्षु-समुद्र से प्लक्षद्वीप घेष्टित है॥२०॥ महामुने। प्लक्षद्वीप का वर्णन करने के बाद अब मैं शाल्मलद्वीप का संक्षिप्त वर्णन करता हूँ इसका मुने॥२१॥ शाल्मलद्वीप का स्वामी हरितश्चारी और है। उसके पुत्रों के नाम से इवेन, हरित, जीमूत, राहित, वैद्युत, मानस और सुप्रभ ये सात वर्षावर्ष प्रसिद्ध हैं॥२२॥ शाल्मलद्वीप में इक्षु-समुद्र से घेष्टित है और विस्तार में पहले द्वीप से द्विगुण है॥२३॥ वहाँ भी सात नदियाँ और सात रत्नमयित

१ ग ०ते। आग०। २ ग, न तेषां वैव। ३ न स. तिष्ठति। ४ क ०रघसर्वे०। ५ क विद्या भोजवि०।

६ ग विद्यामा०। ७ ग ०वासर्ववर्षेय०। ८ ग जगत्स्रष्टे। ९ ग ०प्यानु तथादि०। १० ग ग ०मुतादि०।

११ ग ०ज्ञामय०। १२ ग ०पलोहित०। १३ ग ०तो हरित०। १४ ग ०साय द्विगु०।

तथापि पर्वताः सप्त विज्ञेया रत्नयोनयः। वर्षाभिव्यञ्जकरोते'तु तथा सप्तैव निम्नगाः॥२५॥
 'बुभुक्षोऽप्रतदञ्च तृतीयस्तु बलहृन्ः। द्रोणो यत्र महोपध्मः स 'चतुर्थो महोपरः॥२६॥
 कटस्तु पञ्चमः षष्ठो महिषः सप्तमस्तथा। ककुद्भान् पर्वतवरः सरिद्रामान्यतो' द्विजः॥२७॥
 ध्रोणोऽतोया विष्णुणा'च चन्द्रा'शुक्रा विमोचनी। निवृत्तिः सप्तमो तासां स्मृतास्ताः पापशान्तिदः॥२८॥
 श्वेतश्च लोहितश्चैव जीमूतं हरितं तथा। धृष्टं मानसञ्चैव सुप्रभं नाम सप्तमम्॥२९॥
 सप्ततानि तु वर्षाणि चातुर्वर्ण्यं यतानि च। वर्षाश्च शात्मले ये च वसन्त्येव द्विजोत्तमाः॥३०॥
 वपिलाश्चारुणाः पीताः कृष्णाश्चैव पृथक्पृथक्। ब्राह्मणाः क्षत्रिया वंश्याः शूद्राश्चैव यजन्ति तम्॥३१॥
 भगवन्तं समस्तस्य विष्णुमात्मानमव्ययम्। वायुभूतं मल्लश्रेष्ठं यज्वानो' 'यज्ञसंस्थितम्॥३२॥
 देवानामत्र साक्षिष्यमतीय समनोहरे। शात्मलिङ्गं महावृक्षो' नाम निवृत्तिकारकः॥३३॥
 एष द्वीपः समुद्रेण सुरोदेन' समावृतः। विस्ताराच्छात्मलेऽञ्चैव समेन तु समन्ततः॥३४॥
 सुरोदकं परिवृतः कुशद्वीपेन सध्वतः। शात्मलस्य तु विस्ताराद्द्विगुणेन समन्ततः॥३५॥
 श्वोतिष्मत्। 'कुशद्वीपे ध्रुवञ्चैव सत्य पुत्रकान्। उद्भिदो वैष्णवाश्चैव 'स्वैरयो रम्भनो' धृतिः॥३६॥
 प्रभाकरोऽय कपिलस्तद्राम्ना' वर्षपद्वतिः। तस्या वसन्ति मनुजं' सह दंतेयदानवाः॥३७॥
 तथैव देवगन्धर्वा यक्षकिम्बुधादयः। वर्षास्तत्रापि चत्वारो निजानुष्ठानतत्पराः॥३८॥

पर्वत हैं। उन पर्वता से बड़ा स्थित द्वीपों का बोध होता है॥२५॥ पहला पर्वत बुभुक्ष, दूसरा उग्रय, तीसरा बलहृन्, चौथा महोपध्मा से युक्त द्रोण, पाँचवाँ कट, छठा महिष और सातवाँ पर्वतश्रेष्ठ ककुद्भान् है। चितवर । अब नदियाँ के नाम सुनिये—॥२६-२७॥ धार्या, तीया, विष्णुणा, चन्द्रा शूक्रा, विमोचनी और निवृत्ति। ये सब नदियाँ पणनामिनी हैं॥२८॥ श्वेत, लालि, जीमूत, हरित, वैष्ण, मानस और सुप्रभ ये मान वर (द्वीप) चार वर्गों में युक्त हैं॥२९॥ शात्मलद्वीप के कर्मज करिज (मूरा) अरण (लाल) रीति और कृष्ण वर्ण धरि ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र, गर्वाम, अरय, धामुमूत एवं यज्ञ स्थित भगवान् विष्णु की आराधना करें वहाँ यज्ञों में करते हैं॥३०-३२॥ इस सुन्दर द्वीप में देवनामा का साक्षिष्य बना रहता है। महा-रूप शात्मलि (मेमर) के होनेसे इस द्वीप का नाम शात्मलद्वीप पड़ा॥३३॥ यह द्वीप गुरु-समुद्र में वेष्टित है और शात्मलि वृक्ष यहाँ बाला और रज्जु हुआ है॥३४॥ गुरु समुद्र में ही वेष्टित शात्मल द्वीप में द्विगुण विष्णुत कुगर्भ है। कुगर्भ का स्वर्ग उजानिष्पान् है। उद्भिद, वैष्णवान्, स्वैरय, रम्भन, धृति, प्रभाकर और करिज नाम के द्वीप उसके पुत्र रूप में विष्णवान् हैं॥३५-३६॥ उन वर्गों में मनुष्य, देव्य दानव, देव, गन्धर्व, यक्ष, विष्णुग आदि बना करते हैं॥३७॥ वहाँ की चातुर्वर्ण्य-व्यवस्था है। अष्ट द्विज। वरों के निराम, दमी, सुष्मी,

१ क म • शात्मलत • २ क बुभुक्षानयनार्थ • ३ क वम्भो • ४ क • मानि मादि • ५ क म • जा •
 पानि • ६ म विष्णुणा चन्द्रा • ७ क चितरु • ८ क चन्द्रा • ९ क प्रपत्ति • १० क • रम्भनी • ११ क • मानि • १२ क • मनुष्यतत्परा • १३ क पुत्रकान् • १४ क • वैष्णुगर्भ • १५ क •
 वेष्णुगर्भ • १६ क • मनुष्य • १७ क • मनुष्य • १८ क • मनुष्य • १९ क • मनुष्य • २० क • मनुष्य • २१ क • मनुष्य • २२ क • मनुष्य • २३ क • मनुष्य • २४ क • मनुष्य • २५ क • मनुष्य • २६ क • मनुष्य • २७ क • मनुष्य • २८ क • मनुष्य • २९ क • मनुष्य • ३० क • मनुष्य • ३१ क • मनुष्य • ३२ क • मनुष्य • ३३ क • मनुष्य • ३४ क • मनुष्य • ३५ क • मनुष्य • ३६ क • मनुष्य • ३७ क • मनुष्य • ३८ क • मनुष्य •

'दमिनः शुष्मिणः' स्नेहा मान्दहृदय द्विजोत्तमः । ब्राह्मणा क्षत्रिया वैश्य शूद्राश्चानुक्रमोदिताः ॥३१॥
 यथोक्तवर्म्मकर्त्तृत्वात् 'स्वाधिकारक्षयाय ते । तत्र ते तु कुशद्वीपे बहुरूप जनादर्दनम् ॥४०॥
 'यजन्त क्षययन्त्युग्रमधिकारकल्पप्रदम्' । 'विद्रुमो हेमशीलश्च घुतिमान् पुष्टिमांसतया ॥४१॥
 कुशेशयो हरिश्चैव सप्तमो मन्दराचलः । वर्षाचलास्तु सप्तं द्वीपे तत्र द्विजोत्तमः ॥४२॥
 नद्यश्च सप्त तासां तु वक्ष्ये' नामान्यनुक्रमात् । घृतपापा शिवा चैव पवित्रा' सम्मतस्तथा ॥४३॥
 'विद्युदम्भो मही' चान्या सर्वपापहरास्त्विमा । अन्या सहस्रशस्तत्र क्षुद्रनद्यस्तथाचलाः ॥४४॥
 कुशद्वीपे कुशस्तम्बः संज्ञया तस्य तत्तमुत्तम् । सत्प्रमाणेन स द्वीपो घृतीदेन समावृतः ॥४५॥
 घृतीदश्च समुद्रो वै क्रौञ्चद्वीपेन संवृतः । क्रौञ्चद्वीपो मुनिश्रेष्ठा श्रूयता चापरो महान् ॥४६॥
 कुशद्वीपस्य विस्तारद्विगुणो यस्य विस्तरः । क्रौञ्चद्वीपे घुतिमतः 'पुत्रा सप्त महात्मनः ॥४७॥
 तन्नामानि च वर्षाणि तेषां' चक्रे महामनाः । "कुशो" मन्दगश्चोष्णः पीवरोऽपान्धकारकः ॥४८॥
 मुनिश्च दुन्दुभिश्चैव सप्तं तत्सुता "द्विजा" । तत्रापि देवगन्धर्वसंविताः "सुमनोरमाः ॥४९॥
 वर्षाचला मुनिश्रेष्ठास्तेषां नामानि भो द्विजा । क्रौञ्चश्च वामनश्चैव तृतीयश्चान्धकारकः ॥५०॥
 वैवस्वतो' धमश्चैव तथान्यः पुण्डरीकवान् । दुन्दुभिश्च महाशीलो द्विगुणस्ते परस्परम् ॥५१॥
 "द्वीपाद्द्वीपेषु" ये" शीलास्तथा" द्वीपानि ते तथा । वर्षेष्वेतेषु रम्येषु" बर्षशीलवरेषु" च ॥५२॥

स्नेह और मान्दहृ जगम ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र हैं ॥३८-३९॥ अपने-अपने अधिकार की रक्षा के लिए ये चारों वर्ग स्वधिकृत बर्गों में लगे रहते हैं । कुशद्वीप में लगे अधिकार-वश प्रद बहुरूप जनादर्दन के लिए यज्ञ करते हैं ॥४०॥ विद्रुम' वही विद्रुम, हेमशील, घुतिमान्, पुष्टिमान्, कुशेश, हरि, मन्दराचल—ये सात धर्म-वर्ण हैं ॥४१-४२॥ और घृतपापा, शिवा, पवित्रा गमनि, विद्युदम्भ, मही और चान्या—ये सात पापनाशिन, नदियाँ हैं ॥४३॥ इनके अतिरिक्त वहाँ और भी हजारों क्षुद्र नदियाँ तथा पर्वत हैं । कुशद्वीप में कुशों का समूह होने से उसका नाम कुशद्वीप पड़ा है ॥४४॥ वह द्वीप अपनी ही परिधि के परिमाण के घृतसमुद्र से घेष्टित है और घृत-समुद्र क्रौञ्चद्वीप से आवृत है ॥४५॥ महामुन' अब महान् क्रौञ्चद्वीप का कर्ण मुनिये—क्रौञ्चद्वीप कुशद्वीप की अगेत द्विगुण विस्तृत है ॥४६॥ उनमें घुतिमान् के सात महात्मा पुत्र हैं । महामना घुतिमान् ने उसी के नामा पर धरती का वर्ग (द्विजा) के भी नाम कुश, मन्द, उष्ण, पीवर, अप्धकारक, मुनि और दुन्दुभि स्ने है । द्विगुण' वहाँ के मनोहर पर्वतीय द्वीपों पर देव, गन्धर्व आदि रहते हैं । क्रौञ्च, वामन, अन्धकारक, दमन, धम, पुण्डरीकचाल और महावज्र दुन्दुभि—ये वहाँ के पर्वतीय द्वीप हैं, जो एक दूसरे से दूरे हैं ॥४८-५१॥ उन रमणीय वहाँ में तथा वर्षाणों पर देवगणा के साथ आनन्दरहित जनता वास करती है । भिन्नवर!

१ क दमिनः २ दमिनः । २ ग ऽप मदा महेन्द्रय महामुने । बा० । ३ क ऽप्यामिपाक्षत्रिया हि ते । ४ ग पर्वतः । ५ ग । ऽमपिरा० । ६ क धिन्मा । ७ ग गृणु । ८ क ऽत्रा जमिता मया । ९ क ऽन्या म० । १० ग म० । ११ क ग पुत्रात्मन्य म० । १२ क तेषु । १३ क ग महीपति । १४ क कुशुब्दा वपवर पावर्षा गन्धवा० । १५ ग ऽन्यैर्यमसुदक्षैश्च प० । १६ ग मुने । १७ ग ऽप्या गवो ते मु० । १८ क देवपुत्रैः मरुतेत्राण० । १९ क द्वीपति० । २० ग ऽपाद्वीप० । २१ ग वै । २२ क ऽप्या मया द्वीपेन ते । २३ क ऽपुर्वात्पापान् मुनि द्विजा । २४ ग ऽप्येषु ।

निवसन्ति निरासङ्काः सह देवगणैः प्रजाः । पुष्कला पुष्करा घन्यास्ते' ह्याताश्च द्विजोत्तमाः ॥५३॥
 ब्राह्मणाः क्षत्रिया वंश्याः शूद्राश्चानुक्रमोदिताः । तत्र नद्यो मुनिश्रेष्ठा याः पिबन्ति तु ते सदा ॥५४॥
 सप्त प्रधानाः शतशस्तथान्याः क्षुद्रनिम्नगाः । गौरी कुमुदती चैव सन्ध्या रात्रिमनोजवा ॥५५॥
 एयातिश्च पुण्डरीका च सप्तैता वर्पनिम्नगाः । तत्रापि 'वर्णभंगवान् पुष्कराद्यैर्जनाद्वन्दः ॥५६॥
 ध्यानयोगे रत्नरूप इज्यते यज्ञसन्निधौ । क्रौञ्चद्वीपः समुद्रेण दधिमण्डोदकेन तु ॥५७॥
 आवृतः सध्वतः क्रौञ्चद्वीपस्तुत्येन' मानतः । दधिमण्डोदकश्चापि शाकद्वीपेन संवृतः ॥५८॥
 क्रौञ्चद्वीपस्य 'विस्तारद्विगुणेन द्विजोत्तमाः । शाकद्वीपेऽवरस्यापि 'भयस्य सुमहात्मनः ॥५९॥
 सप्तैव तनयास्तेषां ददौ वर्षाणि सप्त सः । जलदश्च कुमारश्च सुकुमारो 'मनोरकः' ॥६०॥
 'कुसमोदश्च मोदाकिः सप्तमश्च महाद्रुमः । तत्संज्ञान्येव तत्रापि सप्त वर्षाण्यनुक्रमात् ॥६१॥
 तत्रापि पर्वताः सप्त वर्षाविच्छेदकारकाः । पूर्वैस्तत्रोदयगिरिजलधारस्तथापरः ॥६२॥
 तथा रैवतकः श्यामस्तथैवाम्भोगिरिद्विजाः । आस्तिकेयस्तथा रम्यः केसरी पर्वतोत्तमः ॥६३॥
 शाकश्चात्र महावृक्षः सिद्धगन्धर्वसेवितः । 'यत्पत्रवातसंस्पर्शाद्वाह्वादौ जायते परः ॥६४॥
 तत्र पुण्या जनपदाश्चातुर्वर्षसमन्विताः । निवसन्ति महात्मानो निरासङ्का निरामयाः ॥६५॥
 नद्यश्चात्र महापुण्याः सर्वपापभयापहाः । सुकुमारी कुमारी च नर्दिनी 'रेणुका च या ॥६६॥
 ह्युदय' धेनुका' चैव गमस्ती सप्तमी तथा । 'अग्यास्तव्युतशस्तत्र भुद्रनद्यो द्विजोत्तमा' ॥६७॥

वहाँ के निवासी पुष्कल, पुष्कर धन्य और ह्याता हैं जो ब्राह्मण, क्षत्रिय वैश्य, और शूद्र वर्णों के समान हैं ॥५३॥ ५३ ॥
 उस द्वीप में गौरी, कुमुदती, सन्ध्या, रात्रि, मनोजवा, ह्याति और पुण्डरीका ये सात प्रधान नदियाँ हैं । इनके
 अतिरिक्त वहाँ सैकड़ों धुद्र नदियाँ हैं । वहाँ के निवासी सदा उत्तरी नदिया का जल पान करते हैं ॥५४-५५॥ ५४ ॥ वहाँ
 भी पुष्कर आदि वर्ण स्वरूप जनार्दन के लिए यज्ञ करते हैं । क्रौञ्चद्वीप अपने बराबर बिल्गुन दधि समुद्र से वेष्टित
 है ॥५६-५७॥ द्विजगण । दधि समुद्र भी शाकद्वीप से आवृत है, जिसका विस्तार क्रौञ्चद्वीप की अपेक्षा
 द्विगुण है ॥५८॥ शाकद्वीप के स्वामी महारमा भय के सात ही पुत्र हैं जिनके नाम से जलद कुमार मुद्रु
 मार, मनोरक, कुसमोद, मोदाकि और महाद्रुम ये सात वर्ष प्रसिद्ध हैं ॥५९-६१॥ द्विजगण । शाकद्वीप में भी
 उदयगिरि, जलधार, रैवतक, श्याम, अम्भोगिरि, रमणीय आस्तिकेय और पर्वतोत्तम केसरी ये सात वर्षपर्वत
 हैं ॥६२-६३॥ उस द्वीप में शाव' का महावृक्ष सिद्ध-गन्धर्वों से सुसज्जित है, जिससे पत्रों के धातु के रूपों से मनुष्य
 अतिरिक्त हो जाता है ॥६४॥ उस द्वीप में चारों वर्णों से सम्पन्न पवित्र देव स्थित हैं । उन देवा में नर्दिनी
 निपाद महात्मा लोग वास करते हैं ॥६५॥ वहीं सुकुमारी, कुमारी, नर्दिनी, रेणुका, ह्यु, धेनुका और गमस्ती
 नाम की पापनाशिनी पवित्र नदियाँ हैं ॥६६॥ महाद्रुम । इनके अतिरिक्त दध ह्यार और धुद्र नदियाँ हैं ॥६७॥

१ स न्यामिप्यास्याश्च । २ स वर्णभंगः । ३ स पर्वत्येन । ४ स स स्तारद्विगुः । ५ स स
 मक्षिप्यस्य मः । ६ स मरीचिः । ७ स मरीचिकः । ८ स मः । ९ स मः । १० स मः । ११ स मः । १२ स मः । १३ स मः । १४ स मः । १५ स मः । १६ स मः । १७ स मः । १८ स मः । १९ स मः । २० स मः । २१ स मः । २२ स मः । २३ स मः । २४ स मः । २५ स मः । २६ स मः । २७ स मः । २८ स मः । २९ स मः । ३० स मः । ३१ स मः । ३२ स मः । ३३ स मः । ३४ स मः । ३५ स मः । ३६ स मः । ३७ स मः । ३८ स मः । ३९ स मः । ४० स मः । ४१ स मः । ४२ स मः । ४३ स मः । ४४ स मः । ४५ स मः । ४६ स मः । ४७ स मः । ४८ स मः । ४९ स मः । ५० स मः । ५१ स मः । ५२ स मः । ५३ स मः । ५४ स मः । ५५ स मः । ५६ स मः । ५७ स मः । ५८ स मः । ५९ स मः । ६० स मः । ६१ स मः । ६२ स मः । ६३ स मः । ६४ स मः । ६५ स मः । ६६ स मः । ६७ स मः । ६८ स मः । ६९ स मः । ७० स मः । ७१ स मः । ७२ स मः । ७३ स मः । ७४ स मः । ७५ स मः । ७६ स मः । ७७ स मः । ७८ स मः । ७९ स मः । ८० स मः । ८१ स मः । ८२ स मः । ८३ स मः । ८४ स मः । ८५ स मः । ८६ स मः । ८७ स मः । ८८ स मः । ८९ स मः । ९० स मः । ९१ स मः । ९२ स मः । ९३ स मः । ९४ स मः । ९५ स मः । ९६ स मः । ९७ स मः । ९८ स मः । ९९ स मः । १०० स मः ।

महोषरास्तथा सन्ति शतशोऽप्य सहस्रश । ता विवर्ति मुदा युक्ता जलदादिषु ये स्थिता ॥६८॥
 वर्षेषु ये 'जनपदाश्चतुर्यार्यसमन्विता । नतश्चात्र महापुण्या स्वर्गादिभ्येत्य मेदिनीम् ॥६९॥
 धर्महानिर्न' तेष्वरित न 'सहर्षो न शुक्' तथा । मर्यादाव्युत्क्रमश्चापि तेषु देशेषु सप्तसु ॥७०॥
 मगाश्च मागधाश्चैव मानसा मन्दगास्तथा । मगा ब्राह्मणभूमिष्ठा मागधा क्षत्रियारतु ते ॥७१॥
 वंश्यास्तु मानसारतेषां शूद्रा ज्ञेयास्तु मन्दगा । 'शाकद्वीपे स्थितोविष्णु सूर्यरूपधरो हरि ॥७२॥
 यथोक्तैरिज्यते' सम्यक्कर्मभिर्नियतात्मभि । शाकद्वीपस्ततो विप्रा क्षीरोदेन समन्तत ॥७३॥
 शाकद्वीपप्रमाणेन बलयेनेव वेष्टित । 'क्षीराब्धि सध्वतो विप्रा पुष्करारयेन वेष्टित ॥७४॥
 द्वीपेन शाकद्वीपात्तु द्विगुणेन समन्तत । पुष्करे सवनस्यापि 'महावीतोऽभवत् सुत ॥७५॥
 घातश्चिद्व्य तपोस्तद्वद्वे वर्षे नामसंज्ञिते । 'महावीत तथैवान्धद्वात्कील्लण्डसंज्ञितम् ॥७६॥
 एकश्चात्र महाभागा प्रहयातो वर्षेपथ्वत । मनसोत्तरसन्नो वै मध्यतो वन्द्याकृति ॥७७॥
 योजनानां सहस्राणि ऊर्ध्वं पञ्चदशदुच्छिन '। तावदेव च विरतीर्णं सध्वत परिमण्डल ॥७८॥
 पुष्करद्वीपबल्य मध्येन विभजन्निव । स्थितोऽसौ तेन विच्छिन्न जगत्' वर्षेण हि तत् ॥७९॥
 बलयाकारमेकैक तपोर्मध्ये महागिरि । वनवपसहस्राणि तत्र जीवति मानवा ॥८०॥
 निरामया विशोकाश्च रागद्वेषविवर्जिता । अपमोत्तमो न तेष्वारता न वप्यवधवो द्विजा ॥८१॥
 'नेर्ष्यासूया भय रोषो दोषो लोभादिव' न च । महावीत यद्विध्वंषं घातवीक्षणमन्तत ॥८२॥

मानसोत्तरशैलस्य देवदेव्यादिसेवितम् । सत्यानृतं न तत्रारतां द्वीपे पुष्करसंज्ञितम् ॥८३॥
न तत्र नद्यः शैला वा द्वीपे वर्षद्वयान्विते । तुल्यवेयास्तु मनुजा देवेस्तत्रैकरूपिणः ॥८४॥
वर्णाश्रमाचारहीनं धर्माहरणवर्जितम् । त्रयीवार्तादिषडनीतिशुश्रूषारहितं च तत् ॥८५॥
वर्षद्वयं ततो विप्रा भोमस्वर्गोऽयमुत्तमः । सर्वस्य सुखदः कालो जरारोगविवर्जितः ॥८६॥
पुष्करे धातकीखण्डे महाबते च वै द्विजाः । न्यग्रोधः पुष्करद्वीपे ब्रह्मणः स्थानमुत्तमम् ॥८७॥
तस्मिन्निवसति ब्रह्मा पूज्यमानः सुरासुरैः । स्वाद्बदकेनोदधिना पुष्करः परिवेष्टितः ॥८८॥
समेन पुष्करस्यैव विस्तारान्मण्डलात्तथा । एवं द्वीपाः समुद्रस्तु सप्त सप्तभिरावृताः ॥८९॥
द्वीपश्चैव समुद्रश्च समानो द्विगुणो परौ । पयासि सर्वदा सर्वसमद्रेषु समानि वै ॥९०॥
न्यूनातिरिक्तता तेषा कदाचिन्नैव जायते । स्थालीस्थमग्निसंयोगाद्बुद्धेः सलिलं यथा ॥९१॥
तथेन्दुबद्धो सलिलमम्भोघो मुनिसत्तमाः । अन्यूनानतिरिक्तताश्च यद्वन्मथापो हसन्ति च ॥९२॥
उदयास्तमने दिवन्दोः पक्षयोः शुक्लकृष्णयोः । दशोत्तराणि पञ्चैव अङ्गुलानां शतानि च ॥९३॥
अपां षड्विधयो दृष्टौ सामुद्रोणा द्विजोत्तमाः । भोजनं पुष्करद्वीपे तत्र स्वयमुपस्थितम् ॥९४॥
भुञ्जन्ति यङ्गं विप्राः प्रजाः सर्वाः सदैव हि । स्वाद्बदकस्य परितो दृश्यते लोवसंस्थितिः ॥९५॥
द्विगुणा फाञ्जनी भूमिः । सर्वजन्तुर्विर्वाजिता । लोकालोकस्ततः शैली योजनायुतविरतुतः ॥९६॥
उच्छ्रयेणापि तावन्ति । सहस्राण्यवलोहि सः । ततस्तमः समावृत्य त शैलं सध्वं तः स्थितम् ॥९७॥

हैं॥८२॥३॥ बर्षद्वयमुक्त पुष्करद्वीप मे सरय, मिथ्या, नदी और पर्वत नहीं हैं। वहाँ देवगुप्त मनुष्य एक ही स्वरूप के हैं॥८३-८४॥ दोनों धर्मों में द्वाग्ध्रिम-धर्म, पाप, वाणिज्य, दण्डनीति, शुभ्रा आदि कुछ नहीं है॥८५॥ वे दोनों उत्तम भू-स्वर्ण है। वहाँ सदा सबके लिए सुखद समय रहता है, बुढ़ापा और रोग का भय नहीं विप्रबन्ध । वे दोनों उत्तम भू-स्वर्ण है। वहाँ सदा सबके लिए सुखद समय रहता है, बुढ़ापा और रोग का भय नहीं है॥८६॥ पुष्कर द्वीप मे एक वट वृक्ष ब्रह्मा का उत्तम स्थान माना जाता है। उस स्थान मे ब्रह्मा सुरअमुरो से पूजित होते हैं॥८७॥ यह द्वीप अपने ढलवर विस्तृत तथा मण्डलाकार स्वादिष्ट जल वाले समुद्र से वेष्टित है। इस प्रकार साती द्वीप साती समुद्रो से आवृत है॥८८-८९॥ द्वीप और समुद्र समान हैं। सब समय सब समुद्रो, मे जल समान हो रहा है। १०॥ उसमे कभी-कभी कभी नहीं होता। पर जैसे पात्र मे स्थित जल अग्नि-संयोग से उफनने लगता है ही रहता है। ११०॥ उसमे कभी-कभी कभी नहीं होता। पर जैसे पात्र मे स्थित जल अग्नि-संयोग से उफनने लगता है। १११-१२॥ चन्द्रमा की वृद्धि होने पर समुद्र मे जल उफनता है। महाभुने। शुक्ल-वृष्ण पक्ष मे क्रमशः चन्द्रमा के उदय-अस्त होने पर समुद्रो ना जल पाँच से दस अंगुलि प्रमाण बढ़ता घटता है॥११-१२॥ विश्वर । समुद्र जल का बढ़ाव-घटाव तो ऐसा ही है। पुष्करद्वीप के निवासियों को सदा आप से आप छद्म प्रकार के रस से युवक राजन प्राप्त हो जाते हैं॥१४३॥ स्वादिष्ट जल वाले समुद्र के चारो तरफ लोको की अवस्थिति है॥१५॥ फिर उससे द्विगुण सुवर्णमय भूमि है, जो जन्तुमान से रहित है। उसने बाद लोकालोक पर्वत दस हजार योजन विस्तृत और उतना ही ऊँचा भी है॥१६॥ फिर अधकार उस पर्वत को सब ओर से ढक कर स्थित है॥१७॥ वह अधकार चारो तरफ अण्डकाठ

१ क ० प्र धर्म शील वा द्वी० । २ ख ग घ म्पद्मि० । ३ न ० महारविष० । ४ क तिसुतुपार० । ५ क ० केन
 ६० । ६ क ० डलस्य न० द्वी० । ७ क ख समुद्राणा । ८ ख ग पुत्रो । ९ न शार्क० । १० ख ० वंशवृत्ति० ।
 ११ क ० क्षाण्यव० । ग ० स्नानाव० ।

'तमश्चाण्डकटाहेन समन्तात् परिवष्टितम् । पञ्चाशत्कोटिविरतारा सेयमुखी द्विजोत्तमाः ॥९८॥
सहंवाण्डकटाहेन सद्गीषा समहीधरा । सेय धात्री विधात्री च सध्वंभूतगुणाधिका ।
आधारभूता जगता सध्वंया सा द्विजोत्तमाः ॥९९॥

इति श्रीब्राह्मे महापुराणे समुद्रद्वीपपरिमाणवर्णन नाम विंशोऽध्याय ॥२०॥

एकविंशोऽध्यायः

तनादी पातालप्रमाणवर्णनम्

लोमहर्षण उवाच

विस्तार एष कथित पूरिव्या मुनिसत्तमा । सप्ततिरतु सहस्राणि 'तदुच्छ्रायोऽपि कथ्यते ॥१॥
दशसाहस्रमेकैक पाताल मुनिसत्तमा । अतल वितल उच्चैव नितल सुतल तथा ॥२॥
तलातल रसातल पातालश्चापि सप्तमम् । कृश्या शुक्लारण्या पीता शर्करा शैलकाञ्चनी ॥३॥
भूमयो यत्र विप्रेन्द्रा वरप्रासादशोभिता । तेषु 'दानवर्देतेयजातय' वातश.^१ स्थिताः ॥४॥

(ब्रह्मांड ?) से परिवेष्टित है । महामुने । पञ्चाशत्कोटि योजन विस्तृत यह पूर्व । अण्डकटाहो द्वीप और पर्वता से युक्त है । यही धात्री, विधात्री, प्राणीमात्र के गुणा से अधिक गुणशाली तथा समार वा अपार बनी हुई है ॥९८ ९९॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में समुद्र द्वीप परिमाण-वर्णन नामक ब्रह्मर्षि अष्टम्य समाप्त ॥२०॥

अध्याय २१

पाताल के प्रमाण का वर्णन

लोमहर्षण बोले—पुनर्वर । पूरिव्या ने विस्तार का वर्णन मैं किया । उसकी सत्तर हजार याजन परिमित ऊँचाई के बारे में भी कहा जा रहा है ॥१॥ मुनिवर । एक-एक पाताल दस हज़ार याजनप्रमाण विस्तृत है । अतल वितल, नितल, सुतल, तलातल, रसातल, और पाताल—य सात पाताल हैं जहाँ दृष्ट्या शुक्ला, अश्वत्था, पीता, शर्करा और शैलकाञ्चनी नामक पृथिवी उत्तम भवना से युक्त हैं ॥२-३॥ उन स्थानों में वैवस्वत

१ क तम राण । २ क ० त्रि । ३ सप्तमी श ० । ३ क ० दुर्धर्षो वि । ४ रा ० व तलातल यमस्तिम् ।
महातलास्य गुण पा ० । ५ ग ० ल व यमस्तिम् । महास्य सुतल चाप्य पा ० । ६ क ग ० रा ध्वं वा ० । ७ क
० रसातल जान ० । ८ ग ० रसातल जान ० । ९ ग ० रसातल जान ० । १० रा ० न ।
निवसन्ति महामाया यन ० । १० रा । निवसन्ति महामाया जान ० ।

नागानाञ्च महाङ्गानां जातयश्च द्विजोत्तमाः। स्वर्लोकादपि रम्याणि पातालानीति नारद ॥५॥
 प्राह स्वर्गसदोमध्ये पातालेभ्यो गतो दिवम्। आह्लादकारिणः शुभ्रा मणयो यत्र सुप्रभाः ॥६॥
 नागाभरणभूषाश्च पातालं केन तत्समम्। दैत्यदानवकन्याभिरितश्चेतश्च शोभिते ॥७॥
 पाताले कस्य न प्रीतिर्विमुक्तस्यापि जायते। दिवाकरश्मयो यत्र प्रभास्तन्वति नातपम् ॥८॥
 शशिनश्च न शीताय निशि शीताय केवलम्। भक्ष्यभोज्यमहापानमदमत्तश्च भोगिभिः ॥९॥
 यत्र न जायते कालो गतोऽपि दनुजादिभिः। यतानि नद्यो रम्याणि सरांसि कमलाकरा ॥१०॥
 पुंस्कोकिलादिलापाश्च मनोज्ञान्यम्बराणि च। भूषणान्यतिरम्याणि गन्धाद्यञ्चानुलेपनम् ॥११॥
 वीणावेणुमृदङ्गानां निःस्वनश्च सदा द्विजाः। एतान्यन्यानि रम्याणि भाग्यभोग्यानि दानवैः ॥१२॥
 दैत्योरगश्च भुज्यन्ते पातालान्तरगोचरैः। पातालानामधश्चास्ते विष्णोर्था तामसो तनुः ॥१३॥
 शोषाख्या यद्गुणान् यवतुं न शक्ता दैत्यदानवाः। योऽनन्तः पृथ्वे 'सिद्धदेवदेवपूजित' ॥१४॥
 सहस्रशिरसा व्यक्तः स्वस्तिकामलभूषणः। कजामणिसहस्रेण यः स विद्योतयन् दिशः ॥१५॥
 सत्त्वान् करोति निर्वायान् हिताय जगतोऽसुरान्। मदापूर्णतनेत्रोऽसौ यः सदैवककुण्डल' ॥१६॥
 क्रिरीटो लग्नरो भाति साग्निरश्चेत् इवाचलः। नीलवासा महोत्सवतः श्वेतहारोपशोभित' ॥१७॥

दैत्य-दानव रहते हैं ॥४॥ महासर्पों की बहुत-सी जातियाँ निवास करती हैं। पाताल स्वर्ग से भी रमणीय है ॥५॥
 एक बार पाताल से स्वर्ग जाकर नारद ने देवसभा में कहा—'सुखदायक अच्छी कान्तिवाली, स्वच्छ
 मणियों से परिपूर्ण एवम् मर्त्य-भूषणा से भूषित पाताल की उपमा किसी से दी जा सकती है ? ॥६॥ इसस्त
 दैत्य-दानवों की कन्याओं से सुशोभित पाताल में पहुँचकर किस मुक्त पुरुष को भी प्रीति उत्पन्न नहीं हो
 जाती ? ॥७॥ वहाँ दिन में सूर्य की किरणें प्रकाश फैलती हैं न कि धूप। रात्रि में चन्द्रमा भी वैचल प्रकाश
 देता है, ठंड नहीं ॥८॥ भक्ष्य भोज्य, मनु मन्दिर से भक्त सर्प और दानव आदि कालगति का भी नहीं जानते
 ॥९॥ पातालवासी दानव, दैत्य और सर्प वन, नदियाँ, रमणीय सरोवर कल्लो से युक्त लालाव पुष्प बाजिला
 का आलाप, मनोहर वस्त्र, अतिरमणीय भूषण, पुष्प-चन्दन मन्त्र, वीणा, बाँसुरी और मृदंगो के शब्द आदि रमणीय
 पदार्थों का भाग करते हैं ॥१०-११॥ पातालो के नीचे विष्णु का शेष नामक शरीर है, जिसके गुण-गान करने
 में दैत्य-दानव भी समर्थ नहीं हैं ॥१२॥ उसी शेष का नाम अनन्त है। वह सिद्ध, देवता और देवपिया से पूजित
 तथा व्यक्तव्य है। उसके हजार शिर तथा दिव्य आभूषण हैं। वह जपन पत्र की हजार मणियाँ से दिशाओं
 को प्रकाशित करता है ॥१४-१५॥ जगत्स्वल्पाण के लिए वह सब असुरों को शक्ति-रहित बनाकर छोड़ता है।
 उसकी आँखें सदा मद से चञ्चल रहती हैं। मुकुट-कुण्डल-माला को धारण किये हुए शेष अग्नियुक्त श्वेतपर्वत के
 समान सुशोभित होता है ॥१६॥ वह नीलवस्त्रधारी, मद से जन्मन्त, श्वेत हार से सुशोभित है ॥१७॥ आनाम

१ ग ०लादीनि ना०। २ क न्व दिवि। ३ क ०ण सर्वा भूषणान् मनोहरा। नानाम०। ४ क ०तस्व
 शतयो०। ५ क ०किलविश्वेश्व म०। ६ ग गन्धाद्य। ७ क देवदेवपू०। ८ ग ०जिने। स०।

साश्रगङ्गाप्रपातोऽसौ कंचासादिरिवोत्तमः^१। लांगलासपतहस्ताप्रो बिभ्रन्मुशलमुत्तमम् ॥१८॥
 उपास्यते स्वयं कान्त्या यो वारुण्या च मूर्तया^२। कल्पान्ते यस्य वक्त्रेभ्यो विषानलक्षितोऽज्ज्वलः ॥१९॥
 संकल्पणात्मको रुद्रो निष्प्रम्यात्ति जगत्त्रयम्^३। स बिभ्रच्छिखरीभूतमशेषं क्षितिमण्डलम् ॥२०॥
 आस्ते पातालमूलस्थः शेषोऽशेषसुरार्चितः^४। तस्य वीर्यं प्रभावश्च स्वरूपं रूपमेव च ॥२१॥
 न हि वर्णयितुं शक्यं ज्ञातुं वा त्रिदशैरपि। यस्यांया सकला पृथ्वी कणामणिशिखारुणा ॥२२॥
 आस्ते कुसुममालेव यस्तद्वीर्यं वदिष्यति। यदा विजृम्भतेऽनन्तो मदाघूर्णितलोचनः ॥२३॥
 तदा चलति भूरेया साद्रितोयाधिकानना। गन्धर्वाप्सरसः सिद्धाः 'किन्नरोरगवारजाः ॥२४॥
 नान्तं गुणानां गच्छन्ति ततोऽनन्तोऽयमव्ययः'^५। यस्य नाणवपूहस्तैर्लापितं हरिचन्द्रनम् ॥२५॥
 मुहुः श्वासानिलायस्तं याति दिक्पटवसिताम्। यमाराम्य पुराणविगर्गो ज्योतीषि तत्त्वतः ॥२६॥
 ज्ञातवान् सकलं चैव 'निमित्तपठितं फलम्'^६। तेनेयं 'नागवर्येण शिरसा विधृता मही।
 विभ्रति सकलाल्लोकान् स देवासुरमानुषान् ॥२७॥
 इति श्रीब्राह्मे महापुराणे पातालप्रमाणकीर्तनं नामैकविंशोऽध्यायः ॥२१॥

द्वाविंशोऽध्यायः

तत्रादौ नरकवर्णनम्

लोमहृषण उवाच

ततश्चानन्तरं विप्रा नरका रोरवादयः। पापिनो येषु पापयन्ते तांछृणुष्व द्विजोत्तमाः॥१॥
 रोरवः शीकरो 'रोधस्तानो' विशसनस्तया। महाज्वालस्तप्तकुड्यो' महालोभो विमोहनः॥२॥
 दधिरान्यो' वसातप्तः 'कृमीशः' कृमिभोजनः। असिपत्रधनं कृष्णो 'जालाभक्षश्च' दारुणः॥३॥
 तथा पूषवह' पापो यद्विज्ज्वालो' ह्यधःशिराः। सदर्शः कृष्णसूत्रश्च 'तमश्चावीचिरेव च॥४॥
 श्वभोजनोऽयाप्रतिष्ठोमावीचिश्च' तथापरः। इत्येवमादयश्चान्ये नरका भूषदाक्षणाः॥५॥
 यमस्यः विषये घोराः शस्त्रान्निविदशिनः। पतन्ति येषु पुरयाः पापकर्मरताश्च ये॥६॥
 कूटसाक्षो तथा सम्यक् पक्षपातेन यो वदेत्। 'यश्चान्यदनूर्तं ववित स नरो याति रोरवम्॥७॥
 भ्रूणहा 'पुरहन्ता च गोघ्नश्च' मुनिसत्तमाः। यान्ति ते 'रोरवं' घोरं 'यश्चोच्छ्वासनिरोधकः॥८॥
 सुरापो 'ब्रह्महा हर्ता सुवर्णस्य च शूकरः'। प्रयाति 'नरकं यश्च संः सप्तगमुपैति वै॥९॥
 राजन्यवैश्यहा चैव तयैव 'गुरुतल्पगः। तप्तकुम्भे 'स्वसुगामी' हन्ति राजभट्टश्च यः॥१०॥

अध्याय २२

नरको का वर्णन

लोमहृषण बोले—विप्रवृन्द 'जब इसके बाद रोरव आदि नरको के बारे में मुनिवै, जिनमें पापी लोग गिराये जाते हैं॥१॥ द्विजश्रेष्ठो' रोरव, शीकर, रोधस्तान, विशसन, महाज्वाल, तप्तकुड्य, महालोभ, विमोहन॥२॥ दधिरान्य, वसातप्त, कृमीश, कृमिभोजन, असिपत्रधन, कृष्ण, जालाभक्ष, दारुण॥३॥ पूषवह, पाप, यद्विज्ज्वालो भवशिरा, सदर्श, कृष्णसूत्र, तम, आर्वीचि॥४॥ श्वभोजन, अप्रतिष्ठ, मावीचि आदि और दूसरे भी अत्यन्त भयकर नरक हैं॥५॥ यम के राज्य में पापकर्म में निरत शस्त्र अग्नि तथा विष का प्रयोग करने वाले मयानक पुरुष नरको में गिरते हैं॥६॥ जो मनुष्य झूठे, गधाहँ, देता, पक्षपात करता है, मिथ्या बोलता है, वह रोरव नरक जाता है॥७॥ मुनिघर, गर्भपात, नगर-ध्वंस तथा गोहत्या करने वाले और मला घोटकर हत्या करने वाले मनुष्य भयकर रोरव नरक में जाते हैं॥८॥ भयपान करने वाले, ब्रह्महत्या करने वाले, सुवर्ण चुराने वाले तथा उनके समर्प करने वाले मनुष्य शीकर नरक में जाते हैं॥९॥ क्षत्रिय, वैश्य तथा राजद्रुत के हत्यारे, गुरुपत्नीगामी, और

१ क पञ्चमो। २ क ख शूकरो। ३ ख रोध शीलो चिन्वस०। ४ क ०स्तालो वि०। ५ क ०शनसस्त०। ६ ख ०प्तकुम्भो म०। ७ ख ग ०न्धो वीतरणो कु०। ८ क कृमिश। ख कृमिश। ९ क ०स मुदा०। १० क चिन्विज्ज्वालो यम। ११ क ०श्वाशुचि०। १२ क यस्तावद०। १३ ख गुरुहन्ता। १४ क निरय। १५ ख यश्च स्वाम०। १६ क ०ह्यहत्यावागमुच०। १७ क मूपक। १८ क नरक। १९ क ०ग। ये कुञ्जेषु मृगानग्यान् जन्ति राजभट्टश्च ये। सर्वत्रियकर्ता वै पाप वै। २० ख स्वसागा०।

‘मघुहा’ ग्रामहन्ता च याति ‘वैतरणीं नर । रेत पानादिषु तारो ‘मर्यादाभेदिनश्च ये’ ॥२३॥
 ते कृच्छ्रे यान्त्यशौचाश्च कुहकजीविनश्च ये । अग्निपत्रवन ‘याति वनच्छदी बृधेव य ॥२४॥
 ओरभ्रिका मृगव्याधा वह्निज्वाले पतन्ति ये । यान्ति तत्रैव ते विप्रा’ यदचापाकेषु वह्निद ॥२५॥
 वतोपलोपको यश्च स्वाश्रमाद्विच्युतश्च य’ । सन्दशयातनामध्ये पततरतावुभावपि ॥२६॥
 दिवा स्वप्नेषु ‘स्यन्दते ये नरा ब्रह्मचारिण । पुत्रैरध्यापिता ये तु ते पतन्ति श्वभोजने ॥२७॥
 एते चान्ये च नरका शतशोऽथ सहस्रश । येषु दुष्कृतकर्मणि पच्यन्ते यातनागता ॥२८॥
 तथैव पापान्येतानि तथान्यानि सहस्रश । भुज्यन्ते जातिपुरुषैर्नरकान्तरगोचर’ ॥२९॥
 वर्णाश्रमविरुद्धञ्च कर्म कुर्वन्ति ये नरा । कर्मणा मनसा वाचा निरयेषु पतन्ति ते ॥३०॥
 अथ शिरोभिर्दृश्यन्ते नारकांश्चिदिव देवता । देवादचाघोमुखान् सर्वानथ पश्यन्ति नारकान् ॥३१॥
 ‘स्यावरा’ ‘कृमयोऽजाश्च पक्षिण पशवो नरा । धार्मिकाश्चिदशरतद्वन्मोक्षिणश्च यथ क्रमम् ॥३२॥
 सहजभाग’ प्रयमाद्वितीयोऽनुक्रमात्तया । सर्वे ह्येते महाभागा यावन्मुवितसमाधया ॥३३॥
 यावन्तो जन्तव स्वर्गे तावन्तो नरकोक्तस’ । पापकृद्वापि नरक प्रायश्चित्तपराङ्मुख ॥३४॥
 पापानामनुरूपाणि प्रायश्चित्तानि यद्दया । तया तथैव समूह्य श्रोवतानि परमपिभि ॥३५॥

जाते हैं । बर्ष आदि का पान करने वाले मर्यादा का भेदन करने वाले अपवित्रता से रहनेवाले और छल से आज
 विवा करने वाले कृच्छ्र नरक में जाते हैं ॥२३॥ व्यसही वृक्षा का छदन करने वाले अग्निपत्रवन नरक में जाते
 हैं ॥२४॥ भेड़ से जं विना कमाने वाले मृगा का गिकार करने वाले वह्निज्वाले नरक में जाते हैं । पाकरहित
 भोजन म मा अग्नि का प्रयोग करने वाले मनुष्य में उस नरक में जाते हैं (?) ॥२५॥ वत का लोप करने वाले
 और अपने आश्रम से व्युत् होन वाले सदायातना नरक में जाते हैं ॥२६॥ जिन ब्रह्मचारियों को दिन में
 स्वप्नदाप होता है व तथा पुत्रा से पढ़ने वाले मनुष्य १० माजन नरक में जाते हैं ॥२७॥ इनके अतिरिक्त और
 दूसरे म सँकडा-हुजारा नरक हैं जिनमें दुष्कर्म करने वाले लोग पवाये जाते हैं ॥२८॥ इस तरह नरकगाम । जं व
 हुजारा पापों का फल भोगते हैं । कम गन और बाण से वर्णाश्रम विरुद्ध कर्म करने वाले मनुष्य नरक में पड़ते
 हैं ॥२९॥ ३०॥ मावे सिर वाले नरकास जं १० स्वर्गगत देवताओं को देखते हैं और देवता भी उन अधामुख नारक या
 को न देखते हैं ॥३१॥ महाभाग कृपिण स्यावर वृमि जलजन्तु पशु । पशु मनुष्य धर्मात्मा तथा मुक्त पुरप-
 प सब क्रमश उत्तरोत्तर योगिना को प्राप्त करते हुए मोक्ष पान लक्ष्हा रहते हैं ॥३२॥ ३३॥ जितने जन्तु स्वर्ग में
 हैं उतनेह नरक में भी हैं । प्रायश्चित्त न करने वाले पाप मनुष्य नरक में जाते हैं ॥३४॥ प पा के अनुरूप
 प्रायश्चित्त के बारे में मुनिना ने चिन्तन करके बतलाया है ॥३५॥ विप्र १८ । स्वायम्भुव आदि मनुआ ने नारा

१ क मघुहा । २ क णी द्विना । मूल्यन सध्याक ० । ३ क ० दानिदिताश्च । ४ ग ये । य कृष्ण या ० ।
 ५ ख । प्रति । ६ क ० प्रा य इक्ष्वा ० । ७ क य । सध पापमाश्रिय जलजन्तु ० । ८ क मण्डल । ९ मन्दित ।
 १ क ख ० वाणवगो ० । १० ग ० गय त्व्याता ० । ११ क ० समापत्तिवमादेति याः क्रमन्तया । ख
 ० शभागाश्रयमा द्वितया तु क्रमास्तया ।

माध्वोविक्रप्रकृद्ध्यपाल 'वैसरविक्रयो'। तप्तलोहे पतन्त्येते यश्च भवतं परित्यजेत् ॥११॥
 सुता स्नुषाञ्चापि गत्वा महाज्वाले निपात्यते। अवमन्ता गुरुणा यो यश्चाक्रोष्टा नराधमः ॥१२॥
 वेददूषयिता यश्च वेदविक्रयकश्च यः। अगम्यगामी यश्च स्यात् ते यान्ति शबलं द्विजा ॥१३॥
 चोरो विमोहे पतति मर्यादाद्वयकस्तथा। 'देवद्विजपितृद्वेष्टा रत्नदूषयिता च यः ॥१४॥
 स याति कृमिभक्ष्ये वै कृमोक्षे' तु दुरिष्टिभृत्। पितृदेवातिथीन् यस्तु पर्य्यङ्गनाति नराधमः ॥१५॥
 लालाभक्ष्ये स यात्युप्रे शरकर्ता च वेधके। करोति कर्णिनो यश्च यश्च खड्गादिकुघ्नरः ॥१६॥
 प्रयान्त्येते विशसने नरके भृशदारुणे। असत्प्रतिग्रहीता च नरके यात्यघोमुखे ॥१७॥
 अयाज्ययाजकस्तत्र तथा नक्षत्रसूचकः। कृमिपूये नरद्वेषको याति मिष्टान्नभृक् सदा ॥१८॥
 लाक्षामासुरसानाञ्च तिलानां त्वणस्य च। विक्रेता ग्राह्याणो याति तमेव नरकं द्विजाः ॥१९॥
 माज्जरीकुबकुटच्छाणश्वराहविहङ्गमान्"। पोषयघ्नरकं याति तमेव द्विजसत्तमा ॥२०॥
 रङ्गोपजीवी वैवर्त्तं कुण्डाशो गरदस्तथा। सूची माहिषिकश्चैव पर्य्वगामी च यो द्विजः ॥२१॥
 अगारदाहो 'मित्रघ्नः' शकुनिग्रामयाजकः। रुधिराधे पतन्त्येते सोमं विक्रीणते च ये ॥२२॥

मर्गिनीगर्मा, मनुष्य तप्तपुष्प नरक में जाते हैं ॥११॥ यश्च तथा वैसर-विवेता, यश्च करने योग्य व्यक्ति का रक्षा
 एवम् मरन-रयागी मनुष्य तप्तलोह नरक में जाते हैं ॥१२॥ पुत्री तथा पुत्रवधू गामी एवम् गृह निन्दक तथा गृह का
 अरमान करने वाले नीच मनुष्य महाज्वाल नरक में गिराये जाते हैं ॥१३॥ वेद विवेता, वेद निन्दक तथा
 अगम्या-गमन करने वाले मनुष्य शबल नरक में जाते हैं ॥१४॥ चोर, मर्यादानाराज, रत्ननाशक, देवता, ब्राह्मण
 तथा पिता के शत्रु। मनुष्य भिगाह नरक में जाते हैं ॥१५॥ दूषित यज्ञ करने वाले तथा पिता, देवता और अनधिकारी
 निराश्रय करने वाले नीच मनुष्य कृमिभक्ष्य या कृमोन्म नरक में जाते हैं ॥१६॥ विपाकन धाणा के निर्माता मनुष्य
 लालाभक्ष्य या वेधक नरक में जाते हैं। गिण (पुण्यलोच) तथा तलवार आदि के निर्माता मनुष्य अयण
 मयानक बिगमन नरक में जाते हैं ॥१७॥ अनुचित दान देने वाले, अनधिकारी, ध्वनितया ने यज्ञ करने वाले तथा
 मनुष्य कृमिपूय नरक में जाते हैं ॥१८॥ लाण, दाग, रक्त तथा लक्ष्य विवेता ब्राह्मण, उर्ग, नरक में जाते हैं ॥१९॥
 द्विजवर्ग। बिनाह, मूर्ख, यक्ष, अश्व, दूधर और पत्नी का पाप्मेन करते मनुष्य भी उर्ग। नरक में जाते
 हैं ॥२०॥ गग के द्वारा जीविकापार्जन करने वाले, रक्षक (दास या धोतर), कुण्ड (जाल-पुत्र) के अप्र मानना,
 विद देने वाले, मिलाई से ज.विहा अश्रित करने वाले, भोग में जीवन निर्वाह करने वाले और पर्यवस में रक्ष.
 प्रयोग करने वाले ब्राह्मण, गृह जलाने वाले, मित्र का मारने वाले, शत्रु विघात करने वाले, प्राणनाशक, और मय-
 क्षिता रक्षित नरक में जाते हैं ॥२१-२२॥ यश्च नरक करने वाले तथा दास जलाने वाले मनुष्य वैवर्ग, नरक में

१ म. इत्यो वै पाठः ०। २ म. अरिचि ०। ३ म. धी। ने याते पु. ०। ४ म. ०पा ५ मर्गिनी म. ०।
 ५ म. अरिचि म. ०। ६ म. म. अरुपद्वे ०। ७ म. अरिचिच निर्गिनी वै। ८ म. ०रच कारयिना मर।
 ९ म. ०र. देव. गुनिम ०. १० म. ०। वैमि. यवट ०. १० म. म. अरुपद्वे. ११ म. म. अरुपद्वे. १२ म. म. अरुपद्वे.
 १३ म. म. अरुपद्वे. १४ म. म. अरुपद्वे. १५ म. म. अरुपद्वे. १६ म. म. अरुपद्वे. १७ म. म. अरुपद्वे. १८ म. म. अरुपद्वे.

मधुहा' ग्रामहृता च याति 'वैतरणीं नरः। रेतःपानादिकर्तारो 'मय्यादाभेविनश्च ये' ॥२३॥
 ते कृच्छ्रे यान्त्यशोचाश्च कुहकजीविनश्च ये। अमिषत्रयनं 'याति वनच्छदी वृथैव य' ॥२४॥
 औरभ्रिका मृगव्याधा वह्निज्वाले पतन्ति ये। यान्ति तत्रैव ते विप्रा' यश्चापाकेषु वह्निदः ॥२५॥
 व्रतोपलोपको यश्च स्वाश्रमाद्विच्युतश्च य'। सन्दशयतनामध्ये पततरतावभाषि ॥२६॥
 दिवा स्वप्नेषु 'स्थन्दन्ते ये नरा ब्रह्मचारिणः। पुत्रैरध्यापिता ये तु ते पतन्ति इवभोजने ॥२७॥
 एते चान्ये च नरकाः शतशोऽप्य सहस्रशः। येषु दुष्कृतकर्मणः पच्यन्ते यातनायताः ॥२८॥
 तयैव पापाग्येतानि तथान्यानि सहस्रशः। भुज्यन्ते जातिपुरुषैर्नरकान्तरंगोचरैः ॥२९॥
 वर्णाश्रमविरुद्धञ्च कर्म कुर्वन्ति ये नराः। कर्मणा मनसा वाचा निरयेषु पतन्ति ते ॥३०॥
 अधःशिरोभिदंयन्ते नारकं दिवि देवताः। देवाश्चाधोमुखान् सर्वानधः पश्यन्ति नारकान् ॥३१॥
 स्थावराः 'कृमयोऽज्जाश्च पक्षिणः पशवो नरा। घास्मिकास्त्रिदशरतद्व्यमोक्षिणश्च यथाक्रमम् ॥३२॥
 सहस्रभागः' प्रयमाद्वितीयोऽनुक्रमात्तया। सर्वे ह्येते महाभागा यावन्मुवितसमाश्रयाः ॥३३॥
 यावन्तो जन्तवः स्वर्गे तावन्तो नरकौकसः। पापकृद्वाति नरकं प्रायश्चित्तपराङ्मुखः ॥३४॥
 पापानामनुरूपाणि प्रायश्चित्तानि यद्यथा। तथा तयैव सस्मृत्य प्रोवतानि परमपिभि ॥३५॥

जाने हैं। बीर्य आदि का पान करने वाले, मर्यादा का भेदन करने वाले, अपवित्रता से रहनेवाले और छल से आजी-
 विवा करने वाले कृच्छ्र नरक में जाते हैं। ॥२३॥ व्यर्थ ही वृक्षा का छेदन करने वाले असिपत्रयन नरक में जाते
 हैं। ॥२४॥ भेड से जीविका कमाने वाले, मुंगी का शिकार करने वाले वह्निज्वाले नरक में जाते हैं। पाकरहित
 माजन में भी अग्नि का प्रयोग करने वाले मनुष्य भी उसी नरक में जाते हैं (?) ॥२५॥ व्रत का लोप करने वाले
 और अपने आश्रम से व्युत्पन्न होने वाले सदसयातना नरक में जाते हैं ॥२६॥ जिन ब्रह्मचारियों को दिन में
 स्पर्शदाप होता है वे तथा पुत्रों से पढ़ने वाले मनुष्य इत्यादि नरक में जाते हैं ॥२७॥ इनके अतिरिक्त और
 दूसरे भी सैकड़-हजार नरक हैं, जिनमें दुष्कर्म करने वाले लोग पकड़े जाते हैं ॥२८॥ इसी तरह नरकगर्भी जीव
 हजारों पापों का फल भोगते हैं। कर्म, मन और वाणी से वर्णाश्रम-विरुद्ध कर्म करने वाले मनुष्य नरक में पड़ते
 हैं ॥२९-३०॥ नीचे स्थित वाले नरकवासि जीव स्वर्गगत देवताओं को देखते हैं और देवता भी उन अधोमुख नारकीयों
 को नीचे देखते हैं ॥३१॥ महाभाग अपिगण, स्थावर द्रुम, जलजन्तु पक्षी, पशु मनुष्य धर्मिन् तथा मुक्त पुरुष-
 ये सब प्रमश उत्तरोत्तर मीनिमा को प्राप्त करते हुए मोक्ष पाने तक ही रहते हैं ॥३२-३३॥ जितने जन्तु स्वर्ग में
 हैं, उतने ही नरक में भी हैं। प्रायश्चित्त न करने वाले पापी मनुष्य नरक में जाते हैं ॥३४॥ पापा के अनुरूप
 प्रायश्चित्तों के बारे में मुनियों ने चिन्तन करके बतलाया है ॥३५॥ विप्रवर। स्वायम्भुव आदि मनुओं ने मारी

१ क बभ्रुहा। २ क ०णी द्विजा। मृत्यन सध्याव०। ३ क ०दानिन्दिताश्च। ४ ग ये। ये वृष्णे पा०।
 ५ ख। यान्ति। ६ क ०या य इवपा०। ७ क य। सदसपापमाश्रिय व्रतस्ता०। ८ क स्पन्दन्त। ग स्वन्दन्ते।
 ९ क ख ०वार्णवगो०। १० क ०मय-स्याता प०। ११ क ०सर्गात्प्रथमाद्विर्तयाः नमस्तथा। स
 ०अभागाज्यमा द्विर्तिया तु क्रमास्तथा।

पापे गुरुणि गुरुणि स्वल्पापान्यल्पे च तद्विदः। प्रायश्चित्तानि विप्रेन्द्रा जगुः स्वायम्भुवावयः॥३६॥
 प्रायश्चित्तान्यशेषाणि तपःकर्मात्मकानि वै। यानि तेषामशेषाणां कृष्णानुस्मरणं परम्॥३७॥
 कृते 'पापेऽनुतापो वै यस्य पुनः प्रजायते। प्रायश्चित्तं तु तस्यैकं हरिसंस्मरणं परम्॥३८॥
 प्रातर्निशि तथा सन्ध्यामध्याह्नादिषु संस्मरन्। नारायणमवाप्नोति सद्यः 'पापक्षयाघ्नरः॥३९॥
 विष्णुसंस्मरणात् क्षीणसमस्तबलेशसञ्चयः। मुक्तिं प्रयाति भो विप्रा विष्णोस्तस्यानुकीर्तनात्॥४०॥
 वासुदेवे मनो यस्य जपहोमाच्चर्चनादिषु। तस्यान्तरायो विप्रेन्द्रा देवेन्द्रत्वादिकं फलम्॥४१॥
 यव नाकपृष्ठगमनं पुनरावृत्तिरक्षणम्। यव जपो वासुदेवेति मुक्तिबीजमनुत्तमम्॥४२॥
 तस्माद्बर्हिनिशं विष्णुं संस्मरन् पुरुषो द्विजः। न याति नरकं शुद्धः 'संक्षीणाखिलपातकः॥४३॥
 मनःप्रोतिकरः स्वर्गो नरकस्तद्विपर्ययः। नरकस्वर्गसंज्ञे वै पापपुण्ये द्विजोत्तमाः॥४४॥
 घस्त्वेकमेव दुःखाय सुखापेक्ष्योदयाय च। कोपाय च यतस्तस्माद्वस्तु दुःखात्मकं कृतः॥४५॥
 तदेव प्रीतये भूत्वा पुनर्दुःखाय जायते। तदेव कोपाय यतः प्रसादाय च जायते॥४६॥
 तस्माद्बुद्ध्वात्मक भास्ति न च क्रिञ्चित्सुखात्मकम्। मनसः परिणामोऽयं सुखदुःखादिरक्षणः॥४७॥
 ज्ञानमेव परं ब्रह्मज्ञानं बन्धाय' धेयते। 'ज्ञानात्मकमिदं विश्वं न ज्ञानाद्विद्यते परम्॥४८॥

पाप के भारी प्रायश्चित्त तथा अल्प पाप के अल्प प्रायश्चित्त बताए हैं॥३६॥ तपस्या, मुक्कर्म, आदि प्रायश्चित्त हैं। पर समस्त प्रायश्चित्तों के बाद श्रीविष्णु का स्मरण करना उत्कृष्ट है॥३७॥ जिस पुरुष को पाप करने पर अनुताप होता है, उसका एकमात्र प्रायश्चित्त है—श्रीहरि का स्मरण॥३८॥ प्रातःकाल, सन्ध्याकाल, रात तथा दिन में नारायण का स्मरण करने वाले मनुष्य का सच पाप-क्षय हो जाता है॥३९॥ विप्रबृन्द! विष्णु के सन्ध्या स्मरण से क्षमस्त केशवों को नष्ट कर मनुष्य हरि-कीर्तन के बल में मुक्त हो जाता है॥४०॥ जिस मनुष्य का मन, जप होम-भूजा वें द्वारा वासुदेव में लगता है उसे विष्णु बाधा नहीं सकता, तथा इन्द्र-भद भी उसके लिए सुख है॥४१॥ वहाँ पुनर्जन्म-दायक स्वर्गगमन और वहाँ सर्वोत्तम मोक्षदायक वासुदेव का जप।॥४२॥ इसलिए दिन-रात विष्णु का स्मरण करने वाला शुद्ध ब्राह्मण, जिसमें भयान पाप नष्ट हो जाते हैं, नरक नहीं जाता है॥४३॥ स्वर्ग मन में प्रीति उत्पन्न करने वाला है और नरक उसका प्रतिकूल (अर्थात् दुःखदायक है)। द्विजवर्य! पाप-पुण्य नरक-स्वर्ग सजा वाले हैं॥४४॥ एक ही वस्तु दुःख, सुख, ईर्ष्या और श्रेष्ठ उत्पन्न करती है। इसलिए कोई पदार्थ दुःखसजक नहीं है॥४५॥ जो पदार्थ सुख देकर दुःख देता है, यही फिर श्रेष्ठ और प्रसन्नता उत्पन्न करता है। इसलिए दुःख सुख नामक कोई चीज नहीं है॥४६॥ सुख दुःख होना—यह तब मन का परिणाम है। ज्ञान ही परब्रह्म है और अज्ञान बन्धन में डालता है॥४७॥ यह संसार ज्ञान रूप है और ज्ञान से बँधकर कुछ नहीं है॥४८॥ विप्रबृन्द! विद्याया से जानने योग्य पदार्थों में ज्ञान ही को धारण करना चाहिये।

१ स ० नि भो विप्रा ज०। २ स ० वे च ता०। ३ व ० कृष्णानुस्मरणः। ४ स ग ० क्षय नरः। ५ स ग ० तित्स्वर्गाद्विस्तस्य विष्णोर्नृमयते। वा०। ६ व ० म्। नाकपृष्ठादिग०। ग ० म्। आना०। ७ व ० णत्तेपपा०। ८ स ग ० क्षयम्। ज्ञा०। ९ क स वल्लभा०। १० व ० य नेप्य०। ११ क ज्ञानमेव परं वि०। स ज्ञान च कामद वि०।

विद्ये हि' भो विद्या ज्ञानमेवावधार्यताम् । एवमेतन्मयाख्यातं भवता मण्डल भुव ॥४९॥
 ज्ञानं च सर्वदाणि तथैव नरका द्विजा । समुद्रा पर्वताश्चैव द्वीपा वर्षाणि निम्नगा
 पात् सर्वमाख्यात किं भूय श्रोतुमिच्छथ' ॥
 इति श्रीब्राह्मे महापुराणे पातालनरककीर्तन नाम द्वाविंशोऽध्यायः ॥२२॥

त्रयोविंशोऽध्यायः

तत्रादौ भूभुव स्वरादिवर्णनम्

मुनय ऊचु

यित भवता सर्वमस्माकं सकलं तथा । भुवर्लोकैर्लोकान् श्रोतुमिच्छामहे वयम् ॥१॥
 त्वं ब्रह्मसंस्थानं प्रमाणानि दद्या तथा । समाचक्ष्व महाभाग यथावत्लोकमहर्षण ॥२॥

लोकमहर्षण उवाच

विष्वक्त्रयोर्विष्वक्मयैरवभास्यते । सप्तमूत्रसरिच्छेत्ता तावती पृथिवी स्मृता ॥३॥
 विष्णुप्रमाणा पृथिवी विस्तारपरिमण्डला । नभस्तावत्प्रमाणं हि विस्तारपरिमण्डलम् ॥४॥

इम प्रकार मैंने आपसे पूर्वी मण्डल अलिल पाताल तथा नरको का वर्णन किया ॥४९॥ द्विजगण ।
 जो भवता द्वीपा क्यों तथा नदियों के बारे में भी सक्षय से सब कुछ कह दिया । अब आप फिर क्या मुनना
 हत है ? ॥५०॥

यः ब्रह्म मन्त्रपुराण म पातालनरक-वर्णन नामक द्वाविंशो अध्याय समाप्त ॥२२॥

अध्याय २३

भूः, भुवः और स्वः आदि लोकों का वर्णन

मुनियों ने कहा—आपने सब कुछ हमसे कहा । अब हम भुवः स्व आदि लोकों के बारे में मुनना
 हत है ॥१॥ हे महाभाग ब्रह्मा व स्थिति तथा प्रमाण के सम्बन्ध में भी यथायथं बात कराए ? ॥२॥

लोकमहर्षण बोले—मूय ब्रह्मा व, किरणा मंजरी तक समुद्र नदी और पवन सहित पृथिवी, प्रमाणित
 हता है वहाँ तक उसका प्रमाण है ॥३॥ विस्तार और मण्डल सहित पृथ्वी का विस्तार परिमाण है उतना है ।

१ व हि य विद्या ज्ञान तथा नरकम । २ क म ० पृष्ठतः ६० । ३ व ० दिव्यलोकाख्या ० । ४ व नव
 पृष्ठतः १० । ५ क ० वत्किरपर ० ।

भूमेर्योजनलक्षे तु सौर विप्रास्तु मण्डलम् । लक्षे दिवाकराच्चापि' मण्डलं शशिन स्थितमा
 पूर्णं शतसहस्रे तु योजनानां निदाकरात् । नक्षत्रमण्डलं कृत्स्नमुपरिष्ठात् प्रकाशते
 द्विलक्षे चोत्तरे विप्रा बुधो नक्षत्रमण्डलात् । तावत् प्रमाणभागे तु बुधस्याप्युशना स्थितः
 अङ्गारकोऽपि शुक्रस्य तत्प्रमाणे व्यवस्थितः । लक्षद्वयेन भोमस्य स्थितो देवपुरोहितः
 सौरिर्वृहस्पतेरुद्धर्ध्वं द्विलक्षे समवस्थितः । सप्तविंशमण्डलं तस्मात्तत्समेकं द्विजोत्तमाः
 ऋषिभ्यस्तु सहस्राणां शताद्दुद्ध्वे व्यवस्थितः । मेढोभूतं समस्तस्य उद्योतिश्चक्रस्य वै ध्रुवः
 प्रलोचयमेतत् कथितं सक्षेपेण द्विजोत्तमाः । 'इज्याफलस्य 'भरेया' इज्या चात्र प्रतिष्ठिता' ।
 ध्रुवादूर्ध्वं महर्लोको यत्र ते कल्पवासिनः । एकयोजनकोटी' तु' महर्लोको विधीयते ।
 द्वे कोट्यो तु जनो लोको यत्र ते ग्रहणं सुता । सनन्दनाद्या 'फयिता' विप्राश्चामल्लखेतसः ।
 चतुर्गुणोत्तर' 'चोद्धर्ध्वं जनलोकास्तप स्मृतम्' । वैराजा यत्र ते दवा स्थिता देहविवर्जिता ।
 पद्गुणेन तपोलोकात् सत्यलोको विराजते । 'अनुदमार्क' यत्र सिद्धादिमुनिसेवितम् ।
 पादगन्धं तु यत् किञ्चिद्वस्त्वस्ति पृथिवीमयम् । स भूर्लोकं समाह्व्यतो विरहोऽश्मस्योदितः ।
 भूमिसूयार्धोत्तरं यत् सिद्धादिमुनिसेवितम् । भुवर्लोकरतु सोज्ज्वलतो द्वितीयो मुनिसूतमा ।

परिमाणं विस्तारं और परिमण्डलं सहितं आकाशं वा य है ॥४॥ विप्रबुध' पृथिवी से एक लाख योजन
 पर सूप मण्डल स्थित है और गूय स ऊतना है दूर पर चन्द्र मण्डल स्थित है ॥५॥ चन्द्रमा स एक लाख
 ऊपर सम्पूर्ण नक्षत्र मण्डल प्रकाशित होता है ॥६॥ मधन मण्डल स दो लाख माजन उत्तर बुध मण्डल है
 बुध स उतना है दूर उत्तर शुक्र स्थित है ॥७॥ गुत्र से उत्तर है दूरी पर मंगल स स्थित है । मंगल स दो
 माजन दूर पर बृहस्पति स्थित है ॥८॥ बृहस्पति से दो लाख योजन ऊपर शनि स्थित है । निजधट्टो ।
 एक लाख योजन ऊपर सप्तविंश मण्डल है ॥९॥ सप्तविंश मण्डल से एक लाख योजन ऊपर समस्त उद्योतिश्चक्र
 बना हुआ ध्रुव स्थित है ॥१०॥ विप्रवर' सक्षेप स नीला लोह का बगल में बर दिया । यन्त्रन वः महर्भू
 यत्र पट्टा प्रतिष्ठित हुआ है । ध्रुव स ऊपर महर्लोह है जहाँ कल्पवासि जन रहते हैं ॥११॥ सप्तविंश
 एक करोड़ माजन । दो करोड़ माजन प्रमाण जनोर्गोह है जहाँ वस्य मे निमल वित्त पात्र सनन्दन आदि गुत्र
 हैं ॥१२॥ जनलोका स चौगुना ऊपर तपोर्गोह है जहाँ वैराज सगर्भ देवता गरार रहित होकर स्थित हैं ।
 तपोर्गोह स छह गुना ऊपर सत्यर्गोह विराजमान है जहाँ सिद्ध आदि मुनिया मे निबन ब्रह्मलोक स है ।
 वैरा स गमन करण माय जल बुद्ध आ पाथिव वस्तु है वह भूर्लोक कहलाता है । इसका विस्तार में क्या
 ॥१९॥ मुनिधट्टा । सिद्ध आदि मुनिया स सवित पथ और गूय स ऊपर तपोर्गोह स गारे मः । मं कह स

परितर यत्तु नियुतानि चतुर्वदंश। स्वर्लोक सोऽपि कथितो* 'लोकसंस्थानचि तर्क' ॥१८॥
 मतत वृत्तक विप्रंश्च परिपठ्यते। जनसत्परतया सत्यमिति चावृत्तक त्रयम् ॥१९॥
 तयो* मध्ये महर्लोक इति स्मृत। शूयो भवति कल्पाते योऽत* न च विनश्यति ॥२०॥
 र महालोका मया व कथिता द्विजा। पातालानि च सप्तैव ब्रह्माण्डरमेव विरतर ॥२१॥
 कटाहेन तिथ्ययूद्धमवधस्तथा। कपित्थरय यया बीज सत्त्वतो वै सभावृत्तम् ॥२२॥
 णे पयसा द्विजाश्चाण्डञ्च तदवृत्तम्*। स चाध्वपरिवारोऽसौ वह्निना वेष्टितो बहि ॥२३॥
 ३ वायुना वायुविप्रारस्तु नभसावृत्*। आकाशोऽपि मुनिश्रेष्ठा महता परिवेष्टित ॥२४॥
 राण्यपोषाणि विप्राश्चैतानि सप्त वै। महातञ्च समावृत्य प्रधान समवस्थितम् ॥२५॥
 स्य न तस्यात सह्यान् चापि विद्यते। तदनन्तमसह्यात् प्रमाणेनापि वै यत ॥२६॥
 मण्येयस्य प्रकृति सा परा* द्विज। अण्डाना तु सहस्राणा सहस्राध्वयुतानि च ॥२७॥
 ना तथा सप्त कोटिकोटिशतानि च। दारुण्यग्निर्यथा तैल तिले तद्वत् पुमानिह ॥२८॥
 जेवस्थितो व्यापी चेतनात्मनिवेदन। प्रधानञ्च पुमाश्चैव* 'सर्वभूतानुभूतया' ॥२९॥

१. लाह स्थिति चित्तका वा कहना है कि एक ओर भूय के ७ च एक करोड़ चालू म लाख योजन प्रमाण
 २ है। विप्रा न इसका नाम वृत्तकत्रिलोकी रखा है ॥१८॥ जन सप्त तथा मय—यह म अद्वैतक विचारों
 में क्या है ॥१९॥ वृत्तक और अद्वैतक व मध्य महर्लोक माना गया है जो कल्पान्त में गाय हो जाता है
 ॥२०॥ नहीं हुआ ॥२०॥ द्विजगण। मैं सत्ता महान् क तथा सत्ता पाला म युक्त ब्रह्माण्ड १ विस्तार का
 'कर दिया ॥२१॥ जैसे कथिय (कटल) का बीज सब ओर में डका दृष्टा है उसी तरह यह ब्रह्माण्ड
 कटाह में ऊपरनीचे और तिरछ डका हुआ है ॥२२॥ द्विजगण। दश पुन जल व यद् ब्रह्माण्ड आवन है।
 रागि में बाहर अग्नि से वेष्टित है ॥२३॥ अग्नि ही वायु में और वायु आकाश से आवन है। मनिभ्रष्टा।
 'ग' भा महत्त्वक व परिवेष्टित है ॥२४॥ विप्रकण। ये मय्युग साता द्वापिक (अर्थात् ध्रुव) हैं। पहला व
 आवन कर प्रपात (प्रकृति) अवस्थित है ॥२५॥ उम अनन्तर देव का अन्त और मय्या नहीं है अत एव
 'अन्त का प्रमाण भी नहीं बनाया जा सकता है ॥२६॥ द्विजगण। अथेय ब्रह्माण्ड का कारण परा प्रकृति है।
 'ही हजार व हजार और करोड़ न करके अक्षरिणि ब्रह्माण्ड है। जम का' म अग्नि और निल म तेज
 म रहता है उमा तरह व्यापक जेनन प्रामा प्रपात म अवस्थित है। द्विजगण। सब प्राणिमा म अनु
 वेष्ट विष्णु गति प्रकृति और पुण्य अथय धम का कारण करते हैं। प्रकृति-पुण्य ने पापयम तथा आधय का

१ य ० वृत्तोत्तर। २ व ० ना द्विजसत्त्वविधि०। ३ य ० वृत्तानविधि०। ४ व ० व ० लाहयय वृत्तक।
 ५ ० क्षत्रामध्य। ६ य या हनेम। ७ य वरमन०। ८ य ० ना। भूमाग्नि नय माग्नि म०। ९ य ० रात्रिना।
 १० य ० मानरा। प्र०। ११ व ० नेन स्थि०। १२ व न ० नामयु०।

विष्णुशक्त्या द्विजधेष्टा धृतौ संश्रयधर्म्मिणौ। तयोः संव पृथग्भावे कारणं संश्रयस्य च॥३०॥
 क्षोभकारणभूता च सर्गकाले द्विजोत्तमाः। यया शैत्यं जले वातो विभक्ति कणिकागतम्॥३१॥
 जगच्छक्तिस्तस्या विष्णोः प्रधानपुरुषात्मकम्। यया च पादपो मूलस्कन्धशास्त्रारिसंयुतः॥३२॥
 'आद्यबीजात् प्रभवति बीजाज्यन्यानि वै ततः। प्रभवन्ति तत्तस्तेभ्यो भवन्त्येते परे द्रुमाः॥३३॥
 तेऽपि तत्क्षणद्रव्यकारणानुगता द्विजाः। एवमव्याकृतात् पूर्व जायते महदादयः॥३४॥
 'विशेषान्तास्तत्तस्तेभ्यः सम्भवन्ति सुरादयः। तेभ्यश्च पुत्रारतेषां तु पुत्राणां परमे सुताः॥३५॥
 बीजाद्वृक्षप्ररोहेण यथा नापचयस्तरोः। भूतानां भूतसर्गेण नैवारत्यपचयस्तथा॥३६॥
 सन्निधानाद्ययाकाशकालाद्याः कारणं तरोः। तयैवापरिणामेन विश्वस्य भगवान् हरिः॥३७॥
 श्रीह्रियोजे यथा 'मूलं जालं पश्चाद्भुरो तया। फण्डकोयास्तस्या दुर्ध्वं क्षीरं तद्वच्च तण्डुलः॥३८॥
 गुण्याः फण्डश्च सन्तो वै यान्त्याविर्भावमात्मनः। प्ररोहेतुसामप्रयमासाद्य मुनिरुत्तमाः॥३९॥
 तथा 'कर्मस्वनेकेषु देवाद्यास्तनवः स्थिताः। विष्णुशक्तिं समासाद्य प्ररोहमुपयाति वै॥४०॥
 स च विष्णुः परं ब्रह्म यतः सत्त्वंमिदं जगत्। जगच्च यो यत्र चेदं 'यस्मिन्विलयमप्यति॥४१॥
 तद्ब्रह्म परमं धाम सदसत् परमं षडम्। यस्य सत्त्वंमभेदेन जगदेतच्चराचरम्॥४२॥
 स एव मूलप्रकृतिव्यवतरोऽपि जगच्च सः। तस्मिन्नेव सत्त्वं सत्त्वं याति तत्र च तिष्ठति॥४३॥

कारण श्री शक्ति ही है, जो सृष्टिकाल में क्षोभ का कारण बन जाती है॥३०॥ द्विजवर! जैसे बामु जल-बण से प्राप्त सैश्यबी बीजा बनता है वैसे सृष्टि-काल में सच्चरु-न-कारण भूत विष्णु-शक्ति प्रधान-गुरुत्व रूप जगत् का कारण करती है॥३१॥ जैसे मूल-रन्ध्र-यात्रा आदि से समुक्त वृक्ष प्रथम बीज से उत्पन्न होता है दूसरे बीज उस वृक्ष से और अन्य वृक्ष उन बीजा से उत्पन्न होते हैं तथा हे द्विजो! वे भी उमी लक्षण वाले वृक्ष के कारण के अनुगत होते हैं, उमी तरह अव्याकृत (मूल प्रकृति) से पूर्व महदादि उत्पन्न होत हैं॥३२-३४॥ ये सब विशेष के अन्त वाले हैं अर्थात् विशेष उनमें अन्तित होता है उनसे ही सब गुरु आदि समुत्पन्न हुआ करते हैं, फिर उनसे पुन उत्पन्न होते हैं और उनपुत्रों के भी परम पुत्र-मीमादि हुआ करते हैं॥३५॥ जैसे बीजा के रूत हुए वृक्ष का अभाव नहीं होता उमी प्रकार प्रणि-मृष्टि से प्राणिमा का अभाव नहीं हो सकता॥३६॥ जैसे सन्निधान में वृक्ष के धावका, बाण आदि कारण होते हैं उमी तरह विश्व के अपरिणाम के होने से भगवान् श्री हरि कारण हन्त हैं॥३७॥ जैसे धान के बीज में मूल, नाव, पत्र, अक्षुर, फण्ड (पार) बाण (आवरण) पुण्ड, दूध, धावन, गुण (मृगी) और बाण अक्षुर बीज कारण-तामसी को प्राण कर उत्पन्न हो जाते हैं उमी प्रकार अनार प्रकार के बीजों में स्थित देव आदि के लीर विष्णु लीन को प्राण कर अक्षुरित हो जाते हैं॥३८-४०॥ वह विष्णु परब्रह्म है जिससे यह सम्पूर्ण जगत् उत्पन्न हुआ है और जिसमें यह लीन हो जायगा॥४१॥ वह ब्रह्म परम धाम, सत् जगत् रूप और षड्म पद है, जिसमें यह चराचर स्थित सम्पूर्ण जगत् अन्तित है॥४२॥ यही मूल प्रकृति और व्यवस्था सत्कार है। उमी में यह जगत् स्थित रहता है तथा लीन होता है॥४३॥ यही बीजों का,

१ क ०ट्या। प्रवृत्त्या०॥ २ क आदिबी० ३ क ०विषय तत्त० ४ क ०मे नृवि० ५ क ०ग गता-
 भूतपातरे। बा० ६ क ०संगु लोके० ७ क यस्मिन्नेव सत्त्वं०॥

कर्ता क्रियाणां स च इज्यते ऋतुः स एव तत् कर्मफलञ्च तस्य यत् ।
युगादि यस्माच्च भवेदशेषतो हरेन किञ्चिच्चद्व्यतिरिषत्तमरित तत् ॥४४॥
इति श्रीब्राह्मे महापुराणे भूर्भुव स्वरादिकी तंन नाम त्रयोविंशोऽध्यायः ॥२३॥

चतुर्विंशोऽध्यायः

ध्रुवसंस्थितिनिर्णयणम्

लोमहर्षण उवाच

तारामय भगवत शिशुमाराकृति प्रभो । दिवि रूपं हरेर्यन्तु तस्य पुच्छे स्थितो ध्रुवः ॥१॥
संप्रभमन् भ्रामयति चन्द्रादित्यादिकान् ग्रहान् । भ्रमतमनु तं यान्ति नक्षत्राणि च क्षत्रवत् ॥२॥
सूर्याचन्द्रमसौ तारा नक्षत्राणि ग्रहे सह । वातानीकमयैर्धेध्रुवे बद्धानि तानि वै ॥३॥
शिशुमाराकृतिं प्रोक्तं यद्रूपं ज्योतिषा दिवि । नारायण पर धाम तस्मात्तार स्वयं हृदि ॥४॥
उत्तानपावतनपस्तामाराध्वं प्रजापतिम् । स ताराशिशुमारस्य ध्रुव पुच्छे व्यवस्थितः ॥५॥

यन्मरुतः पूजितः और कर्म फल भी है । उसी हरि से समस्त युग होते हैं और उससे अतिरिक्त कोई पदार्थ ही नहीं है ॥४४॥

श्री ब्रह्ममहापुराण म भूर्भुव स्व आदि लोको के वर्णन नामक सैईसवा अध्याय समाप्त ॥२३॥

अध्याय २४

ध्रुव की स्थिति का वर्णन

लोमहर्षण बोले—तारो से व्याप्त तथा शिशुमार तारे (ताराचक्र का भेद) की आकृति जैसे भगवान् हरि के दिव्य रूप के पुच्छ पर ध्रुव स्थित है ॥१॥ स्वयं घूमता हुआ वह ध्रुव सूर्य-चन्द्र आदि ग्रहो को भी घुमाता है । घूमते हुए ध्रुव के पीछे नक्षत्र समूह चक्र की तरह घूमता है ॥२॥ सूर्य चन्द्रमा तारे नक्षत्र ग्रह—ये सब वायु समूह रूपी बधन से ध्रुव म बंधे हुए हैं ॥३॥ आकाश म शिशुमार की आकृति की तरह जो ज्योतिषा का रूप बद्धा गया है उसका आधार स्वयं परमपाम नारायण है ॥४॥ ध्रुव उस प्रजापति की उपासना कर शिशुमार की पूछ

१ ग ०या वै सः । २ स ०दि यत्साधनमप्यगः । ३ ग ०दि तत्साधनमप्यगः । ४ ग ०यन्व तः । ५ ग ०मयैर्वाधेध्रुवः ।

आधारः शिशुमारस्य सर्वाध्यक्षो जनादर्दनः। ध्रुवस्य शिशुमारश्च ध्रुवे भानुर्ध्ववस्थितः॥१॥
 तदाधारं जगच्चेदं सदेवासुरमानुषम्। येन विप्रा विधानेन तन्मे शृणुत साम्प्रतम्॥७॥
 विवस्वानप्यभिर्मसिर्प्रसत्यापो। रसात्मिकाः। वर्धत्यम्बु ततश्चाग्नमग्नादमलिलं जगत्॥८॥
 विवस्वानंशुभिस्तोषणरादाय जगतो जलम्। सोमं पुष्ट्यत्ययेन्दुश्च वायुनाड्ढीमयं दिवि॥९॥
 जलं विक्षिप्यतेऽश्रेषु धूमाग्न्यनिलमूत्सिपु। न अश्रयन्ति यततेग्यो जलाग्न्यभ्राणि तान् दतः॥१०॥
 अभ्रस्थाः प्रपतन्त्यापो वायुना समुदीरिताः। संस्कारं कालजनित विप्राश्चासाद्य निर्मलाः॥११॥
 "सरित्समुद्रा" भोमास्तु तथापः प्राणिसम्भवाः। चतुष्प्रकारा भगवानादत्ते सदिता द्विजाः॥१२॥
 आकाशगङ्गासलिलं तथाहृत्य गमस्तिमान्। अनभ्रगतमेवोर्व्या सद्यः क्षिपति रश्मिभिः॥१३॥
 तस्य संस्पर्शनिर्धूतापापपङ्क्तो द्विजोत्तमाः॥ न याति नरकं मर्त्यो दिव्यं स्नानं हि तत्तमृतम्॥१४॥
 "दृष्टसूर्यं हि तद्वारि पतत्यभ्रविना दिवः। आकाशगङ्गासलिलं तद्गोभिः क्षिप्यते रवेः॥१५॥
 कृत्तिहाडिषु "श्रक्षेपु विषमेष्टम्बम् यदिदवः। दृष्ट्वार्कं पतितं शेषं तद्गङ्गां दिग्गजोद्धृतम्॥१६॥
 युग्मक्षेपुषु तु यत्तोषं पतत्यर्कोद्धृतं दिवः। तत्सूर्यरश्मिभिः सद्यः समादाय निररयते॥१७॥
 उभयं पुण्यमत्ययं नृणां पापहरं" द्विजाः। आकाशगङ्गासलिलं दिव्यं स्नानं" द्विजोत्तमाः॥१८॥

परं व्यवस्थित हुआ ॥५॥ शिशुमार का आधार सर्वाध्यक्ष जनार्दन है। ध्रुव का आधार शिशुमार है और ध्रुव म सूर्य अवस्थित है ॥६॥ विप्रवृन्द । वह सूर्य देवता, राजा और मनुष्य सहित इस जगत् का जित विधान से आधार है वह अब आप सुनिये ॥७॥ आठ मासो मे सूर्य रसरूप जल को धीरे धीरे है। तब जल दृष्टि होती है, उससे भस्म उपजता है और भस्म को खाने वाला निलिल जगत् है ॥८॥ सूर्य अपनी तीक्ष्ण किरणो से जगत् के जल को ग्रहण कर सोम का पोषण करता है और वह इन्दु वायुमय नाडियो के द्वारा आकाश मे स्थित होकर जल को धूम, अग्नि और वायु रूप मेध मे बिखेर देता है। वहीं से जल के न गिरने के कारण उसका नाम अभ्र (बादल) पडा है ॥९-१०॥ विप्रवृन्द । वायु से प्रेरित बादल का निर्मल जल कालजन्म सत्कार को प्राप्त कर गिरता है ॥११॥ द्विजगण । भगवान् सूर्य नदी, समुद्र, पृथिवी और प्राणी से उत्पन्न चार प्रकार के जल को ग्रहण करते हैं ॥१२॥ सूर्य आकाशगत के जल को भी ग्रहण कर बिना बादल के ही अपनी किरणो से पृथ्वी पर (उसे) बरसाते हैं ॥१३॥ द्विजवर्ग, उस जल के स्पर्श से मनुष्य का पाप-पङ्क धुल जाता है और इस दिव्य स्नान के बाद उसे नरक मे नहीं जाना पडता है ॥१४॥ सूर्य के न दिलाई पडनेपर भी बिना बादल के जो वर्षा होती है, वह आकाश-गंगा का जल सूर्य-किरणो के द्वारा प्रक्षिप्त होता है ॥१५॥ कृत्तिहा आदि विषम नक्षत्रो मे जो सूर्य-दर्शन के साथ वर्षा होती है, उसे दिग्गजो के द्वारा उज्ज्वल-आकाश गंगा का जल समझना चाहिये ॥१६॥ युग्म नक्षत्रों मे जो आकाश से जल बरसता है, उन जल को सूर्य-रश्मियो तत्काल ग्रहण कर प्रक्षिप्त करती है ॥१७॥ द्विजगण । वह जल अत्यन्त पवित्र और पापहारी है। आकाश-गंगा का जल दिव्य स्नान है ॥१८॥ द्विजगण । मेघो से बरसा हुआ जल ओषधियों को पुष्ट करता है और वह जल प्राणियो के जीवन के लिए

१ ग ध्रुवस्य ध्रुवः। २ रसात्मिकाः। ३ वर्धत्यम्बु। ४ ततश्चाग्नमग्नादप्याग्ने जः। ५ यः सूर्यः तस्मादाग्न्याग्निः। ६ सोमेन्द्रं पुष्ट्यते चेन्दुर्वायुः। ७ यः सूर्यः तस्मादाग्न्याग्निः। ८ यः सूर्यः तस्मादाग्न्याग्निः। ९ यः सूर्यः तस्मादाग्न्याग्निः। १० यः सूर्यः तस्मादाग्न्याग्निः। ११ यः सूर्यः तस्मादाग्न्याग्निः। १२ यः सूर्यः तस्मादाग्न्याग्निः। १३ यः सूर्यः तस्मादाग्न्याग्निः। १४ यः सूर्यः तस्मादाग्न्याग्निः। १५ यः सूर्यः तस्मादाग्न्याग्निः। १६ यः सूर्यः तस्मादाग्न्याग्निः। १७ यः सूर्यः तस्मादाग्न्याग्निः। १८ यः सूर्यः तस्मादाग्न्याग्निः।

यत्तु मेघैः समुत्सृष्टं वारि तत् प्राणिनां द्विजाः । पुष्पात्योषधयः सर्व्वी जीवनायामृतं हि तत् ॥१९॥
 तेन वृद्धिं परा नीतः सकलश्चोपधीगणः । साधकः फलपाकान्तः प्रजानान्तु प्रजायते ॥२०॥
 तेन यज्ञान् यथाप्रोक्तान्मानवाः शास्त्रयक्षुयः । कुर्वन्तेऽहरहश्चैव देवानाप्यादयन्ति ते ॥२१॥
 एवं यज्ञाश्च वेदाश्च वर्णाश्च द्विजपूर्व्वेकाः । सर्व्वदेवनिष्ठायाश्च पशुभूतगणाश्च ये ॥२२॥
 वृद्ध्या घृतमिदं सर्व्वं जगत्स्यावरजङ्गमम् । सापि निष्पाद्यते वृष्टिः सवित्रा मुनिसत्तमाः ॥२३॥
 आघारभूनः सवितुध्रुवो मुनिवरोत्तमाः । ध्रुवस्य शिशुमारोऽसौ सोऽपि नारायणाश्रयः ॥२४॥
 हृदि नारायणस्तस्य शिशुमारस्य संस्थितः । विभर्त्ता सर्व्वभूतानामादिभूतः सनातनः ॥२५॥
 एवं मया मुनिश्रेष्ठा ब्रह्माण्डं समुदाहृतम् । भूतमद्वादिभिर्मुक्तं किमन्यच्छ्रोतुमिच्छथ ॥२६॥
 इति श्रीब्राह्मे महापुराणे ध्रुवसंस्थितिनिरूपणं नाम चतुर्विंशोऽध्यायः ॥२४॥

पञ्चविंशोऽध्यायः

तत्रादौ सर्वतीर्थं माहात्म्यवर्णनम्

मुनय ऊचुः

पृथिव्या घानि तीर्थानि पुण्यान्यायतनानि च । ववदुमहंति धर्मज्ञ भोतुं नो वर्तते मनः ॥१॥

अमृत रूप है ॥१९॥ उस जल से सब ओषधियाँ सर्वापित होती हैं । ओषधि समूह फलने-फूलने और पकने तक प्रजाओं के उपयोग में आता है ॥२०॥ इसलिए शास्त्ररूप चक्षु वाले मनुष्य देवताओं की वृष्टि के लिए प्रतिदिन यज्ञ करते हैं ॥२१॥ इस प्रकार यज्ञ, वेद, ब्राह्मण आदि वर्ण, देव समूह, पशु-प्राणी-गण, स्थावर, जगम—एतद्रूप यह संपूर्ण जगत् वृष्टि के द्वारा धारण किया जाता है । मुनिवर्ग । वह वृष्टि भी सूर्य से निष्पन्न होती है ॥२२-२३॥ मुनिवर । सूर्य का आधार ध्रुव है, ध्रुव का शिशुमार और वह भी नारायण का आश्रित है ॥२४॥ शिशुमार के हृदय में सब प्राणियों का धारण करने वाले आदिकारण सनातन नारायण स्थित हैं ॥२५॥ मुनिवर्ग । इस तरह पृथ्वी, समुद्र आदि से युक्त ब्रह्माण्ड का वर्णन मैंने कर दिया । अब आप क्या सुनना चाहते हैं ? ॥२६॥

श्री ब्रह्ममहापुराण में ध्रुव-संस्थिति-निरूपण नामक चौबीसवाँ अध्याय समाप्त ॥२४॥

अध्याय २५

सकल तीर्थों के माहात्म्य का वर्णन

मुनियों ने कहा—हे धर्मज्ञ । पृथिवी पर जितने पवित्र तीर्थ तथा आश्रय हैं, उन सबके बारे में हम सुनना चाहते हैं ॥१॥

१स सकल० । २क ० दान्तस्तमादेतत्प्रजाय० । ३क येन । ४क स वन्त्यह० । ५क ० हस्तिरच दे० । ६ग कृपयो । ७क ० इव सर्वभू० । ८ग सर्वमत्र निष्पाद्यते यथा । साऽ० । ९क ० म् । एव निष्पाद्यते वृद्ध्या सा विभ्याम् । १०क यवोऽपि सि० । ११क ० वि घान्यान्या० ।

लोमहर्षण उवाच

यस्य हस्तो च पादो च मनश्चैव सुसयतम् । विद्या तपश्च कीर्तिश्च स तीर्थफलमश्नुते ॥२॥
मनो विशुद्धं पुरुषस्य तीर्थं वाचा तथा चेन्द्रियनिग्रहश्च ।
एतानि तीर्थानि शरीरजानि, स्वर्गस्य मार्गं प्रतिबोधयन्ति ॥३॥
वित्तमन्तर्गतं दुष्टं तीर्थस्नानेन शुध्यति । शतशोऽपि जलेधौ त स्मृताभाऽभिवाञ्छितम् ॥४॥
न तीर्थानि न दानानि न श्रतानि न चाश्रमा । दुष्टाशयं दम्भरुचिं पुनन्ति व्युत्थितेन्द्रियम् ॥५॥
इन्द्रियाणि वशे कृत्वा यत्र यत्र वसेन्नरः । तत्र तत्र कुक्षेत्रं प्रयागं पुष्करं तथा ॥६॥
'तस्माच्छृणुष्व वक्ष्यामि तीर्थान्याप्तनानि च । सक्षेपेण मुनिश्चेठा पृथिव्या यानि नानि वै ॥७॥
विस्तरेण न शक्यन्ते वक्तुं वर्णयन्तेरपि । प्रथमं पुष्करं तीर्थं नैमिषारण्यमेव च ॥८॥
प्रयागञ्च प्रवक्ष्यामि धर्मारण्यं द्विजोत्तमा । धेनुकं चम्पकारण्यं सैन्धवारण्यमेव च ॥९॥
पुण्यञ्च मगधारण्यं दण्डकारण्यमेव च । गया प्रभासं श्रीतीर्थं दिव्यं कनकलं तथा ॥१०॥
भृगुतुङ्गं हिरण्पासं भीमारण्यं कुशस्थलीम् । लोहाकुलं रुक्मिणीं सप्तशतमेव च ॥११॥
महाबलं कोटितीर्थं सव्यं पापहरं तथा । रूपतीर्थं शूकरवं च त्र्यम्बकं महाफलम् ॥१२॥
योगतीर्थं सोमतीर्थं तीर्थं साहोदकं तथा । तीर्थं कोकामुखं पुण्यं बदरीशं मेव च ॥१३॥
सोमतीर्थं मुद्गकूटं तीर्थं स्कन्दाश्रमं तथा । कोटितीर्थञ्चाग्निपदं तीर्थं पञ्चशिला तथा ॥१४॥

धर्मोद्भवं कोटितीर्थं तीर्थं बाधप्रमोचनम्। गङ्गाद्वारं पञ्चकूटं मध्यकेसरमेव च॥१५॥
चक्रप्रभं मतङ्गञ्च शृङ्गदण्डञ्च विश्रुतम्। दंष्ट्राकुण्डं विष्णुतीर्थं सार्धैरामिकमेव च॥१६॥
तीर्थं मत्स्यतिलञ्चैव ववरी सुप्रभं तथा। ब्रह्मकुण्डं बह्मिकुण्डं तीर्थं सत्यपदं तथा॥१७॥
चतुःश्रोतश्चतुःशृङ्गं शैलं द्वादशधारकम्। मानसं स्थूलशृङ्गञ्च स्थूलदण्डं तयोर्ध्वशी॥१८॥
लोकपालं मनुवरं सोमाह्वं शैलमेव च॥ सदाप्रभं मेरुकुण्डं तीर्थं सोमामिषेचनम्॥१९॥
महाश्रोतं कोटरकं पञ्चधारं त्रिधारकम्। सप्तधारैकधारञ्च तीर्थं चामरफण्टकम्॥२०॥
शाङ्गप्रभं चक्रतीर्थं कोटिद्रुममनुत्तमम्। जित्प्रभं देवहूदं तीर्थं विष्णुहूदं तथा॥२१॥
शङ्खप्रभं देवकुण्डं तीर्थं वज्रायुधं तथा। अग्निप्रभञ्च पुत्रागं देवप्रभमनुत्तमम्॥२२॥
विद्याधरं सगान्धर्वं श्रोतीर्थं ब्रह्मणो हूदम्। सातीयं लोकपालारय मणिपूरगिरि तथा॥२३॥
तीर्थं पञ्चहूदञ्चैव पुण्यं विण्डारकं तथा। मलयं गोप्रभावाञ्च गोवरं षट्मूलकम्॥२४॥
स्नानदण्डं प्रयागञ्च गुह्यं विष्णुपदं तथा। कन्याश्रमं दायुकुण्डं जम्बूमागं तयोत्तमम्॥२५॥
गमस्तितीर्थञ्च तथा ययातिपतनं शुचि। कोटितीर्थं भद्रवटं महाकालवनं तथा॥२६॥
नर्मदातीर्थमपरं तीर्थव्रजं तयार्बुदम्। पिङ्गुतीर्थं वासिष्ठं तीर्थञ्च पृथुस्तम्भम्॥२७॥
तीर्थं दीर्घासिकं नाम तथा पिञ्जरकं शुभम्। ऋषितीर्थं ब्रह्मपुङ्गवं वसुतीर्थं कुमारिकम्॥२८॥
शत्रुतीर्थं पञ्चनदं रेणुकातीर्थमेव च। पैंतामहञ्च विमलं रुद्रपादं तयोत्तमम्॥२९॥

कोटितीर्थं, अग्निपदं तीर्थं, पञ्चशिला ॥१५॥ धर्मोद्भवं कोटितीर्थं, बाधप्रमोचनं तीर्थं, गङ्गाद्वारं, पञ्चकूटं, मध्य-
केसरं ॥१६॥ चक्रप्रभं, मतङ्गं, प्रसिद्धं कृशदण्डं दंष्ट्राकुण्डं, विष्णुतीर्थं, सार्धैरामिकं तीर्थं ॥१७॥ मत्स्यतिलं बदरी, सुप्रभं,
ब्रह्मकुण्डं, बह्मिकुण्डं, सत्यपदं तीर्थं ॥१८॥ चतुःश्रोतं, चतुः शृङ्गं, शैलं, द्वादशधारकं, मानसं स्थूलशृङ्गं, उर्वशी- तीर्थं
॥१८॥ लोकपालं, मनुवरं, सोमाह्वं, शैलं, सदाप्रभं, मेरुकुण्डं, सोमामिषेचनं तीर्थं ॥१९॥ महाश्रोतं, कोटरकं, पञ्चधारं
॥१९॥ शाङ्गप्रभं, चक्रतीर्थं, कोटिद्रुमं, जित्प्रभं, देवहूदं विष्णुहूदं
विद्याधरं, सप्तधारं, एकधारं, चामरफण्टकं तीर्थं ॥२०॥ शाङ्गप्रभं, चक्रतीर्थं, कोटिद्रुमं, जित्प्रभं, देवहूदं विष्णुहूदं
॥२१॥ शङ्खप्रभं, देवकुण्डं, वज्रायुधं, अग्निप्रभं, पुत्रागं, देवप्रभं ॥२२॥ विद्याधरं गान्धर्वं, श्रोतीर्थं ब्रह्महूदं सातीयं,
॥२३॥ लोकपालं, मणिपूरगिरि ॥२३॥ पञ्चहूदं, विण्डारकं, मलयं, गोप्रभावं गोवरं, षट्मूलकं ॥२४॥ स्नानदण्डं, गुह्यं
लोकपालं, मणिपूरगिरि ॥२३॥ पञ्चहूदं, विण्डारकं, मलयं, गोप्रभावं गोवरं, षट्मूलकं ॥२४॥ स्नानदण्डं, गुह्यं
विष्णुपदं, प्रयागं, कन्याश्रमं, दायुकुण्डं, जम्बूमागं ॥२५॥ गमस्तितीर्थं, ययातिपतनं, कोटितीर्थं भद्रवटं, महाकालवनं
॥२६॥ नर्मदातीर्थं, तीर्थव्रजं, अर्बुदं, पिङ्गुतीर्थं, वासिष्ठं, पृथुस्तम्भं ॥२७॥ दीर्घासिकं पिञ्जरकं, ऋषितीर्थं, ब्रह्म-
॥२८॥ वसुतीर्थं, कुमारिकं ॥२८॥ शत्रुतीर्थं, पञ्चनदं, रेणुकातीर्थं, पैंतामहं, विमलं, रुद्रपादं ॥२९॥ मणिमत्तं, कामाक्ष्यं,
गुणं, वसुतीर्थं, कुमारिकं ॥२८॥ शत्रुतीर्थं, पञ्चनदं, रेणुकातीर्थं, पैंतामहं, विमलं, रुद्रपादं ॥२९॥ मणिमत्तं, कामाक्ष्यं,

१५ ०र्थं सर्वपापप्र०। १६ ०र्थं सार्धैरामिकमेव च। सूर्यप्रभं महाकुण्डं तीर्थं सो०। २७ गङ्गाधरं। २८
शत्रुकुण्डं। २९ दंष्ट्राकुण्डं। ३० विष्णुकुण्डं। ३१ ०शवार०। ३२ स्थूलशृङ्गं। ३३ स्थूलकूटं। ३४ मेसधरं।
३५ ०मानिषी०। ३६ च। सूर्यप्रभं मण्डपु०। ३७ ०हाधोय कोननदं। ३८ ०ज्वरि०। ३९
शान्ति०। ४० वसुतीर्थं। ४१ ०र्थं बदलीहूदमेव च। ४२ ०र्थं वदलीहूदमुत्त०। ४३ ०म्।
विमलं। ४४ ०र्थं विष्णुप्रभं।

लोमहर्षण उवाच

यस्य हस्तौ च पादौ च मनश्चैव सुसयतम्^१। विद्या तपश्च कीर्तिश्च स तीर्थफलमश्नुते ॥२॥
 मनो विशुद्धं पुरुषस्य तीर्थं, चाचा^२ तथा चेन्द्रियनिग्रहश्च^३।
 एतानि तीर्थानि शरीरजानि, स्वर्गस्य मार्गं प्रतिबोधयन्ति ॥३॥
 वित्तमन्तर्गतं दुष्टं तीर्थस्नानेन शुध्यति। शतशोऽपि जलधौतं सुराभाषडभिदाशुचि ॥४॥
 न तीर्थानि न दानानि न व्रतानि न चाश्रमाः। दुष्टाशयं दम्भहृदि पुनन्ति व्युत्थितेन्द्रियम् ॥५॥
 इन्द्रियाणि वशे कृत्वा यत्र यत्र वसेन्नरः। तत्र तत्र कुक्षेत्रं प्रयागं पुष्करं तथा ॥६॥
 'तस्माच्छृणुष्वं वक्ष्यामि तीर्थान्यायतनानि च। संक्षेपेण मुनिश्रेष्ठा पृथिव्यां दानि वानि वै ॥७॥
 विस्तरेण न शक्यन्ते वक्तुं वयं शतैरपि। प्रथमं पुष्करं तीर्थं नैमिषारण्यमेव च ॥८॥
 प्रयागञ्च प्रवक्ष्यामि धर्मारण्यं द्विजोत्तमाः। धेनुकं चम्पकारण्यं सन्धवारण्यमेव च ॥९॥
 पुण्यञ्च मगधारण्यं दण्डकारण्यमेव च। गया प्रभासं श्रीतीर्थं दिव्यं वनरालं तथा ॥१०॥
 भृगुतुङ्गं हिरण्याक्षं भीमारण्यं कुशस्थलीम्। लोहाकुलं स्केशरं मन्दारारण्यमेव च ॥११॥
 महाबलं कोटितीर्थं सर्वपापहृत् तथा। रूपतीर्थं शूकरव्यं चन्द्रतीर्थं महाफलम् ॥१२॥
 योगतीर्थं सोमतीर्थं तीर्थं साहोदकं तथा। तीर्थं कोकामुखं पुण्यं बदरीशैलमेव च ॥१३॥
 सोमतीर्थं तुङ्गकूटं तीर्थं स्कन्दाश्रमं तथा। कोटितीर्थञ्चाग्निपदं तीर्थं पञ्चशिखं तथा ॥१४॥

लोमहर्षण बोले—जिसके हाथ, पैर और मन में सयम है तथा विद्या, तप और कीर्ति है, वह तीर्थ फल की प्राप्ति करता है ॥२॥ पुरुष के शुद्ध मन और वाणी तथा इन्द्रियो का निग्रह तीर्थरूप हैं। ये शरीरजात तीर्थ स्वर्ग के मार्ग का बोध कराते हैं ॥३॥ सी बर जल से पाया जाने पर भी मद्य-पान जैसे पवित्र नहीं होता उसी दुष्ट दुष्ट मन तीर्थस्नान से शुद्ध नहीं होता है ॥४॥ तीर्थ, दान, व्रत और आश्रम दुष्ट वित्त वाले दम्भी तथा अजितेन्द्रिय मनुष्य को पवित्र नहीं कर सकते ॥५॥ इन्द्रिया को वश में करके मनुष्य जहाँ निवास करेगा, वही उसको कुक्षेत्र, प्रयाग तथा पुष्कर आदि तीर्थ प्राप्त हो जायेंगे ॥६॥ मुनिश्रेष्ठ ! इसलिए पृथिवी पर जितने तीर्थ तथा आश्रम हैं, उनके सम्बन्ध में आप संक्षेप से सुन लीजिये। विस्तार से तो सो बर्षों में भी नहीं बड़ा जा सकता है ॥७॥ द्विजवर्य ! प्रथम तीर्थ पुष्कर है। तब नैमिषारण्य, प्रयाग, धर्मारण्य, धेनुक, चम्पकारण्य, सन्धवारण्य ॥८-९॥ पवित्र मगधारण्य, दण्डकारण्य, गया प्रभास, श्रीतीर्थ दिव्य वनराल ॥१०॥ भृगुतुङ्ग, हिरण्याक्ष, भीमारण्य, दारवा-पुरी, लोहाकुल, वेदार, मन्दारारण्य ॥११॥ महाबल कोटितीर्थ, सर्वपापहृत्, रूपतीर्थ, शूकरव, महाफलदायक चन्द्र-तीर्थ ॥१२॥ योगतीर्थ, सोमतीर्थ, साहोदक तीर्थ, कोकामुख पवित्र बदरीशैल ॥१३॥ सोमतीर्थ, तुङ्गकूट, स्कन्दाश्रम,

१ स सुसुप्तः। २ स वाचो मनस्विन्द्रिः। ३ स वाच्य मनस्विन्द्रिः। ४ स ग प्रहृत्पः।
 ५ ०। ४ ग ० न्न नात्र पु०। ५ क ० ण्डमषामु०। ६ क दुष्टवृद्धिः। ७ ल ० चि न पु०। ८ क ० नन्तीह
 द्विजोत्तमा। ९ ०। स ० नन्त्यजिते०। १० ग तत्र। १० स ग तस्य। ११ स ग्य ध्रुवः। १२ स
 वेणवः। १३ क ० मासतीर्थं च दि०। १४ क हिमवारण्य। १५ क ० हार्णल च के०। १६ क हिमालयः। स महालयः।
 १७ स ग्यतीर्थः। १८ क मुद्रिकरः। स शूकर च क०। १९ क घोरतीर्थः। स व्यामर्तीर्थः। २० क साहोद०।
 स साहोद०। २१ क धमतीर्थः। २२ स स्कन्दाश्रमः। २३ क स ० पा। स्यप्रम धेनुकः सतमापिष तथा।

धर्मोद्भवं कोटितीर्थं तीर्थं बाधप्रमोचनम्। गङ्गाद्वारं पञ्चकूटं मध्यकैसरमेव च॥१५॥
चक्रप्रभं मतङ्गञ्च भृशदण्डञ्च विश्रुतम्। दंष्ट्राकुण्डं विष्णुतीर्थं सार्वभौमिकमेव च॥१६॥
तीर्थं मत्स्यतिलञ्चैव बदरी सुप्रभं तथा। ब्रह्मकुण्डं वह्निकुण्डं तीर्थं सत्यपदं तथा॥१७॥
अनुसोतस्वतु शृङ्गं शैलं द्वादशधारकम्। मानसं स्थूलशृङ्गञ्च स्थूलदण्डं तयोर्ध्वंशो॥१८॥
लोकपालं मनुवरं सोमाह्वं शैलमेव च। सदाप्रभं मेरुकुण्डं तीर्थं सोमामिषेचनम्॥१९॥
महालोतं कोटरकं पञ्चधारं त्रिधारकम्। सप्तधारं चतुर्धारञ्च तीर्थं चामरकण्टकम्॥२०॥
शाकप्रभं चक्रतीर्थं कोटिद्रुममनुत्तमम्। विल्वप्रभं देवहृदं तीर्थं विष्णुहृदं तथा॥२१॥
शङ्खप्रभं देवकुण्डं तीर्थं यज्ञापुषं तथा। अग्निप्रभञ्च पुष्पागं देवप्रभमनुत्तमम्॥२२॥
विद्यापरं सयान्धर्वं श्रीतीर्थं ब्रह्मणो हृदम्। सातीर्थं लोकपालारथं मणिपूरगिरिं तथा॥२३॥
तीर्थं पञ्चहृदञ्चैव पुष्पं पिण्डारकं तथा। मलयं गोप्रभाञ्च गोवरं वटमूलकम्॥२४॥
स्नानदण्डं प्रयागञ्च गुह्यं विष्णुपदं तथा। कन्याधर्मं वायुकुण्डं जम्बूमार्गं तयोत्तमम्॥२५॥
गभस्तितीर्थञ्च तथा ययातिपतनं शुवि। कोटितीर्थं भद्रवटं महाकालवनं तथा॥२६॥
नर्मदातीर्थमपरं तीर्थं वज्रं तथावृन्दम्। पिङ्गुतीर्थं सवासिष्ठं तीर्थञ्च पृथुशृङ्गम्॥२७॥
तीर्थं दोर्वासिकं नाम तथा पिङ्गरकं शुभम्। ऋषितीर्थं मल्लवृक्षं वसुतीर्थं कुमारिकम्॥२८॥
शत्रुतीर्थं पञ्चनदं रेणुकातीर्थमेव च। पंतामहञ्च विमलं रद्रपादं तथोत्तमम्॥२९॥

कोटितीर्थं, अग्निपद तीर्थं पञ्चशिखं ॥१४॥ धर्मोद्भवं कोटितीर्थं, बाधप्रमोचनं तीर्थं, गङ्गाद्वारं, पञ्चकूटं, मध्य-
कैसर ॥१५॥ चक्रप्रभं मतङ्गं प्रसिद्धं भृशदण्डं दंष्ट्राकुण्डं विष्णुतीर्थं, सार्वभौमिकतीर्थं ॥१६॥ मत्स्यतिलं, बदरी, सुप्रभं
ब्रह्मकुण्डं, वह्निकुण्डं, सत्यपदतीर्थं ॥१७॥ अनुसोतं, अतुं शृङ्गं शैलं, द्वादशधारकं मानसं स्थूलशृङ्गं उर्ध्वंशो तीर्थं
॥१८॥ लोकपालं, मनुवरं, सोमाह्वं शैलं सदाप्रभं मेरुकुण्डं सोमामिषेचनं तीर्थं ॥१९॥ महालोतं कोटरकं पञ्चधारं,
त्रिधारं, सप्तधारं, चतुर्धारं तीर्थं ॥२०॥ शाकप्रभं, चक्रतीर्थं, कोटिद्रुमं विल्वप्रभं देवहृदं, विष्णुहृदं
॥२१॥ शङ्खप्रभं, देवकुण्डं, यज्ञापुषं, अग्निप्रभं, पुष्पागं, देवप्रभं ॥२२॥ विद्यापरं गायवं श्रीतीर्थं ब्रह्महृदं, सातीर्थं,
॥२३॥ लोकापालं, मणिपूरगिरिं ॥२३॥ पञ्चहृदं, पिण्डारकं, मलयं गोप्रभाञ्च गोवरं वटमूलकं ॥२४॥ स्नानदण्डं, गुह्यं,
विष्णुपदं, प्रयागं, कन्याधर्मं, वायुकुण्डं, जम्बूमार्गं ॥२५॥ गभस्तितीर्थं ययातिपतनं कोटितीर्थं भद्रवटं, महाकालवनं
॥२६॥ नर्मदातीर्थं, तीर्थं वज्रं, वृन्दं, पिङ्गुतीर्थं, वासिष्ठं, पृथुशृङ्गं ॥२७॥ दोर्वासिकं पिङ्गरकं ऋषितीर्थं, ब्रह्म-
वृक्षं, वसुतीर्थं, कुमारिकं ॥२८॥ शत्रुतीर्थं पञ्चनदं, रेणुकातीर्थं, पंतामहं विमलं रद्रपादं ॥२९॥ मणिमतं, वामाध्वं,

१४ ०१ सर्वपापप्र०। १४ ०२ सार्वभौमिकमेव च। मूर्धप्रभं महाकुण्डं तीर्थं सो०। २४ गगापर। ३५
गङ्गाकुण्ड। ४४ दंष्ट्राकुण्ड। ५४ विष्णुकुण्ड। ६५ गगापर०। ७४ स्थूलशृङ्ग। ८४ स्थूलशृङ्ग। ९५ ममपर।
१०५ मानसं शै०। ११४ च। मूर्धप्रभं मधुकु०। १२४ महाशत्रु वाहनद ग०। १३५ पञ्चधारं०। १४४
गात्रिपा०। १५४ यज्ञपुषं। १६४ ०१ बदरीहृदमेव च। वि०। १७ ०५ बदरीहृदमुत्त०। १७५ ०५
विमलं। १८४ ग विष्णुप्रभं।

मणिमतञ्च कामाक्ष्य कृष्णतीर्थं कुशाविलम् । यजनं याजनञ्चैव तथैव ब्रह्मवालुक्म् ॥३०॥
 पुष्पन्यासं पुण्डरीकं मणिपूरं तथोत्तरम् । दीर्घसत्रं ह्यपदं तीर्थं चानशनं तथा ॥३१॥
 गङ्गोद्भेदं शिवोद्भेदं नर्मदोद्भेदमेव च । वस्त्रापदं दाहबलं छायारोहणमेव च ॥३२॥
 सिद्धेश्वरं मित्रबलं कालिकाश्रममेव च । वटावटं भद्रवटं कौशाम्बी च दिवाकरम् ॥३३॥
 द्वीपं सारस्वतञ्चैव विजयं कामदं तथा । रुद्रकोटिं सुमनसं तीर्थं सद्भावनामितम् ॥३४॥
 स्वमन्त्रपञ्चकं तीर्थं ब्रह्मतीर्थं सुदर्शनम् । सत्ततं पृथिवीसर्व्वं पारिप्लवपृथूदको ॥३५॥
 दशाश्वमेधिकं तीर्थं सपिञ्ज विषयान्तिकम् । कोटितीर्थं पञ्चनदं वाराहं यक्षिणीहृदम् ॥३६॥
 पुण्डरीकं सोमतीर्थं मुञ्जवाटं तथोत्तरम् । बदरीवनमासीनं रत्नमूलकमेव च ॥३७॥
 लोकद्वारं पञ्चन्तीर्थं कपिलतीर्थमेव च । सूर्य्यतीर्थं शङ्खिनी च गवां भवनमेव च ॥३८॥
 तीर्थञ्च यत्तराजस्य ब्रह्मावतं सुतीर्थञ्च । कामेश्वरं मातृतीर्थं तीर्थं शीतवनं तथा ॥३९॥
 स्नानलोपापहञ्चैव माससंस्तरकं तथैव । दशाश्वमेधं केदारं ब्रह्मोदुम्बरमेव च ॥४०॥
 सप्तपिकुण्डञ्च तथा तीर्थं द्वेष्टाः सुजम्बुकम् । ईहास्पदं कोटिकूटं किन्दानं किञ्जल्पं तथा ॥४१॥
 कारण्डव्यं चावेष्ट्यञ्च त्रिविष्टपमयापरम् । पाणिखातं मिश्रकञ्च मधूवटमनोजवौ ॥४२॥
 कौशिकी देवतीर्थञ्च तीर्थञ्च अणमोचनम् । दिव्यञ्च नृगधूम्राक्षं तीर्थं विष्णुपदं तथा ॥४३॥
 अमराणां ह्रदं पुण्यं कोटितीर्थं तथापरम् । श्रीकुञ्जं शालितीर्थञ्च नैमिशोदञ्च विभ्रुतम् ॥४४॥
 ब्रह्मस्थानं सोमतीर्थं न्यातीर्थं तथैव च । ब्रह्मतीर्थं मनस्तीर्थं तीर्थं वै पादपावनम् ॥४५॥
 सोमन्धिकवनञ्चैव मणितीर्थं सरस्वती । ईशानतीर्थं प्रवरं पावनं पाञ्चदशजिकम् ॥४६॥
 त्रिशूलधारं माहेन्द्रं देवस्थानं कृतालम् । शारम्भरी देवतीर्थं सुवर्णाक्षं कलिं हृदम् ॥४७॥
 क्षीरस्रव विष्णुपाशं भृगुतीर्थं कुशोद्भवम् । ब्रह्मतीर्थं ब्रह्मयोनिं नीलपर्व्वतमेव च ॥४८॥

कृष्णतीर्थं कुशाविलं, यजनं, याजनं, ब्रह्मवालुकम् ॥३०॥ पुष्पन्यासं, पुण्डरीकं, मणिपूरं, दीर्घसत्रं, ह्यपदं, अनशनं ॥३१॥
 गङ्गोद्भेदं शिवोद्भेदं नर्मदोद्भेदं, वस्त्रापदं, दाहबलं, छायारोहणं ॥३२॥ सिद्धेश्वरं, मित्रबलं, कालिकाश्रमं, वटावटं,
 भद्रवटं, कौशाम्बीं दिवाकरं ॥३३॥ द्वीपं, सारस्वतं, विजयं, कामदं, रुद्रकोटिं, सुमनसं, सद्भावनामितं ॥३४॥ स्वमन्त्र-
 पञ्चकं, ब्रह्मतीर्थं, सुदर्शनं सत्ततं, पृथिवीसर्व्वं, पारिप्लव, पृथूदको ॥३५॥ दशाश्वमेधिकं, सपिञ्ज, विषयान्तिकं, कोटि-
 तीर्थं, पञ्चनदं वाराहं यक्षिणीहृदं, ॥३६॥ पुण्डरीकं, सोमतीर्थं, मुञ्जवाटं, बदरीवनं, रत्नमूलकं, ॥३७॥ लोकद्वारं
 पञ्चन्तीर्थं, कपिलतीर्थं सूर्य्यतीर्थं यक्षिणी, गवां भवनं ॥३८॥ यत्तराजतीर्थं, ब्रह्मावतं, सुतीर्थं, कामेश्वरं, मातृतीर्थं
 शीतवनं ॥३९॥ स्नानलोपापहं माससंस्तरकं, दशाश्वमेधं केदारं, ब्रह्मोदुम्बरं ॥४०॥ सप्तपिकुण्डं, सुजम्बुकं
 ईहास्पदं, कोटिकूटं किन्दानं किञ्जल्पं ॥४१॥ कारण्डव्यं, चावेष्ट्यं, त्रिविष्टपं, पाणिखातं, मिश्रकं, मधूवटं, मनोजवौ, ॥४२॥
 कौशिकी, देवतीर्थं अणमोचनं, नृगधूम्रं, विष्णुपदं ॥४३॥ देवनागो वा पवित्रं ह्रदं कोटितीर्थं, श्रीकुञ्जं शालिनीर्थं
 प्रविष्टं नैमिषं ॥४४॥ ब्रह्मस्थानं, सोमतीर्थं, न्यातीर्थं ब्रह्मतीर्थं, मनस्तीर्थं, पादपावनं ॥४५॥ सोमन्धिकवनं
 मणितीर्थं, सरस्वती, ईशानतीर्थं, प्रवरं, पावनं, पाञ्चदशजिकं ॥४६॥ त्रिशूलधारं, माहेन्द्रं, देवस्थानं, कृतालम्,
 शारम्भरी, देवतीर्थं, सुवर्णाक्षं, कलिं, हृदं ॥४७॥ क्षीरस्रव, विष्णुपाशं, भृगुतीर्थं, कुशोद्भवं, ब्रह्मतीर्थं, ब्रह्मयोनिं, नीलपर्व्वतं, ॥४८॥

कुञ्जाम्बक भद्रवट वसिष्ठपदमेव च। स्वर्गद्वार प्रज्ञाद्वार कालिकाश्रममेव च॥४९॥
 रत्नावतं सुगन्धाश्व कपिलावनमेव च। भद्रकण्हदञ्चैव शङ्खपुरणहृद तथा॥५०॥
 सप्तसारस्वतञ्चैव तीर्थमीशनस तथा। कपालमोचनञ्चैव अदकीर्णञ्च काम्यकम्॥५१॥
 चतुसामुद्रिकञ्चैव शतिकाञ्च सहस्रिजम्। रेणुक पञ्चवटक विमोचनमयीजसम्॥५२॥
 स्थाणुतीर्थं कुरोस्तीर्थं स्वर्गद्वार कुशध्वजम्। विदेवेश्वर मानवक कूप नारायणाश्रयम्॥५३॥
 गङ्गाहृद वटञ्चैव धदरीपाटन तथा। इन्द्रमार्गमेकरात्र क्षीरकावासमेव च॥५४॥
 सोमतीर्थं दधीञ्च श्रुततीर्थञ्च भो द्विजा। कोटितीर्थस्थलोञ्चैव भद्रकालीहृद तथा॥५५॥
 अरुणतीवनञ्चैव ब्रह्मावतं तयोत्तमम्। अश्ववेदी कुञ्जावन यमुनाप्रभव तथा॥५६॥
 वीर प्रमोक्ष सिन्धूत्थमृषिकुल्या सकृत्तिकम्। उर्वोत्सकमणञ्चैव मायाविद्योदभव तथा॥५७॥
 महाभूमौ वैतसिकारूप सुन्दरिकाश्रमम्। बाहुतीर्थं नारदो विमलाशोकमेव च॥५८॥
 तीर्थं पञ्चनदञ्चैव मार्कण्डेयस्य धीमत। सोमतीर्थं सितोदञ्च तीर्थं मत्स्योदरी तथा॥५९॥
 सूर्यप्रभ सूर्यतीर्थमशोकवनमेव च। अरुणास्पद कामदञ्च शुक्रतीर्थं सवालुक्म्॥६०॥
 पिशाचनोचनञ्चैव सुभद्राहृदमेव च। कुण्ड विमलचण्डस्य तीर्थं चण्डेश्वरस्य च॥६१॥
 ज्येष्ठस्थानहृदञ्चैव पुण्य ब्रह्मसर तथा। जंगोपव्यगृहा चैव हरिकेशदन तथा॥६२॥
 अजामुलसरञ्चैव घण्टारुणहृद तथा। पुण्डरीकहृदञ्चैव दापी दकौटकस्य च॥६३॥
 सुवर्णास्योदपानञ्च श्वेततीर्थहृद तथा। कुण्ड घर्षरिकाश्वश्च श्यामाकूपञ्च चन्द्रिका॥६४॥
 श्मशानस्तन्मकूपञ्च विनायकहृद तथा। कूप सिन्धूदभवञ्चैव पुण्य ब्रह्मसर तथा॥६५॥
 रत्नावास तथा तीर्थं नागतीर्थं पुलोमकम्। भक्तहृद क्षीरसर प्रेताधार कुमारकम्॥६६॥
 ब्रह्मावतं कुशावतं दक्षिर्णोदपानकम्। शृङ्गतीर्थं महातीर्थं तीर्थश्रेष्ठा महानदी॥६७॥

कुञ्जाम्बक भद्रवट वसिष्ठपद स्वर्गद्वार प्रज्ञाद्वार कालिकाश्रमम्॥४९॥ रत्नावतं सुगन्धाश्व कपिलावन भद्रकण्हद
 शङ्खपुरणहृद॥५०॥ सप्तसारस्वत तीर्थमीशनस कपालमोचन अदकीर्ण काम्यक॥५१॥ चतुसामुद्रिक शतिका सह
 स्रिज रेणुक पञ्चवट विमोचन मयीजसम्॥५२॥ स्थाणुतीर्थं कुशध्वज स्वर्गद्वार कुशध्वज विदेवेश्वर मानवक
 कूप नारायणाश्रय॥५३॥ गङ्गाहृद वट धदरीपाटन इन्द्रमार्ग एकरात्र क्षीरकावास॥५४॥ सोमतीर्थं दधीच
 श्रुततीर्थं भो द्विजा। कोटितीर्थस्थलोचनैव भद्रकालीहृद॥५५॥ अरुणतीवन ब्रह्मावत अश्ववेदी कुञ्जावन यमुनाप्रभव॥५६॥
 वीर प्रमोक्ष सिन्धूत्थ मृषिकुल्या सकृत्तिक उर्वोत्सकमण मायाविद्योदभव॥५७॥ महाभूमौ वैतसिकारूप सुन्दर
 काश्रम बाहुनाय नारदो विमलाशोक॥५८॥ विद्वान् मार्कण्डेय का पञ्चनदतीर्थं सोमतीर्थं सितोद मत्स्योदरी
 तीर्थं पञ्चनदतीर्थं मार्कण्डेयस्य धीमत। सोमतीर्थं सितोद मत्स्योदरी
 तीर्थं पञ्चनदतीर्थं मार्कण्डेयस्य धीमत॥५९॥ सूर्यप्रभ सूर्यतीर्थं अशोकवन अरुणास्पद कामद शुक्रतीर्थं सवालुक॥६०॥ पिशाचनोचन सुभद्राहृद
 विमलचण्ड कुण्ड चण्डेश्वरतीर्थं॥६१॥ ज्येष्ठस्थानहृद पवित्र ब्रह्मसर जंगोपव्यगृहा हरिकेशवन॥६२॥ अज
 मुलसर घण्टारुणहृद पुण्डरीकहृद दकौटकापी॥६३॥ सुवर्णास्योदपान श्वेततीर्थहृद घर्षरिकाकुण्ड श्यामाकूप
 चन्द्रिका॥६४॥ श्मशानस्तन्मकूप विनायकहृद सिन्धूदभवक पवित्र ब्रह्मसर॥६५॥ रत्नावास नागतीर्थ पुलोमक
 भक्तहृद क्षीरसर प्रेताधार कुमारक॥६६॥ ब्रह्मावतं कुशावतं दक्षिर्णोदपान शृङ्गतीर्थं महातीर्थं तीर्थश्रेष्ठा,
 महानदी,

दिव्यं ब्रह्मसरं पुण्यं गयाशीर्षक्षयं वटम् । दक्षिणं चोत्तरञ्चैव गोमयं रूपशीतिकम् ॥६८॥
 कपिलोद्भवं गृध्रवटं सावित्रीहृदमेव च । प्रभासनं सोतवनं योनिद्वारञ्च धेनुकम् ॥६९॥
 धन्यकं कोटिनाथप्रञ्च मतङ्गहृदमेव च । पितृकूपं रुद्रतीर्थं शक्रतीर्थं सुमालिनम् ॥७०॥
 ब्रह्मस्थानं सप्तकुण्डं मणिरत्नहृदं तथा । कौशिकीयं भरतञ्चैव तीर्थं ज्येष्ठालिका तथा ॥७१॥
 विदेवेश्वरं कल्पसरः कन्यासवेद्यमेव च । निदचीवाप्रभवञ्चैव वसिष्ठाश्रममेव च ॥७२॥
 देवकूटञ्च कूपञ्च वसिष्ठाश्रममेव च । योराश्रमं ब्रह्मसरो ब्रह्मवीरावकापिली ॥७३॥
 कुमारधारा श्रीधारा गौरीशिवरमेव च । शुनः कुण्डोऽप्य तीर्थञ्च नन्दितीर्थं तथैव च ॥७४॥
 कुमारवासं धोवासमीर्वाशीतीर्थमेव च । कुम्भकर्णहृदञ्चैव कौशिकीहृदमेव च ॥७५॥
 धम्मन्तीर्थं कामतीर्थं तीर्थमुद्दालकं तथा । सन्ध्यातीर्थं कारतोय कपिलं लोहितार्णवम् ॥७६॥
 शोणोद्भवं घंशगुल्ममृषभं कलतीर्थकम् । पुण्यावतीहृदं तीर्थं तीर्थं यदरिकाश्रमम् ॥७७॥
 रामतीर्थं पितृवनं विरजातीर्थमेव च । मार्कण्डेयवनञ्चैव कृष्णतीर्थं तथा वटम् ॥७८॥
 रोहिणीकूपप्रवरमिन्द्रधुम्नसारञ्च यत् । सानुगतं समाहेन्द्रं श्रीतीर्थं धीनदं तथा ॥७९॥
 इषुतीर्थं वार्यभञ्च कावेरीहृदमेव च । कन्यातीर्थञ्च गोवर्णं गाधश्रीस्थानमेव च ॥८०॥
 बदरीहृदमग्न्यश्च मध्यस्थानं विकर्णकम् । जालीहृदं देवकूपं कुशप्रवणमेव च ॥८१॥
 सवर्देवव्रतञ्चैव जगन्नाथमहृदं तथा । तयान्यद्वाल्लिल्लस्थानी सपूर्वाणां तयापरम् ॥८२॥
 तयान्यश्च महर्षीणामखण्डितहृदं तथा । तीर्थेऽप्येतेषु विविधत् सम्यक् यद्वाप्तमन्वितः ॥८३॥
 स्नानं करोति यो मर्त्यः सोपवासी जितेन्द्रियः । देवान्धोऽन्मनुष्याश्च पितृन् सन्तप्य च क्रमात् ॥८४॥
 अम्यक्ष्यं देवतास्तत्र स्मृत्वा च रजनीत्रयम् । पृथक् पृथक् फलं तेषु प्रतिलीयेत् भो द्विजाः ॥८५॥

महानदी ॥६७॥ गयाशीर्षक्षयवट, दक्षिण, उत्तर, गोमय, रूपशीतिक ॥६८॥ कपिलाहृद, गृध्रवट, सावित्रीहृद, प्रभासन, सोतवन, योनिद्वार, धेनुक ॥६९॥ धन्यक, कोटिनाथ, भगवहृद, पितृकूप, रुद्रतीर्थ, शक्रतीर्थ, सुमाली ॥७०॥ ब्रह्मस्थान, सप्तकुण्ड, मणिरत्नहृद, कौशिकीय भरत, ज्येष्ठालिका ॥७१॥ विदेवेश्वर, कल्पसर, कन्यासवेद्य, निदची-
 वाप्रभव, वसिष्ठाश्रम ॥७२॥ देवकूट, कूप, योराश्रम, ब्रह्मवीरावकापिली ॥७३॥ कुमारधारा, श्रीधारा, गौरीशिवर, शुन-
 कुण्ड, शुनस्तीर्थं नन्दितीर्थं ॥७४॥ कुमारवास, धोवास, श्रीमीतीर्थं?, कुम्भकर्णहृद, कौशिकीहृद ॥७५॥ धम्म-
 तीर्थं, कामतीर्थं, उद्दालकतीर्थं सन्ध्यातीर्थं, कारतोय, कपिल लोहितार्णव ॥७६॥ शोणाद्भवं, घंशगुल्म, मृषय, कल्-
 तीर्थक, पुण्यावतीहृद यदरिकाश्रम ॥७७॥ रामतीर्थं, पितृवन, विरजालीर्थं, मार्कण्डेयवन, कृष्णतीर्थं, वटतीर्थं ॥७८॥
 रोहिणीकूपप्रवर, इन्द्रधुम्नसर सानुगतं, समाहेन्द्र, श्रीतीर्थं, धीनद ॥७९॥ इषुतीर्थं, वार्यभतीर्थं, कावेरीहृद, कन्या-
 तीर्थं, गोवर्णं, गाधश्रीस्थान ॥८०॥ बदरीहृद, मध्यस्थान, विकर्णक, जालीहृद, देवकूप, कुशप्रवण ॥८१॥ सवर्देवव्रत,
 जगन्नाथमहृद—ये तीर्थं ओर आश्रम है । इसी प्रकार वाल्लिल्लस्थानी और दूसरे महर्षियों के भी अखण्डित हृद अर्थात्
 तीर्थस्थान हैं ॥८२॥ द्विजगण ' जो मनुष्य जितेन्द्रिय, उपवासी तथा पुण्य यद्वाप्तु होकर इन तीर्थों में स्नान करता
 है और क्रमा देव, क्षत्रिय, मनुष्य, तथा गिरजा का तर्पण कर देव-पूजन करते हुए तीन रात बड़ी श्रम करता है, वह

प्राप्नोति ह्यमेधस्य नरो नास्त्यत्र संशयः। यस्त्विदं शृणुयान्नित्यं तीर्थमाहात्म्यमुत्तमम्॥
पठेच्च श्रावयेद्वापि सर्व्वपापैः प्रमुच्यते ॥८६॥
इति श्रीब्राह्मे महापुराणे तीर्थमाहात्म्यवर्णनं नाम पञ्चविंशोऽध्यायः ॥२५॥

षड्विंशोऽध्यायः

तत्रादी स्वयम्भूब्रह्मर्षिसवादवर्णनम्

मुनय ऊचुः ॥

पृथिव्यामुत्तमा^१ भूमि धर्मकामार्थमोक्षदाम्^२। तीर्थानामुत्तमं तीर्थं ब्रूहि नो वदतावर ॥१॥

लोमहर्षेण उवाच

इमं प्रदत्तं मम गुरुं पप्रच्छुर्मुनयः पुरा। तमहं सम्प्रक्षयामि यत्पृच्छस्व द्विजोत्तमा ॥२॥
स्वाश्रमे सुमहापुण्ये^३ नानापुष्पोपशोभिते। नानाद्रुमलताकीर्णे नानामृगगणैर्युते ॥३॥
पुत्राणां कर्णिकारैश्च सरलैर्देवदारुभिः। शालैस्तालैस्तमालैश्च पनसैर्धन्वादिभिः ॥४॥
पाटलाशोकवकुलैः करवीरैः सचम्पकैः। अग्नैश्च विविधैर्बृक्षैर्नानापुष्पोपशोभितैः ॥५॥

प्रत्येक तीर्थ में पृथक्-पृथक् अवयव दत्त करने का फल प्राप्त करता है। जो इस उत्तम तीर्थ-माहात्म्य का वचन-मन्त्र करेगा या करायेगा, वह सब पापों से मुक्त हो जायेगा। ॥८३-८६॥

श्री ब्रह्ममहापुराण में तीर्थमाहात्म्य-वर्णन नामक पञ्चसर्गों अध्याय समाप्त ॥२५॥

अध्याय २६

ब्रह्मा और ब्रह्मर्षियों का सवाद-वर्णन

मुनियों ने कहा—हे वक्ताओं में श्रेष्ठ! पृथिवी में धर्म अर्थ-काम-मोक्षदायक उत्तम भूमि तथा तीर्थों में उत्तम तीर्थ को हमें बतलाइये ॥१॥

लोमहर्षेण बोले—मुनिवृन्द! पहले मुनियां ने यही प्रश्न मेरे गुरु से पूछा था। इसे मैं बतलाऊंगा, आप लोग मुनिये ॥२॥ महापवित्र, नाना प्रकार के पुष्पों से सुशोभित, अनेक वृक्ष-वृत्ताओं से व्याप्त, पशु-पक्षीगणों से युक्त, पुत्राण, कर्णिकार (कनैल या बनकचम्पा), सरल (सदर) देवदारु, शाल (साखू), ताल तमाल, पनस (बटहल), घव, सादिर (सैर), पाटला, अजोब, वकुल (मोलसिटी) करवीर, चम्पा और विविध प्रकार के द्रुमर

कुक्षेत्रे समासीनं व्यास मतिमतां वरम् । महाभारतकर्तारं सत्त्वशास्त्रविशारदम् ॥६॥
 अध्यात्मनिष्ठं सर्वज्ञं सर्वभूतहिते रतम् । पुराणागमवपारं वेदवेदाङ्गपारगम् ॥७॥
 पराशरसुतं शान्तं पद्मपत्रायतेक्षणम् । ब्रह्मसम्पादयुः प्रीत्या मुनयः संशितव्रतः ॥८॥
 कश्यपो जमदग्निश्च भरद्वाजोऽप्य गौतमः । वसिष्ठो जैमिनिर्धौम्यो मार्कण्डेयोऽप्य वाल्मीकिः ॥९॥
 विश्वामित्रः शतानन्दो वात्स्यो गार्ग्योऽप्य आसुरिः । सुमन्तुर्भागवतो नाम कश्यपो मेधातिथिर्गुरुः ॥१०॥
 माण्डव्यश्च्यवनो घृष्णो ह्यसितो देवलस्तथा । मोद्गल्यस्तृणयज्ञश्च पिप्पलादोऽकृतव्रणः ॥११॥
 संवतः कौशिको रैम्यो मंत्रेयो हरितस्तथा । शाण्डिल्यश्च विभाण्डश्च दुर्वासा लोमशस्तथा ॥१२॥
 नारदः पर्वतश्चैव वैशम्पायनगालवी । भास्करिः पूरणः सूत पुलस्त्यः कपिलस्तथा ॥१३॥
 उत्कः पुलहो वायुर्देवस्थानश्चतुर्भुजः । सनत्कुमारः पलश्च कृष्णः कृष्णानुभौतिकः ॥१४॥
 एतैर्मनुनिवरैश्चान्यैर्द्युतः सत्यवतोसुतः । रराज स मुनिः श्रीमान् नक्षत्रैरिव चन्द्रमाः ॥१५॥
 शानागतान्मुनीन् सर्वान् पूजयामास वेदवित् । तेष्वपि तं प्रतिपूज्यैव कथां चक्रुः परस्परम् ॥१६॥
 कथान्ते ते मुनिधेष्ठाः कृष्ण सत्यवतोसुतम् । पप्रच्छुः स शयं सर्वं तपोवननिवासिनः ॥१७॥

मुनय ऊचुः

मुने वेदाश्च शास्त्राणि पुराणागमभारतम् । भूतं भव्यं भविष्यञ्च सर्वं जानासि धात्रमयम् ॥१८॥

बुद्धौ तथा पुण्यौ ते श्री मुनीर्मनः पुराणं च अपने आथम म बँडे हुए शान्त, विद्वत्प्रेष्ठ, महाभारत-रचयिता,
 सर्वशास्त्र निष्णात, अध्यात्मनिष्ठ, सर्वज्ञ, सब प्राणियों के कल्याण में निरत, पुराण-शास्त्र-वक्ता, वेद-वेदाङ्ग-पारग
 और कमल के समान दीर्घं नत्र बाल पराशर-पुत्र व्यास के दर्शन करने के लिये महाव्रती मुनिगण प्रसन्नतापूर्वक आये ॥१-
 ८॥ कश्यप, जमदग्नि, भरद्वाज, गौतम, वसिष्ठ, जैमिनि, धौम्य, मार्कण्डेय, वाल्मीकि, विश्वामित्र, शतानन्द, वात्स्य,
 गार्ग्य आसुरि सुमन्तु भागव, कश्यप, मेधातिथि, माण्डव्य, च्यवन, घृष्ण, असित देव, मोद्गल्य, तृणयज्ञ, पिप्पलाद,
 अकृतव्रण मवन, कौशिक रैम्य, मंत्रेय, हरित शाण्डिल्य, विभाण्ड, दुर्वासा, लोमश, नारद, पर्वत, वैशम्पायन, गालव,
 भास्करि पूरण, सूत पुण्ड्रस्त्य, कपिल, उत्क, पुलह, वायु, देवस्थान, चतुर्भुज, सनत्कुमार, पल, कृष्ण, कृष्णानु-
 भौतिक—इन मुनिधेष्ठा तथा दूसरे भी कथिया के मध्य व्यास उगी प्रकार शोभित हो रहे थे जिन प्रकार गन्धर्वों
 के बीच चन्द्रमा ॥९-१५॥ वेदवेत्ता व्यास ने आगन्तुक मुनियों का सम्मान किया । उन्होंने श्री व्यास की पूजा कर
 आपन म कथा-वार्तालाप छेड़ दिया ॥१६॥ मुनिवर ! क्या के अन्त में तपोवन-निवासियों ने व्यास से सदेह
 पूछा ॥१७॥

मुनिपों ने कहा—हे मुन ! अगर वेद, शास्त्र पुराण आगम महाभारत भूत, भविष्य, वर्तमान—सब कुछ

कष्टेऽस्मिन् दुःखबहुले निःसारे भवसागरे'। रागप्राहाकुले रौद्रे विषयोदकसंप्लवे ॥१९॥
इन्द्रियावतंकलिले दृष्टोमिशतसङ्कुले। मोहपङ्खाविले दुर्गे 'लोभगम्भीरदुस्तरे ॥२०॥
निमज्जजगदालोवय निरालम्बमचेतनम्। पृच्छामस्तवा महाभाग दूहि नो 'मुनिसत्तम ? ॥२१॥
धेयः किमत्र संसारे भैरवे लोमहर्षणे। उपदेशप्रदानेन लोकानुद्धर्तुमर्हसि ॥२२॥
दुर्लभं परमं क्षेत्रं वक्तुमर्हसि मोक्षदम्। पृथिव्यां कर्ममूमिञ्च धोतुमिच्छामहे वयम् ॥२३॥
कृत्वा किल नरः सम्यक् कर्मभूमौ 'यथोदितम्। प्राप्नोति परमां सिद्धिं नरकञ्च विकर्मतः ॥२४॥
मोक्षक्षेत्रे तथा मोक्षं प्राप्नोति 'पुरुषः सुधीः'। तस्माद् दूहि महाप्राज्ञ यत्पृष्टोऽसि द्विजोत्तम ? ॥२५॥
श्रुत्वा तु वचनं तेषां मुनीनां भावितात्मनाम्। ध्यासः 'प्रोवाच भगवान्भूतभव्यभविष्यवित् ॥२६॥

ध्यास उवाच

शृणुध्वं मुनयः सर्वे वक्ष्यामि यदि पृच्छथ। यः संवादोऽभवत् पूर्वमूपीणां ब्रह्मणा सह ॥२७॥
मेष्टुष्टे" तु विस्तीर्णं नानारत्नविभूषिते। नानाद्रुमलताकीर्णं नानापुष्पोपशोभिते ॥२८॥
नानापक्षिरते रम्ये "नानाप्रसवनाकुले। नानासत्त्वसमाकीर्णं नानाद्वन्द्व्यंसमन्विते ॥२९॥
नानावर्णशिलाकीर्णं नानाधातुविभूषिते। नानामुनिजनाकीर्णं नानाश्रमसमन्विते ॥३०॥

जानते हैं ॥१८॥ अनुराग रूपी प्राहा से व्याप्त, मयकर, विषयरूपी जल से परिपूर्ण, इन्द्रिय रूपी आवर्तों (मँवर) से युक्त, सैकड़ों तरंगों से सङ्कुल, मोहरूपी कीचड़ से समन्वित, बटिन, लोमरूपी गम्भीरता से दुस्तर तथा कष्टमय इस सारहीन भवसागर में चेतनाहीन और नि सहाय होकर डूबते हुए विश्व को देखकर हम आपसे पूछते हैं कि इसे भयानक तथा रोमाञ्चोत्सादक संसार में क्या नाम है ? ॥१९-२१॥ हे महाभाग ! हे मुनिश्रेष्ठ ! आप उपदेश देकर लोगों का उद्धार कर सकते हैं। परम दुर्लभ तथा मोक्ष-दायक क्षेत्र को हमें बतलाइये। पृथिवी पर कर्ममूमि के बारे में भी हम सुनना चाहते हैं ॥२२-२३॥ मूमि पर शास्त्रविहित बर्णों को करके मनुष्य परम सिद्धि को प्राप्त करता है तथा कुर्म करने से नरक भी जाता है ॥२४॥ उसी प्रकार विद्वान् पुरुष मोक्ष-क्षेत्र में मोक्ष प्राप्त करता है। इसलिए, हे महाविद्वन् ! हे द्विजवर्य ! जो हमने पूछा है, उसे बतलाइये ॥२५॥ वक्ष्यातां मुनियों के वचन सुनकर भूत-मविष्य-वर्तमान-वेत्ता भगवान् ध्यास बोले ॥२६॥

ध्यास ने कहा—मुनिवृन्द ! यदि आप पूछते हैं तो मुनिये। पहले ब्रह्मा के साथ ऋषियां का जो संवाद हुआ था, वही मैं बतलाऊंगा ॥२७॥ नाना प्रकार के रत्नों से विभूषित, अनेक वृक्ष-लताओं से व्याप्त, विविध पुष्पों में सुशोभित, विभिन्न पक्षियों से सज्जामान, अनेक जीव-जन्तुओं से परिव्याप्त, अनेक आश्चर्यकारी वस्तुओं से समन्वित विभिन्न वर्णों की शिलाओं तथा धातुओं से विभूषित, अनेक मुनिजनो तथा आश्रमा से युक्त एवम् विस्तृत सुमेरु पर्वत के पीठ पर बैठे हुए विद्वन्नाथ, जगत् के उत्पत्तिस्थान, विश्ववन्द्य, संसार के आधार तथा शासक ब्रह्मा को

१८. ०२रोग०। २८. ०८योवाचले। ३०. लोह०। ४ व स द्विजसत्तम। ५८ प्राणिना।
६८ ०मंसिद्वय श्री०। ७८. यदीरि०। ८८ वा। ९८ स परम। १०८ सुवि०। ११८ ०८
मतिमान्०। १२८. ०५। यत्तवा०। १३८ य ०८ सुवि०। १४८ ०प्रवणान्विते। ना०।

तत्रासीनं जगन्नाथं जगद्योनिं चतुर्मुखम् । जगत्पतिं जगद्वन्धं जगदाधारमोश्वरम् ॥३१॥
 देवदानवगन्धर्व्वयक्षविद्याधरोरगैः । भुनिसिद्धाप्सरोभिश्च वृतमर्घ्यदिवालयेः ॥३२॥
 (केचित् स्तुवन्ति तं देवं केचिद्गायन्ति चाप्रतः । केचिद्वाद्यानि वाद्यन्ते केचिन्नृत्यन्ति चापरे ॥३३॥)
 एवं प्रमुदिते काले सर्वभूतसमगमे । नानाक्रुत्सुमगन्वाद्ये दक्षिणानिलसेविते ॥३४॥
 भृग्वाद्यास्तं तदा देवं प्रणिपत्य पितामहम् । इममर्घ्यमुपिवरा प्रपच्छुः पितरं द्विजाः ॥३५॥

शृणु उचुः

भगवञ्छोतुमिच्छामः कर्मभूमिं महीतले । वक्षतुमर्हसि देवेश मोक्षक्षेत्रञ्च दुर्लभम् ॥३६॥

व्यास उवाच

तेषां वचनमाकर्ण्य ब्राह्मणा सुरेश्वरः । पप्रच्छुस्ते यथा प्रश्नं तत्सर्व्वं मुनिसत्तमाः ॥३७॥
 इति श्रीब्राह्मे महापुराणे स्वयम्भूवह्मपिसंवादे प्रश्ननिरूपणं नाम षड्विंशोऽध्यायः ॥२६॥

सप्तविंशोऽध्यायः

तत्रादौ भारतवर्षवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

शृणुष्व मुनयः सर्व्वे यद्वो वक्ष्यामि साम्प्रतम् । पुराणं वेदसम्बद्धं भुवितभुवितप्रबं शुभम् ॥१॥

देव दानव, गन्धर्व, यक्ष, विद्याधर, सर्प, मुनि सिद्ध, अप्सरा तथा और भी दूसरे देवता घेरकर बैठे हुए थे । ॥२८-३२॥
 कोई ब्रह्मा की स्तुति करते थे तो कोई उनसे आगे गाते थे । (कोई बाजे बजाते थे तो कोई नाचते थे ॥३३॥) मुनि-
 वृन्द । इस प्रकार आनन्दित, ताना प्रवार के पुष्पा से सुगन्धित तथा मलयानिल से सुगन्धित प्राणियों के समानम-
 वाज म भृगु आदि मुनि ब्रह्मा को प्रणाम कर यही प्रश्न पूछने लगे ॥३४-३५॥

मुनियों ने कहा—भगवन् । पूर्व्व-जल पर बर्षामूनि के बारे में हम सुनना चाहते हैं । हे देवता के
 स्वामी । दुर्लभ मोक्षक्षेत्र की भी कृपया दीजिये ॥३६॥

व्यास बोले—मुनिवर । उनसे वचन सुनकर देवेश ब्रह्मा उनसे सारे प्रश्नों का उत्तर देने लगे ॥३७॥

श्री ब्रह्म महापुराण में ब्रह्मा और ब्रह्मपिया के संवाद प्रणम म प्रश्न निरूपण नामक छत्रासवा अध्याय
 समाप्त ॥२६॥

अध्याय २७

भारतवर्ष का वर्णन

ब्रह्मा ने कहा—मुनिवर । इस समय मैं वेदा से सम्बन्ध रखने वाले तथा योग-मोक्ष को देनेवाले पवित्र

१४ ० निमिदवाप्सः ० २४ ० विसु नर्नदेव । ३४ तन्वत । ४४ लोते । ५ ० छा मुनयो देवा प्र० ।
 ६४ ० मर्ष तदा देवा प्र० । ७४ ग ० जा । ८० । ८४ यः ।

पृथिव्यां भारतं वर्षं कर्मभूमिर्ब्रह्महृता^१। कर्मणः फलभूमिश्च स्वर्गञ्च नरकं तथा ॥२॥
तस्मिन् वर्षे नरः पापं कृत्वा 'धर्मञ्च भो द्विजाः'। अवश्यं फलमाप्नोति अशुभस्य शुभस्य च ॥३॥
ब्राह्मणाद्याः स्वकं कर्म कृत्वा सम्यक्सुसंयताः। प्राप्नुवन्ति परां सिद्धिं तस्मिन्वर्षे न संशयः ॥४॥
धर्मञ्चायं च कामञ्च मोक्षञ्च द्विजसत्तमाः। प्राप्नोति पुरयः सर्वं तस्मिन् वर्षे सुसंयतः ॥५॥
इन्द्राद्याश्च सुरा सर्वे तस्मिन् वर्षे द्विजोत्तमाः। कृत्वा सुशोभनं कर्म देवत्वं प्रतिपेदिरे ॥६॥
अन्येऽपि लेभिरे मोक्षं पुरपाः संयतेन्द्रियाः^२। तस्मिन् वर्षे बुधाः शान्ता वीतरागा विमत्सराः ॥७॥
ये चापि स्वर्गं तिष्ठन्ति विमानेन गतज्वराः। तेऽपि कृत्वा शुभं कर्म तस्मिन् वर्षे दिवं गताः ॥८॥
निवासं भारतं वर्षं आकाङ्क्षन्ति सदा सुराः। स्वर्गपवर्गफलदे तत्पश्यामः^३ कदा वयम् ॥९॥

सुनय ऊचुः

यदेतद्भवता प्रोक्तं कर्म^४ नान्यत्र पुण्यदम्। पापाय^५ वा सुरश्रेष्ठ वर्जयित्वा^६ च भारतम् ॥१०॥
तत् स्वर्गश्च मोक्षश्च मध्यमं^७ तच्च गम्यते^८। न^९ खल्वन्यत्र मर्यातां भूमौ कर्म विधीयते ॥११॥
तस्माद्विस्तृतो ब्रह्मन्नस्माकं भारतं वद। यदि तेऽस्ति^{१०} दयात्मासु यथावस्यतिरेव च^{११} ॥१२॥
तस्माद्वर्षमिव^{१२} नाय ये चास्मिन् वर्षे पर्वताः। भेदाश्च तस्य वर्षस्य ब्रूहि सर्वानशेषतः ॥१३॥

पुराण के बारे में कहेंगा आप लोग सुनें ॥१॥ पृथिवी पर कर्मभूमि के रूप में भारतवर्ष बतलाया गया है। कर्म-फल की भूमि तथा स्वर्ग-नरक भी यहीं है ॥२॥ विप्रवृन्द^१ भारतवर्ष में मनुष्य पाप-पुण्य करने करने के शुभ अशुभ फल अवश्य पाते हैं ॥३॥ इस वर्ष में ब्राह्मण आदि वर्ण समपूर्वक अपने-अपने कर्मों को करके निःसन्देह परा सिद्धि प्राप्त करते हैं ॥४॥ द्विजश्रेष्ठो^२ इस वर्ष में पुण्य समझी होकर धर्म-अर्थ-काम मोक्ष—सब कुछ प्राप्त कर सकता है ॥५॥ विप्र-वर! इस वर्ष में इन्द्र आदि देवगण उत्तम कर्म करने देवत्व को प्राप्त हुए ॥६॥ हमारे भी जितेन्द्रिय, विद्वान् शान्त, वीतराग तथा ईर्ष्यारहित पुण्यो ने इस वर्ष में मोक्ष को प्राप्त किया ॥७॥ जो भी तापरहित होकर विमान के द्वारा स्वर्ग में विराज रहे हैं वे भी इसी वर्ष में शुभ कर्म करने स्वर्ग को प्राप्त हुए हैं ॥८॥ स्वर्ग-मोक्ष-दायक भारतवर्ष में वास करने के लिये देवता लोग सदा लालायित रहते हैं ॥९॥

मुनियो ने कहा—हे देवश्रेष्ठ! आपने जिसलिए यह कहा है कि पाप-पुण्य-दायक कर्म भारतवर्ष को छोड़कर वही नहीं होता एवम् मनुष्यों के लिए भारतवर्ष ही स्वर्ग-मोक्ष-दायक कर्म भूमि है इसलिए भारतवर्ष के विषय में हमें विस्तारपूर्वक बतलाइये। ब्रह्मन्^३ यदि हमारे ऊपर आपकी कृपा है तो भारतवर्ष, इसके वर्ष-वर्ष तथा वर्ष के भेदों को निःशेष करने बतला दीजिए ॥१०-१३॥

१क ०हृतम्। २क ०मिहि स्व०। ३क कर्म। ४क ०णाद्यास्तु यत्कर्म०। ५क ०त्वा^४।
६क स सयता। ७क सजिते०। ८क ०रा। देवा स्व०। ९क ०ने विग०। १०क ते कृ०।
११क सुगुम। १२क उत्पस्याम। १३क ०मं चान्य०। १४क पापद। १५क वर्णयित्वा। १६क ०ध्यश्चान्तरच
१७। १८क ०ते। तनश्चान्यत्र। १९क न चास्य चाय। २०क ते स्निग्धताश्रमा। २१क ०द पावयेत्यस्मि०।

ब्रह्मोवाच

धृणुध्व भारत वर्षं नवभेदेन भो द्विजा । समुद्रात्तरिता ज्ञेयारते' समाश्च परस्परम् ॥१५॥
 इन्द्रद्वीप' कजोरदश्च ताम्रपर्णी गभस्तिमान् । नागद्वीपस्तथा सौम्यो गान्धर्वो' वाहणस्तथा ॥१५॥
 अदन्तु नवमस्तेषा द्वीप सागरसंवृत । योजनाना सहस्र वै द्वीपोऽयं' दक्षिणोत्तर ॥१६॥
 पूर्वो किराता दस्यासन पश्चिमे यवनारतया' । ब्राह्मणा क्षत्रिया वैश्या शूद्राश्चा' ते स्थिता द्विजा ॥१७॥
 इज्यायुद्धवणिज्याद्यै' दर्ममि कृतपावा । तेषां सव्यवहारश्च एभि' कर्मभिरिष्यते' ॥१८॥
 स्वर्गापवर्गहेतुश्च' पुण्य पापञ्च वै तथा । महेंद्रो मलय सह्य शुक्तिमानुक्षपर्वत ॥१९॥
 विन्ध्यश्च पारियात्रश्च सप्तैवान् कुलाचला । तेषां सहस्रशश्चा' ये भूधरा ये समीपगा ॥२०॥
 विस्तारोच्छ्रयिणो रम्या विपुलाश्चित्रसानव । कोलाहल' स वैभ्राजो मदरो ददुर्दराचल' ॥२१॥
 घातघयो' वंशुतश्च मंदाक' सुरसस्तथा । सुद्वप्रथो नागगिरिगोधन पाण्डराचल' ॥२२॥
 पुष्पगिरिवैजयतो' रैवतोऽम्बु' एव च । ऋष्यमूक स' गोमय' कृतशैल' कृताचल' ॥२३॥
 श्रीपावकश्चकोरश्च शतशोऽप्ये च पश्वता' । सैविमिथ्रा जनपदा' श्लेच्छाद्याश्चैव भागश ॥२४॥
 तै पीयूषे सरिच्छेष्टास्ता बुधध्व द्विजोत्तमा । यद्वा सरस्वती सिन्धुश्च द्रभागा तथापरा ॥२५॥

ब्रह्मा ने कहा—द्विजगण । भारतवर्ष व नौ भेदा को मुनिव जो परस्पर समुद्रा स व्यवहित हैं ॥१५॥
 तप्त—इन्द्राव कजोर ताम्रपर्णी गभस्तिमान् नागद्वीप सौम्य गान्धर्व वाहण और नन्दा द्वीप (भारतवर्ष) हैं जो समुद्र स आवृत हैं ॥१५॥ दक्षिण उत्तर म यह द्वीप एक हजार योजन विस्तृत हैं । इस स पूर्व भाग म किरात पश्चिम म यवन और अन्त म ब्राह्मण क्षत्रिय वय और पात्र रहते हैं ॥१६॥ द्विजगण । ब्राह्मण क्षत्रिय वय कर्मना यज्ञ यज्ञ व्यापार आर मत्वा एव रमों स पवित्र होत हैं । इन्दा कर्मों स उनका परस्पर व्यवहार चलता हैं ॥१८॥ स्वर्ग मोक्ष और पुण्यपाप का उत्पत्तिस्थान यहा द्वीप हैं । यहाँ महेंद्र मलय सह्य शुक्तिमान ऋष्य विन्ध्य और पारियात्र नामक शान पर्वत हैं ॥१९॥ उन स पास दूसरे भी हजार पर्वत हैं जौ विस्तृत उच्च रमणीय तथा विचित्र विचित्र गिरि हैं— ? । जग—नागद्वीप बभ्राज मन्दार ददुर्दराचल वानधव वचन भनान मुरग सगदग्य नागगिरि गोमन पाण्डराचल पुष्पगिरि वैजयन्त रवत जवु ऋष्यमूक गोमय कृतशैल कृताचल व्यापक सराव तथा दूसर म सराव पर्वत हैं ॥२०॥ २३॥ इन पर्वतों स मिश्रित श्लेच्छ जाति अन्न देण हैं जिन स निराला आम नशिया वा जन्म पात हैं ॥२४॥ द्विजपत्नी । उन नशिया व नाम मुनिव । अथ—

यमुना शतद्रुविपाशा वितस्तेरावती कूटः^१। गोमती घृतपापा^२ च बाहुवा च दृपदती^३॥२६॥
 विपाशा देविका चक्षुनिष्ठोवा गण्डकी तथा। कौशिकी चापगा चैव हिमवत्पादनिःसृताः॥२७॥
 देवस्मृतिदेववती वातघ्नी सिन्धुरेव च। वेण्या तु चन्दना^४ चैव सदानोरा^५ मही तथा^६॥२८॥
 चर्मण्वनी वृषी^७ चैव विदिशा वेदवत्यपि^८। सिन्ध्रा हवन्ती च तथा पारियात्रानुगा। स्मृताः॥२९॥
 शोणा^९ महानदी चैव नर्मदा सुरथा क्रिया^{१०}। मन्दाकिनी दशार्णा च चित्रकूटा^{११} तथापरा॥३०॥
 चित्रोत्पला वेत्रवती^{१२} करमोदा पिशाचिना^{१३}। तयान्यातिलघुधोणी विपाप्मा^{१४} शैबला^{१५} नदी॥३१॥
 सपेरजा^{१६} शक्तिमती^{१७} शकुनी त्रिदिवा कमः^{१८}। ऋक्षपादप्रसूता वै तयान्या^{१९} वेगवाहिनी॥३२॥
 सिन्ध्रा^{२०} पयोष्णी निर्विन्ध्या^{२१} तापी चैव सरिद्वरा। वेणा वंतरणी चैव सिनीवाली^{२२} कुमुदती॥३३॥
 तोया^{२३} चैव महामोरी दुर्गा चान्तःशिला तथा। विन्ध्यपादप्रसूतास्ता नद्यः पुण्यजलाः शुभाः॥३४॥
 गोदावरी भीमरयी वृष्णवेणा तयापया। तुङ्गभद्रा सुप्रयोगा तयान्या पापनाशिनी॥३५॥
 सह्यपादविनिष्क्रान्ता इत्येताः सरिता वराः। वृत्तमाला^{२४} ताम्रपर्णी पुष्यजा^{२५} प्रत्यलावती॥३६॥
 मलयद्विस्तमुद्भूताः पुण्या। शीतजलास्त्विमाः। पितृतोर्मपिकुल्या च वञ्जुला^{२६} त्रिदिवा च या॥३७॥

गंगा, सरस्वती, सिन्धु, चन्द्रमाया, यमुना, शतद्रु, विपाशा, वितस्ता, एरावती कूट गाम्नी घृतपापा, बाहुवा, दृपदती,
 देविका, चक्षु, निष्ठीवा, गण्डकी, कौशिकी—ये नदियाँ हिमा—य से निकली हैं ॥२५-२७॥ देवस्मृति, देववती,
 वानजी, सिन्धु, वेण्या, चन्दना, सदानोरा, मही, चर्मण्वनी वृषी, विदिशा वदवती सिन्ध्रा अवन्ती—ये नदियाँ
 पारियात्र से निम्न हैं ॥२८-२९॥ शोणा, महानदी, नर्मदा, सुरथा क्रिया मन्दाकिनी, दशार्णा चित्रकूटा,
 चित्रोत्पला, वेत्रवती, करमोदा, पिशाचिका, अनिलधुधोणी, विपाप्मा, शैबला सपेरजा शक्तिमती, शकुनी, त्रिदिवा
 निर्विन्ध्या, नदीश्रेष्ठ तापी, वेणा, वंतरणी,
 और कमू ऋक्षपर्वत से बहिर्भूत हैं ॥३०-३२॥ सिन्ध्रा, पयोष्णी, निर्विन्ध्या, नदीश्रेष्ठ तापी, वेणा, वंतरणी,
 और भी पापनाशिनी श्रेष्ठ
 नदियाँ सह्य पर्वत से निकली हैं ॥३३-३४॥ गोदावरी, भीमरयी, वृष्णवेणा, तुङ्गभद्रा, सुप्रयोगा तथा और भी पापनाशिनी श्रेष्ठ
 नदियाँ सह्य पर्वत से निकली हैं ॥३५॥ वृत्तमाला, ताम्रपर्णी, पुष्यजा, प्रत्यलावती—य शीततोषा पवित्र
 नदियाँ मलयपर्वत से निकली हैं ॥३६॥ पितृ शीर्षपिकुल्या, वञ्जुला, त्रिदिवा लाङ्गुलिनी और वराकरा
 महेन्द्रपर्वत से निकली हैं ॥३७॥ गुजिकाळा, कुमारी, मनूपा मन्दगामिनी और क्षयापलासिनी शुक्तिमान्

१. ग. कुर। २. घृतपापा। ३. च ग वदना। ४. चन्द्रमाया। ५. सदानोरा। ६. य चर्मण्वती चै०।
 ७. वृषी। ग. मूपा। ८. वेदवती। ९. च क्षिप्र। स क्षीप्रा। १०. च शोणा। १०. क. वृषा। ११. स
 वेत्रवती। १२. च विपाशा। १३. च वेन्ना। १४. सपेरजा। स सपेरजा। १५. स
 शक्तिमती। १६. क. शकुनी। स कुकु। १७. च मन्दाकिनी। १८. चित्रा। २०. च विन्ध्यान्ता।
 २१. च मलयमुद्भूता। २२. च माला कु०। २३. च वीणा। २४. च वृत्तमाला। २५. च प्रत्यलावती०।
 २६. च चन्द्रमाला दि०। २७. च शकुनी।

लाङ्गुलिनी' वंशकराः महेंद्रप्रभवाः स्मृताः । सुविकाला कुमारी च मन्गु मन्वगामिनी ॥३८॥
 क्षयापलासिनी चैव शक्तिमत्प्रभवाः स्मृताः । सर्व्वीः पुण्याः सरस्वत्यः सर्व्वी गङ्गाः समुद्रगाः ॥३९॥
 विश्वस्य मातरः सर्व्वीः सर्व्वीः पापहराः स्मृताः । अन्याः सहस्रशः प्रोक्ताः क्षुद्रन्धो द्विजोत्तमाः ॥४०॥
 प्रावृत्कालवहाः सन्ति सदाकालवहाश्च ये । मत्स्या मुकुटकुल्याश्च कुन्तला काशिकोशला ॥४१॥
 अङ्घ्रकाश्च कलिङ्गाश्च शमकाश्च वृकैः सह । मध्यदेशा जनपदाः प्रायशोऽसौ प्रकीर्त्तिताः ॥४२॥
 सह्यस्य चोत्तरे यस्तु यत्र गोदावरी नदी । पृथिव्यामपि कृत्स्नायां स प्रदेशो मनोरमः ॥४३॥
 गोवर्द्धनपुरं रम्य भागवस्य महात्मनः । बाहीका वाटधानाश्च सुतीराः कालतोयदाः ॥४४॥
 अपरान्ताश्च शूद्राश्च बाह्लिकाश्च सकेरलाः । गान्धारा यवनाश्चैव सिन्धुसौवीरमद्रकाः ॥४५॥
 शतद्रुहः कलिङ्गाश्च पारदा हारभूपिकाः । माठराश्चैव कनकाः कंकेया दम्भमालिका ॥४६॥
 क्षत्रियोपमदेशाश्च वंश्यशूद्रकुलानि च । काम्बोजाश्चैव विप्रेन्द्रा बर्बराश्च सलौकिकाः ॥४७॥
 वीराश्चैव तुपाराश्च पल्लवाधायता नराः । आत्रेयाश्च भरद्वाजाः पुष्कलाश्च दशेरकाः ॥४८॥
 लम्पकाः क्षुद्र शोकाश्च कुलिजा जाङ्गले सह । औपध्यद्वलचन्द्रा च किरातानाञ्च जातयः ॥४९॥
 तोमरा हसमागाश्च काश्मीरा कषणास्तथा । शूलिकाः कुहकाश्चैव मागधाश्च तथैव च ॥५०॥
 एते देशा उच्यन्ते प्राच्यान् देशान्निबोधत । अन्धा वामद कुराकाश्च वल्लवाश्च मखान्तकाः ॥५१॥

पर्वत से निकली हैं ॥३८॥ द्विजवर । ये सभी नदियाँ पवित्र हैं और सभी दगा में गिरती हैं । ये सब नदियाँ पापहारिणी तथा विश्वमाताएँ हैं ॥३९॥ इनके अतिरिक्त अन्याय छोटी मोटी नदियाँ और भी हैं । इनमेंसे कुछ तो नेवल बरसाती हैं और कुछ रुदा बहती रहती हैं ॥४०॥ मत्स्य, मुकुटकुल्य, कुन्तल, काशिकोशल, अङ्घ्र, कलिङ्ग, दामक और वृक ये जनपद मध्यदेश कहलाते हैं ॥४१-४२॥ सहायपर्वत के उत्तर भाग में जहाँ गोदावरी नदी है, वह प्रदेश सम्पूर्ण पृथ्वी में (सर्वाधिक) मनोरम है ॥४३॥ वहाँ महात्मा मार्गव का गोवर्धनपुर रमणीय है । बाहीक, वाटधान, सुतीर, कालतोयद, अपरान्त, शूद्र, बाह्लिक, केरल, गान्धार, यवन, सिन्धु, सौवीर, मद्र, शतद्रुह, कलिङ्ग पारव, हारभूपिक, माठर, कनक, कंकेय, दम्भमालिक-ये क्षत्रियोपम देश हैं तथा वंश्य एवं शूद्रकुल हैं ॥४४-४६॥ द्विजेश्वरी । काम्बोज, बर्बर, लौकिक, वीर, तुपार, पल्लव, आघायत, नर, आत्रेय, भरद्वाज, पुष्कल, दशेरक, लम्पक, क्षुद्रशोक, कुलिक, जाङ्गल, औपयि, चलचन्द्र, किरात-जाति, तामर, हसमाग, काश्मीर, कषण, शूलिक कुहक और मागध-ये उत्तर दिशा के देश हैं । अब जो पूर्व दिशा के देश हैं उन्हीं भी समस्त लीजिए ॥४७-५०॥ अन्ध, वामकुराव, वल्लक, मखान्तक, अङ्ग, वङ्ग, मलद, मालवतिक, मद्रतुङ्ग, प्रतिजय, भार्माङ्ग, अपमर्दक, प्रा-

१क लाङ्गली चैव २क स सर्वपा० । ३क ०या । गान्धा कुमुदगान्धाश्च चक्रग वी० । ४क प्रतुगा । ५क अपवर्चिच । ६क वृप । ७क ०ह्यश्चैवात्त० । ८क बाधिकाश्चैवाध्यायश्च मुनिरात्रात्त० । ९क ०द्व पादपाश्चर्मसङ्गिच । गा० । १०क सतदुर्गा । स सतदुर्गा । ११क ०रमूनि । १२क वरवा-
 ष्वैवपादा मुनासिवा । १३क ०का । शीनाश्चै० । १४ क ०द्व उर्गा दीर्घास्तथैव च । ए० । १५क पञ्चवा-
 लायतीन० । १६ क ०पराश्च । १७ क एव । १८ क प्राच्या दिशि निवोः । १९ क अन्धरा मुञ्जाराश्च
 वस्तीरा वरणास्तथा । पालिका कुहकाश्चैव समन्निखर्षिका । त० ।

'तयापरेऽङ्गा वङ्गाश्च' मलदा मालवतिकाः । भद्रतुङ्गाः । प्रतिजया भार्याङ्गाश्चापमर्दकाः ॥५२॥
 प्राण्योतिषाश्च मद्राश्च विदेहास्ताम्रलिप्तकाः । मल्ला मगधका नन्दाः प्राच्या जनपदास्तथा ॥५३॥
 तयापरे जनपदा दक्षिणापथवासिनः । पूण्ड्रिच' केवलाश्चैव गोलाङ्गूनास्तथैव च ॥५४॥
 ऋषिका' मुषिकाश्चैव कुमारा' रामठाः शकाः । महाराष्ट्रा माहिषका' कलिङ्गाश्चैव सत्त्वंगः ॥५५॥
 आभीराः सह वैशिवया' अटव्याः । "सरवाश्च ये । पुलिन्दाश्चैव मौलेया वंदर्भा दण्डकैः सह ॥५६॥
 पौलिका' मौलिकाश्चैव अश्मका भोजवर्द्धनाः । कोलिकाः "कुन्तलाश्चैव दम्भका' नीलकालका ॥५७॥
 दक्षिणात्यास्त्यमो देशा अपरान्ताग्निबोधत । शूर्पारकाः "कालिघना' लोलास्तालवटैः सह ॥५८॥
 इत्येते ह्यपरान्ताश्च शृणुध्वं विन्ध्यवासिनः । मल्लजाः "कर्कशाश्चैव मेलकाश्चोलकैः सह ॥५९॥
 उत्तमार्गा दशाणाश्च भोजाः क्रिगिरुन्ध्यकैः सह । तोषलाः "कोशशाश्चैव त्रैपुरा वंदिशास्तथा ॥६०॥
 सुन्दरास्तु चराश्चैव धवनाः पर्वतैः सह । अभया' हन्डिकेराश्च चच्छरा होश्रघत्तयः ॥६१॥
 एते जनपदाः सर्वे तत्र शिन्ध्यनिवासिनः । अतो देशान् प्रवक्ष्यामि "पर्वताथविणश्च" ये ॥६२॥
 नीहारास्तुपमार्गाश्च कुरवस्तङ्गणा' खसाः । कर्णप्रावरणाश्चैव' ऊर्णा दर्घाः सकुन्तकाः ॥६३॥
 धैर्यमार्गा मालवाश्च किरातास्तोमरैः सह । कृतत्रेतादिकश्चात्र चतुर्गुणकृतो विधिः ॥६४॥

मण्डोपि, मद्र, बिदेह ताम्रलिप्तक, मल्ल, मगधक और नन्द—प्राच्य देश कहलाते हैं॥५१-५३॥ तथा दूसरे जनपद दक्षिणापघातानी है—एव पूर्ण केवल, गोलार्द्ध लक्षिक, मुषिक कुमार, रामठ, शक, महाराष्ट्र, माहिषक, कलिङ्ग, आभीर, वैशिक, अटख्य, सरय, पुलिन्द मोलेय, वेदर्भ, दण्डक, पौलिक, मौलिक, अम्बक, भोजवंत, मौलिक, कुत्तल, दम्भक, नीलक, अलक—ये दक्षिण के देश हैं। अब पश्चिम दिशा के देशों को समझिए—॥५४-५७३॥ शूर्पाकर, कालिघन, लोल, तालवट—ये प्रतीच्य देश कहलाते हैं। अब विन्ध्यपर्वत स्थित देशों के नाम सुनिये॥५८३॥ मलय कर्कश, मेळक, चोलक, उतमार्ण, दशार्ण, भोज, विश्वम्भक, स्थित देशों के नाम सुनिये॥५९३॥ मलय कर्कश, मेळक, चोलक, उतमार्ण, दशार्ण, भोज, विश्वम्भक, स्थित देशों के नाम सुनिये॥५९३॥ मलय कर्कश, मेळक, चोलक, उतमार्ण, दशार्ण, भोज, विश्वम्भक, स्थित देशों के नाम सुनिये॥५९३॥

१ ख ०या प्रवरगा व०। २ ख ०झा म०। ३ क ब्रह्मपुञ्जा। ४ क पूरणा केरला०। ५ ख सट्टिदा। ग
नृपिदा। ६ ग ०रानाभ वासवा। ७ क माहिषिका। ८ क ०ख। स०। ९ क ०शिका अपाख्याश्च शबराश्च
सहस्र। पुण्ड्रका विन्ध्यलेखाश्च न०। १० ख आपाश्च। ११ ख श्वराश्च। १२ ग पालिका। १३ क बालिका।
१४ ख ०म्बवानलका। १५ क ०ल्विना०। १६ ग ०नादूणस्थालटिकं स०। १७ ख ०लक्ष्मिना सुकेशाश्च मे०।
१८ ग ०श्वेतकलं स०। १९ क उत्तापा। ख अपल। २० क ०यास्तुङ्गरा सर्वे सर्वरा होनवर्का। ए०।
२१ क ०तानाश्रिताश्च०। २२ ख ०श्रमिण०। २३ ख ०णास्तथा। कुण्डमा०। २४ ख ०ख उत्तालटिच्यः सङ्कुञ्चका।

एवं तु भारतं वर्षं नवसंस्थानसंस्थितम् । दक्षिणेऽपरतो यस्य पूर्वे चैव महोदधिः ॥६५॥
हिमवानुत्तरेणास्य कार्मुकस्य यथा गुणः । तदेतद्भारतं वर्षं सर्व्वबीजं द्विजोत्तमाः ॥६६॥
ब्रह्मत्वममरेशत्वं देवत्वं मरुतां तथा । भृगुयक्षाप्सरयोनिं तद्वत् सर्पसरीसृपाः ॥६७॥
स्थावराणाञ्च सर्व्वेषामितो विप्राः शुभाशुभे । प्रयान्ति कर्मभूविप्रा नान्या लोकेषु विद्यते ॥६८॥
देवानामपि भो विप्राः सदेवैर्य मनोरथः । अपि मानुष्यमाप्स्यामो देवत्वात् प्रत्युताः क्षितौ ॥६९॥
मनुष्यः कुरुते यत्तु तन्न शक्यं सुरासुरैः । तत्कर्मनिगडप्रस्तरैस्तत्कर्मक्षयणोऽमुखैः ॥७०॥
न भारतसमं वर्षं पृथिव्यामस्ति भो द्विजा । यत्र विप्रादयो वर्णाः प्राप्नुवन्त्यभिवाञ्छितम् ॥७१॥
धन्यास्ते भारते वर्षे जायन्ते ये नरोत्तमाः । धर्म्मार्थकाममोक्षाणां प्राप्नुवन्ति महाफलम् ॥७२॥
प्राप्यते यत्र तपसः फलं परमदुर्लभम् । सर्व्वदानफलञ्चैव सर्व्वयज्ञफलं तथा ॥७३॥
तीर्थयात्राफलञ्चैव गुरुसेवाफलं तथा । देवताराधनफलं स्वाध्यायस्य फलं द्विजाः ॥७४॥
यत्र देवाः सदा हृष्टा जन्म वाञ्छन्ति शोभनम् । नानाशतफलञ्चैव नानाशास्त्रफलं तथा ॥७५॥
अहिंसादिफलं सम्पत्फलं सर्व्वविवाञ्छितम् । ब्रह्मचर्य्यफलञ्चैव गार्हस्थ्येन च यत्फलम् ॥७६॥
यत् फलं वनवासेन सग्न्यासेन च यत्फलम् । इष्टापूर्तफलञ्चैव सन्यासचतुर्धर्म्मणाम् ॥७७॥
प्राप्यते भारते वर्षे न चागम्य द्विजोत्तमाः । फः शक्नोति गुणान् वक्तुं भारतस्याखिलान् द्विजाः ॥७८॥
एवं सम्यक्प्रमया प्रोषते भारतं वर्षं मुत्तमम् । सर्व्वपापहरं पुण्यं धन्यं बुद्धिचिद्धनम् ॥७९॥

दक्षिण म समुद्र और उत्तर मे धनुष की डोरी की तरह हिमालय स्थित है । द्विजवर । यत्र भारतवर्षं सभी वस्तुओं की उत्पत्ति का केन्द्र है ॥६४-६६॥ यहाँ से जीव अपने-अपने शुभ अशुभ कर्मों के द्वारा ब्रह्मत्व, देवत्व, वैशिश्व और वामुत्व को तथा भृगु, यक्ष, अप्सरा, सर्प और स्थावर की योगि को प्राप्त करते हैं । विप्रवृन्द । सत्सारमर म केवल भारतवर्ष ही कर्मभूमि है ॥६७-६८॥ द्विजगण । देवताओं की सदा यही लालसा रहती है कि हम देवत्व से ध्युत होकर पृथ्वी पर मनुष्य-योगि को प्राप्त करें ॥६९॥ मनुष्य जो कर्म कर सक्ता है, वह कर्मस्वी श्रुतला म बद्ध तथा कर्म-क्षय करने के लिए उद्यत देवता और राक्षस नहीं कर सकता ॥७०॥ द्विजगण । पृथिवी पर भारत के समान कोई वर्ष नहीं है, जहाँ ब्राह्मण आदि वर्ण अमिलपित पात्र प्राप्त करते हैं ॥७१॥ वे उत्तम मनुष्य धन्यवाद के पात्र हैं जो भारतवर्ष में जन्म लेकर धर्म अर्थ-काम-मोक्ष प्राप्त करते हैं ॥७२॥ भारतवर्ष मे तपस्या, सर्वदान, सर्वयज्ञ, तीर्थयात्रा, गुरुसेवा, देवता-आराधन और स्वाध्याय का परम दुर्लभ फल प्राप्त होता है ॥७३-७४॥ इस वर्ष में मुन्दर जन्म पाने के लिए देवतागण उत्पन्थित रहते हैं । द्विजवर्ष । नानाशत, नानाशास्त्र, अहिंसा, ब्रह्मचर्य, गार्हस्थ्य, वनवास, सन्यास, इष्टापूर्त (यज्ञ विशेष) तथा दूसरे शुभकर्मों का फल भारतवर्ष से अन्यत्र कहीं नहीं मिलता ॥७५-७७॥ द्विजगण । भारत के अखिल गुणा का वर्णन कौन कर सकता ? ॥७८॥ इस प्रकार सप्त

१ व ० णे वी पुरामाहा पू० । २ णे च पुरी चास्य पू० । ३ व ० णे च ० णे च । नानाविवर्ष० ।

४ व ० णे च ० णे च । नानाविवर्ष० ।

य इदं शृणुयान्नित्यं पठेद्वा' नित्यतेन्द्रियः । सर्वपापैर्विनिर्मुक्तो विष्णुलोकं स गच्छति ॥८०॥
इति श्रीब्राह्मे महापुराणे भारतवर्षानुकीर्तनं नाम सप्तविंशोऽध्यायः ॥२७॥

अष्टाविंशोऽध्यायः

तनादौ कोणादित्यमाहात्म्यवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

तनास्ते भारते वर्षे दक्षिणोदधिसंस्थितः । ओष्णदेश इति ख्यातः स्वर्गमोक्षप्रदायकः ॥१॥
समुद्रादुत्तरं तावद्यावद्विरजमण्डलम् । देशोऽतो पुण्यशीलानां गुणैः सध्वैरलङ्कृतः ॥२॥
तत्र देशप्रसूता ये ब्राह्मणाः संयतेन्द्रियाः । तपःस्वाध्यायनिरता वन्द्याः पूज्याश्च ते सदा ॥३॥
श्राद्धे दाने विवाहे च यज्ञे आचार्यकर्मणि । प्रशस्ताः सर्वकार्येषु तत्रदेशोद्भवा द्विजा ॥४॥
षट्कर्मनिरतास्तत्र ब्राह्मणा वेदपारगाः । इतिहासविदश्चैव पुराणार्थविशारदाः ॥५॥

पापों को हटाने वाले, बुद्धि को बढ़ाने वाले, स्तुत्य, पवित्र, तथा उत्तम भारतवर्ष का वर्णन मैंने कर दिया ॥७९॥
जो व्यक्ति इन्द्रियों को बस म करके इस आत्मान का नित्य श्रवण या पठन करेगा, वह सब पापों से रहित होकर
विष्णु-लोक को प्राप्त करेगा ॥८०॥

श्री ब्रह्ममहापुराण में ब्रह्मा तथा ऋषियों के संवाद प्रकरण में भारतवर्षानुकीर्तन नामक
सप्ताईसवाँ अध्याय समाप्त ॥२७॥

अध्याय २८

कोणादित्य का माहात्म्य-वर्णन

ब्रह्मा ने वह—भारतवर्ष में दक्षिण समुद्र के समीप स्वर्ग-मोक्षदायक ओष्णदेश विख्यात है ॥१॥ समुद्र
से उत्तर विरजमण्डल तक सब गुणों से विभूषित पुण्यात्मा मनुष्यों का निवास ओष्ण देश है ॥२॥ उस देश के ब्राह्मण
जितेन्द्रिय, तप और स्वाध्याय में निरत, वन्दनीय एवम् पूजनीय होते हैं ॥३॥ वे ब्राह्मण श्राद्ध, दान, विवाह, यज्ञ या
आचार्यकर्म तथा सब कार्यों में प्रशस्त माने जाते हैं ॥४॥ वे षट्शास्त्री, वेदपारग, इतिहास-वेत्ता, पुराण विशारद,
सर्वशास्त्र-कुशल, यज्ञ-कर्ता, ईश्वर-हित, स्त्री-पुत्र धन से युक्त, दाता तथा सत्यवादी हैं। उनमें से कोई अग्निहोत्री

१ क. ख जपेद्वा। २ क. पापविनि। ३ क. त। मद्रदे०। ४ क. ०२ यावद्मन्त्रेति जयम०। ख. ०२ यावद्मन्त्रं
विर०। ५ ख. ०सी गुणशी०। ६ क. श्राद्धकाले वि०। ७ क. नयेज्ज्ञेया पुण्यक०। ८ क. ०र्वयशेषु।

सर्वशास्त्रार्थकुशला यज्वानोऽधोत्तमत्सराः। अग्निहोत्ररताः केचित् केचित् स्मार्त्ताग्निमतत्पराः ॥६॥
 पुत्रदारधनेयवता दातारः सत्यवादिनः। निवसन्मृत्युदले पुण्ये यज्ञोत्सवविभूषिते ॥७॥
 इसरेऽपि त्रयो वर्णाः क्षत्रियाद्याः सुसयताः। 'स्वकर्मनिरता' शान्तास्तत्र तिष्ठन्ति धार्मिकाः ॥८॥
 कोणादित्य इति ख्यातस्तस्मिन् देशे व्यवस्थितः। यं दृष्ट्वा भास्कर मर्त्यः सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥९॥

मुनय ऊचुः

ओतुमिच्छाम तद्ब्रूहि क्षेत्रं सूर्यस्य साम्प्रतम्। तस्मिन् देशे सुरश्रेष्ठ यत्रास्ते स दिवाकरः ॥१०॥

ब्रह्मोवाच

लवणतयोदधेरतीरे पवित्रे सुमनोहरे। सर्वत्र बालुकाकीर्णं देशे सर्वगुणान्विते ॥११॥
 चम्पकाशोकबकुलं, करबोरेः सपाटले। पुद्गागेः कणिकारंश्च बकुलेर्नागकेसरं ॥१२॥
 तगरैर्धन्वाणैश्च अतिमुदतैः सकुञ्जकैः। मालतीकुन्दपुष्पैश्च तथाग्न्यमलिकादिभिः ॥१३॥
 'कोनकीयनक्षण्डैश्च' 'सर्वस्तुकुसुमोज्ज्वलं'। 'कदम्बैर्लकुचैः' शालैः पनसैर्देवदारुभिः ॥१४॥
 सरलैर्मूचुकुन्दैश्च चन्दनैश्च सितेतरैः। अश्वत्थैः सप्तपर्णैश्च आश्रमाग्नातकैस्तथा ॥१५॥
 तालैः पूगफलैश्चैव नारिकेलैः कपित्थकैः। अन्यैश्च विविधैर्वृक्षैः सर्वतः समलङ्कृतम् ॥१६॥
 क्षेत्रं तत्र रवेः पुण्यमास्ते जगति विश्रुतम्। समन्ताद्योजनं साग्रे भूषितमूषितफलप्रदम् ॥१७॥

(वैदिक कर्म करनेवाले) हैं तो गोई स्मार्त-अग्नि-निरत (स्मृति विहित कर्म करनेवाले) हैं। उस पवित्र देश में नित्य यज्ञ उत्सव होता रहता है ॥५-७॥ वहाँ ब्राह्मण के अनिरक्त क्षत्रिय आदि तीनों वर्ण भी अपने अपने कर्म में निरत, सयमी, शान्त तथा धर्मरत्ना होकर वास करते हैं ॥८॥ उस देश में व्यवस्थित 'कोणादित्य' नाम से प्रसिद्ध सूर्य को देखने से मनुष्य सब पापों से मुक्त हो जाता है ॥९॥

मुनियों ने कहा—सप्रति हम लोग उस सूर्य के क्षेत्र का वर्णन सुनना चाहते हैं। हे सुरश्रेष्ठ! उस स्थान के बारे में कहिये, जहाँ वे सूर्य रहते हैं ॥१०॥

ब्रह्मा बोले—लवण समुद्र के पवित्र, मनोहर, सर्वगुणमय तथा बालू से परिपूर्ण तट पर चम्पा, अशोक, मोलसिरी अशोक, करवीर पाटली, पुद्गाग, वनचम्पा, नागकसर, तगर, यत्र, अनिमुलन, मुञ्जक, मालती, कुन्द, मल्लिका देवदारु, कदम्ब, बडहर, सावू, बटहल देवदारु, सरा, मुषुपुन्द, चन्दन, अश्वत्थ, सप्तपर्ण, आश्र, इमली, ताल, सुपारी, नारियल, बँधा और अन्य प्रकार के दूसरे वृक्षा से विभूषित, पवित्र तथा जगत्प्रसिद्ध सूर्य का क्षेत्र है ॥११-१६॥ जा चार तरफ एक-एक योजन विस्तृत एवम् ओग-मण के फल को देनेवाला है। वही साक्षात्

१ क जानिना। २ ख हागार। ३ क ख स्वयम्०। ४ क ०वा। वर्णादि०। ५ ख ०देवदिवार। ५०।
 ६ क मुनैस्वरा। ७ ग ०वाणस्व०। ८ ख ०द्व वकुर्नागकसरं। ९ क १ क ०वंत कु०। १० क कदम्ब-
 बकुलानां। ५०। ११ क ०द्व मुखर्षिर्भवि परं। अ०। १२ क ०वृते। शं०।

आस्ते तत्र स्वयं देवः सहस्रांशुर्दिवाकरः। कोणादित्य इति ख्यातो भुक्तिमभुक्तिफलप्रदः॥१८॥
 भावे मासि सिते पक्षे सप्तम्यां संयतेन्द्रियः। कृतोपवासो यत्रैतं स्नात्वा तु मकरास्त्ये॥१९॥
 धृतशोचो विशुद्धात्मा स्मरन् देवं दिवाकरम्। सागरे विधिवत् स्नात्वा शब्द्वैर्यते समाहितः॥२०॥
 देवान्पोनमनुष्याश्च पितॄन् सन्तप्य च द्विजाः। उत्तोम्यं दाससो धौते परिधाय 'सुनिर्मले'॥२१॥
 आचम्य प्रयतो भूत्वा तीरे तस्य महोदधेः। उपविश्योदधे काले प्राङ्मुखः सविस्तुतदा॥२२॥
 विलिय पद्मं मेधावी रक्तचन्दनधारिणा। अष्टपत्रं केसराढ्यं 'धत्तुलं' चोर्ध्वकर्णिकम्॥२३॥
 तिलतण्डुलतोयञ्च रक्तचन्दनसयुतम्। रक्तपुष्पं सदर्भञ्च प्रक्षिपेत्ताम्राभाजने॥२४॥
 ताग्राभावेऽर्कपत्रस्य पुटं कृत्वा तिलादिकम्। विधाय तन्मुनिश्रेष्ठाः पात्रं पात्रेण विन्यसेत्॥२५॥
 करस्यासाङ्गविन्यासं कृत्वाङ्गुलं दयादिभिः। आत्मानं भास्करं ध्यात्वा सम्यक् ध्यातामन्वितः॥२६॥
 मध्ये चाग्निदले धोमाश्रयंते इवसने दले। वामारिमोचरे चैव पुनर्मध्ये च पूजयेत्॥२७॥
 प्रभूतं विमलं सारमाराध्यं परमं सुखम्। सम्पूज्य पद्मसद्भावाह्य गगनात्तत्र भास्करम्॥२८॥
 कर्णकोपरि संस्थाप्य ततो 'मुद्रा' प्रदर्शयेत्। कृत्वा स्नानादिकं सर्वं ध्यात्वा तं सुसमाहितः॥२९॥
 सितपद्मोपरि 'रवि' तैजोविष्टे व्यवस्थितम्। पिङ्गाक्षं द्विभुजं रथं 'पद्मपत्रारणाम्बरम्'॥३०॥

सहस्र विरणपारी सूर्ये रहते हैं जो कोणादित्य नाम से प्रसिद्ध तथा भोग मोक्ष-दायक हैं ॥१७-१८॥ माघमास के शुक्ल पक्ष की सप्तमी तिथि में सही जाकर जिनेंन्द्रिय होकर मनुष्य उपासपूर्वक समुद्र में स्नान करे। स्नान के बाद शुद्ध चित्त से सूर्य का ध्यान करे। रात के अन्त में सावधान होकर निमिपूर्वक समुद्र में स्नान करे॥१९-२०॥ देवता, ऋषि और मनुष्यों को तर्पण कर दो स्वच्छ वस्त्रों को धारण करे ॥२१॥ उसी समुद्र के तट पर आचमन से परित होकर सूर्योदय काल में पूर्व की ओर मुख करके बैठ जाये ॥ २२ ॥ फिर विद्वान् व्यक्ति लाल चन्दन मिश्रित जल से आठ पक्षी वाले, केसर (फूला के बीच के पतले २ सीधे) से परिपूर्ण गोलाकार और ऊपर की ओर बणिजा (बुरल फूल) का समान कमल को लिलवर तिल, चावल, जल, रक्तचन्दन, रक्तपुष्प और कुश की तारों के पात्र में रखे ॥२३-२४॥

मुनिवर्य ! साथ के अमावस मास के पक्षी के दोने में निज आदि रखे और हे मुनीन्द्रा ! उस पात्र को दूसरे पात्र में ढाकर न्यास करे ॥२५॥ फिर हृदय यदि अथा मे अङ्गन्यास तथा करन्यास अच्छी तरह करने ध्याता-पूर्वक सूर्य का ध्यान करे ॥२६॥ विद्वान् मनुष्य मध्यदल में अग्नि नैर्ऋत, ईशान तथा वायु कोण के दल में और फिर मध्य दल में पूजा करे ॥२७॥ पदपात्र प्रभूत, विमल, सार आराध्य और परम सुख कमल को पूजकर आभाग में सूर्य का आवाहन करे ॥२८॥ बणिजा (कमल का छत्ता) के ऊपर स्थापित कर मुद्रा प्रदर्शित करे। स्नान के अनन्तर सावधान मन से स्वच्छ कमल के ऊपर तैजोमण्डल में स्थित, पीत नेत्रवाले, दो मुजात्रा वाले,

१ क. स. अन्तिप्रदायक। मा०। २ क. ख. अन्ति सर्वेन्द्रियग०। ३ क. विनिर्मले। ४ ग. दल। ५ क. ०८
 ६ क. ०८। ७ क. ०८। ८ क. ०८। ९ क. ०८। १० क. ०८। ११ क. ०८। १२ क. ०८। १३ क. ०८। १४ क. ०८। १५ क. ०८। १६ क. ०८। १७ क. ०८। १८ क. ०८। १९ क. ०८। २० क. ०८। २१ क. ०८। २२ क. ०८। २३ क. ०८। २४ क. ०८। २५ क. ०८। २६ क. ०८। २७ क. ०८। २८ क. ०८। २९ क. ०८। ३० क. ०८।

सर्वलक्षणसम्पन्नं सर्वभरणभूषितम्। सुखं चरदं शान्तं प्रभामण्डलमण्डितम् ॥३१॥
 उद्यन्तं भास्करं दृष्ट्वा सान्द्रसिन्दूरसन्निभम्। ततस्तत्पात्रमादाय जानुभ्यां धरणीं गतः ॥३२॥
 कृत्वा शिरसि तन्पात्रमेकचित्तस्तु वाग्यतः। श्यक्षरेण तु मन्त्रेण सूर्यायार्घ्यं निवेदयेत् ॥३३॥
 अदीक्षितस्तु तस्यैव नाम्नेवाध्वं प्रयच्छति। श्रद्धया भावयुक्तेन भवितग्राह्यो रविर्यतः ॥३४॥
 अग्निनिर्ऋतिवाय्वीशमध्यपूर्वादिदिक्षु च। हृच्छिरश्च शिलावर्मेनेत्राण्यस्त्रञ्च पूजयेत् ॥३५॥
 दक्षार्घ्यं गन्धधूपञ्च दीपं नैवेद्यमेव च। ऊप्त्वा स्तुत्वा नमस्कृत्वा मुद्रां बद्ध्वा विसर्जयेत् ॥३६॥
 ये वाध्वं सम्प्रयच्छन्ति सूर्याय नियतेन्द्रियाः। ब्राह्मणा क्षत्रिया वैश्याः स्त्रियः शूद्राश्च संयताः ॥३७॥
 भक्तिभावेन सतत विशुद्धेनान्तरात्मना। ते भुवत्वाभिमतान् कामान् प्राप्नुवन्ति परां गतिम् ॥३८॥
 त्रेलोक्यदीपकं देवं भास्करं गगनेचरम्। ये संश्रयन्ति मनुजास्ते स्युः सुखस्य भाजनम् ॥३९॥
 यावन्न दीयते चार्घ्यं भास्कराय यथोदितम्। तावन्न पूजयेद्विष्णुं शङ्करं वा सुरेश्वरम् ॥४०॥
 तस्मात् प्रयत्नमास्थाय दद्यादध्वं दिने दिने। आदित्याय शुक्तिभूत्वा पुष्पगन्धर्मनोरमैः ॥४१॥
 एवं वदति पञ्चाध्वं सप्तम्यां सुसमाहितः आदित्याय शुचि स्नातः स लभेदीप्सितं फलम् ॥४२॥

लाल कमल के समान अर्ध अक्षर घाटी, सर्वलक्षण-संपन्न, सब आभूषणों से विभूषित, सुन्दर रूपवाले, चर देनेवाले, शान्त और प्रेमा मंडल से मंडित सूर्य का ध्यान और पूजन करे ॥३१-३१॥ फिर सघन सिन्दूर के समान उदित होते हुए सूर्य को देखकर पूर्वोक्त पात्र को ग्रहण करे और घुटने टेककर उस पात्र को मस्तक पर रखकर वाक्स्यमी तथा सावधान हो तीन अक्षर वाले मन्त्र से सूर्य को अर्घ्य दे ॥३२-३३॥ अदीक्षित मनुष्य केवल सूर्य का नाम लेकर अर्घ्य दे, क्योंकि सूर्य श्रद्धा, भाव और भक्ति से ही प्रसन्न होते हैं ॥३४॥ अग्नि, निर्ऋति, वायु, ईशान, मध्य और पूर्व आदि दिशाओं में हृदय क्षिर, शिला, नेत्र, कवच और अक्षर की भी पूजा करे ॥३५॥ अर्घ्य, गन्ध, धूप, दीप और नैवेद्य देकर जप, स्तुति और नमस्कार करके मुद्रा बाधकर विसर्जन करे ॥३६॥ जो ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र सयमी होकर भक्ति भाव तथा विषुद्ध मन से सतत सूर्य को अर्घ्य प्रदाय करते हैं, वे अमिलपित भोगों की भोगकर उत्कृष्ट गति को प्राप्त करते हैं ॥३७-३८॥ जो मनुष्य तीनों लोकों को प्रवासित करनेवाले आकाश-विहारी सूर्यदेव की उपासना करते हैं, वे सुखों में भोगता होते हैं ॥३९॥ जबतक सूर्य को यथा विहित अर्घ्य न दिया जाय तबतक विष्णु, शंकर या इन्द्र की पूजा नहीं की जा सकती ॥४०॥ इसलिये प्रतिदिन पवित्र होकर सुन्दर पुष्प-गन्ध आदि से यत्नपूर्वक सूर्य को अर्घ्य देना चाहिए ॥४१॥ इस प्रकार सप्तमी तिथि को स्नान करके पवित्र तथा सावधान होकर जो सूर्य को अर्घ्य देता है, वह मनोवाछित फल प्राप्त करता है ॥४२॥ सूर्यार्घ्य देने से रोपी

१ स उद्यन्तः। २ स स्तुता र्चमा०। ३ स ०त। पञ्चक्षरेण म०। ४ स नाम्नाऽन्नाह्य प्रपूजयेत्। श्र०।
 ५ स जपित्वा। ६ स ०द्रा गुम०। ७ स ये च स्मरन्ति। ८ स पूजयन्ति। ९ स ०स्ते सर्वे मु०। १० स सुखमागिन।
 ११ स ०समागिन। या०। १२ स ०ते भक्त्या भा०। १३ स ०यथायं उत्तम। ता०। १४ स निवेदितम्। १५ स स
 शुचि स्ना०।

रोगाद्विमुच्यते रोगी वित्तार्थी लभते धनम् विद्या प्राप्नोति विद्यार्थी सुतार्थी पुत्रवान् भवेत् ॥४३॥
य य काममभिधायन सूर्यायाध्यं प्रयच्छति तस्य तस्य फल सम्यक् प्राप्नोति पुरय 'सुधो ॥४४॥
स्नात्वा' वै सागरे दत्त्वा सूर्यायाध्यं प्रणम्य च । नरो वा यदि वा नारी सत्त्वकामफल लभेत् ॥४५॥
तत् सूर्यालयं गच्छेत् पुष्पमादाय शगयत् । प्रविश्य पूजयेद्भानुं कृत्वा तु' नि प्रदक्षिणम् ॥४६॥
पूजयेत् परया भवत्या कोणार्कं मुनिसत्तमा । गन्धं पुष्पैस्तथा' 'दोषैर्धूपं नवेद्यके' रपि ॥४७॥
दण्डयत् प्रणिपातंश्च जयशब्दैस्तथा स्तवं " । एव सम्पूज्य त देव सहस्राशु' जगतपतिम् ॥४८॥
दशानामश्वमेधाना फल प्राप्नोति मानव । सर्वपापविनिर्म्मभतो युवा' 'दिव्यवपुर्नर ॥४९॥
"सप्तावरान सप्त" परान् वशानुदधृत्य भो द्विजा । विमानेनाकवर्णेन कामगेन सुवर्चसा ॥५०॥
उपगोयमानो गन्धर्व सूर्यलोकं स गच्छति । भुवतवा तत्र वरान भोगान् प्रायदाभूतसत्त्वबम् ॥५१॥
पुण्यक्षयादिहायात् प्रवरे योगिता कुले । चतुर्वेदो' 'भवेद्विप्र' स्वधर्मनिरत' शुचि ॥५२॥
योग विवस्वत् " प्राप्य सतो मोक्षमवाप्नुयत् । चित्रे मासि सिते पक्षे यात्रा मदनभञ्जिवाम ॥५३॥
य करोति नरस्तत्र पूर्वोक्तं स फल लभेत् । शपनोत्थापने भानो सकात्या विषुदायने ॥५४॥

रोग से मुक्त हो जाता है धन भी धन विद्यार्थी विद्या एवम् पुत्रार्थी पुत्र प्राप्त करता है ॥४३॥ जो विद्वान् पुरुष मन
मजिप्त इच्छा को रखकर सूर्य को अर्घ्य देता है उसका वह इच्छा मिला भाति पूरा होती है ॥४४॥ पुरय
या स्ना—जो कोई समग्र म स्नान कर सूर्य को प्रणाम करके अर्घ्य देता है उसकी सब कामनाएँ पूरा होती हैं ॥४५॥
तनुपरात् सूर्य मन्दिर म मीन होकर हाथ म पुष्प डेकर सूर्य का तीन बार प्रदक्षिणा कर पूजा करे ॥४६॥
मुनिवय । गन्ध-पुष्प धूप दान-वस्त्र स थोड़ा मन्त्रि पूर्वक वाणिक सूर्य का पूजा करना चाहिए ॥४७॥
द्विगण । दण्डवत् प्रणाम जय गन्ध व उच्चारण एवम् स्तुति स पूर्व कथित विधि के अनुसार सहस्राशु जगत्पति
धूप का पूजाकर मनुष्य दस अश्वमथ यज्ञो का फल प्राप्त करता है और सब पाप स भुक्त होकर निव्य देहधारी
पुनर् बन जाता है । ॥४८-४९॥ उसकी आग का सात पीढ़ी तथा बाद का सात पक्ष का उद्धार हो जाता है ।
और यन्त्र म वह सूर्य व समान तेजस्वी तथा इच्छागामा विमान म स्थित होकर गन्धर्वों स प्रशंसित हाता हुआ
सूर्यजो वी प्राप्त करता है ॥५०॥ वहाँ बहुत दिना तक उत्तम माया का भोगर पुण्य-क्षय होन पर मत्स्यलाव म
शगिया व उत्तम कुल म जन्म लेकर चारा बन्धन नाता स्वधर्मपरायण तथा पवित्र ब्राह्मण होकर सूर्य से याग
वी प्राप्त कर मोक्ष प्राप्त करता है ॥५१-५२॥ चत्रमास व शुक्ल पक्ष म जा मनुष्य काम को नष्ट करनेवाली
कोनार्क वी यात्रा करता है वह पूर्वोक्त वर वा प्राप्त करता है ॥५३॥ विप्रवृन्द । सूर्य व गायन उत्थापन

१ ख परम् । २ क स्नात्वव सा० । ख स्नात्वव सा० । ३ क ख व्याप प्र० । ४ क ख ०त् । पूव
गाममसा स्नात्वा कुर्वाज्जिमन्त्रं मूषनि । सर्वपापविनिमुक्ता नरा याति त्रिषष्टिपम् । त० । ५ क सवर । ६ क त ।
७ ख ०था सू० । ८ क ०र्न० । ९ ख ०र्न० । १० क ०वद्यविधिस्तथा । ११ क ख पर ।
१२ क त्रिषष्टिपम् । १३ ख ०व्यपचिन् । १४ ग ०त्तापरा० । १५ क ०त्तापूर्वात् । १६ ख ग ०वत् ।
१७ क ख ०प्र मयप० । १८ क मयह-सू० । १९ ख देवापत् ।

वारो रवेस्तिथौ' चैव पर्वकालेऽप्येवा द्विजाः। ये तत्र यात्रां कुर्वन्ति श्रद्धया संयतेन्द्रियाः॥५५॥
 विमानेनाकवर्णनं सूर्यलोकं व्रजन्ति ते। आस्ते तत्र महादेवस्तोरे' नदनदीपतेः॥५६॥
 रामेश्वर इति ख्यातः सर्वकामफलप्रदः। ये तं पश्यन्ति कामारि रनात्वा सम्यग्महोदधौ॥५७॥
 गन्धं पुष्पस्तथा धूपदीपनैवेद्यकैर्ध्वरैः। प्रणिपातैस्तथा 'स्तोत्रैर्गीतैर्वाद्यैर्मनोहरैः'॥५८॥
 राजसूयफलं सन्ध्यावाजिमघफलं तथा। प्राप्नुवन्ति महात्मानः संसिद्धिं परमां तथा॥५९॥
 कामगेन विमानेन क्रिञ्चिणीजालमालिना। उपगीयमाना गन्धर्व्वं शिवलोकं व्रजन्ति ते॥६०॥
 आभूतसंज्ञत्वं यावद्भुवत्त्वा भोगान्मनोरमान्। पुण्यक्षयादिहागत्य' चातुर्ध्वंदा भवन्ति ते॥६१॥
 शार्ङ्गकरं योगमास्थाय ततो मोक्षं व्रजन्ति ते। यस्तत्र' सदिनुः क्षेत्रे प्राणास्त्यजति मानवः॥६२॥
 स सूर्यलोकमास्थाय' देववर्मोदते दिवि'। पुनर्मनुषतां' प्राप्य राजा भवति धार्मिकः॥६३॥
 योगं रवेः समासाद्य ततो मोक्षमवाप्नुयात्। एवं मया मुनिश्रेष्ठाः' प्रोक्तं क्षेत्रं सुबुद्धमम्॥६४॥
 कोणाकंस्तोदयेस्तोरे' भुक्तिमुक्तिफलप्रदम्॥६५॥

इति श्रीब्राह्मे महापुराणे स्वयम्भुःपिसंवादे कोणादित्यमाहात्म्यकीर्तनं

नामाष्टाविंशोऽध्यायः ॥२८॥

सत्रानि, उत्तरायण, रविवार तथा सप्तमी। निधि म, अथवा पर्ववात में जो मनुष्य इन्द्रिया वा सयमन कर धडापूर्वक बहो की यात्रा करत है, वे सूर्य सदा वर्णवाते विमान में बैठकर सूर्यलोक को जाते हैं॥५४-५५॥
 उन्नी वे निकट समुद्र तट पर सत्र कामनाया वा पत्र देनेवाले रामेश्वर नाम से प्रख्यात महादेव हैं॥५६॥ जो मनुष्य समुद्र में अच्छी तरह स्नान कर उन महादेव के दर्शन करते हैं एवम् गन्ध, पुष्प धूप दीप, नैवेद्य, प्रणाम, स्तोत्र और सुन्दर गीत-गायों से उनकी पूजा करत है वे महात्मा राजसूय और अश्वमेध यज्ञों के फल तथा परम सिद्धि को प्राप्त करते हैं और इच्छानुसूल शमन करनेवाले क्रिञ्चिणी-जात से त्रिभुवि विमान पर चढ़कर गन्धर्वों द्वारा प्रशयित होत हुए शिव-लोह को जाते हैं॥५७-६०॥ वही बहुत दिनों तक उत्तम योगों को भोगकर पुण्य-क्षय होने पर फिर इस लोह में आते हैं और चाग्रा जडा व वाता होकर सादर याग में आस्था रखते हुए भक्ति प्राप्त करते हैं॥६१॥ जो मनुष्य उस सूर्य-क्षेत्र में प्राणत्याग करना है वह सूर्यलोक में जाकर स्वर्ग में देवता के समान आनन्द प्राप्त करता है॥६२॥ और फिर वह मनुष्य योनि में जाकर धर्मात्मा राजा होता है और सूर्य-याग वा प्राप्त कर माध प्राप्त करता है॥६३॥ मुनिवर्ग' इस प्रकार मने परम दुर्लभ, योग मान के फलदायक तथा समुद्र तट पर स्थित कोणाक्ष-क्षेत्र वा वातन वड मुनाया॥६४-६५॥

श्री ब्रह्ममहापुराण में ब्रह्मा और र पिया व मन्त्र प्रचारण में बागादित्य-माहात्म्य-
 वर्णन नामक अष्टाविंशो अध्याय समाप्त॥२८॥

१ क रा रा नियमदर्वच २ ग ० नवा सुवेन वै ० ग ० ३ ग य पुत्रयनि दवा र्ना ० ४ ग ० र्गर्गर्गर्ग ० ५ रा ० नारम् १ रा ० ६ ग ० न सिध्दनि नियम स्तथा ७ ग ० ० हायना नियमो व्रजन्ति ८ क यन्त्रात्र ९ क रा ० मागप ८ ० १० क ग बिदम् ११ क ० नुप्ये प्रा ० १२ क ० श्रेष्ठा यपादगतिं हितम् १३ क ० रे माहात्म्य मुक्तिद नुपाम्।

एकोनविंशोऽध्यायः

तत्रादौ सूर्यपूजाप्रकरणम्

मुनय ऊचुः

धृतोऽस्माभिः सुरश्रेष्ठ भवता यदुदाहृतम् । भास्करस्य परं क्षेत्रं भुक्तिमुक्तिफलप्रवम् ॥१॥
न तृप्तिमधिगच्छाम' श्रूयन्तः सुखदां कथाम् । तव यत्रोद्भवो पुण्यमादित्यस्थाघनाशिनीम् ॥२॥
अतः परं सुरश्रेष्ठ ब्रूहि नो वदतांवर । देवपूजाफलं यच्च यच्च दानफलं प्रभो ॥३॥
प्रणिपाते नमस्कारे तथा चैव प्रदक्षिणे । दीपधूपप्रदाने च सम्भाज्जनविधौ च यत् ॥४॥
उपवासे च यत् पुण्यं यत् पुण्यं 'नक्तभोजने । अर्घ्यंश्च कीदृशः प्रोक्तः कुत्र वा संप्रदीयते ॥५॥
कथञ्च क्रियते भक्तिः कथं देवः प्रसीदति । एतत् सर्वं सुरश्रेष्ठ श्रोतुमिच्छामहे वयम् ॥६॥

ब्रह्मोवाच

अर्घ्यं पूजादिकं सर्वं भास्करस्य द्विजोत्तमाः । भक्तिं श्रद्धां समाधिञ्च कथ्यमानं निबोधत ॥७॥
मनसा भावना 'भक्तिरिष्टा' श्रद्धा च कीर्त्यते । ध्यानं समाधिरित्युक्तं शृणुध्वं सुसमाहिताः ॥८॥
तत्कथां ध्यायेद् यस्तु तद्भवतान् पूजयति वा । अग्निशुभ्रपक्षे चैव स वै भवतः सनातनः ॥९॥
तच्चित्तस्तन्मनाश्चैव देवपूजारतः सदा । तत्कर्मकृद्भवेद् यस्तु स वै भवतः सनातनः ॥१०॥

अध्याय २६

सूर्य-पूजा का प्रकरण

मुनियों ने कहा—हे देवश्रेष्ठ । आपसे वंजित मोम-मोम-फल-दायक सूर्य-क्षेत्र के बारे में हमने सब कुछ सुना ॥१॥ पर आपके मुख से निःसृत सूर्य की पापनाशिनी, पवित्र तथा सुख-दायक कथा को सुनने से तृप्ति मही होती ॥२॥ अतः याचिदावर, प्रभो ! उस देव की पूजा का फल, दान का फल और प्रणाम, नमस्कार, प्रदक्षिणा, दीप धूप-दान, मार्जन, उपवास तथा रात्रि-भोजन में जो पुण्य होता है, वह भी हम बतलाइये ॥३-४॥ हे सुरश्रेष्ठ । अर्घ्य कसा होना चाहिये या वहाँ देना चाहिये, भक्ति कैसे की जाती है और वह देव कैसे प्रसन्न होत है—यह सब हम लोग सुनना चाहते हैं ॥५-६॥

ब्रह्मा बोले—द्विजवर्य ! सूर्य के यथं, पूजा, भक्ति, श्रद्धा, समाधि की पद्धति बतला रहा हूँ, आपलोग सुनें ॥७॥ मन से की जाने वाली भावना ही इष्ट भक्ति और श्रद्धा कहो गयी है । और ध्यान योग ही समाधि है । आपलोग भावधान होकर सुनें ॥८॥ जो मनुष्य सूर्य की कथा को सुनाएगा या उनके भक्तों की पूजा करेगा तथा अग्निहोत्री हापा, वही सनातन भक्त कहा जाएगा ॥९॥ जो सदा सूर्य ही में अपने चित्त-मन को लगाता है, उन्ही

१ रा. ० ने । देवस्तान कथ्य प्रोक्त च वास प्र० । २ क. ० का वीदुपवास प्र० । ३ क. स्तव । ४ क. भक्तिः
समा । ५ य. ० क्ताऽभूवततदा । अ० ।

देवार्थे' क्रियमाणानि यः कर्माभ्यनुमन्यते। कीर्त्तनाद्वा परो विप्राः स वै भवत्तरो नरः॥११॥
 नाम्यसूयेत तद्भक्तान् न 'निन्द्याच्चान्यदेवताम्'। आदित्यव्रतचारी च स वै भवत्तरो नरः॥१२॥
 गच्छस्तिष्ठन् स्वपञ्जिघृक्षुन्मिषन्निमिषन्नपि। यः स्मरेद्भास्करं नित्यं स वै भवत्तरो नरः॥१३॥
 एवं विद्या त्वयं भक्तिः सदा कार्या विजयिता। भक्त्या समाधिना चैव श्रुत्वेन मनसा तथा॥१४॥
 क्रियते नियमो यस्तु दानं विप्राय दीयते। प्रतिगृह्णन्ति तं देवा मनुष्याः पितरस्तथा॥१५॥
 पत्रं पुष्पं फलं तोयं यद्भवत्या समुपाहृतम्। प्रतिगृह्णन्ति तद्देवा नास्तिकान् वञ्जयन्ति च॥१६॥
 भावशुद्धिं प्रयोजयन्त्या नियमाचारसंप्रदायाः। भावशुद्ध्या क्रियते यत्तत् सर्व्वं सफलं भवेत्॥१७॥
 स्तुतिजप्योपहारेण पूजयापि विवस्वतः। उपवासेन भवत्यां वै सर्व्वपापैः प्रमुच्यते॥१८॥
 प्रणिधाय शिरो भूम्यां तमस्कारं करोति यः। तत्क्षणान्तु सर्व्वपापेभ्यो मुच्यते तात्र संशयः॥१९॥
 भक्तियुक्तो नरो योऽसौ रवेः कुर्यात् प्रदक्षिणाम्। प्रदक्षिणीकृता तेन सप्तद्वीपा वसुन्धरा॥२०॥
 सूर्य्यं वनसि यः कृत्वा कुर्याद्व्योमप्रदक्षिणाम्। प्रदक्षिणीकृतातेन सर्व्वं देवा भवन्ति हि॥२१॥
 एकाहारो नरो भूत्या पठ्या योऽर्च्यते रविम्। नियमव्रतचारी च 'भवेद्भक्तिसमन्वितः'॥२२॥
 सप्तम्यां वा महाभाषाः सोऽद्वयेऽपफलं लभेत्। अहोरात्रोपवासेन पूजयेद् यस्तु भस्करम्॥२३॥

बी पूजा म गिरत रहता है और उनके लिए कर्म करता है वह सनातन भक्त है॥१०॥ विप्रबुद्ध । देवता के निमित्त क्रियमाण कर्मों का जो अनुमोदन या कीर्त्तन करता है, वह मनुष्य महामक्त है॥११॥ जो मनुष्य देव-भक्तों से ईर्ष्या नहीं रखता, अन्य देवता की निन्दा नहीं करता और सूर्य-व्रत का पारण करता है, वह महामक्त है॥१२॥ जो मनुष्य जाते स्थित होते, सोते, संप्रते और नम्र। जो श्रोते तथा मोक्षते सूर्य का नियम स्मरण करता है, वह महामक्त है॥१३॥ वित्त पुरुष का इस प्रकार की भक्ति सदा करनी चाहिये। जो मनुष्य भक्ति, गमायि, स्तुति तथा मन से नियम करता है तथा ब्राह्मण को दान देता है, उसका दान को देवता, मनुष्य और पितर स्वीकार करते हैं॥१४-१५॥ पत्र, पुष्प, फल जल—जो कुछ भी भक्तिपूर्वक समर्पित किया जाता है, उसे देवता स्वीकार करते हैं। पर देवता नास्तिकों का दान स्वीकार नहीं करते॥१६॥ नियम और आचार पूर्वक भावशुद्धि होनी चाहिये। भाव शुद्धि से जो कुछ भी दिया जाता है वह सब सफल होता है॥१७॥ सूर्य की पूजा स्तुति, जप, उपहार और उपवास से मनुष्य सर्वपाप-रहित हो जाता है॥१८॥ जो भूमि पर निर रखकर सूर्य को नमस्कार करता है, उसने तत्काल सब पाप नष्ट हो जाते हैं इसमें कोई संशय नहीं॥१९॥ जो मनुष्य भक्तिपूर्वक सूर्य की प्रदक्षिणा करता है, वह सातों द्वीप सहित पृथ्वी की प्रदक्षिणा का फल प्राप्त करता है॥२०॥ जो मन म सूर्य का ध्यान करने आनाश से प्रदक्षिणा करता है वह सब देवताओं की प्रदक्षिणा करता है॥२१॥ जो मनुष्य एकाहार करने पठ्यो या सप्तमी तिथि म नियम, व्रत और भक्ति पूर्वक सूर्य की अर्चना करता है वह अश्वमेध यज्ञ का फल प्राप्त करता है॥२२॥ अहोरात्र

१ ग वेदार्थे । २ ग न्यादान्य० । ३ व भवता । ४ ग भवतो जन । ५ ग शुद्धेन ।
 ६ ग व्या । देवमुद्दिश्य भास्व त दा० । ७ ग व्य तत्सव । ८ ग भावेन हि श्रुत मच्च तत्त० । ९ ग भूत् । तनुनायु-
 पचारे० । १० ग पठ्या । ११ ग रा च रवेर्भक्ति० । १२ ग भूत । वृत्त० ।

सप्तम्यामयवा पट्यां स याति परमां गतिम् । कृष्णपक्षस्य सप्तम्यां सोपवासो जितेन्द्रियः ॥२४॥
 'सर्वरत्नोपहारेण पूजयेद् यस्तु भास्करम् । पद्मप्रभेण यानेन सूर्यलोकं स गच्छति ॥२५॥
 शुक्लपक्षस्य सप्तम्यामुपवासपरो नरः । सर्वशुक्लोपहारेण पूजयेद् यस्तु भास्करम् ॥२६॥
 सर्वपापविनिर्मुक्तः सूर्यलोकं स गच्छति । अर्कसम्पुटसंयुक्तमुदकं प्रसृतं पिबेत् ॥२७॥
 त्रयवद्ध्या 'चतुर्विंशमेकं क्षपयेत् पुनः । द्वाभ्यां संवत्सराभ्यान्तु समाप्तनियमो भवेत् ॥२८॥
 सर्वकामप्रदा ह्येषा प्रशस्ता ह्यर्कसप्तमी । शुक्लपक्षस्य सप्तम्यां यदादित्यदिनं भवेत् ॥२९॥
 सप्तमी विजया नाम तत्र दत्तं महत् फलम् । स्नानं दानं तपो होम उपवासस्तथैव च ॥३०॥
 सर्वं विजयसप्तम्यां महापातकनाशनम् । ये चादित्यदिने प्राप्ते धाढं कुर्वन्ति मानवाः ॥३१॥
 यजन्ति च महादेवं ते लभन्ते यथेष्टितम् । येषां धर्म्याः क्रियाः सर्वाः सर्वबोद्ध्यभास्करम् ॥३२॥
 न कुले जायते तेषां दरिद्रो व्याधितोऽपि वा । श्वेतया रक्तया वापि पीतमृत्तिकयापि वा ॥३३॥
 उपलेपनकर्त्ता तु विनितं लभते फलम् । चित्रभानुं विचित्रैस्तु कुसुमैश्च सुगन्धिभिः ॥३४॥
 पूजयेत् सोपवासो यः स कामानीप्सितान् लभेत् । घृतेन दीपं प्रज्वाल्य तिलतलेन वा पुनः ॥३५॥

उपवास करके जो सप्तमी या अष्टमी तिथि में सूर्य की पूजा करता है, वह परम गति को प्राप्त करता है ॥२३॥
 इष्ट पक्ष की सप्तमी में जो इन्द्रिय-समनपूर्वक उपवास करके सब रत्नों में उपहार से सूर्य की पूजा करता है, वह कमल की-सी शान्ति वाले विमान से सूर्यलोक को जाता है ॥२४-२५॥ जो मनुष्य शुक्ल पक्ष की सप्तमी में उपवास करके सर्वथा स्वच्छ उपहार से सूर्य की पूजा करता है, वह सब पापों से मुक्त होकर सूर्य लोक को प्राप्त करता है ॥२६॥ यदि चौबीस दिनों तक त्रयस एक-एक की वृद्धि कर आठ के दोने से प्रभुत जल पिये और फिर त्रयस एक-एक वा हास करे तो दो वर्ष तक इस प्रकार करते रहने से नियम की समाप्ति हो जाने पर यह अर्क सप्तमी सब कामनाओं को देनेवाली होती है ॥२७-२८॥ जब शुक्ल पक्ष की सप्तमी में रविवार पड़ जाता है तब वह विजया सप्तमी कहलाती है, उसमें दान देने से महाफल होता है । विजया सप्तमी में स्नान, दान, तप, होम और उपवास—ये सब मयकर पापों का नाश करने वाले होते हैं ॥२९-३०॥ जो मनुष्य रवि के दिन धाढ तथा सूर्य की पूजा करते हैं । उन्हें मनोवांछित फल मिलता है ॥३१॥ जिनकी सब क्रियायें धार्मिक तथा सूर्य को उद्देश्य करके होनी हैं उनके कुल में कोई दरिद्र या रोगी नहीं होता ॥३२॥ श्वेत, रक्त या पीत मृत्तिका से जो सूर्यालय को लीपता है, वह अमिलपित फल प्राप्त करता है ॥३३॥ चित्र-विचित्र प्रकार के फूलों तथा गन्धा से जो उपवास पूर्वक सूर्य की पूजा करता है, वह ईप्सित धन की प्राप्ति करता है ॥३४॥ घृत या तिल के तेल से दीप जलाकर जो सूर्य की पूजा करता है, उसे कोई

१ क ०भ्या पूजयेद्योऽत्रि० । २ क ०रत्नोप० । ३ क ०येद्यो दिवावर० । ४ ग ०त् । हरासव० । ५ स ग ०भरे० । ६ क प्रदिदा । ७ क शर्वेयि । ८ क ०म् । प्रदान जपहोमी च उ० । ९ क ०प्तम्यामनन्तपत्र्य स्मृत् । १० ग जपति । ११ ग धर्मा ।

आदित्यं पूजयेद्यस्तु चक्षुषा न स होयते। दीपदाता नरो नित्यं ज्ञानदीपेन दीप्यते ॥३६॥
 'तिलाः पवित्र' तैलं वा तिलगोदानमुत्तमम्। अग्निकाय्यं च दीपे च महापातकनाशनम् ॥३७॥
 दीपं ददाति यो नित्यं देवतायतनेषु च। चतुष्पथेषु रथ्यासु रथवान् सुभगो भवेत् ॥३८॥
 हविर्भिः प्रथमः कर्त्तव्यो द्वितीयद्वयोर्धोरसः। वसामेदोऽस्थिनिर्घासिनं तु देयः पथञ्छन ॥३९॥
 भवेद्भुद्वं गतिर्दीपो न कदाचिदप्यगतिः। दाता दीप्यति चाप्येषं न तिर्यग्गतिमाप्नुयात् ॥४०॥
 ज्वलमानं सदा दीपं न हरेन्नापि नाशयेत्। दीपहर्त्ता नरो बन्धं नाशं क्रोधं तमो व्रजेत् ॥४१॥
 दीपदाता स्वर्गलोके दीपमालेव रज्जते। यः समालभते नित्यं कुडकुमागुरुचन्दनैः ॥४२॥
 सम्पद्यते नरः प्रेत्य घनेन यज्ञसां धिया। रथतचन्दनसंमिश्रे रथतपुषैः शुचिनरः ॥४३॥
 उदयेऽर्घ्यं सदा देव्या सिद्धिं संवत्सराल्लभेत्। उदयात् परिवर्त्तत यावदस्त्यग्ने स्थितः ॥४४॥
 'जपप्रभिमूलः' 'किञ्चिन्मन्त्रं रतोऽग्रमथापि वा। आदित्यव्रतमेतत् महापातकनाशनम् ॥४५॥
 अर्घ्येण 'सहितञ्चैव सारथं' साङ्गं प्रदापयेत्। उदये अद्वया युक्तं सत्त्वपार्षः प्रमुच्यते ॥४६॥
 सुवर्णध्वजवन् दुहवसुधावस्त्रसंयुतम्। अर्घ्यप्रदाता लभते सप्तजन्मानुगं फलम् ॥४७॥

नैत्र विचार नहीं होता ॥३५३॥ सूर्य को दीप दान देने से मनुष्य ज्ञान रूपी दीप प्राप्त करता है ॥३६॥ तिल या तिल का तेल पवित्र होता है। (अतएव) तिल की गाय बनाकर दान करना उत्तम है। यह दान हवन तथा दीपदान के समय करने से महापातकी का विनाश करने वाला होता है ॥३७॥ जो व्यक्ति नित्य देवालय में, चौराहे पर तथा गलियों में दीप देता है, वह रूपवान् तथा भाग्यवान् होता है ॥३८॥ पढ़का पक्ष तो यह है कि यो से दीप जलाना चाहिये, दूधया पक्ष-अप्यर्घ्यरक्ष अर्थात् तिल आदि के तेल से जलाये, लेकिन बराह, मेढ और अस्थि के तेल से बर्दाश्त नहीं जलाना चाहिये ॥३९॥ त्रिष प्रसार दीप की उदा ऊर्ध्वगति होती है, अपगति नहीं होती। इसी तरह दीप-दाता तिर्यग् गति प्राप्त कर ऊर्ध्वगति प्राप्त करता है ॥४०॥ जलते हुए दीप का हरण तथा नाश नहीं करना चाहिये। ऐसा करने पर मनुष्य बन्धन, नाश, शोष और अन्धकार को प्राप्त होता है ॥४१॥ जो व्यक्ति सूर्य को दीपदान देता है वह स्वर्ग में दीपमाला की तरह सुभोगिन होता है। और जो मनुष्य नित्यप्रति कुङ्कुम, अगर तथा चन्दन से सूर्य की पूजा करता है, वह दूसरे जन्म में श्रीकृति-वैमय राक्षस होता है ॥४२॥ एक वर्ष तक पवित्र होकर रत्न चन्दन मिश्रित रत्न पुष्प से उदयकाल में सूर्य को अर्प देने में सिद्धि प्राप्त होती है ॥४३॥ सूर्य के उदय से अस्त होने तक सूर्य के शम्भुस्य सूर्य मन्त्र या स्तोत्र का जो जप या पाठ किया जाता है वह महापातनाशन आदित्यव्रत कहलाता है ॥४४-४५॥ सूर्योदय काल में जो मनुष्य अद्वया से सूर्य को अर्प गृहित पूजा-दीपनैवेद्य अर्पित करता है, वह सब पापों से मुक्त हो जाता है ॥४६॥ सूर्योपनिमित्त गाय, बैल एवं पृथिवी और अन्न गृहित अर्प देने वाला मनुष्य शान जन्मा तथा वन प्राप्त करता रहता है ॥४७॥ अग्नि, जल, आकाश,

१ रा ग तिलपत्र० २ रा ०५ परम नि० ग ०५ परम रिज्जतां दा० ३ रा ० नि० दद्यादेकादश दीप न। ४ रा
 ईनेन चाप्यन न। ५ रा ० र्घ्योपनिमा० ६ रा दीपदाता ७ रा रा ० ई १ सपुत्रये ८ रा ० न च परमि० ९ रा
 ० मिमन रि० १० रा ० चिन्मायहृन्तो नर मुचि ॥ आ० ११ रा सहिता १२ रा श्वेतांश प्र० १३ रा श्वेतांश प्र०

अग्नौ तोषेऽन्तरिक्षे च शुचौ भूम्यां तथैव च। प्रतिमायां तथा 'पिण्ड्यां' देयमर्घ्यं प्रयत्नतः॥४८॥
 नापसव्यं न सव्यञ्च दद्यादभिमुखः सदः। सघृतं गुग्गुलं वापि रवेर्भक्तिसमन्वितः॥४९॥
 तत्क्षणात् सर्व्वपापेभ्यो मुच्यते नात्र संशयः। श्रीवासं चतुरस्रञ्च देवदारं तथैव च॥५०॥
 कर्पूरागुरुधूपानि दत्त्वा वै स्वर्ग्यगामिनः। अग्ने तूत्तरे सूर्य्यमथवा दक्षिणायने॥५१॥
 पूजयित्वा विशेषेण सर्व्वपापैः प्रमुच्यते। विषुवेष्वपरागेषु षट्शोतिमुखेषु च॥५२॥
 पूजयित्वा विशेषेण सर्व्वपापैः प्रमुच्यते। एवं बेलसु 'सर्ध्यासु' सर्व्वकालञ्च मानवः॥५३॥
 भवत्यां पूजयते योज्कं सोऽङ्गलोके महीयते। कृसरः पायसैः पूर्णः 'फलमूलघृतोदनैः'॥५४॥
 बालि 'कृत्वा' तु सूर्याय सर्व्वान् कामानवाप्नुयात्। घृतेन तर्पणं कृत्वा 'सर्व्वसिद्धो भवेन्नरः'॥५५॥
 क्षीरेण तर्पणं कृत्वा मनस्तापेन युज्यते। दध्ना तु तर्पणं कृत्वा कार्य्यसिद्धिं लभेन्नरः॥५६॥
 स्नानार्थमाहरेद्यस्तु जलं भानोः समहितः। तीर्थेषु शुचितापन्नः "स घाति परमां गतिम्"॥५७॥
 छत्रं ध्वजं वितानं वा पताकां चामराणि च। श्रद्धया भानवे दत्त्वा गतिमिष्टामवाप्नुयात्॥५८॥
 यद्यद्दृश्यं नरो भवत्या आदित्याय प्रयच्छति। तत्तस्य द्रातसाहस्रमुत्पादयति भास्करः॥५९॥
 मानसं वाचिकं वापि" कायज यच्च दुष्कृतम्। सर्व्वं सूर्य्यप्रसादेन" तदशेषं व्यपोहति॥६०॥

पवित्र नूनि, प्रतिमा और पीठ (चौकी या आसन) पर बलपूर्वक अर्घ्य देना चाहिए॥४८॥ अर्घ्य कभी भी बाहिरी तथा बायी ओर न दे, बल्कि मदाही अभिमुख होकर अर्घ्य देना चाहिए। गुग्गुलु या घृत के साथ मक्लिपूर्वक सूर्य्यार्घ्य देने से मनुष्य निमज्ज तत्काल सब पापा से मुक्त हो जाता है॥४९॥ श्रीवास, देवदारु, कर्पूर, अगर और धूप चढ़ाने से मनुष्य स्वर्ग्यगामी होता है॥५०॥ उत्तरायण या दक्षिणायन में सूर्य की विशेष पूजा करने से मनुष्य के सब पाप दूर हो जाते हैं॥५१॥ विषुव में (अर्थात् उग्र समय जब दिन-रात का मान बराबर होता है) ग्रहण काल में और षडशीतिमुख (तुला राशि से छियासी दिना के समय) में सूर्य की विशेष पूजा करने से मनुष्य सब पापा से मुक्त हो जाता है॥५२॥ इस प्रकार सब दिन सब समय बलिपूर्वक सूर्य की पूजा करने से मनुष्य सूर्य्यलोक में पूजित होता है॥५३॥ खीर, मालपुष्पा, फल, मूल, घृत और चावल से सूर्य को बलि देने से सब कामनाएँ पूरी होती हैं॥५४॥ सूर्य को घृत वा तर्पण करने से मनुष्य पूर्ण सिद्धि हा जाता है॥५५॥ दूध वा तर्पण करने से मनस्ताप दूर होता है। दही में तर्पण करने से कार्य्य-सिद्धि होती है॥५६॥ जो सावधान होकर सूर्य को स्नान करने के लिए तीर्थ से पवित्रता पूर्वक जल लाता है, वह परम गति को प्राप्त करता है॥५७॥ सूर्य को छत्र, ध्वज, चोटीवा, पताका, और चामर-श्रद्धापूर्वक समर्पित कर मनुष्य वांछित गति को प्राप्त करता है॥५८॥ मनुष्य भविष्यक सूर्य को वा श्रद्धा दान करता है, उसे मगवान् सूर्य उससे दान से लाख गुना अधिक करके लौटा देते हैं।॥५९॥ सूर्य की कृपा में वाचिक, वाचिक और मानसिक चक्राव और पाप, सभी नष्ट हो जाते हैं॥६०॥

१ स पुण्य। २ क देवोऽर्घ्यं प्र०। ३ म ० भु मक्लिमन्मानयोत्तम। म०। ४ ग सुवेलायु। ५ क ० कया मयुग तरणि मयुमो०। ६ क स वल्लोन्मिधितोदनं। ७ स ० त्वा तर्पयेच्च स०। ८ क त्वा म०। ९ क तीर्थाद्रा यु०। १० क ० चित्वा म्यानास्त स०। ११ स ० पि कर्मणाऽय चयत्न०। १२ क स ० प्रणामेन।

एकाहेनापि यद्भानोः पूजायाः प्राप्यते फलम् । यथोक्तदक्षिणविप्रेन तत् ऋतुशतैरपि ॥६१॥
इति श्रीब्राह्मे महापुराणे सूर्य्यपूजावि नामकोनत्रिशोऽध्यायः ॥२९॥

त्रिशोऽध्यायः

आदित्यमाहात्म्यवर्णनम्

मुनय ऊचुः

अहो देवस्य माहात्म्यं श्रुतमेवं जगत्पते । भास्करस्य सुरधेष्ठ धदतस्तेषु दुर्लभम् ॥१॥
भूयः प्रब्रूहि देवेश यत् पूछामो जगत्पते । भोतुमिच्छामहे ब्रह्मन् परं कौतूहलं हि नः ॥२॥
गृहस्थो ब्रह्मचारी च यानप्रस्थोऽप्य भिक्षुः । य इच्छेमोक्षमास्यातुं देवतां कां यजेत सः ॥३॥
कुतो ह्यस्याक्षयः स्वर्गः कुतो निधेयसं परम् । स्वर्गंतश्चैव किं कुर्याद्येन न च्यवते पुनः ॥४॥
देवानां चात्र को देवः पितृणाञ्चैव कः पिता । यस्मात् परतरं नास्ति तन्मे ब्रूहि सुरेश्वर ॥५॥
कुतः सृष्टमिवं विश्वं सर्वं स्याद्वरजद्गमम् । प्रलये च कमम्येति तद्भवान् धवतुमर्हति ॥६॥

सूर्य की एक दिन की पूजा से जो फल प्राप्त होता है, वह विधिविधान सहित किए गए दक्षिणा पुरस्सर की यशो से भी नहीं मिलता है ॥६१॥

श्री ब्रह्ममहापुरुष ने ब्रह्मा और ऋषिया के सवाद प्रकरण में सूर्य-पूजा-नियम-
भक्ति-माहात्म्यवर्णन नामक उन्तीसवाँ अध्याय समाप्त ॥२९॥

अध्याय ३०

आदित्य का माहात्म्य-वर्णन

मुनियो ने कहा—हे सूर्योष्ठ ! हे जगत्पते ! आपने सूर्यदेव का दुर्लभ माहात्म्य सुनाया, अब हमारी एक जिज्ञासा और है । हमें यह जानने की बड़ी उलझा है कि गृहस्थ, ब्रह्मचारी, यानप्रस्थ और सन्यासी जो भी मोक्षार्थी हो वह किस देवता की उपासना करें ॥१-३॥ वह कौन सा ऐसा कर्म है जिसे करने से मनुष्य स्वर्ग प्राप्त करे और वहाँ से च्युत नहीं होना है ॥४॥ हे ब्रह्मन्, देवाधि-देव कौन है ? पितरो का पिता कौन है ? जिससे बढ़कर कुछ भी नहीं है, वह कौन है ? ॥५॥ स्याद्वर-जगम सहित सपूर्ण विश्व की सृष्टि किससे हुई ? प्रलयकाल में यह जगत् किसमें लीन होता है ?—यह सब हमें बतलाइये ? ॥६॥

ब्रह्मोद.

'उद्यन्नेवंष कुक्षते जगद्वितिमिरं करैः नातः परतरो, देवः कश्चिदप्यो द्विजोत्तमाः ॥७॥
अनादिनिघ्नो ह्येष' पुरषः, शाश्वतोऽव्ययः । तापयत्येष' श्रीलोकान् भवनुरदिमभिरुक्त्वः ॥८॥
सर्वदेवमयो ह्येष तपतां' तपनो घरः । सर्वस्य जगतो नाथः सर्वसंक्षी जगत्पतिः ॥९॥
सक्षिपत्येष भूतानि तया विसृजते पुनः । एष भाति तपत्येष' वर्धत्येष गभस्तिभिः ॥१०॥
एष धाता विधाता च भूतादिर्भूतभावनः । न ह्येष क्षयमायाति नित्यमक्षयमण्डलः ॥११॥
पितृणां च पिता ह्येष देवतानां हि देवता । ध्रुवं स्थानं' रमृतं' होतृदयस्मान्न च्यवते पुनः ॥१२॥
सर्गकाले जगत् कृत्स्नमादित्यात् सम्प्रसूयते । प्रलये च तमम्येति भास्करं दीप्ततेजसम् ॥१३॥
'योगिनश्चाप्यासंस्थितास्त्यक्त्वा' गृहकलेवरम् । यायुर्भूत्वा' विशन्त्यस्मिंस्तेजोराशि दिवाकरे ॥१४॥
अस्य रदिमसहस्राणि शाला इव विहङ्गमाः । दसनर्याश्रित्य भुनयः संसिद्धा दैवतैः सह ॥१५॥
गृहस्था जनकाद्याश्च राजानो' योगधर्म्मिणः । बाललिहयादमश्चैव ऋषयो ब्रह्मवादिनः ॥१६॥
वानप्रस्थाश्च ये क्षाम्ये व्यासाद्या' भिक्षवस्तथा । योगमास्थाय सर्व्यं ते प्रविष्टाः सूर्यमण्डलम् ॥१७॥
शुको व्याससुत. धीमान् योगधर्म्ममवाप्य स' । आदित्यकिरणान् गृह्णा ह्युपुनर्भावमास्थित. ॥१८॥

ब्रह्मणे कहा—द्विजवर । जो उदित होते हुए अपनी विरणो से सवार को अधमार-रहित कर देता है, वने बहर-बोई देव नहीं है ॥७॥ यही अनादिबीर अनन्त है, पुरष, शाश्वत (नित्य) और अव्यय (नामरहित) भी यही है, यही अपनी सौक्ष्म्य रश्मिमा से तीनों लोक को तपता है ॥८॥ यह सर्वदेवमय, तपानेवालों में श्रेष्ठ, सपूर्ण जगत् का स्वामी, सब का साक्षी, जगत्पति, प्राणिया का महारज तथा सृष्टिकर्ता, विरणो के द्वारा प्रकाश तथा वषा करने वाला, धाता, विधाता, भूतादि, भूतपालक, क्षयरहित और नित्य अक्षयमण्डल वाला है ॥९-११॥ यही रितरा का पिता, देवताओं का देवता और ध्रुव का अक्षय स्थान है क्योंकि यहीं से फिर पतन नहीं होता ॥१२॥ सृष्टिकाल में सपूर्ण जगत् सूर्य से उत्पन्न होता है और प्रलय का काल उसी अत्यन्त तेजस्वी आदित्य में लीन हो जाता है ॥१३॥ वनस्थ योगी भी, शरीर रूपी गृह को छाड़कर वायु का रूप धारण कर उसी तेजराशि सूर्य में प्रवेष्ट करने हैं ॥१४॥ सूर्य को हजार विरणा का आश्रय पाकर देवताओं के साथ सिद्ध-मुनि उसी तरह काम करते हैं, निग सत्त्व परांगण वृक्षा को साक्षात् पर रहने हैं ॥१५॥ गृहस्थ होने हुए जो योगी राजा जनक आदि, ब्रह्मवादी मुनि वाननिलय आदि, वानप्रस्थ और सन्यास, व्यास आदि जो कोई भी थे, वे सब याग को प्राप्त कर सूर्य मण्डल में प्रविष्ट हुए हैं ॥१६-१७॥ व्यास-मुनि भीमान् पुत्र ने योग को प्राप्त कर सूर्य-किरणा में जाकर पुन उत्पन्न न होने की स्थिति को प्राप्त किया ॥१८॥ ब्रह्मा, विष्णु और शिव आदि देवता अव्ययमान से गम्य हैं, पर तिमिर-नाशन सूर्य तो प्रत्यक्ष-

१ ग उद्यन्नेव कु० । २ न देव । ३. व ० य लोकाम्नीनमन्तिविरनु० ॥ ४ ग ० ना वा भुमान् । ५ ग भुमान्मे । ६ व ० य प्रजापयस्वग० । ७ व स्वग० । ८ स ० त तस्य यम्मा० । ९ ग ० प्रजाप० । १० व ग ० वन स० । ११ व ग ० व्यास च त्यक्त्वा । १२ स ० य् । एहीमूना वि० । १३ व ० नात्येन तेजोमूर्ति शिरात् । ४० । १४ व ० नो ये च पांमिताः । वा० । १५ व. ब्रह्मचारिणः । १६ स ० या वसवः ।

शब्दमात्रश्रुतिमुखा ब्रह्मविष्णुशिवादयः । प्रत्यक्षोऽयं परो देवः सूर्यस्तिमिरनाशनः ॥१९॥
 तस्मादग्यत्र भक्तिर्हि न कार्या शुभमिच्छता । यस्माद्दृष्टेरगम्यास्ते देवा विष्णुपुरोगमाः ॥२०॥
 अतो भवद्भिः संततमभ्यर्च्यो भगवान् रविः । स हि माता पिता चैव कृत्स्नस्य जगतो गुरुः ॥२१॥
 अनाद्यो लोकनायोऽसौ रश्मिभालो जगत्पतिः । मित्रत्वे च स्थितो यस्मात्तपस्तेषु द्विजोत्तमाः ॥२२॥
 अनादिनिधनो ब्रह्मा नित्यश्चाक्षय एव च । सृष्ट्वा सप्ताग्रान् द्वीपान् भुवनानि चतुर्दश ॥२३॥
 लोकानां स हितार्थाय स्थितश्चन्द्रसरित्से । सृष्ट्वा प्रजापतीन् सर्वान्सृष्ट्वा च विविधाः प्रजाः ॥२४॥
 ततः शतसहस्रांशुरव्यक्तश्च पुनः स्वयम् । कृत्वा द्वादशधात्मानमादिदमुपपद्यते ॥२५॥
 इन्द्रो धाताय पर्जन्यस्त्वष्टा पूषायमा भगः । विवस्वान् विष्णुरंशश्च वरुणो मित्र एव च ॥२६॥
 अभिर्द्वादशभिस्तेन सूर्येण परमात्मना । कृत्स्नं जगदिदं व्याप्तं मूर्तिभिश्च द्विजोत्तमाः ॥२७॥
 तस्य धा प्रथमा मूर्तिरादित्यस्येन्द्रसंज्ञिता । स्थिता सा देवराजत्वे देवानां रिपुनाशिनो ॥२८॥
 द्वितीया तस्य धा मूर्तिर्नाम्ना धातेति कीर्तिता । स्थिता प्रजापतित्वेन विविधाः सृजते प्रजाः ॥२९॥
 तृतीया कस्य धा मूर्तिः पर्जन्य इति विधृता । मेघेभ्यः स्थिता सा तु वर्धते जगभस्तिभि ॥३०॥
 चतुर्थी तस्य धा मूर्तिर्नाम्ना त्वष्टेति विधृता । स्थिता घनरूपतो सा तु ओषधीषु वसत्पतः ॥३१॥
 पञ्चमी तस्य धा मूर्तिर्नाम्ना पूषेति विधृता । अग्रे व्यवस्थिता सा तु प्रजापुष्पाति नित्यशः ॥३२॥

देव है ॥१९॥ इसलिप कन्याण बाहने वाले को मूर्त को छोड़ कर अग्यत्र भक्ति नहीं करनी चाहिये । जिसलिप विष्णु आदि देव अप्रत्यक्ष हैं अतः आप लोगों को सतत सूर्य की अर्चना करनी चाहिये ॥२०॥ सूर्य ही निखिल जगत् का माता पिता है । विप्रवर । यह अनादि, लोकनाय, किरणों की भाला वाला, जगत्पति, मित्रत्व में स्थित होकर तप करने वाला, जन्म-मरण से रहित, ब्रह्मा, नित्य और अक्षय है ॥२१-२२॥ समुद्रो और द्वीपो सहित चौदहो भुवन को सृष्टि करने लोक कल्याण के लिए सूर्य चन्द्र-सरोवर के तट पर स्थित हुआ ॥२३॥ प्रजापतियों और विविध प्रजाओं का निर्माण कर सौ हजार किरण वाले उस अत्यक्त ने बारह आदित्या के रूप में अपने आत्मा को विभक्त कर दिया ॥२४-२५॥ द्विजवर्ग । इन्द्र, धाता, पर्जन्य, त्वष्टा, पूषा, अयंमा, भग, विवस्वान्, विष्णु अतः, वरुण और मित्र—इन बारह मूर्तियों से परमात्मा सूर्य ने समस्त जगत् को व्याप्त कर रखा है ॥२६-२७॥ उस सूर्य की इन्द्र नामक जो पहली मूर्ति है, वह देवताओं के शत्रुओं को नष्ट करने वाली है तथा देवराजत्व पर स्थित है ॥२८॥ धाता नाम की उसकी दूसरी मूर्ति प्रजापति बनकर विविध प्रजाओं की सृष्टि करती है । उसकी तीसरी मूर्ति, जो पर्जन्य नाम से प्रख्यात है, बादलों में है । स्थित रहती है और किरणों के द्वारा वर्षा करती है ॥२९-३०॥ त्वष्टा नाम से प्रख्यात उसकी चौथी मूर्ति ओषधी वनस्पतियों में स्थित है ॥३१॥ पूषा नाम से विख्यात उसकी पाँचवी मूर्ति अन्न में स्थित होकर नित्य प्रजा को पुष्टि प्रदान करती है ॥३२॥ सूर्य की अयंमा नाम से प्रसिद्ध छठी मूर्ति देवों में ही

१ स ०ता । दृष्टरोगापहो यस्माद्दृष्ट नित्यमेव हि । अ० । न ०ता । दृष्ट न बाधते यस्माद्दृष्ट नित्यमेव हि । अ० । २ क धाता । ३ क ०सृष्ट्वा । ४ स विधाता ।

मूर्तिं पट्टी' रवेर्या तु अय्यमा इति विभ्रुता। वायोः संतरणा सा तु देवेष्वेव समाश्रिता॥३३॥
 भानोर्या सप्तमी मूर्तिर्नाम्ना भोगेति विभ्रुता। मूर्तिष्ववस्थिता सा तु शरीरेषु च देहिनाम्॥३४॥
 मूर्तिर्या त्वष्टमी तस्य विवस्वानिति विभ्रुता। अग्नौ प्रतिष्ठिता सा तु पचत्यन्नं शरीरिणाम्॥३५॥
 नवमी चित्रभानोर्या मूर्तिर्विष्णुश्च नामतः। प्रादुर्भवति सा नित्यं देवनामरिसूदनो॥३६॥
 दशमी तस्य या मूर्तिरंशुमानिति विभ्रुता। वायो प्रतिष्ठिता सा तु प्रह्लादयति वै प्रजः॥३७॥
 मूर्तिस्त्वेकादशी' भानोर्नाम्ना वरुणसंज्ञिता। जलेष्ववस्थिता सा तु प्रजां पुष्पाति नित्यशः॥३८॥
 मूर्तिर्या द्वादशी भानोर्नाम्ना मित्रेति संज्ञिता। लोकानां सा हितार्याय स्थिता' चन्द्रसरित्ते॥३९॥
 'वायुभक्षस्तपस्तेपे स्थित्वा मंत्रेण चक्षुषा' धनुगुह्यन् सदा भवतान् वरुणानाविधंसतु सा॥४०॥
 एषा सा जगतां मूर्तिर्हिताय विहिता पुरा। तत्र मित्रः स्थितो यस्मात्तस्मान्मित्रं परं स्मृतम्॥४१॥
 अभिर्द्वादशमिस्तेन सवित्रा परमात्मना। कृत्स्नं जगदिदं व्याप्तं मूर्तिभिश्च द्विजोत्तमाः॥४२॥
 तत्मादप्येयो नमस्तस्य च द्वादशस्यासु मूर्तिषु। भक्तिमद्भिर्नरैर्नित्यं तद्गतनान्तरात्मना॥४३॥
 इत्येवं द्वादशादित्याग्रमस्कृत्वा तु मानवः। 'नित्यं श्रुत्वा' पठित्वा च सूर्यलोके महीयते॥४४॥

काशिमहोदयवायु की सचालन-गति को बटाती है॥३३॥ मय नामवाली सातवी मूर्ति मूमि मे स्थित होकर देहधारियों के शरीर मे प्रवेश करती है॥३४॥ विष्वक्वान् नामक आठवी मूर्ति अग्नि मे प्रतिष्ठित होकर देहधारियों के अन्न को पचानी है॥३५॥ विष्णुनाम नवी मूर्ति देवताओं के शत्रुओं का वध करने के लिए नित्य अवतार लेती है॥३६॥ अशुमान् नाम से प्रख्यात दसवी मूर्ति वायु मे प्रतिष्ठित होकर प्रजाओं को आनन्दित करती है॥३७॥ सूर्य की ग्यारहवी मूर्ति, जो वरुण नाम से प्रसिद्ध है, जल मे अवस्थित होकर नित्य प्रजाओं का पोषण करती है॥३८॥ मित्र नामक बारहवी मूर्ति लोक-वर्षाण के लिए चन्द्र-सरोवर के तट पर स्थित रहती है॥३९॥ मित्रतापूर्ण नेत्रा से अनेक प्रकार के वरदानों द्वारा भक्तों के ऊपर कृपा करते हुए सूर्य ने केवल वायु भक्षण करने तपस्या की॥४०॥ इस प्रकार जगत्कल्याण के लिए उसने मूर्तियों का विधान किया। मित्रभाव से स्थित होने के कारण यह मित्र कहलाया॥४१॥ द्विजवर! परमात्मा सूर्य ने इन बारह मूर्तियों से अखिल जगत् को व्याप्त कर दिया है॥४२॥ इसलिये भक्तिमान् मनुष्य नित्य सूर्य में चित्त लगाकर बारह मूर्तियों मे स्थित आदित्य को नमस्कार करे॥४३॥ इस तरह बारह आदित्यों को नमस्कार करने नित्य उनमें माहात्म्य का श्रवण-गठन करने से मनुष्य सूर्य-लोक मे पुजित होता है॥४४॥

१ न ०ष्टी तपामातांस्वमेत्यभिवि०। २ न स व्यवस्थिता। ३ न स ०ती या तुमानोर्व०। ४ न ग ०ना। सा जीवयति के कृत्स्न जगत्सु प्रतिष्ठिताम्। मू०। ५ न ०ता मूर्ति स०। ६ स ०न्द्रम्य मन्त्रे। कृत्स्नान् तपस्तेपे स्थित स तु सरित्ते। वा। ७ ग ०धुमूत सदा। ८ स एवमान हित स्थान परस्वावाप्यनारिता। त०। ९ एवमाय दि तस्यान यदवाप्यदयेन वाज्जस्थितम्। त०। ९ न ०त्य ममाहिनी मृत्वा मू०। १० स पवित्रो म मू०।

यजन्ति त्वामहरहस्त्वां मूर्तित्वं समाधितम् । पिता माता च सर्वस्य देवतं त्वं हि शाश्वतम् ॥५५॥
यजसे पितरं कं त्वं देवं वापि न विदमहे ॥५६॥

मित्र उवाच

अवाच्यमेतद्वक्तव्यं परं गृह्यं सनातनम् । त्वधि भवितमिति ब्रह्मन् प्रवक्ष्यामि यथातथम् ॥५७॥
यत्तत् सूक्ष्ममवित्तेयमव्ययतमचलं ध्रुवम् । इन्द्रियैरिन्द्रियायैश्च सर्व्वभूतैर्विवर्जितम् ॥५८॥
स ह्यन्तरात्मा भूतानां क्षेत्रज्ञश्चैव कथ्यते । त्रिगुणाद्यतिरिक्तोऽसौ पुरुषश्चैव कल्पितः ॥५९॥
हिरण्यगर्भो भगवान् सैव बुद्धिरिति स्मृतः । महानिति च योगेषु प्रधानमिति कथ्यते ॥६०॥
साक्ष्ये च कथ्यते योगे नामभिर्यदुध्यात्मकः । स च त्रिरूपो विश्वात्मा सर्व्वोक्षर इति स्मृतः ॥६१॥
पूतमेकात्मकं तेन त्रैलोक्यमिदमात्मना । अक्षरीरः शरीरेषु सर्व्वेषु निवसत्यसौ ॥६२॥
यस्यपि शरीरेषु न स लिप्येत कर्मभिः । ममान्तरात्मा तव च ये ध्याये देहसंस्थिताः ॥६३॥
सर्व्वेषां साक्षिभूतोऽसौ न ग्राह्यं केनचित् क्वचित् । सगुणो निर्गुणो विश्वो ज्ञानगम्यो ह्यसौ स्मृतः ॥६४॥
सर्व्वतः पाणिपादान्तः सर्व्वतोऽक्षिशरीरमुखः । सर्व्वतः श्रुतिर्मातृलोके सर्व्वमावृण्वत्यतिष्ठति ॥६५॥
विश्वमूर्धा विश्वभुजो विश्वपादाक्षिनासिकः । एकश्चरति च क्षेत्रे स्वरक्षारी ययासुखम् ॥६६॥
क्षेत्राणो ह शरीराणि तेषाञ्चैव ययासुखम् । तानि वेत्ति स योगात्मा ततः क्षेत्रञ्च उच्यते ॥६७॥

नित्यमिति आप ही। कीं मूर्तिपा की पूजा क्रिया करते हैं और आप सबके माता पिता तथा सनातन देव हैं। हे देव ।
ऐसी परिधिपति म आप किस देवता की उपासना करते हैं—यह मुझे नहीं जान पड़ता। ॥५९-५६॥

मित्र ने कहा—ब्रह्मन् । यद्यपि यह सनातन रहस्य कहने योग्य नहीं है तो भी आप जैसे मन्त्रों से मैं छिपाऊँगा
नहीं ॥५७॥ जो सूक्ष्म, अतैय, अव्यय, अचल, ध्रुव, और इन्द्रिया, इन्द्रिया के विषय तथा सब प्राणियों से विवर्जित है, वह
प्राणिपादा अन्तरात्मा और क्षेत्रज्ञ कहलाता है ॥५८॥ सत्य-रज-तम—इन त्रिगुणा से परे पुरुष भी वही कहलाता
है ॥५९॥ वही भगवान् हिरण्यगर्भ तथा बुद्धि भी कहलाता है। योगी म उसे महान् तथा प्रधान (प्रवृत्ति) कहते
हैं ॥६०॥ साक्ष्य-योग म उसे बहुत नामों से कहा गया है। उसी के नाम त्रिरूप, विश्वात्मा, सर्व और अक्षर
है ॥६१॥ उसने त्रैलोक्य का धारण किया। वह शरीर रहित हाकर सब देहा म निवास करता है ॥६२॥ पर शरीरा
में वास करते हुए भी कर्मों से लिप्त नहीं होता। वह मेरा, आपका और जितने देहपारी हैं—सब का साक्षी
है। वह वही निर्मा से गृहीत नहीं होता ॥६३॥ वह सगुण निर्गुण, विश्व, ज्ञानगम्य और सब और हाथ-पैर नेत्र-
नार तथा कर्ण वाला है। वह सबको देखित कर स्थित है ॥६४-६५॥ वह विश्वमूर्धा, विश्वभुज और विश्वरूप वर-
नर तथा नाभ वाला है। वह क्षण म शुभ तथा दुःख के अनुकूल अकेला ही विचरण करता है ॥६६॥ यहाँ क्षेत्र
परिार को कहा गया है। वह योगी क्षत्रा को आसानी से जानता रहता है। इसलिए उसका नाम क्षेत्रज्ञ पडा

१ म गुत । २ व ० मजर मुने । ३ ० १ ३ स ० व । पवित्र ० । ४ व सर्व्वरूपेण वि० १ ५ स म लिप्यति ।

अव्यक्ते' च पुरे शेते पुरुषस्तेन चोच्यते। विश्व बहुविध ज्ञेय स च सर्वत्र उच्यते ॥६८॥
 तस्मात् स बहुरूपत्वाद्विश्वरूप इति स्मृत। तस्यैकस्य महत्त्वं' हि स चेक' पुरय स्मृत ॥६९॥
 महापुरुषशब्द हि विभक्त्यैक सनातन। 'स तु विधिक्रियायत्' सृजत्यात्मानमात्मना ॥७०॥
 शतधा सहस्रधा चैव तथा शतसहस्रधा। कोटिशश्च करोत्येष' प्रत्यगात्मानमात्मना ॥७१॥
 आकाशात् पतित तोय याति स्वाद्वन्तर यया। भूमे' रसविशेषेण तथा' गुणरसात्तु स ॥७२॥
 एक एव यथा वायुर्देहेष्वेव हि पञ्चधा। एकत्वञ्च पृथक्त्वञ्च तथा तस्य न सशय ॥७३॥
 स्थानान्तरविशेषाच्च यथाग्निर्लभते पराम्। सत्ता' तथा मुने सोऽप्य ब्रह्माविषु तयानुयात् ॥७४॥
 यथा दीपसहस्राणि दीप एक' प्रसूयते। तथा रूपसहस्राणि स एक सम्प्रसूयते ॥७५॥
 यदा स बुध्यत्यात्मानं तदा भवति केवल। 'एकत्वप्रलये' चास्य बहुत्वञ्च' प्रवर्तते' ॥७६॥
 नित्य हि नास्ति जगति भूत स्थावरजङ्गमम्। अक्षयश्चाप्रमेयश्च सर्वंगश्च स उच्यते ॥७७॥
 तस्मादव्यक्तमुत्पन्न त्रिगुण' द्विजसत्तमा। अव्यक्ताव्यक्तभावस्या या सा प्रकृतिरुच्यते ॥७८॥
 तां योनिं ब्रह्मणो विद्धि योऽसौ सदसदात्मक'। लोके च पूज्यते योऽसौ देवे पित्र्ये च कर्मणि ॥७९॥

है ॥६७॥ अव्यक्त पुर मे वह सोता है। इसलिये उसे पुरुष कहते हैं। विश्व बहुत प्रकार का है और उसे सबक
 कहा गया है ॥६८॥ इसलिए अनेक ज्ञा होने के कारण उसका विश्वरूप नाम पड़ा। उसी एक का महत्त्व अर्थात्
 महत्त्व है और वही एक पुरुष कहलाता है ॥६९॥ वही एक सनातन महापुरुष के शब्द को धारण करता है।
 वह विधिक्रिया के अर्थ न आत्मा से आत्मा का सजन किया करता है ॥७०॥ वह आत्मा से प्रत्यगात्मा (जीवात्मा)
 को ही हजार लाख और करोड़ प्रकार का बना डालता है ॥७१॥ आकाश से पतित जल जैसे भूमि रस के संयोग
 से मित्र प्रकार के स्वाद को ग्रहण कर लेता है उसी प्रकार जैसे गुणों के रम-भाषण से वह विषेय रस को धारण
 करता है ॥७२॥ जैसे एक ही वायु शरीर में पाँच प्रकार से रहता है उसी प्रकार उसका एकत्व और पृथक्त्व है
 दृग्म कोई संदेह नहीं ॥७३॥ जैसे अग्नि स्थानान्तर के कारण दूसरी-दूसरी सत्ता को प्राप्त होता है वैसे वह भी
 ब्रह्मा आदि सत्ताएँ प्राप्त करता है ॥७४॥ जैसे हजारों छपा को एक ही छीप उत्पन्न कर देता है वैसे वह भी एक
 होकर हजारों रूपा को उत्पन्न करता है ॥७५॥ जब वह आत्मा को जानता है तब केवल रूप जाना है अर्थात्
 एक ही रहता है और एकत्व का नाम जान पर उसका बहुत्व अर्थात् बहुरूप हो जाता है ॥७६॥ गद्यार में
 स्थावर-जगम नित्य नहीं है। पर वह अण्व अण्वेय (न मापने योग्य) और व्यापक है ॥७७॥ द्विजवर!
 इसलिए उसी से अव्यक्तरूप त्रिगुण उत्पन्न होता है और अव्यक्त से व्यक्त भाव में जो स्थित है वही प्रकृति
 कहलाता है ॥७८॥ जो मन-अंगन रूप और लोह में देव त्रिगुण में पूजित होता है वह ब्रह्मा को योनि है ॥७९॥

१ स ० ध्यस्तित पु०। २ क ममत्व। स समत्व। ३ क स त त्व वि०। ४ क स ० व्यापन गु०।
 ५ क ० पृथगा०। ६ क भूमि र०। ७ क ० ध्याय व्यापको महान्। ए०। ८ स ० गव्यानुय। ए०। ९ म ० ज्ञां
 मयाऽध्वरा रूपु यज्ञाद्युप तथा ज्ञसी। य०। १० क स ० त्व प्र०। ११ क ० प्रत्य प०। १२ स स ततो
 मवेन। नि०। १३ क प्रत्यय। १४ क त्रिगुण।

नास्ति तस्मात् परो ह्यन्यः पिता देवोऽपि वा द्विजाः । आत्मना स तु विज्ञेयस्ततस्तं पूजयाम्यहम् ॥८०॥
स्वर्गेष्वपि हि ये कंचित्तं नमस्यन्ति देहिनः । तेन गच्छन्ति देवर्षे तेनोद्दिष्टफलां गतिम् ॥८१॥
तं देवाः स्वाश्रमस्याश्च नानामूर्त्तिसमाश्रिताः । भक्त्या सम्पूजयन्त्याद्यं गतिश्चेपां ददातिसः ॥८२॥
स हि सर्वगतश्चैव निर्गुणश्चैव कथ्यते । एवं भूत्वा ययाज्ञानं पूजयामि दिवाकरम् ॥८३॥
ये च तद्भाविता लोक एकतत्त्वं समाश्रिताः । एतदप्यधिकं तेषां यदेकं प्रविशन्त्युत ॥८४॥
इति गुह्यसमुद्देशस्तव नारद कीर्तितः । अस्मद्भवत्यापि देवर्षे त्वयापि परमं स्मृतम् ॥८५॥
सर्वेषां मुनिभिर्व्यापि पुराणैर्व्वरदं स्मृतम् । सर्वे च परमात्मानं पूजयन्ति दिवाकरम् ॥८६॥

ब्रह्मोवाच

एवमेतत् पुराण्यतं नारदाय तु भानुना । मयापि च समाख्याता कथा भानोद्विजोत्तमाः ॥८७॥
इदमाख्यानमाख्येयं मयाख्यातं द्विजोत्तमाः । न ह्यनादित्यभक्ताय इदं देयं कदाचन ॥८८॥
यश्चैतच्छ्रावयेन्नित्यं यश्चैव शृणुयान्नरः । स सहस्राक्षिणं देवं प्रविशेन्नात्र संशयः ॥८९॥
मुच्येतांस्तस्या रोगाच्छ्रुत्वेमामादितः कथाम् । जिज्ञासुर्लभते ज्ञानं गतिमिष्टां तथैव च ॥९०॥
क्षणेन लभतेऽप्यनमिदं यः पठते मुने । यो यं कामयते कामं स तं प्राप्नोत्यसंशयम् ॥९१॥

उमने ब्रह्मर अन्य कोई पिता, द्विज और देव नहीं है। वह आत्मा द्वारा जानन योग्य है। अतः उमी की पूजा मैं करता हूँ ॥८०॥ हे देवर्षि! स्वर्ग में भी जो कोई उमे नमस्कार करते हैं, वे उमसे अपने अभीष्ट की प्राप्ति करते हैं ॥८१॥ अनेक मूर्तियां मैं आश्रित देवता अपने आश्रम में ही रहकर भक्तिपूर्वक उसकी पूजा करते हैं और उमसे अपनी कामनाएँ पूर्ण करते हैं। वह सब में व्याप्त और निर्गुण ब्रह्मात्मा है ॥८२॥ एका जानकर मैं अपने ज्ञानानुसार सूर्य की पूजा करता हूँ। सूर्य से प्रेरित लाख एक तरफ़ को प्राप्त कर फिर उमी एक (सूर्य) मे प्रवेश करते हैं ॥८३॥ हे नारद! यह रहस्य मैंने आपसे बतला दिया और हमारी भक्ति से आपने भी गुना ॥८४-८५॥ देवता या पुराणज मुनियां ने उन सूर्य का वरदायक कहा है। सभी परमात्मा सूर्य की पूजा करते हैं ॥८६॥

ब्रह्म ने कहा—द्विजवर्य! पहले इस प्रकार नारद से सूर्य ने कहा था और अब मैंने भी आप लोगों से बतला दिया ॥८७॥ किन्नर! मेरे द्वारा वर्णन इस आख्यान को आप लोग भी सुनाएंगे, पर सूर्य के अमृत को बर्मी नहीं सुनाएंगे ॥८८॥ जो मनुष्य नित्य इसका श्रवण करेगा या कराएगा, वह सहस्रकिरणायारी देव में प्रविष्ट होगा ॥८९॥ इस कथा का आदि से मुने से रागी रोग-मुक्त हो जाता है और जिज्ञासु ज्ञान तथा अर्भोष्ट कप्यु का लाभ करता है ॥९०॥ मुने! जो इसका पाठ करता है, वह तत्काल मार्ग-प्राप्ति करता है। त्रिमूर्ती

१ क म त। २ क स ० व कथ्यते स्थाणुजन्ममे। ए०। ३ क ० क ह्यधिक पुनः। ४०। ४ स ० मार्यं च म०। ग ० मा। ५ अमरनाथ न देव नै दायायापि कथयन। ६ क ० वच्छाद्रे य०। ७ ग गवे दिवाकर दे०।

तस्माद्भवद्भिः सततं स्मर्त्तव्यो भगवान् रविः । स च घाता विघाता च सर्वस्य जगतः । प्रभुः ॥९२॥
इति श्रीब्राह्मे महापुराणे आदित्यमाहात्म्यवर्णनं नाम त्रिंशोऽध्यायः ॥३०॥

एकत्रिंशोऽध्यायः

आदित्यमाहात्म्यवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

आदित्यमूलमखिलं त्रिलोक्यं मुनिसत्तमा । भवत्यस्माज्जगत् सर्वं सदेवासुरमानुषम् ॥१॥
रुद्रोपेन्द्रमहेन्द्राणां विप्रेन्द्र त्रिविक्रताम् । महाद्युतिमताञ्चैव तेजोऽयं साव्वैलौकिकम् ॥२॥
सर्वात्मा सर्वलोकेशो देवदेवः प्रजापतिः । सूर्य एव त्रिलोकस्य मूलं परमदेवतम् ॥३॥
अग्नौ प्रास्ताहुतिः सम्यगादित्यमुपतिष्ठते । आदित्याज्जायते वृष्टिर्धृष्टेरन्नं ततः प्रजाः ॥४॥
सूर्यात् प्रसूयते सर्वं तत्र चैव प्रलीयते । भावाभावौ हि लोकानामादित्याग्निः सूती पुरा ॥५॥
एतत्तु ध्यानिना ध्यानं मोक्षदाप्येष मोक्षिणाम् । तत्र गच्छन्ति निर्वाणं जायन्तेऽस्मात् पुनः पुनः ॥६॥

जो कामना हो, वह इसके पाठ में निःसंदेह पूर्ण हो जाती है ॥९२॥ इसलिए आप राग छटा भगवान् सूर्य का स्मरण करें। वही घाता, विघाता और सपूर्ण जगत् का स्वामी है ॥९२॥

श्री ब्रह्ममहापुराण में आदित्य-माहात्म्य-वर्णन

नामक तीसरी अध्याय समाप्त ॥३०॥

अध्याय ३१

आदित्य के नाम का महात्म्य-वर्णन

ब्रह्मा ने कहा—मुनिवर ! समस्त त्रिलोक्य का मूल सूर्य है। देवता, राक्षस और मनुष्य सहित यह सपूर्ण जगत् सूर्य से उत्पन्न है ॥१॥ विप्रेन्द्र ! रुद्र, इन्द्र, विष्णु और महामान्तिमान् देवताओं का भावैलौकिक तेज यह सूर्य ही है ॥२॥ सर्वात्मा, सब लोकों का स्वामी, देव-देव, प्रजापति, परमदेवता और त्रैलोक्य का मूल भी सूर्य ही है ॥३॥ अग्नि में प्रस्ताहुति सूर्य को प्राप्त होती है, सूर्य में वृष्टि होती है, वृष्टि से अन्न और अन्न से प्रजा ॥४॥ सूर्य से सब की उत्पत्ति होती है और उन्हीं में सब लीन होते हैं। पृथ्वी लोक में भाव (सत्ता) और अभाव (दत्ता) सूर्य से निवृत्त हुए ॥५॥ वही ध्यानिना का ध्यान और भावार्थिना का योग है। उन्हीं में मनुष्य निर्वाण

क्षणा मूर्त्ता दिवसा निशा पक्षाश्च नित्यशः। मासाः संवत्सराश्चैव ऋतवश्च युगानि च॥७॥
 अयादित्यादृते ह्येषां कालसंख्या न विद्यते। कालादृते न नियमो नामनो विहरणक्रिया॥८॥
 ऋतूनामविभागश्च ततः पुष्पफलं कुतः। कुतो वै शस्यनिष्पत्तिस्तृणौषधिगणः कुतः॥९॥
 अभावो व्यवहाराणां जन्तूनां दिवि चेह च। जगत्प्रभावाद्दिशते "भास्कराद्वास्तिस्करात्"॥१०॥
 नावृष्ट्या तपते सूर्यो नावृष्ट्या परिशुष्यति"। नावृष्ट्या परिधिं घत्ते वारिणा दीप्यते रविः॥११॥
 घसन्ते कपिलः सूर्यो ग्रीष्मे काञ्चनसन्निभः। श्वेतो वर्षासु वर्णेन पाण्डुः शरदि भास्करः॥१२॥
 हेमन्ते ताम्रवर्णाभिः शिशिरे लोहितो रविः। इति वर्णाः समाख्याताः सूर्यस्य ऋतुसम्भवाः॥१३॥
 ऋतुस्वभाववर्णश्च सूर्यः क्षेमसुभिक्षकृत्। अयादित्यस्य नामानि सामान्यानि द्विजोत्तमाः॥१४॥
 द्वादशैव पृथक्त्वेन तानि वक्ष्याम्यशेषतः। आदित्यः सविता सूर्यो मिहिरोर्जकः प्रभाकरः॥१५॥
 मार्तण्डो भास्करो भानुश्चित्रभानुर्दिवाकरः। रविर्द्वादशभिरुत्तेषां ज्ञेयः सामान्यनामभिः॥१६॥
 विष्णुर्धाता भगः पूषा मित्रेन्द्रो वरुणोऽर्ज्यमा। विवस्वानंशुमास्त्वष्टा पर्जन्यो द्वादशः" स्मृतः॥१७॥
 इत्येते द्वादशादित्यः पृथक्त्वेन व्यवस्थिताः। उत्तिष्ठन्ति सदा ह्येते मासद्वादशभिः क्रमात्॥१८॥
 विष्णुस्तपति चित्रे तु वैशाखे चार्ज्यमा तथा। विवस्वान् ज्येष्ठमासे तु आपादे चांशुमान्" स्मृतः॥१९॥

मान् करते हैं और उसी से पुन पुन उत्पन्न होते हैं॥६॥ अण, मूर्त्त, दिन, रात्रि, पक्ष, मास, वर्ष, ऋतु और युग—इन सब की कालसंख्या बिना सूर्य के नहीं हो सकती है॥७॥ बिना काल के कोई नियम नहीं हो सकते और न अग्नि में विहरण किया ही हो सकती है। ऋतुओं का विभाग नहीं हो सकता, फल फूलों की तो बात ही क्या। पान्य पुष्प और औषधियों की उपज भी नहीं हो सकती॥८-९॥ पृथ्वी तथा आकाशमें जीवों का व्यवहार नहीं हो सकता। जल चुराने वाले सूर्य से जगत् प्रभावित होता है॥१०॥ बिना वृष्टि के सूर्य न तप सकता है, न भूत बनना है। वृष्टि के अभाव में सूर्य अपनी परिधि को भी भारण नहीं कर सकता। जल से ही तो यह दीप्त होता है॥११॥ सूर्य घसन्त ऋतु में कपिल रूप, ग्रीष्म में सुवर्ण के समान, वर्षा में श्वेत, शरद् में पाण्डु, हेमन्त में ताम्रवर्ण और शिशिर में रक्त हो जाता है॥१२॥ सूर्य के ये ऋतुकालीन वर्ण मैंने वर्णन कर दिये। अब ऋतुओं के अनुसार सूर्य सुमित्र करता है—यह जानकर आप उसके सामान्य नामों को भी सुन लीजिये॥१३-१४॥

द्विगण। आदित्य, सविता, सूर्य, मिहिर, अर्क, प्रभाकर, मार्तण्ड, भास्कर, भानु, चित्रमानु, दिवाकर और रवि—ये सामान्य नाम हैं॥१५-१६॥ विष्णु, धाता, भग, पूषा, मित्र, इन्द्र, वरुण, अर्ज्यमा, विवस्वान्, अंशुमान्, त्वष्टा और पर्जन्य—ये द्वादश आदित्य पृथक् रूप से व्यवस्थित हैं। ये बारह महीना में क्रमशः उत्पन्न करते हैं॥१७-१८॥ विष्णु चैत्र में, अर्ज्यमा वैशाख में, विवस्वान् ज्येष्ठ में, अंशुमान् आपाद में, वरुण भाद्रपद में, इन्द्र

१ क० ख० पा०। धातूना०। २ क ख ०श्च पु०। ३ क ख ०ष्पमूलफ०। ४ ख ०त्प्रमाण हि वृते।
 ५ घ. ०स्वरो वारि०। ६ ख ०स्वर। ना०। ७ क परिचिन्ते। ८ ख ०न श०। ९ ख ०दि द्यामवर्णं। हे०।
 १० क. ०शो मन्। ११ क ०शुमास्तथा। प०।

पज्जन्मः श्रावणे मासि वरुणः प्रोष्ठसंज्ञके। इन्द्र आश्वयुजे मासि धाता तपति कार्तिके ॥२०॥
 मार्गशीर्षे तथा मित्रः पौषे पूषा दिवाकरः। माघे भगस्तु विज्ञेयस्त्वष्टा तपति फाल्गुने ॥२१॥
 शतैर्द्वादशभिर्विष्णु रश्मिभिर्दोष्यते सदा। दोष्यते गोसहस्रेण शतैश्च त्रिभिरग्यमा ॥२२॥
 द्विःसप्तकैर्विवस्वास्तु अंशुमान् पञ्चभिस्त्रिभिः। विवरवानिव पज्जन्मो वरुणश्चाग्यमा तथा ॥२३॥
 मित्रवद्भगवांस्त्वष्टा सहस्रेण शतेन च। इन्द्रस्तु द्विगुणः पङ्क्तिर्घातिकादशभिः शतैः ॥२४॥
 सहस्रेण तु मित्रो वै पूषा तु नवभिः शतैः। उत्तरोपक्रमेऽस्य वदंते रश्मयस्तथा ॥२५॥
 दक्षिणोपक्रमे भूयो हसन्ते सूर्यरश्मयः। एवं रश्मिसहस्रन्तु 'सूर्यलोकादनुग्रहम्' ॥२६॥
 एवं 'नाम्ना चतुर्विंशदेक' एषां प्रकीर्तितः। विस्तरेण सहस्रन्तु पुनरग्यत् प्रकीर्तितम् ॥२७॥

मुनय ऊचुः

ये तन्नामसहस्रेण स्तुवन्त्येकं प्रजापते। तेषां भवति किं पुण्यं गतिश्च परमेश्वर ॥२८॥

ब्रह्मोवाच

शृणुष्वं मुनिशार्दूलः सारभूतं सनातनम्। अलं नामसहस्रेण 'पठन्नेवं' रत्नं शुभम् ॥२९॥
 यानि नामानि गुह्यानि पवित्राणि शुभानि च। तानि वः कीर्त्तयिष्यामि शृणुष्वं भारस्कस्य वै ॥३०॥
 विकर्त्तनो विवस्वाश्च मार्तण्डो भास्करो रविः। लोकप्रकाशकः धीर्मातृलोकचक्षुर्महेश्वरः ॥३१॥

आश्विन मे, धाता कार्तिक मे, मित्र अग्रहन मे, पूषा पौष मे, भग माघ मे और त्वष्टा फाल्गुन मे तपते हैं ॥१९-२१॥
 बारहसौ किरणों से विष्णु, तेरह सौ किरणों से अग्न्या, चौदह सौ किरणों से विवस्वान् और पन्द्रह सौ किरणों से
 अशुमान् सदा तपा करते हैं ॥२२॥ विवस्वान् के बराबर किरणों से पज्जन्म, वरुण और अग्न्या दीप्त होते
 हैं ॥२३॥ प्यारहसौ किरणों से मित्र, पाता, और त्वष्टा दीप्त होते हैं। बारहसौ किरणों से इन्द्र और नौसौ
 किरणों से पूषा दीप्त होते हैं ॥२४॥ उत्तरायण मे सूर्य की रश्मियाँ बरती हैं और दक्षिणायन मे घटती हैं।
 इस प्रकार मे सहस्र किरणें सूर्यलोक से अनुग्रह किया करती हैं ॥२५-२६॥ सूर्य के चौबीस नाम तो मैं बतला
 दिये, पर उनसे सहस्र नाम भी हैं ॥२७॥

मुनियो ने कहा—हे परमेश्वर! हे प्रजापते! जो मनुष्य उन सहस्र नामों से सूर्य की स्तुति करते हैं,
 उनको क्या पुण्य प्राप्त होता है, यौन सी गति मिलती है? ॥२८॥

ब्रह्मा ने कहा—मुनिगण! सूर्य के सहस्र नामों से क्या प्रयोजन? जो उनकी सनातन तथा सारभूत गुण स्तुति
 है, उसे मुनिये ॥२९॥ सूर्य के जो पवित्र, शुभ तथा गुप्त नाम हैं, उन्हें मैं आपको बतला रहा हूँ, मुनिये ॥३०॥ विकर्त्तन,
 विवस्वान्, मार्तण्ड, भास्कर, रवि, लोक-प्रकाशक, धीमान्, लोकचक्षु, महेश्वर, लोकासाक्षी, त्रिलोकेश, वर्ता, हर्ता,
 तमिस्रहा, तान, तान, गुचि, सप्तास्ववाहन, गमस्तिहस, ब्रह्मा और सर्वदेवनमस्कृत—इन द्वासीस नाम का स्तोत्र

१ वं ०लोके च सप्र०। २ वं ०वानुसप्रह०। ३ वं ०नाम्ना। ४ वं ०देवर्तया प्र०। ५ वं ०एव। ६ वं
 पठित्वेन स्त०। ७ वं ०द्वीपदस्त०। ८ वं ०शन ध्यो०।

लोकसाक्षी त्रिलोकेश' कर्त्ता हर्त्ता तमिस्रहृ। तपनस्तापनश्चैव शुचि सप्तशिववाहन ॥३२॥
 गभस्तिहस्तो ब्रह्मा' च 'सर्वदेवनमस्कृत। एकविंशतिरित्यप स्तव इष्ट सदा 'रवे ॥३३॥
 शरीरारोग्यदश्चैव धनवृद्धियशस्कर। स्तवराज इति ख्यातस्त्रिषु लोकेषु 'विश्रुत ॥३४॥
 य एतेन द्विजश्रेष्ठा' द्विसंध्योऽस्तमनोदये। स्तोति' सूर्यं शुचिभूत्वा सर्वपापं प्रमुच्यते ॥३५॥
 मानस वाचिक वापि देहज कर्मज तथा। एकजप्येन ततस्त्वं नश्यत्यर्कस्य सन्निधौ ॥३६॥
 एकजप्यश्च होमश्च सन्ध्योपासनमेव च। घूपमन्त्राध्यमन्त्रश्च' बलिमन्त्रस्तथैव च ॥३७॥
 अन्नप्रदाने' दाने च प्रणिपाते प्रदक्षिणे। पूजितोऽय महामन्त्र सर्वपापहर शुभ ॥३८॥
 तस्मादयूय' प्रयत्नेन स्तवेनानेन वै द्विजा। स्तुवीध्व चरव देव सध्वकामफलप्रदम् ॥३९॥
 इति श्रीब्राह्मे महापुराणे मातंगण्डस्यैकविंशतिनामानुकीर्तनं नाम एकत्रिंशोऽध्यायः ॥३१॥

द्वात्रिंशोऽध्यायः

मातंगण्डजन्ममाहात्म्य-वर्णनम्

मुनय ऊचु

निगुण शशिवतो देवस्त्वया प्रोक्तो विवाकर। पुनर्द्वाविंशधा जात श्रुतोऽस्माभिरत्ययोदित ॥१॥

सूर्य को सदा प्रिय है ॥३१-३३॥ यह स्तवराज तनो लोक में प्रसिद्ध और आराध्य धन तथा यग को देनेवाला है ॥३४॥ जो मनुष्य पवित्र होकर दानों सध्या इस स्तोत्र का पाठ करता है वह सब पापों से मुक्त हो जाता है ॥३५॥ कमणा मनसा वाचा तथा गरीर से जो कोई भी पाप किया गया है वह सब सूर्य की सन्निधि में एक बार इस स्तोत्र का जप करने से नष्ट हो जाता है ॥३६॥ यही स्तवराज जप होम सध्वोपासन घूपमन्त्र अन्नमन्त्र और बलिमन्त्र ॥३७॥ अन्नदान दान प्रणाम और प्रदक्षिणा में पूजित किया गया यह महामन्त्र सब पापों का हरण कर लेता है ॥३८॥ द्विजगण! इसलिए आप लोग इस स्तोत्र से वर-दायक तथा सर्वकाम फल प्रद सूर्य का स्तुति व जिय ॥३९॥

या ब्रह्म महापुराण में सूर्य के इषक स नामों का अनुकृतन नामक

एकतीसवाँ अध्याय समाप्त ॥३१॥

अध्याय ३२

सूर्य के जन्म का माहात्म्य

मुनियो ने कहा—आपने निगुण तथा निय सूर्यदेव के बारे में कहा। सूर्य बारह प्रकार के हो गये—

१ क ० कशो दस्युह ० ख ० वेनो लोवनर्वात ०। २ ख ब्रह्मण्य स ०। ३ व ० वलोवन ०। ४ ख ग ० वे। श्रीदारोग्यकरस्व ०। ५ ख ० त। पठनवृद्धि ०। ६ ख ० थठोद्धि ०। ७ ख याति। ८ व ख ० त्राघम ०। ९ ख ० दानमन्त्रश्च प्राप्तमन्त्रस्तथ च। १०। १० व ख ० स्मान्युय प्र ०। ११ ख नन्व नयपा जात।

तस्य तेजतो रश्मिस्त्रिषा गर्भे महाद्युतिः । सम्भूतो भास्वरौ जातस्तत्र न तशायो महान् ॥२॥

ब्रह्मोवाच

'व्यास्य हि सुता श्रेष्ठा यभूय दष्टि गोभता । अदिनिदितिनृचयं विनताछारतयं च ॥३॥
दशस्ता प्रदवी पया दश्यपाय प्रयोद्वि । अदिनिजनघामास देवास्त्रिभुवनैश्वरान् ॥४॥
देव्यादितिनृचोपदानवान् यदपितान् । विनताछारतया चाया सुदृष्टु इषाणुज्जमान् ॥५॥
तस्याय पुत्रदोहित्रं पोत्रदोहित्रकादिभिः । स्यात्प्रमेतज्जगत् सत्यं तेषां तातां च ये भूने ॥६॥
तया पश्यपुत्राणां प्रधाना देवतागणाः । सास्त्रिषा राजातादवाये तामसादय गणां स्मृता ॥७॥
दवानयगभुजद्वये तया त्रिभुवनैश्वरान् । स्रष्टा ब्रह्मविदां श्रेष्ठ परमेष्ठी प्रजापति ॥८॥
तानवायत संहिता सापत्याददेत्यदानवा । ततो निरावृत्तान् पुत्रान्देवेर्दानवस्तया ॥९॥
हृत त्रिभुवन दृष्टवा अदितिमुनिसत्तमा । आदिष्टनृदयगभामांश्च क्षुपातम्पोहितान् भुङ्गम् ॥१०॥
आराधनाय सवितु पर यत्नं प्रचक्षमे । एकाया नियताहारा पर नियममास्थिता ॥
सुष्टाव तेजतां राशि गगनस्य दिवाकरम् ॥११॥

यह भी हमने जाना जाता है । पर एन क्या गनेह हम यह है रहा है नि महाबान्तिमान् तथा तत्राणि भूय श्री के गम रा कते उत्तर हुए ? ॥१२॥

ब्रह्मा बोले—॥३॥ क गान् गन्त्री क्याय हृदं जिनम न अन्ति निति दनु ओर विनता आनि तेरह क्याये द्या म क्याय का ही ॥३॥ अन्ति ने तीनो भुवन के क्याम दवा का उत्तर किया ॥४॥ निति ने दया को दनु न उग्र तथा ब्रह्मिमान् दानवा का ओर विना आनि दूर कर क्याया न स्यादरज्यमा का उत्तर किया ॥५॥ क्याय क पुत्रदोहित्र तथा पोत्रदोहित्र आनि स यह गणु जगत् द्य प्त है ॥६॥ क्याय पुत्रा म देवता तो सावित्र ॥ पर दूरे पुत्र रात्रम तथा तामम हैं । ब्रह्मवेत्तात्रा म अष्ट प्रजापति क्याय न देवताओ को विभुवनन्त्र म तथा पत्र भोजना वनाया ॥ ७॥ उन दानवा का दय ओर दानव पत्नी देन लग । मुनिगण । दय तथा दानवा न दयताओ को भगाकर उनका धन भोग आह्वय कर दिया । दानवाओ को अत्यन्त पीडित तथा विभुवन को विनष्ट ह ने हुए देखकर अन्ति भूय श्री आराधना करन लगी । वह नियमित भोजन तथा कठिन नियमा को धारण कर एकाग्रचित्त होकर आवास्थ तेजाराणि भूय श्री स्तुति करने लगी ॥ ११॥

१ ख ०मा रागिन्मिग्नजा म० । २ ख ०रो देवस्त० ३ ग ०शान्तिर सर्वाव० । ४ क ०ति । दानवा यशसहिता सपत्ना दयानवा राशसाञ्च तता यष्ट तपामासत्सुदारणम् । न्यिय वषमहस्य तु तत्राजीयन्त देवता । जययन्ताऽभवस्तत्र वल्लो दयदानवा । त० । ५ क ०मा । विच्छि० । ६ ख यत्नमुपस्थिता । ए० । ७ क ०म । जिताहारा तमनस्का प० ।

अदितिह्वाच

नमस्तुभ्यं परं सूक्ष्मं सुपुण्यं बिभ्रतेऽतुलम् । धाम धामवताम्रीशं धामाधारं च शाश्वतम् ॥१२॥
 'जगतामुपकाराय स्वामहं स्तोमि' गोपते । आददानस्य यद्रूपं तीव्रं तस्मै नमाम्यहम् ॥१३॥
 प्रहीनुमष्टमासेन कालेनाम्बुमयं रसम् । बिभ्रतस्तव यद्रूपमतितीव्रं नतास्मि तत् ॥१४॥
 समेतमग्निपोमाम्यां नमस्तस्मै गुणात्मने । यद्रूपमृग्यजुःसाम्नामैवयेन तपते तव ॥१५॥
 विश्वमेतत्त्रयोसंज्ञं नमस्तस्मै विभावसो । यत्तु तस्मात्परं ह्यमोमित्युक्तवाभिसंहितम् ॥
 अस्थूलं स्थूलममलं नमस्तस्मै सनातन ॥१६॥

ब्रह्मोवाच

एवं सा नियता देवी चक्रे स्तोत्रमहनिशम् । निराहारा विवस्वन्तमारिराद्यपिद्विजाः ॥१७॥
 तत कालेन महता भगवांस्तपनो द्विजाः । प्रत्यक्षतामगात्तस्या दाक्षायण्या द्विजोत्तमाः ॥१८॥
 सा ददर्श महाकूटं तेजसोऽम्बरसंवृतम् । भूमौ च संस्थितं भास्वज्ज्वालाभिरतिदुर्दृशम् ॥१९॥
 तं दृष्ट्या च ततो देवी साध्वसं परमं गता ॥२०॥

अदिति ने कहा—हे पूर्वोपते ! तुम्हें नमस्कार है । तुम परम सूक्ष्म, अनुपमेय तेज को धारण करने वाले, तेजधारिमा के स्वामी, तेजा के आधार तथा नित्य हो ॥१२॥ ससार के उपकार के लिए मैं तुम्हारी स्तुति करती हूँ । तुम्हारे तीक्ष्ण रूप को मैं नमस्कार करती हूँ ॥१३॥ जाठ महीना में जलमय रस को धारण करने वाले आपके अत्यन्त तीक्ष्ण रूप को नमस्कार है ॥१४॥ रास्व-रज-सम से युक्त तथा अग्नि-सोम सहित आपके रूप को नमस्कार है । ऋग्, यजुस् और साम की एकता से जो आपका रूप तपता है, उसे नमस्कार है ॥१५॥ विश्वात्मक जो आपका रूप है, उसे नमस्कार है । हे सूर्य ! सब से परे जो आपका ओम् रूप है उसे नमस्कार है । हे सनातन ! आपके अस्थूल, स्थूल और निर्मल रूप को भी नमस्कार है ॥१६॥

ब्रह्मा ने कहा—द्विजगण ! सूर्य की आराधना करने वाली अदिति निराहार तथा नियमों से युक्त होकर इस प्रकार सूर्य की स्तुति किया करती थी ॥१७॥ बिप्रवृन्द ! बहुत दिनों बाद मगवान् सूर्य उस दक्ष-पुत्री के सामने प्रकट हुए ॥१८॥ बिप्रवर ! अदिति ज्वालाओं के कारण देखने न पायग, तेजोरशि और भूमि पर स्थित सूर्य को देखकर अत्यन्त डर गई ॥१९॥

अदिति बोली—हे गोपते ! हे जगत् के आदि ! प्रसन्न हो ! मैं आप को नहीं देखती । इसलिए वृषा

अदितिह्वाच

जगदाय' प्रसीदेति न त्वां पश्यामि गोपते। प्रसादं कुरु पश्येयं यद्वपं ते दिवाकर
भवतानुकम्पक विभो त्वद्भूषतान् याहि मे सुतान्। ॥२१॥

ग्रहोवाच

ततः स तेजसस्तस्मादाविर्भूतो विभावसु'। अदृश्यत तदादित्यस्तप्तताम्रोपमः प्रभुः॥२२॥
ततस्तां प्रगतां देवीं तस्यासन्दर्शने द्विजा' प्राह' भास्वान् वृणुध्वं वरं मत्तो यमिच्छसि॥२३॥
प्रणवा निरसा सा तु जानुपीडितमेदिनी। प्रत्युधाच विवस्वन्तं वरदं समुपस्थितम्॥२४॥

अदितिह्वाच

देव प्रसीद पुत्राणां हृतं त्रिभुवनं मम। यज्ञभागश्च दंतैर्यदनिर्वाच्यं बलाधिकं॥२५॥
तन्निमित्तं प्रसादं त्वं कुरुष्व मम गोपते। अंशेन तेषां भ्रातृत्वं गत्वा ताम्राशये रिपून्॥२६॥
यथा मे तनया भूयो यज्ञभागभुजः प्रभो। भवेयुरधिपाश्चैव प्रलोक्ष्यस्य दिवाकर॥२७॥
तयानुत्तपं पुत्राणां सुप्रसन्नो रवे मम। कुरु प्रसन्नार्तिहर कार्यं कर्ता त्वमुच्यते॥२८॥

ग्रहोवाच

ततस्त्वामाह भगवान् भास्करो धारितस्करः। प्रणतमर्दिति विप्राः प्रसादसुमुखो विभुः॥२९॥

करमुखे अपना रूप दिखलाइये। हे भक्तो पर अनुकम्पा करने वाले। हे विभो। आप अपने भक्त मेरे पुत्रों की रक्षा कीजिये॥२०-२१॥

ग्रहों ने कहा—तदुपरान्त सूर्य उस तेज से निकलकर तप्त ताप के समान कान्तिमान् होकर अदिति के सामने प्रकट हुए॥२२॥ और प्रणाम करती हुई अदिति से सूर्य ने कहा—‘तुम एक वर जो चाहो मुझसे माग लो॥२३॥ घुटने टक कर प्रणाम करती हुई अदिति ने वर देने के लिए प्रस्तुत सूर्य से कहा॥२४॥

अदिति बोली—हे देव! प्रसन्न हो। अधिक बल वाले दंत्य मानवों ने मेरे पुत्रों से तीनों लोक तथा यज्ञ भागों को छीन लिया॥२५॥ हे गत्वते! उन्हीं के निमित्त आप मुझ पर अनुग्रह करें। अपने एक अंग से आप उनके माई बनकर शत्रुओं का नाश कीजिये॥२६॥ हे प्रभो! जिस प्रकार मेरे पुत्र पुनः यज्ञ-भोक्ता और जिलोकी के स्वामी बनें उसी प्रकार की वृषा आप मुझ पर करें। हे धरणागती की पीड़ा हरने वाले। आप सबके वर्ता बड़े जाते हैं, मेरा मनोरथ पूरा कर दीजिये॥२७-२८॥

ग्रहों ने कहा—ध्रिषवृन्द! तब जल चुराने वाले भगवान् सूर्य प्रसन्न होकर दण्डवत् करती हुई अदिति से बोले॥२९॥

सूर्य उवाच

सहस्रांशेन ते गर्भः सम्भूयाहमशेषतः । दत्त्वपुत्रश्चान्न दत्तोऽहं नाशयाम्याशु निर्वृतः ॥३०॥

ब्रह्मोवाच

इत्युक्त्वा भगवान् भास्वानन्तर्धानमुपागतः । निवृत्ता सापि तपसः सम्प्राप्ताखिलवाञ्छिता ॥३१॥
ततो रश्मिसहस्रात् सुपुष्पाह्वयो रवेः करः । ततः संवत्सरस्यान्ते तत्कामपूरणाय सः ॥३२॥
निवासं सञ्चिता चक्रे देवमानुस्तदोदरे । कृच्छ्रवान्द्रायणादौश्च सा चक्रे सुसमाहिता ॥३३॥
शुचिना धारयाम्येनं दिव्यं गर्भमिति द्विजाः । ततस्तां वश्यपः प्राह किञ्चित्कौपिप्लुताक्षरम् ॥३४॥

कश्यप उवाच

किं मारयसि 'गर्भाण्डमिति नित्योपवासिनी ॥

ब्रह्मोवाच

सा य तं प्राह गर्भाण्डमेतत्पश्येति कोपना । न मारितं विपक्षाणां मृत्युरेव भविष्यति ॥३५॥
इत्युक्त्वा तं तदा 'गर्भमुत्सासजं सुरारणिः । जाज्वल्यमानं तेजोभिः पत्युर्बन्धनकोपिता ॥३६॥
तं वृष्ट्वा कश्यपो गर्भमुद्धृत्वास्करवच्चंसम् । तुष्टाव प्रणतो भूत्वा 'वाग्भिराद्याभिरादरात् ॥३७॥

सूर्य ने कहा—मैं अपने हजारअंश से तेरे गर्भ में वास करेगा और तेरे पुत्रों के मनुजों को सौंप ही नष्ट कर दूंगा ॥३०॥

ब्रह्मा ने कहा—इतना कहकर भगवान् सूर्य अन्तर्धान हो गये और अदिति भी बाछित फल प्राप्त कर लक्ष्म्या से निवृत्त हुई ॥३१॥ एक वर्ष बाद अदिति की कामना पूर्ण करने के लिए सहस्र किरणों में से सुपुष्पा नामक सूर्य किरण आवर देवमाता के गर्भ में वास करने लगी ॥३२॥ अदिति भी सावधान होकर कठिन चान्द्रायण आदि श्रुत करने में प्रवृत्त हुई । द्विजगण । 'मैं पवित्रता से गर्भ धारण करेगी' ऐसा निवेदन करती हुई अदिति से कश्यप ने जोश प्रकट कुछ बातें कही ॥३३-३४॥

कश्यप ने कहा—नित्य उपवास करके क्या तुम गर्भस्थ अंडे को मार रही हो ?

ब्रह्मा ने कहा—अदिति भी जोश में आकर बोली—दिखो, यह गर्भस्थ अंड (बालक) नहीं मरा है । वस्तुतः मनुजों की मृत्यु होगी, ॥३५॥ इतना कहकर पति के क्पन से क्रुपित अदिति ने तेज से जाज्वल्यमान गर्भ का त्याग कर दिया ॥३६॥ उदयवालीन सूर्य के समान तेजस्वी उस गर्भ को देखकर कश्यप झुत्कर आघ वागियों

१ ग ० रः । विप्रावतारसचक्रं दे० । २ ख कृच्छ्रात्सुधारण तस्य सा । ३ ख गर्भेण्ड० । ४ ख ० ममास० ।
५ ख ० गिरौद्याभि० ।

संततूयमानः स तदा गर्भाण्डात् प्रकटोऽभवत् । 'पद्मपत्रसवर्णाभस्तेजसा ध्याप्तदिङ्मुखः ॥३८॥
अयान्तरिक्षादाभाप्य षडप्यं मुनिसत्तमम् । सतोयमेघगम्भीरा वाग्वाचाक्षरीरिणी ॥३९॥

वाग्वाच

'भारतिमिति यत् प्रोक्तमेतदण्डं' इत्यादितेः । तस्मान्मुने सुतस्तेज्यं मार्तण्डाख्यो भविष्यति ॥४०॥
हनिष्यत्यसुरांश्चायं यज्ञभागहरानरीन् । देवा निक्षम्येति यचो गगनात् समुपागतम् ॥४१॥
प्रहृष्यन्तुलं याता दानवाश्च हतोऽजसः । ततो युद्धाय दंतेयानामुहाव शतशतानुः ॥४२॥
सह देवंमुदा युक्ता दानवाश्च तमम्ययुः । तेषां युद्धमभूद्घोरं देवानामसुरैः सह ॥४३॥
शस्त्रास्त्रवृष्टिसन्दीप्तसमस्तभुवनान्तरम् । तस्मिन् युद्धे भगवता मार्तण्डेन निरोक्षिता ॥४४॥
तेजसा दह्यमानास्ते भस्मोभूता महामुराः । ततः प्रहृष्यन्तुलं प्राप्ताः सद्यै दिवौकसः ॥४५॥
मुष्ट्युस्तेजसां धीनिं मार्तण्डमदिति तया । स्वाधिकारास्ततः प्राप्ता यज्ञभागाश्च पूर्ववत् ॥४६॥
भगवानपि मार्तण्डः स्वाधिकारमयाकरोत् । कदम्बपुष्पवद्भास्वानघश्चोद्ध्वञ्च रश्मिभिः ।
'भूतोऽग्निपिण्डसदृशो दध्ने नातिस्फुटं ययुः ॥४७॥

मुनय ऊचुः

कथं कान्ततरं पश्चाद्रूपं संलब्धवान् रविः । कदम्बगोलकाकारं तन्मे ब्रूहि जगत्पते ॥४८॥

स आदिसूर्यक उत्तरी स्तुति करने लगे ॥३७॥ स्तुति किये जाने पर अब गर्मस्य अङ्ग से निकल कर कमल-पत्र के समान कान्तिमान् सूर्य तेज से दया दिशाओं को व्याप्त करते हुए प्रकट हुए तब मुनि-ज्येष्ठ ऋषय को लक्ष्य करके सजल मेघ के समान गभीर आकाशवाणी हुई ॥३८-३९॥

वाणी ने कहा—हे मुने ! जिसलिए तुमने अदिति से कहा था कि क्यों अङ्ग को मार रही हो इसीलिए यह तुम्हारा पुत्र मार्तण्ड नाम से प्रख्यात होगा ॥४०॥ यह यज्ञ भागों को हरने वाले असुरों का संहारक होगा । आनाशवाणी सुनकर देवता अत्यन्त प्रसन्न हुए और दानव निस्तेज हुए ॥४१॥ तब इन्द्र ने दैत्या को युद्ध के लिए आह्वान किया । दानव भी देवताओं के साथ सशस्त्र भे प्रसन्नतापूर्वक जुट गये । बड़ा मयानक देवासुर-संग्राम हुआ ॥४२-४३॥ उनके शस्त्र अस्त्रों की वृष्टि से भिम्बन व्याप्त हो गया । उस युद्ध में भगवान् मार्तण्ड ने देखा कि तेज से सब महादैत्य भस्मसात् हो गये ॥४४॥ तब देवगण अत्यन्त हर्षित होकर तेजोरशि सूर्य की स्तुति करने लगे । भगवान् की कृपा से देवताओं को पूर्ववत् अपना-अपना अधिकार मिल गया ॥४५-४६॥ स्वयं सूर्य ने भी स्वाधिकार प्राप्त कर अग्नि पिण्ड के समान कृषित् अस्फुट शरीर को धारण किया, जो कदम्ब-पुष्प के सदृश रश्मियों से कान्तिमान् था ॥४७॥

मुनियों ने कहा—हे जगत्पते ! सूर्य का कदम्ब के समान गोल तथा रमणीयतर रूप कैसे हुआ ? ॥४८॥

१ ग ०त्रमुव० । २ ख ०स्तिस्ते यत् प्रो० । ३ ख त्वयोदितम् । त० । ग त्वयोदिते । त० ।
४ ख. ०तोऽपि पि० ।

ब्रह्मोवाच

त्वष्टा तस्म ददौ कन्यां संज्ञां नाम विवस्वते । प्रसाद्य प्रणतो भूत्वा विश्वकर्मा प्रजापतिः ॥४९॥
श्रीष्यपत्यान्यसौ तस्यां जनयामास गोपतिः । द्वौ पुत्रौ सुमहाभागौ कन्याञ्च यमुना तथा ॥५०॥
यत्तेजोऽभ्यधिकं तस्य मार्तण्डस्य विवस्वतः । तेनातितापयामास त्रौलोकान् सचराचरान् ॥५१॥
तद्रूपं गोलकाकारं दृष्ट्वा संज्ञा विवस्वतः । असहन्ती महत्तेजः स्वां छायां वाक्यमब्रवीत् ॥५२॥

संज्ञोवाच

अहं यास्यामि भद्रं ते स्वमेव भवनं पितुः । निर्विकारं त्वयाश्रयं स्थेयं मच्छासनाच्छुभे ॥५३॥
इमो च बालको मह्यं कन्या च वरवर्णिनी । सम्भाव्या नैव चाश्च्येयमिदं भगवते त्वया ॥५४॥

छायोवाच

आ कचग्रहणाद्देवि आशापाश्र्वेव कर्हिचित् । आश्यास्यामि मत्तुभ्यं गच्छता यत्र वाञ्छितम् ॥५५॥
इत्युक्त्वा श्रोत्रिता संज्ञा जगाम पितृमन्दिरम् । यस्तराणा सहस्रान्तु वसमाना पितुर्गृहे ॥५६॥
भर्तुः समीपं याहीति पित्रोक्ता सा पुनः पुनः । आगच्छद्दृष्ट्वा भूत्वा कुहनयोत्तरास्ततः ॥५७॥
तत्र तेषे तपः साध्वी निराहारा द्विजोत्तमा । पितुः समीपं याताया सतायां वाक्यतत्परा ॥५८॥

ब्रह्मा ने कहा—त्वष्टा नामक प्रजापति विश्वकर्मा ने सूर्य को त्रिय नमस्कार के द्वारा प्रसन्न करने
समानात्मक अपनी कन्या व्याह दी ॥४९॥ सूर्य से संज्ञा मे दो पुत्र और एक यमुना नामक कन्या बं। उत्पत्ति हुई ॥५०॥
मार्तण्ड का जो अत्यधिक तेज था, वह चराचर सहित तीनों लोक का बहुत तपाटा था ॥५१॥ उसने गोलकार
रूप को देखकर महान् तेज को न सहता। हुई संज्ञा अपनी छाया से बोली ॥५२॥

संज्ञा ने कहा—मैं अपने पिता के घर जा रही हूँ। शुभे! तुम्हारा कल्याण हो। मेरी आज्ञा से तुम यही
पर निर्विकार होकर रहो ॥५३॥ हे सुन्दरी! मेरे दोना बालका तथा कन्या का पालन-पोषण करना। पर भग-
वान् से इस आख्यान को कभी न कहना ॥५४॥

छायाने कहा—हे देवी! जब तक मेरे बाल नहीं पकड़े जायेंगे और शाप नहीं पड़ेगा तब तक मैं इस रहस्य
को कभी नहीं बतला सकती। तुम जहाँ चाहो वहाँ जाओ ॥५५॥ इस प्रकार नहीं जाने पर लगनी हुई संज्ञा
पितृमन्दिर को चली गयी। वहाँ एक हजार वर्ष तक वास करने के उपरान्त गिता ने उसे अपने स्वामी के पास
लौट जाने के लिए विवर्ग किया ॥५६॥ तब पतिव्रता संज्ञा घोड़ी का रूप धारण करने उत्तर-कुल देश में आयी और
निपटार रहकर तपस्या करने लगी ॥५७॥ द्विजगण! संज्ञा के अपने पिता के पास चली जाने पर उसी का रूप

१ क ग अथ। २ छ तथ। ३ क अन्ती तदा तेज। ४ ग व्याप्ययथे०। ५ रा आ वेगप्र०। ६ स तु।
७ रा अस्तेवो०।

तद्रूपधारिणी छाया भास्कर समुपस्थिता । तस्याञ्च भगवान् सूर्य्यं सनेयमिति चिन्तयन् ॥५९॥
 तथैव जनयामास द्वौ पुत्रौ कन्यका तथा । सज्ञा तु पार्थिवी तेषामात्मजाना तथाकरोत ॥६०॥
 स्नेहं न पूर्व्वं जाताना तथा कृतवती तु सा । मनुस्तत्क्षान्तवास्तस्या यमस्तस्या न चक्षमे ॥६१॥
 बहुधा पीडयमानस्तु पितु पत्न्या सुदुःखित । स वै कोपाच्च बाल्याच्च भाविनोऽयंस्य वै बलत ॥६२॥
 पदा स तज्जयामास न तु देहे न्यपातयत्

छायोवाच

पदा तज्जयस यस्मात्पितुर्भाष्यं गरीयसीम् । तस्मात्तथैव चरण पतिष्यति न सशय ॥६३॥

ब्रह्मोवाच

यमस्तु तेन क्षापेन भृश पीडितमानस । मनुना सह धर्मात्मा पित्र सत्त्वं न्यवेदयत् ॥६४॥

यम उवाच

स्नेहेन तुल्यमस्मासु माता देव न वसन्ते । विसृज्य ज्यायस भवत्या वनीयास सुभूपति ॥६५॥
 तस्या मयोद्यत पादो न तु देहे निपातित । बाल्याद्वा यदि वा मोहात्तद्भवान् क्षतुमहसि ॥६६॥
 शप्तोऽह तात कोपेन जनन्या तनयो यत । ततो मये न जननीमिमा वै सप्तवार ॥६७॥
 तव प्रसादाच्चरणौ भगवन् न पतदयया । मातृशोषादय मेऽथ तथा चिन्तय गोपते ॥६८॥

धारण करने वाली छाया सूर्य के समीप आई ॥५८॥ भगवान् सूर्य ने उसे सनाहा समझते हुए दो पुत्र और एक पुत्री
 उससे उत्पन्न किया ॥५९॥ अब नकल सज्ञा अपने पुत्र-पुत्री का सच्चे सना के बच्चे की अपेक्षा अधिक मानने लग ।
 मनु ने तो इसका सहन किया पर यम नहीं सह सका ॥६०॥ ६१॥ उसने विमला द्वारा बहुत प डित होने पर कोप या
 रुडकपन या भावी अनय के कारण छाया को लात मारना चाहा पर उसके शरीर पर चरण प्रहार नहीं किया ॥६२॥

छायाने कहा—जिस चरण से तु भाता को मारता है तेरा यह चरण गिर पड़ेगा इसमें कोई सशय नहीं ॥६३॥

ब्रह्मा ने कहा—छाया के आप से अत्यन्त दुःख होकर धर्मात्मा यम ने मनु के साथ पिता के पास जाकर
 उनसे शारी वात निवेदन कर दी ॥६४॥

यम ने कहा—हे देव । माता को समान भाव से हम लोगो के साथ बरतना चाहिये पर वह तो बड़ को
 छोड़ कर छोटे ही को मानती है ॥६५॥ इसलिये मैंने बचपन या मोह के कारण उसके ऊपर पर उठाया किन्तु मारा
 नहीं । आप मेरे इस अपराध को क्षमा करें ॥६६॥ हे तात । हे तपनश्रद्ध । माता ने क्रोध से मुझ नाप दे दिया । इससे
 मैं समझता हूँ कि यह मेरा माँ नहीं हैं ॥६७॥ हे भगवन् । मात नाप के कारण मेरे पैर न गिरें ऐसा कोई उपाय
 करने की कृपा करें ॥६८॥

१ ख तदा सम० २ ख सुती । ३ क यथा । ४ क ता पुत्र । म० ५ क वशात् । ६ ख मनु
 आत्मजेषु न ।

रविहवाच

असंयमं महत्पुत्रं भविष्यत्यत्र कारणम् । येन त्वामाविशत्क्रोधो धर्मज्ञं धर्मशीलिनम् ॥६९॥
सर्वपापमवशापानां प्रतिघातो हि विद्यते । न तु मात्राभिनिष्पन्ना क्वचिच्छापनिवर्तनम् ॥७०॥
न शक्यमेतन्मिथ्या तु कर्तुं 'मातुवचस्तव । किञ्चित्तेह विधास्यामि' पुनस्नेहादनुग्रहम् ॥७१॥
इमयो मासमादाय प्रयास्यति महीतलम् । 'कृतं तस्या वचं सत्यं' त्वञ्च ज्ञातो भविष्यति ॥७२॥

ब्रह्मोवाच

आदित्यस्त्वग्रबोच्छाया किमर्थं तनयेषु धे' । तुल्येवैष्यधिकं स्नेह एक प्रति कृतस्त्वया ॥७३॥
मूढं नृपात्वं जननी सज्ञा कापि त्यमागता । निर्गुणेवैष्यपत्येषु माता शप न दास्यति ॥७४॥
सा 'तत्परिहरन्ती च शापादभीता तदा रवे । कथयामास वृत्तात् स श्रुत्वा इवशूर धयी ॥७५॥
स चापि तं यथायायमच्छयित्वा तदा रविम् । निदग्धुकाम रोपेण सास्त्वयानरतमब्रवीत् ॥७६॥

विश्वकर्मावाच

तथातितेजसा ध्याप्तमिदं रूपं सुदुःसहम् । असहती तु तत्सज्ञा यने चरति वै तप ॥७७॥
इत्यते ता भद्रानघ स्वाभाय्यां शुभचारिणीम् । रूपार्थं भवतोऽरण्ये चरन्तीं सुमहत्तप ॥७८॥
धृतं मे ब्रह्मणो जायत तव तेजोऽवरोधने । रूपं निवर्तयाम्यद्य तव कांतं दिवस्पते ॥७९॥

सूय न कहा—पुत्र । निम्नह इत्यम कोई मन्त्र कारण है जिसम तुम्हारे जस धमन तथा धमन का वा
त्राप जा गया ॥६९॥ सञ्जे गाथा का प्रतीकार है कि तु माता से अभिनिष्पन्ना क् गाप निवर्ति कही नहीं हात । ७०॥
मै गम्हाया माता के वचन को मिथ्या नहीं कर सज्जना । फिर भी पुत्र-स्नेह का कारण मैं काई उपाय करूंगा । ७१॥
तुम्हारे पैर का मान लूँ केवल पृथ्वी पर जायेंगे इमग उसका वचन भी मान्य होगा और तुम मा बच जाओगे ७२॥

ब्रह्मा ने कहा—इमह उरान्त सूय ने छाया न कहा—यया तुम समान पुत्रा म म एक क प्रति अश्व
स्नेह कर रहे हो ? ॥७३॥ (इसम जान पड़ता है कि) निश्चय ही तुम स्नेह माता नहीं हो काई दूसर सजा
भाई हो । क्योंकि गुणहीन सन्तान को भी माता गाप नहीं देत ॥७४॥ तब सूय क गाप भव त छया ने मारा
कत्तान बड़ लिया । सूय म यह मुनबद अपने स्वप्न के पान गय । निश्चयमा न काय स हय कर्न क
रन्त सूय को समयाविन पूजा की और सान्त्वना देने हुए उनने कहा । ७६॥

विश्वकर्मा ने कहा—आपन अत्यन्त तत्र से व्यापनदम द मट्टरुप का न सृष्टी दुर्मन्त्रा वत म तपस्या
कर रही है ॥७७॥ आपके रूप क लिए वन म पार तपस्या करत हुई पवित्र आचरण का न अपन पन का जान
थापनेगे ॥७८॥ आपके तेज को अवरोध करत के विषय म मैंन ब्रह्मा जा का वाक्य मना है । न जाराग क
रसनी । आज मैं आपन रूप का मनाहर बना दूंगा ॥७९॥

१ स ० मगावनम् । २ स ० वित्ताप ० । ३ क ० मतवच ० । ४ स ० प्रत्ययामि । ५ स ० एव । ६ स ० य
रपि पुत्र म ० । ७ क ० च । ८ क ० न ० न्विदं गा ० । ९ क ० न ० वयं यदि ते न रोवने । १० ।

तद्रूपधारिणी छाया भास्करं समुपस्थिता । तस्याञ्च भगवान् सूर्यः संज्ञेयमिति चिन्तयन् ॥५९॥
 तथैव जनयामास द्वौ पुत्रौ^१ कन्यकां तथा । संज्ञा तु पार्थिवो तेषामात्मजानां तथाऋतो ॥६०॥
 स्नेहं न पूर्वज्जातानां तथा^२ कृतवती^३ तु सा । मनुस्तत्त्वान्तर्वास्तस्या यमस्तस्या न चक्षमे ॥६१॥
 बहुधा पीड्यमानस्तु पितुः पत्न्या सुदुःखितः । स वै कोपाच्च बाल्याच्च भाविनोऽयस्य वै बलात्^४ ॥६२॥
 पदा सन्तर्जयामास न तु देहे न्यपातयत्

छायावाच

पदा तर्जयस यस्मात्पितुर्भाष्या गरीयसीम् । तस्मात्तवैप चरणः पतिय्यति न संशयः ॥६३॥

ब्रह्मवाच

यमस्तु तेन क्षापेन भृशं पीडितमानसः । मनुना सह धर्मात्मा पित्र सत्त्वं न्यवेदयत् ॥६४॥

यम उवाच

स्नेहेन सुखमस्मात्^५ माता देव न वर्तते । जिसञ्च उपायसं भक्षया वनीयांसं बुभूषति ॥६५॥
 तस्या मयोद्यत पादो न तु देहे निपातितः । बाल्याद्या यदि वा मोहात्तद्रूपान् क्षन्तुमर्हति ॥६६॥
 क्षप्तोऽहं तात कोपेन जनन्या तनयो यतः । ततो मय्ये न जननीमिमां वै तपतावर ॥६७॥
 तव प्रसादाच्चरणो भगवन् न पतेद्यथा । मातृशापादयं मेऽद्य तथा क्षितय गोपते ॥६८॥

धारण करने वाली छाया सूर्य के समीप आई ॥५८॥ भगवान् सूर्य ने उसे संज्ञा ही समझते हुए दो पुत्र और एक पुत्री उससे उत्पन्न किया ॥५९॥ अब नकली संज्ञा अपने पुत्र-पुत्री को सर्व्व संज्ञा के बच्चे की अपेक्षा अधिक मानने लगी । मनु ने तो इसका सहन किया, पर यम नहीं सह सका ॥६०-६१॥ उसने विमाता द्वारा बहुत पीड़ित होने पर कोप या लडकपन या बावी अनर्थ के कारण छाया को छोट मारना चाहा, पर उसके शरीर पर चरण प्रहार नहीं किया ॥६२॥

छाया ने कहा—जिस चरण से तू माता को मारता है तेरा यह चरण गिर पड़ेगा, इसमें कोई संशय नहीं ॥६३॥

ब्रह्मा ने कहा—छाया के क्षाप से अत्यन्त दुःखी होकर धर्मात्मा यम ने मनु के साथ पिता के पास जाकर उनसे शारी बातें निवेदन कर दी ॥६४॥

यम ने कहा—हे देव ! माता को समान भाव से हम लोगो के साथ बरतना चाहिये, पर वह तो बड़े को छोड़ कर छोटे हैं। को मानती है ॥६५॥ इसलिये मैंने बचपन या मोह के कारण उसके ऊपर पैर उठाया, किन्तु मारा नहीं । आप मेरे इस अपराध को क्षमा करें ॥६६॥ हे तात ! हे सपनश्रुत ! माता ने क्रोध से मुझे क्षाप दे दिया । इससे मैं समझता हूँ कि यह मेरी माँ नहीं हैं ॥६७॥ हे भगवन् ! मातृ क्षाप के कारण मेरे पैर न गिरे ऐसा कोई उपाय करने की कृपा करें ॥६८॥

१ ख तदा सम० । २ ख सुती । ३ क यथा । ४ क ०ती पुरा । म० । ५ क वसात् । ६ ख ०
 आत्मजेषु न ।

अग्निराद्याश्च भास्वन्तं लिख्यमानं मुदा युताः । त्वं नाथ मोक्षिणां मोक्षो ध्येयस्त्वं ध्यानिनां परः ॥९३॥
 त्वं गतिः सर्वभूतानां 'कर्मकाण्डविवर्तिनाम् । सम्पूज्यस्त्वं तु देवेश शं नोऽस्तु जगतां पते ॥९४॥
 शं नोऽस्तु द्विपदे नित्यं शं नश्चास्तु चतुष्पदे । ततो विद्याधरगणा यक्षराक्षसपन्नगाः ॥९५॥
 कृताञ्जलिपुटाः सर्वे शिरोभिः प्रणता रविम् । ऊचुस्ते विविधा वाचो मनःश्रोत्रसुखावहः ॥९६॥
 सह्यं भवतु तेजस्ते भूतानां भूतभावन । ततो हाहाहूहूश्चैव नारदस्तुम्बुहस्तया ॥९७॥
 उपगन्धिमुमारब्धा गान्धर्वकुशला रविम् । पङ्कजमध्यमगन्धारगाननयविशारदाः ॥९८॥
 मूर्च्छनाभिश्च तालंश्च सम्प्रयोगेः 'सुखप्रदम् । विश्वाची च घृताची च उर्ध्वं दशय तिलोत्तमा ॥९९॥
 मेनका सहजन्या च रम्भा चाप्सरसांवरा । ननुतुजंगतामोक्षे लिख्यमाने विभावसी ॥१००॥
 भावहासविलासाद्यान् कुर्वन्त्योऽभिनयान्बहून् । प्रावाद्यन्त ततस्तत्र बीणा वेण्वविश्रंभराः ॥१०१॥
 पणवाः पुष्करादश्चैव मृदङ्गाः पटहानकाः । देवदुन्दुभय शङ्खा शतशोऽप्य सहस्रशः ॥१०२॥
 गायद्भिश्चैव नृत्यद्भिर्गन्धर्वैरप्सरोगणैः । सूर्य्यवादित्रघोषैश्च सर्वं कोलाहलीकृतम् ॥१०३॥
 ततः कृताञ्जलिपुटा भक्तितनूरात्ममूर्तयः । लिख्यमानं सहस्रांशुं प्रणेमुः सर्वदेवता ॥१०४॥
 ततः कोलाहले तस्मिन् सर्वदेवसमागमे । तेजसः 'शातनं चक्रे विश्वकर्मा शनैः शनैः' ॥१०५॥
 आजानुलिखितश्चासौ निपुणं विदवकर्मणा । नाम्न्यनन्दतु लिखनं ततस्तेनावतारितः ॥१०६॥

॥९१॥ बालकृत्य सप्तक मुनिगण ने भी वेदोक्त मन्त्रों से भास्कर की स्तुति की। अग्नि प्रमुख देवी ने भी खरादे जाने हुए सूर्य की हृष्यपूर्वक स्तुति की—'तुम मुक्तों के मोक्ष और ध्यानिना के ध्येय हो ॥९२-९३॥ कर्मकाण्ड का अनुष्ठान करने वाले प्राणिमा की गति भी तुम्ही हो। हे देवेश । तुम पूज्य हो । हे जगत्पते । हमारा मंगल हो । द्विपद तथा चतुष्पद जीवा से नित्य हमारा कल्याण हो ॥९४॥ पृथ्वी, राक्षस, सर्प और विद्याधर गण ने अजलि बांध शिर झुका कर सूर्य को प्रणाम किया और मन तथा कानों को सुख देने वाली अनेक बातें भी कही ॥९५-९६॥ 'हे मृतपाल । आपका तेज हम सह्य हो ।' तब हाहा, हूहू, नारद और तुम्बुक जो गान्धर्व विद्या में कुशल तथा पङ्कज, मध्यम और गन्धार—इन तीनों गानों में विशारद थे, मूर्च्छना और ताणों के साथ सुख-प्रद गीत गाते लगे ॥९७-९८॥ विश्वाची, घृताची, उर्वशी, तिरोत्तमा, मेनका सहजन्या और रम्भा—ये श्रेष्ठ प्रद गीत गाते लगे ॥९९॥ विश्वाची, घृताची, उर्वशी, तिरोत्तमा, मेनका सहजन्या और रम्भा—ये श्रेष्ठ कर्मापण शिव, भाव तथा विलास पूर्वक अभिनय करतीं हुई नाचने लगीं। वंषा, शर्शा, शंख, ढोल, नवकादौ, मृदंग, ऋषापण शिव, भाव तथा विलास पूर्वक अभिनय करतीं हुई नाचने लगीं। वंषा, शर्शा, शंख, ढोल, नवकादौ, मृदंग, देवदुन्दुभि और शङ्ख आदि वाजे संवढो-हुंजारों की सख्या में बजने लगे। गन्धर्व तथा अप्सरागणों के गान, नाच और मेरी आदि वाजा के शब्द से महान् कोलाहल हुआ ॥९९-१०३॥ तब मक्ति से नतमस्तक हो अजलि जोड़कर सब देवताओं ने सूर्य को प्रणाम किया ॥१०४॥ देवों के एकत्रित होने से कोलाहल मच गया। उसी जोड़कर सब देवताओं ने सूर्य को प्रणाम किया ॥१०५॥ विश्वकर्मा ने दक्षता से जय तक सूर्य को खराद समय विदवर्कर्म ने धीरे धीरे तेज को सक्षिप्त कर दिया ॥१०६॥ विश्वकर्मा ने दक्षता से जय तक सूर्य को खराद

१ क ०ता । स्वप्नामस्मरणान्मक्षी । २ क ०ण्डप्रव० । ३ क ०श्च सुप्र० । ४ क ०यागसु० । ५ क ०रा । तुष्टुवृजं० । ६ क ०मीश लि० । ७ ख ०णवादीनि वाद्यानि मृ० । ८ ख दामन । ९ ख ०र्न । अयानोत्तिदि० ।

ब्रह्मोवाच

ततस्तथेति तं प्राह त्वष्टारं भगवान् रविः । ततो विवस्वतो रूपं प्रागासीत्परिमण्डलम् ॥८०॥
 विवस्वकर्मा त्वनुजातः शाकट्वीषे विवस्वता । अग्निमारोप्य तत्तेजःशतनाथोपचक्रमे ॥८१॥
 अमताशेषजगतो नाभिभूतेन भास्वता । समुद्राद्रिवनोपेता त्वागरोह मही नभः ॥८२॥
 गगनञ्चाखिलं विप्राः सचन्द्रग्रहतारकम् । अथो गतं महाभागा बभूवाक्षिप्तमाकुलम् ॥८३॥
 विक्षिप्तसलिलाः सर्व्वे बभूवुश्च तथाश्रवाः । ध्यमिधन्त महाशैलाः शीर्णसानुनिबन्धनाः ॥८४॥
 ध्रुवाधाराण्यशेषाणि विण्म्यानि मुनिसत्तमाः । ब्रुचन्द्रश्मिनिबन्धोनि बन्धनानि अथो मयुः ॥८५॥
 वेगममणसम्पातवायुक्षिप्ता सहस्रशः । ध्यशीर्ष्यन्त महामेघा घोराशवविराविणः ॥८६॥
 भास्वद्भ्रमणविभ्रान्तभूम्पाकाशरसतिलम् । जपदाकुलमत्यर्थं तदासीन्मुनिसत्तमाः ॥८७॥
 प्रेलोक्यमाकुलं द्यौक्ष्य भ्रममाणं सुरर्षयः । देवाश्च ब्रह्मणा सार्द्धं भास्वन्तमभितुष्टुवुः ॥८८॥
 आदिदेवोऽसि देवानां जातस्त्वभूतये भुवः । स्वर्गस्थित्यन्तकालेषु त्रिधा भेदेन तिष्ठसि ॥८९॥
 स्वस्ति तेऽस्तु जगन्नाथ' घर्मवर्षं विवाकर । इन्द्राद्यस्तदा देवा लिह्यमानमयास्तुवन् ॥९०॥
 जय देव 'जगत्स्वामिन् जयाशेष जगत्पते । ऋषयश्च ततः सप्त वसिष्ठात्रिपुरोदमा ॥९१॥
 तुष्टुदुर्बिधिः स्तोत्रं स्वस्ति स्वस्वोतिवादिन । वेदोक्तिभिरथाग्राभिर्द्यालक्षित्याश्च तुष्टुवुः ॥९२॥

ब्रह्मा ने कहा—इसके बाद भगवान् सूर्य ने त्वष्टा से कहा—ऐसा ही सही । 'तब सूर्य का रूप पहले मण्डल-
 कार था ॥८०॥ परचात् शाकट्वीप मे सूर्य की आका से विवस्वकर्मा ने उनकी अग्नि (भ्रमण-यत्र) पर चढ़ा कर उनके तेज की
 विशीर्ण अर्थात् सक्षिप्त करना प्रारम्भ किया ॥८१॥ समस्त जगत् के तानिष्य सूर्य के भ्रमण से समुद्र, वन आदि सहित
 पृथिवी आकाश मे चली गई ॥८२॥ विश्वन्द । अन्धगा, यह और साथ सहित निखिल आकाश व्याकुल होकर
 नीचे आ गया ॥८३॥ समुद्र का जल चंचल हो उठा । चाटियों के शीर्णं विशीर्ण हो जाने से बड़े-बड़े पर्वत टूटने
 लगे ॥८४॥ मुनिगण । ध्रुव रूपी आधार वाले समस्त नक्षत्र, जिनकी किरणों के बन्धन टूट गये, नीचे गिर पड़े ॥८५॥
 भ्रमण-वेग से पतित वायु के द्वारा हजारों घोर शब्द करने वाले मेघ उल्लास कर फेंक दिये गये ॥८६॥ मुनिगण ।
 सूर्य-भ्रमण के समय भूमि, आकाश और पाताल आदि विशिष्ट जगत् अत्यन्त व्याकुल हो गया ॥८७॥ तब तो
 लोक की भ्रमण से आतुल देखकर ब्रह्मा सहित देवगण सूर्य की स्तुति करने लगे ॥८८॥ 'तुम देवा के आदिदेव हो,
 तुम ससार की उत्पत्ति के लिए हो और सृष्टि स्थिति प्रलय—तीना काल मे तुम तीन प्रकार से रहते हो ॥८९॥
 हे दिनकर । हे जगन्नाथ । हे ताप बरसाने वाले । तुम्हारा कल्याण हो ।' उस समय इन्द्र आदि देवताओं ने
 भी सरादे जाते हुए सूर्य की स्तुति की ॥९०॥ हे देव । आप की जय हो । हे अशेष जगत् के स्वामी । आपकी जय
 हो । वसिष्ठ, अत्रि आदि सप्तर्षि भी स्वस्तिवाचन पूर्वक अनेक प्रकार के स्तोत्रों से सूर्य की स्तुति करने लगे

अग्निराद्यादच भास्व त लिह्यमान मुदायुता । त्वनाय मोक्षिणा मोक्षो ध्येयस्त्वध्यानिना पर ॥९३॥
 त्व गति सर्वभूताना केर्ममकाण्डविवर्तिनाम् । सम्पूज्यस्त्व तु देवेश श नोऽस्तु जगता पते ॥९४॥
 न नोऽस्तु द्विपदे नित्य श नश्चास्तु चतुष्पदे । ततो विद्याधरगणा यक्षराक्षसपन्नगा ॥९५॥
 कृताञ्जलिपुटा सर्वे शिरोभि प्रणता रविम् । ऊचुस्ते विविधा वाचो मन भ्रोत्रमुखावहा ॥९६॥
 सह भवतु तेजस्ते भूताना भूतभावन । ततो हृहृहृहृश्चैव नारदस्तुम्बुरुस्तया ॥९७॥
 उपगधितुमारब्धा गाघर्ध्वकुशला रविम् । यडजमध्यमगाधारगानत्रयविशारदा ॥९८॥
 मूच्छनाभिश्च तालेश्च सम्प्रयोगे सुखप्रदम् । विदवाचो च घृताचो च उर्ध्वेऽय्य तिलोत्तमा ॥९९॥
 मेनका सहजया च रम्भा चाप्सरसावरा । ननृतुजंगतामीने लिह्यमाने विभावसो ॥१००॥
 भावहासविलासाद्यान कुर्वन्त्योऽभिनयानबहून् । प्रावाद्यत ततस्तत्र वीणा वेण्वादिश्रजरा ॥१०१॥
 पणवा पुष्करादचैव मृदङ्गा पटहानवा । देवदुर्धुमय शङ्खा शतशोऽप्य सहस्रश ॥१०२॥
 गायदभिश्चैव नृत्यदभिर्गाघर्ध्वेऽप्सरोगणै । तूर्यवादिप्रघोषैश्च सर्वे कोलाहलीवृतम् ॥१०३॥
 तत कृताञ्जलिपुटा भवितनम्रात्ममूर्तय । लिह्यमान सहस्राशु प्रणेम्य सर्वदेवता ॥१०४॥
 तत कोलाहले तस्मिन् सर्वदेवसमागमे । तेजस शतन चक्रे विश्वकर्मा शनै शनै ॥१०५॥
 बाजानुलिखितश्चासौ निपुण विश्वकर्म्मणा । नाम्न्यनदत्तु लिखन् ततस्तेनावतारित ॥१०६॥

॥११३॥ बालविय सक्त मुनिगण मे श्री वेत्तवन् मया स भास्कर की स्तुति की । अग्नि प्रमुख देवो मे
 न सपते जाने हुए मूय की हृषपूवक स्तुति न — तुम मुक्ता के मोती और ध्यानिदा न ध्येय हो ॥९२ ९३॥
 रम्भा नाम अनूष्ठान करने बाल प्राणिना न गति म । तम्ही हो । हे देवेश । तुम पूज्य हो । हे जगत्पते । हमारा
 मण्डल । द्विप तथा चतुष्प जवा से निय हमारा नयाग हो ॥९४॥ तब यक्ष राक्षस सप और विद्याधर
 गण न अजलि हाथ गिर पका कर मूय का प्रणाम किया और मन तथा काना को मुल देने बाला अनेक बात मी
 कहा ॥९५ ९६॥ हे भूतपाल । आपका तेज हम सत्य हो । तब हृहृ हृहृ नारद और तुम्बरु जो गाघर्ध्व
 विद्या मण्डल तथा पडज मध्यम और गाधार — इन सना गावो मे विगारव स मडना और ताला के साथ मुल
 प्र यत गाये लगे ॥९७ ९८॥ विषाचा घृताचा उवा तिलोत्तमा मेनका सहजया और रम्भा — ये धाउ
 अमराए हाव भाव तथा विलास पूवक अभिनय करत हुई नाचने लगे यथा यथा पाद डोल नचकारे मदग
 दम्भ दवदुर्धुमि और गय आदि बाजे सबडा-हजार न सत्या मे बजने लगे । गाघर्ध्व तथा अप्सरागणो के
 गान नाच और भेरा आदि बाजा क गल से महान बालाहल हुआ ॥९९ १०३॥ तब भविन से नतमस्तक हो अजलि
 जाकर सब दत्तात्रा ने मूय का प्रणाम किया ॥१०४॥ देवो के एवत्रित होने मे कोलाहल मच गया । उसी
 समय विश्वकर्मा ने धरे धरे तेज को सक्षिप्त कर दिया । ॥१०५॥ विश्वकर्मा ने दत्ताता से जय तक मूय को सराद

१ क ०ता । वनामस्मरणामक्षो । २ क ०प्रव० । ३ क ०स्व सुप्र० । ४ क ०यगमु० ।
 ५ क ०रा । तुष्टयज० । ६ क ०मग लि० । ७ ख ०णवादीनि वाद्यानि म० । ८ ख ०गन । ९ ख ०न ।
 अथानुलि० ।

न तु निर्भस्तिंतं रूपं तेजसो हननेन तु । कान्तात्कान्ततरं रूपमधिकं शुशुभे ततः ॥१०७॥
 इति हिमजलधम्मकालहेतोर्हंरकमलासनविष्णुसंस्तुतस्य ।
 तदुपरि लिखनं निशम्य भानोर्नजति दिवाकरलोकमायुषोऽन्ते ॥१०८॥
 एवं जन्म रवेः पूर्वं बभूव मुनिसत्तमाः । रूपञ्च परमं तस्य मया सम्परिकीर्तितम् ॥१०९॥
 इति श्रीब्राह्मे महापुराणे मार्तण्डजन्मशरीरलिखनं नाम द्वात्रिंशोऽध्यायः ॥३२॥

त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः

मार्तण्डमाहात्म्य-वर्णनम्

मुनय ऊचुः

भूयोऽपि कथयास्माकं कथां सूर्यसमाधिताम् । न तृप्तिमधिगच्छामः शृण्वन्तस्तां कथां शुभाम् ॥१॥
 योऽयं दीप्तो महातजा वह्निराशितमप्रभः । एतद्वेदितुमिच्छामः प्रभावोऽस्य कुतः प्रभो ॥२॥

ब्रह्मोवाच

तमोभूतेषु लोकेषु नष्टे स्यावरजज्ञमे । 'प्रकृतेर्गुणहेतुस्तु' पूर्वं बुद्धिरजायत ॥३॥

दिया । यद्यपि सूर्य इससे प्रसन्न नहीं हुए, फिर भी सशिष्ट तेज वाले रूप की उन्होंने निंदा भी नहीं की । और अब उनका रूप सुन्दर से भी सुन्दर बन गया ॥१०६-१०७॥ हिम, जल, धर्म और काल के कारण तथा ब्रह्मा विष्णु-महेश से स्तुत सूर्य के सारादे जाने के सम्बन्ध में सुनकर आयु के अन्त में मनुष्य सूर्य-लोक को प्राप्त करता है ॥१०८॥ मुनिवर ! पहले इस प्रकार सूर्य का जन्म हुआ । उनके परमरूप के बारे में भी मैंने कह दिया ॥१०९॥

श्री ब्रह्ममहापुराण में सूर्य-जन्म शरीर लिखन नामक चर्चिताई अध्याय समाप्त ॥३२॥

अध्याय ३३

सूर्य के अष्टोत्तरशत नामों का कीर्तन

मुनियो ने कहा—फिर हम सूर्य सम्बन्धी तथा सुनाइये । क्योंकि उस पवित्रकथा को सुनते हुए हम तृप्ति नहीं हो रही है । हम जानना चाहते हैं कि अग्नि राशि के समान कान्तिमान् तथा महातेजस्वी (सूर्य) को इतना प्रभाव कैसे प्राप्त हुआ ॥१-२॥

ब्रह्मा ने कहा—जब तीनों लोक अन्यकारणवश और स्यावर-जगम नष्ट हो चुके थे तब पहले (त्रिगुण-

वेद्यं वेदयिदां नित्यं सर्वज्ञानसमन्वितम् । सर्वदेवातिदेवस्य यद्रूपं तस्य ते नमः ॥१८॥
 विद्वत्कृद्भिज्वभूतं च वद्वानरसुरार्चितम् । विद्वत्स्थितमचिन्त्यं च यद्रूपं तस्य ते नमः ॥१९॥
 परं यज्ञात् परं वेदात् परं लोकात् परं दिवः । परमात्मेत्यभिध्यातं यद्रूपं तस्य ते नमः ॥२०॥
 अविज्ञेयमनालक्ष्यमध्यानगतमध्ययम् । अनादिनिघनं चैव यद्रूपं तस्य ते नमः ॥२१॥

नमो नमः कारणकारणाय, नमो नमः पापविमोचनाय^१ ।

नमो नमस्ते दितिजार्दनाय, नमो नमो रोगविमोचनाय^२ ॥२२॥

नमो नमः सर्व्ववरप्रदाय, नमो नमः^३ सर्व्वसुखप्रदाय ।

नमो नमः सर्व्वधनप्रदाय, नमो नमः सर्व्वमतिप्रदाय ॥२३॥

स्तुत. स भगवानेवं तैजसं रूपमास्थितः । उवाच धाचा कल्याण्णा को वरो वः प्रदीयताम् ॥२४॥

देवा ऊचुः

तवातिर्तैजसं रूपं न कश्चित्सोढुमुस्तहेत् । सहनीयं तद्भवतु हिताय जगतः प्रभो ॥२५॥
 एवमस्तिवति सोऽप्युक्त्वा^४ भगवानाविकृत् प्रभुः । लोकानां कार्यसिद्धयर्थं घर्मवर्षहिमप्रदः^५ ॥२६॥
 ततः सांख्याश्च योगाश्च ये चाप्ये मोक्षकाङ्क्षिणः । ध्यायन्ति^६ ध्यायिनो देवं हृदयस्थं दिवाकरम् ॥२७॥
 सर्व्वं लक्षणहीनोऽपि^७ 'युक्तो वा सर्व्वपातकः । सर्व्वञ्च तरते पापं'^८ 'देवमर्कं समाभितः ॥२८॥

वेद-वेदाङ्गों से जानने योग्य, नित्य सब ज्ञानों से युक्त तथा सब देवा के रूप से बढकर जो तुम्हारा रूप है, उसे नमस्कार है ॥१८॥ विद्व-कृतां, विद्वत्तमां, अग्नि तथा देवताओं से पूजित, ससार में स्थित और अचिन्त्य जो तुम्हारा रूप है, उसे नमस्कार है ॥१९॥ यज्ञ, वेद, लोक और आकाश से परे तथा परमात्मा नाम से विख्यात जो तुम्हारा रूप है, उसे नमस्कार है ॥२०॥ अविज्ञेय, अलोच्य, ध्यान से अगम्य, अव्यय, अनादि और अनन्त जो तुम्हारा रूप है, उसे नमस्कार है ॥२१॥ कारणों के कारण रूप तुम्हें नमस्कार है, पाप विमोचन रूपी प्रभो^१ तुम्हें नमस्कार है, दैत्यों के नाश करने वाले तुम्हें नमस्कार है, रोगों से उन्मुक्त करने वाले तुम्हें नमस्कार है, सब वरदानों को देने वाले तुम्हें नमस्कार है, सब के सुखदायक तुम्हें नमस्कार है, सब को धन देने वाले तुम्हें नमस्कार है और सब को ब्रुद्धि देने वाले तुम्हें नमस्कार है^२ ॥२२-२३॥ इस प्रकार स्तुति किये जाने पर भगवान् सूर्य तैजस रूप को धारण कर कल्याणमयी बाणी से कहने लगे—'आप लोगों को मैं कौन सा वरदान दूँ?' ॥२४॥

देवताओं ने कहा—'प्रभो^३ तुम्हारे इस तैजस रूप को कोई नहीं सह सकेगा। इसलिए ससार के कल्याण के निमित्त अपने रूप को सहन करने योग्य बनाने की कृपा करो ॥२५॥ तब 'एवमस्तु' कहकर आदिकर्ता भगवान् सूर्य लोगों के कल्याण के लिये घाम, वर्षा तथा हिम देने लगे ॥२६॥ तर्क से साध्य, योग्य, और मोक्षाकांक्षी जन हृदयस्थ मास्कर वा ध्यान किया करते हैं ॥२७॥ सब लक्षणा से हीन तथा सब पापों से युक्त मनुष्य भी सूर्यदेव का आश्रय

१ क ख ० विनाशना ० २ क ख ० विनाशना ० ३ क. ० म सर्व्वमतिप्र ० ४ ग ० व्युक्ती ग ०

५ क ख ० प्रभु । त ० ६ ख मनसा ७ ग मुक्तो । ८ ख दुःख । ९ ख ० वमाश्रित्य मानव । अ ० ।

'अग्निहोत्रञ्च वेदाश्च यज्ञाश्च बहुदक्षिणाः । भानोर्भञ्जितनमस्कारकलां नार्हन्ति योऽशोम् ॥२९॥
तीर्थानां परमं तीर्थं मङ्गलानाञ्च मंगलम् । पवित्रञ्च पवित्राणाम् प्रपद्यन्ते' दिवाकरम् ॥३०॥
शक्राद्यैः संस्तुतं 'देवं ये नमस्यन्ति भास्करम् । सर्वकलिवपनिर्मुक्ताः सूर्यलोकं व्रजन्ति' ते ॥३१॥

मुनय ऊचुः

चिरात्प्रभृति नो ब्रह्मन् श्रोतुमिच्छा प्रवर्तते । नाम्नामष्टशतं ब्रूहि यत्त्वयोक्तं पुरा रवे ॥३२॥

ब्रह्मोवाच

अष्टोत्तरशतं नाम्नां शृणुष्वं गदतो मम । भास्करस्य परं गुह्यं स्वर्गमोक्षप्रदं द्विजाः ॥३३॥
ॐ सूर्योऽयं मा भगस्त्वष्टा पूषाऽर्कः सविता रविः । गमस्तिमानजः कालो मृत्युर्धाता प्रभाकरः ॥३४॥
पृथिव्यापश्च तेजश्च खं वायुश्च परायणम् । सोमो बृहस्पतिः शुक्रो ध्रुवोऽङ्गारक एव च ॥३५॥
इन्द्रो विवस्वान्दीप्ताशुः क्षुविः शौरिः शनैश्चरः । ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्चैस्कन्दो वैश्वणो' यमः" ॥३६॥
वैद्युतो जाठरश्चाग्निरन्यनस्तेजसा पतिः । धर्मध्वजो वेदकर्ता वेदाङ्गो वेदवाहनः ॥३७॥
कृतं त्रेता द्वापरश्च कलिः' सर्वमराधयः । कलाकाष्ठामूर्त्ताश्च" क्षपा" यामास्तथा क्षणाः ॥३८॥
संवत्सरकरोऽश्वत्थः कालचक्रो विभावसुः । पुरुषः शाश्वतो योगी व्यवताव्यवतः सनातनः ॥३९॥

ब्रह्म कर पाप-समुद्र को पार कर जाता है ॥२८॥ अग्निहोत्र, वेद, यज्ञ, बहुत दक्षिणा—ये सब सूर्य को नमस्कारपूर्वक नमस्कार करने की सोलहवीं कला के बराबर भी नहीं हैं ॥२९॥ सबतल्लोच तीर्थों के तीर्थ, मंगल के मंगल और पवित्रों के पवित्र सूर्य को प्राप्त करते हैं ॥३०॥ जो मनुष्य इन्द्र आदि द्वापरा स्तुति किए गए सूर्यदेव को नमस्कार करते हैं, वे सब पापा से मुक्त होकर सूर्य-लोक को जाते हैं ॥३१॥

मुनियों ने कहा—ब्रह्मन् । चिरकाल से हमारे मुने भी इच्छा है, अतः आप सूर्य के एकसौ आठ नामों को बताइए, जो आपने पहले कहा था ॥३२॥

ब्रह्मा ने कहा—द्विजगण । (यदि यही इच्छा है तो) भास्कर के गुह्य तथा स्वर्ग-मोक्ष-दायक अष्टोत्तरशत नामों को मुनिये—आ सूर्य, अर्यमा, भग, त्वष्टा पूषा, अर्क, सविता, रवि, गमस्तिमान्, अज, काल, मृत्यु, धाता, प्रभाकर, ॥३४॥ पृथिवी, आप, तेज, आकाश, वायु, परायण, सोम, बृहस्पति, शुक्र, ध्रुव, अङ्गारक, ॥३५॥ इन्द्र, विवस्वान्, दीप्ताशु, क्षुवि, शौरि, शनैश्चर, ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, स्कन्द, वैश्वण, ॥३६॥ यम, वैद्युत, जाठर, अग्नि अन्यन, तेजस्पति, धर्मध्वज, वेदकर्ता, वेदांग, वेदवाहन ॥३७॥ कृत, त्रेता, द्वापर, कलि, सर्वत्रमराधय, कला, काष्ठा, मूर्त्त, क्षपा, याम, क्षण, ॥३८॥ संवत्सरकर, अश्वत्थ, कालचक्र, विभावसु, पुरुष, शाश्वत, योगी, व्यवताव्यवत, सनातन, ॥३९॥ कालाध्यक्ष, प्रजाध्यक्ष,

१ ख ग ०होत्राश्च वे० । २ ग ०यज्व दि० । ३ ख देवैर्ये० । ४ ख प्रयान्ति । ५ व सोमश्च ।
६ ग ०गोपम । ७ ख ०म । विकर्तनश्च ब्रह्मश्च स्वीयवस्ते० । ८ क सत्य । ९ ख कलि । १० ख ०श्च पक्षा
मासास्त० । ११ व ०पा मासास्त० ।

कालाध्यक्षः प्रजाध्यक्षो विश्वकर्मा तमोनुदः। वरुणः 'सागरोऽश्व' जीमूतो जीवनोऽरिहा ॥४०॥
 भूताश्रयो भूतपतिः सर्वलोकनमस्कृतः। स्रष्टा संवर्तको बह्निः सर्वस्याऽऽदिरलोलुपः ॥४१॥
 'अनन्तः कपिलो भानुः कामदः सर्वतोमुखः। जयो विशालो वरदः सर्वभूतनिर्देवितः' ॥४२॥
 मनः सुपर्णो भूतादिः शोष्यगः प्राणधारणः। धन्वन्तरिधूमकेतुरादिदेवोऽदितेः सुतः ॥४३॥
 द्वादशात्मा रविर्दक्षः पिता माता पितामहः। स्वर्गद्वारं प्रजाद्वारं मोक्षद्वारं त्रिविष्टपम् ॥४४॥
 देहकर्त्ता प्रशान्तात्मा विश्वात्मा विश्वतोमुखः। चराचरात्मा सूक्ष्मात्मा भैत्रेयः कण्ठान्वितः ॥४५॥
 एतद्वै कीर्तनीयस्य सूर्यस्यामिततेजसः। नाम्नामष्टशतं रम्यं मया प्रोक्तं द्विजोत्तम ॥४६॥

सुरगणपितृयक्षसेवितं, ह्यसुरनिशाकरसिद्धवन्दितम्।
 वरकनकहृताशनप्रभं, प्रणिपतितोऽस्मि हिताय भास्करम् ॥४७॥
 सूर्योदये यः सुप्तमाहितः पठेत्, स पुत्रदारान् धनरत्नसञ्चयान्।
 लभेत् जातिस्मरतां नरः स तु, स्मृतिञ्च मेपाञ्च स विन्दते पराम् ॥४८॥
 इमं स्तव्यं देववरस्य यो नरः, प्रकीर्तयेच्छुद्धमना समाहितः।
 विमुच्यते शोकदवाग्निसागरास्लभेत् कामाग्नमनसा ययेप्सितान् ॥४९॥
 इति श्री आदिब्राह्मे महापुराणे स्वयंभुविसंवादे सूर्यनामाष्टोत्तरशतं
 नाम त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ॥३३॥

विश्वकर्मा, तमोनुद, वरुण सागर, अश्व, जीमूत, जीवा, अरिहन्, ॥४०॥ भूताश्रय, भूतपति, सर्वलोकनमस्कृत, स्रष्टा, संवर्तक, बह्नि, सर्वादि, अलोलुप, ॥४१॥ अनन्त, कपिल, भानु, कामद, सर्वतोमुख, जय, विशाल, वरद, सर्वभूतनिर्देवित, ॥४२॥ मन, सुपर्ण, भूतादि, शोष्यग, प्राणधारण धन्वन्तरि, धूमकेतु, आदिदेव, अदितिपुत्र, ॥४३॥ द्वादशात्मा, रवि, दक्ष, पिता, माता पितामह स्वर्गद्वार, प्रजाद्वार, मोक्षद्वार, त्रिविष्टप ॥४४॥ देहकर्त्ता, प्रशान्तात्मा, विश्वात्मा, विश्वतोमुख चराचरात्मा, सूक्ष्मात्मा, भैत्रेय और कण्ठान्वित ॥४५॥ द्विजवर्ग। अमित तेजस्वी तथा कीर्तनीय सूर्य के रमणीय अष्टोत्तरशत नामों को मैंने सुना दिया ॥४६॥ देवगण, पिता तथा यक्षा से सेवित, राक्षस, वन्द्य तथा सिद्धों से वन्दित और अग्नि तथा सुवर्ण के समान कान्तिमान् सूर्य को जगत् कल्याण के लिए मैं प्रणाम करता हूँ ॥४७॥ जो मनुष्य सूर्योदयकाल में सावधान होकर इन नामों का पाठ करेगा, वह स्त्री, पुत्र, धन, रत्न समस्त पूर्वजन्म के स्मरण, स्मरण-शक्ति और उत्तम बुद्धि को प्राप्त करेगा ॥४८॥ देवगण सूर्य के इस स्तोत्र का जो मनुष्य सावधान होकर शुद्ध मन से कीर्तन करेगा, वह शोकान्तरित, सागर से मुक्त होकर ययेप्सित कामनाओं का प्राप्त करेगा ॥४९॥

श्री ब्रह्म महापुराण में ब्रह्मा और ऋषि के संवाद-प्रकरण में सूर्य के अष्टोत्तरशत नामों की तीसरी अध्याय समाप्त ॥३३॥

चतुस्त्रिंशोऽध्यायः

रुद्राख्यानवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

योऽसौ सर्वगतो देवस्त्रिपुरारिस्त्रिलोचनः। उमाप्रियकरो रुद्रश्चन्द्रार्द्धवृत्तशेखरः॥१॥
विद्राव्य विबुधान् सत्त्वान् सिद्धविद्याधरानुषीन्। गन्धर्व्यप्रक्षनागादि च तथाभ्यांश्च समागतान्॥२॥
जघान पूर्वं दक्षस्य यजतो धरणीतले। यज्ञं समृद्धं रत्नाढ्यं 'सर्वसम्भारसंभूतम्'॥३॥
यस्य प्रतापसन्त्रस्ताः शक्राद्यास्त्रिदिवीकसः। क्षान्तिं न लेभिरं विप्राः 'कैलासं' क्षरणं गताः॥४॥
स आस्ते तत्र धरदः शूलपाणिद्वन्द्वजः। पिनाकपाणिभंगवान् 'दक्षयज्ञविनाशनः'॥५॥
'महादेवोऽकले' देशे कृत्तिवासा वृषध्वजः। एकाम्रके मुनिश्रेष्ठाः सर्वकामप्रदो हरः॥६॥

मुनय ऊचुः

'किमयं स भवो देवः सर्वभूतहिते रतः। जघान यज्ञं दक्षस्य देवं' सर्वैरलङ्कृतम्॥७॥
न ह्यल्पं कारणं तत्र प्रभो मय्यामहे वयम्। श्रोतुमिच्छामहे 'सूहि' पर कौतूहलं हि नः॥८॥

अध्याय ३४

रुद्र का आख्यान-वर्णन

ब्रह्मा ने कहा—जो ये सर्वव्यापक, त्रिपुर-शत्रु, त्रिनेत्र, पावर्त प्रिय, रुद्र और मस्तक पर अर्धचन्द्रधारी देव हैं, उन्होंने सिद्ध, विद्याधर, ऋषि, गन्धर्व, यक्ष, नाग, देवता तथा दूसरे भी समागत व्यक्तिगतों का निरस्कार कर पक्षी-पुष्पी-सत्त्व पर पक्ष करते हुए दक्ष के समृद्ध, रत्नों से परिपूर्ण और सब प्रकार के उपकरणों से सुसज्जित यज्ञ का विध्वंस कर दिया ॥१-३॥ विप्रवृन्द! उनके प्रताप से मयस्त इन्द्र आदि देवता क्षान्ति न प्राप्त कर क्षरणरूप कैलास पर्वत पर गये ॥४॥ मुनिवर्ष! वहाँ वे वरदायक, शूलपाणि, वृषध्वज, पिनाकपाणि, दक्ष-यज्ञ-विनाशक, समसानवासी, व्याघ्र-वर्मधारी, हर तथा एनाग्रव (स्यानविशेष) में सर्वकामप्रद भगवान् महादेव रहते हैं ॥५-६॥

मुनियों ने कहा—सब प्राणियों में द्वित में निरत उस वाहरदेव ने सब देवा से अलङ्कृत दक्ष के यज्ञ को क्या गल्ट किया? प्रभो! अवश्य ही इसका कोई महान् कारण होगा? हम सुनना चाहते हैं, हम नहीं उत्सुकता है। यही है, कृपया सुनाइए ॥७-८॥

१ स ० वैलोर्दक्ष सस्तुत ०। २ क ० स। न शर्म ले ०। ३ क क पुनस्त। ४ क ० ता। यत्रास्ते वरदो देव सु०। ५ क स ० शत्रुवि०। ६ क स ० वोरले। ७ क स ० र्व मयान्देव। ८ क ० हे वृत्तपर।

ब्रह्मोवाच

दक्षस्याऽऽसन्नष्ट कन्या यादवैव पतिसङ्गता । स्वैर्म्यो गृहैर्म्यश्चाऽऽनीयता पिताऽम्यच्चैयदगृहे ॥९॥
 ततस्त्वन्म्यच्चिता विप्रान्यवसस्ता पितुर्गृहे । तासां ज्येष्ठा सती नाम पत्नी या 'ध्यम्बकस्य वै' ॥१०॥
 नाऽज्जुहावाऽमजा ता वै दक्षो रुद्रमभिरुपिन । अकरोत्सन्नति दक्षे 'न च काञ्चिन्महेश्वर' ॥११॥
 जामाता इवशुरे तस्मिन् स्वभावात्तेजसि स्थित । ततो जात्या सती सर्वास्तास्तु प्राप्ता पितुर्गृहम् ॥१२॥
 जगाम साऽप्यनाहूता सती तु स्वपितुर्गृहम् । ताम्यो हीना पिता चक्रे सत्या पूजामसम्मताम् ॥
 ततोऽब्रवीत्सा पितरं देवी क्रोधसमाकुल ॥१३॥

सत्युवाच

यद्योयसीम्य' श्रेष्ठाऽहं किं न पूजति मा प्रभो । असत्कृतामवस्थां यः कृतवानसि महिताम् ॥
 अहं ज्येष्ठा' वरिष्ठा च मा इव सत्कर्तुंमर्हसि ॥१४॥

ब्रह्मोवाच

एवमुक्त्वतोऽब्रवादिना दक्षः सरवतलोचन ॥१५॥

दक्ष उवाच

इवम् श्रेष्ठा वरिष्ठाश्च पूज्या बाला सुता मम । तासां ये चैव भर्तारस्ते मे बहुमता सति ॥१६॥

ब्रह्मा बोले—दक्ष की आठ कन्याएँ थीं जिन्हें उसने यथायोग्य पतिपति से ब्याह दिया। (एक समय) यज्ञ में) दक्ष ने सब कन्याओं को बुलाकर सत्कार किया ॥९॥ बिप्रवृद्ध । वे सम्मानित कन्याएँ तब से पिता के ही घर में वास करने लगीं। उनमें बड़ी बहिन सती थी जो शिव की पत्नी थी और जिसे दक्ष ने द्रव्य से क्षत्रुता के कारण नहीं बुलाया था ॥१०॥ शिव ने इससे दक्ष के प्रति कोई धोख नहीं प्रकट किया। स्वभाव से तेजस्वी जामाता इवशुर के प्रति तटस्थ रहा ॥११॥ तब सब बहनें पिता के घर गईं—यह जानकर सती बिना बुलाये ही पिता के घर चली गई ॥१२॥ पिता ने और कन्याओं की अपेक्षा सती का कम आदर किया। तब क्रोध से आकुल सती ने पिता से कहा ॥१३॥

सती बोली—प्रभो ! छोटी बहनों से मैं बड़ी हूँ। फिर आप सम्मान क्यों नहीं करते ? मेरा निरादर करके मेरा अवस्था का क्यों बुरी चला रहे हैं । मैं श्रेष्ठ और ज्येष्ठ हूँ। मेरा भी सत्कार काजिये ॥१४॥

ब्रह्मा ने कहा—सती की यह बात सुनकर दक्ष ने आस लाल कर उससे कहा ॥१५॥

दक्ष ने कहा—सत । तुमसे थोड़ा उत्तम और पूज्य मेरी छोटी पुत्रियाँ हैं। उनके जो स्वामी है वे

ब्रह्मिष्ठाश्च व्रतस्याश्च महायोगा सुधाग्निंका । गुणैश्चैवायिका श्लाघ्या सर्व्वे ते श्रयम्बकात् सति ॥१७॥
 वसिष्ठोऽग्निं पुलस्त्यश्च अङ्गिरा पुलहं व्रतु । भृगुर्मरीचिश्च तथा श्रेष्ठा जामातरो मम ॥१८॥
 तैश्चापि स्पृष्टं ते शर्व्वं सर्व्वे ते चैव तं प्रति । तेन त्वा न ब्रूयामि प्रतिकूलो हि मे भव ॥१९॥
 इत्युक्तवास्तदा दक्षः सम्प्रमूढेन नेतसा । द्वापायं मात्मनश्चैव धेनोवता वै महर्षयः,
 तयोक्ता पितर सा वै क्रुद्धा देवी तमब्रवीत् ॥२०॥

सत्युवाच

सादृशं कर्मभिर्यस्मादबुद्धा मां विगृह्णति । तस्मात्स्यजाम्यहं ब्रह्मिणं तात तवाऽऽत्मजम् ॥२१॥

ब्रह्मोवाच

ततस्तोनापमानेन सती दुःखादमपिता । अब्रवीद्भजनं देवी नमस्कृत्य स्वयम्भव ॥२२॥

तत्युवाच

येनाहमपदेहा वै पुनर्देहेन भास्वता । तत्राप्यहमसम्मूढा सम्भूता घाम्मिंकी पुनः ।
 गच्छेय धम्मपत्नीतिव श्रयम्बकस्यैव धीमतः ॥२३॥

ब्रह्मोवाच

तत्रैवाप समासीना दृष्टाऽऽत्मनः समादधे । धारयामास चाऽऽग्नेयीं धारणामात्मनाऽऽत्मनः ॥२४॥

मेरे सम्माननीय हैं ॥१६॥ सतः । वे सब जामाता निव से अधिक गुणवान् ब्रह्मिष्ठ व्रती महायोगी धर्मात्मा तथा
 प्रामर्शनीय हैं ॥१७॥ वसिष्ठ अग्नि पुलस्त्य अगिरा पुलह, व्रतु भृगु और मरीचि—ये मेरे श्रेष्ठ जामाता हैं ॥१८॥
 इनसे निवर्ण करती है और उससे मैं सब । इस कारण निव को मैं अपना शत्रु समझ कर गुम्हाया मान नहीं करना
 चाहता ॥१९॥ इस प्रकार दक्ष ने बिना सोचे समझे बड़ कया दिया मानो उसने अपने को राप दिलाने के लिए ही
 मर्दापिया का नाम ले लिया । पिता का यह उत्तर सुनकर स्त्री ने क्रुद्ध होकर कहा ॥२०॥

सती बोली—सात ! जिसनिष् आप मन वाणा और ब्रह्म से मुझे दुष्ट तथा निम्नित बना रहे हैं इसलिए
 आपसे उत्पन्न इस शरीर का अब मैं त्याग कर रही हूँ ॥२१॥

ब्रह्मा ने कहा—तब जब अपमान के दुष्ट से तुमने सती ब्रह्मा को नमस्कार करते बहने लगी ॥२२॥

सती बोली—इस देह का परित्याग करने पर फिर जो मुझे कान्तिमान् गरीर मिले उन गरीर में भी
 मैं विवेकीन तथा धर्मात्मा होऊँ और बुद्धिमान् निव की हूँ । क्लीं वरूँ ॥२३॥

ब्रह्मा ने कहा—तुमरात्मन् स्त्री परबैठी क्रुद्ध सतः ने आत्मा को अपमानित किया और आत्मा ने आत्मा

ततः स्वात्मानमुत्थाप्य वायुना समुदीरितः । सर्वाङ्गेभ्यो विनिभृत्य बह्निर्भस्म चकार ताम् ॥२५॥
तदुपश्रुत्य निघ्नं सत्या देव्याः स शूलघृक् । संवादञ्च तयोर्बद्ध्वा यायातम्येन, शङ्करः ॥
दक्षस्य च विनाशाय चुकोप भगवान् प्रभुः ॥२६॥

श्रीशङ्कर उवाच

यस्मादवमता दक्ष सहसैवाऽऽयता सती । प्रशस्ताश्चेतराः सर्वास्त्यत्सुता भर्तृभिः सह ॥२७॥
तस्माद्वैवस्वते प्राप्ते पुनरते महर्षयः । उत्पत्स्यन्ति द्वितीये वै तव यज्ञे ह्यपोनिजाः ॥२८॥
'हुते वै ब्रह्मणः सत्रे चाक्षुषस्यान्तरे मनोः' । अभिव्याहृत्य सप्तर्षीन् दक्षं सोऽभ्यशपत् पुनः ॥२९॥
भविता मानुषो राजा चाक्षुषस्यान्तरे मनोः । प्राचीनर्बाह्यः पौत्रः पुत्रश्चापि प्रचेतसः ॥३०॥
दक्ष इत्येव नाम्ना एव मारिष्यां जनिष्यति । वन्यायां शाखिनाञ्चैव प्राप्ते वै चाक्षुषान्तरे ॥३१॥
अहं तन्नापि ते विघ्नमाचरिष्यामि दुर्मते । धम्मंकामार्थयुवतेषु कर्मस्विह पुनः पुनः ॥३२॥
ततो वै व्याहृतो दक्षो रुद्रं सोऽभ्यशपत् पुनः ॥३३॥

दक्ष उवाच

यस्मात्सर्वं मरुते क्रूर ऋषीन् व्याहृतवानसि । तस्मात् सार्द्धं सुरयज्ञे न रवां यक्षयन्ति वै द्विजाः ॥३४॥
कृत्वाऽऽहुतिं तव क्रूर अप स्पृशन्ति कर्मसु । इहैव वत्स्यसे लोके दिवं हित्वाऽभ्युगक्षयति ॥
ततो देवैस्तु ते सार्द्धं न तु पूजा भविष्यति ॥३५॥

मे आनेर्नो धारणा को जब धारण किया तब वायु से प्रेरित अग्नि ने सती के सब अंगों से निकल कर उसे मरमनाई कर दिया ॥२४॥ सती देवी का मरण सुनकर तब दक्ष और सती का सवाद यथार्थतः जान कर दक्ष के विनाश के लिए भगवान् शंकर ने क्रोध किया ॥२६॥

श्री शंकर बोले—'दक्ष' जिसलिए हठात् आई हुई सती का तुमने अपमान किया और इतर पुत्रियों का वनाग्नि के साथ सम्मिलन किया इसलिए द्वितीय वैवस्वत यज्ञ के आने पर पुनः ये महर्षि तुम्हारे यज्ञ में अयोनिज होकर उत्पन्न होंगे ॥२७॥ २८॥ चाक्षुष भन्वन्तर में ब्रह्मा के यज्ञ में फिर उत्पन्न होंगे ।' इस प्रकार सप्तर्षियों को शाप देकर शिव ने फिर से दक्ष को शाप दिया ॥२९॥ चाक्षुष भन्वन्तर में तुम मनुष्यों के राजा, प्राचीनर्बाह्य के पौत्र प्रचेता के पुत्र तथा 'दक्ष' इसी नाम से प्रख्यात होंगे और वृक्ष की पुत्री मारिष्या से तुम्हारी उत्पत्ति होगी ॥३१॥ दुष्ट-वृद्धे । वही भी मैं तुम्हारे धर्म अर्थ, और काम से युक्त कर्मों में बार-बार विघ्न डालूँगा ॥३२॥ इस प्रकार कहे गये दक्ष ने भी रुद्र को शाप दिया ॥३३॥

दक्ष ने कहा—'क्रूर' मेरे कारण तुमने ऋषियों को शाप दिया है, इसलिए ब्राह्मणगण यज्ञ में देवताओं के साथ तुम्हारी पूजा नहीं करेंगे ॥३४॥ 'क्रूर' पुण्य कर्म करते समय तुम्हें आहुति देकर लोग जलसंस्कार करेंगे । स्वर्ग छलकर युग बीतने तक तुम इसी लोक में घास बनोगे । देवताओं के साथ तुम्हारी पूजा नहीं होगी ॥३५॥

इत्येयोऽनुशयो 'ह्यासीत्तयोर्जात्यन्तरं गतः'। प्रजम्पतेश्च दक्षस्य त्र्यम्बकस्य च धीमतः ॥४९॥
 'तस्मान्नानुशयः कार्यो' वरेष्विह कदाचन। जन्मन्तरगतस्यापि भावितस्य' शुभाशुभैः' ॥
 जन्तोर्न भूतये ह्यातिस्तत्र कार्यं विजानता ॥५०॥

मुनय ऊचुः

कथं रोपेण सा पूर्व' दक्षस्य दुहिता सती। त्यक्त्वा देहं पुनर्जाता गिरिराजगृहे प्रभो ॥५१॥
 देहान्तरे' कथं तस्याः' पूर्वदेहो बभूव ह। भवेन सह संयोगः संवादश्च तयोः कथम् ॥५२॥
 स्वयंवरः कथं वृत्तस्तस्मिन् महति जन्मनि। विवाहश्च जगन्नाथ सव्विशिष्यसमन्वितः ॥५३॥
 तत्सर्वं विस्तराद्ब्रह्मन् वक्तुमर्हं सिसाम्प्रतम्। श्रोतुमिच्छामहे पुण्या कथां चातिमनोहराम् ॥५४॥

ब्रह्मोवाच

शृणुष्व मुनिशार्दूलः कथां पापप्रणाशिनोम्। उमाशङ्करयोः पुण्यां सर्वकामफलप्रदाम् ॥५५॥
 कदाचित् स्वगृहात् प्राप्तं कदम्बं द्विपदां वरम्। अपृच्छद्विमवान् घृतं लोके ह्यातिकरं हितम् ॥५६॥
 केनाशयाश्च लोकाः स्युः ह्यातिश्च परमा मुने। तथैव चाचर्चनीयश्वं सत्सु तत्कथयस्व मे ॥५७॥

का ऐसा पूर्व बैर था, जिसका परिणाम जन्मान्तर मे अकर निकला ॥४९॥ इसलि ए ब्रह्मो के साथ बैर नही करना चाहिये। जीवो को पूर्व बैर का फल जन्मान्तर मे भी भुगतना पडता है। अत विद्वान् को ऐसा नही करना चाहिये ॥४९ ५०॥

मुनियो ने कहा—प्रभा! पहले कयो कौष से दक्ष की पुत्री सती अपने शरीर का त्याग कर हिमालय के गृह मे उत्पन्न हुई? ॥५१॥ दूसरे जन्म मे भी कैसे उसको पहली देह मिली? शिव के साथ संयोग कैसे हुआ? महादेव और पार्वती का संधर्ष कैसे हुआ? ॥५२॥ उस ब्रह्मन् जन्म मे स्वयंवर तथा विवाह कैसे हुआ? हे जगन्नाथ! यह सब आश्चर्यजनक बात है ॥५३॥ ब्रह्मन्! यह सब विस्तारपूर्वक हमे बतलाइये। अत्यन्त मनोहर तथा पवित्र कथा को हम श्रुतना चाहते है ॥५४॥

ब्रह्मा ने कहा—मुनिशार्दूल! उमा और शंकर की पापनाशिनी, पवित्र तथा सब कामनाओ को देनेवाली कथा को आप लोग मुनिये ॥५५॥ किसी समय अपने गृह से आये हुए मानवा मे श्रेष्ठ कश्यप से हिमालय ने लोक मे ह्याति-वर्धक तथा कल्याणकर वृत्तान्त पूछा—'मुने' किस तरह अश्व लोक मिलेंगे, परम ह्याति होगी और सत्सुरयो में प्रतिष्ठा बढ़ेगी—यह हमे बताइये ॥५६ ५७॥

१ क ० संतपो तेऽन्तराज्जरा। प्र०। २ ख गते। ३ क ० स्मात्र सश०। ४ ख ० यो धीरे। ५ क ० स्य मुररिपि। ज०। ६ ख मै। देहान्तरे कथ तस्य पुनर्देह न मुञ्चति। वासना न जहात्येव देहान्तरगतेऽपि वा। दुःख त्वनुसयात्पन्तस्तत्र कार्या विजानत। गु०। ७ क पूर्णा। ८ ग ० रे पुनस्तस्या कथ दे०। ९ ख ० स्या पुनर्देह।

कश्यप उवाच

अपत्येन' महाबाहो सव्यमेतदवाप्यते । ममाऽऽस्थातिरपत्येन ब्रह्मणा ऋषिभि सह ॥५८॥
किं न पश्यसि शैलेन्द्र यतो मा परिपृच्छसि । वर्त्तमिष्यामि यच्चापि यथादृष्टं पुराऽचल ॥५९॥
धाराणसीमहं गच्छन्नपश्य सस्थितं दिवि । विमान' सुनखं दिव्यमनीषम्यं महर्द्धिमत् ॥६०॥
तस्याधस्तादात्तनादं गतं स्थाने शृणोम्यहम् । तमहं तपसां ज्ञात्वा तत्रैवावर्त्तितं स्थितं ॥६१॥
अपामातत्र शैलेन्द्र' विप्रो नियमवान् शुचिः । तीर्थाभिषेकपूतात्मा परे तपसि सस्थितः ॥६२॥
अथ स यज्ञमानस्तु व्याघ्रेणाऽऽभीषितो द्विजः । दिवेश त तदा देशः स गतो यत्र भूधरः ॥६३॥
गर्तायां वीरणस्तम्बे लम्बमानास्तदा मुनीन् । अपश्यदात्तो दुःखार्तास्तानपृच्छच्छसं द्विजः ॥६४॥

द्विज उवाच

के धूय वीरणस्तम्बे लम्बमाना ह्ययोमुखा । दुःखिता केन मोक्षश्च युष्माकं भविताऽनघा ॥६५॥

पितर ऊचुः

यद्य ते कृतपुण्यस्य पितरः सपितामहा । प्रपितामहाश्च विलम्बयामस्तव दुष्टेन कर्मणा ॥६६॥
नरकोऽयं महाभाग गतं रूपेण सस्थितः । त्वं चापि वीरणस्तम्बस्तयि लम्बामहे वयम् ॥६७॥
यावत्स्य जीवसे विप्रः तावदेव वयं स्थिताः । भूते त्वयि गमिष्यामो नरकं पापचेतसः ॥६८॥

कश्यप ने कहा—हे महाबाहो ! सन्तान से सब कुछ प्राप्त होता है । ब्रह्मा और ऋषियों के साथ मेरी स्थाति सन्तान ही से है ॥५८॥ हे शैलेन्द्र ! क्या यह आप देख नहीं रहे हैं जो मुझसे पूछते हैं । हे पवन ! तो भी जैसा मैंने देखा है वैसा बतलाऊंगा ॥५९॥ जब मैं धाराणसी जा रहा था तब आकाश में स्थित नखनं दिव्य अनुपम तथा महर्द्धव्य-सम्पन्न एक विमान मुझ दिखाई पड़ा ॥६०॥ उस विमान के नीचे गतस्थान (गड्ढा) में मैंने आतनाद सुना । उसको तपस्या से मैं जानकर वहीं अवर्त्तित होकर ठहर गया ॥६१॥ इसके उपरान्त हे शैलेन्द्र !, एक क्षणभी पवित्र तपस्वानो से पवित्रात्मा और उत्कृष्ट तपस्वी ब्राह्मण वहाँ आया ॥६२॥ गमन करते हुए ब्राह्मण को एक व्याघ्र ने डरा दिया । हे भूधर ! तब वह द्विज उस स्थान में चला गया जहाँ वह गड्ढा था ॥६३॥ गड्ढा में वीरण (सप्त) के गुच्छों से लटकते हुए दुःखपीडित मुनीयों को देखकर उस द्विज ने पूछा ॥६४॥

द्विज ने कहा—वीरण के गुच्छों से लटकते हुए नीचे मुख किये हुए तुम कौन हो ? किसने तुम्हें यह दुःख दिया है ? हे निष्पाप ! किस प्रकार तुम्हें लुटकारा मिल सकता है ? ॥६५॥

पितरों ने कहा—तुम पुण्यात्मा के पितामह प्रपितामह आदि पितरों से दुष्ट कर्म से कष्ट पा रहे हैं ॥६६॥ महाभाग ! गत रूप में स्थित यह नरक ही है । तू ही वीरण का गुच्छा है । तुमसे ही हम लोग लटक रहे हैं ॥६७॥ विप्र ! जब तक तू जी रहा है तभी तक हम लोग स्थित हैं । तेरे मर जाने पर हम सब पापी नरक को जायेंगे ॥६८॥

१ ख तपसंव । २ क ० स्थाति परा तेन । ३ ख ० न स्वस्ति महिष्य गनोवेग म० । ४ ख ० न वसिष्ठो नियमस्थित । ती० ।

यदि त्वं वारसयोगं कृत्वापत्यं गुणोत्तरम् । उत्पादयसि तेनास्मान् मुच्येम वयमेनस ॥६९॥
नान्येन तपसा पुत्रं तीर्थानाञ्च फलेन च । एतत् कुरु महाबुद्धे तारयस्व पितॄन् भयात् ॥७०॥

कश्यप उवाच

स तथेति प्रतिज्ञाय आराध्य वृषभध्वजम् । पितॄन् गन्तारिसमुद्धृत्य गणपान् प्रचकार ह ॥७१॥
स्वयं रुद्रस्य दयितं सुवेशो नाम नामत । सम्मतो बलवाइक्ष्वाक रुद्रस्य गणपोऽभवत् ॥७२॥
तस्मात् कृत्वा तपो घोरमपत्यं गुणवद्भृशम् । उत्पादयस्व शैलेन्द्र सुतां त्वं वरर्चाणिनीम् ॥७३॥

ब्रह्मोवाच

स एवमुक्त्वा ऋषिणा शैलेन्द्रो नियमस्थित । तपश्चकाराप्यतुल्यं येन तुष्टिरभू मम ॥७४॥
तदा तमुत्पपातह वरदोऽस्मीति प्राश्रयम् । स्मृतिं तुष्टोऽस्मि शैलेन्द्र तपसानेन सुव्रत ॥७५॥

हिमवानुवाच

भगवन् पुत्रमिच्छामि गुणं सर्वैरलङ्कृतम् । एव वरं प्रयच्छस्व यदि तुष्टोऽसि मे ॥७६॥

ब्रह्मोवाच

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा गिरिराजस्य भो द्विजा । तदा तस्मै वरं चाहं दत्तव्यात्मनसेऽस्तितम ॥७७॥

॥६८॥ यदि तू विवाह कर गुणवान सन्तान को उत्पन्न करता है तो उसी से हम लोगों की मुक्ति हो जायगी ॥६९॥ पुत्र । और किसी तपस्या या तीर्थों के फल से हमारी मुक्ति सम्भव नहीं है। महाबुद्ध । ऐसा करके वय से पितरों का उद्धार कर ॥७०॥

कश्यप ने कहा—द्विज ने ऐसा ही कहेंगा यह प्रतिज्ञा कर शिव की आराधना की और गत से पितरों का उद्धार कर उहे गणपालक बना दिया ॥७१॥ वह स्वयं रुद्र वा सुवेश नामक प्रिय बुद्धिमान तथा बलवान गणपाल हुआ ॥७२॥ हे शैलेन्द्र । इसलिए घोर तपस्या करके अत्यन्त गुणवान पुत्र तथा सुदरी कन्या को उत्पन्न कीजिये ॥७३॥

ब्रह्मा ने कहा—कृषि द्वारा इस प्रकार का सुसाध प्राप्त कर शैलेन्द्र नियमयुक्त होकर अतुल्य तप करने लगा जिससे मैं प्रसन्न हो उसके समीप जाकर बोला—मैं वर देने आया हूँ। हे शैलेन्द्र । तुमसे पूछ सतुष्ट हूँ। हे सुव्रती । मागो इस तपस्या का फल तुम क्या चाहते हो ? ॥७४७५॥

हिमवान ने कहा—भगवन । मैं सबगणसम्पन्न सन्तान चाहता हूँ। प्रभो । यदि आप सतुष्ट हैं तो ऐसा ही वरदान भक्ष दीजिये ॥७६॥

ब्रह्मा ने कहा—द्विजगण । हिमालय के वचन को सुनकर मैंने उसे यह भतीमिलपित वरदान दिया

दत्तकश्चोदना तस्य पुत्रः स भृगुनन्दनः। आसीत्तस्यैकपत्नी तु देवलं सुपुत्रे सुतम् ॥९१॥
 या तु तासां कुमारिणां तृतीया ह्येकपाटला। पुत्रं सा तमलकस्य जंगोपव्यमुपस्थिता ॥९२॥
 तस्याश्च शङ्खलिखितो स्मृतो पुत्रायोनिजो। उमा तु या मया तुभ्यं कीर्तिता वरवर्णिनी ॥९३॥
 अयं तस्यास्तपोयोगात्त्रैलोक्यमखिलं तदा। प्रभूषितमिहाऽऽलक्ष्य यच्चस्तामहमब्रवम् ॥९४॥
 देवि किं तपसा लोकांस्तापयिष्यसि शोभने। त्वया सृष्टमिदं सर्वं मा कृत्वा तद्दिनाशय ॥९५॥
 त्वं हि धारयसे लोकानिमान् सर्वान् स्वतेजसा। ग्रही किं ते जगन्मातः प्रायितं सम्प्रतीह नः ॥९६॥

देव्युवाच

यदयं तपसो ह्यस्य चरणं मे पितामह। त्वमेव तद्दिजानीये ततः पृच्छसि किं पुनः ॥९७॥

ग्रहोवाच

ततस्तामब्रवं चाहं यदयं तप्यसे शुभे। स त्वां स्वयमुपागम्य इहैव वरयिष्यति ॥९८॥
 शर्वं एव पतिः श्रेष्ठः सर्वलोकेश्वरेश्वरः। वयं सर्वेव यत्प्रेमे वदामां वं किङ्कराः शुभे ॥९९॥
 स देवदेव, परमेश्वरः स्वयं, स्वयम्भूरायात्यति देवि तेऽन्तिकम्।
 उदाररूपो विकृतादिरूपः, समानरूपोऽपि न यस्य कस्यचित् ॥१००॥

प्राप्त किया ॥९०॥ दत्तक का पुत्र भृगु-वशी शुक्र था, जिससे व्याहृ कर एकपत्नी ने देवल नामक पुत्र को उत्पन्न किया ॥९१॥ इन कुमारियों में तीसरी एकपाटला का विवाह अलक के पुत्र जंगोपव्य से हुआ ॥९२॥ उसके शंख और लिखित नामक दो अयोनिज पुत्र हुए। जिस सुन्दरी उमा के बारे में मैंने आपसे कहा है, उसने तपस्या के बल से संपूर्ण त्रिलोकी को प्रवासित कर दिया। यह देखकर मैंने उससे कहा ॥९३-९४॥ हे देवि! हे सुन्दरि! क्या तुम तपस्या से लोको को तपाओगी? तुमने सब की सृष्टि की है। ऐसा करके पुन उनका विनाश मत करो ॥९५॥ तुम्ही अपने तेज से लोको को धारण करती हो। हे जगन्माता! कहो, तुम्हें क्या अभीष्ट है ॥९६॥
 देवी ने कहा—पितामह! मैं जिसलिए तप कर रही हूँ, वह तो आप जानते ही हैं। फिर क्यों पूछ रहे हैं? ॥९७॥

ग्रहों ने कहा—तब मैंने उससे कहा—‘शुभे’। तुम जिसके लिए तप कर रही हो, वह स्वयं यहाँ आकर तुम्हें स्वीकार करेंगे ॥९८॥ नल्याणमयी! सब लोको के ईश्वर के ईश्वर शिव ही श्रेष्ठ पति हैं, जिनके सदा हम वश्य तथा दास बने रहते हैं ॥९९॥ देवी! वह देव-देव, स्वयम्भू, परमेश्वर स्वयं तुम्हारे पास आयेगे, जो उदार रूप विकृत आदि-रूप महेश्वर, पर्वतलोकवासी, चराचर के स्वामी, प्रथम, अग्रमेय (न मापने योग्य), चन्द्रमा

महेश्वरः पर्वतलोकवासी, चराचरेशः प्रथमोऽप्रमेयः ।
विनेन्दुना हीन्द्रसमानवर्चसा, 'विभोपणं' रूपमिवास्त्यतो यः ॥१०१॥
इति श्री आदिब्राह्मे महापुराणे स्वयम्भु-ऋषि-संवादे चतुर्विंशोऽध्यायः ॥३४॥

पञ्चविंशोऽध्यायः

पार्वत्युपाख्यान-वर्णनम्

ब्रह्मोवाच

ततस्ताम्रधुवन् देवास्तदा गत्वा तु सुन्दरीम् । देवो शीघ्रेण कालेन पूज्जंदिनीं ललोहितः ॥१॥
स भर्ता सव देवेशो भविता' मा तपः कृयाः । ततः प्रदक्षिणोक्त्य देवा विप्रा गिरेः सुताम् ॥२॥
जग्मुश्चादर्शनं तस्याः सा चापि विरराम ह । सा देवी सूक्तमित्येवमुक्त्वा स्वस्याश्रमे शुभे ॥३॥
द्वारि जातमशोकञ्च समुपाश्रित्य चास्थिता । अयागान्चन्द्रतिलकस्निग्धशक्तिहरो हरः ॥४॥
विहृतं रूपमास्थाय हृत्स्वो बाहूक एव च । विभग्ननासिको भूत्वा कुञ्ज' केशान्तपिङ्गलः ॥५॥
उवाच विहृतास्यश्च देवि त्वां वरयाम्यहम् । अयोमा योगसंसिद्धा नात्वा शङ्करमागतम् ॥६॥

के बिना ही इन्द्र के समान तेजस्वी तथा मयानक रूप के सदृश अवस्थित हैं और जिनके समान रूप वाला कोई नहीं है ॥१००-१०१॥

श्री ब्रह्ममहापुराण में ब्रह्मा और ऋषि के संवाद प्रकरण में चौतीसवाँ अध्याय समाप्त ॥३४॥

अध्याय ३५

पार्वती का उपाख्यान-वर्णन

ब्रह्मा ने कहा—तदुपरान्त देवता लोग जाकर उस सुन्दरी से कहने लगे—‘हे देवि ! अब शीघ्र ही देवों के स्वामी महादेव जी तुम्हारे पति होंगे । तप मत करो’ ॥१३॥ ऐसा कहकर देवगण पार्वती की प्रदक्षिणा कर अदृश्य हो गये । और पार्वती भी विभ्राम करने लगी ॥२३॥ वह देवी ‘अच्छा कहा’ ऐसा कहकर अपने पवित्र आश्रम के द्वार पर उत्पन्न अशोक वृक्ष के नीचे बैठ गई ॥३३॥ इसके अनन्तर देव-कुसुमादारी, चन्द्रमा को मस्तक पर धारण करने वाले महादेव वहाँ आये, जिनके रूप तथा मुख विहृत थे, नाक कटी हुई थी, नेत्रों का अन्तिम भाग पीला था और बाहें छोटी थी । उन्होंने गिरि-नन्दिनी से कहा—‘देवी ! मैं तुम्हें स्वीकार करता हूँ’ ॥४-५॥ इससे बाद ब्रह्माणप्रिय,

अन्तर्भावविशुद्धात्मा' कृपानुष्ठानलिप्ताया। तमुवाचार्य्यपाद्याभ्यां मधुपर्कं चैव ॥७॥
सम्पूज्य सुमनोभिस्तं ब्राह्मणं ब्राह्मणप्रिया ॥८॥

देव्युवाच

भगवन् स्वतन्त्राहं पिता मे स्वप्रणीर्गृहे। स प्रभुर्म्मम दात्रे यं कन्याहं द्विजपुङ्गव ॥९॥
गत्वा याचस्व पितरं मम शैलेन्द्रमव्ययम्। स चेद्ददाति मां विप्र तुभ्यं तदुचितं मम ॥१०॥

ग्रहोवाच

ततः स भगवान् देवस्तयैव' विकृतः प्रभुः। उवाच शैलराजानं सुतां मे यच्छ शैलराट् ॥११॥
स त विकृतरूपेण ज्ञात्वा रुद्रमयाव्ययम्। भीतः शापाच्च विमना इवं वचनमब्रवीत् ॥१२॥

शैलेन्द्र उवाच

भगवन्नावमन्येऽहं ब्राह्मणान्' भुवि देवता। मनीषितन्तु यत् पूर्वं तच्छृणुष्व महामते ॥१३॥
स्वयं वरो मे दुहितुर्भविता विप्रपूजितः। वरयेद्यं स्वयं तत्र स भर्तास्या भविष्यति ॥१४॥
तच्छ्रुत्वा शैलवचनं भगवान् वृषभध्वजः। देव्या समीपमागत्य इदमाह महामता ॥१५॥

शिव उवाच

देवि पित्रा स्वनुज्ञातः स्वयंवर इति श्रुतिः। तत्र त्वं वरयित्री यं स ते भर्ता भवेदिति ॥१६॥

योग से सिद्ध तथा विद्युद्ध अन्तरामा उमा ने शंकर के आगमन को जानकर उनकी कृपा पाने की लिप्ता से उन्हें अर्घ्य आचमनीय तथा मधुपर्क दिया और पुष्पो से उनकी पूजा करके कहा—॥६-८॥

देवी बोली—भगवन् ! मैं स्वतन्त्र नहीं हूँ। मेरे घर मे पिताजी मुख्य हैं। द्विजश्रेष्ठ ! मैं तो कन्या हूँ। वे ही मेरे दान करने में समर्थ हैं। अतः आप आकर के उन विनाशरहित पर्वतराज से याचना कीजिये। विप्र ! यदि वे मुझे आपको दे दें तो उचित है ॥९-१०॥

ग्रहो ने कहा—उदन्तर पूर्ववत् विकृतरूपधारी भगवान् शिव ने पर्वतेश्वर से कहा—‘शैलराज ! मुझे आप अपनी कन्या दें।’ तब पर्वतराज ने विकृत रूप से ही उन्हें अविनाशी रुद्र समझ कर शाप के डर से दुखी होकर यह वचन कहा ॥११-१२॥

शैलेन्द्र ने कहा—भगवन् ! मैं पृथ्वी पर देवरूप ब्राह्मणों का अपमान नहीं करता। महामेधाविन् ! मेरी जो इच्छा है वह आप मुनिये ॥१३॥ मेरी कन्या का ब्राह्मणों से सत्कृत स्वयंवर होगा। वहाँ वह जिसका वरण करेगी, वही उसका पति होगा ॥१४॥ पर्वतेन्द्र के ये वचन सुनकर भगवान् शिव पार्वती के समीप आकर बहने लगे ॥१५॥

शिव ने कहा—देवी ! ऐसा सुना जाता है कि तुम्हारे पिता की आज्ञा से स्वयंवर होगा, उसमें तुम

तदापृच्छ्य गमिष्यामि 'दुर्लभां त्वां वरानने। रूपवन्तं समुत्सृज्य द्युणोप्यसदृशं कथम् ॥१७॥

ब्रह्मोवाच

तेनोक्ता सा तदा तत्र भावयन्ती तदीरितम्। भावञ्च खद्विहितं प्रसादं मनसस्तया ॥१८॥
सम्प्राप्योवाच देवेशं मा तेऽभूद्वद्विरन्यथा। अहं त्वां वरयिष्यामि 'नाद्भुतन्तु कथञ्चन ॥१९॥
अथवा तेऽस्ति सन्नेहो मयि विप्र कथञ्चन। इहैव त्वां महाभाग वरयामि मनोगतम् ॥२०॥

ब्रह्मोवाच

गृहीत्वा स्तवकं सा तु हस्ताभ्यां तत्र संस्थिता। स्कन्धे शम्भोः समाधाय देवी प्राह वृत्तोऽसि मे ॥२१॥
ततः स भगवान् देवस्तया देव्या वृत्तस्तदा। उवाच तमशोकं वै वाचा सञ्जीवयन्निव ॥२२॥

शिव उवाच

यस्मात्तव सुपुष्येन स्तवकेन वृत्तोऽस्म्यहम्। तस्मात्त्वं जरया त्यक्तस्त्वमरः सम्भविष्यसि ॥२३॥
कामरूपी कामपुष्पः कामदो दयितो मम। सर्वभरणपुष्पादयः 'सर्वपुष्पफलोपगः' ॥२४॥
सर्वान्नभक्षकश्चैव अमृतत्वाद्' एव च। सर्वगन्धश्च देवानां भविष्यति दृढप्रियः ॥२५॥
निर्भयः सर्वलोकोपु' भविष्यसि सुनिर्द्वन्द्वः। आश्रमं येदमत्यर्थं चित्रकूटेति विश्रुतम् ॥२६॥

शिवको चुनोगी, यही तुम्हारा स्वामी होगा। हे सुमुखी ! इसलिए तुम्हें दुःप्रिय जानकर मैं जा रहा हूँ, क्योंकि कपवान् को छोड़कर मला तुम कैसे कुरुष का वरण करोगी ? ॥१९-१७॥

ब्रह्मा ने कहा—तदुपरान्त शिव के प्रति अपने भाव और मन को प्रसन्न करने वाली उनकी वाणी को सोचती हुई उमा ने देवताओं के स्वामी शंकर से कहा—'आप अन्यथा न मानें। मैं आप ही का वरण करूँगी, इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं। अथवा हे विप्र ! हे महाभाग ! यदि आपको किसी प्रकार का संदेह होता है, तो यही पर मैं आपको मन से वरण किए लेती हूँ।' ॥१८-२०॥

ब्रह्मा ने कहा—उमा ने यही पर स्थित अशोक की मञ्जरी को हाथों से उठाकर शिव के कंधे पर रखकर कहा—'आप मेरे वृत्त (वरण किये गये) हो चुके।' तब भगवान् शिव उमा से बृत्त होकर उस अशोक वृक्ष से इस प्रकार बहने लगे मानो वाणी से उसे जीवित कर रहे हो ॥२१-२२॥

शिव बोले—तुम्हारा इस पवित्र मञ्जरी से जैसे मैं बृत्त हुआ हूँ वैसे ही तुम भी अन्न-अमर हो जाओगे ॥२३॥ तुम कामरूपी, कामरूप पुष्पवाले, काम देने वाले, मेरे प्रिय, सब आभूषण रूप पुष्पों से घनी, सब प्रकार के पुष्प-गन्धों से युक्त, सब अन्नो का मदाग करने वाले, अमृत के समान स्वादिष्ट, निसल गन्धों से परिपूर्ण तथा देवताओं के अत्यन्त प्रिय होगे ॥२४-२५॥ समस्त लोका में तुम निर्विघ्न तथा निर्भय रहोगे। चित्रकूट नाम से प्रसिद्ध इस

१ श. ०लंमात्रसि व०। २ क. ०या। देवीप्रोवा०। ३ क. ०द्विद्विपु। अ०। ४ ग. नान्यद्भुत व०।

५ क. ०वैरलक्ष०। ६ श. ०पुष्पकृताप। स०। ७ क. ०तपन ए०। ८ य. ०तत्वर ए०। ८ य. ०यु सर्वत्र भविष्य०।

यो हि यास्यति पुण्यार्थी^१ सोऽश्वमेधमवाप्स्यति । यस्तु तत्र मृतश्चापि ब्रह्मलोकं न गच्छति ॥२७॥
यश्चात्र नियमयुक्त प्राणान् सम्यक् परित्यजेत् । स देव्यास्तपसा युक्तो महागणपतिर्भवेत् ॥२८॥

ब्रह्मोवाच

'एवमुक्त्वा तदा देव आपृच्छय' हिमवत्सुताम् । अन्तर्दधे जगत्स्रष्टा सर्वभूतप^२ ईश्वरः ॥२९॥
सापि देवो गते तस्मिन् भगवत्पतितात्मनि । तत^३ एवोन्मुखो भूत्वा शिलार्था सम्बभूव ह ॥३०॥
उन्मुखो सा भवे तस्मिन् महेशे जगतां प्रभो । नितोव चन्द्ररहिता न^४ बभौ विमनास्तदा ॥३१॥
अयं शुश्राव शब्दञ्च बालस्यातंस्य शैलजा । सरस्युदकसम्पूर्णं समीपे चाश्रमस्य च ॥३२॥
स कृत्वा बालरूपन्तु देवदेव स्वयं शिवः । क्रीडाहेतो^५ सरोमध्ये ग्राहप्रस्तोऽभवत्तदा ॥३३॥
योगमाया समास्याय प्रपञ्चोद्भवकारणम् । तद्रूपं सरसो मध्ये कृत्स्नं समभाषत ॥३४॥

बाल उवाच

प्रातु मा कश्चिदित्याह ग्राहेण हृतचेतसम् । धिक्कष्टं बाल एवाहमप्राप्तार्थमनोरथ ॥३५॥
प्रयामि नियतं यवत्रे ग्राहस्यास्य दुरात्मन । शोचामि न स्वकं देहं ग्राहप्रस्तं सुदुःखितः ॥३६॥
यया शोचामि पितरं मातरञ्च तपस्विनीम्^६ । ग्राहगृहीतं मा भूत्वा प्राप्तं नियममस्तुको ॥३७॥

आश्रम पर जो कोई पुण्यामिलापी व्यक्ति आयेगा, उसे अश्वमेध यज्ञ का फल प्राप्त होगा ॥२६॥ जो यहाँ मरेगा वह भी ब्रह्मलोक को जाएगा । और जो यहाँ नियमपूर्वक प्राणत्याग करेगा, वह देवी की तपस्या से युक्त होकर महा-गणपति होगा ॥२७-२८॥

ब्रह्मा ने कहा—इसके बाद सब भूतो ने पालक, जगत्स्रष्टा, तथा ऐश्वर्य सम्पन्न शंकर उमा से बिदाई लेकर अन्तर्धान हो गये ॥२९॥ पावती भी सर्वप्रथम शिव के चले जाने पर उन्हीं का ध्यान करती हुई शिला-खड्ग पर बैठ गई ॥३०॥ उस समय उसी जगत्प्रभु महेश्वर शिव ने मन लगाये हुई दुःखी उमा बन्धना रहित रात्रि की तरह शोभाहीन थी ॥३१॥ कुछ समय बाद पार्वती ने आश्रम के समीप ही जल से परिपूर्ण सरोवर में बालक का आर्तनाद सुना ॥३२॥ देवताओं के भी देव स्वयं शिव ही बालक का रूप धारण करके क्रीडा के निमित्त शीघ्र सरोवर में ग्राह-प्रस्त हो गये थे ॥३३॥ योगमाया में स्थित होकर ससार की उत्पत्ति के कारणभूत शिव अपने रूप को इस प्रकार मध्य सरोवर में करके बोले ॥३४॥

बालक ने कहा—ग्राह के द्वारा नष्ट चेतना वाले मुझे कोई बचाये । हाथ कष्ट है । मैं बालक ही रहा, अपनी अमिलापा को भी पूरी नहीं कर सका ॥३५॥ इस दुरात्मा ग्राह के मुँह में मैं मर रहा हूँ । ग्राह के प्रसने से अत्यन्त दुःखी मुझे अपनी बेह की उत्तमी चिन्ता नहीं है जितनी कि पिता तथा तपस्विनी माता की है ॥३६॥ मैं ग्राह-गृहीत होकर मर गया—एसा सुनकर मेरा प्यार करने वाले तथा एक पुत्र वाले माता पिता निश्चय ही

१ ख यात्रार्थं । २ ग देवस्तः । ३ ख भूत्वा वृक्षराजमशोकं हि० । ४ क ऽच्छय गिरिजां द्रुतम् ।

५ क ऽतगणश्वः । ख ऽतमहेश्वः । ६ ख ऽत्यमलात्मः । ७ ख तद्वदं दुःखी मूत्वा सा समाया सविषा ह ।

८ ख सा । ९ क भद्रस्विनीम् ।

'प्रियपुत्रावेकपुत्री प्राणान् न्यूनं त्यजिष्यत'। अहो बत सुकष्टं वै योऽहं बालोऽकृताश्रम ॥
अन्तर्ग्रहिणं प्रस्तस्तु यास्यामि निधनं किल ॥३८॥

ब्रह्मोवाच

श्रुत्वा तु देवोत्तं नादं विप्रस्याऽऽर्त्तस्य शोभना। उत्थाय प्रस्थिता तत्र यत्र तिष्ठत्यसौ द्विज ॥३९॥
सापश्यदिन्दुवदना बालकं चारुहृषिणम्। ग्राहस्य मुखमापन्न वेपमानमवस्थितम् ॥४०॥
सोऽपि ग्राहवर, श्रीमान् दृष्ट्वा देवोमुपागतम्। त गृहीत्वा द्रुतं यातो मध्यं सरस एव हि ॥४१॥
स कृष्यमाणस्तेजस्वी नादमात्तं तदाकरोत्। अयाह देवो दुःखार्त्तां बालं दृष्ट्वा प्रहावृतम् ॥४२॥

पार्वत्युवाच

ग्राहराज महासत्त्व बालकं ह्येकपुत्रकम्। विमुञ्चेम महादंष्ट्रं क्षिप्रं भीमपराक्रम ॥४३॥

ग्राह उवाच

यो बेषि दिवसे पठेत् प्रथमं तमुपैति माम्। स आहारो मम पुरा विहितो लोकपूतंभि ॥४४॥
सोऽयं मम महाभागे पठेऽहनि गिरिन्द्रजे। ब्रह्मणा प्रेरितो नूनं नैनं मोक्षये बन्धञ्चन ॥४५॥

देव्युवाच

यन्मया हिमवच्छृङ्गे चरितं तप उत्तमम्। तेन बालमिममुञ्च ग्राहराज नमोऽस्तु ते ॥४६॥

प्राणी को त्याग देवे। अहो खेद तथा कष्ट है कि मैं अकृताश्रम बाहर (आश्रम धर्म को बिना प्राप्त किया हो) बीच घरोवर म ग्राह-अस्त हुए मर जाऊँगा ॥३७-३८॥

ब्रह्मा ने कहा—सुन्दरी उमा दुःखी बालक व उस आतनाद को सुनन ही उठकर उधर ही चल पड़ी, त्रिपर वह ब्राह्मण-बालक था ॥३९॥ चन्द्रमुखी उमा ने ग्राह के मुँह में पड़े हुए तथा बाँधत हुए गुरुपवान् बालक को देया ॥४०॥ देवी को देखते ही वह ग्राहराज बालक को सीबद्ध बीच सरोवर में ले जाने लगा तब तत्रस्वी बालक आनन्द करने लगा ॥४१॥ अनन्तर ग्राह-गृहीत बालक को देखकर दुःख-पीडित देवी बहून लगी ॥४२॥

पार्वती बोली—हे महापराक्रमी ग्राहराज! हे महादंष्ट्र! इस बालक को क्षीघ्र छाड़ दो। हे महासत्त्व शाली! यह अपने माँ-बाप का एक ही पुत्र है ॥४३॥

ग्राह ने कहा—हे देवि! छठे दिन पहले-यहल जो मुझे प्राप्त होता है वही मेरा आहार होता है—ऐसा विधान ने मेरे लिए पहले से विधान बना रखा है। हे महामागे! हे तिलिन्दिनी! नि मन्देह यह आज छठे दिन ब्रह्मा से प्रेरित भोजन मुझे मिला है। मैं इसे किसी (भी) अवस्था में नहीं छोड़ूँगा ॥४४-४५॥

देवी ने कहा—हे ग्राह! वे स्वामी! तुम्हें नमस्कार है। मैंने हिमाग्न्य का गिरावर पर जो कुछ भी उत्तम तपस्या की है उससे इस बालक को छोड़ दो ॥४६॥

१ क० वा तु सा नूनमप्यप्राणास्तपयि०। २ क० अन्ति। अ०। ३ श० ०६ बालस्याऽ०। ४ ल० निगु। ५ ल० दुर्गान्। ६ क० प्राप्ते। ७ क० ०ङ्गे बीनं वीज०।

ग्राह उवाच

मा व्यपस्तपसो देवि' भृशं बालं शुभानने । यद्व्रवीमि कुरु श्रेष्ठे तथा मोक्षमवाप्स्यति ॥४७॥

देव्युवाच

ग्राहाधिप वदस्वाशु यत् सतामविर्गहितम् । तत् कृतं नात्र सन्देहो यतो मे ब्राह्मणा प्रिया ॥४८॥

ग्राह उवाच

यत् कृतं च तपः किञ्चिद्भवत्यो स्वतपमुत्तमम् । तत् सर्वं मे प्रयच्छाऽऽशु ततो मोक्षमवाप्स्यति ॥४९॥

देव्युवाच

जन्मप्रभृति यत् पुण्यं महाप्राह कृतं मया । तत्ते सर्वं मया दत्तं बाल मुञ्च महाप्रह ॥५०॥

ब्रह्मोवाच

प्रजज्वाल ततो ग्राहस्तपसा तेन भूयित । आदित्य इव मध्याह्ने दुर्निरीक्ष्यस्तदाभवत् ॥५१॥

उवाच ध्रुवं दुष्टात्मा देवी लोकस्य धारिणीम् ॥५२॥

ग्राह उवाच

देवि किं कृत्यमेतत्ते सुनिश्चित्य महारते । तपसोऽप्यर्जनं दुःखं तस्य त्यागो न शक्यते ।

ग्राह ने कहा—हे बाले ! हे मुमुक्षु ! हे देवी ! व्रतितपस्या का व्यय मत करो ! हे श्रेष्ठे ! मैं जो कहता हूँ वह करो ! उसी से इसको मुक्ति मिलेगी ॥४७॥

देवी ने कहा—ग्राहराज ! शीघ्र बहो ! जो सज्जनो से अनिन्दित बात है उसे मैं अवश्य कहूँगी इसमें कोई सन्देह नहीं । क्योंकि ब्राह्मण मुझे प्रिय हैं ॥४८॥

ग्राह ने कहा—तुमने जो कुछ बोझा बिना उतम तप किया है वह सब मुझे शीघ्र दे दो ताकि इसे मोक्ष मिल जाय ॥४९॥

देवी ने कहा—हे महाप्राह ! जन्म से लेकर जो कुछ भी मैंने पुण्य किया है वह सब तुम्हें समर्पित है बालक को मुक्त कर दो ॥५०॥

ब्रह्मा ने कहा—ननुपरान्त वद ग्राह उस तपस्या से भूयित हो मध्याह्नकालीन सूर्य के समान देदीप्यमान तथा दुर्निरीक्ष्य हो गया । प्रसन्नचित्त ग्राह लोक धारिणी देवी से कहने लगा ॥५१॥

ग्राह बोला—हे महाव्रतधारिणी देवी ! तुमने ऐसा क्यों किया ? तपस्या का अजन बहुत दुःख से होता है । उसका त्याग ठीक नहीं है । हे सुन्दर कटि वाली ! तुम इस बालक के साथ साथ अपना तप भी ले लो ! तुम्हारी

गृहाण तप एव त्वं बाल चेमं सुमध्यमे^१। तुष्टोऽस्मि ते विप्रभवत्या वर तस्माद्ब्रूदामि त ॥
सा त्वेवमुक्ता प्राहेण^२ उवाचेद महाव्रता

॥५३॥

देव्युवाच

देहेनापि मया ग्राह रक्ष्यो विप्र प्रयत्नत । तप पुनर्मया प्राप्त न प्राप्यो ब्राह्मण पुन ॥५४॥
सुनिश्चित्य महाप्राह कृत बालस्य भोक्षणम् । न विप्रेभ्यस्तप श्रेष्ठ श्रेष्ठा मे ब्राह्मणा मता ॥५५॥
दत्त्वा चाह न गृह णामि ग्राहेन्द्र विहित हि ते । न हि कश्चिन्नरो ग्राह प्रदत्त पुनराहरेत् ॥५६॥
दत्तमेतन्मया तुभ्य नाऽऽददानि हि तत् पुन । स्वयमेव रमतामेतदबालदत्ताय विमुच्यताम् ॥५७॥

ब्रह्मोवाच

तपोव्रतता प्रशस्याथ मुक्त्वा बाल नमस्य च । देवीभादित्यावभासस्तत्रैवान्तरधीयत ॥५८॥
बालोऽपि सरसरतीरे मुक्तो ग्राहेण वै तदा । स्वप्नलब्ध इवार्थोपस्तत्रैवान्तरधीयत ॥५९॥
तपसोऽपचय मत्वा देवी हिमगिरीन्द्रजा । भूय एव तप कर्तुंमारेभे नियमस्थिता ॥६०॥
कर्तुंकामा तपो भूयो ज्ञात्वा ता शङ्कर स्वयम् । प्रोवाच वचन विप्रा^३ मा कृथास्तप इत्युत ॥६१॥
महामेतत्तपो देवी स्वया दत्त महाव्रते । तस्मै नैवाक्षय तुभ्य भविष्यति सहस्रधा ॥६२॥
इति लब्ध्वा वर देवी तपसोऽक्षयमुत्तमम् । स्वयंवरमुदीक्षन्ती तस्यौ प्रीता मुदा युता ॥६३॥

ब्राह्मण मस्ति से मैं सन्तुष्ट हूँ । अतः वर देता हूँ । ग्राह के इस प्रकार कहने पर उस महाव्रतधारिणी देवी ने यह कहा ॥५९-५३॥

देवी बोली—हे ग्राह^१ ! मुझ लो शरीर देकर भी ब्राह्मण की पत्न्यवक रक्षा करनी चाहिये । हे महाग्राह^१ ! तप ता मैं पुन प्राप्त कर सकता हूँ ब्राह्मण नहीं—एसा सोच कर मैंने बालक को मुक्त कराया है ॥५४॥ तपस्या ब्राह्मणो स श्रेष्ठ नहीं है ब्राह्मण ही श्रेष्ठ है—यह मेरा मत है । हे ग्राहेन्द्र^२ ! मैं अपना तप देकर फिर उसे ग्रहण नहीं करूंगी । क्योंकि कोई भी मनुष्य दत्त वस्तु का पुनर्ग्रहण नहीं करता है । मैंने मुझ यह दे दिया अब आपस नहीं ले सकती । इस तपस्या का उपभोग तुम्हीं करो और बालक को छोड़ दो ॥५५-५७॥

ब्रह्मा ने कहा—इसके बाद मूय ने समान कान्तिमान वह ग्राह बालक को छोड़ देवी की प्रार्था करके उसे नमस्कार करवा वही पर अन्तर्धान हो गया ॥५८॥ सरोवर के तीर में ग्राह से मुक्त बालक मा स्वप्न में प्राप्त पनराग का तरह उसा जगह अन्तर्हित हो गया ॥५९॥ गिरिनदिना उभा ने तपस्या का हूँ मैं जानकर पुन नियम में स्थित हो तप करना आरम्भ कर दिया ॥६०॥ पुन तप करने का इच्छुक उभा का देखकर स्वयं शंकर ने उससे कहा—तप मत करो ॥६१॥ हे महाव्रते । हे देवि ! तुमने मझ अपना तप निया है । इसलिए तुम्हारा तप असय हय सटनारगुना अधिक हो जायगा ॥६२॥ अक्षय तथा उत्तम तप रूप वर्तमान प्राप्त कर पावना आनन्ति हो

इव पठेद्यो हि नर सदैव, बालानुभावाचरण हि शम्भो ।

स देहभेद^१ समवाप्य पूतो^२ भवेद्गणेशस्तु कुमारतुल्य

॥६४॥

इति श्रीब्राह्मे महापुराणे स्वयम्भु-ऋषि सवादे पाद्मवंत्या सत्त्वदर्शन नाम पञ्चत्रिंशोऽध्याय ॥३५॥

पद्मत्रिशोऽध्यायः

पार्वतीस्वयवर-वर्णनम्

ब्रह्मोवाच

विस्तृते हिमवत्पृष्ठे विमानशतसङ्कुले । अभवत् स तु कालेन शैलपुण्या स्वयवर ॥१॥
अथ पर्वतराजोऽसौ हिमवान्^३ ध्यानकोविद । दुहितुर्देवदेवेन ज्ञात्वा तदभिमन्त्रितम् ॥२॥
जानन्नपि महाशैल समपारक्षणेत्सया । स्वयवर ततो देव्या सत्त्वंलोकैष्वघोषयत् ॥३॥
देवदानवसिद्धानां सत्त्वंलोकनिवासिनाम् । युगुप्सात् परमेशानि समक्ष यदि मे मे सुता ॥४॥
तदेव सुकृत इलाध्य ममाम्युदयसम्मतम् । इति सञ्छिद्य शैलेन्द्र कृत्वा हवि महेश्वरम् ॥५॥

स्वयवर की प्रताशा करती हुई रहने लगी ॥६३॥ जो मनुष्य पाकर के इस बालमाबानुकूल आचरण को सदा पढ़ना वह पवित्र हाथर देह भेद प्राप्त कर (अर्थात् गरीर-स्यागकर) गणस तथा कार्तिकेय के समान हो जायगा ॥६४॥

आ ब्रह्ममहापुराण म ब्रह्मा और ऋषि के सवाद प्रकरण म पावती के सत्त्वदर्शन नामक पतीतवा अध्याय समाप्त ॥३५॥

अध्याय ३६

पार्वती स्वयवर का वर्णन

ब्रह्मा ने कहा—सैन्धवों विमानों से व्याप्त विस्तृत हिमालय के पष्ठ पर समय पाकर गिरि-पुत्र वा स्वयवर हुआ ॥१॥ ध्यानशाल पवतराज हिमालय ने शिव के द्वारा अपन कन्या वा अभिमान (स्वीकार) जानकर भा समय निर्धारण (शिष्टाचार) करने क इच्छा से देवा का स्वयवर सब लोकों में घोषित कर दिया ॥२३॥ सत्त्वलोकनिवासी देव गानव सिद्धों क समक्ष यदि मरा कन्या शिव का वरण कर लेगा तभी मेरा इलाक्षणीय पुण्योदय होगा—एसा सोचकर शैलेन्द्र ने अपने हृदय म महेश्वर वा ध्यान कर देवी के स्वयवर के लिये ब्रह्मलोक तक के देवों को रलों

आग्रहकेपु देवेषु देव्या शैलेन्द्रसत्तम । कृत्वा रत्नाकुल देश स्वयवरमचीकृतम् ॥६॥	
अयं वमाधोपितमात्र एव, स्वयवरे तत्र नगेद्रुप्या	।
देवादय सर्वजगन्निवासा, समापयुस्तत्र गृहीतवेशा	॥७॥
प्रफुल्लपद्मासनसन्निविष्ट, सिद्धेर्बृतो योगिभिरप्रमेयं	।
विज्ञापितस्तेन महोष्मराज्ञाऽऽगतस्तदाऽह जिह्वैरपेत	॥८॥
अक्ष्णा सहस्र सुरराट स बिम्बद दिव्याङ्गहारस्रगुदाररूप	।
ऐरावत सर्व्वजजेन्द्रमुरय, स्वामदासारकृतप्रवाहम्	॥९॥
आरुह्य सर्व्वामिरराट् स वज्र, बिम्बात् समापात् पुरत सुराणाम्	।
तेज प्रभावाधिकतुल्यरूपी, प्रोद्भासयन् सच्चिदिशो विवस्वान्	॥१०॥
हैम बिमान स वल्ग्वपताकभाट्ट आगास्वरित जवेन	।
मणिप्रदीप्तोज्ज्वलपुण्ड्रलश्च यद्गर्कतेज प्रतिमे विमाने	॥११॥
समन्यगात् कश्यपसूनुरेक, आदित्यमध्याद्भगनामधारी	।
पीनाङ्गपट्टि सुकृताङ्गहारतेजोबलाज्ञासदृशप्रभाव	॥१२॥
दण्ड समागृह्य कृतान्त आगादाकृह्य भीम महिष जवेन	।
महामहीप्रोच्छ्रयपीनयात्र स्वर्णादिरत्नाञ्जितचारुवेश	॥१३॥

स मुमज्जिन दिया ॥५॥ पावनी व स्वयवर का धारणा हान ही मयूष चणू व निवामा देव आग्नि गण मुन्दर वग बगकर वही पयार ॥३॥ पहलू दिवमिन बमगो व आसन पर उपविष्ट अग्रमय बागिया तथा सिद्धा स जावन मनाजा मुमुन हाकर भर वणी पट्टवन के मुकुना पवनराज को मिली ॥८॥ तत्पनर महम्मनराग निज अगा व हार तथा पुण्यमात्र धारण विरहू उगार रूप वाल मजरा म मयूष तथा बहून हुए म व मूमलधार वष्टि स पाटा बनात हुए एरावन नामक हाथा पर आम्ब और वज्र को धारण किए हुए म देवनाजा के अग्रगामा हाकर वणी आय ॥९॥ अनन्तर तज व प्रभाव ने अधिक मन्दर और छत्र-मनाका से यक्त सुवर्ण व विमान पर स्थित मूय मज आग्नि को प्रकाशित करने हुए वग स गीघ्र वही आय। अग्नि तथा मूय व तज व समान विमान पर आम्ब और प्रणीत मणि व उर्व्वर पुण्ड्र का धारण किए हुए एक वग नामक आग्नि जो वयप के पुत्र कहलान है आग्नि क मयूष स निकल कर वही आये ॥१०॥ मयानक मग्नि पर बइकर अगा को हार आग्नि से मुमज्जिन कर नेत्र बल और आभा के समान प्रभाव वाल तथा स्वयं से वाले यमराज दणू को धारण किए हुए वही पहुँचे ॥११॥ महागवन व समान उच्च तथा पट्ट गरीर वाले सुवर्ण आग्नि रत्न मजग्नि चारू वग वाले और निमिल चणू व पाण्ड वायु मी विमान पर चक्कर आय ॥१२॥ अधिक तजवान तज म जात प्राप्त मर दव मशगा को

समोरणः सर्वजगद्विभर्ता, विमानमारुह्य समभ्यगाद्वि ।	
संतापयन् सर्वसुरासुरेशांस्तेजोधिकस्तेजसि सन्निविष्टः ॥१४॥	॥१४॥
वह्निः समभ्येत्य सुरेन्द्रमध्ये, ज्वलन् प्रतप्त्यो वरवेशधारी ।	।
नानामणिप्रज्वलिताङ्गयष्टिजगद्वरं दिव्यविमानमाग्रम् ॥१५॥	॥१५॥
आरुह्य सर्वद्रविणाधिपेश, स राजराजस्त्वरितोऽभ्यगाच्च ।	।
आप्यापयन् सर्वसुरासुरेशान्, कान्त्या च वेशेन च चारुरूपः ॥१६॥	॥१६॥
ज्वलन्महारत्नविचित्ररूपं, विमानमारुह्य शशी समायात् ।	।
श्यामाङ्गयष्टिः सुविचित्रवेशः, सध्वीङ्ग आबद्धसुगन्धिमात्यः ॥१७॥	॥१७॥
साक्ष्यं समारुह्य महोद्यकल्पं, गदाधरोऽसौ स्वरितः समेतः ।	।
अयाश्चिनो घापि भिषग्वरो द्वावेकं विमानं स्वरयाधिह्य ॥१८॥	॥१८॥
मनोहरो प्रज्वलचारुवेशो, आजगमुद्ववरो सुवीरो ।	।
सहस्रनागः स्फुरदग्निवर्णं, बिभ्रत्तदानी ज्वलनार्कतेजाः ॥१९॥	॥१९॥
साङ्गं स नागरपरमं हस्तमा, विमानमारुह्य समभ्यगाच्च ।	।
दितेः सुतानाञ्च महासुराणां, वत्स्यर्कशक्रानिलतुल्यभासाम् ॥२०॥	॥२०॥
घरानुरूपं प्रविधाय वेशं, वृन्दं समायात् पुरतः सुराणाम् ।	।
गन्धर्वराजः स च चारुरूपो, दिव्याङ्गदो दिव्यविमानचारी ॥२१॥	॥२१॥

संतापित करने-वाले और सुन्दर वेश धारण करने वाले जलते हुए अग्नि भी देवताओं के मध्य मन्थित हुए ॥१४॥ अनेक भगिमा के सदृश जालिमान् शरीर वाले तथा सब धनी के स्वामी कुबेर समार म श्रेष्ठ दिव्य विमान पर आरुह्य होकर सीघ्रता से आय ॥१५॥ मनोहर रूप वाले चन्द्रमा महारत्ना से विभिन रूप वाले विमान पर चढ़कर अपनी शक्ति तथा वेग से सब देव अगुरा को गुष्ट करते हुए आय ॥१६॥ श्याम शरीर वाले विचित्र वेशवाले और सपूर्ण अगा म सुगन्धित भाग्या को धारण करने वाले विष्णु पर्वत सदृश गरुड पर सवार होकर वेग से आये ॥१७॥ अनन्तर वेष्ट-श्रेष्ठ, देवश्रेष्ठ सुन्दरवीर मनोहर तथा चारुवेग वाले दोना अश्विनो कुमार भी एव ही विमान पर चढ़कर सीघ्रता से आय ॥१८॥ हजारों नागा को धारण करने वाले अग्नि के समान जालिमान् और सूर्य के सदृश तेजस्वी महारत्ना धारक भी बहुत से नागा के साथ विमान पर आरुह्य होकर उम समय वहाँ पधारे ॥१९॥ पर्य, इन्द्र और वायु के तुल्य जालिमान् दिति-युध राक्षसा ना समूह भी वर के धाय वेग बना कर देव-हले उपस्थित हुए ॥२०॥ इन्द्र की आज्ञा से सुन्दर रूप वाले गन्धर्वराज विद्वावमु भी दिव्य चक्र गन्धर्वममूह और अप्सराया न साथ वहाँ आये ॥२१॥ और भी गन्धर्व, यक्ष, तर्प,

गन्धर्वसङ्घः सहितोऽप्सरोभिः, शक्राजया तत्र समाजगाम ।
 अन्ये च देवास्त्रिदिवास्तदानीं, पूयक् पूयक् चाल्पगृहीतवेशा ॥२२॥
 आजम्पुराहृष्टा विमानपुष्टं, गन्धर्वयक्षोरगकिन्नराश्च ।
 शचीपतिस्तत्र सुरेन्द्रमध्ये, रराज राजाऽधिकलक्ष्यमूर्ति ॥२३॥
 आज्ञाबलैर्देवैर्युक्तप्रमोदः, स्वयवरं तं समलञ्चकार ।
 हेतुस्त्रिलोकस्य जगत्प्रसूतेर्मता च तेषां स सुरासुराणाम् ॥२४॥
 पत्नी च शम्भोः पुरुषस्य धीमतो, गीता पुराणे प्रकृतिः परा या ।
 दक्षस्य कोपाद्विमवद्गृहं सा, कर्षार्यमायातिप्रदिवीकर्सा हि ॥२५॥
 'विमानपुष्टे' भणिहेमजुष्टे, स्थिता चलञ्चामरवीजिताङ्गी ।
 'सर्वतृपुण्या' सुसुगन्धमाला, प्रगृह्य देवी प्रसन्नं प्रतस्थे ॥२६॥

ब्रह्मोवाच

माला प्रगृह्य देव्यान्तु स्थिताया देवतंसदि । शक्रार्चरागतं देवं स्वयवर उपागते ॥२७॥
 देव्या जितासया शम्भुर्भूत्वा पञ्चशिक्ष शिशु । उत्सङ्गतलसंसुप्तो यभूव सहसा विभु ॥२८॥
 ततो वदसं तं देवी शिशु पञ्चशिक्ष स्थितम् । ज्ञात्वा तं समवधानज्जगृहे प्रीतिसयुता ॥२९॥
 अथ सा शुद्धसङ्कल्पा काङ्क्षितं प्राप्य सत्पतिम् । निवृत्ता च तदा तस्यौ कृत्वा सा हवि त विभुम् ३०॥
 ततो ब्रुवा शिशु देवा देव्या उत्सङ्गवर्तिनम् । कोऽयमनेति संमन्य च नुशुभं शपोहिता ॥३१॥

किन्नर आदि देवता पूयक्-पूयक् सुन्दर वेश बनाकर विमान पर आरुढ़ होकर स्वर्ग से वहाँ आये ॥२२॥
 राजाओं से अधिक सुन्दर और बाजा, बल तथा ऐश्वर्य से प्रमोद करने वाले इन्द्र देवताओं के मध्य में
 शुभामित होते हुए स्वयवर समा की अलङ्कृत करने लगे ॥२३॥ सप्ताह की उत्पत्ति का कारण सुरासुरों की
 भाता, भीमान् पुरुष शक्र की पत्नी पुराण में परा प्रकृति नाम से प्रख्यात दक्ष के शाप से देवताओं के वायु का
 लिए हिमालय के गृह में उत्पन्न, मणि तथा मुक्ता जड़ित विमान पर स्थित एवम् छत्र धारण करने की वीजित अगा
 वाली उमा सब क्रतुओं के पुण्या की सुगन्धित माला को ग्रहण कर हठान् प्रस्थित हुई ॥२४ २५॥

ब्रह्मा ने कहा—जब स्वयवर इन्द्र आदि देवता उपस्थित हुए और देवसमा में पार्वती भी मान लेकर
 उन्मथित हो गई तब देवी के मनोभाव की समझने के लिए भगवान् शक्र एकाएक पञ्चदिवापारी गोद में सोया हुआ-सा
 बालक, वन गये ॥२७ २८॥ देवी ने उस बालक को देखकर ध्यान योग से पहचानकर प्रीतिपूर्वक पकड़ लिया ॥२९॥
 सुन्दर सत्य वाली उमा अमिलपित सत्यनि की प्राप्ति कर उस प्रभु बालक की हृदय से लगाकर निवृत्त हो गई ॥३०॥
 देवगण देवी के श्रोत्र-देश में स्थित बालक को देखकर मोहित हो गये और 'यह कौन यहाँ इस प्रकार

१ ग ० मोहा वृषाधिक यत्नमुमा च० । २ क ० नवर्ग म० । ३ क ० मपुष्ट स्थि० । ४ क ० सुगन्धपुण्या ।
 ५ स ० अनर्प्यपुण्या । ४ स ० वरगन्धमाला । ६ क ० स्थे । मा० । ७ क ० भू । अवस्मादेव त । ८ ग ० ज्वहृपे
 प्री० । ९ क ० ता । तपस शु० । १० क ० सत्पलम् । ११ ग ० गमादिना ।

वज्रमाहारयत्तस्य बाहुमुत्क्षिप्य वृत्रहा। स बाहुवर्धितस्तस्य तथैव समतिष्ठत ॥३२॥
स्तम्भितः शिशुरूपेण देवदेवेन शम्भुना। वज्रं क्षेप्य न शशाक वृत्रहा चलितुं न च ॥३३॥
भगो नाम ततो देव आदित्यः काश्यपो बली। उत्क्षिप्य (चिक्षेप) आयुधं दीप्तं छेतुमिच्छन्
विमोहित ॥३४॥

तस्यापि भगवान् बाहुं तथैवास्तम्भयत्तदा। बलं तेजश्च योगश्च तथैवास्तम्भयद्विभुः ॥३५॥
शिरः प्रकम्पयन् विष्णुः शङ्करं समवेक्षत। अथ तेषु स्थितध्वेवं मन्युमतसु सुरेषु च ॥३६॥
अहं परमसंघिनो ध्यानमास्थाय सादरम्। बुद्धवान् देवदेवेशमुतोत्सङ्गे समास्थितम् ॥३७॥
ज्ञात्वाहं परमेशानं शीघ्रमुत्थाय सादरम्। ववन्दे चरणं शम्भोः स्तुतवास्तमहं द्विजाः ॥३८॥
पुराणैः सामसङ्गीतैः पुण्याख्यैर्गृह्यनामभिः। अजरस्त्वमजरो देवः त्रष्टा विभुः परापरम् ॥३९॥
प्रधानं पुरषो यस्तयं ब्रह्म ध्येयं तदक्षरम्^१। अमृतं परमात्मा च ईश्वरः कारणं महत् ॥४०॥
ब्रह्मसूक् प्रकृतेः स्रष्टा सत्यैकप्रकृतेः परः। इयञ्च प्रकृतिर्देवी सदा ते सृष्टिकारणम् ॥४१॥
पत्नीरूपं समास्थाय जगत्कारणमागता। नमस्तुभ्यं महादेव देव्या वं सहिताय च ॥४२॥
प्रसादात्तव देवेश नियोगाच्च मया प्रजाः। देवाद्यास्तु इमा सृष्टा महास्त्वद्योगमायया ॥४३॥

परस्पर धारण करन लगे ॥३१॥ इन्द्र ने तो वज्र उठाकर उस पर फेंकना चाहा, पर उनकी भुजा जैसे उठी थी, वैसे हक गई ॥३२॥ बालक रूपवारी देव देव शंकर ने उनका स्तम्भन कर दिया। इन्द्र ने तो वज्र को फेंक सके म चल सके ॥३३॥ तब कश्यप-पुत्र मग नामक बली आदित्य विना सावे-समझे उस बालक को धारण के लिए प्रतीप्त अस्त्र फेंकन लगे, पर उनकी भी भुजा का मगवान् गिब ने स्तम्भित कर दिया। गिबजी ने बल, तेज और योग का भी स्तम्भन कर दिया ॥३४-३५॥ शिर को कंपाते हुए विष्णु शंकर को देखन लग। सब देवा के इस प्रकार क्रुपित हो जान पर मैं बहुत चिन्तित हुआ और ध्यानस्थित होकर देवन के बाद उमा की गोद में समम्भान स्थित देवा के स्वामी शंकर को समस्त थाया ॥३६-३७॥ द्विजगण । मैं महादेव जानकर शीघ्र उठा और स्तुतिपूर्वक यामु की चरण-वन्दना कर पुराण सामवेदाङ्ग संगीत और उनके पवित्र गूण सामा से उनकी यह स्तुति करने लगा ॥३८॥ 'आप अजर अमर देव, सृष्टिकर्ता व्यापक, परात्पर, प्रकृति, पुरुष, ब्रह्म, ध्यान करने योग्य, अविनाशी, अमृत, परमात्मा ईश्वर वारण महत्तत्त्व ब्रह्म-स्रष्टा गृहीत-स्रष्टा, प्रकृति से परे और सर्व भर्ता हैं ॥३९-४०॥ ये देवी आपकी प्रकृति हैं जो सदा सृष्टि कारण तथा जगत्कारण होती हुई आपकी पत्नी के रूप में आई हैं ॥४१॥ हे महादेव । देवी महिनि आपकी नमस्कार है। हे देवज । आपकी हृषा तथा आज्ञा से मैंने योगमाया के बन्ध से देव आदि मूढ़ प्रजा भी मुक्ति की है ॥४२-४३॥ अब आप इनके उपर अनुग्रह करें ताकि ये पत्न की तरह हो जाय ।'

कुरु प्रसादमेतेषा ययापूर्वं भवत्वमे। तत एवमह विप्रा विज्ञाप्य परमेश्वरम् ॥४४॥
 स्तम्भितान सचदेवास्तानिद चाह तदोक्तवान। मूढाश्च देवता सर्वानेन बुध्यत गङ्गारम् ॥४५॥
 गच्छध्व शरण शीघ्रमेनेमेव महेश्वरम्। सार्धं मयैव देवश परमात्मानमध्ययम् ॥४६॥
 ततस्त स्तम्भिता सर्व्वे तयैव त्रिदिवीकृत। प्रणमुनसा सर्व्व भावशुद्धेन चतसा ॥४७॥
 अथ तपा प्रसन्नोऽभददेवदेवो महेश्वर। ययापूर्वं चकाराऽऽनु देवताना तनूस्तदा ॥४८॥
 तत एव प्रवत्ते तु सर्व्वदेवनिवारणे। वपुश्चकार दवेष्टश्चक्ष परममद्भुतम् ॥४९॥
 तजसा तस्य ते ध्वस्ताश्चक्षु सर्व्वे यमोलयन्। तेभ्य सपरम चक्षु स्ववपुर्दृष्टिशिवितम् ॥५०॥
 प्रादात् परमदेवेशमपश्यते तदा विभुम्। ते दष्ट्वा परमेगान तृतीयक्षणधारिणम् ॥५१॥
 गङ्गाया मेनिरे देवा सर्व्व एव सूरश्वरा। तस्य दबो तदा हृष्टा समक्ष त्रिदिवीकसाम् ॥५२॥
 पादयो स्थापयामास खड्गालामनितद्युति। साधु साध्विति ते होवु सर्व्वे दद्या पुनर्विभुम् ॥५३॥
 सह देव्या नमश्चक्रु शिरोभिभूतलाथिते। अयास्मिन्नतरे विप्रास्तमह दैवतं सह ॥५४॥
 हिमवत महानीलमुक्तवाश्च महाद्युतिम्। इलाध्व पूज्यश्च चक्षश्च सर्व्वेषा इव महानति ॥५५॥
 गङ्गेण सह सम्बन्धो यस्य सऽप्युदयो महान्। क्रियता चाहर्द्धाह क्रिमर्थं स्थीयते परम् ॥
 तत प्रणम्य हिमवास्तदा भा प्रत्यभाषत ॥५६॥

विप्रम् । इस प्रकार गिव की बदना कर चवन के बाग में स्तम्भित देवगणा से कहा— ४४॥ तुम सब देवता मज हो। मगवान् गिव को नहीं जानत हो अब इन्हीं परमात्मा अध्यय तथा देवग महेश्वर की शरण में मरे साथ गान्न चगे यह सुन कर समस्त स्तम्भित देवगणा भाव गुद वित्त से भन हा मन गकर को प्रणाम करने लग। ४५ ४७। तब उन पर प्रसन्न हाकर देव-देव मनेवर न गीघ्र हो उह पूजन कर दिया। इन प्रकार सब देवा का दुख निवारण करने देवग न अपना तीन आला बाग अमृत गरीर बना दिया ४८ ४९। उनके तज से देवगणा मष्ट हुने लगे। सब ने आन भू ग। तब गिव ने देवा को अयन्त दष्टि गविन धाडे नय नित जितसे दे शकर का देवने लगे ॥५०॥ तनीय नत्रपारी परमेश्वर का देखकर इन् आनि समस्त देव उह महान्व मानने लगे ॥५१॥ देवतात्रा के सम्पन्न अयन्त बान्तिमनी पावता ने ह्य से गुणमाग गिव न करणा पर समपित कर दा ॥५२॥ फिर देवगणा ने साथ साथ कन्कर पावनी सहित गकर को पछी पर माया न्य कर प्रणाम दिया ५३॥ विप्रवन्त नस उपरान्त देवतात्रा न साथ म मन्त्रबान्तिमान पवनराज हिमालय ने कहने लगा— ५४। आप इलाधनय सबने पूज्य बन्तय तथा महान हैं। आपन साथ जिसका सम्पन्न होगा उसका महान सम्पन्न कहना चाहिये। अब आप पवित्र विवाह मरकार सम्पन्न कर दर हो रही है। तब हिमालय ने म्य प्रणाम कर कहा ॥५५ ५६।

हिमवानुवाच

त्वमेव कारणं देव यस्य सर्वोदये मम । प्रसादः सहस्रोत्पन्नो हेतुश्चापि त्वमेव हि ॥
उद्वाहस्तु यदा यादृक् तद्वि (क्तं वि) घटस्य पितामह ॥५७॥

ब्रह्मोवाच

तत एवं यवः श्रुत्वा गिरिराजस्य भो द्विजाः उद्वाहः क्रियतां देव इत्यहं चोक्तवान् विभुम् ॥५८॥
मामाह शङ्करो देवो यथेष्टमिति लोकयः । तत्क्षणाच्च ततो विप्रा अस्माभिर्निर्मितं पुरम् ॥५९॥
उद्वाहार्थं महेशस्य नानारत्नोपशोभितम् । रत्नानि मणयश्चित्रा हेममौक्तिकमेव च ॥६०॥
मूर्त्तिमन्त उपागम्य अलञ्चक्रुः पुरोत्तमम् । चित्रा मारुती भूमिः सुवर्णस्तम्भशोभिता ॥६१॥
भास्वत्स्फटिकमितिश्च मुक्ताहारप्रलम्बिता । तस्मिन् द्वारि पुरे रम्य उद्वाहार्थं विनिर्मिता ॥६२॥
शुशुभे देवदेवस्य महेशस्य महात्मनः । सोमादित्यौ सप्त तत्र स्थापयन्तौ महामणौ ॥६३॥
सौरभेयं मनोरम्यं गन्धमादाय माततः । प्रववौ सुखसंस्पर्शो भवभक्तिं प्रदर्शयन् ॥६४॥
समुद्रास्तत्र चत्वारः शक्राद्याश्च सुरोत्तमाः । देवतद्यो महानद्यः सिद्धा मुनय एव च ॥६५॥
गन्धर्व्याप्सरसः सद्यै नागा यक्षाः सराक्षसाः । औदकाः खेचराश्चान्ये किन्नरा देवचारणाः ॥६६॥

हिमालय ने कहा—हे देव । हम सब ने अमृत्युय मे आप ही कारण हैं । अबस्मात् जो हम लोगो को प्रसन्नता उत्पन्न हो गई, इसम भी आप ही कारण है । हे पितामह । जब और जिस तरह विवाह सम्पन्न हो, उसकी व्यवस्था आप ही करे ॥५७॥

यह्ना ने कहा—द्विजगण । तत्र पर्वतराज ने वचन सुनकर मैने परमेश्वर से कहा—‘देव । विवाह कीजिये’ ॥५८॥ शैव-गालव शंकर ने भी मुझसे कहा—‘जैमी आप सबकी इच्छा ।’ विप्रबुद्ध । तत्क्षण ही हमने गिव व विवाह के निमित्त अनेक प्रकार के रत्नो से सुशोभित नगरी का निर्माण किया ॥५९॥ चित्र विचित्र रत्न मणि, मोती और सुवर्ण माना शरीरधारण कर उस श्रेष्ठ नगरी को अलङ्कृत कर रहे थे । यहाँ की मृत्ति भरवत् मणिमय थी, जहाँ सुवर्ण के स्तम्भ सुशोभित हो रहे थे ॥६०-६१॥ देवो ने देव भगवान् गिव के विवाह के लिए उम रमणीय नगर के द्वार पर निमित्त चमकते हुए स्फटिकों की दीवार सुशोभित हो रही थी, जहाँ आदित्यो के हार लटक रहे थे ॥६२॥ यहाँ महामणि रूप सूर्य-चन्द्रमा समान रूप से प्रकाश फैला रहे थे । गिव भक्ति की प्रकट करते हुए वायु, त्रिनारा रागा गुणदायक या सुगन्धित तथा मनारम गन्ध मे सुगन्ध होकर बढ़ रहे थे ॥६३-६४॥ चारों समुद्र, इन्द्र आदि देवता, देवतद्विना, महानदियाँ सिद्ध मुनि, गन्धर्व, अप्सरा नाय, यक्ष, रागाय, जलवर, आनागवर, किन्नर, देवचारण, मुमुक्षु नागद हाहा, हूह, और नाम माने जाते (पपायाय) रमणीय बाघों वः शेर

तुम्हत्तरिदो हाहाहूहूश्चैव तु सामयोः । रम्याण्यादाय वाद्यानि तत्राऽऽर्जमुस्तदा' पुरम् ॥६७॥
 ऋषयस्तु कथास्तत्र वेदगीतास्तपोधनाः । पुण्यान् वैवाहिकान्मन्त्राञ्जेषुः संहृष्टमानसाः ॥६८॥
 जगतो मातरः सर्व्वा देवकन्याश्च वृत्स्नशः । गायन्ति हृषिताः सर्व्वा उद्वाहे परमेष्ठिनः ॥६९॥
 ऋतवः पट् समं तत्र नानागन्धसुखावहाः । 'उद्वाहः शङ्करस्येति' मूर्तिमन्त उपस्थिताः ॥७०॥
 'नोलजीमूतसङ्काशेनन्ध्वनिप्रहृषिभिः । केकायमानैः शिखिभिन्त्यमानैश्च सर्वैः ॥७१॥
 विलोचपिङ्ग, स्पष्टविद्युत्लेखाविहासिता' । 'कुमुदपीडशुबलाभिवंलाकाभिश्च' शोभिता ॥७२॥
 प्रत्यप्रसञ्जातशिलोन्ध्रकन्दलीलताद्रुमाद्युदगतपल्लवा शुभा ॥
 शशाम्बुधाराप्रणयप्रबोधितमंहालसंभंकगणैश्च नादिता ॥७३॥
 प्रियेष्वा मानोद्धतमानसतना, मनस्विनीनामपि कामिनीनाम् ॥
 मयूरकंकाभिरुतैः क्षणेन, मनोहरैर्मानविभङ्गहेतुभिः ॥७४॥
 'तया विवर्णोऽज्ज्वलचारुमूर्तिना, शशाङ्कुलेखाकुटिलेन सर्वतः ॥
 पयोदसङ्घातसमोपवर्तिना, महेन्द्रचापेन भृशं विराजिता ॥७५॥
 'विचित्रपुष्पाम्बुभवं सुगन्धिभिर्घनान्बुसम्पर्कतया सुशीतलैः ॥
 विकम्पयन्ती पवनमनोहरैः, सुराङ्गनानामलकावलीः शुभाः ॥७६॥

वहाँ उपस्थित हुए ॥६५-६७॥ तपोधन ऋषिगण वेदविहित कथा और विवाह-सद्वर्षी पवित्र मन्त्रों का जो हृष पूर्वक करने लगे ॥६८॥ निजिल जगन्माताएँ तथा देवकन्याएँ शिव के विवाह में हृष से गान करने लगी ॥६९॥ नाना प्रकार की गन्ध तथा सुख को देने वाली छड़ी ऋतुएँ समान रूप से शंकर के विवाह में शरीर धारण कर उपस्थित हुई ॥७०॥ ((वर्षा ऋतु के जाने पर) नील मेघ के समान कान्ति वाले और मन-ध्वनि से हृषित होने वाले मयूर शब्द करते हुए नाचने लगे ॥७१॥) वह ऋतु चञ्चल तथा पिपलवर्ण वाली विजुत-पत्तियों से कामाक्षित एवम् कुमुदों की माला के समान शुक्ल बलाकाओं (वर्णलियों) से सुशोभित थी ॥७२॥ बदली, लता और वृक्षों के अमिनव पल्लवों से उसकी अपूर्व शोभा थी । कन्याणमद मेघों के प्रेम के कारण जगे हुए अत्यन्त आलसी मेढकों से एवम् प्रियजनों के प्रति मान करने से उदित मन वाली मनस्विनी कामिनियों के क्षण भर में मान-भग के हेतुभूत मनोहर मयूर-वाणी के शब्दों से वह शब्दायमान हो रही थी ॥७३-७४॥ विविध वर्ण तथा उज्ज्वल वर्ण वाले, सुन्दर रूप वाले चन्द्र-लेखा के समान सब ओर से कुटिल तथा मेघसमूह के समीपवर्ती इन्द्र-धनुष से वह अत्यन्त सुशोभित हो रही थी ॥७५॥ नाना प्रकार के पुष्पों के रस से सुगन्धित और मेघ-जल के सपर्क से सुशीतल मनोहर पवना के द्वारा वह मानो देवायनाओं की पवित्र अलङ्कार-वलिदा (वेश समूह) को कपित कर रही थी ॥७६॥ गरजते हुए बादल में चन्द्रचिह्न को छिपाने वाली तथा

१ क ०मृगिरे पु० । २ क ०नन्या सहस्रम् । ३ क ख उद्वाहे । ४ क ०रस्येह मु० । ५ ख ०रुक्माकारं प्रदर्शितं । वे० । ६ क ०विनामिता । ७ क कुसुमापी० । ८ ख ०दातरनु० । ९ ग ०या शिव० । १० क ०पुष्पामरणं मु० । ग ०पुष्पव्य रसै मु० ।

गर्जत्पयोदस्य गितेन्दुबिम्बा, नवाम्बुसिक्तोदकचारुदूर्वा ।
निरोक्षिता सादरमुत्सुकाभिनिशवासधूत्रं पथिकाङ्गनाभिः ॥७७॥

हंसनूपुरशब्दाद्या समुन्नतपयोधरा । चलद्विद्युत्लताहारा' स्पष्टपद्मविलोचना ॥७८॥
असितजलदधोरध्वानयित्रस्तहसा, विमलसलिलधारोत्पातनम्रोत्पलाग्रा' ।
सुरभिकुसुमरेणुबलुप्तसर्वाङ्गशोभा, गिरिदुहितृविवाहे प्रावृडाविद्वंभूव ॥७९॥
मेघकञ्जुचनिर्मुक्ता पद्मकोशोद्भवस्तनी । हंसनूपुरनिह्लादा' सर्वशस्यदिगन्तरा' ॥८०॥
विस्तीर्णपुलिनश्रोणी कूजत्सारसमेखला । प्रफुल्लेन्दोवरश्यामविलोचनमनोहरा ॥८१॥
पद्मविम्बाधरपुटा कुन्ददन्तप्रहासिनी । नवश्यामलताश्यामसोमराजिपुस्कृता ॥८२॥
चन्द्रांशुहारयोगेण कण्ठोरस्थलगामिना । प्रह्लादयन्ती चेतांसि सर्वेषां त्रिदिवीकसाम् ॥८३॥
समदाश्रुकुलोद्गीतमधुरस्वरभाषिणी । चरत्कुमुदसंघातचारुकुण्डलशोभिनी' ॥८४॥
रक्ताशोकप्रशालोत्पललवङ्गलिधारिणी । सत्पुष्पसञ्चयमयंवासीभिः समलङ्कृता ॥८५॥
रक्तोत्पलाप्रवरणा' जातीपुष्पनखावली । कदलीस्तम्भवामोहः शशाङ्कवदना तथा ॥८६॥
सर्वलक्षणसम्पन्ना सर्वालङ्कारभूषिता । प्रेम्णा स्पृशति वाग्देव सानुरागा मनोरमा ॥८७॥

नवीन जल से सिक्त सुन्दर घासवाली बर्षा ऋतु की राह चलने वाली रमणीय आदर तथा उत्सुकता से देखकर अपनी साँसों से मानो घूमिल कर रही थी ॥७७॥ वह ऋतु मानो समुन्नत पयोधर (मेघ, स्तन) वाली, विवसित कमल सदृश नेत्र वाली, लचकल विद्युत्लता रूप हार वाली तथा हंस (हंस पक्षी, पैर के बड़े) और नूपुर के शब्दों से युक्त रमणी थी ॥७८॥ वह काले बादल के गर्भीरु गर्जन से त्रस्त हंस वाली, निर्मल जलधारा के गिरने से अचानक कमल के अग्रभाग वाली और गुणगुण पुष्पों की रेणु से गुणोमिष सर्वाङ्ग वाली थी । इस प्रकार बर्षा ऋतु गिरि-जग्या के विवाह में आविर्भूत हुई ॥७९॥ (तदनन्तर धारद् ऋतु का आगमन) । मेघरूप कबूची से निर्मुक्त, कमल की कलियों रूपी स्तनों वाली, हंस और नूपुर से शोजित, नव दिशाओं से श्रोत्रों से परिपूर्ण, विस्तृत तट रूप नितम्ब वाली, शब्द करत हुए सारस पक्षी रूप मेघरूप वाली, विविध नील कमल रूपी मनोहर नेत्र वाली, पद्मे विम्ब फल (कुन्दरु के फल) रूपी अक्षर वाली, कुन्द पुष्प रूपी दाँतों से ढँकी वाली, श्यामलता रूपी कुण्ड रोमावलि। से युक्त, गले से बज्ज म्बल तक लटकत हुए चन्द्रारिण रूपी हारा में देवशर्षों के चित्त की आह्लादित करने वाली, मदमत्त धमरो के गीत करी मधुर स्वर में बोलने वाली श्वेत कुमुद-पुष्प-समरूपी सुन्दर कुण्डला से शोजित रक्त श्रोत्र की शाला के पल्लव रूपी अगुल्लिनी धारण करने वाली, लाल श्रोत्र-पुष्पा के समरूपी धरणा से अलङ्कृत, रक्त कमल के अग्रभाग रूपी धरणी वाली, पद्मेनी के पुष्प रूपी तल-पतित वाली बदन-नितम्ब रूपी सुन्दरजया वाली, चन्द्रमूनी, मधमन ललाचों से मण्डल और सब प्रकार के मूर्तियों से भूषित धारद् ऋतु मानो अनुरागपूर्ण सुन्दरी स्त्री की तरह प्रेम में रत बनी

निर्मृक्तासितमेघ रुञ्चुकपटा पुष्पेन्दुबिम्बानना, नीलाम्भोजविलोचना रविकरप्रोद्भिन्नपद्मस्तनी ।
नानापुष्परजःसुगन्धिपवनप्रह्लादनी चेतसां, तत्रऽऽसीत् कलहंसनूपुररवादेव्या विवाहे शरत् ॥८८॥
अत्यंशोत्ताम्भोभिः प्लावयन्तो दिशः सदा । ऋतुं हेमन्तशिशिरो आजग्मतुरतिद्युतो ॥८९॥
ताम्बामृतुन्या 'संप्राप्तो हिमवान् स नगोत्तमः । प्रालेयचूर्णवर्षिभ्यां क्षिप्रं रोष्यहरो' बभौ ॥९०॥
तेन प्रालेयवर्षेण घनेनैव हिमालयः । अगाधेन तदा रेजे क्षीरोद इव सागरः ॥९१॥
ऋतुपर्यायसम्प्राप्तो बभूव स महागिरिः । साधूपचारात् सहसा 'कृतार्थ' इव दुर्जनः ॥९२॥
प्रालेयपटच्छत्रे शृङ्गस्तु शुशुभे नगः । छत्रैरिव महाभागः पाण्डुरैः पृथिवीपतिः ॥९३॥

मनोभवोद्रेकफराः 'सुराणां' सुराङ्गनानाञ्च मृदुः समीराः" ।

स्वच्छाम्बुपूर्णदिक्' तथा नलिन्यः पद्मोदालना कुसुमरूपेताः ॥९४॥

विवाहे गुरुकन्याया वसन्तः समपादतुः ॥९५॥

इपस्तमुद्भिन्नपयोधराया नाभ्यौ यथा रम्यतरा बभूवुः ।

नात्युष्णशोतानि' पयःसरांसि" किञ्जल्कचूर्णैः कपिलीकृतानि" ॥

चक्राह्वयुर्मन्दपनादितानि ययुः प्रहृष्टाः सुरदन्तिमुहदाः ॥९६॥

प्रिगङ्गाः श्रुततरवद्व्यूताश्वापि प्रियङ्गवाः । तज्जयत इवाभ्योग्यं मञ्जरीभिश्चकाशिरै ॥९७॥

या ॥८०-८३॥ इष्टा मय रूपी कचुकी स निर्मुक्त पूर्ण-चन्द्र बिम्ब के समान मूल बानी नील कमल के समान नेत्र वाली, सूर्य निरज से विकसित कमल के समान स्तन वाली, अनेक पुष्पों की रेषु से सुगन्धित पचना द्वारा चित की भनन्द देने वाली तथा राजहंस के समान मूचुरा द्वारा शब्द करने वाली शरद् ऋतु पार्वती क विवाह म उपस्थित हुई । ॥८८॥ जलमय नील जल से विद्याजा की सदा प्लाविन करती हुई मत्वागन्ति वाली हेमन्त तथा शिशिर ऋतुओं की बायीं ॥८९॥ हिम चूर्णों को वरमद वाली उन ऋतुभा से प्राप्त (सम्प्लित) पर्वतश्रेष्ठ हिमालय शीत ही पौदनी के आभूषणों की तरह शोभित होन लगा ॥९०॥ हिमवर्षा करने वाले अगाध मेघ से हिमालय क्षीर-ममूत्र की तरह सुगन्धित हुआ ॥९१॥ अच्छे उपचारों से जैसे दुर्जन इतार्थ हो जाता है वैसे ऋतुओं के आगमन से वह महापर्वत (इतस्तुत्य) हुआ ॥९२॥ हिम समूह ने आच्छादित शिवरा से पर्वत की वीली ही शोभा हुई जैसी महा-शुद्ध स्वतः छत्र म राजा की होती है ॥९३॥ दचना तथा देवागनाया म कामादीपन करने वाले पवन बार-बार बहने लगे । अत्रागय स्वच्छ जल से पूर्ण एव कमल और कण्डव क गुप्ता से युक्त हुए ॥९४॥ पवन-पुत्री के विवाह म वसन्त ऋतु आई ॥९५॥ (उसके आनं पर) जैसे घोड उमरे हुए स्तनाय वाली नारियां अधिक रमणीय होती हैं वैसे न अधिक गरम म अधिक ठंड जल वाले सरोवर पुष्परणु (या कमल क केसरो) से वरिष्ठ वन बन शोभित हो रहे थे । शरदा चर्कई में शक्ति उन सरोवरों म देवताया के थपट हाथी हर्ष से जाते थे ॥९६॥ प्रियगवूग आम्रवृक्षा को और आम्रवृक्षा प्रियगवूगा का माना परस्पर घकेलते हुए मञ्जरिया से सुशोभित हो रहे थे ॥९७॥ हिमालय के उज्ज्वल

१ ग ०ता लीला० । २ क सव्याप्ती । ३ ख ०भी । हिमपद्मप्रव० । ४ ग हृतायं । ५ ग ०वर्द्धक० । ६ ग ०गां नमाम० । ७ क रुमरिणा । ख मुचिना । ८ ग ०म्बुपर्णा० । ९ ख ०नि दिव पयामि । १० ख सटपयामि । ११ क ०पलाञ्छिता० ।

'हिमशृङ्गे पुं शुक्ले पुं तिलकाः कुसुमोत्कराः । शशभुः कार्यमुद्दिश्य वृद्धा इव समागताः ॥९८॥
फल्गुशोकलतास्तत्र रेजिरे शालसंस्थिताः । कामिन्य इव कान्तानां कण्ठालम्बितबाहवः ॥९९॥

तस्मिन्मृती शुभ्रकदम्बनीपास्तलास्तमालाः सरलाः कपित्थाः ॥१००॥

अशोकसज्जिज्जुनकोविदाराः पुष्पागनागेश्वरकणिकाराः ।

लवङ्गतलागुहसस्तपर्णा न्यग्रोधशोभाञ्जननारिकेलाः ॥१०१॥

वृक्षास्तथाऽन्ये फलपुष्पवन्तो दृश्या बभूवुः सुमनोहराङ्गाः ।

जलाशयावर्चव सुवर्णतोयाश्चक्राङ्गकारण्डबहंसजुष्टाः ॥१०२॥

कोवण्टिदात्यूहबन्धयुक्ता दृश्यास्तु पक्षोत्पलमोनपूर्णाः ।

खगाश्च नानाविधभूषिताङ्गा दृश्यास्तु वृक्षेषु सुचित्रपक्षाः ॥१०३॥

श्रीङ्गासु युक्तानय सज्जंशतः कुर्वन्ति शब्दं मदनेरिताङ्गाः ।

तस्मिन् गिरावद्रिसुताविवाहे व्यवृक्ष वाताः सुखशीतलाङ्गाः ॥१०४॥

पुष्पाणि शुभ्राण्यपि पातयन्तः शनैर्नयेभ्यो मलयोद्रिजाताः ।

सयैव सर्वे ऋतयश्च पुष्पाश्चकारिरेज्योग्मविमिश्रिताङ्गाः ॥१०५॥

येषां सुलिङ्गानि च कीर्तितानि, ते तत्र आसन् सुमनोज्ञत्वाः ॥१०६॥

समदालिकुलोद्गीतशिलाकुसुमसङ्घयैः । परस्पर हि मालत्यो भावयन्त्यो विरेजिरे ॥१०७॥

शिलारो पर पुष्पा से युक्त तिलक वृक्ष कार्य के उद्देश्य से आये हुए वृद्ध पुष्पा की तरह शोभा पा रहे थे ॥९८॥
सायू से लिपटी हुई प्रफुल्लित प्रशाफलता त्रियतम के गले में अपनी बोह डाले हुई कामिनी की तरह निराजमान थी ॥९९॥ उस ऋतु में सर्वेद यदम्ब, नील अशोक, ताल, तमाल, सरल, बंधा, अघोष, सज (सायू) अर्जुन, कचनार, पुष्पाग, मागेश्वर कनकचम्पा लवग, अगर, सप्तवर्ण (उत्तिवन) वट, वामाञ्जव (सहिजन), मारियल और दूसर भी फल-फूल वाले वृक्ष अत्यन्त सुन्दर अग्रा में दिखाई पड़े ॥१००-१०१॥ सुवर्ण के समान जल वाले, चक्राङ्ग, कारण्डव और हमा से सजित टिट्ठिम, दात्यूह (वटफोडया) तथा बलाको से युक्त एवम् कमल, कुमुद तथा मछलिया से पूर्ण तालाब देखने योग्य थे ॥१०२॥ वृक्षा पर चित्र विविध पक्ष वाले तथा विविध भूषणों से भूषित पर्यागण वाम-विट्ठल होकर श्रीङ्गा में निरत पक्षिया की (पक्षु से) मारते हुए कलरव कर रहे थे ॥१०३॥ पार्वती के विवाह में उम पर्वत पर सुख तथा शीतल स्पर्श वाला वायु बह रहा था ॥१०४॥ पर्वती से धीरे-धीरे मलय-निल निकल कर इवन पुष्पा की गिरा रहा था । उसी प्रकार सब पवित्र आतुरों परस्पर मिलकर विराज रही थी ॥१०५॥ जिन ऋतुओं के सब विद्वद्गण दिय गये हैं, वे सब मनोहर रूप में बढी थी ॥१०६॥ मदमत भ्रमरों से सुजिन शिलागुप्ता के समूह से परम्परा मिलती हुई मालती लताये शोभित हो रही थी ॥१०७॥ सरावर का जल नील

१ क हिमाञ्चल शृङ्गः । २ क कुसुमाकरा । ३ क बरालः । ४ क नमून्य । ५ क ग दूर्यान्ति
सर्वे म० । ६ क ग दृश्यन्ति । ७ क य दृश्यन्ति । ८ क ० डा प्रयुक्तास्त्वयः । ९ क ० कनास्त्वयः । १० क पनाप्यथ ।

नीलानि नीलाम्बुदहः पर्याप्ति, गौराणि गौरैश्च मृणालवण्डैः ।
रक्तैश्च रक्तानि भूतं कृतानि, मत्तद्विरेकावलज्जुष्टपत्रैः ॥१०८॥
हंमानि विस्तीर्णजलेषु केषुचिन्निरन्तरं चारतराणि केषुचित् ।
वेदूय्यनालानि सरःसु केषुचित्प्रजज्ञिरे पद्मवनानि सर्वतः ॥१०९॥

वाप्यस्तत्राभवन्नरम्याः कमलोत्पलपुष्पिताः । 'नानाविहङ्गसंजुष्टा' हंमसोपानपट्टवतयः ॥११०॥
शृङ्गाणि तस्य तु गिरेः कर्णिकारैः सुपुष्पितैः । समुच्छिन्नान्यविरलहंमानोव बभूवुर्द्विजा ॥१११॥
इषद्विभिन्नकुसुमैः पाटलैश्चापि पाटलाः । संबभूवुर्दिशः सर्वाः पवनाकम्पिमूर्तिभिः ॥११२॥
कृष्णाज्जुना वशागुणा नीलाशोकमहोरुहाः । गिरी ववृधिरे फुल्लाः स्पर्धयन्तः परस्परम् ॥११३॥
वायरावबिजुष्टानि किंशुकानां वनानि च । पर्वतस्य नितम्बेषु सर्वेषु च विरेजिरे ॥११४॥
तमालगुल्मस्तस्यासीत्सच्छोभा हिमवतस्तदा । नीलजीमूतसङ्घातैर्निलैर्नरिव सन्धिषु ॥११५॥

निकामपुष्पैः सुविशालशङ्खैः, समुच्छिन्नैश्चन्दनचम्पकैश्च ।
प्रमत्तपुष्कोकिलसम्प्रलपैर्हिमाचलोऽतीव तदा रराज ॥११६॥

भूत्वा 'शङ्खं मृदुमदकलं सय्वतः कोकिलानां, चञ्चत्पक्षाः सुमधुरतरं नीलवण्टा दिनेदुः ।
तेषां शब्दैरपचितबलः पुष्पचापेषु हस्तैः, सज्जीभूतस्त्रिदशवनिता' वेदुमङ्गैश्चनङ्गः ॥११७॥
पटुः सूपतिपद्मापि प्रायशोऽल्प (ल्पो) जलाशयः । देवोविवाहसमये प्रीत्य आगादिमिचलम् ॥११८॥

कमलो म से नील, श्वेत मृणालवण्डो से श्वेत तथा मदमत्त भ्रमरावली स सेवित पत्रबाले लाल कमलों से लाल
हो गया था ॥१०८॥ किसी विस्तीर्ण जल वाले सरीवर म स्वर्ण वर्ण वाले, किसी मे अत्यन्त रमणीय और किसी
मे वेदूय्य मणि के मृणाल वाले कमला के वन उत्पन्न हुए थे ॥१०९॥ वहाँ कमल तथा मृदु पुष्पा से युक्त अनेक
पक्षिया से सेवित तथा सुवर्ण की पीडियों से समन्वित भावल्यां थी ॥११०॥ द्विजगण ! उस पर्वत के विस्तृत शिखर
सपन वनचम्पा वृक्षों से सुपुष्पित होकर सोने की तरह छिटा रहे थे ॥१११॥ वायु से कम्पित किञ्चित् विक्षिप्त
पाटला के पुष्पों से सब दिशाओं श्वेत-रक्त वर्ण की हो गई थी ॥११२॥ पर्वत पर नील अशोक वृक्ष तथा कृष्ण
अर्जुन वृक्ष परस्पर स्पर्धा करते हुए दश गुना बढ़ने लगे ॥११३॥ मनोहर शब्दों से सेवित पलाश के वन पर्वत
के नितम्बों पर विराज रहे थे ॥११४॥ पक्षियों (सन्ध्या समय) के छिपे हुए काले बादलों के समूह जैसे तमाल
वृक्षों से हिमालय की घोमा हो रही थी ॥११५॥ अतिशय पुष्पित विशाल शाखाओं से युक्त तथा विस्तृत चन्दन
और चम्पा वृक्षों से और मत्त पुष्प-नीलियों के प्रलाप से हिमालय अत्यन्त शोभित हो रहा था ॥११६॥
कोकिलों ने मृदु तथा मध से भरे शब्दों की सुनकर मधुर पत्तों की फौलाड़ अत्यन्त मधुर शब्द करने
लगे । उनके शब्दों से बल प्राप्त कर पुष्पों का वन्य हाथ में लेकर तैयारी के साथ कामदेव देवागनाओं की वेष
करने लगा ॥११७॥ सूर्य की किरणें तीव्र होने लगी और प्राय तालाबों म जल घटने लगा, जब देवी

१ क ० गमयता है ० २ म सपुष्टा ३ क ० पटुदिग्गम ० ४ म ० वत शुभा । नी ० ५ स सानुष्ट

१ क शब्दमनुम ० ७ ग ० निता वे ० ।

स चापि तरुमिस्तत्र बहुभिः कुसुमोत्तरैः। शोभयामास शृङ्गाणि प्रालेयाद्रेः समन्ततः॥११९॥
 तथाऽपि च गिरौ तत्र वायवः सुमनोहराः। बबुः पाटलविरतीर्णपदम्बाऽर्जुनगन्धिनः॥१२०॥
 वायः प्रकुलपद्मोधकेसरारुणमूर्तयः। अभवंस्तदसंधु (ज्) षट्कलहंतकदम्बकाः॥१२१॥
 तथा कुरवकाऽपि कुसुमापाण्डुमूर्तयः। सर्वेषु नगशृङ्गेषु भ्रमरावलिसेविताः॥१२२॥
 बकुलाश्च नितम्बेषु विशालेषु महीभृतः। उत्तसर्ज मनोज्ञानि कुसुमानि समन्ततः॥१२३॥
 इति कुसुमविचित्रसर्ववृक्षा विविधविहङ्गमनादरभ्यदेशाः ।
 'हिमगिरितनयाविवाहभूत्यं पद्मपद्ममूर्तवो मुनिप्रवीराः ॥१२४॥
 तत एवं प्रवृत्ते तु सत्वेभूतसमागमे। 'नानावाद्यसमाकीर्णं' अहं तत्र द्विजातयः॥१२५॥
 शैलपुत्रीमलंकृत्य योराभरणसम्पदा। पुरं प्रवेशितवांस्तां स्वयमादाय भो द्विजाः॥१२६॥
 ततस्तु पुनरेवेशमहं चंबोवतयान् विभुम्'। हविर्जुहोमि' बह्वो ते उपाध्यायपदे स्थितः॥१२७॥
 ददासि मह्यं दद्यातां दत्तव्योऽयं क्रियाविधिः। मामाह शङ्करश्चैवं देवदेवो जगत्पतिः॥१२८॥

शिव उवाच

'यदुद्दिष्टं सुरैश्चान तत्कुलद्वय दयेन्मिस्तम्। दत्ताऽस्मि वचनं सर्वं ब्रह्मस्तव जगद्भिभो॥१२९॥

ये विवाह के समय प्रीतिम कर्तु हिमालय पर जा पहुँचा ॥११८॥ वह भी प्रचुर पुष्पा से युक्त वृक्षा से हिमालय के शिखरों को सब ओर से घेरित कर रहे थे ॥११९॥ पर्वत पर पाटला, विस्तीर्ण कदम्ब तथा अर्जुन के गन्धा से युक्त मनोहर वायुबह रहा था ॥१२०॥ बावल्याँ चित्तित्तपय-भमूह के बेशरी से अरण्य रंग की हो गई थी ॥१२१॥ जिनके तट बगइचा और कदम्बा से सजित थे ॥१२१॥ इनेकवर्ण के कुसुमों से युक्त तथा भ्रमरावल-
 लित से सेवित कुरव वृक्षा समस्त पर्वत निम्नर। पर घेरित हो रहे थे। पर्वत के विशाल निम्नर पर मीन-
 सिरा मनोहर पुष्पो को घारा ओर बिखेर रहे थे ॥१२२-१२३॥ मुनिवर! सब वृक्ष पुष्पो से विचित्र रंगित
 थे। विविध पक्षियों से सब स्थान रम्य लगने थे। गिरिपुत्री वा विवाहोत्सव मनाने के लिए छोटे प्रातुरों उपस्थित
 हुई ॥१२४॥ द्विजगण! तदुपरान्त नानाप्रकार के वाद्या से युक्त सब प्राणियों र समागम होन पर मैंने पार्वती को
 सम्बोधित आभूषणा से अलङ्कृत कर स्वयं लेकर नगर में प्रवेश कराय ॥१२५-१२६॥ तब भगवान् शिव से मैंने
 कहा—'भगवन् उपाध्याय-पद पर स्थित होकर मैं हवन करेगा। यदि आपकी आज्ञा हो तो मैं यह क्रिया प्रारम्भ
 करूँ।' तब देवदेव जगन्पति शिव ने मुझसे कहा ॥१२७-१२८॥

शिव बोले—देवता! एवमस्तु। बहन्! जगत्सामी। मैं तुम्हारे सभी वचनों का अनुमोदन
 करता हूँ ॥१२९॥

१ क० मपुष्टः। २ क० हृष्ट्यै। ३ ग० घातापी० ४ ख० ०र्थे देशात्त्र द्विजा स्वयम्। गी०। ५ म०
 दा। सम्प्रा। च वेत्यामागु स्व०। ६ क० म्। यद्दिन ज्हा०। ७ क० म्नि विधिवदुगा०। ८ क० म्। इति
 गत्य वदन्त्य-स्वर्गात् इत्या चियाविधी। मा०। ९ ख० यद्यस्ति।

ब्रह्मोवाच

ततश्चाहं प्रहृष्टात्मा कुशानादाय सत्वरम् । हस्त देवस्य देव्याश्च योगबन्धेन युक्तवान् ॥१३०॥
ज्वलनश्च स्वयं तत्र कृताञ्जलिपुटः स्थितः । 'श्रुतिगीतमंहामन्त्रमूर्तिमद्भिरुपस्थितं' ॥१३१॥
ययोक्तविधिना हृत्वा सर्पस्तवभृतं हवि । ततस्तं ज्वलन सर्वं कारयित्वा प्रदक्षिणम् ॥१३२॥
मुक्त्वा हस्तसमायोगं सहितः सर्वदेवतैः । पुत्रंश्च मानसं सिद्धं प्रहृष्टेनान्तरात्मना ॥१३३॥
वृत्त उद्वाहकाले तु प्रणम्य च वृषध्वजम् । 'योगेनैव तयोर्विप्रास्तदुमापरमेशयोः' ॥१३४॥
उद्वाह स परो वृत्तोयं देवा न विदुः क्वचित् । इति च सर्वमाख्यातं स्वयवरमिदं शुभम् ।
उद्वाहश्चैव देवस्य भृगुध्व परमाद्भुतम् ॥१३५॥

इति श्रीआदिनाहो महापुराणे स्वयम्भु-ऋषिसवादे उमामहेश्वरयोर्विवाहनिरूपणं
नाम षट्त्रिंशोऽध्यायः ॥३६॥

यह्या ने कहा—उसके बाद मैं प्रसन्न होकर शीघ्र कुशों को लेकर देवी और देव के हाथों को योगबन्धन से बाँध दिया ॥१३०॥ स्वयं अग्नि हाथ जोड़ कर वहाँ उपस्थित थे । शरीर धरकर वहाँ उपस्थित वेदविहित महामन्त्रों से विधानपूर्वक मैंने हवन किया । वहाँ धी की जगह अमृत ही था ॥१३१॥ तब अग्नि की प्रदक्षिणा करा कर उनका हस्तगन्ध छोड़वा दिया । विप्रवृन्द । विवाह बाल के समाप्त होने पर मैंने प्रसन्न वित्त से सभी देवताओं, अपने मानस पुत्र तथा सिद्धों के साथ शिव को प्रणाम किया । योग ही से उमा और महेश्वर का विवाह सम्पन्न हुआ—इस वृत्तान्त को वही देवताओं ने नहीं समझा । इस शुभ स्वयवर का सब-वर्णन मैं आपसे कर दिया ॥१३२-१३४॥ अब शिव के परम अद्भुत विवाह के विषय में भी सुन लीजिये ॥१३५॥

श्री ब्रह्ममहापुराण में ब्रह्मा और ऋषि के सवाद प्रकरण में उमा और महेश्वर के विवाह निरूपण नामक छत्तीसवाँ अध्याय सम्पन्न ॥३६॥

सप्तत्रिंशोऽध्यायः

शिवस्तुति-वर्णनम्

ब्रह्मोवाच

अयं वृत्ते विवाहे तु' भवत्प्रामित्ततेजसः । प्रहर्षमतुलं गत्वा देवाः शक्रपुरोगमाः ॥
'तुष्टुबुध्निभिराद्याभि.' प्रणेमुर्ते महेश्वरम् ॥१॥

देवा ऊचुः

नमः पर्वतलिङ्गाय' पर्वतेशाय च' नमः । नमः पवनवेगाय' विरूपाक्षजिताय च ॥
नमः श्लेशविनाशाय दात्रे च' शुभसम्पदाय ॥२॥
नमो नीलशिखण्डाय अम्बिकापतये नमः । नमः पवनरूपाय' शतरूपाय' च' नमः ॥३॥
नमो भैरवरूपाय विरूपनयनाय च' । नमः सहस्रनेत्राय सहस्रचरणाय च ॥४॥
नमो देववयस्याय वेदाङ्गाय नमो नमः । विष्टम्भनाय शक्रस्य बाल्लोबेदाङ्कुराय च ॥५॥
चराचराधिपतये क्षमनाय नमो नमः । सलिलशैथिल्याय गुणान्ताय नमो नमः ॥६॥
नमः कपालमालाय कपालसूत्रधारिणे । नमः कपालहस्ताय दण्डिने' गदिने नमः ॥७॥

अध्याय ३७

शिव की स्तुति का वर्णन

ब्रह्मा ने कहा—अमित तेजस्वी शिव के विवाह सम्पन्न हो जाने पर इन्द्र को अगुवा बनाकर देवगण अत्यन्त हर्ष से महेश्वर के पास गए और प्रणाम करके आद्य आशी से उनकी स्तुति करने लगे ॥१॥

देवद्वन्द्व बोले—पर्वतलिङ्ग को नमस्कार है, पर्वतेश को नमस्कार है, पवनवेग, विरूप और अजित को नमस्कार है, श्लेश-नाशक तथा शुभ-संप्रदायक को नमस्कार है ॥२॥ नीलशिखण्ड को नमस्कार है, अम्बिकापति को नमस्कार है, पवनरूप को नमस्कार है, शतरूप को नमस्कार है ॥३॥ भैरवरूप तथा विरूपाक्ष को नमस्कार है, सहस्रनेत्र तथा सहस्रचरण को नमस्कार है ॥४॥ देवमित्र को नमस्कार है, वेदाय को नमस्कार है, इन्द्र की बाँहों को स्तम्भित करने वाले तथा वेदाङ्कुर को नमस्कार है ॥५॥ चराचर के स्वामी तथा क्षमन को नमस्कार है, जलाशय में लिंग वाले तथा पुणों का मूल करने वाले को नमस्कार है ॥६॥ कपालमाला तथा कपाल-सूत्र धारी को नमस्कार है, कपाल,

१ क. तु शिवः । २ क. 'गिरिध्यायि' । ख. 'गिरिध्यायि' । ३ क. 'धामिरमया सह शरः' ।
४ ख. 'तथायाम नमः पर्वतधारिणे' । न. । ५ ख. पर्वतजात्रे । ६ ख. च मुनयः । ७ क. पर्वतरूपाय ।
ख. पर्वतनाथाय । ८ क. श्वेतरूपाय । ९ क. च । सहस्रनेत्रशीर्षाय । १० ग. दण्डिणे ।

नमस्त्रेलोक्यनाथाय पशुलोकरताय च । नमः खट्वाङ्गहस्ताय प्रमथात्तिहराय च ॥८॥
 नमो , यज्ञशिरोहस्त्रे कृष्णकेशापहारिणे । भगनेत्रनिपाताय पूष्णो दन्तहराय च ॥९॥
 नमः पिनाकशूलसिखङ्गमुद्गरधारिणे । नमोऽस्तु कालकालाय तृतीयनयनाय च ॥१०॥
 अन्तकान्तकृते चैव नमः पर्वतवासिने । सुवर्णरेतसे चैव नमः कुण्डलधारिणे ॥११॥
 वैतयानां योगनाशाय योगिनां गुरवे नमः । शशाङ्कवित्त्यनेत्राय ललाटनयनाय च ॥१२॥
 नमः श्मशानरतये श्मशानवरदाय च । नमो देवतनाथाय त्र्यम्बकाय नमो नमः ॥१३॥
 गृहस्थसाधवे नित्यं जटिले ब्रह्मचारिणे । नमो भुण्डार्धभुण्डाय पशूनां पतये नमः ॥१४॥
 सलिले तप्यमानाय योगेश्वर्यप्रदाय च । नमः शान्ताय दान्ताय प्रलयोत्पत्तिकारिणे ॥१५॥
 नमोऽनुग्रहकर्त्रे च स्थितिकर्त्रे नमो नमः । नमो रुद्राय वसव आदिस्थायाश्विने नमः ॥१६॥
 नमः पित्रेऽय सादृश्याय विश्वेदेवाय वै नमः । नमः शर्वाय उग्राय शिवाय वरदाय च ॥१७॥
 नमो भीमाय सेनाय पशूनां पतये नमः । शुचये वैरिहानाय सद्योजाताय वै नमः ॥१८॥
 महादेवाय चित्राय विचित्राय च वै नमः । प्रधानायाप्रमेयाय कार्माय कारणाय च ॥१९॥
 पुरुषाय नमस्तेऽस्तु पुरुषेच्छाकराय च । नमः पुरुषसंयोगप्रधानगुणकारिणे ॥२०॥

१०३ तथा गवाधारी को नमस्कार है ॥७॥ त्रिलोकीनाथ तथा पशुलोके में रत रहने वाले को नमस्कार है, खट्वाङ्ग
 (अस्त्र विशेष) धारी तथा प्रमथ (शिव के अनुचर) की आति को हरने वाले को नमस्कार है ॥८॥ यज्ञ शिर के
 हस्ता तथा कृष्णकेश (मृगचर्म ?) के अपहर्ता को नमस्कार है, भग देवता के नेत्र को गिराने वाले तथा पूषा के
 दन्तो को तोड़ने वाले को नमस्कार है ॥९॥ पिनाक (शिवधनुष), त्रिशूल तलवार, खोंडा तथा मुद्गर धारण करने
 वाले को नमस्कार है, कालों के काल तथा तृतीय नेत्रधारी को नमस्कार है ॥१०॥ कालनाशन तथा पर्वतवासी को
 नमस्कार है, सुवर्णरूप धीर्यवाले (?) तथा कुण्डल धारण करने वाले को नमस्कार है ॥११॥ ईत्या के योग के
 भागवर्ता तथा योगियों के गुरु को नमस्कार है, सूर्य-चन्द्रमा-रूपी नेत्रों वाले तथा मस्तक पर नत्र वाले को नमस्कार
 है ॥१२॥ श्मशान में रत तथा श्मशान में बर देने वाले को नमस्कार है, देवताओं के स्वामी तथा त्र्यम्बक (तीन
 नेत्र वाले) को नमस्कार है ॥१३॥ गृहस्थों में साधु, नित्य जटाधारी तथा ब्रह्मचारी को नमस्कार है, भुण्डो, अर्ध-
 भुण्डो तथा पशुपति को नमस्कार है ॥१४॥ जल में तप्त होने वाले तथा योग-ऐश्वर्य को देने वाले को नमस्कार
 है शान्त, दान्त तथा मृष्टि प्रलयकारी को नमस्कार है ॥१५॥ अनुग्रह-कर्ता तथा स्थिति-कर्ता को नमस्कार है, रुद्र,
 वसु आदित्य तथा अश्विनीकुमार को नमस्कार है ॥१६॥ पिता, साह्यरूप तथा विश्वेदेव को नमस्कार है,
 शर्व, उग्र, शिव तथा वरद को नमस्कार है ॥१७॥ भीमरूप, सेनानी तथा पशुपति को नमस्कार है, पवित्ररूप,
 अनुभाशन तथा सद्य उत्पन्न को नमस्कार है ॥१८॥ महादेव, चित्त तथा विचित्ररूप को नमस्कार है, प्रधान,
 प्रमेय, कार्य तथा कारणरूप को नमस्कार है ॥१९॥ पुरुष तथा पुरुषरूप पुत्र की इच्छा करने वाले को नमस्कार

१ म ० गायहा ० । २ व ० वृषभगामिने । ३ व ० राहवे । ४ ख ० भोजननना ० । ५ म ० म ।

मुनिशङ्कुमा ० । ६ म ० म । माध्याय विद्वत्पत्नये वि ० । ७ म ० म ० मुक्तिने च नमः न ० ।

प्रवर्तकाय प्रकृते पुरुषस्य च सर्वेशः। कृताकृतस्य 'सत्कर्त्रे' फलसयोगदाय च॥२१॥
 कालजाय च 'सर्वेषां नमो नियमकारिणे। नमो वेधम्यकर्त्रे' च गुणानां वृत्तिदाय च॥२२॥
 नमस्ते देवदेवेश नमस्ते भूतभावन। शिव सौम्यमुखो द्रष्टु भव सौम्यो हि नः प्रभो॥२३॥

ब्रह्मोवाच

एवं स भगवान् देवो जगत्पतिरुमापति। स्तूयमान सुरैः सर्वैरमरानिदमब्रवीत्॥२४॥

श्रीशङ्कर उवाच

द्रष्टु सुखश्च सौम्यश्च देवानामस्मि भो, सुरा। 'वर वरयत क्षिप्र दाताऽस्मि तमसशयम्'॥२५॥

ब्रह्मोवाच

ततस्ते प्रणता, सर्वे सुरा ऊचुस्त्रिलोचनम्॥२६॥

देवा ऊचुः

तवैव भगवन् हरते वर एषोऽवतिष्ठताम्। यदा कार्यं तदा नस्त्वं दास्यसे वरमोप्सितम्॥२७॥

ब्रह्मोवाच

एवमस्तिवति तानुक्त्वा विसृज्य च सुरान् हरः। लोकाश्च 'प्रमये' सार्धं विवेश 'भवनं' स्वकम्॥२८॥

है पुरुष-सयोग से प्रधान गुण व करने वाले को नमस्कार है ॥२०॥ प्रकृति-पुरुष व प्रवक्तृ को नमस्कार है वृत्त और ध्रुव के सत् करने वाले को तथा कर्मयोग देने वाले को नमस्कार है ॥२१॥ कर्ता तथा सब के नियामक को नमस्कार है और विषम करने वाले तथा गुणा की वृत्ति देने वाले को नमस्कार है ॥२२॥ हे देवदेवेश ! हे प्राणिमा की उत्पत्ति करनेवाले ! आपकी नमस्कार है ! हे शिव ! हे प्रभो ! आप दान करने के योग्य सौम्य रूप तथा सौम्यमुखवाले हैं। जय ॥२३॥

ब्रह्मा ने कहा—इस प्रकार देवगण द्वारा स्तुति किया जाने पर जपत्यति तथा उमापति भगवान् धरुन उभगे बहा ॥२४॥

श्रीशङ्कर ने कहा—देववृद्ध ! मैं देवताओं व ऋषि मुनि के देगने योग्य तथा सौम्यरूप हूँ। आप लोग जो वरदान मागते चाह उसे मैं निमदेह दूँगा ॥२५॥

ब्रह्मा ने कहा—तब समस्त देवता शिव की प्रणाम करत हुए बोले ॥२६॥

देवताओं ने कहा—महेश ! आप हम जो वरदान देना चाहते हैं, अपने पास सुरक्षित रखें। जब आशुपरमा पड़ेगी तब आप हम अमिच्छित वरदान दीजिएगा ॥२७॥

ब्रह्मा ने कहा—नमस्तु कर्तव्य भगवान् शिव न देवताओं की विदा किया और प्रत्यक्ष नामाङ्गण व माय

यस्तु हरोत्सवमद्भुतमेन गायति देवतविप्रसमक्षम् ।

सोऽप्रतिरूपगणेशसमानो देहविषय्यमेत्य सुखो स्यात् ॥२९॥

ब्रह्मोवाच

विप्रवर्या स्तव होम भृणूयाद्धर पठेच्च य । स सर्व्वलोकगो देवं पूजयतेऽमरराडिव ॥३०॥

इति श्रीआदिब्राह्मे महापुराणे स्वयम्भुक्पिसवादे शिवस्तुतिनिरूपण

नाम सप्तत्रिंशोऽध्याय ॥३७॥

अथाष्टाविंशोऽध्यायः

मदनदहन-वर्णनम्

ब्रह्मोवाच

प्रविष्टे भवत देवे सूपविष्टे घरातने । स यको मन्मथ क्रूरो देव वेदसना भवत् ॥१॥
तमनाचारसायुधत दुरात्मान कुलाधमम् । लोकान् सर्वाण् पीडयत् सर्वाङ्गावरणात्मकम् ॥२॥

अपन भवन म प्रवर्ग किया । जो देवना तथा ब्राह्मण । स समस्त गिब व इम अन्मुन उत्सव वा गान करणा वह मरन पर गणा व समान दह प्राप्ति कर सुखी हागा ॥२८ २९॥

ब्रह्मा ने कहा—विप्रवर । जो इम म्तीव को मुनगा या पशगा वह समस्त लोका का शान्त कर देवनाभा द्वारा इन्द्र व समान पूजित होगा ॥३०॥

श्री ब्रह्ममहापुराण म ब्रह्मा और ऋषि व मन्वाद प्रकरण म शिवस्तुतिनिरूपण

नाम सैनीसर्वा अध्याय समाप्त ॥३७॥

अध्याय ३८

मदन-दाह वा वर्णन

ब्रह्मा ने कहा—जब गिब न अपन भवन म प्रविष्ट हातर भण्ड आसन ग्रहण किया ता इन्द्र वर वन्द्य ने उठ नाम-आमना म विचित्रि करना बागा ॥१॥ विप्रवर । अतस्त्वा म मयुक्त दरागा वग म अपन

श्रद्धीणां विघ्नकर्त्तारं नियमानां व्रतं सह। चक्राह वयस्य रूपेण रत्या सह समागतम् ॥३॥
 अयाऽस्ततापिन विप्रा वेदुक्काम सुरेश्वर। नयनेन तृतीयेन सायज समयक्षत ॥४॥
 ततोऽस्य नेत्रजो बह्निर्ज्वालामालासहस्रवान्। सहसा रतिभर्तारमदहत् सपरिच्छदम् ॥५॥
 स दह्यमान करुणमात्तोऽक्रोशत विस्वरम्। प्रसादपशच्च त देव पपात धरणीतले ॥६॥
 अय सोऽग्निपरीताङ्गो ममयो लोकात्पन। पपात सहसा मूच्छा क्षणेन समपद्यत ॥७॥
 पत्नी तु करुण तस्य विललाप सुदुःखिता। देवो देवञ्च दुःखार्ता अयाचत् करुणावती ॥८॥
 तस्याश्च करुण ज्ञात्वा देवो तो करुणात्मको। ऊचतुस्तां समालोक्य समाश्वास्य च दुःखिताम् ॥९॥

उमामहेश्वराबूचतु

दग्ध एव ध्रुव भद्रे नास्योत्पतिरिहव्यते। अशरीरोऽपि ते भद्रे कार्यं सर्वं करिष्यति ॥१०॥
 यदा तु विष्णुभगवान् वसुदेवसुत शुभे। तदा तस्य सुतो यश्च पतिस्ते सम्भविष्यति ॥११॥

ब्रह्मोवाच

तत सा तु घर लब्ध्वा कामपत्नी शुभानना। जगामेष्ट तदा देशं प्रीतियुक्ता 'गतबलमा' ॥१२॥
 दग्ध्वा काम ततो विप्रा स तु देशो वृषध्वज। रेमे तत्रोमया सार्द्धं प्रहृष्टस्तु हिमाचले ॥१३॥

समस्त लोगो का उत्पीड़न करने वाले सब भगो को आवन करने वाले 'आपिया' व नियमा एव व्रता न विघ्न करने वाले 'चक्र' के रूप धारण कर रति क साथ आने वाले 'अयाचारी' और गिव को विचलित करने के इच्छक उस काम को महादेव ने अपने तीसरे नेत्र से तिरस्कार पूर्वक देखा ॥२४॥ तत्पश्चात् सहसा ज्वालाओं वाला अग्नि गिव के नेत्र से उत्पन्न होकर वस्त्र आभूषण सहित कामदेव को सहसा जलाने लगा ॥५॥ दग्ध होना हुआ काम दुःखी होकर जोर से बिलाने लगा और गिव की स्तुति करना हुआ पृथ्वी पर गिर पड़ा ॥६॥ लोकात्पन काम अग्नि से सर्वांगदग्ध होकर सहसा मूर्छित हो गया ॥७॥ उसकी पत्नी रति दुःखिन होकर करुण विलाप करने लगी। करुणावती दुःखीरिता रति गिव तथा पावनी से याचना करने लगी ॥८॥ उसकी वरण स्मिति समग्रकर करुणात्मक मवानी 'अशरीर' दुःखिन रति को आश्वासन देने हुए बोले— ॥९॥

उमा और महेश्वर ने कहा—मम। यह तो दग्ध हो गया। अब इसकी उत्पत्ति नहीं होगा। पर गरीर न होने पर भी यह तुम्हारा सब काम कर देगा। मुझे। जब विष्णु भगवान् वसुदेव के पुत्र हाने तब उनका पुत्र तुम्हारा पनि होगा। १० ११

ब्रह्मा ने कहा—तदुपरान्त कल्याणमसी कामपत्नी वरप्राप्त कर पाए रहित हा गई और प्रगल्भ होकर असीष्ट स्थान को चम् गई ॥१२॥ द्विजगण कामको दग्ध कर भगवान् 'अशरीर' हिमाचल पर प्रसन्नतापूर्वक उमा व साथ रमण करने लगे ॥१३॥ रमणाव कन्तराभा म पद्मवनाम गुहाभा म मनाहर शीला म मनकचमनवन।

१ स मु उपलक्ष्यम्। २ व वराङ्गना। ३ व मनस्विनी। ४ ल ०या। ५ अशास्य रति वि०। ५ व हिमालय।

कन्दरेषु च रम्येषु पद्मिनीषु गुहासु^१ च । निर्मलैषु च रम्येषु कर्णिकारवनेषु च ॥१४॥
 नदीतीरेषु कान्तेषु किन्नराचरितेषु च । शृङ्गेषु शैलराजस्य तडागेषु सरसु च ॥१५॥
 वनराजिषु रम्यासु नानापक्षिस्तेषु च । तीर्थेषु पुण्यतोयेषु मुनीनामाश्रमेषु च ॥१६॥
 एतेषु पुण्येषु^२ मनोहरेषु, देशेषु विद्याधरभूषितेषु ।
 गन्धर्वयक्षामरसेवितेषु, रेमे स देव्या सहितस्त्रिनेत्र^३ ॥१७॥
 देवैः सहैन्द्रैर्मुनियक्षसिद्धैर्गन्धर्वविद्याधरदैत्यमुख्यैः ।
 अन्यैश्च सर्वैर्विविधैर्वृतोऽसौ, तस्मिन्नग्रे हृष्यमवाप शम्भुः ॥१८॥
 मृत्यन्ति तत्राप्सरसः सुरेशा, गायन्ति गन्धर्वगणाः प्रहृष्टाः ।
 दिव्यानि वाद्यान्यथ वादयन्ति, केचिद्भुतं^४ 'देववरं स्तुवन्ति' ॥१९॥
 एवं स देवः स्वगणैरुपेतो, महाबलैः शक्रपमानितुल्यैः ।
 देव्याः प्रियार्थं भगनेत्रहन्ता, गिरिं न तत्याज तदा महात्मा ॥२०॥

ऋषय ऊचुः

देव्या समं तु भगवांस्तिष्ठंस्तत्र स कामहा । अकरोत् किं महादेव एतदिच्छाम वेदितुम् ॥२१॥

ब्रह्मोवाच

भगवान् हिमवच्छृङ्गे स हि देव्या. प्रियेच्छया । गणेशं विधाकारं^१ हांसं सञ्जनयन् मुहुः ॥२२॥

म, सुन्दर नदी-तटा पर, किन्नरा से सेवित पर्वतराज के शिखर पर तालाबा म, सरोवरा म मनोरम तथा नाना पक्षियों के कलरव से प्रतिध्वनित बना म पवित्र जल वाले तीर्थों म और मुनियों के आश्रमा म—मनोहर, विद्याधरो स भूपति और गणेश, यथा तथा देवराज। से सेवित पवित्र स्थाना म—सक्र के भवानी के साथ रमण किया ॥१४ १७॥
 ऊँची पर्वत पर इन्द्र आदि देवता, मुनि, यक्ष, सिद्ध, गन्धर्व विद्याधर, राक्षस एवं विविध गणा से आवृत होकर शक्र हूषित हुए ॥१८॥ [यहाँ अप्सरायें नाच करती थीं, देवता तथा गन्धर्वगण प्रसन्न होकर गान करते थे कोई दिव्य वाजे बजाते थे और कोई भुत गति स शक्र की स्तुति करने थे ॥१९॥] इस प्रकार इन्द्र और यम के तुल्य महा बलवान् अपने गणा से युक्त होकर भग देवता के नेत्र की नष्ट करने वाले महात्मा शम्भु के प्रिया के निमित्त पवन की नहीं छोड़ा ॥२०॥

ऋषियो ने कहा—नाम-नाशन भगवान् शिव न वही रहन हुए उमा की प्रसन्नता के लिए क्या किया—यह हम समझना चाहत हैं ॥२१॥

ब्रह्मा ने कहा—हिमालय के शिखर पर उमा के मनोरञ्जन के लिए भगवान् शिव अनन्य प्रकार के

‘देवीं बालेन्दुतिलको रमयश्च रराम च। महानुभावं सर्वज्ञं कामरूपधरं शुभं ॥२३॥
अयं देव्याससादेका मातर परमेश्वरी। आसीनां काञ्चने शुभ्र आसने परमावभुते ॥२४॥
अयं दृष्ट्वा सतीं देवीमगता सुररूपिणीम्। आसनेन महाहोनासम्पादयदनिदिताम् ।
आसीनां तामथोवाच मेना हिमवत प्रिया ॥२५॥

मेनोवाच

चिरस्यागमनं तेऽद्य वद पुत्रि शुभेक्षणे। दरिद्रा क्रीडन्तिस्त्व हि भर्त्रा क्रीडन्ति सङ्गता ॥२६॥
ये दरिद्रा भवन्ति स्म तवैव च निराश्रया। उभे त एव क्रीडन्ति यथा तव पति शुभे ॥२७॥

ब्रह्मोवाच

सैवमुक्ताऽयं मात्रा तु नातिहृष्टमनाभवत्। महत्या क्षमया युक्ता न किञ्चित्तामुवाच ह।
विसृष्टा च तदा मात्रा गत्या देवमुवाच ह ॥२८॥

पार्यत्युवाच

भगवन् देवदेवेश नेह वत्स्यामि भूधरे। अयं कुह ममाऽऽज्ञास भुवनेषु महाद्युते ॥२९॥

देव उवाच

सदा त्वमुद्यमाना वै मया वासार्थमेश्वरि। अयं न रोचितवती वारा वै देवि कर्हिचित् ॥३०॥

गण-नायका के साथ बार बार हास्य करते थे ॥२२॥ नाचकर तिलपायी गिव इच्छानुसार रूप धारण करने वाले कदापि समय सबन तथा विनाश हुंयवाले गण-पतिया के साथ हास्य करने उमा को प्रमुग्धित करते थे तथा स्वयं आनन्दित होते थे ॥२३॥ एक समय पावनी भुवण के स्वच्छ तथा परम अमन आसन पर बैठी हुई माना के पास गयी ॥२४॥ देव तपपात्रिणी सती के श्रेष्ठकर हिमालय की पत्नी मेगा न उस अनिय देवी को बहुमूल्य आसन पर बैठाया और कहा ॥२५॥

मेना बोली—हे क्षम मन्ना वाला पुत्र! बहुत दिनों पर तुम आई हो। वहाँ स्वामी के सम श्रेष्ठ करते करने तुम भा दरिद्र हो गई क्या? जो दरिद्र तथा आश्रयहीन होते हैं वे हा इस प्रकार श्रेष्ठ करते हैं जैसे कि तुम्हारा पति कर रहा है ॥२६-२७॥

ब्रह्मा ने कहा—माता का यह बान भुनकर उमा हर्षित न हुई। क्षमागता होने के कारण वह माना के पास कुछ नष्ट बिना होकर गकर के पास जाकर सीना। २८॥

पार्यतो ने कहा—भगवन्! हे देवदेवेश! मैं अब इस पवन पर नहीं रहेंगा। हे महाकर्ता तमाम्! मेरे लिए निभुवन म कहा दूसरा आवास-स्थान इन्द्रिय ॥२९॥

देव ने कहा—ओ! ईश्वरी! मैं तो वासस्थान के लिए तुमसे सारा कहना था पर तुम्हें तो कभी

इदानीं स्वयमेव त्वं वासमन्यत्र शोभने। कस्मान्मन्युस्यसे देवि ब्रूहि तन्मे शुचिस्मिते ॥३१॥

देव्युवाच

गृहं गताऽस्मि देवेश पितुरद्य महात्मन। दृष्ट्वा च तत्र मे माता विजने लोकभावेन ॥३२॥
आसनादिभिरभ्यर्च्य सा मामेवमभाषत। उमे तव सदा भर्ता दरिद्रं क्रीडनं शुभे ॥३३॥
क्रीडते न हि देवानां क्रीडा भवति तादृशी। यतः किल त्वं महादेव गणेशं विविधैस्तथा।
रमते तदनिष्टं हि मम मातुर्वर्षध्वज ॥३४॥

ब्रह्मोवाच

ततो देव प्रहृत्याऽऽह देवीं हासयितुं प्रभु ॥३५॥

देव उवाच

एवमेव न स देहं कस्मान्मन्युरभूत्तव। कृत्स्न्यासां ह्यवासाश्च इमं ज्ञाननिलयश्च ह ॥३६॥
अनिकेतो ह्यरण्येषु पर्वतानां गुहासु च। विचरामि 'गणनं नैवंतोऽभोजयितुं चने ॥३७॥
मा क्रुधो देवि मात्रेस्व तस्य माताऽवदत्तव। न हि मातृसमो बधुर्जन्तूनामस्ति भूतले ॥३८॥

देव्युवाच

न मेऽस्ति बधुभिः किञ्चित् कृत्यं सुरवरेश्वर। तथा कुह महादेव यथाऽहं सुखमाप्नुयाम् ॥३९॥

दूतगी जगह क्या ही नहीं। सुदरी। पवित्रहास्य बाउ। क्या बारण है कि इस समय तुम स्वयं दूसरी जगह जाह्न हो? ॥३०-३१॥

देवी ने कहा—देवा। आज मैं पूज्य पिता के घर गई थी। वहाँ जन मन मानव एवान्त स्थान में मेरी माता को मन देना। आसन आदि प्रणाल वर मेरा सत्कार करता हुई वह मुझसे इस प्रकार कहने लग — उम। मुन्दारा पति जाडा करते-करते दरिद्र हो गया है। इसलिए कि देवताओं की तरह वह क्रीडा नहीं करता। है मन्त्रेव। आप जो विविध गणा के साथ रमण करते हैं वह मर माता को बुरा लगता है ॥३२-३४॥

यहमा ने कहा—तब प्रभु स्वयं हयवर देवी को हासते हुए बोले ॥३५॥

देव ने कहा—बाबू एनी ही है इसपर बाई साय नहा है तुम्हें क्या शोध हुआ? हे पद्मशोचने। मैं पद्म पहनता हूँ नही भी कुछ पहनता हूँ 'मगान' में रहता हूँ नहीं मा बही रहता हूँ और बना म तथा पयला की गुफाओं में मग्न गणा के साथ विचरण करता हूँ। देवी। तुम माता के ऊपर काय मत करो। उमन साथ नहा है। पूर्वजन्त पर प्राणियों के लिए माता के समान कोई बधु नहीं है ॥३६-३८॥

देवी ने कहा—देवप्रप्य। मुझ बधुओं में कुछ करना नहीं है। मन्त्रदेव अब आप वही कीजिये जिनसे मुझ मुझ मिले ॥३९॥

ब्रह्मोवाच

धृत्वा स देव्या वचनं सुरेश्वरस्याः प्रियार्थे 'स्वमिरिं विहाय ।

जगाम मेरुं सुरसिद्धसेवितं', भार्यासहाय स्वगणेशच युक्तः ॥४०॥

इति श्रीआदिब्राह्मे महापुराणे स्वयम्भुऋषिसंवाद उभा-महेश्वरयोर्हिमवत्परित्यागनिरूपणं
नामाष्टात्रिंशोऽध्यायः ॥३८॥

अथैकोनचत्वारिंशोऽध्यायः

दक्षयज्ञविध्वंसनम्

ऋषय ऊचुः

प्राचेतस्य दक्षस्य कथं व्यवस्यतेऽन्तरे । 'विनाशमगमद्' ब्रह्मन् हयमेध.' प्रजापते ॥१॥

देव्या 'मन्युवृत्तं बुद्ध्वा क्रुद्धः सर्वात्मक' प्रभुः । कथं विनाशितो यज्ञो दक्षस्यामिततैजसः ॥

महादेवेन रोषाद्धे तन्नः प्रब्रूहि विस्तरात् ॥२॥

ब्रह्मा ने कहा—देवी व वचन सुनकर उसकी अमोघ सिद्धि के लिए पाकर अपने पर्वत की छोड़कर मार्ग और अपने गणों से युक्त होकर देवता तथा मित्रों से सुमेवित मेरुपर्वत पर चले गए ॥४०॥

श्री षष्ठमहापुराण में ब्रह्मा और ऋषि के संवाद प्रकरण में तिस और पार्वती के
हिमालय-त्याग निरूपण नामक अष्टोत्तवी अध्याय समाप्त ॥३८॥

अध्याय ३९

दश के यज्ञ का विध्वंस

ऋषियों ने कहा—ब्रह्मन् ! ईश्वरत्व नामक अन्तर में प्रवृत्तानुत्त प्रजापति दश का अदम्य यज्ञ कैसे विनष्ट हुआ ? देवी के क्रोध (अन्य विनाश) की जानकर क्रुद्ध सर्वात्मक प्रभु ने अमित तेजस्वी दश के यज्ञ का विनाश कैसे किया ? महादेव ने क्रोध में जो किया वह विनाशपूर्ण हम बतलाए ॥१-२॥

१ क ग रत्नपुर । २ क ०१ ह्युष्टाय सर्वसः । ३ क ०नागः कामवृद्धः । ४ ग ०दक्षमवृद्धः ।
५ क ग ०मेधप्रः । ६ ग ०इनेत्यनुः ।

ब्रह्मोवाच

वर्णयिष्यामि वो विप्रा महादेवेन वै यथा । क्रोधाद्विध्वंसितो यतो देव्याः प्रियचिकीर्षया ॥३॥
पुरा मेरोद्विजध्रेष्ठाः शृङ्गं त्रैलोक्यपूजितम् । ज्योतिःस्थलं नाम चित्रं सर्वरत्नविभूषितम् ॥४॥
अप्रमेयमनाधृष्यं सर्वलोकनमस्कृतम् । तत्र देवो गिरितटे सर्वधातुविचित्रिते ॥५॥
पर्यङ्कु इव विस्तीर्णं उपविष्टो बभूव ह । शैलराजसुता चास्य नित्यं पार्श्वस्थिताऽभवत् ॥६॥
आदित्याश्च महात्मानो वसवश्च महोजसः । तथैव च महात्मानावश्विनौ भिपजां वरौ ॥७॥
तथा वैश्रवणो राजा गुह्यकः परिवारितः । यक्षाणामीश्वरः श्रीमान् कलासनिलयः प्रभुः ॥८॥
उपासते महात्मानमुशना च महामुनिः । सनत्कुमारप्रमुखास्तथैव परमपथः ॥९॥
अङ्गिरःप्रमुखाश्चैव तथा देवपथोऽपि च । विश्वावसुश्च गन्धर्वस्तथा नारदपथंती ॥१०॥
अप्सरोगणसङ्घाश्च समाजमुरनेकशः । यवौ सुखशिवौ वाम्यूर्नानागन्धवहः शुचिः ॥११॥
सर्वलोकसुमोषेतः पुष्पवन्तोऽभवन्द्रुमाः । तथा विद्याधराः साध्याः सिद्धाश्चैव तपोधनाः ॥१२॥
महादेवं पद्मपतिं परमपासत तत्र वै । भूतानि च तयाऽन्वानि नानारूपधराण्यथ ॥१३॥
राक्षसाश्च महारोद्राः पिशाचाश्च महाबलाः । बहुरूपधरा घृष्टा नानाप्रहरणायुधाः ॥१४॥
देवस्यानुधरास्तत्र तस्युर्वश्वानरोपमाः । नन्दीश्वरश्च भगवान् देवस्यानुमते स्थितः ॥१५॥
प्रगृह्य ज्वलितं शूलं दीप्यमानं स्वतेजसा । गङ्गा च सरितां ध्रेष्ठा सर्वतीर्थजलोद्भवा ॥१६॥

ब्रह्मा ने कहा—विप्रबन्ध ! देवी का प्रिय करने की इच्छा से जैसे महादेव ने कोप सेयन का विध्वंस किया, उगका मैं सविस्तार वर्णन करूँगा ॥३॥ द्विजध्रेष्ठो ! पहले ज्योतिःस्थल नामक मेरु पर्वत का शिखर तीनों लोक से पूजित, विचित्र, सब प्रकार के रत्नों से विभूषित, मापने न बाध्य, जनसमागमगूय्य तथा समस्त लोक से नमस्कृत था ॥४॥ वही सब प्रकार के धातुओं से चित्रित पलक की तरह विस्तीर्ण पर्वत-तट पर शहर बँधत थे । उनकी बगल में गिरिराज-व्या भी नित्य बैठती थी ॥५-६॥ महात्मा आदित्यगण, महातेजस्वी वसुगण, दाना वैश्वध्रेष्ठ अश्विनीकुमार और गुह्यका से युक्त, यथा वे ईश्वर, कलासवामी तथा शुक्ति सम्पन्न श्रीमान् कुबेर उनकी उपासना करते थे ॥७-८॥ महामुनि भुज, सनत्कुमार आदि परमपि, अमिरा आदि देवपि, विश्वावसु गन्धर्व, नारद पवन और अप्सरा गण वहाँ अनेक बार आते थे ॥९-१०॥ सुख-दान्ति-द्राक्ष्य तथा गन्धवाहन पवित्र वायु, यहाँ था । वृक्ष सब ऋतुआ म होने वाले पुष्पा से समन्वित थे । विद्याधर, साध्या, सिद्ध और तपस्वीगण पद्मपति महादेव की आराधना करते थे ॥११-१२॥ नाना प्रकार के रुपा को धरकर दूसरे प्राणी, महामयकर राक्षस, बहुरूपी, घृष्ट नाना अस्त्र करने थे ॥१३-१४॥ नाना प्रकार के रुपा को धरकर दूसरे प्राणी, महामयकर राक्षस, बहुरूपी, घृष्ट नाना अस्त्र करने थे ॥१३-१४॥ यन्त्रा से युक्त तथा महाबलवान् पिशाच और अग्नि के समान शिव के अनुचर वहाँ उपस्थित रहते थे ॥१५-१६॥ अपने तेज से दीप्यमान तथा प्रज्वलित त्रिशूल का धारण कर भगवान् नन्दीश्वर भी शिव की आज्ञा पाने के लिए तैयार रहते रहते थे । द्विजध्रेष्ठो ! सब तीर्थों के जल से उत्पन्न तथा नदियाँ म श्रेष्ठ गंगा रूप धारण कर शिव

१ ग ०म् । विप्रज्यो० । २ ग ०म स० । ३ ग म विप्रावन्तु० । ४ ग गुण्यव० । १ ग ग हृष्टा ।

पर्युपासत तं देवं रुषिणी द्विजसत्तमाः। एवं स भगवांस्तत्र पूज्यमानः सुरविभिः॥१७॥
 देवंश्च 'सुमहाभागंमहादेवो' व्यतिष्ठत। कस्यचित्त्वय कालस्य दक्षो नाम प्रजापतिः॥१८॥
 पूर्वोक्तेन विधानेन 'यक्ष्यमाणोऽभ्यपद्यत। ततस्तस्य 'मखे देवाः सर्वे शक्रपुरागमाः'॥१९॥
 स्वर्गस्थानादथाऽऽगम्य' दक्षमापेदिरे तथा। ते विमानैर्महात्मानो'ज्वलद्भ्रुज्वलनप्रभाः॥२०॥
 देवस्यानुमतेऽगच्छन् गङ्गाद्वारमिति धृतिः। गन्धर्वाप्सरसाकीर्णं नानाद्रुमलतावृतम्॥२१॥
 'ऋषिसिद्धेः'परिवृतं दक्षं धर्मभूता वरम्। पृथिव्यामन्तरिक्षे "च ये च स्वर्लोकावातिनः॥२२॥
 सर्वे प्राञ्जल्यो भूत्वा उपतस्युः प्रजापतिम्। आदित्या वसवो रुद्राः "साध्माः सर्वेमरुद्गणाः॥२३॥
 विष्णुना सहिताः सर्वे आगता "यत्नभागिनः। ऊर्मपा धूमपाश्चैव आग्न्यपाः सोमपास्तथा॥२४॥
 अश्विनो मरुतश्चैव "नानादेवगणैः सह। एते चान्ये च बहवो भूतप्रामास्तयैव च॥२५॥
 जरायुजाण्डजाश्चैव तथैव स्वेदजोजिह्वदः। "आगताः "सन्निभः सर्वे देवाः"स्त्रीभिः सहस्रिभिः॥२६॥
 विराजन्ते विमानस्था दीप्यमाना इवाग्नयः"। तान् दृष्ट्वा मग्नुनाऽऽविष्टो दधीचिर्यावयमब्रवीत्॥२७॥

की उपासना में लगी रहती थी॥१५-१६॥ इस प्रकार देवर्षिगण तथा महामाग देवताओं से पूज्यमान भगवान् शिव वही रहने थे। कुछ काल बाद दक्ष नामक प्रजापति ने पूर्वोक्त विधान के अनुसार यज्ञ करना आरम्भ किया॥१७-१८॥ ऐसा मुना जाता है कि उसके यज्ञ में इन्द्र आदि देवता स्वर्ग से आकर उपस्थित हुए। जलते हुए अग्नि के समान कान्तिवाले के महाभागण शिव की अनुमति पाकर गंगा-द्वार (हरिद्वार) में पहुँचे।-॥१९-२०॥ पृथिवी, आकाश तथा स्वर्गलोकावासी—मन्त्र सब गन्धर्व तथा अप्सराओं से समन्वित, नाना वृक्ष-लताओं से आवृत, ऋषि, तथा सिद्धा में बसित और धर्मधारियों में श्रेष्ठ प्रजापति दक्ष को हाथ जोड़कर आगमिन हुए॥२१-२२॥ विष्णु सहिन् आदित्य, वसु रुद्र, माध्य और मरुद्गण—ये सब यज्ञ में भाग लेने के लिए आये॥२३॥ ऊर्मपात्र करने वाले धूम पात्र करने वाले, धी पात्र करने वाले, सोमरस पात्र करने वाले, अश्विनीकुमार, नाना देवगण, मरुद्गण—य तथा दूसरे बहुत स प्राणी—जरायुज अण्डज स्वेदज और उद्भिज्ज वही आये। सब देवगण ऋषियों तथा त्रिषया के साथ विमान में स्थित होकर अग्नि के समान दीप्यमान तथा शोभायमान होने हुए पथारे। उद्दे देगनर कोप में आविष्ट १। दधीचि न ब्रवीत्॥२४-२५॥

दधीचिरुवाच

अपूज्यपूजने चैव पूज्यानां चाप्यपूजने । नरः पापमवाप्नोति महद्वै नात्र संशयः ॥२८॥

ब्रह्मोवाच

एवमुक्त्वा^१ तु विप्रपिः पुनर्दक्षमभाषत ॥२९॥

दधीचिरुवाच

पूज्यञ्च पशुभर्तारं कस्मान्नाच्चर्चयते प्रभुम्^२ ॥३०॥

दक्ष उवाच

'सन्ति मे बहवो दद्राः शूलहस्ताः कर्पादिनः । एकादशस्यानगता नान्यं विद्मो महेश्वरम् ॥३१॥

दधीचिरुवाच

सर्वेषामेकमन्त्रोऽयं ममेशो न निमग्नितः । यथाऽहं शङ्करादुध्वं नान्यं पश्यामि दैवतम् ।
तथा दक्षस्य विपुलो यज्ञोऽयं न भविष्यति ॥३२॥

दक्ष उवाच^३

विष्णोश्च भागा विविधाः प्रदत्तास्तथा च रद्रेभ्य उत प्रदत्ताः ।
अग्रेऽपि देवा निजभागयुक्ता, ददामि भागं न तु शङ्कराय ॥३३॥

दधीचि बोले—अपूज्या के पूजन तथा पूज्या के अपूजन से मनुष्य महापाप का सागी हाता है इसमें कोई संशय नहीं ॥२८॥

ब्रह्मा ने कहा—विप्रपि इतना बड़े-बड़े फिर दक्ष से कहने लगे ॥२९॥

दधीचि ने कहा—सर्वशक्तिमान् पशुपति की पूजा क्या नहीं करते हा ? ॥३०॥

दक्ष ने कहा—म्यारह स्वाना मे प्राप्त, जटाधारी तथा त्रिशूल हाथ मे लिए अनन्त रत्न मर पात्र है मैं दूसरे महेश्वर को नहीं जानता ॥३१॥

दधीचि ने कहा—सबका एकमात्र यही कहना है कि मेरे प्रभु का निमग्नित नहीं किया गया । जिस प्रकार मैं शंकर से बड़े-बड़े किसी दूसरे देव को नहीं सम्पत्ता उसी प्रकार दक्ष का यह बृहत् यज्ञ (सम्पन्न) नहीं होगा ॥३२॥

दक्ष ने कहा—मैंने विष्णु को विविध भाग दिये, रुद्रा को दिय और दूसरे देवों ने भी अपने-अपन भाग पाये, पर मैं शंकर को यज्ञ-भाग नहीं दे सकता हूँ ॥३३॥

१ ग ० चत्वा मुनिविप्राण्युनर्वाचयाम ० । २ न विभुम् । ३ स सन्निहित ० । ४ न ० तथा नान्य विप्रहे न म ० । ५ ग ० च । एतन्मतेभाय मुक्तांशान् हवि समस्त विविचमन्तपूतम् । विष्णात्तच यस्याप्रतिवेश्य भाग न यज्ञभाग तु महेश्वराय । जगत्प्रमात्स्य दधीचि भाग विष्णोश्च नित्य विवर्ध प्रदत्तम् । तस्मादहं देववराय दद्या यन्मय भाग ।

ब्रह्मोवाच

गतास्तु देवता ज्ञात्वा शीलरजिसुता तदा । उवाच वचनं 'शर्वं देवं' पशुपतिं पतिम् ॥३४॥

उमोवाच

भगवन् कुत्र गन्तयेते देवाः शत्रुपुरोगमाः । ब्रूहि तत्त्वेन तत्त्वज्ञ संशयो मे महानयम् ॥३५॥

महेश्वर उवाच

दक्षो नाम महाभागे प्रजानां पतिरुत्तमः । हयमेधेन यजते तत्र गन्ति दिवौकसः ॥३६॥

देव्युवाच

यज्ञमेतं 'महाभाग किमर्थं' ज्ञानुगच्छसि । कौन वा प्रतिपेधेन गमनं ते न विद्यते ॥३७॥

महेश्वर उवाच

सुरैरेव' महाभागे सर्वमेतदनुष्ठितम् । यज्ञेषु मम सर्वेषु न भाग उपकल्पितः ॥३८॥

पूर्वागतेन गन्तव्यं मार्गेण वरवर्णिनि । न मे सुराः प्रयच्छन्ति भागं यज्ञस्य धर्मतः ॥३९॥

उमोवाच

भगवन् सर्वदेवेषु प्रभावाभ्यधिको गुणैः । अजेयश्चाप्यधुष्यश्च' तेजसा यशसा श्रिया ॥४०॥

अनेन तु महाभाग प्रतिपेधेन भागतः । अतीव दुःखमापन्ना धेपयुश्च महानयम् ॥४१॥

ब्रह्मा ने कहा—तब (दक्ष के यज्ञ में) नये देवताओं को जानकर गिरि-कुमारी अपने पति पशुपति शिव से कहने लगी ॥३४॥

पावती बोली—भगवन् ! ये इन्द्र आदि देवता क्यों जा रहे हैं ? हे तत्त्वज्ञ ! बतलाएँ, मुझे बड़ा संशय हो रहा है ॥३५॥

महेश्वर ने कहा—महाभाग ! दक्ष नामक उत्तम प्रजापति अस्वमेध यज्ञ करते हैं। वही ये देवता लोग जा रहे हैं ॥३६॥

देवी बोली—हे महाभाग ! इस यज्ञ में आप क्या नहीं जाते ? आपने गमन पर कौन-सा प्रतिपेध लग गया है ? ॥३७॥

महेश्वर ने कहा—महाभाग ! देवताओं ने ही यह सच किया है। किसी भी यज्ञ में मुझे भाग नहीं मिलता। धेष्ट वर्ण-जाती ! पहले क मार्ग काही अनुसरण करना चाहिये। देवता लोग यज्ञ में धर्मपूर्वक भाग मुझे नहीं देते ॥३८-३९॥

उमा ने कहा—भगवन् ! समस्त देवताओं से आप अधिक प्रभावशाली तथा गुणवान् हैं। तेज, यश और श्री में भी आप अजेय तथा अधुष्य (न दूबाने योग्य) हैं ॥४०॥ आपने वेदों के नियमों के कारण मैं बड़ी दुर्गति है,

किं नाम दान नियम तपो वा, 'कुर्यामिह येन पतिर्ममाद्य
लभेत भाग भगवान्चित्त्यो, यज्ञस्य' चेन्द्राद्यमरैर्विचित्र (भवत) म्

॥४२॥

ब्रह्मोवाच

एव श्रुवाणा भगवान् विचित्र्य, पत्नीं प्रहृष्ट क्षुभितामुवाच

महेश्वर उवाच

म वेत्ति मा देवि कृशोदराङ्गि, किं नाम युक्त वचन तपेदम्

॥४३॥

अहं विजानामि विद्यालनेत्रे, ध्यानेन सर्वे च विदन्ति सन्त

तवाद्य' मोहेन सहेन्द्रदेवा, लोकत्रय सर्वमयो विनष्टम्

॥४४॥

मामध्वरेश नितरा स्तुवन्ति, रथन्तर साम गावन्ति मह्यम्

मा ब्राह्मणा ब्रह्ममन्त्रैर्यजति, ममाध्वर्यवं कल्पयन्ते च भागम्

॥४५॥

देव्युवाच

विस्त्यसे प्राकृतयत् सर्वस्त्रीजनससवि। 'स्तौषि मर्वायसे' चापि स्वमात्मान न तस्य ॥४६॥

भगवानुवाच

नाऽऽत्मान स्तौमि देवेशि यथा त्वमनुगच्छसि। सत्सक्यामि' वरारोहे भागार्थे वरवर्णिनि ॥४७॥

मेरा शरीर काँप रहा है ॥४१॥ मैं तीन सा दान नियम या तप करूँ जिससे मेरे अचित्त तथा शक्तिमान् पति यश
म इन्द्र आदि देवताओं से भी विष्णु भाग प्राप्त करेंगे ॥४२॥

ब्रह्मा ने कहा—इस प्रकार कहत हुई द ली पत्नी को दण कर प्रसन्न भगवान् गवर बोले।

महेश्वर ने कहा—हे क्षीण बटि वाली ! देवी ! क्या तुम मुझ नहीं जानती हो ? क्या यह तुम्हारा वचन
युक्ति-मगत है ? ॥४३॥ हे विद्यालक्ष्मी ! मैं सब कुछ जानता हूँ क्योंकि योगीजन ध्यान से सब कुछ समझ लेत हैं।
आज तुम्हारे मोह के कारण इन्द्र आदि देवता महित तीनों लोक नष्ट हो जायेंगे ॥४४॥ ब्राह्मण लोग मुझ यज्ञपति
की स्तुति करते हैं मेरे लिए रथन्तर साम का गाव करते हैं तथा वेन मन्त्रों में यज्ञ करते हैं और अध्वर्यु मुझ भाग
देन है ॥४५॥

देवी ने कहा—स्त्रिया की सम्राट् साधारण मनुष्य की तरह आप अपनी बनाई करत हैं डींग हाँसत है
तथा गव करते हैं इसमें कोई सन्देह नहीं ॥४६॥

भगवान् ने कहा—हे देवताओं की स्वामिनी ! मैं अपना प्रणाम नहीं करता जैसा कि तुम समझ रहा
हो। हे स्त्री रत्न ! हे सुन्दर वन वासी ! मैं अपने भाग के लिए सृष्टि करूँगा ॥४७॥

१ क इयां मय येन विमापयस्य। २ ग ०स्य भाग ह्यपवानृचयम्। ३ स्य कालेन। ४ ग ० च-प्राप्तुं गच्छि
पुरयः सर्वम्। ५ ग स्तौति। ६ स ० वामिभूतस्तु स्वमा०। ७ क स प्रवक्ष्यामि।

ब्रह्मोवाच

इत्युक्त्वा भगवान् पत्नीमुमां प्रार्णरपि प्रियाम्। सोऽसृजद्वगवान् 'ववत्राद्भूतं क्रोधाग्निसम्भवम् ॥४८॥
तमुवाच मखं गच्छ दक्षस्य त्वं महेश्वर। नाशयाऽऽशु क्रतुं तस्य दक्षस्य मदनुजया ॥४९॥

ब्रह्मोवाच

ततो रुद्रप्रयुक्तेन सिंहवेपेण लीलया। देव्या मन्मुकृतं ज्ञात्वा हतो दक्षस्य स क्रतुः ॥५०॥
मन्मुना च महाभीमा भद्रकाली महेश्वरी। आत्मनः कर्मसाक्षित्वे तेन सार्द्धं सहानुगा ॥५१॥
स एष भगवान् क्रोधः प्रेतावासकृतालयः। घोरभद्रेति विख्यातो देव्या मन्मुप्रमार्जकः ॥५२॥
सोऽसृजद्रोमकूपेभ्य आत्मनैव गणेश्वरान्। रुद्रानुगान्गणान्रोद्रान् रुद्रवीर्यपराजमान् ॥५३॥
रुद्रस्यानुचराः सर्वे सर्वे रुद्रपराक्रमाः। ते निपेतुस्ततस्तूर्णं शतशोऽप्य सहस्रशः ॥५४॥
ततः किलकिलाशब्द आकाशं पूरयन्निव। समभूतं सुमहान् विप्राः सर्वरुद्रगणैः कृतः ॥५५॥
तेन शब्देन महता प्रस्ताः सर्वे दिवौकसः। पर्वताश्च व्यशीर्यन्त चक्रम्ये च वसुधरा ॥५६॥
महतश्च यवः क्रूराश्चक्षुभे वरुणालयः। अग्नयो वै न दीप्यन्ते न चादीप्यन्त आस्करः ॥५७॥
ग्रहा नैव प्रकाशन्ते नक्षत्राणि न तारकाः। ऋषयो न प्रभासन्ते न देवान् च दानवाः ॥५८॥
एवं हि तिमिरीभूते निर्दहन्ति गणेश्वराः। प्रभञ्जन्त्यपरे यूपान् घोरानुपाटयन्ति च ॥५९॥

ब्रह्मा ने कहा—प्राणाधिक प्रिया उमा से इस तरह कहकर भगवान् ने क्रोधाग्नि के द्वारा अपने मुख से एव भूत को उत्पन्न किया। उससे शक्र ने कहा—‘तुम दक्ष के यहां शीघ्र जाकर उससे यज्ञ का विध्वंस करो।’ ॥४८-४९॥

ब्रह्मा ने कहा—तदनन्तर रुद्र के भेदे हुए उम भूत ने लीला में सिंह का वेप धारण कर पार्वती का क्रोध जानकर दक्ष के यज्ञ को नष्ट किया ॥५०॥ क्रोध से महाभयंकर भद्रकाली महेश्वरी भी आत्मन को कर्म-साक्षी बनाकर भूत के साथ ही चल पड़ी ॥५१॥ उस बली, क्रोधघ्नी, समगानवासी तथा देवी के क्रोध को मिटाने वाले भूत का नाम भीरुमद्र था ॥५२॥ उसने अपने रोम-भूषा से रुद्र के अनुगामी, मयवर तथा रुद्रानुग पराजमी गणनायक की सृष्टि की ॥५३॥ सबके साथ रुद्रानुग पराजमी तथा रुद्र के अनुचर थे। ये सैन्धवी हजारा की संख्या में सीधे तौर से दूट पड़े ॥५४॥ विप्रवृन्द ! तब रुद्रगणा की मिलजुबारी इतनी अधिक हुई कि (उससे) आकाश भर गया ॥५५॥ उस महामण्ड से देवता डर गये, पर्वत टूटने लगे, पृथ्वी काँप उठी, वायु घूर्णा में बहने लगा, समुद्र सफुट्ट हो उठा, अग्नि घीन हो पड़ गया, गुरु, ग्रह नष्ट और तारे प्रकाश रा बिंदे और ऋषि, देव तथा दानव तमोहीन हो गए ॥५६-५८॥ इस प्रकार सर्वत्र तिमिरावृत्त हो जाने पर वे

प्रणदन्ति तथा चान्ये विकुर्वन्ति तथा परे । स्वरितं वै प्रधावन्ति वायुवेगा मनोजवाः ॥६०॥
 चूर्ण्यन्ते यज्ञपात्राणि यज्ञस्यायतनानि । क्षीर्यमाणान्यद्वयन्त तारा इव नभस्तलात् ॥६१॥
 दिव्यान्नपानभक्ष्याणां राक्षसः पर्वतोपमाः । क्षीरनद्यस्तथा चान्या घृतपायसकूर्दमाः ॥६२॥
 मधुमण्डोदका दिव्याः खण्डशर्करबालुकाः । यद्दृशान्नवहृत्यन्या गुडकुल्या मनोरमाः ॥६३॥
 उन्वाचचानि मांसानि भक्ष्यानि विविधानि च । यानिकानि च दिव्यानि लेह्यचोष्वाणि यानि च ॥६४॥
 भुञ्जन्ति विविधैर्वन्त्रैर्विलुम्पन्ति क्षिपन्ति च । रुद्रकोपा महाकोपाः कालाग्निसदृशोपमाः ॥६५॥
 भक्षयन्तोऽयं शैलाभा भीषयन्तश्च सर्वतः । क्रीडन्ति विविधकारादिचक्षिपुः सुरयोषितः ॥६६॥
 एवं गणाश्च तैर्घृणतो वीरभद्रः प्रतापवान् । रुद्रकोपप्रमुपतश्च सर्वदेवैः सुरक्षितम् ॥६७॥
 तं यज्ञमदहच्छीघ्रं भद्रकाल्याः समीपतः । चक्रुरग्ये तथा नादान् सर्वभूतभयङ्करान् ॥६८॥
 छित्त्वा क्षीरोज्ये यज्ञस्य घ्ननदन्त भयङ्करम् । ततः शक्रादयो देवा दक्षश्चैव प्रजापतिः ॥
 ऊचुः पाञ्जलयो भूत्वा कथ्यतां को भवानिति ॥६९॥

वीरभद्र उवाच

नाहं देवो न दैत्यो वा न च भोक्तुमिहागतः । नैव द्रष्टुञ्च देवेन्द्रा न च कौतूहलान्वितः ॥७०॥

गणेश्वर यज्ञमदप को जलान लगे । कोई मयानव यूपो (यज्ञस्तम्भो) को तोड़ते उखाड़ते, तो कोई अव्यक्त शब्द करते थे । कोई कुत्सित शब्द करते थे और कोई वायु तुल्य या मन तुल्य शीघ्रता से दीड़ते थे ॥५९-६०॥
 यज्ञ-पात्र चूर-चूर कर दिये गये । यज्ञ-गृह टूट कर इस प्रकार गिरे जैसे आकाश से तारे गिरते हैं ॥६१॥ (वहाँ) दिव्य अन्न, पान तथा मद्य पदार्थों की राशि पर्वत की तरह थी । दूधवी नदियाँ बह रही थी । घी तथा क्षीर रूप की बड़ बाली, मधु तथा मट्ठा रूप जल वाली और खाद तथा शक्कर रूप रेत वाली दूधरी दिव्य नदियाँ बह रही थी । छहो रसो को बहाने वाली अन्य मनोरम गुड की नहरें थी ॥६२-६३॥ छोटे-बड़े मांस तथा चाटने योग्य और चूसने योग्य विविध प्रकार की मद्य सामग्रियाँ थी ॥६४॥ (इन पदार्थों की) रुद्र वीररूपी, महावीररूपी, कालाग्नि की उपमा देने योग्य तथा पर्वतार गणेश्वर अनेक मुखों से खाते और फन्ते थे । अनेक रूपवारी गण सामग्रियों को खाते, लोंगो को डराते, क्रीडा करते तथा देवागनाभा के ऊपर प्रशेष करते थे ॥६५-६६॥ इस प्रकार गणों से युक्त, रुद्रकोप से उत्पन्न, प्रतापी वीरभद्र ने निखिल देवों से सुरक्षित उस यज्ञ की मद्रवाजी के सामने ही शीघ्र जला डाला । अतिरिक्त गणों में से कुछ तो प्राणीमान को मयानक लगने वाले सब करने लगे और कुछ यज्ञ के शिर को नाट कर भीषण चोत्तार करने लगे । तदनन्तर शक्र आदि देवता और प्रजापति दक्ष ने अजलि बाध कर पूछा कि आप कौन हैं ॥६७-६९॥

वीरभद्र ने कहा—देवश्रेष्ठो ! मैं न देव हूँ, न दैत्य हूँ, न साने ने लिए आया हूँ, न देवने के लिए आया हूँ और न मुझे कुतूहल ही है ॥७०॥ देवबृन्द ! मैं तो दक्ष के यज्ञ की नष्ट करने के लिए आया हूँ । वीरभद्र

दक्षयज्ञविनाशाय सम्प्राप्तोऽहं सुरोत्तमा । वीरभद्रेति विख्यातो रुद्रकोपाद्विनि सृत ॥७१॥
भद्रकाली च विख्याता देव्या श्रोषाद्विनिर्गता । प्रेषिता देवदेवेन यज्ञान्तिकमुपागत ॥७२॥
शरण गच्छ राजेन्द्र देवदेवमुपातिम् । वर क्रोधोऽपि देवस्य न वर परिचारक ॥७३॥

ब्रह्मोवाच

निलातोत्पादितेर्षेः पयविद्धंस्ततस्तत । उत्पतद्भिः पतद्भिश्च गृध्रेरामिषगृध्नुभिः ॥७४॥
पक्षवातविनिधूतं शिवाहतविनादितं । स तस्य यज्ञो नृपतेर्वाध्यमानस्तदा गणं ॥७५॥
आस्थाय भृगरूपं वै लभेवाभ्यपतत्तदा । तन्तु यज्ञ तयारूपं गच्छन्तमुपलभ्य स ॥७६॥
धनुरादाय बाणञ्च तदर्थमममत् प्रभु । ततस्तस्य गणेशस्य श्रोषादमिततेजसः ॥७७॥
ललाटात्प्रसृतो घोरः स्वेदविन्दुर्बभूव ह । तस्मिन्पतितमात्रे च स्वेदविन्दो तदा भुवि ॥७८॥
प्रादुर्भूतो महानग्निर्बलकालानलोपम । तत्रोदपद्यत तदा पुण्यो द्विजसत्तमा ॥७९॥
ह्रस्वोऽतिमात्रो रवताक्षो हरिच्छमभ्रविभीषण । ऊर्ध्वकेशोऽतिरोमाङ्गः शीणकर्णस्तथैव च ॥८०॥
करालकृष्णवर्णश्च रवतवासास्तथैव च । त यज्ञ स महासत्त्वोऽदहत्क्षमिवानल ॥८१॥
देवादच प्रदुता सर्वे गता भीता दिशो दश । तेन तस्मिन्विचरता विक्रमेण तदा तु वै ॥८२॥
पृथिवी ध्वजलसर्वा सप्तद्वीपा समन्तत । महाभूते प्रवृत्ते तु देवलोकभयकरे ॥८३॥

मेरा नाम है । रुद्रजीव से मेरी उत्पत्ति हुई है ॥७१॥ पार्वती के जीव से उत्पन्न भद्रकाली की भी शक्ति ने यज्ञ के समीप भेजा है । राजेन्द्र ! देव-देव उपाति की शरण न आओ ! महान् का जीव भी वरदान होता है और नीच का वरदान भी ह्रास होता है ॥७२-७३॥

ब्रह्मा ने कहा—तोड़े उठाड़े तथा इधर उधर बिखरे हुए यूपों उड़ते गिरते तथा पत्ता के धातु स बँपान मांसाभिन्नाधी गिद्धों और शृगालों के साथों द्वारा जब रुद्र गण राजा के यज्ञ में बाधा डालने लगे तब यज्ञ भृगु की रूप धारण कर आकाश में उड़ गया ॥७४-७५॥ यज्ञ की उस प्रकार जाति हुए देख कर प्रभु वीरभद्र न घनुष और बाण लेकर उसका पीछा किया ॥७६॥ जीव में उस अग्नि तजस्वी पणतापक का भस्मन से भयकर स्वेद बिन्दु टपने पड़ा ॥७७॥ द्विजप्रेत्यो ! पृथ्वी पर उस स्वेद बिन्दु का गिरत ही बाणाग्नि का समान जलता हुआ महान् अग्निरूप पुरुष उसमें उत्पन्न हुआ ॥७८-७९॥ वह अत्यन्त छाया था उसका नत्र लाल थे दाढ़ी-मूँह नीला तथा मयका थी कर्णों के नीचे और उठे थे अंगों में बहुत रोशनी थी कान लाल थे वण भयानक तथा बाण था और वस्त्र लाल था ॥८०॥ उस महाश्रीव न यज्ञ की उगी तरह जल डाला जैसे अग्नि गुप्त गुप्त की जल दता है । देवगण डर के मारे दगा दिया आ म माय मय ॥८१॥ जब वह जीव पराक्रम से विचरण करने लगा तब माता हीन महिन् पृथिवी काँप उठी ॥८२॥ देव समूह की डरान बाटे उस महाश्रीव के उत्पन्न

१ म अनाग्रशोषादि ॥ २ क परः ३ क अरेः ४ नि ॥ ५ क य अरेर्ध्वः ॥ ५ म बाणाश्च तः ॥
६ क अयगुणैरमयन्त पाः ॥ ७ क अग्निर्वाग्माय भयकरः ॥ तः ८ क अहं गतागतस्तः ॥ ९ क महाश्रीवः ।
म महाश्रीव च प्रणे दः ॥

तदा चाहं महादेवमब्रुवं प्रतिपूजयन् । भवतेऽपि सुराः सर्वे भागं दास्यन्ति वै प्रभो ॥८४॥
 क्रियतां प्रतिसंहारः सर्वदेवैश्चर त्वया । इमाश्च देवताः सर्वा ऋषयश्च सहस्रशः ॥८५॥
 तव श्रोष्ठान्महादेव न शान्तिमुपलेभिरे । यश्चैव पुरुषो जातः स्वेदजस्ते सुरर्षभ ॥८६॥
 ज्वरो नामैव धर्मज्ञ लोकेषु प्रचरिष्यति । एकीभूतस्य न ह्यस्य धारणे तेनसः प्रभो ॥८७॥
 समर्पा सकला पृथ्वी बहुधा सृज्यतमयम् । इत्युक्तः सभया देवो भागे चापि प्रकल्पिते ॥८८॥
 भगवान्मातृ तयेत्याह देवदेवः पिनाकधृक् । परा च प्रीतिमगमत्स स्वयं च पिनाकधृक् ॥८९॥
 दक्षोऽपि मनसा देवं भवं शरणमन्वयात् । प्राणापानौ समावध्य चक्षुस्थाने प्रयत्नतः ॥९०॥
 विचार्य सर्वतो दृष्टिं बहुदृष्टिरमित्रजित् । स्मितं कृत्वाऽब्रवीद्वाक्यं ब्रूहि किं करवाणि ते ॥९१॥
 धाविते च महास्थाने देवाना पितृभि सह । तमुदाचाञ्जलिं कृत्वा दसो देव प्रजापतिः ॥
 भीतः शङ्खुरचित्तस्तु सबाष्पवदनक्षः ॥९२॥

दक्ष उवाच

यदि प्रसन्नो भगवान्मयि वाऽहं तव प्रियः । यदि चाहमनुप्राप्तो यदि देवो वरो मम ॥९३॥
 यद्बुध्यं भक्षित पीतं प्राप्तितं यच्च नाशितम् । चूर्णीकृतापविद्धं च यज्ञसभारमीदृशम् ॥९४॥
 दीर्घकालेन महता प्रयत्नेन च सचितम् । न च मिथ्या भवेन्मह्य त्वत्प्रसादामहेश्वर ॥९५॥

होने पर मैंने शिव की पूजा करते हुए उनसे कहा—‘प्रभो! आपको भी सब देवता भाग देंगे ॥८३॥ ८४॥
 है समस्त देवों के ईश्वर! आप संहार को रोकिये। आप के क्रोध के कारण ये सब देवता और हजारों
 मुनि शान्ति नहीं प्राप्त कर रहे हैं। हे देवश्रेष्ठ! हे धर्मज्ञ! जो यह आपके पसीने से उत्पन्न पुरुष है यह तीनों
 श्लोक म ज्वर नाम से प्रसिद्ध होगा ॥८५-८६॥ हे प्रभो! एकहीमूत इस तेज को धारण करने में संपूर्ण पृथिवी
 समर्थ नहीं हो सकती। अतः इसको अनेक कर दीजिये ॥८७॥ जब इतना मैंने श्वर से कहा और उनका भाग भी
 ठीक कर दिया तब पिनाक नामक धनुषधारी महादेव अत्यन्त प्रसन्न हुए और मुझसे कहने लगे कि ऐसा ही होगा
 ॥८८ ८९॥ दक्ष भी मन से शिव की शरण में गया। तब भेत्तस्थान भ प्राण अपान वायु को यत्नपूर्वक रोक कर सब तरफ
 से दृष्टि हटाकर बहुदृष्टि वाले तथा बाधुजित् शिव ने मुस्कराते हुए दक्ष से कहा—‘बहिये प्रजापति मैं आपका
 क्या उपकार करूँ?’ भयभीत, सन्निकत तथा नेत्रों में आसू भरें प्रजापति दक्ष ने पितरों के साथ देवताओं
 का महान् आश्रय सुना कर हाथ जोड़कर शिव से कहा ॥९०-९२॥

दक्ष ने कहा—हे महेश्वर! यदि आप प्रसन्न हैं और मैं आपका प्रिय हूँ मुझपर आपकी कृपा
 है और आप मुझे वर देना चाहते हैं, तो जो मेरी छात्र सामग्रियाँ लायी गई तथा मट्ठ की गई और जो चिरकाल
 से महान् प्रयत्न से सचित यज्ञ-यदार्थ तोड़-ताड़ कर चुर चुर कर दिये गये वे सब मिथ्या न हो अर्थात् फिर
 मुझे प्राप्त हों ॥९३ ९५॥

१ क ग ०वतोऽपि । २ क समाधाय । ३ क चित्तस्थाने । ४ क विस्तार्य । ५ क ०रमावजि० ।

ग्रहोवाच

तथाऽस्त्वित्याह भगवान्भगनेत्रहरो हर । घर्माध्यक्षं महादेव उग्रम्बक च प्रजापति ॥९६॥
 जानुभ्यामवर्त्नी गत्वा दक्षो सत्त्वा भवद्वारम् । नाम्ना चाष्टसहस्रेण स्तुतवान्वृषभध्वजम् ॥९७॥
 इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे स्वयम्भुविसवादे दक्षयज्ञविध्वसन नामकोनचत्वारिंशो-
 शोऽध्याय ॥३९॥

अथ चत्वारिंशोऽध्यायः

दक्षकृतिशिवस्तुति-घर्णनम्

ग्रहोवाच

एष वृष्टवा तदा दक्ष 'शभोर्वीर्यं द्विजोत्तमा । प्राञ्जलिं प्रणतो भूत्वा सत्तोषुमुपघर्णमे ॥१॥

दक्ष उवाच

नमस्ते देवदेवेश नमस्तेऽयमसूवन । देवेन्द्र त्व खलश्रेष्ठ देवदानवपूजित ॥२॥

ग्रह्या ने कहा—भग नामक आदित्य के नेत्र की फोड़ने वाले शिव ने ऐसा ही सही यह कहा ।
 प्रजापति दक्ष गिवस वरप्राप्त कर पृथ्वी पर घुटने टेककर घम के अध्यक्ष तीन नेत्र से युक्त तथा वृषभध्वज
 महादेव की स्तुति करने लगा ॥९६ ९७॥

श्री ब्रह्ममहापुराण म ग्रह्या और ऋषि के संवाद प्रकरण म दक्ष-यज्ञ विध्वसन
 नामक अतागीसर्वा अध्याय समाप्त ॥३९॥

अध्याय ४०

दक्ष द्वारा शिव की स्तुति

ग्रह्या ने कहा—द्विजवर ! तमू के ऐसे पताचम की देखकर दक्ष हाथ जोड़कर मग्न हो गया वर
 उनकी स्तुति करने लगा ॥१॥

दक्ष ने कहा—हे देवदेव ! आपकी नमस्कार है । ह अर्चन नामक दैत्य को मारने वाले ! आपकी

सहस्राक्ष विरूपाक्ष त्र्यक्ष यक्षाधिपप्रिय। सर्वतः पाणिपादस्त्वं सर्वतोक्षिशिरोमुख ॥३॥
 सर्वतः श्रुतिमालोके सर्वमावृत्य तिष्ठसि। शङ्खकर्णो महाकर्णः। कुम्भकर्णोऽर्णवालम् ॥४॥
 गजेन्द्रकर्णो गोकर्णः शतकर्णो नमोऽस्तु ते। शतोदरः शतावर्तः शतजिह्व सनातन ॥५॥
 गायन्ति त्वां गायत्रिणो अर्चयन्त्यर्कमर्कणः। देवदानवगोप्ता च ब्रह्मा च त्वं शतक्रतु ॥६॥
 मूर्तिमास्त्वं महामूर्तिः समुद्र सरसां निधिः। त्वयि सर्वा देवता हि गावो गोष्ठ इवाऽऽसते ॥७॥
 त्वत्तः शरीरे पश्यामि सोममग्निजलेश्वरम्। आदित्यमथ विष्णुं च ब्रह्माणं सबृहस्पतिम् ॥८॥
 क्रिया करणकार्यं च वर्ता कारणमेव च। असत्त्वं सदसत्त्वं च तयैव प्रभवाव्य (प्य) यो ॥९॥
 नमो भवाय शर्वाय रुद्राय वरदाय च। पशूना पतये चैव नमोऽस्त्वन्धकधातिने ॥१०॥
 त्रिजटाय त्रिशिर्षाय त्रिशूलवरधारिणे। त्र्यम्बकाय त्रिनेत्राय त्रिपुरधनाय वं नमः ॥११॥
 नमश्चण्डाय भुण्डाय विश्वचण्डधराय च। दण्डिने शङ्खकर्णाय दण्डिदण्डाय वं नमः ॥१२॥
 नमोऽर्षदण्डिकेशाय दुष्काय विकृताय च। विलोहिताय घूर्माय नीलप्रोषाय वं नमः ॥१३॥
 नमोऽस्त्वप्रतिरूपाय विरूपाय शिवाय च। सूर्याय सूर्यपतये सूर्यध्वजपताय वं नमः ॥१४॥
 नमः प्रमथनाशाय वृषस्कन्धाय वं नमः। नमो हिरण्यगर्भाय हिरण्यकवचाय च ॥१५॥

नमस्कार है। देवेन्द्र। बलश्रेष्ठ। देवदानवभूजित। सहवास। विरूपाक्ष। त्रिनेत्र। कुबेर के सखा। आप सब ओर हाथ-पैर वाले हैं, सब तरफ नेत्र शिर वाले हैं, सब जगह कान वाले हैं और लोक में सबको आवृत करने स्थित हैं ॥३॥ शङ्ख के समान कर्ण वाले, महाकर्ण, धड़े के समान कर्णवाले, समुद्र में रहने वाले गजेन्द्र सदृश कर्णवाले गो सदृश कर्णवाले और सौ कर्णवाले आपको नमस्कार है ॥४॥ आप सौ उदर वाले सौ आवृत वाले सौ जिह्वा वाले तथा सनातन हैं ॥५॥ गायत्री के उपासक आपका शान करते हैं और सूर्य के उपासक सूर्य रूप में आप ही नी पूजा करते हैं। आप देव-दानवों के रक्षक, यज्ञा तथा इन्द्र हैं ॥६॥ आप मूर्तिमान् महामूर्तिमान् तथा शरीरवा भी निधि समुद्र हैं। जैसे गायें गोष्ठ (गोठ) में रहती हैं वैसे अखिल देवता आप में रहते हैं ॥७॥ आप ही से शरीर में अग्नि, अग्नि, वरुण, सूर्य, विष्णु ब्रह्मा और बृहस्पति को देवता हैं ॥८॥ आप त्रिया करण कार्य वर्ता कारण, सत्-असत् तथा उत्पत्ति प्रलय रूप हैं ॥९॥ भव, धर्म, रक्ष तथा वरद को नमस्कार है। पापपति तथा अन्धकार को नमस्कार है ॥१०॥ तीन जटा वाले, तीन शिर वाले, तीन नेत्र वाले त्रिशूलधारी तथा त्रिपुर नामक राक्षस को मारने वाले शिव को नमस्कार है ॥११॥ चण्ड, भुण्ड, विश्वचण्डधर दण्डधारण करने वाले द्युतुर्क तथा दण्डिया के दण्डरूप को नमस्कार है ॥१२॥ अर्ष दण्ड तथा वेधा वाले, दुष्क, विकृत, रक्त-शृङ्ग वर्ण वाले और नीलप्रोष को नमस्कार है ॥१३॥ अनुपमेय रूप वाले, विरूप, शिव, सूर्य, सूर्यपति एवम् सूर्यध्वज की पताकावाले को नमस्कार है ॥१४॥ प्रमथनाशन तथा वृषस्कन्ध को नमस्कार है। हिरण्यगर्भ, हिरण्यकवच, हिरण्यवृत्तचूड तथा हिरण्यरति को

हिरण्यकृतचूडाय हिरण्यपतये नमः। शत्रुघाताय चण्डाय पर्णसंघशाय च॥१६॥
 नमः स्तुताय^१ स्तुतये स्तूयमानाय च^२ नमः। सर्वाय सर्वभक्षाय सर्वभूतान्तरात्मने॥१७॥
 नमो होमाय^३ मन्त्राय शुक्लध्वजपताकिने। नमोऽनम्पाय^४ मन्त्राय नमः किलकिलाय च॥१८॥
 नमस्त्वा शयमानाय शयितायोत्थिताय च। स्थिताय धावमानाय कुञ्जाय कुटिलाय च॥१९॥
 नमो नतनशीलाय मुखवादित्रकारिणे। क्षापापहाय लुब्धाय गीतवादित्रकारिणे॥२०॥
 नमो व्येष्टाय श्रेष्ठाय बलप्रमथनाय च। उग्राय च नमो नित्यं नमश्च दशबाह्वे॥२१॥
 नमः कषाग्रहस्ताय सितभस्मप्रियाय च। विभीषणाय भीमाय भीष्मव्रतधराय च^५॥२२॥
 नानाविधतवधराय खड्गजिह्वोप्रदंष्ट्रिणे। पञ्चमासलवार्धाय तुम्बीवीणाप्रियाय च॥२३॥
 अघोरघोररूपाय घोरार्घोरतराय च। नमः शिवाय शान्तायः नमः शान्ततरमाय च॥२४॥
 'नमो बुद्धाय' 'बुद्धाय' सविभागप्रियाय च। पवनाय^६ पतङ्गाय नमः साह्यपराय च॥२५॥
 नमश्चण्डकषण्टाय घण्टाजल्पाय घण्टिने। सहस्रशतघण्टाय^७ घण्टामालाप्रियाय च॥२६॥
 प्राणदण्डाय नित्याय 'नमस्ते लोहिताय च। हूंकाराय^८ रुद्राय 'भगाकारप्रियाय च॥२७॥
 नमोऽपारधते नित्यं गिरिवृक्षप्रियाय च। नमो यज्ञाधिपतये भूताय^९ प्रस्तुताय^{१०} च॥२८॥

नमस्कार है॥१५३॥ शत्रुघाती, चण्ड तथा पर्ण पर सोने वाले को नमस्कार है॥१६॥ स्तुत, स्तुति, और स्तूयमान को नमस्कार है। सर्वे रूप, सर्वभक्षण तथा सब प्राणियों के अन्तरात्मा को नमस्कार है॥१७॥ होम, मन्त्र तथा मुख ध्वज-मंडापी वाले को नमस्कार है। अनम्प, मन्त्र तथा किलकिला शब्द करने वाले को नमस्कार है॥१८॥ सोते हुए मुक्त, उरियन स्थित, सोते हुए, मुक्त तथा कुटिल आपको नमस्कार है॥१९॥ (नतनशील, नृत्य करने वाले क्षापा नष्ट करने वाले, व्यापकपारी तथा नाना-वस्त्राना करने वाले आपको नमस्कार है॥२०॥ व्येष्ट श्रेष्ठ और बलवान् का नमस्कार है। उग्र को नित्य नमस्कार है। दशभुजाधारी को नमस्कार है॥२१॥ क्षाप व क्षपाण लिये, खड्गमन्त्रप्रिय, विभीषण, भीम, भीष्मव्रतधारी, अनेक विभूत मूल वाले, साहू के समान जिह्वा तथा शिखरदंष्ट्रा वाले, पञ्च, मास, तथा अर्ध रूप रूप, तुम्बी तथा वीणा के प्रिय, अघोररूप, घोर रूप, घोरतरंग और अघोरतरंग आपको नमस्कार है॥२२-२३॥ शिवा, शान्त तथा शान्ततरंग को नमस्कार है। बुद्ध, मुद्ग, विभागप्रिय पवन तथा पतङ्ग को नमस्कार है। साह्यपरायण रूप को नमस्कार है॥२४-२५॥ एकचण्ड घण्टा वाल घण्टा के शब्द करने वाले घण्टाधारी, हूंकार-रुद्रारा घण्टा धारण करने वाले, घण्टा की माला के प्रिय, प्राण-दण्ड रूप, नित्य तथा रक्त वर्ण वाले का नमस्कार है॥२६॥ 'हूं हूं' करने वाले, रुद्र तथा मणिकार के प्रेमी को नमस्कार है॥२७॥ गिरिवर्धन तथा पवन-बुध के प्रेमी को नित्य नमस्कार है। यज्ञधन, युक्तरूप, मंगुतरूप, यज्ञ के

१ न स्तुत्यायास्तुत्याय नमः० २ च स होमाय० ३ च भो देवभक्षणाय नमः० ४ च भीमा० ५ च भगव
 प्रहाराय० ६ च भो मुखप्रियाय नमः० ७ च बुद्धाय० ८ च लुब्धाय० ९ च पाञ्चालाय० १० च सगन्धमा०
 १० च नमो मोहि० ११ च दण्डधाराय० १२ च हंकारप्रियाय० १३ च रुद्राय० १४ च प्रस्तुताय०

घनवाहीय दान्ताय तप्याय^१ च भगाय च। नमस्तटाय^२ तटनीपतये नमः॥२९॥
 अन्नदायान्नपतये नमस्तन्नभुजाय च। नमः सहस्रशीर्षाय सहस्रचरणाय च॥३०॥
 सहस्रोद्धतशूलाय सहस्रनयनाय च। नमो बालार्कवर्णाय बालरूपधराय च॥३१॥
 नमो बालार्करूपाय कालक्रोडनकाय च। नमः शुद्धाय बुद्धाय क्षोभणाय क्षयाय च॥३२॥
 तरङ्गाङ्घ्रिकेशाय मुवतकेशाय च नमः। नमः धट्कर्मनिष्ठाय त्रिकर्मनियताय च॥३३॥
 वर्णाश्रमाणा विधिवत्पूषधर्मप्रवर्तिते। नमः श्रेष्ठाय ज्येष्ठाय नमः कलकलाय च॥३४॥
 श्वेतपिङ्गलनेत्राय कृष्णरवतेक्षणाय च। धर्मकामार्थमोक्षाय क्रयाय क्रयनाय च॥३५॥
 साह्याय साह्यमुह्याय योगाधिपतये नमः। नमो रघ्यायिरघ्याय चतुष्पयपथाय च॥३६॥
 कृष्णाजिनोत्तरीयाय व्यालयज्ञोपवीतने। ईशान^३ रुद्रसघात हरिकेश नमोऽस्तु ते॥३७॥
 ध्यम्बकायाम्बिकानाय ध्यवताव्यवत नमोऽस्तु ते। कालकामदकामघ्न^४ दुष्टोद्धृत्तनिपूतन॥३८॥
 सर्वगहितसर्वघ्न सद्योजात नमोऽस्तु ते। उन्मादनशतावतं गङ्गातोयाद्रंमूर्धन॥३९॥
 घट्पायंसद्युगावतं मेधावतं नमोऽस्तु ते। नमोऽन्नदानकर्त्रे च अन्नदप्रभवे नमः॥४०॥
 अन्नभोक्त्रे च गोप्रे च त्वमेव प्रलयानल। जरायुजाण्डजादं च स्वेदजोद्भूज एव च॥४१॥

अश्वरूप, दान्त, तपने योग्य और भग रूप को नमस्कार है ॥२८॥ तटरूप, तट से युक्त तथा नवियों के स्वामी को नमस्कार है ॥२९॥ अन्न देनेवाले अन्नपति तथा अन्नभोक्ता को नमस्कार है। सहस्र शिर वाले सहस्र चरणवाले हकार उद्धत त्रिशूल वाले तथा सहस्र नेत्र वाले को नमस्कार है ॥३०॥ बाल सूर्य के समान वर्ण वाले तथा बाल रूप धारीको नमस्कार है ॥३१॥ बालार्करूपी तथा बाल से खेलने वाले को नमस्कार है। शुद्ध बुद्ध क्षोभ रूप, क्षयरूप तरंगों से अक्षित केश वाले तथा बिल्वे केश वाले को नमस्कार है ॥३२॥ छहों बर्गों में निष्ठा रूप, शयनरूप तरंगों से अक्षित केश वाले तथा बिल्वे केश वाले को नमस्कार है ॥३३॥ छहों बर्गों में नियमित तथा वर्णाश्रमों के पूषत्-पूषत् धर्मों के प्रवर्तक को नमस्कार है ॥३४॥ श्वेत, श्रेष्ठ तथा कलकल शब्द करने वाले को नमस्कार है। श्वेत पिङ्गल नेत्र वाले रक्त हृत्पि नेत्रवाले धर्म अर्थ-जोष, श्रेष्ठ तथा कलकल शब्द करने वाले को नमस्कार है। श्वेत पिङ्गल नेत्र वाले रक्त हृत्पि नेत्रवाले धर्म अर्थ-जोष मोक्ष रूप, भारण छेदन रूप साह्य (सम्बन्धान) रूप, साह्यो में प्रयास तथा योग के अधिपति को नमस्कार है ॥३५॥ रघ्या (गली) रूप, गलियों के स्वामी, जोरहेरूप कृष्णमृग-वर्म के उत्तरीय वाले तथा सर्प के यज्ञोपवीत धारीको नमस्कार है ॥३६॥ ईशान, रुद्रों के समूह, हरिकेश, आपको नमस्कार है ॥३७॥ पार्वतीपति। व्यक्त-अव्यक्त। तीन नेत्र वाले आपको नमस्कार है। बाल। काम-दाता। कन्दर्पनाशन। दुष्टों की उद्धृति (उपद्रव) को दवाने वाले। सब बुरादमों की समाप्ति करने वाले। सद्य उत्पन्न। आपको नमस्कार है ॥३८॥ सैकड़ों उन्मादन भ्रंशने वाले। गगाजल से सिक्त मस्तक वाले। अचंचल युक्त। मेघ रूप आवतं वाले आपको नमस्कार है ॥३९॥ अन्नदान करने वाले, अन्नदाताओं के स्वामी, अन्नभोक्ता तथा रक्षक आपको नमस्कार है। आप ही प्रलयानि हैं। जरायुज अण्डज, स्वेदज और उद्भिज आप ही हैं ॥४०॥ हे देवदेवेश। चार

१ क तप्याय। २ तटप्याय वितपाय। ३ रुद्र उन्मादनभ्राय। ४ रुद्र मन्त्रवाता। ५ रुद्र उद्भूतोद्-
 दुष्टनिवारण। ६ ५ रुद्र ते। अन्नसादनय०।

त्वमेव देवदेवेश भूतंप्रामदचतुर्विधः। चराचरस्य स्रष्टा त्वं प्रतिहर्ता त्वमेव च॥४२॥
 त्वमेव ब्रह्मा विश्वेश अप्सु ब्रह्म वदन्ति ते। सर्वस्य परमा योनिः सुधांशो ज्योतिषां निधिः॥४३॥
 ऋषसामानि तयोकारमाहुस्त्वा ब्रह्मवादिनः। ह्यायि ह्यायि हरे ह्यायि हुवाहावेति वाजसकृत॥४४॥
 गायन्ति त्वां सुरश्रेष्ठाः सामगा ब्रह्मवादिनः। यजुर्मयं ऋद्धमयश्च सामाथर्वयुतस्तथा॥४५॥
 पठ्यसे ब्रह्मविद्भिस्त्वं कल्पोपनिषदां गणः। ब्राह्मणाः क्षत्रिया धैर्याः शूद्रा वर्णाश्रमादच ये॥४६॥
 त्वमेवाऽऽश्रमसंघादश्च विद्युस्तस्तनितमेव च। संवत्सरस्त्वमृतवो माता मातार्धमेव च॥४७॥
 कला फाष्ठा निमेषाश्च नक्षत्राणि युगानि च। वृषाणां ककुदं त्वं हि गिरीणां शिखराणि च॥४८॥
 सिंहो 'मृगाणां पतयस्तक्षकानन्तभोगिनाम्। क्षीरोदो ह्युदधीनां च मन्त्राणां प्रणवस्तथा॥४९॥
 वर्जं प्रहरणानां च व्रतानां सत्यमेव च। त्वमेवेच्छा च द्वेषश्च रागो मोहः शमः क्षमा॥५०॥
 व्यवसायो धूर्तिलोभः कामक्रोधो जयाजयो। त्वं गदो त्वं शरी चापो स्रद्धाङ्गो मृदुगरी तथा॥५१॥
 छेत्ता भेत्ता प्रहर्ता च नेता मन्ताऽसि नो मतः। दशलक्षणसंयुक्तो धर्मोऽयं काम एव च॥५२॥
 'इन्दुः समुद्रः सरितः पल्वलानि सरांसि च। रुतावल्गुस्तुणोपध्यः पशवो मृगपक्षिणः॥५३॥
 द्रव्यकर्मगुणारम्भः कालपुष्पफलप्रदः। अविद्विज्ञान्तिश्च मध्यश्च गायत्र्योकार एव च॥५४॥
 हरितो लोहितः कृष्णो नीलः पीतस्तथा क्षणः। क्रुद्धश्च कपिलो बभ्रुः वयोतो मच्छ (स्य) कस्तथा॥५५॥

प्रचार के प्राणी समूह भी आप ही हैं। चराचर के स्रष्टा तथा सहारक आप ही हैं॥४२॥ हे विश्वेश ! आप ही ब्रह्मा हैं। आप ही की लोग ब्रह्म कहते हैं। आप सब की उत्कृष्ट योनि तथा ज्योतिषों की निधि चन्द्रमा हैं॥४३॥ ब्रह्मवादी आप ही को ऋग्वेद, सामवेद तथा ओंकार कहते हैं। साम गाने वाले सुरश्रेष्ठ ब्रह्मवादी 'ह्यायि ह्यायि हरे ह्यायि हुवाहावेति' इमने बार-बार आप ही का गान करते हैं॥४४॥ यजुर्वेदमय, ऋग्वेदमय, सामवेदमय तथा अथर्ववेद से युक्त आप ही ब्रह्मवेत्ताओं तथा बल और उपनिषद्गणों द्वारा पढ़े जाते हैं॥४५॥ ब्राह्मण क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, वर्णाश्रम और आश्रम समूह भी आप ही हैं। आप विद्युत्, मेघघनं, वर्ष, अन्तु, मास, मासायं, कला, वाष्ठा, निमेष, नक्षत्र युग वीर्यो वे वसुध, पर्वतो वे शिखर, मृगो वे स्वामी सिंह, सर्पो म अन्त और तथा, समुद्रो मे क्षीरनमूद, मन्त्रो मे प्रणव (ओ), अस्त्रो मे वज्र और व्रतो मे सत्य हैं॥४६-४९॥ आप ही द्रष्टा, द्वेष, राग, मोह, शम, क्षमा, व्यवसाय, धर्म लोभ, काम, क्रोध जय और पराजय हैं॥५०॥ आप गदापारी, बाणपारी, धनुषपारी, गद्वांगपारी, मुद्गरपारी, छेदन करने वाले, भेदन करने वाले, प्रहार करने वाले, नेता और जानने वाले हैं—यह मेरा मत है॥५१॥ आप दम प्रचार के लक्षणों से युक्त धर्म अर्थ, काम, चन्द्रमा, समुद्र, अदिवा तापान्व, सरोवर, लता, कर्त्री, तुण ओषधियां पशु मृग, पक्षी, द्रव्य, कर्म और गुणों के आरम्भ, समय पर पञ्च-पूत देने वाले, आदि, अन्त, मध्य गायत्री, आचार, हरित-लोहित-कृष्ण-नील-पीत (रंग), क्षण, वसु बलि, बभ्रु, वज्रर और मलय हैं॥५२-५५॥

१ ग. ०या। मेम्वस्तु ४०। २ ख शूद्रवर्णस्त्रियवद। ३ ख ०यां च पक्षि वज्रवृत्तो योऽस्ति मो०। ४ ग ०ता मर्तार्मिणो गत। ५ ख दृष्टः।

सुवर्णरेता विरयातः सुवर्णश्चाप्ययो मतः । सुवर्णनाम च तथा सुवर्णप्रिय एव च ॥५६॥
स्वमिन्द्रश्च यमश्चैव वरुणो धनदोऽनलः । उत्कल्लश्चित्रभानुश्च स्वर्भानुर्भारुव च ॥५७॥
होत्रं होता च होम्यं च हुतं चैव तथा प्रभुः । त्रिसौपर्णस्तथा ब्रह्मन्यजुषा शतरश्त्रियम् ॥५८॥
पवित्रं च पवित्राणां मङ्गलानां च मङ्गलम् । प्राणश्च त्वं रजश्च त्वं तमः सत्त्वयुतस्तया ॥५९॥
प्राणोऽपानः समानश्च उदानोऽध्यान एव च । उन्मेषश्च निमेषश्च क्षुत्तृद्भृग्भा तथैव च ॥६०॥
लोहताङ्गश्च दंष्टी च महावक्त्रो महोदरः । शुचिरोमा हरिच्छुम्भुर्ध्वकेशश्चलाचलः ॥६१॥
गीतवादिन्नृत्याङ्गो गीतवादनकप्रियः । मत्स्यो जालो जलोऽज्ययो जलव्यालः कुटीचरः ॥६२॥
विकालश्च सुकालश्च दुष्कालः कालनाशनः । मृत्युश्चैवाक्षयोऽन्तश्च क्षमामाघाकरोत्करः ॥६३॥
संचर्ता वतंकश्चैव संयतंकबलाहको । घण्टाको घण्टकी घण्टी चूडालो लवणोदधिः ॥६४॥
ब्रह्मा कालाग्निवक्त्रश्चैव दण्डो मुण्डस्त्रिदण्डधृक् । क्षतुर्गुणश्चतुर्वेदश्चतुर्होत्रश्चतुर्ऽप्ययः ॥६५॥
धातुराश्रम्यनेता च धातुवर्ण्यकरश्च ह । क्षराक्षरः प्रियो पूर्तो गणंगण्यो गणाधिपः ॥६६॥
रक्तमाल्याम्बरधरो गिरीशो गिरिजप्रियः । शिल्पीशः शिल्पिनः श्रेष्ठ सर्वशिल्पिप्रवर्तकः ॥६७॥
भगनेत्रान्तकश्चण्डः पूरणो दन्तविनाशन । स्वाहा स्वधा वषट्कारो नम्रकारनमोऽस्तुते ॥६८॥
गूढव्रतश्च गूढश्च गूढव्रतनिषेधितः । तरणरतारणश्चैव सर्वभूतेषु तारणः ॥६९॥
धाता विधाता सधाता निधाता धारणो धरः । तपो ब्रह्म च सत्यं च ब्रह्मचर्यं तयाऽऽर्जवम् ॥७०॥

आप सुवर्ण के बीर्य वाले तथा सुवर्ण भी हैं। सुवर्ण आपका नाम है और आप सुवर्ण के प्रेमी हैं॥५९॥ आप इन्द्र, धर्म, वरुण, कुबेर, अग्नि, प्रफुल्लित विजमानु, स्वर्मानु, भानु, हवन, होता, होम करने योग्य, हुत तथा प्रभु हैं॥५७३॥ ब्रह्मन्। आप त्रिसोपर्ण (ऋग्वेद के दसम मण्डल के तीन विशिष्ट मन्त्र), यजुर्वेदिया के शत १३ पवित्र म पवित्र तथा मगल म मगल हैं॥५८३॥ आप प्राण, रजोगुण, तमोगुण, तथा सस्वगुण हैं॥५९॥ प्राण, अपान, समान, उदान, ध्यान, उन्मेष, निमेष, मूत्र, प्यास, जमुहारी, लाल अगवाले, पेटवाले विशाल मुख तथा पेट वाले, स्वेत रोम वाले, हरी मूत्र वाले, ऊर्ध्ववेश वाले, सतत शक्तिशाली, गाने, बजाने तथा नचने के अग्रहण, गाने-बजाने के प्रेमी, भस्त्रय, जाल, जल, अज्येय, जल-सर्प, कुटीचर विकाल, सुकाल, दुष्काल बालनाशन मृत्यु, अथाय, नाश, दामा और मायावर, उत्तर, प्रलय, वतक सर्वतक, मेघ, घण्टाबी, घण्टकी, घण्टी, शिखारुक्ता, एवमसमुद्र, ब्रह्मा, बालान्निमुख, दण्डी, मूण्ड, त्रिदण्डधारी, चारो युग, चारो वेद, चारो अग्नि चारो मार्ग चारो आयुष्यो के नेना, चारो वर्षों के विधाता, शर (माघासील), अक्षर (नागरहित), प्रिय, घूर्त, गणो मे गण्य, गणाधिप, रक्त भाला और वरुणधारी, पर्वतेन्द्र, पार्वतीप्रिय, शिल्पियों के स्वामी, गिल्पी, थोष्ट सब शिल्पो के प्रवर्तक, भग के नेत्र को मट्ट करने वाले, चण्ड, पूषा के दन्तविनाशक, स्वाहा, स्वधा, वषट्कार और नमस्कार रूप आपकी नमस्कार है॥६०-६८॥ मूत्रधारी, मूत्र, मूत्रप्रद से सेवित्र, तारण, तारण, सब प्राणिमा के तारक, धाता, विधाता, सधाता, निधाता, धारण, धर, तप, ब्रह्म, सत्य, ब्रह्मचर्य, सीमापन, मूलरत्ना, मूलदहन, भूत, भूत-मविध्य-

भूतात्मा भूतकृद्भूतो भूतभव्यभवोद्भवः। भूर्भुवः स्वरितश्चैव भूतो ह्यग्निर्महेश्वरः॥७१॥
 ब्रह्मावर्तः 'सुरावर्तः' कामावर्तः नमोऽस्तु ते। 'कामबिम्बविनिर्हन्ता' कर्णिकारस्त्रजप्रिय ॥७२॥
 गोनेता गोप्रचारश्च गोवृषेश्वरवाहनः। त्रैलोक्यगोप्ता गोविन्दो गोप्ता 'गोगर्ग' (?) एव च॥७३॥
 अखण्डचन्द्राभिमुख सुमुखो दुर्मुखोऽमुखः। चतुर्मुखो बहुमुखो रणध्वभिमुखः सदा॥७४॥
 हिरण्यगर्भः शकुनिधनदोऽध्वपतिविराट्। अधर्महा महादक्षो दण्डधारो रणप्रियः॥७५॥
 तिष्ठन्तिथरश्च स्थाणुश्च निष्कम्पश्च सुनिश्चलः। दुर्वारणो दुर्विपहो दुःसहो दुरतिक्रमः॥७६॥
 दुर्धरो दुर्वंशो नित्यो दुर्वंशो विजयो जयः। शशः 'शशाङ्कनयनशीतोष्णः क्षुत्तृपा जरा॥७७॥
 आधयो व्याधयश्चैव व्याधिहा व्याधिपश्च यः। सह्यो यज्ञमृगध्याधो व्याधिनामाकरोऽकरः॥७८॥
 शिखण्डो पुण्डरीकश्च पुण्डरीकावलोकनः। दण्डधृक्चक्रदण्डश्च रौद्रभागविनाशनः॥७९॥
 विषपोऽमृतपश्चैव सुराप क्षीरसोमयः। मधुपश्चाऽऽपश्चैव सर्वपश्च बलाबलः॥८०॥
 'वृषाङ्गराम्भो' (?) वृषभस्तथा वृषभलोचनः। वृषभश्चैव विख्यातो लोकानां लोकसंसृजः॥८१॥
 चन्द्रादित्यौ चक्षुषी ते हृदयं च पितामहः। अग्निष्टोमस्तथा देहो धर्मकर्मप्रसाधितः॥८२॥
 न ब्रह्मा न च गोविन्दः पुराणश्रवणो न च। माहात्म्य वेदितुं शक्ता याथातथ्येन ते शिवः॥८३॥
 शिवा या मूर्तयः सूक्ष्मास्ते मह्यं यान्तु दर्शनम्। ताभिर्मा 'सर्वतो रक्ष पिता पुत्रमिषौरसम्॥८४॥
 रक्ष मा रक्षणीयोऽहं तवानय मनोऽस्तु ते। भवतानुकम्पी भगवान्भवतश्चाहं सदास्त्वयि॥८५॥

वर्तमान, उद्भव, भूद्, सुवद्, स्वर, अग्नि, महेश्वर, ब्रह्मावर्त, सुरावर्त और कामावर्त रूप आपको नमस्कार है॥६९-७१॥ आप कन्दर्पनाशन, वनकचम्पा की माला के प्रेमी, गो-नेता, गो प्रचारक, गोवृषेश्वरवाहन त्रैलोक्यपरमेश्वर, गो लाम करने वाले, सरलक, गोगर्ग (?) ॥७२-७३॥ पूर्णचन्द्रमुख, सुमुख, दुर्मुख, मुखरहित, चतुर्मुख बहुमुख सदा रणतमुख ॥७४॥ हिरण्यगर्भ, शकुनि, धनद, धनपति, विराट्, अधर्मनाशन, महादक्ष, दण्डधार रणप्रिय ॥७५॥ खड़े होनेवाले, स्थिर स्थाणु, कम्परहित, निश्चल, दुर्वारण, दुर्विपनाशन, दुःसह, दुर्लभ्य ॥७६॥ दुर्धर, दुर्वंश, नित्य, दुर्धर, विजय, जय धरगोश, चन्द्रनेत्र, शीत, उष्ण, मूत्र व्यास बुद्धिपा ॥७७॥ आधि, व्याधि, व्याधिनाशन, व्याधिप (?), सह्य यज्ञरूपी मृग के लिए व्याध, व्याधिनामक, निधि अकर्ता ॥७८॥ मयूर, कमल, कमलनेत्र, दण्डधारी, चक्रदण्ड, रौद्रभागविनाशन ॥७९॥ विष पीने वाले अमृत पीनेवाले, मदिरा पीने वाले, दूध तथा सोमरस पीने वाले, मधु पीने वाले, जल पीनेवाले, सब पीने वाले, बलाबल ॥८०॥ बैला का (रामना) (?) बैल, बैल के समान नेत्र वाले, वृषभ नाम से विख्यात तथा लोच-संसृज हैं ॥८१॥ सूर्य-चन्द्रमा आपने नेत्र हैं ब्रह्मा हृदय है और अग्नि ष्टोम धर्म-वर्म से साधित शरीर है ॥८२॥ हे शिव ! ब्रह्मा, विष्णु तथा प्राचीन ऋषि कोई भी आपने माहात्म्य को यथार्थ नहीं जान सकते ॥८३॥ आपकी ओ सूर्य शिवमूर्तियाँ हैं, उनका मुझे दर्शन हो। उनसे मेरी मृत तरह रक्षा कीजिये जैसे पिता पुत्र की रक्षा करता है ॥८४॥ मेरी रक्षा कीजिये। मैं रक्षा करने योग्य हूँ। हे निगाण ! आपको नमस्कार

१ ग स्वरावर्तः । २ च ०म्बनिहन्ता अ क० । ३ ग गोमाङ्गी मार्गः । ४ रा ०रा माता-पितृ-प्रपुण्ड्रव
 गुहा ज्वरः । आ० । ५ ग ०मागावि० । ६ च वृषाङ्गराम्भो । ७ रा शत्रवः ।

यं सहस्राण्यनेकानि पुसामावृत्य बुद्धंशाम् । तिष्ठत्येव समुद्रान्ते स मे गोप्ताऽस्तु नित्यश ॥८६॥
यविनिद्रा जितशशा सत्त्वस्था समदर्शिनः । ज्योति पश्यन्ति घुञ्जान्तरमेवोपात्मने नमः ॥८७॥
समक्ष्य सर्वभूतानि युगात्ते समुपस्थिते । यं शोते जलमध्यस्थस्त प्रपद्येऽम्बुशायिनम् ॥८८॥
प्रविश्य चदन राहोर्धं सोम पिबते निशि । प्रसत्यर्कं च स्वर्भानुभूत्वा सोमाग्निरेव च ॥८९॥
अद्गुण्डमात्रा पुरुषा देहस्याः सर्वदेहिनाम् । रक्षन्तु ते च मा नित्य नित्य चाऽऽश्वायन्तु माम् ॥९०॥
येनाप्युत्पादिता गर्भा अपो भाग्यताम्रये । तेपा स्वाहा स्वधा चैव आप्नुवन्ति स्वदन्ति च ॥९१॥
येन रोहन्ति देहस्या प्राणिनो रोदयन्ति च । हर्षयन्ति न कृष्यन्ति नमस्तेभ्यस्तु नित्यशः ॥९२॥
ये समुद्रे नदीदुर्गे पर्वतेषु गुहासु च । वृक्षमूलेषु गोष्ठेषु फान्तरागहनेषु च ॥९३॥
चतुष्पयेषु रथ्यासु चतवरेषु सभासु च । हस्त्यश्वरथशालासु जीर्णोद्यानाभ्येषु च ॥९४॥
येषु पञ्चसु भूतेषु दिशासु विदिशासु च । इन्द्रार्कयोर्मध्यगता ये च चन्द्राकरश्मिषु ॥९५॥
रसातलगता ये च ये च तस्मात्पर गता । नमस्तेभ्यो नमस्तेभ्यो नमस्तेभ्यस्तु सर्वशः ॥९६॥
सर्वस्य सर्वंगो देव सर्वभूतपतिर्भव । सर्वभूतान्तरात्मा च तेन त्व न निमग्नित ॥९७॥
स्वमेव चोद्यते देव यज्ञैर्विधिपदक्षिणं । स्वमेव कर्ता सर्वस्य तेन त्व न निमग्नितः ॥९८॥

है। भगवान् भक्त के ऊपर कृपा करते हैं। मैं आपका सदा भक्त हूँ ॥८५॥ जा हारा दृष्टि वाले पुरुषा को भक्त कर समुद्र के अन्त में एकको वास करते हैं व मरी नित्य रक्षा करें ॥८६॥ जिनको ज्यातिरूप में निद्रा तथा स्वाम को जीतने वाले सत्त्व गुण में स्थित एवम समदर्शी जन देखते हैं उन योगात्मा को नमस्कार है ॥८७॥ ओ योगान्त उपस्थित होने पर सब प्राणियों का भक्षण करके जल मध्य में सोते हैं उन जलजामी को मैं प्राप्त हूँ ॥८८॥ जो राहु के मूल में प्रवेश कर रात में सोम-पान करते हैं चन्द्राग्नि तथा राहु बनकर सूर्य को ग्रस्तते हैं ॥८९॥ और सब प्राणियों के शरीर में अमृष्ट प्रमाण-रूप के रूप में वास करते हैं वे मरी नित्य रक्षा करें और मन्त्र निय समुद्र बनायें ॥९०॥ जिन्होंने जल को विभक्त करके उत्पन्न किया जिनको स्वाहा और स्वधा प्राप्त होता है तथा आस्थादन करती है और जो देह स्थित होते हुए या जल में वही लेते प्राणियों को दयात जानादि करते और स्वयं जाहृष्ट करती है और जो देह स्थित होते हुए या जल में वही लेते प्राणियों को दयात जानादि करते और स्वयं जाहृष्ट करती है ॥९१॥ ९२॥ जो समुद्रा में दुस्तर ननिया में पवना में गुफाओं में वनमला में गाण्डा में वान्तरा में वनो में चतुष्पया में नलिया में चबरा में ममात्रा में हाया घो तथा रथ की गालाओं में जीण उवातालायाम पञ्च महाभूलो में दिगाजाम विन्गिआत्रा में सूर्य-चन्द्रमा के मध्य में चन्द्र-सूर्य की क्षिरणा में और रसानागे में प्राप्त हैं तथा रसानिल से नी आगे गये हुए हैं उहे नमस्कार है उहे नमस्कार है उहे सब वार में नमस्कार है ॥९३॥ ९४॥ आप सब हैं सबगन हैं सब प्राणिवा व स्वामी हैं सब नाम वाले हैं और सब प्राणियों के अन्तरा में हैं। इस कारण मैं आपको निमग्न नही किया ॥९७॥ हे देव ! विविध दक्षिणा वांछे यत्ना व द्वारा आप ही यत्न किये जात हैं। आप ही सबके कर्ता हैं। इस कारण आपको निमग्नित नही किया ॥९८॥ अथवा हे देव !

१ सः सत्यवय स्व०। २ सः सोम तथा रविम। अ०। ३ सः हृष्यन्ति। ४ सः ०। ५ सः स्यात्तल्लन (दुर्गे)।

५ सः नित्यः।

अथवा मायया देव मोहितः 'सूक्ष्मया' तव । तस्मात्तु कारणाद्वाऽपि त्वं मया न निमग्नितः ॥१९॥
प्रसीद मम देवेश त्वमेव शरणं मम । त्वं गतिस्त्वं प्रतिष्ठा च न चान्योऽस्तीति मे मतिः ॥१०॥

ब्रह्मोवाच

स्तुत्वं स महादेवं विरराम प्रजापति । भगवानपि सुप्रीतः पुनर्दक्षमभाषत ॥१०१॥

श्रीभगवानुवाच

परितुष्टोऽस्मि ते दक्ष स्तब्धेननेन सुव्रत । बहुना तु किमुक्तेन मत्समीपं गमिष्यसि ॥१०२॥

ब्रह्मोवाच

तथैवमब्रवीद्वाक्यं त्रैलोक्याधिपतिर्भवं । कृत्वाऽऽश्वासकरं वाक्यं सर्वज्ञो वाक्यसहितम् ॥१०३॥

श्रीशिव उवाच

दक्ष बुधं न पतंगं यजविष्यन्तं प्रति । अहं ध्वजहनस्तुभ्यं दृष्टमेतत्पुराऽनघ ॥१०४॥
भूयश्च त्वं यरमिमं मत्तो गृह्णीष्व सुव्रत । प्रसन्नसुमुखो भूत्वा मर्मकाप्रमनाः धृणु ॥१०५॥
अद्वयमेव सहस्रस्य वाजपेयशतस्य वै । प्रजापते मत्प्रसादात्फलभागी भविष्यसि ॥१०६॥
वेदान्यङ्गान्युध्यस्व साष्टपयोगांश्च कृत्स्नशः । तपश्च विपुलं तप्तवा'दुद्वरं देवनाम्नवै ॥१०७॥

मैं आपकी सूत्रम माया से मोहित हो गया था । इस कारण भी मैंने आपसे निमग्नित नहीं किया ॥१९॥ हे देवेश ! प्रसन्न होकर, आप ही मेरे रक्षक हैं, गति है तथा प्रतिष्ठा है । आपके सिवाय मरा दूसरा कोई नहीं है—ऐसी मेरी धारणा है ॥१०॥

ब्रह्मा ने कहा—इस प्रकार महादेव की स्तुति करने प्रजापति विराम करने लगा । भगवान् शिव भी प्रसन्न होकर दक्ष से बोले ॥१०१॥

श्री भगवान् ने कहा—हे सुव्रती दक्ष ! मैं तुम्हारी इन स्तुति से सन्तुष्ट हूँ । मैं अधिक क्या कहूँ, तुम मेरे समीप जाओगे ॥१०२॥

ब्रह्मा ने कहा—प्रभुवन के स्वामी सर्वज्ञ धार सांख्यनादाकर तथा वाक्यसमूह रूप वाक्य इस प्रकार बोले ॥१०३॥

ब्रह्मा ने कहा—दक्ष ! यज विष्यन्तं व प्रति तुम खड मन् करने । निष्ठा । गृह्णे तुमने देना है कि तुम्हारे यज वानागर्ता मैं हूँ । फिर तुम मुझसे वर माँगोगे ॥१०४॥ सुव्रती ! प्रसन्न होकर एकाग्र मन से (मेरे वचन) सुनो ! ॥१०५॥ प्रजापति । मरी कृपा से तुम मत्स्य अद्वयम तथा सौ वाजपय यज्ञों के फलभागी होगे ॥१०६॥ छह अंगों सहित वेदों तथा सांख्य-योगों का पूर्ण ज्ञान करो । दक्ष ! देव-दानवों से दुष्काय प्रचुर रूप करो ॥१०७॥

अव्द्वेद्वादशभिर्पुङ्क्तं गूढमप्रजनिन्दितम् । यणश्चिमकृतैर्धर्मैर्वनीतं न क्वचित्तत्त्वचित् ॥१०८॥
समागतं व्यवसितं पशुपाशविमोक्षणम् । सर्वेषामाश्रमाणा च मया पाशुपतं प्रथम् ॥१०९॥
उत्पादितं दक्ष शुभ सर्वपापविमोचनम् । अस्य चीर्णस्य यत्सम्यक्फलं भवति पुष्कलम् ॥
तच्चास्तु सुमहाभाग मानसस्त्यज्यतां ज्वरः ॥११०॥

ब्रह्मोवाच

एवमुक्त्वा तु देवेशः सपत्नीकः सहानुग । अदर्शनमनुप्राप्तो दक्षस्यामिततेजसः ॥१११॥
अवाप्य च तया भागं ययौवत चोमया भवः । ज्वरं च सर्वधर्मतो बहुधा व्यभजतदा ॥११२॥
शान्तययं सर्वभूतानां शृणुष्वमयं वै द्विजा । शिखाभितापो नागानां पर्वतानां शिलाजनु ॥११३॥
अपीं तु नीलिका विद्याग्निर्मोको भुजगेषु च । खोरकः सौरभेषाणामूखरः पृथिवीतले ॥११४॥
शुनामपि च धर्मज्ञा दृष्टिप्रत्यवरोधनम् । रङ्गागतमयाश्वानां शिखोद्भेदश्च बर्हिणाम् ॥११५॥
मैत्रराजः कौकिलानां द्वेपः प्रोक्तो महात्मनाम् । जनानामपि भेदश्च सर्वेषामिति न श्रुतम् ॥११६॥
शुक्रानामपि सर्वेषां हिक्किका प्रोच्यते ज्वरः । शार्ङ्गलैवयं वै विप्राः श्रमोज्वर इहोच्यते ॥११७॥
मानुषेषु च सर्वेषां ज्वरो नामैव कीर्तितः । मरणे जन्मनि तथा मध्ये चापि निवेशितः ॥११८॥
एतन्माहेश्वर तेजो ज्वरो नाम सुदारणः । नमस्त्यजश्चैव माग्यश्च सर्वप्राणिभिरीड्यरः ॥११९॥

बाह् वषों मे सम्पन्न होने वाले बटिन मूलों द्वारा निर्दिष्ट वर्णायम विहित धर्मों से युक्त बही-बही नदी प्राप्त निमिषतः, सब आयमा को पागु-पागु से मुक्त करने वाले सब पाषा से छुड़ाने वाले तथा पवित्र पागुपत्र नामक धन को देने उत्तम किया है । महानाग ! इस वृत्त का जा पर्याप्त उत्तम फल है, यह तुम्हें मिलेगा । तुम मन म पीडा मत करो ॥१०८-११०॥

ब्रह्मा ने कहा—इतना बहू बर पत्नी और अनुचर सहित महेश्वर अमित्र तेजस्वी दक्ष के दृष्टि-रूप में बहिर्भूत हो गए ॥१११॥ पार्वती सहित सब धर्मों के ज्ञाना निव अपना माय जैसा कि पहन रहा गया है, प्राप्त कर ज्वर का अनेक नागा म घाट दिया ॥११२॥ द्विजगण ! धर्म के ज्ञानात्रा ! प्राणामात्र की दान्ति के लिए अब आप सुनिए : नागा का शिखाशिखा, पर्वत का शिखाजनु, जल का नीलिका, अपीं का निर्मोह या पाति का खोरक, पृथ्वी का खोरक, पुष्पा का दृष्टिप्रत्यवरोध पाशा का रङ्गागत, मयूरा का शिखाभेद, बायणों का मैत्रराज, महात्मात्रा का द्वेप, व्यक्तिना का भेद, राजा का हिक्किका और बाघा का श्रम नामक ज्वर कहा जाता है ॥११३-११७॥ सबका श्रमिण । मनुष्या में यह ज्वर नाम वही प्रविष्ट है, जो मरणकाल, जन्मकाल तथा मध्य मे भी प्रवेश करता है ॥११८॥ अथर्व ज्वर नाम मे प्रविष्ट यह निव का सब अस्तिव प्राणिमा मे

१ ग विरामम् । गतांतरम् ० । २ य ओमेषम् । ३ य अयायना क्रो म० । ४ य परम् । ५ य परम् । ६ य दक्षिणम् । ७ य अथा समोक्षी ज्वर उच्यते ० । ८ न धर्मता ।

इमां ज्वरोत्पत्तिमदीनमानसः, पठेत्सदा यः सुसमाहितो नरः

विमुक्तरोगः स नरो मुदायुतो, लभेत कामाश्च ययामनीर्यितान्

॥१२०॥

दक्षप्रोक्तं स्तवं चापि कीर्तयेद्यः शृणोति वा । नाशुभं प्राप्नुयात्किंचिद्दोषमायुरवाप्नुयात् ॥१२१॥

यथा सर्वेषु देवेषु वरिष्ठो भगवान्भवः । तथा स्तवो वरिष्ठोऽयं स्तवानां दक्षनिर्मितः ॥१२२॥

यशःस्वर्गसुरैश्च यो वित्तादिज्यकाडक्षिभिः । शतैस्तव्यो भक्तिमात्स्याय विद्याकामैश्च यततः ॥१२३॥

व्याधितो दुःखितो दोनो नरो यस्तो भयादिभिः । राजकार्यनियुक्तो वा मुच्यते महतो भयात् ॥१२४॥

अनेनैव च देहेन गणानां च महेश्वरात् । इह लोके सुखं प्राप्य गणैर्दुःखं जायते ॥१२५॥

न यश्चान पिशाचा वा न नागान विनायकाः । कुर्युर्विघ्नं गृहे तस्य यत्र संस्तूयते भवः ॥१२६॥

शृणुयाद्वा इदं तारो भवत्याय भवभाविता । पितृपक्षे भर्तृपक्षे पूज्या भवति चैव ह ॥१२७॥

शृणुयाद्वा इदं सर्वं कीर्तयेद्वाऽप्यभोक्षणैः । तस्य सर्वाणि कार्याणि सिद्धिं गच्छन्त्येविघ्नतः ॥१२८॥

मनसा विनित्तं यच्च यच्च यात्राऽप्युदाहृतम् । सर्वे संपद्यते तस्य स्तवस्यास्यानुकीर्तनात् ॥१२९॥

देवस्य सगुहस्याथ देव्या मदीश्वरस्य च । बलिं विभज (भाग) तः धृत्वा दमेन नियमेन च ॥१३०॥

स्ततः प्रयुक्तो गृह्णीयात्प्रामाण्याशु यथाक्रमम् । इत्सितेत्सितेभ्योऽप्यर्थांश्चामान्भोगांश्च मानवः ॥१३१॥

भुतश्च स्वर्गमाप्नोति स्त्रीसहस्रसमावृतः । सर्वकामसुयुक्तो वा युवतो वा सर्वपातकैः ॥१३२॥

आदरणीयं तथा नमस्कार करने योग्य है ॥११९॥ जो मनुष्य सावधान होकर दीनता रहित मन से इस ज्वरोत्पत्ति का सदा पाठ करेगा, वह मनुष्य रोग-मुक्त तथा प्रीतियुक्त हो कर यद्येप्सित कामनाओं की प्राप्ति करेगा ॥१२०॥

दक्ष के द्वारा कथित स्तव का जो कीर्तन या श्रवण करेगा, उसे किसी प्रकार का अशुभ नहीं होगा और वह दीर्घायु प्राप्त करेगा ॥१२१॥ जैसे सब देवा मे भगवान शंकर श्रेष्ठ है वैसे सब स्त्रीओं मे दक्ष निर्मित यह स्तव श्रेष्ठ है ॥१२२॥ यश, स्वर्ग, देव विभूति, वित्त तथा जय के अभिलाषियों का भक्तिपूर्वक इस स्तव का पाठ करना चाहिए । विद्या चाहने वाला का तालन से इसका पाठ करना चाहिए ॥१२३॥ (इस स्तव के पाठ से) व्याधि-

पीडित, दुःखपीडित, दोन, भय आदि से ग्रस्त, राज कार्य मे नियुक्त मनुष्य महामय से मुक्त होता है और इसी देह से गणा का ईश्वर बन कर तथा इस लोक मे सुख प्राप्त कर गण-राज हो जाता है ॥१२५॥ न यश, न पिशाच, न नाग, न विनायक ही उस घर मे विघ्न करते है, जहाँ शिव की स्तुति की जाती है ॥१२६॥ जो स्त्री शिव मे मन लगा कर भक्ति से इस स्तव को सुनती है, वह पिता के घर तथा पति के यहाँ भी सम्मानित होती है ॥१२७॥ जो इसका बार-बार कीर्तन या श्रवण करेगा, उसके सब कार्य बिना विघ्न के सिद्ध हो जायेंगे ॥१२८॥ इस स्तव के कीर्तन से मन से चिन्तित या वाणी से कथित सब काम सिद्ध हो जाते है ॥१२९॥ दम तथा नियम से शिव, कात्तिकेय, पार्वती और मन्दीश्वर मे अलग अलग बलि चढ़ा कर शीघ्र ही कमानुसार नामों के ग्रहण करने से मनुष्य यथामिलपित कामनाओं तथा भोगों को प्राप्त करता है और भस्मे पर हजारों स्त्रियों से आवृत होकर स्वर्ग प्राप्ति करता है ॥१३०-१३१॥

मनुष्य सब कामनाओं से युक्त हो या सब पापों से युक्त हो पर दक्षकृत स्तव का पाठ करने से सब पापों

पठन्वक्ष्यते स्तोत्रं सर्वपापं प्रमुच्यते । मृतश्च गणसायुज्यं पूज्यमानः सुरासुरं ॥१३३॥
 धृषेण विनिपुवतेन विमानेन विराजते । अभूतसत्त्ववर्षायां ह्रस्वानुचरो भवेत् ॥१३४॥
 इत्याह भगवान्ध्यासः पराशरस्तु प्रभु । नैतद्वेदयते कश्चिन्नैतच्छ्राव्यं च कस्यचित् ॥१३५॥
 श्रुत्वेन परमं गुह्यं येऽपि स्युः पापयो नय । चेऽस्याः स्त्रियश्च शूद्राश्च ह्रस्वलो कमवाप्नुयुः ॥१३६॥
 ध्यावयेद्यश्च विप्रैर्मयः सदा पर्वसु पर्वसु । ह्रस्वलो कमवाप्नोति द्विजो वं नात्र सशयः ॥१३७॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे स्वयंभुविसंवादे दक्षस्तवनिरूपणं नाम चत्वारिंशोऽध्यायः ॥४०॥

अथैकचत्वारिंशोऽध्यायः

एकाम्रकक्षेत्रमाहात्म्यं कथनम्

लोमहर्षण उवाच

श्रुत्वा वै मुनिध्रेष्ठा यथा पापप्रणादिनीम् । ह्रस्वोद्योद्भवया पुण्या व्यासस्य धृतो द्विजा ॥१॥
 पारंगमाश्च तथा शीघ्रं क्रोधं शमीशच दुःसहम् । उत्पत्तिं योरभद्रस्य भद्रकाल्याश्च सभबन्धुम् ॥२॥

हे मुनिव्रत ! जानता है मरन पर मुर जसुरो म पुनित हाते हुए गण सायुज्य प्राप्त करता है वृष-मुनि विमान पर विमानता है और महाप्रणय तब रत्न का अनुचर होता है ॥१३२ १३४॥ एसा पराशर-मुनि भगवान् ध्यास ने कहा है । इस वर ही नहीं जानता है यह निनी का नहीं मुनाता चाहिए ॥१३५॥ जै वर ही भी पापयानि वैश्य स्त्री तथा गूढ़ इन मुनेगे व ह्रस्वादि का प्राप्त करेगे । जै द्विज पवकान म ब्राह्मण का यह स्वान मुनाता है उसे निगदेह निवर्तक भी प्राप्ति होगी है ॥१३६ १३७॥

श्रीब्रह्ममहापुराण म ब्रह्मा और मुनि के संवाद प्रकरण य दक्षस्तुति निरूपण नामक चत्वारिंशो अध्याय समाप्त ॥४०॥

अध्याय ४१

एकाम्रक क्षेत्र का माहात्म्य-कथन

लोमहर्षण ने कहा—मुनिवर ! इस प्रकार रत्न काय से उत्पन्न पापनाशिनी पवित्र वर का वर एतम् पारंगी के शीघ्र नाम के दमक काय औरमद तथा भद्रकाली की उत्पत्ति इस-यन विनाग मार

दक्षयज्ञविनाशं च वीर्यं शंभोस्तथाऽद्भुतम् । पुनः प्रसादं देवस्य दक्षस्य सुमहात्मनः ॥३॥
 यज्ञभागं च रुद्रस्य दक्षस्य च फलं क्रतोः । हृष्टा बभूवुः संप्रीता विस्मितश्च पुनः पुनः ॥४॥
 पप्रच्छुश्च पुनर्व्यासं 'कथाशेषं' तथा द्विजाः । वृष्टः प्रोवाच तान्व्यासः क्षेत्रमेकाम्रकं पुनः ॥५॥

व्यास उवाच

ब्रह्मप्रोक्तां कथां पुण्यां श्रुत्वा तु ऋषिपुंगवाः । प्रशशंसुस्तदा हृष्टा रोमाञ्चिततनूह्वयः ॥६॥

ऋषय ऊचुः

अहो देवस्य माहात्म्यं त्वया शंभोः प्रकीर्तितम् । दक्षस्य च सुरश्रेष्ठ यज्ञविध्वंसनं तथा ॥७॥
 एकाम्रकं क्षेत्रवरं वक्तुमर्हसि सांप्रतम् । श्रोतुमिच्छामहे ब्रह्मन्परं कीर्तुहर्लं हि न ॥८॥

- व्यास उवाच

तेषां तद्वचनं श्रुत्वा लोकनायश्चतुर्मुखः । प्रोवाच शंभोस्तत्क्षेत्रं भूतले दुष्कृतच्छदम् ॥९॥

ब्रह्मोवाच

शृणुध्वं मुनिशार्दूला प्रवक्ष्यामि समासतः । सर्वपापहरं पुण्यं क्षेत्रं परमदुर्लभम् ॥१०॥
 लिङ्गकोटिसमायुतं वाराणसीसनं शुभम् । एकाम्रकेति विख्यातं तीर्थाष्टकसमन्वितम् ॥११॥
 एकाम्रवृक्षस्तत्राऽऽसीत्पुरा कल्पे द्विजोत्तमाः । नाम्ना तस्यैव तत्क्षेत्रमेकाम्रकमिति श्रुतम् ॥१२॥

के अद्भुत पराक्रम, महात्मा दक्ष के ऊपर पुनः शिव की कृपा, रुद्र के यज्ञ-भाग तथा दक्ष के यज्ञ-फल को व्यास से सुन कर द्विजगण हृष्ट वृष्ट तथा विस्मित हो कर फिर व्यास से कथा का अवशिष्ट भाग पूछने लगे ॥१-५॥

व्यास ने कहा—ब्रह्मा द्वारा कही गई पवित्र कथा को सुन कर हर्षित तथा रोमाञ्चित शरीर होकर ऋषिगण प्रशंसा करने लगे ॥६॥

ऋषियो ने कहा—अहो! देवश्रेष्ठ! आपने शम्भु का माहात्म्य तथा दक्ष का यज्ञ-विध्वंस वर्णन किया। अब एकाम्रके क्षेत्र का वर्णन कीजिए। ब्रह्मन्, हम सुनना चाहते हैं, हमें बड़ी उत्सुकता है ॥७-८॥

व्यास ने कहा—उनके इस वचन को सुनकर लोकपति ब्रह्मा भूतल पर पापनाशन शम्भु के उस क्षेत्र के बारे में कहने लगे ॥९-१॥

ब्रह्मा ने कहा—मुनिवर्य! मुनिये, मैं संक्षेप से कहूँगा। सब पापों को हरने वाला, परम दुर्लभ, करोड़ा लिंगों से युक्त, वाराणसी के समान शुभदायक तथा पवित्र एकाम्रक नाम से प्रसिद्ध तीर्थ आठ तीर्थों से युक्त है ॥१०-११॥ द्विजवर! पहले वहाँ एक वाम का वृक्ष था। उसी के नाम पर वह क्षेत्र

हृष्टपुष्टजनाकीर्णं नरनारीसमन्वितम् । विद्वांसग (शिवद्वयं) णभूयिष्ठं धनधान्यादिसंयुतम् ॥१३॥
 गृहोपुरसंवाधं त्रिकचाद्धारभूयितम् । नानावर्णवस्त्रमाकीर्णं नानारत्नोपशोभितम् ॥१४॥
 पुराट्टालकसंयुक्तं रथभिः समलंकृतम् । राजहंसनिभैः शुभ्रैः प्रासादेरुपशोभितम् ॥१५॥
 मार्गगद्गारसंयुक्तं सितप्राकारशोभितम् । रक्षितं शस्त्रसंघैश्च परिखाभिरलंकृतम् ॥१६॥
 सितरत्नैस्तथा पीतैः कृष्णश्यामैश्च वर्णकैः । समीरणोद्धताभिश्च पताकाभिरलंकृतम् ॥१७॥
 नित्योत्सवप्रमुदितं 'नानावादित्रनिस्वनैः । वीणावेणुमदङ्गैश्च क्षेपणोभिरलंकृतम् ॥१८॥
 देवतायतनैर्दिव्यैः 'प्राकारोद्यानमण्डितैः । पूजाविचित्ररचितैः सर्वत्र समलंकृतम् ॥१९॥
 स्थियः प्रमुदितास्तत्र दृश्यन्ते तनुमध्यमाः । 'हारैरलंकृतप्रोवाः पद्मपत्रायतक्षणाः ॥२०॥
 पीनोन्नतकुचाः श्यामाः पूर्णचन्द्रनिभाननाः । स्थिरालकाः सुकपोलाः काञ्चीनूपुरनादिताः ॥२१॥
 सुकोणयुग्माश्च जघनाः । कर्णस्तरायतलोचनाः । सर्वलक्षणसंपन्नाः । सर्वाभरणभूयिताः ॥२२॥
 दिव्यवस्त्रधराः शुभ्राः काश्चित्काञ्चनसनिभाः । हंसवारणगामिन्यः क्रुचभारावनामिताः ॥२३॥
 दिव्यगन्धानुलिप्ताङ्गाः । कर्णभरणभूयिताः । मदालसाश्च सुशोभ्यो नित्यं प्रहसिताननाः ॥२४॥
 ईषद्विस्पष्टदशना विम्बोष्ठा मधुरस्वराः । ताम्बूलरञ्जितमुखा विदाधाः प्रियदर्शनाः ॥२५॥

एकाग्रक नाम से विख्यात ॥१३॥ हृष्ट-पुष्ट जना से प्रपूर्ण, नर-नारिया से समन्वित, विद्वद्गणा से परिपूर्ण, पद्म धाय आदि से सयुक्त ॥१४॥ गृह तथा पुरद्वारों से सकीर्ण, त्रिकोण द्वारों से भूयित, अनक व्यापारिया से व्याप्त, नाना रत्ना से सुशोभित ॥१५॥ नगर की अट्टालिकाया से संयुक्त, रथ वाली से अलंकृत, राजहंस के समान उज्ज्वल प्रासादों से शोभित ॥१६॥ मार्ग-द्वारों से संयुक्त, रत्न चहारदीवारिया से शोभित, शस्त्रसमूहों से रक्षित, श्यामा से अलंकृत ॥१७॥ वायु द्वारा चबल और सफेद, लाल, पील, कृष्ण तथा श्याम वर्ण वाली पताकाओं से अलंकृत ॥१८॥ नित्य उत्सवों से प्रमुदित, अनक प्रकार के वाद्या—वीणा, वेणु, मृदंग और शङ्खों के साथी से अलंकृत ॥१९॥ और चहारदीवारी युक्त उद्यानों से मण्डित तथा पूजा की विविध रचनाओं से युक्त देवालया से भूयित है ॥२०॥ वहाँ शीर्ष कटिवाली, युक्त-दिव्य हारा से अलंकृत प्रीवा वाली, कमलशोभना ॥२०॥ स्पूल तथा उन्नत स्तनों वाली, श्यामा, पूर्णचन्द्र के समान मुख वाली, स्थिर केस वाली, सुन्दर बपाल वाली, करपनी और नूपुर वा दण्ड करने वाली ॥२१॥ सुन्दर भेषवाली, सुन्दर अघा वाली, कानों तक लम्बी आँखों वाली, सब लक्षणों से संपन्न, सब भूषणों से भूयित ॥२२॥ दिव्यवस्त्रधारिणी, गौरवर्णा, गुर्वर्ण-समान वर्ण वाली, हंस तथा हाथी के समान चाल वाली, स्तन के मार से झुकी हुई ॥२३॥ दिव्य गन्धा से लिप्त अंग वाली, कानों के गहनों से भूयित, मन्द से अलसगी हुई, सुन्दर नितम्ब वाली, सदा हंसमुख ॥२४॥ निजिचु स्पष्ट दाँता वाली, विम्बोष्ठी, मधुर स्वर वाली, ताम्बूली से रञ्जित मुख वाली, चतुर, प्रिय-

१ ग ० नवादितम् । वी० । २ ख ० कारीर्यानुय० । ३ ग हावमाधानत० । ४ ख ० न्द्रसमान० ।
 ५ ख शुभ्रप्यो ।

सुभगाः प्रियवादिन्यो नित्यं यौवनगतिताः । दिव्ययस्त्रधराः सर्वाः सदा वारिजमण्डिताः ॥२६॥
 श्रीढन्ति ताः सदा तत्र स्त्रियश्चाप्सरसोपमाः । स्वे स्वेगृहे प्रमुदिता दिवा रात्रौ वराननाः ॥२७॥
 पुरुषास्तत्र दृश्यन्ते रूपयौवनगविताः । सर्वलक्षणसंपन्नाः सुमृष्टमणिकुण्डलाः ॥२८॥
 ब्राह्मणाः क्षत्रिया वंश्याः शूद्राश्च मुनिसत्तमाः । स्वधर्मनिरतास्तत्र निवसन्ति मुधामिकाः ॥२९॥
 अन्याश्च तत्र तिष्ठन्ति वारमुख्याः मुलोचनाः । घृताक्षीमेनकातुल्यास्तथा समतिलोत्तमाः ॥३०॥
 उर्वशीसदृशाश्चैव विप्रचित्तिनिभास्तथा । विश्वाचीसहजन्माभाः प्रम्लोचासदृशास्तथा ॥३१॥
 सर्वास्ताः प्रियवादिन्यः सर्वा विहसिताननाः । कलाकौशलसंयुक्ताः सर्वास्तः । गूणसंयुताः ॥३२॥
 एव पश्यस्त्रियस्तत्र नृत्यगीतविशारदाः । निवसन्ति मुनिधेष्ठाः सर्वस्त्रीगूणगविताः ॥३३॥
 प्रेक्षणाक्षपकुञ्जराः सुन्दर्यः प्रियदर्शनाः । न रूपहीना दुर्वृत्ता न परद्रोहकारिकाः ॥३४॥
 यासां कटाक्षपातेन मोहं गच्छन्ति मानवाः । न तत्र निर्धनाः सन्ति न मूर्खा न परद्रिपः ॥३५॥
 न रोगिणो न मलिना न क्रूर्या न मायिनः । न रूपहीना दुर्वृत्ता न परद्रोहकारिणः ॥३६॥
 तिष्ठन्ति मानवास्तत्र क्षेत्रे जगति विश्रुते । सर्वत्र सुखसंचारं सबंसत्सुखावहम् ॥३७॥
 'मानाजनसमाकीर्णं सर्वसत्स्यसमन्वितम् । कर्णिकारंश्च पनसंश्चम्पकं नागिकेसरैः ॥३८॥
 पाटलाशोकबकुलैः 'कपित्थैर्बहुलैर्धवैः । चूलनिम्बकवम्बैश्च तथाऽप्यं पुष्पजातिभिः ॥३९॥
 नीपकैर्धवलैर्विरलैस्ताभिश्च विराजितम् । शालैस्तालैस्तमालैश्च नारिकेलैः शुभाञ्जनैः ॥४०॥

दर्शना ॥२५॥ सौभाग्यवती, प्रियवादिनी, नित्य यौवन से गवित और सुवरिणा स्त्रियां दीक्षती हैं ॥२६॥
 अप्सराओं के समान वे श्रेष्ठ स्त्रियां दिनरात अपने अपने घरों में हर्ष से क्रीडा करती रहती हैं ॥२७॥
 वहाँ रूप यौवन-गवित, सर्वलक्षण-संपन्न तथा सुन्दर मणि-कुण्डलों से युक्त पुरुष देखे जाते हैं ॥२८॥ मुनिवर्ग,
 स्वधर्मपरायण अत्यन्त धार्मिक ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र वही वास करते हैं ॥२९॥ वहाँ और भी
 घृताक्षी, मेनका, तिलोत्तमा, उर्वशी, विप्रचित्ति, विश्वाची तथा प्रम्लोचा तुल्य सुन्दर नेत्र वाली वैश्याएँ रहती
 हैं ॥३०-३१॥ वे सब प्रियवादिनी, हास्ययुक्त मुख वाली, कला-कौशल सम्युक्त तथा सर्वगुण-सम्पन्न हैं ॥३२॥
 मुनिवर्ग । इस प्रकार नृत्य-गीत विशारद, समस्त स्त्रीगुणों से गवित, ताकने तथा बातचीत करने में कुशल, प्रिय
 दीखने वाली, सुन्दरी गणिकार्ये वहाँ भ्रष्टा हैं, जो न रूप से हीन, न दुराचारिणी और न दूसरे से द्रोह
 करने वाली हैं, जिनके कटाक्षपात से ही मनुष्य मुग्ध हो जावे हैं ॥३३-३४॥ वहाँ न निर्धन, न मूर्ख,
 न परद्रोही, न रोगी, न मलिन, न क्रूर, न मायाकारी, न रूपहीन और न दुराचारी मनुष्य रहते हैं
 ॥३५-३६॥ इस जगद्दिव्यामक्षत्र में सब जगह सुख का संचार है, सब जीवों को सुख ही मुक्त होता है ॥३७॥
 वह क्षेत्र अनेक प्रकार के मनुष्या से व्याप्त, सब तरह के जनों से समन्वित, वनकम्पा, कटहल, चम्पा, नाग-
 वैसर ॥३८॥ पाटला, अशोक, मौलसिरी, कैया, आम, नीम, बदम तथा दूसरी पुष्प जातिया ॥३९॥
 कदम्ब, धव, खैर और लताओं से विराजित, साक्षु, ताल, तमाल, नारियल, सहजान ॥४०॥ अनृत, समर्पण,

अर्जुनः समपर्णेश्च कोविदारः [सपिप्पलः । लकुचः सरलैर्लोभ्रैर्हिन्तालैर्देवदारुभिः ॥४१॥
 पलशैर्मूचकुन्दैश्च पारिजातः सकुब्जकैः । कदलीवनखण्डैश्च जम्बूपागफलैस्तथा ॥४२॥
 केतकीकरवीरैश्च अतिमुक्तेश्च किशुकैः । मन्दारकुन्दपुष्पैश्च तयाज्यैः पुष्पजातिभिः ॥४३॥
 नानापक्षितैः सेव्यैरुद्यानैर्नन्दनोपमैः । कलभारानतैर्वृक्षैः सर्वैर्तुकुसुमोदकरैः ॥४४॥
 चकोरैः शतपत्रैश्च भृङ्गराजैश्च कोकिलैः । कलविड्ममयूरैश्च प्रियपुत्रैः शकैस्तथा ॥४५॥
 जीवजीवकहारोतिंश्चातकैर्बनवेष्टितैः । नानापक्षिगणैश्चान्यैः कूजदिभर्मघूरस्वरैः ॥४६॥
 दीपिकाभिस्तडागैश्च पुष्करिणीभिश्च वापिभिः । नानाजलाशयैश्चान्यैः पद्मिनीखण्डमण्डितैः ॥४७॥
 कुमुदैः पुण्डरीकैश्च तया नीलोत्पलैः शुभैः । कादम्बैश्चक्रवाकैश्च तथैव जलकुक्कुटैः ॥४८॥
 कारण्डवैः प्लवहैस्तथाज्यैर्जलचारिभिः । एवं नानाविधैर्वृक्षैः पुष्पैर्नानाविधैर्वरैः ॥४९॥
 नानाजलाशयैः पुष्पैः शोभितं तत्समगततः । आस्ते तत्र स्वयं देवः कृत्तिवासा वृषध्वजः ॥५०॥
 हिताय सर्वलोकस्य भुवितभुवितप्रदः शिवः । पृथिव्यां यानि तीर्थानि सरितश्च सरासि च ॥५१॥
 पुष्करिण्यस्तडागतानि वाप्यः कूपाश्च सागराः । तेभ्यः पूर्वं समाहृत्य जलविन्दून्पृथक्पृथक् ॥५२॥
 सर्वलोकहिताचार्यं ह्यहः सर्वसुरैः सह । तीर्थं बिन्दुसरो नाम तस्मिन्क्षेत्रे द्विजोत्तमाः ॥५३॥
 धकार ऋषिभिः सार्धं तेन बिन्दुसरः स्मृतम् । अष्टम्यां बहुले पक्षे मागशीर्षे द्विजोत्तमाः ॥५४॥

बचनार, पीपल, बड़हल, सरल, लोभ्र, हिन्ताल, देवदारु ॥४१॥ पलाश, मुकुन्द, पारिजात, कुब्ज, कदलीवन-
 खण्ड, जामुन, सुपारी ॥४२॥ केतकी, करवीर, अतिमुक्त, पलाश, मन्दार, कुन्द तथा दूसरी पुष्प-जातियो ॥४३॥
 नाना पक्षियो के शब्दों, नन्दनवन के समान सेव्य उद्यानों, फलों के वार से शुक के वृक्षों, सब ऋतुओं में होने वाले
 पुष्पों की राशि ॥४४॥ चकोर, शतपत्र (कठफोडवा), भृङ्गराज, कोकिल, चटक (गौरैया), मयूर, प्रियपुत्र, ताते
 ॥४५॥ जीवजीवक, हारीत, पपीहे, तथा वन में व्याप्त मयूर स्वर से बोलने वाले अन्य पक्षीगण ॥४६॥ बावली,
 तालाव, पुष्करिणी तथा कमलनी-वन मण्डित अनेक जलाशय ॥४७॥ कुमुद, कमल, सुन्दर नीलकमल, हंस,
 धनवाक, जलकुक्कुट ॥४८॥ कारण्डव, प्लव, हंस तथा अन्य जलचर पक्षियो एवम् अनेक प्रकार के वृक्षों, पुष्पों तथा
 पवित्र जलाशयों से चारों ओर सुशोभित है ॥४९॥ वहाँ स्वयं चर्म रूप वस्त्रधारी शिव रहते हैं ॥५०॥ भुवित-
 भुवित-वाता शिव ने सब लोकों के कल्याण के लिए पृथिवी पर जितने तीर्थ, नदियाँ, सरोवर, पुष्करिणियाँ, तालाव,
 बावलियाँ, कुएँ तथा समुद्र हैं, उन सब से पृथक्-पृथक् जल बिन्दुओं को लाकर वहाँ स्थापित कर दिया ॥५१-५२॥
 द्विजधेनो ! सर्वलोक-हित के लिए अखिलदेवगण तथा मुनिबृन्द सहित ह्यहं ने उस क्षेत्र में बिन्दुसर नामक तीर्थ
 का निर्माण किया। बिन्दुओं से बनने के कारण उसका नाम बिन्दुसर पड़ा ॥५३॥ द्विजवर्य ! जो अग्रहण-वृष्ण-
 अष्टमी तिथि एव विपुल में (बहु समय जब दिन-रात का मान बराबर होता है) उस क्षेत्र के लिए यात्रा करता

१ ख ०कुब्जकैः । २ ख ०म्बूकन्दकः । ३ ख ०सुपाकरैः । ४ ख ०स्वर्णैः । टी० । ५ ख ०रिण्याश्च
 राशिभिः । ६ ख ०वैर्जनैः । ना० । ७ ख. तथा ।

एकचत्वारिंशोऽध्यायः

कुरुते विपुले विजितेन्द्रियः। विधिवद्विन्दुसरसि स्नात्वा श्रद्धासमन्वितः॥५५॥
 मांश्च पितृसतप्यं वाग्यतः। तिलादकेन विधिना नामगोत्रविधानवित्॥५६॥
 स्नात्वेवं विधिवत्तत्र सोऽश्वमेधफलं लभेत्। ग्रहोपरागे विपुले सक्त्रान्त्यामयने तथा॥५७॥
 युगादिषु षडशीत्यां तथाऽन्यत्र शुभे तिथौ। ये तत्र दानं विप्रेभ्यः प्रयच्छन्ति घनादिकम्॥५८॥
 अन्यतीर्याच्छतगुण फलं ते प्राप्नुवन्ति वै। पिण्डं ये संप्रयच्छन्ति पितृभ्यः सरस्तस्ते॥५९॥
 पितृणामक्षया तृप्तं ते कुर्वन्ति न संशयः। ततः शभोगृहं गत्वा वाग्यतः संयतेन्द्रियः॥६०॥
 प्रविश्य पूजयेच्छर्वं कृत्वा तं त्रिप्रदक्षिणम्। घृतक्षीरादिभिः स्नानं कारयित्वा भवं शुचिं॥६१॥
 चन्दनेन सुगन्धेन विलिप्य कुङ्कुमेन च। ततः सपूजयेद्देवं चन्द्रमौलिमुमापतिम्॥६२॥
 'पुष्पनानाविधैर्मध्यवित्त्वाकंकमलादिभिः। आगमोक्तेन मन्त्रेण वेदोक्तेन च शंकरम्॥६३॥
 अदीक्षितस्तु माम्नेय मूलमन्त्रेण ध्यायेत्। एवं संपूज्य तं देवं गन्धपुष्पानुरामिभिः॥६४॥
 धूपदीपैश्च नैवेद्यरूपहारैस्तथा स्तवैः। दण्डवत्प्रणिपातैश्च गीतैर्वाद्यैर्मनोहरैः॥६५॥
 नृत्यजप्यनमस्कारैर्जयशब्दैः प्रदक्षिणैः। एवं संपूज्य विधिवद्देवदेवमुमापतिम्॥६६॥
 सर्वपापविनिर्मुक्तो रूपयौवनगवितः। कुलैकविंशमुद्गरय दिव्यभरणभूषितः॥६७॥
 सौवर्णेन विमानेन क्षिप्नुषीजालमालिना। उपगीयमानो गन्धर्वैरप्सरोभिरलंकृतः॥६८॥

है अर्थात् जितेन्द्रिय होकर विधिपूर्वक विन्दुसर मे स्नान कर श्रद्धापूर्वक देवता, ऋषि, मनुष्य तथा पितरो का तिल-जल से नाम-गोत्र उच्चारण कर वे दर्शन करता है, वह इस प्रकार विधिवत् स्नान करने से अश्वमेध यज्ञ का फल प्राप्त करता है ॥५४-५६॥ सूर्य और चन्द्रके ग्रहणों में, तुला और मेघ राशि की सक्त्रान्ति में, अथन में (सूर्य के उत्तरायण और दक्षिणायन होने के दिन), युगारम्भ में (अक्षय तृतीया के दिन), मिथुन, कन्या, धन तथा मीन राशि में और अन्य शुभ तिथि में जो वहाँ पर ब्राह्मणों का धन आदि दान देते हैं, वे अन्य तीर्थों से सौ गुना अधिक फल प्राप्त करते हैं ॥५७-५८॥ जो उस सरावर के तट पर पितरों को पिण्ड देते हैं, वे नि सन्देह पितरों का अक्षय तृप्ति प्रदान करते हैं ॥५९॥ इसके अनन्तर शिवालय में जाकर वाक्सयम तथा इन्द्रिय सयम कर के शिव की तीन बार प्रदक्षिणा करके पूजा करे ॥६०॥ पवित्रतापूर्वक पी, दूध आदि से शिव को स्नान कराये। फिर सुगन्धित चन्दन तथा कुङ्कुम लेप कर नानाविध पुष्प, पवित्र विल्वपत्र, आक तथा कमल से एवम् आगमवित और वेदोक्त मन्त्र से चन्द्र मुकुटधारी उमापति की पूजा करे ॥६१-६३॥ अदीक्षित व्यक्ति केवल नाम ही लेकर मूलमन्त्र से पूजा करे। इस प्रकार गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य, उपहार, स्तुति, दण्डवत् प्रणाम, गीत, मनाहर वाद्य, नृत्य, जप, नमस्कार, जय शब्द तथा प्रदक्षिणा से विधिपूर्वक उमापति की पूजा करने से मनुष्य सर्वपापविनिर्मुक्त, रूप-यौवन-गवित, इकीस कुलों का उद्धारक, दिव्य भूषणा से भूषित तथा क्षुद्रघण्टिकाया की माला से युक्त सुवर्ण के विमान पर आसन्न होकर गन्धर्व और अप्सराया से स्तुत

उद्योतयदिशः सर्वा शिवलोच स गच्छति । भुक्त्वा तत्र सुखं विप्रामनसः प्रीतिदायकम् ॥६९॥
 तत्कालेऽपि सायं यावदाभूतसंस्तवम् । ततस्तस्मादिहाऽऽयात युधिर्व्यां पुण्यसंगे ॥७०॥
 प्रापते योगिना गेहे चतुर्वेदी द्विजोत्तमा । योगं पाशुपतं प्राप्य ततो मोक्षमवाप्नुयात् ॥७१॥
 क्षणोत्थापने चंद्रं सत्रात्पानयने ततः । अगोकारहया तयाऽष्टम्यां पवित्रारोपणे तया ॥७२॥
 ये च पश्यन्ति तं देवं वृत्तिवात्सल्यमुत्तमम् । विमानेनार्चयन्ते शिवलोकं यजन्ति ते ॥७३॥
 सर्वेशोऽपि तं देवं ये पश्यन्ति समेषसः । तेऽपि पापविनिर्मुक्ता शिवलोकं यजन्ति ये ॥७४॥
 देवस्य पश्चिमे पूर्वे दक्षिणे चोत्तरे तथा । यो न नमस्कृत्य सायं क्षेत्रं तदभुक्षितमुक्षितम् ॥७५॥
 तस्मिन्नेव प्रपश्येत् भगवन् देवसंस्तवम् । पश्यन्ति ये तु तं देवं स्नात्वा पुण्ड्रे गृहेऽथ ॥७६॥
 आग्निं यो नार्चयति पूर्वं देवदेवं शिवोचनम् । सर्वपापविनिर्मुक्ता विमानवरमास्थिता ॥७७॥
 उपयोयमाना गार्धरं शिवलोकं यजन्ति ते । तिष्ठन्ति तत्र मुदिता वरुणमेव द्विजोत्तमा ॥७८॥
 भुक्त्वा तु त्रिपुराभोगाश्छिन्नबन्धो रत्नोरमान् । पुण्यक्षयादिहाऽऽयाता ज्ञायते प्रवरे बुद्धे ॥७९॥
 अथवा योगिना गेहे ये देवेदाङ्गपारगाः । उत्पद्यन्ते द्विजवरा सर्वभूतहिते रता ॥८०॥
 योगिनास्तथायुक्ताः सर्वत्र समयुद्धयः । योगं शभोर्वरं प्राप्य ततो मोक्षं यजन्ति ते ॥८१॥
 तस्मिन्नेव प्रपश्येत् पुण्येऽपि ददुष्यते द्विजाः । पूजया पूज्यं च सर्वत्र यने रक्ष्याऽन्तरेऽपि वा ॥८२॥

घतुप्पये श्मशाने वा यत्र कुत्र च तिष्ठति। दृष्ट्वा तल्लिङ्गमध्यप्रः धृष्ट्या सुसमाहितः॥८३॥
 स्नापयित्वा तु तं भक्त्या गन्धं पुष्पैर्मनोहरैः। घृषेदोषैः सन्वेद्येनमस्कारंस्तथा स्तवैः॥८४॥
 दण्डवत्प्रणिपातैश्च नृत्यगीतादिभिस्तथा। संपुण्यैवं विधानेन शिवलोकं व्रजेन्नरः॥८५॥
 नारी वा द्विजशार्दूलः संपुण्यधृष्ट्याऽन्विता। पूर्वोक्तं फलमाप्नोति नात्र कार्या विचारणा॥८६॥
 कः शक्नोति गुणान्वक्तुं समग्रान्मुनिसत्तमाः। तस्य क्षेत्रवरस्यायः श्रुते देवान्महेश्वरात्॥८७॥
 तस्मिन्क्षेत्रोत्तमे गत्वा श्रद्धयाऽधृष्ट्याऽपि वा। माघवादिषु मासेषु नरो वा श्रद्धिवाऽङ्गनाः॥८८॥
 यस्मिन्त्यस्मिंस्तिथौ विप्राः स्नात्वा विन्दुसरोम्भसि। पश्येद्देवं विरूपाक्षं देवीं च वरदां शिवाम्॥८९॥
 'गणं' चण्डं कातिकेयं गणेशं वृषभं तथा। कल्पद्रुमं च सावित्रीं शिवलोकं स गच्छति॥९०॥
 स्नात्वा च कापिले तीर्थे विधिवत्पापनाशने। प्राप्नोत्यभिमतान्कामाञ्छितलोकं स गच्छति॥९१॥
 यः स्तम्भं तत्र विधिवत्करोति नित्यतेन्द्रियः। कुलं कविशमृद्धस्य शिवलोकं स गच्छति॥९२॥
 एकाम्रके शिवक्षेत्रे धाराणसीसमे शुभे। स्नानं करोति यस्तत्र मोक्षं स लभते ध्रुवम्॥९३॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे स्वयंभूविसंवादे एकाम्रक्षेत्रमाहात्म्यवर्णनं

नामैकचत्वारिंशोऽध्यायः॥४१॥

लिंग वन में गलियी में, चौदाही पर, श्मशान में या जहाँ-वही भी मिले, उस लिंग को प्रसन्नता, श्रद्धा तथा सावधानी से स्नान करा वर मन्त्रपूर्वक गन्ध, मनोहर पुष्प, घृण, दीप, वैवेद्य, नमस्कार, स्तुति, दण्डवत्प्रणाम (तथा नृत्य-गीत आदि से पूजे) इस प्रकार विधानपूर्वक लिंग की पूजा करने से मनुष्य शिवलोक को जाता है॥८३॥
 ८५॥ द्विजवर्ग। स्त्री भी अगर श्रद्धान्वित होकर इस तरह पूजा करेगी तो वह पूर्वोक्तफलमायिनी होगी, इसमें सोचने की कोई आवश्यकता नहीं॥८६॥ मुनिवर। महेश्वर को छोड़कर कौन ऐसा व्यक्ति है, जो उस उत्तम क्षेत्र में समग्र गुणों का वर्णन कर सके?॥८७॥ विप्रगण। पुरुष या स्त्री जो कोई भी श्रद्धा या अश्रद्धा से उस उत्तम क्षेत्र में जाकर वैशाख आदि मासों में किसी किसी तिथि को विन्दुसर में स्नान कर विरूपाक्ष नेत्र वाले शिव, वर देने वाली पार्वती भग, कातिकेय, गणेश, वृषभ कल्पद्रुम तथा सावित्री का दर्शन करेगा, वह शिवलोक को जायेगा॥८८-९०॥ वहाँ पापनाशक कापिल तीर्थ में विधिवत् स्नान कर के मनुष्य अमिलपित भोगों को प्राप्त करता है तथा शिवलोक को जाता है॥९१॥ जो जितेन्द्रिय होकर ध्वजारोपण करता है, वह इकलौस कुलों का उद्धार कर शिवलोक को जाता है॥९२॥ वायणसी के समान पवित्र उस एकाम्रक नामक शिव-क्षेत्र में जा स्नान करता है उसे निरवय ही भूमि मिलती है॥९३॥

श्री ब्रह्ममहापुराण में ब्रह्मा वीर ऋषि के संवाद प्रकरण में एकाम्र-क्षेत्र माहात्म्य-वर्णन

नामक एकतालीसवाँ अध्याय समाप्त॥४१॥

१ क ० य तस्य देवस्य शूलिनः। त०। २ ख व्यापयामः। ३ ख माघावादि०। ४ ख ० ना। तस्मिन्क्षेत्रे स्थितो वि०। ५ ख गणाश्चन्द्र का०। ६ ख ० ने। काल नयति।

अथ द्विचत्वारिंशोऽध्यायः

उत्कलक्षेत्र-वर्णनम्

ब्रह्मोवाच

विरजे विरजा माता ब्रह्माणी संप्रतिष्ठिता । यस्याः 'संदर्शनान्मर्त्यः पुनात्यासप्तमं कुलम्' ॥१॥
सष्टदृष्ट्वा तु तां देवीं भक्त्याऽऽपूज्य प्रणम्य च । नरः स्ववंशमुद्धृत्य मम लोकं स गच्छति ॥२॥
'अन्याश्च तत्र तिष्ठन्ति विरजे' लोकमातरः । सर्वपापहरा देव्यो वरदा भक्तवत्सलाः ॥३॥
आस्ते वैतरणी तत्र सर्वपापहरा नदी । यस्यां स्नत्वा नरधेष्ठः सर्वपापः प्रमुच्यते ॥४॥
भारते 'स्वयंभूस्तत्रैव' क्रोडरूपो हरिः स्वयम् । दृष्ट्वा प्रणम्य तं भक्त्या परं विष्णुं व्रजन्ति ते ॥५॥
कापिले गोप्रहे सोमे तीर्थे चालाबुसंजिते । 'मृत्युंजये' क्रोडतीर्थे वासुके सिद्धकेश्वरे ॥६॥
तीर्थैर्वेतेषु भक्तिमान्विरजे संपतेन्द्रियः श्रुत्याऽऽष्टतीर्थे विधिवत्स्नात्वा देवाग्रणम्यच ॥७॥
सर्वपापविनिर्मुक्तो विमानवरमास्थितः । उपगोयमानो गन्धर्वमम लोके महीयते ॥८॥
विरजे यो मम क्षेत्रे पिण्डदानं करोति वै । स 'करोत्यक्षयां तृप्तिं पितृणां नात्र संशयः ॥९॥
मम क्षेत्रे मुनिधेष्ठा विरजे ये कलेश्वरम् । परित्यजन्ति पुरुषास्ते मोक्षं प्राप्नुवन्ति वै ॥१०॥
स्नात्वा यः सागरे मर्त्यो दृष्ट्वा च कपिलं हरिम् । पश्येद्देवीं च वाराहीं स याति त्रिदशालयम् ॥११॥

अध्याय ४२

उत्कलक्षेत्र का वर्णन

ब्रह्मा ने कहा—विरज नामक क्षेत्र में विरजा नामक माता ब्रह्माणी प्रतिष्ठित है, जिससे दर्शन करने से मनुष्य सात कुल को पवित्र करता है ॥१॥ एक बार उस देवी के दर्शन करने भक्तिपूर्वक पूजा तथा प्रणाम करने से मनुष्य अपने वंश का उद्धार कर भेदे लोक को प्राप्त करता है ॥२॥ उस विरज-क्षेत्र में दूसरी भी सब पापों को हरने वाली, वर देने वाली तथा भक्तवत्सला लोकमातायें रहती हैं ॥३॥ वहाँ निजिल पापनाशिनी वैतरणी नामक नदी है, जिसमें स्नान कर मनुष्य सब पापों से मुक्त हो जाता है ॥४॥ वही वर साक्षात् वराहरूपी स्वयम्भू हरि है, जिसमें स्नान कर मनुष्य सब पापों से मुक्त हो जाता है ॥५॥ विरज-क्षेत्र में कापिल, गोप्रहे, सोम, अलाबु, मृत्युंजय, क्रोडतीर्थ, वासुक तथा सिद्धकेश्वर नामक तीर्थों में जो बुद्धिमान मनुष्य इन्द्रिय सम्यक्पूर्वक स्नान करके देवताओं को प्रणाम करता है, वह सब पापों से रहित तथा उत्तम विमानम स्थित हो विरज-गन्धर्वों से स्तुत होकर भेदे लोक में पूजित होता है ॥६-८॥ भेदे विरज-क्षेत्र में जो पिण्डदान करता है, उसके पितर लोग अश्वय नृप्ति प्राप्त करते हैं, इसमें कोई संशय नहीं ॥९॥ मुनिवर्ग ! भेदे विरज-क्षेत्र में जो वाराही स्नान करता है, वह मोक्ष प्राप्त करता है ॥१०॥ जो मनुष्य समुद्र में स्नान कर अलबु कपिल तथा वाराही देवी का

१ ग ०र्गने मर्त्य । २ स ०म् । तत्र दृष्ट्वा ३ स अपान्यास्तत्र । ४ स विरजा । ५ स ०य तु तर्प ० ।

६ स ०व त्रीडप्रति ह ० । ७ स ०क्त्या मरस्तु मलुर धजेत् । वा ० । ८ स मृत्युशये । ९ स वराति परांतु ० ।

सन्ति चान्यानितीर्यानि पुण्यान्यायतनानि च । तत्काले तु मुनिश्रेष्ठा वेदितव्यानि तानि वै ॥१२॥
 समुद्रस्योत्तरे तीरे तस्मिन्देशे द्विजोत्तमाः । आस्ते गुह्यं पर क्षेत्रं भुक्तिदं पापनाशनम् ॥१३॥
 सर्वत्र बालुकाकोणं पवित्रं सर्वकामदम् । दशयोजनविस्तीर्णं क्षेत्रं परमदुर्लभम् ॥१४॥
 अशोकार्जुनपुनर्नागैर्वकुलं सरलद्रुमैः । पनसैर्नारिकेलैश्च शालैस्तालैः कपित्थकैः ॥१५॥
 चम्पकैः कणिकारैश्च चूतशिल्वैः सपाटलैः । कदम्बैः कोविदारैश्च लकुचेर्नागैः ॥१६॥
 प्राचीनामलकैर्लोध्रैर्नारङ्गैर्धन्वादिभिः । सर्जंभूजशिवकर्णैश्च तमालैर्देवदारुभिः ॥१७॥
 मन्दारैः पारिजातैश्च न्यग्रोधगुरुचन्दनैः । खजूराम्नातकैः सिद्धैर्मृदुकुन्दैः सक्किशुकैः ॥१८॥
 अश्वत्थैः सप्तपर्णैश्च मधुघारैश्चाञ्जनैः । शिशुपामलकैर्नैर्निम्बतिल्विभोतकैः ॥१९॥
 सर्वतुङ्गफलगन्धादयः सर्वतुङ्गसुमोन्यलेः । मनोह्रादपरैः शुभ्रैर्नानाविहगनादितैः ॥२०॥
 श्रोत्ररम्यैः सुमधुरैर्बलनिदमनैरितैः । मनसः प्रीतिजनकैः शब्दैः खगमखेरितैः ॥२१॥
 चकोरैः शतपत्रैश्च भृङ्गराजैस्तथा शुकैः । कोविलैः फलबिज्जैश्च हारीतैर्जीवजीवकैः ॥२२॥
 प्रियपुत्रैश्च त्रिकैश्च सयाज्यैर्मधुरस्वरैः । श्रोत्ररम्यैः प्रियकरैः कूजदिग्भ्रुवादिभिः ॥२३॥
 केतकीवनखण्डैश्च अतिमुक्तैः सकुञ्जकैः । भाल्मीकुन्दबाणैश्च करवीरैः सितैर्तरैः ॥२४॥
 जम्बीरकषणाङ्गुलीर्दाडिमैर्बीजपूरकैः । मातुलुङ्गैः यूगफलैर्हिन्तालैः कदलीवनैः ॥२५॥
 अन्यैश्च विविधैर्वृक्षैः पुष्पैश्चान्यैर्मनोहरैः । एतावितानां गूढैश्च विविधैश्च जलाशयैः ॥२६॥

दर्शन करता है, वह देवलोक जाता है ॥११॥ मुनिवर्य । दूसरे भी बहुत से तीर्थ तथा आलय हैं, जिन्हें इस समय जानना चाहिए ॥१२॥ द्विजवर । समुद्र के उत्तरी तट पर एक पापनाशन, मोक्षदायक परम गुप्त, बालुकामय, पवित्र सर्वकामप्रद, दश याजन प्रमाण विस्तृत तथा परम दुर्लभ क्षेत्र है ॥१३-१४॥ वह अशोक, अर्जुन, पुन्नाग मौलसिरी सरल, कटहल, नारियल, सालू, ताल, बठवेल, चम्पा, कवचचम्पा, आम, बेल, पाटला, कदम्ब, कचनार, बडहर, नागकेसर, जलामलक, लोध, नारंगी, कंथा, खैर, सर्व, भोजपत्र अश्वकर्ण, तमाल, देवदारु, मदार, पारिजात वरगद अगर चन्दन खजूर, आमडा, मुकुन्द, पलाश, अश्वत्थ, सप्तपर्ण, मधुर सहिजन शिशुप, आमला, नीप, निम्ब तिल्व वहेडा आदि वृक्षों से तथा मन को आनन्दित करने वाले, शुक्ल वर्ण वाले, मान्य पत्निया के शब्दों से शब्दित और सब ऋतुआ में फल फूलों से सम्पन्न वृक्षों से सुशोभित है ॥१५-२०॥ सुनने में मनोरम, अत्यन्त मधुर, कामप्रेरित तथा मन में प्रीति उत्पन्न करने वाले पक्षी-मुल्लाखरित शब्दा से, चकोर, शतपत्र, मृगराज, तोते, वानिल गौरये, हारीत जीवजीवक प्रियपुत्र, चातक तथा दूसरे भी मधुर स्वर से आलाप करने वाले और प्रीति उत्पन्न करने वाले पत्निया से और केतकीवन, अतिमुक्त, कुन्ज, भाल्मी, कुन्द बाण, लाल करवीर नीबू, बरुण, अकाल, दाडिम, बीजपूरक, मातुलग, सुपारी, हिन्ताल कदलीवन तथा अन्य विविध वृक्षों एवम् मनोहर पुष्पों से भी वह अलङ्कृत है ॥२१-२५॥ वहाँ एतावत का विस्तार विविध

१ ग उत्कृष्टे । २ ख भागे । ३ ख अस्ति । ४ ख सावित्र । ५ ख नैर्लिखेरेश्च । ६ ख नैः । शिशुपाम ० ।

७ ख नैर्वेणीनारमुगितैः । ८ ख नमुखादितैः । ९ ख नन्दपुष्पैश्च । १० ख ननारमैः । ल ० ।

दीर्घिकाभिस्तडागैश्च^१ पुष्करिणीभिश्च घापिभिः । नानाजलाशयैः पुण्यैः पद्मिनीखण्डमण्डितैः ॥२७॥
 सरांसि च मनोज्ञानि प्रसन्नसलिलानि च । क्रुमुदैः पुण्डरीकैश्च तथा नीलोत्पलैः शुभैः ॥२८॥
 बह्मारेः कमलैश्चापि आचितानि समन्ततः । कादम्बैश्चकवाकैश्च तथैव जलकुवकुटैः ॥२९॥
 कारण्डवैः^२ प्लवहैः कूर्मैर्मत्स्यैश्च मद्गुभिः । दास्यहसारसोकीर्णैः कोयटिबकशोभितैः ॥३०॥
 एतैश्चाप्येवैश्च कज्जदिभः^३ समन्ताज्जलचारिभिः^४ । खर्गजलचरैश्चाग्यैः कुसुमैश्च जलोद्भवैः ॥३१॥
 एवं नानाविधैर्वृक्षैः पुष्पैः स्थलजलोद्भवैः । ब्रह्मचारिगृहस्थैश्च वानप्रस्थैश्च भिक्षुभिः ॥३२॥
 स्वधर्मनिरतैर्घणैस्तथाऽन्यैः समलङ्कृतम् । हृष्टपुष्टजनाकीर्णं नरनारीसमाकुलम् ॥३३॥
 अशेषविद्यानिलयं सर्वधर्मगुणाकरम् । एव सर्वगुणोपेतं क्षेत्रं परमदुर्लभम् ॥३४॥
 आस्ते स नृनिधेष्ठा विख्यातः पुरुषोत्तमः । यावदुत्कलमर्यादा दिक्त्रमेण प्रकीर्तिता ॥३५॥
 तावद्वृष्णप्रसादेन देशः पुण्यतमो हि सः । यत्र तिष्ठति बिम्बवात्मा देशो स पुरुषोत्तमः^५ ॥३६॥
 जगद्भ्यापी जगन्नायस्तत्र सर्वं प्रतिष्ठितम् । अहं इन्द्रश्च शक्रश्च देवदशानिपुरोगमाः ॥३७॥
 निवत्तामो नृनिधेष्ठास्तस्मिन्देसो सदा ययम् । गन्धर्वाप्सरसः सर्वाः पितरो देवमानुषाः ॥३८॥
 यथा विद्याधराः सिद्धा मुनयः सज्जितव्रताः । ऋषयो बालखिल्याश्च कश्यपाद्याः प्रजेश्वराः ॥३९॥
 सुपर्णा किनरा मागास्तथाऽन्ये स्वर्गवासिनः । साङ्गाश्च चतुरो वेदाः शास्त्राणि विविधानि च ॥४०॥

जलाशय, दीर्घिकाएँ, तालाव, पुष्करिणियाँ, बावल्याँ, कमलिनी-वन-मण्डित नाना जलाशय और
 क्रुमुद, कमल, नील कमल तथा लाल कमल से परिपूर्ण सरदार हैं ॥२६-२८॥ कादम्ब, चक्रवाक, जल-
 कुवकुट, कारण्डव, प्लव, हंस, मद्गु (पातिकाँड), बालनष्ट और बक—ये तथा दूसरे भी जलचर पक्षी और
 जल में उत्पन्न होने वाले फूल उस क्षेत्र की घामा बढ़ा रहे हैं ॥२९-३१॥ इस प्रकार नाना वृक्षा स्थल
 और जल में होने वाले पुष्पा, ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ तथा सन्यासिया और स्वधर्मपरायण चारों वर्णों
 से बहु अलङ्कृत है ॥३२॥ वह हृष्ट-पुष्ट व्यक्तियों से प्रपूर्ण तथा नर-नारियाँ से समन्वित है । जहाय विद्याया
 का केन्द्र तथा समस्त धर्म-गुणा की निधि बहु माना जाता है । इस प्रकार वह शायं नित्यल गुणा से युक्त एवम्
 परमदुर्लभ है ॥३३-३४॥ नृनिधेष्ठो^१ वहाँ पुरुषोत्तम नाम से विख्यात वृष्ण मगवान् रहत है । दिगा के श्रम से
 जहाँ तक उत्कल (उड़ीसा) की सीमा है वहाँ तक वह देश वृष्ण की अनुकम्पा से पुण्यतम माना गया है ॥३५॥
 जिस देश में बिम्बवात्मा, जगद्भ्यापी, जगन्नाय, पुरुषोत्तम वास करते हैं, वहाँ सब कुछ स्थित है ॥३६॥ मुनिवर ।
 ई, रुद्र, इन्द्र और अग्नि आदि देवता उस देश में सदा वास करते हैं ॥३७॥ गन्धर्व, अप्सराएँ, पितर, दैव, मनुष्य,
 पक्ष, विद्याधर, सिद्ध, मुनि, महाप्रती नापि बालखिल्य, प्रजापति कश्यप आदि, भुरग, किन्नर, नाग तथा अन्य
 स्वर्गवासी, अगा सहित चारों वेद, विविध शास्त्र इतिहास, पुराण, उत्तम दक्षिणा वाले यज्ञ, अनन्त पवित्र नदियाँ,

१ स. 'देव कामारस्य समन्ततः । ना० । २ म् श्रमुकैः । ३ स. 'गण्डर्वैर्देवैर्हृ० । ४ स. कीर्णानि । ५ स.
 'सप्तभिः' । ६ स. अस्ति । ७ स. । ८ म. आर्या स्वयं ज० ।

इतिहासपुराणानि यज्ञाश्च वरदक्षिणाः। नव्यश्च विविधाः पुण्यास्तोर्यन्यापतनानि च॥४१॥
 सागराश्च तथा शैलास्तस्मिन्देहे ध्ययस्थिताः। एवं पुण्यतमे देशे देवपिपितृसेविते॥४२॥
 सर्वोपभोगसहिते वासः कस्य न रोचते। श्रेष्ठत्वं कस्य देशस्य किं चान्यदधिकं ततः॥४३॥
 आस्ते यत्र स्वयं देवो मुक्तिदः पुरयोत्तमः। धन्यास्ते विबुधप्रहया य वसन्त्युत्कले नराः॥४४॥
 तोर्यराजजले स्नात्वा पश्यन्ति पुरयोत्तमे। स्वयं वसन्ति ते भर्त्या न ते यान्ति यमालये॥४५॥
 ये वसन्त्युत्कले क्षेत्रे पुण्ये श्रीपुरयोत्तमे। सफलं जीवितं तेषामुत्कलानां सुमेघसाम्॥४६॥
 ये पश्यन्ति सुरश्रेष्ठं प्रसन्नायतलोचनम्। चारुभूकेशमुकुटं चारुकर्णवितंसकम्॥४७॥
 चारुस्मितं चारुदन्तं चारुकुण्डलमण्डितम्। सुनासं सुकोपलं च सुललाटं सुलक्षणम्॥४८॥
 प्रेलोभयानन्दजननं कृष्णस्य मुखपद्भुजम् ॥४९॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे स्वयंभु-ऋषिसंवादे उत्कलक्षेत्रवर्णनं नाम
 द्विचत्वारिंशोऽध्यायः ॥४२॥

तीर्थ, बैबालय, समुद्र और पर्वत उस देश में व्यवस्थित हैं॥३८-४१॥ ऐसे देवपियो तथा पितरो से सेवित, समस्त उपभोग पदार्थों से युक्त एवम् पवित्रतम देश में किसको बसने की इच्छा नहीं होती? उससे भला कौन देश श्रेष्ठ है? कहीं उससे अधिक पदार्थ है? ॥४२-४३॥ जिस उत्कल देश में साधनात् मुक्ति-दायक पुरयोत्तम देव रहते हैं, वहाँ के निवासी देवतुल्य हैं और धन्यवाद के पात्र हैं ॥४४॥ जो मनुष्य तीर्थराज के जल में स्नान कर पुरयोत्तम के दर्शन करते हैं, वे स्वर्ग जाते हैं, यमपुरी कभी नहीं जाते ॥४५॥ जो बुद्धिमान् पुरयोत्तमाश्रित उस उत्कल क्षेत्र में बसते हैं उनका जीवन सफल है ॥४६॥ जो देवश्रेष्ठ, विकसित कमल सदाश नेत्र वाले, सुन्दर भौं, केश, और मुकुट वाले, मनीहर कर्ण-भूषणी वाले, सुन्दर हास्य और दाँत वाले, सुन्दर कुण्डलो से विभूषित, सुन्दर नाक, कपाल, ललाट और लक्षण वाले तथा तीनों लोक को आनन्द देने वाले कृष्ण के मुखकमल को देखते हैं, उनका जीवन सफल है ॥४७-४९॥

श्री ब्रह्ममहापुराण में ब्रह्मा और ऋषि के संवाद-प्रकरण में उत्कल क्षेत्र-वर्णन नामक बयालीसवाँ अध्याय समाप्त ॥४२॥

पञ्चत्तोर्यं च विधियत्कृत्वा तत्र महोपति । स्नान दान तपो होम देवताप्रेक्षण तथा ॥१२॥
भक्त्या चाऽऽराध्य विधियत्प्रत्यहं पुरयोत्तमम् । प्रसादाद्देवदेवस्य ततो मोक्षमवाप्तवान् ॥१३॥
'मार्कण्डेय च कृष्ण च दृष्ट्वा राम च भो द्विजा । सगरे चेन्द्रघुम्नाख्ये स्नात्वा मोक्ष लभेद् भुवम् ॥१४॥

मुनय ऊचुः

कस्मात्ता नृपति पूर्वमिन्द्रघुम्नो जगत्पति । जगाम परम क्षेत्रं मुक्तिदं पुरयोत्तमम् ॥१५॥
गत्वा तत्र सुरश्रेष्ठ यथ स नृपसत्तम । वाजिमेधेन विधियद्विष्टवान् पुरयोत्तमम् ॥१६॥
अथ स सर्वकण्डे क्षेत्रे परमदुर्लभे । प्रासाद कारयामास 'चेष्ट' प्रलोभयविश्रुतम् ॥१७॥
अथ स कृष्ण राम च सुभद्रा च प्रजापते । निर्ममे राजशार्ङ्गं क्षेत्रं रक्षितवान्कथम् ॥१८॥
अथ तत्र महोपाल प्रासादे भुवनोत्तमे । स्थापयामास मतिमान्कृष्णादींस्त्रिदशाचिदान् ॥१९॥
एतत्सर्वं सुरश्रेष्ठ विस्तरेण यथातथम् । वक्तुमर्हस्यशेषेण चरितं तस्य धीमत ॥२०॥
न तृप्तिमधिगच्छामस्तव यावद्यामृतेन वं । श्रोतुमिच्छामहे ब्रह्मण्यर कौतूहलं हि न ॥२१॥

ब्रह्मोवाच

श्लाघु श्लाघु द्विश्रेष्ठा यत्पृच्छध्वं पुरातनम् । सर्वपापहरं पुण्यं भुवितमुक्तिप्रदं शुभम् ॥२२॥
वक्ष्यामि तस्य चरितं यथावृत्तं कृते युगे । शृणुष्व मुनिशार्ङ्गं प्रयता सत्यमेन्द्रिया ॥२३॥

निर्माण कर स्नान दान तप तथा देव-दान किया और प्रतिदिन भक्ति से विधिपूर्वक पुरोत्तम की पूजा करके देवदेव की कृपा से माया प्राप्त किया ॥१२॥ द्विजगण ! मार्कण्डेय कृष्ण तथा राम का दान कर इन्द्रघुम्न नामक सागर में स्नान करने से निश्चय ही मुक्ति मिलती है ॥१४॥

मुनियो ने कहा—हे सुरश्रेष्ठ ! पहले किसलिए जगत्पति इन्द्रघुम्न नामक राजा पुरोत्तम सशक भक्षदायक परम क्षत्र को गया ॥१५॥ वहाँ जाकर कैसे उस श्रेष्ठ राजा ने अद्वैत यज्ञ द्वारा विधिपूर्वक पुरोत्तम की आराधना की ? ॥१६॥ कैसे सफलप्रद परमदुर्लभ क्षत्र में उसने प्रलोभय प्रसिद्ध श्रेष्ठ भवन बनवाया ? ॥१७॥ हे प्रजापति ! कैसे उसने कृष्ण राम तथा सुभद्रा का निर्माण किया और क्षत्र की रक्षा की ? ॥१८॥ कैसे दुर्द्धिमान राजा ने तीनों लोक में उत्तम उस भवन में दैवताओं से अर्चित कृष्ण आदि देवों की स्थापना की ? ॥१९॥ देवश्रेष्ठ ! उस धीमान् के समस्त चरित्र विस्तार से यथावत् वर्णन कीजिए ॥२०॥ आपका वचनानाम से हमें तृप्ति नहीं मिलती । ब्रह्मन् ! सुनने के लिए हमें बड़ी उत्सुकता हो रही है ॥२१॥

ब्रह्मा ने कहा—द्विजश्रेष्ठो ! ठीक है ! ठीक है ! जो आपने प्राचीन सर्वपापनाशन भुवित मुक्ति प्रद तथा पवित्र चरित्र पूछा है उसे मैं बक्ष्या । मुनिवर ! सत्ययुग में जैसे वह वृत्तांत हुआ था वैसे आप पवित्रता से इन्द्रिय ध्वजमपूषक सनिये ॥२२ २३॥ उस राजा की मालव देश में अवती नाम से प्रसिद्ध नगरी मालो पृथिवी का ककुद

अवन्ती नाम नगरी मालवे भुवि विभुता^१। बभूव तस्य नृपते पृथिवी ककुदोपमा ॥२४॥
 हृष्टपुष्टजनाकीर्णा दृढप्राकारतोरणा। दृढयन्त्राङ्गद्वारा^२ परिखाभिरलकृता ॥२५॥
 नानावर्णस्समाकीर्णा नानाभाण्डसुविक्रिया। रम्यापणवती रम्या^३ सुविभवतच्चतुष्पया ॥२६॥
 गृहगुपुरसबाधा वीथीभिः समलकृता। राजहसनभिः शुभ्रेऽश्चित्रग्रीवमनोहरैः ॥२७॥
 अनेकशतसाहस्रं प्रासादं समलकृता। यज्ञोत्सवप्रमुदित गीतवादिनस्तिवना ॥२८॥
 नानावर्णपताकाभिर्ध्वजैश्च समलकृता। हस्तपश्वरथसकीर्णपदातिगणसकुला ॥२९॥
 नानायोधसमाकीर्णा नानाजतपदयुता। ब्राह्मणे क्षत्रियैर्वैश्यैः शूद्रैश्चैव द्विजातिभिः ॥३०॥
 समृद्धा सा मुनिश्रेष्ठा विद्वद्भिः समलकृता। न तत्र मलिना सति न मूर्खा^४ नापि निघना ॥३१॥
 न रोगिणो न होनाङ्गा^५ न चूतव्यसनान्विता। सदा हृष्टा सुमनसो दृश्यते पुरुषा स्त्रिय ॥३२॥
 क्रोडति स्म दिवा रात्रौ हृष्टास्तत्र पृथक्पृथक्। सुखेण पुरुषास्तत्र दृश्यते भृष्टकुण्डला^६ ॥३३॥
 सुरुषा सुगुणादर्थेन दिव्यालकारभूयिता। कामदेवप्रतीकाशा सवलक्षणलक्षिता ॥३४॥
 सुकशा सुकपोलश्च सुमुखा इमधुधारिणः। जातार सवशस्त्राणा भेसार शत्रुवाहिनीम ॥३५॥
 दातार^७ सवरत्नाना भोक्तार सर्वसपदाम। स्त्रियस्तत्र मुनिश्रेष्ठा दृश्यते सुमनोहरा ॥३६॥
 हसवारणगामि^८ यः प्रफुल्लाम्भोजलोचना। समध्यमा^९ सुजयना पीनोदतपयोधरा ॥३७॥

(बिला) है। वह नगरी हृष्ट पुष्ट लागी से परिपूर्ण दृढ प्राकार-तोरण (बहार दीवारी-बदनबार) वाली दृढ यत्र (ताला) तथा अगला (अजीर) दृढत डार वाली खाइयो से अलंकृत अनेक व्यापारियों से प्रपूर्ण विविध वस्तुओं के विक्रय से युक्त गलियी और बाजारों से समन्वित रमणीय अच्छी तरह विभक्त चौपटों से सज्य गहो तथा नगर-द्वारों से पूर्ण गलियाँ से अलंकृत राजहस के समान उज्ज्वल तथा मन-हर लकड़ी के द्वारा चित्र विविध महला से भूषित यनों और उत्सवों से आनन्दित गीत तथा वाद्य से भूषित अनेक वर्णों की ध्वजा पताकाओं से सुशोभित हाथी घोड़े रथ तथा पैदल सेनाओं से परिपूर्ण और नाना यन्त्राङ्गों तथा जनपदों से युक्त है ॥२५॥ २६॥ मुनिवयः। ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य तथा शूद्र जातियों और विद्वद्गणों वह विभूषित है ॥३०॥ वहाँ न मल-ल न मूर्ख न निघन न रोगी न होना अंग वाले और न अजरी रहते हैं ॥३१॥ वहाँ सदा हृष्ट प्रसन्न स्त्री-मुख्य दिन रात पथक पथक बीड़ा करते हैं ३२॥ वहाँ के पुरुष सुन्दर वन तथा कुण्डलधारी रूपवान् गुणवान् दिव्य अलंकारों से भूषित कदमचुम्ब सवलक्षण सम्पन्न सुन्दर केश कपोल तथा मुख वाले दाढ़ी मूळ धारण करने वाले सब शस्त्रों के जातार शत्रु सेना के छदनकर्ता अखिल रणों के दाता और निखिल सम्पत्तियों के भोक्ता हैं ॥३३॥ ३५॥ मुनिवयः। वहाँ की मनोहर हस तथा गज के समान चलने वाली विकसित कमल के समान नेत्र वाली सुन्दर कटि तथा जघा वाली

१ ल ०ता। २ ग ०त्राकुल०। ३ ख ०म्वा चतुष्पथविभूयिता। पुराट्टालकस्यकता सुविभूयिता०। ४ ग तातिनि०। ५ ख ०ज्जा नातानव्य०। ६ ख ०ल। प्राथा सुमगा दूरादि०। ७ र सवका मानो। ८ ख ०य कर्णातायतलो०। ९ ख ०मध्याश्च सु०।

सुकेशाश्चास्वदनाः सुवपोलाः स्थिरालकाः^१। हावभावानतप्रोवाः कर्णाभरणभूषिताः॥३८॥
 बिम्बोष्ठ्यो रञ्जितमुखास्ताम्बूलेन विराजिताः॥ सुवर्णाभरणोपेताः सर्वालंकारभूषिताः॥३९॥
 श्यामावदाताः सुश्रोण्यः काञ्चीनूपुरनादिताः। दिव्यमात्म्याम्बधरा दिव्यगन्धानुलेपनाः॥४०॥
 विद्यधाः सुभगाः कान्ताश्चार्चङ्ग्यः प्रियदर्शनाः। रूपलावण्यसंयुक्ताः रर्चाः प्रहसिताननाः॥४१॥
 श्रीङ्गयश्चर्मदोन्मत्ताः सभासु चत्वरेषु च। गीतावाद्यकथालापे रमयन्त्यश्च ताः स्त्रियः॥४२॥
 वारमुखाश्च दृश्यन्ते नृश्यन्तीतिविशारदाः। प्रेक्षणापकुशलाः सर्वयोपिद्गुणान्विताः॥४३॥
 अश्वाश्च तत्र दृश्यन्ते गुणाचार्याः कुलस्त्रियः। पतिव्रताश्च सुभगा गुणैः सर्वैरलंकृताः॥४४॥
 धनश्चोपवनैः पुण्यस्थानैश्च मनोरमैः। देवतायतनैर्दिव्यनानाकुसुमशोभितैः॥४५॥
 शालेस्तालेस्तमालेश्च बकुलैर्नागकेशरैः। पिप्पलैः^२ कर्णिकारैश्च चन्दनागुहचम्पकैः॥४६॥
 पुंनागैर्नारिकेलैश्च पनसैः सरलद्रुमैः। नारङ्गलैर्बुचेलैर्ध्रुवैः सप्तपर्णैः शुभाञ्जनैः॥४७॥
 घृतबिल्वकदम्बैश्च शिशपैर्धन्वादिभिः। पाटलाशोरातमरैः करवीरैः सितैतैः॥४८॥
 पीताम्रैर्नकुमलैस्तैः सिद्धैराम्रातकैस्तथा। न्यग्रोधाश्चैवकाशमयैः पलाशैर्वैवदाहभिः॥४९॥
 मन्दारैः पारिजातैश्च तिलित्ठीकैर्विभोतकैः। प्राचीनामलकैः प्लक्षैर्जम्बूशिरौषपादपैः॥५०॥
 कालैर्वा^३ काञ्चनारैश्च मधुजम्बोरतिन्वुकैः। खजूरैरागस्त्यबकुलैः शाखोटकहरीतकैः॥५१॥
 कङ्कालैर्मुचुकुन्दैश्च हित्तालैर्वाजपूरकैः। केतकीयनखण्डैश्च अतिमुक्ताः सफुड्जकैः॥५२॥

स्मूल तथा उन्नत स्तनी वाली, सुन्दर वेश, मुख तथा बपोल वाली, स्थिर लट वाली, हाव-भाव से झुकी प्रीति वाली, कर्णभूषणों से भूषित, बिम्बाष्टी, ताम्बूल से रञ्जित मुख वाली, सुवर्ण के आभूषणों से युक्त, अग्रे अलंकरण से भूषित, श्याम तथा श्वेत वर्णवाली, मुनितम्बा, काञ्ची (करधनी) और नूपुरों से श्रद्धित, दिव्य माला तथा वस्त्रधारिणी, दिव्य गन्ध तथा रेष से युक्त, चतुर, सीमायवती, रमणीय, मनोहर अंग वाली, देखने में आकर्षक, रूप-सौन्दर्य संयुक्त और हृदयुक्त स्त्रियाँ मन्मथत हावर समाओ म, बलवती पर श्रीङ्ग करती हैं और गीत, वाद्य, कथा तथा आलाप से मनोरञ्जन करती हैं॥३६-४२॥ (इहाँ माचने पाने में निपुण, कटाक्ष तथा आलाप करने में कुशल और समस्त स्त्रियों के गुणों से सम्पन्न वेश्यायें देखी जाती हैं॥४३॥ दूसरी भी कुलधुर्ये वहाँ दीखत हैं, ज. गुणों में आचार्य पतिव्रता, सीमायवती और सर्वगुण सम्पन्न हैं॥४४॥ वना से पवित्र उपवन से मनोरम उद्यान। से, दिव्य तथा नाना पुष्प समन्वित देवालये से,॥४५॥ साखू ताल, तमाल, मौलसिरी, नागकेशर, पीपल, कनकचम्पा वृक्ष, चन्दन, अमर, चम्पक,॥४६॥ पुत्राग, नारियल, कटहल, सरल, नारंगी, बड़हर, लोष, सप्तपर्ण सहिजन॥४७॥ आष, वेल, कदम्ब, शीगम, कैय, लैर, पाटल, अशोक, तगर, लाल करवीर,॥४८॥ पीताम्रजुन, मल्लत, सिद्ध, आम्नातक, वरगद, अश्वत्थ, काशमय, पलाश, वैवदार,॥४९॥ मदार, पारिजात, तिलित्ठीक, बहेडा, प्राचीनामलक (जलआमला) पाकर, जामुन, शिरौष,॥५०॥ कालेय (काला चदन), कचनार, मधु, नीबू, खजूर, अगस्त्य, शाखोटक, हरीतक,॥५१॥ कङ्काल, मुचुकुन्द, हित्ताल

मल्लिकाकुन्दवाणेश्च कदलीखण्डमण्डितः। मातुलुङ्गः पूगफलः कर्णः सिन्धुवारकः ॥५३॥
 बहुवारः कोविदारैर्वंदरः सकरञ्जकः। अन्यैश्च विविधैः पुष्पवृक्षैश्चान्यैर्मनोहरैः ॥५४॥
 लतागुल्मैर्वितानैश्च उद्यानैर्नन्दोपमैः। सदा कुसुमगन्धाद्यैः सदा फलभरानतैः ॥५५॥
 नानापक्षितै रभ्यैर्नानामृगगणावृतैः। चकोरैः शतपत्रैश्च भृङ्गारैः प्रियपुत्रकैः ॥५६॥
 कलविड्ढैर्मंपूरैश्च शुकैः कोकिलकैस्तथा। कपोतैः खञ्जरीटैश्च श्येनैः पारावतैस्तथा ॥५७॥
 खगैश्चान्यैर्बहुविधैः श्रोत्ररभ्यैर्मनोरमैः। सरितः पुष्करिण्यश्च सरासि सुबह्विनि च ॥५८॥
 अन्यैर्जलाशयैः पुष्पैः कुमुदोत्पलमण्डितैः। पद्मैः सितैतैरैः शुभ्रैः कल्लारैश्च सुगन्धिभिः ॥५९॥
 अन्यैर्बहुविधैः पुष्पैर्जलजैः सुमनोहरैः। गन्धामोदकरैर्दिव्यैः सर्वतृकुसुमोज्ज्वलैः ॥६०॥
 हंसकारण्डवाकोणैश्चनवाकोपशोभितैः। सारसैश्च बलाकैश्च कूर्मैर्मत्स्यैः सननकैः ॥६१॥
 जलपादैः कदम्बैश्च प्लवैश्च जलकुक्कुटैः। खगैर्जलचरैश्चान्यैर्नानारवविभूषितैः ॥६२॥
 नानावर्णैः सदा हृष्टैरञ्जितानि समन्ततः। एवं नानाविधैः पुष्पैर्विविधैश्च जलाशयैः ॥६३॥
 विविधैः पादपैः पुष्पैरुद्यानैर्विविधैस्तथा। जलस्थलचरैश्चैव विहगैश्चावधिष्ठितैः ॥६४॥
 देवतायतनैर्दिव्यैः शोभिता सा महापुरी। तत्राऽऽस्ते भगवान्देवस्त्रिपुरारिस्त्रिलोचनः ॥६५॥
 महाकालेति विख्यातः सर्वकामप्रदः शिवः। शिवकुण्डे नरः स्नात्वा विपिवत्पापनाशने ॥६६॥

वीरपूरक, केतकीवन, अतिमुक्त, कुड्ज, ॥५२॥ मल्लिका, कुन्द, वाण, बेला, मातुलुङ्ग, सुपारी, नन्दन, सिन्धु-
 वारक, ॥५३॥ बहुवारक, कोविदार, वेर, नरञ्ज आदि वृक्षा से, अन्य अनेक मनोहर पुष्प-वृक्षों से, ॥५४॥ लता
 के गुच्छा से, नन्दन वन के समान विस्तृत उद्याना से, सदा पुष्प-गन्धों से सुसम्पन्न वृक्षों से, सदा फलों के भार
 से अवनत वृक्षा से ॥५५॥ नाना पक्षियों के मनोरम दायों से, विभिन्न पशुगणों से और चकार, शतपत्र, भृङ्गार
 प्रियपुत्र ॥५६॥ गौरवे भृगुट, ताले, कोयल, कबूतर, खञ्जन, बाज, पारावत तथा और भी विविध मनोरम
 पक्षियों से वह नगरी आवृत है ॥५७॥ वहाँ नदियाँ, पुष्करिणियाँ और बहृत से सरोवर तथा तालाब हैं जो
 कुमुद-नमला से, श्वेत से इतर वर्ण वाले नमलों से, सुगन्धित श्वेत कमलों से, दूसरे भी अनेक जलस्थल मनोहर
 पुष्पा से और अत्यन्त गन्ध युक्त, दिव्य तथा सब ऋतुओं में होने वाले उज्ज्वल पुष्पों से सुशोभित हैं ॥५८-६०॥
 जिनमें हंस, वारण्डव, चक्रवाक, सारस, बलाक, कूर्म, मत्स्य, नरक, जलपाद, कदम्ब प्लव जलकुक्कुट
 और दूसरे भी नाना प्रकार के दायों से विभूषित तथा सदा प्रसन्न, अनेक वर्ण वाले जलचर पक्षीगण रहते
 हैं ॥६१-६२॥ इस प्रकार विविध पुष्प, जलाशय, वृक्ष, उद्यान, जल तथा स्थलचारी पक्षी और दिव्य
 देवालय में वह महानगरी सुशोभित है ॥६३-६४॥ वहाँ महाकाल नाम से विख्यात सब कामनाओं के दाता,
 त्रिनेत्रधारी तथा त्रिपुर नामक राक्षस के शत्रु भगवान् शिव रहते हैं ॥६५॥ (विद्वान् मनव्य पापनाशन
 शिवकुण्ड में विधिपूर्वक स्नान कर देवता, पितर तथा ऋषियों का विधान से तर्पण कर दिवालय में जाये।

देवान्पितॄन्पुण्यैश्चैव संतर्प्य विधिवद्बुध । गत्वा शिवालये पञ्चालकृत्वातं त्रिप्रदक्षिणम् ॥६७॥
 प्रविश्य संयतो भूत्वा धीतवासा जितेन्द्रियः । स्नानं पुण्यस्तथा गन्धर्वपदोपैश्व भक्तितः ॥६८॥
 नैवेद्यैरुपहारैश्च गीतवाद्यैः प्रदक्षिणैः । दण्डवत्प्रणिपातैश्च नृत्यैः स्तोत्रैश्च शंकरम् ॥६९॥
 सपूज्य विधिवद्भूत्वा महाकालं सकृच्छिवम् । अश्वमेधसहस्रस्य फल प्राप्नोति मानवः ॥७०॥
 पापैः सर्वैर्विनिर्मुक्तो विमानैः सर्वकामिकैः । आरह्य त्रिविधं याति यत्र शंभोर्निकेतनम् ॥७१॥
 दिव्यरूपधरः श्रीमान्दिव्यालकारभूषितः । भुङ्क्ते तत्र वरान्भोगान्यावदाभूतसंप्लवम् ॥७२॥
 शिवलोके मुनिश्रेष्ठा जराभरणवर्जितः । पुण्यक्षयादिहाऽऽयातः प्रवरे ब्राह्मणे कुले ॥७३॥
 क्षतुर्वेदो भवेद्विप्रः सर्वशास्त्रविशारदः । योगं पाशुपतं प्राप्य ततो मोक्षमवाप्नुयात् ॥७४॥
 आस्ते तत्र नदी 'पुण्या शिप्रा' नामेति विश्रुता । तस्यां स्नातस्तु विधिद्वयसंतर्प्य पितृदेवतः ॥७५॥
 सर्वपापविनिर्मुक्तो विमानवरमास्थितः । भुङ्क्ते बहुविधान्भोगान्स्वर्गलोके नरोत्तमः ॥७६॥
 आस्ते तत्रैव भगवान्देवदेवो जनार्दनः । गोविन्दस्वामिनामाऽसौ भुविभुविप्रदो हरिः ॥७७॥
 त बृष्ट्वा मुक्तिमाप्नोति त्रिसप्तकुलसंयुतः । विमानेनाक्षवर्णेन किङ्किणीजालमालिनः ॥७८॥
 सर्वकामसमुद्धेन कामयेनास्थिरेण च । उपगोयमानो गन्धर्वविष्णुलोके महोद्यते ॥७९॥
 भुङ्क्ते च 'विधिधान्कामान्निरातङ्को' गतज्वरः । आभूतसंप्लवं याप्यत्सुरूपः सुभगः सुखी ॥८०॥

पश्चात् तीन बार प्रदक्षिणा कर पवित्रवस्त्रधारी, जितेन्द्रिय तथा सयमी होकर स्नान, पुण्य, गन्ध, धूप, दीप, नैवेद्य, उपहार, गीत, वाद्य, प्रदक्षिण, दण्डवत् प्रणाम, नृत्य और स्तोत्र से महाकाल शिव की विधिपूर्वक भक्ति से पूजा करे। (इस तरह एक बार पूजा करने से) मनुष्य सहस्र अश्वमेध यज्ञ का फल प्राप्त करता है और समस्त पापों से रहित हो स्वच्छाचारी विमानों पर चढ़ कर शम्भु के निवास स्थल को जाता है ॥६९-७१॥ वहाँ दिव्य मृगणों से मुक्ति तथा दिव्यरूपधारी होकर कल्पान्त तक अनेक प्रकार के उत्तम भोगों का भोगता है ॥७२॥ मुनिवर्ध । शिवलोक में बुढ़ापा तथा मृत्यु नहीं होती । पुण्यक्षय होने पर जीव यहाँ आकर उत्तम ब्राह्मण कुल में जन्म लेता है और चारों वेदों का ज्ञाता तथा सर्वशास्त्र-कुशल होकर पाशुपत योग प्राप्त कर मोक्ष प्राप्ति कर लेता है ॥७३-७४॥ वहाँ एक शिप्रा नाम से प्रसिद्ध पवित्र नदी है । उसमें स्नान तथा विधिपूर्वक पितर देवताओं के तर्पण करने से मनुष्य सर्वपाप रहित हो जाता है और उत्तम विमान द्वारा स्वर्गलोक जाकर अनेक मेलों का उपभोग करता है ॥७५-७६॥ वही पर गोविन्दस्वामी नाम से प्रसिद्ध, मुक्ति-मुक्ति दायक, देवों के देव, भगवान् जनार्दन रहते हैं ॥७७॥ उनका दर्शन कर मनुष्य मुक्त हो जाता है और इक्ष्वाकु कुलों के साथ सूर्य के समान वर्ण वाले, शुद्ध षष्टिकाओं की माला वाले, सब कामनाओं के पूरणकर्ता, स्वच्छाचारी तथा अस्थिर विमान में स्थित होकर गन्धर्वों से स्तुत होते हुए विष्णुलोक में पूजित होता है ॥७८-७९॥ वहाँ वह आतङ्ग तथा ज्वर से रहित, रूपवान्, मायवान् तथा सुखी होकर

कालेनाऽऽगत्य मतिमान्ब्राह्मण स्यान्महीतले । प्रवरेधोगिना गेहे वेदशास्त्रार्थतत्त्ववित् ॥८१॥
 धेष्णव योगमास्थाय ततो मोक्षमवाप्नुयात् । विक्रमस्वामिनामान विष्णु तत्रैव भो द्विजा ॥८२॥
 दृष्ट्वा नरो वानारी वा फलपूर्वोदित लभेत् । अन्येऽपि तत्र तिष्ठन्ति देवा शत्रुपुरोगमा ॥८३॥
 मातरश्च मुनिश्रेष्ठा सबकामफलप्रदा । दृष्ट्वा तान्विधिवदभवत्सा सपूज्य प्रणिपत्य च ॥८४॥
 'सर्वपापविनिर्मुक्तो नरो याति त्रिविष्टपम् । एव सा नगरी रम्या राजसिंहेन पालिता ॥८५॥
 नित्योत्सवप्रमुदिता यथेन्द्रस्यामरावती । पुराष्टादशसमुक्ता सुविस्तीर्णचतुष्पथा ॥८६॥
 धनुर्न्याघोषनिनदा सिद्धसगमभूषिता । विद्यावद्गणभूषिष्ठा वेदनिर्घोषनादिता ॥८७॥
 इतिहासपुराणानि शास्त्राणि विविधानि च । काण्डालापकयाश्चैव श्रूयन्तेऽहनिश द्विजा ॥८८॥
 एवमभागुणाढ्यासातड्डु (सोज्ज) विनी समुदाहृता । यस्या राजाऽभवत्पूवमिन्द्रद्युम्नो महामति ॥८९॥
 इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे स्वयभुक्पुसिवादेऽवन्तिकावर्णन नाम त्रिचत्वारिंशोऽध्याय ॥४३॥

वल्गान्त एक विविध भजा क मगता है ॥८०॥ फिर समय पाकर भूतल पर आकर यमियों के उत्तम पर भजम सेता है और वेद शास्त्रों का तत्त्वज्ञाना ब्राह्मण हजर वैष्णव यग में स्थित होते हुए मोक्ष प्राप्त करता है ॥८१॥ द्विजगण । वही पर विक्रमस्वामी नामक विष्णु ५ दशन करन से नर या नारी पूर्वोक्त फल लाभ करते हैं । मुनिवर । वहाँ दूसरे भी इन्द्र आदि देवता तथा सब कामनाभाका देने वाले मात गण विद्यमान हैं । उनका ध्यान कर मन्त्र से विधिपूर्वक पूजा तथा प्रणाम करने से मनुष्य सर्वपाप रहित हो कर स्वर्ग जाता है ॥८२ ८४॥ (इस प्रकार श्रेष्ठ राजा से पालित वह रमणीय नगरी अमरावती की तरह नियम से प्रमुदित रहता है ॥८५॥ द्विजगण । उस नगरी में अट्ठारह विस्तृत चोराहे हैं धनपाना के महोत्सव होते रहते हैं अनेक सप्त महात्मा तथा विद्वदगण वेद ध्वनि करते रहते हैं और इतिहास पुराण विविध शास्त्र काय कथा तथा आख्यानको की चर्चा रात दिन चलती रहती है ॥८६ ८८॥ इस प्रकार वर्णित उस गुण-सम्पन्न नगरी का नाम उज्जयिनी है जिसमें पहले इन्द्रद्युम्न नामक महाबुद्धिमान राजा हुआ था ॥८९॥

श्री ब्रह्मपुराण में ब्रह्मा और ऋषि के संवाद प्रकरण में अवन्तिका-वर्णन

नामक उतालीसवाँ अध्याय समाप्त ॥४३॥

अथ चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः

इन्द्रद्युम्नस्य दक्षिणोदधितटगमनम्

ब्रह्मोवाच

तस्यां स नृपति. पूर्वं कुर्वन्नाज्यमनुत्तमम्। पालयामास मतिमान्प्रजाः पुत्रानिबोरसान् ॥१॥
 सत्यवादी महाप्राज्ञः शूरः सर्वगुणाकरः। मतिमान्धर्मसंपन्नः सर्वशास्त्रभृतां वरः ॥२॥
 सत्यवाञ्छीलवान्दान्तः श्रीमान्परपुरंजयः। आदित्य इव तेजोभी हर्षराशिबनधोरिव ॥३॥
 वर्धमानसुराश्चर्यः शत्रुतुल्यपराक्रमः। शारदेन्दुरिवाऽऽभाति लक्षणं. समलंकृतः ॥४॥
 आहूतां सर्वयज्ञानां हयमेधादिकृत्तया। दानैर्यज्ञैस्तपोभिश्च सत्तुल्यो नास्ति भूपति ॥५॥
 सुवर्णमणिमुपताना गजाश्वानां च भूपतिः। प्रददौ विप्रमुह्येभ्यो यागे यागे महाघनम् ॥६॥
 हस्तपद्मरथमुपयाना कम्बलाजिनवाससाम्। रत्नानां धनधान्यानामन्तस्तस्य न विद्यते ॥७॥
 एवं सर्वघनेर्षुवतो गुणैः सर्वैरलंकृतः। सर्वकामसमृद्धात्मा कुर्वन्नाज्यमकष्टकम् ॥८॥
 तत्सर्वं मतिरूपेण सर्वयोगेश्वरं हरिम्। कथमराधयिष्यामि भुक्तिमुक्तिप्रदं प्रभुम् ॥९॥
 विचार्य सर्वशास्त्राणि सन्नाप्यागमविस्तरम्। इतिहासपुराणानि वेदाङ्गानि च सर्वशः ॥१०॥

अध्याय ४४

इन्द्रद्युम्न वा दक्षिणसमुद्र के तट पर जाना

ब्रह्मा ने कहा—गडले उस नगरी में उत्तम राज्य करते हुए वह बुद्धिमान् राजा अपने पुत्रों की तरह प्रजाओं का पालन करता था ॥१॥ वह सत्यवादी महाविद्वान्, शूर, सर्वगुणाकर, बुद्धिमान्, धर्मगण, वाञ्छाओं में श्रेष्ठ, धनवान्, मीलवान्, गदमी, श्रीमान्, शत्रुविजयी, सर्व के समान मेजबानी, अरिपत्नीकुमार के हृदय हर्षवान्, देवताओं का धर्कित करने वाला, इन्द्रद्युम्न पराक्रमी, शरद् शत्रु के शत्रु गुण्य बालिदान् अग्नि लक्ष्मियों में अष्टम अस्वमेध आदि यज्ञों का कर्ता और शान्, यज्ञ तथा तप करने में अद्वितीय राजा था ॥२-९॥ वह प्रसिद्ध में उत्तम वाञ्छाओं का पर्याप्त धन—सुवर्ण, मणि, माला, हाथी और घोड़ा—देता था। उसके हाथी, घोड़ा, रथ, कम्बल, धर्म, धन, रत्न तथा धन धान्यों का अन्न नहीं था। इस तरह सब प्रकार के धन में युक्त, गमरत गुणों में अष्टम तथा सब कामनाओं में परिपूर्ण वह राजा अकष्ट राज्य करता था ॥५-८॥ उसने धन में यह विचार उठाया हुआ कि मैं भुक्ति-मुक्ति-दायक प्रभु हरि की सेवा उपासना करूँ। तब वह अनिल वाहन, सन्, आगम, इतिहास, पुराण, वेदांग, धर्मशास्त्र, ऋषिस्मृतियों तथा विद्याओं के (पता) की

धर्मशास्त्राणि सर्वाणि नियमानृषिभाषिताम् । वेदाङ्गानि च शास्त्राणि विद्यास्थानानि ॥ ११ ॥
 गुरुं संसेव्य १ यत्नेन ब्राह्मणान्वेदपारयान् । आधाय परमां काण्ठां कृतकृत्योऽभवत्तदा ॥ १२ ॥
 संप्राप्य परमं तत्त्वं वासुदेवाख्यमव्ययम् । भ्रान्तिज्ञानादतोतस्तु मुमुक्षुः संयतेन्द्रियः ॥ १३ ॥
 कयमारोपयिष्यामि देवदेवं सनातनम् । पीतवस्त्रं चतुर्बाहुं शङ्खचक्रगदाधरम् ॥ १४ ॥
 वनमालावृतोरस्कं पद्मपत्रायतेक्षणम् । श्रीवत्सोरःसमाधृतं मुकुटाङ्गदशोभितम् ॥ १५ ॥
 स्वपुरातन तु निष्क्रान्त उज्जयिन्याः प्रजापतिः । बलेन महता युक्तः सभृत्यः सपुरोहितः ॥ १६ ॥
 अनुजामुस्तु तं सर्वे रयिनः शस्त्रपाणयः १ रथविमानसकाशैः पताकाध्वजसेवितैः ॥ १७ ॥
 सादिनश्च तथा सर्वे प्रासतोमरपाणयः । अश्वैः पवनसकाशैरनुजामुस्तु तं नृपम् ॥ १८ ॥
 हिमवत्सभवंमन्तैर्बारणैः पर्वतोपमैः । ईषादन्तैः सदा मत्तैः प्रवण्डैः पण्डितैः ॥ १९ ॥
 हेमकक्षैः सप्तार्कघण्टारवविभूषितैः । अनुजामुश्च तं सर्वे गजयुद्धविशारदाः ॥ २० ॥
 असह्येयाश्च पादाता धनुष्प्रासासिपाणयः १ दिव्यमाल्याम्बधरा दिव्यगन्धानुलेपनाः ॥ २१ ॥
 अनुजामुश्च तं सर्वे युवानो मृष्टकुण्डलाः । सर्वास्त्रकुशलाः शूराः सदा सङ्ग्रामलालसाः ॥ २२ ॥
 अन्तपुरनिवासिन्ध्रः स्त्रियः सर्वाः स्वलङ्कृताः । विम्बोच्छास्त्रदशनाः सर्वाभरणभूषिताः ॥ २३ ॥
 दिव्यवस्त्रधराः सर्वा दिव्यमाल्यविभूषिता । दिव्यगन्धानुलिप्ताङ्गाः शरच्चन्द्रनिभाननाः ॥ २४ ॥

विचार कर मत्नपूर्वक वेदधारण ब्राह्मण तथा गुरु की सेवा कर चरम सीमा पर पहुँचकर कृतकृत्य हो गया ॥ ११-१२ ॥ पश्चात् काल वासुदेव सङ्कट अविनाशी परम तत्त्व को प्राप्त कर मुमुक्षु, जितेन्द्रिय तथा भ्रान्तिक ज्ञान से परे होकर देवों के देव, सनातन, पीतवस्त्रधारी, चतुर्भुज, शङ्ख-चक्र गदाधारी वनमाला से आवृत वक्षस्थल वाले, विकसित कमल के समान दीर्घ नेत्र वाले, हृदय पर श्रीवत्स नामक चिह्न से युक्त तथा मुकुट और अगद (बाहुभूषण) से युक्त (कुण्डल की कंसे आरधना करने) यह सोचते हुए राजा अपने भगवत् उज्जयिनी से चल पड़ा ॥ १३-१५ ॥ उसके पीछे बिसाल सेना, गीकर-चाकर, पुरोहित और शस्त्र हाथ में लिए सब रथारोही ध्वजा-पताकाओं से सेवित, विमान तुल्य रथों में स्थित हाकर चल पड़े ॥ १६-१७ ॥ अवारोहीगण भी पवन तुल्य वेगी अश्वों पर चढ़ कर भाले और तोमर धारण कर राजा के पीछे हो लिए ॥ १८ ॥ हिमालय प्रदेश में उत्पन्न, पवताकार, हरित के समान दाँत वाले, सदा मतवाले भयंकर, साठ वर्ष वाले सुवर्णमय हौदा तथा पताका से युक्त और घटा के शब्दों से विभूषित हाथियों पर चढ़ कर गजयुद्धविशारदवृद्ध राजा का अनुसरण करने लगे ॥ १९-२० ॥ दिव्यमाला वस्त्र और मुगन्धित लेपधारी, सब प्रकार के अस्त्र चलाने में कुशल वीर, सदा सङ्ग्राम के अमलधारी तथा सुन्दर कुण्डलों से विभूषित असह्य युवक धनुष, भाले और तलवार हाथों में लिये पैदल ही राजा का अनुगमन करने लगे ॥ २१-२२ ॥ विम्बाण्डी, सुन्दर दाँत वाली, अक्षेय आभूषणों से अलङ्कृत, दिव्यवस्त्रधारिणी, दिव्य मालावाले से विभूषित,

१ व ० नि सर्वश । गु० २ ख समान्य ३ ख सङ्कलस । ४ न रेखादन्त । ५ ल ० वै जयपु० ।
 ६ ग सादिपा० । ७ ख रूपयौवनसम्पन्ना ।

सुमध्यमाश्चास्वेपाश्चारुकरालकाञ्चिताः । ताम्बूलरञ्जितमुखा रक्षिभिश्च सुरक्षिताः ॥२५॥
 यानिरुच्चावचैः शुभ्रैर्मणिकाञ्चनभूषितैः । उपगीयमानास्ताः सर्वा गायनैः स्तुतिपाठकैः ॥२६॥
 वेष्टिताः 'शस्त्रहस्तैश्च' पद्मपत्रायतेक्षणाः । ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्या अनुजग्मुश्च तं नृपम् ॥२७॥
 वणिग्प्रामगणाः सर्वे नानापुरनिवासिनः । धने रत्नैः सुवर्णैश्च सदारः सपरिच्छदाः ॥२८॥
 अस्त्रविक्रयकाश्चैव ताम्बूलपण्यजीविनः । तृणविक्रयकाश्चैव काष्ठविक्रयकारकाः ॥२९॥
 रङ्गोपजीविनः सर्वे मासविक्रयिणस्तथा । तैलविक्रयकाश्चैव वस्त्रविक्रयकास्तथा ॥३०॥
 फलविक्रयिणश्चैव पत्रविक्रयिणस्तथा । तथा जवसहाराश्च रजकाश्च सहस्रदाः ॥३१॥
 गोपाला नापिताश्चैव तथाऽन्ये वस्त्रसूचकाः । मेघपालाश्चाजपाला मृगपालाश्च हंसकाः ॥३२॥
 धान्यविक्रयिणश्चैव सवतुविक्रयिणश्च ये । गृध्रविक्रयिकाश्चैव तथा लवणजीविनः ॥३३॥
 (गायना नर्तकाश्चैव तथा मङ्गलपाठकाः । शैलूपाः 'कथकाश्चैव' पुराणार्थविशारदाः ॥३४॥
 कवयः काव्यकर्तारो नानाकाव्यविशारदाः । विषयना शास्त्रादश्चैव नानारत्नपरीक्षकाः ॥३५॥
 व्योकरास्ताम्रकाराश्च कांस्यकाराश्चरुठकाः । कौवकाराश्चित्रकाराः कुन्दकाराश्च पावकाः ॥३६॥

विषय गन्धा से लिप्त अग वाली, शरद् ऋतु के चन्द्रमा के समान मुख वाली, सुन्दर कटि वाली, सुन्दर बेश वाली, कानों पर लटकते हुए वालों से सुशोभित, ताम्बूल से रञ्जित मुख वाली, रत्नगणना से सुरक्षित, सब तरह की मणि काञ्चन भूषित सवारिया पर स्थित, भागधनियो से स्तुत, पद्म पत्र के समान शीर्ष नेत्र वाली और शस्त्रधारिणा से आवृत अन्त पुर की स्त्रिया अण्डी तरह सज घज कर राजा के पश्चात् प्रस्थित हुई ॥२३-२६॥ ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा धन रत्न, सुवर्ण, स्त्री और सामानों की साथ लिये बगिक-समूह, अस्त्र-विक्रेता ताम्बूल तथा जूए से जीविका उपार्जन करने वाले, पास-विश्रेता, लवण का व्यापार करने वाले ॥२७-२९॥ रत्ना से जीविका कमाने वाले, मास विश्रेता, तेल विश्रेता, वस्त्र-विश्रेता, ॥३०॥ फल विश्रेता पत्र विक्रेता, घास ढाले वाले, हजारों धनी, ॥३१॥ अहीर, नाई, दर्जी, गडहिले, धकरी पालने वाले, हरिण पालने वाले, हंस पालने वाले, ॥३२॥ धान्य विश्रेता, सलू बेचने वाले, गृध्र बेचने वाले, लवण विश्रेता ॥३३॥ (गवय, नर्तक, बदी, नट कथक, पौष्पणिक, ॥३४॥ कवि, काव्यकर्ता, नाना काव्यनिपुण विषय, विष मन्त्रज्ञाता, रत्ना के परीक्षक, ॥३५॥) लोहार, कसेरा, कोशकार, चित्रकार

१ स मष्टिहस्तैश्च । २ स ऽश्च अ० । ३ स ० म । ४ स ० व ५ सर्वाङ्गमुन्दर्यो नानाङ्गानामुपिता । पर्वतार-
 गणं मार्धमनुजगमुत्तथा नृपम् । तथा मणि ग० । ४ स ० द । साङ्गवेदविदश्चैव नानागास्त्रार्थपारगा । ब्राह्मणा
 क्षत्रिया वैश्या गूढाश्चैवाष्टजातयः । स्वर्णकाराश्च कर्मारा लङ्काराश्चमनुष्टुका । मणिकारा कुम्भकाराश्चर्मकाराश्च
 पावका । पराकारा वेशकारा मुद्रकाराश्च चिल्लिख । वेङ्गकारास्तुम्बिकारा ह्युकारा स्वर्णजीविन । स्वर्णकारा
 रङ्गकारा स्वधाकाराश्च बाहका । अपूपकारका सर्वे तत्त्वविनयकास्तथा । मालाकारा पर्वकारा सर्वविनयिणश्च ये ।
 मत्स्यविनयिणश्चैवर्मा० । ५ स ० पा । मुख्यविनयकाश्चैव ताम्बूरीपण्यजीविन । तृणविनयकाश्चैव बाटविनय-
 कास्तथा । रङ्गोपजीविनश्चैव रज० । ६ स ० व ७ ।

दण्डकाराश्चासिकारा सुराद्यतोपजीविनः । मत्स्य दूताश्च कायस्या ये चान्ये कर्मकारिणः ॥३७॥
तन्नुवाया रूपकारा वार्तिकास्तैलपाठका । लावजीवास्तैत्तिरिका मृगपक्ष्यपजीविनः ॥३८॥
गजवेद्याश्च घंघ्राश्च नरवेद्याश्च ये नरा । वृक्षवेद्याश्च गोवेद्या ये चान्ये छेददाहका ॥३९॥
एते नागरका सर्वे ये चान्ये नानुकीर्तिता । अनुजम्मुस्तु राजान समस्तपुरवासिनः ॥४०॥
यथा व्रजन्त पितर प्रामान्तर समुत्सुका । अनुयायि यथा पुत्रास्तथा त तेऽपि नागरा ॥४१॥
एव स नृपति श्रीमान्वृत सर्वमंहाजनं । हस्तद्वयपादातैर्जंगम च शनं शनं ॥४२॥
एव गत्वा स नृपतिर्दक्षिणस्योदधेस्तटम् । सर्वस्तैर्दीर्घकालेन बलैरनुगत प्रभु ॥४३॥
ददश 'सागर रम्य नृत्यन्तमिव च स्थितम् । अनेकशतसाहसैरभिभिश्च समाकुलम् ॥४४॥
नानारत्नालय पूर्णं नानाप्राणिमहाकुलम् । वीचीतरङ्गबहुल महाश्चर्यसमन्वितम् ॥४५॥
तीर्थराज महाशब्दमपार सुभयकरम् । मेघवृन्दप्रतीकाशमगाध सकरालयम् ॥४६॥
मत्स्यै भूमिंश्च शङ्खैश्च श्रुतिकानकशङ्खभिः । शिशुमारैः कर्कटैश्च घृत सर्पमंहाविषं ॥४७॥
लवणोद हरे स्थान शयनस्य नदोपतिम् । सर्वपापहर पुण्य सर्ववाञ्छाफलप्रदम् ॥४८॥
अनेकावर्तगम्भीर दानवीना समाध्वयम् । अमृतत्यारणि दिव्य देवयोनिमया पतिम् ॥४९॥
विशिष्ट सर्वभूतानां प्राणिना जीवधारणम् । सुपवित्र पवित्राणां मङ्गलानां च मङ्गलम् ॥५०॥

शरावने वाले बटक ? पावक (तपस्वी ?) ॥३६॥ दण्ड बनाने वाले तलवार बनाने वाले मद्य विनोता पहचान दूत कापस्य अथ कमचारी ॥३७॥ जुलाहे सीनार, वार्तिक (जामूस) तैलपाठक (सेली) लावा पक्षी से जाविका कमाने वाले तीतर पक्षी से निर्वाह करने वाले पशु पक्षियों से जीने वाले ॥३८॥ हाथी के वैद्य वैद्य मनुष्य वैद्य वृक्ष-वैद्य गो वैद्य छेदनकर्ता दाह-कर्ता—ये नागरिक और दूसरे भी समस्त पुरवासी जिनके नाम नहीं लिख गए राजा के अनुगमन करने लगे ॥३९॥ जैसे दूसरे गांव को जाने वाले पिता का पुत्र उत्सुकता से अनुगमन करते हैं उसी तरह वे नागरिक भी भी राजा के अनुयायी हुए ॥४०॥ इस प्रकार हाथी घोड़ रथ वैदल सेना और समस्त नागरिकों से वैष्टित राजा धीरे धीरे प्रस्थान करने लगा ॥४१॥ इस प्रकार वह राजा सगल सैनिका के साथ दक्षिण समुद्र के तट पर पहुँचा ॥४२॥ राजा ने नावते हुए से स्थित रमणीय संवडा-हजारों तरंगा से व्याप्त ॥४३॥ नाना रत्नों के आलय पूर्ण अनेक जीव जंतुजा से भरे महान आश्चर्यजनक ॥४४॥ तीर्थराज महाशब्दकारी पाररहित अतिमयकर मेघसमूहोत्पन्न अगाध प्राहा के घर ॥४५॥ मत्स्य कूट दक्ष गविका (सितुही) नर शङ्ख शिशुमार कर्कट तथा महाविषधर सर्पों से युक्त ॥४६॥ खारे जल वाले हरि के शयन-स्थान नदिया के पति सब पापों के हरने वाले पवित्र सब कामनाओं के फल देने वाले ॥४७॥ अनेक आवतों से गम्भीर, दानवी के आध्वय अमृत के उत्पत्ति-स्थान दिव्य देव-योनि जल के स्वामी ॥४८॥ सब के प्रिय प्राणिमा के जीव धारण

तीर्थानामुत्तमं तीर्थमव्ययं यादसां पतिम् । चन्द्रवृद्धिसयस्येव यस्य मान प्रतिष्ठितम् ॥५१॥
 अभेद्यं सर्वभूतानां देवानाममृतालयम् । उत्पत्तिस्थितिसंहारहेतुभूतं सनातनम् ॥५२॥
 उपजोद्यं च सर्वेषां पुण्यं नदनदीपतिम् । दृष्ट्वा तं नृपतिश्रेष्ठो विस्मयं परमं गतः ॥५३॥
 निवासमकरोत्तत्र वेलामासाद्य सागरिम् । पुण्ये मनोहरे देशे सर्वभूमिगुणैर्युते ॥५४॥
 वृतं शालैः कदम्बैश्च पुनर्णैः सरलद्रुमैः । पनसर्नारिकेलैश्च दकुलैर्नामिकैसरैः ॥५५॥
 तालैः पिप्पलैः खजूरैर्नारिङ्गैर्बाजपूरकैः । शालैराम्रातकैर्लोध्रैर्बकुलैर्बहुवारकैः ॥५६॥
 कपिरथैः कर्णिकारैश्च पाटलालशोकचम्पकैः । दाडिमैश्च समालैश्च पारिजातैस्तयाज्जुनैः ॥५७॥
 प्राचीनामर्कबिल्वैः प्रियंगुवटखारिदैः । इङ्गदीसप्तपर्णैश्च अश्वत्थामरत्यजम्बुकैः ॥५८॥
 मधुकैः कर्णिकारैश्च बहुवारैः सतिन्दुकैः । पलाशवदरैर्नोपैः सिद्धनिम्बशुभाञ्जनैः ॥५९॥
 धारकैः कोविदारैश्च भल्लातामलकैस्तथा । इति हिन्तात्रकाङ्गुलैः करञ्जैः सविमीतकैः ॥६०॥
 ससर्जमधुकाशमयैः शास्मलीदेवदारुभिः । शाखोटैर्कनिम्बवटैः कुम्भीकोष्ठहरीतकैः ॥६१॥
 गुग्गुलैश्चन्दनैर्वक्षैस्तयैर्वागुलपाटलैः । जम्बीरकरणैर्वक्षैस्तित्तिहोरैश्चतुश्चन्दनैः ॥६२॥
 एवं नानाविधैर्वक्षैस्तयाऽप्येवंबहुपादपैः । बल्पद्रुमैर्नित्यफलैः सर्वतृकुसुमोत्करैः ॥६३॥
 नानापक्षिस्तैर्विष्यैर्मंसकोकिलनादितैः । मयूरचरसंपुटैः शुक्रसारिखसंतुलैः ॥६४॥
 हारीतैर्भृङ्गराजैश्च चातकैर्बहुपुत्रकैः । जीवजीवककाकोलैः कलविष्णुः कपोतकैः ॥६५॥

करने वाले, पवित्रों में पवित्र, मगला में मगल, ॥५०॥ तीर्थों में उत्तम तीर्थ, नाश-रहित, जलजन्तुओं के स्वामी, चन्द्रमा की वृद्धि तथा क्षय की तरह मान (सीमा प्रमाण) वाले, ॥५१॥ सब प्राणियों से अनेक वैजताया के अमृतालय, उत्पत्ति-स्थिति-संहार के कारण, सनातन, ॥५२॥ सब के आश्रय और नदनदिया के स्वामी सागर की देखा । देख कर वह अत्यन्त विस्मित हो गया । समुद्र-तट पर पड़कर राजा वहीं निवास करने लगा ॥५३॥ (उस) पवित्र, मनोहर तथा भूमि के समस्त गुणों से युक्त देश में सायू, कदम्ब, पुष्पा सरड, कटहल, नाट्यल, मौलसरी, नामकैसर, ॥५४-५५॥ शाल, पीपल, खजूर, नागमी, बाजपूर, आश्रितक, लाप, बहुवारक, कठवेल, वनकचम्पा, पाटला, अशोफ, चम्पा, अनार, तमाल, पारिजात, अर्जुन, ॥५६॥ प्राचीनामलक, वेल, प्रियंगु, वट, खैर, हिगाट, छतिवन अश्वत्थ, अश्वत्थ, नीवू, ॥५८॥ महुआ, तिन्दु, पलाश, बेर, कदम्ब, सिद्ध, नीम, सहिजन ॥५९॥ धारक, कचनार, मल्लोत, आमलक, हिन्ताल, बाङ्गू, करञ्ज, बहेडा, ॥६०॥ सर्ज, मधु, नाशमय, सेमल, देवदारु, शाखोटक कुम्भीकोष्ठ, हरे, ॥६१॥ गुग्गु चन्दन, अगर, करण तिन्तिडी, स्वतचन्दन—एसे नाना प्रकार के वृक्षों में, नित्य फूलने वाले तथा सब श्रुतुमा में फूलने वाले बल्पवृक्षों से, ॥६२-६३॥ नाना पक्षियों के दिव्य सन्दा से, भल्ल कोकिल, मयूर, ताने, मीने, हारीत, भृङ्गराज, पपीहे, बहुपुत्रक, जीवजीव (चकोर), गोरेये, कतूर—पक्षियों में तथा दूमरे

१ ख ०श्च लघुचर्मा ० । २ ख ०स्वमुपगर्भ ० वा ० । ३ ख ०या । टीति । ४ न ०पादा । उ ० ।

खगेर्नानाधिपेश्चायैः श्रोत्ररस्येर्मनोहरैः । पुष्पितापेषु वृक्षेषु कूजदिमश्चावधिष्ठितैः ॥६६॥
 फेतकीजनलक्ष्मैश्च । सदा पुष्पधरैः सितैः । मल्लिकाकुन्दकुसुमैर्युक्तातगरस्तथा ॥६७॥
 कुटजैर्वाणपुष्पैश्च अतिमुक्तैः । राकुब्जकैः । मालतीकरवीरैश्च तथा कदलकाञ्चनैः ॥६८॥
 अन्यैर्नानाधिपैः पुष्पैः सुगन्धैश्चावदशनेः । वनोद्यानोपवनजर्नानावर्णैः सुगन्धिभिः ॥६९॥
 विद्याधरगणाकीर्णैः सिद्धचारणैस्तेजितैः । गन्धर्वोत्तरक्षोभिर्भूताप्सरसाकिनरैः ॥७०॥
 मुनियक्षगणाकीर्णैर्नानासत्त्वनिपेक्षितैः । मृगैः शालामृगैः सिंहैर्यराहमहिषाकुलैः ॥७१॥
 तथाऽन्यैः कृष्णसारारक्षमृगैः सर्वत्र शोभितैः । शार्दूलवीर्यमातङ्गैस्तथाऽन्यैर्वनचारिभिः ॥७२॥
 एवं नानाविधेषु क्षेत्रान्तेनन्दनोपमैः । लतागुल्मवितानैश्च विविधैश्च जलाशयैः ॥७३॥
 हंसकारण्डवाकीर्णैः पद्मिनीलण्डमण्डितैः । कादम्बैश्च प्लवहैस्तेष्वक्षत्राकोपशोभितैः ॥७४॥
 कमलैः शतपत्रैश्च कद्धारैः कुमुदोत्पलैः । खगेजलवरैश्चायैः पुष्पैर्जलसमुद्भवैः ॥७५॥
 पर्यन्तैर्दीप्तिशालरैश्चावन्दरमण्डितैः । नानावृक्षसमाकीर्णैर्नानाधातुविभूषितैः ॥७६॥
 सर्वाश्चर्यमयैः शृङ्गैः सर्वभूतालयैः शुभैः । सयौघपिसमायुक्तैर्विपुलैश्चित्रसन्तानुभिः ॥७७॥
 एवं सर्वैः समुदितैः शोभितं सुमनोहरैः । ददर्श स महीपालः स्यानं प्रलोषयपूजितम् ॥७८॥
 दशयोजनविस्तीर्णं पञ्चयोजनमायतम् । नानाशयैस्समायुक्तं क्षेत्रं परमदुर्लभम् ॥७९॥

इति धीमहापुराणे आदिब्राह्मे स्वयंभूतसंवादे क्षेत्रदर्शनं नाम चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥४४॥

यौ पुष्पित वृक्षो के ऊपर लम्ब कराने वाले मनोहर पक्षियो से, सदा बनेत पुष्प समन्वित बेतकी, मल्लिका, कुन्द, गूही, तगर, कुटज, बाण, अतिमुक्त, कुम्भ, मालती, करवीर, कदल, काञ्चन—इन पुष्पो से ॥६४॥
 ६८॥ तथा अन्य अनेक सुगन्धित मनोहर पुष्पो से, अनेक प्रकार के सुगन्धित वन, उपवन तथा उद्यानो से, ६८॥ तथा अन्य अनेक सुगन्धित मनोहर पुष्पो से, अनेक प्रकार के सुगन्धित वन, उपवन तथा उद्यानो से, ६८॥
 विद्याधरगण, सिद्ध, चारण, गन्धर्व, सर्प, राक्षस, अप्सरा, विभ्रर ॥६९-७०॥ मुनि यक्षगण तथा अनेक जीवो से, हरिण, बन्दर, सिद्ध, धूम्र, महिष, कृष्णमृग, बाघ, मलबाले हाथी तथा अन्य वनचारी पशुओ से, नाना प्रकार के वृक्षो तथा नन्दनवन तुल्य उद्यानो से, लता-गुल्म-वितानो से हंस-नारण्डयो से प्रपूर्ण, कमलिनो(खण्ड) से मुद्रामित, कादम्ब, प्लव, हंस तथा चक्रवाको से अलङ्कृत, कमल, शतपत्र कद्धार कुमुद तथा उत्पलो से विभूषित, जलचर पक्षियो तथा जलोत्पन्न पुष्पो से युक्त विविध जलाशयो और सुन्दर गुफाओ से मण्डित, नाना वृक्षो से व्याप्त, विविध धातुओ से विभूषित, सब प्राणिमो के आश्रय, समस्त ओषधियो से युक्त तथा सब को चकित करने वाले नान्तिमान् शिखरों से युक्त अत्यन्त मनोहर पर्वतो से सुशोभित एवं दाम राजा को दृष्टिगोचर हुआ, जो तीनों लोकों से पूजित, दश याजन प्रमाण चौड़ा, पाँच योजन प्रमाण लम्बा, अनेक आश्चर्यजनक वस्तुओ से समन्वित तथा परम दुर्लभ था ॥७१-७९॥
 यी ब्रह्ममहापुराण मे ब्रह्मा और ऋषि के संवाद-प्रवरण मे क्षेत्र-दर्शन नामक चौवालीसवा अध्याय समाप्त ॥४४॥

अथ पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः

पुरुषोत्तमक्षेत्र-वर्णनम्

मुनय उचुः

तस्मिन्क्षेत्रवरे पुण्ये ध्वेष्णवे पुरुषोत्तमे । किं तत्र प्रतिमा पूर्वं न स्थिता वैष्णवी प्रभो ॥१॥
 येनासौ नृपतिस्तत्र गत्वा सबलबाहनः । स्थापयामास कृष्णं च 'रामं भद्रा शुभप्रदाम् ॥२॥
 संशयो नो महानत्र विस्मयश्च जगत्पते । श्रोतुमिच्छामहे सर्वं ब्रूहि तत्कारणं च नः ॥३॥

ब्रह्मोवाच

शृणुष्व पूर्वंसंवृतां कथां पापप्रणाशिनीम् । प्रवक्ष्यामि समासेन श्रिया पृष्टः सुरा हरिः ॥४॥
 सुमेरोः काञ्चने शृङ्गे सर्वाश्चयंसमन्विते । सिद्धविद्याधर्यंशैः किनररूपशोभिते ॥५॥
 देवदानवगन्धर्वनागिरप्सरस्ताम्रगणैः । मुनिभिर्मुहुर्हृकैः सिद्धैः सोपणैः समरद्गणैः ॥६॥
 अन्यर्द्धेवाभ्यः साध्यैः दशपपाद्यैः प्रजेश्वरैः । बाललिङ्ग्यादिभिश्चैव शोभिते सुमनोहरे ॥७॥
 कर्णिकारवर्नैर्दिव्यैः सर्वर्तुकुसुमोत्करैः । ज्ञातरूपप्रतीकाशैर्भूषिते सूर्यसंनिभैः ॥८॥
 अन्यैश्च बहुभिर्बुधैः शालतालादिभिर्वनैः । पुंनागाशोकसरलन्यग्रोधाभ्रातकार्जुनैः ॥९॥
 पारिजाताभ्रखदिरनीपविल्वकदम्बकैः । पवलादिरपालाशशोषामलकतिन्दुकैः ॥१०॥

अध्याय ४५

पुरुषोत्तमक्षेत्र का वर्णन

मुनियो ने कहा—प्रभो ! क्या विष्णु के उस पवित्र पुरोहितम क्षेत्र में पहले कोई वैष्णवी प्रतिमा नहीं थी, जो सेना वाहना के साथ जाकर उस राजा ने बड़ी कृष्ण, राम और कल्याण-दायिका सुमद्रा की स्थापना की ? जगत्पते ! इसमें हमें बड़ा सशय है और आश्चर्य भी है । हम सविस्तर सुनना चाहते हैं । आप इसका कारण बतलायें ॥१-३॥

ब्रह्मा ने कहा—मुनिये, जो क्या पूर्वकाल में लक्ष्मी ने विष्णु से पूछी थी, उसी पापनाशिनी कथा वा मैं सक्षप से वर्णन करूँगा ॥४॥ सिद्ध, विद्याधर, यक्ष, त्रिप्रवर, देव, दानव, गन्धर्व, अप्सरगण, मुनि, गुरुवर, सोपण, मरुद्गण, साध्य, कन्दर्प आदि प्रजापति, बाललिङ्ग्य आदि ऋषि तथा देवाल्यों से परिमित, अत्यन्त मनोहर, सब ऋतुओं में मुनिहले पुष्पों से समन्वित, दिव्य वनक चम्पा वृक्षा में भूषित, सूर्य के समान वर्ण वाले पुष्पा से युक्त, दूसरे भी बहुत से वृक्षा से अश्रुत, शाल, ताल, पुत्राग, अशोक, सरह वट, आश्रातक, अर्जुन, पारिजात, आम, खैर, नीबू, बेल, कदम्ब, बँस, पलाश, गिररीप, ओवला, तिन्दुल, ॥५-१०॥

१ स रामचन्द्र सुखप्रदम् ।

नारिङ्गकोलवकुललोध्रवाडिमदारकैः । सर्वे च कर्णेस्तगरेः शिशिभूर्ज्वनिम्बकैः ॥११॥
 अन्ये च काञ्चनैश्चैव फलभारैश्च नामितैः । नानाकुसुमगन्धाद्यैर्भूषिते पुष्पपादपैः ॥१२॥
 मालतीयूषिकामल्लीकुन्दवाणकुण्डकैः । पाटलागस्त्यकुटजमन्दारकुसुमादिभिः ॥१३॥
 अन्ये च विविधैः पुष्पैर्मनसं प्रीतिदायकैः । नानाविहगसंघैश्च कूर्जद्भिर्मधुरम्बरेः ॥१४॥
 पुंस्कोकिलशतैर्दिव्यैर्मन्त्रबहिष्णनादितैः । एवं नानाविधैर्वृक्षैः पुष्पैर्नानाविधैस्तथा ॥१५॥
 सगैर्नानाविधैश्चैव शोभिते सुरसेविते । तत्र स्थितं जगन्नाथं जगत्स्रष्टारमव्ययम् ॥१६॥
 सर्वलोकविधातारं वासुदेवाख्यमव्ययम् । प्रणम्य शिरसा देवीं लोकानां हितकाम्यया ॥
 पप्रच्छेभं महाप्रभन् पञ्चजा तमनुत्तमम् ॥१७॥

श्रीरुवाच

भूहि त्व सर्वलोकेश सशयं मे हृदि स्थितम् । मर्त्यलोके महाश्चर्यं कर्मभूमौ सुदुर्लभे ॥१८॥
 लोभमोहप्रहप्रस्ते कामक्रोधमहार्णवे । येन मुच्येत देवेश अस्मात्ससारसागरात् ॥१९॥
 आचक्ष्व सर्वदेवेश प्रणतां यदि मनसो । ह्यदृते नास्ति लोकेऽस्मिन्ब्रह्मा सशयनिर्णये ॥२०॥

ब्रह्मोवाच

श्रुत्वा च धृष्टन तस्या देवदेवो जनार्दन । प्रोवाच परमा प्रीत्या परं सारामृतोपमम् ॥२१॥

नारंगी, कोल, मीलसिरी लोध्र, अनार, दारुक, सर्ज, कनैल, तगर, शिशिभू (?), जब अर नीम वृक्षा से तथा फल के मार से भुके हुए अन्य वृक्षा से मंडित, मालती, भूही, मल्लिका कुम्भ, बाण कुण्डक, पाटला, अगस्त्य, कुटज मन्दार आदि पुष्पा से तथा मन की प्रसन्न करने वाले अन्य विविध पुष्पो से विभूषित, मधुर स्वर से आलाप करने वाले नाना पक्षिमांसे से समृद्ध तथा कर्किल एवम् मस्त मयूरा से शब्दित, देवताओं से सुमेवित, समस्त आश्चर्यजनक वस्तुओं से समन्वित मेरुपर्वत के सुवर्णमय शिखर पर स्थित जगत्स्रष्टा जगत्पति, अविनाशी, सब लाका के विधाता, वासुदेव की शिर युक्त करप्रणाम करने लक्ष्मी ने लाव-वस्त्याण के लिए उनसे यह महाप्रभन् पूछा ॥११-१७॥

रमाने कहा—हे त्रिभुवन के स्वामी ! मेरे हृदय में जो सशय है, उसका आप निराकरण कीजिए । देवेश ! महान् आश्चर्यजनक, अत्यन्त दुर्लभ, कर्म की भूमि, लोभ-मोह रूपी घाटों से प्रस्त, काम क्रोध रूपी महासमुद्र से युक्त मर्त्य लोके में मनुष्य इस ससार सागर से किस प्रकार मुक्त हो वह उपाय आप बतलाइये । हे जलिल देवों के स्वामी ! इस लोक में आपकी छोड़कर दूसरा कोई सहाय निर्णय करने में समर्थ नहीं है ॥१८-२०॥

ब्रह्मा ने कहा—लक्ष्मी के ऐसे वचना को सुन कर देव-देव जनार्दन बहुत प्रेम से अमृतपुण्य सार बात बतलाने लगे ॥२१॥

श्रीभगवानुवाच

सुखोपास्यः सुसाध्यश्चाभिरामश्च सुमत्फलः । आस्ते तीर्थवरे देवि विख्यातः पुरोत्तमः ॥२२॥
 न तेन सद्दशः कश्चित् त्रिषु लोकेषु विद्यते । कीर्तनाद्यस्य देवेशि मुच्यते सर्वपातकैः ॥२३॥
 न विज्ञातोऽमरंः 'सर्वे'नं दैत्यैर्न च दानवैः । मरीच्याद्यैर्मुनिवरैर्गोपित मे वरानने ॥२४॥
 तत्तेज्ज्हं संप्रवक्ष्यामि तीर्थराज च साप्रतम् । भावेनैकेन सुश्रोणि शृणुष्व वरवर्णिनि ॥२५॥
 'आसीत्कल्पे' 'समुत्पन्ने' नष्टे स्थावरजङ्गमे । 'प्रलीना' 'देवगन्धर्वदेत्यविद्याधरोरगा' ॥२६॥
 तमोभूतमिदं सर्वं न प्राज्ञायत किञ्चन । तस्मिञ्जगति भूतात्मा परमात्मा जगद्गुरुः ॥२७॥
 श्रीमार्त्तिमूर्तिर्ब्रह्मदेवो जगत्कर्ता महेश्वरः । वासुदेवेति विख्यातो योगात्मा हरिरिद्वरः ॥२८॥
 सोऽजुज्योनिर्ब्रह्मन्ते नाभ्यम्भोरुहमध्यगम् । 'पञ्चकेशरसंकाश ब्रह्माणं भूतमव्ययम्' ॥२९॥
 तादृग्भूतस्ततो ब्रह्मा 'सर्वलोकमहेश्वरः । पञ्चभूतसमापुष्तं सृजते च' 'शने' 'शने' ॥३०॥
 मात्रायोगीनि भूतानि स्थूलसूक्ष्माणि यानि च । चतुर्विधानि सर्वाणि स्थावराणि चराणि च ॥३१॥
 ततः प्रजापतिर्व्रह्मा ध्वजे सर्वं चराचरम् । संचिन्त्य मनसाऽऽत्मानं ससर्ज विविधाः प्रजाः ॥३२॥
 मरीच्यादीन्मुनीन्सर्वाग्देवासुरपितृनपि । यज्ञविद्याधरांश्चाभ्यान्गङ्गाद्याः सरितस्तथा ॥३३॥

श्री भगवान् ने कहा—देवी । उत्तम तीर्थों में प्रसिद्ध पुरोत्तम नामक तीर्थ सुख से उपासना करने योग्य, आसनतया साधना करने योग्य, मनोहर तथा सत्फलदायक है । उसके समान तीना लोक में कोई नहीं है । उसका कीर्तन करने से सब पाप दूर हो जाते हैं ॥२२-२३॥ अष्ट मुख वाली । न देवता, न दैत्य, न दानव, न मरीचि आदि मुनि ही उस गुप्त स्थान को जानते हैं ॥२४॥ हे सुन्दर कटि बाणी । हे सुन्दरी । इस समय मैं उस तीर्थराज के बारे में कहता हूँ, तुम एकाग्र मन से सुनो ॥२५॥ कल्प उत्पन्न होने पर (कल्पांत में) स्थावर जगमा के नष्ट हो जाने पर तथा देवा, गन्धर्वों, दैत्यों, विद्याधर, और सर्पों के लीन हो जाने पर यह सब कुछ अन्धकारमय दीखता था, कुछ भी मालूम नहीं पड़ता था ॥२६॥ इस समय प्राणिमा के आत्मा, परमात्मा, जगद्गुरु, श्रीमान्, त्रिगुणित्तु (सत्त्व रजस् तमामय), देव, जगत्कर्ता, महेश्वर, ईश्वर, योगात्मा, हरि (इत्यादि नामधारी) वासुदेव जागृते थे ॥२७-२८॥ उन्होंने ब्रह्मनिद्रा के अंत में मार्त्ति रूपी कमल के मध्य में स्थित, कमल के बेसर के सदृश, सत्त्व रूप तथा अविनाशी, ब्रह्मा की सृष्टि की ॥२९॥ तदुपरांत समस्त लावा में महान् ईश्वर ब्रह्मा धीरे-धीरे पञ्चभूततत्त्व सृष्टि करने लग्य ॥३०॥ मात्रापूर्वक स्थूल-सूक्ष्म जितने चार प्रकारके स्थावर-जगम है, उन सब को उन्होंने रचा ॥३१॥ तब प्रजापति ब्रह्मा न समस्त चराचरा को उत्पन्न किया । मन से आत्मा का ध्यान कर विविध प्रजाया की उत्पत्ति की ॥३२॥ मरीचि आदि समस्त मुनि, देव, राक्षस, पितर, यक्ष विद्याधर तथा आदि नदी, मनुष्य, चन्दर, सिंह, विविध

१ स ०र्वैर्न दित्यैः । २ स ०सीतपय सः । ३ स ०त्यः नः । ४ स ०र्गने । ५ स ०न्धर्वदेत्यैः । ६ स ०र्गै । ७ स ०र्मा प्रत्येवेजैः । ८ स ०र्ग आर्त्तिस्तथा । ९ स ०ध्यः । १० स ०र्गः । ११ स ०र्गः । १२ स ०र्गः । १३ स ०र्गः । १४ स ०र्गः । १५ स ०र्गः । १६ स ०र्गः । १७ स ०र्गः । १८ स ०र्गः । १९ स ०र्गः । २० स ०र्गः । २१ स ०र्गः । २२ स ०र्गः । २३ स ०र्गः । २४ स ०र्गः । २५ स ०र्गः । २६ स ०र्गः । २७ स ०र्गः । २८ स ०र्गः । २९ स ०र्गः । ३० स ०र्गः । ३१ स ०र्गः । ३२ स ०र्गः । ३३ स ०र्गः । ३४ स ०र्गः । ३५ स ०र्गः । ३६ स ०र्गः । ३७ स ०र्गः । ३८ स ०र्गः । ३९ स ०र्गः । ४० स ०र्गः । ४१ स ०र्गः । ४२ स ०र्गः । ४३ स ०र्गः । ४४ स ०र्गः । ४५ स ०र्गः । ४६ स ०र्गः । ४७ स ०र्गः । ४८ स ०र्गः । ४९ स ०र्गः । ५० स ०र्गः । ५१ स ०र्गः । ५२ स ०र्गः । ५३ स ०र्गः । ५४ स ०र्गः । ५५ स ०र्गः । ५६ स ०र्गः । ५७ स ०र्गः । ५८ स ०र्गः । ५९ स ०र्गः । ६० स ०र्गः । ६१ स ०र्गः । ६२ स ०र्गः । ६३ स ०र्गः । ६४ स ०र्गः । ६५ स ०र्गः । ६६ स ०र्गः । ६७ स ०र्गः । ६८ स ०र्गः । ६९ स ०र्गः । ७० स ०र्गः । ७१ स ०र्गः । ७२ स ०र्गः । ७३ स ०र्गः । ७४ स ०र्गः । ७५ स ०र्गः । ७६ स ०र्गः । ७७ स ०र्गः । ७८ स ०र्गः । ७९ स ०र्गः । ८० स ०र्गः । ८१ स ०र्गः । ८२ स ०र्गः । ८३ स ०र्गः । ८४ स ०र्गः । ८५ स ०र्गः । ८६ स ०र्गः । ८७ स ०र्गः । ८८ स ०र्गः । ८९ स ०र्गः । ९० स ०र्गः । ९१ स ०र्गः । ९२ स ०र्गः । ९३ स ०र्गः । ९४ स ०र्गः । ९५ स ०र्गः । ९६ स ०र्गः । ९७ स ०र्गः । ९८ स ०र्गः । ९९ स ०र्गः । १०० स ०र्गः ।

नरवानरसिंहाश्च विविधांश्च विहंगमान् । जरायून्ष्टब्धजाले च स्वदेजोभेदजास्तथा ॥३४॥
 ग्रहाक्षरं तथा वैश्यं शूद्रं चैव चतुष्टयम् । अन्त्यजास्तश्च स्लेच्छांश्च सप्तर्जं विविधान्पृथक् ॥३५॥
 यत्किञ्चिज्जीवसंज्ञं तु तृणगुल्मपिपीलिकम् । ब्रह्मा भूत्वा जगत्सर्वं निर्ममे सचराचरम् ॥३६॥
 दक्षिणाङ्गे तथाऽऽत्मानं संचिन्त्य पुरुषं स्वयम् । वामे चैव तु नारीं स द्विधा भूतमकल्पयत् ॥३७॥
 ततः प्रभृति लोकेऽस्मिन्प्रजा मय्युत्संभवा । 'अयमोत्तममध्याश्च मम क्षेत्राणि यानि च ॥३८॥
 एवं संचिन्त्य देवोऽसी पुरा सलिलयोनिजः । जगाम ध्यानमास्थाय वासुदेवात्मिका तनुम् ॥३९॥
 ध्यानमात्रेण ह्येव स्वयमेव जन्तार्दनः । तस्मिन्क्षणे समुत्पन्नः सहस्राक्षः सहस्रपात् ॥४०॥
 सहस्रशोर्षां पुरुषः पुण्डरीकीकभक्षणः । सलिलध्वाभ्रतमेघाभः श्रीमाऽस्त्रीवत्सलक्षणः ॥४१॥
 अपश्यत्सहसा तं तु ब्रह्मा लोकपितामहः । आसनैरर्ध्यापाद्यैश्च अक्षतैरभिनन्द्य च ॥४२॥
 सुष्टाव परमैः स्तोत्रैर्विरिञ्चि च सुसमाहितः । कृतोऽहमुत्तमादेव ब्रह्माण कमलोद्भवम् ॥
 कारणं यद मां तात मम ध्यानस्य साप्रतम् ॥४३॥

ब्रह्मोवाच

जगद्धिताय देवेश मर्त्यलोकांश्च दुर्लभम् । स्वर्गद्वारस्य मार्गाणि यज्ञदानव्रतानि च ॥४४॥
 योगः सत्यं तपः श्रद्धा तीर्थानि विविधानि च । विहाय सर्वमेतेषां सुखं तत्साधनं यद ॥४५॥
 स्थानं 'जगत्पते मह्यमामृष्टं' च ददुष्यते । सर्वेषामुत्तम स्थानं ब्रूहि मे 'पुद्गलोत्तम ॥४६॥'

पक्षी, जरायुज अण्डज स्वदेज और उदिमज्ज जीव, ग्राहण, क्षत्रिय वैश्य, शूद्र, अन्त्यज (अधृत), स्लेच्छा—सब को पृथक् पृथक् रचा ॥३३-३५॥ जा कुछ भी जीवमज्ज का स पात बीड़े मकोड़े है, उन सब चराचरा का निर्माण उन्होंने ब्रह्मा हुआ कर किया ॥३६॥ अपन दाहिन अंग में पुरुष और वाम अंग में स्त्री की कल्पना कर के स्वयम् देहा गए ॥३७॥ तब से लाव मे प्रजा की मयूनी सृष्टि होती है। मेरे जितन उत्तम-मध्यम अधम क्षत्र (शरीर) है, उन सबकी चिन्तना कर ब्रह्मा ध्यान स्थित हो कर वासुदेव के शरीर का प्राप्त हुए ॥३८-३९॥ ध्यानमात्र से ही तत्क्षण सहस्रनेत्र, सहस्रचरण और सहस्रगिरि, कमल-मयन, नील नीरद तुल्य सुन्दर तथा श्रीवत्स चिह्न से युक्त स्वयम् जन्तार्दन प्रकट हुए ॥४०-४१॥ सहसा उनका देख कर लाल रचयिता ब्रह्मा आसन, अर्ध्या, पाद्य और अक्षत से उनकी पूजा कर प्रणतिपूर्वक सावधान मन से स्तुति करने लगे। तत्पश्चात् कमलात्पन्न ब्रह्मा से मैंने कहा—तात! किस हेतु तुमने इस समय मेरा ध्यान किया है? ॥४२-४३॥

ब्रह्मा ने कहा—देवेश! जगत्कल्याण के लिए स्वर्ग-द्वार के मार्ग—यज्ञ दान तप, व्रत, योग, सत्य, श्रद्धा और विविध तीर्थ—इनका छांट कर मर्त्यलोक में दुर्लभ जा सुख-साधन है, उसे बतलाइए ॥४४-४५॥ जगत्पते! पुराणोत्तम! पृथ्वी पर सब से उत्कृष्ट स्थान जो हो, उसे भी बतला दीजिए ॥४६॥ प्रिये! ब्रह्मा के

विधातुर्वचनं श्रुत्वा ततोऽहं प्रोक्तवान्प्रिये। शृणु ब्रह्मन्प्रवक्ष्यामि 'निर्मलं भुवि दुर्लभम् ॥४७॥
 उत्तमं सर्वक्षेत्राणां धन्यं ससारत्तारणम्। गोब्राह्मणहितं पुण्यं चातुर्वर्ण्यसुखोदयम् ॥४८॥
 भुक्तिमुक्तिप्रदं नृणां क्षेत्रं परमदुर्लभम्। महापुण्यं तु सर्वेषां सिद्धिदं वै पितामह ॥४९॥
 'तस्मादासीत्समुत्पन्नं तीर्थं राजं सनातनम्। विख्यातं परमं क्षेत्रं चतुर्गुणनिषेदितम्' ॥५०॥
 सर्वेषामेव देवानामृपोणां ब्रह्मचारिणाम्। दैत्यदानवसिद्धानां गन्धर्वोरगरक्षसाम् ॥५१॥
 नानाविद्याधराणां च स्यावरस्य चरस्य च। उत्तमं पुरुषो यस्मात्तस्मात्स पुरुषोत्तम ॥५२॥
 दक्षिणस्योदधेस्तीरे न्यग्रोधो यत्र तिष्ठति। दशयोजनविस्तीर्णं क्षेत्रं परमदुर्लभम् ॥५३॥
 यस्तु यत्प्रे समुत्पन्ने महद्वु (त्यु) त्कानिबर्हणे। 'विनाशं नैवमभ्येति स्वयं तत्रैवमास्थितः' ॥५४॥
 दृष्टिमात्रे बधे तस्मिन्क्षयापामाश्रयं चासकृत्। 'ब्रह्महृत्यस्तत्प्रमुच्येत पापेष्वाग्रेण का कथा' ॥५५॥
 प्रदक्षिणा कृता येस्तु नमस्कारश्च जन्तुभिः। 'सर्वे विभूतपाप्मानरते गताः केशवालयम्' ॥५६॥
 न्यग्रोधस्त्योत्तरे किंविद्दक्षिणे केशवरयं तु। प्रासादस्तत्र तिष्ठेत्तु पदं धर्ममयं हितम् ॥५७॥
 प्रतिभा सत्रं वै दृष्ट्वा स्वयं देवेन निर्मिताम्। अनायासेन वै यान्ति भुवनं मे ततो नराः ॥५८॥
 गच्छमानास्तु तान्प्रेक्ष्य एकदा धर्मराट् प्रिये। मदन्तिकमनुप्राप्य प्रणम्य शिरसाऽञ्जवीत् ॥५९॥

बचनं सुनकर मैंने कहा—ब्रह्मन्। सुनिष्ट, पृथ्वी पर दुर्लभ निर्मल निर्विलक्षणता में उत्तम, धन्यवाद के योग्य ससार-त्तारण गा, ब्राह्मणा का हितकारक, पवित्र चारों वर्णों के लिए सुखदायक, भुक्ति मुक्ति प्रद परम दुर्लभ महापुण्यवर्धक और सब के लिए सिद्धिदाता स्थान मैं बतलाऊंगा ॥४७-४९॥ चारों युगा में रहने वाला, सनातन तीर्थों का राजा और परम विख्यात एक क्षेत्र है ॥५०॥ वहाँ पर समस्त दैव ऋषि, ब्रह्मचारी, दैत्य, दानव, सिद्ध, गन्धर्व, सप्त रुद्रास नाग विद्याधर, स्यावर, जगम और सब से उत्तम पुरुष वास करते हैं अतः उसका नाम पुरुषोत्तम पड़ा है ॥५१-५२॥ दक्षिण समुद्र के तट पर जहाँ बट वृक्ष है, वहाँ दश योजन प्रमाण विस्तीर्ण क्षेत्र परम दुर्लभ है ॥५३॥ जो बल्य के उत्पन्न होने पर (बल्यन्त में) महान् उल्कापात होने पर (संसार के विनष्ट होने पर) स्वयं विनष्ट नहीं होता, वे उत्ती क्षण में स्थित होते हैं ॥५४॥ एक बार उस बट के दर्शन कर लिया मैं बैठन से ब्रह्महत्या भी दूर हो जाती है, और पापा भी उस बात ही क्या है? ॥५५॥ जिन प्राणियों ने उत्तरी प्रदक्षिणा कर नमस्कार किया है, वे सब निर्णायक होकर वैभुष्ट गए हैं। बट से उत्तर ओर कृष्ण से कुछ दक्षिण ओर मन्दिर है वह धर्ममय स्थान है। वहाँ साक्षात् भगवान् द्वारा निर्मित प्रतिमा का दर्शन कर मनुष्य अनायास ही वैभुष्ट पट्टक जाते हैं। प्रिय! एक समय वैभुष्ट जात हुए उन मनुष्यों का दत्त कर धर्मराज मेरे पास आकर प्रणाम करते सुनने पर मैं लगा ॥५६-५९॥

१ रा निर्मित। २ रा ० महात्मनम्। ३ रा ० पा वसता प्रियः। ४ रा सत्तदाः। ५ रा ० गन्धर्वादिभ्यः। ६ रा ० नागैव वमने स्वयं तत्रैव दुर्लभम्। ७ रा ० हत्या विनश्यत्। ८ रा ० वै स पापनिषत्ता गच्छति च गिराः। ९ रा सवनम्।

यम उवाच

नमस्ते भगवद्देव लोकनाथ जगत्पते । क्षीरोदवासिनं देवं शेषभोगानुशायिनम् ॥६०॥
 वरं वरेण्यं वरदं 'वर्तारमकृतं प्रभुम् । विश्वेश्वरमजं विष्णुं सर्वज्ञमपराजितम् ॥६१॥
 नीलोत्पलदलश्यामं पुण्डरीकनिभेक्षणम् । सर्वज्ञं निर्गुणं शान्तं जगद्धातारमव्ययम् ॥६२॥
 सर्वलोकविधातारं 'सर्वलोकसुखाबहम् । पुराणं पुरुषं वेद्यं व्यक्ताव्यतं सनातनम् ॥६३॥
 परावराणां स्रष्टारं लोकनाथं जगद्गुरुम् । श्रीवत्सोरस्कसंयुक्तं वनमालाविभूषितम् ॥६४॥
 पीतवस्त्रं चतुर्बाहुं शङ्खचक्रगदाधरम् । हारकेयूरसंयुक्तं मुकुटाङ्गधारिणम् ॥६५॥
 सर्वलक्षणसंपूर्णं सर्वेन्द्रियविर्वाजितम् । कूटस्थमचलं सूक्ष्मं ज्योतीरूपं सनातनम् ॥६६॥
 भावाभाविनिर्मुक्तं व्यापिनं प्रकृते परम् । नमस्त्यागि, जगन्नाथमीश्वरं सुखदं प्रभुम् ॥६७॥
 इत्येवं धर्मराजस्तु पुरा न्यग्रोधसन्धिषी । स्तुत्वा नानाविधैः स्तोत्रैः प्रणाममकरोत्तदा ॥६८॥
 तं दृष्ट्वा तु महाभागे प्रणतं प्राञ्जलिस्थितम् । स्तोत्रस्य कारणं देवि पृष्टवानहमन्तकम् ॥६९॥
 वैवस्वत महाबाहो सर्वदेवोत्तमो ह्यसि । किमर्थं स्तुतवान्मां त्वं संक्षेपात्तद्ब्रवीहि मे ॥७०॥

धर्मराज उवाच

अस्मिन्प्रापते पुण्ये विख्याते पुरुषोत्तमे । इन्द्रनीलमयी श्रेष्ठा प्रतिमा सार्वकामिकी ॥७१॥
 तां दृष्ट्वा पुण्डरीकाक्ष भावेनैकेन श्रद्धया । श्वेताख्यं भवनं याति निष्कामाश्चैव मानवाः ॥७२॥

यम ने कहा—भगवन् ! देव ! जगत्पते ! लोकनाथ ! आपको नमस्कार है । क्षीरसमुद्रवासी, शेषशायी, ॥६०॥ श्रेष्ठ, वरदाता, वर्ता, अविनाशी, समर्थ, विश्वेश्वर, अजन्मा, विष्णु, सर्वज्ञ, अपराजित, ॥६१॥ नील कमल के पत्र के समान श्याम, कमलनयन सर्वज्ञ निर्गुण, शान्त, जगत् धारणकर्ता, नित्य, ॥६२॥ सर्वलोक-विधाता, सर्वलोक-मुखदायक, प्राचीन पुरुष, जानने योग्य, व्यक्त, अव्यक्त, सनातन, ॥६३॥ उच्च-नीच सब के स्रष्टा, लोकनाथ, जगद्गुरु, बस स्थल पर श्रीवत्स चिह्न-धारी, वनमाला से विभूषित, ॥६४॥ पीतवस्त्र-शङ्ख-चक्र-गदा हार-केयूर-मुकुट-जगद्-धारी ॥६५॥ चतुर्भुज, सर्वलक्षण संपन्न, सब इन्द्रियो से वर्जित, कूटस्थ, अचल, सूक्ष्म, ज्योतिरूप सनातन, ॥६६॥ भाव अभाव से निर्मुक्त व्यापक, प्रकृति से परे, जगन्नाथ, ईश्वर, सुखदाता और सर्वशक्तिमान् को नमस्कार है ॥६७॥ इस प्रकार पूर्वकाल में बट वृक्ष के समीप धर्मराज ने अनेक स्तोत्रों से स्तुति कर मूल प्रणाम किया ॥६८॥ महाभागे ! मैंने हाथ जोड़ कर प्रणाम करते हुए यम से स्तुति का कारण पूछा ॥६९॥ सूर्य के पुत्र ! महाबाहो ! तुम सब देवा में उत्तम हो । किसलिए तुमने मेरी स्तुति की ? संक्षेपत बताओ ? ॥७०॥

धर्मराज ने कहा—इस पवित्र तथा विख्यात पुरुषोत्तम क्षेत्र में सब कामनाओं को पूर्ण करने वाली इन्द्रनील-मणि की उत्तम प्रतिमा है ॥७१॥ पुण्डरीकाक्ष ! अन्यत्र भाव से श्रद्धापूर्वक उस प्रतिमा का दर्शन करके मनुष्य

अतः कर्तुं न शक्नोमि व्यापारमस्मिन्नुदन। प्रसीद सुमहादेव संहार प्रतिमां विभो॥७३॥
 श्रुत्वा चैव स्वतस्तस्यैतद्वाच्यमेतदुवाच ह। यम ता गोपयिष्यामि सिकताभिः समन्ततः॥७४॥
 ततः सा प्रतिमा देवि वलिभिर्गोपिता मया। यथा तत्र न पश्यन्ति मनुजाः स्वर्गकाङ्क्षिणः॥७५॥
 प्रच्छाद्य वलिकैर्देवि जातरूपपरिच्छदः। यम प्रस्थापयामास एवा पुरीं दक्षिणां दिशम्॥७६॥

ब्रह्मोवाच

लुप्तायां प्रतिमायां तु इन्द्रनीलस्य भो द्विजाः। तस्मिन् क्षेत्रवरे पुण्ये विख्याते पुरपोत्तमे॥७७॥
 यो भूतस्तत्र वृत्तान्तो देवदेवो जनादेनः। तं सर्वं कथयामास स तस्य भगवान्पुरा॥७८॥
 इन्द्रद्युम्नस्य गमनं क्षेत्रसंदर्शनं तथा। क्षेत्रस्य वर्णनं चैव प्राप्तादकरणं तथा॥७९॥
 हयमेषस्य यजनं स्वप्नदर्शनमेव च। लवणस्योदघेस्तीरे काष्ठस्य दर्शनं तथा॥८०॥
 दर्शनं वासुदेवस्य शिल्पिराजस्य च द्विजाः। निर्माणं प्रतिमायास्तु यथावर्णं विशेषतः॥८१॥
 स्थापनं चैव सर्वेषां प्राप्तादे भुवनोत्तमे। यात्राकाले च विप्रेन्द्राः कल्पसंकीर्तनं तथा॥८२॥
 मार्कण्डेयस्य चरितं स्थापनं शंकरस्य च। पञ्चतीर्थस्य माहात्म्यं दर्शनं शूलपाणिनः॥८३॥
 वटस्य दर्शनं चैव व्युष्टिं तस्य च भो द्विजाः। दर्शनं बलदेवस्य घृष्णस्य च विशेषतः॥८४॥
 सुभद्रायाश्च तत्रैव माहात्म्यं चैव सर्वेशः। दर्शनं नरैस्तस्य व्युष्टिसंकीर्तनं तथा॥८५॥

निष्काम हो जाते हैं और श्वेतराज व्रजन को जाते हैं॥७२॥ अनुतापन । इसलिए मैं अपना काम नहीं कर सकता। महादेव । विभो । मुझ पर प्रहृत हूँ, प्रतिमा को हटा दीजिए॥७३॥ यम की यह बात सुनकर मैंने कहा—‘यम । मैं बालुआ से उस प्रतिमा का चारों ओर स डक दूँगा॥७४॥ देवी । तब मैंने लताआ से उस प्रतिमा का छिपा दिया, जिससे स्वर्गाभिलाषी मनुष्य उसका दर्शन न कर पाये॥७५॥ सुतहूँ । लताआसे उगे आच्छादित कर मैंने यम का दक्षिण दिशा की ओर अपनी नगरी के लिए बिदा कर दिया॥७६॥

ब्रह्मा ने कहा—द्विजगण । उस पवित्र तथा प्रसिद्ध पुरपोत्तम नामक श्रेष्ठ क्षेत्र में इन्द्रनील मणि की प्रतिमा के लुप्त हो जान पर जा दमा यहाँ की हुई उमे भगवान् जनादेन ने लक्ष्मी को बतला दिया॥७७-७८॥ विप्रवन्द । इन्द्रद्युम्न का गमन, शय का दर्शन तथा वर्णन, भवन निर्माण,॥७९॥ अरवमेष यज, स्वप्नदर्शन, शार समुद्र के तट पर काष्ठ का दर्शन,॥८०॥ वायुदेव तथा शिल्पिराज का दर्शन, प्रतिमा का उचित वर्णानुसृत निर्माण॥८१॥ तथा तीना लता म शय मे उत्तम भवन में स्थापन, यात्राकाल में कल्पा का कीर्तन, मार्कण्डेय का चरित, शंकर की स्थापना, पञ्चतीर्थ का माहात्म्य, शिव का दर्शन,॥८२-८३॥ वट का दर्शन तथा स्तुति, बलदेव, घृष्ण तथा सुभद्रा का दर्शन और माहात्म्य, नरसिंह का दर्शन, स्तुति तथा कीर्तन, अनन्त वायुदेव के दर्शन तथा

१ स ० दक्ष म० । २ स ० स्वप्न वाच्य युक्तमतदक्षिणम् । सा तदा प्र० । ३ स ० मिरछादिता ।

४ स ० पृष्ठद० । ५ स ० स्थापना । ६ स ० बालु ख । ७ स ० मकन० ।

'अनन्तवासुदेवस्य दर्शनं गुणकीर्तनम् । श्वेतमाधवमोहात्म्यं स्वर्गद्वारस्य दर्शनम् ॥८६॥
उदधेर्दर्शनं चैव स्नानं तर्पणमेव च । समेद्रस्नानमोहात्म्यमिन्द्रद्युम्नस्य च द्विजाः ॥८७॥
पञ्चतीर्थफलं चैव महाज्येष्ठं तथैव च । स्थानं कृष्णस्य हलिनः पर्वयात्राफलं तथा ॥८८॥
वर्णनं विष्णुलोकस्य क्षेत्रस्य च पुनः पुनः । पूर्वं कथितवान्सर्वं तस्यै स पुरुषोत्तमः ॥८९॥
इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे स्वयंभुःश्रुतिसंवादे पूर्ववृत्तानुवर्णनं नाम पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः ॥४५॥

अथ षट्चत्वारिंशोऽध्यायः

पुरुषोत्तमक्षेत्र-वर्णनम्

मुनय ऊचुः

भोतुमिच्छामहे देव कथाशेषं महोपते । तस्मिन्क्षेत्रवरे गत्वा किं चकार नराधिपः ॥१॥

ब्रह्मोवाच

शृणुष्वं मुनिशार्दूलाः प्रवक्ष्यामि समास्ततः । क्षेत्रसंदर्शनं चैव कृत्यं तस्य च भूपते ॥२॥

गुणों का कीर्तन, श्वेतमाधव का माहात्म्य, स्वर्ग का दर्शन, समुद्र का दर्शन तथा उसमें स्नान और तर्पण, समुद्र-स्नान तथा इन्द्रद्युम्न का माहात्म्य, पञ्चतीर्थ का फल, महाज्येष्ठ (ज्येष्ठ की पूर्णिमा), कृष्ण तथा बलराम का स्थान, पर्व यात्रा का फल, विष्णु लोक का वर्णन, क्षेत्र का पुनः-पुनः वर्णन—यह सब मगवान् पुरुषोत्तम ने लवणी को बतला दिया ॥८४-८९॥

श्री ब्रह्ममहापुराण में ब्रह्मा और श्रुति के संवाद प्रकरण में पूर्व वृत्तान्त वर्णन नामक मंतलीसर्वा अध्याय समाप्त ॥४५॥

अध्याय ४६

पुरुषोत्तमक्षेत्र का वर्णन

मुनियो ने कहा—देव ! हम राजा की अवशिष्ट कथा की सुनना चाहते हैं। उस उत्तम क्षेत्र में जाकर राजा ने क्या किया ? ॥१॥

ब्रह्मा ने कहा—मुनिवर ! मुनियो, मैं संक्षेप से उस राजा के कर्म तथा क्षेत्र-दर्शन का वर्णन करता हूँ

१ स अप्रय तु वा० २ स पुष्पकीर्तनम् । ३ स वर्णनम् । ४ ख ६ न सर्व० । ५ स स्वयम् । ६ ख स्वस्नानम् । ७ ख जात ।

गत्वा तत्र महोपालः क्षेत्रे त्रैलोक्यविश्रुते। ददर्श रमणीयानि स्थानानि सरितस्तथा ॥३॥
 नदी तत्र महापुण्या विन्ध्यपादविनिर्गता। स्वित्रोपलेति विख्याता सर्वपापहरा शिवा ॥४॥
 गङ्गातुल्या महास्रोता दक्षिणार्णवगामिनी। महानदीति नाम्ना सा पुण्यतोया सरिद्वरा ॥५॥
 'दक्षिणस्योदधेर्गमं गताऽऽवर्तातिशोभिता। उभयोस्तटयोर्यस्या ग्रामाश्च नगराणि च ॥६॥
 दृश्यन्ते मुनिशार्दूलः सुतस्याः समनोहराः। हृष्टपुष्टजनाकीर्णा वस्त्रालंकारभूषिताः ॥७॥
 ब्राह्मणा क्षत्रिया वैश्याः शूद्रास्तत्र पृथक्पृथक्। स्वधर्मनिरताः शान्ता दृश्यन्ते शुभलक्षणाः ॥८॥
 ताम्बूलपूर्णवदना मालादामविभूषिताः। वेदपूर्णमुखा विप्राः सयङ्गपदक्रमाः ॥९॥
 अग्निहोत्ररता फेचिर्लेखिदोपासनक्रियाः। सर्वशस्त्रार्थकुशला यज्वानो भूरिदक्षिणाः ॥१०॥
 क्षत्रे राजमातङ्ग्य वनेषूपवनेषु च। तभामण्डलहर्म्येषु देवतायतनेषु च ॥११॥
 इतिहासपुराणानि वेदाः साङ्गाः सुलक्षणाः। काश्यपाश्रक्यास्तत्र श्रूयन्ते च महाजनैः ॥१२॥
 स्त्रियस्तद्देशवासिन्यो रूपयौवनगविताः। संपूर्णलक्षणोपेता विस्तीर्णश्रोणिमण्डलाः ॥१३॥
 सरोरुहमुष्णाः श्यामाः शरच्चन्द्रनिभाननाः। पीनोन्नतस्तनाः सर्वाः समुष्या घ्राहदर्शनाः ॥१४॥
 सौवर्णबलयाक्रान्ता दिव्यैर्वस्त्रैरलंकृताः। कदलीगर्भसंकाशाः पद्मकिञ्जलकसम्भवाः ॥१५॥
 बिम्बाधरपुटाः फान्ताः कर्णान्तापतलोचनाः। सुमुलाश्चारुकेशाश्च हावभावावनामिताः ॥१६॥

॥२॥ त्रैलोक्य प्रसिद्ध उस क्षेत्र में जाकर राजा ने रमणीय स्थानों तथा नदियों को देखा ॥३॥ वहाँ विन्ध्य-
 पर्वत से निकली स्वित्रोपला नामक नदी है, जो अखिल पापों को हरने वाली, कल्याणमयी, गंगातुल्य, महा-
 सातवाली, दक्षिण समुद्र की ओर जाने वाली, महानदी नाम से विख्यात, पवित्रसलिला, नदिया में श्रेष्ठ,
 दक्षिण समुद्र के गर्भ में प्राप्त तथा आवतों से सुशामित है ॥४॥ मुनिवर्य! उस नदी के दोनों तट पर
 घन घान्य-सम्पन्न सुन्दर ग्राम और नगर हैं, जो हृष्ट-पुष्ट लोगों से प्रपूर्ण तथा वस्त्र-अलंकारों से भूषित हैं ॥५॥
 वहाँ ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र अपने-अपने धर्मों में निरत, शान्त, शुभलक्षण सम्पन्न मालाओं से विभूषित
 तथा ताम्बूल से पूर्ण मुखवाले दीखते हैं ॥६॥ वहाँ के ब्राह्मण छहों अंग पद और त्रय सहित वेदा के ज्ञाता,
 सब ग्राम्ना में कुशल, यज्ञकर्ता तथा विपुल-दक्षिणादाता होते हैं। उनमें कोई अग्निहोत्री तो कोई कर्मराण्डी
 होते हैं ॥७-१०॥ वहाँ चवत्तरी पर, राजमातों में, वनों में, उपवनो में, समामण्डल में तथा देवालयों में इतिहास,
 पुराण, अगा सहित वेद, सुन्दर काव्य, शास्त्र और वषाग्ये महान् व्यक्तियों द्वारा सुनी जाती हैं ॥११-१२॥ उस
 देश की स्त्रियो रूप यौवन से गर्वित समस्त छत्रणो से युक्त विंशाल निद्रम्व वाली, ॥१३॥ कमलमुखी, श्यामा,
 शरद्-चन्द्र तुल्य मुख वाली, स्फुल तथा उन्नत स्तन वाली, सुन्दर दीखने वाली, ॥१४॥ ताँने की बूँदियाँ पहनने वाली, दिव्य
 वस्त्रों से अलंकृत, केलों के (मीतरी भाग) के तुल्य, (बर्ण वाली), कमल के केसर के समान कान्ति वाली ॥१५॥
 बिम्बाष्टी, मनारम, बाना तथा लम्बी आँखों वाली, सुमुखी, सुन्दर वेश वाली, हाव भाव दिखाने में समुद्र, ॥१६॥

१ छ ०ता। विन्ध्यतले०। २ छ. गुमा। ३ छ ०दये शान्ता दुहितृगतता०। ४ न गपदा। ५ छ
 ०शामराम०। ६ छ ०चिदागाधनप्रिया। ७ न. ०कलालापादृश्यन्ते सुमहात्मनः। स्त्रि०।

कादिचतुष्पलाशाक्ष्य कादिचदिन्दोवरेक्षणा । विद्युद्विस्पष्टवक्षनास्तन्वद्भ्यश्च तथाऽपरा ॥१७॥
 कुटिलालकसयुक्ता सीमन्तेन विराजिता । श्रीवामरनसयुक्ता माल्यदामविभूषिता ॥१८॥
 कुण्डलं रत्नसयुक्तं कर्णपूरंमनोहरं । देवयोषितप्रतीकाशा दृश्यन्ते शुभलक्षणा ॥१९॥
 दिव्यगीतवरधन्यं क्रीडमाना वराङ्गना । वीणावेणुमुदङ्गश्च पणवंश्चैव गोमुखं ॥२०॥
 शङ्खदुर्धुभिनिर्घोषैर्नानावाद्यैर्मनोहरं । क्रीडन्त्यस्ता सदा हृष्टा विलासिन्य परस्परम् ॥२१॥
 एवमादि तथाऽनेकगीतवाद्यविशारदा । दिवा रात्रौ समायुक्ता कामोन्मत्ता वराङ्गना ॥२२॥
 भिक्षुवेष्टानसं सिद्धं स्नातकैर्बह्वचारिभिः । मन्त्रसिद्धैस्तप सिद्धैश्चसिद्धैर्निषेधितम् ॥२३॥
 इत्येष दृढशो राजा क्षेत्र परमशोभनम् । 'अत्रेवाऽऽराधयिष्यामि भगवत सनातनम् ॥२४॥
 जगद्गुरु पर देव पर पार पर पदम् । 'सर्वेश्वरेन्दर विष्णुमनन्तमपराजितम्' ॥२५॥
 इव तन्मानस तीर्थं ज्ञात मे पुरुषोत्तमम् । कल्पवृक्षो महाकायो न्यग्रोधो यत्र तिष्ठति ॥२६॥
 प्रतिमा चेन्द्रनीलाह्वया स्वयं देवेन तोषिता । 'न चात्र दृश्यते चाग्या प्रतिमा वैष्णवी शुभा ॥२७॥
 तथा' यत्नं करिष्यामि यथा देवो जगत्पति । प्रत्यक्ष'मम चान्येति विष्णु सत्यपराक्रम ॥२८॥
 यत्नैर्नानैस्तपोभिश्च होमैर्ध्यानिस्तयाऽर्चनं । उपवासंश्च विधिवच्चरेय व्रतमुत्तमम् ॥२९॥

कमललवना विजया की तरह छिद्रके छेद हुए दाँतो वाली कामलाङ्गी ॥१७॥ घुघुरले बाला से युक्त सीमन्त (स्त्रिया की माँग) से गुणामित गरुड आभूषणा से युक्त मालात्रा से विभूषित ॥१८॥ रत्न-सयुक्त कुण्डल तथा मन-हर कणपूरा से अलङ्कृत देवागना तुल्य और रुमस्त भूम लक्षणा से सज्ज देखी जाती हैं ॥१९॥ व विलासिनीय दिव्य गीत वीणा वेणु मृग ढाल गाम्मुख (गुरही) शंख नगाड तथा अनेक दूसरे मनाहर वाद्या स परस्पर प्रसन्नता पूर्वक ब्रीदा करती हैं ॥२०॥ २१॥ अनेक गीत-वाद्य विशारद वायिनीय काम स उन्मत्त होकर रात दिन विलास करती रहती हैं ॥२२॥ वहाँ राजा ने सयासी वानप्रस्थी, सिद्ध स्नातक, ब्रह्मचारी मन्त्र सिद्ध तप सिद्ध तथा यगसिद्धा द्वारा सुसजित एक अत्यन्त मन-हर धान देवा । परन्तु वह सोचने लगा—यही पर मैं सनातन जगद गुरु परम देव परा से भी परे परम पद सर्वेश्वर, अनन्त अपराजित भगवान विष्णु की आराधना करूँगा ॥२३॥ ॥२४॥ यह पुरातन तीर्थ जनना मानस तीर्थ है—एसा मुझ ज्ञात हा रहा है । वहाँ कल्पवृक्ष रूपी विनालकाय वट वृक्ष स्थित है ॥२५॥ इन्द्रनील मणि की प्रतिमा का स्वयं देव ने छिपा दिया था । यहाँ कोई दूसरी वैष्णवी प्रतिमा नहीं दीख पड़ती ॥२६॥ मैं बीसा यत्न करूँगा जिससे जगत्पति सत्यपराक्रमी विष्णु मेरे प्रत्यक्ष हाग । अन्य मन से

१ स अत्र त्वारा० । २ स ०श्वर विष्णुरूपमरूपय० । ३ स ०म । ददत आपवगत ज्ञान मा पु० । ४ स न वा न्तःपत्ये आपि यत्तिर्निर्वर्ण० । ५ स ०या यात्र क० । ६ स ०य दृश्यते सर्वविष्णु ।

अनन्यमनसा चैव तन्मना मान्यमानसः । विष्णुवायतनविन्यासे प्रारम्भं च करोम्यहम् ॥३०॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे स्वयम्भुक्त्पिसवादे क्षेत्रवर्णनं नाम षट्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥४६॥

अथ सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः

इन्द्रद्युम्नस्य प्रासादकरणार्थं राज्ञामाह्वानम्

ब्रह्मोदाच

एव स पृथिवीपालश्चित्तयित्वा द्विजोत्तमा । प्रासादार्थं हरेस्तत्र प्रारम्भमकरोत्तदा ॥१॥

आनाय्य गणकान्सर्वानाचार्याञ्छास्त्रपारयान् । भूमिं सजोध्य यत्नेन राजा तु परधामुदा ॥२॥

ब्राह्मणैर्ज्ञानसपन्नैर्वेदशास्त्रार्थपारगैः । अमात्यैर्मन्त्रिभिश्चैव वास्तुविद्याविशारदैः ॥३॥

तैः सार्धं स समालोच्य शुभहृतं शुभे दिने । सुप्तद्रतरसयोगे ग्रहानुकूल्यसमूते ॥४॥

जयमङ्गलशब्दैश्च नानावाद्यैर्मनोहरैः । वेदाध्ययननिर्घोषैर्गीतैः शुभधुरस्वरैः ॥५॥

अर्थात् उही म मन क लगा कर यज्ञ दान तप हेम पूजा तथा उपवास से मैं विधान पूर्वक उत्तम श्रत करूँगा ।

विष्णु मन्दिर का निर्माण तो प्रारम्भ ही कर रहा हूँ ॥२८३०॥

श्री ब्रह्ममहापुराण मे ब्रह्मा और ऋषि के सवाद प्रकरण मे क्षेत्रवर्णन

नामक छियालीसवा अध्याय समाप्त ॥४६॥

अध्याय ४७

मन्दिर बनाने के लिए राजाओ का आह्वान

ब्रह्मा ने कहा—द्विजवर । इस प्रकार सोचने के बाद उस राजा ने हरि मन्दिर बनवाना प्रारम्भ कर दिया ॥१॥ उसने परम हर्ष से गार्हपत्य रगत आचार्यों तथा ज्योतिषियों को बुलाकर यज्ञपूजक भूमि का शोधन कराया ॥२॥ फिर वेदशास्त्र-कुशल ज्ञानसंपन्न वास्तु विद्या विगारद ब्राह्मणों तथा अमात्य-मंत्रियों से सलाह करके सुन्दर मुहूर्त शुभ दिन सुन्दर चन्द्रमा और नक्षत्रों के संयोग तथा ग्रहों की अनुकूलता में जय मंगलाब्दों अनेक मनाहर वाद्या वैष्णव गीता मधुर स्वरों गुण-लाजा-अक्षता गंधा पूज्युष्मा तथा

१ स विवाप० । २ स न्यासप्रा० । ३ स सूत उवा० । ४ स ०ने । सच्चद्र० । ५ स ग्रहलग्ने शुभ तथा । ज० । ६ ग ०स्तव । शु० ।

पुष्पलाजाक्षतगन्धं पूर्णकुम्भं सदोषकं । ददावर्घ्यं ततो राजा श्रद्धया सुमासित ॥६॥
दत्त्वंवमर्घ्यं विधिवदानाम्य स महोपति । कलिङ्गाधिपति शूरमुत्कलाधिपति तथा ॥
कोशलाधिपति चैव तानुवाच तदा नृप ॥७॥

राजोवाच

गच्छध्व सहिता सर्वे शिलार्थे सुसमाहिता । गृहीत्वा शिल्पिमुत्पाशच्च शिलाकर्मविशारदान् ॥८॥
विन्ध्याचल सुविरतोऽर्णं बहुकन्दरशोभितम् । निरूप्य सर्वेसानूनि च्छेदयित्वा शिला शुभा ॥
सवाह्यन्ता च शवटेनीं काभिर्मा विलम्बय ॥९॥

ब्रह्मोवाच

एव गन्तु समादिश्य ताम्रपाण्ड्य महोपति । पुनरेवाब्रवीद्वाक्य सामात्यान्स पुरोहितान् ॥१०॥

राजोवाच

गच्छन्तु दूता सर्वत्र ममाऽऽज्ञा प्रवदन्तु वै । यत्र तिष्ठन्ति राजान् पृथिव्या तासुशीघ्रया ॥११॥
हस्त्यश्वरथपादात् सामात्यै सपुरोहितैः । गच्छत सहिता सर्वे इन्द्रद्युम्नस्य शासनात् ॥१२॥

यह्मोवाच

एव दूता समाज्ञाता राजा तेन महात्मना । गत्वा तदा नृपानूचुर्बन्धन तस्य भूपते ॥१३॥
धृत्वा बुते तथा सर्वे दूताना वचन नृपा । आजगमुस्त्वरिता सर्वे स्वसंघे परिवारिता ॥१४॥

दीपा स पूजा की ॥३५॥ तत्पश्चात् सावधान ह कर श्रद्धा स अर्घ्यदान किया । विधिपूर्वक अर्घ्य देकर भूपति ने कलिङ्ग-नरेश गुरूपति उत्तल के अधिपति तथा कालिङ्ग महाराज से कहा ॥६७॥

राजा ने कहा—आप जग मिलकर सावधानी से गिला लाने के लिए जाएँ । गिलाकर्म में निपुण अच्छे कारीगरों के साथ लेकर अनेक गुफाओं से शोभित तथा अत्यन्त विस्तीर्ण विन्ध्याचल पर जाकर उसकी गिरावट शिलाओं को बटा कर नावा डोरा शीघ्र से आइए ॥८९॥

ब्रह्मा ने कहा—इस प्रकार राजाओं के आदेश देकर भूपति ने शिखरी और पुरोहितों से कहा ॥१०॥

राजा ने कहा—सब जगह दूत जायें और मेरी आज्ञा पालन करें कि—पृथ्वी पर जितने राजा लगे हैं वे शीघ्र ही हाथी घोड़े रथ सिंघा और पुरोहित सहित इन्द्रद्युम्न के पास जायें ॥१११२॥

ब्रह्मा ने कहा—इस प्रकार उस महात्मा राजा की आज्ञा पाकर दूत राजाओं के पास जाकर उसकी आज्ञा सुनाने लगे ॥१३॥ दूतों का वचन सुनकर राजाओं ने अपनी-अपनी सेनाओं के साथ शीघ्र प्रस्थान कर दिया ॥१४॥

येनृपाः सर्वदिग्भागे ये च दक्षिणतः स्थिताः । पश्चिमायां स्थिता ये च उत्तरापथसंस्थिताः ॥१५॥
 प्रत्यन्तवासिनो येऽपि ये च संनिधिवासिनः । पावंतीयाश्च ये केचित्तथा द्वीपनिवासिनः ॥१६॥
 रथेर्नागैः पदातैश्च बाजिभिर्धनविस्तरैः । संप्राप्ता बहुशो विप्राः श्रुत्वेन्द्रद्युम्नशासनम् ॥१७॥
 तानागतान्पान्दृष्ट्वा सामात्यान्सपुरोहितान् । प्रोवाच राजा हृष्टात्मा कार्यमुद्दिश्य सावरम् ॥१८॥

राजोवाच

शृणुध्वं नृपशार्दूला यथा किञ्चिद्ब्रवीम्यहम् । अस्मिन्क्षेत्रवरे पुण्ये भुवितमुत्तिप्रदे शिवे ॥१९॥
 ह्यमेष महायज्ञं प्रासादं चैव वृण्वन्म । कथं शक्नोम्यहं कर्तुमिति चिन्ताकुलं मनः ॥२०॥
 'भर्वाङ्गः सुसहायस्तु' सर्वमेतत्करोम्यहम् । यदि यूयं सहाया मे भवध्वं नृपसत्तमा ॥२१॥

ब्रह्मोवाच

इत्येवं यदमानस्य राजराजस्य धीमतः । सर्वं प्रमुदिता हृष्टा भूपास्ते तस्य शासनात् ॥२२॥
 यवपुष्पधन्वनैश्च सुवर्णमणिमौक्तिकैः । कम्बलाजिनरत्नैश्च राज्ञावास्तरणैः शुभैः ॥२३॥
 वज्रवैद्युयमाणिष्यैः पद्मरागेन्द्रनीलकैः । गजैरश्वैर्धनैश्चान्यै रथैश्चैव करेणुभिः ॥२४॥
 असह्यैर्पद्महृदिर्ध्वैश्चैव चावचैस्तथा । शालिनीह्रियवैश्चैव मायमुदगतिलैस्तथा ॥२५॥
 सिद्धार्थैश्चणकैश्चैव गोधूमैर्मसुराविभिः । इयामाकर्म्मधूर्कैश्चैव नीवारैः सकुलैर्यकैः ॥२६॥
 अन्यैश्च विविधैर्धनैर्गन्धारण्यैः सहस्रशः । बहुधान्यसहस्राणां तण्डुलानां च राशिभिः ॥२७॥

सब दिशाआ के राजा लोग अर्पान् दक्षिण, पश्चिम तथा उत्तर के रहने वाले, म्नेच्छदेवारात्री, समीप के रहने वाले, पर्वत प्रदेश के वासी तथा द्वीपनिवासी राजा हाथी, घोड़े, रथ, प्यादे तथा पर्याप्त धन लेकर चल पड़े ॥१५-१६॥
 इन्द्रद्युम्न की आज्ञा सुनकर बहुत से ब्राह्मण भी पहुँचे । अमात्य-पुरोहिता के साथ आए हुए उन राजाओं को देखकर इन्द्रद्युम्न हर्षित होकर अंदर से अपने कार्य का उद्देश्य बताने लगा ॥१७-१८॥

राजा ने कहा—नृपवर ! मैं जो कुछ कह रहा हूँ, उसे आपलगा ध्यान से सुनें । भुक्ति भुविनदायर, कल्याणमय, पवित्र इस उत्तम क्षत्र में मैं अदभुत महायज्ञ तथा विष्णु के मन्दिर की रचना करूँ—इस चिन्ता से मेरा मन व्याकुल हो रहा है । नृपवर्य ! यदि आप लोग सहायता करें तो आप जैसे गुणव्य सहायक पाकर मैं सब कुछ कर सकता हूँ ॥१९-२१॥

ब्रह्मा ने कहा—वृद्धिमान महायज्ञ की बात सुनकर उससे शासन में रहने वाले समस्त राजकुन्द हर्षित हुए ॥२२॥ उन्होंने धन, रत्न सुवर्ण, मणि, मणी, कम्बल, धर्म पवित्र मृगरोध निर्मित विस्तर (बागीचा) यक्षमणि, वैद्युयमणि, पद्मराग, इन्द्रनील, अमर्य तथा अनक प्रकार के हाथी-घोड़े-रथ, छटे-बट इय, धान, यव, चावल, उडद, तिल, दलें मरगा, घना, गेहूँ, मधुरी, व्यामाक, मधुर, नीवार, कुलत्पक तथा दूसरे भी विविध प्रकार के धान्य एवम् जगती अन्न, गन्ध पुन के गौड-हजारा घड़े, अनक मधु, योग्य तथा लेप करने के पदार्थ—इन सब

गव्यस्य हविषः कुम्भैः शतशोऽथ सहस्रशः । तेषाञ्चैवविधैर्द्व्यैर्भक्ष्यभोज्यानुलेपनैः ॥२८॥
राजानः पूरयामासुर्यत्किंचिद्बद्ध्यसंभवेः । तान्वृष्ट्वा यज्ञसंभारान्सर्वसंपत्तमन्वितान् ॥२९॥
यज्ञकर्मविदो विप्रान्वेदवेदोङ्गपारगान् । शास्त्रेषु निपुणान्वदक्षान्कुशलान्सर्वकर्मसु ॥३०॥
ऋषींश्चैव महर्षींश्च देवर्षींश्चैव तापसान् । ब्रह्मचारिगृहस्थांश्च वानप्रस्थान्यतींस्तथा ॥३१॥
स्नातकान्ब्राह्मणान्चान्यानग्निहोत्रे सदा स्तिथ्यान् । आचार्योपाध्यायवरान्स्वाध्यायतपसाञ्जितान् ॥३२॥
सदस्याञ्छास्त्रकुशलस्तथाऽन्यान्पक्वकान्बहून् । दृष्ट्वा ताम्रपतिः धीमानुयाच स्वं पुरोहितम् ॥३३॥

राजोवाच

ततः प्रपान्तु विद्वांसो ब्राह्मणा वेदपारगाः । वाजिमेधायंसिद्धयर्थं देशं पश्यन्तु यज्ञियम् ॥३४॥

ब्रह्मोवाच

इत्युक्तं स तथा श्वके वचनं तस्य भूपतेः । हृष्टः स मन्त्रिभिः सार्धं तदा राजपुरोहितः ॥३५॥
ततो ययो पुरोधाश्च प्राज्ञः स्यपतिभिः सह । ब्राह्मणानग्रतः कृत्वा कुशलान्यज्ञकर्मणि ॥३६॥
तं देशं धीवरप्राप्तं सप्रतोऽग्निद्विड्भुजम् । कारयामास विप्रोऽसौ यज्ञवाटं यथाविधि ॥३७॥
प्रासादशतसंवायं मणिप्रवरशोभितम् । इन्द्रसदमनिभं राय हेमरत्नविभूषितम् ॥३८॥
स्तम्भान्कनकचित्राश्च तोरणानि बृहन्ति च । यज्ञायतनदेशेषु दरवा शृङ्गं च पाञ्चनम् ॥३९॥

ब्रह्म से प्राप्त होने वाली सामग्रियों को पूरा किया ॥२३-२८॥ अरिबल संपत्ति-समन्वित यज्ञ सामग्रियों, यज्ञकर्मवेत्ता, वेद वेदांगपारंगत, शास्त्री म निपुण तथा सब वर्गों में कुशल ब्राह्मण, ऋषिमा, महर्षिमा, देवर्षिमा, तपस्विमा, ब्रह्मचारिमा, गृहस्था, वानप्रस्था, सत्यासिया, स्नातका, अग्निहोत्री ब्राह्मणों, आचार्यों, उपाध्याय, स्वाध्याय तथा तपस्या से युक्त विप्रों, शास्त्र-कुशल सदस्यों और अन्य बहुत स पवित्र अनुप्या व। देखकर राजा ने अपने पुरोहित से कहा ॥२९, ३३॥

राजा ने कहा—वेदपारंगत विद्वान् ब्राह्मण जायें और अश्वमेधयज्ञ की सिद्धि में लिए यज्ञ-स्थल का निरीक्षण करें ॥३४॥

ब्रह्मा ने कहा—राजा के वचन सुनकर राजपुरोहित ने वैसा ही किया। वह प्रसन्न होकर मंत्रियों के साथ चल पड़ा ॥३५॥ यज्ञ-कर्मों में दक्ष ब्राह्मणों का आगे बढ़के कारीगरो के साथ विद्वान् पुरोहित गलिमा तथा विटका (कबूतरों के अंश) से युक्त धीवरशम को विधानपूर्वक यज्ञस्थल बनवाया ॥३६, ३७॥ उत्तम मणिमा से शोभित, सुवर्ण-रत्नों से विभूषित, मत्तारम तथा इन्द्र भवन तुल्य सौंख्यो महल बनवाये। सुवर्ण के चित्र विचित्र स्तम्भ अनेक तारण, शुद्धसुवर्णमय यज्ञ गृह और नाना देश निवासी राजाओं के अन्तःपुर को उस धर्मालमा ने

१ स तथैव विवि० । २ स ० न्सर्वान्यानसम० । ३ स दिक्ष । ४ स याज्ञिका । ५ स ० णान्पुरतः ।
६ ग ० रकुडिमम् । कारयामास विधिबद्धम् ।

अन्तःपुराणि राज्ञा च नानादेशनिवासिनाम् । कारयामास घर्मात्मा तत्र तत्र यथाविधि ॥४०॥
 ब्राह्मणानां च वैश्यानां नानादेशतमोयुषाम् । कारयामास विधिवच्छालास्तत्राप्यनेकशः ॥४१॥
 प्रियार्थं तस्य नृपतेराययुर्नृपसत्तमाः । रत्नान्यनेकान्यादाय त्रित्रयश्चाऽऽययुरस्त्वे ॥४२॥
 तेषां निर्विशतां स्वेषु शिविरेषु महात्मनाम् । नदतः सागरस्येव दिविस्पृगभद्रद्ध्वनिः ॥४३॥
 तेषामभ्यागतानां च स राजा मुनिसत्तमाः । व्याविदेशाऽऽयतनानि शय्याश्चाप्युपचारतः ॥४४॥
 भोजनानि विवित्राणि शालीक्षुयवगोरसः । उपेत्य नृपतिश्रेष्ठो व्याविदेश स्वयं तदा ॥४५॥
 तथा तस्मिन्महापजे बह्व्यो ब्रह्मवादिनः । ये च द्विजातिप्रवरास्तत्राऽऽसन्निवृत्तसत्तमाः ॥४६॥
 समाजगमुः 'सशिष्यास्तानप्रतिजग्राह पार्थिवः । सर्वाश्च ताननुययौ यावदावस्थानिति ॥४७॥
 स्वयमेव महतेजा दम्भं त्यक्त्वा नृपोत्तमः । ततः कृत्वा स्वशिल्पं च शिल्पिनोऽप्ये चये तदा ॥४८॥
 'कृत्स्नं प्रजविधिं राजे तदा तस्मै न्यवेदयन् । ततः श्रुत्वा नृपश्रेष्ठः कृतं सर्वमतन्द्रितः ॥
 हृष्टरोमाऽभवद्राजा सह मन्त्रिभिरच्युतः ॥४९॥

ब्रह्मोवाच

तस्मिन्पजे प्रवृत्ते तु भ्रामिमतो हेतुवादिभिः । हेतुवादाद्ब्रह्मनाहुः परस्परजिगीषवः ॥५०॥
 'देवेन्द्रस्येव' (?) विहितं राजसिन्हेन भो द्विजाः । दनुशतोरणाधश्च शातकुम्भमयानि च ॥५१॥
 शय्यासनविकाराश्च 'मुबहूगस्तसंबयान्' । घटपात्रौकटाहानि फलशान्धर्धमानकान् ॥५२॥

अच्छी तरह बनवाया ॥३८-४०॥ अनेक देववासी ब्राह्मणों तथा वैश्याकी बहुत सी शाल, ये विधिपूर्वक बनवायी ॥४१॥
 इन्द्रयुग्म के हित के निमित्त राजा और स्त्रियां भी विविध रत्ना व लेंकर उत्सव म आयी ॥४२॥ जब वे महात्मा-
 मुन्द अपने-अपने शिविरों के अन्दर थे उस समय समुद्र-गर्जन की तरह आकाशमयी ध्वनि हुने लगी ॥४३॥
 मुनिगण ! तब राजा ने स्वयं वहाँ जाकर उन अभ्यागता व गृह, शय्या, अद्भुत भाजन—चावल, गूद, पद, दूध, घी आदि—देने की आज्ञा दी ॥४४-४५॥ द्विजवर ! उस महापूज में जितने शिष्य सहित ब्रह्मवादी द्विजवर आये हुए थे, उन सब की राजा ने सत्कार किया और स्वयं उनको घर तक पहुँचाया ॥४६-४७॥ महा-
 तेजस्वा नृप ने दम्भ का परित्याग कर दिया । जितने जिल्ली लाग थे, उन्होंने अपनी कारीगरों अर्थात् सम्पूर्ण यज्ञ-
 विधि (यज्ञस्थल के निर्माण) को पूर्ण कर राजा से निवेदन किया कि सब कार्य सम्पन्न हो गया—यह सुन कर आलस्यरहित राजा मंत्रिया सहित आनन्द से गद्गद हो गया ॥४८-४९॥

ब्रह्मा ने, हाँ—उस यज्ञ के प्रारम्भ में परस्पर विजय के दण्डक वाग्मी लाग हेतुवादिया ने अनेक कारणवाद कहने लगे ॥५०॥ द्विजगण ! उस श्रेष्ठ मूपति ने इन्द्रकी तरह कार्य किया । वहाँ सुवर्णमय तारण, घट, पात्र तथा

१ ग वैश्यानि । २ य वैद्विदितात्मा हुने । ३ स स्तान्गत्या ज । ४ क कृत्स्नयज्ञविधान शास्त्रा । ५ ए वादिनी । ६ स इन्द्रस्य विधि चित्त्य रा । ७ स बह्वन्नस्य स । ८ स नृ । स्फटिकानि च मेहानि क ।

महिं कश्चिदसौवर्णमपश्यद्वसुधाधिप । मूपाश्च शास्त्रपठितान्दारवा हेमभूषितान् ॥५३॥
 उपक्षिप्तान्वयाकाल विधिवद्भूरिवर्चसः । स्थलजा जलजा ये च पशवः केचन द्विजा ॥५४॥
 सर्वानेव समानोत्पन्नपश्यस्तत्र ते नृपाः । ग्राह्यैव महिषोश्चैव तथा वृद्धस्त्रियोऽपि च ॥५५॥
 ओदकानि च सत्त्वानि श्वापदानि वपांसि च । जरायुज्जघ्नाजानि श्वेदजा युधिभदानि च ॥५६॥
 पवतायुधान्यानि भूतानि वदशुश्च ते । एव प्रमुत्ति सर्वं पशुतो घनधान्यतः ॥५७॥
 यज्ञवाटं नृपा दृष्ट्वा विस्मय परमं गताः । ब्राह्मणानां विशां चैव बहुमिष्टान्नमृद्धिमत् ॥५८॥
 पूर्णं शतसहस्रे तु विप्राणां तत्र भुञ्जताम् । दुन्दुभिर्मैथनिर्घोषान्मुहुर्मुहुरथाकरोत् ॥५९॥
 विनानादासकृच्छ्रापि दिवसे दिवसे गते । एव स ववृधे यज्ञरतस्य राज्ञस्तु धीमतः ॥६०॥
 अन्नस्य सुबहूनिप्रा उत्सर्गन्निर्गन्तोपमानः । दधिकुल्याश्च वदशुः पयसश्च हृदारतया ॥६१॥
 जम्बूद्वीपो हि सकलो नानाजनपदेभ्युतः । द्विजाश्च तत्र दुश्पते राज्ञस्तस्य महामखे ॥६२॥
 तत्र यानि सहस्राणि पुरुषाणां ततस्ततः । गृहोत्वा भाजनं जम्बूद्वीपे द्विजसत्तमा ॥६३॥
 श्राविणश्चापि ते सर्वे सुमुष्टमणिकुण्डलाः । पर्यवेपथ्विजातोऽछतशोऽथ सहस्रशः ॥६४॥
 विविधान्यनुपानानि पुरुषा येऽनुवादिनः । ते च नृपोपभोग्यानि ब्राह्मणेश्यो वदुः सह ॥६५॥
 समागतान्वेदविदो राज्ञश्च पृथिवीश्वरानः । पूजां चक्रे तदा तेषां विधिवद्भूरिदक्षिण ॥६६॥
 (विशेषादागतान्ग्रातो महत्सङ्ग्रामशालिनः । नटनर्तककादोश्च गीतस्तुतिविशारदान् ॥६७॥)

कहा है और एतज्जित गम्मा आसन एवम र्गने उपकरण ये ॥५१ ५२॥ राजा ने ऐसा कोई चाज नहीं देखी जा
 सोने की नहीं थी। उन्होंने ग्राह्यमिहित काष्ठ के मूपा के स्वर्णमयित अर्थात् तज्ज्वी तथा ठाक समर्थ से विधिपूर्वक
 गठित हुए दक्षिण विप्रवदः स्थलचर और जलचर सभी जंतु वहा लाये गए ॥५३ ५४॥ गाय मत्त वृद्धास्त्रियो
 अलाय ज त हिसक जत् पक्षागण जरायुज्जघ्ना स्वदज उदमिज्ज पवत अन्न प्राण—मव वही विद्यमान
 थे ॥५५ ५६॥ इस प्रकार पशुओं और घनधायों से आनंदित यज्ञस्थल के देख कर राजा लग आश्चर्यचकित
 रह गए ॥५७॥ ब्राह्मणों और वक्षों के पास पर्याप्त मिष्टान्न था। वहा एक लाख वर्षों तक ब्राह्मण भोजन हो ला
 रहा ॥५८॥ मेघ-गजन के समान नगाडों के अनवरत पाप हो रहे थे। इस प्रकार उस बद्धिम न राजा का यज्ञ
 वाय विस्तार होने लगा ॥५९ ६०॥ विप्रवदः अर्जितनासचहृता था उतना हा बढता जाता था। दही के सर बर
 और दूध के शाले वही दाखती थी ॥६१॥ द्विजगण जनेक न्या से यकत सम्पूर्ण जम्बूद्वीप हा उस राजा के महामण मे
 उपस्थित हुआ था ॥६२॥ द्विजवयः हजारों पुरुष पात्रों के लकर वहा पहुँचे। निमल मणि-कुण्डल से यवत सकळ
 हमारा मकाल ग ब्राह्मणों का अलकृत करते राजा के खाने योग्य भोजन कराते और विविध प्रकार के अन्न न दते
 थे ॥६३ ६४॥ विधिपूर्वक मूरि दक्षिणा देने वाला राजा आये हुए वेदवेत्ताओं तथा पथिव-श्वर राजाओं की पूजा
 करता था ॥६५॥ (सभी दिग्गाओं के देवों से वही महत्सङ्ग्रामशाली राजवद तथा गीत-स्तुति विशारद नट नर्तक आदि

१ ख ०रिदक्षिण । स्थ० । २ ख च । पावत यानि भूतानि जतपाद० । ३ ग यामास० । ४ ख ०मा ।
 ते वै ।

पत्न्यो मनोरमास्तस्य पीनोन्नतपयोधरा । इन्दोचरपलाशाक्ष्यं शरच्चन्द्रनिभानना ॥६८॥
 कुलश्रीगुणोपेता सहस्रलोक शताधिकम् । एव तद्भूपपरमपत्नीगणसमन्वितम् ॥६९॥
 रत्नमालाकुल विद्ध पताकाध्वजसेवितम् । रत्नहारयुत रम्य चन्द्रकान्तिसमप्रभम् ॥७०॥
 'वरिण पर्वताकारान्मदसिक्तान्महाबलान्' । शतश कोटिसघातैर्दन्तिभिर्दन्तभूषणैः ॥७१॥
 'वातवेगजवेरद्वयं सिन्धुजातं सुशोभनं' । 'श्वेताश्वं श्यामकर्णंश्च कोट्यन्तैर्वर्जंवाग्दत्तं' ॥७२॥
 सनद्धद्वन्द्वरुक्षैश्च नानाप्रहरणोद्यतं । असह्येयं पदाशतैश्च देवपुत्रोपमंस्तथा ॥७३॥
 इत्येव ददृशे राजा 'यज्ञसभारविस्तरम्' । 'मुख लेभे तदा राजा सहृष्टो वाक्यमब्रवीत् ॥७४॥

राजोवाच

आनयध्व ह्यश्वेष्ट सर्वलक्षणलक्षितम् । चारयध्व पृथिव्यां च राजपुत्रा सुसज्जता ॥७५॥
 विद्वद्भिर्धर्मविदिभिश्च अत्र होमो विधीयताम् । कृष्णच्छाम च महिष कृष्णसारभूग द्विजान् ॥७६॥
 अरुणवाह च गात्रचैव सर्वैश्च पदुपालकान् । इष्टयश्च प्रवर्तन्तः प्रासादं वैष्णवं ततः ॥७७॥
 सर्वमेतच्च विप्रेभ्यो द्दीप्तम् । मनसेऽस्मितम् । स्त्रियश्च रत्नकोट्यश्च ग्रामाश्च 'नगराणि च' ॥७८॥
 सम्पत्तमृद्धभूम्यश्च विषयादश्चैवर्षाधनाम् । अग्दानि द्रव्यजातानि मनोज्ञानि वट्टानि च ॥७९॥
 सर्वेषां याचमानानां नास्ति ह्येतन्न भाषयेत् । तादृशप्रवर्ततां यतो 'धापददेव पुरा विद्वत् ॥
 प्रत्यक्ष मम 'आम्पेति' पञ्जरधारय समीपतः ॥८०॥

आए हुए थे ॥६७॥) दृष्ट्वा मुनिर्वा ग्याहृत्तौ मनोरम पत्न्यां यी ज। स्थूल और उन्नत स्तन वाली कमल-लक्षिता,
 गरव-वद्भुज युग्म वाली और कुल शील तथा गुणा ग सम्पन्न थी ॥६८॥ इस प्रकार पत्नीगण स समन्वित रत्न
 मालाभा ग व्याप्त दिव्य श्वजा-पलाशा आ न सजिन और चन्द्रका-तमसि के समान वासिमान वह दान-रथन
 था ॥६९॥ ७०॥ पवतावार, महाबल, मद स निवन और दान रूप श्रीभूषणो ग युवत वर द। हाथिवा व शृणुः ग
 पवन युग्म वेग वाल सिप दग लान सुन्दर तथा श्वेत अग वागे कराड़ा श्यामवर्ण घाटा स और कवचपारी
 सदाश्व अने अन्ध शस्त्रा मे सुसज्जित तथा देव-पुत्र मुत्स्य अलक्ष्य सैनिको से घन-न्यल मुग भिन था ॥७१॥ ७२॥
 इन प्रकार दान-स्थान न महामं टाट-आट का देख कर राजा अत्यंत आनन्दित हो कर, वा ॥७३॥

राजा ने कहा—ममस्त लक्षणा स सम्पन्न उत्तम घाट का मययी रात्रुसार लाये। और फिर पृथिवी
 पर उमका विचरण करगए ॥७५॥ विद्वान तथा धर्मवेत्ता लोग हवन करें। वाग् बकरे महिष कृष्णभूग ब्राह्मणा
 बैल गाय और समस्त पशु-पक्षी का बलाकर यज्ञ आरम्भ किया जाए। विष्णु का मंदिर बन ॥७६-७७॥ विप्रा
 का अभिनर्तित दान दिया जाय याचका का स्त्रियां राज गाँव नगर अच्छी उपजाऊ भूमि राज्य तथा दूगरे
 सुन्दर द्रव्य दिए जायें ॥७८॥ किया भी याचक स नहीं है ऐसा पद नहीं कहा जाय। जब तब भगवान् दान
 देदी म प्रत्यक्ष प्रकट न हो सब तक दान होगा रहे ॥७९-८०॥

१ ग ० महाहारा। २ स ० न्तिमि वृत्तम्। ३ स ० श्वर्णोः। ४ स ० श्वार्त्तप्रवि०। ५ व ० द पंडागुप्त
 प्राप्य घ०। ६ ग ० व भूषणिवह।

ब्रह्मोवाच

एवमुक्त्वा तदा विप्रा राजासिंहो महाभुज । ददौ सुवर्णसंघात कोटीना चं व भूषणम् ॥८१॥
 करेणुशतसाहस्र वाजिनो नियुतानि च । अर्बुद चं व वृषभ स्वर्णशृङ्गीश्च धेनुका ॥८२॥
 सुरूप सूरभीदचं व कास्यदोहा पयस्विनी । प्रायच्छदस्तु विप्रेभ्यो वेदविद्भयो मुदायुत ॥८३॥
 वासासि च महार्हाणि राज्ञोवास्तराणानि च । सुशुक्लानि च शुभ्राणि प्रवालमणिमुत्तमम् ॥८४॥
 अददात्स महायज्ञे रत्नानि विविधानि च ॥८५॥
 वज्रवेद्वर्षमाणिवयमुक्तिकाद्यानि यानि च । अलंकारवती शुभ्रा कन्या राजीवलोचना ॥८६॥
 शतानि पञ्च विप्रेभ्यो राजा हृष्ट प्रदत्तवान् । स्त्रिय पीनपयोभारा कञ्चुकं स्वस्तनावृता ॥८७॥
 मध्यहीनाश्च सुशोण्य पद्मपत्रायतेक्षणा । हावभावान्वितग्रीवा बहुध्यो वलयभूषिता ॥८८॥
 पादनूपुरसयुक्ता पटटदुकूलवासस । एकैकशोऽददात्तस्मिन्काश्याश्च कामिनीर्बहू ॥८९॥
 अश्विभ्यो ब्राह्मणादिभ्यो हयमेधे द्विजोत्तमा । भक्ष्य भोग्य च सपूर्ण नानासभारसयुतम् ॥९०॥
 खण्डकाद्यान्नेकानि स्वित्प्रपञ्चाश्च पिष्टकान । अन्नान्यन्यानि मेध्याश्च घृतपूराश्च खाण्डवान् ॥९१॥
 मधुरास्तजितानूपानघ्न मृष्ट सुपाकिकम् । प्रेत्यर्थं सर्वसंस्थाना दीयतेऽन्न पुन पुन ॥९२॥
 वसस्य दीयमानस्य धनस्यान्तो न विद्यते । एव दृष्ट्वा महायज्ञदेवदेवस्य सत्वा (चा) रणा ॥९३॥
 गन्धर्वाप्सरस सिद्धा ऋषयश्च प्रजेश्वरा । विस्मय परम याता दृष्ट्वा श्रुतुवर क्षमम् ॥९४॥
 पुरोधा मन्त्रिणो राजा हृष्टास्तत्रैव सर्वश । न तत्र मलिन कश्चिन्न दीनो न क्षुधाऽन्वित ॥९५॥

ब्रह्मा ने कहा—इतना कहकर उस महाबलवान नृपवर ने हृषपूवक सुवर्ण समूह कर ३१ भूषण एक लाख हाथी दस लाख घोड़े एक अरब बैल तथा स्वर्णशृङ्गी मुद्गररक्षती एवम् दुष्टार गायें वेदवत्ता ब्राह्मणों को धान ने दी ॥८१८३॥ तथा बहुमूल्य वस्त्र उज्ज्वल मृगरोम निक्षिप्त बिस्तर (कालीन) उत्तम प्रवाल मणिर्घा और विविध रत्न भी दिए ॥८४८५॥ वज्रमणि वैद्यमणि मत्ती तथा अङ्कुरो से युक्त गौरवर्ण एवम् कमल के समान नेत्रों वाली पाँच सौ कन्यायें राजा ने प्रसन्न होकर विप्राओं को दी ॥८६८७॥ द्विजवयं । अश्वमेध यज्ञ में स्थल तथा कषुकिभ्यो ने जावृत स्तना वाली क्षीण कटि वाली सुन्दर नितम्ब वाली कमलपत्र के समान दीर्घ नेत्रों वाली हाव भावों से अवन्त ग्रीवा वाली ककण तथा नपुरो से विभूषित कोशेयवस्त्रधारिणी बहुत सी कामिनियों को राजा ने एक एक कर के ब्राह्मण आदि याचकों को दे दिया ॥८८८९॥ अनेक प्रकार के रसों से युक्त पर्याप्त मध्यमोन्मत्त खाड मिश्रित विविध द्रव्य तथा उवाचकर बनाये गए पीसकर बनाये गए पवित्र तथा घृतपूण खांड के बने मधुर अच्छी तरह पकाये हुए साद्यान्न एवं पूए—समस्त प्राणिभ्यो की तृप्ति के लिए बार-बार दिये जाते थे ॥९०९२॥ दिए गए तथा दिए जाने वाले अन्न का अन्त नहीं था । इस प्रकार महायज्ञ का देखकर देव दैत्य चाण गंधर्व अप्सरा सिद्ध ऋषि तथा प्रजापति अत्यन्त विस्मित हुए ॥९३९४॥ पवित्र तथा उत्तम पक्ष को देखकर पुरोहित मंत्री राजा—सब के सब हर्षित हुए । वहाँ न कोई मलिन न दीन और न क्षुधापीडित

न बोपसर्गो न ग्लानिर्नाऽऽधयो व्याधयस्तथा । नाकालमरणं तत्र न दंशो न ग्रहा विषम् ॥९६॥
 हृष्टपुष्टजना सर्वे तस्मिन् राज्ञो महोत्सवे । ये च तत्र तपःसिद्धा मुनयश्चिरजीविनः ॥९७॥
 न जातं तादृशं यज्ञं धनधान्यसमन्वितम् । एवं स राजा विधिवद्वाजिमेषं द्विजोत्तमाः ॥
 श्रुतुं समापयामास प्रासादं वंष्णवं तथा ॥९८॥

इति श्रीमहापुराण आदिब्राह्मे स्वयम्भुविसवादे प्रासादकरणं नाम
 सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः ॥४७॥

अथाष्टचत्वारिंशोऽध्यायः

इन्द्रद्युम्नस्य प्रतिमानिर्माणम्

मुनय ऊचुः

ब्रूहि नो देवदेवेश यत्पृच्छाम पुरातनम् । यथा ताः प्रतिमाः पूर्वमिन्द्रद्युम्नेन निर्मिताः ॥१॥
 केन चैव प्रकारेण तुष्टस्तस्मै स माधव । तत्सर्वं वद ऋत्स्माक पर कौतूहलं हि न ॥२॥

ब्रह्मोवाच

भूणुष्व मुनिशार्दूलः पुराण वेदसंमितम् । कथयामि पुरा वृत्तं प्रतिमानां च संभवम् ॥३॥

दिखायी पढ़ता था ॥९५॥ उत्पत्ति, ग्लानि, आधि-व्याधि, अकाल मृत्यु, दश, ग्रह और विष किसी प्रकार की
 विपत्ति नहीं थी ॥९६॥ राजा के उस महोत्सव में सब लोग हृष्ट-पुष्ट, तपस्वी, मुनि तथा चिरजीवी थे ॥९७॥
 वैसा धन धान्य-समन्वित यज्ञ वही नहीं हुआ था । द्विजवयः । इस तरह राजा ने विधानपूर्वक अश्वमेध यज्ञ तथा
 विष्णु के मंदिर के सम्पन्न किया ॥९८॥

श्री ब्रह्ममहापुराण में ब्रह्मा और ऋषि के सवाद-प्रकरण में मंदिर-निर्माण नामक
 संतालीसवाँ अध्याय समाप्त ॥४७॥

अध्याय ४८

इन्द्रद्युम्न द्वारा प्रतिमा का निर्माण

मुनियो ने कहा—हे देवदेवेश ! हम यह प्रार्थना तथा मुनना चाहते हैं कि इन्द्रद्युम्न ने उन प्रतिमाओं का
 निर्माण कैसे कराया ? किस प्रकार माधव उससे सतुष्ट हुए ? यह सब हमसे कहिए, हमें बड़ी उत्सुकता
 है ॥१-२॥

ब्रह्मा ने कहा—मुनिवर ! वेदसम्मत पुराण को मुनिए । मैं पूर्वकालीन, वृत्तान्त—प्रतिमाओं का

प्रवृत्ते च महापद्मे प्रासादे चैव निमिते । चिन्ता तस्य बभूवाय प्रतिमार्थमर्हनिशम् ॥४॥
 न वेद्यि केन देवेशं सर्वेशं लोकपावनम् । समस्थित्यन्तकर्तारं पश्यामि पुरुषोत्तमम् ॥५॥
 चिन्ताविष्टरत्नभूद्राजा शोते राश्री दिवाऽपि न । न भुङ्क्ते विविधान्भोगान्न च स्नान प्रसाधनम् ॥६॥
 नैव वाद्येन गन्धेन गायनैर्वर्णकैरपि । न गर्जमन्दयुषतश्च न चानेकैर्हृयाम्बितं ॥७॥
 मेन्द्रनीलमहानीलः पद्मरागमयनं च । सुवर्णरजताद्यैश्च वज्रस्फटिबसयुतं ॥८॥
 बहुरागार्थकामैर्वा न वन्द्यैरन्तरिक्षिणः । बभूव तस्य नृपतेर्मनस्तुष्टिवर्धनम् ॥९॥
 शैलभृद्दारुजातेषु प्रशस्तं किं महोत्तले । विष्णुप्रतिमायोग्यं च सर्वलक्षणलक्षितम् ॥१०॥
 एतरेव त्रयाणां तु दयितं स्यात्सुरार्चितम् । स्थापिते प्रीतिमम्येति इति चिन्तापरोऽनवत् ॥११॥
 पञ्चरात्रविधानेन संपूज्य पुरुषोत्तमम् । चिन्ताघिष्टो महोपालः सत्तोतुमुपचक्रमे ॥१२॥
 इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे इन्द्रधनुस्तस्य प्रतिमानिर्माणविधान नामाष्टचत्वारिंशोऽध्यायः ॥४८॥

निर्माण—बनलाता हैं ॥३॥ महायज्ञ का आरम्भ तथा मन्दिर का निर्माण हो जाने पर राजा को दिनरात प्रतिमा की चिन्ता लगी रहती थी ॥४॥ “मैं नहीं जानता कि किस प्रकार देवों के स्वामी, सब के स्वामी, लोकपावन तथा मूर्ति स्थिति प्रलयकर्ता पुरुष सत्तम भगवान् का दर्शन कर सकूँगा इस चिन्ता के कारण राजा का एक क्षण भी नींद नहीं आती थी । स्नान, भूगार तथा भगा से भी वह विरक्त हो गया था ॥५॥ ६॥ काष्ठ गन्ध, गाना मन्दयुक्त हाथा पाडे, इन्द्रनील महनील, पद्मराग, सज्जा, चादी, वज्रमणि स्फटिकमणि अनुराग उत्पन्न करनेवाले बहुत सारे वस्तु तथा गगन विहारी पक्षी—चाँदी भी राजा के मन का सन्तुष्ट नहीं कर पाता था ॥७॥ ८॥ भूतल पर परवर मिट्टी और लकड़ी—इन तीन चीजों में से कौन विष्णु की प्रतिमा योग्य, सर्वलक्षण सम्पन्न तथा प्रशस्त है ? इन्हीं तीनों में से किसी वस्तु की प्रतिमा देवताका का प्रिय होती है । प्रतिमा स्थापित होने पर ही भगवान् प्रसन्न होंगे । इस तरह राजा साचने हुए पञ्चरात्र के विधान से पुरुषोत्तम की पूजा कर चिन्तामय स्थिति में ही स्तुति करने लगा ॥१०॥ १२॥

श्री ब्रह्मह्मपुराण में ब्रह्मा और ऋषि के संवाद प्रकरण में प्रतिमानिर्माण विधान

नामक अठ्तालीसवाँ अध्याय समाप्त ॥४८॥

अथैकोनपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

इन्द्रद्युम्नकृतभगवत्स्तुति

वासुदेव नमस्तेऽस्तु नमस्ते मोक्षकारण । ब्राहि मा सर्वलोकेषु जन्मसत्सारसागरात् ॥१॥
 निमलाम्बरसकाश नमस्ते पुरषोत्तम । सन्ध्या नमस्तेऽस्तु ब्राहि मा धरणीधर ॥२॥
 नमस्ते हेमगर्भाभि नमस्ते मकरध्वज । रतिकान्त नमस्तेऽस्तु ब्राहि मा सवरात्क ॥३॥
 नमस्तेऽञ्जनसकाश नमस्ते भवतवत्सल । अनिरुद्ध नमस्तेऽस्तु ब्राहि मा वरदो भव ॥४॥
 नमस्ते त्रिवुधाज्ञान नमस्ते विबुधप्रिय । नारायण नमस्तेऽस्तु ब्राहि मा शरणागतम् ॥५॥
 नमस्ते बलिना श्रेष्ठ नमस्ते लाङ्गभयुध । चतुर्मुख जगद्धाम ब्राहि मा प्रपितामह ॥६॥
 नमस्ते नीलमधाम नमस्ते त्रिदशाजित । ब्राहि विष्णो जगन्नाथ मान मा भवसागर ॥७॥
 प्रलयानलसकाश नमस्ते दितिजातक । नरसिंह महावीर्य ब्राहि मा दीप्तलोचन ॥८॥
 यया रसातलादुर्वो त्वया दष्ट्रोद्धता पुरा । तया महाबराहस्य ब्राहि मा दुःखसागरात् ॥९॥
 तवेता मृत्युं हृण्य वरदा सस्तुता मया । तवेमे बलदेवाद्या पृथूपूजेन सन्निहता ॥१०॥
 अङ्गानि तव देवेश गरुमाद्यास्तया प्रभो । दिक्पाला सामुधाश्चैव केशवाद्यास्तयाऽभ्युत ॥११॥

अध्याय ४९

इन्द्रद्युम्न द्वारा भगवान् की स्तुति

वासुदेव । आपका नमस्कार है । म तकारण । आपकी नमस्कार है । अतिल लकी व स्वामी । मुझ जन्म तथा ममार सागर स बचाए ॥१॥ स्वच्छ जनन युय । पुरुष तम । आपकी नमस्कार है । सन्ध्या । आपकी नमस्कार है । धरणीधर । मेरी रक्षा करें ॥२॥ हिरण्यम । आपका नमस्कार है । मकरध्वज । आपकी नमस्कार है । रतिकान्त । आपका नमस्कार है । सवरात् । मेरी रक्षा कर ॥३॥ अञ्जनसक । आपकी नमस्कार है । भवतवत्सल । आपका नमस्कार है । अनिरुद्ध । आपका नमस्कार है । मेरी रक्षा करें तथा वरनाथ बन ॥४॥ दत्तात्रेय । आपका नमस्कार है । देवप्रिय । आपका नमस्कार है । नारायण । आपकी नमस्कार है । मुझ शरणागत की रक्षा कर ॥५॥ बलिना स श्रेष्ठ । आपका नमस्कार है । लाङ्गभयुध । आपका नमस्कार है । चतुर्मुख । जगद्धाम । प्रपितामह । मेरी रक्षा करें ॥६॥ नीलमेष व समान बाति बाल । आपका नमस्कार है । दशभुजित । आपका नमस्कार है । विष्णु । मेरी रक्षा करें । जगन्नाथ । भवसागर स मया उद्धार कर ॥७॥ प्रलय नि स सङ्ग । देवनाग । आपका नमस्कार है । नरसिंह । महाकालिनाग । दीप्त नेत्र बाल । मेरी रक्षा करें ॥८॥ आपन जिस प्रकार महावपुह का रूप धारण कर अपने दीना पर पतल स पृथ्वी का उद्धार किया था वत मुझ मा दसगागर स बचाए ॥९॥ हृण्य । वर देने आप बागी आप ही की इन मूर्तियों की मीने स्तुति की है । आप ही व म बन्देव आदि रूप पुर-पुर स्थित है ॥१०॥ दव । प्रभो । गरु आदि आपकी

ये ज्ञान्ये तव देवेश भेदाः प्रोक्ता मनीषिभिः। तेषां सर्वे जगन्नाथ प्रसन्नायतलोचन॥१२॥
मयार्जुनः स्तुताः सर्वे तथा यूयं नमस्कृताः। प्रयच्छत वरं मह्यं धर्मकामार्थमोक्षदम्॥१३॥
भेदास्ते कीर्तिता ये तु हरे संकल्पनादयः। तव पूर्वायं संभूतास्ततस्त्वयि समाश्रिताः॥१४॥
न भेदस्तव देवेश विद्यते परमार्थतः। विश्वं तव यद्रूपमुबतं तदुपचारतः॥१५॥
अद्वैतं त्वा कथं द्वैतं चतुं शक्योतिमानवः। एकरत्वं हि हरे व्यापी चित्स्वभावो निरञ्जनः॥१६॥
परमं तव यद्रूपं भावाभावविवर्जितम्। निर्लेपं निर्गुणं श्रेष्ठं कूटस्थमचलं ध्रुवम्॥१७॥
सर्वोपाधिविनिर्मुक्तं सत्तामाश्रयवस्थितम्। तद्देवाश्च न जानन्ति कथं जानाम्यहं प्रभो॥१८॥
अपरं तव यद्रूपं पीतवस्त्रं चतुर्भुजम्। शङ्खचक्रगदापाणिमुकुटाङ्गधारिणम्॥१९॥
श्रीवत्सोरस्वसंयुक्तं वनमालाविभूषितम्। तदच्यन्ति विबुधा ये ज्ञान्ये तव संश्रया॥२०॥
देवदेव सुरश्रेष्ठ भवतानामभयप्रद। प्राहि मां पद्मपत्राक्ष भग्नं विषयसागरे॥२१॥
नायं पश्यामि लोकेऽयस्याहं शरणं यजे। स्वामृते कमलाकान्त प्रसीद मधुसूदन॥२२॥
जराव्याधिशतैर्युक्तो नानादुःखेनिपीडितः। ह्यंशोकाग्निवतो मूढं वर्मपाशैः सुयन्त्रितः॥२३॥
पतितोऽहं महारौद्रे घोरे संसारसागरे। विषमोदकदुष्पारे रागद्वेषपाकुले॥२४॥

अग है। अच्युत। विष्णु तया आयुधधारी केशव आदि भी आपके अवयव हैं॥११॥ प्रसन्न तथा लम्बे नेत्र वाले जगन्नाथ। विद्वानों ने जितने आपके भेद बतलाए हैं, उन सबको मैंने पूजा तथा स्तुति की और आपको नमस्कार किया। धर्म, अर्थ, काम और मोक्षदायक वरदान मुझे दोगिए॥१२-१३॥ हरे। आपके सङ्कल्प आदि जितने भेद हैं, वे सब आपकी पूजा के लिए उत्पन्न होकर आपही के आश्रित हैं॥१४॥ देवेश। परमार्थदृष्टि से आपका कोई भेद नहीं है। आपके जाँचे विविध रूप बहे गए हैं, वे औपचारिक हैं॥१५॥ आप अद्वैत हैं, मला मनुष्य आपकी वैसे द्वैत कह सकता है। हरे। आप एक, व्यापक, चित्स्वभाव तथा निरञ्जन हैं॥१६॥ प्रभो। आपका जाँ मान-अमान से बलित, निर्लेप, निर्गुण, श्रेष्ठ, कूटस्थ, अचल, ध्रुव, सब उपाधियों से निर्मुक्त तथा सत्तामात्र से व्यवस्थित रूप है, उसे तो देवता भी नहीं जानते, मैं कैसे जानूँ॥१७-१८॥ आपका दूसरा जो पीतवस्त्र, चतुर्भुज, शङ्ख, चक्र, गदा, मुकुट तथा अगद (बाज्रबद्ध) धारी, वक्षस्थल पर श्रीवत्स चिह्न से युक्त और वनमाला से विभूषित रूप है, उसी की पूजा आपके आश्रित देवगण करते हैं॥१९-२०॥ देवो देव। सुरश्रेष्ठ। भवतो को अमय देने वाले। पद्म-पत्र वे समान नेत्रों वाले। विषयसागर में डूबे हुए मुझको बचाइए॥२१॥ लोवेश। आपको छेड़कर मैं किसी दूसरे को नहीं देखता, जिसकी शरण में जाऊँ। कमलाकान्त। मधुसूदन। मुझ पर प्रसन्न हो॥२२॥ मैं सैकड़ों जरा-व्याधियों से युक्त, नाना दुःखा से पीडित ह्यंशकों से समन्वित मुग्ध तथा वर्म-जाल में निबद्ध होकर महाभयकर संसारसागर में फिर चुका हूँ॥२३॥ प्रभो। विषय-जल के कारण दुष्पार, राग-द्वेष इषी मीनों से अपूर्ण, इन्द्रिय इषी आवतों से गभीर, तृष्णा शङ्क इषी तरंगों से व्याप्त, आश्रय

इन्द्रियावर्तगम्भीरे तृष्णाशोकोमिसंकुले । निराश्रये निरालम्बे निःसारोऽप्यन्तश्चञ्चले ॥२५॥
 मायया मोहितस्तत्र भ्रमामि सुज्विरं प्रभो । नानाजातिसहस्रेषु जायमानः पुनः पुनः ॥२६॥
 मया जन्मान्यनेकानि सहस्राण्ययुतानि च । विविधान्यनुभूतानि संसारोऽस्मिञ्जनार्दन ॥२७॥
 वेदाः साङ्गा मयाऽधोतः शास्त्राणि विविधानि च । इतिहासपुराणानि तथा शिल्पान्यनेकशः ॥२८॥
 असंतोषाश्च संतोषाः संक्षयापक्षया च्यवाः । मया प्राप्ता जगन्नाय क्षयवृद्धयक्षयैतराः ॥२९॥
 भार्यारिमित्रबन्धूना वियोगाः संगमास्तथा । पितरो विविधा दृष्टा मातरश्च तथा मया ॥३०॥
 दुःखानि चानुभूतानि यानि सौख्यान्यनेकशः । प्राप्ताश्च बान्धवाः पुत्रा भ्रातरो जातयस्तथा ॥३१॥
 मयोपितं तथा स्त्रीणां कोष्ठे विष्णुमूर्तिपिच्छले । गर्भवासे महादुःखमनुभूतं तथा प्रभो ॥३२॥
 दुःखानि धान्यनेकानि बाल्ययोवनयोचरे । दार्ढ्ये च हृद्योक्तेश्चानि प्राप्तानि च मया ॥३३॥
 मरणे यानि दुःखानि यममार्गे यमालये । मया तान्यनुभूतानि नरके धातनास्तथा ॥३४॥
 रुमिकोटद्रुमाणां च हस्त्यश्वमृगपक्षिणाम् । महिषोष्ठ्रगर्वा चैव तथाऽग्रेषां वनौकसाम् ॥३५॥
 द्विजातीनां च सर्वेषां शूद्राणां चैव योनिषु । घनिता क्षत्रियाणां च दरिद्राणां तपस्विनाम् ॥३६॥
 नृपाणां नृपभूतानां तथाऽग्रेषां च देहिनाम् । गृहेषु तेषामुत्पन्नो देव चाहं पुनः पुनः ॥३७॥
 गतोऽस्मि दासतां नाय भूतयानां बहुशो नृणाम् । दरिद्रत्वं चेश्वरत्वं स्वामिदं च तथा गतः ॥३८॥
 हतो मया हताश्चाग्रे घातितो घातितस्तथा । दत्तं ममायैरन्येभ्यो मया दत्तमनेकशः ॥३९॥

यथा अवलम्ब स र्हीनः, स र्हीनः अति अरुणश्चञ्चल मवकाशर मे माया मे मोहित होकर चिरकाल से मैं भ्रमण कर रहा हूँ (अर्थात् डूब रहा हूँ) ॥२५-२५३॥ जनार्दन । इस संसार मे नाना प्रकार की जातियों मे हजारों-लाखों बार जन्म लेकर मैंने विविध सुख-दुःख का अनुभव किया ॥२६-२७॥ जगन्नाय । मैंने चारों वेदों, छहों शास्त्रों, इतिहास-पुराणों तथा अनेक शिल्पा का अध्ययन किया ॥२८॥ असंतोष, संतोष सब, अपक्षय, क्षय, वृद्धि तथा अक्षय मुझे प्राप्त हुए ॥२९॥ भार्या, पुत्र, मित्र तथा बन्धुओं से संपन्न विषय हुए, अनेक पिता माता देते ॥३०॥ शिथिल सुख-दुःखों का अनुभव किया, बहुत से भार्द-बन्धु मिले ॥३१॥ स्त्रियों के मूल मूल से पिच्छले (निम्नस्तर वाले) कोष्ठ में वास किया, गर्भ-वास मे महान् दुःख का अनुभव किया ॥३२॥ हृद्योक्ता । बाल्यावस्था, यौवनकाल तथा युवपे मे जितने कष्ट होते हैं, वे सब मुझे मिले ॥३३॥ मरणकाल मे, यम के मार्ग में तथा यमालय मे जितने दुःख होते हैं, उन सब का मैंने अनुभव किया, नरक मे धातनायें भी सही ॥३४॥ रुमि-कौट वृक्ष हाथी, घेंटे, मृग, पक्षी, महिष, ऊँट, गौ तथा अन्य जंगली पशु, द्विज एवम् शूद्र की योनि मे और घनवान् क्षत्रिय, दरिद्र, तपस्वी नृप, राजा के नौकर तथा अन्य प्राणियों के घरों मे मैं बार-बार उत्पन्न हुआ ॥३५-३७॥ नाय । मैं अनेकों मनुष्य तथा दाम्नी का दास बना दण्डि, घनी तथा स्वाधी भी बना ॥३८॥ मैंने दूसरों को मारा और दूसरों ने मुझे मारा, मैंने दूसरा पर आपात किया और दूसरा ने मुझ पर आपात किया, मुझे दूसरों ने दिया और मैंने दूसरों को दिया ॥३९॥

पितृमातृसुहृद्भ्रातृकलत्राणां कृतेन च। धनिनां श्रोत्रियाणां च दरिद्राणां तपस्विनाम्॥४०॥
 उक्तं देव्यं च त्रिविधं त्वयत्वा लज्जा जनार्दन। देवतिथ्यङ्गमनुष्येषु स्याचरेषु चरेषु च॥४१॥
 न विद्यते तथा स्थानं यत्राहं न तत् प्रभो। कदा मे नरके वासः कदा स्वर्गे जगत्पते॥४२॥
 कदा मनुष्यलोकेषु कदा तिर्यगतेषु च। जलयन्त्रे यथा चक्रे घटी रज्जुनिबन्धना॥४३॥
 याति चोर्ध्वमधश्चैव कदा मध्ये च तिष्ठति। तथा चाहं सुरध्रेष्ठ धर्मरज्जुसमावृतः॥४४॥
 अधश्चोर्ध्वं तथा मध्ये भ्रमन्गच्छामि योगतः। एवं संसारचक्रेऽस्मिन्भरवे रोमहर्षणे॥४५॥
 भ्रमामि सुत्रं कालं नान्तं पश्यामि कर्हि वित्। न जाने किं करोम्यद्य हरे व्याकुरितेन्द्रियः॥४६॥
 शोभतूष्णाभिभूतोऽहं कादिशीको त्रिचेतनः। इदानीं स्वामहं देव विह्वलः शरणं गतः॥४७॥
 ग्राहि मां दुःखितं कृष्ण भग्नं संसारसागरे। कृपा कुर्व जगन्नाथ भवतं मा यदि मन्यसे॥४८॥
 श्वदुते नास्ति मे बन्धुयोजसो चिन्तां करिष्यति। देव स्वां नायमासाद्य न भयं मेऽस्ति कुत्रचित्॥४९॥
 जीविते मरणे चैव योगक्षेमोऽयं वा प्रभो। ये तु त्वां विधिवद्देव नाचमन्ति नराधमाः॥५०॥
 सुगतिस्तु कथं तेषां भवेत्संसारबन्धनात्। किं तेषां कुलशालेन विद्यया जीवितेन च॥५१॥
 येषां न जायते भक्तिजंगद्धातरि केशवे। प्रकृतिं स्वासुरीं प्राप्य ये स्वा निन्दन्ति मोहिताः॥५२॥
 पतन्ति नरके घोरे जायमानाः पुनः पुनः। न तेषां निष्कृतिस्तस्माद्विद्यते नरकार्णवात्॥५३॥

पिता, माता, मित्र, भाई, स्त्री धनी, श्रावित, दरिद्र और तपस्वियों के लिए मैंने बहुत कुछ किया ॥४०॥ जनार्दन !
 मैंने लाख छ डकर विविध प्रकार की दीनता प्रकट की। प्रभो ! देव, पक्षी, मनुष्य, स्थावर और जगमा मे एसा
 कोई स्थान नहीं है, जहाँ मैं नहीं गया ॥४१॥ जगत्पते ! मैं बम हपी रस्सी से बँधा हुआ कर्मी नरक मे, कर्मी
 स्वर्ग मे कर्मी मनुष्य लोक मे और कर्मी तिर्यग् यानि मे उसी प्रकार नीचे-ऊपर भ्रमण कर रहा हूँ, जैसे जलयन्त्र
 मे रस्सी से बँधा हुई गगरी ऊपर-नीचे तथा मध्य मे घूमती रहती है ॥४२-४४॥ इस प्रकार मयकर तथा रोमाचकारी
 संसार-चक्र मे मैं विचराल से घूम रहा हूँ, कहीं अन्त नहीं देखता ॥४५॥ हरे ! मैं नहीं जानता हूँ कि क्या कभी
 मेरी इन्द्रियां व्याकुल हो गई हैं, मैं लोक-तूष्णा से अभिभूत तथा अचत हूँ रहा हूँ, मुझे इतना भी नहीं पता
 कि किस दिशा मे जाऊँ। देव ! इस समय विह्वल होकर मैं आपकी शरण मे आया हूँ ॥४६-४७॥ कृष्ण ! संसार-
 सागर मे निमग्न मुझ पीड़ित की रक्षा करें। जगन्नाथ ! यदि आप मुझ सकत समझते हैं तो कृपा कीजिए ॥४८॥
 अपनी छंडकर मेरा कोई बन्धु नहीं है, जो मेरी चिन्ता करे। देव ! आपका स्वामी के रूप मे प्राप्त कर जीवन,
 मरण या पागलपन—इसी भी मुझे मय नहीं हाता ॥४९॥ प्रभो ! जो नराधम विधिपूर्वक अपनी पूजा नहीं
 करते, उन्हें संसार-बन्धन मे कैसे मुक्ति मिले ? जिनको जगद्घाता वैशव मे शक्ति नहीं है, उन्हें कुल-शील, विद्या
 तथा जीवन से क्या प्रयोजन ? ॥५०-५१॥ आसुरी प्रकृति की प्राप्ति कर महत्कष्ट जा आपकी निन्दा करते हैं, वे
 बार-बार जन्म लेकर घोर नरक मे मिरते हैं। देव ! जा दुष्टाचारी तथा अधम मनुष्य आपका दूषित करते हैं,

ये हूयन्ति दुर्वृत्तास्त्वां देव पुरुषायमाः। यत्र यत्र भवेज्जन्म मम कर्मनिबन्धनात् ॥५४॥
 तत्र तत्र हरे भक्तिस्त्वयि चास्तु वृद्धा सदा। आराध्य त्वां सुरा दैत्या नराश्चान्येऽपि संयताः ॥५५॥
 अवापुः परमां सिद्धिं कृत्वा देव न पूज्येत्। न शक्नुवन्ति ब्रह्माद्याः स्तोतुं त्वां त्रिदशा हरे ॥५६॥
 कथं मानुषबुद्ध्याहं स्तोमि त्वा प्रकृतेः परम्। तथा चाज्ञानभावेन संस्तुतोऽसि मया प्रभो ॥५७॥
 तत्क्षमस्त्वापरार्थं मे यदि तेऽस्ति दया मयि। कृपापराधेऽपि हरे क्षमां कुर्वन्ति साधवः ॥५८॥
 तस्मात्प्रसीद देवेश भक्तस्नेहं समाश्रितः। स्तुतोऽसि यन्मया देव भक्तिभावेन चेतसा ॥
 साङ्गं भवतु तत्सर्वं वासुदेव नमोऽस्तु ते ॥५९॥

ब्रह्मोवाच

इत्थं स्तुतास्तदा तेन प्रसन्नो गरुडध्वजः। ददौ तस्मै मुनिभेष्टाः सकलं मनसेप्सितम् ॥६०॥
 यः संपूज्य जगन्नाथं प्रत्यहं स्तोति मानवः। स्तोत्रेणानेन मतिमान्स मोक्षं लभते ध्रुवम् ॥६१॥
 त्रिसंध्यं यो जपेद्बिद्वानिदं स्तोत्रवरं शुक्तिः। धर्मं चार्थं च कामं च मोक्षं च लभते नरः ॥६२॥
 यः पठेच्छृणुषाद्वाऽपि श्रावयेद्वा समाहितः। स लोकं शाश्वतं विष्णोर्वाप्तिं निर्युतकल्मषः ॥६३॥
 धर्मं पापहरं चेदं भुक्तिमुक्तिप्रदं शिवम्। गुह्यं सुदुर्लभं पुण्यं न देयं यस्य कस्यचित् ॥६४॥
 न नास्तिकाय मूर्खाय न कृतघ्नाय मानिने। न दुष्टमतये दद्यात्ताभक्ताय कदाचन ॥६५॥

उनका नरकारण से उछार नहीं होता ॥५२-५३॥ हरे! कर्म-बन्धन मे पड़ कर जहाँ-जहाँ मेरा जन्म हो वहाँ-वहाँ आपने मेरी वृद्ध भक्ति बनी रहे ॥५४॥ सयमी, देव, दैत्य, मनुष्य तथा दूसरों ने भी आपकी आराधना कर परम सिद्धि प्राप्त की है। देव! कौन आपकी पूजा नहीं करेगा? हरे! ब्रह्मा आदि देवता भी आपकी स्तुति करने में समर्थ नहीं हैं, फिर मनुष्य-बुद्ध्या मैं कैसे प्रकृति से भी हरे आपकी स्तुति करूँगा? प्रभो! तो भी अज्ञानता से मैंने आपकी स्तुति की ॥५५-५७॥ यदि मेरे ऊपर आपका अनुग्रह है, तो मेरे इस अपराध को आप क्षमा कर दें। हरे! अपराधी पर भी साधु लोग दया करते हैं। देवेश! इसलिए भक्त के स्नेहवश आप प्रसन्न हों। देव! भक्ति-युक्त चित्त से जो मैंने आपकी स्तुति की, वह सब पूर्ण हो। वासुदेव! आपका नमस्कार है ॥५८-५९॥

ब्रह्मा ने कहा—राजा ने इस प्रकार स्तुति की। भगवान् उससे प्रसन्न हुए। मुनिवर्य! भगवान् ने उसकी समस्त अमिलापार्ये पुरी की ॥६०॥ जो मनुष्य प्रतिदिन जगन्नाथ की पूजाकर इस स्तोत्र से स्तुति करता है वह निश्चय ही मुक्ति प्राप्त करता है ॥६१॥ जो विद्वान् मनुष्य पवित्र होकर तीन सन्ध्या इस उत्तम स्तोत्र का जप करता है वह धर्म, अर्थ काम और मोक्ष प्राप्त करता है ॥६२॥ जो सावधान होकर इस स्तोत्र को पढ़ेगा या सुनेगा या सुनाएगा वह निष्पाप होकर शाश्वत विष्णु-लोक का जाएगा ॥६३॥ यह स्तोत्र धर्म, पापहारी, मुक्ति मुक्तिदायक, कल्याणकारी, गणनीय, अतिदुर्लभ और पवित्र है। यह हर किसी को नहीं देना चाहिए ॥६४॥ नास्तिक, मूर्ख, कृतघ्न, अविमान, अमनस तथा दुष्ट बुद्धि का यह कभी भी नहीं देना चाहिए ॥६५॥ भक्त गुणवान्, सीलवान्,

दातव्यं भवितुमर्हताय गुणशीलान्विताय च । विष्णुभक्ताय शान्ताय श्रद्धानुष्ठानशालिने ॥६६॥
 इदं समस्ताघविनाशहेतुः, कारण्यसंज्ञं सुखमोक्षदं च ।
 अशेषवाञ्छाफलदं वरिष्ठं, स्तोत्रं मयोक्तं पुरयोत्तमस्य ॥६७॥
 ये तं सुसूक्ष्मं विमला मुरारि, ध्यायन्ति नित्यं पुरयं पुराणम् ।
 ते मुक्तिभाजः प्रविशन्ति विष्णुं, मन्त्रैर्यथाऽऽज्यं हृतमध्वरानी ॥६८॥
 एकः स देवो भवदुःखहन्ता, परः परेषां न ततोऽस्ति चान्यत् ।
 द्र (ख) ष्टा स पाता स तु नाशकर्ता, विष्णुः समस्ताखिलसारभूतः ॥६९॥
 किं विद्यया किं स्वगुणैश्च तेषां, यज्ञैश्च दानैश्च तपोभिर्द्वयैः ।
 येषां न भक्तिर्भवतीह कृष्णे, जगद्गुरौ मोक्षसुखप्रदे च ॥७०॥
 लोके स धन्यः स शुचिः स विद्वान् सर्वस्तपोभिः स गुणैर्वरिष्ठः ।
 ज्ञाता स दाता स तु सत्यवक्ता, यस्यास्ति भक्तिः पुरयोत्तमाख्ये ॥७१॥
 इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे स्वयम्भुवपिसंवादे कारण्यस्तवर्णनं नाम फो न पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥४९॥

विष्णु भक्त, शान्त, श्रद्धालु और अनुष्ठानशाली को यह देना चाहिए ॥६६॥ पुरयोत्तम का यह समस्त पापों के नाश का कारण कारण्यसंज्ञक सत्समाश्रयक, अशेष वाञ्छनाश दाता और सब से श्रेष्ठ स्तोत्र मैंने बतला दिया ॥ ॥६७॥ जो निर्मल पुरय उस अत्यन्त सूक्ष्म, पुराण पुरय तथा मुरारिक देख के शत्रु विष्णु का निश्च ध्यान करते हैं वे मोक्षाधिकारी होंकर विष्णु में उसी तरह प्रवेश करते हैं जिस तरह मन्त्रों से छोड़ा गया घी अग्नि में प्रवेश करता है ॥६८॥ वह देव एक, ससार-दुःखनाशन, परों से भी परे, अद्वितीय, द्रष्टा, रक्षक, नाशकर्ता, ध्यायक और अखिल पदार्थों के सारभूत है ॥६९॥ जिसको जगद्गुरु तथा मोक्षसुखदाता कृष्ण में भक्ति नहीं है, उसे विद्या, गुण, यज्ञ, दान और उप तप से क्या लाभ? ॥७०॥ लोक में वही धन्य, पवित्र, विद्वान् यज्ञकर्ता, तपस्वी गुणवान्, ज्ञाता, दाता और सत्यवक्ता है, जिसको पुरयोत्तम कृष्ण में भक्ति है ॥७१॥

श्री ब्रह्ममहापुराण में ब्रह्मा और ऋषि के संवाद प्रकरण में कारण्यस्तुतिवर्णन

नामक उनचासवाँ अध्याय समाप्त ॥४९॥

अथ पञ्चाशत्तमोऽध्यायः

प्रतिमोत्पत्तिकथनम्

ब्रह्मोवाच

स्तुत्वव मुनिशादूला प्रणम्य च सनातनम् । वासुदेव जगन्नय सर्वकामफलप्रदम् ॥१॥
 विन्ताविष्टो महोषा कुशानारतीय भूतल । यत्र न मनो भूत्वा सुधापधरणीतले ॥२॥
 कथं प्रत्यक्षमस्येति देवदेवो जनादन । मम चाऽऽतिहरो देवस्तदाऽऽतिविति चित्तदन ॥३॥
 'सुप्तस्य तस्य नृपतेर्वासुदेवो जगदगुरु । आत्मानं दशयामास' शङ्खचक्रगदाभूतम् ॥४॥
 स ददन् तु संप्रेम देवदेव जगदगुरुम् । इन्द्रचक्रधरं देवं गदाचक्रोपपाणिनम् ॥५॥
 शाङ्खबाणधरं देवं ज्वलन्तेजोतिमण्डलम् । युगातीतिरदर्शयन् नीलवर्णसनिभम् ॥६॥
 सुपर्णांते तमासीनं योऽश्वभुजं शुभम् । स वारम् प्राञ्चवीक्षीर साधु राजन्महामत ॥७॥
 अनुनाज्जेन दिव्येन तदा भवत्या च श्रद्धया । तुष्टोऽस्मि ते महोपाल वृथा विमनुशोचसि ॥८॥
 यत्र प्रतिमा राजजगत्पूज्या सनातनी । यथा सा प्राप्यते भूप तदुपायं ब्रवीमि ते ॥९॥

अध्याय ५०

प्रतिमोत्पत्ति का कथन

ब्रह्मा ने कहा—मुनिवय ! इस प्रकार स्तुति कर करने के बाद राजा ने सर्वकामफलप्रद सनातन वासुदेव जगन्नाथ के प्रणाम किया और फिर भूमि पर कुण्ड एवं वस्त्र को बिछा कर कि तोमर राजा जमान पर स गथा ॥१॥२॥ रात समय उसने मन मयहो भावना बना रहा कि जिस प्रकार देवाधिदेव दुखन गङ्गा भगवान् वासुदेव नेत्रों के सम्मुख हा। ॥३॥ सत्य हुए उस राजा के शङ्खचक्रगदाधार जगदगुरु भगवान् ने कर्णों पर लिखाया ॥४॥ उस राजा ने वरप्रद से देवा के देव सत्कार के शुभ (महानाग) भगवान् को इस प्रकार दर्शा कि जनव होया म गङ्गा चक्र गदा धनुष बाण ये प्रलयकालीन प्रचण्ड स्रुव के समान अत्यन्त तेज मय शरीर से एकदन्त प्रमाणुज चारों ओर विस्तार रहा था नलमणि सङ्ग मण्डलमय विग्रह धारण किया हुए अष्टभुजाधार भगवान् गरुडमन पर आरोहण थे। मनिगण ! इस प्रकार प्रकट होकर भगवान् च —अनल्पमति राजन ! तुम घायत ॥५॥६॥ महोपाल ! मैं तुम्हारे इस उत्कृष्ट यज्ञ भक्ति तथा श्रद्धा से प्रसन्न हूँ तुम व्यथित न रहो ॥७॥८॥ राजन ! इस सत्कार भगवत्पूजा के सनातनी प्रतिमा है उसकी प्राप्ति का उपाय मैं तुमको बता रहा हूँ ॥९॥ सूर्योप

१ स ० त्रिदशम ज० । २ स ० न । स महाति० । ३ स सुपुनस्य तु न० । ४ ग ० स स्वप्ने तस्य समशक्त । स । ५ ग तु स्वप्ने वै दे० । ६ स ० म । तदा राजानमासाव विभु प्राह महा० । ७ स दानेन । ८ स वे । प्रमाते विमते जाते नि० ।

गतायामद्य शय्यं निमले भास्वरौदिते । शमिरस्य जलरथांते भाताद्रुमविभूषिते ॥१०॥
जलं तप्येय घेलायां दृश्यते तत्र ये मृत् । स्वर्णरयोदधे राजरतरङ्गं समभिप्लुतम् ॥११॥
बूलाते हि महायुध स्थित स्वल्पजलेषु च । घेलाभिर्हृन्ममानसं न चासौ क्षम्यते द्रुम ॥१२॥
परमावाप्य हस्तेन ऊर्मरुतरततो यज । एकाकी विहरन्नाजन्त इव पश्यति पादपम् ॥१३॥
इदुषिवह्नुं समालोष्य छेदय स्वमशङ्कित । छेद्यमा तु त यज्ञ प्रातरद्भुतदर्शनम् ॥१४॥
दृष्ट्वा तेनैव सचिन्त्यततो भूपालदर्शनात् । कुर ताप्रतिमां दिव्यां जहि विन्ता विमोहिनीम् ॥१५॥

ब्रह्मोवाच

एवमुक्त्वा महाभागो जगामादर्शनं हरि । स चापि स्वप्नमालोष्य पर विस्मयमागत ॥१६॥
तां निनी स हामुद्गोदय स्थितस्तद्गतमानस । व्याहरन्वैश्वान्मन्त्रान्मुखत ध्रुवं तदाश्रयम् ॥१७॥
प्रगतायां रजग्यां तु उस्थितो नान्यमानस । सस्वराव साररे सम्मध्यपावद्विदिता तत ॥१८॥
इवा दान च विप्रेभ्यो ग्रामादथ नगराणि च । इवाधोर्ध्वोऽपि बभूव जगाम स नृपोत्तम ॥१९॥
न चादयो न पदानिदं न गजो न च सारथि । एकारो स महावेदी प्रविषेत् महोपति ॥२०॥
तं ददर्श महायुध तंजहत् महाद्रुमम् । महातिगमहरोह पुष्प दिपुल्लभेन च ॥२१॥
महोत्सेय महाबाहो प्रसुप्तं च जलान्तिष्ठ । ताद्रमाजिज्जठवर्णान नामजातिविवाजितम् ॥२२॥

नरनाथस्तदा विप्रा' हुम दृष्ट्वा मुदाऽन्वित । परशुना शातयामास निश्चितेन दृढेन च ॥२३॥
 द्वंघीकर्तुमनास्तत्र बभूवेन्द्रसख स च । निरीक्ष्यमाणे काष्ठे तु बभूवाद्भुतदर्शनम् ॥२४॥
 विश्वकर्मा' च विष्णुश्च विपरुषवरावभौ । 'आजगमुर्महाभागी तदा तुल्याग्रजन्मानौ ॥२५॥
 'ज्वलमानौ स्वतेजोभिर्दिव्यस्त्रगनुलेपनौ' । अथ तौ त समागम्य नमस्त्रिसख तदा ॥२६॥
 तावच्चतुर्महाराज किमत्र त्व करिष्यसि । किमर्थं च महाबाहो शातितश्च धनस्पति ॥२७॥
 असहायो महादुर्गे निर्जने गहने वने । महासिन्धुतटे चैव' कथं व शातिनो हुम ॥२८॥

ग्रहोवाच

तयो भूत्वा पचो विप्रा स तु राजा मुदाऽन्वित । यभाषेवचन ताभ्या मृदुल मधुर तथा ॥२९॥
 दृष्ट्वा तौ' ब्राह्मणौ तत्र चन्द्रसूर्याविदाऽऽगतौ । नमस्कृत्य जगन्नायाववाङ्मुखमवस्थित ॥३०॥

राजोवाच

देवदेवमनाद्यत्तमनस्त 'जगता पतिम् । आराधयितुं प्रतिमां करोमीति मतिर्मम ॥३१॥
 अहं स देवदेवेन परमेण महात्मना । स्वप्नान्ते च समुद्दिष्टो भवद्गया श्रायित मया ॥३२॥

कथा १ ज्ञानि कथा है ॥२२॥ ब्राह्मणगण । उस वृक्ष का देखकर अत्यंत प्रसन्न ब्रह्मा राजा ने अपने बेटे तीक्ष्ण कुटार से काट कर गिरा दिया ॥२३॥ इंद्र का सखा वह राजा उसका दस भागों में काटने की इच्छा से देखने लगा कि इनने मैं ही उसकी जन्मत दान हुआ ॥२४॥ उस समय ब्राह्मण-गण में अत्यंत तेजस्वी तथा रूप और बल में समान विष्णु और विश्वकर्मा जा आये ॥२५॥ गौरीकि कान्ति से प्रदीप्त उनका अगा पर दिव्य रूप और दिव्य मात्रा सुगमित थी ॥२६॥ विप्र वेषधारी विष्णु और विश्वकर्मा राजा ने समीप आकर पूछने लग कि महाराज ! आप यहाँ क्या कर रहे हैं ? महाबाहु ! इस महावृक्ष के काटने का क्या प्रयोजन है ? जब के इस जनपूष सपन दुग्ध में मैं भी आकर महासागर तट पर स्थित इस वृक्ष का किसलिए काट डाला ? ॥२७-२८॥

ग्रहों बोले—ब्राह्मणगण । ब्रह्मा और सूर्य ने समान देवाध्यमान उपस्थित उन दस ब्राह्मणों का देख कर और उनकी जिज्ञासा सुनकर प्रसन्नचित्त राजा ने गिर झुकाकर उन्हें प्रणाम किया । फिर विनम्र कान्ति से बोला ॥२९-३०॥

राजा ने कहा—ब्रह्मा । इस काष्ठ से देवाधिदेव विष्णुपति आद्यतत्त्वित भगवान का आराध्य प्रतिमा बनाने की मरी इच्छा है । देवाधिदेव परमात्मा द्वारा सुगम इस प्रकार प्रतिमा बनाने का जो आदेश स्वप्न में प्राप्त हुआ है उस मैंने आप गणों का मुता दिया ॥३१-३२॥

ब्रह्मोवाच

राजस्तु वचनं श्रुत्वा देवेन्द्रप्रतिमस्य च । प्रहस्य तस्मै विदवेशस्तुष्टो वचनमब्रवीत् ॥३३॥

विष्णुस्वाच

साधु साधु महीपाल 'यदेतन्मतमुत्तमम्' । संसारसागरे घोरे कदलीदलसनिभे ॥३४॥
नि.सारे 'दुःखबहुले कामक्रोधसमाकुले । इन्द्रियावर्तकलिले दुस्तरे रोमहर्षणे ॥३५॥
नानाव्याधिशतावर्ते जलबुद्बुदसंनिभे । यतस्ते मतिरुत्पन्ना विष्णोराधनाय वं ॥३६॥
धन्यस्त्वं नृपशादूल गुणैः सर्वैरलंकृतः । सप्रजा पृथिवी धन्या सशैलवनकानना ॥३७॥
सपुरग्रामनगरा चतुर्वर्णरत्नकृता । यत्र त्वं नृपशादूल प्रजाः पालयिता प्रभुः ॥३८॥
एहोहि सुमहाभाग दुर्मेऽस्मिन्सुखशीतले । आवाभ्यां सह तिष्ठ त्वं 'कथाभिर्धर्मसंश्रितः ॥३९॥
अयं मम सहायस्तु आगतः शिल्पिता वर' । विदवल्लभसमः' साक्षान्निपुणः' सर्वकर्मसु ॥
मयोद्दिष्टां तु प्रतिमां करोत्येष तदं रयज ॥४०॥

ब्रह्मोवाच

श्रुत्वा वचनं तस्य तदा राजा द्विजन्मनः । सागरस्य तदं त्यक्त्वा गत्वा तस्य समीपतः ॥४१॥

ब्रह्मा ने कहा—मगवत्प्रतिमा-निर्माण सम्बन्धी ऐसी बातें सुनकर विश्वपति विष्णु हँसते हुए राजा से बोले—॥३३॥

विष्णु ने कहा—मूपाल ! तुम धन्य हो, क्योंकि तुम्हारा यह सङ्कल्प उत्तम है । इस घाट, केली के पत्त के समान नि सार, दुःखा से भरे काम क्रोध से युक्त, इन्द्रिय रूपी आवर्त से गहन, कठिनाई से पार करने योग्य, भयकर, अनेकों व्याधियों से व्याप्त और जल बुद्बुद के समान क्षणभंगुर संसार सागर से विरक्त हो तुम्हारा ध्यान भगवान् की उपासना की ओर लगा है इसलिए तुम धन्य हो । नृपश्रेष्ठ ! तुम सब गुणा से विभूषित हो । यह पर्वत, वन, वानन और प्रजाओं से युक्त पृथ्वी जो चारों धनों से और पुर, शम, नगरों से सुशोभित है, धन्य है जिस पर प्रजा के पालक और शासन के रूप में तुमने जन्म लिया है । महामाग ! तुम परम धार्मिक हो, आश्रम, आश्रम, इस वृक्ष की सुखद, शीतल छाया में हम लोगों के साथ बैठो, और कोई धर्म-चर्चा सुनाओ । यह मेरा साथी उत्तम शिल्पी है, साक्षात् विश्वकर्मा के समान सब वस्तुओं में कुशल है । यह मेरे आदेशानुसार प्रतिमा बना देगा । तुम तट छोड़ कर मेरे पास आओ ॥३४४०॥

ब्रह्मा ने कहा—विप्रगण ! तब वह राजा ब्राह्मण की ऐसी बातें सुन सागर-तट को छोड़ कर वृक्ष की

तस्यो स नृपतिश्चेष्टो वृक्षच्छाये सुशीतले । ततस्तस्मै स विद्वात्मा ददावाज्ञा द्विजाकृति ॥४२॥
 शिल्पिमुखाय विप्रेन्द्रा बुरुष्व प्रतिमा इति । कृष्णरूप पर शान्त पद्मपत्रायतेक्षणम् ॥४३॥
 श्रीवत्सकोस्तुभधर शङ्खचक्रगदाधरम् । गौराङ्गक्षीरवर्णांश्च द्वितीय स्वस्तिकाङ्कितम् ॥४४॥
 लाङ्गलास्त्रधर देवमनन्तराय महाबलम् । देवदानवागन्धर्व्यक्षविद्याधरोरगे ॥४५॥
 न विज्ञातो हि तस्यान्तस्तेनानन्त इति स्मृत । भगिनीं वासुदेवस्य हवमवर्णा सुशोभनाम् ॥४६॥
 तृतीया च सुभद्रा च सर्वेक्षणलक्षिताम् ॥४७॥

ब्रह्मोवाच

श्रुत्वेतद्वचन तस्य विश्वकर्मा सुकर्मकृत । तत्क्षणात्प्रारयामास प्रतिमा शुभरूपा ॥४८॥
 प्रथम शुक्लवर्णांश्च शारदेन्दुसमप्रभम् । आरवताक्ष 'महाकाय स्फटाविषटमस्तकम् ॥४९॥
 नीलाम्बरधर क्षोभ' बल यन्मदोद्धतम् । कुण्डलैकधर दिव्य' गदामुशलधारिणम् ॥५०॥
 द्वितीय पुण्डरीकाक्ष मोलज्जामूतसनिभम् । अतसौपुष्पसकाश पद्मपत्रायतेक्षणम् ॥५१॥
 पीतवाससमत्युग्र शुभ शीघ्रसलक्षणम् । चक्रपूर्णकर दिव्य सर्वपापहर हरिम् ॥५२॥

गीतक छाया मे उनके समीप बैठ गया । 'स्व' के बाद ब्राह्मणवेशधारी परमारमा ने मेरे बचनानुसार मूर्तियाँ बनायीं'
 एसा आज्ञा उस श्रेष्ठ शिल्पी व दी ॥४१-४२॥ पहली कृष्ण व मूर्ति हा ज कृष्णवर्ण की अत्यन्त शान्त कमल के
 समान नेत्रवाणी श्रीवत्स आर कोस्तुभमणि से युक्त वडा स्फटिकाली तथा गल चर आर गदा धारण किए हुए हा ।
 दूसरी गार वण शुभ व समान धवल और स्वस्तिक स युक्त ह थ म ह (अस्त्र) धारण किए हुए अनन्त दब की मूर्ति
 बनायी। इनका अन् (रहस्य) देव दानव गन्धर्व यक्ष विद्याधर और नगा ने भी नहीं जाना इसीलिए ये
 अनन्त इस नाम से प्रसिद्ध हुए। तारु। स्वर्ण वण व अत्य त रुन हर बीर सब लक्षणा विनैपत अ। स यक्त भगवान
 वासुदेव की बहिन सुभद्रा व। प्रतिमा की रचना करो ॥४३-४७॥

ब्रह्मा ने कहा—ब्राह्मणवेषधारी दिव्य व। उपयुक्त बलें मुन वर स्वगित्या विश्वकर्मा ने ग द ही
 मन हर तथा सब क रणा स युक्त प्रतिमाये बना दी ॥४८॥ पहली कृष्ण तथा बल ३ र म उद्धत बलदेव जी की
 प्रतिमा थी ज 'महा' रण शरदशान चन्द्रमा व समान व तिमन थे जिनके नेत्र वल र क पण स युक्त
 विषट मन्त्र महाकाय शार पर ना स्त्र मान म एव दिव्य कृष्ण ह था म गदा और मुशक था ॥४९
 ५०॥ दूसरी सब पापी व हरन वा वमक नन ना भय व समान पद्मपत्रार वा समकन कृष्ण की मूर्ति
 थी ज पीत वस्त्र पहन हुए श्रीवत्स स मुग भिन थ। जिनके शरीर व आभा अस्त्री के कुसुम के समान थी
 त्रे वमक रण व समान थ और हाथ म चक्र था ॥५१-५२॥ तारुनी महाहर मूर्ति राने के समान पीत वण
 वाणी सुभद्रा व। थी जिनकी आँखें कमल व समान बड़ी बड़ी थी ज। विचित्र वस्त्रा स अट्टत थी जिनके अग

तृतीयां स्वर्णवर्णाभा पञ्चपत्रायतेक्षणाम्। विचित्रवस्त्रसल्लभ्रा हारकेयूरभूषिताम् ॥५३॥
विचित्राभरणोपेता रत्नहारालम्बिताम्। पीनोन्नतकुचा रम्या विद्वक्कर्मा विनिममे ॥५४॥
स तु राजाऽद्भुत दृष्ट्वा क्षणेनैकेन निर्मिता। दिव्यवस्त्रयुगच्छता नानारत्नैरलंकृता ॥५५॥
सर्वलक्षणसपत्ना प्रतिमा समुनोहरा। विस्मय परम गत्वा इदं वचनमब्रवीत् ॥५६॥

इन्द्रद्युम्न उवाच

किं देवो 'समनुप्राप्ती द्विजरूपधरावुभौ। उभौ चाद्भुतकर्माणौ देववृत्तावमानुषौ ॥५७॥
देवौ वा मानुषौ वाऽपि 'यस्तविद्याधरो युवाम्। किन्तु ब्रह्महृषीकेशौ किं वसू किमुतादिवनौ ॥५८॥
न वेचि सत्यसद्भावो मायारूपेण सन्धितौ। युवा गतोऽस्मि शरणमात्मा तु मे प्रकाशयताम् ॥५९॥
इति श्री महापुराणे ब्राह्मे स्वयम्भूपिसंवादे प्रतिमोत्पत्तिकथनं नाम पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥५०॥

प्रत्यय हार केयूर आदि विचित्र आभूषणा से भूषित ये बीजा मे रत्ना के हार लटक रहे थे और जिनके कुच पीन और ऊँचे थे ॥५३५४॥ जब राजा ने देखा कि इस शिल्पी ने क्षण भर मे ही दिय युगल वस्त्र से युक्त अनेक आभूषणा से सुशोभित सना लक्षणा से युक्त मन हर मूर्तिया बना दी ता इस आश्चर्यजनक कौशल पर उसे अत्यंत विस्मय हुआ और भाववचन-बकित हा पृछने लगा—॥५५५६॥

इन्द्रद्युम्न ने कहा—क्या आप लग देवता है। जहाँ ब्रह्म-देव से मुझ कृताय करने के लिए आये हुए हैं? आप दानों महानुभावों के काम अदम्य हैं, व्यवहार देवोचित हैं आप लग में नव नहीं जात हूँ। आप देव हैं या मनुष्य? यक्ष हैं या विद्याधर अथवा ब्रह्म हृषीकेश वसु या अश्विनीकुमार हैं? मैं इस समय सत्यतत्त्व और रहस्य का नहीं समझ पा रहा हूँ क्या कि आप देना ने माया वेश धारण कर रखा है। मैं आप लोगों का शरण में हूँ। कृपा कर अपने मयाय परिचय मे प्रकाश से मेरे उत्तकरण को प्रकाशित कर ॥५७५८॥

श्री ब्रह्ममहापुराण के अठारह स्वयम्भू और ऋषि के संवाद प्रकरण मे प्रतिमोत्पत्ति

कथन नामक पचासवा अध्याय समाप्त ॥५०॥

अथैकपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

भगवदिन्द्रद्युम्नसवादकथनम्

श्रीभगवानुवाच^१

नाहं देवो न यक्षो वा न दैत्यो न च देवराट्^२ । न ब्रह्मा न च रुद्रोऽहं विद्धि मां पुरुषोत्तमम्^३ ॥१॥
 अतिहा सर्वलोकानामनन्तबलपीडयः । आराधनीयो भूतानामन्तो यस्य न विद्यते ॥२॥
 पठ्यते सर्वशास्त्रेषु वेदान्तेषु निगद्यते । यमाहुर्जानिगम्येति वासुदेवेति योगिनः ॥३॥
 अहमेव स्वयं ब्रह्मा 'अहं विष्णुः शिवोऽप्यहम्' इन्द्रोऽहं देवराजश्च^४ जगत्संयमनो यमः ॥४॥
 पृथिव्यादीनि भूतानि त्रेतानिर्हृतभुङ्क्ष्व^५ । वरणोऽप्यपतिश्चाहं धरित्री च महोदरः ॥५॥
 यत्किञ्चिद्वाङ्मयं लोके जगत्स्यावरजद्भ्रमम् । चराचरं च यद्विश्वं मदन्त्यप्राप्तिं किञ्चन ॥६॥
 प्रीतोऽहं ते नृपश्रेष्ठ वरं वरय सुव्रत । यद्विष्टं तत्प्रयच्छामि हृदि यत्ते श्यवस्थितम् ॥७॥
 मद्दर्शनमपुण्यानां स्वप्नान्तेऽपि न जायते । त्वं पुनर्वृद्धमवितत्वात्प्रत्यक्षं दृष्टवानसि ॥८॥

अध्याय ५१

भगवान् और इन्द्रद्युम्न का संवाद

श्री भगवान् ने कहा—“मैं न देव हूँ न यक्ष, न दैत्य न तो देवराज इन्द्र । मैं ब्रह्मा और रुद्र भी नहीं । राक्षन् मुझे पुराण पुरुषोत्तम जानो ॥१॥ जिसका अन्त नहीं है, जो समस्त प्राणियों का एकमात्र आराध्य है, जिसका बल और पराक्रम नि सीमा है, जो अखिल-लोक को पीटा दूर करने वाला है, जिसकी सभी शास्त्रों में वर्णन है, जो वेदान्त का वष्य विषय है, जिसकी योगीजन ज्ञान-गम्य (ज्ञान से प्राप्त करने योग्य), वासुदेव (सर्व व्यापक) कहा करते हैं । मैं ही स्वयं ब्रह्मा हूँ, विष्णु और शिव भी मैं ही हूँ । देवराज इन्द्र और ससार का नियन्त्रण मैं करने वाला यम (मृत्यु देव) मैं ही हूँ ॥२-४॥ नभः^१ पृथ्वी आदि पाँच भूमाभूत, आहुति ग्रहण करने वाले तीनों अग्नि मैं ही हूँ । जल मे स्वामी वरुण, धरणी और पहाड़ भी मेरे ही रूप हैं ॥५॥ ससार का सारा वाङ्मय, स्थावर जगम रूपत्मक जगत् और जो कुछ भी चराचर विषय है वह मुझसे अतिरिक्त नहीं है ॥६॥ नृपश्रेष्ठ^२ । मैं तुम पर प्रसन्न हूँ । सुव्रत^३ । वर माँगो । तुम्हारे मनोरथ पूर्ण हागे, मनोवाञ्छित फल तुम्हें दूँगा । देखो, मेरा दर्शन पुण्य न करने वाले को स्वप्न में भी नहीं होता । तुमने अपनी अविचल भक्ति द्वारा ही मेरा यह प्रत्यक्ष दर्शन प्राप्त किया है” ॥७-८॥

ब्रह्मोवाच

श्रुत्वा वै वासुदेवस्य वचनं तस्य भो द्विजाः । रोमाञ्चिततनुर्भूत्वा इदं स्तोत्रं जगो नृपः ॥९॥

राज्ञोवाच

धियः कान्त नमस्तेऽस्तु धीपते पीतदाससे । श्रीदश्रीश श्रीनिवास नमस्ते श्रीनिकेतन ॥१०॥
आद्यं पुरपमोशानं सर्वेशं सर्वतोमुखम् । निष्कलं परमं देवं प्रणतोऽस्मि 'सनातनम् ॥११॥
शब्दातीतं 'गुणातीतं भावाभावद्विर्वाजितम् । निर्लेपं निर्गुणं सूक्ष्मं सर्वज्ञं सर्वभावनम् ॥१२॥
'प्राक्पूर्वमेघप्रतीकाशं गोब्राह्मणहिते' रतम् । सर्वेषामेव गोप्तारं व्यापिनं सर्वभाविनम् ॥१३॥
शङ्खचक्रचरं देवं गदामुशलधारिणम् । नमस्ये वरदं देवं नीलोत्पलदलच्छविम् ॥१४॥
नागपर्वङ्गुशायनं क्षीरोदाणवशायितम् । नमस्येऽहं हृषीकेशं सर्वपापहरं हरिम् ॥१५॥
पुनस्त्वो देवदेवेशं नमस्ये वरदं विभुम् । सर्वलोकेऽवरं विष्णुं भोक्षकारणमव्ययम् ॥१६॥

ब्रह्मोवाच

एवं श्रुत्वा तु तं देव प्रणिपत्य कृताञ्जलिः । उवाच प्रणतो भूत्वा निपत्य धरणीतले ॥१७॥

ब्रह्मा ने कहा—वासुदेव की इस प्रकार की बातें सुन कर, द्विजगण । उस राजा को रोमाच हो गया, वह आनन्द विमोद हो यह स्तौति गाने लगा ॥९॥

राजा ने कहा—हे लक्ष्मीकान्त 'धीपते' पीत वस्त्र धारण करने वाले आपको मेरा नमस्कार है । लक्ष्मी के होने वाले । श्री के स्वामी । श्री निवास । श्री निवेतन । आपको नमस्कार है ॥१०॥ आप आद्यपुरुष, सामर्थ्यवान, सब के स्वामी और सबतमुख (चारों ओर मुख वाले, व्यापक) हैं । निरवयव, सनातन, परम (मष्ट) देव को मैं प्रणाम करता हूँ ॥११॥ शब्द-गुण से परे भाव और अभाव से रहित आसक्तिहीन, निर्गुण (गुण रहित) सूक्ष्म, सब कुछ जानने वाले, और सब के एकमात्र ध्येय आपको प्रणाम है । वपकिर्लीन मेघ के समान श्याम, गो-ब्राह्मणी के हित में लीन, सभी के रक्षक, व्यापक और सर्व भावी (स्रष्टा) तथा दास, चक्र गदा और मुशल धारण करने वाले, नीलकमल की पत्तियों के समान वान्तिमय वरदायक देव को मैं नमस्कार करता हूँ । शेष-शैथ्या पर सोने वाले क्षीर-सागर भावी, इन्द्रिया के स्वामी, पाप-नाशन हरि को नमस्कार है । देवदेवेश, वरदाता, व्यापक, सब लोका के स्वामी, भोक्षदाता और अव्यय (नष्ट न होने वाले) विष्णु रूप का नमस्कार है ॥१२-१६॥

ब्रह्मा ने कहा—इस प्रकार भगवान् की श्रुति करने के बाद करबद्ध साष्टांग दण्डवत् करते हुए राजा ने कहा—॥१७॥

राजोवाच

प्रीतोऽसि यदि मे नाथ वृणोमि वरमुत्तमम् । देवासुरा सगन्धर्वा यक्षरक्षोमहोरगा ॥१८॥
 सिद्धविद्याधरा साध्या किन्नरा गृह्यकास्तथा । ऋषयो ये महाभागा नानाशास्त्रविशारदा ॥१९॥
 परिघ्राडयोगयुक्ताश्च वेदतत्त्वार्थचिन्तका । मोक्षमागविदो येऽन्ये ध्यायन्ति परम पदम् ॥२०॥
 निर्गुण निर्मल 'शा'त यत्पश्यन्ति मनीषिण । तत्पदं गन्तुमिच्छामि त्वत्प्रसादात्सुदुर्लभम् ॥२१॥

श्रीभगवानुवाच

'सर्वं भवतु भद्र ते यथेष्ट सर्वमाप्नुहि । भविष्यति यथाकाम मत्प्रसादान्न सशय ॥२२॥
 दश वर्षसहस्राणि तथा नव शतानि च । अविच्छिन्नं महाराज्यं कुरु त्वं नृपसत्तम ॥२३॥
 प्रयास्यसि पदं दिश्य दुर्लभं यत्सुरासुरैः । पूर्णमनोरथं शान्तं गृह्यमव्यक्तमव्ययम् ॥२४॥
 परात्परतरं सूक्ष्मं निर्लेपं^१ निष्कलं^२ ध्रुवम्^३ । चिन्ताशोकविनिर्मुक्तं त्रिधाकारणवर्जितम् ॥२५॥
 तदहं दर्शयिष्यामि ज्ञेयास्त्यं परम पदम् । यः प्राप्य परमानन्दं प्राप्स्यति परमा गतिम् ॥२६॥
 कीर्तिश्च तव राजेन्द्र भवत्यत्र^४ महीतले । यावद्धना^५ नभः यावद्यावच्चन्द्रार्कतारकम् ॥२७॥
 यावत्समुद्रा सप्तैव यावन्मेवादिपर्वता । तिष्ठन्ति दिवि देवाश्च तावत्सर्वत्र चाव्यया ॥२८॥

राजा ने कहा—नाथ । यदि आप मुझ पर प्रसन्न हैं तो मैं यही उत्तम वर माँगता हूँ कि देव असुर गन्धर्व दक्ष राक्षस महानाग सिद्ध विद्याधर साध्वयण किन्नर और गृह्यक तथा मित्र मित्र शास्त्री के पारंगत महामायगाल ऋष सदासा यथा वेद के रहस्य जानने वाले और मक्ष भाग के नाता जिस परम पद का ध्यान करते हैं तथा मनीषी (ज्ञानी) जिस अमल न निगुण और शान्त परम पद का देखा करते हैं उस दुर्लभ परम पद का आपका कृपा से प्राप्त करूँ यहाँ मेरी अभिलाषा है ॥१८ २१॥

श्रीभगवान् ने कहा—सब प्रकार से तुम्हारा कल्याण होगा तुम अपने काम मनोरथ प्राप्त करोगे । मेरी कृपा से तुम्हारे सभी काम इच्छानुसंध होने लगे सन्देह नहीं ॥२२॥ नृप-अर्थात् पहलू तुम दश हजार मी सौ वर्ष निरंतर अपने साम्राज्य का शासन कर । तदनंतर उस दिव्य परमपद का प्राप्त करोगे जो देव शक्तियों के लिए दुर्लभ मनोरथ का पूरा करनेवाला शान्त रहस्यमय अप्रत्यक्ष और नित्य है जो परात्पर (सर्वोपरि) सूक्ष्म निर्लेप अलङ्घ्य अटल चिन्ता न कसे रहित कायकरण मुक्त (अनादि-अनन्त) है ॥२३ २५॥ मैं ऐसे नय परम पद का दिवाङ्गा जिसकी पाकर तुम अत्यंत अनन्दित हो मक्ष पद प्राप्त करोगे ॥२६॥ राजेन्द्र । जब तक मेघ आकाश चन्द्रमा सूर्य और तारा मण्डल एवं जब तक केवल समुद्र तथा सात भेग आदि पर्वत और स्वर्गलोक में देव गण स्थित हैं तब तक इस मही मण्डल पर तुम्हारी अवय कर्ति फैली रहेगी ॥२६ २८॥ यह द्रष्टुम्

इन्द्रद्युमत्सरो नाम तीर्थं यज्ञाङ्गसंभवम् । यत्र स्नात्वा सकृत्लोकः शशलोचमवाप्नुयात् ॥२९॥
 दापयिष्यति यः पिण्डांस्तदेऽस्मिन्तरसः शुभे । कुलैर्कविशममुद्धृत्य शशलोकं गमिष्यति ॥३०॥
 पूज्यमानोऽप्सररोभिश्च गन्धर्वगतिनिस्वनैः । विमानेन वसेत्तत्र यावद्विन्द्राश्चतुर्दश ॥३१॥
 सरसो दक्षिणे भागे नैऋत्यां तु समाश्रिते । न्यग्रोधस्तिष्ठते तत्र तत्समीपे तु मण्डपः ॥३२॥
 केतकीवनसंछन्नो नानापादपसंकुलः । नारिकेलैरसद्येयैश्चम्पकैर्वंकुलावृतः ॥३३॥
 अशोकः कर्णिकारश्च पुंनागैर्नगकेसरैः । पाटलाभ्रातसरलैश्चन्दनैर्देवदारुभिः ॥३४॥
 न्यग्रोधावक्षत्यल्विरः पारिजातैः सहजुनैः । हित्तालैश्चैव तालैश्च शशपर्वदरैस्तथा ॥३५॥
 करञ्जैर्लकुचैः प्लक्षैः पनसैर्बलिषधानुकैः । अन्यैर्बहुविधैर्वृक्षैः शोभितः समलंकृतः ॥३६॥
 आपादस्य सिते पक्षे पञ्चम्या पितृदेवते । ऋक्षे नेष्यन्ति नस्तत्र नीत्वा सप्त दिनानि वै ॥३७॥
 मण्डपे स्थापयिष्यन्ति सुवेद्याभिः सुशोभनैः । क्रीडाविशेषबहुलं नृत्यगतिमनोहरं ॥३८॥
 चामरैः स्वर्णदण्डैश्च श्यजने रत्नभूषणैः । धोज्यन्तस्तथाऽस्मभ्यं स्थापयिष्यन्ति मङ्गला ॥३९॥
 ब्रह्मचारी यतिश्चैव स्नातकाश्च द्विजोत्तमाः । वानप्रस्था गृहस्थाश्च सिद्धाश्चाम्ये च ब्राह्मणा ॥४०॥
 नानावर्णपदैः स्तोत्रैर्ऋषयः सामनिस्वनैः । करिष्यन्ति स्तुतिं राज्ञरामकेशवयोः पुनः ॥४१॥
 ततः स्तुत्वा च दृष्ट्वा च सप्रणम्य च भविततः । नरो वर्षायुतं दिव्यं श्रीमद्वरिपुरे वसेत् ॥४२॥

सर यज्ञांग से उत्पन्न पवित्र और अमर तीर्थ होता, जिसमें एक बार स्नान करने से भी मनुष्य इन्द्रलोक को प्राप्त करेगा ॥२९॥ जो इस सरोवर के पुनीत तट पर पिण्डदान करेगा वह अपनी इक्कीस पीढ़ी का उद्धार कर स्वयं देव-लोक का अधिकारी होगा ॥३०॥ वहाँ गन्धर्व और अप्सराएँ अपनी मधुर गीत-ध्वनि से उसकी पूजा करेंगी। जब तक चौदहों इन्द्र रहेंगे तब तक वह पुण्यात्मा विमान द्वारा विहार करता हुआ स्वर्ग में निवास करेगा। सरोवर के दक्षिण तीर पर नैऋत कोण में एक बट वृक्ष है जिसके निकट केतकी वन से विद्य हुआ एक मण्डप है। जिसके चारों ओर अनेक वृक्ष, अनगिनत नारियल, चम्पक और मोलसिरी, वीं, पवितर्ग हैं ॥३२-३३॥ अशोक, कर्णिकार (केतर), पुनाग, शम्भुकैतर, पाटल, आभ्रात (आमडा), सरल, चन्दन, देवदारु, बट, पीपल, खदिर, अर्जुन पारिजात हिताल, ताल, वीशम्भ अदर (वेर) तथा करञ्ज, लकुच (बडहर), प्लक्ष (पाकड़), बटहल, तिलव धानुख एवं अन्य बहुत प्रकार के वृक्षों से वह मण्डप सुशोभित है ॥३४-३६॥ उस मण्डप में आपाद ने शूल पक्ष की मघा नक्षत्र वाली पञ्चमी तिथि में जो हमारी मूर्ति ले जा कर प्रतिष्ठित करेगा और सात दिन। तक सुन्दर वेश्याओं ने मधुर गान, विभिन्न क्रीडाओं एवं मनोहर नृत्य-गीत द्वारा समाराहपूर्वक पूजन करेगा, चँवर और रत्नजटित स्वर्ण-दण्ड वाले पतंगों से आदरपूर्वक पक्षा झलते हुए भांगलिक पूजा करेगा राजन् । जो ब्रह्मचारी, यति, स्नातक, उत्तम वैदिकी, वानप्रस्थाश्रमी गृहस्थ, सिद्ध अथवा जो कोई ब्राह्मण मित्र मित्र वर्ण-पद वाले स्नान पाठ से, ऋग्वेद, यजु, साम के ऋचा-पाठ से राम और वैद्यव की स्तुति करेगा और स्तुति के उपरान्त भवितपूर्वक दर्शन एवं प्रणाम करेगा, वह नर दिव्य अपुत (दश हजार) वर्ष तक विष्णु लोक में निवास

पूज्यमानोऽप्सरोभिश्च गन्धर्वैर्गीतनिस्वनेः। हरेरनुचरस्तत्र श्रीडते केशवेन् । वै ॥४३॥
विमानेनाकवर्णैश्च रत्नहारेण भ्राजताः। सर्वकामैर्महाभोगैस्तिष्ठते भुवनोत्तमे ॥४४॥
तपःक्षयाविहाऽऽगत्य मनुष्यो ब्राह्मणो भवेत् । कोटीधनपतिः श्रीमाश्चतुर्वेदी भवेद्भुवम् ॥४५॥

ब्रह्मोवाच

एव तस्मै वर दत्त्वा कृत्वा च समयं हरिः । जगामादर्शनं विप्राः सहितो विद्वक्कर्मणा ॥४६॥
स तु राजा तदा हृष्टो रोमाञ्चिततनूः । कृतकृत्यमिवाऽऽत्मानं मेने संदर्शनाद्वरेः ॥४७॥
ततः कृष्णं च रामं सुभद्रां च वरप्रदाम् । रथैर्विमानसंकाशैर्मणि काञ्चनचित्रितः ॥४८॥
संवाह्य तास्तदा राजा महामङ्गलनिस्वनेः । आनयामास मतिमात्समात्यः सपुरोहितः ॥४९॥
नानाबादित्रनिर्धोर्धनानावेदस्वनेः शुभैः । संस्थाप्य च शुभे देशे पवित्रे सुमनोहरे ॥५०॥
ततः शुभतिथौ काले नक्षत्रे शुभलक्षणे । प्रतिष्ठां कारयामास समुहूर्तं द्विजैः सह ॥५१॥
यथोक्तेन विधानेन विधिदृष्टेन कर्मणा । आचार्यानुमतेनैव सर्वं कृत्वा महोपतिः ॥५२॥
आचार्याय तदा दत्त्वा दक्षिणां विधिवत्प्रभुः । ऋत्विग्भ्यश्च विधानेन तयाऽभ्यैश्वर्यो धनं ददौ ॥५३॥
कृत्वा प्रतिष्ठां विधिवत्प्रासादे भवनोत्तमे । स्थापयामास तान्सर्वान्विधिदृष्टेन कर्मणा ॥५४॥

करेगा ॥३७-४२॥) उस लोक में उस भगवद्भक्त की गन्धर्व और अप्सरायें अपने मधुर गीत गा-गाकर तब करेंगी। वह भगवान् केशव के साथ वहाँ सुखपूर्वक श्रीडा करेगा ॥४३॥ उस उत्तम लोक में वह रत्नहार से सुसज्जित, सूर्य के समान चमकीले विमान पर सवार हो अपनी सभी कामनाओं की तृप्ति और भोगों का उपभोग करता हुआ निवास करेगा। इस प्रकार भोग द्वारा पुण्य क्षीण हो जाने पर वह इस मृत्युलोक में आकर चारों वेदों का ज्ञाता ब्राह्मण तथा वैभवशाली करारूपि होगा ॥४४-४५॥

ब्रह्मा बोले— विप्राण । इस प्रकार भगवान् उस राजा को वर देकर तथा ऐसे प्रतिज्ञा करके विश्वकर्मा के साथ स्वयं अन्तर्हित हो गए। वह राजा भगवान् के इस अद्भुत दर्शन से अत्यन्त प्रसन्न हुआ, उसने रोम आनन्द से पुलकित हो गए, वह अपने को कृतकृत्य-सा समझने लगा ॥४६-४७॥ इसके उपरान्त मंत्रियों और पुरोहिता के साथ वह युद्धिमान् राजा मणि, सुवर्ण से अलंकृत विमान के समान रथ पर कृष्ण, बलराम और वर देने वाली सुमद्रा की मूर्तियों को चढ़ाकर परम मागलिक वाद्य ध्वनि के साथ ले आया ॥४८-४९॥ मित्र मित्र प्रकार की वाद्य ध्वनि और मागलिक वेद-ध्वनि के साथ पवित्र शुभ, मनोहर प्रदेश में मूर्तियाँ स्थापित की गई ॥५०॥ तदनन्तर शुभ तिथि, काल और शुभ लक्षण वाले नक्षत्र में ब्राह्मण द्वारा प्रतिष्ठा की प्रतिष्ठा कराई गई ॥५१॥ महोपति ने आचार्य की अनुमति से आश्विन नियमानुष्ठान पूर्वक सारा देवकार्य समाप्त किया, विधिपूर्वक आचार्य, तथा ऋत्विजों को दक्षिणा दी, अनाय ब्राह्मणों को धिम्न के अनुसार धन दान दिया। इस प्रकार राजा ने सर्वोत्तम भवन में मूर्ति की प्रतिष्ठा कर शास्त्र-सम्मत कर्म से स्थापन किया समाप्त की ॥५२-

ततः संपूज्य विधिना नानोपुष्पैः सुगन्धिभिः । सुवर्णमणिमुक्तादीर्नानावस्त्रैः सुशोभनैः ॥५५॥
रत्नैश्च विविधैर्दिव्यैरासनैर्ग्रामपत्तनैः । बभौ जगन्नाम्न विषयाःपुराणि नगराणि च ॥५६॥
एवं बहुविधं दत्त्वा राज्यं कृत्वा ययोचितम् । इष्ट्वा च विविधैर्नैर्दत्त्वा दानान्गनेकशः ॥५७॥
कृतकृत्यस्ततो राजा त्यक्तसर्वपरिग्रहः । जगाम परम स्थानं तद्विष्णोः परमं पदम् ॥५८॥
एवं मया मुनिश्रेष्ठाः कथितो वो नृपोत्तमः । क्षेत्रस्य चैव माहात्म्यं किमन्यच्छ्रोतुमिच्छस्य ॥५९॥

विष्णुरुवाच

श्रुत्वं घवनं तस्य ब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मनः । आश्चर्यं मेतिर विप्राः पप्रच्छुश्च पुनर्मुदा ॥६०॥

मुनय ऊचुः

कस्मिन्काले 'सुरश्रेष्ठ घन्तव्यं पुरघोसमम् । विधिना केन कर्तव्यं पञ्चतीर्थमिति प्रभो ॥६१॥
एकैकस्य च तीर्थस्य स्नानदानस्य यत्फलम् । देवताप्रेक्षणे चैव ब्रूहि सर्वं पुण्यपुण्यम् ॥६२॥

ब्रह्मोवाच

निराहारः कुरुक्षेत्रे पादेनैकेन यस्तपेत् । जितेन्द्रियो जितक्रोधः सप्तसंवत्सरायुतम् ॥६३॥

५४॥ तदनन्तर राजा ने भगवान् की अनेक सुगन्धित पुष्पो से विधिवत पूजा की, स्वर्ण, मणि, मुक्ता एव आभूषण
चढाये, अनेक सुन्दर वस्त्र, विविध रत्न, दिव्य आसन भगवान् को अर्पित किए, बहुत से गाँव पत्तन, अनेको विषय
(जिने), पुर और नगर इच्छानुसार दान में दिए गए ॥५५-५६॥ इस प्रकार इच्छानुसृत्य बहुविध दान देकर
राजा ने ग्यामपूर्वक वासन किया । विविध यज्ञो ने अनुष्ठान, तथा अनेक प्रकार के दान से उसने अपने क. कृतकृत्य
समवा । अन्त में सारी इच्छाओ और वस्तुओ का परित्याग कर विष्णु के परम पद को प्राप्त किया ॥५७ ५८॥
श्रेष्ठ मुनिगण ! मैंने राजा इन्द्रद्युम्न का चरित्र और क्षेत्र की महिमा आप लोगों को बतलायी, इससे अतिरिक्त
आप लोग क्या सुनना चाहते हैं ? ॥५९॥

विष्णु ने कहा—अव्यक्तजन्मा (जनादि) ब्रह्मा को उपर्युक्त बातें सुन कर ब्राह्मणों को अत्यन्त आश्चर्य
हुआ, फिर प्रसन्न मन से प्रश्न किया ॥६०॥

मुनियों ने पूछा—“सुरश्रेष्ठ ! किस समय पुरघोसम तीर्थ की यात्रा करनी चाहिए, किस विधि से पाँचों
तीर्थों को करना चाहिए । एक-एक तीर्थ के स्नान, दान और देव-दर्शन का ज. फल होता है उसका जलग-अलग
समझा कर बताएँ ॥६१-६२॥

ब्रह्मा ने कहा—“कुरुक्षेत्र में सात अयुत (सत्तर हजार) वर्ष तक इन्द्रिय-समयपूर्वक प्राँथ को वश में कर

१ क. ०न्यानि वितानि ग्रामाणि न० । २ ख. त्यक्त्वा देह दिव यथे । देवदेवप्रसादेन जगाम परम प० ।

३ ख. मुनिश्रेष्ठ ।

दृष्ट्वा 'सदा ज्येष्ठशुक्लद्वादश्यां पुरुषोत्तमम् । कृतोपवासः प्राप्नोति ततोऽधिपतरं फलम् ॥ ४॥
 तस्माज्ज्येष्ठे मुनिश्रेष्ठाः प्रयत्नेन सुसंयतैः । स्वर्गलोकोत्सुविप्राश्चंद्रंष्टव्यः पुरुषोत्तमः ॥ ५॥
 'पञ्चतीर्थं तु विधिवत्कृत्वा ज्येष्ठे नरोत्तमः । शुक्लपक्षस्य द्वादश्यां पश्येत् पुरुषोत्तमम् ॥ ६॥
 ये पश्यन्त्यव्ययं देवं द्वादश्यां पुरुषोत्तमम् । ते विष्णुलोकमासाद्य न च्यवन्ते कदाचन ॥ ७॥
 तस्माज्ज्येष्ठे प्रयत्नेन गन्तव्यं भो द्विजोत्तमाः । कृत्वा तस्मिन्पञ्चतीर्थं श्रष्टव्यः पुरुषोत्तमः ॥ ८॥
 सुदूरस्थोऽपि यो भवत्या कीर्तयेत्पुरुषोत्तमम् । अहन्यहनि शूद्रात्मा सोऽपि विष्णुपुरं व्रजेत् ॥ ९॥
 यात्रा करोति कृष्णस्य श्रद्धया यः समाहितः । सर्वपापविनिर्मुक्तो विष्णुलोकं व्रजेन्नरः ॥ १०॥
 चक्र दृष्ट्वा हरेर्दूरात्प्रासादोपरि संस्थितम् । सहसा मुच्यते पापाक्षरो भवत्या प्रणम्य तत् ॥ ११॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे स्वयंभुवृषिसंवादे पुरुषोत्तमवर्णनं नामैकपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५१॥

एक पैर पर खड़ा हो, निराहार तपस्या करने से जितना फल मनुष्य को मिलता है, उससे अधिक ज्येष्ठ-शुक्ल-द्वादशी के दिन निराहार रह कर पुरुषोत्तम के दर्शन से प्राप्त होता है ॥ ६३-६४॥ इसलिए, ज्येष्ठ मुनिगण! स्वर्ग चाहने वाले, समस्तल ब्राह्मण आदि मनुष्यों को ज्येष्ठ मास में प्रयत्न पूर्वक पुरुषोत्तम का दर्शन करना चाहिए ॥ ६५॥ ज्येष्ठ मास में उत्तम मनुष्य पाँचों तीर्थों की विधिवत् यात्रा करके अवश्य पुरुषोत्तम तीर्थ का दर्शन करे ॥ ६६॥ जो द्वादशा के दिन अण्ड पुरुषोत्तम देव का दर्शन करते हैं वे विष्णुलोक में जाते हैं, कभी भी उनका बर्ती से पतन नहीं होता है ॥ ६७॥ इसलिए है ज्येष्ठ ब्राह्मण! ज्येष्ठ मास में प्रयत्नपूर्वक पञ्चतीर्थ की यात्रा कर पुरुषोत्तम का दर्शन करना चाहिए ॥ ६८॥ तीर्थ-यात्रा में असमर्थ व्यक्ति अत्यन्त दूर रह कर भी यदि भक्तिपूर्वक पुरुषोत्तम का कीर्तन करे, तो वह भी दिन-प्रतिदिन पाप-रहित हो कर विष्णुपुर का अधिकारी होगा। और जो व्यक्ति एक-द्वयन से शूद्रापूर्वक इस कृष्ण-तीर्थ की यात्रा करता है, वह सब पापों से मुक्त हो कर विष्णुलोक को निश्चय ही प्राप्त करता है। दूर से ही कृष्ण-मन्दिर में ऊपर बने हुए चक्र का देव कर जो भक्तिपूर्वक प्रणाम करता है वह मनुष्य सहसा (सीधे ही) पापों से मुक्त हो जाता है ॥ ६९-७१॥

श्री ब्रह्महापुराण में स्वयंभू और ऋषि के संवाद प्रकरण में पुरुषोत्तम वर्णन नामक इकावनवा

अध्याय समाप्त ॥ ५१॥

अथ द्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

मार्कण्डेयाख्यानम्

ब्रह्मोवाच

'आसीत्कल्पे मुनिश्रेष्ठा संप्रवृत्ते महाक्षये । नष्टेऽर्कचन्द्रे पवने नष्टे स्यावरजङ्गमे ॥१॥
उदिते प्रलयादित्ये प्रचण्डे घनगर्जिते । विद्युदुत्पातसंघाते सभग्ने तरुपर्वते ॥२॥
लोके च संहृते सर्वे महदुल्कानिर्बहणे । शुष्केषु सर्वतोऽप्ये सुखे सरसु च सरित्सु च ॥३॥
ततः संवतंको बह्निर्वायुना सह भो द्विज । लोकं तु प्राविशत्सर्वमादित्यंरूपशोभितम् ॥४॥
पञ्चात्स पृथिवीं भित्त्वा प्रविश्य च रसितम् । देवदानवयक्षाणां भयं जनयते महत् ॥५॥
निर्दहन्नागलोकं च यच्च किञ्चित्क्षिताविह । अघस्तान्मुनिशार्दूला सर्वं नाशयते क्षणात् ॥६॥
ततो योजनविज्ञाना सहस्राणि शतानि च । निर्दहत्याशुषो घायुः स च संवतंकोऽनलः ॥७॥
सवेवासुरगन्धर्वं सयक्षोरगराक्षसम् । ततो दहति सदीप्तः सर्वमेव जगत्प्रभुः ॥८॥
प्रदीप्तोऽसौ महारोद्रः कल्पाग्निरिति संभ्रुतः । महाज्वालो महाहिम्मान्संप्रदीप्तमहात्वन ॥९॥
सूर्यकोटिप्रतीकाशो ज्वलन्निव स तेजसा । त्रिलोभ्यं चादहत्पूर्णं सत्सुरासुरमानुषम् ॥१०॥

अध्याय ५२

मार्कण्डेयमुनि का वटवृक्ष-दर्शन

ब्रह्मा ने कहा—श्रेष्ठ मुनिगण । जब कल्पान्त में महानाश प्रारम्भ हो गया तब सूर्य चन्द्र नष्ट हो गए
वायु, स्यावर, जगम सभी विनष्ट हो गए । प्रलय-सूर्य आकाश में चमकने लगे, प्रचण्ड मेघ गरजन लगे बार-बार
बिजली गिरने से तट-पर्वत टूट फूट गए महामयकर उत्क्रांता में साश सत्कार भस्म हो गया सर, सरिता और
समुद्र का जल सूख गया ॥१-३॥ इसने बाद विप्रवृन्द । वायु के साथ सर्वत्र अग्नि (बारह) सूर्यो में
शीमल लक्ष्मी में प्रविष्ट हुआ ॥४॥ वहाँ वह नाश लीला समाप्त कर पृथ्वी का फाटना हुआ रमान्तक म
पहुँचा जिसे देव नर देव, दानव, यक्ष सभी मय-भस्म हो गए ॥५॥ नगरों को जला कर पृथ्वी और रसितल
में जो कुछ था सब क्षण भर में जला डाला ॥६॥ तदनन्तर क्षीप्रता से चलने वाला वह वायु और सर्वत्र अग्नि
बीस हजार बीस बीस योजन (बाइस हजार योजन) में फैल कर जलने लगे ॥७॥ इस मीनि प्रभु न देव-असुर, गन्धर्व,
यक्ष, नाग और राक्षसा सहित सम्पूर्ण सत्कार को जला डाला ॥८॥ इस प्रकार प्रचण्ड, प्रदीप्त कल्पाग्नि नाश से
प्रतिष्ठ उम अग्नि ने शीघ्र ही मुद्र, अमुर तथा मनुष्या से युक्त इस त्रिका को भस्म कर दिया । उसकी लपटें बड़ी
मयंकर और व्यापक थी । ज्वाला प्रचण्ड थी । उससे घोर ताप हो रहे थे । वह बराही सूर्य के समान, अपन तेज से

एवंविधे महाघोरे महाप्रलयदारुणे । ऋषिः परमधर्मात्मा ध्यानयोगपरोऽभवत् ॥११॥
 एकः संतिष्ठते विप्रा मार्कण्डेयेति विभूतः । मोहपार्शेनिबद्धोऽसौ क्षुत्तृष्णाकुलितेन्द्रियः ॥१२॥
 स वृष्ट्वा तं महावर्द्धं शुष्ककण्ठोष्ठतालुकः । तृष्णातः प्रखलन्विप्रास्तदाऽसौ भयविह्वलः ॥१३॥
 बभ्राम पृथिवीं सर्वां कादिशीको विचिन्तनः । त्रातारं नाधिगच्छन्वं इतश्चेतश्च धावति ॥१४॥
 न लेभे चतदाशमं यत्र विश्राम्यता द्विजाः । करोमि किं जनानामि यस्याहं शरणं व्रजे ॥१५॥
 कथं पश्यामि तं देवं पुरपेशं सनातनम् । इति संचितयन्देवमेकाग्रेण सनातनम् ॥१६॥
 प्राप्तवांस्तत्पदं दिव्यं महाप्रलयकारणम् । पुरपेशमिति ख्यातं वटराजं सनातनम् ॥१७॥
 स्वरायुवतो मुनिश्चासौ मध्प्रोद्यत्यादिकं शयौ । आसाद्य तं मुनिश्चेष्टास्तस्य मूले समाविशत् ॥१८॥
 न कालान्निभयं तत्र न चित्क्षारप्रवर्यणम् । न संवर्तागमस्तत्र न च वज्राशनस्तथा ॥१९॥

इति श्रीमहापुराणे आदिश्वाह्ये स्वयंभुऋषिसंवादे मार्कण्डेय
 वटदर्शनं नाम द्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥५२॥

स्वयं जलता हुआ सा जान पड़ता था ॥१-१०॥ ऐसे महाघोर, दारुण प्रलयकाल में, विप्रगण ! परम धर्मात्मा, ध्यान योग में लीन रहते वाले केवल मार्कण्डेय नामक ऋषि बच गए थे । उनकी इन्द्रियां मूल-न्यास से व्याकुल हो रही थी, वह माह-बन्धन से मुक्त होते हुए भी माह-बन्धन से बंधे थे ॥११-१२॥ उस समय उस महान् अग्नि की देपतेही उनके कण्ठ, ओंठ और तालु मूल गए, मथ से वे विह्वल हो गए और मूल प्यास के कारण उनके पैर सीधे न पड़ते थे ॥१३॥ वे चेतना-शून्य, दिशा-ज्ञान रहित हो सम्पूर्ण पृथ्वी पर घूमने लगे, वही कोई राक्षस न पाकर इधर-उधर दौड़ने लगे ॥१४॥ विप्रवृन्द ! वह जहाँ वही गए उनकी सुख नहीं मिला । “क्या करे नहीं समझ पाता कि किसी शरण में जाऊँ ॥१५॥ जिस प्रकार सनातन पुरपात्य देव का देख पाऊँ इस प्रकार एकाग्र भाव से सनातन देव भगवान् का स्मरण करने लगे ॥१६॥ इतने ही में महाप्रलय का कारण, पुरपेश नाम से प्रसिद्ध, भगवान् का दिव्य पद, सनातन वटराज (अक्षयवट) उन्हें दिखायी पड़ा तो लपक कर क्षीप्रता से वे उस वट वृक्ष की ओर बढ़े । मुनिश्रेष्ठ ! उस वृक्ष के पास जाकर वे उसकी जड़ में घुस गए । वही न मृत्यु का मथ था, न ता प्रलय अग्नि की ज्वालाएँ अगार बरसा रही थी न तो संवर्तन (अग्नि) अथवा वज्र की ही वहाँ पहुँच थी ॥१७-१९॥

श्री ब्रह्ममहापुराण में स्वयंभू और ऋषि के संवाद प्रकरण में मार्कण्डेय
 का वटदर्शन नामक वाक्यवर्ग अध्याय समाप्त ॥५२॥

अथ त्रिपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

मार्कण्डेयाख्यानम्

ब्रह्मोवाच ।

ततो गजकुलप्रस्थास्तडिन्मालाविभूषिताः । समुत्तस्युर्महामेघा नभस्यद्भुतदर्शनाः ॥१॥
 केचिन्नोलोत्पलश्यामाः केचिन्कुमुदसंनिभाः । केचिन्निष्कजलसंकाशाः केचित्पिताः पयोधराः ॥२॥
 केचिद्धरितसंकाशाः काकाण्डसंनिभास्तथा । केचित्कमलपत्राभाः केचिद्विष्णुसंनिभाः ॥३॥
 केचित्पुरवराकाराः केचिद्गिरिवरोपमा । केचिदञ्जनसंकाशाः केचिन्मरकतप्रभाः ॥४॥
 विद्युन्मालापिन्द्वाङ्गाः समुत्तस्युर्महापनाः । घोररूपा महाभागा घोरस्वननिनादिताः ॥५॥
 ततो जलधराः सर्वे समावृष्वन्नभस्तलम् । संरियं पृथिवी सर्वा सपर्वतवनाकरा ॥६॥
 आपुरिता दिशः सर्वाः सलिलोद्यपरिप्लुताः । ततस्ते जलदा घोरा वारिणा मुनिसत्तमाः ॥७॥
 सर्वतः प्लावयामासुर्दधोदिताः परमेष्ठिता । वर्षमाणा महातोर्षा पुरयन्तो वसुंधराम् ॥८॥
 सुघोरमशिवं रौद्रं नाशयन्ति स्म पावकम् । ततो द्वादश वर्षाणि पयोदाः समुपप्लवे ॥९॥
 पाराभिः पुरयन्तो वै क्षोद्यमाना महारमना । ततः समुद्राः रवां वेलामतिक्रामन्ति भोद्विजा ॥१०॥

अध्याय ५३

मार्कण्डेयमुनि का प्रलय-दर्शन

ब्रह्मा ने कहा—इसके अनन्तर आकाश में गजकुल नाम के विचित्र महामेघ प्रकट हुए, जिनके बीच विजयी चमक रही थी ॥१॥ उनमें कुछ नीलचमक के समान पद्मवर्ण के, कुछ कुमुद के समान, कुछ कमल-केसर के समान और कुछ पीत वर्ण के थे । कुछ बादल हरे-हरे तथा कुछ कौआ के अण्डे के समान, कुछ कमल पत्र के समान एवं कुछ विष्णु वर्ण के समान थे ॥२-३॥ विस्तार में कुछ तो बड़े-बड़े मगरा के समान विस्तीर्ण तो कुछ हिमालय के समान विस्तार के, कुछ तो काजल के समान अत्यन्त काले, कुछ मरकत मणि के समान प्रमाण के ॥४॥ ऐसे भयंकर आकार वाले मेघ—जिनके मध्य विजयी बार-बार चमक रही थी, जा भयंकर गर्जना कर रहे थे—आकाश मण्डल में चारा ओर फैल गये । पितामह ब्रह्मा की प्रेरणा से उन मेघा ने पर्वत-वना सहित पृथ्वी को आच्छादित कर लिया । सम्पूर्ण विश्वायें जल प्रवाह से व्याप्त हो गईं । अष्ट मुनिवृन्द ! उन घोर बादल ने जल से चारों ओर भर दिया । अत्यधिक जल से सारी पृथ्वी परिपूर्ण हो गई जिससे पृथ्वीतल का वह अत्यन्त भयंकर, अत्यापन्न और प्रचण्डान्ति शाली हो गया ॥ ब्रह्मा की प्रेरणा से इस प्रकार बारह वर्षों तक निरन्तर वर्षा होती रही ॥५-९॥ मूसलपार वर्षा से सभी समुद्र लबालब भर गए और जल की अधिकता से अपनी तट-सीमा का

पर्वताश्च व्यशीर्यन्त मही धाप्सु निमज्जति । सर्वतः सुमहाभ्रन्तास्ते पयोदा नभस्तलम् ॥११॥
 संवेष्टयित्वा नश्यन्ति वायुवेगसमाहताः । ततस्तं मासुतं घोरं स विष्णुर्मुनिसत्तमः ॥१२॥
 आदिपद्मालयो देवः पीत्वा स्वपिति भो द्विजाः । तस्मिन्नेकाणवे घोरे नष्टे स्यावरजङ्गमे ॥१३॥
 नष्टे देवासुरनरे यक्षराक्षसवर्जिते । ततो मुनिः स विश्रान्तो ध्यात्वा च पुरुषोत्तमम् ॥१४॥
 ददर्श चक्षुर्हन्मोत्य जलपूर्णां वसुधराम् । नापश्यत्तं वटं नोर्वो न दिगादि न भास्करम् ॥१५॥
 न चन्द्रार्काग्निपवनं न देवासुरपन्नगम् । तस्मिन्नेकाणवे घोरे तमोभूते निराश्रये ॥१६॥
 निमज्जन्तस तदा विप्राः संतर्तुमुपचक्रमे । बभ्रन्मासौ मुनिश्चाऽऽतं इतश्चेतश्च संप्लवन् ॥१७॥
 निमज्जन्तस तदा विप्रास्त्रातारं नाधिगच्छति । एवं तं विह्वलं दृष्ट्वा कृपया पुरुषोत्तमः ॥
 प्रोवाच मुनिशार्दूलास्तदा ध्यानेन तोषितः ॥१८॥

श्रीभगवानुवाच

वत्स श्रान्तोऽसि बालरत्नं भवतत्र मम सुव्रत । आगच्छाऽऽगच्छ शीघ्रं रत्नं मार्कण्डेय भ्रमान्तिकम् ॥१९॥
 मा हव्यैव च भेतव्यं संप्राप्तोऽसि भ्रमाप्रतः । मार्कण्डेय मुने धीर बालरत्नं श्रमपीडितः ॥२०॥

उल्लस्यन करने लगे ॥१०॥ जिससे सभी पर्वत गल गए, पृथ्वी जलमग्न हो गई। पुन वे उपद्रवी, इधर उधर घूमने वाले आकाशवापी मेघ वायु-वेग से टक्कर खाकर स्वयं नष्ट हो गए ॥११॥ मुनिवर! उस घोर वायु का भी आदि कमल के आधार भगवान् विष्णु पीकर जल घर महासागर में, जब कि उस समय स्यावर जगम देव अनुर यक्ष राक्षस सभी नष्ट हो चुके थे, सी गए। इधर वने-पारे मार्कण्डेय मुनि ने जब भगवान् के ध्यान के बाद आँखें खोलीं तब बैंगल जल से भरी हुई पृथ्वी दिखाई दी, न बट, न पृथ्वी, यहाँ तक कि दिशाये, सूर्य चन्द्र अग्नि वायु तथा देव, राक्षस, नाग कोई भी वहाँ दिखाई नहीं पड़ता था ॥१२-१५॥ उस घाँट अन्धकारमय, आश्रयहीन महासमुद्र में जब मार्कण्डेय मुनि डूबने लगे तब उसको पार करने के उपाय सोचने लगे। कोई स घन न पारर दुर्बल हो, उधर-उधर जलप्रवाह में गटकते हुए घूमन लग। विप्रवर! उस समय मुनि को कोई रास्ता न मिलने से वे असहाय होकर डूबने लगे। मुनिशार्दूल! उनका इस प्रकार विह्वल देख कर भगवान् उनकी ध्यान-भावना से प्रसन्न होकर कृपा करके बोले ॥१६-१८॥

श्रीभगवानुवाच—'वत्स! सुव्रत! मरनरक्षक! तुम बालक हो, मरन हो। इस समय यह गा रहा। आओ मार्कण्डेय! शीघ्र भरे समीप आओ। तुम इस प्रकार मत डरो, जब मेरे समीप आ गए हो। धीर मार्कण्डेय मनि! तुम श्रम से दुर्बल बालक जान पड़ते हो' ॥१९-२०॥

१ व ० ण्मुद्रितम् ० । २ व ० ० रे समीपुने निराश्रये । न ० ३ व ० ० रमानवम् । ४ व ० तल्लवे ।
 ५ व ० ० रत प्रीतोऽस्मि मा ० । ६ व ० शीघ्रेण मा ० ।

ब्रह्मोवाच

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा मुनि परमकोपितः । उवाच स तदा विप्रा विस्मितश्चाभवन्मुहुः ॥२१॥

मार्कण्डेय उवाच

कोऽयं नाम्ना कीर्तयति तपः परिभवन्निव । बहुवर्षसहस्राय धर्पयन्निव मे वपुः ॥२२॥
न ह्येष समवाचारो देवेष्वपि समाहितः । मा ब्रह्मा स च देवेशो दीर्घायुरिति भाषते ॥२३॥
कस्तपो घोरशिरसो मनाद्यः स्वकृतजीवितः । मार्कण्डेयेति चोक्त्वा मन्मृत्युं गन्तुमिहेच्छति ॥२४॥

ब्रह्मोवाच ॥

एवमुक्त्वा तदा विप्रारिचन्ताविष्टोऽभवन्मुनिः । किं स्वप्नोऽयं मया दृष्टः किं वा मोहोऽयमागतः ॥२५॥
इत्युच्यते तस्य उत्पन्ना दुःखहा मतिः । प्रजामि शरणं देव भवत्याहुः पुरषोत्तमम् ॥२६॥
स गत्वा शरणं देव मुनिस्तद्गतमानसः । ददर्श तं वटं भूमौ विशालं सलिलोपरि ॥२७॥
शाखायां तस्य सौवर्णं विस्तीर्णायो महाद्भुतम् । दगिर दिव्यपद्मं रचितं विश्वकर्मा ॥२८॥
ध्वजैर्द्वयैरञ्जितं अग्निविद्रुमशाभितम् । पद्मरागादिभिर्जुष्टं रत्नैरग्नैरलंकृतम् ॥२९॥
मानास्तरणसबीतं नानारत्नोपशोभितम् । नानाश्चर्यसमायुक्तं प्रभामण्डलमण्डितम् ॥३०॥

ब्रह्मा ने कहा—विष्णु की उन बातों को सुन कर मुनि तो पहले अत्यन्त क्रुपित हुए परन्तु शीघ्र ही विस्मित हो बाले—॥२१॥

मार्कण्डेय ने कहा—कौन है यह जो मेरी विरसचित तपस्या और मेरे इस दाघजीवी शरीर की उपेक्षा करता हुआ सा मेरा नाम लेकर युक्त रहा है। ऐसा शिष्टाचार तो देवों में भी नहीं देखा है मुन्य देवेश ब्रह्मा भी दीर्घायु इस नाम से पुकारते हैं। यह कौन है जिसका जीवन का मोह नहीं जा आज तपोमाकी मुखा मार्कण्डेय ऐसा कहे कर मेरे द्वारा मृत्यु पाना चाहता है ॥२२-२४॥

ब्रह्मा ने कहा—उस कह कर विप्रगण। उस समय मुनि चित्ताव्रत हो गए। क्या मैंने यह स्वप्न देखा है अथवा यह मोहता नहीं हो गया ॥२५॥ इस प्रकार सच ही रहे थे कि उनके हृदय में मैं अवश्य मक्ति पूर्वक भगवान् की शरण चला ऐसी दुःखनाशिनी सदबुद्धि उत्पन्न हो गई ॥२६॥ मुनि इस प्रकार अनन्य भाव से भगवान् की शरण में गए। पुनः उन्होंने जल के ऊपर विस्तार वट वृक्ष को देखा जिसकी विस्तृत शाखा पर विषवर्मा द्वारा निर्मित परम अद्भुत शाखामय दिव्य परम या जो वज्र और वैद्य यम का बना था जिसमें विद्रुम वधरग आदि मणि जड़ हुए थे जो मित्र मित्र रत्ना से अलंकृत और नाना प्रकार के विद्यौतो से सुसज्जित था ॥२७-२९॥ इस प्रकार की आश्चर्यजनक प्रमाण्डल से सुसज्जित धर्म्या पर करावो मूल के समान प्रकाशमान अत्यन्त तज्जय

१ एत वपुः २ ग ० व तेजसा । न । ३ क न । ४ क ० वपुः समागतः । क ० । ५ ख किं सादो मां समाह्वय किं वा भ्रमोऽयम् । ६ क ख दुःखहा । ७ क ख विष्णु ।

तत्सोपरि स्थितं देवं कृष्णं बालवपुर्धरम् । सूर्यकोटिप्रतीकाशं दीप्यमानं सुवर्चसम् ॥३१॥
 'चतुर्भुजं सुन्दराङ्ग पद्मपत्रायतेक्षणम् । श्रीवत्सवक्षस देव शङ्खचक्रगदाधरम् ॥३२॥
 वनमालावृत्तेरत्नं दिव्यकुण्डलधारिणम् । हारभारापितग्रीव दिव्यरत्नविभूषितम् ॥३३॥
 दृष्ट्वा तदा मुनिर्देवं विस्मयोत्फुल्ललोचन । शोभाञ्जिततनुर्देव प्रणिपत्येदमब्रवीत् ॥३४॥

मार्कण्डेय उवाच

अहो चैकाग्र्ये घोरे विनष्टे सचराचरे । कथमेको ह्ययं बालस्तिष्ठत्यत्र 'सुनिर्भयः ॥३५॥

ब्रह्मोवाच

भूत भव्यं भविष्यं च जानन्नपि महामुनि । न बुबोध तदा देव मायया तस्य माहितः ॥३६॥
 यदा न बुबुधे धनं तदा' खेदादुवाच ह ॥३६॥

मार्कण्डेय उवाच

यूया मे तपसो धीर्यं यूया ज्ञानं यूया क्रिया । यूया मे जीवितं दीर्घं यूया 'मानुष्यमेव च ॥३७॥
 योऽहं सृष्ट न जानामि पर्यच्छूँ दिव्यबालकम् ॥३८॥

ब्रह्मोवाच

एवं सच्चिन्तयन्निव्रणं प्लवमानो विचेतनः । त्राणार्थं विहृत्यलक्ष्मासौ निषेधं गतवास्तदा ॥३९॥

कृष्ण भगवान् कः बाल रूप में बैठे हुए देखा, जिनके चार भुजाएँ थी, मनाहर अंग, नेत्र कमल के समान बड़े थे, वक्षस्थल पर श्रीवत्स, हाथा में शङ्ख, चक्र और गदा थी, उस प्रदेश वनमाला से ढँका, कानी में दिव्य कुण्डल और ग्रीवा में हारावली लटक रही थी। इस प्रकार दिव्य रत्ना से सुसज्जित देव को देखकर मुनि की आँखें आश्चर्य-चकित हुईं, गर्द, शरीर में रमावक हुआ गया। वे प्रणाम कर बहने लगे—॥३०-३४॥

मार्कण्डेय बोले—जहा ' इस भराचर शून्य घर सागर में कैसे यह निर्भय बालक रह रहा है ॥३५॥

ब्रह्मा ने कहा—उस समय महामुनि उस देव की माया से माहित होने के कारण उस विषय में कुछ नहीं जान सके यद्यपि वे भूत, भविष्यत् और वर्तमान के ज्ञाता थे। जब वे देव के विषय में कुछ न जान सके तब दुःखी होकर वे बोले ३६॥

मार्कण्डेय ने कहा—मरी उपस्था, ज्ञान और शक्ति स्वरूप हैं, सारी क्रियाएँ विफल हैं, भरा यह दीर्घ जीवन यहाँ तक कि मानव जन्म भी स्वरूप है ज। आज मैं इस दिव्य पश्य पर माय बालक को नहीं जान पा रहा हूँ ॥३७-३८॥

ब्रह्मा बोले—इस प्रकार चिन्ता मग्न मुनि चिन्ता गून्धन हुआ, बर, दहर उपर जलप्रवाह में मटकने लगे, रसा के लिए व्याकुलता बढ़ने लगी, अन्त में असमर्थता के कारण दुःखी हुआ। इससे अन्तर् प्रमातृत्व के

ततो बालाकंसंकाशं स्वमहिम्ना व्यवस्थितम् । सर्वतेजोमय विप्रा न शशाकाभिवीक्षितम् ॥४०॥
वृष्ट्वा तं मुनिमायान्त स बालः प्रहसन्निव । प्रोवाच मुनिशार्दूलास्तदा मेघौघनिस्वनः ॥४१॥

श्रीभगवानुवाच

वत्स जानामि श्रान्तं त्वा प्राणार्थं मामपुस्थितम् । शरीर विश मे क्षिप्र विश्रामस्ते मयोदितः ॥४२॥

ब्रह्मोवाच

श्रुत्वा स पर्वतं तस्य किञ्चिन्नोवाच मोहितः । विवेश वदन तस्य विवृतं चावशो मुनिः ॥४३॥

इति श्रीमहापुराणे ब्राह्मे स्वयंस्वूपिसवादे मार्कण्डेयप्रलयदर्शनं नाम त्रिपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥५३॥

अथ चतुष्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः

मार्कण्डेयाख्यानम्

ब्रह्मोवाच

स प्रविश्योदरे तस्य बालस्य मुनिसत्तम । ददर्श पृथ्वीं कृत्स्नां नानाजनपदवृत्ताम् ॥१॥

सूर्य के समान, तेजस्वी, महामहिमाशाली उस बालक को देखने में भी असमर्थ हो गए । मुनिवर्यवृन्द । मुनि को अपनी ओर आता देख कर, हैसता हुआ सा वह बालक मेघ के समान गम्भीर स्वर से बोल उठा ॥३९-४१॥

भगवान् बोले—वत्स । मैं जानता हूँ कि तुम थक गए हो और अपनी रक्षा के लिए मेरे पास आए हो । शीघ्र ही मेरे शरीर में घुस जाओ, यही मुझारे लिए मुख का स्वाग है जिसे मैंने तुम्हें बता दिया ॥४२॥

ब्रह्मा बोले—भगवान् की इन बातों ने मुन को मुनि मोहित हो गए, कुछ भी न कह सके, और विवेश हो उनके (विवृत) फँसे हुए मुख में घुस गए ॥४३॥

श्री ब्रह्ममहापुराण में स्वयम्भू और ऋषि के संवाद-प्रकरण में मार्कण्डेय का प्रलय दर्शननामक तिरपनवां अध्याय समाप्त ॥५३॥

अध्याय ५४

मार्कण्डेय का भगवान् की कुक्षि में प्रवेश

ब्रह्मा बोले—उस बालक के सदर मे घुसकर मार्कण्डेय मुनि ने अनेक जनपदों से युक्त सम्पूर्ण पृथ्वी को

१ स्वमहिम्नि । २ स्व •याक अधी० । ३-४ स्व त्वाप्राणाविनम्० । ४ क विपयस्ते ।

लवणेशुसुरासपिदंधिदुग्धजलीदधीन् । ददर्श तान्समुद्रांश्च जम्बू प्लक्षं च शात्मलम् ॥२॥
 कुशं श्लोञ्चं च शाकं च पुष्करं च ददर्श सः । भारतादीनि वर्षाणि तथा सर्वांश्च पर्वतान् ॥३॥
 मेहं च सर्वरत्नाद्यमपश्यत्कनकाचलम् । नानारत्नान्वितः शृङ्गभूषितं बहुवन्दरम् ॥४॥
 नानामुनिजनाकोणं नानावक्षवनाकुलम् । नानासत्त्वसमायुक्तं नानाश्चर्यसमन्वितम् ॥५॥
 व्याघ्रः सिंहवराहश्च चामरमंहिषगजेः । मृगः शास्त्रामृगश्चान्येभूषितं सुमनोहरम् ॥६॥
 शक्रार्द्यविधिपदैवैः सिद्धचारणपद्मैः । मुनियक्षाम्सरोभिश्च वृतेश्चान्यैः सुरार्यैः ॥७॥

ब्रह्मोवाच

एवं सुमेहं धीमन्तमपश्यन्मुनिसत्तमः । पर्यटन्त तदा विप्रस्तस्य बालस्य चोदरे ॥८॥
 हिमवन्तं हेमकूटं निषधं गन्धमादनम् । श्वेतं च दुधरं नीलं कैलासं मन्दरं गिरिम् ॥९॥
 महेंद्रं मलयं विन्ध्यं पारियात्रं तथाऽर्बुदम् । सह्यं च शुक्तिमान्तं च मनाकं वक्रपर्वतम् ॥१०॥
 एताश्चान्याश्च बहवो प्रावन्तः पृथिवीधराः । ततस्तास्तु मुनिश्रेष्ठाः सोऽपश्यद्भस्मभूषितान् ॥११॥
 कुरुक्षेत्रं च पाञ्चजालान्तस्तान्मद्रास्तकंकयान् । वाह्मीकान्मृगशूरसेनाश्च काश्मीरान्तङ्गणान्सगान् ॥१२॥
 पार्वतीपान्किरानांश्च कर्णप्रारणामरून् । अन्त्यजान्त्यजातींश्च सोऽपश्यत्तस्य चोदरे ॥१३॥
 मृगाञ्छालामृगान्सिंहान्वराहान्सूमराञ्छशान् । गजान्श्चान्यास्तथा सत्त्वान्तोऽपश्यत्तस्य चोदरे ॥१४॥

देवा ॥१॥ वही लवण, इक्षु, सुरा, घृत, दुग्ध और जल के सागरों को जम्बू (जामुन), प्लक्ष (पावड), शात्मली (सेमर), कुश, शीब, शाक, पुष्कर नामक ढोंगों को भारत आदि वर्णों को एवं सभी पर्वतों और सभी रत्नों से युक्त सब नामक सुवर्णपर्वत पर्वत के देखा । जिसकी चोटियाँ अनेक रत्नों से विभूषित थी जिसकी बन्दरायें अनेक मुनिया से व्याप्त थी ॥२-४॥ जहाँ मित्र मित्रप्रकार के युद्धों से सुगन्धित वन थे जो अनेक आश्चर्यजनक दृश्योत्पत्ति विभिन्न जीवा से युक्त था, जहाँ बाघ, सिंह, पूंजर, चामर (चमरी घो), महिष, शमी, मृग, बन्दर एवं अन्य विविध जीवा से सुगन्धित सबसे मन के प्रसन्न कर रहा था, जहाँ इन्द्र आदि विविध देवता, सिद्ध, भारण, पद्म, मुनि, यक्ष एवं असुरादयों निवास करती थी । इसी प्रकार अनेकों देव मन्दिरों से बहु मेरु पर्वत सुगन्धित था ॥५-७॥ इस प्रकार अतिगोमागाली सुमेरु पर्वत के देवते ने बाद मुनि उस बालक के उदर-अन्दर में घूमने लगे ॥८॥ श्रेष्ठ मुनिगण ! वही मरुपर्वत के अतिरिक्त हिमालय, हेमकूट, निषध, गन्धमादन, श्वेत, दुधर, नील कैलास, मन्दरा-बल, महेंद्र, मलय विन्ध्य, पारियात्र, अर्बुद, सह्य, शुक्तिमान् मनाक, वक्र आदि पर्वतों और अगणन रत्नों से अलङ्कृत पहाड़ों का उन्हाड़ देखा ॥९-११॥ इसके बाद उस बालक के उदर में कुरुक्षेत्र, पाञ्चाल, मत्स्य, मद्र, केरल, वाहगीक, मृगसेन, चामरी, तम्र, रक्त आदि देशों और वहाँ के निवासियों एवं पहाड़ी, विपत, कर्ण प्रारण मरुदेवतामियों, अरुद्रा और अगण्य जातियों के लोगों को भी देखा । ऐसे ही मृग, बन्दर, सिंह, वराह, मृगर गण (सरहे), गज आदि अन्य जीवा का तथा समस्त नीषों, शीबा, नगरा, वृषि, गोरक्षा, व्यापार, वन विषय

पृथिव्यां यानि त्रीयानि ग्रामाश्च नगराणि च । कृषिगोरोक्षवाणिज्यं क्रयविक्रयणं तथा ॥१५॥
 नाकादीन्विबुधाच्छ्रेष्ठास्तथाऽन्याश्च दिवौकसः । गन्धर्वाप्सरसो यक्षानृपाश्चैव सनातिनान् ॥१६॥
 देव्यदानवसंघाश्च नागाश्च मुनिसत्तमाः । सिंहिकातनयाश्चैव ये चान्ये सुरशत्रवः ॥१७॥
 यत्किञ्चित्तेन लोकेऽस्मिन्दृष्टपूर्वं चराचरम् । अपश्यत्स तदा सर्वं तस्य कुक्षौ द्विजोत्तमाः ॥१८॥
 अथवा किं बह्वक्तेन कीर्तितेन पुनः पुनः । ब्रह्मादिस्तम्बपर्यन्तं यत्किञ्चित्सचराचरम् ॥१९॥
 भूलोकं च भुवर्लोकं स्वर्लोकं च द्विजोत्तमाः । महर्जनस्तपः सत्यमतलं वितलं तथा ॥२०॥
 पाताल सुतलं चैव वितलं च रसातलम् । महातल च ब्रह्माण्डमपश्यत्तस्य चोदरे ॥२१॥
 अध्याह्ता गतिस्तस्य तदाऽभूद्विजसत्तमाः । प्रसादात्तस्य देवस्य स्मृतिलोपश्च नाभवत् ॥२२॥
 भ्रममाणस्तदा कुक्षौ कृत्स्नं जगदिदं द्विजाः । नान्तं जगाम देहस्य तस्य विष्णोः कदाचन ॥२३॥
 यदाऽतो माऽऽगतवान्तं तस्य देहस्य भो द्विजाः । तदा तं वरदं देव शरणं गतवानमुनिः ॥२४॥
 ततोऽतो सहसा विप्रा वायुवेगेन निःसृतः । महात्मनो मुलात्तस्य श्रिवृतात्पुरुषस्य सः ॥२५॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे स्वयंभूतपिसवादे मार्कण्डेयस्य भगवत्कुक्षिपरिवर्तनं नाम चतुष्पञ्चाश-
 तमोऽध्यायः ॥५४॥

आदि कर्मों की भी वही देला ॥१२ १५॥ इन्द्र आदि देवता एव अन्य स्वर्गलोकवासी, गन्धर्व, अप्सरा, यक्ष, सनातन
 ऋषिगण दैत्य-दानव-समूह नाम सिंहिका-युव (राहु-वेधु) और अन्य जितने देवशत्रु हैं उन सबको यहाँ तक कि
 इस समार मे सभी पूर्व परिचित चराचर वः उस बालक के उद मे उन्हीने देला ॥१६ १८॥ अथवा नाम गिनाने
 से क्या काम ? ब्रह्मा से लेकर स्तम्ब पर्यन्त (ऊँट पदाय तक) चर अवर जो कुछ है उन सब की भू, भुव, स्व
 मह जन तप, सत्य आदि लोका अतल, वितल तथा पाताल, सुतल, वितल रसातल, महातल पर्यन्त ब्रह्माण्ड को
 उस मुनि ने उस बालक के उदर मे देला ॥१९ २१॥ श्रेष्ठब्राह्मणवर्ग । उस समय उस देव के प्रभाव से मुनि को
 अध्याहृत (वही न करने वाला) गति प्राप्त हो गई । उनकी स्मरण शक्ति भी लुप्त नहीं हुई ॥२२॥ द्विजवर्मन् । उदरस्य
 सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड का भक्कर लगाते हुए भार्गव्येयमुनि किसी भी प्रकार से भगवान् विष्णु के शरीर का अन्त न पा
 सके ॥२३॥ द्विजगण । जब मुनि ने उस देव के शरीर का अन्त न पाया तब विषय होकर वह भनोरपदाता देव की
 शरण मे गये ॥२४॥ और परमात्मा के फँसे हुए मुख से वायु के वेग के समान एकाएक बाहर निकल आये ॥२५॥

श्री ब्रह्महपुराण मे स्वयम् और ऋषि के सवाद-प्रकरण मे मार्कण्डेय का भगवत्कुक्षि-
 परिवर्तन नामक चौवनवा अध्याय समाप्त ॥५४॥

अथ पञ्चपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

मार्कण्डेयाख्यानम्

ब्रह्मोवाच

स निष्कम्बोदरात्तस्य बालस्य मुनिसत्तमा । पुनश्चेकाणं वामुर्वीमपश्यज्जनर्वाजिताम् ॥१॥
 पूर्वदृष्टं च त देवं ददर्श शिशुरुपिणम् । शाखायां वटवृक्षस्य पर्यङ्कोपरि संस्थितम् ॥२॥
 श्रीवत्सवक्षसं देवं पीतवस्त्रं चतुर्भुजम् । जगदादाय तिष्ठन्तं पद्मपत्रायतेक्षणम् ॥३॥
 सोऽपि तं मुनिमावाच 'एतवमानमचेतनम् । दृष्ट्वा मुखाद्विनिष्क्रान्तं प्रोवाच प्रहसन्निव ॥४॥

श्रीभगवानुवाच

कञ्चिद्व्यययोधित बलत विभान्तं च ममोदरे । भ्रममाणश्च किं तत्र आश्चर्यं दृष्टवानसि ॥५॥
 भक्तोऽसि मे मुनिश्रेष्ठ भ्रान्तोऽसि च ममाऽऽश्रितः । तेन त्वामुपकाराय सभाषे पश्य मामिह ॥६॥

ब्रह्मोवाच

धृत्वा स बबन तस्य संप्रहृष्टतनूदहः । ददर्श तं सुकुप्रेक्षं रत्नैर्दिव्यैरलंकृतम् ॥७॥
 प्रसन्ना निर्मला दृष्टिर्मुहूर्तात्तस्य भो द्विजाः । प्रसादात्तस्य देवस्य प्रादुर्भूता पुनर्नवा ॥८॥

अध्याय ५५

मार्कण्डेय द्वारा भगवान् की स्तुति

ब्रह्मा बोले—उस बालक ने उदर से निकल कर मुनि ने पुनः जनमूय, समुद्रमय पृथ्वी देली। सामने बड़ी पहले का देखा हुआ बालरूपधारी देवता दिलार्द दिया, जो गटवृक्ष की शाखा पर अवलम्बित पालने पर लेटा हुआ था। श्रीवत्स से मुशामित वक्षस्थल, कमल ने समान बड़े बड़े नेत्र, चार भुजायें और पीताम्बर से मुशामित उमर्गी शरीर था। ऐसा वह दिव्य बालक ससार का समेट कर स्थित था। अपने मुख से बाहर निकले हुए और जलप्रवाह में गटकते हुये चेतनारहित मुनि का अपनी ओर आता देख कर मुस्कराता वह बालक बोला ॥१५॥

श्री भगवान् बोले—वत्स! मेरे उदर में तुमने निवास किया। यह गये हा क्या? घूम घूमकर तुमने शीत-सा आश्चर्यजनक दृश्य देखा है? मुनिश्रेष्ठ! तू मेरे भक्त हो, आश्रित हो, एक गये हा, तुम्हारे हित के लिए मैं तुमसे कह रहा हूँ। मेरा यह रूप देखो ॥१५-१६॥

ब्रह्मा बोले—भगवान् की यह बात सुनकर मुनि के राम रीम पुलकित हो उठे, उन्होंने दिव्य-रत्नालङ्कार से अलंकृत, कठिनाई से देखने योग्य भगवान् की देखा। भगवान् की कृपा ने द्विजवर्ग। रागभर मही मुनि की दृष्टि

रक्ताङ्गुलितलौ पादौ ततस्तस्य सुराचिर्तो । प्रणम्य शिरसा विप्रा हृषगदगदया गिरा ॥१॥
कृताञ्जलिस्तदा हृष्टो विस्मितश्च पुन पुन । दृष्ट्वा त परमात्मान सस्तोतुमुपचक्रमे ॥१०॥

मार्कण्डेय उवाच

देवदेव जगन्नाथ मायाबाल्वपुर्धर । त्राहि मा चारुपद्माक्ष दु खित शरणागतम् ॥११॥
सतप्तोऽस्मि सुरश्रेष्ठ सबर्ताह्येन बह्निनना । अङ्गारवपभीत च त्राहि मा पुरुषोत्तम ॥१२॥
शोषितश्च । प्रचण्डेन वायुना जगदामुना । विह्वलोऽह तथा श्रान्तस्त्राहि मा पुरुषोत्तम ॥१३॥
तापितश्च तशामास्ये (?) प्रलयावर्तकादिभि । नशान्तिमधिगच्छामि त्राहि मा पुरुषोत्तम ॥१४॥
तृपितश्च क्षुधाऽऽविष्टो दु खितश्च जगत्पते । प्रातार नात्र पश्यामि त्राहि मा पुरुषोत्तम ॥१५॥
अस्मिन्नेकाण्ये घोरे विनष्टे सचराचरे । न च तमधिगच्छामि त्राहि मा पुरुषोत्तम ॥१६॥
तयोदरे च देवेश मया दृष्ट चराचरम् । विस्मितोऽह विषण्णश्च त्राहि मा पुरुषोत्तम ॥१७॥
ससारोऽस्मिन्निरालम्बे प्रसीद पुरुषोत्तम । प्रसीद विबुधश्रेष्ठ प्रसीद विबुधप्रिय ॥१८॥
प्रसीद विबुधा नाथ प्रसीद विदुधालय । प्रसीद सबलोकेश जगत्कारणकारण ॥१९॥

पुन प्रसन्न निमल और नवीन हो गई । रुखे अनन्तर उनसे रक्तवर्ण अगुलिय और तलवों से सुगोमित चरणों पर जिनका पूजा में देवगण सदा निरत रहते हैं शिर रखकर प्रणाम किया । परमात्मा के उस मनोहर रूप को देखकर वह अत्यंत प्रसन्न और आश्चर्यमग्न हो गये । पुन हाथ जोड़कर बार-बार भगवान् को देखते हुए मुनि गद गद वाणी से स्तुति करने लगे ॥७॥ १०॥

मार्कण्डेय बोले—देवाभिदेव । ससार में स्वामी । माया से बालरूप धारण करने वाले । सुन्दर कमल के समान नेत्र वाले । शरण में आये हुए मुझ दुःखा व रक्षा कीजिये ॥११॥ गुरुश्रेष्ठ । मैं इस सबलतनामक अग्नि से जला जा रहा हूँ । पुरुषोत्तम । अंगार की वर्षा से भयमात मेरी रक्षा कीजिये ॥१२॥ ससार में प्राणाधार आज मैं इस ज्वालामय वायु से मैं सुख गया हूँ और मय से व्याकुल होकर बक गया हूँ पुरुषोत्तम । मेरी रक्षा कीजिये ॥१३॥ इन प्रलयकारी आवृत्तक आग्नेय सूर्यों से मैं जल गया हूँ । किसी प्रकार मुझे शांती नहीं मिल रही है पुरुषोत्तम । मेरी रक्षा कीजिये ॥१४॥ जगत्पते । मैं व्यासा हूँ भूखा हूँ अति दुःखी हूँ इस ससार में किसी के भी अपना रक्षण नहीं देख रहा हूँ हे पुरुषोत्तम । मेरी रक्षा कीजिये ॥१५॥ इस सबकर घर एकांत सागर में जबकि चराचर विनष्ट हो गया है मैं अत नहीं पा रहा हूँ हे पुरुषोत्तम । मेरी रक्षा कीजिये ॥१६॥ देवेश । आपके ऊपर मैंने चराचर-व्याप्त विश्व देखा है । इसलिये मैं आश्चर्यचकित हूँ लिख हूँ पुरुषोत्तम । मेरी रक्षा कीजिये ॥१७॥ पुरुषोत्तम । इस अवलम्बरहित ससार में मुझ आश्रमहीन पर प्रसन्न हो देवश्रेष्ठ । प्रसन्न हो देवप्रिय । प्रसन्न हो ॥१८॥ देवा न स्वामी । देवा के एकमात्र सहायक । प्रसन्न हो । अखिल लोक के स्वामी । जगत के कारण

प्रसीद सर्वकृददेव' प्रसीद मम भूधर। प्रसीद' सलिलावाप्त' प्रसीद मधुसूदन ॥२०॥
 प्रसीद कमलाकान्त प्रसीद त्रिदशेश्वर। प्रसीद कंसकोशिक्षण प्रसीदरिष्टनाशन ॥२१॥
 प्रसीद कृष्ण दैत्यघ्न प्रसीद दनुजान्तक। प्रसीद मथुरावास प्रसीद यदुनन्दन ॥२२॥
 प्रसीद शक्रावरज प्रसीद वरदाव्यय'। एवं मही त्वं जलं देव त्वमग्निस्त्वं समीरणः ॥२३॥
 त्वं नभस्त्वं मनश्चैव त्वमहंकार एव व। त्वं बुद्धिः प्रकृतिश्चैव 'सत्त्वाद्यास्त्व' जगत्पते' ॥२४॥
 पुरुषस्त्व 'जगद्वायो पुरुषादपि चोत्तमः। त्वमिन्द्रियाणि सर्वाणि शब्दाद्या विषयाः प्रभो ॥२५॥
 त्वं दिक्पालाश्च धर्माश्च वेदा यज्ञाः सदक्षिणा'। त्वमिन्द्रस्त्व शिवो देवरत्वं हविरत्वं हुताशनः ॥२६॥
 त्वं यमः पितुराददेव त्वं रक्षोधिपतिः स्वयम्। वरुणस्त्वमपानाय' त्वं 'वायुस्त्वं धनेश्वरः ॥२७॥
 त्वमीजानस्त्वमनन्तरत्वं गणेशश्च यममुखः। शसवस्त्वं तथा रुद्रास्त्वमादिरक्षाश्च खेचराः ॥२८॥
 शानवास्त्वं तथा यक्षारत्वं दैत्याः समश्दगुणाः। सिद्धाश्चाप्सरसो नामा गन्धर्वास्त्वं सचारणाः ॥२९॥
 पितरो बालखिल्याश्च प्रजातां पतयोऽस्त्युत। मुनयश्च मृषिगणारस्त्वमश्विनौ निशाचराः ॥३०॥
 अन्धाश्च जातयस्त्वं हि यत्किञ्चिज्जीवसजितम्। रुक्मात्र बहुनोक्तेन ब्रह्मादिस्तम्बगोचरम् ॥३१॥
 भूतं भयं भविष्यं च त्वं जगत्सञ्चराचरम्। यत्ते रूप परं देव कूटस्थमवलं ध्रुवम् ॥३२॥

के भी कारण। प्रसन्न हो ॥२१॥ सबके वर्त्ता देव। पृथ्वी के पालक। मेरे उपर हुआ करे। जलशायी। मधुसूदन। प्रसन्न हो ॥२०॥ कमलाकांत। देवेश्वर। प्रसन्न हो। वरुण, कैली और अरिष्टाशुर के संहारक। मुझ पर प्रसन्न हो ॥२१॥ कृष्ण। दैत्य के नाशक। दानवों के संहारक। प्रसन्न हो। मथुरावासी। यदुनन्दन कृष्ण। आप प्रसन्न हो जायें ॥२२॥ इन्द्र के लघुभ्राता। वरदाता। अश्वय। आप मुझ पर प्रसन्न हो। देव। तुम मही ही, जल ही, तुम्हीं अग्नि और वायु भी हो। ॥२३॥ तुम आकाश मन और अहंकार भी हो, जगत्पते। तुम बुद्धि, प्रकृति, और सर्व आदि गुण हो ॥२४॥ तुम समार म व्याप्त करने वाले पुरुष (अक्षर ब्रह्म) मे भी उत्तम पुरुष (पुरुषात्मा) हो। प्रभो। तुम्हीं सभी इन्द्रियों और उनके विषय शब्द, स्पर्श, रस आदि का हो ॥२५॥ तुम दश दिक्पाल, धर्म, वेद और दक्षिणायुक्त (उत्तम) यज्ञ हो, इन्द्र, शिव, देव, हवि यहाँ तक कि हुताशन (अग्नि) भी तुम्हीं हो ॥२६॥ देव। तुम पितरों के अधिपति यम हो, राक्षसों के राजा भी स्वयं तुम्हीं हो। जल के स्वामी वरुण, वायु, धनेश्वर बुधेर तुम्हीं हो ॥२७॥ तुम इजान (शिव) अन्न, गणेश और कालिकेश भी हो। तुम वसु, तथा रुद्र हो और अवाञ्छाचार, आदित्य भी हो ॥२८॥ तुम दानव, यक्ष तथा मरुद्गण सहित दैत्य हो। सिद्ध, अप्सरायें, नाग, चारणा सहित गन्धर्व, य सभी तुम्हीं हो ॥२९॥ अश्व्युत। पितर, बालखिल्य (ऋषि) प्रजापति के पति (प्रजापति), मनि, ऋषिगण, अश्विन, अथवा निशाचर तुम्हीं हो ॥३०॥ जो कुछ जीव नाम से प्रसिद्ध दूसरी जानियाँ हैं सभी तुम हो अथवा बहुत अधिक वर्णन से क्या प्रयाजन? ब्रह्मा से लेकर रुक्मा (टूट) पर्यन्त दिखाई पड़ने वाले मूत, मध्य भविष्यन् सञ्चराचर जगत् तुम्हारे ही रूप हैं ॥३१॥ देव। जो तुम्हारा कूटस्थ, अवल,

१ स सर्वदेवता। २ व ० द मे श्रीनिवास। ३ स कमलावाग। ४ व ० दायक। त्व। ५ व सत्य त्व
 व ज०। ६ स जगत्प्रभो। ७ स ० ते। जगन्स्रष्टा जगदीश पु०। ८ व जगदीश। ९ स ० व व०। १० स ० स
 वन्देवता। त्व०।

ग्रहाद्यास्तत्र जानन्ति फयमन्येऽल्पमेधसः । देव शुद्धस्वभावोऽस्ति नित्यस्त्वं प्रकृतः परः ॥३३॥
अव्यक्तः शाश्वतोऽनन्तः सर्वव्यापी महेश्वरः । त्वमाकाशः परः शान्तो अजरत्वं विभुरव्ययः ॥३४॥
एवं त्वां निर्गुणं स्तोतुं कः शक्नोति निरञ्जनम् । स्तुतोऽस्ति यन्मया देव 'विकलेनाल्पचेतसा ॥
तत्सर्वं देवदेवेश क्षन्तुमर्हसि चाध्यय ॥३५॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे स्वयंभुवृषिसंवादे
भगवत्स्तवनिरूपणं नाम पञ्चपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥५५॥

अथ षट्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः
विस्तरेण विष्णुमार्कण्डेयसंवादकथनम्

ब्रह्मोवाच

'इत्थं स्तुतस्तदा तेन मार्कण्डेयेन भो द्विजा । प्रीतः प्रोवाच भगवान्मधेयगम्भीरया गिरा ॥१॥

श्रीभगवानुवाच

ब्रूहि कामं मुनिश्रेष्ठ यत्ते मनसि वर्तते । वदामि सर्वं विप्र्ये मत्तो यदभिवाञ्छसि ॥२॥

ध्रुव, पर (उत्कृष्ट निरञ्जन) रूप है उसको तो ब्रह्मा आदि भी नहीं जानते, दूसरे पाई बुद्धिवालों की तो कर्वा भी व्यर्थ है ॥३२३॥ देव ! तुम शुद्ध स्वभाव वाल, नित्य और प्रकृति स परे हो । तुम अव्यय, शाश्वत (नित्य), अनन्त, सर्वव्यापी, महेश्वर, आकाश, पर (सर्वश्रेष्ठ) और शान्त तथा अजर, व्यापक, अव्यय भी हो ॥३३-३४॥ इस प्रकार निरञ्जन, निर्गुण तुम्हारी बोन स्तुति कर सकता है, जो कुछ विकल, अल्पबुद्धि मीन तुम्हारा स्तुति की है, देवदेवेश, अव्यय !, वह तुमम क्षमा के योग्य है । अर्थात् उसका क्षमा कर दो ॥३५॥

श्रीब्रह्ममहापुराण का भगवत्स्तवन नामक पंचपनवी अध्याय समाप्त ॥५५॥

अध्याय ५६

विस्तारसे विष्णु और मार्कण्डेय का संवाद-कथन

ब्रह्मा बोले—मार्कण्डेय ऋषि द्वारा इस प्रकार स्तुति किए जान पर हे ब्राह्मण वग । अत्यन्त प्रसन्न भगवान् मेय के समान गम्भीर वाणी से बोले—॥१॥

भगवान् ने कहा—मुनिश्रेष्ठ ! अपनी मन कामना बताओ ? विप्र्ये ! मैं तुम्हारे सभी मनारण पूर्ण करूंगा ॥२॥

१ स विद्वले ० । २ व एव ।

ब्रह्मोवाच

भूत्वा स वचन विप्रा 'शिशोस्तस्य महात्मन । उवाच परमप्रीतो मुनिस्तद्गतमानसः ॥३॥

मार्कण्डेय उवाच

ज्ञातुमिच्छामि देव त्वा माया वं तव चोत्तमाम् । त्वत्प्रसादाच्च देवेश स्मृतिर्न परिहोयते ॥४॥

द्वृतमन्त शरीरेण सतत पर्य (रि) र्थतितम् । इच्छामि पुण्डरीकाक्ष ज्ञातु त्वामहमध्ययम् ॥५॥

इह भूत्वा शिशु साक्षात्किं भवानवतिष्ठते । पोत्वा जगदिदं सर्वमेतदाख्यातुमर्हसि ॥६॥

किमयं च जगत्सर्वं शरीरस्य तयाऽनघ । कियन्त च त्वया कालमिह स्येयमरिदम ॥७॥

ज्ञातुमिच्छामि देवेश ब्रूहि सर्वमशेषत । त्वत्त कमल्पप्राक्ष विस्तरेण यथातथम् ॥

महदेतदचिन्त्य च यदहं दृष्टवान्प्रभो ॥८॥

ब्रह्मोवाच

इत्युक्त स तदा तेन देवदेवो महाद्युतिः । सान्वयन्त सदा वाक्यमुवाच वदता धर ॥९॥

श्रीभगवानुवाच

कामदेवाश्च मां विप्र नहि जानन्ति तच्छत । तव प्रीत्या प्रवक्ष्यामि यथेदं वित्तुजान्महम् ॥१०॥

ब्रह्मा ने कहा—विप्रगण ! परमात्मता गिगु की एक बातें मुनिकर अत्यन्त प्रसन्न मुनि प्रभु ने तमय हाकर बाले ॥३॥

मार्कण्डेय बोले—देव ! मैं आपका और आपकी इस अथ माया का जानना चाहता हूँ । देव ! आपने प्रसाद से मेरी स्मृति उत्पन्न की है ॥४॥ पुण्डरीकाक्ष ! आपसे शरीर में प्रवेश कर मैंने अभी-अभी पून पुनः तब कुछ देखा है । अविनाशी ! अब आपकी जानना चाहता हूँ ॥५॥ आप शरीर समार को उदरस्थ कर स्वयं गिगु रूप धारण किए हुए क्या यहाँ विराजमान हैं ? यह सब कुछ आप मुझ से कहिये ॥६॥ निष्ठाप ! तिस प्रयाजन से शरीर समार तुम्हारे शरीर में समाहित हो गया है ? सन्तुष्ट ! कितने समय तक इस प्रकार तुम्हारे यहाँ निवास होगा ॥७॥ देव ! मैं यह जानने की इच्छा रखता हूँ सम्पूर्ण रूप से सब कुछ मुझ से कहें । प्रभो ! जो कुछ मैंने देखा है वह अत्यन्त अगम्य और अचिन्त्य है । कमलनयन ! मैं यथाथ रूप से तुम्हारे मुख से सब कुछ विस्तार-पूर्वक सुनना चाहता हूँ ॥८॥

ब्रह्मा ने कहा—इस प्रकार मार्कण्डेय मुनि ने परमात्म तेजःमय भगवान् से कहा । तत्पश्चात् परमवार्मी मुनि को आश्वासन देन हुए भगवान् बाले—॥९॥

भगवान् बोले—विप्र ! देवता भी मुझसे यथाथ और पूर्ण रूप से नहीं जानते हैं । किन्तु तुम्हारे प्रस

पितृभक्तोऽसि विप्रप्रे'मामेव शरण गत । ततो दृष्टोऽस्मिते साक्षाद्ब्रह्मचर्यं च ते महत् ॥११॥
 आपो नारा इति पुरा सनात्कर्म कृत मया । तेन नारायणोऽस्म्युक्तो मम' तास्त्वयन सदा ॥१२॥
 अहं नारायणो नाम प्रभव' शाश्वतोऽव्यय । विधाता सर्वभूताना सहर्ता च द्विजोत्तम ॥१३॥
 अहं विष्णुरहं ब्रह्मा शश्वदवापि 'सुराधिप । अहं वैश्रवणो राजा यम' प्रेताधिपस्तथा ॥१४॥
 अहं शिवश्च सोमश्च पश्यपश्च' प्रजापति । अहं धाता विधाता च यज्ञश्चाहं द्विजोत्तम ॥१५॥
 अग्निरास्य क्षिति पादो च द्वादित्यो च लोचने । 'द्यौर्मूर्धा' खदिश श्रोत्रेतयाऽऽप स्वेदसभवा ॥१६॥
 सदिश च नभ कायो वायुमनसि मे स्थित' । मया 'अनुगतं रिष्ट' बहुभिश्चाऽऽप्तदक्षिणं ॥१७॥
 यजते वेदविदुषो भा देवयजने स्थितम् । पृथिव्याक्षत्रियेन्द्राश्च पार्थिव स्वर्गकाङ्क्षिण ॥१८॥
 यजन्ते वा तथा वैश्या स्वर्गलोकजिगीषव । चतु समुद्रपयन्ता मेहमन्दरभूषणम् ॥१९॥
 गोषो 'भूत्वाऽहमेको हि धारयामि वसुधराम्' । वाराह रूपमास्याय ममेव जगती पुरा ॥२०॥
 मर्जमाना जले विप्रवीर्येणास्मि समुद्रूता । अग्निश्च घाट्यो विप्र भूत्वाऽहं द्विजसत्तम ॥२१॥
 विबाम्यप समाविष्टस्ताश्चैव विसृजाम्यहम् । ब्रह्म षण्ण भुजो क्षत्रमूरु मे सश्रिता विदा ॥२२॥

ब्रह्मोवाच

श्रुत्वा स वचनं विप्राः^१ शिशोस्तस्य महात्मनः । उवाच परमप्रीतो मुनिस्तद्गतमानसः ॥३॥

मार्कण्डेय उवाच

ज्ञातुमिच्छामि देव त्वा मायां वै तव चोत्तमाम् । त्वत्प्रसादाच्च देवेश स्मृतिर्न परिहीयते ॥४॥
 द्रुतमन्तः शरीरेण सततं पर्यं (रि) वर्तितम् । इच्छामि पुण्डरीकाक्ष ज्ञातुं त्वामहमव्ययम् ॥५॥
 इह भूत्वा शिशुः साक्षात्किं भवानवतिष्ठते । पीत्वा जगदिवं सर्वमेतदाह्यातुमर्हसि ॥६॥
 किमर्थं च जगत्सर्वं शरीरस्थं तयाऽनघ । कियन्तं च त्वया कालमिह स्थेयमरिदम ॥७॥
 ज्ञातुमिच्छामि देवेश ब्रूहि सर्वमशेषतः । त्वत्तः कमलपत्राक्ष विस्तरेण यथातथम् ॥
 महवैतदचिन्त्यं च यदहं दृष्टवान्प्रभो ॥८॥

ब्रह्मोवाच

इत्युक्तः स तदा तेन देवदेवो महाद्युतिः^२ । सान्त्वयन्त तदा वाक्यमुवाच वदता वरः ॥९॥

श्रीभगवानुवाच

कामं देवाश्च मा विप्र नहि जानन्ति तत्त्वतः । तव प्रीत्या प्रवक्ष्यामि यथेदं विसृजाम्यहम् ॥१०॥

ब्रह्मा ने कहा—विप्रगण^१ परमात्मनः शिशु की एसी बातें सुनकर अत्यन्त प्रसन्न मुनि प्रभु मे तन्मय होकर बाले ॥३॥

मार्कण्डेय बोले—देव ! मैं आपका और आपकी इस अज्ञेय माया का जानना चाहता हूँ । देवेश ! आपने प्रसाद से मेरी स्मृति लुप्त नहीं हुई है ॥४॥ पुण्डरीकाक्ष ! आपसे शरीर में प्रवेश कर मैंने अमी-अमी धूम-धूमकर सब कुछ देखा है । अविनाशी ! अब आपकी जानना चाहता हूँ ॥५॥ आप सारे ससार को उदरस्थ कर स्वयं शिशु रूप धारण किए हुए क्या यहाँ विराजमान हैं ? यह सब कुछ आप मुझसे कहिये ॥६॥ निष्पाप ! जिस प्रयोजन से सारा ससार तुम्हारे शरीर में समाहित हो गया है ? शत्रुघ्नन ! जिसने समस्त तक इस प्रकार तुम्हारा यहाँ निवास जगा ॥७॥ देवस्य ! मैं यह जानने की इच्छा रखता हूँ, सम्पूर्ण रूप से सब कुछ मुझसे कहें । प्रभो ! जो कुछ मैंने देखा है वह अत्यन्त अगम्य और अचिन्त्य है । ब्रह्मचनयन^२ ! मैं यथाय रूप से तुम्हारे मुख से सब कुछ विस्तार-पूर्वक सुनना चाहता हूँ ॥८॥

ब्रह्मा ने कहा—इस प्रकार मार्कण्डेय मुनि ने परमदेव से जगन्मय भगवान् से कहा । तदनन्तर परमवामी मुनि को आश्वासन देते हुए भगवान् बाले—॥९॥

भगवान् बोले—विप्र ! देवता भी मुझसे, यथाय और पूज्य रूप से नहीं जानते हैं । विन्तु तुम्हारे प्रेम

पितृभक्तोऽसि विप्रर्षे'मामेव शरणं गतः। ततोदृष्टोऽस्मिते साक्षाद्ब्रह्मचर्यं च ते महत् ॥११॥
 आपो नारा इति पुरा संज्ञाकर्म'कृतं मया। तेन नारायणोऽस्म्युक्तो मम' तास्त्वयन् सदा ॥१२॥
 अहं नारायणो नाम प्रभवः शाश्वतोऽप्ययः। विधाता सर्वभूतानां संहर्ता च द्विजोत्तम ॥१३॥
 अहं विष्णुरहं ब्रह्मा शक्रश्चापि 'सुराधिपः। अहं वैश्ववणो राजा यमः 'प्रेताधिपस्तथा ॥१४॥
 अहं शिवश्च सोमश्च कश्यपश्च'प्रजापतिः। अहं घाता विधाता च यज्ञश्चाहं द्विजोत्तम ॥१५॥
 अग्निरास्यं क्षितिः पादो चन्द्रादित्यो च लोचने। 'द्यौर्मूर्धा खं दिशः श्रोत्रे तथाऽऽपः स्वदेतं भवाः ॥१६॥
 सदृशं च नभः कायो वायुर्मनसि मे स्थितः। मया 'ऋतुशतैरिष्टं' बहुभिश्चाऽऽप्तदक्षिणः ॥१७॥
 यजन्ते वेदविदुषो मा देवयजने स्थितम्। पृथिव्यां क्षत्रियेन्द्राश्च पायिवाः स्वर्गकाङ्क्षिणः ॥१८॥
 यजन्ते मां तथा वैश्याः स्वर्गलोकजिगीषवः। चतुःसमुद्रपर्यन्तां मेरुमन्दरभूषणाम् ॥१९॥
 यज्ञो 'भूत्वाऽहमेको हि धारयामि वसुंधराम्'। वारहं रूपमास्थाय ममेषं जगती पुरा ॥२०॥
 मज्जमाना जले विप्रवीर्येणास्मि समुद्धृता। अग्निश्च वाड्यो विप्र भूत्वाऽहं द्विजसत्तम ॥२१॥
 पिबाम्यपः समाविष्टस्ताश्चैव विसृजाम्यहम्। ब्रह्म वक्त्रं भुजौ क्षत्रमूरु मे संभिता विशाः ॥२२॥

यस्य जिस प्रकार इस जगत् का वितर्जन करता हूँ कहूँगा ॥१०॥ विप्रर्षे। तुम पितृ-भक्त हो, मेरी ही शरण मे
 थाए हो, इसके बाद मैंने स्वयं तुम्हारे महान् ब्रह्मचर्य व्रत को देला है ॥११॥ आदि काल मे मैंने जल का नाद, यह
 नामकरण किया है। मेरा जल ही सर्वदा निवास-स्थान है, इसलिए मैं नारायण कहलाता हूँ ॥१२॥ द्विजोत्तम। मैं
 नारायण नाम से प्रसिद्ध आधिकारण, नित्य, अविनाशी, सभी भूतों का विधाता और विनाशकर्ता हूँ ॥१३॥ मैं ही
 विष्णु, ब्रह्मा और देवराज इन्द्र हूँ। मैं ही वैश्रवण नामक राजा तथा प्रेतपति यम हूँ ॥१४॥ मेरा ही नाम शिव
 सोम और प्रजापति कश्यप है। द्विजवर्य। मैं ही सब का स्रष्टा, पालक तथा यज्ञ भी हूँ ॥१५॥ मेरा मुख अग्नि,
 शरण पृथ्वी, नेत्र चन्द्र और मूय, द्यौ (स्वर्ग) मूर्धा, आकाश और दिशाये मेरे कर्ण हैं ॥१६॥ और जल मेरे पसीने
 शरण पृथ्वी, नेत्र चन्द्र और मूय, द्यौ (स्वर्ग) मूर्धा, आकाश और दिशाये मेरे कर्ण हैं ॥१६॥ और जल मेरे पसीने
 से उत्पन्न है। सम्पूर्ण दिशाया सहित नभ मेरा घरीर है, वायु मेरे मन मे स्थित है। बहुसंख्यक मरुपूर दक्षिणा
 वाले सैकड़ों यज्ञा मे मैं पूजित हूँ ॥१७॥ देव-यज्ञ मे प्रतिष्ठित मेरा ही पूजन वेदज्ञ लोग किया करते हैं। इस पृथ्वी
 पर स्वर्गलोक के इच्छुक बड़े-बड़े प्रतापी सम्राट् तथा स्वर्ग-लभना वाले वैश्य (धनिज वर्ग) मेरी ही पूजा करते
 हैं ॥१८॥ मैं ही अकेला शेष रूप होकर चारों समुद्र तक विस्तीर्ण, मेरु, मन्दर आदि पर्वता से सुशामित, गुरु
 मार वालों वसुन्धरा को धारण करता हूँ ॥१९॥ प्राचीन काल मे वाराह रूप धारण कर मैंने ही जल मे डूबी
 हुई पृथ्वी का अपने पराक्रम से उद्धार किया था। द्विजवर। विप्र। बड़वानल हुंकर मैं ही सम्पूर्ण जल को पी
 जाता हूँ और इस प्रकार अपने उदर मे जल का समावेश कर पुनः उसका छोड़ भी देता हूँ ॥२०-२१॥ ब्राह्मण
 मेरा मुख, क्षत्रिय मेरी भुजायें और वैश्य मेरे ऊरु के आश्रित हैं। दानित और त्रम (धेनी) के रूप से गूढ़ मेरे

१ व स ० पं मार्च व ०। २ व ० मता दय ०। ३ व द्विजोत्तम ०। ४ व प्रेतपतिस्त ०। ५ व द्यौर्मूर्धा व।

६ व सदा। ७ व ० पट् पयावतवर ०। ८ व ० त्वा महीमेको वा ०। ९ व महामुने।

पादो शूद्रा भवन्तीमे विक्रमेण क्रमेण च। ऋग्वेदः सामवेदश्च यजुर्वेदस्तथैव च ॥२३॥
 मत्तः प्रादुर्भवत्येते मामेव प्रविशन्ति च। यतयः शान्तिपरमा यतात्मानो युभुत्सवः ॥२४॥
 कामक्रोधद्वेषमुक्ता नि सङ्गा धीतकल्मषाः। सत्त्वस्था निरहंकारा नित्यमध्यात्मकोविदाः ॥२५॥
 मामेव सततं विप्राश्चिक्वन्त उपसते। अहं संवर्तको ज्योतिरहं संवर्तकोऽनलः ॥२६॥
 अहं संवर्तकः सूर्यस्त्वहं संवर्तकोऽनिलः। सारास्पाणि दृश्यन्ते धान्येतानि नभस्तले ॥२७॥
 मम वै रोमकूपाणि विद्धि त्वं द्विजसत्तम। रत्नाकरा समुद्राश्च सर्व एव चतुर्दिशः ॥२८॥
 चसतं शयनं चैव नित्यं चैव विद्धि मे। कामः क्रोधश्च हर्षश्च भयं मोहस्तथैव च ॥२९॥
 ममेव विद्धि स्पाणि सर्वाण्येतानि सत्तम। प्राप्नुवन्ति नरा विप्र यत्कृत्वा कर्म शोभनम् ॥३०॥
 सत्यं दानं तपश्चोद्यमहिंसां सर्वजन्तुषु। मद्दिधानेन विहिता मम देहविवारिणः ॥३१॥
 मयाऽभिभूतविज्ञानाश्चेष्टयन्ति न कामतः। सम्पादयेदमधीयाना यजन्तो विविधमखं ॥३२॥
 'शान्तात्मानो जितक्रोधाः प्राप्नुवन्ति द्विजतयः। प्राप्तुं शक्यो न चैवाहं नरेर्दुष्टतर्जनिः ॥३३॥
 लोभाभिभूतं कृपणैरनायैरकृतारमभिः। तस्मां महाफलं विद्धि नराणां भावितात्मनान् ॥३४॥
 सुदुष्प्रापं विमूढानां मां कुपोनियेषिणाम्। यदा यदा हि धर्मस्थलानि भवन्ति सत्तम ॥३५॥

ब्रह्मण हैं। ऋक्, यजुस्, साम और अथर्वण ये चारों वेद मुझमें उत्पन्न होते पुन मुझमें प्रविष्ट हैं जाते हैं ॥२२-२३॥ शान्ति के धाम आसक्त, मर्मज्ञ, विज्ञान (ब्रह्म ज्ञान के दृष्टिक) यही एव काम, क्रोध, द्वेष से दूर रहने वाले, अनासक्त, निष्पाप, सार्विक, अहंकार-रहित (परम विनित) सर्वदा अध्यात्म (ज्ञान) के ही उपासक ब्राह्मण सर्वदा मेरा ही किन्तन और मेरी ही उपासना किया करते हैं ॥२४-२५॥ आकाश मंडल में तारागण के रूप में दिखायी पड़ने वाले सवर्तक (प्रलयकारी) ज्योति, सवर्तक अग्नि, सवर्तक सूर्य और सवर्तक वायु मैं ही हूँ। द्विजवर्ग। इहे मेरे ही। रोग छिद्र जाते। चारों दिशाओं में फैले रहने के साक्षर इन समुद्रों का ही मेरा वस्त्र, दाम्ना और घा आता ॥२६-२८॥ काम, क्रोध, हर्ष, भय, मोह, इन सब को भी मुनिघेष्ट। मेरे ही रूप आती ॥२९॥ विप्र। जिन धाम ज्यों के अनुष्ठान में अनुप्य मुझे प्राप्त करते हैं वे भी मेरे ही रूप हैं। सत्य, दान, उग्र तपस्या, सब प्राणिमा में अहिमा, क, मावना करने वाले अनुप्य मेरे ही विधान में रचे गए हैं और मेरे ही शरीर में विवरण करने हैं ॥३०-३१॥ व मेरे द्वारा अभिमूर्त विज्ञान वाले होने के कारण ऐसी चेष्टा करते हैं न कि अपनी इच्छा से। सम्पन्न रूप में वेद का अध्ययन करने वाले, विविध यज्ञ से यज्ञ करने वाले, शान्त चित्त वाले, काम का अपने वस में ब्रह्म वा न द्विजानि ही मुझे प्राप्त करते हैं ॥३२॥ बुरे काम करने वाले, लोभ, कृपण, अनाय और स्वेच्छा-चारी, अना क लिए मैं सर्वथा अप्राप्य हूँ ॥३३॥ शूद्र हृदय का अनुप्य के जीवन का (प्राप्य) महापन्न मुझसे आता। विमूढ़ कृप - निषेध (असत्यपण करने वाले) अती म मैं अत्यन्त दुष्प्राप्य हूँ ॥३४॥ हे सज्जनपत्नी! अब-अब धर्म की हानि, और अधर्म की वृद्धि होती है नव-नव में अवर्तन होता है ॥३५॥ जब हिमा में लित

अन्युत्थानमधर्मस्य तदाऽऽत्मानं सृजाम्यहम् । दत्त्वा हिसानुरक्ताश्च अवध्याः सुरसत्तमम् ॥३६॥
राक्षसाश्चापि लोकेऽस्मिन्त्यदोत्पत्स्यन्ति दारुणाः । तदाऽहं सप्तसूयामि गृहेषु पुण्यधर्माणाम् ॥३७॥
प्रविष्टो मानुषं देहं सर्वं प्रशमयाम्यहम् । सृष्ट्वा देवमनुष्याश्च गन्धर्वोरगराक्षसान् ॥३८॥
स्यावराणि च भूतानि संहारम्यात्ममायया । कर्मकाले पुनर्वेहमनुदित्य सृजाम्यहम् ॥३९॥
आविश्य मानुषं देहं मर्यादाबन्धकारणात् । श्वेतः कृतयुगे धर्मः श्यामश्चेतायुगे मम ॥४०॥
रक्तो द्वापरमासाद्य कृष्णः कलियुगे तथा । त्रयो भागा ह्यधर्मस्य तस्मिन्काले भवन्ति च ॥४१॥
अन्तकाले च संप्राप्ते कालो भूत्वाऽतिदारुणः । त्रैलोक्यं नाशयाम्येकः सर्वं स्यावरजङ्गमम् ॥४२॥
अहं त्रिधर्मा विद्वात्मा सर्वलोकासुखावहः । अभिन्नः सर्वगोऽनन्तो हृषीकेश उरुक्म ॥४३॥
कालचक्रं नयाम्येको ब्रह्मरूपं सर्ववत्सत् । शसनं सर्वभूतानां सर्वभूतवृत्तोद्यमम् ॥४४॥
एवं प्रणिहितः सम्यग्ममाऽऽत्मा मुनिसत्तम । सर्वभूतेषु विप्रेन्द्र न च मां वेति कश्चन ॥४५॥
सर्वलोके च मां भक्ताः पूजयन्ति च सर्वशः । यच्च किञ्चित्त्वया प्राप्तं मयि बलेशात्मकं द्विज ॥४६॥
सुखोदयाय तत्सर्वं ध्येयते य तवानघ । यच्च किञ्चित्त्वया लोके दृष्टं स्यावरजङ्गमम् ॥४७॥
विहितः सर्वं एवासौ मयाऽऽत्मा भूतभावनः । अहं नारायणो नाम शङ्खचक्रगदाधरः ॥४८॥

रहने वाले (हितक) दैत्य देवताओं से न मारे जा सकें और इस लोक में धारण, घोरे राक्षस उत्पन्न होंगे तब मैं पुण्य कर्म करने वाला, सज्जन के घर में जन्म लूँगा। ॥३६-३७॥ इस प्रकार मैं अनृत्य-देह में प्रविष्ट होकर सब कुछ गान्धर्वगतां देव, भक्त्युत्पन्न, गन्धर्व नाग तथा राक्षस स्थावर तथा समी मृता (प्राणिमा) का उत्पन्न कर अपनी भाया में मैं इनका पुनः सहारा भी करता हूँ। काम के समय अर्थात् काम की आवश्यकता पड़ने पर मैं पुनः विचार कर शरीर धारण करता हूँ ॥३८-३९॥ इस प्रकार लोक भ्रमार्थ की रक्षा के लिए भाग्य धारण करता हूँ ॥४०॥ उस काल में स्वयं, त्रेता में इषाम, द्वापर आने पर रुक्म और बलिद्युम मे वृष्णवर्ण का स्वरूप धारण करता हूँ ॥४१॥ उस काल में (चलित) अवर्त्म के भी तीन भाग हो जाते हैं। प्रलय काल आ जाने पर मैं अतिमयकर बाल रूप हो कर प्रवेष्टे हो स्थावर-जगद्भास्वर त्रिलोकी का भाग भरता हूँ ॥४२-४३॥ मैं विश्वकर्मा (सरव, राज, तम गुण वाला), विश्वात्म (व्यापक), सम्पूर्ण लोको का मुख देने वाला, अग्नि (एक), सर्वत्र, अनन्त, हृदयेन्द्रिय (इन्द्रिया का स्वामी) उस यम (शक्तिशाली विष्णु) हूँ ॥४४॥ अबेला ही कालचक्र का संचालन करता रहता हूँ। वह सम्पूर्ण मृता को घूर्णन करने वाला, अखिल लोक के कल्याणार्थ चलचक्र चकारण भी मेरा ही है ॥४५॥ मुनिवन्द्य। सभी पदार्थों में मेरा वर्तन वाला, अखिल लोक के कल्याणार्थ चलचक्र चकारण भी मेरा ही है ॥४६॥ सम्पूर्ण भूवन में मननन आत्मा सर्वात्मि व्याप्त है फिर भी हे विप्रन्द्र। मुझ बाई भी नहीं जान पाता ॥४७॥ मय ही मूल भावन (उत्पादन) रूप सबत्र व्याप्त है। मैं दास-वत्त-भद्रा-धारी नारायण हूँ ॥४८-४९॥ विप्रर्षे!

गुणानां विप्रर्षे सहस्रं परिवर्तते । तावत्स्वपिति विश्वात्मा सर्वविश्वानि मोहयन् ॥४९॥
 सर्वमहं कालमिहाऽऽसे मुनिसत्तम । अशिशुः शिशुरूपेण यावद्ब्रह्मा न बुध्यते ॥५०॥
 च दत्तो विप्रन्द्र वरस्ते ब्रह्मरूपिणा । असकृत्परितुष्टेन विप्रपिगणपूजित ॥५१॥
 'कार्णवं कृत्वा नष्टे स्यावरज्ज्जमे । निर्गतोऽसि मयाऽऽज्ञातस्ततस्ते दशितं जगत् ॥५२॥
 न्तरं शरीरस्य प्रविष्टोऽसि यदा मम । दृष्ट्वा लोकं समस्तं हि विस्मितो नावबुध्यसे ॥५३॥
 'सि चक्राद्विप्रर्षे द्रुतं नि सारितो मया' । आख्यातस्ते मया चाऽऽज्ञातदुर्ज्ञेयो' हि सुरासुरः ॥५४॥
 'स भगवान्ब्रह्मा न बुध्येत महातपाः । तावत्स्वमिह विप्रर्षे विश्वधश्चर वं सुखम् ॥५५॥
 विबुद्धे तस्मिन्नु सर्वलोकपितामहे । एको भूतानि लक्षयामि शरीराणि द्विजोत्तम ॥५६॥
 तान् पृथिवीं ज्योतिर्वायुः सलिलमेव च । लोके यच्च भवेत्किञ्चिदिह स्यावरज्ज्जमम् ॥५७॥

ब्रह्मोवाच

वृत्त्वा तदा विप्राः पुनस्तं प्राह माधव । पूर्णं युगसहस्रं तु भेषगम्भीरनित्यनः ॥५८॥

श्रीभगवानुवाच

बृहि यदर्थं मां स्तुतवान्परमापत् । धरं दूणीष्व यच्छ्रेष्ठं ददामि नचिरादहम् ॥५९॥

तक चारा युग एक हजार बार व्यतीत होते हैं तब तक मैं विश्व को अपने वश में कर सीना रहता हूँ ॥४९॥
 श्रेष्ठ । जब तक ब्रह्मा उत्पन्न नहीं होते तब तक बालक न होते हुए भी मैं बाल रूप में यहाँ विराजमान
 ॥५०॥ विप्रेन्द्र । विप्रपिगणा से पूजित मुनि । ब्रह्मा स्वरूप मैंने अत्यन्त प्रसन्न होकर तुमको यह वर
 'है । स्यावर-जगम मैं नष्ट हो जाने पर जब सारी पृथ्वी समभ्रम हो गई तब तुम मेरी आज्ञा से निर्गत हुए
 जब तुम मेरे शरीर के भीतर प्रविष्ट हुए तब तुमने सारे विश्व को देखा, समस्त ब्रह्माण्ड को देखकर भी
 आश्चर्यचकित हो कुछ जान न पाए ॥५१-५३॥ तदनन्तर विप्रर्षे । मेरे ही द्वारा तुम मुख से शीघ्र निकाले
 मुद्र, असुरा के द्वारा दुष्ट से जानने योग्य अपने स्वरूप को मैंने तुमसे कहा है ॥५४॥ इसलिए यावत् काल
 त्र महातपस्वी ब्रह्मा प्रकट नहीं होते तब तक हे विप्रर्षे । तुम यहाँ सुखपूर्वक विराज्य हो, स्वच्छा से विचरण
 ॥५५॥ तदनन्तर सबलोक-पितामह ब्रह्मा ने प्रकट हो जाने पर द्विजोत्तम । अरे ला मैं सम्पूर्ण भूता की
 'कर्मणा ॥५६॥ इस प्रकार युग-सहस्र बीत जाने पर आकाश, पृथ्वी, वायु, तेज जग अथवा इस लोक में
 कुछ स्यावर जगम रहा, तब मैं निमेषि बर्णना ॥५७॥

ब्रह्मा बोले—इस प्रकार कहने के बाद एक सहस्र युग बीत जाने पर फिर मध के समान गम्भीर वाणी वाले
 तब ने मार्गण्डेय से कहा—॥५८॥ हे मुने । परमार्थ रूप से जिस लिए तमने मेरी स्तुति की है—बड़ी,

आयुष्मानसि देवाना मद्भवतोऽसि दृढव्रत । तेन त्वमसि विप्रेन्द्र पुनर्दीर्घायुराप्नुहि ॥६०॥

ब्रह्मोवाच

श्रुत्वा वाणीं शुभा तस्य विलोक्य स तदा पुन । मूर्ध्ना निपत्य सहसा प्रणम्य पुनरश्वीत् ॥६१॥

मार्कण्डेय उवाच

दृष्ट परं हि देवेश तव रूप द्विजोत्तम । मोहोऽयं विगत सत्य त्वयि दृष्टे तु मे हरे ॥६२॥
एवमेवमह नाथ इच्छेय त्वत्प्रसादत । लोकानां च हितार्थाय नानाभावप्रशान्तये ॥६३॥
शिवभागवतानां च वादार्थप्रतिषेधकम् । अस्मिन्क्षेत्रवरे पुण्ये निर्मले पुद्गलोत्तमे ॥६४॥
शिवस्याऽऽयतनं देव करोमि परम महत् । प्रतिष्ठेयं तथा तत्र तव स्थाने च शकरम् ॥६५॥
ततो ज्ञास्यन्ति लोकेऽस्मिन्नेकमूर्तीं हरीश्वरी । प्रत्युवाच जगन्नाथ स पुनरत महामुनिम् ॥६६॥

श्रीभगवानुवाच

यदेतत्परमं देव कारणं भुवनेश्वरम् । लिङ्गमाराधनार्थाय नानाभावप्रशान्तये ॥६७॥
ममाऽऽदिष्टेन विप्रेन्द्र कुक्षीं शिवात्म्यम् । तत्प्रभावाच्छिवलोके तिष्ठत्वं च तथाऽऽयम् ॥६८॥
शिवे सरथापिते विप्रं मम सरथापनं भवेत् । नाऽऽवयोरन्तरं किञ्चिदेकभावो द्विधा कृतो ॥६९॥

वह अष्टम भाग, मैं तुम्हें शायद ही प्रदान करूँगा। तुम देवताओं से भी अधिक दीर्घायु ही मेरे भक्त हो
दृष्टग्रीही। इसलिए विप्रवय! तुम पुन दीर्घायु प्राप्त कर ॥५९-६०॥

ब्रह्मा ने कहा—मगवान की इस मंगलभरी वाणी को सुनकर पुन प्रसन्नता से उनकी ओर देख कर
मुनि ने करुणा पर गिर झुका कर प्रणाम करते हुए कहा—॥६१॥

मार्कण्डेय बोले—स्वर्ग! द्विजसम! मैंने तुम्हारा उत्कृष्ट स्वरूप देखा। हरे! निश्चय ही तुम्हारे
रूप-दर्शन से मेरा आ त्रिज मोह नष्ट हो गया। तुम्हारे प्रसाद से नाथ! मैं ऐसा चाहता हूँ कि लक्ष हित की
दृष्टि से भिन्न भिन्न भावनाओं (साम्प्रदायिकता) का दानि मे लिए जिससे कि शिव और मागवतो की प्रतिद्वन्द्विता
मिट जाय इस पवित्र निर्मल अष्ट पुरष सभ सत्र मे देव! बृहत् शिव मन्दिर का निर्माण करे और वही तुम्हारे
स्थान पर शिव की प्रतिष्ठा करे। ऐसा करने से उपरान्त इस सत्सार म लोग समझेंगे कि शिव और हरि (विष्णु)
एक रूप ही हैं। इसी बातें मुन कर जगन्नाथ ने महामुनि से पुन कहा ॥६२-६६॥

श्री भगवान् बोले—विप्रेन्द्र! जो ये उत्कृष्ट कारण स्वरूप भुवनेश्वर महादेव हैं उनके लिए की आराधना
का निमित्त विभिन्न भावा की प्रति के लिए मेरे आदेश से शीघ्र ही शिव मन्दिर का निर्माण करो ॥६७३॥ इस
मुक्ति के प्रसाद से तुम शिव लोक में अक्षय रूप से निवास कर लो। विप्र! शिव की स्थापना में मरी ही स्थापना
होगी हम दोनों में कोई अन्तर नहीं मान्ना दो रूपों में विभक्त होते हुए भी हम लोग मयावत एक

यो रुद्रः स स्वयं विष्णुर्गो विष्णुः स प्रह्लादवरः । उभयोरन्तरं नास्ति पचनाकाशयोरिव ॥ ७० ॥
 मोहितो नाभिजानाति य एव गरुडध्वजः । वृषध्वजः स एवेति त्रिपुरघ्नं त्रिलोचनम् ॥ ७१ ॥
 तव नामाङ्कितं तस्मात्कुरु विप्र शिवालयम् । उत्तरे देवदेवस्य कुरु तीर्थं सुशोभनम् ॥ ७२ ॥
 मार्कण्डेयहृदो नाम नरलोकेषु विद्युतः । भविष्यति द्विजश्रेष्ठ सर्वपापप्रणाशनः ॥ ७३ ॥

ब्रह्मोवाच

इत्युक्त्वा स तदा देवस्तत्रैवान्तरधीयत । मार्कण्डेयं मुनिश्रेष्ठाः सर्वव्यापी जनार्दनः ॥ ७४ ॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे स्वयंभुवपिसंवादे मार्कण्डेयस्य
 श्रीभगवद्दर्शनं नाम षट्षञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५६ ॥

अथ सप्तञ्चाशत्तमोऽध्यायः

पञ्चतीर्थविधिवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

अतः परं प्रवक्ष्यामि पञ्चतीर्थविधिं द्विजा । यत्फलं स्नानदानेन दत्तप्रेक्षणेन च ॥ १ ॥

ही हैं ॥ ६८-६९ ॥ ज। रुद्र वही स्वयं विष्णु और जो विष्णु वही स्वयं प्रह्लादवर (शिव) हैं ॥ दाना में पवन और
 आकाश में समान वृष्ट भी अन्तर नहीं है ॥ ७० ॥ भाषा-मूत्र व्यक्ति नहीं जानता है कि जो गरुडध्वज है वही त्रिपुर नाशक,
 त्रिगबन वृषध्वज (शिव) हैं ॥ ७१ ॥ इति विप्र । देव देव शिव ने मन्दिर में उत्तर भाग में अपने नाम में अर्पित
 एक सुन्दर तीर्थ भी बनवाया ॥ ७२ ॥ हे द्विजश्रेष्ठ । इस लोक में सब पापों को दूर करने वाला वह तीर्थ 'मार्कण्डेयहृद'
 नाम से विख्यात हुआ ॥ ७३ ॥

ब्रह्मा ने कहा—एसी बातें बह्वर हेमनिबर । सर्वव्यापी जनार्दन भगवान् वही अन्तर्धान हो गए ॥ ७४ ॥

श्री ब्रह्मपुराण में मार्कण्डेय ऋषि का श्रीभगवद्दर्शन नामक छण्ठवाँ अध्याय समाप्त ॥ ५६ ॥

अध्याय ५७

पञ्चतीर्थ की विधि का वर्णन

यह्या ने कहा—द्विजान । अब मैं पञ्चतीर्थ करने की विधि, उन तीर्थों में स्नान, दान और देव दर्शन का

मार्कण्डेयहृदं गत्वा नरदक्षोद्वेदमुखः शुचिः। निमज्जेतत्र चारांस्त्रीनिभं मन्त्रमुदीरयेत्॥२॥
 संसारसागरे भग्नं पापप्रसक्तमचेतनम्। त्राहि मां भगनेत्रघ्नं त्रिपुरारे नमोऽस्तु ते॥३॥
 नमः शिवाय शान्ताय सर्वपापहाराय च। स्नानं करोमि देवेश मम नश्यतु पातकम्॥४॥
 नाभिमाने जले स्नात्वा विधिवद्देवता ऋषोन्। तिलोदकेन मतिमाग्नितुङ्घान्घ्रायश्च तपयेत्॥५॥
 स्नात्वा तथैव चाञ्जल्यम् ततो गच्छेच्छिवालयम्। प्रविश्य देवतागारं कृत्वा तं त्रिः प्रदक्षिणम्॥६॥
 मूलमन्त्रेण संपूज्य मार्कण्डेयस्य चेदवरम्। अधोरेण च भो विप्राः प्रणिपत्य प्रसादयेत्॥७॥
 त्रिलोचन नमस्तेऽस्तु नमस्ते दक्षिभूषण। त्राहि मां त्वं विरूपाक्ष महादेव नमोऽस्तु ते॥८॥
 मार्कण्डेयहृदं त्वेवं स्नात्वा वृष्ट्वा च शंकरम्। दशानामश्वमेधानां फलं प्राप्नोति मानवः॥९॥
 पापं सर्वविनिर्मुक्तः शिवलोकं स गच्छति। तत्र भुक्त्वा वरान्भोगान्यावदाभूतसंलब्धम्॥१०॥
 इहलोकं समासाद्य भवेद्विप्रो बहुधुतः। शाकरं योगमासाद्य ततो मोक्षमवाप्नुयात्॥११॥
 कल्पवृक्षं ततो गत्वा कृत्वा तं त्रिः प्रदक्षिणम्। पूजयेत्परया भक्त्या मन्त्रेणानेन तं वटम्॥१२॥
 ओं नमो व्यक्तहृषाय महाप्रलयकारिणे। महद्रसोपविष्टाय स्वप्रोषाय नमोऽस्तु ते॥१३॥
 अमरस्त्वं सदा कल्पे हरेश्चाज्यतनं वट। न्यग्रोध हर मे पापं कल्पवृक्ष नमोऽस्तु ते॥१४॥

फल वतला रहा है ॥१॥ मार्कण्डेय हृद म उत्तराभिमुख हाकर, ध्वनि भाव से तीन बार डूबकी लगा कर स्नान करने के बाद निम्नांकित मन्त्र का उच्चारण करना चाहिए ॥२॥ हे भगनेत्रघ्न, त्रिपुरारे, तुम्हें नमस्कार है। मैं महासागर में निमज्जित पापलिप्त और भ्रान्त शून्य हूँ—मेरी रक्षा करो ॥३॥ पापनाशन, शान्त शिव को नमस्कार है। हे देवेश। मैं स्नान कर रहा हूँ, मेरे समीप, को अंग नष्ट करें ॥४॥ इस प्रकार नामि पद्यस्त जल में स्नान कर बुद्धिमान् व्यक्ति तिल युक्त जल से देवता, ऋषि, पितरा आदि का यथाविधि तर्पण करे ॥५॥ फिर आचमन करने के बाद शिवालय में जाकर तीन बार प्रदक्षिणा कर मूल मंत्र से माण्डूक्य ऋषि से सहित शिव की पूजा करे। तदनन्तर शिर शुका कर इस अनालिखित अवोर मंत्र समुपान् शिव की स्तुति कर— हे त्रिलोचन। हे चन्द्रभूषण। अथवा, मेरा नमस्कार है, हे विरूपाक्ष। तुम मेरी रक्षा कर, महादेव। तुम्हें नमस्कार है ॥६-८॥ इस प्रकार मार्कण्डेय हृद में स्नान और शंकर का दर्शन करने से अनूज्य देव अश्वमेध यज्ञ का फल प्राप्त करता है ॥९॥ वह सब पापों से निर्मुक्त हो कर शिवलाभ में जाता है और वहाँ कल्पान्त तक दिव्य भागा का भोग करता है ॥१०॥ भोग समाप्त होने पर मूल्यूलक में बहुव्रत, विद्वान्, ब्राह्मण के रूप में उत्पन्न होता है और शाकर पौन का अभ्यास कर मोक्ष पद प्राप्त करता है ॥११॥ स्नान पूजन कर चुनने के बाद कल्पवृक्ष (वट वृक्ष) के पास जाकर उसकी तीन परित्रसा कर अलग व्यक्ति भावना से निम्नांकित मन्त्र से वट की पूजा करे। चाहिए ॥१२॥ मन्त्र—‘ओ, महाप्रलयकर, प्रलय रूप वट वृक्ष को नमस्कार है महान् रम (अमृत) पर सर्वदा स्थित (अमृत पान करने वाले) न्यग्रोध (वट) की नमस्कार है ॥१३॥ वट। तुम दाशवत ह। तुम कल्पान् में भी अमर हो,

भवत्या प्रदक्षिणं कृत्वा नत्वा कल्पवटं नरः । सहसा भुच्यते पापाज्जीर्णत्वञ्च द्वोरयः ॥१५॥
 छायां तस्य समाक्रम्य कल्पवृक्षस्य भो द्विजः । ब्रह्महत्यां नरो जह्यात्पापेष्वायेषु का कथा ॥१६॥
 दृष्ट्वा कृष्णान्नासंभूतं ब्रह्मतेजोमयं परम् । न्यग्रोधोऽकृतिकं विष्णुं प्रणिपत्य च भो द्विजः ॥१७॥
 राजसूयाश्वमेधाम्या फलं प्राप्नोति चाधिकम् । तया स्ववंशमुद्धृत्य विष्णुलोकं स गच्छति ॥१८॥
 वैनतेयं नमस्कृत्य कृष्णस्य पुरतः स्थितम् । सर्वपापविनिर्मुक्तस्ततो विष्णुपुरं यजेत् ॥१९॥
 दृष्ट्वा वटं वैनतेयं यः पश्येत्पुरुषोत्तमम् । संकर्षणं सुभद्रां च स याति परमा गतिम् ॥२०॥
 प्रविश्याऽऽयतनं विष्णोः कृत्वा तं त्रि-प्रदक्षिणम् । संकर्षणं स्वमन्त्रेण भवत्याऽऽपूज्य प्रसादयेत् ॥२१॥
 नमस्ते हृलधूपाम् नमस्ते मुशलयुध । नमस्ते रेवतीकान्त नमस्ते भवतवत्सल ॥२२॥
 नमस्ते बलिनां श्रेष्ठ नमस्ते धरणीधर । प्रलम्बारे नमस्तेऽस्तु ब्राहि मां कृष्णपूर्वज ॥२३॥
 एषं प्रसाद्य चानन्तमजेयं त्रिदशाक्षितम् । कैलासशिखराकारं चन्द्रातकात्तराइनम् ॥२४॥
 नीलवस्त्रधरं देवं फणाविकटमस्तकम् । महाबलं हृलधरं कुण्डलं कविभूषितम् ॥२५॥
 रौहिणेयं नरो भवत्या लभेदभिमतं फलम् । सर्वपापविनिर्मुक्तो विष्णुलोकं स गच्छति ॥२६॥

तुम विष्णु के निवास-स्थान हो, न्यग्रोध । मेरे पापों को दूर करो, कल्प-वृक्ष ! तुम्हें नमस्कार है ॥१५॥ भक्ति-पूर्वक कल्पवृक्ष की प्रदक्षिणा कर नमस्कार करने से मनुष्य सब पापों से एकाएक उसी प्रकार मुक्त हो जाता है, जिस प्रकार सर्प अपने पुराने चर्म (बैचुली से) ॥१५॥ द्विजगण ! उस कल्पवृक्ष की छाया में बैठने से मनुष्य ब्रह्म-हत्या से भी मुक्त हो जाता है तो फिर अन्य पापों से मुक्त होने के विषय में कहना ही क्या है ? ॥१६॥ ब्राह्मण-गण ! कृष्णाग से उत्पन्न, ब्रह्मतेज से व्याप्त, पर, न्यग्रोध की स्मृति वाले विष्णु की प्रणाम कर मनुष्य राजसूय और अश्वमेध से भी अधिक फल प्राप्त करता है और अपने बस का उद्धार कर स्वयं विष्णुजी का प्राप्त करता है ॥१७-१८॥ कृष्ण के अग्रभाग में स्थित गरुड को नमस्कार करने से मनुष्य सब पापों से विनिर्मुक्त हो विष्णु-पुर को जाता है ॥१९॥ जो मनुष्य वट एवं वनतापुत्र गरुड का दर्शन कर पुण्यपूजन, संकर्षण (वृकमद्र) और सुभद्रा का दर्शन करता है, यह परमगति (मोक्ष) को प्राप्त करता है ॥२०॥ विष्णु के मन्दिर में प्रवेश कर तीन बार परिणाम करने के बाद भगवान् संकर्षण की पूजा निम्नांकित मन्त्र से भक्तिपूर्वक करने के प्रसन्न करता चाहिए ॥२१॥ मन्त्र—हे हृलधर राम ! तुम्हें मेरा नमस्कार है । मुशलयुध, रेवतीपाल ! हे भवतवत्स, तुम्हें नमस्कार है ॥२२॥ बलशालिया में अग्रगण्य ! धरणीधर ! आपको नमस्कार है । हे प्रलम्ब-नूरन, कृष्णाग्रज ! आपको नमस्कार है, मेरी रक्षा करें ॥२३॥ इस प्रकार अनन्त, सबविजयी, देव से पूजित, कैलास-नितार के समान गुप्त आकार वाले, चन्द्रमा में भी अधिक रूप्य मूल्यवाने, नीलवस्त्रधारी, शेषपण में भूषाभित विजट मस्तक वाले, एक कुण्डल से अश्रुन, महाबली, रौहिणीयुव हृलधर का अनन्य मर्ति से प्रसन्न कर अपने मन पादे फल को प्राप्त करता है । यह सब पापों से मुक्त हो कर दीर्घ हो विष्णुलोक का प्राप्त करता है ॥२४-२६॥

आभूतसंप्लवं यावद्भूक्त्वा तत्र सुखं नरः^१। पुण्यक्षयादिहाऽऽगत्य प्रवरे योगिनां कुले ॥२७॥
 ब्राह्मणप्रवरो भूत्वा सर्वशास्त्रार्थपारण^२। ज्ञानं तत्र समाप्ताद्य मुक्तिं प्राप्नोति दुर्लभाम्^३ ॥२८॥
 एवमभ्यर्च्य हृल्लितं ततः कृष्णं विचक्षणं^४। द्वादशाक्षरमन्त्रेण पूजयेत्सुसमाहितः^५ ॥२९॥
 द्विपट्वर्चनमन्त्रेण भक्त्या ये पुरुषोत्तमम्। पूजयन्ति सदा धीरास्ते मोक्षं प्राप्नुवन्ति वै ॥३०॥
 न तां गतिं सुरा यान्ति योगितो नैव सोमपाः^६। या गतिं यान्ति भो विप्रा द्वादशाक्षरतत्पराः^७ ॥३१॥
 तस्मात्तेनैव मन्त्रेण भक्त्या कृष्णं जगद्गुरुम्। संपूज्य गन्धपुष्पाद्यैः प्रणिपत्य प्रसादयेत् ॥३२॥
 जय कृष्ण जगन्नाथ जय सर्वाधिनाशन^८। जय चाणूरकेशिधन जय कंसनिपूदन^९ ॥३३॥
 जय पद्मपलाशाक्ष जय चक्रगदाधर। जय नीलाम्बुदरयाम जय सर्वसुखप्रद^{१०} ॥३४॥
 जय देव जगत्पूज्य जय संसारनाशन। जय लोकपते नाथ जय दान्छाफलप्रद ॥३५॥
 ससारसागरे घोरे^{११} निःसारे दुःखफेनिले। क्रोधप्राहाकुले रौद्रे विषयोदकसंप्लवे ॥३६॥
 'भानारोगोमिकलिले मोहावर्तंसदुस्तरे। निमग्नोऽहं सुरथेष्ठ ग्राहि मा पुरुषोत्तम ॥३७॥
 एवं प्रसाद्य देवेशं वरदं भवतवत्सलम्। सर्वपापहरं देवं सर्वकामफलप्रदम्^{१२} ॥३८॥

ब्रह्म प्रलय काल तक नाना दिव्य वृक्षा का भाग कर पुन पुण्यक्षय होने पर इस मृत्यु लोक में आवर ध्येष्ठ योगी के
 मक्ष म उत्पन्न होता है ॥२७॥ इस प्रकार थप्ट ब्राह्मण हो कर, सम्पूर्ण शास्त्र का पारंगत विद्वान् हो जाता है
 और शास्त्राभ्यास के द्वारा ज्ञान प्राप्त कर दुर्लभ मुक्ति का अधिपति हो जाता है ॥२८॥ हृल्लित की पूजा के
 बाद एकप्रमन होकर द्वादशाक्षर मन्त्र से कृष्ण की विधिवत् पूजा करके चाद्विप ॥२९॥ या धीरमति सर्वदा
 द्वादशाक्षर मन्त्र से भक्तिपूर्वक मगकान् पुरोत्तम की पूजा करते हैं वे निश्चय ही मान लाभ करते
 हैं ॥३०॥ विप्रगण। द्वादशाक्षर मन्त्र के जप में सर्वदा लीन रहने वाले जिस गति को प्राप्त करते हैं, उस गति को
 देवता, यणी तथा सोम-रस का पान करने वाले भी नहीं प्राप्त करते ॥३१॥ इसलिए उसा मन्त्र से भक्तिपूर्वक
 जगद्गुरु कृष्ण का गन्ध, पुष्पादिद्वारा विधिवत् पूजन कर स्तुति से प्रसन्न करे ॥३२॥ स्तुति—हे जगन्नाथ कृष्ण।
 तुम्हारी जय हो। हे सम्पूर्ण पापा के नाश करने वाले। चाणूर, बेसी के मारने वाले, कंस प्राण हर। आपकी जय
 हो, जय हो ॥३३॥ चक्र-दल के समान आवृत नेत्र वाले। जय हो, चक्र यज्ञ धारण करने वाले। नीलमय के समान
 रत्नमय वाले। तप को सुख देने वाले। (तुम्हारी) जय हो ॥३४॥ जगत्पूज्य। संसार का संहार करने वाले देव।
 जय हो। अलिल लोक के स्वामी। अभिवर्धित फल के दन वाले नाथ। तुम्हारी जय हो ॥३५॥ इस महामाद
 निःसार, दुःखरूपी फेन से परिपूर्ण, काय-रूपी ग्राह के व्याप्त, अप्रकार, विषयवासना-रूपी जल से भरे हुए, अनज
 राग-रूपा तरंगा से क्षुब्ध, मोह के जलावर्त (भँवर) से पार करने में अति कठिन ससार-रूपी सागर में मग्न,
 हे गुरुदेष्ठ पुरोत्तम। मेरी रक्षा करो ॥३६-३७॥ इस प्रकार स्तुति से वरदाता भवतवत्सल, सभी पापा का

१ ग युध। २ क निश्चितम्। ३ क ०स। विप०। ४ ख सामग्य। ५ क ०रचित्वा। ६।
 ६ ख सर्वविना०। ७ क कसप्रमर्दन। ८ ख ०द देवदे०। ९ क ०रे दुःखसताप०। १० ग ०नावेगा०।
 ११ ख ०म्। योगिध्येपद विष्णु ५०।

पीतांशं द्विभुजं कृष्णं पद्मपत्रायत्तेक्षणम् । महोररकं महाबाहुं पीतवस्त्रं गुमाननम् ॥३९॥
 शङ्खचक्रगदापाणिं मुमुटान्मदभूषणम् । सर्वलक्षणसंपुक्तं वनमालाविभूषितम् ॥४०॥
 दृष्ट्वा नरोऽञ्जलिं कृत्वा दण्डयत्पणिपरम् च । अश्वमेधसंस्तराणां फलं प्राप्नोति वै द्विजाः ॥४१॥
 यत्फलं सर्वतीर्थेषु स्नाने दाने प्रसीतितम् । नरस्तत्फलमाप्नोति दृष्ट्वा कृष्णं प्रणम्य च ॥४२॥
 यत्फलं सर्वरत्नाजैरिष्टं बहुगुणयुगे । नरस्तत्फलमाप्नोति दृष्ट्वा कृष्णं प्रणम्य च ॥४३॥
 यत्फलं सर्ववेदेषु सर्वयज्ञेषु यत्फलम् । तत्फलं समयाप्नोति नरः कृष्णं प्रणम्य च ॥४४॥
 यत्फलं सर्वदानेन घनेन नियमेन च । नरस्तत्फलमाप्नोति दृष्ट्वा कृष्णं प्रणम्य च ॥४५॥
 तपोभिर्विधिपरंपर्यं तत्र समुदाहृतम् । नरस्तत्फलमाप्नोति दृष्ट्वा कृष्णं प्रणम्य च ॥४६॥
 यत्फलं ब्रह्मचर्येण तस्यैवयोगेन तत्कृतम् । नरस्तत्फलमाप्नोति दृष्ट्वा कृष्णं प्रणम्य च ॥४७॥
 यत्फलं च गृहस्थस्य ययोस्ताचारयतिनः । नरस्तत्फलमाप्नोति दृष्ट्वा कृष्णं प्रणम्य च ॥४८॥
 यत्फलं वनवासेन यानप्रस्थस्य कीर्तितम् । नरस्तत्फलमाप्नोति दृष्ट्वा कृष्णं प्रणम्य च ॥४९॥
 सन्यासेन ययोवतेन यत्फलं समुदाहृतम् । नरस्तत्फलमाप्नोति दृष्ट्वा कृष्णं प्रणम्य च ॥५०॥
 किं चात्र महानोस्तेन माहात्म्ये तस्य भो द्विजाः । दृष्ट्वा कृष्णं नरो भक्त्या मोक्षं प्राप्नोति दुर्लभम् ॥५१॥

हृते बाँ भूपूर्णं माताया बाँ देने बाँ पुपुत्र स्थाप बाँ, दस भुजा वाले, पद्म-पत्र के समान भूनीहृर नेत्र वाले, विशाल वक्र, महाबाहु, पील वस्त्रपारी, गुमानन, शङ्ख, चक्र, गदा, पद्म ये युक्त, मुमुट और बैकुर से अलङ्कृत, सर्व लक्षण सम्पन्न, वनभागा ये सुगोमित दवेद कृष्ण को प्रत्यक्ष कर और उनका दर्शन कर भुप्य करवत् सप्टा दण्डयन् करने, तो द्विजगण ! यह भुप्य निश्चय ही राह्य अश्वमेध का फल प्राप्त करना है ॥३८-४१॥ सब तीर्थों में स्नान करने से, दान देने से जो फल बड़े मय हैं, उन सब का भुप्य कृष्ण का दर्शन और प्रणाम करने से प्राप्त करता है ॥४२॥ जो फल सब प्रकार के रत्नों एवं प्रचुर गुणों में युक्त करने पर प्राप्त होते हैं, भुप्य उन सब फलों को कृष्ण का दर्शन और प्रणाम से प्राप्त कर लेता है ॥४३॥ सफल वेत्ता (वे जान) तथा समस्त यज्ञा (वे अनुष्ठान) से जो फल प्राप्त होता है उस फल को भुप्य कृष्ण का प्रणाम करके प्राप्त कर लेता है ॥४४॥ जो फल सब प्रकार के दान यज्ञ एवं सत्य से प्राप्त होता है, उस फल को भुप्य कृष्ण के दर्शन और प्रणाम से प्राप्त कर लेता है ॥४५॥ विविध कठिन लक्ष्यता से जो फल बड़े मय हैं, वे सभी कृष्ण ने दर्शन और प्रणाम करने से भुप्य को प्राप्त करते हैं ॥४६॥ मलीमाँति ब्रह्मचर्य-व्रत पालन और शास्त्रावृत विधि से सत्यास ग्रहण करने से जो फल मिलते हैं वे सभी फल कृष्ण का दर्शन और प्रणाम से मिलते हैं ॥४७॥ शास्त्रानुसार आचार-पालन करने वाल गृहस्थ का जो फल प्राप्त होता है, वे सब फल कृष्ण का दर्शन और उद्देश्य प्रणाम करने से प्राप्त हो जाते हैं ॥४८॥ वन में निवास कर वानप्रस्थाश्रम के पालन से जो फल बड़ा मया है वह फल भुप्य का कृष्ण के दर्शन और प्रणाम से प्राप्त होता है ॥४९॥ शास्त्रावृत विधि से सत्यास-पालन से जिन फलों की प्राप्ति का वर्णन किया गया है वे फल भुप्य को कृष्ण के दर्शन और प्रणाम से अनायास प्राप्त हो जाते हैं ॥५०॥ अथवा द्विजगण ! कृष्ण दर्शन माहात्म्य के विषय में अधिक कहने से क्या लाभ, कृष्ण के दर्शन से भुप्य दुर्लभ मोक्ष को भी प्राप्त कर

पार्ष्विमुक्त शुद्धात्मा कल्पजोदिसमुद्भवः । धिया परमया युक्त सर्व समुदितो^१ गुणं ॥५२॥
 सर्वकामेसमृद्धेन विमानेन सुवर्चसा । त्रिसप्तकुलभुद्धय नरो विष्णुपुर व्रजेत् ॥५३॥
 तत्र कल्पशत यावद्भुक्त्वा भोगान्भनोरमान् । गन्धर्वाप्सरसैः सार्धं यथा विष्णुश्चतुर्भुजः ॥५४॥
 च्युतस्तस्माद्विहाज्यातो विप्राणां प्रवरे कुले । सर्वज्ञ सर्ववेदो च जायते गतमत्सरः ॥५५॥
 स्वधर्मनिरत शान्तो^२ दाता भूतहिते रत । आसाद्य वैष्णव ज्ञान ततो मुक्तिमवाप्नुयात् ॥५६॥
 ‘ततः सङ्गम म नग सुभद्रा भवतवत्सलाम्’ । प्रसादयेत्ततो विप्रां प्रणिपत्य कृताञ्जलि ॥५७॥
 नमस्ते सर्वेण देवि नमस्ते शुभसौख्यदे । त्राहि मा पद्मपत्राक्षि कात्यायनि नमोऽस्तु ते ॥५८॥
 एव प्रसाद्य ता देवीं जगद्धात्रीं जगद्धिताम् । ब्रह्मदेवस्य भगिनीं सुभद्रा वरदा शिवाम् ॥५९॥
 कामगेन विमानेन नरो विष्णुपुर व्रजेत् । आभूतसप्तव यावत्नीडित्वा तत्र देववतः ॥६०॥
 इह मानुषता प्राप्तो ब्राह्मणो वेदविद्भवेत् । प्राप्य योग हरेस्तत्र मोक्षं च लभते ध्रुवम् ॥६१॥
 इति श्रीमहापुराण आदिब्राह्मे स्वयम्भुश्रुपितवादे कृष्णदर्शनमाहात्म्य

नाम सप्तपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥५७॥

ज्जा है ॥५१॥ कृष्ण-वर्ण के प्रभाव से मनुष्य करता करता के सचिव पापी से मुक्त होकर निमल हृदय हो जाता है वह सर्वगुण सम्पन्न बन जाता है और परम-आ से युक्त हो जाता है ॥५२॥ अपने पुण्य प्रभाव से वह किसी-सं कुल परम्परा का उद्धार कर सब इच्छित पदार्थ से पूर्ण तत्वापय विमान पर आरुढ़ होकर विष्णु लोक प्राप्त करता है ॥५३॥ वहाँ ही कल्प एक चतुर्भुज भगवान् विष्णु के समान शेष और अप्सराओं के साथ मग्न हो भागा का भाग करता है ॥५४॥ पुनः वहाँ से पुण्यदाय होने पर च्युत हो कर इस लोक में भ्रष्ट ब्राह्मण कुल में जन्म ग्रहण करता है । यहाँ आकर वह सब गस्त्रा वा जाता अनुभवा ईश्वरहित अपने धर्म में निरत गत शान्ति और समा प्रणिया के हित में लगा रहता है । तदनन्तर भागवत नाम का प्राप्त कर मुक्ति प्राप्त करता है ॥५५॥ कृष्ण का इस प्रकार पुनः करने के बाद मनुष्य अस्त्र पर पुनवत प्रम करने वाला सुभद्रा जी की मन्त्र द्वारा पूजा कर शोध जड कर प्रणाम करे और इस स्तुति से उन्हें प्रसन्न कर ॥५७॥ स्तुति — हे स्वक्यापिनी गुण सौख्य प्रदान करने वाली देवि । तुम्हें नमस्कार है पद्मपत्राक्षि । मेरा शरण करा । कात्यायनि । आपका प्रणाम है ॥५८॥ इस प्रकार जगन्नाथ का भाग्य करने वाला सुभद्रा का कल्याण करने वाला वरदायिनी मण्डलायिनी ब्रह्मदेव की भगिनी सुभद्रा की स्तुति और यथापूर्वक पूजन से प्रसन्न कर मनुष्य इच्छा-मर्त्तिकालि विमान पर आरुढ़ हो कर विष्णुलोक को जाता है । वहाँ वह देवताओं के समान कल्प पयत विहार कर पुनः मनुष्य में आने पर मनुष्य में निमल वदन ब्राह्मण होता है और भागवत नाम का प्राप्त कर निश्चय हो भाग्य लान करता है ॥५९॥ ६१॥

श्री ब्रह्मपुराण में कृष्ण-वर्ण माहात्म्य नामक सत्तावनवा अध्याय समाप्त ॥५७॥

१ न समुदितः २ स्व धर्मः ३ क स्व सत्यवाणी । ४ स्व शान्तो । ५ स्व गत पुण्य स्वमः । ६ क भद्रकारिणीम् ।

अथाष्टपञ्चाशत्तमोऽध्याय

नरसिंहमाहात्म्यवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

एव दृष्ट्वा बलं कृष्णं सुभद्रां प्रणिपत्य च । धर्मं चाथ च कामं च मोक्षं च लभत ध्रुवम् ॥१॥
 निष्कम्पं देवतागारात्कृतकृत्यो भवेन्नर । प्रणम्याऽऽयतनं पश्चादन्नजन्तं समाहित ॥२॥
 इन्द्रनीलमयो विष्णुयन्त्राऽस्तं बालुकावृतं । अतर्पणगतं नत्वा ततो विष्णुपुरज्जित ॥३॥
 सवदेवमयो घोऽस्तो हृतवानसुरोत्तमम् । स आस्त तत्र भो विप्रा सिंहायकृतविग्रह ॥४॥
 भवत्या दृष्ट्वा तु तं देवं प्रणम्य नरकसरीम् । मुच्यत पातकमत्यं समस्तनात्रं सशय ॥५॥
 नरसिंहस्य यं भवता भवति भुवि मानवाः । न तेषां दुष्कृतं किञ्चित्फलं स्याद्यद्यदोप्सितम् ॥६॥
 तस्मात्सर्वप्रपन्नं नरसिंहं समाधयत । धर्माधिकाममोक्षाणां फलं यस्मात्प्रयच्छति ॥७॥

मुनय ऊचुः

माहात्म्यं नरसिंहस्य सुखदं भुवि दुर्लभम् । यथा कथयस्य देव तनो विस्मयो महान् ॥८॥

अध्याय ५८

नरसिंह का माहात्म्य वर्णन

ब्रह्मा बोल—उपयुक्त विधि से बलराम कृष्ण तथा सुभद्रा का दान और प्रणाम करने से मनुष्य धर्म अथ काम और मोक्ष प्राप्त करता है यह ध्रुव है । उस देवालय से निकलने पर मनुष्य हृतकृत्य हो जाता है । इस प्रकार देव मन्दिर से निकल कर उसको प्रणाम कर तत्पश्चात् उस स्थान पर अनन्य भाव से जाय जहाँ इन्द्रनीलमय विष्णु बाल की ढरी में बने हुए हैं वहाँ इस प्रकार बालुकामय भूमि में छिपे हुए भगवान् को प्रणाम करने से मनुष्य विष्णुलोक को प्राप्त करता है ॥२३॥ विप्रण । जिन सवदेवमय (सम्पूर्ण देवा के) तेज से सम्पन्न) ने असुरोत्तम हिरण्य वक्ष्य की मारा व बही पर हैं जिनका आधा शरीर सिंह का है अर्थात् जो नृसिंह बने जाते हैं । उन नृसिंह भगवान् को देख कर जा मय (मानव) मन्त्रिपूर्वक प्रणाम करता है वह समस्त पापों से छूट जाता है इसमें लाभान्वी सदेह नन् ॥४५॥ इस मूलोक में जा नृसिंह के भक्त होते हैं उनके सभी पाप मिट जाते और वे मनचाहे फल को प्राप्त करते हैं ६ इसीप्रकार मनुष्य प्रत्येक प्रकार स भगवान् का आश्रय प्राप्त कर जिससे उसे धर्म अथ काम और मोक्ष की प्राप्ति हो । ७ ।

मुनियो न कथा—देव । इस लोक में दुर्लभ और समस्त नरसिंह देव के योग्य है वा जिस रूप में अपने

प्रभावं तस्य देवस्य विस्तरेण जगत्पते । श्रोतुमिच्छामहे ब्रूहि परं कीदृहलं हि नः ॥१॥
यया प्रसीदेद्देवोऽसौ नरसिंहो महाबलः । भवतानामुपकाराय ब्रूहि देव नमोऽस्तु ते ॥१०॥
प्रसादान्नरसिंहस्य या भवन्त्यथ सिद्धयः । ब्रूहि ताः कुरु चास्माकं प्रसादं प्रपितामह ॥११॥

ब्रह्मोवाच

शृणुष्वं तस्य भो विप्राः प्रभावं गदतो मम । अजितस्याभ्रमेयस्य भुवितभुवितप्रदस्य च ॥१२॥
कः शक्नोति गुणान्यवतुं समस्तास्तस्य भो द्विजाः । सिद्धान्धकृतदेहस्य प्रयक्ष्यामि समासतः ॥१३॥
याः काश्चित्सिद्धयश्चात्र श्रूयन्ते दैवमानुषाः । प्रसादात्तस्य ताः सर्वाः सिध्यन्ति नात्र संशयः ॥१४॥
स्वर्गं मर्त्यं च पातालं दिव्यं तोयं पुरे नगे । प्रसादात्तस्य देवस्य भवत्यध्याहृता गतिः ॥१५॥
असाध्यं तस्य देवस्य नास्त्यत्र सचराचरे । नरसिंहस्य भो विप्राः सदा भवतानुकम्पिनः ॥१६॥
विधानं तस्य वक्ष्यामि भवतानामुपकारकम् । येन प्रसीदेच्चैवासौ सिद्धान्धकृतविग्रहः ॥१७॥
शृणुष्वं मुनिशार्दूलाः कल्पराज सनातनम् । नरसिंहस्य तत्त्वं यं यमं ज्ञातं सुरासुरैः ॥१८॥
शाकयावकमूलैस्तु फलपिण्याकसवतुकैः । पयोभक्षेण विभ्रेन्द्रा वतयेत्साधकोत्तमः ॥१९॥
कोशकौपीनयासाश्च ध्यानयुक्तो जितेन्द्रियः । अरण्ये विजने देशे पर्वते सिन्धुसगमे ॥२०॥

वर्णन किया है, इससे हम लोग को महान् विस्मय हो रहा है ॥८॥ जगत्पते । उस देवता के प्रभाव को विस्तारपूर्वक सुनना चाहते हैं, कहिए, हम लोगों को अत्यन्त उत्सुकता हो रही है ॥९॥ देव । जिस प्रकार महाबली नरसिंह मयवान् प्रसन्न होते हैं । उसका भवता के उत्कार के लिए कहिये, आपको हमारा नमस्कार है ॥१०॥ नरसिंह की कृपा से जो सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं, उनको कहिए । प्रपितामह । हम लोग पर अनुष्ठ बीजिए ॥११॥

ब्रह्मा बोले—विप्रगण । उस अजित, अभ्रमेय (जिसका मयार्थ ज्ञान न हो) भुवि और भुवि के दन बाल नृसिंह देव के प्रभाव को मैं कह रहा हूँ, तुम लोग ध्यानपूर्वक सुनो ॥१२॥ द्विजगण । उस देवता के—जिसका आधा शरीर सिंह का है—समस्त गुणों का वर्णन बोल कर सकता है, इसलिए संशय में ही वह रहा है ॥१३॥ इस प्रकार से जो कुछ सिद्धियाँ देवा या मनुष्या में सुनी जाती हैं, वे सभी सिद्धियाँ उस देव की कृपा से प्राप्त होती हैं, इसमें संदेह नहीं ॥१४॥ उस देव की कृपा से स्वर्ग, मर्त्य, पाताल लोक तथा दिशाया म, जल, पुर और पहाड़ में सर्वत्र मनुष्य की अन्त्याहृत गति हो जाती है ॥१५॥ विप्रगण । सर्वदा भवतन्ना पर कृपा करने वाले, नरसिंह देव के लिए इस तवराचर जगत् में कुछ भी शक्य अथवा अदेय नहीं है ॥१६॥ मैं भवतन्ना के लिए उपहार उन नियमों को कह रहा हूँ, जिनसे आपा सिंह का शरीर धारण करने वाले नृसिंह मयवान् प्रसन्न होते हैं ॥१७॥ मुनिवर । नरसिंह देव के उस घनावन, कल्पराज (कल्पान्त में भी विद्यमान रहने वाले अमृत) तरब का गुना, जो सब रात्रि और अमुरो को अज्ञान रहा है ॥१८॥ विभ्रेन्द्रबुध । पर्वते उत्तम साधक, साध, साधक (अलनन, भद्र विरोध), बन्द मूल, पल, पिपाक (तिल से बना कोई भोग्य), कर्तु अथवा बेल दुग्धाहार या निषादि बन्द

ऊपरे सिद्धक्षेत्रे च नरसिंहाश्रमे तथा । प्रतिष्ठाप्य स्वयं वाजपि पूजां कृत्वा विधानतः ॥२१॥
 द्वादश्यां शुक्लपक्षस्य उपोष्य मुनिपुंगवाः । जपेल्लक्षाणि वै विशन्मनसा संयतेन्द्रियः ॥२२॥
 उपपातकपुनश्च महापातकसंयुतः । मुक्तो भवेत्ततो द्विप्राः साधको नात्र संशयः ॥२३॥
 कृत्वा प्रदक्षिणं तत्र नरसिंहं प्रपूजयेत् । 'पुण्यगन्धादिभिर्घृणैः प्रणम्य शिरसा प्रभुम्' ॥२४॥
 कर्पूरचन्दनाक्तानि जातोपुष्पाणि मस्तके । प्रदद्यान्नरसिंहस्य ततः सिद्धिः प्रजायते ॥२५॥
 भगवान्सर्वकार्येषु न ववर्चितप्रतिहन्यते । तेजः सोढुं न शक्ताः स्मृबंह्यरुद्रादयः सुराः ॥२६॥
 किं पुनर्दानवा लोके सिद्धगन्धर्वमानुषाः । विद्याधरा यक्षगणाः सकिन्नरमहोरगाः ॥२७॥
 मन्त्रं यानासुरान्हुन्तुं जपत्येकेऽप्यसाधकाः । ते सर्वे प्रलयं याति दृष्ट्वाऽऽदित्याग्निवर्चसः ॥२८॥
 सवृजपतं तु कवचं रक्षेत्सर्वमुपद्रवम् । द्विजपतं कवचं दिव्यं रक्षते देवदानवात् ॥२९॥
 गन्धर्वाः किन्नरा यक्षा विद्याधरमहोरगाः । भूताः पिशाचा रक्षांसि ये चान्ये परिपन्थिनः ॥३०॥
 त्रिजपतं कवचं दिव्यमभेद्यं च सुरासुरैः । द्वादशान्यन्तरे चैव योजनानां द्विजोत्तमाः ॥३१॥
 रक्षते भगवान्देवो नरसिंहो महाबलः । ततो गाथा विलङ्कारमुपोष्य रजनीन्पयम् ॥३२॥

कोश अथवा बौरीन वस्त्र धारण करे, सर्वदा ध्यानपरायण और जितेन्द्रिय रहे फिर किसी वन, निर्जन प्रदेश, पर्वत, नदिषा का संगम स्थान, उत्तर, सिद्ध क्षेत्र अथवा नृसिंह के मन्दिर में ही स्वयं नरसिंह भगवान् की मूर्ति स्थापित कर त्रिघण्डपूर्वक पूजा करे ॥१९-२१॥ मुनिरुगव । वह साधक शुक्ल पक्ष की द्वादशी को निराहार व्रत रहे, इस प्रकार सयमपूर्वक वह बीस छटा मन्त्र का स्नान करे ॥२२॥ इस प्रकार साधक बाहु उपजातक से युक्त अथवा महापातक से युक्त बन्धन हो, मुक्त हो जाता है, इसमें संदेह नहीं ॥२३॥ जप के अनन्तर प्रदक्षिणा कर पुष्प, गन्ध, धूपदि से नरसिंह की पूजा करे ॥२४॥ पुन शिरस्त्रावर प्रभु को प्रणाम कर कर्पूर-चन्दन में रंगे जाती पुष्प (जूही) को नरसिंह देव के मस्तक पर चढ़ाये । इस प्रकार नियमपूर्वक पूजन तथा जप से सिद्धि प्राप्त होती है ॥२५॥ इस प्रकार का साधक सब कार्यो का करने में समर्थ हो जाता है, उसकी गति कभी भी रोक नहीं जा सकती, उससे तेज का प्रकाश, रुद्र आदि देवता सत्त्व में असमर्थ हो जाते हैं तो उसके सामने इस लोक के राजा, सिद्ध, गन्धर्व, मनुष्य, विद्याधर और किन्नर, महानागो सहित यक्षों की कथा गणना ॥२६-२७॥ अन्य विविध साधक जिन अमुरा का भारने में अभिप्राय से मन्त्र का जप करते हैं, वे सभी अमुर आदित्याग्नि के समान तेजस्वी, उम साधक को देख कर ही नष्ट हो जाते हैं ॥२८॥ एक बार नरसिंह-वचन का जप करने से सभी प्रकार के उपद्रवों में रक्षा होती है । दो बार जप हुआ वह दिव्य कवच देव-दानवा से रक्षा करता है, गुरु एवं क्षत्रियों से अनेक मह दिव्य कवच जब तीन बार जप जाता है तब गन्धर्व, किन्नर, यक्ष, विद्याधर, नाग, भूत, पिशाच, राक्षस तथा अन्य दूमरे विप्लव करने वाला से हे द्विजात्मकन्द । महावीर भगवान् नरसिंह सब बाध याजन तन रक्षा करते हैं ॥२९-३१॥ तदनन्तर विजहार के पास जाकर तीन रात्रि व्रत निराहार रह कर पञ्चाश की एकादशी से भगवान् अग्निदेव की प्रवर्णिता कर मष्टु में डुबाई दो सौ पलाय की समिधा का कपटार मय से वह साधक उस

पलाशकाष्ठं प्रज्वाल्य भगवन्तं हुताशनम् । पलाशसमिधस्तत्र जुहुयादितमधुप्लुता ॥३३॥
 'द्वे शते द्विजशार्दूला' षपट्कारेण साधकः । ततो विवरद्वारं तु प्रकट जायते, क्षणात् ॥३४॥
 ततो विशेषेण निःशङ्कुं कवची विवरं बध्नुः । गच्छतः सकट तस्य तमोमोहश्च नश्यति ॥३५॥
 राजमार्गं सुविस्तीर्णो दृश्यते भ्रमराजि (ञ्चि)त । नरसिंह स्मरंस्तत्र पातालं विशते द्विजा ॥३६॥
 गत्वा तत्र जपेत्तत्त्वं नरसिंहाख्यमव्ययम् । तत स्त्रीणा सहस्राणि धीणावादनकर्मणाम् ॥३७॥
 निर्गच्छन्ति पुरो विप्राः स्वागत ता वदन्ति च । प्रवेशयन्ति ता हस्ते गृहीत्वा साधकैश्वरम् ॥३८॥
 ततो रसायनं दिव्यं पाययन्ति द्विजोत्तमाः । पीतमाने दिव्यदेहो जायते सुमहाबलः ॥३९॥
 'श्रीडते सह कन्याभिर्पावदाभूतसंप्लवम् । भिन्नदेहो वासुदेवो लोयते नान सशयः ॥४०॥
 यदा न रोचते वासस्तस्मात्त्रिगच्छते पुनः । पट्टं शूलं च खड्गं च रोचना च मणि तथा ॥४१॥
 रस रसायन चैव पादुकाञ्जनमेव च । कृष्णाजिनं मुनिश्रेष्ठा गुटिका च मनोहराम् ॥४२॥
 कमण्डलुं चाक्षसूत्रं यट्टि सज्जीवनीं तथा । सिद्धविद्या च शास्त्राणि गृहीत्वा साधकैश्वरम् ॥४३॥
 ज्वलद्वाह्निस्फुलिङ्गोमिवेष्टितं त्रिशूलं हृदि । सकृन्व्यस्तं दहेत्सर्वं वृजिन जन्मकोटिजम् ॥४४॥

प्रगल्भित अग्नि मे हवन करे ॥३२-३३॥ विप्रवर । इनही साधना करने के बाद उस विवर का द्वार खली क्षण प्रकाश हो जायगा ॥३४॥ इससे अनन्तर वह षपट्कार, कन्यापी निशक माय से उस दिल में प्रवेश करे, उस विवर में प्रवेश करने वाले साधक की सारी विपत्तियाँ और अज्ञानावधार नष्ट हो जाते हैं ॥३५॥ प्रवेश करने पर वहाँ भ्रमरावलिपा से सुगन्धित विस्तीर्ण राजपथ दिखाई देगा । द्विजगण । वह साधक भगवान् नरसिंह का स्मरण करते हुए पाताल में प्रवेश करे ॥३६॥ वहाँ जाकर अव्यय नरसिंह नामक मन्त्र तर्ज या जप करे । जप के प्रभाव से धीणावादन करती हुई सहस्रो स्त्रियाँ उससे आगे उपस्थित हो जाती हैं और उस साधक-गिरामणि का शेष पकड़ कर विवर में ले जाती हैं ॥३७-३८॥ वहाँ जाकर उसका दिव्य रसायन पिलाती हैं, पीने ही वह साधक दिव्य शरीरपारी और बलशाली हो जाता है । वह मायशाली बलशाली पश्यंत उन कन्याओं के साथ प्रवेश करता है तथा शरीर त्याग करने के बाद वासुदेव में लीन हो जाता है, इसमें कोई सन्देह नहीं ॥३९-४०॥ मुनिप्रवर । यदि उस साधक का वहाँ का निवास प्रिय नहीं जान पड़े, तो वह भी वह साधक शिरामणि पट्ट गूँथ खड्ग, राजवा (वसत्राचन या गीरोचन) मणि तथा रस (चाचित द्रव्य), रसायन पादुका, अञ्जन कृष्णमृगजम् अनादि गुटिका, कमण्डलु, अक्षसूत्र (रस्सा), सज्जीवनी यट्टी (एक लकड़ी का दण्ड का निशानी है) सिद्ध विद्या और शास्त्रों का प्राप्त कर उस पाताल देश से निकलता है ॥४१-४३॥ उस कवच का प्रभाव ऐसा है कि यदि जन्म अग्नि की लपटा से वेष्टित कर उसको हृदय पर एक बार रखा जाय तो कराया जन्म के पापा का जला देता है । विप

१रा ०मिध तत्र । २ ०मिध तत्र । ३क ०विमेषु० । ३ख ग द्वे पुते । ५ग ०रा एकोनशतानाम् ।
 त० । ५ख निशक । ६ख भगवद्दिश्या । ७क ०षोत्तमम् । ८ग ०ते घन० । ९ग ग ०दृष्ट वा० ।
 १०रा द्विजश्रेष्ठा । ११ग मुद्रिता । १२ग मन शिला । १३ग विद्या । १४ग ०म् । देह न्यस्त कर न्यस्त
 हव्यान्वाप्यगते वृत० ।

विषे न्यस्त विषं हन्यात्कुण्ठं हन्यात्तनौ स्थितम् । स्वदेहे भ्रूणहृत्पादि कृत्वा दिव्येन शुध्यति ।
 'महाग्रहगृहीतेषु ज्वलमानं विचिन्तयेत् । हृदन्ते वै ततः शीघ्रं नश्येयुर्दारुणा ग्रहाः ।
 बालानां कण्ठके' बद्धं रक्षा भवति नित्यशः । गण्डपिण्डकलूतानां नाशनं' कुशते ध्रुवम् ।
 व्याधिजाते समिद्धिश्च घृतक्षीरेण होमयेत् । त्रिसंध्यं मासमेकं तु सर्वरोगान्विनाशयेत् ।
 असाध्यं तु न यस्यामि श्रैलोक्ये सचराचरे । यां यां कामयते सिद्धिं तां ता प्राप्नोति स ध्रुवम् ।
 अष्टोत्तरशतं स्वके पूजयित्वा मृगाधिपम् । मृत्तिकाः सप्त बल्मीके श्मशाने च चतुष्पथे ।
 रक्तचन्दनसमिधा गवा क्षीरेण लोडयेत् । सिंहस्य प्रतिमां कृत्वा प्रमाणेन पडङ्गुलाम् ॥
 लिम्पेतया भूजपत्रे रोचनया समालिखेत् । नरसिंहस्य कण्ठे तु बद्ध्वा चैव हि मन्त्रवित् ।
 जपेत्संख्याविहीनं तु पूजयित्वा जलाशये । यावत्सप्ताहमात्रं तु जपेत्संयमितेन्द्रियः ॥
 जलाकोर्णां मुहूर्तेन जायते सर्वमेदिनी । अथवा शुष्कवृक्षाग्रे नरसिंहं तु पूजयेत् ॥
 जप्या चाष्टशतं तत्त्वं वर्षेन विनिवारयेत् । तमेवं पिञ्जके' बद्ध्वा भ्रामयेत्साधकोत्तमः ॥
 महाबातो मुहूर्तेन आगच्छेन्नान सशयः । पुनश्च धारयेत्क्षिप्रं सप्तस (ज)प्तेन वारिणा ॥
 अथ तां प्रतिमां द्वारि निखनेत्यस्य साधकः । गोत्रोत्सादो भवेत्तस्य उद्धृते' चैव शान्तिदः ॥

म स्थापित करने पर विष प्रभाव को नष्ट कर देता है और किसी बीड़ी के घाटीर पर रखने से कुष्ठ रोग को दूर करता है । स्वयं भ्रूण-हृत्पादि पापा को करने वाला व्यक्ति अपने घाटीर पर वह दिव्य कवच धारण करने से पाप हो, बुद्धि का नाश है ॥४४-४५॥ महादुष्ट ग्रहा से पीड़ित व्यक्ति यदि अपन हृदय में उस तेजोमय का स्मरण तो शीघ्र ही उससे शरण ग्रह नष्ट हो जाते हैं ॥४६॥ बालका के कण्ठ में बांधने से उसकी सर्वदा व्याधि रक्षा होती है और गण्ड, पिण्डक, कृता आदि रोग निश्चय ही मिट जाते हैं ॥४७॥ घ्याधि उत्पन्न होने पर की प्रतिष्ठा कर एवं महीने तक सन्निधा, पी और दूध से तीना कर—प्रातः, मध्याह्न और संध्या—हवन स सनी रोग विनष्ट हो जाते हैं ॥४८॥ उस साधक के लिए इस पराचर युक्त त्रिभुवन में कुछ भी असाध्य देख रहा हूँ, वह तो जिन-जिन सिद्धिया की कामना करता है, निश्चय ही उन-उनका प्राप्त कर लेता है ॥४९॥ मू (नृसिंह) की एक तो आठ बार पूजा कर, कर्मीक, रमजान, चौरहे आदि से उत्पन्न मृत्तिका ला कर, उसमें चन्दन मिलाव । पुन गो दुग्ध में उसका मिश्र कर छह अणुल प्रमाण की मिह की प्रतिमा बनाय ॥५०॥ माजान पर गारावन से पुष्ट कर नृसिंहस्य च लिख कर वह मन्त्र उगता नरसिंह के कण्ठ में बांधे ॥५१॥ साधक उग मूर्ति को किसी जलाशय में स्थापित कर गन्ताह वर्षेन पूजन कर बिना गणना किए का जप कर ॥५३॥ ऐसा करने से क्षण भर में वृषी जल से परिपूर्ण हो जाती है अथवा यदि गूने वृषा के भाग पर नृसिंह देव का पूजन और एक तो आठ बार जप करेना वृष्टि का निवारण हो जाता है ॥५४॥ मृनि को रसमी में बांध कर बुझान मद्यन भर मही जाय की औषधी आ जाती है, इसमें कुछ भी नश्ये । पुन उसका शीघ्र ही जल में साज कर हुवा देता वह मनुवान रोग ही दान्त भी हो जाता है ॥५५-५६॥

तस्मात्तं मुनिशार्दूल भक्त्या संपूजयेत्सदा । मृगराजं महावीर्यं सर्वकामफलप्रदम् ॥५८॥
 विमुक्तः सर्वपापेभ्यो विष्णुलोकं स गच्छति । ब्राह्मणाः क्षत्रिया वंश्याः स्थियः शूद्रान्त्यजातयः ॥५९॥
 संपूज्य तं सुरश्रेष्ठं भक्त्या सिंहवपुर्धरम् । मुच्यन्ते चाशुभेर्दुःखेज्जन्मकोटिसमुद्भवेः ॥६०॥
 संपूज्य तं सुरश्रेष्ठं प्राप्नुवन्त्यभिवाञ्छितम् । देवत्वममरेशत्वं गन्धर्वत्वं च भो द्विजाः ॥६१॥
 यक्षविद्याधरत्वं च तयाऽन्यच्चाभिवाञ्छितम् । दृष्ट्वा स्तुत्वा नमस्कृत्वा संपूज्य 'नरकेतरीम् ॥६२॥
 प्राप्नुवन्ति नरा राज्यं स्वर्गं मोक्षं च दुर्लभम् । नरसिंहं नरो दृष्ट्वा लभेदभिमतं फलम् ॥६३॥
 निमुक्तः सर्वपापेभ्यो विष्णुलोकं स गच्छति । सकृद्दृष्ट्वा तु तं देवं भक्त्या सिंहवपुर्धरम् ॥६४॥
 'मुच्यते चाशुभेर्दुःखेज्जन्मकोटिसमुद्भवेः । संग्रामे संकटे दुर्गे चोरव्याघ्रादिपीडिते ॥६५॥
 क्रान्तारे प्राणसंदहे विषवाह्नजलेषु च । राजादिभ्यः समुद्रेभ्यो ग्रहरोगादिपीडिते ॥६६॥
 स्मृत्वा तं पुरुषः सर्वे राजग्रामे विमुच्यते । सूर्योदये यथा नाशं तमोऽभ्येत महत्तरम् ॥६७॥
 तथा संदर्शने तस्य विनाशं यान्त्युपद्रवाः । गुटिकाञ्जनपातालपादुके च रसायनम् ॥६८॥
 नरसिंहे प्रसन्ने तु 'प्राप्नोत्यन्यादं च वाञ्छितान्' । दान्यान्कामानभिध्यायन्भजते नरकेतरीम् ॥६९॥

अनन्तर साधक यदि किसी के द्वार पर उसको खोद कर गाड़ दे, तो उसने वश का उच्चाटन हो जाय, उसका देने से पुन वही प्रतिमा शान्तिप्रद हो जाती है ॥५७॥ इसलिए हे मुनिवर । सर्वदा उस महापराक्रमी, सम्पूर्ण कामनाओं को पूर्ण करने वाले नरसिंह भगवान् की भक्तिपूर्वक पूजा करनी चाहिए, ऐसा करने से वह नवत सब पापा से मुक्त होकर विष्णुपुर की प्राप्त करता है ॥५८॥ ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, स्त्रिजा, शूद्र और बाण्डाल पापा से मुक्त होकर विष्णुपुर की प्राप्त करता है ॥५८॥ ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, स्त्रिजा, शूद्र और बाण्डाल सभी उस सिंह शरीर धारण करने वाले देव की भक्ति से पूज कर करोड़ो जन्म के किए पापों से मुक्त हो जाते हैं ॥५९-६०॥ उस सुर श्रेष्ठ की पूजा कर द्विजो ! मनुष्य इच्छित देवपद, इन्द्रपद अथवा गन्धर्वपद को प्राप्त कर लेते हैं ॥६१॥ नरसिंह की पूजा, दर्शन, स्तुति और नमस्कार से मनुष्य, यक्ष, विद्याधर अथवा अन्य मन पाहे पद, राज्य, स्वर्ग और दुर्लभ मोक्ष को भी प्राप्त कर लेते हैं । नरसिंह का दर्शन कर मनुष्य अभिमत फल को प्राप्त कर अपने पापों से मुक्त हो विष्णुलोक को प्राप्त करता है ॥६२-६३॥ श्रद्धापूर्वक सिंह शरीरधारी देव को एक बार देख कर भी मनुष्य करोड़ा जन्म के पापा से अपने को मुक्त कर लेता है ॥६४॥ संग्राम में संकट या भठिनाइयाँ आ पड़ने पर, चौर, व्याघ्र आदि से घेरे पाने के समय जंगल में, प्राण-संकट उपस्थित होने पर, विष, अग्नि, जल से भय होने पर राजा, समुद्र, ग्रह, रोगादि से पीडित होने पर उस नरसिंह का स्मरण कर मनुष्य उन सभी संकटा से इस प्रकार छूट जाता है जिस प्रकार सूर्योदय होने पर निविड अन्धकार से यह लोक ॥६५-६७॥ इसी प्रकार उसके दर्शन से सारे उपद्रव भी नष्ट हो जाते हैं । मनुष्य श्रीनरसिंह के प्रसन्न हो जाने पर गुटिका-अञ्जन, पाताल-पादुका (वह खंडाँ जिसको पहन कर पाताल लोक में मनुष्य बला जाता है), रसायन तथा अन्य मनोरथा को भी प्राप्त करता है । जिन जिन कामनाओं की हृदय में रख कर मनुष्य नरकेतरी की

१स सर्वश्रेष्ठ । २व ग अन्यन्व प्रयच्छति । ३क । केसवम् । ४क ० ते कल्पते । सर्वश्रेष्ठ ।
 ५प. समुद्रादये । ६स ० अन्यन्व वा० । ७स ० श्रितम् । वा० ।

तांस्तान्कामानवाप्नोति नरो नास्त्यत्र संशयः । दृष्ट्वा तं देवदेवेशं भक्त्याऽऽपूज्य प्रणम्य च ॥७०॥
 दशानामश्वमेधानां फलं दशगुणं लभेत् । पापैः सर्वैर्विनिर्मुक्तो गुणैः सर्वैरलंकृतः ॥७१॥
 सर्वकामसमृद्धात्मा जरामरणवर्जितः । सौवर्णेन विमानेन किकिणीजालमालिना ॥७२॥
 सर्वकामसमृद्धेन कामेन सुवर्चसा । तरुणादित्यवर्णेन मुक्ताहारावलम्बिना ॥७३॥
 दिव्यस्त्रीशतयुक्तेन दिव्यगन्धर्वनादिना । कुलैर्काव्यशमुद्धृत्य देववन्मुदितः सुखी ॥७४॥
 स्तूपमानोऽप्सरोभिश्च विष्णुलोकं व्रजेन्नरः । भुक्त्वा तत्र वरान्भोगान्विष्णुलोके द्विजोत्तमाः ॥७५॥
 गन्धर्वैरपसरैर्युक्तः कृत्वा रूपं चतुर्भुजम् । मनोह्लादकरं सौख्यं यावदाभूतसंगलयम् ॥७६॥
 पुण्यक्षयादिहाऽऽपातः प्रवरे योगिनां कुले । चतुर्वेदी भवेद्विप्रो वेदवेदाङ्गपारगः ॥
 धैर्यवर्धं योगमास्थाय ततो मोक्षमवाप्नुयात् ॥७७॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मो ह्यव्ययं भूषितं वादे नरसिंहमाहात्म्यवर्णनं
 नामाष्टपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥५८॥

उपासना करता है, उन-उनको वह नि सन्देह प्राप्त करता है ॥६८-६९॥ उस देव-देवेश का दर्शन कर, भक्ति से उसका पूजन तथा प्रणाम कर मनुष्य दश अश्वमेध यज्ञ के दश गुने फल को (सौ अश्वमेध के बराबर) प्राप्त करता है। वह सब पापों से मुक्त हो सभी गुणों से विभूषित हो जाता है ॥७०-७१॥ वह जरा मृत्यु से मुक्त हो सभी मनोरंजनों को प्राप्त कर लेता है, सुदूर दृष्टिवालों से युक्त, सभी इच्छित साधनों से सुसज्जित, तेजोमय, इच्छा-परिचालित स्वर्णमय, तक्षण मूर्ध के समान प्रतापमान विमान पर आरुढ़ हो, मुक्ताहार से सुसौमिल, दिव्य गान और नादन में निरत सैकड़ों स्वर्गाङ्गनायकों से घिरा, देवता के समान आनन्द मग्न और सुखी वह व्यक्ति अपने इच्छित कुलों का उद्धार करता हुआ विष्णुलोक को प्राप्त करता है, रास्ते में अप्सराओं उत्तरी स्तुति करने जाती हैं ॥७२-७३॥ त्रिजवर 'वर्त' गन्धर्व और अप्सराओं के साथ बौद्ध करता हुआ, मन को आनन्द और सुख देने वाले चतुर्भुज रूप को धारण कर कल्याणतः तत्र दिव्य भोगों का आस्वादन करता है। पुनः पुण्य क्षय होने पर इस भक्त्यन्तः में पुनः योगि कुल में जन्म लेकर वेद, वेदाङ्गों का पारदर्शी, चतुर्वेदपाठी विद्वान् ब्राह्मण होता है। तदनंतर वैष्णव योग (भागवत ज्ञान) का अभ्यास कर मोक्ष-मदवी प्राप्त करता है ॥७५-७७॥

श्री ब्रह्ममहापुराण के अन्तर्गत हवयम् और ऋषि के सवाहप्रकरण में नरसिंह-
 माहात्म्य-वर्णन नामक अष्टाध्यायों अध्याय समाप्त ॥५८॥

ब्रह्मपुराणम्

अथैकोनषष्टितमोऽध्यायः

श्वेतमाधवमाहात्म्यवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

अनन्ताख्यं वासुदेवं दृष्ट्वा भक्त्या प्रणम्य च । सर्वपापविनिर्मुक्तो नरो याति परं पदम् ॥१॥
मया चाऽऽराधितश्चासी शनेण तदन्तरम् । विभीषणेन रामेण कस्तं नाऽऽराधयेत्पुमान् ॥२॥
श्वेतगङ्गां नरः स्नात्वा यः पश्येच्छ्वेतमाधवम् । मत्स्याख्य माधवं चैव श्वेतद्वीपं स गच्छति ॥३॥

मुनय ऊचुः

श्वेतमाधवमाहात्म्यं यस्मिन् हंस्यदोषतः । विस्तरेण जगन्नाथ प्रतिमां तस्य वै हरेः ॥४॥
तस्मिन् क्षेत्रवरे पुण्ये विख्याते जगतीतले । श्वेताख्यं माधवं देवं कस्तं स्थापितवान्पुरा ॥५॥

ब्रह्मोवाच

अभूच्छ्रुतयुगे विप्राः श्वेतो नाम नृपो बली । मतिमान्धर्मविच्छूरः सत्यसधो दृढव्रतः ॥६॥
यस्य राज्ये तु पर्षाणां सहस्रं दश मानवाः । भवन्त्यायुधमन्तो लोका बालस्तस्मिन् प्रसीदति ॥७॥
वर्तमाने तदा राज्ये किञ्चित्काले गते द्विजाः । 'कपालगौतमो नाम श्रुति परमधार्मिकः' ॥८॥

अध्याय ५६

श्वेतमाधव का महात्म्य-वर्णन

ब्रह्मा बोले—मनुष्य अनन्त नामक वासुदेव का शक्तिपूर्वक दर्शन और प्रणाम करने से सब पापों से मुक्त होकर मोक्ष को प्राप्त करता है। सर्वप्रथम मैंने इस वासुदेव की आराधना की तदनन्तर इन्द्र, विभीषण और राम ने। अतः मैंने ऐसा मनुष्य है जो उस देव की आराधना न करेगा। जो मनुष्य श्वेत गंगा में स्नान कर श्वेतमाधव और मत्स्यामाधव का दर्शन करता है वह श्वेतद्वीप को प्राप्त करता है ॥१-३॥

मुनिगण बोले—जगन्नाथ। श्वेतमाधव का माहात्म्य और उनकी प्रतिमा के विषय में विस्तारपूर्वक बतलाइए। उस पुरातन, जगतीतल पर प्रसिद्ध शुभ क्षेत्र में सर्वप्रथम किसने श्वेतमाधव देव की स्थापना की ॥४५॥

ब्रह्मा बोले—विप्रगण। कुरुक्षेत्र में श्वेत नाम का बड़ी, बुद्धिमान्, धर्मज्ञ, धूर, सत्यप्रभो और दृढव्रती राजा हुआ। जिसके राज्य में मनुष्य दश हजार वर्ष आयु वाले होते थे, बालकों की मृत्यु नहीं होती थी। उस समय द्विजगण! उसकी राज्यकाल के कुछ वर्ष बीत जाने पर परम धार्मिक और बुद्धिमान् कपालगौतम नामक ऋषि

सुतोऽस्याजातदन्तश्च मृतः^१ कालवशाद् द्विजाः। तमादाय ऋषिर्धोमारूपस्यान्तिकमनयत् ॥९॥
दृष्ट्वेव नृपतिं भूतं कुमारं गतच्चेतसम्। प्रतिज्ञामकरोद्विप्रा जीवनेनार्थं शिशोस्तदा ॥१०॥

राजोवाच

यावद्बालमहं त्वेनं यमस्य सदने गतम्। माऽनये^२ सप्तरात्रेण चिता दीप्तां समाह्वहे ॥११॥

ब्रह्मोवाच

एवमुक्त्वाऽसितैः पद्मैः शतदंशशतादिकं। सपूज्य च महादेवं राजा^३ विद्या^४ पुनर्जपेत् (?) ॥१२॥
अतिभक्तिं तु संचिन्त्य नृपस्य जगदीश्वर। सानिध्यमगमत्पुष्टोऽस्मीत्युवाच सहोमया ॥१३॥
श्रुत्वेवं गिरमीशस्य विलोक्य सहसा हरम्। भस्मादिग्धं विहृपाक्षं शरत्कुन्देन्दुवर्चसम् ॥१४॥
शार्दूलचर्मवसनं शशाङ्काङ्कितमूर्धजम्। महीं निपत्य सहसा प्रणम्य स तदाऽब्रवीत् ॥१५॥

श्वेत उवाच

कालस्य यदि मे दृष्ट्वा प्रसन्नोऽसि प्रभो यदि। कालस्य वशमापन्नो^५ बालको द्विजपुत्रकः^६ ॥१६॥
जीवत्वेष पुनर्बाल इत्येवं श्रुतमाहितम्। अकस्माच्च मृतं बालं नियम्य भगवन्स्वयम् ॥
यथोक्तायुष्यसयुक्त क्षेमं कुत महेश्वर। ॥१७॥

काल की प्रणना से मरे पुत्र को—जिसके अभी दाँत भी नहीं निकले थे—लेकर उस राजा के पास आए। विप्रगण। राजा ने इस प्रकार उस सन्निधे से, शतप्राण बालक को देख कर उसका पुन जीवित कर देने की प्रतिज्ञा की ॥९-१०॥

राजा ने कहा—यदि मैं सात दिन के भीतर यमलोक गए इस बालक को लाऊँ तो जलती चिता में प्रवेश कर मरुम हो जाऊँगा ॥११॥

ब्रह्मा बोले—इस प्रकार प्रतिज्ञा कर राजा शत सहस्र (एक लाख) मील कमला से महादेव की पूजा कर पुन विद्या (मन्त्र) का जप करने लगा। जगदीश्वर श्वर राजा की उस उत्कृष्ट भक्ति को देख कर अति प्रसन्न हुए और पार्वती के सहित नृपति के समीप आकर बोले—‘मैं तुम पर प्रसन्न हूँ।’ भगवान् श्वर की ऐसी वाणी को सुन कर राजा ने अकस्मात् देखा कि शरीर पर भस्म लगाए, तीन नेत्र वाले, शरत्कालीन चन्द्रमा और कुन्द के समान शुभ्र, व्याघ्रचर्मधारी, मालचन्द्र शङ्कर सामने खड़े हैं, तुरन्त साष्टांग दण्डवत् किया और फिर उसने कहा— ॥१२-१५॥

श्वेत ने कहा—प्रभो! यदि मुझको देख कर आपके हृदय में करुणा उत्पन्न हुई है, यदि आप मुझ पर प्रसन्न हैं तो ‘यम के वश में गया (मृत) यह ब्राह्मण-विष्णु पुन जीवित हो जाय, ऐसी प्रतिज्ञा मैंने की है।’ अकस्मात् मरे हुए इस बालक पर अनुग्रह कर इसे पुनर्वत् जीवित (दीर्घायु) कर दीजिए। महेश्वर! यही शुभ अनुग्रह कीजिए ॥१६-१७॥

१ क य ० त पञ्चशताब्दिक । त० । २ व ० येय सपुत्रो हि चि० । ३ व त राजवि० । ४ त ० नयजेत् ।

५ क ० प्रो जीवतु डि० । ६ क ० कः । शानयिष्ये पु० ।

ब्रह्मोवाच

इवेतस्यैतद्वचः श्रुत्वा मुदं प्राप हरस्तदा। कालमाज्ञापयामास सर्वभूतभयंकरम्॥१८॥
नियम्य कालं दुर्धर्षं यसस्याऽऽज्ञाकरं द्विजाः। बालं सजीवयामास मृत्योर्मुलगतं पुनः॥१९॥
कृत्वा क्षेमं जगत्सर्वं भुनेः पुनं स त द्विजाः। देव्या सहोभया देवस्तत्रैवान्तरधीयत॥२०॥
एवं सजीवयामास भुनेः पुनं नृपोत्तमः॥२१॥

मुनय ऊचुः

देवदेव जगन्नाथ त्रैलोक्यप्रभवाम्यय। शूहि नः परमं तथ्यं श्वेताख्यस्य च सांप्रतम्॥२२॥

ब्रह्मोवाच

भृगुध्वं मुनिशार्दूलाः सर्वसत्त्वहितावहम्। प्रवक्ष्यामि यथातथ्यं यत्पृच्छथ ममानघाः॥२३॥
माधवस्य च माहात्म्यं सर्वपापप्रणाशनम्। यच्छ्रुत्वाऽभिमतान्कामान्भुव प्राप्नोति भानव॥२४॥
भुतवानृषिभिः। पूर्वं माधवाद्यस्य भो द्विजाः। भृगुध्वत्ता कथां दिव्या भयशोकातिनाशिनीम्॥२५॥
स कृत्वा राज्यपेकाभ्यां वर्षाणां च सहस्रशः। विचार्यं 'लौकिकान्धर्मान्वेदिकान्निममास्तथा॥२६॥
कोशवाराधने विप्रा' निश्चितं व्रतमास्थितः। स गत्या परमं क्षेत्रं सागरं दक्षिणाश्रयम्॥२७॥
तटे तस्मिन्पुनरे रस्ये देशे कृष्णस्य चान्तिके। श्वेतोऽथ कारयामास प्रसाव शुभलक्षणम्॥२८॥

ब्रह्मा बोले—राजा श्वेत की इन बातों को सुन कर सकर अत्यन्त प्रसन्न हुए और बह्मने सब प्राणिमों को भयभीत करने वाले काल की आज्ञा दी। यद्ये देव के आज्ञाकारी दुर्धर्ष काल को बशीभूत कर मृत्यु के मुख में गए बालक को पुन जीवित कर दिया। इस प्रकार विप्रबृन्द। शक्र ने उस मुनि-पुत्र को जीवित कर सारे ससार का कल्याण किया। और देवी पार्वती के सहित वह वहीं पर अन्तर्हित हो गए ॥१८-२१॥

मुनियो ने कहा—हे त्रैलोक्य के आदिकारण, अव्यय, देवाधिदेव जगत्सते। इस समय राजा श्वेत की परम रहस्यमयी बातें अधिकतर रूप से हम लोगों को बतलाइये ॥२२॥

ब्रह्मा बोले—हे निष्पाप भुविबृन्द। जो मुखसे पूछ रहे हो, उस सम्पूर्ण लोक के लिए उपकारक रहस्य को पर्याय रूप से कह रहा हूँ, तुम लोग भुनेः॥२३॥ श्वेतमाधव का माहात्म्य अतिल पापी का नाशक है, जिसको सुन कर मनुष्य अपनी दृष्ट कामनाओं का निश्चय ही प्राप्त करता है॥२४॥ विप्रबृन्द। प्राचीनकाल में ऋषिया ने इस श्वेत माधव की कथा सुनी, उसी दिव्य, मय, दौक और पीडा को नष्ट करने वाली कथा को पुनः कीम सुनो॥२५॥ उस राजा श्वेत ने एकाग्र भाव से एक हजार वर्ष तक लोक-धर्म और वैदिक नियमों का यथावत् पालन करते हुए धर्मपूर्वक राज्य किया॥२६॥ विप्रबृन्द। राज्य-शासन के अनन्तर उसके मन में मगवान् की आराधना का दृढ संकल्प उत्पन्न हुआ। इस विचार से दक्षिण दिशा में पवित्र समुद्र के तट पर स्थित शुभ तीर्थ में दृष्ट्य दन्विर के समीप

धन्यन्तरशतं चक्रे देवदेवस्य दक्षिणे । ततः श्वेतेन विप्रेन्द्रा श्वेतशङ्खमेतं च ॥२९॥
 कृतं स भगवान्श्वेतो माधवश्चन्द्रसन्निभः । प्रतिष्ठा विधिवच्चक्रे यथोद्दिष्टा स्वयंतुलः ॥३०॥
 दत्त्वा दानं द्विजातिभ्यो दीनानाथतपस्विनाम् । अयानन्तरतो राजा माधवस्य च सन्निधौ ॥३१॥
 महीं निपत्य सहसा ओकारं द्वादशाक्षरम् । 'अपन्त मौनमास्थाय मासमेव' समाधिना ॥३२॥
 निराहारो महाभाग सम्यग्विवर्णपदे स्थितः । जपान्ते स तु देवेश सस्तोत्रमुपचक्रमे ॥३३॥

। श्वेत उवाच

ओ नमो वासुदेवाय नमः सकर्षणाय च । प्रद्यम्नायानिरुद्धाय नमो नारायणाय च ॥३४॥
 नमोऽस्तु बहुरूपाय विश्वरूपाय वेधसे । निर्गुणायान्तर्ध्याय श्रुचये 'शुक्लकर्मणे' ॥३५॥
 ओ नमः पद्मनाभाय पद्मर्भोद्भवाय च । नमोऽस्तु पद्मवर्णाय पद्महस्ताय ते नमः ॥३६॥
 ओ नमः पुष्कराक्षाय सहस्राक्षाय मोदुषे । नमः सहस्रपादाय सहस्रभुज मन्यवे ॥३७॥
 ओ नमोऽस्तु वराहाय वरदाय सुमेधसे । यरिष्ठाय 'वरेण्याय' शरण्यायाच्युताय च ॥३८॥
 ओ नमो बालरूपाय बालपद्मप्रभाय च । बालार्कसोमनेत्राय मुञ्जकेशाय धीमते ॥३९॥
 केशवाय नमो नित्यं नमो नारायणाय च । माधवाय यरिष्ठाय गोविन्दाय नमो नमः ॥४०॥

ही परम मनोहर सौ भगन्तर (४०० हाय) की नाभ का उत्तम मन्दिर बनवाया उत्तम श्वेत परस्पर की चन्द्रमा व
 रमान स्वच्छ भगवान् श्वेतमाधव की विधिवत् मूर्ति स्थापित वा दान अनाप और तपस्वी ब्राह्मणों का दान दिया
 ॥२७ ३०॥ ३२ के उपरांत राजा न माधव मूर्ति के समीप जाकर सहसा सप्तोण प्रणाम किया। वह एक
 मास तक मौन रह कर समाधिस्थ हो द्वादशाक्षर मन्त्र का जप करता रहा। जप-काल में वह श्वेत
 निरुद्धा रह कर अपने मन का भगीर्नाथ विष्णु के चरणों में लगा रहा। जप में उपरांत वह अज्ञात
 देवेश की स्तुति करने लगा ॥३१ ३३॥

श्वेत ने कहा—आ वासुदेव सकर्षण प्रद्युम्न अनिरुद्ध और नारायण का नमस्कार है ॥३४॥ बहुरूपाय
 विश्वरूप विष्णु तर्कौ स अगम्य पवित्र तथा शुभ वध करने वाले ब्रह्मा का नमस्कार है ॥३५॥ पद्मनाभ कमल भगवत्
 उत्तम दाता का तथा कमल के समान वन और हस्त वाल प्रभु का नमस्कार है ॥३६॥ पद्मर्भ समान सट्टन मन्त्र
 का वापाणदाता की नमस्कार है। सहस्र चरण और मुखावा मन्त्र (यन रूप) की नमस्कार है ॥३७॥
 वरद मुष्टिप्रतिमा वाक् शब्द वरण्य शरण्य और अच्युत योगवान् बरह की नमस्कार है ॥३८॥ बालरूप धारण
 करने वाले नवीन कमल का समान वर्तित वाक् जीवन सुख और चन्द्रमा रूपी मन तथा कामल योग वाक् भगवत्
 का नमस्कार है ॥३९॥ केशव का नमस्कार है, नारायण का मेघ निय नमस्कार तथा वरिष्ठ माधव और गोविन्द

१ स ० श्वेतमा ० । २ स ० नारायण ० । ३ स ० चन्द्रा मा ० । ४ स ० स सर्वभर्ताम् । ५ स ० यने नमः ।
 ६ ० । ६ स ० विष्णो ० । ७ स ० ० व वरदाय ० ।

ओं नमो विष्णवे नित्यं देवाय यस्तुरेतसे। मधुसूदनाय नमः शुद्धायाशुधराय च॥४१॥
 'नमोऽनन्ताय सूक्ष्माय नमः श्रौतस्पर्धारिणे। त्रिविक्रमाय च नमो दिव्यपीताम्बराय च॥४२॥
 सृष्टिकर्त्रे नमस्तुभ्यं गोप्त्रे धात्रे नमो नमः। नमोऽस्तु गुणभूताय निर्गुणाय नमो नमः॥४३॥
 नमो वामनरूपाय नमो वामनकर्त्रे। नमो वामननेत्राय नमो वामनबाहिने॥४४॥
 'नमो रम्याय पूज्याय नमोऽस्तव्यवत्तरपिणे। अप्रतर्क्याय शुद्धाय नमो भयहराय च॥४५॥
 सत्तारार्जवपीताय प्रज्ञान्ताय स्वरपिणे। शिवाय सौम्यरूपाय देवायोत्तारणाय च॥४६॥
 भवभङ्गहृते चैव भवभोगप्रदाय च। भवसंघातरूपाय भवसृष्टिकृते नमः॥४७॥
 ओं नमो विष्णुरूपाय सोमाग्निश्वसिताय च। 'सोमसूर्याशुकेशाय गोब्राह्मणहिताय च॥४८॥
 ओ नम ऋक्स्वरोरूपाय पदश्रमस्वरपिणे। ऋक्स्तुताय नमस्तुभ्यं नम ऋक्साधनाय च॥४९॥
 ओ नमो यज्ञरूपा धात्रे यज्ञरूपधराय च। यज्ञरूपग्याय जुष्टाय यज्ञरूपा पतये नमः॥५०॥
 ओ नम श्रौतसे देव श्रौतरीय धराय च। श्रियः कान्ताय दान्ताय योगिचिन्त्याय योगिने॥५१॥
 ओ नमः सामरूपाय सामध्वनिधराय च। ओ नम सामसौम्याय सामयोगविदे नमः॥५२॥
 साम्ने च सामगीताय ओ नमः सामधारिणे। सामयज्ञविदे चैव नमः सामकराय च॥५३॥
 नमस्तव्यवर्षादिरसे नमोऽवर्षस्वरपिणे। नमोऽस्तव्यवर्षादाय नमोऽवर्षधराय च॥५४॥

१। धार-धार नमस्कार है॥४०॥ विष्णु, वायुदेव इव का मरा नित्य नमस्कार है, शुद्ध स्वरूप, तजामय मनुसूक्त का नमस्कार है॥४१॥ अन्तः, सूक्ष्म, श्रौतस्पर्धारी, त्रिभिन्न, दिव्य पीत वस्त्र धारण करने वाले भगवान का नमस्कार है॥४२॥ सृष्टि, पालन और पापण करने वाल, गुणभूत, निर्गुण ब्रह्म को धार-धार नमस्कार है॥४३॥ वामन रूप वामन कर्म, वामन नम और वामन धत्त (दान) वाले वामन भगवान् को नमस्कार है॥४४॥ रम्य, पूज्य, अन्यक्त स्वरूप वाले, अप्रतर्क्य, शुद्ध और मय दूर करने वाले भगवान् को नमस्कार है॥४५॥ सत्तार रूपा सत्तार से पार करने के लिए पीत के समान, प्रज्ञान रूप वाल, सौम्य रूप शिव, उदारकर्त्ता रुद्र, सत्तार का नाम करने वाले, सत्तार के सुप्रज्ञाता, सत्तारव्यापी और सृष्टिकर्त्ता को नमस्कार है। दिव्य रूप वाले, साम, अग्नि और वायु रूप म राज म प्रसिद्ध साम और सूर्य की विष्णु रूपी केतु वाले सवा या ब्राह्मण के द्वितकारी ब्रह्म का नमस्कार है॥४६-४८॥ पद नम रूपवाले ऋक्पद स्वरूप ऋक्वाजा स स्तुत, ऋक्पद की साधना के परम लब्ध तुमको नमस्कार है॥४९॥ यज्ञवैद को धारण करने वाले फिर भी यज्ञरूपधारी यज्ञरूप स पूजित और सप्रम वन्दित पाला ब्रह्म को नमस्कार है॥५०॥ श्रीपतः हे देव। आपका नमस्कार है, श्रौत, लक्ष्मी के स्वामी, उदार, य मिया के द्वारा स्मृत और स्वयं भी यागी नारायण का नमस्कार है॥५१॥ साम स्वरूप साम की सौम्य ध्वनि स गेय, साम के समान मधुर और सामगम के ज्ञाता, साम से बाह्य गण और सामवदधारी, साम यज्ञ के ज्ञाता और साम के कर्त्ता का नमस्कार है॥५२-५३॥ अव्यवहार, अव्यव रूप वाल, अव्यव रूपा चरण वाल अव्यव च अव्यव के कर्त्ता के लिए

१। स तुभ्यं। २। देव भयसुरे०। ३। ऋद्धाय अन्तर०। ४। धत्त नम पी०। ५। नमः अन्तरा०। ६। हवें। स हवें। ७। गुणभूताय। ८। स ओमोन्ताय। ९। धार धारणधराय। १०। सूर्याग्निने०।

ओ 'नमो घञ्शोर्पाय मधुकंठभघातिने । महोदधिजलस्थाय । वेदाहरणकारिणे ॥५५॥
 नमो 'दीप्तस्वरूपाय हृषीकेशाय वै नमः । नमो भगवते तुभ्य वासुदेवाय ते नमः ॥५६॥
 नारायण नमस्तुभ्य नमो लोकहिताय च । नमो मोहनाशाय भवभङ्गकराय च ॥५७॥
 गतिप्रदाय च नमो नमो बन्धहराय च । प्रलोभयते ज्ञप्ता कर्त्रे नमस्तेजस्वरूपिणे ॥५८॥
 योगीश्वराय 'शुद्धाय' रामायोत्तरणाय च । सुखाय सुखनेत्राय नमः सुकृतधारिणे ॥५९॥
 वासुदेवाय वन्द्याय धामदेवाय वै नमः । देहिना देहकर्त्रे च भेदभङ्गकराय च ॥६०॥
 देवैर्वन्दितदेहाय नमस्ते दिव्यमौलिने । नमो वासनिवासाय वासव्यवहराय च ॥६१॥
 ओं नमो वसुकर्त्रे च वसुवासप्रदाय' च । नमो यज्ञस्वरूपाय यज्ञेशाय च योगिने ॥६२॥
 यतियोगकरेशाय नमो यज्ञाङ्गधारिणे । सकर्षणाय च नमः प्रलम्बमथनाय च ॥६३॥
 'भेद्यधोपस्वनोत्तोर्णवेगलाङ्गलधारिणे । नमोऽस्तु ज्ञानिना ज्ञान नारायणपरायण ॥६४॥
 न मेऽस्ति त्वामूते धन्युर्नरकोत्तारणे प्रभो । अतस्त्वां सर्वभावेन प्रणतो नतवत्सल ॥६५॥
 मल यत्कायज धार्मिन् मानस धेव केशव । न तस्याग्नोऽस्ति देवेश क्षालकस्त्वामूतेऽच्युत ॥६६॥
 सप्तर्गाणि समस्तानि बिहाय 'त्वामुपस्थित' । सगो मेऽस्तु त्वया सार्धमात्मलाभाय वेशय ॥६७॥
 ऋष्टमापत्सुदुष्पार सप्ताह वैष्मि केशव । तापत्रयपरिविलप्टस्तेन त्वां शरण गतः ॥६८॥

हमारा नमस्कार है ॥५४॥ वज्र क समान गिर वाले, मधुकंठम को मारने वाले एक महान् समुद्र के जल म तिपत्र
 और वेदा के उद्धारकर्ता का नमस्कार है ॥५५॥ परम प्रभामय हृषीकेश वासुदेव भगवान् तुमका मया नमस्कार
 है ॥५६॥ नारायण । लोक हित्र करने वाले, माहनाश, भवभगवारी आपका नमस्कार है ॥५७॥ सत्तार का गति
 देने वाल, बाधाहारी को नमस्कार है, विनाश का तेजोमय करने वाल, तेजस्वरूप भगवान् का नमस्कार है ॥५८॥
 योगीश्वर, शुद्ध लोक से उद्धार करने वाल राम का नमस्कार है, सुखा देने वाले, सुखस्वरूप और सुकृत धारण करने
 वाले को नमस्कार है ॥५९॥ वन्द्याय वासुदेव धामदेव, देहायिण्या के सप्टा और भदमाव को नष्ट करने वाले को
 नमस्कार है ॥६०॥ दन्तात्रा से विन्दि दिव्य मुमुटु वात्र, वास रूप, निवास रूप तथा वासव्यवहार का नमस्कार
 है ॥६१॥ वसु (जत्र) को मृष्टि करने वाले, वसु का वाग देने वाले, यज्ञ स्वरूप योगी और यगर्गनि का नमस्कार
 है ॥६२॥ यति और योगिया का ईश यज्ञागधारी प्रलम्ब नामक अगुत्र के मारने वाले सकर्षण का नमस्कार है ॥६३॥
 मथ ध्वनि से मा अधिष्ठ गम्भार ध्वनि वाल, हल धारण करने वाले ज्ञानिना म मान रूप तथा नारायण-परायण
 को नमस्कार है ॥६४॥ प्रभा । इस तरह से पार उजागर का ग्नि तुमसे बढ़ कर काई मया महापरा नहीं है, अतः
 मान-वत्सल । मैं सब प्रकार से आगवा शरण में हूँ ॥६५॥ दन्ता । अच्युत । भगव । तुमको छोड़ कर शरण
 और मानगिर पाया का पान वाला दूख कोई नहीं है ॥६६॥ भगव । मैं गम्भार सम्बन्ध का योग कर तुम्हारे
 समीप आया हूँ इसलिए तुम्हारे साथ मया दूख सम्बन्ध हुआ जाय जिससे आरक्षण पा जाऊँ ॥६७॥ वेगव । ऋष्ट

१५ नमो वासिष्ठी ० १६ दीपस्व ० १७ वागीश्वर ० ४५ वा शुद्धाय ५४ वा ०५ वासा ०

१८ एतन्मयप्रदान ० ७८ नमस्कार ० ८० नमस्कार ० ८१ नमस्कार ० ९४ वा ०८१ वा योगीश्वर ०

एषणाभिर्जगत्सर्वं मोहितं मायया तव। आकर्षितं च लोभाद्यैरतस्त्वामहमाश्रितः॥६९॥
नास्ति किञ्चित्सुखं विष्णो संसारस्यस्य देहि नः। यथा यथा हि यज्ञेश त्वयि चेतः प्रवर्तते॥७०॥
तया फलविहो न तु सुखमात्मनिकं लभेत्। नष्टो विवेकश्चात्मनोऽस्मि दूषयते जगदातुरम्॥७१॥
गोविन्द ग्राहि संसारान्मामुद्धर्तुं त्वमर्हसि। भग्नस्य मोहसलिले निस्तारे भवार्णवे॥
उद्धर्ता पुण्डरीकाक्ष त्वामृतेऽन्यो न विद्यते॥७२॥

ब्रह्मोवाच

इत्थं स्तुतस्ततस्तेन राजा श्वेतेन भो द्विजा। तस्मिन्क्षेत्रवरे दिव्ये विख्याते पुरुषोत्तमे॥७३॥
भक्तिं तस्य तु सचिन्त्य देवदेवो जगद्गुरुः। आजगाम नृपस्याग्रे सर्वदेवैर्वृतो हरिः॥७४॥
नीलजोमूतसंकाशः पद्मपत्रापतेक्षणः। दधत्सुदर्शनं धीमान्काराग्रे दीप्तमण्डलम्॥७५॥
क्षीरोदजलसंकाशो विमलश्चन्द्रसनिभः। रराज वामहस्तेऽस्य पाञ्चजन्यो महाद्युतिः॥७६॥
पक्षिराजपञ्चजं श्रीमान्गदाशाङ्गासिधुक्प्रभुः। उवाच साधु भो राजन्स्य ते मतिरुत्तमा॥
यदिदं वर भद्रं ते प्रसन्नोऽस्मि तवानघ॥७७॥

ब्रह्मोवाच

भूतैश्च देवदेवस्य वाक्यं तत्परमामृतम्। प्रणम्य शिरसोवाच श्वेतस्तद्गतमानसः॥७८॥

और आपत्तिया के कारण, दुःख से पार पाने योग्य इस संसार को मन्त्रीमार्ति जानता हूँ। अब मैं त्रिविध साध से सतप्य हो गया हूँ, इसलिए प्रभो! आपकी चरण आया हूँ॥६८॥ तुम्हारी भाषा के कारण यह साध मसार कामनाया से मुक्त, लिप्त और लाम त्रापादि से आहृष्ट है, अब मैं तुम्हारा आश्रित हूँ॥६९॥ विष्णो! सांसारिक जीवा का कुठ भी मुख प्राप्त नहीं। यज्ञेश! ज्या-ज्यो आप मे मनुष्य का चित्त रगता जाता है, त्यो-त्यो पञ्चाकाशा सहित आत्यन्तिक मुख उसको मिलते जाते हैं। मैं ज्ञान गून्ध और नष्ट-सा हूँ, यह साध संसार व्याकुल दिगार्द पड़ रहा है। गोविन्द! रक्षा करो। तुम्हीं संसार-सागर से मेरा उद्धार कर सकते हो। पुण्डरीकाक्ष! इस मोह रूपी जल से भरे, पार न करने योग्य संसार सागर में मग्न (डूबे हुए) मुख जैसे के उद्धारक तुम्हारे अतिरिक्त और कोई नहीं है॥७०-७२॥

ब्रह्मा बोले—‘विप्रबुद्ध’ उस दिव्य, प्रसिद्ध पुरुषोत्तम नामक पवित्र तीर्थ में इस प्रकार राजा श्वेत ने भगवान् की स्तुति की। उसकी भक्ति से आहृष्ट होकर नील मेघ के समान कान्तिमान् वाम-उपग्र के समान बड़े और मनोहर नेत्र वाले, हस्ताग्र म प्रकाशमान सुदर्शन चारण किये विमल चन्द्रमा के समान कान्तिमान्, क्षीरसागर के जल के समान प्रमाणपूर्ण, बाघों हाथ में महातेजोमय पाञ्चजन्य ध्वज चारण किये हुए गरुड के ऊपर आसीन तथा पदा, धनुष, सङ्ग चारण किये हुये देवदेव जगद्गुरु हरि देवतात्रा के सहित राजा के पास आए और बोले—‘राजन्! तुम प्रणम्य हो, तुम्हारी उत्तम बुद्धि प्रशसनीय है। अनघ! अनोप वर माँगो, मैं तुम पर प्रसन्न हूँ,॥७३-७७॥

ब्रह्मा बोले—देवादिदेव भगवान् की ऐसी परम मुषापयी वाणी को सुनकर राजा श्वेत ने नमस्त्वं हो प्रणाम करते हुए कहा—॥७८॥

इवेत उवाच

यद्यह भगवन्भवतः प्रयच्छ वरमुत्तमम्। आब्रूह भवनाद्बुध्वं वंछणवं पदमव्ययम् ॥७९॥
विमलं विरजं शुद्धं संसारसङ्गवर्जितम्। तत्पदं गन्तुमिच्छामि त्वत्प्रसादाज्जगत्पते ॥८०॥

श्रीभगवानुवाच

यत्पदं विबुधाः सर्वे मुनयः सिद्धयोगिनः। नभिमगच्छन्ति यद्रम्यं परं पदमनामयम् ॥८१॥
यास्यति परमं स्थानं राज्यामृतमुपास्य च। सर्वलोकानतिश्रम्य मम लोकं गमिष्यसि ॥८२॥
कीर्तिस्तवान्न राजेन्द्र श्रीलोकेश्च गमिष्यति। सानिध्यं मम चैवान्न सर्वदेव भविष्यति ॥८३॥
इत्येताङ्गेति गास्यन्ति सर्वे ते देवदानवाः। कुशाग्रैणापि राजेन्द्र इवेतगाङ्गेयमन्वु च ॥८४॥
स्पृष्ट्वा स्वर्गं गमिष्यन्ति मद्भक्ता ये समाहिताः। यस्त्विमां प्रतिमाङ्गच्छेन्माधवाख्यां शशिप्रभाम् ॥८५॥
शङ्खगोक्षीरसकाशामशेषविनाशिनीम्। तां प्रणम्य सकृद्भुक्त्वा पुण्डरीकनिर्भेषणाम् ॥८६॥
बिहाय सर्वलोकान्वं मम लोके महीयते। मन्वन्तराणि तत्रैव देवकन्याभिरावृतः ॥८७॥
गीयमानश्च मधुरं सिद्धगन्धर्वसेवितः। भुजितं विपुलान्नभोगान्ययेष्टं मामकं सह ॥८८॥
च्युतस्तस्माद्विहाऽजगत्स्य मनुष्यो ब्राह्मणो भवेत्। चैववेदाङ्गविच्छ्रीमान्नभोगादिचरजीवितः ॥८९॥
गजाश्वरथयानाद्यो धनधान्यावृतः शुचिः। रूपवान्यहुर्भाग्यवश्च पुनर्पौत्रसमन्वितः ॥९०॥

इवेत बोले—भगवन्! यदि मैं तुम्हारा भक्त हूँ, तो मुझे यह उत्तम वर दो। जगतपते! मैं तुम्हारे अनुग्रह से उस परम अम्यय वैष्णव पद को प्राप्त करना चाहता हूँ, जो ब्रह्मलोक से भी ऊपर, विमल, रजोगुण से रहित, शुद्ध और संसार के आवरण से परे है ॥७९-८०॥

श्री भगवान् बोले—सभी देवता, मुनि, सिद्ध और योगीजन भी जिस मनोहर, व्याधि-रहित परम पद को नहीं प्राप्त करते हैं, राज्य-सुख भोग कर भी तुम सब लोगों से परे मेरे उस परम स्थान एवं अष्टलोक को जानोगे ॥८१-८२॥ राजेन्द्र! तुम्हारी कीर्ति निम्नवन में फैलेगी और मेरा सर्वदा ही इस क्षेत्र में निवास रहेगा। इस जलोदयि को श्वेत गंगा, इस नाम से देव और दानव पुरारेंगे। राजेन्द्र! इस श्वेतगंगा के जल को कुशाग्र से भी छुरकर मेरे एतान्न भवन स्वर्ग प्राप्त करेंगे। जो दासि के समान मान्तिमती, शाल तथा गो दुग्ध के समान स्वेत, समस्त पापों को नष्ट करने वाली और मनोहर कमल के समान नेत्रवाणी इस माधव की प्रतिमा के समीप जाता है एवं एक बार भी भक्तिपूर्वक प्रणाम करता है वह भक्त सब लोगों को छोड़कर मेरे लोक में स्थान प्राप्त करता है और पूजित होता है ॥८३-८६॥ वह पर मन्वन्तर वयन्त देव-कन्याओं के साथ रह कर मधुर भान का भक्षण करता है, सिद्ध य एवं उमकी सेवा करते हैं और वह मेरे पार्षदी के साथ विपुल भोग का यथेच्छ भोग करता है ॥८७-८८॥ पुन वही के बहुत होकर इस लोक में ब्राह्मण कुल में जन्म लेता है वह वेद-वेदांग का ज्ञान श्रीमार् विरज्जीवी, गज, अश्व, रथ, रजि, रक्षा के ग-रथ पर पान से सज्ज, पवित्र, रूपवान्, भाग्यशाली और पुनर्पौत्रादि वाग्य होता

पुरुषोत्तमं पुनः प्राप्य वटमूलेऽयं सागरे । त्वयत्वा देहं हरिं स्मृत्या ततः शान्तपदं व्रजेत् ॥१९॥
इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे स्वयंभुवःपिसंवादे श्वेतमाधवमाहात्म्यवर्णनं
नामंकोनपटितमोऽध्यायः ॥५९॥

अथ षट्ठितमोऽध्यायः

समुद्रस्नानविधिवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

श्वेतमाधवमालोक्य समीपे मत्स्यमाधवम् । एकाण्यं बजले 'पूर्वं' रोहितं रूपमास्थितम् ॥१॥
वेदानां 'हरणार्थाय' रसातलतले स्थितम् । चिन्तयित्वा क्षितिं सम्यक् तस्मिन् स्थाने प्रतिष्ठितम् ॥२॥
आद्यान्तरणं रूपं माधवं मत्स्यरूपिणम् । प्रणम्य प्रणतो भूत्वा सर्वं तु स्वादिमुच्यते ॥३॥
प्रयाति परमं स्थानं यत्र देवो हरिः स्वयम् । काले पुनरिहाऽऽयातो राजा स्यात्पृथिवीतले ॥४॥
धत्तमाधवमासाद्य बुराधर्षो भवेन्नरः । दाता भोयता भवेद्यज्ञा वंछणवः सत्यसंगरः ॥५॥

है ॥१०॥ तदुपरांत पुरुषोत्तमतीर्थ में आकर सागर तट पर स्थित वट की छाया में भगवान् का स्मरण करता हुआ शरीर त्याग कर परम पद को प्राप्त करता है ॥११॥

श्री ब्रह्ममहापुराण में श्वेतमाधव-माहात्म्य-वर्णन नामक उनसठवाँ अध्याय समाप्त ॥५९॥

अध्याय ६०

समुद्र-स्नान की विधि का वर्णन

ब्रह्मा ने कहा—श्वेतमाधव का दर्शन कर समीप में ही स्थित उस मत्स्यमाधव को चित्तमग्न भाव से प्रणाम करने पर मनुष्य सब दुःखों से छूट जाता है। पूर्वकाल में मत्स्यमाधव ने समुद्रमग्न पृथ्वी पर रोहित मत्स्य का रूप धारण किया था तथा वेदा का उद्धार करने के लिये वह रसातल में स्थित रहे और पृथ्वी को पुनः पूर्व स्थान पर प्रतिष्ठित किया था, यही भगवान् का मत्स्यरूप मप्रथम अवतार था। वह मनुष्य, जो मत्स्य को प्रणाम करता है वह उसी स्थान को प्राप्त करता है, जहाँ भगवान् विष्णु स्वयं निवास करते हैं। समय पर (सृष्टि काल में) वह पुनः इस मृत्युलोक में आकर राजा होता है। मनुष्य मत्स्यमाधव का दर्शन कर अत्यन्त पराक्रमी, अजेय, दानी, भोगी यत्नकर्ता, विष्णुमत्त और सत्यप्रेमी होता है। लौकिक सुख-भोग के परचात् वैष्णव योग को पाकर मोक्ष प्राप्त

१क. ख. पूर्ण। २क. मोहित। ३ख. करणार्थाय।

योग प्राप्य हरे पश्चात्ततो मोक्षमवाप्नुयात् । मत्स्यमाधवमाहात्म्य मया सपरिकीर्तितम् ॥
य इष्ट्वा मुनिशार्दूला सर्वान्कामानवाप्नुयात् ॥६॥

मुनय ऊचुः

भगवञ्श्रोतुमिच्छामो मार्जनं वरुणालये । श्रियते स्नानदानादि तस्याशेषफलं वद ॥७॥

ब्रह्मोवाच

शृणुष्व मुनिशार्दूला मार्जनस्य यथाविधि । भक्त्या तु तन्मत्ता भूत्वा सप्राप्य पुण्यमुत्तमम् ॥८॥
मार्कण्डेयहृदे स्नानं पूर्वकाले प्रशस्यते । चतुर्दश्या विशेषेण सर्वपापप्रणाशनम् ॥९॥
तद्वत्स्नानं समुद्रस्य सर्वकालं प्रशस्यते । पौर्णमास्या विशेषेण हयमेघफलं लभेत् ॥१०॥
मार्कण्डेय वट कृष्ण रोहिणेय महोदधिम् । इन्द्रद्युम्नसरश्चैव पञ्चतीर्थोविधि स्मृतः (?) ॥११॥
पूणिमा ज्येष्ठमासस्य ज्येष्ठा श्रद्धा यदा भवेत् । तदा मण्डोद्विशेषेण तीर्थराजं परं शुभम् ॥१२॥
कायवाङ्मानसं शुद्धस्तद्भावो भान्यमानसः । सर्वद्वन्द्वविनिर्मुक्तो धीतरागो विमत्सरः ॥१३॥
कल्पवृक्षवट रम्यं तत्र स्नात्वा जनादनम् । प्रदक्षिणं प्रवृत्तं त्रिवारं तुल्यमाहितं ॥१४॥
य इष्ट्वा मुच्यते पापात्सप्तजन्मसमुद्भवात् । पुण्यं चाऽऽप्नोति विपुलं गतिमिष्टां च भो द्विजा ॥१५॥

करता है। मुनिवर ! मैंने मत्स्यमाधव का माहात्म्य कह दिया जिसका दशन कर मनुष्य सभी मनोरथों को प्राप्त करता है ॥१६॥

मुनियो ने कहा—भगवन् ! अब हम लोग समुद्र में स्नान करने की विधि स्नान दानादि करने का फल भलीभाँति सुनना चाहते हैं कृपया सुनाइए ॥७॥

ब्रह्मा ने कहा—मुनिवर ! मार्जन की विधि और भक्तिपूर्वक अग्न्य भाव से स्नान से जो उत्तम पुण्य प्राप्त होता है उसे सुनिए ॥८॥

मार्कण्डेय हृद का प्रातःकालीन स्नान पापनाशक होता है चतुर्दशी के दिन का स्नान तो विशेष रूप से सभी पापों को दूर करता है ॥९॥ उसी प्रकार यो जो सबदा समुद्र का स्नान प्रशस्त माना गया है परन्तु पूणिमा के दिन स्नान करने से विशेष रूप से अश्वमेध का फल प्राप्त होता है ॥१०॥ मार्कण्डेय हृद कृष्ण वट रोहिण्य महोदधि (सागर) इन्द्रद्युम्न सर—इन पाँच तीर्थों के स्नान की विशेष विधि कही गई है ॥११॥ ज्येष्ठ मास की पूणिमा यदि ज्येष्ठा नक्षत्र से युक्त हो तो उस दिन विशेष रूप से परम शुभ तीर्थराज की यात्रा करनी चाहिये ॥१२॥ वहाँ शरीर वाणी और मन से शुद्ध एव सभी प्रकार के आन्तरिक द्वन्द्व राग ईर्ष्या से मुक्त हो अनन्य मन और भावना से मनोहर कल्पवटवृक्ष के समीप स्नान कर एकाग्र हो जनादन की तीन बार प्रदक्षिणा करे ॥१३॥ १४॥ विप्रगण वहाँ पर जनादन भगवान का दशन कर मनुष्य अपने सात जन्म के पापों से छूट जाता है और अत्यन्त पुण्य तथा मनबाढ़

तस्य नामानि वक्ष्यामि प्रमाणं च युगे युगे। यथासंख्यं च भो विप्राः कृतादिषु यथाक्रमम्॥१६॥
 वटं वटेद्वरं 'कृष्णं' पुराणपुरुषं द्विजाः। वटस्यैतानि नामानि कीर्तितानि कृतादिषु॥१७॥
 योजनं पादहीनं च योजनार्थं तदर्थकम्। प्रमाणं कल्पवृक्षस्य कृतादौ परिकीर्तितम्॥१८॥
 'ययोक्तेन तु मन्त्रेण नमस्कृत्वा तु तं वटम्। दक्षिणाभिमुखो गच्छेद्वन्वन्तरशतत्रयम्॥१९॥
 यनासौ दृश्यते विष्णुः' स्वर्गद्वारं मनोरमम्। सागराम्भ. 'समाकृष्टं' काष्ठं सर्वगुणान्वितम्॥२०॥
 प्रणिपत्य ततस्तं भो परिपूज्य ततः पुनः। मुच्यते सर्वरोगाद्येस्तथा पापं प्रहृदिभिः॥२१॥
 उप्रसेनं पुरा दृष्ट्वा स्वर्गद्वारेण 'सागरम्'। भूत्वाऽऽचम्य शुचिस्तत्र ध्यात्वा नारायणं परम्॥२२॥
 न्यसेदष्टाक्षरं मन्त्रं पश्चाद्वस्तशरीरयोः। ॐ नमो नारायणायेति यं वदन्ति मनीषिणः॥२३॥
 किं कार्यं बहुभिमन्त्रेन नो विग्रहकारकैः। ॐ नमो नारायणायेति मन्त्रः सर्वार्थसाधकः॥२४॥
 आपो नरस्य स्मृत्वाभ्रां इतीह कीर्तिताः। विष्णोस्तास्तवयनं पूर्वं तेन नारायणः स्मृतः॥२५॥
 नारायणपरा वेदा नारायणपरा द्विजाः। नारायणपरा यज्ञा नारायणपराः क्रियाः॥२६॥
 नारायणपरा पृथ्वी नारायणपरं जलम्। नारायणपरो वह्निर्नारायणपरं नभः॥२७॥
 नारायणपरो वायुर्नारायणपरं मनः। अहंकारश्च बुद्धिश्च उभे नारायणात्मके॥२८॥

फल को प्राप्त करता है ॥१५॥ विप्रण। मैं उस वट के नाम युगानुसूय प्रमाण और कृतादि युग के अनुसार सख्या क्रमपूर्वक कहूँगा, ध्यानपूर्वक सुनी। द्विजगण। कृत आदि युग में इस वट के वट, वटेद्वर, कृष्ण और पुराण पुरुष—ये नाम कहे गये हैं ॥१६-१७॥ इस कल्पवृक्ष का प्रमाण एक योजन, पादहीन योजन (तीन कोश) आधा (दो कोश) पुरुष—ये नाम कहे गये हैं ॥१६-१७॥ इस कल्पवृक्ष का प्रमाण एक योजन, पादहीन योजन (तीन कोश) आधा (दो कोश) उसका आधा (एक कोश) त्रयस कृत श्रेता, आपर और कलि में कहा गया है ॥१८॥ योक्तेन मन्त्र से उस वट का नमस्कार कर दक्षिण की ओर तीन सौ धन्वन्तर (१२०० हाथ) पर्यंत जाना चाहिए। जहाँ विष्णु मनारम स्वर्गद्वार तथा सनुद्र-जल के द्वारा लाया गया सर्वगुणसम्पन्न काष्ठ दिखाई देता है ॥१९-२०॥ वहाँ पर गगनाद् नमस्कार और पुनः पूजन करने से मनुष्य सब प्रकार के रोग, पाप और ग्रह-पीडा से छूट जाता है ॥२१॥ पहले उप्रसेन का दशन कर स्वर्ग द्वार से सागर के समीप आकर, आचमन करके पवित्र हो जाय, फिर नारायण का स्मरण कर हाथ और शरीर पर 'ओ नमो नारायणाय' इस अष्टाक्षर मन्त्र से न्यास करे। अन्य बहुत से भ्रम पैदा करने वाले मन्त्रों से कोई लाभ नहीं, यह ओ नमो नारायणाय मन्त्र ही सभी अर्थों का साधक है ॥२२-२४॥ नर से उत्पन्न होने के कारण आप (जल) की 'नार' इस नाम से इस लोक में कहा गया है, वह पहले-पहल विष्णु का निवास-स्थान बना इसलिये विष्णु 'नारायण' इस नाम से विख्यात हुये ॥२५॥ वेद द्विज, यज्ञादि सभी क्रियायें पृथ्वी, जल, आकाश, अग्नि वायु और मन सभी नारायण पर हैं, अर्थात् नारायण की उपासना में लीन और नारायण रूप हैं। अहंकार और बुद्धि दोनों नारायणात्मक हैं, भूत, मय्य, मयिष्य और समस्त जीव नाम से प्रसिद्ध पदार्थ तथा स्थूल, सूक्ष्म पर ये सभी नारायणात्मक हैं ॥२६-२९॥ शब्द, रस आदि सभी विषय, श्रोत्र (कान) आदि इन्द्रियाँ, प्रकृति—यहाँ तक कि पुरुष भी

१क पूर्व। २ग पूर्वोक्तेन। ३क ग विद्वत्। ४ग ०माकीर्णं वा०। ५स ०ते दृष्टरोगैस्तु तथा।
 ६क संगतम्। ७क ०त्वा तत्र शुचिर्भूत्वा ध्या०। ८क ०स्तास्त्वय०।

भूतं भव्यं भविष्यं च यत्किञ्चिज्जीवसंज्ञितम्। स्थूलं सूक्ष्मं परंचैव सर्वं नारायणात्मकम् ॥३१॥
 शब्दाद्या विषयाः सर्वे श्रीनादीनीन्द्रियाणि च। प्रकृतिः पुरुषश्चैव सर्वे नारायणात्मकाः ॥३२॥
 जले स्थले च पाताले स्वर्गलोकेऽप्यरे नगे। अवष्टम्भ इदं सर्वमास्ते नारायणः प्रभुः ॥३३॥
 किं चान् यदुनोवतेन जपदेतच्चराचरम्। ब्रह्मादिस्तम्भपर्यन्तं सर्वं नारायणात्मकम् ॥३४॥
 नारायणात्परं किञ्चित्त्रेह पश्यामि भो द्विजाः। तेन व्याप्तमिव सर्वं दृश्यादृश्यं चराचरम् ॥३५॥
 आपो ह्यायतनं विष्णोः स च एवाम्भसां पतिः। तस्मादप्सु स्मरेन्नित्यं नारायणमघापहम् ॥३६॥
 स्नानकाले विशेषेण चोपस्थाप्य जले शुचिः। स्मरेन्नारायणं ध्यायेद्वस्ते काये च विन्यसेत् ॥३७॥
 ओंकारचनकारंच शङ्खच्छेहस्तयोग्यसेत्। शेषं हं (पान्ह) स्ततलं (ले) मावत्तर्जण्याविषु विन्यसेत् ॥३८॥
 ओंकारं वामपादे तु नकारं दक्षिणे न्यसेत्। मोकारं वामकट्या तु नाकारं दक्षिणे न्यसेत् ॥३९॥
 राकारं नाभिदेशे तु यकारं वामबाहुके। णकारं दक्षिणे न्यस्य यकारं मूर्ध्नि विन्यसेत् ॥४०॥
 अवश्चोर्ध्वं य हृदये पार्श्वतः पृष्ठतोऽग्रतः। ध्यात्वा नारायणं पश्चाद्वारभेतकवचं मुधुः ॥४१॥
 पूर्वं मां पातु गोविन्दो दक्षिणे मधुसूदनः। पश्चिमे श्रीधरो देवः केशवस्तु तथोत्तरे ॥४२॥
 पातु विष्णुस्तथाऽऽग्नेये नैऋते माधवोऽप्ययः। वायव्ये तु हृषीकेशस्तथेशाने च वामगः ॥४३॥
 भूतले पातु वाराहस्तथोर्ध्वं च त्रिविक्रमः। कृत्वा कवचं पश्चाद्वात्मानं चिन्तयेत्ततः ॥४४॥

नारायणात्मक है ॥३१॥ जल, स्थल, पाताल, स्वर्ग, लोक, आकाश और पहाड़ सर्वत्र प्रभु नारायण व्यापक रूप से स्थित है ॥३२॥ इस नियम में और अधिक क्या कहा जाय, यह सबराचर जगत् ब्रह्मा से लेकर स्तम्भ पर्यन्त सब कुछ नारायणात्मक है ॥३३॥ द्विजगण । नारायण के अतिरिक्त कोई भी वस्तु यहाँ नहीं दिखाई दे रही है, यह सारा प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष चराचरात्मक जगत् उसी नारायण से व्याप्त है ॥३४॥ विष्णु का जल ही निवास स्थान है वे ही जल के स्नानी हैं इसलिये जल में सर्वदा उस अपहृर नारायण वा स्मरण करना चाहिये ॥३५॥ स्नान के समय तो विशेष रूप से जल में पवित्र भाव से स्थित होकर नारायण का स्मरण, ध्यान और हस्त तथा शरीर पर अंग-स्थापन करना चाहिये ॥३६॥ पहले ओंकार और नकार को हाथों के अंगूठे पर न्यस्त करे, शेष मन्त्रभाषा से हस्त तल (हथेली) से लेकर तजनी आदि तक न्यास करना चाहिए ॥३७॥ पुन ओंकार का बायें और नकार को दाहिने चरण पर न्यस्त करे। मोकार को वाम तथा नाकार को दक्षिण कटि भाग पर स्थापित करे ॥३८॥ इसी प्रकार णकार को नाभि-देश में, यकार को बाईं भुजा पर, णकार को दाहिनी भुजा पर रखकर यकार को शिर भाग पर स्थापित करे। ॥३९॥ तदनन्तर अघ, ऊर्ध्व, हृदय, पार्श्व (बागल) पृष्ठ (पीछे) और अग्र भाग में नारायण का ध्यान कर विद्वान् आगे कहे हुये नारायण कवच का पाठ प्रारम्भ करे ॥४०॥ गोविन्द पूर्व में, मधुसूदन दक्षिण में, श्रीधर पश्चिम में, इसी प्रकार उत्तर में केशव देव मेरी रक्षा करे ॥४१॥ और अग्निर्कोण में विष्णु नैऋत में अविनाशी माधव, वायव्य में हृषीकेश तथा ईशान में गणवान् वामन मेरी रक्षा करें ॥४२॥ एव मू-पृष्ठ पर वाराह तथा आकाश में त्रिविक्रम विष्णु मेरी रक्षा करें। मैं ही सब, चक्र और गदाधारी भगवान् नारायण

अहं नारायणो देव शङ्खचक्रगदाधरः । एव ध्यात्वा तदाऽऽत्मानमिमं मन्त्रमुदीरयेत् ॥४३॥
 त्वमग्निद्विपदा' नाय रेतोधा कामदीपन । प्रधानं सर्वभूतानां जीवानां प्रभुरव्यय ॥४४॥
 अमृतस्मारणस्त्व हि देवयोनिरपा पते । वृजिन हर मे 'सर्वं तीर्थराज नमोऽस्तु ते ॥४५॥
 एवमुच्चार्य विधिवत्तत स्नानं समाचरेत् । अन्यथा भो 'द्विजश्रेष्ठा स्नानं तत्र न शस्यते ॥४६॥
 कृत्वा तु वेदिकमन्त्रैरभिषेकं च मार्जनम् । अन्तर्जले 'जपेत्पञ्चाक्षरान्मन्त्रान्मन्त्रमर्पणम् ॥४७॥
 हयमेधो यया विप्रा सर्वपापहरः शत्रु । तयाऽप्यमर्पणं चात्र सूत सर्वघनाशनम् ॥४८॥
 उत्तरीयं वाससी धौते निमले परिधाय वै । प्राणानायम्य चाऽऽचम्य सध्या चोपास्य भास्करम् ॥४९॥
 'उपतिष्ठेत्ततश्चोर्ध्वं शिष्ट्वा पुष्पजलाञ्जलिम् । उपस्थायोर्ध्वं बाहुभ्यां तत्तिलैर्भस्करं ततः ॥५०॥
 गायत्रीं पावनो देवो जपेदष्टोत्तरं शतम् । अन्याश्च सौरमन्त्राश्च जप्त्वा तिष्ठ समाहितः ॥५१॥
 कृत्वा प्रदक्षिणं सूर्यं नमस्कृत्योपविश्य च । स्वाध्यायं प्रादुर्मुखं कृत्वा तर्पयेद्देवतान्युषीनु ॥५२॥
 मनुष्याश्च पितृश्चान्यान्नामगोत्रेण मन्त्रवितः । तोषेन तिलमिश्रेण विधिवत्समाहितः ॥५३॥
 तर्पणं देवतानां च पूजं कृत्वा समाहितः । अधिकारी भवेत्पञ्चाक्षरतृणां तर्पणे द्विजः ॥५४॥
 श्राद्धे हवनकाले च पाणिनकेन निर्वपेत् । तर्पणे 'तूभयं कुर्यादपि एव विधिं सदा ॥५५॥

हैं इस प्रकार नारायण रूप में अपने को ध्यान में रखकर इस आगे कहे हुए मन्त्र का उच्चारण करना चाहिये ॥४३॥
 है नरनाथ । तुम अग्नि बीज धारण वाले और प्राणियों के हृदय में काम को दीप्त करने वाले हो । तुम सभी मूलों
 (जीव या पदार्थ) में प्रधान और जीवों के अविनाशी प्रभु हो ॥४४॥ जल के स्वामी । तुम अमृत के निधान और
 देवयोनि हो तीर्थराज । मेरे सभी पापों को दूर करो तुम्हें मेरा नमस्कार है ॥४५॥ इस प्रकार मन्त्रोच्चारण कर
 विधिवत् स्नान करना चाहिये । विप्रवय ! अन्यथा (अविधि से) समुद्र में स्नान करने का कोई विशेष फल नहीं
 होता ॥४६॥ वेदिक मन्त्रों से अभिषेक और मार्जन करने के पश्चात् जल में डूबकर तीन बार अथमर्पण मन्त्र का जप
 करे ॥४७॥ ब्राह्मणो ! जिस प्रकार अश्वमेध सब पापों को नष्ट करनेवाला यज्ञ है उसी प्रकार इस लोक में
 अथमर्पण सब पापों को नष्ट करने वाला सूत है ॥४८॥ जल से निकल कर स्वच्छ घुले उत्तरीय बदन पहनकर
 प्राणायाम और आचमन कर विधिवत् सध्यापासन करे । तदनन्तर पुष्पयुक्त जलाञ्जलि देकर खड़ा होकर सूर्यो
 पस्थान करे ऊर्ध्वबाहु हो पूज प्रकार से ही सूर्योपस्थान करने के बाद एकाग्रचित्त से पवित्र गायत्री देवी का एक सौ
 आठ बार और अन्य सूत्रमन्त्रों का भी जप करे ॥४९५१॥ पुनः सूर्य की प्रदक्षिणा तथा नमस्कार कर आसनस्थ
 हो पूज की ओर मुख कर स्वाध्याय करे । मन्त्र मनुष्य स्वाध्याय के बाद तिलमिश्रित जल से विधिपूर्वक एकाग्र
 मन से देवताओं ऋषियों और नाम गोत्रपूर्वक मनुष्या पितरों एवं अन्य मूलों का तर्पण करे ॥५२५३॥ ब्राह्मण
 मन से देवतर्पण करने के बाद ही पितृतर्पण का अधिकारी होता है । श्राद्ध और हवन काल में एक हाथ से ही
 निर्वपण (श्राद्ध या हवन की क्रिया) करना चाहिये । तर्पण में दोनों हाथों से क्रिया करे यही सनातन विधि है ॥५४॥

१क ख - द्विपदा ना० । २ख ना च प्रमुख्यक । अ० । ३ख ख ०य । यतस्तस्या० । ४क देव ।
 ५ख मुनिश्रेष्ठा । ६क ०२वामन चाप्यथ० । ७ख ०ततो विप्रा नि० । ८क नर । ९क तपयेत् । १०ख द्वितीय ।

अन्वारब्धेन सव्येन पाणिना दक्षिणेन तु। 'तृप्यतामिति सिञ्चेत्तु नामगोत्रेण वाग्यतः॥५६॥
 कायस्वर्ग्येऽस्तिर्लेमोहात्करोति पितृतर्पणम्। तर्पितास्तेन पितरस्त्वद्भासरधिरास्थिभिः॥५७॥
 अङ्गस्थेन तिलं कुर्याद्वेतापितृतर्पणम्। रुधिरं तद्भूवेतोय प्रदाता कित्विषो भवेत्॥५८॥
 भूम्यां यद्दीयते तोय दाता चैव जले स्थितः। यथा तन्मुनिशार्दूलो नोपतिष्ठति कस्यचित्॥५९॥
 स्थले स्थित्वा जले यस्तु प्रयच्छेद्बुदकं नरः। पितृणां नोपतिष्ठेत सलिलं तन्निरर्थकम्॥६०॥
 उदके नोदकं कुर्यात्पितृन्मयश्च कदाचन। उत्तीर्य तु शुचौ देशे कुर्याद्बुदकतर्पणम्॥६१॥
 नोदकेषु न पात्रेषु न ब्रुद्धो नैकपाणिना। नोपतिष्ठति तत्तोयं यद्भूम्यां न प्रदीयते॥६२॥
 पितृणामक्षयं स्थानं महोदत्ता मया द्विजाः। तस्मात्तत्रैव दातव्यं पितृणां प्रीतिमिच्छता॥६३॥
 भूमिपृष्ठे समुत्पन्ना भूम्यां चैव च संस्थिताः। भूम्यां चैवल्यं याता भूमौ दद्यात्ततो जलम्॥६४॥
 आस्तीर्य च कुशान्ताग्रास्तानावाह्य स्वमन्त्रतः। प्राचीनाग्रेषु वै देवान्गाम्याग्रेषु तथा पितॄन्॥६५॥
 इति श्रीमहापुराणे आदिद्वाह्ये स्वयम्भुव्यसिवादे समुद्रस्तनान्विधिनिर्णयण नाम
 षष्ठितमोऽध्यायः॥६०॥

५५॥ अन्वारब्ध (वायें पैर को मोड़कर बैठना) हो वायें हाथ से दाहिने हाथ में जल गिराता हुआ बाणी का समय कर नाम गोत्र का उल्लेख करता हुआ 'तृप्यताम्' इस मन्त्र से तर्पण करना चाहिये। जो मनुष्य शरीर पर तिल रख कर अज्ञान ब्रह्म पितृतर्पण करता है वह अपने पितरों का मांस, रुधिर और चर्म अस्थि से तर्पण करता है॥५६-५७॥ इसलिये शरीर पर रखे तिलों से कभी भी देव पित्रु तर्पण नहीं करता चाहिये क्योंकि तर्पण में दिया वह जल रुधिर के समान होता और वह दाता पाप का भागी होता है॥५८॥ मुनिवयः । दाता द्वारा स्वयं जल में स्थित होकर भूमि पर दिया हुआ जल व्यर्थ जाता है वह किसी पितर या देव को प्राप्त नहीं होता॥५९॥ इसी प्रकार जो स्थल पर बैठ कर जल में तर्पण जग गिराता है वह जल व्यर्थ हो जाता है, किसी पितर को प्राप्त नहीं होता॥६०॥ जल में स्थित होकर जल में कभी भी तर्पण नहीं करता चाहिये किन्तु जल से बाहर निकल कर पवित्र स्थान पर जल-तर्पण करना चाहिये॥६१॥ क्रुद्ध होकर, एक हाथ से, जल में या किसी पात्र में तर्पण जल नहीं गिराना चाहिये क्योंकि वह जल जो पृथ्वी पर नहीं दिया जाता व्यर्थ जाता है किसी अनीष्ट उद्दिष्ट पितर या देवता को प्राप्त नहीं होता॥६२॥ हे द्विजगण ! मैंने पितरों को पृथ्वी ही अर्वा स्वान के रूप में दी है इसलिये पितृप्रेमी व्यक्ति पितरों को प्रसन्न करने के लिये पृथ्वी पर ही तर्पण जल दे॥६३॥ पितर लोग इस मूषण्ड पर ही उत्पन्न हुये, भूमि पर ही रहे और अंत में भूमि में ही लीन भी हो गये इसलिये भूमि पर ही अग्रभाषासहित कुशाओं को फैलाकर, उनका मनो से आवाहन कर पूर्वाग्रभाग में देवताओं के लिये और दक्षिण भाग में पितरों के लिये जल देना चाहिये॥६४-६५॥

श्री ब्रह्ममहापुराण में समुद्रस्तनान्विधि निरूपण नामक साठवाँ अध्याय समाप्त॥६०॥

अथैकपण्डितमोऽध्यायः

पूजाविधिवचनम्

ब्रह्मोवाच

देवान्पितृस्तथा चान्यान्सतर्प्याऽऽचम्य वाप्यत । हस्तमात्रचतुष्कोण चतुर्द्वार सुशोभनम् ॥१॥
 पुर विलिख्य भो विप्रास्तोरे तस्य महोदधे । मध्ये तत्र लिखेत्पद्मपटपत्र सर्काणकम् ॥२॥
 एव मण्डलमालिख्य पूजयेत्तत्र भो द्विजा । अष्टाक्षरविधानेन नारायणमज विभुम् ॥३॥
 अत पर प्रवक्ष्यामि कायशोधनमुत्तमम् । 'अकार हृदये ध्यात्वा' चक्ररेखासमन्वितम् ॥४॥
 ध्वलन्त त्रिशूल चैव दहन्त पापनाशनम् । 'चन्द्रमण्डलमध्यस्य' 'राकार मूर्ध्नि चिन्तयेत् ॥५॥
 'शुक्लवर्णं' प्रवर्पन्तममृत प्लावयन्महीम् । एव निर्धूतपापस्तु 'दिव्यदेहस्ततो' भवेत् ॥६॥
 अष्टाक्षर ततो मन्त्र न्यसेदेवाऽऽमनो ब्रुध । वामपाद समारभ्य त्रयशर्चय विन्यसेत् ॥७॥
 पञ्चाङ्ग वण्णव चैव चतुर्व्यूह तथैव च । करशुद्धिं प्रनुबोत मूलमन्त्रेण साधक ॥८॥
 एकैक चैव वर्णं तु अङ्गुलीषु पृथक्पृथक् । ओकारपृथिवीं शुक्ला वामपादे तु विन्यसेत् ॥९॥
 नकार 'शाभव इयामो' दक्षिणे तु व्यबस्थित । मोकार कालमेवाऽऽहुर्वामकट्या निधापयेत् ॥१०॥

अध्याय ६१

पूजा की विधि का निर्देश

ब्रह्मा ने कहा—इस प्रकार देव बितर और मनुष्या का तपण कर मोन हो आचमन कर विप्रगण डल महो
 वधि के तट पर एक हाथ लम्बा उताना ही चौडा एक सुन्दर चतुर्भुज क्षत्र बनाये जिसके चारो ओर चार द्वार हो
 उसके मध्य मे आठ पल्लवियो वाला कमल बनाये । द्विजबुन्द । ऐसा मण्डल बना कर उसमे अष्टाक्षर मन्त्र से
 अज, व्यापक नारायण की स्थापना कर पूजा करे ॥१॥ ३॥ अब इसके बाद उत्तम शरीर-शोचन की विधि बताता रहा
 हैं । पहले हृदय म चक्र रेखा से युक्त आकार का जिसम पापों को नष्ट करने वाले प्रज्वलित अग्नि का भी रूप हो—
 ध्यान करे और मस्तक मे चन्द्रमण्डल के मध्य मे स्थित शुक्ल वर्ण और अपनी अमृत-वर्षा से पृथ्वी को डुबाने
 या मरते हुए से 'रा' का ध्यान करे ॥४॥ ५॥ इस प्रकार ध्यान करने से मनुष्य पापमुक्त और दिव्य देहवाला
 हो जाता है । वदुपरान्त विद्वान् मनुष्य अपने बाय पैर से आरम्भ कर त्रयश अन्व अंगो मे अष्टाक्षर मन्त्र से
 अङ्गन्यास करे ॥६॥ ७॥ वह साधक फिर वण्णव पचाडन तथा चतुर्व्यूह और मूल मन्त्र से करशुद्धि करे ॥८॥
 अङ्गुलिया पर पृथक्पृथक् एक एक वर्ण वा ओर बाये पैर पर शुक्ल वर्ण पृथिवी आकार का न्यास करे ॥९॥ दक्षिण

१ख विलिप्य । ग प्रलिप्य । २ग क्षकार । ३ख ग चिन्त्य । ४ख ० रेफस ० । ५ख चतुर्मुण्ड ० ।
 ६क वकार । ख चकार । ७क रक्तवर्ण । ८ख ० व्यहस्तस्त ० । ९क शोभन ।

नाकार 'सर्वबीज' तु दक्षिणस्या व्यवस्थित । राकारस्तेज इत्याहुर्नाभिदेशे व्यवस्थित ॥११॥
वायव्योऽयं यकारस्तु वामस्कन्धे समाश्रित । णाकार सर्वगो ज्येष्ठो दक्षिणासे व्यवस्थित ॥
यकारोऽयं शिरस्थश्च यत्र लोका प्रतिष्ठिता ॥१२॥

ॐ विष्णवे नमः शिरः । ॐ ज्वलनाय नमः शिखा । ॐ विष्णवे नमः कवचम् । ॐ विष्णवे
नमः स्फुरण दिशो बन्धाय । ॐ ह्रस्वस्त्रयम् । ॐ शिरसि शुक्लो वासुदेव इति । ॐ आ ललाटे
'रक्त सकपणो' गह्वरान्वल्लिस्तेज आदित्य इति । ॐ आ ग्रीवाया पीत प्रद्युम्नो वायुमेघ इति ।
ॐ ओं हृदये कृष्णोऽनिरुद्ध सर्वशक्तिस्तमन्वित इति । एव चतुर्ग्रहमात्मानं कृत्वा ततः कर्म
समाचरेत् ॥१३॥

ममाग्रेऽवस्थितो विष्णु पृष्ठतश्चापि केशव । गोविन्दो दक्षिणे पाश्वे वामे तु मधुसूदन ॥१४॥
"उपरिष्ठात्तु बंकुण्ठो वाराह पृथिवीतल । अवान्तरदिशो यास्तु तामु सर्वासु माधव ॥१५॥
गच्छतस्तिष्ठतो वाऽपि जाग्रत स्वपतोऽपि वा । नरासहकृता गुप्तिर्वासुदेवमयो ह्यहम् ॥१६॥
एव विष्णुमयो भूत्वा ततः कर्म समारभत् । यथा" देहे तथा देवे सर्वतस्त्वानि धीजयेत् ॥१७॥

पाद पर क्षणमवधेयं नै शम्भु प्रतीक 'न' को स्थापित करे । 'मो' को काल ही कहा जाता है उसको वाम वटि 'व'
और सबके बीच रूप 'ता' को दक्षिण वटि पर स्थापित करे । 'रा' को तेज कहा जाता है उसको नाभि प्रदेश में 'ण'
प्रतीक 'य' को वायें 'व' पर स्थित करे । गकार को सबव्यापक जानना चाहिये । इसी प्रकार 'ण' को बाहिर् 'व'
पर तथा 'य' को - जिसमें सब लोक प्रतिष्ठित हैं - शिर पर स्थापित करे ॥१०-१२॥

पुनः ॐ विष्णवे नमः बह्वर गिरः ॐ ज्वलनाय नमः बह्वर शिखा ॐ विष्णवे नमः बह्वर कवच ॐ विष्णवे
नमः और ह्रस्वस्त्रयम् बह्वर नेत्र-स्पर्श और दिग्बन्ध करे । इसके पश्चात् ॐ शिरसि शुक्लो वासुदेव (शिर पर शुभ
वासुदेव) ॐ ओं ललाटे (ललाट पर) रक्त सकपणो गरुमान् बल्लिस्तज आदित्य ॐ ओं ग्रीवाया (ग्रीवा में) पीत
प्रद्युम्न वायुमेघ ॐ ओं हृदये कृष्णोऽनिरुद्ध सर्वशक्तिस्तमन्वित इन मन्त्रों से अपने को चतुर्ग्रह से सुरक्षित कर
के बाद आगे कहीं विधि का अनुष्ठान करे ॥१३॥ मरे अग्रभाग में विष्णु पीछे शेषाक्ष दाहिने पाश्वर्क में शक्ति
बायें मधुसूदन ऊपर में बंकुण्ठ पृथिवी-तल पर भगवान् वाराह सम्पूर्ण दिग्गजा और अवान्तर दिग्गजा (कोनों में
माधव रक्षा करें इसी प्रकार चलते बैठते जागते और सोने समय मेरी नृसिंह भगवान् के द्वारा रक्षा है
अब मैं वायुदेवमय हो गया । इस प्रकार भगवान् से विष्णुमय हुआ अग्रिम कर्म का प्रारम्भ करे और त्रि
प्रसार शरीर पर सब तत्त्वा की योजना की उसी प्रकार देव पर (मण्डलस्थ देव पर) सम्पूर्ण तत्त्वा की योजना करे ॥१॥

१ ग पूर्वबीज । २ व ॐ वेङ्कट ० । ३ स ॐ स्फुरन्गारि ० । ४ ॐ शारदागारि ० । ५
० धम्मनाम । ५ व ० नि । ए० । स ० नि ० । ६ स ० णो बल्लि ० । ७ व ० नि । आदि ० । स ०
अथो ० । ८ स ० मेपात्र ६० । ९ ग ० नि । अ ऊ ह ० । १० ग ० य हृष्टो नि ० । ११ व ० पतिष्ठतु वै
१२ स ० पामनि त ० ।

ततश्च प्रकुर्वीत प्रोक्षण 'प्रणवेन तु। पटकारान्त समुद्दिष्ट सर्वविघ्नहर शुभम्॥
'तत्रार्कचन्द्रबह्वीना मण्डलानि विचिन्तयेत्। पद्ममध्ये न्यसेद्विष्णु' पवनस्याम्बरस्य च॥
ततो विचिन्त्य हृदय ओंकार ज्योतीरपिणम्। कर्णिकाया समासीन ज्योतीरूप सनातनम्॥
अष्टाक्षर ततो मन्त्र विन्यसेच्च यथाक्रमम्। तेन व्यस्तसमस्तं पूजन परम स्मृतम्॥
द्वादशाक्षरमन्त्रेण यजेद्देव सनातनम्। ततोऽवधाय हृदये कर्णिकाया बहिर्न्यसेत्॥
चतुर्भुज महासत्त्व सूर्यकोटिसमप्रभम्। चिन्तयित्वा महायोग ज्योतीरूप सनात
ततश्चाऽऽवाहयेन्मन्त्र त्रयेणाऽऽचिन्त्य मानसे ॥

आवाहनमन्त्र—मीनरूपो वराहश्च नरसिंहोऽथ वामन। आयातु देवो
मम नारायणोऽग्रतः। ॐ नमो नारायणाय नमः ॥
स्थापनमन्त्र—कर्णिकाया स्पर्शोऽत्र पद्मकल्पितमासनम्। सर्वसत्त्वहितायैव तिष्ठ
मधुसूदन। ओ नमो नारायणाय नमः ॥
अधमन्त्र—ॐ त्रैलोक्यपतीनां पतये देवदेवाय हृषीकेशाय विष्णवे नमः। ओं
नारायणाय नमः ॥

१७॥ इतमी क्त्वा के पश्चात् विघ्न विनाशक गुप्त प्रणव से प्रारब्ध पटकारान्त वाले मन्त्र (ॐ नमो नारा
यण) प्रोक्षण (जल छिन्न) करे ॥१८॥ उस मण्डल में मूय चन्द्र अग्नि वायु और आकाश के चक्र स्थापि
पद्म के मध्य भाग में विष्णु की स्थापना करे ॥१९॥ तदुपरान्त अपने हृदय में पद्मपत्र पर स्थित ज्योतिर्
सनातन ज्योतिर्मय ओंकार का ध्यान कर त्रयपूवक अष्टाक्षर मन्त्र का वित्यास करे फिर उसी मन्त्र से अलग
और समूहात्मक रूप में पूजन करना परम उत्कृष्ट कहा गया है ॥२० २१॥ द्वादशाक्षर मन्त्र से सनातन है
पूजा करती चाहिये। इस प्रकार पूजन के बाद हृदय में मधुसूदन का ध्यान और सनातन ज्योतिरूप महादेव
स्मरण कर कर्णिका के बाहरी भाग में महापराक्रमी कोटि मूय के सदान तेजस्वी चतुर्भुज भगवान की रु
बर मन्त्रा का क्रम से ध्यान कर आवाहन करे ॥२२ २३॥ आवाहन के मन्त्र— मीनरूप वराह
और वामन रूप धारण करने वाले वरद नारायण देव मेरे सम्मुख आयें। ॐ नमो नारायणाय नमः ॥२४॥

स्थापन मन्त्र—इस सुन्दर कर्णिका के भीत पर पद्म रूप में कल्पित आसन पर है मधुसूदन। अस्ति
के कल्याण के लिए तुम बठो। ॐ नमो नारायणाय नमः ॥२५॥

अधमन्त्र—ॐ त्रिभुवनपति के भी पति देवदेव हृषीकेश विष्णु को नमस्कार है ॐ नमो नारायणाय नमः।

१क प्रवर्णन। २ग प्रवर्णन। ३क ० प्रायश्चित्त ०। ३क ० द्विष्णुमवमस्यापरस्य तु। त०। ४स ० या हरि
५ग ० त्र०। नुमेह ० पादपीठ तै प०। ६क तीनामन्त्राय दे०। ७स ० मैऽर्च्यय दे०।

पाद्यमन्त्रः—ओं पाद्यं पादयोर्देव पद्मनाभ सनातन । विष्णो कमलपत्राक्ष गृहाण
मधुसूदन । ओं नमो नारायणाय नमः ॥२७॥

मधुपर्कमन्त्रः—मधुपर्कं महादेव ब्रह्माद्यैः कल्पित तव । मया निवेदितं भक्त्या गृहाण
पुरुषोत्तम । ओ नमो नारायणाय नमः ॥२८॥

आचमनीयमन्त्रः—मन्दाकिन्या सित वारि सर्वपापहरं शिवम् । गृहाणाऽऽचमनीय त्वं
मया भक्त्या निवेदितम् । ओ नमो नारायणाय नमः ॥२९॥

स्नानमन्त्रः—स्वमाप. पृथिवी चैव ज्योतिस्त्वं वायुरेव च । 'लोकेश वृत्तिमात्रेण वारिणा
स्नापयाम्यहम् । ओ नमो नारायणाय नमः ॥३०॥

वस्त्रमन्त्रः—देवतत्त्वसमायुक्तं यज्ञवर्णसमन्वित । स्वर्णवर्णप्रभे देव वाससी तव केशव ।
ओं नमो नारायणाय नमः ॥३१॥

विलेपनमन्त्रः—शरीरं ते न जानामि चेष्टां चैव च केशव । मया निवेदितो गन्धः प्रतिगृह्य
विलिप्यताम् । ओ नमो नारायणाय नमः ॥३२॥

उपवीतमन्त्रः—ऋग्यजु साममन्त्रेण श्रितं पद्मयोनिना । सावित्रीप्रस्थिसंयुतमुपवीत
तवाप्यये । ओ नमो नारायणाय नमः ॥३३॥

पाद्य मन्त्र—हे पद्मनाभ सनातन देव । तुम्हारे चरणों पर पाद्य अर्पित कर रहा हूँ, कमलपत्राक्ष ! मधुसूदन ।
विष्णो, ग्रहण करो, ॐ नमो नारायणाय नमः ॥२७॥

मधुपर्क मन्त्र—महादेव । ब्रह्मा आदि द्वारा वरूपित तुम्हारे इस मधुपर्क को मैं भक्तिपूर्वक अर्पित कर
रहा हूँ, पुरुषोत्तम । ग्रहण करो । ॐ नमो नारायणाय नमः ॥२८॥

आचमनीय मन्त्र—इस सर्वपापहर शुभ मन्दाकिनी के जल को आचमन के लिये भक्तिपूर्वक अर्पित कर
रहा हूँ, देव । तुम ग्रहण करो । ॐ नमो नारायणाय नमः ॥२९॥

स्नान मन्त्र—तुम जल, पृथिवी, और ज्योति रूप हो, तुम्ही वायु हो, फिर भी लोकपते । वेदत्र औपचारिक
रूप से जल से स्नान करा रहा हूँ, ॐ नमो नारायणाय नमः ॥३०॥

वस्त्र मन्त्र—देव-तत्त्व से युक्त यज्ञवर्ण से समन्वित देव । केशव । ये तुम्हारे लिये स्वर्णवर्ण के
वस्त्र हैं । ॐ नमो नारायणाय नमः ॥३१॥

विलेपन मन्त्र—केशव । तुम्हारे शरीर को नहीं जानता न तो तुम्हारी इच्छाओं को ही जानता हूँ, पुनर्पि
यह मुगन्धिन रूप अर्पित कर रहा हूँ, इसको ग्रहण कर अपने शरीर पर लगा लो । ॐ नमो नारायणाय नमः ॥३२॥

उपवीत मन्त्र—पद्मपात्रि ब्रह्मा द्वारा ऋग्, यजु और सामवेद के मन्त्रों से तीन बार स्पृष्ट हुआ और
सावित्री द्वारा बनाई गई त्रिंशु इस उपवीत को अर्पित कर रहा हूँ । ॐ नमो नारायणाय नमः ॥३३॥

अलकारमन्त्र — दिव्यरत्नसमायुक्त बह्निभानुसमप्रभ । गात्राणि तव शोभन्तु सालकाराणि ॥३४॥

माधव । ओ नमो नारायणाय नम

ओ नम इति प्रत्यक्षर समस्तेन मूलमन्त्रेण वा पूजयेत् ॥३५॥

धूपमन्त्र — वनस्पतिरसो दिव्यो गन्धाढ्य सुरभिश्च ते । मया निवेदितो भक्त्या धूपोऽय ॥३६॥

प्रतिगृह्यताम् । ओ नमो नारायणाय नम

दीपमन्त्र — सूर्यचन्द्रसमो ज्योतिर्विद्युदग्न्योस्तथैव च । त्वमेव ज्योतिषा देव दीपोऽय ॥३७॥

प्रतिगृह्यताम् । ओ नमो नारायणाय नम

नैवेद्यमन्त्र — अत्र चतुर्विधं चैव रसं पद्भि समन्वितम् । मया निवेदित भक्त्या नैवेद्य ॥३८॥

तव केशव । ओ नमो नारायणाय नम ।

पूर्वं दले वासुदेव याम्ये सकर्षणं न्यसेत् । प्रद्युम्न पश्चिमे कुर्यादनिरुद्ध तथोत्तरे ॥३९॥

वाराह च तथाऽऽनये नरसिंह च नैऋते । वायव्ये माधव चैव तथैशाने त्रिविक्रमम् ॥४०॥

तथाऽऽदारदेवस्य गण्ड पुरतो न्यसेत् । वामपाश्वे तथा चक्रं दक्षिणतो न्यसेत् ॥४१॥

तथा महागदा चैव न्यसेद्देवस्य दक्षिणे । ततः शार्ङ्गं धनुर्विद्वान्मसेद्देवस्य वामत ॥४२॥

दक्षिणेनैवुधो दिव्ये खड्गं वामे च विन्यसेन । श्रियं दक्षिणं स्यात्पुष्टिमुत्तरतो न्यसेत् ॥४३॥

अलङ्कार मन्त्र—दिव्य रत्ना से आभूषित अग्नि और भान के समान प्रभा वाले माधव । तुम्हारे अङ्ग
इन मेरे दिने गण आभूषणो से सुसोमित ह । ॐ नमो नारायणाय नम ॥३४॥

ओ नम इसके प्रत्येक अक्षर से या समस्त मूल मन्त्र से पूजन करना चाहिये ॥३५॥

धूप मन्त्र—मैं तुम्हारे लिये इस दिव्य गन्ध से भरे सुरमित वनस्पति रस धूप को श्रद्धा से समर्पित कर रहा
हूँ देव । प्रहण करो ॐ नमो नारायणाय नम ॥३६॥

दीप मन्त्र—सुम सुय चन्द्र विद्यत और अग्नि के समान ज्योतिष्मान् हो तुम ही प्रकाश-पुरुष हो देव ।
यह दीप स्वीकार करो ॐ नमो नारायणाय नम ॥३७॥

नैवेद्य मन्त्र—चार प्रकार का यन्त्र से युक्त मधुर भोजन श्रद्धापूर्वक अर्पित कर रहा हूँ केशव । स्वीकार
करो ॐ नमो नारायणाय नम ॥३८॥ (इन उपयुक्त मन्त्रों से सविधि भगवान् की पूजा करने के बाद पुन देवन्वास
करो ।) पूव दक्ष पर वासुदेव को दक्षिण पर सकर्षण को एवं पश्चिम दक्ष पर प्रद्युम्न को एवं उत्तर वाले दल पर
अनिरुद्ध को न्यस्त करो ॥३९॥ इसी प्रकार अग्नि निष्कृति वायव्य और ईशानकेषण से क्रमशः वाराह नरसिंह
माधव और त्रिविक्रम का न्यास करो ॥४०॥ इस प्रकार बाठ अक्षरों में — स्त देवता के अग्रभाग में गण्ड पा
तथा वाम पाश्व और दक्षिण पाश्व मन्त्रक शस्त्र का न्यास कर देव के दक्षिण महागदा तथा वामभाग में शार्ङ्ग धनुष
का विद्वान् मनुष्य न्यास करो ॥४१-४२॥ पुन दक्षिण वार दो दिव्य तरङ्ग और बायी ओर खड्ग का न्यास करो ।
शस्त्रन्यास के उपरान्त दक्षिण और श्री को उत्तर ओर पुष्टि को आगे की ओर वामाला शीवस और कौस्तुभ तथा

धनमालां च पुरतस्ततः श्रीवत्सकौस्तुभौ। विष्णुसेदृष्यमादीनि पूर्वादिव चतुर्दिशम्॥४४॥
 ततोऽस्त्र देवदेवस्य कोणे चैव तु विष्णुसेत्। इन्द्रमग्निं यमं चैव नैर्ऋतं वरुणं तथा॥४५॥
 वायुं धनदमीशानमनन्तं ब्रह्मणा सह। पूजयेत्तान्त्रिकैर्मन्त्रैरधश्चोर्ध्वं तथैव च॥४६॥
 एवं संपूज्य देवेशं मण्डलस्य जनार्दनम्। लभेदभिमतान्कामान्नरो नास्त्यत्र संशयः॥४७॥
 अनेनैव विधानेन मण्डलस्य जनार्दनम्। पूजितं यः सपश्येन स विशोद्विष्णुमव्ययम्॥४८॥
 सकृदप्यर्चितो येन विधिनाऽनेन केशवः। जन्ममृत्युजरा^१ तीर्त्वा स विष्णोः पदमाप्नुयात्॥४९॥
 यः स्मरेत्सततं भक्त्या नारायणमनन्दितः। 'अन्वह' तस्य वासाय इवेतद्दीपः प्रकल्पितः॥५०॥
 ओंकारादिसमायुक्तं नमःकारान्तदीपितम्। तन्नाम सर्वतत्त्वानां मन्त्र इत्यभिधीयते॥५१॥
 अनेनैव विधानेन गन्धपुष्पं निवेदयेत्। एकैकस्य प्रकुर्वीत ययोद्दिष्टं क्रमेण तु॥५२॥
 मुद्रास्त्रतो 'निबध्नीषाद्योस्तत्क्रमचोदितः। जपं चैव प्रकुर्वीत मूलमन्त्रेण मन्त्रवित्॥५३॥
 अष्टाविंशतिमण्डो वा शतमण्डोत्तरं तथा। कामेषु च^२ यथाप्रोक्तं यथाशक्ति समाहितः॥५४॥
 पद्मं शङ्खश्च श्रीवत्सौ गङ्गा नरुड एव च। चक्रं खड्गश्च शार्ङ्गं च अष्टौ मुद्राः प्रकीर्तिताः॥५५॥
 विसर्जनमन्त्रः—गच्छ गच्छ परंस्थानं पुराणपुरुषोत्तम^३। यत्र ब्रह्मादयो देवा विन्दन्ति परम पदम्॥५६॥

हृत्पादि को पूर्वादि चारो दिशाओं में त्रयानुसारं व्यवस्थित करना चाहिये॥४३-४४॥ तदनन्तर कोण में देवदेव के अस्त्रों की स्थापना कर इन्द्र, अग्नि, यम, नैर्ऋत्य, वरुण, वायु, कुबेर, ईशान, अनन्त आदि देवों का ब्रह्मा के साथ अथ और ऊर्ध्व भाग में आवाहन कर तान्त्रिक मन्त्रों से पूजन करे॥४५-४६॥ इस प्रकार मण्डल में स्थित देवेश जनार्दन का पूजन करने से मनुष्य अपने अभीष्ट कामनाओं को अवश्य प्राप्त करता है इसमें सन्देह नहीं॥४७॥ इसी विधि से पूजित मण्डलस्थ जनार्दन का जो दर्शन करता है वह भी अविनाशी विष्णु का सायुज्य प्राप्त करता है॥४८॥ एवं बार भी जो मनुष्य केशव की इस प्रकार अर्चना करता है वह जन्म, मृत्यु और बुढ़ापे को पारकर विष्णु लोक को प्राप्त करता है॥४९॥ जो मनुष्य सर्वदा आलस्य-रहित हो नारायण का स्मरण करता है उसके निवास के लिये प्रतिदिन इवेतद्दीप की व्यवस्था की जानी है॥५०॥ ओंकार जिससे आदि में और नमःकार जिसके अन्त में लगा हो वह सम्पूर्ण तत्त्वा का सार है और वही अष्ट मन्त्र कहा गया है॥५१॥ इसी विधान से गन्ध, पुष्प अर्पित करना चाहिये एवं ययोद्दिष्टं यम से एक एक देव का पूजन करना चाहिये॥५२॥ पूजानन्तर यथोक्त यम से मुद्रा बन्धन कर मन्त्रज्ञ मनुष्य मूल मन्त्र का जप करे॥५३॥ विध्वं विध्वं कामनायां के लिये जिस प्रकार सहाय का विधान है उसी के अनुसार यथाशक्ति एकाग्रचित्त हो अष्टादश आठ अथवा एक ही आठ बार जप करे॥५४॥ पद्म, शङ्ख श्रीवत्स गंगा नरुड, चक्र खड्ग और शार्ङ्ग धनुष यही आठ मुद्राएँ कही गई हैं॥५५॥

विसर्जन का मन्त्र—“हे पुराणपुरुषोत्तम! अपने उस परम स्थान को जाओ, जाओ, जहाँ जाकर ब्रह्मा

अर्चनं ये न जानन्ति हरेर्मन्त्रैर्यथोदितम्। ते तत्र मूलमन्त्रेण पूजयन्त्वच्युतं सदा ॥५७॥
इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे स्वयम्भूषिसंवादे पूजाविधिकथनं नामकपटितमोऽध्यायः ॥६१॥

अथ द्विषष्टितमोऽध्यायः

समुद्रस्नानमाहात्म्यवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

एवं संपूज्य विधिवद्भक्त्या तं पुरुषोत्तमम्। प्रणम्य शिरसा पश्चात्सागरं च प्रसादयेत् ॥१॥
प्राणस्त्वं सर्वभूतानां योनिश्च सरिता पते। तीर्थराज नमस्तेऽस्तु ब्राहि मामच्युतप्रिय ॥२॥
स्नात्वैव सागरे सम्यक्तस्मिन्क्षेत्रवरे द्विजाः। तीरे चाम्यर्च्य विधिवन्नारायणमनामयम् ॥३॥
रामं कृष्णं सुभद्रां च प्रणिपत्य च सागरम्। शतानामश्वमेधानां फलं प्राप्नोति मानवः ॥४॥
सर्वपापविनिर्मुक्तः सर्वदुःखविनिर्जितः। बृन्दारक इव श्रीमान्भूपयौवनगवितः ॥५॥

आदि देवता परम पद को प्राप्त करते हैं।" इस मन्त्र से विसर्जन करे ॥५६॥ जो मनुष्य ऊपर कहे गये मन्त्रों से हरि का पूजन करना नहीं जानते हैं वे वहाँ मूल मन्त्र से ही सर्वदा अच्युत विष्णु की पूजा करें ॥५७॥

श्री ब्रह्ममहापुराण मे ब्रह्मा और ऋषि के संवाद मे पूजाविधि-कथन नामक
इकसठवाँ अध्याय समाप्त ॥६१॥

अध्याय ६२

समुद्र-स्नान का माहात्म्य

ब्रह्मा बोले—इस प्रकार भक्तिपूर्वक भगवान् पुरुषोत्तम का विधिवत् पूजन और नतमस्तक होकर प्रणाम करने के बाद सागर की यह स्तुति करनी चाहिए—हे नदियों के स्वामी! तुम सब प्राणियों के जीवन और उत्पादक हो, तीर्थराज! तुम्हे प्रणाम है। अच्युतप्रिय! मेरी रक्षा करो ॥१-२॥ विप्रगण, इस विधि से इस पुनीत और श्रेष्ठ तीर्थ में आकर स्नान कर और तीर पर अनामय (निर्विकार) नारायण की विधिवत् पूजा कर राम, कृष्ण, सुभद्रा और सागर को प्रणाम करना चाहिए। ऐसा करने से मनुष्य को अश्वमेध यज्ञों का फल प्राप्त करता है, वह सब पापों और दुःखों से रहित हो, तेजस्वी तथा रूप-यौवन से सुशोभित हो जाता है ॥३-५॥ और सूर्य

विमानेनाकवर्णेन दिव्यगन्धर्वनादिना । कुलेर्काविशमुद्धृत्य विष्णुलोकं स गच्छति ॥६॥
 भुक्त्वा तत्र वरानभोगान्क्रीडित्वा चाप्सरः सह । मन्वन्तराशतं साप्र' जरामृत्युविवर्जितः ॥७॥
 पुण्यक्षयादिहाऽऽयातः कुले सर्वगुणान्विते । रूपवान्तुभयः श्रीमान्सात्यवादी जितेन्द्रियः ॥८॥
 वेदशास्त्रार्थविद्विप्रो भवेद्यज्वा तु यत्पुण्यवः । योगं च वर्ण्यं प्राप्य ततो मोक्षमवाप्नुयात् ॥९॥
 ग्रहोपरान्ते संक्रान्त्यामयने विपुले सदा । युगादिषु पञ्चशीत्या व्यतीपाते दिनक्षये ॥१०॥
 आपाद्यां चैव कार्तिकायां माघ्यां वाऽप्ये शुभे त्रयो । ये तत्र दानं विप्रेभ्यः प्रयच्छन्ति सुमेधसः ॥११॥
 फलं सहस्रगुणितमन्यतीर्यल्लभन्ति ते । पितॄणां ये प्रयच्छन्ति पिण्डं तत्र विधानतः ॥१२॥
 अक्षयां पितरस्तेषां सृष्टिं संप्राप्नुवन्ति यैः । एवं स्नानफलं सम्भवसागरस्य मयोदितम् ॥१३॥
 दानस्य च फलं विप्राः पिण्डदानस्य चैव हि । धर्मायं मोक्षफलदमायुष्कोटियशस्करम् ॥१४॥
 भुक्तिमृत्तिफलं नृणां धन्यं दुःस्वप्ननाशनम् । सर्वपापहरं पुण्यं सर्वकामफलप्रदम् ॥१५॥
 नास्तिकायमवसत्यं पुराणं च द्विजोत्तमाः । तावद् गर्जन्ति तीर्थानि माहात्म्यैः स्वंः पूयन्पूयन् ॥१६॥
 यावत्त तीर्थराजस्य माहात्म्यं वर्ण्यते द्विजाः । पुष्करादीनि तीर्थानि प्रयच्छन्ति स्वकं फलम् ॥१७॥

के समान प्रकाशमान, स्वर्गीय गन्धर्वों के जयकार, तथा स्तुतिपात्र से मुखरित विमान पर आसल होकर, देवता के समान, अपने इक्कीस कुलों का उद्धार करता हुआ विष्णुलोक को जाता है ॥६॥ वहाँ वह जरा-मृत्यु से रहित हो अगले ही मन्वन्तरो तक दिव्य भोगों का भोग करता हुआ अप्सराओं के साथ ब्रीडा कर पुनः पुण्य के क्षीण हो जाने पर इह लोके में सब गुणों से युक्त परिवार में जन्म ग्रहण करता है । इस जन्म में भी अपने पुण्य के प्रभाव से हर्ष-बान्, माम्यशाली, धनवान्, सत्यवक्ता, जितेन्द्रिय, वेद शास्त्रों का ज्ञाता और वैष्णव मन्त्र विप्र होता है । अन्तर्काल में वैष्णव योग को पाकर मोक्ष लाभ करता है ॥७॥ जो बुद्धिमान् उस पुनीत क्षेत्र में ग्रहण, सन्नानि, अयन, विपुव (तुला और भेष सन्नानि काल), युगादि काल में तथा पञ्चशीति, व्यतीपात, दिन-क्षय और आपाड़ी कार्तिकी तथा माघी पूर्णिमा के दिन अथवा अन्य शुभ तिथियों में ब्राह्मणों को दान देते हैं, एवं विधान पूर्वक पितरों को पिण्डदान देते हैं वे अन्य तीर्थों की अपेक्षा हजार गुना अधिक फल प्राप्त करते हैं ॥१०-१२॥ उनके पितर भी निश्चय ही अक्षय सृष्टि प्राप्त करते हैं । इस प्रकार मैंने समुद्र स्नान पिण्डदान का फल कह दिया ॥१३॥ वस्तुतः हे द्विजगण, धर्म, अथ और मोक्ष को देने वाले, आमु ब्रह्मणे वाले, कीर्ति एवं यश फैलाने वाले, भुक्तिमृत्तिदाता दुःस्वप्ननाशक, मनुष्यों को शुभ फल देनेवाले, सर्व पाप-हर, पवित्र और सब मनोरथों को पूर्ण करने वाले पुराणों को अथडालू नास्तिकों से नहीं कहना चाहिए ॥१४॥१५॥ सभी तीर्थों तक ही अलग अलग अपने माहात्म्य के गर्व से गरजते रहते हैं जब तक द्विजगण ! तीर्थराज पुरुषोत्तम तीर्थ का माहात्म्य नहीं कहा जाता है ॥१६॥ पुष्कर आदि तीर्थ तो केवल अपने फल को ही देते हैं परन्तु यह तीर्थराज तो पृथ्वी के सम्पूर्ण तीर्थों का फल देता है ॥१७॥ पृथ्वी-सक के जितने तीर्थ, नदियाँ और सरोवर हैं वे सागर में

तीर्थराजस्तु स पुनः सर्वतीर्थफलप्रदः। भूतले यानि तीर्थानि सरितश्च सरांसि च॥१८॥
विशन्ति सागरे तानि तेनासौ श्रेष्ठता यतः। राजा समस्ततीर्थानां सागरः सरिता पतिः॥१९॥
तस्मात्समस्ततीर्थेभ्यः श्रेष्ठोऽसौ सर्वकामदः। तमोनाशं ययाऽभ्येति भास्करेऽभ्युदिते द्विजाः॥२०॥
स्नानेन तीर्थराजस्य तथा पापस्य संक्षयः। तीर्थराजसमं तीर्थं न भूत न भविष्यति॥२१॥
अधिष्ठानं यदा यत्र प्रभोर्नारायणस्य वै। क. शवनोति गुणान्वक्तुं तीर्थराजस्य भो द्विजाः॥२२॥
कोदयो नवनवत्यस्तु यत्र तीर्थानि सन्ति वै। तस्मात्स्नानं च दानं च होमं जप्यं सुरार्चनम्।
यत्किञ्चित्क्रियते तत्र चाक्षयं क्रियते द्विजाः॥२३॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे स्वयंभुश्चरितसंवादे समुद्रस्नानमाहात्म्यवर्णनं
नाम द्विषष्टितमोऽध्यायः॥६२॥

अथ त्रिषष्टितमोऽध्यायः

पञ्चतीर्थीमाहात्म्यनिरूपणम्

॥ ब्रह्मोवाच ॥

ततो गच्छेद्द्विजश्रेष्ठास्तीर्थं यत्ताङ्गसम्भवं। इन्द्रधुम्नसरो नाम यत्राऽस्ते पावनं शुभम्॥१॥

विष्णु न किसी रूप से प्रवेश करते हैं (सभी जलाशयों का जल समुद्र से आता अथवा समुद्र में जाता है) इसलिये यह तीर्थराज सर्वश्रेष्ठ पदवी का अधिकारी है॥१८॥ समुद्र सब नदियों का स्वामी है, समस्त तीर्थों (जलाशयों) का राजा है इसलिये यह सब तीर्थों से श्रेष्ठ और सब मनोरथों का दाता है॥१९॥ द्विजवर ! जिस प्रकार सूर्योदय होने पर अग्निराज स्वयमेव नष्ट हो जाता है उसी प्रकार तीर्थराज के स्नान से मनुष्य के पापों का नाश हो जाता है॥२०॥ तीर्थराज के समान न तो कोई तीर्थ हुआ है न होगा॥२१॥ प्रभु नारायण का जहाँ सबदा वास है हे द्विजवृन्द ! उस तीर्थराज के गुणों को कहने में बौन समर्थ हो सकता है॥२२॥ जहाँ पर नवासी करोड़ तीर्थ सर्वदा निवास करते हैं, वहाँ स्नान, दान, होम, जप, देवपूजन अथवा जो कुछ भी किया जाता है निश्चय ही द्विजवृन्द ! वह श्रव्य हो जाता है॥२३॥

श्री ब्रह्ममहापुराण में समुद्रस्नान-माहात्म्य वर्णन नामक वासुदेवा अध्याय समाप्त॥६२॥

अध्याय ६३

पञ्चतीर्थी का माहात्म्य-वर्णन

ब्रह्मा बोले—द्विजश्रेष्ठ ! तदनन्तर यज्ञों के कारण शुभ, पवित्र इन्द्रधुम्न तीर्थ में जाकर विवेकी मनुष्य

गत्वा तत्र शुचिर्धोमानाचम्य मनसा हरिम् । ध्यात्वोपस्थाप्य च जलमिमं मन्त्रमुदीरयेत् ॥२॥
 अश्वमेधाङ्गसभूत तोर्यं सर्वाधनाशन । स्नानं त्वयि करोम्यद्य पापं हर नमोऽस्तु ते ॥३॥
 एवमुच्चार्य विधिवत्स्नात्वा देवानूपोन्वितुम् । तिलोदकेन चाग्न्याश्च संतर्प्याऽऽचम्य वाग्यतः ॥४॥
 दत्त्वा पितॄणां पिण्डांश्च संपूज्य पुद्गलोत्तमम् । दशाश्वमेधिकं सन्ध्याफलं प्राप्नोति मानवः ॥५॥
 सप्तारान्तरं परान्वंशानुद्गत्य देववत् । कामयेन विमानेन विष्णुलोकं स गच्छति ॥६॥
 भुक्त्वा तत्र सुखान्भोगान्याश्चन्द्रार्कतारकम् । च्युतस्तस्मादिहाऽऽयातो मोक्षं च लभते ध्रुवम् ॥७॥
 एव कृत्वा पञ्चतीर्थैर्मेकादश्यामुपोषितः । ज्येष्ठशुक्लपञ्चदश्या यः पश्येत्पुरुषोत्तमम् ॥८॥
 स पूर्वोक्तं फलं प्राप्य श्रोद्धत्वा वाऽच्युतालये । प्रयाति परमं स्थानं यस्मान्नाऽऽवर्तते पुनः ॥९॥

मुनय ऊचुः

मासातन्यान्परित्यज्य 'माघादीन्प्रप्रितामह । प्रशंसति कथं ज्येष्ठं ब्रूहि तत्कारणं प्रभो' ॥१०॥

ग्रहोवाच

शृणुष्व मुनिशार्दूलाः प्रवक्ष्यामि समासतः । ज्येष्ठं मासं तथा तेन्यः प्रशंसामि पुनः पुनः ॥११॥
 पृथिव्यां यानि तीर्थानि सरितश्च सरांसि च । पुष्करिण्यास्तडागानि बाव्यः कूपास्तथा ह्रदाः ॥१२॥

पवित्र माघ से आचमन और हृदय से मगधान् हरि का ध्यान कर जल के निकट इस मन्त्र का उच्चारण करे ॥१-२॥
 मन्त्र—'अश्वमेध के अङ्ग से उत्पन्न । सब पापों के विनाशक हे तीर्थ । आज मैं तुम्हारे जल में स्नान कर रहा हूँ, मेरे पापों को दूर करो, तुम्हें नमस्कार है ॥३॥ इस प्रकार मन्त्र का उच्चारण कर विधिवत् स्नान करना चाहिये । पुनः तिल युक्त जल से देवता, ऋषि, पितरों और दूसरे देवों का तर्पण और आचमन कर बागी पर समय रख पितरों को पिण्ड दान दे और मगधान् पुष्पोत्तम को विधिवत् पूजा करे । ऐसी क्रिया का विधिवत् अनुष्ठान कर मनुष्य दश अश्वमेध यज्ञों का फल प्राप्त करता है ॥४-५॥ अपने सान पिछले एवं सात अगले वर्ष का उद्धार कर देवता के समान इच्छानुसार चलने वाले विमान से विष्णुलोक को जाता है ॥६॥ वहाँ वह जब तक चन्द्र, सूर्य और तारागण रहते हैं तब तक सुखमय भागों का भोग करता है । भोग के बाद वहाँ से लौटकर इस लोक में उत्तम कुल में जन्म ग्रहण करता और अन्त में निश्चय ही मोक्ष प्राप्त करता है ॥७॥ उक्त नियम के अनुसार जो मनुष्य एकादशी के दिन निराहार रहकर पञ्चतीर्थों एवं ज्येष्ठ शुक्ल पूर्णिमा को पुरोत्तम का दर्शन करता है, वह पूर्वोक्त फल प्राप्त करता है अथवा अच्युत हरि के लोक में सुखपूर्वक निवास कर उस लोक को प्राप्त करता है जहाँ से पुनः नहीं लौटता ॥८-९॥

मुनियों ने कहा—'प्रप्रितामह । माघ आदि अन्य महीनों को छोड़ कर क्यों आप जेठ महीने की इतनी प्रशंसा करते हैं । प्रभो । इसका कारण बताइए ॥१०॥

ग्रहोवाच—मुनिवर अन्य महीनों की अपेक्षा जेष्ठ मास की प्रशंसा का कारण सक्षप में सुनाता हूँ ॥११॥ पृथ्वी पर जितने तीर्थ, सरिता, सरोवर, पुष्करिणी (पोखरियाँ), तालाब, बावलियाँ, कुएँ, झीलें, अनेक नदियाँ और

नानानद्यः समुद्राश्च सप्ताहं पुरुषोत्तमे । ज्येष्ठशुक्लदशम्यादि प्रत्यक्षं यान्ति सर्वदा ॥१३॥
 स्नानदानादिकं तस्माद्देवताप्रेक्षणं द्विजाः । यत्किञ्चित्क्रियते तत्र तस्मिन्कालेऽक्षयं भवेत् ॥१४॥
 शुक्लपक्षस्य दशमी ज्येष्ठे मासि द्विजोत्तमाः । हरते दश पापानि तस्माद्दशहरा स्मृता ॥१५॥
 यस्तस्यां हलितं कृष्णं पश्येद्भद्रां सुसंयतः । सर्वपापविनिर्मुक्तो विष्णुलोकं व्रजेन्नरः ॥१६॥
 उत्तरे दक्षिणे विप्रास्त्वयने पुरुषोत्तमम् । दृष्ट्वा रामसुभद्रां च विष्णुलोकं व्रजेन्नरः ॥१७॥
 नरो द्योलागतं दृष्ट्वा गोविन्दं पुरुषोत्तमम् । काल्पन्या प्रपद्ये भूत्वा गोविन्दस्य पुरं व्रजेत् ॥१८॥
 विपुवद्विक्से प्राप्ते पञ्चतीर्थो विधानतः । कृत्वा संकल्पं कृष्णं दृष्ट्वा भद्रा च भो द्विजाः ॥१९॥
 नरः समस्तयज्ञानां फलं प्राप्नोति दुर्लभम् । विमुक्तः सर्वपापेभ्यो विष्णुलोकं स गच्छति ॥२०॥
 यः पश्यति तृतीयायां कृष्णं चन्दनहविषतम् । वैशाखस्यासिते पक्षे स यात्यच्युतमन्विरम् ॥२१॥
 ज्येष्ठ्यां ज्येष्ठर्क्षयुनतायां यः पश्येत्पुरुषोत्तमम् । कुलं विशामुदृत्य विष्णुलोकं स गच्छति ॥२२॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे स्वयंस्फुपिसंवादे पञ्चतीर्थोमाहात्म्यनिरूपणं
 नाम त्रिषष्टितमोऽध्यायः ॥६३॥

समुद्र हैं, वे सभी इस पुरुषोत्तम तीर्थ में जेठ शुक्ल की दशमी आदि तिथियां को एक सप्ताह तक सर्वदा प्रत्यक्ष रूप में रहते हैं ॥१२-१३॥ इसलिये द्विजगण । उस समय स्नान, दान देव-दर्शन अथवा अन्य जो कुछ पुण्यकर्म किये जाते हैं, वे अक्षय होते हैं ॥१४॥ विप्रबृन्द । ज्येष्ठ शुक्ल पक्ष की दशमी दशविध पापों को नष्ट करती है इसलिये यह 'दशहरा' नाम से प्रसिद्ध है ॥१५॥ जो मनुष्य एकाग्र मन से बलराम, कृष्ण और सुभद्रा का दर्शन करता है, वह सब पापों से मुक्त हो विष्णुलोक को प्राप्त करता है ॥१६॥ विप्रबृन्द । उत्तर और दक्षिण अथवा काल में भी पुरुषोत्तम राम और सुभद्रा का दर्शन कर मनुष्य विष्णुलोक का अधिकार प्राप्त करता है ॥१७॥ मनुष्य काल्पन्य पूर्णिमा के दिन झूले में झूलते हुए पुरुषोत्तम का अथवा माय से दर्शन करके गोविन्दलोक को जाता है ॥१८॥ द्विजगण । जो मनुष्य विपुव दिन आने पर विविपूर्वक पञ्चतीर्थों की यात्रा करके राम, कृष्ण और सुभद्रा का दर्शन करता है, वह समस्त यज्ञों के दुर्लभ फल को पाता है और सब पापों से छूट कर विष्णुलोक का अधिकारी होता है ॥१९॥ जो वैशाख मास की कृष्ण-तृतीया को चन्दन चर्चित कृष्ण का दर्शन करता है वह अच्युतलोक को प्राप्त करता है ॥२०॥ ज्येष्ठा नक्षत्र से युक्त ज्येष्ठ पूर्णिमा को जो पुरुषोत्तम का दर्शन करता है वह अपने इच्छीस कुलों का उद्धार कर स्वयं विष्णुलोक को प्राप्त करता है ॥२२॥

श्री ब्रह्महपुराण में पञ्चतीर्थोमाहात्म्यवर्णन नामक त्रिसष्ठौ अध्याय समाप्त ॥६३॥

अथ चतुःषष्टितमोऽध्यायः

महाज्येष्ठीप्रशसावर्णनम्

ब्रह्मोवाच

यदा भवेन्महाज्येष्ठी राशिनक्षत्रयोगतः। प्रयत्नेन तदा मर्त्यैर्गन्तव्यं पुरुषोत्तमम् ॥१॥
 कृष्णं दृष्ट्वा महाज्येष्ठ्यां राम भद्रां च भो द्विजाः। नरो द्वादशयात्रायाः फलं प्राप्नोति चाधिकम् ॥२॥
 प्रयागे च कुक्षेत्रे नैमिये पुष्करे गये। गङ्गाद्वारे कुशावर्ते गङ्गासागरसंगमे ॥३॥
 कोकामुखे शूकरे च मयुरायां भरस्थले। शालग्रामे वायुतीर्थे मन्दरे सिन्धुसागरे ॥४॥
 पिण्डारके चित्रकूटे प्रभासे कनखले द्विजाः। शङ्खोद्गारे द्वारकायां तथा बदरिकाश्रमे ॥५॥
 लोहकुण्डे चाश्वतीर्थे सर्वपापप्रमोचने। कामालये कोटितीर्थे तथा घामरकण्ठके ॥६॥
 लोहागले जम्बुमार्गे सोमतीर्थे पृथूदके। उत्पलावर्तके चैव पृथुतुङ्गे सुकुब्जके ॥७॥
 एकाम्रके च केदारो काश्या च विरजे द्विजाः। कालञ्जरे च गोकर्णे श्रीशैले गन्धमादने ॥८॥
 महेन्द्रे मलये विन्ध्ये पारियात्रे हिमालये। सह्ये च श्रुतिमन्ते च गोमन्ते चावृन्दे तथा ॥९॥
 गङ्गायां सर्वतीर्थेषु यामुनेषु च भो द्विजाः। सारस्वतेषु गोमत्या ब्रह्मपुत्रेषु सप्तसु ॥१०॥
 गोदावरी भीमरथी तुङ्गभद्रा च नर्मदा। तापो पयोष्णी कावेरी शिप्रा चर्मण्वती द्विजाः ॥११॥

अध्याय ६४

महाज्येष्ठी की प्रशसा

ब्रह्मा ने कहा—जब उत्तम राशि, नक्षत्र से युक्त महाज्येष्ठपूर्णिमा हो, उस समय प्रयत्नपूर्वक मनुष्य को पुरुषोत्तम तीर्थ की यात्रा करनी चाहिये ॥१॥ हे विप्रवृन्द! मनुष्य ज्येष्ठ की महापूर्णिमा को कृष्ण, राम और शुभद्रा का दर्शन करके बारह बार तीर्थ यात्रा का फल प्राप्त करता है ॥२॥ द्विजगण! प्रयाग, कुक्षेत्र, नैमिषारण्य, पुष्कर, गया, हृष्टाद, कुशावर्त, गंगासागर संगम ॥३॥ कोकामुख, शूकरक्षेत्र, मयुरा, भरस्थल, शालग्राम, वायुतीर्थ, मन्दर, सिन्धुसागर ॥४॥ पिण्डारक, चित्रकूट, प्रभास, कनखल, शङ्खोद्गार, द्वारका, बदरिकाश्रम ॥५॥ लोहकुण्ड, सब पापों को दूर करने वाले अश्वतीर्थ कामालय, कोटितीर्थ, अमरकण्ठक ॥६॥ लोहागल, जम्बुमार्ग, सोमतीर्थ, पृथूदक, उत्पलावर्तक, पृथुतुङ्ग, सुकुब्जक ॥७॥ एकाम्रक, केदार, काशी, विरज, कालञ्जर, गोकर्ण, श्रीशैल, गन्धमादन ॥८॥ महेन्द्र, मलय, विन्ध्य, पारियात्र, हिमालय, सह्य, श्रुतिमन्त, गोमन्त, अवृन्द ॥९॥ गंगा के सभी तीर्थ एवं यमुना, सरस्वती, गोमती और ब्रह्मपुत्र के सप्त तीर्थ ॥१०॥ गोदावरी, भीमरथी, तुङ्गभद्रा, नर्मदा, तापी, पयोष्णी, कावेरी,

१ ग ०रे च कुब्जाम्रे ग०। २ क ०करके म०। ३ क ख ०हृष्टे। ४ क ०हृष्टे। ५ क ०कर्माले।
 ५क. जम्बुतीर्थे। ६क. पृथुतुङ्गे। ७. पृथुतुङ्गे।

वितस्ता चन्द्रभागा च शतद्रुबहिदा तथा। ऋषिकुल्या कुमारी च विपाशा च दृषद्वती ॥१२॥
 'सरयूनाकिगङ्गा च गण्डकी च महानदी। कौशिकी करतोया च त्रिलोता मधुवाहिनी ॥१३॥
 महानदी वंतरणी याश्चान्या नानुकीर्तितः। अथवाकि बहुक्तेन भाषितेन द्विजोत्तमः ॥१४॥
 पृथिव्या 'सर्वतीर्थेषु सर्वेष्वप्यत्नेषु च। सागरेषु च शैलेषु नदीषु च सरःसु च ॥१५॥
 यत्फलं स्नानदानेन राट्टग्रस्ते दिवाकरे। तत्फलं कृष्णमालोक्य महाज्येष्ठ्या लभेन्नरः ॥१६॥
 तस्मात्सर्वप्रयत्नेन गन्तव्यं पुण्योत्तमे'। महाज्येष्ठ्या मुनिश्रेष्ठा सर्वकामफलेप्सुभिः ॥१७॥
 दृष्ट्वा रामं महाज्येष्ठं कृष्ण सुभद्रया सह। विष्णुलोकं नरो याति समुद्रतः सम कुलम् ॥१८॥
 भुक्त्वा तत्र बरान्भोगान्यावदाभूतसंप्लवम्। पुण्यक्षयादिहाऽऽगत्य चतुर्वेदी द्विजो भवेत् ॥१९॥
 स्वधर्मनिरतः शान्तः कृष्णभवतो जितेन्द्रियः। वैष्णवयोगमास्थाय' ततो मोक्षमवाप्नुयात् ॥२०॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे स्वयंभुवःप्रसवादे महाज्येष्ठीप्रशसावर्णनं नाम
 चतुःषष्टितमोऽध्यायः ॥६४॥

शिवा, चर्मज्वती ॥११॥ वितस्ता, चन्द्रभागा, शतद्रु (सतलज) तथा बाहुदा, ऋषिकुल्या, कुमारी, विपाशा, दृषद्वती ॥१२॥
 ॥१३॥ सरयू, स्वर्गगंगा, गण्डकी, महानदी कौशिकी (कोसी), करतोया, त्रिलोता, मधुवाहिनी ॥१३॥ महानदी,
 वंतरणी, या जो अन्य नदियाँ लोक प्रसिद्ध हैं अथवा द्विजवर्गवृन्द। बहुत अधिक कहने से क्या लाभ ॥१४॥ पृथ्वी
 के सम्पूर्ण तीर्थों में जाने से सब मन्दिरों में दशन करने से, सागर, शैल, नदी और सरोवरों में स्नान करने दान देने
 एवं सूर्यप्रहरण के समय स्नान और दान से जितना फल मिलता है, उस सम्पूर्ण फल को ज्येष्ठ की वस अतिपवित्र
 पूर्णिमा के दिन कृष्ण के दशन करने से मनुष्य प्राप्त करता है ॥१५-१६॥ इसलिये मुनिवर्गवृन्द। सब मनोरथों
 को पाने की कामना करने वाले मनुष्यों को अपने सभी प्रयत्नों से पुण्योत्तम तीर्थ को जाना चाहिए ॥१७॥ वहाँ
 मनुष्य सुभद्रा सहित ज्येष्ठ राम और कृष्ण का दर्शन करके अपने सम्पूर्ण कुल का उद्धार करता है और स्वयं
 विष्णुलोक को प्राप्त करता है ॥१८॥ वहाँ वरुणान्त तक दिव्य भोगों का भोग करता है। पुनः पुण्यक्षय हो जाने पर
 इन मर्त्य लोक में चतुर्वेदपाठी ब्राह्मण होता है ॥१९॥ वहाँ वह जीवन पर्यन्त अपने धर्म में निरत रहने वाला,
 शान्त, जितेन्द्रिय और कृष्ण का भक्त होता है। पुनः वैष्णव भक्ति या ज्ञान को पाकर मोक्ष की प्राप्ति
 करता है ॥२०॥

श्री ब्रह्ममहापुराण में महाज्येष्ठी-प्रशसा वर्णन नामक अष्टाध्याय समाप्त ॥६४॥

अथ पञ्चपण्डितमोऽध्यायः

कृष्णस्नानमाहात्म्यवर्णनम्

मुनय ऊचुः

कस्मिन्काले भवेत्स्नानं कृष्णस्य कमलोद्भव। विधिना केन तद्ग्रहि ततो विधिविदां वर॥१॥

ब्रह्मोवाच

शृणुध्वं मुनयः स्नानं कृष्णस्य ददतो मम। रामस्य च सुभद्रायाः पुण्यं सर्वाघनाशनम्॥२॥
 'मासि ज्येष्ठे च संप्राप्ते नक्षत्रे चन्द्रदेवते। पीर्णमास्या तदा स्नानं सर्वकालं हरेद्विजा॥३॥
 सर्वतीर्थमयः कूपस्तत्राऽऽस्ते निर्मलः शुचिः। तदा भोगवती तत्र प्रत्यक्षा' भवति द्विजाः॥४॥
 तस्माज्ज्येष्ठ्या समुद्भूय हैमादयैः कलशैर्जलम्। कृष्णरामाभियेकार्यं सुभद्रायाश्च भोद्विजाः॥५॥
 कृत्वा सुशोभनं मञ्च पताकाभिरलंकृतम्। सुदृढं सुखसचारं वस्त्रैः पुष्पैरलंकृतम्॥६॥
 विस्तीर्णं धूपितं धूपैः स्नानार्थं रामकृष्णयोः। 'सितवस्त्रपरिच्छन्नं मुक्ताहारावलम्बितम्॥७॥
 तत्र नानाविधैर्बाणैः कृष्ण नीलाम्बरं द्विजाः। मध्ये सुभद्रां चाऽऽस्याप्य जयमङ्गलनिस्वनैः॥८॥

अध्याय ६५

कृष्ण-स्नान का महात्म्य-वर्णन

मुनियो मे कहा—कमल से उत्पन्न, विधियो मे धेष्ठ । किसे समय और किसे विधि से भगवान् कृष्ण का स्नान होता है, कृपया बताइए॥१॥

ब्रह्मा बोले—मुनिगण । मैं कृष्ण, राम और सुभद्रा के शुभ और अशुभ पापों को नष्ट करने वाली स्नान-विधि का वर्णन कर रहा हूँ सुनो॥२॥ द्विजगण । जेठ के महीने में चन्द्रदेवत नक्षत्र (ज्येष्ठा) से युक्त पूर्णिमा के दिन भगवान् का स्नान सदा प्रशस्त और शुभ माना गया है॥३॥ उस समय कूप निर्मल, पवित्र और सम्पूर्ण तीर्थों के जल से युक्त हो जाता है और भोगवती प्रत्यक्ष रूप में उपस्थित हो जाती है॥४॥ इसलिये । द्विजगण । कृष्ण, राम और सुभद्रा के अभियेक के लिये सुवर्ण-बलशो में कुयों से जल निकास लिया जाता है॥५॥ इसके पूर्व पताकाओं से सुशोभित दृढ़, सुविधा से इधर उधर घुमा देने योग्य, विस्तृत और मनोहर मंच बनाना चाहिए। उसको रंग विरने फूली और पुष्पों से सजाकर धूप से सुगन्धित कर देना चाहिये। उस भगल मंच पर राम-कृष्ण के स्नान के लिये श्वेत वस्त्र मुक्ताहार आदि विविध सामग्री एकत्र कर रख देनी चाहिये॥६-७॥ ऐसे सुसज्जित मंच पर अनेक बाजे बजाते हुए, जयकार और मंगल ध्वनि के साथ ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, क्षूद्र और अन्य जातियों के लोगो

१ ख ०व। के च सत्कारयन्तीह स्नान तस्य विधि वद। ब्र०। २ क ख माते। ३ ग प्रत्यक्ष।

४स. ०वर्तनः प०।

ब्राह्मणः क्षत्रियवैश्यैः शूद्रैश्चान्यैश्च जातिभिः । अनेकशतसाहस्रैर्वतं, स्त्रीपुरुषैर्द्विजाः ॥९॥
 गृहस्थाः स्नातकाश्चैव यतयो ब्रह्मचारिणः । स्नापयन्ति तदा कृष्णं मञ्चस्थं सहलायुधम् ॥१०॥
 तथा समस्ततोयानि पूर्वोक्तानि द्विजोत्तमाः । रवोदकैः पुष्पमिश्रैश्च स्नापयन्ति पृथक्पृथक् ॥११॥
 पश्चात्पट्टहास्तुद्येभेरीमुरजनिस्वनैः । काहलैस्तालशब्दैश्च मृदङ्गैर्हर्षैरस्तथा ॥१२॥
 अन्यैश्च 'विविधैर्वाद्यैर्घण्टास्वनविभूषितैः । स्त्रीणां मङ्गलशब्दैश्च स्तुतिशब्दैर्मनोहरैः ॥१३॥
 जयशब्दैस्तथा स्तोत्रैर्वीणावेणुनिनादितैः । श्रूयते सुमहाच्छब्दः सागरस्यैव गर्जतः ॥१४॥
 मुनीनां वेदशब्देन मन्त्रशब्दैस्तथाऽपरैः । नानास्तोत्रैर्वैः पुष्पैः सामशब्दोपबृंहितैः ॥१५॥
 यतिभिः स्नातकैश्चैव गृहस्थैर्ब्रह्मचारिभिः । स्नानकाले सुरश्रेष्ठ स्तुवन्ति परया मुदा ॥१६॥
 इयामवेष्टयाजनेश्चैव कुचभारावनामिभिः । पीतरपताम्बरान्भिश्च भात्यवामावनामिभिः ॥१७॥
 रत्नकुण्डलैर्विभ्यैः 'सुवर्णैस्तथाकान्वितैः । चामरै' रत्नदण्डैश्च वीज्येते रामकेशवौ ॥१८॥
 पद्मविद्यापरैः सिद्धैः किनरैश्चाप्सरोगणैः । 'परिवाम्भिरगतैर्वैवर्णधर्वचारणैः ॥१९॥
 आदित्या वसवो दशः साध्या विश्वे मरुद्गणः । लोकपालास्तथा चाग्न्ये स्तुवन्ति पुरुषोत्तमम् ॥२०॥
 नमस्ते देवदेवेश पुराण पुरुषोत्तम । सर्वैस्त्वित्यन्तर्हृद्वै लोकनाथ जगत्पते ॥२१॥
 ब्रैलोक्यधारिण देवं ब्रह्मण्य' मोक्षकारणम् । त नमस्यामहे भवत्या सर्वकामफलप्रबन् ॥२२॥

एव अनेक सैकडा हजारो स्त्री पुरुषो के साथ समारोहपूर्वक राम, कृष्ण और सुमन्त्र की स्थापना की जाती है ॥८॥ ९॥
 ऐसे शुभ मुहूर्त में पहले गृहस्थ, स्नातक, यति, और वेदपाठी ब्रह्मचारी मञ्च पर अवस्थित हलधर राम और कृष्ण को
 नहलाते हैं ॥१०॥ इसी प्रकार ऊपर कहे गये सम्पूर्ण तीर्थों की पृथक् पृथक् पुष्प मिले अपने जल से अप्रत्यक्ष रूप
 से स्नान कराते हैं ॥११॥ तदनन्तर यहाँ पट्ट, शस्त्र, भेरी, मुरज, बाहुल, मृदग, शहर एव अन्य विविध बाजों की
 ध्वनि और स्त्रियों के मंगल शब्द, मनोहर स्तुतिपाठ, जयध्वनि, स्तोत्रपाठ, और वीणा-वेणु की मधुर ध्वनि से गरजते
 हुये समुद्र की गम्भीर ध्वनि के समान मङ्गल शब्द सुनाई पड़ता है ॥१२-१४॥ उस समय स्नान-काल में अत्यन्त
 प्रसन्नतापूर्वक मुनिगण वेदपाठ से, अपर ऋषि मन्त्रोच्चारण से, नानास्तोत्रों के पाठ से, पवित्र स्वरयुक्त सामवेद के
 गान से, यति, स्नातक, गृहस्थ और ब्रह्मचारी स्तुति करते हैं ॥१५-१६॥ इयामाद्रमी, स्तनभार से विनम्र, पीले, लाल
 रत्न धारण करने वाली रत्नजटित कुण्डल आदि आभूषण एव पुष्पमाला से सज्जो हुई मणिकार्य अनेक शिल्पकलाओं
 से आभूषित रत्नजटित स्वर्ण के बने चंद्रराम और वेत्रव को डुलाती है ॥१७-१८॥ आकाश में यदा, विद्यापर, सिद्ध,
 चिनर, अप्सरायें, देव, गन्धर्व आदि मण्डल बनाकर एव आदित्य, वसु रुद्र, साध्यगण, विश्वेदेव, मरुद्गण, और
 लोकपाल सभी पुरुषोत्तम की इस प्रकार स्तुति करते हैं ॥१९-२०॥ 'देवदेवेश' पुराणपुरुषोत्तम' सृष्टि पालन
 और विनाश करने वाले देव । लोक के स्वामी । जगत्पते । आपको नमस्कार है ॥२१॥ हम सब मनोरथों को
 देने वाले, निम्बुन पालन करने वाले, ब्रह्मण्यो की रक्षा करने वाले, मोक्षदायक भगवान् को भक्तिपूर्वक नमस्कार

१क. ख ०र्वषोर्वष० । २ख ०काञ्चित् । ३ ख ०रै खमद० । ४ख ०र्ष । सविचार्य वरगुणैर्द० ।

५क. ०योमरणैर्द० । ६क. ल ब्रह्मण्य ।

स्तुतवैव विबुधाः कृष्णं रामं चैव महाबलम् । सुभद्रा च मुनिश्रेष्ठास्तदाऽऽकाशे व्यवस्थिताः ॥२३॥
 गायन्ति देवगन्धर्वा नृत्यन्त्यप्सरसस्तथा । देवतूपोष्यवाद्यन्त वाता वान्ति सुशीतलाः ॥२४॥
 पुष्पमिश्रं तदा मेधा वपेन्त्याकाशलोचराः । जयशब्दं च कुर्वन्ति मुनयः सिद्धचारणाः ॥२५॥
 शक्राद्या विबुधाः सर्वं ऋषयः 'पितरस्तथा । प्रजाना पतयो नागा ये चान्ये स्वर्गवासिनः ॥२६॥
 ततो मङ्गलसभारं विधिमन्त्रपुरस्कृतम् । आभिषेचनिकं द्रव्यं गृहीत्वा देवतागणाः ॥२७॥
 इन्द्रो विष्णुर्महावीर्यं सूर्याचन्द्रमसौ तथा । धाता चैव विधाता च तथा चैवानिलानली ॥२८॥
 पूषा भर्गोऽयं मा त्वष्टा अशुनैव विवस्वता । पत्नीभ्यां सहितो धीमान्मित्रेण धरुणेन च ॥२९॥
 रुद्रैर्वसुभिरादित्यैरश्विन्यां च वृतः प्रभुः । विश्वदेवैर्महद्भिश्च सार्ध्यश्च पितृभिः सह ॥३०॥
 गन्धर्वैरप्सरोभिश्च यक्षराक्षसपद्मैः । देवापिभिरसंख्येयैस्तथा ब्रह्मपिभिर्वरैः ॥३१॥
 वैखानसं बालखिल्यं ब्रह्माहारं रौचिर्षः । भृगुभिश्चाङ्गिरोभिश्च सर्वविद्यासुनिष्ठितैः ॥३२॥
 सर्वविद्याधरैः पुष्ययोगसिद्धिभिरावृतः । पितामहः पुलस्त्यश्च पुलहश्च महातपाः ॥३३॥
 अङ्गिराः कश्यपोऽत्रिश्च मरीचिर्भृगुरेव च । ऋतुर्हः प्रचेताश्च मनुर्दक्षस्तथैव च ॥३४॥
 'ऋतवश्च ब्रह्माश्चैव' ज्योतीर्षि च द्विजोत्तमाः सूतिमत्यश्च सरितो देवाश्चैव सनातनाः ॥३५॥
 समुद्राश्च ह्रदाश्चैव तीर्थानि विविधानि च । पृथिवी द्यौर्दिशश्चैव पादपाश्च द्विजोत्तमाः ॥३६॥

करते हैं ॥२२॥ मुनिगण । देववृन्द इस प्रकार कृष्ण, महाबलशाली राम और सुभद्रा की स्तुति कर आकाश में स्थित हो जाते हैं (उस समय देवगन्धर्व गाते हैं, अप्सरायें नृत्य करती हैं, और देव वाद्य बजाने लगते हैं, शीतल वायु चलने लगता है ॥२३-२४॥ आकाश से मेष पुष्पो से मिश्रित जल की वृष्टि करते हैं, मुनि, सिद्ध, और चारण, इन्द्र आदि देवता, सभी ऋषि, पितर, प्रजापति, नाग और अन्य सभी स्वर्ग में निवास करने वाले देव विशेष जयध्वनि करते हैं ॥२५-२६॥ तदनन्तर मागलिक सागप्रियो के साथ यथाविधि वेदध्वनि की जाती है । उस समय अभिषेकोपयोगी द्रव्य लेकर देवगण, इन्द्र, महापराक्रमी विष्णु, सूर्य, चन्द्रमा, ब्रह्मा, विधाता, वायु, अग्नि ॥२७॥ पूषा, भग, अर्यमा, त्वष्टा, तथा अशु (किरण) विवस्वान्, मित्र, वरुण, पत्नियो सहित धीमान्, रुद्र, ऋतु, आदित्य, अश्विन् सहित प्रभु, विश्वदेव, महर्षि, साध्य, पितरो के साथ गन्धर्व, अप्सराएँ, यक्ष-राक्षस, पद्मज, असंख्य देवापिगण तथा श्रेष्ठ ब्रह्मपिगण ॥२८-३१॥ वैखानस, वायु का आहार करने वाले, किरण पान कर जीवन बिताने वाले बालखिल्यगण, भृगुवशी, सब विद्याओं में निपुण अङ्गिरस् ॥३२॥ सब शुभ विद्याधरो, तथा योग-सिद्धिदा के साथ पितामह, पुलस्त्य, महातपस्वी पुलह, अङ्गिरा, कश्यप, अत्रि, मरीचि, भृगु ऋतु, हर, प्रचेता, मनु दक्ष, ऋतु, प्रह, ज्योति पिण्ड, भूतिमती नदियाँ, नित्य सनातन देवता, समुद्र, ह्रद, सरोवर, विविध तीर्थ, पृथिवी, आकाश, दिशाये, वृक्ष, देवमाता अदिति, ह्री, श्री, स्वाहा, सरस्वती,

१क ग ०तरोऽय्यया । प्र० । २ग ०ता । स्वाश्विस० । ३ख ०श्च यतिमिरच महात्मभि । स० ।

४क ख. ०श्यपश्चैव म० । ५ख मधुर्द० । ६क ईश्वराश्च । स ऐश्वराश्च । ७क ख. ०व नक्षत्राणि द्वि० ।

८ग. ०तो वेदाश्चै० ।

अदितिर्देवमाता च ह्रीः श्रीः स्वाहा सरस्वती । उमा शची सिनीवाली तथा चानुमतिः । कुहूः ॥३७॥
 राका च धियणा चैव पत्युश्चान्या दिवीकसाम् । हिमवांश्चैव विन्ध्यश्च मेरुश्चानेकः शृङ्गवान् ॥३८॥
 ऐरावतः सानुचरः कलाकाष्टास्तथैव च । मासाथं मासश्चतुवस्तथा राश्यहनी समाः ॥३९॥
 उच्चैः श्रवा ह्यध्रेष्ठो नागराजश्च वामनः । अरुणो गरुडश्चैव वृक्षाश्चोपधिभिः सह ॥४०॥
 धर्मश्च भगवान् देवः । समाजगम्भिर्ह संगताः । काली यमश्च मृत्युश्च यमस्यानुचराश्च ॥४१॥
 बहुलस्वान् च भोक्ता ये विविधा देवतागणाः । ते देवस्याभिषेकाय समापान्ति ततस्ततः ॥४२॥
 गृहीत्वा ते तदा विप्राः सर्वे देवा दिवीकसः । आभिषेचनिकं द्रव्यं मङ्गलानि च सर्वशः ॥४३॥
 दिव्यसंभारसंयुक्तैः फलशैः काञ्चनैर्द्विजाः । सारस्वतीभिः पुण्याभिर्दिव्यतोषाभिरेव च ॥४४॥
 'तोयैनाऽऽकाशगङ्गायाः कृष्णं रामेण संगतम् । सयुष्यं काञ्चनैः कुम्भैः स्नापयन्त्यवनिस्थिताः' ॥४५॥
 संचरन्ति विमानानि देवानामम्बरे' तथा । उच्चावचानि दिव्यानि कामगानि स्थिराणि च ॥४६॥
 दिव्यरत्नविचित्राणि सेवितान्यप्सरोगणैः । गीतैर्वाद्यैः पताकाभिः शोभितानि समन्ततः ॥४७॥
 एवं तदा मुनिधेष्टाः कृष्णं रामेण संगतम् । स्नापयित्वा सुभद्रां च सस्तुवन्ति मुदाऽन्विताः ॥४८॥
 जय जय लोकपाल' भक्तरक्षक जय जय प्रणतवत्सल जय जय भूतचरण जय जयाऽऽदिदेव

उमा, शची, सिनीवाली, अनुमति, कुहू ॥३३-३७॥ राका, धियणा एव अन्य देवपतिनो, हिमालय, विन्ध्य, अनेक
 शिखरो वाला मेरु ॥३८॥ अनुचरो सहित ऐरावत, कला काष्टा (समय परिमाण) पक्ष मास, ऋतु, रात्रि, दिन, वर्षा
 उत्तम अथ उच्चैः श्रवा, नागराज शेष, वामन, अरुण, गरुड, ओपधियो के सहित वृक्ष ॥३९-४०॥ काल, यम, मृत्यु,
 एव यम के अन्य अनुचर, भगवान् धर्म, ये सभी देवता वहाँ इकट्ठे होते हैं । इसी प्रकार अन्य विविध अगणित देव-
 गण जिनका नाम यहाँ अधिकता के कारण नहीं कहा गया है—अपने अपने स्थानों से वहाँ अभिषेक के लिये आते
 हैं ॥४१-४२॥ विप्रवृन्द । उस समय वे सभी देवलेखवासी देवता स्वयं पृथ्वी पर स्थित हो भागल्लिख अभिषेकोचित
 सामग्रियो एव दिव्य स्नानोचित द्रव्यो से भरे सुवर्ण बल्ग्रो में पवित्र सरस्वती आदि नदिया एव आकाशगंगा वा
 दिव्य जल भरकर पुण्यादि मुगन्धिष द्रव्या से युक्त सुवर्ण कुम्भो से चलराम सहित वृष्ण और सुभद्रा
 को स्नान कराते हैं ॥४३-४५॥ उस समय आकाश में देवताओं के छोटे बड़े, मनोहर, दृढ़ और इच्छानुसार चलने
 वाले (इच्छा-परिचालित) विमान द्धर-उधर उड़ने दिखाई देते हैं ॥४६॥ आकाश मण्डल अप्सराओं के दिव्य
 और विविध विविध आभूषणों, चारों ओर पहराती हुई मनोहर पताकाओं से जयमगण जाना है पन्थियों और वृक्ष-
 वृष्ट मधुरालापी अप्सराओं के गान एव वाद्य से आकाश सूज उठता है ॥४७॥ मुनिगण । इस प्रकार आनन्द
 मग्न हो चलराम के सहित वृष्ण और सुभद्रा को स्नान कराते के उपरान्त सभी श्रद्धापूर्वक स्तुति करने लगते
 हैं ॥४८॥ हे लोकपाल । भक्तों के रक्षक, दारणागतों पर वात्सल्य भाव रखने वाले, आदिदेव प्राणिमात्र में स्थित

१ ग ०नेर्दे स० । २ क ०रातथा । व० । ३ क तोयैराका० । ४ त ०यन्ति घरास्थि० । ५ ग ०न्यम्बरे
 स्थि० । ६ ग ०यन्तरे । ७ क ०त जय जयजय नादलण जय जय पद्मनाभ जय जय परावण । ग ०ल जय जय
 पद्मनाभ मूषर० ।

बहुकारण' जय जय वासुदेव जय जयासुरसहरण जय जय 'दिव्यमोत' जय जय त्रिदशवर जय जय जलधिषयन जय जय योगिवर' जय जय सूर्यनेत्र जय जय देवराज जय जय कंटभारे जय जय वेदवर' जय जय कूर्मरूप जय जय यज्ञवर' जय जय कमलनाभ जय जय शैलचर जय जय योगशायिञ्जय जय वेगधर जय जय विश्वमूर्ते जय जय चक्रधर जय जय भूतनाथ जय जय घरणीधर जय जय शेषशायिञ्जय जय पीतवासो जय जय सोमकान्त जय जय योगवास जय जय दहनचक्र' जय जय धर्मवास जय जय गुणनिधान जय जय श्रीनिवास जय जय गरुडगमन जय जय सुसुनिवास जय जय धर्मवेत्तो जय जय महीनिवास जय जय 'गहनचरित्र' जय जय योगिमय जय जय मखनिवास जय जय वेदवेद्य जय जय शान्तिकर जय जय योगिचिन्त्य जय जय पुष्टिकर जय जय ज्ञानमूर्ते जय जय कमलाकर जय जय भायवेद्य' जय जय मुक्तिकर' जय जय विमलदेह जय जय सत्त्वनिलय' जय जय गुणसमुद्र' जय जय यज्ञकर जय जय गुणविहीन जय जय मोक्षकर जय जय भूशरण्य जय जय कातिवृत्त जय जय लोकशरण जय जय लक्ष्मीवृत्त जय जय पञ्चजाक्ष जय जय सृष्टिकर जय जय योगयुत जय जयातसीकुसुमश्यामदेह' जय जय 'समुद्रविष्टदेह' जय जय लक्ष्मीपञ्चजपटचरण जय जय भवतवश जय जय लोककांत जय जय परमशान्त जय जय परमसार जय जय चक्रधर जय जय भोगियुत जय जय नीलाम्बर जय जय शान्तिकर जय जय मोक्षकर जय जय कलुषहर

॥४९॥

बहुकारण वासुदेव अनुर विनायक निव्यमत्स्यरूपधारिण देववर समुद्र में सोने वाले योगिश्रष्ट देवों के स्वामी, सूर्यनेत्र कंटक के शत्रु वेद रूप कूर्मवितार धारण करने वाले यज्ञवर पद्मनाभ शैलचर! आपकी जय हो जय हो। हे प्रलयकांत मे योगमामा मे शयन करने वाले वेगधर विश्वरूप चक्रधर भूतो के नाथ पृथ्वी को धारण करने वाले, शेष पर शयन करने वाले पीताम्बर चन्द्र के समान कान्तिमान् योग-वास मुख से अग्नि उत्पन्न करने वाले धर्मरूप, गुणों के कोष श्री के वासस्थान (पति) गरुड पर यमन करने वाले सुख के सागर धर्म श्री पताका पहनने वाले, पृथ्वी व्यापक गड चरित्र वाले योगिधो द्वारा प्राप्त होने वाले यज्ञो मे वास करने वाले वेदों के द्वारा जानने योग्य, शान्ति दाता योगिधो से ध्यान किये जाने वाले भगवन्! आपका जय जयकार हो। हे पुष्टिकर्ता! ज्ञान के स्वरूप कमलाकर भावनाओं द्वारा जानने योग्य मुक्तिदाता निभन्न स्वरूप वाले सत्त्व के निधान गुणशाली (सगुण) यज्ञकर गुणातीत मोक्षदाता लोकलक्षक वांन्तिमान् लोवाश्रय लक्ष्मीपति कदलनेत्र सृष्टि करनेवाले अलसी (तीसी) के कुसुम के समान श्याम शरीर वाले धनश्याम। सागर के मध्य निवास करने वाले लक्ष्मीरूपी वमल वा भ्रमर के समान मधुपान करने वाले भक्तजनों के वश रहने वाले लोकपति परमशान्त। आपकी जय हो जय हो। हे परमत्त्व! चक्रधर! हे सपशायिन् नीलाम्बर (बलराम) शान्तिकर मोक्षप्रद और कलुषहरण करने वाले! आपकी

१ग ०हुकर०। २ख दिव्यगीत। ३क ०न जय जय जल०। ४क ०वन्द्य ज०। ५क ख वैद्यवर ६क यज्ञरूप। ७क यज्ञचर। ८क ख दहनचक्र। ९ग गहनगेहनिवास। १०ख ०नगमन जय जय भवाध्विवास ज०। १०क भववैद्य। ११क ख मृदिकर। १२क ख प्रीतिकर। १३ग गुणसमूह। १४ख ०म ज०। १५क ख सप्तसमु०। १६क ख ०भगेह०।

जय कृष्ण जगन्नाथ जय सकर्षणानुज । जय पद्मपलाशाक्ष जय वाञ्छाफलप्रद ॥५०॥
जय मालावतोरस्क जय चक्रगदापर । जय पद्मालयाकान्त जय विष्णो नमोऽस्तुते ॥५१॥

ब्रह्मोवाच

एव स्तुत्वा तदा देवा शक्राद्या हृष्टमानसा । सिद्धचारणसमाश्च ये चान्ये स्वर्गयासिन ॥५२॥
मुनयो वाल्किल्याश्च कृष्ण रामेणसगतम् । सुभद्रा च मुनिश्रेष्ठा श्रणिपत्न्याम्बरे स्थिता ॥५३॥
दृष्ट्वा स्तुत्वा नमस्कृत्वा तदा ते त्रिदिवीकस । कृष्ण राम सुभद्रा च यान्ति स्व स्व निवेशनम् ॥५४॥
सचरन्ति विमानानि देवानाम्बरे तदा । उच्चावचानि दिव्यानि काममानि स्थिराणि च ॥५५॥
दिव्यरत्नविचित्राणि सेवितान्यप्सरोगण । गीतंवाद्यं पताकाभि शोभितानि समतल ॥५६॥
तस्मिन्काले मु ये मर्या पश्यन्ति पुरुषोत्तमम् । बलभद्र सुभद्रा च ते यान्ति पदमव्ययम् ॥५७॥
सुभद्रारामसहित मञ्चस्थ पुरुषोत्तमम् । दृष्ट्वा निरामयस्थान यान्ति नास्त्यत्र सशय ॥५८॥
कपिलाशनशनेन यत्फल पुष्करे स्मृतम् । तत्फल कृष्णमालोचय मञ्चस्थ सहलापुषम् ॥
सुभद्रा च मुनिश्रेष्ठा प्राप्नोति शुभद्वन्द्व ॥५९॥
वन्द्याशतप्रदानेन यत्फल समुदाहृतम् । तत्फल कृष्णमालोचय मञ्चस्थ लभते नर ॥६०॥
सुवर्णशतनिष्काणा दानेन यत्फल स्मृतम् । तत्फल कृष्णमालोचय मञ्चस्थ लभते नर ॥६१॥

जय हो ॥५९॥ कृष्ण ! जगत्पते ! बलराम के छोटे प्राता ! पद्मपत्र के समान मनोहर नेत्रवाले ! मनोरथ सिद्ध करने वाले ! सर्वदा वक्षस्फल पर वैद्ययन्त्री माला धारण करने वाले ! चक्रगदाधारिन् ! वन्द्योपनि विष्णो ! आपकी जय हो । आपको हमारे असंख्य नमस्कार हैं ॥५०-५१॥

ब्रह्मा बोले—मुनिवर ! उस समय इस प्रकार इन्द्र आदि देवता सिद्ध और चारणा वा समूह एवं अन्य सभी स्वर्गयाना देवता समस्त मुनिगण और वाल्मिल्य प्रभृति ऋषिगण राम सहित कृष्ण और सुभद्रा की स्तुति करते तथा प्रणाम कर आशान्ता म स्थित हो जाते हैं ॥५२-५३॥ इसके अनन्तर वे देवबन्ध कृष्ण राम एक सुभद्रा वा दान स्तुति अथवा नमस्कार कर अपने-अपन निवास-स्थान को चले आते हैं ॥५४॥ उस समय अश्वत्थामा मनोहर छोटे बड़े उत्तम वृद्ध विमान उड़ते हुये दिग्दर्शि देते हैं आशान्ता रथ विरगी पताकाया और अम्बररात्रि वे विचित्र विचित्र आभूषणा से सुभाषित हो जाता है अम्बररात्रि वे मनोहर मयूर गान और बाध स स्वयं गाता हुआ सा जान पड़ता है ॥५५-५६॥ उस समय जो मनुष्य राम कृष्ण और सुभद्रा का दान करते हैं वे अजय पद को प्राप्त करते हैं । मञ्च पर बैठ सुभद्रा राम के सहित पुरुषोत्तम कृष्ण का दान कर मनुष्य निरामय स्थान को प्राप्त करते हैं इसमें सन्देह नहीं । ॥५७॥ मुनिवर ! पुनर श्रेष्ठ म सैकड़ा गौत्रा के दान से जो फल मिलता है उस फल व गुप्त वान दान करनेवाला मनु मञ्चस्थ कृष्ण बलराम और सुभद्रा को दसवर प्राप्त करता है ॥५८॥ सैकड़ा वन्द्यान्त में जो फल प्राप्त होता है मनुष्य उसका मञ्चस्थ कृष्ण के दान से प्राप्त करता है ॥५९॥ सौ निष्क (एक निष्क १६ भाग)

गोसहस्रप्रदानेन यत्फलं परिकीर्तितम्। तत्फलं कृष्णमालोवय मञ्चस्थं लभते नरः॥६२॥
 भूमिदानेन विधिवद्यत्फलं समुदाहृतम्। तत्फलं कृष्णमालोवय मञ्चस्थं लभते नरः॥६३॥
 यत्फलं चान्नदानेन अर्घ्यातिथ्येन कीर्तितम्। तत्फलं कृष्णमालोवय मञ्चस्थं लभते नरः॥६४॥
 वृषोत्सर्गेण विधिवद्यत्फलं समुदाहृतम्। तत्फलं कृष्णमालोवय मञ्चस्थं लभते नरः॥६५॥
 यत्फलं तोयदानेन प्रोप्ते वाज्यत्र कीर्तितम्। तत्फलं कृष्णमालोवय मञ्चस्थं लभते नरः॥६६॥
 तिलधेनुप्रदानेन यत्फलं संप्रकीर्तितम्। तत्फलं कृष्णमालोवय मञ्चस्थं लभते नरः॥६७॥
 गजादवरयदानेन यत्फलं समुदाहृतम्। तत्फलं कृष्णमालोवय मञ्चस्थं लभते नरः॥६८॥
 सुवर्णशृङ्गोदानेन यत्फलं समुदाहृतम्। तत्फलं कृष्णमालोवय मञ्चस्थं लभते नरः॥६९॥
 जलधेनुप्रदानेन यत्फलं समुदाहृतम्। तत्फलं कृष्णमालोवय मञ्चस्थं लभते नरः॥७०॥
 दानेन घृतधेन्याश्च फलं यत् समुदाहृतम्। तत्फलं कृष्णमालोवय मञ्चस्थं लभते नरः॥७१॥
 चान्द्रायणेन क्षीर्णेन यत्फलं समुदाहृतम्। तत्फलं कृष्णमालोवय मञ्चस्थं लभते नरः॥७२॥
 मासोपवासेर्विधिवद्यत्फलं समुदाहृतम्। तत्फलं कृष्णमालोवय मञ्चस्थं लभते नरः॥७३॥
 अथ किं बहुनोक्तेन भाषितेन पुनः पुनः। तस्य देवस्य माहात्म्यं मञ्चस्थस्य द्विजोत्तमाः॥७४॥
 यत्फलं सर्वतीर्थेषु व्रतैर्दानैश्च कीर्तितम्। तत्फलं कृष्णमालोवय मञ्चस्थं सहलायुधम्॥७५॥
 सुभद्रां च मुनिश्रेष्ठाः प्राप्नोति शुभकृत्तरः। तस्मात्प्ररोज्यवा नारी पश्येत् पुरुषोत्तमम्॥७६॥
 ततः समस्ततीर्थानां लभेत्स्नानादिकं फलम्। स्नानशेषेण कृष्णस्य तोयैनाऽऽत्माऽभिषिच्यते॥७७॥
 वन्द्या भूतप्रजा या तु दुर्भंगा ग्रहपीडिता। राक्षसाद्यैर्गृहीता वासथा रोगैश्च संहता॥७८॥

परिमित स्वर्णदान से हजार गौओं के दान से, विधिपूर्वक भूमिदान करने से एव अन्नदान और अतिथि सकार से जो फल मिलते हैं वे सभी मञ्चस्थ कृष्ण का दर्शन करने से मनुष्यों को मिल जाते हैं॥६१-६४॥ इसी प्रकार विधिपूर्वक वृषोत्सर्ग आदि करने से गर्भों के दिनों में जल पिलाने से, तिलधेनु (कूटे हुए तिला की धनी गाय की प्रतिमा) के दान से, हाथी घोड़े और रथ के दान से सोने से मड़े सीम वाली गौओं के दान से, जल धेनु, घृत धेनु (धो से बनी धेनु) के दान से जो फल वा स्नानसार प्राप्त होते हैं वे फल मञ्च पर आसीन पुरुषोत्तम कृष्ण के दर्शन से प्राप्त होते हैं॥६५-७१॥ चान्द्रायण व्रत एव विधिपूर्वक एक मास के उपवास से जो फल प्राप्त होता है वह मञ्च पर स्थित कृष्ण के दर्शन से मनुष्य को मिलता है॥७२॥ द्विजवर ! उस मञ्चस्थ देव कृष्ण के दर्शन की महिमा को इस प्रकार बार बार अधिक कहने से क्या लाभ ? सब तीर्थों के करने दान देने और व्रतों के अनुष्ठान से जो फल होते हैं वे सभी मञ्चस्थ बलराम के सहित कृष्ण और सुभद्रा के दर्शन से पुण्यवान् मनुष्य को प्राप्त होते हैं॥७३-७५॥ इसलिये नर अथवा नारी अवश्य उस पुरुषोत्तम का दर्शन करे॥७६॥ इसके अतिरिक्त कृष्ण के अभिषेक से बचे जल से जो स्नान करता है वह सम्पूर्ण तीर्थ के स्नान का फल पाता है॥७७॥ वन्द्या, भूतवत्सा, विषवाया भाग्यहीन, ग्रहों से पीडित, भूतप्रेतादि

सद्यस्ता स्नानशेषेण उदकेनाभियेचिता । प्राप्नुवन्तीप्सितान् कामान्यान्वाञ्छन्ति चेप्सितान् ॥७९॥
 पुत्रार्थिनी लभेत्पुत्रान्तोभाष्य च सुखार्थिनी । रोगार्ता मुच्यते रोगाद्भन च धनकाङ्क्षिणी ॥८०॥
 पुण्यानि यानि तोयानि तिष्ठन्ति धरणीतले । तानि स्नानावशेषस्य कला नार्हन्ति षोडशीम् ॥८१॥
 तस्मात्स्नानावशेषं यत्कृष्णस्य सलिलं द्विज । तेनाभियिञ्चेद्गङ्गात्राणि सर्वकामप्रदं हि तत् ॥८२॥
 स्नात पश्यन्ति ये कृष्णं व्रजन्त दक्षिणामुखम् । ब्रह्महत्यादिभिः पापमुच्यते तेन तत्राय ॥८३॥
 शास्त्रेषु यत्फलं प्रोक्तं पृथिव्यादिप्रदक्षिणं । दृष्ट्वा नरो लभेत्कृष्णं व्रजन्त दक्षिणामुखम् ॥८४॥
 तीर्थयात्राफलं यत्तु पृथिव्या समुदाहृतम् । दृष्ट्वा नरो लभेत्कृष्णं तत्फलं दक्षिणामुखम् ॥८५॥
 वदयां यत्फलं प्रोक्तं दृष्ट्वा नारायणं नरम् । दृष्ट्वा नरो लभेत्कृष्णं तत्फलं दक्षिणामुखम् ॥८६॥
 गङ्गाद्वारे कुक्षेत्रे स्नानदानेन यत्फलम् । दृष्ट्वा नरो लभेत्कृष्णं तत्फलं दक्षिणामुखम् ॥८७॥
 प्रयागे च महामाध्या यत्फलं समुदाहृतम् । दृष्ट्वा नरो लभेत्कृष्णं तत्फलं दक्षिणामुखम् ॥८८॥
 शालग्रामे महार्चयेया स्नानदानेन यत्फलम् । दृष्ट्वा नरो लभेत्कृष्णं तत्फलं दक्षिणामुखम् ॥८९॥
 महाभिधानकातिथ्या पुष्करे यत्फलं स्मृतम् । दृष्ट्वा नरो लभेत्कृष्णं तत्फलं दक्षिणामुखम् ॥९०॥
 यत्फलं स्नानदानेन गङ्गासागरसगमे । दृष्ट्वा नरो लभेत्कृष्णं तत्फलं दक्षिणामुखम् ॥९१॥
 प्रस्ते सूर्ये कुक्षेत्रे स्नानदानेन यत्फलम् । दृष्ट्वा नरो लभेत्कृष्णं तत्फलं दक्षिणामुखम् ॥९२॥

से दुखी और रोगग्रस्त स्त्रिया यदि उस स्नान से बचे जल से स्नान करें तो वक्षः ही अपनी सम्पूर्ण इच्छाओं और मनोरथा को प्राप्त कर लेती हैं ॥७९॥ पुत्र की कामना करने वाली स्त्री पुत्र को पाती है, सुख चाहने वाली अपने सौभाग्य को प्राप्त करती है, रोगी अपने रोगों से छूट जाती है और धन की इच्छा रखने वाली धन प्राप्त करती है ॥८०॥ इस पृथ्वीतल पर जितने प्रकार के जल पाये जाते हैं वे सभी इस स्नान से बचे जल के सोलहव भाग के बराबर भी पुण्य देने वाले नहीं होते ॥८१॥ द्विजगण । इसलिये कृष्ण के स्नान से बच जल में अवश्य अपने गात्रों का अभिषेक करना चाहिये क्योंकि वह सब मनोरथा को देने वाला है ॥८२॥ जो मनुष्य स्नान किये हुए और दक्षिण की ओर जाने वाले (यहाँ ध्यानात्रा से अभिप्राय है) स्नान के बाद रथ पर कृष्ण को चढ़ाकर धुमाया जाता है) कृष्ण को देखा है वह नि सन्दह ब्रह्महत्या आदि पापों से मुक्त हो जाता है ॥८३॥ शास्त्रों में पृथ्वी की तीन बार प्रदक्षिणा करने से जो फल कहे गये हैं वे दक्षिणामुख जाने वाले कृष्ण के दशन से मनुष्य का प्राप्त होते हैं ॥८४॥ पृथ्वी पर तीर्थयात्रा करने से जो फल मिलते हैं, बदरिकाश्रम जाकर नारायण के दशन करने से जो फल मिलते हैं हरद्वार कुक्षेत्र में स्नान करने एवं दान देने से जो फल मिलते हैं मापी अव्यवस्था को श्रयाय में स्नान करने से जो फल मिलते हैं, वे सभी दक्षिणामुख जाने वाले कृष्ण के दशन से मनुष्य को मिलते हैं ॥८५॥ ८८॥ पुण्यदायक चैत्रमास में शालग्राम तीर्थ में स्नान करने, और दान देने से, महापुण्यदायिनी वातिव-पूणिमा के दिन पुष्कर क्षेत्र में स्नान और दान से, गङ्गासागर सगम के स्नान और दान से, सूर्य ग्रहण के अवसर पर कुक्षेत्र में स्नान करने और दान देने से जो

गङ्गाया सर्वतीर्थेषु यामुनेषु च भो द्विजा । सारस्वतेषु तीर्थेषु तथाऽन्येषु सरसु च ॥९३॥
 यत्फल स्नानदानेन विधिवत्समुदाहृतम् । दृष्ट्वा नरो लभेत्कृष्ण तत्फल दक्षिणामुखम् ॥९४॥
 पुष्करे चाथ तीर्थेषु गये चामरकण्टके । नर्मिपादियु तीर्थेषु क्षेत्रेष्वायतनेषु च ॥९५॥
 यत्फल स्नानदानेन राहुपस्ते दिवाकरे । दृष्ट्वा नरो लभेत्कृष्ण तत्फल दक्षिणामुखम् ॥९६॥
 अथ किं पुनरुक्तेन भाषितेन पुन पुन । यत्किञ्चित्कथितं चात्र फल पुण्यस्य कर्मण ॥९७॥
 वेदशास्त्रे पुराणे च भारते च द्विजोत्तमा । धर्मशास्त्रेषु सर्वेषु तथाऽन्यत्र मनीषिभि ॥९८॥
 दृष्ट्वा नरो लभेत्कृष्ण तत्फल सहस्रायुधम् । सकल भद्रया साध यजन्त दक्षिणामुखम् ॥९९॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे स्वयम्भूषिसवादे कृष्णस्नानमाहात्म्यवर्णनं नाम
 पञ्चपण्डितमौड्याय ॥६५॥

फल होता है वह दक्षिणामुख जाने वाले कृष्ण के दान से होता है ॥८९ ९२॥ गंगा के सभी तीर्थों यमुना के सभी तीर्थों सरस्वती एवं अन्य सरोवर के तीर्थों में विधिवत् स्नान और दान से जो फल वहे गये हैं वे सभी फल दक्षिणामुख जाने वाले कृष्ण के दान से मनुष्य को प्राप्त होते हैं ॥९३ ९४॥ सन्ध्या में पुष्कर गया अमरकण्टक नर्मिपाण्ड्य इत्यादि तीर्थों क्षत्रो एवं देवमन्दिरों में जाने दान करने दान देने तथा सूर्यग्रहण काल के स्नान-दान से जो फल भिन्न है वे सभी फल उस भाग्यवान् मनुष्य को मिलते हैं जो दक्षिणामुख जाते हुए कृष्ण का दान करता है ॥९५ ९६॥ अथवा बार बार पुनरुक्त भाषण करने से क्या प्रयोजन ? वेदशास्त्र पुराण महाभारत तथा सभी धर्मशास्त्रों और अन्यत्र भी विद्वानों द्वारा जो पुण्य-फल वहे गये हैं वे सभी उस मनुष्य को प्राप्त होते हैं जो बलराम और सुभद्रा के सहित दक्षिण की ओर जाते हुए कृष्ण का दान करता है ॥९७ ९९॥

श्री ब्रह्महापुराण में कृष्ण माहात्म्य-वर्णन नामक पसठवाँ अध्याय समाप्त ॥६५॥

अथ षट्षष्टितमोऽध्यायः

गुडिवायानामाहात्म्यवचनम्

ब्रह्मोवाच

'गुडिवामण्डपं यातुं ये पश्यन्ति रथे स्थितम् । कृष्णं बलं सुभद्रां च ते यातुं भवन् हरे ॥१॥
ये पश्यन्ति तदा कृष्णं सप्ताहं मण्डपे स्थितम् । हलिनं च सुभद्रां च विष्णुलोकं व्रजन्ति ते ॥२॥

मुनय ऊचुः

कनः सा निर्मिता यात्रा दक्षिणस्यां जगत्पते । यात्राफलं च किं तत्र प्राप्यते ब्रूहि मानवं ॥३॥
विमये सरस्तस्तोरे रात्रस्तस्य जगत्पते । पवित्रे विजने देवे गत्वा तत्र च मण्डपे ॥४॥
कृष्णं सकर्यणश्चैव सुभद्रां च रथेन त । स्वस्थानं सपरित्यज्य सप्तरात्रं वसति वै ॥५॥

ब्रह्मोवाच

इन्द्रधुम्नेन भो विप्रा पुरा वै प्रार्थितो हरिः । सप्ताहं सरस्तस्तोरे समं यात्रां भवत्यिति ॥६॥
गुडिवा नाम देवेश भुक्तिमुक्तिफलप्रदा । तस्मै विलंघ्य चारुं ददौ स पुरयोत्तम ॥७॥

अध्याय ६६

गुडिवायानां वा माहात्म्यं वचनम्

ब्रह्मा बोल—जा मनुष्य रथ पर चढ़ कृष्ण वज्रराम और सुभद्रा का गुडिवा मण्डप की ओर जात हुए दान
है वे विष्णुलोक को प्राप्त करते हैं । और जो मण्डप में स्थित कृष्ण राम और सुभद्रा का एक सप्ताह पश्यत दान
करते हैं वे विष्णुलोक को जाते हैं ॥१॥ ॥१॥

मुनियो न पृष्ट्वा—जगत्पते । जिसने भगवान् की उस दक्षिण की ओर की यात्रा का नियम विनाश और
इस यात्रा के दान से मनुष्या को कौन सा फल मिलता है कृपा करते गुनाह्य । जगत्पते । उस इन्द्रधुम्न सर के
रथ पर पवित्र निजने प्रान्त में कृष्ण वज्रराम और सुभद्रा मां दान से रथ द्वारा 'न' यात्रा 'या' मण्डप में
एक सप्ताह तक निमित्त रथ जाते हैं ॥२॥ ॥२॥

ब्रह्मा ने हा—विप्रभूद । पण्डित इन्द्रधुम्न ने भगवान् से प्रायश्चित्त की था कि मेरे सरोवर के तट पर एक
सप्ताह तक आकर यात्रा हा दवा । वह यात्रा राम और मोन को देनेवाली गुडिवा नाम में विख्यात है ।
ऐसी प्रायश्चित्त मुनिर पुरयोत्तम ने जगत्पते मनवाहा वर प्रदान किया ॥३॥ ॥३॥

१. गुडिवा० । २. गुडिवा० । ३. दक्षिणास्यां । ४. गुडिवास्यां । ५. च जगत्पते । ६. यात्रा ।

श्रीभगवानुवाच ।

सप्ताहं सरसस्तोरे तव राजन्भविष्यति । गुडिवा^१ नाम यात्रा मे सर्वकामफलप्रदा ॥८॥
 ये मां तत्रार्चयिष्यन्ति भद्रया मण्डपे स्थितम् । संकर्षणं सुभद्रां च विधिवत्सुसमाहिताः ॥९॥
 ब्राह्मणाः क्षत्रिया वंश्याः स्त्रियः शूद्राश्च वै नृप । पुष्पैर्गन्धैस्तथा धूपैर्दोषैर्वेद्यैर्वरैः ॥१०॥
 उपहारैर्बहुविधैः^२ प्रणिपातैः प्रदक्षिणैः । जयशब्दैस्तथा स्तोत्रैर्गोतिर्वाद्यैर्मनोहरैः ॥११॥
 न तेषां दुर्लभं किञ्चित्फलं यस्य यदोप्सितम् । भविष्यति नृपश्रेष्ठ मत्प्रसादादसंशयम् ॥१२॥

ब्रह्मोवाच

[एवमुक्त्वा] तु तं देवस्तत्रैवान्तरधीयत् । स तु राजवरः श्रीमान्कृतकृत्योऽभवत्तदा ॥१३॥
 तस्मात्सर्वप्रयत्नेन 'गुडिवायां' [द्विजोत्तमाः । सर्वकामप्रदं] देवं पश्येत्तं पुर्योत्तमम् ॥१४॥
 अमुमे लभते पुत्रादिधनो लभते धनम् । रोगाच्च मुच्यते रोगो कन्या प्राप्नोति सत्पतिम् ॥१५॥
 आयुः कीर्तिं यशो मेधां धनं विद्यां धृतिं पशून् । नरः संततिमाप्नोति हृषीकेश सपदम् ॥१६॥
 धान्यान्समोहते^३ भोगान्वृद्ध्वा तं पुर्योत्तमम् । नरो याऽप्ययवा मारी तास्ताग्राप्नोत्यसंशयम् ॥१७॥
 यात्रां कृत्वा 'गुडिवाह्यां' विधिवत्सुसमाहितः । आयाइत्य^४ सिते पक्षे नरो योपिदद्यापि वा ॥१८॥

श्री भगवान् ने कहा—राजन् ! तुम्हारे सरोवर के तट पर मेरी सब मनोरूपी को देनेवाली गुडिवा नाम की यात्रा एक सप्ताह पर्यन्त होगी । जो एकाग्र चित्त से मण्डप में स्थित मेरी, बलराम और सुभद्रा की पुष्प, गन्ध, धूप दीप, नैवेद्य तथा विविध उत्तम उपहारों से विधिकत् पूजा कर नमस्कार एवं प्रदक्षिणा करेंगे तथा जयशब्द, स्तोत्रादि मनोहर गान, वाद्य आदि से मुझे समुष्ट करेंगे, नृप ! वे चाहे ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र कोई भी क्या न हो उनके लिये सप्ताह में कुछ भी दुर्लभ नहीं रहेगा । नृपश्रेष्ठ ! मेरी कृपा से उनको निश्चित ही इच्छानुरूप फल प्राप्त होंगे ॥८-१२॥

ब्रह्मा ने कहा—इस प्रकार भगवान् विष्णु राजा से कहकर अन्तर्हित हो गये । वह प्रभावशाली राजा भी अत्यन्त कृतज्ञ हो गया ॥१३॥ इन्द्रिये, द्विजवर ! मनुष्य को प्रयत्न करते गुडिवा यात्रा के समय सब मनोरूप मिष्ट करने वाले पुर्योत्तम देव का दर्शन करना चाहिये ॥१४॥ पुत्रहीन व्यक्ति पुत्रों को, और धनहीन धन को प्राप्त करता है । इसी प्रकार रोगी अपने रोग से मुक्त हो जाता है और कन्या इच्छानुरूप उत्तम पति प्राप्त करती है ॥१५॥ भगवान् पुर्योत्तम के दर्शन से मनुष्य आयु, कीर्ति, यश, बुद्धि, बल, विद्या, धैर्य, स्व, दीन, धन और उत्तम सन्तान प्राप्त करता है ॥१६॥ नर हो या नापी सभी भगवान् के दर्शन से जिन जिन गुणों की इच्छा करने हैं, निःशङ्क उनको वे सभी इच्छार्थ पूर्ण होनी हैं । नर हो अथवा स्त्री कोई भी आयाइ के शुभ पक्ष में अनन्य माय में विधि-

दृष्ट्वा कृष्णं च रामं च सुभद्रां च द्विजोत्तमः। दशपञ्चादवमेधानां फलं प्राप्नोति चाधिकम् ॥१९॥
सप्तावरान्सप्त परान्वंशानुद्धृत्य चाऽऽत्मनः। कामयेन विमानेन सर्वरत्नैरलङ्कृतः ॥२०॥
गन्धर्वैरप्सरोभिश्च सेव्यमानो यथोत्तरैः। रूपवान्सुभगः शूरो नरो विष्णुपुरं व्रजेत् ॥२१॥
तत्र भुक्त्वा वरान्भोगान्यावदाभूतसंस्तवम्। सर्वकामसमृद्धात्मा जरामरणवर्जितः ॥२२॥
पुण्यभयादिहाऽऽगत्य चतुर्वेदी द्विजो भवेत्। सेषेणं योयमास्याय ततो मोक्षमवाप्नुयात् ॥२३॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे स्वयंभुवृषिसंवादे गुडिवायात्रामाहात्म्यनिरूपणं
नाम पट्षष्टितमोऽध्यायः ॥६६॥

अथ सप्तषष्टितमोऽध्यायः

द्वादशयात्रामाहात्म्यवर्णनम्

मुनय ऊचुः

एकैकस्यास्तु यात्रायां फलं ब्रूहि 'पुण्यकपुण्यम्। यत्प्राप्नोति नरः कृत्वा नारी' वा तत्र संयता' ॥१॥

पूर्वकं गुडिवा नाम की यात्रा कर एव कृष्ण, राम और सुभद्रा का दर्शन कर द्विजवृन्द ! पन्द्रह अवसरेय यमो से भी अधिक फल प्राप्त करता है ॥१७-१९॥ वह अपने सात बीते और सात आने वाले वषो का उद्धार कर स्वयं इच्छागामी विमान से सब रत्ना से अलङ्कृत होकर विष्णुलोक को जाता है ॥२०-२१॥ वहाँ उसकी गन्धर्व और अप्सराओं द्वारा उत्तरीतर कम से सेवा होती है और वह रूपवान्, भाग्यशाली एवं धरवीर होता है। उस विष्णुलोक में वह जप-मृत्यु से रहित और शान्त होकर कल्पान्त तक उत्तम भोगों का भोग करता है। पुनः पुण्य क्षीण हो जाने पर हम लोक में आकर चारों वेदों का शता ब्राह्मण होता है। तदनन्तर वैष्णव भोग (ज्ञान) को पाकर मोक्ष का अधिकारी होता है ॥२२-२३॥

श्री ब्रह्ममहापुराण मे ब्रह्मा और ऋषि के संवाद मे गुडिवा-यात्रा माहात्म्य-वर्णन नामक छाछठवा अध्याय समाप्त ॥६६॥

अध्याय ६७

वारह यात्राओं का माहात्म्य-वर्णन

मुनियों ने कहा—उन यात्राओं को अनन्य साथ से करके स्त्री पुरुष क्या फल पाते हैं वृषया एव-एव यात्रा का पत्र अलग-अलग बहिये ॥१॥

१४. स. ०भासाष्टमः। २४. ०यग्विभोः। य०। ३४. ०रीसिस्तत्र सं०। ४४. स. धनुः।

ब्रह्मोवाच

प्रतिप्राप्राकल विप्रा भृणुष्य गदतो मम । यत्प्राप्नोति नर कृत्वा तस्मिन्क्षेत्रे सुसयत ॥२॥
गुडिवाया तयोत्पाने फालगुन्या विपुवे तथा । यात्रा कृत्वा विधानेन दृष्ट्वा कृष्ण प्रणम्य च ॥३॥
सकर्यण सुभद्रा च लभेत्सर्वत्र वै फलम् । नरो गच्छेद्विष्णुलोके यावदिन्द्राश्चतुर्दश ॥४॥
यावद्यात्रा ज्येष्ठमासे करोति विधिश्चर । सायत्कप विष्णुलोकं सुखं भुङ्कते न सशय ॥५॥
तस्मिन्क्षेत्रेचररे पुण्य रम्य भोजुष्योत्तमे । भुक्तिमुक्तिप्रदं नृणां सर्वसत्त्वसुखायहे ॥६॥
ज्येष्ठे यात्रा (त्रा) नर कृत्वा नारीयासयतन्द्रिय । यथोक्तन विधानेन दश द्वे च समाहित ॥७॥
प्रतिष्ठां कुरुते यस्तु शाठ्यदम्भविबर्जित । स भुक्त्वा विविधान्भोगान्मोक्षं चा ते लभेदध्रुवम् ॥८॥

मुनय ऊचुः

भोजुमिच्छामहे इव प्रतिष्ठां यदतस्तव । विधानं चार्चनं दानं फलं तत्र जगत्पते ॥९॥

ब्रह्मोवाच

भृणुष्य मृनिशार्दूला प्रतिष्ठां शिविचोदिताम् । या कृत्वा तु नरो भवत्या नारी या लभते फलम् ॥१०॥
यात्राद्वादशसपूर्णा यदा स्मात्तु (स्पुस्तु) द्विजोत्तमा । तदा कुर्वीत विधियत्प्रतिष्ठां पापनाशिनीम् ॥११॥

अथा बोलै—विप्रबुद्ध । तममी व्यति उत्ततीय (गुडिवा) की यात्रा को मन्त्रात्र कर प्रवेश यात्रा का जो फल प्राप्त करते है उसका मैं कह रहा हूँ गुना ॥२॥ वागुन का पूर्णिमा विपुव (जिग निन रात्रि निन समान होन है) काठ म तथा देवोत्पान एकादशी व निन गुन्वा यात्रा नर शिविपूर्वक कृष्ण बडराम तथा मुमन को प्रगाप्त कर मनुष्य मत्र फला का प्राप्त करता है और चोन्ह इन्द्रा व याव-काठ तक विष्णु व कोठ म निवास करता है ॥३॥ ४॥ जठ ने महाने म मनुष्य विजान वार विप्रिपूरा यात्रा करता है वह उनन हो कन्या तत्र विष्णु कोठ म भुज भोग करता है इगम सन्टे नर ॥५॥ सधियि मनाहर भोग और मान को देने कोने तमी प्राणियो को मुन पट्टयान कोने पुगोतन क्षत्र म ज्ञा किनायि गारी या नर जनन्य साव मे विधान के अनुगार बारह बार जगत् मान म यात्रा करन तथा गन्ना और घनता वा छन्दवर न्व प्रतिष्ठा करेये के विविध भागा का भोग कर अन्तकाय म विहित ही भोग प्राप्त करय ॥६॥ ८॥

मुनिगण बोल—एव । अभी आने जा गयनि की प्रतिष्ठा की चर्चा की है उग प्रतिष्ठा के विधान पूजन दान और फल के सिंग म हम लाभ गुचना चाहते हैं कृपाकर सुनाइय ॥९॥

अथा न पठा—मुनिवर शिव देव प्रतिष्ठा व करन म मनुष्य उत्तम फला का प्राप्त करता है उस प्रतिष्ठा की विधि मैं बता रहा हूँ धनपूरा मुने ॥१०॥ उगम द्विप्रबुद्ध । जब बारह बार यात्रा पूरी हो जाय तब

ज्येष्ठे मासि सिते पक्षे त्वेकादश्या समाहित । गत्वा जलाशय पुण्यमाचम्य प्रयत शुचि ॥१२॥
 आवाह्य सर्वतीर्थानि ध्यात्वा नारायण तथा । तत स्नान प्रकुर्वीत विधिवत्सुसमाहित ॥१३॥
 यस्य यो विधिरुद्रिष्ट ऋषिभि स्नानकर्मणि । तेनैव तु विधानेन स्नान तस्य विधीयते ॥१४॥
 स्नात्वा सम्यग्विधानेन ततो देवानूपीन्वितुन् । सतर्पयेत्तयाग्न्याश्च नामगोत्रविधानवित ॥१५॥
 उत्तीर्णं वाससी धीते निर्मले परिधाय वै । उपस्पृश्य विधानेन भास्कराभिमुखस्तत ॥१६॥
 गायत्रीं पावनो देवीं मनसा वेदमातरम् । सर्वपापहरा पुण्यां जपेदष्टोत्तर शतम् ॥१७॥
 पुण्याश्च सौरमग्न्याश्च श्रद्धया सुसमाहित । त्रिप्रदक्षिणमावृत्य भास्कर प्रणमेत्तत ॥१८॥
 वेदोक्तं त्रिषु वर्णेषु स्नानं जाप्यमुदाहृतम् । स्त्रीशूद्रयो स्नानजाप्य वेदोक्तविधिवर्जितम् ॥१९॥
 ततो गच्छेद्गृहं मोक्षो पूजयेत्पुण्योत्तमम् । प्रक्षाल्य हस्तौ पादौ च उपस्पृश्य ययाविधि ॥२०॥
 धृतेन स्नापयेद्देव क्षीरेण तदनन्तरम् । मधुगन्धोदकेनैव तीर्थचन्दनवारिणा ॥२१॥
 ततो घृतपुष्प श्रेष्ठ भक्त्या त परिधाययेत् । चन्दनामृगपूरैः कुङ्कुमेन विलेपयेत् ॥२२॥
 पूजयेत्परया भक्त्या 'पञ्च'श्च पुरुषोत्तमम् । अन्यैश्च वैष्णवं पुष्पैरर्चयेन्मल्लिकादिभि ॥२३॥
 सप्तशैव जगन्नाथ भुविनमुक्तिप्रद हरिम् । धूप चागुरुसयुक्तं बहेद्देवस्य चाग्रत ॥२४॥

विधिपूर्वक इस पापनाशिनी प्रतिष्ठा को करना चाहिये ॥११॥ ज्येष्ठ मास की शुक्ल-एकादशी के दिन समय मात्र से उस पवित्र जलाशय के समीप जाकर आचमन कर पवित्र होना चाहिये ॥१२॥ पुनः सब तीर्थों का आवाहन कर तथा मगवान् का ध्यान कर विधिपूर्वक समाहित वित्त से उसमें स्नान करना चाहिये ॥१३॥ ऋषिया ने स्नान-कर्म में जिसके लिये जो विधि बतलाई है उसी विधि से स्नान करना चाहिये ॥१४॥ तदनन्तर मली भूमि स्नान कर नाम गोत्र का जानने वाला व्यक्ति देव ऋषि पितर तथा अन्य देवों का तपण करे ॥१५॥ इससे बान् जल से निजल कर स्वच्छ निमल सुके वस्त्र पहन कर मूर्धाभिमुख हो विधिपूर्वक आचमन करे ॥१६॥ आचमन से पवित्र हो सब पापों को दूर करने वाली पवित्र वेन्माता गायत्री देवी का मन में जप करे ॥१७॥ इससे अनन्तर पवित्र सूयमन्त्री का पाठ करते हुए थंडा और सयन भाव से तीन बार प्रणिष्ठा कर सूय को प्रणाम करे ॥१८॥ मीने तीन वर्णों के लिये वेन्माता बहे गये स्नान और जपविधान को बढ़ा है स्त्री गोत्रों के लिए वेदविधि से स्नान और जप वर्जित है ॥१९॥ इस प्रकार सध्या बन्दन से निवृत्त होकर मोक्ष हो घर जाय वहाँ हाथ-पैर घोरर यथाविधि आचमन कर पुरुषोत्तम की पूजा प्रारम्भ करे ॥२०॥ पहले मगवान् को घृत से तदनन्तर दूध से नहलाय फिर मधु-मुग्ध म चन्दन अगर गुड-गुड और बपूर का लेप लगाय तथा अचल भक्तिभाव से कमल एवं अय मल्लिका आदि विष्णु की प्रिय लगने वाले फूला से पुरुषोत्तम की पूजा करे ॥२१॥ २३॥ इस विधि से भुक्ति-भुक्ति-दाना नावपति मगवान् विष्णु देव की पूजा कर उनके आगे अगुरु मिले धूप और मुखाचिन गुग्गुलु को जलाये शक्ति के अनुसार भक्तिपूर्वक

१ ग ० न जप्य० । २ स ० णा । नव्यव० । ३ क मन्त्रैश्च । स गन्धैश्च । ४ क विविधै ।

५ क ० कर्त देवदेव० ।

गुग्गुलु च मुनिश्रेष्ठा दहेदगन्धसमग्वितम् । दीप प्रज्वालयेद्भक्त्या ययाशक्त्या (वित) घृतेन वै ॥२५॥
 अन्याश्च दीपकान्दद्याद्द्वादशैव समाहित । घृतेन च मुनिश्रेष्ठास्तिलतैलेन वा पुन ॥२६॥
 नैवेद्ये पायसापूपशण्डुलीवटक तथा । मोदक फणित चाऽल्प कलानि च निवेदयेत् ॥२७॥
 एव पञ्चोपचारेण सपूज्य पुरुषोत्तमम् । नमः पुरुषोत्तमायेति जपेदष्टोत्तर शतम् ॥२८॥
 ततः प्रसादयेद्देव भक्त्या त पुरुषोत्तमम् । नमस्ते सर्वलोकेश भक्तानामभयप्रद ॥२९॥
 ससारसागरे मग्न ग्राहि मा पुरुषोत्तम । यास्ते मया कृता यात्रा द्वादशैव जगत्पते ॥३०॥
 प्रसादात्तव गोविन्द सपूर्णास्ता भवन्तु मे । एव प्रसाद्य त देव दण्डवत्प्रणम्य च ॥३१॥
 ततोऽर्घ्येदगुरु भक्त्या पुष्पवस्त्रानुलेपनैः । नानयोरन्तर यस्माद्विद्यते मुनिसत्तमा ॥३२॥
 देवस्थोपरि कुर्वीत ध्वज्या सुसमाहित । नानापुष्पैर्मुनिश्रेष्ठा विचित्र पुष्पमण्डपम् ॥३३॥
 कृत्वाऽवधारण पञ्चाञ्जगार कारयेद्भिन्नि । कथा च वासुदेवस्य गीतिका चापि कारयेत् ॥३४॥
 'ध्यायन्पठन्स्तुवन्देव' प्रणयेद्भजनीं युध । ततः प्रभाते विमले द्वादश्या द्वादशैव तु ॥३५॥
 'निमग्नयेद्भक्तस्नातान्ब्राह्मणान्वेदपारणान् । इतिहासपुराणसाञ्चोत्रियान्सपतेन्द्रियान् ॥३६॥
 स्नात्वा सन्ध्याग्विधानेन धीतवासा जितेन्द्रिय । स्नापयेत्पूर्ववत्तत्र पूजयेत्पुरुषोत्तमम् ॥३७॥

धृत का दीपक जलाये । इसी प्रकार मुनिवयः । धृत के अथवा तिल-तैल के अन्य बारह प्रणीप अर्थात् पूजक भगवान् को निवाधे । भोजन के लिए विभिन्न प्रकार के मयुर पन्थ्य खीर मालपूषा पूरी लड्डू राब एव फल भगवान् को अर्पित करे ॥२५-२७॥ इस प्रकार पञ्चोपचार से भगवान् की पूजा कर नमः पुरुषोत्तमाय इस मन्त्र का एक सौ आठ बार जप करे ॥२८॥ जप के बाद भगवान् पुरुषोत्तम को स्तुति द्वारा प्रसन्न करे । भक्ता को अमय दान देने वाले देवेन । आप को नमस्कार है । पुरुषोत्तम । ससार-सागर में डूबे हुए मेरी रक्षा करो । जगत्पते । मैंने आप की कृपा से जो ये सुम्हाती द्वादश यात्रायें की हैं वे पूणरूप से मंगल हैं । इस प्रकार स्तुति से भगवान् को प्रसन्न कर दण्डवत् प्रणाम करना चाहिये ॥२९-३१॥ मुनिश्रेष्ठ । गुरु और भगवान् में थोड़ा भी अन्तर नहीं है इसलिए भगवान् की पूजा के बाद गुरु की पूजा वस्त्र और गुग्गुलु इत्यादि से पूजा करनी चाहिये । मुनिश्रेष्ठ । भगवान् की प्रसन्नता के लिये उनके ऊपर अनेक पुष्पों का विचित्र मण्डप अर्थात् पूर्वक अनन्य भाव से बनाना चाहिये ॥३२-३३॥ इस प्रकार देव प्रतिष्ठा कर रात्रि में जागरण करना चाहिये वासुदेव की मनोहर कथा और गीत भी गाये जाने चाहिये । बुद्धिमान् व्यक्तिवा को चाहिये कि इस प्रकार पुरुषोत्तम का ध्यान स्तुति और स्तोत्र पाठ करने हुये रात बिताएँ ॥३४॥ तदनन्तर द्वाण्णी के दिन प्रातःकाल वेद के प्रमाण्ड विद्वान् इतिहास-पुराणों के ज्ञान धोत्रिय जितेन्द्रिय और प्रती बारह ब्राह्मणों को निमन्त्रित करे ॥३५-३६॥ स्वयं स्नान कर धुले हुए वस्त्र पहनकर विधिपूर्वक मयन भाव से भगवान् पुरुषोत्तम को पहले की तरह स्नान कराये विविध पुष्पा उगहार नैवेद्य दीप तथा विविध उपचार

गन्धं. पुष्पंरूपहारंनैवेद्यंर्षोपकंस्तथा । उपचारंर्वहुविधं प्रणिपातः , प्रदक्षिणैः॥३८॥
 माप्यं स्तुतिनमस्कारैर्गीतवाद्यैर्मनोहरैः । सपूज्यंवं जगन्नाथं ब्राह्मणान्पूजयेत्ततः॥३९॥
 द्वादशैव तु गास्तेभ्यो दत्त्वा कनकमेव च । छत्रोपानद्युग चंवं श्रद्धाभक्तिसमन्वितः॥४०॥
 भक्त्या तु सधन तेभ्यो दद्याद्वस्त्रादिकं द्विजा । सद्भुजेन तु गोविन्दस्तोष्यते पूजितो यतः॥४१॥
 आचार्याय ततो दद्याद्गोवस्त्र कनक तथा । छत्रोपानद्युग चान्यत्कास्त्यपानं च भक्तितः॥४२॥
 ततस्तान्भोजयेद्विशान्भोज्य पायसपूर्वकम् । पक्वान्नां भक्ष्यभोज्य च गूढसर्पिसमन्वितम्॥४३॥
 ततस्तान्भक्षतुप्ताश्च ब्राह्मणान्स्वस्थमानसान् । द्वादशैवोदकुम्भाश्च दद्यात्तेभ्यः समोदकान्॥४४॥
 दक्षिणा च यथाशक्त्या (वित) दद्यात्तेभ्यो विमत्सरः । कुम्भं च दक्षिणा चैव आचार्याय निवर्तयेत्॥४५॥
 एव सपूज्य तान्दिप्रान्गुह ज्ञानप्रदायकम् । पूजयेत्परया भक्त्या विष्णुतुल्य द्विजोत्तमाः॥४६॥
 सुवर्णैर्वस्त्रगोवाग्नैर्गन्धैश्चान्यैर्वैर्बुध । सपूज्य त नमस्कृत्य इम मन्त्रमुदीरयेत्॥४७॥
 सर्वंग्यापी जगन्नाथ शङ्खचक्रगदाधर । अनादिनिघ्नो देवः प्रीयता पुष्टोत्तमः॥४८॥
 इत्युच्चार्य ततो विप्रस्त्रि वृत्वा च प्रदक्षिणाम् । प्रणम्य शिरसा भक्त्या आचार्यं तु विसर्जयेत्॥४९॥
 ततस्तान्ब्राह्मणान्भक्त्या चाऽऽसीमान्तमनुव्रजेत् । अनुव्रज्य तु तान्सर्वान्नमस्कृत्य निवर्तयेत्॥५०॥

से विधिवत् पूजा करे पुन दण्डवत् और प्रदक्षिणा कर मगवान् को मनोहर गान, स्तुति, नमस्कार और जप द्वारा प्रसन्न करे। इस प्रकार मगवान् की पूजा करने के बाद उन निमन्त्रित ब्राह्मणों की यथा विधि पूजा करे॥३७-३९॥ प्रत्येक को एक-एक गाय सुवर्ण छत्र, और एक एक जाड़े जूते भक्तिपूर्वक दान दे॥४०॥ द्विजगण। प्रत्येक ब्राह्मण को मन सहित वस्त्र आदि भी दे। क्यावि सद्भाचपूर्वक ब्राह्मणों की पूजा करने से मगवान् विष्णु भी प्रसन्न होते हैं॥४१॥ ब्राह्मणों की पूजा के बाद भक्तिपूर्वक आचार्य को गौ, वस्त्र, सुवर्ण, छत्र और उपानह आदि प्रदान करे। फिर उन ब्राह्मणों को पायस, पक्वान्न एक गुड, धी से घने स्वादिष्ट भोज्य पदार्थों का भोजन कराय। उस भोजन से तृप्त ब्राह्मणों को मोदक के साथ बारह जल के घड़े दे और यथाशक्ति विनम्र भाव से दक्षिणा भी दे। इसी प्रकार अपने आचार्य को भी जल-वस्त्र दक्षिणा सहित प्रदान करे॥४२-४५॥ द्विजोत्तम । इस प्रकार उन ब्राह्मणों तथा विष्णुतुल्य ज्ञान दाता गुरु की अत्यन्त यद्धा से पूजा करे॥४६॥ पुन सुवर्ण वस्त्र, गौ एवं दूसरे उत्तम पदार्थों से चतुर व्यक्ति गुरु की पूजा और नमस्कार कर इस मन्त्र का उच्चारण करे॥४७॥ सर्वंग्यापक, जगत् के स्वामी, शङ्ख, चक्र और गदा के धारण करने वाले और अनादि अनन्त पुष्टोत्तम देव प्रसन्न हो जायें॥४८॥ इस मन्त्र का उच्चारण कर ब्राह्मणों की तीन बार प्रदक्षिणा करे, पुन आचार्य को विनम्र प्रणाम कर विदा करे॥४९॥ उन ब्राह्मणों के पीछे-पीछे ग्राम की सीमा तक भक्तिपूर्वक जाय और वहाँ से उन ब्राह्मणों का नमस्कार कर लौटा दे॥५०॥ घर लौटकर बान्धव, स्वजन एवं अन्य उपासक, दीन, मित्रक तथा

वान्धवैः स्वजनैर्पुङ्क्तस्ततो भुञ्जीत वाग्यतः ।^१ अन्यैश्चोपासकैर्दानैर्भिक्षुर्कश्चात्रकाङ्क्षिभिः ॥५१॥
 एवं कृत्वा नरः सम्यङ्नारी वा लभते फलम् । अश्वमेधसहस्राणां राजसूयशतस्य च ॥५२॥
 अतीतं शतमादाय पुरुषाणां नरोत्तमाः । भविष्यं च शतं विप्राः स्वर्गत्या दिव्यरूपधृक् ॥५३॥
 सर्वलक्षणसंपन्नः सर्वालंकारभूषितः । सर्वकामसमृद्धात्मा देववद्विगतज्वरः ॥५४॥
 रूपयौवनसंपन्नो गुणैः सर्वैरलंकृतः । स्तूयमानोऽप्सरोभिश्च गन्धर्वैः समलंकृतः ॥५५॥
 विमानेनाकर्णवर्णनं कामयेन स्थिरेण च । पताकाध्वजमुक्तेन सर्वैरत्नैरलंकृतः ॥५६॥
 उद्योतयन्दिशः सर्वा आकाशे विगतबलमः । युवा महाबली धीमान्विष्णुलोकं स गच्छति ॥५७॥
 तत्र कल्पशतं यावद्भुङ्क्ते भोगान्यप्येसितान् । सिद्धाप्सरोभिर्गन्धर्वैः सुरविद्याधारोरगैः ॥५८॥
 स्तूयमानो भुनिवरैस्तिष्ठते विगतज्वरः । यया देवो जगन्नायः शङ्खचक्रगदाधरः ॥५९॥
 तयाऽसौ मुदितो विप्रा कृत्वा रूपं चतुर्भुजम् । भुक्त्वा तत्र यरान्भोगान् क्रोडा कृत्वा सुरैः सह ॥६०॥
 तदन्ते ब्रह्मसदनमायाति सर्वकामदम् । सिद्धविद्याधरैश्चापि शोभितं सुरकिन्नरैः ॥६१॥
 कालं नवतिकल्पं तु तत्र भुक्त्वा सुखं नरः । तस्मादायाति विप्रेन्द्राः सर्वकामफलप्रदम् ॥६२॥
 रत्नलोकं सुरगणैः । सेवितं सुखमोक्षदम् । अनेकशतहाहर्षविमानैः समलंकृतम् ॥६३॥

मुखे ध्वनिबो के साथ मोद होकर मोदन करे ॥५१॥ कोई भी स्त्री या पुरुष इस प्रकार मली माँति
 व्रत वा अनुष्ठान कर हजार अश्वमेध और सौ राजसूय यज्ञा के बराबर फल प्राप्त कर सकते हैं ॥५२॥ नरप्रेष्ठ ।
 इस प्रकार दैवानुष्ठान-परायण ध्वक्ति अपने कुल के अतीत काल के सौ और आने वाले सौ ध्वक्तिवा के सहित
 दिव्य रूप धारण कर, सत्र लक्षणों से युक्त, मंत्र आभूषणा से आभूषित, धूर्ध्वमनोरम, देवता के समान साथ रहित,
 रूप और यौवन से युक्त, सब गुणों से सुशोभित होकर रणरिपे पताकाप्रा से सुसज्जित, दक्ष और
 सूर्य के समान चमरने वाले इन्द्रागामी विमान से विष्णुद्वारा बो जाता है ॥५३-५७॥ साथ-साथ अप्सरायें और
 गन्धर्वे स्तुति गान करते जाते हैं । आकाश में वह अपनी देह-वान्ति से सम्पूर्ण दिशाओं को प्रकाशित करता जाता है ।
 इस प्रकार वह युवा, महाबली, शनैः ध्वनि शान्तचित्त से आकाश मार्ग से विष्णुलोक को प्रयाण करता है ।
 वहाँ वह सौ बल तत्र अपन ईप्सित भोगों का भोग करता है, पिंड, अप्सरायें, गन्धर्व, देवता, विद्याधर, नाग और मुनिप्रवर
 उसका यत्नायन करते हैं, वह रात्र चन्द्र-महाधारी विष्णु का चतुर्भुज रूप स्वयं धारण कर ह विप्रगण । शान्त भाव से,
 प्रसन्नचित्त हो निद्राम करता है । वहाँ उत्तम भोगों का साथ तथा देवयुग्मों के साथ पीछा करने उग विष्णु-
 मन्दिर में स्थान पाना है जो सुर, किन्नर, सिद्ध और विद्याधरा से सुशोभित रहता है ॥५८-६१॥ वहाँ से वह ध्वनि
 मन्त्रे बल तत्र गुणा का उद्भोग कर हे विप्रन्द्रगण । पुन उस रत्नलोक में जाता है जो सम्पूर्ण मनोरमा को पूर्ण
 करने वाला, सुर-मनुह से मरा हुआ, सुर और मोक्ष को देने वाला है, जो अनेक सहस्र देव विमानों से सुशोभित है,

सिद्धविद्यावर्यं भूर्भुवि न दत्तयदानवैः । अशीतिकल्पकालं तु तत्र भुक्त्वा सुखं नरः ॥६४॥
तदन्ते याति गोलोकं सर्वभोगसमन्वितम् । सुरसिद्धाप्सरोभिश्च शोभितं सुमनोहरम् ॥६५॥
तत्र सप्ततिकल्पास्तु भुक्त्वा भोगसमुत्तमम् । दुर्लभं त्रिषु लोकेषु स्वस्वचित्तो यथाऽमरः ॥६६॥
तस्मादागच्छते लोकं प्राजापत्यमनुत्तमम् । गन्धर्वाप्सरसैः सिद्धैर्मुनिविद्याधरैर्वृतः ॥६७॥
षष्टिकल्पान्मुखं तत्र भुक्त्वा नानाविधं मुदा । तदन्ते शक्रभवनं नानाश्चर्यसमन्वितम् ॥६८॥
गन्धर्वैः किनरैः सिद्धैः सुरविद्याधरोरयैः । गुह्यकाप्सरसैः साध्यैर्वृतं चान्यैः सुरोत्तमैः ॥६९॥
आगत्य तत्र पञ्चाशत्कल्पान्भुक्त्वा सुखं नरः । सुरलोकं ततो गत्वा विमानैः समलकृतः ॥७०॥
क्षत्वारिशतकल्पास्तु भुक्त्वा भोगान्सुदुर्लभान् । आगच्छते ततो लोकं नक्षत्राण्य सुदुर्लभम् ॥७१॥
ततो भोगान्ब्रह्मभुङ्क्ते त्रिशत्कल्पान्यथेप्सितान् । तस्मादागच्छते लोकं शशाङ्कस्य द्विजोत्तमाः ॥७२॥
यत्रासी तिष्ठते सोमः सर्वदैवैरलकृतः । तत्र विशतिकल्पास्तु भुक्त्वा भोगं सुदुर्लभम् ॥७३॥
आदित्यस्य ततो लोकमायाति सुरपूजितम् । नानाश्चर्यमयं पुण्यं गन्धर्वाप्सरसैर्वितम् ॥७४॥
तत्र भुक्त्वा क्षुभान्भोगान्दश कल्पान्द्विजोत्तमाः । तस्मादायाति भुवनं गन्धर्वाणां सुदुर्लभम् ॥७५॥
तत्र भोगान्समस्ताश्च कल्पमेकं यथासुखम् । भुक्त्वा चाऽऽयाति मेदिन्या राजा भयति धार्मिकः ॥७६॥
चक्रवर्ती महावीर्यो गुणैः सर्वैरलकृतः । कृत्वा राज्यं स्थयमेण यज्ञैरिष्ट्वा सुदक्षिणैः ॥७७॥

जो वैश्य, दानव, सिद्ध, विद्याधर और दश गणा से अलङ्कृत है, वहाँ अस्ती बल्ब तक वह मनुष्य सुखा का भोग करता है ॥६२-६४॥ तदनन्तर सब भोग-मुख से मुक्त देव, सिद्ध और अप्सराओं से सुशोभित और वित्ताकर्षक गोलोक को जाता है। वहाँ स्वस्वचित्त होकर सत्तर कल्प तक देवताओं के समान तीनों लोकों में दुर्लभ सुखों का उपभोग करता है ॥६५-६६॥ वहाँ से यह सर्वोत्तम प्राजापत्य लोक को आता है, जो सबदा सिद्ध, मुनि, विद्याधर, और गन्धर्वों से घिरा रहता है ॥६७॥ वहाँ साठ कल्प तक प्रसन्नता से नाना प्रकार के सुखों का उपभोग करता है। तदनन्तर वह नाना आश्चर्यों से भरे इन्द्र भवन को आता है ॥६८॥ वहाँ सर्वदा गन्धर्व, किनर, सिद्ध, विद्याधर, सुर, नाग, गुह्यक अप्सरा, साध्य एवं अन्य देववृत्ता से घिरा रहता है ॥६९॥ वह मनुष्य वहाँ आकर पचास कल्प तक सुखा का उपभोग कर पुन विमानों पर आरुढ़ होकर देवलोक को जाता है। वहाँ वह चालीस कल्प तक मुमुक्षु भोगों का आनन्दपूर्वक भोग करता है। इसके अनन्तर वह उस लोक को जाता है जो दूसरों के लिये अत्यन्त दुर्लभ है ॥७०-७१॥ वहाँ वह तीस कल्पों तक ईप्सित उत्तम भोगों का भोग करता है। वहाँ से पुन वह चन्द्रलोक को आता है जहाँ चन्द्र देवता सब देवताओं के साथ विराजमान रहते हैं। वहाँ बीस कल्प तक सुदुर्लभ भोगों का भोग करता है ॥७२-७३॥ तदनन्तर नाना आश्चर्य से भरे, पवित्र सूर्यलोक को जाता है, जो देवताओं से भी पूजित है, जहाँ गन्धर्व और अप्सरायें सर्वदा विराजमान रहती हैं ॥७४॥ द्विजोत्तम दश कल्प तक शुभ भोगों को भोग कर वह वहाँ से दुष्प्राप्य गन्धर्व-लोक में आता है। वहाँ मुखपूर्वक एक कल्प तक समस्त भोगों को भोगकर पुन पृथ्वी पर परम धार्मिक राजा बनकर आता है ॥७५-७६॥ यहाँ वह महापराक्रमी, सब गुणों से विभूषित चक्रवर्ती राजा होकर न्यायपूर्वक शासन करता है

तदन्ते योगिना लोक गत्वा मोक्षप्रदं शिवम् । तत्र भुक्त्वा चरान्भोगान्यावदाभूतसत्त्ववम् ॥७८॥
 तस्मादागच्छते चात्र जायते योगिना कुले । प्रवर वैष्णव विप्रा दुर्लभे साधुसमते ॥७९॥
 चतुर्वेदे विप्रवरो यज्ञैरिष्टवाऽऽप्तदक्षिणं । वैष्णव योगमास्थाय ततो मोक्षमवाप्नुयात् ॥८०॥
 एव यात्राफल विप्रा मया सम्यगुदाहृतम् । भुक्तिमुक्तिप्रदं नृणां किमन्यच्छीतुमिच्छस्य ॥८१॥
 इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे स्वयम्भूविसवादे द्वादश्यात्राफलमाहात्म्यनिरूपण
 नाम सप्तपष्टितमोऽध्याय ॥६७॥

अथाष्टपष्टितमोऽध्यायः

विष्णुलोकवर्णनम्

मुनय ऊचुः

श्रोतुमिच्छामहे देव 'विष्णुलोकमनामयम् । लोवानन्दकरं कान्तं सर्वाश्चर्यसमन्वितम् ॥१॥

और बड़ बड़ यज्ञ करता है जिनमें ब्राह्मणा को भरपूर दक्षिणाय देता है ॥७७॥ इसके उपरान्त मोक्ष देने वाले योगियों के धूम लोक में जाकर ब्रह्म पदन्त उत्तम भोगों को भोगता है ॥७८॥ वहाँ से इस पृथ्वी पर दुर्लभ सर्वोत्तम वैष्णव भक्ता के कुल में—जिसकी साधु जन भी इच्छा करते हैं—जन्म लेता है और चतुर्वेद का ज्ञाता ब्राह्मण होता है जो अष्टदक्षिणा वाले यज्ञों का अनुष्ठान करता है । पुनः वैष्णव योग को प्राप्त कर भोग का अधिरार प्राप्त करता है ॥७९-८०॥ विप्रगण ! मनुष्या को भुक्ति और मुक्ति देने वाले इस यात्रा के फल को मैंने बड़ा सुनाया अब तुम लोग और क्या सुनना चाहते हो ॥८१॥

श्री ब्रह्ममहापुराण में स्वयम्भूतया ऋषि के संवाद प्रकरण में द्वादश्यात्राफलमाहात्म्यवर्णन नामक
 सरसटवी अध्याय समाप्त ॥६७॥

अध्याय ६८

विष्णुलोक का वर्णन

मुनियों ने कहा—देव ! सब आदित्यजात्र मनुष्या में भरे पवित्र मनोहर लोक को आनन्द देने वाले और

प्रमाण तस्य लोकस्य भोग कान्ति बल प्रभो । कर्मणा केन गच्छन्ति तत्र धर्मपरायणा ॥२॥
दशनास्पृशनाद्वापि तीर्थस्नानादिनाऽपि वा । विस्तराद्ब्रूहि तत्त्वेन पर कोतुहल हि न ॥३॥

ब्रह्मोवाच

भृशुध्व मुनय सर्वे यत्पर परम पदम् । भक्तानामोहित धन्य पुण्य सधारनाशनम् ॥४॥
प्रवर सर्वलोकानां विष्णवाख्य वदतो मम । सर्वाश्चर्यमय पुण्य स्थान त्रैलोक्यपूजितम् ॥५॥
अशोकं पारिजातेश्च मन्दारेश्चम्पकद्रुमं । मालतोमलिकाकुन्दैर्वकुलैर्नागैःसरैः ॥६॥
पुष्पागैरतिमुक्तैश्च श्रियङ्गातगराजुनैः । पाटलाचूतखदिरैः कर्णिकारयनोज्ज्वलैः ॥७॥
नारङ्गं पनसैर्लोध्रैर्निम्बैराडिमसर्जकैः । द्वाभालकुवक्षजैर्मयुकेन्द्रफलैर्दुर्लभैः ॥८॥
कनिकैर्नारिकेलैश्च तालैः श्रीफलसम्भवं । कल्पवृक्षैरसह्यैश्च वन्यैरन्यैः सुशोभनैः ॥९॥
सरलैश्चन्दनैर्नारिकेलैश्च देवदारुभाञ्जनैः । जम्बूलवङ्गकङ्गोलैः कर्पूरामोदवासिभिः ॥१०॥
ताम्बूलपत्रनिचयैस्तथा पूगोकलद्रुमैः । अन्यैश्च विविधैर्वृक्षैः सर्वतुल्यशोभितैः ॥११॥
पुष्पैर्नानाविधैश्चैव लनगुच्छतमुद्भवं । नानाजलाशयैः पुष्प्यैर्नानापक्षितैर्वरैः ॥१२॥
सौभाग्यशयनैस्तोयपूर्णैर्नोहुरैः । कुमुदैः शतपत्रैश्च पुष्पैः कोकनदैर्वरैः ॥१३॥
रक्तनीलोत्पलैः कान्तैः कङ्कारैश्च सुगन्धिभिः । जल्पैश्च जलजैः पुष्पैर्नानावर्णैः सुशोभनैः ॥१४॥

घान्तिप्रद विष्णुलोक के विषय म हम लोग सुनना चाहते हैं। इसलिए उस लोक के प्रमाण भोग शोभा और बल (आयु) के बार म कहिए। दान स्थान अथवा तीर्थस्थान आदि जिन गुण कर्मों से धर्माचरण-परायण व्यक्ति बढ़ा जाते हैं वृषया मयापूरुष से विस्तारपूर्वक कहिये हम लोगो को सुनने की अत्यन्त उत्कण्ठा हो रही है ॥१॥

ब्रह्मा बोले—मुनिवृन्द । वह विष्णुलोक नाम से प्रसिद्ध पवित्र परम पद सत्तार व दुष्का को नष्ट करने धाग सब लोकों से श्रेष्ठ आश्चर्यमय और पवित्र है उस पाने के लिये भक्तजन प्रयत्न किया करते हैं वह लोक सम्पूर्ण स्थान से पूजित है ॥४॥ ५॥ अशोक पारिजात मन्दार चम्पक मालती मल्लिका कुन्द वकुल नागवैसर ॥६॥ अनिमृक्त (माधवी) श्रियङ्गु तगर अजुन पाटल आम खदिर उज्ज्वल कर्णिकार ॥७॥ नाग्य पनस शोच निम्ब अनार सर्जक क्षाया शृच (वडहर) सजूर मधुवेद आदि ॥८॥ और वृक्षा तथा कनिय नारिकेल ताड श्रीफल असह्य कल्पवृक्षा और अय मनोहर जगन्ती वक्षा ॥९॥ सरल चन्दन अगाक देवदारु गुमाञ्जन (सहिजन) जानी (चमेली) लवंग वनोज पपूर आनि सुषध फलाने वाले वृक्षा ॥१०॥ ताम्बूल पुगी फल इन्ही प्रकार अन्य प्रत्येक आयु म पत्रने वाले वृक्षा ॥११॥ नाना प्रकार की लताप्रा और गुच्छो से उत्पन्न होने वाले पुष्पा स सुशोभित है जहाँ नाना प्रकारके पवित्र जलप्राय और जल से मरी मनोहर सजडा वाक्चर्या स्थित हैं त्रिनय मित्र मित्र प्रकार के पानी बरकर करते रहते हैं ॥१२॥ जो अलगाय कुम्भ शतपत्र कमल मनाहर कोकनद, नीलमल, कहलार एवं अनेक सुगन्धित कमला से सुशोभित है जहाँ हय कारण्डव मनोहर चक्रवाक कोषटिक,

हंसकारण्डवाकीर्णैश्चक्रवाकोपशोभितैः । कोयटिकैश्च दात्यूहैः कारण्डवरवाकुलैः ॥१५॥
 चातकैः प्रियपुत्रैश्च जीवंजीवकजातिभिः । अन्यैर्दिव्यैर्जलचरैर्विहारमधुरस्वनैः ॥१६॥
 एवं नानाविधैर्दिव्यैर्नानादचर्यसमन्वितैः । वृक्षैर्जलाशयैः पुष्पैर्भूषितं समनोहरं ॥१७॥
 तत्र दिव्यैर्विमानैश्च नानारत्नविभूषितं । कामगैः काञ्चनैः शुभ्रैर्दिव्यगन्धर्वनादितैः ॥१८॥
 तरुणादित्यसंकाशैरप्सरोगैरभिरलंकृतैः । हेमशय्यासनयुतैर्नानाभोगसमन्वितैः ॥१९॥
 खेचरैः सप्तकाकैश्च मुक्ताहारवलम्बिभिः । नानावर्णैरसंख्यातैर्जातहृत्परिच्छदैः ॥२०॥
 नानाकुसुमगन्धाढ्यैश्चन्दनागुरुभूषितं । सुखप्रचारबहुलैर्नानावादित्रनिस्वनैः ॥२१॥
 मनोमास्ततुल्यैश्च किङ्किणीस्तवकाकुलैः । विहरन्ति पुरे तस्मिन्वैष्णवे लोकपूजिते ॥२२॥
 नानाङ्गनाभिः सततं गन्धर्वाप्सरसादिभिः । चन्दाननाभिः कान्ताभिर्घोषिद्भिः सुमनोहरैः ॥२३॥
 पीनोन्नतकुचाप्राभिः सुमध्याभिः समन्ततः । श्यामावदातवर्णाभिर्मंसमातङ्गगामिभिः ॥२४॥
 परिवार्य नरश्रेष्ठं बीजयन्ति स्म ताः स्त्रियः । चामरं दशमदण्डैश्च नानारत्नविभूषितैः ॥२५॥
 गीतनृत्यैस्तथा धार्द्यमोदमानैर्मदालसैः । यश्चविद्याधरैः सिद्धैर्गन्धर्वैरप्सरोगणैः ॥२६॥
 सुरसंघैश्च श्रष्टिभिः शुशुभे भुवनोत्तमम् । तत्र प्राप्य महाभोगान्प्राप्नुवन्ति मनोयिणः ॥२७॥

टिट्ठिम (टिट्ठिहरी) दात्यूह (कारण्डक) चातक, प्रियपुत्र, चक्रोर, एवं अन्य दिव्य जङ्घर विहार करते और जो उनकी मधुर ध्वनि से सुगन्धित रहते हैं ॥१५-१६॥ इस प्रकार वह लोक मित्र-मित्र प्रकार के आश्चर्य-जनक वस्तु, पवित्र मनोहर जलाशय से सुशोभित है ॥१७॥ उस लोक में नाना रत्नों से विभूषित, सुवर्णमय (सुनहले) तरुण सूर्य के समान चमकने वाले शुभ्र दिव्य विमानों पर आरुढ़ गन्धर्वगण मधुर गान करते रहते हैं । वे अप्सराओं एवं स्वर्णमय शय्या आसन और नाना प्रकार की भोग-सामग्रियों से सर्वदा भरे रहते हैं, जिन पर आकाश में पहराने वाली पतङ्गायें उड़ती रहती हैं जो अनगिनत, रंग बिरंगे सुनहले वस्त्रों से सजे रहते हैं ॥१८-२०॥ जो नाना प्रकार के सुगन्धित पुष्पों चन्दन अमुर आदि से सुगन्धित और नाना प्रकार के सुरदायक सामग्रियों से युक्त रहते हैं, जिन पर अनेक प्रकार के वाद्य बजते रहते हैं, किङ्किणी की ध्वनि होती रहती है और जो मन्द तथा वायु के समान गतिमान् हैं, उसमें पुष्पवान् स्थित बैठकर उस लोकपूज्य वैष्णव लोक में विहार करते हैं ॥२१-२२॥ उन भाग्यशाली श्रेष्ठ व्यक्तिगणों के चारों ओर सर्वदा अनेक चन्द्रमयी स्त्रियाँ, गन्धर्व अप्सरायें, और मनोहर द्युमाद्यणी, मत्त हराती के समान गमन करने वाली मनोहर कटिवाली अङ्गनायें जिनके मुख कटोर और उमड़े हुए रहते हैं घेर कर घेरी रहती हैं और नाना रत्नों से सुशोभित स्वर्ण दण्ड वाले चामर छुलती रहती हैं । (वह उत्तम लोक प्रसन्न, नदों में झूमते यश, विद्याधर, सिद्ध, गन्धर्व और अप्सराओं के नृत्य गीत तथा वाद्य से सुख-समृद्ध और श्रष्टिगणों से सुशोभित रहता है उस लोक में जाकर भाग्यशाली जानी मनुष्य अनेक गुणों का भोग करते हैं ॥२३-२७॥)

वटराजसमीपे तु दक्षिणस्योदधेस्तटे । दृष्टो धर्मगवानकृष्ण पुष्कराक्षो जगत्पति ॥२८॥
 श्रोत्रपत्न्यसं सार्धं यावद्योदध्वत्तारकम् । प्रतप्तह्रमसकाशा जरामरणवर्जिता ॥२९॥
 सत्रंदु खविहीनाश्च तृष्णाग्लानिविवर्जिता । चतुर्भुजा महावीर्या वनमात्राविभूयिता ॥३०॥
 धीवत्सलान्ठनैर्युक्ता शङ्खचक्रगदाधरा । केचिन्नोलोत्पलश्यामा केचित्काञ्चनसनिभा ॥३१॥
 केचिभरवत्प्रण्या केचिद्वैद्यसनिभा । श्यामवर्णा कुण्डलिनस्तथाऽग्रे वज्रसनिभा ॥३२॥
 न तादृशवदवाना भाति लोका द्विजोत्तमा । यादृग्भाति हरेर्लोक सर्वाश्चयसमवित ॥३३॥
 न तत्र पुनरावृत्तिर्गमनाज्जायते द्विजा । प्रभावात्तस्य देवस्य यावदाभूतसम्प्लवम् ॥३४॥
 विचरन्ति पुरे दिव्ये रूपयौवनवविता । कृष्ण राम सुमद्रा च पश्यति पुरुषोत्तमे ॥३५॥
 प्रतप्तह्रमसकाशा तरुणादित्यसनिभम् । पुरमध्ये हरेर्भाति मन्दिर रत्नभूषितम् ॥३६॥
 अनेकशतसाहस्रं पताकं समलकृतम् । योजनायतविस्तीर्णं हेमप्राकारवष्टितम् ॥३७॥
 गानावर्णध्वजैश्चित्रैः कल्पितं सुमनोहरं । विभाति शारदो यद्वनशरं सह चद्रमा ॥३८॥
 घनुद्गारं सुविस्तीर्णं कञ्चुकोभिः सुरक्षितम् । पुरसप्तकसयुक्तं महोत्सेकं मनोहरम् ॥३९॥
 प्रथमं काञ्चन तत्र द्वितीयं मरकतैर्भूतम् । इन्द्रनीलं तृतीयं तु महानीलं ततः परम् ॥४०॥

जो मनुष्य दक्षिण सागर के तट पर स्थित वटराज के समीप जगत्पति कमल-नेत्र भगवान् कृष्ण का दर्शन करते हैं वे जब तक आकाश में चन्द्र और तारागण रहने हैं तब तब अप्सराओं के साथ नीला करते हैं वे जरा मरण के भय से मुक्त सब इसी तृष्णा और आत्मग्लानि से रहित हो जाते हैं तब सोने के समान कान्तिमान चतुर्भुज गल चक्र-गदाधारी धीवन्त और वनमाला में सुशोभित महापरायणी हो जाते हैं ॥२८-३०॥ उनमें से कोई नील-कमल के समान श्याम कोई सोने के समान गौर वण कोई मरकतमणि के समान कोई वैद्यमणि के समान कोई श्यामवर्ण के कुण्डल पहने हुये और अन्य वण के समान कान्तिमान होते हैं ॥३१-३३॥ द्विजगण सम्पूर्ण देव लोकों की भी वैसी गोमा नहीं होती जैसी उस आचम्यजनक विष्णुलोक की गोमा होती है ॥३३॥ विप्रवन्त विष्णु देव के प्रभाव से कल्प पयन्त पुनर्जन्म नहीं होता ॥३४॥ जो पुरुषोत्तम दान में जाकर राम कृष्ण और सुमद्रा का दर्शन करते हैं वे अपने रूप और यौवन पर इतरान हुये उस दिव्य पुर में विचरण करते हैं ॥३५॥ उस पुर के मध्य में रत्ना स सुशोभित तथावे हुए सोने की मूर्ति कान्तिमान और तरुण रूप के समान चमकता हुआ भगवान् का मन्दिर है ॥३६॥ उसके चारों ओर दश लाख योजन विस्तीर्ण सुनहली चहार त्रिवारी बनी हुई है । असंख्य पत नाश मनाहर रत्न विरयी चित्र विचित्र च्चत्राशा स सुशोभित मह मन्दिर नक्षत्रों से घिरे चद्रमा के समान गोमा देता है ॥३७-३८॥ उस चहार दीवारी में चार बड़ बम्बू द्वार हैं जो राक्षस स सुशोभित हैं । भीतर ऊँचे ऊँचे मकान वाउ मनोहर सात उपपुर हैं ॥३९॥ पत्थला काञ्चन (सुनहला) दूसरा मरकत मणिवा से जड़ा हुआ नील वण का तीसरा इन्द्र नीलमणि का बना चौथा महानीलमणि का पाचवाँ

पुरं तु पञ्चमं दीप्तं पद्मरागमयं पुरम् । षष्ठं वज्रमयं विप्रा वैदूर्यं सप्तमं पुरम् ॥४१॥
 नानारत्नमयैर्हर्मप्रवालाङ्कुरभूषितैः । स्तम्भैरद्भुतसंकाशैर्भाति तद्भवनं महत् ॥४२॥
 दृश्यन्ते तत्र सिद्धाश्च भासयन्ति विशो दश । पीर्णमास्या सनक्षत्रो यथा भाति निशाकरः ॥४३॥
 आरूढस्तत्र भगवान्सलक्ष्मीको जनादेनः । पीताम्बरधरः श्यामः श्रीवत्सलक्ष्मसंयुतः ॥४४॥
 ज्वलत्सुदर्शनं चक्र धोर सर्वास्त्रनायकम् । दधार दक्षिणे हस्ते सर्वतंजोमयं हरिः ॥४५॥
 कुन्देन्दुरजतप्रलय हारमोक्षीरसनिभम् । आदाय तं मुनिश्रेष्ठाः सव्यहस्तेन केशवः ॥४६॥
 यस्य शब्देन सकल संक्षोभ जायते जगत् । विद्युतं पाञ्चजन्येति सहस्रावर्तभूषितम् ॥४७॥
 दुष्कृतान्तकरीं रौद्रा दैत्यदानवनाशिनीम् । ज्वलद्बल्लिशिखाकारां दुःसहां त्रिदशरपि ॥४८॥
 कौमोदकीं गदा चासौ धृतवान्दक्षिणे करे । वामे विस्फुरति ह्यस्य शार्ङ्गं सूर्यसमप्रभम् ॥४९॥
 शरीरादित्यसंकाशैर्ज्वालाकुञ्जैरैः । योऽसौ संहरते देवस्त्रैर्लीक्यं सचराचरम् ॥५०॥
 सर्वानिन्दकारः श्रीमान्सर्वशास्त्रविशारदः । सर्वलोकगुरुर्देवः सर्वदेवैर्नमस्कृतः ॥५१॥
 सहस्रमूर्धा देवेशः सहस्रचरणेक्षणः । सहस्राक्षः सहस्राङ्गः सहस्रभुजवान्प्रभुः ॥५२॥
 सिंहासनगतो देवः पद्मपत्रायतेक्षणः । विद्युद्विस्पष्टसंकाशो जगन्नाथो जगद्गुरुः ॥५३॥

चमकते पद्मराग मणियो से बना अति मुचोमित, छठा वज्रमय और सातवां वैदूर्यमणि से बना हुआ है ॥४०-४१॥
 ऐसे उपपुरो के मध्य वह ऊँचा हरिमन्दिर माना रत्नो से बने हुए और प्रवाल खण्डो से जड़े हुए अद्भुत वर्ण के लक्ष्मी
 से मुचोमित है ॥४२॥ उस मन्दिर में सिद्ध समूह रहते हैं, जो दशो दिशाओं को जगमगाते रहते हैं । उस भवन की वैसी
 शोभा होती है मानो पूर्णिमा की जगमग रात्रि में नक्षत्रों के बीच चन्द्रमा शोभायमान हो ॥४३॥ वहाँ सिंहासन पर
 पीताम्बर पहने हुए, श्रीवत्स से अङ्कित, श्यामवर्ण के भगवान्, जनादेन लक्ष्मी के सहित विराजमान रहते हैं ॥४४॥
 वे हरि अपने दाहिने हाथ में सब अस्त्रों में श्रेष्ठ, भयङ्कर सर्वतंजोमय और अग्नि के समान जलता हुआ-सा सुदर्शन
 चक्र धारण किये रहते हैं ॥४५॥ वामें हाथ में कुन्द, चन्द्रमा और रजत के समान शुभ्र हार, शोडश के समान श्वेत,
 सहस्रो आयत्तों (चक्रर घुमक) से मुचोमित वह प्रसिद्ध पाञ्चजन्य शब्द रहता है, जिसकी ध्वनि से सारा ससार
 श्रुत्य हो जाता है ॥४६-४७॥ दाहिने हाथ में प्रलय मचा देने वाली, मयङ्कर, दैत्य दानवों को विनष्ट करने वाली,
 जलते अग्नि के रूपको से समान और देवताओं से भी बढिनाई से सही जाने योग्य कौमोदकी गदा को धारण किये
 रहते हैं ॥४८॥ उसी प्रकार उनके वामें हाथ में सूर्य के समान प्रभापूर्ण शार्ङ्गनामक धनुष रहता है । वह भगवान्
 उसी धनुष से छूटे हुए अमन्य रूपको से जगमाने, सूर्य के समान जलते बाणों से चराचर जगत् का संहार करते
 हैं ॥४९-५०॥ ऐसे सबको आनन्द देने वाले श्रीमान् सम्पूर्ण शास्त्रों के ज्ञाता, सब लोकों के गुरु, देवगुरु, सहस्र
 शिर, सहस्रचरण और सहस्र नेत्रवाले, अनन्त नामों से प्रसिद्ध, सहस्र भुजाओं से युक्त देवेश, जगन्नाथ जगद्गुरु
 भगवान् सिंहासन पर विराजमान रहते हैं, जिनके नेत्र पद्म के समान बड़े और जिनके शरीर की काति विद्युत् के

परीतः सुरसिद्धेश्च गन्धर्वाप्सरसा गणैः। यक्षविद्याधरैर्नर्गर्भुनिर्निद्धैः सचारणैः॥५४॥
 सुपर्णैर्दानवंदैस्तै राक्षसैर्गुह्याकिनरैः। अन्यैर्देवगणैर्विभ्यं स्तूयमानो विराजते॥५५॥
 तत्रस्था सततं कीर्तिः। प्रज्ञा मेधा सरस्वती। बुद्धिर्मतिस्तथा क्षान्तिः। सिद्धिर्मूर्तिस्तथा ह्युतिः॥५६॥
 गायत्री चैव सावित्री मङ्गला सर्वमङ्गला। प्रभामतिस्तथा कान्तिस्तत्र नारायणी स्थिता॥५७॥
 श्रद्धा च कौशिकी देवी विद्युत्सोदामिनी तथा। निद्रा रात्रिस्तथा माया तथाऽन्यामरयोपितः॥५८॥
 वासुदेवस्य सर्वास्ता भवने। संप्रतिष्ठिताः। अयं किं बहुनोक्तेन सर्वं तत्र प्रतिष्ठितम्॥५९॥
 घृताची मेनका रम्भा सहजान्या तिलोत्तमा। उर्वशी चैव निम्लोचा तथाऽन्या वामना परा॥६०॥
 मन्दोदरी च सुभगा विद्वाची विपुलानना। भद्राङ्गी चित्रसेना च प्रम्लोचा सुमनोहरा॥६१॥
 मुनिसंमोहनी रामा चन्द्रमध्या शुभानना। सुकेशी नीलकेशा च तथा मन्मथदीपिनी॥६२॥
 अलम्बुषा मिथकेशी तथाऽन्या मुञ्जिकस्थला। ऋतुस्थला वराङ्गी च पूर्वंचित्तिस्तथा परा॥६३॥
 परावती महारूपा शशिलेखा शुभानना। हसलोलानुषामिन्यो मत्तवारणगामिनी॥६४॥
 बिम्बोष्ठी नवगर्भा च विख्याताः सुरयोपितः। एतादृशान्या अप्सरसो रूपयौवनगविता॥६५॥
 सुमध्यादृचाश्च वदना। सर्वालकारभूषिता। गीतमाधुर्यसम्पुक्ता। सर्वलक्षणसम्पुताः॥६६॥
 गीतवाद्ये च कुशलाः सुरगन्धर्वोपितः। नृत्यन्त्यनुदिनं तत्र यत्रासीं पुरुषोत्तम॥६७॥

समान है, जिनको सुर, सिद्ध, गन्धर्व, अप्सराय, यक्ष, विद्याधर, नाग, मुनि, सिद्ध, चारण, सुपर्ण (गरुड) दानव, वैश्य, राक्षस, गुह्य, विप्रर एव अन्य दिव्य देवगण नारो ओर से घेरे हुए स्तुति किया करते हैं ॥५१-५५॥ वहाँ सर्वदा कीर्ति, प्रज्ञा, मेधा, सरस्वती, बुद्धि, मति, क्षान्ति, सिद्धि, मूर्ति, ह्युति, गायत्री, सावित्री, मङ्गला सर्वमङ्गला, प्रभा, मति, कान्ति, नारायणी, श्रद्धा, कौशिकी, देवी, विद्युत्, सोदामिनी, निद्रा, रात्रि, माया तथा अन्य देवस्त्रियाँ भगवान् के मन्दिर में विराजमान रहती हैं। अधिक कहाँ तक कहा जाय ? वहाँ सब कुछ सर्वदा विद्यमान रहता है ॥५६-५९॥
 (घृताची, मेनका, रम्भा, सहजान्या, तिलोत्तमा, उर्वशी, निम्लोचा, वामना, मन्दोदरी, सोमाम्भवती, विद्वाची, विपुलानना, भद्राङ्गी, चित्रसेना, अत्यन्त मनोहर प्रम्लोचा, मुनिजनों को भी मुग्ध करने वाली रामा, सुन्दर मुख वाली चन्द्रमध्या, सुकेशी, नीलकेशा, मन्मथदीपिनी, अलम्बुषा, मिथकेशी, मुञ्जिकस्थला वराङ्गी, ऋतुस्थला, पूर्वंचित्ति, परावती, महारूपा, शुभानना शशिलेखा, आदि हस्ती के समान बीजा करने वाली, मत्त पत्र के समान गमन करने वाली विम्ब के समान लाल ओठों वाली विख्यात सुर-सुन्दरियाँ एव अन्य अपने रूप और यौवन पर गर्व करने वाली वाली अप्सराय, तथा सब आभूषणों से आभूषित, सुन्दर मुख वाली तथा दीर्घ कटि वाली सर्वलक्षणसम्पन्न सुर-गन्धर्वों की गीत और वाद्य में कुशल स्त्रियाँ प्रतिदिन, अपने भयुर गान और नृत्य से भगवान् पुरुषोत्तम को प्रसन्न किया करती

१ख. सतति। २ख. स. ०दिर्मूर्ति०। ३ख. भुवने। ४ख. स. ०शी सुरसेना च त०। ५ख. स. वामना।

६ख. महोद०। ७ख. जम्बुस्तना। ८ख. जम्बुस्थला। ९ख. पञ्चत्रया। १०ख. स. सलिलेखा।

न तत्र रोगो नो ग्लानिर्न मृत्युर्न हिमातपी । न क्षुत्पिपासा न जरान्वेह्य न चासुखम् ॥६८॥
 परमानन्दजनन सर्वकामफलप्रदम् । विष्णुलोकात्परलोक नात्र पश्यामि भो द्विजा ॥६९॥
 ये लोका स्वर्गलोक तु श्रूयन्ते पुण्यकर्मणाम् । विष्णुलोकस्य ते विप्रा कला नाहन्ति षोडशोम् ॥७०॥
 एव हर पुरस्थान सर्वभोगगुणान्वितम् । सर्वसौख्यकर पुण्य सर्वाश्वर्यमय द्विजा ॥७१॥
 न तत्र नास्तिका यान्ति पुरुषा विषयात्मका । न कृतघ्नान पिशुनानो स्तेना नाजितेन्द्रिया ॥७२॥
 येऽर्चयन्ति सदा भक्त्या वासुदेव जगदगुरुम् । ततत्र वैष्णवा यान्ति विष्णुलोक न सशय ॥७३॥
 दक्षिणस्योदधस्तोर क्षत्र परमदुलभ । दृष्ट्वा कृष्ण च राम च सुभद्रा च द्विजोत्तमा ॥७४॥
 कल्पवृक्षसमीप तु ये त्यजन्ति कलेवरम् । ते तत्र मनुजा यान्ति मृता ये पुरुषोत्तमे ॥७५॥
 वटसागरयोर्मध्य य स्मरेत्पुरुषोत्तमम् । तेऽपि तत्र नरा यान्ति ये मृता पुरुषोत्तमे ॥७६॥
 तेऽपि तत्र पर स्थान यान्ति नास्त्यत्र सशय । एव मया मुनिश्रेष्ठा विष्णुलोक सनातन ॥
 सर्वानन्दकर प्रोक्तो भुक्तिमुक्तिफलप्रद ॥७७॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे स्वयम्भूविसर्वादे विष्णुलोकांशु कीर्तननामाष्ट-
 पष्टितमोऽध्याय ॥६८॥

है ॥६० ६७॥ मुनिगण । उस लोक में रोग ग्लानि (मानसिक चिन्ता) मृत्यु हिम और आतप का भय नहीं न तो मूल
 प्यास की ही चिन्ता और न तो बुढ़ापा अन्नदोष और किसी दुःख की ही सम्भावना रहती है ॥६८॥ हे विप्रगण ! इस
 सृष्टि में विष्णुलोक से अधिक आनन्ददायक और मनोरम पूण करने वाला कोई लोक नहीं है । स्वर्गलोक में जो कोई
 अन्य पुण्य देवलोक मुने जाते हैं वे विष्णुलोक की सोलहवीं कला की भी समानता नहीं कर सकते ॥६९ ७०॥
 द्विजगण ! भगवान का इस प्रकार का वह पावन लोक है जहाँ प्रत्येक प्रकार की भोगसामग्रियाँ विद्यमान रहती हैं ।
 उस आश्चर्यमय पवित्र स्थान पर जाकर भक्त जन सुख का अनुभव करते हैं ॥७१॥ उस पुण्य लोक में नास्तिक विपरी
 या इन्द्रियलालु मनुष्य गढ़ा जा सकते न ता विश्वासपात्री न चुगुङ्गोर और न धीर ही वहाँ जा सकते हैं ॥७२॥
 इससे विपरीत जो वृष्णव भक्त सबदा भक्तिपूर्वक जगन्गुरु वासुदेव की उपासना में रत रहते हैं वे ही उस लोक
 में जाते हैं इसमें तनिक भी सन्देह नहीं ॥७३॥ द्विजात्तम ! दक्षिण समुद्र के तट पर उस परम दुर्लभ पवित्र क्षत्र में
 राम कृष्ण और सुभद्रा का दान कर जो मनुष्य कल्पवृक्ष व समीप शरीर त्याग करते हैं पुरोधात्तम क्षत्र में मरने वाले
 वे मनुष्य उसी लोक में जाते हैं ॥७४ ७५॥ जो मनुष्य वट और सागर के मध्यवर्ती पुनीत प्रदेश में भगवान् का स्मरण
 करते हुए प्राण त्याग करते हैं वे भी विष्णुलोक की प्राप्ति करते हैं इसमें शोका भी सन्देह नहीं ॥७६॥ मुनिगण !
 आप लोग व इच्छानुसार सब आनन्द का दान पाते और भुक्ति भुक्ति उभय प्रदान करने वाले विष्णुलोक का भगन
 मैंने सुना दिया ॥७७॥

श्री ब्रह्ममहापुराण में विष्णुलोकांशु कीर्तन नामक अष्टपष्टि अध्याय समाप्त ॥६८॥

अथोनसप्ततितमोऽध्यायः

पुरुषोत्तममाहात्म्यनिरूपणम्

मुनय ऊचुः

ब्रह्माश्चर्यस्त्वया प्रोक्तो विष्णुलोको जगत्पते । नित्यानन्दकरः श्रीमान्भुक्तिमुक्तिफलप्रदः ॥१॥
 क्षेत्रं च दुर्लभं लोके कीर्तितं पुरुषोत्तमम् । त्यक्त्वा यत्र नरो देहं याति सालोक्यतां हरे, ॥२॥
 सम्यक्क्षेत्रस्य माहात्म्यं त्वया सम्यक्प्रकीर्तितम् । यत्र स्वदेहसंत्यागाद्विष्णुलोकं यजेन्नरः ॥३॥
 'अहो मोक्षस्य मार्गोऽयं देहत्यागस्त्वयोदितः । नराणामुपकाराय पुरुषाख्ये न संशयः ॥४॥
 अनायासेन देवेश देहं त्यक्त्वा नरोत्तमाः । तस्मिन्क्षेत्रे परं विष्णोः पदं यान्ति निरामयम् ॥५॥
 श्रुत्वा क्षेत्रस्य माहात्म्यं विस्मयो नो महान्भूत् । प्रयागपुष्करादीनि क्षेत्राण्यप्यतनानि च ॥६॥
 पुण्यिण्यां सर्वंतीर्थानि सरितश्च सरासि च । न तथा तानि सर्वाणि प्रशंसति सरोत्तम ॥७॥
 यथा प्रशंसति क्षेत्रं पुरुषाख्यं पुनः पुनः । शतोऽस्माभिरभिप्रायस्तवेदानोऽपि तामह ॥८॥
 येन प्रशंसति क्षेत्रं मुक्तिदं पुरुषोत्तमम् । पुरुषाख्यसमं नूनं क्षेत्रं नास्ति महीतले ॥
 तेन त्वं विबुधभ्रेष्ठ प्रशंसति पुनः पुनः ॥९॥

अध्याय ६६

पुरुषोत्तम का माहात्म्य-निरूपण

मुनियों ने कहा—जगत्पते । आपने नित्य आनन्दप्रद मुक्ति और भुक्ति के दाता, शोभाशाली विष्णुलोक के विषय में बहुत सी आश्चर्यजनक बात सुनाई ॥१॥ आपसे यह भी ज्ञात हुआ कि यह पुरुषोत्तम क्षेत्र इस ससार में दुर्लभ है और वही पर देहत्याग कर भगवत्पते हरि की सालोक्य मुक्ति प्राप्त करता है ॥२॥ आपने इस पवित्र क्षेत्र की महिमा भी मलीमांति बतलाई जहाँ देहत्याग करने से भगवत्पते विष्णुलोक को प्राप्त करता है ॥३॥ अहो ! आपने क्षेत्र के उपनगर के लिये यह मोक्ष का सरल मार्ग बतलाया (कि इस पुरुषोत्तम तीर्थ में देह त्याग करने से निश्चय ही भगवत्पते मोक्ष प्राप्त करता है) ॥४॥ देवेश ! आपने यह भी बतलाया कि इस पुरुषोत्तम क्षेत्र में देह त्याग कर भगवत्पते अनायास विष्णुपद को प्राप्त कर लेता है ॥५॥ इस क्षेत्र की महिमा सुनकर हम लोगों को महान् आश्चर्य हुआ । सरोत्तम ! आप जिस प्रकार इस तीर्थ की प्रशंसा करते हैं, वैसे प्रशंसा प्रयाग, पुष्कर आदि क्षेत्र, अन्य देव-मन्दिर या पृथ्वीपर के किसी तीर्थ, नदी या सरोवर की नहीं करते ॥६-७॥ आप जिस अग्निप्राय से बार-बार इस क्षेत्र की प्रशंसा करते हैं, हे पितामह ! आपके उस अग्निप्राय को हम लोगों ने जान लिया ॥८॥ इस मुक्ति-दायक पुरुषोत्तम क्षेत्र की प्रशंसा से ज्ञात होता है कि निश्चय ही इस सरातल पर पुरुषोत्तम के समान अन्य कोई भी तीर्थ नहीं है । इसीलिये हे देवेन्द्र ! आप इसकी बार-बार प्रशंसा करते हैं ॥९॥

१क जगत्पते । २ख •या ब्रह्मप्रकी० । ३ग अथ । ४क वर ।

ब्रह्मोवाच

सत्य सत्य मुनिश्रेष्ठा भवद्भिः समुदाहृतम् । 'पुरुषाण्यसम क्षेत्र 'नास्त्यत्र पृथिवीतले ॥१०॥
 सन्ति यानि तु तीर्थानि पुण्यान्यायतनानि च । तानि श्रीपुरुषाण्यस्य कला नार्हन्ति षोडशीम् ॥११॥
 यथा सर्वेश्वरो विष्णुः 'सर्वलोकोत्तमोत्तम । तथा समस्ततीर्थानां वरिष्ठ पुरुषोत्तमम् ॥१२॥
 आदित्यानां यथा विष्णुः श्रेष्ठत्वे समुदाहृत । तथा समस्ततीर्थानां वरिष्ठ पुरुषोत्तमम् ॥१३॥
 नक्षत्राणां यथा सोमः सरिता सागरो यथा । तथा समस्ततीर्थानां वरिष्ठ पुरुषोत्तमम् ॥१४॥
 वसूनां पावको यद्वद्ब्रह्माणां शकरो यथा । तथा समस्ततीर्थानां वरिष्ठ पुरुषोत्तमम् ॥१५॥
 वर्णानां ब्राह्मणो यद्वद्वनतेयश्च पक्षिणाम् । तथा समस्ततीर्थानां वरिष्ठ पुरुषोत्तमम् ॥१६॥
 शिखरिणां यथा मेरुः पर्वतानां हिमालयः । तथा समस्ततीर्थानां वरिष्ठ पुरुषोत्तमम् ॥१७॥
 प्रमदानां यथा लक्ष्मीः सरिता जाह्नवी यथा । तथा समस्ततीर्थानां वरिष्ठ पुरुषोत्तमम् ॥१८॥
 ऐरावती गजेन्द्राणां महर्षीणां भूमर्यया । तथा समस्ततीर्थानां वरिष्ठ पुरुषोत्तमम् ॥१९॥
 सेनानीनां यथा स्कन्दः सिद्धानां कपिलो यथा । तथा समस्ततीर्थानां वरिष्ठ पुरुषोत्तमम् ॥२०॥
 उच्चैश्च वा यथाऽश्वानां कवीनामुशनः कविः । तथा समस्ततीर्थानां वरिष्ठ पुरुषोत्तमम् ॥२१॥
 मुनीनां च यथा व्यासः कुबेरो यक्षरक्षसाम् । तथा समस्ततीर्थानां वरिष्ठ पुरुषोत्तमम् ॥२२॥
 इन्द्रियाणां मनो यद्वद्भूतानामयनी यथा । तथा समस्ततीर्थानां वरिष्ठ पुरुषोत्तमम् ॥२३॥
 अश्वत्थः सर्ववृक्षाणां पवनः प्लवता यथा । तथा समस्ततीर्थानां वरिष्ठ पुरुषोत्तमम् ॥२४॥

ब्रह्मा बोले—मुनिश्रेष्ठ ! आप लोगों का नथन सत्य है। वास्तव में इस पृथ्वी-तल पर पुरुषोत्तम तीर्थ के समान तीर्थ नहीं हैं ॥१०॥ जितने तीर्थ और मुनीत शत्र हैं वे सभी श्रीपुरुषोत्तम तीर्थ के सोलहवें भाग की भी बराबरी नहीं कर सकते ॥११॥ जिस प्रकार सब वे ईश्वर विष्णु सम्पूर्ण क्षेत्रों में सबश्रेष्ठ हैं उसी प्रकार सब तीर्थों में पुरुषोत्तम तीर्थ श्रेष्ठ है ॥१२॥ जिस प्रकार आदित्या में विष्णु की श्रेष्ठता स्वीकार की गई है उसी प्रकार समस्त तीर्थों में पुरुषोत्तम तीर्थ श्रेष्ठ है ॥१३॥ जिस प्रकार नक्षत्रों में सोम और जलाशयों में सागर की वसुओं में पावन की तथा रत्नों में शकरी की श्रेष्ठता है उसी प्रकार समस्त तीर्थों में पुरुषोत्तम तीर्थ श्रेष्ठ है ॥१४॥ जिस प्रकार वर्णों में ब्राह्मण वर्णों में वसु और पक्षियों में शकरी की श्रेष्ठता है उसी प्रकार समस्त तीर्थों में पुरुषोत्तम तीर्थ श्रेष्ठ है ॥१५॥ जिस प्रकार शिखरों में मेरु पर्वतों में हिमालय और द्विपों में स्कन्द पर्वतों में कपिल अश्वत्थ कवियों में व्यास मुनियों में व्यास तथा और रसोगणों में कुबेर इन्द्रियों में मन और सम्पूर्ण तत्त्वों में पृथ्वी श्रेष्ठतम है उसी प्रकार समस्त तीर्थों में पुरुषोत्तम तीर्थ श्रेष्ठ है ॥१६॥ और जिस प्रकार सब वर्णों में अश्वत्थ (पीपल) सबरसनील पदार्थों में

भूपणानां तु सर्वेषां यथा ब्रह्ममणिद्विजा । तथा समस्ततीर्थानां वरिष्ठं पुरुषोत्तमम् ॥२५॥
 गन्धर्वाणां चित्ररथ इन्द्राणां कुलिशो यथा । तथा समस्ततीर्थानां वरिष्ठं पुरुषोत्तमम् ॥२६॥
 अकारं सर्ववर्णानां गायत्री छन्दसां यथा । तथा समस्ततीर्थानां वरिष्ठं पुरुषोत्तमम् ॥२७॥
 सर्वाङ्गैर्म्यो यथा श्रेष्ठमुत्तमाङ्गं द्विजोत्तमा । तथा समस्ततीर्थानां वरिष्ठं पुरुषोत्तमम् ॥२८॥
 अश्वपती यथा हजोणां सतीनां श्रेष्ठता गता । तथा समस्ततीर्थानां श्रेष्ठं तत्पुरुषोत्तमम् ॥२९॥
 यथा समस्तविद्यानां मोक्षविद्या परा स्मृता । तथा समस्ततीर्थानां श्रेष्ठं तत्पुरुषोत्तमम् ॥३०॥
 मनुष्याणां यथा राजा धेनूनामपि कामधुकु । तथा समस्ततीर्थानां वरिष्ठं पुरुषोत्तमम् ॥३१॥
 सुवर्णं सर्वरत्नानां सर्पिणां वासुकिर्यथा । तथा समस्ततीर्थानां वरिष्ठं पुरुषोत्तमम् ॥३२॥
 ब्रह्मादं सर्वदेवतानां राम इन्द्रभृता यथा । तथा समस्ततीर्थानां वरिष्ठं पुरुषोत्तमम् ॥३३॥
 शपाणां मकरो यद्वन्मृगाणां मृगराजश्च यथा । तथा समस्ततीर्थानां वरिष्ठं पुरुषोत्तमम् ॥३४॥
 समुद्राणां यथा श्रेष्ठं क्षीरोदं सरिता पति । तथा समस्ततीर्थानां वरिष्ठं पुरुषोत्तमम् ॥३५॥
 वरुणो यादसा यद्वह्म सयमिना यथा । तथा समस्ततीर्थानां वरिष्ठं पुरुषोत्तमम् ॥३६॥
 देवर्षीणां यथा श्रेष्ठो नारदो मुनिसत्तमा । तथा समस्ततीर्थानां वरिष्ठं पुरुषोत्तमम् ॥३७॥
 घातूनां काञ्चन यद्वत्पवित्राणां च दक्षिणा । तथा समस्ततीर्थानां वरिष्ठं पुरुषोत्तमम् ॥३८॥

पवन श्रेष्ठ है उसी प्रकार समस्त तीर्थों में पुरोत्तम तीर्थ श्रेष्ठ है ॥२५॥ द्वित्रिवृत् । जिस प्रकार सम्पूर्ण ब्राम्हणों में ब्रह्ममणि श्रेष्ठ है उसी प्रकार समस्त तीर्थों में पुरोत्तम तीर्थ श्रेष्ठ है ॥२५॥ जिस प्रकार गणधों में चित्ररथ राजा में ब्रह्म श्रेष्ठ माना गया है उसी प्रकार सम्पूर्ण तीर्थों में पुरोत्तम तीर्थ श्रेष्ठ है ॥२६॥ तथा जिस प्रकार सब ज्ञान में अकार छन्द में गायत्री श्रेष्ठ छन्द है उसी प्रकार समस्त तीर्थों में पुरोत्तम तीर्थ श्रेष्ठ है ॥२७॥ द्विज श्रेष्ठ । जिस प्रकार सब जगत् में मस्तक उत्तम अङ्ग है उसी प्रकार सम्पूर्ण तीर्थों में पुरोत्तम उत्तम तीर्थ है ॥२८॥ जिस प्रकार सती स्त्रियों में अश्वपती परमश्रेष्ठ सती मानी गई है है उसी प्रकार तीर्थों में पुरोत्तम श्रेष्ठ तीर्थ माना गया है ॥२९॥ जिस प्रकार समस्त विद्याओं में मोक्ष विद्या परा (सर्वोत्तम) विद्या मानी गयी है उसी प्रकार समस्त तीर्थों में पुरोत्तम सर्वोत्तम माना गया है ॥३०॥ जिस प्रकार मनुष्या में राजा दूध देने वाली गायों में कामधनु उत्तम पशु है उसी प्रकार समस्त तीर्थों में पुरोत्तम तीर्थ उत्तम है ॥३१॥ जिस प्रकार सब रत्नों में सुवर्ण और सर्पों में वासुकि श्रेष्ठ है उसी प्रकार सब तीर्थों में पुरोत्तम तीर्थ श्रेष्ठ है ॥३२॥ जिस प्रकार सब देवों में ब्रह्मा और देवर्षियों में राम श्रेष्ठ हैं उसी प्रकार सब तीर्थों में पुरोत्तम तीर्थ श्रेष्ठ है ॥३३॥ जिस प्रकार मयों में मकर और वन्य जंतुओं में सिंह श्रेष्ठ है उसी प्रकार समस्त तीर्थों में पुरोत्तम तीर्थ श्रेष्ठ है ॥३४॥ जिस प्रकार समुद्रों में सरित्पति क्षीरसमुद्र श्रेष्ठ है उसी प्रकार सब तीर्थों में पुरोत्तम तीर्थ श्रेष्ठ है ॥३५॥ जैम यादव (जलचर) समूह में वरुण और घातकों में दक्षिणा श्रेष्ठ है उसी प्रकार समस्त तीर्थों में पुरोत्तम तीर्थ श्रेष्ठ है ॥३६॥ मुनिगण । जिस प्रकार देवर्षियों में नारद श्रेष्ठ हैं उसी प्रकार सम्पूर्ण तीर्थों में पुरोत्तम तीर्थ श्रेष्ठ है ॥३७॥ तथा जिस प्रकार घातुओं में काञ्चन (सोना) पवित्र द्रव्यों में दक्षिणा पवित्र है उसी प्रकार

प्रजापतिर्यया दक्ष ऋषीणा कश्यपो यया। तथा समस्ततीर्थानां वरिष्ठं पुरुषोत्तमम् ॥३९॥
 ग्रहाणा भास्करो यद्वन्मन्त्राणां प्रणवो यया। तथा समस्ततीर्थानां वरिष्ठं पुरुषोत्तमम् ॥४०॥
 अश्वमेधस्तु यज्ञानां यया श्रेष्ठः प्रकीर्तितः। तथा समस्ततीर्थानां क्षेत्रं च तद्विजोत्तमा ॥४१॥
 ओषधीनां यया धान्यं तृणेषु तृणराड्यया। तथा समस्ततीर्थानामुत्तमं पुरुषोत्तमम् ॥४२॥
 यया सप्तस्ततीर्थानां धर्मः ससारतारकः। तथा समस्ततीर्थानां श्रेष्ठं तत्पुरुषोत्तमम् ॥४३॥
 इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे स्वयम्भुविसंवादे पुरुषोत्तममाहात्म्यनिरूपण
 नामकोनसप्ततितमोऽध्यायः ॥६९॥

अथसप्ततितमोऽध्यायः

ब्रह्माणं प्रति तीर्थसंख्याविषयको नारदप्रश्नः

ब्रह्मोवाच

सर्वेषां चैव तीर्थानां क्षेत्राणां च द्विजोत्तमाः। जपहोमप्रदानां च तपोदानफलानि च ॥१॥
 न तत्पश्यामि भो विप्रा यत्तेन सर्वज्ञं भुवि। किंचात्र बह्मोवतेन भाषितेन पुन पुन ॥२॥

सप्तस्त तीर्थों में पुरुषोत्तम क्षेत्र पवित्र है ॥३८॥ जिस प्रकार प्रजापतियों में दक्ष, ऋषियों में कश्यप श्रेष्ठतम माने गये हैं उसी प्रकार तीर्थों में पुरुषोत्तम तीर्थ श्रेष्ठ माना गया है ॥३९॥ जिस प्रकार ग्रहा में भास्कर (सूर्य) और मन्त्रों में प्रणव (ओंकार) श्रेष्ठतम माने गए हैं उसी प्रकार सम्पूर्ण तीर्थों में पुरुषोत्तम तीर्थ श्रेष्ठ है ॥४०॥ जिस प्रकार यज्ञों में अश्वमेध यज्ञ को श्रेष्ठ बतलाया गया है उसी प्रकार तीर्थों में पुरुषोत्तम तीर्थ को श्रेष्ठ कहा गया है ॥४१॥ मुनिवृन्द! जिस प्रकार ओषधियों (जीवन-दायि-युक्तियों) में धान्य (अन्न) और तृणों में तृणराई (कुच) की श्रेष्ठता बहो गई है, उसी प्रकार सम्पूर्ण तीर्थों में पुरुषोत्तम की श्रेष्ठता है ॥४२॥ जिस प्रकार सप्तस्त तीर्थों में धर्म ससार से उद्धार करने वाला है, उसी प्रकार सम्पूर्ण तीर्थों में पुरुषोत्तम तीर्थ श्रेष्ठ (ससारोद्धारक) है।

श्री ब्रह्ममहापुराण में पुरुषोत्तम-माहात्म्य-वर्णन नामक उनहत्तरवाँ अध्याय समाप्त ॥६९॥

अध्याय ७०

ब्रह्मा से नारद का तीर्थसंख्याविषयक प्रश्न

ब्रह्मा ने कहा—विप्रवृन्द! इस संसार के जितने तीर्थ क्षेत्र, जप होम, व्रत तप और दान आदि हैं उनमें एक भी ऐसा नहीं है जो पुरुषोत्तम तीर्थ से समान पवित्र तथा बल देने वाला हो। इसकी महिमा के विषय में बार-

सत्यं सत्यं पुनः सत्यं क्षेत्रं तत्परमं महत्। पुरुषाख्यं सकृद्दृष्ट्वा सागराम्भ.समाप्लुतम्॥३॥
 ब्रह्मविद्या सकृज्ज्ञात्वा गर्भं वासतो न विद्यते। हरेः सनिहिते स्थान उत्तमे पुरुषोत्तमे॥४॥
 सबत्सरमुपासीत मासमात्रमपि वा। तेन जप्तं हृतं तेन तेन तप्तं तपो महत्॥५॥
 स याति परमं स्थानं यत्र योगेश्वरो हरिः। भुक्त्वा भोगान्विचित्रांश्च देवयोपित्समन्वितः॥६॥
 कल्पान्ते पुनरागत्य मर्त्यलोके नरोत्तमः। जायते योगिनां विप्रा ज्ञानजोद्यतो गृहे॥७॥
 सप्राप्य वैष्णव योगं हरेः स्वच्छन्दतां व्रजेत्। कल्पवृक्षस्य रामस्य कृष्णस्य भद्रया सह॥८॥
 मार्कण्डेयेन्द्रधुम्नस्य माहात्म्यं भागवस्य च। स्वर्गद्वारस्य माहात्म्यं सागरस्य विधिः क्रमात्॥९॥
 मार्जनस्य ययाकाले भागीरथ्याः समागमम्। सर्वमेतन्मया ख्यातं यत्परं श्रोतुमिच्छस्य॥१०॥
 इन्द्रधुम्नस्य माहात्म्यमेतच्च कथितं मया। सर्वाश्चर्यं समाख्यातं रहस्यं पुरुषोत्तमम्॥
 पुराण परमं गुह्यं धन्यं संसारमोचनम्॥११॥

मुनय ऊचुः

नहि नस्तुप्तिरस्तीह धृग्वतां तीर्यविस्तरम्। पुनरेव परं गुह्यं वक्तुमर्हस्यशेषतः॥
 परं तीर्यस्य माहात्म्यं सर्वतीर्थोत्तमोत्तमम्॥१२॥

बार कहने से क्या लाभ ? ॥१-२॥ समुद्र-जल से सुशोभित परम श्रेष्ठ पुरुषोत्तम तीर्थ का एक बार भी दशन करने से तथा ब्रह्मविद्या का ज्ञान प्राप्त करने से मनुष्य कभी भी जन्म-मरण के चन्दे में नहीं पँसता, यह निश्चय ही परम श्रेष्ठ सत्य है। भगवान् के शाश्वत निवास इस पुरोत्तम क्षेत्र में जो व्यक्ति एक वर्ष या एक मास रह कर उपासना करता है उसे जप, हवन और तप से प्राप्त होनेवाले सभी फल प्राप्त होते हैं और वह उस परम स्थान को जाता है जहाँ स्वयं योगेश्वर हरि निवास करते हैं ॥३-५॥ विप्रपण ! देवकन्याओं के साथ वह विचित्र भोगों को भोग कर कल्पान्त में पुन इस मृत्यु लोक में ज्ञान और ज्ञेय की जिज्ञासा रखने वाला वह सर्वश्रेष्ठ व्यक्ति योगियों के कुल में जन्म लेता है ॥६-७॥ पुन देह त्यागने के बाद वह नरोत्तम वैष्णव ज्ञान को प्राप्त कर हरिलोक में सामीप्य मवित प्राप्ति करता है। मैंने इस प्रकार कल्पवृक्ष एवं सुमद्रा सहित राम कृष्ण, मार्कण्डेय, इन्द्रधुम्न, भागव स्वर्गद्वार, और सागर का माहात्म्य क्रमश सुना दिया ॥८-९॥ भागीरथी के तट पर आने का समय और स्थान विधि आदि बातें भी मैंने सुना दीं, जिनके सुनने के लिये तुम लोगों को अत्यन्त उत्कण्ठ थी ॥१०॥ इन्द्रधुम्न का माहात्म्य पुरोत्तम की रहस्यमयी और आश्चर्यजनक बातें तथा ससार के नलेशों को मिटाने वाले इस परम गुह्य सुम पुराण को भी सुना दिया ॥११॥

मुनिगण बोले—मनवन् ! तीर्थों की इस विस्तृत विवेचना को सुनकर भी हम लोग अभी तृप्त नहीं हुए हैं। इसलिये पुन तीर्थों का माहात्म्य और सर्वोत्तम तीर्थ की परम रहस्यमय बातें पूरा रूप से सुनाइये ॥१२॥

ब्रह्मोवाच

इममेव पुरा प्रश्नं पृष्टोऽस्मि द्विजसत्तमा॥ नारदेन प्रयत्नेन तदा तं प्रोक्तवानहम्॥ ॥१३॥

नारद उवाच

तपसो यज्ञदानानां तीर्थानां^१ पावनं स्मृतम्। सर्वं श्रुतं मया त्वत्तो जगद्योने जगत्पते॥१४॥
'किंपन्ति सन्ति तीर्थानि' स्वयंमर्त्यरसातले। सर्वेषामेव तीर्थानां सर्वदा किं विशिष्यते॥१५॥

ब्रह्मोवाच

चतुर्विधानि तीर्थानि स्वर्गे मर्त्ये रसातले। देवानि भुविशार्दूल आसुराण्यारपाणि च॥१६॥
मानुषाणि त्रिलोकेषु विख्यातानि सुरादिभिः। मानुषेभ्यश्च तीर्थेभ्य आर्षं तीर्थमनुत्तमम्॥१७॥
आर्षेभ्यश्चैव तीर्थेभ्य आसुरं बहुपुण्यदम्। आसुरेभ्यस्तथा पुण्यं देवं तत्सर्वं वामिकम्॥१८॥
ब्रह्मविष्णुशिबश्चैव निर्मितं देवमुच्यते। त्रिम्यो यदेकं जायेत तस्मात्प्रातः परं विदुः॥१९॥
प्रयाणामपि लोकानां तीर्थं मेघ्यमुदाहृतम्। तत्रापि जाम्बवं द्वीपं तीर्थं बहुगुणोदयम्॥२०॥
जाम्बवे भारतं वर्षं तीर्थं त्रिलोक्यविश्रुतम्। कर्मभूमिर्धतः पुत्र तस्मात्तीर्थं सदुच्यते॥२१॥
तत्रैव घानि तीर्थानि घान्युक्तानि मया तव। हिमवद्विन्ध्ययोर्मध्ये घनघो देवसंभवा॥२२॥

ब्रह्मा बोले—द्विजवर्य० पूर्वकाल में नारदमुनि ने इसी प्रश्न की मुझसे पूछा था। उस समय मैंने जो कुछ कहा, उसी को पुनः कह रहा हूँ ॥१३॥

नारद ने कहा—अगन् के आदि कारण० जगत्पते! आपसे मैंने तप, यज्ञ, दान और तीर्थों का पवित्र माहात्म्य पूर्णरूपेण सुना। अब यह बतलाइये कि स्वर्ग, मर्त्य और रसातलो में कितने तीर्थ हैं और उन सब तीर्थों में किसकी महत्ता सर्वदा मानी जाती है ॥१४-१५॥

ब्रह्मा ने कहा—भुविशार्दूल० देवताओं एवं तत्त्वज्ञानियों ने स्वर्ग, मर्त्य और रसानन्द में स्थित दैव आसुर, आर्ष और मानुष—ये चार प्रकार के तीर्थ बतलाये हैं। इनमें मानुष तीर्थों से आपत्तीय उत्तम माने गये हैं आर्ष से आसुरतीर्थ अधिक पुण्यप्रद माने गये हैं, और आसुरतीर्थों से दैवतीर्थ सब मनोरथों के दाता बने गये हैं। ब्रह्मा-विष्णु-महेश्वर द्वारा प्रतिष्ठित तीर्थ दैवतीर्थ बने जाते हैं। इन तीनों देवा द्वारा जो तीर्थ प्रतिष्ठिता हुआ उन दैव तीर्थ से श्रेष्ठ कोई अन्य तीर्थ नहीं है ॥१६-१९॥ या सा खीना लोका के तीर्थ पवित्र माने गये हैं। परन्तु उनमें भी जम्बू द्वीप के तीर्थ बहुत उत्तम पात्र देने वाले हैं ॥२०॥ जम्बूद्वीप के तीर्थों से भी भारगवर्ष त्रिमुक्ता प्रसिद्ध तीर्थ हैं। भूति यह भारगवर्ष कर्मभूमि है इसलिए यह तीर्थ कहा जाता है ॥२१॥ उस देश में जिनने तीर्थ हैं उनसे विषय में मैंने सुप्त कहा है कि हिमाचल और विन्ध्य गिरि के मध्य की छह नदियाँ देवतरिणी हैं ॥२२॥ उसी प्रकार हे नारद०

१य तीर्थमेवमनुत्तमम्। इति शु०। २य जगत्प्रभो। ३य० यन्मेदाति मी०। ४य० इति विष्णुर्वाति गुणेश्वर। म।

तथैव देवजा ब्रह्मन्दिशिणाणं वबिन्ध्योः। एता द्वादश नद्यस्तु प्राधान्येन प्रकीर्तिताः॥२३॥
अभिसंपूजितं यस्माद्भारतं बहुपुण्यदम्। कर्मभूमिरतो देवैर्वर्षं तस्मात्प्रकीर्तितम्॥२४॥
आर्याणि चैव तीर्थानि देवजानि बबक्षित्वचित्। आसुरैरावृता न्यासस्तदेवाऽऽसुरमुच्यते॥२५॥
दैवेष्वेव प्रदेशेषु तपस्तप्त्वा महर्षयः। दैवप्रभावात्तपस आर्याण्यपि च तान्यपि॥२६॥
आत्मनः श्रेयसे मुक्तये पूजाये भूतप्रेष्यवा। आत्मनः फलभूत्यर्थं यशसोऽवाप्तये पुनः॥२७॥
मानुषः कारितान्याहुर्मनुषाणीति नारद। एवं चतुर्विधो भेदस्तीर्थानां मुनिसत्तमा॥२८॥
भेद न बबिचज्जानाति श्रोतु युवतोऽसि नारद। बहवः पण्डितमन्याः शृण्वन्ति कथयन्ति च॥
सुकृती कोऽपि जानाति यस्तु श्रोतुं निर्जगुर्णः॥२९॥

नारद उवाच

तेषां स्वरूप भेद च श्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः। यच्छ्रुत्वा सर्वपापेभ्यो मुच्यते नात्र सशयः॥३०॥
ब्रह्मकृतयुगादौ तु उपायोऽन्यो न विद्यते। तीर्थसेवा विना स्वल्पायासेनाभीष्टदायिनीम्॥३१॥
न त्वया सदृशो धातवन्ता ज्ञाताऽयवा बबक्षित्। त्वनाभिकमले विष्णो संजातोऽखिलपूर्वजः॥३२॥

ब्रह्मोवाच

गोदावरी भीमरयी तुङ्गभद्रा च वेङ्गिका। तापी पयोष्णी विन्ध्यस्य दक्षिणे तु प्रकीर्तिताः॥३३॥
भागीरयी नर्मदा तु यमुना च सरस्वती। विशोका च वितस्ता च हिमवत्पर्वताभिराः॥३४॥

विन्ध्य और दक्षिण सागर के मध्य की छह नदियाँ भी देवनदियाँ हैं। ये बारह नदियाँ प्रधान रूप से श्रेष्ठ मानी गई हैं॥२३॥ क्योंकि भारत सबसे पूजित, अधिक पुण्य देने वाला और कर्मभूमि है, अतएव इसको देवों न वर्ष (श्रेष्ठ) कहा है॥२४॥ आर्य और वही वही दैवतीर्थ भी आसुर प्रदेशों अथवा असुर-समूह से घिरे हैं, इसीलिये उनको आसुर कहा गया है॥२५॥ दैव प्रदेशों में ही ऋषिया ने तपस्याकर दैव प्रभाव या अपनी तपस्या के प्रभाव से आप तीर्थों का निर्माण किया है॥२६॥ लोक-बलाण, मुक्ति, पूजा, ऐश्वर्य प्राप्ति अथवा अपनी अभीष्ट-तिष्ठि या यश प्राप्ति के लिये मनुष्यों में जिन तीर्थों को बनाया, वे ही मानुष तीर्थ कहे जाते हैं॥२७॥ मुनिवर नारद। इस प्रकार तीर्थों के चार भेद हैं। नारद। इस भेद को कोई नहीं जानता। तुम्हीं इस भेद को सुनने के अधिकारी हो। यद्यपि बहुत से पण्डितमन्य लोग इस भेद को सुनते और सुनाते हैं, किन्तु कोई पुण्यवान् व्यक्ति ही अपने गुणों के कारण सुनने और कहने (प्रवचन) का अधिकारी होता है, सभी नहीं॥२८-२९॥

नारद बोले—ब्रह्मन्। यथार्थ रूप से मैं उपयुक्त तीर्थों का स्वरूप और भेद सुनना चाहता हूँ जिसको मुनिवर मनुष्य सब पापों से छुट जाता है, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं। कृतयुग आदि में शोड़े धर्म से मनारण सिद्ध करने वाली तीर्थ-सेवा के अतिरिक्त और कोई उपाय भी तो नहीं है। धात। तुम्हारे समान ज्ञाता और वक्ता वही नहीं है, क्योंकि तुम विष्णु के नाम-बल से उत्तम हुए हो और सबके पूर्वज हो॥३०-३२॥

ब्रह्मा ने कहा—विन्ध्य के दक्षिण भाग में गोदावरी, भीमरयी, तुङ्गभद्रा, वेङ्गिका, तापी, पयोष्णी, ये नदियाँ ही गई हैं। भागीरयी, नर्मदा, यमुना, सरस्वती, विशोका और वितस्ता ये हिमालय पर्वत से निकली हैं॥३३-३४॥

एता नद्यः पुण्यतमा देवतीर्यान्मुदाहृताः । गयः 'कोल्लासुरो वृत्रस्त्रिपुरो ह्यग्निकस्तथा ॥३५॥
 हयमूर्धा च लवणो नमुचिः ॥ ३६ ॥ कस्तथा । यमः पातालकेतुश्च मयः पुष्कर एव च ॥३६॥
 एतैराब्रूततीर्थानि आसुराणि शुभानि च । प्रभासो भार्गवोऽगस्तिर्नरनारायणौ तथा ॥३७॥
 वसिष्ठश्च भरद्वाजो गौतमः कश्यपो मनुः । इत्यादिमुनिजुष्टानि ऋषितीर्थानि नारद ॥३८॥
 अम्बरीषो हरिश्चन्द्रो माधाता मनुरेव च । कुरुः कनखलश्चैव भद्राश्वः' सगरस्तथा ॥३९॥
 अश्वयूपो नाचिकेता वृषाकपिररिदमः । इत्यादिमानुषैर्विप्र निर्मितानि शुभानि च ॥४०॥
 यशसः फलभूत्यर्थं निर्मितानीह नारद । स्वतोद्भूतानि दैवानि यत्र यथापि जगत्त्रये ॥
 पुण्यतीर्थानि तान्याहुस्तोयंभेदो मयोदितः ॥४१॥

इति श्रीमहापुराणे' स्वयंभूवृषिसंवादे तीर्थमाहात्म्ये तीर्थभेदवर्णनं नाम सप्ततितमोऽध्यायः ॥७०॥
 गौतमीमाहात्म्ये प्रथमोऽध्यायः ॥१॥

1

ये नविर्या अत्यन्त पुण्यजनक और देवतीर्थ कही गयी हैं । गय, कोल्लासुर, वृत्र, त्रिपुर, अश्वक, हयमूर्धा, लवण नमुचि, शृगक, यम, पातालकेतु, मय और पुष्कर इन असुरों से अपिष्टित अथवा पिरे हुये तीर्थ आसुर हैं और शुभ भी हैं ॥३५-३६॥ प्रभास, भार्गव, अगस्ति, नरनारायण, वसिष्ठ, नारदाज, गौतम, कश्यप और मनु इत्यादि ऋषियों से सेवित आर्पतीर्थ है ॥३७-३८॥ अम्बरीष, हरिश्चन्द्र, मान्याता, मनु, कुरु, कनखल, भद्राश्व, सगर, अश्वयूप, नाचिकेता, वृषाकपि, अरिदम, आदि से निर्मित शुभ मानुषतीर्थ है । नारद ! इसलोक में यश तथा ऐश्वर्य की निधि के निमित्त बनाये गये या स्वय उत्पन्न दैवतीर्थ जहाँ-जहाँ भी इन तीनों लोकों में हैं, वे सभी पुण्यतीर्थ बहे जाते हैं । इस प्रकार मैंने तीर्थ के भेद सुना दिये ॥३९-४१॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में तीर्थ माहात्म्य के ११ में तीर्थ भेद-वर्णन नामक सत्तरवाँ अध्याय समाप्त ॥७०॥

अथैकसप्ततितमोऽध्यायः

गङ्गोत्पत्तिकथोपक्रम

नारद उवाच

त्रिदंष्ट्र तु यत्तीर्थं सर्वेभ्यो ह्यवतमुत्तमम् । तस्यैव स्वरूपभेदे च वितरणं द्रष्टु मे ॥१॥

ब्रह्मोवाच

सायदयानि तीर्थानि तावता पुण्यभूमय । सायद्यज्ञादयो यावद्विदंष्ट्र न दृश्यते ॥२॥
गङ्गाय सरिता श्रेष्ठा सर्वकामप्रदायिनी । त्रिदंष्ट्रया मुनिश्रेष्ठ तदुत्पत्तिमतः ॥३॥
षर्पाणामयुनात्पूर्वं देवकाय उपस्थिते । तारको बलवानासीमद्वरादतिगवित ॥४॥
देवानां परमैश्वर्यं हृतं तनं बलीयसा । ततस्तं शरणं जग्मुर्देवाः सप्तपुरोगमाः ॥५॥
क्षीरोब्धगायिनि देव जगतां प्रपितामहम् । कृताञ्जलिपुटा दवा विष्णुमूचुरन्मया ॥६॥

देवा ऊचुः

त्वं जाता जगतां नाय देवानां कीर्तिवर्धन । सर्वेश्वर जगद्योने त्रयीमूर्ते नमोऽस्तु तः ॥७॥

अध्याय ७१

गंगा की उत्पत्ति की कथा

नारद ने कहा—आपन जो त्रिदंष्ट्र तीर्थ को सबसे उत्तम तीर्थ कहा है सो उसके स्वरूप और भेद का विस्तारपूर्वक वर्णन भूख मुताइय ॥१॥

ब्रह्मा बोले—तब तक ही अन्य तीर्थों पुण्यशला और अन्य यज्ञों का महत्त्व है जब तक कि त्रिदंष्ट्र का दर्शन नहा होना है। मुनिश्रेष्ठ ! यह गंगा नदी ही—जो सब नष्टियां भक्षित है सम्पूर्ण पल को देन वाली है—त्रिदंष्ट्र है, अतः उसकी उत्पत्ति की कथा सुनो। आज स दस हजार वर्ष पूर्व एक देवकाय उपस्थित हुआ। उस समय तारक नामक एक अमुर था जो मुझसे बर पाकर अत्यन्त मनोद्विष्ट हो गया था। उस महाबली ने वलपूर्वक देवताओं का सारा वैभव छीन लिया। इसलिये वे देवगण हतसबस्व इन्द्र को अगुवा बना कर देवताओं के एकमात्र रक्षक शारंग या जगन्मूर्ति विष्णु की शरण में गये। उनके पास जानकर देवगण हाथ जोड़कर कहने लगे ॥२॥

देवगण बोले—समस्त लोक के स्वामी ! हे देवों की कीर्ति बढ़ाने वाले सर्वेश्वर ! तुम हमारे एकमात्र रक्षक हो ससार के उत्पत्तिस्थान ! हे विभूति ! बापको नमस्कार है ॥३॥ तुम्हीं अतुरों को मारने वाले लोक के

लोकप्रवृत्ताऽसुरान्हुन्ता त्वमेव जगता पति । स्थित्युत्पत्तिविनाशाना कारण त्व जगमय ॥८॥

प्राता न कोऽप्यस्ति जगत्प्रयेऽपि, शरीरेणा सर्वविपदगतानाम् ।

त्वया विना धारिजपत्रनेत्र, तापत्रयाणा शरण न चान्यत

॥९॥

पिता च माता जगतोऽखिलस्य, त्वमेव सवासुलभोऽसि विष्णो ।

प्रसौद पाहीश महाभयम्पोऽस्मदातिहुन्ता वद कस्त्यदय

॥१०॥

आदिकर्ता वराहस्त्व मत्स्य कूर्मस्तथैव च । इत्यादिहृषभेदेनो रक्षते भय आगते ॥११॥

हृतस्वाम्यान्सुरगणान्हुतदारान्गतापद । कस्मान्न रक्षते देव अनग्रशरणान्हरे ॥१२॥

ब्रह्मोवाच

तत प्रोवाच भगवाञ्छेषशायी जगत्पति । कस्माच्च भयमापन्न तद्ब्रुवतु गतज्वरा ॥

तत भियर्पति प्राहुस्त तारकवध प्रति

॥१३॥

देवा ऊचु

तारकाद्भयमापन्न भीयण रोमहर्षणम् । न युद्धंस्तपसा शार्पहंतु नैव क्षमा वयम् ॥१४॥

अर्वाग्दशाहाद्यो बालस्तस्मान्मृत्युमवाप्स्यति, तस्माद्देव न चान्येभ्यस्तन ॥ नीतिविधीयताम् ॥१५॥

निर्माता और ससार के स्वामी हो । हे ससारमय ! ससार की सृष्टि पालन और विनाश के कारण तुम्ही हो ॥८॥

इन तीनो लोकों में सब प्रकार की विपत्तियों में फँसे जीवाँ में रक्षक तुम्हा हो दूसरा कोई नहीं । कमलनेत्र !

त्रिताप से सतप्त प्राणियों को तुम्हारे अतिरिक्त कोई आश्रय देनेवाँ नहीं है । विष्णो ! इस अखिल लोक के तुम्ही

पिता और माता हो और तुम्ही केवल सेवा द्वारा मुक्त हो । ईश ! प्रसन्न हो जाओ । इस महाविनाश से हम लोगों

की रक्षा करो । तुम्हारे सिवा और कौन हम लोगों के बच्चा को दूर कर सकता है ? ॥९॥१०॥ विपत्ति आ जाने

पर तुम्ही आदिकर्ता वराह मत्स्य तथा कूर्म आदि रूपाँ में अवतार लेकर हमारी रक्षा करते हो । देव ! हरे ! इन

अनन्यगण तथा विपत्तियों में फँसे देवों की—जिनके सारे अधिकार छीन लिये गये हैं और जिनकी स्त्रियाँ छूट सी

गई हैं—क्या नहीं रक्षा करते ? ॥११॥१२॥

ब्रह्मा बोले—इत बातों को सुनकर जगत्पति शेषशायी भगवान् न प्रोछा—देववन्द ! तुम लोगों को किससे

भय है ? निश्चय होकर बहो । भगवान् की बातें सुनकर देवाँ ने तारक के वध के सबध में उत्तम कहा ॥१३॥

देवों ने कहा—भगवन् ! तारकानुर के भीषण रोमाञ्जवारी अत्याचारा से हम लोग भयभीत हो गये

हैं । हम लोग युद्ध तर शाप आदि किन्हीं उपायों से उमकी मारन में समर्थ नहीं हैं । देव ! दस दिन के बाद

वा ही गिण्ड उमकी मृत्यु का कारण होगा दूसरे से उमकी मृत्यु नहीं होगी । इसलिये कोई उपाय ढूँढ़

ब्रह्मोवाच

पुनर्नारायणः प्राह नाहं बल्लोक्तः सुराः। न मत्तो मदपत्याञ्च न देवेभ्यो वधो भवेत्॥१६॥
 ईश्वराद्यदि जायेत अत्यं बहुशक्तिमत्। तस्माद्वधमवाप्नोति तारको 'लोकवाक्यः'॥१७॥
 तद्गच्छामः सुराः सर्वे यतितुम्भिभिः सह। भार्यायं प्रयमो यतः कर्तव्यः प्रभविष्णुभिः॥१८॥
 तत्तैयुवत्वा सुरगणा जग्मुस्ते च नगोत्तमम्। हिमवन्तं रत्नमयं मेनां च हिमवत्प्रियाम्॥१९॥
 द्वदमूचुः सर्वे एव सभायं तुहिनं गिरिम् ॥२०॥

देवा ऊचुः

दाक्षायणो लोकमाता या शक्तिः संस्थिता गिरी'। बुद्धिः प्रज्ञा धृतिर्मेधा लज्जा पुष्टिः सरस्वती॥२१॥
 एवं स्वनेकया लोके या स्थिता लोकपावती। देवानां कार्यसिद्धयं 'ध्रुवयोगर्ममाविशत्'॥२२॥
 समुत्पन्ना 'जगन्माता' शंभोः पत्नी भविष्यति। अस्माकं भवतां चापि पालनी च भविष्यति॥२३॥

ब्रह्मोवाच

हिमवानपि तद्वाक्यं सुराणामभिनन्द्य च। मेना चापि महोत्साहा अस्तिवत्येवं बचोऽब्रवीत्॥२४॥
 तदोत्पन्ना जगद्धात्री गौरी हिमवतो गृहे। शिवप्यानरता नित्यं तस्मिन्ना 'तन्मनोगता'॥२५॥
 तां वै प्रोचुः सुरगणा ईशायं तप आविश। तया हिमवतः पूष्टे गौरी तपे तपो महत्॥२६॥

ब्रह्मा बोले—तदनन्तर भगवान् नारायण ने कहा—'देवगण ! मैं उल्टा बलशाली नहीं हूँ और उसका वध न मुझे न मेरे पुत्र से न देवताओं से ही हो सकता है। यदि शत्रु से कोई अत्यन्त बलवान् पुत्र उत्पन्न हो तो वह लोक-पीडक तारक उससे मारा जा सकता है। इसलिये प्रभावशाली ऋषियों के सहित हम सब प्रयत्न करने के लिये चलें। सर्वप्रथम उनके विवाह के लिये प्रयत्न करना चाहिये। 'ऐसा ही हो' यह कहकर वे देवगण रत्नपूर्ण नपाचिराज हिमालय और उसकी स्त्री मेना के पास गये। सभी उसकी भार्या मेना और हिमालय से बोले ॥१६-२०॥

देवों ने कहा—लोक-माता शक्तिस्वरूपिणी दाक्षायणी तुम्हारे यहाँ विराजमान है। लोक को पवित्र करने वाली उस जननी के, बुद्धि, प्रज्ञा, धृति, मेधा, लज्जा, पुष्टि, सरस्वती आदि अनेक नाम लोक में प्रसिद्ध हैं। वही देवा की कार्य-सिद्धि के लिये आपके गर्भ में प्रविष्ट हुई हैं। उत्पन्न होकर वह जगन्माता भविष्य में शंभु की पत्नी होगी और हम लोगों की तथा आप लोगों की भी वह रक्षिका बनेगी ॥२१-२३॥

ब्रह्मा बोले—पर्वतराज हिमालय ने भी देवों के इस प्रस्ताव की सराहना की और मेना ने भी बड़े उत्साह से कहा कि 'ऐसा ही हो' उस समय हिमालय के घर में उत्पन्न जगन्माता गौरी भी सर्वदा शिव के ध्यान में मग्न रहती थी। उनकी निष्ठा और मन उनमें ही लगा रहता था। देवों ने उस हिमवत्या से कहा कि तुम भगवान् को पति रूप में पाने के लिये तप करो। तब गौरी भी हिमालय के ऊपर बैठकर बटोर तपस्या करने लगी। पुनः

पुनः संमन्त्रयामासुरीशो ध्यायति तां शिवाम् । आत्मानं वा तयाज्यद्रा न जानीमः कथं भयः ॥२७॥
मेनरूपाः सुतायां तु चित् दध्यात्सुरेदवरः । तत्र नीतिविधातव्या ततः धेष्टचमवाप्स्यय ॥
ततः प्राह महाबुद्धिर्वाचस्पतिरदारधीः ॥२८॥

बृहस्पतिरुवाच

यस्त्वयं मदनो धीमान्कन्दर्पः पुण्यचापधृक् । स विध्यतु शिवं शान्तं बाणैः पुष्पमयैः शुभैः ॥२९॥
तत्र विद्वस्त्रिनेत्रोऽपि ईशायां बुद्धिमादधेत् । परिणेष्यत्यसौ नूनं तदा तां गिरिजां हरः ॥३०॥
जयित्वा पुञ्चबाणस्य न बाणाः बवापि कुण्ठिताः । तयोढाया जगद्वाज्यां शंभोः पुत्रो भविष्यति ॥३१॥
जातः पुत्रस्त्रिनेत्रस्य तारकं स हनिष्यति । यस्तत्र च सहायार्थं शोभिष्ठं कुसुमाकरम् ॥३२॥
आह्लादनं च मनसा कामार्पणं प्रयच्छत ॥३३॥

प्रहोवाच

तथेत्पुङ्गवा सुरगणा मदनं कुसुमाकरम् । प्रेषयामासुरध्यप्राः शिवान्तिकमरिदमाः ॥३४॥
संजगाम ह्यरा कामो घृतचापो समाधवः । रत्या च सहितः कामः कर्तुं कर्म सुदुष्करम् ॥३५॥
मूर्खैश्च सशरं चापनिबं तस्य मनोजभवत् । मया वेध्यस्त्यवेध्यो वै शंभुर्लोकगुरुः प्रभुः ॥३६॥
शैलोक्यजयिनो बाणाः शंभो मे किं दृढा न वा । सेनासौ चाग्निनेत्रेण भस्मशोपस्तदा वृत्तः ॥३७॥

देवताओं ने मन्त्रणा की कि मगवान् शहर स्वयं गोरी या अपने आपका या अन्य किसी वस्तु का चिन्तन करते हैं। इस बात को हम नहीं जानते। अतः सुरेदवर शहर किस प्रकार मेना-पुत्री म अपना मन लगावेगे, इस बात के लिए कोई उपाय करना चाहिये, तभी सफलता प्राप्त होगी। इसी बातें सुनकर महाबुद्धिमान्, उदारचेता बृहस्पति ने कहा ॥३४-३८॥

बृहस्पति बोले—जो यह कुसुम-यनुष धारण करने वाला बुद्धिमान् कामदेव है, वह शान्त मित्र को अपने पुष्प-पुष्पमया में मारे। पुण्यगणा से विषे त्रिनेत्र गोरी की ओर आश्रय हो, सब निद्राव ही शर गिरिजा का पाणिग्रहण करे। त्रिजयी कामदेव के बाण वही भी असफल नहीं हूँगे। इस प्रकार पावें तो शिव हो जाने पर राम से पुत्र उत्पन्न होगा। शहर से उत्पन्न वह पुत्र तारक का वध करेगा। इसके पूर्व मनोहर वस्तु को जो कि मन में आह्लाद उत्पन्न कर देता है—आह्लाद के लिए मदन को दे दिया जाय ॥२९-३३॥

प्रह्लाद ने कहा—यही टीका है—ऐसा बहुर धनुषधन देवताओं ने प्रवृत्तापूर्वक बगल के साथ मदन को मित्र के गंधी-भेदा। कामदेव भी वस्तु और रति के साथ हाथ में अपना अमोघ धनुष लेकर उग दुर्गर कार्य को करने के लिए शीघ्रता से गया। हाथ में बाण रहित धनुष लेकर कामदेव मन में सोचने लगा कि शीघ्रपुण्य (अनघ) न वेपने योग्य प्रभु शहर अवश्य मेरे बाणों से लज्ज बनेंगे। त्रिभुवन को वध में करने वाले मेरे बाण अन्ध-धर भवता प्रनाश शिवायेगे कि नहीं, कामदेव यह सोच ही रहा था कि इतने ही में वह मगवान् के नेत्र में निद्रा

तदेव कर्म सुदृढमोक्षितुं सुरसत्तमाः । दाज्जम्बुस्तत्र यद्वृत्तं शृणु विस्मयकारकम् ॥३८॥
 श्रमं दृष्ट्वा सुरगणा यावत्पश्यन्ति भन्मयम् । तावच्च भस्मसाद्भूतं कामं दृष्ट्वा भयातुराः ॥
 , नुष्टुबुस्त्रिदशेशानं कृतान्जलिपुटाः ॥ सुराः ॥३९॥

देवा ऊचुः

तारकाद्भयमापन्नं कुरु पत्नीं गिरेः सुताम्

॥४०॥

ब्रह्मोवाच

विद्वच्चित्तो हरोऽप्यायु मेने वाक्यं सुरोदितम् । अरुण्यतो वसिष्ठं च मां तु चक्रधरं तथा ॥४१॥
 प्रेययामासुरमरा विवाहाय परस्परम् । संबन्धोऽपि तयाऽप्यासीद्विभवल्लोकनायको ॥४२॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे स्वयम्भुपिसंवादे गङ्गोत्पत्तौ शंभुविवाहसंभवो

॥

॥मार्गकस्तत्तितमोऽध्यायः ॥७१॥

गौतमीमाहात्म्ये द्वितीयोऽध्यायः ॥२॥

ज्वाला से जलकर मम्म हो गया । इस कठोर कर्म को देखने के लिये वहाँ वे देवता आये । इसके आगे जो आश्चर्य-जनक घटना हुई उसको हे पुत्र ! सुनो । रामु को देखने के बाद देवगण गयीही मदन की ओर ताकने लगे क्योंकि उसको मस्मीभूत देखकर मय से अभीर हो गये । तब हाथ जोड़कर देवताओं ने देवेश राक्षस की स्तुति की ॥३४-३९॥

देवो ने कहा—तारकासुर से हम लोग त्रस्त हैं, हमारे उद्धार के लिये (प्रभो) पावनी को अपनी पत्नी बनाइये ॥४०॥

ब्रह्मा ने कहा—द्वार मदन-पीडित राक्षस ने भीषीय ही देवों की प्रार्थना स्वीकार कर ली । अपना मनोरथ सिद्ध जानकर देवताओं ने अरुण्यनी, वसिष्ठ, मूसा (ब्रह्मा) को और विष्णु को विवाह का सघटन (घटकैती) करने के लिये भेजा । यवार्थ में वह विवाह भी हिमालय और लोकस्वामी राक्षस के पद और प्रणिष्टा के अनुरूप ही था ॥४१-४२॥

श्री ब्रह्मपुराण में गणोत्पत्ति-अकरण में शंभुविवाह की समावना नामक

इहत्तरवाँ अध्याय समाप्त ॥७१॥

अथ द्विसप्ततितमोऽध्यायः

हिमवद्वर्णनम्

ब्रह्मोवाच

हिमवत्पर्वत श्रेष्ठे नानारत्नविचित्रितः । नानावृक्षलताकीर्णं नानाद्विजनिपेविते ॥१॥
 नदीनदसरःकूपतडागादिभिरावृते । दवगन्धवयस्कादिसिद्धचारणसेविते ॥२॥
 शुभमास्तसपन्ने हर्षोत्कर्षेककारणः । मेरुमन्दरकलासमैनाकादिनगैवृते ॥३॥
 धसिष्ठागस्त्यपोलस्त्यलोमशादिभिरावृते । महोत्सव वतमान विवाहः समजायत ॥४॥
 तत्र बहो रत्नमयी शोभिता स्वर्णभूयिता । बह्वर्माणिक्यवद्वृत्यतन्मयस्तम्भशोभिता ॥५॥
 जयालक्ष्मीशुभाशान्तिकीर्तिपुष्पादिसंवृता । मेरुमन्दरकलासरैर्वृतं परिशोभितैः ॥६॥
 पूजितो लोकनायक विष्णुना प्रभविष्णुना । मैनाकः पवतश्चण्डो रेजेऽस्तीव हिरण्मयः ॥७॥
 ऋषयो लोकपालाश्च आदित्या मरुदगणा । विवाहं वेदिकां चक्रुर्देवदेवस्य क्षलिनः ॥८॥
 विश्वकर्मा स्वयं दृष्ट्वा बहो चक्र सतोरणाम् । सुरभी नन्दिनी नन्दा मुनन्दा कामदोहिनी ॥९॥
 अभिस्तु शोभितशान्त्या विवाहः समजायत । समुद्रा सरितो नागा ओषधयो लोकमातरः ॥१०॥

अध्याय ७२

हिमालय का वर्णन

ब्रह्मा बोले—नाना रत्ना के विचित्र गोमागाली थपड़ हिमाश्व-मवत पर जो अनेक वृक्ष और लताओं से प्रपूज्य था जहाँ मित्र मित्र रत्न के अन्तर्गत थे रहते थे जो नदी नद सरोवर कूप और तडाग आदि से घिरा हुआ था जहाँ देव गणधर यन्त्र आदि तथा सिद्ध चारण निवास करते थे और बसिष्ठ अगस्त्य पोलस्त्य लोमना आदि विवाहोत्सव देखने के लिये आये थे—ब्रह्मा समारोह के साथ विवाह-कृत्य शुभ बना में प्रारम्भ हुआ ॥१॥ वहाँ सोने से सुसज्जन रत्नज्वलित बेनी बनाई गई उस पर बह्वर्माणिक्य और वन्य जड़ स्तम्भ लटके गये ॥५॥ जया लक्ष्मी शुभाशान्ति कीर्ति पण्डित आदि दैवियों वहाँ विवाह-सम्पन्न में उपस्थित थीं मेरु चण्डर कैलाश देवता आदि विराजमान थे और लोकस्वामी सबसमय विष्णु से सम्मानित स्वर्णमय पवन गिरामणि भूनाथ वहाँ अत्यन्त सुगोमिन हा रहा था ॥६॥ उस गड्ढर के विवाह में ऋषि लोकपाल तथा मरुदगणा के साथ आनन्दगणों के मिलकर बेनी बनाया देव गिरापी विश्वकर्मा ने तोरण से उसको सज्जाया । तत्पश्चात् सुरभी नन्दिनी नन्दा मुनन्दा कामधेनु आदि सगनिया व मय्य सुगोमिन पावती का विवाह सम्पन्न हुआ । समुद्र सरिता पवन ओषधियाँ लोकमाताय

सवनस्पतिबीजाश्च सर्वे तत्र समाप्युः । भुवः कर्म इत्या चक्रे ओषध्यस्त्वन्नकर्म च ॥११॥
 वरुणः । पानकर्माणि दानकर्म धनार्थिणः । अग्निश्चकार ॥ तत्राग्नयन्वेष्ट लोकनाथयोग ॥१२॥
 तत्र ॥ तत्र पूयकपूजा चक्रे विष्णुः सनातनः । वेदाश्च सरहस्या वै गायन्ति च ॥ हसन्ति च ॥१३॥
 नृत्यन्त्यप्सरसाः सर्वा जगुर्गन्धर्वकिन्नराः । लाजाघृवचापि मनाको बभूव मुनिसत्तम ॥१४॥
 पुण्याहवाचनं ॥ वृत्तमन्तर्वेदमिति नारदः । वेदिकायमुपाविष्टो दपती सुरसत्तमौ ॥१५॥
 प्रतिष्ठाप्याग्निं विधिवदमानः चापि पुनः । हुत्वा लाजाश्च विधिवत्प्रदक्षिणमयाकरोत् ॥१६॥
 अश्मनः स्पशंहेतोश्च देव्यद्भ्युष्ट करेऽभ्युक्षत् । विष्णुना प्रेरितः शश्वदक्षिणस्थ पदस्य च ॥१७॥
 तामदशमं ह तत्र होमं कुबन्हरान्तिके । दृष्टेऽद्भ्युष्टे दृष्टबुद्ध्या वीर्यं सुखाव मे तदा ॥१८॥
 लज्जया कलुषोभूतः स्कन्धं वीर्यमचूर्णयम् । मदीर्याच्चूर्णितात्सूदमाद्वालिल्यास्तु ॥ जशिरे ॥१९॥
 ततो महानभूत्तत्र हाहाकारः सुरोदितः । लज्जया परिभूतोऽहं निर्गतस्तु तदाऽस्तनात् ॥२०॥
 पश्यस्तु देवसंघेषु तूष्णींभूतेषु नारदः । गच्छन्त मा महादेवो दृष्ट्वा नन्दितमन्नवीत् ॥२१॥

वनस्पति बीज सभी वहाँ उत्सव में सम्मिलित हुये ॥८१०॥ नारद । उस उत्सव में इना ने पृथ्वी-वाम (क्षांना लीपना आदि) किया आपधिया ने अन्न-सामग्री जुटायी वरुण ने जलपान का प्रबंध किया धनपति कुबेर ने दान-दक्षिणा देने का काय किया अग्नि ने शिव की इच्छा के अनुरूप विविध स्वादु भोजन बनाया ॥१११२॥ सनातन विष्णु ने स्थान स्थान पर विवाहोचित पूयक-पूयक पूजा की। वहा सागोपाग वेद स्वयं गान करते थे तथा हंसते भी थे ॥१३॥ सभी अप्सराया ने अपना नृत्य दिखाया गायन और किन्नरा ने मधुर गान गाया ॥ मुनिषेष्ट । मनाक ने मागलिक धान के लाजा (लावा) विखेरने की विधि पूरा की ॥१४॥ नारद । अन्तर्गह में पुण्याहवाचन हुआ और दोनों देव-दम्पति ने वेदिना पर बैठकर विधिपूर्वक अग्नि और पंचर की प्रतिष्ठा की। तदनन्तर लाजा-होम और अग्नि प्रदक्षिणा विधि समाप्त हुई। विष्णु की प्रेरणा से शम्भु ने पावती के दाहिने पैर के अंगुठा पत्थर से स्पर्श कराने के लिये हाथ से स्पर्श किया। पुनः उस समय मैं शंकर के समीप हवन कर रहा था। मैंने पावती को देख लिया। उनके अंगुठ को देखने से ही मेरे हृदय में कामभावना जागरित हो गई और वीर्य-पात हो गया ॥१५१८॥ लज्जा से सन्तुष्ट होकर मैंने उस गिरे हुए वीर्य को चूण कर दिया। उस वारीक चूण त्रिपे वीर्य से शालिल्य उत्पन्न हुये ॥१९॥ यह देखकर देवताया ने बड़ा हाहाकार मचाया। तब लज्जा से आसन छोड़कर मैं बाहर चला आया ॥२०॥ नारद । इस प्रकार लज्जित और मण्डप से बाहर जाते मुझ देखकर सभी देवता मोन हो गये। किन्तु भुवको जाते देखकर शंकर ने नन्दी से कहा ॥२१॥

शिव उवाच

ब्रह्माणमाह्वयस्वेह गतपापं करोम्यहम् । कृतापराधेऽपि । जने सन्तः सकृपमानसाः ॥
मोहयन्त्यपि विद्वांसं विषयाणामियं स्थिता । ॥२२॥

ब्रह्मोद ।

एवमुक्त्वा स भगवानुमया सहितः शिवः । समानुकम्पया चैव लोकानां हितकाम्यया ॥२३॥
एतच्चकार लोकेशः शृणु नारद यत्नतः । पापिना पापमोक्षाय भूमिरापो भविष्यति ॥२४॥
तपोश्च सारसर्वस्वमाहरिष्यामि पावनम् । एवं निश्चित्य भगवांस्तथो सारं समाहरत् ॥२५॥
भूमिं कमण्डलुं कृत्वा तत्रापः सनिवेश्य च । पावमान्यादिभिः सूक्तरभिमत्य च यत्नतः ॥२६॥
त्रिजगत्पावनौ शक्ति तत्र सत्सार पापहा । मामुवाच स लोकेशो गृहाणेम कमण्डलुम् ॥२७॥
आपो वै मातरो देव्यो भूमिर्माता तथाऽपरा । स्थित्युत्पत्तिविनाशानां हेतुत्वमुभयोः स्थितम् ॥२८॥
अत्र प्रतिष्ठतो धर्मो ह्यत्र यज्ञः सनातनः । अत्र भुविश्च मुक्तिश्च स्थावरं जङ्गमं तथा ॥२९॥
स्मरणात्मानसं पाप वचनाद्वाचिकं तथा । स्नानपानाभियेकाच्च प्रणश्यत्यपि कायिकम् ॥३०॥
एतदेवामृतं लोके नैतस्मात्पावनं परम् । मयाऽभिमन्त्रितं ब्रह्मगृहाणेम कमण्डलुम् ॥३१॥
अत्रत्य धारि यः कश्चित्स्मरेदपि पठेदपि । स सर्वकामानाप्नोति गृहाणेम कमण्डलुम् ॥३२॥

शकर बोले—तुम ब्रह्मा को यहाँ बुलाओ, मैं उनको निष्पाप करूँगा । सन्त मनुष्य अपराधी पर भी दया
दिखलते हैं, विषयवासानाओ की यह स्थिति है कि वे ज्ञानी को भी यथोक्त कर लेती हैं ॥२२॥

ब्रह्मा ने कहा—उमा के सहित शकर ने ऐसा कहकर भेरे ऊपर वृषाकर, लोक-हित की भावना से आगे बढ़ा
किया उसको तुम सावधानी से सुनो । उन्होंने कहा कि पृथ्वी और जल पापियों के पाप को नष्ट करने में सहायक
होते हैं । मैं इनके पवित्र सार भाग को निकालूँगा, ऐसा नियोज्य कर भगवान् शकर ने उनके सार भाग को निकाल
लिया ॥२३-२५॥ पृथ्वी को कमण्डलु बनाकर उसमें जल को रख दिया । पावमान्य आदि वैदिक मन्त्रों से मलीर्षाणि
अभिमन्त्रित कर उस पाप-विनाशक ने उसमें तीनों लोकों को पवित्र करने वाली शक्ति का आवाहन किया ।
पुनः लोकपति शकर ने मन्त्रों से कहा कि इस कमण्डलु को लो ॥२६-२७॥ सुनो, जल मातृदेवी है, तथा पृथ्वी भी दूसरी
माता है । इन दोनों में सृष्टि की उत्पत्ति, स्थिति और विनाश के कारण निहित हैं ॥२८॥ इनमें धर्म प्रतिष्ठित है ।
सनातन यज्ञ इनमें वर्तमान है । इनमें मुक्ति और मुक्ति है । स्थावर, जंगम सभी इनमें ही रहते हैं ॥२९॥ जन के
स्मरण से मन के पाप, इससे विषय में चर्चा करने से वचन के पाप और इसके स्नान, पान और अभियेक से शरीर के
पाप नष्ट हो जाते हैं ॥३०॥ यही ससार में अमृत है । इससे अधिक कोई भी वस्तु पवित्र नहीं । मैंने इसको अभि-
मन्त्रित कर दिया है, इस कमण्डलु को ग्रहण करो ॥३१॥ इस कमण्डलु को जल का जो कोई स्मरण करेगा अथवा
इसका स्तोत्र पाठ करेगा, उसके सब मनोरथ पूर्ण होंगे, अतः इस कमण्डलु को लो ॥३२॥ पञ्च महामूर्तों से प्रल-

भूतैर्म्यश्चापि पञ्चम्य आपो भूत महोदितम् । तासामुत्कृष्टमेतस्माद्गुहाणेन कमण्डलुम् ॥३३॥
अत्र यद्वारि शोभिष्य पुण्य पावनमेव च । स्पृष्ट्वा स्मृत्वा च दृष्ट्वा च ब्रह्मन्पाद्विमोक्षये ॥३४॥
एवमुक्त्वा महादेव प्रादान्मय कमण्डलुम् । ततः सुरगणा सर्वे भक्त्या प्रोचुः सुरदेवरम् ॥३५॥
आह्लादश्च महास्तत्र जयशब्दो व्यवर्तत

देवोत्सवे मातुरज पदार्य, समोक्ष्य पापात्पतितत्वमाप ।

प्रादात्कृपालु स्मरणात्पवित्रा गङ्गा पिता पुण्यकमण्डलुस्थाम् ॥३६॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे स्वयम्भुवृषिसवादे तीर्थमाहात्म्ये गङ्गोत्पत्तौ ब्रह्म-

कमण्डलुदान नाम द्विसप्ततितमोऽध्याय ॥७२॥

गीतमीमाहात्म्ये तृतीयोऽध्याय ॥३॥

अथ त्रिसप्ततितमोऽध्यायः

वलिप्रशसावर्णनम्

नारद उवाच

कमण्डलुस्थिता देवी तव पुण्यविधिनी । यया मर्त्यं गता नाथ तमे विस्तरतो वव ॥१॥

तत्त्व ध्येष्ट ब्रह्मा गमा है । यह तो उसका सार तत्त्व होने के कारण उसका भा अति उत्कृष्ट है इसप्रिय इस कमण्डलु को ग्रहण करो ॥३३॥ ब्रह्मन् ! इस कमण्डलु में जो जल है वह पवित्र पापनाशक और गुणायक है । इससे स्नान स्मरण और दान से मनुष्य पापा से छूट जाता है ॥३४॥ ऐसा कहकर महादेव ने मुनिका कमण्डलु दे दिया । इस घटना का देखकर सबका अत्यन्त प्रसन्नता हुई जब घोष की तुमुल ध्वनि से मण्डप गूँज उठा । देवताओं ने मन्त्रिपूर्वक सुरेश्वर गौरव से ब्रह्मा ॥३५॥ देवोत्सव के अवसर पर माना के चरण के अगूठ को देखकर ब्रह्मा अपने पाप से पतित हो गये परन्तु कृपालु पिता गौरव ने इसका स्मरण करते ही परम पवित्र गंगा का कमण्डलु में रखकर ब्रह्मा को दे दिया ॥३६॥

श्री ब्रह्ममहापुराण म तीर्थ माहात्म्य-अवतार म वलिप्रशति नामक बहुरत्नक अध्याय समाप्त ॥७२॥

अध्याय ७३

वलि की प्रशसा का वर्णन

नारद ने कहा—ब्रह्मा ! आपने कमण्डलु में रहने वाली पुण्यदायिनी गंगा तिस प्रकार मनुष्यता से आया इसे भी विस्मरपूर्वक सुनाइये ॥१॥

ब्रह्मोवाच

बालिनाम महादयो देवारिरपराजित । धर्मेण यशसा चैव प्रजासंरक्षणेन च॥२॥
 नृभूषभक्त्या च सत्येन वीर्येण च बलेन च । त्यागेन क्षमया चैव त्रैलोक्ये नोपमोयते॥३॥
 तस्यैद्विमुव्रता दृष्ट्वा देवाश्चिन्तापरायणा । भिय समूचुरमरा जेष्यामो ये पथ बलिम्॥४॥
 तस्मिञ्ज्ञासति राज्यं तु त्रैलोक्यं हृतकण्टकम् । नारयो व्याधयो घातपि नाऽऽधयो वा कथंचन॥५॥
 अनावृष्टिरधर्मो वा नास्तिशब्दो न दुर्जन । स्वप्नेऽपि नैव दृश्येत बलौ राज्यं प्रशासति॥६॥
 तस्योन्नतिशरंभेना कीर्तिखड्गद्विधावृता । तस्याऽऽज्ञाशक्तितमिन्नाङ्गा देवा शर्म न लेभिरे॥७॥
 सत समग्रयामासु कृत्वा मात्सर्यमग्रतः । तद्यज्ञोन्निप्रदीप्ताङ्गा विष्णु जग्मु सुविह्वला॥८॥

देवा ऊचुः

आतां स्म गतसत्त्वा स्म शङ्खचक्रगदाधर । अस्मदर्थे भव्यात्तत्त्वमायुधानि बिभर्ति च॥९॥
 स्वयि नाथे जगन्नाथ अस्माकं दुखमोदुशम् । त्या तु प्रपमती घाणी यथ दैत्य नमस्त्यति॥१०॥
 मनसा कमणा वाचा त्वामेव शरणं गता । त्वदङ्घ्रिशरणा सन्त पथ दैत्य नममेहि॥११॥
 यजामस्तवा महापूजैर्वंदामो धाम्निरच्युत । त्वदेकशरणा सत कथं दैत्य नममेहि॥१२॥

ब्रह्मा न कह्यो—बलि नामक एक भट्टाय या जा दबताजा वा परम गुरु था। दबता उरको पभी भी पराजित न कर सार। वह अपने घम-मान या प्रजा-संरक्षण गुरु भवित सय वीर्य पराक्रम त्याग और क्षमा आदि गुणों का कारण तीनों लोक में अनुपम था। उसका भट्टान् बलवत् दबता अत्यंत विजित हुआ। वे परस्पर बहुत लगे कि त्रिस प्रकार बलि का हम लोग जीत सकें॥२॥ इसका शासनकाय में तो मारा ससार निष्पष्ट है न शत्रु है न राग है अरु न मित्र का त्रिस प्रकार की मानमित्र विज्ञा ही है॥३॥ अनावृष्टि (सूखा) अधम नास्तिकता और दुष्ट मनुष्य महा है। और क्या महा ताप इस धर्म का शासन-माला में रखने में भी य सय महा देश का॥४॥ इन प्रकार उसकी उन्नति रूपी गरज से ब्रह्मासाहस्य पर उन्नत बलवत्ता गद्ग स आहत हो गया उसकी प्रभुता गति का देखकर वे सब क्षण विगत अपात् विरत हो गए। उनका त्रिणी प्रकार शान्ति महा मिली॥५॥ अन्त में ईर्ष्याभाव में मित्र-जुगुप्सर उन गंगा का सङ्गात का और उगार पङ्कपा अर्जि से जो भुन व देव अच्युत व्याकुल होकर भगवान् विष्णु का समीप गये॥६॥

दैत्यो न कह्यो—गण बल गण का घाटन करने का। हथ लागा का क्या का ग्यही थाप सत्ता-सत्ता धारण करने हैं फिर भी हम लोग दुखा है अधिकार में विजित है। जगन्नाथ! आपका रक्षण रहने पर भी हम सत्ता की महा दगति। आप का सवदा रक्षित करने का-नी महा बाधा त्रिस प्रकार में अधमनीय का शक्ति करण॥९॥ हम सभी मन बचन और बल में आप का हाँ गरज में रहने। महा आप का करणा का तब हम में दैत्य की बगे नमस्कार करण॥११॥ हम महापणा का हाँगा आत्मा हाँ आराधना करण है। अच्युत! अपना घाती के साथ का ही स्तान गान करण है एवमाय आपका ही घाटन में रहा का हम बत उस दैत्य का नमस्कार कर सत्ता

त्वद्वीर्यमाश्रिता नित्य देवा सेन्द्रपुरोगमा । त्वया दत्त पद प्राप्य कथं दैत्य नमेमहि ॥१३॥
 खण्डा त्वं गृह्यमूर्त्यां तु विष्णुर्भूत्वा तु रक्षसि । सहर्ता खड्गशक्त्या त्वं कथं दैत्य नमेमहि ॥१४॥
 ऐश्वर्यं कारणं लोके विनैश्वर्यं तु किं फलम् । हतैश्वर्या सुरैश्चान् कथं दैत्य नमेमहि ॥१५॥
 अनादिस्त्व जगद्धातरनन्तस्त्व जगदगुरु । अन्तवन्तममुं शत्रुं कथं दैत्य नमेमहि ॥१६॥
 तवैश्वर्येण पुष्टाङ्गा जित्वा त्रैलोक्यमोजसा । स्थिरा स्याम सुरैश्चान् कथं दैत्य नमेमहि ॥१७॥

ब्रह्मोवाच

इत्येतदेव वचनं श्रुत्वा दैतेयसूदन । उवाच सर्वानमरादेवानां वार्यसिद्धये ॥१८॥

श्रीभगवानुवाच

मद्भक्तोऽसौ बलिर्दैत्यो ह्ययमप्योऽसौ सुरासुरं । यथा भवन्तो मत्पोष्यास्तथा पोष्यो बलिर्मम ॥१९॥
 विना तु सागरं देवा हत्वा राज्यं निविष्टये । बलिं निबध्य मन्त्रोक्त्या राज्यं च प्रददाम्यहम् ॥२०॥

ब्रह्मोवाच

तमेतमुक्त्वा सुरगणा सज्जमुद्विगमेव हि । भगवानपि दवेदो हृषदित्वा नभमाविशत ॥२१॥
 तस्मिन्नुत्पद्यमाने तु उत्सवाश्च मभूविर । जातोऽसौ वामनो ब्रह्मन्व्रजसो पत्न्युरप ॥२२॥

हैं? ॥१२॥ इन्होंने आगे हम सभी देवों आपके पराक्रम के सहार जीते हैं आपके द्वारा प्राप्त अधिकार को पक्षर वगैरे अमिताह-हीन (माधन) की भाँति उस दाय को नमस्कार कर ॥१३॥ प्रभो आप ब्रह्मा के रूप में सृष्टि करते हैं विष्णु होकर रक्षा करते हैं और शङ्खध्वनि से चिन्ता करते हैं फिर हम कर्ते उसको नमस्कार कर ॥१४॥ हम लोका में एतद्ब्रह्म जीने का आधार है विमलान् जीवन सव्या लाभ देवा व गुणेष्ट । एतद्ब्रह्म हीन हम कर्ते उसको नमस्कार कर ॥१५॥ जगत् के पालक आप अनन्ति है अनन्त हैं नमस्कार के एतद्ब्रह्म हीन हम कर्ते उसको नमस्कार कर ॥१६॥ आप ही प्रभाव का हम वन परा वमी होकर आप पराक्रम सतीन लोका को जीत कर स्थिर और गान्त हयि । सुरपात्र । आपके समान परा पालक कर्ते उस दैत्य को नमस्कार कर ॥१७॥

ब्रह्मा उवाच—देवनाभा सा इतना वात गुनकर दयारि भगवान् न बह—॥१८॥

श्रीभगवान् बोले—यह दैत्य बलि मर गया है और देव दानव कोई इसे मार नहीं सकते । जिस प्रकार अज लोभा का पाप मर गया है उसी प्रकार बलि भी मेरा पोष्य है । फिर भी मेरे वन्द विना यद के ही उसने राज्य छोड़ने में मुक्ति का उसी की स्तोत्रिण स ही उसको वीर्यकर स्वयं का राज्य लुप्त लोका को द दया ॥१९, २०॥

ब्रह्मा उवाच—एता ह्येते यह बह बह गुरुगण स्वयं वन्दे मय । इतर दैव भगवान् न भी यदि वे मत्त म प्रदान दिया ॥२१॥ ब्रह्मा गन्त दयपुरय वामन व रूप म उत्तर दय उनसे उत्तर

एतस्मिन्नतरे ब्रह्मन्हयमेधाय दीक्षित । बलिर्बलवता श्रेष्ठ ऋषिमुख्यं समाहित ॥२३॥
 पुरोधसा च शुक्रेण वेदवेदाङ्गवेदिना । मखे तस्मिन्वर्तमाने यजमाने बलौ तथा ॥२४॥
 आत्विज्यः । ऋषिमुख्ये तु शुक्रे तत्र पुरोयसि । हविर्भाग्यमासन्नदेवगन्धर्वपन्नगे ॥२५॥
 दीयता भुज्यता पूजा क्रियता च पृथक्पृथक् । परिपूर्णं पुन पूर्णमेव दायये प्रवर्तति ॥२६॥
 शनैस्तद्देशमभ्यागाद्दामन सामगायन । यज्ञवाटमनुप्राप्तो 'वामनश्चित्रकुण्डल' ॥२७॥
 प्रशसमानस्त यज्ञ वामन । प्रेक्ष्य भार्गव । ग्रह्यरूपधर देव वामन बन्त्यसूदनम् ॥२८॥
 दातार यज्ञतपसा फल हन्तार रक्षसाम् । ज्ञात्वा त्वरन्नयोवाच राजान भूरितेजसम् ॥२९॥
 जेतार क्षत्रधर्मेण दातार भविततो धनम् । बलि बलवता श्रेष्ठ सभार्य दीक्षित मखे ॥३०॥
 ध्यायन्त यज्ञपुरुषमुत्सृजन्त हवि पृथक् । तस्माह भृगुशार्दूल शुक्र परमबुद्धिमान् ॥३१॥

शुक्र उवाच

धोऽसौ तव मख प्राप्तो ब्राह्मणो यामनकृति । नासी विप्रो बले सत्य यज्ञेशो यज्ञवाहन ॥३२॥
 शिशुत्वा याचितु प्राप्तो नून देवहिताय हि । मया च सह समन्त्र्य पदचाद्देय त्वया प्रभो ॥३३॥

ब्रह्मोवाच

बलिस्तु भार्गव प्राह पुरोयसर्मरिदम

॥३४॥

होने पर बड़-बड़ उत्सव मनाये गये ॥२२॥ ब्रह्मन् 'इसी बीच बलवाना म श्रेष्ठ बलि ने आवेशेय धन की दीक्षा ली। उसने यज्ञ म प्रमुख प्रमुख ऋषि सम्मिलित हुए ॥२३॥ वेद वेदाङ्ग के ज्ञाता शुक्र पुरोहित थे। उन धन म बलि यजमान बनकर बैठा हुआ था ऋषि-वर शुक्र पुरोहित बन हुये थे और अपन अपन हवि प्राण पत्ने के लिये देव गन्धर्व और नाग उर्पा यज्ञ थे। पुरोहित शुक्र यज्ञ अमुक सामग्री दो यहाँ धनि दो यहाँ पूजा करो इत प्रहार पथक पथक आदेश दे रहे थे और परिपूर्ण पुन पूषम आदि बाक्य वह रक्षे च नि दने म सामवेद का गान करन हुए हाथ म विविध वस्त्रकुट्ट लिये हुए भगवान वामन यज्ञ प्रत्य म पहुँच गये और उत धन की प्रशंसा करने लगे। भागव शक विप्रपथागे दैत्यारि वामन को—ऐसकर समय गय कि य धन और तप के फल न वाट गणना के विनागात्र भगवान् है। इसलिये परम बुद्धिमान् भृगु श्रेष्ठ शुक्र न अयन्त पराक्रमी पराक्रम म युद्ध म गवरा! तीन वाट गन्तीक यज्ञमान वति से जो मस्तिषूवक धन का दान दिया करता था और उत समय धन पुण्य का ध्यान कर पथक उनके निमित्त हवि देने को प्रस्तुत था कहा—॥२४॥ ३१॥

शुक्र ने कहा—यज्ञ स्थल म आया हुआ वामन रूप धन ब्राह्मण ब्राह्मण नष्टा है अग्नि मागान् यज्ञपुण्य यज्ञ व स्वामी है। बलि 'अवश्य ही यज्ञ गिणु देवताओं की मण्डई करन के लिय नमम याचना करने आया है। इसलिय राजन् मरे साथ परामर्श करने व बात हो इसको दान दत्ता उचित होगा ॥३२॥ ३३॥

ब्रह्मा नृपति—शत्रु-मूलक वति न परोन्ति मामव म वन् ॥३४॥

बलिहवाच

धन्योऽहं मम यज्ञेशो 'गृहमायाति मूर्तिमान्। आगत्य याचते किंचित्किं' मन्त्र्यमवशिष्यते ॥३५॥

ब्रह्मोवाच

एवमुक्त्वा सभाप्योऽसौ शुक्रेण च पुरोधसा। जगाम यत्र विप्रेन्द्रो वामनोऽदितिनन्दन ॥३६॥
कृताञ्जलिपुटो 'भूत्वा केनायित्व तदुच्यताम्। वामनोऽपि तदा प्राह पदत्रयमिता भुवम् ॥३७॥
देहि राजेन्द्र नान्येन कार्यमस्ति धनेन किम्। तथेत्युक्त्वा तु कलशान्तानारत्नविभूषितात् ॥३८॥
धारिधारा, पुरस्कृत्य वामनाय भुव ददौ। पश्यत्सु ऋषिमुख्येषु शुक्रे चैव पुरोधसि ॥३९॥
पश्यत्सु 'लोकनाथेषु वामनाय भुव ददौ। पश्यत्सु दैत्यसधेषु जयशब्दे, प्रवर्तति ॥४०॥
दानंस्तु वामन प्राह स्वस्ति राजन्मुखो भव। देहि मे समिता भूमिं त्रिपदामानु गम्यते ॥४१॥
तथेत्युवाच दैत्येशो यावत्पश्यति वामनम्। यज्ञेशो यज्ञपुरोपश्वन्नादित्यो स्तनान्तरे ॥४२॥
यया स्याता 'सुरा मूर्ध्नि बद्धे विक्रमाकृति। अनन्तश्चाध्युतो देवो विक्रान्तो विक्रमाकृति' ॥
त दृष्ट्वा दैत्यराट् प्राह सभाप्यो विनयान्वित ॥४३॥

बलि बोले—मैं धन्य हूँ कि आज स्वयं मन्त्र मूर्तिमान् होकर मेरे घर आये हुये हैं। यदि आकर कुछ माँगत ही हा तो इस विषय में मन्त्रणा की क्या आवश्यकता है? ॥३५॥

ब्रह्म ने कह—एसा बहुर पुराहित गुत्र को साथ लेकर माया सहित राजा बलि उस स्थान पर गया जहाँ अग्निपुत्र ब्राह्मण त्रिरोमणि वामन विराजमान थे ॥३६॥ हाथ ओडकर बलि ने कहा कि आप किस वस्तु की इच्छा करते हैं। वामन ने कहा 'केवल तीन दण मात्र भूमि। राजेन्द्र। केवल मुझ इतनी ही भूमि दे दो अन्य किसी वस्तु या धन की आवश्यकता नहीं है ॥३७॥ एसा ही हो' यह बहुर नानारत्ना से विभूषित वर्णाग जल निवाक वर ऋषियों ने देवन-दैत्यने पुरोहित गुत्र के सामने वामन को (तत्परिमित) पृथ्वी दे दी। इस दान को लोक-यात्र और दानको का समूह भी देख रहे थे। इस अपूर्व दान का देखकर आनन्द-मुग्ध हो सवने जय ध्वनि की ॥३८॥ इसर भगवान् वामन ने घीरे स कहा—'राजन्। स्वस्ति हो तुम सुखी बनो। मेरी अमोघ तीन दण पृथ्वी तीव्र दे दो मैं तीव्र घटा जाऊँ ॥४१॥ एसा ही हो' यह बहुर दत्ताराज जया ही वामन का देवता है स्याही वर्णाग पुरुरूप का दाना विराट रूप दिखाई दिया कि चन्द्र और सूर्य उससे बरा स्थान पर दिखाई देने लग ॥४२॥ वे अनन्त अच्युत त्रैलोक्य वर दिगाल दिखाई पडे कि सुरणा भी उनका सम्मुख में दिखाई पडन लग। तब माया का सहित विनय से नम्र दैत्यराज ने कहा—॥४३॥

यलिरुवाच

न विष्णो लोकेन यावच्छक्त्या (वित्) जगन्मय । जित मया सुरेशान सर्वभावो विश्वकृत् ॥४४॥

ब्रह्मोवाच

अयमकाल तु विष्णु प्राह महाकृतु ॥४५॥

विष्णुरुवाच

श्वर महाबाहो क्रमिष्ये पश्य दैत्यराट् ॥४६॥

ब्रह्मोवाच

यदन्त स प्राह नम विष्णो पुन पुन ॥४७॥

ब्रह्मोवाच

मृष्टे पद न्यस्य यलिपद्म पद न्यसत । द्वितीय तु पद प्राप ब्रह्मलोक सनातनम् ॥४८॥

यस्य पदस्त्वान स्मान नास्त्यसुरेश्वर । यत्र क्रमिष्ये भुय देहि धर्लि त हरिरब्रवीत् ॥

स्य धलिरप्याह सभार्य स कृताञ्जलि ॥४९॥

यलिरुवाच

१ मृष्ट 'जगत्सर्वं स स्रष्टाऽह सुरेश्वर । त्यहोपादत्पमभवत्किं करोमि जगन्मय ॥५०॥

यत्ति न पद्म—लोह-स्वामिन व्यापक । विष्णु अपनी गति व अनुसार नाप गे । गुरुस्वामिन् ।
१ व रचयिता । मैंने तार प्रसार स मगार को जीत लिया है नाप 'मेरिजिब ॥४४॥

ब्रह्मा १ पद—उत्तरे बार के साथ हा म्हात्मापस्य विष्णु न कहा—॥४५॥

विष्णु बोले—भगवान् । ज्वरन । दमो मैं न्न उग रग हू । दयसात्र । देना ॥४६॥

ब्रह्मा बोले—म प्रसार को विष्णु की बात मतार रति १ कहा—विष्णु धयारवि अन् अन्ग
प ॥४७॥

ब्रह्मा न पदा—ब्रह्मा १ ने मा पद चरक वच पीर पर गहर दूगरा ररग रति के वच स रर रति
'दमर १ सतात ब्रह्मा १ दन्त पन्च गया । पद 'गवर्ग १ रति स कहा—अगुरेयर । तामर दग व
१ धर ग्यात १ १ ना पद १ रत नृतात चरग रग । (अ) नाप न्न व रिये) पूज्यो दः । हगार धना
१ व रति रति ने ह्य अन्तर वच—॥४८॥ ४९ ।

यत्ति बोले—गुह्यर । हमने सम्पूर्ण मगार को बसाया है मैंने कहा । (अन्तर) गुह्यर दोष स बनी

तथाऽपि नानूतपूर्वं कदाचिद्वच्मि वशव। सत्यवाक्यं च मा कुचमत्पृष्ठं हि पदं यस्य ॥५१॥

ब्रह्मोवाच

ततः प्रसन्नो भगवान्प्रयोमूर्तिं सुराक्षितं

॥५२॥

भगवानुवाच

वरं वृणोष्व भद्रं तं भक्त्या प्रीतोऽस्मि दंत्यराट्

॥५३॥

ब्रह्मोवाच

स तु प्राह जयनाथ न याच त्वा त्रिविधमम। स तु प्रादात्सत्यं विष्णुं प्रीतं समनससितम् ॥५४॥

रसातलपतित्वं च भावि च द्रव्यं पुनः। आत्माधिपत्यं च हरिरविनाशि यशो विभु ॥५५॥

एव दत्त्वा बलं सर्वं ससुतं भाग्यदाक्षितम्। रसातलं हरिं स्थाप्य बलिं त्वमरवैरिणम् ॥५६॥

शतश्रुतोस्तथा प्रादात्सुरराज्यं यथाभवं। एतस्मिन् तरं तत्र पदं प्रागात्सुराक्षितम् ॥५७॥

द्वितीयं सत्यं विष्णोः पितुममं महामतं। यत्पदं समनुप्राप्तं गृहं दृष्ट्वाऽप्यचिं तयम् ॥५८॥

किं कृत्यं यच्छुभं न स्यात्पदं विष्णोः समागतं। सद्यस्य च समालोच्य श्रेष्ठो न स्यात्कमण्डलुः ॥५९॥

तद्वारिं यत्पुण्यतमं दत्तं च त्रिपुरारिणां। वरं वरं वरं वरं वरं वरं वरं वरं वरं ॥६०॥

शुभं च शुभं नित्यं भुक्तिमुक्तिप्रदायकम्। मातस्यैव लोकानाममृतं भयजं क्षुचि ॥६१॥

हो गढ़ जगन्मय म क्या कर फिर भी हे कान्व मैं वसी भी असय नही कन्ता हू इसलिय मेरे सय की रक्षा क लिय मेरी पीठ पर अपना चरण रखिय। ५० ५१।

ब्रह्मा न कहा—तदनन्तर सीन मति बाल तथा दवताजा द्वारा पूज गय भगवान न प्रसन्न होकर कहा—
‘तुम वर मागा तुम्हारा क्याण हागा दयगन। तुम्हारी मति स मैं प्रसन्न हू ॥११ ५३

ब्रह्मा न कहा—राजा बलि न कहा कि मैं तीन डगा स सम्पूर्ण राज को नापने वां तुम जगपति से कुछ नही मागया। परंतु भगवान् न प्रसन्न होकर स्वयं उसको अपना दंडा के अनुसार वर लिया कि ‘तुम सम्प्रति रसातल के स्वामी बनो और त्रिविष्य म दन् की पत्नी तुम्ह मिली तुम्हारी असय कीति लाय म पत्नी और तुम्हारा एकमात्र आधिपत्य रह्या। ५४ ५५। इस प्रकार जगन्व्यापी भगवान हरि ने पत्र और भाग्य के सन्ति बलि को सब बड़ बर वर देव रात्र (बलि) को बरिवार सन्ति रसातल म भेज लिया और दंड का पूव की पाति स्वयं का राय दे लिया। ५६॥ महामते! रसा वीच जबकि भगवान दूसरे चरण से नापने का प्रयत्न कर रहे थ तब वह देवा से पूजित द्वितीय चरण मरे लोक म आया। म अपन पिता के चरण को अपन घर म आया नेतकर सोचने लगा कि मरे घर आय रस चरण की क्या सेवा करू कि भरा गम हा। इस विचार से मैं सत्र कुछ देखन ग्या तब तक ध्यान मे आया कि यह मेरा कमल ही इस नाथ के लिय श्रेष्ठ है। इसम त्रिपुरारि गहर का लिया हुआ वह जल है जो पावन वर देने वाला श्रेष्ठ अत्यन्त गान्तिप्रन् गुम गुम दनवाग सबदा मुक्ति और मलि देने वाग माता के समान लोकपालक अमल योगनाथ पवित्र पूय सर्वोत्तम और उत्तम गुणो सं युक्त है। जिसके स्मरण मात्र से

पवित्रं पावनं पूज्यं ज्येष्ठं श्रेष्ठं गुणान्वितम्। स्मरणादेव लोकानां पावनं किं नु दर्शनात्॥६२॥
 तादृग्वारि शुचिर्भूत्वा कल्पयेद्धार्य मे पितुः। इति सचिन्त्य तद्वारि गृहीत्वाऽर्घाय कल्पितम्॥६३॥
 विष्णो. पादे तु पतितमर्घ्यवारि सुमन्त्रितम्। तद्वारि पतित मेरौ चतुर्धा व्यगमद्भुवम्॥६४॥
 पूर्वं तु दक्षिणे चैव पश्चिमे चोत्तरे तथा। दक्षिणे पतितं यत्तु जटाभिः शंकरो मुने॥६५॥
 जग्राह पश्चिमे यत्तु पुनः प्रायत्कमण्डलुम्। उत्तरे यत्तु पतितं विष्णुर्जग्राह तज्जलम्॥६६॥
 पूर्वस्मिन्नुपयो देवा पितरो लोकपालका। जगू. शुभदं वारि तस्माच्छ्रेष्ठं तदुच्यते॥६७॥
 या दक्षिणां दिशं प्राप्ता आपो वै लोकमातरः। विष्णुपादप्रसृतास्ता ब्रह्मण्या लोकमातरः॥६८॥
 महेश्वरजटासंस्थाः पर्वजातशुभोदयाः। तासां प्रभावस्मरणात्सर्वकामानवाप्नुयात्॥६९॥

इति श्रीमहापुराणे ब्राह्मे स्वयंभूप्रसिद्धादे तीर्थमाहात्म्ये गंगाया महेश्वरजटागमन-
 निरूपणं नाम त्रिसप्ततितमोऽध्यायः॥७३॥
 गौतमोमाहात्म्ये चतुर्थोऽध्यायः॥४॥

प्राणी पवित्र हो जाते हैं, दर्शन के विषय में तो वहना ही क्या? तो आज इस पवित्र जल से, स्वयं पवित्र होकर अपने पिता को अर्घ्य प्रदान करें, ऐसा सोचकर उस जल को लेकर अर्घ्य देने को प्रस्तुत हुआ॥५७-६३॥ जब मन्त्र से अभिमन्त्रित कर उस अर्घ्य-जल को विष्णु के चरण पर गिराया तो वह जल वहाँ से मेघ पर्वत पर गिर कर चार भागा में बँट कर पृथ्वी पर कुछ पूर्व, कुछ पश्चिम, कुछ उत्तर और कुछ दक्षिण की ओर गिर पड़ा॥६४॥ जो जल-धारा दक्षिण की ओर गिरी उसका, हम मुने, शंकर ने अपनी जटा में धारण कर लिया। पश्चिम की ओर गिरा उन मेरे कमण्डलु में आया। उत्तर दिशा में जो गिरा उसको विष्णु ने ले लिया और जो पूर्व की ओर गिरा, उस मण्डल-प्रद जल को श्रुति, देव, पितर और लोकपाला ने ले लिया। इस प्रकार विष्णु का अर्घ्य के रूप में दिया गया वह जल और अचिन्त पवित्र हो गया। जो जल दक्षिण दिशा में गया वह विष्णु चरण में विरजित हुआ, लोक-माता, और व्रत-सबधी है। जिसको पवित्र जानकर स्वयं महेश्वर ने अपनी जटा में स्थापित किया, और जिसका पर्वत्रेण में उदय (उत्पत्ति) हुआ है। इसलिय ऐसे जल की महिमा का स्मरण करने से मनुष्य सब मनारथों को प्राप्त करता है॥६५-६९॥

श्री ब्रह्ममहापुराण में तीर्थ-माहात्म्य-प्रकरण में गंगा का महेश्वर की जटा में आगमन निरूपण नामक निरूपण अध्याय समाप्त॥७३॥

अथ चतुःसप्ततितमोऽध्यायः

गङ्गाया द्वैरूप्यकथनम्

नारद उवाच

कमण्डलुस्थिता देवी महेश्वरजटागता । श्रुता देव यया मर्त्यमागता तद्ब्रवीतु मे ॥१॥

ब्रह्मोवाच

महेश्वरजटास्या या आपो देव्यो महामते । तासा च द्विविधो भेद आहर्तुर्द्वयकारणात् ॥२॥
एकाशो ब्राह्मणेनात्र व्रतदानसमाधिना । गौतमेन शिव पूज्य आहृतो लोकविश्रुत ॥३॥
अपरस्तु महाप्राज्ञ क्षत्रियेण बलोरया । आराध्य शकर देव तपोभिनियमैस्तथा ॥४॥
भगीरथेन भूपेन आहृतोऽशोऽपरस्तया । एव द्वैरूप्यमभवद्गङ्गाया मुनिसत्तम ॥५॥

नारद उवाच

महेश्वरजटास्या या हेतुना केन गौतम । आहर्ता क्षत्रियेणापि आहृता केन तद्वद ॥६॥

ब्रह्मोवाच

ययाऽऽनीता पुरा वत्स ब्राह्मणेनेतरेण वा । तत्सर्वं विस्तरेणाह वदिष्ये प्रीतये तव ॥७॥

अध्याय ७४

गंगा के दो भेदों का कथन

नारद ने कहा—कमण्डलु में रहने वाली देवी जिस प्रकार महेश्वर की जटा में आयी उसको तो मैंने सुना । अब जिस प्रकार वे मर्त्यलोक में आयी, उसको सुनाइये ॥१॥

ब्रह्मा बोले—महामते ! महेश्वर की जटा में रहनेवाली जल-देवी को पृथ्वी पर लाने वाले दो व्यक्ति थे इसलिये उसने दो भेद हो गये । एक अश्व को गौतम नामक ब्राह्मण व्रत दान और समाधि से शकर की पूजाकर पृथ्वी पर लाया, यह लोक में प्रसिद्ध है । गङ्गाया । दूसरे अश्व को बलवान् भगीरथ नामक क्षत्रिय राजा तप और नियम से शकर को प्रसन्न करके ले आया । मुनिश्रेष्ठ ! इस प्रकार गंगा के दो भेद हो गये ॥२॥

नारद ने कहा—महेश्वर की जटा में रहने वाली गंगा के एक अश्व को किस कारण गौतम और दूसरे अश्व को किस कारण क्षत्रिय (यहाँ) लाये, सो बतलाइये ॥३॥

ब्रह्मा ने कहा—पूर्वकाल में जिस वारण ब्राह्मण अवस्था क्षत्रिय गंगा को पृथ्वी पर लाये, इन सब बातों

यस्मिन्काले सुरेशस्य उमा पत्युर्भवतिप्रिया । तस्मिन्नेवामवदग्ङ्गा प्रिया शमोर्महामते ॥८॥
 मम क्षोपापनोदय चिन्तयाम शिवस्तदा । उमया सहित श्रीमान्देवीं प्रेष्य विशेषत ॥९॥
 रसवती स्थितो यस्माग्निर्मम रसमुत्तमम् । रसिकत्वात्प्रियत्वान्च स्त्रेणत्वात्पावनत्वत ॥१०॥
 सर्वान्यो ह्यधिकप्रीतिर्गङ्गाभूद्विजसत्तम । तामव चिन्तयानोऽसौ र्वदाऽस्ते महेश्वर ॥११॥
 संबोद्भूता जटामार्गात्कस्मिन्निश्चितकारणान्तरे । स तु सगोपयामास गङ्गा शमुजटागतम् ॥१२॥
 शिरसा च धृता ज्ञात्वा न शशाक उमा तदा । सोढु ब्रह्मजटाजूटे स्थिता दृष्ट्वा पुन पुन ॥१३॥
 अमर्षेण भव गौरी प्रेरयस्वेत्यभाषत । नवासौ प्रेरयच्छभू रसिको रसमुत्तमम् ॥१४॥
 जटास्वेव तदा देवीं गोपायन्त विमृश्य सा । विनायक जया स्कन्द रहो वचनमब्रवीत् ॥१५॥
 नवाय निदशेशानो गङ्गा त्यजति कामुक । साऽपि प्रिया शिवस्याद्य कथं त्यजति ता प्रियाम् ॥१६॥
 एव विमृश्य बहुशो गौरी चाऽह विनायकम् ॥१७॥

पार्वत्युवाच

न देवीनां सुरैर्यक्षेनं सिद्धं भवताऽपि च । न राजभिरपान्यैर्वा न गङ्गा त्यजति प्रभु ॥१८॥
 पुनस्तत्स्थानि वा गत्वा हिमवन्त नगोत्तमम् । अथवा ब्राह्मणं पुण्यैस्तपोभिर्हतकल्मष ॥१९॥

को मैं सुन्हारी प्रसन्नता के विय निस्तारयूकन कह रहा हूँ ॥७॥ गहामत । जिस समय उमा शरर की पत्नी हुई उसी समय गंगा भी राम की प्रिय पत्नी हुई ॥८॥ उस समय भरे दाप को दूर करने के लिए पार्वती सहित गकर ने विस्तार करते हुए विशेष रूप से देवी को देखा । उस समय रसभाव म रहने के कारण उन्होंने उत्तम रस (गुणार) का निर्माण किया । विजवर ! रसिक प्रिय स्त्रीमत्ता (माया मत्त) तथा लाजपावन होने क कारण गकर की सबसे अधिक प्रीति गंगा म हो गई । महेश्वर दिन रात उसी गंगा व ध्यान म मग्न रहन ग ॥९ १०॥ बड़ा गया जिसा अन्य कारण जटा भाग से प्रवट हुई । गकर जी ने जटा म आयी हुई गंगा को उठा लिया ॥११ १२॥ ब्रह्मन् । उस समय उमा गंगा को गिर पर प्रतिष्ठित दलवर इस बात को सह न सता । जटानूट म स्थित गंगा को बार बार दलवर गौरी न शेष स गंगा को हटा देने के लिये गकर ख कहा । किन्तु रसिक गिरामणि गकर न उत्तम रस बनवाली गंगा को महा हटाया । गौरी ने फिर भी गंगा को जटा म ही टिगात दलवर विनायक एवं द और जया स एकात म कहा कि यह देवा व स्वामी कामी गिर गंगा को नहा छोड रहे हैं वह इनकी प्रिया भी इनका महा छड रही है तो ५ किस प्रकार गंगा को छड सकत ह ? एसा करने क वास् सोच विचारकर गौरी न गंगा से कहा ॥१३ १७॥

पार्वती बोली—य गकर देवा अगुटा यथा गिटा राजाभा गुह्यार अथवा अय किसी क कहने से गंगा को नहीं छोड रह है । इसलिए या ता मैं इस भाष व लिय पुन नगाधिराज हिमाचल पर जाकर स्वयं तपस्या करगी

१४ ०म । आमना भरवरे यथा जानावव उपैति वै । यथा अगन्गुर्देव कस्मि ० । १४ ०न ।
 उमा तत्र गङ्गापानायास्मीति च तदा । ७० । ३५ ०न मयैम ० ।

तेर्वा जटास्थिता गङ्गा प्रायिता भुवमान्पुयात्

॥२०॥

ब्रह्मोवाच

एतच्छ्रुत्वा मातृवाक्यं मातरं प्राह विष्णुराट् । भ्रात्रा स्कन्देन जयया संमन्त्र्येह 'च युज्यते ॥२१॥
तत्कुर्मो मस्तकाद्गङ्गां यथा त्यजति मे पिता । एतस्मिन्नन्तरे ब्रह्मघ्ननावृष्टिरजायत ॥२२॥
द्विद्विंश समा मर्त्ये सर्वप्राणिभयावहा । ततो विनष्टमभवज्जगत्स्थावरजङ्गमम् ॥२३॥
विना तु गौतमं पुण्यमाश्रमं सर्वकामदम् । स्रष्टुकामः पुरा पुत्र स्थावरं जङ्गमं तथा ॥२४॥
कृतो यतो मया पूर्वं स देवयजनो गिरिः । मन्नामा तत्र विख्यातस्ततो ब्रह्मगिरिः सदा ॥२५॥
तमाश्रित्य नगश्रेष्ठं सर्वदाऽऽस्ते स गौतमः । तस्याऽऽश्रमे महापुण्ये श्रेष्ठे ब्रह्मगिरी शुभे ॥२६॥
आधयो ध्याधयो चाऽपि दुर्मिश्रं चाऽप्यवर्षणम् । भयशोको च दारिद्र्यं न धूयन्ते कदाचन ॥२७॥
तदाश्रमं विनाऽन्यत्र हव्यं वा कव्यमेव वा । नास्ति पुत्र तया दाता होता यष्टा तथैव च ॥२८॥
यदेव गौतमो विप्रो ददाति च शुहेति च । तदेवाप्ययनं स्वयं सुराणामपि नान्यतः ॥२९॥
देवलोकेऽपि मर्त्ये वा धूयते गौतमो मुनिः । होता दाता च भोक्ता च स एवेति जना विदुः ॥३०॥
तच्छ्रुत्वा मुनयः तर्हि नानाश्रमनिवासिनः । गौतमाश्रममापूज्यन्त्यागच्छन्तस्तपोधनाः ॥३१॥

अथवा तत्तस्या द्वारा निष्पाप एव पवित्र ब्राह्मण को प्रार्थना से प्रसन्न होकर गंगा पृथ्वी पर जाय, ऐसा कोई प्रयत्न करता चाहिये ॥१८-२०॥

ब्रह्मा ने कहा—माता की इन बातों को सुनकर विष्णुराज विनायक ने कहा कि भाई स्कन्द और जया से इसके लिए परामर्श करना ठीक होगा । इनके परामर्श से मैं वही प्रयत्न करूँगा जिससे कि मेरे पिता गंगा को मस्तक से हटा सकूँ ॥२१॥ ब्रह्मन् । इसी बीच समस्त प्राणियाँ नो व्रत करने वाला बारह वर्ष का अवकाल पड़ गया । सारा स्थावर जगत्मात्रक सत्सार विनष्टप्राय हो गया केवल सब मनोरथों को देने वाला गौतम का आश्रम ही शेष रहा । पुत्र । इसका कारण यह है कि अत्यन्त प्राचीन काल में जब स्थावर (अचल) जगत् (चल) की सृष्टि की इच्छा मेरे मन में उत्पन्न हुई तब उसी देवयजन गिरि पर मैंने यज्ञ किया था । तभी से सर्वदा के लिए वह पहाड़ मेरे नाम से प्रसिद्ध हो गया ॥२२-२५॥ वह गौतम उसी श्रेष्ठ पर्वत पर अपना आश्रम बना कर सदा रहता है । उस पवित्र ब्रह्मगिरि पर बने अतिपवित्र शुभ आश्रम में रोग, मानसिक चिन्ता, दुर्मिश्र, मूना, मय, शोक और दुःखिता आदि कभी भी नहीं सुने गये हैं ॥२६-२७॥ पुत्र । उस आश्रम को छोड़ कर अन्यत्र कहीं भी हव्य कव्य (पितरों को दिया जाने वाला अन्न) दाता, होता, और यज्ञकर्ता नहीं थे ॥२८॥ जब भी विप्र गौतम, पितरों को अन्न देते या हवन करते थे, तभी स्वयं मे देवताओं को भी तुष्टि मिलती थी । अन्य किसी प्रकार से नहीं ॥२९॥ देव या भूयुक्तों में गौतम ऋषि की ही प्रसिद्धि थी । सभी यही जानते थे कि हवन करने वाले, दान देने वाले और सुख भोगने वाले केवल गौतम ऋषी ही हैं । इस चर्चा को

तेषां मुनीनां सर्वेषामागतानां स गौतम । शिष्यवत्पुत्रवद्भक्त्या पितृवत्पोषकोऽभवत् ॥३२॥
 यस्य (तेषां) यथेप्सितं कामं यथायोग्यं यथाक्रमम् । यथानुरूपं सर्वेषां शुश्रूषामकरोन्मुनिः ॥३३॥
 आज्ञया गौतमस्याऽऽसन्नोपध्यो लोकमातरं । आराधितां पुनस्तेन ब्रह्मविष्णुमहेश्वरा ॥३४॥
 जायन्ते च तदोपध्यो लूयन्ते च तदेव हि । सपत्न्यन्ते तदोप्यन्ते गौतमस्य तपोबलात् ॥३५॥
 सर्वा समृद्धयस्तस्य ससिध्यन्ते मनोयता । प्रत्यहं ववितं विनयाद्गौतमस्त्वागतान्मुनीन् ॥३६॥
 पुत्रवच्छिष्यवच्चेव प्रेष्ठ्यवत्करवाणि किम् । पितृवत्पोषयामास सवत्सरगणान्वहन् ॥३७॥
 एव वसत्सु मुनिषु त्रिलोक्ये ख्यातिराभवात् । ततो विनायकं प्राह मातरं भ्रातरं जयाम् ॥३८॥

विनायक उवाच

देवानां सद्ने मातर्गोयते गौतमो द्विज । यत्र साध्यं सुरगणर्गोतमं कृतवानिति ॥३९॥
 एव श्रुतं मया देवि ब्राह्मणस्य तपोबलम् । स विप्रश्चालयेदेना मातर्गङ्गा जटागताम् ॥४०॥
 तपसा वाञ्छ्यतो घाटपि पूजयित्वा त्रिलोचनम् । स एव ध्याययेदेना जटास्था भे पितृप्रियाम् ॥४१॥
 तत्र नीतिविधातव्या ता विप्रो याचयेद्यथा । तत्प्रभावात्सरिच्छ्रेष्ठा शिरसोऽवतरत्यपि ॥४२॥

मुनिकर अनेक आश्रमा के रहने वाले ऋषिमुनि गौतम के आश्रम को पूछते हुए आने लगे । ऋषि ने भी उन आगत सभी मुनियों की योग्यतानुसार किसी का गिण्य के समान किसी का भक्ति नम्र पुत्र के समान और किसी का पिता के समान आदर और पालन पोषण किया ॥३२॥ ३३॥ जिसकी जैसी इच्छा थी उसी के अनुसार यथायोग्य मुनि ने सेवा-सत्कार किया । गौतम की इस अतिथि सेवा और तपस्या से ब्रह्म विष्णु और महेश भी अत्यन्त प्रसन्न हो गए ॥३४॥ ३५॥ उनकी आज्ञा से लोक का भरण पोषण करने वाली मानुस्वरूप अर्पयित्री थोड़ी ही देर में बड़ जाती थी और पुनः काट भी ली जाती थी । ऋषि के तप प्रभाव से बोते ही बोते पत्र कर तैयार भी हो जाती थी ॥३५॥ इस प्रकार सबका उस अतिथि सेवी गौतम ऋषि का मनोवाञ्छित वैभव प्राप्त हो जात था । प्रतिदिन वे ऋषि आश्रम में आये हुए अनियमित या विनयपूर्वक बहाने करते थे कि पुत्र के समान गिण्य के समान मुझको आज्ञा दीजिये कि मैं आप लोग की आज्ञा से सेवा करूँ ॥३६॥ ३७॥ इस प्रकार अनेक वर्षों तक पिता के समान ऋषि ने आश्रमों से आये अनियमित या पात्रन किंग और इस प्रकार वहाँ मुनियों के निवास करने से गौतम ऋषि की प्रसिद्धि चारों ओर फैल गई ॥३८॥ गौतम की इस नीति का मुनिकर गणना न अपनी माता भाई और जया से बहा ।

गण । बोल—माता । स्वयं मैं गौतम का बड़ा गुण-यान हो रहा है । सभी कहते हैं कि इन्होंने वह कार्य कर लिया जो देवताओं में भी नहीं हो सकता था । इस प्रकार मैंने ब्राह्मण गौतम के सहायक को मुना है । वह विप्र निम्न ही जग में उठी रहा बागी गंगा का बड़ा से हनु देगा । तपस्या या अन्य किसी प्रकार से वह विनय गौतम को प्रसन्न कर अवश्य ही पिता की प्यारी सेवा को जटा से झुन कर देगा । इस विषय में कोई ऐसा उपाय होना चाहिए कि गौतम गंगा की याचना करे । उसने प्रभाव में गया (गिर के) गिर से उतर सकती है ॥३९॥ ४०॥

ब्रह्मोवाच

इत्युक्त्वा मातरं आश्रया जयया सह विघ्नराट् । जगाम गौतमो यत्र ब्रह्मसूत्रधरः कृशः ॥४३॥
वसन्कतिपयाहं सु गौतमाश्रममण्डले । उवाच ब्राह्मणान्सर्वास्तत्र तत्र च विघ्नराट् ॥४४॥
गच्छाम स्वमधिष्ठानमाश्रमाणि शुचीनि च । पुष्टा स्म गौतमाश्रमे पृच्छामो गौतम मुनिम् ॥४५॥
इति समन्वयं पृच्छन्ति मुनयो मुनिसत्तमा । स तान्निवारयामास स्नेहबुद्ध्या मुनीन्पूयक् ॥४६॥

गौतम उवाच

कृताञ्जलिं सविनयमासध्वमिह चैव हि । युष्मच्चरणशुश्रूष्यं करोमि मुनिपुंगव ॥४७॥
शुश्रूषो पुत्रवन्नित्यं मयि तिष्ठति नोचितम् । भवता भूमिदेवानामाश्रमान्तरसेवनम् ॥४८॥
इदमेवाऽऽश्रमं पुण्यं सर्वेषामिति मे मतिः । अलमन्येन मुनय आश्रमेण गतेन वा ॥४९॥

ब्रह्मोवाच

इति श्रुत्वा 'मुनेर्वाक्यं विघ्नकृत्यमनुस्मरन् । उवाच प्राञ्जलिर्भूत्वा ब्राह्मणान्स गणाधिप ॥५०॥

गणाधिप उवाच

अन्नक्रीता वयं किं नो^१ निवारयत गौतम । साध्ना^२ नैव वयं शक्नुमः गन्तुं २१ इव निवेशनम् ॥५१॥

ब्रह्मा ने कहा—इस प्रकार माता स कहकर विघ्नराज विनायक चाई स्कन्द और जया के साथ उस स्थान पर पहुँचे जहाँ यगोपवीतधारी दुर्लभ-वतले गौतम थे । कुछ िना तक गौतम के आश्रम में रहने के बाद विघ्नराज ब्रह्मा के सब ब्राह्मणों से कहा— हम लोग गौतम के अन्न को खाकर स्वस्थ और पुष्ट हो गये हैं अब अपन-अपने घरों पवित्र आश्रमों को चलना चाहिये इससे लिये मुनि गौतम से पूछ लेना चाहिये । इस प्रकार परामर्श कर उन अष्ट मुनियों ने गौतम से पूछा । उनके इस प्रकार के प्रस्ताव को सुनकर मुनि ने बड़ स्नेहपूर्वक उन मुनियों को जाने से रोका ॥४९॥

गौतम ने कहा—मुनिपुंगव ! मैं हाथ जोड़कर विनयपूर्वक आप लोगों से प्राथना करता हूँ कि आप लोग मेरे आश्रम में रहें । आप लोग की और अधिक चरण सेवा करना चाहता हूँ । क्योंकि अभी इस क्षुद्र सेवा से मुझ सतोष नहीं है । पुत्र के समान सेवा करने की इच्छा रखने वाले गौतम के रहते आप भूषेवा वा दूसरे आश्रम को जाना ठीक नहीं है । मेरा विचार है कि यह पवित्र आश्रम ही आप लोगों के रहने के लिये सर्वथा उचित है । मुनिवृन्द ! आप लोगों का अन्य आश्रमों में जाना मेरी दृष्टि से उचित नहीं है ॥४७-४९॥

ब्रह्मा ने कहा—मुनि की बातों को सुनकर बाबा दारुने वाले कायों का स्मरण करते हुए गणपति ने हाथ जोड़कर ब्राह्मणों से कहा ॥५०॥

गणपति बोले—क्या हम लोग अन्न से खरीद लिये गये हैं कि गौतम हमको घर जाने से रोक रहे हैं ?

नापमर्हति दण्डं वा उपकारी द्विजोत्तमः। तस्माद्बुद्ध्या व्यवस्थामि तत्सर्वैरनुमन्यताम् ॥५२॥

ब्रह्मोवाच

ततः सर्वे द्विजश्रेष्ठाः क्रियतामित्यनुब्रुवन्। एतस्य तूपकाराय लोकानां हितकाम्यया ॥५३॥
ब्राह्मणानां च सर्वेषां श्रेयो यत्स्यात्तथाकुरु। ब्राह्मणानां ब्रह्मः श्रुत्वा भजे वाक्यं गणाधिपः ॥५४॥

विनायक उवाच

क्रियते गुणरूपं यद्गौतमस्तु विशेषतः

॥५५॥

ब्रह्मोवाच

अनुमान्य द्विजान्तर्वाङ्मनः पुनरुदारयोः। स्वयं च ब्राह्मणो भूत्वा प्रणम्य ब्राह्मणान्पुनः ॥५६॥
मातुर्मते स्थितो विद्वान्जयां प्राह गणेश्वरः

विनायक उवाच

यथा नान्यो विजानोते तया कुरु शुभानने। गोहपचारिणो गच्छ गौतमो यत्र तिष्ठति ॥५७॥
शालीश्लाघ विनाशाय विकारं कुरु भामिनि। कृते प्रहारे हुंकारे प्रेक्षिते चापि किञ्चन ॥५८॥
पत दीनं स्वनं कृत्वा न स्निग्धस्य न जीव च

शान्त (सीने) उपाय से हन आने-जाने पर जो जाने में सबैसा समझ नहीं है, परन्तु इस उपकारी ब्राह्मण को कोई दण्ड देना भी उचित नहीं है। श्रमजिये मैं अनुसारी से एक नई युक्ति कर रहा हूँ। आप सभी इसका समर्थन करें ॥५१-५२॥

ब्रह्मा ने कहा—इसने उदात्त उन श्रेष्ठ ब्राह्मणों ने कहा—‘दीन है, ऐसा ही बीजिये। लोभ-हिंसा की दृष्टि से इस श्रेष्ठि न उपाय एक हम सभी ब्राह्मणों ने ब्रह्मण की दृष्टि से जो कुछ आपको श्रेष्ठतर जान पड़े वैसा ही करें। गणनायक ने ब्राह्मणों की स्वीकृति सुनकर उनसे बचना की सलाहना की। पुनः कहा कि जो गौतम ने गुण और प्रतिष्ठा के अनुसूच हो विविध रूप से उसी कार्य को करना चाहिए ॥५३-५५॥

ब्रह्मा बोले—बार-बार उन सभी ब्राह्मणों को सान्त्वना देकर और उनका सम्मान प्राप्त कर उदार बुद्धि गणेश जी ने स्वयं ब्राह्मण का रूप धारण किया और पुनः ब्राह्मणों को प्रणाम किया। अपनी माना की भी स्वीकृति लेकर विद्वान् गणेश न ब्रह्मा से कहा ॥५६॥

विनायक बोले—अननुसूच। जिसको दूसरे न जान मर्ते इस रूप में कार्य करा। गुमगौ का रूप धारण कर उहाँ गौतम है वहाँ जाओ। भामिनि। वहाँ जाकर पावन स्थान लप्यो अपना उसको पैरों में चुम्बकर नष्ट कर दो। इसका दण्ड कर यदि गौतम मारें या हुंकार के साथ मुहारी और देंगे, तो मुसल धरो आतंताद कर फिर आओ। न तो मरना न तो जीना ही, अथवा ही पड़ जाना ॥५७-५८॥

ब्रह्मोवाच ,

तया चकार विजया विघ्नेश्वरमते स्थिता । यत्राऽऽसीदगौतमो विप्रो जया गोरूपधारिणी ॥५९॥
जगाम शालीन्खादन्तो ता ददर्श स गौतम । गा दृष्ट्वा विकृता विप्रस्ता तृणेन न्यवारयत ॥६०॥
निवार्यमाणा सा तेन स्वन कृत्वा पपात गौ । तस्या तु पतिताया च हाहाकारो महानभूत ॥६१॥
स्वन श्रुत्वा च दृष्ट्वा च गौतमस्य विचेष्टितम् । व्यथिता ब्राह्मणा प्राहुर्विघ्नराजपुरस्कृता ॥६२॥

ब्राह्मणा ऊचुः

ह्रस्वतो गच्छामहे सर्वे न स्यातव्य तवाऽऽश्रमे । पुत्रवत्पोषिता सर्वे पृष्टोऽसि मुनिपुंगव ॥६३॥

ब्रह्मोवाच

ह्रस्वति श्रुत्वा मुनिर्वाप विप्राणा गच्छता तदा । ब्रह्माहत इवाऽऽसीत्स विप्राणा पुरतोऽपतत ॥६४॥
तमूचुर्ब्राह्मणा सर्वे पश्यमा पतिता भुवि । रक्षाणां मातर देवीं जगता पावनीं प्रियाम् ॥६५॥
सीर्षदेवस्यरूपिण्यामस्या गवि विधर्बलात । पतिताया मुनिश्चेष्ट गतव्यमवशिष्यते ॥६६॥
चीर्णं व्रत क्षय याति यथा वासस्त्वदाश्रमे । वय नान्यधना ब्रह्मकोबल तु तपोधना ॥६७॥

ब्रह्मा बोल—विघ्नराज के भक्त की मान कर जया ने बसा ही किया । वह जया गो रूप धारणकर वहाँ गई जहाँ विप्र गौतम विराजमान थे । वह जाकर चावल खाने लगी । गौतम ने चावल खासी हुई उस गाय को देखा और उसे दुबल जानकर एक दिनके से उसको हाकने लगे । उसको गौतम हाँक रहे थे कि वह निबल गौ करणोजनक पन्धन कर गिर पड़ी । उसके गिर जाने पर वहाँ महान् हाहाकार हुआ । गौ की आतष्वनि को सुनकर और गौतम की चेष्टाभा को देखकर वे ब्राह्मण बहुत दुःखी हुये और विघ्नराज के साथ जाकर गौतम से धोले ॥५९ ६२॥

ब्राह्मणों ने कहा—हम सभी यहाँ से जा रहे हैं तुम्हारे आश्रम म रहना अब उचित नहीं । मनिवय ! तुमने पुत्र के समान हम लोगों का पालन किया है इसलिये हम तुमसे विदा ले रहे हैं ॥६३॥

ब्रह्मा बोल—मुनि गौतम उस समय ब्राह्मणा की बात सुनकर और आश्रम से उनको जात देखकर ब्रह्माहत-से हो गये और ब्राह्मणों के सामने पृथ्वी पर गिर पड़ । ब्राह्मणा ने कहा—ससार को पवित्र करने वाली प्रिय इस रक्षो की माता को जो परती पर पड़ी हुई है देखो । काल की प्ररणा से तीक्ष्ण-देव-रूप गौ के इस प्रकार मूर्च्छित हो गिरने पर मुनिश्चेष्ट ! हम लोगों का यहाँ से चला जाना ही एकमात्र उचित उपाय है । अब तुम्हारे आश्रम में पूव की भाँति निवास करने से हमारा यह चिरसञ्चित व्रत (पुण्य-तप) नष्ट हो जायगा । ब्रह्मन् ! हम लोगों के पास अन्य कोई धन नहीं केवल तप ही धन है । ॥६४ ६७॥

ब्रह्मोवाच

विप्राणां पुरतः स्थित्वा विनीतः प्राह गौतमः

॥६८॥

गौतम उवाच

भवन्त एव शरणं पूतं मा कर्तुमर्हय

॥६९॥

ब्रह्मोवाच

ततः प्रोवाच भगवान्विघ्नराजब्राह्मणवृन्दं

॥७०॥

विघ्नराज उवाच

न वै यः म्रियते तत्र नैव जीवति तत्र किम् । यदा मोऽस्मिन्नुसदिग्धे निष्कृतिः गतिमेव वा ॥७१॥

गौतम उवाच

कथमुत्थास्यतीयः गौरयः चास्मिन्निष्कृतिम् । यत्तुमर्हय तत्सर्वं करिष्येऽहमसशयम् ॥७२॥

ब्राह्मणा ऊचुः

सर्वेषां च मतेनायं वदिष्यति च शुद्धिमान् । एतद्वाक्यमथास्माकं प्रमाणं तव गौतम ॥७३॥

ब्रह्मोवाच

ब्राह्मणं प्रेर्यमाणोऽसौ गौतमेन बलीयसा । विघ्नकृद्ब्रह्मवपुषा प्राह सर्वानिदं वचः ॥७४॥

ब्रह्मा बोले—ब्राह्मणों की इन बातों को सुनकर गौतम ने विश्व के सामने विनीत भाव से खड़े होकर कहा—
मेरे एक मात्र सहायक आप ही लोग हैं । आप लोग मुझ अवश्य पवित्र करने में समर्थ हैं ॥६८-६९॥

ब्रह्मा न कहा—गौतम की वरुण वातों को सुनकर ब्राह्मणा से घिरे हुए विघ्नराज ने कहा—‘यह गौ न ही मरी ही है और न तो जीवित ही जान पड़ती है । तो इससे क्या प्रयोजन ? मैं इस अत्यन्त सन्देहजनक अवसर पर इसके बचाव और उद्धार का उपाय बताता हूँ ॥७०-७१॥

गौतम ने कहा—यह गौ जिस प्रकार उठ खड़ी होगी और मेरे इस पाप का प्रायश्चित्त कैसे होगा इसको आप लागू बतायें । मैं निश्चय ही उन सब बातों का पालन करूँगा ॥७२॥

ब्राह्मणों ने कहा—गौतम । सबकी ओर से यह चतुर ब्राह्मण कहेगा । इससे बड़े वचन हमारे और आपके लिए प्रमाण स्वरूप होंगे ॥७३॥

ब्रह्मा बोले—ब्राह्मणा और स्वयं तपस्वी गौतम की प्रेरणा से ब्राह्मण वेदाचार्य उस विघ्नराज ने सबकी सुनाकर यह कहा ॥७४॥

विघ्नराज उवाच

सर्वेषां च मतेनाह वदिष्यामि यथार्थवत् । अनुमन्यन्तु मुनयो मद्वाक्यं गीतमोऽपि च ॥७५॥
महेदवरजटाजूटे ब्रह्मणोऽध्यस्तजन्मन । कम्पङ्कलस्यित वारि तिप्यतीति हि क्षुभ्रम् ॥७६॥
तदानयस्य तरसा तपसा नियमेन च । तेनाभिधिञ्च गामेता भगवन्भुवमाश्रिताम् ॥
ततो वत्स्यामहे सर्वे पूर्ववत्तव वेदमनि ॥७७॥

ब्रह्मोवाच

इत्युपतवति विघ्ने ब्राह्मणानां च सप्तदि । तत्रापतत्युप्पवृष्टिर्जपदाब्धौ ध्यवर्धत ॥
तत कृताञ्जलिर्नम्रो गीतमो वाक्यमब्रवीत् ॥७८॥

गीतम उवाच

तपसाऽग्निप्रसादेन देवब्रह्मप्रसादत । भयता च प्रसादेन मत्सकल्पोऽनुसिध्यताम् ॥७९॥

ब्रह्मोवाच

एवमस्तिवति त विप्रा आपुच्छन्मुनिपुण्यम् । स्वानि स्थानानि ते जम्मु समृद्धान्यत्रवारिभि ॥८०॥
यातेषु तेषु विप्रेषु भ्राना सह गणेश्वर । जयया सह सुप्रीत कृतकृत्यो न्यवर्तत ॥८१॥
गतेषु ब्रह्मबुन्देषु गणेशे च गते तथा । गीतमोऽपि मुनिश्रद्धस्तपसा हतसत्त्वम् ॥८२॥

विघ्नराज बोले—मैं सारा प्रणाम और राय से यथावत् बात कह रहा हूँ। आप यहाँ के उपस्थित सभी मुनि और गौतम मरी बात का सम्मेलन करें। भावना गहरा के जगन्नाथ के अत्यन्त प्रमाण ब्रह्मा के वक्ताओं का पवित्र जन्म स्थान है ऐसा हम सभी सुनते हैं। उस जन्म का योग-माधना सप्तम्या या नियमानुसार अनुष्ठान से जानो। भगवान्! उन्हीं को इस धरता पर बना भी पर उड़िका। ऐसा करने से ही हम सभी पहले की भाँति पुनः आश्रय में रह सकेंगे ॥७५७॥

ब्रह्मा बोले—ब्राह्मणों की उस समा में विप्र-श्रद्ध के इतना करने पर वहाँ आवागम सप्तम्या का वषाहट और तारा का जन्म-रति हुई। तदनन्तर गौतम ने अञ्जलि वाक्य कर बड़ी भक्ति से यह कहा—॥७८॥

गीतम बोले—सप्तम्या अग्नि-व की वृषा देवा और ब्राह्मणों के अनुपह और अल्प लागा की दया से मरा यह मन्त्र मिष्ट हो ॥७९॥

ब्रह्मा बोले—तुम्हारे सहस्र पूज हुए ऐसा कहकर ब्राह्मणों ने उस मुनिवर गौतम से विना केवल अन्न और जल से समृद्ध अन्न-अन्न निवास-स्थान का चले गये। उन ब्राह्मणों के चल जान पर जया और भाई (स्वल्प) के साथ गहरा प्रसन्नता में वृत्ति होकर लौट गये। उन ब्राह्मणों और भक्तों की वक्ता जाने पर मुनिश्रद्ध अन्नम भी सप्तम्या से अन्न की निष्ठा सम्यक् कर इस धरता पर विचार करने लगे। वे सोचने लगे कि मेरे द्वारा यह क्या हुआ। इस प्रकार बार-बार ध्यान करने पर अन्त में अपने ज्ञान से इन सब बातों को जान गये। दक्ष-बाप

ध्यायस्तदयं स मुनि किमिदं मम सस्थितम् । इत्येव बहुशो ध्यायञ्जानेन ज्ञातवान्निज ॥८३॥
 निश्चित्य देवकार्यार्थमात्मनः क्लिप्त्वा गतिम् । लोकानामुपकारं च शभो प्रीणनमेव च ॥८४॥
 उमाया प्रीणनं चापि गङ्गानयनमेव च । सर्वं श्रेयस्करं मन्ये मयि नैव च क्लिप्त्वा ॥८५॥
 इत्येव मनसा ध्यायन्तुप्रीतोऽभूद्विजोत्तम । आराध्य जगतामोशं त्रिनेत्रं वृषभध्वजम् ॥८६॥
 आनयिष्ये सरिच्छ्रेष्ठां प्रीतास्तु गिरिजां मम । सपत्नीं जगदम्बायां महेश्वरजटास्थितां ॥८७॥

एव हि सवत्स्य मुनिप्रवीरः, स गौतमो ब्रह्मगिरेजंगमः ।

कलासमाधिष्ठितमुपपन्नना, सुराचितं प्रियया ब्रह्मवन्दं

॥८८॥

इति श्रीमहापुराणे आदिद्वाहो स्वयम्भूतिसंवादे तीर्थमाहात्म्ये विनायकगौतमव्यापार-

निरूपणं नाम चतुःसप्ततितमोऽध्यायः ॥७४॥

गौतमीमाहात्म्ये पञ्चमोऽध्यायः ।

अथ पञ्चसप्ततितमोऽध्यायः

गौतमकृतमुमामहेश्वरस्तवनम्

नारद उवाच

कलासशिखरं गत्वा गौतमो भगवानूचि । किं चकार तपो वाऽपि का चक्रे स्तुतिमुत्तमाम् ॥१॥

का निदि अरने पापा का उद्धार सत्तार का बल्याण उमा और गङ्गा की प्रसन्नता और गंगा का पृथ्वी पर आपदन य समा बल्याणकर है । इसमें मुन कार्द पाप नष्टा गंगा । इस प्रकार मन में ध्यान करत हुए वह द्विजवर अत्यन्त प्रसन्न हुआ । उनमें प्रतिभा की वि में जगन् के स्वामी वृषभध्वज त्रिनेत्र की आराधना कर पवित्र नदी गंगा को अवश्य न उमा । गिरिजायां शायनी और जगमाता की सीत महेश्वर की जग में रहने वाली गंगा मुन पर प्रसन्न हा । इस प्रकार वह मुनिवर गौतम अनेक मंत्रों से मन्त्र कर ब्राह्मण वन्दन के आराधनासार ब्रह्मगिरि को छोड़कर देवा में पूजित बंगाल परत पर गये जहाँ उग्र घनुर धारण करने वाले शम्भु, प्रिया पावती के साथ रहने थे ॥८०-८८॥

श्री ब्रह्ममहापुराण में गंगा और गौतम के बीच निरूपण नामक चौहत्तरवीं अध्याय समाप्त ॥७४॥

अध्याय ७५

गौतम द्वारा उमा और महेश्वर की स्तुति

नारद ने कहा—भगवान् श्रेष्ठ गौतम ने बंगाल गिर पर जाकर गौतमी तट पर गंगा की या गौतमी उत्तम स्तुति की ॥१॥

ब्रह्मोवाच

गिरिं गत्वा ततो॑ वत्स वाच सयस्य गौतम । आस्तीर्य स कुशान्प्राज्ञं कैलासे पर्वतोत्तमे ॥२॥
उपविश्य शुचिर्भूत्वा स्तोत्रं चेद ततो जगौ । अपतत्पुष्पवृष्टिद्वयं स्तूयमाने महोदधरे ॥३॥

गौतम उवाच

भोगार्थिना भोगमभोप्सितं च, दातु महान्वयष्टवपूयि घत्ते॑ ।
सोमो जनानां गुणवन्ति नित्यं, देव महादेवमिति स्तुवन्ति ॥४॥
कर्तुं स्वकीर्यैर्विषयं सुखानि, भर्तुं समस्त सचराचरं च ।
सपत्न्ये ह्यस्य॑ विबुद्धये च, महोमय रूपमितोश्चरस्य ॥५॥
सृष्टे स्थिते सहरणाय भूमेराधारमाधानुमया स्वरूपम् ।
भजे शिव शान्ततनुर्जनानां, सुखाय धर्माय जगत्प्रतिष्ठितम्॑ ॥६॥
‘कालव्यवस्थाममृतलव च, जीवस्थिति सृष्टिमथो विनाशनम् ।
मुद प्रजानां सुखमुन्नतिं च, चक्रेऽर्कचन्द्राग्निमय शरीरम् ॥७॥
धृष्टि गति शक्तिमयाक्षराणि, जीवव्यवस्था मुश्मत्पनेकाम् ।
स्वप्नु कुत वायुरिति शरूप, स्व वेत्ति नूनं भगवन्भवन्तम् ॥८॥

ब्रह्मा बोले—वत्स ! तदनन्तर विवेकी गौतम पर्वत पर जाकर अपनी बाणी को वक्ष में कर कुशाभी को बिछा कर पर्वतो में श्रद्धा कैलाश पर बैठ गये । पुनः पवित्र होने के बाद जब वे यह स्तोत्रगान करने लगे तो फूलों की वर्षा होने लगी ॥२॥ ३॥

गौतम ने कहा—जो भगवान् सोम (सकर) भोग चाहने वाले मनुष्यों की भोगेच्छा की पूर्ति और मनचाहे पदार्थों को देने के लिये आठ महान् शरीरों को धारण करते हैं और जिस नियम देव को विवेकी जन महादेव कहकर स्तुति किया करते हैं ॥४॥ जिस ईश्वर ने समस्त चर-अचर जगत् को अपनी महिमा से उत्पन्न पदार्थों से सुख देने के लिए और इसका मरण पोषण करने के लिये इसको एवमय युक्त बनाने तथा इसकी समष्टि के लिये महोमय (पृथ्वी) रूप धारण किया है ॥५॥ जिस शान्त वतु शिव ने सज्जन पालन और सहार के लिये भूमि का आधार रूप बनने के लिए (अर्थात् पृथ्वी को सहारा देने के लिये) जन समष्टि को सुख देने के लिए और धर्म की रक्षा के लिये लोक प्रसिद्ध जल के रूप को धारण किया है ॥६॥ जिसने अपने सूर्य चन्द्र और अग्निमय शरीर से समय की व्यवस्था (सूर्यरूप से) सुषा की कृष्टि (चन्द्ररूप से) जीव की स्थिति (पालन) सृष्टि और विनाश (अग्निरूप से) किया है एवं प्रजा को सुख आनन्द और उन्नति दी है ॥७॥ भगवन् ! ऐसे आपने ब्रह्म गति शक्ति और अक्षर (नियम पदार्थ) जीव व्यवस्था तथा अनेक प्रकार के आनन्द की सृष्टि करने के लिये ही वायु इस ईशरूप (शक्तिशाली स्वरूप) को धारण किया है । आप स्वयं इन सब रहस्या को निरचय ही जानते हैं ॥८॥

भेदैर्विना नैव कृतिर्न धर्मो, नाऽऽत्मीयमन्यत्र दिशोऽन्तरिक्षम्	।
द्यावापृथिव्यौ न च भुक्तिमुक्ती, तस्मादिदं व्योमवपुस्तवेश	॥९॥
धर्मं व्यवस्थापयितुं व्यवस्य, ऋक्सामशास्त्राणि यजुश्च शाखा	।
लोके च गाथा स्मृतयः पुराणमित्यादिशब्दात्मकतामुपैति	॥१०॥
यष्टा क्रतुरन्यपि साधनानि, ऋत्विक्प्रदेशः (य) फलदेशकाला	।
त्वमेव शभो परमार्थतत्त्व, वदन्ति यज्ञाङ्गमयं यपुस्ते	॥११॥
कर्ता प्रदाता प्रतिभू प्रदान, सर्वज्ञसाक्षी पुरुष परश्च	।
प्रत्यात्मभूत परमार्थरूपस्त्वमेव सर्वं किमु वाग्बिलासं	॥१२॥
न वेदशास्त्रैर्गुंरभिः प्रदिष्टो, न नासि' बुद्ध्यादिभिरप्रवृष्य	।
अजोऽग्रमेव 'शिवशब्दवाच्यस्त्वमस्ति (मेव) सत्यं भगवन्ममस्ते	॥१३॥
आत्मैकता स्वप्रकृतिः कदाचिदंक्षच्छिवः सपदियं 'ममेति	।
पृथक्तदंबाभवदप्रतयर्थाचिन्त्यप्रभावो बहुविश्वमूर्ति	॥१४॥
भावोऽभिबुद्धा' च भवे भवे च, स्वकारण कारणमास्थिता च	।
नित्या शिवा सर्वसुलक्षणा या, विलक्षणा विश्वकरस्य शक्ति	॥१५॥

ईश ! भेदा के बिना न तो कृति न धर्म न जातीयता न अन्य पदार्थ न दिगाय न अन्तरिक्ष न आकाश न पृथिवी और न भुक्ति या मुक्ति वही ही वस्तुता सम्भव हो सकती है। अतः हे नाथ ! इसलिए यह जो है वह तुम्हारा ही है ॥९॥ आग इस लोक में धर्म की व्यवस्था (स्थापना) करने के लिये ऋक् यजु साम आदि वेद और गाथाय तथा शास्त्र गाथाय स्मृतियाँ और पुराण आदि शब्दामक रूप धारण करते हैं ॥१०॥ यज्ञवर्ता यज्ञ सभी सामान ऋत्विक् प्रयोग फल दान और बाल एवं परमार्थतत्त्व आदि सब कुछ तुम्हीं हो। तुम्हारा शरीर यज्ञागमय है ॥११॥ वर्त्ता प्रजाता प्रतिभू (जातिन) प्रजान सबन साक्षी सर्वोपरि पुरुष सब ज्ञाता म देव मान रहन बा और परमाय रूप आदि सब कुछ तुम्हा हो। इस विषय में अधिक कहने में क्या लाभ ॥१२॥ तुम वेद शास्त्र और गुरुता म भी अन्य हूँ अर्थात् वेद शास्त्र और ऋषि मुनिय म भी तुम्ह नही जान पाया। बुद्धि आदि की पटुच म तुम परे हो। तुम अत्र (जम रहिन) अग्रमय (बुद्धि स न जानन योग्य) और निव शब्द के वाच्य (अर्थ) हो। भगवन् ! तुम्हा एकमान मय हो। इसलिये सत्यरूप भगवान् का मरा नमस्कार है ॥१३॥ जब किसी समय अपने म लीन अपनी प्रकृति को यह मरा सत्य मोक्ष हो इस रूप म देवने लगन हो उमी समय यह प्रकृति तुमम अलग हो जाना है और अप्रत्यक्ष (निमग्न विषय अतः न दिया जा सक) अर्थात् प्रभाव (निमग्न प्रभाव न जाना जा सक) तुम विन्ध्य न अनेक रूप म मूर्तिमान् हो जात हो ॥१४॥ समार न रक्षयिता शत्रु की निय सब मुक्तता से यज्ञ निरा विरक्षण शक्ति है जो अपना स्वय कारण हान हुए भी मगार का कारण है

१५ ओंठो नाना मि। १४ नाम्नि सु०। ३५ ०गति वा०। ४४ ०नि। वृषा म००। ५५ ०१, ५४ मिमो मरस्य या वाग्ध कारणका यज्ञानी। नि०।

उत्पादन सस्थितिरक्षवृद्धिलया सता यत्र सनातनास्ते	।
एकैव' मूर्तिर्न समस्ति किञ्चिदसाध्यमस्या दयिता हरस्य	॥१६॥
यदर्थमनानि धनानि जीवा, यच्छन्ति कुर्वन्ति तपांसि धर्मान्	।
साऽपीयमम्बा जगतो जनित्री, प्रिया तु सोमस्य' महासुकीर्ति	॥१७॥
यदीक्षित काङ्क्षति वासवोऽपि, यन्नामतो मङ्गलमानुषाच्च	।
या व्याप्य विश्व विमलीकरोति', सोमा सदा सोमसमानहृषा	॥१८॥
ब्रह्मादिजीवस्य' चराचरस्य, बुद्ध्यक्षिचैतन्यमन सुखानि	।
यस्या प्रसादात्फलवन्ति नित्य, वागीश्वरो लोकगुरो सुरम्या	॥१९॥
चतुर्मुखस्यापि मनो मलीन, किमन्यजन्तोरिति चिन्त्य माता	।
गङ्गाऽवतार विविधैरुपायै, सर्वं जगत्पावयितुं चकार	॥२०॥
श्रुती समालक्ष्य हरप्रभुत्व, विश्वस्य लोक सकलं प्रमाणं	।
कृत्वा च धर्मान्बुभुजे च भोगानविभूतिरेषा तु सदाशिवस्य	॥२१॥
कार्यत्रियाकारकसाधनानां, वेदोदितानामथ लौकिकानाम्	।
यत्साध्यमुत्कृष्टतमं प्रियं च, प्रोक्ता च सा सिद्धिरनादिकर्तुं	॥२२॥

और जो मय (जन्म) मय म अपने भाव मे अभिवृद्ध है ॥१५॥ शरर की सनातन शक्ति से ही विश्व के पदार्थों की उत्पत्ति सत्पति पालन होता है और पुन उसी म लय भी हो जाता है इस प्रकार शरर की एक ही शक्ति के लिये इन ससार म कुछ भी अमाध्य नहीं है। जगत को पैदा करने वाली जिस जननी को ससार के जीव अन्न और धन का उपहार देते हैं और जिसकी प्रसन्नता के लिये तपस्या करते हैं वह जन्म गोमन कीर्ति वाली जगज्जननी शिव की प्रिया है ॥१६ १७॥ इन्द्र भी जिस शिव प्रिया शिवा की रूप को चाहते ह जिसके नाम लेने से ही कल्याण की प्राप्ति होती है जो इन विश्व मे व्यापक होकर इसको निमल बना देती है यानी तमोगुण का नाश कर देती है वह सोमा (गिवा) सदा सोमम्बहृष (गिस्वम्प) ही है ॥१८॥ ब्रह्मा म शरर चराचर जीव की वृद्धि नेत्र चैतन्य (गान) मन और मुख जिस लोक-गुरु की स्वरणीय वागीश्वरी की प्रसन्नता और रूप से पश्यु न होने है उस माता ने अय जन्तुत्रा की वीन बड़े ब्रह्मा के भी मन को मन्त्रि धक्कर विविध उपाया मे ससार का पवित्र करने के लिये गंगा को पृथ्वी पर अवतरित किया ॥१९ २०॥ सम्पूर्ण ससार वेदो मे वर्णित गिद महिमा की समग्र कर समस्त प्रमाणा के आधार पर विविध विधि नियमा नी कल्पना कर जो विविध भोगा का भोग कर रहा है यह सब सदाशिव शरर की ही विभूति है (उनका ही गमाय है) ॥२१॥ वेदोक्त अथवा लौकिक कार्य श्रिया शरर और साधना का जो परम उत्कृष्ट प्रिय साध्य है वह अनादि समग्र स्रष्टा शरर की विधि ही है अर्थात् वैदिक लौकिक कार्य-कलाप और श्रयला का एषमात्र उद्देश्य शरर को प्रसन्न

१५ एवैव मन्त्रि सम्प्र स्ति किस्विन्न ध्यात्तमस्य २० १ २० अय सहस्र की० १ ३५ ०ति मा मा स० १
५६ ०दिवे० १ ५६ वृद्धयादिव० १

ध्यात्वा वर ब्रह्म पर प्रधान, यत्सारभूत यदुपासितव्यम्
 यत्प्राप्य मुक्ता न मुतर्भवन्ति, सद्योगिनो भुक्तिरुपापति स ॥२३॥
 यथा यथा शम्भुरमेयमापाहृपाणि घत्ते जगतो हिताय
 तद्योगयोग्यानि तथैव घत्से, पतिव्रतात्वं त्वयि मातरेवम् ॥२४॥

ब्रह्मोवाच

इत्येव स्तुतस्तस्य पुरस्तादवूयभध्वज । उमया सहित श्रीमान्गणेशादिगणैर्वृत ॥२५॥
 साक्षादागत्य त शम्भु प्रसन्नो वाक्यमब्रवीत् ॥२६॥

शिव उवाच

किं ते गौतम दास्यामि भक्तिस्तोत्रव्रतं शुभं । परितुष्टोऽस्मि याचस्व देवानामपि दुष्करम् ॥२७॥

ब्रह्मोवाच

इति श्रुत्वा जगन्मूर्तैर्वाक्य वाक्यविशारद । हृष्यवाप्यपरोताङ्गो गौतम पर्यचिन्तयत् ॥२८॥
 अहो दैवमहो धर्मो ह्यहो वै विप्रपूजनम् । अहो लोकगतिश्चिन्ता अहो धातर्नमोऽस्तु त ॥२९॥

गौतम उवाच

जटास्थितां गुभां गङ्गा दहि मे त्रिदशाक्षित । यदि तुष्टोऽसि देवेश प्रयोधाम नमोऽस्तु ते ॥३०॥

करना ही है ॥२२॥ जिस परम ब्रह्म सारभूत प्रधान तत्त्व का योगीजन ध्यान करने हैं जिसकी उपासना करते हैं और जिस तत्त्व का पाहण मुक्तजन आकाशमन के वाचन से शुरू करते हैं वे अच्छे योगीजन के मुक्तिप्राप्त उपासना पात्र ही हैं ॥२३॥ जगन् के वाक्यवाक्य के लिये जिस प्रकार भगवान् गुरु से जानने योग्य माया के रूप धारण करते हैं उमने अनुरूप ही हे माता पिता । तब भी उनम अपनी दक्ष परिमतिन धारण करती हो ॥२४॥

ब्रह्मा न ब्रह्मा—इस प्रकार गौतम की स्तुति सुनकर उसा सहित श्रीमात् गुरु जी मगन आदि गणा के साथ लिये हुये मृनि के गामने प्रयोग रूप में आज और प्रमप्रनापूर्वक गौतम से कहने का ॥२५॥ २६॥

गिव धोल—गौतम । तुम्ह क्या द । तुम्हारी मक्ति स्तुति और गुम धन के अनुष्ठान से प्रमत्र हैं । तुम वर मांगो देन-द्वय वर भी तुम्ह दूगा । ॥२७॥

ब्रह्मा धोल—जगन्मूर्ति गुरु की वाता का सुनकर वाणी प्रयोग में निगुण गौतम शान्त में रहने हो गए और मा में विचार करने लग गे अहा । दक्ष क्या है धम और विद्या की पूजा का क्या है अहा । गमार की मति भी क्या विविध है अहा । याता । आपकी नमस्कार है ॥२८॥ २९॥

गौतम धोल—वा है पूज्य गुरु । देवेश । यदि आप मुन पर प्रसन्न हैं तो अपनी जग में रहने वाला कल्याणी गंगा की मुक्त से दीजिये । हे त्रैलोक्यवाग्मि । आपकी नमस्कार है ॥३०॥

ईश्वर उवाच

प्रयाणामुपकारार्थं लोकांता याचित त्वया । आत्मनस्तूपकाराय तद्याचस्वाकुतोभय ॥३१॥

गौतम उवाच

स्तोत्रेणानेन ये भक्तास्त्वा च देवी स्तुवन्ति वः । सर्वकामसमूहा स्युरेतद्धि धरयाम्यहम् ॥३२॥

ब्रह्मोवाच

एवमस्त्विति देवेदा परितुष्टोऽब्रवीद्वच । अन्यानपि वरान्भक्तो याचस्व विगतज्वर ॥३३॥

एवमुक्तस्तु हर्षेण गौतम प्राह शकरम्

॥३४॥

गौतम उवाच

इमा देवी जटासंस्था पावनीं लोकपावनीम् । तव त्रियां जगन्नाथ उत्तुज ब्रह्मणो गिरौ ॥३५॥

सर्वासा स्तीर्यभूता तु यावद्गच्छति सागरम् । ब्रह्महत्यादिपापानि मनोवाक्कायिकानि च ॥३६॥

स्नानमात्रेण सर्वाणि विलयं यावन्तु शकर । चन्द्रसूर्योपरागे च अयने विषुवे तथा ॥३७॥

सन्नान्तौ बंधूतौ पुण्यतीर्थेष्वन्येषु यत्फलम् । अस्यास्तु स्मरणादेव सात्पुण्यं जायता हर ॥३८॥

श्लाघ्यं कृते तप प्रोक्तं त्रेताया यज्ञकर्म च । द्वापरे भज्जहाने च दानमेव फलौ युगे ॥३९॥

शकर ने कहा—तुम तू तीना लोक के उपकार के लिये यह याचना की है अपने उपकार के लिये भी कुछ भागो इसमें करने की का२ आवश्यकता नहीं ॥३१॥

गौतम ने कहा—जो भक्त इस स्तोत्र से आपकी ओर देवी गौरी की स्तुति कर वे भी अपनी सब कामनाओं से परिपूर्ण होकर विभवशाली बन यही वर मैं चाहता हूँ ॥३२॥

ब्रह्मा ने कहा—प्रसन्न भगवान् शकर ने कहा कि ऐसा ही हाँ तुम निष्कल हाकर दूसरे बरा को भी मुझसे भागो । इस प्रकार आवाहन पान पर गौतम ने प्रसन्न होकर शकर से कहा—३३ ३४॥

गौतम ने कहा—जगन्नाथ ! इस लोक को पवित्र कर देने वाली जन्म म रहन वाली अपनी पुनीत त्रियां गंगा को ब्रह्मगिरि पर छाड़ दा ॥३५॥ शकर ! सब तीर्थों का स्वर्ण यह गंगा जहाँ तक सागर म जाती है वहा तक अर्थात् जन्म म सगम तक इसके जल म स्नान करने मात्र से मनुष्या के ब्रह्महत्या आदि पाप अथवा मन बचन और शरीर से क्रिय गय पाप विनष्ट हा जाय ॥३६॥ अथ पवित्र तीर्थों म चन्द्र-सूर्यग्रहण के समय अथवा बाल म तथा विषुवकाल म सन्नान्ति और वषट्ति शोध मे स्नान करने से जो फल (पुण्य) मिलते हैं वे सब पुण्य इसके स्मरण मात्र से मिल जाय ॥३७ ३८॥ इतमृग म तपस्या व्रता म यज्ञ द्वापर म यज्ञ और दान तथा बलि युग म केवल दान महत्त्वपूर्ण कहा गया है ॥३९॥ इसी प्रकार युगधर्म तथा सब दानधर्म एवं दानकाल के संयोग म जो धर्म श्रष्ट माने गये हैं और अन्यत्र स्नान दान तप आदि से जो पुण्य प्राप्त होने हैं, हर ! वे सभी पुण्यफल

युगधर्माच्च ये सर्वे देशधर्मास्तथैव च । देशकालादिसंयोगे यो धर्मो यत्र शस्यते ॥४०॥
 यदन्यत्र कृतं पुण्यं स्नानदानादिसंयमे । अस्यास्तु स्मरणादव तत्पुण्यं जायता हर ॥४१॥
 यत्र यत्र त्वयि याति यावत्सागरगामिनी । तत्र तत्र त्वया भाव्यमथ चास्तु वरो वर ॥४२॥
 योजनानां तूपरि तु दश यावच्च सरयया । तदन्तरप्रविष्टानां महापातकिनामपि ॥४३॥
 तत्पितृणां च तेषां च स्नानायाऽऽनच्छता शिव । स्नानं चाप्यन्तरं मृत्योर्मुक्तिभाजो भवतु मे ॥४४॥
 एकतः सवतीर्थानि स्वर्गमत्यरसातले । एषा तस्यो विशिष्टा तु अलं शभो नमोऽस्तु त ॥४५॥

ब्रह्मोवाच

तदगोतमवच श्रुत्वा तथाऽस्त्वित्यब्रवीच्छिव । अस्या परतरं तीर्थं न भूतं न भविष्यति ॥४६॥
 सत्यं सत्यं पुनः सत्यं वेदे च परिनिष्ठितम् । सर्वेषां गोतमी पुण्या इत्युक्त्वाऽऽतरधीमत ॥४७॥
 ततो गतं भगवति लोकपूजिते, तदाज्ञया पूणबलं स गोतमं
 जटा समादाय सरिद्धरा ता, सुरैर्वृतो ब्रह्मगिरिं विवश ॥४८॥
 ततस्तु गोतमं प्राप्ते जटामादाय नारद । पुष्पदध्तिरभूत्तत्र समागम्य सुरेश्वरा ॥४९॥
 ऋषयश्च महाभागा ब्राह्मणा क्षत्रियास्तथा । जयशब्देन तं विप्रं पूजयन्तो मुदाबिता ॥५०॥
 इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे स्वयंभुव्हृषिसंवाद तीर्थमाहात्म्य गोतमस्तोत्रं नाम
 पञ्चसप्ततितमोऽध्यायः ॥५५॥
 गोतमीमाहात्म्यं पठोऽध्याय

इस (गोतमी) गंगा के स्मरण मात्र से मनुष्यों को मिल जाय ॥४०॥ ४१॥ जहाँ जहाँ यह जाय और जब तब सागर में न मिले वहाँ वहाँ आप अवश्य विराजमान रहें वही मरे लिये भूत वरदान होगा । फिर । इन क्षेत्रों में तब के भीतर रहनेवाले या इन सीमा तत्र प्रवां पा जाने वाले महापातकियों स्नान के लिये आप हुए मनुष्यों और उनके पिता का भी पाप इस गंगा में स्नान करने से नष्ट हो जाय और वे मनुष्य वे क्षत्रिय निश्चित रूप से मुक्ति के अधिकारी हो जाय । स्वर्ग संय और रसातल के सभी तीर्थों में यह अतिशय श्रेष्ठ है और सर्व में यह विनिष्ठ माना जाय । गंगा वसत यह इच्छा है । अब आपको मेरा नमस्कार है ॥४२॥ ४५॥

ब्रह्मा बोले—गोतम के (उपसक्त) गंगा को सुनकर गङ्गा में वहाँ एता हा हो गया । तब तीर्थ न तो हुआ और न होगा । यह सत्य है सत्य है पुनः सत्य है और वे स प्रमाणों है कि गोतमी सब तीर्थों से विनिष्ठ तीर्थ है । यह कहकर वे अलङ्कित हो गये ॥४६॥ ४७॥ तदनन्तर गङ्गाभूजित भगवान् गङ्गा के चले जाने पर उनका आज्ञा से पूज्यमान और तपस्वीगाली गोतम गिरि की जगह और उत्तम स्थित सरिता गिरामण गंगा से स्नान देनात्रा के सहित ब्रह्मगिरि पर आप ॥४८॥

गङ्गा जगह के स्नान कर मुनि गोतम अनेक आश्रम में आये तब वहाँ (गङ्गा में) पूजा की वधि हुई सब देवता वृत्त उदरिये हो गए । माय-माय ऋषिगण मायगंगा ब्राह्मण तथा क्षत्रिय सभी वहाँ एकत्रि हो गए और वह आनन्द में गोतम की पूजा कर जयजयकार करने लगे ॥४९॥ ५०॥

या ब्रह्मपुराणे न गंगानयनं नामा पञ्चसप्ततितमोऽध्यायः समाप्तः ॥५५॥

अथ षट्सप्ततितमोऽध्यायः ।

स्वर्गादौ पञ्चदशाकृत्या गङ्गाया गमनम्

नारद उवाच

महेश्वरजटाजूटाद्गङ्गामादाय गौतम । आगत्य ब्रह्मण पुण्ये तत किमकरोद्गिरी ॥१॥

ब्रह्मोवाच

आदाय गौतमो गङ्गां शुचि प्रयतमानस । पूजितो देवगन्धर्वस्तथा गिरिनिवासिभि ॥२॥
गिरेर्मूर्ध्नि जटा स्थाप्य स्मरन्देवं त्रिलोचनम् । उवाच प्राञ्जलिर्भूत्वा गङ्गा स द्विजसत्तम ॥३॥

गौतम उवाच

त्रिलोचनजटोद्भूते सर्वकामप्रदायिनि । क्षमस्व मात शान्ताऽसि सुखं याहि हितं कुरु ॥४॥

ब्रह्मोवाच

एवमुक्ता गौतमेन गङ्गा प्रोवाच गौतमम् । दिव्यरूपधरा देवी दिव्यलग्ननुलेपना ॥५॥

गङ्गोवाच

गच्छेयं देवसदनमथवाऽपि कमण्डलुम् । रसातलं वा गच्छेय जातस्त्व सत्यवागसि ॥६॥

अध्याय ७६

१५ रूपवनाकर स्वर्गं आदि में गंगा का गमन

नारद ने पूछा—महेश्वर की जटा से गंगा को ले आने के बाद गौतम ने उस पवित्र ब्रह्मगिरि पर क्या किया ॥१॥

ब्रह्मा बोले—पवित्रात्मा, सयमी गौतम जब गंगा को लेकर उस पर्वत पर आये तब देव गन्धर्व और पर्वत-निवासिने उनकी बड़े प्रेम से पूजा की । पर्वत के शिखर पर जटा की स्थापना कर त्रिनेत्र शंकर का स्मरण करते हुए उन्होंने गंगा से कहा ॥२-३॥

गौतम बोले—त्रिलोचन की जटा से उत्पन्न होने वाली । सब मनोरथों को पूरा करने वाली माता । आप अपराधों को क्षमा कीजिये । आप शान्तिपूर्वक सुख से जायें और हम योग का कल्याण करें ॥४॥

ब्रह्मा ने कहा—गौतम की प्राचना सुनकर दिव्य रूप धारण करने वाली और दिव्य माना तथा लेप से विभूषित अगा वाली गंगा ने कहा ॥५॥

गंगा ने कहा—मैं देवलोक जाऊँ या ब्रह्मा के कमण्डलु में अथवा रसातल जाऊँ ? तुम सत्यवादी मानव हो, इसलिये बतलाओ ॥६॥

गीतम उवाच

॥ त्रयाणामुपकाराय लोकानां पाविता मया । शुभानां च तथा चत्ता देवि तन्नाम्यया भवत ॥३॥

ब्रह्मोवाच

तद्गीतमथ च श्रुत्वा गङ्गा मेने द्विर्जरेतम् । त्रेधाऽऽत्मानं विभज्याय स्वर्गमत्यरसात् ॥८॥
स्वर्गे चतुर्धा व्यगमत्सप्तधा मर्त्यमण्डले । रसात्तले चतुर्थं सव पञ्चदशावृत्ति ॥९॥
सर्वत्र सर्वभूतैव सर्वपापविनाशिनी । सर्वकामप्रदा नित्यं सैव भवे प्रगीयते ॥१०॥
मर्त्यमित्यंगतामेव पश्यन्ति न तल गताम् । नैव स्वर्गता मर्त्या पश्यत्यज्ञानबुद्धयः ॥११॥
यावत्सागरया देवो तावद्देवमयो स्मृता । उत्सुष्टा गीतमनैव प्रायात्पूर्वाण्यव प्रति ॥१२॥
ततो देवर्षिभिर्जुष्टा मातर जगत् शुभाम् । गीतमो मुनिशार्दूलं प्रदक्षिणमयाकरोत् ॥१३॥
त्रिलोचन सुरेशान प्रथम पूज्य गीतम । उभयोस्तोरयो स्नानं करोमोति दधे सतिम् ॥१४॥
स्मृतमानस्तदा तत्राऽविरासीत्कल्याण्यम् । तत्र स्नानं कथं सिध्येदित्येव क्षयमब्रवीत् ॥१५॥
कृताञ्जलिपुटो भूत्वा भविततमस्त्रिलोचनम् ॥१६॥

॥३॥ ॥१॥ गीतम उवाच ॥३॥
देवदेव महेशान तीयस्नानविधिं मम । ब्रूहि सम्यग्महेशान लोकानां हितकाम्यया ॥३॥

गीतम ने कहा—तीना लोका व उपकार के लिय मैंने गमु से प्रायनापूर्वक आपको माँगा है । गमु ने भी इसी उद्देश्य से प्रदान किया है इसलिये देवि । इसने विपरीत नहीं होना चाहिए ॥३॥
ब्रह्मा ने कहा—एक बात सुन कर गया ने गीतम की बात मान ली और स्वर्ग मय एक रसात्तल में जल के लिये अपने को तीन भागा में बाँट कर स्वर्ग में बारह रूप से मत्स्यरूप में सात रूप में और रसात्तल में बारह रूप में प्रवेश किया । इस प्रकार गया की पन्द्रह आवृत्तियाँ हुई ॥८॥ ९॥ सब जगह सब रूप से सब प्राणा का दिवाग करनेवाणी तथा सबके मनोरथ को देने वाणी उस गया का वेणु न गान किया है ॥१०॥ मत्स्यरूपवासी अपने लोह का मय को हों देखत हैं रसात्तल वाली गया का महा । इसा प्रकार अपना व्यक्ति स्वयं में गया गया का भी नहीं ११ है ॥११॥ सागर तब की गया अर्थात् जिस स्थान पर गया सागर में मिल जाती है वहाँ तक वह दमनी नहीं जाती है ॥१२॥ इस प्रकार गीतम से छोटी बड़ी गया पूष सागर का आर पानी गद । तत्पश्चात् दक्षिणा द्वारा पूजित जगत् का कल्याण करने वाली गमु गया की मुनिशार्दूल गीतम न प्रशंसा की ॥१३॥ पूष रूप में गुरुवामी त्रिलोचन की पहले पूजा की और फिर मैं दाना तथा पर जाकर स्नान करे इस प्रकार का निश्चय मन में किया ॥१४॥ तब स्मरण मात्र से बरणा के सागर गमु नहीं प्रसन्न हो गये । गीतम ने हाथ जोड़कर प्रार्थना में विनम्र हावर गवर से बड़ा कि जिस विधि से मैं स्नान करूँ हुएपश्चात् आप बतलें ॥१५॥ १६॥

गीतम ने कहा—हे देव के देव महेशान । छोड़-हट कर अपना म आज आज प्रगीत में तीर्थ स्नान की विधि बतलाइये ॥३॥

शिव उवाच

महर्षे शृणु सर्वं च विधि गोदावरीभक्तम् । पूर्वं नान्वीमुख कृत्वा देहमुद्धि विधाय च ॥१८॥
 ब्राह्मणान्भोजयित्वा च तेषामाज्ञां प्रगृह्य च । ब्रह्मचर्येण गच्छन्ति पतितालापवर्जिता ॥१९॥
 मत्स्य हस्तो च पादौ च मन्दमन्त्रं तुल्यतम् । विद्या तपश्च कीर्तिश्च सा तीर्थफलमश्नुते ॥२०॥
 भायर्हुष्टि परित्यज्य स्वधर्मपरिनिष्ठित । श्रान्तसावाहन कुर्वन्वद्यादध्नं यथोचितम् ॥२१॥
 अकिञ्चनेभ्य साधुभ्यो दद्याद्वस्त्राणि कम्बलान् । शृण्वन्हरिकया विष्ण्यां तथा गङ्गासामुद्रवाम् ॥
 अनेन विधिना गच्छन्सम्पत्तीर्यफल लभेत् ॥२२॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये षट्सप्ततितमोऽध्याय ॥७६॥ ।

श्रीतमीमाहात्म्ये सप्तमोऽध्याय ॥७७॥

अथ सप्तसप्ततितमोऽध्यायः

श्रीतमीमहत्त्ववर्णनम्

ब्रह्मोवाच

श्रम्यवदन् इति प्राह शीतम मुनिभिर्युतम्

॥१॥

शिव ने कहा—महर्षि शीतम् । गोदावरी तीर्थ की गनी विधियां शृणु । पहले नाडी मुख आदि कर
 भोजन नि घटीर-मुद्धि करनी चाहिये । बुद्धि ब्राह्मणों को भोजन कराने के लिये अज्ञा के लिये ब्रह्मचर्य पूर्वक यात्रा
 प्रागम्य करनी चाहिये । मार्ग में पतिता स यज्ञाजय सर्वथा निषिद्ध है । त्रिषु मातृषु च ह्यथ वीर और मन वसा म
 रखने हैं एवं जो अपनी विद्या तप और कीर्ति पर अधिकार नहीं करता वही तीर्थ का फल प्राप्त करता है । अपनी
 आन्तरिक दुष्ट सावनाओं को छोड़कर अपने धर्म पर पूर्ण श्रद्धा रखकर यदि यात्रिया की घराबरा को दूर करके
 हुये यथावधि तीर्थोंपर अन्न प्रसाद करता चाहिये । दक्षिण और सामुद्रा में यन्त्र और कम्बल प्रसाद करना
 चाहिये और हरिनाम तथा स्वीकृत्य सेवा मन्त्रों की गुरुनी चाहिये । इन विधि में तीर्थयात्रा करा पर पूजक
 में तीर्थ का फल प्राप्त है ॥१८-२२॥

श्रीब्रह्मपुराण ७७ तीर्थमाहात्म्य प्रकरण में छिहत्तरवाँ अध्याय समाप्त ॥७६॥

अध्याय ७७

‘श्रीतमी वा महत्त्व-वर्णनं

ब्रह्मा बोले—इसके बाद ऋषिजी ने शिव के मुख से यह कह कहा ॥१॥

शिव उवाच

द्विहस्तमात्रे तीर्थानि सभविष्यन्ति गौतम । सर्वत्राह सनिहित सर्वकामप्रदस्तथा ॥२॥

ब्रह्मोवाच

गङ्गाद्वारे प्रयागे च तथा सगरसगमे । एतेषु पुण्यदा पुतां मुक्तिदा सा भगीरथी ॥३॥
 नमदा तु सरिच्छूष्ठा पर्वतेऽमरकण्टके । यमुना सगता तत्र प्रभासे तु सरस्वती ॥४॥
 कृष्णा भीमरथी चैव तुङ्गभद्रा तु नारद । तिसृणा सगमो यत्र तत्तीर्थं मुक्तिद नृणाम् ॥५॥
 पयोष्णी सगता यत्र तजत्पातच्छ मुक्तिदम् । इयं तु गौतमी वत्स यत्र वदपि ममाऽऽज्ञया ॥६॥
 सर्वेषां सर्वदा नृणां स्नानान्मुक्ति प्रदात्यति । किञ्चित्काले पुण्यतम किञ्चित्तीर्थं सुरागमे ॥७॥
 सर्वेषां सर्वदा तीर्थं गौतमी नात्र सशय । तिल कोट्योऽर्धकोटी च योजनानां शतद्वये ॥८॥
 तीर्थानि मुनिशार्दूल सभविष्यन्ति गौतम । इयं माहेन्द्रवरी गङ्गा गौतमी वंष्णवीति च ॥९॥
 ब्राह्मी गोदावरी नन्दा सुनन्दा कामदायिनी । ब्रह्मतेज समानीता सर्वपापप्रणाशनी ॥१०॥
 स्मरणादेव पापौघहर्त्री मम सदा प्रिया । पञ्चानामपि भूतानामाप श्रेष्ठत्वमागता ॥११॥
 तत्रापि तीर्थभूतास्तु तस्मादाप परा स्मृता । तासां भागीरथी श्रेष्ठा तान्योऽपि गौतमी तथा ॥१२॥

शिव बोले—गौतम । दो हाथ परिमित स्थानों पर तीर्थ रहते हैं और सबके मनोरथ को पूरा करने वाला मैं सब स्थानों पर सबदा विद्यमान रहता हूँ ॥२॥

ब्रह्मा ने कहा—हरिद्वार प्रयाग तथा गंगासागर सगम में मुक्तिदायिनी भागीरथी अधिक पुण्य देनेवाली है ॥३॥ नदियाँ में श्रेष्ठ नमदा अमरकण्टक पर्वत पर यमुना सगम क्षेत्र में और सरस्वती प्रभास क्षेत्र में अधिक पुण्यप्रद मानी गयी हैं ॥४॥ नारद । कृष्णा भीमरथी तुङ्गभद्रा ये क्षेत्रों नदियाँ जहाँ मिलती हैं वह तीर्थ मनुष्यों के लिये मो नदायक हैं ॥५॥ पयोष्णी नदी जहाँ सगम बनाती है वह स्थान और जो नदी उससे मिलती है दोनों मो प्रद हैं । वत्स । इस गौतमी गंगा में जहाँ-जहाँ भी स्नान किया जाय वह मेरी आज्ञा से सब लोगों को सर्वत्र मोक्ष प्रदान करेगी । कुछ तीर्थ किसी विनोद अवसर पर देवताओं ने आचमन पर अत्यन्त पुण्यदायक होते हैं परन्तु गौतमी सब के लिये सब काल में पुण्यप्रद तीर्थ है इसमें कुछ भी संदेह नहीं । तीन करोड़ पचास लाख दो सौ योजन परिमित क्षेत्र में हे मुनिगान्धर्व गौतम । बहुत से तीर्थ हैं और हमारे परन्तु ये माहेन्द्रवरी गंगा गौतमी वंष्णवी ब्राह्मी गोदावरी नन्दा सुनन्दा कामदायिनी आदि नदियाँ ब्रह्म तज से पृथ्वी पर लाई गयी हैं इसलिये सब पापों को नष्ट करने वाली हैं । परन्तु मेरी प्रिया गौतमी स्मरण मात्र से ही पाप-समूह का नाश करने वाली है । पापों महाभूतों में जल श्रेष्ठ है । उसमें भी तीर्थभूत जल अत्यन्त श्रेष्ठ माना गया है । उन तीर्थों में भी भागीरथी परमश्रेष्ठ मानी गई है परन्तु भागीरथी से भी गौतमी श्रेष्ठतर मानी गई है । मुने ! यद्यपि स्वर्ग पृथ्वी और पाताल के

आनीता सजटा गङ्गा अस्या नान्यच्छुभावहम् । स्वर्गे भुवि तले वाऽपि तीर्थं सर्वार्थदं मुने ॥१३॥

ब्रह्मोवाच

इत्येतत्कथितं पुत्र गौतमाय महात्मने । साक्षाद्धरेण तुष्टेन मया तव निवेदितम् ॥१४॥
एव सा गौतमी गङ्गा सर्वेभ्योऽप्यधिका भता । तत्स्वरूपं च कथितं कुतोऽन्या श्रवणस्पृहा ॥१५॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये सप्तसप्ततितमोऽध्यायः ॥७७॥

गौतमीमाहात्म्येऽष्टमोऽध्यायः ॥८॥

अथाष्टसप्ततितमोऽध्यायः

सगराख्यानकथनम्

नारद उवाच

द्विविधा संव गदिता एकाऽपि सुरसत्तम । एको भेदस्तु कथितो ब्राह्मणेनाऽऽहृतो 'यत ॥१॥
दात्रियेणापरोऽप्यतो जटास्वेव व्यवस्थित । भवस्य देवदेवस्य आहृतस्तद्वदस्व मे ॥२॥

समी तीर्थं मनोरथपूर्णं करने वाले हैं किन्तु गौतमी जटासहित वहाँ लाई गई है अतः इससे अधिक शुभदायक अन्य तीर्थ नहीं है ॥६१॥

ब्रह्मा बोले—पुत्र ! य सारी बात स्वयं हर ने प्रसन्न होकर गोत्रम से बड़ी धी जिह्मैने तुमसे कह दिया । इस प्रकार वह गौतमी गंगा सबसे अधिक श्रेष्ठ सिद्ध हुई । इसके स्वरूप का परिचय मैंने दे ही दिया अब अधिक क्या सुनने की इच्छा है ? ॥१४१५॥

श्रीब्रह्ममहापुराण मे तीर्थं माहात्म्य प्रसंग मे सप्तहत्तरवाँ अध्याय समाप्त ॥७७॥

अध्याय ७८

सगर का आर्यान्

नारद बोले—सुरप्रेष्ठ ! आपने उस एव ही गंगा के दो भेद कहे हैं उनमें से एक अथ जिस प्रकार ब्राह्मण द्वारा जहाँ से लाया गया उसको तो कह दिया अब दूसरा अथ जो कि देवदेव शिव की जटा में ही रह गया था, वह शपिण मनीरय द्वारा जिस प्रकार लाया गया उस भी कहने की इच्छा कर ॥१२॥

ब्रह्मोवाच

वैवस्वतान्वये जात इक्ष्वाकुकुलसम्भव । पुरा वै सगरो नाम राजाऽऽसीदतिथार्थिकः ॥३॥
यज्वा दानपरो नित्य धर्माचारविचारवान् । तस्य भार्याद्वयं चाऽऽसीत्पतिभक्तिपरायणम् ॥४॥
तस्य च सततिर्नाभूदिति चितापरोऽभवत् । यस्मिन् गृहमाहूय संपूज्य विधिवत्तत् ॥५॥
उवाच घचन राजा सतत कारणं प्रति । इति तद्वचनं श्रुत्वा ध्यात्वा राजानमब्रवीत् ॥६॥

वसिष्ठ उवाच

सपत्नीकं सदा राजनृपिपूजापरो भव

॥७॥

ब्रह्मोवाच

इत्युक्त्वा स मुनिर्विप्रं यथास्थानं जयाम ह । एकदा तस्य राजर्षेर्गृहमागतपोनिधिः ॥८॥
तस्यै पूजनं धत्ते स सत्पुष्टोऽब्रवीद्वचः । परं ब्रूहि महाभागत्पुत्र पुत्रासं चावृणोत ॥९॥
स मुनिः प्राह राजानमकस्माद् वशधारकः । पुत्रो भूयात्तयाऽयस्यां यस्मिन्साहस्रकं सुतः ॥१०॥
धर इत्वा मुनीं याते पुत्रा जाता सहस्रशः । स यज्ञासु बहूश्च हयमपासु दक्षिणान् ॥११॥
एकस्मिन् हयमधः च दक्षितो विधियन्तः । पुत्रान्ययोजयद्वाजा सप्तमा हयरक्षणे ॥१२॥
वचिर्वन्तरमासाद्य हयं जह्म शतक्रतुः । मार्गमाणांश्च स पुत्रा नवापश्य हयं तदा ॥१३॥

ब्रह्मा न कहूँ - प्राचीन काल में वैवस्वत नाम की इक्ष्वाकु कुल-परम्परा में सगर नाम का एक अमल धार्मिक राजा हुआ । वह धर्मानुरक्त आचार और विचार का पालन करता था और नियम-यत्नपूर्वक एव दान दिया करता था । उसकी दो पतिव्रता स्त्रियाँ थीं । सन्तानहीन होने का कारण वह सदा संतान-पिता में ही ढूँढ रहा था । एक दिन उमने घर-बगिचा का घर बलावर उमारी विचित्र हुआ तो । तत्पश्चात् तब राजान होन का कारण पूछा राजा का मन को सुनकर कुछ समय ध्यान करके वसिष्ठ वा ॥

वसिष्ठ ने कहा—राजन् तुम सदा पत्नी मन्त्रि अधिपूजा दिया करो ॥७॥

ब्रह्मा बोल—मन्त्रा बहुर मनि वसिष्ठ अपने स्थान को चले गए । एक दिन राजा ने घर एवं तटस्वी जाया ॥८॥ राजा ने उस अधि की भक्तिपूर्वक पूजा की । उमारी पूजा में प्रसन्न होकर अधि ने कहा— 'महामाण ! बर माँगे । तब राजा ने अधि से पुत्रोत्पत्ति का बर माँगा १९

मनि ने राजा से कहा—तुम्हारी एक स्त्री में क्या बच्चा बनाया जायगा पत्र होगा । दूसरी में गाठ हठार लड़के उत्पन्न होंगे ॥१०॥ इस प्रकार बर देकर मनि चले गए । पछर राजा ने मन्त्रा को उत्पन्न हुये । राजा ने बहुत से अवसेष एवं दिये विनम्र आदरणा को घरपूर लीला में ॥११॥ एवं अवसेष एवं म जत्र राजा ने विधिपूर्वक दीक्षा ली तब अपने पुत्रा को मना ने साथ यत्नावली रक्षा का नियम दिया ॥१२॥ किन्तु धनत्रु द्रु ने उस घोडा का हरण कर लिया । सगर-पुत्र पांड को दूध कर हार गया परन्तु कहा पंडा नहीं

सहस्राणां तु तथा यष्टिर्नाना युद्धविशारदा । तेषु पश्यत्सु रक्षासि पुत्रेषु सगरस्य हि ॥१४॥
 प्रोक्षित तद्वय नीत्वा ते रसातलमागमन् । राक्षसान्मायया युक्तान्नेवापश्यन्त सागरा ॥१५॥
 न दृष्ट्वा ते ह्य पुत्रा सगरस्य बलीयस । इतश्चेतश्चरन्तस्ते नैवापश्यन्हुय तदा ॥१६॥
 देवलोक तदा जग्मु पर्वताश्च सरासि च । वनानि च विचिन्वन्तो नैवापश्यन्हुय तदा ॥१७॥
 वृत्तस्वस्त्ययनो रागा ऋषिभिः कृतमङ्गलः । अदृष्ट्वा तु पशुरग्न्य राजा चिन्तामुपेयिवान् ॥१८॥
 'अदन्त सागरा सर्वे' देवलोकमुपागमन् । ह्य तमनुचिन्वन्तस्तत्रापि न ह्योजभवत् ॥१९॥
 ततो महीं समाजग्मु पर्वताश्च धानि च । तत्रापि च ह्य नैव दृष्टवन्तो नृपात्मजा ॥२०॥
 एतस्मिन्नन्तरे यन् दैवो धामभवत्तदा । रसातले, ह्यो बद्ध आस्ते नायत्र सागरा ॥२१॥
 इति श्रुत्वा ततो धाम्य गन्तुवामा रसातलम् । अखननृषिषा सया परित सागरास्तत ॥२२॥
 ते क्षुपाता मूढ शुष्का भक्षयन्तस्त्वह्विजम् । गगनश्चापि जग्मुश्च सत्वरान्ते रसातलम् ॥२३॥
 तानापतानभूषुतान्सागरा यतिन वृतीन् । श्रुत्वा रक्षासि सगराः पृथगमकपिलान्तिकम् ॥२४॥
 कपिलोऽपि महाप्राज्ञस्तान् दाते रसातले । पुरा च साधित तेन देवाना कार्यमुत्तमम् ॥२५॥
 विनिव्रेण तत ध्यान्त सिद्ध कार्ये सुराग्रति । अन्नवोत्कपिल श्रीमानिन्द्रास्थान प्रयच्छय(स) ॥२६॥
 रसातल बहुस्तरम् पुनराह सुराग्मुनि । यो मामुत्पापयेन्मन्दो भस्मो भूयाच्च सद्यश्म् ॥२७॥

चला ॥१३॥ मित्र मित्र प्रसार का युद्धविद्या म कुल उन साठ हजार सगर-पुत्रा के देखते रहने पर मा (इन्द्र के अनुयायी) राक्षस गगन यामिपक्षित अन्ध का स्वर रसातल चल गये । किन्तु सगरपुत्रा ने मायावी यक्षसा का नहा देखा ॥१४॥ १५॥ राजा सगर व वे बलवान् पुत्र अन्ध को न पाकर इधर-उधर दूत हुए देवलोक म गये पर्वत संरोध बना न छान डाला फिर मा घोडा का कुछ पता न चला ॥१६॥ १७॥ इधर राजा न स्वस्त्ययन श्रिया की ओर ऋषिवा न मग्न श्रिया की परतु उपबन्धन व को जाय न दत्तकर राजा अधिक विवित हो गया ॥१८॥ देवराज मूढ न क पत्रात सगर-पुत्र पुष्पा पर आय पर्वता ओर बना को छान डाला किन्तु घोडा कहा भी निसाई न पडा ॥१९॥ २०॥ श्री अन्ध यह आकाशवाणी हुई कि सगर-कुमार । रसातल म घोडा बंधा हुआ है दूसरी जगह नहा है ॥२१॥ एसा जाना-गना मुन वर व सब रसातल जान के लिय चारा ओर स पुष्पी का सादन ग ॥२२॥ मूर म माकुल व लोग सूची मिट्टा स-सागर रात्रिनि परियम कर पुष्पी खोद कर रसातल म पहुच गये ॥२३॥ उन बनी कम एउ वाय-कुल सगर उपाग का अगमन सुनकर रात्रिभ भयवस्त हो बरिल मुनि व समाप चल गये ॥२४॥ महाप्राणी कपिल मुनि न उम समय रसातल म ही साग हुये थे । बहुत पहले उन्हाने देवताओं का एक उत्तम वाय सिद्ध किया था ॥२५॥ रात्रि नि जा कर वाय वरत स धर हुए कपिल मुनि न देवताओं स कहा कि मुझ साने व गिये स्थान दो ॥२६॥ तत्र देवताओं न उह मान क लिए सारातल सान दे दिया बरिलमुनि न देवा से कहा— जा बाद मन्मथि मुख जगाय ॥२७॥ वह साध ही मस्म हा जाय एसा होने पर ही मैं रसातल म जाकर सो

तत इये तलगतो नो चेन्न स्वप्न एव हि । तथेत्युक्त सुरगणैस्तन शोते रसातले ॥२८॥
 तस्य प्रभाव ते ज्ञात्वा राक्षसा मायया युता । सागराणा च सर्वेषा वधोपाय प्रचक्रिरे ॥२९॥
 विना युद्धेन ते भीता राक्षसा सत्वरस्तदा । आगत्य यत्र स मुनि कपिल कोपनो महान् ॥३०॥
 शिरोदेशे ह्य ते वै बद्ध्वाऽप्य त्वरयाऽन्विता । दूरे स्थित्वा मौनिनश्च प्रेक्षन्त किं भवेदिति ॥३१॥
 ततस्तु सागरा सर्वे निर्विशन्तो रसातलम् । ददृशुस्त ह्य बद्ध शयान पुरष तथा ॥३२॥
 त मेनिरे च हर्तारं क्रतुहन्तारमेव च । एनं हत्वा महापाप नयामोऽश्व नृपान्तिकम् ॥३३॥
 केचिदूचु पशु बद्ध नयामोऽनेन किं फलम् । तदाऽऽहुरपरे शूरा राजान शशका वयम् ॥३४॥
 उत्थाप्यैनं महापाप हन्म क्षात्रेण वर्चसा । ते स जघ्नुर्मुनि पार्द्व्वन्तो निष्ठुराणि च ॥३५॥
 तत कोपेन महता कपिलो मुनिसत्तम । सागरान्मोक्षयामास ता कोपाद्भस्मसात्करोत् ॥३६॥
 जञ्ज्वलुस्ते ततस्तत्र सागरा सर्वे एव हि । तत्तु सर्वं न जानाति दीक्षित सगरो नृप ॥३७॥
 नारद कथयामास सगराय महात्मने । कपिलस्य तु सत्यान ह्यस्पापि तु सत्यिति ॥३८॥
 राक्षसानां तु विकृति सागराणा च माशनम् । ततश्चिन्तापरो राजा कर्तव्य भावबुध्यत ॥३९॥
 अपरोऽपि सुतश्चाऽसीदसमञ्जसा इति श्रुत । स तु बालास्तया पौरान्मोक्षार्थात्क्षिपति चामभिसि ॥४०॥
 सगरोऽप्यप्य विज्ञप्त पौरं समिलितैस्तदा । दुर्नयं तस्य स ज्ञात्वा तत क्रुद्धोऽश्ववीमूष ॥४१॥

सकता हूँ अज्यया मुच नीद नहीं आयेगी । देवताओं ने उनकी इच्छा का अनुसंधान कर दे दिया । इसीलिये वे वहाँ रसातल में सोये हुए थे ॥२८॥ मायावी राक्षसा ने मुनि के उस प्रभाव को जानकर (मायायुक्त) उन सगर-पुत्रों के वध का उपाय किया ॥२९॥ भवभीत राक्षस विना युद्ध किये ही घीब्र वहाँ आये जहाँ महाशयोपी कपिलमुनि थे और उनके गिर की ओर घोड़ को बाँध कर तुरत वहाँ से हट गया । दूर जाकर चुपचाप छिपकर यह देखने लगे कि क्या परिणाम होता है ॥३०-३१॥ इसके अनन्तर वे सब सगरपुत्र रसातल में पहुँचे । वहाँ उन लोगों ने बँधे हुये घोड़ और साँधे हुए एक पुरुष को देखा ॥३२॥ उस पुरुष को ही उन सबों ने घाड़ का घोर और यन्त्रविध्वंसक समझा । उनमें से कुछ लोगों ने कहा कि इस पापी को मारकर अश्व को राजा का निकट ल चल ॥३३॥ किसी ने कहा कि बँध हुये घोड़ को ही ले चलना चाहिये इस पुरुष को मारने से क्या लाभ ? यह सुनकर दूसरे कुछ गुर पुरुषों ने कहा कि हम शासन राजा हैं ॥३४॥ इस मन्त्रपापी को उठाकर क्षात्र तेज से इसको मारग । ऐसा कहकर मुनि को अनुचित बातें कहते हुए व पेश में मार्ग लगे ॥३५॥ इस पर महात्मनि कपिल अत्यन्त क्रोध से उन सगरपुत्रों को देखा और देख ही व सब मुनि के क्रोधान्न में भस्म हो गए ॥३६॥ इस दुष्टता को यन्त्र में दीक्षित नृप सगर नहीं जानते थे ॥३७॥ नारद ने आकर उनमें कपिल का रक्षण करने में रहता और वहाँ घोड़े का बाँधा जाना राक्षसा का बगट व्यवहार तथा उनके पुत्रों का सर्वनाश आदि साक्ष्य बता बता दी ॥३८॥ इन बातों को सुनकर राजा अत्यन्त निराला हो गये अथ क्या करना चाहिये यह भा न भाव मग ॥३९॥ राजा का दूसरा पुत्र एक असमजस नाम का था । वह अपनी दुष्टता और अमानना के कारण नगर का बाजारों को जल में पक देता था ॥४०॥ नगरवासियों ने मित्रर राजा से यह बात बताई । उसने इस अत्याचार को जानकर राजा अत्यन्त क्रुद्ध हो गया और मंत्रिया से बोला कि असमजस शत्रिय-यमभष्ट और बाण्यों को मारने वाला है । इसलिये यह दण्ड से

स्वानमात्यास्तदा राजा देशत्याग करोत्वयम् । असमञ्जा क्षत्रधर्मत्यागो धै बालघातक ॥४२॥
 सगरस्य तु तद्वाक्यं श्रुत्वाऽमात्यास्त्वरान्विताः । तत्पुत्रजुर्नृपते पुत्रमसमञ्जा गतो यनम् ॥४३॥
 सागरा बह्मशापेन नष्टा सर्वे रसातले । एषोऽपि च वनं प्राप्त इदानीं का गतिर्मम ॥४४॥
 अनुमानिति विख्यातं पुत्रस्तस्यासमञ्जसः । आनाय्य बालकं राजा कार्यं तस्मै न्यवेदयत् ॥४५॥
 कपिलं च समाराध्य अनुमानपि बालकः । सगराय ह्य प्रादात्तत् पूर्णोऽभवत्कृतुः ॥४६॥
 तस्यापि पुत्रस्तेजस्वी दिलीप इति धार्मिकः । तस्यापि पुत्रो मतिमान्भगीरथ इति श्रुतः ॥४७॥
 पितामहाना सर्वेषां गतिं श्रुत्वा मुदु खितः । सगरं नृपशादूलं पप्रच्छ विनयान्वितः ॥४८॥
 सागराणां तु सर्वेषां निष्कृतिस्तु कथं भवेत् । भगीरथं नृपं प्रहं कपिलो वेति पुत्रकः ॥४९॥
 तस्य तद्वचनं श्रुत्वा बालः प्रायाद्रसातलम् । कपिलं च नमस्कृत्वा सर्वं तस्मै न्यवेदयत् ॥५०॥
 स मुनिस्तु चिर ध्यात्वा तपसाऽऽराध्य शकरम् । जटाजलेन स्वपितृनाप्लाव्य नृपसत्तम ॥५१॥
 ततः कृतार्थो भविता स्व च ते पितरस्तथा । तथा करोमीति मुनिं प्रणम्य पुनरब्रवीत् ॥५२॥
 क्व गच्छेऽहं मुनिधेयं कर्तव्यं चापि तद्ब्रु ॥५३॥

कपिल उवाच

कैलासं त नरधेयं गत्वा स्तुहि महेश्वरम् । तपं कुरु यथादावित ततश्चेप्सितमाप्स्यसि ॥५४॥

निरालम्बि जाय ॥४१॥ ४२॥ राजा सगर की आज्ञा सुनकर मंत्रिया न लीज ही राजकुल को देण म निराल
 दिया । वन वन का चला गया ॥४३॥ राजा सावन लग कि मर साठ हजार पुत्र रमातल म मुनि वाप स मग्न ह
 गद और एक जा बा बहु भी वन को चला गया अब मर गिय बीन-गा माग है ॥४४॥ अनुमान नाम स प्रसिद्ध अम
 मग्न का एक पुत्र था । राजा न उम बाग्य का बुद्धा कर यह कायमार उमरो सोर किया ॥४५॥ बाग्य अम
 मान न कपिल मनि का प्रसन्न कर पांडा लाकर मगर का द किया । तन्मन्त्र बहुत दन समान हुआ ॥४६॥ अम
 मान का पुत्र गिरीप तत्रग्या तथा धार्मिक था । उमक भगीरथ नाम का बुद्धिमान् पुत्र हुआ ॥४७॥ अपन पितामह
 की मनि सुनकर अपना दुमी भगीरथ न होय आइकर विनयपूर्वक नृप-शादूल सगर म पूछा ॥४८॥ मर पितामहा
 का उदार बग हागा । राजा न भगीरथ म चला—पुत्रक । इसको कपिल मुनि हो जानत है ॥४९॥ य मगर
 बाग्य भगीरथ कपिलमुनि का पाग रमातल जाक का गया । मुनि को नमस्कार कर मारी क्या उनम का नी
 ॥ ५०॥ तब मुनि बोले—नृपदेव ! निराल तब ध्यानावस्थि हार अपना नयन्य म गहर का आगपना
 करने प्रसन्न करा । उनको उम म म्पित गग का उम म अपन पितरा को अमिदित्त करो ॥५१॥ तुम स्वयं कृतार्थ
 (मग्न) होय और अपन पिता को भी कृतार्थ कर मगाय । मैं आइर आयेगानुमार वाप करेगा । यह का कर
 भगीरथ न मुनि को प्रसन्न कर कह करा—मुनिधेय ! मैं वही जाऊ हिन शरार मापना कर कृपा यह म
 बलादय ॥५२॥ ५३॥

कपिल ने कहा—नरथ ! कैलास पर जाकर महेश्वर का स्तुति और यथावधि तपस्या करो । तब
 तुम अपन अमांष्ट का प्रसन्न कर मरोगे ॥५४॥

ब्रह्मोवाच

तच्छ्रुत्वा स मुनेर्वाक्यं मुनिं नत्वा त्वपाश्रयम् । कैलासं स शुचिर्भूत्वा बालो बालत्रियान्वितः ॥
तपसे निश्चयं कृत्वा उवाच स भगीरथः ॥५९॥

भगीरथ उवाच

बालोऽहं बालबुद्धिश्च बालचन्द्रधर प्रभो । नाहं किमपि जानामि ततः प्रीतो भव प्रभो ॥५६॥
वाम्निर्भनोभिः कृतिभिः कदाचिन्ममोपकुर्वन्ति हिते रता ये ।
तेभ्यो हितार्थं त्विह चामरेश, सोमं नमस्यामि सुरादिपूज्यम् ॥५७॥
उत्पादितो यैरभिर्वाधितश्च, समानगोत्रश्च समानधर्मा ।
तेषामभोष्टानि शिवः करोतु, बालेन्दुमौलिं प्रणतोऽस्मि नित्यम् ॥५८॥

ब्रह्मोवाच

एवं तु ब्रुवतस्तस्य पुरस्तादभवच्छिवः । वरेण च्छन्दयानो' वै भगीरथमुवाच ह ॥५९॥

शिव उवाच

यत्र साध्यं सुरगणैर्देयं तत्ते भया ध्रुवम् । बदरव निर्भयो भूत्वा भगीरथ महामते ॥६०॥

ब्रह्मा ने कहा—वह बालक मुनि की बातों को सुनकर उन्हें प्रणाम करके कैलाश पर्वत पर चला गया । वहाँ पवित्र होकर अपने बाल-मुलम व्यग्रहार के साथ तपस्या का दूढ़ निश्चय करके शंकर की स्तुति करने लगा ॥२५॥

भगीरथ ने कहा—बालचन्द्र को धारण करने वाले प्रभो ! मैं बाल हूँ, बालबुद्धि हूँ, कुछ भी नहीं जानता हूँ । इसलिए प्रभो ! मुझ बालक पर प्रसन्न हो जाओ ॥५६॥ देवेश, जो किसी समय मेरा मन घापी और नर्मे से सदा उपचार और हित निय करते थे, उन्हीं पूर्वजा के उद्धार के लिये मैं देवों के पूज्य शंकर को नमस्कार करता हूँ ॥५७॥ जिन महापुरुषों का द्वारा मैं उत्पन्न किया गया हूँ, पाल-पोस कर बड़ा बनाया गया हूँ, जिनका मैं भयभी और सचर्मा हूँ, उनकी इष्ट सिद्धि (उद्धार) दिवजी करें, मैं बालचन्द्र को धारण करनेवाले शंकर का नित्य प्रणाम करता हूँ ॥५८॥

ब्रह्मा ने कहा—इस प्रकार भगीरथ प्रार्थना कर ही रहे थे कि शंकर जी ने बदरान देने की इच्छा से भगीरथ से कहा ॥५९॥

शिव बोले—महामति भगीरथ ! जो देवों के लिये दुष्प्राप्य है उस वर को भी तुम प्राप्त कर सकते हो । इसलिए निर्भीक होकर कहो ॥६०॥

ब्रह्मोवाच

भगीरथः प्रणम्येशं हृष्टः प्रोवाच शंकरम्

॥६१॥

भगीरथ उवाच

जटास्थितां पितॄणां मे पावनाय सरिद्धराम् । तामेव देहि देवेश सर्वमाप्त ततो भवेत् ॥६२॥

ब्रह्मोवाच

महेशोऽपि विहस्याथ भगीरथमुवाच ह

॥६३॥

शिव उवाच

दत्ता मयेयं ते पुत्र पुनस्तां स्तुहि सुव्रत

॥६४॥

ब्रह्मोवाच

तद्देववचनं ध्रुत्वा तदर्थं तु तपो महत् । स्तुतिं चकार गङ्गाया भक्त्या प्रयतमानसः ॥६५॥

तस्या अपि प्रसादं च प्राप्य बालोऽन्यबालवत् । गङ्गा महेश्वरात्प्राप्तामादायामाग्रासतालम् ॥६६॥

म्यवेदयत्स मुनये कपिलाय महात्मने । ययोदितप्रकारेण गङ्गा सस्याप्य यत्नतः ॥६७॥

प्रदक्षिणमयाऽऽवर्त्य कृताञ्जलिपुटोऽब्रवीत् । ॥६८॥

भगीरथ उवाच

देवि मे पितरः शापात्कपिलस्य महामुनेः । प्राप्तास्ते विपत्तिं मातस्तस्मात्तान्पातुमर्हसि ॥६९॥

ब्रह्मा बोले—भगीरथ ने शंकर को प्रणाम किया और प्रसन्नतापूर्वक उनसे कहा ॥६१॥

भगीरथ ने कहा—मेरे पितरों के उद्धार के लिये अपनी जटा में रखी हुई उत्तम सरिता (गंगा) को प्रदान करें। इस दाग से ही मेरे मनोरथ पूर्ण हो जायेंगे ॥६२॥

ब्रह्मा बोले—इसके बाद शंकर ने हँसकर भगीरथ से कहा ॥६३॥

शिव बोले—पुत्र ! मैंने गंगा को तुम्हें दे दिया। सुव्रत ! अब उसकी स्तुति करो ॥६४॥

ब्रह्मा ने कहा—भगवान् शंकर की बातों को सुनकर भगीरथ ने गंगा को प्रसन्न करने के लिये एकाग्र मन से महान् तपस्या और गंगा की स्तुति की। बालक होते हुए भी भगीरथ ने अवलोक के समान गंगा का कृपापात्र बनकर महेश्वर द्वारा दी गई गंगा को लेकर रसातल चले गये। वहाँ जाकर उन्होंने मुनि से सब कुछ कहा और उनके आदेशानुसार यत्नपूर्वक गंगा की स्थापना की। तदनन्तर उनकी परिचया कर चढ़ा-जलि होकर कहा ॥६५-६८॥

भगीरथ ने कहा—देवि ! मेरे पितर महामुनि कपिल के शाप से दुर्गति को प्राप्त हो गये हैं। उस पप से हे माता ! तुम्ही उन लोगों का उद्धार कर सकती हो ॥६९॥

ब्रह्मोवाच

तथेत्युक्त्वा सुरनदी सर्वेषामुपकारिका । लोकानामुकारार्थं पितृणा पावनाय च ॥७०॥
 अगस्त्यपीतस्वाम्भोधे पूरणाय विशेषतः । स्मरणादेव पापाना नाशाय सुरनिम्नगा ॥७१॥
 भगीरथोदित चक्रे रसातलतले स्थितान् । भस्मीभूतान्नृपसुतान्सागराश्च विशेषतः ॥७२॥
 विनिर्दग्धान्थाऽऽप्लाव्य खातपूरमयाकरोत् । ततो मेरु समाप्लाव्य स्थिता बालोऽन्नवोन्नृप ॥७३॥
 कर्मभूमौ त्वया भाव्य तथेत्यागाद्विभालयम् । हिमवत्पर्वतात्पुण्याद्भारत वर्षमभ्यगात् ॥७४॥
 तन्मध्यतः पुण्यनदी प्रायात्पूर्वार्णवं प्रति । एवमेषाऽपि ते प्रोक्ता गङ्गा क्षात्रा महामुने ॥७५॥
 माहेश्वरी वैष्णवी च सैव ब्राह्मी च पावनी । भागीरथी देवनदी हिमवच्छिखराश्रया ॥७६॥
 महेश्वरजटावारि एव द्वैविध्यमागतम् । विन्ध्यस्य दक्षिणे गङ्गा गौतमी सा निगद्यते ॥
 उत्तरे साऽपि विन्ध्यस्य भागीरथ्यभिधीयते ॥७७॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे स्वयम्भुवृषिसंवादे भागीरथ्यवतरण नामाष्ट-
 सप्ततितमोऽध्यायः ॥७८॥

गौतमीमाहात्म्ये नवमोऽध्यायः ॥९॥

ब्रह्मा ने कहा—सबका उपकार करने वाली देवनदी गंगा ने ऐसा ही हो वह यह कहकर लोक-वत्स्याण के लिये पितरा को पुनीत करन के लिये विशेषरूप से अगस्त्य द्वारा पान किये गये समुद्र को भर देने के लिये, और स्मरणमात्र से पापा का नाश करने के लिये भगीरथ के कथनानुसार कार्य किया। पहले तो उसने प्रधानरूप से भस्मीभूत राजा सगर के पुत्रा को जल से मलीमांति अभिमिक्षित किया तदनंतर उनसे खादे गये गङ्गा को जल से भर दिया। फिर वहाँ से मरु पर्वत पर आकर विराजमान हुआ गया। यह देखकर बान्धव राजा भगीरथ ने कहा आपका वनभूमि (भारतभूमि) पर चरना चाहिये। इसको भी स्वीकार कर वह हिमालय पर्वत पर चली गई। उस हिमालय पर्वत से पुण्य भूमि भारतवर्ष में आ गई। उससे मध्य में हाकर वह पुण्य नदी पूर्वभाग (बंगाल) की ओर चली गई (और उसमें मिल गई)। महामुनि नारद । इस प्रकार मैंने क्षत्रिय द्वारा लाई हुई गंगा के विषय में गुना दिया। वही माहेश्वरी वैष्णवी और पवित्र ब्राह्मी है। उसी को भगीरथी देवनदी और हिमालय के शिखर पर रहने वाली (हिमालयशिखराश्रया) कहते हैं। इस प्रकार महेश्वर की जटा का वह धूम जल दो भागों में विभक्त हुआ गया। विन्ध्य के दक्षिण में वह गंगा गौतमी नाम से वही जाती है और विन्ध्य के उत्तर प्रदेश की गंगा भगीरथी इस नाम से पुकारती जाती है ॥३०-३३॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में भागीरथी-अवतरण नामक अष्टोत्तरवीं अध्याय समाप्त ॥७८॥

अयोनाशीतितमोऽध्यायः

वराहतीर्थवर्णनम्

नारद उवाच

न मनस्तृप्तिमाप्सते कथा शृण्वत्त्वयेरिता । पुण्यतीर्थफलं श्रोतुं प्रवृत्तं मम मानसम् ॥१॥
क्रमशो ब्राह्मणानीता गङ्गा मे प्रथमं यद । पुण्यतीर्थफलं पुण्यं सेतिहासं यथाक्रमम् ॥२॥

ब्रह्मोवाच

तीर्थानां च पुण्यभावफलमाहात्म्यमेव च । सर्वं वक्षतुं न शक्नोमि न च त्वं ध्वजे क्षम ॥३॥
तथाऽपि किञ्चिद्दृशामि शृणु नारद यत्नतः । यान्युक्तानि च तीर्थानि श्रुतिवाक्यानि यानि च ॥४॥
तानि वक्ष्यामि सक्षेपाग्रमस्कृत्वा त्रिलोचनम् । यत्रासी भगवानासीत्प्रत्यक्षस्त्र्यम्बको मुने ॥५॥
त्र्यम्बकं नाम तत्तीर्थं भुक्तिमृक्तिप्रदायकम् । वाराहमपर तीर्थं त्रिपुलोकेषु विश्रुतम् ॥६॥
तस्य रूपं प्रवक्ष्यामि माम् विष्णाययाजभवत् । पुरा दवान्पराभूय यज्ञमादाय राक्षस ॥७॥
रसातलमनुप्राप्तं सिन्धुसेन इति श्रुतं । यज्ञं तलमनुप्राप्तो निर्यज्ञा ह्यभवन्महो ॥८॥
नाय लोकोऽस्ति न परो यज्ञे नष्ट इतोत्तराः । सुरास्तमेव विविन्तु रसातलमनुद्विपम् ॥९॥

नाशक्तुवंस्तु तं जेतुं देवा इन्द्रपुरोगमाः। विष्णुं पुराणपुरुषं गत्वा तस्मै न्ययेदयन् ॥१०॥
 राक्षसस्य तु तत्कर्म यज्ञभ्रंशमशेषतः। ततः प्रोवाच भगवान्वाराहं वपुरास्थितः ॥११॥
 शङ्खचक्रगदापाणिर्गत्वा चैव रसातलम्। आनयिष्ये मलं पुण्यं हत्वा राक्षसपुगवान् ॥१२॥
 स्व प्रयान्तु सुरा सर्वे व्येतु यो मानसो ज्वरः। येन गङ्गा तलं प्राप्ता पथा तेनैव चक्रधृक् ॥१३॥
 जगाम तरसा पुत्र भुव भित्त्वा रसातलम्। स वराहवपुः श्रीमान्रसातलनिवासिनः ॥१४॥
 राक्षसान्दानवान्हत्वा मुखे धृत्वा महाध्वरम्। वाराहहृषी भगवान्मलमादाय यज्ञभृक् ॥१५॥
 येन प्राप तलं विष्णु पथा तेनैव शत्रुजित्। मुखे न्यस्य महायज्ञं निश्चक्राम रसातलात् ॥१६॥
 तत्र ब्रह्मगिरी देवा प्रतीक्षा चक्रिरे हरेः। पयस्तस्माद्दिनिसृत्य गङ्गास्त्रवणमभ्यगात् ॥१७॥
 प्राक्षालयच्च स्वाङ्गानि असृग्लिप्तानि नारद। गङ्गाम्भसा तत्र कुण्डं वाराहमभवत्ततः ॥१८॥
 मुखे न्यस्त महायज्ञं देवानां पुरतो हरिः। दत्तवास्त्रिदशश्रेष्ठो मुखाद्यज्ञोऽन्यजायत ॥१९॥
 सत प्रभृति यज्ञाङ्गं प्रधानं सुव उच्यते। वाराहहृषमभयदेवं वै कारणान्तरात् ॥२०॥
 तस्मात्पुण्यतमं तीर्थं वाराहं सर्वकामदम्। तत्र स्नानं च दानं च सर्वकृत्यफलप्रदम् ॥२१॥
 तत्र स्थितोऽपि यः कश्चित्पितृन्स्मरति पुण्यकृत्। विमुक्तः सर्वपापेभ्यः पितरः स्वर्गमाप्नुयुः ॥२२॥
 इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये वराहतीर्थवर्णनं नामोनाशीतितमोऽध्यायः ॥७९॥

गौतमीमाहात्म्ये दशमोऽध्यायः ॥१०॥

नेतृत्व में जाने वाले वे देव उसको जीत न सके, इसलिये पुराणपुरुष विष्णु के पास जाकर उन्होंने राक्षस का वह कुटुम्ब और यज्ञलोप होने का समाचार पूर्णरूप से निवेदन किया ॥१०॥ सुनकर भगवान् ने कहा कि मैं वराह धारण कर हाथ में शङ्ख चक्र गदा लेकर रसातल को जाऊँगा और वहाँ के बड़े-बड़े राक्षसों को मारकर पुनीत यज्ञ को ले आऊँगा ॥११॥ आप सब देवगण स्वर्गलोक को जाइये और मानसिक चिन्ता को छोड़ दीजिये। पुत्र! जिस मार्ग से गया रसातल लोक को गयी थी उसी मार्ग से वह चक्रधारी भगवान् पृथ्वी को फाड़ कर चले गये ॥१२॥ वह वराहहृषधारी श्रीमान् रसातल निवासी राक्षसों एवं दानवों को मारकर, महायज्ञ को मुख पर रख लिया। पुनः वराहहृषधारी यज्ञ के भोक्ता तथा शत्रुओं के विजेता विष्णु जिस पथ से गये थे उसी पथ से महायज्ञ को मुख पर रखे हुये रसातल से निकल आये ॥१४॥ दशरथ ब्रह्मगिरि पर देवता भगवान् की प्रतीक्षा कर रहे थे। नारद! उस मार्ग से निकल कर विष्णु गंगा की घाटी में पहुँचे ॥१७॥ वहाँ गंगा-जल से स्नान करे अपने अगा को धोया। इसलिये वहाँ का वह कुण्ड वाराह नाम से प्रसिद्ध हुआ ॥१८॥ देव शिरोमणि भगवान् हरि ने मुख पर रखे हुए महायज्ञ को देवताओं के सामने रख दिया। इसलिये मुख से यज्ञ की पुनः उत्पत्ति हुई ॥१९॥ तभी से सुव प्रधान यज्ञाङ्ग कहा जाता है, इस प्रकार कारणान्तर से वराह रूप हुआ ॥२०॥ इस कारण वाराह सब कामा को देने वाला तीर्थ है। वहाँ का स्नान और दान सम्पूर्ण यज्ञों के फल देने वाला है ॥२१॥ जो कोई पुण्यकर्मा वहाँ स्थित होकर भी अपने पितरों का स्मरण करता है उसके वे पितर सब पापों से मुक्त होकर स्वर्ग में चले जाते हैं ॥२२॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में वराहतीर्थवर्णन नामक उन्नासीवाँ अध्याय समाप्त ॥७९॥

अथाशीतितमोऽध्यायः

कपोततीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

कुशावर्तस्य माहात्म्यमहं ववतु न ते क्षम । तस्य स्मरणमात्रेण कृतकृत्यो भवेन्नर ॥१॥
 कुशावर्तमिति ख्यातं नराणां सर्वकामदम् । कुशोनाऽऽवर्तितं यत्र गीतमेनं माहात्मना ॥२॥
 कुशोनाऽऽवर्तयित्वा तु आनयामास तां मुनिः । तत्र स्नानं च दानं च पितृणां तृप्तिदायकम् ॥३॥
 नीलगङ्गा सरिच्छ्रेष्ठा निःसृता नीलपर्वतात् । तत्र स्नानादि यकिञ्चित्करोति प्रयतो नरः ॥४॥
 सर्वं तदक्षयं विद्यात्पितृणां तृप्तिदायकम् । विभूतं त्रिषु लोकेषु कपोत तीर्थमुत्तमम् ॥५॥
 तस्य रूपं च वक्ष्यामि मुने दृष्टुं महाफलम् । तत्र ब्रह्मगिरौ कश्चिद्द्व्याधं परमदारुणं ॥६॥
 हिनस्ति ब्राह्मणान्साधून्पतान्गोपक्षिणो भृगून् । एवभूतं स पापात्मा श्रोत्रनोऽनूतभाषणः ॥७॥
 भीषणाकृतिरत्युग्रो नीलाक्षो ह्रस्वबाहुकः । दन्तुरो नष्टनासाक्षो ह्रस्वपात्पृथुकुक्षिकः ॥८॥
 ह्रस्वोदरो ह्रस्वभुजो विकृतो गर्वभस्वनः । पाशहस्त पापविस्तः पापिष्ठः सधनुः सदा ॥९॥

अध्याय ८०

कपोततीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा बोले—मैं कुशावर्ततीय की कहिया तुमसे कहने में समर्थ नहीं हूँ। उसके स्मरण मात्र से ही मनुष्य कृतकृत्य हो जाता है ॥१॥ जहाँ पर महात्मा मुनि गीतम ने कुशा से सुनाया था वह मनुष्य के सब मनोरथों को देने वाला स्थान कुशावर्त नाम से प्रसिद्ध हुआ ॥२॥ मुनि कुश से गंगा को घुमा कर ला था। वहाँ का स्नान और दान पितरा को तृप्त करने वाला है ॥३॥ नील गंगा नाम की उत्तम नदी नील पर्वत से निकली हुई है। उसमें मनुष्य एकाग्रचित्त से स्नान आदि जो कुछ करता है वह पितरा के लिये अक्षय तृप्ति को देनेवाला होता है ॥४॥ तीना लोको में कपोत तीर्थ अति प्रसिद्ध उत्तम तीर्थ है ॥५॥ मुने! उसका इतिहास और फल बता रहा हूँ मुनो—ब्रह्म पर्वत पर कोई एक अतिकूर (शिकारी) रहता था ॥६॥ वह ब्राह्मण साधु यति भी पक्षी और जंगली जीवों को मारा करता था। ऐसा हिंसक वह पापारम्भ बोधो असत्यवादी अथक आकारवाला और अत्यन्त उद्धत था। उसकी आँख नीचे रख की मुजायें छोटी छोटी दाँत निकले हुये नाक पिपटी एक आँख बानी पैर छोटे छोटे पैर लम्बा और मोटा और उसका स्वर गद्गदे के समान था। वह वृक्ष पापी सबदा हाथ में पाश और धनुष लिये हुए पाप (हिंसा) की ही बातें सोचा करता था। नारद! उसकी स्त्री और बच्चे भी उसी के समान थे ॥ ७ १॥

तस्य भार्या तयाभूता अपत्यान्यपि नारद। तया तु प्रेयमाणोऽसौ विवेश गहनं वनम्॥१०॥
 स जघान मृगान्याप पक्षिणो बहुवृषिण। पञ्जरे प्राक्षिपत्वादिचञ्जीवमानास्तयेतरान्॥११॥
 क्षुधया परितप्ताङ्गो विह्वलस्तृपया तथा। श्रान्तदेशो बहुतर न्यवर्तत गृहं प्रति॥१२॥
 ततोऽपराङ्मे सप्राप्ते निवृत्ते मधुमाधये। क्षणात्तडिर्गर्जितं च साध्रं चंदाभवत्तदा॥१३॥
 ववौ वायु सादमवर्षो वारिधारततिभ्रौषण। स गच्छत्लुब्धकं श्रान्तं पन्यान नाथबुध्यत॥१४॥
 जलं स्थलं गतंमयो पन्यानमयया दिशः। न बुबोध तदा पापं श्रान्तं शरणमप्यय॥१५॥
 वव गच्छामि वव तिष्ठेय किं करोमीत्यचिन्तयत्। सर्वेषां प्राणिनां प्राणानाहर्ताऽहं यथाऽन्तक॥१६॥
 ममाप्यन्तकरं भूतं सप्राप्तं चादमवर्षणम्। आतारं नैव पश्यामि शिलां वा वृक्षमन्तिके॥१७॥
 एव बहुविधं व्याधो विचिन्त्यापश्यदन्तिके। वने वनस्पतिमिव नक्षत्राणां यथाऽत्रिजम्॥१८॥
 मृगाणां च यथा सिंहमाश्रमाणां गृहाधिपम्। इन्द्रियाणां मन इव आतारं प्राणिनां नमम्॥१९॥
 श्रेष्ठं विटपिनं शुभ्रं शाखापल्लयमण्डितम्। तमाश्रित्योपविष्टोऽभूत्खिलप्रवासा स लुब्धकः॥२०॥
 स्मरन्भार्यामपत्यानि जीवेयुरयदा न या। एतस्मिन्नन्तरे तत्र चारतं प्राप्तं दिवाकरं॥२१॥
 तमेव मगनाश्रित्य कपोतते भार्यया सह। पुत्रपौत्रं परिबृतो हृष्टास्ते तत्र नगोत्तमे॥२२॥

एक दिन अपनी स्त्री की प्ररणा से वह वने जंगल में घुस गया। उस पापी ने बहुत-से मृगों और रण बिरों पक्षियों को मारा। अपने पिंजरे में कुछ जीवित और कुछ मृत पक्षियों को भी भर लिया॥१०-११॥ बहुत इधर उधर घूमने के कारण भूख की ज्वाला से उसका शरीर जलने लगा और वह प्यास से व्याकुल हो गया। बिबसा हो वह भटकता हुआ घर की ओर लौटा॥१२॥ तत्पश्चात् उस जेठ की दुपहरी बीत जाने पर तीसरे पहर क्षण भर में बिजली गरजने लगी आकाश बादलों से धिर गदा वायु ओरो से चलने लगी अति भीषण वृष्टि होने लगी और साथ-साथ पत्थर गिरने लगे। ऐसे समय वह धहेलिया चलते चरते बक बर्षा और अपना मार्ग भी मूल गया॥१३-१४॥ उसको जल स्थल या गड्ढे का ज्ञान न रहा। न तो उस समय उसको माण और दिशाओं का ही ज्ञान रहा। वह थका भादा पापी यह भी नहीं जान पाता था कि वहाँ उसको शरण (रहने का स्थान) मिलेगी।॥१५॥ वह चिन्ता करने लगा कि कहाँ जाऊँ कहाँ रहूँ क्या करूँ। जिस प्रकार सब प्राणियों के प्राण का धातक मैं सबके लिये यमराज के समान हूँ उसी प्रकार मेरे प्राणों का अन्त करने वाला यम के रूप में वह पत्थर की वर्षा भी आ गई है। यहाँ कोई अपना रक्षक नहीं दीख पड़ता न तो समीप में कोई चट्टान या वृक्ष ही दिखाई देते हैं कि अपनी रक्षा कर सकूँ॥१६-१७॥ इस प्रकार वह व्याध अपने मन में मित भिन्न प्रकार से सोच ही रहा था कि इतने में उसे समीप ही वन में वनस्पति के समान, नक्षत्रों के मध्य चन्द्रमा के समान पशुओं में सिंह के समान आश्वों में गहस्थ के समान इन्द्रियों में मन के समान प्राणियों का रक्षक एक वृक्ष दिखाई पड़ा॥१८-१९॥ शाखाओं और पत्तों से सुशोभित शुभ्र उस उत्तम वृक्ष के नीचे आकर वह बैठ गया। उस शिवारों के वृक्ष भीम गये थे वह घर-घर काँप रहा था। वह सोच रहा था कि मेरे वृक्षों और स्त्री जीवित रहेंगे या नहीं। इसी बीच सूर्य भी अस्त हो गया॥२०-२१॥ उसी वृक्ष पर अपना (बसेरा) बनाकर एक वृद्धतर अपनी स्त्री पुत्र और पौत्रों के साथ रहता था। उस उत्तम वृक्ष पर वह सन्तुष्ट और

सुखेन निर्ममो भूत्वा सुतुष्टः प्रीत एव च। बहवो वत्सरा याता वसतस्तस्य पक्षिणः॥२३॥
 पतिव्रता तस्य भार्या सुप्रीता तेन चैव हि। कोटरे तन्मगे श्रेष्ठे जलवाय्वग्निवर्जिते॥२४॥
 भार्यापुत्रैः परिवृतः सर्वदाऽऽस्ते कपोतकः। तस्मिन्दिने दैववशात्कपोतश्च कपोतकी॥२५॥
 भक्ष्यार्थं तु उभौ यातौ कपोतो नगमम्यमात्। साऽपि दैववशात्पुनः पञ्जरस्थैव वर्तते॥२६॥
 गृहीता लुब्धकेनाथ जीवमानैव वर्तते। कपोतकोऽप्यपत्यानि मातृहीनान्युदीक्ष्य च॥२७॥
 वर्षं च भीषणं प्राप्तमस्तं यातो दिवाकरः। स्वकोटरं तपाहीनमालोभ्य विललाप सः॥२८॥
 तां बद्धां पञ्जरस्यां वा न बुबोध कपोतराट्। अन्दारेभे कपोतो वै प्रियाया गुणकीर्तनम्॥२९॥
 नाद्याप्यायाति कल्याणो मम हर्षविवर्धिनी। मम धर्मस्य जननी मम देहस्य चेश्वरी॥३०॥
 धर्मार्थकाममोक्षाणां संव नित्यं सहायिनी। तुष्टे हसन्ती रुष्टे च मम दुःखप्रमार्जनी॥३१॥
 सखी मन्त्रेषु सा नित्यं मम वाक्पूरता सदा। नाद्याप्यायाति कल्याणी संप्रयातेऽपि भास्करे॥३२॥
 न जानाति व्रतं मन्त्रं देवं धर्मार्थमेव च। पतिव्रता पतिप्राणा पतिमन्त्रा पतिप्रिया॥३३॥
 नाद्याप्यायाति कल्याणी किं करोमि ब्रह्म यामि वा। किं मे गृह काननं च तथा हीनं हि दुश्यते॥३४॥
 तया युक्तं प्रिया युक्तं भीषणं चाऽपि शोभनम्। नाद्याप्यायाति मे कान्ता यया गृहमुदीरितम्॥३५॥

प्रसन्न पक्षी निर्मम होकर सुतुष्टक रहता था। इस प्रकार उस वृक्ष पर रहते हुये उस पक्षी के बहुत वर्ष बीत गये थे ॥२३-२३॥ उसकी पतिव्रता भार्या भी उससे अत्यन्त प्रसन्न रहती थी। उस श्रेष्ठ वृक्षके कोटर (घोड़ा) में जहाँ अग्नि-जल और वायुका मय नहीं था—वह येषारा वज्रतर भार्या और पुत्रके साथ सर्वदा निवास करत था ॥२४॥ दैववश उसी दिन कपोत और कपोती दोनों भोजन की खोज में बाहर गये हुए थे। कपोत तो उस वृक्ष पर पुन लौट आया। पुत्र! दैवयोग से वह कपोती भी उस शिखरी के पिंजरे में ही थी ॥२५-२६॥ यद्यपि ध्याय मै उसको पकड़ लिया था परन्तु वह अभी जीवित थी। येषारा कपोत अपने मातृ हीन बच्चा को देखकर और यह देखकर कि इतनी भीषण वर्षा हो रही है, सूर्य भी डूब गया है, कोटर में ही कपोती से मूल्य है, विलाप करने लगा ॥२७-२८॥ उस कपोतराज ने नहीं जाना कि कपोती यही पिंजरे में बपी पड़ी है। वह अपनी प्रिया की बड़ाई इस प्रकार करने लगा ॥२९॥ वह कल्याणी मेरे आनन्द को बढ़ाने वाली मेरे धर्म की जननी और मेरे शरीर की स्वागिनी अब तक नहीं आ रही है। वह मेरे धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष में सर्वदा सहायता करने वाली रही है। मेरे प्रसन्न रहने पर वह स्वयं प्रसन्न रहती थी और मेरे दुःख के समय सत्त्वना देकर दुःख का दूर कर देनी थी ॥३०-३१॥ आवश्यक परामर्श से समग्र वह सखी के समान थी। वह सर्वदा मेरे कहने के अनुसार ही काम करनी थी। सूर्य डूब गया, परन्तु अब तक वह कल्याणी नहीं आई ॥३२॥ वह कोई व्रत मन्त्र, दैव या धर्म ने तत्त्व नहीं जानती है, वह तो केवल पतिव्रता है, पतिप्राणा है, पति की आज्ञाकारीणी और पतिप्रिया है वह कल्याणी अब तक नहीं आ रही है। क्या कहें, कहाँ जाऊँ? उसके बिना आज यह मेरा घर और कानन क्या मूना दिखाई दे रहा है ॥३३-३४॥ उसके साथ रहने पर मैं स्रष्टा बाल अथवा सुख के लक्षा में सर्वदा श्रीमन्मग्न रहा। ऐसी मरी भार्या नहीं आ रही है, जिनके रहने से ही गृह गृह बढ़ा गया है (गृहिणी गृहमुच्यते) ॥३५॥ उसने बिना मैं जन्म नहीं रूँगा, अपने इस प्रिय शरीर को छोड़ दूँगा। परन्तु मेरे ये बच्चे क्या करेंगे, कैसे रहेंगे, पुन मैं तो दोना हूँ मैं धर्म

विनाऽनया न जीविष्ये त्यजे वाऽपि प्रिया तनुम् । किं कुर्वन्तु त्वपत्यानि लुप्तधर्मस्त्वहे पुन ॥३६॥
एव विलपतस्तस्य भर्तुर्वाक्य निशम्य सा । पञ्जरस्थैव सा वाक्य भर्तारमिदमब्रवीत् ॥३७॥

कपोतकपुवाच

अनाहमस्मि यद्वैव विवशाऽस्मि खगोत्तम । अनोताऽहं लुब्धकेन बद्धा पाशैर्महामते ॥३८॥
ध्यायाऽन्यत्पुनर्हीताऽस्मि पतिवदित गुणान्मम । सतो वाऽप्यसतो वाऽपि कृतार्थाऽहं न सशय ॥३९॥
तुष्ट नर्तनं नारीणां तुष्टा स्युः सर्वदेवता । विपर्यये तु नारीणामवश्य नाशमाप्नुयात् ॥४०॥
त्व दैव त्व प्रभुमंह्य त्व सुहृत्त्वं परायणम् । त्व व्रत त्व पर ब्रह्म स्वर्गो मोक्षस्त्वमेव च ॥४१॥
मा चिन्ता पुरु कल्याण धर्मे बुद्धि स्थिरा कुरु । त्वत्प्रसादाच्च भुवता हि भोगाश्च विविधा मया ॥४२॥
अल खेदेन मज्जेन धर्मे बुद्धि कुरु स्थिराम् ॥४३॥

ब्रह्मोवाच

इति श्रुत्वा प्रियावाक्यमुत्तार नगोत्तमात् । यत्र सा पञ्जरस्था तु कपोती वर्तते त्वर (दुत)म् ॥४४॥
तानागत्य प्रिया दृष्ट्वा मृतवच्चापि लुब्धकम् । मोक्षयामीति तामाह निश्चेष्टो लुब्धकोऽधुना ॥४५॥
मा मुञ्चस्व महाभाग ज्ञात्वा सबन्धमस्थिरम् । लुब्धानां खेचरा ह्यस्र जीवो जीवस्य चाशनम् ॥४६॥
नापराध स्मरान्मस्य धर्मबुद्धि स्थिरा कुरु । गुणरन्मिद्विजातीनां वर्णानां ब्राह्मणो गुरु ॥४७॥

छोड़ रहा हूँ ॥३६॥ इस प्रकार विलाप करते हुए अपने पति की बात सुनकर उस कपोती ने पिंजरे से ही अपने पति से य शब्द कहे ॥३७॥

कपोती ने कहा—खगोत्तम । मैं यही बधी हुई हूँ विवश हूँ । महामति । व्याध पाश से बांधकर मुझको यहाँ रखा है । मैं धन्य हूँ अनुगृहीत हूँ कि मेरे रहते या न रहते हुए भी आप मेरे गुणों का वणन कर रहे हैं । इसलिये निश्चय ही मैं कृताय हो गई । पति के प्रसन्न रहने पर नारी के ऊपर सब देवता प्रसन्न रहते हैं अन्यथा नारियों का निश्चय ही नाश होता है । तुम मेरे देवता हो मेरे लिये तुम ईश्वर हो तुम बुद्ध हो मेरे एकमात्र रक्षक हो तुम्हा व्रत हो परब्रह्म तुम्ही हो मेरे लिये मोक्ष अथवा स्वर्ग भी तुम्ही हो । कल्याण । तुम चिन्ता मत करो, धर्म मैं अपनी बुद्धि स्थिर करो । तुम्हारे अनुग्रह से मैंने विविध भोगों को भोगा है । यह खेद ध्य है । इस प्रकार चिन्तामग्न होना उचित नहीं । तुम धर्म (कृतव्य) मैं अपनी बुद्धि (आस्था) स्थिर करो ॥३८४३॥

ब्रह्मा बोले—पत्नी की इन बातों को सुनकर वह वृक्ष से उतर आया और जहाँ उसकी पञ्जरबद्ध कपोती थी वहाँ सीधे ही चला गया । प्रिया के समीप जाकर अपनी प्रिया को साथ ही भव की माति अर्थात् व्याध को देखकर उसने अपनी प्रिया से कहा कि अभी तुमको छुड़ाता हूँ । इस समय शिकारी चेतना-शून्य सा हो रहा है ॥४४४५॥ यह सुनकर कपोती ने कहा कि मर्यादा । पतिपत्नी के सम्बन्ध को अस्थिर (थोड़ा समय का) समझकर मुझ मत छड़ाओ । तुम्हें के लिये पत्नी ही अन्न (भोजन) है जीव ही जीव का भोजन है ॥४६॥ इसमें इसका मैं कुछ भी अपराध नहीं समझ रही हूँ । अपनी धार्मिक भावना को दब करो । ब्राह्मणों के गुरु अग्नि और इतर वर्णों के गुरु ब्राह्मण हैं । स्त्रियों के गुरु पति ही हैं परन्तु अतिथि सब के गुरु माने गये हैं ॥४७३॥ जो घर पर आये अतिथि

पतिरेव गुरुः स्त्रीणां सर्वस्याभ्यागतो गुरुः। अभ्यागतमनुप्राप्तं वचनंस्तोष्यन्ति ये ॥४८॥
तेषां वागीश्वरी देवी तृप्ता भवति निश्चितम्। तस्यान्नस्य प्रदानेन शक्रस्तृप्तिमवाप्नुयात् ॥४९॥
पितरः पादशोचन अन्नाद्येन प्रजापतिः। तस्योपचाराद्धं लक्ष्मीविष्णुना प्रीतिमाप्नुयात् ॥५०॥
शयने सर्वदेवास्तु तस्मात्पूज्यतमोऽतिथिः। अभ्यागतमनुप्राप्तं सूर्योऽहं गृहमागतम् ॥
तं विद्याद्देवहृषेणं सर्वव्रतुफलो ह्यसौ ॥५१॥

अभ्यागतं श्रान्तमनुब्रजन्ति, देवाश्च सर्वे पितरोऽनयश्च।
तस्मिन्हि तृप्ते मुदमाप्नुवन्ति, गते निराशेऽपि च ते निराशाः ॥५२॥
तस्मात्सर्वात्मना कान्त दुःखं त्यक्त्वा शमं व्रज। कृत्वा तिष्ठ शुभां बुद्धिं धर्मकृत्यं समाचर ॥५३॥
उपकारोऽपकारश्च प्रवराविति संमतौ। उपकारिषु सर्वोऽपि करोत्युपकृतिं पुनः ॥५४॥
अपकारिषु यः साधु शुष्यभाक् स उदाहृतः ॥५५॥

कपोत उवाच

आवयोरनुरूपं च त्वयोक्तं साधु मग्यते। किंतु वक्तव्यमप्यस्ति तच्छृणुष्व वरानने ॥५६॥
सहस्रं भरते कश्चिच्छतमग्नौ दशापरः। आत्मानं च सुखेनाग्नौ यमं कष्टोदरंभरा ॥५७॥
गर्तधाम्यधनाः कंचित्कुशूलधनिनोऽपरे। घटस्तिष्ठधनाः कंचिच्छत्रकुक्षिस्तधना ययम् ॥५८॥
पूजयामि कथं श्रान्तमभ्यागतमिमं शुभे ॥५९॥

को अपनी मयूर वाणी से सतुष्ट करते हैं उन पर वागीश्वरी देवी निश्चय ही प्रसन्न होती है ॥४८॥ उसको अन्न देने से स्वयं इन्द्र तृप्त होते हैं, पर धोने से पितर और अन्न भोजन करने से प्रजापति (ब्रह्मा) तृप्त होते हैं। उसकी सेवा करने से विष्णु सहित लक्ष्मी प्रसन्न होती है ॥४९-५०॥ शयन करने से सब देवता प्रसन्न होते हैं। इसलिये 'अग्निमि सवसे पूज्य हैं। सूर्यास्त के समय ब्रह्मा मर्दिता अतिथि यदि घर आये तो उसको देवकृप समझना चाहिये, क्योंकि वह सब यज्ञों के फल के रूप में बह्रां आता है ॥५१॥ यके अतिथि के पीछे-पीछे सब देवता पितर और अग्नि चलते हैं। उसने तृप्त हो जाने पर वे भी आनन्दित होते हैं और अतिथि के निरास होने पर वे भी निरास हो जाते हैं ॥५२॥ इसलिये कान्त! सब प्रकार से दुःख वा परिचाय कर आप शान्त हो जाएँ अपनी बुद्धि को निर्मल बना कर धर्मकार्य करें ॥५३॥ उपकार और अपकार दोनों श्रेष्ठ माने गये हैं। उपकार करने वाले के प्रति सत्ता उपकार करते हैं परन्तु अपकार करने वाले के प्रति जो उपकार करता है वही पुण्य वा अधिकारी कहा गया है ॥५४-५५॥

कपोत ने कहा—तुमने तो दोनों के अनुरूप ही कहा है। मैं इसको उचित मानता हूँ। किन्तु सुमुखि! मेरे भी कथन सुनो। कोई हजारों का मरण-शोषण-करता है, कोई सो वा अन्य कोई दश वा और कोई सुख-पूर्वक अपना भी मरण-शोषण कर लेता है, परन्तु हम लोग कष्ट से अपनी उदर-प्राप्ति कर पाते हैं। कोई गन (तह-संज्ञा), मर धान के धनी होते हैं, कोई कुशूल (बखार) परिमित धान के तो कोई घडे भर धान के ही धनी होते हैं, किन्तु हम तो केवल थोच मर धान के ही धनी हैं। शुभे! इस अवस्था में मैं किस प्रकार दश यके हूँ अतिथि की पूजा करूँ ॥५६-५९॥

कपोतुवाच

अग्निरापः शुभा वाणी तृणकाष्ठादिकं च यत् । एतदप्यग्निने देयं शीतार्तो लुब्धकस्त्वयम् ॥६०॥

ब्रह्मोवाच

एतच्छ्रुत्वा प्रियावाक्यं बृक्षमारुह्य पक्षिराट् । आलोकयामास तदा बलिं दूरं ददर्श ह ॥६१॥
स तु गत्वा बलिदेशं चञ्चुनोत्मुकयाहरत् । पुरोर्ज्ज्वलयाभास लुब्धकस्य कपोतकः ॥६२॥
शृष्ककाष्ठानि पर्णानि तृणानि च पुनः पुनः । अग्नौ निक्षेपयामास निशीथे स कपोतराट् ॥६३॥
तर्मानि ज्वलितं दृष्ट्वा लुब्धकः शीतदुःखितः । अवशानि स्वकाङ्क्षानि प्रताप्य सुखमाप्तवान् ॥६४॥
क्षुधाग्निना बहुधमानं व्याधं दृष्ट्वा कपोतकी । मा मुञ्चस्व महाभाग इति भर्तारमब्रवीत् ॥६५॥
स्वशरीरेण दुःखार्तं लुब्धकं प्रीणयामि तम् । इष्टातिथीनां ये लोकास्तांस्त्वं प्राप्नुहि सुयत ॥६६॥

कपोत उवाच

मयि तिष्ठति नैयायं तव धर्मो विधीयते । इष्टातिथिर्भवामीह अनुजानीहि मां शुभे ॥६७॥

ब्रह्मोवाच

इत्थुक्त्वाग्निं त्रिरावृत्यं स्मरन्देवं चतुर्भुजम् । विश्वात्मकं महाविष्णुं शरण्यं भक्तवत्सलम् ॥६८॥
घषासुख जुपस्वेति घदन्नग्निं तयाऽऽविशत् । तं दृष्ट्वाऽग्नौ क्षिप्तजोवं लुब्धको वायमनब्रवीत् ॥६९॥

कपोती ने कहा—अग्नि, जल, शुभवाणी, तृण, काष्ठ आदि जो कुछ हो, वही याचक को दे देना चाहिये । यह व्याध तो शीत से दुःख पा रहा है ॥६०॥

ब्रह्मा ने कहा—प्रिया की इन बातों को सुनकर पक्षिराज कपोत वृक्ष पर चढ़ गया । उसने चारों ओर देखा तो दूर अग्नि दिखाई पड़ा । वह उस अग्नि वाले स्थान पर गया और अपनी बोच से जलती लकड़ी ले आया । कबूतर ने शिकारी के आगे अग्नि जला दिया । उस अघेरी रात में वह कपोतराज सूखे काष्ठ, पर्तियाँ, और तिनके ला-लाकर बार-बार उसमें छोटने लगा । अग्नि को इस प्रकार जलता हुआ देखकर शीत से दुःखी वह शिकारी ठिठुरे हुये अपने अगो को आग से सेंक कर सुखी हुआ । भूल की ज्वाला से जलते हुए उस व्याध को देखकर कपोती ने अपने स्वामी से कहा—महाभाग ! भूलको मत छुड़ाओ, मत छुड़ाओ । यह मैं अपने शरीर से दुःखी शिकारी की भूल मिटाकर उसे प्रसन्न करूँगी । सुव्रत ! तुम (मेरी इस सेवा से) अतिथि-यूजको के जो लोक हैं, उन्हें प्राप्त करो ॥६१-६६॥

कपोत ने कहा—मेरे रहते दुम्हार यह धर्म नहीं है । मैं स्वयं अतिथि का इष्ट-साचक बनूँगा । शुभे ! भूलको आज्ञा दो ॥६७॥

ब्रह्मा ने कहा—यह कहकर अग्नि की तीन बार प्रवक्षिण्य कर विश्वरूप, शरण्य, भक्तवत्सक, चतुर्भुज भगवान् महाविष्णु का स्मरण करता हुआ 'तुम सुखपूर्वक भोजन करो' यह कहकर अग्नि में घुस गया । इस प्रकार कबूतर को अपने को अग्नि में फेंकता हुआ देखकर शिकारी ने यह अगले वाक्य कहे ॥६८-६९॥

लुब्धक उवाच

अहो मानुषदेहस्य धिग्जीवितमिदं मम । यदिदं पक्षिराजेन मदर्थे साहसं कृतम् ॥७०॥

ब्रह्मोवाच

एवं युवन्तं तं लुब्धं पक्षिणी बावयमब्रवीत्

॥७१॥

कपोत्युवाच

मां त्वं मुञ्च महाभाग दूरं यात्येष मे पति

॥७२॥

ब्रह्मोवाच

तस्यास्तद्वचनं श्रुत्वा पञ्जरस्या कपोतकीम् । लुब्धको मोचयामास तरसा भीतवत्तदा ॥७३॥

सागपि प्रदक्षिणं कृत्वा पतिमग्निं तदा जगौ

॥७४॥

कपोत्युवाच

स्त्रीणामयं परो धर्मो यद्भर्तुरनुवेशनम् । येदे च विहितो मागः सवलोक्यैष पूजितः ॥७५॥

श्यालप्रादौ यया श्यालं बिलादुद्धरेत् बलात् । एष त्वनुगता नारी सह भर्ता दिवः व्रजेत् ॥७६॥

तिष्ठ, कौटपोऽर्धकोटी च यानि रोमाणि मानुषे । तावत्कालं वसेत्स्वर्गे भर्तारं याज्जुगच्छति ॥७७॥

नमस्कृत्या भुवं देवानाङ्गा चापि वनस्पतीन् । आश्वत्थं तान्यपत्यानि लुब्धकः बावयमब्रवीत् ॥७८॥

ब्रह्मा ने कहा—अहा ! मेरे मानव शरीर के इस जीवन को विचकार है । क्योंकि आज पक्षिराज ने मेरे लिये अपूर्व साहस किया है ॥७०॥

ब्रह्मा ने कहा—कपोती ने इस प्रकार उसको बहता हुआ देखकर यह वाक्य कहा ॥७१॥

कपोती ने कहा—महाभाग ! तुम मुझको छोड़ दो देखो मेरा यह पति मुझसे दूर जा रहा है ॥७२॥

ब्रह्मा ने कहा—कपोती की उन बातों को सुनकर वह शिकारी कुछ डर-सा गया और उसने बंधी हुई कपोती को भी छोड़ दिया । वह भी अपने पति और अग्नि की परित्रमा कर आगे बड़ी हुई बातें कहने लगी ॥७३-७४॥

कपोती ने कहा—‘भर्ता के साथ सहगमन ही स्त्रियों का उत्तम धर्म है । यही मार्ग वेदों में प्रतिपादित है, और सब लोकों में यह ध्येष्ट माना गया है । जिस प्रकार सपिरा साँप को बिल से बलपूर्वक बाहर खींच लाता है उसी प्रकार पति के साथ अनुगठ (सती होनेवाली) नारी पति को लेकर स्वर्ग जाती जाती है । जो अपन पति के साथ जाती होती है, वह मनुष्य के शरीर में जितने तीन करोड़ पचास लाख के लगभग रोग हैं उतने वर्ष तक स्वर्ग में निवास करती है ।’ इस प्रकार सहगमन की महिमा कह कर कपोती ने पूष्यो, देवगण गंगा और वनस्पतियों को नमस्कार किया, अपने बच्चों को दासि बंधायी और पुन शिकारी से कहा ॥७८॥

कपोत्युवाच

त्वत्प्रसादान्महाभाग उपपन्न ममेदृशम् । अपत्याना क्षमस्त्वेह भर्त्रा यामि त्रिविष्टपम् ॥७९॥

ब्रह्मोवाच

इत्युक्त्वा पक्षिणी साध्वी प्रविवेश हृताशनम् । प्रविष्टाया हृतवहे जयशब्दो न्यवर्तत ॥८०॥
गगने सूर्यसकाश विमानमतिशोभनम् । तदाऽऽरूढो सुरनिभौ दपती ददृशे ततः ॥८१॥
हर्षेण प्रोचतुर्भौ लुब्धक विस्मयान्वितम् ॥८२॥

दंपती ऊचतुः

गच्छावस्त्रिदशस्थानमापृष्टोऽसि महामते । आययो स्वर्गसोपानमतिविस्त्व नमोऽस्तु ते ॥८३॥

ब्रह्मोवाच

विमानवरमाहूढो तौ दृष्ट्वा लुब्धकोऽपि स । सधनु पञ्जरं त्यक्त्वा हृताञ्जलिरभापत ॥८४॥
लुब्धक उवाच

न त्यक्तव्यो महाभागो देय किंचिदजानते । अहमत्रातिथिर्माण्यो निष्कृति वक्तुमर्ह्यः ॥८५॥

दंपती ऊचतुः

गौतमीं गच्छ भद्र ते तस्या पाप निवेदय । तत्रैवाऽऽप्लवनात्पक्षं सर्वपापैर्विमोक्ष्यसे ॥८६॥
भुवतपाप, पुनस्तत्र गङ्गायामवगाहने । अश्वमेधफल पुण्य प्राप्य पुण्यो भविष्यसि ॥८७॥

कपोती ने कहा—महाभाग । तुम्हारी कृपा से मुझे यह सुअवसर प्राप्त हुआ । मेरे बच्चों को क्षमा करना अर्थात् बच्चों पर कृपा करना । मैं अब स्वामी के साथ स्वर्ग जा रही हूँ ॥७९॥

ब्रह्मा ने कहा—यह कहकर वह साध्वी कपोती अग्नि में प्रवेश कर गई । उसके अग्नि में प्रवेश करते ही जयध्वनि हुई । आकाश में अक्षिमनोहर सूर्य के समान चमकीला विमान और उस पर बैठ गये वे पक्षी के जोड़े देवता के समान दिखाई पड़े । आश्चर्य में दूबे गये उस व्याघ्र से उन दोनों ने आनन्दपूर्वक कहा ॥८० ८१॥

दपती ने कहा—हम दोनों देवलोक को जा रहे हैं । तुम से विदा चाहते हैं । महामति । तुम हम लोगों के स्वर्ग की सीढ़ी के समान अतिथि हो अर्थात् तुम्हारे अतिथि होने से ही स्वर्ग मिला है । तुमको नमस्कार है ॥८३॥

ब्रह्मा बोले—उन दोनों को उत्तम देव विमान पर आरुढ़ देखकर वह शिकारी भी धनुष और पिंजरा पेंकर हाथ जोड़ कर बोला ॥८४॥

व्याघ्र ने कहा—हे महाभाग । मुझ अज्ञानी को इस प्रकार छोड़ना उचित नहीं । इस अनजान को भी कुछ ज्ञान देते जाइये । मैं आज मान्य अतिथि हूँ । इसलिये मेरे उद्धार का माग बताने की कृपा कीजिये ॥८५॥

दम्पती ने कहा—गौतमी नदी के तट पर जाओ । उनसे अपने पापा का निवेदन करो । तुम्हारा वत्पण हुआ । वही एक पक्ष तक स्नान करने से तुम सब पापा से छूट जाओगे । पुन पापमुक्त होकर उस गंगा में स्नान

सरिद्वारायां गीतम्यां ब्रह्मविष्णुबीशतंभुवि। पुनराप्लवनादेव त्यक्त्वा देहं मलीमसम् ॥८८॥
विमानवरमाहूढः स्वर्गं गन्ताऽऽधसंशयम् ॥८९॥

ब्रह्मोवाच

तच्छ्रुत्वा यचनं ताम्या तथा चक्रे स लुब्धकः। विमानवरमाहूढो दिव्यरूपधरोऽभवत् ॥९०॥
दिव्यमाल्याम्बरधरः पूज्यमानोऽप्सरोगणैः। कपोतश्च कपोती च तृतीयो लुब्धकस्तथा ॥
गङ्गायाश्च प्रभावेण सर्वे यै दिव्यमाश्रमन् ॥९१॥
ततः प्रभृति तृतीर्थं कपोतमिति विभ्रुतम्। तत्र स्नानं च दानं च पितृपूजनमेव च ॥९२॥
जपयज्ञादिकं कर्म तदानन्त्याय कल्पते ॥९३॥

इति श्रीमहमपुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये कपोततीर्थवर्णनं नामाशीतितमोऽध्यायः ॥८०॥
गीतमीमाहात्म्ये एकादशोऽध्यायः ॥११॥

अयंकाशीतितमोऽध्यायः

कुमारतीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

कार्तिकेयं परं तीर्थं कौमारमिति विभ्रुतम्। यन्नामश्रवणादेव कुलवाञ्छुपधान्भवेत् ॥१॥

करने से अरवमेष का फल पाकर पवित्र हो जाओगे। ब्रह्मा, विष्णु और शंकर द्वारा प्रकट की हुई उस उत्तम सरिता में गुप्त स्नान करने से ही अपने पापमय शरीर को छाडकर उत्तम विमान पर चढ़कर नि सन्देह स्वर्ग चले जाओगे ॥८६-८९॥

ब्रह्मा ने कहा—उन सोना से ऐसी बात गुनार ध्याध ने वंशा ही किया। जिसने पञ्चस्वरूप यह दिव्यदेह-पाटी होकर उत्तम विमान पर आरुढ़ हो गया, उत्तम दिव्य माला और वस्त्रा स सुशामित हो गया और अप्सराएँ उसकी पूजा करने लगी। इस प्रकार वे कपोत, कपोती तथा तीसरा व्याध य तीना गीतमी गंगा ने प्रभाव से स्वर्ग-लोक को चले गये। तब से वह तीर्थं कपोत तीर्थं नाम से प्रसिद्ध हो गया। उस तीर्थं में स्नान दान पितृपूजन और जप, यज्ञ आदि कर्म करने से अघात और अनन्त पुत्र प्राप्त होते हैं ॥९० ९३॥

श्री ब्रह्महपुराण म कपोततीर्थं वर्णन नाम अस्तीति अध्याय समाप्त ॥८०॥

अध्याय ८१

कुमारतीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा ने कहा—कार्तिकेय नाम का एक उत्तम तीर्थ है, जिसकी प्रसिद्धि कुमार तीर्थं नाम से भी है। उस

निहते तारके दैत्ये स्वस्थे जाते त्रिविष्टपे। कार्तिकेयं सुतं ज्येष्ठं प्रीत्या प्रोधाच पार्वती॥२॥
 यथासुखं भुङ्क्ष्व भोगास्त्रैलोक्ये मनसः प्रियान्। ममाऽज्ञया प्रीतमनाः पितुश्चैव प्रसादतः॥३॥
 एवमुक्तः स वै माता विशालो देवतास्त्रियः(?)। यथासुखं बलाद्रेमे देवपत्न्योऽपि रेमिरे॥४॥
 ततः संभुज्यमानासु देवपत्नीषु नारद। नाशबनुवन्वारयितु कार्तिकेयं दिवौकसः॥५॥
 ततो निवेदयामासु पार्वत्यं पुत्रकर्म तत्। असकृद्वायमाणोऽपि मात्रा देवं स शक्तियूक्॥६॥
 नैवासावकरोद्वाक्यं स्त्रीध्वासक्तस्तु घण्मुखः। अभिशापभयाद्भूता पार्वती पर्यचिन्तयत्॥७॥
 पुत्रस्नेहात्तथैवेशा देवानां कार्यसिद्धये। देवपत्न्यदिचर रक्षया इति मत्वा पुनः पुनः॥८॥
 यस्यां तु रमते स्कन्दः पार्वती त्वयि तादृशी। तद्रूपभात्मनः कृत्वा वर्तयामास पार्वती॥९॥
 इन्द्रस्य वरुणस्यापि भार्यामाहूय घण्मुखः। यावत्पश्यति तस्यां तु मातृरूपमपश्यत्॥१०॥
 तामपास्य नमस्याथ पुनरग्यामयाऽऽहूययत्। तस्यां तु मातृरूपं स प्रेक्ष्य लज्जामुपेयिवान्॥११॥
 एवं बह्वीषु तद्रूपं दृष्ट्वा मातृमयं जगत्। इति संचिन्त्य गाङ्गेयो वैराग्यमगमत्तदा॥१२॥
 स तु मातृकृतं ज्ञात्वा प्रवृत्तस्य निवर्तनम्। निवार्यश्चेदहं भोगात्किं तु पूर्वं प्रवर्तितं॥१३॥
 तस्मान्मातृकृतं सर्वं मम हास्यास्पदं त्विति। लज्जया परया मुपतो गीतमीमगमत्तदा॥१४॥

तीर्थ का स्मरण करते मात्र से मनुष्य रूपवान् और पुत्रपौत्रादि से संपन्न हो जाता है॥१॥ जब तारक नामक असुर के मारे जाने पर स्वर्ग में शान्ति स्थापित हो गई तब युद्ध में धके अपने ज्येष्ठ प्रिय पुत्र कार्तिकेय से पार्वती ने कहा॥२॥ 'तुम मेरी आज्ञा और पिता की प्रसन्नता से इस त्रिभुवन में प्रसन्नतापूर्वक प्रिय भोगों का यथेच्छ उपभोग करो'॥३॥ माता से इस प्रकार आज्ञा पा जाने पर कार्तिकेय बलपूर्वक देव स्त्रियों के साथ स्वेच्छापूर्वक विहार करने लगे देवस्त्रियाँ भी उनके साथ विहार करने लगीं॥४॥ नारद। तदनन्तर इस प्रकार देवपत्नियों के साथ विहार करनेवाले कार्तिकेय को देवता किसी प्रकार से भी रोक न सके॥५॥ विवश हो उन्होंने माता पार्वती से उनके पुत्र का यह अनुचित कर्म कहा। माता और देवताओं से बार-बार शनार किये जाने पर भी वे शक्तिशाली घण्मुख स्त्रीजनों में अधिक आसक्त हो जाने के कारण अपने को उस कार्य से विरत न कर सके॥६॥ तब अभिशाप (निन्दा) के भय से डरकर माता पार्वती सोचने लगी—'पुत्र-स्नेह तथा देवा को कार्य सिद्धि के लिये देवपत्नियों भी चिररसणीय है' यह बार-बार सोचकर अन्त में जिस स्त्री से कार्तिकेय विहार करते थे उसी के समान अपना रूप बनाकर पार्वती रहने लगी॥७॥ ९॥ इधर इन्द्र और वरुण की स्त्रियों को समीप बुलाकर स्कन्द ने ज्यों ही देखा त्यों ही उनको उनमें मातृत्व का आभास मिला॥१०॥ यह देखकर वे अत्यन्त लज्जित हो गये। उनको हटाकर और प्रणाम कर पुन दूसरी को बुलाया। उसमें भी मातृरूप देखकर वे और भी लज्जित हुये॥११॥ उन बहुत सी देवभार्याओं में मातृत्व का दर्शन करने से उनको यह सारा ससार ही मातृमय है यह ज्ञान हो जाने से वैराग्य हो गया॥१२॥ उन्होंने 'यह सारा रहस्य कामासक्त मुझको निवृत्ति की ओर ले जाने के लिये ही माता द्वारा किया गया है यह जान लिया। वे सोचने लगे कि यदि मुझको भोगों से निवृत्त करना था तो क्यों पहले भोग की ओर मुझे झुकाया गया? इसलिए माता द्वारा किया गया यह सब कुछ मेरे लिए हास्यास्पद है। यह सोचकर अत्यन्त लज्जित होकर गीतमी

इयं च मातृरूपा मे शृणोतु मम भाषितम् । इतः स्त्रीनामधेयं यन्मम मातृसमं मतम् ॥१५॥
एवं ज्ञात्वा लोकनाथः पार्वत्या सह शंकरः । पुत्रं निवारयामास वृत्तमित्यब्रवीद्गुहः ॥१६॥
ततः सुरपतिः प्रीतः किं वदामिति चिन्तयन् । कृताञ्जलिपुटः स्कन्दः पितरं पुनरब्रवीत् ॥१७॥

स्कन्द उवाच

सेनापतिः सुरपतिस्तव पुत्रोऽहमित्यपि । अलमेतेन देवेश किं वरैः सुरपूजित ॥१८॥
अथवा दातुकामोऽसि लोकानां हितकाम्यया । याचेऽहं नाऽऽत्मना देव तदनुज्ञातुमर्हसि ॥१९॥
महापातकिनः केचिद्गुरुद्वारानिगमिनः । अत्राऽऽप्लवनमात्रेण धौतपापा भवन्तु ते ॥२०॥
आप्नुवन्तूत्तमा जातिं तिर्यञ्चोऽपि सुरेश्वर । कुरूपो रूपसंपत्तिमत्र स्नानादवाप्नुयात् ॥२१॥

ब्रह्मोवाच

एवमस्तिवति त शंभुः प्रत्यनन्दत्सुतेरितम् । ततः प्रभृति तत्तीर्थं कार्तिकेयमिति श्रुतम् ॥
तत्र स्नानं च दानं च सर्वैरुक्तुफलप्रदम् ॥२२॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये कुमारतीर्थवर्णनं नामकाशीतित-

मोऽध्यायः ॥८१॥

गौतमीमाहात्म्ये द्वादशोऽध्यायः ॥१२॥

की ओर चले गये ॥१३-१४॥ वहाँ जाकर गौतमी को सम्बोधित करते हुये कहा कि यह गौतमी मेरी माता के समान है, अतः हे माता ! मेरी प्रतिज्ञा सुनो 'आज से स्त्री मात्र का नाम मेरे लिये मातृनाम के तुल्य होगा, ऐसा मेरा विचार है' ॥१५॥ पार्वती ने सहित लोचपति शंकर ने जब इस प्रकार की घटना सुनी तब अपने विरागीपुत्र को वहाँ से लौटाने का प्रयत्न किया और कहा कि जो कुछ होना था सो हो गया, अब चलो । पुनः सुर-स्वामी शंकर प्रसन्न होकर सोचने लगे कि स्कन्द को क्या दिया जाय । शंकर स्कन्द हाथ जोड़कर पिता से बोले ॥१६-१७॥

स्कन्द ने कहा—देवेन्द्र ! देव-गुण्य ! मैं सेनापति (देव-सेनापति) हूँ, सुर और तुम्हारा पुत्र भी हूँ, इसलिये मुझे वर देने से क्या प्रयोजन । अथवा यदि तुम वर देना ही चाहते हो तो मैं अपने लिये नहीं प्रत्युत लोकहित के लिये याचना करता हूँ, सो हे देव ! मुझे प्रदान कीजिये । जो कोई महापातकी हो, चाहे वे गुरु-नलीगामी ही क्यों न हों, व समी यहाँ गौतमी में स्नान मात्र से पाप मुक्त हो जायें । सुरेश्वर ! यहाँ के स्नान से तिर्यग्योनि में उत्पन्न भी उत्तम योनि को प्राप्त करें, और कुरूपजन रूप-सम्पदा को प्राप्त करें ॥१८-२१॥

यहाने कहा—शम्भु ने 'ऐसा ही हो' यह कहकर अपने पुत्र की वही हुई बातों का समर्थन कर उसको प्रसन्न किया । तभी से वह तीर्थ वासिदैव नाम से प्रसिद्ध हुआ । उस तीर्थ में स्नान करने और दान देने से समस्त यन्त्रों का फल प्राप्त होता है ॥२२॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में कुमारतीर्थ-वर्णन नामक द्वादशीवा अध्याय समाप्त ॥८१॥

अथ द्वयशीतितमोऽध्यायः

कृत्तिवातीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

यत्स्यात् कृत्तिकातीर्थं कार्तिकेयादनन्तरम् । तस्य श्रवणमानेण सोमपानफलं लभेत् ॥१॥
 पुरा तारकनाशाय भवरेतोऽपिबत्कवि । रेतोर्गर्भं कविं दृष्ट्वा श्रपिपत्योऽस्पृहमुने ॥२॥
 सप्तर्षीणामनुस्नाता वर्जयित्वा त्वरन्घतोम् । तासु गर्भं समभयत्पद्सु स्त्रीषु तदाऽग्निनित ॥३॥
 तप्यमानास्तु शोभिष्या (?) श्रुतुस्नातास्तु ता मुने । किं कुर्मं वव नु गच्छाम किं कृत्वा सृकृतं भवेत् ॥४॥
 इत्युक्त्वा ता मिथो गङ्गां ध्याया गत्वा व्यपोडयन् । ताम्यस्ते नि सृता गर्भा फेनरूपास्तदाऽम्भसि ॥५॥
 अम्भसा त्वेकता प्राप्ता वायुना सर्वं एव हि । एकरूपस्तदा ताम्य यन्मुखं समजायत ॥६॥
 स्वावयित्वा तु तानाभानूयिपत्यो गृहाययु । तासां विकृतरूपाणि दृष्ट्वा ते श्रययोऽब्रुवन् ॥७॥
 गम्यता गम्यता शीघ्रं स्वरीं वृत्तिर्नं युज्यते । स्त्रीणामिति ततो वत्स निरस्ता पतिभिस्तु ता ॥८॥
 ततो दुःखं समाविष्टास्तप्यता स्वपतिभिश्च घट । ता दृष्ट्वा नारदं प्राह कार्तिकेयो हरोद्भूय ॥९॥

अध्याय ८२

कृत्तिकातीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा न क्हा—कार्तिकेय तीर्थ के बाद कृत्तिका नामक तीर्थ प्रसिद्ध है । उसके नाम सुनने मात्र से सोमपान का फल प्राप्त होता है ॥१॥ प्राचीन काल में तारक के वच के लिये कवि (अग्नि) ने शकर का वीर्य पी लिया । मुने ! कवि को इस प्रकार शिववीर्य से युक्त देखकर श्रपिपतियों के मन में इच्छा उत्पन्न हुई ॥२॥ उस समय ब्रह्मघटी को छोड़ शेष सप्तर्षियों की पत्नियाँ श्रुतु-स्नाता थी । उन छह स्त्रियों को इच्छामात्र से अग्नि के द्वारा गम रह गया ॥३॥ मुनितारद ! ये श्रुतुस्नाता सुन्दर स्त्रियाँ यह देखकर अनुताप करने लगी सोचने लगी कि क्या करें हम वहाँ चले क्या करने से हमारा कल्याण होगा ॥४॥ इस प्रकार आपस में विचार कर व्याकुल हो गया के पास गई । वहाँ जाकर अपने पेट को बलपूर्वक दवाने लगी । जिससे उन सबों का गम फेन के रूप में बाहर जल में निकल पड़ा ॥५॥ वायु की प्रेरणा से और जल के वेग से सभी एक में मिल गये । सब बह मिलित गम एक शरीर और छह मुखवाला हो गया ॥६॥ श्रपिपतियाँ भी गम-साव के बाद अपने-अपने घर चली गयी । उनके विरूप मुख को देखकर उन श्रपियों ने कहा—॥७॥ 'आओ तुम लोग यहाँ से शीघ्र जाओ । स्त्रियों के लिये स्वरी वृत्ति (पर पुरुष की कामना) उचित नहीं है । वत्स ! उसके बाद वे सभी स्त्रियाँ अपने पतियों से बहिष्कृत हो गई ॥८॥ तब पतित्यक्ता वे छहो स्त्रियाँ अत्यन्त दुःखी हुई । उनको इस प्रकार दुःखी देखकर नारद ने कहा—शकर के पुत्र कार्तिकेय के पास जो

गाङ्गेयोऽग्निभवश्चेति विख्यातस्तारकान्तकः। तं यान्तु न चिरादेव प्रीतो भोगं प्रदास्यति ॥१०॥
 देवर्षेयवनादेव समभ्येत्य च पण्मूलम्। कृत्तिकाः स्वयमेवेतद्यथावृत्तं न्यवेदयन् ॥११॥
 ताम्यो वाक्यं कृत्तिकाम्यः कार्तिकेयोऽनुमन्य च। गौतमीं यान्तु सर्वाश्च स्नात्वाऽऽपूज्य महेश्वरम् ॥१२॥
 एष्यामि चाहं तत्रैव यास्यामि सुरमन्दिरम्। तथेत्युक्त्वा कृत्तिकाश्च स्नात्वा गङ्गा च गौतमीम् ॥१३॥
 देवेश्वर च संपूज्य कार्तिकेयानुशासनात्। देवेश्वरप्रसादेन प्रपद्युः सुरमन्दिरम् ॥१४॥
 ततः प्रभृति तत्तीर्थं कृत्तिकातीर्थमुच्यते। कार्तिक्यां कृत्तिकायोगे तत्र यः स्नानमाचरेत् ॥१५॥
 सर्वकृतुफलं प्राप्य राजा भवति धार्मिकः। तत्तीर्थस्मरणं वाऽपि यः करोति शृणोति च ॥
 सर्वपापविनिर्मुक्तो दीर्घमायुरवाप्नुयात् ॥१६॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये कृत्तिकातीर्थवर्णनं नाम द्व्यशीतितमोऽध्यायः ॥८२॥
 गौतमीमाहात्म्ये त्रयोदशोऽध्यायः ॥१३॥

अथ त्र्यशीतितमोऽध्यायः

दशाश्वमेधतीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

दशाश्वमेधिक तीर्थं तच्छृणुष्व महामुने। यस्य श्रवणमात्रेण हयमेघफलं लभेत् ॥१॥

गणेश (गंगा के पुत्र) अग्निमव (अग्नि से उत्पन्न) और तारकान्तक (तारक के वध करने वाले) नाम से प्रसिद्ध हैं, जाओ। वे क्षीप्र ही प्रसन्न होकर मुक्ति के उपाय बतलायेंगे ॥९-१०॥ देवर्षि नारद ने कहने से पण्मूल स्कन्द के पास जाकर उन कृत्तिकात्री (ऋषि-मत्तियों ने) स्वयं जैसा हुआ था वैसा कह सुनाया। उन कृत्तिकात्री के मुख से इन बातों को सुनकर कार्तिकेय ने स्वयं विचार किया और कहा कि गौतमी नदी के पास आप सब जायें। वहाँ स्नान कर महेश्वर की पूजा करें। आप सबका उद्धार हो जायगा। मैं भी वहाँ आऊँगा और देवमन्दिर में चलाँगा ॥११-१२॥ कृत्तिकात्री ने भी 'ठीक है' यह कहकर गौतमी गंगा में स्नान किया और कार्तिकेय के कथनानुसार महेश्वर की पूजा की। इस प्रकार देवेश्वर की कृपा से वे स्वर्ग को चली गईं ॥१३-१४॥ उस समय से वह स्थान कृत्तिकातीर्थ का नाम से प्रसिद्ध हुआ। वहाँ जो कृत्तिका नक्षत्र से मुक्त कार्तिकी पूर्णिमा को स्नान करता है, वह सब यज्ञों का फल प्राप्त करता है और परम धार्मिक राजा होता है। जो व्यक्ति उस तीर्थ का स्मरण करता है या वर्णन सुनता है, वह भी सब पापों से मुक्त होकर दीर्घायु प्राप्त करता है ॥१५-१६॥

श्रीब्रह्ममहापुराण ने कृत्तिकातीर्थ वर्णन नामका अध्याय समाप्त ॥८२॥

अध्याय ८३

दशाश्वमेधतीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा ने कहा—'महामुनि' अब दशाश्वमेधिक तीर्थ के विषय में मुने, जिसके श्रवणमात्र से मनुष्य दस

विश्वकर्म्मसुतः श्रीमान्विश्वरूपो महाबलः। तस्यापि प्रथमः पुत्रस्तत्पुत्रो भौवनो विभुः॥२॥
 पुरोधाः कश्यपस्तस्य सर्वज्ञानविशारदः। तमपृच्छन्महाबाहुर्भौवनः सार्वभौवनः॥३॥
 यक्ष्येऽहं ह्यमेधंश्च युगपद्दशभिर्मुने। इत्यपृच्छद्गुरुं विप्रं त्वं यक्ष्यामि सुरानिति॥४॥
 सोऽवदद्देवयजनं तत्र तत्र नृपोत्तम। यत्र यत्र द्विजश्रेष्ठाः प्रायतन्त महात्तून्॥५॥
 तत्राभवन्नृपिगणा आत्विज्ये मखमण्डले। युगपद्दशमेधानि प्रवृत्तानि पुरोधसा॥६॥
 पूर्णतां नाऽऽयुस्तानि दृष्ट्वा चिन्तापरो नृपः। विहाय देवयजनं पुनरन्यत्र तान्त्रदून्॥७॥
 उपाक्रमत्तथा तत्र विघ्नदोषास्तमाययुः। दृष्ट्वाऽपूर्णास्ततो यज्ञान्गजा गुरमभायत॥८॥

राजोवाच

देशदोषात्कालदोषान्मम दोषात्तवापि वा। पूर्णतां नाऽऽप्नुवन्ति स्म दशमेधानि वाजिन'॥९॥

ब्रह्मोवाच

ततश्च बुद्धितो राजा कश्यपेन पुरोधसा। गीप्यतेभ्रातरं ज्येष्ठं गत्वा संवर्तमचतुः॥१०॥

कश्यपभौवनावचतुः

भगवन्पुण्यपरकार्याभ्यश्चमेधानि मानद। दश संपूर्णतां याति तं देशं तं गुरुं वद॥११॥

अश्वमेध के फल को प्राप्त करता है॥१॥ महाबलवान् श्रीमान् विश्वरूप विश्वकर्मा का पुत्र था। उसके एक पुत्र था। उसके भी बलवान् भौवन नाम का एक पुत्र हुआ॥२॥ सब विद्याओं में निपुण कश्यप जी उसके पुरोहित थे। उस महापराक्रमी, सार्वभौम (चक्रवर्ती) राजा भौवन ने उनसे पूछा—॥३॥ 'मुने! मैं एक ही साथ दस अश्वमेध यज्ञ करना चाहता हूँ।' फिर उसने ब्राह्मण गुरु से पूछा कि कहीं मैं देवताओं का यजन नहीं करूँ॥४॥ कश्यपजी ने उन-उन स्थानों को—जहाँ-जहाँ द्विजवर्योंने बड़े-बड़े यज्ञों को कराया था—यज्ञ करने के लिये बताया॥५॥ पुरोहित द्वारा एक साथ दस अश्वमेधयज्ञ प्रारम्भ करा दिये गये और उस यज्ञ-मण्डल में ऋत्विक् का कार्य करने के लिये ऋत्विगण नियुक्त भी कर दिये गये। परन्तु वे यज्ञ पूर्ण नहीं हुये। यह देखकर राजा चिन्तित हो गये। पुनः वहाँ उन देव-यज्ञों को छोड़कर अन्यत्र उन्हीं दस यज्ञों को प्रारम्भ किया। वहाँ भी ज्योंही यज्ञ प्रारम्भ हुये, विघ्न और दोष उपस्थित हो गये। फिर यज्ञों को अपूर्ण देखकर राजा ने गुरु से कहा॥६-८॥

राजा ने कहा—देश दोष, समय दोष से, मेरे अथवा आपके दोष से ही मेरे ये दस अश्वमेध यज्ञ पूर्ण नहीं हो रहे हैं॥९॥

ब्रह्मा ने कहा—तदनन्तर राजा ने अत्यन्त दुःखी होकर पुरोहित कश्यप के साथ बृहस्पति के बड़े माई सप्तर्षि के पास जाकर कहा॥१०॥

कश्यप और भौवन ने कहा—भगवन्! प्रतिष्ठा देने वाले। दस अश्वमेध यज्ञ एक ही साथ करना चाहता हूँ। जहाँ और जिससे पूर्ण होंगे, उस स्थान और गुरु को बताइये॥११॥

ब्रह्मोवाच

ततो ध्यात्वा ऋषिधेष्ठः संवर्तो भोवनं तदा । अन्नवीद्मच्छ ब्रह्माणं गुरुं देशं वदित्यति ॥१२॥
 भोवनोऽपि महाप्राज्ञः कश्यपेन महात्मना । आगत्य मामन्नवीच्च गुरुं देशादिकं च यत् ॥१३॥
 ततोऽहमन्नं पुन भोवनं कश्यपं तथा । गौतमीं गच्छ राजेन्द्र स देशः यत्पुण्यवान् ॥१४॥
 अयमेव गुरुः धेष्ठः कश्यपो वेदपारगः । गुरोरस्य प्रसादेन गौतम्याश्च प्रसादतः ॥१५॥
 एकेन हयमेधेन तत्र स्नानेन वा पुनः । सेत्स्यन्ति तत्र यज्ञाश्च दशमेधाणि बाजिनः ॥१६॥
 तच्छ्रुत्वा भोवनो राजा गौतमीतीरमभ्यगात् । कश्यपेन सहायेन हयमेधाय दीक्षितः ॥१७॥
 ततः प्रवृत्ते यत्नेन हयमेधे महाव्रतः । संपूर्णे तु तदा राजा पृथिवीं दातुमुद्यतः ॥१८॥
 ततोऽन्तरिक्षे वायुर्चरवाच नृपसत्तमम् । पूजयित्वा स्थितं विप्रानृत्विजोऽय सदास्पतीन् ॥१९॥

आकाशवागीवाच

पुरोयते कश्यपाय ससैलवनकाननाम् । पृथिवीं दातुकामेन दत्त सर्वं त्वया नृप ॥२०॥
 भूमिदानस्पृहा त्यक्त्वा अन्नं देहि महाफलम् । नाश्रदानसम पुण्यं त्रिषु लोकेषु विद्यते ॥२१॥
 विशेषतस्तु गङ्गाया श्रद्धया पुलिने मुने । त्वया तु हयमेधोऽयं कृतः सब्रह्मदक्षिणः ॥
 कृतकृत्योऽसि भद्र ते मात्र कार्या विचारणा ॥२२॥

ब्रह्मा ने कहा—तब ऋषि-धेष्ठ स्वर्त ने कुछ समय तक ध्यानस्थ होकर भोवन से कहा—‘ब्रह्मा के पास जाओ, वही गुरु और उचित स्थान को बतायेंगे।’ महाज्ञानी भोवन ने भी गुरु कश्यप के साथ मेरे पास आकर गुरु और देश आदि के विषय म पूछा। पुनः इसके बाद मैंने भोवन और कश्यप से कहा—‘राजेन्द्र! गौतमी के तट पर जाओ, वही यज्ञ के योग्य पुण्यभूमि है। वही वेदा के पारगत् विद्वान् कश्यप उत्तम गुरु हैं। इनकी और गौतमी की कृपा से एक ही अश्वमेध यज्ञ करने से और पुन उसमें स्नान करने से दस अश्वमेध यज्ञ सिद्ध हो जायेंगे अर्थात् दस अश्वमेध यज्ञ का फल होगा। उन बातों को सुन कर राजा भोवन गौतमी तीर पर गुरु कश्यप के साथ गये और यज्ञ के लिये दीक्षित हो गये। इसने उपरांत महायज्ञ तथा यज्ञराज अश्वमेध के प्रारम्भ हो जाने पर राजा ने विधिपूर्वक यज्ञ समाप्त किया। तब वह गुरु कश्यप को दक्षिणा म पृथ्वी देने के लिये उद्यत हो गया। तदनन्तर जब उसने विप्र, ऋत्विज और सदस्या की पूजा समाप्त कर ली तब अतृप्ति म उच्च स्वर स राजा ने प्रति आकाशवाणी ने कहा ॥१२-१९॥

आकाशवाणी ने कहा—नृप! पुरोहित कश्यप को सैल, वन, वाननसहित दान देने की इच्छा कर तुमने सब कुछ दे दिया। इसलिये भूमिदान की इच्छा छोड़कर तुम अन्नदान दो, इससे ब्रह्मन् फल होगा। अन्नदान के समान पुण्यदायक दान इन तीनों लोकों म नहीं है। भूमि! यथा के तट पर अन्नदान देने से तो और विशेष फल होता है। तुमने तो इस गंगा (गौतमी) के तट पर यह महान् अश्वमेध यज्ञ किया है, जिसम बहुत दक्षिणा दी गई है। इसलिये तुम कृतकृत्य हो गये। तुम्हारा कल्याण होगा। इस पर अधिक विचार करने की आवश्यकता नहीं है ॥२०-२२॥

ब्रह्मोवाच

तथाऽपि दातुकामं तं मही प्रोवाच भौवनम्

॥२३॥

पृथिव्युवाच

विश्वकर्मज सावंभौम मा मा देहि पुनः पुनः । निमज्जोऽहं सलिलस्य मध्ये तस्मान्न दीपताम् ॥२४॥

ब्रह्मोवाच

ततश्च भौवनो भोत, किं देयमिति चाश्रवीत् । पुनश्चोवाच सा पृथ्वी भौवनं ब्राह्मणं वृतम् ॥२५॥

भूम्युवाच

तिला गावो धनं धान्यं यत्किञ्चिद्गौतमीतटे । सर्वं तदक्षयं दानं किं मां भौवन दास्यसि ॥२६॥

गङ्गातीरं समाश्रित्य प्राप्तमेकं ददाति यः । तेनाहं सकला दत्ता किं मां भौवन दास्यसि ॥२७॥

ब्रह्मोवाच

तद्भुवो धचनं भूत्वा भौवनः सावंभौवनः । तथेति मात्वा विप्रेग्मो ह्यन्नं प्रादात्सुविस्तरम् ॥२८॥

ततः प्रभृति तत्तोर्यं दशाश्वमेधिकं विदुः । दशानामश्वमेधानां फलं स्नानादवाप्यते ॥२९॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये दशाश्वमेधतीर्थवर्णनं नाम अथशीतिलमोऽध्यायः ॥८३॥

गौतमीमाहात्म्ये चतुर्दशोऽध्यायः ॥१४॥

ब्रह्मा ने कहा—इतना मुन लेने पर भी उमने पृथ्वी दान का विचार नहीं छोडा तब स्वयं पृथ्वी ने भौवन से कहा ॥२३॥

पृथ्वी ने कहा—विश्वकर्मा के बराबर ! सावंभौम ! मुझको बार बार दान में मत दो । एका करने से मैं जल में डूब जाऊँगी, इसलिए मेरा दान मत करो ॥२४॥

ब्रह्मा ने कहा—यह बात सुनकर भौवन डर गया और पूछा—चि बोन सी वस्तु देनी चाहिए । इसको सुनकर पुन पृथ्वी ने ब्राह्मणों से घिरे भौवन से कहा ॥२५॥

पृथ्वी ने कहा—तिल, गौ, धन, अन्न आदि जो कुछ गौतमी के तट पर दिया जाता है, वह सब अक्षय दान होता है, तो भौवन ! क्या मुझे दान कर रहे हो ? जो इस गंगातीर पर आकर एक कौर अन्न भी दान दे देता है, उमने मैं गन्तुर्ग रूप से दान में दे दी जाती हूँ । इसलिए भौवन ! क्या मुझे दान में दे रहे हो ॥२६-२७॥

ब्रह्मा ने कहा—पृथ्वी की बात सुनकर चतुर्वर्ती भौवन ने उमने रथोकार कर दिया और प्रचुर अन्न विप्रे को दिया । तब ने वह तीर्थ दशाश्वमेध तीर्थ के नाम से प्रसिद्ध हुआ । वहाँ स्नान करने से दश अश्वमेध का फल प्राप्त होता है ॥२८-२९॥

श्रीब्रह्ममहापुराण मे दशाश्वमेधतीर्थ वर्णन नाथक निगामीवा अध्याय समाप्त ॥८३॥

अथ चतुरशीतितमोऽध्यायः

पैशाचतीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

पैशाचं तीर्थमपरं पूजितं ब्रह्मवादिभिः । तस्य स्वरूपं वक्ष्यामि गौतम्या दक्षिणे तटे ॥१॥
गिरिर्ब्रह्मगिरेः पार्वे अञ्जनो नाम नारद । तस्मिञ्छले मुनिवर शापभ्रष्टा घराप्सरा ॥२॥
अञ्जना नाम तत्राऽऽसीदुत्तमाङ्गेन वानरी । केसरी नाम तद्भर्ता अद्रिकेति तथाऽपरा ॥३॥
साऽपि केसरिणो भार्या शापभ्रष्टा घराप्सरा । उत्तमाङ्गेन मार्जारी साऽप्यास्तेऽञ्जनपर्वते ॥४॥
दक्षिणाण्वमम्यागात्केसरी लोकविश्रुतः । एतस्मिन्नन्तरेऽगस्त्योऽञ्जनं पर्वतमम्यगात् ॥५॥
अञ्जना चाद्रिका चैव अगस्त्यमपि सत्तमम् । पूजयामासतुरुभे यथान्यार्य यथासुखम् ॥६॥
ततः प्रसन्नो भगवानाहोभे श्रियता घरः । ते आहवतुर्भेऽगस्त्यं पुत्रौ देहि मुनीश्वर ॥७॥
सर्वम्यो बलिनौ श्रेष्ठौ सर्वलोकोपकारकौ । तथेत्युक्त्वा मुनिश्रेष्ठो जगामाऽऽज्ञां स दक्षिणाम् ॥८॥
ततः कदाचित्ते काले अञ्जना चाद्रिका तथा । गीत नृत्यं च हास्यं च कुर्वन्तौ गिरिर्मूर्धन्ति ॥९॥
वायुश्च निर्ऋतिश्चापि ते दृष्ट्वा सस्मितौ सुरौ । कामान्तरान्तपियौ चोभौ तदा सत्वरमीयतुः ॥१०॥

अध्याय ८४

पैशाचतीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा ने कहा—गौतमी के दाहिने किनारे पर पैशाच नामक एक दूसरा तीर्थ है, जिसकी ब्रह्मजानी भी पूजा करते हैं। उसके स्वरूप का वर्णन मैं कर रहा हूँ ॥१॥ नारद^१ ब्रह्मगिरि के बगल में अञ्जन नाम का एक पर्वत है। मुनिवर! उस पर्वत पर अञ्जना नाम की एक शाप-भ्रष्ट थी, जिसका शिरोभाग वानरी का था। उसके पति का नाम केसरी था। दूसरी अद्रिका नाम की थी ॥२-३॥ वह भी शापभ्रष्ट थी और उसी केसरी की स्त्री थी। उसका मुख मार्जारी के समान था ॥४॥ वही अञ्जन पर्वत पर वह भी रहती थी। एक समय लोकविख्यात केसरी दक्षिण सागर के समीप गया। इसी बीच ऋषि अगस्त्य अञ्जन पर्वत पर गये ॥५॥ ऋषि को आया देखकर अञ्जना और अद्रिका दोनों ने ऋषि-श्रेष्ठ अगस्त्य जी की यथोचित और सुखदायक पूजा की ॥६॥ उनकी सेवा से प्रसन्न होकर भगवान् अगस्त्य ने वहाँ 'घर माँगो'। उन दोनों ने अगस्त्य से कहा कि हे मुनीश्वर! सबने अधिक बलवान्, उत्तम गुण सम्पन्न और सब लोको का उपकार करने वाले दो पुत्र दीजिये। 'ऐसा ही होगा' ऐसा बहूँकर अगस्त्य जी दक्षिण दिशा की ओर चले गये ॥७-८॥ 'इसके अनन्तर किसी समय अञ्जना और अद्रिका दोनों पर्वत के शिखर पर थीं, हास्य और नृत्य कर रही थीं उस समय वायु और निर्ऋति नामक दो देवता उन दोनों को देखकर प्रसन्न हो गये और काम के वशीभूत होकर धीन ही वहाँ आ गये ॥१०॥ और कहा कि 'तुम दोनों हम घर देने वाले देवताओं की स्त्रियाँ हो जाओ'। उन दोनों

अथ पञ्चाशीतितमोऽध्यायः

क्षुधातीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

क्षुधातीर्थमिति ख्यातं भृशं नारद तन्मताः । कथ्यमानं महापुण्यं सर्वकामप्रदं नृणाम् ॥१॥
 ऋषिरासीत्युरा कण्वस्तपस्वी वेदवित्तमः । परिग्रमध्याश्रमाणि क्षुधया परिपीडितः ॥२॥
 गौतमस्याऽऽश्रमं पुण्यं समृद्धं चान्नवारिणा । आत्मानं च क्षुधायुक्तं समृद्धं चापि गौतमम् ॥३॥
 धीक्ष्य कण्वोऽयं वेपथ्यं वैराग्यमगमत्तदा । गौतमोऽपि द्विजश्रेष्ठो ह्यहं तपसि निष्ठितः ॥४॥
 समेन याच्ञाऽयुक्ता स्यात्तस्माद्यौतमवेदमनि । न भोक्ष्येऽहं क्षुधार्तोऽपि पीडितोऽपि कलेबरे ॥५॥
 गच्छेयं गौतमो गङ्गामजंयेय च सपदम् । इति निश्चित्य मेधावी गत्वा गङ्गां च पावनीम् ॥६॥
 स्नात्वा शुचिर्यतमना उपविश्य कुशासने । तुष्टाव गौतमो गङ्गां क्षुधा च परमापदम् ॥७॥

कण्व उवाच

नमोऽस्तु गङ्गे परमातिहारिणि, नमः क्षुधे सर्वजनातिहारिणि ।
 नमो महेशानजटोद्भूते शुभे, नमो महामृत्युमुखादिति सूते ॥८॥

अध्याय ८५

क्षुधातीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा बोले—नारद ! क्षुधातीर्थ नाम एक शक्ति तीर्थ है। मृत्यु के सम्पूर्ण मनोरथा को पूर्ण करने वाले उस महापवित्र तीर्थ के विषय में अब कहूँगा, तुम एकाग्र मन से सुनो। प्राचीन काल में कण्व नामक वद-वेत्ता और तपस्वी ऋषि थे। वे एक बार क्षुधा से पीडित होकर विभिन्न आश्रमों का भ्रमण करते हुये गौतम ऋषि के पवित्र आश्रम में पहुँचे जो अन्न और जल से परिपूर्ण था। अपने को मूल से व्याकुल तथा गौतम को समृद्धिवाली देखकर कण्व को कठोर वैराग्य हो गया। सोचने लगे कि गौतम भी ब्राह्मण हैं, मैं भी उसी के समान तपस्या में निरत रहने वाला उत्तम ब्राह्मण हूँ। समान धर्म और ज्ञान रखने वाले से याचना करना अनुचित है इसलिये मैं गौतम के आश्रम में भूल से व्याकुल और शारीरिक कष्ट सहते हुए भी भोजन नहीं करूँगा। शीघ्र ही गौतम गंगा के पास जाऊँगा और विमल अन्न ले करूँगा। इस प्रकार का दुःख निश्चय कर वह मेधावी ऋषि परम पवित्र जगत् पर गया और स्नान से पवित्र होनु शासन पर एकाग्रचित्त हो बैठ गया तथा गंगा और आपति स्वरूपिणी 'क्षुधा देवी' की स्तुति करने लगा ॥१-७॥

कण्व बोले—मया एक कष्टों को दूर करने वाली गङ्गा ! तुमको नमस्कार है, सब लोगों को कष्ट देने वाली 'क्षुधा' ! तुमको भी नमस्कार है। महेश की जटा से उत्पन्न होने वाली तुम ! तुमको नमस्कार है और महामृत्यु के मुख से निकलने वाली भगवती क्षुधा ! तुमको भी नमस्कार है ॥८॥ पुण्यात्माओं के लिये शान्तिरूपवाली ।

पुण्यात्मना शान्तरूपे शोधरूपे दुरात्मनाम् । सरिद्रूपेण सर्वेषां तापपापपहारिणि ॥९॥
क्षुधारूपेण सर्वेषां तापपापप्रदे नमः । नमः श्रेयस्करि देवि नमः पापप्रतर्दिनि ॥
नमः शान्तिकरि देवि नमो दारिद्र्यघनाशिनि ॥१०॥

ब्रह्मोवाच

इत्येव स्तुवतस्तस्य पुरस्तादभवदद्वयम् । एक गाङ्ग मनोहारि ह्यपर भीषणाकृतिः ॥
नमः कृताञ्जलिर्भूत्वा नमस्कृत्या द्विजोत्तम ॥११॥

कण्व उवाच

सवमङ्गलमाङ्गल्यं ब्राह्मि माहेदवरि शुभे । वृष्णवि श्र्यम्बके देवि गोदावरि नमोऽस्तु ते ॥१२॥
श्र्यम्बकस्य जटोदभूत गोतमस्याघनाशिनि । सप्तधा सागरं यान्ति गोदावरि नमोऽस्तु ते ॥१३॥
सर्वपापकृता पापे धर्मकामायनाशिनि । दुष्प्रलोभमयि देवि क्षुधे तुम्य नमो नमः ॥१४॥

ब्रह्मोवाच

शक्तकण्ववचनं श्रुत्वा मुप्रीते आहर्तुद्विजम् ॥१५॥

गङ्गाक्षुधे ऊचतु

अभीष्टं यद वक्ष्यामि वरावरय मुव्रत ॥१६॥

दुरात्माभा व लिय शोधस्वरूपे ! और सरिता के रूप में पापी तथा शम्भन सबके ताप पाप दोनों को हरन वाली शय ! तुमको नमस्कार करता हूँ । सर्वको श्रुग के रूप में ताप और पाप देने वाली क्षुध ! तुमका नमस्कार करता हूँ । श्रय (वक्ष्यामि) करने वाली ! पाप को नष्ट करने वाली तुमको नमस्कार है । पालि प्रदान करने वाली देवि ! तुमको नमस्कार करता हूँ । दक्षिता का नष्ट करने वाली ! तुमको नमस्कार है ॥९१०॥

यहो न ब्रह्मा—इस प्रकार कण्व श्रुति कर रहें हैं कि उनके सामने दो विभिन्न रूपवाली भूमियाँ प्रकट हुईं । एक गंगा की मनोहर मूर्ति दूसरी क्षुधा की भयंकर आकृति । यह देखकर कण्व हाथ जोड़कर पुनः प्रार्थना करने लगे ॥११॥

कण्व शील—तब मया (को देने वाली) मयस्करिणी ! ब्राह्मि ! शुभे ! माहेदरि ! वृष्णवि ! श्र्यम्बके ! देवि ! गोदावरि ! तुमको नमस्कार है । त्रिगोवन की जगत् उत्पन्न हा वाली ! गोत्रम के पापों को नष्ट करने वाली ! गात्र धारामा में विमक्त होकर सागर में मिलन वाला ! गोत्रवरी ! आदरा नमस्कार है । सब पारिवर्ष व लिय पापकर बापा ! यम नाम अध को नष्ट करने वाली ! दुग लाम से परिपूर्ण क्षुध ! देवि ! तुमको बार-बार नमस्कार है ॥१२१४॥

ब्रह्मा न ब्रह्मा—श्रुति कण्व का कान मुनकर दाना देविनी प्रमत्त होकर ब्राह्मण कण्व न वाली ॥१५॥
गंगा और क्षुधा बोली—वक्ष्यामि ! जाना भवार्थ ब्रह्मा ! मुव्रत ! कर म'वा ॥१६॥

ब्रह्मोवाच

प्रोवाच प्रणतो गङ्गा कण्व क्षुधा यथाश्रमम्

॥१७॥

कण्व उवाच

देहि देवि मनोज्ञानि कामानि विभव मम । आप्तिवित्तं च भुक्तिं च मुक्तिं गङ्गे प्रयच्छ मे ॥१८॥

ब्रह्मोवाच

इत्युक्त्वा गीतमीं गङ्गा क्षुधा चाऽऽह द्विजोत्तम

॥१९॥

कण्व उवाच

मयि मद्गुणैश्च चापि क्षुधे तृष्णे हरिद्रिणि । याहि पापतरे वृक्षे न भूयास्त्व कदाचन ॥२०॥

अनेन स्तब्धेन ये धै त्वा स्तुवन्ति क्षुधानुरा । तेषां हरिद्रक्षुत्तानि न भवेयुर्वरोऽपर ॥२१॥

अस्मिन्तीर्थे महापुण्ये स्नानदानजपादिकम् । ये कुर्वन्ति नरा भक्त्या लक्ष्मीभाजो भवन्तु ते ॥२२॥

यस्त्विद पठते स्तोत्रं तीर्थे वा यदि वा गृहे । तस्य हरिद्रक्षुत्तं खेभ्यो न भय स्याद्वरोऽपर ॥२३॥

ब्रह्मोवाच

एवमस्तिवति चोक्त्वा ते कण्व याते स्वभालयम् । ततः प्रभृति तत्तीर्थं काण्व गाङ्गा क्षुधाभिधम् ॥

सर्वपापहरं वत्स पितृणां प्रीतिवर्धनम्

॥२४॥

इति श्रीमहापुराणे आविष्कारो तीर्थमाहात्म्ये क्षुधातीर्थवर्णनं नाम पञ्चाशीतितमोऽध्याय ॥८५॥

गीतमोमाहात्म्ये षोडशोऽध्याय ॥१६॥

ब्रह्मा बोले—विनीत कण्व ने क्षुधा और गंगा से त्रमयूक कहा ॥१७॥

कण्व बोले—देवि । मुझ मनोहर वामनाई और सम्पत्ति दो । गये । आयु धन भुक्ति और मुक्ति मुझे दो ॥१८॥

ब्रह्मा बोले—यह कहकर द्विजवर कण्व ने पुनः गीतमी गंगा और क्षुधा से कहा ॥१९॥

कण्व बोले—अतिपापे । तुम जाओ मेरे अथवा मेरे वसना के समीप क्षुधा । तृष्णा । हरिद्रा । रक्षा । वनगा । तुम सभी मत आना । जो कोई क्षुधा पीनित व्यक्ति इस स्तुति से तुम्हारी प्रायना कर उनको दरिद्रता और दुःख सभी न सताय । दूसरा एक और घर है—इस महापुण्यवान् तीर्थ में जो कोई स्नान दान जप आदि भक्तिपूर्वक करे वह अवश्य धनवान् हो । जो इस स्तोत्र को तीर्थ अथवा घर पर ही पढ़ उसको दरिद्रता और दुःख से गय नहीं यह एक मेरा और घर है ॥२० २३॥

ब्रह्मा बोले—एसा ही हो यह कहकर ये दोनों अन्तर्हित हो गई । इस कण्व भी अपने घर चले गये । उस समय से वह तीर्थ काण्व गाङ्गा क्षुधा-तीर्थ नाम से प्रसिद्ध हो गया । वत्स । वह तीर्थ सब पापों को दूर करने वाला और पितरों की प्रीति बढ़ाने वाला है ॥२४ २५॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में क्षुधातीर्थ वर्णन नामक पचासीवाँ अध्याय समाप्त ॥८५॥

अथ षडशीतितमोऽध्यायः

चक्रतीर्थगणिकासंगमवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

अस्ति ब्रह्मन्महातीर्थं चक्रतीर्थमिति श्रुतम् । तत्र स्नानान्नरो भक्त्या हरेर्लोकमवाप्नुयात् ॥१॥
 एकादश्या तु शुक्लायामुपोष्य पृथिवीपते । गणिकासंगमे स्नात्वा प्राप्नुयादक्षयं पदम् ॥२॥
 पुरा तत्र यथा वृत्तं तन्मे निगदत भृशु । आसीद्विश्वधरो नाम वैश्यो बह्वधनान्वितः ॥३॥
 उत्तरे वपसि श्रेष्ठस्तस्य पुत्रोऽभवद्वपे । गुणवान्नूपसंपन्नो विलासी शुभदर्शनः ॥४॥
 प्राणैर्म्योऽपि प्रिय पुनः काले पञ्चत्वमागतः । तया दृष्ट्वा तु तं पुत्रं वपतो दुःखपीडितौ ॥५॥
 कुर्वति स्म सदा तेन सहैव मरणे मतिम् । हा पुत्र हन्त कालेन पापेन सुदुरात्मना ॥६॥
 योवने वतंमानाऽपि नोतोऽसि गुणसागर । आवयोद्वह तथैव त्वं प्राणैर्म्योऽपि सुदुर्लभः ॥७॥
 इत्थं तु वदितं श्रुत्वा वपतयोः करुण यमः । त्यक्त्वा निजपुरं तूर्णं कृपयाऽऽधिष्ठातव्यः ॥८॥
 गोवावर्षाः शुभे क्षौरे स्थितो ध्यायञ्जनादेनम् । अपि स्वल्पेन कालेन प्रजा बृद्धाः समन्ततः ॥९॥
 इयत् इति मे पृथ्वी कथ्यतां येन पूरिता (?) । न वदिच्चिन्मियते जन्तुभारान्ता वसुंधरा ॥१०॥

अध्याय ८६

चक्रतीर्थ और गणिकातीर्थ का संगम-वर्णन

ब्रह्मा बोले—ब्रह्मन् । चक्रतीर्थ नामक एक परम प्रसिद्ध महातीर्थ है, उस तीर्थ में भक्तिपूर्वक स्नान करने से मनुष्य विष्णुलोक को प्राप्त करता है ॥१॥ पृथ्वीपते । पृथ्वीपथ की एकादशी को उपवास कर गणिका-संगम में स्नान करने से मनुष्य अक्षय पद को प्राप्त करता है ॥२॥ पहले यहाँ जो कुछ हुआ, उसको मैं कह रहा हूँ, गुनो । कोई विश्वधर नाम का एक अत्यन्त धनवान् वैश्य था ॥३॥ श्रेष्ठ । उसकी कन्या हुई अवस्था में उसकी एक गुणवान् रूपवान् देवने में गुह्य रह कर दिलासी उत्तम पुत्र उत्पन्न हुआ ॥४॥ प्राणों में भी अविश्रित प्रिय वह पुत्र युवावस्था में ही मर गया । इस प्रकार अपने बालक को मरण देते दोनो पति-पत्नी अत्यन्त दुःख में ध्यातुल्य हो गये और पुत्र के ही साथ मरने का निश्चय कर लिया ॥५॥ इस प्रकार निश्चय कर पुत्र को ही विनाश करने लगे—हा पुत्र ! हे गुणसागर ! सोच है कि पापी दुरात्मा का स्वयं द्वारा तुम युवावस्था में ही हर लिये गये हो । तुम हम लोग के लिए प्राणा में भी अविश्रित प्रिय और दुर्लभ हो ॥६॥ इस प्रकार दम्पति का करना उपवास करने वाला विष्णु गुह्य यम का हृदय चरणा में पिछल गया और वे अपने लोक को छोड़कर तीर्थ की गोशवरी के पवित्र तीर्थ पर आकर बैठ गये और समस्त जनादेन का ध्यान करने लगे ॥८॥ इगणिय मायु न हन्त मे वारुण पोरे ही समय में पारा और प्रजा की मारवा बढ़ गई । किसी भी प्राणी की मृत्यु नहीं होगी यदि इगणिय वगुह्य मार में आया न हो गई ॥९॥ यम लोपने लगे कि हमने जोड़े समय में किमने मेरी पुत्री को मार में पूर्ण कर दिया ।

ततो देवी गता तूर्णं वसुधा मुनिसत्तम। यत्रास्ति सुरसमुक्त शक्र परपुरजम् ॥
दृष्ट्वा वसुधरामिन्द्र प्रणिपत्येवमब्रवीत् ॥११॥

इन्द्र उवाच

किमागमनकार्यं त इति मे पृथ्वि कथ्यताम् ॥१२॥

धरोवाच

भारेण गुरुणा शक्र पीडिताऽहं विना बधम्। कारणं प्रष्टुमायाता किमिदं कथ्यतां मम ॥१३॥

ब्रह्मोवाच

इति श्रुत्वा महोवाक्यमिन्द्रो वचनमब्रवीत् ॥१४॥

इन्द्र उवाच

कारणं यदि नाम स्यात्तदानीं ज्ञायते मया। सुराणां हि पतिर्पस्मादहं सर्वासु(?) मेदिनि ॥१५॥

ब्रह्मोवाच

अयं पृथ्वी तदा बाधय श्रुत्वा चाऽहं शङ्खीपतिम्। यम आदिदयता सहि यया सहर्तते प्रजा ॥१६॥
इति श्रुत्वा ब्रह्मो मह्यो आबिष्टाः सिद्धकिन्नराः। यमस्याऽऽनयने शीघ्रं महेंद्रेण महामुने ॥१७॥
ततस्ते सत्वरं याता सर्वे संवत्सतः पुरम्। नवापश्यन्मम तत्र ते सिद्धा सह विनरं ॥
तथाऽऽगत्य पुनर्वैपाढातारं शक्रे निवेदिता ॥१८॥

मुनिशास्त्रम् । इससे बाद वसुधरा देवी दौड़ी हुई वहाँ गई जहाँ देवताओं में यम का बुरा को जीतने वाले इन्द्र विराजमान रहते हैं। वसुधरा को देखकर इन्द्र में प्रणाम किया और कहा ॥११॥

इन्द्र ने कहा—देवि पृथ्वि। तुम्हारे यहाँ आने का क्या प्रयोजन है? मुझसे कहो ॥१२॥

धरा ने कहा—इन्द्र। मैं भार की अचिन्ता से बिना बन्ध की ही (अर्थात् बिना किसी से भार लाये ही) अत्यन्त पीड़ित हूँ। इसका कारण पूछने के लिए आई हूँ क्या कारण है यम कहिये ॥१३॥

ब्रह्मा बोले—पृथ्वी की उपर्युक्त बातें सुनकर इन्द्र ने यह बात कही ॥१४॥

इन्द्र ने कहा—मेदिनि। यदि कोई कारण है तो अवश्य मैं उसको जान सकता हूँ क्योंकि मैं (मम) अब स्यातां मे देवताओं का स्वामी हूँ ॥१५॥

ब्रह्मा बोले—तब पृथ्वी ने इन्द्र की बात सुनकर पुनः इन्द्र से कहा—यदि ऐसा बात है तो यम को जाना दीजिये ताकि वे प्रजाओं का सहारा करें। पृथ्वी की यह बात सुनकर इन्द्र ने सिद्ध किन्नरों का आदेश दिया कि यम को शीघ्र यहाँ बुला लाओ। तदनन्तर वे विचर-शीघ्र ही यमपुरी में गये परन्तु उन किन्नरों और सिद्धों ने वहाँ यमराज को नहीं देखा। तब शीघ्र ही वहाँ से लौटकर इन्द्र से सारी बातें कह सुनाई ॥१६-१८॥

सिद्धकिन्नरा ऊचुः

यमो यमपुरे नाथ अस्माभिनविलोकित । महताऽपि सुयत्नेन वीक्ष्यमाण समन्तत ॥१९॥

ब्रह्मोवाच

इति श्रुत्वा वचस्तोपा पृष्ट शक्रेण वै तदा । सविता स पिता तस्य यम कुत्राऽस्त इत्यय ॥२०॥

सूर्य उवाच

शक्र गोदावरीतीरे कृतान्तो वर्ततेऽधुना । चरस्तत्र तपस्तीव्र न जाने किं नु कारणम् ॥२१॥

ब्रह्मोवाच

इति श्रुत्वा वचो भानो शक्र शङ्कामुपाविशत् ॥२२॥

शक्र उवाच

अहो कष्ट महाकष्ट मष्टा मे सूरनायता । गोदावर्या तप कुर्याद्यमो वै दुष्टचेष्टित ॥

जिघृक्षुर्मत्पद नून देवा इति मतिर्मम ॥२३॥

ब्रह्मोवाच

इत्युक्त्वा सहस्रेन्द्रेण आहूतश्चाप्सरोगण ॥२४॥

इन्द्र उवाच

का भवतीषु कालस्य स्थितस्य तपसि द्विप । तप प्रणशने शक्ता इति मे शीघ्रमुच्यताम् ॥२५॥

सिद्ध किन्नर बोले—नाथ । यमलोक में हम लोग ने यम को नहीं देखा यद्यपि बड़े परिश्रम से चारों ओर खोज की ॥१९॥

ब्रह्मा बोले—उन की इन बातों को सुनकर इन्द्र ने यम के पिता सविता से पूछा यम हम समय कहाँ है ? ॥२०॥

सूर्य ने कहा—इन्द्र । पुत्र यम इस समय गोदावरी के तीरे पर बैठा हुआ उस तपस्या कर रहा है मैं यह नहीं जानता कि क्या कारण है ॥२१॥

ब्रह्मा बोले—सूर्य की यह बात सुनकर इन्द्र को सन्देह हो गया ॥२२॥

इन्द्र बोले—अहो ! कष्ट है महाकष्ट है । मरी दबड़ को पदवी लुप्त होना चाहती है । यम निश्चय ही ईर्ष्या भावना से गोदावरी तीरे पर तपस्या कर रहा है । दबङ्ग ! निश्चय ही वह मेरे पद को लुप्तना चाहता है यही मरी चारणा है ॥२३॥

ब्रह्मा बोले—इन्द्र न हम प्रचार कहकर सहसा अंगरात्रा को बुलवाया ॥२४॥

इन्द्र बोले—तपस्या में लसीले जन्तु यम की तपस्या भङ्ग करने में आज लक्ष्मी से मैं कौन समर्थ है यह मुझमें शीघ्र समझाव ॥२५॥

ब्रह्मोवाच

इति शश्वच श्रुत्वा भोचे काऽपि महामुने । अथ शक्र प्रकोपेण प्रत्युवाचाप्सरोगणम् ॥२६॥

इन्द्र उवाच

उत्तर नास्त्रवोक्तिञ्चिद्यामस्तहि वयं स्वयम् । राज्ञा भवन्तु विबुधा संन्यरायान्तु मा चिरम् ॥
घातयामो वयं शत्रु तपसा स्वर्गकामुकम् ॥२७॥

ब्रह्मोवाच

इत्युक्ते सति देवाना सेना प्रादुर्बभूव ह । इतीन्द्रहृदयं ज्ञात्वा हरिणा लोकधारिणा ॥२८॥
प्रेषितं चक्रिणा चक्रं रक्षणाय यमस्य हि । चक्रं यन्नाभवत्तत्र चक्रतीर्यमनुत्तमम् ॥२९॥
अयेन्द्र मेनका प्राह शङ्खितेति घचस्तदा ॥३०॥

मेनकोवाच

कालावलोकने नालं काचिदस्ति सुरेदवर । भरणं च वरं देव भवतो न यमात्पुनः ॥३१॥
रूपयौवनमत्सेयं गणिकायाचनं प्रभो । प्रेषणं तत्प्रयच्छंसा स्वामित्वं मन्यते त्वया ॥३२॥

ब्रह्मोवाच

इति श्रुत्वा घचस्तस्या शक्र सुरवरेदवर । आदिदेशावला क्षामा सत्कृत्य गणिका तया ॥३३॥

ब्रह्मा बोले—महामुन । इन्द्र की यह बात सुनकर किसी ने कुछ नहीं कहा । तब इन्द्र ने बड़ क्रोध से भस्तराज्ञा से कहा ॥२६॥

इन्द्र बोले—तुम लोग कुछ उत्तर नहीं दे रही हो, इसलिये हम स्वयं जा रहे हैं । देवताज्ञा । तैयार हो जाओ, अपन सैनिका ने साथ युद्धाथ प्रस्थान करो विलम्ब न हो । हम स्वयं तपस्या द्वारा स्वर्ग की इच्छा करने वाले शत्रु का वध करेंगे ॥२७॥

ब्रह्मा बोले—द्वन्द्व ने पर दवताज्ञा की सना प्रस्तुत हो गई । इन्द्र की इस क्रुटिलता को जान कर शोकरसक, चक्र धारण करने वाले विष्णु ने यम की रक्षा के लिये चक्र को भेज दिया । जहाँ चक्र रक्षाथ प्रवृत्त हुआ वह परम थप्ट चक्रतीर्थ हो गया । यह देखकर वाकित भनका न इन्द्र से यह वचन कहा ॥२८-३०॥

मेनका ने कहा—सुरेदवर । हम लोमा म से कोई मृत्यु देव की ओर आँख उठाकर देखन का साहस नहीं कर सकती है । देव । आपने हाथ की मोन अच्छी है यम बनही । प्रभा । रूप और यौवन से भतवाली इस गणिका की यही प्रार्थना है । यदि आप भेजना चाहते हैं तो मुझे भेजिये, आपका प्रभु-आदग मुझे सब वा स्वीकार है ॥३१-३२॥

ब्रह्मा ने कहा—उस गणिका की इन बातों का सुनकर मुरनायक इन्द्र ने अच्छे प्रकार से सत्कार कर उस कृपागी अवला गणिकर को आज्ञा दी ॥३३॥

शक्र उवाच

गणिके गच्छ मे कार्यं कुरु सुन्दरि मा चिरम् । कृतकृत्याऽऽगता भूयो यत्नभा मे यथा शची ॥३४॥

ब्रह्मोवाच

इत्यावप्य ध्वजं शक्रादुत्पत्य गणिकां दिशः । क्षणेन यमसानिध्यमायाता चारुहिणिः ॥३५॥
यमान्तिकमनुप्राप्ता द्योतयन्ती दिशो दश । सलील ललित बाला जगौ हिन्दोलकलम् (चञ्चला) ॥३६॥
ततश्चचाल बालस्य मनो लोल चलाचलम् । अयोन्मील्य यमो नेत्रे कामपावकपूरिते ॥३७॥
तस्या व्यापारयामास श्रयशत्रो महामुनः । ततो विलीय सा सद्यः सरित्त्वमगमत्तदा ॥३८॥
गौतम्या तु समागम्य गणिकागणार्ककरं । गौयमाना गता स्वर्गे तस्य तीर्यप्रभावतः ॥३९॥
गच्छन्तीं गणिकां दृष्ट्वा विमानस्यां दिव प्रति । विस्मय परम प्राप्त कालस्तरललोचनः ॥
आऽऽदित्यन चाऽऽगत्य एवमुबतौ यमस्तदा ॥४०॥

सूर्य उवाच

कुरु पुत्र निजं कर्म प्रजानां त्वं परिक्षयम् । पश्य वात सदा वान्तं तुजन्तं धेधत प्रजा ॥
पर्यटन्तं त्रिलोकं मा बहन्तीं वसुधा प्रजा ॥४१॥

ब्रह्मोवाच

इति श्रुत्वा यमो वाक्यं पितृयजनमब्रवीत् ॥४२॥

इन्द्र बोले—गणिका! जाओ मेरे बाप को पूरा करा। मुन्दरि! विन्म्व न हो। तपलता प्राप्त करने पर तुम शची की भाँति मेरी प्रिया बनाओ ॥३४॥

ब्रह्मा न ब्रह्मा—इन्द्र की इन बातों को सुनकर मनाहूर रूप वाली वह यमका आवाग मार्ग से उड़कर शक्र मर मही यम के समीप आ गई। (अपना गरीर-कार्ति से दगा गिआओ को प्रकाशित करती हुई वह बाला (गणिका) यम के समीप आकर बह हाव भाव से आनन्दक हिन्दोलकल (राग) गान लगी। उससे मधुर गान को सुनकर यम का चञ्चल मन विपलित हो गया।) महामुनः! यम न बोधान्ति से मेरे नेत्रों को शान्ति कर दिया मार्ग में बाधा पहुँचाने वाली गणिका की ओर दगा। दगन ही वह उसी क्षण अनूप होकर नगीच में परिणत हो गई और गौतमा में मिल गई। उस साथ के प्रमाद से वह गणिका गंगा और विन्म्व के गान से शान्त होकर स्वर्ग मोक्ष को लगी गई। विमान में बैठ कर जब वह स्वर्ग की ओर जान लगी तब वह दगनकर चञ्चलतायन बाल को आपत्त आश्रय हुआ। तलाचान् उग गमय तप्य गूय न आकर यम से कहा—॥३५ ४०॥

सूर्य न ब्रह्मा—पुत्र! अपना वसुधायु—प्रजा का नाश करो। देगा ब्रह्मा शक्र प्रजा की गृष्टि करने रहने है वायु शक्र कर रहे हैं मैं यम का विमुचन का चक्र कर लगाया करता हूँ और पृथ्वी अपने वसुधायु पर प्रजा का नाश कर रही है ॥४१॥

ब्रह्मा बोले—गंगा की दग बाधा का सुनकर यम न कहा—॥४२॥

यम उवाच

एतन्न गहितं कर्म कुर्यामिहमिदं ध्रुवम् । कर्मण्यस्मिन्महाकूरे समादेषु न वाऽर्हसि ॥४३॥
 इति श्रुत्वा च तद्वाक्यं भानुर्बचनमब्रवीत् । किं नाम गहितं कर्म तव कर्तुमलं यम ॥४४॥
 किं न दृष्टा त्वया यान्ती गणिका गणिकिकरं । गीयमाना दिवं सद्यो गीतमीतोयमाप्नुता ॥४५॥
 त्वया चात्र तपस्तोत्रे कृतं पुत्रं सुदुष्करम् । नैवान्तं तस्य पश्यामि तस्माद्यच्छ निजं पुरम् ॥४६॥
 इत्युक्त्वा भगवान्भानुस्तत्र स्नात्वा गतो दिवम् । यमोऽपि सगमे स्नात्वा ततो निजपुरं ययौ ॥४७॥
 भूतहाऽपि ततः शङ्कां तत्पात्रं च महामुने । तया दृष्ट्वा यमं यान्तं चक्रे चक्रं प्रयाणकम् ॥४८॥
 भगवान्यत्र गोविन्दो वनमालाविभूषितः । इति यं शृणुयान्मर्त्यं पठेद्वाऽपि समाहितः ॥४९॥
 आपदस्तस्य नश्यन्ति दीर्घमायुरवाप्नुयात् ॥५०॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये चक्रतीर्थगणिकासप्तमवर्णनं नाम षडशीतितमोऽध्यायः ॥८६॥
 गीतमीमाहात्म्ये सप्तदशोऽध्यायः ॥१७॥

यम बोले—यह कूर और निन्द्य कर्म मैं नहीं करूँगा यह ध्रुव है। यह अति कूर कर्म करने के लिये आप आदेश न दीजिये। पुनः यम भी इन बातों को सुनकर सूर्य के ब्रह्मा—यम! क्या मैं तुमको गहित कर्म करने के लिये बन्धी भी कह सकता हूँ। क्या तुमने अभी-अभी गीतमी-जल में स्नान करने के पक्षस्वरूप गणिका को स्वर्ग की ओर जाते नहीं देखा जिसका गुणगान देवगण सेवक साव से करते जा रहे थे? पुत्र! तुमने तो इस नदी के पुनीत तीर पर अर्घ्यों से न करने योग्य बठिन तप किया है इस तपस्या का अन्त (नार्थ) नहीं देख रहा हूँ इसलिये तुम योद्धा अपने लोभ को जाओ। यह कह कर भगवान् सूर्य गीतमी में महाकर स्वर्ग को चले गये। तदनन्तर यम भी सगम में स्नान कर अपने लोक को चले गये। महामुने! प्राणियों का वध करने वाले यम ने भी (गहित कर्म करने की) शक्ती को छोड़ दिया। इस प्रकार यम को जाते हुए देखकर चक्र भी जहाँ वनमाला से सुशोभित भगवान् गोविन्द के वहाँ चला गया। इस उपर्युक्त वचन को जो कोई मनुष्य एवाग्रचित्त से सुनता है या पढ़ता है उसको सभी आपत्तियाँ दूर हो जाती हैं और वह दीर्घायु प्राप्त करता है ॥४३-५०॥

श्री ब्रह्मपुराण मे चक्रतीर्थ-गणिका-सप्तम-वर्णनं नामक टिप्पणीका अध्याय समाप्त ॥८६॥

अथ सप्ताशीतितमोऽध्यायः

अहल्यासगमेन्द्रतीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

अहल्यासगम चेह तीर्थं त्रैलोक्यपावनम् । शृणु सम्यङ्मुनिश्रेष्ठ तत्र वृत्तमिदं यथा ॥१॥
 कौतुकेनातिमहता मया पूर्वं मुनीश्वर । सृष्टा कन्या बहुविधा रूपवत्यो गुणान्विता ॥२॥
 तासामेका श्रेष्ठतमा निर्ममे शुभलक्षणाम् । ता बाला चारुसर्वाङ्गी दृष्ट्वा रूपगुणान्विताम् ॥३॥
 को वाऽस्या पोषणे शक्त इति मे बुद्धिराविशत् । न दैत्याना सुराणां च न मुनीना तथैव च ॥४॥
 नास्त्यस्या पोषणे शक्तिरिति मे बुद्धिरन्वभूत् । गुणज्येष्ठाय विप्राय तपोयुक्ताय धीमते ॥५॥
 सर्वलक्षणयुक्ताय वेदवेदाङ्गवेदिने । गौतमाय महाप्राज्ञामददा पोषणाय ताम् ॥६॥
 पालयस्व मुनिश्रेष्ठ यावदाप्स्यति यौवनम् । यौवनस्या पुनः साध्वीमानयेया ममान्तिकम् ॥७॥
 एवमुक्त्वा गौतमाय प्रादा कन्या सुमध्यमां । तामादाय मुनिश्रेष्ठ तपसा हतकल्मषः ॥८॥
 ता पोषयित्वा विधिवदलङ्घ्य ममान्तिकम् । निर्विकारो मुनिश्रेष्ठो ह्यहल्यामानयत्तदा ॥९॥

अध्याय ८७

अहल्या-सगम या इन्द्रतीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा ने कहा—इस ससार में त्रैलोक्य को पवित्र करने वाला अहल्या-सगम नाम का एक तीर्थ है । मुनिश्रेष्ठ ! इस विषय में जो कुछ हुआ, उसको मलीमांति मुनी ॥१॥ मुनीश्वर ! बहुत पहले मैंने अत्यन्त बौद्धिक वन बहुत-सी रूपवती और गुणवती कन्याओं को बनाया ॥२॥ उनमें से एक को सर्वलक्षणसम्पन्न और अतिगुदङ्ग बनाया । उस रूप और गुण से युक्त, मनोहर अर्थात् बाली बाला को देखकर हमने पालन-पोषण का भार कौन उठा-येगा, यह भावना मेरे मन में उत्पन्न हुई ॥३॥ इस पालन-पोषण की क्षमता न तो दैत्यो न देवताओं और न तो मुनियों में ही है ऐसी मरी धारणा हुई । यह सोचकर गुणश्रेष्ठ, परमनरसो, बुद्धिमान्, वेद-वेदाङ्ग के ज्ञाता, सर्वलक्षण-सम्पन्न विप्र गौतम को पालन करने के लिये उस घर में बुद्धिमती कन्या को दे दिया और कहा कि मुनिश्रेष्ठ ! तुम इसका तब तक पालन करो जब तक कि यह युवावस्था को न प्राप्त हो जाय । पुनः युवती हो जाने पर इस साध्वी को मर समीप ले आना ॥४-७॥ यह कहकर मैंने उस गुदङ्ग कटिवाली कन्या को गोमम को दे दिया । मुनिश्रेष्ठ ! तब से पापों को दूर कर देने वाले इस मुनि ने उसको ले लिया और नियत अवधि तक उसका अभिषेक पालन-पोषण किया । और इस बाद आभूषण से आभूषित कर निर्विकार यावत् से अहल्या को मरे समीप ले आया ॥८-९॥ उस समय उसको देवदेव सब अग्नि, इन्द्र, वरुण आदि देवता 'गुरोराज ! मुनयो दीक्षित, मुनयो दीक्षित'

ता दृष्ट्वा विबुधा सर्वे शशस्त्रिणवृणादयः । मम देया सुरेशान इत्युचुस्ते पृथक्पृथक् ॥१०॥
तयैव मुनय साध्या दानवा यक्षराक्षसाः । तान्सर्वानागतान्दृष्ट्वा कान्त्यार्थमय सगताम् ॥११॥
इन्द्रस्य तु विशेषण महाश्वाभूतदा ग्रहः । गौतमस्य तु माहात्म्य गाम्भीर्यं धैर्यमेव च ॥१२॥
स्मृत्वा सुविस्मितो भूत्वा ममैवमभवत्सुधीः । देवेय गौतमार्यैव नान्ययोग्या शुभानना ॥१३॥
तस्मा एव तु ता दास्ये तयाऽप्येवमचिन्तयम् । सर्वेषां च मतिर्धैर्यं मथितं बालयाजना ॥१४॥
अहल्येति सुरे प्रोक्तं मया च ऋषिभिस्तदा । देवानुर्गोस्तदा वीक्ष्य मया तत्रोक्तमुच्चकं ॥१५॥
तस्मै सा दीयते सुभ्रूयं पृथिव्या प्रदक्षिणाम् । कृत्वोपतिष्ठते पूर्वं न चान्यस्मै पुन पुन ॥१६॥
ततः सर्वे सुरगणा श्रुत्वा वाक्य मयेरितम् । अहल्याय सुरा जम्मु पृथिव्याश्च प्रदक्षिणे ॥१७॥
गतेषु सुरसधेषु गौतमोऽपि मुनीश्वरः । प्रयत्नमकरोत्कचिदहल्यायमिमं तथा ॥१८॥
एतस्मिन्नन्तरे ब्रह्मन्सुरभिः सर्वकामधुक् । अर्धप्रसूता ह्यभवत्ता ददर्श स गौतम ॥१९॥
तस्याः प्रदक्षिणं धत्ते ह्यमुर्वीति सस्मरन् । लिङ्गस्य च सुरेशस्य प्रदक्षिणमयाकरोत् ॥२०॥
तयोः प्रदक्षिणं कृत्वा गौतमो मुनिसत्तमः । सर्वेषां चैव देवानामेकं चापि प्रदक्षिणम् ॥२१॥
नैवाभवद्भुवो गन्तुं सज्जात द्वितय मम । एव निश्चित्य स मुनिर्ममान्तिकमयाम्यगात् ॥२२॥

इस प्रकार अलग अलग कहते लगे ॥१०॥ इनी प्रकार सभी मुनि साध्य दानव यक्ष राक्षस बन्धाको मायनेके लिये आ गये । इस प्रकार कन्या के लिये सबको सामूहिक रूप से आया देखकर और इस विषय मे इंद्र का विशेष रूप से महान् आग्रह देखकर मुनिको अत्यन्त आश्चर्य हुआ ॥११॥ इसके साथ ही गौतम का धैर्य गम्भीरता और उसकी महत्ता को स्मरण कर मैं तो अत्यन्त आश्चर्यचकित हो गया । इतने म मुझे यह सुबुद्धि हुई कि यह शुभानना गौतम को ही दी जानी चाहिए यह दूसरा के योग्य नहीं ॥१२ १३॥ अतः उसको ही दूंगा । फिर भी मैंने इस प्रकार सोचा कि इस बात ने सबके पान और धैर्य को मज्जा डाला है इसलिये इसका नाम अहल्या रखा जाय इसका समर्थन ऋषिया और देवताओं ने भी किया ॥१४॥ तब मैंने देवताओं और ऋषियों की ओर देखकर ऊँचे स्वर से कहा कि पद मुंदर भी वाली बन्धा उसी को दी जायगी जो पृथ्वी की प्रदक्षिणा कर सबसे पहले आ जायगा दूसरे को जो बार बार नहीं दी जायगी ॥१५ १६॥ इसके बाद मेरी नहीं हुई बात को सुनकर सब देवता अहल्या को प्राप्त करने की इच्छा से पृथ्वी की प्रदक्षिणा करने के लिये चले गये ॥१७॥ मुनीश्वर ! देवताओं के चले जाने पर गौतम ने भी अहल्या के लिए कुछ इस ढंग का प्रयत्न किया । ब्रह्मन् ! इसी बीच सब कामनाओं को देने वाली कामधनु अर्ध प्रसूता (आधा बच्चा जनने वाली) हुई । गौतम ने उसको देख लिया ॥१८ १९॥ यह पृथ्वी है इस बात का स्मरण कर उसने उसी की प्रदक्षिणा की और सुरेश शंकर के लिये की भी प्रदक्षिणा की ॥२०॥ उन दोनों की प्रदक्षिणा कर मुनि गौतम 'सब देवताओं ने अब तक पृथ्वी की एक भी प्रदक्षिणा नहीं की अब तक प्रदक्षिणा करने वाले मैंने तो दो प्रदक्षिणाएँ कर दी यह मन में निश्चय कर मेरे सभी आया ॥२१ २२॥ महामति गौतम ने मुझे नमस्कार करके यह

नमस्कृत्वाऽब्रवीद्वाक्यं गौतमो मां महामति । कमलासन विश्वात्मन्नमस्तेऽस्तु पुन पुन ॥२३॥
 प्रदक्षिणीकृता ब्रह्मन्मयेयं वसुधाऽखिला । यदन युक्त दवेश जानीने तद्भूवास्वयम् ॥२४॥
 मया तु ध्यानयोगन ज्ञात्वा गौतममब्रवम । तवैव दीयते सुभ्रू प्रदक्षिणमिदं कृतम् ॥२५॥
 धर्म जानीहि विप्रये दुर्ज्ञेयं निगमैरपि । अर्घ्यप्रसूता सुरभि सप्तद्वीपवती मही ॥२६॥
 कृता प्रदक्षिणा तस्या पृथिव्या सा कृता भवेत् । लिङ्गं प्रदक्षिणीकृत्य तदेव फलमाप्नुयात् ॥२७॥
 तस्मात्सर्वप्रयत्नन मुने गौतम सुप्रत । तुष्टोऽहं तव धर्मेण ज्ञानेन तपसा तथा ॥२८॥
 दत्तयमृषिशार्दूल कन्या लोकवरा मया । इत्युक्त्वाऽहं गौतमाय अहल्यामब्रवा मुने ॥२९॥
 जात विवाहे ते देवा कृत्वेलाया प्रदक्षिणम् । शनं शनैरयाऽऽगत्य वदंशु सर्व एव ते ॥३०॥
 त गौतममहल्या च दाम्पत्य प्रीतिवर्धनम् । ते चाऽऽगत्याय पश्यन्तो विस्मिताश्चाभवन्सुरा ॥३१॥
 अतिक्रान्ते विवाहे तु सुरा सर्वे दिव ययुः । समत्सर शचीभर्ता तामीक्ष्य च दिव प्रयौ ॥३२॥
 तत प्रीतमनास्तस्मै गौतमाय महात्मने । प्रादा ब्रह्मगिरिं पुण्यं सर्वकामप्रदं शुभम् ॥३३॥
 अहल्याया मुनिधेष्ठो रमे तत्र स गौतम । गौतमस्य कयां पुण्या भूत्वा शत्रस्त्रिविष्टपे ॥३४॥

वाक्य कहा— कमलासन । विश्वात्मन् । आपकी मेरा बार बार नमस्कार है ॥२३॥ ब्रह्मन् । मैंने इस सम्पूर्ण पृथ्वी की प्रदक्षिणा कर दी । देवेश । इस विषय में ओ कुछ सचता है उसको आप स्वयं जानते हैं, ॥२४॥ मैंने भी ध्यानावस्थित होकर योग-दृष्टि से यह सब कुछ जान लिया और गौतम से कहा यह सुन्दर मैं बाली अहल्या तुमको ही दी जायगी क्योंकि तुमने प्रदक्षिणा समाप्त कर दी है ॥२५॥ विप्रवि । गुरुश्रो स भी कठिनाई से जानने योग्य घम का तुम जानते हो । सचमुच अर्घ्यप्रसूता (आधी ब्याई) वसुधामु सात द्वीप भागी पृथ्वी है ॥२६॥ इसकी भी हुई प्रदक्षिणा पृथिवी की की हुई प्रदक्षिणा के बराबर हुई और निर्वालय की प्रदक्षिणा स पृथ्वी प्रदक्षिणा का ही फल मित्रता है ॥२७॥ इमलिये मुने । उत्तम व्रत करने वाला गौतम । तुम्हारे धर्म ज्ञान और तपस्या का मैं मनी भाँति प्रसन्न हूँ ॥२८॥ श्रुतिपादूल । सबमुन्दरी यह बन्धा तुमको दे दी गई । मुन । यह बहुरंग मैंने गौतम को अहल्या दे दी ॥२९॥ इधर विवाह हो जाने पर वे देवता पृथ्वी की परित्रमा कर घीरे घीरे मेरे पास आये और यह सब कुछ दखा ॥३०॥ वे देवता आकर अहल्या और गौतम का प्रेम बहाने वाला दाम्पत्य (विवाह-मन्त्र) देखकर अत्यन्त विस्मिन्न हो गये ॥३१॥ इस प्रकार विवाह विधि समाप्त हो जाने पर सब देवता स्वर्ग को चले गये । परन्तु शचीपति इंद्र ने अत्यन्त ईर्ष्या की दृष्टि से अहल्या को देखते हुए स्वयं को प्रस्थान किया ॥३२॥ दगन बाद मैंने प्रसन्न होकर महामा गौतम को सब कामनाओं को दन वाला पवित्र ब्रह्मगिरि दे दिया । उस पक्षत पर मुनिधेष्ठ गौतम आनन्द-पूवक अहल्या के साथ विहार करने लगे इस पवित्र भूमिमायक गौतम के दाम्पत्य प्रेम को कथा को इंद्र ने स्वर्ग में

तमाश्रमं तं च मुनि तस्य भार्यामिनिन्दिताम् । भूत्वा ब्राह्मणदेयेण द्रष्टुमाणाच्छतक्रतु ॥३५॥
म दृष्ट्वा भवने तस्य भार्या च विभव तथा । पारीयसीं भतिं कृत्वा अहल्यां समुदेक्षत ॥३६॥
नाञ्जमानं न परं देशं कालं शापादुपेभ्यम् । न बुबोध तदा चत्स कामावृष्टः शतत्रतु ॥३७॥
तद्व्याप्तपरमो नित्यं सुरराज्येन गवितः । संतप्ताङ्गः कथं कुर्या प्रवेशो मे कथं भवेत् ॥३८॥
एवं वसन्विप्रहृषो नान्तरं त्वध्यगच्छतः । स कदाचिन्महाप्राज्ञः कृत्वा पीर्वाङ्गिकीं त्रयाम् ॥३९॥
सहितो गौतमः शिष्यनिर्गतश्चाश्रमादबहिः । आश्रमं गौतमीं विश्रान्थान्यानि विविधानि च ॥४०॥
द्रष्टुं गतो मुनिवर इन्द्रस्तं समुदेक्षत । इदमन्तरमित्युक्त्वा चक्रे कार्यं मन प्रियम् ॥४१॥
रूपं कृत्वा गौतमस्य प्रियेणुः स शतत्रतु । ता दृष्ट्वा चारुसर्वाङ्गीमहत्या वाक्यमब्रवीत् ॥४२॥

इन्द्र उवाच

आकृष्टोऽहं तव गुणे रूपं स्मृत्वा स्थलतपद । इति ब्रुवन्सहस्तमादायान्त समाविशत् ॥४३॥
न बुबोध त्वहल्या त जात मेने तु गौतमम् । रममाणा ययासीद्यं प्रागाच्छिष्यं स गौतमः ॥४४॥

मुना ॥३३-३४॥ ईर्ष्यालु शतत्रतु इन्द्र उस आश्रम, उस मुनि और मुनि की पवित्र पतिव्रता भार्या को देखने के लिये ब्राह्मण के वेश में आया ॥३५॥ गौतम के भवन भार्या और विभव को देखकर उसके मन में पापबुद्धि उत्पन्न हो गई । उसने दूरी दृष्टि से अहल्या को देखा ॥३६॥ वत्स । उस काम के वशीभूत शतत्रतु इन्द्र ने न तो आत्मगौरव न श्लोकानुवाद, न देश, न काल की ही समझा और न तो ऋषि-शाप के भय का ही उसको ज्ञान रहा ॥३७॥ वह कामाग्नि से दग्ध शरीरवाला सर्वदा अहल्या के ही ध्यान में मस्त रहा । उसको अपने सुर राज्य पर अभिमान था । वह तो यही सोचता रहा कि 'क्या कर्क' कैसे ऋषि के घर में मेरा प्रवेश होगा' ॥३८॥ इस इकार ब्राह्मण के वेश में छिपा हुआ इन्द्र ऋषि-आश्रम में रहने लगा किन्तु उसको अवसर नहीं मिला । किसी समय वह महाबुद्धिमान् गौतम मुनि पूर्वाङ्ग की नित्यक्रिया समाप्त कर शिष्यों के साथ आश्रम में बाहर चले गये ॥३९॥ इन्द्र ने देखा कि मुनि आश्रम गौतमी, विप्रो और विविध धान्यों को देखने के लिए चले गये हैं । तो अब मुझे अवसर मिला, यह कहकर अपना अमिलपित कार्य करने लगा ॥४०॥ ४१॥ प्रिय अहल्या को पाने की इच्छा रखने वाले शतत्रतु ने गौतम का रूप धारण कर लिया और उस सर्वाङ्ग सुन्दरी अहल्या को देखकर यह कहा ॥४२॥

इन्द्र ने कहा—मैं तुम्हारे गुणों से शिवा हुआ (वशीभूत) हूँ । तुम्हारे रूप का स्मरण कर मेरे पैर सीधे नहीं पड़ते (अपने पद से भ्रष्ट हो गया हूँ) । यह कहकर हँसता हुआ उसका हाथ पकड़कर अन्त पुर में घुस गया । अहल्या ने उसको जार (उपपति) नहीं समझा किन्तु गौतम ही मान लिया । इसलिए उसके साथ सुख-पूर्वक विहार करने लगी । इसी समय अपने शिष्यों सहित गौतम वहुँच गये । नित्यप्रति प्रिय वचन कहने वाली

आगच्छन्त नित्यमेव अहल्या प्रियवादिनी । प्रतिधाति' प्रिय वक्षि तोषयन्ती च त गुणं ॥४५॥
तामदृष्ट्वा महाप्राज्ञो मेने तन्महददभुतम् । द्वारस्थित मुनिश्रेष्ठ सर्वे पश्यन्ति नारद ॥४६॥
अग्निहोत्रस्य शालाया रक्षिणो गृहकर्मिण । ऊचुर्मुनिवर भीता गौतम विस्मयान्विता ॥४७॥

रक्षिण ऊचु

भगवन्निमिदं चित्रं बहिरन्तश्च दृश्यते । प्रिययाऽन्तं प्रविष्टोसि तथैव च बहिर्भवान् ॥
अहो तपःप्रभावोऽयं नानारूपधरो भवान् ॥४८॥

ब्रह्मोवाच

तच्छ्रुत्वा विस्मितस्त्वन्तं प्रविष्टः को नु तिष्ठति । प्रिये अहल्ये भवति किं मां न प्रतिभापसे ॥४९॥
इत्थं पर्वचनं श्रुत्वा अहल्या जारमब्रवीत् ॥५०॥

अहल्योवाच

को भवान्मुनिरूपेण पापं स्व कृतवानिति । इति ब्रुवती शयनादुत्थिता सत्वरं भयात् ॥५१॥
स चापि पापकृच्छ्रो विद्यालोभं मुनेर्भयात् । प्रस्तां च विहृता ब्रुत्वा स्वप्रियां दूषिता तदा ॥५२॥

अहल्या गौतम के आने पर उनका सत्कार करने के लिये द्वार तक जाती मधुर वचन बोलती थी और अपने स्त्रीमुल्लस गुणों से उनको सन्तुष्ट करती थी । किन्तु आज उसको पूरा की भाँति न देख कर उस महाप्राज्ञ को अत्यन्त आश्चर्य जान पड़ा । नारद । द्वार पर खड़े मुनिभट्ट को समीप देखने लगे । अग्निहोत्राग्न के रक्षण और घर घर काम करने वालों से वह आश्चर्य चरित और मयभीत हाँकर मुनि से कहने लगे ॥४३-४७॥

रक्षाकों ने कहा—भगवन् ! यह क्या ! आप बाहर और भीतर सब दिमाई दन हैं अभी प्रिया के साथ अंतःपुर में प्रविष्ट हुए और अभी उसी प्रकार बाहर भी दिमाई दे रहे हैं । अहा ! यह तपस्या का प्रभाव है आप किमित्र रूप धारण करने वाले हैं ॥४८॥

ब्रह्मा ने कहा—यह मुनिकर विस्मित गौतम घर के भीतर चले गए और बोले—यही गौतम है ? प्रिय ! अह ! तुम आज मुझे क्या नहीं प्रतिभापण कर रही हो ? अपि की बातों को मुनिकर अहल्या ने जोर से कहा ॥४९-५०॥

अहल्या बोली—तुम गौतम हो ? तुमने मुनि का रूप धारण कर मेरे साथ पाप कम किया है । यह कहती हुई मग्न गौतम पलंग से उठ गई । वह पापकर्मा इन्द्र भी मुनि के समान विद्वान् बन गया । उस समय मयभीत विद्वान् और दूषित अगती प्रिया को देखकर उस मुनि ने आप से कहा कि तुमने यह गौतम गार्हग (कृष्ण

उवाच स मुनि कोपात्किमिदं साहसं कृतम् । इति श्रुन्त भर्तारं सा अपि भोवाच लज्जिता ॥५३॥
अन्वेयस्तु तं जारं विडालं ददृश मुनिः । को भवानिति तं प्राह भस्मीकुर्यात् मृषा वदन ॥५४॥

इन्द्र उवाच

कृताञ्जलिपुटो भूत्वा चैवमाह शचीपति । शचीभर्ता पुरा भेत्ता तपोधन पुरुष्युत ॥५५॥
ममेदं पापमापन्नं सत्यमुक्तं मयाऽनघ । महद्दिगहितं कर्म कृतवानस्म्यहं मुने ॥५६॥
स्मरसायकनिभन्नहृदया किं न कुर्वते । ब्रह्मन्मयि महापापे क्षमस्व कृष्णानिधे ॥५७॥
सन्तं कृतापराधेऽपि न रीक्ष्य जातु कुर्वते । निशम्य तद्वचो विप्रो हरिमाह स्याद्वित ॥५८॥

गौतम उवाच

भगवन्तया कृतं पापं सहस्रभयवाग्भव । तामप्याह मुनि कोपात्त्वं च शुष्कतदी भव ॥५९॥
ज्ञातं प्रसादयामास कथयन्ती तदाकृतिम् ॥६०॥

अहल्या उवाच

मनसाऽप्यन्यपुरुषं पापिष्ठ्य कामयन्ति याः । अक्षयायान्ति नरकास्तासां सर्वेऽपि पूजया ॥६१॥

कर्म) कर डाला । इस प्रकार भर्ता को कहते हुए देखकर वह भी लज्जा के मारे कुछ न कह सकी । मुनि भी जार को धूने के इतने में एक विडाल दिखाई दिया । उन्होंने उससे कहा—तुम कौन हो ? असत्य बोलोगे तो मरम् कर दूंगा ॥५१-५४॥

इन्द्र बोल—हाथ जोड़कर इन्द्र ने इस प्रकार कहा—तपोधन । शची का भर्ता पुरा राक्षस को मारने वाला पुरुष्युत (बहुत नाम वाला) इन्द्र हूँ । निष्पाप । मुझसे ही यह पापकर्म हुआ । मैंने सत्य कहा है । मुने । स्मृति निहित कर्म मैंने किया है । काम के बाणों से आहत हृदय वाले (कामात) मनुष्य क्या नहीं कर देते हैं ? त्वहम् । कृष्णा सागर । मुझ महापापी को क्षमा कीजिये । सन्त पुरुष अपराधियों पर भी क्रोध नहीं करते । इन्द्र की बातों को सुनकर श्रद्धा विप्र ने इन्द्र से कहा—॥५५-५८॥

गौतम बोल—तुमने भय के प्रभ से यह नाम किया है इसलिये हजार भय (घोति) वाले हो जाओ । मुनि ने क्रोध से अहल्या से भी कहा कि तुम भी सूखी नदी हो जाओ । तदनन्तर इन्द्र की आज्ञा का वचन करती हुई अहल्या उनको प्रसन्न करने का प्रयत्न करने लगी ॥५९-६०॥

अहल्या न कहा—जो पापिष्ठ्य नारी यन से भी परपुरुष की कामना करती है उसकी तो कौन कहे उसके सभी पूज्य भी वही न नष्ट होने वाले नरक को जाते हैं । भगवन् । प्रसन्न होकर मेरी बातों पर विचार कीजिये ।

१४ ०ता । भ्रममाण भयोऽङ्गि वि० । २४ ०यी सहानुष्मः । ३० । ३क ०त । त्वया गफ ह० ।

४ घ ०गमागम ।

भूत्वा प्रसन्नो भगवन्नवधारय भद्रचः। तव रूपेण चाऽऽगत्य मामगात्साक्षिणस्त्वमे॥६२॥
तथेति रक्षिणः प्रोचुरहल्या सत्यवादिनी। ध्यानेनापि मुनिर्ज्ञात्वा शान्तः प्राह पतिव्रताम्॥६३॥

गौतम उवाच

यदा तु सगता भद्रे गौतम्या सरिदीशया। नदी भूत्वा पुना रूपं प्राप्यसे प्रियकृन्मम॥६४॥
इत्युपेवंचनं भूत्वा तथा चये पतिव्रता। तया तु संगता देव्या अहल्या गौतमप्रिया॥६५॥
पुनस्तद्रूपमभवद्यन्मया निमित्त पुरा। ततः कृताञ्जलिपुटः सुरराट् प्राह गौतमम्॥६६॥

इन्द्र उवाच

मां पाहि मुनिशार्दूल पापिष्ठ गृहमागतम्। पादयोः पतितं दृष्ट्वा कृपया प्राह गौतमः॥६७॥

गौतम उवाच

गौतमी गच्छ भद्रं ते स्नानं कुश पुरंदर। क्षणाभिर्धूतपापस्त्वं सहस्राक्षो भविष्यसि॥६८॥
उभयं विस्मयकर दृष्टवानस्मि नारद। अहल्यायाः पुनर्भावं दाक्षीभर्ता सहलवन्॥६९॥
ततः प्रभृति तत्तीर्यमहल्यासंगमं शुभम्। इन्द्रतीर्यमिति ख्यातं सर्वकामप्रदं नृणाम्॥७०॥

इति श्रीमहापुराणे आदिष्वाह्ये तीर्यमाहात्म्येऽहल्यासंगमेन्द्रतीर्यवर्णनं नाम सप्ताशीतितमोऽध्यायः॥८७॥

गौतमीमाहात्म्येऽष्टादशोऽध्यायः॥१८॥

बहु आप का ही रूप धारण कर मेरे पास आया, इसने ये रसक साखी हैं। उन रसकों ने भी कहा कि अहल्या सत्य कह रही हैं। मुनि ने भी अपने धोगल से जानकर शान्त हो पतिव्रता माया से कहा॥६१-६३॥

गौतम ने कहा—वत्साजि! जब तुम नदी होकर नदियों की स्वामिनी गौतमी से मिलोगी तब पुन मेरे प्रिय करनेवाले रूप को प्राप्त करोगी। अापि की बात सुनकर पतिव्रता अहल्या ने वैसा ही किया। देवी गौतमी से मित्र जाने पर गौतम की प्रिया अहल्या पुन उस रूप को पा गई जैसा कि मैंने पहले बताया था। इसने बाद गुरुरात्र इन्द्र ने हाथ जाँवर गौतम से कहा—॥६४-६६॥

इन्द्र बोले—‘मुनिशार्दूल! पर मे आये हुए इस महापापी की रक्षा कीजिये’। इस प्रकार इन्द्र को पैरो पर गिरा हुआ देखकर क्षणा स आर्द्र मुनि ने कहा—॥६७॥

गौतम ने कहा—गौतमी ने पास जाओ, तुम्हारा बत्साण होगा। पुरंदर! उगमे जा कर स्नान करो, एक क्षण में ही तुम्हारे पाप धुल जायेंगे और तुम सहस्राक्ष हो जाओगे’। नारद! मैंने आश्चर्य में डाल देने वाली दोना घटनाओं की—पत्नी अहल्या का नदी होकर भी पुन अपने स्वरूप को प्राप्त होना और दूसरी दाक्षीण्य का सहस्राध्वाना—दग्गा है। तब से वह शुभतीर्थ अहल्या-संगम या इन्द्रतीर्थ नाम से प्रसिद्ध हुआ, जो मनुष्यों के सब मनोगत्यों को पूर्ण करने वाला है॥६८-७०॥

श्री महापुराण में अहल्या-संगम इन्द्रतीर्थ-वर्णन नामक सप्तमोऽध्याय समाप्त॥८७॥

अथाष्टाशतीतितमोऽध्यायः

जनस्थानतीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

तस्मादप्यपर तीर्थं जनस्थानमिति धृतम् । चतुर्योजनविस्तीर्णं स्मरणान्मुक्तिव नृणाम् ॥१॥
वैवस्वतान्वये जातो राजाऽभूज्जनक पुरा । सोऽप्रापतेस्तु तनुजामुपयेम गुणार्णवाम् ॥२॥
धर्मार्थकाममोक्षानां जनका जनको नृप । अनुरूपगुणत्वाच्च तस्य भार्या गुणार्णवा ॥३॥
याज्ञवल्क्यश्च विप्रन्द्रस्तस्य राज्ञ पुरोहित । तमपृच्छनृपश्रेष्ठो याज्ञवल्क्य पुरोहितम् ॥४॥

जनक उवाच

भुक्तिमुक्तौ उभे श्रेष्ठे निर्णति मुनिसत्तम । दासीदासेभ्युत्तरगर्वाद्यैर्भुक्तिवृत्तमा ॥५॥
कित्त्वन्तविरसा भुक्तिर्भुक्तिरेका निरत्यया । भुक्तेर्भुक्ति श्रेष्ठतमा भुक्त्या भुक्ति कथं व्रजेत् ॥६॥
सर्वसङ्गपरित्यागान्मुक्तिप्राप्तिं सुदुःखत । तद्ब्रूहि द्विजशार्दूल सुखान्मुक्ति कथं भवेत् ॥७॥

अध्याय ८८

जनस्थानतीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा ने कहा—उसके बाद जनस्थान नाम स श्रेष्ठ चार योजन तक विस्तृत एक तीर्थ है जिसके स्मरण मात्र से मनुष्य मोक्ष प्राप्त कर लेता है । प्राचीन काठ में वैवस्वत वंश में जनक नाम के एक राजा उत्पन्न हुए । उन्होंने जल के स्वामी वरुण की कन्या गुणाववा (गुण का समुद्र अत्यन्त गुणवती) से—जो कि धर्म अथवा काम और मोक्ष को देने वाली थी—विवाह किया । उस राजा जनक की भार्या गुणाववा अपने अनुरूप गुणा के कारण वास्तव में गुणाववा (गुण-सागर) थी । विप्रन्द्र याज्ञवल्क्य उस राजा के पुरोहित थे । एक दिन नृपश्रेष्ठ जनक ने पुरोहित याज्ञवल्क्य से पूछा—॥१-४॥

जनक बोले—भुक्ति और मुक्ति दोनों श्रेष्ठ हैं ऐसा श्रेष्ठ मुनिया ने निर्णय किया है । यद्यपि दासी दास, हाथी, घोड़े और रथ आदि सुख सामग्रियों के कारण भुक्ति उत्तम मानी जाती है परन्तु भुक्ति का अन्त आनन्द से रहित है केवल भुक्ति ही निरत्यय (नित्य और अविनाशी) है । भुक्ति से भुक्ति श्रेष्ठ है परन्तु मोक्ष के बाद भुक्ति कैसे प्राप्त की जा सकती है । सब प्रकार की आसक्ति के त्याग से ही भुक्ति प्राप्त होती है इसलिये यह भुक्ति अत्यन्त दुःख से प्राप्त करने योग्य है । अतः हे द्विजशार्दूल भुक्ति सुखपूर्वक कैसे प्राप्त की जा सकती है वह कहिये ॥५-७॥

याज्ञवल्क्य उवाच

अपापतिस्तव गुरुः श्वशुरः प्रियकृत्तया । तं गत्वा पूज्य नृपते उपदेक्ष्यति ते हितम् ॥८॥
याज्ञवल्क्यश्च जनको राजानं वरुणं तदा । गत्वा चोचतुरव्यग्रौ मुक्तिमार्गं यथाक्रमम् ॥९॥

वरुण उवाच

द्विधा तु सस्थिता मुक्तिः कर्मद्वारेऽप्यकर्मणि । वेदे च निश्चितो मार्गः कर्म ज्यायो ह्यकर्मणः ॥१०॥
सर्वं च कर्मणा बद्धं पुरपार्यचतुष्टयम् । अकर्मणैवाऽप्यत इति मुक्तिमार्गो मपोच्यते ॥११॥
कर्मणा 'सर्वधान्यानि सेत्स्यन्ति नृपतत्तम । तस्मात्सर्वात्मना कर्म कर्तव्यं वैदिकं नृभिः ॥१२॥
तेन भुक्तिं च मुक्तिं च प्राप्नुवन्तोह भानवाः । अकर्मणः कर्म पुण्यं कर्म चाप्याश्रमेषु च ॥१३॥
जात्याश्रितं च राजेन्द्र तत्रापि शृणु धर्मवित् । आश्रमाणि च चत्वारि कर्मद्वाराणि मानद ॥१४॥
चतुर्णामाश्रमाणां च गार्हस्थ्यं पुण्यदं स्मृतम् । तस्माद्भुक्तिश्च मुक्तिश्च भवतीति मतिर्मम ॥१५॥

ब्रह्मोवाच

एतच्छ्रुत्वा तु जनको याज्ञवल्क्यश्च ब्रुद्धिमान् । वरुणं पूजयित्वा तु पुनर्वचनमूचतुः ॥१६॥
को देशः किं च तीर्थं स्याद्भुक्तिमुक्तिप्रदायकम् । तद्वदस्व सूरथेष्ट सर्वज्ञोऽसि नमोऽस्तु ते ॥१७॥

याज्ञवल्क्य ने कहा—जल के स्वामी वरुण तुम्हारे स्वपुत्र गुरु (गानदाता) तथा प्रिय करने वाले हैं। भूपति ! तुम उन्हीं के पास जाकर पूछो। वे तुम्हारे अनुकूल ज्ञान का उपदेश करेंगे। सब याज्ञवल्क्य और जनक दोनों ने राजा वरुण के पास जाकर घान्तमात्र से यथाश्रम मुक्तिमार्ग के विषय में पूछा ॥८-९॥

वरुण ने कहा—मुक्ति की स्थिति दो प्रकार की है, एक कर्म द्वारा, दूसरी अकर्म द्वारा, परन्तु वेदों में सही मार्ग निश्चित किया गया है कि अकर्म से कर्म ही श्रेयस्कर है। सब धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष आदि चारों पुरपार्य कर्म से ही आवद्ध हैं। अतः 'वर्मत्याग मुक्ति का मार्ग है' यह कहना व्यर्थ है। नृपथेष्ट ! कर्म से ही सब धान्यो की भी प्राप्ति होती है अतः सब प्रकार से वेदोक्त कर्म करना चाहिये। मनुष्य उस कर्म के द्वारा ही सौख्य भ मुक्ति और मुक्ति प्राप्त करते हैं। अकर्म की अपेक्षा कर्म ही श्रेयस्कर है। चारों आश्रमों में भी कर्म की ही प्रधानता है। राजेन्द्र ! धर्म के जानने वाले ! उन कर्मों में भी जाति से सम्बन्ध रखने वाले कर्म को मुनी मानद ! चारा आश्रम भी कर्म के द्वारा ही बनाए गये हैं। चारा आश्रमों में गृहस्थाश्रम पुण्यप्रद कहा गया है। उसी गृहस्थाश्रम में मुक्ति और मुक्ति दोना प्राप्त होती हैं, यह मेरा विचार है ॥१०-१५॥

ब्रह्मा ने कहा—इस बात को सुनकर जनक और ब्रुद्धिमान् याज्ञवल्क्य ने वरुण की पूजा कर पुनः यह वचन कहा—'बौन-ना देव और बौन से तीर्थ, मुक्ति और मुक्ति को देने वाले हैं। सूरथेष्ट ! आप सर्वज्ञ हैं। इस बात को बतलाइये। आपकी ममस्कार हैं' ॥१६-१७॥

वरुण उवाच

पुण्यव्यां भारतं वर्षं दण्डकं तत्र पुण्यदम् । तस्मिन्क्षेत्रे कृतं कर्म भुक्तिभुक्तिप्रदं नृणाम् ॥१८॥
तीर्थानां गौतमी गङ्गा श्रेष्ठा भुक्तिप्रदा नृणाम् । तत्र यत्नेन दानेन भोगान्भुक्तिमवाप्स्यति ॥१९॥

ब्रह्मोवाच

याज्ञवल्क्यश्च जनको याचं श्रुत्वा हर्षापतेः । वरुणेन ह्यनुज्ञातो स्वपुरीं जग्मतुस्तदा ॥२०॥
अश्वमेधादिकं कर्म चकार जनको नृपः । याजयामास विप्रेन्द्रो याज्ञवल्क्यश्च तं नृपम् ॥२१॥
गङ्गातीरं समाश्रित्य यज्ञान्भुक्तिमवाप राट् । तथा जनकराजानो बह्वस्तत्र कर्मणा ॥२२॥
भुक्तिं प्राप्नुर्महाभागा गौतम्याश्च प्रसादतः । ततः प्रमृतिं तत्तीर्थं जनस्थानेति विभूतम् ॥२३॥
जनकानां यत्तसदो जनस्थानं प्रकीर्तितम् । चतुर्योजनविस्तीर्णं स्मरणात्सर्वपापनुत् ॥२४॥
तत्र स्नानेन दानेन पितृणां तर्पणेन तु । तीर्थस्य स्मरणाद्वापि गमनाद्भुक्तिसेवनात् ॥२५॥
सर्वान्कामानवाप्नोति भुक्तिं च समवाप्नुयात् ॥२६॥

इति श्रीमहपुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये जनस्थानतीर्थवर्णनं नामाष्टाशोतितमोऽध्यायः ॥८८॥
गौतमीमाहात्म्ये एकोनविंशोऽध्यायः ॥१९॥

वरुण बोले—इस भूमण्डल में भारतवर्ष और उसमें भी दण्डकवन पुण्यदायक प्रदेश है । उस क्षेत्र में निधे गये वनों से मनुष्य को भुक्ति और मुक्ति प्राप्त होती है । तीर्थों में गौतमी गंगा श्रेष्ठ और मनुष्यों को भुक्ति देने वाली है । वहाँ यज्ञ करने और दान देने से भोगों से भुक्ति मिल जाती है ॥१८-१९॥

ब्रह्म ने कहा—याज्ञवल्क्य और राजा जनक वरुण की उपर्युक्त बातों को सुनकर उनसे आज्ञा लेकर अपनी नगरी को चले गये । वहाँ जाकर नृप जनक ने अश्वमेधादि यज्ञों को किया और विप्रेन्द्र याज्ञवल्क्य ने (पुरोहित बनकर) नृप जनक से यज्ञ करवाया । उस राजा ने इस प्रकार गङ्गा-तीर का आश्रय लेकर यज्ञों द्वारा भुक्ति प्राप्त की । इसी प्रकार बहुत से जनक वंश के राजाओं ने वहाँ पर व्रत करने से और गौतमी की कृपा से भुक्ति प्राप्त की । तब से वह तीर्थ जनस्थान नाम से प्रसिद्ध हो गया । जनकवंशी राजाओं का यज्ञमवन ही जनस्थान कहा गया है, जो चार योजन विस्तीर्ण है । उसके स्मरण से ही सब प्रकार के पाप नष्ट हो जाते हैं । वहाँ स्नान करने, दान देने और पितृतर्पण करने और तीर्थ के स्मरण करने, अथवा भुक्तिपूर्वक वहाँ जाने और तीर्थ-सेवन करने से मनुष्य सब मनोरथों को प्राप्त कर भक्त से भुक्ति प्राप्त करता है ॥२०-२६॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में जनस्थान-तीर्थ-वर्णन नामक अष्टाशीवाँ अध्याय समाप्त ॥८८॥

अथोननवतितमोऽध्यायः

अरुणावरुणासगमाश्वभानुतीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

अरुणा वरुणा चैव नद्यो पुण्यतरे शुभे । तयोश्च सगम पुण्यो गङ्गाया मुनिसत्तम ॥१॥
 तदुत्पत्तिं शृणुष्वेह सर्वपापविनाशिनीम् । काश्यपस्य सुतो ज्येष्ठ आदित्यो लोकविश्रुत ॥२॥
 त्रैलोक्यचक्षुस्तीक्ष्णाशु सप्ताश्वो लोकपूजित । तस्य पत्नी उषा रयाता त्वाष्ट्री त्रैलोक्यसुन्दरी ॥३॥
 भर्तुं प्रतापतीब्रह्मसहन्ती सुमध्यमा । चिन्तयामास किं कृत्य मम स्यादिति भामिनी ॥४॥
 तस्या पुत्री महाप्राज्ञो मनुवेवस्वतो यम । यमुना च नदी पुण्या शृणु विस्मयकारणम् ॥५॥
 साऽकरोदात्मनश्छापामात्मरूपेण यत्नत । तामग्रवीक्षतश्चोषा त्व च भस्मदृशी भव ॥६॥
 भर्तारं ह्वमपत्यानि पालयस्व ममाऽज्ञया । यावदागमन मे स्यात्पत्युस्तावत्प्रिया भव ॥७॥
 माऽऽत्त्यातव्यं स्वया क्वापि अपत्याना तया प्रिये । तथेत्याह च सा छाया निजगाम गृहादुषा ॥८॥
 ह्रस्वत्वा सा जगामाऽऽशु शान्त रूपमभीप्सती । सा गत्वोषा गृहं स्वपुत्रे पित्रे सर्वं न्यवेदयत् ॥९॥
 त्वष्टाऽपि चकित प्राह ता सुता सुतवत्सल

॥९॥

अध्याय ८६

अरुणा-वरुणा-सगम और अश्वभानुतीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा ने कहा—मुनिज्येष्ठ । अरुण और वरुण नाम की दो शुभ पवित्र नदियाँ हैं। उनका सगम जो गंगा में मिलने से बनता है—अत्यन्त पुण्य देने वाला है। उनकी उत्पत्ति की कथा—जो सब पापों को नष्ट करने वाली है—सुनो। काश्यप के ज्येष्ठ पुत्र लोक प्रसिद्ध आदित्य हैं—जो तीनों लोकों के नेत्रस्वरूप तीक्ष्ण विरुणवाले और तीक्ष्ण-पूजित हैं। उनका सात भाई हैं। उनकी पत्नी त्वाष्ट्री की कथा विमोचन-मुन्दरी उषा हुई। वह मुन्दर कटि वाली भार्या पति के तीव्र सज को नहीं सह पायी थी इसलिये अपने मन में विचार किया कि भुल गया करना चाहिये। उसने दो परम प्रभावान् बरवत्त मनु और यम पुत्र हुए। परम पवित्र यमुना नदी पुत्री हुई। आगे कौन सी विस्मय उत्पन्न करने वाली घटना हुई उसको सुनो। उसने अपनी छाया को बड़े यत्न से अपने रूप के समान ही बनाया। इसका अनन्तर उषा ने अपनी मूर्तिधारी छाया से कहा—तुम मेरे समान हो जाओ। मेरी आज्ञा से मेरे पति और वरुणा का पालन करो जब तक मैं न जाऊँ तब तक तुम मेरे पति की प्रिया बनो। प्रिये! इस रहस्य को बड़ा परविशी से भी यहाँ तक कि अपने वध्वों से भी मत कहना। छाया ने इसको स्वीकार कर लिया। तब उषा घर से बाहर चली गई। इस प्रकार छाया को समझा कर शीघ्र आत्मगान्ति प्राप्त करने की इच्छा से अपने पिता त्वष्टा के घर जाकर पिता से सब कुछ कह मुनाया। सुतवत्सल त्वष्टा भी यह सुनकर चकित हो गये और पुत्री उषा से कहा—॥१॥

त्वष्टोवाच

नैतद्युक्तं भर्तृमत्या यत्स्वरेण प्रवर्तनम् । अपत्यानां कथं वृत्तिर्भर्तुर्वा सवितुस्तव ॥
बिभेमि भद्रे शिष्टोऽहं भर्तुर्गोहं पुनर्वज ॥१०॥

ब्रह्मोवाच

एवमुक्त्वा तु पित्रा सा नेत्युक्त्वा ये पुनः पुनः । उत्तरं च कुरोर्दशं जगाम तपसे त्वरा ॥११॥
तत्र तेपे तपस्तोत्रं यद्वारुणधारिणो । दुष्प्रेक्षं तं स्वकं कान्तं ध्यायन्ती निश्चला उपा ॥१२॥
एतस्मिन्नन्तरे तात छाया चोपास्वरूपिणी । पत्यो सा वर्तयामास अपत्यान्यथ जजिरे ॥१३॥
सार्वाणिदच शनिश्चैव विष्टिर्या दुष्टकन्यका । सा छाया वर्तयामास वैषम्येणैव नित्यशः ॥१४॥
स्वेष्वपत्येषु चोपाया यमस्तत्र चुकोप ह । वैषम्येणाय वर्तन्ती छाया तां मातर तदा ॥१५॥
ताडयामास पादेन दक्षिणादापतिर्यमः । पुत्रदौर्जन्यसंक्षोभाच्छाया वैवस्वतं यमम् ॥१६॥
शशाप पाप ते पादो विशीर्यतु ममाऽजया । विशीर्णवरणो दुष्साद्रुदन्पितरमभ्यगात् ॥
सविने तं तु घृत्तान्तं न्यवेदयदशेषतः ॥१७॥

यम उवाच

नेयं माता सुरभ्रेष्ठ यया शिष्टोऽहमोदशः । अपत्येषु विरुद्धेषु जननी नैव कुप्यते ॥१८॥
यद्वाल्पादन्नं किंचिदयया दुष्टृतं कृतम् । नैव कुप्यति सा माता तस्मान्नेयं ममास्त्रिका ॥१९॥

त्वष्टा ने कहा—यह पति वाली स्त्रिया क गिये उचित नहीं है कि वह स्वेच्छा से कार्य करे। मला बताओ तो तुम्हारे भर्ता सविता और सतान की क्या स्थिति होगी। मन्त्रे । मैं शिष्टता के माते डर रहा हूँ, तुम पुनः अपने स्वामी के घर चली जाओ ॥१०॥

ब्रह्मा ने कहा—पित्रा के इस प्रकार कहने पर उस उपा ने बार बार “नहीं, नहीं” कहा और कुछ से उत्तर प्रदेश की ओर शीघ्रता से तपस्या करने चली गई। वहाँ बड़े (चोटी) का रूप धारण कर उपा ने निश्चल भाव से अपने बटिनाई से देखे जाने योग्य पति का ध्यान करती हुई लोभ तप त्रिया । तात । इस बीच उपा की प्रतिनिधि छाया ने पनि के साथ दाम्पत्य व्यवहार किया और सार्वाणि तथा शनि नाम के दो पुत्रों एवं विष्टि नाम की दुष्ट कन्या को उत्पन्न किया। वह छाया नित्य प्रति अपने पुत्रों और उपा के पुत्रा के साथ असमान व्यवहार करने लगी। यह देखकर यम क्रुद्ध हो गये। दक्षिण दिशा के स्वामी यम न उस समय असमान व्यवहार करने वाली उस माता छाया को पैर से मारा। पुत्र को इस अशिष्टता को देखकर छाया को अत्यन्त क्षोभ हुआ। उसने वैवस्वत यम को शाप दिया कि पापी । मेरे शाप से तारे चरण गल जायें। माना व शाप से यम के पैर गल गए, दुःख से राना हुआ वह हिला के समीप गया और सविता व आदि से अन्न तक सारा वृत्तान्त कहा सुताया ॥११-१७॥

यम ने कहा—सुरभ्रेष्ठ । बिगने मुझे इस प्रकार शाप दिया है, वह मेरी माना नहीं है। मत न के अति टा आचरण करने पर माता कभीभी क्रोध नहीं करती है। बाल्य-काल में जो कुछ मैंने कहा था अशिष्टता की है,

यदपत्यकृतं किंचित्साध्वस्वाधु यथा तथा । मातृस्यां सर्वमप्येतत्तस्मान्मातेति गीयते ॥२०॥
प्रधक्ष्यन्तीव मा तात नित्यं पश्यति चक्षुषा । दक्ष्यग्निमालसदृशा वाचा नेयं मदम्बिका ॥२१॥

ब्रह्मोवाच

तत्पुत्रवचनं श्रुत्वा सविताऽचिन्तयत्ततः । इयं छाया नास्य माता उषा माता तु साऽन्यतः ॥२२॥
मम शान्तिमभीप्सन्ती देशेऽन्यास्मिस्तपोरता । उत्तरे च कुरी त्वाष्ट्री वडवारूपधारिणी ॥२३॥
तत्राऽस्ते सा इति ज्ञात्वा जगामेशो दिवाकरः । यत्र सा वर्तते कान्ता अश्वरूपं स्वयं तदा ॥२४॥
ता दृष्ट्वा वडवारूपां पर्यधावद्वयाकृति । कामातुरं हयं दृष्ट्वा श्रुत्वा वै हेषितस्वनम् ॥२५॥
उषा पतिव्रतोपेता पतिध्यानपरायणा । हयधर्यणसंभीता को न्वयं चेत्पयजानती ॥२६॥
अपलायत्पतीं प्राप्ते दक्षिणाभिमुखी त्वरा । को नु मे रक्षकोऽत्र स्यादुपयो वाऽयवा सुरा ॥२७॥
धावन्तीं ता प्रियामश्वामश्वरूपधरः स्वयम् । पर्यधावद्व्यतो याति उषा भानुस्ततस्ततः ॥२८॥
स्मरग्रहवशे जातः को दुश्चेष्ट न चेष्टते । भागीरथीं नदीश्चान्या वनान्युपवनानि च ॥२९॥
नर्मदां चाप विन्ध्यं च दक्षिणाभिमुखावु (लीउ) भौ । अतिक्रम्य भयोद्विग्ना त्वाष्ट्याभ्यगाच्च
गौतमीम् ॥३०॥

आतारः सन्ति मुनयो जनस्यान इति श्रुतम् । ऋषीणामाश्रमं साऽश्व प्रविष्टा गौतमीं तथा ॥३१॥

उसकी देखकर वह मेरी माता कभी भी क्रुद्ध नहीं हुई। इसलिये यह मेरी माता नहीं है। जिस किसी प्रकार का सतान द्वारा किया हुआ कर्म चाहे वह अच्छा हो या बुरा सब कुछ उस माता के कारण हृदय में जाकर ही घात हो जाता है, इसीलिए उसकी (माति अस्याम्) माता कहते हैं। तात ! मुझ को यह इस प्रकार देखती है मानो आँखों से जला बेगी और सर्वदा कालाग्नि के समान बाणी से ही बोलती है, इसलिये यह मेरी माता नहीं है ॥१८-२१॥

ब्रह्मा ने कहा—इसके उपरान्त सविता अपने पुत्र की बाड़ी को मुनकर विचार करने लगे कि यह छाया इसकी माता नहीं है। इसकी माता उषा तो दूसरे स्थान पर है। वह स्वप्न की पुत्री तो वडवा का रूप धारण कर इस समय उत्तर कुब प्रदेश में मेरी शान्ति की कामना से तपस्या में लीन है। 'वह वहाँ ही है' यह जानकर भगवान् दिवाकर स्वयं अश्व का रूप धारण कर उस प्रदेश में गये जहाँ उसकी प्रिया उषा तपस्या कर रही थी। प्रिया उषा को इस प्रकार वडवा के रूप में देखकर स्वयं अश्व की आकृति वाले मूर्धं कामातुर हो उसकी ओर दौड़ पड़े। प्रोडे को कामातुर देखकर और उसकी हिनहिनाहट को सुनकर पतिव्रता, पति ध्यान में तल्लीन उषा अश्व की टिड्ढाई से डर गई। 'यह कौन है' यह जान कर पति के आने पर भी यह सोच रही दक्षिण दिशा की ओर भाग चली और मोचने लगी कि अब इस परिस्थिति में मेरा कौन रक्षक होगा ऋषिगण अथवा देवगण। उस अरुनी प्रिया वडवा को भागती हुई देखकर अश्वरूप धारी मूर्धं भी स्वयं दौड़ने लगे। वह दौड़ते हुए त्रिषर जाती थी मूर्धं भी उपर ही दौड़ते हुये जाते थे। कामदेव रूपी यह वे वन में हो जाने पर कौन है जो अजिष्ट चेष्टाएँ नहीं कर देना है? इस प्रकार वे दोनों दक्षिण की ओर मूल त्रिये हुये भागीरथी, अन्यान्य नदिवा वन उपवन तथा नर्मदा और विन्ध्यपर्वत को पार कर गये। उषा किसी प्रकार अपनी रक्षा न देखकर मय से अद्विष्ट हो गौतमी के समीप गई। यह सुनकर नि ऋषिमुनि इस लोभ में दुःखिता की पीडिता के रसाक्त हैं, वह वडवा गौतमी-नट पर स्थित ऋषि-आश्रम में पहुँची। कुछ देर

अनुप्राप्तस्तथा चाश्वो भानुस्तुद्रूपवास्तत । अश्व निवारयामासुजनस्या मुनिदारका ॥
तत कोपादूर्पोस्ताश्च शशापोयापति प्रभु ॥३२॥

भानुह्वाच

निवारय मा यस्माद्वृदा मूय भविष्यथ ॥३३॥

ब्रह्मोवाच

ज्ञानदृष्ट्या तु मुनयो मेनिरेन्द्रवमुपापतिम् । स्तुक्त्वो देवदेवेश भानु त मुनयो मुदा ॥३४॥
स्तूयमानो मुनिगणैरश्वो भानुरथागमत् । वडवाया मुखे लग्न मुख चाश्वस्वरूपिणम् ॥३५॥
ज्ञात्वा त्वाष्ट्री च भर्तारं मुखाद्वीर्यं प्रसूयवे । तयोर्वीर्येण गङ्गायामदिवनी समजायताम् ॥३६॥
तत्राऽऽगच्छन्सुराणां सिद्धाश्च भूयस्तथा । नद्यो गावस्तथोपपन्नो देवा ज्योतिर्गणास्तथा ॥३७॥
सप्ताश्वश्च रथ पुण्यो ह्यरुणो भानुसारथि । यमो मनुश्च वरुण शनिर्वैवस्वतस्तथा ॥३८॥
यमुना च मदो पुण्या तापी चैव महानदी । तत्तद्वप समास्थाय नद्यस्ता विस्मयामुने ॥३९॥
दृष्ट्वा ते विस्मयाविष्टा आजगमु इवशुरस्तथा । अभिप्राय विदित्वा तु इवशुर भानुरब्रवीत् ॥४०॥

भानुह्वाच

उपाया प्रोतये त्वष्ट कुर्वत्यास्तप उत्तमम् । यन्त्रारुढ च मा कृत्वा छिन्धि तेजास्यनेकदा ॥
यावत्सौख्य भवेदस्यास्तावच्छिन्धि प्रजापते ॥४१॥

बाद भानु भी अश्व के रूप में वहाँ पहुँच गये। आश्रम में रहने वाले मुनि-कुमारों ने उस घोड़े को रोका। इस प्रकार रोके जाने पर क्रुद्ध होकर उपापति सूर्य ने उनको तथा ऋषियों को साथ दे दिया ॥३२-३२॥

भानु ने कहा—तुम लोग मुख जिम कारण निवारण कर रहे हो इसलिये बट बूझ हो जाओगे ॥३३॥

ब्रह्मा ने कहा—ज्ञान दृष्टि से देखने पर मुनिया ने उस अश्व को उपापति समझ लिया। तब प्रसन्न होकर उस देवदेवेश सूर्य की स्तुति करने लगे। इस प्रकार मुनिगणों द्वारा स्तुति किये जाने के बाद सूर्य वडवा के पास गये और अपने घोड़े के मुख के आकार वाले मुख को वडवा (घोड़ी) के मुख में मिला दिया। 'वाष्ट्री ने मुखस्पर्श से अपने पति को पहचान कर मुख से वीर्य त्याग किया। यथा मैं उन दोनों के वीर्य मिलने से अदिवनी कुमारों की उत्पत्ति हुई। मुने! यह घटना देखकर विस्मित हो वहाँ पर गुरगण सिद्ध मुनि नदियाँ गोक अघधियाँ देवता नक्षत्र सूर्य या सातों घोड़े तथा दिव्यरथ के सहित सूर्यसारथी अरुण यम मनु वरुण वैवस्वत शनि पवित्र नदी यमुना तापी और महानदी आदि नदियाँ अपने रूप को धारण कर कौतूहलवश देखने के लिये आइ। उस समय सूर्य के श्वशुर त्वष्टा भी आश्चर्यचकित होकर वहाँ चले आये। उपा के अभिप्राय को समझकर सूर्य ने अपने समुर त्वष्टा से कहा ॥३४-४०॥

भानु ने कहा—त्वष्टा! उत्तम तप करने वाली उपा की प्रसन्नता के लिये मुखको यत्र पर चढ़ाकर अनेक प्रकार से मेरे तेज को काट डालो (खराद डालो)। प्रजापति! जितने से इसको मुख हो अर्थात् जितना तेज सह सके उतना मेरा तेज काट डालो ॥४१॥

ब्रह्मोवाच

तथेत्युक्त्वा ततस्त्वष्टा सोमनाथस्य संनिधौ । तेजसां छेदनं चक्रे प्रभासं तु ततो विदुः ॥४२॥
 भर्त्रा च सगता यत्र गौतम्यामदवरूपिणी । अश्विनोर्यत्र चोत्पत्तिरद्वतीर्य , तदुच्यते ॥४३॥
 भानुतीर्य तदाख्यात तथा पञ्चवटाश्रमः । तापी च यमुना चैव पितरं द्रष्टुमागते ॥४४॥
 अरुणावरुणानद्योगेद्वायां संगमः शुभः । देवानां तत्र तीर्थानामागतानां पूयकपूयकु ॥४५॥
 नव त्रीणि सहस्राणि तीर्थानि गुणवन्ति च । तत्र स्नानं च दानं च सर्वमक्षयपुण्यदम् ॥४६॥
 स्मरणात्पठनाद्वापि श्रवणादपि नारद । सर्वपापविनिर्मुक्तो धर्मवान्स सुखी , भवेत् ॥४७॥
 इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्येऽरुणावरुणासंगमादवभानुतीर्थवर्णनं नामोनवतितः ,

मोऽध्यायः ॥८९॥

गौतमोमाहात्म्ये विंशतितमोऽध्यायः ॥२०॥

अथ नवतितमोऽध्यायः

गरुडतीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

गरुडं नाम यत्तीर्थं सर्वविघ्नप्रशान्तिदम् । तस्य प्रभावं वक्ष्यामि शृणु नारद यत्नतः ॥१॥

ब्रह्मा ने कहा—“ऐसा ही होगा” यह कहकर त्वष्टा ने सोमनाथ के समीप सूर्य के तेज का छेदन किया । तब से वह स्थान प्रभास नाम से लोक-प्रसिद्ध हो गया । जहाँ गौतमी के तीर पर अश्वरूप धारण करनेवाली उषा का पति के साथ संयोग हुआ और जहाँ अश्विनीकुमार की उत्पत्ति हुई वही अश्वतीर्थ कहा जाता है । जहाँ तापी और यमुना अपने पिता का दर्शन करने के लिए आईं, वह भानुतीर्थ अथवा पञ्चवटाश्रम के नाम से प्रसिद्ध हुआ । जहाँ अरुणा और वरुणा गंगा नदी में मिलती हैं, वह सगमस्थल अत्यन्त पुरातन एवं शुभ है । वहाँ देवताओं और अन्य तीर्थों के आने से वहाँ पूषन्-पूषन् सत्ताऽस सहस्र पुण्यप्रद तीर्थ हुए गये । वहाँ स्नान करने और दान देने से अक्षय पुण्य की प्राप्ति होती है । नारद ! जो मनुष्य इस तीर्थ के माहात्म्य का स्मरण, पाठ या श्रवण करता है वह धार्मिक सब पापों से मुक्त होकर मुक्ति होता है ॥४२-४७॥

थी ब्रह्ममहापुराण में अरुणा-वरुणासंगम, अश्वतीर्थ वर्णन नामक नवतीर्थ अध्याय समाप्त ॥८९॥

अध्याय ६०

गरुडतीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा ने कहा—गरुड नामक तीर्थ, सब विघ्नों को नष्ट करने वाला है । नारद ! उगरी महिमा का वर्णन कर रहा हूँ, ध्यानपूर्वक सुनो ।

मणिनाग इति त्वासीच्छेपपुनो महाबल । गरुडस्य भयाद्भूतया तोषयामास शकरम् ॥२॥
ततः प्रसन्नो भगवान्परमेष्ठी महेश्वर । तमुवाच महानाग वर वरय पन्नग ॥३॥
नागः प्राह प्रभो मह्यं देहि मे गरुडामयम् । तथेत्याह च त शर्भुरगडादभय भवेत् ॥४॥
निर्गतो निर्भयो नागो गरुडादरुणानुजात् । क्षीरोदशायी यत्राऽऽस्ते क्षीराण्यवसमीपतः ॥५॥
इतश्चेतश्च चरति नागोऽसौ सुखशोतले । गरुडोऽपि च यत्राऽऽस्ते त देशमपि यात्यसौ ॥६॥
गरुडः पन्नगं दृष्ट्वा चरन्तः निर्भयेन तु । त गृहीत्वा महानाग प्राक्षिपत्स्वस्य वेदमनि ॥७॥
त बद्ध्वा गरुडं पाशं गरुडो नागसत्तमम् । एतस्मिन्नन्तरे नन्दी प्रोवाचेन जगत्प्रभुम् ॥८॥

नन्दिकेश्वर उवाच

नूनं नागो न चाऽऽयाति भक्षितो घट्ट एव या । गरुडेन सुरेशान जीवन्नागो न सन्नजेत् ॥९॥

ब्रह्मोवाच

नन्दिनो वचनं श्रुत्वा ज्ञात्वा शर्भुरयाव्रवीत्

॥१०॥

शिव उवाच

गरुडस्य गृहे नागो बद्धस्तिष्ठति सत्वरम् । गत्वा त जगतामीश विष्णु स्तुहि जनार्दनम् ॥११॥
बद्धं नागं काश्यपेन महाव्यादानय स्ययम् । तत्प्रभोर्वचनं श्रुत्वा नन्दो गत्वा श्रियं पतिम् ॥१२॥
व्याजापयत्स्वयं वाक्यं विष्णु लोकपरायणम् । नारायणं प्रीतमना गरुडं वाक्यमब्रवीन् ॥१३॥

शेषनाग का पुत्र महाबलवान् मणिनाग था । उसने गरुड के भय से भक्तिमयुक्त हो शङ्कर को सन्तुष्ट किया । उसकी प्रकृति से प्रसन्न हो भगवान् परमेश्वरी गुरु ने उस महानाग से कहा— पन्नग ! वर मागो । नाग ने कहा— प्रभु ! मुझे गरुड का अभय होने का वरदान दीजिये । गुरु ने कहा ठीक है गरुड से निर्माक हो जाओ । तब वह नाग अरुण के छोटे भाई गरुड से निमग्न होकर निजला और जहाँ क्षीरसायी भयान्त्राथ उस क्षीरसागर के समीप सही होकर इधर उधर मुख-प्राप्ति के साथ घूमन लगा । यहाँ तक कि जहाँ स्वयं गरुड था वहाँ पर भी वह निर्भीक नाग जाता था । गरुड ने जब इस प्रकार निर्माक माग से नाग को टहलते हुए देखा तो उस नाग श्रष्ट को पकड़कर और गरुड-पाश से बाँधकर अपने घर में बन्द कर दिया । उसी बीच यह घटना देखकर नन्दी ने भगवान् गुरु से कहा ॥१०॥

नन्दिकेश्वर ने कहा—सुरेशान ! वह नाग इस समय नहीं जाता है तो अवश्यमेव उसे गरुड ने खा लिया होगा या बाँध दिया होगा । यदि ऐसा न होता और वह जीवित रहता तो क्या नहीं आता ? ॥११॥

ब्रह्मा ने कहा—नन्दी की बातों को सुनकर महेश्वर ने कहा ॥१०॥

शिव बोले—गरुड का घर था वह नाग बँधा हुआ है इसलिये घीघ्र हो जगत् के स्वामी जनार्दन विष्णु के पास जाकर उनकी स्तुति करो । स्वयं मेरी ओर से वहूँकर गरुड द्वारा बाँध गये उम समय को ल आओ ।

विष्णुवाच

विनतात्मज मे वाक्यान्नन्दिने देहि पद्मगम्। कम्पमानस्तदाकर्ण्य नेत्युवाच विहंगमः॥
विष्णुमप्यब्रवीत्कोपात्सुपर्णो नन्दिनोऽस्तिके ॥१४॥

गरुड उवाच

यद्यस्मिन्प्रयतम किञ्चिद्भूत्येभ्य प्रभविष्णवः। दास्यन्त्यन्ये भवान्नैव मयाऽऽनोत हरिष्यति॥१५॥
पश्य देवं त्रिनयन नाग मोक्षयति नन्दिना। ममोपपादितं नागं त्वं तु दास्यसि नन्दिने॥१६॥
त्वां ब्रूहिमि सदा स्वामिन्मम देय सदा त्वया। ममोपपादितं नागं वक्तुं देहीति नोचितम्॥१७॥
सता प्रभूणा नेय स्याद्बृत्तिः सद्बृत्तिकारिणाम्। सन्तो दास्यन्ति भूत्येभ्यो मनुपातहरो भवान्॥१८॥
दैत्याञ्जयसि सप्ताने मद्वलेनैव केशव। अहं महाबलीत्येवं मुग्धेव इलाघते भवान्॥१९॥

ब्रह्मोवाच

गरुडस्येति तद्वाच्य भूत्याः चन्द्रगदाधरः। विहस्य नन्दिन. पार्श्वे पश्यद्भूलोकपालकैः॥२०॥
इदमाह महाबुद्धिर्मां समुह्य कृशो भवान्। त्वद्वलादसुरान्तर्बाञ्जेत्येह जगसत्तम॥२१॥
इत्युक्त्या श्रीपतिर्ब्रह्मज्ञान्तकोपोऽब्रवीदिवम्। ब्रह्माङ्गुलिं करस्याऽऽनु कनिष्ठा नन्दिनोऽस्तिके॥२२॥
गरुडस्य ततो मूर्ध्नि न्यस्येदं पुनरब्रवीत्। सत्यं मां वहसे नित्यं पश्य धर्मं विहंगम॥२३॥

प्रभू की बातों का सुनकर नन्दी ने लक्ष्मीपति विष्णु के पास जाकर लोकावस्था में रत रहने वाले मगवान् से सारी घटना कह सुनाई। नारायण ने भी प्रसन्न होकर गरुड से ये वाक्य कहे ॥११-१३॥

विष्णु ने कहा—विनतासुत ! मेरे कहने से पद्मग की नन्दी के हाथ दे दो। इस बात को सुनकर गरुड ने कांप उठा 'नन्दी' ऐसा कहा। नन्दी के सामने ही उसने श्रोत्र से विष्णु से ओर भी कहा ॥१४॥

गरुड ने कहा—दूसरे समय स्वामी सेवका के जो जो पदार्थ प्रिय होते हैं उन सब पदार्थों को देने हैं, किन्तु आप ही ऐसे हैं जो कि मेवक के साथ हुए पदार्थों को भी (उसके) छीन लेते हैं। त्रिनेत्र दास्य को दखिये वह नन्दी के द्वारा नाग को मुक्त कराने हैं और मेरे द्वारा पाये हुए नाग को आप नन्दी को दे रहे हैं। स्वामी ! मैं आपको सर्वदा डोनाई अतः आपको सर्वदा मुझे कुछ न कुछ देना चाहिए अतः मेरे द्वारा पाये हुए 'नाग' का 'दे दो' ऐसा कहना उचित नहीं है। सत्यपहार करने वाले स्वामी का ऐसा व्यवहार नहीं होना चाहिये। सज्जन लोग अपने मृदा को पुष्करज दत्त हैं और आप तो मेरे द्वारा प्राप्त वस्तुओं को भी हर लेते हैं। केचव ! मेरे बल से ही आप दैत्यों को जीतते हैं। और स्वयं मैं महाबलवान् हूँ ऐसी व्यर्थ मझग हुई है ॥१५-१९॥

ब्रह्मा ने कहा—महाबुद्धिमान् चण्डिकाधारी विष्णु ने कष्ट की उन बातों को सुनकर हँसकर नन्दी के समीप बैठे लोचपाग के सामने ही गरुड ने कहा 'तुम सबकुछ मुझे पीठ पर डोना डोने दुर्बल हो गये हो। तप-श्रद्धा' तुम्हारे पास भी मैं सज्ज अमुरों को जीतता हूँ, जीतूंगा भी। ब्रह्मा' यह कह कर अपने श्रोत्र को छिपाकर लोचपाग ने कहा—मेरी कनिष्ठा अङ्गुली को धीमे धीमे नन्दी के समीप तक डो कर ले चलो। इतना कहकर ब्रह्मा ने गरुड के गिर पर अपनी अङ्गुली रख दी और फिर कहा कि 'विहङ्गम ! यदि तुम सबकुछ मुझसे निम्न

न्यस्ताया च ततोऽङ्गुल्या दारः कुक्षौ समाविशत् । कुक्षिश्च चरणस्यान्तः प्राविशच्चूर्णितोऽभवत् ॥
ततः कृताञ्जलिर्दोनो व्यथितो लज्जयाऽङ्गितः ॥२४॥

गरुड उवाच

ब्राहि ब्राहि जगन्नाथ भूत्य मामपराधिनम् । त्वं प्रभु सर्वलोकानां धर्ता धार्यस्त्वमेव च ॥२५॥
अपराधसहस्राणि क्षमन्ते प्रभविष्णवः । कृतापराधेऽपि जने महती यस्य वै कृपा ॥२६॥
वदन्ति मुनयः सर्वे त्वामेव करुणाकरम् । रक्षस्वाऽऽर्तं जगन्मातर्माम्बुजनवासिनि ॥
कमले बालकं दोनमार्तं तनयवत्सले ॥२७॥

ब्रह्मोवाच

ततः कृपान्विता देवी श्रीरम्याह जनार्दनम् ॥२८॥

कमलोवाच

रक्ष नाथ स्वकं भूत्य गरुड विपदं यतम् । जनार्दन उवाचेदं नन्दिनं शम्भुबाहनम् ॥२९॥

विष्णुरुवाच

नय मागं सगरुडं शम्भोरन्तिकमेव च । तत्प्रसादाच्च गरुडो महेश्वरनिरीक्षितः ॥
आत्मीयं च पुनः रूपं गरुडं समवाप्स्यति ॥३०॥

ढोतेही तो इसका निगय आज देखो । इसके उपरांत अंगुली के रखते ही शिर दबकर कोख में घुस गया और कोख
दोनो पैरों के बीच घुस गया इस प्रकार वह बेचारा चूर मूर हो गया । तब वह अत्यंत लज्जित दोन ध्वया से करा
हता हुआ हाथ जोड़ कर विनीत भाव से बोला ॥२० २४॥

गरुड ने कहा—जगन्नाथ ! मुझ अपराधी मूल्य की रक्षा करो रक्षा करो । तुम सम्पूर्ण ससार के धारण
करने वाले प्रभु हो तुम्ही संपूर्ण लोक के धार्य (धारण करने योग्य) भी हो । समस्त व्यक्ति हजारों अपराधों को क्षमा
कर देते हैं और अपराधियों पर उनकी सर्वदा कृपा रहती है । सब मुनि तुमको ही करुणा का कोश कहते हैं । हे कमल
भनिवास करने वाली ! जगन्माता ! मुझ दुखी की रक्षा करो । कष्टों । पुत्रवत्सल । इस दोन दुखी बालक की
रक्षा करो ॥२५ २७॥

ब्रह्मा ने कहा—तदनंतर करुण हृदयवाली कृपालु लक्ष्मी ने भी जनार्दन से कहा ॥२८॥

कमला ने कहा—नाथ । अपने इस विपत्ति में पड़ हुए सेवक गुरु की रक्षा कीजिये । जनार्दन ने यह
सुनकर शम्भुबाहन नन्दी से कहा ॥२९॥

विष्णु बोले—गरुड के सहित इस नाग को शंकर के समीप ले जाओ । उनकी कृपा से यह गरुड जब वे
अपनी कृपा दृष्टि से इसको देखने तो पुनः अपने स्वरूप स्वरूप को प्राप्त करेगा ॥३०॥

ब्रह्मोवाच

तथेत्युक्त्वा च वृषभो नागेन गरुडेन च । शनैः स शंकरं गत्वा सर्वं तस्मै न्यवेदयत् ॥
शकरोऽपि गरुत्मन्तं प्रोवाच शशिशेखरः ॥३१॥

शिव उवाच

याहि गङ्गा महाबाहो गौतमी लोकपावनीम् । सर्वकामप्रदां शान्ता तामाप्लुत्य पुनर्वपुः ॥३२॥
प्राप्स्यसे सर्वकामादयः शतधाऽप्य सहस्रधा । सर्वपापोपतप्ता ये दुर्देवोन्मूलितोद्यमाः ॥
प्राणिनोऽभोष्टदा तेषां शरणं यग गौतमी ॥३३॥

ब्रह्मोवाच

तद्वाक्यं प्रणतो भूत्वा ध्रुत्वा तु गरुडोऽभ्यगात् । गङ्गामाप्लुत्य गरुडः शिवं विष्णुं ननाम सः ॥३४॥
ततः स्वर्णमय पथी ययदेहो महाबलः । वेगी भवन्मुनिश्रेष्ठ पुनर्विष्णुमियात्सुधीः ॥३५॥
ततः प्रभृति तत्तीर्थं गरुड सर्वकामदम् । तत्र स्नानादि यत्किञ्चित्करोति प्रपतो नरः ॥
सर्वं तदक्षयं यत्तः शिवविष्णुप्रियावहम् ॥३६॥

इति धीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमहात्म्ये गरुडतीर्थवर्णनं नाम नवतितमोऽध्यायः ॥९०॥

गौतमीमाहात्म्ये एकादशतितमोऽध्यायः ॥३१॥

ब्रह्मा ने कहा—आपकी जैसी आज्ञा यह कहकर नन्दी नाग और गरुड के साथ मन्दगति से शंकर के पास गया और सारी घटना कह सुनाई । चन्द्रशेखर शंकर ने भी गरुड से कहा—॥३१॥

शिव ने कहा—महापराक्रमी ! लोक को पुनीत करने वाली गौतमी गंगा के पास जाओ । उस शान्त, सब कामनाओं को देने वाली गंगा में स्नान करने से सुख पुनः अपना शरीर तथा अपने मनोरथ का सौगुना, हजार गुना अधिक फल प्राप्त करोगे । खग ! सब पाप हठी अग्नि से जले हुए, दुर्भाग्य से विफल परिश्रम वाले प्राणियों को यह मनोरथ पूर्ण करने वाली गौतमी एक मात्र शरण देने वाली है ॥३२-३३॥

ब्रह्मा ने कहा—गरुड मगधान शंकर की बातों को विनीत भाव से सुनकर गंगा के समीप गया, उसमें स्नान किया और शिव तथा विष्णु की प्रणाम किया । मुनिश्रेष्ठ ! स्नान के बाद गरुड स्वर्णमय पथ वाला, महाबली, धृष्ट के समान देह वाला और अति वेशवान् हो गया । तब वह महाबुद्धिमान् गरुड विष्णु के समीप चला गया । तब से वह स्थान सब कामनाओं को देने वाला माण्डतीर्थ कहा जाने लगा । जो व्यक्ति अतन्मयभाव से उस तीर्थ में स्नान आदि जो कुछ सत्कर्म करता है वत्स ! वह सब कुछ अक्षय हो जाता है तथा उससे शिव, विष्णु दोनों प्रसन्न होते हैं ॥३४-३६॥

श्रीब्रह्मपुराण में गरुडतीर्थवर्णन नामक नवविंश अध्याय समाप्त ॥९०॥

अथैकनवतितमोऽध्यायः

गोवर्धनतीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

ततो गोवर्धन तीर्थं सर्वपापप्रणाशनम् । पितॄणां पुण्यजनन स्मरणादपि पापनुत् ॥१॥
 तस्य प्रभाव एष स्थान्मया दृष्टस्तु मारद । ब्राह्मणं कर्षकं कश्चिज्जाबालिरिति विभुत् ॥२॥
 न विमुञ्चत्यनङ्गाहो मध्यं यातेऽपि भास्करे । प्रतोदेन प्रतुवति पृष्ठतोऽपि च पादर्वयो ॥३॥
 तौ गावावधुपूर्णाक्षौ दृष्ट्वा गो कामदोहिनी । सुरभिर्जंगता माता नन्दिने सर्वमब्रवीत् ॥४॥
 स चापि व्यथितो भूत्वा शम्भवे तन्पवेदयत् । शम्भुश्च वृषभं प्राह सर्वं सिध्यतु ते वच ॥५॥
 शिवान्नासहितो नन्दो गोजात सर्वमाहरत् । नष्टेषु गोषु सर्वेषु स्वर्गे मर्त्ये ततस्त्वेव ॥६॥
 भामवोचन्सुराणां विना गोभिर्न जोष्यते । तानबोच सुरान्सर्वाञ्शकर यात याचत ॥७॥
 तर्प्येश तु से सर्वे स्तुत्वा कार्यं न्यवेदयन् । ईशोऽपि विबुधानाह जानाति वृषभो मम ॥८॥
 ते वृष प्रोक्षुरमरा देहि गा उपकारिण । वृषोऽपि विबुधानाह गोसव त्रियता क्रतु ॥९॥

अध्याय ६१

गोवर्धन का वर्णन

ब्रह्मा ने कहा—इसके अनन्तर सब पापों को नष्ट करने वाला और पितरों को सुख देने वाला गोवर्धन दीप है जिसने स्मरण से ही पाप नष्ट हो जाते हैं ॥१॥ मारद । उसका प्रभाव मैंने अपने नन्ना से देखा है वह इस प्रकार है—जाबाल नाम स प्रसिद्ध कोई कृपक ब्राह्मण था ॥२॥ वह मर्यादा छोड़ने पर भी अपने बैठा को नष्ट छोड़ता था अपितु बाबुज से उठने पृष्ठ और पाश्च भाग पर मारता था ॥३॥ इस प्रकार पीड़ित आसू से भरे नन्ना वाले बैला को देखकर जगत की माता कामधेनु भी ने नन्दी से जाकर सब कुछ कहा ॥४॥ नन्दी ने भी उन मर्क पशुओं की व्याधा से व्यथित होकर भगवान् शंकर से निवेदन किया । शम्भु ने नन्दी से कहा कि तुम्हारी इच्छाओं के अनुसार ही कार्य सिद्धि होगी ॥५॥ नन्दी ने शिव की आज्ञा से सम्पूर्ण गो-समूह को ही छिपा दिया । इस प्रकार गो-समूह के नष्ट हो जान पर स्वर्ग और मृत्युलोक म खलबली मच गई ॥६॥ देवताओं ने पीछता ये भरे पाग आकर कहा कि गोओं के बिना हम सब कैसे जी सकें हैं । उन देवताओं से मैंने कहा कि शंकर के पास आज्ञा और उनसे याचना करो ॥७॥ मेरे कहने के अनुसार उन सब देवताओं ने शिव की स्तुति की और उनसे अपना अग्निप्राप व्यवन किया । शंकर ने भी कहा कि इस विषय को मेरा वृषभ नन्दी ही जानता है ॥८॥ उन देवताओं ने पुन नन्दी से कहा कि उपकारी गोओं को दे दो । नन्दी ने भी उनसे कहा कि आप लोग गोसव नामक यज्ञ करें ॥९॥ सभी जितनी

तत प्राप्स्यय गा सर्वा या दिव्या याश्च मानुषा । तत प्रवर्तते यज्ञो गोसवो देवनिर्मित ॥१०॥
 गौतम्याश्च शुभे 'पाद्वे' गावो वदूधिरे तत । गोवर्धन तु तत्तीर्थं देवाना प्रीतिवर्धनम् ॥११॥
 तत्र स्नान मुनिध्रेष्ठ गोसहस्रफलप्रदम् । किञ्चिद्दानादिना यत्स्यात्फल तत्तु न विद्महे ॥१२॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये गोवर्धनतीर्थवर्णन नामकनवतितमोऽध्याय ॥९१॥
 गौतमोमाहात्म्ये द्वाविंशोऽध्याय ॥२२॥

अथ द्विनवतितमोऽध्यायः

पापप्रणाशनतीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

पापप्रणाशन नाम तीर्थं पापभयापहम् । नामधेय प्रवक्ष्यामि शृणु नारद यत्नत ॥१॥
 धृतव्रत इति ह्यातो ब्राह्मणो लोकविभ्रुत । तस्य भार्या मही नाम तरणी लोकसुन्दरी ॥२॥
 तस्य पुत्र सूर्यनिभ सनाज्जात इति श्रुत । धृतव्रत तथाऽर्कवर्णमृत्यु कालेरितो मुने ॥३॥
 तत सा बालविधवा बालपुत्रा सुरुपिणी । ज्ञातार नैव पश्यन्ती गालवाभ्रममभ्यगात् ॥४॥

दिव्य और मत्स्यलोक की गौएँ है प्राप्त हो सकती हैं । तदनंतर देवों की योजना के अनुसार गोसव यज्ञ का अनुष्ठान प्रारम्भ हुआ ॥१०॥ यज्ञ के परिणामस्वरूप गौतमी के पवित्र कछार में गोओं की बढ़ि होने लगी । वह गोवर्धन तीर्थ देवताओं को अधिक प्रसन्न करने वाला है ॥११॥ मुनिध्रेष्ठ उस तीर्थ का स्नान सहस्र गोदान का फल देता है । बड़ा दान देने का जो फल है उसको तो मैं भी नहीं जानता अतः कहने में असमर्थ हूँ ॥१२॥

श्रीब्रह्म महापुराण गोवर्धनतीर्थवर्णन नामक द्वाविंशोऽध्याय समाप्त ॥९१॥

अध्याय ६२

पापप्रणाशन तीर्थ का वर्णन

नारद ! पाप भय को दूर करने वाला एक पाप प्रणाशन नामक तीर्थ है । उसका यह नाम क्या पड़ा इसको मैं कह रहा हूँ तुम मनपूर्वक सुनो ॥१॥ व्रतव्रत नाम का एक परम लोकप्रसिद्ध ब्राह्मण था । उसकी मही नाम की विद्वन्-सुन्दरी युवती स्त्री थी ॥२॥ उसने सूर्य ने समान तेजस्वी सनाज्जात नामक एक पुत्र हुआ । मुनि । काल की प्ररणा से मृत्यु ने उस व्रतव्रत को खींच लिया ॥३॥ इसने अनन्तर वह सुन्दरी बाल विधवा जिसका पुत्र जमी अवोध था—जिसी को अपना रखकर गालव श्रमि के आश्रम में चली गई ॥४॥ गालव को अपना पुत्र

तस्मै पुत्रं निवेद्याथ स्वरिणी पापमोहिता । सा बभ्राम बहून्देशान्पुस्कामा कामचारिणी ॥५॥
 तत्पुत्रो गालवगृहे वेदवेदाङ्गपारण । जातोऽपि मातृदोषेण वेदपेरितमतिस्त्वभूत् ॥६॥
 जनस्थानमिति ख्यात नानाजातिसमावृतम् । तत्रासी षण्यवेषेण अध्यास्ते च मही तथा ॥७॥
 तत्सुतोऽपि बहून्देशान्परिवभ्राम वामुक । सोऽपि कालवशात्तत्र जनस्थानञ्चसत्तदा ॥८॥
 स्त्रियमात्रादशते वेद्या धृतव्रतसुतो द्विज । मही चापि धन दातृश्रुयान्तमपभते ॥९॥
 मेने न पुत्रमात्मोप स चापि न तु मातरम् । तयो समागमश्चाऽऽसौद्विधिना मातृपुत्रयो ॥१०॥
 एव बहुतिथे काले पुत्र मातरि गच्छति । तयो परस्परं ज्ञान नैवाऽसीग्मातृपुत्रयो ॥११॥
 एव प्रयतमानस्य पितृधर्मेण सन्मति । आसीत्तस्याप्यसद्वृत्ते शृणु नारद चित्रवत् ॥१२॥
 स्वैरस्पित्या यतमानो नेद स परिहातवान् । ब्राह्मीं सध्यामनुष्ठाय तदूध्वं तु धनार्जनम् ॥१३॥
 त्रिद्याबलेन वित्तानि बहून्पार्ष्ण्यं ददात्यसी । तथा स प्रातस्तथाय गङ्गां गत्वा यथाविधि ॥१४॥
 शीघ्रारि स्नानसध्यादि सर्वं कर्षं यथाक्रमम् । कृत्वा तु ब्राह्मणाश्रया ततोऽभ्येति स्वधर्मसु ॥१५॥
 प्रातःकाले गीतमीं तु यदा याति विरूपयान । कुप्टसर्वाङ्गदिविल पूयशोणितनि स्त्रव ॥१६॥
 स्नात्वा तु गीतमीं गङ्गां यदा याति रुरूपधृक् । शीत सूर्याग्निसदृशो मूर्तिमानिव भास्वर ॥१७॥

इतर बहु स्वर्णधारिणी पाप कर्मा क आकषण ग मन्ति होरन् धीन गुण की वामना स स्वच्छ दत्तायुवक बहुत
 देना म घुमन ग्या ॥५॥ यद्यपि उसका पुत्र मातृक क आधम म बंद बनाया था नाता हुआ तथापि मातृदोष
 र कारण उगरी बन्धामन की ओर प्रवर्ति हो गई ॥६॥ इस महा जनस्थान नामक नगर म—जनी विभिन्न
 जाति क लोग रहत थे—व्या दूति स रहन ल्या ॥७॥ उसका वामुकपुत्र भी इधर-उधर बहुत स देना का
 भ्रमण करता रहा । उग समय वह भी समय की प्रस्था न उमी जनस्थान म रहता था ॥८॥ इधर ब्राह्मण
 पुनव्रत का पुत्र बना नागा की इच्छा करता था उपर महा मा धन न्त बाध ग्यत पुत्रा की अपथा रगती
 थी । ॥९॥ उग नामी पुत्र न न तो माता की ओर माता न ही अपन ओरम पुत्र को पहचाना । स्वर्ण उन
 माता-पुत्र का परस्पर समागम हुआ ॥१०॥ इस प्रकार बहुत समय धीन गया माना पुत्र म परस्पर अनूचित
 शेष बचना रहा परंतु उन क्षमा क । माता-पुत्र क पारम्परिक सम्बन्ध का ज्ञान नहीं था ॥११॥ नारद ।
 मुनी यह आश्चर्य का विषय है कि इस प्रकार अनुचित व्यवहार म प्रवृत्त रहने वां उन द्वाभर्म ब्राह्मण म
 पिता क प्रभाव क कारण सम्बुद्धि थी ॥१२॥ इस प्रकार स्वच्छा म लीन रहन हुए भी उसने अपने नित्यक्रम का
 नहीं छोड़ा । प्रतिदिन वह प्रातः उध्या का अनुष्ठान करता नित्यस्नान धन वामन क लिए जाता था ॥१३॥ वह
 अपन विद्या क प्रभाव म धन वामना पुत्र उमी को मायका दे देता था । प्रातःकाल उठ कर यथाविधि मगाने
 पर जाता था और त्रम पुत्र की छत्र स्नान सध्या ओति सब विधाय समाप्त कर ब्राह्मण की नमस्कार करता था
 तेलपान् अपन पापम लय जाता था ॥१४॥ प्रातःकाल उठ कर गीतमा की जाता था तब वह विष्णु रहता सर्वद्विज
 बुद्धि राग स निविष्ट रहता उमक क्षीर क क्षण से गुप्त और रत्न रहता रहता था । जब उपर म स्नान क बाद
 लोभता था तब गुप्तरूप बाणा क्षाल मूष और अग्नि के समान तद्रूपी होकर आता था । वह अपनी कानि म लगा
 नात होता था मानो मुनिमान् भारवत है ॥१६॥ ॥१७॥ परन्तु वह ब्राह्मण अपन दन दान ल्या की नहीं दन पाता था

एतद्रूपद्वयं स्वस्य नैव पश्यति स द्विज । गालवो यत्र भगवास्तपोज्ञानपरायण ॥१८॥
 आश्रित्य गीतमीं देवीं आस्ते च मुनिभिरुत्त । ब्राह्मणोऽपि च तत्रैव नित्यं तोयं समेत्य च ॥१९॥
 गालव च नमस्याय ततो याति स्वमन्दिरम् । गङ्गायां सेवनात्पूर्वं सनाज्जातस्य यद्रुप ॥२०॥
 स्नानसध्द्योत्तरे बाले पुनर्यदपि तद्द्विजे । उभय तस्य तद्रूपं गालवो नित्यमेव च ॥२१॥
 दृष्ट्वा सविस्मयो भेने किञ्चिदस्त्यत्र कारणम् । एव सविस्मयो भूत्वा गालव प्राह त द्विजम् ॥२२॥
 गच्छन्त तु नमस्याय सनाज्जातं गरुहम् । आहूय यत्नतो धीमान्कृपया विस्मयेन च ॥२३॥

गालव उवाच

को भवान्क्व च गन्ताऽसि किं करोषि बब भोक्ष्यसि । किनामा त्वं बब शय्या ते का ते भार्या घदस्व मे ॥२४॥

ब्रह्मोवाच

गालवस्य वचं श्रुत्वा 'ब्राह्मणोऽप्याह त मुनिम् ॥२५॥

ब्राह्मण उवाच

इव कथ्यते मया सर्वं ज्ञात्वा कार्यविनिर्णयम् ॥२६॥

ब्रह्मोवाच

एवमुक्त्वा गालव त सनाज्जातो गृहं ययौ । भुक्त्या रात्री तथा सम्यक्शय्यामासाद्य बन्धकीम् ॥
 उवाच च वित स्मृत्वा गालवस्य तु यद्रुप ॥२७॥

तत्र और ज्ञान म राहदा त 'गीत' रहन यात्रे गालवमुनि अपने साथी मुनियों के साथ जहाँ गीतमी के तट पर सन्यास राहना विचरते थे वही वह ब्राह्मण भी नित्य आता और मिलता था तथा गालव मुनि को प्रणाम कर अपने घर को जाता था ॥१८-१९॥ गया स्नान के पूर्व सनाज्जात वा जैसा शरीर रहता था और पुनः स्नान सध्या के बाद उक्त ब्राह्मण वा जैसा रूप हो जाता था उसके उस समय रूपा को नित्य देखकर मुनि गालव को बहुत आश्चर्य हुआ सोचा इसमें अवश्य कुछ कारण है ॥२०-२१॥ निदान इस प्रकार विस्मय होकर धृष्टिमान गुरु गालव ने नमस्कार के बाद घर जाने के लिये प्रस्तुत उस ब्राह्मण को बुलाकर वृषा और आश्चर्य से युक्त होकर बड़ यत्न से पूछा ॥२२-२३॥

गालव ने कहा—तुम वीन हो । कहाँ जा रहे हो ? क्या कार्य करते हो ? कहाँ भोजन करते हो ? तुम्हारा नाम क्या है ? कहाँ सोते हो ? तुम्हारी भार्या कौन है ? इन प्रश्नों का उत्तर मुझे दो ॥२४॥

ब्राह्मण ने कहा—मैं कल मलीर्माति विचार कर उत्तर दूंगा ॥२५॥

ब्रह्मा ने कहा—इस प्रकार गालव मुनि से बढ़कर सनाज्जात अपने घर को चला गया । रात्रि में भोजन के पश्चात् उस वंश्या के साथ मलीर्माति शय्या पर बैठ कर गालव की बातों का स्मरण करता हुआ वह चिन्तित होकर वंश्या से बोला ॥२७॥

ब्राह्मण उवाच

त्व तु सर्वगुणोपेता बन्धक्यपि पतिव्रता । आश्रयो सद्गो श्रीतिर्याक्ज्जीव प्रवतताम् ॥२८॥
तयाऽपि किञ्चित्पुच्छामि किनाम्नी त्व एव वा कुलम् । किनु स्यान् एव वा बधुर्मम सर्वं निवेद्यताम् ॥२९॥

बन्धक्युवाच

धृतव्रत इति श्रुतातो ब्राह्मणो दीक्षित शुचिः । तस्य भार्या मही चाह मत्पुत्रो गालवाश्रमे ॥३०॥
उत्सृज्यो मतिमान् बाल सनाज्जात इति श्रुत । अह तु पूर्वदीपेण त्यक्त्वा धर्म कुलागतम् ।
स्वैरिणो त्विह धर्तुं विद्धि मा ब्राह्मणो द्विज ॥३१॥

ब्रह्मोवाच

तस्यास्तद्वचन श्रुत्वा मर्मविद्ध इवानवत् । पपात सहस्र भूमौ वेद्या त वाक्यमब्रवीत् ॥३२॥
वेद्योवाच
किं तु जात द्विजश्रेष्ठ वयं च श्रीतिगता तव । किं तु वाक्य मया धोक्त तव चित्तपिरोधकृत् ॥३३॥
आत्मानमात्मनाऽऽश्रयास्य ब्राह्मणो वाक्यमब्रवीत् ॥३४॥

ब्राह्मण उवाच

धृतव्रत पिता विप्रस्तत्पुत्रोऽहं सनाद्यत । माता मही मम इय मम देयादुपागता ॥३५॥

ब्राह्मण ने कहा—तुम सब गुणों से युक्त वेद्या होत हुए भी पतिव्रता हो। यह हम लोग का समान प्रेम जीवन मर रहे। फिर भी मैं कुछ पूछ रहा हूँ। तुम्हारा नाम क्या है? कुल क्या है? तुम्हारा कौन सा स्थान (जन्मभूमि) है? तुम्हारे बच्चे (हितछू माता पिता या परिवार) कहाँ रहते हैं? इन बातों को मुझ बताओ ॥२८ २९॥

बन्धकी ने कहा—धृतव्रत नाम का पवित्र एवं यथानिष्ठ ब्राह्मण था। उसी की मैं भार्या हूँ। मेरा नाम मही है। मैंने अपने सनाज्जात नामक बुद्धिमान् पुत्र की शत्रुवाचस्था में ही गान्धर्व का आश्रम में छोड़ दिया। स्वयं अपने पूर्वजर्मनेश्वर के कारण कुलधर्म को छोड़कर इस प्रकार के शत्रुवाच बनकर रह रही हूँ। द्विज! मुझ ब्राह्मणों की यही क्या है ॥३० ३१॥

ब्रह्मा ने कहा—उत्तरी उन बातों को सुनकर वह समझन सा हो गया। यह एकाएक पृथ्वी पर गिर पड़ा। यह देगदर के शत्रु ने उन ब्राह्मण से कहा ॥३२॥

वेद्या ने कहा—द्विजश्रेष्ठ! क्या कहा हो गया? तुम्हारा वह प्रेम कहाँ गया? क्या मैं एक वाक्य कह शिष्टे जा तुम्हारे हृदय में विरह भावना उत्पन्न करने वाला हूँ? इन बातों को सुनकर ब्राह्मण ने स्वयं अपने को सम्मान कर कहा ॥३३ ३४॥

ब्राह्मण ने कहा—धृतव्रत मेरे पिता का नाम है। मैं जल्दी का पुत्र विप्र सनाज्जात हूँ। यह मेरी ही माता मही है जो देवयोग से मेरे समान इस रूप में आई है ॥३५॥

ब्रह्मोवाच

एतच्छ्रुत्वा तस्य वाक्यं साऽप्यभूवदिति दुःखिता । तपोस्तु शोचतोः पश्चात्प्रभाते विमले रवी ॥
गालवं मुनिशार्दूलं गत्वा विप्रो न्यवेदयत् ॥३६॥

ब्राह्मण उवाच

धृतव्रतसुतो ब्रह्मंस्त्वया पूर्वं तु पालितः । उपवीतस्त्वया चैव महो माता मम प्रभो ॥३७॥
किं करोमि च किं कृत्वा निष्कृतिर्मम वै भवेत् ॥३८॥

ब्रह्मोवाच

तद्विप्रवचनं श्रुत्वा गालवः प्राह मा धुवः । तवेदं द्विविधं रूपं नित्यं पश्याम्यपूर्ववत् ॥३९॥
ततः पृष्टोऽसि धृत्तान्तं श्रुतं ज्ञातं यथा यथा । यत्कृत्यं तत्र तत्सर्वं यद्गर्ह्यं प्रत्यगात्क्षयम् ॥४०॥
अस्य तीर्थस्य माहात्म्यादस्या देव्याः प्रसादतः । पूतोऽसि प्रत्यहं वत्स नात्र कार्या विचारणा ॥४१॥
प्रभाते तव रूपाणि सप्तापानि त्वहर्निशम् । पश्येद्गुणं पुनरप्येव रूपं तव गुणोत्तमम् ॥४२॥
आगच्छन्त त्वागोयुक्तं गच्छन्त त्वामनागतम् । पश्यामि नित्यं तस्मात्त्वं पूतो देव्या कृतोऽधुना ॥४३॥
तस्मान्न कार्यं ते किञ्चिदवशिष्टं भविष्यति । इयं च माता ते विप्र जाता या चैव बन्धकी ॥४४॥

ब्रह्मा बोले—उसकी इन बातों को सुनकर वह भी अत्यन्त दुःखी हुई । इस प्रकार पश्चात्ताप करते-करते प्रातः हो गया । निर्मल सूर्य प्राची में धमकने लगे । तब विप्र ने मुनिपुत्र गालव से कहा ॥३६॥

ब्राह्मण ने कहा—ब्रह्मन् ! मैं धृतव्रत का पुत्र हूँ । शैशव में आपने ही मेरा पालन पोषण और उपनयन (यज्ञोपवीत) किया है । प्रभु ! यही मेरी माता है । मैं क्या करूँ ? क्या करने से मेरा उद्धार होगा ? ॥३७-३८॥

ब्रह्मा बोले—उस विप्र की बातें सुनकर गालव ने कहा—‘भत डरो । तुम्हारे इन दो रूपों को प्रतिदिन अनोखे स्वरूप में मैं देखता हूँ । इसके पश्चात् जैसा कि मैंने सुनाया और अनुमान द्वारा जाना, उसी वृत्तान्त को मैंने पूछा है । तुम्हारे प्राचीन किये हुए सभी दुष्कर्म इस समय गीतमी में नष्ट हो गये । वत्स ! इस तीर्थ के माहात्म्य वश, इस देवी की कृपा से तुम प्रतिदिन पवित्र हो इस विषय में अधिक शोक करने की आवश्यकता नहीं । प्रतिदिन प्रातः काल तुम्हारे पापयुक्त स्वरूप को देखता हूँ, पुनः तत्काल ही तुम्हारे उस रूप-गुण से सम्पन्न आकृति को भी देखता हूँ ॥३९-४२॥ नित्य ही आते समय तो तुम को रोगयुक्त देखता था परन्तु जाते समय स्वस्थ एवं रूपमय । अतः तुमको देवी गीतमी ने इस समय पवित्र बना दिया ॥४३॥ ता तुम्हारा कोई भी कार्य शेष नहीं रह गया है । विप्र ! यह तुम्हारी माता, जो वेश्या के नाम से प्रसिद्ध है, वह भी अत्यन्त पश्चात्ताप की ज्वाला में जल चुकी है । इसलिये वह भी पाप से सर्वथा मुक्त हो गई । वत्स ! प्राणियों की विषयों के प्रति आसक्ति स्वामान्विक है, परन्तु यह भी सत्य है कि दैववश सत्सग अन्य महापुण्य से निवृत्ति भी हो जाती है । इसके अतिरिक्त पूर्व-

पश्चात्तापं गताऽत्यन्तं निवृत्ता स्वयं पातकात् । भूतानां विषये प्रीतिर्वत्स स्वाभाविकी यतः ॥४५॥
 सत्सङ्गतो महापुण्याग्निवृत्तिर्देवतो भवेत् । अत्यर्थमनुत्प्रेयं प्रागाचरितपुण्यतः ॥४६॥
 स्नानं कृत्वा चात्र तीर्थं ततः पूता भविष्यति । तथा सौ चशत्रुभौ मातापुत्रौ च नारद ॥४७॥
 स्नानाद्बभूवतुष्टभौ गतपापावसंशयम् । ततः प्रभृति तत्तीर्थं धौतपापं प्रचक्षते ॥४८॥
 पापप्रणाशनं नाम गालवं चेति विश्रुतम् । महापातकमल्पं वा तथा यच्चोपपातकम् ॥
 तत्सर्वं नाशयेदेतद्धौतपापं सपुण्यदम् ॥४९॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे गौतमीमाहात्म्ये धौतपापमाहात्म्यनिर्हणं नाम द्विनवतितमोऽध्यायः ॥९२॥
 गौतमीमाहात्म्ये त्रयोविंशोऽध्यायः ॥२३॥

अथ द्विनवतितमोऽध्यायः

विश्वामित्रतीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

यत्र वासरघो रामः सीतया सहितो द्विजः । पितृसंतर्पयामास पितृतीर्थं ततो विदुः ॥१॥
 तत्र स्नानं च दानं च पितृणां तर्पणं तथा । सर्वमक्षयतमेति नात्र कार्या विचारणा ॥२॥

अमृत पुण्यो के कल्स्वरूप यह अत्यन्त अनुत्पन्न भी है ॥४४-४५॥ इसलिये इस तीर्थ में स्नान करने से यह भी प्र
 पवित्र हो जायगी । नारद 'उन दोनों माता और पुत्रों ने ऋषि के कथनानुसार सारा कार्य किया । स्नान के करने से
 ही वे दोनों निरिचन ही पवित्र हो गये ॥४७॥ तभी से वह तीर्थ धौतपाप नाम से प्रसिद्ध हो गया, साथ ही उसके
 पापप्रणाशन (पाप नष्ट करने वाला) और गालव नाम भी प्रसिद्ध हैं । यह अत्यन्त पुण्य देने वाला गालव नामक
 तीर्थ चाहे अपि पाप हो चाहे कम अथवा जो कुछ उपाप भी हैं उनको क्षणभर में नष्ट कर देता है ॥४८-४९॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में धौतपाप-माहात्म्य निरूपण नामक ज्ञानवेदा अध्याय समाप्त ॥९२॥

अध्याय ६३

विश्वामित्रतीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा बोले—जहाँ दशरथ-पुत्र राम ने सीता के सहित अपने पित्रो को वृत्त किया, उसको पितृ-तीर्थ कहा
 जाता है । उस तीर्थ में स्नान, दान और पित्रो का तर्पण, ये सभी अक्षय पुण्य के देने वाले हैं, इन पर विचार करने
 की आवश्यकता नहीं । जहाँ पर दशरथ पुत्र राम ने महाभूमि विश्वामित्र की उत्पत्ति मूर्तिवर्णन के सहित पूजा

यत्र दाशरथी रामो विश्वामित्रं महामुनिम् । पूजयामास राजेन्द्रो मुनिभिस्तत्त्वदर्शिभिः ॥३॥
 विश्वामित्रं तु तत्तीर्थमृषिजुष्टं सुपुण्यदम् । तत्स्वरूपं च वक्ष्यामि पठितं वेदवादिभिः ॥४॥
 अनावृष्टिरभूत्पूर्वं प्रजानामतिभोषणा । विश्वामित्रो महाप्राज्ञः सशिष्यो गौतमीमगात् ॥५॥
 शिष्यान्पुत्राश्च जायां च कृशान्दृष्ट्वा क्षुधातुरान् । व्यथितः कौशिकः श्रीमाञ्शिष्यानिदमुवाच ह ॥६॥

विश्वामित्र उवाच

यथाकर्तव्यं चिच्छात्किंचिच्छन क्वापि यथा तथा । आनीयतां किंतु भक्ष्यं भोज्यं वा मा विलम्बयताम् ॥
 इदानीमेव गन्तव्यमानेतद्व्यं क्षणेन तु ॥७॥

ब्रह्मोवाच

ऋषेस्तद्वचनाच्छिष्याः क्षुधितास्तत्वरया ययुः । अटमना इतश्चेतो मृतं ददुशिरे शुनम् ॥८॥
 समादाय त्वरायुक्ता आचार्याय न्यवेदयन् । सोऽपि तं भद्रमित्युक्त्वा प्रतिजग्राह पाणिना ॥९॥
 विशस्तध्वं इयमांसं च क्षालयध्वं च घारिणा पक्षध्वं मन्त्रवच्चापि हृत्वाऽग्नीं तु यथाविधि ॥१०॥
 देवानूपीन्पितृनन्यास्तर्पयित्वाऽतिथीन्गुरुन् । सर्वे भोक्ष्यामहे शोपमित्युवाच स कौशिकः ॥११॥
 विश्वामित्रवचः श्रुत्वा शिष्याश्चक्रुस्तस्यैव तत् । पच्यमाने इवमासे तु देवदूतोऽग्निरभ्यगात् ॥
 देवानां सवने सर्वं देवैभ्यस्तन्यवेदयत् ॥१२॥

की, उस शुन, पुण्यप्रद, ऋषियो से अहनिश सेवित विश्वामित्र तीर्थ के स्वरूप का परिचय दे रहा हूँ, जिसका वेदाभ्यासी लोग सर्वदा गान किया करते हैं। आज से बहुत पहले का समय था। प्रजा को अत्यन्त बूढ़ देने वाला भयकर सूखा (अनावृष्टि) पड़ा। यह देखकर महाप्राज्ञ विश्वामित्र अपने शिष्यबर्ग के साथ गौतमी के तट पर गये। अपने पुत्र स्त्री, और शिष्यो को कृशकाय और मूल से व्याकुल देखकर श्रीमान् विश्वामित्र व्यथित हो गये। उन्होंने अपने शिष्यो से कहा ॥१-६॥

विश्वामित्र बोले—जिस किसी प्रकार जो कुछ, जहाँ वही भी खाने योग्य या पीने योग्य पदार्थ मिलें ले जाओ। विलम्ब करने की आवश्यकता नहीं। अभी-अभी चले जाओ और क्षण भर में ही लाना होगा ॥७॥

ब्रह्मा बोले—ऋषि की बातें सुनकर भूखे वे शिष्य शीघ्र इधर-उधर चले गये। इधर उधर घूमने पर उन लोगो ने एक मृत वृत्त को देखा। उसको लेकर बड़ी सी प्रता से आचार्य विश्वामित्र को अर्पित कर दिया। उन्होंने भी कल्याण हो ऐसा कह कर अपने हाथों में ले लिया और कहा कि इस शवमांस को काट डालो, पानी से धो डालो और अग्नि में डाल कर विधिपूर्वक मन्त्र के साथ इसको पकाओ, पुन देवता, ऋषि, पितर, एवं अन्य अतिथि गुरु-जनो को सुत्प कर वषे हुए भाग को हम सब भोजन करेंगे। विश्वामित्र भी उपर्युक्त बातें सुनकर शिष्यो ने उठी तरह किया। इस प्रकार जब कुत्ते का मांस पकाया जाने लगा तब उसी समय देवदूत अग्नि देवो के समीप गये और सब देवो से उस घटना को कह सुनाया ॥८-१२॥

अग्निहोवाच

देवं ' इवमास भोवतव्यमापन्नमृषिकल्पितम्

॥१३॥

ब्रह्मोवाच

अग्नेस्तद्वचनादिन्द्र इयेनो भूत्वा विहायसि । स्यालोमयाहृत्पूणीं मांसेन 'पिहिता तदा ॥१४॥
तत्कर्म वृष्ट्वा शिष्यास्ते ऋषे' इयेन न्यवेदयन् । हुता स्याली मुनिप्रेष्ठ इयेनेनाकृतबुद्धिना ॥१५॥
ततश्चुकोप भगवाज्जप्तुकामस्तदा हरिम् । ततो ज्ञात्वा सुरपति स्यालीं चक्रे मधुप्लुताम् ॥१६॥
पुनर्निषेद्यामामास जल्कास्वेव क्षणो हरि । मधुना तु समायुक्ता विश्वामित्रश्चुकोप ह ॥
स्यालीं शोष्य ततः कोपादिदमाह स बौशिक ॥१७॥

विश्वामित्र उवाच

इवमासमेव नो देहि त्व हरामृतमुत्तमम् । नो चेत्त्वां भस्मसात्कुर्यामिन्द्रो भीतस्तदाज्जघीत् ॥१८॥

इन्द्र उवाच

मधु दृत्वा मयायाप पिब पुत्रे समन्वित । किमनेन इवमांसेन अमेध्येन महामुने ॥१९॥

ब्रह्मोवाच

विश्वामित्रोऽपि नेत्याह भुक्तेनैरेन किं फलम् । प्रजा सर्वाश्च सीदन्ति किं तेन मधुना हरे ॥२०॥

अग्नि ने कहा—श्रुति द्वारा बनया हुआ कृत का मान अगर देवां को खाना होगा ॥१३॥

ब्रह्मा बोले—अग्नि की उन बातों को सुनकर इन्द्र इयेन (बात्र) बनकर मांस से परिपूण और दही हुई स्याली को लेकर आराम में उठ गया । श्रुति शिष्या ने यह कर्म देखकर इयेन के इस घोर कर्म को श्रुति से निबंदन किया कि 'मुनिप्रेष्ठ' जिसी अविवेकी बात्र ने मान को स्याली चुरा ली है । तत्पश्चात् भगवान् विश्वामित्र इन्द्र को शाप देने की इच्छा से अत्यन्त क्रुपित हुए । इस अमित्राप को जानकर याज्ञरूपधारी इन्द्र ने स्याली का मधु से परिपूण कर दिया और उसको पुनः अपनी हुई लकड़ियां पर रत्न दिया । विश्वामित्र मधु में परिपूण स्याली को देगजर और अधिक क्रुपित हो गये । तब प्रोच से उन्होंने कहा ॥१४-१७॥

विश्वामित्र बोले—तुम हम लोग को कृत का मांस ही दा अपना उत्तम अमृत ल जाओ नह्ना तो तुमको मरम कर दूंगा । इन्द्र मुनि की शोष मृदा को देखकर बचसीत हो गय और बोले ॥१८॥

इन्द्र ने कहा—मधु को ही यथाभाग वितरित कर पुत्र परिवार सहित पीजिये । महामुने ! इस अपवित्र, कृत का मान खाने से क्या लाभ होगा ? ॥१९॥

ब्रह्मा बोले—विश्वामित्र न भी कहा कि नहीं केवल हम लोग के भोजन कर लेने से क्या लाभ होगा ? इन्द्र ! सारी प्रजा बन्ध पा रही है । तो उस मधु या मधुपान से क्या लाभ होगा ? यदि सबके लिये अमृत का प्रबन्ध

सर्वेषाममृत चेत्स्याद्भोक्ष्येऽहममृत शुचि। अथवा देवपितरो भोक्ष्यन्तीदं श्वमासकम्॥२१॥
 पश्चादहं तच्च मासं भोक्ष्ये नानृतमस्ति मे। ततो भीतं सहस्राक्षो मेघानाहूय तत्क्षणात्॥२२॥
 वर्षं चामृतं वारिं ह्यमृतेनापिना प्रजा। पश्चात्तदमृतं पुण्यं हरिदत्तं यथाविधि॥२३॥
 तर्पयित्वा सुरानादौ तर्पयित्वा जगत्त्रयम्। विप्रं समुक्तवाञ्छिष्ये विश्वामित्रं स्वभायया॥२४॥
 ततः प्रभृतिं तत्तीर्थमाख्यातं चातिपुण्यदम्। यत्राऽऽगतं सुरपतिर्लोकानाममृतार्पणम्॥२५॥
 तज्जातं मासवर्जं तु तत्तीर्थं पुण्यदं नृणाम्। तत्र स्नानं च दानं च सर्वं क्रतुफलप्रदम्॥२६॥
 ततः प्रभृतिं तत्तीर्थं विश्वामित्रमिति स्मृतम्। मधुतीर्थमयं च श्येनं पर्जन्यमेव च॥२७॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे स्वयम्भूयसवादे तीर्थमाहात्म्ये विश्वामित्रतीर्थवर्णनं नाम

त्रिनवतितमोऽध्यायः॥९३॥

गौतमीमाहात्म्ये चतुर्विंशोऽध्यायः॥२४॥

अथ चतुर्नवतितमोऽध्यायः

श्वेततीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

श्वेततीर्थमिति ख्यातं त्रैलोक्ये विश्रुतं शुभम्। तस्य श्रवणमात्रेण सर्वपापं प्रमुच्यते॥१॥

हो तो मैं भी पवित्र अमृत का पान कर्हूंगा नहीं तो देव पितर सभी उस अनेक्य मास को ही खावेंगे। इसके बाद मैं उस मास को खाऊँगा मेरा कवन असत्य नहीं है। विश्वामित्र की इन बातों से सहस्र नेत्र वाले इंद्र भयभीत हो गये। उसी समय मेघों को बुलाकर अमृत मय जल की वर्षा कर सम्पूर्ण प्रजा को अमृतदान से तृप्त किया। इसके अनंतर इंद्र के बिये हुए पवित्र अमृत को केवल यथाविधि पहले देवताओं को और सीनो लोक को विश्वामित्र ने तप्त किया पुन अपनी भार्या और शिष्यों के साथ स्वयं पान किया। उस समय से वह तीर्थ अत्यंत पुण्यप्रद माना जाने लगा। उस तीर्थ में स्नान करने और दान देने से सब धत्तों का फल प्राप्त होता है। और उसी समय से वह विश्वामित्र-तीर्थ नाम से प्रसिद्ध हुआ। कोई उसका मधुतीर्थ ऐंद्र श्येन, और पत्राय भी कहते हैं॥२०-२७॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में विश्वामित्रतीर्थ वर्णन नामक तिरानवेकौ अध्याय समाप्त॥९३॥

अध्याय ६४

श्वेततीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा बोले—त्रिमुक्ता में अति प्रसिद्ध श्वेततीर्थ नामक एक तीर्थ है। उस तीर्थ के नाम श्रवण मात्र से मनुष्य सब पापों से मुक्त हो जाते हैं। प्राचीन काल में श्वेत नामक एक ब्राह्मण ऋषि गौतम का सखा था। वह गौतमी

श्वेतो नाम पुरा विप्रो गौतमस्य प्रिय सखा । आतिथ्यपूजानिरतो गौतमीतीरमाश्रित ॥२॥
मनसा कर्मणा वाचा शिवभक्तिपरायण । ध्यायन्त त द्विजश्रेष्ठ पूजयन्त सदाशिवम् ॥३॥
पूर्णायुष द्विजवर शिवभक्तिपरायणम् । नेतु दूता समाजमुर्दक्षिणाशापतेस्तदा ॥४॥
नाशक्नुवन्गृह तस्य प्रवेष्टुमपि नारद । तदा काले व्यतिक्रान्ते चित्रको मृत्युमब्रवीत् ॥५॥

चित्रक उवाच

किं नाऽऽयाति क्षीणजीवो मृत्यो श्वेत कथं त्विति । नाद्याप्यायान्ति दूतास्ते मृत्योर्न बोधित तु ते ॥६॥

ब्रह्मोवाच

ततश्च कुपितो मृत्यु प्रायान्द्वेतेगृह स्वयम् । बहि स्थितास्तदा पश्यन्मृत्युर्दूताभ्यादितान् ॥
प्रोवाच किमिदं दूता मृत्युमूचुश्च दूतका ॥७॥

दूता ऊचुः

शिवेन रक्षित श्वेत वयं नो योक्षितु क्षम । येन प्रसन्नो गिरिशस्तेनैव का नाम भीतय ॥८॥

ब्रह्मोवाच

पाशपाणिस्तदा मृत्यु प्राविशद्यत्र स द्विज । नासी विप्रो विजानाति मृत्यु वा धर्माधिकरान् ॥९॥

के तीर पर आश्रम बना कर रहता था । सबदा द्वार पर आये अतिथियों के आतिथ्य-सत्कार में लगा रहता था । मन बचन और कर्म से उसकी शिव में निष्ठा रहता थी । एक दिन जब उस शिव भक्ति-परायण द्विजवर की आयु का अन्त समय आया तब सदाशिव की पूजा में रत और ध्यानमग्न उस श्रेष्ठ द्विज को ले जाने के शिष्य वर के दूत आये । नारद ! उस शिवभक्त के तब से हतवीर्य हो के समझूत उसक गृह में प्रवेश नहीं कर पाते थे । ऊपर बिलम्ब होने पर चित्रक ने मृत्यु से पूछा—॥१५॥

चित्रक ने कहा—मृत्यु ! आयु क्षीण हो जाने पर भी श्वेत क्यों नहीं आ रहा है ? अब तब तुम्हारे त भी नहीं आये यह तुम्हारे लिय उचित नहीं है ॥१६॥

ब्रह्मा बोले—इस पर मृत्यु कुपित होकर स्वयं विप्र श्वेत के घर गया । वहाँ अपन भयवस्त दूता को बाहर बैठ देखकर बोले—दूतो ! यह क्या है ? यह गुनवर दूता न मृत्यु से कहा ॥७॥

दूता ने कहा—शिव के द्वार रक्षित श्वेत को हम लोग आँख उठाकर भी देखने में समर्थ नहीं हो रहे हैं । जिनने ऊपर स्वयं कलाशपति गकर प्रसन्न हैं उनको डर किस बात का ॥८॥

ब्रह्मा बोले—यह सुनकर मृत्यु हाथ में पाश लिये हुए उस स्थान पर पहुँचा जहाँ वह विप्र विराजमान था । उसने अपनी तमयता के कारण मृत्यु अथवा यमदूता को नहीं पहचाना । वह तो भविष्यपूर्वक शिवाराधन में ही लगा रहा । ऐसे भक्त श्वेत के समीप पाशहस्त मृत्यु को देख कर दण्डी ने अत्यन्त विस्मित हो उससे पूछा—॥९१०॥

शिवं पूजयते भक्त्या श्वेतस्थ तु समीपतः। मृत्युं पाशधरं दृष्ट्वा दण्डी प्रोवाच विस्मितः॥१०॥

दण्ड्युवाच

किमत्र वीक्षसे मृत्यो दण्डिन? मृत्युरब्रवीत्

॥११॥

मृत्युर्ब्रुवाच

श्वेतं नेतुमिहाऽऽयातस्तस्माद्वीक्षे द्विजोत्तमम्

॥१२॥

ब्रह्मोवाच

त्वं गच्छेत्यब्रवीद्दण्डी मृत्युः पाशानयाक्षिपत्। श्वेतस्य मुनिशार्दूल ततो दण्डी चुकोप ह॥१३॥
शिवदत्तेन दण्डेन दण्डी मृत्युमताडयत्। ततः पाशधरो मृत्युः पपात धरणीतले॥१४॥
ततस्ते सत्वर द्रुता हतं मृत्युमवेक्ष्य च। यमाय सर्वमवदन्बधं मृत्योस्तु दण्डिना॥१५॥
ततश्च क्रुपितो धर्मो यमो महिषवाहनः। चित्रगुप्तं बहुबल यमदण्डं च रक्षकम्॥१६॥
महिषं भूतवेतालानाधिव्याधौस्तथैव च। अक्षिरोगान्कुक्षिरोगान्कर्णशूलं तथैव च॥१७॥
ज्वरं च त्रिविधं पापं नरकाणि पृथक्पृथक्। त्वरन्तामिति तानुक्त्वा जगाम त्वरितो यमः॥१८॥
एतैरन्यैः परिवृतो यत्र श्वेतो द्विजोत्तमः। समायात यमं दृष्ट्वा नन्दी प्रोवाच सायुधः॥१९॥
विनायक तथा स्कन्द भूतनाथ तु दण्डिनम्। तत्र तद्युद्धमभवत्सर्वलोकभयावहम्॥२०॥

दण्डी बोला—मृत्यु! यहाँ क्या देख रहे हो? ॥११॥

मृत्यु ने दण्डी से कहा—श्वेत वो ले जाने के लिए यहाँ आया हूँ इसलिये द्विजश्रेष्ठ श्वेत को देख रहा हूँ ॥१२॥

ब्रह्मा बोले—तुम कले जाओ, दण्डी ने कहा। मुनिशार्दूल! इसके बाद मृत्यु ने श्वेत के लिए पाश फेंका। यह देख दण्डी के त्रोध का ठिकाना न रहा। उसने शिव-दत्त दण्ड से मृत्यु पर आक्रमण किया, जिसके फलस्वरूप यम पाश हाथ में लिये ही पृथ्वी पर गिर पड़ा ॥१३-१४॥ वे यमदूत इस प्रकार मृत मृत्यु को देखकर भीड़ ही यम के पास गये और उसने दण्डी के द्वारा मृत्यु का बध आदि सब कुछ यम को सुना दिया ॥१५॥ इसको सुनकर महिष वाहन यम क्रुपित हो गया। उसने अपने अतिबलशाली चित्रगुप्त, रक्षा करने वाले यमदण्ड, मैसा, मूत, वेताल, व्याधि, इसी प्रकार नेत्ररोग, उदररोग, कर्णशूल तीन प्रकार के ज्वर पाप और विविध प्रकार के नरकों में 'जल्दी करो' यह कहकर बड़ी शीघ्रता से सबको साथ लेकर घटनास्थल पर पहुँचा ॥१६-१८॥ इस प्रकार उपर्युक्त गणों एवं अन्य सहायकों के साथ यम वहाँ पहुँचा जहाँ श्वेत बैठा था। जल्वरज्जित यम को इस प्रकार आते देखकर शस्त्र सम्हालते हुए नन्दी ने विनायक, स्कन्द तथा दण्डधारी भूतनाथ शंकर से यम की दुरन्तिस्थि कह सुनाई। अब वहाँ सम्पूर्ण लोक की मय देने वाला मयकर शुद्ध प्रारम्भ हो गया ॥१९-२०॥ युद्ध में नातिकेय ने स्वयं अपनी शक्ति

कार्तिकेय स्वयं शक्त्या बिभेद यमकिंकरान् । दक्षिणाशापति चापि निजघान बलान्वितम् ॥२१॥
 हतावशिष्टा याम्यास्ते आदित्याय न्यवेदयन् । आदित्योऽपि सुरैः सार्धं श्रुत्वा तन्महदभुतम् ॥२२॥
 लोकपालैरनुभूतो ममान्तिकमुपागमत् । अहं विष्णुश्च भगवानिन्द्रोऽग्निर्वरुणस्तथा ॥२३॥
 चन्द्रादित्यावश्विनौ च लोकपाला मरुद्गणा । एते चान्ये च बहवो वयं याता यमान्तिकम् ॥२४॥
 मृत आस्ते दक्षिणेशो गङ्गातीरे बलान्वित । समुद्राश्च नदा नागा नानाभूतान्यनेकश ॥२५॥
 तत्राऽज्जग्मुः सुरेशान द्रष्टुं वैवस्वत यमम् । त दृष्ट्वा हतसैन्यं च यम देवा भयादिता ॥
 कृताञ्जलिपुटा शभुर्मूचुः सर्वे पुन पुन ॥२६॥

देवा ऊचुः

भक्तप्रियत्व ते नित्यं दुष्टहन्तृत्वमेव च । आदिकर्तनमस्तुभ्यं नीलकण्ठ नमोऽस्तु ते ॥
 ब्रह्मप्रिय नमस्तेऽस्तु देवप्रिय नमोऽस्तु ते ॥२७॥

श्वेतं द्विजं भक्तमनायुषं ते, नेतुं यमादिं शकलोऽसमर्थः ।

सतीयमाप्ता परमं रामीक्ष्य, भक्तप्रियस्य त्वयि नाथ सत्यम् ॥२८॥

ये त्वा प्रपन्ना शरणं कृपालु, नालं शृतान्तोऽप्यनुवीक्षितुं तान् ।

एव विदित्वा शिव एव सर्वे, त्वामेव भक्त्या परया भजते ॥२९॥

त्वमेव जगता नाथ किं न स्मरसि शक्र । त्वा विना कः समर्थोऽत्र व्यवस्थां कर्तुमीश्वर ॥३०॥

से यमदूता को छेद झाग । पुन उन्हाने बलवान्वित दक्षिण दिशा के स्वामी यम को भी मार गिराया ॥२१॥ हतयोप
 यम के अनुचरो ने यमपिता आदित्य से सारी कथा बही । आदित्य भी इस अद्भुत सपना को सुनकर देवताओं
 और लोकपालों को साथ ले मरे पास आय ॥२२३॥ ग (भृश) विष्णु भगवान् इन्द्र अग्नि वरुण चन्द्र आदिय
 अश्विन लोकपाल मरुद्गण तथा इनके अतिरिक्त और भी बहुत से देव यम के समीप गये ॥२३- २४॥ बड़ा
 गंगा ने तट पर अपनी सना सहित दक्षिणतः यम मरा हुआ पड़ा था । सभी समुद्र नद नाग एव अन्य मरुद्गण
 प्राणी देवस्वामी वैवस्वत यम को दलने के लिये वहाँ पहुँचे हुए थे । उसको इस प्रकार सैन्य सहित मरा देखकर सभी
 देवता यम से व्याकुल हो गये । वे हाथ जोड़कर भगवान् शक्र से पुन पुन कहन लगे ॥२५ २६॥

देवों ने कहा—तुम्हारा भक्ता के प्रति सबदा स्नेहभाव रहता है । तुम दुष्टों के वध के लिये सबदा तैयार
 रहते हो । आदित्या ! तुमको नमस्कार है नीलकण्ठ ! तुम्हारा हम नमस्कार करते हैं । ब्रह्मप्रिय ! आपकी
 नमस्कार है । देवप्रिय ! आपको हम नमस्कार करते हैं ॥२७॥ तुम्हारा इस यतायुष मगन द्विज श्वेत को ने जाने
 म यमादि सभी असमर्थ हो गये । नाथ ! तुम मन्त्रवातालय का यह उद्घाटन सत्यरूप दमकर हम अचानक
 सन्तुष्ट हैं । जो व्यक्ति कृपालु तुम्हारी शरण में जाते हैं उन लोगों को बार यम भी और उदात्तर देखने का साहस
 नहीं कर सकता । निज ! तुम्हारी इस कृपालुता को जानकर सब तुमको अत्यन्त भक्ति में मग्न होते हैं । शक्र !
 क्या आप स्मरण नहीं करते कि आपही ससार का स्वामी हैं । तुमको छोड़कर कौन ऐसा है जो इस ससार में व्यवस्था
 स्थापित करने में समर्थ हो सकता है ॥२८ ३०॥

ग्रहोवाच

एव तु स्तुवतां तेषां पुरस्तादभवच्छिवः । किं वदामीति तानाह इदमूचुः सुरा अपि ॥३१॥

देवा ऊचुः

अयं वंस्पतो धर्मो निपन्ता सर्वदेहिनाम् । धर्माधर्मव्यवस्थायां स्थापितो लोकपालकः ॥३२॥
नायं वधमवाप्नोति नापराधो न पापकृत् । विना तेन जगद्भानुर्नैव किञ्चिद्भविष्यति ॥३३॥
तस्माज्जीवय देवेश यम सबलवाहनम् । प्रार्थना सफला नाथ महत्सु न वृथा भवेत् ॥३४॥

ग्रहोवाच

ततः प्रोवाच भगवाञ्जीवयेयमस्रायम् । यम यदि वचो मेऽद्य अनुमन्यन्ति देवताः ॥३५॥
ततः प्रोचुः सुरा सर्वे कुर्मो धावयं स्वपोदितम् । हरिग्रहादिसहितं वशे यस्याखिलं जगत् ॥३६॥
ततः प्रोवाच भगवानमरान्समुपागतान् । भङ्गवतो न मूर्ति यातु मेत्यूचुरमराः पुनः ॥३७॥
अमराः स्युस्ततो देव सर्वलोकाश्चराचरा । अमर्त्यमर्त्यभेदोऽयं न स्याद्देव जगन्मय ॥३८॥
पुनरप्याह साञ्जशु शृण्वन्तु यम भाषितम् । मङ्गवतानां वैष्णवानां गौतमीमनुसेवताम् ॥३९॥
यम तु स्वामिनो तिर्यं न मृत्युः स्थान्यमहंति । वार्ताऽप्येषां न कर्तव्या यमेन तु कदाचन ॥४०॥
आधिपत्याध्याविभिर्जातु कार्यो नाभिभव, ब्रवित् । ये शिवं शरणं यातास्ते भुक्तास्तत्क्षणादपि ॥४१॥

ब्रह्मा बोले—इस प्रकार देवों की प्रार्थना सुनकर आगुतीय शिव उन देवों के सामने प्रत्यक्ष हुये । उन्होंने कहा—क्या रूँ ? यह सुनकर देवों ने कहा ॥३१॥

देवगण बोले—यह वैवस्वत धर्म सब प्राणियों पर अनुशासन करनेवाला है । यही धर्माधर्म की व्यवस्था के लिये लोक पालक के रूप में प्रतिष्ठित है । यह न तो अपराधी ही और न पापकर्म करनेवाला ही है । अतः यह सब के योग्य नहीं है इसके बिना विधाता की सृष्टि में कोई व्यवस्था नहीं हो सकेगी । देवेश ! इसलिये इस यम को सैन्य, वाहन के सहित जीवित कर दो । नाथ ! महानो से की गई प्रार्थना सफल होती है, व्यर्थ नहीं ॥३२-३४॥

ग्रहों बोले—तदनन्तर भगवान् शंकर ने कहा 'मैं अचक्षुष यम को जीवित कर दूँगा, यदि आप सब देवता आज मेरे प्रस्ताव का समर्थन करें । यह सुन कर सब देवताओं ने कहा कि आप की कहीं हुई बातों का हम सब अक्षरसा पालन करेंगे । जिसके अधिकार में विष्णु, और ब्रह्मा सहित सारा जगत् है, उसकी कोन उपेक्षा कर सकता है ? तत्पश्चात् भगवान् ने आगत देवों से कहा—'मेरे भक्त कभी मृत्यु मुक्त में न जायें ।' पुनः देवताओं ने कहा 'नहीं । देव' तब तो चराचरात्मक सारा जगत् अमर हो जायगा । जगद्वापक ! देव ! अमर्त्य (देव) और मरणवर्मा मनुष्य का भेद भी मिट जायगा ।' इन उपर्युक्त सबों को सुनकर शंकर ने पुनः कहा—मेरी वही हुई बातों का अभिप्राय मुनो 'मेरे भक्तों (जैव) और वैष्णवों—जो कि सर्वदा गौतमी गंगा के आश्रय में रहते हैं—के स्वामी हम सब ही हैं अतः उन भक्तों पर मृत्यु का आधिपत्य कभी भी रहना उचित नहीं । अधिकार को कोन गले,

सानुगस्य यमस्यातो नमस्या सर्व एव ते । तथेत्यूच सुरगणा देवदेव शिव प्रति ततश्च ॥४२॥
भगवान्नाथो नन्दिन प्राह चाहमम् ॥४३॥

शिव उवाच

गीतम्या उदकेन स्वमभिपिञ्च मृत यमम् ॥४४॥

ब्रह्मोवाच

ततो यमादय सर्वे अभिषिक्तास्तु नन्दिना । उत्थिताश्च सजीवास्ते दक्षिणाशा ततो गता ॥४५॥
उत्तरे गीतमीतीरे विष्णवाद्या सर्वदेवता । स्थिता आसन्भूजयन्तो देवदेव महेश्वरम् ॥४६॥
तत्राऽऽसन्नपूतान्पट्ट सहस्राणि चतुर्विंश । तथा पट्ट सहस्राणि पुन पट्ट तथैव च ॥४७॥
पङ्कदक्षिणे तथा तीरे तीर्थानामयुतत्रयम् । पुण्यमाख्यानमेतद्धि श्वेततीर्थस्य नारद ॥४८॥
यत्रासौ पतितो मृत्युर्मृत्युतीर्थं तदुच्यते । तस्य श्रवणमात्रेण सहस्र जीवते समा ॥४९॥
तत्र स्नानं च दानं च सर्वपापप्रणाशनम् । श्रवणं पठनं चापि स्मरणं च मलक्षयम् ॥
करोति सर्वलोकानां भुक्तिमुक्तिप्रदायकम् ॥५०॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये उत्तरतीरस्वर्गकलशद्वादशसहस्रतीर्थदक्षिण
तीरस्यान्नशसहस्रतीर्थवर्णनं नाम चतुर्दशतितमोऽध्याय ॥९४॥
गीतमीमाहात्म्ये पञ्चविंशोऽध्याय ॥२५॥

इन लोगों के विषय में यम कभी बातें तक न करे । वे सभी किसी अवस्था में आधि ध्यावि से सताये न जायें जो शिव की शरण में चले जाते हैं । वे तत्क्षण ही मुक्त समझे जाते हैं । अतः वे सभी अनुचर सहित यम के लिये बन्द नीय हैं अचनीय हैं । यह सुनकर देवताओं ने देवाधिदेव शंकर से कहा— ऐसा ही हो । इसके अनन्तर भगवान् शंकर ने अपने ब्राह्म नन्दी से कहा ॥३५ ४३॥

शिव ने कहा—तुम गीतमी के जल से मृत यमराज का अभिषेक करो ॥४४॥

ब्रह्मा ने कहा—तब सभी यम आदि ने ऊपर नन्दी ने गीतमी का जल छिड़वा । वे सभी जल स्पश से ही सजीव हो उठ गये और अपनी प्रिय दक्षिण दिशा की ओर चले गये । इधर उत्तर की ओर गीतमी के तीर पर विष्णु आदि सब देवताओं ने आसन जमाया और देवाधिदेव महेश्वर की सर्वाधि पूजा की । वहाँ उस समय एक सौ छह हजार तीर्थ उपस्थित हुये थे । इसी प्रकार दक्षिण तीर पर छत्तीस हजार तीर्थ उपस्थित थे । नारद । यही श्वेत तीर्थ का पुण्यदाता आख्यान है । जहाँ मृत्युबुद्धि में आहत हो घराशायी हुए थे वही मृत्युतीर्थ कहा जाता है । उस मृत्युतीर्थ के नाम श्रवण मात्र से मनुष्य सहस्र वर्ष तक जीवित रहता है । वहाँ स्नान करने और दान देने से सब प्रकार के पाप नष्ट हो जाते हैं । इस तीर्थ का माहात्म्य श्रवण पठन तथा च स्मरण सम्पूर्ण लोक का पाप नष्ट करता है और सबको भुक्ति मुक्ति प्रदान करता है ॥४५ ५०॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में चौराववेवाँ अध्याय समाप्त ॥९४॥

अथ पञ्चनवतितमोऽध्यायः

शुक्रतीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

शुक्रतीर्थमिति ख्यात सर्वसिद्धिहरं नृणाम् । सर्वपापप्रशमनं सर्वव्याधिपिनाशनम् ॥१॥
 अङ्गिराश्च भृगुश्चैव ऋषी परमधार्मिकौ । तयो पुनौ महाप्राज्ञौ रूपबुद्धिविलासिनौ ॥२॥
 जीव कविरिति ख्यातौ मातापित्रोर्यशो रतौ । उपनीतौ सुतौ दृष्ट्वा पितराबूचतुमिथ ॥३॥

ऋषी ऊचतु

आवपोरेक एवास्तु शास्ता नित्यं च पुत्रयो । तस्मादेकं शासिता स्यात्तिष्ठत्वेको यथासुखम् ॥४॥

ब्रह्मोवाच

एतच्छ्रुत्वा ततः शीघ्रमङ्गिरा प्राह भार्गवम् । अध्यापयिष्ये सदा सुखं तिष्ठतु भार्गव ॥५॥
 एवञ्छ्रुत्वा चाङ्गिरसो वाक्यं भृगुकुलोद्बुधः । तथेति मत्वाऽङ्गिरसे शुक्रं तस्मै न्यवेदयत् ॥६॥
 उभावापि सुतौ नित्यमभ्यापयन्ति वै पूयकः । वैषम्यदुदया तौ बालौ चिराच्छुक्रोऽग्नवीदिवम् ॥७॥

अध्याय ६५

शुक्रतीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा बोले—सब मनष्यों के मनोरथ को पूरा करने वाला शक्तीय नामक एक विश्वविक्रमात् सीय है जो मनुष्य के सब पापों को दूर करता और सब प्रकार की व्याधियों को नष्ट करता है। अङ्गिरा और भृगु नाम के दो परम धार्मिक ऋषि थे। उनके दो पुत्र थे जो परम बुद्धिमान तथा रूप और बुद्धि के कोश थे। उन लोगों का नाम जीव (वहस्पति) और वति (गुत्र) था जो सबदा माता और पिता के आज्ञा-पालन में निरत रहते थे। पुत्रों के यगोपवीत सस्कार हो जाने के बाद उन दोनों बालकों के पिता ने आपस में संव्रणा की ॥१॥

दोनों ऋषियः, १ कहा—हम दोनों में से एक ही सबदा इन दोनों का अभिम वक् रहे। इसलिये एक तो इनका अभिभावक हो और दूसरा पुत्रपात्रन से निश्चित होकर मुखपूवक रहे ॥४॥

ब्रह्मा बोले—यह मुनिकर अङ्गिरा ने भागव से शीघ्र कहा—म समान भाव से दोनों बालकों को पढ़ाऊँगा भागव मुखपूवक रहे। ऋषि अगिरा की इन बातों को सुनकर भृगुकुलबुध ने उसको स्वीकार कर लिया और शुक्र को अगिरा के हाथ समर्पित कर दिया। कुछ उन दोनों बालकों को बिराला तक पूयक-भूयक असमान भाव से नियम पढ़ाते थे। यह बिरकालीन विषम अध्यापन देखकर गुत्र ने कहा ॥५॥ ७॥

शुक्र उवाच

तैषम्येण गुरो मां त्वमध्यापयसि नित्यशः। गुरुणां नेहमुचितं वैषम्यं पुत्रशिष्ययोः॥८॥
वैषम्येण च वर्तन्ते मूढाः शिष्येषु देशिका। नैषा विषमबुद्धीनां संख्या पापस्य विद्यते॥९॥
आचार्यं सम्पज्ज्ञातोऽसि नमस्येऽहं पुनः पुनः। गच्छेयं गुरुमन्यं वै मामनुज्ञातुमर्हसि॥१०॥
गच्छेयं पितरं ब्रह्मन्वत्सो विषमो भवेत्। ततो वाऽन्यत्र गच्छामि स्वामिन्पृष्टोऽसि गम्यते॥११॥

ब्रह्मोवाच

गुरुं ब्रह्मसतिं दृष्ट्वा अनुज्ञातस्त्वगात्ततः। अवगतविद्यः पितरं गच्छेयं चेत्पचिन्तयत्॥१२॥
तस्मात्कमनुपच्छेयमुत्कृष्टः को गुरुर्भवेत्। इति स्मरन्महाप्राज्ञमपूच्छद्वृद्धगीतमम्॥१३॥

शुक्र उवाच

को गुरुः स्यान्मुनिश्रेष्ठ नमः श्रुहि गुरुर्भवेत्। प्रयाणामपि लोकानां यो गुरुस्तं प्रजाम्यहम्॥१४॥

ब्रह्मोवाच

स प्राहु जगतमीमांशं शंभुं देवं जगद्गुहम्। बवाऽऽराधायामि गिरिदामित्युवतः प्राहु गौतमः॥१५॥

शुक्र बोले—गुरुदेव । तुम हो निरय ही मुझको असमान रूप से पढ़ाते हो। गुरुजनों का इस प्रकार पुत्र और शिष्य के प्रति विषम व्यवहार उचित नहीं। मूल्य गुरु ही शिष्यों के प्रति पक्षपात युक्त व्यवहार करते हैं, ऐसे पक्षपाती गुरुओं के पापों की गणना नहीं हो सकती। आचार्य । तुम मलीमांसि पहचाने गये। तुमको मैं बार बार नमस्कार करता हूँ। अब अन्य गुरु के समीप जाना चाहता हूँ कृपा करके मुझे अनुमति प्रदान कीजिये। ब्रह्मम् । यदि वहाँ जाने पर भी ऐसा ही विषम व्यवहार होगा तो पिता जो के पास चला जाऊँगा अथवा दूसरे गुरु के समीप चला जाऊँगा। स्वामिन् । आप से पूछ लिया, अब जा रहा हूँ ॥८-११॥

ब्रह्मा बोले—इस प्रकार गुरु और सहपाठी गृहस्पति से भेंट कर उनसे विदा माँग कर वहाँ से प्रस्थान कर दिया। सोचने लगा कि सम्पूर्ण विद्याओं का ज्ञाता होकर ही पिता के समीप चलना चाहिये। इसलिये किससे पूछूँ, कौन ऐसा उत्कृष्ट व्यक्ति है जो मेरा गुरु हो। इस प्रकार सोचते हुए उसने महाबुद्धिमान् गौतम से पूछा—॥१२-१३॥

शुक्र ने कहा—मुनिश्रेष्ठ । इस लोक में कौन ऐसा जानी व्यक्ति है जो मेरा गुरु हो, यह मुझको बतलाइये। तीनों लोकों के जो गुरु हैं, उनके समीप भी मैं जा सकता हूँ ॥१४॥

ब्रह्मा बोले—गौतम ने जगत् के स्वामी, जगद्गुरु भगवान् शंकर को ही गुरु के योग्य बताया। यह पूछने पर कि उनकी आराधना नहीं करूँ, गौतम ने कहा ॥१५॥

गौतम उवाच

गौतम्यान्तु शुचिर्भूत्वा स्तोत्रं स्तोपय शङ्करम् । ततस्तुष्टो जगन्नाथः स ते विद्यां प्रदास्यति ॥१६॥

ब्रह्मोवाच

गौतमस्य तु तद्वाक्यात्प्रापाद्गङ्गां स भार्गवः । स्नात्वा भूत्वा शुचिः सम्यक्स्तुतिं चक्रे स बालकः ॥१७॥

शुक्र उवाच

बालोऽहं बालबुद्धिश्च बालचन्द्रधर प्रभो । नाहं जानामि ते किञ्चित्स्तुतिं कर्तुं नमोऽस्तु ते ॥१८॥
परित्यक्तस्य गुरुणा न ममास्ति सुहृत्सखा । त्वं प्रभुः सर्वभावेन जगन्नाथ नमोऽस्तु ते ॥१९॥
गुरुर्गुह्यमतां देव महतां च महानसि । अहमल्पतरो बालो जगन्मय नमोऽस्तु ते ॥२०॥
विद्यार्यं हि सुरेशान नाहं धेदमि भवद्गतम् । मां त्वं च कृपया पश्य लोकसाक्षिन्नमोऽस्तु ते ॥२१॥

ब्रह्मोवाच

एवं तु स्तुवतस्तस्य प्रसन्नोऽभूत्सुरेश्वरः ॥२२॥

शिव उवाच

कामं वरय भद्रं ते यच्चापि सुरदुर्लभम् ॥२३॥

ब्रह्मोवाच

कविरप्याह देवेशं कृताञ्जलिस्वारधीः ॥२४॥

गौतम बोले—गौतमी में स्नान कर पवित्र हो स्तोत्र-पाठ से शंकर को प्रसन्न करो । तब जगत्पति प्रसन्न होकर तुमको विद्या प्रदान करेंगे ॥१६॥

ब्रह्मा बोले—वह भार्गव (शुक्र) गौतम के कथनानुसार गंगा की तीर पर गया । स्नान कर पवित्र हो उस बालक ने विधिपूर्वक शंकर की स्तुति की ॥१७॥

शुक्र बोले—द्वितीया के चन्द्रमा को पारण करने वाले ! प्रभो ! मैं बालक हूँ, बाल-बुद्धि (अल्पबुद्धि) हूँ । किञ्चित्मात्र भी तुम्हारी स्तुति करना नहीं जानता, तुमको मेरा नमस्कार हो । गुरु से परित्यक्त मेरा कोई भी सहायक या मित्र नहीं है । जगन्नाथ ! सब प्रकार से तुम्ही मेरे प्रभु हो, मैं तुमको नमस्कार करता हूँ । तुम धेष्ठो मे धेष्ठ तथा महानो के भी महान् हो । मैं तो अत्यन्त अल्पबुद्धि बालक हूँ । जगद्व्यापक ! आपको मेरा नमस्कार है । सुरेशान ! मैं विद्या-प्राप्ति के लिये आपकी शरण में आया हूँ, परन्तु आपकी गति नहीं जानता । अतः आप मुझको कृपा-दृष्टि से देखिए । लोकसाक्षिन् ! आपको मैं नमस्कार करता हूँ ॥१८-२१॥

ब्रह्मा ने कहा—इस प्रकार बालक की स्तुति-प्रार्थना सुनकर सुरेश्वर शंकर प्रसन्न हो गये ॥२२॥

शंकर ने कहा—तुम्हारा कल्याण हो । तुम अमिलपित्त वर माँगो । जो देवों से भी दुष्प्राप्य हो वह भी माँगो ॥२३॥

ब्रह्मा ने कहा—उदार बुद्धि शुक्र ने भी अञ्जलि नमस्कर देवेश से कहा—॥२४॥

शुक्र उवाच

ब्रह्मादिभिश्च ऋषिभिर्षा विद्या नैव गोचरा । तां विद्यां नाय याचिष्ये त्वं गुह्यममं देवतम् ॥२५॥

ब्रह्मोवाच

मृतसंजीवनीं विद्यामज्ञातां त्रिदशैरपि । तां दत्तवान्सुरभ्येष्टस्तस्मै शुक्राय याचते ॥२६॥
इतरा लौकिकी विद्या वैदिकी चान्यगोचरा । किं पुनः शंकरे तुष्टे विचार्यमवशिष्यते ॥२७॥
स/तु लब्ध्वा महाविद्यां प्रायात्स्वपितरं युग्मम् । दैत्यानां च गुरुदद्याऽऽसीद्विद्याया पूजितः कविः ॥२८॥
ततः कदाचित्तां विद्यां कस्मिंश्चित्कारणान्तरे । कचो बृहस्पतिसुतो विद्यां प्राप्तः कवेस्तु ताम् ॥२९॥
कचाद्बृहस्पतिश्चापि ततो देवाः पृथक्पृथक् । अवाप्तुमर्हतीं विद्यां मामाहूर्मृतजीविनीम् ॥३०॥
यत्र सा कविना प्राप्ता विद्याऽऽपूज्य महेश्वरम् । गीतम्या उत्तरे पारे शुश्रूतोर्यं तदुच्यते ॥३१॥
मृतसंजीविनीतीर्थमापुरारोग्यवर्धनम् । स्नान दानं च यत्किञ्चित्सर्वमक्षयपुण्यदम् ॥३२॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे स्वयंभुवृक्षपितृवादे मृतसंजीविनीतीर्थमाहात्म्यनिरूपणं नाम

पञ्चनवतितमोऽध्यायः ॥१९५॥

गीतमीमाहात्म्ये षड्विंशोऽध्यायः ॥२६॥

शुक्र ने कहा—जिस विद्या को ब्रह्मादि देवता और ऋषियों ने भी नहीं जाना, माय । उसी विद्या की याचना करता हूँ, तुम मेरे गुरु हो, देवता हो ॥२५॥

ब्रह्मा बोले—जब देवों से भी अज्ञात मृतसंजीवनी विद्या को सुरभ्येष्ट शंकर ने शुक्र की याचना पर दे दिया तो इतर लौकिक, वैदिक या अन्य विद्याओं के दान के विषय में प्रसन्न शंकर के लिये कुछ सोच विचार करने का अवसर ही कहाँ रहा ? अर्थात् इतर विद्यायें तो अनायास शंकर से प्राप्त हो गईं । वह महाविद्या को प्राप्त कर अपने गुरु के समीप चला गया । अपनी विद्या के कारण पूजित कवि दैत्यों के गुरु हुये । तदनन्तर किसी समय कारणवश बृहस्पति पुत्र कच ने वचि से मृत संजीवनी विद्या प्राप्त की । कच से बृहस्पति और बृहस्पति से देवताओं ने पृथक्पृथक् उस भ्येष्ट विद्या को—जिसको मृतसंजीवनी (मरे को जिलाने वाली) कहते हैं—प्राप्त किया । जिस स्थान पर शुक्र ने महेश्वर की आराधना कर उस विद्या को प्राप्त किया था, वही गीतमो के उत्तम तीर वाला स्थान शुक्रतीर्थ कहा जाता है । वह मृतसंजीवनीतीर्थ आयु-आरोग्य को बढ़ाने वाला है । वहाँ पर स्नान, दान, आदि जो कुछ किया जाता है, वह अक्षय पुण्य को देता है ॥२६-३२॥

श्री ब्रह्ममहापुराण में मृत संजीवनी माहात्म्य-वर्णन नामक पञ्चनवैवी अध्याय समाप्त ।

अथ षण्णवतितमोऽध्यायः

पुण्यासिक्तासगमेन्द्रतीर्थादिसप्तसहस्रतीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

इन्द्रतीर्थमिति ख्यात ब्रह्महत्याविनाशनम्। स्मरणादपि पापौघवलेशसघविनाशनम्॥१॥
 पुरा वृत्रवधे वृत्ते ब्रह्महत्या तु नारद। शचीपति चानुगता ता दृष्ट्वा भीतवद्वरि॥२॥
 इन्द्रस्ततो वृत्रहन्ता इतश्चेतश्च धावति। यत्र यत्र त्वसौ याति हत्या साऽपीन्द्रगामिनी॥३॥
 स महत्सर आविश्य पद्मनालमुपागमत्। तत्रासौ तन्तुवद्भत्वा वास चक्रे शचीपति॥४॥
 सरस्तीरेऽपि हत्याऽऽसोद्दिष्य घर्षंसहस्रकम्। एतस्मिन्नन्तरे देवा निरिन्द्रा ह्यमवन्मुने॥५॥
 मन्त्रयामासुरव्यग्रा कथमिन्द्रो भवेदिति। तत्राहमवद देवान्हत्यास्थान प्रकल्प्य च॥६॥
 इन्द्रस्य पावनार्थाय गौतम्यामभिषिष्यताम्। यत्राभिषिञ्च पूतास्मा पुनरिन्द्रो भविष्यति॥७॥
 तथा ते निश्चय कृत्वा गौतमीं शीघ्रमागमन्। तत्र स्नात सुरपति देवाश्च प्रष्टव्यस्तथा॥८॥
 अभिषेवतुकामास्ते सर्वे शचीकान्त च तत्स्थिरे। अभिषिष्यमानमिन्द्र त प्रकोपाद् गौतमोऽब्रवीत्॥९॥

अध्याय ६६

पुण्या-सिक्ता सगम, इन्द्रतीर्थ आदि सप्त सहस्र तीर्थों का वर्णन

ब्रह्मा ने कहा—ब्रह्महत्याजय पापों को भी नष्ट कर देने वाला इन्द्र तीर्थ नामक एक परम प्रसिद्ध तीर्थ है जिसके स्मरण मात्र से सब पाप और क्लेश-समूह विनष्ट हो जाते हैं। नारद। प्राचीन काल में वृत्रासुर वध के पश्चात् ब्रह्महत्या साकार रूप में शचीपति के पीछे चली। उसको देखकर इन्द्र भयभीत-से हो गये। सब वृत्र-हन्ता इन्द्र इधर उधर भागने लग। जहाँ जहाँ वे जाते थे वह ब्रह्महत्या भी उनके पीछे-पीछे जाती थी। अन्ततोगत्वा इन्द्र महासरोवर में धुसकर कमल नाल में छिप गये वहाँ तन्तु के रूप में शचीपति इन्द्र निवास करने लगे। वह हत्या भी उस सरोवर के तीर पर दिव्य सहस्र वर्षों तक निवास करती रही। गुने। इतने वर्षों तक देवता बिना इन्द्र के हो गये। आपस में उन देवों ने शान्त चित्त से परामश किया कि किस प्रकार पुन इन्द्र प्रकट होंगे। उस समय मैंने देवों से कहा कि कुछ समय तक हत्या को एक निदिष्ट स्थान दे दिया जाय और इन्द्र को हत्या से मुक्त करने के लिये गौतमी में उनको स्नान कराया जाय। उस गौतमी में अभिविनत होने से इन्द्र पुन पवित्र होकर इन्द्रत्व को प्राप्त कर लगे। ऐसा निश्चय कर वे देव शीघ्र ही गौतमी के तीर पर आये। बह्मा मुरेश को स्नान करा कर, उनका अभिषेक करने की इच्छा से देव ऋषि आदि प्रस्तुत हो गये। अभिषेक किये जाने वाले इन्द्र को देखकर गौतम ने क्रुपित होकर कहा—॥१-९॥

गौतम उवाच

अभिषेक्यन्ति पापिष्ठं महेन्द्रं गुह्यतल्पणम् । तान्सर्वान्भस्मसात्कुर्या शोधं यान्त्वसुरारय ॥१०॥

ब्रह्मोवाच

तद्वपेचनं श्रुत्वा परिहृत्य च गौतमीम् । नर्मदाभयमन्सर्वं इन्द्रमादाय सत्वरः ॥११॥
उत्तरे नर्मदातीरे अभिषेकाय तस्मिन् । अभिषेक्यमाणमिन्द्रं तं माण्डव्यो भगवान्पि ॥१२॥
अग्रधीद्भस्मसात्कुर्या यदि स्यादभिषेचनम् । पूजयामासुरमरा माण्डव्यं युक्तिभिस्तैर्व ॥१३॥

देवा ऊचुः

अयमिन्द्रः सहस्राक्षो यस्मिन्देसोऽभिषिच्यते । तत्रातिदारुणं विघ्नं मुने समुपजायते ॥१४॥
तच्छान्तिं कुरु कल्याण प्रसीद वरदो भव । मलनिर्घातनं यस्मिन्कुर्मस्तस्मिन्वरान्बहून् ॥१५॥
देशो दास्यामहे सर्वे तदनुज्ञातुमर्हसि । यस्मिन्देसो सुरेन्द्रस्य अभिषेको भविष्यति ॥१६॥
स सर्वकामदः पुता धान्यवृक्षफलैर्युतः । नानावृष्टिर्नन्दुभिश्च भवेदत्र कदाचन ॥१७॥

ब्रह्मोवाच

मेने ततो मुनिश्रेष्ठो माण्डव्यो लोकपूजितः । अभिषेकः कृतस्तत्र मलनिर्घातनं तथा ॥१८॥
बैवंस्तदोक्तो मुनिभिः स देशो मालवस्तत्र । अभिषिक्ते सुरपती जाते च विमले तदा ॥१९॥

गौतम बोले—यदि गुह्यतल्पणामी पापी इन्द्र का तुम लोग अभिषेक करोगे तो सबको अपने शापाग्नि से भस्म कर दूंगा, अतः राक्षसों के शत्रु देवगण यहाँ से दौड़ा चले जायें ॥१०॥

ब्रह्मा ने कहा—उस ऋषि की बात सुनकर गौतमी को छोड़कर इन्द्र को साथ ले वे देवता दौड़ा ही नमदा के तट पर चले गये । वहाँ नर्मदा के उत्तर तीरे पर अभिषेक करने के लिये स्थित हुये । इस प्रकार इन्द्र के अभिषेक का समारोह देखकर भगवान् ऋषि माण्डव्य ने कहा—‘यदि यहाँ अभिषेक हुआ तो सबको भस्मावशेष कर दूंगा । यह देखकर देवा ने अनेक युक्तिपों और स्तुतिपाठ से माण्डव्य ऋषि की गुवा की ॥११-१३॥

देवों ने कहा—‘इस सहस्र नेत्र वाले इन्द्र का जिस देश में अभिषेक होगा मुनिवर । उस देश में अति भयंकर विघ्न उत्पन्न होगा । कल्याणमूर्ति । आप प्रसन्न होइये, उन विघ्ना की शांति बीजिये । वर देने वाले होइये । हम जिस प्रदेश में मल मोचन करेंगे, उस प्रदेश को हम सब उत्तम कल्याणमय वरों से समृद्ध कर देंगे इसलिये आप कृपा कर आज्ञा प्रदान करें । जिस प्रदेश में सुरराज का अभिषेक होगा वह प्रदेश भीति भाति के धान्य और फलदार वृक्षों से सुशोभित रहेगा एव मनुष्यों की कामनाओं की पूर्ति करेगा । वहाँ समयानुकूल वृद्धि होती रहेगी, कमी भी दुर्भिक्ष न होगा ॥१४-१७॥

ब्रह्मा ने कहा—इतनी प्रार्थना के उपरान्त लोक-पूजित माण्डव्य ऋषि ने इसको स्वीकार किया । वहाँ इन्द्र का अभिषेक तथा पापमोचन कर्म किया गया । तब देवताओं और मुनियों के द्वारा उस देश का मालव नामकरण किया गया । इस प्रकार अभिषेक हो जाने पर सुरपति इन्द्र पापमुक्त हो गये । पुनः उनको गौतमी गंगा के तट पर

आनीय गौतमो नङ्गा त पुण्यापाभिषेचिरे । सुगश्च ऋषयश्चैव अह विष्णुस्तथैव च ॥२०॥
 वशिष्ठो गौतमश्चापि अगस्त्योऽत्रिश्च कश्यप । एते चान्ये च ऋषयो देवा यक्षा सपत्न्या ॥२१॥
 स्नानं तत्पुण्यतोयेन अकुर्वन्नभिषेचनम् । मया पुन शचीभर्ता कमण्डलुभवेन च ॥२२॥
 वारिणाऽप्यभिषिक्तश्च तत्र पुण्याऽभवन्नदी । सिक्ता चेति च तत्राऽऽसीते गङ्गाया च सगते ॥२३॥
 सगमौ तत्र विरपातौ सर्वदा मुनिसंविता । तत प्रभृति ततीर्थं पुण्यासगममुच्यते ॥२४॥
 सिक्ताया सगम पुण्यमेन्द्र तदभिधीयते । तत्र सप्त सहस्राणि तीर्थान्यासद्भुभानि च ॥२५॥
 तपु स्नानं च दानं च विशेषेण तु सगमे । सर्वं तदक्षयं विद्यान्नात्र कार्या विचारणा ॥२६॥
 यदेतत्पुण्यमाख्यानं य पठेच्च शृणोति वा । सर्वपापं स मुच्येत मनोवाक्कायकर्मजं ॥२७॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये पुण्यासिक्तासगमेन्द्रतीर्थादिसप्तसहस्रतीर्थवर्णनं
 नाम यणवतितमोऽध्यायः ॥९६॥

गौतमीमाहात्म्ये सप्तावशोऽध्यायः ॥२७॥

काकर सुरगण ऋषि मूँ (ब्रह्मा) विष्णु वशिष्ठ गौतम अगस्त्य अत्रि कश्यप तथा अन्य ऋषि देव यक्ष और नागो आदि ने पुण्याथ उनका अभिषेक किया । प्रथम उस नदी के पवित्र जल से स्नान हुआ पुन अभिषेक त्रिया समाप्त हुई । तदनंतर स्वयं मने अपने कमण्डलु-जल से शचीपति का अभिषेक किया । उस अभिषेक के जल से वहाँ पुण्या नदी उत्पन्न हुई वहाँ एक सिक्ता नदी भी थी ये दोनों नदियाँ गङ्गा में जाकर मिल गई । उन दोनों के सगम स्थान अत्यंत विख्यात तीर्थ हो गये वहाँ सबदा मुनिजन निवास करने लगे । तब से यह तीर्थ पुण्या-सगम के नाम से प्रसिद्ध हुआ । सिक्ता के सगम स्थान पर जो तीर्थ हुआ वह इन्द्रतीर्थ के नाम से प्रसिद्ध हुआ । वहाँ सात हजार पवित्र तीर्थों का निवास है उन तीर्थों में स्नान और वहाँ का दान अक्षय होता है सगम का स्नान और दान तो विशेष महत्त्व रखता है इसमें विचार या सन्देह करने की आवश्यकता नहीं । जो इस पवित्र आख्यान को पढ़ता अथवा श्रवण करता है वह अपने मानसिक और वाचिक पापों से मुक्त हो जाता है ॥१८ २७॥

श्री ब्रह्ममहापुराण में पुण्या सिक्ता-सगम इन्द्रतीर्थ आदि सप्तसहस्रतीर्थों का यणन नामक
 छियानवेवी अध्याय समाप्त ॥९६॥

अथ सप्तनवतितमोऽध्यायः

पौलस्त्यतीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

पौलस्त्यं तीर्थमाख्यातं सर्वसिद्धिप्रदं नृणाम् । प्रभावं तस्य वक्ष्यामि अष्टराज्यप्रदायकम् ॥१॥
उत्तराशापतिः पूर्वमृद्धिसिद्धिसमन्वितः । पुरा लङ्कापतिश्चाऽऽसीज्येष्ठो विश्रवसः सुतः ॥२॥
तस्येते भ्रातरश्चाऽऽसन्बलवन्तोऽमितप्रभाः । सापत्ना रावणश्चैव कुम्भकर्णो विभीषणः ॥३॥
तेऽपि विश्रवसः पुत्रा राक्षसां राक्षसास्तु ते । मद्भुक्तेन विमानेन धनवो भ्रातृभिः सह ॥४॥
ममान्तिकं भवित्युक्तं नित्यमेति तु याति च । रावणस्य तु या माता कुपिता साऽऽब्रवीत्सुतान् ॥५॥

रावणमातोवाच

मरिष्ये न च जीविष्ये पुत्रा रंहस्यकारणात् । देवाश्च दानवाश्चाऽऽसन्सापत्ना भ्रातरो भिषः ॥६॥
अन्योन्यवधमोक्षन्ते जयंश्चयं वशानुयाः । तद्भुवन्तो न पुरया न शक्ता न जयंयिणः ॥७॥
सापत्नं योऽनुमन्यते तस्य जीवो निरर्थकः ॥७॥

अध्याय ६७

पौलस्त्यतीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा बोले—अनुष्णों को सब प्रकार की सिद्धियाँ देने वाला पौलस्त्यनामक प्रसिद्ध तीर्थ है । राज्यच्युत भक्ति को पुनः राज्य दिलाने वाले उस तीर्थ की महिमा का वर्णन कहूँगा । विश्रवा का ज्येष्ठ पुत्र उत्तर दिशा का स्वामी कुबेर पहले रुका का अधिपति था । पहले वह ऋषि, सिद्धि से युक्त अत्यन्त वैभवशाली था । उसके अमित तेजस्वी, अत्यन्त बलवान् रावण, कुम्भकर्ण, विभीषण नामक सौतेले भाई थे । वे भी विश्रवा के, राक्षसी के गर्भ से उत्पन्न राक्षस पुत्र थे । मेरे द्वारा दिये गये विमान से नित्य कुबेर अपने भाइयों के साथ भक्ति पूर्वक आता और जाता था । रावण की माता इस प्रकार मातृ-प्रेम देखकर कुपित हो गई, उसने अपने पुत्रों से कहा ॥१-५॥

रावण की माता बोली—पुत्रो ! तुम लोगों के प्रकृति विषय कार्य को देखकर न तो मरती ही हूँ न जीवन-सुख ही प्राप्त करती हूँ । अब तक देवता और दानव आपस में सौतेले भाई थे । वे विजय और ऐश्वर्य की कामना से एक दूसरे का वध करना चाहते थे । इसीलिये तुम लोग न तो पुष्ट हो, न धनितशाली और न तो विजयाकांक्षी हो । उन लोगों का जीवन निरर्थक है जो अपने सौतेले भाई के अनुचर होकर रहते हैं ॥६-७॥

ब्रह्मोवाच

तन्मातृवचन श्रुत्वा भ्रातरस्ते त्रयो मुने । जग्मुस्ते तपसेऽरण्य कृतवन्तस्तपो महत् ॥८॥
 मत्तो वरानवापुश्च त्रय एते च राक्षसा । मातुलेन मरीचेन तथा मातामहेन तु ॥९॥
 तन्मातृवचनाच्चापि ततो लङ्कामयाचत । रक्षोभावान्मातृदोषाद्भ्रात्रोर्वरमभन्महत् ॥१०॥
 ततस्तदभवद्युद्ध देवदानवयोरिव । युद्धे जित्वाऽप्रज शान्त धनद भ्रातर तथा ॥११॥
 पुष्पक च पुरीं लङ्का सर्वं चैव ध्यापाहरत् । रावणो घोषयामास प्रेलोक्ये सचराचरे ॥१२॥
 यो दद्यादाश्रय भ्रातु स च वध्यो भवेमम । भ्रात्रा निरस्तो वैश्रवणो नैव प्रापाऽऽश्रय ष्वचित् ॥१३॥
 पितामह पुलस्त्य त गत्वा नत्वाऽन्नवीद्वच ।

धनद उवाच

भ्रात्रा निरस्तो दुष्टन किं करोमि वदस्व मे । आश्रय शरण यत्स्याद्वैव वा तीर्थमेव च ॥१४॥

ब्रह्मोवाच

तत्पौत्रवचन श्रुत्वा पुलस्त्यो वाक्यमब्रवीत्

॥१५॥

पुलस्त्य उवाच

गौतमीं गच्छ पुत्र त्व स्तुहि देव महेश्वरम् । तत्र नास्य प्रवेश स्याद्गङ्गाया जलमध्यतः ॥१६॥

ब्रह्मा ने कहा—मुने । माता की बातों को सुनकर वे तीनों माई तपस्या करने के लिये जंगल में चले गये । वहाँ जाकर उन्होंने धीरे तपस्या की और उन राक्षसों ने मुझसे वरदान भी पा लिया । तदनन्तर मामा मरीच मातामह तथा उस माता की वाणी से प्रेरित होकर उन तीनों ने ज्येष्ठ भ्राता कुबेर से लका का अधिपत्य माँगा । एक तो स्वयं राक्षस होने के कारण दूसरे भ्राता की दुष्टता से उन माइयों में महान् वैर हो गया । इसके परिणाम स्वरूप देव और दानव के समान ही उन सौतेले भाइयों में युद्ध हुआ । रावण ने अपने परम शात जेठ माई कुबेर को युद्ध में पराजित कर पुष्पक विमान लकापुरी एवं सारी संपत्ति छीन ली और सारे चराचर युक्त सत्सार में बोधित कर दिया कि जो कोई उसके माई को आश्रय देगा वह मेरे हाथों द्वारा मारा जायगा । इस प्रकार वह वैश्रवण अपने माई से निर्वासित कर दिया गया उसको किसी के यहाँ आश्रय नहीं मिला । अतएव वह विवश होकर अपने पितामह पुलस्त्य के यहाँ गया और प्रणाम कर कहा—॥८ १३॥

कुबेर ने कहा—मैं अपने ही माई रावण से निर्वासित कर दिया गया हूँ अब क्या करूँ मुझ बताइये देव का मरीच करना होगा या तीर्थ की शरण लेनी होगी ॥१४॥

ब्रह्मा ने कहा—अपने पौत्र की बातें सुनकर पुलस्त्य ने कहा ॥१५॥

पुलस्त्य ने कहा—पुत्र । गौतमी के तीर पर जाओ वहाँ महेश्वर की स्तुति करो उस स्थान पर गया जल के

तिर्दिष्टं प्राप्स्यसि कल्याणो तया कुद मया सह

ब्रह्मोवाच

तयेत्युक्त्वा जगामासी सभायों धनदस्तथा । पित्रा मात्रा च वृद्धेन पुलस्त्येन धनेश्वर ॥१८॥
गत्वा तु गीतमीं गङ्गा शुचि स्नात्वा यतव्रत । तुष्टाव देवदेवेश भुक्तिमुक्तिप्रद शिवम् ॥१९॥

धनद उवाच

स्वामी त्वमेवास्य चराचरस्य, विश्वस्य शम्भो न परोऽस्ति कश्चित् ।
त्वामप्यवज्ञाय यदीह मोहात्प्रगल्भते कोऽपि स शोच्य एव ॥२०॥
त्वमष्टमूर्त्या सकल विभर्षि, त्वदाज्ञया वर्तते एव सर्वम्
तथाऽपि वेदेति बुधो भवन्त, न ज्ञात्वविद्वान्महिमा पुरातनम् ॥२१॥
मलप्रसूत यदबोचदम्बा हास्यात्सुतोऽय तव देव शूर
त्वत्प्रेक्षिताद्य स च विघ्नराजो, जज्ञे त्वहो चेष्टितमीशदुष्टे ॥२२॥
अभुप्लुताङ्गी गिरिजा समीक्ष्य, विपुक्तदापत्यमितीशमूचे
मनोभवोऽभून्मदनो रतिश्च, सौभाग्यपूर्वं (णं) त्वमवाप सोमात् ॥२३॥

ब्रह्मोवाच

इत्यादि स्तुतस्तस्तस्य पुरतोऽभूत्त्रिलोचन । वरेण ऋन्वयामास हर्षाब्रह्मोवाच किञ्चन ॥२४॥

बीच से इसका प्रवेश न हो सकेगा । वहाँ अवश्य तुम कल्याणमयी सफलता प्राप्त कर करोगे । इसलिये चलो मेरे साथ पूर्वोक्त कार्य का अनुष्ठान प्रारम्भ करो ॥१६ १७॥

ब्रह्मा बोले—आपके कथनानुसार कार्य करूँगा यह कहकर अपनी भार्या तथा पिता माता और बृद्ध पुलस्त्य के साथ धनेश्वर कुबेर गीतमी सट पर चला गया । वहाँ जाकर उसने गया में स्नान कर अपने को पवित्र किया और श्वेत की दीक्षा लेकर एकाग्र मन से देवदेवेश भुक्ति और मुक्ति के दाता शिव की स्तुति प्रारम्भ की ॥१८ १९॥

धनद ने कहा—तुम्हीं इस चराचर विश्व के स्वामी हो शम्भो ! आपसे बड़कर और कोई नहीं है । यदि इस सागर में आपकी जेबेक्षा न कर कोई मनुष्य मोहवश अभिमान करता है तो वह अवघम शोचनीय है ॥२०॥ आप अपनी आठ मूर्तियों से सम्पूर्ण जगत को धारण करते हैं । आपकी ही आज्ञा से सारा सृष्टि विधान संचालित होता है । तथापि विद्वान् ही सनातन आपको जानते हैं अविद्वान् कभी भी आपकी महिमा नहीं जान पाते ॥२१॥ हँसी में जननी ने अपने मल स उत्पन्न बालक को तुम्हारा बलवान् पुत्र कहा पर तु देव ! तुम्हारी कृपादृष्टि से बड़ी विघ्नराज विनायक हो गया । अहा ! आपकी कृपादृष्टि का यह फल है ॥२२॥ रति के कदम चित्रण से आँखों से ध्याप्त अर्गों वाली पार्वती ने कदणापूर्वक रति और मदन का पारस्परिक सम्बन्ध मग हो गया है—इस विषय की बातें मगवान् शकर से बड़ी, जिससे कल्याण करने वाले आपकी कृपा से मदन ने मनोमय-पदवी और रति न अपना सौभाग्य-मुक्त प्राप्त किया ॥२३॥

ब्रह्मा ने कहा—इस प्रकार स्तुति सत्कर्म कुबेर के सम्मुख विवेक शक्ति स्वयं उपस्थित हो गये और वरदान से उसको कृतार्थ किया, परन्तु धनद कुबेर आनन्दचिह्न के कुछ म बोले ॥२४॥ कुबेर और पुलस्त्य के इस प्रकार

तूष्णींभूते तु धनदे पुलस्त्ये च महेश्वरे। पुनः पुनर्वरस्वेति शिवे चादिनि हर्षिते॥२५॥
 एतस्मिन्नन्तरे तत्र यागुवाचाशरीरिणी। प्राप्तव्यं धनपालत्वं वदन्तीदं महेश्वरम्॥२६॥
 पुलस्त्यस्य तु यच्चित्तं पितुर्वैश्रवणस्य तु। विदित्वेव तदा वाणी शुभमर्थमदीरयत्॥२७॥
 भूतवद्भूतवित्तं स्याद्वाप्त्यमानं तु दत्तवत्। प्राप्तव्यं प्राप्तवत्तत्र दंबी वागभवच्छुभा॥२८॥

प्रभूतशत्रुः परिभूतदुःखः, संपूज्य सोमेश्वरमाप लिङ्गम्

विगीश्वरत्वं द्रविणप्रभुत्वमपारदातृत्वकलनपुत्रान्

॥२९॥

तां वाचं धनदः श्रुत्वा देवदेयं त्रिशूलिनम्। एवं भवतु नामेति धनदो वाक्यमब्रवीत्॥३०॥
 तयंवास्त्विति देवेशो दंबी वाचममन्यत। पुलस्त्यं च वरः पुण्यंस्तथा विश्रवसं भुनिम्॥३१॥
 धनपालं च देवेशो ह्यभिनन्द्य ययौ शिवः। ततः प्रभूति ततीर्थं पौलस्त्यं धनदं विदुः॥३२॥
 तथा वैश्रवसं पुण्यं सर्वकामप्रदं शुभम्। तेषु स्नानादि यत्किञ्चित्तत्सर्वं बहुपुण्यदम्॥३३॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये पौलस्त्यतीर्थवर्णनं नाम सप्तनवतितमोऽध्यायः॥१९७॥
 गौतमीमाहात्म्येऽष्टाविंशोऽध्यायः॥२८॥

मीन होने पर शकर जी अति प्रसन्न होकर 'वर मांगो', वर मांगो, यह शब्द बार बार कहने लगे ॥२५॥ इसी बीच वही आकाशवाणी ने शकर से कहा कि यह धनपाल (कुबेर) की पदवी ही प्राप्त करना चाहता है ॥२६॥ पुलस्त्य और पिता वैश्रवण के मन में जैसी इच्छा थी उसको जानकर ही आकाशवाणी ने उस समय यह कल्याणमय अनि-
 प्राय व्यक्त किया ॥२७॥ भविष्य भूत के समान समृद्धिपूर्ण, प्राप्तव्य, प्राप्त के समान और दिया जाने वाला, दिये हुये के समान हो ऐसी उस समय शुभ देववाणी हुई ॥२८॥ अनेक सन्तुवाले, अनेक कण्टो से युक्ती कुबेर ने सोमेश्वर लिंग की पूजा कर दिक्पाल पदवी, प्रभूतधन, अमितदान की शक्ति और स्त्री-पुत्र को प्राप्त कर लिया ॥२९॥ उपर्युक्त आकाशवाणी को सुनकर कुबेर ने त्रिशूलधारी, देवों के देव शकर से कहा कि ऐसा ही हो ॥३०॥ देवेश शकर ने भी आकाशवाणी का ही समर्थन करते हुए कहा कि ऐसा ही हो। इस प्रकार पुलस्त्य, मुनि विश्रवा और कुबेर को पवित्र, उत्तम वरों से सम्मानित कर देवेश शकर जी अन्तर्हित हो गये। उस समय से वह तीर्थ पौलस्त्य और धनद नाम से प्रसिद्ध हो गया, तथा सब मनोरथों को देने वाला, शुभ, पवित्र वैश्रवस् तीर्थ भी वही कहा गया। उस तीर्थ में स्नान आदि जो कुछ किया जाता है वह बहुत पुण्यप्रद होता है ॥३१ ३३॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में पौलस्त्यतीर्थवर्णनं नामक अष्टानवैवा अध्याय समाप्त ॥१९७॥

अथाष्टनवतितमोऽध्यायः

अग्नितीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

अग्नितीर्थमिति ख्यात सर्वकृतुफलप्रदम् । सर्वविघ्नोपशमन तत्तीर्थस्य फलं शृणु ॥१॥
जातवेदा इति ख्यातो अग्नेर्भ्राता स हव्यवाद् । हव्यं बहन्त देवानां गौतम्यास्तीर एव तु ॥२॥
ऋषोणा सन्नसदने अग्नेर्भ्रातरमुत्तमम् । भ्रातुं प्रियं तथा दक्षं मधुर्दितिसुतो बली ॥३॥
जघान ऋषिमुख्येषु पश्यत्सु च सुरेष्वपि । हव्यं देवा नैव चाऽऽपुमृते घं जातवेदसि ॥४॥
मृते भ्रातरि स त्वग्निं प्रिये घं जातवेदसि । कोपेन महताऽविष्टो गाङ्गमम्भं समाविशत ॥५॥
गङ्गाम्भसि समाविष्टे ह्यग्नी देवाश्च मानुषा । जीवमुत्सर्जयामासुरग्निजीवा यतो मता ॥६॥
यत्राग्निर्जलमाविष्टस्तं देशं सर्वं एव ते । आजग्मन्विद्युषा सर्वं ऋषयः पितरस्तथा ॥७॥
विनाऽग्निना न जीवाम स्तुवन्तोऽग्निं विशेषतः । अग्निं जलगत् दृष्ट्वा प्रियं चोच्चिद्वीकस ॥८॥

देवा ऊचुः

देवाञ्जीवय हव्येन कव्येन च पितृस्तथा । मानुषाननपाकेन वीजानां बलेदनेन च ॥९॥

अध्याय द्वय

अग्नितीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा ने कहा—जो सब यज्ञों के फल को देने वाला सम्पूर्ण विघ्नों को शान्त करने वाला प्रसिद्ध अग्नितीर्थ है उसके फल को सुनो । जातवेदस नाम का अग्नि का एक भ्राता था वह यज्ञों में हव्यवाहक था । एक समय वह गौतमी के तीर पर ऋषियों के यज्ञमण्डप में हव्य (हवनसाधन) को डो रहा था । उसी समय बली दिति-सुत मधु ने देवताओं और मुख्य ऋषियों की आँखों में सामने ही अग्नि के उत्पन्न प्रिय कायकुशल भाई को मार डाला । जातवेदस के मर जाने पर देवताओं को हव्य नहीं प्राप्त होता था । इस पर अपने प्रिय भ्राता जातवेदस के मर जाने से अग्नि अत्यन्त क्रुपित होकर गंगा के जल में प्रविष्ट हो गये । अग्नि के नष्टता में इस प्रकार प्रविष्ट हो जाने पर सभी देवता मनुष्य निर्जीव से हो गये । क्योंकि सभी अग्नि के ही आचार पर जीने वाले प्राणी हैं । वे सब देवता ऋषि और पितर गण जहाँ जल में अग्नि प्रविष्ट हुए थे वहाँ जा गये । हम लोग अग्नि के बिना जीवित नहीं रह सकते इस प्रकार विशेषरूप से अग्नि का गुणगान करने लगे । और प्रिय अग्नि को जल में प्रविष्ट देखकर सब देवता प्रेमपूर्वक कहने लगे ॥१८॥

देवों ने कहा—आप हव्य प्रदान कर देवताओं को और कव्य दान से चित्तों को जीवित कीजिये । इसी प्रकार अन्न का परिपाक कर तथा बीजों को उगाकर मनुष्यों को जीवन-दान दीजिये ॥१९॥

अग्निरप्याह तान्देवाऽशक्तो यो मे गतोऽनुजः। त्रियमाणे भयत्पर्ये या गतिर्जातवेदसः॥१०॥
 सा वाऽपि स्थान्मम सुरा नोत्सहे कार्यसाधने। कार्यं तु सर्वतस्तस्य भयतां जातवेदसः॥११॥
 इमां स्थितिमनुप्राप्तो न जाने मे कथं भवेत्। इह धामुत्र च व्याप्तौ शक्तिरप्यत्र नो भवेत्॥१२॥
 अयापि त्रियमाणे धं कार्यं संव गतिर्मम। देवास्तमूचुर्भावेन सर्वेण श्रूययस्तया॥१३॥
 आयुः कर्मेणि च प्रीतिर्व्याप्ति शक्तिरद्वय दीयते। प्रयाजाननुयाजांश्च दास्यामो हव्यवाहन॥१४॥
 देवानां त्व मुख श्रेष्ठमाहुत्यः प्रथमास्तव। त्वया दत्तं तु यद्द्रव्यं भोक्ष्याम। सुरसत्तम॥१५॥

ग्रहोवाच

ततस्तुष्टोऽभवद्वह्निर्वैवाक्याध्यायमम्। इह धामुत्र च व्याप्तौ हव्ये वा लौकिके तथा॥१६॥
 सर्वत्र वह्निरभयः समर्थोऽभूत्सुराजया। जातवेदा बृहद्भानुः सप्ताचिर्नोललोहितः॥१७॥
 जलगर्भं शमीगर्भं यज्ञगर्भं स उच्यते। जलादाकृष्य विबुधा अभि (भ्य) पिच्य वि (ञ्चन्वि) भावसुम्॥१८॥
 उभयत्र पदे घातः सर्वगोऽग्निस्ततोऽभवत्। ययागतं सुरा जम्बुवह्नितीयं तदुच्यते॥१९॥
 तत्र सप्त क्षातान्यासंस्तोषाणि गुणयन्ति च। सेयु स्नान च दान च यः करोति जितात्मवान्॥२०॥
 अश्वमेधफलं साध्र प्राप्नोत्यविकलं शुभम्। देवतीयं च तत्रैव आग्नेयं जातवेदसम्॥२१॥

ब्रह्मा बोले—अग्नि ने भी उन देवताओं से कहा कि जो मेरा समर्थ शक्तिशाली छोटा भाई था वह तो बल गया। आप लोगों के कार्य करते रहने पर जो गति उस जातवेदम् की हुई, वही गति मेरी भी हो जायेगी। इसलिये, देवगण ! आप लोगों के कार्य सम्पादन करने के लिए मुझे उत्साह नहीं हो रहा है। आप लोगों के कार्य को मलीमाँति करने वाला बेचारा जातवेदस् जब इस अवस्था को प्राप्त हुआ तो मेरी कैसी दुईशा होगी। साथ ही मृत्युलोक, स्वर्गलोक और व्याप्ति में कार्य करने की शक्ति भी तो मुझमें नहीं है। इसके अतिरिक्त आप लोगों के कार्य करते रहने पर भी तो वही मेरी गति होगी। यह सुनकर देवों तथा ऋषियों ने सब प्रकार से अग्नि से कहा—हम लोग आयु कर्म में प्रेम और व्याप्ति में शक्ति दे रहे हैं। हव्यवाहन ! प्रयाज और अनुयाज (यज्ञ भाग) भी हम आपको देंगे। तुम देवों के श्रेष्ठ मुख हो इसलिए पहली आहुतियाँ तुम्हें दी जाएँगी। गुरश्रेष्ठ द्वारा दिये गये इन्द्र को ही हम लोग ग्रहण करेंगे ॥१०-१५॥

ब्रह्मा ने कहा—इसके अनन्तर देवताओं के कहने से अग्नि प्रसन्न हो गये। और क्रमानुसार भूलोक, स्वर्लोक, व्याप्ति हव्य तथा लौकिक कार्यों में सर्वत्र ही देवों की आज्ञा से अग्नि भयरहित और शक्तिशाली हो गये। अब वे जलगर्भ (जल में रहनेवाला बड़वानल) शमीगर्भ और यज्ञगर्भ नाम से प्रतिष्ठित हो गये। इस प्रकार देवों ने जल से अग्नि को निकाल कर अग्नियेक द्वारा समुष्ट कर (लोक-प्रतिष्ठित) किया। तब लोक, परलोक दोनों में अग्नि का निवास हुआ। तदनन्तर देवों के अनुग्रह से अग्नि सर्वव्यापक हुये। इस प्रकार अग्निप्रतिष्ठा कर देवगण जहाँ से आये थे वहाँ चले गये। यह स्थान भी इसीलिए वह्निरीष कहा जाता है। वहाँ पर और भी सात सौ पवित्र, पुण्यप्रद तीर्थ हैं। जो जितात्मा उन तीर्थों में स्नान और दान करता है वह सम्पूर्ण रूप से अश्वमेध का शुभ, उत्तम

अग्निप्रतिष्ठित लिङ्गं तत्राऽऽस्तेऽनेकवर्णवत् । तद्देवदर्शनादेव सर्ववत्फलं लभेत् ॥२२॥

इति श्रीमहापुराणे आविष्माह्ये तीर्थमाहात्म्येऽग्नितीर्थवर्णनं नामाष्टनवतितमोऽध्यायः ॥१८॥

गीतमीमांसाहर्म्ये एकोत्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥२९॥

अयं क्रोनशततमोऽध्यायः

ऋणप्रमोचनतीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

ऋणप्रमोचनं नाम तीर्थं वेदविदो विदुः । तस्य स्वरूपं वक्ष्यामि शृणु नारद तन्मना ॥१॥

आसौत्पृथुधवा नाम प्रियं कक्षीवतं सुत । न दारसग्रहं लेभे वैराग्यान्नाग्निपूजनम् ॥२॥

कनीयास्तु समर्थोऽपि परिवर्तिभयान्मुने । नाकरोद्धारकर्मादि नैवाग्नौनामुपासनम् ॥३॥

ततः प्रोचुः पितृगणा पुत्रं कक्षीवतं शुभम् । ज्येष्ठं चैव कनिष्ठं च पृथक्पृथगिदं वच ॥४॥

पितर ऊचुः

ऋणप्रयापनोदायं क्रियतां दारसग्रहं

॥५॥

फल प्राप्त करता है। वहीं पर अग्नितीर्थ आठवेदा और देवतीष गी है। तथा अनेक वण के अग्नि द्वारा प्रतिष्ठित
लिंग भी हैं। उन देवों के दान मात्र से मनुष्य सम्पूर्ण यन्त्रों का फल प्राप्त करता है ॥१६-२२॥

श्री ब्रह्ममहापुराण में अग्नितीर्थवर्णन नामक अष्टानवर्षा अध्याय समाप्त ॥१८॥

अध्याय ६६

ऋणप्रमोचनतीर्थं वा वर्णनं

ब्रह्मा ने कहा—ऋण प्रमोचन नामक तीर्थ को वेदज्ञ लोग जानते हैं। नारद! मैं उसके स्वरूप
का वर्णन कर रहा हूँ मन लगा कर सुनो। पृथुधवा नाम का कक्षीवान का प्रिय पुत्र था। उसने विरक्ति के कारण
न तो विवाह ही किया और न तो अग्निपूजन (अग्नि स्थापन) ही। मुने! कनिष्ठ पुत्र ने योग्य हाते हुए भी परि-
वर्ति (ज्येष्ठभ्राता के अविवाहित रहने पर छोटे भाई के विवाह से उत्पन्न पाप या दुःख) के मय से स्वयं विवाह या
अग्निस्थापन आदि व्रत नहीं किया। यह देखकर पितृगणों ने नक्षीवान् का प्रिय ज्येष्ठ और कनिष्ठ पुत्र से अलग अलग
ये शब्द कहे ॥१-४॥

पितरों ने कहा—तीन ऋणा से उद्धार पाने के लिये तुम लोगों को अपना विवाह कर लेना चाहिये ॥५॥

ब्रह्मोवाच

नेमुवाच ततो ज्येष्ठः किमृणं येन युज्यते। कनोयास्तु पितृग्राह न योग्यो दारसंग्रहः॥६॥
ज्येष्ठे सति महाप्राज्ञः परिवर्तिभयादिति। तावुभौ पुनरप्येवमूचुस्ते वं पितामहाः॥७॥

पितर ऊचुः

यातामुभौ गौतमीं तु पुण्या वक्षीयतः सुतौ। कुपतां गौतमीस्नानं सर्वाभीष्टप्रदायकम्॥८॥
गच्छतां गौतमीं गङ्गा लोकत्रितयपावनीम्। स्नानं च तर्पणं तस्यां पुस्तां श्रद्धयाऽन्वितौ॥९॥
दृष्ट्वाऽवनामिता ध्याता गौतमी सर्वकामदा। न देशकालजात्यादिनियमोऽनावगाहने॥
ज्येष्ठोऽनूणस्ततो भूयात्परिवर्तिनं घेतरः॥१०॥

ब्रह्मोवाच

ततः पृथुश्रवा ज्येष्ठः कृत्या स्नानं सतर्पणम्। प्रयाणामपि लोकानां काशीवतोऽनूणोऽभवत्॥११॥
ततः प्रभृति तत्तीर्थमूणमोचनमुच्यते। श्रौतस्मार्तं ऋणैश्च इतरेभ्यश्च नारद॥
तत्र स्नानेन दानेन ऋणी मुक्तः सुखी भवेत्॥१२॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये ऋणमोचनतीर्थवर्णनं नाम नवनवतितमोऽध्यायः॥९९॥

गौतमीमाहात्म्ये त्रिशोऽध्यायः॥३०॥

ब्रह्मा बोले—पितरा के उपदेश सुनने पर भी ज्येष्ठ पुत्र ने कहा नहीं, 'कौन सा ऋण है ? उससे किस प्रकार मनुष्य ऋणी हो जाता है ? छोटे पुत्र ने पितरों से कहा—जेठ भाई के रहते बुद्धिमान् छोटे भाई को विवाह नहीं करना चाहिये ऐसा करने से वह परिवर्ति दोष का भागी होता है ॥६-७॥

पितरों ने कहा—कक्षीवान् के लुप दोनों पुत्र पवित्र गौतमी तट पर जाओ, सब मनोरथों को देनेवाली गौतमी में स्नान करो। तीनों लोकों में अति पुनीत उस नदी के तट पर जाओ, उसमें श्रद्धापूर्वक स्नान और तर्पण करो। गौतमी के दशन प्रणाम और ध्यान से सम्पूर्ण कामनायें प्राप्त होती हैं उसमें स्नान करने के लिये देश, काल जाति आदि का कोई बन्धन नहीं। ऐसा करने से ज्येष्ठ भ्राता अपने पितृ ऋण से मुक्त हो जायगा और छोटे को भी परिवर्ति दोष नहीं लगेगा ॥८-१०॥

ब्रह्मा ने कहा—पितरों के उपदेशानुसार ज्येष्ठ पुत्र पृथुश्रवा ने गौतमी गंगा में स्नान और तर्पण आदि किया जिससे कि वह तीनों लोकों तथा पिता कक्षीवान् के ऋण से उच्छ्रृंखल हो गया। उसी समय से वह तीर्थ ऋण-मोचन तीर्थ कहा जाने लगा। नारद । वह तीर्थ श्रौत स्मार्त जयवा अन्य सब प्रकार के ऋणों से मनुष्य को मुक्त कर देता है। उस तीर्थ में स्नान और दान से ऋणी मनुष्य ऋण से मुक्त हो सुखी हो जाता है ॥११-१२॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में ऋणमोचनतीर्थवर्णनं नामक निन्यानवेक अध्याय समाप्त ॥९९॥

अथ शततमोऽध्यायः

कद्रूसुपर्णासगमतीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

सुपर्णासगम नाम काद्रवांसगम तथा। महेश्वरो यत्र देवो गङ्गापुङ्गवमाश्रित ॥१॥
अग्निकुण्ड च तत्रैव रौद्र वृष्णवमेव च। सौर सौम्य तथा ब्राह्म कौमार वारण तथा ॥२॥
अप्सरा च नदी यत्र सगता गङ्गाया तथा। तृतीयस्मरणादेव कृतकृत्यो भवेन्नर ॥३॥
सर्वपापप्रक्षमन शृणु यत्नेन नारद। इन्द्रेण हिसिता पूर्वं बालस्त्रित्या महर्षय ॥४॥
दत्तार्धतपस सर्वं प्रोचुस्ते काश्यप मुनिम् ॥४॥

बालस्त्रित्या ऊचु

पुत्रमुत्पादयानेन इन्द्रदण्डं हर शुभम्। तपसोऽर्घ्यं तु दास्यामस्तथेत्याह मुनिस्तु तान् ॥५॥
सुपर्णायां ततो गर्भमादधे स प्रजापति। कद्रवा चैव शनैर्ब्रह्मसर्पाणा सर्पमातरि ॥६॥
ते गर्भिण्यावुभ आह गन्तुकाम प्रजापति। अपराधो न च बवापि कार्यो गमनमव च ॥७॥
अन्यत्र गमनाच्छापो भविष्यति न सशय ॥८॥

अध्याय १००

कद्रू सुपर्णा-सगमतीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा ने कहा—सुपर्णा सगम और काद्रवा सगम नाम के दो तीर्थ हैं जहाँ भगवान् गङ्गा गंगा तट पर बिद्यमान हैं। वहीं पर अग्निकुण्ड रौद्रकुण्ड विष्णुकुण्ड सौरसौम्य ब्राह्म कौमार और वाष्णकुण्ड है। जहाँ अप्सरा नाम की नदी गंगा से मिलती है उस तीर्थ के स्मरण मात्र से मनुष्य कृतकृत्य हो जाता है। नाथ! उस सब पापों को क्षान्त करने वाले तीर्थ के विषय मैं ध्यानपूर्वक सुनो। आज से बहुत पहले इंद्र ने बालस्त्रित्य महर्षिया से बहुत अधिक दीर्घा की। वे सब अपनी तपस्या का आधा भाग काश्यप मुनि को देकर मुनि से बोले ॥१४॥

बालस्त्रित्यो ने कहा—मुनि काश्यप! आप हमारी तपस्या से इस आद्य नाम से इंद्र के दण्ड को चर करने वाले कल्याणकारी पुत्र की उत्पत्ति कीजिये। इस काम के लिए तपस्या का आधा भाग दे रहे हैं। मुनि ने भी कहा कि अवश्य ऐसा करेगा। तदनन्तर उस प्रजापति काश्यप ने सुपर्णा नामक पत्नी से गर्भाधान किया। ब्रह्मन् साँपो की माता कद्रू ने भी उन्होंने साँपो की उत्पत्ति के लिये गर्भाधान किया। एक दिन प्रजापति के मन में अन्यत्र जाने की इच्छा हुई उन्होंने अपनी दोनो गमिणी पत्नियाँ से कहा—तुम लोगो को न कोई अपराध करना चाहिए और न बड़ी जाना चाहिए। अन्यत्र जाने से अवश्य शाप पडना ॥५८॥

ब्रह्मोवाच

इत्युक्त्वा स ययौ पत्न्यौ गते भर्तरि ते उभे । तदेव जग्मतुः सत्रमूपीणां भावितात्मनाम् ॥९॥
 ब्रह्मबृन्दसमाकीर्णं गङ्गातीरसमाश्रितम् । उन्मत्ते ते उभे नित्यं यय.संपत्तिगविते ॥१०॥
 निवार्यमाणे बहुशो मुनिभिस्तत्त्वदाग्निभिः । विकुर्वन्त्यौ तत्र सत्रे समानि च हव्यौपि च ॥११॥
 योयितां दुर्विलसित फः सवरितुमोदवरः । ते दृष्ट्वा चक्षुर्भुविप्रा अपमार्गरते उभे ॥१२॥
 अपमार्गस्थिते यस्मादापगे हि भविष्यथ । सुपर्णा चैव कद्रूश्च मद्यौ ते संवभूवतुः ॥१३॥
 स कदाचिद्गृहं प्रायात्कश्यपोऽय प्रजापतिः । ऋषिभ्यस्तत्र यत्तान्तं शापं ताभ्यां सविस्तरम् ॥१४॥
 श्रुत्वा तु विस्मयाविष्टः किं करोमीत्यचिन्तयत् । ऋषिभ्यः कथयामास वालखिल्या इति श्रुताः ॥१५॥
 त ऊचुः कश्यप जिप्रं गत्वा गङ्गां तु गौतमोम् । तत्र स्तुहि महेशानं पुनर्भायिं भविष्यतः ॥१६॥
 ब्रह्महत्याभयदेव यत्र देवो महेश्वरः । गङ्गामध्ये सदा ह्यास्ते मध्यमेश्वरसंज्ञया ॥१७॥
 तपेत्युक्त्वा कश्यपोऽपि स्नात्वा गङ्गां जितव्रतः । तुष्टाय स्तवर्नः पुण्यदैवदेवं महेश्वरम् ॥१८॥

कश्यपः उवाच

लोकप्रपंकाधिपतेनं पस्प, कुत्रापि वस्तुन्यभिमानलेशः

त सिद्धनायोऽखिलविद्वकर्ता, भर्ता शिवाया भवतु प्रसन्नः

॥१९॥

ब्रह्मा ने कहा—ऐसा कहकर प्रजापति कश्यप चले गये। पति के चले जाने पर दोनों पत्नियाँ उसी समय बुद्धहृदय ऋषिया के यज्ञ में चली गयी, जो गंगा तट पर हो रहा था और जहाँ ब्राह्मण-मण्डली एकत्र थी। अपनी युवावस्था पर गर्व करने वाली उन्मत्त वे दोनों प्रतिदिन तत्त्वदर्शी ऋषियों के बार बार मना करने पर भी उस यज्ञ में हविष्य (पदार्थों) को दूषित या विकृत कर देती थी। मला कौन ऐसा व्यक्ति है जो नारियों की अनुरित पटा (ब्यापार) को रोकने की शक्ति रखता है? इसलिए वे ऋषि बार बार अनुचित ब्यापार में लगी रहने वाली उन दोनों नारियों को देखकर दुःख हो ग. और शाप दिया कि तुम दोनों अपमार्ग पर स्थित हो इसलिये आपगा (नदी) हो जाओ। वे दोनों शाप वश शीघ्र मदिरा बन गईं। इसके अनन्तर किसी समय प्रजापति कश्यप घर की ओर लौट जा रहे थे। उन्होंने ऋषियों के मुख से उन दोनों के शाप की घटना को विस्तार रूप से सुना। सुनकर विस्मित हो गये सोचने लगे कि 'अब क्या करें'। विवश हो उन्होंने ऋषियों से कहा कि 'मैं वालखिल्यो से प्रतिज्ञा कर चुका हूँ। यह सुनकर ऋषियों ने विप्र कश्यप से कहा—गौतमी गंगा के समीप जाइये, वहाँ जाकर गङ्गे की स्तुति कीजिये जहाँ वे ब्रह्महत्या के अय से देवमहेश्वर सर्वदा गंगा के मध्य में मध्यमेश्वर के नाम से प्रसिद्ध होकर रहते हैं। (ऐसा करने से) पुन आपकी माध्याँ पहले के समान हो जायेंगी। "ऐसा ही करूँगा" यह कहकर परम प्रती कश्यप ने भी गंगा में स्नान कर मगलमय स्तुतियों से देवदेव की स्तुति की ॥९-१८॥

कश्यप ने कहा—तीनों लोकों के एकमात्र स्वामी होते हुए भी जिस शक्ति ने किसी भी अवस्था में लेख-मात्र अधिकार वग नहीं किया वे सम्पूर्ण विश्व के कर्ता, सिद्धनाथ, शिवा के भर्ता मेरे ऊपर प्रसन्न हो ॥१९॥ त्रिताप

तापप्रयोष्णक्षुतितापितानामितस्ततो वै परिधावतां च
शरीरिणां स्वावरजङ्गमानां, स्वमेव दुःखध्वपनोददक्ष.
सत्त्वादियोगस्त्रिविधोऽपि यस्य, शक्रादिभिर्वक्तुमशक्य एव
यिचित्रवृत्तिं परिचिन्त्य सोमं, सुखी सदा दानपरो वरेण्यः

॥२०॥

॥२१॥

ब्रह्मोवाच

इत्यादिस्तुतिभिर्देवः स्तुतो गौरीपतिः शिवः। प्रसन्नो हृददाच्छंभुः कश्यपाम वरान्वहन् ॥२२॥
भार्यायिनं तु तं प्राह स्यातां भार्ये उभे तु ते। नदीस्वरूपे पत्न्यौ ये गङ्गां प्राप्य सरिद्धराम् ॥२३॥
तत्संगमनमात्रेण ताम्यां भूयात्स्यक वपुः। ते गर्भिण्यौ पुनर्जाते गङ्गायाश्च प्रसादतः ॥२४॥
ततः प्रजापतिः प्रीतो भार्ये प्राप्य महामना। आह्वयामास तान्विप्रान्गौतमीतीरमाश्रितान् ॥२५॥
सोमन्तोद्वयन चक्रे ताम्यां प्रीत प्रजापतिः। ब्राह्मणान्पूजयामास विधिदृष्टेन कर्मणा ॥२६॥
भुवतवत्स्वयं विप्रेषु कश्यपस्याथ मन्दिरे। भर्तृसमीपोपविष्टा कद्रुविप्रान्निरीक्ष्य च ॥२७॥
ततः कद्रुशृङ्गोदरणा प्राहसत्ते च क्षुधुम्। येनादणा हसिता पापे भग्यतां तेऽक्षि पापवत् ॥२८॥
काणाजभवसतः कद्रुः सर्पमातेति योच्यते। ततः प्रसादयामास कश्यपो भगवानृषीन् ॥२९॥

ततः प्रसन्नास्ते प्रोचुर्गौतमी सरितां यरा । अपराधसहस्रेभ्यो रक्षिष्यति च सेवनात् ॥३०॥
 भार्यान्वितस्तथा चक्रे कश्यपो मुनिसत्तमः । ततः प्रभूति तत्तीर्थमुभयोः संगमं विदुः ॥
 सर्वपापप्रशमनं सर्वश्रुतफलप्रदम् ॥३१॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे स्वयंभुव्युपनिषत्वादे कद्रुसुपर्णासंगमतीर्थवर्णनं नाम
 शततमोऽध्यायः ॥१००॥

गौतमीमाहात्म्ये एकात्रिशोऽध्यायः ॥३१॥

अथैकाधिकशततमोऽध्यायः

सरस्वतीसंगमपुरुषवसब्रह्मतीर्थसिद्धेश्वरवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

पुरुषसमाख्यातं तीर्थं धेदविदो विदुः । स्मरणादेव पापानां नाशनं किंतु दर्शनात् ॥१॥
 पुरुषा ब्रह्मसदः प्राप्य तत्र सरस्वतीम् । यदृच्छन् देवन्दीं हस्तन्तीं ब्रह्मणोऽन्तिके ॥
 तां वृष्ट्वा रूपसंपन्नामूर्वशीं प्राह भूपतिः ॥२॥

राजोवाच

केयं रूपवती साध्वी स्थितेयं ब्रह्मणोऽन्तिके । सर्वात्मा मुत्तमा योपि दीपयन्ती स भामिमान् ॥३॥

उत्तम कीटि की गौतमी गंगा सेवा करने से सहस्रो अपराधो से रक्षा करती है ॥३०॥ तब मुनि कश्यप ने भार्या सहित गौतमी की सेवा कर भार्या के नेत्रदोष को दूर किया । उस समय से वह तीर्थ सब पापों को नष्ट करने वाला, सब यज्ञों के फल को देने वाला सुपर्णासंगम या ब्राह्मवसंगम के नाम से प्रसिद्ध हुआ ॥३१॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में कद्रु-सुपर्णा-संगमतीर्थ नामक तीर्थों अध्याय समाप्त ॥१००॥

अध्याय १०१

सरस्वतीसंगम आदि तीर्थों का वर्णन

ब्रह्मा ने कहा—वेदज्ञ व्यक्ति उस पुरुषवा नामक तीर्थ को जानते हैं, जो स्मरण मात्र से पापों को नष्ट कर देता है । उसके दर्शन के फल को तो कहना ही क्या । एक समय पुरुषवा ब्रह्मा के भवन में गया । वहाँ उनके समीप अकारण हास करती हुई देवन्दी सरस्वती को देखा । भूपति पुरुषवा ने उस रूपवती को देखकर उर्वशी से पूछा ॥१-२॥

राजा ने कहा—यह रूपवती साध्वी कौन है ? जो सब स्त्रियों में उत्तम है, अपनी शरीरकान्ति से इस देवसमा को प्रवासित कर रही है—और ब्रह्मा के समीप बैठी हुई है ॥३॥

ग्रहोवाच

उर्वशी प्राह राजानमपि देव्यदी शुभा । सरस्वती ब्रह्मसुता नित्यमेति च याति च ॥
तच्छ्रुत्वा विस्मितो राजा आनयेमा ममान्तिकम् ॥४॥

ब्रह्मोवाच

उर्वशी पुनरप्याह राजान भूरिदक्षिणम् ॥५॥

उर्वश्युवाच

आनीयते महाराज तस्या सर्वं निवेद्य च ॥६॥

ब्रह्मोवाच

ततस्ता प्राहिणोत्तर राजा श्रोत्या सर्वोर्वशीम् । सा गत्वा राजवचन ग्यवेदयदशोर्वशी ॥७॥
सरस्वत्यपि तन्मेने उर्वश्या यन्निवेदितम् । सा तथेति प्रतिताप प्रायाद्यत्र पुररवा ॥८॥
सरस्वत्यास्ततस्तोरे स रेमे बहूला समा । सरस्वानभवत्पुत्री यस्य पुत्रो बृहदथ ॥९॥
तां गच्छन्तीं नृपगृहं नित्यमेव सरस्वतीम् । सरस्वन्त ततो लक्ष्म ज्ञात्वाऽन्येषु तया कृतम् ॥१०॥
तस्यै ददावह शाप भूया इति महानदी । मच्छापभीता वापीना प्रागाद्देवीं च गीतमीम् ॥११॥
कमण्डलुमवा पूता मातर लोकपावनीम् । तापप्रयोपशमनीर्महिकामुष्मिकप्रदाम् ॥१२॥
सा गत्वा गीतमीं देवीं प्राह मच्छापमावित । गङ्गाऽपि मामुवाचेद विनाया कर्तुमर्हसि ॥१३॥

ब्रह्मा बोले—उर्वशी ने राजा से कहा—यह ब्रह्मपुत्री पवित्र देव्यदी सरस्वती है जो यहाँ सबदा आती और जाती है । यह सुनकर राजा विस्मित हो गया और कहा— इसको मेरे समीप ले आओ ॥४॥

ब्रह्मा ने कहा—उर्वशी ने अत्यन्त दक्षिणा (दान) देने वाले राजा से पुत्र कहा ॥५॥

उर्वशी बोली—महाराज ! मैं उससे सारी बातें कहकर अभी ले आ रही हूँ ॥६॥

ब्रह्मा ने कहा—इसके पश्चात् राजा न प्रेमपूर्वक उर्वशी को सरस्वती के समीप भेजा । सरस्वती ने भी उर्वशी ने जो कुछ कहा उसको स्वीकार कर लिया । और अवश्य मैं भिक्षुणी यह प्रतिज्ञा कर जहाँ पुररवा था वहाँ यह पहुँच गई । पुररवा ने बहुत बर्षों तक सरस्वती के तीर पर उमने स्नान विहार किया । उसके गम से एक सरस्वान् नामक पुत्र भी उत्पन्न हुआ जिसका पुत्र बृहदथ नामक प्रतापी राजा हुआ ॥७-९॥ मैं सरस्वती को प्रतिदिन राजा के घर आते देखता था । सरस्वान को भी उसके आकार चिह्न एव दूतरा से कहे गये सवेता से सरस्वती का पुत्र जान लिया । अतः मैं यह श्राव यहस्य जानकर सरस्वती को शाप दे दिया कि तুম महानदी हो जाओ ॥१०॥ मेरे शाप से बरी हुई वागीदवरी गीतमी देवी के समीप गई । उसने कमण्डलु से उत्पन्न पवित्र लोकपावनी जग-माता तीनां तापा को दूर करने वाली एहि एव पारलौकिक मुखा को देनेवाली गीतमी के नाम जाकर आदि स अन्त तक मेरे शाप का विवरण सुनाया ॥११-१२॥ उसको सुनकर गया ने भी मुन्नस कहा कि अवश्य इसको शापमुक्त कर देना चाहिए । सरस्वती को जो वुमन शाप दे दिया, यह ठीक नहीं किया क्याकि स्थिया का यह स्वभाव है कि वे प्रायः

न युषतं यत्सरस्वत्या. शापं त्वं वत्तवानसि। स्त्रीणामेव स्वभावो वै पुंस्कामा योषितो यतः॥१४॥
 स्वभावचपला ब्रह्मण्योषितः सकला अपि। त्वं कथं तु न जानीषे जगत्स्रष्टाऽम्बुजासन॥१५॥
 विडम्बयति कं वा न कामो वाऽपि स्वभावतः। ततो विशापमवदं दृश्याऽपि स्यात्सरस्वती॥१६॥
 तस्माच्छापाद्भवी मर्त्ये दृश्याद्दृश्या सरस्वती। यत्रैषा संगता देवी गङ्गाया शापविह्वला॥१७॥
 तत्र प्रायान्नूपवरो धार्मिकः स पुरुरवाः। तपस्तप्त्वा समाराध्य देवं सिद्धेश्वरं हरम्॥१८॥
 सर्वान्कामानयावाप गङ्गायाश्च प्रसादतः। तत प्रभृति तत्तीर्थं पुरुरवसमुच्यते॥१९॥
 सरस्वतीसंगम च ब्रह्मतीर्थं तदुच्यते। सिद्धेश्वरो यत्र देवः सर्वकामप्रदं तु तत्॥२०॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये सरस्वतीसंगमपुरुरवसब्रह्मतीर्थसिद्धेश्वरवर्णनं

नामैकाधिकशततमोऽध्यायः॥१०१॥

गौतमीमाहात्म्ये द्वात्रिंशोऽध्यायः॥३२॥

अथ द्व्यधिकशततमोऽध्यायः

पञ्चतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

सावित्री चैव गायत्री श्रद्धा मेधा सरस्वती। एतानि पञ्च तीर्थानि पुण्यानि मुनयो विदुः॥१॥

पुरपत्तानिष्पत्ती की कामना करती हैं॥१३-१४॥ ब्रह्मन् । सभी शिष्या स्वभाव से ही बचल होती हैं, पकजासन ।
 तुम जगत् के सृष्टिकर्ता होकर भी इसको क्यों नहीं जानते हो॥१५॥ स्वभावतः कामदेव सहज में ही किसीको अपने
 जाल में नहीं फँसा लेता है ? गौतमी की बालों को झुनकर गँने उसको शाप से मुक्त कर दिया कि सरस्वती दृश्या
 (प्रत्यक्ष दिखाई देने वाली) भी हो॥१६॥ मेरे उस शाप के कारण ही इस मर्त्यलोक में सरस्वती दृश्य और अदृश्य
 दो रूपों की हो गई। जहाँ यह सरस्वती शापविह्वल होकर गया मे मिली, वहाँ वह धार्मिक, श्रेष्ठ राजा पुरुरवा
 गया। वहाँ तपस्या तथा सिद्धेश्वर शरर की आराधना करके उसने गया की कृपा से अपने सब मनोरथों को प्राप्त
 किया। उस समय से वह पुरुरवा तीर्थ कहलाता है, सरस्वतीसंगम और ब्रह्मतीर्थ भी उन्हीं को कहते हैं। जहाँ
 सिद्धेश्वर महादेव विराजमान है, वह पुनीत तीर्थ सम्पूर्ण कामनाओं को देने वाला है॥१७-२०॥

श्रीब्रह्म महापुराण में सरस्वतीसंगम पुरुरवस ब्रह्मतीर्थ सिद्धेश्वर वर्णन नामक एक सौ पहला अध्याय
 समाप्त॥१०१॥

अध्याय १०२

पञ्चतीर्थ का माहात्म्य-वर्णन

ब्रह्मा ने कहा—सावित्री, गायत्री, श्रद्धा, मेधा, और सरस्वती ये पांच तीर्थ अत्यन्त पवित्र हैं, इनको

तत्र स्नात्वा तु पीत्वा तु मुच्यते सर्वकल्मसात् । सावित्री चैव गायत्री श्रद्धा मेधा सरस्वती ॥२॥
 एतां मम सुता ज्येष्ठा धर्मसंस्थानहेतव । सर्वास्तमुत्तमा काचिन्निर्ममे लोकसुन्दरोम् ॥३॥
 ता दृष्ट्वा विकृता बुद्धिर्ममाऽऽसीन्मुनिसत्तम । गृह्यमाणा मया बाला सा मा दृष्ट्वा पलायिता ॥४॥
 मृगोभूता तु सा बाला मृगोऽहमभव तदा । मृगव्याधोऽभवच्छब्धधर्मसरक्षणाय च ॥५॥
 ता मञ्जरीता पञ्च सुता गङ्गाभीयुर्महानदीम् । ततो महेश्वर प्रामाद्वर्मसरक्षणाय स ॥६॥
 धनुर्गृहीत्वा सशरमोशोऽपि मृगरूपिणम् । मामुवाच वधिष्ये त्वा मृगव्याधस्तदा हर ॥७॥
 तत्कर्मणो निवृत्तोऽहं प्रादा कन्या विवस्वते । सावित्र्याद्या पञ्च सुता नदीरूपेण सगता ॥८॥
 ता आगता पुनश्चापि स्वर्गं लोकं समास्तिकम् । यत्र तां सगता देव्या पञ्च तीर्थानि नारद ॥९॥
 सगतानि च पुण्यानि पञ्च नद्यः सरस्वती । तेषु स्नानं तथा दानं यत्किञ्चित्कुरते नर ॥१०॥
 सर्वकामप्रदं तस्माद्वैकर्म्यान्मुक्तिदं स्मृतम् । तत्राभवन्मृगव्याधं तीर्थं सर्वार्थदं नृणाम् ॥
 स्वर्गमोक्षफलं धान्यद्रव्यतीर्थफलं स्मृतम् ॥११॥

इति श्रीमहापुराणे आदिश्राद्धे तीर्थमाहात्म्ये पञ्चतीर्थमाहात्म्यनिरूपणं नाम
 द्व्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१०२॥

गौतमीमाहात्म्ये त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ॥३३॥

मुनिगण जानते हैं । इन तीर्थों में स्नान और आचमन करने से मनुष्य सब प्रकार के पापों से मुक्त हो जाता है ।
 सावित्री गायत्री श्रद्धा मेधा और सरस्वती ये मरी ज्येष्ठ कन्याएँ हैं जिनके द्वारा धर्म संस्थापन का कार्य हुआ है ।
 इन सबों में से एक को मैंने निम्नवत् वैकल्पिक रूपवती बनाया । मुनिः १८ । उस अद्वितीय मुन्दी को दरदर
 मरी बुद्धि भी विकृत हो गई । कामका मैंने जब उसको पकड़ना चाहा तब वह मुझको देखकर भाग रही हुई ।
 जब वह मुझी बन कर भागने लगी तब मैं भी मृग बन गया । यह दरदर का धर्म की रक्षा के लिये मनुज मय
 व्याध (शिकारी) का रूप धारण कर लिया । वे पाँच कन्याएँ मुझसे डरकर महानदी गंगा में मिल गई । उनके
 बाद ही धर्म रक्षा के लिये उद्यत शत्रु भी पीछ पीछ आये । तब मृगवध (शत्रु) ने हाथ में बाण मलित
 धनुष और मृगरूपधारी मुझसे कहा मैं अबच तुम्हारा वध करूँगा ॥१०॥ किसी प्रकार उद्यम में पिष्ट हृत्वा
 मैंने अपनी कन्याओं को विवस्वान् के हाथों सौंप दिया । इस सावित्री आदि पाँच कन्याएँ नदी रूपों में मिल
 गई थीं परन्तु पुनः स्वर्ग लोक में मुझसे मिली । नारद ! जहाँ जहाँ वे पाँच मिलीं वे पाँच स्थान पाँच
 तीर्थ बन गये । जहाँ वे सरस्वती आदि पाँच नदियाँ मिलकर पवित्र तीर्थ बनती हैं उन तीर्थों में स्नान दान
 अथवा जो कुछ गुण कार्य किये जाते हैं सब अक्षय्य कामनाओं का दान वाञ्छित हैं तथा निष्काम भाव में किये जाने पर
 मुक्तिदायक होत हैं वही मनुष्यों को सब दुःखाओं का पुण करने वाला मृगव्याधनीय भी है । दूसरा जो
 ब्रह्मतीर्थ है वह भी स्वर्ग अथवा मोक्षार्थ को देने वाला बना गया है ॥८१॥

श्री ब्रह्मपुराण में पञ्चतीर्थ-माहात्म्य वर्णन नामक एव ही दूसरा अध्याय समाप्त ॥१०२॥

अथ त्र्यधिकशततमोऽध्यायः

शम्पादितीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

शमीतीर्थं निति ख्यात सर्वपापोपशान्तिदम् । तस्याऽऽख्यानं प्रवक्ष्यामि शृणु यत्नेन नारद ॥१॥
 आसीत्प्रियव्रतो नाम क्षत्रियो जयता वर । गौतम्या दक्षिणे तीरे दीक्षा चक्रे पुरोधसा ॥२॥
 हयमथ उपरान्त ऋत्विग्भिर्ऋषिभिर्वृते । तस्य राज्ञो महाबाहोर्वसिष्ठस्तु पुरोहित ॥३॥
 तद्यज्ञवाटमगमद्दानवोऽयं हिरण्यक । तं दानवमभिप्रेक्ष्य देवास्त्विन्द्रपुरोगमा ॥४॥
 भीता केचिद्द्विज जग्मर्हस्यवाद्दशमिमाविशत । अद्वत्य विष्णुरगमद्भानुरकं वटं शिव ॥५॥
 सोम पलाशमगमदगङ्गाभ्यो हव्यवाहन । अश्विनौ तु हय गृह्य वायसोऽभूद्यम स्वयम् ॥६॥
 एतस्मिन्नतरे तत्र वसिष्ठो भगवानुषि । यष्टिमादाय दैत्या न्यवारयवयाऽज्ञया ॥७॥
 ततः प्रवृत्त पुनरेव यज्ञो, दैत्यो गतः स्वेन बलेन युक्तः ।
 इमानि तीर्थानि ततः शुभानि, दशाश्वमेधस्य फलानि दद्युः ॥८॥
 प्रयमः तु शमीतीर्थं द्वितीयं शैल्यव विदुः । आकं शैव च सोम्य च वासिष्ठ सर्वकामदम् ॥९॥

अध्याय १०३

शमी आदि तीर्थों का वर्णन

ब्रह्मा न कहता—शमीतीर्थ सम्पूर्ण पापा से मुक्त करने वाला है उसकी कथा मैं कह रहा हूँ नारद । तुम धाव से सुनो । विजयप्रसी राजाओं में श्रेष्ठ शिवव्रत नामक एक क्षत्रिय राजा था । उसने गौतमी के दक्षिण तीरे पर पुरोहित द्वारा यज्ञ की वीधा ग्रहण की । उस महाबलवान् राजा के अश्वमेध यज्ञ प्रारम्भ हो जाने पर सब ऋषि वहाँ ऋषि वक्र वनाये गये । वसिष्ठ ने पुरोहित का आसन ग्रहण किया । यज्ञ प्रारम्भ हो जाने के बाद हिरण्यक नाम का एक दानव यज्ञ मण्डप की ओर आया । उस दानव को देखकर इंद्र आदि सभी देवता भयभीत हो गये । कुछ तो स्वर्ग भाग गये । स्वयं अग्निदेव शमी वन में छिप गये । विष्णु पीपल के वन में सूखे अक (मदार) में शिव वट में और सोम पलाश में घुस गये । वेचारे हव्यवाहन गया जल में कूदकर छिपे अश्विनौ कुमारों ने यज्ञस्थल में छिपकर प्राण रक्षा की यम ने कौए का रूप धारण किया । इसी बीच मेरी आज्ञा से भगवान् ऋषि वसिष्ठ ने हाथ में डण्डा लेकर हुंकार उठात उन्मत्त पुत्रों को यज्ञ भूमि में आने से रोक दिया ॥१७॥ तदनन्तर जब वह दत्त अपने अनुचर सनिका के साथ लौट गया तब पुनः यज्ञ प्रारम्भ हुआ । तब से ये आगे कहे हुए तीर्थ शुभ और दश अश्वमेध के फल को देने वाले हुए ॥८॥ उनमें से पहला शमी तीर्थ दूसरा वैष्णव तीसरा आक (सूय सम्बन्धी) तीर्थ माना गया है । इसी प्रकार बड़ा सम्पूर्ण अग्निव्रत वस्तुओं के देने वाले शैव सोम्य और वासिष्ठ तीर्थ भी हुये ॥९॥

देवाश्च ऋषयः सर्वे निवृत्ते मलविस्तरे । तुष्टाः प्रोचुर्बलिष्ठं तं यजमानं प्रियव्रतम् ॥१०॥
ताश्च वृक्षास्तां च गङ्गां मुदा युवता पुनः पुनः । हयमेघस्य निष्पत्त्यं एते याता इतस्ततः ॥११॥
हयमेघफलं वद्युस्तीर्थानीत्यवन्सुराः । तस्मात्स्नानेन वानेन तेषु तीर्थेषु नारद ॥
हयमेघफलं पुण्यं प्राप्नोति न मूपा वच ॥१२॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे स्वयम्भुवृषिसवादे तीर्थमाहात्म्ये शम्पादितीर्थवर्णनं नाम
अधिकशततमोऽध्यायः ॥१०३॥

गीतमोमाहात्म्ये चतुस्त्रिंशोऽध्यायः ॥१४॥

अथ चतुरधिकशततमोऽध्यायः विश्वामित्रादिद्वाविंशतिसहस्रतीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

विश्वामित्र हरिश्चन्द्र शुन शेष च रोहिनम् । वारण ब्राह्ममाण्येयमद्रमन्दवमेश्वरम् ॥१॥
मग्नं च वृष्णव चैव याम्यमाश्रितमौशनम् । एतयोः पुण्यतीर्थानां नामधेयं भृगुण्व मे ॥२॥
हरिश्चन्द्र इति स्वासौविश्वामित्रप्रभवो मृगः । तस्य गृहे मुनोः प्राप्नोति नारद पर्यन्तस्थिता ॥
हृत्वाऽऽतिथ्यं तयोः सम्पन्नहरिश्चन्द्रोऽब्रवीदुद्यो ॥३॥

अब उस महान् यज्ञ से सभी निवृत्त हुये तब देवा और ऋषिया ने प्रसन्न और आनन्दित होकर पुरोहित बलिष्ठ और उस यजमान प्रियव्रत से कहा कि यह गंगा और ये सभी वृक्ष अन्वेषण यज्ञ की पूति के लिये ही यज्ञ तत्र विभिन्न रूपां म उत्पन्न हुये हैं ॥१० ११॥ देवा ने पुनः कहा कि वे तीर्थ अश्वमेध यज्ञ के समान फल देने वाले हैं । इसलिये हे नारद ! उन तीर्थों में स्नान करने और दान देने से मनुष्य अन्वेषण का पावन वर प्राप्त करता है इसको अत्यन्त मङ्गल समझना ॥१२॥

श्री ब्रह्ममहापुराण म गम्पादितीर्थ वर्णन नामक एक श्लो तीसरा अध्याय समाप्त ॥१०३॥

अध्याय १०४

विश्वामित्र आदि वाईस हजार तीर्थों का वर्णन

ब्रह्मा ने कहा—इन पवित्र विश्वामित्र हरिश्चन्द्र शुन शेष रोहित वारण ब्राह्म आनेय इन्द्रनीप ईश्वरलीय मैन वृष्णव याम्य आश्विन और गृह आदि इन तीर्थों के नाम क्या पर इनको भी मुझे सुनो । इत्यादि वर म उत्पन्न हरिश्चन्द्र नामक एक राजा था । एक समय उसने घर नारद और पवन नामक दो मुनि आपे । उन दोनों की भली भाँति अनिधि सेवा कर हरिश्चन्द्र ने ऋषियों से कहा ॥१ ३॥

हरिश्चन्द्र उवाच

पुत्रार्थं विलश्यते लोकं किं पुत्रेण भविष्यति । ज्ञानी वाऽप्यथवाऽज्ञानी उत्तमो मध्यमोऽथवा ॥
एतं मे सशयं नित्यं ब्रूतामृषिवरावृभो ॥४॥

ब्रह्मोवाच

तावच्चतुर्हरिश्चन्द्र पर्वतो नारदस्तथा ॥५॥
नारदपर्वतावूचतु

एकधा दशधा राजञ्जसत्तथा च सहस्रधा । उत्तरं विद्यते सम्यक्तयाऽप्येतदुदीर्यते ॥६॥
नापुत्रस्य परो लोको विद्यतं नृपसत्तम । जाते पुत्रे पिता स्नानं करोति जनाधिप ॥७॥
दशानामश्वमथानामभिपेक्षफलं लभेत । आत्मप्रतिष्ठां पुत्रात्स्याज्जायते चामरोत्तम ॥८॥
अमृतनामरा देवा पुत्रेण ब्राह्मणादयः । विश्रुणाम्मोक्षयेत्पुत्रं पितरं च पितामहान् ॥९॥
किंतु मूलं किमु जलं किंतु इमंश्रणिं कितपः । विना पुत्रेण राजेन्द्र स्वर्गो भवितुं सुतात्समृता ॥१०॥
पुत्र एव परो लोको धर्मं कामोऽयं एव च । पुत्रो भवितुं परं ज्योतिस्तारकं सर्वदेहिनाम् ॥११॥
विना पुत्रेण राजेन्द्र स्वर्गमोक्षौ सुदुर्लभौ । पुत्र एव परो लोको धर्मकामार्थसिद्धये ॥१२॥
विना पुत्रेण यद्वत्तं विना पुत्रेण यद्वत्तम । विना पुत्रेण यज्जन्म व्यर्थं तदवभाति मे ॥१३॥
तस्मात्पुत्रसमं किञ्चित्काम्यं नास्ति जगत्त्रये । तच्छ्रुत्वा विस्मयवास्तावुवाच नृप पुनः ॥१४॥

हरिश्चन्द्र ने कहा—सत्तार के लोग पुत्र के लिये बहुत चिन्तित रहते और कष्ट उठाते हैं चाहे वे ज्ञानी हो अथवा अज्ञानी उत्तम मनुष्य हो अथवा मध्यम सबकी यही गति है । परन्तु पुत्र से क्या होता है । यही सबका मुझ सदेह बना रहता है आप दोनों ऋषिवर मुझ समझा कर कहें ॥४॥

ब्रह्मा ने कहा—वे दोनों नारद तथा पर्वत हरिश्चन्द्र से बोले ॥५॥

नारद और पर्वत ने कहा—राजन ! इस प्रश्न के एक दश सौ और हजार प्रकार के शक्तियुक्त उत्तर हैं । तथापि यहाँ सक्षम में कहा जा रहा है । न पृष्ठ १ अत्र पुत्र के लिये स्वर्गलोक में कोई स्थान नहीं । जनाधिप ! पुत्र हो जाने पर जो पिता स्नान करता है वह दश अश्वमेध के अभिषेक का फल प्राप्त करता है । पुत्र के द्वारा ही आत्म प्रतिष्ठा प्राप्त होती है और उत्तम दण्ड की प्राप्ति भी । अमृत के द्वारा देव अमर हुए हैं परन्तु ब्राह्मण आदि मानव पुत्र के द्वारा । पुत्र अपने पिता और पितरों को तीनों (देव पित ऋषि) ऋणा से छुड़ाता है । पुत्र के बिना मूल (येदाध्ययन) जल (स्नान-तपण) पक्षकेण (वाडी आदि रखने) और तपस्या से क्या लाभ । राजेन्द्र ! स्वर्ग अथवा भवितुं की प्राप्ति पुत्र द्वारा ही होती है ऐसा कहा गया है ॥६-१०॥ पुत्र ही उत्तम लोक धर्म काम और अर्थ भी है । पुत्र ही भवितुं पर ज्योति और सब मनुष्यों का उद्धारकर्ता है । राजेन्द्र ! पुत्र के बिना स्वर्ग और मोक्ष अत्यन्त दुर्लभ है । इस लोक में धर्म काम और अर्थ सिद्धि के लिये पुत्र ही एकमात्र साधन है । मेरा मत है कि पुत्र के बिना दिया हुआ दान हवन व्रत (यज्ञ) यहाँ तक कि पुत्र के बिना मानव जीवन भी व्यर्थ है । इसलिये तीनों लोक में पुत्र के समान कोई काम्य कर्म नहीं । इस वाक्य को सुनकर राजा को अत्यन्त आनन्द हुआ और पुनः कहा—॥११-१४॥

हरिश्चन्द्र उवाच

कथं मे स्यात्सुतो भूता यत्र श्वापि यथातथम् । येन केनाप्युपायेन कृत्वा किञ्चित् पौरुषम् ॥
मन्त्रेण यागदानाभ्यामुत्पाद्योऽसौ सुतो मया ॥१५॥

ब्रह्मोवाच

तावच्चतुर्नृपश्रेष्ठ हरिश्चन्द्र सुतार्थिनम् । ध्यात्वा क्षणं तथा सम्यगौतमीं याहि मानद ॥१६॥
तत्रापापतिरुत्कृष्टं ददाति मनसोऽस्मितम् । वरुण सर्वदाता वै मुनिभिः परिकीर्तित ॥१७॥
स तु प्रीतः शनैः काले तव पुत्रं प्रदास्यति । एतच्छ्रुत्वा नृपश्रेष्ठो मुनिवाक्यं तथाऽकरोत् ॥१८॥
तोषयामास वरुणं गौतमीतीरमाश्रितः । ततश्च तुर्यो वरुणो हरिश्चन्द्रमुवाच ह ॥१९॥

वरुण उवाच

पुत्रं दास्यामि ते राजल्लोकत्रयविभूषणम् । यदि यक्षसि तेनैव तव पुत्रो भवेद्भ्रुवम् ॥२०॥

ब्रह्मोवाच

हरिश्चन्द्रोऽपि वरुण यक्ष्ये तेनेत्यवोचत । ततो गत्वा हरिश्चन्द्रश्चर कृत्वा तु वारुणम् ॥२१॥
भार्यायै नृपतिं प्रदात्ततो जातः सुतो नृपात् । जाते पुत्रे अपामीश प्रोवाच वदता धर ॥२२॥

वरुण उवाच

अद्यैव पुत्रो घट्य्य स्मरसे वचनं पुरा

॥२३॥

हरिश्चन्द्र ने कहा—मुझे पुत्र कैसे उत्पन्न होगा इसको आप बतावें । मैं जिस किसी उपाय से—चाहे कहीं जाने से अथवा कोई धीरेप करने से अथवा दान से—वह पुत्र अवश्य उत्पन्न करना चाहता हूँ ॥१५॥

ब्रह्मा ने कहा—क्षण भर ध्यानावस्थित होकर (सोच विचार कर) पुत्राकांक्षी हरिश्चन्द्र ने उन ऋषियों ने कहा—मानद ! तुम गौतमी के समीप जाओ । वहाँ जल के अधिपति वरुण उत्तम से उत्तम मनोवर्धित पत्र को प्रदान करते हैं क्योंकि मुनियों ने वरुण को सर्व दाता कहा है । वह शनैः शनैः तुम्हारी आराधना से प्रसन्न होकर अथवा यथासमय तुम्हें पुत्र प्रदान करेगा । मुनियों की उपयुक्त बात सुनकर श्रेष्ठ नृपति ने तदनुकूल ही काय किया । गौतमीतीर पर आसनस्थ होकर उसने वरुण को प्रसन्न किया । तदनन्तर वरुण प्रसन्न होकर हरिश्चन्द्र से बोले—॥१६ १९॥

वरुण ने कहा—राजन् ! तीन लोकों को अपने गुणों से विभूषित करने वाला पुत्र दूंगा यदि तुम उसी पुत्र द्वारा मेरा यज्ञ करने की प्रतिज्ञा करो । ऐसी प्रतिज्ञा करने पर तुम्हें पुत्र उत्पन्न होगा यह ध्रुव है ॥२०॥

ब्रह्मा ने कहा—पुत्रकामि हरिश्चन्द्र ने उत्पन्न पुत्र से यज्ञ करुणा ऐसी प्रतिज्ञा वरुण से की । धर प्राप्ति के बाद नृपति हरिश्चन्द्र ने धर जाकर वारुण वरु (हविष्य) बनाया और भार्या को सिलाया । पत्न्यवरूप राजा को पुत्र उत्पन्न हुआ । पुत्र उत्पन्न होने पर जल के पति वाग्मी वरुण ने कहा—॥२१ २२॥

वरुण ने कहा—आज ही पुत्र द्वारा यज्ञ कीजिये, क्या पहले की बातों का स्मरण है ? ॥२३॥

ब्रह्मोवाच

हरिश्चन्द्रोऽपि वरुणं प्रोवाचेद क्रमागतम्

॥२४॥

हरिश्चन्द्र उवाच

निर्दंशो मेध्यतां याति पशुर्यक्ष्ये ततो ह्यहम्

॥२५॥

तच्छ्रुत्वा वचनं राज्ञो वरुणोऽगात्स्वमालयम् । निर्दंशे पुनरभ्येत्य यजस्वेत्याह तं नृपम् ॥२६॥

राजाऽपि वरुणं प्राह निर्दन्तो निष्फलं पशुः । पशोर्दन्तेषु जातेषु एहि गच्छाधुनाऽप्पते ॥२७॥

तच्छ्रुत्वा राजवचनं पुनः प्रायादपापतिः । जातेषु चैव दन्तेषु सप्तवर्षेषु नारद ॥२८॥

पुनरप्याह राजानं यजस्वेति ततोऽब्रवीत् । राजाऽपि वरुणं प्राह पत्स्यन्तीमे अपांपते ॥२९॥

सपत्स्यन्ति तथा चान्ये ततो यक्ष्ये द्रमाधुना । पुनः प्रायात्स वरुणः पुनर्दन्तेषु नारद ॥

यजस्वेति नृपं प्राह राजा प्राह स्वपांपतिम् ॥३०॥

राजोवाच

यदा तु क्षत्रियो यज्ञे पशुर्भवति वारिषः । धनुर्वेदं यदा येति तदा स्यात्पशुदत्तम् ॥३१॥

ब्रह्मोवाच

तच्छ्रुत्वा राजवचनं वरुणोऽगात्स्वमालयम् । यदाऽश्वेषु च शस्त्रेषु समयोऽभूत्स रोहितः ॥३२॥

ब्रह्मा ने कहा—हरिश्चन्द्र ने भी इस प्रकार क्रमशः वरुण से कहा ॥२४॥

हरिश्चन्द्र ने कहा—दाँत निकल जाने पर ही पशु मेध्य (यज्ञ-योग्य) माना जाता है, इसलिये दाँत निकलने पर ही यज्ञ करूँगा ॥२५॥

ब्रह्मा बोले—राजा की बातें सुनकर वरुण अपने स्थान पर चले आये । दाँत निकल आने पर पुनः आकर वरुण ने राजा से कहा 'यज्ञ करो' । राजा ने वरुण से कहा—निदन्त (बहुत-से दाँतों के बिना) पशु यज्ञ के योग्य नहीं होते । यज्ञपशु के बहुत दाँत निकल जाने पर पुनः आइये । वरुण ! इस समय आप चले जाइये । राजा की बातें सुनकर वरुण लौट गये । नारद ! सात वर्षों में बहुत दाँत निकल आने पर पुनः राजा से वरुण ने कहा कि 'अब यज्ञ करो' । राजा ने वरुण से कहा कि जब ये दाँत गिर जायेंगे और दूसरे दाँत निकल आयेंगे तबुपरान्त यज्ञ करूँगा, इस समय आप जाइये । नारद ! पुनः दाँतों की निर्दिष्ट अवधि बीत जाने पर वरुण आये और राजा से यज्ञ करने के लिये कहा । यह सुनकर राजा ने वरुण से कहा ॥२६-३०॥

राजा ने कहा—जलरक्षक वरुण ! जब अग्नि यज्ञ में पशु बनाया जाता है तब धनुर्वेद जान लेने पर ही वह उत्तम पशु होता है ॥३१॥

ब्रह्मा ने कहा—राजा की बातें सुनकर वरुण पुनः अपने स्थान को वापस चले गये । जब वह राजपुत्र रोहित अस्त्र और शस्त्र विद्या में निपुण हो गया, शत्रुनाशक, एवं सब वेदों और शास्त्रों का भी विद्वान् हो गया और जब

सर्ववेदेषु शास्त्रेषु वेत्ताऽभूत् त्वरिदमः। युवराज्यमनुप्राप्ते रोहिते षोडशाब्दिके ॥३३॥
प्रोतिमानगमत्तत्र यत्र राजा सरोहितः। आगत्य वरुणः ग्राहं यजस्वाद्य सुतं स्वकम् ॥३४॥
ओमित्युक्त्वा नृपवर ऋत्विजः ग्राहं भूपतिः। रोहितं च सुतं ज्येष्ठं भृश्वतो वरुणस्य च ॥३५॥

हरिश्चन्द्र उवाच

एहि पुत्र महावीर मध्ये त्वां वरुणाय हि

॥३६॥

ब्रह्मोवाच

किमेतदित्ययोवाच रोहितः पितरं प्रति। पिताऽपि यद्यथावृत्तमाचक्षे सविस्तरम् ॥
रोहितः पितरं ग्राहं भृश्वतो वरुणस्य च ॥३७॥

रोहित उवाच

अहं पूर्वं महारज ऋत्विग्भिः सपुरोहितः। विरुणवे लोकनायाय मध्येऽहं त्वरितं शुचिः ॥
पशुना वरुणेनाय तवनृजातुमर्हसि ॥३८॥

ब्रह्मोवाच

रोहितस्य तु तद्वाक्यं श्रुत्वा वारीदवरस्तदा। कोपेन महताऽऽविष्टो जलोदरमयाकरोत् ॥३९॥
हरिश्चन्द्रस्य नृपते रोहितः स घन दयो। गृहीत्वा स धनुर्दिष्य रयाहडो गतध्वजः ॥४०॥
यत्र चाऽऽराध्य वरुण हरिश्चन्द्रो जनेदवरः। गङ्गायां प्राप्तवानुत्र तत्राणासोऽपि रोहितः ॥४१॥
व्यतीतान्यय वर्षाणि पञ्चपण्डे प्रवर्तन्ति। तत्र स्थित्वा नृपसुतः शुश्राव नृपते रजम् ॥४२॥
मया पुत्रेण जातेन पितुर्वं बलेशकारिणा। किं फलं किं कृत्य स्यादित्येव पर्यचिन्तयत् ॥४३॥

उसने सोलह वर्ष का होकर युवराज पद का अधिकार भी प्राप्त कर लिया तब वरुण प्रसन्न बित्त हो, जहाँ राजा और रोहित ये वहाँ गये और कहा कि आज अपने पुत्र द्वारा वज्र करो। वह नृपज्येष्ठ ऋत्विज् राजा वरुण के सामने ही अपने ज्येष्ठ पुत्र रोहित से बोला ॥३२-३५॥

हरिश्चन्द्र ने कहा—पुत्र ! अजो, मैं वरुण की प्रसन्नता के लिये तुम से यज्ञ कहूँगा ॥३६॥

ब्रह्मा ने कहा—यह सुनकर रोहित ने अपने पिता से कहा 'यह क्या'। पिता ने भी पूर्वं की घटना का विस्तार-पूर्वक वर्णन कर दिया। पिता से सारा रहस्य जानकर रोहित ने वरुण के सामने ही कहा ॥३७॥

रोहित ने कहा—महाराज ! पहले मैं ही ऋत्विजो और पुरोहित के सहित वरुण को यज्ञ-यशु बनाकर लोक-स्वामी विष्णु का यज्ञ शीघ्र ही करना चाहता हूँ आप शीघ्र आज्ञा दीजिये ॥३८॥

ब्रह्मा ने कहा—रोहित की बातें सुनकर वरुण अत्यन्त शोषान्ध होकर राजा हरिश्चन्द्र को जलोदर रोग का रोगी बना दिया। वह रोहित दिव्य वनस्पति लेकर रथ पर सवार होकर शान्त भाव से वन को चला गया। वह रोहित भी उस स्थान पर—जहाँ जलनायक हरिश्चन्द्र ने वरुण के शरीर पर वरुण की आराधना कर पुत्र को प्राप्त किया था—गया। वहाँ रहकर उसने पाँच वर्ष बिता दिये। छठे वर्ष के प्रारम्भ में ही सुना कि राजा को जलोदर रोग हो गया है। वह सोचने लगा कि 'पिता को मरने वाले थे रे समान पुत्र के जन्म लेने से क्या लाभ हुआ ? अब इस

तस्यास्तीरे ऋपोन्युष्णानपदयद्रूपते सुत । गङ्गातीरे वर्तमानमपश्यदृषित्तमम् ॥४४॥
 अजीगतमिति ख्यातमृषेस्तु ययस सुतम् । त्रिभिः पुत्रैरनुवृत भार्यया क्षीणवृत्तिकम् ॥
 त दृष्ट्वा नृपते पुत्रो नमस्येद पचोऽब्रवीत् ॥४५॥

रोहित उवाच

क्षीणवृत्ति कृश वस्मादुदुर्मान इव लक्ष्यसे ॥४६॥

ब्रह्मोवाच

अजीगताऽपि चोवाच रोहित नृपते सुतम् ॥४७॥

अजीगतं उवाच

घर्तन नास्ति देहस्य भोक्तारो बह्वयदव मे । विनाऽग्नेन मरिष्यामो ब्रूहि किं करयामहे ॥४८॥

ब्रह्मोवाच

तच्छ्रुत्वा पुनरप्याह नृपपुत्र श्रुतिं तदा ॥४९॥

रोहित उवाच

तव किं वर्तते वित्ते तदब्रूहि वदतावर ॥५०॥

अजीगतं उवाच

हिरण्य रजत गावो धान्य वस्त्रादिक न मे । विघ्नते नृपशार्दूल घर्तन नास्ति मे तत ॥५१॥
 सुता मे सन्ति भार्या च अहं वै पञ्चमस्तथा । नैतया कतमस्यापि भेत्ताऽग्नेन नृपोत्तम ॥५२॥

समय मेरा क्या वक्तव्य है । उसी समय नृपपुत्र ने गंगा के तट पर पवित्र ऋषिया को देखा । उसी तट पर वर्तमान वय नामक ऋषि के पुत्र अजीगत नामक ऋषिविषण्व को देखा जो अपनी भार्या और तीन पुत्रों के साथ ये परन्तु जीविका के साधन से हीन थे । उसको देखकर राजपुत्र ने नमस्कार करके पूछा ॥३९, ४५॥

रोहित ने कहा—आप इतने दुबल और जीविकाहीन क्यों हैं किस कारण इतने व्यग्र से जान पड़ते हैं ? ॥४६॥

ब्रह्मा न कहा—यह सुनकर अजीगत ने नृप पुत्र रोहित से कहा—॥४७॥

अजीगत न कहा—शरीर रक्षा के साधन नहीं है और मेरे परिवार में भोजन करने वाले बहुत से हैं अन्न के बिना हम लोग मर जायेंगे कहीं इस अवस्था में हम लोग क्या कर ॥४८॥

ब्रह्मा ने कहा—तब ऋषि की बातों को सुनकर नृपपुत्र ने पुनः श्रुति से कहा—॥४९॥

रोहित ने कहा—हे श्रष्ट वक्ता ! तुम्हारे क्या विचार है वह बताओ ॥५०॥

अजीगत न कहा—नृपपुत्र ! मेरे पास सोना चाँदी भी धान्य और वस्त्रादि कुछ नहीं हैं इसके अतिरिक्त मेरे पास जीविका का भी कोई साधन नहीं है । हाँ मेरे पास पुत्र भार्या और पाँचवाँ मैं हूँ । नृपोत्तम ! हम लोगों में से किसी को अन्न देकर खरीदने वाला भी कोई नहीं है ॥५१, ५२॥

रोहित उवाच

किं श्रीणासि महाबुद्धेऽजीगर्तं सत्यमेव मे । वद नान्यच्च वक्तव्यं विप्रा वं सत्यवादिन ॥५३॥

अजीगर्त उवाच

प्रयाणामपि पुत्राणामेकं वा मा तथैव च । भार्यां वाऽपि गृहाणेमां क्रीत्वा जीवामहे वयम् ॥५४॥

रोहित उवाच

किं भार्याया महाबुद्धे किं त्वया बृद्धरूपिणा । युवान देहि पुत्रं मे पुत्राणां यं त्वमिच्छसि ॥५५॥

अजीगर्त उवाच

ज्येष्ठपुत्रं धनं पुच्छ नाहं श्रीणामि रोहित । माता कनीयसं चापि न श्रीणाति ततोऽनयो ' ॥

मध्यमं तु शूनं शेषं श्रीणामि वद तद्वनम् ॥५६॥

रोहित उवाच

वर्णाय पद्मं बन्धुं पुरयो गुणवत्तर । यदि श्रीणासि मूल्यं त्वं वद सत्यं महामुने ॥५७॥

ब्रह्मोवाच

तथैत्युक्त्वा स्वजीगतं पुत्रमूल्यमकल्पयत् । गदा सहस्रं धायानां निष्काणां चापि वाससाम् ॥

राजपुत्रं वरं दधि दास्यामि स्वसुतं तव ॥५८॥

रोहित ने कहा—महाबुद्धिमान् अजीगत ! आप किसको कितने में बचना चाहते हैं सत्य बहिय । दूसरी बात मत कहियेगा ब्राह्मण सबका सत्य बक्ता होते हैं ॥५३॥

अजीगर्त ने कहा—इन तीनों पुत्रों में से किसी एक को अथवा मुझको या इस भार्या को ही खरीद कर ले जाओ जिससे कि हम लोगों की जीवन रक्षा हो ॥५४॥

रोहित ने कहा—इस भार्या से क्या होगा बृद्ध रूपी तुम्हारी भी आवश्यकता नहीं । हाँ इन पाँचों में से किसी युवक पुत्र को जिसको तुम चाहो दे दो ॥५५॥

अजीगर्त ने कहा—रोहित ! ज्येष्ठ पुत्र शून पुच्छ को मैं नहीं बेच सकता । माता अपने कनिष्ठ पुत्र को भी बेचना नहीं चाहती है इसलिये इन दोनों से अतिरिक्त मझले पुत्र शून शेष को बेचूंगा इसका मूल्य कहो ॥५६॥

रोहित ने कहा—एक अधिक गुणवान् पुरय वी वर्ण-यज्ञ म यज्ञ-गन्धु नवान के लिये आवश्यकता है महामुने ! यदि तुम बचना चाहते हो तो उचित मूल्य कहो ॥५७॥

ब्रह्मा ने कहा—ऐसा ही हो यह कहकर अजीगर्त ने सहस्र गौ सहस्र निष्क (अर्णों) धाय और सहस्र वस्त्र अपने पुत्र का मूल्य बताया और कहा राजपुत्र ! इतना दे दो मैं तुमको अपना पुत्र दे दूंगा ॥५८॥

ब्रह्मोवाच

तथेत्युक्त्वा रोहितोऽपि प्रादात्सवसनं धनम् । दत्त्वा जगाम पितरमृषिपुत्रेण रोहित ॥
पित्रे नियेदयामास क्रयक्रीतमूये सुतम् ॥५९॥

रोहित उवाच

वरुणाय यजस्व त्वं पशुना त्वमसंभव ॥६०॥

ब्रह्मोवाच

तथोवाच हरिश्चन्द्र पुत्रवाक्पादनन्तरम् ॥६१॥

हरिश्चन्द्र उवाच

ब्राह्मणा क्षत्रिया वैश्या राजा पाल्या इति श्रुति । विदोपतस्तु वर्णानां गुरवो हि द्विजोत्तमा ॥६२॥
विष्णोरपि हि ये पूज्या मादृशा कुत एव हि । अवशयाऽपि येषां स्वात्प्राणा स्वकुलक्षय ॥६३॥
साग्नशून्कृत्वा कृपणं कथं रक्षितुमुत्तरे । अहं च ब्राह्मणं धुर्यां पशुं नैतद्धि युज्यते ॥६४॥
वरं हि जानु मरणं न कथञ्चिद्द्विजं पशुम् । वरोमि तस्मात्पुनः त्वं ब्राह्मणेन सुखं व्रज ॥६५॥

ब्रह्मोवाच

एतस्मिन्नन्तरे तत्र बागुवाचाशरीरिणी ॥६६॥

ब्रह्मा ने कहा—रोहित ने भी उसको स्वीकार कर लिया और ऋषि को मुह मांगा वस्त्र और घन दे दिया । घन देकर ऋषिपुत्र को साथ ले वह अपने पिता के पास गया । पिता से मूल्य देकर स्त्री दे हुये ऋषि पुत्र के विषय में सारी बातें बताइ ॥५९॥

रोहित ने कहा—आप वरुण का इस पशु से यज्ञ कीजिये और भीरोग हो जाइये ॥६०॥

ब्रह्मा ने कहा—पुत्र की बातों को सुनकर हरिश्चन्द्र ने कहा ॥६१॥

हरिश्चन्द्र ने कहा—ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य और शूद्र का पालन राजा का कर्तव्य है एसी श्रुतियों की आज्ञा है । उत्तम ब्राह्मण की रक्षा तो विशेष रूप से होनी चाहिये इसलिये कि वे सब वर्णों के गुरु हैं । जो ब्राह्मण विष्णु के भी पूज्य है तो मेरे समान व्यक्तियों के लिये तो कुछ कहना ही नहीं । जिनके अपमान से भी राजाओं का कुल-क्षय हो जाता है उन देवपूज्यों को पशु बनाकर अपने क्षुद्र जीवन की रक्षा करने का साहस मुझसे नहीं होगा । मैं ब्राह्मण को यज्ञ पशु बनाऊ यह मेरे लिए उपयुक्त नहीं है । बल्कि मृत्पु उत्तम है परन्तु द्विज को किसी प्रकार पशु नहीं बनाऊंगा । इसलिये पुनः तुम मुखपूर्वक इस ब्राह्मण पुत्र के साथ जाओ मुझे रोगी ही रहने दो ॥६२-६५॥

ब्रह्मा ने कहा—इसी समय वहां आकाशवाणी हुई ॥६६॥

आकाशवागुवाच

गौतमीं गच्छ राजेन्द्र ऋत्विग्भि सपुरोहित । पशूना विप्रपुत्रेण रोहितेन सुतेन च ॥६७॥
त्वया काय ऋतुर्ध्रुव शुन शोषय विना । ऋतु पूर्णो भवेत्तत्र तस्माद्याहि महामते ॥६८॥

ब्रह्मोवाच

तच्छ्रुत्वा वचन शीघ्र गङ्गामगानूषोत्तम । विश्वामित्रेण ऋषिणा वसिष्ठेन पुरोधसा ॥६९॥
वामदेवेन ऋषिणा तथाऽप्यर्मुनिभि सह । प्राप्य गङ्गा गौतमीं ता नरमेधाय दीक्षित ॥७०॥
वेदिमण्डपकुण्डादि यूपपशवादि चाकरोत् । कृत्वा सर्व यथायाय तस्मिन्त्यजे प्रवर्तिते ॥७१॥
शुन-शोष पशु यूपे निबध्नाय समन्वयकम् । कारिभि प्रोक्षित दृष्ट्वा विश्वामित्रोऽब्रवीद्विदम् ॥७२॥

विश्वामित्र उवाच

देवानूपीहरिदचन्द्र रोहित च विशेषत । अनुजानन्त्वियम सर्वे शुन-शोष द्विजोत्तमम् ॥७३॥
येभ्यस्त्वय हविर्देवो देवेभ्योऽय पृथक्पृथक् । अनुजानन्तु ते सर्वे शुन शोष विशेषत ॥७४॥
यत्ताभिर्लौमिस्त्यविभर्मासै समिधैर्मलैः । अग्नी होष्य पशुश्चाय शुन शोषो द्विजोत्तम ॥७५॥
उपासिता ह्युविप्रेन्द्रास्ते सर्वे हवन्पुण्य माय । गौतमीं यातु विप्रेन्द्रा स्नात्वा देवाप्यथपृथक् ॥७६॥
मन्त्रे स्तोत्रे स्तुवतस्ते मुद यातु शिवे रता । एन रक्षन्तु मुनयो देवाश्च हविषो भुज ॥७७॥

आकाशवाणी ने कहा—‘राजेन्द्र । तुम अपने ऋविबो और पुरोहित के साथ गौतमी के तट पर जाओ । साथ में ऋषिपुत्र और राजपुत्र रोहित को भी ले लो । तुम यज्ञ करो । ‘गुन’ गण के वप के बिना ही तुम्हारा यज्ञ पूरा हो जायगा । इसलिये महामति सही जाओ ॥६७-६८॥

ब्रह्मा ने कहा—आकाशवाणी को सुनकर नृपोत्तम हरिश्चन्द्र भीष्म ही ऋषि विश्वामित्र पुरोहित बनित वामदेव एवं अयाय मुनियों के साथ गया तट पर गया । वहाँ गौतमीगंगा के तट पर जाकर नरदेव यज्ञ की दीक्षा लेकर वेनी सन्ध्य यूप और पशु आदि की व्यवस्था करने लगा । यथाविधि सब सामग्री एवम् करयज्ञ काय प्रारम्भ हुआ । यूप में शुन गण को पशु बनाकर मात्र पाठ पूजन किया गया । उसको यज्ञ से अभिषिक्त होते देखकर विश्वामित्र ने यह कहा ॥६९-७२॥

विश्वामित्र ने कहा—देव ऋषि हरिश्चन्द्र विशेषरूप से रोहित से मैं कह रहा हूँ कि सभी इस द्विजोत्तम गुन गण को आज्ञा दे । जिन देवताओं को यह हवि (गुन गण) पृथक् पृथक् दी जायगी वे सब देवता भी विशेष रूप से इस गुन गण को अनुमति दें । इस यज्ञपशु द्विजवध शुन गण के वस्त्र (चर्बी) लोम त्वचा मांस से मात्रो व्धारणपूर्वक यज्ञानि में हवन किया जायगा । अर्थात् गुनगण इन सभी ब्राह्मणों और देवों की पूजा कर । वे सभी विप्रेन्द्र (देवा) आज पूजित ह । मेरी ओर ध्यान देकर आज सब विप्रवध भी गौतमी के तीर पर जाय और स्नान कर यथा यूपक मात्र स्तोत्रों से देवताओं की स्तुति करने हुए आनन्दपूर्वक यज्ञ उपासना में लीन हो जाय । इस प्रकार आज आप मुनि हविष्य को ग्रहण करने वाले देवतायस इस ‘गुन’ गण की प्राण रक्षा कर ॥७३-७७॥

ब्रह्मोवाच

तथेत्युच्यध मुनयो मेने च नृपसत्तम । ततो गत्वा शुनशेषो गङ्गा प्रलोच्यपावनीम् ॥७८॥
 स्नात्वा तुष्टाय तादेवाग्ये तत्र हविषो भुज । ततस्तुष्टा सुरगणा शुनशेष च ते मुने ॥
 अवदन्त सुरा सर्वे विश्वामित्रस्य शृण्वन्त ॥७९॥

सुरा ऊचुः

अनु पूर्णो भयत्वेप शुनशेषवध विना ॥८०॥

ब्रह्मोवाच

विशेषेणाय वरणश्चावदभ्यसत्तमम् । तत पूर्णोऽभवद्भक्तो नृमेधो लोकविश्रुत ॥८१॥
 देवाना च प्रसादेन मुनीना च प्रसादत । तीर्थस्य तु प्रसादेन राज्ञे पूर्णोऽभवत्पु ॥८२॥
 विश्वामित्र शुनशेष पूजयामास ससदि । अकरोदात्मन पुत्र पूजयित्वा सुरान्तिके ॥८३॥
 ज्येष्ठ चकार पुत्राणामात्मन स तु कौशिक । न मेनिरे ये च पुत्रा विश्वामित्रस्य धीमत ॥८४॥
 शुनशेषस्य च ज्येष्ठ्य ताञ्जशाप स कौशिक । ज्येष्ठ्य ये मेनिरे पुत्रा पूजयामास तान्सुतान् ॥८५॥
 वरेण मुनिशार्दूलस्तदेतत्कथित मया । एतत्सर्वं यत्र जात गौतम्या दक्षिणे तटे ॥८६॥
 तत्र तीर्थानि पुण्यानि विस्पातानि सुराविभि । बहूनि तेषां नामानि मत्त शृणु महामते ॥८७॥
 हरिश्चन्द्र शुनशेष विश्वामित्र सरोहितम् । इत्याद्यष्ट सहस्राणि तीर्थान्यय चतुर्दश ॥८८॥

ब्रह्मा ने कहा—मुनियो ने ऐसा ही होगा यह कहा और नृपश्रेष्ठ ने भी इसको स्वीकार किया । इसके अनन्तर शुनशेष त्रिमुबन पावनी गंगा के पास गया । गंगा में स्नानकर जितने वहाँ हविष प्रहण करने वाले देवता थे उनको स्तुति द्वारा प्रसन्न किया । ये सभी देवता शुनशेष पर प्रसन्न हो गये । मुने । सब देवताओं ने विश्वामित्र के सामने ही कहा ॥७८ ७९॥

देवो ने कहा—यह यज्ञ शुनशेष के वध के बिना ही पूर्ण हो जाय ॥८०॥

ब्रह्मा ने कहा—वरुण ने विशेषरूप से नृपवर्य को यज्ञपूर्ति का आशीर्वाद दिया । तदनन्तर राजा का यह लोक प्रसिद्ध नरमेध यज्ञ सम्पन्न हुआ । देवताओं की कृपा से मुनियो के अनुग्रह से और तीर्थ के माहात्म्य से राजा का यज्ञ इस प्रकार निर्विघ्न समाप्त हुआ । उस समा में ही विश्वामित्र ने शुनशेष का सत्कार किया और देवों के समीप ही उसकी पूजा कर अपना पुत्र स्वीकार कर लिया । उस विश्वामित्र ने उसको ज्येष्ठ पुत्र बताया । परम बुद्धिमान् ऋषि विश्वामित्र के जिन पुत्रों ने उसका ज्येष्ठत्व स्वीकार नहीं किया उनको ऋषि ने शाप दे दिया और जिन पुत्रों ने उसकी ज्येष्ठता स्वीकार कर ली उनका उस मुनिशादूल ने बर देकर आदर सत्कार किया । इस प्रकार नारद । मैंने इस घटना को सुना दिया । यह सारा काय गौतमी के दक्षिण तीर पर जहाँ सम्पन्न हुआ वहाँ बहुत से पवित्र देवताओं के नाम से प्रसिद्ध तीर्थ हो गये । महामति नारद । इनके नाम मैं कह रहा हूँ मुनो—हरिश्चन्द्र शुनशेष विश्वामित्र सरोहित आदि बाईस हजार तीर्थ हैं । उन तीर्थों में स्नान करन और दान देने से

तेषु स्नानं च दानं च नरमेघफलप्रदम् । आश्रयात् चास्य माहात्म्यं तीर्थस्य मुनिसत्तम ॥८९॥
य पठेत्पाठयेद्वाऽपि शृणुयाद्वाऽपि भवितत । अपुत्रं पुत्रमाप्नोति यच्चान्यन्मनसः प्रियम् ॥९०॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे स्वयम्भुविसर्वादे तीर्थमाहात्म्ये विश्वामित्रादिद्वाविंशतिसहस्र-

तीर्थवर्णनं नाम चतुरधिकशततमोऽध्यायः ॥१०४॥

सोमतीर्थमाहात्म्ये पञ्चात्रिंशोऽध्यायः ॥३५॥

अथ पञ्चाधिकशततमोऽध्यायः

सोमतीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

सोमतीर्थमिति श्रूय्यात् पितृणां प्रीतिवर्धनम् । तत्र वृत्तं महापुण्यं शृणु यत्नेन नारद ॥१॥
सोमो राजाऽमृतमयो गन्धर्वाणां पुराऽभवत् । न देवानां तदा देवा मामभ्येत्येदमब्रुवन् ॥२॥

देवा ऊचुः

गन्धर्वराहुतः सोमो देवानां प्राणदः पुरा । तमभ्यायन्सुरगणां ऋषयस्त्वितिदुःखिताः ॥
यथा स्यात्सोमो ह्यस्माकं तपा नीतिर्विधीयताम् ॥३॥

नरमेघपत्र का फल प्राप्त होता है । मुनिवृन्द ! इस तीर्थ की कथा और माहात्म्य को जो पढ़ता या पढ़ाता है
अथवा मन्त्रिपूजक सुनता है वह अपुत्र रहने पर पुत्र को प्राप्त करता है अथवा जो कुछ उसकी अभिलाषा होती
वह पूरी होती है ॥८९ ९०॥

श्री ब्रह्ममहापुराण में विश्वामित्र आदि वाईस हजार तीर्थों का वर्णन नामक एक सौ चौथा
अध्याय समाप्त ॥१०४॥

अध्याय १०५

सोमतीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा ने कहा—सोमतीर्थ नामक पितरों को आनन्द देने वाला एक तीर्थ है । नारद ! वहाँ जो अत्यन्त
पवित्र शुभ घटना हुई उसको सुना रहा हूँ ध्यानपूर्वक सुनो । बहुत पहले गन्धर्वों का अमृतमय सोम राजा हुआ देवों
का नहीं (अर्थात् गन्धर्वों को सोम प्राप्त हो गया देवों को नहीं) । यह देखकर देवता मेरे पास आये और बोले ॥१ २॥

देवों ने कहा—देवताओं के शीवनाधार सोम को गन्धर्वों ने पहले ही ले लिया । यह देखकर हम देवता लोग
अत्यन्त चिन्तित हैं, ऋषियग्न अति दुःखी हैं । जिस प्रकार सोम हम लोगों को मिले वैसे कोई युक्ति कीजिये ॥३॥

ब्रह्मोवाच

तत्र वाग्विबुधानाह गन्धर्वा स्त्रीषु कामुका । तेभ्यो वत्साऽय मा देवा सोममाहर्तुमहय ॥४॥
 याच प्रत्यूचुरमरास्त्वा दातु न क्षमा वयम । विना तेनापि न स्यातु शक्य नैव त्वया विना ॥५॥
 पुनर्वाग्न्रवीद्देवान्पुनरेष्याम्यह त्विह । अत्र बुद्धिविधातव्या क्रियता ऋतुरत्तम ॥६॥
 गौतम्या दक्षिणे तोर भवेद्देवागमो यदि । मख तु विषय कृत्वा आयातु सुरसत्तमा ॥७॥
 गन्धर्वा स्त्रीप्रिया नित्य पणध्व त मया सह । तथेत्युक्त्वा सुरगणा सरस्वत्या धच स्थिता ॥८॥
 देवदूतं पृथग्देवा यक्षान्गन्धर्वपद्मगान । आह्वान चक्रिरे तत्र पुण्ये देवगिरी तदा ॥९॥
 ततो देवगिरिर्नाम पवतस्याभवन्मुने । तत्राऽऽगमन्सुरगणा गन्धर्वा यक्षकिनरा ॥१०॥
 दवा सिद्धाश्च ऋषयस्तथाऽष्टौ देवयोनेय । ऋषिभिर्गौतमीतीरे क्रियमाणे महाध्वरे ॥११॥
 तत्र दवं परिवृत सहस्राक्षोऽभ्यभापत ॥१२॥

इन्द्र उवाच

गन्धर्वानि सपूज्य सरस्वत्या समीपत । सरस्वत्या पणध्व नो युष्माकममृतात्मना ॥१३॥

ब्रह्मा न कहा—उस समय वाणी (सरस्वती) ने कहा कि गन्धर्व अत्यन्त स्त्रीवामी होते हैं उनके हाथ मुझको सौंप कर तुम लोग सोम को प्राप्त कर सकते हो । वाणी की बात सुनकर देवताओं ने उत्तर दिया तुमको कभी भी हम देने को तैयार नहीं हैं । न तो हम सोम के बिना जीवित रह सकते हैं न तो तुम्हारे बिना । पुन वाणी ने देवताओं से कहा—मे पुन वहाँ से यहाँ चली आऊँगी । यहाँ चतुराई दिखलायी चाहिये । तुम लोग एक उत्तम यज्ञ का उपक्रम (तयारी) करो । गौतमी के दक्षिण तीर पर यदि यज्ञ को लक्षित कर देवागम (देवावन) हो तो वहाँ सब सुर ऋ एकत्र हो जाय । गन्धर्व सबदा स्त्रीप्रमी होते हैं इसलिये मेरे साथ उनका सौदा पटा दिया जाय । इस बात को स्वीकार कर वे देव सरस्वती के कपनानुसार नाच करने लगे । इसके अनन्तर उन लोगों ने देवदूतों को भेजकर पृथक् पृथक् देवों गन्धर्वों यक्ष और पन्नगों को उस पवित्र देवगिरि पर बुलवाया ॥९॥ मुने ! उस समय से ही उस पवत का नाम देवगिरि पडा । वहाँ सुर गण गन्धर्व यक्ष किन्नर देव सिद्ध ऋषि तथा आठ देवयोनिज उपस्थित थे । जब उस गौतमी के तीर पर महायज्ञ प्रारम्भ हुआ उस समय देव ताओं से घिरे इन्द्र ने कहा ॥४॥ १२॥

इन्द्र ने कहा—सरस्वती के समीप गन्धर्वों की पूजा कर हम लोग अमृत प्राप्ति के लिये तुम लोग से सरस्वती का विनिमय करना चाहते हैं तुम लोग यह सौदा स्वीकार कर लो ॥१३॥

ब्रह्मोवाच

तच्छक्रवचनात्ते वै गन्धर्वा स्त्रीषु कामुका । सोम दत्त्वा सुरेभ्यस्तु जगृहुस्ता सरस्वतीम् ॥१४॥
सोमोऽभवच्चामराणा गन्धर्वाणा सरस्वती । अवसत्तत्र वागीशा तथाऽपि च सुरान्तिके ॥१५॥
आयाति च रहो नियमुपाशु प्रियतामिति । अत एव हि सोमस्य क्रयो भवति नारद ॥१६॥
उपाशुना वतितव्य सोमस्त्रयण एव हि । ततोऽभवद्देवताना सोमश्चापि सरस्वती ॥१७॥
गन्धर्वाणां नैव सोमो नैवाऽऽसीच्च सरस्वती । तत्रागमन्सर्व एव सोमार्थं गौतमीतटम् ॥१८॥

गावो देवा पर्वता यक्षरक्षा, सिद्धा साध्या मुनयो गुह्यकाश्च ॥ १ ॥

गन्धर्वास्ते मरुत पद्मगाश्च, सर्वौघघ्नो मातरो लोकपाला ॥ २ ॥

रुद्रादित्या वसवश्चाश्विनौ च, येऽन्ये देवा यज्ञभागस्य योग्या ॥१९॥

पञ्चविंशतिनद्यस्तु गङ्गाया सगता मुने । पूर्णाहुतिर्न दत्ता पूर्णाख्यान तदुच्यते ॥२०॥
गौतम्या सगता यास्तु सर्वाद्यापि यथोदिता । तन्नामधेयतीर्थानि सक्षेपाच्छृणु नारद ॥२१॥
सोमतीर्थं च गान्धर्वं देवतीर्थमत परम् । पूर्णातीर्थं तत शाल श्रीषणसिगम तथा ॥२२॥
स्वागतासगम पुण्य कुसुमायाश्च सगमम् । पुष्टिसगममाख्यात कर्णिकासगम शुभम् ॥२३॥
वैष्णवीसगमश्चैव कृशारासगमस्तथा । वासवीसगमश्चैव शिवशर्पा तथा शिखी ॥२४॥
कुसुम्बिका उपारध्या शान्तित्रा देवजा तदा । आजो बृद्ध सुरो भद्रो गौतम्या सह सगता ॥२५॥

ब्रह्मा ने कहा—इन्द्र की घोषणा के अनुसार स्त्रीप्रेमी गन्धर्वों ने सोम को देकर बदले में सरस्वती को ले लिया । अब सोम देवताओं के अधिकार में आ गया और सरस्वती गन्धर्वों की हो गई फिर नी वागीश्वरी देवी के ही समीप रहती थी ॥१४ १५॥ प्रतिदिन एवान्त मावसे (छिपे रूप में) आती थी और देवों को उपाशु (मौन) रहने के लिए कहती थी । नारद ! इसी कारण यज्ञ में सोम को खरीदा जाता है ॥१६॥ और सोमयज्ञ के समय उपाशु व्यवहार किया जाना चाहिये अर्थात् मौन रहना चाहिये । इस प्रकार चतुराई से सोम और सरस्वती दोनों देवताओं ने ही अधिकार में रह गये ॥१७॥ गन्धर्वों के साथ व तो सोम और व तो सरस्वती ही थी । सोम ने इस प्रकार प्राप्त हो जाने पर उस गौतमीतट पर यज्ञ में सब गोयें देव पशु वन्य रत्न सिद्ध साध्य मुनि गुह्यक गन्धर्व मरुत पद्मग सब ओषधियाँ मातृमण लोकपाल रुद्र आदित्य वसु अश्विन अथवा जो और यज्ञभाग के अधिकारी देवता ये आये ॥१८ १९॥ मुने ! पचीस नदियाँ गंगा में आकर मिल गईं । जहाँ पूर्णाहुति दी गई वह पूर्णाख्यान नाम से प्रसिद्ध हुआ ॥२०॥ गौतमी में जितनी नदियाँ मिली जिनका कि ऊपर बयान हो चुका है नारद ! उन नामों में प्रसिद्ध तीर्थों का नाम थोड़े में सुनो ॥२१॥ सोमतीर्थ गान्धर्वतीर्थ देवतीर्थ पूर्णातीर्थ शाक श्रीषण-सिगम पवित्र स्वागता-सगम कुसुमासगम प्रसिद्ध पुष्टिसगम शुभकर्णिकासगम तथा वैष्णवीसगम कृशारासगम, वासवीसगम शिवशर्पासगम शिखी कुसुम्बिका उपासध्या शान्तित्रा देवजा बृद्धभ्रज और भद्रसुर इतनी नदियाँ और नद गौतमी के साथ सम्मिलित हुये ॥२२-२५॥ इसके अतिरिक्त बहुत सी नदियाँ और नद सम्मिलित

१. पूर्णती० । २. शिल्पा आर्या । ३. शिखी । ४. ध्या रत्नदा देवनी नद । आजो बुज्य सरो ।

एते चान्ये च ग्रहयो नदीनदसहायता । पृथिव्यां यानि तीर्यानि ह्यगमन्देवपर्वते ॥२६॥
 सोमार्थं यं तथा चान्येऽप्यागमन्मलमण्डपम् । तानि तीर्यानि गङ्गाया सगतानि यथाक्रमम् ॥२७॥
 नदोरूपेण कान्येव नदरूपेण कानिचित् । सरोरूपेण कान्यत्र स्तरूपेण कानिचित् ॥२८॥
 तान्येव सर्वतीर्यानि विख्यातानि पृथक्पृथक् । तेषु स्नानं जपो होम पितृतर्पणमेव च ॥२९॥
 सर्वकामप्रदं पुता भुक्तिद भुक्तिभाजनम् । एतेषा पठनं चापि स्मरणं वा करोति यः ॥
 सर्वपापविनिर्मुक्तो^१ याति विष्णुपुरं जन ॥३०॥

। इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे स्वयंभुश्चर्यसिखादे तीर्थमाहात्म्ये पूर्णाविपश्चर्विशतिनदी-
 देवनदीनदसगमवर्णनं नाम पञ्चाधिकशततमोऽध्याय ॥१०५॥
 गीतमीमाहात्म्ये षट्त्रिंशततमोऽध्याय ॥३६॥

अथ पठधिकशततमोऽध्यायः

देवदानवानां मेरुपर्वतं प्राप्य मन्त्रवरणम्
 ब्रह्मोवाच

प्रवरासगमो^१ नाम श्रेष्ठा चंद्रा महानदी । यत्र सिद्धेश्वरो देव सर्वलोकोपकारकृत् ॥१॥

हुये । उस देवगिरि पर पृथिवी के जितने तीर्थ आये थे व सभी तथा अथ भी सोम के लिये उस यज्ञ-मण्डप में आये ॥२६॥ उन सब तीर्थों में से कुछ नदी रूप में कुछ नद रूप में कुछ सरोवर के रूप में और कुछ स्तव (स्तुति) के रूप में ही गीतमी गंगा में सम्मिलित हुये ॥२७ २८॥ वे सभी तीर्थ पृथक् पृथक् प्रसिद्ध हैं । उन तीर्थों में स्नान जप होम और पितृतर्पण आदि कम मनुष्यों के लिए सब मनोरथ तथा भुक्ति और मुक्ति के देने वाले हैं । इन तीर्थों की महिमा का जो कोई पठन या स्मरण करता है वह भी सब पापों से मुक्त होकर विष्णुलोक को प्राप्त करता है ॥२९॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में पूर्णा आदि पचीस नदी देवनदी नद सगम वर्णन नामक एक सौ पाँचवाँ अध्याय समाप्त ॥१०५॥

अध्याय १०६

देवता और दानवों का सुमेरुपर्वत पर जाकर मन्त्रणा करना

ब्रह्मा ने कहा—प्रवरा सगम नामक तीर्थ और प्रवरा नामक श्रेष्ठ महानदी है । जहाँ सब लोक के उपकार

१५ ० मुक्तयन्त्रो विष्णुपदं व्रजत् । पुण्याप्रवरयोर्मध्यं नद्यो विशतिरीरित । बुद्धाप्रवरयोर्मध्ये वा भूमिं
 श्रयसयुता । तत्रस्था प्राणिनः सर्वे भुक्तिभाजो न सशयः । अहं च वा य आसीच्च सृष्ट्यर्थं यजनं कृतम् । प्रणीतान्
 सगमायार्थं पुरतः कथयामि ते । ३० । २क ० यम श्रेष्ठ श्रे ० । ३३ सर्व ।

देवाना दानवाना च सगमोऽभूत्सुदारुण । तेषां परस्परं वाऽपि प्रीतिश्चाभून्महामुने ॥२॥
तेऽप्येव मन्त्रयामासुर्देवा ये दानवा मिथ । भेदपर्वतमासाद्य परस्परहितं विण ॥३॥

देवदैत्या ऊचुः

अमृतेनामरत्वं स्यादुत्पाद्यामृतमुत्तमम् । पिबाम सर्वं एवंतं भवामश्चामरा वयम् ॥४॥
एकोभूत्वा वयं लोकान्पालयाम स्खलानि च । प्राप्स्याम सगरं हित्वा सगरो दुःखकारणम् ॥५॥
प्रीत्या चैवाजितानर्थान्भोक्ष्यामो गतमत्सरा । यत स्नेहेन वृत्तिर्था साऽस्माकं सुखदा सदा ॥६॥
वैपरोत्य तु यद्वत् न स्मर्तव्यं कदाचन । न च त्रैलोक्यराज्येऽपि वैवृत्ये वा सुखं मनाकं ॥७॥
तदूर्ध्वमपि वा यत्तु निर्वैरत्वादवाप्यते ॥७॥

ब्रह्मोवाच

एव परस्परं प्रीता सन्तो देवादश्च दानवा एकीभूताश्च सुप्रीता विमग्न्य वरुणालयम् ॥८॥
मग्न्यान् मन्वरं कृत्वा रज्जुं कृत्वा तु दासुकिम । देवादश्च दानवा सर्वे समन्धुर्द्वरुणालयम् ॥९॥
उत्पन्नं च ततः पुण्यममृतं सुरवरलभम् । निष्पन्ने चामृते पुण्ये ते च प्रोक्षु परस्परम् ॥१०॥
याम स्व स्वमधिष्ठानं कृतकार्यां श्रमं गता । सर्वे समं च सर्वेभ्यो यथायोग्यं विभज्यताम् ॥११॥
यदा सर्वांगमो यत्र यस्मिन्लान्ने शुभावहे । विभज्यतामिदं पुण्यममृतं सुरसत्तमा ॥१२॥

करने वाले सिद्धेश्वर महादेव विराजमान हैं । एक समय देवों और दानवों में अति मयकर युद्ध हुआ । महामुने !
चोड़े समय बाद उन में परस्पर प्रेम भी हो गया । उन देव-दानवों ने आपस में मिलजुल कर मेघ पर्वत
पर परस्पर हित की कामना से परामर्श किया ॥१३॥

देव दानवों ने कहा—अमृत से अमरत्व की प्राप्ति होती है । अतः अमृत उत्पन्न कर हम सभी पान
करें जिससे हम सब अमर हो जायें । तब हम एक होकर लोकपालन कर और युद्ध का त्याग कर सुख भोग कर ।
वास्तव में युद्ध ही दुःख का कारण है । इस प्रकार प्रमथूक अपने श्रम से अर्जित सम्पत्ति का परस्पर मात्सर्य छोड़
कर भोग करेंगे । क्याहि प्रमथूक जो हम लोगों का पारस्परिक व्यवहार होगा वह सदा सुखकर होगा । आज
तक के जो विपरीत व्यवहार हुये उनका स्वप्न में भी स्मरण नहीं करना चाहिये । जो सुख बर-बलह को छोड़कर
जीवन यापन करने में मिलता है उसका स्वल्पांग भी निभुवन के राज्य अथवा मुक्ति की प्राप्ति में नहीं ॥४७॥

ब्रह्मा ने कहा—इस प्रकार देव और दानव परस्पर की प्रीति वार्ता से प्रसन्न होकर एक हो
गये और प्रसन्नतापूवक समुद्र को मथकर अमृत उत्पन्न करने की युक्ति सोची । मन्दराचल को मथनी और
बामुकि की रस्सी बनाकर सब देवों और दानवों ने समुद्र को मथ डाला । यथन के बाद समुद्र से देवाका
प्रिय पवित्र अमृत निकला । अमृत उत्पन्न हो जाने पर उन लोगों ने परस्पर विचार किया—हम सब अपने-अपने
स्नान को इस समय चल अब तो हम सफलमनोरथ हो गये सारा श्रम दूर हो गया । पुनः जब सब लोग
सुम लग्न में जहाँ-वहाँ एकत्र होंगे तब सब देवता सबको यथाभाग यह पवित्र अमृत बांट देंगे ।

इत्युक्त्वा ते ययुः सर्वे दैत्यदानवराक्षसाः । गतेषु दैत्यसघेषु देवा सर्वेऽन्वमन्त्रयन् ॥१३॥

देवा ऊचुः

गतास्ते रिपवोऽस्माकं दैवयोगादरिदमा । रिपूणाममृतं नैव देयं भवति सर्वथा ॥१४॥

ब्रह्मोवाच

बृहस्पतिस्तथेत्याह पुनराह सुरानिदम

॥१५॥

बृहस्पतिरवाच

न जानन्ति यया पापा पिबध्वं च तथाऽमृतम् । अयमेवोचितो मन्त्रो यच्छत्रूणां पराभवः ॥१६॥

द्वेष्या सर्वात्मना द्वेष्या इति नीतिविदो विदुः । न विश्वास्या न चाऽऽस्प्रेया नैव मन्त्राश्च शत्रवः ॥१७॥

तेभ्यो न दैपममृतं भवेयुरमरास्ततः । अमरेषु च जातेषु तेषु दैत्येषु शत्रुषु ॥

॥१८॥

ब्रह्मोवाच

इति समन्त्र्य ते देवा वाचस्पतिमयाश्रुवन्

॥१९॥

देवा ऊचुः

यद्ययमं कुत्र मन्त्रं स्यात्पिबाम यद्यस्यति । कुर्मस्तदेव प्रयमं यदवाचस्पते तथा ॥२०॥

यह कहकर वे सब दैत्य दानव और राक्षस चले गये । उन दैत्य समूहों के चले जाने पर सब देवता परामर्श करने लगे ॥८१३॥

देवों ने कहा—शत्रुनाशक ! दैवयोगसे हम लोगों के वे शत्रु चले गये । शत्रुओं को किसी भी प्रकार से अमृत देना उचित नहीं ॥१४॥

ब्रह्मा बोले—बृहस्पति ने भी इसका समायन किया । पुनः उन्होंने देवताओं से कहा ॥१५॥

बृहस्पति ने कहा—तुम लोग यह अमृत पी जाओ । किसी प्रकार के पापी राक्षस इस भेद को न जान पाय । यह उचित मन्त्र है कि शत्रुओं की हार हो । नीतिज्ञों ने कहा है कि शत्रुओं से सब प्रकार से द्वेष करना चाहिये । शत्रु किसी प्रकार भी विश्वसनीय नहीं शत्रुओं से कोई हृदय की बात नहीं कहनी चाहिये न तो उनसे रहस्यमय परामर्श ही करना चाहिये । उनको अमृत नहीं देना चाहिये अन्यथा अमृत पान से वे अमर हो जायेंगे । उन शत्रु दैत्यों के अमर हो जाने पर हम किसी प्रकार उनको जीत न सकेंगे । इसलिये उनको अमृत नहीं देना चाहिए ॥१६ १८॥

ब्रह्मा ने कहा—इस प्रकार परस्पर मन्त्रणा कर देवताओं ने पुनः बृहस्पति से कहा ॥१९॥

देवताओं ने कहा—वाचस्पति ! कहाँ जायें कहा परामर्श किया जाय और कहाँ स्थित होकर हम लोग अमृत पान करें । आप जैसा कहेंगे हम वही करेंगे आप कहिये ॥२०॥

बृहस्पतिरुवाच

यान्तु ब्रह्माणममरा. पृच्छन्स्वत्र गतिं पराम् । स तु ज्ञाता च वक्ता च दाता चैव पितामहः ॥२१॥

ब्रह्मोवाच

बृहस्पतेर्वचः श्रुत्वा मदन्तिकमयाऽऽगमन् । नमस्य मां सुराः सर्वे यद्ब्रूतं तन्न्यवेदयन् ॥२२॥
तद्देववचनात्पुनः तैः सुरैरयमं हरिम् । विष्णवे कथितं सर्वं शंभवे विपहारिणे ॥२३॥
अहं विष्णुश्च शंभुश्च देवगन्धर्वैर्कनरैः । मेरुकंदरमागत्य न जानन्ति यथाऽमुराः ॥२४॥
रक्षकं च हरिं कृत्वा सोमपानाय तस्थिरे । आदित्यस्तत्र विज्ञाता सोमभोज्यामयेतरान् ॥२५॥
सोमो दाताऽमृतं भागं चक्रुष्वक्षकस्तथा । नैव जानन्ति तद्देव्या दनुजा राक्षसास्तथा ॥२६॥
विना राहुं महाप्राप्तं संहिकेयं च सोमपम् । कामरूपधरो राहुर्मत्तां मध्यमाविशत् ॥२७॥
मरुद्रूपं समास्थाय पानपानधरस्तथा । ज्ञात्वा दिवाकरो दैत्य तं सोमाम न्यवेदयत् ॥२८॥
तदा तदमृत तस्मै दैत्यापादित्यरूपिणे । दत्त्वा सोमं तदा सोमो विष्णवे तन्न्यवेदयत् ॥२९॥
विष्णुः पीतामृतं दैत्यं चक्रेणोद्यम्य तच्छिरः । चिच्छेद तरसा वत्स तच्छिरस्त्वमरं त्वभूत् ॥३०॥
शिरोमात्रविहीनं यद्देहं तदपतद्भुवि । देहं तदमृतस्पृष्टं पतितं दक्षिणे तटे ॥३१॥
गौतम्या मुनिशार्दूल कम्पपद्मसुधातलम् । देहं चाप्यमरं पुनः तदद्भुतमिवाभवत् ॥३२॥

बृहस्पति ने कहा—सब देवता ब्रह्मा के पास जायें और इस विषय में उन्हीं से उचित राय पूछें । वे पितामह ज्ञाता, वक्ता और दाता हैं । ॥२१॥

ब्रह्मा बोले—बृहस्पति की यातें सुनकर देवता मेरे पास आये और मुझे नमस्कार कर के जो कुछ हुआ था कह सुनाया ॥२२॥ पुनः । उन देवताओं के कथनानुसार मैं उन लोगों के साथ विष्णु के समीप गया । सारा रहस्य विष्णु और विपपान करने वाले शकट से कह दिया गया ॥२३॥ मैं, विष्णु, दनु, देव, गन्धर्व और विनर मेरु को कन्दरा में आकर जिस प्रकार असुर न जान पायें, उस प्रकार ॥२४॥ हरि को रक्षक बनाकर सोम पान के लिये बँट गये । वहाँ आदित्य ही सोम पान के योग्य और अयोग्य व्यक्ति को जानते थे ॥२५॥ सोम देव अमृत को बँटने वाले तथा चक्रधारी विष्णु रक्षक थे, इस रहस्य को महाबुद्धिमान् और सोम-प्रायी सिंहिका मुत राहु को को छोड़कर अन्य दैत्य दानव तथा राक्षस नहीं जानते थे ॥२६॥ माया रूपधारी राहु मरुद्गणों के मध्य घुस गया और मरुद् का रूप धारण कर पान-पात्र हाथ में लेकर बैठ गया ॥२७॥ दिवाकर ने उस रहस्यमय दैत्य को जानकर सोम को वता दिया ॥२८॥ उस समय देवरूपधारी उस दैत्य को सोम अमृत दे चुके थे, तब इस घटना को उन्होंने विष्णु से कहा ॥२९॥ विष्णु ने अमृत पान कर चुके उस दैत्य के शिर को चक्र उठाकर बलपूर्वक काट डाला ॥३०॥ वत्स । काटने पर भी उसका शिर अमर हो गया । शिर से रहित जो कवच था वह पृथिवी पर गिर पड़ा । मुनि शार्दूल । वह अमृत से स्पृष्ट शरीर गौतमी के दक्षिण तट पर पृथ्वीतल को कंपाता हुआ सा गिर पड़ा । पुनः । उस अमर देह की अद्भुत अवस्था हो गई ॥३१-३२॥ देह शिर की अपेक्षा रखती और शिर देह के

देहं च शिरसोऽपेक्षि शिरो देहमपेक्षते। उभयं चामरं जातं दैत्यश्चापं महाबलः॥३३॥
शिरः काये समाविष्टं सर्वाभक्षयते सुरान्। तस्माद्देहमिवं पूर्वं नाशयामो महीगतम्॥
ततस्ते शंकरं प्राहुर्देवाः सर्वे ससंभ्रमाः॥३४॥

देवा ऊचुः

महीगतं दैत्यदेहं नाशयस्व सुरोत्तम। त्वं देव कृष्णासिन्धुः शरणागतरक्षकः॥३५॥
शिरसा नैव युज्येत दैत्यदेहं तथा कुरु॥३६॥

ब्रह्मोवाच

प्रेषयामास चेशोऽपि श्रेष्ठां शक्तिं तदाऽऽत्मनः। मातृभिः सहितां देवीं मातरं लोकपालिनीम्॥३७॥
ईशायुधधरा देवी ईशशक्तिसमन्विता। महीगतं यत्र देहं तत्रागाद्भक्षयकाङ्क्षिणी॥३८॥
शिरोमात्रं सुरा सर्वे मेरो तत्रैव सान्त्वयन्। देहो देव्या पुनस्तत्र युयुधे बहवः समाः॥३९॥
राहुस्तान् सुरानाह भित्त्वा देहं पुरा मम(?)। अत्राऽऽस्ते रसमुत्कृष्टं तदाकृष्य शरीरतः(?)॥४०॥
पृथग्भूते रसे देहं प्रवरऽमृतमुत्तमम्। भस्मीभूयात्क्षणेनैव तस्मात्कुर्वन्तु तत्पुरा॥४१॥

ब्रह्मोवाच

एतद्वाङ्मयचः श्रुत्वा प्रीता सर्वेऽसुरारयः। अभ्यविञ्चन्प्रहाणां त्वं ग्रहो भूया मुदाऽन्वितः॥४२॥

बिना अलग नहीं रह सकता परन्तु वह महाबली (शिर और घट) उभय रूप में भी अमर हो गया॥३३॥ देवताओं ने सोचा कि यदि शिर पुनः घट पर जुट जायगा तो यह राक्षस सब देवों को खा जायेगा, इसलिये पृथ्वी पर पड़े इस शरीर का पहले ही नाश कर दिया जाय। यह सोच कर उन देवताओं ने बड़ी शीघ्रता से शंकर के पास जाकर निवेदन किया॥३४॥

देवो ने कहा—सुरोत्तम! पृथ्वी पर पड़े इस दैत्य-शरीर को मण्ड कीजिये। देव! आप कृष्णा के सागर हैं, शरणागत जनों के एकमात्र रक्षक हैं। यह देह शिर से युक्त न होने पाये, ऐसा कोई उपाय कीजिये॥३५-३६॥

ब्रह्मा ने कहा—देवों की प्रार्थना सुनकर शंकर ने अपनी श्रेष्ठ शक्ति लोकपालक माता, देवी षण्डिका को मातृकाओं के साथ भेजा। शिव के आयुधों और उनकी शक्ति से युक्त होकर वह देवी उस दैत्य शरीर को खा जाने की इच्छा से वहाँ गई। ऊपर सब देवता केवल शिर भाग को उसी मेरु पर्वत पर रोक रखे। ऊपर वह देह देवी के साथ बहुत वर्षों तक युद्ध करती रही। अन्त में मेरु स्थित राहु के शिर ने देवों से कहा कि पहले मेरे शरीर को फाड़ कर उसमें से उत्तम रस को शरीर से अलग खींच लो। उस उत्तम रस के अलग हो जाने पर वह अमर शरीर क्षण भर में ही भस्म हो जायगा। इसलिये पहले इस कार्य को करें॥३७-४१॥

ब्रह्मा बोले—राहु की वही हुई वात को मुनकर सब देव अत्यन्त प्रसन्न हुए। उन लोगों ने राहु का प्रसन्नता-पूर्वक अभिषेक करते हुए कहा कि तुम आनन्दपूर्वक ब्रह्मों के मध्य एक ग्रह हो जाओ॥४२॥ देवताओं के कथनानुसार

तद्देववचनाच्छक्तिरीश्वरी या निगद्यते । देहं भित्त्वा दैत्यपतेः सुरशक्तिसमन्विता ॥४३॥
 आकृष्य शीघ्रमुत्कृष्टं प्रवरं चामृतं बहिः । स्थापयित्वा तु तद्देहं भक्षयामास चाम्बिका ॥४४॥
 कालरात्रिर्भद्रकाली प्रोच्यते या महाबला । स्थापितं रसमुत्कृष्टं रसानां प्रवरं रसम् (?) ॥४५॥
 व्यध्वत्स्थापितं तत्तु प्रवरा साऽभवन्नदी । आकृष्टममृतं चैव स्थापितं साऽप्यभक्षयत् ॥४६॥
 ततः श्रेष्ठो नदी जाता प्रवरा चामृता शुभा । राहुदेहसमुद्भूता रुद्रशक्तिसमन्विता ॥४७॥
 नदीनां प्रवरा रम्या चामृता प्रेरिता तथा । तत्र पञ्च सहस्राणि तीर्थानि गुणवन्ति च ॥४८॥
 तत्र शंभुः स्वयं तस्यै सर्वदा सुरपूजितः । तस्यै तुष्ट्याः सुराः सर्वे देव्यै नद्यै पृथक् पृथक् ॥४९॥
 वरान्दुर्मुदा युक्ता यथा पूजामवाप्स्यति । शंभुः सुरपतिर्लोके तथा पूजामवाप्स्यति ॥५०॥
 निवासं कुरु देवि त्वं लोकानां हितकाम्यया । सदा तिष्ठ रसेशानि सर्वेषां सर्वसिद्धिदा ॥५१॥
 स्तवनात्कीर्तनाद्दधानात्सर्वकामप्रदायिनी । त्वां नमस्यन्ति ये भक्त्या किञ्चिदापेक्ष्य सर्वदा ॥५२॥
 तेषां सर्वाणि कार्याणि भवेयुर्देवतातया । शिवशक्त्योर्यतस्तस्मिन्निवासोऽभूत्सनातन ॥५३॥
 अतो वदन्ति मुनयो निवासपुरमित्यदः । प्रवरायाः पुरा देवाः सुप्रोतास्ते वरान्दुः ॥५४॥
 गङ्गायाः संगमो यस्ते बिम्बपातः सुरबल्लभ । तत्राऽऽप्लुतानां सर्वेषां भुक्तिर्वा मुक्तिरेव च ॥५५॥
 यद्वाऽपि मनसः काम्यं देवानामपि दुर्लभम् । स्यात्तेषां सर्वमेवेह एवं दत्त्वा सुरा ययुः ॥५६॥

ईश्वरी नाम से विख्यात शिवशक्ति ने देवों की शक्ति से उत्साहित होकर दैत्यराज का शरीर फाड़ कर शीघ्र ही उस उत्कृष्ट अमृत रस को खींचकर बाहर निकाल डाला । और कालरात्रि भद्रकाली एक महाबला कही जानेवाली वह अम्बिका उसके शरीर को खा गई और उस रसो में श्रेष्ठ रस को एक स्थान पर स्थापित कर दिया ॥४३-४५॥ उस रसो में रस का जो भाग बाहर वह गया उससे प्रवरा नाम की उत्तम और शुभ नदी हो गई । उस घटस्थापित उत्तम अमृत को भी वह अम्बिका खा गई ॥४६॥ इस प्रकार राहु देह से निकली हुई, रुद्रशक्ति से युक्त वह शुभ श्रेष्ठ प्रवरा नाम की अमृत सरिता उत्पन्न हो गई । वहाँ पाँच हजार पवित्र पुण्यप्रद तीर्थ सर्वदा निवास करते हैं ॥४७-४८॥ वहाँ देवपूजित शम्भु सर्वदा विद्यमान रहते हैं । देवताओं ने प्रसन्न होकर उस देवी (नदी) को पृथक्-पृथक् वरदान दिया कि जिस प्रकार भगवान् शम्भु लोक में पूजा प्राप्त करते हैं, उसी प्रकार तुम भी लोक में पूजा प्राप्त करागो ॥४९-५०॥ देवि ! तुम लोकहित की कामना से सर्वदा इस पृथ्वी पर निधाम करो, रसेशानि । सबको सर्वदा सिद्धि प्रदान करने वाली तुम सर्वदा वहाँ विराजमान रहो ॥५१॥ स्तुति कीर्तन और ध्यान करने से मनुष्यों को सब मनोरथ देने वाली बनो । जो गतिपूर्वक किसी मनोरथ की पूर्ति के लिए सर्वदा तुम्हें नमस्कार करेंगे उन गन्तों के सभी कार्य देवताओं की आशा से अवश्य पूर्ण होंगे । यत वहाँ शिव और शक्ति वा सर्वदा निवास रहतः हैं इसलिये उस तीर्थ को मुनिगण 'निवासपुर' कहते हैं । इस भाँति देवताओं ने प्राचीन काल में प्रवरा को प्रसन्न होकर वर प्रदान किया ॥५२-५४॥ जो देवों का अत्यन्त प्रिय विख्यात गंगा-संगम है वहाँ स्नान करने वालों की भुक्ति और मुक्ति अथवा जो भी उनका मनोमिलपित है चाहे वह देव-दुर्लभ ही क्यों न हो, सब उनको प्राप्त हो, ऐसा वर देकर देवता चले गये ॥५५-५६॥ सब से वह

ततः प्रभृति तत्तीर्थं प्रवरासंगमं विदुः। प्रेरिता देवदेवेन शक्तिर्या प्रेरिता तु सा ॥५७॥
अमृता' संव विख्यात प्रवरंवे महानदी ॥५८॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे स्वयंभुवृषिसंवादे शिवप्रेरितामृतासंगमादितीर्थवर्णनं नाम
षडधिकशततमोऽध्यायः ॥१०६॥

गीतमीमाहात्म्ये सप्तत्रिंशोऽध्यायः ॥३७॥

अथ सप्ताधिकशततमोऽध्यायः

वृद्धासंगमतीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

वृद्धासंगममाख्यात यत्र वृद्धेदेवरः शिवः। तस्याऽऽख्यानं प्रवक्ष्यामि शृणु पापप्रणाशनम् ॥१॥
गीतमो वृद्ध द्रत्युक्तो मुनिरासीन्महातपाः। यदा पुराऽभवद्बालो गीतमस्य सुतो द्विजः ॥२॥
अनास' स पुरोत्पन्नस्तस्माद्विकृतरूपधृक्। स वैराग्याज्जगामाय देशं तीर्थमितस्ततः ॥३॥
उपाध्यायेन नैवाऽऽसीत्लज्जितस्य समागमः। शिष्यैरग्न्यः सहाध्यायो लज्जितस्य च नामवत् ॥४॥

तीर्थं प्रवरासंगम के गान से प्रसिद्ध हो गया। इस प्रकार देवदेव वाकर ने जिस राक्षस को प्रेरित प्रेरित किया था,
वही प्रेरित होने पर विख्यात अमृत स्वरूपिणी महानदी प्रवराहो गई ॥५०-५८॥

श्री ब्रह्ममहापुराण मे शिव प्रेरित अमृतामपराहि तीर्थं वर्णन नामर
एक ती छटा अध्याय समाप्त ॥१०६॥

अध्याय १०७

वृद्धासंगमतीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा बोले—जहाँ वृद्धेदेवर शिव निवास करते हैं उस वृद्धासंगम नाम मे प्रसिद्ध तीर्थ की पापविनाश
कथा का वर्णन कर रहा हूँ उसकी सुनो ॥१॥ वृद्ध गीतम नामक एक महातपस्वी मुनि थे। बहुत पढ़े गीतम मुनि
को एक पुत्र उत्पन्न हुआ जो कि जन्म मे ही नामविहा हीन था। इसलिये विरुप होने के कारण विरक्त होकर वह
बाल गीतम इपर उपर देत और तीर्थ का भ्रमण करने लगा ॥२-३॥ अपनी विरूपता से लज्जित होने
के कारण वह उपाध्याय (विद्यागुरु) के शरीर में जा सका, न तो अन्य शिष्यों के साथ उस राक्षसील गीतम का
सहाय्यपन ही हुआ ॥४॥ किसी प्रकार उसके पिता गीतम ने उसका, उत्तरपन सफार कर दिया। इनके ही ब्रह्म-

उपनीत कथञ्चिच्च पित्रा वै गौतमेन स । एतावता गौतमोऽपि व्यगमच्चरितु बहि ॥५॥
 एव बहुतिथे काले ब्रह्ममात्रा धृते द्विजे । नैव चाध्ययन तस्य सजात गौतमस्य हि ॥६॥
 नैव शास्त्रस्य चाभ्यासो गौतमस्याभवत्तदा । अग्निकार्यं ततश्चक्रे नित्यमेव यतव्रत ॥७॥
 गायत्र्यभ्यासमात्रेण ब्राह्मणो नामधारक । अग्न्युपासनमात्रं च गायत्र्यभ्यसन तथा ॥८॥
 एतावता ब्राह्मणत्व गौतमस्याभवत्मुने । उपासतोऽग्निं विधिवद्गायत्रौ च महात्मन ॥९॥
 तस्याऽऽयुर्वबुधे पुन गौतमस्य चिरायुष । न दारसग्रहं लेभे नैव दाताऽस्ति कन्यकाम् ॥१०॥
 तथा चरस्तीर्यदेशे वनेषु विविधेषु च । आश्रमेषु च पुण्येषु अटलास्ते स गौतम ॥११॥
 एव भ्रमञ्छीतपिरिमाश्रित्याऽऽस्ते स गौतम । तत्रापश्यद्गुहा रम्या बल्लीविटपमालिनीम् ॥१२॥
 तत्रोपविश्य विप्रेन्द्रो वस्तु समकरोन्मतिम् । चिन्तयत्तु प्रविष्टोऽसावपश्यत्स्त्रियमुत्तमाम् ॥१३॥
 शिथिलाङ्गोमथ कुशा बृद्धा य तपसि स्थिताम् । ब्रह्मचर्येण वर्तन्तीं विरागां रहसि स्थिताम् ॥१४॥
 स ता दृष्ट्वा मुनिश्रेष्ठो नमस्काराय तस्थिवान् । नमस्यन्त मुनिश्रेष्ठ त गौतममवारयत् ॥१५॥

बृद्धोवाच

गुरुस्त्व भविता मह्य न ना वन्दितुमर्हसि । आर्युर्विद्या धन कीर्तिधर्म स्वर्गादिकं च यत् ॥
 तस्य मयति वै सर्वं य नमस्यति वै गुरु ॥१६॥

चिह्न से (यज्ञोपवीत सत्कार) से युक्त होकर वह बाहर भ्रमण करने चला गया ॥५॥ इस प्रकार यज्ञोपवीत मान (ब्रह्म चिह्न) धारण किये हुये उस ब्राह्मण के जीवन का बहुत अन्त बीत गया । उस द्विज गौतम न तो अध्ययन ही किया और न तो शास्त्रों का अभ्यास ही । परन्तु उस समय व्रत वाले गौतम ने अभ्यासान् अवश्य किया और गायत्री जप के अभ्यास से ब्रह्मत्व की रक्षा अवश्य करता रहा । मुने । इस प्रकार अग्निपूजा और गायत्रीजप मान ही उसके ब्राह्मणत्व का प्रतीक रहा ॥६ ८३॥ विधिपूर्वक अग्नि की उपासना एव गायत्री का जप करते करते हे पुत्र । उस दीपजीवी महात्मा ब्राह्मण की आयु अधिक हो चली । परन्तु उसका विवाह नहीं हुआ क्योंकि उस विषय को कोई अपनी कन्या देने वाला नहीं था ॥९ १०॥ इस प्रकार अविवाहित वह गौतम तीर्थों विविध यनों और पुण्य आश्रमों में गटकता हुआ समय बिताने लगा ॥११॥ एक समय वह घूमता हुआ हिमालय पहाड़ पर पहुँचा । वहाँ उसने लताओं और वृक्षमालाओं से सुशोभित एक रमणीय गुफा का देखा ॥१२॥ वहाँ बैठकर उस विप्र ने उसी गुफा में निवास करने का विचार किया । इसी विचार से वह उस गुहा में प्रविष्ट हुआ इतने में उसने एक उत्तम स्त्री को जो कुशकाय और बृद्ध थी जिसके अंग शिथिल हो गये थे जो सबदा एवान्त में रहने वाली बीतराग और ब्रह्मचर्यपरायण थी देखा । वह मुनिश्रेष्ठ उसको देखकर नमस्कार करने के लिये उद्यत हुआ । यह देखकर उस बृद्धा ने नमस्कारो मुख उस मुनि गौतम को रोका ॥१३ १५॥

बृद्धा ने कहा—तुम मेरे भविष्यद् गुरु हो मुझ नमस्कार भत करो उस व्यक्ति की आयु विद्या, धन, कीर्ति, धर्म स्वर्ग आदि सब कुछ नष्ट हो जाते हैं जिसको गुप्तजन नमस्कार करते हैं ॥१६॥

ब्रह्मोवाच

कृताञ्जलिपुटस्तां ये गोतमः प्राह विस्मितः

॥१७॥

गौतम उवाच

तपस्विनी त्वं वृद्धा च गुणज्येष्ठा च भामिनी । अल्पविद्यस्त्यल्पवया अहं तव गुरुः कथम् ॥१८॥

वृद्धोवाच

आर्ष्टियेणप्रियपुत्र ऋतध्वज इति श्रुतः । गुणवान्मतिमाञ्जूरः क्षत्रधर्मपरायणः ॥१९॥
स वदाचिद्वनं प्रायान्मुगयादृष्टचेतनः । विश्राममकरोदस्यां गुहायां स ऋतध्वजः ॥२०॥
युवा स मतिमान्दक्षो बलेन महता वृतः । तं विश्रान्तं नृपवरमप्सरा ददृशे ततः ॥२१॥
गन्धर्वराजस्य सुता सुश्यामा इति विश्रुता । तां दृष्ट्वा चक्रमे राजा राजानं चक्रमे च सा ॥२२॥
इति श्रीडा समभवत्तया राज्ञो महामते । निवृत्तकामो राजेन्द्रस्तामापूच्छ्याऽऽगमद्गृहम् ॥२३॥
उत्पन्नाऽहं ततस्तस्यां सुश्यामायां महामते । गच्छन्ती मां तदा माता इदमाह तपोधन ॥२४॥

सुश्यामोवाच

यस्त्वस्यां प्रविशेद्भूद्रे स ते भर्ता भविष्यति

॥२५॥

वृद्धोवाच

इत्युक्त्वा सा जगामाय माता मम महामते । तस्मादत्र प्रविष्टस्त्वं पुमास्तान्यः वदाचन ॥२६॥

ब्रह्मा ने कहा—यह गुनवर विस्मित गौतम ने हाथ जोड़कर उस वृद्ध ब्रह्मचारिणी से कहा ॥१७॥

गौतम ने कहा—तुम तपस्विनी, वृद्ध और गुणज्येष्ठ हो, मैं, अल्पज्ञ तथा अल्प वय वाला व्यक्ति जिस प्रकार तुम्हारा गुरु हो सकता हूँ ॥१८॥

पूढ़ा ने कहा—ऋतध्वज नाम का अर्ष्टियेण का प्रिय पुत्र था । वह बड़ा ही धूर, गुणशाली, बुद्धिमान् और क्षत्रिय धर्म का पालन करने वाला था । वह ऋतध्वज त्रिणी समय मुगया (सिकार) खेलने की प्रवृत्ति इच्छा से प्रेरित होकर वन में आया और इसी गुहा में विश्राम करने लगा । वह युवा, बुद्धिमान्, पुंगव, महाबलवान् ऋतध्वज यहाँ विश्राम कर रहा था कि उम ज्येष्ठ नृप की गन्धर्वराज की बन्धा सुश्यामा नामक अम्बरा ने देग दिया । राजा उमको देगकर कामागवन हो गया और वह राजा का दम्बर । महामति ! इन्द्रिये राजा का उम अम्बरा के साथ प्रेम-भाव था । राजेन्द्र की काम-विश्रामा जब दान्त हो गई तब उमने परिचय-भाषण कर अपने घर की ओर गये । महामन ! तदनन्तर मैं उम सुश्यामा के गर्भ से उत्पन्न हुई । तपोधन ! मुझको यही छोड़कर जानी हुई माता ने मृत्यु देर कहा—॥१९-२४॥

सुश्यामा ने कहा—अरे ! जो इस गुहा में प्रवेश करेगा वही तुम्हारा भर्ता होगा ॥२५॥

वृद्धा ने कहा—महामति ! इसने बाद यह कहकर वह मेरी माता पत्नी गई । इस कारण मात्र इस गुहा में आये हुए तुम सभी भी अन्य (अर्थात् पति से अन्य) नहीं हो सकते । मेरे पिता एक हजार अम्बरी बयं तक राज्य

सहस्राणि तयाऽशीति कृत्वा राज्यं पिता मम । अत्रैव च तपस्तप्त्वा ततः स्वामुपेयिवान् ॥२७॥
स्वर्गं यातेऽपि पितरि सहस्राणि तया दत्त । वर्षाणि भुविशार्दूलं राज्यं कृत्वा तया पर ॥२८॥
स्वर्गं यातो मम भ्राता अहमत्रैव संस्थिता । अहं ब्रह्मन्नाग्यवृत्ता न माता न पिता मम ॥२९॥
अहमात्मेश्वरो ब्रह्मन्निविष्टः' क्षत्रकयका । तस्माद्भजस्व मा ब्रह्मन्व्रतस्या पुण्यायिनीम् ॥३०॥

गौतम उवाच

सहस्रापुरह भद्रे मत्तस्त्वं वयसाऽधिका । अहं बालस्त्वं तु वृद्धा नैवाय घटते मयि ॥३१॥

वृद्धोवाच

त्वं भर्ता मे पुरा विष्टो नाग्यो भर्ता मतो मम । धात्रा दत्तस्तत्तस्त्वं मा न निराकर्तुमर्हति ॥३२॥
अथवा नेच्छसि मा स्वमप्रदुष्टामनुव्रताम् । ततस्त्यक्ष्यामि जीवं मे इदानीं तय पश्यत ॥३३॥
अपेक्षिताप्राप्तितो हि देहिना मरणं घरम् । अनुरक्तजनत्पामे पातकान्तो न विद्यते ॥३४॥

ब्रह्मोवाच

वृद्धायास्तद्वचं श्रुत्वा गौतमो धाययमब्रवीत् ॥३५॥

गौतम उवाच

अहं तपोविरहितो विद्याहीनो ह्याकिंचन । नाहं वरो हि योग्यस्तं नुत्पयो भोगवर्जित ॥३६॥

पालन कर रहा तपस्या कर स्वयं को कहे गये । मुनिगायल । पिता के स्वयं चले जाने पर एक हजार दस वष तक राज्य कर दूसरा मेरा माई भी स्वयं चला गया और मैं यही स्थित हूँ । ब्रह्मन् 'मैं अथ किसी वृत्त (व्यापारी गई) नहीं हूँ' न तो मेरी माता और पिता ही हूँ । इस समय मैं स्वयं अपनी स्वामिनी हूँ । ब्रह्मन् 'मैं क्षत्रिय-कन्या हूँ तपस्विनी हूँ' इसलिये पति की इच्छा करने वाली मुझ सदाचारिणी को तुम अपना लो ॥३६॥ ३०॥

गौतम ने कहा—भद्र ! मैं सहस्रायु हूँ तुम मुझसे आयु न अधिक हो मैं बालक हूँ तुम वृद्ध हो अतः हम दोनों का पारस्परिक सम्बन्ध उपयुक्त नहीं जब रहा है ॥३१॥

वृद्धा ने कहा—पहले से ही तुम मेरे भर्ता निदिष्ट (कहे गये) हो । ब्रह्मा ने तुम्हारे हाथों मुझ सौंप दिया । इसलिये मेरा अन्याय करवा तुम्हारे लिये उचित नहीं है । अथवा यदि तुम (निष्पाप) सदाचारिणी व्रतपरायण मुझको नहीं अपनाओगे तो अगो तुम्हारे देहते बखते मैं अपने प्राणा को छोड़ दूँगी । क्योंकि अपेक्षित (मनचाही) वस्तु को न पाने की अपेक्षा मनुष्या का मर जाना ही अच्छा है । और यह भी समझ लो कि अनुरक्त (प्रमी) जन के परित्याग म पापी का अंत भी नहीं है । अर्थात् प्रमी के परित्याग से अनन्त पाप होते हैं ॥३२॥ ३४॥

ब्रह्मा ने कहा—वृद्धा की जन बातों को सुनकर गौतम ने कहा ॥३५॥

गौतम ने कहा—मैं तपस्या विमूख अनिश्चित और धनहीन हूँ इसलिये कुरूप और भोगरहित मैं तुम्हारे घर घनने के योग्य नहीं हूँ । नाशिराहीन मुख और तपोहीन मैं क्या नरु मैं सबदा तुम्हारे लिए अयोग्य हूँ । इसलिये

अनासोऽहं किं करोमि अतपोविद्य एव च । तस्मात्सुरूपं सुविद्यामापाद्य प्रथमं शुभे ॥
पश्चात्ते वचनं कार्यं ततो वृद्धाऽश्वीद्विजम् ॥३७॥

वृद्धोवाच

मया सरस्वती देवी तोषिता तपसा द्विज । तयैवाऽऽयो रूपवत्यो रूपदाताऽग्निरेव च ॥३८॥
तस्माद्वागीश्वरी देवी सा ते विद्या प्रदास्यति । अग्निश्च रूपवान्देवस्तव रूपं प्रदास्यति ॥३९॥

ब्रह्मोवाच

एवमुक्त्वा गौतम त वृद्धोवाच विभावसुम् । प्रार्थयित्वा सुविद्यं तं सुरूपं चाकरोन्मुनिम् ॥४०॥
ततः सुविद्यं सुभग सुकान्तो, वृद्धां स पत्नीमकरोत्प्रोतियुक्तः ।
तया स रेमे बटूला मनोज्ञया, समाः सुखं प्रीतमना गुह्याम् ॥४१॥
कदाचित्तत्र वसतोर्दम्पत्योर्मुदतो गिरौ । गुह्याया मुनिशार्दूल आजग्मुर्मुनयोऽमला ॥४२॥
वसिष्ठवामदेवाद्या ये चाग्ये च महर्षय । भ्रमन्तः पुण्यतीर्थानि प्राप्नुवंस्तस्य तां गुह्याम् ॥४३॥
आगतास्तानुपोऽज्ज्ञात्वा गौतमः सह भार्यया । सत्कारमकरोत्तेषां जहसुस्तं च केचन ॥४४॥
ये बाला यौवनोन्मत्ता वयसा ये च मध्यमा । वृद्धां च गौतम प्रेक्ष्य जहसुस्तत्र केचन ॥४५॥

अष्टमः अङ्कः

पुत्रोऽयं तव पीत्रो वा वृद्धे को गौतमोऽभवत् । सत्यं वदस्व कल्पाणि इत्येव जहसुर्द्विजाः ॥४६॥

शुभे । पहले तुम मुझको रूपवान् और विद्यावान् बनाओ, पश्चात् मैं योग्य होकर तुम्हारी बातों का पालन करूँगा । यह सुनकर वृद्ध ने ब्राह्मण से कहा ॥३६-३७॥

वृद्ध ने कहा—द्विज । मैंने अपनी तपस्या से सरस्वती देवी को प्रसन्न कर लिया है, इसी प्रकार रूपवान् जलदेव (सरण) और रूपदाता अग्नि भी । इसलिये यह वागीश्वरी देवी तुम्हें विद्या और रूपवान् अग्नि तुम्हें रूप प्रदान करेगी ॥३८-३९॥

अहम् ने कहा—इस प्रकार उस गौतम से कहकर वृद्ध ने सूर्यदेव से प्रार्थना की और उनको प्रार्थना से प्रसन्न कर उस कुरूप भूति का रूपवान् और विद्यावान् बना दिया ॥४०॥ इस प्रकार रूपवान् बनने के बाद उस गुरुपुत्र विद्यान् और माग्यशाली ब्राह्मण ने उस वृद्धा को अपनी पत्नी बना लिया और उस गुह्या म उस गुन्दरी के साथ बहुत वर्षों तक आनन्दपूर्वक विहार किया ॥४१॥ मुनिशार्दूल । उस गिरि पर सानन्द विहार करने वाले दम्पति के पास किसी समय पवित्र मुनि लाग आये । वसिष्ठ, वामदेव आदि महर्षि जो अन्य महर्षियों के साथ पवित्र तीर्थों का भ्रमण कर रहे थे गौतम की उस गुह्या म पहुँचे ॥४२-४३॥ उन महर्षियों को अपना अतिथि जान कर भार्या सहित गौतम ने उनका आतिथ्य सत्कार किया । उनमें जो बाल यौवन की उमरा से मरे और आयु में मध्य श्रेणी के थे वे उस वृद्धा गौतम को देखकर हँस पड़े ॥४४-४५॥

अपिप्यो ने कहा—वृद्धे । यह गौतम तुम्हारा पुत्र है या पीत्र ? कल्पाणी । सत्य बनाओ, यह तुम्हारा कौन है, यह कहकर वे द्विज हँसने लगे । अहा । वृद्ध के लिये युवती विष तुल्य और वृद्धा के लिये युवक

विष वृद्धस्य युवती वृद्धाया अमृत युवा । इष्टानिष्टसमायोगो वृष्टोऽस्माभिरहो चिरात् ॥४७॥

ब्रह्मोवाच

इत्येवमूचिरे केचिद्वपत्यो भृश्वतोस्तदा । एवमुक्त्वा कृतात्मिन्या ययु सर्वे महर्षय ॥४८॥
ऋषीणां वचन श्रुत्वा उभावपि सुदुःखितौ । लज्जितौ च महाप्राज्ञौ गौतमो भार्गव्य सह ॥
पप्रच्छ मुनिशार्दूलमगस्त्यमृषिसत्तमम् ॥४९॥

गौतम उवाच

को देश किमु तीर्थं वा यत्र श्रेयं समाप्न्यते । शीघ्रमेव महाप्राज्ञ भुक्तिमुक्तिप्रदायकम् ॥५०॥

अगस्त्य उवाच

ब्रह्मभिर्मुनिभिर्ब्रह्मण्यया श्रुतमिदं वच । सर्वे कामास्तत्र पूर्णा गौतम्यो नात्र सशय ॥५१॥
तस्माद्गच्छ महाबुद्धे गौतमो पापनाशिनोम् । अहं त्वामनुयास्यामि यथेच्छसि तथा कुरु ॥५२॥

ब्रह्मोवाच

एतच्छ्रुत्वागस्त्यवाक्यं वृद्धया गौतमोऽभ्यगात् । तत्र तेषे तपस्तीव्रं पत्न्या स भगवानुयि ॥५३॥
स्तुतिं चकार देवस्य शर्मोविष्णोस्तथैव च । गङ्गा च तोययामास भार्गव्यै भगवानुयि ॥५४॥

अमृत तुल्य है इस प्रकार इष्ट (अच्छे) और अनिष्ट (दुरे) का संयोग हम लोगों ने बहुततमप के बाद देखा है ॥४६ ४७॥

ब्रह्मा बोले—कुछ मुनियों ने इस प्रकार की हास्यजनक बात उन दम्पतियों के सामने कहा । ऐसी हास्यजनक बातें बहुरे के सब महर्षि आतिथ्य रखकर ब्रह्म करने के बाद चले गये । ऋषियों की बातें सुनकर बुद्धिमान वे दोनों ही अत्यन्त दुःखी और लज्जित हो गये । भाषा के साथ गौतम, ऋषि अथवा अगस्त्य ऋषि से पूछा ॥४८ ४९॥

गौतम ने कहा—महाप्राज्ञ ! यह कौन सा देश अथवा तीर्थ है जहाँ जाकर कल्याण प्राप्त किया जा सकता है आप ग्रीष्म ही उस भुक्ति और मुक्ति देने वाले तीर्थ की बनलाइय ॥५०॥

अगस्त्य ने कहा—ब्रह्मन् ! शर्म-वचन वाल मुनियों के मुख से मैंने सुना है कि गौतमी के पास जाने से मनुष्य की सारी इच्छायें पूर्ण हो जाती हैं । इसमें संदेह नहीं । इसलिए महाबुद्धि ! तुम पापमाचिनी गौतमी के पास जाओ । मैं तुमको केवल पथ प्रदर्शन कर रहा हूँ । तुम जैसा चाहो वैसा करो ॥५१ ५२॥

ब्रह्मा बोले—अगस्त्य की उपयुक्त बातों का सुनकर वृद्ध पत्नी के साथ गौतम गौतमी के तट पर चला गया । वहाँ पर उस समय ऋषि ने पत्नी के सहित घोर वपस्या की । उस वक्तिसम्पन्न ऋषि ने इस प्रकार पत्नी के लिये धाम और ममबान् विष्णु की स्तुति की तथा गया को प्रसन्न किया ॥५३ ५४॥

गौतम उवाच

स्त्रिन्नात्मनामत्र भवे त्वमेव शरणं शिव । महभूमावध्वगानां विदधीव प्रियायुत ॥५५॥
उच्चावचानां भूतानां सर्वथा पापनोदन । सस्यानां घनवत्कृष्णं त्वमवग्रहशोपिणाम् ॥५६॥
विकुण्ठदुर्गतिं श्रेणिस्त्वं पीयूषतरङ्गिणी । अधोगतानां तप्तानां शरणं भव गौतमि ॥५७॥

ब्रह्मोवाच

ततस्तुष्टाऽब्रवद्वाक्यं गौतम वृद्धया युतम् । शरणागतदीनार्तं शरण्या गौतमी मुदा ॥५८॥

गौतम्युवाच

अभिपिञ्चस्व भार्या त्वं मञ्जलैर्मन्त्रसयुतं । कलशैरुपचारैश्च ततः पत्नी तव प्रिया ॥५९॥
सुरूपा चास्तुर्बाङ्गी सुभगा चारुलोचना । सर्वलक्षणसंपूर्णा रम्यरूपमवाप्स्यति ॥६०॥
रूपवत्या पुनस्त्वं वै भार्यया चाभिपेक्षित । सर्वलक्षणसंपूर्णं कान्तं रूपमवाप्स्यति ॥६१॥

ब्रह्मोवाच

तथेति गङ्गावचनाद्ययुक्तं तौ च चक्रतु । सुरूपतामुभौ प्राप्ता गौतम्याश्च प्रसादतः ॥६२॥
अभिपेक्षोदकं यच्च सा नदी समजायत । तस्या नाम्ना तु विख्याता वृद्धया मुनिसत्तम ॥६३॥
वृद्धा नदीति विख्याता गौतमोऽपि तथोच्यते । वृद्धगौतम इत्युक्तं ऋषिभिः समवाप्तिभिः ॥
वृद्धा तु गौतमी प्राह गङ्गा प्रत्यक्षरूपिणीम् ॥६४॥

गौतम ने कहा—इस ससार में आर्तजनो के लिये मरभूमि के मध्य यात्रा करने वाले पथिकों के रक्षक वृक्ष के समान है उमा सहित योकर जी । आप ही रक्षक हैं । वृष्ण ! अनावृष्टि से सूखते हुए पान के घेतो को जिस प्रकार मेघ हटा बना देता है उसी प्रकार तुम अघम पुरष के पापों को दूर कर सुखी बना देते हो । भगवति गौतमी । तुम अमृतमय तरंगों वाली और स्वर्ग ऋषी दुर्ग की सीढ़ी हो, इस समय अघम और आर्त मेरी रक्षा करो ॥५५-५७॥

ब्रह्मा ने कहा—गौतम की प्रार्थना सुनकर अकतवत्सत्र गौतमी ने प्रसन्न होकर वृद्ध भार्या के सहित शरण में आये दीन और आर्त गौतम से कहा ॥५८॥

गौतमी ने कहा—तुम मन्त्रोच्चारण वृक्षस्थायन और अत्याय यात्रिक उपचारों और कल्याण मेरे लिये हुए मेरे जल से अपनी भार्या का अभिषेक करो । ऐसा करने से तुम्हारी प्रिय पत्नी सर्वोद्भूतमुन्दरी, सुरूपा सीमागन्धवती मुनेचना और सब लक्षणों से युक्त हो मनोहर रूप को प्राप्त कर लेगी । पुनः अपनी रूपवती भार्या द्वारा अभिषिक्त होने पर तुम भी सुन्दर रूप प्राप्त कर लोगे ॥५९-६१॥

ब्रह्मा ने कहा—ऐसा ही होगा यह कहकर गया के कथनानुसार उन दोनों ने परस्पर अभिषेक किया, त्रिमम गौतमी की वृषा से वे दोनों अत्यन्त रूपवान् हो गये । अभिषेक कर जो जड़ था उससे एक नदी उत्पन्न हो गई । मुनि २८३ । वृद्ध उग्र वृद्धा व नाम से वृद्धानदी नाम से प्रसिद्ध हो गई । गौतम मी वृद्धा के साथ रहने के कारण मृत्योगी ऋषियों के कथनानुसार वृद्ध गौतम नाम से प्रसिद्ध हो गया । उग्र वृद्धा ने प्रत्यक्ष रूपवाली गौतमी गंगा से कहा ॥६२-६४॥

बृद्धोवाच

मन्नाम्नीयं नदी देवि वृद्धा चेत्यभिधीयताम् । त्वया च संगमस्तस्यास्तस्यास्तीर्यमनुत्तमम् ॥६५॥
 श्यसौभाग्यसंपत्तिपुत्रपौत्रप्रवर्धनम् । आयुरारोग्यकल्याणं जयप्रीतिविवर्धनम् ॥
 स्नानदानादिहोमैश्च पितॄणां पावनं परम् ॥६६॥

ब्रह्मोवाच

अस्त्वित्याह च तां गङ्गा सुबृद्धां गौतमप्रियाम् । गौतमस्यापितं लिङ्गं वृद्धानाम्नेव कीर्तितम् ॥६७॥
 तत्रैव च भुवं प्राप्तो बृद्धया मुनिसत्तम । तत्र स्नानं च दानं च सर्वाभीष्टप्रदायकम् ॥६८॥
 ततः प्रभृति तत्तीर्थं वृद्धासंगममुच्यते ॥६९॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये वृद्धासंगमाद्युभयतटसप्तदशतीर्थवर्णनं नाम
 सप्ताधिकशततमोऽध्यायः ॥१०७॥

गौतमीमाहात्म्येऽष्टात्रिंशोऽध्यायः ॥३८॥

अथाष्टाधिकशततमोऽध्यायः

इ त्रातीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

इलातीर्थमिति ख्यातं सर्वसिद्धिकरं नृणाम् । ब्रह्महत्यादिपापानां पावनं सर्वकामदम् ॥१॥

बृद्धा ने कहा—देवि । यह नदी मेरे नाम पर 'वृद्धा' इस नाम से पुकारी जाय और इसका तुम्हारे साथ
 संगम हो तथा यह संगम-तीर्थ परमोत्तम हो । यहाँ स्नान, दान और होम करने से यह रूप, सौभाग्य, संपत्ति, पुत्र,
 पौत्र बढ़ाने वाला, आयु, आरोग्य, कल्याण, विजय और प्रेम बढ़ाने वाला, तथा पितरों को पवित्र कर देने
 वाला हो ॥६५-६६॥

ब्रह्मा ने कहा—गंगा ने उस सुखवृद्धा, गौतम भार्या से कहा कि ऐसा ही होगा । गौतम द्वारा स्थापित
 लिङ्ग भी वृद्धा नाम से ही प्रसिद्ध हुआ । यही उस वृद्धा के साथ गौतम को अत्यन्त आनन्द प्राप्त हुआ था । उस
 तीर्थ में स्नान और दान करने से सब अभीष्ट पदार्थ प्राप्त होते हैं । तब मे वह तीर्थ वृद्धासंगम के नाम से प्रसिद्ध
 हो गया ॥६७-६९॥

श्री ब्रह्ममहापुराण में वृद्धासंगमतीर्थमाहात्म्यवर्णनं नामक एक सौ सातवाँ अध्याय समाप्त ॥१०७॥

अध्याय १०८

इलातीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा ने कहा—मनुष्यों को सब प्रकार की सिद्धि देने वाला इलातीर्थ नामक एक विख्यात पवित्र तीर्थ
 है, जो ब्रह्महत्या आदि पापों को भी दूर कर मनुष्य की सब प्रकार की इच्छाओं पूर्ण करता है । वैवस्वत वश में इस

वैवस्वतान्वये जात इलो नाम जनेश्वर । महत्या सेनया सार्धं जगाम मृगयावनम् ॥२॥
परिवधाम गहन बहुव्यालसमाकुलम् । नानाकारद्विजयुत विटपं परिशीभितम् ॥३॥
वनेचर नृपश्रेष्ठो मृगयागतमानस । तत्रैव मतिमाधत्त इलोऽमात्यानाम्रवीत् ॥४॥

इल उवाच

गच्छन्तु नगर सर्वे मम पुत्रेण पालितम् । देश कोश बल राज्य पालयन्तु पुनश्च तम् ॥५॥
वसिष्ठोऽपि तथा यातु आदायान्नीन्पितेव न । पत्नीभि सहितो धीमानरण्येऽहं वसाम्यय ॥६॥
अरण्यभोगभुग्भिश्च वाजिवारणमानुषं । मृगयाशीलिभि कैश्चिद्यान्तु सर्व इत पुरीम् ॥७॥

ब्रह्मोवाच

तथेत्युक्त्वा ध्युस्तेऽपि स्वयं प्रायाच्छर्नंगिरिम् । हिमवन्त रत्नमय वसस्तत्र इलो नृप ॥८॥
वदशं कन्दर तत्र नानारत्नविचित्रितम् । तत्र यक्षेश्वर कश्चित्समन्युरिति विश्रुत ॥९॥
तस्य भार्या समानाम्नी भर्तुं व्रतपरायणा । तस्मिन्वसत्यसौ यक्षो रमणीये मगोत्तमे ॥१०॥
मृगरूपेण व्यचरद्भार्यया स महामति । स्वेच्छया स्ववने यक्ष श्रीडते नृत्यगीतकं ॥११॥
इत्थं स यक्षो जानाति मृगरूपधरोऽपि च । इलस्तु त न जानाति कन्दर यक्षपालितम् ॥१२॥

मामक एक नरेश हुआ । एक समय वह बहुत बड़ी सेना लेकर शिकार खेलने के लिये वन में गया । वह अनेकों सौ स मरे विभिन्न आकार वाले पक्षियों से व्याप्त अनेक प्रकार के वृक्षा से सुसोभित उस गहन वन में घूमने लगा । उस वन में घूमते हुए मृगयाप्रमी नृपश्रेष्ठ ने मन में उसी वन में रहने की भावना उत्पन्न हुई । अतः उन्होंने अपने मंत्रिया से कहा ॥१४॥

इल ने कहा—तुम सब मेरे पुत्र द्वारा रक्षित नगर को चले जाओ । वहाँ जाकर देश कोश, सेना राज्य और उस मरे पुत्र की रक्षा करो । पितृमुल्य गुरु वसिष्ठ भी अग्नि और रात्रियाँ को साथ लेकर चले जाय । मैं यहीं जगली पक्षियों को शिकार रह सकने वाले अपन घोड़े से अनुचरा आघेटकुशल हाथी घोड़ और मनुष्या के साथ निवास करूँगा । और सब यहाँ से अपनी पुरी (राजधानी) को छोड़ जायें ॥५-७॥

ब्रह्मा ने कहा—जैसी आज्ञा यह कहकर वे सभी चले गये । वह राजा कुछ भी धीरे धीरे रत्नमय हिमालय पहाड़ की ओर चल पड़ा । वहाँ जाकर उसने डरा डाल दिया ॥८॥ उसने एक दिन नाना रत्नों से सुसज्जित कन्दरा देखी । उस कन्दरा में कोई शुभन्यु नाम का यक्षराज रहता था ॥९॥ उसकी समा नाम की पतिव्रता भार्या थी । पत्नी सहित वह यक्ष उस परम रम्य हिमगिरि पर रहता था ॥१०॥ वह महामति पक्ष इच्छानुरूप मृगरूप धारण कर अपनी भार्या के साथ नृत्य गान करता हुआ स्वेच्छया बिहार करता था ॥११॥ इस प्रकार मृग रूप धारण करने पर भी वह यक्ष अपनी कन्दरा को अच्छी तरह जानता था परन्तु इल पक्ष द्वारा अघिष्ट उस कन्दरा के विषय

यक्षस्य गेहं विपुलं नानारत्नविचित्रितम् । तत्रोपविष्टो नृपतिर्महत्या सेनया वृत ॥१३॥
वास चक्रे स तत्रैव गेहं यक्षस्य धीमतः । स यशोऽधर्मकोपेन भार्यया मृगरूपधृक् ॥१४॥
इलं जेतुं न शक्नोमि याचितो न वदाति च । हृतं गेहं ममानेन किं करोमीत्यचिन्तयत् ॥१५॥
युधि मत्तं कथं हन्या चेति स्थित्वा स यक्षराट् । आत्मीयान्प्रेषयामास यक्षाञ्चरान्धनुर्धरा ॥१६॥

यक्ष उवाच

युद्धे जित्वा च राजानमिलमुद्धतवन्तिनम् । गृहाद्ययाऽन्यतो याति मम तत्कर्तुमर्हय ॥१७॥

ब्रह्मोवाच

यशोऽश्वरस्य तद्वाक्याद्यक्षास्ते युद्धदुर्मदाः । इलं यत्काङ्क्षुवन्तश्च निर्गच्छास्माद्गृहालयात् ॥१८॥
न चेद्युद्धात्परिष्यष्ट पलाय्यं वयं गमिष्यसि । तद्यक्षवचनात्कोपाद्युद्धं चक्रे स राजराट् ॥१९॥
जित्वा यक्षान्धनुर्विधानुवासं दश दाबेरी । यशोऽश्वरो मृगो भूत्वा भार्ययाऽपि धने वसन् ॥२०॥
हृतगेहो वनं प्राप्नोति हृतभृत्यः स यक्षिणीम् । प्राह चितापरो भूत्वा मृगोरूपधरा प्रियाम् ॥२१॥

यक्ष उवाच

राजाऽयं दुर्मेना कान्ते व्यसनात्सर्वतमानसः । कथमायाति विपदं तत्रोपायो विचिन्तयताम् ॥२२॥
पापधिव्यसनान्तानि राज्याप्रखिलभूभुजात् । प्रापयोमायनं सुभ्रूर्मुगी भूत्वा मनोहरा ॥२३॥

मे अनमित्र-सा या ॥१२॥ यक्ष का वह गृह बहुत बड़ा और नाना रत्नों से सुसज्जित था । अपनी बहुत बड़ी सेना के साथ वह नृपति उस बुद्धिमान् यक्ष के घर में निवास करने लगा । मृगरूप धारी भार्या के सहित वह यक्ष इस अभ्यास को देखकर अभ्यन्त क्रुपित हुआ । वह सोचने लगा कि इस इल को मैं युद्ध में जीत नहीं सकता मीनने पर यह दे नहीं रहा है अब क्या करूँ । इस उमत्त को युद्ध में बँस हराऊँ—यह सोचकर उस यक्ष ने अपने धनुष पर गुर मश सीनिका को लटन के लिय भेजा और कहा ॥१३ १६॥

यक्ष ने कहा—सैनिक । राजा इल को—जिसके पास बहुत से मतवाल हाथी हैं—युद्ध में जीत कर जिस किसी प्रकार वह मेरे घर से अभ्यन्त चला जाय वही प्रयत्न करना ॥१७॥

ब्रह्मा ने कहा—यथाधिपति की वाता को मुनकर वे युद्ध दुर्मद यन्त्र उत्तरे पाम गय और कहा कि हे राजन् । तुम इस गृह-गृह स निकल जाओ । नहीं तो युद्ध में हार जाने पर तुम मृगरूप कहाँ जा सकोगे । यक्षा की अगिष्ट वातो को मुनकर यह सम्राट् इल क्रुपित हो युद्ध करने लगा । युद्ध में जयन अनेका यक्षा को हराकर दगराजि तत्र आनन्दपूर्वक उस गृह में रहा । इधर वह मृगरूपधारी यक्ष जो अपनी भार्या के साथ वन में निवास कर रहा था गृह विहीन और जन विहीन हो गया । उसने वन में मुगी रूप धारी अपनी यक्षिणी भार्या से अभ्यन्त चिन्तित होकर कहा ॥१८ २१॥

यक्ष ने कहा—कान्ते । यह दुष्ट राजा जिस प्रकार विपत्ति पतत हो सकता है इमगं लिय उपाय सोचना चाहिये । अधिपतर मन्त्रून् भूमिपाला का शासन इसी प्रकार अन्याय और अध्वसन से चञ्चित है । हे सुन्दर मो वाली । तुम मनोहर मुगी बनकर इस राजा को उमावन में पहुँचा दो । जब यह उस वन में घुमगा निश्चय ही

प्रविशेत्तत्र राजाऽय स्त्री भविष्यत्यसशयम् । करणीय त्वया भद्रे न चैतद्युज्यते मम ॥
अहं तु पुरुषो येन त्वं पुन स्त्री च यक्षिणी ॥२४॥

यक्षिण्युवाच

कथं त्वया न गन्तव्यमुमावनमनुत्तमम् । गतेऽपि त्वयि को दोषस्तन्मे कथय तत्त्वतः ॥२५॥

यक्ष उवाच

हिमवत्पर्वतश्रेष्ठ उमया सहितं शिव । देवगणैरनुवृतो विचचार ययासुखम् ॥
पार्वती शकरं ग्राहं कदाचिद्रहसि स्थितम् ॥२६॥

पार्वत्युवाच

स्त्रीणामेव स्वभावोऽस्ति रतं योपाधितं भवेत् । तस्मान्मे निपतं देशमाजया रक्षितं तव ॥२७॥
देहि मे त्रिदशेशान् उमावनमिति श्रुतम् । विना त्वया गणेशेन कार्तिकेयेन नन्दिना ॥२८॥
यस्त्वनं प्रविशेन्नाथ स्त्रीत्वं तस्य भवेदिति ॥२९॥

यक्ष उवाच

इत्याशोमावने दत्ता प्रसन्नेनेन्दुभीलिना । किं करोमि पुमान्कान्ते त्वया प्रणयनादितः ॥
तस्मान्मया न गन्तव्यमुमाया वनमुत्तमम् ॥३०॥

स्त्री हो जायगा । भद्र ! यह काय तुम्हारे ही करने योग्य है मुझसे यह नहीं हो सकता । क्योंकि मैं पुरुष हूँ इसलिये
वहाँ नहीं जा सकता । तुम तो यक्षिणी स्त्री हो ॥२२ २४॥

यक्षिणी ने कहा—तुम उस परग मनोहर उमावन में क्यों नहीं जा सकते ? तुम्हारे जावे से क्या
क्षतिष्ट होगा ? उसको यथाय रूप से मुझको बहो ॥२५॥

यक्ष ने कहा—एक समय पर्वतशिरोमणि हिमालय पर उमा के साथ शकर जी मुख पूर्वक धमन कर
रहे थे उनका पीछ पीछ देवता भी थे । किसी समय पार्वती म एकांत में बैठ शकर से कहा ॥२६॥

पार्वती ने कहा—स्वयं का यह स्वभाव है कि अत्यन्त शुभ रूप से उनका पुरुष के साथ सहवास
हो । इसलिये देवगण । भद्रे लिये एक नियत रूप से मुक्त और अपनी आत्मा से मुग्ध रहान दीजिये । वह
उमावन नाम से प्रसिद्ध रहे । नाथ ! तुमको यणन कार्तिक्य और नन्दी को छाडकर जो कोई इतर व्यक्ति
यहाँ प्रवेश करे वह अवश्य स्त्रीत्व प्राप्त करे (स्त्री हो जाय) ॥२७ २९॥

यक्षगोला—शकर ने प्रसन्न होकर इस प्रकार की आत्मा दे दी । कान्ते ! मैं पुरुष हूँ इसलिये विषय
हूँ क्या करूँ । तुम न मुझसे प्यार से पूछा है इसलिये यह रहस्य बता दिया । इसलिये उस परम रमणीय उमावन
में मेरा जाना उचित नहीं है ॥३०॥

ब्रह्मोवाच

तद्भूतं वचनं श्रुत्वा यक्षिणी कामरूपिणी । मृगी भूत्वा विशालाक्षी इत्यस्य पुरतोऽभवत् ॥३१॥
यक्षस्तु संस्थितस्तत्र ददर्श लो मृगीं तदा । मृगयासक्तचित्तो वै मृगीं दृष्ट्वा विशेषतः ॥३२॥
एक एव ह्यारूढो नियमौ तत्र मृगो मनु । साऽऽकर्षत शनैस्तं तु राजानं मृगयाकुलम् ॥३३॥
शनैर्जंगमः सा तत्र यदुमावनमुच्यते । अदृश्या तु मृगी तस्मै दर्शयन्ती ववचित्त्ववचित् ॥३४॥
तिष्ठन्ती चैव गच्छन्ती धावन्ती च विभोतवत् । हरिणी चपलाक्षी सा तमाकर्षदुमावनम् ॥३५॥
अनुप्राप्तो ह्यारूढस्तत्प्राप स उमावनम् । उमावनं प्रविष्टः तं ज्ञात्वा सा यक्षिणी तदा ॥३६॥
मृगोरूपं परित्यज्य यक्षिणी कामरूपिणी । दिव्यरूपं समास्याय चाशोकतरुसन्धिम् ॥३७॥
तच्छालालम्बितकरा दिव्यगन्धानुलेपना । दिव्यरूपधरा तन्वी कृतकार्या समा तदा ॥३८॥
हसन्ती नृपतिं प्रेक्ष्य ध्यातुं हृद्यत तदा । मृगीमालोकयन्त तं चपलाक्षमिल तदा ॥३९॥
भर्तुर्वाक्यमशेषेण स्मरन्तो प्राह भूमिपम् ॥४०॥

समोवाच

ह्यारूढाऽबला तन्वि वव एवैव तु गच्छति । पुरपत्यं च शेषेण इले कमनुयात्यसि ॥४१॥

ब्रह्मोवाच

इलेति वचनं श्रुत्वा राजाऽसौ व्रीधमूर्च्छितः । यक्षिणीं भर्त्सयित्वाऽसौ तामपृच्छन्मृगीं पुनः ॥४२॥

ब्रह्मा बोले—पति की बातें सुनकर इच्छानुकूल रूप परिवर्तन करनेवाली यक्षिणी दीर्घलोचन मृगी बनकर राजा इले के सामने आई। वही बैठे हुए राजा ने उस समय मृगी और वक्ष को देखा। उस मृगी को देखकर मृगया प्रेमी राजा विशेष रूप से आकृष्ट हो गया। वह अकेलाही घोड़े पर सवार होकर उस मृगी के पीछे निकल पड़ा। उस मृगी से धावेट के लिये उतावले राजा को अपने वक्ष में कर लिया। वह धीरे धीरे उस स्थान पर गई जो उमा वन कहा जाता था। वह वही मृगी अपने को प्रवृत्त करती बन्नी छिपाती बन्नी, बैठती बन्नी चलती और बन्नी ठरी हुई सी दोड़ती थी। इस प्रकार अनेको हाव भाव दिखाती हुई वह चपल नन्वा वाली मृगी उस राजा को उमा वन तक सींच ल गई। राजा अद्वारूढ़ हो उसके पीछे पीछे उस उमा वन तक चला गया। उस समय जब उस यक्षिणी ने राजा को उमा वन में फँसा हुआ जान लिया तब वह काम रूपिणी यक्षिणी मृगीरूप छोड़ दिव्यरूप धारण कर अयोध वक्ष के निवृत्त शाखा को हाथ में पकड़ कर सजी हो गई। दिव्य सुगन्धित लेपा को अंग में लगाए हुई दिव्य रूप वाली वह तन्वी समा अपने को कृतकृत्य सी समझने लगी। तब वह चपल नन्वा वाला बक्ष माँदा अश्वारोही मृगी को इधर उधर देखने लगा। इस प्रकार विस्मित राजा को देखकर वह हँसने लगी और अपने पति (वक्ष) की बातों को पूनरूप से स्मरण करती हुई राजा से बोली ॥३१-४०॥

समा बोली—हृष्टाऽमृगी! घोड़े पर सवार होकर अबला तुम अकेले कहाँ जा रही हो? इले। पुरप-वेद बनाकर किस प्रेमी के पीछे पागल हो रही हो? ॥४१॥

ब्रह्मा बोले—यह सुनकर वह राजा क्रोध से पागल हो उठा। पुनः यक्षिणी को बुरा मन्त्र कहकर उठने पर

तथाऽपि यक्षिणी प्राह इले किमनुवीक्षते। इलेति वचनं श्रुत्वा धृतचापो ह्यस्थितः ॥४३॥
 क्रुपितो दर्शयामास त्रैलोक्यविजयीं धनुः। पुनः सा प्राह नृपतिं महात्मानमिले स्वयम् ॥४४॥
 प्रेक्षस्व पश्चान्मा ब्रूहि असत्या सत्यवादिनीम्। तदा चाऽऽलोकयद्राजा स्तनीं तुङ्गो भुजान्तरे ॥४५॥
 किमिदं मम संजातमित्येव चकितोऽभवत् ॥४६॥

इलोवाच

किमिदं मम संजातं जानीते भवती स्फुटम्। वद सर्वं यथातथ्यं त्वं का वा वद सुव्रते ॥४७॥

यक्षिण्युवाच

हिमवत्कंदरुधेष्ठे समन्पूर्वसते पतिः। यक्षाणामधिपः श्रीमास्तद्भार्याऽहं तु यक्षिणी ॥४८॥
 यत्कदरे भवान्राजा तूषविष्टः सुशोतले। यस्य यक्षा हता मोहात्स्वया हि संगरं विना ॥४९॥
 ततोऽहं निर्गमार्थं ते मृगी भूत्वा उमायनम्। प्रविष्टा त्वं प्रविष्टोऽसि पुरा प्राह महेश्वरः ॥५०॥
 यस्त्वत्र प्रविशोन्नन्दः पुमान्त्रोत्वमवाप्स्यति। तस्मात्त्रोत्वमवाप्तोऽसि न त्वं दुःखितुमर्हसि ॥
 प्रौढोऽपि कोऽन जानाति विचित्रभवितव्यताम् ॥५१॥

ब्रह्मोवाच

यक्षिणीवचनं श्रुत्वा ह्यारुढस्तदाऽपतत्। तमाश्वत्थं पुनः संव यक्षिणी वाचयन्प्रवीत् ॥५२॥

उस मृगी के विषय में पूछा। पूछने पर यक्षिणी ने कहा—'इले'। क्या दूढ़ रही हो? 'इले' ऐसा संबोधन सुनकर अस्त्र पर बँडे बैठे, राजा ने क्रुपित होकर अपना त्रैलोक्य-विजयी धनुष दिलाया। फिर यक्षिणी ने महात्मा इल से कहा 'स्वयं अपने का देख लो, पश्चात् मुझे सत्यवादिनी या असत्यवादिनी कहो'। सब राजा ने अपनी मुजाआ के बीच उमडे हुए स्तनी को देखा। आह! 'यह क्या हो गया' इस प्रकार वह आश्चर्यचकित हो गया ॥४२-४६॥

इला ने कहा—यह मुझे क्या हो गया, इस बात को तुम अच्छी तरह जानती हो। मुझसे सब ठीक ठीक रहो। सुव्रते! तुम कौन हो यह भी बताओ ॥४७॥

यक्षिणी ने कहा—हिमालय की रमणीय कन्दरा में मेरा स्वमन्व नामक पति रहता है जो यशो का राजा और अत्यन्त श्रीमान् है। मैं उसी की भार्या यक्षिणी हूँ। जिस अतिशोतल रम्य बन्दरा में आप राजा बन कर बँडे थे और जिसने यक्षा को आपने प्रमाद वश विना युद्ध के ही मार डाला। उसके कारण मैं आपको वहाँ से निरालने के लिये मृगी बन कर इस उमावन में प्रविष्ट हुई। मेरे पीछे तुम भी श्रुत आये। कुछ समय पहले रात्रि ने पार्वती से कहा था कि जो पूर्व पुरण यहाँ प्रवेश करेगा वह स्त्रीरूप प्राप्त करेगा। इस प्रकार तुम स्त्री हो गये हो, तुम्हें इस विषय में दुःखित होने की आवश्यकता नहीं। इस समार में कोई अति चतुर ध्यनिनी विविध भवितव्यता को नहीं जानता है ॥४८-५१॥

ब्रह्मा बोले—यक्षिणी की बात सुनकर वह घोडे पर से गिर पड़ा। उसे सान्त्वना देकर पुनः यक्षिणी उससे कहने लगी ॥५२॥

यक्षिण्युवाच

स्त्रीत्य जात जातमेव न पुस्त्व कर्तुमर्हसि । गृहाण विद्यां स्त्रीयोग्या नृत्य गीतमलकृतिम् ॥
स्त्रीलालित्य स्त्रीविलास स्त्रीकृत्य सर्वमेव तत् ॥५३॥

ब्रह्मोवाच

इला सर्वमयावाप्य यक्षिणीं वाक्यमब्रवीत् ॥५४॥

इलोवाच

को वा भर्ता किं तु कृत्य पुन पुस्त्व कथं भवेत् । एतद्वदस्व कल्याणी दृष्टार्ताया विशेषत ॥
भार्तानामार्तिशमनाच्छ्रेयो नाम्नाधिकं भवति ॥५५॥

यक्षिण्युवाच

बुध सोमसुतो नाम धन्वादेस्माञ्च पूर्वत । आश्रमस्तस्य सुभगे पितर नित्यमेष्यति ॥५६॥
अनेनैव पया सोम पितर स सुयो गृह । द्रष्टुं याति ततो नित्यं नमस्कृतुं सर्वं च ॥५७॥
यदा याति बुध शान्तस्तदाऽऽत्मानं च दर्शय' । त दृष्ट्वा स्व तु सुभगे सर्वकामानवाप्स्यसि ॥५८॥

ब्रह्मोवाच

तामाश्वस्य तत सुभूर्यक्षिण्यन्तरधीयत । यक्षिणी सा समाचष्ट यक्षोऽपि सुखमाप्तवान् ॥५९॥ १

यक्षिणी ने कहा—अब स्त्रीत्व हो गया तो तो रहेंगे ही तुम किसी भी प्रकार इसको पुस्त्व में बदल नहीं सकते हो । अर्थात् अब स्त्री से पुरष नहीं बन सकते । अब स्त्रीजनोक्ति नृत्य गीत अलंकार स्त्रियों के हावभाव सौन्दर्य आदि सम्पूर्ण स्त्री योग्य कलाओं को मुझसे सीख लो ॥५३॥

ब्रह्मा ने कहा—इला सब कलाओं को यक्षिणी से सीखकर पुन यक्षिणी से बोली ॥५४॥

इला बोली—मेरा पति कौन होया मुझे क्या करना होया पुन मैं पुष्टत्व कैसे प्राप्त करूंगी । इन बातों को विशेष रूप से मुझ तु लो को बतलाओ । तु लियों के दुख को दूर करने की अपेक्षा अधिक पुण्य इस सत्कार में रही भी नहीं है ॥५५॥

यक्षिणी ने कहा—सुभगे ! सोमपुत्र बुध का इस वन में पूर्व की ओर आश्रम है । वह प्रतिदिन पिता के पास जाने हैं । वह बुध (मह) इसी मार्ग से पिता को देखने और प्रणाम करने के लिये प्रतिदिन जाते हैं । जब शान्त बुध इस मार्ग से जाने लगे तो तुम अपने को दिखाओ । सुभगे ! तुम उनको देखकर (परिचय प्राप्त कर) अवश्य सम्पूर्ण इच्छाओं को प्राप्त कर सकोगे ॥५६-५८॥

ब्रह्मा ने कहा—इस प्रकार उसको समझा-बुझाकर वह सुन्दर भौ बाली यक्षिणी अतृप्त हो गई । उसने अपने पति (यक्ष) से सारी घटना सुना दी । यक्ष ने भी यह सुनकर सुख को प्राप्त किया । जो वही इल की सेना पट्टी

इलसैन्य च तत्राऽऽसीत्तद्गत च यथासुखम् । उमावनस्थिता चेला गायन्ती नृत्यती पुन ॥६०॥
 स्त्रीभावमनुचेष्टन्ती स्मरन्ती कर्मणी गतिम् । कदाचित्क्रियमाणे तु इलया नृत्यकर्मणि ॥६१॥
 तामपश्यद्बुधो धीमान्पितर गन्तुमुद्यत । इला दृष्ट्वा गतिं त्यक्त्वा तामागत्याग्नवीद्बुध ॥६२॥

बुध उवाच

भार्या भव मम स्वस्था सर्वाभ्यस्त्व प्रिया भव ॥६३॥

ब्रह्मोवाच

बुधवाक्यमिला भक्त्या त्वभिनन्द्य तथाऽकरोत् । स्मृत्वा च यक्षिणीवाक्यं ततस्तुष्टाऽभवन्मुने ॥६४॥
 बुधो रेमे तथा प्रीत्या नीत्वा स्वस्थानमुत्तमम् । सा चापि सर्वभावेन तोषयामास तं पतिम् ॥६५॥
 ततो बहुतिथे काले बुधस्तुष्टोऽवदत्प्रियाम्

बुध उवाच

किं ते द्वेय मया भद्रे प्रिय यन्मतसि स्थितम् ॥६६॥

ब्रह्मोवाच

तद्वाक्यसमकालं तु पुत्रं देहीत्यभाषत । इला बुधं सोमसुतं प्रीतिमन्तं प्रियं तथा ॥६७॥

बुध उवाच

अभीष्टमेतन्मद्विषं तथा प्रीतिसमुद्भवम् । पुत्रस्ते भविता तस्मात्सप्रियो लोकविधुत ॥६८॥

हुई थी वह अपनी राजधानी को मुलपूवक लौट गई । (इधर इला उस उमावन में रहने लगी । वह कभी गाती नाचती पुन अपने वाम की गति का स्मरण करती हुई स्त्री-मुलम कानाओं की इच्छा करती थी । किसी समय इला नृत्य कर रही थी उसी समय बुद्धिमान् बुध पिता ने पास जाने को तैयार थे । उसको देखकर उन्होंने अपनी यात्रा स्थगित कर दी और इला के पास आकर कहा ॥५९ ६२॥)

बुध ने कहा—तुम मेरी प्रिय भार्या बन जाओ । तुम सब स्थियों से अधिक प्रिय बनो ॥६३॥

ब्रह्मा ने कहा—इला ने बुध की बातों का आदर के साथ समर्थन किया और उसकी भार्या बन गई । मुने ! वह यक्षिणी की वाताका स्मरण कर अत्यन्त प्रसन्न हुई । बुध उसको अपने उत्तम स्थान पर लिवा ले गये और प्रीतिपूवक उसके साथ विहार करने लगे । उसने भी प्रत्येक प्रकार से अपने पति को प्रसन्न किया । इस प्रकार बहुत समय बीत जाने पर बुध ने प्रसन्न होकर अपनी प्रिया से कहा ॥६५॥

बुध ने कहा—भद्रे ! तुमको क्या दू ? तुम्हारे मन में जिस प्रिय वस्तु की इच्छा हो, वही मैं अवश्य प्रदान करूँगा ॥६६॥

ब्रह्मा ने कहा—बुध की बातें अभी समाप्त नहीं हुई थी कि 'पुत्र दीजिये, ऐसा उसने अपने प्रिय प्रेमी सोमपुत्र बुध से कहा ॥६७॥

बुध ने कहा—मेरा यह तुम्हारे प्रति अत्यन्त प्रेम के कारण निवृत्ता हुआ बीयें अमोघ है । इसलिये तुमको

सोमवशकर श्रीमानादित्य इव तेजसा । बुद्ध्या बृहस्पतिसम क्षमया पृथिवीसम ॥६९॥
वीर्येणाऽऽजी हरिरिव कोपेन हृतभुग्यया ॥७०॥

ब्रह्मोवाच

तस्मिन्नुत्पद्यमाने तु बुधपुत्रे महात्मनि । जयशब्दश्च सर्वत्र त्वासीच्च सुरवेशमनि ॥७१॥
बुधपुत्रे समुत्पन्ने तत्राऽऽजगम् सुरेश्वरा । अहमप्यागम तत्र मुदा युक्तो महामते ॥७२॥
जातमात्र सुतो रावमकरोत्स पृथुस्वरम् । तेन सर्वेऽप्यवोचन्वं सगता ऋषय सुरा ॥७३॥
यस्मात्पुङ्खरवोऽस्येति तस्मादेव पुङ्खरवा । स्यादित्येव नाम चक्रु सर्वे सतुष्टमानसा ॥७४॥
बुधोऽप्यध्यापयामास क्षात्रविद्यां सुत शुभाम् । धनुर्वेद सप्रयोगं बुध प्रादात्तदाऽऽत्मजे ॥७५॥
स शीघ्रं वृद्धिमगमच्छुक्लपक्षे यथा शशो । स मातरं दुःखयुता समीक्ष्येला महामति ॥
नमस्थाय विनीतात्मा इलामेलोऽश्वोदिदम् ॥७६॥

ऐल उवाच

बुधो मातर्मम पिता तव भर्ता प्रियस्तथा । अहं च पुत्र कर्मण्य कस्मात्ते मानसो ऽवर ॥७७॥

इलोवाच

सत्यं पुत्रं बुधो भर्ता त्वं च पुत्रो गुणाकर । भर्तृपुत्रकृता चिन्ता न ममास्ति कदाचन ॥७८॥
तथाऽपि पूर्वजं किञ्चिद्दुष्टं स्मत्वा पुन पुन । चिन्तयेय महाबुद्धे ततो मातरमब्रवीत् ॥७९॥

लोक विख्यात क्षत्रिय पुत्र होगा । वह सोमवश की नींव डालने वाला बुद्धिमान् तेज मे आदित्य के समान बुद्धि मे बृहस्पति के समान क्षमा मे पृथिवी के समान युद्ध मे पराक्रम प्रदर्शन मे विष्णु के समान और वीर्य मे अग्नि के समान होगा ॥६८-७०॥

ब्रह्मा ने कहा—उस महात्मा बुध पुत्र के उत्पन्न होने पर स्वर्ग मे सर्वत्र जयध्वनि होने लगी । बुध-पुत्र के उत्पन्न होने पर वही श्वेता उपस्थित हो गये । महामति । मैं भी वही प्रसन्न होकर आया । उस बालक ने उत्पन्न होते ही अग्नि जैसे स्वर से शब्द किया । इसलिये सब देवताओं और ऋषियों ने मिलकर कहा । यत इमं वा एव (ध्वनि) पुष्ट (गम्भीर) है इसलिये इसका नाम पुरुरवा रखा जाय । इस प्रकार विचार विमश कर प्रसन्नतापूर्वक सबने उसका नाम पुङ्खरवा रख दिया । बुध ने भी अपने पुत्र को शुभ क्षात्रविद्या पढ़ाई और प्रयोगविधि सहित धनुर्वेद पुत्र को प्रदान किया । वह शीघ्रता से जिस प्रकार शुक्ल पक्ष मे चन्द्रमा दिनों दिन बढ़ता है उसी प्रकार बढ़ने लगा । उस विनीत महामतिमान् ऐल ने माता इला को दुःखी देख कर नमस्कार करके पूछा ॥७१-७६॥

ऐल ने कहा—माता । बुध मेरे पिता और तुम्हारे प्रिय पति हैं । मैं तुम्हारा न्यस्तुंगल मन्त्रस्वी पुत्र हूँ । तो किस कारण तुमको इतना मार्गसिक् व्यथा है ? ॥७७॥

इला ने कहा—पुत्र । यह सत्य है कि बुध मेरे पति आर अतिगुणवान् तुम मेरे पुत्र हो । मुझ किम प्रकार की पुत्र और पति सम्बन्धी चिन्ता नहीं है । फिर भी महाबुद्धिमान् । अपने पूरुष कात्र क दुःख का स्मरण कर बार-बार मुझ चिन्ता हो जाती है । यह सुनकर ऐल ने पुन माता से कहा ॥७८-७९॥

ऐल उवाच

निवेदयस्व मे मातस्तदेव प्रथमं मम

॥८०॥

ब्रह्मोवाच

इला चेन्मुखावेदं रहोवाचं कथं वदे। तथाऽपि पुन ते वन्मि पित्रोः पुत्रो यतो गतिः ॥
मन्मानां दुःखपायोऽधी पुनः प्रवहणं परम् ॥८१॥

ब्रह्मोवाच

तन्मातृवचनं श्रुत्वा विनोतः प्राह मातरम्। पादयो पतितश्चापि वद मातर्यथा तथा ॥८२॥

ब्रह्मोवाच

सा पुरुवरसं प्राह इद्वाकूणां तथा कुलम्। तत्रोत्पत्तिं स्वस्य नाम राज्यप्राप्तिं प्रियान्सुतान् ॥८३॥
पुरोधसं वसिष्ठं च प्रियां भार्यां स्वकं पदम्। वननिर्याणमेवाय अमात्यानां पुरोधसः ॥८४॥
प्रेषणं च नगयो ता मृगयासंस्तमेव च। हिमवत्कंदरगतिं यक्षेश्वरगृहे गतिम् ॥८५॥
उमावनप्रवेशं च स्नीत्यप्राप्तिमशेषतः। महेश्वराज्ञया तत्र चाप्रवेशं नरस्य तु ॥८६॥
यक्षिणीबावपमप्यस्य वरदानं तथैव च। वृषप्राप्तिं तथा प्रीतिं पुत्रोत्पत्त्याऽशेषतः ॥८७॥
कथयामास तत्सर्वं श्रुत्वा मातरमब्रवीत्। पुरुखाः किं करोमि किं कृत्या सुकृतं भवेत् ॥८८॥
एतावता ते तृप्तिश्चेद्बलमेतेन चाम्बिके। यदप्यन्यन्मनोयति तदप्याज्ञापयस्व मे ॥८९॥

ऐल ने कहा—मेरी माता ! इसलिये मुझे सबसे पहले वही बात बताओ ॥८०॥

ब्रह्मा ने कहा—इला ने पुत्र ऐल से कहा 'यह गुप्त भेद है, इसका मैं बँसे नहीं। फिर भी हे पुत्र ! मुझसे मैं कह रही हूँ। क्योंकि माता पिता का एकमात्र आधार पुत्र ही है। दुःखपूर्ण सागर में डूबे हुए गुम्फा के निकटे पुत्र ही उद्धार करने वाला महान् नौका है ॥८१॥

ब्रह्मा ने कहा—माता की वांछा का अनुसर वह माता के चरणों पर गिर पड़ा और उठा, ने माता से विनम्र हो कहा कि माता ! मुझ का सब कहो ॥८२॥

ब्रह्मा बोले—इला ने अपने पुत्र पुरुखा से, इन्द्रादु का वैभवकारी कुल, उस कुल में अपनी उत्पत्ति, अज्ञा नाम राज्य-प्राप्ति, प्रियपुत्रा की उत्पत्ति, पुरोहित वसिष्ठ, प्रिय भार्या आनी राज्य-अनिष्टा, भूमिपति और पुरोहितों के साथ वन को जाना, पुन उनको राजवर्णा का भेजना मृगया के प्रति आकर्षित, हिमालय की कन्दरा के पास आना, यक्षेश्वर के घर में प्रवेश करना, उमावन में प्रवेश करना, स्नीत्य प्राप्ति आदि बाने पूजाग्न से तथा महेश्वर की आज्ञा से उमावन में पुरुष का प्रवेश-निषेध, यक्षिणी की बाने, वृष-प्राप्ति का वरदान और उनका विद्याप्रेम, पुत्र का उत्पन्न होना आदि सब कुछ बाने सम्पूर्ण रूप से कह दी। उन सब घटनाओं का अनुसर पुरुखा ने माता से कहा— मैं क्यों ता का कार्य क्यों बया करने से बचाना होगा ? माता ! यदि इतने से (वर्तमान अवस्था से) मुझे मनोरंजन है तो तब ता इस प्रकार की विद्या की आवश्यकता नहीं। यदि मुझसे मन में कोई दूसरी इच्छा है तो मुझे आज्ञा प्रदान करो ॥८३-८९॥

इलोवाच

इच्छेय पुस्त्वमुत्कृष्टमिच्छेय राज्यमुत्तमम् । अभिषेकं च पुत्राणां तव चापि विशेषतः ॥९०॥
दानं दातुं च यष्टुं च सुक्तिमार्गस्य वीक्षणम् । सर्वं च कर्तुमिच्छामि तव पुत्र प्रसादतः ॥९१॥

पुत्र उवाच

उपायं त्वां तु पृच्छामि येन पुस्त्वमवाप्स्यसि । तपसो वाज्यतो वाऽपि वदस्व मम तत्त्वतः ॥९२॥

इलोवाच

बुधं त्वं पितरं पृच्छ गत्वा पुत्रं यथायथम् । स तु सर्वं तु जानाति उपदेक्ष्यति ते हितम् ॥९३॥

ब्रह्मोवाच

तन्मातृबन्धनादलो गत्वा पितरमञ्जसा । उवाच प्रणतो भूत्वा भानुं कृत्य तयाऽऽत्मनः ॥९४॥

बुध उवाच

इलं जाने महाप्राज्ञ इला जता पुनस्तथा । उभावन्प्रवेशं च शभोराज्ञां तथैव च ॥९५॥
तस्माच्छुभप्रसादेन उमायाश्च प्रसादतः । विशापो भविता पुत्रः सावाराध्यं न चाग्न्यया ॥९६॥

पुरुष उवाच

पश्येयं तं कथं देवं कथं वा मातरं शिवाम् । तीर्याह्वा तपसो वाऽपि तत्पित प्रथमं वद ॥९७॥

इला ने कहा—मैं पुनः अपना उत्कृष्ट पुरुषभाव और उत्तम राज्य को चाहता हूँ। अपने पुत्रों की अभिषेक विधि रूप से तुम्हारा अभिषेक करना चाहती हूँ। पुत्र ! तुम्हारे प्रसार से मैं दान देना मन करना और मुक्ति मार्ग का अनुसरण आदि सब कुछ चाहता हूँ ॥९०-९१॥

पुत्र ने कहा—मैं तुमसे उन उपायों को पूछता हूँ जिन्हें तुम पुत्र प्राप्त कर सकते हो। चाहें वह तपस्या से हो या अग्नि-विधि प्रकार से, मुझसे तुम यथायथम् मे कहो ॥९२॥

इला ने कहा—पुत्र ! मुझ पिता बुध के पास जाओ जहाँसे यथायथम् मैं पूछा। वह सब कुछ जानते हैं तुम्हारा हितकर उपाय बतावेगे ॥९३॥

ब्रह्मा ने कहा—माता व-कथनानुसार एलने पिता के पास अक्षर विनम्र भाव से भक्ति की भाँति अपना सम्पूर्ण कहानी सुना दो ॥९४॥

बुध ने कहा—महाप्राज्ञ मैं इल को तब और उनका इलरूप में परिचित हो जाना उभावन् मप्रवेश करना और पश्यं च जाना आग्नि-पटनाया वाजानता हूँ। दसलिये हे पुत्र ! नाम और उमा का क्या सही मार्ग से उद्धार हो सकेगा। उनकी आराधना से ही यह कार्य होगा अथवा नहीं ॥९५-९६॥

पुरुष उवाच ने कहा—उस देव पश्यं और माता उमा को कैसे देख सकते हैं तीर्थयात्रा से या तपस्या से इसको पितारी ! आप पहले बतलाइये ॥९७॥

बुध उवाच

गौतमीं गच्छ पुत्र त्व तत्राऽस्ते सर्वदा शिव । उमया सहित श्रीमाञ्छापहन्ता वरप्रद ॥९१॥

ब्रह्मोवाच

पुरूरवा पितुर्विक्रिय श्रुत्वा तु मुदितोऽभवत् । गौतमीं तपसे धीमान्गङ्गा प्रलोचयपावनीम् ॥९२॥

पुस्त्वभिच्छस्तया मातुर्जंगाम तपसे त्वरन् । हिमवन्त गिरिं नत्वा मातर पितर गुरुम् ॥९३॥

गच्छन्तमन्वगात्पुत्रमिला सोमसुतस्तथा । ते सर्वे गौतमीं प्राप्ता हिमवत्पर्वतोत्तमात् ॥९४॥

तत्र स्नात्वा तप किञ्चित्कृत्वा चक्रुः स्तुतिं पराम् । भवस्य देवदेवस्य स्तुतित्रिममिम शृणु ॥९५॥

बुधस्तुष्टाव प्रथममिला च तदनन्तरम् । ततः पुरूरवा पुत्रो गौरीं देवीं च शकरम् ॥९६॥

बुध उवाच

यौ पुङ्गवेन स्वशरीरजेन, स्वभावहेमप्रतिमौ सख्यौ
यावचितौ स्कन्दगणेश्वराभ्या, तौ मे शरण्यौ शरण भवेताम् ॥९७॥

इलोवाच

ससारतापत्रयदावदाधा, शरीरिणो यौ परिचिन्तयन्त

सद्यः परा निर्वृतिमाप्नुवन्ति, तौ शकरो मे शरण भवेताम् ॥९८॥

आर्ता ह्यहं पीडितमानसा ते, बलेशादिपीता न परोऽस्ति कश्चित्

देव त्वदीयो चरणौ सुपुण्यौ, तौ मे शरण्यौ शरण भवेताम् ॥९९॥

बुध ने कहा—पुत्र ! तू गौतमी के तट पर आया। वही तपदा उमा सहित धीमान् गङ्गा जी निवास करने हैं। वही साय को नष्ट करने वाले और वरदाता हैं ॥९८॥

ब्रह्मा बोले—पिता के वाक्या को सुनकर पुरूरवा अत्यन्त प्रसन्न हुआ। वह धीमान् त्रिभुवन-पार्वी गौतमी गङ्गा के पास जाता इला को पुनः पुरुषत्व प्राप्त करा देने की इच्छा से तपस्या करने के लिये जाता पिता गुरु और हिमालय की प्रणाम कर शरणही गया। पुत्र का तपस्या के लिये जाते हुए देखकर साय पुनः बुध और इला उस हिमालय पहाड़ से उतर कर पुत्र के पीछे प छ चले और गौतमी तट पर पहुँचे। वही स्नान और कुछ तपस्या कर देवाधिदेव शङ्कर की अति उत्कृष्ट स्तुति की। जिस क्रम से स्तुति हुई इसको सुना। सबसे पहले बुध ने तदनन्तर इला ने सत्यश्रवान् पुत्र पुरूरवा ने देवी गौरी और शङ्कर की स्तुति की ॥९९॥

बुध ने कहा—जो प्रकृत्या सुवर्ण के समान गौरवण सुन्दर रूप वाले और स्कन्द एवं गणेश के अग्र म सग्न कुटुम्ब से सदा पूजित रहने हैं ऐसे मन्त्रकसल शङ्कर और पावनी हमारे रक्षक हैं ॥१००॥

इला ने कहा—ससार के त्रिविध तन्मयी दावान्त से दण्ड व्यक्ति जिस शङ्कर और पावनी का ध्यान कर अत्यन्त मुक्त तथा शान्ति प्राप्त करते हैं वे पावनी शङ्कर हमारे सहायक हैं। मैं अत्यन्त आनन्द और व्यक्तिचित्त हूँ। आपका छोड़ कर और बाई मेरा रक्षक नहीं। दण्ड ! आपका वे सुख पुनीत चरणगणना की रक्षा करने वाले चरण मेरे रक्षक हैं ॥१०१॥

पुरुषा उवाच

ययो सकाशाविदमभ्युदंति, प्रयाति चान्ते लयमेव सर्वम् ।

जगच्छरण्यौ जगदात्मकौ तु, गौरीहरौ मे शरण भवेताम् ॥१०७॥

यो देवदेवो महोत्सवे तु, पादौ गृहाणेश (ति) गिरीशपुंया-

प्रोक्त धृती प्रीतिवशाच्छिवेन, तौ मे शरण्यौ शरण भवेताम् ॥१०८॥

श्रीदेव्युवाच

किमभीष्टं प्रदास्यामि युष्मभ्य तद्ददन्तु मे । कृतकृत्या स्य भद्रं वो देवानामपि दुष्करम् ॥१०९॥

पुरुषा उवाच

इतो राजा तवाज्ञात्वा वनं प्राविशदम्बिके । तत्क्षमस्व सुरेशानि पुंस्त्व दातु त्वमर्हसि ॥११०॥

ब्रह्मोवाच

तथेत्पुवाच तान्सर्वाभवत्स तु मते स्थिता । ततः स भगवानाह देवीवाक्यवत् सदा ॥१११॥

शिव उवाच

अत्राभियेकमात्रेण पुंस्त्व प्राप्तोत्वय नृप ॥११२॥

ब्रह्मोवाच

स्नाताया बुधभार्याया शरीराद्धारि सुख । नृत्य गीतं च लावण्य यक्षिण्या यदुपाजितम् ॥११३॥

पुरुषा ने कहा—अत्रिने समीप से (जिम प्रकृति पुरुष से) यह सारा ब्रह्माण्ड उत्पन्न हुआ अर प्रलय काल ध्वजिनम पुन लीन हुआ जाता है इस जगत् का एक मात्र रक्षक व जगन्निष्ठ (समस्त रूप) पावनी—शिव मेरे रक्षक है । परमेश्वर क अवसर पर देवदेव की उपस्थिति में गिरि—पुर्व ने मेरे चरणों को पकड़िय ऐसा कहा । उस समय प्रमदुर व पदचरित्र विना किसी सकोच क पावता के जिन चरणों का पकड़ लिया वे चरणों की रक्षा करने वान पावनी ने चरण मेरी रक्षा कर ॥१०७ १०८॥

श्री देवी (पावती) ने कहा—तुम लोग की अमाष्ट वस्तु क्या है कही मैं अवश्य प्रदान करूँगी बाहे बहुत देवदुर्लभ ही क्या न हो । तुम लोग अब सफल भवोग्य हो (अपने को सफल समझो) वम लोग की कल्याण हो । देवताओं से भी दुर्लभ वर प्राप्त करागे यह निश्चित समझो ॥१०९॥

पुरुषा ने कहा—अम्बिके ! राजा इस लम्हारी महिला और जागे को न जानकर उमावत में घुस गया । सुरेश्वरी ! उस अरराय को दमा कर दो तुम दृष्टा कर उनकोपुन पुंस्त्व (पुरुषभाव) प्रदान कर दो ॥११०॥

ब्रह्मा ने कहा—गिर की आगा व अनुसार ही वाय करने वाली पावती ने गिर का अभिप्राय समझ कर एसाही हा मह कह दिया । यह सुनकर सवग दवी उमा में ही लीन रहने वाले गिर ने कहा ॥१११॥

शिव ने कहा—यही केवल अभिप्राय करने से ही यह राजा पुंस्त्व (पुरुषभाव) प्राप्त कर लगा ॥११२॥

ब्रह्मा ने कहा—तुम भार्या दला व स्नान करने से जो जल मिरा और नृप गीत सौन्दर्य आदि जो कुछ मणिणी से सीधे गये वे सभी जल-पारा व रूप व परिणत हीकर गया के जल में मिल गये ॥११३॥ जिससे नृत्या

तत्सर्वं वारिधाराभिर्गङ्गाभ्रसि समाविशत् । नृत्या गीता च सौभाग्या इमा नद्यो बभूवुरे ॥११४॥
 ताश्चापि संगता गङ्गा ते पुण्याः संगमात्त्रय । तेषु स्नानं च दानं च सुरराज्यफलप्रलदम् ॥११५॥
 इला पुंस्त्वमवाप्याय गौरीशंभोः प्रसादतः । महाम्युदयसिद्धयर्थं वाजिमेधमयाकरोत् ॥११६॥
 पुरोधसं वसिष्ठं च भार्या पुत्रांस्तथैव च । अमात्यांश्च यत्नं कोशमानीय स नृपोत्तमः ॥११७॥
 चतुरङ्गं यत्नं राज्यं दण्डकेऽस्यापयत्तदा । इलस्य नाम्ना विएयातं तत्र तत्पुरमुच्यते ॥११८॥
 पूर्वजातानयो पुत्रान्सूर्यवंशप्रमाणते । राज्येऽभिषिच्य पश्चात्तर्मलं स्नेहादसिञ्चयत् ॥११९॥
 सोमवंशकरः श्रीमानयं राजा भवेदिति । सर्वेभ्यो मतिमानेभ्यो ज्येष्ठः श्रेष्ठोऽभवन्मुने ॥१२०॥
 यत्र च ऋतवो वृत्ता इलस्य नृपतेः शुभा । यत्र पुंस्त्वमवाप्याय यत्र पुत्राः समागताः ॥१२१॥
 यक्षिणीदत्तनृत्यादिगीतसौभाग्यमङ्गलाः । नद्यो भूत्वा यत्र गङ्गा संगतास्तानि नारद ॥१२२॥
 तोर्यानि शुभदान्यासन्सहस्राण्यय योऽशः । उभयोस्तोरयोस्तात तत्र शंभुरिलेश्वरः ॥
 तेषु स्नानं च दानं च सर्वं क्रतुफलप्रदम् ॥१२३॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे स्वयंभूविसंवादे तीर्थमाहात्म्ये धुपेलापुरेश्वरवोवसिष्ठ-
 नृत्यगीतसौभाग्येश्वररावियोऽशसहस्रतीर्थवर्णनं नामाष्टाधिकशततमोऽध्यायः ॥१०८॥

गीतमीमाहात्म्ये एकोनचत्वारिंशतमोऽध्यायः ॥३९॥

गीता और सौभाग्या नाम की नदियाँ उत्पन्न हो गईं । वे सभी नदियाँ जहाँ गंगा से मिलीं, वे तीनों संगम-रूपा
 अत्यन्त पुण्य वेनैवाँल सिद्ध हुये । उन तीनों में स्नान करने और दान देव से स्वर्ग की प्राप्ति होती है ॥११४-११५॥
 इसके अनन्तर गौरी और शम्भु की कृपा से पुरुषत्व प्राप्त हुआ आने के बाद राजा इल ने परम कल्याण (सौख्य)
 की प्राप्ति के लिये अश्वमेध यज्ञ का अनुष्ठान किया ॥११६॥ उस उत्तम नृप ने पुरोहित वसिष्ठ, भार्या, पुत्र, राज-
 कोश, मन्त्री, गण और सेना को लेकर उस दण्डकारण्य में चतुरङ्ग सैन्य से युक्त विस्तृत राज्य की स्थापना की ।
 इल के नाम से ही उस राज्य में वह नगर, जो कि राजधानी था, डलपुर नाम से कहा जाने लगा ॥११७-११८॥
 इसके पश्चात् अपने पहले के उत्पन्न पुत्रों को पैतृक राज्य (जिस वंश से प्राप्त राज्य) पर अभिषिक्त कर दिया ।
 (राज्याधिकारी बना दिया) । तत्पश्चात् नवीन राज्य पर ऐल (पुरुषवा) को वह सोच कर कि यह सोम वंश का
 संस्थापक श्रीमान् राजा हो—स्नेह से अभिषिक्त कर दिया ॥११९॥ मुने । वह पुरुषवा शेष अपने भाज्यसे बुद्धि
 मान्, गुणवान् और श्रेष्ठ हुआ ॥१२०॥ राजा इल ने जिस स्थल पर शुभ यज्ञ हुये, जहाँ उनको पुरुषत्व की प्राप्ति
 हुई, जहाँ उनके सब पुत्र भाष्य (और जहाँ यक्षिणी के दिये हुये नृत्य, गीत और सौभाग्य आदि नदी होकर गंगा में मिले,
 नारद । वे सब लाभदायक तीर्थ वहाँ हुये) साथ ही अन्य सोलह हजार और भी तीर्थ वहाँ उसके दोनों तट पर स्थापित
 इलेश्वर शंकर भी हैं । उन तीर्थों के स्नान, दान अग्नि पुण्य कर्म करने से सब पक्षों का फल

अथ नवाधिकशततमोऽध्यायः

चक्रतीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

चक्रतीर्थमिति ख्यातं ब्रह्महत्यादिनाशनम् । यत्र चक्रेश्वरो देवचक्रमाप यतो हृदि ॥१॥
 यत्र विष्णुः स्वयं स्थित्वा चकार्यं शकरं प्रभु । पूजयामास तत्तीर्थं चक्रतीर्थमुदाहृतम् ॥२॥
 यस्य श्रवणमात्रेण सर्वपापः प्रमुच्यते । दक्षन्तो प्रवृत्ते तु देवानां च समागमे ॥३॥
 'दक्षेण दूषिते देवे शिवे शर्वे महेश्वरे । अनाह्वाने सुरेशस्य दक्षचित्ते मलीमसे ॥४॥
 दाक्षायण्या श्रुते वाक्ये अनाह्वानस्य कारणे । अहत्यायां चोक्तवत्या कुपिताऽभूत्सुरेश्वरी ॥५॥
 पितरं नाशये पापं क्षमेयं न' कथंचन । भूष्वती दोषवाक्यानि पित्रा चोक्तानि भर्तरि ॥६॥
 'पत्युः भूष्वन्ति या निन्दां तासां पापावधिः कुत । यादृशस्तादृशो वाऽपि पतिः स्त्रीणां परा गतिः ॥७॥
 किं पुनः सकलापीशो महादेवो जगद्गुरु । श्रुतं तन्निन्दनं तर्हि धारयामि न देहकम् ॥८॥
 तस्मात्पश्य इमं देहमित्थुक्त्वा सा महासती । कोपेन महताऽऽविष्टा प्रज्जवाल सुरेश्वरी ॥९॥

अध्याय १०६

चक्रतीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा बोले—ब्रह्महत्या आदि सभी पापों को नष्ट करने वाला विख्यात चक्रतीर्थ है, जहाँ चक्रेश्वर देव से विष्णु ने चक्र प्राप्त किया था ॥१॥ जिस स्थान पर स्वयं प्रभु विष्णु ने चक्र के लिये शकर की पूजा की, वह तीर्थ चक्रतीर्थ नाम से प्रसिद्ध हो गया ॥२॥ जिसके नाम श्रवण मात्र से मनुष्य सब पापों से छूट जाता है ॥३॥ एक समय दक्ष ने यज्ञ प्रारम्भ किया । उसमें सब देवता एकत्र हुए । दक्ष के मन में शिव के प्रति कुछ मलिनता हो गई थी, जिससे उन्होंने महेश्वर, शर्व, देव, शिव को दूषित (अश्लाघा) घोषित कर दिया ॥४-४॥ दाक्षायणी ने इन बातों को सुना और निमन्त्रित न होने का कारण समझ लिया । अहत्या के मुद्दे से कुछ अनुजित वाक्यों को सुनकर वह सुरेश्वरी अत्यन्त क्रुषित हो गई ॥५॥ उन्होंने अपने पति के प्रति पित्रा की आलोचनारी बातें सुनकर कहा कि मैं अवश्य पापात्मनां पिता वगैरे कहूँगी, किसी प्रकार उसको क्षमा नहीं कर सकती ॥६॥ क्योंकि जो स्त्रियाँ अपने पति की निन्दा सुनती हैं, उनके पापा ना अन्त नहीं होता अर्थात् असंख्य पाप होते हैं । पति चाहे कैसा भी हो वह स्त्री के लिये परम गति है ॥७॥ तो फिर सबके स्वामी जगद्गुरु शकर के विषय में क्या कहा जाय । ऐसे पति की मैंने निन्दा सुनी है, इसलिए अब अपने शरीर को धारण न करूँगी ॥८॥ इस अवधि शरीर को छोड़ दूँगी । यह कहकर वह महासती सुरेश्वरी अत्यन्त क्रोध से स्वयं जलने लगी ॥९॥ शिव ने ही अपने ध्यान को लगाकर उन्होंने योग द्वारा

दह बलाद्योगाच्च तत्पजे । महेश्वरोऽपि सकल वृत्तमाकार्ण्य नारदात् ॥१०॥
 कोप प्रपच्छ जया च विजया तथा । ते ऊचतुह्ये देव दक्षक्रतुविनाशनम् ॥११॥
 इति श्रुत्वा मल्ल प्रापामहेश्वर । भोमैर्पणं परिवृतो भूतनाथं सम ययौ ॥१२॥
 त सर्वो देवब्रह्मपुरस्कृत । दक्षेण यजमानेन शुद्धभावेन रक्षित ॥१३॥
 रत्नयुग्मं मुनिभिः परिवारित । इन्द्रादित्याद्यैर्वसुभिः सर्वतः परिपालित ॥१४॥
 मवदंश्च स्वाहा शब्दं रत्नकृत । अथा पुष्टिस्तथा तुष्टिः शान्तिलंज्जा सरस्वतो ॥१५॥
 त्वरी क्षान्तिरुषा आशा जया मति । एताभिश्च तयाऽन्याभिः सर्वतः समलकृत ॥१६॥
 त्मना चापि कारितो विश्वकम्पना । सुरभिनन्दिनो धनुः कामधुकामदोहिनी ॥१७॥
 तमवर्षाभिः सर्वकामसमुद्दिमान । कल्पवृक्ष पारिजातो लता कल्पलतादिका ॥१८॥
 । किञ्चित्त्र तस्मिन्मले स्थितम् । स्वयं भययता पूष्णा हरिणा परिरक्षित ॥१९॥
 रतां वाऽपि त्रिपतां स्योयतो सुखम् । एतंश्च सर्वतो यावयं दक्षस्य पूजित मल्लम् ॥२०॥
 धीरभद्रोऽसौ भद्रकाल्या यतो ययौ । शोककोपपरीतात्मा पद्माच्छूलपिनाकधुक ॥२१॥
 महाबलौ महाभूतं रत्नकृत । तानि भूतानि परितो मल्ले वेष्ट्य महेश्वरम् ॥२२॥
 तस्यामासुस्तत्र क्षोभो महानभूत । पलायन्त ततः कचिकेचिदगत्वा ततः शिवम् ॥२३॥
 तं देवशः केचित्कुप्यन्ति शः करम् । एव विष्वसित यज दुष्टया पूषा समभ्यगात् ॥२४॥

छोड़ दिया । नारद के मुख से सारी घटना की सुनकर घबर अचंचल बुरिप्त हो गये । उन्होंने जया और
 विजय इस विषय में पूछा । उन दोनों ने दांशायणी की अप से इति तत्र की बया दक्ष के यज्ञ की विनष्ट करने
 की । यह सुन कर महेश्वर अपने भयङ्कर अनुचरों और भूतनाथ (रघुगण) के साथ उस यज्ञ में
 २॥ वहाँ वह दक्ष का यज्ञ निवर्णों से घेर लिया गया जहाँ देव और ब्रह्मा भलीभाँति सम्मानित थे जो
 से शुद्धता पूर्वक अचंचल रक्षित था जो बगिच्छ आदि तेजस्वी मुनिपों से घिरा हुआ इन्द्र आदि
 ३॥ मे चारों ओर से रक्षित ऋग यजुस सामवेद की ध्वनि और स्वाहा आदि से गुञ्जित अथा पुष्टि तुष्टि
 ४॥ सरस्वती भूमि की सवरी क्षान्ति उषा आशा जया मति आदि तथा अथ देखिया से गुणगान महो
 ५॥ वेदवर्षों से भलीभाँति घनाया हुआ सुरभिन्दिनी धनुः कामधुनौ कामदाहिनी आदि कामनाओं की वर्षा
 ६॥ व सुरभिना तथा शम्भुगणों के साथ । मे मुक्त और कल्पवृक्ष पारिजात कल्पलता लता आदि का कुछ अर्भक
 ७॥ व उस यज्ञ में उपस्थित थे । वह स्वयं इन्द्र पूषा और विष्णु से परितो गया ॥१३ १४॥ शान्तिमे भावन
 ८॥ शरम्भ की द्रिगे यहाँ सुगन्धर्व विराजित आदि निष्ट वाक्य से दक्ष का वह यज्ञकर्म दक्ष
 ९॥ पदों की रम्य मद्रताली के साथ वहाँ गया पीछे गूल और पिता (पुत्र) घाटन करने का दक्ष
 १०॥ इन प्रकार महानेव दक्ष अपने उद्भूत और भयङ्कर अनुचरों महापूषा से गुणगित हुआ वहाँ गये
 ११॥ उन भूतों की चारा और पचासान निपुण करयण का विनाश कर दिया । इस विनाशाली को देखकर
 १२॥ तेलाहल हो गया ॥२३॥ कुछ दूर उपर भागने लगे कुछ देवेग दक्षर का पास दक्षर स्तुति करने लग तो
 १३॥ त्रका कोप से घुरने लगे । इन प्रकार यज्ञ का स्वस्त होने देवदत्त पूषा दक्षर का गाने आये ॥२३ २४॥

। दन्तानयोत्पाद्य इन्द्रं व्यद्रावयत्तलाणात् । भगस्य चक्षुषो विप्र वीरभद्रो व्यपाटयत् ॥२५॥
करं पुनर्दोर्म्या परिधाम्य सवासिपत् । ततः सुरगणाः सर्वे विष्णुं ते शरणं ययुः ॥२६॥

देवा ऊचुः

१ त्राहि गदापाणे भूतनाथकृतद्वयत् । महेश्वरगणः कश्चित्प्रमथानां तु नायकः ॥
दग्धो मलः सर्वो वेषणवः पश्यतो हरेः ॥२७॥

ब्रह्मोवाच

१णा चक्रमुत्सृष्टं भूतनाथवधं प्रति । भूतनाथोऽपि तच्चक्रमापतच्च तदाऽप्रसन्नः ॥२८॥
ते चक्रे ततो विष्णोर्लोकपाला भयाद्ययुः । तथा स्थितानवेक्ष्य दक्षो यज्ञं सुरानपि ॥
दाव शंकरं देवं दक्षो भक्त्या प्रजापतिः ॥२९॥

दक्ष उवाच

प शंकर सोमेश जय सर्वज्ञ शंभवे । जय कल्याणभृच्छंभो जय कालात्मने नमः ॥३०॥
दिकर्तृर्नमस्तेऽस्तु नीलकण्ठ नमोऽस्तु ते । ब्रह्मप्रिय नमस्तेऽस्तु ब्रह्मरूप नमोऽस्तु ते ॥३१॥
त्रिमूर्तये नमो देव त्रिधाम परमेश्वर । सर्वमूर्ते नमस्तेऽस्तु त्रैलोक्याधार कामदे ॥३२॥
मो वेदान्तवेद्याय नमस्ते परमात्मने । यज्ञरूप नमस्तेऽस्तु यज्ञधाम नमोऽस्तु ते ॥३३॥
जिज्ञान नमस्तेऽस्तु हृष्यबाह नमोऽस्तु ते । यज्ञहर्त्रे नमस्तेऽस्तु फलदाय नमोऽस्तु ते ॥३४॥

एतु उन्होंने पूजा के बात जलाइ लिये और इन्द्र की साथ भर मे वहाँ से भगा दिया । विप्र । वीरभद्र ने भग की आँखें
नकाश की ॥२५॥ सूर्य की भुजाओं के बीच पकड़ कर घुमा कर फेंक दिया । तदनन्तर सब अंगरग होकर विष्णु
की शरण में गये ॥२६॥

देवताओं ने कहा—हे गदापाणि । भूतनाथों के इस उपद्रव से रक्षा करो, वचाओ । तुम्हारे देखते देखते
उपद्रविया के शरदार (शस्त्र के गण) से यह ईश्वर (विष्णु का) यज्ञ जला दिया गया, नष्ट कर दिया गया ॥२७॥

ब्रह्मा ने कहा—यह गुहार सुनकर विष्णु ने भूतनाथ को भारते के लिये चक्र चलाया । भूतनाथ ने भी, चक्र
को अपनी ओर आते देखकर पनड लिटा । विष्णु ने अमीध चक्र को इस प्रकार व्यर्थ होते देखकर सर्व लोकपाल
भगवान् हो इसर उपर भागने लगे । प्रजापति दक्ष ने यज्ञ और देवों की, ऐसी स्थिति देखकर विनम्र भाव से शस्त्र
की स्तुति की ॥२८-२९॥

वक्ष ने कहा—शंकर । सोमेश । आपकी जय हो, हे सर्वज्ञ । धनु । जय हो । कल्याण करने वाले ।
जय हो । वामु । जय हो । काल रूप नकर को नमस्कार है । आदिकर्ता । आपको नमस्कार है । नीलमण्ड ।
आपको नमस्कार है । ब्रह्मप्रिय । आपको नमस्कार है । ब्रह्मरूप । आपको नमस्कार है । त्रिमूर्ति को
नमस्कार है । परमेश्वर । देव । त्रैलोक्यव्यापी । आपको नमस्कार करते हैं । विश्वमूर्ति । त्रिभुवन के आधार ।
हृष्यबाहो को देने वाले । आपको नमस्कार है । वेदान्त (जीव) से जाने योग्य आपको नमस्कार है । परमात्मा को
नमस्कार है । यज्ञरूप । आपको नमस्कार है । यज्ञधाम । आपको नमस्कार है । यज्ञदान । आप को नमस्कार है ।

ब्राहि ब्राहि जगन्नाथ शरणागतवत्सल । भक्तानामप्यभक्तानां त्वमेव शरणं प्रभो ॥३५॥

ब्रह्मोवाच

एवं तु स्तुवतस्तस्य प्रसन्नोऽभून्महेश्वरः । किं ददामीति तं प्राह श्रुत्वा पूर्णोऽस्तु मे प्रभो ॥३६॥
तथेत्युवाच भगवान्देवदेवो महेश्वरः । शंकरः सर्वभूतात्मा कर्णधारणालयः ॥३७॥
श्रुत्वा ततः पूर्णं तस्य दक्षस्य वै मुने । एवमुक्त्वा स भगवान्भूतैरन्तरधोयत ॥३८॥
यथागत सुरा जम्बु स्वमेव सदनं प्रति । ततः कदाचिद्देवानां दैत्यानां विप्रहो महान् ॥३९॥
बभूव तत्र दैत्येभ्यो भीता देवाः श्रियः पतिम् । तुष्टुवुः सर्वभावेन वचोभिस्तं जनादनम् ॥४०॥

देवा ऊचुः

शक्रादयोऽपि त्रिवंशाः कटाक्षमवेक्ष्य यस्यास्तप आचरन्ति ।
सा चापि यत्पादरता च लक्ष्मीस्तं ब्रह्मभूतं शरणं प्रपद्ये ॥४१॥
यस्मात्त्रिलोक्यां न परः समानो, न चाधिकस्ताड्यरयान्नुत्तिहात् ।
स देवदेवोऽवतु नः समस्तान्महाभयेभ्यः कृपया प्रपन्नान् ॥४२॥

ब्रह्मोवाच

ततः प्रसन्नो भगवान्ब्रह्मचक्रगदाधरः । किमर्थमागता सर्वे तत्कर्तास्मीत्युवाच तान् ॥४३॥

हृष्य को डोने वाले । (अने ।) आगको ममस्कार है । मम का मष्ट करने वाले का ममस्कार है, परल देने वाले को ममस्कार करते हैं । जगन्नाथ । शरण म आये हुए को रक्षा करने वाले । रक्षा कीजिये, रक्षा कीजिये । प्रभो । तुम्ही भक्ता जीव अभक्ता के रक्षा हो ॥३०-३५॥

ब्रह्मा ने कहा—४५ प्रकार शंकर की स्तुति करने पर महेश्वर प्रसन्न हो गये । उन्होंने दक्ष से कहा कि 'वया दूँ ।' दक्ष ने कहा—प्रभो । मेरा यज्ञ पूर्ण हो । भगवान् देवदेवेश्वर शंकर ने ऐसा ही हो यह कहा । मुने । ब्रह्मा ने सागर, सब प्राणियों में निवास करने वाले भगवान् उग दक्ष के यज्ञ को पूरा कर आने अनुचर भूतो के साथ अन्तर्हित हो गये । आप हुए देवता भी अपने अपने स्थान को चले गये । अनन्तर किंगी समग्र देवा और दानवा मे धनि भयंकर युद्ध हुआ । उस युद्ध मे देवता दानवा मे मयभीत हो गये । विजय हो लक्ष्मीपति जनादन की शरण म गये । वही जगन् उन लोगों ने सब भावा मे भगवान् को प्रार्थना द्वारा प्रमत्त किया ॥३६-४०॥

देवताओं ने कहा—जिनके बेल बटाया मात्र का देव शंकर आदि देवता उचरती प्राणि के लिए मात्सा करते हैं, वही लक्ष्मी जिम विष्णु की शरण-मेधा मे लक्ष्मी रहती है उग ब्रह्मावस्था विष्णु की शरण म हम आये हुए हैं । जिम मष्ट पाहन भगवान् मुनिह मे शिखरी मे उत्तम, ममान या अधिप दुमरा बर्हि नहीं है वे देवदेव प्रमत्त (शरण म आये) हम लोगों की समस्त मयद्वार विभीषिता मे रक्षा करें ॥४१-४२॥

ब्रह्मा ने कहा—देवा की प्रार्थना मुद्वार पाये, सब और मत्पायी भगवान् अपन्न प्रमत्त हो गये । उन्होंने देवों से कहा कि 'किमलिये तुम लोग यहाँ आये हो, मैं उन सब इच्छाओं को पूर्ण कर दूँगा' ॥४३॥

देवा ऊचुः

भयं च तीव्रं दैत्येभ्यो देवानां मधुसूदन । ततस्त्राणाय देवानां मतिं पुनः जनार्दन ॥४४॥

ब्रह्मोवाच

तानागतान्ह्रिः प्राह ग्रस्तं चक्रं हरेण मे । किं करोमि गतं चक्रं भवन्तश्चातिमागता ॥४५॥
यातु सर्वे देवगणा रक्षां च क्रियते मया ॥४६॥

ब्रह्मोवाच

ततो गतेषु देवेषु विष्णुश्चप्रार्थमुद्यतः । गोदावरीं ततो गत्वा शम्भो पूजां प्रचक्षते ॥४७॥
सुवर्णकमलैर्दिव्यं सुगन्धैर्दशभिः शतैः । भक्तितो नित्यवत्पूजां चक्रे विष्णुरमापते ॥४८॥
एव सपूज्यमाने तु तपोस्तत्त्वमिदं शृणु । कमलानां सहस्रे तु यदेकं नैव पूर्यते ॥४९॥
तदाऽसुरारिः स्व नेत्रमुत्पाट्य ध्याय्य मकल्पयत । अर्घ्यपात्रं वरे गृह्य सहस्रकमलान्वितम् ॥
ध्यात्वा शम्भुं वदामर्घ्यमनन्यशरणो हरिः ॥५०॥

विष्णुरवाच

त्वमेव देव जानीषे भावमन्तर्गतं नृणाम् । त्वमेव शरणोऽधीशोऽग्रे का भवेद्विचारणा ॥५१॥

ब्रह्मोवाच

षडनुदभ्रुनयनो निलिल्येऽसावित्रीश्वरे । भवानोत्सहितः शम्भुः पुरस्तादभवत्तदा ॥५२॥

देवो ने कहा—मधुसूदन ! देवा से हम देवा का दाग्न भय डाला है । इसलिये आप देवताओं का रक्षा का उपाय कीजिये ॥४४॥

ब्रह्मा ने कहा—उन त्रैलोक्यगत देवा श भगवान् विष्णु ने कहा—मरा चक्र शस्त्र मैं ले लिया हूँ । क्या करूँ ? पत्र हाथ में निकाल गया और आप लोग इस समय विपत्ति में पड़ गये । फिर भी आप लोग इस समय जे हाथ में बाण लागो की रक्षा करूँगा ॥४५-४६॥

ब्रह्मा ने कहा—देवताओं का लक्षण जान पर विष्णु चक्र लान के लिये उद्यत हो गया । इस अभिप्रेय में वह गोमती के तट पर गया और शस्त्र का पूजा करने लगे । विष्णु ने प्रतिनिधि भक्तिपूर्वक दिव्य सुगन्धित हजार सुवर्ण कमलाना उपासित की पूजा करने लगा । इस प्रकार पूजा करते समय उन दाना देवा में जो रहस्य प्रकट हो उभरा गुनी । जब सहस्र कमलाना एक कमल ही गया तब असुरगण विष्णु ने जाने कमल नष्ट करवाही निकालकर अर्घ्य देने के लिए उग (मरवा) को पूरा किया । इस प्रकार हजार कमलाना पूजा कर अर्घ्य पात्र का हाथ में लेकर अन्य भावना से विष्णु ने शस्त्र का ध्यान कर अर्घ्य प्रदान किया ॥४७-५०॥

विष्णु ने कहा—हूँ ! तुम्हीं शत्रुघ्ना के मन के भावा का जानते हैं स्वामी । तुम्हीं एकमात्र शरण द्या । इसमें विचार का क्या आवश्यकता है ? ॥५१॥

ब्रह्मा ने कहा—भगवान् विष्णु इस प्रकार प्राचना करते हुए शस्त्र में प्रवेश हो गया, उनकी माँसा में प्रवेश

गदमालिङ्गच विविर्षवंदरापूरयद्धरिम्। तदेव चक्रमभवन्नेत्रं चापि यथा पुरा ॥५३॥
 ततः सुरगणाः सर्वे तुष्टुबुहंरिशंकरो। गङ्गां चापि सरिच्छेष्टां देवं च वृषभध्वजम् ॥५४॥
 ततः प्रभृति तत्तीर्थं चक्रतीर्थमिति स्मृतम्। यस्यानुश्रवणेनैव मुच्यते सर्वकिल्बिषः ॥५५॥
 तत्र स्नानं च दानं च यः कुर्यात्पितृतृपणम्। सर्वपापविनिर्मुक्तः पितृभिः स्वर्गं भागभवेत् ॥५६॥
 तत्तु चक्राद्भूतं तीर्थमद्यापि परिदृश्यते ॥५७॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे चक्रतीर्थवर्णनं नाम नवाधिकशततमोऽध्यायः ॥१०९॥

गौतमीमाहात्म्ये चत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ॥४०॥

अथ दशाधिकशततमोऽध्यायः

पिप्पलतीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

पिप्पलं तीर्थमाख्यातं 'चक्रतीर्थ'दिनन्तरम्। यत्र चक्रेऽवरो देवदचक्रमाप यतो हरिः ॥१॥
 यत्र विष्णुः स्वयं स्थित्वा चक्रार्थं शंकर विभुम्। पूजयामास तत्तीर्थं चक्रतीर्थमुदाहृतम् ॥२॥

बहूने लगे। इसी समय भवानां सहित शंकर प्रकट हुये। उन्होंने उनको प्रेमपूर्वक गल लगाकर विविध वरदानों की कर्पा कर प्रसन्न किया। पुनः वही चक्र विष्णु के समीप चला आया और उनका नेत्र भी पूर्ण हुआ गया। तदनन्तर सब देवताओं ने हरि और शंकर तथा श्रेष्ठ नदी गंगा की स्तुति की। तभी से यह तीर्थ चक्रतीर्थ के नाम से विख्यात हो गया। उसने नामध्वनमात्र से मनुष्य सब पापों से छूट जाता है। उस तीर्थ में जो कोई स्नान, दान और पितृतृपण आदि शुभ कर्म करता है वह सब पापों से मुक्त होकर अपने पितरों के साथ स्वर्ग प्राप्त करता है। ऐसा यह तीर्थ आज भी चक्र से चिह्नित देखा जाता है ॥५२-५७॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में चक्रतीर्थवर्णन नामक एक भी नवी अध्याय मयाप्त ॥१०९॥

अध्याय ११०

पिप्पलतीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा ने कहा—चक्रतीर्थ के बाद पिप्पलतीर्थ पन्थ प्रसिद्ध है, जहाँ चक्रेऽवर देव, त्रिनसे हरि ने चक्र प्राप्त किया था—रहते हैं ॥१॥ जहाँ विष्णु ने चक्र के लिये प्रभु शंकर की पूजा की, वही तीर्थ चक्रतीर्थ के नाम से विख्यात

यत्र प्रीतोऽभवद्विष्णोः शंभुस्तत्पिप्पलं विदुः। महिमानं यस्य वक्तुं न क्षमोऽप्यहिनायकः॥३॥
चक्रेश्वरो पिप्पलेशो नामधेयस्य कारणम्। शृणु नारद तद्भक्त्या 'साक्षाद्देवोदितं मया॥४॥
दधीचिरिति विख्यातो मुनिरासीद्गुणान्वितः। तस्य भार्या महाप्राज्ञा कुलीना च पतिव्रता॥५॥
लोपामुद्रेति या ख्याता स्वसा तस्या गभस्तिनी। इति नाम्ना च विख्याता वडवेति प्रकीर्तिता॥६॥
दधोचेः सा प्रिया नित्यं तपस्तेषु तया महत्। दधीचिरग्निमान्नित्यं गृहधर्मपरायणः॥७॥
भागीरथीं समाश्रित्य देवातिथिपरायणः। स्वकलत्ररतः शान्तः कुम्भयोनिरिवापरः॥८॥
तस्य प्रभावात्तं देशं नारयो दैत्यदानवाः। आजग्मुर्मुनिशार्दूल यत्रागस्त्यस्य चाऽऽश्रमः॥९॥
तत्र देवाः समाजग्मु र्द्वादित्यास्तयाऽश्विनौ। इन्द्रो विष्णुर्मोऽग्निश्च जित्वा दैत्यानुपागतान्॥१०॥
जयेन जातसंहर्षाः स्तुताश्चैव मरुद्गणैः। दधीचिं मुनिशार्दूलं दृष्ट्वा नेमुः सुरेश्वराः॥११॥
दधीचिर्जातसंहर्षः सुरान्मूज्य पूयवपूयकः। गृहकृत्य ततश्चक्रे सुरेभ्यो भार्यया सह॥१२॥
पृष्ठाश्च कुशलं तेन कथाश्चक्रे सुरा अपि। दधीचिमब्रुवदेवा भार्यया सुखित पुनः॥१३॥
आसीनं हृष्टमनसं श्रुयिं नत्वा पुनः पुनः॥१४॥

देवा ऊचुः

किमद्य दुर्लभं लोके श्रुपेऽस्माकं भविष्यति। त्वादृशं सङ्गो येषु मुनिर्भूक्तपदादपः॥१५॥

हुवा॥१२॥ जहाँ भगवान् शम्भु विष्णु पर प्रसन्न हुए वह पिप्पलतीर्थ कहा जाता है, जिसकी महिमा वर्णन करने में
वैपनाग भी समर्थ नहीं हैं॥३॥ नारद। चक्रेश्वर और पिप्पल नाम पढ़ने का कारण भक्तिपूर्वक सुनो। यह आश्विन
मासात् वेद म भी कहा गया है॥४॥ दधोचिनाम के एक परमविख्यात, गुणवान् मुनि थे। उनकी परम पुत्राणि
शुद्धिभी और पतिव्रता पत्नी थी॥५॥ वह प्रसिद्ध लापामुद्रा का बहिन गभस्तिनी थी, जिसका लोग बड़वा भी
कहा करते थे॥६॥ दधीचि की वह प्रिया भी प्रतिदिन महान् तप किया करती थी। स्वयं दधीचि नित्य ही अग्नि
स्वायम्बा करगृहस्थ धर्म का निष्ठापूर्वक पालन करते थे॥७॥ वे भारीरथी के तट पर निवास कर देव और अतिथिया की
एकान्त सेवा में लगे रहते थे। उनकी प्रिया के प्रति अत्यन्त प्रेम रखने वाले वे शान्त दध वि दूधरे अगस्त्य के भ्रमण
थे॥८॥ मुनिशार्दूल। उनकी तपस्या के प्रभाव में उस प्रदेश में और अगस्त्य ऋषि के आश्रम में कार्य भी सम्पन्न
दैत्यदानव आने का आह्वान नहीं करते थे॥९॥ एक दिन आश्विनमासी उपद्रवी दैत्य का जितकर रुद्र, आदित्य, अश्विन,
इन्द्र, विष्णु, यम, अग्नि, आदि देवता उनके यहाँ जाये जो विजय से अत्यन्त प्रसन्न थे, मरुद्गण उनकी स्तुति कर रहे थे।
उन देवेश्वर ने मुनिपुङ्गव दधीचि को देखकर उनकी अमिनन्दन किया॥१०-११॥ दधीचि अपने देव अतिथिया का
देवकर आनन्द के भारे कूले न समझे। भार्या का महित उन्होंने उन देवा का प्रेमपूर्वक अतिथि-सञ्चार किया॥१२॥
पुत्राल प्रसन्न होने के बाद देवताओं ने अपनी कुशल-खाना सुनाई। पुन देवगण प्रसन्न होकर भार्याश्रित बैठे हुये ऋषि
दधीचि को बार-बार नमस्कार करने लगे॥१३-१४॥

देवों ने कहा—ऋषे! अब तुम्हारे सभान पुत्रों के कल्पवृक्ष की कृपा हम लागा पर है सब भला हम

एतदेव कल मुसा जीवता मुनिसत्तम। तीर्याप्लुतिभूतदया दर्शनं च भवादृशाम्॥१६॥
 यत्स्नेहादुच्यतेऽस्माभिरवधारय तन्मुने। जित्वा दैत्यानिह प्राप्ता हत्वा राक्षसपुगवान्॥१७॥
 वयं च सुखिनो ब्रह्मस्त्वयि दृष्टे विद्योयत। नाऽऽयुधं फलमस्माकं वोढुं नैव क्षमा वयम्॥१८॥
 स्थाप्यदेशं न पदयाम आयुधाना मुनीश्वर। स्वर्गं सुरद्विषो ज्ञात्वा स्थापितानि हरन्ति च॥१९॥
 नयेयुरायुधानीति तथैव च रसातले। तस्मात्तवाश्रमे पुण्ये स्थाप्यन्तेऽस्त्राणि मानद॥२०॥

नैवान् किंचिद्भयमस्ति विप्र, न दानवेभ्यो राक्षसेभ्यश्च घोरम् ।
 त्वदाजया रक्षितपुण्यदेशो, न विद्यते तपसा ते समान ॥२१॥
 जितारयो ब्रह्मविदा वरिष्ठ, वयं च पूर्वं निहता दैत्यसघा ।
 अस्त्रैरलं भारभूतं कृतार्थं, स्थाप्य स्थानं ते समीपे मुनीश ॥२२॥
 दिव्यान्भोगाकामिनीभि समेतान्देवोद्याने मन्दने सभजाम ।
 सतो याम कृतकार्या सहेंद्रा, स्व स्व स्थानं चाऽऽयुधाना च रक्षा ॥२३॥
 स्वया कृता जायता सत्प्रज्ञाधि समर्थस्त्व रक्षणे धारणे च ॥२४॥

ब्रह्मोवाच

तद्वाक्यमाकर्ण्य वधीचिरेव, वाक्यं जगौ विमुधानेयमस्तु ।
 निवाप्यमाणं प्रियशीलया स्त्रिया, किं देवकार्येण विद्वद्धकारिणा ॥२५॥

लोगा को कौन सा पदार्थ दुःख होगा ? मुनिसत्तम । अनुप्य जीवन को फल तीराटन प्राणिया पर दया आपर समान
 महापुरुषा को दशन ह ॥१६॥१६॥ मुने । आह हम लोग विनम्र भाव से प्रमत्तक जी कुछ कह रहे हैं उस पर
 ध्यान वाजिदे । बन् वदे चलानागी दैत्या को जे तवर हम यहाँ आय हुए हैं । ब्रह्मन् । हम लोग गुस्ता हैं । आपको
 देतकर और विद्यप रूप से प्रसन्न हो रही है । ये अस्त्रास्त्र अब भार से आन पड़ते हैं यकायत के कारण इन
 व्यय अस्त्रा को दोने की गक्ति भी नहीं रहे गई है ॥१७॥१८॥ मुनीश्वर । इन आयुधा को रखन क लिये कोई
 सुरा इन स्थान भी नहीं दियाई दे रहा है । स्वयं म रखन पर राक्षस पता पा जान पर छल लेंगे । इसी प्रकार यदि
 इन अस्त्रा को रक्षितल से जाया जाय तो यहाँ भी यही दगा है । इत्यन्त्ये ह भानद । (प्रतिष्ठा देने वाले छवरी
 प्रतिष्ठा करने वाग्) आपने आश्रम म इन अस्त्रो को रख जा रहा है ॥१९॥२०॥ यवाकि ह विप्र । यहाँ न तो
 राक्षसा से और न तो दानवो से ही भय है । यह पुण्य स्थान आपकी जागा (नर) म सुरक्षित है आपके समान
 तस्मा म भी कोई नहीं है ॥२१॥ मुनं ग । स्त्रिया म छष्ट । हम लोग वागुत्रा को जील लिया है दैया
 को पत्रे हा विनम्र कर दियाई अब इन भारतपूय युद्धप अन्त्य व्यय अस्त्रावा कोई आवश्यक्ता नहीं और आपने
 सम प रखने पाय स्थान म है ॥२२॥ अब हम लोग कामिनिया न राक्ष दकायान नन्दनवन म दिव्य भोगा का भोग
 करेग इमलिये हम लोग इन्द्र के सहित आनी दया मे वृत्तव्य हावर अपने-अपने स्थान को जा रहे हैं । अब
 वास्त्राया की रक्षा आप के ही हाथ होगी इत्यन्त्य आगा दीव्य आप ही इन अस्त्रा की रक्षा और देख भाल
 करन म समर्थ है ॥२३॥२४॥

ब्रह्मा ने कहा—आ की एही प्रायना मुनिर दर्षाचि न देया से कहा नि पयमस्तु । यह देवात्त प्रिय स्वभाव
 वाली स्त्री ने बार बार भना दिया कि इस वैभवंसर्पदा करन वाच देव-नय म हाथ लगाने की क्या आवश्यकता ॥२५॥

ये ज्ञातशास्त्रा परमार्थे निष्ठा, सत्सारवेष्टासु गतानुराग	1
तेषां परार्थं यत्ननेन किं मुने, येनात्र वाऽमृतं सुखं न किञ्चित्	112611
देवद्विषो द्वेषमनुप्रयान्ति, दत्ते स्थाने विप्रवर्यं शृणुष्व	1
नष्टे हृते चाऽऽयुधाना मुनोऽपि, कुप्यन्ति देवा रिपवस्ते भवन्ति	112711
तत्समाभेदं वेदविदा वरिष्ठ, युक्तं द्रव्यं परकीये ममत्वम्	1
तावच्च मंत्रो द्रव्यभावश्च तावन्नष्टे हृते रिपवस्ते भवन्ति	112811
चेदस्ति शक्तिद्रव्यदाने ततस्ते, दातव्यमेवार्थिने किं विचार्यम्	1
नो चेत्तस्तं परकार्याणि कुर्युर्वाग्भिर्मनोभिः कृतिभिस्तथैव	112911
परस्वसधारणमेतदेव, सद्भिर्निरस्तं त्यज कान्तं सद्यः	113011

ब्रह्मोवाच

एव त्रिपाया वचनं स विप्रो, निशम्य भार्यामिदमाह सुभ्रूम 113111

दधोच्चिरवाच

पुरा सुराणामनुमान्य भद्रे, नेतीति वाणी न सुखं ममति 113211

मुने! जो शास्त्रज्ञ परमाथ (मोक्षज्ञान) में निष्ठा रखने वाले और सांसारिक व्यापारों से विरक्त हैं उनको ऐसे दूसरों के व्यर्थ कामों में पड़ने से क्या लाभ? जिनके करने से न तो कोई लौकिक सुख हो न पारलौकिक 112611
विप्रवर्य! मुनिदे इस प्रकार स्थान देने से रागस कुपित हो जायगा। मुनीन्! गरवास्त्रा के नष्ट हो जाने से या खोरी चले जाने से देवता कुपित होंगे और शत्रु बन जायेंगे 112711 इन कारणों से हे देवता न श्रेष्ठ! दूसरे के द्रव्य में इस प्रकार ममत्वं उत्पन्न करना कदापि उचित नहीं। जब तक यह पास (भगोहर) रहित है तब तक मंत्री है नष्ट हो जाने पर अवश्य खोरी चल जाने पर वे ही शत्रु हो जायेंगे 112811 यदि द्रव्यज्ञान की शक्ति है तो याचका को धन अवश्य देना चाहिये वहाँ आणा-गिद्धा सोचने की आवश्यकता नहीं यदि धन की शक्ति नहीं है तो सज्जन व्यक्ति की बा दूखों का नाश वाणी मन तथा रत्नप्रभो से करना चाहिये 112911 यही कारण है कि दूसरा की सम्पत्ति अपने पास रखने को सज्जना ने बार बार मना किया है और निन्द्य माना है। इसलिये कान्त! आप अपने इस निवर्त्य का छोड़ दीजिये 113011

ब्रह्मा ने कहा—प्रिया की इस प्रकार की बात सुनकर विप्र दधोच्चि ने अपनी सुन्दर भी वाली पत्नी से कहा 113111

दधोच्चि ने कहा—भद्र! पहले देवताओं की वाग्मन द्वारा सम्मानित कर पुन नहीं ब्रह्मा मुझकी उक्ति अथवा सुनकर नहीं आन पड़ता 113211

ब्रह्मा ने कहा—प्रिया के प्रति पति का बही हुई बातों को सुनकर वे देवता अपने तेजोमय (शम करने वाले) अस्त्रों को मुनि के आश्रम में रखकर मुनि की प्रणाम कर अपने लोभ को चले गये। पत्नी भी मनुष्या के भाग्य के

ब्रह्मोवाच

श्रुत्वेरितं पत्युरिति प्रियायां, दैवं विनाऽन्यत्र नृणां समर्थम्	।
तूष्णीं स्थिताया सुरसत्तमास्ते, संस्थाप्य चास्त्राण्यतिदीप्तिमन्ति	॥३३॥
नत्वा मुनोन्द्रं ययुरेव लोकान्दैत्यद्विषो न्यस्तशस्त्राः कृतार्थाः	।
गतेषु देवेषु मुनिप्रवर्यां हृष्टोऽवसद्भार्यया धर्मयुक्तः	॥३४॥
गते च काले ह्यतिविप्रयुक्ते, दैवे वर्षे संक्षयया वै सहस्रे	।
न ते सुरा आपुधानां मुनोऽश, वाचं मनश्चापि तथैव चक्रुः	॥३५॥
दधीचिरप्याह गभस्तिमोजसा, देवारयो मां द्विषतीह भद्रे	।
न ते सुरा नेतुकामा भवन्ति, संस्थापितान्यत्र वदस्व युक्तम्	॥३६॥
सा चाऽऽह कान्तं विनयादुक्तमेव, त्वं जानीषे नाथ यदत्र युक्तम्	।
दैत्या हरिष्यन्ति महाप्रवृद्धास्तपोयुक्ता बलिनः स्वायुधानि	॥३७॥
तदस्त्ररक्षार्यमिदं स चक्रे, मन्त्रैस्तु संक्षाल्य जलैश्च पुण्यैः	।
तद्गारि सर्वास्त्रमयं सुपुष्पं, तेजोयुक्तं तच्च पयो दधीचि.	॥३८॥
निर्वायैरूपाणि तदायुधानि, क्षयं जग्मुः क्रमशः कालयोगात्	।
सुराः समागत्य दधीचिमुचुर्महाभयं ह्यागतं शान्नवं नः	॥३९॥

अतिरिक्त और कोई पदार्थ बलवान् नहीं, यह सोच कर चुप हो गई। डबर देवकुल मुनि-प्राश्रम में रात्रि देखकर अपने को अचानक हृत्तुल्य समझने लगे ॥३३॥

देवताओं के भले जाने पर मुनि-वर्ग भार्या के रूप धर्म का पालन करते हुए सानन्द जीवन बिताने लगे। मुनीश! देवा के हजार वर्ष स्थित हो गये पन्तु देवी ने अपने रणे हुए अस्त्रा के विषय में कोई खोज भी नहीं की, वे जाने की चर्चा नहीं करते, मन से भी अस्त्रों के बारे में कुछ नहीं सोचा ॥३४-३५॥ यह देखकर दधीचि ने मनः प्रिया गमस्तिनी से कहा—भद्रे! सुरसत्तमास मेरे इस कार्य से ड्रेप करते हैं, और अब तक देवता इस रक्षित अस्त्रों को ले जाया नहीं चाहते, इसलिए इस वाचे में कोई उचित उपाय वलाभा ॥३६॥ उसने अपने पति से विचार पूर्वक कहा 'मैंने तो पहले ही शत्रु दिया था, नाथ! इस विषय में जो कुछ उचित है उसको आप स्वयं जानते हैं। तब मैं बला और महाशक्तिशाली राक्षस अपने अस्त्रों को छीन ले जगेंगे, यह सोचकर दधीचि ने उन अस्त्रा की रक्षा के लिये भग्नो से ज्ञात वा अभिमन्त्रित कर उससे अस्त्रों को वा दिया। और उस तेजोमय पवित्र, और सम्पूर्ण अस्त्र-पत्त्रा की शक्ति से सम्पन्न उस जल को पी गये, इस प्रकार उन्होंने अस्त्रा की रक्षा की ॥३७-३८॥ अथिब समस्त बलवान् के कारण वे अस्त्र बेचम हो गये और धीरे धीरे नष्ट हो गये। अब ऊपर देखकर देवताओं ने अनिर दधीचि में कहा कि हम लोगों के शिर पर शत्रुओं का अधिपण भय आ गया ॥३९॥ इसलिए मुनिप्रवर! आप उन

ते चापि देवास्तामदृष्ट्वैव शीघ्रं, तस्या भीता विप्रमूचुः कुरुष्व ।
 तत्याज जीवान्दुस्त्यजान्प्रीतियुक्तो यथासुखं देहमिमं जुषध्वम् ॥४७॥
 मदस्थिभिः प्रीतिमन्तो भवन्तु, सुराः सर्वे कितु देहेन कार्यम् ॥४८॥

ब्रह्मोवाच

इत्युक्त्वाऽसौ बद्धपद्मासनस्थो, नासाग्रदत्ताक्षिप्रकाशप्रसन्नः ।
 वायु सर्वाह्णं मध्यमोद्घाटयोगाग्नीत्वा शनैर्देहराकाशगर्भम् ॥४९॥
 यदप्रमेयं परमं पदं यद्यदब्रह्मरूपं यदुपासितव्यम् ।
 तत्रैव विन्यस्य धियं महात्मा, सायुज्यतां ब्रह्मणोऽसौ जगाम ॥५०॥
 निर्जीवतां प्राप्तमभीक्ष्य देवाः, कलेवरं तस्य सुराश्च सम्यक् ।
 त्वष्टारमप्युचुरतत्स्वरन्तः, कुरुष्व चास्त्राणि बहूनि सद्यः ॥५१॥
 स चापि तानाह कथं नु कार्यं, कलेवरं ब्राह्मणस्येह देवाः ।
 बिभेमि कर्तुं, दारुणं चाक्षमोऽहं, विदारितान्यायुधान्युत्तमानि ॥५२॥
 तवस्थिभूतानि करोमि सद्यस्ततो देवा गाः समूक्षुस्वरन्तः ॥५३॥

प्रिय बचन बोलने वाली, अतिथि-सेविका पत्नी वहाँ उपस्थित न थी। वे देव उसको वहाँ उपस्थित न देखकर, उससे भय से भयभीत होकर ब्राह्मण से बोले कि दीधनता कीजिये। देवा की बातें सुनकर यधीचि प्रसन्न हो अपने अत्यन्त कष्ट से छोड़ने योग्य प्राणा को यह कहते हुए कि मेरे इस शरीर का इन्तानुबूल उपयोग कीजिये, सब देवता मेरी हृदिस्थी से प्रसन्न हो, इस व्यर्थ शरीर का परीषकार वे अतिरिक्त और कौन सदुपयोग हो सकता है, इस शरीर से कोई लाभ नहीं, छोड़ दिया ॥४९-४८॥

ब्रह्मा ने कहा—यह कहकर यधीचि पद्मासन लगाकर बैठ गये, नासाग्र में अपनी दृष्टि एकाग्र कर दी, योग द्वारा सुषुम्ना को जाग्रत कर शरीर सचारी वायु और अग्नि को दीप्त कर धनै शनै हृदय-गद्गद में पहुँचा दिया ॥४९॥ और जो अग्रमेय (अज्ञेय), परम पद ब्रह्म का स्वरूप है, उसी में अपनी वृद्धि (भावना) को लगाकर उस महात्मा ब्राह्मण ने परब्रह्म की सायुज्य-मुक्ति प्राप्त कर ली। इस प्रकार उस ब्राह्मण के शरीर को निर्जीव देखकर, देवताओं ने विद्वज्जनों से कहा—‘दीध्र ही इसी क्षण बहुत से अस्त्रों को बना दालो’। विद्वज्जनों ने भी देवताओं से कहा—‘देवगण! यह ब्राह्मण का शरीर है, मैं कैसे यह दारुण कार्य कर सकता हूँ, यह धीमत्स कार्य करने में मैं असमर्थ हूँ, यदि अस्थियों को कोई पाड़ कर अलग कर दे तब मैं उनसे उत्तम से उत्तम अस्त्र शीघ्र बना दूँगा। यह सुनकर देवताओं ने दीध्र ही गौओं से कहा ॥५०॥-५२॥

देवा ऊचुः

वज्रं मुखं च क्रियते हितार्थं, गावो देवैरामुधार्थं क्षणेन ।
दधौचिदेहं तु विदार्यं यूपमस्थीनि शुद्धानि प्रयच्छताम् ॥५४॥

ब्रह्मोवाच

ता देववाक्याच्च तथैव चक्रुः, सलिहय चास्थीनि वदुः सुराणाम् ।
सुरास्त्वेव जग्मुरद्वीनसत्त्वा, स्वमालय चापि तथैव गावः ॥५५॥
कृत्वा तथाऽह्नराणि च देवतानां, स्वष्टा जगामास सुराक्षया तदा ।
ततश्चिराच्छीलयती सुभद्रा, भर्तुं प्रिया बालगर्भा स्वरन्ती ॥५६॥
धरे गृहीत्वा कलशं वारिपूर्णमुमां नत्वा फलपुष्पं समेत्य ।
अग्निं च भर्तारमथाऽऽश्रमं च, सद्रष्टुकामा हृष्याजगामास शोधम् ॥५७॥
आगच्छन्तीं तां प्रातिघेयीं तदानीं, निवारयामास तदोलूकपात ।
सा सध्रमादागता चाऽऽश्रमं स्व, नैवापश्यत्तत्र भर्तारमग्रे ॥५८॥
कथं वा गतश्चेति सविस्मया सा, पप्रच्छ चाग्निं प्रातिघेयीं तदानीम् ।
अग्निस्तदोवाच सविस्तरं तां, देवागमं याचन बंधं शरीरे ॥५९॥

देवो ने कहा—गौमा ! आज देवों के हित के लिये तुम सबों का मुख वज्र के समान कटार बना दिया जाता है इसलिए तत्काल ही दधीचि के गरीर को पाउकर हडिडया को गूद कर दाँत निकालि देवा के लिये अन्नपात्र बनाये जायें ॥५४॥

ब्रह्मा ने कहा—उस गौमा ने देवों के कथनानुसार ऐसा ही किया हडिडियों को चाट-चाट कर स्वच्छ कर देवताओं को दे दिया । एकलम्बाएँ ही पराशर देवता ग प्रह्लाद अपने अपने स्थान को चले गए वग प्रकार गौमा ने भी अपना रास्ता पकड़ा ॥५५॥ स्वष्टा (विश्वकर्मा) भी देवताओं के अन्न बना कर उनको आगोषा कर गये । इसके बाद विभाग सुगता दधीचि की प्रिय भली जो गर्भवती थी बहुत बिलम्ब से भी वीं पूजा कर हाथ में अन्न स भरा बला आर फल पुष्प लिये हुय जाती—मत्वा वहाँ पहुँचा । उसने हृदय में आश्रय अग्नि और भता के दान का अत्यन्त उत्सुकता में ॥५६५७॥ वह अतिथि-सेवा-मरावण सार्वी, जब आ रही थी उसी समय रात में उत्तरपात हुआ जिससे कि उसको अगस्त्य की पुत्र भूषणा मिली । यह देख कर उसके हृदय में और अधिक आकांक्षा हो गई । वह बौड़ी हुई गीमर बगने आश्रम में आई परन्तु आतङ्गी उसने अपने प्राणपिक पति का नहीं देखा ॥५८॥ उस अतिथि सेवा-मरावण ने अत्यन्त विस्मित हो उस समय अग्नि से पूछा कि मेरे पति के कहीं गये । यह सुनकर अग्नि ने विस्तारपूर्वक उसने देवों का आश्रम में आना दधीचि से गरीर का भोगना उनका प्राणत्याग हडिडया का निहोतता उसने अन्न निर्माण और पुन देवताओं का भला जाना आदि बातें कह सुनाई । इन बातों को सुनकर

अस्यामुपादानमथ प्रयाण, श्रुत्वा सर्वं दुःखिता सा बभूव
दुःखोद्वेगात्सा पपाताथ पृथ्व्या, मन्द मन्द वह्निनाऽऽश्वासिता च ॥६०॥

प्रातिथेय्युवाच

शापेऽमराणां तु नाहं समर्थः, अग्निं प्राप्स्ये किं नु कार्यं भवेन्मे ॥६१॥

ब्रह्मोवाच

कोपं च दुःखं च नियम्य साध्वी, तदाऽवादीद्वर्मयुवतं च भर्तुं ॥६२॥

प्रातिथेय्युवाच

उत्पद्यते यत्तु विनाशि सर्वं, न शोच्यमस्तीति मनुष्यलोके ।

गोविप्रदेवार्थमिह स्रजन्ति, प्राणान्प्रियाण्यनुष्यभाजो मनुष्या ॥६३॥

ससारचक्रे परिवर्तमाने देहं समर्थं धर्मयुवतं त्ववाप्य ।

प्रियाण्प्राणान्देवविप्रार्थंहेतोस्ते वै धन्या प्राणिनो ये स्रजन्ति ॥६४॥

प्राणा सर्वेऽस्यापि देहान्वितस्य, यातारो च नात्र सदेहलेदा ।

एव ज्ञात्वा विप्रगोदेवदीनाद्यर्थं चैनात्सृजन्तीश्वरास्ते ॥६५॥

निवार्यमाणोऽपि मया प्रपन्नया, चकार देवास्त्रपरिग्रहं स ।

मनोगतं वेत्स्यथा विधानु, को मर्त्यलोकातिगर्चेष्टितस्य ॥६६॥

उक्तो अत्यन्त दुःख हुआ दुःख का आवेश से मूर्च्छित हो पृथ्वी पर गिर पड़ा। अग्निदेव ने धीरे धीरे उक्तो पुनः अभ्यर्चन-तुलाय-८ सब किया ॥५९६०॥

प्रातिथेयो ने कहा - देवताओं को शाप देना मेरे लिए उचित नहीं अब अग्नि प्रवेश (मर्ती होना) ही कहेंगे। इसके अतिरिक्त मेरे लिए रास्ता ही बचता है ॥६१॥

ब्रह्म ने कहा - परेन्द्रीर उम साध्या न प्रया दास का और आन्तरिक व्यापार अधिकार दिया, सब उभने अपने पति के विषय में धर्मयुक्त (बलवर्धन) बान बहना प्राणम दिया ॥६२॥

प्रातिथेयो ने कहा—इमं मनुष्य लोकं मया नृछ उत्पन्नं तदा हं बह नमश्च (लणभगुर) हे इमंविष्य इमं विषय मं दास कृता मयं नृछ मनुष्य मय पृथ्व्या है जागा विप्र और देवा के लिए अपने प्रिय प्राणा का बलिदान करने हैं। इमं परिवर्तना का और (चक्र) मया मय (वाप-भा) धर्मयुक्त (धर्मोप दास सार रहने वाला) मनुष्य दास पाकर अपने प्रिय प्राणा का देव और प्राणा न म्हा छाड दन है व प्राणा मय है। इमं दास म निबाम क रने वाले प्राण मय नृछ (अर्थात् ८) है इमं मया मया म दह नहीं है। यह रम्य जानकर आ विप्र गो देव और दास के भित्ति अपने प्राणा का छाड दन है व अवश्य ही माय-मया और म्हा है। मैंने बड़े अनुभव-विषय मे उनको रोना परन्तु उहा न देखा था व अस्वा का रण दिया। अथवा टीक हे, मया मे म रहने वाले (मनुष्या) मे सर्वथा अर्थात् स्वभावदात विषय का मनामन भावा का कन जाता है ॥६३६६॥

ब्रह्मोवाच

इत्येवमुक्त्वाऽऽपूज्य चाम्नीन्ययावद्भर्तृस्त्वचालोमभिः सा विवेदा ।
गर्भस्थितं बालकं प्रातियेयी, कुक्षिं विदार्याय करं गृहीत्वा ॥६७॥
नत्वा च गङ्गां भुवमाश्रमं च, वनस्पतीनोपपीराश्रमस्यान् ॥६८॥

प्रातियेय्युवाच

पित्रा हीनो बन्धुभिर्गोत्रजेश्च, मात्रा हीनो बालकः सर्व एव ।
रक्षन्तु सर्वेऽपि च भूतसंघास्तथोपध्मे बालकं लोकपालाः ॥६९॥
ये बालकं मातृपितृप्रहीणं, सन्निविशेयं स्वतनुप्रहृदः ।
पश्यन्ति रक्षन्ति त एव नून, ब्रह्मादिकानामपि वन्दनीयाः ॥७०॥

ब्रह्मोवाच

इत्थुवत्वा घात्यजद्बालं भर्तृचित्तपरायणा । पिप्पलानां समीपे तु न्यस्य बालं नमस्य च ॥७१॥
अग्निं प्रदक्षिणोऽवृत्त्य यज्ञपादसमन्विता । शिवेऽग्निं प्रातियेयी भर्ता सह दिवं ययी ॥७२॥
पशुदवाऽऽश्रमस्या ये वृक्षाश्च वनवासिनः । पुत्रवत्पोषिता येन ऋषिणा च दधीन्विना ॥७३॥
विना तेन न जीवामस्तथा मात्रा विना तथा । मृगाश्च पक्षिणः सर्वे वृक्षाः प्रोचुः परस्परम् ॥७४॥

वृक्षा ऊचुः

स्यगंमासेदुपोऽपि त्रिस्तदपत्येवकुत्रिमम् । ये कुर्वन्त्यनिश स्नेहं त एव कृतिनो नराः ॥७५॥

ब्रह्मा ने कहा—इस प्रकार कहकर उस अतिथि मेविना ने अग्नि की यथाविधि पूजा की, पति के अवशिष्ट वस्त्र, लोम आदि को एकात्र विद्या और अन्न की, पुक्षि का पाउकर गर्भस्थ बालक को अपने हाथों पर लिया । अनन्तर आश्रम की वनवासिनी, औरषिया, गङ्गा, पृथ्वी, और अपने आश्रम की प्रशंसा करती हुई वह अग्नि में प्रवेग करने की क्षमता से बोली—॥६७-६८॥

प्रातियेयी ने कहा—आप सभी प्राणि भूत, औरषिया और लोकपाल पिता, माता, भाई, बन्धु और कृपात्रा से रहित इस बालक की रक्षा करें । जो व्यक्ति माता-पिता से हीन (अनाथ) बालक को अपने औरत पुत्र के समान समझ कर पालन करते हैं वे भाग्यशाली हैं और ब्रह्मा आदि देवा के भी वन्दनीय हैं ॥६९-७०॥

ब्रह्मा बोले—यह कहकर पति-चरण में लीन रहने वाली उस मुण्डलिने बालक की एक पीपल के वृक्ष के नीचे रक्ष दिया । फिर यज्ञपात्र हाथ में लेकर अग्नि की प्रदक्षिणा तथा अभ्यङ्ग करने वह अग्नि में प्रविष्ट हो गई । इस प्रकार अपने पति के साथ वह स्वर्ग की चली गई । यह कहण दूसरे देवगण, आश्रम तथा वन के वृक्ष, पक्षि, मृग आदि, त्रिनश्रा क्षुधि दर्शयि ने पुत्र के समान पालन किया था, वे पढ़े । वे परस्पर कहने लगे कि उस माता के बिना हम लोग कैसे जी सकते हैं ॥७१-७४॥

पुक्षों ने कहा—जो व्यक्ति माता पिता से वंचित गरीब पर अनाथ भूत स्नेह भ्रंश दिगलने हैं, वे ही बालक में भाग्यशाली हैं । पितृ दर्शयि और माता प्रातियेयी जिह कहक-स्नेहपूर्ण दृष्टि से हम लोग को देखते थे,

दधीचिः प्रातिथेयी वा धीक्षतेऽस्मान्यथा पुरा । तथा पिता न माता वा धिगस्मान्पापिनो वयम् ॥७६॥
अस्माकमपि सर्वेषामतः प्रभृति निश्चितम् । बालो दधीचिः प्रातिथेयी बालो धर्मः सातनः ॥७७॥

ब्रह्मोवाच

एवमुक्त्वा तदीयध्वो वनस्पतिसमन्विताः । सोमं राजानमभ्येत्य दाचिरेऽमृतमुत्तमम् ॥७८॥
स चापि दत्तवांस्तेभ्यः सोमोऽमृतमनुत्तमम् । ददुर्बालाय ते चापि अमृतं सुरवल्लभम् ॥७९॥
स तेन तृप्तो बध्वे शुक्लपक्षे यथा दासी । पिप्पलैः पालितो यस्मात्पिप्पलादः स बालकः ॥
प्रबृद्धः पिप्पलानेवमुवाच त्वतिविस्मितः ॥८०॥

पिप्पलाद उवाच

मानुषेभ्यो मानुषास्तु जायन्ते पक्षिभिः खगाः । बीजेभ्यो बीरुधो लोके वैपम्यं नैव दृश्यते ॥
बाक्षेस्त्वहं कथं जातो हस्तपादादिजीववान् ॥८१॥

ब्रह्मोवाच

बुक्षास्तद्वचनं श्रुत्वा सर्वमूच्युयंयाक्रमम् । दधीचेर्मरणं साध्यास्तथा चान्निप्रवेशनम् ॥८२॥
अस्मिन् सहरणं वेवेरेतत्सर्वं सविस्तरम् । श्रुत्वा दुःखसमाविष्टो निपपात तदा भुवि ॥८३॥
आशवासितः पुनर्वृक्षैर्वापैर्धर्मार्थसंहितैः । आश्वस्तः स पुन प्राह तदीयधिवनस्पतीन् ॥८४॥

उस प्रकार कोई माता या पिता भी अपनी सन्तान का नहीं देख सकते । ऐसे पिता-माता से हम विद्वृत हो गये ।
हाय ! हम पापियों को धिक्कार है । अतः आज हम लोग यह दृढ़ प्रतिज्ञा करें कि दधीचि और प्रातिथेयी के
इस बाल आत्मा का पालन-पोषण हम लोग अवश्य करेंगे । यही सनातन धर्म है ॥७५-७७॥

ब्रह्मा ने कहा—उस समय ऐसी प्रतिज्ञा करके वनस्पतिथो सहित वे ओषधियाँ राजा सोम के समीप गईं
और अमृत माँगा । उस राजा सोम ने भी उनको यह परमात्मक अमृत दे दिया । उन्होंने भी देवा को प्रिय लगने वाला
अमृत बालक को दे दिया । वह बालक भी अमृत पान से तृप्त होकर शुकल पक्ष के चन्द्रमा के समान दिनदिन
बढ़ने लगा । पीपल ने बुद्धा ने उस बालक का पालन किया था, इसलिए उसका नाम 'पिप्पलाद' रखा गया । जब
वह बड़ा हुआ, तब अत्यन्त विस्मित होकर पीपल ने बुद्धा से कहा ॥७८-८०॥

पिप्पलाद ने कहा—प्रायः लाख व अनुष्य मे अनुष्य, पक्षिपा से पक्षी और बीज से वनस्पतियाँ उत्पन्न होती
हैं, इसमें कभी भी वैपम्य नहीं देखा जाता । परन्तु मैं हृषीकेश बाल, प्राणधारी मानव कैसे बुद्धा से उत्पन्न हुआ गया ? ॥८१॥

ब्रह्मा बोले—बालक पिप्पलाद की स्वामात्रिक वाता का मुनिकर बुद्धा ने आदि से अन्त तक—दधीचि की
मृत्पु, साध्वी का पति के माय अग्नि प्रवेश (सर्पि होना), देवताओं द्वारा अस्थि के लिये कण्ट उपाय आदि—
सारी घटनायें विस्तारपूर्वक सुना दीं । यह मुनिकर उसका अत्यन्त ध्याया दृढ़ । वह मूर्च्छित हो पृथ्वी पर गिर पड़ा ।
बालक को इस प्रकार मूर्च्छित देखकर बुद्धा ने धर्मवि-संगत वाक्य कहकर डाढ़ग बेंपाया । बुद्धा ने आश्वासन में
अपने को समालाकर उसने पुनः ओषधियाँ और वनस्पतियाँ स कहा ॥८२-८४॥

पिप्पलाद उवाच

पितृहन्तृहनिष्येऽहं नान्यथा जीवितुं क्षमः। पितृमित्राणि शत्रूंच तथा पुत्रोऽनुवर्तते ॥८५॥
स एव पुत्रो योज्यस्तु पुत्ररूपो रिपुः स्मृतः। वदन्ति पितृमित्राणि तारयन्त्यहितातपि ॥८६॥

ब्रह्मोवाच

वृक्षास्तं बालमादाय सोमान्तिकमथाऽऽययुः। बालवाक्यं तु ते वृक्षाः सोमायाय न्यवेदयन् ॥८७॥
श्रुत्वा सोमोऽपि तं बालं पिप्पलादमभाषत

सोम उवाच

गृहाग विद्यां विधिवत्समप्रां, तपःसमृद्धिं च शुभां च वाचम् ॥८८॥
शौर्यं च रूपं च बलं च बुद्धिं, संप्राप्यसे पुत्र मदानया स्वम्

ब्रह्मोवाच

पिप्पलादस्तमप्याह ओषधीशं विनीतवत् ॥८९॥

पिप्पलाद उवाच

सर्वमेतद्व्युथा मन्ये पितृहन्तृविनिष्कृतिम्। न करोम्यत्र यावच्च तस्मात्तत्प्रयत्नं वद ॥९०॥
यस्मिन्देवो यत्र काले यस्मिन्देवे च मन्त्रके। यत्र शौर्यं च सिद्ध्येत मत्संकल्पः सुरोत्तम ॥९१॥

पिप्पलाद ने कहा—मैं अपने पिता के हत्यारों का अवश्य वध करूँगा। बिना ऐसा किये मैं जी नहीं सकता। यह भीति बचन है कि पिता के शत्रु और मित्रों के प्रति पुत्र को भी वैसा ही व्यवहार करना चाहिये। वही पुत्र है जिसने उपर्युक्त सवचन को सत्य सिद्ध किया, नही तो वह पुत्र नहीं प्रसूत पुत्र रूप में पिता का पुत्र है। ऐसे ही पुत्र पिता के उदारता होते हैं जो पिता के मित्रों और शत्रुओं के प्रति यथायोग्य व्यवहार करते हैं, ऐसा नीतियों ने कहा है ॥८५ ८६॥

ब्रह्मा ने कहा—बालक की यह दृढ़ प्रतिज्ञा सुनकर वृक्षा उसको साथ लेकर सोम के समीप गये और उनसे बालक की कही हुई बातें कह सुनाई। सोम ने यह सुनकर बालक पिप्पलाद से कहा ॥८७॥

सोम ने कहा—वेडा ! तुम विधिपूर्वक रूप विचार्य बहुत बड़ी तपस्यायें, कल्याणमयी वाणी, धीरता, रूप, बल तथा बुद्धि प्राप्त करो। मेरी आज्ञा से तुम्हें सब चीजें मिल जाएँगी ॥८८॥

ब्रह्मा ने कहा—यह सुनकर पिप्पलाद ने पुन राजा सोम से नम्रतापूर्वक कहा ॥८९॥

पिप्पलाद बोले—पिता के हत्यारों से बदला लेने मनुष्य भी सहायता न देने वाले देव वरदाय को व्यर्थ समझता है। जितना आप कह गये हैं उनमें से किसी की भी मैं स्वीकार नहीं करता। इसलिए हे देववर ! पहले आप यह बतलाइये कि किस देव से किस समय किस देवता के पास किस मन्त्र का जाप करने से या किस तीर्थ में जाने से मेरा यन्त्र सिद्ध होगा ? ॥९०-९१॥

ब्रह्मोवाच

चन्द्रः प्राह चिरं ध्यात्वा भुक्तिर्वा मुक्तिरेव वा । सर्वं महेश्वराद्देवाज्जायते नात्र संशयः ॥९२॥
स सोमं पुनरप्याह कथं द्रक्ष्ये महेश्वरम् । बालोऽहं बालबुद्धिश्च न सामर्थ्यं तपस्तया ॥९३॥

चन्द्र उवाच

गीतमीं गच्छ भद्र त्वं स्तुहि चक्रेश्वरं हरम् । प्रसन्नस्तु तवेशानो ह्यल्पायासेन वत्सकः ॥९४॥
प्रीतो भवेन्महादेवः साक्षात्कारणिकः शिवः । आस्ते साक्षात्कृतः शंभुर्विष्णुना प्रभविष्णुना ॥९५॥
वरं च दत्तवान्विष्णोश्चक्रं च त्रिवशाच्चितम् । गच्छ तत्र महाबुद्धे दण्डके गीतमीं नदीम् ॥९६॥
चक्रेश्वरं नाम तीर्थं जानन्त्योपधयस्तु तत् । तं गत्वा स्तुहि देवेशं सर्वभावेन शंकरम् ॥
स ते प्रीतमनास्तात सर्वान्कामान्प्रदास्यति ॥९७॥

ब्रह्मोवाच

तद्राजवचनाद्ब्रह्मन्पिप्पलादो महामुनि । अजगाम जगन्नाथो यत्र दद्रः स वक्रदः ॥९८॥
तं बालं कृपयाऽऽविष्टाः पिप्पलाः स्वाश्रमाग्ययुः । गोदावर्यां ततः स्नात्वा नत्वा त्रिभुवनेश्वरम् ॥
तुष्ट्वा सर्वभावेन पिप्पलावः शिवं भुविः ॥९९॥

ब्रह्मा ने कहा—कुछ देर तक ध्यान करने चन्द्र ने कहा—‘भुक्ति या मुक्ति सब कुछ पाकर भगवान् से ही प्राप्त होते हैं, इसमें कुछ संदेह नहीं।’ पुनः बालक ने सोमदेव से प्रसन्न किया, मैं बालक हूँ, थोड़ी बुद्धि रखता हूँ, कठोर तपस्या करने का शक्ति भी मुझमें नहीं है। तब मैं किस प्रकार महेश्वर का दर्शन प्राप्त कर सकूँगा ? ॥९२-९३॥

चन्द्र ने कहा—भद्र ! तुम गीतमी के तट पर जाओ, वहाँ चक्रेश्वर शंकर की स्तुति करो ! वत्स ! तुम्हारे पोछे प्रयत्न से ही शंकर प्रसन्न हो जायेंगे। महादेव शंकर साक्षात् कृपा के अवतार हैं, वे अवश्य तुम्हारी बाल-उपासना से प्रसन्न होकर दर्शन देंगे। परम माधुर्यवान् विष्णु ने शंकर का साक्षात्कार किया है। शंकर ने उनको देवा से पूजित कर और अन्याय्य वर दिये हैं। महाबुद्धिमान् ! तुम दण्डक वन में गीतमी के तट पर जाओ। ये ओषधियाँ भी उस चक्रेश्वर तीर्थ को जाननी हैं। वहाँ जाकर अन्त्य भाव से भगवान् शंकर की स्तुति करो। तब ! वे प्रसन्न होकर अवश्य तुम्हारी सम्पूर्ण कामनायें पूर्ण करेंगे ॥९४-९७॥

ब्रह्मा ने कहा—राजा माम के अद्वैतानुसार महामुनि पिप्पलाद उस स्थान पर गये, जहाँ चक्र के दाता जगन्नाथ शंकर निवास करते हैं। पीपल वृक्ष में कृष्णा म विहंगम होकर उस बालक को वहाँ पहुँचाकर अपने आश्रम का चले गये। इसके उपरान्त पिप्पलाद ने गोदावरी में स्नान किया और पवित्र होकर त्रिभुवनेश्वर शंकर को प्रणाम करने अन्त्य भाव में उनकी स्तुति की ॥९८-९९॥

पिप्पलाद उवाच

सर्वाणि कर्माणि विहाय धीरास्त्यक्तपणा निर्जितचित्तवाताः	।
यं पान्ति मुक्त्यै शरणं प्रयत्नात्तमादिदेवं प्रणमामि शंभुम्	॥१००॥
यः सर्वसाक्षी सकलान्तरात्मा, सर्वेश्वरः सर्वकलानिधानम्	।
विज्ञाय भच्चित्तगतं समस्तं, स मे स्मरारिः करुणां करोतु	॥१०१॥
दिगोश्वराञ्जित्य सुराञ्जितस्य, कैलासमान्दोलयतः पुरारः	।
अदगुष्टकृत्यैव रसातलादधोगतस्य तस्यैव दशाननस्य	॥१०२॥
आलूनकायस्य गिर निशम्य, विहस्य देध्या सह दत्तमिष्टम्	।
तस्मै प्रसन्नं कुपितोऽपि तद्ददयुक्तदाताऽसि महेश्वर त्वम्	॥१०३॥
सौत्रामणीमृद्धिमधः स चक्रे, योऽर्चां हरो (रे) नित्यमतोव कृत्वा	।
घाण. प्रशस्यः कृतवानुच्चपूजां, रम्या मनोनां शशिखण्डमौलेः	॥१०४॥
जित्वा रिपून् देवगणान्प्रपूज्य, गुरुं नमस्कर्तुमगादिशाखः	।
धुकोप दुष्ट्वा गणनायमूढमङ्गु तमारोप्य जहास सोमः	॥१०५॥
ईशाङ्गुलडोऽपि शिशुस्वभावात् मातुरङ्गुं प्रमुमोच बालः	।
क्रुद्धं सुतं बोधितुमप्यशक्तस्ततोऽर्धनारिरवमवाप सोमः	॥१०६॥

पिप्पलाद ने कहा—मैं उस व्यापकशिव को प्रणाम करता हूँ जिसकी शरण में जाकर मनस्वी जन अपनी सम्पूर्ण सासारिक इच्छाओं और सब कर्मों का त्याग कर अपने चित्त एवं प्राणवायु को बश में करके मुक्ति-प्राप्ति के लिए प्रयत्न करते हैं ॥१००॥ वे शंकर सबके सर्वाधी हैं, सबके अन्तःकरण में निवास करते हैं, सबके ईश्वर और सम्पूर्ण कला के कोश हैं, वे भवतरिण मेरे हृदय की सम्स्त भावनाओं को जानकर मेरे ऊपर करुणा करें ॥१०१॥ हे महेश्वर! रावण ने दिक्पाली की जीतकर देवताओं से पूजा प्राप्त की और दर्प से आपके कैलाश पर्वत को हिला दिया। उसकी इस घुष्टता से कुपित होकर अपने उसे अगूठ से दबाकर रसातल भेज दिया, परन्तु उस छिन्न शरीर वाले रावण की प्रार्थना सुनकर कुपित होने पर भी आप पार्वती सहित प्रसन्न हो गए और उसको अभिलषित वरदान दिया। इस प्रकार आप औरदानी हैं ॥१०२-१०३॥ प्रशस्तशिव बाण ने शशिमौलि की उच्च कोटि की रम्य और मर्माह्वर पूजा के द्वारा सौत्रामणि यक्ष सम्बन्धी सिद्धियों को सुख कर दिया ॥१०४॥ जब कार्तिकेय शत्रुओं को जीतकर और देवताओं की पूजा करके गुह्यजना को प्रणाम करने के लिये आये तब गणनाय (गणेश) को पहले ही आपकी गोद में बैठे देखकर कुपित हो गये, फिर आप कार्तिकेय को गोद लेकर भी पार्वती सहित हम पड़े ॥१०५॥ आपकी गोदी में बैठे हुए उस बालक ने अपनी बाल प्रकृति के कारण माता की गोद नहीं छोड़ी। तब अपने क्रुद्ध पुत्र को और किसी प्रकार से समझाने में अपने को असमर्थ पाकर पार्वती सहित आपने अर्धनारी का रूप धारण कर लिया ॥१०६॥

ब्रह्मोवाच

ततः स्वयंभूः सुप्रीतः पिप्पलादमभाषत

॥१०७॥

शिव उवाच

वरं वरय भद्रं ते पिप्पलाद यथेप्सितम्

L

॥१०८॥

पिप्पलाद उवाच

हृतो देवैर्महादेव पिता मम महायशाः। अदाम्भिकः सत्यवादी तथा माता पतिव्रता ॥१०९॥
 देवेभ्यश्च तपोर्नाशं श्रुत्वा नाथ सविस्तरम्। दुःखकोपसमाविष्टो नाहं जीवितुमुत्सहे ॥११०॥
 तस्मान्मे देहि सामर्थ्यं नशयेयं सुरान्यथा। अवध्यसेष्यस्त्रैलोक्ये त्वमेव शशिशेखर ॥१११॥

इंद्रवर उवाच

तृतीयं नयनं द्रष्टुं यदि शक्नोषि मेऽनघ। ततः समर्थो भविता देवांश्छेदयितुं भवान् ॥११२॥

ब्रह्मोवाच

ततो द्रष्टुं मनश्चक्रे तृतीयं लोचनं विभो। न शशक तदोवाच न शक्तोऽस्मीति शंकरम् ॥११३॥

इंद्रवर उवाच

किंचित्कुरु तपो बाल यदा द्रक्ष्यसि लोचनम्। तृतीयं त्वं तदाऽभीष्टं प्राप्स्यसे नात्र संशयः ॥११४॥

ब्रह्मा ने कहा—पिप्पलाद की प्रार्थना सुनकर स्वयंभू शंकर जी अत्यन्त प्रसन्न होकर पिप्पलाद से बोले ॥१०७॥

शिव ने कहा—तुम्हारा कल्याण हो, तुम अपना अभीष्ट कर मागो ॥१०८॥

पिप्पलाद ने कहा—महादेव ! मेरे अतिविनम्र, साधु, सत्यवादी और महाप्रतापी पिता तथा पतिव्रता माता को देवताओं ने मार डाला। नाथ ! देवताओं द्वारा अपने माता पिता का नाश सुनकर दुःख और त्राप में अन्धा हो गया हूँ, मुझे जीने की इच्छा नहीं हो रही है। इसलिये मुझे ऐसी शक्ति दीजिए, जिससे मैं देवताओं का नाश कर सकूँ। शशिशेखर ! इस विभुवन में आप ही अवध्य एवं सेव्य हैं ॥१०९-१११॥

इंद्रवर ने कहा—हे निष्पाप ! यदि तुम मेरे सीखने नेत्र को देण सकते तो तुम देवताओं को नष्ट करने में समर्थ हो जाओगे ॥११२॥

ब्रह्मा बोले—यह सुनकर व्यापक शंकर ने तृतीय लोचन को देने के लिये अपने प्रयत्न किया, परन्तु देव न सका। तब शंकर से कहा कि मैं देने में समर्थ नहीं हूँ ॥११३॥

इंद्रवर ने कहा—बालक कुछ और तपस्या करो जब तुम तृतीय नेत्र को देगेंगे तब निश्चय ही अपने अभीष्ट को प्राप्त करोगे ॥११४॥

ब्रह्मोवाच

एतच्छ्रुत्वेगानवायं तपसे कृतनिदम्यः। दधीचिसूनुर्यमात्मा तत्रैव बहुलाः समाः॥११५॥
शिवध्यानंनिरतो बालोऽपि बलवानिव। प्रत्यहं प्रातस्त्याय स्नात्वा मत्वा गुरुन्ममात्॥११६॥
सुखासीनो मनः कृत्वा सुषुम्नायामनन्यधीः। हस्तस्वस्तिकमारोप्य नामो विस्मृतसंसृतिः॥११७॥
स्यानात्स्थानान्तरोत्कर्षान्विदध्यां शश्वं महः। ददर्श चक्षुर्देवस्य तृतीयं पिप्पलाशनः॥
कृताञ्जलिपुटो भूत्वा विनीत इदमब्रवीत् ॥११८॥

पिप्पलाद उवाच

शंभुना देवदेवेन करो दत्तः पुरा मम। तर्तीयचक्षुषो ज्योतिर्यदा पश्यसि तत्क्षणात्॥११९॥
सर्वं ते प्रायितं सिध्येदित्याह त्रिदशेश्वरः। तस्माद्रिपुविनाशाय हेतुभूता प्रयच्छ मे॥१२०॥
तदैव पिप्पला, प्रोक्षुर्बडवाऽपि महाद्युते। माता तव प्रातिषेयी यदन्त्येव दिव गता॥१२१॥
पराभिद्रोहनिरता विस्मृतात्महिता नराः। इतस्ततो भ्रान्तचिन्ताः पतन्ति नरकावटे॥१२२॥
तन्मातृबध्नं धृत्वा कुपितः पिप्पलाशनः। अभिमाने ज्वलत्पन्तः साधुवादो निरर्थकः॥१२३॥

ब्रह्मा ने कहा—शकर जी की इतनी बातें सुनकर धर्मात्मा दधीचि-पुत्र ने तपस्या के लिये दृढ़ सकल्प कर लिया और वह वही पर एकमात्र शिव के ध्यान में तल्लीन होकर बालक होते हुये भी बलवान् के समान दीर्घजालीन तपस्या करने लगा। प्रतिदिन प्रातःकाल उठता, स्नानापरान्त यमशः गुरुजनों को प्रणाम करता था। पुन आसन पर सुखपूर्वक बैठकर सुषुम्ना में एकप्रभ मन से ध्यान लगाता और आभिस्थान में हस्त-स्वस्तिक लगाकर सप्ताह की ओर से एकदम अपना मन हटा देता था। इस प्रकार अपने ध्यान को एक स्थान से हटाकर दूसरे उल्टा स्थान में जमाता हुआ शम्भु के महातेज का ध्यान करता था। अन्त में पिप्पलाद ने अपनी उल्टाष्ट योग-साधना द्वारा शकर के तृतीय नेत्र को देख लिया। तब हाथ जोड़कर विनीत भाव से शकर जी से कहा ॥११५-११८॥

पिप्पलाद ने कहा—महले देवी के देव शकर ने मूत्रको वर दिया था कि 'जब तुम मेरे तीसरे नेत्र की ज्योति को देखोगे तब उसी क्षण मुझारे सब मनीष्य पूरे हो जायेंगे' ॥११९॥ इसलिये शम्भु का विनाश करने के लिये मुझे शक्ति प्रदान कीजिये। उसी समय पीपल के वृक्षा और वज्रा ने कहा 'हे महातेजस्वी। तुम्हारी माता प्रातिषेयी इस प्रकार बहती हुई ही स्वर्ग चली गई थी कि दूसरों के अपकार में निरत रहने वाले, अपने हित को भूल देने वाले और इसर उबर मटकने वाले मानव नरक-गुण्ड में गिरते हैं ॥१२०-१२२॥ माता की वही हुई बातों को सुनकर पिप्पलाद कुपित हो गया। उसका अन्तःकरण अभिमान के अग्नि में जलने लगा। उसने कहा कि यह सामु उपदेश निरर्थक है ॥१२३॥ उसी क्षण उसके नेत्र से एक कृत्या निकली और बोलने लगी—'दो दो।' चूँकि उस समय

देहि देहीति तं प्राह कृत्या नेत्रविनिर्गता। बडबेति स्मरन्विप्रः कृत्याऽपि बडवाकृतिः॥१२४॥
 सर्वसत्त्वविनाशाय प्रभूताऽनलग्निभिर्णो। गभस्तिनी बालगर्भा या माता पिप्पलाशिनः॥१२५॥
 तद्ध्यानयोगात्तु जाता कृत्या साऽनलग्निभिणी। उत्पन्ना सा महारौद्रा मृत्युजिह्वेव भीषणा॥१२६॥
 अवोचत्पिप्पलादं तं किं कृत्यं मे वदस्व तत्। पिप्पलादोऽपि तां प्राह देवान्खाद रिपून्मम॥१२७॥
 जप्राह सा तथेत्युक्त्वा पिप्पलादं पुरस्थितम्। स प्राह किमिदं कृत्यं सा चाप्याह त्वयोदितम्॥१२८॥
 देवंश्च निमित्तं देहं ततो भीतः शिवं ययौ। तुष्टाव देवं स मुनिः कृत्यां प्राह तदा शिवः॥१२९॥

शिव उवाच

योजनान्तः स्थिताञ्जीवाश्च गूहाण मदाज्ञया। तस्माद्याहि ततो दूरं कृत्ये कृत्यं ततः कुह॥१३०॥

ब्रह्मोवाच

तीर्यात्तु पिप्पलात्पूवं यावद्योजनसंख्यया। प्रातिष्ठद्बडवारुषा कृत्या सा ऋषिनिर्मिता॥१३१॥
 तस्यां जातो महानग्निर्लोकसंहरणक्षमः। तं दृष्ट्वा बिबुधाः सर्वे प्रस्ताः शंभुमुपागमन्॥१३२॥
 चन्द्रेश्वरं पिप्पलेशं, पिप्पलादेन तोषितम्। स्तुवन्तो, भीतमनसः शंभुमुचुर्बोकेसः॥१३३॥

ब्राह्मण ने बडवा की स्मरण किया था, अतएव इत्या भी बडवा (घोड़ी) जैसी आकृति में प्रकट हुई। वह सभी प्राणियों को विनष्ट करने के लिए अपने गर्भ में प्रचुर अग्नि धार किये हुई थी॥१२४॥ पिप्पलाश की माता बड़ी बान्तिभर्ता तथा बालगर्भा थी, इसलिये उसका ध्यान करने के कारण इत्या भी अग्नगर्भा हुई। इस प्रकार अत्यन्त क्रूर एवं मृत्यु की आँख के समान भयंकर वह इत्या उत्पन्न होकर पिप्पलाद से बोली—मेरे लिए कौन सा कार्य है, वह बताओ। पिप्पलाद ने भी उससे कहा कि तुम मेरे पास देवताओं को राख डालो॥१२५-१२७॥ 'अच्छी बात' यह कहकर उसने पहले क्षमते लड़े हुये पिप्पलाद की ही पकड़ लिया। पिप्पलाद बोली—इत्या! यह क्या कर रही है? वह बोले उठी—तुमने ही तो कहा है। तुम्हारा शरीर भी तो देवताओं द्वारा ही निर्मित है। तब पिप्पलाद डरकर शिव की धारण में गया और उनकी स्तुति करने लगा। तब शंकर ने इत्या से कहा॥१२८-१२९॥

शिव ने कहा—इत्या! मेरी आज्ञा से योजन-परिमित सीमा के भीतर रहने वाले प्राणियों को मत पकड़ो। इसलिये यहाँ से दूर जाओ और तब अपना कार्य करो॥१३०॥

ब्रह्मा बोले—तदनन्तर वह ऋषि द्वारा उत्पन्न की हुई बडवारूप भारिणी इत्या पिप्पल तीर्थ-से पूर्व एक मोजन के क्षेत्र में अवस्थित हो गई। वहाँ उसने शरीर से सम्पूर्ण लोक को भस्म कर देने की क्षमता रखने वाली अग्निज्वाला उत्पन्न हुई। उसको देखकर सब देव भयवन्त हो शरीर के मर्पण गये। वहाँ जाकर भयभीत देवगण पिप्पलाद से सानुष्ट किये गये पिप्पलाशिवर्षित चन्द्रेश्वर धाम की स्तुति करते हुए बोले॥१३१-१३३॥

देवा ऊचुः

रक्षस्व शमो कृत्याऽस्मान्बाधते तद्भुवान्त । शरण भव सर्वेश' भीतानामभयप्रद ॥१३४॥
 सर्वत परिभूतानामार्तानां श्रान्तचेतसाम् । सर्वेषामेव जन्तूनां त्वमेव शरण शिव ॥१३५॥
 ऋषिणाऽभ्यर्थिता कृत्या त्वच्छुर्बल्लिनिर्गता । सा जिघांसति लोकास्त्रींस्त्व नःशत्राता न चेतर ॥१३६॥

ब्रह्मोवाच

तानब्रवीज्जगन्नाथो योजनान्तनिवासिन । न बाधते त्वसी कृत्या तस्माद्यूपमहनिशम् ॥१३७॥
 इहैवाऽऽसध्वममरास्तस्या वो न भय भवेत् ॥१३८॥

ब्रह्मोवाच

पुनरुचु सुरेजानं स्वया दत्त त्रिविष्टपम् । तत्पक्त्वाऽत्र कथं नाथ यत्स्यामस्मिदशाचित ॥१३९॥

ब्रह्मोवाच

देवानां वधनं धृत्वा शिवो यावयमथाब्रवीत् ॥१४०॥

शिव उवाच

देवोऽसौ विश्वतश्चक्षुर्यो देवो विश्वतोमुख । यो रश्मिभिस्तु धमते नित्यं यो जनको मत ॥१४१॥
 स सूर्य एक एवात्र साक्षाद्रूपेण सर्वदा । स्थितिं करोतु तन्मूर्तीं भविष्यन्त्यखिला स्थिता ॥१४२॥

देवगण बोले—शमा ! रक्षा कीजिये । कृत्या और उससे निवृत्ती हुई ज्वाला हम लोगों को नष्ट कर रही है । हे सबके स्वामी ! उसे हमें को क्षम्य करदान देने वाले । हम लोगों के शरणदाता होइये । हे शिव ! सब और से पराजित हुआ गया था वह हुए बिना वाले सभी प्राणिमा के लिए आप ही शरणदाता हैं । ऋषि से प्रार्थित और आप के नेत्र का ज्वाला से निकली हुई वह कृत्या तीनों लोकों को नष्ट करना चाहती है । आप ही हम लोगों को बचा सकते हैं दूसरा कोई नहीं बचा सकता ॥१३४ १३६॥

ब्रह्मा ने कहा—यह सुनकर जगन्नाथ वाकर ने देवों से कहा—यह कृत्या योजन परिमित सीमा के भीतर रहने वाला कोई क्षति नहीं पहुँचाती । इसलिए तुम लोग रातदिन यही रहो । मुझें उसका कोई भय नहीं होगा ॥१३७॥

ब्रह्मा ने कहा—पुन देवताओं ने वाकर से कहा—आप ने ही तो हम लोगों का स्वयं प्रदान किया है तब हे नाथ ! हे देवों के पूज्य ! उस स्वयं को छोड़कर यहाँ हम कैसे निवास करेंगे ? देवताओं की बातें सुनकर शिव ने पुन देवा से कहा ॥१३८ १४०॥

शिव ने कहा—जिसके चारों ओर नेत्र है तथा चारों ओर मुख है और जो नित्य ही अपना किरणों से प्रकाश भान रहते हैं तथा ससार के प्राणदाता है वे ही सूर्य देवता अकेले यहाँ सबदा प्रत्यक्ष रूप से निवास करेंगे और उनकी मूर्ति में सभी देवता अवस्थित होंगे ॥१४१ १४२॥

ब्रह्मोवाच

तथेति शभुवचनात्पारिजाततरोस्तदा । देवा दिवाकर चक्षुस्त्वष्टा भास्करमश्वीत् ॥१४३॥

त्वष्टोवाच

इहं वाऽऽस्व जगत्स्वामिन्द्रक्षेमोऽन्विबुधान्स्वयम् । स्वाशंस च यमप्यत्र तिष्ठाम शभुसन्निधौ ॥१४४॥
चक्रेश्वरस्य परितो यावद्योजनसंख्यया । गङ्गाया उभय तीरमासाद्याऽऽसन्सुरोत्तमा ॥१४५॥
अङ्गुल्यर्धाधमात्र तु गङ्गातीर समाश्रिता । तिस्र कोट्यस्तथा पञ्च शतानि मुनिसत्तम ॥
तीर्थानां तत्र व्युष्टिं च क भृणोति श्रवोति वा ॥१४६॥

ब्रह्मोवाच

तत सुरगणा सर्वे विनीता शिवमश्रुवन् ॥१४७॥

देवा ऊचु

पिप्पलाव सुरेशान क्षम नय जगन्मय ॥१४८॥

ब्रह्मोवाच

ओमित्युक्त्वा जगन्नाथ पिप्पलावमबोचत ॥१४९॥

शिव उवाच

नाशितेष्वपि देवेषु पिता ते नाऽऽगमिष्यति । दत्ता पित्रा तव प्राणा देवानां कार्यसिद्धये ॥१५०॥
वीनतं कदणाय धु को हि तादृग्भवे भवेत् । तया माता दिय तात तय माता पतिव्रता ॥१५१॥

ब्रह्मा ने कहा—एक ह। एता यह कहकर गये व आदिगुप्ता उक्त समय देवताओं ने पारिव्रज गुप्त व काष्ठ से मृग व मृनि बनाई। सब विद्वज्जनों ने मृग से कहा ॥१४३॥

विद्वज्जनों ने कहा—हमसार व रवामी। आप यही रह और स्वयं इन देवा की रक्षा करें। हम लला भी अपने अपना आता स यही गहर व समीप निवास करेंगे। इस प्रकार चक्रेश्वर व चार। और एक मायन के परिमाण स गङ्गा के दोन। तटा पर देव-यग निवास करन लगा। हे मुनिश्रेष्ठ! व तीन करोड़ पाँच सौ दशत गगना पर आप आप अगुल को स्थान पाकर भी रहने लगे। वही व तीर्थों का पञ्च बीन बना सरना अदना गुप्त सगता है ॥१४४ १४५॥

ब्रह्मा ने कहा—तत्पश्चात् तव देवता विनियोग याव स गहर ने बाध ॥१४७॥

देवगण बोले—ह देवशिखे। जगद्भ्याय व पिप्पलाव को अब पान कार्यय ॥१४८॥

ब्रह्मा ने कहा—अष्टा। यह कहकर शिव ने पिप्पलाव स कहा ॥१४९॥

शिव ने कहा—एव व नष्ट ह। जान पर भी गुह्यारे पिता नहीं आवेये और गुह्यार पिता व ती दश की वार गिद्धि के लिय धन प्राणा व वलियन विवा है। हम ससार स उन व समान दीन-गुनिया पर बना बना सारना दूसरा बीन हागा व पुत्र। गुह्यारी पतिव्रता माता भी लीहिन व लिये ही स्वयं गई है। गुह्यारी माता व समान

समा फाञ्च्यत्र न तथा लोषामुद्राञ्च्यन्त्यती । यदस्मिन्नि. सुराः सर्वे जयिनः सुखिनः सदा ॥१५२॥
 तेनावाप्तं यशः स्फोटं तव माराञ्च्यं कृतम् । त्वया पुत्रेण सर्वेन नात. परतर कृतम् ॥१५३॥
 स्वप्नतापभयात्स्वर्गच्छ्युतास्त्वं पातुमर्हसि । काविशिकांस्तव भयादमरास्त्रातुमर्हसि ॥
 नाञ्जर्तत्राणादभ्यधिकं सुकृतं ववापि विद्यते ॥१५४॥

यावद्यशः स्फुरित चाह मनुष्यलोक अहानि तावन्ति दिवं गतस्य ।
 दिने दिने वर्पसंख्या (वर्ष) परस्मिन्लोको वासो जायते निर्विकारः ॥१५५॥
 मृतास्त एवात्र यशो न येयामन्धास्त एव श्रुतवर्जिता ये ।
 ये दानशीला न नपुंसकास्ते, ये धर्मशीला न त एव शोच्या. ॥१५६॥

ब्रह्मोवाच

भापितं देवदेवस्य' भूत्वा शास्त्रोऽभवन्मुनि. । कृताञ्जलिपुटो भूत्वा नत्वा नायमयाब्रवीत् ॥१५७॥

पिप्पलाद उवाच

वाग्भिर्मनोभिः कृतिभिः कदाचिन्मनोपकुर्वन्ति हिते रता ये ।
 तेभ्यो हितायं त्विह चापरेषां, सोमं नमस्यामि सुरादिभूषणम् ॥१५८॥
 संरक्षितो' धैर्यभिवर्धितश्च, समानगोत्रश्च समानधर्मा ।
 तेषामभीष्टानि शिव. करोतु, बालेन्दुमौलि प्रणतोऽस्मि नित्यम् ॥१५९॥

लोषामुद्रा अथवा जङ्घणी कोई भी इस भूतल पर नहीं हैं। उनकी हृद्दिङ्गयो से सम्पूर्ण देवता सर्वदा विजयी और सुखी रहेंगे? इस ब्रह्मत्वाग से तुम्हारी माता ने अपने यश को फैलाया और अविनाशी बनाया। परन्तु उनका पुत्र हीकर तुमने उनसे अधिक यश अर्जन नहीं किया। तुम्हारे प्रताप के भय से वे देवता स्वर्ग से क्षुब्ध हो गए हैं। भगने को उन्हे दिशा नहीं मिल रही है। ऐसे देवों की शुभ रक्षा करो। कहो भी दुर्लभजनों की रक्षा से बचकर और कोई पुण्य नहीं है। इस मनुष्यलोक में मनुष्य का जितने दिनों तक विमल यश रूपी प्रकाश फैलता रहता है वह मनुष्य मरने पर दिनों की सख्या ने अनुसार उतने ही वर्षों तक स्वर्ग में सुखपूर्वक निवास करता है। इस ससार में जिनकी क्वाति नहीं है वे ही मृत हैं, जो वेदज्ञानहीन हैं वे ही अन्धे हैं जो दानपरायण नहीं हैं वे नपुंसक हैं और जो धर्मशील नहीं हैं वे ही शोचनीय हैं ॥१५०-१५६॥

ब्रह्मा ने कहा—देवादिदेव शंकर का वचन सुनकर मुनि शान्त हो गये, और दोनों हाथ जोड़कर भगवान् शंकर को प्रणाम करने बोले—

पिप्पलाद ने कहा—जो मेरे हिल का ध्यान रखते और वाणी, मन तथा कार्यो द्वारा मेरा उपकार करते हैं, उनके और अन्यो के हिल के लिये मैं देव आदि के पूज्य शंकर को नमस्कार करता हूँ। जिन लोगों ने मेरी रक्षा की,

येरह वर्धितो नित्य मातृवत्पितृवत्प्रभो । तन्नाम्ना जायता तीर्थं देवदेव जगत्त्रये ॥१६०॥
यशस्तु तेदा भविता तेभ्योऽहमनूयस्तत । यानि क्षेत्राणि देवाना यानि तीर्थानि भूतले ॥१६१॥
तेभ्यो यदिदमधिकमनुमन्यन्तु देवता । तत क्षमेऽहं देवानामपराध निरञ्जन ॥१६२॥

ब्रह्मोवाच

तत समक्ष सुरसाक्षरा गिर, सहस्रचक्षु प्रमुखास्तथाऽग्रत ।
उवाच देवा अपि मेनिर वचो, दधौचिपुत्रोदितमादरेण ॥१६३॥
बालस्य बुद्धिं वितय च विद्या, शौर्यं बल साहस सत्यवाचम् ।
पित्रोर्भक्ति भावशुद्धिं विदित्वा, तदाऽवादीच्छकर पिप्पलादम् ॥१६४॥

शंकर उवाच

वत्स यद्वै प्रिय काम यच्चापि सुरबल्लभम् । प्राप्त्यसे वद वत्स्याण नान्यथा त्व मन कृपा ॥१६५॥

पिप्पलाद उवाच

ये गङ्गायामाप्नुता धर्मेनिष्ठा, सपश्यन्ति स्वल्पदाञ्ज महेश ।
सर्वान्कामान्पुनरनु प्रसह्य, वेहान्ते ते पदमायान्तु शैवम् ॥१६६॥
तात प्राप्तस्त्वल्पद चाम्बिका भे, नाय प्राप्ता पिप्पलश्चामराश्च ।
सुप्त प्राप्ता नायनाय विलोचय, त्वां पश्येत्स्वल्पद ते प्रयातु ॥१६७॥

पालन पोषण किया और जा मेरे साथ तथा समान घम वाले है उनके धनारण्य को भगवान् शंकर पूज करें। मैं द्विताया के क्षेत्रों को गिर पर धारण करने वाले शंकर को नित्य प्रणाम करता हूँ। हे प्रभो! हे देवाधिदेव! जिहाने माता और पिता के समान नित्य मेरा पालन करते इतना बड़ा बनाया है उहाँ का नाम स यह साथ प्रसिद्ध हो। अब उन लोगों का, मैं नित्य राम र म र्चनार्थी तभी मैं उनके वृत्त से उद्धृत हो सगूँ। इस भूतल पर जितने शाय और देवस्थान हैं उन सबमें श्रेष्ठ इस तीर्थ को यदि देवगण स्वीकार करें तो शिव। मैं देवताओं के अराध को शर्मा कर सदाता हूँ ॥१६७ १६२॥

ब्रह्मा बोले—तदनन्तर ऋद्ध आदि देवताओं का समूह यह जान रणी गई। देवाने भी दर्शयन्मुख की वट हुई वाता का आदर का शय स्वीकार किया। अन्त में बालक को बुद्धि विद्या वितय शौर्य बल सहस्र सत्य वचन भक्ति पिता का भक्ति और भाव-शुद्धि का आनन्द शंकर ने पिप्पलाद से कहा—॥१६६ १६७॥

शंकर ने कहा—वत्स । जा तुम्हारा अग्रज है वह देव दुग्ध हो क्या न हो उम बनाओ। अवश्य पात्राण। इन में अग्रज का महानि ॥१६६॥

पिप्पलाद ने कहा—वत्स । जा घमप्रदा गया घ वान कर आने करणमल का ध्यान करते है वे अवश्य हैं। आपने सब मनोरथा का प्राप्त कर और गरिष्ठन्याय का बाद निवन्धन म बिराजे। नाय । मेरे पिता और भाना ने आरक्षो पावन पद प्राप्त किया पिप्पल और देवताओं ने भी नाया का नाम (अंग) का दान कर गुण प्राप्त किया। इस प्रकार जा कोई आपने दान का निमित्त प्राप्त कर के संगी आने लग म जोय ॥१६६-१६७॥

ब्रह्मोवाच

तथेत्युक्त्वा पिप्पलादं देवदेवो महेश्वरः । अमिनन्द्य च तं देवः सार्धं वाक्यमथाब्रवीत् ॥१६८॥
देवा अपि मुदा मुक्ता निर्भयास्तत्कृताद्भूयात् । इदमूचुः सर्व एव दाधीर्च शिवसन्निधौ ॥१६९॥

देवा ऊचुः

सुराणां यदभीष्टं च त्वया कृतमसंशयम् । पालिता देवदेवस्य आज्ञा त्रैलोक्यमण्डनी ॥१७०॥
याचितं च त्वया पूर्वं परार्थं नाऽऽत्मने द्विज । तस्मादन्यतमं ब्रूहि किञ्चिद्वात्स्यामहे वयम् ॥१७१॥

ब्रह्मोवाच

पुनः पुनस्तदेवोचुः सुरसंघा द्विजोत्तमम् । कृताञ्जलिपुटः पूर्वं नत्वा शम्भुसुरानिदम् ॥
उवाच पिप्पलादश्च उमा नत्वा च पिप्पलान् ॥१७२॥

पिप्पलाद उवाच

पितरौ शृष्टुकामोऽस्मि सदा मे शब्दगोचरौ । ते धन्या प्राणिनो लोके मातापित्रोर्वन्दे स्थिता ॥१७३॥
शुभ्रपणपरा नित्य तत्पादाज्ञाप्रतीशका । इन्द्रियाणि शरीरं च कुलं शक्तिं धियं वपुः ॥१७४॥
परिलम्प्य तयोः कृत्ये कृतकृत्यो भवेत्स्वयम् । पशूनां पक्षिणां चापि सुलभं मातृवर्दानम् ॥१७५॥

ब्रह्मा ने कहा—देवा के देव सकर ने 'ऐसा ही होगा' यह कहकर पिप्पलाद की प्रशंसा की और पुन देवों के साथ उस बालक से समापण दिया। देवगण भी उसके द्वारा उत्पन्न किये गये भय से अपने को मुक्त जानकर अत्यन्त प्रसन्न हुये और निर्भय होकर शिव देवों ने भी शिव के समीप की दक्षोच्चि-मुख से कहा ॥१६८-१६९॥

देवगण बोले—जि सदैव तुमने त्रिमूर्ति की विभूति करने वाली शिवज्ञा का पालन किया है और इस प्रकार देवों का जो अभीष्ट था, वह तुमने पूरा कर दिया। द्विज! परन्तु तुमने अब तक परीत-कार के लिये ही याचना की। अपने लिये कुछ नहीं मांगा, इसलिये कोई दूसरी चीज अपने लिए मांगो, हृद अवश्य प्रदान करेंगे ॥१७०-१७१॥

ब्रह्मा ने कहा—बार बार देवा न द्विजवर्य पिप्पलाद से वही बातें बुहराईं। पिप्पलाद ने भी हाथ जोड़कर धन्य देव, उमा और पिप्पलाद को प्रणाम कर के वाक्य कहे ॥१७२॥

पिप्पलाद ने कहा—मैं अपने माता-पिता को देखना चाहता हूँ, जिनका नाम मैं सदा सुनता हूँ। ससार में वे प्राणी धन्य हैं जो माता और पिता के वचन से रहते हैं, उनकी सेवा में सदैव लगे रहते हैं और उनके चरणों की आज्ञा की प्रतीक्षा किया करते हैं। भगवन् इन्द्रिया, शरीर, कुल, पौष्टिक वृद्धि और शरीर को धाँक यदि उनको माता-पिता के सेवानार्थ में लगायें तो वह स्वयं ही कृत्यकृत्य हो जायें। पशुओं और पक्षियों को भी माता का दर्शन नित्य हुआ

दुर्लभं मम तच्चापि पृच्छे पापफलं नु किम् । दुर्लभं च तया चेत्स्यात्सर्वेषा यस्य कस्यचित् ॥१७६॥
 नोपपद्येत सुलभं मत्तो नान्योऽस्ति पापकृत् । तयोर्वंशनामात्रं च यदि प्राप्स्ये सुरोत्तमा ॥१७७॥
 मनोवाक्यायकर्मभ्यः फलं प्राप्तं भविष्यति । पितरौ ये न पश्यन्ति समुत्पन्ना न (स्तु) सप्ततौ ॥
 तेषां महापातकानां क' संस्था कर्तुमीदवर- ॥१७८॥

ब्रह्मोवाच

तदप्येवंचनं श्रुत्वा मिथः समन्वयं ते सुरा । विमानवरमाहूदौ पितरौ दपतौ शुभौ ॥१७९॥
 तव संदर्शनाकाङ्क्षो ब्रह्मसे वाऽयं निश्चितम् । विपादं लोभमोहौ च त्यक्त्वा चित्तं शमय ॥१८०॥
 पश्य पश्येति तं प्राहुर्वाची च सुरसत्तमाः । विमानवरमाहूदौ स्वर्गिणौ स्वर्णभूषणौ ॥१८१॥
 तव संदर्शनाकाङ्क्षो पितरौ दपतौ शुभौ । वीज्यमानौ सुरस्त्रोभिः स्तूयमानौ च किनरं ॥१८२॥
 दृष्ट्वा स मातापितरौ तन्नाम शिवसन्निधौ । हर्षवाण्याभ्युनयनौ स कथंचिदुवाच तौ ॥१८३॥

पुत्र उवाच

तारयन्त्येव पितरावग्ये पुत्रा कुलोद्वहा । अहं तु मातुरदरे केवलं भेदकारणम् ॥
 एवं भूतोऽपि तौ मोहात्पश्येयमतिदुर्मति ॥१८४॥

क'त्ता है, परन्तु मुझ अभाग्य के लिये वह दुर्लभ हो गया है। मैं पृच्छता हूँ कि यह मेरे जिस पाप का फल है? यदि सबके लिए भाग्यदर्शन दुर्लभ होता तो जिस किसी एक व्यक्ति को सुलभ न होने पर कोई आपत्ति नहीं होती, परन्तु मेरे विषय में यह विपरीत है। अतः मेरे सम्मानार्थी दूसरा कोई नहीं है। हे श्रेष्ठ देवगण! यदि मैं अपने माता पिता का दर्शन मात्र या आर्जुना तो भन, वचन और कर्म का फल मिल गया—ऐसा मैं समझता हूँ। इस लोक में जो काम लेकर अपने माता-पिता को नहीं देखते हैं उन महापापियों के पापा क' गिनती करते में कौन समर्थ हो सकता है? ॥१७३-१७८॥

ब्रह्मा ने कहा—उस कृपि की बातों को सुनकर देवा ने परस्पर दग्धणा वरके कहा कि तुम आज निश्चित रूप से श्रेष्ठ विमान पर आरुढ़ अपने शुभ मूर्ति भोग प्राप्त करोगे। जा स्वयं तुम्हें दर्शन देने के लिए उत्सुक हैं, दर्शन करोगे। तुम विपाद, लोभ और माह का परित्याग कर अपने चित्त को शांत करो। पुनः उन सर्वश्रेष्ठ देवा ने उग्र दम्पति-पुत्र से कहा कि 'देवी, देवी, उत्तम विमान पर चढ़े हुए स्वयं आभूषणा ने सुराभिः शुभरा दर्शन देने के लिए लालचिल, और पवित्र दम्पति तुम्हारे भक्ति पिता आ रहे हैं। उन्हें देवापनायें पसे-साल रही हैं और निश्चयन स्तुति कर रहे हैं। तब से सभी अपने माता-पिता का दर्शन पाकर पितालाद न उह प्रणाम किया। उनके नेत्रों में आनन्द के आँसू आ गये। फिर किसी प्रकार अपने को समाल वर उन्नत माता पिता ने कहा ॥१७९-१८३॥

पुत्र ने कहा—मा' का पालन करने का उद्देश्य पुत्र अपने माता पिता का उद्धार करते हैं, परन्तु मैं अभाग्य माता के उदर में आकर केवल उसके दुःख का कारण बना। ऐसा भाग्यहीन होकर मैं आज अत्यन्त दुर्मति में मोहवश अपने माता पिता को देख रहा हूँ ॥१८४॥

ब्रह्मोवाच

तावालोवय ततो दुःखाद्वक्तुं नैव शक्नाक सः। देवाश्च मातापितरौ पिप्पलादमयान्बुवन् ॥१८५॥

देवा ऊचुः

धन्यस्त्वं पुत्र लोकेषु यस्य कीर्तिर्गता विवम्। साक्षात्कृतस्त्वया त्र्यक्षो देवाश्चाऽऽवासितास्त्वया ॥
त्वया पुत्रेण सल्लोका न क्षीयन्ते कदाचन ॥१८६॥

ब्रह्मोवाच

पुष्पवृष्टिस्तदा स्वर्गात्पिपात तस्य मूर्धनि। जयशब्दः सुरैरुक्तः प्रादुर्भूतो महामुने ॥१८७॥
आशिषं तु सुते दत्त्वा दधौचि। सह भार्यया। शभुं गङ्गा सुराग्रत्वा पुत्रं वाचयमथाब्रवीत् ॥१८८॥

दधौचिरुवाच

प्राप्य भार्या शिवे भक्तिं कुर गङ्गा च सेवय। पुत्रानुत्पाद्य विधिवद्यज्ञानिष्ट्वा सदक्षिणान् ॥
कृतकुरपस्ततो यत्स आक्रमस्व चिरं विवम् ॥१८९॥

ब्रह्मोवाच

करोम्येवमिति प्राह दधौचि पिप्पलाशनः। दधौचिः पुत्रमाश्वस्य भार्यया च पुनः पुनः ॥१९०॥
अनुज्ञातः सुरगणैः पुनः स विवमानमत्। देवा अप्यूचिरे सर्वे पिप्पलादं ससंभ्रमा ॥१९१॥

ब्रह्मा बोले—इसके अनन्तर उनकी देखकर वह कुल के द्वारे कुछ बोल न सका। तब देवगण तथा मातापिता ने पिप्पलाद से कहा—॥१८५॥

देवगण बोले—पुत्र! तमो लोक में तुम धन्य हो, तुम्हारी कीर्ति स्वर्ग में भी पहुँच गई। तुमने शिव का साक्षात्कार किया और देवों को भी आश्वासन दिया। तुम्हारे समान पुत्र के उत्पन्न होने से उत्तम लक्ष्मी का कभी ह्रास नहीं होता ॥१८६॥

ब्रह्मा ने कहा—उस समय उसके शिर पर स्वयं मे पुष्पवृष्टि हुई। महामुने! देवा ने जयघोष किया। पत्नी, समेत दधौचि ने पुत्र का आशीर्वाद दिया और शक्र, गंगा तथा देवों की नमस्कार करके, पुत्र मे कहा ॥१८७-१८८॥

दधौचि ने कहा—पुन! पहले विवाह करा। शिव भ अर्पणी भक्ति करो, गंगा की सेवा करा, शास्त्रानुसार पुत्रों को उत्पन्न करो, फिर यज्ञों का अनुष्ठान करो और उनमें भरपूर दक्षिणा दा। इस प्रकार अपने जीवन का सफल बना चिरकाल तक स्वर्ग में बने रहो ॥१८९॥

ब्रह्मा ने कहा—पिप्पलाद ने ऐसा ही कहँगा यह अपने पिता दधौचि से कहा। दधौचि ने भी बार-बार अपने पुत्र को आश्वासन देकर देवताओं से आज्ञा लेकर भार्या सहित स्वर्ग का चले गये। तदनन्तर सब देवताओं ने भी सहसा पिप्पलाद से कहा ॥१९०-१९१॥

देवा ऊचु

कृत्वा शमय भद्र ते तदुत्पन्न महानलम्

॥१९२॥

ब्रह्मोवाच

पिप्पलादस्तु तानाह न शक्तोऽहं निवारणे । असत्यं नैव वचताऽहं यूय कृत्यां तु कृतं ताम ॥१९३॥
मा दृष्ट्वा सा महारोद्रा विपरीतं करिष्यति । तामेव गत्वा विबुधा प्रोचुस्ते शान्तिकारणम् ॥१९४॥
अनलं च यथाप्रीतिं ते उभे नेत्यवोचताम् । सर्वेषां भक्षणार्थं सृष्टा चाहं द्विजमना ॥१९५॥
तथा च मत्प्रसूतोऽग्निरन्यथा तत्कथं भवेत् । महाभूतानि पञ्चापि स्यावरं जङ्गमं तथा ॥१९६॥
सर्वमस्मन्मुखे विद्याद्वयतथ्यं नावशिष्यते । मया समग्र्यं ते देवा पुनरुच्युः सभाषि ॥१९७॥
भक्षयेतामुभौ सर्वं ययानुश्मत्तस्तथा । यदवाऽपि सुरानेवमुवाच ऋषुः ॥१९८॥

चण्डोवाच

भवतामिच्छया सर्वं भक्ष्य मे सुरसत्तमा

॥१९९॥

ब्रह्मोवाच

यदवा सा मदी जाता गङ्गाया सगता मुने । तदभवस्तु महानग्निय आसीदतिभीषण ॥
तमाहुरमरा बह्वि भूतानामादितो विदुः ॥२००॥

देवगण बोले—हृया आर उरुसे उत्पन्न नरकर आल का ग त करा। तुम्हारा बन्धान हारा ॥१९२॥

ब्रह्मा ने कहा—पिप्पलाद न उन देवा से कहा— मैं उनका गान्त करने में असमर्थ हूँ। मैं अमर्य नह कह रहा हूँ। आप लोग स्वयं उरुसे कहिए। मुझका देखकर वह महामरकर हृया उत्पन्न हो करेगा। तदुत्पन्न देवगण उगा हृया का गान्त गय और उरुसे कथा अग्नि से प्रकृष्टवक्ता हो जायेगा कहा। उन दोनों ने कहा नह । नरकर भस्म कर देने का लिये हा मेरी कथा मुझसे उत्पन्न इस भट्टन अग्नि की ब्राह्मण न मूर्ख की है। तब भला नरको वि। रीत कसही छान्ता है? पाँचा भह्मभूत स्यावर तथा जगम रवरा हृयारे मुन म समता अब इस विषय में उ कहने का शेष नहीं है। पुन मुझसे मन्त्रा कर उन देवताओं न उन दोनों ने कहा—तब तम दोनों बन्धन हारा। नारक। मुनी बन्धा न भी देवताओं म डम प्रहार कहा ॥१९० १९८॥

यदवा ने कहा—हृयत्त देवा। आप लोगों की इच्छा से सब कुछ मरा मर्य है। ॥१९९॥

ब्रह्मा ने कहा—मुन। उरुता कहने की बडवा नहीं हो गई। और गंगा म क्षित गई। उरुसे उत्पन्न जो अग्निगण महान अनल या उमरी बन्धा ने बहिन कहा और वह पञ्चवहायका का आदि भह्मभूत माना जाता है ॥२००॥

सुरा ऊचुः

आपो ज्येष्ठतमा ज्ञेयास्तथैव प्रथम भवान् । तत्राप्यपापति ज्येष्ठ समुद्र (तिज्येष्ठस्तस्य त्व) मशन कुरु ॥
यथैव तु यय भूमौ गच्छ भुङ्क्ष्व ययासुखम् ॥२०१॥

ब्रह्मोवाच

अनलस्त्वमरानाह आपस्तत्र कथ त्वहम् । व्रजेय यदि मा तत्र प्रापयन्त्युदक महत् ॥२०२॥
भवन्त एव तेऽप्याह कथ तेऽग्ने गतिर्भवेत् । अग्निरप्याह तान्देवान्कन्या मा गुणशालिनी ॥२०३॥
हिरण्यकलशे स्थाप्य नपेद्यत्र गतिर्यम । तस्य तद्वचन श्रुत्वा कन्यामूचु सरस्वतीम् ॥२०४॥

देवा ऊचुः

'नयनमनल शीघ्र शिरसा वरुणालयम् ॥२०५॥

ब्रह्मोवाच

सरस्वती सुरानाह नैका शयता च धारणे । युवता चतसृभि शीघ्र वहेय वरुणालयम् ॥२०६॥
सरस्वत्या यय श्रुत्वा गङ्गा च यमुना सथा । नमदा तपती चैव सुरा प्रीचु पृथक्पृथक् ॥२०७॥
ताभि समन्वितोवाह^१ हिरण्यकलशेऽनलम् । सस्थाप्य शिरसाऽऽचार्य ता जामुर्वहणालयम् ॥२०८॥
सस्थाप्य यत्र देवेश सोमनाथो जगत्पति । अभ्यास्ते विबुधं सार्धं प्रभासे क्षशिभूषण ॥२०९॥

देवो ने कहा—जल सबसे थप्ट माना गया है उस प्रकार आप भी है। उसने भी जगति समुद्र सबसे ज्येष्ठ है इसलिए उसकी ही जाओ। जैसा हम कह रहे हैं उसी के अनुसार जाओ और आप द्रव्य भक्षण करो ॥१०१॥

ब्रह्मा बोले—अनल ने देवा से कहा अहाँ जल है कहा मैं कैसे रह सकूँ? यदि आप मुझ उस अग्न जग के द्रव्य पहुँचा दें तो मैं जा सकूँगा हूँ। यह सुनकर उन्होंने कहा —अग्ने! किस प्रकार मुझे वहाँ तक जा सकते हो? अग्नि ने भी देवा से कहा कि यदि (ब्रह्मा का) गुणशालिनी कन्या सरस्वती मुझे सुवर्ण कलश म रत्न कर द्याँ तो मैं जा सकूँगा हूँ। उसकी उन् धाता को सुनकर देवो ने मेरी कन्या सरस्वती से कहा—॥२०२॥ २०४॥

देवगण बोले—तुम इस अनल का वाद्य हो। शिर पर रखकर समुद्र में ले जाओ ॥२०५॥

ब्रह्मा बोले—सस्वती ने देवताओं से कहा मैं अनेक अनल का ले आने में असमर्थ हूँ। यदि चार और सहस्रक मिल जायें तो वाद्य हो। समुद्र में पहुँचा सकते हैं।

सरस्वती ने बातें सुनकर देवताओं ने गंगा यमुना नमदा और तपती (ताप्ता) से अलग अलग कहा। अन्त में सरस्वती ने उन चारों सहस्रक नदियों से साथ सुवर्ण कलश में अनल को रखा और उस कलश का गिर पर

प्रापयामासुरनलं पञ्चनद्यः सरस्वति। अध्यास्ते च महानग्निः पिबन्वारि शनैः शनैः ॥२१०॥
ततः सुरगणाः सर्वे शिवमूचुः सुरोत्तमम् ॥२११॥

देवा ऊचुः

अस्मिन् च पावनं ब्रूहि अस्माकं च गवां तथा ॥२१२॥

ब्रह्मोवाच

शिवः प्राह तदा सर्वान्ज्ज्ञामाप्नुत्य यत्नतः। देवाश्च गावस्तत्पापान्मुच्यन्ते नात्र सशयः ॥२१३॥
प्रक्षालितानि चास्योनि ऋषिदेहभवाग्नयः। तानि प्रक्षालनादेव तत्र प्राप्तानि पूतताम् ॥२१४॥
यत्र देवा मुक्तपापास्तत्तीर्थं पापनाशनम्। तत्र स्नानं च दानं च ब्रह्महत्याविनाशनम् ॥२१५॥
गवां च पावनं यत्र गोतीर्थं तदुदाहृतम्। तत्र स्नानान्महावृद्धिर्गोमेषफलमाप्नुयात् ॥२१६॥
यत्र तद्ब्राह्मणास्योनि आसन्पुण्यानि नारदः। पितृतीर्थं तु यं ज्ञेयं पितॄणां प्रीतिवर्द्धनम् ॥२१७॥
भस्मास्थिनखरोमाणि प्राणिनो यस्य वस्यचित्। तत्र तीर्थं सन्त्रमेरुयात्रच्चन्द्रार्क्षतारणम् ॥२१८॥
स्वर्गो वासो भवेत्तस्य अपि दुष्कृतकर्मणः। तथा चन्द्रेन्दवराक्षीर्षात्प्रीणि तीर्थानि नारदः ॥२१९॥
ततः पूताः सुरगणा गावः क्षभुमपावुवन् ॥२२०॥

पारण करने समुद्र की ओर ले जाती। जहाँ प्रभास क्षेत्र में देवताओं के साथ गन्धर्वों के पनि तथा देवताओं के प्रभु वाहर रहते हैं, वहाँ अनेक बौद्ध धर्म धर्मार्थ आदि पाँच नदियाँ ने पुनः उभे समुद्र में पहुँचा दिया। वहाँ बहूँ अनेक वाँ बौद्ध धर्म अज्ञान रहता है। तदनंतर सब देवताओं ने गुरुदेव वाहर से कहा ॥२०६-२११॥

देवगण बोले—अस्ति, हम् गव और गाये द्विष प्रकार पवित्र है करने हैं इत्यादि आप यन्त्रादयः ॥२१२॥

ब्रह्मा ने कहा—जब वाहर में उन सब देवताओं ने कहा कि यज्ञादूर्ध्वं गदा म स्नान करने में सब देव और गाये अनेक पाप में छूट जायेंगे, इसमें कुछ भी गड़बड़ नहीं। ऋषि-गर्भ में प्राप्त अग्निवदी यज्ञों के प्रशस्ति मात्र कर देने में पवित्र है जायेंगे। जहाँ देवगण पाप-मुक्त हैं यज्ञ य, वह तीर्थ पापों का विनाश करने वाला है। वहाँ स्नान करने और दान देने में ब्रह्महत्या आदि पाप भी छूट जाते हैं। जहाँ गाये पवित्र हो गईं या, वह तीर्थ पापों का बहा जाता है। बुद्धिमान् शक्ति वहाँ स्नान कर गावण (पशु) का पत्र प्राप्त करता है। नारद। ऋषि स्नान पर ब्राह्मण दर्शन का पवित्र अग्निवदी रत्न। गदं वी, वह विजय का परमार्थ दार बाला निर्द्वैत नाम में प्रसिद्ध हुआ। उग पवित्र पाप में द्विष किन्हीं प्राणी के शरीर का नष्ट अग्नि नष्ट और राज पहुँच करने है, वह दुष्ट भी होने पर भी स्नान में सब सब निराश करता है जब सब मृत, यज्ञा और नार है। नारद। इस भाँति अनेक तीर्थ में तीर्थ तीर्थ उत्पन्न हुये। इसके उत्पत्ति मूर्त्ति और गाये पवित्र है जान पर समुद्र में गाये ॥२११-२१५॥

गोसुरा ऊचुः

याम स्व स्वमधिष्ठानमत्र सूर्यं प्रतिष्ठित । अस्मिन्स्थिते दिनकरे सुरा सर्वे प्रतिष्ठिता ॥२२०॥
भवेयुजंगतामीश तदनुज्ञातुमर्हसि । सूर्यो ह्यात्मास्त्य जगत्स्तत्पुण्ड्रश्च सनातन ॥२२१॥
दिवाकरो देवमयस्तनात्माभि प्रतिष्ठित । यत्र गङ्गा जगद्धात्री यत्र धं त्र्यम्बक स्वयम् ॥
सुरवास प्रतिष्ठान भवेद्यत्र च त्र्यम्बकम् ॥२२२॥

ब्रह्मोवाच

आपृच्छ पितृलाद त सुरा स्व सदन ययु । पिप्पला कालपर्याये स्वर्गं जन्मुरयाक्षयम् ॥२२३॥
पादपाता पद विप्र पिप्पलाद प्रतापवान् । क्षेत्राधिपत्ये सस्याप्य पूजयामास शकरम् ॥२२४॥
दधीक्षिसूनुर्मनिरुप्रतेजा, अवाप्य भार्यां गौतमस्याऽऽत्मजा च ।
पुत्रानयावाप्य श्रिय यदाश्च, सुहृज्जनं स्वर्गमवाप धीर ॥२२५॥
तत प्रभृति तत्तीर्थं पिप्पलेश्वरमुत्पते । सर्वक्रतुफल पुण्य स्मरणादधनाशनम् ॥२२६॥
किं पुन स्नानदानान्यामादित्यस्य तु दर्शनात् । चन्द्रेश्वर पिप्पलेशो देवदेवस्य नामनी ॥२२७॥
सरहस्य विदित्वा तु सर्वकामानवाप्नुयात् । सूर्यस्य च प्रतिष्ठानात्सुरवासे प्रतिष्ठिते ॥
प्रतिष्ठान तु तत्क्षेत्र सुराणामपि बल्लभम् ॥२२८॥

गार्गे और वैवर्गण बोले—हम सब अपने अपने स्थान को जा रहे हैं। यहाँ सूर्य प्रतिष्ठित हैं। इनके यहाँ रहने से सब देवता भी रहने हे ससार के ईश । ऐसा आप आशा प्रदान कीजिये। इस वर्तमान जगत् का सूर्य सनातन आत्मा है। हमने सूर्य को सब देवा के रूप में वहाँ प्रतिष्ठित किया है अतः हम सभी वहाँ प्रतिष्ठित से हैं। जहाँ जगमाता गंगा और स्वयं त्रिनेत्र शिवर विराजमान है वह स्थान सकल देवताओं का मन्दिर तथा सस्थान है ॥२२१ २२२॥

ब्रह्मा ने कहा—देववृन्द उस पिप्पलाद से पूछ कर अपने लोक को चले गये। वे पावल के वक्ष भी कालक्रम से अमर लोक को चले गये। इधर प्रतापी विप्र पिप्पलाद ने क्षेत्रा का अधिपति के रूप में वृक्षों का स्थापना करने शकर भी पूजा की। पुन अतितेजस्वी मुनि दधीक्षिपुन ने गौतम-वर्ण्या को अपना भार्या बनाई और उससे पुन उत्पन्न किये। तदनंतर वह धार पुरय यदा और लक्ष्मी को प्राप्त कर इष्ट मित्रा के साथ स्वयं में चला गया। तब से वह तीर्थ पिप्पलेश्वर तथा वहाँ जाता है। वह तथा सब यथा ने फल को देने वाला है और उसके स्मरण से सम्पूर्ण पापों का नाश हो जाता है। उस तथा में स्नान दान और आदित्य के दशन से जो फल प्राप्त होता है उसका तो कहना ही क्या ? चन्द्रेश्वर और पिप्पलेश ये दोनों देवदेव शकर ने नाम हैं। उस तथा करहस्य को जानकर मनुष्य अपना सम्पूर्ण कामनाओं को प्राप्त करता है। सूर्य की वहाँ प्रतिष्ठा होने से और सब देवताओं के निवास करने से वह क्षत्र देवताओं का भी मित्र हो गया है। यह आस्थान अत्यन्त पुण्यप्रद है, इस पुण्य आस्थान को जो पढ़ता सुनता अथवा स्मरण करता

इतीदमाह्यात्मनो व पुण्यं, पठेत वा यः शृणुयात्स्मरेद्वा
स दीर्घजीवी धनवान्धर्मयुक्तश्चान्ते स्मरञ्छंभुमुपैति नित्यम् ॥२२९॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे चक्रेश्वरपिप्पलेश्वरपापप्रणाशनगोतीर्थपितृतीर्थसूय
प्रतिष्ठानकोट्यादितोर्थवर्णनं नाम दशाधिकशततमोऽध्यायः ॥११०॥
श्रीतमीमाहात्म्ये एकचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ॥४१॥

अथैकादशाधिकशततमोऽध्यायः

नागतीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

नागतीर्थमिति ह्यातं सर्वकामप्रदं शुभम् । यत्र नामेश्वरो देवः शृणु तत्स्यापि विस्तरम् ॥१॥
प्रतिष्ठानपुरे राजा शूरसेन इति श्रुतः । सोमवंशभवः श्रीमान्मतिमान्गुणसागरः ॥२॥
पुत्रार्थं स महापत्नमकरोत्प्रियया सह । तस्य पुत्रश्चिरादासीत्सर्पो वै भीषणाकृतिः ॥३॥
पुत्रं तं गोपयामास शूरसेनो महीपतिः । राज्ञः पुत्रं सर्प इति न कश्चिद्विन्दते जनः ॥४॥
अन्तर्वर्ती परो वापि मातरं पितरं विना । धात्रेभ्यश्च न जानाति नामात्म्यो न पुरोहितः ॥५॥

है, वह दीर्घजीवी, धनवान् और धार्मिक होता है तथा अन्तःकाल में यन्त्रु का स्मरण करता हुआ शिव का सात्रिष्य प्राप्त करता है ॥२२९-२२९॥

श्री ब्रह्ममहापुराण में पिप्पलेश्वरजीववर्णनं नामक एक सौ दसवीं अध्याय समाप्त ॥११०॥

अध्याय १११

नागतीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा ने कहा—भव कश्मिनामी को देने वाला नागतीर्थ नामक एक शुभ तीर्थ है जहाँ नागेश्वर देव निवास करते हैं। उसके विषय में मैं विस्तारपूर्वक बतला रहा हूँ, सुनी। प्रतिष्ठानपुर में शूरसेन नाम का अत्यन्त गुणवान्, धीमान् और बुद्धिमान् सोमवंशी राजा था। पुत्र की कश्मिना से उसने अपनी प्रिया के साथ महान् प्रयत्न किया। चिराल के बाद उसके एक भयंकर आकार वाला सर्प पुत्र उत्पन्न हुआ। राजा शूरसेन ने उसको अत्यन्त गुप्त रखा। ताकि कहीं कोई यह न जान जाय कि राजा का पुत्र सर्प है। आन्तःपिता के अनिश्चित कोई भी दूसरा व्यक्ति, चाहे वह अत्यन्त आत्मीय ही क्यों न रहा हो, नहीं जानता था।

तं दृष्ट्वा भीषणं सर्पं सभायौ नृपसत्तमः। संतापं नित्यमाप्नोति सर्पाद्विरमपुत्रता ॥६॥
एतदस्ति महासर्पो बलि नित्यं मनुष्यवत्। स सर्पः पितरं प्राह कुश 'चूडामपि' क्रियाम् ॥७॥
तथोपनयनं चापि देदाध्ययनमेव च। यावद्वेदं न चाधीते तावच्छूद्रसमो द्विजः ॥८॥

ब्रह्मोवाच

एतच्छ्रुत्वा पुत्रबचः शूरसेनोऽतिदुःखितः। ब्राह्मण कंचनाऽऽनोय सस्कारादिं तदाऽकरोत् ॥
अधीतवेदः सर्पोऽपि पितरं चाश्रवीदिदम् ॥९॥

सर्प उवाच

विवाहं कुश मे राजन्श्रीकामोऽहं नृपोत्तम। 'अन्यथाऽपि च कृत्यं ते न सिध्येदिति मे मतिः ॥१०॥
जनयित्वाऽऽत्मजान्वेदविधिनाऽखिलसंस्कृतीः। न कुपार्थः पिता तस्य तरकाप्राप्ति निष्कृति ॥११॥

ब्रह्मोवाच

विस्मितः स पिता प्राह सुत तमुरपाकृतिम् ॥१२॥

शूरसेन उवाच

यस्य शब्दादपि प्राप्तं यान्ति शूराश्च पूरयाः। तस्मै कन्यां तु को दद्याद्वद पुत्रं करोमि किम् ॥१३॥

यहाँ ७२ कि मन्त्री, पुरोहित आर धार्मिक इह रहस्य को नहीं जानती थी। उस भाषण रूप को देखकर वह व्येष्ट राजा भार्या सहित अत्यन्त व्यथित रहता था और सोचता था कि इस सर्प पुत्र की अपेक्षा पुत्र का न होना ही अच्छा था। इसर वह रूप सर्वदा मनुष्य के समान बोलता था। एक दिन उस सर्प ने पिता से कहा कि मेरा चूडाकरण संस्कार, उपनयन और वेदाध्ययन करा दीजिए। द्विज जब तक वेद वा अध्ययन नहीं करता तब तक वह शूद्र के समान रहता है ॥१-८॥

ब्रह्मा बोले—शूरसेन पुत्र की बातें सुनकर अति दुःखित हुआ और विवश हो निर्मम ब्राह्मण का बुलाकर संस्कार आदि करवा दिया। बाडेदिना बाद जब वह वेदों का अध्ययन समाप्त कर चुका तब पुन पिता से कहा ॥९॥

सर्प ने कहा—राजन्! मेरा विवाह कर दो। नृपोत्तम। मैं इस मलय स्त्री का इच्छुक हूँ। यदि ऐसा नहीं करने दी तुम्हारे अत्यन्त व, पूजना नहीं सिद्ध होगी, ऐसी मर्दा चारणा है। जो पिता पुत्रा को उत्तरण कर वेद-विधि से उनके सब मरार नहीं करता उस नरक से छुटकारा नहीं मिलता है ॥१०-११॥

ब्रह्मा ने कहा—यह सुनकर आश्चर्य म पडा हुआ पिता अपने सप्तरीरचारी पुत्र से बोला ॥१२॥

शूरसेन ने कहा— जिसके राज्य आज से बड़े बड़े वीर मयमल हो जाते हैं, उसे भला अपन, कन्या कौन देगा ? पुत्र ! तुम्हारी बनावी मे क्या बहने ? ॥१३॥

१४ सतोय नित्य नाऽऽनो०। २४ ०वादिनी कि०। ३४ ०मणित्रिया। ४०। ४४ ०स्वारादय तयाऽव०। ५५ ०२ ह्यत्रवीद्व०। विवाहकर्म हे तात मय त्व कुश निर्मय। अ०। ६४ ०या पितृहृत्य मेव। ७५ ०ह त्व सर्पो ह्यतिभीषण। ८०। ८ ०मानवा।

ब्रह्मोवाच

तत्पुत्रवर्चनं श्रुत्वा सर्पः प्राह विचक्षणः

॥१४॥

सर्प उवाच

विवाहा बहवो राज्ञाज्ञां सन्ति जनेश्वर। प्रसह्याऽऽहरणं चापि शस्त्रैर्वैवाह एव च॥१५॥
जाते विवाहे पुत्रस्य पिताऽसौ कृतकृद्भवैत्। नो चेदत्रैव गङ्गायां मरिष्ये नात्र संशयः॥१६॥

ब्रह्मोवाच

तत्पुत्रनिश्चयं ज्ञात्वा अपुत्रो नृपसत्तमः। विवाहार्थममात्यास्तानाहूयेदं वचोऽब्रवीत्॥१७॥

शूरसेन उवाच

नागेश्वरो मम सुतो युवराजो गुणाकरः। गुणवान्मतिमाञ्छरो दुर्जयः शत्रुतापनः॥१८॥
रथे नागे स धनुषि पृथिव्यां नोपमीयते। विवाहस्तस्य कर्तव्यो ह्यहं बृद्धस्तथैव च॥१९॥
राज्यभारं सुते म्यस्य निश्चिन्तोऽहं भवाम्यतः। न दारसंग्रहो यावत्तावत्पुत्रो मम प्रियः॥२०॥
बालभावं नो जहाति तस्मात्सर्वेऽनुमन्य च। विवाहायाय कुर्वन्तु यत्नं मम हिते रताः॥२१॥
म मे काचित्तदा विन्ता कृतोद्वाहो यदाऽऽमजः। सुते न्यस्तभरां यान्ति कृतिनस्तपते वनम्॥२२॥

ब्रह्मा ने कहा—पिता की यह बात सुनकर पण्डित सर्प ने कहा॥१४॥

सर्प ने कहा—राजन् ! प्रजापति के प्रभु ! राजाजी के बहुत प्रकार के विवाह होते हैं, बलात् कन्या-हरण, और युद्ध द्वारा जीतकर विवाह करना भी राजाजी के लिये विषय है। पुत्र का विवाह ही जाने पर ही पिता हतद्वय होता है। यदि आप मेरा विवाह नहीं करावेंगे, तो मैं इसी गंगा में डूबकर प्राण दे दूंगा, इसमें सन्देह नहीं॥१५-१६॥

ब्रह्मा ने कहा—राजा शूरसेन ने उस पुत्र के हठ को जगकर विवाह-पराभर्ष करने के लिये मन्त्रियों को बुलाकर कहा॥१७॥

शूरसेन ने कहा—मेरा गुणवान्, पार, बुद्धिमान्, दुर्जय और शत्रुघ्न को चैन से न रहने देने वाला पुत्र नागेश्वर अब युवराज हो गया है, वह रथ, हाथी और धनुष बलाने में इस पृथ्वी पर अपनी समता नहीं रखता। अतः अब उसका विवाह कर देना चाहिए। मैं बृद्ध हो चला हूँ, इसलिये विवाहोपरान्त पुत्र को राज्यभार मोक्ष कर निश्चिन्त हो जाऊँ, यही मेरी इच्छा है। जब तक पुत्र का विवाह नहीं होता तब तक वह मेरा प्रियपुत्र बालभावं का नहीं छोड़ सकता, अतः मेरे हितवित्तक आप लोग इसने विवाह के लिये प्रयत्न कीजिये। जब मेरा पुत्र विवाहित हो जायगा तब कदाचिन् मुझे किसी प्रकार की चिन्ता न होगी। प्रायः विलज्ज पुत्र को सारा भार सौंप कर सरस्या के लिये वन में चले जाते हैं॥१८-२२॥

ब्रह्मोवाच

अमात्या राजवचनं श्रुत्वा सर्वे विनीतवत् । ऊचुः प्राञ्जलयो हर्षाद्राजानं भूरितेजसम् ॥२३॥

अमात्या ऊचुः

तव पुत्रो गुणग्रेष्ठस्त्वं च सर्वत्र विभूतः । विवाहे तव पुत्रस्य किं मन्त्र्यं किं चिन्त्यते ॥२४॥

ब्रह्मोवाच

अमात्येषु तयोक्तेषु गम्भीरो नृपसत्तमः । पुत्रं सपत्न्यं त्वमात्यानां न चाऽऽख्यातिं न ते विदुः ॥२५॥

राजा पुनस्तानुवाच क्वा स्यात्कन्या गुणाधिका । महावशभवः धीमान्को राजा स्याद्गुणाश्रयः ॥२६॥

संबन्धयोग्यः शूरश्च यत्संबन्धः प्रशस्यते । तद्वाजवचनं श्रुत्वा अमात्यानां महामतिः ॥२७॥

कुलीनः साधुरत्यन्तं राजकार्यहिते रतः । राज्ञो मतिं विदित्वा तु इङ्गितसोऽब्रवीद्विदम् ॥२८॥

अमात्य उवाच

पूर्वदेशे महाराज विजयो नाम भूपतिः । वाजिबारणरत्नानां यस्य संख्या न विद्यते ॥२९॥

अष्टौ पुत्रा महेश्वासा महाराजस्य धीमतः । तेषां स्वसा भोगवती साक्षाल्लक्ष्मीरिवापरा ॥

तव पुत्रस्य योग्या सा भार्या राजन्मयोदिता ॥३०॥

ब्रह्मा ने कहा—सभी मन्त्रियों ने राजा की बातें सुनकर अत्यन्त विनीत भाव से हाथ जोड़कर हर्षपूर्वक अत्यन्त तेजस्वी राजा से कहा ॥२३॥

मंत्री बोले—आपके कुमार बड़े गुणवान् हैं और आप भी सर्वत्र प्रसिद्ध हैं, तब आपके पुत्र के विवाह में परामर्श और चिन्ता की क्या आवश्यकता है ॥२४॥

ब्रह्मा ने कहा—मन्त्रियों के इस प्रकार बहने पर गम्भीर महाराज ने न तो सर्वपुत्र के विषय में कुछ कहा और न मन्त्रियों ने कुछ जाना । राजा ने पुनः उन मन्त्रियों से कहा कि वह कौन-सी गुणवती कन्या है और वह कौन अत्यन्त बुद्धिमान, गुणवान्, धीमान् तथा सम्बन्ध योग्य राजा है, जिसके साथ सम्बन्ध करना श्रेयस्कर और प्रशस्त होगा । राजा की बातें सुनकर मन्त्रियों में अत्यन्त बुद्धिमान्, बुद्धिमान्, साधु, चेष्टाभा द्वारा मन की बात जानने वाले और राजा के अत्यन्त हितों की एक मन्त्री ने राजा की अभिप्राय समझकर कहा ॥२५-२८॥

मंत्री बोले—महाराज ! पूर्व देश में विजय नाम का एक राजा है, जिसके असंख्य हाथी, घोड़े और रत्नों की गणना नहीं की जा सकती । उस धीमान् राजा के धनुर्विद्या में कुशल आठ पुत्र हैं । उसकी भोगवती नाम की बहिन साक्षाल् द्वितीय लक्ष्मी के समान है । राजन् ! आपके पुत्र के योग्य वही कन्या है, यही मेरा वचन है ॥२९-३०॥

१ घ पुत्रस्य त्व० । २ क० चकस्य कन्या । ३ घ ०जवरः स्त्री० । ४ घ ०णाधिकः । स० ।

५. घ ०त्वाऽय । ६ क ०दितम् । व० ।

ब्रह्मोवाच

बृद्धामात्यवचः श्रुत्वा राजा तं प्रत्यभाषत

॥३१॥

राजोवाच

सुता तस्य कथं मेऽस्य सुतस्य स्याद्वदस्व तत्

॥३२॥

बृद्धामात्य उवाच

लक्षितोऽसि महाराज यत्ते मनसि वर्तते^१। यच्छूरसेन कृत्यं स्यादनुजानीहि मा ततः॥३३॥

ब्रह्मोवाच

बृद्धामात्यवचः श्रुत्वा भूपणाच्छादनोक्तिभिः। संपूज्य प्रेषयामास महत्या सेनया सह॥३४॥
 स पूर्वदेशमागत्य महाराजं समेत्य च। संपूज्य विविधैर्वाक्यैरुपायैर्नीतिसंभवं॥३५॥
 महाराजसुतायाश्च भोगवत्या महामतिः। शूरसेनस्य नृपते सुनीर्नागस्य धीमतः॥३६॥
 विवाहापाकरोत्सांघि मिष्यामिष्यावचोक्तिभिः। पूजयामास नृपति भूपणाच्छादनादिभिः॥३७॥
 अवाप्य पूजा नृपतिर्दामोत्पयदत्तदा। तत आगत्य राज्ञेऽसौ बृद्धामात्यो महामतिः॥३८॥
 शूरसेनाय तद्वृत्तं वैवाहिकमवेदयत्। ततो बहूतिथे काले बृद्धामात्यो महामतिः॥३९॥
 पुनर्वलेन सहता वस्त्रालंकारभूषितः। जगाम तरसा सर्वैरार्यैश्च सचिवैर्वृतः॥४०॥

यहू ने कहा—बृद्ध मन्त्री की बात सुनकर राजा ने उससे कहा ॥३१॥

राजा ने कहा—उसकी कन्या किस प्रकार मेरे पुत्र की भागी होगी यह बतलाओ ॥३२॥

बृद्धे मन्त्री ने कहा—महाराज ! आपने मन में जो बात है, उसका मैंने समझ लिया। 'शूरसेन' अब जा करना है, उसके लिए मुझे आज्ञा दीजिये ॥३३॥

यहू ने कहा—बृद्धमन्त्री की बात सुनकर राजा ने आभूषण, वस्त्र और आदर की वार्ता से उसका सम्मान कर बहुत बढ़ा। सेना ने साथ उग भेज दिया। यह पूरा देश मन्त्री महाराज से मिली, उनकी, पूजा करने की निम्नत उपाय और अनेक प्रकार के वार्ता से उस महारुद्धिमान मन्त्री ने नृपति शूरसेन के बृद्धिमान पुत्र नाग के साथ महाराज-कन्या भागवत् न विवाह की, मन्त्रिणी। इस बात से उसने सत्य, असत्य प्रत्यक्ष प्रकार के उपाय और उक्ति का सहारा लिया, विविध आभूषण और वस्त्र आदि भेट की। समझिया स उस राजा की पूजा की की। पूजा में प्रसन्न होकर राजा ने कन्या-दान की रक्षादान दे दी। तबसे विधि जानकर उस बृद्धमन्त्री ने लौट कर शूरसेन से मारी वैवाहिक पटना की गुना दिया। इसके उपरान्त कुछ समय बीत जाने पर वह महारुद्धिमान् बृद्धमन्त्री बहुत बड़ी सेना के साथ वस्त्र और आभूषण से सुसज्जन होकर अथ सब मन्त्रिया का भी साथ

विवाहाय' महामात्यो महाराजाय बुद्धिमान्'। सर्वं प्रोवाच वृद्धोऽसावमात्य सचिवंवृत ॥४१॥

वृद्धामात्य उवाच

अत्राऽऽगन्तु न चाऽऽया(चेच्छ)ति शूरसेनस्य भूपते । पुत्रो नाय इति श्यातो बुद्धिमान्गुणसागर ॥४२॥

क्षत्रियाणां विवाहादच भवेयुर्वहृषा नृप । तस्माच्छस्त्रैरलकारं विवाह स्थानमहामते ॥४३॥

क्षत्रिया ब्राह्मणाश्चैव सत्या वाच वदन्ति हि । तस्माच्छस्त्रैरलकारं विवाहस्त्वनुमन्यताम् ॥४४॥

ब्रह्मोवाच

वृद्धामात्यवच श्रुत्वा विजयो राजसत्तम । मेने वाक्य तथा' सत्यममात्य भूपति' तदा ॥४५॥

विवाहमकरोद्राजा भोगवत्या' सविस्तरम् । शस्त्रेण च यथाशास्त्र प्रेषयामास ता पुन ॥४६॥

स्वानमात्यास्तथा गाश्च हिरण्यतुरपादिकम् । बहु दत्त्वाऽयं विजयो हर्षेण महता युत ॥४७॥

तामादायाश्च सचिवा वृद्धामात्यपुरोगमा । प्रतिष्ठानमयाभ्येत्य शूरसेनाय तां स्नुषाम् ॥४८॥

न्यवेदयस्तथोचुस्ते विजयस्य वचो बहु । भूयणानि विचित्राणि दास्यो वस्त्रादिक च यत ॥४९॥

निवेद्य शूरसेनाय कृतकृत्या बभूविरे । विजयस्य तु येऽमात्या भोगवत्या सहाऽऽगता ॥५०॥

ताम्पूजयित्वा राजाऽसौ बहुमानपुर सरम् । विजयाय यया प्रीतिस्तथा कृत्वा व्यसर्जयत् ॥५१॥

विजयस्य सुता बाला रूपयौवनशालिनी । इवभूश्चशूरयोऽनित्य शुभयन्ती सुमध्यमा ॥५२॥

लेखर वप के साथ राजा विजय के पास गया । भार अपने सहायक क्षत्रियों के सहित उस बृद्ध महामन्त्री ने विवाह के लिये महाराज से प्रस्ताव किया ॥१४४॥

बृद्ध मन्त्री ने कहा—राजा शूरसेन का वह गुणसागर बुद्धिमान पुत्र नाग यहाँ आना नहीं चाहता है । नृप ! क्षत्रियों के विवाह बहुत प्रकार से होते हैं इसलिये महामते । यह विवाह शस्त्र और आभूषणों से सम्पन्न हो जाय । क्षत्रिय और ब्राह्मण सत्य वचन बोलते हैं । इसलिये शस्त्र और आभूषणों से विवाह विधि सम्पन्न हो एसो आना दीजिये ॥४२४॥

ब्रह्मा ने कहा—बृद्ध मन्त्री की बात सुनकर महाराज विजय ने अमात्य राजा तथा वृद्धमन्त्री की बात को साथ समझ लिया । राजा ने शास्त्रानुसार शस्त्र के साथ धूमधाम से भागवतों का विवाह कर उसकी पतिगृह भेज दिया । इस धूम इत्य से प्रफुल्लित होकर राजा विजय ने अपने क्षत्रियों सेवकों और ब्राह्मणों के को गायें मुषण और घोड़ इत्यादि पुष्कल और दान दिये । उच्चर वद्ध यत्रा सहित सचिवा ने प्रतिष्ठान पुर अकर राजा शूरसेन को उनकी पुत्रवधू अर्पित कर द । तथा महाराज विजय के बहुत से बानें सुनारी साथ ही उनके दिये हुए विविध प्रकार के वस्त्र आभूषण और दासी आदि अर्पित कर वे लौण इत्येत्य ही गये । राजा शूरसेन ने भी भोगवत के साथ आये हुए राजा विजय के क्षत्रियों का बहुत आदर-सत्कार करने राजा विजय के

१ घ विजयाय । २ ड ० मासगुणाकर । ३ घ तज्ज अथवत्या चदस्य भूपति । वि० ।

४ ड ० पतिस्तदा ।

भोगवत्पाश्च यो भर्ता महत्सर्पोऽतिभीषण । एकान्तदेशे विजने गृहे रत्नसुशोभिते ॥५३॥
सुगन्धकुसुमाकीर्णे तत्राऽऽस्ते सुखशीतले । स सर्पो मातरं प्राह पितरं च पुनः पुनः ॥५४॥
मम भार्या राजपुत्री किं मा नन्दोपसर्पति । तत्पुत्रवचनं श्रुत्वा सर्पमातेदमब्रवीत् ॥५५॥

राजपत्न्युवाच

धात्रिकं गच्छ सुभगे शीघ्रं भोगवर्ती धृद । तव भर्ता सर्प इति ततः सा किं वदिष्यति ॥५६॥

ब्रह्मोवाच

धात्रिका च तथेत्युक्त्वा गत्वा भोगवर्ती तदा । रहोगता उवाचेदं विनीतवदपूर्ववत् ॥५७॥

धात्रिकोवाच

जानेह सुभगे भद्रे भर्तारं तव दैवतम् । न चाऽऽख्येयं त्वया क्वापि सर्पो न पुरुषो ध्रुवम ॥५८॥

ब्रह्मोवाच

तस्यास्तद्वचनं श्रुत्वा भोगवत्पद्मवीदिदम् ॥५९॥

भोगवत्युवाच

मानुषीणां मनुष्यो हि भर्ता सामान्यतो भवेत् । किं पुनर्देवजातिस्तु भर्ता पुण्येन लभ्यते ॥६०॥

प्रसन्नता के अनुरूप उद्दे विदा किया । राजा विजय की बहू रत्नवती सुवर्णी और सुन्दर बटिवाली । कन्या स्वयंदा अपने सास-ससुर की गुथूपा में लगी रहती थी । भोगवर्ती का जो सप पति या यह भी एकांत जनगूच रत्ना से सुशोभित और सुगन्धित पुष्पो से सुसज्जित गृह में निवास करता था । एक दिन उस सप ने अपनी माता और पिता से अनुरोध पूर्वक बार बार कहा कि मेरी राज कन्या पति मेरे पास क्या नहीं आता है । पुत्र का धात मुत्तर धामला ने कहा ॥५५ ॥

राजपत्नी ने कहा—पार्श्व ! सुन्दरी ! जाओ गाछ भोगवत्ता से कहो कि तुम्हारा पति सप है इसका उत्तर मे यह क्या कहा है या मुझ बचाना ॥५६॥

ब्रह्मा ने कहा—पार्श्व ! जैसा आता यह कहकर भोगवत्ता का पास गई । एकांत पात्रर बनी मग्नता और अत्रु वग स बाली ॥५७॥

पार्श्व बोली—मुभगे ! भद्र ! मैं जानती हूँ कि तुम्हारा पति देवता है । परन्तु तुम निश्चय ही इस बात का कहो भी न कहना कि तुम्हारा पति मनुष्य नहीं बल्कि सप है ॥५८॥

ब्रह्मा ने कहा—पार्श्व ! बात का मुत्तर भोगवर्ती ने यह कहा ॥५९॥

भोगवती बोली—मग्नारण्यता मानुषी स्थिता का पति मनुष्य ही जाता है । देवदुर्गन्धप्र स्पर्श तो महान् पुण्य स प्राप्त होता है ॥६०॥

ब्रह्मोवाच

भोगवत्यास्तु तद्वाक्यं सा च सर्वं न्यवेदयत् । सर्पाय सर्पमात्रे च राज्ञे चैव यथाक्रमम् ॥६१॥
हरोद राजा तद्वाक्यात्स्मृत्वा तां कर्मणो गतिम् । भोगवत्यपि तां ग्राह्य उक्तपूर्वा पुनः सखीम् ॥६२॥

भोगवत्युवाच

कान्तं दर्शय भद्रं ते वृथा याति वयो मम

॥६३॥

ब्रह्मोवाच

ततः सा दर्शयामास सर्पं तमतिभोषणम् । सुगन्धकुसुमाकीर्णं शयने सा रहोगता ॥६४॥
तं दृष्ट्वा भोषणं सर्पं भर्तार रत्नभूषितम् । कृताञ्जलिपुटा 'वाक्यमवदत्कान्तमञ्जसा ॥६५॥

भोगवत्युवाच

घन्याऽस्म्यनुगृहीताऽस्मि यस्या मे दैवत पतिः

॥६६॥

ब्रह्मोवाच

इत्युक्त्वा शयने स्थित्वा तं सर्पं 'सर्पभावर्त्त' । खेलयामास तन्वङ्गी गीतंश्चैवाङ्गसंगमं ॥६७॥
सुगन्धकुसुमं पानंस्तोषयामास तं पतिम् । तस्याश्चैव प्रसादेन सर्पस्याभूत्स्मृतिर्मुने ॥
स्मृत्वा सर्वं दैवकुत राज्ञौ सर्पेऽब्रवीत्प्रियाम् ॥६८॥

ब्रह्मा ने कहा—उस धाई ने भोगवती की बातों को सप, उसकी माता और राजा की क्रमशः विस्तारपूर्वक मुता दिया। राजा उसकी बातों को सुनकर उसके कम-विपाक का स्मरण करने लगे पडा। दूसरे भोगवती ने अपने उस शब्देषवाहक सर्पों से कहा ॥६१-६२॥

भोगवती ने कहा—मेरे कान्त को दिखलाओ, मेरा जीवन व्यर्थ बीतता जा रहा है, यह कार्य करने से मुन्हारा कल्याण होगा ॥६३॥

ब्रह्मा ने कहा—तदनन्तर उस सेविका ने सुगन्धित फूलों से सजी शय्या पर विराजमान उस भोषणाकृति सर्प को दिया दिया। एकान्त में अवस्थित भोगवती ने रत्नों से अलंकृत भयङ्कर सर्पपति को देखकर विनीत भाव से बड़ाञ्जलि होकर पति से सुरत कहा ॥६४-६५॥

भोगवती ने कहा—मैं घन्य हूँ अनुग्रहित हूँ कि मुझ देवता पति-प्राप्त हुआ ॥६६॥

ब्रह्मा ने कहा—यह कह कर स्वयं शय्या पर स्थित हो उस सुकुमारी ने अपने सर्पपति के साथ उसके मनी-नुकूल गीत और अगस्त्यशय्यापरपूर्वक दाम्पत्य क्रीडा की, और सुगन्धित फूल एवं पेय पदार्थों से अपने पति को प्रसन्न किया। हे मुनि (नारद) उसी राजकन्या के प्रसाद से सर्प को पूर्व-स्मृति हो गई। भाग्य की सब वस्तु स्मरण करने सर्प ने रात्रि में अपनी पत्नी से कहा ॥६७-६८॥

राजकन्याऽपि मा दृष्ट्वा न भीताऽसि कथं प्रिये। सोवाच देवविहित कोऽतिक्रमितुमीश्वर॥
पतिरेव गति स्त्रीणां सर्वदेव विधेयत ॥६९॥

ब्रह्मोवाच

श्रुत्वेति दृष्टस्तामाह नाग प्रहसितानन

॥७०॥

सर्प उवाच

गुप्तोऽस्मि तव भक्त्याऽहं किं ददामि तवेप्सितम्। तव प्रसादाच्चावर्द्धि सर्वस्मृतिरभूदियम्॥७१॥
शक्तोऽहं देवदेवन कुपितेन पिनाकिना। महेश्वरकरे नाग शेषपुत्रो महाबल॥७२॥
'सोऽहं पतिस्त्वच्च भार्या नाम्ना भोगवती पुरा। उमावाक्याज्जहासोच्चं शम्भु प्रीतो रहोगत॥७३॥
ममापि 'चाऽप्यत भद्रे हास्य तद्देवसनिधौ। ततस्तु कुपित शम्भु प्रादाच्छाप ममेदृशम्॥७४॥

शिव उवाच

मनुष्ययोनी त्व सर्पो भविता ज्ञानवानिति

॥७५॥

सर्प उवाच

तत प्रसादित शम्भुस्त्वया 'भद्रे मया सह'। ततश्चोक्त तेन भद्रे गौतम्या मम पूजनम्॥७६॥
'कुर्वतो' ज्ञानमाथास्ये' यदा' सर्पाकृतेस्तव'। तदा विग्रहो भविता' भोगवत्या प्रसादत॥७७॥

सर्प ने कहा—प्रिये! तुम राजकुमार हाकर मे, मुझका देखकर क्या नहीं करी? यह मुनकर करने कहा—
भाय विधान का उलट देने में कौन समय हो सकता है? पति है मन्त्र स्त्रिया की विधेय गति होता है॥६९॥

ब्रह्मा ने कहा—सर्प! का बाता का मुनकर मुस्तुराते हुए नाग ने हृय से कहा॥७०॥

सर्प बोला—गुहारी इस पति मन्त्र से मैं प्रसन्न हूँ गुहारी कौन-सी कामना मैं पूरा करूँ? गुहारी।
गुहारी कृपा में मुझ पुर का रसी घटनाओं की अब स्मरण हो आया है। मैं शयनाग की पुत्र महाबलाना नाग पुत्र
का हाथ पर रहना था। एक बार देखदेव निवेने कुपित हाकर मुझ नाग दे दिया था। वहाँ मैं गुहारा गति हूँ और मुझ
भरा पूरा जन्म का वही भागवती नाम का भार्या हो। एक बार एक दिन वहाँ मैं उमा का प्रभावक में शरारत में
हूँ मैं पंड। भद्रे! उस देवता का मर्मपि मुझे भी हँसी आ गई। तब कुपित होकर पाकर मैं मुझ परत साप दे दिया
॥७१-७४॥

शिव ने कहा—तुम मनुष्य कुल में जन्मी नाग होये॥७५॥

सर्प ने कहा—भद्रे! तदनन्तर गुहारे भाय मैं भी बड़ी विग्रहना मे उतका प्रसन्न किया। तब उहान
कहा कि भागवत भद्रे मैं तब मेरा पूजन करीये तब भागवती की कृपा में मुझे भी का रसीरस पुत्रका भिन्ना। गुहारा।

१ प ०ह मः तव प। २ प ०त तन हसित दव०। ३ प पंक्। ४ प क ह। गुनना०। ५ प क
पुरा। ६ प ०वरी सर्वमावेन गहमस्तिपुरमरम्। त०। ७ प ०मागप०। ८ प तन। ९ प क ०प।
पि०। १० प ०ता वग मय०। क ०ता वग मी०।

तस्मादिदं ममाऽऽपन्नं तव चापि शुभानने । तस्माश्नोत्वा गौतमीं मां पूजां कुरु मया सह ॥७८॥
ततो विद्यापो भविता आवां यावः शिवं पुनः । सर्वेषां सर्वदाऽऽर्तानां शिव एव परा गतिः ॥७९॥

ब्रह्मोवाच

तच्छ्रुत्वा भर्तृध्वनं सा भर्त्रा गौतमीं ययौ । ततः स्नात्वा तु गौतम्यां पूजां चक्रे शिवस्य तु ॥८०॥
ततः प्रसन्नो भगवान्दिव्यरूपं ददौ मुने । आपृच्छथ पितरौ सर्पे भार्यया गन्तुमुद्यतः ॥
शिवलोकं ततो ज्ञात्वा पिता प्राह 'महामतिः' ॥८१॥

पितोवाच

युवराज्यधरो ज्येष्ठः पुत्र एको भवानिति । तस्माद्राज्यमशेषेण कृत्वोत्पाद्य सुतान्वहून् ॥
याते मयि परं धाम ततो याहि शिवं पुरम्' ॥८२॥

ब्रह्मोवाच

एतच्छ्रुत्वा पितृवचस्तथेत्याह स नागराट् । कामरूपमवाप्पाय भार्यया सह सुव्रत ॥८३॥
पित्रा मात्रा तथा पुत्रे राज्यं कृत्वा सुविस्तरम् । याते पितरि स्वर्लोकं पुत्रान्स्याप्य स्वके पदे ॥८४॥
भार्यामास्यादिसहितस्ततः शिवपुरं ययौ । ततः प्रभृति तत्तीर्थं नागतीर्थमिति श्रुतम् ॥८५॥

जहाँ शाप के प्रभाव से मेरे और तुम्हारे ऊपर यह विपत्ति आई। इसलिये मुझको वहाँ ले चलो और मेरे साथ पूजा करो। तब हम दोनों शाप-मुक्त होकर पुनः शिव का सर्गाप्य प्राप्त करेंगे। भगवान् शंकर ही सदा सब विषय प्राणियों के एकमात्र आधार हैं ॥७६-७९॥

ब्रह्मा ने कहा—मति की बातें सुनकर यह पति (साँप) को लेकर गौतमी के तट पर गई। इसके अनन्तर गौतमी ने स्नान कर उसने शिव की पूजा की। मुने! पूजा से प्रसन्न होकर शंकर ने नाग का दिव्य रूप दिया। अपनी माता और पिता से अनुमति लेकर वह साँप भार्या के साथ शिवलोक जाने के लिये उद्यत हुआ। यह जानकर महाबुद्धिमान् पिता ने कहा—॥८०-८१॥

पिता ने कहा—तुम्हीं मेरे एकमात्र युवराज पद का धारण करने वाले पुत्र हो। इसलिये मेरे सम्पूर्ण राज्य का उपभोग कर बटुल से पुत्रों का उत्पन्न करो। फिर जब मैं स्वर्ग को सिंहाट जाऊँ तब तुम सिद्धगुरी जाना ॥८२॥

ब्रह्मा ने कहा—पिता की यह बात सुनकर नागराज ने उसे स्वीकार कर लिया। तदनन्तर वह महाव्रती नाग यथेच्छ रूप पाकर पत्नी, पिता, माता तथा पुत्रों के साथ अपने विद्यालय राज्य का उपभोग करने लगा। पुनः पिता के स्वर्ग लोक चले जाने पर अपने पद पर पुत्रों को स्थापित करके स्त्री और आमात्य आदि के सहित वह

‘यत्र नागेश्वरो देवो भोगवत्या प्रतिष्ठितः। तत्र स्नानञ्च दानं च सर्वकृतुफलप्रदम् ॥८६॥
इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये नागतीर्थवर्णनं नामैकादशाधिकशततमोऽध्यायः ॥१११॥
गौतमीमाहात्म्ये द्विचत्वारिंशततमोऽध्यायः ॥४२॥

अथ द्वादशाधिकशततमोऽध्यायः

मातृतीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

मातृतीर्थमिति ख्यातं सर्वसिद्धिकरं मृणाम्। आधिभिर्मुच्यते जन्तुस्तत्तीर्थस्मरणादपि ॥१॥
देवानामसुराणां च संगरोऽभूत्सुदारुणः। नाशवनुबन्तदा जेतुं देवा दानवसंगरम् ॥२॥
‘तदाऽहमगमं देवंस्तिष्ठन्तं शूलपाणितम्। अस्तवं विविधैर्वायुभिः कृताञ्जलिपुटः शनैः ॥३॥
संमन्य देवैरसुरैश्च सर्वैर्षदाऽऽहृतं संमथितुं समुद्रम्
यत्कालकूटं समभून्महेश, तत्त्वां विना कीं प्रसितुं समर्थः ॥४॥

शिवपुरी को चला गया। तब से वृत्तीयं नागतीर्थ के नाम से प्रसिद्ध हो गया। जहाँ भोगवती के द्वारा नागेश्वर देव प्रतिष्ठित हुये हैं, वहाँ स्नान और दान करने से सम्पूर्ण यज्ञों के फल प्राप्त होते हैं ॥८३-८६॥

श्री ब्रह्ममहापुराण मे तीर्थ-माहात्म्य वर्णन के प्रसंग में मातृतीर्थ वर्णन-नामक एक भी प्यारट्वाँ अध्याय समाप्त ॥१११॥

अध्याय ११२

मातृतीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा ने कहा—मनुष्यों को सब प्रकार की सिद्धियाँ देने वाला मातृतीर्थ नाम से प्रसिद्ध एक तीर्थ है उस तीर्थ के स्मरण मात्र से भी मनुष्य मानसिक व्यथाका से छूट जाता है। एक समय देवा और दानवों में अति धारयुद्ध हुआ। जब देवगण वह दानव-संग्राम जीतने में समर्थ नहीं हुए, तब ये देवताओं के सहित बँलाय पर्वत पर किरावमान सागर के पास गया और हाथ जाड़कर घीरे घीरे विविध वायुओं से उनकी स्तुति करने लगा—
‘महेश! जब सब देवता और दानव आपस में मत्प्रणा कर समुद्र का मथन करने लगे, उस समय जी बालकूट विष उत्पन्न हुआ, उसको निगलने में आपने बिना दूसरा कौन समर्थ हो सकता था? जा कामदेव पुण्य-दाण के

पुष्पप्रहारेणः जगत्त्रयं यः स्वाधीनमापादयितुं समर्थः ।

मारो हरेऽप्यन्यसुरादिवन्द्यो, वितापमानो विलयं प्रयातः ॥५॥

विमय्य वारोशमनङ्गशत्रो, यदुत्तमं तत्तु दिवौकसेभ्यः ।

दत्त्वा विषं संहर्त्रीलकण्ठ, को वा धर्तुं त्वामृते वं समर्थः ॥६॥

ततश्च तुष्टो भगवानादिकर्ता त्रिलोचनः ॥७॥

शिव उवाच

दास्येऽहं यदभीष्टं वो ब्रुवन्तु सुरसत्तमाः ॥८॥

देवा ऊचुः

दानचेष्ट्यो भय घोरं तत्रेहि धृपभध्वज । जहि शत्रून्सुराण्यहि नाथवन्तस्त्वया प्रभो ॥९॥

निष्कारण. सुहृच्छंभो नाभविष्यद्भवात्पदि । तदाऽकरिष्यन्किमिव दुःखार्ता सर्वदेहिनः ॥१०॥

ब्रह्मोवाच

इत्युवतस्तत्क्षणात्प्रायाद्यत्र ते देवशत्रवः । तत्र सद्युद्धमभवच्छंकरेण सुरद्विषाम् ॥११॥

सतस्त्रिलोचनः । श्रान्तस्तमोरूपधरः शिव । 'ललाटाद्व्यपतस्तस्य युध्यतः स्वेदबिन्दवः ॥१२॥

स सहृन्दैर्यगणास्तामर्त्ता मूर्तिमाश्रित । ता मूर्तिमसुरा दृष्ट्वा मेरुपृष्ठाद्भुवं ययुः ॥१३॥

स 'सहृन्सर्वदैत्यास्तदाऽगच्छद्भुवः हरः । इतश्चेतश्च भीतास्तेऽधावन्सर्वा महोमिमाम् ॥१४॥

प्रहार सेनाओं लोको को अपने वर्धमान करने में समर्थ हुआ, तथा अन्य सब देवताओं द्वारा वन्दित हुआ, वही मदन जब आप पर अपनी सज्जि का प्रयोग (प्रदशन) करने लगा तब स्वयं बितुष्ट हो गया । मदन-रिपु । समुद्र को मथने से जो उत्तम चीजें निकली उनका तो देवताओं ने ले लिया, परन्तु वीलकण्ठ । विनाशकारी विष आपको दिया गया । सत्य है कि आपको छाड़कर उस महाविष को पारण करने में कौन समर्थ था ? इस स्तुति से आदिकर्ता शकर प्रसन्न हो गये ॥१-७॥

शिव ने कहा—हे देवदेष्टो । आप लोग अपना अभीष्ट बनाइए, मैं अवश्य दूंगा ॥८॥

देवो ने कहा—हे वृषबाहुन । दानवा से हम देवा को दारुण भय हो गया है, आप वहाँ चलिये और राक्षसा की मारकर दवा की रक्षा कीजिये । प्रभो । तुम सही । हम सुनाथ हैं । दानव । यदि आप आज अकारण धनु (रक्षक) नहीं होते तो दुःख से आत मुक्त प्राणी क्या कर सकेंगे ? ॥९-१०॥

ब्रह्म ने कहा—इस प्रकार निवेदन किये तब पर शकर जी तुम वहाँ गये जहाँ राक्षस लाग थे । वहाँ उनके साथ राक्षसा का भयकर युद्ध हुआ । इसके अनन्तर ताम्रस रूप धारण करने वाले त्रिनेत्र शिव शक-ने गये । युद्ध करते समय उनके लगभग से पर्वतों की बृद्ध मिलने लगी । तब वे रौद्र मूर्ति धारण कर दैत्यो का महार करने लगे । उनकी उस भयकर महारकारिणी मूर्ति को देखकर वे दानव मेरुपृष्ठ से भाग कर पृथ्वी पर चले आये । यह देखकर शकर जी

तथैव कोपाद्बुद्धोऽपि शत्रूस्ताननुधावति । तथैव युध्यतः शंभोः पतिताः स्वेदबिन्दवः ॥१५॥
यत्र यत्र भुवं प्राप्तो बिन्दुमहिंश्वरो भुने । तत्र तत्र शिवाकारा मातरो जतिरे ततः ॥१६॥
प्रोचुर्महेश्वरं सर्वाः खादामस्त्वसुरानिति । ततः प्रोवाच भगवान्सर्वैः सुरगणैर्वृतः ॥१७॥

शिव उवाच

स्वर्गाद्भुवमनुप्राप्ता राक्षसास्ते रसातलम् । अनुप्राप्तास्ततः सर्वाः शृण्वन्तु मम भाषितम् ॥१८॥
यत्र यत्र द्विषो यान्ति तत्र गच्छन्तु मातरः । रसातलमनुप्राप्ता इदानीं मद्भूयाद्द्विषः ॥
भवत्योऽप्यनुगच्छन्तु रसातलमनु द्विषः ॥१९॥

ब्रह्मोवाच

ताश्च जग्मुर्भुवं भित्त्वा यत्र ते दैत्यदानवाः । तान्हत्वा मातरः 'सर्वान्देवारोनतिभोषणान् ॥२०॥
पुनर्दानुपाजग्मुः' पया तेनैव मातरः । गताश्च मातरो यावद्यावच्च पुनरागताः ॥२१॥
तावद्देवाः स्थिता आसन्गौतमोत्तोरमाश्रिताः । प्रस्थानासन्न मातृणा सुराणां च प्रतिष्ठितेः ॥२२॥
प्रतिष्ठानं तु तत्क्षेत्रं पुण्यं विजयवर्धनम् । मातृणां यत्र चोत्पत्तिर्मातृतीर्थं पृथक्पृथक् ॥२३॥
तत्र तत्र बिलाभ्यासग्रसातलगतानि च । सुरास्ताभ्यो 'घराणप्रोचुर्लोकं पूजां यथा शिवः ॥२४॥

सब दानवा का सहार करते हुये पृथ्वी पर चले आये । वहाँ भी शकर को देखकर राक्षस भयभीत हो सम्पूर्ण पृथ्वी पर दहश उभर भागने लगे । शकर भी कुछ होकर उनके पीछे-पीछे दौड़ने लगे । जैसे जैसे वे दौड़ते थे वैसे वैसे उनके शरीर से पसीने की बूँदें गिरने लगी । मुनि ! जहाँ जहाँ शिव के शरीर से निकल कर बूँदें पृथ्वी पर गिरी वहाँ वहाँ शिव के आकार की मातायें उत्पन्न हो गईं । उन माताओं ने शहर से कहा कि 'हम अनुरा को लायेंगी ।' यह सुनकर भगवान् ने सब देवगुप्ता के सामने ही कहा ॥११-१७॥

शिव ने कहा—ये सब राक्षस स्वर्ग से भागकर पृथ्वी पर आए, फिर वहाँ से रसातल को चले गये । इसलिये आप सब मेरा कहना मुनिये । जहाँ जहाँ शत्रु जायें, वहाँ वहाँ मातायें भी जायें । इस समय मेरे मय से शत्रु रसातल को चले गये हैं । इसलिये आप सब भी शत्रुओं का पीछा करती हुई रसातल को जाइये ॥१८-१९॥

ब्रह्मा ने कहा—वे मातायें पृथ्वी की ओर बढ़ रही हैं, जहाँ दैत्य-दानव थे । वहाँ जाकर सभी महामरुत राक्षसा को मार डालो । पुनः वे उर्ध्व मार्ग से जिस मार्ग से शहर से गई थी—देवताओं के पास चली आईं । जिस समय मातायें रसातल का गईं और जब तक पुनः वहाँ से नहीं लौटी तब तक देवगण गौतमी के तट पर स्थित रहे । वहाँ माताओं के प्रस्थान करने और देवताओं के प्रतिष्ठित होने से वह क्षेत्र पवित्र और विजय देनेवाला क्षेत्र माना गया । वहाँ माताओं की उत्पत्ति हुई और जहाँ रसातल को जाने वाले बिल थे वे पुष्य, पुष्य, एन-एक भानूनीयं कह गये ।

प्राप्नोति तद्वन्मातृभ्य पूजां भवतु सर्वदा । इत्युक्त्वाऽन्तर्दधुर्देवा आसस्तत्रैव मातर ॥२५॥
यत्र यत्र स्थिता देव्यो मातृतीर्थं ततो विदुः । सुराणामपि सेव्यानि किं पुनर्मनुष्यादिभिः ॥२६॥
तेषु स्नानमथो दानं पितृणां चैव तर्पणम् । सर्वं तदक्षयं ज्ञेयं शिवस्य वचनं यथा ॥२७॥
यस्तिबद्धं शृण्वान्निश्चयं स्मरेदपि पठेत्तथा । आरयान् मातृतीर्थानामायुष्मान्सखी भवेत् ॥२८॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे स्वयम्भुक्पिसवादे देवतीर्थमातृतीर्थप्रतिष्ठानवर्णनं नाम
द्वादशाधिकशततमोऽध्यायः ॥११२॥

गौतमीमाहात्म्ये त्रिचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ॥४३॥

अथ त्रयोदशाधिकशततमोऽध्यायः.

ब्रह्मतीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

इदमप्यपर तीर्थं देवानामपि दुर्लभम् । ब्रह्मतीर्थमिति ख्यातं भुवितभुवितप्रदं मुनिनाम् ॥१॥

देवा ने माताभा का बर दिया कि जिस प्रकार लोक मण्डित व पूजा होता है उसी प्रकार सबदा माताभा को भ पूजा प्राप्त होगी। यह कहकर देवता अतर्हित हो गये परन्तु माताय वही रही। अहाँ जहाँ माताय स्थित रहा वहाँ वही मातृशय स्थापित हुय। नेत म देवा के लिये भ सेवा माने गये हैं फिर मनुष्या क लिये तो कहना ही क्या ? उन श्रियो म क्रिये गये स्नान दान और पित तृण आदि कम उस प्रकार बलशय होते हैं जिस प्रकार शिव के बरदान शक्त्य। जो मनुष्य मातृ-तय का क्या को सुनता स्मरण करता और पठता है वह दास ज व आर मुक्त होता है ॥२०२॥

श्रीब्रह्ममहपुराण म देव ताव मान्ताय प्रसिद्धान्-वर्णनं नाम कृण्वे सो षोडशोऽध्यायः समाप्तः ॥११२॥

अध्याय ११३

ब्रह्मतीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा ने कहा—यह एक दूसरा भगव्या को भुक्ति और मुक्ति देने वाला ब्रह्मताप नाम से प्रसिद्ध तीर्थ है जो देवा के लिये भा दलभ माना गया है ॥१॥ मनिष्य १ जब राक्षस रत्न तल म घूम गये तब उनसे दोछ पीछ

स्थितेषु देवसैन्येषु प्रविष्टेषु रसातलम् । दैत्येषु च मुनिधेष्ठ तथा मातृषु ताननु ॥२॥
 मदीयं पञ्चमं वक्त्रं गर्दभाकृति भोषणम् । तद्वक्त्रं देवसैन्येषु मयि तिष्ठत्युवाच ह ॥३॥
 'हे दैत्याः किं पलायन्ते न भयं वोऽस्तु सत्वरम् । 'अगच्छन्तु सुरान्सर्वान्भक्षयिष्वे क्षणादिति' ॥४॥
 निवारयन्तं मामेवं भक्षणापोद्यतं तथा । तं दृष्ट्वा विबुधाः सर्वे चित्रस्ता विष्णुमब्रुवन् ॥५॥
 ब्राहि विष्णो जगन्नाथ ब्रह्मणोऽस्य 'मुखं' लुन । चक्रधुर्विविधानाह 'छेदमि चक्षणे' ये शिरः ॥६॥
 किं तु तच्छिन्नमेवेदं संहरेत्सचराचरम् । मन्त्रं ब्रूमोऽत्र विबुधाः श्रूयतां सर्वमेव' हि ॥७॥
 त्रिनेत्रः कशिरद्वेष्टा स' च धत्ते न संशयः । मया च' शंभु' सर्वे'श्च स्तुत प्रोवतस्तथैव च ॥८॥
 याग' क्षणो दृष्टफलेऽसमर्थ', स नैव कर्तुः फलतीति मत्वा ॥
 फलस्य दाने प्रतिभूजंतीति, निश्चित्य लोकः प्रतिकर्म यातः ॥९॥
 ततः सुरेशः संतुष्टो देवानां कार्यसिद्धये । लोकानामुपकाराय तथेत्याह सुरान्प्रति ॥१०॥
 तद्वक्त्रं पापहृषं यद्भीषणं लोमहर्षणम् । निकृत्य नक्षत्रसंज्ञं च स्थाप्य चेत्यथान्नवीत् ॥११॥
 तत्रेला विबुधानाह नाहं बोद्धुं शिरः क्षमा । रसातलमयो मास्ये उदधिदचाप्यथाब्रवीत् ॥१२॥

ज्ञातव्यं किं गर्द और देव सेनामें बड़ी रह गई, उस समय मेरा पाँववाँ गर्दहै की आकृति का भयकर मुख देवताओं और
 सैनिकों के बीच मुझको बैठा देख कर बोल उठा ॥२-३॥ हे देवों ! तुम लोग क्या भाग रहे हो ? तुम लोग भयभीत
 हो होओ, आओ, मैं एक ही क्षण में सब देवा को खा जाऊँगा ॥४॥ मैं उस मुख को जो इस प्रकार देवा को खाने के
 लिए उद्यत हो रहा था, रोकने लगा । यह देखकर सब देव भयभीत हो भगवान् विष्णु से बोले ॥५॥ विष्णु ! रक्षा
 कीजिये । ब्रह्मा के इस मुख को दृष्टि बाट डालिये । विष्णु ने देवताओं से कहा 'मैं शिरच्छेद तो अबस कर
 रहा हूँ । हे, किन्तु वह शिर कट जाने पर भी कराचर सोढ़ा जगत् का संहार कर सकता है । इसलिये देवगण ! मैं इस
 विषय में एक उपाय परामर्श दे रहा हूँ, संक्षेपान् हीनर मुनि । भगवान् ब्रह्माचन इस दुष्ट शिर को छेदन कर, इसकी
 धारण कर सकते हैं इसमें सन्देह नहीं ।' यह सुनकर मैंने और सब देवताओं ने निश्चय कर के स्तुति की और
 कहा ॥६-८॥ 'यदि क्षणभर में सम्पन्न होने वाला, प्रत्यक्ष फल देने के अछमर्थ तथा कर्मों को फल नहीं देता है, इस
 सिद्धान्त को मानकर, फल देने में सावर कोश । साधों जाना जाता है और सब प्रत्यक्ष काम में सहाय प्रवृत्त होता
 है ॥९॥ तदनन्तर संतुष्ट हुए शरकर ने दक्षार्थ का सिद्ध तथा लोककल्याण के लिये दक्षताओं से कहा कि मैं ऐसा
 ही करूँगा ॥१०॥ परन्तु इस दुष्टि का बाले, भीषण और राफटे खाते कर देने वाले दक्षता को नगहणी अन्ना
 से बाट कर बहो स्थापित करे । यह बनाइए ॥११॥ यह सुनकर पृथ्वी ने देवा से कहा कि मैं इस शरीर का बाले

१ क हा । २प ०ष्टनमु० । ३प ०दिव । नि० । ४क ०तगिर । तद्दृष्ट्वा । ५ ०तशिर । ६प
 ०तहर । मुरारिवि० । ६प ०ण वस्य वम् । नि० । ७क ०वै एव । ८ क वा ०छेरमनि । ९प ५ सर्व'दैवैव ।

शोष यास्ये क्षणादेव पुनश्चोचु शिव सुरा । त्वमेवैतद्ब्रह्मशिरो धार्यं लोकानुकम्पया ॥१३॥
अच्छेदे जगता नाशश्छेदे क्षोपश्च तादृश । एव विमृश्य सोमेशो दधार कशिरस्तदा ॥१४॥
तद्दृष्ट्वा दुष्कर कर्म गौतमीं प्राप्य पावनीम् । अस्तुयञ्जगतामीश प्रणयाद्भक्तित सुरा ॥१५॥

देवत्वमित्र कशिरोऽतिभीम, तान्भक्षणायोपगत नितृत्य

नखाप्रसूच्या शकलेन्दुमौलिस्त्यागेऽपि दोषात्कृपयाऽनुधत्ते ॥१६॥

तत्र ते विबुधा सर्वे स्थिता ये ब्रह्मणोऽन्तिके । तुष्टुर्विविधेशान कर्म दृष्ट्वाऽतिद्वैतम् ॥१७॥
तत प्रभृति तत्तीर्थं ब्रह्मतीर्थमिति श्रुतम् । अद्यापि ब्रह्मणो रूपं चतुर्मुखमवस्थितम् ॥१८॥
शिरोमान तु य पश्येत्स गच्छेद्ब्रह्मण पदम् । यत्र स्थित्वा स्वयं शब्दो लूनवान्ब्रह्मण शिर ॥१९॥
हृद्गतोऽयं सदेव स्यात्तत्र साक्षाद्ब्रह्मण । देवानां च स्वरूपेण स्थितो यस्मात्तदुत्तमम् ॥२०॥
सौम्यं तीर्थं तदारप्यात सर्वक्रतुफलप्रदम् । तत्र स्नात्वा रविं दृष्ट्वा पुनर्जन्म न विद्यते ॥२१॥
महादेवेन यच्छिन्नं ब्रह्मण पञ्चमं शिर । क्षेत्रेऽविमुक्तं सस्थाप्य देवतानां हितं कृतम् ॥२२॥

मे असमर्थ हूँ यदि ऐसा कहूँ तो इसके भार से मैं ही रसतिल बना जाऊँगी । समुद्र ने कहा यदि मैं इसको धारण करूँ तो क्षण भर में ही सूख जाऊँगी । निदान विवश ही देवी ने पुनः शंकर से कहा कि लोक पर दया करके आप ही इस शिर को धारण काजिये ॥१२-१३॥ शंकर जा ने इस शिर को न काटने से ससार का नाश ही जगता और काट देने पर भा बैसा ही दोष होगा यह विचार कर उस समय उस गदभाकृति शिर को धारण कर लिया ॥१४॥ इस दुष्कर काम को देवकर सब देवता पावन गीतमा के ०८ पर जाकर प्रभ से भक्तिपूर्वक जगत्पति शंकर की स्तुति करने लगे ॥१५॥ देवी के मध्य सन्मुख रहने वाले ब्रह्मा के पांच मुख को जो कि सब देवताओं को खा जाने के लिये उद्यत था—द्विताम्या के चंद्र की गिर पर धारण करने वाले अपने मखाप्र रूपा मुखों अत्र से काट कर दोषों के कारण त्यागने योग्य उक्त शिर को भी इसापूर्वक धारण कर लिया ॥१६॥ ब्रह्मा ब्रह्मा के समाप जिनने देवता ये उ होने शंकर के इस देवतात्त काम को देखकर उनका अत्यन्त स्तुति क ॥१७॥ तब से वह तथा ब्रह्मतीर्थ के नाम से विख्यात हुआ । आज भी ब्रह्मा का चतुर्मुख रूप वहा स्थित ह ॥१८॥ जो मनुष्य उनके गिरोभाग का दान कर लेता है वह अवश्य ब्रह्मपद को प्राप्त करता है । जहा स्थित होकर स्वयं शंकर ने ब्रह्मा का शिर काटा था वहा हृद्गत ब्रह्मता है । वहाँ साक्षात् स्रूप देवताओं के स्वरूप से स्थित हैं । वह अत्युत्तम शरीरतीय माना जाता है और सब यत्नों का फल देने वाला है । उस दोष में स्नातकर स्रूप बिम्ब का दशन करने से मनुष्य आध्यात्मन के वचन से छूट जात है ॥१९-२१॥ महादेव ने ब्रह्मा के जिस पाँचव शिर का छदन किया और अनिमुक्त शत्रु में जिसका स्थापना कर देवताओं का हित साधन किया योगती तदवर्ती ब्रह्मती य में उस शिर

ब्रह्मतीर्थं शिरोमात्रं यो दृष्ट्वा गौतमो तटे। क्षेत्रेऽविमुक्ते तस्यैव स्थापितं योऽनुपश्यति॥
कपालं ब्रह्मणः पुण्यं ब्रह्महा पूततां व्रजेत् ॥२३॥

इति श्रीमहापुराणे अविब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये ब्रह्मतीर्थब्रह्मशिरोलिङ्गशिवतीर्थसूर्य-
तीर्थादिषडशीतितीर्थवर्णनं नाम त्रयोदशाधिकशततमोऽध्यायः ॥११३॥

गौतमीमाहात्म्ये चतुश्चत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ॥४४॥

अथ चतुर्दशाधिकशततमोऽध्यायः

अविघ्नतीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

अविघ्नं तीर्थमाख्यातं सर्वविघ्नविनाशनम्। तत्रापि वृत्तमाह्वयात्मे शृणु मारुत भविततः॥१॥
देवसत्रे प्रवृत्ते तु गौतम्याश्चोत्तरे तटे। समाप्तिर्नैव सत्रस्य संजाता विघ्नदोषतः॥२॥
ततः सुरगणाः सर्वे भामयोचन्हर्तुं तदा। ततो ध्यानगतोऽहं तानयोच' बोधय कारणम्॥३॥

भाष्य का दर्शन करने जो व्यक्ति अविमुक्त क्षेत्र में ब्रह्मपाल का दर्शन करता है, वह यदि ब्रह्मपार्ता भी हो तो भी पवित्र हो जाता है ॥२३-२३॥

अः ब्रह्ममहापुराण में ब्रह्मतीर्थ, गिरालिंग, शिवतीर्थ, सूर्यतीर्थ, आदि छियासौ तीर्थों का वर्णन
नामक एक भी संस्कृत अध्याय समाप्त ॥११३॥

अध्याय ११४

अविघ्नतीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा ने कहा—मर विघ्न का नष्ट करने वाला अविघ्ननामक विद्वान् एक तीर्थ है। उसका भी वृत्तान्त
यज्ञात् है। मारुत से सुनी। एक समय गौतमी के उत्तर तीरे पर देवयज्ञ प्रारम्भ हुआ, परन्तु बिजली
और वृष्टि का कारण उग, यज्ञ का समाप्ति नहीं हो सका। तदनन्तर मर देवनाभा ने मुझसे और विष्णु ने विवेक
विदा। मैंने ध्यानस्थ रहकर यज्ञ-दृष्टि से कारण जान लिया और कहा कि यह यज्ञ गन्धर्वा देवियों के

विनायककृतं विघ्नर्तं तत्सत्रं समाप्यते । तस्मात्स्तुवन्तु ते सर्वे आदिदेवं विनायकम् ॥४॥
तथेत्युक्त्वा सुरगणाः स्नात्वा ते गौतमीतटे । अस्तुवन्भक्तितो देवा आदिदेवं गणेश्वरम् ॥५॥

देवा ऊचुः

यः सर्वकार्येषु सदा सुराणामप्रीतिष्विष्यन्भुजसंभवानाम् ।
पूज्यो नमस्यः परिचिन्तनीयस्तं विघ्नराजं शरणं ब्रजामः ॥६॥
न विघ्नराजेन समोऽस्ति कश्चिद्देवो मनोवाञ्छितसंप्रदाता ।
निश्चित्य चैतत्त्रिपुरातकोऽपि, तं पूजयामास वधे पुराणाम् ॥७॥
करोतु सोऽस्माकमविघ्नमस्मिन्महाकृतो सत्वरमाम्बिकेयः ।
ध्यातेन येनखिलदेहभाजो, पूर्णो भविष्यन्ति मनोभिलाषाः ॥८॥
महोत्सवोऽभूदखिलस्य देव्या, जातः सुतश्चिन्तितमात्र एव ।
अतोऽवदन्सुरसंघाः कृतार्थाः, सद्योजातं विघ्नराजं नमन्तः ॥९॥
यो मातुस्तसङ्गगतोऽयं मान्ना, निवार्यमाणोऽपि बलाच्च घन्त्रम् ।
संगोपयामास पितुर्जटासु, गणाधिनायस्य विनोद एषः ॥१०॥
पपी स्तन मातुरयापि तुष्टो, यो भ्रातृमात्सर्यकपायदुष्टिः ।
लम्बोदरस्त्वं भव विघ्नराजो, लम्बोदरं नाम चकार शंभुः ॥११॥
संबेष्टितो देवगणैर्महेन, प्रवर्ततां नृत्यमितिष्युवाच ।
सतोपितो नूपुररावमात्रादणेश्वरत्वेऽभिपिपेच पुत्रम् ॥१२॥

कारण समान्त नहीं हो पा रहा है। अब आप लोग आदिदेव विनायक की स्तुति करें। देवताओं ने इसे स्वीकार किया और गीतों में म स्नान कर भक्तिपूर्वक आदिदेव गणेश की स्तुति की ॥ १-५ ॥

देवगण बोले—जो सब कार्यों में सर्वदा देवता, शंकर, विष्णु और ब्रह्मा आदि के भी पूज्य, नमस्कारार्थ और ध्यान करने योग्य है उस विघ्नराज की शरण में हम आये हैं ॥६॥ इतारखे पूज्य करने में विघ्नराज ने समान कोई भी दूसरा देवता नहीं है, यहाँ निश्चय कर त्रिपुरारि शंकर ने भी त्रिपुरासुर के वध के समय उस गणेश की पूजा की ॥७॥ वे अम्बिका मुत—जिनके ध्यान करने से सम्पूर्ण प्राणियों के मनोरथ पूर्ण हो जाते हैं—हमारे इस महायज्ञ में मङ्गल करें ॥८॥ देवी शिवा को पुत्र उत्पन्न हुआ, इसका मातृ ध्यान करने से सम्पूर्ण ससार को महान् आनन्द हुआ, इसलिये देवगणों ने कृतार्थ होकर उस सद्योजित बालक को नमस्कार करते हुये विघ्नराज कहा ॥९॥ वे गणेश माता की गोद में बैठ हुए थे, परन्तु माता के बार-बार मला करने पर भी उन्होंने हठात् चन्द्र को पिता की जटा में छिपा दिया। यह गणनायक का विनोद रहा ॥१०॥ वे माता के स्तनपान से तुष्ट थे, फिर भी स्कन्द के प्रति ईर्ष्या से उनकी बुद्धि क्लृप्त हो जाती थी। इसलिये शंकर ने उनसे कहा कि विघ्नराज! तुम लम्बोदर (पेट) हो, यह कहकर शिव ने उनका नाम लम्बोदर रख दिया ॥११॥ देवा से पियरे हुए महेश ने आपसे कहा—अपना नृत्य दिखाओ। आपने भी अपने नूपुर के संचालन मात्र से पिता को प्रसन्न कर दिया। यह देखकर पिता ने भी पुत्र गणेश को गणनायक की पदवी से विभूषित कर दिया ॥१२॥ जो एक हाथ से विष्णुप्राज्ञ धारण करते और दूसरे हाथ से कन्वे पर

यो विघ्नपाशं च करेण विभ्रत्स्कंधे कुठारं च तथा परेण ।
 अपूजितो विघ्नमथोऽपि मातुः, करोति को विघ्नपतेः समोज्ज्वलः ॥१३॥
 धर्मार्यकामादिषु पूर्वपूज्यो, देवासुरैः पूज्यत एव नित्यम् ।
 यस्याचनं नैव विनाशमस्ति, तं पूर्वपूज्यं प्रयमं नमामि ॥१४॥
 यस्याचनं तत्प्रार्थनयाऽनुरूपां, दृष्ट्वा तु सर्वस्य फलस्य सिद्धिम् ।
 स्वतन्त्रसामर्थ्यकृतातिगर्वं, श्रातृप्रियं त्वाखुरयं तमोडे ॥१५॥
 यो मातरं सरसं नृत्यगीतैस्तथाऽभिलाषैरखिलैर्विनोदैः ।
 संतोषयामास तदाऽतितुष्टं, त श्रीगणेश शरणं प्रपद्ये ॥१६॥
 'सुरोपकारं रसुरंदच युद्धेः, स्तोत्रैर्नमस्कारपरंदच' मन्त्रैः ।
 पितृप्रसादेन सदा समृद्ध, तं श्रीगणेशं शरणं प्रपद्ये ॥१७॥
 जये पुराणामकरोत्प्रतोपं, पित्राऽपि हर्षात्प्रतिपूजितो यः ।
 निविघ्नतां चापि पुनश्चकार, तस्मै गणेशाय नमस्करोमि ॥१८॥

ब्रह्मोवाच

इति स्तुतः सुरगणविघ्नेशः प्राह तान्युतः ॥१९॥

गणेश उवाच

इतो निविघ्नता सत्रे मत्तः स्यादसुरारिणः ॥२०॥

कुठार लिये रहते हैं, और पूजा न पाने पर माता के कार्य में भी विघ्न उत्पन्न कर देते हैं, ऐसे विघ्नराज के समान
 दूसरा कौन देवता है ॥१३॥ धर्म, अर्थ और काम सम्बन्धी कार्यों में देव और अमुरा द्वारा आप सर्वदा पूर्वपूज्य के
 रूप में पूजे जाते हैं । जिसका पूजन करने से कार्य निश्चित रूप से पूर्ण हो जाते हैं, ऐसे पूर्वपूज्य (प्रयम पूजा पाने
 योग्य) देव को प्रयम नमस्कार है ॥१४॥ जिसकी पूजा और नित्यता के अनुष्ण ही सब फल की सिद्धि देखी जाती
 है ऐसे अपनी स्वतन्त्र शक्ति पर गर्व करने वाले, रज्जुप्रिय, और चूहे पर सवारी करने वाले देव को नमस्कार है
 ॥१५॥ जो अपनी माता को सरस नृत्य, गीत और बाल्योपाया से प्रसन्न करने स्वयं अनिप्रसन्न हो जाते थे ।
 ऐसे श्री गणेश जी के हम शरणागत हैं ॥१६॥ जिन्होंने देवा के उपकार, अमुरा से युद्ध में स्थायिका और नमस्कार-
 परब्रह्मन्त्रों के द्वारा पिता की कृपा से समृद्धि प्राप्त की, ऐसे श्रीगणेश की शरण में हम लोग आये हैं ॥१७॥ निपुणों
 की विजय के समय जिन्होंने कुछ विघ्न कर दिया, जिससे पिता (पार) त भी प्रसन्नता से जिनकी पूजा की, तद-
 नन्तर जिन्होंने निविघ्न रूप से कार्य होने दिया, ऐसे गणेश को हम नमस्कार करते हैं ॥१८॥

ब्रह्मा ने कहा—इस प्रकार देवताओं द्वारा प्रार्थना की जाने पर विघ्नराज ने पुत्र कहा ॥१९॥

गणेश ने कहा—अमुरासु । आज से आप लोग के यज्ञ में मेरी ओर से किसी प्रकार का विघ्न नहीं
 होगा ॥२०॥

१ यम चने में ० २ यम च विमानम ० ३ यम सुराण ० ४ यम सर्वे ० ५ युद्धे ० ६ उपदेश ०
 ७ यम ० ८ युद्ध प्र ०

ब्रह्मोवाच

देवसत्रे निवृत्ते तु गणेशः प्राह तान्पुराणं

॥२१॥

गणेश उवाच

स्तोत्रेणानेन ये भक्त्या मां स्तोष्यन्ति यतःप्रताः। तेषां दारिद्र्यदुःखानि न भवेयुः कदाचन ॥२२॥
अत्र ये भक्तितः स्नानं दानं कुर्युरतन्द्रिताः। तेषां सर्वाणि कार्याणि भवेयुरिति मग्नताम् ॥२३॥

ब्रह्मोवाच

तद्वाक्यसमकालं तु तथेत्यूचुः सुरा अपि। निवृत्ते तु भूषे तस्मिन्सुरा जग्मुः स्वमालयम् ॥२४॥
ततः प्रभृति तत्तीर्थमविघ्नमिति गच्छते। सर्वकामप्रदं। पुंसां सर्वविघ्नविनाशनम् ॥२५॥
इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये विघ्नतीर्थवर्णनं नाम चतुर्दशाधिकशततमोऽध्यायः ॥११४॥
गीतमीमाहात्म्ये पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः ॥४५॥

अथ पञ्चदशाधिकशततमोऽध्यायः

शेषतीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

शेषतीर्थमिति ह्यात सर्वकामप्रदायकम्। तस्य रूपं प्रवक्ष्यामि यन्मया परिभाषितम् ॥१॥
शेषो नाम महानागो रसातलपतिः प्रभुः। सर्वनागैः परिवृतो रसातलमयाम्बुगात् ॥२॥

ब्रह्मा ने कहा—देव-यज्ञ के पूण हो जाने पर गणेश ने उन देवों से कहा ॥२१॥

गणेश ने कहा—जो सयनी, व्यक्ति इस स्तोत्र से भक्तिपूर्वक बेटी स्तुति करेंगे उन्हें कभी भी दारिद्र्यता से कष्ट नहीं होगा। इस स्थान पर जो उत्साही व्यक्ति स्नान और दान करेंगे उनके सब कार्य पूर्ण होंगे, इस पर आप विश्वास करें ॥२२-२३॥

ब्रह्मा ने कहा—गणेश जी के इस प्रकार के असीर्वाद-कथन के साथ ही देवा ने भी ऐसा ही हो यह कहा। इस प्रकार उस यज्ञ ने समाप्त हो जाने पर सब देवता अपने स्थान की चले गये। तब से यह तीर्थ मनुष्यों ने सब मनोरथ पूर्ण करने वाला और विघ्नविनाशक अविघ्नतीर्थ कहा जाता है ॥२४-२५॥

श्रीब्रह्मपुराण में अविघ्नतीर्थ वर्णन नामक एक सी चौदहवाँ अध्याय समाप्त ॥११४॥

अध्याय ११५

शेषतीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा ने कहा—सब वाग्मनाआ को देने वाला शेषतीर्थ नाम से विख्यात एक तीर्थ है। उसका परिचय जिसे मैं पहले बनी बता चुका हूँ—दे रहा हूँ। रसातल का स्वामी महान् शेषनाग अपने अनुचर भागों के सहित रसातल-

राक्षसा दैत्यदनुजाः प्रविष्टा ये रसातलम् । तैर्निरस्तो भोगिपतिर्माप्नुवावाय विह्वलः ॥३॥

शेष उवाच

रसातलं त्वया दत्तं राक्षसानां भूमापि च । ते मे स्यान् न दास्यन्ति तस्मात्त्वां शरणं गतः ॥४॥
ततोऽहमब्रुवं नागं गौतमीं याहि पन्नग । तत्र स्तुत्वा महादेवं लप्स्यसे त्वं मनोरथम् ॥५॥
नाग्योऽस्ति लोकत्रितये मनोरथसमर्पकः । मद्वाक्यप्रेरितो नागो गङ्गामाप्लुत्य यत्नतः ॥
कृताञ्जलिपुटो भूत्वा तुष्टाव त्रिदशेश्वरम् ॥६॥

शेष उवाच

नमस्त्रैलोक्यनायाय दक्षयज्ञविभेदिने । आदिकर्त्रे नमस्तुभ्यं नमस्त्रैलोक्यरूपिणे ॥७॥
नमः सहस्रशिरसे नमः संहारकारिणे । सोमसूर्याग्निरूपाय जलरूपाय ते नमः ॥८॥
सर्वदा सर्वरूपाय कालरूपाय ते नमः । पाहि शंकर सर्वेश पाहि सोमेश सर्वग ।
जगन्नाथ नमस्तुभ्यं देहि मे मनसेऽस्मिन् ॥९॥

ब्रह्मोवाच

ततो महेश्वरः प्रीतः प्रादाग्नान्नेप्सितान्बरान् । विनाशाय सुरारोणां दैत्यदानवरक्षसाम् ॥१०॥
शेषाय प्रददौ शूलं जहघनेनारिमुंगवान् । ततः प्रोक्तः शिवेनासौ शेषः शूलेन भोगिभिः ॥११॥
रसातलमयो गत्वा निजघान रिपूगणे । निहत्य नागः शूलेन दैत्यदानवराक्षसाम् ॥१२॥

लोक में गया । किंतु राक्षस, दैत्य और दानवी ने पहले ही रसातल में घुस गये थे—सर्वपति को वहाँसे निकाल दिया । तब वह व्याकुल होकर मुझसे बोला—॥१-३॥

शेष ने कहा—आपने राक्षसी की और मुझको रसातल की दिया, परन्तु वे मुझको वहाँ रहने नहीं देते, इसीलिये आपकी शरण में आया हुआ हूँ । तब मैंने नाग से कहा कि सर ! योतमी के तट पर जाओ, वहाँ महादेव की स्तुति कर अपना मनोरथ अवश्य प्राप्त करेंगे । इस त्रैलोक्य में शंकर के समान मनोरथ पूर्ण करने वाला और कोई नहीं । मेरे कथन से प्रेरित होकर वह नाग त्रैमूर्तिक गया मे स्नान कर हाथ जोड़ कर देवेस की स्तुति करने लगा ॥४-६॥

शेष ने कहा—त्रैलोक्य के स्वामी, दक्ष-यज्ञ की गूट करने वाले शिव की नमस्कार है, आदिकर्ता ! तुमको नमस्कार है, त्रिलोकी के रूप में रहने वाले वा नमस्कार करते हैं । हजार शिर वाले वा नमस्कार है, सहार करने वाले प्रभु की नमस्कार है, सोम, सूर्य, अग्नि और जल वाले आपको नमस्कार है । सर्वदा सब रूप में रहने वाले कालरूप आपको नमस्कार है, शंकर ! रक्षा कीजिये, सर्वेश । सोमेश ! सर्वव्यापी ! रक्षा कीजिये । जगन्नाथ ! आपको नमस्कार है । आप मेरे अभिमत की प्रदान कीजिये ॥७-९॥

ब्रह्मा ने कहा—प्रार्थना सुनकर महादेव प्रसन्न हो गये, उन्होंने नागराज को अर्पित वर प्रदान किया । गुरु-शत्रु राक्षसा और दैत्यदानवी के नाश के लिये शंकर ने अपना शूल दिया और कहा कि इससे अपने प्रबल शत्रुओं का नाश कर दो । शूल प्राप्ति के बाद शंकर का इस प्रकार आर्जुनार्जव प्राप्त कर नागराज अनुचरी को साथ लेकर रसातल की

न्यवर्तत पुनर्देवो यत्र शेषेश्वरो हरः। पया येन समायातो देवं द्रष्टुं स नागराट् ॥१३॥
 रसातलाद्यत्र देवो बिलं तत्र व्यजायत। तस्माद्विलतलाद्यातं गङ्गं वार्यतिपुण्यदम् ॥१४॥
 तद्वारि गङ्गामगमद्गङ्गायाः^१ संगमस्ततः। देवस्य पुरतश्चापि कुण्डं तत्र सुविस्तरम् ॥१५॥
 नागस्तत्राकरोद्धोमं यत्र चाग्निः सदा स्थितः। सोष्णं तदभवद्वारि गङ्गायास्तत्र संगमः ॥१६॥
 देवदेवं समाराध्य नागः प्रीतो महायशः। रसातलं ततोऽभीष्टं शिवात्प्राप्य तलं ययौ ॥१७॥
 ततः प्रभृति तृतीयं नागतीर्थमुदाहृतम्। सर्वकामप्रदं पुण्यं रोगदारिद्र्यनाशनम् ॥१८॥
 आयुर्लक्ष्मीकर पुण्यं स्नानदानाच्च मुवितदम्। शृणुयाद्वा पठेद्भवत्या यो वाऽपि स्मरते तु तत् ॥१९॥
 तीर्थं शेषेश्वरो यत्र यत्र शक्तिप्रदः शिवः। एकविंशतितीर्थानामुभयोस्तत्र तीरयोः ॥
 शतानि धुनिलादूल सर्वसंपत्प्रदायिनाम् ॥२०॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे सौर्यमाहात्म्ये उभयतीरगतशेषतीर्थशेषेश्वरशूलेश्वराग्नि-
 कुण्डरसातलगङ्गासंगमोष्णतीर्थल्लेखविंशतिशततीर्थवर्णनं नाम
 पञ्चदशतिकाशततमोऽध्यायः ॥११५॥

गंगा और पुण्ड्र में शत्रुओं का सहार करने लगा। इस प्रकार शूल से दैत्य, दानव और राक्षसों को बिलपट्ट कर पुनः जहाँ शेषेश्वर शंकर से वहाँ नागेन्द्र लौट आया। जिस क्षण से वह नागराज शंकर का दर्शन करने के लिये रसातल से शिव-स्थान तक आया या वह मार्ग बिल के रूप में ही गया। उस बिल से होकर गौतम, गंगाका अति पुनः जल बहने लगा और वह गंगा के जल से मिल गया, जिससे वहाँ शंकर के सामन ही दो गंगाओं का पुनर्नित संगम एवं दार्ढ्य बर कुण्ड के रूप में बन गया। उस कुण्ड में नाग ने हवन किया। वहाँ अग्निदेव सर्वदा स्थित रहते हैं, इसलिये गंगा के संगम का जल सर्वदा के लिये उष्ण हो गया। भूविशाली नाग देवाधिदेव शंकर की आराधना कर प्रसन्न हो शंकर से अपना अभीष्ट पावर रसातल को चला गया। तब से सर्वकामनाओं को प्रदान करने वाला रोग और दरिद्रता को दूर करने वाला बहु तीर्थ नागतीर्थ के नाम से प्रसिद्ध हो गया। जो व्यक्ति इस तीर्थकथा को भक्तिपूर्वक मुनता, पढ़ता या स्मरण करता है उसको वह पावन ताय आयु और लक्ष्मी प्रदान करता है। वहाँ स्नान और दान करने से मुक्ति प्राप्ति होती है। जहाँ शक्ति-दाना शंकर रहते हैं वहाँ शेषेश्वर ताय हैं। मुनिश्रेष्ठ^१ गौतम का दाना तटा पर रुच प्रकार की सम्पत्ति प्रदान करने वाल इकलिस सौ ताय चिराजमान हैं ॥१०-२०॥

श्रीब्रह्महापुराण में शेषतीर्थ-वर्णनं नामक एवं सा पञ्चदशिका अध्याय समाप्त ॥११५॥

अथ षोडशाधिकशततमोऽध्यायः

वडवादिसहस्रतीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

महानलमिति रयात वडवानलमुच्यते । महानलो यत्र देवो वडवा यत्र सा नदी ॥१॥
 तत्तीर्थं यत्र वक्ष्यामि मृत्युदोषजरापहम् । पुराऽऽसन्नैर्मिपारण्ये ऋषयः सन्नकारिणः ॥२॥
 शमितार च ऋषयो मृत्युं चक्रुस्तपस्विनः । वतमाने सन्नयागे मृत्योः शमितारि स्थिते ॥३॥
 न ममार तदा कश्चिदुभयं स्यात् न जङ्गमम् । विना पशून्मुनिश्रेष्ठ मर्त्यं चामर्त्यता गतम् ॥४॥
 ततस्त्रिविष्टपे शून्ये मर्त्ये चेवातिसभृते । भूयुनोपेक्षिते देवा राक्षसानूचिरे तदा ॥५॥

देवा ऊचुः

गच्छध्वमपि सत्रं तन्नाशयध्वं महाध्वरम् ।

ब्रह्मोवाच

इति देववचं श्रुत्वा प्रोचुस्ते राक्षसाः सुरान् ।

॥६॥

असुरा ऊचुः

विध्यसयामस्त यज्ञमस्माकं किं फलं ततः । प्रयतते विना हेतुं न कोऽपि ब्रह्मापि जातुचित् ॥७॥

अध्याय ११६

वडवा आदि सहस्र तीर्थों का वर्णन

ब्रह्मा ने कहा—महानल—जिसका दूसरा नाम वडवानल भी कहा जाता है—एक प्रतिस्पर्धी है। बड़ा महानल दहता है और वडवा नहीं है उस राक्षसों के तीर्थ का क्षण में कहेंगे। बहुत पढ़े नमिपारण्य में ऋषि लोग वन वन रहे थे। याम उन पत्नी—पिता ने मृत्यु को नहीं बताया। इस प्रकार शयनी में हमें १६ पद पर मायक प्रकृतिके जन्म के उल्लास के साथ देवा मरकारिनी भरना नहीं था। मुनि श्रेष्ठ! वन—दण्डात्राव लोचन के मां के मर्त्य स्थिति का देवों के लिये ज्ञान में लगे हुए हो गया परन्तु मर्त्यकाल जवा मभर उगा। इस प्रकार वन के मां के देवों के देवा ने राक्षसा से कहा ॥१५॥

देवगण बोले—नमस्तपः अपि धनमन्त्र और उग्र महाध्वन का नष्ट कर दो।

ब्रह्मा ने कहा—जवा के लिये वा मुनिव्रत उन राक्षसाने देवा से कहा—॥६॥

असुरों ने कहा—हम ज्ञान उग्र धन का नष्ट कर लगे परन्तु हम लोग का इष्ट विनाश ने क्या लाभ होगा? हम ज्ञान मकारिनी पत्नी बिना प्रयाजन के वायम प्रवृत्त नहीं हुआ है ॥७॥

ब्रह्मोवाच

देवा अप्सुरानूचुर्यशार्धं भवतामपि । भवेदेव ततो यातु ऋषीणा सत्रमुत्तमम् ॥८॥
 ते श्रुत्वा त्वरिता सर्वे यत्र यत्र प्रवर्तते । जम्भुस्तत्र विनाशाय देववाक्याद्विशेषत ॥९॥
 तज्ज्ञात्वा ऋषयो मृत्युमाहू किं कुमहे वयम् । आगता देववचनाद्राक्षसा यजनाशिन ॥१०॥
 मृत्युना सह समन्वय नैमिपारण्यवासिन । सर्वे त्यक्त्वा स्वाश्रम त शमित्रा सह नारद ॥११॥
 अग्निमात्रमुपावाय त्यक्त्वा पात्रादिक तु यत' । ऋतुनिपत्ये' जम्भुगो'तमो' प्रति सत्त्वरा ॥१२॥
 तत्र स्नात्वा महशान रक्षणायोपतस्थिरे । कृताञ्जलिपुटास्ते तु तुष्टुधुस्त्रिदशेश्वरम् ॥१३॥

ऋषय ऊचु

यो लीलया विश्वमिदं चकार, धाता विधाता भुवनत्रयस्य ।
 यो विश्वरूप सदसत्परो य, सोमेश्वर त शरणं व्रजाम ॥१४॥

मृत्युखाच

इच्छामात्रेण यः सर्वं हन्ति धातिं करोति च । तमहं त्रिदशेशान शरणं यामि शकरम् ॥१५॥
 महानल' महाकाय महानागविभूषणम् । महामूर्तिधरं देवं शरणं यामि शकरम् ॥१६॥

ब्रह्मा ने कहा—देवा ने यह सुनकर असुरी से कहा तो तुम लोगों को भी यज्ञ में आवा चाय मिले । अब तो शत्रु ऋषियों का उस यज्ञ में आना । यह सुनकर वे राजसूय यज्ञ में वा विनाश करने के लिये यज्ञ में देवा का विधेय प्रणय ने कहा गये जहाँ यज्ञ हो रहा था । यह जानकर ऋषिया ने मृत्यु से कहा—अब हम लोग क्या कर देवा का प्रणय स यज्ञ का नष्ट करने के लिये राक्षस आ गये हैं । नारद' मृत्यु से परमिग करने के उपरांत वे नैमिपारण्य निवास ऋषिगण अपने अधिपत तथा पात्र आदि को भा छात्रकर गमित्रा के साथ अग्निमात्र लेकर यज्ञ पूज करने के लिये गौतम के तट पर जल्दा से पहुंचे । उसमें स्नान कर के वे यज्ञ रक्षा के लिये गकर के निकट गए और वडाञ्जलि होकर देवेश्वर की स्तुति करने लगे ॥८ १३॥

ऋषिगण बोले—जिन्होंने सहज ही म विव का निर्माण कर दिया जो तत्वा लोका का पालक और सत्त्व ह आ विश्वमूर्ति हैं और जो सत्र एवं असत्र से परे हैं उस सोमेश्वर गकर का गरण में हम आये हुये हैं ॥१४॥

मृत्यु ने कहा—आ के व इच्छामात्र सत्त्व का सहार पात्र और निर्माण करता ह उस देव गकर का गरण में हम उपस्थित हैं । महान अग्निरूप महान गराय वाले महान नाग के आभूषण वाले और महान मूर्ति धारण करने वाले शकर देव की गरण में हम आये हैं ॥१५ १६॥

ब्रह्मोवाच

तत प्रोवाच भगवान्मृत्यो का प्रीतिरस्तु ते

॥१७॥

मृत्युस्वाच

राक्षसेभ्यो भय घोरमापन्न त्रिदशेश्वर । यज्ञमस्माश्च रक्षस्व यावत्सत्र समाप्यते ॥१८॥

ब्रह्मोवाच

तथा चकार भगवास्त्रिनेत्रो वृषभध्वज । शमित्रा मृत्युना सत्रमूपीणा पूर्णता ययौ ॥१९॥
हविषा भागवेयाय आजगमुरमरा क्रमात् । तानवोचन्मुनिगणा सक्षुब्धा मृत्युना सह ॥२०॥

ऋषय ऊचुः

अस्मन्मखविनाशाय राक्षसा प्रेषिता यत । तस्माद्भूवद्भूष पापिष्ठा राक्षसा सन्तु शत्रव ॥२१॥
तत प्रभृति देवाना राक्षसा वरिणोऽभवन् । कृत्या च घडेवा तत्र देवाश्च ऋषयोऽमला ॥२२॥
मृत्योर्भार्या भव त्व तामित्युक्त्वा तेऽभ्यपेक्षयन् । अभियेकोदक यत्तु सा नदी वडवाऽभवत् ॥२३॥
मृत्युना स्थापित लिङ्ग महानलमिति श्रुतम् । तत प्रभृति सतीर्थं वडवासगम विदु ॥२४॥
महानली यत्र वेवस्तसीर्थं भुक्तिमुक्तिदम् । सहल तत्र तीर्थाना सर्वाभीष्टप्रदामिनाम् ॥

ब्रह्मा ने कहा—नव भगवान् त्रिनेत्र ने कहा हे मृत्यु मैं तुम्हारा काम का प्रिय काय सम्पदन करूँ ? ॥१७॥

मृत्यु ने कहा—देव विपति । राक्षसा ने भय घण सकट सदा कर दिया है अब तक यज्ञ समाप्त न हो जाय तब तक आप यज्ञ कर और हमारा भी रक्षा कर ॥१८॥

ब्रह्मा ने कहा—वृषभध्वज भगवन् तिलक ने बैसाई है किया जिससे मृत्युगमिता का सारसता म ऋषियो का बहयन पूरा हो गया । यज्ञ पूर्ण हो जाने पर देवबुद्ध भगवन् अनेक यज्ञ भाग लाने के लिये आये । यह देवबुद्ध मृत्यु के साथ क्षुब्ध मुनियों ने देवा से कहा ॥१९ २०॥

ऋषियो ने कहा—जिस लिङ्ग के यज्ञ यज्ञ ने हमारे यज्ञ का नष्ट करने के लिये राक्षसा का भेजा इन्द्रियो के यज्ञ राक्षस आये सन्तु हो जायें ॥२१॥

ब्रह्मा ने कहा—उक्त समय से राक्षस देवताओं के वीर हो गये । हमने साथ ही वहाँ निमज्ज ऋषियो और देवता ने पुन मृत्यु का भार्या बन, यह कहकर वडवा रूपिण कृत्या का अभियेक किया । जो अभियेक जल या वही वडवा नदी बन गया । मृत्यु द्वारा स्थापित लिङ्ग महानल तब म प्रसिद्ध हुआ । तब से वह स्थान वडवा पण्य नाम म कहा जाने लगा । वहाँ महानल महादेव हैं वह मुक्ति और मुक्ति देन वाला तीर्थ है । हमने अतिरिक्त

उभयोस्तीरयोस्तत्र स्मरणादघघातिनाम्

॥२५॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये ब्रह्मादिसहस्रतीर्थवर्णनं नाम षोडशाधिकशततमो-
ऽध्यायः ॥११६॥

गौतमीमाहात्म्ये सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः ॥४७॥

अथ सप्तदशाधिकशततमोऽध्यायः

आत्मतीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

आत्मतीर्थमिति ह्यात भुक्तिमुक्तिप्रदं नृणाम् । तस्य प्रभावं वक्ष्यामि यत्र ज्ञानेश्वरः शिव ॥१॥
दत्त इत्यपि विख्यात सोऽत्रिपुत्रो हरप्रिय । दुर्वासस प्रियो भ्राता सर्वज्ञानविशारद ॥
स गत्वा पितरं प्राह विनयेन प्रणम्य च ॥२॥

दत्त उवाच

ब्रह्मज्ञानं कथं मे स्यात्कं पृच्छामि भव यामि च ॥३॥

ब्रह्म गौतमी क रीति लडा पर सब प्रकार के अमोघ देने वाले तथा केवल स्मरण मात्र से पापों को नष्ट करने वाले सह्या तीर्थ हैं ॥२२-२५॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में ब्रह्मा आदि सहस्रतीर्थवर्णन नामक एक मंत्र सोलहवा अध्याय समाप्त ॥११६॥

अध्याय ११७

आत्मतीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा ने कहा—ननुप्या को भाग और भाग प्रदान करने वाला एक आत्मतीर्थ नाम से विख्यात तीर्थ है, जहाँ ज्ञानेश्वर शिव निवास करते हैं। उससे प्रभाव का वर्णन मैं कर रहा हूँ, सुनो। अत्रि की पुत्र दत्त का प्रिय और दुर्वासा का भाई दत्त नाम से विख्यात था। वह सब प्रकार के ज्ञान में निपुण था ॥१२॥ एक दिन वह अपने पिता के पास आकर विनम्रपूर्वक प्रणाम करके बोला ॥१-२॥

दत्त ने कहा—ब्रह्म-ज्ञान की प्राप्ति मुझे कैसे होगी? मैं किससे पूछूँ? और कहाँ जाऊँ? ॥३॥

ब्रह्मोवाच

तच्छ्रुत्वाऽत्रि पुत्रवाचय ध्यात्वा वचनमब्रवीत्

॥४॥

अत्रिहवाच

गीतमीं पुत्र गच्छ त्व तत्र स्तुहि महेश्वरम् । स तु प्रीतो यदैव स्यात्तदा ज्ञानमवाप्स्यसि ॥५॥

ब्रह्मोवाच

तथेत्युक्त्वा तदाऽऽश्रेयो गङ्गा गत्वा मुविष्यत् । कृताञ्जलिपुटो भूत्वा भक्त्या तुष्टाव शकरम् ॥६॥

दत्त उवाच

ससारकूपे पतितोऽस्मि देवान्मोहेन गुप्तो भवदुःखपङ्के ।

अज्ञाननाम्ना तमसाऽऽवृतोऽहं, परं न विन्दामि सुराधिनाय ॥७॥

भिन्नस्त्रिशूलेन घलीपताऽहं, पापेन चिन्ताधुरपाटितश्च ।

तप्तोऽस्मि पञ्चेन्द्रियतीव्रतापं, भ्रान्तोऽस्मि सतारय सोमनाय ॥८॥

बद्धोऽस्मि दारिद्र्यमयैश्च बन्धैर्हंतोऽस्मि रोगानलतीव्रतापं ।

भ्रान्तोऽस्म्यहं मृत्युभुजगमेन, भीतो भूय किं करपाणि शम्भो ॥९॥

ब्रह्मा ने कहा—अत्रि-पुत्र का बाला को मुनिरा पीड़ी देर तब विचार मग्न रहे फिर बोले ॥४॥

अत्रि ने कहा—पुत्र ! तुम गानव के वात जओ। वही महेश्वर का स्तुति करो। वे जर प्रसन्न हो जायेंगे तब तुम्हें ज्ञान की प्राप्ति होगी ॥५॥

ब्रह्मा ने कहा—अत्रिपुत्र दत्त गया हो कहेंगे कहार गया व सर्पीय गया और स्नान कर पवित्र हो गया भाव से होय जाइकर त्रिपुत्रक शरर की स्तुति करने गया ॥६॥

दत्त ने कहा—ईश्वरग स गसार क्या कुछ ग गिर पडा है। भाह न मुझ गगार व दुःख रूपी बावड़ म छिा दिया है। अज्ञानांपवार म डर गया हू। भुय व रश्या। अगारो नही पा रहा हूँ ॥७॥ बलशान् पापरुपा विगुल स मैं शन विगन हो गया हूँ तया चिन्ता के अस्तुरे ॥ पाह गिया गया हूँ। पाँवा इन्द्रिया क ताव ताव स जल गया हूँ। सोमनाय । मैं पत गया हूँ। विपा प्रहार पार उगाइय ॥८॥ दरिद्रता व बधन म मैं बंध गया हूँ। रोग क्या अग्नि व ताव दाह म मार डाला गया हूँ। मृत्यु रूपी सार न मुझ डग लिया है। शम्भो ! मैं अत्यंत भयमान हो गया हूँ। क्या कर ? समझ म नही आता ॥९॥ जम और अजम का रीय शया नृणा रत्नाणु और समगुण

१५ इ ०त्वा गिव तुष्टाव मक्तिवत् । ४० । १६ ०स्पडव प० । ३५ ०हिम रोपा-वन्ती० । ४५ ०रव पारिर्दुष्टो हिम । ५५ ०भो । मायाम० ।

भवाभवाभ्यामतिपीडितोऽहं, तृष्णाक्षुधाम्यां च रजस्तमोभ्याम् ।
 ईदृक्षया^१ जरया^२ चाभिभूतः^३, पश्यावस्थां कृपया भेद्य नाय ॥१०॥
 कामेन कोपेन च मत्तरेण, दम्भेन दर्पादिभिरप्यनेकैः ।
 एकैकशः^४ कष्टगतोऽस्मि विद्वत्स्यं^५ नाथवद्वारय नाथ शत्रून् ॥११॥
 कस्यापि कश्चित्पतितस्य पुंसो, दुःखप्रणोदो भवतीति सत्यम् ।
 विना भवन्त मम सोमनाथ, कुत्रापि कारुण्यवचोऽपि नास्ति ॥१२॥
 तावत्स कोपो भयमोहदुःखान्यज्ञानदारिद्र्यरुजस्तयैव ।
 कामादयो मृत्युरपीह यावन्नमः शिवायेति न वच्मि वाक्यम् ॥१३॥
 न भेदस्ति धर्मो न च भेदस्ति भवितर्नाह विवेको कृष्णा कुतो मे ।
 दाताऽसि तेनाऽऽशु शरण्य चित्ते, निर्धेहि सोमेति पर्व मदोये ॥१४॥
 याचे न चाहं सुरभूपतित्वं, हृत्पद्ममध्ये मम सोमनाथ ।
 श्रीसोमपादाभ्युजसंनिधानं, याचे विचार्यैव च तत्कुदध्व ॥१५॥
 यया तवाह विदितोऽस्मि पापस्तयाऽपि विज्ञापनमाभृणुष्व ।
 संभूयते यत्र वचः शिवेति, तत्र स्थितिः स्यान्मम सोमनाथ ॥१६॥
 गौरीपते शकर सोमनाथ, विश्वेश कारुण्यनिधेऽखिलात्मन् ।
 संस्तूयते यत्र सदेति तत्र, केयामपि स्यात्कृतिना निवासः ॥१७॥

से मैं पीडित हूँ। ऐसी दुःखावस्था से आक्रान्त हूँ। नाथ^१। आज मेरी इस अवस्था को कृपापूर्वक देखिये ॥१०॥
 बौध, शोष, बाह दम्भ अभिमान आदि अनेक शत्रु एव-एक करके मुझे बन्ध रहे हैं, बेध रहे हैं। प्रभा^२। आप
 मेरे रक्षा वत कर शत्रुओं को दूर भगाइये ॥११॥ किसी पतित प्राणी का कोई अनुप्य दुःख दूर करने वाला
 होता है यह सत्य है, किन्तु सोमनाथ^३। आपके अतिरिक्त किसी के सम्मुख मैं अपनी कृष्ण बहानी, भी तो नहीं बड़
 शक्ती ॥१२॥ शोष, भय, मोह, दुःख, अज्ञान, दूरदृष्टा, रोग, शत्रु आदि तथा मृत्यु-मय सभी तब है जब तक
 'नम शिवाय' मन्त्र मेरे मुख से नहीं निकलता है ॥१३॥ मेरे पास न तो धर्म है, न भक्ति है, न मैं जानी हूँ। फिर
 कृष्णा भूक्षम वहाँ से आएगी? धरन्तु है शरण देने वाले। आप दाता है इसीलिये मेरे हृदय म शीघ्र 'सोम' इस
 पद को स्थापित कर दीजिये ॥१४॥ मैं इन्द्र-वन्द्यो की याचना नहीं करता। सोमनाथ^५। मेरे हृदय-बभल क मध्य
 म श्रीसोमनाथ के चरण-चक्र की स्थापना हो बड़ी प्रायना है। पहले विचार कर लीजिये तब उसको स्थापन
 कीजिए ॥१५॥ जैसे आपने मुझ को पापी समझ लिया है उन्हीं प्रकार मेरी भी आप से एक प्रायना है उसको
 भलीभाँति गुनिए। सोमनाथ^७। जहाँ 'शिव ऐश्वर्य शब्द सुना जाता है वहाँ मेरा निवास हो ॥१६॥ (स्फार्ति)
 जहाँ सर्वदा गौरीपते! शकर^८। सोमनाथ^९। विश्वेश। कारुण्यनिधेऽखिलात्मन्। आदि शब्दा द्वारा
 स्तुति की जाती है, वहाँ किसी पुण्यात्मि का निवास होता है ॥१७॥

ब्रह्मोवाच

इत्यात्रेयस्तुतिं श्रुत्वा तुतोष भगवान्हरः । वरदोऽस्मीति तं प्राह योगिनं विश्वकृद्भूवः ॥१८॥

आत्रेय उवाच

आत्मज्ञानं च मुक्तिं च भुक्तिं^१ च विपुलां त्वयि । तीर्थस्यापि च माहात्म्यं वरोऽयं त्रिदशाक्षित ॥१९॥

ब्रह्मोवाच

एवमस्त्विति तं शंभुरुक्त्वा चान्तरधीयत । ततः प्रभृति तत्तीर्थमात्मतीर्थं^२ विदुर्बुधाः ॥

तत्र स्नानेन दानेन मुक्तिः स्यादिह^३ नारद ॥२०॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्य आत्मतीर्थवर्णनं नाम सप्तदशाधिक-

शततमोऽध्यायः ॥११७॥

गौतमीमाहात्म्येऽष्टचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ॥४८॥

अथाष्टादशाधिकशततमोऽध्यायः

अश्वत्थादितीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

'अश्वत्थतीर्थमाख्यातं पिप्पलं च ततः परम् । उत्तरे मन्दतीर्थं तु' तत्र द्युष्टिमितः शृणु ॥१॥

ब्रह्मा ने कहा—इस प्रकार अश्वत्थ की स्तुति सुनकर भगवान् शंकर प्रसन्न हो गये। उस विश्व-स्रष्टा शंकर ने उस योगी से कहा मैं 'वर देना चाहता हूँ, माँगो ॥१८॥

आत्रेय ने कहा—हे देवदेव ! आत्मज्ञान, मुक्ति, आपने प्रबुर भक्ति और तीर्थ का माहात्म्य मुझे प्राप्त हो, यह वर दीजिये ॥१९॥

ब्रह्मा ने कहा—'ऐसा ही हो' यह कहकर शंभु अन्तर्हित हो गये। उस समय से उस तीर्थ को विद्वान् लोग आत्मतीर्थ कहने लगे। नारद^१ उस तीर्थ में स्नान और दान करने से मुक्ति अवश्य मिलती है ॥२०॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में आत्मतीर्थवर्णन नामक एक सर्ग सप्तद्वी अध्याय समाप्त ॥११७॥

अध्याय ११८

अश्वत्थ आदि तीर्थों का वर्णन

ब्रह्मा ने कहा—अश्वत्थ और पिप्पलतीर्थ दोनों प्रसिद्ध तीर्थ हैं, उत्तर दिशा में अश्वत्थ तीर्थ है। इन तीर्थों

१. म. नमि। २. मनुष्ये। ३. स्यान्नित्विन कलम्। इ० ४. घ. इ. ०५ वीर्यमिति स्यात्तमश्वत्थ घ।

पुरा त्वगस्त्यो भगवान्दक्षिणाशापतिः प्रभुः। देवंस्तु प्रेरितः पुर्वं विन्ध्यस्य प्रार्थनं प्रति ॥२॥
स शर्नोविन्ध्यमम्यागात्सहस्रमुनिभिर्वृतः। तमागत्य नगश्रेष्ठं बहुवृक्षसमाकुलम् ॥३॥
स्पर्धिनं मेरुमानुभ्यां विन्ध्यं शृङ्गशतैर्वृतं। अत्युन्नतं नगं धीरो लोषामुद्रापतिर्मुनिः ॥४॥
वृत्तातिप्यो द्विजैः सार्धं प्रशस्य च नगं पुनः। इदमाह मुनिश्रेष्ठो देवकार्यसिद्धये ॥५॥

अगस्त्य उवाच

अहं यामि नगश्रेष्ठ मुनिभिस्तत्त्वदक्षिभिः। तीर्थयात्रां करोमीति दक्षिणाशां प्रजाम्यहम् ॥६॥
देहि मापं नगपते आतिथ्यं देहि याचते। यावदागमनं मे स्यात्स्यातथ्यं तावदेव हि ॥७॥
मान्यया भवितव्यं ते तथेत्याह नगोत्तम। आकामन्दक्षिणाशां तं वृतो मुनिभिर्मुनिः ॥८॥
शर्नः स गीतमीमागात्सत्रयापाय दीक्षितः। यावत्संवत्सरं सत्रमकगोदृषिभिर्वृतः ॥९॥
कैटभस्य सुतो पापो राक्षसो धर्मकण्टको। अश्वत्यः पिप्पलश्चेति विख्यातो त्रिदशालये ॥१०॥
अश्वत्योऽश्वत्यरूपेण पिप्पलो ब्रह्मरूपधृक्। तावुभावन्तर प्रेप्सु यज्ञविध्वजनाय तु ॥११॥
कुर्वतां काङ्क्षितं रूपं दानवो पापचेतसो। अश्वत्यो बृक्षरूपेण पिप्पलो ब्राह्मणाकृतिः ॥१२॥
उभौ तौ ब्राह्मणाग्रित्यं पीडयेता तपोधन। आलभन्ते च येऽश्वत्यं तास्तान्नात्यासौ ततः ॥१३॥

का परिचय तथा फल अब सुनो। बहुत पहले दक्षिण दिशा के स्वामी भगवान् अगस्त्य से देवताओं ने विन्ध्य के विषय में प्रार्थना की। देवताओं के प्रेरित होने पर अगस्त्य ऋषि सहस्र मुनियों की साथ ले वीरे से विन्ध्य के निकट आये। बहुत से वृक्षा मे भरे, मेढ और भानुध्वत से स्पर्श करने वाले, सैकड़ों शिखरों से युक्त, अत्यन्त ऊँचे विन्ध्य पर्वत के पास आकर लोषामुद्रा के स्वामी धीर मुनि अगस्त्य ने विन्ध्य का आतिथ्य ग्रहण किया। पुन विन्ध्याचल की प्रशंसा करते हुए देवकार्य की सिद्धि करने के लिये मुनिश्रेष्ठ ने कहा ॥१२५॥

अगस्त्य बोले—हे पर्वतश्रेष्ठ। मैं तत्त्वदर्शी मुनियों के साथ तीर्थयात्रा के उद्देश्य से दक्षिण दिशा को जा रहा हूँ ॥१॥ नगपते! मुझे शर्नो दी यहाँ आतिथ्य के रूप में दाँव रहा हूँ। जब तक मैं इधर से न लौटूँ तब तक तुम इसी प्रकार विनम्र रहो, इसके प्रतिकूल कोई कार्य नहो। विन्ध्याचल मे इसे स्वीकार कर लिया। उन मुनियों के साथ अगस्त्य मुनि ने दक्षिण दिशा को प्रस्थान किया। शर्न शर्न ये गीतमी के तट पर आये और सत्रयाग के लिए दोषा लेकर एक वर्ष ऋषियों के साथ यज्ञ करते रहें ॥७९॥ स्वर्ग में कैटभ के दो पापी, धर्म के भर्ग में काया पहुँचाने वाले, अश्वत्य और पिप्पल नाम से विख्यात राक्षस पुत्र थे ॥१०॥ अश्वत्य पीपल का और पिप्पल ब्राह्मण का रूप धारण कर यज्ञ नष्ट करने के लिये जाते थे। दोनों इस गुप्त रूप को यज्ञ का भेद जानने के लिये धारण किया करते थे। हे तपस्वी। इस प्रकार ये दोनों पापाशु राक्षस इच्छानुसार अश्वत्य वृक्ष और ब्राह्मण को आहूति धारण कर ब्राह्मणों का नित्य प्रिय पीडा पहुँचाते थे ॥११-१२३॥ जो सन्निपा के लिये वृक्ष की टह्नियाँ तोड़ने आता था उसको वह अश्वत्य सा जाता था और राक्षस पिप्पल क्षान्-गायक बनकर अपने शिष्यों को

पिप्पल सामगो भूत्वा शिष्यान्नाति राक्षस । तस्मादद्यापि विप्रेषु सामगोऽतीव निष्कृप ॥१४॥
 क्षीयमाणान्द्विजान्दृष्ट्वा मुनयो राक्षसाविभौ । इनि ब्रुध्वा महाप्राज्ञा दक्षिण तीरमाश्रितम् ॥१५॥
 सौरि शनैश्चर मन्द तपस्यन्त घृतघ्नतम् । गत्वा मुनिगणा सर्वे रक्ष कर्म न्यवेदयन् ॥१६॥
 सौरिर्मुनिगणानाह पूर्णं तपसि मे द्विजा । राक्षसो हन्यपूर्णं तु तपस्यक्षम एव हि ॥१७॥
 पुन प्रोचुर्मुनिगणा तस्यामस्त तपो गृह्यत । इत्युक्तो ब्राह्मणं सौरि कृतमित्याह तानपि ॥१८॥
 सौरिर्ब्राह्मणवेपेण प्रापाददत्तरूपिणम् । राक्षस ब्राह्मणो भूत्वा प्रदक्षिणमयाकरोत् ॥१९॥
 प्रदक्षिण तु बुध्वा मेने ब्राह्मणमेव तम् । नित्यपद्राक्षत पापो भक्षयामास मायया ॥२०॥
 तस्य काय समाविश्य चक्षुषाऽन्त्राप्यपश्यत । दृष्ट स राक्षस पापो मन्देन रविसूनुना ॥२१॥
 भस्मोभूत क्षणेनैव गिरिवज्रहतो यथा । अदत्तय भस्मसात्कृत्वा अन्य ब्राह्मणरूपिणम् ॥२२॥
 राक्षस पापगिलयमेक एव समग्रयात । अधीयानो विप्र इव शिष्यरूपो विनीतवत् ॥२३॥
 पिप्पल पूर्ववच्चापि भक्षयामास भानुजम् । स भक्षित पूर्ववच्च कुशाग्रन्त्राप्यवक्षत ॥२४॥
 तेनाऽऽलोकितमात्रोऽसौ राक्षसो भस्मसादभूत् । उभौ हत्वा भानुसुत किं कृत्य मे वदस्व ॥२५॥
 मुनयो जातसहर्षा सर्व एव तपस्विन । तत प्रसन्ना ह्यभवन्प्रयोजास्त्यपूवका ॥२६॥

खा जाता था । यहाँ कारण कि अब भ ब्राह्मणों में सामान्यिक अर्थात् बदनाहीन माना जाता है ॥१४॥ १५॥
 बुद्धिमान मुनिवृन्द जिस प्रकार ब्राह्मणों को नक्षत्र कर्म करने देखकर वे देवता राक्षस हैं यह जानकर दक्षिण तीर पर
 तपस्या करने वाले ब्राह्मण मूयमुत नि के पास गये और प्रथम कर राक्षसों के इस पणित वन को उनसे निवे
 दन किया । यह सुनकर मूयमुत ने मुनिवास कहा तपस्या पूर्ण हो जाने पर ही मैं राक्षसों का वध कर सकूँगा
 तपस्या का अपूर्ण रहने पर तो मैं सबका अक्षम हूँ ॥१५॥ १७॥ पुन मुनिवास ने कहा आपका हम सब अपनी महा
 तपस्या देखे हैं । यह सुनकर सानि ब्राह्मणों ने कहा कि तब काय हो गया ऐसा समझिये ॥१८॥ तनि ब्राह्मणों का वध
 करना कर अदत्तय रूप वाले राक्षस के पास गये और प्रदक्षिणा करने लगे ॥१९॥ राक्षस इस प्रकार उनकी प्रदक्षिणा
 करते देखकर सामान्य ब्राह्मण समझ कर नित्य का तरह अपन अर्थात् उनका निगल गया ॥२०॥ तनि ने उदर
 घसीट म धूसकर उरुर्ग, अर्थात् को देखा । देखते ही वह पापी राक्षस तनि के द्वारा क्षणभर में उनी प्रकार
 भस्म कर दिया गया जिस प्रकार वज्र से पत्थर धिन्ध कर दिया गया था ॥२१॥ अदत्तय का भस्म कर
 तनि दूसरे ब्राह्मणवेपारा पाया राक्षस के पास गया । उरुने ब्राह्मण का समान गिर्यहण से विनीत होकर
 पड़ने लगे ॥२३॥ यह कह कर भक्ति पिप्पल ने इस भानुपुत्र का भी खा लिया । खाये जाने पर सानि ने भी
 यह कह कर भक्ति उदर में अर्थात् का देखा ॥२४॥ उरु इस प्रकार दत्तन मात्र से वह राक्षस भस्मभूत
 हो गया । दत्तन, इस प्रकार नष्ट कर भानुपुत्र ने कहा कि अब मैं जोषा का क्षेत्र सा प्रिय काय कहें बनल हूँ ॥२५॥
 सब तपस्वी मुनि आनन्द-विभार हो गये ॥२६॥ तदनंतर अग्र्य आदि महर्षिवा न प्रसन्न होकर द्रष्टव्यगार मन्द

वरान्ददुर्यथाकाम सौरये मन्दगामिने । स प्रीतो ब्राह्मणानाह शनि सूर्यसुतो बली ॥२७॥

सौरिखाच

मदद्वारे नियता ये च कुर्वन्त्यश्वत्थलम्भनम् । तेषां सर्वाणि कार्याणि स्युः पीडा मदभवा न च ॥२८॥
तीर्थं चाश्वत्थसन्ने वै स्नानं कुर्वन्ति यनरा । तया सर्वाणि कार्याणि भवेयुरपरो वर ॥२९॥
मन्दवारे तु येऽश्वत्थं प्रातश्चरन्त्या मानवा । आभलन्ते च तथा वै ग्रहपीडा व्यपोहतु ॥३०॥

ग्रहोवाच

तत् प्रभृति तत्तीर्थमश्वत्थं पिप्पलं विदुः । तीर्थं शनैश्चरन् तत्र तत्रागस्त्य च सात्रिकम् ॥३१॥
याज्ञिकं चापि तत्तीर्थं सामग्यं तीर्थमेव च । इत्याद्यष्टोत्तराण्यासन्सहस्राण्यथ योऽशः ॥
तेषु स्नानं च दानं च सत्रप्रागफलप्रदम् ॥३२॥

इति श्रीमहापुराण आदिब्राह्मे गीतमीमांसाहृत्यश्वत्थाद्यष्टोत्तरयोऽशसहस्र

तीर्थवर्णनं नामाष्टाधिकशततमोऽध्यायः ॥११८॥

गीतमीमांसाहृत्य ऊनपञ्चाशततमोऽध्यायः ॥४९॥

गति से चलने वाले गति को यथेष्ट वर प्रदान किये। बलवान् सूर्यपुत्र गति ने प्रसन्न होकर ब्राह्मणों से कहा ॥२७॥

शनि ने कहा—मेरे दिन अर्थात् गतिवार को जो मनुष्य निदिमि० रूप से अश्वत्थ वृक्ष का स्पर्श करेगा उनके सब कार्य सिद्ध होंगे तथा मुझसे उनके कोई पीडा नहीं होगी ॥२८॥ जो व्यक्ति इस अश्वत्थ वृक्ष में स्नान करेगा उनके सब मनारथ पूरा होंगे यह दूसरा वरदान है ॥२९॥ जो शनिवार को प्रातःकाल उठकर अश्वत्थ का स्पर्श करेगा उसे ग्रहत्रय पाडा नहीं होगी ॥३०॥

ग्रहों ने कहा—जब समय से ही बहुतों को अश्वत्थ वृक्ष और पिप्पल वृक्ष में स्नान करने से बली पर शनैश्चरन्त्या अगस्त्य और सात्रिक वृक्ष तथा याज्ञिक सामग्री आदि चोब सहस्रांश्वत्थ प्रतिष्ठित है। उन तीर्थों में स्नान और दान करने से मनुष्य सत्रप्रागफल प्राप्त करता है ॥३१ ३२॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में अश्वत्थ वृक्ष पिप्पलावृक्ष और मन्दत वृक्ष वर्णन

नामक एक ही अध्याय अष्टाध्याय मन्त्र ॥११८॥

अथैकोनविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

सोमतीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

सोमतीर्थमिति ख्यात तदप्युक्त 'महात्मभि । तत्र स्नानेन दानेन सोमपानफल लभेत ॥१॥
जगता मातर पूर्वमोषध्यो जीवसमता । ममापि भातरो देव्य 'पूर्वाता पूर्ववत्तरा ॥२॥
आसु प्रतिष्ठितो धम स्वाध्यायो यज्ञकर्म च । आभिरेव धृत सर्व त्रैलोक्य सचराचरम् ॥३॥
अन्नपरोषोपशमो भवत्याभिरसशपम् । अन्नमेताभिरेव स्यादशेषप्राणरक्षणम् ॥४॥
अन्नोषध्यो जगद्वन्द्या मामूचुरनहकृता ॥४॥

ओषध्य ऊचु

अस्माकं स्व पति इहि राजान सुरसततम्

॥५॥

ब्रह्मोवाच

तच्छ्रुत्वा वचन 'ताता नमोक्ता ओषधीरिदम् । पति प्राप्त्यथ सर्वाश्च राजान प्रीतिवर्धनम् ॥६॥
राजानमिति तच्छ्रुत्वा मामूचु पुनर्मुने । गतय्येव पुनश्चोक्ता गौतमीं यातु मातर ॥७॥
मुष्टायामय तस्या धो राजा स्याल्लोकपूजित । ताश्च गत्वा मुनिश्रेष्ठ तृष्टुवृषी तमीं नदीम् ॥८॥

अध्याय ११६

सोमतीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा ने कहा—इसने बाद महात्माओं द्वारा वर्णित सोमतीर्थ नाम का एक प्रसिद्धतम है। उस तथा में स्नान करने और दान देने से मनुष्य सोमपान का फल प्राप्त करता है। पहले ओषधियाँ प्राणिमात्र से भाग्य और सत्कार की माता कहलाती थी। पूरे उत्पन्न ओषधियों से भाग्य पूरे काल का ओषधियाँ घेरी भाग्य माता था। इही ओषधियों से धर्म स्वाध्याय और यज्ञकर्म प्रतिष्ठित हैं इहानहीं सम्पूर्ण चराचरात्मक त्रैलोक्य को धारण किया है। इनसे ही सम्पूर्ण रोग नष्ट होते हैं इससे सन्देश है। सब प्राणियों की प्राणरक्षा करने वाले अन्न इनसे ही उत्पन्न होते हैं। एक बार जगद्वन्द्य इन ओषधियों ने विनित भाव से मुखास कहा ॥१॥४॥

ओषधियाँ बोलीं—हे देव य श्रेष्ठ ! हम लाला की आग राजा पति दीजिए ॥५॥

ब्रह्मा ने कहा—उनका वाता को सुनकर मैं ओषधियाँ से कहा कि मुम सब प्रभु बढ़ाने वाले राजा पति का प्राप्त करायो। मुनः राजा ऐसा जगद सुनकर उड़ाने मुनसे पुन पूछा—इसने क्या कहाँ जाना होगा। मैंने कहा—मामूचु । गौतमी के तट पर जाओ । उसकी प्रसन्नता पर अथवा ही लाला पूजित राजा मुम लाला का पति बनेगा। वे सब ओषधियाँ पास जाकर गौतमा नदी की स्तुति करने लगे ॥६॥८॥

ओषध्य ऊचु

किं वाञ्छकरिष्यन्भववर्तिनो जना, नानाघसथाभिभवाच्च दुःखिता ।
 न चाऽऽगमिष्यदभवतो भुव चेत्पुण्योदके गौतमि शम्भुकान्ते ॥९॥
 को वेत्ति भाष्य नरदेहभाजा, महीगताना सरितामघोशे ।
 एषा महापातकसंघहन्त्री, त्वमम्ब गङ्गे सुलभा सर्व्वेव ॥१०॥
 न ते विभूति ननु वत्ति कोऽपि, त्रैलोक्यवन्द्ये जगदम्ब गङ्गे ।
 गौरीसमालिङ्गितविग्रहोऽपि, घत्ते स्मरति शिरसाऽपि यत्त्वाम् ॥११॥
 नमोऽस्तु ते मातरभोष्टदायिनि, नमोऽस्तु ते ब्रह्ममयेऽघनाशिनि ।
 नमोऽस्तु ते विष्णुपदाम्ब्रिनि सूते, नमोऽस्तु ते शम्भुजटाविनि सूते ॥१२॥

ब्रह्मोवाच

इत्येव स्तुवतामीशा किं 'दवामीत्यबोधत ॥१३॥

ओषध्य ऊचु

पतिं देहि जगन्माता' राजानमतितेजसम् ॥१४॥

ब्रह्मोवाच

तरोवाच नदी गङ्गा ओषधीस्ता इव वच ॥१५॥

ओषधियाँ बोलीं—गौतमि ! समुद्रांते । य अनेक पापसमूहा से अभिभूत दुःख ससारी जन क्या कर सकते थे (अर्थात् इनका उद्धार कैसे होता) ? यदि पुण्यान्के ! आप इस भूतल पर न आता । नदिया का अर्थ बरबा ! मनुष्य-देह धारण करने वाला का अहंभाग्य कल्प जाता था ? हे अम्ब ! गम् ! आज इन पापियों के पापमहो को नष्ट करने वाले तुम इनको सदा के लिये मुक्त हो गई हो । जगदम्ब ! जगदम्ब ! गम् ! तुम्हारे विभूति को कोई भी व्यक्ति नहीं जानता है । वरन् पापियों से आलिंगित गरीब बाल सन्तन मन्मथ शरीर में तुम्हारा अपन गिर ५८ बठाये रहने हैं । भाना ! मनोरथ-दायिनी ! तुम्हारा नमस्कार है ब्रह्मस्वरूपिणी । पापविनाशिन ! तुमको नमस्कार है । विष्णु के करण बमल से निकलने वाल ! तुम्हारे नमस्कार हैं गम् ! जटा से निकलने काग ! तुम्हारा बार बार नमस्कार हैं ॥९॥ १२॥

ब्रह्मा ने कहा—इस प्रकार आपधियाँ की, स्तुति से प्रसन्न हो गौतम ! ने कहा क्या दू ? ॥१३॥

ओषधियाँ बोलीं—जगन्माता ! हम अत्यन्त तेजस्वी राजा पति द जिये ॥१४॥

ब्रह्मा ने कहा—ओषधियाँ क प्रायना मुनवर गौतम ! गम् ने उन ओषधियाँ से यह वचन कहा ॥१५॥

गङ्गोवाच

अहं चामूर्तरूपाऽस्मि ओषध्यो मातरोऽमृता । तादृशं चामूर्तात्मानं पतिं सोमं ददामि च ॥१६॥

ब्रह्मोवाच

देवाश्च ऋषयो वाक्य मेतिरे सोम एव च । ओषध्यश्चापि तद्वाक्यं ततो जग्मुः स्वमालयम् ॥१७॥

यत्र चाऽऽप्नुमहेऽप्यधो राजानममूर्तात्मकम् । सोमं समस्तसत्तापपापसंघनिवारकम् ॥१८॥

सोमतीर्थं तु तत्पयात् सोमपानफलप्रदम् । तत्र स्नानेन दानेन पितरं स्वर्गमाप्नुयुः ॥१९॥

य इदं शृणुयान्नित्यं पठेद्वा भक्तिततः स्मरेत् । दीर्घमायुरवाप्नोति स पुत्रीं धनवान्भवेत् ॥२०॥

इति श्रीमहापुराणे आदिश्राद्धे तीर्थमाहात्म्ये सोमतीर्थवर्णनं नामोर्विंशत्यधिकशत-

तमोऽध्यायः ॥११९॥

गीतमीमाहात्म्ये पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥५०॥

अथ विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

धान्यतीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

धान्यतीर्थमिति ह्यात् सर्वकामप्रदं नृणाम् । सुभिक्षं क्षेमदं पुसां सर्वापद्भिर्निवारणम् ॥१॥

ब्रह्मा ने कहा—मैं अमृत स्वरूप हूँ और आप ओषधि माताओं भा अमृत रूप ही हैं अतः मैं ही अमृतात्मा साम को आप लोग को पति के रूप में दे रहा हूँ ॥१६॥

ब्रह्मा ने कहा—इवा ऋषिमा और सोम ने भा इस वाक्य का समर्थन किया । ओषधिया ने भी यह स्वरूप स्वीकार लिया और प्रसन्नतापूर्वक अपना स्थान को चला गई । जिस स्थान पर उन भद्रोपधियों ने स्वरूप सत्ताप और पाप सन्तुष्ट को दूर करने वाले अमृतस्वरूप शास्त्र का प्राप्त किया वह स्थान सोमदान का फल होने वाला सोमतीर्थ नाम से प्रसिद्ध हो गया । उस तीर्थ में स्नान करने और दान देने से पितरपण स्वयं प्राप्त करते हैं । जो व्यक्ति इस अख्यात का नित्य भक्तिपूर्वक ध्वज पाठ या स्मरण करता है वह दारिद्र्य प्राप्त करता है और धनवान् तथा पुत्रवान् होता है ॥१७-२०॥

अथ ब्रह्ममहापुराणे म सामन्तवर्णनं नाम एव सौ उपसंहारी अध्यायः समाप्तः ॥११९॥

अध्याय १२०

धान्यतीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा ने कहा—मनुष्याः व सार्वभौमशा का पूज करने वाले सब आपदाओं का निवारक और सुभिक्ष

ओषध्य सोमराजान पति प्राप्य मुदाऽन्विता । ऊचुः सर्वस्य लोकस्य गङ्गायाश्चेत्सित वच ॥२॥

ओषध्य ऊचुः

वैदिकी पुण्यगाणास्ति या वै वेदविदो विदुः । भूमि सस्यवतीं कश्चिमातर मातृसमिताम् ॥३॥

गङ्गासमीपे यो दद्यात्सर्वकामानवाप्नुयात् । भूमि सस्यवतीं गाश्च ओषधीश्च मुदाऽन्विता ॥४॥

विष्णुब्रह्मेशरूपाय यो दद्यादभक्षितभाक्षर । सर्वं तदभयं विद्यात्सर्वकामानवाप्नुयात् ॥५॥

ओषध्य सोमराजन्या सोमश्चाप्योषधीपति । इति ज्ञात्वा ब्रह्मविद ओषधीर्यं प्रदास्यति ॥६॥

सर्वान्कामानवाप्नोति ब्रह्मलोके महोपते । ता एव सोमराजन्या प्रीता प्रोचुः पुन पुन ॥७॥

ओषध्य ऊचुः

योऽस्मान्ददाति गङ्गाया त राजन्यारयामसि । त्वमुतमश्चोषधीश त्वदधीनं चराचरम् ॥८॥

ओषध्य सर्वदन्ते सोमेन सह राता । योऽस्मान्ददाति विप्रेभ्यस्त राजन्यारयामसि ॥९॥

अथ च ब्रह्मरूपिण्य प्राणरूपिण्य एव च । योऽस्मान्ददाति विप्रभ्यस्त राजन्यारयामसि ॥१०॥

अस्मान्ददाति यो नित्यं ब्राह्मणेभ्यो जितव्रत । उपास्तिरस्ति साऽस्माकं त राजन्यारयामसि ॥११॥

एव कल्याण प्रदान करने वाला धार्मिक नामक एक तीर्थ है। राजा सोम को अपना पति पाकर अत्यन्त हर्षित हुई ओषधिया ने सब लोक तथा गंगा को प्रिय जगन वाले बचन कहे ॥१२॥

ओषधियाँ बोलीं—यह एक बहिर पवित्र गाथा है जिसे वेदों महापुरष जानते हैं कि जो कोई व्यक्ति गंगा के समीप मनुष्य एव सस्य सम्पन्न भूमि का दान करता है उसकी स्तुति कर्मयोग पूरा होता है। जो भक्त मनुष्य प्रसन्न होकर सस्यसम्पन्न भूमि गाँव तथा ओषधियाँ विष्णु ब्रह्मा और ईश्वर (ब्राह्मण या मन्दिर) को दान में देता है वह अपने सब अन्न स्त्रियाँ पदार्थों को प्राप्त करता है और उसकी दान की हुई वस्तु अन्य हा जाति है। ओषधियाँ सभाराजा का रानियाँ हैं और सोम ओषधियाँ का राजा हैं यह समझ कर जो ओषधियाँ का दान करता है वह अपने सब भगवत्प्राप्त करता है और स्वर्गलोक में उरका पूजा होता है। इस दान कथा को उन ओषधियों ने ही प्रमगदगन हस्तिर वार वार कहा था ॥३७॥

ओषधियाँ बोलीं—राजन् ! जो गंगा में हम सबका दे देता है उसका हम इस सस्य सप्ताह स पार लगा देती हैं। ओषधियाँ ने स्वामा ! तुम थक हो तुम्हारे हाथ अथवा यह चराचर है। ओषधियाँ राजा सोम के साथ वानचरि करती हैं कि जो हमका ब्राह्मणा को दान करता है राजन् ! उसका हम उद्धार करने हैं। हम ब्रह्मरूप है प्राण रूप हैं हम जो विप्रा का प्रदान करता है उसको हम सप्ताह स पार कर देती हैं। जामयम ब्रह्मरायण व्यक्ति नियम हमको ब्राह्मणा का दान में देता है वह हम सब का प्रिय होता है उसका हम भवसगर स पार कर देती हैं। राजन् ! स्थावर और जगम जो कुछ जगत् है सब हमसे व्याप्त हैं। ऐसी हमका जो ब्राह्मणा का नियम दान कर देता है उसको हम सप्ताह स पार कर देती हैं। हव्य (देवा के स्त्रियाँ देवारा) कव्य (पितरा का दिया जाने वाला अन्न)

स्यावर जङ्गम किञ्चिदस्माभिव्यपित अगत । योऽस्मान्बुधति' विप्रेभ्यस्त राजा पारयामसि ॥१२॥
 हव्य कव्य यदमृत यत्किञ्चिदुपभुज्यते । यदगरीयश्च यो दद्यात् राजपारयामसि ॥१३॥
 इत्येता वैदिवीं गाथा य शृणोति स्मरत वा । पठते भविमापन्नस्त राजपारयामसि ॥१४॥

ब्रह्मोवाच

यत्रैषा पठिता गाथा सोमन सह राजा । गङ्गातीरं चोपधीभिर्गन्धितोऽथ तदुच्यते ॥१५॥
 तत प्रभृति तत्तीयमौषध्य सीम्पमेव च । अमृत वेदगाथ च मातृतीर्थं तथैव च ॥१६॥
 एषु स्नानं जपो होमो दानं च पितृतर्पणम् । अन्नदानं तु य कुर्यात्तदानं त्याग कल्पते ॥१७॥
 पटशताधिकसाहस्रं तीर्थानां तीर्थयोर्द्वयोः । सर्वपापनिहन्तृणां सर्वसंपद्विबधनम् ॥१८॥

इति महापुराण आदिब्राह्म तीर्थमाहात्म्ये धान्यतीर्थविषयशताधिकसहस्रतीर्थवर्णनं

नाम विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१२०॥

गीतमोमाहात्म्ये एकपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥५१॥

अथैकविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

विदभ्रांसगमरेवतीसगमादितीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

विदभ्रांसगम पुण्य रेवतीसगम तथा । तत्र यद्भक्तमाह्वास्य यत्पुराणविदो विदुः ॥१॥

एष जो अमृत पदार्थ है जो कुछ उपभाग किया जाता है और जो सर्वोत्तम पदार्थ है उस जो दान करता है उसका हम उद्धार करते हैं । हे राजन ! इस वैदिक गाथा को जो भक्तिपूर्वक मुनित स्मरण करता या पढ़ता है उसका है राजन ! हम उद्धार कर देते हैं ॥८१४॥

ब्रह्मा ने कहा—गगत्तटतीर्त्त जिस स्थान पर ओषधिवा न राजा सोम के साथ इस गाथा को पढ़ा वह पात्र य य कहा जाता है । तब से वह तीर्थ ओषधि य सीम्प य अमृतगाथ वेदगाथतीर्थ मातृतीर्थ आदिनामो ये प्रसिद्ध ह । इन तीर्थों में जा मनुष्य स्नान जप होम दान पितृतर्पण और अन्नदान करते हैं वे अतत्फल के भविर्भार होते हैं । उस गौतमा के दाता छटा पर एक हजार छह सौ त य है जो सब पापों को दूर करनेवाले तथा सब प्रकार की सम्पत्ति देने वाले हैं ॥१५१८॥

यथाब्रह्महर्षपुराण म धान्य तीर्थवर्णन नामक एक सौ बीसवाँ अध्याय समाप्त ॥१२०॥

अध्याय १२१

विदभ्रांसगम और रेवती सगम आदि तीर्थों का वर्णन

ब्रह्मा ने कहा—इस उपासित पवित्र विन्मां सगम तथा रेवती सगम की कथा का वर्णन मैं करेगा त्रिपत्तो

भरद्वाज इति श्यात ऋषिरासीत्तपोऽधिक । तस्य स्वसा रेवतीति कुहपा विकृतस्वरा ॥२॥
 ता दृष्ट्वा विकृता भ्राता भरद्वाज प्रतापवान् । चिन्तया परया युक्तो गङ्गाया दक्षिणे तटे ॥३॥
 कस्मै दद्यामिमा कन्या स्वसार भीषणाकृतिम् । न कश्चित्प्रतिगृह्णाति दातव्या च स्वसा तथा ॥४॥
 अहो भूयान्न कस्यापि कन्या दुर्लभकारणम् । मरण जीवतोऽप्यस्य प्राणिनस्तु पदे पदे ॥५॥
 एव विमृशतस्तस्य स्वाश्रमे चातिशोभने । द्रष्टुं मुनिवर प्रायाद्भरद्वाज यतव्रतम् ॥६॥
 द्वघण्टवर्षं शुभवपु शान्तो दान्तो गुणाकर । नाम्ना कठ इति श्यातो भरद्वाज ननाम स ॥७॥
 विधिवत्पूज्य त विप्र भरद्वाज कठ तदा । तस्याऽऽयमनकार्यं च पप्रच्छ पुरत स्थित ॥८॥
 कठोऽप्याह भरद्वाज विद्याभ्यंहुमुपागत । तया च दर्शनाकाङ्क्षी यल्लुवत तद्बिधोयताम् ॥९॥
 भरद्वाज कठ प्राह अधोष्व यदभीप्सितम् । पुराण स्मृतयो वेदा धर्मस्थानान्यनेकश ॥१०॥
 सर्वे वेद्वि महाप्राज्ञ रुचिर घद मा विरम् । कुलीनो धर्मनिरतो गुरुशुश्रूषणे रत ॥
 अभिमानो धृतधर शिष्य पुण्यैरवाप्यते ॥११॥

कठ उवाच

अध्यापयस्व भो ब्रह्मजिज्ञाष्य मा धीतकल्मषम् । शुश्रूषणरत भवत कुलीन सत्यवादिनम् ॥१२॥

ब्रह्मोवाच

तथेयुक्त्वा भरद्वाज प्रादाद्विद्यामशेषत । प्राप्तविद्य कठ प्रीतो भरद्वाजमयाब्रवीत् ॥१३॥

पुराणवेत्ता लोग मली भाँति जानते हैं । भरद्वाज नामक एक अत्यन्त तपस्वी ऋषि थे । उनकी एक बहिन थी जो अति कुहप और अस्पष्ट स्वर से बोलने वाली थी । प्रतापी भाई भरद्वाज उस कुहप कन्या को देखकर एक दिन गंगा के दक्षिण तट पर बैठ चिन्तामग्न हो विचार करने लग कि इस मयङ्कुर आकार वाली कन्या (बहिन) को फिरने होया गोरी । भाई इसको ग्रहण भी तो नही करेगा परन्तु इस बहिन को क्या विप्र का देना अनिवार्य है । हाय ! दुःख का एकमात्र कारण कन्या कर्षा को उत्पन्न न हो । ऐसे कन्या का प्राणी (पिता) को जीवन में क्षण क्षण में मृत्यु का स्वाद मिलता है । इस प्रकार के विचार कर रहा रहूँ थे कि उनका उस रम्य आश्रम में भाई मुनिवर तायमी भरद्वाज ऋषि को देखने आये । उस पाठ्यकार्य धूमधूमित गाँव उदार और गुण आत्मुक्त का नाम पढ़ था । उसने भरद्वाज को नमस्कार किया । मुनि ने उसका उत्तर किया । और स्वयं उसने सामने स्थित हो उससे आन का कारण पूछा । कठ ने भा भरद्वाज मुनि से कहा कि 'मैं विद्या प्राप्त करने के लिए यहाँ उपस्थित हुआ हूँ उसा बहाने दान की भी कमिलाया था अब जो कुछ उपयुक्त आता हो प्रदान कर दिये । यह मुनिकर भरद्वाज ने कठ से कहा 'जो कुछ पढ़ने की इच्छा हो पढ़ा । पुराण स्मृतियाँ वेद आदि अनेक धर्मग्रन्थ हैं । महाबुद्धिमान मैं सब कुछ जानता हूँ इच्छानुसार बतौ । विस्मय करने के आवस्यकना नहीं है । कुलीन कृत्यप्रमी गुरुगवा में लीन रहने वाला स्वामिदानी और प्रतिभाशाली शिष्य बड़े आस्य से गुरु का प्राप्त होता है ॥११॥

कठ ने कहा—ब्रह्मन् ! मुझ निष्ठाव श्रुश्रूषणायन भक्त कुलीन और रम्यवादी शिष्य को पढ़ाइय ॥१२॥

ब्रह्मा ने कहा—एसा ही है । यह बहिकर भरद्वाज ने उसको सब विद्यायें भूषण से पढ़ा दी । विद्या प्राप्त कर एने का बाद कठ ने प्रसन्न होकर भरद्वाज से कहा ॥१३॥

कठ उवाच

इच्छेय दक्षिणा दातुं गुरो तव मन प्रियाम् । वदस्व दुर्लभं वाऽपि गुरो तुभ्य नमोऽस्तु ते ॥१४॥
विद्या प्राप्यापि ये मोहात्स्वगुरो पारितोषिकम् । न प्रयच्छन्ति निरय ते धान्त्याचन्द्रतारकम् ॥१५॥

भरद्वाज उवाच

गृहाण कन्या विधिवद्भाषां कुरु मम स्वसाम् । अस्या प्रीत्या वर्तितव्यं याचेय दक्षिणामिमाम् ॥१६॥

कठ उवाच

न्यातृवत्पुत्रवच्चापि शिष्य स्यात्तु गुरो सदा । गुरुश्च पितृवच्च स्यात्सबन्धोऽत्र कथं भवेत् ॥१७॥

भरद्वाज उवाच

मद्भाष्यं कुरु सत्यं त्वं ममाऽज्ञा तव दक्षिणा । सर्वं स्मृत्वा कठाद्यं त्वं रेवतीं भर तन्मना ॥१८॥

ब्रह्मोवाच

तथैत्युक्त्वा गुरोर्वाक्यात्कठो जग्राह पाणिना । रेवतीं विधिवद्दत्तां तां समीक्ष्य कठस्तथ ॥१९॥
'तत्रैव पूजयामास देवेश शंकर तदा' । रेवत्या रूपसपत्यं शिवप्रीत्यै च रेवती ॥२०॥
सुरूपा चारुसर्वाङ्गी न रूपेणोपमीयते । अभिषेकोदके तत्र रेवत्या यद्विनि सृतम् ॥२१॥

कठ ने कहा—गुरो! मैं आपको मन-दसद दक्षिणा देना चाहता हूँ। गुरो! चाहे आपकी इच्छा कुछ वस्तु के लिए ही क्यों न हो आप कहिये। आपको नमस्कार है। जो विद्या प्राप्त कर आनन्दना गुरु को दक्षिणा नहीं देते हैं वे जब तक आकाश में चन्द्र और लक्ष्मण रहते हैं तब तक वे लिये नरक को जाते हैं ॥१४॥१५॥

भरद्वाज ने कहा—मेरी इस कुमारी बहिन को गार्हस्थानुसार अपनी भाषां बना लो। इससे प्रदूषण व्यवहार करना इसी दक्षिणा का मायना करता हूँ ॥१६॥

कठ ने कहा—निष्य गुरु ने निष्प माई ने समान या पुत्र के समान सबदा माना जाता है। गुरु निष्य के पिता के तुल्य होता है। ऐम, स्थिति मे (आपका यहाँ भेदा) वैवाहिक सम्बन्ध कैसे होगा? ॥१७॥

भरद्वाज ने कहा—मेरे शब्दा को तुम सत्य सिद्ध करो यह मेरी आज्ञा और तुम्हारी दक्षिणा है। कठ! आज सब कुछ स्मरण कर भी रेवती का प्रदूषण पाणिग्रहण करो ॥१८॥

ब्रह्मा ने कहा—जो आज्ञा बहुर कठ ने अपने गुरु ने वचनानुसार विधिपूर्वक ही हुई रेवत का पाणि ग्रहण कर लिया कठ ने रेवती को देखकर उसको रूपकता बनाने के अभिप्राय से भगवान् शंकर को प्रार्थन करने के लिये वही देवता शंकर की पूजा की। पूजा के प्रभाव से वह कुरूपा रेवती सुरुप शर्वोद्गममुन्दरी बन गई। उसका रूप का सादृश्य किसी अन्य से करना कठिन हो गया। उसका अभिषेक से जो जल बहा वह उसी के नाम पर रूप और मीमांसा देने वाली रेवती नाम की नदी बन गई जो कि गंगा में जाकर मिल गई। पुनः कठ ने पवित्र रूप को

साऽभवत्तत्र गङ्गाया तस्मात्तन्नामतो नदी । रेवतीति समाख्याता रूपसौभाग्यदायिनी ॥२२॥
 पुनर्दर्भेश्च विविधैरभिपेक चकार स । पुण्यरूपत्वसत्तिद्ध्यै विदर्भा तदभून्नदी ॥२३॥
 श्रद्धया सगमे स्नात्वा रेवतीगङ्गयोर्नर । सर्वपापविनिर्मुक्तो विष्णुल्लोके महीधते ॥२४॥
 तथा विदर्भागीतम्यो सगमे श्रद्धया मुने । स्नान करोत्यसौ याति भुक्ति मुक्ति च तत्क्षणात् ॥२५॥
 उभयोस्तोरयोस्तत्र तीर्थानां शतमुत्तमम् । सर्वपापक्षयकर सर्वसिद्धिप्रदायकम् ॥२६॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये विदर्भासगमरेवतीसगमादितोर्थवर्णन
 नामैकविंशत्यधिकशततमोऽध्याय ॥१२१॥

गौतमीमाहात्म्ये द्विपञ्चाशत्तमोऽध्याय ॥५२॥

अथ द्वाविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

पूर्णादितीर्थवर्णनम्

ग्रहोवाच

पूर्णतीर्थमिति ख्यात गङ्गाया उत्तरे तटे । तत्र स्नात्वा नरोऽज्ञानात्तयाऽपि शुभमाप्नुयात् ॥१॥

प्राप्ति के लिये अनेक कुसो से उसका अभिपक दिया । उस अभिपक के जलसे विदर्भा नाम का नद बन । मनुष्य रेवता और गंगा के सगम में स्नान कर सब पापा से छूट जाता और विष्णुलोक में पूजित होता है । मुने । इसी प्रकार विदर्भा और गौतमी के सगम में स्नान करने से भी मनुष्य तत्क्षण मुक्ति और भुक्ति का प्राप्त करता है । यह नहीं कहाँ दोना तटी पर सब पापा को नष्ट करने वाले और सब प्रकार का सिद्धियाँ प्रदान करने वाले सी तप्य भा हैं ॥१९ २६॥

श्रीब्रह्मपुराण में विदर्भा सगम रेवती-सगम आदि तीर्थों का वर्णन नामक एक सो इक्कीसवाँ अध्याय समाप्त ॥१२१॥

अध्याय १२२

पूर्ण आदि तीर्थों का वर्णन

ग्रहमा ने कहा—इसके बाद गंगा के उत्तर तट पर पूरा तप्य नामक एक तीर्थ है । उसमें यदि मनुष्य मूलकर भी स्नान करे तो भी शुभ फल प्राप्त करेगा ॥१॥ जहाँ स्वयं चक्रवर विष्णु और पितामह शिव निवास करते हैं,

ता दृष्ट्वा चारुसर्वाङ्गीं बहुकालं नयान्विताम् । शाश्वतमनुव्रतां भवता कृपया चान्नवीमूष ॥१४॥

नृप उवाच

काऽसि त्वं कस्य हतोर्वा वतस गहने वने । क दृष्ट्वा हृषीव त्वं वद कल्याणि पृच्छत ॥१५॥

ब्रह्मोवाच

प्रमदा चापि तद्वाक्यं श्रुत्वा राजानमब्रवीत् ॥१६॥

प्रमदोवाच

त्वयि तिष्ठति को लोको हतुहृष्यस्य म भवत । अहमिन्द्रस्य या लक्ष्मीस्त्वा दृष्ट्वा वामसंभृतम् ॥१७॥
हर्षाच्चिरामि पुरतो राजस्तव पुन पुन । अगण्यपुण्यविरहादहं सवस्य दुर्लभा ॥१८॥

ब्रह्मोवाच

एतद्ब्रह्मो निगम्याऽऽनु तपस्तपस्त्वा सुदुष्करम् । तामव मनसा ध्यायस्तत्तिष्ठस्तत्परायण ॥१९॥
तदकशरणो राजा बभूव स यदा तम । अतर्धान गतो ब्रह्मप्राप्तयित्वा तपो बृहत् ॥२०॥
एतस्मिन्नतरङ्गं च वरान्वातु समस्यगाम । त दृष्ट्वा विह घलीभूत तपोऽग्रे ययामृतम् ॥२१॥

वह राजा के पास गया। राजा ने उस कन्याद्वयमुदर विनयालू गा भव और ब्रह्म रमण महिला को बहुत बार बैठा। अतः म स्वयं रूप और प्रम से आदर ही उस माया रमण से पूछा ॥१३ १४॥

राजा बोला—तुम कौन हो? किसलिए इस गहन वन में घूम रही हो? क्याणि किसी देववर से प्रसन्न हो रहे हो? तम वतलाओ मैं पूछ रहा हूँ ॥१५॥

ब्रह्मा ने कहा—वह रमण या राजा के वाक्य का सुनकर उठते बाग ॥१६॥

रमणी बोली—तुम्हारे रहते दूसरा कौन मेरे आनन्द का कारण हो सकता है? राजन! मैं इस क दरबार में गोमा हूँ और तुम की कामभीहित देववर आनन्द से बार-बार तुम्हारे स्मरण घूम रहा हूँ। परन्तु यह कष्ट है मैं अगणि पुण्य में रहि व्यक्ति के लिए दुःख हूँ ॥१७ १८॥

ब्रह्मा ने कहा—यह सुनकर राजा ध ध करने अति दुःखरूप को ठाकर उस का ध्यान करने लगा। उर्म में उक्त एवमान तिष्ठता ही ईश्वर उक्त पाठ वह पालन-छा ही गया। ब्रह्मण अब मैं ने देखा कि राजा एवमान मग पर अनुरक्त हो गया है। अब वह उक्त ब्रह्मण रूप को अर्पण माया से नष्ट कर स्वयं अर्पण हो गया। नारद! इस बाध में उक्तों के दन ने लिय उक्त पाम गया। उक्त तपःपट व्याकुल और मृतभुय महापराज की देववर मने विविध मुक्तिया और उग्रहणा से उक्तों स्तुतिवा दा कि देमा वह तम नामक तुम्हारा अनु या जा

१५ ० त्वि ॥१०॥ २५ ० नृपयामकया ॥३०॥ ३६ ० श्रीन्द्रम् । नृ० । ४५ ० इत्ययम् ।

५५ ० एतरोऽभवत् । अनायतपस्तरयस्य वैनापि हेतुना । त० । ६५ च । ७५ ० महत् ।

तमाश्वास्याय विविधैर्हेतुभिर्नृपसत्तमम् । तव शत्रुस्तमो नाम कृत्वा तां तपसश्च्युतिम् ॥२२॥
चरितार्थो गतो राजन्न त्वं शोचितुमर्हसि । आनन्दयन्ति प्रमदास्तापयन्ति च मानवम् ॥२३॥
सर्वा एव विशेषेण किमु मायामयो तु सा । तत कृताञ्जली राजा मामाह विगतभ्रमः ॥२४॥

राज्ञोवाच

किं करोमि कथं ब्रह्मस्तपसः पारमान्पुयाम्

॥२५॥

ब्रह्मोवाच

ततस्तस्योत्तरं प्रादा देवदेवं जनार्दनम् । स्तुहि सर्वप्रयत्नेन ततः सिद्धिमवाप्स्यसि ॥२६॥
स ह्यशेषजगत्प्रण्टा देवदेवः पुरातनः । सर्वार्थसिद्धिदः पुंसां नाग्योऽस्ति भुवनत्रये ॥२७॥
स जगाम नगश्रेष्ठ हिमवन्त नृपोत्तमः । कृताञ्जलिपुटो भूत्वा विष्णुं पुण्ड्राव भविततः ॥२८॥

धन्वन्तरिरुवाच

जय विष्णो जयाचिन्त्य जय जिष्णो जयार्च्युत । जय गोपाल लक्ष्मीश जय कृष्ण जगन्मय ॥२९॥
जय भूतपते नाथ जय पद्मगदायिने । जय सर्वंग गोविन्द जय विश्वकृते तमः ॥३०॥

इस प्रकार तुम्हको तपस्या से बहुत बुर सकलमनोरथ हासिल चला गया। राजन् ! तुम चिन्तित मत हो। सम। रत्नगिरी विशेष रूप से मानव की आनन्दित करता और बलेश पहुँचाते है। वह तो मायाविन। धी, फिर उसने विषय म कहता ह। क्या ? तबन्तर मेरी बातों को सुनकर उसका भ्रम दूर हो गया, उसने हाय जाइकर मुझसे कहा ॥२९-३०॥

राजा ने कहा—ब्रह्मन् ! तो अब मैं क्या करूँ ? किस प्रकार तप सिद्धि को प्राप्त करूँ ॥२५॥

ब्रह्मा ने कहा—तदुपरांत मैंने उसको उत्तर दिया कि तुम देवाधिदेव जनार्दन की स्तुति करो। उससे सिद्धि प्राप्त करोगे। वे सम्पूर्ण जगत् के रक्षयिता, वेदों से जानने योग्य पुरातन और मनुष्यों को सब प्रकार की मनोरथ सिद्धि प्रदान करने वाले हैं। उनके समान इस निम्बुवन म और कोई नहीं है। मेरे आदेश को मानकर वह नृपोत्तम पर्वतश्रेष्ठ हिमालय पर गया और वहाँ अञ्जलि बांधकर भक्तिपूर्वक विष्णु की स्तुति करने लगा ॥२६-२८॥

धन्वन्तरि ने कहा—विष्णो ! आपकी जय हो, अचिन्त्य ! जय हो, जयशील ! जय हो, अच्युत ! जय हो। गोपाल ! जय हो, लक्ष्मीपत ! जय हो, जगन्मय ! कृष्ण ! जय हो ॥२९॥ भूतपते ! जय हो। नाथ ! सर्प परमोनेवाले ! जय हो। व्याघ्र ! जय हो। गोविन्द ! जय हो। समार के बताने वाले ! आपकी नमस्कार है ॥३०॥ विश्व के मोघा ! देव ! आपकी जय हो, विश्व के धारण करने वाले की नमस्कार है। ईश ! जय

जय विश्वभुजे' देव जय विश्वधृते' नम । जयेश' सदसत्त्व धै जय माधव धर्मिणे ॥३१॥
जय कामद काम त्वजय राम गुणार्णव । जय पुष्टिद पुष्टीश जय कल्याणदायिने ॥३२॥
जय भूतप भूतेश जय 'मानविधायिने । जय कर्मद कर्म त्व जय पीताम्बरच्छद ॥३३॥
जय सर्वेश सर्वस्त्व जय मङ्गलरूपिणे । जय 'सत्त्वाधिनाथाय जय वेदविदे नम ॥३४॥
जय जन्मद जन्मिष्य' परमात्मज्ञमोऽस्तु ते । जय मुक्तिद मुक्तिस्त्व' जय भुक्तिद केशव ॥३५॥
जय लोकद लोकेश जय पापविनाशन । जय वत्सल भक्तानां जय चक्रधृते नम ॥३६॥
जय मानद मानस्त्व जय लोकनमस्कृत । जय धर्मद धर्मस्त्व जय सत्तारपारग ॥३७॥
जय अन्नद 'अन्न त्व जय वाचस्पते नम । जय शक्तिद 'शक्तिस्त्व जय जन्त्रवरप्रद ॥३८॥
जय यज्ञद यज्ञस्त्व' जय पद्मदलेक्षण । जय दानद दान त्व जय कंटभसूदन ॥३९॥

हो। आप सत और असत् रूप हैं। माधव' धर्मपतिन्' जय हो ॥३१॥ काम के देने वाले' कामरूप' जय हो गुण के सागर' राम' आपकी जय हो। पुष्टि के देने वाले' जय हो पुष्टि के ईश' जय हो। कल्याण दाता की जय हो ॥३२॥ समस्त प्राणियों के पालन करने वाले' भूतेश' जय हो। सम्मान देने वाले की जय हो। कम के देने वाले' कमरूप' जय हो। पीताम्बरधारी' आप की जय हो ॥३३॥ सर्वेश' सब' आपकी जय हो। मंगल रूप की जय हो। जीवों के अधिपति की जय हो। वेदों के ज्ञाता की जय हो। आपको नमस्कार है ॥३४॥ जन्मदाता' जन्म देने वाले के हृदय में रहने वाले' परमात्मन्' आपको नमस्कार है। मुक्तिदाता' जय हो। आप मुक्ति रूप भी हैं। केशव' मुक्तिदाता' जय हो ॥३५॥ लोक के मनोरथ दाता' लोवेश' पापविनाशक' जय हो भक्तवत्सल' जय हो चक्रधारी को नमस्कार है। ॥३६॥ मान देने वाले' आप मानस्वरूप हैं। सत्तार से पूजित' जय हो। धर्म के देने वाले' और धर्मस्वरूप' आपकी जय हो। सत्तार के पार जाने वाले' जय हो ॥३७॥ अन्नदाता' आप अन्नस्वरूप हैं। आपकी जय हो। वाणीपति को नमस्कार है। शक्ति के दाता' जय हो। आप शक्तिस्वरूप हैं। विजयी जनों को धर देने वाले' जय हो ॥३८॥ यज्ञफल देने वाले' आप यज्ञस्वरूप हैं। आपकी जय हो। पद्म की पल्लवियों के समान नेत्रवाले' जय हो। दानदाता' आप दानस्वरूप हैं। आपकी जय हो। कंटभ नामक अमुर के शत्रु' जय हो ॥३९॥ कीर्तिदाता' आप कीर्तिस्वरूप हैं। आप की जय हो।

१ध विन्विदे। २ध च पाशभुते। ३ध ह जय सत्यद सत्य त्व ज०। ४ध मायावि०। ५ध च तत्त्वद सत्यस्थ ज०। ६ध जन्म त्व ज०। ७ध मुक्तीश जय सर्वद माधव। ८ध च ० नमूने। ९ध च अन्नत्न ज्ञय। १० ध च शक्त्यात्मज्ज्व ज्ञानव०। ११ध च यज्ञात्मज्ज्व।

जय कीर्तिद कीर्तिस्त्व जय मूर्तिद मूर्तिधृक् । जय सौख्यद सौख्यात्मञ्जय पावनपावन ॥४०॥
 जय शान्तिद शान्तिस्त्व जय शकरसभव । जय पानद पानस्त्व जय ज्योति स्वरूपिणे ॥४१॥
 जय वामन वित्तेश जय धूमपताकिने । जय सर्वस्य जगतो दातृमूर्ते नमोऽस्तु ते ॥४२॥
 त्वमेव लोकत्रयवर्तिजीवनिकायसबलेशविनाशदक्ष ।
 श्रीपुण्डरीकाक्ष कृपानिधे त्व, निधेहि पाणि मम मूर्ध्नि विष्णो ॥४३॥

ब्रह्मोवाच

एवं स्तुवन्त भगवान्शङ्खचक्रगदाधारः । धरेण च्छन्दयामास सर्वकामसमृद्धिद ॥४४॥
 धन्वन्तरि, प्रीतमना वरदानेन चक्रिण । वरदानाय देवेश गोविन्दं संस्थितं पुरः ॥४५॥
 तमाह नृपति श्रद्धा सुरराज्य ममेप्सितम् । तच्च दत्तं स्वया विष्णो प्राप्नोऽस्मि कृतकृत्यताम् ॥४६॥
 स्तुत, संपूजितो विष्णुस्तत्रैवान्तरधीयत । तथैव त्रिदशेशत्वमवाप नृपतिः क्रमात् ॥४७॥
 प्रायोजितानेककर्मपरिपाकवशात्ततः । त्रि कृत्वो नाशमगमत्सहस्राक्षः स्वकात्पदात् ॥४८॥
 नहुषद्वृषहरप्राया, सिन्धुसेनवधात्ततः । अहल्यायां च गमनाद्येन केन च हेतुना ॥४९॥
 स्मार स्मार तत्तद्विन्द्विचिन्तासतापदुर्मुखाः । तत सुरपतिः प्राह वाचस्पतिमिव वचः ॥५०॥

मूर्ति देने वाले ! मूर्ति धारण करने वाले ! जय हो । सौख्य प्रदान करने वाले ! सौख्यरूप ! जय हो । पवित्र को भी पवित्र करने वाले ! जय हो ॥४०॥ शान्ति प्रदान करने वाले ! आप शान्तिरूप हैं । आपकी जय हो । शकर के उद्गम ! जय हो । वेद्य प्रदान करने वाले ! आप वेद्यरूप हैं ! आपकी जय हो, ज्योति स्वरूप की जय हो ॥४१॥ वामन ! जय हो । धनेश ! जय हो । अग्निरूप की जय हो । सम्पूर्ण ससार के दातास्वरूप आपको नमस्कार है ॥४२॥ आप ही त्रिमूर्ति में रहने वाले प्राणि समूह के महान् कलेशों को विनष्ट करने में दक्ष हैं । श्रीकमलनयन ! कृपानिधान ! विष्णो ! आप मेरे शिर पर अपना (वरद) हस्त रखिय ॥४३॥

ब्रह्मा ने कहा—इस प्रकार स्तुति करने वाले धन्वन्तरि को सब प्रकार की कामनाओं और समृद्धियों को देने वाले तथा सब प्रकार के गदा धारण करने वाले भगवान् विष्णु ने वर प्रदान किया ? चन्नी के वरदान से धन्वन्तरि प्रसन्न हो गया । उसने बड़ी विनम्रता से वर देने के लिये सामने खड़े भगवान् से कहा—‘विष्णो ! आपने मेरी अभीप्सित कामना देवराज्य को प्रदान कर दिया । इससे मैं कृतकृत्य हो गया हूँ ।’ भगवान् विष्णु भी राजा की स्तुति और पूजा से प्रसन्न हो अन्तर्धान हो गये । राजा ने भी कम से देवेन्द्र की पदवी प्राप्त की । तदनन्तर पूर्वजन्म के अनेक कर्मों के परिपाक से वह सह्यास (इन्द्र) अपने पद से तीन बार च्युत हुए । पहली बार दुर्न-हत्या के कारण नहुष द्वारा पदच्युत किये गये, दूसरी बार सिन्धुसेन-वध के कारण, इसके बाद तीसरी बार अहल्या के पास अनुविन रूप से जाने के कारण वे पदच्युत हुए । इस प्रकार जिस विभी कारण से पदभ्रष्ट होने पर इन्द्र अपने उन-उन पवन की पटनाओं अथवा कारणों की सोचकर चिन्ता की अग्नि से जलन से लगे । तब अत्यन्त व्याकुल हो देवेन्द्र ने ब्रह्मपति से यह प्रश्न किया ॥४४-५०॥

इन्द्र उवाच

हेतुना केन वागीश भ्रष्टराश्यो भवाम्यहम् । मध्ये मध्ये पदभ्रंशाद्वरं निःश्रीकता नृणाम् ॥५१॥
गहनां कर्मणां जीवगतिं को वेत्ति तत्त्वतः । रहस्यं सर्वभावानां ज्ञातुं नान्यः प्रगल्भते ॥५२॥

ब्रह्मोवाच

बृहस्पतिर्हंरिं प्राह ब्रह्माणं पृच्छ यच्छ तम् । स तु जानाति यद्भूतं भविष्यच्चापि वर्तनम् ॥५३॥
स तु वक्ष्यति येनेदं जातं तच्च महामते । तावागत्य महाप्राज्ञो नमस्कृत्य ममान्तिकम् ॥
कृताञ्जलिपुटो भूत्वा मामूचतुरिदं वचः ॥५४॥

इन्द्रबृहस्पती ऊचतुः

भगवन्केन दोषेण शचीभर्ता उदारधीः । राज्यात्प्रग्रश्यते नाय संशय छेतुमर्हसि ॥५५॥

ब्रह्मोवाच

तदाहमब्रव ब्रह्मचिरं ध्यात्वा बृहस्पतिम् । खण्डधर्माख्यदोषेण तेन राज्यपदाच्छ्रुतः ॥५६॥
देशकालादिदोषेण श्रद्धामन्त्रविपर्ययात् । धयावद्दक्षिणादानादसद्वृत्त्यप्रदानतः ॥५७॥
देवभूदेवतावज्ञापातकाच्च विशेषतः । यत्तत्त्वज्ञत्वं स्वधर्मस्य देहिनामुपजायते ॥५८॥

इन्द्र ने कहा—वागीश ! किस कारण मैं सिंहासन-व्युत हो जाता हूँ । मनुष्यों के बीच-बीच में पद-भ्रंश से तो जीवनभर श्रीहीन होना ही उत्तम है । दुर्जय कर्मों के अनुसार बठिन जीवगति को कौन व्यक्तित्व धारण कर जान पाता है ? सब भावी (व्यापारों) के रहस्यों को जानने की क्षमता अन्य किसी में नहीं है ॥५१-५२॥

ब्रह्मा ने कहा—बृहस्पति ने इन्द्र से कहा कि शुभ ब्रह्मा के पास जाओ और उनसे ही पूछो । वे भूत भविष्य और वर्तमान को जानते हैं । महामते ! वही जिस कारण ऐसा हुआ है उसको धर्तायेंगे । ऐसा परामर्श करके वे दोनों महामतिमान् मेरे समीप आये और नमस्कार कर बदाञ्जलि हो मुझसे बोले ॥५३-५४॥

इन्द्र और बृहस्पति ने कहा—भगवन् ! किस दोष से उदार बुद्धि वाले देवराज अपने राज्य से व्युत होते हैं । नाय ! इस संशय को आप ही दूर कर सकते हैं ॥५५॥

ब्रह्मा ने कहा—ब्रह्मन् ! तब मैंने बहुत देर तक सोच विचार कर बृहस्पति से कहा कि ये खण्ड धर्म नामक दोष के कारण राज्यपद से व्युत हो गये हैं । क्योंकि देशकाल आदिके दोष से श्रद्धा और मन्त्र के विपर्यय से यथोचित दक्षिणा कैं न देने से, असद्वृत्त्य के दान देने से और विशेष रूप से देवता एवं ब्राह्मण के अपमानजन्य पाप से मनुष्यों का जो धर्म खण्डित होता है, उससे अत्यन्त मानसिक सताप होता है और अवश्यमेव पदहानि होती है । क्षुब्धचित्त होकर धर्म करने से भी अनिष्ट ही होता है । वह धर्म कार्य सिद्धिके लिये नहीं होता, है, अतएव मनुष्य को स्थिरचित्त

तेनातिमानसस्ताप पदहानिश्च दुस्त्यजा । कृतोऽपि धर्मोऽनिष्टाय जायते क्षुब्धचेतसा ॥५९॥
 कायस्य न भवत्सिद्धयं तस्मादध्याकुलाय च । असंपूर्णं स्वधर्मं हि किमनिष्टं न जायते ॥६०॥
 ताम्ना यत्पूर्ववृत्तान्तं तदप्युक्तं मयाऽनघ । आयुषस्तु सत श्रीमान्धवत्तरिहदारधो ॥६१॥
 तमसा च कृतं विघ्नं विघ्णुना तच्च नाशितम् । पूवजन्मसु वृत्तान्तमित्यादि परिकीर्तितम् ॥६२॥
 तच्छ्रुत्वा विस्मिता चोभी मामेव पुनरुचतु ॥६३॥

इन्द्रबृहस्पती ऊचतु

तद्दोषप्रतिबन्धस्तु केन स्यात्सुरसत्तम

॥६४॥

ब्रह्मोवाच

पुनर्ध्यात्वा तावदध धूपता दोषका (ह)रकम् । कारणं सर्वसिद्धीनां दुस्तससारतारणम् ॥६५॥
 शरणं तप्तचित्तानां निर्वाणं जीव्यतामपि । गत्वा तु गौतमीं देवीं स्तुयेता हरिशकरी ॥६६॥
 भोपायोऽज्योऽस्ति सद्गुह्यं तो सा हित्वा जगत्त्रये । तदेव जन्मतुल्यं गौतमीं मुनिसत्तम ॥
 स्नाती 'कृतक्षणी चोभी देवीं तुष्टुवतुर्मुदा ॥६७॥

इन्द्र उवाच

नमो भस्त्रपाय कूर्मपि वराहाय नमो नम । नरसिंहाय देवाय वामनाय नमो नम ॥६८॥

होकर धर्मकाय करना चाहिये । अपने धर्म के अपुण रहने पर वीन सा अनिष्ट नहीं होता है ? निष्पाप । मैंने उन दोनों से जो कुछ पूव जन्म का वृत्तान्त या उसकी भी कह दिया । उदारबुद्धि आयु-पुत्र पवनतरि का होना तम रागस द्वारा उनकी तपस्या न विघ्न डालना और विष्णु के द्वारा पुन उन विघ्नों का नाश आदि जो कुछ पूर्व जन्म के वृत्तान्त में सब बना दिये । इस प्रकार की बातें सुनकर वे दोनों विस्मित हो गये । पुन उन दोनों ने मुनिते कहा ॥५६ ६३॥

इन्द्र और बृहस्पति न कहा—हे देवयन्त्र ! इस दोष का निराकरण किससे होगा ? ॥६४॥

ब्रह्मा न कहा—पुन मैं विचारकर उन दोनों से कहा कि गुनो सब प्रकार की मिथ्या के आन्वितारण ससार के दुःसा न पार लगाने वाले दुस्त-दग्ध जीवों के एवमात्र आधार और जीवन महा निर्वाण गुर देन वाले उपाय को गुन । गौतमी गंगा के तट पर जाकर हरि और गङ्गा की स्तुति करो । दोष-शुद्धि के लिए हरि और शङ्कर की स्तुति को छोड़कर इन तीनों लोहा न अन्य कोई उपाय नहीं है । मुनि-यन्त्र ! यह सुनकर वे दोनों उगी समय गौतमी में समाप गये और स्नान कर समय पाकर दोनों देवी की स्तुति करने लगे ॥५५ ६७॥

इन्द्र न कहा—भगवान् भस्त्र को नमस्कार है बृष को नमस्कार है वराह को बार बार नमस्कार है नरसिंह देव और वामन को नमस्कार है नमस्कार है । अन्तरंग भगवान् को नमस्कार है । तीन रूप से सम्पूर्ण मुचनमन्त्र

नमोऽस्तु ह्यहपाय त्रिविक्रम नमोऽस्तु ते । नमोऽस्तु' बुद्धरूपाय रामरूपाय कल्किने ॥६९॥
 अनन्तायाच्युतायेश जामदग्न्याय ते नमः । वरुणेन्द्रस्वरूपाय यमरूपाय ते नमः ॥७०॥
 परमेशाय देवाय नमस्त्रैलोक्यरूपिणे । बिम्बत्तरस्यतो यवत्रे सर्वज्ञोऽसि नमोऽस्तु ते ॥७१॥
 लक्ष्मीयानस्यतो लक्ष्मीं बिम्बद्वलसि ध्यानम् । बह्मबाहू रूपादस्त्वं बहुकर्णाक्षिशीर्षकः ॥
 त्वामेव सुखिने प्राप्य बह्वयः सुखिनोऽभवन् ॥७२॥
 तायन्नि.श्रीकृता पुंसां भालिन्यं दैन्यमेव वा । यावन्न यान्ति शरणं हरे त्वां कदणार्णवम् ॥७३॥

बृहस्पतिरुवाच

सूक्ष्मं परं जो (ज्यो) तिरनन्तरूपमोकारमात्रं प्रवृत्तेः परं यत् ।
 चिद्रूपमानन्दमयं समस्तमेवं यदन्तोऽहं मुमुक्षयस्त्वाम् ॥७४॥
 आराधयन्त्यत्र भवन्तमीदां, महामर्त्यः पञ्चभिरप्यकामाः ।
 संसारसिन्धोः परमाप्तकामा, विद्वान्ति दिव्यं भुवनं वसुते ॥७५॥
 सर्वेषु सत्त्वेषु समत्त्वबुद्ध्या, संबीक्ष्य पदसूत्रिषु शान्तभावाः ।
 ज्ञानेन ते कर्मफलानि हित्वा, ध्यानेन ते त्वां प्रविशन्ति शंभो ॥७६॥

को नापने वाले (त्रिविक्रम) । आरक्षो नमस्कार है । बुद्धरूप, रामरूप और कल्की रूप में अवतीर्ण होने वाले मगवान् को नमस्कार है । ईश । अनन्त अच्युत और परमुराम रूप आरक्षो नमस्कार है । वरुण इन्द्र और यम रूप आरक्षो नमस्कार है । परमेश देव और त्रैलोक्यरूपवासी को नमस्कार है । अपने मुख में मरुतवती को धारण करने वाले आप सर्वज्ञ हैं, आपको नमस्कार है । निष्कल्मष । आप लक्ष्मीवान् हैं इसलिये लक्ष्मी को बड़ा स्थल पर धारण करने हैं । आप अनन्त बाहु, ऊँच (उपा), परण वान, और और विर करने हैं । सुखमूर्ति आरक्षो पाकर ही बृहत्-मे मनुष्य गुणी हो गये । हरे । मनुष्या के पास दरिद्रता, यत्किना और दीनता तभी तब रहती है जब तक वे ब्रह्मा-मागर आपकी धारण में नहीं आते हैं ॥६८-७३॥

बृहस्पति ने कहा—ईश । मुमुक्षु लोग आरक्षो सूक्ष्म पर, ज्योति स्वरूप अनन्तरूप ओंकार मात्र प्रवृत्ति में परे, विद्वान्, आनन्दमय और सम्पूर्ण (विश्वरूप) ऐसा करने हैं ॥७४॥ निष्काम साधक पाँच महायज्ञ द्वारा आर प्रभु को ही आराधना करते हैं । समार-मागर में पार आने को इच्छा करने वाले लोग आप ही के दिव्य मुख की शरीर में प्रवेश करते हैं ॥७५॥ शम्भो । सब प्राणियों में मगान बुद्धि में देखकर उह प्रकार के कृपा—मूय प्याग , लोभ, मोह सभी और सभी के शान्त भाव में रहने वाले मुमुक्षुजन मुझसे जान में कर्म-यन्त्रों को छोड़कर ध्याने द्वारा मुझ में ही प्रवेश करते हैं ॥७६॥ मुझमें वसो जानि-धर्म है न वेद-ध्यान का ज्ञान है न ध्यान-योग

न जातिधर्माणि न वेदशास्त्रं, न ध्यानयोगो न 'समाधिधर्मं	।
रुद्र शिव शंकर शान्तचित्त, भक्त्या देव सोममहं नमस्ये	॥७७॥
मूर्खोऽपि शभो तव पादभवत्या, समाप्नुयान्मुक्तिमयीं तनु ते	।
ज्ञानेषु यज्ञेषु तपसु चैव, ध्यानेषु होमेषु महाफलेषु	॥७८॥
सपन्नमेतत्फलमुत्तमं यत्सोमेश्वरे भक्तिरर्हतिश यत्	।
स्वर्गस्य जीवस्य सदा प्रियस्य, फलस्य दृष्टस्य तथा श्रुतस्य	॥७९॥
स्वर्गस्य मोक्षस्य जगन्निवास, सोपानपङ्क्तिस्तव भक्तिरेषा	।
स्वत्पादसंप्राप्तिकलाप्तये तु, सोपानपङ्क्तिं न वर्दन्ति धीरा	॥८०॥
तस्माद्दयालो मम भक्तिरस्तु, नैवास्त्युपायस्तव रूपसेवा	।
आत्मीयमालोक्य महत्त्वमोश, पापेषु चास्मासु कुरु प्रसादम्	॥८१॥
स्थूलं च सूक्ष्मं त्वमनादि नित्यं, पिता च माता यदसच्च सच्च	।
एव स्तुतो यः श्रुतिभिः पुराणैर्नामभिः सोमेश्वरमोक्षितारम्	॥८२॥

ब्रह्मोवाच

ततः प्रीतो हरिहराबूचतुस्त्रिदशेश्वरौ	॥८३॥
--------------------------------------	------

हरिहराबूचतु

श्रियता यमनोभीष्टं यद्गुरोर्चातिदुर्लभम्	॥८४॥
--	------

का बल है और न समाधि धर्म ही है। मैं केवल भक्तिपूर्वक शान्तचित्त रुद्र शिव शंकर और सोमदेव को नमस्कार करता हूँ ॥७७॥ शभो! मूल भी तुम्हारे चरणों की भक्ति से आपके मुक्तिमय शरीर को प्राप्त कर लेता है। ज्ञान यज्ञ तपस्या ध्यान होम महान् फल वाले कार्यों का उत्तम फल यही है कि मगवान् सोमेश्वर के चरणों में सर्वदा अवलम्बित हो ॥७८॥ जगन्निवास! आपकी यह भक्ति स्वर्ग के फल तथा जीवों को प्रिय लगने वाले दृष्ट एवं श्रुत फल और स्वर्ग तथा मोक्ष (प्राप्त करने) की सीढ़ियाँ की परम्परा है ॥७९॥ परन्तु धीर पुरुष तुम्हारे चरणों तक पहुँचा देने के लिये इस सीढ़ियों के मिलसिले को नहीं बताते हैं ॥८०॥ इसलिये हे दयालो! तुममें मेरी भक्ति हो तुम्हारी रूप सेवा (भक्ति) वे अतिरिक्त मेरे लिये और कोई उपाय नहीं है। ईश! अपनी महता का ध्यान कर हम पापात्माओं के ऊपर आप प्रसन्न होइए ॥८१॥ श्रुतिशा और पुराणों ने स्थूल सूक्ष्म अनादि नित्य पिता माता असत् और सत् कहकर त्रिसकी स्तुति की है उस प्रभु सोमेश्वर को नमस्कार करता हूँ ॥८२॥

ब्रह्मा न ब्रह्मा—तत्पत्नर देवेश हरि और हर प्रसन्न होकर बोले ॥८३॥

हरिहर ने कहा—तुम लोगो को जो अभीष्ट हो और जो अतिदुर्लभ चर हो वह माँगो ॥८४॥

ब्रह्मोवाच

इन्द्र प्राह सुरेशान मद्राज्य तु पुन पुन । जायते नश्यते चैव तत्पापमुपशाम्यताम् ॥८५॥
यथा स्थिरोऽहं राज्ये स्या सर्वं स्यान्निश्चल मम । सुप्रीतो यदि देवेशो सर्वं स्यान्निश्चल सदा ॥८६॥
तथेति हरिवाक्यं तावन्निश्चयेदमूचतु । परं प्रसादमापन्नी तावालोच्य स्मिताननो ॥८७॥
निरपायनिराधारनिर्विकारस्वरूपिणी । शरण्यां सर्वलोकानां भुक्तिमुक्तिप्रदावुभौ ॥८८॥

हरिहरावूचतु

निर्देवत्व महातीर्थं गौतमी घाञ्छिन्नप्रदा । तस्यामनेन मन्त्रेण कुरुता स्नानमादरात् ॥८९॥
अभिषेकं महेंद्रस्य मङ्गलाय बहस्पति । करोतु सम्मरप्राया सपदा स्वैर्यसिद्धये ॥९०॥
इह जन्मनि पूर्वस्मिन् यत्किञ्चित्सुकृतं कृतम् । तत्सर्वं पूर्णतामेतु गोदावरि नमोऽस्तु ते ॥९१॥
एव स्मृत्या तु यः कश्चिद्गौतम्यां स्नानमाचरेत् । आवागम्य तु प्रसादेन धर्मं सपूर्णतामिष्यति ॥
पूर्वंजन्मकृतादोषात्स मुक्त पुण्यदानभवेत् ॥९२॥

ब्रह्मोवाच

तथेति चक्षतु प्रीतो सुरेन्द्रधिपणी सत । महाभिषेकमिन्द्रस्य चकार द्युसदा गुह ॥९३॥
तेनाभूया नदी पुण्या मङ्गलेत्युदिता तु सा । तया च सगम पुण्यो गङ्गाया शुभदस्त्वसौ ॥९४॥
इन्द्रेण सस्तुतो विष्णु प्रत्यक्षोऽभूजगमप । त्रिलोकसमिता शक्नो भूमिं तमे जगत्पते ॥९५॥

ब्रह्मा ने कहा—इन्द्र ने गङ्गा से कहा—जिस पाप से बार बार मेरा राज्य होता है और नष्ट हो जाता है उस पाप को गाल्ग कीजिये । यदि आज दोनः देवों परम प्रसन्न हैं तो मैं जिस प्रकार अपने राज्य पर स्थिर हो जाऊँ और सब पर मेरा अधिकार अचल हो जाय वैसा कीजिये । विष्णु ने ऐसा ही हो यह कहा । इस स्वीकारात्मक भाषी को सुनकर उन दोनः ने अभिनन्दन किया और पुन कहा—अविनाशी निराधार निर्विकारस्वरूप समस्त लोको के रक्षक और भोग-भोग देने वाले आप दोनों को प्रसन्नमुख देखकर हम दोनों अत्यन्त आनन्दित हो गए ॥८५ ८८॥

हरिहर ने कहा—यह त्रिक्रम (तीन देवताओं वाला) महानीच है और यह गौतमी घाञ्छित फल को देने वाली है । जगमे इस (निम्नलिखित) मन्त्र से भक्तिपूर्वक स्नान करो । बहस्पति इन्द्र के कल्याण तथा सम्पत्ति की स्थिरता के लिए हम दोनों का स्मरण करते हुए देवराज का अभिषेक कर । (स्नान-मन्त्र) इस जन्म मे तथा पूर्व जन्म मे जो कुछ मैंने श्राव्य कर्म किये हैं वे सब (कर्म) पूण हो जाय । हे गोदावरी ! आपको नमस्कार है । इस प्रकार स्मरण कर जो कोई गौतमी मे स्नान करता है उसका सञ्चित धर्म हम लोग की कृपा से पूण हो जाता है और यह पूर्व जन्म के किये दोषों से मुक्त हो पुण्यवान् हो जाता है ॥८९ ९२॥

ब्रह्मा ने कहा—इसने उपरान्त महेंद्र और वाचस्पति ने ऐसा ही करके यह कहकर प्रसन्न हो वाप्य प्रारम्भ किया । देव-मुद ने इन्द्र का मन्त्राभिषेक किया । उस अभिषेक-काल मे जो नदी उत्पन्न हुई वह पवित्र मंगला नाम मे प्रसिद्ध हुई । गंगा के साथ उसका सगम पवित्र और शुभप्रद हुआ । इन्द्र की स्तुति से जग-मूर्ति विष्णु वहाँ प्रत्यक्ष हुये । उस जगत्पति की कृपा से इन्द्र ने त्रिलोक-भूजित (भूमि) प्राप्त की । इसलिये वहाँ 'गोविन्द' इस नाम से

तन्नाम्ना चापि विख्यातो गोविन्द इति तत्र च । त्रिलोकसंमिता लब्धा तेन गौर्वञ्छधारिणा ॥९६॥
 दत्ता च हरिणा तत्र गोविन्दस्तदभूद्धरिः । त्रिलोक्यराज्यं यत्प्राप्तं हरिणा च हरेर्मुने ॥९७॥
 निश्चलं येन (तच्च) संजातं देवदेवान्महेश्वरम् । बृहस्पतिर्देवगुर्यत्रास्तौपीन्महेश्वरम् ॥९८॥
 राज्यस्य स्थिरभावाय देवेन्द्रस्य महात्मनः । सिद्धेश्वरस्तत्र देवो लिङ्गं तु त्रिदशाक्षितम् ॥९९॥
 ततः प्रभृति तत्तीर्थं गोविन्दमिति विश्रुतम् । भङ्गलासंगमं चैव पूर्णतीर्थं ततः परम् ॥१००॥
 इन्द्रतीर्थमिति ह्यतः बाह्यस्थलं च विश्रुतम् । यत्र सिद्धेश्वरो देवो विष्णुर्गोविन्द एव च ॥१०१॥
 तेषु स्नानं च दानं च यत्किञ्चित्सुकृतार्जनम् । सर्वं तदक्षयं विद्यात्पितृणामतिबलभम् ॥१०२॥
 शृणोति यश्चापि पठेद्यश्च स्मरति नित्यशः । तस्य तीर्थस्य माहात्म्यं भ्रष्टराज्यप्रदायकम् ॥१०३॥
 सप्तत्रिंशत्सहस्राणि तीर्थानि तोरयोर्द्वयोः । उभयोर्मुनिशार्दूल सर्वसिद्धिप्रदायिनाम् ॥१०४॥
 न पूर्णतीर्थसदृशं तीर्थमस्ति महाफलम् । निष्फलं तस्य जन्मादि यो न सेवेत तन्नरः ॥१०५॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्य उभयोस्तोरयोः पूर्णतीर्थमङ्गलासंगम-

गोविन्दसिद्धेश्वरादिसप्तत्रिंशत्सहस्रतीर्थवर्णनं नाम द्वाविंशत्यधिक-

शततमोऽध्यायः ॥१२२॥

श्रीतमोमाहात्म्ये त्रिपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥५३॥

विख्यात द्वये, क्योंकि उस बग्यधारी इन्द्र ने वहाँ त्रिलोक्यपूजित गौ (भूमि) प्राप्त की। विष्णु ने वहाँ इन्द्र को गौ
 वी धी, इसलिए हरि गोविन्द हो गये। मुने! विष्णु से इन्द्र ने जो त्रिलोक्य राज्य प्राप्त किया वह राज्य
 देवाधिदेव महेश्वर की कृपा से अचल हो गया। देव-गुरु बृहस्पति ने वहाँ महारामा देवेन्द्र के राज्य की स्थिरता के
 लिये महेश्वर की स्तुति की, वहाँ सिद्धेश्वर देव और देवपूजित लिंग की स्थापना की गई। उस समय से वह तीर्थ
 गोविन्द नाम से प्रसिद्ध हो गया। इसके पश्चात् ममला-संगम, पूर्णतीर्थ, इन्द्रतीर्थ और बृहस्पति तीर्थ विख्यात तीर्थ द्वये।
 जहाँ सिद्धेश्वर देव विष्णु और गोविन्द (इन्द्र) स्थित हैं, उन तीर्थों में स्नान करने और दान देने से जो कुछ पुण्य
 प्राप्त होते हैं, वे सब अक्षय होते हैं और उनसे पितरों को अत्यन्त प्रसन्नता मिलती है। उस तीर्थ के माहात्म्य
 को जो कोई नित्य पढ़ता है, या स्मरण करता है उसका गया दुःख राज्य और नष्ट वैभव पुनः प्राप्त हो जाते हैं।
 भुनिकर! उस पुण्य सालिला नदी के दोनों तटों पर सब प्रकार की सिद्धियाँ प्रदान करने वाले सौतेल हजार तीर्थ
 हैं। पूर्ण तीर्थ के समान उत्तम फल देने वाला कोई भी तीर्थ इस भूमण्डल पर नहीं है। उस मनुष्य के जन्म आदि
 निष्फल है जो इस पूर्णतीर्थ का सेवन नहीं करता है ॥९३-१०५॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में पूर्णतीर्थ, मङ्गला तीर्थ आदि सौतेल हजार तीर्थों का

माहात्म्य-वर्णन नामक एक सौ आठवाँ अध्याय समाप्त ॥१२२॥

१५ च तत्प्राप्तः । २६ ०३ तर्हि देवाः । ३५ च ०४ त्रिलोच नीरवा महे० । ४ ०४ स्तत्र स्याप्य महे० ।
 ४५ च ०४ तां प्रायादे० । ४ ०४ तां प्राय दे० । ५५ च ०५ चेति तत्र स्नात्वा शुक्तिमैवेत् । ६० । ६७. च
 ७३ । ७४. तत्र । ८५ ह च ०५ । यत्र सिद्धेश्वरो देवो गोविन्दो जननन्तः । ८० ।

अथ त्रयोविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

रामतीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

तीर्थमिति ख्यातं भूणहत्यादिनाशनम् । तस्य श्रवणमात्रेण सर्वपापं प्रमुच्यते ॥१॥
 कुवशप्रभवः क्षत्रियो लोकविभूतः । बलवान्मतिमाञ्जुरो यथा शक्रः पुरन्दरः ॥२॥
 पैतामहः राज्यं कुर्वन्नास्ते यथा बलिः । तस्य तिलो महिष्यः स्यू राज्ञो दशरथस्य हि ॥३॥
 ल्या च सुमित्रा च कंकेयो च महामते । एता कुलीना सुभगा रूपलक्षणसमुता ॥४॥
 मन्त्राजनि राज्ये तु स्थितेऽयोध्यापती मुने । वसिष्ठे ब्रह्मविच्छेदो पुरोधसि विशेषतः ॥५॥
 व ध्याधिर्न दुर्भिक्षः न चावृष्टिर्न चाऽऽधयः । ब्रह्मक्षत्रविशा नित्यं शूद्राणां च विशेषतः ॥६॥
 मणा तु सर्वेषामानन्दोऽभूत्पूयवपूयक् । तस्मिञ्ज्ञासति राजेन्द्र इदवाकूणा कुलोद्भवे ॥७॥
 ना दानवानां तु राज्याय विप्रहोऽभवत् । ववापि तत्र जयः प्राप्नुर्वेवा ववापि तथैतरे ॥८॥
 प्रवर्तमाने तु ब्रंलोच्यमतपोडितम् । अभून्नारदः तत्राहमवद दैत्यदानवान् ॥९॥

अध्याय १२३

रामतीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा ने कहा—गमहत्या के पाप को दूर करने वाला रामतीर्थ नामक एक तीर्थ है। उसके नामश्रवण से मनुष्य सब पापों से छूट जाता है ॥१॥ इदवाकुवशी विश्व प्रसिद्ध बलवान् क्षत्रिय राजा दशरथ इन्द्र के पुत्र शूर और बुद्धिमान् थे ॥२॥ वे बलि के समान अपने पिता पैतामह के राज्य का पालन करते थे। उस राजा रथ की दीन रानिया थी ॥३॥ महामते । उनके नाम कौशल्या कंकेयी और सुमित्रा थे। वे कुलीन भाग्यशालिनी रूप-रक्षण-संपन्ना थी ॥४॥ मुने । उस अयोध्यापति राजा दशरथ के शासन काल में विशेषकर महाब्रह्म ती वसिष्ठ के पुरोहित रहते ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य और विशेषतया शूद्र को कभी भी मानसिक पीड़ा व्याधिरूप अथवा अवृष्टि (भूखा) इत्यादि से वृष्ट नही होता था ॥५॥ ६॥ इदवाकु-कुल की मर्यादा बढ़ाने वाले उस राजेन्द्र शासन में सब आश्रमों को पूय-पूयक दृष्टानुबल आनन्द प्राप्त था ॥७॥ इसी समय देवताओं और दानवा मे ल के लिये युद्ध हो गया । वही पर राक्षसों की विजय तो किसी भोच पर देवों की विजय हुई ॥८॥ इस प्रकार युद्ध जाने पर वि भुवन दुःख से काप उठा। नारद । यह देखकर मैंने दैत्य दानवों और विशेषकर देवताओं को शायी परन्तु उन रण-बुमदों ने मेरा कहना नहीं सुना ॥९॥ प्रत्युत पुनः उनमें परस्पर अति भयंकर युद्ध छिड़

१६ च ०१ ब्रह्मह० । २३ ०२ स्मरण० । ३६ ड च ० प्रवरः क्ष० । ४७ च ० हे । एतस्मिन्नन्तरे महत्पापमुपस्थितम् । ६० ।

देवांसचापि विशेषेण न कृतं तैर्मदीरितम् । पुनश्च संगरस्तेषा बभूव सुमहान्मिथः ॥१०॥
 विष्णुं गत्वा सुराः प्रोचुस्तथेशानं जगन्मयम् । तावूचतुह्यो देवानसुरान्देत्यदानवान् ॥११॥
 तपसा बलिनो यान्तु पुनः कुर्वन्तु संगरम् । तथेत्याहुर्मयुः सर्वे तपसे नियतव्रताः ॥१२॥
 ययुस्तु राक्षसान्देवाः पुनस्ते मत्सरांविताः । देवानां दानवाना च संगरोऽभूत्सुदारुणः ॥१३॥
 न तत्र देवा जेतारो नैव दैत्याश्च दानवाः । संयुगे चर्तमाने तु बागुवाचाशरीरिणी ॥१४॥

आकाशबागुवाच

येषां दशरथो राजा ते जेतारो न चेतरे ॥१५॥

ब्रह्मोवाच

इति श्रुत्वा जयायोभौ जग्मतुर्देवदानवौ । तत्र बायुस्त्वरन्प्राप्तो राजानमवदत्तदा ॥१६॥

वायुरुवाच

आगन्तव्यं ह्येषा राजन्देवदानवसंगरे । यत्र राजा दशरथो जयस्तनेति विभ्रुतम् ॥१७॥
 तस्मात्त्वं देवपक्षे स्या भवेपुर्जपिनः सुराः ॥१८॥

ब्रह्मोवाच

तद्वायुवचनं श्रुत्वा राजा दशरथो नृपः । आगम्यते मया सत्यं गच्छ बायो ययासुखम् ॥१९॥
 गते बायो तदा दैत्या आजगमुर्भूषति प्रति । तेष्यूचुर्भगवन्नरमासाहाय्यं वर्तुमर्हसि ॥२०॥

गया । देवताओं ने विष्णु और जगद्गुरु वाकर से सारा वृत्तान्त वह सुनाया । उन दोनों देवताओं ने देव, असुर, दैत्य और दानव सबको एकत्र कर कहा कि पहले तपस्या से बल प्राप्त करो, फिर युद्ध करना । दोनों पक्ष वालों ने इस आदेश को स्वीकार किया और उमयपक्ष दुर्बल होकर तपस्या के लिये चले गये । यद्यपि वे दोनों (राक्षस और देवता) गये तो परन्तु पुन वे ईर्ष्या करने लगे, जिसके परिणामस्वरूप पुन अति कठिन युद्ध छिड़ गया । परन्तु उस युद्ध में न तो देवता ही विजयी हुये और न दानव ही । इसी बीच युद्ध के अवसर पर आकाशवाणी हुई ॥१०-१४॥

आकाशवाणी ने कहा—जिनके पक्ष में राजा दशरथ रहेगे वे ही जीवेंगे, हारने नहीं ॥१५॥

ब्रह्मा ने कहा—यह सुनकर दोनों देव और दानव विजय की इच्छा से राजा दशरथ के पास पहुँचने लगे ।

(उनमें से देव-पक्ष के दूत) बायु ग्रीष्म राजा के पास पहुँच गये और राजा से बोले ॥१६॥

वायु ने कहा—राजन् ! देव-दानवों के युद्ध में आपको आना चाहिये, क्योंकि जिस ओर आप रहेगे वही पक्ष विजयी होगा यह बात प्रसिद्ध है । इसलिये आप देव-पक्ष में रहे, जिससे देव विजयी हो जायें ॥१७-१८॥

ब्रह्मा ने कहा—वायु की बात सुनकर राजा दशरथ ने कहा कि आप मुझपूर्वक जाइयें, मैं अवश्य आपसे पक्ष में आऊँगा । जब वायु चले गये तब दैत्य भी राजा के समीप आये । उन लोगों ने भी कहा—'मगवन् ! हम लोगों

राजन्दशरथ श्रीमन्विजयस्त्वयि सस्थित । तस्मात्त्व वं दैत्यपते साहाय्य कर्तुमर्हसि ॥२१॥
 तत प्रोवाच नृपतिर्वियुना प्रार्थित पुरा । प्रतिज्ञात मया तच्च यान्तु दैत्याश्च दानवा ॥२२॥
 स तु राजा तथा चक्रे गत्वा चैव त्रिविष्टपम् । युद्ध_चक्रे तथा दैत्यैर्दानवै सह राक्षसै ॥२३॥
 पश्यत्सु देवसंघेषु नमुचेर्भ्रतरस्तदा । विविधुर्निशितैर्बाणैरथाक्ष नृपतेस्तथा ॥२४॥
 भिन्नाक्ष त रथ राजा न जानाति स सभ्रमात् । राजान्तिके स्थिता सुभ्रू कंकेय्याञ्जायि नारद ॥२५॥
 न शापित तथा राजे स्वयमालोक्य सुव्रता । भग्नमक्ष समालक्ष्य चक्रे हस्त तदा स्वकम् ॥२६॥
 अक्षवन्मुनिशार्दूल तदेतन्महद्भुतम् । रथेन रथिनां ॥ श्रेष्ठस्तथा दत्तकरेण च ॥२७॥
 जितवान्दैत्यदनुजान् देवै प्राप्य धरान्बहून् । ततो देवैरनुज्ञातस्त्वयोध्या पुनरभ्यगात् ॥२८॥
 स'तु मध्ये महाराजो मार्गे वीक्ष्य तदा प्रियाम् । कंकेय्या कर्म तद्दृष्ट्वा विस्मय परम गत ॥२९॥
 ततस्तस्यै धरान्प्रादात्त्रींस्तु नारद सा अपि । अनुमान्य नृपप्रोक्त कंकेयी वाक्यमब्रवीत् ॥३०॥

कंकेय्युवाच

स्वयि तिष्ठन्तु राजेन्द्र त्वया दत्ता वरा अमी

॥३१॥

की सहायता कीजिये । श्रीमान् । राजन् । दशरथ । विजय आप ही के हाथ में है । इसलिये आप अवश्य दैत्यपति की सहायता कीजिये । यह सुनकर राजा ने कहा—बापु ने पहले ही आकर प्राथना की है मैंने भी उस प्राथना के अनुसार जाने की प्रतिज्ञा कर ली है अतः (आप) दैत्य दानव चले जाय । उस राजा ने अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार स्वयं आकर दैत्य दानव तथा राक्षसों के साथ युद्ध किया । उस समय देवताओं के देखते देखते नमचि ने भाइयों ने राजा के रथ की घुरी को तीखे बाणों से लोड़ डाला । यह राजा युद्धरत होने के कारण इस घटना को न जान सका परन्तु नारद । उसके समीप बैठी हुई सुंदर भी वाली कंकेयी ने जान लिया । उस मुज्रता ने स्वयं देखकर भी राजा को नहीं बताया अपितु अपना हाथ घुरी की जगह लगा दिया । मनिबर ! उसने यह बड़ा अदभुत काय किया । रथियों में श्रेष्ठ राजा दशरथ ने उसी रथ पर बैठ कर दैत्य दानवा को जीता और देवताओं से अनेका वर प्राप्त किये । तदनन्तर देवताओं से साबर बिदा हो पुनः अयोध्या पुरी को लौट आये । उस समय माग म राजा अपनी प्रिया को देखकर और कंकेयी के उस अति अदभुत कर्म को जानकर अत्यन्त आश्चर्यचकित हो गया । नारद । तब (उसके इस कर्म से वृत्त हो) राजा ने रानी को तीन वर दिये । कंकेयी ने भी राजा ने दिये तीन वरों को स्वीकार कर राजा से कहा—॥१९३०॥

कंकेयी ने कहा—राजद्र ! तुम्हारे दिये ये तीन वर तब तक तुम्हारे ही पास धरोहर के रूप में रहे ॥३१॥

ब्रह्मोवाच

विभूषणानि राजेन्द्रो दत्त्वा स प्रियया सह । रथेन विजयी राजा ययौ स्वनगर सुखी ॥३२॥
 योषिता किमदेष हि प्रियाणामुचिततागमे । स कदाचिद्दशरथो मृगयाशीलिभिवृत ॥३३॥
 अटन्नरप्ये शर्वर्या वारिबन्धमयाकरोत् । सप्तव्यसनहीनेन भवितव्य तु भूभुजा ॥३४॥
 इति जानन्नपि च तच्चकार तु विधेर्वशात् । गते प्रविश्य पानार्थमागताग्निशितं शरं ॥३५॥
 मृगान्हन्ति महाबाहु शृणु कालविपर्ययम् । यत् प्रविष्टे नृपतौ तस्मिन्नेव नगोत्तमे ॥३६॥
 घृद्धो वैश्रवणो नाम न शृणोति न पश्यति । तस्य भार्या तथाभूता तावब्रूता तदा सुतम् ॥३७॥

मातापितरावूचतुः

आवा तृपातौ रात्रिश्च कृष्णा चापि प्रवर्तते । वृद्धाना जीवितं 'वृत्स्म बालरत्वमसि पुत्रक ॥३८॥
 अन्धाना अधिराणा च' वृद्धाना धिक्च जीवितम् । जराजर्जरदेहाना धिग्ध्वपुत्रक जीवितम् ॥३९॥
 तावत्पुभिर्जीवितव्य यावत्लक्ष्मोर्दुंद यपु । यावदाज्ञाप्रतिहता तीर्थादावन्यथा मृति ॥४०॥

ब्रह्मोवाच

इत्येतद्वचन श्रुत्वा वृद्धयोगुहवत्सल । पुत्र प्रोवाच तद्दुःख गिरा मधुरया हरन् ॥४१॥

ब्रह्मा ने कहा—वह विजयी राजा अपनी प्रिया को विविध आभूषण देकर प्रिया के साथ रथ से सुखपूर्वक अपने नगर को गया । सब कहा है कि उचित समय आने पर प्रिय स्त्रियों के लिये कौन सी वस्तु न देने योग्य है ?

किसी समय वह राजा गिरार के प्रेमी अनुचरों के साथ वन में ऊपर उपर घूमने लगा । रात्रि में उसने पानी को बाँपा से रोक्वा दिया । 'राजा को सात प्रकार के अमृतता स (जिनमें एक गिरार भी है) पृथक् रहना चाहिय' यह जानकर भी विधि प्रेरणा से उसने एक अनय किया । वह महापराक्रमी राजा स्वयं गड्डे में छिपकर पानी पीने के लिये आए हुए वन्य पशुजा को अपन तीछे बाणा से घारने लगा । अतः समय की कुटिलता की कहानी सुनो—उसी ऊँचे पर्वत पर—जहाँ कि राजा बहते में घूमकर आघट कर रहा था—एक वृद्ध रहता था जो न सुनता था न देखता था । उसकी स्त्री भी उसी के समान थी । उन दोनों वृद्ध दम्पति ने अपने पुत्र से कहा ॥३२-३७॥

माता पिता ने कहा—हम दोनों प्यास से व्याकुल हैं और इस समय रान अथेरी है । क्या ! कुहीं गई वृद्ध के एतमात्र जीवन हो । अथा वृद्धा और वृद्ध न जीवन को धिक्कार है । बेटा ! वृद्धापरा म जीण दारीर वाला के जीवन को धिक्कार है । धिक्कार है । 'मनुष्या को तब तक ही जीना चाहिय जब तक उनका पाग लम्बी हो तथा दारीर दुःख हो और उनकी आत्मा का बरोह-टाक पाग्न होना हो । नहीं तो उह तीनों में दारीर त्याग देना चाहिए ॥३८-४०॥

ब्रह्मा ने कहा—वृद्ध माँ-बाप की इन बातों को सुनकर अपनी मधुर वाणी से उनका दुःख को हटाता हुआ वह गुरमन पुत्र बोला ॥४१॥

पुत्र उवाच

मपि जीवति किं नाम युवयोर्दुःखमौदृशम् । न हृत्यात्मजः पित्रोर्यश्चरित्रमनोरुजम् ॥४२॥
तेन किं तनुजेनेह कुलोद्वेगविधापिता ॥ ॥४३॥

ब्रह्मोवाच

इत्युक्त्वा पितरौ नत्वा तावाश्वास्य ब्रह्ममना । तस्मिन्नेव समारोप्य बृद्धौ च पितरौ तदा ॥४४॥
हस्ते गृहीत्वा कलशं जगाम ऋषिपुत्रकः । स ऋषिर्नितु राजानं जानाति नृपतिर्द्विजम् ॥४५॥
उभौ सरभसौ तत्र द्विजा वारि समाविशत् । सत्वरं कलशे न्युञ्जे वारि गृह्णन्तमाशुगः ॥४६॥
द्विजं राजा द्विपं मत्वा विव्याध निशितं शरैः । वनद्विपोऽपि भूपानामवध्यस्तद्विदन्नपि ॥४७॥
विव्याप सं नृपः कुर्यान्न किं किं विधिवञ्चितः । स विद्वो मर्मदेशे तु दुःखितो वाक्पमव्रवीत् ॥४८॥

द्विज उवाच

केनेदं दुःखदं कर्म कृतं सद्ब्राह्मणस्य मे । मंत्रो ब्राह्मण इत्युक्तो नापराधोऽस्ति कश्चन ॥४९॥

ब्रह्मोवाच

सर्वैर्द्वचर्चं धृत्वा मुनेरातस्य भूपतिः । निश्चेष्टश्च निरुत्साहो शनैस्तं देशमभ्यगात् ॥५०॥
तं तु दृष्ट्वा द्विजवरं ज्वलन्तमिव तेजसा । असावप्यभवत्तत्र सदाल्प इव मूर्च्छितः ॥५१॥

पुत्र ने कहा—मेरे जीते जी आप लोगों को इस प्रकार दुःखी होने की क्या आवश्यकता ? जो पुत्र अपने
आवरण से माता-पिता की मानसिद्धि तथा को दूर नहीं करता उस दुःखी पुत्र से क्या लाभ ? ॥४२-४३॥

ब्रह्मा ने कहा—यह कहकर उस महामना ने अपने माता-पिता को आश्वासन दिया, पुत्र प्रणाम कर
उनको वृक्ष के स्वच्छ पर बैठा दिया और स्वयं अपने हाथ में कलश लेकर वह ऋषि-कुमार जल लेने के लिए चल पड़ा ।
उस समय न तो वह ऋषिपुत्र मृगयासक्त राजा के विषय में जानता था और न राजा ही उस द्विज का जानता था ।
दोना अपने-अपने व्यापार में आवश्यकता में अधिक शीघ्रता कर रहे थे । उस गहरे में पानी के लिए वह द्विज उतरा,
शीघ्र ही कल्प को मुकाबर पानी मरने लगा । उसी समय राजा ने उसको जगली हाथी जानकर अपने तीधे और
शीघ्रगामी बाणों में डेप डाला । 'राजा जगली हाथी को भी अवध्य समझे' यह जानते हुए भी राजा ने उसको मार
ही डाला । माग्य में प्रतारित होने पर मनुष्य क्या-क्या नहीं कर डालता है ? सर्व-स्थल में बाण लगने से वह ऋषि-
कुमार अत्यन्त पीड़ित हो बोला—॥४४-४८॥

ब्राह्मण ने कहा—आह ! मुझ निरपराध सद्ब्राह्मण के प्रति जिसने यह पीडाकारक कार्य किया ? ब्राह्मण
सत्ता गिन रहा जाता है, फिर मैंने इसे कोई अपराध भी नहीं किया है ॥४९॥

ब्रह्मा ने कहा—राजा आनं मुनि की इन बातों को सुनकर विचलित-व्यथित हो गया । उसका सारा उत्साह

आत्मानमात्मना कृत्वा स्थिरं राजाऽब्रवीदिदम्

॥५२॥

राजोवाच

को भवान्द्विजशार्दूल किमर्थमिह चाऽऽगतः । वद पापकृते मह्यं वद मे निष्कृतिं पराम् ॥५३॥

ब्रह्महर्षिभिः कितु श्वपचरपि जातुचित् । न स्पृष्टव्यो महाबुद्धे द्रष्टव्यो न कदाचन ॥५४॥

ब्रह्मोवाच

तद्वाजवचनं श्रुत्वा मुनिपुत्रोऽब्रवीद्वचः

॥५५॥

मुनिपुत्र उवाच

उत्तमिष्यन्ति मे प्राणा अतो वक्ष्यामि किंचन । स्वच्छन्दवृत्तितानाने विद्धि पाकं च कर्मणाम् ॥५६॥

आत्मार्यं तु न शोचामि बृद्धौ तु पितरो मम । तयोः शुश्रूषकः कः स्यादन्धयोरेकपुत्रयोः ॥५७॥

विना मया महारण्ये कथं तौ जीवयिष्यतः । ममाभाग्यमहो कीदृक्षितृशुश्रूषणे क्षतिः ॥५८॥

जाता मेऽद्य विना प्राणैर्हर्षा विधेः किं कृतं त्वया । तयाऽपि गच्छ तत्र त्वं गृहीतकलशस्तत्वरम् ॥५९॥

ताभ्यां देहचुषपानं त्वं यया तौ न मरिष्यतः ॥६०॥

ब्रह्मोवाच

इत्येवं श्रुतस्तस्य गताः प्राणा महाबने । विमुग्ध सशरं चापमादाप कलशं नृपः ॥६१॥

तत्रागात्स तु वेगेन यत्र बृद्धौ महाबने । बृद्धौ चापि तदा रात्रौ तावद्योग्यं समुचतुः ॥६२॥

जाता रहा । वह धीरे धीरे उस स्थान पर आया । वह तत्र से जलते हुए उस ब्राह्मणकुमार को देखकर स्वयं बाण-विद्ध-सा भूषित हो गया । धीरे-धीरे उस राजा ने अपने को सगृहलवर कहा—॥५८-५९॥

राजा ने कहा—द्विजश्रेष्ठ ! आप कौन हैं ? यहाँ किसलिए आये ? आप इस पापी से कहिये, साथ ही हम महानाथ का क्या प्रतिहार है, इसकी भी बतलाइये । महाबुद्धिमान् ! ब्रह्मपाती मनुष्य किसी वर्ण के मनुष्यों में तो कौन कहे बाणजाल से भी छूने योग्य नहीं होता । उसकी ओर देवता भी नहीं चाहिए ॥५३-५४॥

ब्रह्मा ने कहा—उस राजा की बातों को सुनकर मुनिपुत्र ने कहा ॥५५॥

मुनिपुत्र ने कहा—मेरे प्राण अभी निचल जायेंगे । इसलिये कुछ बह रहा हूँ सुता, स्वयं हा जाने वाले व्यवहारा का कारण पूर्वजन्म के बन्धों का फल समझो । मैं स्वयं अपने लिये शोक नहीं कर रहा हूँ, परन्तु मेरे बुद्ध माँ-बाप हैं, उन इकलौते पुत्र वाले अन्ये बृद्धों की सेवा करने वाला अब कौन होगा ? मेरे बिना अब हम घनपीर जंगल में वे कैसे जीवित रहेंगे ? आह ! मेरा यह सँगा दुर्भाग्य है कि मेरी मृत्यु से माता पिता की सेवा में बाधा पड़ गई । हा ! अकरण विधाता ! तुमने यह क्या किया ? तथापि तुम बन्ध से लगे और धीरे वहाँ जाओ । उनकी पानी पीने के लिये दो, जिससे कि वे दोनों मरने न पायें ॥५६-६०॥

ब्रह्मा ने कहा—इस प्रकार वह बह ही रहा था कि उसने प्राण उस महाबन में निचल गये । राजा यह देखकर बाण महिन घनपुत्र को फेंक दिया तथा स्वयं जल-जन्तु से लेकर वही भी घना में चला गया, जहाँ दोनों बृद्ध थे । वे दोनों बृद्ध भी कुछ अधिक विलम्ब होने के कारण उस समय रात्रि में ही दूगरे से बह रहे थे ॥६१-६२॥

बृद्धावूचतुः

उद्विग्न. कुपितो वा स्यादथवा भक्षितः कथम् । न प्राप्तश्चाऽऽवयोर्यष्टिः किं कुर्मः का गतिर्भवेत् ॥६३॥
न कोऽपि तादृशः पुत्रो विद्यते सचराचरे । यः पित्रोरन्यथा चावयं न करोत्यपि निन्दितः ॥६४॥
यच्चादपि कठोरं वा जीवितं तमपश्यतोः । शीघ्रं न यान्ति यत्प्राणास्तदेकायत्तजीवयो ॥६५॥

ब्रह्मोवाच

एवं बहुविधा याचो बृद्धयोर्वंदतोर्वने । तदा दशरथो राजा शनैस्तं देशमभ्यगात् ॥६६॥
पादसंचारशब्देन मेनाते सुतमगतम् ॥६७॥

बृद्धावूचतुः

कुतो बलस चिरात्प्राप्तस्त्व दृष्टिस्त्व परायणम् । न भूये किंतु दृष्टोऽसि बृद्धयोरन्ययोः सुतः ॥६८॥

ब्रह्मोवाच

सशल्य इव दुःखातः शोचन्दुःकृतमात्मनः । स भीत इव राजेन्द्रस्तावुवाचाय नारद ॥६९॥
उदयानं च कुलां तच्छ्रुत्वा मृगभाषितम् । नायं वक्ता सुतोऽस्माकं की भवास्तत्पुरा वद ॥७०॥
पश्चात्पिबावः पानीय ततो राजाऽब्रवीच्च तौ ॥७१॥

राज्ञोवाच

तत्र तिष्ठति वा पुत्रो मय्य चारितमश्रयः ॥७२॥

बृद्धो ने कहा—क्या वह ऊब गया या कुपित हो गया ? अथवा जगली जानवर ने उसको खा डाला ? माह ! वह हम लोग के हाथ की रजड़ी (साहगर) नहीं आया । क्या करें ? हम लोगों की उसने बिना क्या गति होगी ? अश्लिष चराचरात्मक जगत् में उसने समान कोई भी पुत्र नहीं, जो दौड़ने-पड़कारने पर भी माता के कहने के विरुद्ध काम नहीं करता । हम लोगों का जीवन वयस से भी अधिक कठोर है जो उसको न देखकर उसी के सहारे जीने-वाले हमारे प्राण शीघ्र नहीं निरलते ॥६३-६५॥

ब्रह्मा ने कहा—इस प्रकार की बहुत सी बातें वे दोनों बृद्ध उस वन में कह रहे थे कि इतने में राजा दशरथ पीरे से उस स्थान पर पहुँचा । उसने पीर की आहट पाकर दोनों न समझा कि उनका त्रिष-मुत्र आ गया ॥६६-६७॥

बृद्धों ने कहा—बल ! क्यों इतने विलम्ब में आय ? तुम हमारे नष्ट हो, एकमात्र आधार हो, बोलने नहीं हो, क्या इन यूँ अन्धों के पुत्र तुम दृष्ट हो गये हो ? ॥६८॥

ब्रह्मा ने कहा—इन शत्रुओं को गुनकर वह राजा मानो बाणों से आहत-म्रा हो गया । दुःख से उसको तीव्र वेदना हुई । नारद ! पार का स्मरण करते हुए उस राजेन्द्र ने दौड़ते-दौड़ते उन दोनों बृद्धों ने कहा—‘यह जन्म पीत्रिये !’ राजा की उन बोली को गुनकर उन दोनों ने कहा—‘यह बल्ता मेरा पुत्र नहीं जान पड़ता । अतः आप पहले यह बतलाइये कि आप कौन हैं, पीछे हम जन्म ग्रहण करेंगे ।’ यह गुनकर राजा ने उनमें कहा ॥६९-७१॥

राज्ञा ने कहा—इस समय आपका पुत्र जन्मग्रहण के तट पर पहुँचा हुआ है ॥७२॥

ब्रह्मोवाच

तच्छ्रुत्वोचतुरातो तौ सत्यं ब्रूहि न चाग्यथा । आचक्षते ततो राजा सर्वमेव यथातथम् ॥७३॥
ततस्तु पतितो बृद्धो तत्राऽऽव नय मा स्पृश । ब्रह्मघ्नस्पर्शनं पापं न कदाचिद्विनश्यति ॥७४॥
नित्ये च श्रवणं बृद्ध सभार्यं नृपसत्तमः । यत्रासी पतितः पुत्रस्तं स्पृष्ट्वा तौ विलेपतुः ॥७५॥

बृद्धाबूचतुः

यथा पुत्रवियोगेन मृत्युर्नो विहितस्तथा । त्वं चापि पाप पुत्रस्य वियोगान्मृत्युमाप्स्यसि ॥७६॥

ब्रह्मोवाच

एवं तु जल्पतो ब्रह्मन्मताः प्राणास्ततो नृपः । अग्निना योजयामास बृद्धौ च ऋषिपुत्रकम् ॥७७॥
ततो जगाम नगरं दुःखितो नृपतिर्मुने । वसिष्ठाय च तत्सर्वं न्यवेदयदशेषतः ॥७८॥
नृपाणां सूर्यवदयानां वसिष्ठो हि परा गति । वसिष्ठोऽपि द्विजश्रेष्ठः संमन्त्र्याऽहं च निष्कृतिम् ॥७९॥

वसिष्ठ उवाच

गालवं वामदेवं च जाबालिमय कश्यपम् । एतान्ग्यान्समाहूय हयमेधाय यत्नतः ॥८०॥
यजस्व हयमेधैश्च बहुभिर्बहुवक्षिणैः ॥८१॥

ब्रह्मा ने कहा—यह सुनकर उन दुखी बृद्धो ने कहा—‘सच्ची बात कहो शूरी मत बोलो । तदनन्तर राजा ने सत्य सत्य आदि से अन्त तक सब कुछ कह सुनाया । यह सुनकर वे दोनों बृद्ध मुच्छित हो नीचे गिर पड़े । पुनः कुछ अपने को सम्हाल कर उन्होंने कहा कि हम दोनों को वहाँ से चलो, परन्तु धीरे-धीरे मत करो, क्योंकि ब्रह्महत्या करने वाले के स्पर्श से जो पाप होता है वह कभी भी दूर नहीं होता है । अन्त में वह राजापि बृद्ध श्रवण को स्वीकृतित वहाँ लिवा ले गया जहाँ उनका वह प्यारा पुत्र मरा पड़ा हुआ था । उसका स्पर्श कर वे दोनों विलाप करने लगे ॥७३-७५॥

बृद्ध ने कहा—जिस प्रकार पुत्र-वियोग से हम दोनों की मृत्यु हो रही है उसी प्रकार ऐ पापी ! तू भी अपने पुत्र के वियोग से मरेगा ॥७६॥

ब्रह्मा ने कहा—इस प्रकार कहन हुए उन दोनों ने प्राण-त्याग कर दिया । इसके बाद राजा ने अग्नि में उन दोनों बृद्धों और ऋषि-मुनियों की दाह क्रिया की । मुने ! तब वह राजा अति दुखी हो नगर की ओर लौटा । नगर जाकर उमते गुरु वसिष्ठ से सारा वृत्तान्त पूर्णरूप से कह सुनाया । गुरु वसिष्ठ ही सूर्यवन्ती राजाओं के एकमात्र गति (आधार) थे । उन्होंने भी अनेक धेष्ट ब्राह्मणों से परामर्श कर हयपात्र की निष्कृति (उद्धार) बनाई ॥७७-७९॥

वसिष्ठ ने कहा—गालवं वामदेव जाबालि और कश्यप इनकी तथा अन्य ऋषियों को हयमेध यज्ञ के नित्ये विधिपूर्वक निमन्त्रण देकर बुझाओ । फिर अनेक उत्तम दक्षिणावाले अरवमेध यज्ञ करा ॥८०-८१॥

ग्रहोवाच

अकरोद्धयमेधाश्च राजा दशरथो द्विजं । एतस्मिन्नन्तरे तत्र बागुवाचाशरीरिणी ॥८२॥

आकाशवाभ्युवाच

पूत शरीरमभवद्वाजो दशरथस्य हि । ध्यवहार्यश्च भविता भविष्यति तथा सुता ॥
ज्येष्ठपुत्रप्रसादेन राजाऽपापो भविष्यति ॥८३॥

ब्रह्मोवाच

ततो बहुतिथे काले ऋष्यभृङ्गान्मनोऽवरात् । देवानां कार्यसिद्धयर्थं सुता आसन्सुरोपमा ॥८४॥
कौशल्याया तथा राम सुमित्राया च लक्ष्मण । दानुघ्नश्चापि कंकण्या भरतो मतिमत्तर ॥८५॥
ते सर्वे मतिमन्तश्च प्रिया राजो वशे स्थिता । त राजानमृषिं प्राप्य विश्वामित्र प्रजापति ॥८६॥
राम च लक्ष्मण चापि अदाचत महामते । यज्ञसरक्षणार्थं ज्ञाततन्महिमा मुनि ॥८७॥
चिरप्राप्तसुतो वृद्धो राजा नैवेत्यभाषत ॥८८॥

राजोवाच

महता दैवयोगेन क्वचिद्द्वार्धके मुने । ज्ञातावानन्दसदोद्वापकी मम बालकौ ॥८९॥
सशरीरमिव राज्य दास्ये नैव सुताविमो ॥९०॥

ग्रह्या ने कहा—राजा दशरथ ने गुरु के आदेशानुसार अनेको अश्वमेध यज्ञ किये । इसी बीच वहाँ आकाश वाणी हुई ॥८२॥

आकाशवाणी ने कहा—अब राजा दशरथ का शरीर पवित्र हो गया । अब इनके साथ (सामाजिक) व्यवहार किया जाता चाहिये । उनके पुत्र उत्पन्न होंगे । और अपन जेठे पुत्र के पुण्यप्रभाव से ये राजा निष्पाप हो जायेंगे ॥८३॥

ग्रह्या ने कहा—कुछ समय बीत जाने के बाद मुनीन्दर ऋष्यभृङ्ग के प्रभाव से देवों की काय सिद्धि के लिये राजा के देव तुल्य चार पुत्र उत्पन्न हुए । वीरशल्या से राम सुमित्रा से लक्ष्मण और दानुघ्न तथा कंकण्या से भरत नाम के महाबुद्धिमान् पुत्र उत्पन्न हुए । ये सभी बुद्धिमान् बालक राजा के प्रिय और वशवर्त्ति थे । महाबुद्धिमान् । एक बार प्रजापति ऋषि विश्वामित्र उस राजा के पास आये और यज्ञ की रक्षा के लिये राम और लक्ष्मण को माँगने लगे । क्योंकि तत्त्वदर्शी मुनि उन दोनों पराक्रमी बालकों की महिमा को जानते थे । परन्तु वृद्ध राजा दशरथ ने चिरकाल के बाद प्राप्त इन दोनों पुत्रों को देने में आनाजानी की और कहा ॥८४ ८८॥

राजा ने कहा—मुने ! बहुत बड़ी दैवशृणा से किसी प्रकार इस वृद्धावस्था में अपार आनन्द देने वाले ये दोनों पुत्र मुझे प्राप्त हुए हैं । अब मैं शरीर व सहित अपना सारा राज्य दे सकता हूँ परन्तु ये दोनों पुत्र नहीं दूंगा ॥८९ ९०॥

ब्रह्मोवाच

वसिष्ठेन तदा प्रोक्तो राजा दशरथस्त्विति

॥९१॥

वसिष्ठ उवाच

रथं प्रार्थनाभङ्गं न राजन्ववापि शिक्षता

॥९२॥

ब्रह्मोवाच

रामं च लक्ष्मणं चैव कथंचिदवदन्पुत्र

॥९३॥

राजोवाच

विश्वामित्रस्य ब्रह्मर्षे कुरुता (त) यजरक्षणम्

॥९४॥

ब्रह्मोवाच

यदत्रिति सुतो सौम्य निदशसन्तुलपिताधर । पुत्री समर्पयामास विश्वामित्राय 'शास्त्रकृत् ॥९५॥
 तथेत्युक्त्वा दशरथ नमस्य च पुन पुन । जन्मतू रक्षणार्थाय विश्वामित्रेण तौ मुदा ॥९६॥
 ततः प्रहृष्ट 'स मुनिर्मुदा प्रादात्तदोभयो । माहेस्वरीं महाविद्यां धनुर्विद्यापुरसराम् ॥९७॥
 शास्त्रीमास्त्रीं लौकिकीं च रथविद्यां गजोद्भ्राम् । अश्वविद्यां गदाविद्यां मन्त्राह्वानविस्मर्जने ॥९८॥
 सर्वविद्यामयावाप्य उभौ तौ रामलक्ष्मणौ । बभौकस्य हितार्थाय जन्मवृत्तादका वने ॥९९॥
 अहल्यां शापनिर्मुक्ता पादस्पर्शाच्च क्षत्रतु । यज्ञविध्वंसनायाताञ्जघ्नपुत्रतश्च राक्षसान् ॥१००॥

ब्रह्मा ने कहा—तब वसिष्ठ ने राजा से इस प्रकार कहा ॥९१॥

वसिष्ठ ने कहा—रथविद्या ने प्राप्त की अस्वीकार कर देना वही भी नहीं सीखा है ॥९२॥

ब्रह्मा ने कहा—यह मुखवाक्य सुनकर राजा ने किसी प्रकार राम और लक्ष्मण से कहा ॥९३॥

राजा ने कहा—विश्वामित्र के यज्ञ की रक्षा करो ॥९४॥

ब्रह्मा ने कहा—इस प्रकार पुत्री को आज्ञा दते समय राजा ने धरम सात स्त्री उसके ओठ मूल मय, पिंर भी शास्त्रज्ञ राजा ने दोनों पुत्रों को विश्वामित्र के हाथ में सौंप दिया ॥९५॥ पुत्रों ने भी जैसी आज्ञा कहकर बार-बार पिता को प्रणाम किया और प्रसन्नचित्त हुए वन की गथा व लिय विश्वामित्र के साथ चले दिये ॥९६॥ तदनन्तर प्रसन्न मुनि ने आनन्दपूर्वक उन दोनों बालकों को धनुर्विद्या आदि महत्त्वपूर्ण महाविद्या एवं आह्वान और विमर्जन व मन्त्राह्वान शस्त्रविद्या अश्वविद्या लौकिक विद्या रथ विद्या हस्ति विद्या अश्व विद्या और गन्धर्व विद्या प्रदान की ॥९७-९८॥ इस प्रकार गुरु विश्वामित्र ने मनुष्य विद्या प्राप्त कर उन दोनों राम और लक्ष्मण ने वनवर्ती शत्रु-मुनिना के हित व लिय वन में ताड़ना का मार डाला ॥९९॥ अपने पावन चरणों से अहल्या को क्षाप मकर किया और यज्ञ दिव्य के लिय आय हुए यक्ष राक्षसों को बध किया ॥१००॥ उन दोनों विद्या-मुक्त

कृतविद्यो धनुष्पाणो च त्रतुयन्तरक्षणम् । ततो महामखे द्युते विश्वामित्रो मुनीश्वरः ॥१०१॥
 पुत्राभ्या सहितो राज्ञो जनकं द्रष्टुमभ्यगात् । चित्रामदर्शयत्तत्र राजमध्ये नृपात्मजः ॥१०२॥
 रामः सौमित्रिसहितो धनुर्विद्यां गुरोर्मताम् । तत्प्रोक्तो जनकः प्रादात्सीतां लक्ष्मीमयोनिजाम् ॥१०३॥
 तथैव लक्ष्मणस्यापि भरतस्यानुजस्य च । शत्रुघ्नभरतादीनां वसिष्ठादिमते स्थितः ॥१०४॥
 राजा दशरथः श्रीमान्विवाहमकरोन्मुने । ततो बहुतिथे काले राज्यं तस्य प्रयच्छति ॥१०५॥
 नृपती सर्वलोकानामनुमत्या गुरोरपि । मन्यरात्मकदुर्दैवप्रेरिता मत्सराकुला ॥१०६॥
 कंकेयी विष्णमातस्थे वनप्रयाजनं तथा । भरतस्य च तद्राज्यं राजा नैव च दत्तवान् ॥१०७॥
 पितरं सत्यवाक्यं तं कुर्वंगामो महावनम् । विवेश सीतया सार्धं तथा सौमित्रिणा सह ॥१०८॥
 सतां च मानसं द्रुष्ट्वं स विवेश स्वकंगुणैः । तस्मिन्विनिर्गते रामे धनवासाय दीक्षिते ॥१०९॥
 समं लक्ष्मणसीताभ्यां राज्यतृष्णाविर्जिते । तं रामं चापि सौमित्रिणं सीतां च गुणशालिनीम् ॥११०॥
 दुष्टेन महताऽऽविष्टो ब्रह्मशापं च संस्मरन् । तदा दशरथो राजा प्राणास्तत्याज दुःखितः ॥१११॥
 कृतकर्मविषाकेन राजा भीतो यमानुर्गः । तस्मै राज्ञे महाप्राज्ञ यावत्स्यावरजङ्गमे ॥११२॥
 यमसङ्मन्यनेकानि तामिस्रादीनि नारद । नरकाण्यथ घोरानि भीषणानि बहूनि च ॥११३॥

धनुर्पाटी कुमार ने इस प्रकार यज्ञ की रक्षा की । तदनन्तर महायज्ञ के विधिपूर्वक सम्पन्न हो जाने के बाद महा-
 मुनीश्वर विश्वामित्र उस कुमार को साथ राजा जनक को देखने के लिये जनकपुर गये ॥१०१॥ वहाँ नृप-कुमार
 राम ने लक्ष्मण के सहित उस राज-सभा में गुरु द्वारा प्राप्त और अभिमत अद्भुत धनुर्विद्या का प्रदर्शन किया ।
 उनकी कला से प्रसन्न होकर राजा जनक ने अपनी कन्या-लक्ष्मी अयोनिजा सीता राम को दे दी ॥१०२-१०३॥
 उसी प्रकार वसिष्ठ आदि गुरुजनों के कथनानुसार श्रीमान् राजा दशरथ ने भरतानुज लक्ष्मण भरत और शत्रुघ्न
 आदि भाइयों का भी विवाह कर दिया ॥१०४॥

बहुत दिन बीत जाने पर राजा ने प्रजा और गुरु की अनुमति से राम को राज्य देने का विचार किया परन्तु
 मन्यरा के रूप में आये दुर्दैव की प्रेरणा से कंकेयी ईर्ष्या से उन्मत्त हो गई ॥१०५-१०६॥ उसने इस कार्य में विघ्न
 उत्पन्न किया और राम को वन भेजने और भरत का राज्य देने का वर माँगा । किन्तु राजा ने (पुत्र-स्नेह वश)
 नहीं दिया ॥१०७॥ पितृभक्त राम अपने पिता के वचन को सत्य मिथ्य करने के लिये सीता और सुमित्रा-पुत्र लक्ष्मण
 के साथ महावन में प्रविष्ट हुए, और साथ ही अपने (उज्ज्व) गुणों के कारण सज्जनों के दृष्ट मन में भी प्रविष्ट
 हो गये ॥१०७-१०८॥ इधर वनवास के लिये दीक्षित (दृढ प्रतिज्ञ) तथा राज्य-स्नेह से रहित राम के सीता और
 लक्ष्मण के सहित चले जाने पर राम लक्ष्मण और गुणवती सीता के वियोग की महान् व्यथा से व्यथित होकर ब्रह्म-
 शाप का स्मरण करते हुए दुःखी राजा ने अपने प्राणा को छोड़ दिया ॥१०९-१११॥ तब ही कर्मों के परिणामस्वरूप
 राजा को यम के अनुचर ले गये । महाप्राज्ञ नारद । स्थावर-जगम रूप यमाचार्य में जिनने भयंकर और
 तामिस्र आदि नरक हैं, उनमें राजा (दशरथ) पृथक्-पृथक् रूप से डाले गये ॥११२-११३॥ उनको अग्नि में जलाया

१ घ ट च वृतास्त्री तो घ० । २ च तस्मिन्नाग्नि महाप्राज्ञे वा० । ३ घ ट च ० ज्ञमम् । घ० ।

तत्र क्षिप्तस्तदा राजा नरकेषु पृथक्पृथक् । पच्यते छिद्यते राजा पिध्यते' चूर्ध्वते तथा ॥११४॥
 शोष्यते दश्यते भूयो बहते च निमज्ज्यते । एवमाविषु घोरेषु नरकेषु च पच्यते ॥११५॥
 रामोऽपि गच्छन्नध्वानं चित्रकूटमथागमत् । तत्रैव श्रीणि वर्षाणि व्यतीतानि महामते ॥११६॥
 पुनः स दक्षिणामाशामाक्रामहृण्डकं वनम् । विश्वातं त्रिषु लोकेषु देशानां तद्धि पुण्यदम् ॥११७॥
 प्राविशत्तन्महारण्य भीषण दैत्यसेवितम् । तद्भूयादपिभिरत्यक्तं हत्वा दैत्यांस्तु राक्षसान् ॥११८॥
 विचरन्बण्डकारण्ये ऋषिसेव्यमथाकरोत् । तत्रेदं वृत्तमाह्वारये शृणु नारद यत्नतः ॥११९॥
 तावच्छनैस्त्वगाद्रामो यावद्योजनपञ्चकम् । गीतमीं समनुप्राप्तो राजाऽपि नरके स्थितः ॥१२०॥
 यमः स्वविकरानाह रामो दशरथात्मजः । गीतमीमभितो याति पितरं तस्य धीमतः ॥१२१॥
 आकर्षन्त्वय राजानं नरकाद्वात्र संशयः । उत्तीर्य गीतमीं याति यावद्योजनपञ्चकम् ॥१२२॥
 रामस्तावत्तस्य पिता नरके नैव पच्यताम् । यदेतन्मद्वचः पुण्यं न कुर्युर्पि दूतकः ॥१२३॥
 ततश्च नरके घोरे यूयं सर्वे निमज्जय । या काऽप्युक्ता पराश्रितः शिवरम समवायिनो ॥१२४॥
 तामेव गीतमीं सन्तो यदन्यस्यैव स्वरूपिणीम् । हरिब्रह्ममहेशानां मान्या वन्द्या च संय यत् ॥१२५॥
 निस्तीर्यते न कोनापि सतदित्रमजस्त्वधम् । पापिनोऽप्यत्रमजः कश्चिच्छरघ (स्य) गङ्गामनुसरते ॥१२६॥

गया, ज्वकी में पीना गया, मुन्नाया गया, दाँतो से बाटा गया, पुन जलाया गया, फिर दुधाया गया, इस प्रकार विभिन्न घोर नरकों में उन्हे यत्रणा दी गई ॥११४-११५॥

इपर राम भी वन-मार्ग पर चलते-चलते चित्रकूट आये । महामते । उसी स्थान पर उन्होंने तीन वर्ष ध्वनीत किया ॥११६॥ पुन वे दक्षिण दिशा की ओर चले और सीनो लोक में विश्वात, परम पुण्यप्रद उस दण्ड वन में प्रविष्ट हुये, जो दैत्यों के रहने के कारण अत्यन्त भयङ्कर था । दैत्यों के मय से अग्निवा ने भी उस वन को छोड़ दिया था । उन्होंने उस दण्डकारण्य में घूम-घूम कर उन दैत्यों का वध किया तथा वन को अग्निवा ने निवास-योग्य बनाया ॥११७-११८॥ नारद । अब आगे जो पटना हुई उसको वह रहा है, सावधान होकर सुनो । राम भी तब तब घोरे-घोरे गीतमी की ओर चले और केवल पाँच योजन दूर रह गये थे, उस समय तब राजा नरक में ही थे ॥११९-१२०॥ यह देखकर यमराज ने अपन अनुचरा से कहा कि दशरथ-पुत्र राम गीतमी के सन्निकट जा रहे हैं अतः उस बुद्धिमान् के पिता राजा दशरथ को नरक से निहार दो इसमें सद्यः करने की आवश्यकता नहीं है । ॥१२१॥ जब तब राम गीतमी को पार कर पाँच योजन दूर नहीं चले जाते, तब तब उनके पिता को नरक में मग पनाओ ॥१२२॥ यदि मेरे इस पवित्र वचन की उपाशा करावे तो ऐ हूतो । तुम लोग अवश्य घोर नरक में डूबोगे ॥१२३॥ शिव की जो गयी-भूत पराशक्ति है उगी के जन्मस्य रूप को सन्त लोग गीतमी कहते हैं ॥१२४॥ त्रिगुणिक वही गीतमी हरि, ब्रह्मा और महेश्वर की मान्य और पूज्य है, अतः उगने अवमान करने से उन्मत्त पापों से किसी का उद्धार नहीं हो सकता ॥१२५॥ पापी पिता का भी बर्दाश यदि मया का स्मरण करता है तो उगता जिन्ना का पार नरका में निरुद्ध कर भुक्ति प्राप्त करता है ॥१२६॥ फिर शिव पिता का राम से समान पुत्र गीतमी

सोऽनेकदुर्गनिरयान्निर्गतो मुक्तता व्रजेत् । किं पुनस्तादृशः पुत्रो गौतमीनिकटे स्थितः ॥१२७॥
यस्यासौ नरके पवतुं न करिषि हि शक्यते । दक्षिणाशापतेर्वाक्यं निशम्य यमकिंकरा ॥१२८॥
नरके पच्यमानं तमयोध्याधिपतिं नृपम् । उत्तार्य धोरनरकाद्वचनं चेदमब्रुवन् ॥१२९॥

यमकिंकरा ऊचुः

धन्योऽसि नृपशार्दूल यस्य पुत्रः स तादृशः । इह चामुत्र विश्रान्तिः सुपुत्रः केन लभ्यते ॥१३०॥

ब्रह्मोवाच

स विश्रान्तः ज्ञानं राजा किंकरान्वाक्यमब्रवीत् ॥१३१॥

राजोवाच

नरकेऽप्य धोरेषु पच्यमानः पुनः पुनः । कथं त्वार्कषितः क्षीघ्रं तन्मे वक्तुमिहार्हम् ॥१३२॥

ब्रह्मोवाच

तत्र कश्चिच्छान्तमना राजानमिदमब्रवीत् ॥१३३॥

यमदूत उवाच

वेदशास्त्रपुराणादावैतद्गोप्यं प्रयत्नतः । प्रकाशयते तदपि ते सामर्थ्यं पुत्रतीर्थयोः ॥१३४॥
रामस्तत्र सुतः श्रीमान्गीतमीतोरमागतः । तस्मात्त्वं नरकाद्योरादाकृष्टोऽसि नरोत्तम ॥१३५॥
यदि दृष्टा तत्र गौतम्या स्मरेद्रामः सलक्ष्मणः । स्नानं कृत्वाऽपि पिण्डादि ते दद्यात्स नृपोत्तम ॥१३६॥
ततस्त्वं सर्वपापेभ्यो मुक्तो यासि त्रिविष्टपम्

वे निश्चय अवस्थित हो, उसके विषय में तो कहना ही क्या है? अतएव इस समय दशरथ को नरक में कोई भी नहीं पीड़ित कर सकता है। दक्षिण दिशा के स्वामी यम की बातों को सुनकर यम-दूता ने नरक में पड़े उस अयोध्या-पति राजा को उस घोर नरक से निकाला और कहा ॥१२७-१२९॥

यमदूत बोले—नृपश्रेष्ठ । तुम धन्य हो, जिसका वंश (राम के समान) पुत्र है। (क्योंकि) इल्लोक और परलोक में शान्ति प्रदान करने वाला सुपुत्र जिसको मिलता है? (अर्थात् बड़े भाग्यशाली को ही मिलता है) ॥१३०॥

ब्रह्मा ने कहा—धीरे-धीरे (उस नरक-यातना से) विश्राम मिलने पर राजा ने यमदूतों से कहा ॥१३१॥

राजा ने कहा—बार-बार घोर नरक में यातना सहने वाले मुझको तुम लोगो ने क्यों निकाला? यह पीछ ही मुझसे बतलाओ ॥१३२॥

ब्रह्मा ने कहा—उन दूतों में से किसी पान्त दूत ने राजा से कहा ॥१३३॥

यमदूत ने कहा—वेद-शास्त्र और पुराण आदि में यह बात यत्नपूर्वक गुप्त रूप में बही गई है, परन्तु आज मैं तुमको पुत्र और तीर्थ या सामर्थ्य बता रहा हूँ। तुम्हारे पुत्र श्रीमान् राम गौतमी-नट पर आये हुये हैं, नरोत्तम । इतीलिये तुम इस पीर नरक से निवाले गये हो। यदि लक्ष्मण ने सहित वह राम उस गौतमी में तुम्हारा स्मरण करे और हे नृपोत्तम । यदि स्नान कर पुण्ड्रे पिण्ड आदि दोगे, तो तुम सब पापों से मुक्त होकर स्वर्ग चले जाओगे। ॥१३४-१३६॥

राजोवाच

तत्र गत्वा भवद्वाक्यमावस्थायस्ते स्वसुतो प्रति । भवत एव शरणमनुज्ञा दातुमर्ह्य ॥१३७॥

ब्रह्मोवाच

तद्वाजवचन श्रुत्वा कृपया यमकिंकरा । आज्ञा च प्रददुस्तस्मै राजा प्राणात्सुतो प्रति ॥१३८॥

भीषण यातनादेहमापन्नो निश्वसन्मुहु । निरोक्ष्य स्वयं लज्जमान कृत कर्म च सस्मरत् ॥१३९॥

स्वेच्छया विहरन्नाङ्गामाससाद च राघव । गीतम्यास्तटभाश्रित्य रामो लक्ष्मण एव च ॥१४०॥

सीतया सह बँदेह्या सत्नो चैव यथाविधि । नैव तत्राभवद्भोग्य भक्ष्य वा गीतमोतट ॥१४१॥

तद्दिने तत्र वसता गीतमीतीरवासिनाम् । तददृष्ट्वा दुःखितो भ्राता लक्ष्मणो राममब्रवीत् ॥१४२॥

लक्ष्मण उवाच

पुत्रो दशरथस्याऽज्जा तवापि बलमीदृशम् । नास्ति भोग्यमथास्माकं गङ्गातीरनिवासिनाम् ॥१४३॥

राम उवाच

भ्रातयद्विहितं कर्मे नैव तच्चाप्यया भवेत् । पृथिव्यामन्नपूर्णया ययमक्षाभिलाषिण ॥१४४॥

सौमित्रे भूयस्माभिर्न द्राक्ष्यममुखे हुतम् । अवज्ञया महोदेवास्तर्पयत्यर्चयन्ति न ॥१४५॥

ते य लक्ष्मण जायन्ते सबदैव बुभुक्षिता । स्नात्वा देवानपाम्भ्यर्घ्यं होतव्यश्च हुताशन ॥

तत् स्वसामये देवो विधास्यत्यशनं तु नो ॥१४६॥

राजा न कहा—वहाँ जाकर अपने पुत्र से आपकी बात कहूँगा। अब आप ही मेरे एकमात्र शरण हैं आज्ञा दीजिये ॥१३७॥

ब्रह्मा ने कहा—राजा की प्राचना सुनकर यमदूतों ने इषाकर उस राजा को जाना वे दी। राजा भी अपने पुत्रा के समीप चले पड़ा। उसका यातना-शरीर (मनु के दाव पाप मोक्ष के लिए जीव को एक शरीर दिया जाता है वही यातना-शरीर कहलाता है) जयकर था। वह बार-बार लची सीत ले रहा था और अपने पूर्व के किये बर्गों का स्मरण कर तथा अपनी वर्तमान दशा को देखकर रुद्धिमान हो रहा था। राघव भी स्वेच्छया यथत इय गङ्गा तट-पर आये। गीतमी-नट पर आश्रय पाकर लक्ष्मण और विर-साया सीता के साथ उहने यथा विधि स्नान किया परन्तु उस दिन गीतमी-नट पर निवास करनेका उन तीनों को कोई भी भोग्य या भक्ष्य प्राप्त नहीं हुआ। यह देखकर लक्ष्मण अत्यन्त दुःखी हुये। उन्होंने राम से कहा ॥१३८-१४२॥

लक्ष्मण ने कहा—हम दोनों दारण्य न पुत्र हैं और आपको ऐसी अन्नभुज राक्षस भी प्राप्त है। फिर भी आज गंगा-तट पर निवस करत हुए हम लोगों को भोज्य सामग्री कहा मिल रही है ॥१४३॥

राम ने कहा—भ्राता! जो किय हुये वरम हैं वे करने न जान मरत। हम दारण्य-मग्न पृथ्वी पर हम अन्न के लिए विनम्र हैं। तो सौमित्र अवश्य है हम लोगों ने द्राक्ष्य व भक्ष्य माँगा नहीं किया है अर्थात् किसी द्राक्ष्य को नहीं मिलाया है। जो द्राक्ष्य को अवगणन स तत्प करत हैं उनकी पूजा नहीं करत हैं वे (उनके अपमान व कारण) ययम भूय रहत हैं। अन्न स्नान कर लवणाश की पूजा करनी चाहिए और तत्पनकर अन्न म हवन करना चाहिए। इसमें देवता अपने समय पर हम लोगों के नियम आज्ञा की व्यवस्था कर दण ॥१४४-१४६॥

ब्रह्मोवाच

आनोः संजल्पतोरेवं पश्यतोः कर्मणो गतिम् । शनैर्दशरथो राजा तं देशमुपजग्मिवान् ॥१४७॥
तं दृष्ट्वा लक्ष्मणः शीघ्रं तिष्ठ तिष्ठेति चाश्रवीत् । धनुराहूय कोपेन रक्षस्त्वं दानवोऽयथा ॥१४८॥
आसन्नं च पुनर्दृष्ट्वा याहि यात्य (ह्य)त्र पुष्पभाक् । रामो दशरथो राजा धर्मभाक्पश्य वर्तते ॥१४९॥
गुरुभक्तः सत्यसंधो देवब्राह्मणसेवकः । त्रैलोक्यपरसादसोऽसौ वर्तते यत्र राघवः ॥१५०॥
न तत्र त्वाद्दशामस्ति प्रवेशः पापकर्मणाम् । यदि प्रविशसे पाप ततो वधमवाप्स्यसि ॥१५१॥
तत्पुनर्वचनं श्रुत्वा शनैराहूय वाच्या । उवाचाधोमुखो भूत्वा स्तुपां पुत्री कृताञ्जलिः ॥
मुहुरन्तविनिध्यायनार्तिं दुष्टृतकर्मणः ॥१५२॥

राजोवाच

अहं दशरथो राजा पुत्री मे शृणुतं वच । तिसृभिर्ब्रह्महृत्याभिर्बृतोऽहं दुःखभागतः ॥
छिन्नं पश्यत मे देहं मरुकेषु च पातितम् ॥१५३॥

ब्रह्मोवाच

ततः कृताञ्जली रामः सीतया लक्ष्मणेन च । भूमौ प्रणेमुस्ते सर्वे वचनं चैतदब्रुवन् ॥१५४॥
सीतारामलक्ष्मणा ऊचुः
वस्येदं कर्मणस्तात फलं नृपतिसत्तम ॥१५५॥

ब्रह्मा ने कहा—इस प्रकार दोनों भाई परस्पर वार्तागप कर रहे थे और वरम की गति का अनुभव कर रहे थे कि राजा दशरथ धीरे से उस स्थान पर पहुँचे । उनको देखकर लक्ष्मण ने अपना धनुष खींच लिया और क्रोधपूर्वक कहा—एक आओ, एक आओ ! तुम दानव हो या राक्षस ? पुनः उस भयङ्कर प्रतिमा को समीप आने दबकर उन्होंने कहा—आओ आजी देवा, यहाँ पुष्पशाली वधप्रतिमा राजा राम हैं । जहाँ गुरु-भक्त मर्य प्रसिद्ध देव-ब्राह्मण-सेवक और शत्रु-वध की रक्षा में कुशल राम रहते हैं वहाँ तुम्हारे समान पापीयना का प्रवेश नहीं होता । पापी ! यदि तुम प्रवेश करोगे तो तुम्हारा वध अवश्य कर दिया जायगा । पुत्र की उन बातों को सुन कर उन्होंने धीरे से दुःखान्तर नीचे मिर रिये हुए हाथ जोड़कर अपनी पुत्र-ज्यू और पुत्रास वार-वार अपने दुष्टमर्म के फल का ध्यान करत हुए कहा ॥१५०-१५२॥

राजा ने कहा—मैं राजा दशरथ हूँ । पुत्री ! मरी बातें सुनो ! मैं तीन ब्रह्महत्याओं के पाप से अत्यन्त दुःख पा रहा हूँ । नरको मे गिराये हुए मर बड़े शरीर को देखो ॥१५३॥

ब्रह्मा ने कहा—नन्दनर सीता और लक्ष्मण के साथ राम ने हाथ जोड़कर माग्दाम प्रणाम दिया तथा उन मर ने यह वचन कहा ॥१५४॥

सीता राम और लक्ष्मण ने कहा—महाराज ! यह आपने किस कर्म का फल है ? ॥१५५॥

ब्रह्मोवाच

स च प्राह ययावृत्तं ब्रह्महत्यान्यं तथा

॥१५६॥

राजोवाच

निष्कृतिर्ब्रह्महन्तृणा पुनो क्वापि न विद्यते

॥१५७॥

ब्रह्मोवाच

ततो दुःखेन महताऽऽवृताः सर्वे भूवं शताः । राजानं वनवासं च मातरं पितरं तथा ॥१५८॥

दुःखागमं कर्मगतिं नरकं पातनं तथा । एवमाद्यं सस्मृत्य मुमोह नृपते, सुतः ॥

विसन्तं नृपतिं दृष्ट्वा सीता वाक्यमयाब्रवीत्

॥१५९॥

सीतोवाच

न शोचन्ति महात्मानस्त्वादृशा व्यसनागमे । चिन्तयन्ति प्रतीकारं दैव्यमप्यय मानुषम् ॥१६०॥

शीघ्रदम्भिर्युगसाहसं विपत्तिर्नैव तीर्यते । ध्यामोहमानुषतौह न कदाचिद्विचक्षणा ॥१६१॥

किमनेनात्र दुःखेन निष्कलेन जनेदवर । देहि हत्वा प्रयमतो या जाता ह्यतिभीषणा ॥१६२॥

पितृभक्तः पुण्यशीलो वेदवेदाङ्गभारगः । अनाया यो हतो विप्रस्तत्पापस्यत्र निष्कृतिम् ॥१६३॥

आचरामि यथाशास्त्रं मा शोकं कुर्वन् युवाम् । द्वितीयां लक्ष्मणो हर्त्या गृह्णातु त्वपराभवान् ॥१६४॥

ब्रह्मा ने कहा—उन्होंने, जिस प्रकार तीन ब्रह्म-हत्याएँ हुई थीं उनके उसी प्रकार कह दिया ॥१५९॥

राजा ने कहा—पुनः । ब्रह्म-हत्या करनेवालों के पाप का प्रतीकार कहीं भी नहीं है ॥१५७॥

ब्रह्मा ने कहा—यह सुनकर सभी अव्यक्त दुःखी हो गये और दुःखावेप से मूर्च्छित होकर पृथ्वी पर गिर पड़े । नृपति-युव राम राजा की अवस्था वनवास माना पिता दुःखों की प्राप्ति, कर्म-गति और पिता का मरक में गिराया जाना आदि बातों का स्मरण करने सज्ज-हीन से हो गये । इस प्रकार राम को सत्ता-भूष्य देखकर सीता ने कहा—॥१५८-१५९॥

सीता ने कहा—आपने समान महत्त्वा कीम अवस्थितियों के आ जान पर शोक नहीं करते, प्रत्युत उससे प्रतीकार को सोचते हैं, चाहे वह प्रतीकार मानवीय हो या दैवी । सदस्य-युगा तक शोक करते रहने पर भी विपत्तियाँ से पार नहीं पाया जा सकता । अतएव विद्वान् व्यक्तित्व सभी भी इस तरह से मोह को नहीं प्राप्त होते हैं । जनेदवर ! इस निष्फल दुःख करने से क्या लाभ ? पशु की अति भीषण हत्या हो गई है । उसका पत्र मुझे दे दीजिये । पित्र-भक्त पुण्यशील, वेदवेदाङ्गों के पारदर्शी विद्वान् और निष्पाप ब्राह्मण की जो हत्या हुई है, उस पाप का प्रतीकार मैं शास्त्र-सम्मत उपाय से करूँगी । आप दोनों शांति मन कीजिये । दूसरी हत्या को स्मरण और अवशिष्ट को आप ग्रहण कर लीजिये ॥१६०-१६४॥

भूयते सवशास्त्रेषु यद्राम भृशं यत्नत । यदत्र पुष्टयो राजस्तदन्नास्तस्य देवता ॥१७५॥
 पिण्डे निषत्तिते भूमौ नापश्यत्पितरं तदा । शव च पतित यत्र शवतीर्थमनुत्तमम् ॥१७६॥
 महापातकसघातविघातकृदनुस्मृति । तत्राऽऽगच्छल्लोकपाला रुद्रादित्यास्तथाऽद्विनी ॥१७७॥
 स च स्व विमानमारुढास्तथा मध्येऽतिदीप्तिमान् । विमानवरमारुढ स्तूपमानश्च किनरं ॥१७८॥
 आदित्यसदृशाकारस्तेषां मध्य बभौ पिता । तमदृष्ट्वा स्वपितरं देवादृष्ट्वा विमानिन ॥१७९॥
 कृताञ्जलिपुटो राम पिता मे स्वल्पभाषत । इति (ततो) दिव्याम्बवद्गणो राम सबोधय सीतया ॥१८०॥
 तिसृभिर्ब्रह्महत्याभिर्भुक्तो दशरथो नृप । वृत पश्य सुरंस्तात देवा अप्यूचिरे च तम ॥१८१॥

देवा ऊचुः

धन्योऽसि कृतकृत्योऽसि राम स्वर्गं गत पिता । नानानिरपसघातात्पूर्वजानुद्धरेत्तु य ॥१८२॥
 स धन्योऽलकृत तन कृतिना भुवतन्मम । एन पश्य महाबाहो भुवतपाप रविप्रभम् ॥१८३॥
 सवसपत्तिपुक्तोऽपि पापी दग्धद्रुमोपम । निष्किंचनोऽपि सुकृती दुश्यत च द्रुमौलिवत ॥१८४॥

ग्रहोवाच

दृष्ट्वाऽन्वबोत्सुत राजा आश्रीभिरभिनय च

॥१८५॥

राजोवाच

कृतकृत्योऽसि भद्र ते तारितोऽह स्वयाज्यय । धन्य स पुत्रो लोकऽस्मिन्पितृणा यस्तु तारक ॥१८६॥

गिराया । किन्तु उन्हने अपने पिता को नहीं देखा केवल गव बहाँ पत्त हुआ दिखई दिया । जहाँ वह गव गिरा वह परमोत्तम शवतीर्थ बन गया । जिसके स्मरणमान से महापाप का समह सृष्ट ही में नष्ट हो जाता है । इससे बाद वहाँ लोकपाल रुद्र आदित्य तथा अश्विनीकुमार अपने-अपने विमानों पर आरुढ़ होकर आय । उनके मध्य में एक उत्तम विमान पर आरुढ़ अत्यन्त कातिमान रूप में राम व पिता शोभित थे । वे सूर्य के समान चमक रहे थे और विभ्ररण उनकी स्तुति कर रहे थे । उस समय राम ने अपने पिता को नहीं देखा केवल देवता विमानों रुद्र आदित्य देखा । तब हाथ ओढ़कर वे बोले कि मर पिता वहाँ हैं । उसी समय सीता सहित राम को सबोधि कर आकाशवाणी हुई कि तान सीता द्रष्टव्या आभ राजा दशरथ भुक्त हो गया । इनका दबो में घिरा हुआ देखो । पुन देवा ने उनसे कहा ॥१७०-१८१॥

देवगण बोले—राम ! तुम धन्य हो । तुम्हारा जीवन सफल है । देखो तुम्हारा पिता स्वर्ग को चले गए । जो अपने पिता को अनेक तरह जात्रा से उबारता है वह धन्य है । उसने अपनी कृति में दिग्भुवन को मोक्षित कर दिया । महाबाहु ! इस भुक्त-पाप एवं सुख व समान लज्जका पिता का देखा । सब प्रकार की सम्पत्तियों में परिपूर्ण रहने पर भी पापी धर्मिण लज्जक व समान हैं इससे विपरीत अकिंचन पुण्यात्मा व्यक्ति गिरा व समान पुण्य भाव से देखा जाता है ॥१८२-१८४॥

ग्रहों ने कहा—अपने पुत्र को राजा ने आशीर्वाद दिया और उसकी प्रशंसा करने हुए कहा ॥१८५॥

राजा ने कहा—मम कृत्य-कृत्य हो गया है तुम्हारा बन्धन हो । निष्पाप ! तुम्हें मुझसे तार दिया । हम लोग में वह पत्र धन्य है जो अपने पिता का उद्धार करता है ॥१८६॥

ब्रह्मोवाच

तत सुरगणा प्रोचुर्देवाना कार्यसिद्धये । राम च पुरुषश्चेष्ट गच्छ तात यथासुखम् ॥
ततस्तद्वचन श्रुत्वा रामस्नानब्रवीत्सुरान् ॥१८७॥

राम उवाच

गुरो पितरि म देवा किं कुत्पमवशिष्यते ॥१८८॥

देवा ऊचुः

नदी न गङ्गाया तुल्या न त्वया सद्गता सुत । न शिवेन समो द्रव्यो न तारेण समो मनु ॥१८९॥
त्वया राम गुरुणा च काय सबन्धुव्युत्तमम् । तारिता पितरो राम त्वया पुत्रेण मानद ॥
गच्छन्तु सर्वे स्वस्थानं त्वं च गच्छ यथासुखम् ॥१९०॥

ब्रह्मोवाच

तद्ब्रवीच्चनाद्भूत सीतया लक्ष्मणाग्रज । तद्दृष्ट्वा गङ्गामाहात्म्य विस्मितो धातयमब्रवीत् ॥१९१॥

राम उवाच

अहो गङ्गाप्रभावोऽयं त्रैलोक्य नोपमीयते । वयं धन्या मतो गङ्गा दृष्ट्वाऽस्माभिस्त्रिपावनी ॥१९२॥

ब्रह्मोवाच

हर्षेण महता यक्तो देव स्थाप्य महेश्वरम् । तं षोडशभिरीशानमुपचारे प्रयत्नत ॥१९३॥

ब्रह्मा न क्हा—इसके बाद देवताओं ने देव-नाथ की सिद्धि के लिये पुरपोत्तम राम से कहा—तात ! अब सुनपूर्वक जाओ । दशों की बातें सुनकर राम ने उन देवताओं से पूछा ॥१८७॥

राम ने कहा—देवगण ! आदरणीय पिता के विषय में कौन सा कृत्य गैर रह गया है ? ॥१८८॥

देवगण बोले—गंगा के समान कोई नदी नहीं है तुम्हारे समान कोई पुत्र नहीं है शिव के समान कोई देवता नहीं है और ओङ्कार के समान कोई अक्षर नहीं है । राम ! तुमने अपने गुरु के समस्त कार्यों को पूरा कर दिया । राम ! पुत्र होकर तुमने अपने पितरा का उद्धार कर दिया । अब सब अपने-अपने स्थान को जायें तुम भी अपने स्थान को सुखपूर्वक जाओ ॥१८९ १९०॥

ब्रह्मा ने कहा—ज्यों की उपमवल वाता की सुनकर सीता सहित लक्ष्मणाग्रज, राम अत्यन्त प्रसन्न हुए और गंगा ने उस अमृत महामय को देखकर आश्चर्य के साथ बोले ॥१९१॥

राम ने कहा—अहो ! गंगा ने इस प्रभाव की उपमा त्रैलोक्य में किसी से नहीं दी जा सकती । हम धन्य हैं कि आज इस त्रिभुवन-पावनी गंगा का दान हम प्राप्त हुआ ॥१९२॥

ब्रह्मा ने कहा—अमृत आनन्द से युक्त हावर उन्होंने महेश्वर देव की स्थापना की । बड़ धन से उनका

संयुज्याऽऽवरणैर्धुवतं पटत्रिशत्कलमौदवरम् । कृताञ्जलिपुटो भूत्वा रामस्तुष्टाव शंकरम् ॥१९४॥

राम उवाच

नमामि शंभु पुण्य पुराणं, नमामि सर्वज्ञमपारभावम्	१
नमामि रुद्रं प्रभुमक्षय तं, नमामि शर्वं शिरसा नमामि	॥१९५॥
नमामि देवं परमव्यय तमुमापतिं लोकगुरुं नमामि	१
नमामि दारिद्र्यविदारण तं, नमामि रोगापहरं नमामि	॥१९६॥
नमामि कल्याणमचिन्त्यरूपं, नमामि विश्वोद्भवबीजरूपम्	१
नमामि विश्वस्थितिकारण तं, नमामि संहारकर नमामि	॥१९७॥
नमामि गोरीप्रियमव्ययं तं, नमामि नित्यं क्षरमक्षरं तम्	१
नमामि चिद्रूपममेयभाव, त्रिलोचनं तं शिरसा नमामि	॥१९८॥
नमामि कारुण्यकरं भवस्य, भयंकरं घासि सदा नमामि	१
नमामि दातारमभीप्सितानां, नमामि सोमेशमुमेशमादौ	॥१९९॥
नमामि वेदप्रयलोचनं तं नमामि भूतिप्रयवर्जित तम्	१
नमामि पुण्यं सदसद्व्यतीतं, नमामि तं पापहरं नमामि	॥२००॥

पोडसोपचार पूजन किया । अगो सहित छत्तीस कला वाले महेश्वर की अर्चना करने राम हाथ जोड़कर शंकर की स्तुति करने लगे ॥१९३-१९४॥

राम ने कहा—पुराण-पुराण धनु की नमस्कार करता हूँ । सर्वत्र तथा अनन्त रूप वाले की नमस्कार करता हूँ । अक्षय (नित्य) प्रभु रत्न को नमस्कार करता हूँ । उस शर्व को शिर झुकाकर प्रणाम करता हूँ ॥१९५॥ उस परम अव्यय देव को नमस्कार करता हूँ । उमापति, लोकगुरु का नमस्कार करता हूँ । दारिद्र्य को नष्ट करने वाले को नमस्कार करता हूँ । रोगों को दूर करने वाले उस शंकर को नमस्कार करता हूँ ॥१९६॥ कल्याणमय, अचिन्त्यरूप को नमस्कार करता हूँ । विश्व-निर्माण के आदि कारण को नमस्कार करता हूँ । विश्व की स्थिति के कारण को नमस्कार करता हूँ । संहार करने वाले विष्णु को नमस्कार करता हूँ ॥१९७॥ उस गोरी प्रिय शंकर को नमस्कार करता हूँ । उस नित्य क्षर और अक्षर रूप को नमस्कार करता हूँ । ज्ञानरूप एवं अमित्र प्रभाव वाले को नमस्कार करता हूँ । उस त्रिनेत्र को शिर झुकाकर प्रणाम करता हूँ ॥१९८॥ समार पर करणा करने वाले को नमस्कार करता हूँ । भय प्रदान करने वाले को सदा नमस्कार करता हूँ । मनोरम्य प्रदान करने वाले को नमस्कार करता हूँ । सर्वप्रथम सोमेश और उमेश को नमस्कार करता हूँ ॥१९९॥ तीन वदनपी नभ वात को नमस्कार करता हूँ । त्रिमूर्ति वर्जित उस शंकर को नमस्कार करता हूँ । सन् और अमृत से घरे उस पुण्यस्वरूप को नमस्कार करता हूँ । उस पापहर को नमस्कार करता हूँ ॥२००॥ विश्व के हित में लीन रहने वात को नमस्कार करता हूँ । लीन हित के विविध रूप

नमामि विश्वस्य हिते रतं तं, नमामि रूपाणि बहूनि घत्ते	।
यो विश्वगोप्ता सदसत्प्रणेता, नमामि त विश्वपतिं नमामि	॥२०१॥
यज्ञेश्वरं संप्रति हृद्यकथ्यं, तथा गतिं लोकसदाशिवो यः	।
आराधितो यश्च ददाति सर्वं, नमामि दानप्रियमिष्टदेवम्	॥२०२॥
नमामि सोमेश्वरमस्वतन्त्रमुमापतिं तं विजयं नमामि	।
नमामि विघ्नेश्वरमन्दिनाथं, पुत्रप्रियं तं शिरसा नमामि	॥२०३॥
नमामि देवं भवदुःखशोकविनाशनं चन्द्रधरं नमामि	।
नमामि राज्ञाधरमीशमीड्यमुमाधवं देववरं नमामि	॥२०४॥
नमाम्यज्ञादीशपुरंदरदिसुरासुरैरर्चितपादपद्मम्	।
नमामि देवीमुखवादनानमीशार्यमक्षिप्रितयं य ऐच्छत्	॥२०५॥
पञ्चवामूतैर्गन्धसुधूपदोपैर्विचित्रगुणैर्विविधैश्च मन्त्रैः	।
अन्नप्रकारैः सकलोपचारैः, संपूजितं सोममहं नमामि	॥२०६॥

ब्रह्मोवाच

ततः स भगवानाह रामं शंभुः सलक्ष्मणम् । वरान्वृणीष्व भद्रं ते राम प्राह वृषध्वजम् ॥२०७॥

धारण करने वाले को नमस्कार करता हूँ। जो विश्व का रक्षक तथा सन् और असत् का रक्षयिता है, उसको नमस्कार करता हूँ। उस विश्वपति को नमस्कार करता हूँ ॥२०१॥ जो सम्प्रति यज्ञेश्वर, हृद्य और कथ्य है, जो सर्वदा लोक को मंगल दान करने याग एव गति है, जो आराधना करने पर सेवक को सब कुछ प्रदान करता है उस दान-पट्ट इष्टदेव को नमस्कार करता हूँ ॥२०२॥ सोमेश्वर तथा स्वतन्त्र (भक्त के अधीन) उमापति को नमस्कार करता हूँ, उस विजय को नमस्कार करता हूँ। विघ्नेश्वर मन्दिनाथ को नमस्कार करता हूँ। पुत्र प्रेमी को शिर मेवा कर नमस्कार करता हूँ ॥२०३॥ मसारक दुःख और शोक को नष्ट करने वाले देव को नमस्कार करता हूँ। चन्द्रमा को धारण करने वाले को नमस्कार करता हूँ। पूज्य गंगाधर-महादेव को नमस्कार करता हूँ। देवधेष्ठ उमापति को नमस्कार करता हूँ ॥२०४॥ जिनके चरण कमल की अर्चना ब्रह्मा आदि तथा प्रभु इन्द्र आदि देवता एवं राक्षस करने है, उनको नमस्कार करता हूँ जिन्होंने देवी क मुख-वादन के विदेशावलोकन की इच्छा से तीन नेत्रों की इच्छा की, उनको नमस्कार करता हूँ ॥२०५॥ पञ्चवामून गन्ध सुगन्धित घूप दीप, विचित्र-गुण एवं विविधमन्त्रा तथा अन्न प्रकार के भोग्य पदार्थ म जिसकी षोडशोपचार पूजा होती है उस सोम को मैं नमस्कार करता हूँ ॥२०६॥

ब्रह्मा ने कहा—राम की प्रायना म प्रमन्न होकर भगवान् राम ने लक्ष्मण सहित राम से कहा—‘वर मांगो, मुहारा कल्याण हो। यह मुनकर राम न शबर से कहा ॥२०७॥

राम उवाच

स्तोत्रेणानेन ये भक्त्या तोष्यन्ति त्वां सुरोत्तम । तेवा सर्वाणि कार्याणि^१ सिद्धिं यान्तु महेश्वर ॥२०८॥
 'येषां च पितरः शम्भो पतिता नरकार्णवे । तेषां' पिण्डादिदानेन पूता यान्तु त्रिविष्टपम् ॥२०९॥
 जन्मप्रभृति पापानि (यच्चापि) मनोवाक्कायिक^२ त्वघम् । अत्र तु स्नाननात्रेण तत्सद्यो^३ नाशमाप्नुयात् ॥२१०॥
 अत्र ये भविततः शम्भो ददत्पार्थिव्यं अण्वपि । सर्वे तदक्षयं शम्भो दातॄणां^४ फलकृद्भवेत् ॥२११॥

ब्रह्मोवाच

एवमस्तिवति तं राम शंकरो हृषितोऽब्रवीत् । गते^५ तस्मिन्सुरक्षेष्टे रामोऽप्यनुचरं^६ सह ॥२१२॥
 गौतमी यत्र चोत्पन्ना शनैस्तं देशमम्ययात् । ततः प्रभृति तत्तीर्थं रामतीर्थमुदाहृतम् ॥२१३॥
 दयालोरपतत् (द्य) न लक्ष्मणस्य कराच्छरः । तद्वाणतीर्थमभवत्सर्वापह्निनिवारणम् ॥२१४॥
 यत्र सीमित्रिणा स्नानं शंकरस्याचरन्^७ कृतम् । तत्तीर्थं लक्ष्मणं जातं^८ तथा सीतासमुद्भवम् ॥२१५॥
 नानाविधाशोभपापसंघनिर्मूलनक्षमम् । यदद्विषतद्भ्रातृभवंदगङ्गा प्रलौघपावनी ॥२१६॥
 स यत्र स्नानमकरोत्तद्वैशिष्ट्यं किमुच्यते । तद्वामतीर्थसदृशं तीर्थं क्वापि न विद्यते ॥२१७॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये रामतीर्थवितीर्थवर्णनं नाम त्रयोविंश-

धिकशततमोऽध्यायः ॥१२३॥

गौतमीमाहात्म्ये चतुष्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥५४॥

राम ने कहा—सुरोत्तम । इस स्तोत्र से जो तुम्हारी स्तुति करें महेश्वर । उनसे सब मनोरथ सिद्ध हो जायें। शम्भु ! जिनके पितर नरक में गिरे हों, उनके यहाँ पिण्ड-दान देने से वे स्वर्ग को चले जायें। यहाँ केवल स्नान करने से ही मनुष्यों के जन्म से लेकर सभी वायिक, वाचिक और मागमिक पाप नष्ट हो जायें। शम्भो ! यहाँ जो याचकों को भक्ति-पूर्वक अनुमान भी प्रदान करें, वह उन दाताओं के लिए अक्षय फल प्रदान करने वाला हो ॥२०८-२११॥

ब्रह्मा ने कहा—शंकर ने प्रसन्न होकर उस राम से 'एवमनु' कहा। उस देवेश के चले जान पर राम भी अपने अनुयायियों के साथ धीरे धीरे उस स्थान पर गये, जहाँ से गौतमी नदी निकलती है। तब से वह स्थान राम-तीर्थ कहा जाता है। दयालु लक्ष्मण के हाथ से जहाँ वाण निरा बट लक्ष्मण-तीर्थ हो गया। इसी प्रकार वहीं अनेक प्रकार के अखिल पाप-समुह का नष्ट कर देने वाला सीतातीर्थ भी प्रसिद्ध है। जिनके चरण-स्पर्श से गंगा त्रिभुवन-पावनी हो गई, उन्हीं राम न जहाँ स्नान किया उस स्थान की विविधता का वयन वर्ण किया जा सकता है ? उस राम-तीर्थ का समान कहीं भी दूसरा तीर्थ नहीं है ॥२१२-२१७॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में रामतीर्थवर्णन नामक एक सी तैर्झमा अध्याय समाप्त ॥१२३॥

१ घ ट य ० गि सतिद्धि यान्तु सकर । २ घ ट च तेम्य । ३ च ० विरानि च । ४ ० । ४ घ ट य तदप्य । ५ घ ट च दातृम् । ६ घ ट च यावे । ७ घ ट च ० नुवते सः ।

अथ चतुर्विंशाधिकशततमोऽध्यायः

पुत्रतीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

पुत्रतीर्थमिति ह्यतः 'पुण्यतीर्थं तदुच्यते । सर्वान्कामानवाप्नोति यन्महिम्नः श्रुतेरपि ॥१॥

तस्य स्वरूपं वक्ष्यामि शृणु यत्नेन नारद । दितेः पुत्राश्च दनुजाः परिक्षीणा यदाऽभवन् ।

अदितेस्तु सुता ज्येष्ठा । सर्वभावेन नारद ॥२॥

तदा दितिः पुत्रयियोगदुःखालसंस्पर्धमाना दनुमाजगाम ॥३॥

दितिर्वाच

क्षीणा । सुता आवयोरेव भद्रे, किं कुर्महे कर्म लोके गरीयः ।

पश्यादितेर्वंशमभिन्नमुत्तम, सीराज्ययुक्तं यशसा जयश्रिया ॥४॥

जिताहिमस्युन्नतकोतिधर्मं, मच्चित्तसंहर्षविनाशदधम् ।

समानभर्तृत्वंसमानधर्मं, समानगोत्रेऽपि समानरूपे ॥५॥

अध्याय १२४

पुत्रतीर्थं का वर्णनं

ब्रह्मा ने कहा—एक प्रसिद्ध पुत्रतीर्थ है । उसको पुण्यतीर्थ भी कहा जाता है । उसकी महिमा के सुनने से भी मनुष्य सब मनोरथों को प्राप्ति कर लेता है । उसने स्वरूप का वर्णन मैं करता हूँ । नारद ! तुम ध्यान से सुनो । जब दैत्य और दानव बहुत क्षीण हो गए तथा देवमण्डल पर प्रहार में श्रेष्ठ हो गए तब नारद ! दिवि पुत्र-विभाग में पातर और सोन की विभूति की प्रतिस्पर्धा में दुरी होकर दनु के पास आई ॥१॥ ३॥

दिति ने कहा—भद्रे ! हम दोनों ही के पुत्र नष्ट हो गये । क्या करें ? समार म कर्म गम्य बलवान् होता है । देवो, अदिनि का क्षत्र किम प्रकार जय-रुद्धभी, भीति और उत्तम राज-मुक्त का विरत्नार उपभोग कर रहा है, अपने दानुजा की जीत कर धन की बड़ी बजा रहा है, भीति और धर्म की पताका पहना कर मरे हृदय को सर्वथा नष्ट कर रहा है । यद्यपि अदिनि भी मेरे ही पति की पत्नी है और सोन और धर्म तथा रूप में भी समान है, तथापि उमने पुत्रों की भी एक उन्नति देगदर में दुर्बल हो गई हैं । अब जीने की सम्भावना भी नहीं है । अदिनि की उन्नति

न जीवयेय धियमुन्नतिं च, जीर्णाऽस्मि दृष्ट्वा त्वदितिप्रसूतान् ।
कामप्यवस्थामनुयामि दुःस्थाऽदितेर्विलोक्याथ परा सनृद्धिम् ॥
दावप्रवेशोऽपि सुखाय नन, स्वप्नेऽप्यवेक्ष्या न सपत्नलक्ष्मी ॥६॥

ब्रह्मोवाच

तथयुक्त्वा सर्वभावंस्तोपयामास कश्यपम् । दिति प्रोवाच भगवान्कश्यपोऽय प्रजापति ॥१२॥

कश्यप उवाच

किं ददामि यदाभीष्ट दिते वरय सुयते ॥१३॥

ब्रह्मोवाच

दितिरप्याह भर्तार पुत्र बहुगुणान्वितम् । जेतार सर्वलोकानां सर्वलोकनमस्कृतम् ॥१४॥

येन जातेन लोकेऽस्मिन्भवेय वीरपुत्रिणी । त वरेय सुरपतिरित्याह विनयान्विता ॥१५॥

कश्यप उवाच

उपदेश्ये व्रत श्रेष्ठ द्वादशान्वदफलप्रदम् । तत आगत्य ते गर्भमाधास्ये यन्मनोगतम् ॥

निष्पापताया जाताया सिध्यन्ति हि मनोरथा ॥१६॥

ब्रह्मोवाच

भर्तुं वाक्यादिति प्रीता त नमस्याऽऽपतक्षणा । उपदिष्ट व्रत चक्रे भर्ताऽऽदिष्ट यथाविधि ॥१७॥

तीर्थसेवापान्नदानव्रतचर्यादिवर्जिता । कयमासादपिप्यन्ति प्राणिनोऽन मनोरथान् ॥१८॥

ततश्चीर्णे व्रत तस्या दित्या गभमपारयत् । पुन कान्तामयोवाच कश्यपस्ता दिति रह ॥१९॥

ब्रह्म न कहा—दिति न इनको स्वीकार किया और अपने प्रत्येक प्रयत्न से कश्यप को प्रसन्न किया । अनन्तर भगवान् प्रजापति कश्यप ने दिति से कहा ॥१२॥

कश्यप ने कहा—‘नित् । तुमको क्या दू ? तुम अपनी इच्छा व्यक्त करो । सज्जत ! वर मागो ॥१३॥

ब्रह्मा ने कहा—‘दिति ने भी अपन भर्ता से विनयपूर्वक कहा मैं अत्यन्त गुणगानी सब श्रेष्ठा को जीतने वाला और सब श्रेष्ठा से पूजित पुत्र चाहती हूँ । हृदय ने पिता ! जिसके उत्पन्न होने से मैं इस ससार में वीर पुत्र की माता कहलाऊँ उसको मैं चाहती हूँ ॥१४-१५॥

कश्यप ने कहा—‘बारह वर्षों में एक दिन वाल अष्ट व्रत को बना रहा हूँ । इस व्रतक पालन के बाद तुम्हारी इच्छा के अनुसार गर्भपात करवा क्याकि पात्रान्य होने पर ही मनोरथ पूरा होत है ॥१६॥

ब्रह्मा न कहा—‘दिति की बातों से निम्न प्रसन्न हो गई । तत्पश्चात् उग विद्यालनना ने दिति को प्रणाम कर उनके द्वारा वह हृदय व्रत का विधिपूर्वक पालन किया । तीर्थ-जवा उपयुक्त पात्र को दान देना व्रत-पालन आदि पुण्या नुष्ठान के बिना प्राणी बने इस श्रेष्ठ भ अपने मनोरथ को प्राप्त कर सकते हैं ? ऐसे बड़े व्रत-पालन के बाद कश्यप ने उस निम्न भ गर्भपात किया । एक निम्न एव न्त भ कश्यप ने उस विधि निम्न से कहा ॥१७-१९॥

कश्यप उवाच

न पाप्नुवन्ति यत्कामामुन्धोऽपि तपस्थिता । यथाविहितकर्माङ्गावज्ञया तच्चतुश्चिस्मित ॥२०॥
 निन्दितं च न कतव्यं सध्ययोरुभयोरपि । न स्वप्तव्यं न गन्तव्यं भुवतकशो च नो भव ॥२१॥
 भोवतव्यं सुभग नव क्षुतं वा जम्भणं तथा । सध्याकालं न कतव्यं भूतसधसमाकुल ॥२२॥
 सातर्धनिं सदा कार्यं हसितं तु विदधत । गृहात्तदशं सध्यासु न स्थातव्यं कदाचन ॥२३॥
 मुशूलोलूखलादीनि शूषपीठपिधानकम् । नैवातिश्रमणीयानि दिवा रात्रौ सदा प्रिय ॥२४॥
 उदवशीषं तु दायनं न सध्यासु विदधत । वक्तव्यं तानुत किञ्चिन्नायगृहादनं तथा ॥२५॥
 कान्तादयो न वीक्ष्यस्तु प्रयत्नन नरं वचित्त । इत्यादिनियमं युवता यदि त्वमनुवतसे ॥
 ततस्तं भविता पुत्रस्नलोपदव्यभाजनम् ॥२६॥

ब्रह्मोवाच

तथैति प्रतिजनं सा भर्तारं लोकपूजितम् । यतश्च कश्यपो ब्रह्मन्निदधत सुराप्रति ॥२७॥
 दितगर्भोऽपि ववृषं वरुवानुण्यसम्भव । एतस्य मयो दायो मायमा वसिष्ठ सत्यत ॥२८॥
 इन्द्रस्य सद्यमभवमप्यनं प्रीतिपूर्वकम् । मयो मत्या रहं प्राह इन्द्र स विनयाचित ॥२९॥

कश्यप ने कहा—पवित्र हाथ वाली ! तपस्या म लीन मणिगण भी जो अपने मनोरथ को प्राप्त करने में असफल होते हैं उसका मध्य कारण गार्ह्य-सम्मत नियमों की उपेक्षा है । (अतः उन नियमों को मुदा) दोना सध्या काल में कोई निन्दित काम नहीं करना चाहिए । न सोना चाहिये न (बाहर) जाना चाहिये और न उत समय बेगों को निखरी अवस्था में रखना चाहिए । सुदरी सध्याकाल में विनोपत अनेक प्राणियाँ स भरे स्थान में भोजन नहीं करना चाहिए । न छीकना चाहिए और न जम्भान्नी चाहिये । हंसने व समय ता अवश्य कोई अ वरण लगा लेना चाहिए । सध्याकाल में घर की ओरनी में नमा नहा रहना चाहिये । प्रिये ! न या रात्रि में सवदा मंगल आतल धूर पीडा आदि को नमा भी नहीं स्वीकना चाहिये । उत्तर की आर गिर कर न गी सोन च द्विप विनोपत सध्या समय । घोंग भी असय भाषण नहा करना चाहिये । दूसरे व घर नहीं जाना चाहिये । प्रयत्नपूर्वक पति व अनिरिक्त किता अन्य पुरय को नहीं दयना चाहिये । इस प्रकार यन्ति तुम्हें उपायकन नियमों का पालन करोगी तो त्रिभुवा व एवय को प्राप्त करने वाला समूहारा पुत्र होगा । ॥२०-२६॥

ब्रह्मा ने कहा—निज लोकपूजित पति के सामने ऐसा ही न करी ऐसी प्रमिता की । ब्रह्मन् ! यन्मा भी इधर उधर देवताओं व निवास स्थान का आर चल मय । यन्मागिगिगी और पुण्य द्वारा प्राप्त निज का मन मा बडा लगा । न मय याना व । मय नामक दय अपनी माया व द्वारा यथावरूप स जानना था । मय की इन् व ताप पहल हूँ स अग्नि प्रीतिवर निजता थी । मय न दन् व दन् जोकर दिग्गज जाव न एकाल म नि और दनु का अग्नि

दितेर्दंनोरभिप्रायं सत्तं गर्भस्य वर्धनम् । तस्य वीर्यं च विविधं प्रीत्येन्द्राय न्यवेदयत् ॥३०॥
विश्वासेकगृहं मित्रमपायप्रासवजितम् । अजितं सुकृतं नानाविध चेत्तदवाप्यते ॥३१॥

नारद उवाच

नमूचेरुच प्रियो भ्राता मयो दंत्यो महाबलः । भ्रातृहन्ता कथं मैत्र्य मयस्याऽसीत्सुरेश्वर ॥३२॥

ब्रह्मोवाच

दैत्यानामधिपश्चाऽऽसीद्बलवान्नमुचिः पुरा । इन्द्रेण वैरमभवद्भीषण लोमहर्षणम् ॥३३॥
मुढं हित्वा कदाचिद्भो गच्छन्तं तु शतश्रतुम् । दृष्ट्वा दैत्यपतिः शूरो नमुचिं पृष्ठतोऽन्वगात् ॥३४॥
तमायात्तमभिप्रेक्ष्य शचीभर्ता भयातुरः । ऐरावतं गजं त्यक्त्वा इन्द्रः फेनमथाऽऽविशत् ॥३५॥
स यक्षपाणिस्तरसा फेनेर्नवाहनद्रिपुम् । नमुचिर्नाशिमममत्तस्य भ्राता मयोऽनुजः ॥३६॥
भ्रातृहन्तृविनाशाय तपस्तेपे मयो महत् । माया च विविधामाप देवानामतिभीषणाम् ॥३७॥
वराश्चावाप्य तपसा विष्णोर्लोकवरायणात् । दानश्रीष्टः प्रियालापी तदाऽभवदसौ मयः ॥३८॥
अनीदं च ब्राह्मणान्मुख्य जेतुमिन्द्रे कृतक्षणः । दातार च तदाऽर्घ्यम्यः रतुपमानं च बन्दिभिः ॥३९॥
बिदित्वा मधया चायोर्मयं मायाविनं रिपुम् । उपशान्तं सुमुद्राय विप्रो भूत्वा तमभ्यगात् ॥
शचीभर्ता मयं दंत्यं प्रोवाचेदं पुनः पुनः ॥४०॥

प्राप, व्रत-पालन, गर्भ का दिना दिन वडना तथा उस भावी पुत्र का पराक्रम आदि विविध बातें बड़े प्रेम से कही।
कहा भी है कि 'एकमात्र विश्वास-भाव और मैत्री बिच्छेद के मय से रहित मित्र मनुष्य को अनेको अजित सात्वर्गों के प्रभाव से प्राप्त होता है ॥३७ ३१॥

नारद ने पूछा—सुरेश्वर! महाबलवान् मय नमुचि का प्रिय भाता था। उस मय को मातृ-हन्ता इन्द्र ने साप र्बसे मित्रता हो गई? ॥३२॥

ब्रह्मा ने कहा—प्राचीन काल में बलवान् नमुचि दैत्या का स्वामी था। उसकी इन्द्र से भीषण एक रोमाञ्चकारी शत्रुता हो गई। किसी समय मुद्गमूर्ति को छोड़कर आगते हुए इन्द्र को देखकर दैत्यराज शूर नमुचि उनका पीछा करने लगा। उसने अपना पीछा करते देख शचीपति इन्द्र मय से बिह्वल हो ऐरावत हाथी से उतरकर फेन में घुस गये। उन्होंने उस फेन से ही उस शत्रु को पीछता से मारा। नमुचि उस प्रहार से मर गया। मय उसी नमुचि का छोटा भाई था। उसने भाई के हत्याकारी को मष्ट करने के लिये तपस्या की। उसने तपोबल से देवा को डरा देने वाली भीषण माया प्राप्त की और सप के द्वारा लोचपालक विष्णु में वर पाकर वह मय अति दान-शुशल तथा मधुरभाषी बन गया। अग्नि और ब्राह्मणों की पूजा कर वह इन्द्र को जीतने का मौका ढूँढ़ने लगा। वही और वाचक लोग उसकी स्तुति किया करते थे। वह इन्द्र से मुद्ग के लिए तैयार हो रहा था। ऐसे मायावी शत्रु को वायु के द्वारा जानकर शचीपति इन्द्र ब्राह्मण के वेश में उस मय दैत्य के पास गये और बार-बार उससे यह कहने लगे ॥३३-४०॥

इन्द्र उवाच

देहि दंत्यपते मह्यमर्थिनेऽपेक्षितं वरम् । त्वां श्रुत्वा दातृतिलकमागतोऽहं द्विजोत्तमः ॥४१॥

ब्रह्मोवाच

मयोऽपि ब्राह्मणं मत्वाऽयदहस्तं मया तव । विचारयन्ति कृतिनो बह्वृत्पं वा पुरोऽर्थिनि ॥४२॥

इत्युक्ते तु हरिः प्राह सख्यमिच्छे ह्यहं त्वया । इन्द्र मयः पुनः प्राह किमनेन द्विजोत्तम ॥४३॥

न त्वया मम वर भोः स्वस्तोऽत्याह हरिर्मयम् । तत्त्वं वदेति स हरिर्दंत्येनोक्तः स्वकं वपुः ॥४४॥

दशोयामास दंत्याय सहस्राक्षं यदुच्यते । ततः सविस्मयो दंत्यो मयो हरिमुवाच ह ॥४५॥

मय उवाच

किमिदं वज्रपाणिस्त्व तवायोग्या कृतिः सखे । ॥४६॥

ब्रह्मोवाच

परिष्वज्य विहस्यैव वृत्तमित्यब्रवीद्वरिः । केनापि साधयन्त्यत्र पण्डिताश्च समोहितम् ॥४७॥

ततः प्रभृतिं शक्यं मयेन महती ह्यभूत् । सुप्रीतिर्मुनिशार्दूल मयो हरिहितः सदा ॥४८॥

इन्द्रस्य भयं गत्वा तस्मै सर्वं न्यबंदयत् । किं मे कृत्यमिति प्राह मयं मायाविर्न हरिः ॥४९॥

हरये च मयो माया प्रादात्प्रोत्था तया हरिः । प्राप्तः संप्रीतिमानाह किं कृत्यं मय तद्वद ॥५०॥

इन्द्र ने कहा—दंत्यपति ! मुझ याचक को मेरा अभीष्ट वर दो । दाताजी ने सर्वश्रेष्ठ तुम्हें मुनवर मैं उत्तम ब्राह्मण तुम्हारे पास आया हूँ ॥४१॥

ब्रह्मा बोले—मय ने भी उसको ब्राह्मण जानकर कहा—तुम ओ चाहो, वह मैं देने के लिए तैयार हूँ । क्या दानशील व्यक्ति याचक ने आ जाने पर उसने सामने दान की छोट्टाई या बढाई पर विचार करत हैं ? इतना कहने पर इन्द्र ने कहा मैं तुम्हारे साथ मित्रता चाहता हूँ । मय ने पुन इन्द्र से कहा 'द्विजवर' इसका क्या अर्थ ? ओ ! तुम्हारे साथ तो मेरी कोई शत्रुता नहीं । इन्द्र ने मय से "स्वस्ति" यह कहा । यह मुन दंत्य ने उस ब्राह्मण वेश्यापी इन्द्र से कहा कि इसका रहस्य मतलाओ । तब इन्द्र ने दंत्य को अपना सहस्र नेत्र वाला शरीर दिखाया । इन्द्र की इस कपट माया को देखकर विस्मित हो दंत्य ने इन्द्र से कहा ॥४२-४५॥

मय ने कहा—यह क्या, तुम तो वज्रपाणि इन्द्र हो । सखे ! यह कपट तुम्हारे समान देवता ने लिये उचित नहीं है ॥४६॥

ब्रह्मा बोले—इन्द्र ने हंसवर मय को गले लगाया और कहा कि जो होता था हो गया । इस लोभ में बुद्धिमान् व्यक्ति जिस किसी प्रकार स अपने इष्ट वा साधन करते हैं । मुनिशार्दूल ! तभी से मय के साथ इन्द्र की अति घनिष्ठ मैत्री हो गई । मय भी सर्वदा ने लिये इन्द्र का हितेच्छु बन गया । इन्द्र के भयन में जानकर मय ने सारा रहस्य कह दिया । यह मुन वर हरि ने मायावी मय से कहा कि मुझे क्या करना चाहिये । मय ने प्रेमपूर्वक अपनी माया (विद्या) हरि को दे दी । हरि ने माया विद्या पाकर अति प्रसन्न हो कहा कि 'मय ! मुझे क्या करना होगा वह बताओ' ॥४७-५०॥

मय उवाच

अगस्त्यस्याऽऽश्रमं गच्छ तदाऽस्ते गर्भिणी दितिः । तस्याः शुश्रूषणं कुर्वन्नास्त्व तत्र कियन्ति च ॥५१॥
अहानि मधवंस्तस्या गर्भमाविश्य वज्रधृक् । वर्धमानं च तं छिन्धि यावद्वश्योऽयवा मृतिम् ॥
प्राप्नोति तावद्वज्रेण ततो न भविता रिपुः ॥५२॥

ब्रह्मोवाच

तपेत्युक्त्वा मयं पूज्य मधवानेक एव हि । विनीतवत्तदा प्रायार्थितं मातरमञ्जसा ॥५३॥
शुश्रूषमाणस्तां देवीं शक्रो दंतेयमातरम् । सा न जानाति तच्चित्तं शक्रस्य द्विपतो दितिः ॥५४॥
गर्भे स्थितं तु यद्भूतं देवेन्द्रस्य विचेष्टितम् । अमोघं तन्मुनेस्तेजः कश्यपस्य दुरासदम् ॥५५॥
ततः प्रगृह्य कुलिशं सहस्राक्षः पुरंदरः । अन्तःप्रवेशकामोऽसौ बटुकालं समावसन् ॥५६॥
संघ्योदवशोऽपनिद्रां तामवेक्ष्य कुलिशापधुः । इदमन्तरमित्युक्त्वा दित्याः कुक्षिं समाविशत् ॥५७॥
अन्तर्वातं च यद्भूतमिन्द्रं दृष्ट्वा घृतायुधम् । हन्तुकामं तदोवाच पुनः पुनरभोतवत् ॥५८॥

गर्भस्थ उवाच

किं मां न रक्षसे वज्रिभ्रातरं त्वं जिघांससि । नारणे भारणादन्यत्पातकं विद्यते महत् ॥५९॥

मय ने कहा—अगस्त्य ने आश्रम में जाओ, वहाँ गर्भिणी दिति रहती है। उस आश्रम में कुछ दिनों तक उसकी शुश्रूषा करते हुए रहो। वज्रहस्त! तमय पाकर उसके गर्भ में घुसकर उस बच्चे को धुँसे हुए गर्भ को जब तक वह वयवता न स्वीकार करे अथवा मर न जाय तब तक वज्र से काटो। ऐसा करने से वह तुम्हारा शत्रु नहीं होगा ॥५१-५२॥

ब्रह्मा ने कहा—ऐसा ही होगा, यह कहकर मय की पूजा कर वह इन्द्र अकेले विनीत भाव से क्षीघ्र ही माता दिति के पास गया। वहाँ जाकर वह उस दैत्य-माता देवी की सेवा करने लगा। परन्तु वह दिनि ईर्ष्यालु इन्द्र के मनोगत भावों को नहीं जानती थी। उस भुनि कश्यप ने अघोच और दुर्लभ तेज के गर्भस्थ होने पर इन्द्र के मन में कैसे विचार हुये होंगे इस बात को भी दिति नहीं जानती थी। इधर सहस्राक्ष इन्द्र वज्र हाथ में लिये गर्भ में प्रवेश करने की इच्छा से बहुत समय तक वहाँ प्रतीक्षा करते हुये रह गये। निदान एक दिन दिति को सध्या समय उत्तर की ओर धिर रखकर सोते हुये देखकर 'यह अच्छा अवसर है' यह कहकर इन्द्र दिति के उदर में घुस गये। वज्र हाथ में लिये हुये और भारने के लिये उद्यत इन्द्र को देखकर गर्भस्थ जीव निर्भीक होकर बार-बार कहने लगा ॥५३-५८॥

गर्भस्थ शिशु ने कहा—वज्रिन्! तुम क्यों मेरी रक्षा नहीं करते? क्या अपने माई का ही वध करना चाहते हो? युद्ध से अत्यन्त किसी को भारने से जो सहायाय होता है, उससे बड़कर और कोई पाप नहीं है। पराक्रमी इन्द्र! बाहर निकलने पर मुझसे युद्ध करो। इसलिये इस प्रकार का यह दुष्कर्म तुम्हारे लिये उचित नहीं होगा।

ऋते युद्धान्महाबाहो शक्र युध्यस्व निरपते । मयि तस्मान्नतदेव तव युक्तं भविष्यति ॥६०॥
 शतक्रतुः सहस्राक्षः शचीभर्ता पुरंदरः । वज्रपाणिः सुरेन्द्रस्त्वं ते न युक्तं भवेत्प्रभो ॥६१॥
 अपवा युद्धकामस्त्वं मम निष्क्रमण यया । तथा क्रुह महाबाहो मार्गादस्मादपासर ॥६२॥
 कुमार्गे न प्रवर्तन्ते महान्तोऽपि विषद्वगताः । अबिद्यश्चाप्यशस्त्रश्च नैव चाऽऽयुधसंग्रहः ॥६३॥
 त्वं विद्यावान्वज्रपाणे मा निष्प्रांन्कि न लज्जसे । कुर्वन्ति गर्हितं कर्म न कुलीनाः कदाचन ॥६४॥
 हत्वा वा किं नु जायेत यशो वा पुण्यमेव वा । वध्यन्ते भ्रातरः कामादगर्भस्थाः किं न पीरयम् ॥६५॥
 यदि वा युद्धभक्तिस्ते मयि भ्रातरसंशयम् । ततो मुष्टि पुरस्कृत्य वज्रिणेऽसौ ध्यवस्थितः ॥६६॥
 बालघातो ब्रह्मघातो तथा विश्वासघातकः । एवंभूतं फलं शक्र कस्मान्मां हन्तुमुद्यतः ॥६७॥
 यस्याऽऽज्ञया सर्वमिदं बतन्ते सचराचरम् । सहन्ता बालकं मां वै किं यशः किन्तु पीरयम् ॥६८॥

ब्रह्मोवाच

एवं श्रुवन्तं तं गर्भं चिच्छेद कुलिशेन सः । श्रोयान्धानां लोभिनां च न घृणा क्वापि विद्यते ॥६९॥
 न भमार ततो बुद्धादाहस्ते भ्रातरौ ययम् । पुनश्चिच्छेद तान्मण्डान्मा घोरिरिति धाम्नुयन् ॥७०॥
 विश्वस्ताग्मातुर्गर्भस्याग्निजभ्रातृज्जशतकृतो । द्वेयविध्वस्तबुद्धीनां न क्षिते कुरुणाफणः ॥७१॥

प्रभो ! तुम शतक्रतु (सी यज्ञ करने वाले) सहस्राक्ष, शची के भर्ता, वज्र-पाणि, पुरन्दर और सुरेन्द्र हो, अतः यह कार्य तुम्हारे लिये युक्त नहीं होगा । अपवा यदि तुम युद्ध करना चाहते हो तो जिस प्रकार मैं यहाँ से निकलूँ बैसा करो । परन्तु महाबाहु ! इस कुमार्ग से अपने को हटाओ । महान् व्यक्ति आपत्ति में पड़ने पर भी कुमार्ग की ओर नहीं आते । तुम तो ब्रिथा विमुख और शरत्र-हीन भी नहीं हो । वज्रपाणे ! तुम तो आयुधवान् हो, विद्यावान् हो । तो क्या मुझको मारने में तुम रुज्जित नहीं होते ? कुलीन व्यक्ति अभी भी निन्दित कर्म नहीं करते । सोचो तो, मुझको मारने से तुमको क्या मिलेगा यश या पुण्य ? शोमवश गर्भरथ भ्राता को मारकर तुम कौन-सा पीरय करोगे ? अपवा भाई ! यदि तुम्हारी मुझसे निदिबन ही मुझ करने की इच्छा है (यदि तुम मुझे मारना चाहते हो) (तो उमने अपनी बड़ी मुट्ठी इन्द्र को दिसाते हुये कहा) तो तुम बालघाती, ब्रह्मघाती और विश्वास-घातक हो । यज्ञ ! तुमको इस पापगर्भ से क्या फल मिलेगा ? जिस लिये तुम मुझे मारने के लिये तैयार हो ? जिसकी आज्ञा से यह सम्पूर्ण स्यावर-जगम रूप जगत् सञ्चालित होता है क्या वह मेरे समान बालक का हत्यारा बने ? इसमें तुम्हें क्या यश मिलेगा ? और क्या पुरणार्थ होगा ? ॥५९-६८॥

ब्रह्मा ने कहा—इस प्रकार वानचीत करने हुए उस गर्भ को इन्द्र ने वज्र से काट डाला । मत्स्य है, त्रौप और लोभी जनों को किसी काम में घृणा नहीं होती । बटने पर भी वह गर्भरथ जीव मरता नहीं । किन्तु दुःख से गर्भ ने टुकड़ों में कहा—‘हम लोग भाई हैं । फिर इन्द्र ने उन टुकड़ों को भी काटा । इस पर मण्डो ने कहा—‘यज्ञक्रतो’ विश्वागपाय एव माना वे गर्भ में स्थित रूपसे मादवा को मल मारो ।’ परन्तु द्वेय से जिन प्राणियों की बुद्धि नष्ट

एवं तु खण्डितं खण्डं हस्तपादादिजीववत् । निर्विकारं ततो दृष्ट्वा सप्तसप्त सुविस्मितः ॥७२॥
 'एकवद्वहुरुपाणि गर्भस्यानि शुभानि च । रुदन्ति बहुरूपाणि मा रुतेत्यब्रवीद्वरिः ॥७३॥
 ततस्ते मरुतो जाता बलवन्तो महीजसः । गर्भस्या एव तेऽन्योन्यमूचुः शकं गतभ्रमाः ॥७४॥
 अगस्त्य मुनिशार्दूलं माता यस्याऽऽश्रमे स्थिता । अस्मत्पिता तव भ्राता सद्यं ते बहु मन्यते ॥७५॥
 अस्मानुपरि सन्नेहं मनस्ते विद्महे मुने । न यत्करोति इवपचः प्रवृत्तस्तत्र वज्रधृक् ॥७६॥
 इत्येतद्वचनं श्रुत्वा अगस्त्योऽगात्ससभ्रमः । दितिं संबोधयामास व्यथितां गर्भवेदनात् ॥
 तत्रागत्यः शचीकान्तमशपत्कुपितो भृशम् ॥७७॥

अगस्त्य उवाच

सद्ग्रामे रिपवः पृष्ठं पश्येयुस्ते सदा हरे । जीवतामेव भरणमेतदेव हि मानिनाम ॥
 पृष्ठं पलायमानानां यत्पश्यन्त्यहिता रणे ॥७८॥

ग्रहोवाच

साऽपि तं गर्भसंस्थं च शशापेन्द्रं दया दितिः ॥७९॥

दितिरुवाच

न पीर्यं कृतं तस्माच्छापोऽयं भविता तव । स्त्रीभिः परिभवं प्राप्य राज्यात्प्रभ्रश्यसे हरे ॥८०॥

हो गई है, उनके हृदय में खोबी सी भी करणा के लिये स्थान नहीं? इस प्रकार इन्द्र ने प्रत्येक खण्ड को खण्डित करके भी हाथ पैर वाले जीव के समान उनकासा भागो को निर्विकार देखा । यह देखकर वे अतिविस्मित हो गये । उन एक प्रकार के बहुत से रूपवाले पवित्र गर्भस्थ जीवों को विभिन्न प्रकार से रोते हुये दखकर इन्द्र ने कहा—'मा रुत (मरु रोओ) । इतना कहने से वे जीव महातेजस्वी एवं बलवान् 'मारुत' हो गये । गर्भमें रहकर ही उन जीवों ने मुनिवर अगस्त्य से जिनके आश्रम में उनकी माता रहती थी, इन्द्र के बारे में परस्पर बातचीत की फिर निराश होकर कहा 'मुन ।' हमारे पिता तुम्हारे भाई हैं और तुम्हारी मित्रता पर अविश्वविश्वास करते हैं । मुने ! हम लोगों पर तुम्हारे मन में स्नेह है, यह हम जानते हैं, परन्तु इतना होने पर जिस काम को एक बाणदाल भी नहीं कर सकता, उस कार्य में ब्रह्मचारी इन्द्र प्रवृत्त हुए हैं । यह सुनकर अगस्त्य सीधे वहाँ पहुँचे और गर्भपीडा से व्यथित दिति को संबोधित करने लगे । वहाँ अगस्त्य ने अत्यन्त क्रुणित होकर इन्द्र को शाप दिया ॥६९-७७॥

अगस्त्य ने कहा—हरे ! सर्वदा शत्रु सग्राम में तुम्हारी पीठ देखें । मान प्रिय व्यक्तियों के लिये यही जीते हुये भी मृत्यु के समान कष्ट भोगना है कि रण में उनके शत्रु भाणते हुये उन मनस्विमों की पीठ देखें ॥७८॥

ब्रह्मा ने कहा—उम दिनि ने भी शीघ्र से उस इन्द्र को शाप दिया, जो कि अभी गर्भ में ही था ॥७९॥

दिति ने कहा—तुमने पुरुषार्थ नहीं किया है (अर्थात् तुमने यह बापपत्ता की है) । अब तुमको यह शाप है कि ऐ इन्द्र ! तुम स्त्रियाँ में अनादर पाकर राज्य से च्युत होगे ॥८०॥

ब्रह्मोवाच

एतस्मिन्नन्तरे तत्र कश्यपो वै प्रजापतिः । प्रायाच्च व्ययितोऽगस्त्याच्छ्रुत्वा शक्रविचेष्टितम् ॥
गर्भान्तरगतः शक्रः पितरं ब्राह्म भोतवत् ॥८१॥

शक्र उवाच

अगस्त्याच्च दितेश्चैव बिभेमि क्रमितुं बहिः ॥८२॥

ब्रह्मोवाच

एतस्मिन्नन्तरे प्राप्य कश्यपोऽपि प्रजापतिः । पुत्रकर्म च तद्दृष्ट्वा गर्भान्तः स्थितिमेव च ॥
दितिशापमगस्त्यस्य ध्रुत्वाऽसौ दुःखितोऽभवत् ॥८३॥

कश्यप उवाच

निर्गच्छ शक्र पुत्रैतत्पापं किं कृतवानसि । न निर्मलकुलोत्पन्ना मनः कुर्वन्ति पातके ॥८४॥

ब्रह्मोवाच

स निर्गतो वक्ष्यपाणिः सत्रीडोऽधोमुखोऽब्रवीत् । तन्मूर्तिरेव वदति सदसच्चेष्टितं नृणाम् ॥८५॥

शत्र उवाच

यदुक्तमत्र श्रेयः स्यात्तत्कर्ताऽहमसंशयम् ॥८६॥

ब्रह्मोवाच

ततो ममान्तिकं प्रायात्लोकपालः स कश्यपः । सर्वं यूतमथोवाच पुनः पप्रच्छ मां सुरैः ॥८७॥
दितिगर्भस्य वै शान्तिं सहस्राक्षविशापताम् । गर्भस्थानी च सर्वेषामिन्द्रेण सह मित्रताम् ॥८८॥

ब्रह्मा ने कहा—इसी बीच प्रजापति कश्यप भी वही आ गए । वे अगस्त्य के मुँह से इन्द्र के दुःख के गुनकर अत्यन्त व्यथित हुये । इन्द्र मयभीत होकर गर्भ के भीतर से ही पिता से बोले ॥८१॥

इन्द्र ने कहा—अगस्त्य और दिति के भय से मैं बाहर आने से डर रहा हूँ ॥८२॥

ब्रह्मा ने कहा—इस समय प्रजापति कश्यप भी पुत्र के उगर्भ के और गर्भ के भीतर उगर्भो पुत्रा देसकर एव दिति तथा अगस्त्य के शाप को गुनकर अत्यन्त दुःखी हुए ॥८३॥

कश्यप ने कहा—शक्र ! निबटो । पुत्र ! तुमने यह पाप कार्य क्या किया है ? उच्च कुल से उत्पन्न व्यक्ति अभी भी पाप की ओर अपना मन नहीं लगाते ॥८४॥

ब्रह्मा ने कहा—यह वक्ष्यपाणि इन्द्र सज्जा से मुँह नीचे किए हुए निबट्ठा और बोला । मत्प है मनुष्य की आहुति ही उगरे सन् और असन् गर्भों को बता देती है ॥८५॥

इन्द्र ने कहा—जिस कार्य के करने में कस्याण होमा, यह मैं अवश्य करूँगा । आप कृपापूर्वक बतलाइये ॥८६॥

ब्रह्मा ने कहा—तदनन्तर लोकपालों के साथ कश्यप मेरे पास आये । सारी घटना यह गुनाई । पुनः देवताओं ने मुझसे पूछा—जिस प्रकार दिति की गर्भ-स्थानि, इन्द्र का शाप से उद्धार, उगर्भ सब जीवों की इन्द्र के साथ मैत्री

तेषामारोग्यता चापि शचीभर्तुरदोषताम् । अगस्त्यदत्तशापस्य विशापत्वमपि ज्ञेयम् ॥८९॥
 ततोऽहमब्रुव वाक्य कश्यप विनयान्वितम् । प्रजापते कश्यप त्व वसुभिर्लोकपालकं ॥९०॥
 इन्द्रेण सहितं शीघ्रं गौतमीं याहि मानद । तत्र स्नात्वा महेशानं स्तुहि सर्वं समन्वित ॥९१॥
 ततः शिवप्रसादेन सर्वं श्रेयो भवेदिति । तथेत्युक्त्वा जगन्मासी कश्यपो गौतमीं तदा ॥९२॥
 स्नात्वा तुष्टाव देवेशमेभिरेव पदधर्मैः । सर्वदुःखापनोराय द्वयमेव प्रकीर्तितम् ।
 गौतमी वा पुष्यनदी शिवो वा करुणाकर ॥९३॥

कश्यप उवाच ।

पाहि शक्र देवेश पाहि लोकनमस्कृत । पाहि पावन बागीश पाहि पन्नगभूषण ॥९४॥
 पाहि धर्म धृष्टारुद्र पाहि वेदत्रयेक्षण । पाहि गोधरलक्ष्मीश पाहि शर्व गजाम्बर ॥९५॥
 पाहि त्रिपुरहन्त्राय पाहि सोमार्घ्यभूषण । पाहि यमेश सोमेश पाह्यभीष्टप्रदायक ॥९६॥
 पाहि कारुण्यनिलय पाहि मङ्गलदायक । पाहि प्रभव सर्वस्य पाहि पालक वासव ॥९७॥
 पाहि भास्कर वित्तेश पाहि ब्रह्मनमस्कृत । पाहि विद्वेश सिद्धेश पाहि पूर्ण नमोऽस्तु ते ॥९८॥
 धोरससारकान्तरसंचारोद्विग्नचेतसाम् । शरीरिणा कृपासिन्धो स्वमेव शरणं दिव ॥९९॥

और उन जीवा का उत्तम स्वास्थ्य वाचीपति के दोषों का निराकरण एवं अगस्त्य के नियुक्त शाप से इन्द्र का उद्धार होया ? तब मैं विनयावनन कश्यप से कहा—प्रजापत ! कश्यप ! मानद ! तुम शीघ्र वसुधा लोकपालों और इन्द्र के सहित गौतमी के पास जाओ । उदम स्नान कर सबके साथ महेशान (शक्र) की स्तुति करो । शिव की कृपा से सब प्रकार से कल्याण होगा । कश्यप ने स्वकी स्वीकार किया और गौतमी के तट पर गया । उसमें स्नानकर इन बातों के कहे गये छान्ना स शक्र की स्तुति की । इस लोक में सब प्रकार के दुःखों को दूर करने के लिए शिवदेवता ही समर्थ मान गये हैं—एक पुष्यनदी गौतमी और दूसरे करुणा के सागर भगवान शक्र ॥८७-८९॥

कश्यप ने कहा—देवताओं के प्रभु शक्र ! रक्षा करो । लोकपूजित ! रक्षा करो । परम पावन ! बागी के स्वामी ! रक्षा करो ! सप के आभूषण वाले ! रक्षा करो । धर्म ! नन्दीश्वर (अथवा धर्मरूप धृष्टरूप) आरुद्र होने वाले ! रक्षा करो । तीन वर्णों की तीन नववाल् ! रक्षा करो । ब्रह्मा, शिवी लक्ष्मी (शोभा) के ईश ! रक्षा करो । शर्व ! गज धामधारिण ! रक्षा करो । त्रिपुर को नष्ट करने वाले नाथ ! रक्षा करो । अष्ट चन्द्रमा को घिराभूषण बनाने वाले ! रक्षा करो । यम ! रक्षा करो । सोम ! मनारथ देने वाले ! रक्षा करो । करुणामूर्ति ! रक्षा करो । मङ्गलदायक ! रक्षा करो । सर्वको उत्पन्न करने वाले ! रक्षा करो । वासव ! पालक ! रक्षा करो । भास्कर ! यम ! रक्षा करो । ब्रह्मा मे भी पूजित ! रक्षा करो । विद्वेश ! रक्षा करो । सिद्ध ! रक्षा करो । पूर्ण ! आपका नमस्कार है । शिव ! कृपासिन्धो ! समार रूपी भयंकर वन में संचार करने से उद्विग्न हुए चित्त वाले प्राणिमा के लिए तुम्हें एकमात्र शरण हो ॥९४-९९॥

ब्रह्मोवाच

एव सस्तुवतस्तस्य पुरतोऽभूदध्वज । वरेण च्छन्दयामास कश्यप त प्रजापतिम् ॥१००॥
 कश्यपोऽपि शिव प्राह विनीतवदिदं वच । स प्राह विस्तरेणाय इन्द्रस्य तु विचेष्टितम् ॥१०१॥
 शाप नाश च पुत्राणां परस्परमभिन्नताम् । पापप्राप्तिं तु शत्रुस्य शापप्राप्तिं तथैव च ॥
 ततो धृषाकपि प्राह विंति चागस्त्यमेव च ॥१०२॥

शिव उवाच

मरुतो ये भवत्युत्रा पञ्चाशत्सर्वकवर्जिता । सर्वे भवेयुः सुभगा भवेयुर्गजभाणि ॥१०३॥
 इन्द्रेण सहिता नित्यं घटंयेयुर्मुदाऽन्विता ॥१०४॥
 इन्द्रस्य तु हविर्भागो यत्र यत्र मखे भवेत् । आदौ तु मरुतस्तत्र भवेयुर्नात्र सशाय ॥१०५॥
 मरुद्भिः सहितं शक्रं न जयेयुः कदाचन । जेता भवेत्सर्वदेव सुखं तिष्ठ प्रजापते ॥१०६॥
 अद्यप्रभृति ये कुर्युरनयाद्भ्रातृघातनम् । वशच्छेदो विपत्तिश्च नित्यं तेषां भविष्यति ॥१०७॥

ब्रह्मोवाच

अगस्त्यमुपि शार्ङ्गं शम्भुरप्याह यत्नतः ॥१०८॥

शम्भु उवाच

म कुर्यास्त्व च कोप च शचीभर्तारं वै मून । शमं व्रज महाप्राज्ञ मरुतस्त्वमरा भवन् ॥१०९॥

ब्रह्मोवाच

विंति चापि शिव प्राह प्रसन्नो बृधभध्वज ॥११०॥

ब्रह्मा ने कहा—इस प्रकार स्तुति करने पर कश्यप के सामने शक्र ने प्रवृत्त होकर उस प्रजापति कश्यप को वरप्रदान किया । कश्यप ने भी विनीत भाव से इन्द्र के लिए वचन—शाप पुत्रों का नाश परस्पर की ईर्ष्या इन्द्र की पाप तथा पाप की प्राप्ति आदि—विस्तार के साथ बसा दिया । यह सुनकर शिव ने अगस्त्य और विंति से कहा ॥१००-१०२॥

शिव ने कहा—जो मरुत नाम के तुम्हारे उनकास पुत्र हैं । वे सब भाग्यशाली और यज्ञाग पाने वाले होंगे । वे इन्द्र के साथ आनन्दपूर्वक रहेंगे । जिन यज्ञों में इन्द्र को यज्ञ भाग प्राप्त होगा वहाँ इन्द्र के पहले मरुत ही यज्ञ भाग पायेंगे यह निश्चित समझो । मरुता के सहित इन्द्र को किसी कोई जीव न सनेगा । प्रजापते ! आप सुखपूर्वक निश्चित रहिये । यह आपका पुत्र सबदा ही विजयी होगा । आज्ञा स जो कोई अन्याय-पूर्वक भाइया का वध करेगा उनका वध-नाश होगा । और वे सबदा विपत्ति-ग्रस्त रहेंगे ॥१०३-१०७॥

ब्रह्मा ने कहा—इसके उपरान्त शम्भु ने बड़ प्रेम से अधिवर अगस्त्य से कहा ॥१०८॥

शम्भु ने कहा—मुने ! शचीपति के उपर आप क्रोध न करें । महाप्राज्ञ ! आप शान्त हो जाइय । मरुद्गण तो अब अमर हो गये हैं ॥१०९॥

ब्रह्मा ने कहा—परम प्रसन्न श्वषभ ध्वज शक्र ने विंति से भी कहा ॥११०॥

शिव उवाच

एको भूयान्मम सुतस्त्रैलोक्यैश्वर्यमण्डित । इत्येव चिन्तयन्तो त्व तपसे नियताऽभव ॥१११॥
तदेतत्सफल तेऽद्य पुनः बहुगुणा शुभा । अभवन्बलिन शूरास्तस्माज्जहि मनोरजम् ॥
अन्यानपि वरान्तुभूर्याचस्व गतसभ्रमा ॥११२॥

ब्रह्मोवाच

तदेतद्वचन श्रुत्वा देवदेवस्य सा दिति । कृताञ्जलिपुटा नत्वा शम् वायमयाव्रवीन् ॥११३॥

दितिरुवाच

लोके यदेतत्परम यत्पित्रो पुत्रदर्शनतम् । विज्ञेयेण तन्मातु प्रिय स्वास्तुरपूजित ॥११४॥
तनापि स्वसपत्तिशोयविश्रमवान्भवेत् । एकोऽपि तनय किन्तु बहवश्चेत्किमुच्यते ॥११५॥
मत्पुत्रास्ते प्रभावाच्च जेतारो बलिनो ध्रुवम् । इन्द्रस्य भ्रातर सत्य पुनाश्चैव प्रजापते ॥११६॥
अगस्त्यस्य प्रभावाच्च गङ्गापतिश्च प्रसादत । यत्र देव प्रसादस्ते तच्छुभ कौश्र सशय ॥११७॥
कृतार्थाऽह तयाऽपि त्वा भवत्या विज्ञापयाम्यहम् । शृणुष्व देव वचन कुरुष्व च जगद्धितम् ॥११८॥

ब्रह्मोवाच

वदेत्पुत्रता जगदात्रा विनिर्णयाव्रवीद्विदम् ॥११९॥

दितिरुवाच

सन्ततिप्रापण लोके दुर्लभं सुरवन्दित । विज्ञेयेण प्रिय मातु पुत्रश्चेत्किं नु वर्ण्यते ॥१२०॥

शंकर ने कहा—मूअ तलोक्य के एश्वर्य का अधिकारी एक पुत्र हो इस विचार से तुमने कठिन तपस्या की है। सो धाज तुम्हारी कामना सफल हो गई। मुन्हे रे पुत्र बहुगुणाली गुममूनि बली और गूर हो गय हैं। अब पानमिक सन्ताप छोड़ दो। सुन्दर भी बाली। तुम अब निश्चिन्त हो, अन्य वरा को मागो ॥१११ ११२॥

ब्रह्मा ने कहा—दवाषिषेव गकर की इन वाता को सुनकर वह दिति हाय जाडकर गम का प्रणाम करने बोली ॥११३॥

दिति ने कहा—गुरपूजित इस सत्तार म यह परम सौमन्य का विषय है कि माता पिता पुत्र का मुख देखें। माता ने लिय तो यह और भी अधिक प्रिय विषय है। तिस पर भी यदि एक भी पुत्र रूप सम्पत्ति गूरता और पयक्रम बाला हा जाता है ता महान् आनन्द होता है फिर एम बहून स पुत्रा क हो जान पर तो कहना ही क्या है। आपने प्रभाव म तया अगम्य और गगा नी कृपा से मरे सभी पुत्र कलवान् विजयो इन्द्र क माई और प्रजापति क पुत्र है, यह मन्त्र है। जहा आपकी कृपा होगी वहाँ तो गुम हागा ही, मम सन्तुह की गुजायग नहीं है। अब मैं कृताय हो गई तिस पर भी आज मैं भक्तिपूर्वक आपसे प्रार्थना करती हूँ। देव। इस प्रार्थना को सुनिये और जयत वा कल्याण कीजिय ॥११४ ११८॥

ब्रह्मा ने कहा—जगन्माता ने कहा कहा। सब निनि नम्रता के साथ बोली ॥११९॥

दिति ने कहा—सुरवन्दित। इस लोक म सन्तान प्राप्ति दुर्लभ है विष्णुकर माता को सन्तान बहुत प्रिय

स चापि गुणवाञ्छीमानाद्युष्मान्यदि जायते । किंतु स्वर्गेण देवेश' पारमेष्ठ्यपदेन वा ॥१२१॥
 सर्वेषामपि भूतानामिहामुन फलं पिणाम् । गुणवत्पुत्रसंप्राप्तिरभीष्टा सर्वदेव हि
 तस्मादाप्लवनादत्र क्रियता समनुग्रह ॥१२२॥

शंकर उवाच

महापापफल चेद मदेतदनपत्यता । स्त्रिया वा पुष्पस्यापि वन्ध्यत्व यदि जायते ॥१२३॥
 तदन स्नानमात्रेण तद्दोषो नाशमान्नुयात् । स्नात्वा तत्र फल दद्यात्स्तोत्रमेतच्च य पठेत् ॥१२४॥
 स तु पुत्रमवाप्नोति' त्रिमासस्नानदानत । अपुत्रिणी त्वत्र स्नान कृत्वा पुत्रमवाप्नुयात् ॥१२५॥
 ऋतुस्नाता तु या काचित्तत्र स्नाता सुतांल्लभेत् । त्रिमासाभ्यन्तर या तु गुर्विणी भविततस्त्वह ॥१२६॥
 फलं ' स्नात्वा तु मा पश्येत्स्तोत्रेण स्तोति सा तथा । तस्या शत्रुसम पुत्रो जायते नात्र सशय ॥१२७॥
 पितृदोषेदं च ये पुत्र न लभन्ते दिने भृशु । घनापहारदोषेदं च तत्रेया निष्कृति परा ॥१२८॥
 तत्रेया पिण्डदानेन पितृणा प्रीणनेन च । किंचित्सुवर्णदानेन सत पुत्रो भवेद्भुवम् ॥१२९॥
 ये म्यासाद्यपहर्तारो रत्नापह्नवकारका । श्राद्धकर्मविहीनाश्च तेषा वशो न वर्धते ॥१३०॥
 दोषिणा तु परेताना गतिरेया भवेदिति । सततिर्जायता इलाध्या जीवता तीर्थसेवनात् ॥१३१॥

होती है उस पर भी पुत्र हो तो फिर कहना ही क्या है? देवेन । यदि वह पुत्र गुणवान् श्रीमान् और दीधजीवी हो जाय तब तो उसके सामने स्वर्ग या ब्रह्मपद का भी कोई महत्त्व नहीं होता । शौरिष एव पारलौकिक फल की इच्छा करने वाले सभी प्राणिमो को गुणी पुत्र पाने की सबका इच्छा बनती रहती है । इसलिय आप इस विषय में बल्प-वचन के लिये अनुग्रह कीजिये ॥१२० १२१॥

शंकर ने कहा—जो यह अनपयता (संतान-हीनता) है वह महापाप का परिणाम है । अतः यदि स्त्री या पुरुष किसी को बध्यापन दोष हो जाय तो यहाँ स्नान करने से ही वह दोष नष्ट हो जायगा । जो इस तीर्थ में स्नान कर किसी को फल का दान करेगा और इस स्तोत्र का पाठ करेगा उसे तीन मास का स्नान-दान से पुत्र की प्राप्ति होगी । अपुत्रिणी स्त्री यहाँ स्नान करने से पुत्रवती होगी । जो कोई ऋतु-स्नाता स्त्री यहाँ स्नान करेगा वह पुत्र का प्राप्त करेगी । जो गमिणी स्त्री यहाँ तीन महीने तक स्नान कर पठ हाय मन्त्र करेगी और मरे स्तोत्र से शान्ति करेगी उसको इन्द्र के समान तेजस्वी पुत्र होगा इसमें सन्देह नहीं । दिति । जो अपने पिता के दोष तथा पन अपहरण करने के दोष का कारण पुत्र नहीं प्राप्त करत उनके लिये उत्तम उपाय बता रहा हूँ गुनो । ऐसे व्यक्ति यदि उम तीर्थ में पिण्डदान कर और पितरों को प्रसन्न कर तथा कुछ सोना दान दतो वे अवश्य पुत्रवान् होंगे । जो किसी की घनेद्वर को हृदय लन अथवा रत्न। पौ पुनता से बन्ध गते हैं और जो श्राद्ध आदि कर्म नहीं करत हैं उनकी वश वडि नहीं होती है । एक दष्ट व्यक्तिमा के मरने पर यही गति (बन्ध विच्छेद) होती है । अतः जायित व्यक्तिमा को इस तीर्थ में गवन में उत्तम सन्तति की प्राप्ति हाती है । जो निति और गथा के संगम में स्नान कर प्रभु सिद्ध कर

सममे दितिगङ्गाया स्नात्वा सिद्धेश्वर प्रभुम् । अनाद्यपारमजर चित्सदानन्दविग्रहम् ॥१३२॥
 देवर्षिसिद्धगन्धयोगेश्वरनिर्घेतम् । लिङ्गात्मक महादेव ज्योतिर्मयमनामयम् ॥१३३॥
 पूजयित्वोपचारैश्च नित्य भक्त्या यतव्रत । स्तोत्रेणानेन य स्तोति चतुर्दशष्टमीपु च ॥१३४॥
 यथाशक्त्या (क्ति) स्वर्णदान ब्राह्मणानां च भोजनम् । य करोत्यत्र गङ्गायां स पुत्रशतमाप्नुयात् ॥१३५॥
 सप्राप्य सकलान्कामानन्ते शिवपुर व्रजेत । स्तोत्रेणानेन य कश्चिद्यत्र वदापि स्तवोति माम् ॥
 पश्मासात्पुत्रमाप्नोति अपि 'घन्ध्याऽप्यशङ्कितम् ॥१३६॥

ब्रह्मोवाच

तत प्रभूति तत्तीर्थं 'पुनर्तोयंमुदाहृतम् । तत्र तु स्नानदानाद्यं सर्वकामानवाप्नुयात् ॥१३७॥
 मरुद्भिः सह मन्त्रेण मित्रतीर्थं तदुच्यते । निष्पापत्वेन चन्द्रस्य शशतीर्थं तदुच्यते ॥१३८॥
 ऐन्द्री श्रिय यत्र स्नेहे तत्तीर्थं कमलाभिधम् । एतानि सर्वतीर्थानि सर्वाभीष्टप्रदानि हि ॥१३९॥
 सर्वं भविष्यतीत्युक्त्वा शिवश्चान्तरधीयत । कृतकृत्याश्च ते जन्मु सर्व एव यथागतम् ॥
 तीर्थानां पुण्यद तत्र लक्षमेक प्रकीर्तितम् ॥१४०॥

इति श्रीमहापुराण आविशाहो स्वयम्भुपितृवादे तीर्थमाहात्म्ये पुनर्तोयादिलक्षण-
 तीर्थवर्णन नाम चतुर्विंशधिकशततमोऽध्याय ॥१२४॥
 गौतमीमाहात्म्ये पञ्चपञ्चाशततमोऽध्याय ॥५५॥

अनादि अपार अजर सत चित् एव आनन्दमय शरीरवाले देव ऋषि सिद्ध गन्धर्ग और योगीश्वरों से सबदा सेवित
 लिङ्गात्मक ज्योतिर्मय तथा निर्विकार महादेव की समय और मन्त्रित्वक नित्य पोशोपहार स पूजा करते हैं
 और चतुर्दशी अष्टमी आदि तिथियों में इस स्तोत्र से स्तुति करते यथाशक्ति ब्राह्मणों को भोजन कराते और उत्त
 म्गम म साना दान देते हैं वे सौ पुत्र पाते हैं । वे अपने जीवन की सम्पूर्ण कामनाओं का उपभोग कर अन्त में शिव
 लोक को जाते हैं । जो कोई जहाँ वहाँ भी इस स्तोत्र से मेरी स्तुति करता है वह चाहे वांछ ही क्यों न हो छह महीने
 के भीतर ही निश्चित रूप से पुत्रवान् हो जाता है ॥१२३ १३६॥

ब्रह्मा ने कहा—तब से वह तीर्थ पुनर्तोय कहा जाने लगा । उसमें स्नान दान आदि करने से सब कामनाय
 प्राप्त होती हैं । मरुत के साथ इन्द्र की मंत्री होने से वह मित्र-तीर्थ भी कहा जाता है । इन्द्र का वहा पाप दूर हो गया
 अतएव उसको शक्र-तीर्थ भी कहा जाता है । जहाँ इन्द्र ने अपनी धी प्राप्त की वहाँ कमला-तीर्थ बन गया है । ये
 सब तीर्थ सब प्रकार की मन कामनाओं को देने वाले हैं । तदनन्तर सब कुछ प्राप्त होगा यह कहकर शिव अर्थात्
 हो गये । वे सभी इन्द्र आदि ब्रह्मदेव होकर अपने गन्तव्य स्थान को चले गये । वहाँ एक लाख पवित्र तीर्थ निवास
 करते हैं ऐसा कहा जाता है ॥१३७ १४०॥

श्री ब्रह्ममहापुराण में पुनर्तोय वर्णन नामक एक सौ चौबीसवाँ अध्याय समाप्त ॥१२४॥

अथ पञ्चविंशधिकशततमोऽध्यायः

यमतीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

यमतीर्थमिति ख्यातं पितृणां प्रीतिवर्धनम् । दृष्टादृष्टेष्टद सर्वदेवविंशतिवितम् ॥१॥
 तस्य प्रभावः वक्ष्यामि सर्वपापप्रणाशनम् । अनुह्राव इति ख्यातं कपोतो बलवान्भूत् ॥२॥
 तस्य भार्या हेतिनाम्नो पक्षिणी कामरूपिणी । मृत्योः पौत्रो ह्यनुह्रावो दौहित्री हेतिरेव च ॥३॥
 कालेनाय तपो पुत्रा पौत्राश्चैव बभूवुरे । तस्य शत्रुश्च बलवानुलूको नाम पक्षिराद् ॥४॥
 तस्य पुत्राश्च पौत्राश्च आग्नेयास्ते बलोत्कटाः । तयोश्च वररुमभवद्बहुकालं द्विज-मनो ॥५॥
 गङ्गाया उत्तरे तीरे कपोतस्याऽऽश्रमोऽभवत् । तस्याश्च दक्षिणे कूल उलूको नाम पक्षिराद् ॥६॥
 वासः चक्रे तत्र पुत्रं पौत्रंश्च द्विजसत्तम । तयोश्च युद्धमभवद्बहुकालं विरुद्धयोः ॥७॥
 पुत्रं पौत्रंश्च वृत्तपोर्बलिनोर्बलिभिः सह । उलूको वा कपोतो वा नैवाऽऽनोति जयाजयौ ॥८॥
 कपोतो यममाराध्य मृत्युं पंतामहं तथा । याम्यमस्त्रमवाप्ताय सर्वस्योऽप्यधिकोऽभवत् ॥९॥
 तपोलूकोऽग्निमाराध्य बलवान्भवद्भुशम् । वररुमस्तयोर्युद्धमभवच्चान्तिभीषणम् ॥१०॥
 तत्राऽऽग्नेयमुलूकोऽपि कपोतायास्त्रमाक्षिपत् । कपोतोऽप्यथ पाशाखं याम्यानाक्षिप्य शत्रवे ॥११॥

अध्याय १२५

यमतीर्थं वा वर्णनं

ब्रह्मा ने कहा—(इसके बाद) पितरों के आनन्द को बढ़ाने वाला दृष्ट अदृष्ट और इष्ट फल को देने वाला और सब देवा एव ऋषियां से सन्निवृत्त यम-तीर्थ नाम का एक प्रसिद्ध तीर्थ है। सब प्रकार के पापों को नष्ट करने वाले उस तीर्थ के प्रभाव को बतला रहा हूँ। एक अनुह्राव नाम का बलवान् बकूतर था। उसकी हेति नाम की भार्या थी, जो अत्यन्त सुन्दर पक्षिणी थी। अनुह्राव मृत्यु का पौत्र और हेति उसकी नतिनी (बन्धा की बन्धा) थी। समय आने पर उनके पुत्र और पौत्र हुए। उसका एक उलूक नामक बलवान पक्षिराज था। उसके भी अत्यन्त विरट अग्निवापी पुत्र और पौत्र हुए। उन दोनों पक्षिजुल म दोषकालीन वैर हो गया। गया के उत्तर तीर पर बकूतर का घासला था और उसके दक्षिणी तट पर पक्षिराज उलूक निवास करता था। द्विजवर! पुत्रा और पौत्रों में युवन दोनों बलवाली पक्षीदला का बहुत बाल सङ्ग युद्ध चलता रहा परन्तु कपोत या उलूक दोनों में से किसी की हार-जीत नहीं हुई। कपोत ने पितामह मृत्यु (यम) का आराधना कर याम्य अस्त्र प्राप्त कर लिया जिससे वह सबम अचिन्त पक्षिनाली हो गया। इसी प्रकार उलूक भी अग्नि की आराधना से अत्यन्त बलवान् हो गया। इस प्रकार देव-वर पा देने से उन्मत्त उन दोनों पक्षियां म घोर सङ्ग्राम हुआ। उस युद्ध में उलूक ने कपोत पर आग्नेयास्त्र और कपोत ने

उलूकामय दण्ड च मृत्युपाशानवासृजत् । पुनस्तदभवद्युद्धं पुराऽऽङ्घ्रिकयोर्वथा ॥१२॥
हेति कपोतकी दृष्ट्वा ज्वलनं प्राप्तमन्तिके । पतिव्रता महायुद्धे भर्तुं सा द्रुष्ट्वा विह्वला ॥१३॥
अग्निना वेष्ट्यमानाश्च पुनान्दृष्ट्वा विस्त्रेपत । सा गत्वा ज्वलनं हेतिस्तुष्ट्या च विविधोपितभि ॥१४॥

हेतिरुवाच

रूपं न दानं न परोक्षमस्ति, यस्याऽऽत्मभूतं च पदार्थजातम् ।
अनन्ति हव्यानि च येन देवा, स्वाहापतिं यज्ञभुजं नमस्ये ॥१५॥
मुखभूतं च देवानां देवानां हृद्यवाहनम् । होतारं चापि देवानां देवानां दूतमेव च ॥१६॥
तं देवं शरणं यामि आदिदेवं विभावसुम् । अन्तस्थितं प्राणरूपो बहिर्दद्यात्प्रदो हि यः ॥
यो यज्ञसाधनं यामि शरणं तं धनत्रयम् ॥१७॥

अग्निरुवाच

अमोघमेतदस्त्रं मे न्यस्तं युद्धे कपोतकि । यत्र विश्वमघेदस्त्रं तं मे ब्रूहि पतिव्रते ॥१८॥

कपोत्युवाच

मयि विश्रम्यतामस्त्रं न पुनः न च भर्तारि । सत्यवाग्भव हृद्येश जातवेदो नमोऽस्तु तः ॥१९॥

जातवेदा उवाच

तुष्टोऽस्मि तव वाक्येन भर्तृभक्त्या पतिव्रते । तवापि भर्तृपुत्राणां हेति क्षेमं ददाम्यहम् ॥२०॥
आग्नेयमेतदस्त्रं मे न भर्तारि सुतानपि । न त्वा दहेत्ततो याहि सुखेन त्वं कपोतकि ॥२१॥

एतन् उलूक पर याम्य पास की छोड़ा । इस प्रकार प्राचीन काल के आदी और वक्र पक्षियों के समान यह युद्ध होने लगा । पतिव्रता कपोतकी हेति ने देखा कि उसके पति के पास अग्नि की लपट पड़ चुकी है और पुत्री की अग्नि ने घेर लिया है इससे वह बहुत घबराई । तब अग्नि के पास जाकर यह विविध वाक्यों से स्तुति करने लगी ॥११॥

हेति ने कहा—जिनका स्वरूप और दान किसी से छिपा नहीं है जो सभी पदार्थों को आत्मसात् कर लेते हैं, जिनकी सहायता से देवता हव्य ग्रहण करते हैं ऐसे स्वाहा के पति यज्ञभुज अग्नि को नमस्कार करती हूँ । जो अग्निदेव देवताओं के मूल के समान है जो देवों के हव्य देने वाले हैं जो देवताओं के होता और दूत हैं उस अग्निदेव विभावसु (अग्नि) की शरण में ग्रहण करती हूँ । जो प्राणरूप होकर समस्त प्राणियों के अंत में स्थित है जो बाहर (जगत में) रहकर सबके अन्न दाता है जो यज्ञ के एकमात्र साधन हैं एमे धनत्रय अग्नि की शरण में ग्रहण करती हूँ ॥१५१॥

अग्नि ने कहा—कपोतकि । मया यह अस्त्र अमोघ है जिसका इस युद्ध में प्रयोग हो गया है । इसलिये पतिव्रते ! जहाँ यह विश्रम्य ले (अर्थात् जिसकी मार कर यह शान्त हो जाय) वह मुझ यताओ ॥१८॥

कपोती ने कहा—मुझ पर यह विश्रम्य करे । मेरे पुत्र और पति पर इसका प्रभाव न पड़े । हव्येश ! आप अपनी बात सत्य कीजिये जातवेदा ! आपको नमस्कार है ॥१९॥

अग्नि ने कहा—पतिव्रते ! तुम्हारे पति प्रम और इन वाक्यों से मैं प्रसन्न हूँ हेति ! तुम्हारे भर्ता पुत्र और स्वयं तुमको भी धन्याय न करदान देता हूँ । यह मेरा आग्नेयस्त्र न तो तुमको ही जलायेगा न तुम्हारे पति या पुत्रों को ही । कपोतकि ! तुम सुखपूर्वक आओ ॥२०२१॥

ब्रह्मोवाच

एतस्मिन्नन्तरे तत्र उलूकी ददृशे पतिम् । वेष्ट्यमानं याम्यपाशैर्यमदण्डेन ताडितम् ॥
उलूकी दुःखिता भूत्वा यमं प्रायाद्भयभयतुरा ॥२२॥

उलूक्युवाच

त्वद्भूता अनुद्रवन्ते जनास्त्वद्भूता ब्रह्मचर्यं चरन्ति ।
त्वद्भूता साधु चरन्ति धीरास्त्वद्भूता कर्मनिष्ठा भवन्ति ॥२३॥
त्वद्भूता अनाशकमाचरन्ति, ग्रामादरण्यमभि यच्चरन्ति ।
त्वद्भूताः सौम्यतामाधयन्ते, त्वद्भूताः सोमपानं भजन्ते ॥
त्वद्भूताश्चाग्नगोदाननिष्ठास्त्वद्भूता ब्रह्मवादं वदन्ति ॥२४॥

ब्रह्मोवाच

एवं 'श्रुत्वया तस्या तामाह दक्षिणदिवपतिः ॥२५॥

यम उवाच

वरं वरय भद्रं ते दास्येऽहं मनसः प्रियम् ॥२६॥

ब्रह्मोवाच

यमस्येति वचः श्रुत्वा सा तमाह पतिव्रता ॥२७॥

ब्रह्मा ने कहा—इसी बीच उलूकी ने भी अपने पति का युद्ध में मृत्युपाश से घेरा और यमदण्ड से पिटाई देता। यह देखकर उलूकी दुःखी और भयानुर होकर यम के समीप गई ॥२२॥

उलूकी ने कहा—देव ! तुमसे यमगीत होकर सभी प्राणी माय जाते हैं। तुमसे डरकर ही प्राणी ब्रह्मचर्य-व्रत का पालन करते हैं। धीर पुरुष तुम्हारे भय से ही साधु आचरण करते हैं और तुम्हारे भय से ही सभी अपने वर्त-य्या में आस्था रखते हैं। तुम्हारे ही भय से अविष्वक्ता कार्य किये जाते हैं और लाय गाँव से जगल हो जाते हैं। तुम्हारे भय से मनुष्य अपनी बर्बरता छोड़कर विनीत बन जाते हैं। तुम्हारे डर से सोम-पान किया जाता है। तुम्हारे डर से मनुष्य अन्नदान, गोदान आदि में निष्ठा रखते हैं और तुम्हारे भय में मनुष्य ब्रह्मवाद (आस्तिकवाद) का प्रवचन करते हैं। ॥२३-२४॥

ब्रह्मा ने कहा—इस प्रकार की स्तुति सुनकर दक्षिण दिशा के स्वामी यम ने उस उलूकी से कहा ॥२५॥

यम ने कहा—भद्र ! वर मागो ! मैं तुम्हारी मन-कामना पूर्ण करेगा ॥२६॥

ब्रह्मा ने कहा—यम की बातें सुनकर उम पतिव्रता ने यम से कहा ॥२७॥

उल्लूक्युवाच

भर्ता मे वेष्टित पाशैर्दण्डेनाभिहतस्तव । तस्माद्रक्ष सुरश्रेष्ठ पुत्रान्भर्तारमेव च ॥२८॥

ब्रह्मोवाच

॥२९॥

'तद्वाक्पातृपया युक्तो यम प्राह पुन पुन

यम उवाच

॥३०॥

पाशाना चापि दण्डस्य स्थान वद शुभानने

ब्रह्मोवाच

॥

सा प्रोवाच यम देव मयि पाशास्त्वपेरिता । आविशन्तु जगन्नाथ दण्डो मयमेव सविशेत् ॥

॥३१॥

तत प्रोवाच भगवान्यमस्ता कृपया पुन

यम उवाच

॥३२॥

तव भर्ता च पुत्राश्च सर्वे जीवन्तु विज्वरा

ब्रह्मोवाच

॥

म्यवारयद्यम पाशानाग्नेयास्त्र तु हृष्यवाद् । अपोतोलूकयोश्चापि प्रीतिं व चक्रत सुरौ ॥

॥३३॥

आहनुश्च द्विजन्मानौ त्रियता वर इस्मित

पक्षिणावूचतु

॥३४॥

भवतीर्दानं लब्ध वरव्याजेन दुरकरम् । धय च पक्षिण पापा किं वरेण सुरौत्तमौ ॥३४॥

उल्लूकी ने कहा—सुरश्रेष्ठ ! मेरा पति तुम्हारे पाग से बँधा हुआ है । तुम्हारे दण्ड से पीड़ित है । इसलिये मेरे पुत्र और पति की रक्षा करो ॥२८॥

ब्रह्मा ने कहा—उल्लूकी की वाता की सुनकर यम ने दयाद्र होकर बार-बार कहा ॥२९॥

यम ने कहा—हे शुभानने ! मेरे पाश और दण्ड के लिये स्थान बतलाओ ॥३०॥

ब्रह्मा ने कहा—उसने यम देवता से कहा—तुमने अपने पाशा को मेरे ऊपर ही पका है । अतः जगन्नाथ ! य पाश और दण्ड मझम ही नीन हो जायें । इसने बाद भगवान यम ने शृपापूर्वक उससे कहा ॥३१॥

यम ने कहा—तुम्हारे पुत्र और पति सब निष्पष्टक होकर जीय ॥३२॥

ब्रह्मा ने कहा—इस प्रकार यम ने उल्लूकी को वर देकर अपने पाशों (बचन) को और अग्नि ने अपने आग्नेयास्त्र को हटा दिया । अपोत और उल्लूक पर भी उन दोनों देवाने अपनी प्रसन्नता व्यक्त की और उन दोनों पक्षिया से कहा कि अपन अभीष्ट वर माओ ॥३३॥

दोनों पक्षी बोले—सुरोत्तम ! आज अपने परस्पर के वर के बहाने ही आप लोग का यह दुःख दान प्राप्त हुआ । हम तो पापकर्मी पक्षी हैं हम लोगो को वर की क्या आवश्यकता ? यदि आप देवता हम लोगो को वर देना

अथ देवो वरोऽस्माक भवद्भूया प्रीतिपूर्वकम् । नाऽऽत्मार्यमनुयाचावो दीयमान वर शुभम् ॥३५॥
 आत्मार्यं यस्तु याचेत स शोभ्यो हि सुरेश्वरौ । जीवितसफल तस्य य परार्थेद्यत सदा ॥३६॥
 अग्निरापो रवि पृथ्वी धान्यानि विविधानि च । परार्थं वर्तन तेषां सता चापि विशेषत ॥३७॥
 ब्रह्मादयोऽपि हि यतो युज्यन्ते मृत्युना सह । एव ज्ञात्वा तु देवेशो वृथा स्वार्थं परिश्रम ॥३८॥
 जन्मना सह यत्पुसा विहित परमेष्ठिना । कदाचिन्नान्यथा तद्वै वृथा विलश्यन्ति जन्तव ॥३९॥
 तस्माद्याचावहे किंचिद्धिताय जगता शुभम् । गुणदायि तु सर्वेषां तद्युवा (युवान्मा) मनुमन्यताम् ॥४०॥

ब्रह्मोवाच

तावाहुतुरुभो देवी पक्षिणौ लोकविद्युतौ । धर्मस्य यदासौष्वापर्यं लोकानां हितकाम्यया ॥४१॥

पक्षिणावूचतु.

आवाभ्यामाश्रमो तौयै गङ्गाया उभये तटे । भवेता जगता नाथावेष एव परो वर ॥४२॥
 स्नान दान जपो होम वित्तुणां चापि पूजनम् । सुकृती दुष्कृती याऽपि यः करोति यथा तथा ॥
 सर्वं तदक्षय पुण्य स्यादित्येष परो वर ॥४३॥

देवावूचतु.

एवमस्तु तथावाग्यस्तुप्रीतौ तु युवावहं

॥४४॥

ही जाहूत हैं तो हम भी आप लोग का यह दिया हुआ भूम वर अपने स्वाय के लिये नहीं चाहते हैं क्योंकि हे सुरेश्वर गण ! जो व्यक्ति अपने धुत्र स्वाय के लिये याचना करता है उसका जीवन प्रणशनीय नहीं होता । उसी व्यक्ति का जीवन सफल कहा जाता है जो सदा परोपकार के लिये उत्तम रहता है । अन्न, जल मृद पृथ्वी विविध प्रकार के वायु आदि परोपकार के लिए ही अपना अस्तित्व बनाय हुआ है और प्रायः सज्जन व्यक्ति विगम रूप से परोपकार के लिए जीते हैं । जब ब्रह्मा आदि देव भी मृत्यु की पागल बच्चे हैं तो यह जानकर हे देव ! स्वाय के लिए परिश्रम करना व्यर्थ है । परमेष्ठी (ब्रह्मा) न प्राणिमा के जन्म व साथ जो कुछ निर्दिष्ट कर दिया है, वह किसी प्रकार से बदल नहीं जा सकता । तब जीवा की अपने स्वाय के लिए कष्ट उठाना व्यर्थ है । इसलिये लोचन-वत्पाण के लिये कुछ भूम और गुण प्रद वरदान माँग रहे हैं उसरी आप दोनों स्वीकार करें ॥३४४०॥

ब्रह्मा ने कहा—उन दोनों लोचन प्रसिद्ध देवताओं से उन दोनों पक्षियों ने धर्म और यज्ञ की प्राप्ति के लिये माय ही लोचन की कामना से कहा ॥४१॥

दोनों पक्षियों ने कहा—जन्म के स्वामी ! क्या के दोनों तटा पर हम लोचन व आश्रम हैं । वे दोनों आश्रम तीर्थ यन आर्य यही हमारे लिए उत्तम वर है । सुकृती या दुष्कृती कोई भी हो और वह यही स्नान दान जप होम और पित्रा की पूजा आदि कर्म बाहे जिस किसी प्रकार कर परन्तु उसरी उत्तम अश्वयुष्य प्राप्त हो यही हमारा अमोघ वर है ॥४२-४३॥

दोनों देवों ने कहा—हम दोनों प्रसन्न होकर कहते हैं कि ऐसा ही होगा तथा दूसरी बातें भी हामी ॥४४॥

यम उवाच

उत्तरे गौतमीतीरे यमस्तोत्रं पठन्ति ये । तेषां सप्तसु वंशेषु नाकाले-मृत्युमाप्नुयात् ॥४५॥
 पुरुषो भाजनं च स्यात्सर्वदा सर्वसंपदाम् । यस्त्विदं पठते नित्यं मृत्युस्तोत्रं जितात्मवान् ॥४६॥
 अप्यासीतिसहस्रं च ध्याधिभिर्न स बाध्यते । अस्मिन्स्तोत्रे द्विजश्रेष्ठो त्रिमासाद्युर्विणी सती ॥४७॥
 अर्वाग्वन्ध्या च यन्मासात्सप्ताहं स्नानमाचरेत् । वीरसूः सा भवेन्नारी शतायुः स सुतो भवेत् ॥
 लक्ष्मीवान्मतिमाञ्जूरः पुत्रपौत्रविवर्धनः । तत्र पिण्डादिदानेन पितरो मुक्तिमाप्नुयुः ॥४८॥
 मनोवाक्कायजात्पापात्स्नानमुक्तो भवेन्नरः ॥४९॥

ब्रह्मोवाच

यमयाकयादनु तथा हव्यवाडाह पक्षिणौ ॥५०॥

अग्निरुवाच

मत्स्तोत्रं दक्षिणे तीरे ये पठन्ति यतव्रताः । तेषामारोग्यमेश्वर्यं लक्ष्मीं हव्यं ददाम्यहम् ॥५१॥
 इदं स्तोत्रं तु यः कश्चिद्यत्र क्वापि पठेन्नरः । नैवाग्नितो भयं तस्य लिखितेऽपि गृहं स्थिते ॥५२॥
 स्नानं दानं च यः कुर्यादग्नितोत्रे शुचिर्नरः । अग्निष्टोमफलं तस्य भवेदेव न संशयः ॥५३॥

ब्रह्मोवाच

ततः प्रभृति तत्तीर्थं याम्यमानेयमेव च । कपोतं च तपोलूकं हेतुलूकं विदुर्वृधाः ॥५४॥

यम ने कहा—जो गौतमी के उत्तर तीर पर यम का स्तोत्र पढ़ेये उनकी सात पीढ़ी में किसी की अकाल-मृत्यु नहीं होगी। जो समयभी व्यक्ति उस मृत्यु-स्तोत्र का सर्वदा पाठ करेगा वह सब प्रकार की सम्पत्ति प्राप्त करेगा और अट्ठासी हजार व्याधिमा से कभी भी पीडित नहीं होगा। पक्षिश्रेष्ठ ! इस तीर्थ में गर्भिणी स्त्री यदि तीन महीने तक और बन्ध्या छः महीने से कम (या) सात दिन भी स्नान कर ले तो वह नारी वीर-पुत्र की जननी होगी और वह पुत्र शतायु, लक्ष्मीवान्, मतिमान्, शूर और पुत्र-पौत्र को बढ़ाने वाला होगा। उस तीर्थ में पिण्डदान करने से पितर मुक्ति प्राप्त करते हैं। मनुष्य उसमें स्नान करने से मानसिक, वाक्पिक और वाचिक पापा से छूट जाता है ॥४५-४९॥

ब्रह्मा ने कहा—यम के कहने के बाद अग्नि ने पक्षियों से कहा ॥५०॥

अग्नि ने कहा—जो व्रती मेरे स्तोत्र को दक्षिण तीर पर पढ़ेये उनको मैं आरोग्य ऐश्वर्य, लक्ष्मी और सुन्दर रूप प्रदान करूँगा। जो कोई व्यक्ति इस स्तोत्र को जहाँ-वहाँ भी पढ़ता है अथवा लिखकर अपने घर में रखता है उसको अग्नि से भय नहीं होता। जो मनुष्य पुनीत माव से इस अग्नि-तीर्थ में स्नान करता है और दान देता है, उसको अग्निष्टोम यज्ञ के समान फल मिलता है, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं ॥५१-५३॥

ब्रह्मा ने कहा—उस समय से उस तीर्थ को याम्य, आनेय, कपोत, उलूक तथा हेति-उलूक तीर्थ के नामसे

तत्र त्रीणि सहस्राणि तावन्त्येव शतानि च ॥ पुनर्नवतितीर्थानि प्रत्येक मुक्तिभाजनम् ॥५५॥
तेषु स्नानेन दानेन प्रेतीभूताश्च ये नराः । पुनस्तस्ते पुनर्वित्ताद्या आक्रमेयुर्दिव शुभा ॥५६॥

इति श्रीमहापुराणे भादिग्राहोत्तीर्थमाहात्म्ये यमाम्यादिनवत्युत्तरत्रिंशताधिक-

त्रिसहस्रतीर्थवर्णनं नाम पञ्चविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१२५॥

गीतमीमाहात्म्ये षट्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥५६॥

अथ षड्विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः



तपस्तीर्थवर्णनम्

तपस्तीर्थमिति एषात् तपोवृद्धिकरं महत् । सर्वकामप्रदं पुण्या पितृणां प्रीतिवर्धनम् ॥१॥
सस्मिस्तोयं तु यद्वत् भूषणं पापप्रणाशनम् । अपामग्नेश्च सबादमूषोणा च परस्परम् ॥२॥
अपो ज्येष्ठतमा कोचिन्मेनिरेर्गिनं तथाऽपरे । एव ब्रुवन्तो भुनक्ष्यं सबादं चाग्निवारिणो ॥३॥
विनाऽग्निं जीवन् नव स्याज्जीवभूतो यतोऽनलः । आत्मभूतो हव्यभूतश्चाग्निना जायतेऽखिलम् ॥४॥
अग्निना ध्रियते लोको ह्यग्निर्गर्जातिर्मयं जगत् । तस्मादग्ने परं नास्ति यादनं दैवतं महत् ॥५॥
अन्तर्गर्जति स एवोक्त परं ज्योति स एव हि । विनाऽग्निना किञ्चिदस्ति पश्य धाम जगत्प्रथमम् ॥६॥

विद्वान् लोग बहने लगे । वहाँ इसके अतिरिक्त तीन हजार तीन सौ नव्वे तीर्थ भी हैं जिनमें से प्रत्येक ही मुक्ति देने वाले हैं । उनमें स्नान करने और दान देने से अनुप्य पवित्र हो जाता तथा पुनः और पौनः से परिपूर्ण होकर मृत्यु के बाद स्वर्ग को प्राप्त करता है ॥५४-५६॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में यमादि तीर्थ-वर्णन नामक एक सौ पञ्चीसवाँ अध्याय समाप्त ॥१२५॥

अध्याय १२६

तपस्तीर्थ का वर्णन

ग्रह्या ने कहा—इसके बाद तपस्या की वृद्धि करने वाला तपस्तीर्थ नामक एक प्रसिद्ध तीर्थ है जो पवित्र सब कामनाओं को देने वाला और पितृणां आनन्द बढ़ाने वाला है । उस तीर्थ में जो पाप को दूर करने वाली घटना हुई उसको मुनो । एक बार ऋषियों में जल और अग्नि को लेकर परस्पर सबाद हुआ । कुछ ऋषि जल को ज्येष्ठ मानते थे तो कुछ अग्नि को । इस प्रकार अग्नि और जल की थप्यता को लेकर बातचीत होन लगी और धीरे धीरे बढ़ विवाद का रूप में बदल गई । कुछ मुनि बहुत थे कि विना अग्नि के जीवन दुःख है क्योंकि अग्नि ही प्राणरूप है अग्नि ही आत्मा स्वरूप और हव्य रूप भी है अग्नि सही सम्पूर्ण विषय की उत्पत्ति होती है अग्नि सही मह एतद् दिवा हुआ है और अग्नि से ही ससार व्यापितमय हाता है । इसलिये अग्नि स बड़कर कोई पवित्र दाना नहीं है । वही अन्तर्गर्जति है, वही परं ग्याति भी है, जिसका स्थान तीना छोड़ म है उस अग्नि का विना इस जगत् में अन्य किसी पदार्थ का अस्तित्व नहीं है । इसलिये सम्पूर्ण भूता में अग्नि के अतिरिक्त और कोई थप्य ब्रह्मज्ञान के योग्य नहीं है ।

तस्मादग्नेः परं नास्ति भूतानां ज्येष्ठ्यभाजनम् । योयित्सेत्रेऽर्पितं बीजं पुरुषेण यथा तथा ॥७॥
तस्य देहादिका शक्तिः कृशानोरेव नान्यथा । देवानां हि मुखं वह्निस्तस्मान्नातः परं विदुः ॥८॥
अपरे तु ह्यपां ज्येष्ठ्यं मेनिरे वेदवादिनः । अद्भिः संपत्स्यते ह्यध्रं शुचिरद्भिः प्रजायते ॥९॥
अद्भिरेव धृतं सर्वमापो वं मातरः स्मृताः । त्रैलोक्यजीवनं वारि वदन्तीति पुराविदः ॥१०॥
उत्पन्नममृतं ह्यदभ्यस्ताभ्यश्चोषधिसंभवः । अनिर्ज्येष्ठ इति प्राहुरापो ज्येष्ठतमाः परे ॥११॥
एवं भीमांसमानास्ते ऋषयो वेदवादिनः । विरुद्धवादिनो मां च समभ्येत्येदमब्रुवन् ॥१२॥

ऋषय ऊचुः

॥१३॥

अग्नेरपां वद ज्येष्ठ्य त्रैलोक्यस्य भवान्प्रभुः

ब्रह्मोवाच

अहमप्यब्रवं प्राप्तानूपोत्सर्वाग्न्यतव्रतान् । उभौ पूज्यतमौ लोक उभाभ्यां जायते जगत् ॥१४॥
उभाभ्यां जायते हव्यं कव्यं चामृतमेव च । उभाभ्यां जीवनं लोके शरीरस्य च धारणम् ॥१५॥
नानयोश्च विशेषोऽस्ति ततो ज्येष्ठ्यं समं मतम् । ततो मद्बचनाज्ज्येष्ठ्यमुभयोरैव कस्यचित् ॥१६॥
ज्येष्ठ्यमन्यतरस्मेति मेनिरे ऋषिसत्तमाः । न तृप्ता मम वाक्येन जन्मुर्वायुं तर्पस्विनः ॥१७॥

जिस किसी प्रकार पुरुष द्वारा स्त्री-शेज में डाले गये बीज का देहात्मक भाग अग्नि का ही है दूसरे का नहीं। देवताओं का मुख भी अग्नि ही है। अतः अग्नि नि सन्देह सबसे बड़ा है। अगर पक्ष जो कि वेदवादी या वह जल की ही श्रेष्ठता स्वीकार करता था। उनका कहना था कि जल से ही अग्नि की उत्पत्ति होती है, जल से ही सब पदार्थ शुद्ध होते हैं, जल ने सम्पूर्ण लोक को धारण किया है, आप (जल) को ही माता कहा जाता है, प्राचीन मर्मज्ञ जन जल को ही त्रैलोक्य का जीवन कहते हैं, जल से ही अमृत उत्पन्न हुआ है और जल से ही ओषधियाँ उत्पन्न होती हैं। इस प्रकार कुछ ऋषि अग्नि को ज्येष्ठ कहते थे और अगर जल को उससे भी श्रेष्ठ कहते थे। इस प्रकार की भीमांसा करते हुए वे वेदवादी तथा विरुद्ध पक्ष वाले मेरे पास आये और कहा ॥१-१२॥

ऋषिगण बोले—आप त्रिलोकी के प्रभु हैं, अतः आप ही निर्णय करें कि अग्नि और जल में कौन श्रेष्ठ है ॥१३॥

ब्रह्मा ने कहा—मैंने भी आये हुए उन ब्रती ऋषियों से कहा कि दोनों ही इस लोक में पूज्य हैं, क्योंकि दोनों से जगत् की उत्पत्ति होती है। दोनों से हव्य कव्य और अमृत उत्पन्न होते हैं, दोनों ही ससार के जीवन हैं और दोनों से लोक में शरीर का धारण किया जाता है। इन दोनों में कोई बढकर नहीं है, इसलिये दोनों की श्रेष्ठता समान है, यही मेरा मत है। तदनन्तर मेरे कहने से किसी की भी श्रेष्ठता सिद्ध नहीं हुई। परन्तु उन मुनिवरो को किसी एक की श्रेष्ठता अभीष्ट थी, इसलिये मेरे निर्णय से वे तृप्त नहीं हुये और तपस्वी वायु के पास गये ॥१४-१७॥

मुनय ऊचु

कस्य ज्यैष्ठ्य भवान्प्राणो वायो सत्य त्वयि स्थितम् ॥१८॥

ब्रह्मोवाच

वायुराहानलो ज्येष्ठ सर्वमग्नौ प्रतिष्ठितम् । नेत्युक्त्वाऽन्योन्यमूपयो जग्मुस्तेऽपि वसुधराम् ॥१९॥

मुनय ऊचु

सत्य भूमे यद ज्यैष्ठ्यमाधाराऽस्ति घराक्षरे ॥२०॥

ब्रह्मोवाच

भूमिरप्यराह विनयादागतास्तानृषीनिदम् ॥२१॥

भूमिर्वाच

ममाप्याधारभूता स्युरापो देव्य सनातना । अद्भ्यस्तु जायते सर्वं ज्यैष्ठ्यमप्सु प्रतिष्ठितम् ॥२२॥

ब्रह्मोवाच

नेत्युक्त्वाऽन्योन्यमूपयो जग्मु क्षीरोदशायिनम् । सुष्टुर्विविधं स्तोत्रं शङ्खचक्रगदाधरम् ॥२३॥

ऋषय ऊचु

यो वेद सर्वं भुवन भविष्यच्छास्यमान च गुहानिबिष्टम्
लोकत्रय विप्रविचित्ररूपमन्ते समस्ते च यमायिवेश ॥२४॥
यवक्षर शाश्वतमप्रमेय, य वेदवेद्यमूपयो वदति

मुनियो ने कहा—वायु ! आप जगत के प्राण हैं । जिसकी धृष्टता आप स्वीकार करते हैं ? आप न सत्य की स्थापना हैं । ॥१८॥

ब्रह्मा ने कहा—वायु ने कहा कि अग्नि धृष्ट है क्योंकि अग्नि स सब कुछ प्रतिष्ठित है । परन्तु वे ऋषि यह उचित निगय नहीं है इस प्रकार परस्पर विवाद करते हुए वसुधरा के पास गये ॥१९॥

मुनिगण ने कहा—पृथ्वी ! तुम सत्य बताओ कि कौन धृष्ट है क्योंकि तुम चर-अचर सबकी आधार हो ॥२०॥

ब्रह्मा ने कहा—पृथ्वी ने भी उन आये हुए मुनिया स नम्रतापूर्वक कहा ॥२१॥

भूमि ने कहा—मेरा आधार भी सनातन (जल) है । जब सही सम्पूर्ण पदार्थ उत्पन्न होते हैं । अतः धृष्टता जल में प्रतिष्ठित है ॥२२॥

ब्रह्मा ने कहा—एक पक्ष में इसकी भी स्वीकार नहीं किया इस प्रकार इस निगय पर भी विवाद न कर वे मुनि क्षीरसागरापी विष्णु के पास गये और शङ्ख-चक्र-गदाधारी विष्णु की विविध स्तोत्रों का स्तुति करने लगे ॥२३॥

ऋषियों ने कहा—जो सब भुवन तथा मृत भविष्य और वर्तमान को जानते हैं जिनमें अन्तर्ज्ञान यह विप्र-विचित्रमय चैतन्य समा जाता है जो अक्षर नित्य तथा अप्रमेय हैं जिनको ऋषिगण वेदा का वेद (ज्ञान)

यमाश्रिताः स्वेप्सितमाप्नुवन्ति, तद्वस्तु सत्यं शरणं ब्रजामः
भूतं महाभूतजगत्प्रधानं, न विन्दते योगिनो विष्णुरूपम्
तद्वक्तुमेते श्रूययोऽत्र याताः, सत्यं वदस्वेह जगन्निवास
त्वमन्तरात्माऽखिलदेहभाजा, त्वमेव सर्वं त्वयि सर्वमोश
तयाऽपि जानन्ति न केऽपि कुत्राप्यहो भवन्तं प्रकृतिप्रभावात्
अन्तर्बहिः सर्वत एव सन्तं, विश्वात्मना संपरिवर्तमानम्

॥२५॥

।

॥२६॥

।

॥

॥२७॥

ब्रह्मोवाच

ततः प्राह जगद्धात्री देवी। वागशरीरिणी

॥२८॥

देवी वागुवाचं

उभाकाराध्य तपसा भक्त्या च नियमेन च। यस्य स्यात्प्रथमं सिद्धिस्तद्भूतं ज्येष्ठमुच्यते ॥२९॥

ब्रह्मोवाच

तथैत्युक्त्वा धनुः सर्वे श्रूयस्यो लोकपूजिताः। धान्ता, लिप्पान्तरात्मानः परं वैराग्यमाश्रिताः ॥३०॥
सर्वलोककं जननीं भुवनत्रयपावनीम्। गौतमीमगमन्सर्वे तपस्तप्तुं यतन्त्रता ॥३१॥
अब्धयत तयाग्निं च पूजनापोद्यतास्तदा। अग्नेश्च पूजका ये च अपां वै पूजने स्थिता, ॥
तत्र वागब्रवीद्देवी वेदमाता सरस्वती ॥३२॥

योग्य) बताते हैं और जिनके आश्रितजन अपने मनोरथ को प्राप्त करते हैं, ऐसे सत्य वस्तु ब्रह्म की शरण में हम आये हुए हैं। योगी जन भी महामृतारमक जगत् में प्रधानतया व्याप्त एव सत्य विष्णुरूप को नहीं जान पाते हैं, अतः जगन्निवास। इतने श्रुति आपको समीप आये हुये हैं। आप कृपा कर स्वयं इस सत्य को ध्यस्त कीजिये। ईश। देवधारी सम्पूर्ण जीवा के आप ही अन्तरात्मा हैं, आप ही सब कुछ हैं और आप में ही सब कुछ है। परन्तु प्रकृति के प्रभाव से कोई भी वही भी आपको जान नहीं पाते हैं यद्यपि आप भीतर, बाहर, चारों ओर विद्यमान के रूप में पटित-वर्तमान (घुले-मिले) हैं ॥२४-२७॥

ब्रह्मा ने कहा—इसके उपरान्त जगत् का धारण करने वाली जानासवाणी ने कहा ॥२८॥

आकाशवाणी ने कहा—तपस्या, भक्ति और सयम से दोनों की आराधना करो, जिसको या जिससे पहले सिद्धि प्राप्त होगी वही ज्येष्ठ माना जायगा ॥२९॥

ब्रह्मा ने कहा—इसकी स्वीकार कर के सब लोक-चिन्तित, श्रान्त, अपने अन्तःकरण में कुछ श्रुश्रुलये हुये से और अत्यन्त वैराग्यमात्र से भरे श्रुति लोट गये और तीना लोक को पवित्र करने वाली, सब लोगों की एक-मान जननी गौतमी के तट पर सयमपूर्वक तपस्या करने के लिये बैठ गये। उस समय वहाँ जो जल देवता के भक्त थे वे जल की पूजा करने के लिए और जो अग्निभक्त थे वे अग्नि की पूजा करने के लिये प्रस्तुत हुए। उसी समय वेद-माता सरस्वती रूप देवी वाणी ने कहा ॥३०-३२॥

देवी वागुवाच

अग्नेरापस्तया योनिरद्भिः शौचमवाप्यते । अग्नेश्च पूजका ये च विनाऽद्भिः पूजनं कथम् ॥३३॥
 अप्सु जातासु सर्वत्र कर्मण्यधिकृतो भवेत् । तावत्कर्मण्यनर्होऽयमशुचिर्मलिनो नरः ॥३४॥
 न मग्नः श्रद्धया यावदप्सु शीतासु वेदवित् । तस्मादापो वरिष्ठा स्युर्मातृभूता यतः स्मृता ॥
 तस्माज्ज्येष्ठ्यमपामेव जनन्योऽग्नेर्विशेषतः ॥३५॥

ब्रह्मोवाच

एतद्वचः शुभ्रवृस्ते श्रययो वेदवादिनः । निश्चयं च ततश्चक्रुर्मवेज्ज्येष्ठ्यमपामिति ॥३६॥
 यत्र तीर्थे घृतमिदमृषिसत्रे च नारद । तपस्तीर्थं तु तत्प्रोक्तं सत्रतीर्थं तदुच्यते ॥३७॥
 अग्नितीर्थं च तत्प्रोक्तं सया सारस्वतं विदुः । तेषु स्नानं च दानं च सर्वकामप्रदं शुभम् ॥३८॥
 घृतुं दश शतान्यत्र तीर्थानां पुण्यदायिनाम् । तेषु स्नानं च दानं च स्वर्गमोक्षप्रदायकम् ॥३९॥
 कृतं संवेहहरणमृषीणां यत्र भायया । सरस्वत्यभवत्तत्र गङ्गाया संगता मदी ॥
 माहात्म्यं तस्य को वक्तु संगमस्य क्षमो नरः ॥४०॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये तपस्तीर्थादिचतुर्दशशततीर्थवर्णनं
 नाम पङ्क्तिशतधिकशततमोऽध्यायः ॥१२६॥

गौतमीमाहात्म्ये सप्तपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥५७॥

देवी वाणी ने कहा—अल अग्नि वा उत्पादक है, जल से ही पवित्रता प्राप्त होती है । जो अग्नि के पूजक हैं वे विना जल के पूजन कैसे करेंगे ? जल में स्नान करने के बाद ही सब कर्मों के करने का अधिकार प्राप्त होता है । तब तक वह मनुष्य किसी अनुष्ठान के अयोग्य समझा जायगा, चाहे वह वेदज्ञ ही क्या न हो जब तक कि वह शीतल जल में स्नान नहीं करेगा । इसलिये जल ही सर्वश्रेष्ठ है । अतः जल मातृभूत है, इसलिये जल की ही श्रेष्ठता सर्वमान्य है, विशेष रूप से इसलिये कि वह अग्नि की भी जननी है ॥३३-३५॥

ब्रह्मा ने कहा—इन बातों को उन वेद-वादी ऋषियों ने सुना । तदनन्तर यह निश्चय हुआ कि जल की ही श्रेष्ठता स्वीकार हो । नारद ! जिस तीर्थ या ऋषि-सत्र (यज्ञ) में यह सब कुछ हुआ, उसको तपस्तीर्थ या सत्रतीर्थ नाम से प्रसिद्धि हुई । वही अग्नि-तीर्थ या सारस्वततीर्थ भी माना जाता है । उसमें स्नान और दान अत्यन्त शुभ और सब अमीष्टों के दाता माने जाते हैं । जहाँ वाणी द्वारा ऋषियों का सन्देश दूर बिया गया वहाँ सरस्वती नाम की एक नदी हो गई जो कि गंगा में जाकर मिली । उस संगम की महत्ता वर्णन करने में बौन मनुष्य समर्थ हो सक्ता है ? ॥३६-४०॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में तपस्तीर्थ-वर्णन नामक एक सी छवीसवी अध्याय समाप्त ॥१२६॥

अथ सप्तविंशाधिकशततमोऽध्यायः

देवतीर्यवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

देवतीर्यमिति ख्यातं गङ्गाया उत्तरे तटे । तस्य प्रभावं वक्ष्यामि सर्वपापप्रणाशनम् ॥१॥
 आष्टियेण इति ख्यातो राजा सर्वगुणान्वितः । तस्य भार्या जया नाम साक्षाल्लक्ष्मोरिवापरा ॥२॥
 तस्य पुत्रो भरो नाम मतिमान्पितृवत्सलः । धनुर्वेदे च वेदे च निष्णातो वक्ष एव च ॥३॥
 तस्य भार्या रूपवती सुप्रभेत्याभिधृता । आष्टियेणस्ततो राजा पुत्रे राज्यं निवेदय सः ॥४॥
 पुरोधसा च मुख्येन दीक्षां चक्रे भरोश्वरः । सरस्वत्यास्ततस्तीरे ह्यमेधाय यत्नवान् ॥५॥
 ऋत्विग्भिर्ऋषिमुख्यैश्च वेदशास्त्रपरायणैः । दीक्षित त नृपश्रेष्ठं ब्राह्मणाग्निसमीपतः ॥६॥
 मियुर्दानवरादशूरः पापबुद्धिः प्रतापवान् । मत्तं विध्वंस्य नृपति सभार्यं सपुरोहितम् ॥७॥
 आशाय धेगात्स प्रापाद्रसातलतल मुने । नीते तस्मिन्नूपवरे यज्ञे नटे ततोऽमरा ॥८॥
 ऋत्विजश्च ययुः सर्वं स्वं स्वं स्यान् मखास्ततः । पुरोहितसुतो राज्ञो देवापिरिति विश्रुतः ॥९॥

अध्याय १२७

देवतीर्य का वर्णन

ब्रह्मा ने कहा—इसके बाद गंगा के उत्तर तीर पर देवतीर्य नामक एक प्रसिद्ध तीर्थ है। उसके सब प्रकार के पापों को नष्ट करने वाले प्रभाव को कह रहा हूँ। आष्टियेण नाम से प्रसिद्ध एक सर्वगुणी राजा था। उसकी जया नाम की भार्या थी, जो (रूप और गुण में) दूसरी साक्षात् लक्ष्मी के समान थी। उसका भर नामक पुत्र था जो बुद्धि-मान् और पितृ भक्त था। वह धनुर्वेद और वेद में अत्यन्त निपुण और पारदर्शी विद्वान् था। उसकी सुप्रभा नाम की अतिरूपवती भार्या थी। अपने पुत्र को योग्य और वयस्क जानकर राजा ने सारा राज्य-भार पुत्र को सौंपकर अपने प्रधान पुरोहित से यज्ञ-दीक्षा ले ली। तदनन्तर वह सरस्वती के तीर पर अश्व-मेघ यज्ञ करने के लिये तैयारी करने लगे। परन्तु यज्ञ में वेदशास्त्रों के पारदर्शी प्रधान ऋषियों के रहते ह्य भी एक पापात्मा, प्रतापी और वीर दानवराज मियु यज्ञ को नष्ट-धष्ट कर पुरोहित और स्त्री के सहित उस यज्ञ-दीक्षित राजा को लेकर ब्राह्मण और अग्नि के समीप से उठाकर बड़े वेग से पाताल चला गया। यह देखकर सब देवता और ऋत्विज यज्ञ मूमि को छोड़कर अपने-अपने आश्रम को चले गये। राजा ने पुरोहित का देवापि नामक एक पुत्र था। उस बालक ने अपनी माता को तो देखा, परन्तु पिता को नहीं देखा। यह देखकर उसको अत्यन्त आश्चर्य हुआ वह पितृ वियोग से नातर हो उठा।

'बालस्तां मातरं दृष्ट्वा आत्मनः पितरं न, च । दृष्ट्वा सविस्मयो भूत्वा दुःखितोऽजीव चाभवत् ॥१०॥
स मातरं तु पप्रच्छ पिता मे वयं गतोऽम्बिके । पितृहीनो न जीवेयं मातः सत्यं वदस्व मे ॥११॥
धिग्धिक्पितृविहीनानां जीवितं पापकर्मणाम् । न वक्षि यदि मे मातर्जलमग्निमथाऽविशे ॥१२॥
पुत्र प्रोवाच सा माता राज्ञो भार्या पुरोधसः । दानवेन तलं नीतो राज्ञा सह पिता तव ॥१३॥

देवापिरुवाच

वयं नीतः केन वा नीतः कथं नीतः वयं कर्मणि । केयु पश्यत्सु किं स्थानं दानवस्य वेदस्य मे ॥१४॥

मातोवाच

दोक्षितिं यज्ञसदसि सभार्यं सपुरोधसम् । राजानं तं मिथुर्देव्यो नीतवान्स रसातलम् ॥
पश्यत्सु देवसघेषु बहिर्नग्राह्यणस्तनिधौ ॥१५॥

ब्रह्मोवाच

तस्मात्पुत्रधनं भूत्वा देवापिः कृत्यमस्मरत् । देवान्यश्वेऽथवाऽग्निं वा ऋत्विजो वाऽसुरांस्तया ॥१६॥
एतेऽवैव पिताऽवेष्ट्यो नाग्यत्रेति नतिभंम । इति निश्चित्य देवापिभरं प्राह नृपात्मजम् ॥१७॥

देवापिरुवाच

तपसा ब्रह्मचर्येण व्रतेन नियमेन च । आनेतव्या भया सर्वे नीता ये च रसातलम् ॥१८॥

उत्तने अपनी माता से पूछा—'माँ ! मेरे पिता जी कहाँ चले गये ? माता ! मैं पितृ-हीन होकर जीना नहीं चाहता । तुम मुझसे सत्य कहो । पापी, पितृ-हीनो के जीवन्-को घिबक्रार-विकार है, माता ! यदि तुम नहीं बतलाओगी तो मैं या तो जल में डूब सकूँगा या अग्नि में जल जाऊँगा ।' पुत्र की इस प्रश्नार को कातरता देखकर राजपुरोहित को उस भार्या ने अपने पुत्र से कहा—'राजा के सहित तुम्हारे पिता को लेकर दानव रसातल चला गया ॥१-१३॥

देवापि ने कहा—'वहाँ ले गया ? कौन ले गया ? किस कार्य के लिए और क्यों ले गया ? किनके देवते-देखते यह दुष्कार्य हुआ ? दानव का कहाँ स्थान है ? इन सब बातों को बताओ ॥१४॥

माता ने कहा—यज्ञ-मण्डप में दोक्षित राजा को उनकी भार्या और पुरोहित के सहित, वह निषु नामक देव्य अग्नि और ब्राह्मण के समीप से देवों के देखते-देखते लेकर चला गया ॥१५॥

ब्रह्मा ने कहा—माता की बातों को सुनकर देवापि सोचने लगा कि क्या चले, देवा के पास जाऊँगा अग्नि अथवा ऋत्विज के समीप अथवा सीधे अतुरो को ही देखूँ । इन्हीं स्थानों में पिता जी को छोड़ना चाहिये, अन्यत्र नहीं । यही मेरा निश्चय है ।' इस प्रकार निश्चयकर देवापि ने राज-पुत्र भर से कहा ॥१६-१७॥

देवापि ने कहा—मैं तपस्या, ब्रह्मचर्य व्रत तथा अनुष्ठान के बल से उन लोगो को, जिन्हें दानव रसातल ले गया है, ले आना चाहता हूँ । जो नरपथम बठोरतापूर्वक अपमानित होने पर भी बदला नहीं लेता उसके जीवन में

जाते पराभवे घोरे यो न कुर्यात्प्रतिक्रियाम् । नराधमेन किं तेन जीवता वा भूतेन वा ॥१९॥
त्वं प्रशाधि महीं कृत्स्नामाष्टिपेण पिता यया । माता भम त्वया पाल्या राजन्यावन्ममाऽऽपति ॥
भवेच्च कृतकार्यस्य अनुजानीहि मा भर ॥२०॥

ब्रह्मोवाच

भरेणोक्त स देवापि सर्वं निश्चित्य यत्नतः ॥२१॥

भर उवाच

सिद्धिं कुरु सुखं याहि मा चिन्तामल्पिकां भज ॥२२॥

ब्रह्मोवाच

ततो देवापिरमरराजाद्ब्रिध्यानतत्परः । ऋत्विजोऽन्वेय्य यत्नेन नत्वा तानृत्विजं पूयक् ॥
कृताञ्जलिपुटो बालो देवापिर्वाक्पमब्रवीत् ॥२३॥

देवापिरुवाच

भवद्भिश्च मल्लो रक्षो यजमानश्च दीक्षितः । पुरोधाश्च तया रक्ष्य पत्नी या दीक्षितस्य तु ॥२४॥
भवत्सु तत्र पश्यत्सु यज्ञविध्वंस्य दैत्यराट् (ऋत्विजः) । राजादयस्तेन नीतास्तत्र यवततम भवेत् ॥२५॥
अयाप्येतदहं मय्ये भवन्तस्तानरोनिणः । दातुमर्हन्ति तान्स (वं स) बर्तन्यया शापमर्ह्य ॥२६॥

ऋत्विज ऊचुः

मल्लेजनि प्रथमं पूज्यो ह्यग्निरेवात्र देवतम् । तस्माद्वयं न जानीमो ह्यग्नीनां परिचारका ॥२७॥

क्या लाभ ? या मृत्यु से क्या हानि ? तुम इस पृथिवी का शासन अपने पिता आष्टिपेण के समान करो । राजन् । जब तक मैं लौटकर नहीं आता तब तक मेरी माता को देखरेख या पालन तुमको करना होगा । भर ! मैं अपने कार्य में इत-कृत्य (सफल) हो जाऊँ ऐसा तुम मुझे आदेश दो ॥१८-२०॥

ब्रह्मा ने कहा—सब कुछ विचारपूर्वक निश्चित कर भर ने देवापि से कहा ॥२१॥

भर ने कहा—तुम अपने कार्य में सफलता प्राप्त करो, सुखपूर्वक जाओ, किसी विषय की मोडी-सी भी चिन्ता न करो ॥२१-२२॥

ब्रह्मा ने कहा—इसके बाद देवापि ने देवराज के चरणों का ध्यान करता हुआ बड़े परिश्रम से ऋत्विजों का पता लगाया, उनको प्रणाम कर एकान्त में उनसे अलग अलग हाथ जोड़कर कहा ॥२३॥

देवापि ने कहा—आप लोगों को यज्ञ-दीक्षित यजमान पुरोहित और यजमान की पत्नी की रक्षा करनी चाहिये, परन्तु आप लोगों के सामने से ही दैत्यराट् यज्ञ को नष्ट भ्रष्ट कर राजा आदि को लेकर चला गया यह अच्छा नहीं हुआ । फिर भी मैं आप लोगों से कहूँगा कि उन सबको आप शीघ्र स्वस्वरूप में ले आएं । अन्यथा आप लोग शाप के भागी होंगे ॥२४-२६॥

ऋत्विज गण ने कहा—यज्ञ में अग्नि की पहले पूजा होती है, अतः अग्नि ही इसका देवता है इसलिये इस

स एव दाता भोक्ता च हर्ता कर्ता च हव्यवाद् ॥२८॥

ब्रह्मोवाच

ऋत्विजं पूठत कृत्वा देवापिर्जतिवेदसम् । पूजयित्वा ययान्यायमग्नये तद्भ्यवेदयत् ॥२९॥

अग्निहवाच

यथार्त्विजस्तथा चाह देवानां परिचारकः । हव्यं ब्रह्मामि देवानां भोक्तारो रक्षकाश्च तः ॥३०॥

देवापिरवाच

देवानांहव्यं यत्नेन हविर्भागान्पूयवपयक् । दास्येऽहमेव दोषो मे तस्माद्याहि सुरान्प्रति ॥३१॥

ब्रह्मोवाच

देवापि स सुरान्प्राप्य नत्वा तेभ्यः पूयवपयक् । ऋत्विग्वानय चाग्निवायस्य शाप चापि न्यवेदयत् ॥३२॥

देवा ऊचुः

आहूता वेदिकमन्त्रेऽऋत्विग्भिश्च ययाक्रमम् । भोक्ष्यामहे हविर्भागान् स्वतन्त्रा द्विजोत्तमा ॥३३॥

तस्माद्वेदानुगा नित्यं वयं वेदेन चोदिताः । परतन्त्रास्ततो विप्रः संदेभ्यस्तन्निवेदय ॥३४॥

ब्रह्मोवाच

स देवापि दुर्विर्भूत्वा वेदानांहव्यं यत्नतः । ध्यानेन तपसा युषतो वेदाश्चापि पुरोऽभवन् ॥३५॥

वेदानुवाच देवापिर्नमस्य तु पुनः पुनः । ऋत्विग्वानय चाग्निवायस्य देववायस्य न्यवेदयत् ॥३६॥

विषय मे हम कुछ नहीं जानते क्योंकि हम लोग तो केवल अग्नि के सेवक हैं। वे ही दाता भोक्ता हर्ता, कर्ता और हव्य को देने वाले हैं ॥२७-२८॥

ब्रह्मा ने कहा—ऋत्विजों को पीछे करने देवापि ने अग्नि की शास्त्रोक्त विधि से पूजा की और यह निवेदन किया ॥२९॥

अग्नि ने कहा—जिस प्रकार ऋत्विज देवा के सेवक हैं उसी प्रकार मैं भी। मैं तो केवल देवों के लिये यत्नपूर्वक हव्य पहुँचा दिया करता हूँ, यज्ञ के रक्षक या भोक्ता वे ही हैं ॥३०॥

देवापि ने कहा—मैं देवताओं को यत्नपूर्वक बूलाकर पूषट्-पूषट्, हविर्भाग दे देता हूँ। यही मेरा दोष है। अतः तुम देवताओं के पास जाओ ॥३१॥

ब्रह्मा ने कहा—वह देवापि देवताओं के पास गया और प्रणाम कर एक-एक से ऋत्विजों का यत्न अग्नि की बातें और शाप की बयां करी ॥३२॥

देवगण थोड़े—द्विजवर । हम सबको ऋत्विज बर्दिश मात्रा से जगमगा बुलाते हैं इस प्रकार हम अपने हविष्याग को खाते हैं। हम भी स्वतन्त्र नहीं हैं। इस कारण हम नित्य वेदा के अनुयायी हैं और वेदों की प्रणाम से प्रेरित होते रहते हैं। अतएव हम परतन्त्र हैं। विप्र ! तुम उन वेदों में अपना अभिप्राय कहो ॥३३-३४॥

ब्रह्मा ने कहा—उस देवापि ने पवित्र होकर अपनी तपस्या एवं ध्यान के द्वारा वेदा का आह्वान किया। वेद भी उसके सामने प्रवृत्त हुए। देवापि ने भी बार-बार प्रणाम कर वरदा से ऋत्विजों, अग्नि और देवताओं की बातें कह सुनायी ॥३५-३६॥

वेदा ऊचुः

परतन्त्रा ययं तात ईश्वरस्य यशानुगाः । अशेषजगदाधारो निराधारो । निरञ्जनः ॥३७॥
सर्वशक्त्यैकसदनं निधानं सर्वसंपदाम् । स तु कर्ता महादेवः संहर्ता स महेश्वरः ॥३८॥
ययं शब्दमया ब्रह्मन्वदामो विद्य एव च । अस्माकमेतत्कृत्यं स्याद्ब्रह्मो यत्तु पृच्छसि ॥३९॥
केन नीतास्तस्य नाम तत्पुरं तद्बलं तथा । भक्षिता किंतु नो नष्टा एतज्जानीमहे वयम् ॥४०॥
यथा च तव सामर्थ्यं यमाराध्य च यत्र च । स्यादित्येतच्च जानीमो यथा प्राप्स्यसि तान्मुरः ॥४१॥

ब्रह्मोवाच

॥४२॥

एतच्छ्रुत्वाऽवदद्देवान्विचार्यं सुचिरं हृदि

देवापिरुवाच

वेदा वदन्त्येतदेव सर्वमेव ययार्थतः । सर्वान्प्राप्स्ये तलं नीतानलं तेभ्यो नमोऽस्तु व ॥४३॥

वेदा ऊचुः

गीतमीं गच्छ देवापे तत्र स्तुहि महेश्वरम् । सुप्रसन्नस्तवाभीष्टं दास्यत्येव कृपाकरः ॥४४॥
भवेद्देवः शिवः प्रीतः स्तुतः सत्यं महामते । आर्ष्टिर्द्वेणश्च नृपतिस्तस्य जाया जया सती ॥४५॥

देवो ने कहा—तात । हम परतन्त्र हैं, ईश्वर के सकेत के अनुसार चलने वाले हैं । सम्पूर्ण विद्व के आधार, निराधार, निर्बिकार सर्वशक्तिसम्पन्न, और समस्त विमूर्तियों के पूज के महादेव ही सब के निर्माता और वे महेश्वर ही सबके सहार करने वाले हैं । ब्रह्मन् । हम तो शब्द-स्वरूप हैं सब कुछ जानते हैं और उसको बता देते हैं । हम लोग यही कार्य कर सकते हैं कि जो कुछ तुम पूछोगे बता देंगे । कौन ले गया, उसका नाम उसका नगर, उसकी सन्ध-शक्ति और वे खा लिये गये किन्तु नष्ट नहीं हुए (या वह उन व्यक्तियों को खा गया या वे नष्ट हो गये), यह सारे रहस्य हम जानते हैं । इसके अतिरिक्त तुम्हारी शक्ति, जहाँ जिसकी आराधना से कार्यसिद्धि होगी और जिस प्रकार तुम उन लोगों को सामने पाओगे आदि बातों को भी हम जानते हैं ॥३७-४१॥

ब्रह्मा ने कहा—वेदो की ये बातें सुनकर अपने हृदय में गली-गति सोच विचार कर उसने वेदो से कहा ॥४२॥

देवापि ने कहा—वेदगण । आपको नमस्कार है । कृपाकर आप इन्हीं सब बातों को ययार्थ रूप से बता दीजिये कि कैसे मैं रसातल में पहुँचाया हुए उन लोगों को प्राप्त करूँगा, और कुछ अधिक नहीं जानना चाहता ॥४३॥

वेदगण ने कहा—देवापे । गीतमी के तट पर जाओ । वहाँ महेश्वर की स्तुति करो । वे करुणा के सागर अवश्य प्रसन्न होकर तुम्हारा मनोरथ पूर्ण करेंगे । महामति । स्तुति करने पर महादेव

पिता तवाप्युपमन्युस्तले तिष्ठन्त्यरोणिणः । वरदानान्महेशस्य मिथुं हत्वा च राक्षसम् ॥
यशः प्राप्त्यसि धर्मं च एतच्छक्यं न चेतरेम् ॥४६॥

ब्रह्मोवाच

तद्वेदवचनाद्बालो देवापिगोतमीं गतः । स्नात्वा कृतज्ञाणो विप्रस्तुष्टाव च महेश्वरम् ॥४७॥

देवापिस्वाच

बालोऽहं देवदेवेश गुरुणा त्वं गुरुमम । न मे शनितस्त्वस्तवने तुभ्यं शंभो नमोऽस्तु ते ॥४८॥
न त्वां जानन्ति नियमा न देवा मुनयो न च । न ब्रह्मा नापि वैकुण्ठो योऽसि सोऽसि नमोऽस्तु ते ॥४९॥
येऽज्ञाया ये च कृपणा ये दरिद्राश्च रोगिणः । पापात्मानो ये च लोके तास्त्वं पाप्ति महेश्वर ॥५०॥
तपसा नियममंग्रेः पूजितास्त्रिदिवौकसः । त्वया दत्तं फलं तेभ्यो दास्यन्ति जगतां पते ॥५१॥
याचितारक्ष च वातारस्तेभ्यो पश्यन्मनोपतिम् । भवतीति न चित्रं स्यात्त्वं विपर्ययकारक ॥५२॥
येऽज्ञानिनो ये च पापा ये मग्ना भरकार्णवे । शिवेति वचनान्नाय तान्पाप्ति त्वं जगद्गुरो ॥५३॥

ब्रह्मोवाच

एवं तु स्तुवतस्तस्य पुरः प्राह त्रिलोचनः ॥

॥५४॥

शकर अवश्य प्रसन्न होगे । राजा आष्टिवेण उनकी पतिव्रता स्त्री जया, तुम्हारे पिता उपमन्यु समी रसातल में
बुधालपूर्वक हैं । तुम शकर की कृपा से वरदान प्राप्त कर मिथू राक्षस को मार कर कीर्ति और धर्म प्राप्त करोगे ।
यही कार्य तुमसे हो सकता है, इसके अतिरिक्त नहीं ॥४४-४६॥

ब्रह्मा ने कहा—उन वेदों की आज्ञा के अनुसार बालक देवापि गौतमीतट पर गया । उसमें स्नान कर
बड़ी तपस्या से वह विप्र शकर की स्तुति करने लगा ॥४७॥

देवापि ने कहा—देवदेवेश । मैं बालक हूँ । तुम मेरे गुरुओं के भी गुरु हो । तुम्हारी स्तुति करने की
भूमि मेरे यहाँ नहीं है । शंभो ! तुमको नमस्कार है । तुमको न तो वेद जानते हैं न देवता और न मुनि । ब्रह्मा और
वैकुण्ठपति विष्णु भी तुमको नहीं जानते । तुम जो हो बड़ी हो । तुमको नमस्कार है । इस ससार में जो अनाथ हैं,
कृपण हैं, दरिद्र हैं, रोगी हैं और पापी हैं उनकी हे महेश्वर ! तुम्ही रक्षा करते हो । जगत् के स्वामी ! जो व्यक्ति
तपस्या नियम और मन्त्री से देवताओं की पूजा करते हैं उनको भी देवतागण तुमने पाये हुये फल की ही प्रदान
करते हैं । उन व्यक्तियों के मनोरथों को स्वयं याचक बनकर ही वे देवता दान करते हैं इसमें कुछ आश्चर्य
नहीं । क्योंकि तुम विपरीत कार्य करते भ समर्थ हो । हे नाथ ! जगद्गुरो ! जो अज्ञानी, पापी और नरक के सागर
में गिरे हुए हैं, उनके 'शिव' इस शब्द के बहने पर ही तुम उसकी रक्षा करते हो ॥४८-५३॥

ब्रह्मा ने कहा—उस बालक की ऐसी स्तुति सुनकर त्रिनेत्र शकर स्वयं उसने सामने प्रवृत्त होकर बोले ॥५४॥

शिव उवाच

॥५५॥

वर ब्रूहृष्य देवापे अल दैन्येन बालक

देवापिस्त्वाच

राजान राजपत्नीं च पितर च गुरु मम । प्राप्तुमिच्छे जगन्नाथ निधन च रिपोर्मम ॥५६॥

ब्रह्मोवाच

देवापि वचन श्रुत्वा तथेत्याहाखिलेश्वर । देवापे सर्वमभवदानया शकरस्य तत ॥५७॥
पुनरप्याह त (आहूय स्वगण) शम्भुर्देवापिकरुणाकर । नन्दिन प्रेययाभास शम्भु (तत) शूलेन नारद ॥५८॥
रसातल मियु नन्दी हत्वा घासुरपुगवान । तत्पित्रादीन्समानीय तस्मै तान्स न्यवेदयत् ॥५९॥
हयमेधश्च तत्राऽऽसीदाष्टिपेणस्य धीमत । अग्निश्च ऋत्विजो देवा घेदाश्च ऋषयोऽनुवन् ॥६०॥

अन्यादय ऊचु

यत्र साक्षादभूच्छम्भुर्देवापे भक्तवत्सल । देवदेवो जगन्नाथो देवतीर्यमभूच्च तत् ॥६१॥
सर्वपापक्षमकर सर्वसिद्धिप्रद नृणाम । पुण्यद तीर्यमेतत्स्यात्तव कीर्तिश्च शाश्वती ॥६२॥

ब्रह्मोवाच

अश्वमेधे निवृत्ते तु सुरास्तेभ्यो वरावदु । स्नात्वा कृतार्था गङ्गायां ततस्त दिवमाक्रमन ॥६३॥

शिव ने कहा—देवापे । वर मागो । बालक । अब दीन की भावना छोड़ो ॥५५॥

देवापि न कहा—जगन्नाथ । राजा राजपत्नी और अपने गुरु पिता को प्राप्त करना चाहता हू साथ ही मेरे शत्रु का नाश भी हो यही मेरा वर है ॥५६॥

ब्रह्मा न कहा—देवापि की बातों को सुनकर अखिल जगत के ईश्वर ने ऐसा ही हो यह कहा । शकर की आज्ञा से देवापि की सभी कामनाय पूरा हो गई । नारद । पुन देवापि पर करुणा करने वाले शम्भु ने अपने गण नन्दी को बुलाकर सब बातें कही और त्रिशूल देकर उसको रसातल भेज दिया । नन्दी ने रसातल में जाकर मियु एवं बड बडे असुरों का वध किया और उस बालक के पिता आदि को लाकर उसको दे दिया । इसके बाद पुन धीमान् आष्टिपण ने वहाँ अश्व-मेध यज्ञ किया । उस यज्ञ में अग्नि ऋत्विज देवता वेदो और ऋषियो ने कहा ॥५७-६०॥

अग्नि आदि ने कहा—देवापे । जिस स्थान पर भक्तवत्सल देवो के देव तथा जगन्नाथ शकर का साक्षात्कार हुआ था वह स्थान देवतीर्य हो गया है । वह सब पापों को नष्ट करने वाला मनुष्यों को सब प्रकार की सिद्धियाँ देने वाला और पुण्य देने वाला दीय तुम्हारी शाश्वत कीर्ति का स्मारक है ॥६१ ६२॥

ब्रह्मा ने कहा—अश्वमेध सम्पन्न हो जाने पर देवो ने उन सबको वर दिया । वे भी गंगा में स्नान कर स्वर्ग

ततः प्रभृति तत्राऽऽसंस्तीर्यानि दश पञ्च च । सहस्राणि शतान्यष्टाबुभयोरपि तोरयोः ॥
तेषु स्नानं च दानं च ह्यतीव फलदं विदुः ॥६४॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये आष्टियेणाद्यष्टोत्तरशताधिक-
पञ्चदशसहस्रतीर्थवर्णनं नाम सप्तविंशाधिकशततमोऽध्यायः ॥१२७॥

गौतमीमाहात्म्येऽष्टपञ्चाशततमोऽध्यायः ॥५८॥

अथाष्टाविंशाधिकशततमोऽध्यायः

तपोवनादितीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

तपोवनमिति ख्यातं नन्दिनीसंगमं तथा । सिद्धेश्वरं तत्र तीर्थं गौतम्या दक्षिणे तटे ॥१॥
शार्दूलं चेति विख्यातं तेषां वृत्तमिदं शृणु । यस्याऽकर्णनमात्रेण सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥२॥
अग्निर्होता पुरा स्वासीद्देवानां ह्ययबाहनः । भार्यां प्राप्नो दक्षसतां स्वाहानाम्नीं सुदपिणीम् ॥३॥
साऽनपत्या पुरा चाऽसौस्तुत्रार्थं तप आविशत् । तपश्चरन्तीं विपुलं तोययन्तीं हुताशनम् ॥
स भर्ता हृतभुक्प्राह भार्यां स्वाहामनिन्दिताम् ॥४॥

इतद्वत्त्व हो गये और अन्त में स्वर्ग को प्राप्त किया । तब से वहाँ उस गंगा के दोनों तट पर पन्द्रह हजार एक सौ आठ तीर्थ प्रतिष्ठित हो गये । उनमें स्नान और दान करना अधिक फलदायक माना गया है ॥६३-६४॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में आष्टियेण आदि पन्द्रह हजार एक सौ आठ तीर्थों का वर्णन नामक एक सौ
सत्ताइसवाँ अध्याय समाप्त ॥१२७॥

अध्याय १२८

तपोवन आदि तीर्थों का वर्णन

ब्रह्मा ने कहा—इसके बाद गौतमी के दक्षिणी तट पर तपोवन तथा नन्दिनीसंगम नामक विख्यात तीर्थ हैं, वहीं सिद्धेश्वर और शार्दूल नामक दो और भी प्रसिद्ध तीर्थ हैं । उनका इतिहास सुनो, जिससे सुनने से ही सब पाप छूट जाते हैं ।

बहुन पढ़ने देवों को ह्यय पढ़वाने वाले अग्नि होठे थे । उनका दश की परम सुन्दरी स्वाहा नाम की बच्चा से विवाह हुआ । पहले वह सन्तानहीन रही । तब पुनः के इष्टिये तपस्या करने लगी । उगने अपनी बटोर तपस्या से हुताशन को प्रसन्न करने लगी छेप्टा की । पढ़ देसकइ उसके प्रति अग्नि ने अपनी अनिन्द्य सुन्दरी भार्या से कहा ॥१-४॥

अग्निहोवाच

अपत्यानि भविष्यन्ति मा तप कुरु शोभने

॥५॥

ब्रह्मोवाच

एतच्छ्रुत्वा भर्तुं वावय निवृत्ता तपसोऽभवत् । स्थीणामभीष्टद नान्यदभर्तुं वावय विना वदचित् ॥६॥

तत कतिपये काले तारकादभय आगते । अनुत्पन्ने कार्तिकेये चिरकालरहोगते ॥७॥

महेश्वरे भवान्या च अस्ता देवा समागता । देवाना कार्यसिद्धययमग्निं प्रोचुर्दिवौकस ॥८॥

देवा ऊचु

देव गच्छ महाभाग शम्भु त्रैलोक्यपूजितम् । तारकाद्भयमुत्पन्न शम्भवे त्व निवेदय ॥९॥

अग्निहोवाच

न गन्तव्य तत्र देश द्रपत्यो स्थितयो रह । सामान्यमात्रतो न्याय कि पुन शूलपाणिनि ॥१०॥

एकान्तस्थितयो स्वैर जल्पतोर्ष सरागयो । द्रपत्या शृणुयाद्वाक्य निरयात्तस्य नोदधृति ॥११॥

स स्वाम्यखिललोकाना महाकालस्त्रिशूलवान् । निरीक्षणीय कन स्यादभवान्या रहसि स्थित ॥१२॥

देवा ऊचु

महाभय चानुगतं न्याय कोऽन्वन्न वप्यत । तारकादभय आपन्न गच्छ त्व तारको भवान् ॥१३॥

अग्नि ने कहा—सुदगी ! तपस्या मत करो तुम्हें सन्तान होगी ॥५॥

ब्रह्मा ने कहा—भर्ता की बातों ने सुनकर उसने तपस्या छोड़ दी । क्योंकि बिना पति के बचन के स्त्रियों के अभीष्ट को सिद्ध करने वाली दूसरी कोई बात नहीं होती । कुछ समय बीत जाने पर देवताओं को तारक का भय उत्पन्न हुआ । चिरकाल तक महेश्वर और भवानी के एकान्त विलास के बाद भी कार्तिकेय भी उत्पत्ति नहीं हुई । यह देखकर देवता भयवस्त हो गये । वे देव अपने काय भी सिद्धि के लिए एकत्र हुये और अग्नि से कहा ॥६॥

देवों ने कहा—महाभाग । देव ! तुम त्रैलोक्य से वंचित शकर के पास जाओ । वहाँ जाकर शम्भु से कहो कि तारक के कारण देवों के सामने महान् सकट आ गया है ॥९॥

अग्नि ने कहा—जस स्थान पर जहाँ पति-पत्नी एकान्तवास करते ही नहीं जाना चाहिये यह एक सब साधारण के लिए नियम है फिर शूलपाणि शकर के विषय में तो कुछ कहना ही नहीं । जो एकान्त में स्थित प्रभु पूर्वक स्वेच्छया बातचीत करने वाले पति-पत्नी की बातों को सुनता है उसका नरक से कभी भी उद्धार नहीं होता । वे तो अखिल लोक के स्वामी हैं महाकाल हैं और त्रिशूलधारी हैं । एकान्त में भवानी के साथ स्थित उनको कौन देख सकता है ? ॥१०॥११॥

देवों ने कहा—महान् सकट आ जाने पर कौन सा काय उचित है इसको कौन कह सकता है ? इस समय तारक के भय से रक्षा करने वाले आप ही हैं अतः आप अवश्य जायें । क्योंकि महासकट के समुद्र से उबारने के

महाभयाब्धौ साधूना यत्परायार्थं जीवितम् । रूपेणान्येन वा गच्छ वाच वद यथा तथा ॥१४॥
विश्रान्त्य देववचनं शभुमागच्छ सत्वर । ततो दास्यामहं पूजामुभयोर्लोकयो कवे ॥१५॥

ब्रह्मोवाच

शुको भूत्वा जगामाऽऽशु देववाक्याद्भुताशन । यत्राऽऽसीञ्जगता नाथो रममाणस्तदोमया ॥१६॥
स भीतवदयं प्रापान्छुको भूत्वा तदाऽनल । नाशकद्वारदेशे तु प्रवेष्टुं हृद्यवाहन ॥१७॥
ततो गवाक्षदेशे तु तस्यौ धुन्वन्नयोमुख । तदृष्ट्वा प्रहस्तञ्चाभ्रुमा प्राह रहोगत ॥१८॥

शभुवाच

पश्य देवि शकं प्राप्तं देववाक्याद्भुताशनम् ॥१९॥

ब्रह्मोवाच

लज्जिता चावदद्देवमलं ब्रूवेति पावती । पुरश्चरन्तं देवेशो ह्यग्निं तं द्विजहृषिणम् ॥२०॥
आहूय बहुशस्त्राणि ज्ञातोऽस्पन्देऽत्र मा वद । विदारयस्व स्वमुखं गृहाणेव मयस्व ततः ॥२१॥
इत्युक्त्वा तस्य चाऽऽस्पन्दे रेतः स प्राक्षिपद्बहु । रेतोगभस्तदा चमिर्गन्तु नैव च शप्तवान् ॥२२॥
सुरनद्यास्ततस्तीरं श्रान्तोऽग्निरुपतस्थिवान् । कृत्तिकासु च तद्वेत् प्रशेषास्फातिरगोऽभवत् ॥२३॥

लिये साधुओं का जीवन ही परोपकार की भावना से आगे बढ़ता है। इसलिये अपने इसी रूप में या किसी अन्य रूप में आप जाइये और जिस किसी प्रकार से उनसे कहिये। इस प्रकार शहर से देवताओं का सफ़ट सुनाकर शीघ्र ही आइये। कवे! तदनन्तर हम लोग दोनों लोकों की श्रद्धा पूजा आपको अर्पित करेंगे ॥१९-१५॥

ब्रह्मा ने कहा—शेनों के कहने के अनुसार अग्नि गुक का रूप धरकर वहाँ गये जहाँ कि ससार के स्वामी उमा के साथ विलास कर रहे थे। अग्नि गुक ने रूप में डरते डरते वहाँ गये परन्तु वे मुख्य द्वार की ओर से घुसने में समर्थ न हो सके। अतः लिङ्ग की पर मुह मीने छटनाये और कुछ वारंते हुए बैठ गये। उनको लिङ्ग की पर बैठ देखकर एवान्त में विलास करने वाले गम्भीरसर पावती से बोले ॥१६-१८॥

शभु ने कहा—देवि! देखो! देखों के कहने से अग्नि गुक के रूप में यहाँ आया है ॥१९॥

ब्रह्मा ने कहा—लज्जित होकर पावती ने धरकर से कहा—‘देव! अब बस कीजिये। देवेश ने सामने घूमते हुए पत्नीरूपधारी अग्नि को बुलाकर कहा—अग्ने! अपने विषय में कुछ मत कहो। तुम जिसलिये आप ही यह मैं पूषरूप से जान गया हूँ। अपना मुख फँलाओ यह लो और लेकर जाओ। यह कहकर उम अग्नि ने मुख में बहुत—सा शीर्ष उड़ल दिया। अग्नि उम शिखरीयों को मुख में रखकर ले जाने में असमर्थ हो गये। अतः धक्का कर गया नदी के तट पर बैठ गये। कृत्तिका नाम में उस शीर्ष को ढाल देने से कर्त्तिका नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। अग्नि की देह में बचा हुआ शभु का जो कुछ शीर्ष था उसी को अग्नि ने अपनी विष्णु रूप से पुत्र की इच्छा रखने वाली प्रिय भार्या

अवशिष्टं च पत्किंचिदनेदंहे च शाभवम् । तदेव रेतो बहिर्नस्तु स्वभार्याया द्विधाऽक्षिपत् ॥२४॥
 स्वाहाया प्रियभूताया पुनर्यिन्या विशेषत । पुरा साऽऽश्वासिता तेन सततित्ते भविष्यति ॥२५॥
 तद्वह्निनाऽयं सस्मृत्य तत्क्षिप्तं शाभव मह । तदग्ने रेतसस्तस्या जज्ञे मियुनमुत्तमम् ॥२६॥
 सुवर्णं च सुवर्णां च रूपेणाप्रतिमं भुवि । अग्ने प्रीतिकरं नित्यं लोकानां प्रीतिवर्धनम् ॥२७॥
 अग्निं प्रीत्या सुवर्णां ता प्रादाद्वर्माय धीमते । सुवर्णस्याथ पुत्रस्य सकल्पामकरोत्प्रियाम् ॥
 एव पुत्रस्य पुत्र्याश्च विवाहमकरोत्कवि ॥२८॥

अन्योन्यरेतोव्यतिषङ्गदोयादान्तरपत्यमुभय तथैव ।
 पुत्र सुवर्णो बहुरूपरूपो, रूपाणि कृत्वा सुरसत्तमानाम् ॥२९॥
 इन्द्रस्य जायोधनदस्य भार्या, जलैर्देवरस्यापि मृनीश्वराणाम् ।
 भार्यास्तु गच्छत्यनिश सुवर्णो, यस्या प्रियं यच्च यपु स कृत्वा ॥३०॥
 याति क्वचिच्चाप कवस्तनूजस्तद्भुतं रूपं च पतिव्रतासु ।
 कृत्वाऽनिश ताभिस्त्वारभावः, कुर्वन्कृतार्थं मदनं स रेमे ॥३१॥
 कृत्वा गता क्वापि चैव सुवर्णा, धर्मस्य भार्याऽपि सुवर्णान्मनी ।
 स्वाहासुता स्वैरिणी सा बभूव, यस्यापि यस्यापि मनोगता या ॥३२॥
 भार्यास्वरूपा सैव भूत्वा सुवर्णा, रेमे पतीन्मानुषानामुराश्च ।
 देवान्पुत्रीन्वित्पुण्यास्तयाऽन्यात्रूपौदार्यस्थैर्यगाम्भीर्ययुवतान् ॥३३॥

स्वाहा में दो माया म बोट कर छोड़ दिया क्योंकि पहले उन्होंने उसको आस्वासन दिया था कि तुमको सताना अवश्य होगी । इसी प्रतिज्ञा का स्मरण कर अग्नि ने उस शत्रु तेज को स्वाहा के शब्द में छोड़ दिया । अग्नि ने उसी दिवे हुए रेतस (वीर्य) से युगल (जुड़ावा) सन्तान सुवर्ण और सुवर्णा उत्पन्न हुई । वह सतति सुदरता में भूमण्डल पर बैठी थी । उससे अग्नि ने दो अधिक आनन्द मिलता ही था परन्तु उसके साथ-साथ लोक को भी विशेष आनन्द प्राप्त होता था । अग्नि ने अपनी उस कन्या सुवर्णा को प्रतावान् धम को प्रम-भूषक दे दिया । इसके उपरान्त पुत्र सुवर्णा का विवाह सकल्या के साथ कर दिया । इस प्रकार अग्नि ने पुत्र और पुत्री का विवाह कर दिया ॥२० २८॥ एक दूसरे के बीच सम्मिश्रण-दोष के कारण अग्नि की दोनों सन्तान उसी के अनुसार अतृप्तामिलायी हो गई । अनेकों कपट-वेश धारण-भट्ट पुत्र सुवर्ण देवा के वेश में इन्द्र वायु कुबेर वरुण और मृनीश्वरो की स्त्रिया के साथ उनकी इच्छा के अनुसार मनोहर शरीर धारण कर प्रतिदिन एका त विलास करता था ॥२९ ३०॥ वही पर अग्नि पुत्र पतिव्रता स्त्रिया के यहाँ उनके पति का रूप धारण कर प्रतिदिन जाता था और स्वेच्छया अपनी कामेच्छा को पूरित करता हुआ रमण करता था ॥३१॥ इसी प्रकार धम की रूपवती भार्या सुवर्णा भी मायारूप धारण कर वही भी बली जाती थी । वह स्वाहा पुत्री इतनी स्वच्छाचारिणी हो गई कि जिन जिन पुरुषों को जो जो स्त्रियाँ प्रिय लगती थी उन्हीं उन्हीं के रूप धारण कर सब मानव अथवा असुर पतियों के साथ या देव ऋषि पितर या अन्य रूप उदारता गम्भीरता आदि से युक्त पतियों के साथ विहार करती थी । जिस देवता को जो स्त्री प्रिय थी उसी का

याऽभिप्रेता यस्य देवस्य भार्या, तद्रूपा सा रमते तेन सार्धम्
 नानाभेदः करणश्चाप्यनेकैरुपकरण्यन्ती तन्मनःकामसिद्धिम् ॥३४॥
 एवं सुवर्णस्य निरीक्ष्य चेष्टामग्नेः सूनोः पुत्रिकायास्तथाजनेः ॥
 सर्वे च श्रेणुः कुपितास्तथाजनेः, पुत्रं च पुत्रीं च सुरासुरास्ते ॥३५॥

सुरासुरा ऊचुः

कृतं यदेतद्व्यभिचाररूपं यच्छन्नना वर्तनं पापरूपम् ।
 तस्मात्सुतस्ते व्यभिचारव्यादय, सर्वत्र गामो जायतं हव्यवाह ॥३६॥
 तथा सुवर्णांऽपि न चैकनिष्ठा, भूयादग्ने नैकतृप्ता बह्वंश्च ।
 नानाजातीन्निन्दितान्देहभाजो, भजित्री स्यादेव दीपश्च पुण्याः ॥३७॥

ब्रह्मोवाच

इत्येतच्छापवचनं ध्रुवाऽग्निरतिभीतवत् । मामभ्येत्य तदोवाच निष्कृतिं च व पुत्रयोः ॥३८॥
 तदाऽहमब्रवीं बहून् गीतमीं गच्छ शक्रम् । स्तुत्वा तत्र महाबाहो निवेदय जगत्पते ॥३९॥
 माहेश्वरेण वीर्येण तव देहस्थितेन च । एयविधं स्वपत्यं ते जातं बहून् ततो भवान् ॥४०॥
 निवेदयस्व (तु) देवाम देवानां शापमीदृशम् । स्यात्पत्यरक्षणयासौ शंभुः श्रेयः करिष्यति ॥४१॥
 स्तुहि देवं च देवीं च भक्त्या प्रीतो भवेच्छिवः । ततस्त्वपत्यविषये प्रियान्कामानवाप्स्यसि ॥४२॥

रूप धारण कर वह नाना प्रकार के स्त्री-मुकुट हाव-भावों और अदम-सञ्चालन के द्वारा उनके मन में काम-भावना जागरित कर उनकी अपनी ओर आकृष्ट करने उनके साथ रमण करती थी ॥३२-३४॥ इस प्रकार अग्नि के पुत्र और पुत्री की त्रिया को देखकर देवों तथा असुरों ने कुपित होकर शाप दे दिया ॥३५॥

सुर और असुरों ने कहा—अग्ने ! शपट्‌रूप से तुम्हारे पुत्र ने जो यह व्यभिचाररूप पापवर्म त्रिया है, इस फलस्वरूप यह व्यभिचारी और सबप्रणामी हो जाय ! और तुम्हारी कन्या सुवर्णा भी कभी भी एव पति से प्रेम करने वाली तथा एव से तृप्त होने वाली न हो । नाना जातियों तथा निन्दित देहधारियों के साथ विलास-शील हो ऐसी तुम्हारी पुत्री की दूषितप्रवृत्ति हो जाय ॥३६-३७॥

ब्रह्मा ने कहा—शाप की इस भाषा को सुनकर अग्नि अत्यन्त भय-भीत से हो गये । मेरे पास आवर उन्होंने कहा—मरी सन्तानों के उद्धार का मार्ग बताइये । तब मैंने कहा—अग्ने ! गीतमी के तट पर जाओ, वहाँ राक्षस की स्तुति कर दे महाबाहु ! जगत्पति से निवेदन करो कि किस प्रकार तुम्हारे मुल में रखे गये शम्भु के वीर्य से इस प्रकार की तुम्हारी सति उत्पन्न हुई । तत्पश्चात् अग्ने ! शम्भु शक्र से देवताओं के इस शाप का वर्णन करो । अपने अत्यन्त ही रक्षा के लिये ब्रह्मवान् शक्र अवश्य कोई न कोई कल्याणकर प्रवन्ध करेंगे । दीप्त जाकर शम्भु शक्र और देवी योनिमी की भक्तिपूर्वक स्तुति करो । तब शक्र जो प्रसन्न होगे और तदनन्तर शम्भु अपनी

ततो मद्रचनादग्निपङ्क्तां गत्वा महेश्वरम् । तुष्टाव नियतो धारयैः स्तुतिभिर्वेदसंमितैः ॥४३॥

अग्निहवाच

विश्वस्य जगतो धाता विश्वमूर्तिरिन्द्रजितः । आदिकर्ता स्वयंभूश्च तं नमामि जगत्पतिम् ॥४४॥

योऽग्निर्भूत्वा संहरति स्रष्टा ये जलरूपतः । सूर्यरूपेण यः पाति तं नमामि च त्र्यम्बकम् ॥४५॥

ब्रह्मोवाच

ततः प्रसन्नो भगवाननन्तः शंभुरव्ययः । चरेण च्छन्दयामास पावकं सुरपूजितम् ॥४६॥

स विनीतः शिवं प्राह तव वीर्यं मयि स्थितम् । तेन जातः सुतो रम्यः सुवर्णो लोकविश्रुतः ॥४७॥

तया सुवर्णा पुत्री च तस्मादेव जगत्प्रभो । अग्न्योऽग्न्यवीर्यसङ्गाच्च तद्दोषादुभयं त्विदम् ॥४८॥

व्यभिचारात्सदोषं च अपत्यमभवच्छिव । दापं ददुः सुराः सर्वे तयोः शान्तिं कुरु प्रभो ॥४९॥

तदग्निवचनाच्छम्भुः प्रोवाचेदं शुभोदयम् ॥५०॥

शंभुहवाच

मद्वीर्यादभवत्ततः सुवर्णो भूरिविक्रमः । समग्रा ऋद्धयः सर्वाः सुवर्णोऽस्मिन्समाहिताः ॥५१॥

भविष्यन्ति न संदहो बहूने शृणु वचो मम । प्रयाणामपि लोकानां पावनः स भविष्यति ॥५२॥

स एव चामृतं लोके स एव सुरवत्सलभः । स एव भुवित्तुमुक्ती च स एव मखदक्षिणा ॥५३॥

मन्वान के विषय में अपने मनोरथ को प्राप्त करोगे । इसके बाद मेरे बहने के अनुसार अग्नि गंगा के समीप गये और सयन भाव से भगवान् आशुतोष की वेदसम्मत स्तुति बचना मे स्तुति करने लगे ॥३८-४३॥

अग्नि ने कहा—तुम गतिशील विश्व के पालक, विश्वरूप, निर्विहार, आदिकर्ता और स्वयम्भू हो, ऐसे जगत्पति शिवर को प्रणाम करता हूँ । जो अग्नि रूप से विश्व का संहार करता है, जरूप से सृष्टि करता और सूर्यरूप से सत्तार की रक्षा करता है, उस त्रिनेत्र शिवर को नमस्कार है ॥४४-४५॥

ब्रह्मा ने कहा—इसके बाद भगवान् अनन्त, अव्यय शम्भु ने प्रसन्न होकर देव-पूजित अग्नि को घरदान दिया । विनीत अग्नि ने शहर से कहा कि मेरे मुख में रखे हुए तुम्हारे वीर्य से जोन प्रसिद्ध सुवर्ण नामक एक मनोहर पुत्र उत्पन्न हुआ । प्रभो ! उसी (वीर्य) से पुत्री सुवर्णा की भी उत्पत्ति हुई । परस्पर वे वीर्य-मयोंग में और उनमें दोष से ये दोनों अग्न्य व्यभिचारदोष से दूषित हो गये । प्रभो ! मन्त्र देवताओं ने उन दोष के कारण दाप भी दे दिया । उनमें पापों की शान्ति कीजिये । अग्नि की उन बातों को सुकर शम्भु ने यह मंगल-जनक वाणी कही ॥४६-५०॥

शंभु ने कहा—मेरे वीर्य से तुम्हारे द्वारा यह परम विजयवाणी सुवर्ण हुआ है । इस सुवर्ण में सम्पूर्ण ऋद्धिर्वा समाहित (एकत्र) होगी । अग्नि ! इसमें कुछ भी संदेह नहीं । और सुनो, यह सुवर्ण तीन लोकों में पवित्र होगा । समार में वही अप्रुत है, वही देवों को भी प्रिय है, वही मुक्ति-मुक्ति है वही यज्ञ की दक्षिणा भी है । वही सबका रूप और गृहों का भी गुरु है । उसको परम श्रेष्ठ वीर्य समझो । दूसरे उत्पन्न जो उत्तम वीर्य था,

स एव रूपं सर्वस्य गुरुणामप्यसौ गुरुः । वीर्यं श्रेष्ठतमं विद्याद्वीर्यं मत्तो यदुत्तमम् ॥५४॥
 विशेषतस्त्वयि क्षिप्तं तस्य का स्याद्विचारणा । हीनं तेन विना सर्वं संपूर्णास्तेन सपदः ॥५५॥
 जीवन्तोऽपि मृताः सर्वे सुवर्णेन विना नराः । निर्गुणोऽपि धनी मान्यः सगुणोऽप्यधनो नहि ॥५६॥
 तस्मान्नातः परं किञ्चित्सुवर्णाद्वि भविष्यति । तथा चैषा सुवर्णाऽपि स्यादुत्कृष्टाऽपि चञ्चला ॥५७॥
 अनया बोधितं सर्वं न्यूनं पूर्णं भविष्यति । तपसा जपहोमैश्च 'येयं प्राप्या जगत्त्रये ॥५८॥
 तस्या प्रभावः प्राशस्त्यमग्ने किञ्चित्च कीर्त्यते । सर्वत्र या तु सतिष्ठेदायातु विचरिष्यति ॥५९॥
 सुवर्णां कमला साक्षात्प्रविश्या च भविष्यति । अद्य प्रभृत्यात्मजयोस्तया स्वरं विचेष्टतोः ॥६०॥
 तयाऽपि चेतयोः पुण्यं न भूतं न भविष्यति ॥६१॥

ग्रहोवाच

एवमुक्त्वा ततः शंभुः साक्षात्प्राभवच्छिवः । लिङ्गरूपेण सर्वेषां लोकानां हितकाम्यया ॥६२॥
 बरान्प्राप्य सुताभ्यां च अग्निस्तुष्टोऽभवत्ततः । स्वभर्त्रा च सुवर्णां सा धर्मेणाग्निसुता मुदा ॥६३॥
 धर्तयामास पुत्रोऽपि यद्वृत्तेः संकल्पया मुदा । एतस्मिन्प्रतरे स्वर्णामनेन्दुहितरं मुने ॥६४॥
 परिभूय च धर्मं तं शार्दूलो दानवैश्चरः । अहर्द्वाग्यसौभाग्यविलासवर्त्तति छलात् ॥६५॥

जो विशेष रूप से तुम (अग्नि) म प्रक्षिप्त होने के कारण और अधिक निलर सा गया, उसकी उत्तमता के विषय में अधिक क्या विचार किया जाय । उसने विना सात ससार मुच्छ है । उससे सब प्रकार की सम्पत्ति को पूर्ण समझो । सुवर्ण के बिना जीवित मनुष्य को भी मृत समझो । ससार में गुणहीन धनी व्यक्ति आदर का पात्र है और गुण भी धनाभाव के कारण उोध्य होगा है । इसलिए इस सुवर्ण से उच्छेद कोई भी पदार्थ नहीं होगा । और यह सुवर्ण भी परम उच्छेद पर नु चला होगी । इसके दृष्टि विशेष मात्र से सारे अभाव भाव में परिणत हो जायेंगे । इनतीना लोकों में तपस्या कर और भोग द्वारा प्राप्त करने योग्य जो यह सुवर्ण है अग्ने । इसके प्रभाव और महत्त्व का बोझा-भा वर्णन किया गया है । जो सुवर्णा सर्वत्र गहरी है, वह सर्वत्र रहे और धूमे पुनरपि यह साधान् एतमी और पवित्र मानी जायगी । आज मे दग प्रकार का स्वेच्छाबार करते हुये भी तुम्हारी मे मन्त्रनि पवित्र है । इनके समान पवित्र पदार्थ न हुये न हयि ॥६१॥

ग्रहो ने कहा—इस प्रकार कहकर शम्भु सब लोकों के हित की कामना से लिङ्ग रूप में वहाँ प्रवृत्त हुए ॥६२॥ वे अग्नि भी सबर से अपने पुत्रों के लिये वरदान पाकर प्रसन्न हो गये । इसके अनन्तर अग्नि-मनया यह सुवर्णा प्रीतिपूर्वक अपने पति धर्म के साथ रहने लगी । अग्नि-पुत्र सुवर्ण की आनन्दपूर्वक सरला के साथ बाल बिताने लगा ॥६३॥ मुने । इस बीच दानवराज शार्दूल धर्म को हराकर भाग्य सोमाग्य और विनाश की चेष्टांमि विषय विद्युत् सुवर्णा का छत्र म अपहरण करने समानक में ले गया । यह देखकर अग्नि के जामाता धर्म

नीता रसातल तेन सुवर्णा लोकविश्रुता । जामाताग्ने स धर्मश्च अग्निश्चैव स हृदयवाद् ॥६६॥
 विष्णवे लोकनायाय स्तुत्वा चैव पुन पुन । कार्यविज्ञापन चोभौ चक्रतु प्रभविष्णवे ॥६७॥
 ततश्चक्षेण चिच्छेद शादूलस्य शिरो हरि । साऽग्नीता विष्णुना देवी सुवर्णा लोकसुन्दरी ॥६८॥
 महेश्वरसुता चैव अनेश्चैव तया प्रिया । महेश्वराय तां विष्णुर्दक्षायामास नारद ॥६९॥
 प्रीतोऽभवन्महेशोऽपि सस्वजे ता पुन पुन । चक्र प्रक्षालित यत्र शादूलच्छेदि दोष्टिमत् ॥७०॥
 चक्रीयं तु विख्यात शादूल चेति तद्विदु । यत्र नीता सुवर्णा सा विष्णुना शकरान्तिकम् ॥७१॥
 तत्तीर्थं शाकर ज्ञेय वंष्णव सिद्धमेव तु । यत्राऽऽनन्दमनुप्राप्तो ह्यग्निर्धर्मश्च शाश्वत ॥७२॥
 आनन्दाश्रूणि व्यपतन्त्यत्रानेर्मुनिसत्तम । आनन्देति नदी जाता तया वं नन्दिनीति च ॥७३॥
 तस्याश्च सगम पुण्यो गङ्गाया तत्र वं शिव । तत्रैव सगमे साक्षात्सुवर्णांश्चापि संस्थिता ॥७४॥
 दाक्षायणी सैव शिवा आनेयी चेति विश्रुता । अम्बिका जगदाधारा शिवा कात्यायनीश्वरी ॥७५॥
 भक्ताभीष्टप्रदा नित्यमलकृत्योभय सटम । तपस्तेषु यत्र चाग्निस्तत्तीर्थं तु तपोवनम् ॥७६॥
 एवमादीनि तीर्थानि तीरयोर्वभयोर्मुने । तेषु स्नानं च दानं च सर्वकामप्रदं शुभम् ॥७७॥
 उत्तरे चैव पारे च सहस्राणि चतुर्दश । दक्षिणे च तया पारं सहस्राण्यप्य षोडश ॥७८॥

और स्वयं हृदय-वाट अग्नि ने लोह-यति महामहिम विष्णु की बार-बार स्तुति करके उनको इस अन्याय-काय की सूचना दी ॥६६॥ ६७॥ हरि ने उन दोनों की प्रायना सुनकर जब से शादूल का दिर काट डाला और लोक सुन्दरी महेश्वर और अग्नि की प्रिय पुत्री उस अवदुल सुवर्णा देवी को ला दिया । नारद ! विष्णु ने लाकर उसको शकर की बिललाया ॥६८॥ ६९॥ उसको देखकर व प्रसन्न हो गये और बार-बार उसको छाती से लपकाया । जहाँ पर उन्होंने शादूल के गिर के काटने वाले चक्र को जल से धोया वह चक्र-तीर्थ नाम से प्रसिद्ध हुआ । शादूल तीर्थ की लीग उसी को कहते हैं ॥७०॥ जहाँ वह सुवर्णा विष्णु के द्वारा शकर के पास लाई गई उसको शाकर वंष्णव और सिद्ध-तीर्थ कहा गया ॥७१॥ मुनिपेष्ठ ! जहाँ अग्नि और धर्म को अविनाश आनन्द प्राप्त हुआ और अग्नि के नेत्रों से आनन्द के अश्रु बिन्दु गिरे यहाँ आनन्द नाम की नदी—जिसको नन्दिनी भी कहते हैं—उत्पन्न हो गई ॥७२॥ ७३॥ उसने गंगा में मिलने से जो सगम बना वह अत्यन्त पवित्र तीर्थ हो गया । वहाँ गिर और साक्षात् सुवर्णा आज तक प्रतिष्ठित हैं ॥७४॥ उसी की दायायणी शिवा आनेयी आदि नामों से प्रसिद्ध है । उस नदी के दोनों तटों पर भक्ताओं की अभीष्ट प्रदान करने वाली जगदाधारा अम्बिका शिवा और ईश्वरी कात्यायनी नित्य निवास कर उन तटों की गोमा बडाती हैं । जहाँ अग्नि ने तपस्या की वह तीर्थ तपोवन के नाम से प्रसिद्ध हुआ ॥७५॥ ७६॥ मुने ! इस प्रकार के तीर्थ उसके दोनों तटों पर स्थित हैं जहाँ स्नान और दान करना शुभ एवं सब प्रकार की काम नाशों को देने वाला है ॥७७॥ इसने उत्तर तट पर चौदह हजार और दक्षिण तीर पर सोलह हजार तीर्थ हैं । ये सब तीर्थ विनाश घटनाओं के रमारक हैं । इनके नाम अलग-अलग हैं । मैंने तो संक्षेपरूप में कुछ के नाम गिनाये हैं

तत्र तत्र च तीर्थानि साभिज्ञानानि सन्ति वै । नामानि च पुण्यं सन्ति सक्षेपात्तन्मयोच्यते ॥७९॥
 एतानि यश्च शृणुयाद्यश्च वा पठति स्मरेत् । सर्वेषु तत्र काम्येषु परिपूर्णो भवेन्नर ॥८०॥
 एतद्वृत्तं तु यो ज्ञात्वा तत्र स्नानादिकं चरेत् । लक्ष्मीवाञ्छायते नित्यं धर्मवाञ्छा विशेपत ॥८१॥
 अञ्जनात्पश्चिमे तीर्थं तच्छाईलमुदाहृतम् । वाराणस्यादितोयम्य सर्वम्यो ह्यधिकं भवेत् ॥८२॥
 तत्र स्नात्वा पितृन्देवान्बन्धते तर्पयत्यपि । सर्वपापविनिर्मुक्तो विष्णुलोके महोपते ॥८३॥
 तपोवनाच्च शाईलान्मध्ये तीर्थान्यशेपत । तस्यैकैकस्य माहात्म्यं न केनाप्यत्र वर्ण्यते ॥८४॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये तपोवननन्दिनीसगमेश्वरदेवीदाक्षा-

मणोसिद्धेश्वरवैष्णवशाईलान्मित्रिचक्रतीर्थदित्रिशतसहस्रतीर्थवर्णनं नामाष्टा-

विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१२८॥

गौतमीमाहात्म्य एकोनपटितमोऽध्यायः ॥५९॥

अथैकोनविंशदधिकशततमोऽध्यायः

इन्द्रतीर्थवर्णनम्

ग्रहोवाच

इन्द्रतीर्थमिति ह्यात तत्रैव च यूपाकपम् । केनाया सगमो यत्र हनूमत तथैव च ॥१॥

॥७८७९॥ ओ इन तीर्थों का नाम श्रवण करता है पढ़ता है अथवा स्मरण करता है वह मनुष्य अपने सम्पूर्ण अनिलपित फलों को प्राप्त करता है ॥८०॥ इन तीर्थों के इतिहास को जानकर जो व्यक्ति इनमें स्नान आदि करता है वह नित्य प्रति लक्ष्मीवान् और विपेरुष से धार्मिक होता जाता है ॥८१॥ अञ्जना वा पश्चिम ओर जो तीर्थ है वह शाईलतीर्थ कहलाता है। वह वाराणसी आदि सब तीर्थों से अधिक पवित्र है ॥८२॥ जो व्यक्ति उसमें स्नानकर पितर और देवों की श्रद्धा करना है या तपण करता है वह सब पापों से छूटकर विष्णुलोक में स्थान पाता है ॥८३॥ तपोवन से लेकर शाईलतीर्थ के बीच के सम्पूर्ण तीर्थों की महिमा पुण्य-पुण्य रूप से इस लोक में कोई भी वर्णन नहीं कर सकता है ॥८४॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में तपोवन, नन्दिनी-सगम आदि तीर्थ हजार तीर्थों का वर्णन नामक

एक सौ अष्टाश्रमवा अध्याय समाप्त ॥१२८॥

अध्याय १२६

इन्द्रतीर्थ का वर्णन

ग्रहो बोले—यहाँ इन्द्रतीर्थ तथा वृषाक्षतीर्थ प्रसिद्ध हैं। वही केना का सगम हनूमन तीर्थ एवं अञ्जना

अञ्जकं चापि यत्प्रोक्तं यत्र देवस्त्रिविक्रमः । तत्र स्नानं च दानं च पुनरावृत्तिदुर्लभम् ॥२॥
 तत्र घृतान्यथाऽऽख्यास्ये गङ्गाया दक्षिणे तटे । इन्द्रेश्वरं चोत्तरे च शृणु भक्त्या यत्प्रतः ॥३॥
 नमुचिर्बलवानासीदिन्द्रशत्रुमन्दोत्कटः । तत्प्रेन्द्रेणाभवद्युद्धं फेनेनेन्द्रोऽहरच्छिरः ॥४॥
 अपां च नमुचे, शत्रोस्तत्फेनवच्चरूपधृक् । शिरदिष्टत्वा तच्च फेनं गङ्गाया दक्षिणे तटे ॥५॥
 न्यपतद्भूमिं भित्त्वा तु रसातलमयाऽऽविदात् । रसातलभव गाङ्गं वारिं यद्विश्वपावनम् ॥६॥
 यच्चादिष्टेन मार्गेण व्यगमद्भूमिमण्डलम् । तज्जलं फेनाम्ना तु नदी फेनेति गद्यते ॥७॥
 तस्यास्तु संगमः पुण्यो गङ्गाया लोकविभूतः । सर्वपापक्षयकरो गङ्गायमुनयोरिव ॥८॥
 हनूमदुपमाता वै यत्राऽऽप्लवनमात्रतः । मार्जारत्वादभून्मुवता विष्णुगङ्गाप्रसादतः ॥९॥
 मार्जारं चेति तत्तीर्थं पुरा प्रोक्तं मया तव । हनूमतं च तत्प्रोक्तं तत्राऽऽख्यानं पुरोदितम् ॥१०॥
 घृपाकर्षं चाञ्जकं च तत्रैवं प्रपत, शृणु । हिरण्य इति विख्यातो, दैत्यानां पूर्वजो बली ॥११॥
 तपस्तप्या सूरः सर्वरजयोऽभूत्सुदारुणः । तस्यापि बलवान्मुनो देवानां दुर्जय, सदा ॥१२॥
 महाग्निरिति ख्यातस्तस्य भार्या पराजिता । तेनेन्द्रस्याभवद्युद्धं बहुकालं निरन्तरम् ॥१३॥
 महाशनिर्महावीर्यं, सततं रणमूर्धनि । जित्वा नागेन सहितं शक्रं पित्रे व्यवेदयत् ॥१४॥

तीर्थं है जहाँ स्वयं विष्णु निवास करते हैं ॥११॥ वहाँ स्नान और दान करने से पुन जन्म लेना दुर्लभ हो जाता है ॥२॥
 अब वहाँ का इतिहास बताता हूँ—गंगा के दक्षिण तट पर जैसी घटना हुई और उत्तर तीर पर जिस प्रकार इन्द्रेश्वर
 तीर्थ की स्थापना हुई, उसका वर्णन हे नारद । अतिपूवक गङ्गातलमाव से मुनो ॥३॥ नमुचि इन्द्र का अति मन्दोत्कट
 और बलवान् शत्रु था । उसका इन्द्र के साथ सप्ताम हुआ । युद्ध मद्दन्द ने फेन से उसका शिर उतार लिया ॥४॥
 वह फेन वच्चरूप होकर शत्रु नमुचि के शिर को काटकर गंगा के दक्षिण तट पर गिर पड़ा और पृथिवी को फोडकर
 रसातल म घुस गया । विश्व को पवित्र कर देने वाला पाताल गंगा का जो जल बज्र के प्रवेश से बन हुये छिद्र-मार्ग
 से निकलकर पृथ्वी तल पर आया, उस जल की फेन नाम से प्रसिद्धि हुई । अतः उससे निकली नदी भी फेना कहलाने
 लगी ॥५-७॥ उसरा गंगा के साथ पावन कोइ प्रसिद्ध संगम गंगा-यमुना के संगम के समान सब पापा को नष्ट
 करने वाला हुआ ॥८॥ हनूमान् की उपमाता जहाँ स्नान करने से ही विष्णु और गंगा की कृपा से बिल्ली की
 आदृति को छोडकर परम मुन्दरी बन गई ॥९॥ उसका मार्जार-तीर्थ नाम से परिचय पहले ही सुनसे कह चुका हूँ ।
 हनुमान तीर्थ भी उसी को कहा गया है । इसकी नया भी पहले ही कह दी गई है ॥१०॥ अब घृपाकर्ष और अञ्जक
 तीर्थ कैसे बने, इसको सावधान होकर सुनो । बली हिरण्य दैत्या का पूर्वज था ॥११॥ वह अति मयानक दैत्य अपनी
 नदोर तपस्या के कारण देवा से न जीतने-योग्य (अजेय) हो गया ॥१२॥ उसका बलवान् पुत्र भी जिसका नाम
 महागनि था—सदा देवताओं के लिए दुर्जय ही रहा । उसकी पराजिता नाम की स्त्री थी । उस महाशनि का
 इन्द्र ने साथ निरन्तर युद्ध होता रहा ॥१३॥ सदा न पराजनी उस दैत्य न उस मयदर युद्ध में ऐरावत के सहित
 इन्द्र को जीत कर पिता के हाथों दीया ॥१४॥ जिस समय हाथी के सहित इन्द्र की बाणवर ले आया, उस

बद्ध्वा हस्तिसमायुक्त स्वसार वीक्ष्य ता तदा । विहाय क्रूरता दंत्यो हिरण्याय न्यवेदयत् ॥१५॥
 महाशनिपिता दंत्य पूर्वेषां पूर्ववत्तर । शचीकान्त तले स्थाप्य तस्य रक्षामथाकरोत् ॥१६॥
 महाशनिर्हिरं जित्वा जेतुं वरुणमभ्ययात् । वरुणोऽपि महाबुद्धिं प्रादात्कन्या महाशने ॥१७॥
 उर्वधिं स्वालय प्रादाद्वरुणस्तु महाशने । तयोश्च सख्यमभवद्वरुणस्य महाशने ॥१८॥
 वारुणो चापि या कन्या सा प्रियाऽभू-महाशने । वीर्येण यशसा चापि शीर्येण च बलेन च ॥१९॥
 महाशनिमहादेत्यस्त्रैलोक्ये नोपमीयते । निरिन्द्रत्व गते लोक देवा सर्वे न्यमन्त्रयन् ॥२०॥

देवा ऊचुः

विष्णुरेवन्द्रदाता स्यादंत्यहन्ता स एव च । मन्त्रदग्धा स एव स्याद्विद्र चान्यं करिष्यति ॥२१॥

ब्रह्मोवाच

एव समन्त्र्य ते देवा विष्णोमन्त्रं न्यवेदयन् । समावधायो महादंत्यो महाशनिरिति ब्रुवन् ॥२२॥
 प्रायाद्वारोश्वरं विष्णुं श्वशुरं वरुणं तदा । वेश्मो वरुणं गत्वा प्राहेन्द्रस्य पराभवम् ॥२३॥
 तया स्वर्पतत्कर्तव्यं ययाऽऽप्यति पुरंदर । सद्रिष्णुवच्चमाच्छीघ्रं ययौ जलपतिर्मुन ॥२४॥
 सुतापतिं हिरण्यसुतं विक्रान्तं च महाशनम् । अतिसमानितस्तनं जामात्रां ददधं प्रभु ॥२५॥
 पन्नचञ्चाऽऽगमनं दंत्यो विनयाच्छ्वशुरं तदा । वरुणं प्राह तं दंत्यं यदागमनकारणम् ॥२६॥

समय अपनी कहिन इ द्राणी को देखकर उसने अपनी क्रूरता का त्यागकर ... का पिता हिरण्य ने हाथा सीप दिया । ॥१५॥ महागनि का वह दंत्य पिता जो पूव के सभी दंत्या से अधिक बड़ी और दीपशीवी था सारी-यति को पाताल में बन्दी बना कर रख दिया और उनकी रक्षा का प्रबंध कर दिया ॥१६॥ इसर महागनि ने इन्द्र को जीतकर वरुण को जीतने के लिये अभियान किया । महाबुद्धि वरुण ने इस आगत सकट को टालने के लिये महागनि को अपनी कन्या वारुणी और अपना वास-स्वान समुद्र दे दिया । फलस्वरूप उन भाग (वरुण और महागनि) में मित्रता हो गई ॥१७-१८॥ वरुण को जो कन्या वारुणी थी वह भी महागनि को प्राणप्रिया बन गई । वह ईश्वर अपने पराक्रम कीति गीत और बल में त्रैलोक्य में बेजोड़ हो गया । तब स्वर्गलोक का इन्द्र से शून्य देखकर देवताओं ने भजना की ॥१९-२०॥

देवो ने कहा—विष्णु ही इन्द्र के दाता होंगे । वही दंत्या के हन्ता भी हैं । वही मन्त्रप्रदा है और वही दूसरा इन्द्र बनायेगा ॥२१॥

ब्रह्मा ने कहा—देवताओं ने इस प्रकार परस्पर भजना की और विष्णु ने कहा कि हम लोगों से यह महागनि नाम का महादंत्य अवश्य है । यह मुनिकर विष्णु अपने श्वशुर जेष्ठवर वरुण के पास गये । वही जाकर वरुण ने इन्द्र की पराजय की वथा वरुण से वही और बतलाया कि तुमको वीसा प्रयत्न करना चाहिए जिससे इन्द्र यहाँ आ जायें । मुन ! विष्णु की बातों को मुनिकर वरुण गीघ्र हो अपने पराक्रमी जामाता हिरण्य-गुप्त महागनि के पास गये । उस जामाता ने अपने श्वशुर वरुण का अत्यन्त सम्मान किया और वही नेत्रता ने उनका आन का कारण पूछा । वरुण ने अपने आन का जो कारण था वह बतला दिया ॥२२-२६॥

चरुण उवाच

इन्द्र देहि महाबाहो यस्त्वया निजित पुरा । बद्ध रसातलस्य त देवानामधिप सखे ॥२७॥
अस्माकं सर्वदा मान्य देहि त्व मम शत्रून् । बद्धया विमोक्षण शत्रोर्मृते यशस सताम् ॥२८॥

ब्रह्मोद्याच

तथेत्युक्त्या यथचित्स दत्तेशो धरण्या तम् । श्रादादिद्व शचीकान्त धारणन समन्वितम् ॥२९॥
 स दत्तमध्मेऽतिविराजमानो, ह्रीं तदोवाच जलेशसनिधो ।
 सपुत्र्य चैवाय महापचारं महाशनिमध्यवन्त बभाषे ॥३०॥

महाशानिद्वयच^१

केन त्वमिन्द्रोऽद्य कृतोऽसि केन, योयं तवद्वग्बहु भायसे च	॥
त्व' सगरे 'शशुर्भिराघ्यसे' च, तथाऽपि चेदो भवसीति चित्रम्	॥३१॥
अथापि बद्धा पुरुषण काचित्तस्या पतिरस्ता मोचयतीति युक्तम्	॥
स्त्रियोऽस्त्वतग्रा पुरुषप्रधानास्त्व, वै युगम्भिता इरु साधो	॥३२॥
बद्धो मया सगरे घाहनेन, इवाप्यस्त्र ते वञ्चमुह्यमश्रित	॥
चिन्तारत्न नन्दन योयितस्ता, यशो बल देवराजोपभोग्यम्	॥
सर्वं हित्वा (त्व) कित् मुक्तो जलेऽदाकादशक्ते जीवित धिवत्वेदम्	॥३३॥

यद्यपि ते कहा—मये । तुमने जिस हथ्थ को मुँह में जीत लिया है और बन्दी बना कर रसातल में रख छोड़ा है उस देश-व्यापी को हूँ महाबाहू । देदो । 'गुनागन' । बहम लोपा के सग्न मान्य हैं इसलिये उनको मृत्यु देदो । सब्ब को बन्दी बना कर पुनः छाड़ देने से विद्वता की महान् कीर्ति होती है ॥२-२८॥

प्रह्लाद ने कहा—अच्छी बात है। यह कहकर उस दैत्य ने निम्ना प्रचार उग्र रावो-मति इन्द्र को एरावत के सहित यरग के हवा में कर दिया। अपने दाय-मामाज भ अतिभीमाशाली उस दैत्य ने वरुण व सामन ही इन्द्र की वरुण्य पूजा गामप्रिया स पूजा की ओर पुन इन्द्र से कहा ॥२९॥ ३०॥

महामात्रिन ने कहा—आज तिरुवे ड्राफ्ट इन्द्र बनाये गये हैं। किसने ड्राफ्ट पुत्र तुम गतिमम्यप्र हूये ? और तिरुव नारण तुम यक्ष चक्रवर वाते वर रहे हो ? तुम एक बार युद्ध में दानुव्रा द्वारा बन्नी बनाये गये थे फिर भी तुम आज इन्द्र हो रहे हो यह एक विचित्र घटना है। किसी पुरुष के ड्राफ्ट बनने बने इन्द्र स्त्री को उसका पति ही छुड़ाना है यह बात गद्दी और उचित है। क्याकि स्त्रियाँ परवरा और पुत्रराव ही मरणा रहनेवाती होती हैं। राज ! मायो ! अब आज से तुम मुक्त हो आज गत तो तुम बन्नी बनकर इसी के सामान हो चले रहे। अब पुनः पुनः लोग तुम अपने बाहुन एरावन सहित युद्ध में भरे ड्राफ्ट बन्नी बनाय गये थे। तुम्हारा बहू अद्भुत प्रभाव

१५ अ ०५—इति पदं तं वदन् वनं वाक् स वा सुष्ठु वनं जम्मागुरारः । व० । २५ अ ०५ य । २५ अ ०५ मिषप्यनो त । ४ अ ०५ येनो त० । ५ अ ०५ मास्त्यः शोच्यवर्षः । व० । ६ अ ०५ न पुत्रो रण सनधर्मो रणः । यथावत् ददताम्यतोप्य ताव हित्वा किम् मरुतो जम्मागुरारः । ॥३३॥ त०३० ।

तज्जीवनं यत्तु यशोनिधानं, स एव मृत्युर्यशसो यद्विरोधि
 एवं जानञ्जक कथं जलेशान्मवित् प्राप्तो नैव लज्जा भजेयाः^{॥३५॥}
 त्रिविष्टपस्थः परवेष्टितः सन्सर्वैः सुरैः कान्तया वीज्यमानः
 संस्तूयमानश्च तयाऽऽसरोभिन्नं लज्जा ते बिभेतीति मन्ये^{॥३५॥}
 त्वं वृत्रहा नमुचेदपि हन्ता, पुरां भेत्ता गोत्रभिद्वज्रबाहुः
 एवं सुरास्त्वां परिपूजयन्तीत्यतो जिष्णो सर्वमेतस्यजस्व^{॥३६॥}
 विकारभाष्याप्यहितोद्भवं ये, जीवन्ति लोकाननुसविशन्ति
 भवादृशां दुःख्यवनास्जजन्मा, कथं न हृद्भेदमवाप कर्ता^{॥३७॥}

ब्रह्मोवाच

एवमुक्त्वा तु दैत्येशो वरुणाय महात्मने । प्रादादिन्द्रं पुनश्चेदं वचनं तदभापत^{॥३८॥}

महाशनिव्याच

अथ प्रभृत्सप्तो शिष्य इन्द्रः स्याद्वरुणो गुरुः । इवशुरो मम येन त्वं मुक्तिमाप्तोऽसि वासव^{॥३९॥}
 तथा त्वं भूत्पभावेन वर्तेया वरुण प्रति । नो चेद्बद्ध्वा पुनस्त्वां वै क्षेप्स्ये चैव रसातलम्^{॥४०॥}

और शक्ति रखने वाला अस्त्र वज्र तो वही का भी नहीं रहा। तुम्हारे पास चिन्ता दूर करनेवाली चिन्तामणि, नन्दनवन, मनोमोहिनी स्त्रियाँ (अप्सरार्यें) कीर्ति, बल (सैन्यशक्ति) आदि देवराज के उपभोग योग्य सब साम-ग्रियाँ हैं, परन्तु आज तुम वरुण द्वारा छुड़ाये जा रहे हो। फिर भी जीना चाहते हो। विकार है तुम्हारी इस जीवना-काशा को। जीवन वही है जो मर का भाण्डार हो। कीर्ति-बिरोधी जीवन ही मृत्यु है। इन्द्र! ऐसा जानते हुए भी तुम वरुण की इपा से मुक्ति प्राप्त कर रहे हो। क्या इससे तुमको कुछ भी लज्जा नहीं हो रही है? मुझे ऐसा ज्ञात होता है कि जब तुम सब देवताओं के बीच में स्वर्गासन पर विराजमान होते हो, सभी पत्नी बलने लगती है और अप्सरायें स्तवन गान करने लगती हैं सब लज्जा तुमसे डर जाती है। तुमको बृत्रहा (वृत्रको मारने वाले) नमुचि को मारने वाले, पुरंदर पर्वतों में पञ्च-खेदन करने वाले वज्रबाहु आदि बहुर देवगण तुम्हारी पूजा करने हैं परन्तु आज से ही जयसील। अपनी इन सय उपाधियों को छोड़ दो। आपके समान अपकीर्ति-जन्य निन्दा (लोहापवाद) की पारर भी जो जीते हैं और इस लोक में मूढ़ दिखाते हैं, उन्हें देखकर अच्युत बमल्योनि, ब्रह्मा का हृदय पट क्यों नहीं जाता? ^{॥३९-३७॥}

ब्रह्मा ने कहा—इस प्रकार बहुर दैत्यन्द्र ने महात्मा वरुण के हाथ इन्द्र को सौंप दिया और पुनः उनसे यह वचन कहा ^{॥३८॥}

महाशनि ने कहा—आज से यह इन्द्र शिष्य और मेरे समुर वरुण गुरु होगे। क्योंकि इन्द्र! तुमको इन्हीं के कारण मुक्ति प्राप्त हुई है। साथ ही तुम सर्वदा वरुण के प्रति दास-भाव से रहना। यदि ऐसा नहीं करोगे तो पुनः तुमको बाँधकर पाताल की चारा में शाल दूंगा ^{॥३९-४०॥}

ब्रह्मोवाच

एवं निर्भर्त्स्य तं शक्रं हसंश्चापि पुनः पुनः । अग्रवीदग्च्छ गच्छेति वरुणं चानुमन्यतु ॥४१॥
स तु प्राप्तः स्वनिलयं लज्जया कलुषीकृतः । पौलोम्यां ग्राह तत्सर्वं यत्तच्छत्रुपराभवम् ॥४२॥

इन्द्र उवाच

एवमुक्तः कृतश्चैव शत्रुणाऽहं वरानमे । निर्वापयामि येन स्वमात्मानं सुभगे वद ॥४३॥

इन्द्राण्युवाच

दानवानामथोदभूति शक्र मायां पराभवम् । वरदानं तथा मृत्युं जानेऽहं बलसूदन ॥४४॥
तस्माद्यस्मात्तस्य मृत्युरथवापि पराभवः । जायेत शृणु तत्सर्वं वक्ष्येऽहं प्रीतये तव ॥४५॥
हिरण्यस्य सुतो घोरः पितृव्यस्य सुतो बली । तस्मान्नम स्यात्स भ्राता वरदानाच्च दपितः ॥४६॥
ब्रह्माणं तोषयामास तपसा निषमेन च । ईदृशं बलमापन्नं तपसा किं न सिध्यति ॥४७॥
तस्मात्तया चित्तरागो विस्मयो वा कथंचन । न कार्यः शृणु तत्रेदं कार्यं यत्तु भ्रमागतम् ॥४८॥

ब्रह्मोवाच

एवमुक्त्वा तु पौलोमी ग्राहेन्द्रं विनयान्विता

॥४९॥

ब्रह्मा ने कहा—इस प्रकार उस इन्द्र को फटकार गुनाकर और बार-बार हँसते हुये उस दैत्य ने कहा—
'जोओ जाओ, वरुण की सेवा स्वीकार करो । इन्द्र इस प्रकार की अपमानजनक बातों को सुनकर लज्जा से उदास
होकर अपने मवन धाम और पौलोमी से शत्रु के द्वारा किये गये अपमान को कहा ॥४१-४२॥

इन्द्र ने कहा—सुन्दर मुख वाली ! मैं इस प्रकार शत्रु द्वारा अपमानित किया गया हूँ, और कटु वचन सुन
चुका हूँ । सुभगे ! जिस प्रकार इस अपमान का बदला ले सकूँ, ऐसी युक्ति बताओ, जिससे कि अपने को शान्त कर
सकूँ ॥४३॥

इन्द्राणी ने कहा—शक्र ! बलसूदन ! दानवों की उत्पत्ति, उनकी माया, उनका पराभव वरदान तथा उनकी
मृत्यु के कारण आदि बातों को मैं जानती हूँ । अतः जिससे उसकी मृत्यु अथवा पराजय होगी उसको मैं तुम्हारी
प्रसन्नता के लिये कह रही हूँ सुनो । वह मेरे पितृव्य (चाचा) हिरण्य का बलवान् पुत्र है इसलिये वह मेरा भाई
हुआ । वह इस समय वरदान से उन्मत्त हो गया है । उसने तपस्या और सयम के द्वारा ब्रह्मा को प्रसन्न किया था ।
इसी कारण उसको इस प्रकार बल प्राप्त हुआ है । सच है, तपस्या के द्वारा क्या नहीं प्राप्त होता है ? इसलिये
तुमको अपने मन में किसी प्रकार का शोक या विस्मय नहीं करना चाहिये । इस विषय में जो कुछ करना है, वह
सुनो ॥४४-४८॥

ब्रह्मा ने कहा—इस प्रकार कहकर विनीत पौलोमी ने पुन इन्द्र से कहा ॥४९॥

१ घ. च. ० न्य च ॥४१॥ स । २क. ०लोम्यां प्रा० । ३द. येनाऽऽशु चाऽऽत्मा० । ४ घ दपित ।

५ घ. ०या न विन्ताऽन कार्यं शक्र वदचित । एवात्र शृणु तत्रेव कार्यं ।

इन्द्राभ्युवाच

नासाध्यमस्ति तपसो नासाध्यं यज्ञधर्मणः । नासाध्यं लोकनायस्य विष्णोर्भवत्या हरस्य च ॥५०॥
 पुनश्चेदं मया कान्त धृतमस्त्यतिशोभनम् । रत्नीणां स्वभावं जानन्ति स्त्रिय एव सुराधिप ॥५१॥
 तस्माद्भूमेस्तथा चापां नासाध्यं विद्यते प्रभो । तपो वा यज्ञकर्मादि ताम्यामेव यतो भवेत् ॥५२॥
 तत्रापि तीर्थभूता तु या भूमिस्तां व्रजेद्भवान् । तत्र विष्णुं शिवं पूज्य सर्वान्कामानवाप्स्यसि ॥५३॥
 श्रुतमस्ति पुनश्चेदं स्त्रियो याश्च पतिव्रता । ता एव सर्वं जानन्ति धृतं तानिश्चराचरम् ॥५४॥
 पृथिव्यां सारभूत स्यात्तन्मध्ये दण्डक वनम् । तत्र गङ्गा जगद्धात्री तत्रेशं पूज्य प्रभो ॥५५॥
 विष्णुं वा जगतामीशं दीनार्तातिहरं विभुम् । अनायानामिह नृणां मज्जतां दुःखसागरे ॥५६॥
 हरो हरिर्वा गङ्गा वा बवाप्यन्यच्छरणं नहि । तस्मात्सर्वप्रयत्नेन तोषयेतान्तस्माहितः ॥५७॥
 भक्त्या स्तोत्रैश्च तपसा कुर्व चैव मया सह । ततः प्राप्स्यसि बल्याणमोशविष्णुप्रसादजम् ॥५८॥
 अज्ञात्वंकपुण कर्म फलं दास्यति कर्मिणः । ज्ञात्वा शतगुणं तत्तयाद्भुतमप्य वा तदक्षयम् ॥५९॥
 पुंसः सर्वेषु कार्येषु भाष्येदेह सहृदिनी । स्वल्पानामपि कार्याणां नहि सिद्धिस्तया विना ॥६०॥
 एकेन यत्कृतं कर्म तस्मादर्धफलं भवेत् । जायया तु कृतं नाय पुष्कलं पुटयो लभेत् ॥६१॥

इन्द्राणी ने कहा—तपस्या के द्वारा कुछ भी असाध्य नहीं, यज्ञ के द्वारा सब कुछ साध्य है और लोकनाय विष्णु तथा शिव की भक्ति से सब कुछ प्राप्त किया जा सकता है। इसने अतिरिक्त है कान्त । एक और अति-उपद्रुत बात सुनी है। सुराधिप ! स्त्रियों की प्रवृत्ति को स्त्रियाँ ही जानती हैं ॥५०-५१॥ प्रभो ! इगलिये भूमि और जल के लिये कुछ भी असाध्य नहीं है, क्योंकि तपस्या अथवा यज्ञ आदि इन्हीं दो पंदाओं में निष्पन्न होना है ॥५२॥ इनमें भी जो तीर्थभूमि है वहाँ आज आप जाइये। वहाँ विष्णु और शिव की पूजा कर आप अपने सब मनोरथों को प्राप्त कीजिए ॥५३॥ और यह भी गुना बताता है कि जो पतिव्रता स्त्रियाँ होती हैं वे सब कुछ जानती हैं। इन्हीं के द्वारा यह पराचरगत्सव जगत् टिका हुआ है ॥५४॥ पृथ्वी का जो मुख्य प्रदेश है उसी के मध्य में दण्डक वन है। उगम जगज्जननी गौतमी वही है। प्रभो ! वही चलकर इस विष्णु अथवा दीनार्तनाश के रूप में दूर दूर तक जाते जगत्पति शिव की पूजा करो ॥५५॥ इन विरक्ति-सागर में दुखते हुए अनाथ माय्या के लिये शिव, विष्णु और गौतमी की छोड़कर अन्यत्र वही भी शरण नहीं है। इसलिए तन्मय होकर अपने प्रिय प्रयत्नों में इन देवियों की प्रशंसा करा। तुम मरे साथ भक्तिपूर्वक स्तोत्र-पाठ और तपस्या से उनकी उपासना करो। तदन्तर शिव और विष्णु की कृपा में बन्धन प्राप्त करो ॥५६-५८॥ दिया जाने कर्म करने में कर्म करने वाले को एक गुण फल मिलता है, अज्ञान करने पर वह फल भी गुना हो जाता है गहरी करने से वह फल अद्वय हो जाता है ॥५९॥ इन गहरा में पुण्य के प्रदेश काय मरती ही महाकाय है। छोटे-छोटे कार्य में भी उगने दिना मरती नहीं या क होती ॥६०॥ जो देवी को साथ किया जाता है, उगने आधा फल मिलता है। नाय ! रत्नी के साथ करा तो पुनः प्रभु का रत्न फल है ॥६१॥ इलीनिये वेदों में भी 'जाया अर्द्धमात्र' है ऐसा कहा गया है।

तस्मादेतत्सुविदितमर्थो' जाया इति श्रुतेः । श्रूयते दण्डकारण्ये सरिच्छ्रेष्ठाऽस्ति गौतमी ॥६२॥
अशेषावप्रशमनी सर्वाभोष्टप्रदायिनी । तस्माद्गच्छ मया तत्र कुरु पुण्यं महाफलम् ॥६३॥
ततः शनून्निहत्याऽऽजौ महत्सुखमवाप्स्यति ॥६४॥

ब्रह्मोवाच

तथेष्टयुस्त्वा स गुरणा भार्यया च शतक्रतुः । ययौ गङ्गां जगद्धात्रीं गौतमीं चेति विश्रुताम् ॥६५॥
दण्डकारण्यमध्यस्थां ययौ स (दृष्ट्वा तां) प्रातिमान्हरिः । तपः कर्तुं मनश्चक्रे देवदेवाय शम्भवे ॥६६॥
गङ्गा नत्वा तु प्रयमं स्नात्वा च स कृताञ्जलिः । शिवं कशरणो भूत्वा स्तोत्रं चेदं ततोऽब्रवीत् ॥६७॥

इन्द्र उवाच

स्वमायया यो ह्यखिल चराचरं, सृजत्यवत्यस्ति न सज्जतेऽस्मिन् ।
एकः स्वतन्त्रोऽद्वयचिन्तुस्त्वात्मकः, स नः प्रसन्नोऽस्तु पिनाकपाणिः ॥६८॥
न यस्य तत्त्व सनकादयोऽपि, जानन्ति वेदान्तरहस्यविज्ञाः ।
स पार्वतीशः सकलामिलापदाता प्रसन्नोऽस्तु ममान्धकारिः ॥६९॥
सृष्ट्वा स्वप्रभूर्भगवान्विरिञ्चि, भयकरं चारुय दिरोऽन्वपश्यत ।
ऽतिवा नत्वा प्रेम्णैः सक्तमेतच्चित्तलेपे तस्मादभवत्त्रिवर्ग ॥७०॥

मुना जाता है कि दण्डकारण्य में गौतमी नाम की अनेक पापों को नष्ट करने वाली एक अतिपवित्र नदी है । इसलिये मेरे साथ वहाँ चलो और महाफलदाता पुण्य (तप) करेंगे । तदनन्तर शत्रु को समर में मारकर महान् आनन्द प्राप्त करोगे ॥६२-६४॥

ब्रह्मा ने कहा—'ऐसा ही हो', यह कहकर ब इन्द्र गुरु और भार्या के साथ प्रसिद्ध जगज्जननी दण्डकारण्य के मध्य में सुशोभित गौतमी के तट पर गये । उसकी देखते ही इन्द्र प्रसन्न हो गये और देवदेव शम्भु की आराधना करने के लिये प्रस्तुत हो गये । पहले तो गंगा में स्नान किया, पुन हाथ जोड़कर शिव में ही अपनी एवान्त भावना स्थिर करते यह (अग्रिम) स्तोत्र पढ़ने लगे ॥६५-६७॥

इन्द्र ने कहा—जो अपनी माया में अखिल चराचर की सृष्टि करते, रक्षा करते और पुन महार करते हैं, फिर भी अनासक्त ही रहते हैं, एव जो एव स्वतन्त्र अद्वैत, किन्तु, मुख-स्वरूप हैं, ऐसे पिनाकपाणि (शंकर) हम पर प्रसन्न हो ॥६८॥ जिनके तत्त्व की वेदान्त ने रहस्य जानने वाले सनकादि ऋषि भी नहीं जानते हैं, वे पार्वतीपति, सब अभिलाषों को पूर्ण करनेवाले, अन्धकारिणु शिव भूषण पर प्रसन्न हो ॥६९॥ स्वयम्भू भगवान् शंकर ने पहले ब्रह्मा को उत्पन्न किया, परन्तु जब उन्होंने उनके भयंकर शिर की देखा तब नत्वा प्रे से उसको काट डाला । किन्तु वह नख में ही चिपका रहा । पुन उसको पक दिया । उससे त्रिवर्ग (धर्म, अर्थ, काम) की उत्पत्ति हुई ॥७०॥ उषी त्रिवर्ग में पाप दरिद्रता लोभ, याचना, मोह, विपत्ति और अनन्त प्रभावशाली सासारिक दुःख उत्पन्न होते,

पाप दरिद्र त्वय लोभयाच्चे मोहो विपन्नेति ततोऽप्यनन्तम्	।
जातप्रभाव भवदुःखरूप, बभूव तैर्व्याप्तिमिदं समस्तम्	॥७१॥
अवेक्ष्य सर्वं चकित सुरेशो, देवीमवोचज्जगदस्तमेति	।
त्व पाहि लोकेश्वरि लोकमातरुमे क्षरण्ये सुभगे सुभद्रे	॥७२॥
जगत्प्रतिष्ठे वरदे जय त्व, भुक्ति समाधि परमा च भुक्ति	।
स्वाहा स्वधा स्वस्तिरनादिसिद्धिर्गोबिन्दिरासीरजरामरे त्वम्	॥७३॥
विद्यादिरूपेण जगत्त्रये त्व, रक्षा करोष्वेव 'मदाज्ञया च	।
स्वयं च सृष्ट भुवनत्रय स्याद्यत प्रकृत्येव तथैव चित्रम्	॥७४॥
इत्येवमुक्ता दधिता हरेण, सश्लेषसलापपरा बभूव	।
श्रान्ता भवस्यार्धतनो सुलग्ना, चिक्षेप च स्वेदजलं कराग्रं	॥७५॥
तस्माद्बभूव प्रथमं स धर्मो, सक्षमोरयो दानमयो सुवृष्टि	।
सत्त्व सुसपन्नधर सरसि, धान्यानि पुष्पाणि कलानि चैव	॥७६॥
सौभाग्यवस्तूनि क्षुपु सुवेष, शृङ्गारभाजीनि महौषधानि	।
नृत्यानि गीतान्यमृत पुराण, धुतिस्मृती नीतिरथाप्रपाने	॥७७॥
शास्त्राणि शास्त्राणि गृहोपयोग्यान्त्यस्त्राणि तीर्थानि च काननानि	।
इष्टानि पुत्रानि च मङ्गलानि, यानानि शृङ्गारभरणासनानि	॥७८॥

जिनसे यह सारा लोक भर-सा गया ॥७१॥ सुरेश ने जब यह सब देखा तो चकित हो गये और देवी से कहा कि सारा जगत् बिनाग की ओर जा रहा है। लोकेश्वरी! जगज्जननी! उमे! सुभगे! सुभद्रे! क्षरणदायिनी! तुम रक्षा करो। वरदायिनी! जगत् को नाश से बचाने वाली! तुम्हारी जय हो! तुम भुक्ति परम समाधि (शान्ति) और भुक्ति हो। तुम स्वाहा स्वधा स्वस्ति अनादि सिद्धि वाणी बुद्धि और अजर अमर हो ॥७२-७३॥ तीनों श्रोत्रो म तुम विद्या आदि रूप से रक्षा करती हो। मेरी आज्ञा से यत प्रकृतिरूपा तुमने ही त्रिभुवन की सृष्टि की है अतः यह त्रिभुवन आश्चर्यमय है। इस प्रकार शर ने अपनी प्रिया से कहा। तब उमा उनका आलिंगन प्रमत्त रूप में तल्लीन हो गई। इस प्रकार शर के पास म चिपकी हुई उमा ने धान्य होकर अपनी अगुलिया से श्रम-स्वेद (पसीने) को गिराया ॥७४-७५॥ उसी पसीने की बूंदों से पहेल धर्म तब लक्ष्मी दान सुवृष्टि, पृथ्वी को समृद्ध बनाने वाले प्राणी सरोवर धान्य पुष्प, फल, सौभाग्य-पदार्थ, क्षीर को सुन्दर बनाने वाले पदार्थ शृंगारोपयोगी वस्तुयें महौषधियाँ नृत्य गीत अमृत पुराण, धुति-स्मृति, नीति, अन्न, वैद्यपदार्थ दारु शस्त्र गृहोपयोगी अस्त्र तीर्थ कानन, इष्टधर्म पुत्रधर्म (तालाब खोदना आदि), अंगल, सकारियाँ स्वच्छ आभूषण आसन आदि पदार्थ उत्पन्न हुये ॥७६-७८॥ देवि! इसी प्रकार तुम्हारे और शर ने अष्टम-अधोग एतान्तदाम व सुखद हाम और सलापत्रय

भयाङ्गसंसर्गसुप्रहाससुस्वेदसंलापरहःप्रकारः ।

तथैव जातं सचराचरं च, अपापकं देवि ततश्च जातम् ॥७९॥

मुखं प्रभूतं च शुभं च नित्यं, विराजि घेतस्तव देवि भावात् ।

तस्मात्तु मां रक्ष जगज्जनित्रि, भीतं भयैर्म्यो जगतां प्रधाने ॥८०॥

एके तर्के विमुह्यन्ति लीयन्ते तत्र चापरे । शिवशक्त्योस्तदाऽद्वैतं सुन्दरं नोमि विग्रहम् ॥८१॥

ग्रहोवाच

एवं तु स्तुवतस्तस्य पुरस्तादभवच्छिद्यः ।

॥८२॥

शिव उवाच

विमभीष्टं वरयते हरे यद परायणम्

॥८३॥

इन्द्र उवाच

बलबाल्मे रिपुश्चाऽसौ 'द्वन्द्वैश्वर्ये' शनिर्यया । तेन बद्धस्तलं नीतः परिभूतस्त्वनेकया ॥८४॥

घातसाधकस्तथा विद्वस्तद्विषाद्य त्विष्य कृतिः । तदयं जगतामीश येन जेष्ये रिपु प्रभो ॥८५॥

तदेव देहि धीमं मे यच्चवाग्यद्रिपुनाशनम् । जात पराभवो यस्मात्तद्विनाशो कृते सति ॥

पुनर्जातमहं मन्ये यद कीर्तिर्जयश्चिद्योः ।

॥८६॥

स्वेद (पसीन) से चराचरात्मक ससार (पापघन) उत्पन्न हुए। देवि! इस लोक में जो प्रचुर सुख और नित्य सुम सुख हुआ है यह सब सुहारा ही प्रसाद है। इमन्त्रिय हजगज्जनी! शीत-प्रधाने! तुम मयमीन एवं विपत्ति में पड़े हुए मरी रक्षा करो। कुछ मनीषी अपने तरों के जाल में पड़कर थोड़े में पड़ जाते हैं और दूसरे उसमें लीन हो जाते हैं। ऐम शिव और शक्ति अद्वैत (अमित्र) एवं सुन्दर विग्रह (चरीर) को मैं नमस्कार करना हूँ ॥७९-८१॥

ग्रह्या ने कहा—दस प्रकार स्तुति करत हुए इन्द्र के सम्मुख शक्ति प्रकट हुए ॥८२॥

शिव ने कहा—इन्द्र! जिस उत्तम अभीष्ट को चाहने हो, वहो ॥८३॥

इन्द्र ने कहा—मेरा बालवान् रिपु, जो कि दम्भन में साक्षान् घनि-गा जान पड़ना था भूतको बाँधकर समावेश ले गया और वही अनेको प्रकार से उनमें भूतों आमागिन किया और वाग्वागास करा हृदय छज्नी बना दिया। उसी के बग के लिये यह मेरा प्रयत्न है। जगन् के स्वामी! इमन्त्रिय जिस प्रकार मैं उसको जीत मर्तू, वैसी ही मुझे शक्ति दीजिये। तारि मैं अन्य ताबूतों का भी नाश कर सकूँ। जिसने मैं बरामून हुआ हूँ, उसको बिलकट कर देने पर अपना पुनर्जन्म समझूँगा। क्याकि तीन बिजय और लक्ष्मी मेरे थेष्ट होनी है ॥८४-८६॥

ब्रह्मोवाच

स शिवः शक्रमाहेदं न मयैकेन ते रिपुः । वधमाप्नोति तस्मात्त्वं विष्णुमप्यव्ययं हरिम् ॥८७॥
 आराधयस्व पौलोम्या सह देवं जनार्दनम् । लोकत्रयैकशरणं नारायणमनन्यधीः ॥८८॥
 ततः प्राप्स्यसि तस्माच्च मत्तश्चापि प्रियं हरे । पुनश्चोवाच भगवानादिकर्ता महेश्वरः ॥८९॥
 मन्त्राभ्यासस्तपो वापि योगाभ्यासनमेव च । संगमे यत्र कुत्रापि सिद्धिर्द्वि मनुयो विदुः ॥९०॥
 किं पुनः संगमे विप्रः गौतमीसिन्धुफेनयोः । गिरीणः गह्वरे यद्वा सरितामयः संगमे ॥९१॥
 विप्रो धियैव भवति मुकुन्दादग्निरिविष्टया । गङ्गायादक्षिणे तीरे आपस्तम्बो मुनीश्वरः ॥९२॥
 आस्ते तस्याप्यहं तोयमगमं बलसूदन । तेन त्वं भार्यया चैव तोययस्व गदाधरम् ॥९३॥

ब्रह्मोवाच

आपस्तम्बेन सहितो गङ्गाया दक्षिणे तटे । तुष्टाव देव प्रपतः स्नात्वा पुण्येऽय संगमे ॥९४॥
 फेनायाश्चैव गङ्गायास्तत्र देवं जनार्दनम् । वैदिकैर्विधिर्भन्तस्तपसाऽतोषयत्तदा ॥९५॥
 ततस्तुष्टोऽभवद्विष्णुः किं देयं चेत्यभाषत । देहि मे शत्रुहन्तारमित्याह भगवानह्रिः ॥९६॥
 दत्तमित्येव जानीहि तमुवाच जनार्दनः । तत्राभवच्छिवश्चैव गङ्गाविष्णवोः प्रसादतः ॥९७॥
 अभ्यसा पुरुषो जातः शिवविष्णुस्वरूपधृक् । चक्रपाणिः शूलधरः स गत्वा तु रसातलम् ॥९८॥

ब्रह्मा ने कहा—यह गुनजर शिव ने इन्द्र से कहा 'अकेले मुझसे गुह्यारण घनू मारा नहीं जायगा । इसलिये तुम अव्यय, हरि, विष्णु कीनो लोको के एकमात्र आधार, नारायण और जनार्दन देव की इन्द्राणी के साथ अनन्य भाव से आराधना करो । हरे ! इससे बाद तुम मृगसे और उनसे अपन प्रिय मनोरथ को प्राप्त करोगे ।' आदितर्ता महेश्वर ने पुन कहा—'मुनिवः ने मन्त्राभ्यास, तपस्या, तथा योगाभ्यास को जिस किसी संगम पर करने से सिद्धि प्रद कहा है । विप्र ! तब जहाँ गंगा, सिन्धु और फेना का संगम हो, गिरि-गुहा हो या अनेक नदिया का संगम हो उनके विषय में तो कुछ कहना ही नहीं है । गंगा के दक्षिणी तट पर विप्र मुनीश्वर आपस्तम्ब मुकुन्द के वरणमल में अपनी बुद्धि को लगाये हुए रह रहे हैं । बलसूदन ! उनका भी मैंने इसी प्रकार मनुष्ट किया है । अतः तुम अपनी माया के साथ गदाधर विष्णु को प्रसन्न करो ॥८७ ९३॥

ब्रह्मा ने कहा—इसके बाद गंगा और फेना ने पवित्र संगम में स्नात कर गंगा ने दक्षिण तट पर आपस्तम्ब के साथ इन्द्र एवाग्र मन से विष्णु की स्तुति करने लगे । विविध वैदिक मन्त्रों और तपस्या से इन्द्र ने जनार्दन देव की स्तुति की । तदनन्तर विष्णु प्रसन्न हुए । उन्होंने कहा कि तुमको क्या दू । 'मैंसे घनू का नाम करने वाला साधन प्रदान कीजिये' ऐसा इन्द्र ने कहा । यह गुनजर जनार्दन न इन्द्र से कहा—'दे दिया गया ऐसा समझो । उसी समय बड़ी शिव, गंगा और विष्णु की कृपा से जल के बीच से शिव और विष्णु दोनों ने मित्रे जुड़े आकार का हाथ में धर और शूल लिये हुए एक पुरुष उत्पन्न हुआ । उसने रसातल जाकर इन्द्र के घनू उस दैत्य महानगि को मार डाला । पलत वह अस्त्रक, वृषाकपि इन्द्र का मित्र बन गया । इन्द्र स्वर्ग में रहने हुए भी सर्वदा उस वृषाकपि का अनुसरण

निजघान तदा दंत्यमिन्द्रशत्रु महाशनिम् । सखाऽभवत्स चेन्द्रस्य अब्जकः स वृषाकपिः ॥१९१॥
दिविस्थोऽपि सदा चेन्द्रस्तमन्वेति वृषाकपिम् । कुपिता प्रणयेनाभूदग्न्यासवतं विलोक्य तम् ॥
शचीं तां सान्त्वयन्नाह शतमन्युर्हंसश्रिदम् ॥१९०॥

इन्द्र उवाच

नाहमिन्द्राणि क्षरणमृते सख्युर्वृषाकपेः । वारि वारिपि हविर्यस्य अने प्रियकरं तदा ॥१९१॥
नाहमन्यत्र गन्ताऽस्मि प्रिये चाङ्गेन ते शपे । तस्माद्गर्हसि मां वक्तुं शङ्कयाऽन्यत्र भामिनि ॥१९२॥
पतिव्रता प्रिया मे त्व धर्मं मन्त्रे सहायिनी । सापत्या च कुलीना च त्वत्तोऽग्न्या का प्रिया मम ॥१९३॥
तस्मात्तवोपदेशेन गङ्गा प्राप्य महानदीम् । प्रसादाद्देवदेवस्य विष्णोर्वे चक्रपाणिनः ॥१९४॥
तया शिवस्य देवस्य प्रसादाच्च वृषाकपेः । जलोद्भवाच्च मे मित्रादब्जकालोकविश्रुतात् ॥१९५॥
उत्तीर्णं दुःखः सुभगे इत इन्द्रोऽहमच्युतः । किं न साध्यं यत्र भार्या भर्तृचित्तानुगामिनी ॥१९६॥
दुष्करा तत्र नो मुक्तिः कित्वर्यादिव्रप शुभे । जायं व परमं मित्रं लोकाद्व्यहितं विणी ॥१९७॥
सा चेत्कुलीना प्रियभाषिणी च, पतिव्रता रूपवती गुणाद्या ।
संपत्सु चाऽऽपत्सु समानरूपा, तया ह्यसाध्यं किमिह त्रिलोचयाम् ॥१९८॥
तस्मात्तव धिया कान्ते ममेव शुभमागतम् । इतस्तवोदितं चैव वर्तय्यं नान्यदस्ति मे ॥१९९॥

करने लगे । इस प्रकार अपने सखा मे इन्द्र की प्रेममय आसक्ति देखकर शची कुपित हो गई । उसका कोप देखकर इन्द्र हँसने लगे और उसको समझाते हुए बोले ॥१९४-१९०॥

इन्द्र ने कहा—इन्द्राणि । मैं सखा वृषाकपि को छोड़कर और किसी के वश मे नहीं हूँ । प्रिये । मैं तुम्हारे भग की शपथ साकार कहता हूँ कि जिस वृषाकपि अग्नि को हवि और वारि (जल) सदा प्रिय हैं उसको छोड़कर अन्यत्र कहीं नहीं जाता । इसलिए हे भामिनी ! मुझसे शका की दृष्टि से मत बोझो ॥१९१-१९२॥ तुम धर्म और सलाह मे सदा सहायता करने वाली मेरी पतिव्रता प्रिया हो । ऐसी सन्तानवती, कुलीन युवको छोड़कर और कौन मेरी प्रिया हो सकती है ? ॥१९३॥ तुम्हारे ही उपदेश से मैंने महानदी गंगा को प्राप्त किया । देवाधि देव चक्रपाणि विष्णु, देव शंकर की कृपा और जल से उत्पन्न, लोक-प्रसिद्ध अब्जक और वृषाकपि नामक मित्र की सहायता से अपने दुःखो मे पार पाया है । सुभगे ! तुम्हारे ही प्रयत्नो से मैं अच्युत इन्द्र हुआ । जिसकी भार्या पति के अनुकूल आचरण करने वाली है, उसके लिये ससार मे कौन ऐसा काम है जो न हो सके । शुभे ! उसके लिये मुनिन भी दुर्लभ नहीं है, अर्थ, धर्म और काम की तो बात ही क्या । पुरुष के लिये लोक-नरलोक दोनों का हित चाहने वाली स्त्री ही परम मित्र है ॥१९४-१९७॥ यह स्त्री यदि कुलीन है, प्रिय बोलने वाली है, पतिव्रता, रूप, गूणवती, और सपत्ति तथा निपत्ति मे समान रूप से रहने वाली है तब तो उसके लिये त्रिभुवन मे कुछ भी असाध्य नहीं है ॥१९८॥ कान्ते ! इसीलिये तुम्हारी मूर्खिके प्रभाव से ही मेरा शुभोदय हुआ है, आज से मेरे लिये तुम्हारा सनेह ही एकमात्र वर्तव्यप्रदर्शक है, दूसरा नहीं ॥१९९॥ सत्युक्त के समान परलोभ और धर्म का सहायक

परलोके च धर्मे च सत्पुत्रसदृशं न च । आतंस्य पुरुषस्येह भार्यायद्भेयजं न हि ॥११०॥
 निःश्रेयसपदप्राप्तये तथा पापस्य मुक्तये । गङ्गाया सदृशं नास्ति शृणु चान्यद्वरानने ॥१११॥
 धर्मार्थकाममोक्षाणां प्राप्तये पापमुक्तये । शिवविष्णुवोरनन्यत्वज्ञानाग्रास्त्यत्र मुक्तये ॥११२॥
 तस्मात्तव धिया साध्वि सर्वमेतन्मनोगतम् । अवाप्तं च शिवादिष्णोर्गङ्गायाश्च प्रसादतः ॥११३॥
 इन्द्रत्वं मे स्थिरं चेतो मन्ये मिश्रबलात्पुनः । यूयाकपिर्मम सखा यो जातस्त्वप्सु भामिनि ॥११४॥
 त्वं च प्रियसखो नित्यं नाग्यत्प्रियतरं मम । तीर्थानां गौतमी गङ्गा देवानां हरिशंकरौ ॥११५॥
 तस्मादेभ्यः प्रसादेन सर्वं चेत्सितमाप्तवान् । मम प्रीतिकरं चेदं तीर्थं त्रैलोक्यविश्रुतम् ॥११६॥
 तस्मादेतद्धि याचिष्ये देवान्त्वराननुक्रमात् । अनुमन्यन्तु ऋषयो गङ्गा च हरिशंकरौ ॥११७॥
 इन्द्रेश्वरे घ्राजके च उभयोस्तीरयोः सुराः । एकत्र शंकरो देवो ह्यपरत्र जनार्दनः ॥११८॥
 पावयन्दण्डकारण्यं साक्षाद्विष्णुस्त्रिविक्रमः । अन्तरे यानि तीर्थानि सर्वपुण्यप्रदानि च ॥११९॥
 अत्र तु स्नानमात्रेण सर्वे ते मुक्तिमाप्नुयुः । पापिष्ठाः पापतो मुक्तिमाप्नुयुर्धे च धामिनि ॥१२०॥
 तेषां तु परमा मुक्तिः पितृभिः पञ्चपञ्चभिः । अत्र किञ्चिच्च ये द्युरारियम्यस्तिलमात्रकम् ॥१२१॥
 दातुम्यो ह्यक्षयं तत्प्रायात्कामदं मोक्षदं तथा । धन्य यस्तस्यमायुष्यमारोग्यं पुण्यवर्धनम् ॥१२२॥
 आह्वयानं विष्णुशंभ्वोश्च ज्ञात्वा स्नानाच्च मुक्तिदम् । अस्य तीर्थस्य माहात्म्यं ये शृण्वन्ति पठन्ति च ॥१२३॥

दूसरा नहीं और दुखी पुरुष के लिए मार्ग के समान कोई ओपधि नहीं ॥११०॥ सुन्दर मुख वाली ! पाप से छूटने के लिये एक मोक्ष-पद पाने के लिए गंगा के समान और कोई साधन नहीं ॥१११॥ धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष-प्राप्ति के लिए तथा पाप-मुक्त होने के लिये शिव-विष्णु के ऐक्य-ज्ञान के अतिरिक्त और कोई साधन नहीं ॥११२॥ पतिव्रते ! गुह्यारी बुद्धि के प्रभाव से ही मेरी समस्त मनोगत कामनायें शिव, विष्णु और गंगा के प्रसाद से पूर्ण हुई हैं ॥११३॥ इसके अतिरिक्त मेरा इन्द्रत्व भी मेरे मित्र की सहायता से ही पुनः स्थिर हुआ है, ऐसा मैं मानता हूँ । भामिनि ! मेरा मित्र भी दूसरा कोई नहीं अपितु वही यूयाकपि है, जो जल से उत्पन्न हुआ ॥११४॥ तुम मेरी सर्वदा की प्रिय सखी हो । तुमसे बढ़कर मेरा कोई प्रियपात्र नहीं । तीर्थों में गौतमी गंगा तथा देवों में विष्णु और शंकर ही मेरे मान्य हैं ॥११५॥ इनकी कृपा से ही मेरे सब मनोरथ पूर्ण हुये हैं । यह त्रैलोक्य प्रतिष्ठित तीर्थ मुझे बहुत प्रिय है ॥११६॥ इसलिये मैं क्रमशः सब देवताओं से यही याचना करता हूँ और ऋषिगण, गंगा, हरि और शंकर से भी मेरा यही अनुरोध है कि गंगा के दोनों तटों पर इन्द्रेश्वर और अञ्जक नामक तीर्थों में सब देवता त्रैमानुसार निवास करें । एक स्थान पर शंकर और दूसरे पर स्वयं जनार्दन निवास करें तथा इस दण्डकारण्य को साक्षात् विष्णु पवित्र करें । इसके मध्य में जितने तीर्थ हैं वे सभी सब पुण्यों के देने वाले हों ॥११७-११९॥ यहाँ स्नान करने से ही सबको मुक्ति मिले । पापी इस तीर्थ के प्रभाव से पापमुक्त हो जाय । जो धार्मिक व्यक्ति स्नान करें, वे परम मुक्ति प्राप्त करें और उनकी पाँच आगे की तथा पाँच पीछे की पीढ़ी मुक्त हो जाय ॥१२०॥ यहाँ जो कोई याचकों को हितपात्र भी दातृ करे दो वह दातृ के लिये अक्षय्य हो जाय । उस भुक्तवान् से वह मोक्ष और अपने मनोरथ को प्राप्त करे ॥१२१॥ जो इस धन्य, कीर्तिप्रद, आयु, आरोग्य और पुण्य प्रद विष्णु और शम्भु के आह्वयान और स्नान से मुक्ति देने वाले इस तीर्थ के माहात्म्य का खवण या पाठ करते हैं वे पुण्यात्मा हो जाते हैं और उनको इसी लोक

पुण्यभाजो भवेयुस्ते तेभ्योऽत्रैव स्मृतिर्भवेत् । शिवविष्ण्वोरशेषाद्यस्यविच्छेदकारिणी ॥
यां प्रायेयन्ति मुनयो विजितेन्द्रियमानसा ॥१२४॥

ब्रह्मोवाच

भविष्यत्यवमेवेति त देवा ऋषयोऽब्रुवन् । गौतम्या उत्तरे पारे तीर्थानां मोक्षदायिनाम् ॥१२५॥
देवपसिद्धसेयानां सहस्राण्यय सप्त वै । तथैव दक्षिणे तीरे तीर्थान्येकादशैव तु ॥१२६॥
अञ्जक हृदय प्रोक्त गोदावर्या मुनीश्वरं । विश्रामस्थानमोशस्य विष्णोर्ब्रह्मण एव च ॥१२७॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये गौतम्युत्तरकूलस्यैवैश्वराविसप्तसहस्र
तीर्थदक्षिणकूलस्यापस्तम्बसोमेश्वरफेनासगमवृषाकपाञ्जकवैष्णवहनुमत्तीर्थनार्जा
रेत्याद्येकादशतीर्थवर्णनं नामकोर्त्तत्रिंशदधिकशततमोऽध्याय ॥१२९॥
गौतमीमाहात्म्ये पण्डितमोऽध्याय ॥६०॥

अथ त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः

आपस्तम्बतीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

आपस्तम्बमिति ह्यात तीर्थं त्रैलोक्यविश्रुतम् । स्मरणादप्यशेषाद्यस्यविध्वंसनक्षमम् ॥१॥

म सब पापा को नष्ट करने देने वाली तीर्थ और विष्णु की स्मृति हो जाती है जिस स्मृति के लिये इन्द्रिय और मन
पर समय रखने वाले मुनि प्रायना किया करते हैं ॥१२२ १२४॥

ब्रह्मा ने कहा—इन्द्र की बात मुनवर देवताओं और ऋषियों ने कहा कि आपका कहा हुआ सब समय होगा ।
गौतमी के उत्तर तट पर देव ऋषि और सिद्धजनों के रहने योग्य सात हजार मोक्षदायक तीर्थ हैं । इसी प्रकार
दक्षिणी तीर पर ग्यारह तीर्थ हैं । मुनिश्वरों ने ईश विष्णु और ब्रह्मा के निवास-स्थान अञ्जक को गोदावरी का
हृदय स्वीकार किया है ॥१२५ १२७॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में गौतमी के उत्तर तट पर स्थित ईश्वर आदि सात हजार तीर्थों
एवं दक्षिण तटवर्ती आपस्तम्ब सोमेश्वर अञ्जक आदि ग्यारह तीर्थों का वर्णन नामक एक सौ उनतीसवाँ
अध्याय समाप्त ॥१२९॥

अध्याय १३०

आपस्तम्बतीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा ने कहा—(इसके बाद) तीना लोक में प्रसिद्ध आपस्तम्ब नामक एक तीर्थ है जिसके स्मरण मात्र

आपस्तम्बो महाप्राज्ञो मुनिरासीन्महायज्ञा । तस्य भार्याऽक्षसूत्रेति पतिधर्मपरायणा ॥२॥
 तस्य पुत्रो महाप्राज्ञ कर्किनामाऽयं तत्त्ववित् । तस्याऽऽश्रममनुप्राप्तो ह्यगस्त्यो मुनिसत्तम ॥३॥
 तमगस्त्य पूजयित्वा आपस्तम्बो मुनीश्वर । शिष्यैरनुगतो धीमास्त प्रष्टुमुपचक्रमे ॥४॥

आपस्तम्ब उवाच

त्रयाणां कोनु पूज्य स्याद्देवानां मुनिसत्तम । भुक्तिर्भुक्तिश्च कस्माद्वा स्यादनादिश्च को भवेत् ॥५॥
 अनन्तश्चापि को विप्र देवानामपि दैवतम् । यस्तं क इज्यते देव को वेदेष्वनुगीयते ॥
 एव मे सशयं छेत्तुं वदागस्त्य महामुने ॥६॥

अगस्त्य उवाच

धर्मायकाममोक्षाणां प्रमाणं शब्द उच्यते । तत्रापि वैदिक शब्द प्रमाणं परमं मतं ॥७॥
 ब्रह्मेण गीयते यस्तु पुरुष स परात्परः । सूतोऽपरः स त्रिशोऽयं ह्यमृतं परं उच्यते ॥८॥
 योऽमृतं स परो ज्ञेयो ह्यपरो भूतं उच्यते । गुणाभिध्याप्तिभेदेन सूतोऽसौ त्रिविधो भवेत् ॥९॥
 ब्रह्मा विष्णुः शिवश्चेति एक एव त्रिधोऽच्यते । त्रयाणामपि देवानां वेद्यमैकं परं हि तत् ॥१०॥
 एकस्य बहुधा व्याप्तिर्गुणकर्मविभेदतः । लोकानामुपकारार्थमाकृतित्रितयं भवेत् ॥११॥
 यस्तत्त्वं वेत्ति परमं स च विद्वान् चेतः । तत्र यो भेदमाचष्टे लिङ्गभेदो स उच्यते ॥१२॥

से समस्त पापों का विध्वंस हो जाता है । महायज्ञस्वी एव महाबुद्धिमान् आपस्तम्ब नामक एक ऋषिः । उनकी अक्षसूत्रा नाम की पतिव्रता भार्या थी । उनके तत्त्वज्ञ तथा महाप्रेक्षाधी कर्कि नामक पुत्र था । एक दिन मुनि-मुङ्गव अगस्त्य उनके आश्रम में आये । मुनीश्वर आपस्तम्ब ने उनकी पूजा की । पुनः अपने समस्त शिष्यों के साथ बुद्धिमान् मुनि ने मान्य अस्तिथि से पूछा ॥१४॥

आपस्तम्ब ने कहा—भूमिश्चैष्ट ! तीनों देवों में कौन पूज्य है ? किसके द्वारा भुक्ति और मुक्ति प्राप्त होती है ? कौन अनादि है ? विप्र ! कौन अनन्त और देवों का भी पूज्य देव है ? यनों से किसकी पूजा की जाती है ? किसकी वेदों में स्तुति की गई है ? यही मेरा सदेह है जिसका निराकरण चाहता हूँ । महामुनि अगस्त्य । कृपाकर कहिये ॥५६॥

अगस्त्य ने कहा—धर्म अथ काम और मोक्ष के शब्द ही प्रमाण कहे जाते हैं । उनमें भी वैदिक शब्द परम प्रमाण माने जाते हैं । वेद जिस पुरुष का गान करते हैं वह परात्पर कहा जाता है । परं अमृत है और अपरं मत है । जो अमृत (अप्रत्यक्ष) है वह पर और जो मृत (प्रत्यक्ष) है वह अपर कहा जाता है । वह मृत गुणों की अग्नि व्याप्ति (उत्कर्षापवप) भेद से तीन प्रकार का हो जाता है । ब्रह्मा विष्णु और शिव एक के ही तीन रूप हैं । इन तीनों देवों से भी जो एक ही वेद्य है वही पर है । एक की ही गुण-कर्म के भेद से बहुत रूपों में व्याप्ति होती है । लोकों के उपकार के लिए ही ये तीन रूप होते हैं । जो परमवत्त्व को जानता है वही विद्वान् है दूसरा नहीं । उनमें जो भेद

प्रायश्चित्तं न तस्यास्ति यश्चैषां व्याहरेद्भुदम् । प्रयाणामपि देवानां भूतिभेदः पूयवपूयक् ॥१३॥
वेदाः प्रमाणं सर्वत्र साकारेषु पूयवपूयक् । निराकारं च यत्त्वेकं तत्तेभ्यः परमं मतम् ॥१४॥

आपस्तम्ब उवाच

नानेन निर्णयः कश्चिन्मयाऽत्र विदितो भवेत् । तत्राप्यत्र रहस्यं यत्तद्विमृश्याऽऽशु कीर्त्यताम् ॥
निःसंशयं निर्विकल्पं भाजनं सर्वसंपदाम् ॥१५॥

ब्रह्मोवाच

एतदाकर्ण्य भगवानगस्त्यो वाक्यमब्रवीत् ॥१६॥

अगस्त्य उवाच

यद्यप्येषां न भेदोऽस्ति देवानां तु परस्परम् । तथाऽपि सर्वसिद्धिः स्याच्छिवादेव सुखात्मनः ॥१७॥
प्रपञ्चस्य निमित्तं यत्तज्ज्योतिश्च परं शिवः । तमेव साधय हरं भक्त्या परमया मुने ॥
गौतम्यां सकलाद्यौघसंहर्ता दण्डके घने ॥१८॥

ब्रह्मोवाच

एतच्छ्रुत्वा मुनेर्वाक्यं परां प्रीतिमुपागतः । भुक्तिदो भुक्तिवः पुंसां साकारोऽय निराकृतिः ॥१९॥
'सृष्ट्याकारस्ततः' शक्तः पालनाकार एव च । दत्ता' च हन्ति सर्वं यो यस्मादेतत्समाप्यते ॥२०॥

बुद्धि रजता है, वह लिंग-भेदी कहा जाता है । जो इन तीनों में भेद बतलाते हैं, उनके लिये कोई भी प्रायश्चित्त नहीं । इन तीनों में केवल पूषक्-पूषक् स्वरूप का ही भेद है । सर्वत्र साकार पदार्थों में वेद ही पूषक्-पूषक् प्रमाण माने जाते हैं । जो एक निराकार सत्त्व है, वह उन तीनों से पर माना गया है ॥७-१४॥

आपस्तम्ब ने कहा—इस कथन से कोई भी निर्णय मुझे ज्ञात नहीं हुआ । इसमें भी जो कुछ रहस्य है, उसको मली भाँति विचार कर कहिये, क्योंकि निःसंशय और निर्विकल्प (ननु नच रहित) ज्ञान ही सब प्रकार की समृद्धियों का एकमात्र स्थान है ॥१५॥

ब्रह्मा ने कहा—यह सुनकर भगवान् अगस्त्य ने कहा ॥१६॥

अगस्त्य ने कहा—यद्यपि इन देवों में परस्पर भेद नहीं है तो भी आनन्दात्मा शिव से ही सब प्रकार की सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं । इस प्रपञ्च का जो निमित्त कारण है, वह पर ज्योति शिव है । मुने ! अपनी उत्कृष्ट भक्ति से उसी शक्ति की साधना करो । दण्डक घन में गौतमी के तट पर सब पाप-समूह को नष्ट करने वाले शक्ति रहते हैं, वही जाओ ॥१७-१८॥

ब्रह्मा ने कहा—मुनि की इन बातों को सुनकर आपस्तम्ब परम प्रसन्न हुये । अनुप्यो को भुक्ति और मुक्ति देने वाला ब्रह्म साकार है और निराकार भी । बड़ी सृष्टि करने वाला, पालन करने वाला, देने वाला और सबका संहार करने वाला भी है । उसी में सब कुछ समाप्त हो जाता है ॥१९-२०॥

अगस्त्य उवाच

ब्रह्माकृति कर्तृरूपा घण्णवी पालनी तथा । रक्षाकृतिनिहन्त्री सा सर्ववेदेषु पठ्यते ॥२१॥

ब्रह्मोवाच

आपतम्बस्तदा गङ्गा गत्वा स्नात्वा यतयत । तुष्टाय शकर देव स्तोत्रेणानेन नारद ॥२२॥

आपस्तम्ब उवाच

काण्डेषु बह्वि कुसुमेषु गन्धो, बीजेषु वृक्षादि द्रुपत्सु हेम ।
भूतेषु सर्वेषु तथाऽस्ति यो स, त सोमनाथ शरणं व्रजामि ॥२३॥
यो लीलया विश्वमिदं चकार, धाता विधाता भुवनत्रयस्य ।
यो विश्वरूपः सदासत्परो यः, सोमेश्वर त शरणं व्रजामि ॥२४॥
य स्मृत्य शरिद्रुमहभिर्नापरोगादिभिर्न स्पृश्यते, शरीरो
यमाभिताशवेप्सितमाप्नुवन्ति, सोमेश्वर त शरणं व्रजामि ॥२५॥
येन त्रयीधर्ममवेक्ष्य पूर्वं, ब्रह्मादयस्तत्र समीहिताश्च ।
एव द्विधा येन कृतं शरीरं, सोमेश्वर त शरणं व्रजामि ॥२६॥
यस्मै मनो गच्छति मन्त्रपूतं, हुतं हविर्द्या च कृता च पूजा ।
दत्तं हविर्घनं सुरा भजन्ते, सोमेश्वर त शरणं व्रजामि ॥२७॥

अगस्त्य ने कहा—ब्रह्मा की आकृति कर्तारूप है विष्णु की आकृति पालन करने वाली और शिव की आकृति नाश करने वाली है । यह सब वेदों के द्वारा समर्पित है ॥२१॥

ब्रह्मा ने कहा—नारद ! तदनन्तर आपस्तम्ब गंगा-तट पर गये और उसमें स्नानकर सयत नाव से इस आगे रहे स्तोत्र से शकर की स्तुति करने लगे ॥२२॥

आपस्तम्ब ने कहा—जिस प्रकार सभी काण्ड में अग्नि भूलों में सुगन्ध बीजों में वृक्ष और पत्थरों में सुवर्ण रहता है उसी प्रकार सम्पूर्ण भूतों में जो छिपा हुआ है उस सोमनाथ की शरण में आया हूँ । जिसने अनायास इस विश्व की रचना कर दी जो भिन्नभुवन का धाता और विधाता है जो विश्वरूप सत् और असत् से परे है मैं उस सोमेश्वर की शरण में जाता हूँ । जिसके स्मरण करने से प्राणी दरिद्रता महामिथ्या एव रोगादि से सर्वथा पृथक् हो जाता है और जिसकी शरण में आये हुये व्यक्ति अपने मन चाहे फल को प्राप्त करते हैं उस सोमेश्वर की शरण में मैं जाता हूँ । आदि काल में ब्रह्मा आदि जिसके द्वारा वेद-ज्ञान प्राप्त कर पुनः उसी के ध्यान में समाविष्ट हो गये तथा जिसने अपने शरीर को दो भागों (प्रकृति पुरुष के रूप) में बांट दिया उस सोमेश्वर की शरण में जाता हूँ । जिसके पास सबके मनस्कार जाते हैं जिसको मात्र में पवित्र की हुई आहुतियाँ और हवि प्राप्त होती हैं जिसके निकट की हुई पूजा चली जाती है और जिसकी दी हुई हवि सब देवता ग्रहण करते हैं उस सोमेश्वर की शरण में जाता हूँ । जिससे

यस्मात्परं नाम्यदस्ति प्रशस्तं, यस्मात्परं नैव सुसूक्ष्ममन्यत् ।
 यस्मात्परं नो महतां महच्च, सोमेश्वरं तं शरणं ब्रजामि ॥२८॥
 यस्याऽऽज्ञया विश्वमिदं विचित्रमचिन्त्यरूपं विविधं महच्च ।
 एकक्रियं यद्वदनुप्रयाति सोमेश्वरं त शरणं ब्रजामि ॥२९॥
 यस्मिन्विभूतिः सकलाधिपत्यं, कर्तृत्वदातृत्वमहरधमेव ।
 प्रीतिपंशः सौख्यमनादिधर्मः, सोमेश्वरं तं शरणं ब्रजामि ॥३०॥
 नित्यं शरण्यः सकलस्य पूज्यो, नित्यं प्रियो यः शरणागतस्य ।
 नित्यं शिवो यः सकलस्य रूपं, सोमेश्वरं त शरणं ब्रजामि ॥३१॥

ब्रह्मोवाच

ततः प्रसन्नो भगवानाह नारद तं मुनिं न्वरं वृष्विति चाऽऽह त) म् ।
 आत्मार्यं च परार्यं च आपस्तम्बोऽब्रवीच्छिवम् ॥३२॥
 सर्वान्कामान्पुन्यस्ते ये स्नात्वा देवमोदधरम् । पश्येयुर्जगतामीशमसिंघाह शिवो मुनिम् ॥३३॥
 ततः प्रभृति तत्तीर्थमापस्तम्बमुदाहृतम् । अनाद्यविद्यातिमिरघ्रातनिर्मूलनक्षमम् ॥३४॥
 इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे सौम्यमहात्म्ये दक्षिणकूलस्यापस्तम्बसोमेश्वरतीर्थवर्णन
 नाम त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥१३०॥
 गौतमीमाहात्म्ये एकपट्टितमोऽध्यायः ॥६१॥

बदकर उत्तम कोई पदार्थ नहीं है जिससे बदकर कोई अति सूक्ष्म वस्तु नहीं है और जिस महान् से बदकर कोई महान् पदार्थ नहीं, उस सोमेश्वर की शरण में जाता हूँ । जिसकी आज्ञा से यह विचित्र, विविध, महान्, और अचिन्त्य रूप वाला विश्व एकक्रिय (सहकर्मी) के समान पीछे-पीछे चलता है, उस सोमेश्वर की शरण में जाता हूँ । जिसमें सम्पूर्ण विश्व की विभूतियाँ, सबका स्वामित्व, कर्तृत्व, दानशीलता, महत्त्व, प्रीति, यश, सौख्य और अनादि धर्म समाहित हैं, उस सोमेश्वर की शरण में जाता हूँ । जो नित्य है, शरण देने वाला है सबका पूज्य है जो शरण में आये हुये से नित्य प्रेम करने वाला है, जो नित्य शिव (भगल) है, जो सबका रूप है उस सोमेश्वर देव की शरण में जाता हूँ ॥२३-३१॥

ब्रह्मा ने कहा—नारद । मुनि की उपर्युक्त स्तुति से प्रसन्न होकर भगवान् शिव ने उस मुनिवर से वर मांगने के लिए कहा । आपस्तम्ब ने भी आत्मवत्पाण तथा लोकवत्पाण की दृष्टि से कहा कि जो यहाँ स्नान करके जगत् के स्वामी ईश (शक्र) का धर्मन करके वे अपने सम्पूर्ण मनोरथों को प्राप्त करें । यह सुनकर शिव ने कहा 'ऐसा ही हो' । तब से वह तीर्थ आपस्तम्ब कहा जाता है, जो अनादि अविद्या रूपी अघकार के समूह को नष्ट कर देने में समर्थ है ॥३२-३४॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में आपस्तम्बतीर्थवर्णन नामक एक ही तीसरी अध्याय समाप्त ॥१३०॥

अथैकत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः

यमतीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

यमतीर्थमिति ख्यातं पितॄणां प्रीतियर्धनम् । अशेषपापशमनं तत्र घृत्तमिदं शृणु ॥१॥
 तत्राऽऽख्यानमिदं त्वासोदितिहासं पुरातनम् । सरमेति प्रसिद्धाऽस्ति नाम्ना देवशुनो मुने ॥२॥
 तस्याः पुत्रौ महाश्रेष्ठौ श्वानौ नित्यं जनाननु । गामिनौ पवनाहारौ चतुरक्षौ यमप्रियो ॥३॥
 गा रक्षति स्म देवानां यज्ञार्थं कल्पितामशून् । रक्षन्तोमनुजम्मुरते राक्षसा दंत्यदानवाः ॥४॥
 रक्षन्तौ तां महाप्राज्ञाः श्वानयोर्मतरं शुनौम् । प्रलोभयित्वा विविधैर्विषैर्दानैश्च यत्नत ॥५॥
 हता गा राक्षसैः पार्पः पश्वर्ये कल्पिताः शुभाः । तत आगत्य सा देवानिदमाह क्रमाच्छुनो ॥६॥

सरमोवाच

मां बद्ध्वा राक्षसैः पार्श्वस्ताडयित्वा प्रहारकः । नीता गा यज्ञसिद्धयर्थं कल्पिता पशवः सुरा ॥७॥

ब्रह्मोवाच

तस्या वाच निशम्याऽऽशु सुरान्ग्राह बृहस्पतिः

॥८॥

अध्याय १३१

यमतीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा ने कहा—(इसके बाद) पितरों की प्रीति बढ़ाने वाला तथा समस्त पापों को दूर करने वाला एक यम-तीर्थ है, उसतीर्थ में जो घटना हुई उसको सुनो । उसके विषय में यह एक पुराना इतिहास सुना जाता है । मुने । सरमा नाम की एक प्रसिद्ध देवशुनी (देवों की कुतिया) थी । उसके दो बहुत अच्छे पुत्र (कुत्ते) थे, जो घास पीकर रहने वाले, सर्वदा प्यार से देवों के पीछे चलने वाले, चतुरक्ष (चार नेत्र वाले) और यम के प्रिय थे । वह देव-शुनी यज्ञ के लिए पालित-पशुओं और गायों की रक्षा करती थी । एक बार राक्षस और दंत्य उस रक्षा करने वाली कुतिया के पास गये । और उसको चतुराई से विविध प्रकार के खाद्य-पदार्थों के लोभ में फंसावर और चटुल बचनों के द्वारा उसको बोला देकर वे पापी राक्षस सब गायों और पशुओं को चुरा ले गये । उन पशुओं को अपने यज्ञ का शुभ पशु भी बना लिया । तब वह कुतिया देवों के पास आकर बोली ॥१-६॥

सरमा ने कहा—देवगण । राक्षसों ने मुझे रस्सी से बांधकर ढड़ों से खूब पीटा है और यज्ञ के लिये रक्षित सब गायों को ले जाकर अपने पशु बना लिये हैं ॥७॥

ब्रह्मा ने कहा—उसकी बातों को सुनकर बृहस्पति ने देवों से कहा ॥८॥

बृहस्पतिरुवाच ।

इयं विकृतस्पाञ्जस्ते अस्या पापं च लक्षये । अस्या मत्तनं तां गावो नीता नान्येन हेतुना ॥
पापेयं सुकृतोवेति लक्षयते देहचेष्टितं ॥९॥

ब्रह्मोवाच

तद्गुरोर्वं वनाच्छक्रं पदा तां प्राहुरच्छुनीम् । पदाघातात्तदा तस्या मुखाक्षीरं प्रसृजुवे ॥१०॥
पुनः प्राह शचीमर्ता क्षीरं पीतं त्वया शुनि । राक्षसैश्च तदा दत्तं तस्मान्नीतास्तु गा मम ॥११॥

सरभोवाच

नापराधोऽस्ति मे नायं न चाप्यस्यापि करयचित् । नापराधो न चोपेक्षा ममाक्षितं त्रिदशद्वयम् ॥
तस्माद्बुद्धोऽस्ति किं नायं रिपवो धलिनस्तु ते ॥१२॥

ब्रह्मोवाच

ततो ध्यात्वा देवगुरुर्वात्सा तस्या विचष्टितम् । सत्यं शक्रं त्वियं दुष्टा रिपूणां पक्षकारिणी ॥१३॥
ततः क्षाण्वं तां शक्रं पापिण्डे त्वं शुनी भव । मृत्युलोके पापभूता अज्ञानात्पापकारिणी ॥१४॥
तदेव त्वं तु क्षापेन मानुषे सा व्यवजायते । यया शप्ता मयवता पापात्सा ह्यतिभीषणा ॥१५॥

बृहस्पति ने कहा—यह इस समय विवृत रूप दिखाई देती है जिसमें उसका पाप स्पष्ट लक्षित हो रहा है । इसी की राय से मैंने चुराई गई हैं और कोई कारण नहीं । यह पापिण्डा अपनी धारीरिक चेष्टाओं से निर्दोष-सी दिखाई दे रही हैं ॥९॥

ब्रह्मा ने कहा—अपने गुरु की बात को सुनकर इन्द्र ने उस कुतिया को घेर स मार । उस समय पर की चोट से उसने मह से दूध निकल आया । पुन इन्द्र ने कहा—शुनी ! तुमने राक्षसों का दिया हुआ दूध पिया है इस प्रकार तुम्हारे कारण ही वे मेरी माया को ले गये हैं ॥१०-११॥

सरमा ने कहा—नाथ ! मैं मेरा अपराध नहीं है किसी दूसरे का भी नहीं है । देवेन्द्र ! न तो मेरा अपराध है और न इस विषय में मेरी उदासीनता ही है । नाथ ! वे छत्रु ! (राक्षस) बनी हैं । आप क्या कर रहे हैं ? ॥१२॥

ब्रह्मा ने कहा—तब देवगुरु ने ध्यान लगाकर उसकी वषट् चण्डाओं को जान लिया और कहा शन ! सचमुच यह दुष्टा पापुआ का पक्ष करने वाली है ॥१३॥ तब इन्द्र ने उसकी नाप दिया पापिण्डे । तुम मृत्युलोक में अज्ञानता पाप करने वाली पापकारिणी कुतिया हो जाओ ॥१४॥ तब इन्द्र के नाथ मैं वह मृत्युलोक में जैसा कि इन्द्र ने आप दिया था अपने पापों के कारण मयद्वार कुतिया हुई ॥१५॥ श्वर देवेन्द्र जब राक्षसों द्वारा चुराई हुई गोत्रों को ले

गावो या राक्षसेर्नोतास्तामानयनाय च । यत्नं कुर्वन्सुरपतिविष्णवे तन्मयवेदयत् ॥१६॥
 विष्णुर्देत्यांश्च दनुजान्गोहर्तृश्चैव राक्षसान् । हन्तुं प्रयत्नमकरोज्जगृहे च गृहदनुः ॥१७॥
 शाङ्गं यत्लोकविख्यातं दैत्यनाशनमेव च । जितारिः पूजितो देवः स्वयं स्थित्वा जनार्दनः ॥१८॥
 यत्र वै दण्डकारण्ये शाङ्गपाणिर्जगत्प्रभुः । तत्रस्यान्दैत्यदनुजाग्रासार्ताश्च बलीयसः ॥१९॥
 पुनर्जने स वै विष्णुर्गा यर्नोताश्च राक्षसः । तत्र वै दण्डकारण्ये शाङ्गपाणिरिति धृतः ॥२०॥
 मुप्यमानस्ततो विष्णुर्दितिर्जं राक्षसः सह । ते जग्मुर्दक्षिणामाशां विष्णोस्त्रासान्महामुने ॥२१॥
 अन्यगच्छततो विष्णुस्तानेव परमेस्वरः । गह्वरता तानवाप्य शाङ्गमुवर्तमनोजवः ॥२२॥
 बाणैस्तानव्याहनद्विष्णुर्गङ्गाया उत्तरे तटे । देवारयः क्षयं नोता विष्णुना प्रभविष्णुना ॥२३॥
 शाङ्गमुक्तमहावेगं सुस्वनेश्च सुमन्त्रितः । क्षयं प्राप्ता विष्णुबाणैस्ततस्ते देवशत्रवः ॥२४॥
 गावो लब्धा यत्र देवर्षाणीतीर्य तदुच्यते । धैर्यं लोकविदितं गोतीर्थं चेति विधृतम् ॥२५॥
 पदवर्षे कल्पिता गावो गङ्गाया दक्षिणे तटे । प्रदुतास्ते सुराः सर्वे गङ्गायां संन्यवेशयन् ॥२६॥
 तन्मध्ये कारयामासुर्द्वीपं धैवाऽऽश्रयं गवाम् । तर्गेभिस्तत्र गङ्गायां सुरयज्ञो ध्यजायत ॥२७॥
 यज्ञतीर्थं तु तत्प्रोक्तं गोद्वीपं गङ्गामध्यतः । देवानां यजनं तच्च सर्वकामप्रदं शुभम् ॥२८॥

आने के लिये प्रयत्न करने लगे और यह सारी कथा विष्णु से कह सुनायी ॥१६॥ विष्णु यह सुनकर उन गौओं के चुराने वाले राक्षसों, दनुजों और दैत्यों को मारने के लिये उत्तत हो गए। उन्होंने दैत्यों को नष्ट करने वाले लोक-विख्यात महान् शाङ्ग (धनुष) को हाथ में लिया ॥१७॥ शत्रुविजयी, देवों से पूजित तथा सत्कार के स्वामी विष्णु हाथ में धनुष लेकर उस दण्डकारण्य में गये और वहाँ के बलवान् दैत्य, दनुज और राक्षसों को मारने लगे। पुनः शाङ्ग पाणि नाम से प्रसिद्ध विष्णुदेव ने उन गावों के चुराने वाले राक्षसों को भी मार डाला। इसके अनन्तर विष्णु अन्य दैत्यों और राक्षसों से युद्ध करने लगे। महामुने! विष्णु के मय से वे राक्षस दक्षिण-दिशा की ओर भाग गये ॥१८-२१॥ तब परमेस्वर विष्णु ने गहड़ पर सवार होकर उनका पीछा करने लगे और उनको पाकर वन के समान वेग-वाले अपने धनुष से छोड़े हुए बाणों से गंगा के उत्तर तट पर उन्हें मार गिराया। इस प्रकार पराक्रमी विष्णु ने राक्षसों का संहार कर डाला ॥२२-२३॥ तदनन्तर वे सभी देव-शत्रु धनुष से फेंके गये सुमन्त्रित (मन्त्रों द्वारा प्रयुक्त) गन्भीर शब्द करने वाले और महावेग वाले विष्णु के बाणों से नष्ट कर दिये गये ॥२४॥ जहाँ देवताओं ने गौओं को पाया उसको बाणतीर्थ कहा जाता है। लोक-विदित धैर्य तीर्थ एव यज्ञतीर्थ नाम से उसकी प्रसिद्धि हुई ॥२५॥ गंगा के दक्षिण तट पर वे माये यज्ञ-यशु बनाई गई थी। वे देवता यह देख दौढ़कर गंगा में घुस गये ॥२६॥ उसके मध्य में उन्होंने गौओं के रहने के योग्य एक उत्तम द्वीप बनाया। वहाँ उन गौओं के द्वारा देव-यज्ञ सम्पन्न हुआ ॥२७॥ गंगा के मध्य में जहाँ वह सब मनोरथों को पूर्ण करने वाला देवों का शुभ-यज्ञ हुआ, वह गोतीर्थ और यज्ञ-तीर्थ कहलाया ॥२८॥ महाकान्तिमान्! इस असार और अपार ससार रूपी सागर से पार छपाने में नौका के समान, विश्वेश्वरी,

स्वयं मूर्तिमती भूत्वा गङ्गाशक्तिर्महाद्युते । अस्तारापारसंसारसागरोत्तरणे तरिः ॥२९॥
 विश्वेश्वरी योगमाया सद्भवताभयदायिनी । गोरक्षं तु ततस्तोयं गङ्गाया दक्षिणे तटे ॥३०॥
 ती श्वानी सरमापुत्री चतुरक्षौ यमप्रियौ । मातुः क्षापं चापराधं सर्वं चापि सविस्तरम् ॥३१॥
 निवेद्य तु यथान्यायं कार्यं चापि सुखप्रदम् । विज्ञापकरणं चापि पप्रच्छतुरग्नौ यमम् ॥३२॥
 स ताम्यां सहितः सौरिः पित्रे सूर्याय चाब्रवीत् । श्रुत्वा सूर्यः सुतं प्राह गङ्गायां सुरसत्तम ॥३३॥
 लोकत्रयैकपावन्यां गीतम्यां दण्डके वने । श्रद्धया परया वत्स सुस्नातः सुसमाहितः ॥३४॥
 ब्रह्माणं चैव विष्णुं च मामोशं च यथाक्रमम् । स्तुहि त्वं सर्वभावेन भूत्यौ प्रीतिमवाप्स्यतः ॥३५॥
 तत्पितुर्वचनं श्रुत्वा यमः प्रीतमनास्तदा । तयोश्च प्रीतये प्रायाद्देवतर्पणयोग्यम् ॥३६॥
 गीनमप्यमहोरिण्यां सुसमाहितमानसः । तयैव तोययामास गङ्गायां सुरसत्तमान् ॥३७॥
 इवम्यां च सहितः धीमान्दक्षिणाश्रयतिः प्रभुः । ब्रह्माणं तोययामास भान् वं दक्षिणे तटे ॥३८॥
 ईशानमुत्तरे विष्णुं स्वयं यमः प्रतापवान् । दत्तवन्तो वरं धेष्टं सरमाया विज्ञापकम् ॥
 यरानयाघत बहूल्लोकानामुपकारकान् ॥३९॥

यम उवाच

एषु स्नानं तु ये कुर्युर्ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः । आत्मार्यं च परार्यं च ते कामान्पुन्यैः शुभान् ॥४०॥
 धाननीयं तु ये स्नात्वा शाङ्गपार्ष्णि स्मरन्ति वै । तेभ्यो दारिद्र्यदुःखानि न भवेयुर्गुणे धृते ॥४१॥

योगमाया और अर्च्य भक्तों को अमय प्रदान करने वाली गंगा-शक्ति मूर्ति धारण करने उस यज्ञ में उपस्थित थी । इसके बाद गंगा के दक्षिण तट पर गोरक्ष नामक तीर्थ बना ॥२९-३०॥

इसके सरमा के पुत्र उन दोनों यम के प्रिय-प्राण चार आँखों वाले श्वानों ने माता के अपराध और पाप को यथावत् विस्तरपूर्वक यम से कह सुनाया और माता के क्षापमोचन का उपाय तथा उसको सुख पहुँचाने वाले कार्य के विषय से भी पूछा ॥३१-३२॥ सूर्य-तनय यम ने अपने प्रिय श्वानों के साथ सूर्य के पास जाकर सारी कथा कह सुनाई । यह सुनकर सूर्य ने अपने पुत्र से कहा—'सुरधेष्ठ' वत्स' तुम दण्डक वन में त्रैलोक्य को पवित्र करने वाली गंगा में अति श्रद्धा के साथ स्नान करो और एकाग्र मन से ब्रह्मा, विष्णु, भेरी (सूर्य की) और शक्र की त्रिमूर्ति स्तुति करो । ऐसा करने से तुम्हारे ये भूत्य सब प्रकार का सुख प्राप्त करेंगे ॥३३-३५॥ पिता की बातों को सुनकर यम अत्यन्त प्रसन्न हुए और अपने सेवकों को बुली बनाने की इच्छा से देवा को वृत्त करने के लिये पापहारिणी गंगा के पास गये । अपने पुत्रों के सहित दक्षिण दिशा में स्वामी प्रभु यम ने एकत्र-मन से गंगा में स्नान कर धेष्ट देवताओं को प्रणम किया । पहले गंगा के दक्षिण तट पर ब्रह्मा और सूर्य की तथा उत्तर तट पर ईशान और विष्णु को स्वयं प्रतापी यम ने प्रणम किया । देवों ने प्रसन्न होकर सरमा को पाप-रहित करने के लिये वर प्रदान किया । फिर स्वयं यम ने बहू-से शोभास्वाणवारी बरों की भी माँगा ॥३६-३९॥

यम ने कहा—हे ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर ! जो कोई इन तीर्थों में आत्मार्य या परार्य स्नान करे तो उन्हें अक्षय्य अपने धाम मनोरथों की प्राप्ति होगी । आज तीर्थ में स्नान कर जो पापार्थ-प्राणि विष्णु का स्मरण करेंगे, उनको

गोतीर्थे ब्रह्मतीर्थे वा यस्तु स्नात्वा यतव्रत । ब्रह्माण त नमस्याय द्वीपस्यापि प्रदक्षिणम् ॥४२॥
 य कुर्यात्तेन पृथिवी सप्तद्वीपा वसुधरा । प्रदक्षिणोऽकृता तन किंचिद्दत्त्वा वसु द्विजम् ॥४३॥
 तद्देवयजन प्राप्य किंचिदधत्वा हृताशने । अश्वमेधादियज्ञाना फल प्राप्नोति पुष्कलम् ॥४४॥
 य सकृत्तत्र पठति गायत्री वेदमातरम् । अधीतास्तेन वेदा वै निष्कामो भुक्तिभाजनम् ॥४५॥
 स्नात्वा तु दक्षिणे कूले शक्तिं देवीं तु भक्तितः । पूजयित्वा ययाग्याय सर्वाङ्कामानवाप्नुयात् ॥४६॥
 ब्रह्मविष्णुमहेशाना शक्तिर्माता त्रयीमयी । सर्वाङ्कामानवाप्नोति (स्नात्वाऽत्र पूजयेद्यस्ता) ॥
 पुत्रवान्वनवान्भवेत् ॥४७॥
 आदित्य भक्तितो यस्तु दक्षिणे नियतो नरः । स्नात्वा पश्येत् तेनेष्टा यज्ञा विविधदक्षिणा ॥४८॥
 कूले यद्वोतर चैव गङ्गाया दैत्यसूदनम् । स्नात्वा पश्येत् त नत्वा तस्य विष्णो पर पदम् ॥४९॥
 यदाश्नर तनो यस्तु यमतीर्थे तु पूजितम् । स्नात् पश्यति युक्तात्मा स करोत्यचिरेण हि ॥५०॥
 विष्णुमक्षय पुष्प फलद कोतिवर्धनम् । तत्र स्नानेन दानेन जपेन स्तवनेन च ॥
 अपि दुष्कृतकर्माण पितरो मोक्षमाप्नुयुः ॥५१॥

ब्रह्मोवाच

‘इत्याद्यष्ट सहस्राणि तीर्थानि श्रीणि नारद । तेषु स्नानं च दानं च सर्वमक्षयपुण्यदम् ॥५२॥

युग-युग तक दरिद्रता के कण्ठ नहीं होंगे । जो सयनी व्यक्ति गोतीर्थ और ब्रह्मतीर्थ में स्नान कर उस ब्रह्मा को नमस्कार करता है और द्वीप की प्रदक्षिणा करता है उसे सात द्वीप वाली वसुन्ती पृथिवी की प्रदक्षिणा करने का फल मिलता है । ब्रह्मा यदि कुछ धन ब्राह्मणों को दे देता और उस देव-यजन के पास जाकर अग्नि में हवन कर देता है तब तो अश्वमेध यज्ञ का अपरिमित फल उसको प्राप्त हो जाता है । जो वहाँ निष्काम होकर एक बार भी वेद माता गायत्री का पाठ करता है वह सब वेदों का पाठ करने का फल प्राप्त करता है एवं भुक्ति का अधिकारी हो जाता है । जो दक्षिण तट पर स्नान कर शक्ति देवी की भक्तिपूवक यथा विधि पूजा करता है वह अपने सारे मनोरथों को प जाता है । जो ब्रह्मा विष्णु और महेश की शक्ति वेदमयी माता की पूजा करता है वह अपने सब मनोरथों को प्राप्त कर पुत्रवन् और धनवान् होता है । जो मनुष्य नियम-पूर्वक दक्षिण तट पर स्नान कर भगवान् ध्रुव का दशन करता है वह विविध दक्षिणा वाले यज्ञों के अनुष्ठान का फल प्राप्त करता है । जो गया के उत्तर तट पर स्नान कर दैत्य नाशक विष्णु को नमस्कार करता है उसको विष्णु का परम पद प्राप्त हो जाता है । इसके बाद जो यम तीर्थ में स्नान कर एकाग्र मन से यमेश्वर का दशन और पूजन करता है वह शीघ्र ही पितरों को अक्षय पुष्प तथा तथा यश विस्तारक फल का अधिकारी बना देता है । उस तीर्थ में स्नान दान जप और स्तुति करने से अति दुष्कर्म करने वाले पितर भी मोक्ष के अधिकारी हो जाते हैं ॥४०-५१॥

ब्रह्मा ने कहा—नारद ! इस प्रकार आठ हजार तीन तीर्थ वहाँ प्रतिष्ठित हैं । उनमें स्नान और दान करने

एतेषा स्मरण पुण्य नानाजन्माद्यनाशनम् । श्रवणात्पितृभिः सार्धं पठनात्स्वकुलैः सह ॥५३॥
 तेषामप्यतिपापानि नाशयान्ति ममाऽऽज्ञया । तत्र स्नानादियं कृत्वा किञ्चिद्देत्वा यतात्मवान् ॥५४॥
 पितृणां पिण्डदानादि कृत्वा नत्वा सुरानिमान् । धन धान्य यशो वीर्यमायुरारोग्यसम् ॥५५॥
 पुत्रान्पौत्रान्प्रिया भायां लब्ध्वा चान्यन्मनोयितम् । अविष्यत प्रीतमना बन्धुभिश्चातिमानित ॥५६॥
 नरकस्थानपि पितुस्तारयित्वा कुलानि च । पावयित्वा प्रियैर्युक्तो ह्यन्ते विष्णु शिव स्मरेत् ॥
 ततो मुक्तिपदं गच्छेद्देवानां वचनं यथा ॥५७॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये बाणतीर्थशाङ्गपाणीयगोत्रीपदेव-
 यजनब्रह्मतीर्थंश्रवितयमादित्यसुपर्णदेवसूदनयमेश्वरपितृतीर्थोदित्यधिकाष्ट-
 सहस्रतीर्थवर्णनं नामैकत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥१३१॥
 गौतमीमाहात्म्ये द्विपण्डितमोऽध्यायः ॥६२॥

से अक्षय पुण्य की प्राप्ति होती है। इन तीर्थों का स्मरण भी पुण्यकारक और अनेक जन्मों के पापों को दूर करने वाला है। इन तीर्थों के माहात्म्य सुनने और पढ़ने से उस व्यक्ति के पितरों तथा कुल के अत्यन्त पाप भी भेरी आशा से नष्ट हो जाते हैं। जो समयी उनमें स्नान कर विप्रा को कुछ दान देता एवं पितरों को पिण्डदान देकर इन देवों को नमस्कार करता है वह धन धान्य यश पराक्रम आयु आरोग्य सम्पत्ति पुत्र पौत्र प्रिय भार्या एवं अपने अन्य मनोरथा को प्राप्त कर सदा प्रसन्नतापूर्वक अपने परिवार के सब बन्धुजनों से सम्मानित होकर निवास करता है। वह अपने नरकगामी पितरों का उद्धार कर और कुल को पवित्र कर प्रियजनों के सहित अन्तर्काल में विष्णु और शिव का स्मरण करता है। तदनन्तर देवों के कथनानुसार वह मुक्ति प्राप्त करता है ॥५२-५७॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में गौतमीयवर्णन नामक एक सौ इकतीसवाँ अध्याय समाप्त ॥१३१॥

अथ द्वात्रिंशदधिकशततमोऽध्याय

यक्षिणीसंगममाहात्म्यकथनम्

ब्रह्मोवाच

यक्षिणीसंगम नाम तीर्थं सर्वफलप्रदम् । तत्र स्नानेन दानेन सर्वान्कामानवाप्नुयात् ॥१॥
 यत्र यक्षेश्वरो देवो दर्शनाद्भुक्तिमुक्तिदः । तत्र च स्नानमात्रेण सत्रयागफलं लभेत ॥२॥
 विद्वावसोः स्वसा नाम्ना पिप्पला गुरुहासिनी । ऋषीणां सत्रमगमदगौतमीतीरवर्तिनाम् ॥३॥
 दृष्ट्वा तत्र ऋषीन्कामान्सा जहासातिगविता । या गत्वाऽऽश्रावय धोषडस्तु धोषघ्निं स्थिरम् ॥४॥
 विस्वरेण ब्रुवती तां तेश्वरेण साविणी भव । ततो नद्यभवत्तत्र यक्षिणीति सुविश्रुता ॥५॥
 ततो विश्वावसु पूज्य ऋषीन्देवं त्रिलोचनम् । संगम्य चैव गौतम्यां तां विशापामथाकरोत् ॥६॥
 ततः प्रभृति तत्तीर्थं यक्षिणीसंगमं स्मृतम् । तत्र स्नानादिदानेन सर्वान्कामानवाप्नुयात् ॥७॥
 विद्वावसोः प्रसन्नोऽभूद्यत्र शम्भुः शिवान्वितः । शंभं तत्परमं तीर्थं दुर्गातीर्थं च विश्रुतम् ॥८॥
 सर्वपापौघहरणं सर्वदुर्गतिनाशनम् । सर्वेषां तीर्थमुत्थानां सद्धि सारं महामुने ॥
 तीर्थं मुनिवरैः ह्येतत् सर्वसिद्धिप्रदं नृणाम् ॥९॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये यक्षिणीसंगमदुर्गादितीर्थवर्णनं नाम

द्वात्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥१३२॥

गौतमीमाहात्म्ये त्रिषष्टितमोऽध्यायः ॥६३॥

अध्याय १३२

यक्षिणी-संगम का माहात्म्य-वर्णन

ब्रह्मा ने कहा—(इसके बाद) सत्र पलों को देनेवाला यक्षिणी-संगम नामक एक तीर्थ है उसमें स्नान एवं दान करने में मनुष्य अपने सब मनोरथों को प्राप्त करता है। जहाँ केवल दर्शनमात्र से भुक्ति और मुक्ति के देने वाले यक्षेश्वर देव हैं, उस तीर्थ में स्नान मात्र से यज्ञजड मिल जाते हैं। विद्वावसु की स्त्रुव ठहाका मारकर हमने वाली पिप्पला नाम की एक वहिन थी। वह एक दिन गौतमी-तीर पर रहने वाले ऋषियों के यज्ञ में गई। वहाँ दुबले-पतले ऋषियाँ को देखकर घमड़ में हँस पड़ी और वज्र के निशट्र जाकर 'बोपट, धोपट', इन शब्दों का मद्दे और अगुद स्वर में पाठ कर उनको चिड़ाने लगी। यह देखकर ऋषियाँ ने उस पिप्पला को पाप दिया कि 'तुम नदी हो जाओ'। पाप सुनने ही वह यक्षिणी नाम की प्रसिद्ध नदी हो गई। तब विद्वावसु ने ऋषियाँ और त्रिनेत्र सागर की पूजा की तथा यक्षिणी की गौतमी से मिलाकर उसको साप मूकन किया। उस समय से वह स्थान यक्षिणी-संगम नामक तीर्थ हो गया। उस तीर्थ में स्नान और दान करने से मनुष्य अपने सारे मनोरथों को प्राप्त करता है। जहाँ सिवा सहित शिव विद्वावसु पर प्रमत्त हुए वह सब पाप-समूहों एवं कठिन पीडाओं को दूर करनेवाला अर्थात् उत्तम तीर्थ और दुर्ग-तीर्थ के नाम से विख्यात हुआ। महामुनि नारद । उस तीर्थ को ऋषिवरों ने मनुष्यों को सब प्रकार की सिद्धियाँ देने वाला और सब प्रसिद्ध तीर्थों का सारभूत तीर्थ घोषित किया है ॥१-९॥

श्रीब्रह्ममहापुराणे यक्षिणी-संगम वर्णन नामक एक सी वसोतर्वा अध्याय समाप्त ॥१३२॥

१८. छ. सर्वयज्ञक०॥

अथ त्रयस्त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः

शुक्लतीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच ।

शुक्लतीर्थमिति श्यात सर्वसिद्धिकरं मुणाम् । यस्य स्मरणमात्रेण सर्वकामान्वाप्नुयात् ॥१॥
 भरद्वाज इति श्यातो मुनि परमधार्मिक । तस्य पैठोनीसो नाम भार्या सुकुलभूषणा ॥२॥
 गौतमीतीरमध्यास्ते पतिव्रतपरायणा । अग्नीषोमीयमैवैवान् पुरोडाशमकल्पयत् ॥३॥
 पुरोडाशे श्रप्यमाणे धूमात्कश्चिदजायत । पुरोडाशं भक्षयित्वा लोकत्रितयभीषण ॥४॥
 यत्त मे ह्यत्र को हसि कोयात्वमितित मुनि । प्रोवाच सत्वरं क्रुद्धो भरद्वाजो द्विजोत्तम ॥५॥
 तद्वयवैचनं धृत्वा राक्षस प्रत्युवाच तम् ॥

राक्षस उवाच

हव्यधन इति विख्यात भरद्वाज निबोध माम् । सप्यासुतोऽहं व्येष्टश्च पुन प्राचीनबहिष ॥६॥
 ब्रह्मणा मे धरे दत्तो यज्ञान्खाद्य ययासुखम् । ममामनुज कश्चिदेषापि बलवानतिभीषण ॥७॥
 अहं कृष्ण पिता कृष्णो माता कृष्णा तयाऽनुज । अहं मल्ल हनिष्यामि यूप छेपि कृतान्तक ॥८॥

अध्याय १२३

शुक्लतीर्थं वा वर्णनं

ब्रह्मा ने कहा—(इसके बाद) मनुष्य को सब प्रकार की मिद्धियाँ प्रदान करने वाला शुक्ल-सीय नामक एक विख्यात तीर्थ है जिसने स्मरण मात्र से मनव्य अपनी मन वापनाओं को अनायास प्राप्त कर लेता है। (इसकी क्या इस प्रकार है) —

भरद्वाज नाम के एक परम धार्मिक विख्यात मुनि थे। उनकी पैठोनीसी नाम की अत्यन्त सुगन्धती भार्या थी। वह पति-परायणा गौतमी-तीर पर रहती थी। एक बार वह अग्नि-सोम देवता तथा इन्द्र-अग्नि देवता के लिए चर बना रही थी। जब वह चर पक्के आगे जब धुप से एक शैलोत्पन्न भयङ्कर जीव निकला जो चर को चट कर गया। यह देख दिग्भ्रम मुनि भरद्वाज ने त्रोध स तुरन्त उसको ढींढर कहा—तुम कौन हो जो मेरे चर को नष्ट कर रहे हो? अथि की बात सुनकर राक्षस ने मुनि से कहा ॥१॥ ॥१॥

राक्षस ने कहा—मरदान! मुझे जो प्राचीनबहिष का सप्या से उत्पन्न यज्ञज्ञ नामक प्रसिद्ध व्यष्ट पुत्र जानो। ब्रह्मा ने मुझे वरदान दिया है कि तुम इच्छानुसार यथा को खाया करो। मेरा बलवान् अतिभीषण अनुज भी इसी दण्ड का है। मैं बाला मेरे पिता वाले माला वाली और भार्या भी बाला है। मैं यम होकर यथा को नष्ट करूँगा और मुझे को छोड़ डालूँगा ॥१॥ ॥८॥

भरद्वाज उवाच

रक्षतां मे त्वया यज्ञः प्रियो धर्मः सनातनः । जाने त्वां यज्ञहन्तारं सद्द्विज रक्ष मे क्रतुम् ॥१॥

यज्ञघ्न उवाच

भरद्वाजं निबोधेदं वाक्यं मम समासतः । ब्रह्मणाऽहं पुरा शप्तो देवदानवसंनिधौ ॥१०॥
ततः प्रसादितो देवो मया लोकपितामहः । अमृतं प्रोक्षयिष्यन्ति यदा त्वा मुनिसत्तमाः ॥११॥
तदा विज्ञाप्यो भविता हव्यघ्न त्वं न चान्यथा । एवं करिष्यसि यदा ततः सर्वं भविष्यति ॥
यद्यदाकाङ्क्षितं ब्रह्मर्षतन्मिथ्या कदाचन ॥१२॥

ब्रह्मोवाच

भरद्वाजः पुनः प्राह सखा मेऽसि महामते । मत्संरक्षणं येन स्यान्मे यद करोमि तत् ॥१३॥
सभूय देवा दैतेया ममन्युः क्षीरसागरम् । अलभन्तामृतं कष्टात्तदस्मत्सुलभं कथम् ॥१४॥
प्रीत्या यदि प्रसन्नोऽसि सुलभं यद्वदस्य तत् । तदुपैर्बचनं श्रुत्वा रक्ष प्राह तदा मुदा ॥१५॥
अमृतं गौतमीवारि अमृतं स्वर्णमुच्यते । अमृत गोभवं चाऽऽज्यममृतं सोम एव च ॥१६॥
एतैर्मामभियिञ्चस्व अथ 'दैतैस्तथा त्रिभिः । गङ्गाया वारिणाऽऽज्येन हिरण्येन तथैव च ॥
सर्वेभ्योऽप्यधिकं दिव्यममृतं गौतमीजलम् ॥१७॥

भरद्वाज ने कहा—देवो, मैं यज्ञ विष्वसव तुमको जानता हूँ तुम एवं अच्छे ब्राह्मण हो, तुम मेरे यज्ञ और प्रिय सनातन धर्म की रक्षा करो ॥९॥

यज्ञघ्न ने कहा—भरद्वाज ! मेरी बातों को मधीन म सुनो । देव-दानवों के सामने ब्रह्मा ने मूर्ख साग दिया । तब मैंने बड़े अनुनय विनम्र से लोक-पितामह को प्रमत्त किया । उन्होंने कहा कि जब मुनिवर्यगण अमृत से तुम्हारा अभिषेक करेंगे, तब है हव्यघ्न ! तुम दाप-मुक्त होओगे अन्यथा नहीं । यदि तुम ऐसा करोगे तब है ब्रह्मन् ! जो जो तुम चाहोगे वह सब हो जायगा, यह बात कभी भी मिथ्या नहीं हो सकती ॥१०-१२॥

ब्रह्मा ने कहा—भरद्वाज ने पुनः कहा 'महामते' ! तुम मर सना हो । जिस प्रकार मेरे यज्ञ की रक्षा हो, वहो मैं अवश्य कहूँगा । एक बात है कि देवों और दैत्यों ने मिलकर क्षीर-सागर को मँया । तब बड़े कष्ट से अमृत को प्राप्त किया । ऐसा दुर्लभ अमृत हम लोगों को कैसे गुप्त हो सक्ता है ? यदि तुम हृदय से मेरे ऊपर प्रमत्त हो तो बनाओ कि वह कैसे गुप्त होगा । श्रुति की बात को मुनिकर गणसने प्रसन्न होकर कहा ॥१३-१५॥

राक्षस ने कहा—गौतमी का जल अमृत है । गौतमी भी अमृत कहते हैं । गो में घृत और सोम को भी अमृत माना जाता है । इनमें मरा अभिषेक कीजिये अथवा सना-जल दूत और सुवर्ण इन तीनों से ही अभिषेक हो । या सबसे अधिक दिव्य अमृत गौतमी का जल ही है ॥१६-१७॥

ब्रह्मोवाच ।

एतदाकर्ण्य स श्रुपि. परं संतोषमागतः । पाणावादाय गङ्गायाः सलिलामृतमादरात् ॥१८॥
 तेनाकरोद्वयो रसोऽहमभिविक्तं तदा मखे । पुनश्च यूषे च पशवृत्तिवशु मलमण्डले ॥१९॥
 सर्वमेवाभयच्छुक्लमभियेकान्महात्मनः । तद्वशोऽपि तदा शुक्लो भूत्वोत्पन्नो महाबलः ॥२०॥
 यः पुरा कृष्णरूपोऽभूत्स तु शुक्लोऽभवत्क्षणात् । यत्नं सर्वं समाप्याय भरद्वाजः प्रतापवान् ॥२१॥
 श्रुत्वित्यजोऽपि विसृज्याय यूषं गङ्गोदकेऽक्षिपत् । गङ्गामध्ये तद्वि यूषमद्याप्यास्ते महामते ॥२२॥
 अभिविक्तं चामृतेन अभिज्ञानं तु तन्महत् । तत्र तीर्थे पुनः रसो भरद्वाजमुवाच ह ॥२३॥
 : ' रस उवाच

अहं यामि भरद्वाज वृत्तः शुक्लस्त्वया पुनः । तस्मात्तवात्र तीर्थे ये स्नानदानादिपूजनम् ॥२४॥
 कुर्वुस्तेषामभोष्टानि भवेयुर्लोकं मखे । स्मरणादपि पापानि नाशं यावन्तु सदा मुने ॥२५॥
 ततः प्रभृति सतीर्थं शुक्लतीर्थमिति स्मृतम् । गौतम्यां दण्डवारण्ये स्वर्गद्वारमपावृतम् ॥२६॥
 उभयोस्तोरयो सप्त सहस्राण्यपराणि च । तीर्थानां मुनिगार्दूल सर्वसिद्धिप्रदायिनाम् ॥२७॥
 इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये शुक्लतीर्थाद्युभयतीरस्यसप्त-
 सहस्रतीर्थवर्णनं नाम त्रयस्त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥१३३॥
 गौतमीमाहात्म्ये चतुःषष्टितमोऽध्यायः ॥६४॥

ब्रह्मा ने कहा—इस शुक्ल उपाय को सुनकर श्रुपि अत्यन्त सन्तुष्ट हो गये । उन्होंने बड़े आदर से हाथ में समाज ले लिया । उसने उस यज्ञ में ही उग राशस का अभिवेक किया । पुन उसी जल को घूर, यज्ञ-घूम और श्रुविज। पर भी छिड़ा । उस महात्मा ने अभिवेक में सब कुछ सुकृ-जर्ण का हो गया । वह महाबली राशस भी सुकृ होकर प्रकट हुआ । जो पहले अति कृष्ण था वह क्षण पर ने ही शुक्लवर्ण का हो गया । प्रत,पी भरद्वाज ने अपने यज्ञ की समस्त क्रियायें समाप्त कीं । सब श्रुत्वित्जो को विदा कर दिया और उस घूर को दगा के मध्य में फेंक दिया । महामत ! वह फेंका हुआ घूप आज भी गंगा के बीच में बतेंमान है । गौतमी के जन्म-जन्म में अमि-पिक्त होने पर उग राशस को पूर्व की ओरों का स्मरण हो आया । सब उसन पुन उस तीर्थ में भरद्वाज से कहा ॥१८-२३॥

राशस ने कहा—भरद्वाज ! मुझको तुमने पुन शुक्ल कर दिया । अब इस तीर्थ में जो स्नान-दान और देवपूजा करेगे उनसे सब अमिमल पूरे होंगे और उनको यज्ञ करने का वक्त प्राप्त होगा । मुने ! इन्से स्मरणमात्र से सब पाप नष्ट हो जायेंगे । उस समय ये वह तीर्थ सुकृ-जीर्ण के नाम से प्रसिद्ध हो गया । यह दण्ड वन में गौतमी-नद पर स्वर्ण का एक मुला द्वार है । मुनिगार्दूल ! बड़ी शक्ति के देना तदा पर सब प्रकार की सिद्धि प्रदान करने वाले और भी सात हजार तीर्थ हैं ॥२४-२७॥

श्रीब्रह्मपुराण में सुकृ-जीर्ण आदि सात हजार तीर्थों का वर्णन नामक एक भी तीर्थों की अध्याय समाप्त ॥१३३॥

अथ चतुस्त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः

चक्रतीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

चक्रतीर्थमिति ख्यातं स्मरणात्पापनाशनम् । तस्य प्रभावं वक्ष्यामि शृणु यत्नेन नारद ॥१॥
 ऋषयः सप्त विख्याता वसिष्ठप्रमुखा मुने । गौतम्यास्तोरमाश्रित्य सत्रयज्ञमुपासते ॥२॥
 तत्र विघ्न उपक्रान्ते रक्षोभिरतिभीषणे । मामभ्येत्याथ मुनयो रक्षःकृत्यं न्यवेदयन् ॥३॥
 तदाऽहं प्रमदारूपं मापयाऽऽसृज्य नारद । यस्माद्वचः दर्शनादेव नाशं यान्त्यस्य राक्षसाः ॥४॥
 एवमुक्त्वा तु तां प्रादामृषिभ्यः प्रमदा मुने । मद्वाक्यादप्यो मायामादाय पुनरागमन् ॥५॥
 अर्जुना या समाख्याता कृष्णलोहितरूपिणी । मुक्तकेशीत्यभिधया साऽऽस्तेऽद्यापि स्वरूपिणी ॥६॥
 लोकत्रितयसंमोहदायिनी कामरूपिणी । तद्बलात्स्वस्थमनसः सर्वे च मुनिपुंगवाः ॥७॥
 गौतमीं सरितां श्रेष्ठां पुनर्यज्ञाय दीक्षिताः । पुनस्तन्मलनाशाय राक्षसाः समुपागमन् ॥८॥
 यज्ञवादान्तिके मायां दृष्ट्वा राक्षसपुंगवाः । ततो नृत्यन्ति गायन्ति हसन्ति च रदन्ति च ॥९॥
 माहेश्वरी महामाया प्रभावेणातिद्विषिता । तेषां मध्ये ईत्यपतिः शम्भरो नाम धीर्यवान् ॥१०॥

अध्याय १३४

चक्रतीर्थ का वर्णन

• ब्रह्मा ने कहा—(इसके बाद) चक्रतीर्थ नाम का तीर्थ है, जिसके स्मरणमात्र से पाप नष्ट हो जाते हैं।
 नारद ! उसने प्रभाव का वर्णन कर रखा है, ध्यानपूर्वक सुनो। मुने ! वसिष्ठ आदि सात प्रसिद्ध मुनि गौतमी के तीर पर कुटी बनाकर सत्र-यज्ञ कर रहे थे। जब अतिभीषण राक्षसों ने यज्ञ में विघ्न डालना प्रारम्भ किया तब मुनियों ने मेरे पास आकर राक्षसों का वह उपाय बताया। नारद ! तब मैंने अपनी माया से एक ऐसी स्त्री उत्पन्न की, जिसके देखने से ही सम्पूर्ण राक्षस नष्ट हो जायें। मुने ! मैंने मुनियों से इस प्रकार कह मुनिकर उस स्त्री को ऋषियों के साथ कर दिया। मेरे समझाने से वे ऋषि उस माया-स्त्री को लेकर चले गये। वह कृष्ण और ईषद रक्तवर्ण की मुक्तकेशी नाम की अज्ञा माया आज भी अपने स्वरूप में वर्तमान है, जो माया-रूपिणी है और त्रिभुवन को मोह में डाल देने वाली है। व मुनिश्रेष्ठ उसकी शक्ति से स्वस्थचित होकर उस श्रेष्ठ गौतमी के तट पर पुनः यज्ञ के लिये दीक्षित हो गये। राक्षस यह देखकर फिर यज्ञ को नष्ट करने के लिये उपस्थित हुए ॥१-८॥ (वे बड़े-बड़े राक्षस यज्ञ-यज्ञ में उस मोहिनी माया को देखकर माहेश्वरी महामाया के प्रभाव से अनिर्गति होकर नाचने, गाने, हँसने और रोने लगे)। उनमें एक अनिरपराधी शम्भर नामक ईत्यराज था। नारद ! उनमें उस माया रूप प्रमदा को ला लिया। उसका यह कार्य उसने मायायल को देखने वालों के

मायारूपां तु प्रमदां भक्षयामास नारद । तदद्भुतमतीवाऽऽसीत्तन्मायाबलदर्शनाम् ॥११॥
 मखे विध्वंस्यमाने तु ते विष्णुं शरणं ययुः । प्रादाद्विष्णुश्चक्रमयो मुनीनां रक्षणाय तु ॥१२॥
 चक्र तत्राक्षसानाजो दंत्यांश्च दनुजांस्तथा । चिच्छेद तद्भूयादेव मृता राक्षसपुंगवाः ॥१३॥
 ऋषिभिस्तन्महासत्रं संपूर्णमभवत्तदा । विष्णोः प्रक्षालितं चक्रं शङ्खाम्भोभिः सुदर्शनम् ॥१४॥
 ततः प्रभृति तत्तीर्थं चक्रतीर्थमुदाहृतम् । तत्र स्नानेन क्षानेन सत्रपागफलं लभेत् ॥१५॥
 तत्र पञ्च शतान्यास्तत्तीर्थानां पापहारिणाम् । तेषु स्नानं तथा दानं प्रत्येकं मुक्तिदायकम् ॥१६॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये चक्रतीर्थादिपञ्चशततीर्थवर्णनं नाम

चतुस्त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥१३४॥

गौतमीमाहात्म्ये पञ्चषष्टितमोऽध्यायः ॥५५॥

अथ पञ्चात्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः

वाणीसंगमतीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

'वाणीसंगममाख्यातं यत्र बाणोदवरो हरः । तत्तीर्थं सर्वपापानां मोचनं सर्वकामदम् ॥१॥

लिये अतिविस्मयजनक था । वे ऋषि पुनः अपने यज्ञ को नष्ट होते देख विष्णु की शरण में गये । विष्णु ने मुनिगणों की रक्षा के लिये अपना चक्र भेजा । उस चक्र ने युद्ध में उन राक्षसों, दंत्यों और दनुजों का सिर काट डाला । कितने राक्षस सो उसने भय से ही मर गये । तब ऋषियों का वह महा-यज्ञ पूर्ण हुआ । विष्णु का वह सुदर्शन चक्र जहाँ गंगा-जल से घोसा गया वह स्नान तब से चक्रतीर्थ के नाम से प्रसिद्ध हो गया । उसने स्नान और दान करने से सत्र-यज्ञ का फल प्राप्त होता है । वहाँ पाप-समूह को दूर करने वाले पाँच सो और भी तीर्थ हैं जिनमें स्नान और दान करने से मुक्ति प्राप्त होती है ॥१-१६॥

श्रीब्रह्मपुराण में चक्रतीर्थ आदि पाँच सो तीर्थों का वर्णन नामक एक सो चोतीसवाँ अध्याय समाप्त ॥१३४॥

अध्याय १३५

वाणीसंगमतीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा ने कहा—(इसके बाद) वाणीसंगम नामक तीर्थ है, जहाँ वाणीस्वर वाहर विद्यमान हैं । वह तीर्थ सब पापों को दूर करने वाला और सब कामनाओं को देने वाला है । उस तीर्थ में स्नान और दान करने से ब्रह्म-हत्या जनित

तत्र स्नानेन दानेन ब्रह्महत्यादिनाशनम् । ब्रह्मविष्णोश्च संवादे महत्त्वे च परस्परम् ॥२॥
 तयोर्मध्ये महादेवो ज्योतिर्मूर्तिरभूत्कल । तत्रैव वागुवाचेवं देवो पुन तयोः शुभा ॥३॥
 अहमस्मि महास्तत्र अहमस्मोति वै मिय' । देवो वाक्तावुभौ प्राह यस्त्वस्यान्तं तु पश्यति ॥४॥
 स तु ज्येष्ठो भवेत्समाग्मा वाद कर्तुमर्हयः । तद्वाक्याद्विष्णुरगमदधोऽहं चोर्ध्वमेव च ॥५॥
 ततो विष्णुः शीघ्रमेव ज्योतिःपार्श्वं उपाविशत् । अप्राप्यान्तमहं प्रायां दूराद्भूततरं मुने ॥६॥
 ततः श्रान्तो निवृत्तोऽहं द्रष्टुमीशं तु तं प्रभुम् । तदेवं मम धीरासीद्दुष्टश्चान्तो मया भूयम् ॥७॥
 अस्य देवस्य तद्विष्णोर्मम ज्येष्ठ्यं स्फुटं भवेत् । पुनश्चापि मम त्वेवं मतिरासीन्महामते ॥८॥
 सत्यैवंशत्रैः कथं वक्ष्ये पीडितोऽप्यनृतं वचः । नानाविधेषु पापेषु नानुतात्पातकं परम् ॥९॥
 सत्यैवंशत्रैरसत्पां घा घाचं वक्ष्ये कथं त्विति । ततोऽहं पञ्चमं वक्त्रं गर्दभाकृतिभीषणम् ॥१०॥
 कृत्वा तूतानानृत वक्ष्य इति ध्यात्वा चिरं तदा । अत्रवं तं हरिं तत्र आसीनं जगतां प्रभुम् ॥११॥
 अस्य चान्तो मया दुष्टस्तेन ज्येष्ठ्यं जनार्दन । ममेति वदतः पार्श्वे उभौ तौ हरिशंकरौ ॥१२॥
 एककश्चैवमापन्नौ सूर्याब्जमसावि । तौ दृष्ट्वा विस्मितौ भीतश्चास्तवं तावुभापि ॥
 ततः क्रुद्धौ जगन्नाथौ पाचं तामिदमूचतुः ? ॥१३॥

॥१३॥ हरिहरावूचतुः

दुष्टे स्वं निम्नगा भूणानानुतादस्ति पातकम् ।

॥१४॥

दोष भी मिट जाते हैं । एक बार ब्रह्मा और विष्णु ने 'मैं बड़ा हूँ तो मैं बड़ा हूँ' इस विषय पर आपस में वाद-विवाद होने लगा । उस समय उन दोनों के मध्य महादेव की ज्योतिर्मयी मूर्ति प्रकट हुई और शुभ आकाशवाणी हुई । उसने दोनों ने कहा कि पुत्र ! ओ इस ज्योतिर्मय मूर्ति का अन्त देख लेगा । यही ध्येष्ठ माना जायगा, अतः ध्वयं वा विषय मत करो । उसके कथनानुसार विष्णु नीचे की ओर और मैं ऊपर की ओर गया । तदनन्तर विष्णु भीघ्र ही नीचे से लौटकर थले आये और उस मूर्ति के समीप बैठ गये । मुने ! मैं तो उसका अन्त मापाकर बहुत दूर चला गया । अन्त में वच कर उस प्रभु ईश की देखने के लिये लौटा । उस समय मेरे मन मे ऐसी बुद्धि उत्पन्न हुई कि यदि मैं जोर देकर यह कहूँ कि मैंने अन्त देख लिया है तब तो उस विष्णु से मेरा ध्येष्ठत्व स्वयं सिद्ध हो जायगा, परन्तु फिर ऐसी बुद्धि उत्पन्न हुई कि पीडित होने पर भी सत्य वचन कहने वाले इन मुखों से जिस प्रकार असत्य बोल्ना । नाना प्रकार के पापों में असत्य से बड़कर दूसरा पाप नहीं । अतः सत्यवादी मुखों से कैसे असत्य बोल्, यह सोचकर गदगे की आहूति का अतिभीषण पाँचवाँ मुख बना कर उसी में असत्य बोल्ना । इस प्रकार व्यवस्था कर बिरबाल तब ध्यानमान होकर वहाँ बैठे हुए जगन्प्रभु विष्णु ने कहा कि जनार्दन ! इसका अन्त मैंने देख लिया है अतः मेरी ध्येष्ठता स्वन मिद्ध है । इस प्रकार कहने ही मेरे बगल में दोनों हरि और शंकर सूर्य-चन्द्र की ज्योति के समान एकाकार हो गये । इस प्रकार उन दोनों की देखकर मैं तो हैरान हो गया । दर दर दोनों की स्तुति करते लगा परन्तु उन दोनों जगन्तियों ने क्रुद्ध होकर उस वाणी में कहा ॥१-१३॥

हरिहर ने कहा—दुष्टे ! गुप्त नदी बन जाओ । असत्य से बड़कर दूसरा पाप नहीं है ॥१४॥

ब्रह्मवाच

ततः सा ब्रह्मलला भूत्वा नवीभावमुपागता । तद्दृष्ट्वा विस्मितो भीतस्तामब्रवमहं तदा ॥१५॥
यस्मादसत्यमुक्ताऽसि ब्रह्मवाचि स्थिता सती । तस्माददृश्या त्वं भूयाः पापहृपाऽस्यसंशयम् ॥१६॥
एतच्छापं विदित्वा तु तौ देवौ प्रणता तदा । विशापत्वं प्रार्ययन्ती तुष्टाव च पुनः पुनः ॥१७॥
ततस्तुष्टौ देवदेवौ प्रार्थितौ त्रिवदार्चितौ । प्रोत्था हरिहरावेवं वाचं वाचमथोचतु ॥१८॥

[[]]
गङ्गाया संगता भद्रे यदा त्वं लोकपावनी । तदा पुनर्वपुस्ते स्यात्पवित्रं हि सुशोभने ॥१९॥

ब्रह्मवाच

तथेत्युक्त्वा साऽपि देवी गङ्गाया संगताऽभवत् । भागीरथी गौतमी च ततश्चापि स्वकं वपुः ॥२०॥
देवौ सा ध्ययमद्ब्रह्मन्देवानामपि दुर्लभम् । गौतम्या संव विख्याता नाम्ना वाणीति पुण्यदा ॥२१॥
भागीरथ्यां संव देवौ सरस्वत्यभिधीयते । उभयत्रापि विख्यातः सगमो लोकपूजितः ॥२२॥
सरस्वतीसगमश्च वाणीसंगम एव च । गौतम्या संगता देवी वाणी वाचा सरस्वती ॥२३॥
सर्वत्र पूजितं तीर्थं तत्र वाचा मित्रं प्रभुम् । देवेश्वर पूजयित्वा विशापमगमद्यतः ॥२४॥
गङ्गा विभूः वाऽदोऽहं स्वं च धामागमग्युतः । तस्मात्तत्र भुविर्भूत्वा स्नात्वा तत्र च संगमे ॥२५॥
वागीश्वरं तनो वृद्ध्वा तानना मुक्तिमाप्नुयात् । दानहोमादिकं किञ्चिदुपवासादिकां क्रियाम् ॥२६॥

ब्रह्मा ने कहा—तब ध्यातुल होकर वह मेरी असत्य वाणी नदी के रूप में परिणत हो गई। यह देखकर मैं विस्मित हो गया। उस समय डरते डरते मैंने उस वाणी से कहा—जिसलिये तुमने ब्रह्मवाणी में रहकर भी असत्य कहा है, अतः तुम तिसन्देश पायी हो, तुम अदृश्य हो जाओ। इस घाप को गुनकर वह उन दोनों देवों के चरणों पर गिर पड़ी। और बार बार प्रार्थना करती हुई अपने शाप-भोवन का उपाय ढूँढ़ने लगी। इस प्रकार प्रार्थना करने पर देवपूजित वे दोनों देव प्रसन्न हो गये और उस वाणी से इस प्रकार बोले ॥१५-१८॥

हरिहर ने कहा—भद्रे ! लोकपावनी तुम जब गंगा से मिलोगी तब पुनः शुभानने ! तुम पवित्र शरीर प्राप्त करोगी ॥१९॥

ब्रह्मा ने कहा—‘ऐसा ही हो’ यह कहकर वह देवी भागीरथी गंगा और गौतमी में मिल गई। तदनन्तर ब्रह्मन् ! उमने देव-दुर्लभ ज्ञाना शरीर प्राप्त कर लिया। गौतमी में मिलने वाली वह देवी वाणी नाम से प्रसिद्ध हुई और भागीरथी गंगा में सरस्वती नाम से। दोनों स्थानों पर ये सगम लोक-विख्यात और लोकपूजित हैं। इस प्रकार दोनों गंगा (गौतमी, भागीरथी) में मिलने पर बड़ी वाणी वाणी और सरस्वती नाम से प्रसिद्ध हुई और उसका मगम सरस्वती-मगम और वाणी-सगम कहलाने लगा। यह वही वाणी देवेश्वर निव की पूजा कर शाप मुक्त हुई, अतः वह तीर्थ सब तीर्थों से उत्तम और श्रेष्ठ समझा जाना है। फिर ब्रह्मा वहाँ अपनी वाणी के दुष्प्रयोग-अन्य पापों को छोड़कर पुनः अपने लोह के चले गये। इसलिये जो कोई वहाँ पवित्र होकर सगम में स्नान करता और

य कुप्यत्सगमे पुण्ये ससारे न भवेत्पुन । एकोनविंशतिशत तीर्थाना तीरयोर्द्वयो ॥
नानाजन्मार्जिताशेषपापक्षयविधायिनाम् ॥२७॥

इति श्रीमहापुराण आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये 'वाणीसगमवागोश्वराद्युभयतटस्थेकोन
विंशतिशततीयवर्णन नाम षट्त्रिंशदधिकशततमोऽध्याय ॥१३५॥
गीतमीमाहात्म्ये षट्षष्टितमोऽध्याय ॥६६॥

अर्थ षट्त्रिंशदधिकशततमोऽध्याय

विष्णुतीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

विष्णुतीर्थमिति ख्यात तत्र द्यूतमिदं शृणु । मोदगल्य इति विख्यातो मुदगलस्य सुतो ऋषि ॥१॥
तस्य भार्या तु जायाला नाम्ना ख्याता सुपुत्रिणी । पिता ऋषिस्तथा द्यूतो मुदगलो लोकविश्रुत ॥२॥
तस्य भार्या तथा ख्याता नाम्ना भागीरथी शुभा । स मोदगल्यः प्रातरैव गङ्गा स्नाति यतव्रत ॥३॥
नित्यमत्र त्रिद कर्म तस्याऽऽसीन्मुनिसत्तम । गङ्गातीरे कुशैर्नृद्धिः 'शमीपुष्पैरहनिशम ॥४॥

वागीश्वर का वचन करता है वह इतने से ही मुक्ति प्राप्त कर लेता है । जो उस पुण्य सगम पर दान होम और
उपवास आदि अनुष्ठानों को करता है उसका पुन ससार में जन्म नहीं होता है । इसने अतिरिक्त वहाँ दोन
सठों पर अनेक जमों के उपाजित पाप को नष्ट करने वाले उन्नीस सौ तीर्थ हैं ॥२०-२७॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में वाणीसगम आदि के दोनों सठों पर स्थित उन्नीस सौ तीर्थों का वचन
नामक एक सौ पैंतीसवाँ अध्याय समाप्त ॥१३५॥

अध्याय १३६

विष्णुतीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा ने कहा—(इसके बाद) विष्णुतीर्थ नामक एक तीर्थ है । वहाँ जो घटना हुई उसको सुनो । मुदग
ऋषि ने मोदगल्य नामक प्रसिद्ध पुत्र था । उसकी सुपुत्रवती जायाला नाम की पत्नी थी । उसके पिता द्यूत मुदगल
भी लोक प्रसिद्ध ऋषि थे । उसी प्रकार उनकी भागीरथी नाम की भार्या भी भगवन्मयी थी । वह पत्नी मोदगल प्रात
काल ही नियमत गंगा में स्नान करता था । मुनिब्रह्म । उसका यह वित्त का कर्म था । गंगा-तीर पर प्रतिदिन
वह मोदगल कुशा मृत्तिका और शमीपुष्प अ दिस मधियोंसे पित द्वारा बताई विधि में अनुसार अपने मानस रूपी

गृहदितेन मार्गेण स्वमानससरोरुहे । आवाहनं नित्यमेव विष्णोश्चक्रे स मौद्गलिः ॥५॥
 तेनाञ्जहूतस्त्वरत्रेति लक्ष्मीभर्ता जगत्पतिः । वैनतेयमयाञ्जहू शङ्खचक्रगदाधरः ॥६॥
 पूजितस्तेन श्रुपिणा स मौद्गल्येन यत्नतः । प्रव्रूते च कथाश्चित्रा मौद्गल्याय जगत्प्रभुः ॥७॥
 ततोऽनराहूणसमये विष्णुः प्राह स मौद्गलिम् । याहि वत्स स्वभवनं ध्यान्तोऽसीति पुनः पुनः ॥८॥
 एवमुक्तः स देवेन विष्णुना याति स द्विजः । जगत्प्रभुस्ततो याति देवैर्युक्तः स्वमन्दिरम् ॥९॥
 मौद्गल्योऽपि तयाऽभ्येत्य किञ्चिदादाय नित्यशः । स्वमेव भवनं विद्वान्भार्यायै स्वाजितं धनम् ॥१०॥
 ददाति स महाविष्णुचरणाब्जपरायणः । मौद्गल्यस्य प्रिया साऽपि पतिव्रतपरायणा ॥११॥
 शाकं मूलं फलं वाऽपि भर्ताऽनीत तु यत्नतः । सुसंस्कृत्याप्यतिथौना बालानां भर्तुरेव च ॥१२॥
 दत्त्वा तु भोजनतेभ्यः पश्चाद्भुङ्क्ते यतव्रता । भुक्तवत्स्वयं सर्वेषु रात्रौ नित्यं स मौद्गलिः ॥१३॥
 विष्णोः श्रुताः कथाश्चित्रास्तेभ्यो वक्तव्यं ह्यपि । एव बहुतिथे काले ध्यतीते चातिविस्मिता ॥
 मौद्गल्यस्य रहो भार्या भर्तारं वाक्यमब्रवीत् ॥१४॥

जावालोयाच

यवि ते विष्णुरभ्येति समीपं त्रिदत्ताचित । तयाऽपि कष्टमस्माकं कस्मादिति जगत्प्रभुम् ॥१५॥
 तत्पुच्छं त्वं महाप्राज्ञ यदाऽसौ विष्णुरेति च । यस्मिंश्च स्मृतमात्रे तु जराजन्मरुजौ मृतिः ॥
 नाशं यान्ति कुतो बृद्धे तस्मात्पुच्छं जगत्पतिम् ॥१६॥

कमल म विष्णु का नित्य आवाहन करता था । उसने आह्वान को सुनकर जगत्पति और लक्ष्मी के पति शङ्ख-चक्र-गदा-धारी विष्णु गृह पर सवार होकर दीर्घ चल आते थे । श्रुति मौद्गल्य उनकी भक्तिपूर्वक भलीभाँति पूजा करता था । पूजा से प्रसन्न होकर भगवान् जगन्नाथ उससे तरह की कथायें कहा करते थे । तदनन्तर अनराहूण काल में विष्णु मौद्गलि से कहते 'वत्स' । तुम अब अधिक थक गये हो, अपने भवन को जाओ ॥१-८॥ इस प्रकार विष्णु के कहने पर वह ब्राह्मण घर जाता था । तब स्वयं भगवान् भी देवा के साथ अपने मन्दिर को जाते थे । वह विष्णु के चरण-भस्मों में अनन्य निष्ठा रखने वाला विद्वान् मौद्गल्य प्रतिदिन इस प्रकार भगवान् का मुखद दान पाता था । बाद में थोड़ा सा धन भी क्या लेता था और उस धन का घर लज्जाकर अपनी भार्या को दे देता था । उसकी वह प्रिया भार्या भी अति पतिव्रता थी । पति के द्वारा लाये हुए शाक, मूल और चूने को यत्नपूर्वक स्वच्छ करके रखती थी । बड़े प्रेम से अतिथि, बालक और पति को भोजन करा कर पीछे वह व्रतिनी स्वयं भोजन करती थी । मगर भोजन कर लेने के बाद रात्रि में वह मौद्गलि विष्णु से गुनी हुई अनुभम कथा को बड़ी प्रसन्नता से अपने उन बाल-बच्चों को सुनाया करता था । इस प्रकार बहुत समय बीत गया । एक दिन पत्नी अत्यन्त विस्मित होकर अपने पति से एकान्त में बोली ॥९-१४॥

जावाला ने कहा—जब कि स्वयं दब-पूज्य विष्णु तुम्हारे पास आते हैं तब हम लोगों को इतना कष्ट क्या सहन करना पड़ता है ? इस बात को जब जगत्प्रभु तुम्हारे पास आये तब हे महामति ! तुम (उनसे) पूछना । त्रिमूर्ति स्मरण मात्र से जरा, जन्म और मृत्यु सम्बन्धी व्याधि ही नष्ट हो जाती है उसने दान पाने पर हमारी विपत्तियाँ क्यों नहीं नष्ट होती । इसलिए इस रहस्य को जगत् के स्वामी से पूछो ॥१५-१६॥

ब्रह्मोवाच

तयेत्युक्त्वा प्रियावाक्यान्मोद्गत्यो नित्यवद्धरिम् । पूजयित्वा विनीतश्च पप्रच्छ स कृताञ्जलिः ॥१७॥

मौद्गल्य उवाच

त्वयि स्मृते जगन्नाथ शोकदारिद्र्यदुष्कृतम् । नाश याति विपत्तिर्मे त्वयि दृष्टे कथं स्थिता ॥१८॥

श्रीविष्णु उवाच

स्वकृतं भुज्यते भूतैः सर्वैः सर्वत्र सर्वदा । न कोऽपि कस्यचित्किञ्चित्करोत्यत्र हिताहिते ॥१९॥

यादृश चोप्यते बीज कलं भवति तादृशम् । रसालः स्थाप्र निम्बस्य बीजाज्जातवपि कुत्रचित् ॥२०॥

न कृता गीतमोसेवा नार्चितौ हरिशकरो । न दत्तं यैश्च विप्रेभ्यस्ते कथं भाजनं श्रियः ॥२१॥

स्वया न दत्तं किञ्चित्च ब्राह्मणेभ्यो भमापि च । यदीयते तदेवेह परस्मिन्चोपतिष्ठति ॥२२॥

मृद्भिर्बाभिः कुशैर्मन्त्रैः क्षुचिकर्म सर्वैव यत् । करोति तस्मात्पूतात्मा शरीरस्य च शोषणात् ॥२३॥

विना दानेन न क्वापि भोगावाप्तिर्नृणां भवेत् । सत्कर्मचरणाच्छुद्धो विरक्तः स्यात्ततो नरः ॥२४॥

ततोऽप्रतिहतज्ञानो जीवन्मुक्तस्ततो भवेत् । सर्वेषां सुलभा मुक्तिर्मद्भक्त्या चेह पूर्वतः ॥२५॥

भुक्तिर्दानादिना सर्वंभूतदुःखनिवर्हणात् । अथवा लप्स्यसे मुक्तिं भक्त्या भुक्तिं न लप्स्यसे ॥२६॥

ब्रह्मा ने कहा—‘ऐसा ही बर्हण’ यह बहकर प्रिया ने कबनानुसार उस श्रयि ने नित्य को भीति हरि की पूजाकर विनीत भाव से हाथ जोड़कर पूछा ॥१७॥

मौद्गल्य ने कहा—जगन्नाथ ! तुम्हारे स्मरण मान से मनुष्यों के शोक, दारिद्र्य और पापकर्म नष्ट हो जाते हैं। तब आपने दर्शन करने पर भी क्या मेरी विपत्तियाँ ज्यों की त्यों बनी हुई हैं ? ॥१८॥

श्री विष्णु ने कहा—सब सर्वदा अपने जिये बर्माँ का फल भोगते हैं। कोई भी किसी का इस सत्कार में हित या अहित नहीं करता। जैसे बीज बोया जाता है, वैसे ही फल भी मिलता है। वही पर भी मीम के बीज से आम का शीषा नहीं उगता। जितनी जे बनी गीतमी की सेवा नहीं की, हरि शकरी की अर्चना नहीं की, ब्राह्मणों को भोजन-दान नहीं दिया वे किस प्रकार लक्ष्मी के अधिकारी हो सकते हैं। तुमने आज तक किसी ब्राह्मण को अथवा मुसको कुछ नहीं दिया। जो कुछ दूसरों को दिया जाता है, वही इस लोक और परलोक में प्राप्त होता है। तुम जो सर्व मिट्टी, जल, कुश और मग्न्यासे सुचिबर्म करत हो, इसलिये शरीर से बष्ट सत्ते हुए भी पुनीत आ मा बाले हो। विना दान के वही भी मनुष्य को भोग-मुक्त की प्राप्ति नहीं होती। सत्कर्म के आचरण से मनुष्य मुक्त हो जाता है। बाद में यह विरक्त हो जाता है। इससे बाद यह अकाषित ज्ञान प्राप्त करता है। तत्पश्चात् यह जीवन्मुक्त हो जाता है। मेरी भक्ति और पूर्व कर्मों (दातृत्व आदि जोदवाने और मदिर बनकाने) से सब मनुष्यों के लिये इस लोक में मुक्ति सुलभ है। दान आदि देने और सब प्राणियों से दुःख दूर करने से मुक्ति या मुक्ति अवश्य प्राप्त होती है, किन्तु केवल भक्ति से मुक्ति नहीं मिलती ॥१९-२६॥

मौद्गल्य उवाच

भक्त्या मुक्तिं कथं भूयाद्भुक्तेर्भुक्तिं सुदुर्लभा । जाता चेद्देहिना मुक्तिं किमन्येन प्रयोजनम् ॥२७॥
भक्त्या मुक्तिं सर्वपूज्या तामिच्छेय जगन्मय ॥२८॥

विष्णु उवाच

एतदेवान्तरं ब्रह्मन्दीयते मामनुस्मरन् । ब्राह्मणायाथवाऽर्थिभ्यस्तदेवाक्षयतां व्रजेत् ॥२९॥
मामध्यात्वाऽथ 'यद्दद्यात्तत्तन्मात्रफलप्रदम् । तत्पुनर्दत्तमेवेह न भोगायात्र फलपते ॥३०॥
तस्माद्देहि महाबुद्धे भोज्यं किञ्चिन्मम ध्रुवम् । अथवा विप्रमुह्याय गौतमीतीरमाश्रित ॥३१॥

ब्रह्मोवाच

मौद्गल्य प्राह तं विष्णु देयं मम न विद्यते । नान्यत्किञ्चन देहादि यत्तत्त्वयि समर्पितम् ॥३२॥
ततो विष्णुर्गच्छन्तं प्राह शीघ्रं जगत्पति । इहाऽऽनयस्व कण्ठिना ममाय चार्पयिष्यति ॥३३॥
ततो योगदानय भोगान्प्राप्स्यते धनस्य प्रियान् । आकर्ण्य स्वामिनाऽऽदिष्टं तया चक्रे स पक्षिराट् ॥३४॥
विष्णुहस्ते कणान्प्रादात्स मौद्गल्यो यतव्रत । एतस्मिन्नन्तरे विष्णुविदवकर्माणमब्रवीत् ॥३५॥

मौद्गल्य ने कहा—भुक्ति से मुक्ति कंते प्राप्त हो सकती है भुक्ति से तो मुक्ति अत्यन्त दुर्लभ है ? यदि भुक्ति से ही मुक्ति मिल जाय तो मनुष्य को अथ वस्तु की आवश्यकता ही नहीं ? जगन्मय ! यदि मुक्ति से मिली भुक्ति स्वमान्य है तो मैं उसी को चाहता हूँ ॥२७ २८॥

विष्णु ने कहा—दान देने के भी कई भाग हैं । ब्रह्मन् ! उनमें अन्तर यह है कि जो दान ब्राह्मणों या पाचकों को मेरा स्मरण करते हुए दिया जाता है वह अक्षय्य हो जाता है । और जो मर स्मरण के बिना दिया जाता है उससे केवल उतन परिमाण भी फल मिलता है । वह दिया हुआ दान तो केवल दान-मय है वह इस जीवन में भोग-मुख का कारण नहीं बनता । अतएव महाबुद्ध ! मुझको कुछ अवश्य दो अथवा इस गौतमी के तीर पर शय्य ब्राह्मण को दो ॥२९ ३१॥

ब्रह्मा ने कहा—यह सुनकर मौद्गल्य ने भगवान् विष्णु से कहा कि परन्तु मेरे पास इस समय कुछ भी देने योग्य नहीं है । देह को छोड़ कर और कुछ नहीं है । वह भी आपको अर्पित हो चुकी है । तदनन्तर जगत्पति विष्णु ने गण्ड सन्निध ब्रह्मा सुम यहाँ कुछ अन्न के दान ले आओ जिसको यह मेरा भक्त मुझको देकर उचित मनो वाञ्छित भोगों को प्राप्त कर सके । स्वामी की आज्ञा को सुनकर पक्षिराज ने शीघ्र उसका पालन किया । तब व्रती मौद्गल्य ने विष्णु के हाथ में अन्न-वर्ण को रख दिया । इसी बीच विष्णु ने विन्ववर्मा से कहा ॥३२ ३५॥

विष्णुखाच

यावच्चास्य कुले सप्त पुरुषास्तावदेव तु । भवितारो महाबुद्धे तावत्कामा मनोपिताः ॥

गावो हिरण्यं धान्यानि वस्त्राण्याभरणानि च ॥३६॥

ब्रह्मोवाच

यच्च किञ्चिन्मन प्रीत्यै लोके भवति भूषणम् । तत्सर्वमाप्तमौद्गल्यो विष्णुगङ्गाप्रभावतः ॥३७॥

गृहं गच्छेति मौद्गल्यो विष्णुनोक्तस्ततो ययौ । आश्रमे स्वस्य सर्वार्थं दृष्ट्वा ऋषिरभापत ॥३८॥

ऋषिखाच

अहो दानप्रभावोऽयमहो विष्णोरनुस्मृतिः । अहो गङ्गाप्रभावश्च कविचार्यो महानयम् ॥३९॥

ब्रह्मोवाच

मौद्गल्यो भार्यया सार्धं पुत्रैः पौत्रैश्च बन्धुभिः । पितृभ्यां ब्रभुजे भोगान्भुक्तिं भुक्तिमवाप च ॥४०॥

ततः प्रभूतिं तत्तोर्थं मौद्गल्यं वैष्णवं तथा । तत्र स्नानं च दानं च भुक्तिभुक्तिफलप्रदम् ॥४१॥

तत्र श्रुतिः स्मृतिर्विधिः तीर्थस्य स्यात्कथंचन । सत्यं विष्णुर्भवेत्प्रीतः पापमुक्तः सुखी भवेत् ॥४२॥

एकादश सहस्राणि तीर्थानां तीर्थोद्दयोः । सर्वार्थदायिनां तत्र स्नानदानजपादिभिः ॥४३॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये मौद्गल्यविष्णुतीर्थार्थिकादशसहस्र-

तीर्थवर्णनं नाम पट्त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥१३६॥

गौतमीमाहात्म्ये सप्तपण्डिततमोऽध्यायः ॥६७॥

विष्णु ने कहा—महाबुद्धि ! जब तक इसके कुल में सात पुत्र (सात पीढ़ियों तक के पुत्र) हो तब तक के लिये मनबाही इच्छाएँ अर्थात् गौ, शीता, अन्न, वस्त्र और आमूषण आदि इसके घर में हो जायें । ॥३६॥

ब्रह्मा ने कहा—इस ससार में मन की प्रिय लगने वाले जो कुछ आमूषण या पदार्थ हो सकते हैं, वे सब सामयिकी विष्णु और गंगा के प्रभाव से मौद्गल्य को प्राप्त हो गईं । तब विष्णु ने मौद्गल्य को घर आने की आज्ञा दी । वह अपने घर गया । अपने आश्रम को सब प्रकार के ऐश्वर्यों से परिपूर्ण देखकर ऋषि ने कहा ॥३७-३८॥

ऋषि ने कहा—अहा ! यह दान का प्रभाव है ! यह विष्णु की उपासना का प्रभाव है । अहा ! यह गंगा का प्रभाव है । कौन इस महान् प्रभाव को जान सकता है ॥३९॥

ब्रह्मा ने कहा—नार्य, पुत्र, पौत्र, भाई, बन्धु और माता पिता के सहित मौद्गल्य ने विविध भोगों को भोग कर भुक्ति और मुक्ति दोनों को प्राप्त किया । उस समय से वह तीर्थ मौद्गल्य और वैष्णव तीर्थ कहा जाता है । उसमें स्नान-दान करने से भुक्ति एवं मुक्ति की प्राप्ति होती है । यदि किसी प्रकार किसी को उग तीर्थ का नाम-श्रवण हो जाय तो उस व्यक्ति पर विष्णु प्रसन्न हो जाते हैं और वह सब पापों से मुक्त होकर सुखी हो जाता है । उगने दोनो तीर्थ पर स्नान, दान और जप से सब प्रकार के अनोखे सिद्ध करने वाले ग्यारह हजार तीर्थ हैं ॥४०-४३॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में मौद्गल्य विष्णुतीर्थ आदि ग्यारह हजार तीर्थों का वर्णन नामक एक सो छत्तीसवाँ अध्याय समाप्त ॥१३६॥

अथ सप्तत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः

लक्ष्मीतीर्थवर्णनम्

ॐ

ब्रह्मोवाच

लक्ष्मीतीर्थमिति ह्यातं साक्षाल्लक्ष्मीविवर्धनम् । अलक्ष्मीनाशनं पुण्यमाख्यानं शृणु नारद ॥१॥
सवादश्च पुरा त्वासील्लक्ष्म्याः पुत्र दरिद्रया । परस्परविरोधिन्यावुभे विद्वं समीपतुः ॥२॥
ताम्यामव्यापृतं यस्तु तत्रास्ति भुवनत्रये । मम जेष्ठ्यं मम ज्येष्ठ्यमित्यूचतुर्भे मिथः ॥
अहं पूर्वं समुद्भूता इत्याह श्रियभोजसा ॥३॥

श्रीलक्ष्मीरुवाच

कुलं शीलं जीवितं वा देहिनामहमेव तु । मया येना देहभाजो जीवन्तोऽपि मृता इव ॥४॥
ब्रह्मोवाच

दरिद्रया च सा प्रोक्ता सर्वेभ्यो ह्यधिका ह्यहम् । मुक्तिमंदाभिता नित्य दरिद्रवं वचोऽब्रवीत् ॥५॥
कामः क्रोधश्च लोभश्च मदो मात्सर्यमेव च । यत्राहमस्मि तत्रंते न तिष्ठन्ति कदाचन ॥६॥
न भयोद्भूतिरन्माव ईर्ष्या उद्वतवृत्तिता । यत्राहमस्मि तत्रंते न तिष्ठन्ति कदाचन ॥७॥
दरिद्रया वचः श्रुत्वा लक्ष्मीस्तां प्रत्यभाषत ॥८॥

अध्याय १३७

लक्ष्मीतीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा ने कहा—(इसके बाद) साक्षात् लक्ष्मी ने बो बड़ाने वाला लक्ष्मी-तीर्थ नामक एक प्रसिद्ध तीर्थ है ।
नारद ! उसरी दरिद्रतानाशक पवित्र कथा को सुनो । पुनः आज से बहुत पहले लक्ष्मी का दरिद्रता के साथ सवाद
हुआ । परस्पर विवाद करती हुई वे दोनों सत्कार में आईं । तीनों भुवन में कोई भी ऐसा पदार्थ नहीं जो उनसे अछूता
बचा हो । दोनों परस्पर में बड़ी हूँ, मैं बड़ी हूँ, कहने लगी । दरिद्रता ने बड़े तराफ से लक्ष्मी से कहा कि मैं पहले
उत्पन्न हुई हूँ । यह सुन कर लक्ष्मी ने कहा ॥१-३॥

श्रीलक्ष्मी ने कहा—प्राणियों का कुल, शील और जीवन मैं ही हूँ । मेरे बिना प्राणी जीते हुए भी मेरे ने
समान हैं ॥४॥

ब्रह्मा बोले—दरिद्र ने लक्ष्मी से कहा—‘सबसे श्रेष्ठ मैं हूँ । मुक्ति सर्वदा मेरे ही अधीन है ।’ फिर
दरिद्र ने ऐसा कहा कि जहाँ मैं रहती हूँ वहाँ नाम क्रोध, लोभ, मद और मात्सर्य सभी की टिक्के नहीं पाते । जहाँ मैं
रहती हूँ वहाँ भय, उन्माद, ईर्ष्या और उद्वेग-व्यवहार सभी भी नहीं रहते हैं । दरिद्रा की बातों को सुनकर लक्ष्मी ने
प्रत्युत्तर दिया ॥५-८॥

लक्ष्मीवाच

अलकृतो मया जन्तु सर्वो भवति पूजित । निर्धनं शिवतुल्योऽपि सर्वे रप्यभिभूयते ॥९॥
 देहोति वचनद्वारा देहस्या पञ्च देवता । सद्यो निर्गत्य गच्छन्ति धीश्रीहोशान्तिकोतय ॥१०॥
 तावद्गुणा गुणत्व च यावन्नाथयते परम् । अर्थो चेत्पुरुषो जात क्व गुणा क्व च गौरवम् ॥११॥
 तावत्सर्वोत्तमो जन्तुस्तावत्सर्वगुणालय । नमस्य सर्वलोकाणां यावन्नाथयते परम् ॥१२॥
 कष्टमेतन्महापाप निर्धनत्व शरीरिणाम् । न भानयति नो ववित न स्पृश्यधन जन ॥१३॥
 अहमेव तत श्रेष्ठा दरिद्रे शृणु मे वच ॥१४॥

ब्रह्मोवाच

तल्लक्ष्मीवचनं श्रुत्वा दरिद्रा वाक्यमब्रवीत् ॥१५॥

दरिद्रोवाच

वस्तु न लक्ष्मीर्गोष्ठ्याहमिति वै लज्जते मुहु । पापेषु रमसे नित्य विहाय पुरुषोत्तमम् ॥१६॥
 विश्वस्तवञ्चका नित्य भवतो इलापसे कथम् । सुख न तादृक्त्वत्प्राप्तौ पश्चात्तापो यया गृह ॥१७॥
 न तथा जायते पुसा सुरया दारुणो मद । त्वत्सन्निधानमात्रेण यया वै विदुषामपि ॥१८॥

लक्ष्मी ने कहा—मुझसे अलकृत साधारण मनुष्य भी सम्मान पाता है । निर्धन मनुष्य चाहे जिस के तुल्य ही कभी न हो वह सबसे अपमानित होता है । 'दो इस सत्य को सुनते ही देह म रहने वाले धी धी ही शान्ति और कीर्ति में पाँच देवता तुरत देह से निकट कर चले जाते हैं । मनुष्य मे तब तक ही सारे गुण और महता रहती है जब तक कि वह दूसरो से याचना नहा करता । यदि गुण याचना बन गया तब तो वहाँ के गुण और वहाँ के गौरव । मनुष्य तब तक ही सर्वश्रेष्ठ सब गुण का घर और सब लोग का पूज्य होता है जब तक वह दूसरो से याचना नहीं करता । मनुष्या के जिस निपनता महापाप है बहुत बडा कष्ट है । मनुष्य निपन ध्यस्तिन का न तो मान करता है न उससे बोझता है वहाँ तक कि उसका स्थान भी नहीं करता है । दरिद्र । मरी बात सुनो । इसागि मैं ही तुमसे श्रेष्ठ हूँ ॥९१४॥

ब्रह्मा ने कहा—लक्ष्मी की बड़ी-बड़ी बातों को सुनकर दरिद्रा ने कहा ॥१५॥

दरिद्रा ने कहा—लक्ष्मी । मैं बेघी हूँ यह कहने क्या तुमको फिर लज्जा नहीं हो रही है ? तुमको पता नहीं कि तुम पुरुषोत्तम (महाना और सतुल्य) को छोड़कर पापियों के साथ रहा करती है । विवाह पात्रा के साथ नित्य प्रवचना करने वाली तुम क्या बड़-बड़कर बातें बना रही हो ? तुमको पाने से मनुष्य इनका अधिक मुग नहीं पाना जिसका अधिक परवाताप । मनुष्या को सुख-पान से भी उनका बना नहीं होता जिसका तुम्हारे साथ रहने

सदैव रमसे लक्ष्मी प्रापस्त्व पापकारिषु । अह वसामि योग्येषु धर्मशीलेषु सर्वदा ॥१९॥
 शिवविष्ण्वनुरक्तेषु कृतज्ञेषु महत्सु च । सदाचारेषु शातेषु गुरुसंबोधतेषु च ॥२०॥
 सत्सु विद्वत्सु शूरेषु कृतबुद्धिषु साधुषु । निवसामि सदा लक्ष्मीस्तस्माद्यष्टय मयि स्थितम् ॥२१॥
 ब्राह्मणेषु शुचिष्मत्सु व्रतचारिषु भिक्षुषु । निर्भयेषु वसिष्णवामि लक्ष्मीस्त्व द्रुण ते स्थितिम् ॥२२॥
 राजर्वातिषु पापेषु निष्ठुरेषु खलेषु च । पिशुनेषु च दुग्धेषु विकृतेषु शठेषु च ॥२३॥
 अनार्येषु कृतघ्नेषु धर्मघातिषु सर्वदा । मित्रद्रोहिण्यनिष्ठेषु भग्नचित्तेषु वतसे ॥२४॥

ब्रह्मोवाच

एव विवदमाने ते जग्मतुर्भामुभे अपि । तयोर्वावयमुपभृत्य मयोक्ते ते उभे अपि ॥२५॥
 मत्त पूर्वंतरा पृथ्वी आप पूर्वंतरास्तत । स्त्रीणां विवाद ता एव स्त्रियो जानति मेतरे ॥२६॥
 विदोवत पुनस्ताम्य कमण्डलुभवाश्च या । तत्रापि गौतमी देवी निश्चय कथयिष्यति ॥२७॥
 सैव सर्वातिशहस्रां सैव सदेहकर्तरी । ते मद्वाक्यादनुव गत्वा भूम्या च सहिते अपि ॥२८॥
 अद्भिश्च सहिता सर्वा गौतमी यपुरापगाम् । भूमिरापस्तयोर्वावय गौतम्ये क्रमश स्फुटम् ॥२९॥
 सर्वं निवेदयामासुर्वावावृत्त प्रणम्य ताम् । दरिद्रायाश्च लक्ष्म्याश्च वापय मध्यस्थवत्सदा ॥३०॥

से चाहे वे विद्वान् ही क्यों न हों । लक्ष्मी ! प्राय तुम सर्वदा पाप कम करने वालों के साथ ही रमा करती हो । इसके विपरीत मैं सर्वदा योग्य धर्म प्रेमी व्यक्तियों के समीप रहती हूँ । लक्ष्मी ! मैं सर्वदा सज्जन विद्वान् शूर बुद्धिमान् साधु शिव और विष्णु के भक्त महान् व्रतग सदाचार-दरायण शान्त और गुरु-सेवा में तत्परता दिखाने वाले जना के समीप रहा करती हूँ इसलिये अष्टता मुझमें है । लक्ष्मी ! (मेरे अन्य वास-स्थानों को भी सुन लो) मैं शुद्ध ब्राह्मण पवित्रारामा व्रत प्रेमी त्यागी मित्र और निर्भीक जनों के समीप ही निवास करती हूँ । तुम तो राजा के चापलूस या सेवक पापी निष्ठी दुष्ट धुल्लूखीर हत्यारे शठ विकृत (बचल) अनाथ कृतघ्न धर्म द्रोही मित्र-द्रोही अनिष्ट करने वाले और रुखे लानो से ही सर्वदा प्रेम करती हो ॥१९-२४॥

ब्रह्मा ने कहा—इस प्रकार परस्पर विवाद करती हुई वे दोनों मेरे पास आई । उनकी बातों को सुनकर मैंने उन दोनों से कहा मुझसे पूर्व पृथ्वी हुई उससे भी पूर्व अर्ध (जल) । स्त्रियों के विवाद का निपटारा वे स्त्रियाँ ही जानती हैं दूसरे नहीं । उनमें भी विशेष रूप से जो मेरे कमण्डलु से उत्पन्न नदियाँ हैं वे पूषण रहस्य हैं । उनमें भी गौतमी देवी निश्चय ही तिणम कर देगी । वही सब दुखों को नष्ट करने वाली है सदेहों का वाटन करने वाली छुटी भी वही है । वे दोनों मेरे वचनानुसार पृथ्वी के पास गई । भूमि के सहित वे दोनों जल के समीप गई । वहाँ से वे सब गौतमी नदी के पास गई । गौतमी को प्रणाम कर भूमि और जल ने उन दोनों के कथन को प्रमाण स्पष्ट रूप से जसा कि दोनों कहती थीं कह सुनाया । नारद ! तब दरिद्रा और लक्ष्मी के वाक्या को सुनकर वह गौतमी गंगा

शृण्वत्सु लोकपालेषु शृण्वत्यां भुवि नारद । शृण्वतीष्वप्सु सा गङ्गा दरिद्रां वाक्यमब्रवीत् ॥
सप्रशस्य तथा लक्ष्मीं गौतमीं वाक्यमब्रवीत् ॥३१॥

गौतम्युवाच

ब्रह्मश्रीश्च तपःश्रीश्च यज्ञश्रीः कीर्तिसंज्ञिता । धनश्रीश्च यशःश्रीश्च विद्या प्रज्ञा सरस्वती ॥३२॥
भुक्तिश्रीश्चाय भुक्तिश्च स्मृतिर्लज्जा धृतिः क्षमा । सिद्धिस्तुष्टिस्तथा पुष्टिः शान्तिरापस्तथा महौ ॥३३॥
अहशक्तिरथोपध्य भुक्ति शुद्धिविभावरी । योग्यैस्त्ना आश्रितः स्वस्तिर्व्याप्तिर्माया उपा शिवा ॥३४॥
यत्किंचिद्विद्यते लोके लक्ष्म्या व्याप्तं चराचरम् । ब्राह्मणेष्वथ धीरेषु क्षमावत्स्वय साधुषु ॥३५॥
विद्यायुक्तेषु चान्येषु भुक्तिमुक्त्पयन्सारिषु । यद्यद्रम्यं सुन्दरं वा तत्तल्लक्ष्मीवज्जम्भितम् ॥३६॥
किमत्र बहुनोक्तेन सर्वे लक्ष्मीमयं जगत् । यस्मिन्कास्मिञ्च यत्किंचिदुत्कृष्टं परिदृश्यते ॥३७॥
लक्ष्मीमयं तु तत्सर्वं तथा होतं न किञ्चन । अत्रेमां सुन्दरीं देवीं स्पर्धयन्ती न लज्जते ॥३८॥
गच्छ गच्छेति तां गङ्गा दरिद्रां वाक्यमब्रवीत् । ततः प्रभृति गङ्गाम्भो दरिद्रावैरकार्यभूत ॥३९॥
तावदरिद्राभिभवो गङ्गा यावन्न सेव्यते । ततः प्रभृति सतीर्थमलक्ष्मीनाशनं शुभम् ॥४०॥
तत्र स्नानेन दानेन लक्ष्मीवान्पुण्यवान्भवेत् । तीर्थानां पदसहस्राणि तस्मितीर्थं महामते ॥
देवैर्मनुजिजुष्टाना सर्वसिद्धिप्रदायिनाम् ॥४१॥

इति श्रीमहापुराणे आदित्राहो तीर्थमाहात्म्ये लक्ष्मीतीर्थार्थिपदसहस्रतीर्थवर्णनं नाम

सप्तत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥१३७॥

गौतमीमाहात्म्येऽष्टषष्टितमोऽध्यायः ॥६८॥

मध्यस्थ के समान लोक पालो, पृथ्वी और जल को सुनाती हुई लक्ष्मी की प्रशंसा करके दरिद्रा से बोली ॥२५-३१॥

गौतमी ने कहा—ब्रह्मश्री, तप श्री, यज्ञश्री, कीर्ति नामक श्री, धनश्री, यश श्री, विद्या, प्रज्ञा, सरस्वती,

भुक्तिश्री भुक्ति, स्मृति, लज्जा, धृति, क्षमा, सिद्धि, पुष्टि, शान्ति, जल और पृथिवी, एवं आत्मशक्ति इसके बाद ओषधियाँ भुक्ति, शुद्धि उजेली रात, आकाश, ज्योत्स्ना (चाँदनी) आशीर्वाद, स्वस्ति, व्याप्ति, माया, उपा, शिवा अथवा जो कुछ इस लोक में है—यह सारा चराचर लक्ष्मी से व्याप्त है । इसके अनन्तर ब्राह्मणों, धीरों, क्षमावानों, साधुओं, विद्वानों अथवा अन्य भुक्ति भुक्ति के अनुयायियों में जो कुछ रमणीयता या सुन्दरता दिखाई देती है वह सब कुछ लक्ष्मी का ही प्रसार है । और अधिक क्या कहा जाय, सारा जगत् लक्ष्मीमय है । जिस किसी में जो कुछ उत्कृष्टता दिखाई देती है वह सब कुछ लक्ष्मीमय है, उससे रहित कोई भी वस्तु नहीं । तुम इस विषय में लक्ष्मी से प्रतिस्पर्धा करने में लज्जती नहीं ? गंगा ने उस दरिद्रा से कहा । यहाँ से चली जाओ । जाओ । तब से गंगाजल दरिद्रा का शत्रु बन गया । दरिद्रा से दुख उभरी तक होता है जब तक कि गंगा की सेवा नहीं की जाती । उस समय से वह तीर्थ पवित्र और दरिद्रता को मगाने वाला हो गया । वहाँ स्नान और दान करने से मनुष्य धनवान् और पुण्यवान् होता है । महामति । उस तीर्थ में सब प्रकार की सिद्धियाँ देने वाले छह हजार तीर्थ हैं, जिनमें स्नान और वास करने के लिये देवता, ऋषि और मुनि भी लालायित रहते हैं ॥३२-४१॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में लक्ष्मी-तीर्थ आदि छह हजार तीर्थों का वर्णन नामक एकसौ सैंतीसवाँ अध्याय समाप्त ॥१३७॥

अथाष्टाविंशदधिकशततमोऽध्यायः

भान्वादित्रिसहस्रतीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

भानुतीर्थमिति ख्यात सर्वसिद्धिकरं नृणाम् । तत्रेदं वृत्तमाख्यास्ये महापातकनाशनम् ॥१॥
 शर्पातिरिति विख्यातो राजा परमधार्मिकः । तस्य भार्या स्वयच्छेति रूपेणाप्रतिमा भुवि ॥२॥
 मधुच्छन्दा इति ख्यातो वैश्यामिश्रो द्विजोत्तमः । पुरोधस्तस्य नृपतेर्ब्रह्मणि शमिना प्रभु ॥३॥
 द्विशो विजेतुं स जगाम राजा, पुरोधस्तां तेन नृपप्रवीरः ॥ ॥ ॥
 पुरोधस्तं ब्राह्मं महानुभावं, जित्वा दिशश्चाप्यग्निं सनिधिष्यत् ॥४॥
 पप्रच्छेदं केन खेदं शतोऽसि, हेतुं घटस्येति महानुभावः ॥ ॥
 स्वमेव राज्ये मम सर्वमान्यं, समस्तविद्यानिरवच्छयोऽयं ॥५॥
 विधूतपापं परितापशून्यं, किमन्यचेता इव लक्ष्यसे, त्वम् ॥ ॥ ॥
 जितेयमुखीं विजितां नरेन्द्रा, हृष्यस्य हृती महतीह जाते ॥६॥
 किं त्वं कृशो मे वद सत्यमेव, द्विजातिवर्षातिमहानुभावः ॥ ॥
 सबोध्यं शर्पातिमुवाच, विप्रदण्डो मधुः प्रेममयीं प्रियो वित्तम् ॥७॥

अध्याय १३८

भानु आदि तीन महत्स तीर्थों का वर्णन

ब्रह्मा ने कहा—मनुष्याः को सब सिद्धियाँ दन बाग्य भानुतीर्थ नामक प्रसिद्ध तीर्थ है। वहाँ जो महापापों को दूर करने वाली घटना घटी उसको अब कह रहा हूँ सुन।

शर्पाति नामक एक प्रसिद्ध परम धार्मिक राजा था। उसकी स्वयच्छेति नाम की भाग्य या जो होर में अनुपम सुन्दरी थी। उस नरेन्द्र के मधुच्छन्दा नामक विश्वामित्र-मुनेश्वर उल्लभ ब्राह्मण पुरोहित थे जो विमर्शविद्या में मन्त्रश्रेष्ठ और ब्रह्मविद्ये में। वह मन्त्रश्रेष्ठ राजा अपने उस पुरोहित के साथ दिग्विजय करने चला। सम्पूर्ण शिवाग्र का जीत कर जब लौटने लगा तब रास्ते में महानुभवों पुरोहित से पूछा—‘महानुभाव’। भाव क्या इतने निद्र हैं कृपाकर कारण बताइए। भाव ही मेरे राज्य में स्वभाव हैं समस्त विद्याओं के प्रगल्भीय ज्ञान हैं निष्कार हैं और सत्ता-शून्य हैं फिर क्या भाव भाव अव्ययमनस-मन्त्रिणाई दन हैं। सारी महती वस्तुपरा जीत ली गई परन्तु क्या मैं हो गया इस प्रकार महानु आनन्द की सामग्री या जान कर जीत गया क्या दुःख होने जा रहा है? हे महानुभाव! द्विजातिव्यय। मय सत्य कहिये। विप्र मधुच्छन्दा ख्याति को सबोधित करने हुए इस प्रकार प्रेममय मधुर शब्दों में—॥१-७॥

मधुच्छन्दा उवाच

शृणु भूपाल मद्वाक्य भार्यया यदुदीरितम् । स्थिते यामे वयं यामो यामिनो चार्धंगामिनौ ॥८॥
स्वामिनो चास्य देहस्य कामिनो मा प्रतीक्षते । स्मृत्वा तत्कामिनीवाक्यं शोषं याति कलेवरम् ॥
विकारे स्मरसजाते जीवातुर्नलिनानना ॥९॥

ब्रह्मोवाच

विहस्य चाश्रवीद्राजा पुरोधसमरिदम् ॥१०॥

राजोवाच

त्व गुरर्मम मित्रं च किमात्मानं विडम्बसे । किमनेन महाप्राज्ञं मम वाक्येन मानद ॥
क्षणविध्वंसिनि सुखे का नामाऽऽस्या महात्मनाम् ॥११॥

ब्रह्मोवाच

एतदाकर्ण्य मतिमान्मधुच्छन्दा दचोऽब्रवीत् ॥१२॥

मधुच्छन्दा उवाच

यत्राऽऽनुकूलं वपयोस्त्रिवर्गस्तत्र वर्धते । न चेदं रूपेण राजभूषणं चातिभग्नताम् ॥१३॥

ब्रह्मोवाच

आजगाम स्वकं देशं महत्या सेनया वृतः । परीक्षार्थं च तत्प्रेमं पुर्यां वातमिदीदृशत् ॥१४॥

मधुच्छन्दा बोले—भूपाल ! भार्या ने जो कुछ मुझसे कहा है उसको सुनो । प्रहर बीत जाने पर हम लोग घर जायगे और आज अर्द्ध रात्रि बीत जाने पर मेरे इस शरीर की स्वामिनी मेरे जीवन की सजीवनी कमलमुखी मेरी स्त्री शुद्ध होकर काम मावना से मेरी प्रतीक्षा करती रहेगी । उस कामिनी प्रिया के वाक्यों का स्मरण कर मेरा शरीर सुखता जा रहा है ॥८॥९॥

ब्रह्मा बोले—पुरोहित की बात सुनकर शत्रुविजेता राजा ने हँस कर कहा ॥१०॥

राजा ने कहा—आप मेरे गुरु हैं मित्र हैं । क्यों इस प्रकार अपने को विडम्बना में डाल रहे हैं । मेरे मानद ! महाप्राज्ञ ! इस वाक्य से क्या प्रयोजन । इस क्षणमगुर सुख के पीछे महापुरुषों को इतनी निष्ठा रखने से क्या लाभ ? ॥११॥

ब्रह्मा ने कहा—इस बात को सुनकर मतिमान मधुच्छन्दा ने कहा ॥१२॥

मधुच्छन्दा ने कहा—जहा पति-पत्नी में हृदय की इस प्रकार एकता रहती है वहाँ प्रिय (धर्म अथ काम) की बढती होती है, राजन् ! इसको जीवन का अभिशाप नहीं बरदान मानना चाहिए ॥१३॥

ब्रह्मा ने कहा—राजा अपनी महती सेना के साथ अपने देश में आया । पुरोहित-दम्पती की प्रेम-परीक्षा के लिये उन्होंने राजधानी में द्विद्वारा पिटवा दिया कि दिग्विजय के लिए प्रस्थित राजा शर्यापति को पुरोहित के सहित

दिशो विजेतु शर्यातो याते राक्षसपुंगव । हत्वा रसातल यातो राजान सपुरोधसम् ॥१५॥
 राजो भार्या निश्चयाय प्रवृत्ता मुनिसत्तम । वार्ता श्रुत्वा दूतमुष्टान्मधुच्छन्द प्रिया पुन ॥१६॥
 तदेवाभूद्गतप्राणा तद्विचित्रमिवाभवत् । तस्या वृत्तं तु ते दृष्ट्वा दूता राज्ञे न्यवेदयन् ॥१७॥
 यत्कृत राजपत्नीभिः प्रियया च पुरोधस । विस्मितो दुःखितो राजा पुनर्दूतानभाषत् ॥१८॥

राजोवाच

श्रीमन् गच्छन्तु हे दूता ब्राह्मण्या यत्कलेवरम् । रक्षन्तु वार्तां कुप्सु राजाऽऽगन्ता पुरोधसा ॥१९॥

ब्रह्मोवाच

इति चिन्तातुरे राज्ञि बाणवाचाशरीरिणी

॥२०॥

/ आकाशबाणवाच

विधास्यत्यखिल गङ्गा राजस्तव समोहितम् । सर्वाभिपङ्गशमनी पावनी भूमि गौतमी ॥२१॥

ब्रह्मोवाच

एतच्छृत्वा स शर्यातिर्गौतमीतटमाश्रित । ब्राह्मणेभ्यो धनं दत्त्वा तर्पयित्वा पितृन्दिवान् ॥२२॥

विसी बली राक्षस ने मार डाला और स्वयं रसातल चला गया । दूतों के मुख से ऐसी बातें सुनकर हे मुनिश्रेष्ठ ! राजा की स्त्री इसकी सच्चाई की जाच करने लगी परन्तु मधुच्छन्दा की स्त्री उसी समय निष्प्राण हो गई । इस प्रकार जिलवाड मही एक विचित्र सी घटना हो गई । दूतों ने उसकी इस अवस्था को देखकर राजा से जाकर राज-पत्नियों ने और पुरोहित की स्त्री ने जो कुछ किया वह कह सुनाया । यह सुनकर अत्यन्त विस्मित और दुःखित हुए राजा ने पुनः दूतों से कहा—॥१४ १८॥

राजा ने कहा—दूतों ! श्रीमन् राज्ञो ब्राह्मणी का जो शरीर है उसकी रक्षा करो और ऐसा घोषित कर दो कि राजा पुरोहित के साथ वा रहे हैं ॥१९॥

ब्रह्मा ने कहा—राजा के इस प्रकार चिन्तातुर होने पर आकाशबाणी हुई ॥२०॥

आकाशबाणी ने कहा—राजन् ! तुम्हारी सब कामनाओं को सब आपत्तियों को शान्त करने वाली पृथ्वी की पुनीत नदी गौतमी पूजा कर देसी ॥२१॥

ब्रह्मा ने कहा—यह सुनकर शर्याति ने गौतमीतट पर स्थित होकर ब्राह्मणों को धन दिया तथा पितरों और दिव्यों को तृप्त किया और उस द्विजश्रेष्ठ पुरोहित को बहुत-सा धन देकर विदा किया । इसके अनन्तर स्वयं दूसरे सीर्यों

'पुरोहितं द्विजश्रेष्ठं प्रेषयित्वा धनान्वितम्। अन्यत्र तीर्थं सायंपु दानं देहि (ददी) प्रयत्नतः॥२३॥
 एतत्सर्वं न जानाति राज्ञः कृत्य पुरोहितः। गते तस्मिन्गुरौ राजा वंश्वामित्रे महात्मनि॥२४॥
 सर्वं बलं प्रेषयित्वा गङ्गातीरेऽग्निमाविशत्। इत्युक्त्वा स तु राजेन्द्रो गङ्गां भानुं सुगानपि॥२५॥
 यदि दत्तं यदि द्रुतं यदि व्रता प्रजा मया। तेन सत्येन सा साध्वी ममाऽऽयुष्येण जीवतु॥२६॥
 इत्युक्त्वाऽग्नौ प्रविष्टे तु शर्यातो नृपसत्तमे। तदेव जीविता भार्या राजस्तस्य पुरोधसः॥२७॥
 अग्निप्रविष्ट राजान् ध्रुत्वा विस्मयकारणम्। पतिव्रतां तथा भार्यामृता जीवान्विता पुनः॥२८॥
 तदर्थं चापि राजानं त्यक्तात्मनं विशेषतः। आत्मनश्च पुनः कृत्यमस्मरन्नपतेर्गुरुः॥२९॥
 अहमप्यग्निमावेक्ष्य उत यास्ये प्रियान्तिकम्। अथवेह तपस्तप्ये ततो निश्चयवान्निजः॥३०॥
 एतदेवाऽऽत्मनः कृत्यं मन्ये सुकृतमेव च। जीवयामि च राजानं ततो यामि प्रियां पुनः॥३१॥
 एतदेव शुभं मे स्यात्तत्तस्तुष्टाव भास्करम्। न ह्यन्यः कोऽपि देवोऽस्ति सर्वाभीष्टप्रदो रवेः॥३२॥

मधुच्छन्दा उवाच

नमोऽस्तु तस्मै सूर्याय मुक्तयेऽमिततेजसे। छन्दोमयाय देवाय ओकारार्थाय ते नमः॥३३॥
 विरूपाय सुरूपाय त्रिगुणाय त्रिमूर्तये। स्थित्युत्पत्तिविनाशानां हेतवे प्रभविष्णवे॥३४॥

मे अनुचरो के सहित जाकर बड़े चाव से दान दिया। पुरोहित राजा के इन कार्यों के रहस्य को नहीं जानता था ॥ इस महात्मा विश्वामित्रकुलोत्पन्न गुरु के चले जाने पर राजा ने सब सेनाओं को राजधानी भेज दिया, और स्वयं वह गंगा-तट पर अग्नि भे गंगा, सूर्य और देवताओं से यह प्रार्थना करता हुआ कि यदि मैंने कुछ दान दिया है, हवन किया है और प्रजाओं की रक्षा की है तो मेरे उन पुण्यों के प्रभाव से तथा मेरे शेष आयु से वह साध्वी शास्त्री जीवित हो जाय, घुस गया। राज, शर्याति के अग्नि में प्रवेश करते ही उस राज-पुरोहित की भार्या भी वही जीवित हो गई। नृपति-गुरु ने जब राजा का इस प्रकार का विस्मयजनक अग्नि प्रवेश और अपनी पतिव्रता भार्या का भर कर पुन जीवित होना सुना और विशेष रूप से यह सुना कि राजा ने अपने को उसके लिये अग्नि में जला दिया है, तब वह अपना कर्त्तव्य सोचने लगा। उसने सोचा कि क्या मैं भी अग्नि-प्रवेश करूँ, या प्रिया के पास जाऊँ अथवा यही उपस्था करूँ, अन्तर उसने निश्चय किया कि मही मेरा पुण्य कर्त्तव्य है कि पहले राजा को जीवित करूँ तब फिर प्रिया के पास जाऊँ। यही मेरे लिए कल्याणप्रद है। ऐसा सोचकर वह भगवान् भास्कर की स्तुति करने लगा और बोला कि सूर्य को छोड़ दूसरा कोई भी सब प्रकार के अभीष्ट को पूरा करने वाला नहीं है ॥२२-३२॥

मधुच्छन्दा बोले—उस अमित तेजस्वी, मुक्तिस्वरूप सूर्य को नमस्कार है, ओंकार के अर्थ स्वरूप वेदमय देव को नमस्कार है। विरूप, मुरूप, त्रिगुणात्मक, त्रिमूर्ति, स्थिति, सृष्टि और विनाश के आदि कारण एवं महा-महिमशाली सूर्य को नमस्कार है ॥३३-३४॥

ब्रह्मोवाच

ततः प्रसन्नः सूर्योऽभूद्वरयस्वेत्यभाषत

॥३५॥

मधुच्छन्दा उवाच

राजानं देहि देवेश भार्यां च प्रियवादिनीम् । आत्मनश्च शुभान्पुत्रान्नाशश्चैव शुभान्वरान् ॥३६॥

ब्रह्मोवाच

ततः प्रादाज्जगन्नाथः शर्यातिं रत्नभूषितम् । तां च भार्यां वरानग्यान्तर्बन्धेनमयं तथा ॥३७॥

ततो यातः प्रियाविष्टः प्रीतेन च पुरोधसा । पयोमुखी स्वकं देशं तत्तु तीर्थं शुभं स्मृतम् ॥३८॥

तत्र त्रीणि सहस्राणि तीर्थानि गुणवन्ति च । ततः प्रभृति तत्तीर्थं भानुतीर्थमुदाहृतम् ॥३९॥

मृतसंजीवनं चंद्रशार्यातं चेति विभूतम् । माधुच्छन्दसमाश्रितं स्मरणात्पापनुन्मुने ॥४०॥

तेषु स्नानं च दानं च सर्वैकनुकूलप्रदम् । मृतसंजीवनं तत्स्यादायुरारोग्यवर्धनम् ॥४१॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये भान्वादित्रिसहस्रतीर्थवर्णनं नामाष्ट-

त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥१३८॥

गौतमोमहात्म्य एकोनसप्ततितमोऽध्यायः ॥६९॥

ब्रह्मा ने कहा—तदनन्तर सूर्य प्रसन्न हो गये और कहा कि 'वर मांगो' ॥३५॥

मधुच्छन्दा बोला—'देवेश' ! राजा और मेरी प्रिय भाविणी भार्या को जीवित कर दो, साथ ही मुझे उत्तम पुत्र और राजा को भी उत्तम वरदान दो ॥३६॥

ब्रह्मा ने कहा—तब प्रसन्न होकर जगन्नाथ ने रत्न-भूषित शर्याति, (तथा) भार्या (विप्रपत्नी को जीवितदान),

अन्य वरदान और अत्येक प्रकार के कन्याभरण आदीवाँद दिये । इस प्रकार वरदान पाकर वह विप्र अपनी प्रिया के साथ आनन्द और सुखपूर्वक अपने देश को चला गया । वह तीर्थ भी इसीलिये शुभ-तीर्थ माना गया । वहाँ फल देने वाले और भी तीन हजार तीर्थ हैं । उन समय से वह तीर्थ भानुतीर्थ कहा जाने लगा । मुने ! मृतसंजीवन और शर्याति तीर्थ नाम से भी वह विख्यात हुआ । माधुच्छन्द तीर्थ भी उस ही कहा जाता है जिसके स्मरण मात्र से पापों का नाश हो जाता है । उन तीर्थों में स्नान करने और दान देने से सब बन्धों का फल मिलता है । जो मृतसंजीवन तीर्थ है वह तो आपु और आरोग्य दोनों को बढ़ाने वाला है ॥३७-५१॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में भानु आदि तीन हजार तीर्थों का वर्णन नामक एक ही अष्टोत्तरी

अध्याय समाप्त ॥१३८॥

अथैकोनचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः

सङ्गतीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

सङ्गतीर्थमिति ह्यातं गौतम्या उत्तरे तटे । तत्र स्नानेन दानेन मुक्तिभागी भवेन्नरः ॥१॥
 तत्र वृत्तं प्रवक्ष्यामि शृणु नारद यत्नतः । पैलूप इति विख्यातः कवयस्य सुतो द्विजः ॥२॥
 कुटुम्बभारात्परितो ह्यर्थार्यो परिधावति । न किमप्याससादासौ ततो वंराग्यमास्थितः ॥३॥
 अत्यन्तविमुखे दंवे व्यर्थोभूते तु पौरुषे । न वंराग्यादप्यदस्ति पाण्डितस्मावलम्बनम् ॥४॥
 इति संचिन्तयामास तदाज्ज्ञो निःस्वसन्मुहुः । क्रमागतं धनं नास्ति पोष्याश्च बहवो मम ॥५॥
 मानी चाञ्जना न कष्टार्हो हा पिन्दुर्देवचेष्टितम् । स कदाचिद्वृत्तिपुतो वृत्तिभिः परिवर्तयन् ॥६॥
 न लेभे तद्धनं वृत्तेविरागमगमत्तदा । सेवा निषिद्धा या काचिद्गह्वरा दुष्करं तपः ॥७॥
 बलादाकर्षणीयं मां तृष्णा सयंत्र दुष्कृते । स्वयाऽपकृतमजानात्तस्मात्तृष्णे नमोऽस्तु ते ॥८॥
 एवं विचिन्त्य मेधावी तृष्णादृष्टेदाय किं भवेत् । इत्यालोच्य स पैलूपः पितरं याचयन्ब्रवीत् ॥९॥

पैलूप उवाच ।

ज्ञानासिना क्रोधलोभी संसृतिं चातिदुस्तराम् । छेद्मीमां केन हे तात तमुपायं वद प्रभो ॥१०॥

कवय उवाच

ईश्वराज्ञानमन्विच्छेदित्येषा वैदिकी श्रुतिः । तस्मादाराधयेज्ञानं ततो ज्ञानमवाप्स्यसि ॥११॥

ब्रह्मोवाच

तथेत्युक्त्वा स पैलूपो ज्ञानायेश्वरमार्चयत् । ततस्तुष्टो महेशानो ज्ञानं प्रादाद्द्विजातये ॥

प्राप्तज्ञानो महाबुद्धिर्गायिः प्रोवाच मुक्तिदाः

॥१२॥

पैलूप उवाच

क्रोधस्तु प्रथमं क्षत्रुनिष्फलो देहनाशनः । ज्ञानखड्गेन तं छित्त्वा परमं सुखमाप्नुयात् ॥१३॥

तृष्णा बहुविधा माया बन्धनी पापकारिणी । छित्त्वंतां ज्ञानखड्गेन सुखं तिष्ठति मानवः ॥१४॥

सङ्गस्तु 'परमोऽधर्मो देवादीनामिति श्रुतिः' । 'असङ्गस्याऽऽत्मनोऽप्यस्य सङ्गोऽयं परमो रिपुः' ॥१५॥

छित्त्वंतं ज्ञानखड्गेन शिर्वक्तव्यमवाप्नुयात् । संशयः परमो माशो धर्मायिता विनाशकृत् ॥१६॥

पैलूप बोला—हे तात ! ज्ञानरूपी खड्ग से इस क्रोध, लोभ और अतिदुस्तर सासारिक माया को कैसे काटूँ, यह उपाय बतलाइये ॥१०॥

कवय ने कहा—ईश्वर (सर्वर) से ही ज्ञान को प्राप्त करना चाहिए, ऐसी वैदिकी श्रुति है । इसलिये शिव की आराधना करो । तब तुम ज्ञान प्राप्त कर सकोगे ॥११॥

ब्रह्माने कहा—‘ऐसा ही बर्णा’ यह कहकर यह पैलूप ज्ञान के लिये ईश्वर की पूजा करने लगा । उसकी आराधना से प्रसन्न होकर महेश ने उस द्विज को ज्ञान प्रदान किया । ज्ञान पा जाने पर उस महाबुद्धिमान् ने ऐसी मुक्तिवायिनी गाया गाई ॥१२॥

पैलूप बोला—इस देह को नष्ट करने वाला निष्फल क्रोध पहला शत्रु है । ज्ञान की तलवार से उसको काटने से परम सुख प्राप्त होता है । यह मित्र-मित्र प्रकार की तृष्णा पाप करने वाली तथा बन्धन में डाल देने वाली माया है । इसको ज्ञान-खड्ग से काटकर मनुष्य सुखी होता है । ‘आसक्ति’ बहुत बड़ा पाप है, ऐसा देवताओं आदि का कथन है । इस अनासक्त (मुक्त) आत्मा के लिये यह आसक्ति परम शत्रु है । इसको ज्ञान के खड्ग से काटकर शिव से अद्वैतता प्राप्त करनी चाहिये । संशय परम शत्रु है । यह धम, अर्थ काम, क्रोधादिको का विनाश करने वाला है । इस संशय को दूर कर ही जीव अपने परम मनोरम को प्राप्त कर सकता है । आशा पिशाची के

छिस्त्वेन सशय जतु परमस्मितमाप्नुयात् । पिशाचीव विशत्याशा निर्दहत्यखिल सुखम् ॥
पूर्णहिंतासिना छित्त्वा जीव-मुक्तिमवाप्नुयात् ॥१७॥

ग्रहोवाच

ततो ज्ञानमवाप्यासौ गङ्गातीरं समाश्रित । ज्ञानखड्गन निर्मोहस्ततो मुक्तिमवाप स ॥१८॥
तत प्रभृति तत्तीय खड्गतीर्थमिति स्मृतम् । ज्ञानतीर्थं च कवयः पलूयः सबकामदम् ॥१९॥
इत्यादिषट्सहस्राणि तीर्थायाह्वमह्वयः । अशवषापतापोधहराणीष्टप्रदानि च ॥२०॥

इति श्रीमहापुराण आदिब्राह्म तीर्थमाहात्म्य खड्गतीर्थवर्णन नामकोनचत्वारिंश
दधिकशततमोऽध्यायः ॥१३९॥

गीतमोमाहात्म्य सप्ततितमोऽध्यायः ॥७०॥

अथ चत्वारिंशदधिकशततमोऽध्याय

अन्विन्द्रात्रयादितीर्थवर्णनम्

ग्रहोवाच

आश्रयमिति विख्यातमन्विन्द्र तीर्थमुत्तमम् । तस्य प्रभावः वक्ष्यामि श्रुष्टराज्यप्रदायकम् ॥१॥

सन्तान मानव-देह म पुसकर सब मुखी को नष्ट कर देती है मनुष्य इसको उसी ज्ञानखड्ग से मली मांति नष्ट कर
जीवन बाल म ही मुक्ति प्राप्त कर लेता है ॥१ १७॥

ग्रहो ने कहा—इसने बात कह ज्ञान प्राप्त कर वषा गीर पर रहने लगा और ज्ञानखड्ग से मोह का छत्र
करके उसने मुक्ति प्राप्त कर ली । जग सगव से बन्त व खड्गतीर्थ नाम से प्रसिद्ध हो गया । उसा को सब काम
नाशो को देने वाला ज्ञानतीर्थ वषण और पश्य नामा व भा पुरातन ज्ञाना है । इसने अतिरिक्त महदिगण समस्त
पाप-पाप से समूह को नष्ट करने वाल और इष्ट प्रष्ट हकार तीर्थों की स्थिति को बर्णन करने हैं । १८ २०॥

श्रीब्रह्ममहापुराण म तीर्थ माहात्म्य प्रकरण म खड्गतीर्थ वर्णन नामक एक सो उनतालीसवा
अध्याय समाप्त । १३९॥

अध्याय १४०

अन्विन्द्र आश्रय आदि तीर्थों का वर्णन

ग्रहो ने कहा—आश्रय नाम से विख्यात अन्विन्द्र नामक उत्तम तीर्थ है । जगत श्रुष्ट राज्य को
जिगने वाले प्रभाव का वर्णन कर रहा हूँ । तीर्थों का उत्तरतीर पर मगवान् श्रुष्टि आश्रय ने श्रुतिर्वा और मुनियों ने

गीतम्या उत्तरे तोर आत्रेयो भगवानुवि । अन्वारेभेऽय सत्राणि ऋत्विग्भिर्मुनिभिर्वृत ॥२॥
 तस्य होताऽभवत्त्विग्निर्हव्यवाहन एव च । एव सत्रे तु सपूर्ण इष्टि माहेश्वरी पुन ॥३॥
 कृत्वंश्चर्यमगाद्विप्र सर्वत्र गतिमेव च । इन्द्रस्य भवन रम्य स्वर्गलोक रसातलम् ॥४॥
 स्वेच्छया याति विप्रेन्द्र प्रभावात्तपस शुभात । स कदाचिद्विव गत्वा इन्द्रलोकममात्पुन ॥५॥
 तत्रापश्यत्सहस्राक्ष सुरं परिवृत शुभं । स्तूयमान सिद्धसाध्यं प्रेक्षन्त नृत्यमुत्तमम् ॥
 शृण्वान मधुर गीतमप्सरोभिदच योजितम् ॥६॥

उपोषविष्टं सुरनायकंस्तं, संपूज्यमान महदासनस्यम् ।
 जयन्तमङ्गे विनिधाय सूनू, शच्या यूत प्राप्तरति महिष्ठम् ॥७॥
 सता शरण्य वरद महेन्द्र, समीक्ष्य विप्राधिपतिर्महात्मा ।
 विमोहितोऽतो मुनिरिन्द्रलक्ष्म्या, समीहयामास तदिन्द्रराज्यम् ॥८॥
 संपूजितो देवगणैर्ययावत्स्वमाश्रम वै पुनराजगाम ।
 समीक्ष्य ता शक्रपुरीं सुरम्या, रत्नयुता पुण्यगुणं सुपूर्णाम् ॥९॥
 स्वमाश्रम निष्प्रभहेमवर्ण्यं, समीक्ष्य विप्रो विरम जगाम ।
 समीहमान सुरराज्यमाशु, प्रिया तदोवाच महात्रिपुत्र ॥१०॥

सहित यज्ञ प्रारम्भ किया । उस यज्ञ के होता हव्य वाहन अग्नि स्वयं था । इस प्रकार यज्ञ के पूरा हो जाने पर पुन उन्होंने माहेश्वरी इष्टि का अनुष्ठान कर महान् एख्य एव सबत्र समन करने की शक्ति प्राप्त कर ली । वे विप्रेन्द्र इन्द्र के रम्य भवन स्वर्गलोक और रसातल में अपनी तपस्या के शुभ प्रभाव से स्वेच्छापूर्वक जात थे । वे किसी समय स्वर्ग में गये फिर धूमते हुए इन्द्रगोश्रम पहुँचे । वहाँ मन्त्रमय देवताओं के मध्य में बैठ हुये इन्द्र को देखा जिनकी स्तुति सिद्ध और साध्यमग्न कर रहे थे (जो स्वयं उत्तम नृत्य को देख रहे थे गजर्वा क मधुर गान को सुन रहे थे अप्सराय जिनको पक्षा मल रही थी) । उन महेन्द्र का जो उच्च असन पर बैठ हुये थे समीप बैठे हुए सुरनायक जिनकी पूजा कर रहे थे जो अपने पुत्र जयन्त को गोत्र में बैठाकर शत्रुओं के साथ प्रभालाप कर रहे थे जो महान सज्जनों के एक मात्र आश्रय और कर देने वाले थे देखकर विप्रेन्द्र महात्मा मुनि इन्द्र की लक्ष्मी से मोहित हो गये । मन ही मन उन्होंने उस इन्द्र राज्य की इच्छा की । पुन वहाँ देवताओं से मन्त्रीभाति सम्मानित होकर अपने आश्रम में चल आये । उस इन्द्रपुरी को अतिमनोहर विविध रत्ना स सुमज्जित ऐश्वर्यों और उत्तम पदार्थों से भरी-पूरी देख कर और इससे विपरीत अपने आश्रम की एख्य एव थी से हीन देखकर वह विप्र उदस हो गया । उस एश्वर्य-शामी अतिशुभ के मन में शीघ्र इन्द्र-यद पाने की इच्छा हो गई । तब उन्होंने अपनी स्त्री से कहा ॥ १-१०॥

आत्रेय उवाच

भोक्तुं न शक्तोऽस्मि फलानि मूलान्यनुत्तमान्यप्यतिसंस्कृतानि ।
 स्मृत्वाऽमृतं पुष्पतमं च तत्र, भक्ष्यं च भोग्यं च वरासनानि ॥
 स्तुतिं च दानं च सभां शुभां च, अस्त्रं च वासांसि पुरीं वनानि ॥११॥

ब्रह्मोवाच

ततो महात्मा तपसः प्रभावात्स्वप्नारमाहूय वचो बभाषे ॥१२॥

आत्रेय उवाच

इच्छेयमिन्द्रत्वमहं महात्मन्कुरुष्व शीघ्रं पदमेन्द्रमत्र ।
 द्रूपेऽन्यथा चेन्मदुदोरितं त्वं, भस्मी करोम्येव न संशयोऽत्र ॥१३॥

ब्रह्मोवाच

तदत्रिवाक्यात्स्वरितं प्रजानां, खट्वा विभुर्विश्वकर्मा तदेव ।
 चकार मेवं च पुरीं सुराणां, कल्पद्रुमान्कल्पलतां च धेनुम् ॥१४॥
 चकार वज्रादिविभूयितानि, गृहाणि शुभ्राण्यतिचित्रितानि ।
 चकार सर्वावयवानवसां, शचीं स्मरस्येव विहारशालाम् ॥१५॥
 सभां सुधर्माणमहो क्षणेन, तथा चकाराप्सरसो मनोज्ञाः ।
 चकार घोच्चैःश्वसं गजं च, वज्रादि चास्त्राणि सुरानशोयान् ॥१६॥

अत्रिपुत्र ने कहा—इन परिष्कृत एवं उत्तम फल-मूलों को खाने में मैं असमर्थ हूँ। स्वर्ग के उन अमृतमय, पवित्रतम भक्ष्य और भोग्य पदार्थों, उत्तम आसनो स्तुति दान, उत्तम सभा, अस्त्र, वस्त्र, पुरी और वना को देखकर इन फलमूलों से अरुचि हो गई है ॥११॥

ब्रह्मा ने कहा—इसके बाद महात्मा आत्रेय ने अपनी तपस्या के प्रभाव से खट्वा को बुलाकर कहा ॥१२॥

आत्रेय ने कहा—महात्मन् । मैं इन्द्रत्व को प्राप्त करना चाहता हूँ। शीघ्र ही यहाँ ऐन्द्र पद के उपयुक्त व्यवस्था कर दो। यदि मेरे कहने से विरुद्ध एवं भी राज्यनिकाउ तो इसमें कुछ भी मन्देह नहीं कि मैं तुमको जलाकर भस्म कर दूंगा ॥१३॥

ब्रह्मा ने कहा—उस आत्रेयकी आज्ञा से शीघ्र ही प्रब्राह्म के खट्वा, व्यावृज विश्वकर्मा ने मेघरत्न, देवपुरी, कल्पद्रुम, वन्यलता धेनु आदिकी सृष्टि कर दी। अति विविध वज्र (मणि) आदि सज्जित शीघ्रपालायें बना दी गईं। सर्वाङ्गसुन्दरी, वरमदेय की विहारशाला के समान शची-सुरल प्रस्तुत कर दी गईं। अलौकिक देवसभा, और अमर रायें क्षण भर में ही बना दी गईं। उच्चैःश्वरा, ऐरावत, वज्रादि अस्त्र और सम्पूर्ण देवता वहाँ प्रस्तुत कर दिये गये। त्रिपा के बार-बार मना करने पर भी उस राक्षसी हर्षिणी राक्षसी को ऋषि ने अपनी पत्नी बना लिया। सब उसने बाद

निवार्यमाणः प्रियपाञ्चिपुत्रः, शचीसमामात्मवधूं चकार	।
तदाञ्चिपुत्रोऽत्रिमूलैः सुसमेतो, यच्चादिरूपं च चकार चास्त्रम्	॥१७॥
नृत्यादि गीतादि च सर्वमेव, चकार शक्रस्य, पुरे च दृष्टम्	।
तत्सर्वमासाद्य तदा मुनेन्द्रः, प्रहृष्टचेताः सुतरां बभूव	॥१८॥
आपातरम्येष्वपि कस्य नाम, भवत्यपेक्षा न हि गोचरेषु	।
श्रुत्वा च दत्त्वा दनुजाः समेता, रक्षासि कौपेन युतानि सद्यः	॥१९॥
स्वर्गं परित्यज्य कुतो हरिर्भुवं, समागतो न्वेय मिथः सुलाय	।
तस्माद्वयं याम इतो नु योद्धुः, वृत्रस्य हन्तारमदीर्घसत्रम्	॥२०॥
ततः समागत्य तदाञ्चिपुत्रं, संवेष्टयामासुरयासुरास्ते	।
संवेष्टयित्वा पुरमञ्चिपुत्रकृतं तया, चेन्द्रपुराभिधानम्	॥
संवेष्टयमानः शस्त्रपातमंहदभिस्ततो भोतो वाक्यमिदं जगद्व	॥२१॥

आत्रेय उवाच

यो ज्ञात एवं प्रथमो मनस्वान्देवो देवान्कनुना पर्यभूयत्	।
यस्य क्षुण्माद्रोदसो अभ्यसेता, नृग्नस्य महना सजना स इन्द्रः	॥२२॥

अत्रि-पुत्र ने अत्रि प्रमुख ऋषियों के सामने ही बजादि अस्त्रों को अपना अस्त्र बना लिया (नृत्य, गीत आदि सब कुछ की व्यवस्था—जैसा कि इन्द्रपुरी में उन्होंने देखा था—कर ली।) उस समय उन सम्पूर्ण सुखद सामग्रियों को पाकर मुनीन्द्र स्वयमेव प्रसन्न बित्त हो गये। सत्य भी है, आपातरम्य (देखने में ऊपर से अतिआकर्षक) विषय के सामने आ जाने पर किसी भी भोगाकांक्षा नहीं हो जाती है? जब दैत्यो मनुजों और राक्षसों ने यह सुना तब वे क्रुपित हो गये। सोचने लगे कि किस कारण यह इन्द्र स्वर्ग को छोड़कर यहाँ पृथ्वी पर आ गया है। यह तो हम लोगों के लिये प्रसन्नता की बात है। इसलिये हम वृत्र-हन्ता, दीर्घकालीन यज्ञों से विमुक्त इस इन्द्र से युद्ध करने के लिये यहाँ (दैत्यलोक) से प्रस्थान करें। इस प्रकार निश्चय करके उन असुरों ने दैत्यलोक से आकर अत्रि पुत्र को घेर लिया। अत्रि-पुत्र से बसाये गये उस इन्द्रपुर नामक नगर को घेरकर महान् भयकर शस्त्रों के प्रहार से उनको मारने लगे। तब अस्त्र प्रहार से मयमीत होकर आत्रेय ने यह कहा ॥१४-२१॥

अत्रिपुत्र ने कहा—जो उत्पन्न होते ही सबका मुखिया बन गया जिसने स्वयं देव होकर भी अन्य देवों को बशीरुत कर लिया, जिसके शारीरिक बल से स्वर्ग और पृथ्वी बाँध उठी है असुर जनों! वह ऐश्वर्यशाली इन्द्र है (मैं नहीं) ॥२२॥

ब्रह्मोवाच

इत्यादिसूक्तेन रिपूनुवाच, हरि च तुष्टाव तदाऽत्रिपुत्र

॥२३॥

आत्रेय उवाच

नाह हरिर्नैव शची मदीया, नेय पुरो नैव वन तदेन्द्रम् ।

स एव चेन्द्रो वृत्रहन्ता स वज्री, सहस्राक्षो गोत्रभिद्वज्रबाहुः ।

॥२४॥

अह तु विप्रो वेदविद्ब्रह्मवृन्दै, समाविष्टो गौतमीतीरसस्य ।

यन्नाऽऽपत्यां नाद्य वा सौख्यहेतुस्तच्चाकापं कर्म दुर्बलयोगात् ।

॥२५॥

असुरा ऊचुः

सहरस्वेदमात्रेय यदिन्द्रस्य विडम्बनम् । क्षेमस्ते भविता सत्य नान्यथा मुनिसत्तम ॥२६॥

ब्रह्मोवाच

तदाऽऽनेयोऽब्रवीद्वाक्य यथा वक्ष्यन्ति मामिह । करोम्येव भूभागा सत्येनानि समालभे ॥२७॥

एमुक्त्वा स दैतेयास्त्वण्टार पुनरब्रवीत्

॥२८॥

आत्रेय उवाच

यत्कृत त्वत्र मत्प्रीत्या ऐन्द्र त्वष्ट पव त्वया । सहरस्व पुन शीघ्र रक्ष मा ब्राह्मण मुनिम् ॥२९॥

पुनर्देहि पव मह्यमाभ्रम मृगपक्षिण । वृक्षादद्य वारि यन्नाऽऽसीन्न मे विष्यं प्रयोजनम् ॥

सर्वमक्रममायात न सुखाय मनीषिणाम्

॥३०॥

ब्रह्मा ने कहा—तब इस सूक्त स अत्रि-पुत्र ने इन्द्र की महत्ता व्यक्त की और पुन अपने पापों से बचा ॥२३॥

आत्रेय बोले—मैं इन्द्र नहीं हूँ न तो यह वाणी और नगरी ही मेरी है और न यह नन्दवन ही मेरा है ।

वस्तुतः स्वयम् इन्द्र ही इन्द्र है वही वृत्र हन्ता वज्र धारण करने वाला सृष्टि करने वाला, पवता कपला को काटने वाला वज्रबाहु इन्द्र है । मैं तो वेदा को जानने वाला ब्राह्मण हूँ । सबदा ब्राह्मण के सहित इस गौतमा तीर पर रहा करता हूँ । जिसके द्वारा भविष्य अथवा वर्तमान सभी की सुख का मूल नहीं प्राप्त हो सकता अर्थात् जिस व्रम से सभी सुख नहीं प्राप्त होता उस व्रम की ओर मैं दुर्बल की प्रेरणा से आकृष्ट हो गया हूँ ॥२४-२५॥

असुरों ने कहा—आत्रेय ! तू तुमने जो यह इन्द्र का ढाया फैला रखा है उसको समझ । मुनिश्रेष्ठ !

मयापत तुम्हारा कल्याण इसीमें है इससे मैं नहीं ॥२६॥

ब्रह्मा बोले—तब आत्रेय ने कहा—महामात्र ! जैसा आप सोच रहते हैं वैसा ही बहेगा । अग्नि की गरम है साथ कहता हूँ । इस प्रकार उन दैत्या से यह कर पुन उन्होंने स्वप्ता से कहा ॥२७-२८॥

आत्रेय ने कहा—स्वप्ता ! तुमने मेरी प्रसन्नता के लिए जिस एन्द्र-मद को यहाँ बनाया है उसको शीघ्र दूर करो । इस प्रकार इस मुनि ब्राह्मण की रक्षा करो । पुन मरा वह मृग और पक्षियों से मुगोमिश्र आश्रम ही दो जहाँ वृत्र और जल का मधु खोज था अब मुझे इस स्वर्गीय वस्तुओं की कुछ भी आवश्यकता नहीं । मनीषियों के लिये व्रमविषय (अवस्था) प्राप्त वदार्थ सुखद नहीं होते ॥२९-३०॥

ब्रह्मोवाच

तथेत्युक्त्वा प्रजानाथस्त्वष्टा संहृतवांस्तदा । दैत्याश्च जग्मुः स्वस्यानं कृत्वा वेशमकण्ठकम् ॥३१॥
त्वष्टा चापि ययौ स्थानं स्वकं संप्रहसन्निव । आत्रेयोऽपि तदा शिष्यैः संवृतः सह भार्यया ॥३२॥
गोनमोत्तोरमाश्रित्य तपोनष्टोऽखिलैर्द्वृतः । वर्तमाने महापजे लज्जितो वायव्यमब्रवीत् ॥३३॥

आत्रेय उवाच

अहो मोहस्य महिमा ममापि शान्तचित्तता । किं महेन्द्रपदं लब्धं किं मयाऽत्र पुरा कृतम् ॥३४॥

ब्रह्मोवाच

एवं वदन्मानेयं लज्जितं प्राब्रुवन्पुराः

॥३४॥

सुरा ऊचुः

लज्जां जहि महाबाहो भविता' श्यातिस्तमा । आत्रेयतीर्थे ये स्नानं प्राणिनः कुर्युरञ्जता ॥३६॥
इन्द्रास्ते भविनारो वै स्मरणाः सुखभागिनः । तत्र पञ्च सहस्राणि तीर्थान्याहुर्मनीषिणः ॥३७॥
अन्वित्रात्रेयदैतेयनामभिः कीर्तितानि च । तेषु स्नानं च दानं च सर्वमक्षयपुण्यदम् ॥३८॥

ब्रह्मा बोले—तब ऐसा ही हो यह कहकर प्रजापति त्वष्टा ने सब माया समेट ली । दैत्य भी यह देखकर उस स्थान को निरापद कर अपने स्थान को चले गये । त्वष्टा भी हँसते हुये-से अपने स्थान को लौट गये । अनन्तर आत्रेय भी अपने शिष्यों और भार्या के साथ गौतमी-तट पर तपोनिष्ठ हो रहने लगे । कुछ दिनों बाद पुन महापज प्रारम्भ हुआ, उसमें सब देवों और ऋषियों के सामने ही लज्जित होकर उन्होंने कहा ॥३१-३३॥

आत्रेय ने कहा—अहो ! मोह की महिमा भी क्या है, त्रिषके कारण मेरे मन में भी आग्नित हो गई । मैंने पहले क्या (तप) किया था और फिर मोह में आकर किस प्रकार महेन्द्र-पद प्राप्त किया ॥३४॥

ब्रह्मा ने कहा—इस प्रकार बहने वाले लज्जित मुनि से देवों ने कहा ॥३५॥

देवताओं ने कहा—महाबाहु ! लज्जा को छोड़ो तुम्हारी उत्तम कीर्ति इस लोक में फैलेगी । इस आत्रेय तीर्थ में जो प्राणी विधिपूर्वक स्नान करेंगे, वे अवश्य इन्द्र होंगे और इस तीर्थ के स्मरण मात्र से प्राणी सुखभागी होंगे । वहाँ मनीषियों ने अन्य पाँच हजार अन्वित्र, आत्रेय, दैतेय आदि तीर्थों के नाम गिनाये हैं जिनमें स्नान और दान से अक्षय पुण्य की प्राप्ति होती है ॥३६-३८॥

ब्रह्मोवाच

इत्युक्त्वा विबुधा याताः संतुष्टश्चाभवन्मुनिः

॥३९॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्येऽन्विन्द्रात्रेयादिपञ्चसहस्रतीर्थवर्णनं

नाम चत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥१४०॥

गौतमीमाहात्म्ये एकसप्ततितमोऽध्यायः ॥७१॥

अथैकचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः

कपिलासगमाख्यानवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

कपिलासंगमं नाम तीर्थं त्रैलोक्यविश्रुतम् । तत्र नारद वक्ष्यामि कथां पुण्यामनुत्तमाम् ॥१॥

कपिलोऽङ्गनाम तत्त्वज्ञो मुनिरासोऽन्महायशः । क्रूरश्चापि प्रसन्नश्च तपोव्रतपरायणः ॥२॥

तपस्वश्च मुनिश्रेष्ठ गौतमीतीरमाश्रितम् । तमागत्य महात्मान धामदेवाद्योऽब्रुवन् ॥३॥

हृत्वा चेनं ब्रह्मज्ञापनंऽधर्मं त्वराजके । कपिलं सिद्धमाचार्यमूचुर्मुनिगणास्तदा ॥४॥

मुनिगणा ऊचुः

गने चेदे गते धर्मे किं कर्तव्यं मुनीश्वर

॥५॥

११ ब्रह्मा बोले—यह बहकर देवता चले गये और मुनि भी संतुष्ट हो गये ॥३९॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में अन्विन्द्र-आत्रेयादि पाँच हजार तीर्थों का वर्णन नामक एक सौ चालीसवाँ

अध्याय समाप्त ॥१४०॥

अध्याय १४१

कपिला-संगम की कथा का वर्णन

ब्रह्मा ने कहा—गिम्बुन विष्णुवाच कपिला-संगम नामक एक तीर्थ है । नारद ! उस तीर्थ की अत्युत्तम पुण्य कथा को कह रहा हूँ सुनो । महायज्ञशील कपिल नामक तत्त्वदर्शी मुनि थे । वे क्रूर एवं प्रसन्न होकर भी तपस्या और व्रत परायण मुनि थे । गौतमी-तीर पर स्थित होकर वास्तवा करते हुये उन् महात्मा मुनिवर ने पात आगर वामदेव आदि ऋषियों ने कहा कि जब वेन को ब्रह्म ज्ञान से मार डाला गया, सागर राजवधर्म नष्ट-झट्ट हो गया और देव में अराजकता फैल गई तब मुनिगो ने सिद्ध आचार्य कपिल से कहा ॥१-४॥

मुनिगण बोले—मुनीश्वर ! वेदों के लुप्त हो जाने पर और धर्म के नष्ट हो जाने पर क्या करना उचित है ? ॥५॥

१ एतदपि य च पुनरप्यो विज्ञोत्तमायास्तत्रैव संवधो षोडविश्रुतः । स्मरणात्सर्वपापानां नाशनं विन्दु दानात् इत्यपिच श्लोको वर्तते ।

ब्रह्मोवाच

ततोऽब्रवीन्मुनिष्यत्वा कपिलस्त्वागतान्मुनीन्

॥६॥

कपिल उवाच

वेनस्पोरुष्विमय्योऽभूततः कश्चिद्भूविष्यति

॥७॥

ब्रह्मोवाच

तयैव चक्रुर्मुनयो वेनस्पोरुं विमय्य वै। तत्रोत्पन्नो महापापः कृष्णो रौद्रपराक्रमः ॥८॥
तं दृष्ट्वा मुनयो भीता निपीडस्त्रेति चाब्रुवन्। निपादः सोऽभवत्तस्मान्निपादाश्चामवस्ततः ॥९॥
वेनबाहु ममन्युस्ते दक्षिणं धर्मसंहितम्। ततः पृथुस्वरश्चैव सर्वलक्षणलक्षितः ॥१०॥
राजाऽभवत्पृथुः श्रीमान्ब्रह्मसामर्थ्यसयुतः। समागत्य सुरा सर्वे अभिनन्द्य वराब्जगुमान् ॥११॥
तस्मै बहुस्त्रयाऽस्त्राणि शस्त्राणि गुणदन्ति च। ततोऽब्रुवन्मुनिगणास्तं पृथुं कपिलेन च ॥१२॥

मुनय ऊचुः

आहारं वेहि जीवेन्पो भुवा प्रस्तौयधीरपि

॥१३॥

ब्रह्मोवाच

ततः स धनुरादाय भुवमाह नृपोत्तमः

॥१४॥

ब्रह्मा ने कहा—तब कपिल मुनि ने सोच-विचार कर आगत मुनियों से कहा ॥६॥

कपिल बोले—वेन का ऊरु प्रदेश यदि मया जाय तो कोई समस्या का हल प्राप्त हो जायगा ॥७॥

ब्रह्मा बोले—मुनियों ने मुनि के आदेशानुसार वेन के ऊरु को मथा। उसमें से एक महापापी कृष्णकाय भयंकर बलशाली पुष्ट उत्पन्न हुआ। उसको देखकर मुनि लोभ डर पड़े। और 'निपीडस्त्र' (बैठो) ऐसा कहा। तब वह निपाद बन गया। उससे फिर निपादों की उत्पत्ति हुई। तदनन्तर उन्होंने धर्मयुक्त वेन की दाहिनी भुजा को मथा। तब उसमें से गम्भीर स्वर वाला, सब राजलक्षणों से युक्त श्रीमान् ब्रह्मलक्षित से युक्त पृथु नामक राजा उत्पन्न हुआ। उसके पास आकर सब देवों ने उसका स्वागत किया और उसको विभिन्न दान वरदान, अस्त्र और उपयोगी मन्त्र दिये। तदुपरान्त मुनियों ने कपिल के सहित उस पृथु से कहा ॥८-१२॥

मुनिगण बोले—समस्त जीवों को मोहन दो और पृथिवी द्वारा निगली हुई ओपधियाँ भी ॥१३॥

ब्रह्मा ने कहा—तब हाथ में धनुष लेकर उस नृपोत्तम ने पृथिवी से कहा—॥१४॥

पृथुस्वाच

ओषधीर्देहि या प्रस्ता प्रजानां हितकाम्यया ॥१५॥

ब्रह्मोवाच

तमुवाच महो भीता पृथु त पृथुलोचनम् ॥१६॥

मह्युवाच

मयि जोषां महोपध्य कथं दातुमह क्षमा ॥१७॥

ब्रह्मोवाच

ततः सकोपो नृपतिस्तामाह पृथिवीं पुनः ॥१८॥

पृथुस्वाच

नो चेद्दवास्पद्य त्वा वं हत्वा दास्ये महोपधी ॥१९॥

भूमिस्वाच

कथं हसि स्त्रिय राज्ञस्तानी भूत्वा नृपोत्तम । विना मया कथं चेमा प्रजा सधारयिष्यसि ॥२०॥

पृथुस्वाच

यत्रोषकारोऽनेकानामेकनाशो भविष्यति । न दोषस्तत्र पृथिवी तपसा धारये प्रजा ॥२१॥

न दोषमत्र पश्यामि नाऽऽवक्षेऽन्यथं वच । यस्मिन्निपातिते सौख्यं बहूनामुपजायते ॥

मुनयस्तद्वचः प्रादुरश्वमेधशताधिकम् ॥२२॥

पृथु ने कहा—जिन ओषधियों को तुमने हजम कर लिया है प्रजाप्रा की मलाई के लिए उनको दीप्त लाओ ॥१५॥

ब्रह्मा ने कहा—मयमीत पृथिवी ने उस दीपनेन पृथु से कहा ॥१६॥

पृथ्वी ने कहा—वे महोपधियाँ तो मेरे उदर में जीण हो गई । अब कैसे उनको दे सकती हूँ ? ॥१७॥

ब्रह्मा बोले—तब राजा क्रुपित होकर पुनः उस पृथिवी से बोले ॥१८॥

पृथु ने कहा—यदि नहीं दोगी तो आज तुमको मारकर प्रजा की महोपधियाँ दे दूँगा ॥१९॥

भूमि ने कहा—राजन् ! तुम जानी होकर कैसे स्त्री को मारने के लिए उद्यत हो ? नृपात्तम ! मेरे विना किस प्रकार इन प्रजाप्रा की रक्षा या पालन करोगे ? ॥२०॥

पृथु बोले—पृथिवी ! जहाँ एक के नाश से अनेक का उपकार होता हो उस एक का वध करने में कोई दोष नहीं । प्रजाप्रा की रक्षा तो अपनी तरफ़ा के द्वारा कर लूँगा । इसमें कुछ भी दोष नहीं देख रहा हूँ । यह ध्येय की बातें मैं नहीं कर रहा हूँ । जिससे वध से बड़ो को मुक्त होता हो उगरे वध की मुनिपण तो अन्वयमय से भी अधिक फल प्रद बतलाते हैं ॥२१-२२॥

देवाञ्जुः

ततो देवाश्च ऋषयः सान्त्वयित्वा नृपोत्तमम् । महीं च मातर देवोमूच सुरगणास्तदा ॥२३॥

ब्रह्मोवाच

भूमे गोरूपिणी भूत्वा पयोरूपा महौषधी । देहि त्व पृथवे राजे तत प्रीतो भवेन्नृप ॥
प्रजासरक्षणं च स्यात्तत क्षेम भविष्यति ॥२४॥

देवा ऊचुः

ततो गोरूपमास्याय भूम्यासीत्कपिलान्तिके । दुदोहं च महौषधौ (धी) राजा वेनकरोद्भूव ॥२५॥
यत्र देवा सगन्धर्वा ऋषयः कपिलो मुनिः । महीं गोरूपमापन्ना नर्मदाया महामुने ॥२६॥
सरस्वत्या भागीरथ्या गोदावर्या विशेयत । महानदीषु सर्वासु दुदोहेऽसौ पयो महत् ॥२७॥
सा दुह्यमाना पृथुना पुण्यतोयाऽभवन्नदी । गौतम्या सगता चाभूत्तददभूत्तमिवाभवत् ॥२८॥
तत प्रभृति तत्तीथ कपिलासगम विदुः । तत्राष्टाशेति पूज्यानि सहस्राणि महामते ॥२९॥
तीर्थान्याहुर्मुनिगणा स्मरणादपि नारद । पावनानि जगत्यास्मस्तानि सर्वाण्यनुक्रमात् ॥३०॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे स्वयम्भूयसवादे तीर्थमाहात्म्ये कपिलासगमाष्टा-

शोतिसहस्रतीर्थवर्णनं नामैकचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥१४१॥

गौतमीमाहात्म्ये द्विसप्ततितमोऽध्यायः ॥७२॥

ब्रह्मा ने कहा—तबदतर देवों और ऋषियों ने उस नृपवय को समझा-बुझा कर शांत किया । तब देवों ने माता पथिवी देवी से कहा ॥२३॥

देवगण बोले—भूमि ! तू मही रूप होकर दूध के रूप में महौषधियाँ राजा पृथु को दे दो । इससे राजा प्रसन्न हो जायेंगे और तब प्रजा की रक्षा भी हो जायगी । इस प्रकार सबका कल्याण होगा ॥२४॥

ब्रह्मा ने कहा—इसके बाद पृथिवी गौ का रूप धारण कर कपिल के समीप खड़ी हो गई अहा गंधर्वों के सहित देवता ऋषि और कपिलमुनि थे । वहाँ वेन के हाथ से उत्पन्न राजा ने उससे महौषधियों को दूहा । महामुनि नारद । गौ रूप धारण करने वाली उस पथिवी के दूध को उस राजा ने नर्मदा सरस्वती भागीरथी गोदावरी आदि सब विशिष्ट महानदियों में गली भाति दूहा । पृथु से दूही गई वह कपिला (गौ) पवित्र जल वाली नदी बन गई और वह गौतमी से जाकर मिल गई । इस प्रकार उसका मिलन एक आश्चर्यजनक घटना हुई । तब से वह तीर्थ कपिला सगम कहा जाने लगत । महामति । वहाँ पर मुनिगण और अस्सी हजार पूज्य तीर्थ बतलाते हैं । नारद । इस ससार में वे सब तीर्थ कमश स्मरणमात्र से सबको पुनीत कर देते हैं ॥२५-३०॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में कपिला-सगम-तीर्थ वर्णन नामक एक सौ इकतालीसवाँ

अध्याय समाप्त ॥१४१॥

अथ द्विचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः

देवस्थानाख्यतीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

देवस्थानमिति ख्यातं तीर्थं त्रैलोक्यविभ्रुतम् । तस्य प्रभावं वक्ष्यामि शृणु यत्नेन नारद ॥१॥
पुरा कृतयुगस्याऽऽदौ देवदानवसंगरे । प्रवृत्ते वा सिहिकेति विख्याता दैत्यसुन्दरी ॥२॥
तस्याः पुत्रो महादैत्यो राहुर्नाम महाबलः । अमृते तु समुत्पन्ने सिंहिकेये च भेदिते ॥३॥
तस्य पुत्रो महावैत्यो मेघहात इति श्रुतः । पितरं धातितं धृत्वा तपस्तेपेऽतिदुःखितः ॥४॥
तपस्यन्तं राहुसुतं गौतमीतीरमाश्रितम् । देवाश्च ऋषयः सर्वे तमूचुरतिभीतवत् ॥५॥

देवर्षय ऊचुः

तपो जहि महाबाहो यत्ते मनसि सस्थितम् । सर्वं भवतु नामदेवं शिवगङ्गाप्रसादतः ॥
शिवगङ्गाप्रसादेन किं नामास्त्यत्र दुर्लभम् ॥६॥

ब्रह्मोवाच

परिभूतः पिता पूज्यो युष्माभिर्मम देवतम् । तस्यापि मम चात्यन्तं प्रीतिश्च क्रियते यदि ॥७॥

अध्याय १४२

देवस्थान नामक तीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा ने कहा—त्रिभुवन में प्रसिद्ध देवस्थान नामक एक तीर्थ है । नारद ! उसके प्रभाव का वर्णन कर रहा हूँ, उसे ध्यानपूर्वक सुनो ।

बहुत पहले कृतयुग के आदि में देव-दानवों में युद्ध छिड़ा । उस समय सिंहिका नाम की प्रसिद्ध दैत्य-सुन्दरी थी । उसका राहु नामक महाबलवान् दैत्य पुत्र था । जब अमृत उत्पन्न हुआ, तब राहु अमृत-पान के कारण काट दिया गया । उस राहु का पुत्र मेघहास नामक महादैत्य था । अपने पिता का वध सुनकर दुःखी हो वह अति-भीषण तप करने लगा । गौतमी-तीर पर बैठ कर तपस्या करने वाले उस राहु-पुत्र से देव और ऋषि भयभीत-से होकर बोले ॥१-५॥

देव और ऋषि बोले—महाबाहु ! तपस्या छोड़ दो । शिव और गंगा की कृपा से तुम्हारी जो कोई मनः कामना है वह पूर्ण हो जाएगी । इस सत्कार में शिव-गंगा की कृपा से कौन-सा पदार्थ दुर्लभ है ? ॥६॥

मेघहास ने कहा—आप लोगो ने मेरे देवतुल्य पूज्य पिता को धराद्वित किया है । यदि उनका और मेरा अत्यन्त प्रिय करना चाहते हैं तो मैं अपनी इस तपस्या से आपसे उधर कर के दूर कर रहा हूँ । पुत्र का यह कर्तव्य

भवद्भिस्तपसोऽस्माच्च अहं वैरान्निवर्तये। वैरनिर्यातनं कार्यं पुत्रेण पितुरादरात्॥
प्रार्थयन्ते भवन्तश्चेत्पूर्णस्तन्मे मनोरथाः ॥८॥

ब्रह्मोवाच

ततः सुरगणाः सर्वे राहुं चक्रुर्ग्रहानुगम्¹। तं चापि मेघहासं ते चक्रुः राक्षसपुंगवम्॥९॥
ततोऽभवद्वाहुसुतो नैर्ऋताधिपतिः² प्रभुः। पुनश्चाऽहं सुरान्देव्यो मम श्यातिर्यथा भवेत्॥१०॥
तीर्थस्यास्य प्रभावश्च दातव्य इति मे भक्तिः। तथेत्युक्त्वा ददुर्देवाः सर्वमेव मनोगतम्॥११॥
दैत्येऽजरस्य देश्ये तन्नाम्ना तीर्थमुच्यते³। देवा यतोऽभवन्सर्वे तत्र स्थाने महामते॥१२॥
देवस्थानं तु तत्तीर्थं देवानामपि दुर्लभम्⁴। यत्र देवेश्वरो देवो देवतीर्थं ततः स्मृतम्॥१३॥
तत्राष्टादश तीर्थानि दैत्यपूज्यानि नारद। तेषु स्नानं च दानं च महापातकनाशनम्॥१४॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये देवस्थानाष्टादशतीर्थवर्णनं नाम
द्विचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥१४२॥

गौतमीमाहात्म्ये त्रिसप्ततितमोऽध्यायः ॥७३॥

है कि वह आदरपूर्वक पिता के वैर का बदला चुकाये। यदि आप लोग प्रसन्न हैं तो मैं आप लोगों से प्रार्थना करता हूँ कि मेरे मनोरथ पूर्ण हो जायें ॥७-८॥

ब्रह्मा बोले—तब सब देवताओं ने राहु को ब्रह्म की श्रेणी में परिणमित कर दिया और उस मेघहास को भी श्रेष्ठ राक्षस बना दिया। इसके बाद वह राहु-पुत्र नैर्ऋत दिशा का समर्थ स्वामी हो गया। पुनः उस दैत्य ने देवताओं से कहा कि मेरी कीर्ति जिस प्रकार हो वैसे ही इस तीर्थ को प्रभावशाली बनाइए, यही मेरा विचार है। देवताओं ने 'एवमस्तु' कह (उसे) मनोवाञ्छित सब कुछ दे दिया। देवविनारद! उस दैत्येश्वर के नाम से वह तीर्थ कहा जाता है। महामते! यत् उस स्थान पर सब देवता उपस्थित हुये अतः वह तीर्थ देवों के लिए भी दुर्लभ देवस्थान नामक तीर्थ हो गया है। अहाँ देवेश्वर देव हैं वह देवतीर्थ कहा जाता है। नारद! वहाँ दैत्यों से पूज्य अट्ठारह और तीर्थ हैं, उनमें स्नान और दान करने से महापातक भी नष्ट हो जाते हैं ॥९-१४॥

श्रीब्रह्ममहापुराण म देवस्थान आदि अट्ठारह तीर्थों का वर्णन नामक एक सौ बयालीसवाँ
अध्याय समाप्त ॥१४२॥

अथ त्रिचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः

सिद्धतीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

सिद्धतीर्थमिति ख्यातं यत्र सिद्धेश्वरो हरः। तस्य प्रभाव वक्ष्यामि सर्वसिद्धिकरं नृणाम् ॥१॥
 पुलस्त्यवंशसंभूतो रावणो लोकरावणः। दिशो विजित्य सर्वाश्च' सोमलोकमजीगमत ॥२॥
 सोमेन सह योत्स्यन्त दशास्यमहमब्रवम्। मन्त्रं दास्ये निवर्तस्व सोमयुद्धाद्दशानन ॥३॥
 इत्युक्त्वाऽऽष्टोत्तरं मन्त्रं शतनामभिरन्वितम्। शिवस्य राक्षसेन्द्राय प्रादा नारद शान्तये ॥४॥
 नि.श्रीकाणां विपन्नाना नानाव्लेशजुषा नृणाम्। शरणं शिव एवात्र ससारेऽन्यो न कश्चन ॥५॥

ततो निवृत्तः स ह मन्त्रियुवतस्तत्सोमलोकाज्जयमाप्स्य रक्षः ।

स पुष्पकारुण्डणतिः 'सगर्वो, लोकान्पुनः प्राप जवाद्दशास्यः ॥६॥

स प्रेक्षमाणो दिवमन्तरिक्षं, भुवं च नागांश्च गजाश्च विप्रान्' ।

भालोकयामास नगं महान्तं, कैलासमावाप्त उमापतेर्यः ॥७॥

दृष्ट्वा स्मपोत्फुल्लदृष्टाद्विराजं, स मन्त्रिणो रावण इत्युवाच ॥८॥

अध्याय १४३

सिद्धतीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा ने कहा—मिद्धतीर्थ नामक एक तीर्थ है, जहाँ सिद्धेश्वर हर निवास करते हैं। मनुष्यों को सब सिद्धियाँ देने वाले उसके प्रभाव को बना रहा हूँ। पुलस्त्यकुलोत्पन्न लोचन-मण्डित रावण सम्पूर्ण दिशाओं को जीतकर चन्द्र-लोक में पहुँचा। चन्द्रमा ने साययुद्ध-रत उस दशमुग से मैने कहा—'दशासन। तुम्हारे मन्त्र दूग, चन्द्रमा ने साय युद्ध करना बन्द कर दो। नारद। यह कहकर मैने उसकी पान्ति के लिए उस राक्षसेन्द्र को शिव के एक-सौ आठ नामों से युक्त मन्त्र दे दिया। इस समार में थीहीन, तथा विषदूषण अनेक बलशों को भोगने वाले मनुष्यों के शिव ही एकमात्र शरण हैं, दूसरा कोई नहीं। तब वह राक्षस सोमलोक को जीत कर मन्त्रिया के सहित वहाँ से लौटा। वह रावण गर्व से साय पुष्पकविमान पर आरुढ़ होकर बड़े बग से पुन लाना में गया। वह आकाश, अन्तरिक्ष, पृथ्वी, नागो, गजो एवं विप्रा को देखने लगा। इतने में उमापति का जो कासस्थान था, उस महापर्वत कैलाश को उतने देखा। पर्वतराज को देखकर उस रावण के नेत्र आनन्द से तिल लड़े। उसने अपने दोना मन्त्रियों से कहा ॥१-८॥

रावण उवाच

को वा गिरावन् वसेन्महात्मा, गिरिं नयाम्येनमथाधि भूमे ।
लङ्कागतोऽयं गिरिराजो शोभा, लङ्काज्जि सत्यं श्रियमातनोति ॥९॥

ब्रह्मोवाच

इत्थं वचो राक्षसमन्त्रिणो तौ, निशम्य रसोधिपतेश्च भावम् ।
न युवतमित्यूचतुरिष्टबुद्ध्या, निशाचरस्तद्वचनं न मेने ॥१०॥
सस्याप्य तत्पुष्पकमाशु रक्ष, पुष्पाव कंलासगिरेश्च मूले ।
हिन्दोलयामास गिरिं दशास्यो, ज्ञात्वा भव कृत्यमिदं चकार ॥११॥
जित्वा दिगोशाश्च सर्गाव्रितस्य, कंलासमान्दोलयत सुरारे ।
अङ्गुष्ठकृत्यं व रसातलादिलोकाश्च यातस्य दशाननस्य ॥१२॥
आन्तूनकापस्य गिरिं निशम्य, विहस्य देव्या सह दत्तमिष्टम् ।
तस्मै प्रसन्नं कुपितोऽपि शम्भुर्युवतदातेति न सशयोऽत्र ॥१३॥
ततोऽयमावाप्य वराम्बुदीरो, भवप्रसादात्कुसुमं जगाम ।
गच्छन्तं लङ्कां भवभूजनाय, गङ्गायमावृणुजटाप्रसूताम् ॥१४॥
सपुत्रजित्वा विविधैश्च मन्त्रैर्गङ्गाजलं शम्भुमदीनसत्त्व ।
अस्ति स लभे शाश्वतं भूपास्तिष्ठि च सर्वधिमभीप्सिता च ॥१५॥

रावण ने कहा—कौन महात्मा इस पर्वत पर रहते हैं ? मैं इस पर्वत को पर्व्वीनल पर ले जाना चाहता हूँ । यह गिरि लङ्का में अच्युत शोभा प्राप्त करेगा । इससे लङ्कापुरी की शोभा भी अधिक बढ़ जाएगी ॥९॥

ब्रह्मा ने कहा—वे दोनों राक्षस मन्त्री राक्षसपति की ऐसी वाचा को सुनकर उसके माथ को छान गये । उन्होंने उनके हित की दृष्टि से कहा कि यह उचित नहीं है । किन्तु निशाचर ने उनकी बात न मानी । वह राक्षस अपने पुष्पक विमान को घड़ी राक्षस कंलासगिरि के मूल देश में बूढ़ पड़ा । वहाँ जाकर वह दशानन उस पर्वत को हिलाने लगा । गङ्गा ने रावण का इस घृष्टता को जानकर ऐसा किया कि सब दिक्पालों को जीतने से मन्त्रित और बलास को हिलाने वाले उस गुरु दशानन को अणु से दवा दिया । जिससे वह रसातललोक में घँसने लगा उसका शरीर क्षत विभ्रत हो गया और वह जोरो से चिल्लाने लगा । अतः म उम्की प्रायना को सुनकर देवी के सहित क्रुद्ध होते हुए भी गङ्गा ने प्रसन्न होकर हँसकर उसको वरदान दे दिया । वास्तव में गङ्गा अयोग्या को भी दान देने वाले हैं । इसमें कोई मन्देह नहीं । गङ्गा की कृपा से वरो को पाकर वह भीरु पुष्पक विमान के पास गया । लङ्का आते समय वह गङ्गा की पूजा के लिए शिव की जटा से निकली हुई गंगा के पास गया । गंगा जल और विविध मन्त्रों से उस पुष्पायि रावण ने धनु की पूजाकर उस शक्तिमौल से सडग सिद्धियाँ और धनी

मद्वत्तमन्त्रं शशिरक्षणाय, स साधयामास भवं प्रपूज्य ।
 सिद्धे तु मन्त्रे पुनरेव लङ्कामयात्स रक्षोधिपतिः स तुष्टः ॥१६॥
 ततः प्रभृत्येतदतिप्रभावं, तीर्थं महासिद्धिदमिष्टदं च ।
 समस्तपापौघविनाशनं च, सिद्धैरशेषं परितेवितं च ॥१७॥
 इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये सिद्धतीर्थार्थष्टोत्तरशततीर्थवर्णनं नाम
 त्रिचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥१४३॥
 गौतमीमाहात्म्ये चतु सप्ततितमोऽध्यायः ॥७४॥

अथ चतुश्चत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः

परुष्णीसंगमतीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

परुष्णीसंगमं धेति तीर्थं त्रिलोक्यविश्रुतम् । तस्य स्वरूपं वक्ष्यामि शृणु पापविनाशनम् ॥१॥
 अत्रिराराधयामास ब्रह्मविष्णुमहेश्वरान् । तेषु तुष्टेषु स प्राह पुत्रा मयं भविष्यम् ॥२॥
 तथा चत्वा ऊरवती कन्या मन भवेत्सुराः । तथा पुनस्त्वमापुस्ते ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः ॥३॥

पुस्तक सब ऋद्धिमाँ प्राप्त की । उसने चन्द्र को रक्षा के लिये शंकर की पूजा कर मेरे दिये हुये मन्त्र का अनुष्ठान किया । मन्त्र-सिद्धि होने पर वह राक्षस राज प्रसन्न होकर पुन लवा में चला आया । तब से महासिद्धियों को देने वाला इष्टप्रद, अनिप्रमादशाली और समस्त विघ्नों को भट्ट करने वाला वह तीर्थ समस्त सिद्धों का प्रिय और सौख्य हो गया ॥१०-१७॥

श्रीब्रह्ममहापुराण मे सिद्ध-तीर्थ वर्णन नामक एव सो तृतालीमर्वा अध्याय समाप्त ॥१४३॥

अध्याय १४४

परुष्णी-संगम नामक तीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा ने कहा—परुष्णी-संगम नामक तीर्थ त्रिलोक्य प्रसिद्ध तीर्थ है । उसने पाप-विनाशक परिचय का वर्णन कर रहा हूँ, शृणु । अत्रि ने ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर की आराधना की । उनके प्रसन्न होने पर उन्होंने उनसे कहा कि आप लोग मेरे पुत्र होइये और हे देवगण ! मुझे एक रूपवती कन्या भी हो । निदान ने ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर उन्हे पुत्र दिये । कुछ समय बाद अत्रि ने आश्विनी नाम की एक क्षुद्र कन्या उत्पन्न की और उस महात्मा ने दत्त,

कन्यां च जनयामास शुभाऽऽत्रेयीति नामतः । दत्तः सोमोऽयं दुर्वासाः पुत्रास्तस्य महात्मनः ॥४॥
 अग्नेरङ्गिरसो जातो ह्यङ्गारैरङ्गिरा यतः । तस्मादङ्गिरसे प्रादादात्रेयोमातरोचिषम् ॥५॥
 अग्नेः प्रभावात्पुरुषमात्रेयीं सर्वदाऽयवत् । आत्रेय्यपि च शुश्रूषां कुर्वतो सर्वदाऽभवत् ॥६॥
 तस्यामाङ्गिरसा जाता महाबलपराक्रमा । अङ्गिराः पुरुषं वादीदात्रेयीं नित्यमेव च ॥७॥
 पुत्रास्तवाङ्गिरसा नित्यं पितरं शमयन्ति ते । सा कदाचिद्धृतुं वाक्यादुद्विग्ना परुषाक्षरात् ॥
 कृताञ्जलिपुटा दीना प्राब्रवीच्छ्वशुरं गुदम् ॥८॥

आत्रेय्युवाच

अत्रिजाह्मं हव्यवाह भार्या तव सुतस्य वै । शुश्रूषणपरा नित्यं पुत्राणा भर्तुरेव च ॥९॥
 पतिर्मां पश्य वक्ति वयंबोद्धोक्षते रथा । प्रशाधि मां सुरज्येष्ठ भर्तारं मम देवतम् ॥१०॥

ज्वलन उवाच

अङ्गारैर्मय समुद्भूतो भर्ता ते ह्यङ्गिरा ऋषिः । यथा शान्तो भवेद्भद्रे तथा नीतिविधीयताम् ॥११॥
 आग्नेयोऽग्निं समायातो तव भर्ता वरानने । तदा त्वं जलरूपेण प्लावयेया मदाज्ञया ॥१२॥

आत्रेय्युवाच

सहैयं पश्य वाचय मा भर्ताऽग्निं समाविशेत् । भर्तारं प्रतिकूलानां योषिता जीवनेन किम् ॥१३॥

सोम और दुर्वासा तीन पुत्र हुये । अग्नि के अङ्गिरस पुत्र थे । जिस लिए अङ्गारों से उसकी उत्पत्ति हुई थी इसलिये उसको अङ्गिरा कहते थे । अग्नि ने अपनी अतितेजस्वी कन्या अङ्गिरा को दे दी । अग्नि के प्रभाव से अङ्गिरा सर्वदा आत्रेयी को जली-कटी सुनाया करते थे परन्तु आत्रेयी सर्वदा पति-शुश्रूषा करती रहती थी । उससे महा बलवान् और पराक्रमी अङ्गिरस उत्पन्न हुआ । अङ्गिरा नित्य प्रति आत्रेयी को कटु बातें सुनाया करता था । वे पुत्र अङ्गिरस नित्य पिता को शान्त किया करते थे । वह किसी दिन पति के कटु शब्दों से उद्विग्न हो गई । उस दिन आत्रेयी ने हाथ जोड़कर अपने पूज्य स्वशुर से कहा ॥१-८॥

आत्रेयी ने कहा—हे हव्यको ढोने वाले अग्नि ! मैं अग्नि तनया आपके पुत्र की भार्या हूँ प्रतिदिन पुत्रों और भर्ता की शुश्रूषा किया करती हूँ, फिर भी मेरे पति वृथा ही कटु शब्द कहा करते हैं जोष से आँखें लरेर कर देखा करते हैं । सुरज्येष्ठ ! कृपाकर मेरे मनु देव और मुझको भी उचित उपदेश दीजिये ॥९-१०॥

अग्नि ने कहा—तुम्हारे भर्ता ऋषि अङ्गिरा अगार से उत्पन्न हुये हैं । तो जिस प्रकार वह शांत हो भद्रे ! वैसे ही उपाय करना चाहिए । सुन्दर बानन वाली ! तुम्हारे पति आग्नेय जब अग्नि के पास आये तब तुम जलरूप से उनको मेरी आभा से डूबा दो ॥११-१२॥

आत्रेयी ने कहा—मैं उनके कटु वाक्यों को सह लूँगी, परन्तु मेरे भर्ता अग्नि मे भत प्रवेश करें । भर्ता से

ज्वलन उवाच

इच्छेय शान्तिवाक्यानि भर्तारं सभजे तथा ॥१४॥
 अग्निस्त्वप्सु शरीरेषु स्थावरे जङ्गमे तथा । तव भर्तुरहं धाम नित्यं च जनको मत ॥१५॥
 योऽहं सोऽहमिति ज्ञात्वा न चिन्ता कर्तुमर्हसि । किंचाऽप्यो मातरो देव्यो ह्यग्निं स्वशुर इत्यपि ॥
 इति बुद्ध्या विनिश्चित्य मा विपण्णा भव स्नुषे ॥१६॥

स्नुषोवाच

आपो जनन्य इति यदवभावे, अग्नेरहं तव पुत्रस्य भार्या ।
 कथं भूत्वा जननी चापि भार्या, विरुद्धमेतज्जलरूपेण नाप ॥१७॥

ज्वलन उवाच

आदौ तु पत्नीं भरणात् भार्या, जनेस्तु जाया 'स्वगुणै' कलत्रम् ।
 इत्यादिरूपाणि त्रिभिर्वि भद्रे, कुरुष्व वाक्यं मद्बुद्धौ रितं यत् ॥१८॥
 योऽस्या प्रजातः स तु पुत्र एव, सा तस्य मातृव न सप्तयोऽत्र ।
 तस्माद्वदन्ति श्रुतितत्त्वविज्ञा, सा नैव योषित्तमयेऽभिजाते ॥१९॥

प्रतिकूल रहने वाली स्त्रियो के जीवन से क्या लाभ ? मैं तो जिस प्रकार भर्ता शान्ति वचन कहने लगीं वैसा ही करना चाहती हूँ ॥१११॥

अग्नि बोले—अग्नि तो जल गरीर स्थावर और जगम में रहता है । मैं तुम्हारे पति को उत्पन्न करने वाला और उनका धाम (आश्रय) हूँ । मैं तो जो हूँ वह हूँ ही या रहूँगा ही ऐसा जानकर तुम कभी भी चिन्ता न करो । दूसरी बात यह है कि आप (जल) देवी माता हैं, और अग्नि तुम्हारे समुद्र हैं इसका बुद्धि द्वारा निश्चय कर लो ! तुम उदास मत होओ ॥११५॥

स्नुषा बोली—अने ! आप (जल) जननी हैं यह आपने जो कहा वह ठीक नहीं क्योंकि मैं तुम्हारे पुत्र की भार्या हूँ । नाथ ! भार्या होकर स्त्री किस प्रकार जननी हो सकती है ? यह तो जलरूप से (जननी बनना) विरुद्ध जान पड़ता है ॥११७॥

अग्नि ने कहा—पहले (विवाह के समय) स्त्री पत्नी रहती है पुत्र भरणपोषण करने से भार्या बन जाती है पुत्रोत्पत्ति के कारण जाया और अपने गुणों के कारण कलत्र कहलाती है । मद्र ! इस प्रकार स्त्री होने से नाते तुम इन विविध रूपों की धारण करती हो अतः मैं जो कह रहा हूँ उसको करो । जो पति इसम (स्त्री में) उत्पन्न हुआ वह तो पुत्र ही हुआ और वह उसकी माता हुई इसम सन्देह नहीं । इसीलिये वे ममता से कहा है कि पुत्र उत्पन्न हो जाने पर स्त्री योषित् नहीं प्रयुक्त जननी हो जाती है ॥११८॥

ब्रह्मोवाच

द्वयदुरस्य तु तद्वाक्यं श्रुत्वाऽऽत्रेयो तदेव तत् । आग्नेयं रूपमापन्नमम्भसाऽप्लावयत्पतिम् ॥२०॥
 उभौ तौ दंपती ब्रह्मसंगतो गाङ्गावारिणा । शान्तरूपधरो सोमो दंपती संवभूवतुः ॥२१॥
 लक्ष्म्या युक्तो यथा विष्णुरुमया शंकरो यथा । रोहिण्या च यथा चन्द्रस्तथाऽभून्मिथुनं तदा ॥२२॥
 भर्तारं प्लावयन्ती सा दधाराम्बुमयं वपुः । परुष्णी चेति विख्याता गङ्गाया संगता नदी ॥२३॥
 गोशतापणजं पुण्यं परुष्णीस्नानतो भवेत् । तत्र चाऽऽङ्गिरसाश्चक्रुर्यज्ञांश्च बहुवक्षिणान् ॥२४॥
 तत्र त्रीणि सहस्राणि तीर्थान्याहुः पुराणयाः । उभयोस्तोरयोस्तात पूययागफलं विदुः ॥२५॥
 तेषु स्नानं च दानं च वाजपेयाधिकं मतम् । विशेषतस्तु गङ्गायाः परुष्ण्या सह सगमे ॥२६॥
 स्नानदानादिभिः पुण्यं यत्तद्वक्तुं न शक्यते । ॥२७॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये परुष्णीसंगमादित्रिसहस्रतीर्थवर्णनं
 नाम चतुश्चत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥१४॥

गौतमीमाहात्म्ये पञ्चसप्ततितमोऽध्यायः ॥७५॥

ब्रह्मा बोले—समुद्र की इन बानों को सुनकर आग्नेयी ने उसी समय उस आग्नेय रूप पाये हुये पति को जल में डुबो दिया । ब्रह्मान् । वे दोनों दम्पती गङ्गा-जल से मिल जाने पर शान्तस्वरूप वाले दम्पती बन गये । जिस प्रकार लक्ष्मी से युक्त विष्णु, उमा से युक्त शिव और रोहिणी से युक्त चन्द्रमा की गोमा होती है, उसी प्रकार वे दोनों युगल दम्पती मुशोमित हुये । भर्ता को जल से डुबोती हुई उसने जलमय शरीर धारण किया था, अतः वह परुष्णी नाम से विख्यात हुई और वह नदी गंगा में आकर मिली । परुष्णी में स्नान करने से सौ गोदान का पुण्य प्राप्त होता है । उस सगम तीर्थ में आगिरसों ने बहुत-सी दक्षिणा वाले अनेक यज्ञ किये । पुराण-गायक लोग वहाँ और तीन हजार तीर्थ बताते हैं । तात । वहाँ दोनों तटों के यज्ञों का फल पृथक्-पृथक् कहा गया है । उनमें स्नान और दान करने से वाजपेय यज्ञ से भी अधिक फल मिलता है, ऐसा कहा जाता है । गंगा और परुष्णी के सगम में स्नान-दान करने से जो विशेष पुण्य मिलता है, उसका वर्णन नहीं किया जा सकता ॥२० २७॥

श्रीब्रह्मपुराण में परुष्णी-सगम-तीर्थ-वर्णन नामक एक ही चौवालीसवां
 अध्याय समाप्त ॥१४४॥

अथ पञ्चचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः

मार्कण्डेयतीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

मार्कण्डेय नाम तीर्थ सर्वपापविमोचनम् । सर्वकृतुफल पुण्यमघौघविनिवारणम् ॥१॥
 तस्य प्रभाव वक्ष्यामि भृशं नारद यत्नतः । मार्कण्डेयो भरद्वाजो वसिष्ठोऽत्रिश्च गौतम ॥२॥
 याज्ञवल्क्यश्च जाबालिर्मुनयोऽप्यपि नारद । एते शास्त्रप्रणेतारो वेदवेदाङ्गपारगा ॥३॥
 पुराणन्यायमीमांसाक्यास्तु परिनिष्ठिताः । मियं समूचूचिद्वाप्तो भुक्तिं प्रति ययामति ॥४॥
 केचिज्ज्ञानं प्रशसन्ति कचित्कर्म तयोभयम् । एव विवदमानास्ते मामूचुर्भयं मतम् ॥५॥
 मदीयं तु मतं ज्ञात्वा ययुश्चक्रगदाधरम् । तस्य चापि मतं ज्ञात्वा श्रुत्यस्ते महोजसः ॥६॥
 पुनर्विवदमानास्ते शकरं प्रष्टुमुद्यताः । यज्ञाया च भव पूज्य तमेवार्थं शशसिरे ॥७॥
 कमणस्तु प्रधानत्वमुवाच त्रिपुरातकः । क्रियारूपं च तज्ज्ञानं क्रिया संव तदुच्यते ॥८॥
 तस्मात्सर्वाणि भूतानि कर्मणा सिद्धिमाप्नुयुः । कर्मैव विश्वतोऽप्यापि तदूते नास्ति किञ्चन ॥९॥
 विद्याभ्यासो' यज्ञकृतियोगाभ्यास शिवाचनम् । सर्वं कर्मैव नाकर्मो प्राणी ब्रह्माप्यत्र विद्यते ॥१०॥

अध्याय १४५

मार्कण्डेयतीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा बोले—सब पापों को छुड़ाने वाला सब यज्ञ श्रमों को देने वाला पवित्र और अघ-समूह को नष्ट करने वाला मार्कण्डेय नामक तीर्थ है । नारद । उसके प्रभाव को बहुरहा है तुम ध्यानपूर्वक सुनो । नारद ।
 मार्कण्डेय भारद्वाज वसिष्ठ अत्रि गौतम यागवल्क्य जाबालि आदि मुनियों एवं अन्य शास्त्रकर्ता वेदवेदाङ्ग
 व पारंगत पुराण मीमांसा और यागवर्चों में अति निष्ठा रखने वाले विद्वान् । न भुक्ति के विषय में अपनी मूर्ख के
 अनुसार परस्पर अपने विचार व्यक्त किये । कोई ज्ञान की प्रशंसा करते थे तो कोई कर्म की । तो कोई कर्म और
 ज्ञान दोनों की । इस प्रकार परस्पर विवाद करते हुए उन लोगों ने मेरे सामने दोनो पक्ष रखे । मेरे मन को जान
 कर लोग चक्रगदाधारी विष्णु के समीप गये । उनका मत को भी जान कर महादेवस्त्री श्रुति पुन अपने म
 विवाद करते हुए शकर से पूछने के लिये तैयार हुए । यथा मंगल की पूजा कर उनके पुन उसी विवाद के विषय
 में निवेदन किया । त्रिपुरारिजिने कर्म का ही प्राध्याय बतलाते हुए कहा—बहु ज्ञान भी कर्म रूप ही है और वही
 कर्म ज्ञान कहा जाता है । इसलिए सब प्राणी कर्म के द्वारा ही सिद्धि प्राप्त करते हैं । कर्म ही विवर्ध्यापी है । कर्म
 के बिना कुछ भी सम्भव नही है । विद्याभ्यास यज्ञकार्य योगाभ्यास त्रिपूजा सब कुछ कर्म ही है । कोई प्राणी

कर्मैव कारणं तस्मादन्यदुन्मत्तचेष्टितम् । ऋषीणां यत्र संवादोऽथ देवो महेश्वरः ॥११॥
 चकार निर्णयं सर्वं कर्मणाऽवाप्यते नृभिः । मार्कण्डेः मुख्यतः कृत्वा ततो मार्कण्डमुच्यते ॥१२॥
 तीर्थमुपिगणाकीर्णं गङ्गायाऽऽत्तरे' तटे । पितृणां पावनं पुण्यं स्मरणादपि सर्वदा ॥१३॥
 तत्राष्टौ भवतिस्तात तीर्थान्याह जगन्मयः । वेदेन' चापि तत्रोक्तमूषयो मेनिरे च तत् ॥१४॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये मार्कण्डेयाष्टनवतितीर्थवर्णनं नाम

पञ्चचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥१४५॥

। गौतमीमाहात्म्ये षट्सप्ततितमोऽध्यायः ॥७६॥

अथ षट्चत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः

कालञ्जरतीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

यायातमपरं तीर्थं यत्र कालञ्जरः शिवः । सर्वपापप्रशमनं तद्वत्समुच्यते' मया ॥१॥

अर्कर्मों वहीं पर भी नहीं देखा गया है । इसलिये अन्य उन्मत्त चेष्टाओं (पागलपन के कामों) का भी कर्म ही कारण है ।' जहाँ ऋषियों का इस प्रकार का संवाद हुआ और जहाँ महेश्वर ने 'मनुष्य सब कुछ कर्म के द्वारा ही प्राप्त करता है' ऐसा नियम विशेष रूप से मार्कण्डेय की ही लक्षित करके किया, इसलिये उसको मार्कण्डेय तीर्थ कहते हैं । गंगा के उत्तर तट पर ऋषियों से व्याप्त तीर्थ पितरों को पवित्र करने वाला और सर्वदा स्मरणमात्र से भी पुण्यदायी है । तात । जगद्व्यापक ने वहाँ अद्वैतानन्दे तीर्थों को कहा है, वेदों ने भी उसको कहा है और ऋषियों ने भी इसका समर्पण किया है ॥१-१४॥

श्री ब्रह्ममहापुराण में मार्कण्डेय आदि अद्वैतानन्दे तीर्थों का वर्णन नामक एक सौ पैंतीसवाँ अध्याय समाप्त ॥१४५॥

अध्याय १४६

कालञ्जरतीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा बोले—यायात नामक एक दूसरा तीर्थ है जहाँ कालञ्जर शिव रहते हैं । उसके सब पापों को धात करने वाला इतिहास मैं कह रहा हूँ । नहुष का पुत्र ययाति नामक राजा था, जो क्षत्रात् दूसरे इन्द्र के समान

ययानिर्नाहुयो राजा साक्षादिन्द्र इवापरः। तस्य भार्याद्वयं चाऽऽसीत्कुललक्षणभूयितम् ॥२॥
 ज्येष्ठा तु देवयानीति नाम्ना शुरुमुता शुभा। शर्मिष्ठेति द्वितीया सा सुता स्याद्वृषपर्वणः ॥३॥
 ब्राह्मण्यपि महाप्राज्ञा देवयानी सुमध्यमा। ययातेरभवद्भार्या सा तु शुरुप्रसादतः ॥४॥
 शर्मिष्ठा चापि तस्यैव भार्या या वृषपर्वजा। देवयानी शुरुमुता द्वौ पुत्रौ समजीजनत् ॥५॥
 यदुं च तुवंतुं चैव देवपुत्रसमावुभौ। शर्मिष्ठा च नृपाल्लेभे त्रोगुनान्देवसनिभान् ॥६॥
 द्रुह्युं चानुं च पूरु च ययातेनृपसत्तमात्। देवयान्याः सुतौ ब्रह्मन्सदृशौ शुरुरूपतः ॥७॥
 शर्मिष्ठायास्तु तनयाः शक्राग्निवरुणप्रभाः। देवयानी कदाचित्तु पितरं प्राह दुःखिता ॥८॥

देवयान्युवाच

मम स्वपत्यद्वितयमभाग्याया भृगूद्वह। मम दास्याः सभाग्याया अपत्यत्रितयं पितः ॥९॥
 तदेतदनुमृदयामं दुःखमत्यन्तमागता। मरिष्ये दानवगुरो ययातिवृत्तिप्रियात् ॥
 मानभङ्गादरं तात भरणं हि मनस्विनाम् ॥१०॥

ब्रह्मोवाच

तदेतत्पुत्रिकावाक्यं श्रुत्वा शुकः प्रतापवान्। कुपितोऽभ्यास्यो शीघ्रं ययातिमिदव्रवीत् ॥११॥

या। उसकी कुलीन और सब लक्षणों से सुसोमित दो स्त्रियाँ थीं। जेटी बल्याणमयी शुक-जन्मा देवयानी नामकी और दूसरी वृषपर्वा की पुत्री शर्मिष्ठा थी। वह सुन्दर बटिवाली, महाबुद्धिमती देवयानी ब्राह्मणी होते हुए भी शुक की हृषा से सक्रिय ययाति की भार्या हुई। वृषपर्वा-तनया शर्मिष्ठा भी उसी की पत्नी हुई। शुक-जन्मा देवयानी ने दो पुत्रों को उत्पन्न किया। उन दोनों के नाम यदु और तुवंगु था। दोनों देव-पुत्रा के समान थे। शर्मिष्ठा न भी नृपथ्येष्ट ययाति से देव तुल्य तीन पुत्र—द्रुह्य, अनु और पूरु—प्राप्त किये। ब्रह्मन्। देवयानी के पुत्र रूप में शुक के समान थे, और शर्मिष्ठा के पुत्र इन्द्र, अग्नि और वरुण के समान तेजस्वी थे। किसी समय देवयानी ने अत्यंत दुःखी हो कर पिता से कहा ॥१-८॥

देवयानीने कहा—भृगुकुलोत्पन्न पिता जी। मुझ अभागिनी के दो दो ही पुत्र हैं, किन्तु मेरी सोमाग्न-वनी दासी के तीन पुत्र हैं। इन बाटा को सोचकर मुझे दुःख हो रहा है। दानव-भृगु। ययाति के द्वारा किये गये अपमान मैं मर जाऊँगी। तात। मनस्वी के लिए मानभङ्ग की अपेक्षा मर जाना ही अच्छा है ॥९-१०॥

यहमा ने कहा—पुत्री की यह बात सुनकर प्रतापी शुक कुपित हो गए और शीघ्र ययाति के पास जाकर यह बोले ॥११॥

शुक उवाच

यदिव विप्रिय मे त्व सुताया कृतवानसि । ह्योन्मत्तेन राजेन्द्र तस्माद्बुद्धो भविष्यसि ॥१२॥
न च भोक्तुं न च त्यक्तुं शक्नोति विषयातुर । स्पृहयन्मनसं वाऽऽस्ते निश्वासीच्छ्वासनष्टधी ॥१३॥
वृद्धत्वमेव मरणं जीवतामपि देहिनाम् । तस्माच्छ्रेष्ठ प्रयाहि त्वं जरा भूपातिदुर्धराम् ॥१४॥

ब्रह्मोवाच

एतच्छ्रुत्वा ययातिस्तु शापं शुकस्य धीमतः । कृताञ्जलिपुटो राजा ययातिः शुक्रमब्रवीत् ॥१५॥

ययातिरुवाच

नापराधे न सकृप्ये नैवाधर्मं प्रवर्तये । अधर्मकारिण पापा शास्या एव महात्मनाम् ॥१६॥
धर्ममेव चरन्तं वै कथं मां शप्तवानसि । देवयानी द्विजश्रेष्ठ युया मां घवितं किञ्चन ॥१७॥
तस्मान्न मम विभ्रेद्र शापं दातुं त्वमर्हसि । विद्रासोऽपि हि निर्दोषो यदि कुप्यन्ति मोहिताः ॥
तदा न दोषो मूर्खाणां द्वेषानिप्लुष्टचेतसाम् ॥१८॥

ब्रह्मोवाच

ययातिर्वाक्याच्छुक्रोऽपि सस्मार सुतया कृतम् । असहृदिप्रिय तस्य दिवा रात्रौ प्रचण्डया ॥१९॥
गतकोपोऽहमित्युक्त्वा काव्यो राजानमब्रवीत् ॥२०॥

शुक बोले—तुमने जो यह रूप के पीछ पागल होकर मेरी पुत्री का अपमान किया है राजेन्द्र । इस पाप से तुम बूढ़ हो जाओगे । विषयातुर होते हुए भी बूढ़ा व्यक्ति न तो विषयों का भोग ही कर सकता है और न त्याग ही । केवल वह मन से इच्छा करता रहता है । अनुपति के कारण वह सबदा आहें मरा करता है । उसकी बुद्धि मष्ट हो जाती है । गरीरधारियों के लिये बुढ़ापा जीते जी मृत्यु है । इसलिये भूपाल ! तुम शीघ्र ही दुःखदायी बुढ़ापे का आन्ध्रगन करो ॥१२-१४॥

ब्रह्मा बोले—धीमान् शुक के इस शाप को सुनकर राजा ययाति हाथ जोड़कर शुक से बोले ॥१५॥

ययाति ने कहा—महात्माओं द्वारा अधर्मी पापी सबदा अनुगमिता होते ही हैं किन्तु मैंने न तो कोई अपराध किया है न किसी पर क्रोध किया है और न अधर्म की ओर ही गम बढ़ाया है । सबदा धर्माचरण करने वाले मुझको आपने क्या शाप दिया है ? द्विजश्रेष्ठ ! देवयानी व्यथ ही भूल पर दोषारोपण कर रही हैं । विभ्रेद्र ! इसलिये आपरो मुझ पाप नहीं देना चाहिये था । यदि विद्वान् भी मोहित होकर निरपराधों पर इस प्रकार कोप करेंगे तो द्वेषानि से जले हुये चित्त वाले मूर्खों को ऐसा काय करने में कोई दोष नहीं होगा ॥१६-१८॥

ब्रह्मा ने कहा—ययाति के बहने से शुक को भी अपनी निम्न रात बार-बार घूटता करने वाली प्रचण्ड क्रिया के वृत्तों की याद आ गई । उन्होंने मेरा क्रोध अब शांत हो गया ऐसा कह कर राजा से कहा ॥१९-२०॥

शुक उवाच

।।

ज्ञातं मयाऽनयाऽकारि विप्रियं न वदेऽनृतम्॥ शापस्येभं करिष्यामि शृणुष्वानुग्रहं नृप॥२१॥
यस्मै पुत्राय सदातुं जरामिच्छसि मानव॥ तस्य सा यातिवय राजञ्जरा पुत्राय मद्वरात्॥२२॥

ब्रह्मोवाच

पुनर्ययाति इवशुरं शुकं प्राह विनीतवत् ॥२३॥
यो गृह्णाति मया दत्ता जरा भवितसमन्वितः । स राजा स्याद्वैत्यगुरो तदेतदनुमन्यताम्॥२४॥

ययातिरुवाच

धो मद्राक्यं नाभिनन्देत्सुतो दैत्यगुरो वृद्धम् । त शपेयमनुज्ञाऽत्र दातव्यं त्वया गुरो॥२५॥
ब्रह्मोवाच

एवमस्तिवति राजानमुवाच भृगुनन्दनः । ततो ययाति इव पुत्रमाहूयेव वचोऽब्रवीत्॥२६॥
ययातिरुवाच

यवो गृहाण मे शापाञ्जरा जातां सुतो भवान् । ज्येष्ठः सर्वार्यवित्प्रोढः पुत्राणां धुरि सस्थितः॥
पुत्री तेनैव जनको यस्तदजायते स्थितः॥२७॥

ब्रह्मोवाच

नेत्युवाच षडुस्तातं ययाति भूरिदक्षिणम् । ययातिश्च यदु शापवा तुवंतुं काममब्रवीत्॥२८॥

शुक ने कहा—मैंने जान लिया कि उसने अवश्य अपराध किया है परन्तु मैं किसी भी असत्य नहीं बोलता।
नृप ! इन बातों का यह परिहार कर रहा हूँ। मानव ! जिस पुत्र को अपना बुरापा देना चाहते हो राजन् !
उसको वह बुरापा मेरे बरदान से मिल जाय और तुम मुवा हो जाओ ॥२१-२२॥

ब्रह्मा बोले—पुनः ययाति ने अनि विनम्र भाव से इवशुर शुक से कहा ॥२३॥

ययाति ने कहा—परन्तु दैत्यगुरो ! आप इस बात की अनुमति दीजिए कि जो मन्त्रिगुरुवर्ग मेरे दिने
हुए बुरापा को अपना ले वह राजा हो। दैत्यगुरो ! जो मेरे वाक्या का बुरापा से अनाश्र करे उसको शाप भी दे
दूँ। गुरो ! आप ऐसी भी आज्ञा दीजिये ॥२४-२५॥

ब्रह्मा बोले—भृगुनन्दन ने 'एवमस्त्यु' ऐसा राजा से कहा। तब राजा ने अपने ज्येष्ठ पुत्र को बुलाकर
यह बात कही ॥२६॥

ययाति ने कहा—यदु ! आप से पाई हुई मेरी इस जरा को ले लो क्योंकि तुम मेरे ज्येष्ठ पुत्र, सब बातों
को जानने वाले वयस्क और सब पुत्रों के अग्रणी हो। पिता उस पुत्र से पुत्रकान् कहा जाता है जो उसकी आज्ञा
के अनुसार कार्य करे ॥२७॥

ब्रह्मा बोले—यदु ने अतिरिक्तवाणी पित्रा ययाति से 'नहीं' ऐसा कहा; ययाति ने यदु को शाप

नागृह्णातुर्वसुश्चापि पित्रा दत्तां जरां तदा । तं शप्त्वा चाब्रवीद्ब्रह्मं गृहाणेमां जरां मम ॥२९॥
 द्रुह्युश्च मेच्छतां दत्तां जरां ह्यविनाशिनीम् । अनुमप्यब्रवीद्राजा गृहाणेमां जरां मम ॥३०॥
 अनुनेति तदोवाच शप्त्वा तं पूरुषब्रवीत् । अभिनन्द्य तदा पूरुर्जरां तां जगृहे पितुः ॥३१॥
 सहस्रमेकं वर्षाणां यावत्प्रोतोऽभवत्पिता । यौवने यानि भोग्यानि वस्तूनि विविधानि च ॥३२॥
 पुत्रयौवनसंपुष्टो ययातिर्बुभुजे सुखम् । ततस्तृप्तोऽभवद्राजा सर्वभोगेषु नाह्वयः ॥
 ततो हर्षात्समाहूय पुत्रं पुत्रमयाब्रवीत् ॥३३॥

ययातिरुवाच

।।।

तृप्तोऽस्मि सर्वभोगेषु यौवनेन तवतद्य । गृहाण यौवनं पुत्र जरां मे देहि कश्मलाम् ॥३४॥

ब्रह्मोवाच

मेत्युवाच तदा पूरुर्जरया क्षीयते मया । विकारास्तात भावार्ता दुर्निवाराः शरीरिणाम् ॥३५॥
 बलात्कालागता स्रग्ध्या जराऽप्यखिलदेहिभिः । सा चेद्गुरूपकाराय गृहीता त्यज्यते कथम् ॥३६॥
 स्वीकृतस्यागपापादि देहिनां भरणं वरम् । अयदा तु जरां राजंस्तपसा नाशयाम्यहम् ॥३७॥

ब्रह्मोवाच

एवमुक्त्वा तु पितरं ययौ गङ्गामनुत्तमाम् । गीतम्या वक्षिणे पारे ततस्तेपे तपो महत् ॥३८॥

देकर तुर्वसु से बड़े प्यार से अपना मनोरथ कहा । उस समय तुर्वसु ने भी पिता के दिये हुए वृद्धापे को नहीं लिया । राजा ने उसको भी शाप देकर द्रुह्यु से कहा—‘मेरा यह वृद्धाप ले लो’ । द्रुह्यु ने भी हृष सौन्दर्य का विनष्ट करने वाली पितृ-व्रत जरा का अस्वीकार कर दिया । राजा ने अनु से भी कहा कि मेरी इस जरा को ले लो । अनु ने कहा ‘कभी नहीं’ । तब उसको भी शाप देकर राजा ने पूरु से कहा । पूरु ने पिता का सम्मान कर पिता का वृद्धाप ले लिया । पिता ययाति ने एक सहस्र वर्ष तक प्रसन्न एवं पुत्र की जवानी से परिपुष्ट होकर युवावस्थाजित जितने विविध भोग-मदार्थ और सुख थे, उनका उपभोग किया । इसके बाद जब राजा महर्ष पुत्र सब भोगों से तृप्त हो गये तब यही प्रसन्नता से पुत्र पूरु को बुलाकर बोले ॥२८-३३॥

ययाति ने कहा—‘तुम्हारे इस यौवन से मैंने विविध भोगों का भोग किया । अब मैं तृप्त हो गया हूँ । पुत्र ! अब इस यौवन को ले लो और मेरी पापिनी वृद्धावस्था को दे दो ॥३४॥

ब्रह्मा बोले—‘तब पूरु ने कहा ‘नहीं तात’ । जरा से मेरी दुर्वासनायें नष्ट हो रही हैं । देह धारियोंके भाव-विकार कठिनाई से दूर करने योग्य होते हैं । अब उन विकारों को दूर करने वाली जरा यदि हटात समय की प्रेरणा से आ जाय तो भी सब देहधारियों को स्वीकार कर लेना चाहिये । वह यदि गुरु के उपकार के लिये हो तब तो उसको क्यों छोड़ा जाय । स्वीकार की हुई वस्तु के परित्याग जलित-माष से देही का मर जाना ही अच्छा है । अथवा राजन् ! मैं इस जरा को तपस्या के द्वारा नष्ट करि देता हूँ ॥३५-३७॥

ब्रह्मा बोले—‘पिता से यह कहकर पूरु परमोत्तम शीतली शपा के पात्र गया और उसके दक्षिण तट पर

ततः प्रीतोऽभवद्देव कालेन महता शिव । लोकातीतमहोदारगुणसम्मणिभूषितम् ॥
किं वदामीति त प्राह पूरुष सुरसत्तम ॥३९॥

पूरुषवाच

शापप्राप्ता जरा नाय पितुर्मम सुराधिप । ता नाशयस्व देवेश पितृशप्ताश्च कोपत ॥
मदग्नातृञ्चापतो मुक्तान्कुण्डल सुरपूजित ॥४०॥

ब्रह्मोवाच

तथत्युक्त्वा जगन्नाय शापाञ्जिता जरा तथा । 'अनाशयज्जगन्नायो म्यातुश्चक्रे विशापिन ॥४१॥
ततः प्रभृति तत्तोष जरारोगविनाशनम् । अकालजजरादीनां स्मरणादपि नाशनम् ॥४२॥
तन्नाम्ना चापि विख्यात कालजरमुदाहृतम् । यायात नाहुष पौर शोकं शामिष्यमेव च ॥४३॥
एवमादीनि तोर्यानि तन्नाष्टोत्तरमेव च । शतं विद्यान्महाबुद्धे सर्वसिद्धिकरं तथा ॥४४॥
तपु स्नानं च दानं च श्रवणं पठनं तथा । सर्वपापप्रशमनं भुवि तमुचितं प्रदं भवेत् ॥४५॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तोर्यमाहात्म्ये कालजराष्टोत्तरशततीर्ययणन नाम

पटचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्याय ॥१४६॥

गौतमीमाहात्म्ये सप्तसप्ततितमोऽध्याय ॥७७॥

महान् तपस्या करने लगा । तदनन्तर मगवान् गङ्गा बहुत समय बाद प्रसन्न हुये । उस गुरुवर ने लोनातीत महान् उदारता कृपी अञ्जलि मणि से भूषित उस पूरुष से कहा कि क्या दू ॥३९॥

पूरुष ने कहा—गुरु स्वामिन ! नाथ ! पाप से घाई हुई मेरे पिता की जरा को नष्ट कर दीजिये । देवेश ! देवपूजित ! शोक से पिता द्वारा अमिष्ट मेरे माइया को पाप से मुक्त कर दीजिये ॥४०॥

ब्रह्मा ने कहा—एसा ही हो यह गुरुवर जगन्नाय गङ्गा ने शाप से उत्पन्न जरा को नष्ट कर दिया और उसने माइया की भी पाप से मुक्त कर दिया । तब से वह तीक्ष्ण जरा एक रोग का विनाशक और स्मरणमान से भी अममय के बुढ़ाने को दूर करने वाला हो गया । उस प्रभाव के कारण उसका नाम मा नाशक हो गया । महाबुद्धे ! यायात नाहुष पौर गौतम शामिष्य आदि एक सौ आठ तीर्य बड़ी विद्यमान हैं जो सब प्रकार की सिद्धियाँ देने वाले हैं । उनमें स्नान दान दया श्रवण पठन आदि बन्धनकार पापों को दूर करने वाले और मुक्ति मुक्ति प्रद हैं ॥४१॥४५॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में यायात नाशक आदि एक सौ आठ तीर्यों का वर्णन नाम

एक सौ छियासीतर्क अष्टम्य सप्तम्य ॥४६॥

अथ सप्तचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः.

अप्सरायुगसगमतीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

'अप्सरायुगमाख्यातमप्सरसगम तत । तीरे च दक्षिणे पुण्य स्मरणात्सुभगो भवेत् ॥१॥
मुक्तो भवत्यसदेह तत्र स्नानादिना नर । स्त्री सती सगमे तस्मिन्नुत्सनात् च नारद ॥२॥
मध्याह्नि जनयेत्पुत्र त्रिमासास्पतिना सह । स्नानदानेन वर्तन्ती नान्यथा मद्बचो भवेत् ॥३॥
अप्सरायुगमाख्यात तीर्थं येन च हेतुना । तत्रेदं कारणं वक्ष्ये शृणु नारद यत्नत ॥४॥
स्पर्शाऽऽसौन्महती ब्रह्मन्विश्वामित्रवसिष्ठयो । तपस्यन्त गाधिसुत ब्राह्मण्यायै यतव्रतम् ॥५॥
गङ्गाद्वारे समासीन प्रेरितेन्द्रेण मेनका । त गत्वा तपसो भ्रष्ट कुरु भद्रे समाऽऽज्ञया ॥६॥
तदोक्तेद्वेण सा मेना विश्वामित्र तपश्च्युतम् । कृत्या कन्या तया दत्त्वा जगामेन्द्रपुर पुन ॥७॥
तस्या गताया सस्मार गाधिपुत्रोऽखिल कृतम् । त तु देशं परित्यज्य तीर्थं तु सुरवल्लभम् ॥८॥
जगाम दक्षिणां गङ्गां यत्र कालजरो हर । तपस्यन्त तदोवाच पुनरिन्द्र सहस्रदुक् ॥९॥

अध्याय १४७

५६२३३

अप्सरायुग या अप्सरा-सगम तीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा बोले—इसके बाद गीतमा के दक्षिण तीर पर अप्सरो-युग नामक एक पवित्र तीर्थ है जिसको अप्सरासगम भी कहते हैं । उससे स्मरण से श्री मनुष्य आश्रयवान् हो जाता है । उस तीर्थ में स्नान आदि से मनुष्य निरादेह मुक्त हो जाता है । नारद ! उस सगम में यदि शत्रुत्सनाता पतिव्रता स्त्री तीन महाने तक पति के साथ स्नान, दान आदि का व्रत करे तो वह बाढ़े बच्यो हो क्यों न हो अवश्य पुत्र उत्पन्न करती है । नारद ! जिस कारण उसका अप्सरा-युग तीर्थ नाम पड़ा वह बता रहा हूँ ध्यानपूर्वक सुनो ।

ब्रह्मन् ! विश्वामित्र और वसिष्ठ में बहुत बड़ी प्रतिस्पर्धा थी । ब्रह्मणि बनने के लिए विश्वामित्र ने व्रत धारण करके हृष्टिार में जाकर महान् तपस्या प्रारम्भ की । तपस्वी विश्वामित्र को तपोभ्रष्ट करने के लिये इन्द्र ने मेनका से कहा मन्त्रे ! मरी आका से तुम विश्वामित्र के पास जाओ और उसको तपस्या से अभ्युत कर दो । इन्द्र से इस प्रकार की आज्ञा पाकर मेना ने विश्वामित्र का तपोभ्रष्ट कर दिया । वह उनसे एक कन्या उत्पन्न कर उनकी देवर पुत्र इन्द्रपुरी चली गई । उससे बने जाने पर शत्रुपति को पिछली सारी बातों का स्मरण हुआ । शीघ्र उठा प्रान्त और गुरु प्रिय तीर्थ को छाड़ दक्षिण गंगा के तट पर आये जहाँ कालञ्जरी महादेव स्थित हैं । पुन उहाँ पहले की ही भाँति तपस्या में लीन देखकर सहस्राक्ष इन्द्र ने उन्हीं मेना रम्भा और तिलोत्तमा

उर्वशीं च ततो मेना रम्भा चापि तिलोत्तमाम्। नैवेत्पूज्यमयत्रस्ता पुनराह शचीपति ॥१०॥
गम्भीरा चातिगम्भीरामुभे ये गाविते तदा। ते ऊचतुर्भे देव सहस्राक्ष पुरंदरम् ॥११॥

गम्भीरातिगम्भीरे ऊचतु

आवा गत्वा तपस्यन्त गाधिपुत्र महाद्युतिम्। व्यावयावो नृत्यगीत रूपयौवनसपदा ॥१२॥
पातामपाङ्गे हसिते वाचि बिभ्रमसपदि। नित्यवसति पञ्चपुस्ताभि फोऽत्र न जीयते ॥१३॥

ब्रह्मोवाच

तथत्युक्ते सहस्राक्षे त आगत्य सहानदीम्। ददृशाते तपस्यन्त विश्वामित्र महामुनिम् ॥१४॥
मृत्योरपि दुराध्व भूमिस्पमिव धूर्जटिम्। सहस्रमेक वर्षाणामोक्षितु न च शक्नुत ॥१५॥
दूरे स्थिते नृत्यगीतचाटुकाररते तदा। विलोक्य मुनिशार्दूलस्तत कोपाकुलोऽभवत् ॥१६॥
प्रतीपाचरण दृष्ट्वा क्रोध कस्य न जायते। निस्पृहोऽपि महाबाहुस्तमिन्द्र प्रसहन्निव ॥१७॥
आम्ना मुक्त सहस्राक्षो ह्यसरोम्या षडन्निव। शशाप तं स गाधेयो द्रवरूपे भविष्य ॥१८॥
द्रवितु मा समापात यतस्त्वह ततो लघु। तत प्रसादितस्ताम्या शापमोक्ष चकार स ॥१९॥

आदि से उनको तपोब्रष्ट करने के लिये कहा। परन्तु भयभीत होकर किसी ने कुछ नहीं कहा। तब पुन गात्री पति ने अपने रूप पर अभिमन करने वाली गम्भीरा और अतिगम्भीरा नामक अप्सराओं से कहा। उन दोनों ने सहस्रनेत्र इन्द्र से कहा ॥११॥

गम्भीरा और अतिगम्भीरा ने कहा—(हम दोनों जाकर अपने सौंदर्य और मुवावस्था के प्रभाव से एव अपने मृत्यु और गीत के आकर्षण से उस तपोनिष्ठ महातेजस्वी गाधि मुक्त को च्युत कर देंगी।) जिनके कटाक्ष हास, वाणी और विलास में पञ्चवक्त्र मदन सबका निवास करता है उनसे मला कीन नहीं जीता जा सकता है ? ॥१२ १३॥

ब्रह्मा ने कहा—इन्द्र की स्वीकृति मिल जाने पर दोनों अप्सराओं ने महानदी पर आकर तपोरत उस महामुनि को देखा परन्तु मृग्य से भी अधिक भयंकर पृथ्वी पर स्थित औरव शंकर के समान उस मुनि की ओर एक हजार वर्ष तक आँख उठाकर देखने का साहस नहीं हुआ। (जब वे दूर रहकर ही अपने नृत्य गीत और हाव भाव दिखाने में लग गये।) उनकी यह कीला देखकर वही विश्वामित्र त्रय से व्याकुल हो गये। टीक है—अनुचित व्यवहार को देखकर किसी को क्रोध नहीं होता ? निस्पृह होते हुए भी उस महापराक्रमी गाधि-मुक्त ने इन्द्र पर हँसते और यह कहते हुए स कि सहस्राक्ष इन्द्र इन अप्सराओं के भार से अब मुक्त हो गये। उन दोनों को शाप दे दिया कि तुम दोनों जल (द्रव) रूप हो जाओ क्योंकि तुम दोनों भुक्तों यहाँ द्रवित (च्युत) करने के लिये आई थी। गात्री देव मही उन दोनों ने मुनि को प्रसन्न कर दिया जिससे उस मुनि ने उसे शाप से मुक्त कर दिया और कहा—जब तुम दोनों गंगा से मिलोगी तब उसी क्षण शाप से पाये हुए नदी रूप को छोड़ दिव्य रूप पा जाओगी।

भवेतां दिव्यरूपे वा गङ्गाया संगते यदा । तच्छापात्ते नदीरूपे तत्क्षणात्संवभूवतु ॥२०॥
अप्सरोयुगमाख्यातं नदीद्वयमतोऽभवत् । ताम्यां परस्परं चापि ताम्यां गङ्गासु संगमः ॥२१॥
सर्वलोकेषु विख्यातो भुक्तिभुक्तिप्रदः शिवः । तत्राऽस्ते दृष्ट एवासी सर्वसिद्धिप्रदायकः ॥२२॥
तत्र स्नात्वा तु तं दृष्ट्वा मुच्यते 'सर्वबन्धनात्' ॥२३॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्येऽप्सरोयुगसंगमतीर्थवर्णनं नाम
सप्तचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥१४७॥
गीतमीमाहात्म्येऽष्टसप्ततितमोऽध्यायः ॥७८॥

अथाष्टचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः

कोटितीर्थवर्णनम् ब्रह्मोवाच

कोटितीर्थमिति ख्यातं गङ्गाया 'दक्षिणे' तटे । यस्यानुस्मरणादेव सर्वपार्षं प्रमुच्यते ॥१॥
यत्र कोटीश्वरो देवः सर्वं कोटिगुणं भवेत् । कोटिद्वयं तत्र पूर्णं तीर्थानां शुभशयिनाम् ॥२॥
तत्र द्युष्टिं प्रवक्ष्यामि शृणु नारद तन्मनाः । कण्वस्य तु सुतो ज्येष्ठो बाह्लीक इति विभुतः ॥३॥

इसलिये नदीद्वय के संयोग से यह तीर्थ अप्सरोयुग नाम से प्रसिद्ध हुआ । उनका परस्पर का संगम, पुन उन दोनों का गंगा से संगम सब लोक में प्रसिद्ध हो गया । उस तीर्थ में भुक्ति-भुक्ति देने वाले एवं दर्शनमात्र से सब सिद्धियाँ देने वाले लोक-विख्यात शिव रहते हैं । तीर्थ में स्नान और उस शिव का दर्शन करने से मनुष्य सब बन्धनों से छूट जाता है ॥१४-२३॥

श्री ब्रह्ममहापुराण में अप्सरोयुग-संगम-तीर्थ-वर्णन नामक एक सौ सत्तालीसवाँ अध्याय समाप्त ॥१४७॥

अध्याय १४८

कोटितीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा बोले—गंगा के दक्षिण तट पर कोटि-तीर्थ नामक एक तीर्थ है, जिसके स्मरण मात्र से मनुष्य सब पापों से छूट जाता है ॥१॥ जहाँ कोटीश्वर देव हैं, वहाँ में प्रत्येक कार्य करोड़ गुना फल देते हैं । वहाँ पुरे दो करोड़ पवित्र तीर्थ हैं ॥२॥ नारद ! वहाँ के फल का वर्णन कर रहा हूँ, ध्यानपूर्वक सुनो । कण्व के ज्येष्ठ पुत्र बाह्लीक नाम से प्रसिद्ध थे ॥३॥ और लोग उन्हें कण्व कहते थे । वेदवेदांग के पारंगत विद्वान् वेदज्ञ वाण्व अपनी भार्या

काण्वश्चेति ॥ जनेः ख्यातो वेदवेदाङ्गपारगः । इष्टीः पार्वयणानीर्याः सभार्यो वेदपारगः ॥१४॥
 कुर्वन्नास्ते स गौतम्यास्तोरस्थो लोकपूजितः ॥ १५॥ प्रातःकाले सभार्योऽसौ जुह्वदग्नीं समाहितः ॥१५॥
 सर्वदाऽऽस्ते कदाचित्तु हवनाय समुद्यतः । एकाहुति स हुत्वा तु समिद्धे हव्यवाहने ॥१६॥
 आहुत्यन्तरवानाय हविर्द्रव्यं करोऽहीत् । एतस्मिन्नन्तरे वह्निरूपशान्तोऽभवत्तदा ॥१७॥
 ततश्चिन्तापरः काण्वः कर्तव्यं किं भवेदिति । अन्तर्विचारयामास विपादं परमं गतः ॥१८॥
 आहुत्योश्च द्वयोर्मध्य उपशान्तो हुताशनः । अग्न्यन्तरमुपादेय वैदिकं लौकिकं तथा ॥१९॥
 नव होष्य स्याद्वितीत्यं तु आहुत्यन्तरमेव च । एवं भीमांसमाने तु दैवी वागब्रवीत्तदा ॥१९॥
 अग्न्यन्तरं नैव तेऽत्र उपादेयं भविष्यति । यानि तत्र भविष्यन्ति शकलानि समीपतः ॥११॥
 अर्धवायेषु काष्ठेषु विप्रराजः प्रहूयताम् । नेत्युवाच तदा काण्वः संव वागब्रवीत्पुनः ॥१२॥
 अग्ने पुत्रो हिरण्यस्तु पिता पुत्रः स एव तु । पुत्रे वत्तं प्रियार्यं पितुः प्रोत्थं भविष्यति ॥१३॥
 पित्रे देयं सुते दद्यात्कोटिप्रोतिगुणं भवेत् । दैवी वागब्रवीदेवं ततः सर्वं महर्षयः ॥१४॥
 निश्चित्य धर्मसर्वस्य तथा चक्रुर्यपोदितम् । एतज्ज्ञात्वा जगत्पुन पुन दत्तं पितुर्भवेत् ॥१५॥
 अपत्याद्युपकारेण पित्रोः प्रीतिर्यथा भवेत् । तथा नाग्नयेन केनापि जगत्प्रेतद्धि विधुतम् ॥१६॥
 सुप्रसिद्धं जगत्प्रेतसर्वलोकेषु पूजितम् । तस्मिन्दत्ते भवेत्पुण्यं सर्वं कोटिगुणं सुत ॥१७॥

के सहित गौतमी-नट पर पार्वयणानी नामक इष्टियों को बरत हुय रहते थे ॥१४॥ सर्वदा प्रातःकाल सावधानी से भार्यासहित अग्नि में हवन करते थे ॥१५॥ एक दिन जब वे हवन के लिये तैयार हुये तब एक आहुति से अग्नि के प्रज्वलित होने पर दूसरी आहुति देने के लिये हवनीय द्रव्य को उन्हेति हाथ में लिया ही था कि इतने में अग्नि एकाएक बुझ गया ॥१६-१७॥ तब काण्व विचार करने लग कि अब क्या करना चाहिये । हृदय में विचार करने पर उनको अत्यन्त विपाद हुआ ॥१८॥ दो आहुतियाँ के बीच में ही अग्नि बुझ गया । वैदिक (वेद-प्रतिष्ठित) या लौकिक अग्नि इसने लिए उपादेय (उपयुक्त) होगा कि नहीं । अब यह द्वितीय आहुति कहाँ से जाय, इस प्रकार वे भीमांग पर ही रहे थे कि इतने में आकाशवाणी हुई कि दूसरा अग्नि यहाँ सुन्हाते लिये उपयुक्त नहीं है ॥१९१-१२॥ जो यहाँ समीप में अर्धजल काष्ठ में अग्नि लण्ड है, विप्रराज ! उन्हीं में आहुति दो । यह सुनकर काण्व ने कहा कि नहीं । पुन उसी दैवी वाणी ने कहा ॥११-१२॥ अग्नि का पुत्र हिरण्य है । पिता ही तो वह पुत्र है, प्रसन्न करने के लिये पुत्र को दिया हुआ द्रव्य पिता को प्रसन्नता का भी कारण बनता है ॥१३॥ पिता के देय को यदि पुत्र को दे दिया जाय तो वह पिता को बरोड़ गुना आनन्द देता है । जब दैवी वाणी ने इस प्रकार कहा तब सब महर्षियोंने धर्म में रहस्य का निश्चय कर जैसा कि दैवी वाणी ने कहा था वैसा ही किया ॥१४॥ (तत्प्रेतः) इस समार में यह बात फैल गई कि पुत्र को दिया हुआ पदार्थ पिता को दिया हुआ हो जाता है और पुत्र यदि वह उपकार से पिता का जैसा उपकार होता है वैसा दूसरा कार्य करने से नहीं । पुत्र वह बात भी समार में प्रतिष्ठित हुआ गई कि यहाँ दान देने से बरोड़ गुना पत्र होता है । इस बात को दैवी वाणी ने फिर कहा कि इस पवित्र काण्व तीर्थ में आत्म-अग्नि दूर हो जाती तथा महान् गुण की प्राप्ति होती है ॥१५-१७॥ मुनि काण्व के पुण्य के प्रभाव से वह तीनों लोकों के सब तीर्थों

मनोग्लानिनिवृत्तिश्च जायते - च महत्सुखम् । पुनरप्याह सा वाणी काण्वेऽस्मिस्तीर्थं उत्तमे ॥१८॥
 अभवत्तन्महत्तीर्थं काण्वपुण्यप्रभावतः । लोकत्रयाश्रयाशेषतीर्थेभ्योऽपि महाफलम् ॥१९॥
 स्नानदानादिकं किञ्चिद्भूक्त्या कुर्वन्तमाहितः । फलं प्राप्स्यस्यशेषेण सर्वं कोटिगुणं मुने ॥२०॥
 यत्किञ्चित्क्रियते चात्र स्नानदानादिकं नरैः । सर्वं कोटिगुणं विद्यात्कोटितीर्थं ततो विदुः ॥२१॥
 यत्रैतद्वृत्तमाग्नेयं काण्वं पौत्रं हिरण्यकम् । वाणीसंज्ञं कोटितीर्थं कोटितीर्थफलं यतः ॥२२॥
 कोटितीर्थस्य माहात्म्यमत्र ध्वस्तुं न शक्यते । वाचस्पतिप्रभृतिभिरयं वाज्यैः सुरैरपि ॥२३॥
 यत्रानुष्ठोयमानं हि सर्वं कर्म यथा तथा । गोदावर्याः प्रसादेन सर्वं कोटिगुणं भवेत् ॥२४॥
 कोटितीर्थे द्विजाग्राय गामेकं यः प्रपठति । तस्य तीर्थस्य माहात्म्याद्गोकोटिफलमश्नुते ॥२५॥
 तस्मिन्स्तीर्थे शुचिभूत्वा भूमिदानं करोति यः । श्रद्धायुक्तेन मनसा स्यात्तत्कोटिगुणोत्तरम् ॥२६॥
 सर्वत्र गौतमीतीरे पितृणां दानमुत्तमम् । विशेषतः कोटितीर्थं तदनन्तफलप्रदम् ॥
 अत्रैक्यूनपञ्चाशत्तीर्थानि मुनयो विदुः ॥२७॥

इति श्रीमहापुराणे ॥ आदिब्राह्मे ॥ तीर्थमाहात्म्ये काण्वालोकोनपञ्चाशत्तीर्थवर्णनं
 नामाष्टचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥१४८॥

गौतमीमाहात्म्ये ऋताशीतितमोऽध्यायः ॥७९॥

से अधिक फल देने वाला महान् तीर्थ हो गया । मुने । इस तीर्थ में मनुष्य एकाग्र होकर मन्त्रपूर्वक स्नान-दान
 आदि जो कुछ करता है उससे वह पूर्णरूप से करोड़ गुना फल पाता है ॥१८-२०॥ यहाँ मनुष्य स्नान, दान आदि
 जो कुछ करते हैं व सत्र करोड़ गुना हो जाते हैं इसीलिये उसको कोटि-तीर्थ कहा जाता है ॥२१॥ जहाँ यह घटना
 हुई उसको आग्नेय, काण्व पौत्र, हिरण्यक वाणीतीर्थ और कोटितीर्थ कहा जाता है, क्योंकि इससे कोटि तीर्थों का
 फल मिलता है ॥२२॥ कोटितीर्थ की महिमा का वर्णन बृहस्पति आदि अथवा दूसरे देवता भी नहीं कर सकते हैं
 ॥२३॥ उस तीर्थ में जिस किसी प्रकार निये गये कर्म गोदावरी की कृपा से कोटि-गुण फल देने वाले हो जाते हैं
 ॥२४॥ जो उस कोटि तीर्थ में किसी श्रेष्ठ ब्राह्मण को एक गौ देता है, उस तीर्थ की महिमा से वह कोटि गो-दान
 का फल पाता है ॥२५॥ उस तीर्थ में भविष्य होकर जो श्रद्धायुक्त हृदय से भूमिदान करता है वह कोटिगुण अधिक
 फल पाता है ॥२६॥ सर्वत्र गौतमी-तट पर पितरों के निमित्त दिया हुआ दान उत्तम है, परन्तु कोटि-तीर्थ में देने
 से वह अनन्त फल देने वाला हो जाता है । मुनि लोग यहाँ के उनपञ्चाश तीर्थों को मलीमार्ति जानते हैं ॥२७॥

श्री ब्रह्ममहापुराण में कोटितीर्थ, काण्व आदि उनपञ्चाश तीर्थों का वर्णन नामक एक शो
 अठ्ठासीसवाँ अध्याय समाप्त ॥१४८॥

अर्थकोनपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः

नारसिंहतीर्थवर्णनम्

ग्रहोवाच

नारसिंहमिति ख्यातं गङ्गाया उत्तरे तटे । तस्यानुभावं वक्ष्यामि सर्वरक्षाविधायकम् ॥१॥
 हिरण्यकशिपुः पूर्वमभवद्बलिनां वरः । तपसा विक्रमेणापि देवानामपराजितः ॥२॥
 हरिभक्ततात्मजद्वेषकलुप्तोऽकृतमानसः । आविर्भूय सभास्तम्भाद्विश्रुतात्मत्वं प्रदर्शयन् ॥३॥
 तं हत्वा नरसिंहस्तत्संग्यमद्रावयत्तदा । सर्वाहत्वा महादेव्यान्क्रमेणाऽऽजौ महामृगः ॥४॥
 रसातलस्याञ्जन्नूचं जित्वा स्वर्लोकमोयिवान् । तत्र जित्वा भुवं गत्वा दैत्यान्हत्वा नगस्थितान् ॥५॥
 समुद्रस्थां ददौ संस्थान् ग्रामस्यान्वनवासिनः । भानारूपधरां दत्वा त्रिजघान मृगाकृति ॥६॥
 आकाशगान्वायुसंस्थाञ्ज्योतिर्लोकमुपागताम् । वज्रपाताधिकनखः समुद्रतमहासटः ॥७॥
 दैत्यगर्भं स्राविगर्जो निर्जिताशेषराक्षसः । महानाबं धोक्षितं च प्रलयानलसंनिभैः ॥८॥
 चपेटैरङ्गविभेदैरेसुराण्यप्यवृणोत् । एवं हत्वा बहुविधान् तीर्थमोगमद्वरिः ॥९॥

अध्याय १४६

नारसिंह तीर्थ का वर्णन

ग्रहा बोले—गंगा के उत्तर तट पर नारसिंह नामक तीर्थ है, उसके सर्वरक्षक प्रभाव का वर्णन कर रहा हूँ ।
 पूर्व समय में हिरण्यकशिपु नामक एक श्रेष्ठ धलशान् राक्षस हुआ । वह अपनी तपस्या और पराक्रम के कारण
 देवों के लिये अजेय हो गया । अपने हरिभक्त पुत्र के प्रति द्वेष रखने से उसका मन कलुषित हो गया । तब नृसिंह
 रूप धारण कर भगवान् ने समाभवन के स्तम्भ से अपने विश्वव्यापक रूप को दिखाते हुये, प्रबल होकर उस
 राक्षस को मार डाला । फिर उन्होंने उस समय उसके सब सेना का भी सहार कर दिया । नृसिंह समर में सब
 महादेव्यों को क्रमशः मारकर नीचे रसातल में रहने वाले सब शत्रुओं को जीतकर स्वर्लोक में पहुँच गये ।
 वहाँ भी शत्रुओं को पराजित कर मूलोक में चले आये । यहाँ सब पर्वतीय दैत्यों को मारकर उस सिंहा-
 शरीरधारी ने समुद्र, नदी, प्राग और वन में रहने वाले एव नाना प्रायः-रूप धारण करने वाले दैत्यों का वध किया ।
 आकाशचारी, वायु में विचरण करने वाले एव ज्योतिर्लोक में गये हुये राक्षसों को वज्रपात से अधिक मयकर नख-
 प्रहार करने वाले, अपनी ग्रीवा के केसर को ऊपर फहराने वाले अपनी गर्जना से दैत्य-दिव्यों के गर्म को गिरा देने
 वाले और सम्पूर्ण राक्षसों को जीतने वाले नृसिंह ने अपनी मयकर गर्जना, प्रलयाम्नि के समान अपनी मयकर दृष्टि
 अङ्ग विशेष और क्रूर चपेटों से मार डाला । इस प्रकार अनेकों राक्षसों का वध कर हरि अपने पद-नख से उत्पन्न
 तथा मन और नयन दोनों की वृत्ति करने वाली गीतमी के पास आये ॥१-९॥ यहाँ अम्बयं नामक दण्डकारण्य का

स्वपदाम्बुजसभूता मनोनयननन्दिनीम् । तत्राश्वयं इति ख्यातो दण्डकाधिपते' रिपु ॥१०॥
 देवानां दुर्जयो योद्धा बलन महताऽऽवृत । तेनाभवन्महारौद्रः । भीषण लोमहर्षणम् ॥११॥
 शस्त्रास्त्रवर्षण युद्ध हरिणा दैत्यसूनुना । निजघान हरि श्रीमास्त रिपु ह्यक्षरे तटे ॥१२॥
 गङ्गाया नारसिंह तु तीर्थे त्रैलोक्यविश्रुतम् । स्नानदानादिकं तत्र सर्वपापप्रहावेनम् ॥१३॥
 सर्वरक्षाकरं नित्यं जरामरणवारणम् । यथा सुराणां सर्वेषां न कोऽपि हरिणा सम ॥१४॥
 तीर्थानामप्यनेषाणां तथा तत्तीर्थमुत्तमम् । तत्र तीर्थे नर स्नात्वा कुर्यान्नुहरिपूजनम् ॥१५॥
 स्वर्गं मर्त्यं तले याऽपि तस्य किञ्चिन् दुर्लभम् । इत्याद्यष्टौ भुने तत्र महातीर्थानि नारद ॥१६॥
 पूयन्पूयन्तीर्थकोटिफलमाहुर्मनोविण । अश्रद्धयाऽपि यत्राग्निं स्मृते सर्वायसक्षय ॥१७॥
 भवेत्साक्षान्नृसिंहोऽसौ सदा यत्र सस्यत । तत्तीर्थसेवासजातं फलं कैरिह वर्ण्यते ॥१८॥
 यथा न देवो नृहरेरधिकं क्वापि धत्तते । तथा नृसिंहतीर्थेन समं तीर्थं न कुत्रचित् ॥१९॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये नारसिंहाद्यष्टतीर्थवर्णनं नामकोन

पञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥१४९॥

श्रीतपोमाहात्म्येऽतीततमोऽध्यायः ॥८०॥

स्वामी विख्यातः गन्धुः । वह देवताओं से दुर्जय योद्धा बहुत बड़ी सेना के साथ रहता था । उस दैत्य पुत्र के साथ
 भगवान् का भक्ति भयकर लोमहृपक युद्ध हुआ जिसमें शस्त्रास्त्रों की भयकर वर्षा हुई अतः भयभीत नृसिंह ने
 गीतमी के उत्तर तीर पर उस गन्धु को मार डाला । वह गीतमी तट का नारसिंह तीर्थ विभूत प्रसिद्ध है । उसमें
 स्नान वान आदि सब प्रकार के पाप ग्रह दूर हो जाते हैं । सब प्रकार से रक्षा होती है तथा जरा-मायु का भय दूर जाता
 है । जिस प्रकार सब देवी मन्मिह का समान कोई नहीं है उसी प्रकार सम्पूर्ण मायों में वह उत्तम तीर्थ है । उस तीर्थ
 में स्नान कर जो मनःपूज्य नमिह की पूजा करता है । उसके लिये स्वर्ग भय और पाताल में कोई भी बन्तु दुर्लभ नहीं
 है । मुनः । नारद । इस आठ और महानीय है । विद्वान् कहते हैं कि वे आठों पथक पथक कोटि तीर्थ के बराबर
 फल देते हैं । उनका अध्यक्षा स भो नाम-स्मरण करने में सब पापों का लय हो जाता है । जहां सबदा व नमिह
 भगवन् साक्षात् रूप से स्थित रहते हैं उस तीर्थ की सेवा करने में जो फल मिलता है उसका वर्णन कौन कर
 सकता है । जिस प्रकार नमिह देव से बड़कर कोई देवता नहीं है उसी प्रकार नमिह तीर्थ के समान कोई तीर्थ
 भी नहीं है ॥१०-१९॥

श्री ब्रह्ममहापुराण में नारसिंहादि अष्ट महानीयों का वर्णन नामक एवम् सो उनका सब

अध्याय समाप्त ॥१४९॥

अथ पञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः

पैशाचतीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

पैशाच तीर्थमाख्यात गङ्गाया उत्तरे तटे । पिशाचत्वापुरा विप्रो मुक्तिमाप महामते ॥१॥
 'सुयवस्माऽऽत्मजो लोकेऽजीगतिरिति विधुत' । कुटुम्बभारदुःखार्तो दुर्भिक्षेण तु पीडित ॥२॥
 मध्यम तु शुन शेष पुन ब्रह्मविदा घरम् । दिक्तीतवान्स्त्रियाय वधाय बहुलं धनं ॥३॥
 किं नामाऽऽपद्गत पाप नाऽऽचरत्यपि पण्डित । शमित्वे घन चापि जगृहे बहुल मुनि ॥४॥
 विदारणार्थं च घन जगृहे ब्राह्मणाधम । ततोऽप्रतिसमाधेयमहारोगनिपीडित ॥५॥
 स मृत कालपर्याये नरकेष्वय पातित । भोगादुते न क्षयोऽस्ति प्राप्तनानामिहाहसाम् ॥६॥
 किं कर्यं मवावयेन दधुषोऽन्यन्तर गत । तत पिशाचो ह्यभवद्वाष्णो वाष्णाकृति ॥७॥
 शुष्काण्डेऽश्वाश्चरणे निजंले निजंने तथा । श्रोत्रे श्रोत्रमदवध्याप्ते क्षिप्यते धर्मकिंकरं ॥८॥
 कन्यापुत्रमहीबाजिगवा विक्रयकारिण । नरकाग्न विवर्तन्ते यावदाभूतसत्त्ववम् ॥९॥

अध्याय १५०

पैशाचतीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा बोले—गंगा के उत्तर तट पर पैशाच नामक एक उत्तम तीर्थ है । महामति । बहुत पहले उस स्थान पर एक विप्र ने पिशाच योनि से मुक्ति पाई थी । सुयव वा लोक से अजीगति नाम से प्रतिष्ठ पुत्र था । परिवार के भार से दुःखी और दुर्मिथ से पीडित होकर उसने अपने ब्रह्मनाशिया म अष्ट भँजले पुत्र शुन शेष को बहुत धन लेकर लाय के हाथ वध करने के लिये बेच दिया था । पीडित भी आपत्ति में पड़ने पर कौन एरा पाप है जो नदी करते हैं । मुनि ने बलि करन के लिये भी बहुत सा धन ले लिया । उस अधम ब्राह्मण ने अपने पुत्रको चीर देने के लिये धन लिया था इसलिये वह एक असाध्य रोग से पीडित हो गया । छोट दिने बाद उसकी मृत्यु हो गई । वह नरक में गिरा गया । यहाँ क किये हुये पापों का क्षय पापभोग के अतिरिक्त और किसी प्रकार से नहीं होता । यम के आदेशानुसार दूतों ने सकोमिश्र भिन्न योनिया में पहुँचाया । तदनन्तर अत में वह भयङ्कर आकृति वाला भयानक पिशाच हुआ ॥१७॥ यमदूत उसको जलम म सूखे काठों पर निजल और निजन स्थान में और श्रोत्रमज्जतु में श्रोत्र की धर्मों से जलते हुये स्थानों में डकेल देते थे । सब है कया पुत्र पृथिवी घोडा और गाय बेचने वाले •यन्ति प्रलयकाल तक नरक से उद्धार नहीं पाते हैं । अपने किये हुए पापों के परिणामस्वरूप मया

स्वकृताघविपाकेन दारुणैर्मर्किकरैः । सद्यते पच्यमानोऽसौ करोदोच्चं कृत स्मरन् ॥१०॥
 पथि गच्छन्कदाचित्स जोगर्तेर्मध्यम सुत । शुभाव रुदतो वाणीं पिशाचस्य मुहुर्मुहु ॥११॥
 पुनरेतुर्ब्रह्महन्तुर्जोगर्तेस्तु । पितुस्तदा । पापिन पुनर्विकेतुर्ब्रह्महन्तु पितुश्च ताम् ॥१२॥
 शुन शेषस्तदोवाच को भवानतिदुःखित । जोगर्तिरथबोद्धुं खाच्छुन शेषपिता ह्यहम् ॥१३॥
 पापोयसौ क्रिया कृत्वा योनिं प्राप्नोऽस्मि दारुणाम् । नरकेष्वथ पक्वश्च पुन प्राप्नोऽन्तरालकम् ॥
 ये ये दुष्कृतकर्मणस्तोया तेयामिय गति ॥१४॥

जोगर्तिपुत्रस्तमुवाच दुःखात्सोऽहं सुतस्ते मम दोषेण तात
 विक्रोत्वा मा नरकानेवमाप्तस्तत् करिष्ये स्वर्गतं त्वामिदानीम् ॥१५॥
 एव प्रतिज्ञाय स गार्धिपुत्रपुत्रत्वमाप्तोऽथ मुनिप्रवीर
 गङ्गामभिध्याय पितुश्च लोकाननुत्तमानीहमानो जगाम ॥१६॥
 अक्षेपतु स्नानलभूपितानां, निमज्जता मोहमहासमुद्रे
 शरीरिणा नान्यदहो त्रिलोकधामालम्ब्य न विष्णुपदीं विहाय ॥१७॥
 एव विनिश्चित्य मुनिर्ब्रह्मात्मसमुद्दिषीर्षु पितरं स दुर्गते ।
 शुचिस्ततो गौतमीमाशु गत्वा, तत्र स्नात्वा सस्मरञ्छुभुविष्णु ॥१८॥
 ददौ जलं प्रेतरूपाय पित्रे, पिशाचरूपाय सुदुःखिताय ।
 सदान्मात्रेण तदैव पुनोऽजोगर्तिरावाप यषु सुपुण्यम् ॥१९॥

नरकमरुतो की यातना-नास पावित बहु अपन पूव कृत्या वा स्मरण करके चित्ला नर राता था । किसी दिन जी गति था । मँझला पुन रागते म जा रहा था । उसने पुन विप्रय नरो वाले ब्रह्महत्या करने वाले पापी पिता जीगर्ति के—जो पिशाच हो गया था—रौने की ध्वनि सुनी । तब शुन गपने पूछा कि आप कौन है जो इतने दुःखी हैं । जी गति ने दुःखित होकर कहा मैं शुन शेष वा पिता हूँ । पापराशों के करने से दारुण योनि को प्राप्त हुआ हूँ । नाना नरको मे मैं पीडा पाता रहा अब पुन उनसे छुटकारा पानर पिशाच बनार हूँ । जो पाप कम करने वाले होते हैं उनकी इसी प्रकार दुर्गति होती है ॥८१५॥

यह सुनकर जीगर्ति क पुत्र ने दुःखी होकर कहा—तात । मैं आपका वही पुन हूँ । मेरे ही दाप से मुझको बेचकर आप इस प्रकार नरक में गिराये गये । अब मैं अभी आपको स्वर्ग पहुँचाऊँगा ॥१५॥ इस प्रकार प्रतिज्ञाकर विद्वामित्र का दत्तक पुत्र यह मुनिप्रवीर अपने पिता का उत्तम लोक में पहुँचाने की इच्छा से गया वा स्मरण कर (उसी की ओर) चल पड़ा ॥१६॥ अहो ! इस त्रिलोकी में स्मरत दुःख रूपी अग्नि में जलने वाल तथा महामोह रूपी समुद्र में डूबने वाले देहधारियों वा मगा की छोटकर जीगर्ति सहायक नहीं है ॥१७॥ इसप्रकार वा निश्चय कर वह पवित्र महात्मा मुनि अपने पिता की दुर्गति से छुड़ाने के लिये क्षीप्र ही गौतमी के पास पहुँच गया । उसमें स्नान कर उतने शम्भु और विष्णु का स्मरण किया तथा अतिदुःखित, पिशाचरूप अपने प्रत पिता को जल दिया । जल देते ही उसी समय अजीगर्ति पवित्र हो कर पुण्य शरीर पा गया और दस हजार सूर्य के समान चमकता

विमानयुक्त सुरसधजुष्ट जिष्णो पद प्राप सुतप्रभायात् ।
 गङ्गाप्रभायाञ्च हरेदच शभोर्विधातुरर्कायुततुल्यतेजा ॥२०॥
 तत प्रभृत्येतदतिप्रसिद्ध पञ्चाचनाश च महागद च ।
 महान्ति पापानि च नाशमाशु प्रयान्ति यस्य स्मरणेन पुताम ॥२१॥
 तीर्थस्य च द गदित तथाच, माहात्म्यमेतत्त्रिशतानि यत् ।
 तीर्थान्ययान्यानि भवन्ति भुवितभुवितप्रदायीनि किमन्यदन ॥२२॥
 सबसिद्धिदमाख्यातमित्याद्यत्र शतत्रयम् । तीर्थानां मुनिजुष्टाना स्मरणादप्यभीष्टदम् ॥२३॥
 इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये पञ्चाचादिशतत्रयतीर्थवर्णन नाम
 पञ्चाशदधिकशततमोऽध्याय ॥१५०॥
 गौतमीमाहात्म्ये एकाशीतितमोऽध्याय ॥८१॥

अथैकपञ्चाशदधिकशततमोऽध्याय

निम्नभेदतीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

निम्नभेदमिति ख्यात सवपापप्रणाशनम् । गङ्गाया उत्तरे पारे तीर्थं ब्रूलोचयिभुतम् ॥१॥

हुआ वह गंगा विष्णु शंकर और ब्रह्मा के प्रभाव से अपन पुत्र की कृपा से विमान पर आरुढ़ होकर देवगणों के साथ सम्मानपूर्वक विष्णुलोक को चला गया । तब से वह विपाचयोनि से मक्त करने वाला तथा महारोगों को छुड़ाने वाला तीर्थ परम प्रसिद्ध हो गया । जिसके स्मरण मात्र से मनष्यों के महान पाप क्षीप्र ही नष्ट हो जाते हैं । आज इस तीर्थ के माहात्म्य को—जहा पर भक्ति भक्ति प्रदान करने वाले दूसरे और तीन सौ तीर्थ हैं—तुमसे कह दिया अब और अधिक क्या कहूँ । ये सब सिद्धियों को देने वाले तीन सौ तीर्थ मुनियों के मा अति प्रिय और सेव्य हैं । इनके स्मरण से भी मनोरथ सिद्ध हो जाता है ॥१८ २३॥

श्री ब्रह्ममहापुराण में पञ्चाचतीर्थ आदि तीन सौ तीर्थों का बर्णन नामक एक सौ पचासवाँ अध्याय समाप्त ॥१५०॥

अध्याय १५१

निम्नभेद तीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा न कहा—गंगा के उत्तर तट पर सब पापों को नष्ट करने वाला त्रिसवर्ण प्रसिद्ध निम्नभेद नामक

यस्य संस्मरणेनापि सर्वपापक्षयो भवेत् । वेदद्वीपश्च तत्रैव दशनाद्वेदविद्भवेत् ॥२॥
 ज्वंशीं चकमे राजा ऐलः परमधार्मिकः । को न मोहमुपायाति विलोक्य मदिरक्षणां ॥३॥
 सा प्रायाद्यत्र राजाऽसौ घृतं स्तोकं समञ्जुते । आनमनदर्शनात्कृत्वा तस्याः कालावधि नृपः ॥४॥
 तां स्वीचकार ललनां यूनां रम्यां नवां नवाम् । सुप्तायां शयने तस्या समुत्तस्थो पुरुरवा ॥५॥
 विलोक्य तं विवसनं तदेवासौ विनिर्गता । विद्युच्चञ्चलचित्तानां क्व स्थये ननु योयिताम् ॥६॥
 ईक्षां चक्रे स शर्वयां विवस्त्रा विस्मितो महान् । एतस्मिन्नन्तरे राजा युद्धायागाद्विभूषितः ॥७॥
 ताञ्जित्वा पुनरप्यागादेवलोके सुपूजितम् । स चाऽऽगत्य महाराजो वसिष्ठाच्च पुरोधसः ॥८॥
 उर्वंश्या गमनं श्रुत्वा ततो दुःखसमन्वितः । न जुहोति न चाश्नाति न शृणोति न पश्यति ॥९॥
 एतस्मिन्नन्तरे तत्र मृतावस्थं नृपोत्तमम् । बोधयामास वाक्यंश्च हेतुभूतं पुरोहितः ॥१०॥

वसिष्ठ उवाच

सा मृताऽथ महाराज मा वयस्व महामते । एवं स्थित तु मा त्वां धं अशिवा, स्पृश्युराशुगाः ॥११॥
 न वै स्त्रैणानि जानीये हृदयानि महामते । शालावृकाणां यावृंश्च तस्मात्स्व भूप मा शुचः ॥१२॥
 को नाम लोके राजेन्द्र कामिनीभिर्न वञ्चितः । वञ्चकत्वं नृशतत्वं चञ्चलत्वं कुशीलता ॥१३॥

एकतीर्थ है, जिसके स्मरण से भी सब पापों का नाश हो जाता है । वही पर वेदद्वीप भी है जिसके दर्शनसे मनुष्य वैश्व हो जाता है । एक बार परम धार्मिक राजा पुरुरवा उर्वंशी पर आसक्त हो गया । कौन ऐसा है जो मतवाले नेत्र वाली कामिनी को देखकर मोहवश नहीं हो जाता । जहाँ राजा अल्प परिमाण में घृत का पान कर रहा था वहाँ वह पहुँच गई । उसके साथ गमन न देखने तक रहने की प्रतिज्ञा (धर्त) कर राजा ने युवका को रम्य लगाने वाली उस युवती ललना को स्वीकार कर लिया । एक दिन पुरुरवा शय्या पर सोई हुई उसके सामने ही उठ गया । राजा को वस्त्ररहित देखकर वह उसी समय चली गई । विद्युत् के समान चञ्चल चित्त वाली स्त्रियाँ व जीवन में स्थायित्व कहाँ ? उस रात्रि में गमन पुरुरवा अत्यन्त आश्चर्यचकित होकर ऊपर उबर देखने लगा । इसी समय राजा को शत्रुओं से युद्ध करने के लिये जाना पड़ा । उनको पराजित कर वह पुन अतिपूजित देवलोक में गया । वहाँ से आने पर राजा पुरोहित वसिष्ठ के मुख से उर्वंशी का पलायन सुनकर दुःखी हो गया । (अतएव) वह न तो हवन करता था, न खाता था, न कुछ सुनता था और न देखता ही था । इस बीच पुरोहित वसिष्ठ उस मृतक तुल्य राजा को उपयुक्त रहस्यमय वाक्यों से समझाने लगे ॥१-१०॥

वसिष्ठ बोले—महाराज ! आज वह मर गई । महाबुद्धिमान् ! उसके लिये क्या मन करो । इस प्रकार अवस्थित तुमको शीघ्र आने वाले अमंगल स्पर्श न करें (अर्थात् अशुभ भावनायें न व्याप्त हों) । महामति ! शालावृक (कुवकुर) की जैसी मत्तोवृत्ति वाली स्त्रियों के हृदय के गर्भ को तुम नहीं जानत हो । भूप ! अतः तुम शोक मत करो । राजेन्द्र ! इस लोक में हीन ऐसा व्यक्ति है जो कामिनीयों से टग नही जाता है ? जिनकी

इति स्वाभाविकं यासां ताः कथं सुखहेतवः। कालेन को न निहतः कोऽर्थो गौरवमागतः॥१५॥
 श्रियां न श्रामितः को वा योपिद्भुः को न खण्डितः। स्वप्नमायोपमा राजन्मदविप्लुतचेतसः॥१४॥
 सुखाय योपितः कस्य ज्ञातृद्विज्वरो भव। विहाय शकरं विष्णुं गीतमीं वा महामते॥
 दुःखिनां शरणं नान्यद्विद्यते भुवननये ॥१६॥

ग्रहोवाच

एतच्छ्रुत्वा ततो राजा दुःखं संहृत्य यत्नतः। गीतम्या मध्यसस्थोऽसावैलः परमधार्मिकः॥१७॥
 तत्र चाऽऽराधयामास शिवं देवं जनादेनम्। ग्रहाणं भास्कर गङ्गा देवानन्याश्च यत्नतः॥१८॥
 यो विपन्नो न तोर्यानि देवतादय न सेवते। स कालवशगो जन्तुः का दशामुपयास्यति॥१९॥
 तवीश्वरंकशरणो गीतमीसेवनेत्सुकः। परा श्रद्धामुपगतः संसारस्थापराडमुखः॥२०॥
 इंजे यज्ञांश्च बहुलानृत्विग्भिर्वहुदक्षिणान्। येदद्वीपोऽभवत्तेन यत्तद्वीपः स उच्यते॥२१॥
 'पीणमास्या' सु शर्वयां तत्राऽऽयाति सदेवेंशी। तस्य दीपस्य यः कुर्यात्प्रदक्षिणमयो नरः॥२२॥
 प्रदक्षिणीकृता तेन पृथिवी सागराम्बरा। वेदानां स्मरणेन तत्र यज्ञानां स्मरणं तथा॥२३॥
 सुकृती यः तत्र यः कुपद्वेदयज्ञफलं लभेत्। ऐलतीर्थं तु तज्जेयं तदेव च पुरुरवम्॥२४॥
 वासिष्ठं यापि तत्तु स्यान्निम्नभेवं तदुच्यते। ऐले राज्ञि न किञ्चित्स्यान्निम्नं सर्वेषु कर्मसु॥२५॥

धूर्तता, क्रूरता, जञ्जलता एवं अनुदारता ही प्रकृति है वे किस प्रकार सुख का कारण बन सकती है? काल ने किसको नष्ट नहीं किया? किस याचक ने गौरव प्राप्त किया है? कौन लक्ष्मी के मद में अपने को मूल न गया? स्त्रियों ने किसको घटा नहीं बताया? राजन्! मद से भ्रष्ट चित्त वाले किस मनुष्य को लाल्ये स्वप्न माया के समान स्त्रियाँ सुख का कारण बनी हैं? इस बात को समझ नरतुम मोहको छोड़ दो। महामते! केवल शकर, विष्णु और गीतमी को छोड़कर इस त्रिमुक्त ने दुःखियों का सहायक कोई नहीं है॥११-१६॥

ग्रहा बोले—इन बातों को सुनकर राजा बड़ी तत्परता से अपने दुःखों को कमाकर गीतमी के तट पर गया। उसके बीच में स्थित होकर परम धार्मिक पुरुषता नैशिव, मगवान् विष्णु ग्रहा सूर्य, गंगा एवं अन्यान्य देवों की भक्ति पूर्वक आराधना की। जो विपत्ति-ग्रस्त मानव तीर्थ अथवा देवताओं की सेवा नहीं करता, वह मृत्यु के भीम पी आने पर जिस अवस्था को प्राप्त करेगा या गया कर सकेगा। वह राजा एकमात्र ईश्वर का अनन्य भक्त, गीतमी की सेवा के लिये उत्सुक एवं ससार की माया से विमुख होकर अत्यन्त श्रद्धालु बन गया। उसने ऋत्विजों के साथ बहुत से यज्ञों का अनुष्ठान किया, जिनमें अधिव दक्षिणार्थ दी। इस कारण वह स्थान वेदद्वीप नाम से प्रसिद्ध हुआ। यत्तद्वीप भी उसको कहा जाता है। वहाँ सदा पूर्णिमा की रात्रि में उर्वशी आती है। उस द्वीप की जो व्यक्ति प्रदक्षिणा करता है, उसने मानो समुद्र समेत पृथिवी की प्रदक्षिणा कर ली। जो सुकृती वहाँ वेदों और यज्ञों का स्मरण करता है, वह वेद-यज्ञ का फल प्राप्त करता है। उसको ऐलतीर्थ कहा जाता है। पुरुरवा और

यदेतन्निम्नमुर्वश्यां सर्वभावेन वर्तनम् । तच्चापि भेदितं निम्नं यस्मिन्नेन च गङ्गाया ॥२६॥
निम्नभेदमभूतेन वृष्टादृष्टेष्टसिद्धिबम् । तत्र सप्त ३३ शतान्याहुस्तीर्थानि गुणवन्ति च ॥२७॥
तेषु स्नानं च दानं च सर्वश्रुतफलप्रदम् । स्नानं कृत्वा निम्नभेदे यः पश्यति सुरानिमान् ॥२८॥
इह धामुय या निम्नं न किञ्चित्तस्य विद्यते । सर्वोन्नतिमवाप्स्यासी मोदते दिवि शक्यत् ॥२९॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये निम्नभेदादिसप्तशततीर्थवर्णनं

॥३॥

नामैकपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥१५१॥

गौतमीमाहात्म्ये द्वयश्रीतितमोऽध्यायः ॥८१॥

अथ द्विपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः

आनन्दतीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

नन्दोत्तममिति ह्यपातं तीर्थं वेदयिदो विदुः । तस्य प्रभावं वक्ष्यामि शृणु मत्नेन नारद ॥१॥
अग्निपुत्रो महातेजोऽचन्द्रमा इति विश्रुतः । सर्वान्वेदाश्च विधिवद्वनुर्वैदं यथाविधि ॥२॥

वासिष्ठ भी बहूँ है। निम्नभेद उसको इसलिए कहते हैं कि राजा ऐल के दामन-बाल में सब कामों में निम्न भावना नहीं थी। उर्वशी में सब प्रकार से आराधन हो जाना 'निम्न' था। उस निम्न को भी वसिष्ठ ने गुणा के द्वारा दूर कर दिया। अब वह तीर्थ निम्न-भेद कहा जाता है, जो दृष्ट, अदृष्ट और इष्ट (मनोरथ) की सिद्धि देने वाला है। यहाँ सात गो और भी गुणााली (पूज्यप्रद) तीर्थों का होना कहा गया है। उनमें स्नान और दान से सब यज्ञों का फल मिलता है। जो निम्न भेद तीर्थ में स्नान कर इन (पहले बड़े शयें) देवों का दर्शन करता है, उसको इन लोग म अथवा परा 'ो' में किसी प्रकार का निम्न (अभाव) नहीं रह जाता है। वह सब प्रकार भी उपनि प्राप्त कर स्वर्ग में इन्द्र के समान आनन्द प्राप्त करता है ॥१७-२९॥

श्री ब्रह्ममहापुराण में निम्नभेद आदि सात गो तीर्थों का वर्णन नामर एव सो इत्यादि नामों

अध्याय समाप्त ॥१५१॥

अध्याय १५२

आनन्दतीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा ने कहा—नदीतट नामक तीर्थ को वेदवेत्ता लोग जानते हैं। नारद ! मैं उससे प्रभाव का वर्णन कर रहा हूँ, तुम ध्यान से सुनो। महानिन्दरी अग्नि-पुत्र चन्द्रमा नाम से प्रसिद्ध है। महामते ! गुरु बृहस्पति से सब वेदों, पनुर्वेद और अन्य विद्याओं का यथाविधि अध्ययन कर उस चन्द्रमा ने बृहस्पति से कहा कि मैं गुरुपूजा

अधीत्य जीवात्सर्पाश्च विद्याश्चान्या महामते । गुह्यपूजां करोमीति जीवमाह स चन्द्रमा ॥
बृहस्पतिस्तदा प्राह चन्द्र शिष्य मुदान्वितः ॥३॥

बृहस्पतिरुवाच

मम प्रिया तु जानीते तारा रतिसमप्रभा

॥४॥

ग्रहोवाच

प्रष्टु तां च तदा प्रायादन्तर्द्वेषम स चन्द्रमा । तारां तारामूर्ध्नी दृष्ट्वा जगृहे तां करेण स ॥५॥

स्ववेष्टम प्रति तां लोभाद्वलादाकर्षयत्तदा । तावद्वर्षं निर्निधर्तानी मतिमान्विजितेन्द्रिय ॥६॥

यावन्न वामिनीनेत्रवागुराभिर्निबध्यते । विनोयतो रहसस्यां वामिनीमायतेक्षणाम् ॥७॥

विनोय न मनो याति यस्य वामेषु यश्यताम् । अत एवाग्न्यपुष्टयवर्धनं न वदाचन ॥८॥

मुत्तयत्वा रहः पार्श्वं भीतया शीलविष्कृते । विनाय सत्परिजनात्सहस्रोत्थाय निर्गतं ॥९॥

दृष्ट्वा तद्वदुष्टत कर्म बृहस्पतिरदारपी । शापय चोपाच्छास्य शिष्यं वामिर्विप्रियकारिभि ॥१०॥

पराभिभूतामात्रोऽयं कान्तं च शोडुषोऽदरः । मृग्येतेन जीवोऽपि देवश्चन्द्रमसा रुपा ॥११॥

न शान्नेहं यने चन्द्रो नाऽप्युषं शुरमन्त्रितं । बृहस्पतिप्रणीतंश्च न मन्त्रं हंग्यते शत्रो ॥१२॥

तदा चन्द्रस्तु तां तारां नोवा सस्याप्य मन्दिरे । युभुजे मृद्वर्षाणि रोहिणीं चाबुतोभय ॥१३॥

न जीयेत तदा वैश्वं शोरे शापमन्त्रकं । न राजभिर्न ऋषिभिर्न साम्ना भेददण्डनं ॥१४॥

कहेया । तत्र बृहस्पतिः प्रसन्न होकर शिष्य चन्द्रमा स बोले ॥१३॥

बृहस्पति ने कहा—तुने मे समान गुन्नी मेरी गली तारा से इग विषय म पूछ लो वही जाननी है ॥४॥

सह्या बोले—वह चन्द्रमा गुरु गली म पूछने के लिये अन्तपुर मे गया । उमने तारा के

गमान मुल वाली तारा को देखकर उसको हाथ म पकड़ लिया और मोहना उगको हटात् अपन निवासस्थान की

आर छाप र गया । मनुष्य तब तक ही पैयनील जानी बुद्धिमान् और जितेन्द्रिय रहना है जब तक वह वामिनी

के नजदारी पास से बाँधा नगी जाता अर्थात् बडाध से आक्रुष्ट नहीं होता । विशेष रूप से तज्ज्ञात म दिखत

मृगनयनी वामिनी को देखकर भिसरा मन वाम के बगामूत नहीं हो जाता है ? इसलिये कुल-वपुओं को नील

श्रुति होने क मय स एकात मे कभी भी परपुरष का दान नहीं करना चाहिये । अपने स्वजना स इस बात का

पता पाकर उत्तर बुद्धि वाले गुरु सहसा उठकर बाहर गए और उम दुष्टम को देखकर अतिकुपित हो अत्यन्त

अपमानजनक ण्डो से उन्हाने चन्द्रमा को बुरा मला बहकर छाप दे दिया । कौन ऐसा ध्यक्त है जो अपनी इन्दी

को दूसरे से अभिमूत (अपमानित) देखकर उसको सहने म समथ हो सकता है । इसलिये बृहस्पति भी शोध से

उस चन्द्रमा के साथ युद्ध करने लगे । चन्द्रमा का शाप से कुछ नहीं हुआ देवों के आमन्त्रित अस्त्रो रो भी उसका

कुछ नडा विगडा और न तो वह चन्द्रमा बृहस्पति द्वारा प्रयुक्त अस्त्रो से ही मारा गया । तब वह अपराजित

चन्द्रमा उस तारा को लेकर चला गया । अपने घर मे उसको रखकर रोहिणी के सहित उसका बहुत वर्षों तक

उपभोग करना रहा ॥५॥१३॥ जब वह चन्द्रमा देवो श्रोषो और शाप मन्त्रो से भी न जीता जा सका और न

राजाओ ऋषियो साम भेद दण्ड आदि से ही बन्ध मे आ सका तथा बृहस्पति सब प्रकार के प्रयत्नो से भी अपनी

यदा भार्या न लेभेऽसौ गुरुः सर्वप्रयत्नतः । सर्वोपायक्षये जीवस्तदा नीतिमयास्मरत् ॥१५॥
 अपमानं पुरस्कृत्य मानं कृत्वा तु पुष्टतः । स्वार्थमुद्धरते प्राज्ञः स्वार्थभ्रंशो हि मूर्खतः ॥१६॥
 साध्यं केनाप्युपायेन जानद्भिः पुरुषैः फलम् । वृथाभिमानिनः शीघ्रं विपद्यन्ते विमोहिताः ॥१७॥
 एवं निश्चित्य मेधावी शुकं गत्वा न्यवेदयत् । तमामृतं वविक्षात्वा संमानेनाभ्यनन्दयत् ॥१८॥
 उपविष्टं सुविश्रान्तं पूजितं च यथाविधि । पर्यपुच्छद्द्वैत्यगुरुस्तदागमनकारणम् ॥१९॥
 गृहागतस्य त्रिमुखा शनवोऽप्युत्तमा न हि । तस्मै स विस्तरेणाऽऽह भार्याहरणमादित् ॥२०॥
 बृहस्पतेस्तदा वाक्यं श्रुत्वा कोपान्वितः कविः । अपराधं तु चन्द्रस्य मेने शिष्यस्य नारदः ॥
 अतिक्रममिमं श्रुत्वा कोपात्कविरथाश्रयीत् ॥२१॥

शुक उवाच

तदा भोक्ष्ये तदा पात्ये तदा स्वपुत्र्ये तदा धदे । यदाऽऽनये प्रियां भ्रातस्तव भार्या परादिताम् ॥२२॥
 तामानीय भुवं पूज्य चन्द्रं शप्या गुरुद्वहम् । पश्चाद्भोक्ष्ये महाबाहो शृणु वाचं ब्रह्मदेवर ॥२३॥

ब्रह्मोवाच

एवमुक्त्वा स जीवेन । दैत्याचार्यो जगाम ह । शिवमाराध्य यत्नेन परं सामर्थ्यमाप्तवान् ॥२४॥

भार्या को न पा मने और उनके मर उपाय नष्ट हो गये तब उन्होंने नीति का अनुसरण किया कि बुद्धिमत् मनुष्य
 अपमान को आगे बढ़े और मान को पीछे करके अपने स्वाध को सिद्ध करे । क्योंकि स्वाध हानि करना सबसे
 बड़ी मूर्खता है । जानी पुत्रों को निर्मां श्री उपाय में अपने फल को प्राप्त करना चाहिये । वृथाभिमान बनने का
 मूर्ख मोहकषा शीघ्र ही विपत्तियों में मग्न जात है । इस प्रकार का निदोष कर मेधावी गुरु ने शुक व पाग जाबर
 निवेदन किया । गुरु वृत्तपति को अपना अतिथि जानकर उनका सम्मान के साथ अतिथि देन दिया । यथ विधि
 उन्नी पूजा कर गुणासीन गुरु सदैव गुरु शुक ने उनसे आन व करण पूछा । क्योंकि घर घर आन हूए मात्र या भी
 विमूढ होकर को जाना अन्ता नहीं है । वृत्तपति ने शुक स स्त्री-हरण की कथा आदि म अन्त तब व श्रुताई ।
 नारद । उन समय बृहस्पति म मेरी पाते सुनकर कवि कुपित हो यव और शिष्य चन्द्र व । अपराध अहनि
 स्वीकार किया । भर्ता व वर अतिक्रम देवकर कवि ने शेष स व्याकुल हासर बना ॥१८०॥

शुक बोले—मार्द । मैं मर गाऊँगा, तब पिऊँगा तब सोऊँगा और तभी कुछ कहूँगा जब कि दुष्टांगी अन्यो
 पमुरा थिय भार्या को ले आऊँगा । महाबाहु । दावर की पूजाकर गुरुद्वोही चन्द्र को ताप देकर श्री मे लाऊँगा ।
 महा मे स्वामी । मेरी प्रिया गुता ॥२२ २३॥

ब्रह्मा बोले—दैत्याचार्य गुरु इस प्रकार बृहस्पति म कहकर चले गए और बड़ी लगनता म शिव की
 आराधना कर उन्होंने भक्ति में पूजित साकर म विविध बरो को पाकर परमोत्तम सामर्थ्य प्राप्त किया । इस

वरानपाप्य विविधाञ्चरादभावपूजितात। शिवप्रसादात्किं नाम देहिनामिह दुर्लभम् ॥२५॥
जगाम शुभो जीवेन तारया यत्र चन्द्रमा। यतते त शशापोच्चं शृणु त्व चन्द्र मे वच ॥२६॥
यस्मात्पापतरं यमं त्वया पाप मदात्कृतम्। बुध्यो भूयास्ततश्चन्द्र शशापं वया कथि ॥२७॥
कविशापप्रदग्धोऽभूत्तदेव मृगलाञ्छन। प्रापु दाय न के ताम गुरस्यामितलिद्रुह ॥२८॥
तत्पाज तां स चन्द्रोऽपि तां तारां जगृह कवि। शुभोऽपि देवानाद्रूप श्रुषीन्पितृगणास्तथा ॥२९॥
नदीनंदोश्च विविधातोषधीश्च पतिव्रता। तत सप्रष्टुमारेभे तारावृत्तविनिष्पयम् ॥३०॥
तत श्रुति सुरानाह गौतम्या भविततस्त्वयम्। स्नानं करोतु जीवेन तारा पूता भविष्यति ॥३१॥
रहस्यमेतत्परमं न कप्य यस्य यस्यचित्। सर्वस्वपि दद्यात्स्वेह शरणं गौतमी नृणाम् ॥३२॥
तथाऽकरोच्चैव तारा भर्त्रा स्नानं यथाविधि। पुष्पवृष्टिरभूत्तत्र जयशब्दो ध्ववर्तत ॥३३॥
पुनर्वै देवा अदबु पुनमनुष्या उत। राजानं सत्यं कृष्णानां ब्रह्मजायां पुनर्दंडु ॥३४॥
पुनर्दत्त्वा ब्रह्मजायां कृता देवैरकल्मषाम्। सर्वं क्षेममभूत्तत्र तस्मात्तीर्थं महामुने ॥३५॥
तदभूत्सकलाघोषध्वस्तन सर्वकामदम्। आनन्द क्षेममभवत्सुराणामसुरारिणाम् ॥३६॥
बृहस्पतेश्च गुरुषु तारायाश्च विशेषतः। परमानन्दभाषणो गुरुर्गङ्गामभाषत ॥३७॥

ससार म गिव की कृता स देहाधारियों के लिये कौन सा पदार्थ दुर्लभ है? गुरु गुरु के साथ वहाँ गये जहाँ तारा मे साथ चन्द्रमा रहता था। उन्होंने उसको उच्च स्वर से गाप दिया— चन्द्र! तुम मेरी बात सुनो—जिस भद्र से तुमने पापकर्म किया है इसके परिणामस्वरूप तुम कोटी हो जाओ। इन प्रकार कवि ने शेषपूजक चन्द्रमा को गाप दे दिया। मृग चिह्न से युक्त चन्द्र कवि के गाप से उठी समय दाय हो गया। सत्य है कि गुरु स्वामी और मित्रों स द्रोह करने वाले कौन ऐसे हैं जो मर्त्य नहीं हो गये? उस चन्द्रमा ने भी उस तारा को छोड़ दिया। कवि ने उस तारा को ले लिया। गुरु ने भी सब देवों श्रुतियों पितरों नदियों नदी विविध ओषधिया और पतिव्रता स्त्रियों स तारा के कर्मों व प्रतीकार (प्रायश्चित्त) पूछना प्रारम्भ किया। तत्र श्रुति ने देवों से कहा— यह गौतमी मे गुरु के सहित भक्तिपूजक स्नान करे। उससे तारा पवित्र हो जायगी। यह परम गुप्त रहस्य है। जिस किसीसे इसको नहीं कहना चाहिए। प्रत्येक अवस्था मे गौतमी मनुष्य भाष ने लिये एकमात्र शरण है तदनुसार तारा ने यथा विधि भर्ता के साथ स्नान किया। इस पर वहाँ आनाश से पुष्पवृष्टि हुई और चारों ओर जय ध्वनि होने लगी। पुन देवों ने उसको शुद्धता का आशीर्वाद दिया। फिर मनुष्यों ने पुन राजाओं ने उस ब्रह्म मार्ग को सत्य घोषित करते हुए दे दिया। फिर इस प्रकार देवताओं ने उस ब्राह्मण-पत्नी को निष्पाप बना कर देवगुरु को सौंप दिया। महामुनि! उस स्थान पर सब कल्याण ही हुआ इसलिये वह स्थान सब पापों का ध्वंस करने वाला और सब प्रकार के मनोरथ सिद्ध करने वाला तीर्थ हो गया। वहाँ असुर द्रोही देवों बृहस्पति गुरु और विशेष रूप से तारा को परम आनन्द और क्षेम प्राप्त हुआ। परम आनन्द से युक्त गुरु ने गंगा से कहा ॥२४ ३७॥

गुरुवाच

त्व गौतमि सदा पूज्या सर्वेषामपि सुवितदा । विधेयतस्तु सिहस्थे मयि त्रैलोक्यपायनी ॥३८॥
भविष्यसि सरिच्छ्रेष्ठे सर्वतीर्थे समन्विता । यानि कानि च तीर्थानि स्वर्गमृतपुरसातले ॥
त्वा स्नातु तानि यास्यन्ति मयि सिहस्थितेऽम्बिके ॥३९॥

ब्रह्मोवाच

धन्य यशस्यमायुष्यमारोग्यश्रीविवर्धनम् । सौभाग्यैश्वर्यजनन तीर्थमानन्दनामकम् ॥४०॥
तत्र पञ्च सहस्राणि तीर्थाणिह स गौतम । स्मरणास्पठनाद्वाऽपि द्रष्टुं सपुज्यते सदा ॥४१॥
शिवस्याय निविष्टस्य नन्दो गङ्गातटेऽनिशम् । साक्षात्स्मरत्यसौ धर्मस्तस्मान्नदीतट स्मृतम् ॥
आनन्दमपि तत्तीर्थं सर्वानन्दविवर्धनात् ॥४२॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये आनन्दतीर्थादिपञ्चसहस्रतीर्थवर्णन
नाम द्विपञ्चाशदधिविशततमोऽध्याय ॥१५२॥

गौतमीमाहात्म्ये त्रयोत्तितमोऽध्याय ॥८३॥

अथ त्रिपञ्चाशदधिकशततमोऽध्याय

भावतीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

भावतीर्थमिति श्रुत्वा यत्र साक्षादभव स्थित । अशेषजगदन्तस्यो भूतात्मा सञ्चिदाकृति ॥१॥

गुरु ने कहा—गौतम ! तुम अबद पूज्य हो । मन्त्रों को मुक्ति देने वाली हो । विष्णु रूप में मेरे सिहस्थ
(सिंह राशि पर) रहने पर ह सरित्तीरमें नि । तुम सब तीर्थों से युक्त हाकर विभूतप्राप्तनी होगी । अम्बिक ।
स्वर्ग मृत्यु और रसातल में त्रितने तीर्थ है वे सब मेरे सिहस्थ होने पर तुम्हारे पास स्नान करने आयेंगे ।
॥३८ ३९॥

ब्रह्मा बोले—बहु तीर्थ धन्य कीर्तिप्रद आयु आरोग्य और श्री को बढ़ाने वाला सौभाग्य और ऐश्वर्य
को पैदा करने वाला आनन्द नामक तीर्थ है । उस गौतम ने कहा पांच हजार तीर्थों के बतलाये हैं । उनमें स्मरण और
पठन से मनुष्य के सब प्रकार के अनारोग्य दूर हो जाते हैं । यहाँ मन्त्रों पर ध्यानावस्थित शिव का धर्म रूप नदी
साक्षात् विवरण करता है इसलिये इसका नाम नन्दीतट पड़ा है । बहु सब का आनन्द बढ़ाने वाला है अतः उसको
आनन्दनाम कहते हैं ॥४० ४२॥

श्री ब्रह्ममहापुराण में आनन्दतीर्थ आदि पाँच हजार तीर्थों का वर्णन नामक एक सो भावनेवाँ अध्याय
समाप्त ॥१५२॥

अध्याय १५३

भावतीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा बोले—जहाँ समस्त संसार के जन-वरण में रहने वाले, भूतात्मा, सच्चिदानन्द स्वरूप साक्षात्

तत्रेमा शृणु वक्ष्यामि कथा पुण्यतमां शुभाम् । सूर्यवदश्वर श्रीमान्क्षत्रियाणा धुरधर ॥२॥
 प्राचीनबहिराहपात सर्वधर्मेषु पारण । तिस्र षोडशोऽर्धकोटिद्वय वर्षाणा राज्य आस्थित ॥३॥
 तस्येदृश दत्त चाऽऽसीद्यद्वह यौवनच्युत । भवेय प्रियया वाऽपि पुत्रैर्वा प्रियवस्तुभि ॥४॥
 विमुक्त्येय ततो राज्य त्यक्ष्येऽह नान सशय । विवेकिना कुलीनानामिदमयोचित नृणाम् ॥५॥
 स्थीयते विजने भवापि विरवर्तेविभवक्षये । तस्मिन्प्रशासति महीं न वियोग प्रियं ववचित् ॥६॥
 नाऽऽधिव्याधी न दुर्भिक्ष न यन्धुकलहो नृणाम् । तस्मिन्प्रशासति राज्य तु न च कदिचद्वियुज्यते ॥७॥
 तत पुत्रार्थमकरोद्यत् राजा महामति । तत प्रसन्नो भगवान्श्वर प्रादाद्यथेप्सितम् ॥८॥
 गौतमीतीरसस्याय राजे देवो महेश्वर । पुत्र देहीति राजा वं भव प्राह स भार्या ॥९॥
 भव प्राह नृप प्रोत्था पश्य नेत्र तृतीयवम् । तत पश्यति राजेन्द्रे भवस्याक्षि तु मानद ॥१०॥
 चक्षुर्दीप्याऽभ्रवत्पुत्रो महिमा नाम विश्रुत । येनाकारि स्तुति पुण्या महिम्न (?) 'इति विश्रुता ॥११॥
 किमलम्भ भगवति प्रसन्ने त्रिपुरास्तके । य नित्यमनुवर्तन्ते हरिर्ब्रह्मादय सुरा ॥१२॥
 प्राप्तपुनश्च नृपतिस्तीर्थं श्रेष्ठमयाचत । महापापमहारोगमहाव्यसनिना नृणाम् ॥१३॥
 नानाविपद्गणार्ताना सर्वाभिमत्तलब्धये । प्रादाज्ज्येष्ठश्च भवश्चापि भावतीर्थं तदुच्यते ॥१४॥

शकर विराजमान हैं उसको भावतीर्थ कहा गया है। उसकी सुम एव पुण्यतम कथा कह रहा हूँ सुनो। सूपवर्ग को बहाने वाला सत्र धर्मों में पारङ्गत श्रीमन्न और अत्रिय कुलधुरधर एक प्राचीनरहित नामक राजा था। वह राज सिंहासन पर साठ तीन करोड़ वर्ष तक रहा। उसने ऐसा नियम किया कि यदि मैं यौवन च्युत हो जाऊँगा या प्रिया या अपनी प्रिय वस्तुओं से अलग हो जाऊँगा तो मैं अपना राज्य अवश्य छोड़ दूँगा इसमें कोई भी सन्देह नहीं। कुलीन और ज्ञानी मनुष्यों के लिए यह उचित है कि वह विम्वहीन होने पर विरलत हो वही एकात स्थान में जीवन व्यतीत करे। उसने शासनकाल में बड़ी किसी को प्रिय विधाय नहीं होता था। मनुष्यों का किसी प्रकार की आधि व्याधि दुर्भिक्ष तथा बन्धुना से बलह नहीं होता था। उसके राज्य शासन का न कोई अपने प्रिय से विमुक्त नहीं होता था। इसके बाद महाबुद्धिमान राजा ने पुत्र प्राप्ति के लिए यज्ञ किया। तब प्रसन्न होकर भगवान् महेश्वर देव न गौतमी तीर पर रहने वाले राजा को इच्छानुकूल वर दिया। भार्या सहित उस राजा ने पुत्र दीजिये यह वर शकर से मागा ॥१९॥ शकर ने प्रमथूक राजा से कहा कि मरे तीसरे नेत्र को देखो। मानद। तब उनके तीसरे नेत्र को देखने पर राजेन्द्र को नेत्र की दीप्ति के प्रभाव से महिमा नामक प्रसिद्ध पुत्र हुआ जिसने महिम्नस्तोत्र नामक प्रसिद्ध स्तोत्र को बनाया और उसी से स्तुति की। जिसकी आशा का अनुसरण हरि ब्रह्मा आदि देवता करते हैं उस भगवान् त्रिपुरारि के प्रसन्न होने पर सप्तर मे क्या अलम्भ है? पुत्र पा जाने पर राजा ने उस तीर्थ की श्रद्धा का भी वर मागा। भव ने महापापी महारोगी महाव्यसनी और अनेक विपत्तियों से दुखी मनुष्यों की अभीष्ट सिद्धि के लिये उस तीर्थ को अति श्रद्धा दे दी। अब वह भावतीर्थ कहा जाता है।

तत्र स्नानेन दानेन सर्वान्कामानवाप्नुयात् । भवप्रसादादभवत्सुतः प्राचीनवर्हिषः ॥१५॥
महिमा गीतमीतीरे भावतीर्यं तदुच्यते । तत्र सप्ततितीर्यानि पुण्यान्यखिलदानि च ॥१६॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये भावतीर्यादिसप्ततितीर्थवर्णनं नाम
त्रिपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥१५३॥

गीतमीमाहात्म्ये चतुरशीतितमोऽध्यायः ॥८४॥

अथ चतुष्पञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः

सहस्रकुण्डाख्यतीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

सहस्रकुण्डमाख्यातं तीर्थं वेदविदो विदुः । यस्य स्मरणमात्रेण सुखी संपद्यते नरः ॥१॥
पुरा दाशरथी रामः सैतुं बद्ध्वा महार्णवे । लङ्कां दग्ध्वा रिपून्हत्वा रावणादीयणे शरैः ॥२॥
वैदेहीं च समासाद्य रामो वचनमब्रवीत् । पश्यत्सु लोकपालेषु तस्याऽऽचार्यं पुरः स्थिते ॥३॥
अग्नौ शृद्धिगतां सीतां रामो लक्ष्मणसंनिधौ । एहि वैदेहि शुद्धासि भङ्गुमारोद्धमर्हसि ॥४॥

उत्तमे स्नान और दान करने से मनुष्य सब कामनाओं को प्राप्त करता है । भगवान् जब भी कृपा से प्राचीनवर्हिष को गीतमी-तट पर महिमा नामक पुत्र उत्पन्न हुआ, इसलिये उसको भावतीर्थ कहा जाता है । इसके अतिरिक्त वहाँ पवित्र और अखिल मनोरथों को देने वाले सत्तर तीर्थ हैं ॥१०-१६॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में भावतीर्थ आदि सत्तर तीर्थों का वर्णन नामक एक सौ तिरपनवां
अध्याय समाप्त ॥१५३॥

अध्याय १५४

सहस्रकुण्ड नामक तीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा बोले—वेदों के जानने वाले व्यक्ति सहस्रकुण्ड नामक तीर्थ को जानते हैं, जिसके स्मरण मात्र से मनुष्य सुखी हो जाता है । प्राचीन-काल में दशरथ-पुत्र राम ने महाशमूद्र पर पुल बाँध कर लंका को जला रण में अपने बाणा से रावण आदि शत्रुओं को मारकर वैदेही को प्राप्त किया । तत्पश्चात् सब लोकपालों और क्षत्रियों आचार्यों के सामने ही राम ने लक्ष्मण के समीप अग्नि में शृद्ध की गई सीता से कहा—‘वैदेहि ! तुम पवित्र हो, अब मेरी गोद में आरूढ़ होने से योग्य हो ।’ उस समय यह सुनकर श्रीमान् भगद तथा हनुमान् ने इसका निषेध दिया और कहा ‘वैदेहि ! हम सब अपने सुहृद्गणों के साथ कथोप्या चलेंगे । वहाँ शृद्ध होने पर और साथ ही भ्रातृगण,

मेत्युवाच तदा श्रीमानद्भुवो हनुमांस्तथा । अयोध्यायां तु वेदेहि सार्धं यामः सुहृज्जनैः ॥५॥
 तत्र शुद्धिमवाप्स्याथ पुनर्भातृषु मातृषु । लोकिकेष्वापि पश्यत्सु ततः शुद्धा नृपात्मजा ॥६॥
 अयोध्याया सुपुण्येऽह्नि अङ्कमारोढुमर्हसि । अस्याश्चरित्रविषये सदेहः कस्य जायते ॥७॥
 लोकापवादस्तदपि निरस्यः स्वजनेषु हि । तयोर्वाक्यमनादृत्य लक्ष्मणः सविभोषण ॥८॥
 रामश्च जाम्बवाच्चैव तामाह्वयन्नुपात्मजाम् । स्वस्त्योत्युक्ता देवताभौ राज्ञोऽङ्कं चाऽऽहरोह सा ॥९॥
 मुवत्तिस्ते ययुः शीघ्रं पुष्पकेण विराजता । अयोध्या नगरीं प्राप्य तथा राज्यं स्वकं तु यत् ॥१०॥
 मुदितास्तेऽभवन्सर्वे सदा रामानुवर्तिनः । ततः कतिपयाहेषु अनार्यैर्म्यो विरूपिकाम् ॥११॥
 वाचं श्रुत्वा स तत्याज गुविणो तामयोनिजाम् । मिथ्यापवादमपि हि न सहन्ते कुलोन्नताः ॥१२॥
 बाल्मीकीर्मुनिमुह्यस्य आश्रमस्य समीपतः । तत्याज लक्ष्मणः सीतामदृष्ट्वा ददतीं ददन् ॥१३॥
 नीललङ्घ्याऽऽजा गुरुणामित्यसौ तदकरोद्भिया । ततः कतिपयाहेषु व्यतीतेषु नृपात्मजः ॥१४॥
 रामः सोमित्रिणा सार्धं हयमेधाय दीक्षितः । तत्रैवाऽऽजगमत्पुत्रो रामपुत्रो यशस्विनी ॥१५॥
 लवः कुशश्च विख्यातो नारदाविव गायकौ । रामायण समग्रं तद्गन्धर्वाविव सुस्वरी ॥१६॥
 रामाय चरितं सर्वं गायमानो समीपतुः । यज्ञवाट राजसुतो हेतुभिलक्षितो तदा ॥१७॥
 रामपुत्राबुभौ शूरो बंदेहपास्तनयाविति । तावानोय ततः पुत्रावभिषेच्य यथाक्रमम् ॥१८॥
 अङ्कारूढौ ततः कृत्वा सस्वजे सौ पुनः पुनः । सत्तारबु लखिन्ननामगतीना शरीरिणाम् ॥१९॥

मातापे और समस्त प्रजायें जब इस अति-परीक्षा को देख लेंगी तब नृप-तनया सीता शुद्ध होगी । इससे अनन्तर पवित्र शुभ दिन में उसी अयोध्या में वे आपके अकारूढ होगी । वास्तव में इनके चरित्र के विषय में किसने सन्देह होगा ? फिर भी स्वजनों में फैले लोकापवाद को अवश्य दूर करना चाहिये । 'उन दोनों की इन बातों का अनादर कर विभीषण सहित राम लक्ष्मण और जाम्बवान् ने उस शुद्ध नृप कन्या को बुलाया, देवताओं ने स्वस्ति-पाठ किया और सीता आदरपूर्वक राजा के अङ्क में आरूढ हुई ॥१-९॥ सभी पुष्पक-विमान पर सवार होकर प्रसन्नतापूर्वक शीघ्र अयोध्या की ओर चले । अयोध्या नगरी और अपने राज्य को पा सदा राम की आज्ञा का पालन करने वाले वे सब लोग अति प्रसन्न हुये । इसके बाद कुछ दिनों में राजा राम ने अनार्यों के मुख से सीता के संबंध में अनुचित बात सुनकर उस अयोनिजा को गर्मकती अवस्था में ही छोड़ दिया, क्योंकि कुलीन व्यक्ति मिथ्यापवाद को भी नहीं सहते हैं । लक्ष्मण ने मुनिशिरोमणि बाल्मीकि के आश्रम के समीप उस रोती हुई पवित्र सीता को स्वयं रोते हुए छोड़ दिया । गुरु की आज्ञा का उल्लंघन नहीं करना चाहिए, इस उर से उन्होंने वह क्रम बर्न किया । इसके बाद कुछ समय बीत जाने पर नृप-पुत्र राम ने लक्ष्मण के सहित अश्वमेध यज्ञ की दीक्षा ली । उसी यज्ञ में वे दोनों यशस्वी तथा नारद के समान विख्यात गायक रामपुत्र लव और कुश उस सम्पूर्ण रामचरित्र—रामायण को गन्धर्व के समान मीठे स्वर से गाते हुए पहुँचे । उस समय जब वे दोनों राज-पुत्र यज्ञ-पथ पर आये तब अपने अंग-लक्षणों से दोनों सीता से उत्पन्न राम के पुत्र पहचाने गये । राम ने अपने उन दोनों पुत्रों को धुलावर यथाक्रम उनका अभिषेक किया, पुनः गोद में लेकर बार-बार छाती से लगाया ॥१०-१८॥ सत्य है कि सत्तार के दुखों से उद्भिन्न एवं निरुणय देहचारियों के लिये इस सत्तार में पुत्र वा आर्लिगन ही अत्यन्त सुख-शान्ति का वारण है । राम उन दोनों पुत्रों को बार-बार अपनी छाती से लगाते, चूमते और आर्लिगन करते, कुछ हृदय में सोचते-से थे,

पुत्रालिङ्गनमेवात्र परं विश्रान्तिकारणम् । मुहुरालिङ्ग्यतौ पुत्रौ मुहुः स्वजतिं चुम्बति ॥२०॥
 किमप्यन्तर्ध्यायति च निःश्वसत्यपि यं मुहुः । एतस्मिन्नन्तरे प्राप्ता राक्षसा लङ्कावासिनः ॥२१॥
 सुग्रीवो हनुमांश्चैव अङ्गदो जाम्बवास्तथा । अन्ये च वानराः सर्वे विभीषणपुरः सराः ॥२२॥
 ते चाऽऽगत्य नृपं प्राप्ताः सिंहासनमुपस्थितम् । सीतामदृष्ट्वा हनुमानङ्गदः कनकाङ्गदः ॥२३॥
 क्व गताऽयोनिजा माता एको रामोऽत्र दृश्यते । रामेण सा परित्यक्ता इत्युचुर्द्वारपालकाः ॥२४॥
 पश्यत्सु लोकपालेषु आर्यं तत्र प्रवर्दिनि । अग्नौ द्युद्धियतां (ता) सीतां (ता) किंतु राजा निरंकुशः ॥२५॥
 उत्पन्नैर्लोकिर्कंवाक्यं रामस्त्यजति तां प्रियाम् । भरिष्याव इति ह्युक्त्वा गौतमीं पुनरीयतुः ॥२६॥
 रामस्तौ पृच्छतोऽस्म्येत्य (?) अयोध्यावासिभिः सह । आपत्य गौतमीं तत्राकुर्वन्ते परमं तपः ॥२७॥
 स्मारं स्मारं निश्वसन्तस्तां सीता लोकमातरम् । संसारास्याविरहिता गौतमीसेवनोत्सुकाः ॥२८॥
 लोकत्रयपतिः साक्षाद्रामोऽनुजसमन्वितः । प्राप्तः स्नात्वा च गौतम्यां शिवाराधनतत्परः ॥२९॥
 परितपं जहौ सर्वं सहस्रपरिवारितः । यत्र चाऽऽसीत् सृष्टान्तः सहस्रकुण्डमुच्यते ॥३०॥
 दशापराणि तीर्थानि तत्र सर्वार्थदानि च । तत्र स्नानं च दानं च सहस्रफलदायकम् ॥३१॥
 यत्र श्रीगौतमीतीरे वसिष्ठादिमुनीश्वरैः । सर्वापत्तारकं होममकारपदधान्तकम् ॥३२॥
 सहस्रसंख्यापुत्रतपुः कुण्डेषु वसुधापरा । सर्वानपेक्षितान्कामानवापासी महत्तपाः ॥३३॥

और फिर बार-बार लम्बी आंठें भरते लगते थे । इसी बीच लंकावासी विभीषण आदि राक्षस, सुग्रीव, हनुमान्, अगद और जाम्बवान् एव अन्य वानर आये । उन सबों ने सिंहासन पर बैठे राम को ही देखा, परन्तु सीता को न देखा । तब कनक और नैयूर पहने हुये हनुमान् और अगद ने पूछा कि मेरी अयोनिजा माता सीता कहाँ चली गई, केवल अकेले राम ही दिखाई पड़ रहे हैं । द्वारपाल ने कहा कि राम न उनको छोड़ दिया है । तब सब लोकपालों के देखते-देखते और आर्य राम ने रोक्ते रहते पर भी उन्होंने कहा कि ओह ! अग्नि के द्वारा द्युद्ध भी गई प्रिय सीता को राम ने लोका-पवाद के वारण छोड़ दिया है । ' ' ठीक है राजा अति निरकुश होते हैं । अब हम अवश्य मर जायेंगे । यह कह गौतमी-तट पर चले आये । राम भी उन दोनों के पीछे-पीछे अयोध्यावासियों के साथ उस गौतमी-तट पर आये । स्मार से निराश और गौतमी-भवन के स्थिते उल्लुख से सब उस लोकपाता सीता का बार-बार स्मरण कर और दीर्घो-च्छ्वास छोड़ते हुए परमोत्कृष्ट तप करने लगे । सीता लोक के स्वामी साक्षात् राम अपने अनुज के साथ गौतमी के तट पर आये और उनमें स्नान कर शिवाराधन में लीन हो गये ॥२९-२९॥ इस प्रकार उन्होंने सहस्रजना के साथ दीर्घ तपस्या कर सब दुःख से अपन को मुक्त किया । जहाँ वह घटता हुई उसको सहस्रकुण्ड कहा जाता है । वहाँ और भी सब अनिमल पदार्थों को दन वाले दन तीर्थ हैं । उनमें स्नान और दान करने से सहस्रगुण फल प्राप्त होता है । जहाँ श्री गौतमी के तट पर वसिष्ठादि मुनीश्वरों से युक्त होकर सहस्रकुण्ड में पाप नष्ट करने वाली और सब आपतियों को दूर करने वाली आहुतियों को वसुधापरा के साथ दिया और रामों के विश्वराज

गौतम्या सरिदम्बाया प्रसादव्राक्षसान्तक । सहस्रकुण्डाभिध तदभूतीर्य महाफलम् ॥३४॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये सहस्रकुण्डादिदशतीर्थवर्णन नाम
चतुष्पञ्चाशदधिकशततमोऽध्याय ॥१५४॥

गौतमीमाहात्म्ये पञ्चाशोतितमोऽध्याय ॥८५॥

अथ पञ्चपञ्चाशदधिकशततमोऽध्याय

कपिलातीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

कपिलातीर्थमारुपात् तदेवाऽऽङ्गिरस स्मृतम् । तदेवाऽऽदित्यमारुपात् संहिकेय तदुच्यते ॥१॥
गौतम्या दक्षिणे पारे आदित्यान्मुनिसत्तम । अयाजयन्नङ्गिरसो दक्षिणां ते भुव इदु ॥२॥
अङ्गिरोऽयस्वदाऽऽदित्यास्वपसेऽङ्गिरसो ययु । सा भूमिं संहिकी भूत्वा जनान्सर्वान्भक्षयत् ॥३॥

उस महातपस्वी राम ने माता गौतमी नदी की कृपा से सब अमीष्ट मनोरथों को प्राप्त किया, वह महाफल देने वाला सहस्रकुण्ड नामक तीर्थ विख्यात हो गया ॥३० ३४॥

श्री ब्रह्ममहापुराण में सहस्रकुण्ड आदि दस तीर्थों का वर्णन नामक एक सौ बीवनवाँ अध्याय समाप्त ॥१५४॥

अध्याय १५५

३

कपिलातीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा बोले—कपिलासगम नामक एक प्रसिद्ध तीर्थ है। उसी को आगिरग आदित्य और संहिकेय तीर्थ भी कहा जाता है। मुनिप्रपञ्च ! अङ्गिरसों ने गौतमी के दाहिने तट पर आदित्या को यज्ञ कराया। उन आदित्या ने दक्षिणा में अङ्गिरसा का पृथिवी दी। अङ्गिरस सगम्य के लिये चले गये। वह भूमि संहिकी बनकर मनुष्यों को खात लगी। वे सब लोग मयत्रस्त हो गये और उन्होंने जाकर अङ्गिरसा से अपनी बचत-भावा मुनाई। अपने अन्त ज्ञान से उन पृथिवी का सहज होना जानकर वे भी डरने लगे। इनके बचत आदित्या के पास जाकर बोले— अपनी दी

तत्रसुस्ते जनाः सर्वे अङ्गिरोम्यो न्यवेदयन् । विभीता ज्ञानतो ज्ञात्वा भुवं तां संहिकीमिति ॥४॥
 आदित्याननुगत्वाऽथ धाचमङ्गिरसोऽब्रुवन् । भुवं गृह्णन्तु या दत्ता नेत्यादित्यास्तदाऽब्रुवन् ॥५॥
 निवृत्तां दक्षिणां नैव प्रतिगृह्णन्ति सूरयः । स्वदत्तां परदत्तां वा यो हरेत् वसुंधराम् ॥६॥
 पण्डित्वं संहृत्ताणि विष्टायां जायते कृमिः । भूमेः स्वपरदत्ताया हरणान्नाधिकं क्वचित् ॥७॥
 पापमस्ति महारौरवं न स्वीकुर्मः पुनस्तु ताम् । एवं यदा स्वदत्ताया हरणे किं तदा भवेत् ॥८॥
 तद्याऽपि क्रयरूपेण गृह्णीमो दक्षिणां भुवम् । तथेत्युक्ते तु ते देवाः कपिला शुभलक्षणाम् ॥९॥
 गङ्गाया दक्षिणे पारे भुवः स्थाने तु ता ददुः । भुक्तिमुक्तिप्रदः साक्षाद्विष्णुस्तिष्ठति मूर्तिमान् ॥१०॥
 कपिलासंगमं तच्च सर्वाधीधविनाशनम् । तत्राभवद्दानतोयादायमा कपिलाभिधा ॥११॥
 सस्यवत्या अपि भुवो दानाद्गोदानमुत्तमम् । लोकरक्षां चकारासौ कृत्वा विनिमयं मुनिः ॥१२॥
 यत्र तीर्थं च तद्वृत्तं गोतीर्थं । तदुदाहृतम् । पुण्यदं तत्र तीर्थानां शतमुक्तं मनीषिभिः ॥१३॥
 तत्र स्नानेन दानेन भूमिदानफलं लभेत् । सगता गङ्गाया तच्च कपिलासंगमं विदुः ॥१४॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये कपिलासंगमादिशततीर्थवर्णनं नाम

पञ्चपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥१५५॥

गोतमीमाहात्म्ये षडशीतितमोऽध्यायः ॥८६॥

हुई पृथ्वी को ले लीजिये ।' तब आदित्यों ने कहा 'नहीं, ज्ञानी दक्षिणा में दिये गये पदार्थ को पुनः स्वयं अपने नहीं लेते । जो अपनी ही हुई या दूसरे की ही हुई भूमि को छीन लेता है वह साठ हजार वर्ष तक विष्टा में कीड़ा बनता है । अपनी अथवा दूसरे की ही हुई भूमि को ले लेने की अपेक्षा कदाचित् और दूसरा महामयङ्कर पाप नहीं है । इसलिये पुनः उस भूमि को हम नहीं ग्रहण करेंगे ॥१७॥ यद्यपि स्वदत्त पृथ्वी के पुनः ग्रहण में पाप होता है तब अब क्या होगा ? तथापि मूल्य देकर क्रय के रूप में इस दक्षिणा की हुई पृथिवी को ले लेता हूँ ।' 'ऐसा ही हो' ऐसा अङ्गिरसों के कहने पर उन आदित्यों ने शुभ लक्षणों वाली कपिला गौ को पृथ्वी के निष्क्रय के रूप में गंगा के दक्षिण तीरे पर दे दिया । उस स्थान पर भुक्ति और मुक्ति देने वाले साक्षात् मूर्तिमान् विष्णु निवास करते हैं । वहाँ वह कपिला-संगम नामक एक तीर्थ बन गया जो सब पापों को दूर करने वाला है । वही दान-जल के गिरने से कपिला नाम की एक नदी बन गई । सस्य-सम्पन्न पृथ्वी के दान से यी गोदान उत्तम दान है । इस प्रकार उस मुनि ने दान का विनिमय कर लोभ-रक्षा की । जहाँ वह घटना हुई उसको गोतीर्थ कहा जाता है । मनीषियों ने वहाँ ओर पुण्यप्रद सो तीर्थों को कहा है । वहाँ स्नान और दान करने से भूमि-दान का फल प्राप्ति होता है । गंगा से मिलने पर उस स्थान को कपिला-संगम कहा जाता है ॥८-१४॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में कपिला-संगम आदि सौ तीर्थों का वर्णन नामक

एक सौ पचपनवाँ अध्याय समाप्त ॥१५५॥

अथ षट्पञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः

शङ्ख हृदतीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

शङ्खहृद नाम तीर्थं यत्र शङ्खगदाधरः । तत्र स्नात्वा च तद्दृष्ट्वा मुच्यते भवबन्धनात् ॥१॥
तत्रैव वृत्तमाख्यास्ये भुक्तिमुक्तिप्रदायकम् । पुरा कृतयुगस्याऽऽदौ ब्रह्मण सामपायिनः ॥२॥
ब्रह्माण्डागारसभूता राक्षसा बहुरूपिणः । ब्रह्माण खादितुं प्राप्ता बलोन्मत्ता धृतायुधाः ॥३॥
तदाऽहमब्रव विष्णु रक्षणाय जगदगुरुम् । स विष्णुस्तानि रक्षासि हन्तुं चक्रेण चोद्यतः ॥४॥
छित्त्वा चक्रेण रक्षासि शङ्खमापूरयत्तदा । निष्कण्टकं तलं कृत्वा स्वर्गं निर्वरमेव च ॥५॥
ततो ह्यप्रकर्षेण शङ्खमापूरयद्वरि । ततो रक्षासि सर्वाणि हचनीनशुरशेषतः ॥६॥
यत्रैतद्वृत्तमखिलं विष्णुशङ्खप्रभावतः । शङ्खतीर्थं तु तत्प्रोक्तं सर्वशेककरं नृणाम् ॥७॥
सर्वाभीष्टप्रदं पुण्यं स्मरणान्मङ्गलप्रदम् । आयुरारोग्यजननं लक्ष्मीपुत्रप्रवर्धनम् ॥८॥
स्मरणात्पठनाद्वाऽपि सर्वकामानवाप्नुयात् । तीर्थानामप्युत तत्र सर्वपापनुदं मुने ॥९॥
तीर्थान्यप्युतसर्पानि सर्वपापहराणि च । येषां प्रभावः जानाति श्वत्सु देवो महेश्वरः ॥१०॥

अध्याय १५६

शङ्ख हृद नामक तीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा बोले—शङ्ख हृद नामक एक तीर्थ है जहाँ शङ्ख और गदा को धारण करने वाले भगवान् रहते हैं। उस तीर्थ में स्नान कर उस भगवान् का दर्शन करने से मनुष्य ससार के बन्धन से छूट जाता है। वहाँ जो यह भुक्ति और मुक्ति देने वाली घटना हुई उसको कह रहा हूँ। बहुत पहले कृत युग के आदि में शाम गान करने वाले ब्राह्मण थे। उस समय ब्रह्माण्ड रूपी गृह में उत्पन्न मित्र मित्र रूप वाले तथा बल से उन्मत्त रहने वाले राक्षस हाथ में शस्त्र लेकर ब्रह्मा को खाने के लिये आये। तब मैंने जगदगुरु विष्णु से रक्षा के लिये कहा। वे विष्णु उन राक्षसों को चक्र से मारने के लिये तैयार हो गये। चक्र से राक्षसों को काट कर अपना शङ्ख बनाया। मूलतः जो शत्रु रहित और स्वयं को निश्चित कर हरि ने आनन्दतिरेक से अपने शङ्ख को बनाया। इस प्रकार सब राक्षसों को पूर्ण रूप से नष्ट कर दिया। जहाँ यह खारी घटना हुई वह विष्णु के शङ्ख के प्रभाव के कारण मनुष्यों के सब प्रकार के कल्याण करने वाला शङ्खतीर्थ हो गया। वह तीर्थ अत्यन्त पवित्र सब सनोत्सवों को देने वाला स्मरण मान से मंगल प्रदान करने वाला और आयु आरोग्य लक्ष्मी तथा पुत्र को बढ़ाने वाला है। मनुष्य उसके स्मरण और पठन से सब कामनाओं को पा जाता है। मुने! वहाँ सब पापों को नष्ट करने वाले दस हजार तीर्थ हैं।

पापक्षयप्रतिनिधिर्न तेभ्योऽस्त्यपर यच्चित्

॥११॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये शङ्खतीर्थाद्युत्तीर्थवर्णनं नाम

षट्पञ्चाशदधिकशततमोऽध्याय ॥१५६॥

गौतमीमाहात्म्ये सप्ताशीतितमोऽध्याय ॥८७॥

अथ सप्तपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः

किप्विन्धातीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

किप्विन्धातीर्थमाहयात सर्वकामप्रदं नृणाम् । सर्वपापप्रशमनं यत्र सनिहितो भव ॥१॥
तस्य स्वरूपं वक्ष्यामि यत्नेन शृणु नारद । पुरा दाशरथी रामो रावणं लोकरावणम् ॥२॥
किप्विन्धावासिभिः सार्धं जघान रणमूढनिः । सपुत्रं सखलं हत्वा सीतामादाय शत्रुहृ ॥३॥
आत्रा सीमित्रिणा सार्धं वानरैश्च महाबलैः । विभीषणेन चकिना देवं प्रत्यागतो नृप ॥४॥
कृतस्वस्त्ययनं श्रीमान्पुष्पकेण विराजितः । यदासीद्धनराजस्य कामगेनाऽऽशुगामिना ॥५॥
अयोध्यामगमन्सर्वे गच्छन्गङ्गामपश्यतः । रामो विरामं शत्रुणा शरण्यं शरणाविनाम ॥६॥

उन सब पापों को हरने वाला दस हजार तीर्थों का प्रभाव का वर्णन करने पर दश ह्रीं कर सकत हैं। पापा का नाश करने वाला ऐसा प्रतिनिधि सीध और दूसरा कोई भी इस भूमण्डल पर नहीं है ॥१ ११॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में शत-साय आदि दस हजार तीर्थों का वर्णन नामक

एक सौ छप्पनवाँ अध्याय समाप्त ॥१५६॥

अध्याय १५७

किप्विन्धा तीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा ने कहा—मनुष्या की सब प्रकार की कामनाओं का पूरा करने वाला तथा सब पापों को दूर करने वाला किप्विन्धातीर्थ नाम का एक तीर्थ है जहाँ भगवान् गुरु भगवान् निवास करते हैं। नारद! उनके स्वरूप का वर्णन कर रहा हूँ ध्यान से सुनो। बहुत पहले दशरथ-पुत्र राम ने जोर से हल्ला मारते रावण का विपरीत निवासियों के सहयोग से भयङ्कर युद्ध भगवान्। गनुनागर राजा राम युद्ध और सैन्य सहित रावण को मारकर सीता को लाने आई लामण महाबलाली वानरा वली विभीषण और दंडा का साथ लीए आये। यामान् राम स्वयंभयन आदि मांगलिक वार्यों को समाप्त कर कुंवर का इच्छा चालित शास्त्रगामा विमान पर विराजमान होकर सबके साथ अयोध्या को चल राखे म गया का दान हुआ। मुने! गनुना के नागर एक गनुनायका के प्रतिपालक

गौतमीं तु 'जगत्पुण्यां सर्वकामप्रदायिनीम् । मनोनयनसंतापनिवारणपरायणाम् ॥७॥
ता दृष्ट्वा नृपति श्रीमान्गाङ्गातीरमयाऽऽविशत् । तां दृष्ट्वा प्राह नृपतिर्हृष्यगदगदया गिरा ॥
हरीन्सर्वानथाऽऽमन्य हनुमत्प्रमुखान्मुने ॥८॥

राम उवाच

अस्याः प्रभावाद्धरयो याऽसौ मम पिता प्रभुः । सर्वपापविनिर्मुक्तस्ततो यातस्त्रिविष्टपम् ॥९॥
इयं जनित्री सकलस्य जन्तोर्भुक्तिप्रदा मुक्तिमयापि दद्यात्
पापानि हन्यादपि दारुणानि, काऽन्याऽनयाऽस्त्यत्र नदी समाना ॥१०॥
हृतानि शत्रवद्दुरितानि चैव, अस्याः प्रभावादरयः सखायः
विभीषणो भैत्रमुपति नित्यं, सीता च लब्धा हनुमाश्च बन्धुः ॥११॥
लङ्का च भग्ना सगणं हि रक्षो, हतं हि यस्याः परितेवनेन
या गौतमी देववरं प्रपूज्य, शिवं शरण्यं सजटात्मवाप ॥१२॥
स्येयं जनित्री सकलेप्सितानाममङ्गलानामपि सनिहन्त्री
जगत्पवित्रीकरणैकदक्षा, दृष्ट्वाऽद्य साक्षात्सरितां सवित्री ॥१३॥
कायेन वाचा मनसा सर्वनां, व्रजामि गङ्गां शरणं शरण्याम् ॥१४॥

राम मन और नेत्र के सताप को निवारण करने में अतिकुशल, सत्कार की अति पवित्र और सब मनोरथों को देने वाली उक्त गौतमी को देखकर गंगा-तीर पर उतर पड़े । मुनि नारद । उसको देखकर राजा हर्ष से प्रफुल्लित होकर हनुमान् आदि प्रमुख यानत्रों को बुलाकर गदगद् वाणी से बोले ॥१-८॥

राम बोले—वानरगण । इस महानदी के प्रभाव से मेरे प्रभु पिता सब पापों से मुक्त होकर स्वर्ग को चले गये । यह समस्त प्राणियों की माता है और सबको भुक्ति और मुक्ति दोनों देती है और उनके दारुण पापों को भी नष्ट कर देती है । इस मू पर इसके समान कोई अन्य नदी नहीं है । इसने सब पापों को पुन पुन नष्ट किया, इसके प्रभाव से शत्रु मित्र हो गये, विभीषण नित्य का मित्र हो गया, सीता मिल गई और हनुमान्, बन्धु (सहायक) मिल गया । इसकी सेवा से लङ्का नष्ट कर दी गई और राक्षस अपने परिव्रजों सहित मारे गये । गौतम ऋषि ने देववर शरण रखकर शिव की पूजा कर जिस गौतमी को जटा सहित प्राप्त किया था, वह यह सबल मनोरथों को प्रदान करने वाली और सब अमंगलों को नष्ट करनेवाली सत्कार को पवित्र करने में एकमात्र कुशल और सब नदियों को उत्पन्न करने वाली गौतमी आज प्रत्यक्ष रूप से दृष्टिपूर्वक हुई है । मैं ऐसी शरणवत्सल गंगा की शरण में शरीर, मन और वचन से सेवा के लिये आया हूँ ॥९-१४॥

ब्रह्मोवाच

एतत्समाकर्ण्य वचो नृपस्य, तत्राऽऽप्लवङ्गरयः सर्व एव
 पूजां चक्रुर्विधिवत्ते पुण्यवच, पुण्यैरनेकैः सर्वलोकोपहारैः ॥१५॥
 संपूज्य शवं नृपतिर्यथावत्स्तुत्वा वाक्यैः सर्वभावोपयुक्तैः
 ते वानरा मुदिताः सर्व एव, नृत्यं च गीतं च तथैव चक्रुः ॥१६॥
 मल्लोपितस्तां रजनीं महात्मा, प्रियानुयुक्तः संवृतः प्रेमवद्भाभः
 दुःखं जहौ सर्वममित्रसंभवं, किं नाऽऽप्यते गीतमीसेवनेन ॥१७॥
 सविस्मयः पश्यति भृत्यवगं, गोदावरौ स्तोति च संप्रहृष्टः ॥
 संमानयन्भृत्यगणं समग्रमवाप रामः कर्मणि प्रमोदम् ॥
 पुनः प्रभाते विमले तु सूर्ये, विभीषणो वासरार्थिं बभाषे ॥१८॥

विभीषण उवाच

नाद्यापि क्षुप्तास्तु भवाम सीर्ये, कंचिच्च कालं निवसाम चात्र ॥
 वत्स्या (सा) म चात्रैव पराद्वलस्रो, रात्रोरयो याम वृतास्त्वयोध्याम् ॥१९॥

ब्रह्मोवाच ॥

तस्याय वाक्यं हरयोऽनुमेनिरे, तथैव रात्रोरपराश्चतस्रः ॥
 संपूज्य देवं सकलेश्वरं तं, भ्रातृप्रियं तीर्थमथो जगाम ॥२०॥

ब्रह्मा बोले—राजा राम की उपर्युक्त बातों की सुनकर वे सब घातर उस पुण्यक्षोया गया मे कूब पडे और स्नान कर सब लोको के उपहार स्वरूप मांति-मांति के फूलों से विधिवत् पूजा की। राजा ने भी शिव की पूजा कर सब भावों को व्यक्त करने वाले उपर्युक्त वाक्यों से विधिपूर्वक स्तुति की। उन सभी वानरों ने मुदित होकर उसी प्रकार नृत्य-गान किया। महात्मा राम ने प्रिया सीता के सहित अपने प्रेमी अनुचरों के साथ उस रात्रि को वही बिता दिया और सब शत्रुओं के कारण पाये हुये दुःख को वे मूल गये। सत्य है, गीतमी की सेवा से मनुष्य क्या नहीं कर पा सकता है? वे कभी विस्मृत हो अपने अनुचरवर्ग को देखते तो कभी प्रसन्न हो गोदावरी की स्तुति करते थे। अपने समस्त अनुचरों को सम्मानित करते हुए राम को कोई अनिर्वचनीय आनन्द प्राप्त हुआ। पुनः प्रातः काल जब विमल सूर्योदय हुआ तब विभीषण ने राम से कहा ॥१५-१८॥

विभीषण ने कहा—इस तीर्थ मे रहने से अभी हम तृप्त नहीं हुये हैं, अब यहाँ कुछ समय तक और रहना चाहते हैं। यहीं और चार रात तक रहें, पुनः जयोध्या को आनन्दपूर्वक प्रस्थान करें ॥१९॥

ब्रह्मा ने कहा—इसके बाद वानरों ने भी विभीषण की बातों का समर्थन किया और उसी प्रकार आनन्दपूर्वक अन्य चार रात्रियाँ भी बिताई गईं। इसके बाद सब के प्रभु शत्रु की पूजा कर सब उस भ्रातृ-प्रिय जगत्प्रसिद्ध

सिद्धेश्वरं नाम जगत्प्रसिद्धं, यस्य प्रभावात्प्रबलो दशास्यः ।	
एवं तु पञ्चाहमयोपिरे ते, स्वं स्वं प्रतिष्ठापितलिङ्गमर्च्यं	॥२१॥
शुश्रूषणं तत्र करोति वायो, सुतोऽनुगामी हनुमान्नृपस्य	।
गच्छन्नुपेन्द्रो हनुमन्तमाह, लिङ्गानि सर्वाणि विसर्जयस्व	॥२२॥
मत्स्यापितान्युत्तममन्त्रविद्भिस्तयेतरैः शंकरांककरंश्च	।
नोद्वाप्त्य पूजा परशंकरेण, ब्राह्मणं समायोग्यमहो भवस्य (?)	॥२३॥
तिष्ठन्ति सुखास्तवनपरेण, ते शङ्खपद्मादिषु सभवन्ति	।
येऽभ्रदूषाणाः शिवलिङ्गपूजां, विधाय कृत्यं न समाचरन्ति	॥२४॥
ययोचितं ते यमांककरं हि, पच्यन्त एवाखिलदुर्गंतोपु	।
रामाज्ञया वायुसुतो जगाम, दोष्या न क्षोत्पादयितुं शशाङ्कः	॥२५॥
[ततः स्वपुच्छेन प्रहोतुकामः, संवेष्टय लिङ्गं तु विसृष्टकामः]	[।
नैवाशक्तस्तमहदद्भुतं स्यात्कपीश्वराणां नृपतेस्तथैव]	॥२६॥
कश्चालयेलब्धमहानुभावं, महेशलिङ्गं पुरुषो मनस्वी	।
तन्निश्चलं प्रेक्ष्य महानुभावो, नृपप्रवीरः सहसा जगाम	॥२७॥
विप्राभ्याः सन्मन्य विधाय पूजां, प्रदक्षिणोक्त्य च रामचन्द्रः	।
शुद्धातिशुद्धेन हृदाऽखिलंस्तलिङ्गानि सर्वाणि नमाम राम	॥२८॥

सिद्धेश्वर नामक तीर्थ में गये, जिसके प्रभाव से रावण प्रबल हो गया था। इस प्रकार वे सब पाँच दिनों तक वहीं रहकर अपने अपने स्थापित किए हुए शिवलिंग की पूजा करते रहे। वहाँ वायु-पुत्र, अनुगामी हनुमान् राजा राम की शुश्रूषा करते थे। जाते समय राजशिरोमणि राम ने हनुमान् से कहा कि मेरे द्वारा प्रतिष्ठापित इन सब लिंगों का उत्तम मन्त्रज्ञो अथवा इतर शंकर-मन्त्रज्ञों के उपदेश से विसर्जन कर दो ॥२०-२२॥ अहो! शंकर के भक्तों को उनकी पूजा का विसर्जन किये बिना इतर कार्य नहीं करना चाहिये। भक्त विधिपूर्वक पूजा करके ही मुखपूर्वक रहते हैं अन्यथा उन (शंकर) के अनादर से वे असिपत्र-वन नामक नरक में कष्ट पाते हैं। जो अश्रद्धालु जन शिव-लिंग की प्रतिष्ठा कर, विहित कार्यों का अनुष्ठान नहीं करते हैं वे यमदूतों द्वारा विभिन्न भयों में यातना पाते हैं। राम की आज्ञा से वायु पुत्र चले, परन्तु अपनी मुखाब्जों से उस लिंग को उखाड़ न सके। तब उन्होंने अपनी पूँछ से बांधकर उस लिंग को उखाड़ना चाहा, परन्तु बैसा भी न कर सके। यह देख कर कपीश्वरो और राजा राम को महान् विस्मय हुआ। कौन ऐसा मनस्वी पुरुष है जो उस महामहिम शिवलिंग को हटा सकता है? नृपश्रेष्ठ महानुभाव राम उस लिंग को अचल देखकर सहसा वहाँ गये और ब्राह्मणों को बुलाकर उस लिंग की विधिवत् पूजा और प्रदक्षिणा की। फिर अति विशुद्ध हृदय से राम ने अखिल अनुयायी वर्गों के साथ उन लिंगों को नमस्कार

किष्किन्धवासिप्रवरंरशोयं, संसेवित तीर्थमतो बभूव	।
अत्राऽऽप्लवादेव महान्ति पापान्यपि क्षयं यान्ति न संशयाऽत्र	॥२९॥
पुनश्च गङ्गां प्रणनाम भक्त्या, प्रसीद मातर्मम गौतमी-	।
जल्पन्मुहुर्विस्मितचित्तवृत्तिबिलोक्यन्प्रणमन्गौतमीं ताम्	॥३०॥
ततः प्रभृत्येतदतीव पुण्यं, किष्किन्धतीर्थं दिव्युधा वदन्ति	।
।पठेत्स्मरेद्वाऽपि शृणोति भक्त्या, पापापहं किं पुनः स्नानदानैः	॥३१॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये किष्किन्धातीर्थवर्णनं नाम सप्तपञ्चा-

[शदधिकशततमोऽध्यायः ॥१५७॥]

गौतमीमाहात्म्येऽष्टाशीतितमोऽध्यायः ॥८८॥

अयाण्टपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः

व्यासतीर्थवर्णनम्

॥ ब्रह्मोवाच ॥

व्यासतीर्थमिति स्यात् प्राचेनसमतः परम् । नात. परतरं किञ्चित्पावनं सर्वसिद्धिदम् ॥१॥
 दश मे मानसा. पुत्रा स्त्रष्टारो जगतामपि । अन्तं जिज्ञासवस्ते वै पृथिव्या जन्मुरोजता ॥२॥

किया । किष्किन्धा के रहने वाले सब श्रेष्ठ वानरो से सेवित होने के कारण उसका नाम किष्किन्धतीर्थ पड़ा । इस तीर्थ में स्नान करने से ही बड़े से बड़े पाप नष्ट हो जाते हैं, इसमें कुछ सन्देह नहीं ॥२९-३१॥ फिर राम ने 'हे माता गौतमी ! प्रसन्न हो' यह कहकर भक्तिपूर्वक प्रणाम किया । इस प्रकार वे सभी आश्चर्यचकित हो बार-बार आपस में बातचीत करते हुये उस गौतमी की ओर देखते हुए और बार बार प्रणाम करते हुए वहाँ से चल पड़े । उस समय से पंडित जन उसको अति पवित्र किष्किन्धतीर्थ कहते हैं । जो भक्तिपूर्वक उस तीर्थ का स्मरण, माहात्म्य-श्रवण या पाठ करते हैं उनके सब पाप नष्ट हो जाते हैं । फिर उसके स्नान और दान की महिमा का वर्णन क्या किया जाय ॥३०-३१॥

श्रीब्रह्मपुराण में किष्किन्धातीर्थ-वर्णन नामक एक सौ सत्तावनवाँ अध्याय समाप्त ॥१५७॥

अध्याय १५८

व्यासतीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा बोले—इसके बाद व्यास-तीर्थ नामक एक विख्यात तीर्थ है, जिसे प्राचेनस तीर्थ भी कहते हैं । इस तीर्थ से बढ़कर पवित्र तथा सब सिद्धियों को देने वाला अन्य कोई तीर्थ नहीं है । ससार की भी सृष्टि करने वाले

पुनः सृष्टाः पुनस्तेऽपि यातास्तान्समवेक्षितुम् । नैव तेऽपि समायाता ये गतास्ते गता गताः ॥३॥
 तदोत्पन्ना महाप्राज्ञा दिव्या अङ्गिरसो (सा) मुने । वेदवेदाङ्गतत्त्वज्ञाः सर्वशास्त्रविशारदाः ॥४॥
 तेऽनुज्ञाता अङ्गिरसा गुहं नत्वा तपोधनाः । तपसे निश्चिताः सर्वे नैव पृष्ट्वा तु मातरम् ॥५॥
 सर्वेभ्यो ह्यधिकं माता गुरुभ्यो गौरवेण हि । तदा नारद कोपेन सा शशाप तवाऽऽत्मजान् ॥६॥

मातोवाच । । { - ।

मामनादृत्य ये पुत्राः प्रवृत्ताश्चरितुं तपः । सर्वेऽपि प्रकारैस्तप तेषां सिद्धिमेष्यति ॥७॥

ब्रह्मोवाच

नानादेशांश्च चिन्वानास्तपः सिद्धिं न यान्ति च । विघ्नमन्वेति तान्सर्वानितश्चेतश्च धावत ॥८॥
 षवापि तद्वाक्षतेविघ्नं षवापि तन्मानुषैरभूत् । प्रमदाभिः क्वचिच्चापि षवापि तद्देहदोषतः ॥९॥
 एव तु भ्रममाणास्ते ययुः सर्वे तपोनिधिम् । अगस्त्यं तपतां धेष्टं कुम्भयोनिं जगद्गुहम् ॥१०॥
 नमस्कृत्या ह्यङ्गिरसा ह्यग्निर्वंशतमुद्भवाः । दक्षिणाशापतिं शान्तं विनीताः प्रष्टुमुद्यताः ॥११॥

अङ्गिरसा ऊचुः

भगवन्केन दोषेण तपोऽस्माकं न सिध्यति । नानाविधैर्युपायैः कुर्वतां च पुनः पुनः ॥१२॥

मेरे दस मानस पुत्र हुये । वे पृथ्वी का अन्त जानने की इच्छा से बड़े साहस के साथ चले गये । फिर मैंने अन्य ही मानस पुत्रों को उत्पन्न किया । वे भी उनके बूँदने के लिये चले गये । वे भी लीट कर नहीं आये । जो गये वे चले ही गये । मुने । तदनन्तर महाबुद्धिमान्, वेद-वेदाङ्गों के तत्त्व को जानने वाले तथा सब शास्त्रों के परिनिष्ठित विद्वान् दिव्य अङ्गिरस उत्पन्न हुए । तपस्वी अङ्गिरसों ने गुरु से आज्ञा लेकर तपस्या के लिये बूढ़निश्चय हुये, परन्तु अपनी माता से इस विषय में राय नहीं ली । यह देख कर माता को क्रोध हो गया, क्योंकि माता गौरव में सब गुरुओं से बढ़कर है । तब उसने क्रुद्ध होकर अपने पुत्रों को शाप दे दिया ॥१-६॥

माता बोली—जो मेरे पुत्र मेरा अनादर कर तपस्या करने के लिये प्रवृत्त हुए हैं, वे सब प्रयत्न करने पर भी तपस्या में सिद्धि नहीं प्राप्त कर सकेंगे ॥७॥

ब्रह्मा बोले—ने उपर्युक्त स्थान बूँदते हुये अनेक देशों में गये, परन्तु तप सिद्धि प्राप्त नहीं हुई । इसर-उधर दौड़ने वाले उन लोगों के पीछे-पीछे विघ्न भी लगते रहते थे । कहीं तो राक्षस विघ्न उत्पन्न करते तो कहीं मनुष्य । कहीं स्त्रियों के कारण विघ्न हो जाता था तो कहीं उनके निजी दोषों के कारण । इस प्रकार चक्कर काटते हुये वे तस्त्रियों में श्रेष्ठ, सप्तर के गुरु एवं जम्बल्यमान अगस्त्य के पास गये । अग्निवशीय वे अङ्गिरस दक्षिण दिशा के स्वामी, परम शान्त अगस्त्य को नमस्कार कर विनीत भाव से पूछने लगे ॥८-११॥

आङ्गिरस बोले—भगवन् । बार-बार नाना प्रकार के उपाय करते हुए भी हम लोगों की तपस्या किस दोष के कारण सिद्ध नहीं हो रही है ? क्या करें ? इस तपस्या का कौन सा प्रकार (नियम) है ? विप्रेन्द्र । ऊपाकर उपाय वा आदये, आदि निश्चय ही तपस्या में सर्वश्रेष्ठ हैं । ब्रह्मन् ! आप ज्ञानियों में श्रेष्ठ माता हैं तथा

किं कुर्मः कः प्रकारोऽत्र तपस्येव भवाम किम् । उपायं ब्रूहि विप्रेन्द्र ज्येष्ठोऽसि तपसा द्रुवम् ॥१३॥
 ज्ञाताऽसि ज्ञानिनो ब्रह्मन्वक्ताऽसि वदता वरः । शान्तोऽसि यमिना नित्यं दयावान्प्रपकृत्तया ॥१४॥
 अत्रोधनश्च न द्वेष्टा तस्माद्ब्रूहि विवक्षितम् । साहंकारा दयाहीना गुरुसेवाविवर्जिता ॥
 असत्यवादिनः क्रूरा न ते तत्त्वं विजानते ॥१५॥

ब्रह्मोवाच

अगस्त्यः प्राह तान्सर्वान्क्षणं ध्यात्वा शनैः शनैः । ॥१६॥

अगस्त्य उवाच

शान्तात्मानो भवन्तो वै स्वष्टारो ब्रह्मणा कृताः । न यर्याप्तं तपश्चाभूत्स्मरध्वं स्मयकारणम् ॥१७॥
 ब्रह्मणा निर्मिता, पूर्वं ये गताः सुखमेधते । ये गताः पुनरन्वेष्टुं ते च त्वाङ्गिरसोऽभवन् ॥१८॥
 ते यूयं च पुनः कान्ते याता याताः शनैः शनैः । प्रजापतेरप्यधिका भवितारो न संशयः ॥१९॥
 इतो यान्तु तपस्तप्तुं गङ्गां त्रैलोक्यपावनीम् । मोषायोऽप्योऽस्ति संसारे विना गङ्गा शिवप्रियाम् ॥२०॥
 तत्राऽऽश्रमे पुण्यदेशे ज्ञानद पूजयिष्यथ । स ऋद्धेदियप्यत्यक्षिलं संशयं वो महामतिः ॥
 न सिद्धिः क्वापि केवाचिद्धिना सद्गुरुणा यतः ॥२१॥

ब्रह्मोवाच

ते समूचुर्मुनिवरं ज्ञानद कोऽभिधीयते । ब्रह्मा विष्णुर्महेशो वा आदित्यो वाऽपि चन्द्रमा ॥२२॥

वक्ताओं में स्पेष्ट वक्ता हैं । आप समयशीलो में सबसे अधिक शान्त और समी हैं । आप सर्वदा दया विधाने वाले और प्रिय करने वाले हैं । आप क्षमाशील और उदार हैं । इसलिये कृपाकर उपयुक्त उपाय बतलाइये । जो अहं-कारी, निर्दय गुरु-सेवा-पराङ्मुख, झूठ बोलने वाले और क्रूर हैं वे तबसे को नहीं जानते हैं ॥१२-१५॥

ब्रह्मा बोले—क्षण भर तक विचार कर अगस्त्य श्रुति ने धीरे धीरे उनसे कहा ॥१६॥

अगस्त्य ने कहा—तुम लोग शान्त चित्त वाले, स्वप्ता (प्रजापति) और ब्रह्मा के पुत्र हो, फिर भी पर्याप्त तपस्या नहीं हुई । इस आश्चर्यजनक असफलता का कारण सोचो । पहले ब्रह्मा ने जिनको उत्पन्न किया और जो मुझ की खोज में गये, वे मुझ का अनुभव कर रहे हैं । जो पुनः उनको खोजने के लिये गये, वे आङ्गिरस हो गये । वे ही तुम लोग पुनः समय पाकर शनैः शनैः आगे बढ़ते हो गये और अब इसमें सन्देह नहीं कि तुमलोग प्रजापति से भी अधिक महत्त्वपूर्ण हो जाओगे । अब त्रिमुक्ता-पावनी गंगा के तट पर तपस्या करने के लिये जाओ । समार में शिव प्रिया गंगा के बिना और कोई कल्याण का उपाय नहीं । वहाँ पवित्रस्थान में आश्रम बनाकर जब ज्ञानदाता (शकर) की पूजा करोगे तो वे महामति सब सन्देशों को अवश्य भिटा देंगे । क्योंकि कहीं पर किसी को अच्छे गुरु के बिना सिद्धि नहीं मिलती है ॥१७-२१॥

ब्रह्मा बोले—उन लोगों ने उन मुनिवर से कहा कि कौन ज्ञान-दाता कहा जाता है—ब्रह्मा, विष्णु, महेश, सूर्य या चन्द्रमा । मुनिपेष्ठ ! अग्नि अथवा वरुण वीर ज्ञानदाता हैं ? यह सुन ज्ञानदाता अगस्त्य ने कहा—ज्ञान

अग्निश्च वरुणः कः स्याज्ज्ञानदो मुनिसत्तम। अगस्त्यः पुनरप्याह ज्ञानदः श्रूयतामयम्॥२३॥
 या आपः सोऽग्निरित्युक्तो योऽग्निः सूर्यः स उच्यते। यश्च सूर्यः स वै विष्णुर्वयश्च विष्णुः स भास्करः॥२४॥
 यश्च ब्रह्मा स वै रुद्रो यो रुद्रः सर्वमेव तत्। यस्य सर्वं तु तज्ज्ञानं ज्ञानदः सोऽत्र कीर्त्यते॥२५॥
 देशिकप्रेरकव्याख्याकृदुपाध्यायदेहदाः। गुरवः सन्ति बहवस्तेषां ज्ञानप्रदो महान्॥२६॥
 तदेव ज्ञानमजोक्तं येन भेदो विहन्यते। एक एवाद्वयः शम्भुरिन्द्रमित्राग्निनामभिः॥
 वदन्ति बहुधा विप्रा भ्रान्तोपकृतिहेतवे

॥२७॥

ब्रह्मोवाच

एतच्छ्रुत्वा मुनेर्वीर्यं गाथा गायन्त एव ते। जम्बु पञ्चोत्तरां गङ्गां पञ्च जम्बुश्च दक्षिणाम्॥२८॥
 अगस्त्येनोदितान्वेदान्मुजयन्तो यथाविधि। आसनेषु विशेषेण ह्यासीनास्तत्त्वचिन्तकाः॥२९॥
 तेषां सर्वे सुरगणाः प्रीतिमन्तोऽभवन्मुने। स्रष्टृत्वं तु युगादौ यत्कल्पितं विश्वयोनिना॥३०॥
 अधर्माणां निवृत्त्यर्थं वेदान्ता स्थापनाय च। लोकाणामुपकारार्थं धर्मकामार्थसिद्धये॥३१॥
 पुराणस्मृतिवेदार्थधर्मशास्त्रार्थनिश्चये। स्रष्टृत्वं जगतामिष्टं तादृशेषु भविष्यत्॥३२॥
 प्रजापतित्वं तेषां वै भविष्यति ज्ञानं क्रमात्। यदा ह्यधर्मो भविता वेदानां च पराभवः॥३३॥
 वेदानां व्यसनं तेभ्यो भाविष्यातास्ततस्तु ते। यदा यदा तु धर्मस्य रत्नानिवंदस्य दृश्यते॥३४॥

देने वाली इन बातों को सुनो। जो जल है वही अग्नि कहा गया है। जो अग्नि है, वही सूर्य, जो सूर्य है, वही विष्णु और जो विष्णु है, वही भास्कर है। जो ब्रह्मा है, वही रुद्र है। और जो रुद्र है, वही सब कुछ है। जिसका सब कुछ है, उसको ज्ञान है और वही ज्ञान का दाता यहाँ कहा जाता है। उपदेशक, प्रेरणा करने वाला, व्याख्याकार, उपाध्याय और पिता आदि बहुत से गुण हैं। उनमें ज्ञानाता गुण महान् है। वही ज्ञान यहाँ कहा गया है जिससे भेद-भुक्ति का नाश होता है। हम एक ही हैं वह अद्वितीय है। बहुधा भ्रान्ति निवारण करने के लिए विप्रगण उन्हीं को अग्नि, इन्द्र, मित्र आदि नामों से अभिहित किया करते हैं॥२२-२७॥

ब्रह्मा बोले—मुनि की इन बातों को सुनकर गाथा गाते हुए उनमें से पाँच तो गंगा के उत्तर तट पर और पाँच गंगा के दक्षिण तट पर गये। अगस्त्य के बतलाये हुए देवों की यथाविधि पूजा करते हुये वे तत्त्वचिन्ता करने-वाले मुनि विशेष रूप से आसनों पर बैठ गये। मुने! उनकी तपस्या से उनके ऊपर सभी देवता प्रसन्न हो गये और कहा 'युग के आदि में विद्वत् स्रष्टा ब्रह्मा ने अधर्म की निवृत्ति के लिये वेदों की स्थापना, लोकोपकार, धर्म, काम और अर्थ की सिद्धि तथा पुराण स्मृति, वेद एवं धर्मशास्त्रों के अर्थ-निश्चय के लिये जिस रूपरेखा की कल्पना की थी, तुम लोग उसी कल्पना के अनुरूप हो जाओगे। क्रमशः ज्ञान ज्ञानं प्रजापति का मद अवश्य प्राप्त कर लोगे। इसकें अतिरिक्त जब-जब अधर्म का आदर और वेदों का अनादर होगा, तब तब तुम लोगों को वेदों के अध्ययन और अध्यापन का स्वभाव सा हो जायगा और मावी व्यास तुम लोग होगे। जब जब धर्म और वेद का ह्रास दिखाई देगा, तब तब तुम लोग व्यास बनकर जगत् का उपकार करोगे।' मुने! उन लोगों को जो गंगा के तट पर उत्तम तपस्या की

तदा तदा तु ते व्यासा भविष्यन्त्युपकारिणः। तेषां यत्तपसः स्थानं गङ्गायास्तीरमुत्तमम् ॥३५॥
तत्र तत्र शिवो विष्णुरहमादित्य एव च। अग्निरापः सर्वमिति तत्र संनिहितं सदा ॥३६॥
नेतेभ्यः पावनं किञ्चिन्नेतेभ्यस्त्वधिकं ब्रूचित्। तत्तदाकारतां प्राप्तं परं ब्रह्मैव केवलम् ॥३७॥
सर्वात्मकः शिवो व्यापी सर्वभावस्वरूपधृक्। विशेषतस्तत्र तीर्थं सर्वप्राणधनुकम्पया ॥३८॥
सर्वैर्वैरनुवृत्तस्तदनुग्रहकारकः। धर्मव्यासास्तु ते ज्ञेया वेदव्यासास्तथैव च ॥३९॥
तेषां तीर्थं तेन नाम्ना व्यपदिष्टं जगत्त्रये। पापपङ्कजालनाम्भो मोहध्वान्तमदापहम् ॥
सर्वसिद्धिप्रदं पुंसां व्यासतीर्थमनुत्तमम् ॥४०॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये व्यासतीर्थवर्णनं नामाष्टपञ्चाश-

अध्यायः ॥१५८॥

गौतमीमाहात्म्ये एकोनवसितमोऽध्यायः ॥८९॥

अथैकोनषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः

वजरासगमतीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

वजरासगमं नाम तीर्थं त्रैलोक्यविधृतम्। ऋषिभिः सेवितं नित्यं सिद्धै राजर्षिभिरुत्तमा ॥१॥

स्थान है, वहाँ शिव, विष्णु और मैं आदित्य, अग्नि, जल आदि सब देवता सर्वदा रहा करते हैं। उन स्थानों से ब्रह्मकर बौर्डा द्वारा पवित्र और श्रेष्ठ स्थान मही है। वे ती ब्रह्माकार की प्राप्ति के कारण ब्रह्म रूप हैं। सर्वमित्र, व्यापक, सब की भावनाओं के अनुसार स्वरूप धारण करने वाले शिव विदोष रूप से उस तीर्थ में सब प्राणियों के ऊपर दया और अनुग्रह कर सर्वदा ही निवास करते हैं। वे ब्राह्मणरस धर्म-व्यास माने जाते हैं। उसी प्रकार वे ही वेदव्यास भी बड़े जाते हैं। पापरूपी पङ्कज को धोने वाले जल स युक्त तथा मोहरूपी अन्यकार के नशे को दूर करने वाला वह पवित्र तीर्थ ऊँही लोगों के नाम से तीना लोक में प्रसिद्ध हो गया। वह मनुष्यों को सब सिद्धियाँ देने वाला व्यास-तीर्थ अत्युत्तम तीर्थ है ॥२८-४०॥

श्रीब्रह्ममहापुराण म व्यासतीर्थ-वर्णनं नामक एव खौ अठ्ठावनवाँ अध्याय समाप्त ॥१५८॥

अध्याय १५८

वजरासगम नामक तीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा बोले—वजरा सगम नामक तीर्थ तीना लोक में प्रसिद्ध है। वहाँ सर्वदा ऋषि, गिद्ध, और राजर्षि-गण निवास करते हैं। पहले पक्षी गरुड नागा के दास हो गये थे, क्योंकि उनकी माता उस समय नागा की

दासत्वमगमत्पूर्वं नागानां गरुड खग । भ्रातृदास्यात्तदा दुःखपरिसत्तप्तमानस ॥२॥
कदाचिन्विचिन्तयामास रह स्थित्वा विनिदयन्

गरुड उवाच

त एव धन्या लोकेऽस्मिन्कृतपुण्यास्त एव हि । नान्यसेवा कृता येस्तु न येषा व्यसनागम ॥३॥
सुखं तिष्ठन्ति गायन्ति स्वपन्ति च हसन्ति च । स्वदेहप्रभवो धन्या धिग्धिगन्यवशे स्थितान् ॥४॥

ब्रह्मोवाच

इति चिन्तासमाविष्टो जननीमेत्य दुःखित । पर्यपृच्छदमेयात्मा वनतेयोऽथ मातरम् ॥५॥

गरुड उवाच

कस्यापराधात्मातस्त्वं पितुर्वा भयं धाज्यत । दासत्वमाप्ता वद तत्कारणं मम पृच्छत ॥६॥

ब्रह्मोवाच

साऽब्रवीत्पुत्रमात्मोपमरुणस्यानुज प्रियम् । ॥७॥

विनतोवाच

मैव कस्यापराधोऽस्ति स्वापराधो मयोदित । यस्या वाक्यं विपर्येति सा दासी स्यान्मयोदितम् ॥८॥
कद्रुश्चापि तर्षयाह सा भया सयुता ययो । कद्रवा ममाभवद्वादशछद्मनाह तया जित्वा ॥९॥

माता की गयी थी। यह देखकर उनका मन दुःख से सतप्त रहता था। किसी समय एकांत में बैठकर लम्बी सांस छोड़ते हुए वे विचार करने लगे ॥१२॥

गरुड बोले—इस लोक में वे ही धन्य हैं और वे ही धर्मात्मा हैं जिन्होंने दूसरे की दासता नहीं की और जो आपत्तियों के बन्दी मत नहीं हुए। वे अपने तन के खाद्य भक्ष्य हैं क्योंकि वे सुखपूर्वक रहते हैं गाते हैं सोते हैं और हसते हैं। जो दूसरों के धन में हैं उनको भिक्कार है, भिक्कार है ॥३४॥

ब्रह्मा बोले—इस प्रकार चिंतित एवं दुःखी होकर मैं माता के पास गये और अपरिमित शक्ति सम्पन्न विनता-पुत्र ने माता से पूछा ॥५॥

गरुड ने कहा—माता! तुम किसके अपराध से—पिता के या मेरे या अन्य के कारण दासी बनाई गई? मैं इसकी पूछ रहा हूँ बताओ ॥६॥

ब्रह्मा बोले—उसने अपने प्रियपुत्र अवण के छोटे माई गरुड से कहा ॥७॥

विनता बोली—किसी का अपराध नहीं मेरा ही अपराध है। मैंने एक बार कद्रू से कहा कि जिसका नहना झूठा हो जायगा वह दासी होगी। कद्रू ने भी ऐसा ही कहा। इस प्रकार मैं और वह दोनों साध-न्याय गद। कद्रू के साथ मेरा विवाद हुआ। कद्रू ने घोसे से मुझ हरा दिया। विधि बलवान है। तात! वह किन

विधिर्ह वलवांस्तात कां कां चेष्टां न चेष्टते। एवं दासीत्वमगमं कद्रवाः कश्यपनन्दन॥

यदा दासी तु जाताऽहं दासोऽभूस्त्वं द्विजन्मज

॥१०॥

ब्रह्मोवाच

तूष्णीं तदा बभूवासी गरुडोऽतीव दुःखितः। न किञ्चिद्बुधे जननीं चिन्तयन्भवितव्यताम्॥११॥

कद्रूः कदाचित्ता प्राह पुत्राणां हितमिच्छती। आत्मनो भुतिमिच्छन्ती विनतां खगमातरम्॥१२॥

कद्रूवाच

पुत्रः सूर्यं नमस्कृतुं तव यात्यनिवारितः। अहो लोकत्रयेऽप्यस्मिन्धन्याऽसि भत दास्यपि॥१३॥

ब्रह्मोवाच

स्वयं खं गूहमाना सा कद्रूं प्राह सुविस्मिता

॥१४॥

विनतोवाच

तव पुत्रास्तु किमिति रविं द्रष्टुं न यान्ति च

॥१५॥

कद्रूवाच

पुत्रागमदीयान्सुभगे नय नागालयं प्रति। समुद्रस्य समीपे तु तदाऽस्ते शीतलं सरः॥१६॥

ब्रह्मोवाच

सुपर्णस्तयवहन्नागान्कद्रूं च विनता तथा। ततः प्रोवाच मुदिता वनतेपस्य मातरम्॥१७॥

विन चेष्टात्रा (व्यापारा) की नहीं करता है? कश्यपनन्दन! इस प्रकार मैं दासी हो गई। जब मैं दासी हो गई हूँ, तो हे पक्षि-पुत्र! तुम भी दास हो॥९-१०॥

ब्रह्मा बोले—वे गरुड तब अति दुःखित होकर मोन हो गए, अपनी भवितव्यता की चिन्ता करते हुए अपनी जननी से कुछ नहीं बोले। किसी समय पुन-हित और अपने एश्वर्य की इच्छा से उस कद्रू ने पक्षि-माता विनता से कहा॥११-१२॥

कद्रू बोली—तुम्हारा पुत्र विनता बाधा के सूर्य का नमस्कार करने जाता है। अहो! तुम दासी होती हुई भी इस त्रिलोरी में भाग्यशालिनी हो॥१३॥

ब्रह्मा बोले—अपने दुःखों की हृदय में छिपायी हुई विनता ने विस्मित होकर कद्रू से कहा॥१४॥

विनता ने कहा—तो तुम्हारे पुत्र क्या नहीं सूर्य को देखने जाते?॥१५॥

कद्रू बोली—सुभगे! मेरे पुत्रों को नागालय ले चलो। वहाँ समुद्र के समीप शीतल जल से पूर्ण एक सरोवर है॥१६॥

ब्रह्मा बोले—गरुड उन नागा, कद्रू और विनता का डोकर ल गये। तब कद्रू प्रसन्न होकर गरुड की

सुराणा नेतु निलयं गरुडो मत्सुतानिति । पुनः प्राह सर्पमाता गरुडं विनयान्वितम् ॥१८॥

सर्पमातोवाच

पुत्रा मे द्रष्टुमिच्छन्ति हंसं त्रिजगतां गुरुम् । नमस्कृत्वा ततः सूर्यमेष्यन्ति निलयं मम ॥

हण्डे त्वं नय पुत्रान्मे सूर्यमण्डलमन्वहम्

॥१९॥

ब्रह्मोवाच

सा वेपमाना विनता दीना कद्रुमभायत

॥२०॥

विनतोवाच

नाहं क्षमा सर्पमात. पुत्रो मे नेष्यते सुतान् । दृष्ट्वा दिनकरं देवं पुनरेव प्रयान्तु ते ॥२१॥

ब्रह्मोवाच

विनता स्वसुत प्राह विहगानामधोदवरम् । नमस्कर्तुमयेच्छन्ति नागाः स्वामित्वमागताः ॥२२॥

भास्वन्तमित्युवाचेपं मा सर्पजननो हठात् । तथेत्युक्त्वा स गरुडो मामारोहन्तु पन्नगा ॥२३॥

तदाऽऽरुढ सर्पसंग्य गरुड विहगाधिपम् । शनं शनैरुपगमयन्न देवो दिवाकरः ॥

ते बह्व्यमानास्तीक्ष्णेन भानुतापेन विष्ययुः

॥२४॥

सर्पा ऊचुः

निवर्तस्व महाप्राज्ञ पतङ्गाय नमो नमः । अलं सूर्यस्य सदनं दग्धा. सूर्यस्य तेजसा ॥

यामस्तवया वा गरुड विहाय स्वामयापि वा

॥२५॥

माता से बोली—‘गरुड मेरे पुत्रों को देवलोक में ले चले।’ पुन सर्पों की माता ने विनयशील गरुड से कहा ॥१७-१८॥

सर्पमाता ने कहा—‘मेरे पुत्र त्रिलोकी के गुरु सूर्य को देखना चाहते हैं। इसके बाद सूर्य को नमस्कार करके पुन मेरे घर चले आयेंगे। दासी! तुम मेरे पुत्रों को प्रतिदिन वहाँ ले आया करो ॥१९॥

ब्रह्मा बोले—‘कौपती हुई दीन विचारी विनता ने कद्रु से कहा—॥२०॥

विनता ने कहा—‘सर्पमाता! मैं वहाँ ले जाने में असमर्थ हूँ। मेरा पुत्र वहाँ ले जायगा। वे देव सूर्य को देखकर पुन चले आयें ॥२१॥

ब्रह्मा बोले—विनता ने अपने पुत्र पक्षिराज गरुड से कहा—‘दस सर्पमाता ने बलपूर्वक मुझसे कहा है कि ये तुम्हारे स्वामी नाग सूर्य को नमस्कार करना चाहते हैं। गरुड ने कहा कि अच्छी बात है। नाग मेरी पीठ पर चढ़े। विहगपति गरुड की पीठ पर आरुढ होकर वे सर्प शनं शनं उस ओर चले जहाँ भगवान् दिनकर रहते हैं। वे सूर्य की तीक्ष्ण गर्मी से जलने लगे और अति व्यथित हो गये ॥२२-२४॥

सर्पों ने कहा—‘महाबुद्धिमान्! लौटो, लौटो, भगवान सूर्य को बार बार नमस्कार है। अब सूर्यलोक को जाना नहीं चाहते। हम लोग सूर्य के तेज से जल गये। गरुड! हम लोग तुम्हारे साथ जायेंगे अथवा तुम्हारे बिना भी चले जायेंगे ॥२५॥

ब्रह्मोवाच

एवं नागेह्यमान आदित्यं दर्शयामि वः। इत्युक्त्वा गगनं शीघ्रं जगामाऽऽदित्यसंसमुखः॥२६॥
 'दग्धभोगा निपेतुस्ते द्वीपं तं धीरणं प्रति। बहवः शतसाहस्राः पीडिता दग्धविप्रहाः॥२७॥
 पुत्राणामार्तसंनदां पतितानां महीतले(?)। आदवासितुं समामाता तान्सा कद्रूः सुबिह्वला॥२८॥
 उवाच विनतां कद्रूस्तव पुत्रोऽस्तिदुष्कृतम्। कृतवानतिदुर्मोघा येषां शान्तिर्न विद्यते॥२९॥
 नाग्यया कर्तुमायाति स्वामिशक्यं फणोश्वरः। स काश्यपो बृहतेजा यद्यत्र स्यादनामयम्॥३०॥
 भवेच्चैवं कथं शान्तिः पुत्राणां मम भामिनि। कद्र्वास्तद्वचनं श्रुत्वा विनता ह्यतिभीतवत्॥३१॥
 पुनमाह महात्मानं गण्डं बिहगाधिपम्॥३२॥

विनतोवाच

नेदं युक्ततरं पुत्र भूषणं विनयेन हि। 'वर्तितुं युक्तमित्युक्तं वैपरीत्यं न मुच्यते॥३३॥
 नामितेष्वपि कर्तव्यं सद्भिर्जिह्वं कदाचन। श्रोत्रिये धान्यत्रये वापि समं चन्द्रः प्रकाशते॥३४॥
 बुध्न्यनिष्टं कपटंस्त एव मम पुत्रक। प्रसह्य कर्तुं ये सासादशक्ताः पुरुषाधमाः॥३५॥

ब्रह्मोवाच

विनता च ततः प्राह कद्रुं तां सपमातरम्

॥३६॥

ब्रह्मा बोले—इस प्रकार नागों के कहन पर 'मैं तुम लोगों को अवश्य मूर्खदर्शन कराऊँगा' यह कह कर गरुड बड़ी शीघ्रता से मूर्ख की ओर चला। असह्य गर्मी से उनमें से कितनों की पंजायें जल गईं। धीरण द्वीप में, शूलसकर सैकड़ों और हजारों की संख्या में पीडित होकर वे गिर पड़े। पृथ्वील पर गिरे हुए पुत्रों के आर्तनाद को सुनकर वह कद्रु अतिबिह्वल शक्कर उनको आदवासन देने के लिये वहाँ आई। कद्रु ने विनता से कहा कि मुन्हारे अति-दुष्टबुद्धि पुत्र ने महान् दुष्कर्म किया है जिसकी शान्ति के उपाय नहीं हैं। फणोश्वर (गणनाय) मेरे स्वामी के आदेश को अग्न्या नहीं कर सकता है। वह अति तेजस्वी कश्यपपुत्र यदि यहाँ होना सो अवश्य रोग शान्ति हो जाती। भामिनि ! अब मेरे पुत्र का शान्ति प्रकार मिलेगी ? कद्रु की उन बातों को सुनकर विनता डरी हुई-सी अपने पश्चिराज गण्ड में जाती ॥२६-३२॥

विनता ने कहा—पुत्र ! यह तुमने अच्छा नहीं किया। विनम्र व्यवहार ही जीवन का आभूषण है, ऐसा कहा गया है। इन्से विपरीत आचरण करना ठीक नहीं है। सन्नता को कभी भी अपने समुदाय के प्रति भी कपट-व्यवहार नहीं करना चाहिए। देखो वेदवादी और बाण्डाल पर चन्द्रमा की चिरणें समान रूप से प्रकाश-दान करती हैं। मेरे अज्ञानी पुत्र ! वेही कपट में अनिष्ट व्यवहार करते हैं, जो पुण्याधम साक्षात् ब्रह्मयोग करने में अग्रगण्य रहते हैं ॥३३-३५॥

ब्रह्मा बोले—नर विनता ने सपमाता कद्रु से कहा ॥३६॥

विनतोवाच

किं कृत्वा शान्तिरभ्येति पुत्राणां ते करोमि तत् । जरमा तु गृहीतास्ते वद शान्तिं करोमि तत् ॥३७॥

ब्रह्मोवाच

कहूरप्याह विनतां रसातलगतं पयः । तेनाभिपेक्षितानां मे पुत्राणां शान्तिरेष्यति ॥३८॥

कद्वाह्नद्वचनं श्रुत्वा रसातलगतं पयः । क्षणेनैव समानीय नागास्तानम्यपेचयत् ॥

ततः प्रोवाच गरुडो मघवानं शतक्रतुम् ॥३९॥

गरुड उवाच

मेघाश्चाप्यन वपन्तु त्रैलोक्यस्योपकारिणः ॥४०॥

ब्रह्मोवाच

‘तया घवयं पजंन्यो नागानामभवच्छिवम् । रसातलभवं गाङ्गं नागसंजीवनं पय ॥४१॥

जराशोकविनाशार्थं मानोतं गरुडेन यत् । यत्राभिपेक्षिता नागास्त्रागालयमुच्यते ॥४२॥

गरुडेन यतो वारि आनीतं तद्रसातलात् । तद्गाङ्गं वारि सर्वेषां सर्वपापप्रणाशनम् ॥४३॥

जरामा वारण यस्मान्नागानामभवच्छिवम् । रसातलभवं गाङ्गं नागसंजीवनं यतः ॥४४॥

जराशोकविनाशार्थं गङ्गाया दक्षिणे तटे । साक्षादमृतसंवाहा यंजरा साऽभवन्नदी ॥४५॥

जरादारिद्र्यभस्तापहारिणी बलेशवारिणी । रसातलभया गङ्गा मर्त्यलोकभवा तु या ॥४६॥

विनता ने कहा—क्या करने से तुम्हारे पुत्रों को शान्ति मिलेगी ? बहुतों में वैसा ही करनेवाँ । व इस समय व्याधि-पीडित है । वहा, मैं अवश्य शान्ति करूँगी ॥३७॥

ब्रह्मा बोले—‘यदू ने विनता से कहा—‘रसातल में जल है । उससे अभिपेक्ष (स्नान) करने पर अवश्य मेरे पुत्रों को शान्ति मिलेगी ।’ यदू की इन बातों को सुनकर गरुड ने दायाँ-बाएँ रसातल में जा कर उगरी उन नागा का नष्टा दिया । इसके बाद गरुड ने शतक्रतु इन्द्र से कहा ॥३८-३९॥

गरुड ने कहा—‘त्रिजगती का उपकार करने वाले मेघ भी यहाँ अवश्य वर्षा करें ॥४०॥

ब्रह्मा बोले—मेघा ने तदगुरु ही वर्षा की जिससे नागों का बन्धन हुआ । जहाँ गरुड नागों को जीवित कर देने वाले रसातल में उतरा उन गंगा-जल को जरा-शोक दूर करने के लिये ले आये थे और जहाँ उस जल से नाग नष्ट हो गये उसीसे नागा-पय बहता जाता है । यत गरुड रसातल से जल ले आया, अतः वह गंगा-जल मरणा पापों को नष्ट करने वाला हुआ । त्रिग जल से जरा की निवृत्ति हुई नागा का बन्धन हुआ वह रसातल में उतरा गंगा-जल नागा का शिव मन्त्रोपनीत जल हुआ । इसलिये जरा-शोक को विनष्ट करने के लिये मेघा के दक्षिण तट पर साक्षात् अमृत स्नान करने वाला यजरा नाम की नदी हो गई । जरा दारिद्र्य, मरण और बन्धन को दूर करने वाली रसात-

तपोश्च सगमो यः स्पर्शिकं पुनस्तत्र वर्ण्यते । यस्यानुस्मरणादेव नाशः यान्त्यघसत्त्रया ॥४७॥
तत्र च स्नानदानानां फलं कौं धवतुमीश्वर । संपाद तत्र तीर्थानां लभ्यमाहुर्मनीषिणः ॥४८॥
सर्वसंपत्तिदातया सर्वपापौघहारिणाम् । वजरासगमसमं तीर्थं क्वापि न विद्यते ॥
यदनुस्मरणेनापि विपद्यन्ते विपत्तयः ॥४९॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये वजरासगमादिसंपादलक्षतीर्थवर्णनं
नामैकोनषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१५९॥
गौतमीमाहात्म्ये नवतितमोऽध्यायः ॥९०॥

अथ षष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः.

देवागमतीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

देवागमं नाम तीर्थं सर्वकामप्रदं शिवम् । भुवि तमुचितप्रदं नृणां पितृणां पुत्तिप्रदम् ॥१॥
तत्र वृत्तं समाख्यात्ये तत्र यत्नेन नारद । देवानामसुराणां च स्पर्शाभूदनहेतवै ॥२॥
स्वर्गं सुराणामभवत्सुराणामिलाभवत् । कर्मभूमिमण्डलस्य असुराः सर्वतीक्ष्णवन् ॥३॥

कान्तरागमा का मय लोक की गंगा के साथ जो सपन हुआ है उसके माहात्म्य का क्या वर्णन किया जाय ? जिससे स्मरण में ही अथावगमन हो जाते हैं उसमें स्नान और स्नान में जो फल मिलते हैं उसको कहने की शक्ति किम है ? वहाँ पर मनीषीगण और भवाला लाल तीर्थों को बतलाते हैं । जो मंद प्रचार की सम्पत्ति देने वाले तथा गव पाप समूहों को नष्ट करने वाले हैं । वजरा-सगम का समाप्त तीर्थ वही पर नहीं है जिसका स्मरण स भी विपत्तियाँ स्वयं नष्ट हो जाती हैं ॥४१-४९॥

आब्रह्ममहापुराण में वजरा-सगम आदि सवा लक्ष तीर्थों का वर्णन
नामक एका सो उनसठवाँ अध्याय समाप्त । १५९॥

अध्याय १६०

देवागम नामव तीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा बोले—देवागम नामक तीर्थ मंत्रप्रचार के मनारथा को देने वाला और मंगलजनक है मनुष्यों को भूमि और भूमि देने वाला तथा पितरों को पुत्ति देने वाला है । नारद ! मैं वहाँ की घटना को तुममें पत्नपूर्वक कह रहा हूँ । एक बार घन के निच देव और असुरों में प्रतिस्पर्धा हुई । देवताओं को स्वर्ग मिला और असुरों को पृथ्वी ।

देवानां यज्ञभागंश्च दातुं गन्तव्यसुरास्ततः। ततः सुरगणाः सर्वे यज्ञभागैर्विना कृताः॥४॥
 व्यथिता मामुपाजम्भुः किं कृत्यमिति चाब्रुवन्। मया धोक्ताः सुरगणा युद्धे जित्वाऽसुरान्बलात्॥५॥
 भुवं प्राप्स्यथ कर्माणि हवींषि च यशांसि च। तथेत्युक्त्वा गता देवा भूमिं ते समरार्थिनः॥६॥
 दैत्याश्च दानवाश्चैव राक्षसा बलदर्पिताः। एकीभूत्वा ययुस्तेऽपि जयितो युद्धकाङ्क्षिणः॥७॥
 अहिर्बुध्नो बलिस्त्वाष्ट्रिनं मुचिः शम्बरो मयः। एते चान्ये च बहवो योद्धारो बलदर्पिताः॥८॥
 अग्निरिन्द्रोऽथ वरुणस्त्वष्टा पूषा तथाऽश्विनौ। मत्तो लोकपालाश्च नाना युद्धविशारदाः॥९॥
 ते दानवा सर्वे एव याम्यो वै दिशि संगरे। अकुर्वन्त महायत्नं दक्षिणार्णवसंस्थिताः॥१०॥
 त्रिकूटः पर्वतश्चेष्टो राक्षसानां पुराऽभवत्। तद्वनेन ययुः सर्वे तैः सार्धं दक्षिणार्णवम्॥११॥
 सर्वेषां मेलनं यत्र पर्वतो मलयस्तु तः। 'मलयस्यापि देशोऽसौ देवारीणामभूत्तदा॥१२॥
 देवानां गौतमीतीरे तत्र संनिहितः शिवः। इति तेषां समायोगो देवानामभवत्किल॥१३॥
 देवाः स्वरयमाह्वास्तत्र तत्र समागमन्। गौतम्याः सरिदम्बायाः पुलिने विमलाशयाः॥१४॥
 प्रसन्नाऽभौष्टदा या स्यात् पित्राणामखिलस्य तु। ततो देवगणाः सर्वे स्तुत्वा देवं महेश्वरम्॥
 अभयं विन्तयामासुस्ते सर्वेऽथ परस्परम्॥१५॥

असुरगण कर्मभूमि (पृथ्वी) को रोजकर अर्थात् उस पर अपना अधिकार जमा कर सब जगह फैल गये। तब वे राक्षस देवों के यज्ञ-भाग को बन्द करने और दाताओं को मारने लगे। इस प्रकार उन्होंने देवताओं को यज्ञाग से रहित कर दिया। निदान वे देव व्यथित होकर मेरे पास आये और बोले "अब क्या करना चाहिये?" मैंने उन देवताओं से कहा कि युद्ध में बलपूर्वक शत्रुओं को जीतकर पृथ्वी पर अधिकार करो। तब शुभ कर्म, हवि और कीर्ति प्राप्त करोगे। 'ऐसा ही होगा यह कहकर वे युद्धार्थी पृथ्वी पर गये। इधर जयाम्बिकाधी दैत्य, दानव तथा बल का घमड़ रखने वाले राक्षस सगठित होकर युद्ध करने के लिये आये ॥१-७॥ अहि वृष, सर्प, स्वाष्टि, नमुचि, शम्बर और मय आदि तथा और भी दूसरे बहुत से पराक्रम पर अभिमान करने वाले लड़ाकू राक्षस इकट्ठे हुये। उपर अग्नि इन्द्र, वरुण त्वष्टा पूषा अश्विनौशुमार मत्तु, लोकपाल आदि नाना प्रकार के युद्ध में कुशल देवता युद्धार्थ प्रस्तुत हुये। उन सभी दानवों ने दक्षिण दिशा में दक्षिण-समुद्र के किनारे स्थित होकर (ब्यूह-रचना कर) युद्ध में महान् प्रयत्न किया। पहले राक्षसों ने पर्वतश्चेष्ट त्रिकूट पर अधिकार जमा लिया। तब वे देवतागण वन के रास्ते उन राक्षसों से लड़ने के लिये दक्षिण समुद्र के किनारे पहुँचे। जहाँ सबका सपर्य हुआ, वह मलय पर्वत हुआ। सदनन्तर वह मलय प्रदेश भी राक्षसों का हो गया। वहाँ गौतमी-नद पर देवों के त्रिपदेव शिव पर संधी हुई थी, यह सुश्रवण जानकर वहाँ सब देवता एकत्र हुए। शिव महदय वाले देवता अपने रथों पर आरुढ़ होकर उन माता गौतमी के तट पर आये जो प्रसन्न होने पर गरजों अमोघ प्रदान करती है और सब पित्रों को मृत करने वाली है। तब सब देवता महेश्वर देव की स्तुति करने लगे और आपस में निर्भय होने की बात सोचने लगे ॥८-१५॥

देवा ऊचुः

अनाप्युवायः कोऽस्माकं निर्जितानां परंहृदात् । एकमेवात्र नः श्रेयो विजयो वाज्यवा मृतः ॥

सपत्नरभिभूतानां जीवितं धिडमनस्विनाम् ॥१६॥

ब्रह्मोवाच

एतस्मिन्नन्तरे पुत्रं वागुवाचाशरीरिणी ॥१७॥

आकाशवागुवाच

श्लेष्मेनालं सुरगणां गीतमीमांशुं गच्छतः । भक्त्या हरिहरौ तत्र समाराध्यतेऽश्वरौ ॥१८॥

गोदावर्यास्तपोश्चैव प्रसादात्किंतु दुष्करम् ॥१९॥

ब्रह्मोवाच

प्रसन्नाभ्यां हरीशम्भ्यां देवा जयमभीप्सितम् । अवाप्य सर्वतो जग्मुः पालयन्तो दिवौकसः ॥२०॥

यत्र देवागमो जातस्तत्तीर्थं तेन विश्रुतम् । देवागमं प्रशसन्ति मुनयस्तत्त्वदर्शिनः ॥२१॥

तत्राज्ञीतिसहस्राणि शिखलिङ्गानि नारदः । देवागमः पर्वतोऽसौ प्रियः इत्यपि कथ्यते ॥

तत्र प्रभृति तत्तीर्थं देवप्रियमतो विदुः ॥२२॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये देवागमतीर्थवर्णनं नाम षष्ठ्यधिक-

शततमोऽध्यायः ॥१६०॥

गीतमीमांसात्म्य एकनवतितमोऽध्यायः ॥१९॥

देवगण बोले—शत्रुओं से हठात् पराजित किये गये हम लोगों के लिये अब कौन-सा उपाय है ? अब श्रेय का एक ही मार्ग है—विजय या मृत्यु । शत्रुओं से पराजित मनस्वीजनों के जीवन को भिक्कार है ॥१६॥

ब्रह्मा बोले—पुनः इसी श्रेय आकाशवाणी हुई ॥१७॥

आकाशवाणी ने कहा—सुरगण ! ध्येयं वक्ष्ये मत करो । गीतमी के पास शीघ्र जाओ । वहाँ भक्तिपूर्वक भगवान् हरि और हर की आराधना करो । गादावरी और उन दोनों प्रभुओं की कृपा से कौन-सा कार्य दुष्कर है ? ॥१८-१९॥

ब्रह्मा बोले—प्रसन्न विष्णु और शंकर स अपना असीमित विजय-वरदान पाकर आकाशवाणी का मली-मौलि अनुसरण करते हुए वे दम्पती चले गये । जहाँ देवी का आगमन हुआ वह तीर्थ उसी देवागम नाम से प्रसिद्ध हो गया । तत्त्वदर्शी मुनि देवागमतीर्थ की प्रशंसा करते हैं । नारद ! वहाँ अस्सी सहस्र दिवलिङ्ग हैं । वह देवागम पर्वत प्रिय इस नाम से भी कहा जाता है । इसलिये तब से वह तीर्थ देव प्रिय प्रख्यात हुआ ॥२०-२२॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में देवागम-तीर्थ वर्णन नामक एक सौ साठवाँ अध्याय समाप्त ॥१६०॥

ब्रह्मोवाच

पुनस्तामब्रव देवीं कर्मभू भव विधीयते। तदा नारद नैवाऽऽसीद्भूगोर्ध्वमथ नर्मदा ॥२१॥
यमुना नैव तापो सा सरस्वत्यथ गौतमी। समुद्रो वा नद कश्चिन्न सरः सरितोऽमला ॥
सा शक्ति पुनरप्येव मामुवाच पुन पुन ॥२२॥

देवी वागुवाच

सुमेरोर्दक्षिणे पाश्वे तथा हिमवतो गिरेः। दक्षिणे चापि विन्ध्यस्य सह्याच्चैव वाय दक्षिणे ॥
सर्वस्य सर्वकाले तु कर्मभूमि शुभोदया ॥२३॥

ब्रह्मोवाच

तत्तु वाक्यमथो श्रुत्वा त्यक्त्वा मेरु महागिरिम्। त प्रदेशमयाऽऽगत्य स्थातव्यं क्वेत्यचित्तयम् ॥
ततो मामब्रवीत्संव विष्णोर्बाण्यशरोरिणो ॥२४॥

आकाशवागुवाच

इतो गच्छ इति स्तिष्ठ तपोपविश चात्र हि। सकल्पं कुरु यज्ञस्य स ते यज्ञं समाप्यते ॥२५॥
कृते चैवाय सकल्पे यज्ञार्थं सुरसत्तम। यद्भदन्त्यखिला येदा विधेः तत्तत्समाचर ॥२६॥

ब्रह्मोवाच

इतिहासपुराणानि यदप्यच्छब्दगोचरम्। स्वतो मुखे मम प्रायादभूच्च स्मृतिगोचरम् ॥२७॥

ब्रह्मा बोले—फिर मैंने उस देवी से कहा—कर्मभूमि कहाँ है? नारद। उस समय मागीरपी नर्मदा यमुना तापी वट सरस्वती और गौतमी नदी थी। कोई समुद्र, नद, सरोवर या निमल जल बागी नदियाँ भी नहीं थी। उस शक्ति ने पुन मुझसे इस प्रकार बार-बार कहा ॥२१-२२॥

देवी वाणी ने कहा—सुमेरु गिरि के दक्षिण और हिमालय विन्ध्य तथा सह्या के दक्षिण की भूमि सर्वत्रेन्द्रिय सबन्ध गुण देन वाली कर्मभूमि है ॥२३॥

ब्रह्मा बोले—उम आदेश वाक्य का सुनकर उम महागिरि मेरु की छोड़कर मैं उन प्रदेश में आया और सोचने लगा कि वहाँ रहना चाहिये। इनके बाद उस विष्णु की देवी वाणी ने मुझसे कहा ॥२४॥

आकाशवाणी ने कहा—दूधर चलो यहाँ ठहरो। यहाँ बैठो। यज्ञ का समापन करो। वट तुम्हारा यज्ञ अवश्य समाप्त होगा। सुरधेष्ठ! यन्त्राय सबल्य कर देन पर ब्रह्मन्! अखिल वेद जैसा कहते हैं उसका अनुगार वाच करो ॥२५-२६॥

ब्रह्मा बोले—इतिहास, पुराण आदि जो अथ धर्म्य छन्द स्वतः मेरे मुख में आय, वे धीरे धीरे स्मृति में आन लगे। तत्काल मुझ गय वनच शाल हुआ गये। तदनन्तर उस लोक विख्यात पुण्यगूढ का स्मरण किया। तदनुसूय

वेदार्थश्च मया सर्वो ज्ञातोऽसी तत्त्वज्ञेन च । ततः पुरयसूक्तं तदस्मर लोकविश्रुतम् ॥२८॥
यज्ञोपकरणं सर्वं तदुक्तं च त्वकल्पयम् । तदुक्तेन प्रकारेण यज्ञपात्राण्यकल्पयम् ॥२९॥
अहं स्थित्वा यत्र देशे शुचिर्भूत्वा यतः त्वमवान् । दीक्षितो विप्रदेशोऽसी मन्नाम्ना तु प्रकीर्तित ॥३०॥
महैवयजनं पुण्यं नाम्ना ब्रह्मगिरि स्मृतं । चतुरश्रोतिपर्यन्तं योजनानि महामुने ॥३१॥
महैवयजनं पुण्यं पूर्वतो ब्रह्मणो गिरेः । तत्र मध्ये वेदिका स्याद्गार्हपत्योऽप्युज्यते (?) दक्षिणे ॥३२॥
तत्र चाऽऽहवनीयस्य एवमग्नौस्त्वकल्पयम् (?) । विना पत्न्या न सिध्येत यज्ञं श्रुतिनिदर्शनात् ॥३३॥
शरीरमात्मनोऽहं वै द्वेधा चाकरव मुने । पूर्वार्धेन ततः पत्नी ममाम्बुध्नसिद्धये ॥३४॥
उत्तरेण त्वहं तद्वर्धो जाया इति श्रुते । कालं वसन्तमुत्कृष्टमाग्न्यहणेन नारद ॥३५॥
अकल्पय तया चेष्म ग्रीष्म चापि शरद्वि । श्रुतं च प्रावृष पुत्रं तदा बर्हिर्वल्पयम् ॥३६॥
छन्दासि सप्त वै तत्र तदा परिग्रहोऽभवत् । कलाकाष्ठानिमेधा हि समित्पानकुशा स्मृता ॥३७॥
मोऽनादिश्च त्वनन्तरश्च स्वयं कालोऽभवत्तदा । मूपहणेन देवर्षे योजनं च पशुबन्धनम् ॥३८॥
सत्त्वादिनिगुणा पाशा नैव तत्राभवत्पशु । ततोऽहमग्रव वाचं वेषणवीमशरीरिणीम् ॥३९॥
विनैव पशुना मायं यज्ञं परिसमाप्यते । ततो मामवदद्देवी सैव नित्याऽशरीरिणी ॥४०॥

आकाशवागुवाच

पौरुषेणाय सूक्तेन स्तुहि, तं पुरुषं परम्

॥४१॥

मैंने सब यन्त्र सामग्रियों को इकट्ठा किया । उसी व अनुसार यज्ञ पात्रा को प्रस्तुत किया । विप्र ! जिस प्रदेश में पवित्र और एकाग्रचित होकर मैंने आसन बनाया और यज्ञ-दीप ग्रहण की वह देश मर ही नाम में प्रसिद्ध हो गया । मरा पवित्र दक्षयजन ब्रह्मगिरि व नाम से विख्यात हो गया । महामुनि नारद ! ब्रह्मगिरि व पूर्व में चौरासी योजन तक मरा पवित्र देव यजन फैला था । उससे मध्य में एक बड़ा बनाई गई । उसके दक्षिण गार्हपत्य अग्नि की स्थापना हुई । वहां आहवनीय अग्नि की भी स्थापना की गई । इस प्रकार यज्ञाग्नि की विधि पूरा हुई । विना स्त्री के यज्ञ का सिद्धि नहीं होती इस वचना व कारण मुने ! मैं अपने गठार को दो भागों में बांट दिया । तदनन्तर भर यज्ञ की सिद्धि के लिये पूर्वाह्न भाग में पत्नी उत्पन्न हुई और उत्तराह्न में मैं रहा । वर भी कहना है कि पत्नी जाया भाग है । नारद ! वसन्त ऋतु को उत्कृष्ट श्रुत ग्रीष्म को इष्म (समिधा) और शरद को हार्द बनाया । इस प्रकार पुत्र । वर्षा ऋतु को शुष्म बनाया ॥२७-२९॥ इसका बाद मान छन्द परिधि बन । कर्ग काष्ठा और निमग्न (ममय-परिमाण) समिधा पात्र और गुणा हुये । उस समय जा अनादि और अनन्त स्वयं काल है वह है देवर्षे ! मूप रूप में पशु को बाधने के लिए पशुबन्धन बाण्ड हुआ । सत्त्व रज और तम आदि गण पात्र (रस्सी) हुए । परन्तु वहाँ पशु तो था ही नहीं । तब मैंने उस अप्रत्यक्ष वेषणवा आकाशवाणी से कहा कि विना पशु व यह यज्ञ नहीं समाप्त होगा । यह मुने उस नित्य अप्रत्यक्ष देवी ने मुझसे कहा ॥३७-४०॥

आकाशवाणी ने कहा—पुरुष-सूक्त से उस परम पुरुष की स्तुति करो ॥४१॥

अथैकषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः

कुशतर्पणतीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

कुशतर्पणमाख्यात प्रणीतासगम तथा । तीर्थं सर्वेषु लोकेषु भुक्तिमुक्तिप्रदायकम् ॥१॥
तस्य स्वरूपं वक्ष्यामि शृणु पापहर शुभम् । विन्ध्यस्य दक्षिणे पाद्वे सहायो नाम महागिरि ॥२॥
यदद्भिर्म्योऽभवत्तद्यो गोदाभीमरयोमुखा । यत्राभवत्तद्विरजमेकवोरा च यत्र सा ॥३॥
न तस्य महिमा कश्चिदपि शक्योऽनुवर्णितुम् । तस्मिन्गिरी पुण्यदेशे शृणु नारद यत्नत ॥४॥
गुह्याद्गुह्यतरं वक्ष्ये साक्षाद्वेदोदितं शुभम् । यत्र जानन्ति मुनयो देवाश्च पितरोऽसुरा ॥५॥
तदहं प्रीतये वक्ष्ये श्रवणात्सर्वकामदम् । परं स पुरुषो ज्ञेयो ह्यव्यक्तोऽक्षर एव तु ॥६॥
अपरश्च क्षरस्तस्मात्प्रकृत्यन्वित एव च । निराकारात्सावयव पुरुषं समजायत ॥७॥
तस्मादापि समुद्भूता अन्व्यश्च पुरयस्तथा । ताम्यामभ्य समुद्भूतं तत्राहमभव मुने ॥८॥
पृथिवी वायुराकाश आपो ज्योतिस्तथैव च । एते मत्तं पूर्वतरा एव देवाभवन्मुने ॥९॥
एतानेव प्रपश्यामि नान्यत्स्याविरजङ्गमम् । नैव वेदास्तदा चाऽऽस्तन्नाह द्रष्टाऽस्मि किञ्चन ॥१०॥
यस्मादहं समुद्भूतो न पश्येयं तमप्यय । तूर्णं स्थिते मयि तदा अश्रीय वाचमुत्तमम् ॥११॥

अध्याय १६१

कुशतर्पण नामक तीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा धीरे—कुशतर्पण और प्रणीता-सगम नामक तीर्थ सभी लोकों में प्रख्यात है और मुक्ति-मुक्ति को देने वाला है । उस पापहर और मङ्गल स्वरूप का वर्णन कर रहा हूँ सुनो ।

विन्ध्य के दक्षिण ओर एक सह्य नाम का महापर्वत है जिसके चरण (तलहटी) में गोदा और भीमरयी आदि प्रमुख नदियाँ निकलती हैं । जहाँ प्रसिद्ध विरज और एकवोरा नाम की नदियाँ हैं उसको महिमा का वर्णन करने में कोई भी शक्य नहीं हो सकता । नारद ! उस पुण्य पर्वत प्रदेश में जो अति रहस्यमय घटना हुई जिसका साक्षात् वरदा में वर्णन किया गया है जो गुप्त है और जिसके श्रवणमात्र से सारा कामनाओं पूर्ण हो जाती है जिसको मुनि दत्त पितर और अमुर भी नहीं जानते हैं । उसको मैं तुम्हें प्रमत्तता के बिना बतला रहा हूँ । वह पुरुष पर है अद्वय और अपर भावहीन । अणु क्षर (नष्ट होने वाला) और प्रकृति गर्भात्मक है । उस (पर पुरुष) निराकार परब्रह्म में सावयव पुरुष (व्यवस्तु) उत्पन्न हुआ । उसमें जन्म और जन्म का पुरुष (विष्णु) की उत्पत्ति हुई । मुने ! पुरुष में वाम और दक्षिण में सगे (ब्रह्म की) उत्पत्ति हुई । मुने ! पृथ्वी वायु आकाश जल और ज्योति (तत्त्व) में मूलतः पञ्च तत्त्वों का उत्पन्न हो गया । मैं इन पदार्थों को ही दत्ता था । उस समय मैं तो बड़ ही बड़ और मैं तब मैं किसी अन्य पदार्थों को ही दत्ता था । जिसमें मैं उत्पन्न हुआ उसका भी मैं नहीं दत्ता था । तब मैं अवाक् हो बैठ गया । उस समय मुझे उत्तम वाणी सुनाई दी ॥१-११॥

आकाशवाग्वाच

॥ १२॥

ब्रह्मन्कुरु जगत्सृष्टिं स्यावरस्य चरस्य च

ब्रह्मोवाच

ततोऽहमब्रवं वाचं 'पह्या तत्र नारद । कथं सस्ये ब्रवा सस्ये केन लक्ष्य इदं जगत् ॥ १३ ॥
संव वागब्रवीद्देवी प्रकृतिर्यामिधीयते । विष्णुना प्रेरिता माता जगदीशा जगन्मयी ॥ १४ ॥

आकाशवाग्वाच

यज्ञं कुरु ततः श्रवितस्ते भवित्री न संशयः । यज्ञो वै विष्णुरित्येषा श्रुतिर्ब्रह्मसनातनी ॥ १५ ॥
किं यज्वनामसाध्य स्यादिह लोके परत्र च ॥ १६ ॥

ब्रह्मोवाच

पुनस्तामब्रव देवो ब्रवा केनेति तद्वद । यज्ञः कार्यो महाभागे तत सोवाच मा प्रति ॥ १७ ॥

आकाशवाग्वाच

ओंकारभूता या देवी मातृकल्पा जगन्मयी । कर्मभूमी यज्ञस्वेह यज्ञेश यज्ञपूष्यम् ॥ १८ ॥
स एव साधन ते स्यात्तेन त यज्ञसुवत । यज्ञ स्वाहा स्वधा मन्त्र ब्राह्मणा हविरादिकम् ॥ १९ ॥
हरिरेवाखिल तेन सर्वं विष्णोरवाप्यते ॥ २० ॥

आकाशवाणी ने कहा—ब्रह्मन् ! तুম स्यावर और चर (जगम) रूप ससार की सृष्टि करो ॥ १२ ॥

ब्रह्मा बोले—नारद ! तब मैंने बठीर और उग्र स्वर से कहा—'कैसे सृष्टि करूँ ? कहाँ और किस वस्तु से इस जगन् की सृष्टि करूँ ? यह सुन कर विष्णु से प्रेरित, ससार की स्वामिनी जगन्मयी माता उस देवी वाणी ने—
जिसको प्रकृति भी कहते हैं—कहा ॥ १३-१४ ॥

आकाशवाणी ने कहा—यज्ञ करो । तब तुम्हें दानित प्राप्त होगी इसमें सन्देह नहीं है । यज्ञ ही विष्णु है ।
ब्रह्मन् ! यही सनातन वेद कहलाता है । इस लोक और परलोक में यज्ञ करने वालों के लिये मया असाध्य है ? ॥
१५-१६ ॥

ब्रह्मा बोले—पुन मैंने उस देवी से कहा—'कहाँ और किस साधन से यज्ञ करूँ ? महाभागे ! इसको बतलाइये ।' तब देवी ने मुझसे कहा—॥ १७ ॥

आकाशवाणी ने कहा—मातृ-तुल्य जगन्मयी तथा आकाररूपिणी जो देवी है उसमें इस कममूर्ति में यज्ञपति, यज्ञपुरुष का यन करो । बहो तुम्हारे साधन (सहायक) होने । सुवत ! इसलिए उनका यजन करो । स्वाहा, स्वधा, मन्त्र, ब्राह्मण और हवि आदि सब यज्ञ ही हैं । सब कुछ विष्णु ही हैं, इसलिये सब कुछ विष्णु से ही प्राप्त किया जाता है ॥ १८-२० ॥

ब्रह्मोवाच

तयेत्युक्त्वा स्तूपमाने देवदेवे जनार्दने। मम चोत्पादके भक्त्या सूक्तेन पुरुषस्य हि॥४२॥
 सा च मामश्वोद्देवी ब्रह्मन्मां त्वं पशुं कुरु। तदा विज्ञाय पुरुषं जनकं मम चाध्ययम्॥४३॥
 कालयूपस्य पार्श्वं तं गुणपार्श्वनिवेशितम्। बहिस्स्थितमहं प्रोक्षं पुरुषं जातमग्रतः॥४४॥
 एतस्मिन्नन्तरे तत्र तस्मात्सर्वमभूद्विदम्। ब्राह्मणास्तु मुलात्तस्याभवन्बाह्योश्च क्षत्रिया॥४५॥
 मुखादिन्द्रस्तथाऽग्निश्च इवसनः प्राणतोऽभवत्। दिशः श्रोत्रात्तथा शीर्ष्णः सर्वः स्वर्गोऽभवत्तदा॥४६॥
 मनसश्चन्द्रमा जातः सूर्योऽभूच्चक्षुस्तथा। अन्तरिक्षं तथा नाभेरुहस्यां विश एव च॥४७॥
 पद्भ्यां शूद्रश्च सजातस्तथा भूमिरजायत। ऋषयो रोमकूपेभ्य ओषधयः केशतोऽभवन्॥४८॥
 ग्राम्यारण्याश्च 'पशवो नखेभ्यः' सर्वतोऽभवन्। कृमिकोटपतङ्गादि पायूपस्थादजायत॥४९॥
 स्यावरं जङ्गम किञ्चिद्दृशपादृश्यं च किञ्चन। तस्मात्सर्वमभूद्देवा मत्तश्चाप्यभवन्पुनः॥
 एतस्मिन्नन्तरे सर्वं विष्णोर्वागब्रवीच्च भाम् ॥५०॥

आकाशवागुवाच

सर्वं संपूर्णमभवत्सृष्टिर्जाता तयेप्सिता। इदानीं जुहुषि हृष्यन्तो पात्राणि च समानि च॥५१॥
 विसर्जय तथा यूपं प्रणीतां च कुशास्तथा। ऋत्विर्पूर्णं यज्ञरूपमुद्देश्यं ध्येयमेव च॥५२॥
 स्रुवं च पुरुषं पाशात्सर्वं ब्रह्मविसर्जय ॥५३॥

ब्रह्मा बोले—'ऐसा ही होगा' यह कहकर मैंने भक्तिपूर्वक पुरुषमूर्त से अपने उत्पादन देवदेव जनार्दन की स्तुति की। ब्रह्मन्! इस पर उस देवी ने मुझसे कहा—'मुझको तुम पशु बनाओ।' तब मैंने अपने उत्पादन, नित्य पुरुर को जानकर उनको गुणों के पाश से बालयूप के पार्श्व से बाँधकर बैठा दिया। पुन मैंने सबसे पहले उत्पन्न बहि पर बैठे हुए पुरुष वा प्रोक्षग (अभिषेक) किया। इसी बीच वही उस पुरुष से यह दृश्यमान (ब्रह्माण्ड आदि) उत्पन्न हो गया। उन्हे मुख से ब्राह्मण और बाहु से क्षत्रिय हुये। पुन मुख से इन्द्र और अग्नि, प्राण से वायु वान से दिग्गय तथा शिर से सब स्वयं उत्पन्न हुये। मन से चन्द्रमा और नेत्र से सूर्य उत्पन्न हुये। नाभि से अन्तरिक्ष ऊरु से वीर्य, चरणां से शूद्र और पृथिवी उत्पन्न हुई। रोमकूपों से ऋषि और केशों से ओषधियाँ उत्पन्न हुई। सब नसा से ग्राम्य (पालतू) और वन्य (जंगली) पशु उत्पन्न हुये। पायु (गुदा) और उपरस्य (लिंग) से कृमि कीट और पतङ्ग आदि उत्पन्न हुए। उस पुरुष से स्यावर, जगम आदि जो कुछ दृश्य या अदृश्य है वह सब कुछ और सब दवता उत्पन्न हुये। पुन वे मुझसे उत्पन्न हुये। इस बीच उसी विष्णु की वाणी ने पुन मुझसे कहा ॥४२-५०॥

आकाशवाणी ने कहा—गव कुछ पूर्णरूप से हो गया, और मनवाही सृष्टि भी हो गई। अब अग्नि में हवन करो। गव पाशों यूप प्रणीता, पात्र, कुशा आदि को विमर्जित कर दो। ब्रह्मन्! ऋत्विग्रूप, यज्ञरूप, उद्देश्य और ध्येय तथा स्रुव, पाण, पुरुष आदि सबका विसर्जन कर दो ॥५१-५३॥

ब्रह्मोवाच

तद्वायसमकालं तु क्रमशो यज्ञयोनिषु। गार्हपत्ये दक्षिणाग्नी तथा चैव महामुने ॥५४॥
 पूर्वस्मिन्नपि चैवाग्नी क्रमशो जुह्वतस्तदा। तत्र तत्र जगद्योनिमनुसंधाय पूरयम् ॥५५॥
 मन्त्रपूतं शुचिः सम्यग्यज्ञदेवो जगन्मयः। लोकनाथो विश्वकर्ता कुण्डानां तत्र सनिधौ ॥५६॥
 शुक्लरूपधरो विष्णुर्भवेदाहवनीयके। श्यामो विष्णुर्दक्षिणाग्नेः पीतो गृहपते कवेः ॥५७॥
 सर्वकालं तेषु विष्णुरतो देशेषु सस्थितः। न तेन रहितं किञ्चिद्विष्णुना विदव्योनिना ॥५८॥
 प्रणीतायाः प्रणयनं मन्त्रदचाकरवं ततः। प्रणीतोदकमप्येतत्प्रणीतेति नदी शुभा ॥५९॥
 व्यसर्जय प्रणीता ता मार्जयित्वा कुशेरथ। मार्जने क्रियमाणे तु प्रणीतोदकविन्दवः ॥६०॥
 पतितास्तत्र तीर्थानि जातानि गुणवन्ति च। संजाता मुनिशार्दूल स्नानात्कतुफलप्रदा ॥६१॥
 याज्ञलकृता सर्वकालं देवदेवेन शार्ङ्गिणा। सोपानपद्भित सर्वेषां वैकुण्ठारोहणाय सा ॥६२॥
 संमाजिताः कुशा यत्र पतिता भूतले शुभे। कुशतर्पणमाख्यात बहुपुण्यफलप्रदम् ॥६३॥
 कुशैश्च तपिताः सर्वे कुशतर्पणमुच्यते। पद्माच्च संगता तत्र गौतमी कारणात्तरात् ॥६४॥
 'प्रणीताया महाबुद्धे प्रणीतासगमोऽभवत्। कुशतर्पणदेशे तु तत्तीर्थं कुशतर्पणम् ॥६५॥
 तत्रैव कल्पितो यूपो मया विन्ध्यस्य चोत्तरे। विसृष्टो लोकपूज्योऽसौ विष्णोरासीत्समाश्रयः ॥६६॥
 अक्षयदक्षामदच्छ्रीमानक्षयोऽसौ। धटोऽभवत्। नित्यश्च कालरूपोऽसौ स्मरणार्हकतुपुण्यदः ॥६७॥

ब्रह्मा बोले—महामुने ! उस आकाशवाणी के समकाल ही मैंने क्रमशः यज्ञ-कुण्डों, गार्हपत्य तथा दक्षिणाग्नि में एक-एक पूर्व के अग्नि में भी क्रमशः उन-उन स्थानों में अगस्त्यष्टा, मन्त्र-पूत पुंस्थ का ध्यान कर हवन करना प्रारम्भ किया। वहाँ कुण्डों के समीप अतिपवित्र, जगन्मय, यज्ञदेव लोक-स्वामी विश्वकर्ता, शुक्लरूपधारी विष्णु आहवनीयक में हुए। दक्षिण अग्नि में श्याम विष्णु और गार्हपत्याग्नि में पीत विष्णु हुए। सर्वदा उन देशों में विष्णु रहते हैं। उस विश्व के आदि कारण विष्णु से रहित कुछ भी नहीं है। तदनन्तर मैंने मन्त्रों से प्रणीता का निर्माण किया। वह प्रणीता-जल ही शुभ प्रणीता नाम की नदी हुई। इसके बाद बुद्धि से उस प्रणीता का मार्जन कर विमर्जन किया। मार्जन करने से प्रणीता-पान से जहाँ-जहाँ जल-विन्दु गिरे वहाँ-वहाँ गुणशाली तीर्थ हो गये। मुनिवर ! स्नान करने से वहाँ यज्ञफल देने वाली एक नदी हो गई, जो सर्वदा देवाविदेव विष्णु से सुशोभित रहती है। वह नदी वैकुण्ठ में जाने के लिए सर्वसाधारण की सोपान परम्परा है। जिस शुभ भूतल पर सम्प्राप्ति कुश गिरे वह वृद्ध फल देने वाला कुश-तर्पण नामक तीर्थ हो गया ॥५४-६३॥ यत्र वहाँ कुशों से सबका तर्पण हुआ, अतः उसको कुश-तर्पण कहा जाता है। पश्चात् वहाँ गौतमी अन्य कारण से आकर मिल गई। महाबुद्धिमान् ! प्रणीता में गौतमी ने सगम से प्रणीता सगम नामक तीर्थ हो गया। जिस प्रदेश में कुशों से तर्पण हुआ। वह कुश-तर्पण तीर्थ हो गया। वही विन्ध्य के उत्तर में उस कल्पित यूप को मैंने छोट दिया जो लोक-पूज्य और विष्णु का एकमात्र निवासस्थान है। वह यूप अति सोमाशाली और अक्षय (नाश-रहित) वटवृक्ष हुआ। अतः उसका नाम अक्षयवट पड़ा। वह नित्य, कालरूप और स्मरण-मात्र से यज्ञ के पुण्य को देने वाला है। मेरा वह देवयजन-प्रदेश दण्डकारण्य कहा जाता है। यज्ञ पूर्ण हो जाने पर मैंने भक्ति

महैवयजन चेद दण्डकारण्यमुच्यते । सपूर्णे तु ऋतो विष्णुर्मया भक्त्या प्रसादित ॥६८॥
 यो विराडुच्यते घेदे यस्मान्मूर्तमजायत । यस्माच्च मम चोत्पत्तिर्यस्येद विवृत जगत ॥६९॥
 तमह देवदेवेशमभिवन्द्य व्यसर्जयम् । योजनानि चतुर्विंशन्महैवयजन शुभम् ॥७०॥
 तस्मादद्यापि कुण्डानि सन्ति च त्रीणि नारद । यज्ञेश्वरस्वरूपाणि विष्णोर्विं चक्रपाणिन ॥७१॥
 तत प्रभृति चाऽऽख्यात महैवयजन च तत । तत्रस्थ कृमिकीटादि सोऽप्यन्ते मुक्तिभाजनम् ॥७२॥
 धर्मवीज मुक्तिवीज दण्डकारण्यमुच्यते । विशेषाद्गौतमीशिलष्टो देश पुण्यतमोऽभवत् ॥७३॥
 प्रणीतासगमे चापि कुशतर्पण एव वा । स्नानदानादि य कुर्यात्स गच्छेत्परम् पदम् ॥७४॥
 स्मरण पठन वाऽपि श्रवण चापि भक्तित । सर्वकामप्रद पुसा भुक्तिमुक्तिप्रद विदु ॥७५॥
 उभयोस्तोरयोस्तत्र तीर्थान्याहुर्मनीषिण । षडशीतिसहस्राणि तेषु पुण्य पुरोदितम् ॥७६॥
 धाराणस्या अपि मुने कुशतर्पणमुत्तमम् । नानेन सदृश तीर्थं विद्यते सचराचरे ॥७७॥
 ब्रह्महत्यादिपापाना स्मरणादपि नाशनम् । तीर्थमेतन्मुने प्रोक्त स्वर्गद्वार महोत्तले ॥७८॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये प्रणीतासगमकुशतर्पणादिषडशीति-
 सहस्रतीर्थवर्णन नामैकषष्ट्यधिकशततमोऽध्याय ॥१६१॥

गौतमीमाहात्म्ये द्विनवतितमोऽध्याय ॥१२॥

से विष्णु को प्रसन्न किया । जो बन्ने में विराट कहा गया है जिससे यह मूल जगत उत्पन्न हुआ है जिससे मेरी उत्पत्ति हुई जिसका विचार यह जगत् है उस देवा के देव ईश को स्तुति कर विसर्जन कर दिया । शीवीसंयोजन पण्यत मेरा गुप्त देवयजन प्रदेश है । नारद ! इसलिए वहाँ आज भी चक्रपाण विष्णु के यज्ञेश्वर स्वरूप की मूर्चना देने वाले तीन कुण्ड हैं । उस समय से वह भेरा देवयजन प्रदेश प्रसिद्ध हो गया । वहाँ के जो कृमि पीट आदि हैं वे भी अतः म भुक्ति के अधिकारी होते हैं । दण्डवारण्य धर्मवीज एवं मुक्तिवीज कहा जाता है । गौतमी के आसपास की भूमि विषाण रूप से पुण्य भूमि मानी जाती है । प्रणीता सगम अथवा कुशतर्पण तीर्थ म जो स्नान दान आदि करता है वह परम पद को प्राप्त करता है । उस तीर्थ का भक्तिपूर्वक स्मरण पठन और श्रवण भी पुरुषा के लिए सर्वत्र मनोरंजनात्ता तथा भुक्ति और मुक्ति देने वाला (कहा गया) है । विद्वान् लोग वहाँ दोनों तटों पर छिपासी हजार तीर्थों का निवास करते हैं । उनका पुण्य पहले बताया जा चुका है । मुने ! कुशतर्पण धाराणसी से भी उत्तम तीर्थ है । इस तीर्थ का समान इस चराचर जगत् में दूसरा तीर्थ नहीं है । मुने ! इससे स्मरण से भी ब्रह्म हत्या आदि पाप नष्ट हो जात है । यह तीर्थ क्या है माना इस पृथ्वी-तल पर स्वर्गद्वार है ॥६४७८॥

श्री ब्रह्ममहापुराण म कुशतर्पण प्रणीतासगम आदि तीर्थों का माहात्म्य-वर्णन नामक
 एक सौ एकषठवाँ अध्याय समाप्त ॥१६१॥

अथ द्विषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः

मन्युतीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

मन्युतीर्थमिति ह्यात सर्वप्रायप्रणाशनम् । सर्वकामप्रदं नृणां स्मरणादघनाशनम् ॥१॥
तस्य प्रभाव वक्ष्यामि शृणुष्वर्वाहितो मुने । देवानां दानवानां च सगरोऽभून्मिय पुरा ॥२॥
तत्राजयश्रं व सुरा दानवा जयिनोऽभवन् । पराङ्मुखा सुरगणां सगराद्गतचेतसः ॥३॥
मामम्येत्य समूचुस्ते देहि नोऽभयकारणम् । तानह प्रत्यवोच वं गङ्गा गच्छत सर्वशः ॥४॥
तत्र वं गौतमीतीरे स्तुत्वा देव महेश्वरम् । अनपायनिरायासहजानन्दसुन्दरम् ॥५॥
लप्यते सर्वविबुधा जयहतुर्महेश्वरात् । तयेत्युक्त्वा सुरगणां स्तुवन्ति स्म महेश्वरम् ॥६॥
तपोऽज्यन्त केचिद्वै ननुतश्च तयाऽपरे । अस्नापयश्च केचिच्चापूजयश्च तयाऽपरे ॥७॥
ततः प्रसन्नो भगवाञ्शूलपाणिर्महेश्वर । देवानयान्नवीत्पुष्टो त्रिपता यदभीप्सितम् ॥८॥
देवा ऊचुः सुरपति विजयाय ददस्व न । पुरुष परमश्लाघ्यं रणेऽपु पुरतः स्थितम् ॥९॥
यद्बाहुबलमाश्रित्य भवाम सुखिनो वयम् । तयेत्युवाच भगवाद्देवान्प्रति महेश्वर ॥१०॥

अध्याय १६२

मन्युतीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा बोले—मनुष्यों के सब पापों को नष्ट करने वाला सब प्रकार के मनोरथों को पूर्ण करने वाला और स्मरण मात्र से अघों को नष्ट कर देने वाला मन्यु-तीर्थ नामक एक तीर्थ है । मुने ! उसके प्रभाव का वर्णन मैं कर रहा हूँ एकाग्र होकर सुनो । प्राचीन काल में देवों और दानवों में परस्पर युद्ध छिड़ा । उसमें देव विजयी नहीं हुए प्रायुतः विजयथी दानवों के हाथ लगी । युद्ध से पराङ्मुख देवों की चेतना लुप्त-न्ती हो गई । वे मेरे पास आकर बोले— हम लोगों को अभय करने वाला उपाय बतलाइये । मैंने उन देवों से कहा— देवगण ! सबका गंगा की धारण में जाओ । वहाँ गौतमी के तट पर निरय एवं स्वतः सहजानन्द सुन्दर महादेव की स्तुति कर उम महादेव से विजय माधन प्राप्त करो । (एसा ही होगा वह कहकर देवगण महेश्वर की आराधना करने लगे । उनमें से कोई तरस्या करते थे कोई प्रमदविह्वल हो नाचते थे) कोई स्नान कराते थे तथा कोई उनका पूजा करते थे । निदान देवनाथ भगवान् शंकर महेश्वर प्रसन्न हुये और बोले— जो अभीप्सित वरदान हो मागो । देवा मैं सुरपति (शिव) से कहा— हम लोगों की विजय के लिये रण भ आगे रहने वाला परम पराक्रमी पुरुष को दीजिए जिसके बाहुबल

आत्मनस्तेजसा कश्चिन्निमित्तः परमेष्ठिता। मन्युनामानमत्युग्रं देवसैन्यपुरोगमम् ॥११॥
 तं नत्वा त्रिदशाः सर्वे शिवं नत्वा स्वमालयम्। मन्युना सह चाम्येत्य पुनर्युद्धाय तत्स्थिरं ॥१२॥
 युद्धे स्थित्वा तु दनुर्जयैतेयंश्च महाबलः। विबुधा जातसन्नदा मन्युमुचुः पुरः स्थिताः ॥१३॥

देवा ऊचुः

!

सामर्थ्यं तव पश्यामः पश्चाद्योत्स्यामहे परः। तस्माद्दर्शय चाऽऽत्मानं मन्योऽस्माकं युयुत्सताम् ॥१४॥

ब्रह्मोवाच

तद्देववचनं श्रुत्वा मन्युराह स्मयन्निव

॥१५॥

मन्युरुवाच

जनिता मम देवेशः सर्वज्ञः सर्वद्वेषप्रभुः। यः सर्वं वेत्ति सर्वेषां धामनाम^१ मनःस्थितम् ॥१६॥
 नैव कश्चिन्व तं वेत्ति यः सर्वं वेत्ति सर्वदा। अमूर्तं मूर्तमप्येतदेति कर्ता जगन्मयः ॥१७॥
 परोऽसौ भगवान्ताक्षात्तया दिव्यन्तरिक्षगः। कस्तस्य रूपं यो वेद कस्य कर्ता जगन्मयः ॥१८॥
 एवं विवादहं जातो मा कथं वेत्तुमर्हय। अथवा द्रष्टुकामा वं भवन्तो माऽनुपश्यत ॥१९॥

ब्रह्मोवाच

दृष्टुमशक्वा दर्शयामास मन्यु रूपं स्वकं महत्। तार्तोयचक्षुषोर्दभूतं भवस्य परमेष्ठिनः ॥२०॥

के मरोते हम सुखी हो।' भगवान् महादेव ने 'ऐसा ही हो ब्रह्म और परमेष्ठी शिव ने अपने तेज से किसी मन्यु नामक अति प्रतापी पुरुष को अप्रणी बना दिया। सब देवता उस मन्यु को प्रणाम कर उसको साथ लेकर अपने घर आये और पुन युद्ध के लिय प्रस्तुत हो गये। महाबलवान् दनुज और दैत्यो के साथ युद्ध की घोषणा कर देवता स्वय युद्धार्थ प्रस्तुत हो गये और मन्यु के आग जावर उससे बोले ॥१-१३॥

देवगण बोले—'पहले हम लोग तुम्हारे सामर्थ्य की परीक्षा करना चाहते हैं तब हम दानुओं के साथ लड़ेंगे। इसलिये मन्यु! युद्ध के लिय प्रस्तुत हम लागा को अपना पराक्रम दिखालाओ ॥१४॥

ब्रह्मा बोले—'देवा की याँने मुतरार मन्यु ने हँसते हुए कहा—॥१५॥

मन्यु ने कहा—'देवा! न ईश, तज, सब ओर देखन काले प्रभु यकर मेर उत्पन्न हैं, जो सबके धाम (स्थान), नाम और आन्तरिक बातों को सर्वदा जानने हैं और उनको कोई भी नहीं जानता है। वही जगन्मय कर्ता गिव मूर्त और अमूर्त सब पदार्थों का जानता है। वह पर मयवान् स्वय स्वर्ग और अन्तरिक्ष में अप्रतिहत गति रखते हैं। ऐसा हीन है जो उनके स्वरूप को जानता है? वह जगन्मय सर्वप्रथम जन की सृष्टि करने वाले हैं। ऐसे महाप्रभु के तेज से मैं उत्पन्न हुआ हूँ। मुझको किते सुख जान सकते हो? अथवा यदि मुझलाग देवता ही चाहते हो तो मुझका देखा ॥१६-१९॥

ब्रह्मा बोले—'मन्यु! न यह कह कर अपने जग महान् तेजस स्वरूप को दिखाया जा परमेष्ठी दांर के तीगरे

तेजसा सभृत रूप यत् सर्वं तदुच्यते। पौरुषं पुरुषेष्वेव अहकारश्च जन्तुषु ॥२१॥
 श्रेय सर्वस्य यो भीम उपसहारकृद्भवेत्। त शक्रप्रतिनिधि उवलन्त निजतेजसा ॥२२॥
 सर्वायुधधर दृष्ट्वा प्रणेमु सर्वदेवता। विजैसुर्देत्यमनुजा कृताञ्जलिपुटा सुरा ॥२३॥
 भूत्वा मनुमयोचुस्ते त्व सेनानी प्रभो भव। त्वया दत्तमिदं राज्य मन्यो भोक्ष्यामहे वयम् ॥२४॥
 तस्मात्सर्वेषु कार्येषु जेता त्व जयवर्धन। त्वमिन्द्रस्त्व च वरुणो लोकपालास्त्वमेव च ॥२५॥
 अस्मासु सर्वदेवेषु प्रविश त्व जयाय वै। मन्यु प्रोवाच तान्सर्वान्विना मत्तो न किञ्चन ॥२६॥
 सर्वेष्वन्त प्रविष्टोऽहं न मा जानाति कश्चन। स एव भगवामप्युस्ततो जात पूयवपुयक् ॥२७॥
 स एव रुद्ररूपो स्याद्भूतो मन्यु शिवोऽभवत्। स्थावरजङ्गम चैव सर्वं व्याप्त हि मयुना ॥२८॥
 तनवाप्य सुरा सर्वे जयमापुश्च ॥ सगरे। जयो मन्युश्च शीर्यं च ईशतेज सपुद्भबम् ॥२९॥
 मन्युना जयमाप्पाय कृत्वा दैत्यैश्च सगमम्। धयागत ययु सर्वे मन्युना परिरक्षिता ॥३०॥
 यत्र वै गौतमीतीरे शिवमाराप्य ते सुरा। मयुमापुर्जंय चैव मन्युतीर्यं तदुच्यते ॥३१॥
 उत्पत्ति च तया मन्योर्यो नर प्रयत् स्मरेत्। विजयो जायते तस्य न कश्चित्परिभूयते ॥३२॥

मैत्र ने उल्लङ्घन हुआ है जो तेज स मुक्त है और त्रिमता तब हुए उत्पन्न हुआ है ऐसा कहा जाता है। जो पुरुषा म पौरुष जन्तुआ म अहकार तथा सबका श्रेय है और जो भीमरूप होकर सबका सहार करनेवाला है उस अपने तब स जन्म वाल मत्र प्रकार के गत्ता को धारण करने वाले गत्त क प्रतिनिधि को देवकर सब देवताओं न प्रणाम किया। दैत्य और वानर उसको देखकर अचरस्त हो गए। वे देवताएँ हाथ जाकर मयु म बोले— प्रभा! तुम हमारे सेना नायक बनो। मन्यो। तुम्हारे लिय हुए इस स्वर्गराज्य का हम भोग करेंगे। इसलिय मत्र बापों म तुम्ही विजय लाने वाले और जय-शुद्धि करने वाले हो। तुम ईश हो तुम वरुण हो तुम्हा लोकपाल भी हो। तुम हम सब देवा म विजय के लिय प्रवेश कर जाओ। मन्यु न उन देवा स बड़ा— मर बिना किसी वस्तु का अस्तित्व नहीं। मैं सबके अन्तः म रहता हूँ। परन्तु मुझको कोई नहीं जानता है। तदनन्तर वही मगवान् मयु पूयवपुयक रूप म व्यक्त हुआ। वही मयु रुद्र रूप हुआ और रुद्र शिव हुआ। स्थावर-जगम आनि मत्र मयु म व्याप्त है। उस मयु को पाकर देवा ने रण म विजय पाई। जय मयु और धारणा को उत्पत्ति पाकर तत्र म हुई थी। अतएव दैत्या स मघप कर देवा न मयु की सहायता स विजय पाई और जय मरक्षण म मत्र देवता जहाँ म आय वे वहाँ च गये। जहाँ गौतमी के तीर पर देवा न शिव की आराधना कर मयु और जय का प्राप्ति किया वही मयुतीर कहा जाता है। जो मनुष्य मन्यु की उत्पत्ति का श्रद्धापूर्वक स्मरण करता है उसकी मत्रदा विजय होती है। वे किमा स पराजित नहा होता। महामुनि। मयु क समान चाई पवित्र ताप मर है। जहाँ

न मन्युतीर्थसदृशं पावनं हि महामुने। यत्र साक्षान्मन्युरूपी सर्वदा शंकरः स्थितः॥
तत्र स्नानं च दानं च स्मरणं सर्वकामदम् ॥३३॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये मन्युतीर्थवर्णनं नाम द्विषष्ट्यधिकशतत-

मोऽध्यायः ॥१६२॥

गौतमीमाहात्म्ये त्रिनवतितमोऽध्यायः ॥१३॥

अथ त्रिषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः

सारस्वततीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

सारस्वतं नाम तीर्थं सर्वकामप्रदं शुभम्। भुक्तिमुक्तिप्रदं मुनिं सर्वपापप्रणाशनम्॥१॥
सर्वरोगप्रशमन सर्वसिद्धिप्रदायकम्। तत्रेवं शृणु श्रुत्वा त्वं विस्तरेणाय नारद॥२॥
पुण्योत्कटात्पूर्वभागे पर्वतोऽसौ लोकविभूतः। शुभ्रो नाम गिरिश्रेष्ठो गौतम्या दक्षिणे तटे॥३॥
शाकल्य इति विख्यातो मुनिः परमनैष्ठिकः। तस्मिंश्शुभ्रे पुण्यगिरौ तपसतेषु ह्यनुत्तमम्॥४॥
तपस्यन्तं द्विजश्रेष्ठं गौतमीतीरमाधितम्। सर्वे भूतगणा नित्यं प्रणमन्ति स्तुवन्ति तम्॥५॥
अग्निशुश्रूषणपरः वेदाध्ययनतत्परम्। ऋषिगन्धर्वसुमन सेवितः, तत्र पर्वते ॥६॥

साक्षात् मन्यु रूपी शंकर निवास करते हैं, वहाँ स्नान, दान और तीर्थनाम के स्मरण से सब कामनाएँ प्राप्त हो जाती हैं ॥१६०-३३॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में मन्यु तीर्थ-वर्णन नामक एक सो बाराठवाँ अध्याय समाप्त ॥१६२॥

अध्याय १६३

सारस्वततीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा बोले—सब कामनाओं को देनेवाला, सुम सारस्वत नाम का तीर्थ है जो मनुष्यों को भुक्ति और मुक्ति प्रदान करता है और उनके सब पापों का नाश करता है, सब रोगों को दूर करता है और सब प्रकार की मिडियाँ प्रदान करता है। नारद! यहाँ के इस वृत्तान्त को विस्तारपूर्वक बहुरहा हूँ मुने। गौतमी के दक्षिण तट पर पुण्योत्कट से पूर्व की ओर लोक-विख्यात शुभ नामक एक उत्तम पर्वत है। उस स्वच्छ पवित्र पर्वत पर शाकल्य

तस्मिन्निरी महापुण्ये देवद्विजभयंकरः । यत्तद्वेयो ब्रह्महन्ता परशुर्नाम राक्षसः ॥७॥
 कामरूपी विचरति नानारूपधरो वने । क्षणं च ब्रह्मरूपेण कदाचिद्ब्रह्माग्निरूपधृक् ॥८॥
 वदाचिद्देवरूपेण कदाचित्पशुरूपधृक् । कदाचित्प्रमदारूपः कदाचिन्मृगरूपतः ॥९॥
 कदाचिद्बालरूपेण एवं चरति पापकृत् । यत्राऽऽस्ते ब्राह्मणो विद्वान्शाकल्यो मुनिसत्तमः ॥१०॥
 तमायाति महापापी परशू राक्षसाधमः । शुविष्मन्त द्विजश्रेष्ठं परशुनित्यमेव च ॥११॥
 नेतुं हन्तुं प्रवृत्तोऽपि न शशाक स पापकृत् । स कदाचिद्द्विजश्रेष्ठो देवान्म्यर्च्यं यत्नतः ॥१२॥
 भोवतुकामः किलाऽऽयातस्तत्रायात्परशुर्मुने । ब्रह्मरूपधरो भूत्वा शिथिलः पलितोऽबली ॥
 कन्यामादाय काचिच्च शाकल्यं वाक्यमब्रवीत् ॥१३॥

परशुरुवाच

भोजनस्यायिनं विद्धि मां च कन्यामिमां द्विज । आतिथ्यकाले संप्राप्तं कृतकृत्योऽसि मानद ॥१४॥
 त एव धन्या लोकेऽस्मिन्प्रेषामतिययो गृह्णात् । पूर्णाभिलाषा निर्यान्ति जीवन्तोऽपि मृताः परे ॥१५॥
 भोजने तुपविष्टे तु आत्मार्यं कल्पितं तु यत् । अतिथिम्यस्तु या दद्याद्दत्ता तेन वसुंधरा ॥१६॥

ब्रह्मोवाच

एतच्छ्रुत्वा तु शाकल्यो ददामीत्येवमब्रवीत् । आसने चोपवेशयायातानात्तं परशुं द्विजम् ॥१७॥
 यथाग्वार्यं पूजयित्वा शाकल्यो भोजनं ददौ । आपोशनं करे कृत्वा परशुर्याक्यमब्रवीत् ॥१८॥

नामच परमदीर्घिर मुनिर्जितकठोर तपस्या करते थे । शीतमी-तोर पर अग्नि-सेवा-व्यपण और वेदाध्ययन में लीन रहते बाद उम द्विजवर्ष को मंत्र प्राप्ति प्रतिदिन प्रणाम करने और स्तुति करते थे । उस क्षण, गन्धर्व और गजजनों के निवास योग्य, महापुण्यप्रद वन पर देव और ब्राह्मणों को भय देने वाला, यक्षविरोधी तथा ब्रह्म-पात्री परशु नाम का एक राक्षस रहता था । वह मायावी अनन्य रूप धारण कर घूमा करता था । वह क्षणभर में बन्नी ब्राह्मण का रूप धारण कर लेता था तो बन्नी बाघ का, बन्नी देवरूप में घूमता था तो बन्नी पशुरूप में । किसी समय स्त्रीरूप में किसी समय गुरुरूप में और किसी समय बालक के रूप में वह पापकर्म घूमता था । जहाँ मुनिवय विद्वान् ब्राह्मण शाकल्य रहते थे, वहाँ वह महापापी परशु उनके पास आता था । उस पवित्र-भारमा द्विजश्रेष्ठ को परशु नित्य मारने के लिये या हार लेने के लिये आता था । परन्तु वह पापी इसमें सफल नहीं हो पाता था । मूल ! किसी समय वह द्विजश्रेष्ठ अर्जुन धृष्टाश्वि के देवों की पूजा करने की इच्छा से आया । उसी समय वहाँ वह परशु सितरेस एक शिथिल ब्राह्मण का बैस धारण कर किसी कन्या को साथ लिये हुए धारण के पास आया और बाला ॥१-१३॥

परशु ने कहा—द्विज ! मुझको और इस कन्या को इस अनिष्टोचित काल में आये भोजनार्थी समझो । मानद ! तुम कृपित्व हो गये । क्योंकि इस लोभ में वे धन्य हैं जिनके घर में अतिथि अपनी अभिलाषाओं को पूर्ण करने बाहर आते हैं । इनके विपरीत जो मनुष्य हैं वे जीते-जी मरे हुये-स हैं । मात्र के लिये बैठे जो व्यक्ति अपने ग्नि परता हुआ भोजन अतिथि को दे देता है वह मानो पुण्य का दान कर देता है ॥१४-१६॥

ब्रह्मा बोले—यह गुनहर शाकल्य ने कहा—‘दृष्ट्वा ।’ इनके बाद वह द्विजराश्यारी परशु को आसन पर बैठा-कर भोजन के शाकल्य ने उसकी वर्या पूजा कर भोजन दे दिया । परशु ने भोजन को हाथ में लेकर कहा ॥१७-१८॥

परशुर्वाच

दूरादभ्यागतं श्रान्तमनुपच्छन्ति देवताः । तस्मिंस्तुप्ते तु तृप्ताः स्युरतुप्ते तु विपर्ययः ॥१९॥
 अतिथिश्चापवादी च द्वावेतौ विश्वबान्धवौ । अपवादी हरेत्पापमतिथिः 'स्वर्गसंक्रमः' ॥२०॥
 अभ्यागतं पथि श्रान्तं सावर्जं योऽभिवीक्षते । तत्क्षणादेव नश्यन्ति तस्य धर्मयशःश्रियः ॥२१॥
 तस्मादभ्यागतः श्रान्तो याचेऽहं त्वां द्विजोत्तम । दास्यसे यदि मे कामं तद्भोक्ष्येऽहं न चान्यथा ॥२२॥

ब्रह्मोवाच

दत्तमित्येव शाकल्यो भुङ्क्ष्वेत्येवाऽहं राक्षसम् । ततः प्रोवाच परशुरहं राक्षससत्तमः ॥२३॥
 नाहं द्विजस्तव रिपुर्न वृद्धः पलितः क्रुशः । बहूनि मे व्यतीतानि वर्षाणि त्वां प्रपश्यतः ॥२४॥
 शुष्यन्ति मम गात्राणि प्रोष्मे स्वल्पोदकं यथा । तस्मान्नेष्ये सानुपं त्वां भक्षयिष्ये द्विजोत्तम ॥२५॥

ब्रह्मोवाच

श्रुत्वा परशुवाक्यं तच्छाकल्यो वाक्यमब्रवीत् ॥२६॥

शाकल्य उवाच

ये महाकुलसंभूता वितातसकलागमाः । तत्प्रतिभ्रुतमभ्येति न जात्वन विपर्ययम् ॥२७॥
 ययोचितं कुर्व सखे तयाऽपि शृणु मे वचः । निहन्तुमप्युद्यतेषु वचतव्यं हितमुत्तमः ॥२८॥

परशु ने कहा—दूर से आये हुये, यहाँ अतिथि के पीछे पीछे देवता आते हैं । उनके तुप्ता होने पर वे तुप्त होते हैं और अनुप्त होने पर अनुप्त । अतिथि और अपवादी दोनों सत्तार के बन्धु हैं । अपवादी (निन्दक) पाप को हर लेता है । अतिथि मनुष्य को स्वर्ग का अधिकारी बनाने वाला है । जो रास्ते के चक्के-माँद अतिथि को तिरस्कार की दृष्टि से देखता है, उसी क्षण उसका धर्म, और श्री नष्ट हो जानी है । इसलिये द्विजोत्तम ! मैं श्रान्त अतिथि तुमसे सावधान करता हूँ कि यदि तुम मुझे पर्याप्त भोजन दोगे तब तो सार्द्धा अन्यथा नहीं ॥१९-२२॥

ब्रह्मा बोले—शाकल्य ने राक्षस से कहा—'इतना हो था, जो दे दिया । अब इगको सार्धो ।' तब परशु ने कहा—'मैं राक्षसराज हूँ, द्विज नहीं हूँ, तुम्हास घानु हूँ, वृद्ध, दुर्बल तथा मितवश नहीं हूँ । तुमको देखते-देखते मेरे वृद्ध साल बोन गय । शीघ्रमनु म जिस प्रकार थोडा जल मूल जाना है, उसी प्रकार मेरे अथ मूलते जा रहें हैं । इगलिये द्विजोत्तम ! आज तुमको अनुपायिया समन उठा ले जाऊँगा और सार्ध जाऊँगा ॥२३-२५॥

ब्रह्मा बोले—परशु की बात सुनकर शाकल्य ने कहा ॥२६॥

शाकल्यने कहा—जो महाकुल म उत्पन्न होने हैं और जो सब शास्त्रो के ज्ञाता होने हैं वे अपनी प्रतिज्ञाओ को पूरा करते हैं इगम विपर्यय (परिवर्तन) नहीं होता । मने ! जैसा उचित समझो करो । फिर भी मेरी बात सुनो । मन्त्रन सागा का स्वभाव है कि वे हत्या के लिय प्रस्तुत हत्यारो स भी उचित बान रहते हैं । मैं वय के

ब्राह्मणोऽहं वज्रतनुः सर्वतो रक्षको हरिः । पादौ रक्षतु मे विष्णुः शिरो देवो जनार्दनः ॥२९॥
बाहू रक्षतु वाराहः पृष्ठं रक्षतु कूर्मराट् । हृदयं रक्षतात्कृष्णो ह्यङ्गुली रक्षतान्मृगः ॥३०॥
मुखं रक्षतु वागीशो नेत्रे रक्षतु पक्षिगः । श्रोत्रं रक्षतु वित्तेशः सर्वतो रक्षताद्भवः ॥
नानापत्स्वेकशरणं देवो नारायणः स्वयम् ॥३१॥

ब्रह्मोवाच

एवमुक्त्वा तु शाकल्यो नय वा भक्ष वा सुखम् । मां राक्षसेन्द्र परशो त्वमिदानीमतन्द्रितः ॥३२॥
राक्षसस्तस्य वचनाद्भूक्षणाय समुद्यतः । नास्त्येव हृदये नूनं पापिनां कष्टाकणः ॥३३॥
दंष्ट्राकरालवदनो गत्वा तस्यान्तिकं तदा । ब्राह्मणं तं निरीक्ष्यैवं परशुर्वियमब्रवीत् ॥३४॥

परशुरवाच

शङ्खचक्रगदापाणिं त्वां पश्येऽहं द्विजोत्तम । सहस्रपादशिरसं सहस्राक्षकरं विभुम् ॥३५॥
'सर्वभूतकैलियं छन्दोर्लभं जगन्मयम् । त्वामद्य विप्र पश्यामि नास्ति ते पूर्वकं वपुः ॥३६॥
तस्मात्प्रसादये विप्र त्वमेव शरणं भव । ज्ञानं देहि महाबुद्धे तीर्थं ब्रूह्मयनिष्कृतिम् ॥३७॥
महता दर्शनं ब्रह्मज्जायते नहि निष्फलम् । द्वेषादज्ञानतो वाऽपि प्रसङ्गाद्वा प्रमादतः ॥३८॥
अयसः स्पर्शसंस्पर्शौ स्वमत्पार्ययं जायते ॥३९॥

समान शरीर वाला ब्राह्मण है । विष्णु मेरी चारा ओर से रक्षा करने वाले हैं । विष्णु मेरे चरणों की रक्षा करें जनार्दन
देव शिर की रक्षा करें वाराह मेरी भुजाओं की रक्षा करें कूर्मराज पृष्ठभाग की रक्षा करें कृष्ण हृदय की और
नृसिंह अंगुलियों की रक्षा करें । वागीश मुख की गरङ्गाहन नेत्रों की कुबेर कानों की तथा शंकर चारों ओर से
मेरी रक्षा करें । स्वयं नारायण देव नाना आपत्तियों में एकमात्र मेरे शरणदाता हैं ॥२७-३१॥

ब्रह्मा बोले—इस प्रकार बहकर दानव्य ने राक्षस से कहा—'राक्षसेन्द्र । परशो ! मुझको ले चलो या
इस समय अलस्यरहित होकर आनन्द पूर्वक मुझको खा जाओ । तब राक्षस मुनि के कथनानुसार (मुनि को) खाने
के लिए तैयार हो गया । वास्तव में पापी मनुष्यों के हृदय में दया का एक कण भी नहीं होता है । उस भयानक
धर्म और विकराल मुखवाले परशु ने जब उस ब्राह्मण के समीप जाकर उसे देखा तो इस प्रकार कहा ॥३२-३४॥

परशु ने कहा—द्विजोत्तम । मैं उस समय तुमको शंख चक्र और गदाधारी सहस्र चरण और शिरवाला,
सहस्र नेत्र और भुजा वाला व्यापक सब प्राणियों का एकमात्र वासस्थान छन्दस्वरूप और जगन्मय के रूप में
देख रहा हूँ । विप्र ! तुम्हारा वह पहलू का शरीर नहीं है । इसलिये हे विप्र ! मैं तुम्हारी स्तुति करता हूँ । तुम्हीं
मेरे रक्षक बनो । महाबुद्धिमान् ! ज्ञान दो मेरे पापों को दूर करने वाले तीर्थ को बताओ । ब्रह्मन् ! महान्
व्यभिचारा का दर्शन कभी भी निष्फल नहीं होता है । द्वेषवश, अज्ञान से, प्रसंगवश या भूल से किसी भी प्रकार से
पारस या स्पर्श लोहे को सोना बना ही देता है ॥३५-३९॥

ब्रह्मोवाच

एतद्वाक्यं समाकर्ण्य राक्षसेन समीरितम् । शाकल्यः कृपया प्राह वरदा सा सरस्वती ॥४०॥
 तवाचिराद्द्वैत्यपते ततः स्तुहि जनार्दनम् । मनोरथफलप्राप्तौ नान्यन्नारायणस्तुते ॥४१॥
 किञ्चिदप्यस्ति लोकेऽस्मिन्कारणं भृशं राक्षस । प्रसन्ना तव सा देवी भद्रावयाच्च भविष्यति ॥४२॥

ब्रह्मोवाच

तथेत्युक्त्वा स परशुर्गङ्गा त्रैलोक्यपावनीम् । स्नात्वा शुचिर्यतमना गङ्गामभिमुखः स्थितः ॥४३॥
 तत्रापश्यद्विष्यरूपां दिव्यगन्धानुलेपताम् । सरस्वतीं जगद्वात्रीं शाकल्यवचने स्थिताम् ॥४४॥
 जगज्जाड्यहरां विश्वजननीं भुवनेश्वरीम् । तामुवाच विनीतात्मा परशुर्गतकल्मषः ॥४५॥

परशुर्वाच

गुरः शाकल्य इत्याह माकालं स्तुहि विध्वजम् । तव प्रसादात्सा शक्तिर्यथा मे स्यात्तथा कुरु ॥४६॥

ब्रह्मोवाच

तथाऽस्त्विति च सा प्राह परशुं श्रोतसरस्वतो । सरस्वत्याः प्रसादेन परशुस्तं जनार्दनम् ॥४७॥
 तुष्टाव विविधैर्वाक्यैस्ततस्तुष्टोऽभवद्धरिः । वरं प्रादाद्वाञ्छया कृपासिन्धुर्जनार्दनः ॥४८॥

जनार्दन उवाच

यद्यन्मनोगतं रक्षस्तत्तत्सर्वं भविष्यति ॥४९॥

ब्रह्मोवाच

शाकल्यस्य प्रसादेन गौतम्याश्च प्रसादतः । सरस्वत्या प्रसादेन नरसिंहप्रसादतः ॥५०॥

ब्रह्मा बोले—राक्षस की कही हुई इन बातों को सुनकर शाकल्य ने कृपापूर्वक कहा—‘द्वैत्यपते । यह सरस्वती शीघ्र तुमको वर प्रदान करेगी । इसलिए जनार्दन की स्तुति करो । नारायण की स्तुति के अतिरिक्त मनोरथ पूर्ण करने का और कोई सरल साधन इस लोक में नहीं है । राक्षस ! सुनो, मेरे कहने से सरस्वती देवी तुम्हारे ऊपर अवश्य प्रसन्न होगी ॥४०-४२॥

ब्रह्मा बोले—‘ऐसा ही कहूँगा’ यह कहकर वह परशु त्रिभुवन-पावनी गंगा में स्नान कर पवित्र हो एकान्न भन से गंगा के सम्मुख बैठ गया । उसने दिव्य रूप वाली दिव्य गंध और अमराग (लेप) से युक्त तथा ससार का धारण-पोषण करने वाली सरस्वती को, शाकल्य के वचन के अनुसार स्थित देखा, निष्पाप एवं विनीत परशु ने जगत् की जडता को दूर करने वाली, विश्व-जननी और भुवनेश्वरी उस सरस्वती से कहा ॥४३-४५॥

परशु ने कहा—गुरु शाकल्य ने मुझसे कहा है कि लक्ष्मीपति गरुडध्वज विष्णु की स्तुति करो । अतः आपकी कृपा से जिस प्रकार मुझमें वैसी शक्ति हो, वैसा ही आप करें ॥४६॥

ब्रह्मा बोले—उस भी सरस्वती ने परशु से कहा कि ऐसा ही हो । सरस्वती की कृपा से परशु उस जनार्दन भगवान् की विविध वाक्यों से स्तुति करने लगा । तब हरि उसके ऊपर प्रसन्न हो गये और कृपा-सागर जनार्दन ने राक्षस को वरदान दिया ॥४७-४८॥

जनार्दन बोले—राक्षस ! तुम्हारे जो जो मनोरथ हैं, वे सब पूरे हो जाएंगे ॥४९-५०॥

ब्रह्मा बोले—शाकल्य, गौतमी, सरस्वती तथा नरसिंह की कृपा से उस परम पापी परशु ने भी स्वर्ग

पापिष्ठोऽपि तदा रक्ष परशुदिवमेयिवान् । सर्वतीर्थार्द्राधिपद्मस्य प्रसादाच्छाङ्गधन्वन ॥५१॥
तत प्रभृति तत्तीर्थं सारस्वतमिति श्रुतम् । तत्र स्नानेन दानेन विष्णुलोके महीयते ॥५२॥
वाग्जवेष्णवशाकल्यपरशुप्रभवाणि हि । बहून्यभूवस्तोर्षानि 'तस्मिन्व' श्वेतपर्वते ॥५३॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये श्वेतपर्वतस्थशाकल्यादितीर्थ-
वर्णनं नाम त्रिषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१६३॥
श्रीतमीमाहात्म्ये चतुर्नवतितमोऽध्यायः ॥१४॥

अथ चतुःषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः

चिच्चिकतीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच'

चिच्चिका (ब) तीर्थमित्युक्त सर्वरोगविनाशनम् । सर्वचिन्ताप्रहरण सर्वशाक्तिकरं नृणाम् ॥१॥
तस्य स्वरूपं धक्ष्यामि शृध्रे तस्मिन्नगोत्तमे । गङ्गाया उत्तरे पारे यन्द्देवो गदाधर ॥२॥

को प्राप्त किया और सकल तीर्थों को अपने चरण कमल में बसाने वाले विष्णु की कृपा से वह तीर्थ तब से सार-
स्वत तीर्थ नाम से प्रसिद्ध हो गया । वहाँ स्नान करने और दान देने से मनुष्य विष्णु लोक में पूजित होता है । उस
श्वेतपर्वत पर सारस्वत वैष्णव शाकल्य और परशु राक्षस के नाम से प्रसिद्ध और भी बहुत से तीर्थ हैं ॥५०-५३॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में श्वेतपर्वत पर अवस्थित शाकल्य आदि तीर्थों का वर्णन
नामक एकसी तिरसठवाँ अध्याय समाप्त ॥१६३॥

अध्याय १६४

चिच्चिकतीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा बोले—मनुष्यः कस्य रोगा को नष्ट करने वाला सब चिन्ताओं को दूर करने वाला तथा सब प्रकार
की गाति देने वाला चिच्चिक तीर्थ नामक एक तीर्थ है । उसके स्वरूप का वर्णन मैं कर रहा हूँ । गंगा के उत्तर
तट पर जहाँ देव गंगाधर निवास करते हैं उस उत्तम शुद्ध पर्वत पर चिच्चिक नामक मातमोजा पक्षि राज—त्रिसको

चिच्चिक' पक्षिराद् तत्र भेरुण्डो योऽभिधीयते । सदा वसति तत्रैव मांसाशी श्वेतपर्वते ॥३॥
 नानापुष्पफलाकीर्णः सर्वतुङ्गसुमर्नगः । सेविते द्विजमुख्येऽथ गीतम्या चोपशोभिते ॥४॥
 सिद्धचारणगन्धर्वकिन्नरामरसकुले । तत्समीपे नग कश्चिद्द्विपदा च चतुष्पदाम् ॥५॥
 रोगातिक्षुत्तुपाचिन्ताभरणानां न भाजनम् । एव गुणान्विते शैले नानामुनिगणावृते ॥६॥
 पूर्वदेशाधिपः कश्चित्पवमान इति श्रुत । क्षत्रधर्मरतः श्रीमान्देवब्राह्मणपालकः ॥७॥
 बलेन महता युक्तः सपुरोधा धन ययी । रमे स्त्रीभिर्मनोज्ञाभिर्नृत्यवादित्रजः सुखं ॥८॥
 स च एवं धनुष्पाणिमृगयाशोलिभिवृत्तः । एव भ्रमन्कदाचित् आन्तो द्रुममुपागतः ॥९॥
 गीतमीतीतरसंभूतं नानापक्षिगणैर्वृतम् । आधमाणां गृहपति धर्मजमिव सेवितम् ॥१०॥
 तमाश्रित्य नगश्रेष्ठं पवमानो नृपोत्तमः । स विश्रान्तो जनवृत् ईक्षा चक्रे नगोत्तमम् ॥११॥
 तत्रापश्यद्विजं स्थूलं द्विमुखं शोभनाकृतिम् । चिन्ताविष्टं तथा श्रान्तं तमपृच्छनृपोत्तमः ॥१२॥

राजोवाच

को भवान्द्रिमुख पक्षी चिन्तावानिव लक्ष्यसे । नैवान् कश्चिद्दुःखार्तं कस्मात्स्वं दुःखमागतः ॥१३॥

भेरुण्ड नी कहते हैं—सर्वदा निवास करता था । नाना पुष्प और फलों से भरे, सब ऋतु के फूलों और वृक्षों से युक्त एव गीतमी से सुशोभित उस पर्वत पर मुख्य द्विज (ब्राह्मण या पक्षी) सिद्ध, चारण, गन्धर्व, किन्नर और देवता सर्वदा निवास करते थे । उसके समीप ही कोई वृक्ष था जहाँ जाने से किसी मनुष्य या चार पैर वाले (चतुष्पद जन्तु) को रोग, दुःख, मूल, प्यास, चिन्ता और मृत्यु का भय नहीं रहता था । ऐसे गुणों से युक्त और अनेकों मुनियों से सुशोभित उस पर्वत पर वह पक्षी भी रहता था । एक दिन कोई पवमान नामक पूर्व देश का अधिपति, क्षत्रिय-धर्म-परायण, श्रीमान्, देवी और ब्राह्मणों का पालक राजा अपने असह्य वैनिकों और पुरोहित के साथ वन में आया । (वहा मनोहर स्त्रियों के साथ नृत्य वाद्य-जन्म मुखों का अनुभव करता हुआ वह विहार करने लगा) इस प्रकार एक दिन वह अपने अनुचर दिकारियों के साथ हाथ में धनुष लिये हुये घूमता हुआ वना सा उस वृक्ष के नीचे आया, जो गीतमी के तट पर अनेक पक्षियों से भरा हुआ था और आधमवासियों के लिये धमजाता गृहपति के समान (मोजनदाता) था । उस वृक्ष के नीचे आकर उस नृप-श्रेष्ठ पवमान ने अपने अनुचरों के सहित विधाम किया, और उस पर्वत की ओर दृष्टि दीवाई । उस पर्वत पर उसने स्थूल परन्तु सुन्दर आकार और दो मुख वाले पक्षी को देखा, जो वका हुआ-सा चिन्तातुर था । नृपोत्तम ने उस पक्षी से पूछा ॥११॥

राजा ने कहा—तुम दो मुख वाले पक्षी कौन हो ? क्यों चिन्ताकुल-से दिखाई देते हो ? यहाँ कोई दुःखी नहीं दिखाई देता । फिर तुम इतने दुःखी क्यों हो ? ॥१३॥

ब्रह्मोवाच

तत प्रोवाच नृपति पवमान शनं शनं । समाश्वस्तमना पक्षी चिच्चिको^१ नि श्वसन्मुहु ॥१४॥

चिच्चिक उवाच

मत्तो भय न चान्येषा मम वाऽन्योपपादितम् । नानापुष्पफलाकीर्णं मुनिभि परिसेवितम् ॥१५॥

पश्येय शून्यमेवाद्रि तत शोचामि भामहम् । न लभामि सुख किञ्चिन्न तृप्यामि कदाचन ॥

निद्रा प्राप्नोमि न क्वापि न विभ्रान्ति न निर्वृतिम् ॥१६॥

ब्रह्मोवाच

द्विमुखस्य द्विजस्योक्त श्रुत्वा राजाऽतिविस्मित ॥१७॥

राजोवाच

को भवान्कि कृत पाप कस्माच्छून्यश्च पर्वत । एकेनाऽऽस्येन तृप्यन्ति प्राणिनोऽन नगोत्तमे ॥१८॥

किमुताऽऽस्यद्वयेन त्व न तृप्तिमुपपास्यसि । किंवा ते दुष्कृत प्राप्तमिह जन्मव्ययो पुरा ॥१९॥

तत्सर्वं शत मे सत्य आस्ये त्वा नहतो भयात् ॥२०॥

ब्रह्मोवाच

राजान त द्विज प्राह नि श्वसन्नय चिच्चिक^१ ॥२१॥

ब्रह्मा ने कहा—इसके बाद उस चिच्चिक पक्षी ने अपने को समझाया और बार-बार लयी आह मरता हुआ वह राजा पवमान से धीरे धीरे बोला ॥१४॥

चिच्चिक ने कहा—मुझसे किसी दूसरे को मय नहीं और न मुझको ही किसी दूसरे का मय है । परन्तु मुनिजनोंसे सेवित और रत्न विरग के फूलों और फलों से सुगोमित यह पर्वत मुझ सूना-सा दिखाई देता है । इसीलिये मुझको अपने ऊपर शोक होता है । यहाँ न तो मुझ सुख मिलता है न कभी आत्म-तृप्ति न नींद और न कहीं विश्राम या शांति ही मिलती है ॥१५ १६॥

ब्रह्मा बोले—उस दो मुख वाल पक्षी की वही हुई बातों को सुनकर राजा विस्मित हो गया ॥१७॥

राजा बोला—आप कौन हैं ? आपने कौन सा पाप किया है ? क्यों आपके लिए पर्वत शून्य है ? इस उत्तम पर्वत पर प्राणी अपने एक मुखसे तृप्त हैं । फिर आप दो मुख रखते हुए भी क्यों नहीं तृप्त हो रहे हैं ? अथवा इस जन्म में या पूर्वजन्म में कौन सा पाप किया है ? आप सब बातें सत्य रूप से कहिये । मैं आपको सब महान सक्ती से बचाऊँगा ॥२०॥

ब्रह्मा बोले—इतना सुनने के बाद पक्षी चिच्चिक ने दीर्घश्वास लेते हुए उस राजा से कहा ॥२१॥

चिच्छिव उवाच

यक्ष्यः त्वां पूषवृत्तं पवमानं नृण्युत्तं । अहं द्विजातिप्रयरो वेदवदाङ्गपारग ॥२२॥
 कुलीनो विदितप्राज्ञः सायहन्ता वृत्तिप्रियः । यद्व पुरस्तथा पृष्ठे अयदयच्च जतुषु ॥२३॥
 परपृष्ठपां सदा दुष्टो मायया विदययश्चकः । श्रुतपन्नं सत्परहितं परनिदायिचक्षणः ॥२४॥
 मित्रस्वामिगुरोरो ह्यम्भाचारातिनिषुणः । मनसा वमणा साचा तापयामि जनामहूतः ॥२५॥
 अयमयं विनोदो मं सदा परपरिहृताम् । युग्मभेदं गणोच्छेदं मर्यादाभेदनं सदा ॥२६॥
 परोमि निर्विचारो ह्यद्विदत्तवापराद्भुतः । न भया सद्गुणं वदधिपातरो भुवनत्रये ॥२७॥
 तनाहं द्विमुखो जातस्तापाददुःखमाप्यहम् । तस्माददुःखं सतप्तं नृणोऽयं पवतो मम ॥२८॥
 अयच्च नृणुं भूपात्रं धावयं धर्मायसहितम् । ब्रह्महत्यासमं पापं तद्विना तदवाप्यते ॥२९॥
 क्षत्रियं सगरं गत्वा अययाज्यं सगरात् । पलायन्तं ग्यस्तं ह्यत्र विश्वस्तं च पराद्भुतसम् ॥३०॥
 अधिज्ञानं चोपविष्टं विभ्रमोति च यादिनम् । तं यदि क्षत्रियो ह्यात्स तु स्यादब्रह्मपातकम् ॥३१॥
 अधीतं विस्मरति यस्तु परोति तथोत्तमम् । अनादरं च गुरोषु तमाद्ब्रह्मपातकम् ॥३२॥
 प्रत्यग्ने च प्रियं वृत्तिं परोऽपि परपाणिं च । अन्यद्विदं यच्चस्थायकरोत्ययत्तदंयं यः ॥३३॥
 गृह्णतां पापयक्तां दृष्ट्वा ब्राह्मणनिदधः । मिथ्या विनोतं पापात्मा स तु स्यादब्रह्मपातकः ॥३४॥

चिच्छिव श्लोकाः—पवमान ! मत्तुमसं पूष वा वृत्तात् बहुला उभयमुनो । मैं पहले ब्रह्म-विद्या या पारदर्शी ज्ञान ब्राह्मण था । कुलीन विद्वान् तो था परन्तु दूसरे वाच्यों को बिगड़ाने वाला तथा क्षणशूल था । त्रोगा के महार को दूता था मान बहता था परन्तु पीठ पीछे दूसरी । दूसरा की बातों स सदा दुखी रहता था अपनी धृतिता स सत्तार को ठगा करता था और श्रुतपन्न अज्ञ-यवादी परनिदा-मंडित मित्र स्वामी और गुरु स ब्राह्मण करने वाला दुरिद अति घृणित वाय करने क्षात्र और मन वचन तथा वम से बहुल श्लोका को पृष्ठ पढ़ाता था । यही मेरा सबदा वा मनवहलाव था कि दूस । वा पृष्ठ दना । म विद्वाना की सवा स पराङ्मुख रहकर बिना विचारे दो जना म पट हाजता समान म भेज उगड करता और मर्यादा का उल्लंघन आदि करता था सारा "यह हि" मेरे समान निभवन म को पापो नष्ट था उसके पत्ररूपय म दा मुख वाला पक्षी हुआ । दूसरी का पीठा पढ़वाने से दुखी हूँ गलिय दुःख सतत मरे गये यह पवत नृय है ॥२२-२८॥ मपाल ! अब धर्माय से भवत धात मुनो ब्रह्म हय के सम न पाप ब्रह्म हत्या करने से भी होते हैं (जैसे) क्षत्रिय यद्ध म जाकर या यद्ध म अयन मागत हये गरण म आयै हय विन्व सपात्र रण विमल अपरिचित बठ हुये और म डरता हूँ एता कहने वाल था यदि मारे ता वं ब्रह्म पातक कहा ज ता है जो अध्ययन किम हूए (सार) को म जाता है अष्ट-यवित को तुम महार पुकारता है और मरजना का अनादर करता है वह ब्रह्मपातक ह । जो रामने प्रिय श्रोता है किन्तु पीठ पाठ नष्ट और को सन स हूछरी सचन म हूछरी और लपक सन हूछरी ही बात करता है और ओमर का पाप लने वाला द्वय करने वाला ब्राह्मणों की निंदा करने वाला मिथ्या विनात तथा पापात्मा है ये ब्रह्मपातक होते हैं जो देवता वेद अध्या मज्ञान धर्म तथा ब्राह्मण की सगति की द्वय से निंदा करता

वेवं वेदमथाध्यात्मं धर्मब्राह्मणसंगतिम् । एताद्विन्दति यो द्वेपात्स तु स्याद्ब्रह्मघातकः ॥३५॥
 एवं भूतोऽप्यहं राजन्दम्भार्थं लज्जया तथा । सद्धत इव यत्तेऽहं तस्माद्वाजन्द्भिर्जोऽभवम् ॥३६॥
 एवं भूतोऽपि सत्कर्म किञ्चित्कर्ताऽस्मि कुनचित् । तेनाहं कर्मणा राजन्स्वतः स्मर्ता पुरा कृतम् ॥३७॥

ब्रह्मोवाच

तच्चिच्चिकवच श्रुत्वा पवमानः सुविस्मितः । कर्मणा केन ते मुक्तिरित्याह नृपतिर्द्विजम् ॥३८॥
 इति तस्य वचः श्रुत्वा नृपतिं प्राह पक्षिराट् ॥३९॥

चिच्चिक उवाच

अस्मिन्नेव नगथेष्टे गीतम्या उत्तरे तटे । गदाधरं नाम तीर्थं तत्र मानय सुव्रत ॥४०॥
 तद्वि तीर्थं पुण्यतमं सर्वपापप्रणाशनम् । सर्वकामप्रदं चेति महद्भिर्मुनिभिः श्रुतम् ॥४१॥
 न गीतम्यास्तथा विष्णोरपरं क्लेशनाशनम् । सर्वभावेन तत्तीर्थं पश्येयमिति मे मतिः ॥४२॥
 मट्टतेन प्रयत्नेन मंतच्छब्दं कदाचन । कथमाकाङ्क्षितप्राप्तिर्भवेद्बुद्धकर्मणाम् ॥४३॥
 सप्रयत्नोऽप्यहं वीर न पश्ये तत्सुदुष्करम् । तस्मात्तव प्रसादाच्च पश्येयं हि गदाधरम् ॥४४॥
 अविज्ञापितदुःखं कष्टावरुणालयम् । यस्मिन्दृष्टे भवक्लेशा न बुध्यन्ते पुनर्नरैः ॥४५॥
 बुद्धवैव तं विद्यं यास्ये प्रसादात्तव सुव्रत ॥४६॥

है, वह ब्रह्मघातक हाना है। राजन् 'इस प्रकार का होता हुआ भी मैं इसमें के लिये अथवा लोकलज्जावश
 सदाचारी की तरह ब्राह्म व्यवहार करता था। राजन् ' इर्मालिप मैं पक्षी हुआ। ऐसा होता हुआ भी
 मैं कहीं-रही कभी सत्कर्म कर देना था। उन वर्मों के प्रभाव से ही मुझे पूर्व के विषय हुए वर्मों का स्वतः
 स्मरण है ॥३९-३७॥

ब्रह्मा बोले—चिच्चिक की बात सुन कर राजा पवमान अतिविस्मित हो गया। उसने पत्नी से कहा—
 'किन कर्म से तुम्हारी मुक्ति हुई गयनी है? उसकी बात सुनकर पक्षिराज ने राजा से कहा ॥३८-३९॥

चिच्चिक ने कहा—इसी पर्वत श्रेष्ठ पर गीतमी के उत्तर तट पर गदाधर नामक एक तीर्थ है। सुव्रत ।
 वही मुझको ल चला। वह तीर्थ अनिपवित्र, सब पापों को दूर करने वाला तथा सब कामनाओं का दन वाला
 है, ऐसा महामुनियों से हमने सुना है। गीतमी एवं विष्णु मन्त्रकर दूसरा कोई पाप का नष्ट करनेवाला नहीं
 है। इसलिए मेरा विचार है कि उस तीर्थ का बड़ी श्रद्धा से देखूँ। वह मेरे प्रयत्न से कभी भी नहीं हो सकता।
 मगर, दुष्कर्म करने वालों को किस प्रकार प्राप्त हो सके हैं? वीर! प्रयत्न करने पर भी मैं उस अत्यन्त कठिन
 कार्य को सिद्ध नहीं देखता हूँ। अब मैं तुम्हारी गहायना और कृपा से ही सबवान् गदाधर को देख सकता हूँ,
 जो स्वयं दूसरों के दुःखा को जानने वाले और करुणा का सागर हैं तथा किनका दान पा जाने पर मनुष्य पुनः
 मामासिक कष्टों के फन्दे में नहीं पड़ने हैं। सुव्रत! तुम्हारी कृपा से उनका दान करते ही मैं स्वयं को चला
 पाऊँगा ॥४०-४६॥

ब्रह्मोवाच

एवमुक्तः स 'नृपतिश्चिच्चिकेन द्विजन्मना । दर्शयामास तं देवं तां च गङ्गां द्विजन्मने ॥४७॥
ततः स चिच्चिकः' स्नात्वा (प्राह) गङ्गां त्रैलोक्यपावनीम् ॥४८॥

चिच्चिक उवाच

गङ्गे गीतमि यावत्त्वां त्रिजगत्पावनीं नरः । न पश्यत्युच्यते तावदिहामुग्रापि पातकी ॥४९॥
तस्मात्सर्वासमपि मामुद्धर सरिद्धरे । ससारे देहिनामन्या न गतिः काऽपि कुत्रचित् ॥
त्वां विना विष्णुचरणसरोरुहसमुद्भवे ॥५०॥

इति श्रद्धाविशुद्धात्मा गङ्गकशरणो द्विजः । स्नानं चक्रे स्मरन्तर्गतं ज्ञे त्रायस्व मामिति ॥५१॥

ब्रह्मोवाच

गदाधरं ततो नत्वाऽऽ पश्यत्सु नगवात्सियु । पवमानाम्यनुजातस्तदंशं दिवमाक्रमत् ॥५२॥
पवमानः स्यनपरं प्रययो सानुगस्ततः । ततः प्रभृति तत्तीर्थं पावमानं 'सचिच्चिकम् ॥५३॥
गदाधरं कोटितोयंमिति श्वेदविदो विदुः । कोटिकोटिगुणं कर्म कृतं तत्र भवेन्मुणाम् ॥५४॥

इति महापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये पावमानचिच्चिकगदाधरकोटितोयंवर्णनं

नाम चतुःषट्पदधिकशततमोऽध्यायः ॥१६४॥

गीतमीमाहात्म्ये पञ्चनवतितमोऽध्यायः ॥१५॥

ब्रह्मा बोले—पक्षी चिच्चिक ने उस नृपति से ऐसा कहा और राजा ने उस पक्षी को उस देव गदाधर और गीतमी गंगा का दर्शन करा दिया । तदनन्तर चिच्चिक ने गीतमी में स्नान कर उस त्रैलोक्य-पावनी गंगा से कहा ॥४७-४८॥

चिच्चिक ने कहा—गङ्गे ! गीतमी ! मनुष्य जब तक त्रिभुवन-पावनी तुमको नहीं देखता है तभी तक उसको इस लोक में या परलोक में पापी कहा जाता है । इसलिये श्रेष्ठ नदी ! इस प्रकार अपराध करने वाले मेरा भी उद्धार करो । हे विष्णु के चरणकमल से उत्पन्न होने वाली ! इस ससार में तुम्हारे बिना देहचारियों के लिये कहीं पर और कोई सहारा (गति) नहीं है ॥४९-५०॥

ब्रह्मा बोले—इस प्रकार श्रद्धा से विशुद्ध आत्मा वाले, और एकमात्र गंगा की शरण में रहने वाले उस ब्राह्मण ने 'गङ्गे' मेरी रक्षा करो इस प्रकार हृदय में ध्यान करते हुए गंगा में स्नान किया । तत्पश्चात् भगवान् गदाधर को नमस्कार कर पर्वतनिवासियों के देखते देखते उसी समय वह पक्षी पवमान से विदा की आज्ञा लेकर स्वर्ग को चला गया । तब पवमान भी अनुचरों के साथ अपने नगर को चला गया । उस समय से वह तीर्थ पवमान चिच्चिक और कोटितोयं इन नामों से वेदज्ञों द्वारा पुकारा जाने लगा । वहाँ मनुष्य ने किये हुए कर्म कोटि कोटि गुना फल देते हैं ॥५१-५४॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में पवमान चिच्चिक-गदाधर-तीर्थ-वर्णन नामक
एक सौ चौठवाँ अध्याय समाप्त ॥१६४॥

अथ पञ्चषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः

भद्रतीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

भद्रतीर्थमिति प्रोक्तं सर्वानिष्टनिवारणम् । सर्वपापप्रशमनं महाशान्तिप्रदायकम् ॥१॥
आदित्यस्य प्रिया भार्या उषा त्वाष्ट्री पतिव्रता । छायाऽपि भार्या सवितास्तस्याः पुनः शनैश्चरः ॥२॥
तस्य स्वसा विष्टिरिति भीषणा पापहृषिणी । तां कन्यां सविता कस्मै ददामोति मतिं दधे ॥३॥
यस्मै यस्मै दातुकामः सूर्यो लोकगुरुः प्रभुः । तच्छ्रुत्वा भीषणा चेति किं कुर्मो भार्ययाऽनया ॥४॥
एवं तु वर्तमाने सा पितरं प्राह दुःखिता ॥५॥

विष्टिरुवाच

बालामेव पिता यस्तु दद्यात्कन्यां सुरुषिणे । स कृतार्थो भवेत्लोके न चेद्दुष्कृतवान्पिता ॥६॥
चतुर्थाद्विस्तराद्रुध्वं यावन्न दशमात्ययः । तावद्विवाहः कन्यायाः पित्रा कार्यं प्रयत्नतः ॥७॥
धीमते विदुषे यूने कुलीनाय यशस्विने । उदाराय सनाथाय कन्या देया वराय वै ॥८॥
एतच्चेन्नन्यथा कुर्यात्पिता स निरयो सदा । धर्मस्य साधनं कन्या विदुषामपि भास्कर ॥९॥
नरकस्येव मूर्खाणां कामोपहतचेतसाम् । एकतः पृथिवी कृत्स्ना सशैलवनकानना ॥१०॥

अध्याय १६५

भद्रतीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा धोले—सब अनिष्टों को दूर करने वाला, सब पापों को शान्त करने वाला तथा महान शान्ति को देने वाला भद्रतीर्थ नामक एक तीर्थ है । त्वष्टा की पुत्री त्वाष्ट्री सूर्य की प्रिय एवं पतिव्रता भार्या थी । छाया भी उन्हीं की भार्या थी जिसका पुत्र शनैश्चर है । उसकी अति कुरूप और भयकर आकार वाली विष्टि नाम की बहिन थी । सूर्य 'वह कन्या को जिसे दूँ' यह सोचने लगे । लोक गुरु प्रभु सूर्य जिस-जिसको देना चाहते थे सभी मुनिकर मही महते थे कि 'ऐसी भीषण भार्या को लेकर हम क्या करेंगे' । यह दशा देख कर एक दिन विष्टि दुःखी होकर पिता से धोली ॥१-५॥

विष्टि ने कहा—जो पिता अपनी बाला (छोटी अवस्था की) कन्या सुरुप वर को देता है वह लोक में कृतकृत्य हो जाता है, अन्यथा पिता पाप का सामी होता है । चौथे वर्ष के बाद जबतक दसवाँ न बीत जाय तब तक पिता को कन्या का विवाह मत्तपूर्वक कर देना चाहिए । धीमान्, विद्वान्, युवक कुलीन, यशस्वी, उदार और माता-पिता या अभिभावक वाले घर को ही कन्या देनी चाहिये । जो इसके विपरीत कार्य करता है वह सर्वदा नरक भोगता है । भास्कर ! विद्वानों के लिये भी कन्या धर्म का साधन है । नाम से दध्व हृदय वाले मूर्खों के लिए कन्या नरक का

स्वलंकृतोपाधिहोना सुकन्या चकतः स्मृता । विक्रीणीते यश्च कन्यामश्वं वा गां तिलानपि ॥११॥
 न तस्य रौरवादिभ्यः कदाचिन्निष्कृतिर्भवेत् । विवाहातिश्रमः कार्यो न कन्यायाः कदाचन ॥१२॥
 तस्मिन्कृते यत्पितुः स्यात्पापं तत्केन कथ्यते । यावत्लज्जां न जानाति यावत्कीडति पांडुभिः ॥१३॥
 तावत्कन्या प्रदातव्या नो चेत्पितरोरधोगतिः । पितुः स्वरूपं पुनः स्याद्यः पिता पुन एव सः ॥१४॥
 आत्मनः सुखिता लोके को न कुर्यात्करोति च । यत्कन्यायां पिता कुर्याद्दानं पूजनमीक्षणम् ॥१५॥
 यत्कृतं तत्कृतं विद्यात्तासु दत्तं तदक्षयम् । यदत्तं तासु कन्यासु तदानन्त्याय क्षत्पते ॥१६॥
 पुत्रेषु चैव पौत्रेषु को न कुर्यात्सुखं रवे । करोति यः कन्यकानां स संपद्भाजनं भवेत् ॥१७॥

ब्रह्मोवाच

एवं तां वादिनीं कन्यां विष्टिं प्रोवाच भास्करः

॥१८॥

सूर्य उवाच

किं करोमि न गृह्णाति स्वाकश्चिद्भीयणाकृतिम् । कुलं रूपं वयो वित्तं विद्यां वृत्तं सुशीलताम् ॥१९॥

मियः पश्यन्ति सन्ध्ये विवाहे स्त्रीषु पुत्रे च । अस्मासु सर्वमप्यस्ति विना तव गुणैः शुभे ॥

किं करोमि वदस्वामि वृथा मा धिक्करोमि किम्

॥२०॥

साधन है। एक ओर सौल, वन तथा उपवन से युक्त सम्पूर्ण पृथिवी है तो दूसरी ओर अलकारी से अलंकृत विकार-
 हीन सुकन्या। जो व्यक्ति कन्या, अथवा भी और तिल को बेचता है, उसका रौदव आदि नरक से कभी भी छडार
 नहीं होता। साथ ही कन्या के विवाह-वय का अतिक्रमण कभी भी नहीं होना चाहिये। ऐसा करने से कन्या के पिता
 की जो पाप होता है, उसको भीन कह सकता है? जब तक कन्या लज्जा करना नहीं जानती, जब तक वह घूल मिट्टी
 से खेलती रहती है, तब तक कन्या का दान बर देना चाहिये। यदि ऐसा नहीं होता तो पिता-माता की अधोगति
 होती है। पिता का स्वरूप पुन है। जो पिता है वही पुत्र है। लोक में अपने को सुखी बनाना बौन नहीं चाहेंगा
 या नहीं चाहता? परन्तु पिता कन्या के लिये जो कुछ दान, पूजन, दशन (बर निरीक्षण) आदि करता है वही
 करना (कार्य) उत्तम समझा जाता है। जो कन्या के लिये दिया जाता है वह अक्षय दान है और वह अतन्त
 फल प्रदान करता है। रवि। पुन और भीन के सुख के लिये कौन नहीं प्रयत्न करता परन्तु जो कन्या के सुख
 के लिये प्रयत्न करता है वही सम्पत्ति का त्रियपान होता है अर्थात् वही धनवान् होता है ॥१६-१७॥

ब्रह्मा बोले—इस प्रकार कहने वाली उस कन्या विष्टि से भास्कर ने कहा ॥१८॥

सूर्य ने कहा—क्या करूँ? तुम भयङ्कर आकृति वाली को कोई भी ग्रहण करने के लिये तैयार नहीं
 होता। स्त्री और पुत्रों के विवाह में परस्पर के कुल रूप अवस्था, धन विद्या, व्यवहार और सौजन्य को देखा
 जाता है। सुभे! हम लोगों में और सब कुछ है परन्तु केवल तुममें कोई गुण नहीं है। क्या करूँ? कहाँ तुमको
 दूँ? कयो वृथा मुझे धिक्कार रही हो? ॥१९-२०॥

१घ. ०न्यापे पि०। ड. ०न्याया. पि०। २ड. तद्दानं क्षुप्यमुच्यते। च. तद्दानं पुण्यमुच्यते।

ब्रह्मोवाच

एवमुक्त्वा पुनस्ता च विष्टिं प्रोवाच भास्कर

॥२१॥

सूर्य उवाच

यस्मै कस्मै च दातव्या त्व वै यद्यनुमन्यते । दीयसेऽथ मया विष्टे अनुजानोहि मा तत ॥२२॥

ब्रह्मोवाच

पितर प्राह सा विष्टिर्भर्ता पुना धन सुखम् । आयू रूप च सप्रीतिर्जायते प्रावतनानुगम् ॥२३॥

यत्पुरा विहितं कर्म प्राणिना साध्यसाधु वा । फल तदनुरोधेन प्राप्यतेऽपि भवात्तरे ॥२४॥

स्वदोष एव तत्पिना परिहर्तव्य आदरात् । तादृगेव फल तु स्याद्यादृगाचरित पुरा ॥२५॥

तस्मात्तद्दानसंयन्ध स्ववशानुगत पिता । करोति शेष देवेन यद्भाव्य तद्भूविष्यति ॥२६॥

ब्रह्मोवाच

तच्छ्रुत्वा कुहिलुर्वाक्य त्यष्टु पुत्राय भीषणाम् । विश्वरूपाय ता प्रादाद्विष्टिं लोकभयकरीम् ॥२७॥

विश्वरूपोऽपि तद्वच्च भीषणो भीषणाकृतिः । एव मिथ सचरतो शीलरूपसमानयो ॥२८॥

प्रीति कदाचिद्वैद्यस्य वपत्योरभवन्मिय । गण्डो नामाभवत्पुत्रो हृदयतिगण्डश्चैव च ॥२९॥

रयताक्ष क्रोधनश्चैव ध्ययो दुर्मुख एव च । तेभ्य कनीयानभवद्वर्षणो नाम पुण्यभाक् ॥३०॥

ब्रह्मा बोले—एसा कहवर पुन भास्कर ने उस विष्टि से कहा ॥२१॥

सूर्य ने कहा—तुम यदि इस बात कलिय अनुमति दो कि जिस किसी के हाथों मुझ में श्रिया जाय ता आज ही मैं किमा का द देता हूँ । विष्टि ! केवल मुझ अपनी स्वीकृति दो । ॥२२॥

ब्रह्मा बोले—उस विष्टि ने अपने पिता से कहा—भता पुत्र धन सुख आयू रूप प्रीतिसमपहृन् क विय गये कर्त्रोक्त अनुसार ही हाते हैं । प्राणी पूव जन्म में जो अच्छा या बुरा काम करते हैं दूसरे जन्म में भी उगा के अनुसार फल पत हैं । इसलिये पिता का आदर पूवक अपन दोषों का ही परिहार करना चाहिये । फल ता वैसा ही होगा जैसा कि पूव जन्म में किया गया है । इसलिये पिता अपने बग के अनुरूप ही क्या दान-सम्बन्ध करे गये देव के अनुसार जोहाने सोहागा वह होगा ही ॥२३ २६॥

ब्रह्मा बोले—पुत्री की बात सुनकर सूर्य ने उस लोच भयङ्करी विष्टि को त्वष्टा पुत्र विश्वरूप के हाथ दे दिया । विश्वरूप भा उसी की तरह भयवर और भीषण आकार वाला था । इस प्रकार समान स्वभाव और रूप वाले दोनों परस्पर प्रीतिपूवक व्यवहार करने से परन्तु किसी समय उन दोनों दम्पति में वषम्य (मन मुटाव) हो गया । उनसे गण्ड अतिगण्ड रयताक्ष वाघन ध्यय और दुर्मुख नामक पुत्र हुए । मगध छाटा हृषण नामक पुत्र पुण्यात्मा पा । बहुमुखील भाग्यवान् गात गुड हृदय और पवित्र पुत्र जिसी मगध मग गृन् का देखन

सुत सुशील सुभग शान्त शुद्धमति शुचि । स कदाचिद्यमगृह द्रष्टु मातुलमभ्यगात् ॥३१॥
स ददर्श बहूञ्जन्तून्स्वर्गस्यानिव दुःखिन । स मातुल तु पप्रच्छ नत्वा धर्मं सनातनम् ॥३२॥

हर्षण उवाच

क इमे सुखिनस्तात पच्यन्ते नरके च के ॥३३॥

ब्रह्मोवाच

एव पृष्टो धर्मराज सर्वे प्राह यथार्थवत् । तत्कर्मणा गतिं सर्वामशेषेण न्यवेदयत् ॥३४॥

यम उवाच

विहितस्य न कुर्वन्ति ये कदाचिदतिक्रमम् । न ते पश्यन्ति निरयं कदाचिदपि मानवा ॥३५॥
न मानयन्ति ये शास्त्रं नाऽऽचारं न ब्रह्मश्रुतान् । विहितातिशयं कुर्यान्ते ते नरकगामिन ॥३६॥

ब्रह्मोवाच

स तु श्रुत्वा धर्मवाक्यं हर्षण पुनरब्रवीत् ॥३७॥

हर्षण उवाच

पिता श्वाट्टो भीषणश्च माता विष्टिश्च भीषणा । भ्रातरश्च महात्मानो येन ते शातबुद्धय ॥३८॥
सुरुपाश्च भविष्यन्ति निर्दोषा मङ्गलप्रदा । तन्मे कर्म वदस्वाद्य तत्कृताऽस्मि सुरोत्तम ॥३९॥

के लिये मामा यम के यहा गया । उसने वहाँ बहुत से प्राणियों को स्वर्ग के समान सुख भोगते तथा बहुतो को दुःखी देखा । उसने मामा को प्रणाम कर उनसे सनातन धर्म के विषय में पूछा ॥२७-३२॥

हर्षण ने कहा—तात ! ये कौन हैं जो सुखी हैं और ये कौन हैं जो नरक में यान्त्रिक भोग रहे हैं ॥३३॥

ब्रह्मा बोले—इस प्रकार पूछने पर धर्मराज यम ने उनके कर्मों को सब शक्ति को ठीक-ठीक पूर्णरूप से कह दिया ॥३४॥

यम बोले—जो कमी भी विहित (उचित या वेद विहित) कर्मों को नहीं छोड़ते हैं वे मनुष्य कमी भी नरक में नहीं जाते हैं । जो शास्त्रों को नहीं मानते हैं आचार और ब्रह्मश्रुतों (पवित्रों) का आदर नहीं करते हैं और विहित कर्मों का उल्लंघन करते हैं वे नरकगामी होते हैं ॥३५-३६॥

ब्रह्मा बोले—उस हर्षण ने धर्मराज की बात सुनकर पुनः कहा ॥३७॥

हर्षण ने कहा—मेरे अग्रज भीषण पिता भीषण माता विष्टि तथा भाई जिस उपाय से शान्त-बुद्धि महात्मा, सुरुप निर्दोष और कल्याणदायक हो जायें उस कर्म को बतलाइये । सुरोत्तम ! मैं उन वार्यों को आज ही करूँगा । अथवा मैं उनके पास नहीं जाऊँगा । यह सुनकर धर्मराज ने उस बुद्धिबुद्धि हर्षण से कहा—तुम शास्त्र

अनया तान्न गच्छेममित्युक्तं प्राह धर्मराट् । हर्षणं शुद्धबुद्धि त हर्षणोऽस्ति न सशय ॥४०॥
 बहव स्य सुता केचिन्नैव ते कुलतन्त्रव । एक एव सुत कश्चिद्येन तदधियते कुलम् ॥४१॥
 कुलस्याऽऽधारभूतो यो य पित्रो प्रियकारक । य पूर्वजानुद्धरति स पुत्रस्त्वितरो गद ॥४२॥
 यस्मात्त्वयाऽनुरूप मे प्रोक्त मातामह प्रियम् । तस्मात्त्व गौतमीं गच्छ स्नात्वा नियतमानस ॥४३॥
 स्तुहि विष्णु जगद्योनि शान्त प्रीतेन चेतसा । स तु प्रीतो यदि भवेत्सर्वमिष्टं प्रदास्यति ॥४४॥

ब्रह्मोवाच

इति श्रुत्वा धर्मवाक्यं हर्षणो गौतमीं ययौ । शुचिस्तुष्ट्वा देवेश हरिं प्रीतोऽभयद्धरि ॥४५॥
 हर्षणाय' ततः प्रादात्कुलभद्रं ततस्तु स । सर्वाभद्रप्रशमनपूर्वकं भद्रमस्तु त ॥४६॥
 तद्ब्रूया प्रोच्यते विष्टिं पिता भद्रस्तया सुता । ततः प्रभूतिं तत्तीर्य भद्रतीर्य तदुच्यते ॥४७॥
 सर्वमङ्गलदं पुसा तत्र भद्रपतिर्हरिः । तत्तीर्यसेविनां पुसा सर्वसिद्धिप्रदायकम् ॥
 मङ्गलैकनिधिं साक्षाद्देवो जनार्दन ॥४८॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये भद्रतीर्थवर्णनं नाम

पञ्चपट्टपदिकशततमोऽध्यायः ॥१६५॥

गौतमीमाहात्म्ये पञ्चवर्तितमोऽध्यायः ॥१६॥

म हर्षण (आनन्द देन वाला) हो। कुल म बहुत स पुत्र हो जाते हैं परन्तु व कुलतन्त्र (कुल की मर्यादा बढाने वाले) नहीं होते। वह कोई एक ही पुत्र होता है जिससे कुल की रक्षा होती है। जा पुत्र कुल का आधारभूत है जो माता पिता का प्रिय करने वाला है और जो पूर्व पुरुषों का उद्धार करता है वही पुत्र है अथवा कुल के लिए विराति है। जिसलिए तुमने अपने मातामह को प्रिय लगने वाली और अनुरूप बात ममम पूछी है इसलिए तुम गौतमी का पास जाओ। उसमें स्नान कर एवाग्र होकर प्रसन्न चित्त स जगन् के आदि कारण मान विष्णु की स्तुति करो। वे यदि तुम पर प्रसन्न हो जायेंगे तो तुम्हारे सब मनारथों को पूरा कर देंगे ॥४८॥

ब्रह्मा बोले—धर्मराज की इन बातों को सुनकर हर्षण गौतमी के पास गया। पवित्र हाथों से हरि की स्तुति की। हरि उमकी स्तुति से प्रसन्न हो गये। उन्होंने हर्षण को कुल का मङ्गल वा वर्धन किया और कहा कि तुम लोगो का सब अमङ्गल नष्ट हो जाय तथा बन्धाण हो। इस कारण वह विष्टि मम पिता मम और पुत्र भी मम हो गय। उम समय से वह तीर्थ भद्रतीर्थ कहा जाता है। वहाँ मनुष्यों को सब प्रकार का बन्धाण दन वाल मङ्गल का एकमात्र कोण साक्षात् देवाधिप जनार्दन विष्णु निवास करने हैं। उम तीर्थ को सेवा करने का योग को सब प्रकार की सिद्धियाँ प्राप्ति होती हैं ॥४८॥

श्रीब्रह्ममहापुराण म भद्रतीर्थ वर्णनं नामक एव सो पैगम्बी अध्याय समाप्त ॥१६५॥

अथ पट्यपट्यधिकशततमोऽध्यायः

पतत्रितीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

पतत्रितीर्थमाख्यात रोषघ्नं पापनाशनम् । तस्य श्रवणमात्रेण कृतकृत्यो भवेन्नरः ॥१॥
 वभूवतुः कश्यपस्य सुताश्वरुणबोद्धरी । संपातिश्च जटायुश्च संभवेतां तदन्वये ॥२॥
 ताक्ष्यप्रजापतेः पुत्राश्वरुणो गयइस्तथा । तदन्वये च संभूतः संपातिः पतगोत्तमः ॥३॥
 जटायुरिति विख्यातो ह्यपरः सोदरोऽनुजः । अन्योन्यस्पर्धया युक्ताबुधमतीं स्ववलेन तौ ॥४॥
 सजगमनुदिनकरं नमस्कृतुं विहायसि । यावत्सूर्यस्य सामीप्यं प्राप्तौ तौ विहगोत्तमौ ॥५॥
 दग्धपक्षावुभौ श्रान्तोपतितौ गिरिमूर्धनि । बान्धवौ पतितौ दुष्ट्वा निश्चेष्टौ गतचेतसौ ॥६॥
 तावद्दुःखाभिभूतोऽसावश्वरुणः प्राह भारकरम् । तौ दुष्ट्वा श्वरुणः सूर्यं प्राहेदं पतितौ भुवि ॥
 आदयास्येतां तिग्मांसौ यावन्नंतो मरिष्यतः ॥७॥

ब्रह्मोवाच

तपेत्युक्त्वा दिनकरो जीवयामास तौ खगौ । गयइोऽपि तयोः श्रुत्वा अवस्थां सह विष्णुना ॥८॥
 आगत्याऽऽश्वासयामास सुखं चक्रे च नारद । सर्वे एव तदा जन्मुर्गङ्गा तापापनुत्तये ॥९॥

अध्याय १६६

पतत्रितीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा बोले—रोगी तथा पापी को नष्ट करने वाला पतत्रितीर्थ नामक एक प्रसिद्ध तीर्थ है । उसके (नाम को) सुनने से ही मनुष्य कृतकृत्य हो जाता है । कश्यप ने अश्वरुण और ईश्वर दोपुत्र हुए । उन्होंने कुल में सम्पाति और जटायु भी थे । ताक्ष्य प्रजापति ने पुत्र अश्वरुण और गयइ दिये । उस वक्ष में पक्षिष्वेष्ट संपाति भी हुआ । उसका जटायु नामसे विख्यात दूसरा छोटा सा भाई था । वे अपने बल से उन्नत थे और सर्वदा परस्पर प्रतिस्पर्धा (होड़) किया करते थे । व दोनो आकाश में भ्रमण करते नमस्कार करने के लिये उड़े । ज्यों ही दोनों पक्षि-ष्वेष्ट सूर्य के समीप गये त्यों ही उनके पंख जल गये और वे एक नगर पतत की चाटी पर गिर पड़े । अपने वन्धुओं को मूर्च्छित और निश्चेष्ट अवस्था में गिरते देखकर अश्वरुण को अत्यन्त दुःख हुआ । वह अश्वरुण दुःख से कातर हो भूमि पर गिरे उन दोनों की ओर लक्ष्य करके सूर्य से बोला— तीक्ष्ण किरण वाले ! इन चारों को बचाइये ताकि वे मरने न पायें ॥१-७॥

ब्रह्मा बोले—दिनकर ने ऐसा ही हो यह कहकर उन दोनों पक्षियों को जिला दिया । नारद ! विष्णु सहित गयइ ने भी उन दोनों की धोचनीय अवस्था का पता पाया और आकर उन दोनों को आश्वासन दिया और सुखी बनाया । तब सभी उसी समय ताप की शान्ति के लिये गंगा के पास गये । जटायु अश्वरुण, संपाति, गयइ,

जटाशुशवारुणश्चैव संपातिगंरुडस्तथा । सूर्यो विष्णुस्तत्प्रययौ तत्तीर्थं बहुपुण्यदम् ॥१०॥
पतत्रितोयमाख्यातं विपद्घ्नं सर्वकामदम् । स्वयं सूर्यस्तथा विष्णुः सुपर्णेनारुणेन च ॥११॥
आसते गौतमीतीरे तथैव धूपभध्वजः । त्रयाणामपि देवानां स्थितेस्तत्तीर्थमुत्तमम् ॥१२॥
तत्र स्नात्वा धुचिर्भूत्वा नमस्कुर्यात्सुरानिमान् । आधिव्याधिबिनिर्मुक्तः स परं सोऽह्यमाप्नुयात् ॥१३॥

इति श्रीमहमपुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये पतत्रितोयवर्णनं नाम षट्षष्ट्यधिक-
शततमोऽध्यायः ॥१६६॥

गौतमीमाहात्म्ये सप्तनवतितमोऽध्यायः ॥१७॥

अथ सप्तषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः

विप्रतीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

विप्रतीर्थमिति ह्यातं तथा नारायणं विदुः । तस्याऽऽख्यानं प्रवक्ष्यामि शृणु विस्मयकारकम् ॥१॥
अन्तर्वेद्या द्विजः कश्चिद्ब्राह्मणो वेदपारगः । तस्य पुत्रा महाप्राज्ञा गुणरूपदयान्विताः ॥२॥
तेषां कनीयान्यो ज्ञाता ज्ञान्तो गुणगणैर्वृतः । आसन्निव इति ह्यातः सर्वज्ञानो महामतिः ॥३॥

सूर्यस्य (स्वयं) विष्णु उक्तं स्थान पर गये । इसलिये अत्यन्त पुण्य देने वाला, विपाको दूर करने वाला और सब कामनाओं को पूर्ण करने वाला वह तीर्थ पतत्रितोय नाम से प्रसिद्ध हुआ गया । गौतमी के तीर पर उसी तीर्थ में अरुण और गरुड के साथ सूर्य तथा विष्णु एवं धूपभध्वज सब रहते हैं । तीनों देवों के रहने के कारण वह तीर्थ अति उत्तम तीर्थ हो गया है । उगम स्नान कर पवित्र हो जो इन देवों को नमस्कार करता है वह सम्पूर्ण आधिया और व्याधियों से छूट कर महान् सुख को प्राप्त करता है ॥८॥ १३॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में पतत्रितोय-वर्णन नामक एक सो छःछठवाँ अध्याय समाप्त ॥१६६॥

अध्याय १६७

विप्रतीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा बोले—विप्रतीर्थ नाम से प्रसिद्ध एक तीर्थ है, जिसको नारायणतीर्थ भी कहते हैं । उसका आश्चर्य-जनक आख्यान को कहता हूँ, सुनो—ब्रह्मवर्च (महः और यमुना के बीच के प्रदेश) में कोई वेदा का पारदर्शी ब्राह्मण रहता था । उसने पुत्र महाबुद्धिमान् गुण, रूप और दया सम्बन्धित । उनका छोटे भाई का नाम आस-न्निव था, जो ज्ञान, गुणवान्, सर्वज्ञ तथा महाबुद्धिमान् था । पिता आसन्निव के विवाह के लिये प्रयत्न कर रहे

विवाहाय पिता तस्मा आसन्दिवाय यत्नवान् । एतस्मिन्नन्तरे रात्रौ सुप्त त द्विजपुत्रकम् ॥४॥
 अविष्णुस्मरण सौम्यशिरस्कमसमाहितम् । आसन्दिव क्रूररूपा राक्षसी कामरूपिणी ॥५॥
 तमादायागमच्छीघ्र गीतम्या दक्षिणे तटे । श्रीगिरेरुत्तरे 'पारे बहुब्राह्मणसेवितम् ॥६॥
 नगर धर्मनिलय लक्ष्म्या निलयमेव च । तत्र राजा बृहत्कीर्ति सर्वक्षत्रगुणान्वित ॥७॥
 तस्यामितक्षेमसुभिक्षयुक्त, निशावसाने द्विजपुत्रयुक्ता ।
 सा राक्षसी तत्पुरमाससाद, मनोज्ञरूपाणि विभक्ति, नित्यम् ॥८॥
 सा कामरूपेण चरत्यशेषा, महीमिमा तेन सम द्विजेन ।
 गोदावरीदक्षिणतीरभागे, वृद्धाकृतिस्त द्विजमाह भीमा ॥९॥

राक्षस्युवाच

एषा तु गङ्गा द्विजमुख्य सध्या, उपास्यता विप्रवरं समेत्य ।
 यथोचित विप्रवरास्तु काले, नोपासते यत्नत एव सध्याम् ॥१०॥
 नीचास्त एवाभिहिता सुरैर्नरन्त्यावसायिप्रवरास्त एते ।
 अहं जनित्री तव चेति वाच्य, नो चेदिदानीं त्वमपि नाशम् ॥११॥
 मद्राक्षयकर्ताऽसि यदि द्विजेन्द्र, सुख करिष्ये तव यत्प्रिय च ।
 पुनश्च देश निलय गुरुद्वच, सप्रापयिष्ये ननु सत्यमेतत् ॥१२॥

ये । इसी बीच एक रात बिना विष्णु का स्मरण किये असावधानीपूर्वक सोये उस सुन्दर सिर वाले ब्राह्मण पुत्र आर्त्ताक्ष को एक स्नेच्छा से रूप धारण करने वाली तथा भयकर रूप वाली राक्षसी उठाकर गोदावरी के दक्षिण तट पर ले गई । श्रीगिरि के उत्तरतट पर बहुत ब्राह्मणों से मुतेवित तथा धर्म का केन्द्र रूप एक नगर है जहाँ मानो लक्ष्मी का ही आवास है । वहाँ समस्त राज गुणों से सम्पन्न बृहत्कीर्ति नामक राजा है । रात्रि के अंत में उसी कल्पानमय तथा धर्म का य सम्पन्न नगर में नित्य मनोहर रूपों को धारण करने वाली वह राक्षसी ब्राह्मण पुत्र के साथ जा पहुँची । अनन्तर वह स्नेच्छा से रूप धारण कर उस द्विज के साथ सम्पूर्ण पृथ्वी पर विचरण करती हुई गोदावरी के दक्षिण तट पर आयी । वहाँ वृद्धा का रूप बनाकर वह भवानक राक्षसी ब्राह्मण से कहने लगी ॥११॥

राक्षसी बोली—द्विजवय यह वरगा है । ब्राह्मणों को चाहिये कि वहाँ आकर सध्या उपासना करें । जो विप्र वर समय पर सावधानी से सध्या की उपासना नहीं करते हैं उनको देवताओं ने नीच तथा चाण्डाल तुल्य बतलाया है । मैं तुम्हारी माता हूँ—यह तुम्हें कहन पड़गा अथवा तुम तत्क्षण मर्त्य को प्राप्त करोगे । द्विज श्रेष्ठ । यदि तुम मेरी बात मानोगे तो मुल भोगोगे । मैं तुम्हारी कामनाओं को पूरा करूँगी और पुन तुम्हें अपने देश में पहुँचाकर गुरुजनों से मिला दूँगी यह सत्य बात है ॥१०॥ १२॥

ब्रह्मोवाच

स प्राह का त्वं द्विजपुंगवोऽपि, सोवाच तं राक्षसी कामरूपा ।
विश्वासयन्ती शपथरनेकैस्तं भ्रान्तचित्त मुनिराजपुत्रम् ॥१३॥
कङ्कालिनी नाम जगत्प्रसिद्धा, विप्रोऽसि तामाह निवेदितं यत् ।
तदेव कर्ताऽस्मि न संशयोऽत्र, यत्तत्प्रियं वक्ष्यं करोमि चैव ॥१४॥

ब्रह्मोवाच

तद्विप्रवचनं श्रुत्वा राक्षसी कामरूपिणी । वृद्धा तयार्त्रपि चार्बङ्गी दिव्यालंकारभूषणा ॥१५॥
द्विजमादाय सर्वेन मत्सुतोऽयं गुणाकरः । एवं वदन्ती सर्वेन याति वक्ति करोति च ॥१६॥
तं विप्रं रूपसौभाग्यवयोविद्याविभूषितम् । तां च वृद्धां गुणोपेतामस्य मातेति मेनिरे ॥१७॥
तत्र द्विजवरः कश्चित्स्वां कन्यां भूषणान्विताम् । राक्षसीं तां पुरस्कृत्य प्रादात्तस्मै द्विजातये ॥१८॥
सा कन्या त पति प्राप्यकृतार्थाऽस्मीत्यचिन्तयत् ।
स द्विजोऽपि गुणैर्धृतां पत्नीं दृष्ट्वा सुदुःखितः ॥१९॥

द्विज उवाच

मामियं भक्षयेदेव राक्षसी पापरूपिणी । किं करोमि बब गच्छामि कस्यैतत्कथयामि वा ॥२०॥
महत्संकटमापन्न रक्षयिष्यति कोऽन माम् । भार्या ममेयं कल्याणी गुणरूपवयोमृता ॥
एनामप्यशुभाऽकस्माद्भूक्षयिष्यति राक्षसी ॥२१॥

ब्रह्मा बोले—उस ब्राह्मण ने भी पूछा—‘तुम कौन हो ? तब वह कामरूपिणी राक्षसी अनेक गपयो से विश्वास दिनाती हुई उस भ्रान्त चित्त काले मुनिराज पुत्र से कहने लगी— मैं कङ्कालिनी नाम म ससार मे विख्यात हूँ ।’ तब ब्राह्मण ने भी उससे निवेदन किया—‘तुम सदेह मत करा । जो तुम कहोगी वही मैं करूँगा’ ॥१३-१४॥

ब्रह्मा बोले—विप्र ने वचन सुनकर स्वेच्छा से रूप बनाने वाली राक्षसी वृद्धा होती हुई भी मुन्दर अगो एव दिव्य अलंकारों से विभूषित हो गई । फिर वह ब्राह्मण को लेकर यह मेरा गुणवान् पुत्र है ऐसा कहती हुई सब जगह जाने बोलने और (नाय) करने लगी । लोभो ने सम्पन्ना कि रूप सौभाग्य अवस्था तथा विद्या से सम्पन्न यह ब्राह्मण उसी सर्वगुण सम्पन्ना वृद्धा का पुत्र है । तब एक द्विजवर ने अलंकारों से युक्त अपनी कन्या को उसी राक्षसी के आगे उस ब्राह्मण को दे दिया । उस कन्या ने पति को पाकर साचा नि में कृतार्थ हो गई, पर वह ब्राह्मण गुणवती पत्नी को देखकर अत्यन्त दुःखी हुआ ॥१५-१९॥

द्विज बोला—यह पापरूपिणी राक्षसी मुझे खा ही लेगी । क्या करूँ ? कहाँ जाऊँ ? जिससे यह बात नहूँ ? महान् संकट उपस्थित हो गया है । कौन मेरी रक्षा करेगा ? यह मेरी भार्या कल्याणमयी तथा गुण एवम् अवस्था से सम्पन्न है । इसे भी पापिनी राक्षसी अपानक खा डालेगी ॥२०-२१॥

ब्रह्मोवाच

एतस्मिन्नन्तरे तत्र भार्या सा गुणशालिनी । वृद्धाऽप्यतिदुराधर्या सा गता कुञ्चित्तदा ॥२२॥
प्रश्रयावनता भूत्वा बाला चापि पतिव्रता । भर्तारं दुःखितं ज्ञात्वा पतिं प्राह रहः शनैः ॥२३॥

भार्योवाच

कस्मात्ते दुःखमापन्नं स्वामिस्तत्त्वं वदस्व मे ॥२४॥

ब्रह्मोवाच

शनैः प्रोवाच तां भार्या यथावत्पूर्वविस्तरम् । किमकथ्यं प्रिये मित्रे कुलीनायां च योषिति ॥२५॥
भर्तृवाक्यं निशम्येवं प्रोवाच वदता वरा ॥२६॥

भार्योवाच

अनात्मनः सर्वतोऽपि भयमस्ति गृहेष्वपि । कुतो भयं ह्यात्मवतां किमुनयो तमीतटे ॥२७॥
वसतां विष्णुभक्तानां विरक्तानां विवेकिनाम् । अत्र स्नात्वा शुचिर्भूत्वा स्तुहि देवमनामयम् ॥२८॥

ब्रह्मोवाच

एतदाकथ्यं गङ्गायां स्नात्वा विगतकल्मषः । तुष्टाव गीतमीतीरे द्विजो नारायण तथा ॥२९॥

द्विज उवाच

स्वमस्तरात्मा जगतोऽस्य नाथ, स्वमेव कर्ताऽस्य मुकुन्द हर्ता ।
त्वं पालकः पालयसे न दीनमनायबन्धो नरसिंह कस्मात् । ॥३०॥

ब्रह्मा बोले—इसी बीच (एक दिन) वह भयंकर वृद्धा कही चली गई। वह गुणवती, प्रीडा तथा पतिव्रता पत्नी स्वामी को दुःखित जानकर एकान्त में अत्यन्त नम्रतापूर्वक पति से धीरे-धीरे कहने लगी ॥२२-२३॥

भार्या बोली—स्वामिन् ! किससे तुम्हें दुःख हुआ है ? मुझे सही सही बताओ ॥२४॥

ब्रह्मा बोले—प्रिये ! मित्र तथा कुलीन स्त्री से क्या शोपनीय है ? ब्राह्मण ने धीरे-धीरे विस्तारपूर्वक सब बातें बता दी ॥२५-२६॥

भार्या बोली—जशानी के लिए घर-पर भी भय है। किन्तु ज्ञानियों के लिये कहीं भय नहीं है। उस पर भी गोदावरी के तट पर निवास करने वाले विष्णु-भक्त, विरक्त तथा वैकी पुरुषों को तो भय ही नहीं हो सकता। तुम इस (गोदावरी) में स्नान करके पवित्र होकर कल्याणदाता भगवान् की स्तुति करो ॥२७-२८॥

ब्रह्मा बोले—यह सुनकर ब्राह्मण गया भे स्नान करके निष्पाप होकर गोदावरी के तट पर नारायण की स्तुति करने लगा ॥२९॥

द्विज बोला—नाथ ! आप ही ससार के अन्तरात्मा हैं। मुकुन्द ! आप ही इसके कर्ता, हर्ता तथा पाल-यिता हैं। दीनबन्धो ! नरसिंह ! आप मुझ दीन का पालन क्यों नहीं करते ? उसकी यह प्रार्थना सुनकर ससार

श्रुत्वंतत्प्रार्थनं तस्य 'जगच्छोकनिवारण । नारायणोऽपि ता पापां निजघान स राक्षसीम् ॥३१॥
सुदर्शनेन चक्रेण सहस्रारेण भास्वता । तस्मै प्रादाद्वरानिप्यान्प्रापयच्च' गुरु प्रभु ॥३२॥
तत प्रभृति तत्तीर्थं विप्र नारायण विदुः । स्नानदानेन पूजाद्यैरेव सिध्यति वाञ्छितम् ॥३३॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये विप्रनारायणतीर्थवर्णनं नाम सप्तपष्ट्य-
धिकशततमोऽध्यायः ॥१६७॥

गौतमीमाहात्म्येऽष्टनवतितमोऽध्यायः ॥१८॥

अथाष्टपष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः

भानुतीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

भानुतीर्थमिति ख्यातं त्वाष्ट्रं माहेश्वरं तथा । ऐन्द्रं याम्यं तयाऽऽग्नेयं सर्वपापप्रणाशनम् ॥१॥
अभिष्टुत इति ख्यातो राजाऽऽसीत्प्रियदर्शनः । हयमेधेन पुष्येन यदुमारब्धवान्सुरान् ॥२॥

के शोक निवारण करने वाले नारायण ने अपने चमकते हुए सहस्रो अरों (दाता) वाले सुदर्शन चक्र से उस राक्षसी का काम समाप्त कर डाला और ब्राह्मण को वर्णन दकर उसे अपने गुरुजनो के पास पहुँचा दिया । तब से लेकर वह तीर्थ विप्र तथा नारायण नाम से प्रसिद्ध हुआ जहाँ स्नान दान पूजा आदि करने से अभीष्ट सिद्धि होती है ॥३० ३३॥

श्रीब्रह्ममहापुरुषः स तीर्थ माहात्म्यं वर्णनं प्रसंगे मे विप्र नारायण-तीर्थ वर्णनं नामकं
एवं सौ सरसं वा अध्यायं समाप्तम् ॥१६७॥

अध्याय १६८

भानुतीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा बोले—समस्त पापों के नाश करने वाले त्वाष्ट्र माहेश्वर ऐन्द्र याम्य तथा अग्नेय तीर्थ भानुतीर्थ नाम से प्रसिद्ध हैं । अमिष्टुत नामक एक सुन्दर राजा था । उसने पवित्र अश्वमेध यज्ञ करना आरम्भ किया । उस

तत्र त्विज, षोडश स्युर्बसिष्ठात्रिपुरोपमाः। क्षत्रिये यजमाने तु यज्ञभूमिः कथं भवेत् ॥३॥
 ब्राह्मणे दीक्षिते राजा भुव दास्यति यज्ञियाम्। भूपतो दीक्षिते दाता को भवेत्को नु याचते ॥४॥
 याच्यो यमखिलाशर्मजननी पापरूपिणी। केनाप्यतो न कार्यं व क्षत्रियेण विशेषतः ॥५॥
 एवं मीमांसमानेषु ब्राह्मणेषु परस्परम्। तत्र ग्राह महाप्राज्ञो वसिष्ठो धर्मवित्तमः ॥६॥

वसिष्ठ उवाच

राज्ञि दीक्षायमाने तु सूर्यो याच्यो भुवं प्रति। देहि मे देव सवितर्यजनं देवतोचितम् ॥७॥
 देवं क्षत्रमसि ब्रह्मभूतनाथ नमोऽस्तु ते। याचितः सविता राजा देवानां यजनं द्रुभम् ॥८॥
 वदात्येव ततो राजन्प्रार्थयेत् दिवाकरम् ॥९॥

ब्रह्मोवाच

तथैत्युक्त्वाऽभिष्टुतोऽपि देवदेवं दिवाकरम्। श्रद्धया प्रार्थयामास हरीशजात्मकं रविम् ॥१०॥

राजोवाच

देवानां यजनं देहि सवितस्ते नमोऽस्तु ते ॥११॥

ब्रह्मोवाच

क्षत्र ईव यतः सूर्यो दत्ता भूर्भुवस्तेस्ततः। सविता देवदेवेशो द्रु ददामीत्यग्नभाषत ॥१२॥
 एवं करोति यो यज्ञ तस्य रिष्टिर्न काचन। तथा वाजिमखे सत्रे ब्राह्मणैर्वैदपारगैः ॥१३॥

यज्ञ म वसिष्ठ, अत्रि आदि सोऽह ऋत्विज हुए। वहाँ ब्राह्मणों म परस्पर यह विचार होने लगा कि क्षत्रिय के यजमान होने पर यज्ञभूमि की व्यवस्था कैसे की जाय, क्योंकि ब्राह्मण के यज्ञ करने पर तो क्षत्रिय यज्ञ भूमि देते हैं पर क्षत्रिय के यज्ञ करने पर कौन भूमि देगा? और कौन माँगेगा? यह याचना अत्यन्त अशुभ करने वाली तथा पापरूपिणी बड़ी गई है। इसलिये विशेष कर किसी क्षत्रिय को यह यज्ञ करना ही नहीं चाहिये। (इस तरह के विवाद उपस्थित होने पर) वहाँ महापण्डित तथा धर्मवेत्ता वसिष्ठ बोले ॥१-६॥

वसिष्ठ ने कहा—राजा के दीक्षित होने पर सूर्य से भूमि की याचना की जा सकती है। जैसे—‘देव! सत्कर्मों मे लोगों के प्रेरक! देवतोचित यज्ञ भूमि भुज्जे प्रदान कीजिये। ब्रह्मन्! आप क्षत्रियों के देवता हैं। भूतनाथ! आपको नमस्कार है। इस प्रकार राजा द्वारा याचना करने पर सूर्य अवश्य देवोचित यज्ञ-भूमि देंगे। राजन्! इसलिये आप दिनकर की प्रार्थना करें ॥७-९॥

ब्रह्मा बोले—‘ऐसा ही हो यह कहकर राजा श्रद्धापूर्वक ब्रह्मा विष्णु तथा महेश रूप देवाधिदेव सूर्य की प्रार्थना करने लगा ॥१०॥

राजा ने कहा—दिनकर! देवताओं के लिय यज्ञभूमि भुज्जे प्रदान कीजिये! आपको नमस्कार है ॥११॥

ब्रह्मा बोले—इसलिये सूर्य क्षत्रियों के देवता है अतः देवाधिपति सूर्य ने ‘ई देता हूँ यह कहकर राजा को यज्ञ-भूमि दे दी। इस प्रकार जो यज्ञ करता है उसका किसी प्रकार अशुभ नहीं होता है। वैदपारगत विप्रों द्वारा

प्रारब्धेऽभिष्टुता राज्ञा यथागादभूषति रविः । देवानां यजनं दातुं भानुतीर्थं तदुच्यते ॥१४॥
त देवक्रतुमुत्कृष्टं हयमेघं सुरैर्युतम् । दैत्याश्च दनुजाश्चैव तथाऽन्ये यजघातकाः ॥१५॥
ब्रह्मवेपथराः सर्वे गायन्तः सामगा इव । तेषां तत्र महाप्राज्ञाः प्राविशन्ननिवारिताः ॥१६॥
चमसानि च पात्राणि सोमं चपालमेव च । सोमपानं हविस्त्यागमृत्विजो भूषति तथा ॥१७॥
निन्दन्ति निक्षिपन्त्यन्ये हसन्त्यन्ये तथाऽसुराः । तेषां चेष्टां न जानन्ति विश्वरूपं विनामुने ॥१८॥
विश्वरूपोऽपि पितरं प्राह दैत्या इमे इति । तत्पुनर्वचनं श्रुत्वा त्वष्टा प्राह सुरानिदम् ॥१९॥

त्वष्टोवाच

गृहीत्वा चारिदभाश्च प्रोक्षयध्वं समन्ततः । ये निन्दन्ति मत्तं पुण्यं चमसं सोममेव च ॥२०॥
मया त्वपहताः सर्वे इत्युक्त्वा परिपिञ्चत ॥२१॥

ब्रह्मोवाच

तथा चतुः सुरगणास्त्वष्टा चापि तथाऽकरोत् । भस्मीभूतास्ततः सर्वे कांदिशीकास्ततोऽभवन् ॥२२॥
हता मया महापापा इत्युक्त्वा वार्यवाक्षिपत् । ततः क्षीणायुषो दैत्याः प्रातिष्ठन्कुपितास्ततः ॥२३॥
यत्रैतत्प्राक्षिपद्धारि त्वष्टा लोकप्रजापतिः । त्वाष्टं तीर्थं तदाख्यात सर्वपापप्रणाशनम् ॥२४॥
त्वष्टुर्वाक्याव्युत्तान्दैत्याग्निजघान यमस्तदा । कालदण्डेन चक्रेण कालपाशेन मन्थुना ॥२५॥

राजा अभिष्टुत से आरम्भ किये गये अदवमेघ यज्ञ में दिवाकर देवताओं के निमित्त यज्ञ भूमि देने के लिए राजा के निकट पहुँचे थे, इसलिये उस स्थान का नाम भानुतीर्थ पड़ा। देवताओं से युक्त उस उत्कृष्ट अदवमेघ नामक देवयज्ञ में विष्णु बालने के लिये दैत्य, दानव तथा दूसरे यज्ञ-विष्णु कर्ता जन्तु ब्राह्मणों का वेश बनाकर साम गान करते हुए-सँे बहो आये। उन्हें प्रवेश करने से किसी ने नहीं रोका। उनमें से कोई चमस पात्र, सोम चपाल (यज्ञिय पशुको बाँधने के लिए बाण्ड), सोमपान, हविस्त्याग मृत्विज तथा राजा की निन्दा करने लगा कोई (सामप्रियो को) फेंकने लगा और कोई हँसने लगा। उन राक्षसों के क्रूर्यों को सिवा विश्वरूप के और किसी ने नहीं समझा। तब विश्वरूप ने अपने पिता से कहा कि ये दैत्य हैं। पुत्र के वचन सुनकर त्वष्टा ने देवताओं से यह कहा ॥१२-१९॥

त्वष्टा बोले—कुश-जल लेकर सब ओर छिड़क दो। 'जो पवित्र यज्ञ, चमस तथा सोम की निन्दा करते हैं, वे सब मेरे द्वारा विनष्ट हो यह कहकर सर्वत्र जल से सिञ्चन करो ॥२०-२१॥

ब्रह्मा बोले—देववृन्द तथा त्वष्टा ने भी वैसा ही किया। समस्त दैत्य भस्मसात् हो गये। उन्हें इतना भी पता नहीं रहा कि किस दिशा की ओर भायें। 'मैंने पापियों को मार दिया यह कहकर त्वष्टा ने जल फेंक दिया। तब क्षीणायु दैत्यसमूह कुपित होकर भाग निकले। जिस द्वार पर लोक-प्रजापति त्वष्टा ने जल फेंका, वह अखिल पापनाशन त्वाष्टु तीर्थ कहलाया। त्वष्टा के वाक्य से वधे दैत्यों को यम ने क्रुद्ध होकर कालदण्ड, चक्र तथा कालपाश से मार दिया। जहाँ वे दैत्य मारे गये, उस स्थान का नाम याभ्यतीर्थ पड़ा। जहाँ अग्नि म हविष्य

यत्र ते निहता देवास्तत्तीर्थं याम्यमुच्यते । यत्राभवत्कृतु पूर्णो ह्रत्वाग्नीचामृत बहु ॥२६॥
 धाराभि शरमानाभिरखण्डाभिमंहाध्वरे । यत्राभवद्धव्यवाहस्तृप्तस्तस्य ह्यभिष्टुत ॥२७॥
 अग्नितीर्थं तदाख्यातमश्वमेधफलप्रदम् । इन्द्रो मरुद्भिर्नृपति प्राहेद वचन शुभम् ॥२८॥
 त्व सग्राडभविता राजानुभयोरपि लोकयो । सखा मम प्रियो नित्य भविता नात्र सशय ॥२९॥
 स कृतार्थो मर्त्यलोक इन्द्रतीर्थे च तर्पणम् । कुप्यतिपतुणा प्रीत्यर्थं यमतोर्थे विशेषत ॥३०॥
 माहेश्वर तु तत्तीर्थं पूजितोऽभिष्टुत शिव । भवितुमुषतेन विप्रंश्च सर्ववर्मविशारदं ॥३१॥
 वैदिकैर्लोकिर्कंदर्चव मन्त्रे पूज्य महेश्वरम् । नृत्यैर्गोलेस्तथा वाद्यैर्मृतं पञ्चसभयं ॥३२॥
 उपचारैश्च बहुभिर्दण्डपातप्रदक्षिणे । धूपैर्दीपैश्च नैवेद्यं पुष्पैर्गन्धं सुगन्धिभि ॥३३॥
 पूजयामास देवेश विष्णु शम्भु धिर्यकया । तत प्रसन्नो देवेशो वरादवतुरोजसा ॥३४॥
 अभिष्टुत नरेन्द्राय भुक्तिमुच्यते उभे अपि । माहात्म्यमस्य तीर्थस्य तथा ददतुस्तमम् ॥३५॥
 तत प्रभृति तत्तीर्थं शैव वेषणमुच्यते । सत्र स्नानं च दानं च सयकामप्रदं विदुः ॥३६॥
 इमानि सर्वतीर्थानि स्मरेदपि पठेत् वा । विमुक्त सर्वपापेभ्य शिवविष्णुपुर व्रजेत् ॥३७॥
 भानुतीर्थे विशेषेण स्नानं सर्वार्थसिद्धिदम् । सत्र तीर्थं महापुण्यं तीर्थानां शतमत्र हि ॥३८॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये भाग्यादिशततीर्थवर्णन नामाष्टपष्ट्य

धिकशततमोऽध्याय ॥१६९॥

गीतमीमाहात्म्ये मवनवतितमोऽध्याय ॥१९॥

हालकर यज्ञ सम्पन्न किया गया और जहां महायज्ञ में बाण के समान अखण्ड धाराओं से अभिष्टुत द्वारा अग्निदेव तप्त हुए उस स्थान का नाम अभितीर्थ पड़ा जो अश्वमेध के समान फलदायक है। तब इंद्र ने बायु के द्वारा राजा से यह गुप्त बचन कहलाया कि राजन ! तुम दोनों लोक के सम्राट होये और मेरे त्रियपान वनोगे इसमें कोई सशय नहीं। मृत्युलोक में वह व्यक्ति कृतकृत्य हो जाता है जो इंद्रतीर्थ में और विषाप करके यमतीर्थ में पितरों की प्रीति के लिये तर्पण करता है ॥२२ ३०॥ माहेश्वर तीर्थ वह कहलाता है जहां अभिष्टुत ने शिव की पूजा की थी। जब अखिल कर्मा में निपुण विप्रों ने भवितुपूर्वक वैदिक तथा लौकिक मन्त्रों नय गीत वाद्य पञ्चामृत अनेक उपहार दण्डवत् प्रणाम प्रदक्षिणा घूप दीप नैवेद्य पुष्प गन्ध तथा सुगन्धित द्रव्यों से देवताओं के स्वामी विष्णु तथा शंकर की एक ही भाव से पूजा की तब दोनों देवों ने राजा अभिष्टुत को वरदान के रूप में भोग और मोक्ष दोनों दिये तथा उस तीर्थ के माहात्म्य को भी ब्रह्मा दिये। तब से लकर वह तीर्थ शैव और ब्रह्मण्व दोनों नामों से पुकारा जाता है। वहाँ स्नान तथा दान करने से समस्त कामनाओं की प्राप्ति होती है। जो व्यक्ति इन सब तीर्थों का स्मरण या पाठ करेगा वह निखिल पापों से मुक्त होकर शिवलोक तथा विष्णुलोक को जाएगा। विशेष करके भानुतीर्थ का स्नान समस्त कामनाओं को पूरा करता है। उस तीर्थ में स्नान करने से महान पुण्य होता है। उसमें एक ही तीर्थ वास करते हैं। ॥३१ ३८॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में तीर्थ माहात्म्यवर्णन प्रथम में भानु आदि छौ तीर्थों के वर्णन-नामक

एक सौ अरसठवें अध्याय समाप्त ॥१६८॥

अथैकोनसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः

भिल्लतीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

भिल्लतीर्थमिति ख्यातं रोगघ्नं पापनाशनम् । महादेवपदाम्भोजयुगभक्तिप्रदायकम् ॥१॥
 तत्राप्येवविधा पुण्यां कथां शृणु महामते । गङ्गाया दक्षिणे तीरे श्रीगिरेरुत्तरे तटे ॥२॥
 आदिकेश इति ख्यात ऋषिभिः परिपूजितः । महादेवो लिङ्गरूपी सदाऽऽस्ते सर्वकामदः ॥३॥
 सिन्धुद्वीप इति ख्यातो मुनिः परमधार्मिकः । तस्य ग्राता वेद इति स चापि परमो ऋषिः ॥४॥
 तमादिकेशं च देवं त्रिपुरारि त्रिलोचनम् । नित्यं पूजयते भक्त्या प्राप्ते मध्यन्दिने रवौ ॥५॥
 भिक्षाटनाय वेदोऽपि याति धामं विचक्षणः । याते तस्मिन्द्विजवरे व्याधः परमधार्मिकः ॥६॥
 तस्मिन्गिरिवरे पुण्ये मृगयां याति नित्यशः । अटित्वा विविधान्देशान्मुगान्हुत्वा ययासुखम् ॥७॥
 मुखे गृहीत्वा पानीयमभियेकाय शूलिनः । म्यस्य मांसं धनुष्कोट्या श्रान्तो व्याधः शिवं प्रभुम् ॥८॥
 आदिकेशं समागत्य म्यस्य मांसं ततो बहिः । गङ्गा गत्वा मुखे वारिगृहीत्वाऽऽगत्य तं शिवम् ॥९॥
 यस्य कस्यापि पशूनि करेणाऽऽदाय भविततः । अपरेण च मांसानि नैवेद्याय च तन्मताः ॥१०॥
 आदिकेश समागत्य वेदेनावितमोजता । पादेनाऽऽहृत्य तां पूजां मुखातीतेन वारिणा ॥११॥

अध्याय १६६

भिल्लतीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा बोले—भिल्लतीर्थ रोगनाशक, पापहारी तथा शिव के चरणयुगल में भक्ति बढ़ाने वाला है। महा-
 बुद्धिमान् । उसके बारे में भी इस प्रकार की एक पवित्र कथा सुनो। श्रीपिर के उत्तर प्रदेश में गंगा के दक्षिण तट
 पर आदिकेश नाम से प्रसिद्ध, मुनियों से परिपूजित तथा समस्त कामनादायक शिवलिंग सदा विद्यमान रहते
 हैं। सिन्धुद्वीप नामक मुनि परम धर्मात्मा था। उसका वेद नामक भाई भी महान् ऋषि था। वह ऋषि त्रिपुर
 के शत्रु तथा तीन नेत्र वाले आदिकेश नामक शंकरदेव की प्रतिदिन मध्याह्न काल में पूजा किया करता था। तत्प-
 श्चात् विद्वान् वेद भिक्षाटन करने के लिये गाँव की ओर चल देता था ॥१-५॥ उस ब्राह्मण के चले जाने के बाद एक
 परम धर्मात्मा व्याध उसी पवित्र पर्वत की गुफा में नित्य शिकार करता था। विविध प्रदेशों में पर्यटन करने
 मृगों को मारकर शिव की जल चढ़ाने के लिये मुख में बल लेकर घनुष में मांस को लटका कर वह श्रान्त व्याध
 आदिकेश नामक सर्वशक्तिमान् शिव के पास आता था। गंगा में जाकर वह मुख में जल भर कर भक्तिपूर्वक जिस-
 किसी वृक्ष का पत्र हाथ से तोड़ लेता था। फिर नैवेद्य के लिये मांस लेकर आदिकेश के समीप आता था और
 वेद द्वारा पूजित शिव की लात मारकर उसकी पूजा को नष्ट करके अपने मुख-जल से शिव को नहलाता था। तब
 पत्नी से शंकर की पूजा करके उन्हें मांस चढ़ाता था और कहता था कि शिव । मुख पर प्रसन्न होइये। वह कल्याण-

स्नापयित्वा शिवदेवमर्चयित्वा तु पत्रकं । कल्पयित्वा तु (समर्पयति) तन्मास शिवो मे प्रीयतामिति ॥१२॥
 नैव किंचित्स जानाति शिवभक्तिविना शुभम् । ततो याति स्वयं स्थानमासेन तु मयागतम् ॥१३॥
 करोत्येतादृशं गत्याऽऽपत्य प्रत्यहमेव स । तथाऽप्योशस्तुतोपाशय विचित्रा हीद्वरस्थिति ॥१४॥
 यावन्नायात्यसौ भिल्ल शिवस्तावन्न सौख्यभाक् । भवतानुकम्पिता शोभन्नातं ता तु येति क ॥१५॥
 सन्नमयत्पादिकेशमुमया प्रत्यहं शिवम् । एव बहुतिथे काले याते वेदश्चुषोप ह ॥१६॥
 पूजा मन्त्रवर्ती चित्रा शिवभक्तिसमचिताम् । को नु विध्वसते पापो भक्त स वधमाप्नुयात् ॥१७॥
 गुह्यदेवद्विजस्वामिद्रोही वध्यो मुनेरपि । सर्वस्यापि वधाहोऽसौ शिवस्य द्रोहकृष्ण ॥१८॥
 एव निश्चित्य मेधावी वेदं तिन्धोस्तथाऽनुज । कस्येय पापचेष्टा स्यात्पापिष्ठस्य दुरात्मन ॥१९॥
 पुष्पर्वन्मभवंदिव्यं कन्दमूलफलं शुभं । कृता पूजा स विध्वस्य ह्यन्या पूजा करोति य ॥२०॥
 भासेन तरुप्रदेशं स च वध्यो भवेन्मम । एव सचिन्त्य मेधावी शोषयित्वा तनु तदा ॥२१॥
 त पश्येयमहं पाप पूजाकर्तारमीश्वरे । एतस्मिन्नन्तरे प्रायाद्वधाघो देव यथा पुरा ॥२२॥
 नित्यवत्पूजयन्त तमादिकेशस्तदाऽश्वतो ॥२३॥

आदिकेश उवाच

भो भो व्याध महाबुद्धे श्रान्तोऽसीति पुनः पुनः । चिराय कथमायातस्त्वा विना तात दुःखित ॥
 न विन्दामि सुखं किंचित्समाश्रयसिंहि पुत्रक ॥२४॥

मयी शिवभक्ति को छोड़कर कुछ नहीं जानता था । तदुपरांत वह मास लेकर अपने स्थान को चला जाता था । वह प्रतिदिन ऐसा किया करता था । फिर भी शकर उस पर प्रसन्न हो गये । क्योंकि शकर की लीला अपरम्पार है । जब तक वह व्याध नहीं आता था तब तक शिव को चैन नहीं पड़ती थी । भक्त के ऊपर जो शकर की निसीम अनुकम्पा होती है उसे कौन जानता है ? ॥६१५॥ वह प्रतिदिन उपासहित शकर की पूजा करता था । इस प्रकार बहुत दिन बीत जाने पर वेद को शोष हुआ । वह कहने लगा— शिवभक्तियुक्त तथा मन्त्रविहित मेरी अपूर्व पूजा को कौन पापी नष्ट कर देता है ? मैं उसे अवश्य मार्छूंगा । गुरु देवता द्विज तथा स्वामी से द्रोह करने वाला मुनि भी वध्य है । शिव का द्रोही मनुष्य सबके लिए वध्य है । सिन्धु के अनुज मेधावी वेद ने ऐसा ही निश्चय किया । उसने सोचा— कौन ऐसा पापिष्ठ तथा दुरात्मा है जो बनीय दिव्य पुष्प कन्द मूल तथा पवित्र फलों से की हुई पूजा को विनष्ट करने मास तथा वृक्ष पत्तों से दूसरी पूजा करता है ? उस पापी शिव पूजक को मैं देखूंगा । ऐसा सोचकर विद्वान् वेद छिपकर वहाँ स्थित हुआ । इसी बीच वह व्याध पहले की तरह वहाँ आ पहुँचा । नित्य की तरह पूजा करते हुए उस व्याध से आदिकेश ने कहा ॥१६२३॥

आदिकेश बोले—महाबुद्धिमान व्याध ! तुम बड़ श्रान्त हो । तुम्हें आने में देरी क्यों हुई ? तुम्हारे बिना मैं दुःखी हूँ । मुझ कुछ भी सुख नहीं मिल रहा है । पुत्र ! मुझ आश्रय करो ॥२४॥

ब्रह्मोवाच

तमेव वादिन देव वेद श्रुत्वा विलोक्य तु । चुकोप विस्मयाविष्टो न च किंचिदुवाच ह ॥२५॥
व्याधश्च नित्यवत्पूजा कृत्वा स्वभवन् ययौ । वेदश्च कुपितो भूत्वा आगत्येशमुवाच ह ॥२६॥

वेद उवाच

अयं व्याध पापरत क्रियाज्ञानविवर्जित । प्राणिहिंसारत क्रूरो निर्दय सर्वजन्तुषु ॥२७॥
हीनजातिरर्किचिज्ज्ञो गुरुश्रमविवर्जित । सदाऽनुचितकारी चार्निजिताखिलमोगण ॥२८॥
तस्याऽऽत्मान दर्शितवान्न मा किंचन वक्ष्यति । पूजा मन्त्रविधानेन करोमीश यतव्रत ॥२९॥
त्वदेकशरणो नित्य भार्यापुत्रविवर्जित । व्याधो मासेन दुष्टेन पूजा तव करोत्यसौ ॥३०॥
तस्य प्रसन्नो भगवान् समेति महाद्भुतम् । शास्तिमस्य करिष्यामि भिल्लस्य ह्यपकारिण ॥३१॥
मृदो कोऽपि भवेत्प्रीत कोऽपि तद्बद्धुरात्मन । तस्मादहं मूर्ध्नि शिला पातयेयमसशयम् ॥३२॥

ब्रह्मोवाच

इत्युक्तवति वं वेदे विहस्येशोऽब्रवीदिदम् ॥३३॥

आदिकेश उवाच

इव प्रतीक्षस्व पश्चान्मे शिला पातय मूर्ध्नि ॥३४॥

ब्रह्मोवाच

तमेत्युक्त्वा स वेदोऽपि शिला सत्पश्य बाहुना । उपसहृत्य त कोप इव करोमीत्युवाच ह ॥३५॥

ब्रह्मा बोले—इस प्रकार बोलते हुए शकर को देखकर तथा उनके वचन सुनकर वेद आश्चर्य चकित तथा क्रुद्ध हुआ । पर कुछ भी नहीं बोला । व्याध भी नित्य की तरह पूजा करके अपना घर चला गया । वेद कुपित होकर शकर से आकर कहने लगा ॥२५ २६॥

वेद बोला—यह व्याध पापी क्रिया ज्ञान शून्य प्राणियों की हिंसा में निरत क्रूर सब जीवा के प्रति निर्दय नीच जाति का कुछ भी नहीं जानने वाला गुरु रहित अनुचित काम करने वाला तथा अजितेन्द्रिय है । इसको तो आपने दान दिया पर मुझे क्या नहीं दिया ? वतनाइये । शिव । मैं पूणव्रती होकर मन्त्रविहित पूजा करता हूँ । नित्य आप ही मेरे रक्षक है । मैं भार्या पुत्र से भी वंचित हूँ । यह व्याध दूषित मास से आपकी पूजा करता है । फिर भी इसके ऊपर आप प्रसन्न हुए और मेरे ऊपर नहीं । यह महान् आश्चर्य की बात है । मैं इस दुष्ट व्याध को दण्ड दूंगा । कोई मनुष्य सज्जन का मित्र होता है और कोई दुरात्मा ना । इसलिये मैं नि सन्देह आपके मस्तक पर पत्थर पटक दूंगा ॥२७ ३२॥

ब्रह्मा बोले—वेद के इतना कहने पर शकर हँसकर यह बोले ॥३३॥

आदिकेश ने कहा—कल तक ठहर जाओ । पश्चात् मेरे मस्तक पर पत्थर गिरा देना ॥३४॥

ब्रह्मा बोले—एसा ही सही कहकर वेदने हाथ से शिला-खण्ड को फेंक दिया और शिव का परित्याग करने

तत प्रातः समागत्य कृत्वा स्नानादिवर्मं च । वेदोऽपि नित्यवत्पूजा कुर्वन्पश्यति मस्तके ॥३६॥
 लिङ्गस्य सप्रणा भोमा धारा च रुधिरप्लुताम् । वेद सविस्मितो भूत्वा विमिद लिङ्गमूर्धनि ॥३७॥
 महोत्पातो भवेत्कस्य सूचयेदित्यचिन्तयत् । मृद्भिश्च गोमयेनापि कुशैस्त गाङ्गवारिभि ॥३८॥
 प्रक्षान्धित्वा ता पूजा कृतवानित्यवत्तदा । एतस्मिन्नन्तरे प्रायाद्व्याधो विगतकल्मष ॥३९॥
 मूर्धनि ग्रणसयुक्त सरवत लिङ्गमस्तके । शकरस्याऽऽदिकेशस्य वदशेऽन्तर्गतस्तदा ॥४०॥
 द्वष्ट्वेव किमिदं चित्रमित्युक्त्वा निशितं शरं । आत्मान भेदयामास शतधा च सहस्रधा ॥४१॥
 स्वामिनो यंकृतं दृष्ट्वा यः क्षमेतोत्तमाश्रय । मुहुर्निनिन्द चाऽऽत्मान मयि जीवत्यभूदिदम् ॥४२॥
 यष्टमापतित कोदग्गहो दुर्विधिवंशतात् । तत्त्वमं तस्य सवीक्ष्य महादेवोऽतिविस्मित ॥
 तत प्रोवाच भगवान्भेद वेदविदा धरम् ॥४३॥

आदिकेश उवाच

पश्य ध्याय महाबुद्धे भक्त भावेन सयुतम् । त्वं तु मृद्भिः कुशैर्वाभिर्मूर्धनि स्पृष्टवानसि ॥४४॥
 अनेन सहस्रा ग्रन्थान्माऽऽत्माऽपि निवेदित । भक्तिं प्रेमायुवा शक्तिविचारो यत्र विद्यते ॥
 तस्मादस्मै वरान्दास्ये पञ्चाक्षुष्यं द्विजोत्तम ॥४५॥

बहा—'तो कल ही कहेंगा । तब प्रातः वान वहाँ आकर स्नान आदि कर्म से निवृत्त हो वेद के नियम की भाँति मस्तर पर पूजा करने देता कि धाव से युक्त निर्वाण से भयकर शोधित की धारा निरन्तर रही है । वेद वडा आश्चर्यजन हुआ और माचन लगा निजि के मस्तर पर यह कहा हो गया । दसम तामह मूर्तित होना है कि किसी का महान् उन्नात हुआ । फिर मुक्ति का शायर कुत तथा समाजस्य त्रिभुको पवित्र कर उगने निरन्तर की भाँति पूजा की । दगी बीच निष्ठापन व्यापक वहाँ आया । त्रिभु के मस्तर पर धाव तथा गानित को दसत ही बहुधोल उठा— यह कहा ? फिर तन्त्राय दान्यो ग उगा आन को सीकडा तथा मर्यादा तद्विद्वत्तर त्रिभु और वर्या— स्वामी को बिहूत दसतर कोन उत्तम नित बाग मनुष्य दसता मजन करणा ? घर जान ही । गा हो गया । हाय ! दीर्घायु का मनु मन्त्र आ गया । दस तरह उगा अनेन का वडा पितामह । उगका यत्र बम देग कर मर्यादा अद्वय विस्मय दृष्ट । तब मन्त्रान् बाकर त यद्वेत्तात्रा म अष्ट वेद म कर्ण ॥४५॥४३॥

आदिकेश बोले—महापुद्गलम् भक्ति नाव म मनुष्य व्याप का देगा । तुमन मूर्ति या कुत म मस्तर का लगा दिया । पर दसत तो मुझ अनेन आत्मा ही मर्षित कर दा । त्रिभु त्रिभु दसम भक्ति प्रम भयका शक्ति या विचार है अत्र इसको पहिच हा कर दूया पञ्चान् मुष्ट दूया ॥४५॥४५॥

ब्रह्मोवाच

वरेण च्छन्दयामास व्याध देवो महेश्वर । व्याध प्रोवाच देवेश निर्मात्य तव यद्वभवेत् ॥४६॥
तवस्माक भवेन्नाथ मन्नाम्ना तीर्थमुच्यताम् । सर्वकृतुफल तीर्थ स्मरणादेव जायताम् ॥४७॥

ब्रह्मोवाच

तथेत्युवाच देवेशस्ततस्तत्तीर्थमुत्तमम् । भिल्लतीर्थं समस्ताघसघविच्छेदकारणम् ॥४८॥
श्रीमहादेवचरणमहाभक्तिविधायकम् । अभवत्स्नानदानाद्यैर्भुवितमुवितप्रदायकम् ॥
वेदस्यापि वरान्प्रादाच्छिवो नानाविधान्वहन् ॥४९॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये भिल्लतीर्थमहिमवर्णन नामकोनसप्त-
त्यधिकशततमोऽध्याय ॥१६९॥

श्रीतमोमाहत्म्ये शततमोऽध्याय ॥१००॥

अथ सप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः

चक्षुस्तीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

चक्षुस्तीर्थमिति रपात रूपसौभाग्यदायकम् । यत्र योगेश्वरो देवो गौतम्या दक्षिणे तटे ॥१॥
पुर भौवनमाख्यात गिरिमूर्ध्न्यभिधायते । यनासौ भौवनो राजा क्षत्रधर्मपरायण ॥२॥

ब्रह्मा बोले—महेश्वर ने व्याध से वर माग्ने को कहा । व्याध ने देवेश से कहा— आपना निर्मात्य जो हो वही मेरे नाम से तीर्थ कहूँगे । उस तीर्थ के स्मरण मात्र से समस्त यज्ञों का फल प्राप्त हो ॥४६॥४७॥

ब्रह्मा बोले—देवेश ने कहा ऐसा ही होगा । तब से उस उत्तम तीर्थ का नाम भिल्लतीर्थ पड़ा जो समस्त पापसमूह का नाश करने वाला तथा शिव के चरणों में महाभक्ति प्रदान करने वाला है । उसमें स्नान दान आदि करने से मोक्ष मोक्ष दोनों प्राप्त होते हैं । शिव ने वेद को भी अनेक प्रकार के वरदान दिये ॥४८॥४९॥

श्रीब्रह्ममहापुराण म तीर्थ माहात्म्यवर्णन प्रसंग में भिल्लतीर्थ की महिमा का वर्णन नामक
एक सौ उनहत्तरवाँ अध्याय समाप्त ॥१६९॥

अध्याय १७०

चक्षुस्तीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा बोले—गोदावरी के दक्षिण तट पर रूप-सौभाग्य देने वाला प्रसिद्ध चक्षुस्तीर्थ है जहाँ योगेश्वर भगवान् रहते हैं । पर्वत के शिखर पर भौवन नामक एक नगर था, जहाँ क्षत्रियधर्म म निरत भौवन नामक

तस्मिन्पुरवरे कश्चिद्ब्राह्मणो बृद्धकौशिक । तत्पुत्रो गौतम इति ह्यातो वेदविदुत्तम ॥३॥
 तस्य मातुर्मनोदोषाद्विपरीतोऽभवद्द्विज । सखा तस्य वणिक्कश्चिन्मणिकुण्डल उच्यते ॥४॥
 तेन सख्य द्विजस्याऽऽसीद्विषम द्विजवैश्ययो । श्रीमद्विद्वयोर्नित्य परस्परहितैषिणो ॥५॥
 कदाचिद्गौतमो वैश्य वित्तेश मणिकुण्डलम् । प्राहेदवचनप्रीत्या रह स्थित्वा पुन पुन ॥६॥

गौतम उवाच

गच्छामो धनमादातु पर्वतानुदधीनपि । योवन तद्वथा ज्ञेय विना 'सौरयानुकूल्यत ॥
 धन विना तत्कस्य स्यादहो पिङ्गतिर्धनं नरम् ॥७॥

ब्रह्मोवाच

कुण्डलो द्विजमाहेव मत्पुत्रोपाजित धनम् । बह्वस्ति किं धनेनाद्य करिष्ये द्विजसत्तम ॥
 द्विज पुनरवाचैव मणिकुण्डलमोजसा ॥८॥

गौतम उवाच

धर्मपितृजनकामाना को नु तूत्त प्रशस्यते । उत्कर्षप्रान्तिरेवंपा' सखे श्लाघ्या शरीरिणाम् ॥९॥
 स्वैर्नैव व्यग्रसापेन धन्या जीवन्ति जन्तव । परदत्तार्थसमुप्टा कष्टजीविन एव ते ॥१०॥
 स पुत्र शस्यते लोके पितृभिश्चाभिनन्द्यते । य वैश्यमभिलिप्सेत न वाचावपि तु कुण्डल ॥११॥

राजा रहता था । उसी उत्तम नगर में बृद्धकौशिक नाम का कोई ब्राह्मण रहता था । उगने वेदवत्ताभा में श्रेष्ठ गौतम नाम का एक पुत्र था । वह अपनी माता के मनोदोष के कारण (पिता से) विपरीत हुआ । मणिकुण्डल नाम का कोई बनिषा उगता मित्र था । ब्राह्मण और वैश्य भी मित्रता विषम थी । श्री एक था धनिक और दूसरा था गरीब फिर भी परस्पर एक दूसरे का हित चाहता था । किसी समय गौतम ने अपनी मणिकुण्डल से कहा कि मैं प्रमत्तवक यह वचन बार-बार कहा ॥१६॥

गौतम बोला—धन बमान के लिए पवन पर या समुद्र में भी हथेलाव करने । बिना गुणभोग किये जयानी व्यर्थ है । बिना धन से गुण मित्रता भी ठा अमम्भव है । हाथ । निषय मनुष्य को विकार है । ॥१०॥

ब्रह्मा बोले—कुण्डल ने द्विज से कहा—ब्राह्मण श्रेष्ठ । मेरे मित्र का बर्माया हुआ बटुन-गा था है । उस धन में मैं क्या करूँगा ? द्विज ने पुन मणिकुण्डल से कहा ॥८॥

गौतम बोला—धन अथ ज्ञान और काम में कौन मनुष्य होता है ? मित्र । प्राणिया का उन्नति करत रहना ही अच्छा माना गया है । अपने ही उद्योग में जीन वाल प्राजा का जीवन व्यर्थ है । जा दूगरे के शिष्य धन से समुप्ट रहता है वह कष्टजीवी है । कुण्डल । वही पुत्र प्रगल्भीय तथा विना का प्रीतिपात्र हाता है जो माणी

स्वबाहुबलमाश्रित्य योज्यार्जयते सुत । स कृतार्थो भवेत्लोकपेन्द्र्य वित्त न तु स्पृशेत् ॥१२॥
स्वयमाज्यं सुतो वित्त पित्रे दास्यति बन्धवे । त तु पुत्र विजानीयादितरो योनि कीटक ॥१३॥

ब्रह्मोवाच

एतच्छ्रुत्वा तु तद्वाक्य ब्राह्मणस्याभिलाषिण । तथेति मत्वा तद्वाक्य रत्नान्यादाय सत्वर ॥१४॥
आत्मकीयानि वित्तानि शीतमाय न्यवेदयत् । धनेनैतेन देशाश्च परिभ्रम्य यथासुखम् ॥१५॥
धनान्यादाय वित्तानि पुनरेष्यामहे' गृहम् । सत्यमेव वणिग्वक्ति स तु विप्र प्रतारक ॥१६॥
पापात्मा पापचित्तश्च न बुबोध वणिग्विजम् । तौ परस्परमामन्य मातापित्रोरजानतौ ॥१७॥
देशाद्देशान्तरं यातौ धनार्थं तौ वणिग्विजौ । वणिग्वस्तस्थित वित्त ब्राह्मणो हर्तुमिच्छति ॥१८॥

ब्राह्मण उवाच

येन केनाप्युपायन तद्धनं हि समाहरे । अहो पृथिव्या रम्याणि नगराणि सहस्रश ॥१९॥
इष्टप्रदास्य कामस्य देवता द्वयं योषित । मनोहरास्तत्र तत्र सन्ति किं क्रियते मया ॥२०॥
धनमाहृत्य यत्नेन योषिबन्धो यदि दीयते । भुज्यन्ते तास्ततो नित्यं सकल जीवितं हि तत ॥२१॥
नृत्यगीतरतो नित्यं पण्यस्त्रीभिरलकृत । भोक्ष्य कथं तु तद्वित्तं वैश्यामदस्तमागतम् ॥२२॥

स भी वित्तधन की लिप्सा नहीं करता है । जो अपने बाहु बल से धन उपार्जन करता है और पैतृक संपत्ति को छूटा तक भी नहीं बही लोक में कृताय होता है । जो स्वयं धन कमाकर पिता तथा बंधवों को देता है उसी को पुत्र समझना चाहिये । उससे भिन्न तो योनि वा कीटक है ॥१९॥१३॥

ब्रह्मा बोले—अभिलाषा करने वाले ब्राह्मण की यह वाट सुनकर तथा उसकी बात को मानकर कुण्डल अपन रत्ना को छाकर शीतल को समर्पित करके बहने लगा— हम लोग इस धन से सुखपूर्वक देशभ्रमण करके धन कमाकर पुन घर लौट आयेगे । पापी और दग ब्राह्मण ने कहा— सुभ ठीक कहते हो । बनिये ने पापयुक्त वित्त वाले ब्राह्मण को नहीं समझा । वे दोनों परस्पर संग्रह करके माता पिता को बिना अताय ही घर से निकल पडे । बनिया और ब्राह्मण दोनों धन की कामना से देश देशान्तर में जाने लगे । पर ब्राह्मण बनिय के हाथ से धन वा अनहरण कर लेना चाहता था ॥१४॥१८॥

ब्राह्मण ने कहा—जिस किसी उपाय से मुझ धन अपहरण कर लेना चाहिये । अहो ! पृथिवी पर हजारों रमणीय नगर हैं जिनमें असीष्ट सिद्ध करने वाली देवता तुल्य मनोहर कामिनीया रहती हैं । तो मुझ क्या करना चाहिये ? यदि प्रयत्न से धन चुराकर स्त्रियों को दूँ और उनके साथ उपभोग करूँ तो मेरा जीवन सफल हो जाय । (नित्य नृत्य-गात-परायण तथा वश्याओं से अलङ्कृत होकर मैं रहूँगा) पर कैसे वैश्य के हाथ से धन को प्राप्त करूँ ? ॥१९॥२२॥

१ध च ०प्यावहे । २ध च रत्नानि रम्याणि च सहस्रश । नगराणि च रम्याणि मुग्धयुक्तानि सपथा । ३० ।

ब्रह्मोवाच

एव चिन्तयमानोऽसौ गौतमः प्रहसन्निव । मणिकुण्डलमाहेदमधर्मादेव जन्तवः ॥२३॥
 वृद्धिं सुखमभीष्टानि प्राप्नुवन्ति न संशयः । धर्मिष्ठाः प्राणिनो लोके दृश्यन्ते दुःखभागिनः ॥२४॥
 तस्माद्धर्मेण किं तेन दुःखैकफलहेतुता ॥२५॥

ब्रह्मोवाच

नेत्युवाच ततो वैश्यः सुखं धर्मं प्रतिष्ठितम् । पापे दुःखं भयं शोको दारिद्र्यं प्लेश एव च ॥
 यतो धर्मस्ततो मुक्तिः स्वधर्मः किं विनश्यति ॥२६॥

ब्रह्मोवाच

एव विवदतोस्तत्र संपरायस्तयोरभूत् । यस्य पक्षो भवेज्जयायान्स परार्थमवाप्नुयात् ॥२७॥
 पृच्छाव' कस्य प्राबल्यं धर्मिणो वाऽप्यधर्मिणः । वेदात्तु लौकिकं व्येष्टं लोके धर्मात्सुखं भवेत् ॥२८॥
 एव विवदमानो तावूचतुः सकलाञ्जनान् । धर्मस्य वाऽप्यधर्मस्य प्राबल्यमनयोर्भूवि ॥२९॥
 तद्वदन्तु ययावृत्तमेयमूचतुरोजसा । एवं तत्रोचिरे केचिद्ये धर्मेणानुवर्तिनः ॥३०॥
 तद्वैःखननुभूयते पापिष्ठाः सुखिनो जनाः । संपराये धर्मं सर्वं जितं विप्रे न्ययेदयत् ॥३१॥
 मणिमान्धर्मविच्छेष्टः पुनर्धर्मं प्रशंसति । मणिमन्तं द्विजः प्राह किं धर्ममनुशंसति ॥

ब्रह्मोवाच

तथेति चेत्याह वैश्यो ब्राह्मणः पुनरब्रवीत्

॥३२॥

ब्रह्मा बोले—यह गोवते हुए गौतम ने हँसकर मणिकुण्डल से कहा—‘जीव अपर्मा से ही अभीप्सित सुख को प्राप्त करते हैं, इसमें कोई संशय नहीं। लोक में धर्मिष्ठ प्राणी दुःखी देने जाते हैं। इसलिये जिनका एक दुःख ही फल है, ऐसे धर्म से क्या प्रयोजन ? ॥२३-२५॥

ब्रह्मा बोले—तब वैश्य ने कहा—‘नहीं, मुझ धर्म में प्रतिष्ठित है। पाप म दुःख, भय, शोक, दारिद्र्य तथा प्लेश है। जहाँ धर्म है, वही मुक्ति है। स्वधर्म का वही विनाश नहीं होता है’ ॥२६॥

ब्रह्मा बोले—इस प्रकार विवाद करते-करते दोनों ने बाजी लगाई कि जिनका पक्ष उत्तम होगा, वह दूसरे का धन ले लेगा। लोग ने हम दोनों यह पूछे कि धर्मिष्ठा ध्येष्ट होता है या अधर्मिष्ठा। वैदिक धर्म से लौकिक धर्म ध्येष्ट होता है या लौकिक धर्म से मुक्त होता है। (यही प्रश्न यह है कि वैदिक धर्म ध्येष्ट होता है या लौकिक धर्म ? धर्म से मुक्त मिश्रता है या अधर्म से ?) इस प्रकार विवाद करते हुए दोनों ने लोग म पूछा—‘पृथ्वी पर धर्म की प्रबलता है या अधर्म की ? आप लोग यथावर्त बतलायें।’ तब कुछ लोग ने बतलाया—‘जा धर्म के पक्ष पर है, वे दुःख अनुभव करते हैं और जो पापी हैं, वे सुखी हैं।’ बाजी में ब्राह्मण ने गण धन जीत लिया। फिर भी मणिकुण्डल धर्म की प्रशंसा करता रहा। तब द्विज ने मणिकुण्डल से कहा—‘क्या धर्म की प्रशंसा करते हो ?’ ॥२७-३१॥

ब्रह्मा बोले—वैश्य ने कहा—‘मैं कहूँगा।’ ब्राह्मण ने फिर कहा ॥३२॥

ब्राह्मण उवाच

जित मया धन वैश्य निर्लज्ज किन्तु भायसे। मयैव विजितो धर्मो ययेष्टचरणात्मना ॥३३॥

ब्रह्मोवाच

तद्ब्राह्मणवच श्रुत्वा वैश्य सस्मित ऊचिवान् ॥३४॥

वैश्य उवाच

पुलाका इव धायेयु पुस्तिका इव पक्षियु। तयैव तान्मखे मन्ये येषा धर्मो न विद्यते ॥३५॥
चतुर्णां पुरुषार्यानां धर्मं प्रथम उच्यते। पश्चादर्थस्य कामस्य स धर्मो मयि तिष्ठति ॥
यस्य मन्ये द्वित्रश्रेष्ठ मया विजितमित्यद ॥३६॥

ब्रह्मोवाच

द्वित्रो वैश्य पुन प्राह हस्ताभ्या जायता षण् । तयेति मन्यते वैश्यस्तौ गत्वा पुनरुच्यतु ॥३७॥
पूर्वत्रलौकिकागत्वा जितमित्यब्रवीद्विज । करो छित्त्वा सत प्राह कस्य धर्मं तु मन्यसे ॥
आक्षिप्तो ब्राह्मणेनैव वैश्यो वचनमब्रवीत् ॥३८॥

वैश्य उवाच

धर्ममेव पर मये प्राणै कष्टगतरपि। माता पिता सुहृदबन्धुधर्म एव क्षारीरिणाम् ॥३९॥

ब्राह्मण बोला—वैश्य ! मैंने धन जीत लिया। अब बोलने से तुम्हें लाज नहीं आती ? ययेष्ट आचरण
को हूँ मैंने ही धर्म को जीत लिया ॥३३॥

ब्रह्मा बोले—ब्राह्मण का बचन सुनकर वैश्य आश्चर्यित होकर बोला ॥३४॥

वैश्य बोला—मगे ! मैं उन मनुष्यों को धावा म पुलक (खसरी सुन्न धाव) तथा पक्षियों म शुद्ध
मत्तिका की तरह समगता हूँ जो धर्मात्मा नहो हैं। चारों पुरुषार्थों म पहिऊ धर्म ही कहा जाता है पश्चात् अथ
और काम। वही धर्म सुमम विद्यमान है। द्वित्रश्रेष्ठ ! कस्य धर्म सुम कहते हो कि मैंने इस धर्म को जीत लिया ?
॥३५ ३६॥

ब्रह्मा बोले—द्वित्र ने पुन वैश्य से कहा— तो इस बार हाथा की बाजी लगाओ। वैश्य ने कहा— अस्तु ।
तब दोना व्यक्तियों ने लोभा से जाकर पूछा। लोभा न पहिले की तरह बतलाया। ब्राह्मण ने कहा—मेरी जीत
हुई। वैश्य ने अपने हाथ बटका लिये। तब ब्राह्मण न पूछा— कहो अब भी धर्म को मानते हो ? ब्राह्मण का
व्यग्य वचन सुनकर वैश्य ने कहा ॥३७ ३८॥

वैश्य बोला—जब तक बन्धु म प्राण रहेया तब तक मैं धर्म को मानूगा। शरीरधारिया ने लिये धर्म ही
माता पिता मित्र तथा बन्धु है ॥३९॥

ब्रह्मोवाच

एव विवदमानौ तावर्थवान्ब्राह्मणोऽभवत् । विमुक्तो वैश्यस्तत्र ब्राह्म्या च धनेन च ॥४०॥
 एव भ्रमन्तौ सप्राप्तौ गङ्गा योर्गेश्वर हरिम् । यदृच्छया मुनिश्रेष्ठ मिथस्तावूचतु पुन ॥४१॥
 वैश्यो गङ्गा तु योगेश धर्ममेव प्रशंसति । अतिकोपाद्विजो वैश्यमाक्षिपन्पुनरब्रवीत् ॥४२॥

ब्राह्मण उवाच

गत धन करौ छिन्नाववशिष्टोऽसुभिर्भवान् । त्वमन्यथा यदि ब्रूय आहरिष्येऽसिना शिर ॥४३॥

ब्रह्मोवाच

विहस्य पुनराहव वैश्यो गीतममञ्जसा ॥४४॥

वैश्य उवाच

धर्ममेव पर मन्ये यथेच्छसि तथा कुह । ब्राह्मणाश्च गुरुन्देवान्देवान्धर्मं जनार्दनम् ॥४५॥
 यस्तु निदपत् पापो नासी स्पृश्योऽय पापकृत । उपेक्षणीयो दुर्वृत्त पापात्मा धमद्रूपक ॥४६॥

ब्रह्मोवाच

तत् प्राह स कोपेन धर्मं यद्यनुशसति । आवयो प्राणयोरत्र पण स्यादिति वै मुने ॥४७॥
 एवमुक्ते गीतमेन तत्प्राह वणिक्तदा । पुनरप्युचतुर्धौ लोकैतलोकास्तथोच्चरे ॥४८॥

ब्रह्मा बोले—इस प्रकार के विवाद से ब्राह्मण तो घनवान हुआ पर वैश्य घन तथा हाथ दोनों से बचित होगया । फिर इस तरह भ्रमण करते हुए दोनों गंगा के तट पर पहुँचे जहाँ योगेश्वर हरि रहते हैं । मुनिश्रेष्ठ । स्वेच्छा से वहाँ भी उन दोनों ने वही बात छद्म दी । वैश्य ने गंगा योर्गेश्वर तथा धम की ही प्रशंसा की । तब ब्राह्मण ने अत्यन्त कोप से व्यवहार करते हुए उनसे कहा ॥४०-४२॥

ब्राह्मण बोला—तुम्हारे घन तथा दोनों हाथ तो गये । अब प्राण भी बँवाना चाहते हो ? यदि इस तरह बोलोगे तो मैं तत्प्राण म तुम्हारा गिर बाट डालूँगा ॥४३॥

ब्रह्मा बोले—वचन नहीं कर पुन गीतम म यह सीध कहा ॥४४॥

वैश्य ने कहा—मैं तो धम का ही पथ मानूँगा । तुम्हें जो इच्छा हो सो करो । जा पापी मनुष्य ब्राह्मण गुरु देवता धम वचन तथा भगवान की निन्दा करता है वह पापात्मा अप्रिय उपेक्षणीय दुराचारी तथा धमद्रूपक है ॥४५-४६॥

ब्रह्मा बोले—तब द्विज न बोच स कहा— यदि तुम धम की प्रशंसा करते हो तो इस बार हम दोनों के प्राणा की बाजी हो । गीतम व इच्छा करने पर वनिधम कहा— एसा ही मही । तब दानान लाया म पूछा । लोग ने वही उत्तर दिया । तब गीतमरी व दणिज तत् पर योगेश्वर व सामने वैश्य को पटा कर द्विज न उसकी एव बाँध निकाल सी ओर कहा ॥४७-४८॥

योगेश्वरस्य पुरतो गौतम्या दक्षिणे तटे । तनिपात्य विश विप्रश्चक्षुस्तपाद्य चाब्रवीत् ॥४९॥

विप्र उवाच

गतोऽसौमा दशा वंश्य नित्य धर्मप्रशसया । गत धन गत चक्षुश्छेदितौ करपल्लवौ ॥
पृष्टोऽसि मित्र गच्छामि मैव ब्रूया कथान्तरे ॥५०॥

ब्रह्मोवाच

तस्मिन्प्रयाते वैश्योऽसौ चिन्तयामास चेतसि । हा कष्ट मे किमभवद्धर्मकमनसो हरे ॥५१॥
स कुण्डलो वणिक्श्रेष्ठो निर्धनो गतबाहुक । गतनेत्र शुच प्राप्तो धर्ममेवानुसस्मरन् ॥५२॥
एव ब्रह्मविधा चिन्ता कुर्वन्नास्ते महोत्तले । निश्चेष्टोऽथ निरुत्साह पतित शोकसागरै ॥५३॥
दिनावसाने शर्वर्यामुदिते चन्द्रमण्डले । एकादश्या शुक्लपक्षे तनाऽऽयाति विभीषण ॥५४॥
स तु योगेश्वर देव पूजयित्वा यथाविधि । स्नात्वा तु गौतमीं गङ्गा सपुत्रो राक्षसंवृत ॥५५॥
विभीषणस्य हि सुतो विभीषण इवपर । वैभीषणिरिति ह्यातस्तमपश्यदुवाच ह ॥५६॥
धंदयस्य वचन श्रुत्वा यथादुत्त स धर्मवित । पित्रे निवेदयामास लङ्केशाय महात्मने ॥
स तु लङ्केश्वर प्राह पुत्र प्रीत्या गुणाकरम् ॥५७॥

विभीषण उवाच

श्रीमायामो मम गुरुस्तस्य माय सखा मम । हनुमानिति विख्यातस्तेनाऽऽनीतो गिरिर्महान् ॥५८॥

विप्र बोला—वैश्य । नित्य धर्म की प्रशंसा करते करते तुम इस दशा में प्राप्त हो गये हो कि तुम्हारा धन गया आल गयी और हाथ भी कटे । मित्र ! अब मैं जा रहा हूँ । किन्तु इतना कहे देता हूँ कि फिर तुम कभी ऐसा न भोगना ॥५०॥

ब्रह्मा बोले—उसने कृते जाने पर वैश्य चिन्ता करने लगा—हाय भगवान् ! एक धर्म में ही मैंने मन को लगाते हुए मुझ जितना कष्ट हुआ । निधन अथ तथा हाथों से वचित वणिक्श्रेष्ठ कुण्डल धर्म का ही स्मरण करते करते शीघ्र को प्राप्त हो गया । इस प्रकार अनेक तरह की चिन्ता करते हुए वह निश्चेष्ट तथा निरुत्साह होकर शोक सागर में डूबते हुए परती पर गिर पड़ा । शुक्लपक्ष की एकादशी को दिन के अन्त में तथा रात्रि में चन्द्रोदय होने पर विभीषण पुत्र तथा राक्षसों से युक्त होकर वहाँ आते थे और गोदावरी में स्नान करके योगेश्वर की विधिपूर्वक पूजा करते थे । विभीषण का पुत्र वैभीषणि जो अपर विभीषण ही था वैश्य की ओर देखने लगा । परचात उस धर्म के वस्त्र ने वैश्य का सब समाचार सुनकर अपने पिता महात्मा लक्ष्मण से निवेदन कर लिया । लवापति ने प्रेमपूर्वक गुणगाली पुत्र से कहा ॥५१ ५७॥

विभीषण बोले—मरे गुरु श्रीमान् राम हैं । उही का प्रियपुत्र मेरा मित्र हनुमान् है । वही महान् पर्वत को ले आया था । पूव समय वह वायव्य समस्त ओपधिषा के आश्रयभूत पर्वत को ले आया था । पुन वाय

पुरा कार्यान्तरे प्राप्ते सर्वोपध्याश्रयोऽचलः । जाते कार्ये समादाय हिमवन्तमथागमत् ॥५९॥
 विशल्यकरणी चेति मृतसंजीवनीति च । तदाऽऽनीय महाबुद्धी रामायामिलष्टकर्मणे ॥६०॥
 निवेदयित्वा तत्साध्यं तस्मिन्वृत्ते समागतः । पुनर्गिरिं समादाय आगच्छद्देवपर्वतम् ॥६१॥
 सामानीयास्य हृदये निवेशय हरिं स्मरन् । ततः प्राप्स्यत्ययं सर्वमपेक्षितमुदारधीः ॥६२॥
 गच्छतस्तस्य वेगेन विशल्यकरणी पुनः । अपतद्गौतमीतीरे यत्र योगेश्वरो हरिः ॥६३॥

वैभीषणिद्ववाच

तामोपधौ मम पितदंशयाऽऽशु विलम्ब मा । परातिशमनादन्यच्छ्रेयो न भुवनत्रये ॥६४॥

ब्रह्मोवाच

विभीषणस्तचेत्युक्त्वा सा पुत्रस्याप्यदंशयत् । इमे स्वेत्यस्य वृक्षस्य शाखां चिच्छेद तत्सुतः ॥
 वैश्यस्य चापि वै प्रोत्था सन्त परहिते रताः ॥६५॥

वैभीषणिद्ववाच

यनापतन्नगे चास्मिन् वृक्षस्तु प्रतपवान् । तस्य शाखां समादाय हृदयेऽस्य निवेशय ॥
 तत्सृष्टमात्र एवासौ स्वर्कं रूपमवाप्नुयात् ॥६६॥

सम्पन्न हो जाने पर वह उसे लेकर हिमालय पर चला गया । तब उसी महाबुद्धिमान् ने विशल्यकरणी तथा मृतसंजीवनी नामक औपधिया को लेकर अथवा काम करने वाले राम को समर्पित कर दिया और उन औपधियों का गुण भी बतला दिया । पुनः कार्य सम्पन्न हो जाने पर हनुमान् उस पर्वत को लेकर देवपर्वत पर चला गया । तब उसी ओशधि को लाकर हरि का स्मरण करते हुए, वैश्य के हृदय में लगा दो । तब यह उदार बुद्धि वाता व्यक्त अपनी समस्त कामनाओं को प्राप्त करेगा । अब हनुमान् वेग से जा रहा था तब विशल्यकरणी गोदावरी के तट पर उसी जगद् गिर गङ्गा की जहाँ योगेश्वर हरि रहते हैं ॥५८-६३॥

वैभीषणि बोला—पिता जी ! शीघ्र वह औपधि मुझे दिया या दीजिये । दूसरे की पीड़ा को शान्त कर देने से जितना कल्याण होता है, उतना (कल्याण) तीना लोक में और किसी से नहीं होता है ॥६४॥

ब्रह्मा बोले—विभीषण ने 'टीक' कहकर पुत्र को वह औपधि दिया दी। तब उगते पुत्र ने वैश्य पर स्नेह के कारण 'इमेत्वा इमं गन्धं से उन वृक्ष की एक शाखा तोड़ ली। क्योंकि मत्स्यप दूसरे के ही कल्याण में निरत रहते हैं ॥६५॥

विभीषण बोले—इमपर्वत पर जो वह प्रतापी वृक्ष बिना है, उसकी शाखा लेकर इगते हृदय में लगा दो । उसका सर्वा होने ही यह अपने स्वरूप को प्राप्त कर लेगा ॥६६॥

ब्रह्मोवाच

एतच्छ्रुत्वा पितृवर्षियं वैभोषणिरुदारधीः । तथा चकार वै सम्पत्काष्ठखण्डं न्यवेशयत् ॥६७॥
हृदये स तु वैश्योऽपि सचक्षुः सकरोऽभवत् । मणिमन्त्रौघघोनां हि धीर्यं कोऽपि न धुध्यते ॥६८॥
तदेव काष्ठमादाय धर्ममेवानुसंस्मरन् । स्नात्वा तु गौतमीं गङ्गां तथा योगेश्वरं हरिम् ॥६९॥
नमस्कृत्वा पुनरगात्काष्ठखण्डेन वैश्यकः । परिग्रमन्मूपुरं महापुरमिति श्रुतम् ॥७०॥
महाराज इति ख्यातस्तत्र राजा महत्बलः । तस्य नास्ति सुतः कश्चित्पुत्रिका नष्टलोचना ॥७१॥
सैव तस्य सुता पुत्रस्तस्यापि व्रतमीदृशम् । देवो वा दानवो वाऽपि ब्राह्मणः क्षत्रियो भवेत् ॥७२॥
वैश्यो वा शूद्रयोनिर्वा सगुणो निर्गुणोऽपि वा । तस्मै देया इयं पुत्री यो नेत्रे आहरिष्यति ॥७३॥
राज्येन सह देयेयमिति राजा ह्ययोपयत् । अहनिशमसौ वैश्यः श्रुत्वा धोपमयाब्रवीत् ॥७४॥

वैश्य उवाच

अहं नेत्रे आहरिष्ये राजपुत्र्या भस्मशयम्

॥७५॥

ब्रह्मोवाच

तं वैश्यं तरसाऽऽदाय महाराजे न्यवेदयत् । तत्काष्ठस्पर्शमात्रेण सनेत्राऽभून्मूपात्मजा ॥७६॥
ततः सविस्मयो राजा को भवानिति चाब्रवीत् । वैश्यो राशे यथावृत्तं न्यवेदयदशेषतः ॥७७॥

ब्रह्मा बोले—पिता का यह वचन सुनकर उदार चित्त वाले वैभीषणि ने उस लकड़ी के टुकड़े को लेकर लिये और एक टुकड़े को उसके हृदय में लगा दिया। हृदय में स्पर्श होते ही वह वैश्य नेत्र तथा हाथों से मुक्त हो गया। मणि, मन्त्र तथा ओषधियों के प्रभाव को कौन जान सकता है। उसी काष्ठ-खण्ड को लेकर धर्म का स्मरण करते हुए उसने गोदावरी में स्नान किया और योगेश्वर हरि को नमस्कार करके पुनः काष्ठ-खण्ड धारण कर वहाँ से प्रस्थान कर दिया। इतस्तत् भ्रमण करते हुए वह महापुर नाम से प्रसिद्ध एक राजधानी में पहुँचा। उस नगर में महाराज नाम से प्रसिद्ध एक महाबलवान् राजा रहता था। उसके कोई पुत्र नहीं था। एक कन्या भी थी तो नेत्रों से वधित। वही कन्या उसके पुत्र के स्थान पर थी। राजा ने नियम किया—जो कोई देवता या दानव या ब्राह्मण या क्षत्रिय या वैश्य या शूद्र या गुणवान् या निर्गुणी व्यक्ति मेरी पुत्री को नेत्र प्रदान करेगा, उसी को मैं राज्य के साथ कन्या दूंगा। वह वैश्य दिनरात यह धोपणा सुनकर बोला ॥६७-७४॥

वैश्य ने कहा—मैं राजपुत्री को नेत्र दूंगा, इसमें कोई सन्देह नहीं ॥७५॥

ब्रह्मा बोले—उस वैश्य को लेकर वरुण राजदूत ने महाराज से निवेदन किया। उस काष्ठ का स्पर्श होते ही राजकुमारी नेत्रमुक्त हो गई। तब राजा ने विस्मयपूर्वक उससे पूछा—‘आप कौन हैं?’ वैश्य ने राजा से सारी घटना निवेदन कर दी ॥७६-७७॥

वैश्य उवाच

ब्राह्मणानां प्रसादेन धर्मस्य तपसस्तथा । दानप्रभावाद्यज्ञैश्च विविधभूरिदक्षिणं ॥
दिव्योपधिप्रभावेन मम सामर्थ्यमीदृशम् ॥७८॥

ब्रह्मोवाच

एतद्वैश्यवच श्रुत्वा विस्मितोऽभून्महोपति ॥७९॥

राजोवाच

अहो महानुभावोऽयं प्रायो घृन्दारको भवेत् । अन्यथेतादृगन्यस्य सामर्थ्यं दृश्यते कथम् ॥
तस्मादस्मै नु ता कन्या प्रदास्ये राजपूर्विकाम् ॥८०॥

ब्रह्मोवाच

इतिसकल्प्य मनसि कन्या राज्यं च दत्तवान् । विहारार्थं गत स्वैरपर खेदमुपागत ॥८१॥
न मित्रेण विना राज्यं न मित्रेण विना सुखम् । तमेव सततं विप्रं चिन्तयन्वदयनन्दन ॥८२॥
एतदेव 'सुजातानां लक्षणं भुवि देहिनाम् । कृपाद्रं यन्मनो नित्यं तेषामप्यहितेषु हि ॥८३॥
महानृपो वनं प्रायात्स राजा मणिकुण्डल । तस्मिन्प्रज्ञासति राज्यं तु वदाच्चिद्गीतम द्विजम् ॥८४॥
दृत्स्व घृतकं पापैरपश्यन्मणिकुण्डल । तमादाय द्विजं मित्रं पूजयामास धर्मवित् ॥८५॥
धर्माणां तु प्रभावः तस्मै सर्वं स्यवेदयत् । स्नापयामास यज्ञायां तं सर्पाघनिवृत्तये ॥८६॥

वैश्य बोला—ब्राह्मणों की कृपा से और धर्म तपस्या दान दिव्य औषधि तथा विविध दक्षिणा सम्पन्न
पणा के प्रभाव से मुझे यह सामर्थ्य प्राप्त हुआ है ॥७८॥

ब्रह्मा बोले—वैश्य वा यह वचन सुनकर राजा आश्चर्यचकित हुआ ॥७९॥

राजा बोला—अहा ! यह महानुभाव प्रायः दकना हाया । अन्यथा दूसरें मगना सामर्थ्य कहाँ दता है ?
इसलिये हमी को राज्यगर्हित कन्या प्रदान करूँगा ॥८०॥

ब्रह्मा बोले—मीमा मन से मन्त्रण करके राजा ने उक्त किया तथा राज्य दे दिया । जब वह विहार करने
के लिये गया तो उक्त वडा मन्त्र हुआ । वह साधन ल्या—'विना मित्रं च न मुक्तं राज्यं ही गुहानां है न सुखं ही ।'
वैश्यपुत्र उमा ब्राह्मण की मन्त्र विता करता था । मगार में सुनीता का यद्वा लक्षण होता है कि वह राजपुत्री के
ऊपर भी गर्व करता रहता है । मगराज वन में चला गया । मणिकुण्डल हा शत्रु राज्य-नाश समालोचन था ।
राज्य पर आगमन करने सिमी समय मणिकुण्डल ने उमा गौतम नामक द्विज को दत्ता त्रिमश घन पारी
ऊआरिया ने हनन कर लिया था । उक्त ब्राह्मण मित्र का लाकर घमबता वैश्य ने उमकी पूजा की और धर्मों का
मन्त्र प्रभाव उमे द्रव्य ल्या । अगिला पाप निवृत्ति के लिये उमने द्विज को गंगा मरना करवाया । गौतम,

तेन विप्रेण सर्वैस्तैः स्वकीयेर्गोत्रजैर्वृतः । वेश्यैः स्वदेशसंभूतैर्ब्राह्मणस्य तु बान्धवैः ॥८७॥
 वृद्धकीशिकमुख्यैश्च तस्मिन्योगेदवरान्तिके । यज्ञानिष्ठावा'सुराभ्युज्य ततः स्वर्गमुपेयिवान् ॥८८॥
 ततः प्रभृति तत्तीर्थं मृतसंजीवनं विदुः । चक्षुस्तीर्थं सयोगेशं स्मरणादपि पुण्यदम् ॥
 मनःप्रसादजननं सर्वदुर्भविनाशनम् ॥८९॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये चक्षुस्तीर्थादिवर्णनं नाम
 सप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१७०॥

गीतमीमाहात्म्ये एकाधिकशततमोऽध्यायः ॥१०१॥

अथैकसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः

उर्वशीतीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

उर्वशीतीर्थं नालयातमश्चमेघफलप्रदम् । स्नानदानमहादेववासुदेवार्चनादिभिः ॥१॥
 महेश्वरो यत्र देवो यत्र शाङ्गधरो हरिः । प्रमतिर्नाम राजाऽऽसीत्सार्वभौमः प्रतापवान् ॥२॥

अपने वंश में स्वदेशोत्पन्न वैश्या, गीतम के बान्धवों तथा श्रेष्ठ याज्ञिकों के साथ योगेश्वर के समीप यज्ञ तथा
 देवताओं की पूजा करने मणिहुण्डल ने स्वर्ग प्राप्त किया । तब स लेकर उस तीर्थ का नाम मृतसंजीवनी पड़ा ।
 योगेश्वर सहित चक्षुस्तीर्थ के स्मरण करने से पुण्य, मन की प्रसन्नता तथा समस्त दुर्भावनाओं का नाश होता
 है ॥७१-८९॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में तीर्थ-माहात्म्यकथन-प्रसंग में चक्षुस्तीर्थ आदि
 का वर्णन नामक एक सौ सत्तरवाँ अध्याय समाप्त ॥१७०॥

अध्याय १७१

उर्वशीतीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा बोले—उर्वशी नामक तीर्थ में स्नान दान शिव और विष्णु की पूजा करने से अश्वमेध यज्ञ का फल
 प्राप्त होता है । वहाँ गङ्गा तथा शाङ्ग नामक धनुष धारण करने वाले हरि रहते हैं । (पूजकाल में) प्रमति नामक

१ध च. ०द्वा प्रजा पुण्य । २ध ०र्थ च यो० । ३इ ०बहु खविना० । ४ध च मृगेश्वरो । इ मृगेश्वरो ।

रिपुञ्जित्वा जगामाऽऽशु इन्द्रलोकं सुरैर्वृतम् । तत्रापश्यत्सुरपतिं मरुद्भिः सह नारद ॥३॥
जहासेन्द्रं पाशहस्तं प्रमतिः क्षत्रियर्षभः । त हसन्तमथाऽऽलक्ष्य हरिः प्रमतिमब्रवीत् ॥४॥

इन्द्र उवाच

देवालये महाबुद्धे मरुद्भिः शोडितैरलम् । दिशो जित्वा दिवं प्राप्तः कुरु क्रीडां मया सह ॥५॥

ब्रह्मोवाच

सकषायं हरिश्चो निशम्य प्रमतिर्नृपः । तथेत्युवाच देवेन्द्रं निष्कृतिं कां तु मन्यसे ॥
तच्छ्रुत्वा प्रमतेर्वक्ष्य सुरराष्ट्रपमब्रवीत् ॥६॥

इन्द्र उवाच

उर्वंश्येव पणोऽस्माकं प्राप्या या निखिलैर्मखैः ॥७॥

ब्रह्मोवाच

एतच्छ्रुत्वेन्द्रवचनं प्रमतिः प्राह गवितः । उर्वंशीं निष्कृतिं मन्ये त्व राजर्निक मु' मन्यसे ॥८॥
यद्ब्रवीषि सुरेशान तन्मन्येऽहं शतश्रुतो । 'प्राहेन्द्रं' प्रमतिस्तद्वन्निष्कृत्यं इक्षिण करम् ।
सर्वं सशर धर्मं देहि' (मन्ये) दीप्यामहे' वयम् ॥९॥

ब्रह्मोवाच

सावेवं संविदं कृत्वा देवनायोपतस्यतुः । प्रमतिजित्वास्तत्र उर्वंशीं दैवतस्त्रियम् ॥१०॥

एक प्रतापी तथा वज्रवर्ती राजा 'रुद्र' था। वह एक बार, शत्रुओं को जीतकर देवताओं से घिरे हुए इन्द्रलोक को गया। नारद ! वहाँ उसने मरुद्गण के साथ इन्द्र को देखा। हाथ में पाशा लिये हुए इन्द्र को देखकर क्षत्रियभेष्ट प्रमति ने हँस दिया। हँसते हुए प्रमति को देखकर इन्द्र ने उससे कहा ॥३-४॥

इन्द्र बोले—महाबुद्धिमान् ! देवलोक भ मन्ता के साथ मैं बहुत खेल लिया। आप समस्त दिशाओं को जीत कर स्वर्ग आये हैं। इसलिये अब आप मेरे साथ क्रीडा करें ॥५॥

ब्रह्मा बोले—इन्द्र के सप्रेम वचन को सुनकर राजा प्रमति ने इन्द्र से कहा—'तो हमसे आप काजी क्या लगाने हैं ?' प्रमति की बात सुनकर इन्द्र ने कहा ॥६॥

इन्द्र बोले—उर्वंशी की ही मैं बाजी लगाता हूँ, जो अतिउ यश के करने में मिलती है ॥७॥
ब्रह्मा बोले—इन्द्र की यह बात सुनकर प्रमति खर्ब में वाला—'उर्वंशी की बाजी मुझे स्वीकार है।' तब इन्द्र ने पूछा—'गजन् ! आप क्या बाजी लगाने हैं ?' उसन कहा—'इन्द्र आप का कह मैं वही लगाने के लिय तैयार हूँ।' इन्द्र ने कहा—'मैं यह चाहता हूँ कि आप वज्र, बाण तथा वनस्प गहिन अपने दाहिने हाथ को रखें ॥८-९॥

ब्रह्मा बोले—वे दाना इस तरह बाजी रखकर जुआ खेलन लगे, जिसमें प्रमति ने देवाङ्गना उर्वंशी को जीत लिया। उगे जीतकर प्रमति ने अभिमानपूर्वक इन्द्र ने कहा ॥१०॥

प्रमतिरुवाच

निष्कृत्य पुनरन्यन्मे पश्चाद्दीव्ये त्वया विभो

॥११॥

इन्द्र उवाच

देवयोग्यमयो धञ्जं जंत्रं सरयमुत्तमम् । दीव्येऽहं तेन नृपते करेणाप्यविचारयन् ॥१२॥

ब्रह्मोवाच

स गृहीत्वा तदा पाशानन्यांश्च मणिभूषितान् । जितमित्यब्रवीच्छक्रं प्रमतिः प्रहसन्तदा ॥१३॥

एतस्मिन्नन्तरे प्रायादक्षजस्तत्र नारद । विश्वावसुरिति स्थातो गन्धर्वाणां महेश्वरः ॥१४॥

विश्वावसुरुवाच

गन्धर्वविद्यया राजस्तया दीव्यामहे त्वया । तथेत्युक्त्वा स नृपतिर्जितमित्यब्रवीत्तदा ॥१५॥

तां जित्वा नृपतिर्मां स्पर्धादेवेन्द्रं प्राह कश्मलम् ॥१६॥

प्रमतिरुवाच

रणे वा देवने वाऽपि न त्व जेता कथंचन । महेंद्र सततं तस्मादस्मदाराधको भव ॥१७॥

यद केन प्रकारेण जाता देवेन्द्रता तव

ब्रह्मोवाच

तया प्राहोर्वंशीं गवांश्च गच्छ क्रमं करी भव । उर्वंशीं प्राह देवेषु यथा वर्तते तथा त्वयि ॥१८॥

घर्तयं सर्वभावेन न मां पिबकर्तुमर्हसि

प्रमति बोला—मगवन् ! अब दूसरी बाजी लगाइये ॥११॥

इन्द्र ने कहा—देव ने योग्य जयशील क्या तथा उत्तम रथ को मैं ध्वज पर रखता हूँ । राजन् ! आपने हाथ को भी इग बार मैं रखवाना नहीं चाहता हूँ ॥१२॥

ब्रह्मा बोले—तब प्रमति ने मणिभूषित दूसरे पासे लेकर फेंके और इन्द्र से हँसकर कहा—‘मेरी जीत हुई !’ नारद ! इसी बीच ब्रह्मा ध्वज ने मणिगुण गन्धर्वों का स्वामी विश्वावसु वहाँ आ पहुँचा ॥१३-१४॥

विश्वावसु ने कहा—‘राजन् ! गन्धर्व विद्या की बाजी रखकर मैं आपने जुआ खेलना चाहता हूँ । राजा ने स्वीकार कर पाशा पेंचा और कहा—‘मेरी जीत हुई !’ प्रमति ने दोनों का जीतकर मूर्खतावश इन्द्र से कहा ॥१५-१६॥

प्रमति बोला—महेंद्र ! न युद्ध में और न जुए में तुम किसी तरह मुझे जीत सके । इसलिए तुम सचन मेरी पूजा किया करो और यह भी बगलाओ कि तुम इन्द्र जैसे बन गये ॥१७॥

ब्रह्मा बोले—उसी तरह उर्वंशी स भी उगम गर्व से कहा—‘तुम जाओ और मेरी नौचरी करो ।’ उर्वंशी ने उगमे कहा—‘मैं जंग देवताओं के साथ व्यवहार करती हूँ, उसी तरह आपसे भी साथ करूँगी । आगामुसे पटवरिये पत्र’ ॥१८॥

ब्रह्मोवाच

ततस्तां प्रमतिः प्राह त्यादृश्यं सन्ति चारिकाः । त्वं किं विलज्जसे भद्रे गच्छ कर्मकरी भव ॥१९॥
एतच्छ्रुत्वा नृपेणोक्तं गन्धर्वाधिपतिस्तदा । चित्रसेन इति ख्यातः (प्राह) सुतो विश्वावसोर्बली ॥२०॥

चित्रसेन उवाच

दीव्येऽहं वै त्वया राजन्सर्वेणानेन भूपते । राज्येन जीवितेनापि मदीयेन तवापि च ॥२१॥

ब्रह्मोवाच

तयेत्युक्त्वा पुनरुभौ चित्रसेननृपोतमो । दीव्येतामभिसंरब्धौ चित्रसेनोऽजयत्तदा ॥२२॥
गान्धर्वेस्त महापाशैर्बन्ध नृपतिं तदा । चित्रसेनोऽजयत्सर्वं मुर्वशीमुत्थत. पणः ॥२३॥
राज्यं कोशं बलं चैव यदन्यद्वसु किञ्चन । चित्रसेनस्य सज्जातं यदासीत्प्रमतेर्धनम् ॥२४॥
ता जित्वा प्रमतिः प्राह संरम्भात्तं शतक्रतुम् ॥२५॥

प्रमतिपुत्र उवाच

किं मे पित्रा कृतं पापं क्व वा ब्रह्मो महामतिः । कथमेष्ट्यति स्वं स्थानं कथं पाशैर्विमोक्ष्यते ॥२६॥

ब्रह्मोवाच

सुमतेर्वचनं श्रुत्वा ध्यात्वा स मुनिसत्तमः । मधुच्छन्दा जगादेदं प्रमतेर्वर्तनं तदा ॥२७॥

ब्रह्मा बोले—तब प्रमति ने उर्वशी से कहा—‘भद्रे ! तुम्हारी जैसी मेरी अनेक परिचारिकाये हैं । तुम क्यों लज्जा करती हो ? जाओ, मेरा काम करो ।’ राजा को यह बात सुनकर गन्धर्वों के स्वामी विश्वावसु के पुत्र बन्वान् चित्रसेन ने कहा ॥१९-२०॥

चित्रसेन बोला—‘राजन् ! मैं सब कुछ भी वाजी लगाकर आप से जूजा खेलना चाहता हूँ । मैं अपने तथा आपके राज्य एवम् जीवन की वाजी लगाया चाहता हूँ ॥२१॥

ब्रह्मा बोले—‘राजा ने कहा—‘ऐसा ही सही ।’ फिर चित्रसेन और राजा न खेलना आरम्भ कर दिया । चित्रसेन की विजय हुई । तब उसने गान्धर्वों पास में राजा को बाँध दिया । चित्रसेन ने वाजी में उर्वशी आदि सबको जीत लिया । प्रमति का राज्य कोश, सेना, धन आदि जो कुछ भी था, सबको चित्रसेन ने जीत लिया । तब प्रमति के पुत्र ने जो विलकुल बालक ही था, अपने पुरोहित विश्वापित्र के पुत्र महापण्डित मधुच्छन्दा से पूछा ॥२२-२५॥

प्रमति का पुत्र बोला—‘मेरे महाबुद्धिमान् पिता ने कौनसा पाप किया ? कहाँ बाँधे गये ? कैसे पास से विमुक्त होकर अपने स्थान पर आयेगे ? ॥२६॥

ब्रह्मा बोले—‘सुमति के वचन को सुनकर मुनिश्रेष्ठ मधुच्छन्दा ने ध्यान करके प्रमति के बारे में कहना आरम्भ किया ॥२७॥

मधुच्छन्दा उवाच

देवलोकं तव पिता बद्ध आस्ते महामते । कंतवैबहुदोषैश्च भ्रष्टराज्यो बभूव ह ॥२८॥
 यो याति कंतवसभा स चापि बलेशभाभवेत् । द्यूतमद्यामिषादीनि व्यसनानि नृपात्मज ॥२९॥
 पापिनामेव जायन्ते सदा पापात्मकानि हि । एकैवमप्यनर्थाय पापाय नरकाय च ॥३०॥
 यानासनाभिलाषाद्यैः कृतैः कंतव्यवर्तिभिः । कुलीनाः कलुषीभूताः किं पुनः कितवो जनः ॥३१॥
 कितवस्य तु या जाया तप्यते नित्यमेव सा । स चापि कितवः पापो योऽपि धीक्ष्य तप्यते ॥३२॥
 तां दृष्ट्वा विपनानन्दो नित्यं वदति पापकृत् । अहो संसारचक्रेऽस्मिन्मया तुल्यो न पातकी ॥३३॥
 न किञ्चिदपि यस्याऽऽस्ते लोके विषयजं सुखम् । लोकद्वयेऽपि न सुखो कितवः कोऽपि दृश्यते ॥३४॥
 विभाति च तथा नित्यं लज्जया दग्धमानसः । गतधर्मो निरानन्दो ग्रस्तगर्वस्तथाऽटति ॥३५॥
 अकंतवी च या वृत्तिः सा प्रशस्ता द्विजन्मनाम् । कृपिगोरक्षवाणिज्यमपि कुर्यान्न कंतवम् ॥३६॥
 यस्तु कंतववृत्त्या हि धनमाहर्तुमिच्छति । धर्मार्यकामाभिजनैः स विमुच्येत पोरुषात् ॥३७॥
 येवैऽपि दूषितं कर्म तव पित्रा तदाऽऽदृतम् । तस्मार्त्तिकं कुर्महे यत्स यदुक्तं ते विधीयते ॥३८॥
 विधातृविहितं मार्गं को नु याऽप्येति पण्डितः ॥३९॥

ब्रह्मोवाच

एतत्पुरोधसो वाक्यं श्रुत्वा सुमतिरन्नवोत्

॥४०॥

मधुच्छन्दा बोले—महाधीमान् । देवलोक में तुम्हारे पिता बंधे हुए हैं । अनेक दोषों से युक्त द्यूतवर्म (जूआ) करने से वे राज्यभ्रष्ट हो गये । जो कोई भी द्यूतवर्मा में जाता है, वह अवश्य दुःख पाता है । नृपपुत्र । द्यूत, मद्य, मांस आदि पागरूपी व्यसन पापिया के लिये ही हैं । इनमें से एक भी अनर्थ, पाप तथा नरक के लिये पर्याप्त है । जुआरिया के साथ चलने बैठने तथा वार्तागण करने से कुलीन व्यक्ति भी दूषित हो जाते हैं, और जो जुआरी ही हैं, उसके विषय में तो कहना ही क्या ? जुआरी की जो स्त्री होती है वह सदा अनुताप करती है । वह पापी जुआरी की स्त्री को देखकर परवात्ताप करता है । स्त्री का देखकर वह पापी आनन्दगून्ध होकर कहने लगता है—‘हाय ! इस संसार-वेत्र में भरे जैसा पानरि कोई नहीं है ।’ लोक में ऐसा कोई नहीं है, जिस विषयजन्य सुख नहीं मिलता है । पर जुआरिया के लिए दोनों लोक भी मुक्त नहीं हैं । वह नित्य लज्जा से दग्धचित्त बना रहता है और धर्म तथा आनन्द से गून्ध हाथर मदमत्त ही तरह घूमता है । द्विजानिया के लिये छल-रहित वृत्ति ही प्रशस्त मानी गई है । छत्र में बेनी, गोरक्षा तथा व्यापार भी नहीं करना चाहिये । जो छल-वृत्ति से धन उर्जजन करना चाहता है, वह धर्म अर्थ, नाम, कुटुम्ब तथा पुण्यत्व से वंचित हो जाता है । वेद में भी जो वर्म दूषित माना गया है, वही तुम्हारे पिता के किया । बस ! इगलिष हसलोग क्या करें ? कुछ जो नहो, वही कर दे । मला, कौन विद्वान् विधाता के मार्ग का उल्लंघन कर सकता है ? ॥२८-२९॥

ब्रह्मा बोले—पुरोहित का यह वाक्य सुनकर सुमति बोला ॥४०॥

सुमति उवाच

किं कृत्वा प्रमतिस्तातः पुनः राज्यमवाप्नुयात्

॥४१॥

ब्रह्मोवाच

पुनर्ध्यात्वा मधुच्छन्दाः सुमतिं चेदमब्रवीत्

॥४२॥

मधुच्छन्दा उवाच

गौतमीं याहि वत्स त्वं तत्र पूजय शंकरम् । 'अदितिं वरुणं विष्णुं ततः पाशाद्विमोक्ष्यते ॥४३॥

ब्रह्मोवाच

तथेत्युक्त्वा जगामाऽऽशु गङ्गां नत्वा जनार्दनम् । पूजयायास शंभुं च तपस्तेपे यतव्रतः ॥४४॥

सहस्रमेक वर्षाणां बद्धं पितरमात्मनः । मोक्षयामास देवेभ्यः पुनः राज्यमवाप सः ॥४५॥

शिवे (हरी) शाश्वतो मुक्तपाशो राज्यं प्राप सुतात्सवकात् । अवाप्य विद्यां गान्धर्वीं प्रियश्चाऽऽसीच्छ-

तव्रतोः ॥४६॥

शाम्भवं वैष्णवं चैव उर्वशीतीर्थमेव च । ततः प्रभृति तत्तीर्थं कृतं चेति विश्रुतम् ॥४७॥

शिवश्चिन्तुस्तिष्ठमातुः प्रसादादाप्स्यते न किम् । तत्र स्नानं च दानं च बहुपुण्यफलप्रदम् ॥

पापपाशविमोक्षं तु सर्वदुर्गतिनाशतम् ॥४८॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्रह्मे तीर्थमाहात्म्ये उर्वशीपादितोर्वचर्णनं नामैकसप्तत्यधि-

कशततमोऽध्यायः ॥१७१॥

गौतमीमाहात्म्ये द्व्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१०२॥

सुमति ने कहा—क्या करने से पिता प्रमति पुनः राज्य प्राप्त करेंगे ? ॥४१॥

ब्रह्मा बोले—फिर ध्यान करके मधुच्छन्दा ने सुमति से कहा ॥४२॥

मधुच्छन्दा बोले—वत्स ! तुम गोदावरी जाओ और वहाँ शंकर, अदिति, वरुण तथा विष्णु की पूजा करो । सब तुम्हारे पिता पाश से मुक्त हो जायेंगे ॥४३॥

ब्रह्मा बोले—'अस्तु' कहकर सुमति ने शीघ्र ही गंगा के लिये प्रस्थान कर दिया । वहाँ पहुँच कर (वह गंगा को प्रणाम कर विष्णु तथा शंकर की पूजा करके निवसपूर्वक तप करने लगा । एक हजार वर्षों तक तपस्या करके उसने अपने पिता को देव-बन्धन से मुक्त किया । सब प्रमति ने अपने पुत्र से पुनः राज्य तथा शिव एवम् विष्णु की भक्ति प्राप्त की । वह गन्धर्व-विद्या को प्राप्त कर इन्द्र का प्रियपात्र बना । तब से उस तीर्थ का नाम शाम्भवं वैष्णवं उर्वशीतीर्थ एवम् कृतवतीर्थ भी पड़ा । शिव विष्णु तथा भगवत् कृपा से क्या नहीं प्राप्त हो सकता है ? वहाँ स्नान तथा दान करने से बहुत पुण्य, पाप तथा बन्धन से मुक्ति और समस्त दुर्गंतियों का नाश होता है ॥४४-४८॥

श्रीब्रह्मपुराण में तीर्थमाहात्म्य-कथन-असंग में उर्वशी आदि तीर्थ वर्णन नामक एक

और एकहत्तरवाँ अध्याय समाप्त ॥१७१॥

अथ द्विसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः

सामुद्रतीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

सामुद्र तीर्थमाख्य सर्वतीर्थफलप्रदम् । तस्य स्वरूपं वक्ष्यामि शृणु नारद तन्मना ॥१॥
 विसृष्टा गौतमेनासी गङ्गा पापप्रणाशनी । लोकानामुपकारार्थं प्रायःतूष्णीव प्रति ॥२॥
 आगच्छन्ती देवनदी कमण्डलुधृता भया । शिरसा च धृता देवी शम्भुना परमात्मना ॥३॥
 विष्णुपादात्प्रसूता ता ब्राह्मणेन महात्मना । आनीता मर्त्यभवन स्मरणाद्यनाशनीम् ॥४॥
 गुरोर्गुरुतमा सिन्धुर्दृष्ट्वा कृत्यमचिन्तयत् । या व द्या जगतामीशा ब्रह्मेशार्चनमरकृता ॥५॥
 तामह प्रतिगच्छेय मो चेत्स्याद्भनदूषणम् । आगच्छ त महात्मान यो मोहान्नोपतिष्ठते ॥६॥
 न तस्य कोऽपि भ्राताऽस्ति पापिनो लोकयोर्द्वयो । एव विमृश्य रत्नेशो मूर्तिभान्विनयाधित ॥
 कृताञ्जलिपुटो गङ्गामाहेव सरितापति ॥७॥

सिन्धुरवाच

'रसात्तलगत वारि पृथिव्या यत्नभस्तले । तन्मामेवात्र विशतु माह वक्ष्यामि किञ्चन ॥८॥

अध्याय १७२

सामुद्रतीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा बोले—सामुद्रतीर्थ समस्त तीर्थों का फलदायक है। उसका स्वरूप-वर्णन मैं कहूँगा। नारद ! आप ध्यान से सुनिये। गौतम सत्यका होकर अखिलपापनाशिनी गंगा ओषा के उपकार के लिये पूव समुद्र की ओर चल पड़ी। आती हुई उस देवतानी को मैं कमण्डलु में धारण कर लिया और परमात्मा गकर न उस अपन गिर पर अवस्थित किया। विष्णु के चरण से निकली हुई उस पापनाशिनी देवी को महात्मा ब्राह्मण मूढलाव म ले आये। उस सब-पटा देवी को देखकर समुद्र अपने वसत्य की चिन्ता करने लगा कि जो भगवती ससार का पूजनीया तथा ब्रह्मा गिर आदि देवताओं की प्रणम्या है उससे मुझ सगम करना पड़गा। इसमें घमण्य तो नहीं है क्योंकि जो मोहक आते हुए महात्मा का सत्कार नहीं करता है उस पापा का सरसक दोना लोक में बाई नहीं होता है। एसा सोचकर मानो नम्रता की मूर्ति धारण कर खलाकर ने हाथ जोड़कर गंगा से कहा ॥१॥ ७॥

समुद्र बोला—भानाल म पृथिवी पर तथा आकाश म जो जल है वह मुझम ही प्रविष्ट है। (वस इतना ही) और मैं कुछ नही कहूँगा। मैं खल अमूल पवत रागस देवता तथा दूमरे जीवा को धारण करता हूँ। मेरे

मयि रत्नानि पीयूषं पर्वता राक्षसासुराः। एतानप्यखिलानन्याभ्रीमान्संधारयाम्यहम् ॥१॥
 ममान्तः कमलायुक्तो विष्णुः स्वपिति नित्यदा। ममाक्षयं न किमपि विद्यते सचराचरे ॥१०॥
 महत्पद्मपागते कुर्यात्प्रत्युत्थानं न यो मदात्। स धर्मादिपरिग्राहो निरयं तु समाप्नुयात् ॥११॥
 न तान्मे विभ्रतः खेदो विनाऽप्यस्त्यपराभवात्। किंतु त्वं गौरवेणैषामतिरिक्ता स्तस्वहम् ॥१२॥
 अवीमि देवि गङ्गे मां त्वं साम्यात्संगता भव। नैकरूपामह शक्तः संगन्तुं बह्वधा यदि ॥१३॥
 सङ्गमेष्यसि देवि त्वं संगच्छेऽहं न चान्यथा। गङ्गे समेष्यसि यदि बह्वधा तद्विचारये ॥१४॥

ब्रह्मोवाच

तमेवंवादिनं सिन्धुमपामीशं तदाऽब्रवीत्। गङ्गा सा गौतमी देवी कुरु चैतद्वचो मम ॥१५॥
 सप्तर्षीणां च या भार्या अरन्धतिपुरोगमाः। भर्तुभिः सहिताः सर्वा आनय त्वं तदा त्वहम् ॥१६॥
 अल्पभूता भविष्यामि ततः स्यां तव संगता। तथेत्युक्त्वा सप्तर्षीणां भार्याभिर्ऋतु (श्चक्र) विभिवृत्तः
 (ताः) ॥१७॥

आनयामास तां (ता) देवी सप्तधा सा व्यभज्यत। सा घेयं गौतमी गङ्गा सप्तधा सागरं गता ॥१८॥
 सप्तर्षीणां तु नाम्ना तु सप्त गङ्गास्ततोऽभवन्। तत्र स्नानं च दानं च श्रवणं पठनं तथा ॥१९॥

मीतर लक्ष्मीयुक्त विष्णु सदा शयन करते हैं। ससार में ऐसा कुछ भी नहीं है, जो मुझसे अस्वाम्य हो। महान् व्यक्ति के आने पर जो अन्निमान से उठता नहीं है, वह धर्म आदि से भ्रष्ट होकर नरक में जाता है। उन चीजों को धारण करने से मुझे खेद नहीं होता है, यदि खेद होता है तो केवल एक अगस्त्य द्वारा पराजय से। किन्तु तुम अपनी महत्ता के कारण दनसे अतिरिक्त हो। इसलिये, देवि! शगे, मैं कहता हूँ कि तुम समान होने के कारण मुझसे सगम करो। तुम जब तक एक रूप में रहोगी तब तक मैं तुमसे सगम करने में असमर्थ रहूँगा। पर यदि तुम अनेक रूप धर कर सगम करोगी तो मैं सगम कर पाऊँगा, अन्यथा नहीं। शगे! सोचो, जिससे कि तुम अनेक रूप बनाकर सगम कर सकी ॥८-१४॥

ब्रह्मा बोले—इस प्रकार बोलते हुए बल के स्वामी समुद्र से उस गौतमी देवी गगाने कहा—‘तो मेरी यह बात करो कि सप्तर्षियों की अग्न्यती आदि जो भार्याये है, उनको पतियों के सहित ले आओ। तब मैं सीमित हो जाऊँगी, जिससे तुम्हारे साथ मेरा सगम हो जायगा।’ ‘ऐसा ही सही’ कहकर समुद्र ऋषि पतिथो सहित सप्तर्षियों की भार्याओं को ले आया। तब गंगा सात भागों में विभक्त हो गई। वही यह गौतमी गंगा है, जो सात भागों में बँटकर समुद्र में मिल गई। तब सप्तर्षियों के नाम से सात गंगाएँ हुईं। वहाँ, स्नान, दान श्रवण तथा पाठ करने से या स्मरण

स्मरणं चापि यद्भक्त्या सर्वकामप्रद भवेत् । मास्माद-यत्परं तीर्थं समुद्राद्भुवनत्रये ॥
पापहानी भुक्तिमुक्तिप्राप्तौ च मनसो मुदे ॥२०॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये सप्तधागोदावरीसमुद्रागमनवर्णनं नाम
द्विसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१७२॥

• गौतमीमाहात्म्ये त्र्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१०३॥

अथ त्रिसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः

भीमेश्वरतीर्थवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

श्रुपिसत्रमिति श्यातमूपय सप्त नारद । निषेदुस्तपसे यत्र यत्र भीमेश्वर शिव ॥१॥
तत्रेदं वृत्तमाख्यास्ये देवर्षिपिबुद्धितम् । शृणु यत्नेन वक्ष्यामि सर्वकामप्रदं शुभम् ॥२॥
सप्तधा वपभज्जगद्गामूपय सप्त नारद । वासिष्ठी दाक्षिणेयी श्याद्वैश्वामित्री तदुत्तरा ॥३॥
वामदेव्यपरा ज्ञेया गौतमी मध्यतः शुभा । भारद्वाजी स्मृता चाग्या आत्रेयी चैत्यथापरा ॥४॥
जामदग्नौ तथा चाग्या व्यपदिष्टा तु सप्तधा । तं सर्वश्रुपिभित्तत्र यदुमिष्टमंहात्मभि ॥५॥

करने से भी समस्त कामनायें पूरी होती हैं । पापा को नष्ट करने में और मुक्ति मुक्ति तथा मनकी प्रसन्नता देने में इस समुद्र से बड़कर तीनों लोक में कोई तीर्थ नहीं है ॥१५२०॥

प्राज्ञब्रह्मपुराण में नावमाहात्म्यजनप्रसन्न में साती गयाआ व समुद्र मिलन वर्णन
नामक १ व मौ बहतरवा अध्याय समाप्त ॥१७२॥

अध्याय १७३

भीमेश्वरतीर्थ का वर्णन

ब्रह्मा बोले—नारद ! उस तीर्थ का नाम श्रुपिसत्र है जहाँ तप करने के लिए सात श्रुपि अवस्थित हुए
थ और जहाँ भीमेश्वर शिव रहते हैं । वहाँ देवर्षियों और पितरों द्वारा जो वृत्तान्त हुआ था उसे मैं बतलाऊंगा । इस
अभिज्ञ कामनादायक एवम् पवित्र वृत्तान्त को ध्यान से सुनिये । नारद ! सप्तर्षियों ने गंगा को सात भागों में विभक्त
कर दिया । गंगा में वासिष्ठी हुई और उत्तर में वैश्वामिनी । वामदेवी त मरी हुई और मध्य में पवित्र
गौतमी हुई । इनके अनिरिक्त नारद्वाजी आनयी एवम् जामदग्नौ हुई । इस प्रकार गंगा सात भागों में बँट गई ।
वहाँ उन महात्मा तथा भविष्यदर्शी सप्तर्षियों ने महासत्र नामक यज्ञ करना आरम्भ किया । इसी बीच देवताओं

निष्पादितं महासत्रमृषिभिः पारदक्षिभिः। एतस्मिन्नन्तरे तत्र देवानां प्रबलो रियुः॥६॥
 विश्वरूप इति ख्यातो मुनीनां सत्रमभ्यगात्। ब्रह्मचर्येण तपसा तानाराध्य यथाविधि॥
 विनयेनाय पप्रच्छ ऋषीन्सर्वाननुकमात् ॥७॥

विश्वरूप उवाच

ध्रुव सर्वे यथाकामं मम स्वास्थ्येन हेतुना। यथा स्याद्बलवान्पुत्रो देवानामपि दुर्धरः॥
 यतर्वा तपसा वाऽपि मुनयो वस्तुमर्हय ॥८॥

ब्रह्मोवाच

तत्र प्राह महाबुद्धिर्विश्वामित्रो महामना। ॥९॥

विश्वामित्र उवाच

कर्मणा तात लभ्यन्ते फलानि विविधानि च। प्रयाणां कारणानां च कर्म प्रथमकारणम्॥१०॥
 सततं च कारणं कर्ता सततं चागस्तप्रकोतितम्। उपादानं तथा बीजं न च कर्म विदुर्दुधा॥११॥
 कर्मणा कारणत्वं च कारणे पुष्कले सति। भावाभावौ फले दृष्टौ तस्माद्वर्माश्रितं फलम्॥१२॥
 कर्मपि द्विविधं श्रेयं क्रियमाणं तथा कृतम्। कर्तव्यं क्रियमाणस्य साधनं यद्यदुच्यते॥१३॥
 तद्भावाः कर्मसिद्धौ च उभयत्रापि कारणम्। यद्यद्भावायते जन्तुः कर्म कुर्वन्निश्चक्षणः॥१४॥
 तद्भावतानुरूपेण फलनिष्पत्तिरुच्यते। करोति कर्म विधिवद्विना भावनया यदि॥१५॥
 अन्यथा स्यात्फलं सर्वं तत्सद्भावानुरूपतः। तस्मात्तपो व्रतं दानं जपयज्ञादिका क्रियाः॥१६॥

का प्रबल शत्रु विश्वरूप मुनियों के यज्ञस्थल में आ गया। ब्रह्मचर्य तथा तपस्या से विधिपूर्वक मुनियों की जमश आराधना करके उसने वज्रता के साथ उनसे प्रश्न किया ॥१७॥

विश्वरूप ने कहा—मेरी स्वस्थता के कारण जिस उपाय से—यज्ञ या तप करने से—बलवान् एवम् देवताओं से भी अजेय पुत्र मुझे उत्पन्न हो, वह आप लोग बतलायें ॥८॥

ब्रह्मा बोले—उमसे से महाबुद्धिमान् तथा महागन्धर्वी विश्वामित्र ने कहा ॥९॥

विश्वामित्र बोले—तात ! कर्म से अनेक प्रकार के फल प्राप्त होते हैं। तीन कारणों में कर्म ही प्रथम कारण माना जाता है। उसके बाद कारण, कर्ता तथा दूसरी वस्तु नहीं आती है। विद्वान् लोग उपादान कारण एवम् बीज को कर्म नहीं मानते हैं। कारणों के आधिक्य होने पर ही कर्मों में कारणत्व माना जाता है। कर्म के दो फल होते हैं—एक माव और दूसरा अमाव। इसलिये कर्म-फल कर्म के अधीन है। कर्म भी दो प्रकारवा माना गया है—एक क्रियमाण और दूसरा कृत। कर्तव्य क्रियमाण का साधन कहा जाता है। कर्तव्य की भावना कर्म तथा उसकी सिद्धि में कारण होती है। विद्वान् मनुष्य जिस भावना से कर्म करता है उसी भावना के अनुरूप उसे फल मिलता है। जो बिना भावना के विधिपूर्वक कर्म करता है, उसे अपनी भावना के प्रतिकूल फल मिलता है। इसलिये तप,

कर्मणस्त्वनुरूपेण फलं दास्यन्ति भावतः । तस्माद्भावानुरूपेण कर्म वै दास्यते फलम् ॥१७॥
 भावस्तु त्रिविधो ज्ञेयः सात्त्विको राजस्तथा । तामसस्तु तथा ज्ञेयः फलं कर्मानुसारतः ॥१८॥
 भावनानुगुणं चेति विचित्रा कर्मणां स्थितिः । तस्माद्विच्छेदानुसारेण भावं कुर्याद्विचक्षणः ॥१९॥
 पश्चात्कर्मणि कर्तव्यं 'फलदाताऽपि तद्विधम् । फलं ददाति फलिनां 'फले यदि प्रवर्तते ॥२०॥
 कर्मकारो न तत्रास्ति कुर्यात्कर्म स्वभावतः । तदेव चोपदानादि सत्त्वादिगुणभेदतः ॥२१॥
 भावात्प्रारभते तद्भावं फलमवाप्स्यते । धर्मविक्रममोक्षार्णां कर्म चैव हि कारणम् ॥२२॥
 भावस्थित भवेत्कर्म मुक्तिदं व्यवहारणम् । स्वभावानुगुणं कर्म स्वस्यैवैह परतः च ॥२३॥
 फलानि विविधान्यासु करोति समतानुगम् । एक एव पदार्थोऽसौ भावर्भेदः प्रदृश्यते ॥२४॥
 क्रियते भुज्यते चापि तस्माद्भावो विशिष्यते । दयाभावं कर्म कुद दधेऽस्ति तमवाप्स्यति ॥२५॥

ब्रह्मोवाच

एतच्छ्रुत्वा ऋषेर्वाक्यं विश्वामित्रस्य धीमतः । तपस्तपसा बहुकालं तामसं भावमाधितः ॥२६॥
 विश्वरूप कर्म भीम चकार सुरभीषणम् । पश्यत्सु ऋषिमुख्येषु वार्यमाणोऽपि नित्यशः ॥२७॥
 आत्मकोषानुसारेण भीम कर्म तथाऽकरोत् । भेदणे कुण्डलात्ते तु भीषणे जातवेदसि ॥२८॥

व्रत, दान, जप, यज्ञ आदि क्रियायें भावना के अनुरूप कर्मफल देती हैं । अतः भावना के अनुसार ही कर्म का फल प्राप्त होता है । भाव तीन प्रकार का होता है—एक सत्त्विक दूसरा राजस और तीसरा तामस । फल कर्म तथा भावना के अनुसार मिलता है । कर्मों की स्थिति विविध है । इसलिये विद्वान् मनुष्य इच्छा के अनुसार भाव करे । पश्चात् कर्म भी करता चाहिये । फलदाता भी कर्मकर्ता को भावना के अनुरूप ही फल देत हैं । वस्तुतः कर्मकर्ता अपने स्वभाव के अनुसार ही कर्म करता है । वही कर्म उपादान आदि कारणों और सत्त्व आदि गुणों के भेद के कारण भाव से प्रारम्भ होता है । और उसी तरह भाव से फल प्राप्त होता है । धर्म, अथ वाम और मोक्ष का कारण कर्म ही है । भावनायुक्त कर्म मोक्ष भी देता है और बन्धन का कारण भी होता है । अपनी भावना के अनुसार किया गया कर्म इस प्रकार से तथा परलोक में मोक्ष हो विविध फलों को देता है । एक ही पदार्थ भावा के भेद से भिन्न हो जाता है । अर्थात् एक ही पदार्थ बसाया जाना है और गसाया भी जाना है । इसलिये भाव विशिष्ट माना गया है । जैसी भावना से कर्म करीये वैसा फल पाजाना ॥१०-३५॥

यश्चा बोले—धीमान् विश्वामित्र मुनि की यह बात सुनकर विश्वरूप ने तामस भाव का अवलम्बन लेकर चित्तान्त तक तप किया और देवताओं का डराने वाला भयानक कर्म किया । ऋषिगण उसका कर्म दग्धत थे और निन्द उगे मता भी करने थे । फिर भी अपन प्रीति के अनुसार वह भयानक कर्म करता ही रहा । वह भयानक कुण्ड

१५ फल तथापि । २४ इ. फलेच्छेद । च फलेच्छीव । ३५ य च अन्याह क० । ४५. समतानुगम् ।

भोग्यं रौद्रपुरुषं ध्यात्वाऽऽत्मानं गृहाणयम् । एव तपन्तमालक्ष्य ध्याग्वाचाशरीरिणी ॥२९॥
 जटाजूटं विनाऽऽत्मानं न च वृत्रं व्यजीयत । ध्यायऽऽत्मानं विश्वरूपो जुहुयाज्जातवेदति (?) ॥३०॥
 स एवेन्द्र स वरुण स च स्यात्सर्वमेव च । त्यक्त्वाऽऽत्मानं जटामात्रं हृतवान्वृजिनोद्भव ॥३१॥
 वृत्र इत्युच्यते वेदे स चापि वृजिनोऽभवत् । भीमस्य महिमानं को जानाति जगदीशितु ॥३२॥
 सृजयशेषमपि यो न च सङ्गेन लिप्यते । विररामेति सकीर्त्य सा वाण्येन मुनीश्वरा ॥३३॥
 भीमेश्वरं नमस्कृत्य जगत् स्वस्वमयाऽऽश्रमम् । विश्वरूपो महाभीमो भीमकर्मा तयाकृति ॥३४॥
 भीमभाषो भीमननुष्यात्वाऽऽत्मानं जुहाव ह । तस्मादभीमेश्वरो देव पुराणे परिपठ्यते
 तत्र स्नानं च दानं च भुवि तदनात्र सशय ॥३५॥

इति पठति शृणोति यश्च भक्त्या, विबुधपति शिवमत्र भीमरूपम् ।
 जगति विदितमशेषपापहारिस्मृतिपदशरणेन भुवि तदश्च (?) ॥३६॥
 गोदावरी तावदशेषपापसमूहहन्त्री परमार्थदात्री
 सदैव सर्वत्र विशेषतस्तु, यत्राम्बुराशि सप्तनुप्रविष्टा ॥३७॥
 स्नात्वा तु तस्मिन्सुकृती शरीरी, गोदावरीवारिधिसगमे य ।
 उद्धृत्य तीव्राश्रित्याश्शेषात्स पूर्वजान्माति पुरपुरारे ॥३८॥

मे भयकर अग्नि मे हवन करता था और हृदयस्थित आत्मा का दारुण पुरुष के रूप में ध्यान करता था । इस प्रकार
 ता ऊँ ने पुनः ॥३४॥ को देवकर आकाशवाणी ने कहा— शिव के बिना वृत्र ने आत्मा को नहीं जीता । विश्वरूप
 ०२५ ही अग्नि ने आत्मा को आहुति देगा । वही इन्द्र वही वरुण और वही सब कुछ है । वृजिन के पुत्र ने आत्मा को
 छोटकर जगत्मात्र की आहुति दी थी । वेद में जो वृत्र कहा गया है वह वृजिन से इतर नहीं है । ससार के स्वामी
 भीम पुरुष की महिमा को कौन जानता है ? भयकर भाव वाले विश्वरूप में भयकर शरीर का ध्यान करके आत्मा
 की आहुति दी । इसलिये भीमेश्वर देव पुराणों में पढ़ जाते हैं ॥ वहाँ स्नान तथा दान करने से निःसदेह भुक्ति
 मिलता है ॥२९ ३५॥ जो मनःस्थ देवताओं के स्वामी तथा जगदविदित भीम रूप वाले शिव के इस आख्यान का
 श्रवण तथा पाठ करेगा उसके समस्त पाप नष्ट हो जायेंगे और मोक्ष मिलेगा । गोदावरी सब जगह अशेष-पाप-हारिणी
 तथा मोक्ष देने वाली है । पर उस जगह तो और भी फल देती है जहाँ वह समुद्र में प्रविष्ट हुई है । जो घर्मतिमा
 मनुष्य गयासागरसगम में स्नान करता है वह भयकर नरक से पितरों का उद्धार करके शिवलोक को जाता है ।

१८ ०१ तव पुत्रोऽभ्यजायत । तथाऽऽत्मा ० । २४ च ०त्वाऽऽत्मनो ज० । ३६ ०टामोर्लि
 हवनाद्वृजिनोऽभवत् । ४४ ०४ हवनाद्वृजितो भवान् । वृ० । च ०४ हवनाद्वृजिनोद्भव । वृ० ।
 ५ क वेदे । ६ देव । ६४ ०पि वृजिनोऽभ० । च ०पि वृजिनोऽभ० । ७६ ०रणमुनिदश्च पशाम् ।
 गो० । ८४ ०ति पद मुरा० ।

वेदान्तवेद्यं यदुपासितव्यं, तद्ब्रह्म साक्षात्कलु भीमनाथः ।

दृष्टे हितस्मिन्न पुनर्विद्वन्ति, शरीरिणः संसृतिमुद्रु.खाम्

॥३९॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये ऋषिसत्रभीमेश्वरतीर्थवर्णनं नाम

त्रिसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१७३॥

गोतमीमाहात्म्ये चतुरधिकशततमोऽध्यायः ॥१०५॥

अथ चतुःसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः

गंगासागरसगमवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

सा संगता पूर्वमपापतिं त, यङ्गासुराणामपि वन्दनीया ।

देवंश्च सर्वैरनुगम्यमाना, तस्तूयमाना मुनिभिर्महद्भिः ॥१॥

घसिष्ठजाबालिसयाज्ञबल्वयश्रवङ्गिरोदक्षमरीचिवैष्णवाः ।

शातातपः शौनकदेवरातभृगुवग्निवेदयात्रिमरीचिमुह्याः ॥२॥

सुधूतपापा मनुगौतमादयः, सकौशिकास्तुभ्यरुपवंताद्याः ।

अगस्त्यमार्कण्डसपिप्पलाद्याः, सगालवा योगपरायणाश्च ॥३॥

वेदान्त से ज्ञानने योग्य एवम् उपासना करने योग्य जो ब्रह्म है वह माता भीमनाथ है । उसने दर्शन हा जाने पर मनुष्य उग्र दुःख देने वाले इस ससार में पुन प्रवेश नहीं करते हैं ॥३६-३९॥

श्रीब्रह्मपुराण में तीर्थमाहात्म्य-अध्याय प्रसंग में ऋषिसत्रभीमेश्वरतीर्थ-वर्णन नामक

एक सौ त्रिंशत्तमोऽध्याय समाप्त ॥१७३॥

अध्याय १७४

गंगा और सागर के सगम का वर्णन

ब्रह्मा बोले—जिसरी देशगण वन्दना करने हैं मुनि तथा भगवण स्तुति करते हैं और गम्यन् देवता अनु-
गमन करने हैं, वह गंगा समुद्र में जाकर मिल गई ॥१॥ घसिष्ठ जाबालि याज्ञवल्क्य ऋषिः उदक्ष मरीचि
वैष्णव, शातातप, शौनक दररात भृगु अग्निवदय अत्रि निष्ठाप मनु योनेम आदि, कौशिक तुम्बरा पर्वत आदि ।
अगस्त्य, मार्कण्ड निष्ठाप मातर यागपरायण वामदेव अङ्गिरा आदि आगेष स्मृतिना म प्रवीण वेद-पुराणो

सवामदेवाङ्गिरसोऽय भार्गवाः, स्मृतिप्रबोणाः श्रुतिभिर्मनोज्ञाः ।

सर्वे पुराणार्थविदो बहुज्ञास्ते गौतमी देवनदी तु गत्वा ॥४॥

स्तोष्यन्ति मन्त्रं. श्रुतिभिः प्रभूतं ह्येवं च तुष्टं मुदितं मनोभिः ।

ता सगता बोक्ष्य शिवो हरिश्च, आत्मानमादर्शयतां मुनिभ्यः. ॥५॥

तथाऽमरास्तौ पितृभिश्च दृष्टौ, स्तुवन्ति देवौ सकलातिहारिणी ॥६॥

आदित्या वसवो रुद्रा मरुतो लोकपालकाः । कृताञ्जलिपुटाः सर्वे स्तुवन्ति हरिशंकरौ ॥७॥

संगमेव प्रसिद्धेषु नित्य सप्तसु नारदः । समुद्रस्य च गङ्गाया नित्यं देवौ प्रतिष्ठितौ ॥८॥

गौतमेश्वर आख्यातो यत्र देवो महेश्वरः । नित्यं सनिहितस्तत्र माधवो रमया सह ॥९॥

ब्रह्मेश्वर इति ख्यातो मयं च स्थापितः शिवः । लोकानामुपकारार्थमात्मनः कारणाद्वरः ॥१०॥

चक्रपाणिरिति ख्यातः स्तुतो देवर्ष्या सह । तत्र सनिहितो विष्णुर्देवैः सह मरुद्गणैः ॥११॥

ऐन्द्रतोर्यमिति ख्यातं तदेव ह्यमूर्धकम् । ह्यमूर्धं तत्र विष्णुस्तन्मूर्धनि सुरा अपि ॥

सोमतीर्थमिति ख्यातं यत्र सोमेश्वरः शिवः ॥१२॥

इन्द्रस्य सोमश्रवसो देवैश्च ऋषिभिस्तथा । प्रार्थितः सोम एवाऽऽवाविन्द्रायेन्दो परिलब्ध ॥१३॥

सप्त दिशो नानासूर्याः सप्त होतार ऋत्विजः ।

देवा आदित्या ये सप्त तेभिः सोमाभिरक्ष न इन्द्राद्येदो परिलब्ध ॥१४॥

के तत्त्वज्ञाता एवम् बहुज्ञाता मुनिवृन्द देवनदी गोदावरी के निषट् जाकर प्रफुल्लित से वेदमन्त्रों द्वारा उनकी स्तुति करने लगे ॥२-४॥ गंगा का सपन देखकर शिव और हरि ने मुनियों को दर्शन दिया । पितर तथा देवगण सकल पीडाओं को हरने वाले उन दोनों देवों की स्तुति करने लगे ॥५-६॥ आदित्य, वसु रुद्र मरुत् तथा लोकपाल ह्यश्च जोड़कर हरि और शंकर की स्तुति करने लगे ॥७॥ नारद । समुद्र तथा गंगा के संगतों प्रसिद्ध संगमों में नित्य हरि हर वास करते हैं । जहाँ गौतमेश्वर नाम से प्रसिद्ध शिव रहते हैं वहाँ लक्ष्मी सहित विष्णु भी रहते हैं ॥८-९॥ लोगों के उपकार के लिये मैंने ही ब्रह्मेश्वर नामक शिव की स्थापना की । फिर अपने दूसरे कारण से चक्रपाणि नामक शिव की स्थापना करके मैंने देवताओं के साथ उनकी स्तुति की । वहाँ मरुद्गणों के साथ विष्णु वास करते हैं । ऐन्द्रतोर्य नाम से प्रसिद्ध एक ह्यमूर्धक नामक तीर्थ है जहाँ ह्यमूर्धं नामक विष्णु और देवगण वास करते हैं । सोमतीर्थ नाम से प्रसिद्ध एक तीर्थ है जहाँ सोमेश्वर शिव वास करते हैं ॥१०-१२॥ सोमश्रवा नामक इन्द्र के यज्ञ में देवता तथा ऋषियों ने सोम से प्रार्थना की—'सोम' । इन्द्र के लिये आप क्षरण करें । सात दिशाओं अनेक सूर्या सात होताओं ऋत्विजा देवों एवम् आदित्यों से आप हमारी रक्षा करें और इन्द्र के लिये क्षरण करें । राजन् । सोम । आपका जो पक्व हविष् है उससे हमारी रक्षा करें । शत्रु हमारा पार न पाये कुछ बिगाड़े नहीं और आप

यत्ते राजञ्छृतं हविस्तेन सोमाभिरस नः ।
 अराती वा मा नस्तारोन्मो च नः किंचनामदिन्द्रायेन्दो परिलव ॥१५॥
 ऋषे मन्त्रकृतां स्तोमैः कश्यपोद्वर्धयन्गिरः ।
 सोमं नमस्य राजानं यो जज्ञेद्वीरुषा पतिरिन्द्रायेन्दो परिलव ॥१६॥
 कारुरहं ततो भियमुपलक्षिणो नना ।
 नानाधियोवसूयवोऽनु या इव तस्यमेन्द्रायेन्दो परिलव ॥१७॥

एवमुक्त्वा च ऋषिभिः सोमं प्राप्य च बन्धिणे । तेभ्यो दत्त्वा ततो यज्ञ-धूर्णो जातः शतक्रतोः ॥१८॥
 तत्सोमतीर्थमाख्यातमाग्नेयं पुरतस्तु तत् । अग्निरिष्ट्वा महायज्ञं मां माराध्य मनीषितम् ॥१९॥
 संप्राप्तवान्मत्प्रसादादहं तत्रैव नित्यशः । स्थितो लोकोपकारार्थं तत्र विष्णुः शिवस्तथा ॥२०॥
 तस्मादाग्नेयमाख्यातमादित्य तदनन्तरम् । यत्राऽऽदित्यो वेदमयो नित्यमेति उपासिदुम् ॥२१॥
 रूपान्तरेण मध्याह्ने द्रष्टु मा शंकरं हरिम् । नमस्कार्यस्तत्र सदा मध्याह्ने हवलो जगन् ॥२२॥
 रूपेण केन सविता समायातोऽयमिदञ्चयात् । तस्मादादित्यमाख्यात बाह्वृषत्यमनन्तरम् ॥२३॥
 'बृहस्पतिः सुरं पूर्वां तस्मात्तीर्थादिवाप ह । इंजे च यज्ञान्विधिधान्बाह्वृषत्यं ततो विदुः ॥२४॥
 तत्तीर्थं स्मरणादेव ग्रहशान्तिर्भविष्यति । तस्मादप्यपर तीर्थमिन्द्रगोपे नगोत्तमे ॥२५॥

इन्द्र के लिये परिक्षरण करें । ऋषे । कश्यप । मन्त्रकारों के स्तोमों से वाणी को बढ़ाइये । बृक्षा के पति सोम राजा को नमस्कार है । चन्द्र । इन्द्र के लिये आप परिक्षरण करें । हम ऋषि, पिता, यज्ञश्रद्धा तथा बालुका में यवा को कूटने वाली माता हैं । जैसे गायें गोष्ठ में परिवरण करती हैं वैसे अनेक कर्म करने वाले तथा धन की इच्छा करने वाले हम लोग निचरण करते हैं । चन्द्र । आप इन्द्र के लिये क्षरण करें ॥१३-१७॥ ऋषिया ने इस प्रकार प्रार्थना करके इन्द्र के लिये सोम को प्राप्त किया । फिर इन्द्र ने ऋषियों को देखकर यज्ञ सम्पन्न किया । उसी का नाम सोमतीर्थ पड़ा । उससे आगे आग्नेयतीर्थ है । अग्नि ने महायज्ञों द्वारा विष्णु की आराधना को और मेरी कृपा से उनको प्राप्त भी की । वहाँ लोगो के उपकार के लिये विष्णु और शिव नित्य वास करते हैं ॥१८-२०॥ इसीलिये उनका नाम आग्नेय पड़ा । उसके बाद आदित्यतीर्थ है जहाँ वेदमय आदित्य नित्य उपासना करने के लिये आते हैं और मध्याह्न काल में स्वरूप बदल कर भेरे, शंकर और हरि के दर्शन करते हैं । जिस रूप में सूर्य आते हैं—यह अनिश्चित है । इसलिये वहाँ मध्याह्न काल में समस्त प्राणियों की नमस्कार करे । इसी कारण उसतीर्थ का नाम आदित्य पड़ा । उसके आगे बाह्वृषत्यतीर्थ है ॥२१-२३॥ वहाँ बृहस्पति ने देवताओं द्वारा पूजित होकर धृत में यज्ञ किये । इसलिये वह तीर्थ बाह्वृषत्य कहलाया ॥२४॥ उस तीर्थ के स्मरणमान से ग्रहशान्ति हो जाती है । उसके आगे इन्द्रगोपनामक उत्तम पर्वत पर एक दूसरा तीर्थ है । ॥२५॥ किसी कारण वहाँ महालिङ्ग (शंकर) की

प्रतिष्ठित महालिङ्गं वस्मिच्छित्कारणात्तरे । हिमालयेन तत्तीर्थमद्वितीर्थं तदुच्यते ॥२६॥
 तत्र स्नानं च दानं च सर्वकामप्रदं शुभम् । एव सा गौतमी गङ्गा ब्रह्माद्रेः च विनि सुता ॥२७॥
 यावत्सागरगा देवी तत्र तीर्थानि कानिचित् । सक्षेपेण मयोक्तानि रहस्यानि शुभानि च ॥२८॥
 वेदे पुराणे ऋषिभिः प्रसिद्धा, या गौतमी लोकनमस्कृता च ।
 वक्तुं कथं तामतिसुप्रभावामशेषतो नारद वस्य शक्ति ॥२९॥
 भवत्या प्रवृत्तस्य यथावयच्चिन्नेवापराधोऽस्ति न सशयोऽत्र ।
 तस्माच्च विद्वन्मतिप्रयासात्ससूचितं लोचहिताय तस्या ॥३०॥
 कस्तस्या प्रतितीर्थं तु प्रभावं वक्तुमोक्ष्वर । अपि लक्ष्मीपतिविष्णुरल सोमेश्वर शिव ॥३१॥
 यच्चित्कस्मिन् च तीर्थानि कालयोगे भवन्ति हि । गुणवन्ति महाप्राज्ञ गौतमी तु सदा नृणाम् ॥३२॥
 सर्वत्र सर्वदा पुण्या को भवस्या गुणकीर्तनम् । वक्तुं शक्यतस्तत्स्तर्यं नमः इत्येव युज्यते ॥३३॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये गङ्गासागरसंगमवर्णनं नाम चतु सप्त-
 त्यधिकशततमोऽध्याय ॥१७४॥

गौतमीमाहात्म्ये पञ्चाधिकशततमोऽध्याय ॥१०५॥

प्रतिष्ठा हुई । हिमालय से सम्बद्ध होने के कारण उसका नाम अद्वितीय पड़ा । वहाँ स्नान करने से समस्त कामनाय सिद्ध होती है । इस प्रकार गौतमी गंगा ब्रह्मपवत से निकला है और जब तक वह देवी समुद्र से मिलती है इस बाध में जितने तीर्थ पड़ जाते हैं उनका रहस्य सक्षप स मीने बतला दिया ॥२६ २८॥ नारद ! देवी और पुराणों में ऋषियों ने जिस गोदावरी का प्रशंसा की है और जो त्रिभुवनप्रणम्या है उस महामहिमात्म्यी देवी का अक्षेप वर्णन भला कौन कर सकता है ? ॥२९॥ उसने यथावयवित वर्णन करने में मैं मति भाव से प्रवृत्त हुआ हूँ । नि स देह इसने मेरा कोई अस्त्राव गटा है । इसलिये लोचहित के लिये मैंने उसके दिग्दर्शनमात्र कराने का प्रयास किया है ॥३०॥ कौन उसके तीर्थों का प्रभाव वर्णन कर सकता है ? लक्ष्मीपति विष्णु तथा सोमेश्वर शिव भी वर्णन करने में असमर्थ हैं । महापण्डित ! तीर्थ किसी स्थान में किंसा अवसर पर गुण सम्पन्न होते हैं । पर गोदावरी तो मनुष्यों के लिये सदा सर्वत्र गुणसम्पन्ना एवम् पुण्यदायिका है । उसने गुणों का वर्णन कौन कर सकता है ? अतः उसे प्रणाम कर लेना ही उचित है ॥३१ ३३॥

श्री ब्रह्ममहापुराण भ त ब्रह्मात्म्यवर्णनप्रसंग म गंगासागर-वर्णन नामक एक सो चौत्तरवां
 अ याय समाप्त ॥१७४॥

अथ पञ्चसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः

तीर्थादीनां चातुर्विध्यादितिरूपणम्

नारद उवाच

त्रिदेवत्या सुरेशान गङ्गा ब्रूये सुरेश्वर । ब्राह्मणेनाऽऽहूता पुण्या जगत पावनौ शुभाम् ॥१॥
आदिमध्यावसाने च उभयोस्तीरयोरेपि । या व्याप्ता विष्णुनेशेन त्वया च सुरसत्तम ॥
पुनः संक्षेपतो ब्रूहि न मे तृप्तिं प्रजायते ॥२॥

ब्रह्मोवाच

कमण्डलुस्थिता पूर्वं ततो विष्णुपदानुगा । महेश्वरजटाजूटे स्थिता संव नमस्कृता ॥३॥
ब्रह्मतेज प्रभावेण शिवमाराध्य धत्ततः । ततः प्राप्तः तिरि पुण्य ततः पूर्वार्णवं प्रति ॥४॥
आगत्य सगता देवी सर्वतीयमयी मृणाम् । इन्दिस्तानां तथा दात्री प्रभावोऽस्या विशिष्यते ॥५॥
एतस्या माधिक मन्ये किंचित्तोयं जगत्त्रये । अस्याश्चैव प्रभावेण भाव्य यच्च मनःस्थितम् ॥६॥
अद्याप्यस्या हि माहात्म्यं वक्तुं कंश्चिन्न शक्यते । भवितो' वक्ष्यते नित्यं या ब्रह्म परमार्थतः ॥७॥
तस्या परतरं तीर्थं न स्यादिति मतिर्मम । अन्यतीर्थेन साधर्म्यं न युज्येत कथञ्चन ॥८॥

अध्याय १७५

तीर्थ आदि के चार प्रकार के होने का वर्णन

नारद बोले—देवताओं के स्वामी । आपने गंगा के बारे में बतलाया है कि वह त्रिदेवमयी ससारपावनी कल्याणमयी और ब्राह्मण द्वारा लाई गई है और उसके दोनों तटों के आदि मध्य तथा अंत में विष्णु व्याप्त हैं । अब फिर उसी के विषय में संक्षेप में कहिये । शुद्ध (सुने से) तृप्ति नहीं होती है ॥१२॥

ब्रह्मा बोले—यहिले वह कमण्डलु में थी । तब विष्णु के चरणा की अनुगामिनी हुई । तत्पश्चात् घड़ी प्रणम्या देवी शंकर की जटाओं में अवस्थित हुई । ब्रह्मतेज के प्रभाव से यत्नपूर्वक शिव की आराधना करके वह पवित्र पर्वत पर पहुँची । तदुपरान्त पूवसमूह से मिलकर वह देवी मनुष्या के लिये सर्वतीयमयी बन गई । वह अभी प्सित फल को देने वाली है । उसका प्रभाव बहुत विशिष्ट है । तीनों लोक में उससे बढ़कर कोई तीर्थ मैं नहीं मानता । उसी के प्रभाव से जो कुछ भैरे यन में है वह होगा । आज भी उसका माहात्म्य कोई भी वर्णन नहीं कर सकता । वह वस्तुतः ब्रह्म है । मैं भक्ति के प्रताप से उसके विषय में कुछ कहूँगा । उससे बढ़कर कोई तीर्थ नहीं है—यह मेरा सिद्धान्त है । अन्य तीर्थों से उसकी उपमा नहीं हो सकती । मुने । तीनों लोक में गंगा के गुणवर्णन

१ य छ च वन्दते । २ य छ च ० मायिनि । त० । ३ क कदावन ।

श्रुत्वा मद्वाक्यपीयूषंर्षज्ञाया गुणकीर्तनम् । सर्वेषां न मतिः कस्मात्तत्रैवोपरतिं गता ॥
इति भाति विचित्रं मं मुने खलु जगत्त्रये ॥ १५ ॥

नारद उवाच

धर्मार्थिकाममोक्षाणां त्वं वेत्ता चोपदेशकः । छन्दसि सरहस्यानि पुराणस्मृतयोऽपि च ॥१०॥
धर्मशास्त्राणि यच्चान्यत्तव वाक्ये प्रतिष्ठितम् । तीर्थानामथ दानानां यज्ञानां तपसा तथा ॥११॥
देवतामन्त्रसेवानामधिकं किं वद प्रभो । यद्ब्रूये भगवन्भक्त्या तथा भाव्यं न चान्यथा ॥१२॥
एत मे संशय ब्रह्मन्वावधात्त्व छेतुमर्हसि । इष्टं मनोगतं श्रुत्वा तस्माद्विस्मयमागतं ॥१३॥

ब्रह्मोवाच

शृणु नारद वक्ष्यामि रहस्य धर्ममुत्तमम् । धनुर्विधानि तीर्थानि तावन्त्येव युगानि च ॥१४॥
गुणास्त्रयश्च पुरुषास्त्रयो देवाः सनातनाः । वेदाश्च स्मृतिभिर्षुक्ताश्चत्वारस्ते प्रकीर्तिताः ॥१५॥
पुरुषार्थाश्च चत्वारो वाणी द्यापि धनुर्विधा । गुणा ह्यपि तु चत्वारः समन्वेनेति नारद ॥१६॥
सर्वत्र धर्मः सामान्यो यतो धर्मं सनातनः । साध्यसाधनभावेन स एव बहुधा मतः ॥१७॥
तस्याऽऽश्रयश्च द्विविधो देशः कालश्च सर्वदा । कालाश्रयश्च यो धर्मो हीयते वर्धते सदा ॥१८॥
युगानामनुरूपेण पादः पादोऽस्य हीयते । धर्मस्येति महाप्राज्ञ देशापेक्षा तथोभयम् ॥१९॥

रूपी मेरे वचनामृत को पीकर सबको सुबुद्धि क्यों नहीं उत्पन्न हो गई—यह मुझे बड़ा आश्चर्य मालूम पड़ता है ॥३-९॥

नारद ने कहा—आप धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के ज्ञाता एवम् रहस्य सहित वेद, पुराण, स्मृति तथा धर्म-शास्त्रों के उपदेशक हैं। आपके वाक्य में सब कुछ प्रतिष्ठित है। प्रभो! अब तीर्थ, दान, यज्ञ, तप तथा देवताओं के मन्त्रों एवम् उपासनाओं के बारे में ही कहिये। अधिक कहने की आवश्यकता नहीं है। भगवन्! यह जो आपने कहा है कि भक्ति से यह हो सकता है, अन्यथा नहीं, इसमें मुझे सशय है। ब्रह्मन्! उसका आप निवारण करें। मैं अपनी अमिळपित बात को सुनकर आश्चर्य-चर्चित हो गया हूँ ॥१०-१३॥

ब्रह्मा बोले—नारद! मुने, मैं रहस्य सहित उत्तम धर्म को वतलाऊंगा। चार तीर्थ हैं और उतने ही युग हैं ॥१४॥ गुण तीन हैं और सनातन देवगुण भी तीन ही हैं। स्मृतियों से युक्त वेद चार माने गये हैं ॥१५॥ पुरुषार्थ चार हैं और वाणी भी चार प्रकार की है। नारद! समता की दृष्टि से ब्रह्म भी चार है ॥१६॥ धर्म सब जगह सामान्य है, जिसलिये वह सनातन धर्म है। वही धर्म साध्य-साधन भेद से अनेक हो जाता है ॥१७॥ उसके आश्रय भी दो हैं—देश और काल। काल का आश्रित जो धर्म है उसका ह्रास और क्षय होता है ॥१८॥ युगों के अनुरूप उसका एक-एक पाद क्षीण होता रहता है। महापण्डित! देशाश्रित धर्म का भी ह्रास और क्षय होता है। कालाश्रित धर्म सदा

कालेन चाऽऽश्रितो धर्मो देशे नित्यं प्रतिष्ठितः । युगेषु क्षीयमाणेषु न देशेषु स हीयते ॥२०॥
 उभयत्र विहीने च धर्मस्य स्यादभावता । तस्माद्देशाश्रितो धर्मश्चतुष्पात्सु प्रतिष्ठितः ॥२१॥
 स चापि धर्मो देशेषु तीर्थरूपेण तिष्ठति । श्रुते देशं च कालं च धर्मोऽव्ययः तिष्ठति ॥२२॥
 श्रेतायां पादहीनेन स तु पादः प्रदेशतः । द्वापरे चार्धतः काले धर्मो देशे समास्थितः ॥२३॥
 कालो पादेन चैकेन धर्मश्चलति संकटम् । एवंविधं तु या धर्मं वेत्ति तस्य न हीयते ॥२४॥
 युगानामनुभावेन जातिभेदाश्च सस्थिताः । गुणैर्म्यो गुणकर्तृभ्यो विचित्रा धर्मसंस्थिताः ॥२५॥
 गुणानामनुभावेन उद्भूताभिभवो तथा । तीर्थानामपि वर्णानां वेदानां स्वर्गमोक्षयोः ॥२६॥
 तादृशप्रवृत्त्या तु तदेव च विशिष्यते । कालोऽभिव्यञ्जकः प्रोक्तो देशोऽभिव्यञ्जक उच्यते ॥२७॥
 यदा यदा अभिव्यक्तिं कालो घत्ते तदा तदा । तदेव व्यञ्जनं ब्रह्मस्तस्मान्नास्त्यत्र संशयः ॥२८॥
 युगानुरूपा भूतिः स्याद्देवानां वैदिकी तथा । कर्मणामपि तीर्थानां जातीनामाधमस्य तु ॥२९॥
 त्रिदैवत्यं सत्ययुगे तीर्थं लोकोषु पूज्यते । द्विदैवत्यं युगेऽन्यस्मिन्द्वापरे चैकदैविकम् ॥३०॥
 कालो न किञ्चिद्विज्ञेयमन्यदपि तच्छृणु । दैवं कृतयुगे तीर्थं श्रेतायामासुरं विदुः ॥३१॥

देशो मे प्रतिष्ठित रहता है । युगों के क्षय होने पर भी देशों में उस धर्म का ह्रास नहीं होता है ॥१८-२०॥ दोनों जगह उसका ह्रास होने पर धर्म का अभाव हो जायगा । इसलिये देशाश्रित धर्म चार चरणों से युक्त तथा सुप्रतिष्ठित है ॥२१॥ वह भी धर्म देशों में तीर्थरूप से रहता है । सत्ययुग में देश और बाल को व्याप्त कर धर्म स्थित रहता है ॥२२॥ त्रेता में वह एक चरण से हीन हो कर देशों में विद्यमान रहता है । द्वापर में दो चरणों से हीन होकर वह देश और बाल में स्थित रहता है ॥२३॥ कलियुग में एक ही पैर से युक्त होकर धर्म सङ्कट से चलता है । इस प्रकार जो धर्म को जानता है, उसका धर्म क्षीण नहीं होता ॥२४॥ युगों के अनुसार गुणों एवम् गुणकर्ताओं से जाति-भेद बनता है । धर्म की स्थिति विचित्र है ॥२५॥ गुणों के अनुसार उत्पत्ति और प्रलय भी होता है । तीर्थों, वर्णों, वेदों स्वर्ग और मोक्ष की भी उसी रूप में प्रवृत्ति होती है । बाल प्रकाशक और देश प्रकाशक माना गया है ॥२६-२७॥ ब्रह्मन् । अत्र-अत्र बाल प्रकाश का कारण करता है तब तब उससे वही प्रकाश होता है, इसमें कोई सन्देह नहीं ॥२८॥ युगों के अनुरूप ही देव, कर्म, तीर्थ, जानि तथा आश्रय की वैदिकी भूति होती है । सत्ययुग में त्रिदैवमय तीर्थ की लोकों में पूजा होती है, त्रेता में द्विदैवमय तीर्थ की पूजा होती है, द्वापर में एकदैवमय तीर्थ की पूजा होती है और कलियुग में त्रिती की भी नहीं । अत्र और भी गुणों ॥२९-३०॥ कृतयुग में दैवतीर्थ, त्रेता में आसुर, द्वापर में आर्य और कलियुग में मानुषतीर्थ कहलाता है ॥३१॥ भारद्वाज और भी कारण बतलाता

१क. छ. ०पु मही० । २क. छ. पादप्र० । ३क. छ. ०र्मा हीयेतमप्रत । ४० । ४क. ०न याति भेदाश्च सस्थितिम् । गु० । ५घ. ०तिवेदासमास्थिति । यु० । ६घ. ०ना धर्मानास्त्वर्ग० । ७ छ. देवानां । ८क. ०व्याप्ति । बा० । घ. छ. ०व्याप्ति । बा० । ९क. छ. धर्म । घ. धर्मस्तदा । १०क. छ. घ. व्यज्यते । ११घ. ०स्मादस्य० । १२घ. घ. विस्मय । १३छ. ०स्य भेदयुगे द्वाप० ।

आपं च द्वारे प्रोक्त कलौ मानुषमुच्यते । अयान्यदपि वक्ष्यामि शृणु नारद कारणम् ॥३२॥
 गौतम्या यत्त्वया पृष्ट तत्ते वक्ष्यामि विस्तरात् । मदा चैव हरशिर प्राप्ता गङ्गा महामुने ॥३३॥
 तदा प्रभृति सा गङ्गा शभो प्रियतराऽभवत् । तद्देवस्य मतं ज्ञात्वा गजवक्त्रमुवाच सा ॥३४॥
 उमा लोकत्रयेशाना माता च जगतो हिता । शान्ता श्रुतिरिति ख्याता भुक्तिमुक्तिप्रदायिनी ॥३५॥

ब्रह्मोवाच

तन्मातुर्वचनं श्रुत्वा गजवक्त्रोऽभ्यभाषत

॥३६॥

गजवक्त्र उवाच

किं कृत्यं शाधि मां मातस्तत्कर्ताऽहमसंशयम्

॥३७॥

ब्रह्मोवाच

उमा सुतमुवाचेदं महेश्वरजटास्थिता । त्वयाऽवतार्यतां गङ्गा सत्यमोक्षप्रिया सती ॥३८॥
 पुनश्चेक्षस्तत्र चित्रमध्यास्ते सर्वदा सुत । शिवो यत्र सुरास्तत्र तत्र वेदा सनातना ॥३९॥
 तत्रैव ऋषयः सर्वे मनुष्याः पितरस्तथा । तस्मात्प्रिवर्तयेशान देवदेव महेश्वरम् ॥४०॥
 तस्यां निवर्तिते देवे गङ्गायां सर्वे एव हि । निवृत्तास्ते भविष्यन्ति शृणु चेदं ब्रह्मो मम ॥
 निवर्तय तत्तस्तस्यां सर्वभावेन शकरम् ॥४१॥

ब्रह्मोवाच

मातुस्तद्वचनं श्रुत्वा पुनराह गणेश्वर

॥४२॥

हूँ सुनो। गोदावरी के विषय में जो तुमने पूछा है उसे मैं विस्तार से बतलाऊँगा। महामुने! जब से यह गया शकर के शिर पर पहुँची तब से यह शिव की प्रिया हो गई ॥३२ ३३॥ शिव का आशय समझकर तीनों लोक की ईश्वरी सत्ता की माता तथा हितविणी शान्ता श्रुतिरूप और भुक्ति मुक्तिदायिनी पावनी ने गणेश से यह बात कह दी ॥३४ ३५॥

ब्रह्मा बोले—माता की बात सुनकर गणेश ने कहा ॥३६॥

गणेश बोले—माता! आज्ञा करो! क्या काम है? मैं नि सन्देह उसे पूरा करूँगा ॥३७॥

ब्रह्मा बोले—उमा ने पुनः से कहा—शकर की जटा में उनकी प्रिया सती गया अवस्थित है। उसे तुम हटा दो। क्योंकि शकर सदा उसमें अनुरक्त रहते हैं और जहाँ शिव रहते हैं वहाँ दक्षता सनातन वेद समस्त ऋषि मनुष्य एवम पितर रहते हैं। इसलिये देवों के देव शिव को उससे अलग करो। उनके अलग हो जाने पर सब अलग हो जायेंगे। इसलिये मेरी बात सुनो और सब प्रकार से शकर को अलग करो ॥३८ ४१॥

ब्रह्मा बोले—माता की बात सुनकर पुनः गणेश ने कहा ॥४२॥

गणेश्वर उवाच

नैव शक्यः शिवो देवो मया तस्या निर्वर्तितुम् । अनिवृत्ते शिवे तस्या देवा अपि निर्वर्तितुम् ॥४३॥
न शक्या जगता मातरयान्यच्चापि कारणम् । गङ्गाऽवतारिता पूर्वं गौतमेन महात्मना ॥४४॥
ऋषिणा लोकपूज्येन त्रैलोक्यहितकारिणा । सामोपायेन तद्वाक्यात्पूज्येन ब्रह्मतेजसा ॥४५॥
आराधयित्वा देवेशं तपोभिः स्तुतिभिर्भवं । तुष्टेन शंकरेण दमुक्तोऽसौ गौतमस्तदा ॥४६॥

शंकर उवाच

वरान्वरय पुण्यांश्च प्रियांश्च मनसेप्सितान् । यद्यदिच्छसि तत्सर्वं दाता तेऽद्य महामते ॥४७॥

ब्रह्मोवाच

एवमुक्तः शिवेनासौ गौतमो मयि क्षुण्वति । इदमेव तदोवाच सजटां देहि शंकर ॥
गङ्गां मे याचते पुण्यां किमन्येन वरेण मे ॥४८॥

ब्रह्मोवाच

पुनः प्रोवाच तं शभुः सर्वलोकोपकारकः ॥४९॥

शंभु उवाच

'उक्तं न चाऽऽमन' किञ्चित्तस्माद्याचस्य दुष्करम् ॥५०॥

ब्रह्मोवाच

गौतमोऽदीनसत्त्वस्तं भवमाह कृताञ्जलिः ॥५१॥

गणेश बोले—मेरे द्वारा शिव उससे अलग नहीं किये जा सकते हैं और शिव के अलग नहीं होने पर देवता भी निवृत्त नहीं हो सकते। जगन्माता । इसका और भी कारण है कि पूर्वं बाल में महात्मा गौतम गंगा को लाये थे। लोकपूज्य तथा त्रैलोक्यहितकारी ऋषि ने तपस्या, स्तुति तथा सामगान द्वारा शंकर की आराधना की। सन्तुष्ट होकर शिव ने गौतम से कहा ॥४३-४६॥

शंकर बोले—महानुद्धिमन् । तुम पवित्र प्रिय तथा मनोमिलित वरदान मागो। तुम जो-जो चाहोगे, वह सब आज मैं तुम्हें दूंगा ॥४७॥

ब्रह्मा बोले—इस प्रकार शिव द्वारा कहे जाने पर मेरे मुनिके ही गौतम ने यह कहा—'शंकर' अपनी जटासहित पवित्र गंगा मुझे दीजिये, दूसरा वरदान मुझे नहीं चाहिये ॥४८॥

ब्रह्मा बोले—ममस्तु लोको के उपकारक शिव ने पुन गौतम से कहा ॥४९॥

शंभु बोले—तुमने अपने लिये कुछ नहीं माँगा। इसलिये कठिन वरदान भी मुझसे माग लो ॥५०॥

ब्रह्मा बोले—दीनता-यून्य गौतम ने हाथ जोड़कर शिव से कहा ॥५१॥

गौतम उवाच

एतदेव च सर्वेषां दुष्करं तव दर्शनम् । भया तदद्य संप्राप्तं कृपया तव शकर ॥५२॥
स्मरणादेव ते पद्भ्यां कृतकृत्या मनीषिणः । भवति किं पुन साक्षात्स्वयि दृष्टे महेश्वरे ॥५३॥

ब्रह्मोवाच

एवमुक्ते गौतमेन भवो हर्षसमन्वितः । त्रयाणामुपकारार्थं लोकानां याचितं त्वया ॥५४॥
नचाऽऽत्मनो महाबुद्धे याचेत्याह शिवो द्विजम् । एव प्रोक्तं पुनर्विप्रो ध्यात्वा प्राह शिव तथा ॥५५॥
विनीतवददीनात्मा शिवभक्तिसमन्वितः । सर्वलोकोपकाराय पुनर्याचितवानिदम् ॥
शृण्वत्सु लोकपालेषु जगादेव स गौतम ॥५६॥

गौतम उवाच

यावत्सागरगा देवी निसृष्टा ब्रह्मणो विरे । सर्वत्र सर्वदा तस्या स्यात्तव्यं वृषभध्वज ॥५७॥
फलेप्सूना फल दाता स्वमेव जगतः प्रभो । तीर्थान्यन्यानि देवेश क्वापि क्वापि शुभानि च ॥५८॥
यत्र त सनिधिनित्यं तदेव शुभं विदुः । यत्र गङ्गा त्वया दत्ता जटामुकुटसंस्थिता ॥
'सर्वत्र तव सानिध्यात्सर्वतीर्थानि' शकर ॥५९॥

ब्रह्मोवाच

तव गौतम उवाच श्रुत्वा पुनर्हर्षान्छिवोऽब्रवीत्

॥६०॥

गौतम बोले—आपका दर्शन ही सबके लिये कठिन है। शकर! आप की कृपा से आज मैंने उसे प्राप्त कर लिया। आपके चरणों के स्मरण से ही विद्वान् लोग कृतकृत्य हो जाते हैं। जिसे आपका साक्षात्कार हो जाता है उसका तो भला कहना ही क्या? ॥५२-५३॥

ब्रह्मा बोले—गौतम के इतना कहने पर शकर प्रसन्न हो गये और बोले—'तीनों लोकों के उपकार के लिये सुमने याचना की। पर महाबुद्धिमन्! अपने लिये सुमने याचना नहीं की। इस प्रकार कहे जाने पर शिवभक्ति से युक्त दीनता से रहित तथा विनीत गौतम ने शिव से कहा। लोकपालों के सुनते गौतम ने समस्त लोकों के उपकार के लिये पुन यह याचना की ॥५४-५६॥

गौतम बोले—ब्रह्मगिरि से लेकर समग्र पयन्त इस गंगा में सबत्र सब काल आप रहे। जगप्रभो! फल चाहने वालों को फल आप ही देते हैं। देवेश! जहाँ-कहीं भी जो अन्य पवित्र तीर्थ हैं उनमें भी जिस तीर्थ में आपका सान्निध्य है वही शमदायक माना गया है। शकर! जहाँ आपने अपने जटा मुकुट में अवस्थित गंगा को प्रदान किया है वहाँ सब जगह आपके सान्निध्य से समस्त तीर्थ रहेंगे ॥५७-५९॥

ब्रह्मा बोले—गौतम के वचन को सुनकर पुन हर्ष से शिव ने कहा ॥६०॥

शिव उवाच

यत्र यवापि च यत्किंचिद्यो वा भवति भवितः (?) यात्रां स्नानमयो दानं पितृणा वाऽपि तर्पणम् ॥६१॥
 श्रवणं पठनं वाऽपि स्मरणं वाऽपि गौतम । यः करोति नरो भक्त्या गोदावर्या यतव्रतः ॥६२॥
 सप्तद्वीपवती पृथ्वी सशैलवनकानना । सरत्ना सोषधी रम्या सार्णवा धर्मभूयिता ॥६३॥
 वत्सा भवति यो धर्मः स भवेद्गौतमीस्मृतेः । एवं विधा इत्य विप्र गोदानाद्याभिधीयते ॥६४॥
 चन्द्रसूर्यग्रहे काले मत्स्रानिष्ये यतव्रतः । भूभूते विष्णवे भक्त्या सर्वकालं कृता सुधीः ॥६५॥
 गाः सुन्दराः सवत्साश्च संगमे लोकाविभृते । यो ददाति द्विजश्रेष्ठ तत्र यत्पुण्यमाप्नुयात् ॥६६॥
 तस्माद्द्वरं पुण्यमेति स्नानदानादिना नरः । गौतम्यां विश्ववन्द्यायां महानद्या तु भवितंतः ॥६७॥
 तस्माद्गोदावरी गङ्गा त्वया नीता भविष्यति । सर्वपापक्षयकरी सर्वाभीष्टप्रदायिनी ॥६८॥

गणेश्वर उवाच

एतच्छ्रुत्त मया मातृबन्धतो गौतम शिवात् । एतस्मात्कारणाच्छ्रुर्भुर्गङ्गाया नियतः स्थितः ॥६९॥
 को निवर्तयितुं शक्तस्तमम्ब कृष्णोदधिम् । अथापि मातरेतत्स्यान्मानुषा विघ्नपाशकैः ॥७०॥
 विनिबद्धा न गच्छन्ति गोशामप्यन्तिकस्यिताम् । न नमन्ति शिवं देवं न स्मरन्ति स्तुवन्ति न ॥७१॥
 तथा मातः करिष्यामि तत्र सतोपहेतवे । सतिरोद्धुमयो वलेशस्तव वाक्य क्षमस्व मे ॥७२॥

शिव बोले—गौतम ! जो मनुष्य नियमपूर्वक गोदावरी में जहाँ-वहीं भी जो कुछ भी भक्ति से करता है अर्थात् यात्रा, स्नान, दान पितृ-तर्पण श्रवण, पठन या स्मरण—करता है, उसे उतना ही धर्म होता है जितना सातों द्वीप, पर्वत, वन, रत्न, ओषधि तथा समुद्र सहित एवम् धर्मभूयिता पृथ्वी के दान करने से होता है। विप्र ! इस प्रकार की पृथ्वी दान करन से जो धर्म होता है उतना धर्म चन्द्रग्रहण या सूर्यग्रहण काल में गोदावरी में गोदान करने से होता है। द्विजवर ! उसे भी उतना धर्म होता है, जो लोक-प्रसिद्ध गंगा-सागर के संगम पर भुवन के धारण करने वाले विष्णु की प्रीति के लिये बछड़े सहित सुन्दर गो दान करता है। इसलिये मनुष्य विश्ववन्द्या तथा महानदी गोदावरी में मन्त्रपूर्वक स्नान-दान करने से अत्यन्त पुण्य प्राप्त करता है। अतः समस्त पापों को नष्ट करने वाली तथा अखिल कामनाओं को देने वाली गोदावरी गंगा को तुम ले जाओ ॥६१-६८॥

गणेश्वर बोले—माता ! मैंने गौतम तथा शिव का इतना सवाद सुना है। इसी कारण शकर नियमपूर्वक गंगा में रहते हैं। अम्ब ! उस कणासागर को कौन निवारण कर सकता है ? माता ! इतना तो मैं तुम्हारे सतोप के लिये बहूँगा कि विघ्न-जाल में फँसकर मनुष्य सभीप रहने पर भी गंगा में स्नान करने नहीं जायगा और शिव को प्रणाम, स्मरण तथा स्तुति नहीं करेगा। पर उनका निवारण तो असम्भव है। इसलिये मुझे क्षमा करो ॥६९-७२॥

ब्रह्मोवाच

ततः प्रभृति विघ्नेशो मानुषान्प्रति किञ्चन । विघ्नमाचरते यस्तु तमुपास्य प्रवर्तते ॥७३॥
 अयो विघ्नमनादृत्य गौतमीं याति भक्तितः । सकृत्तार्यो भवेत्लोकं न कृत्य भवशिष्यते ॥७४॥
 विघ्नान्पनेकानि भवन्ति गेहान्निर्गन्तुकामस्य नराधमस्य ।
 निधाय तन्मूर्ध्नि पदं प्रयाति, गङ्गा न किं तेन फलं प्रलब्धम् ॥७५॥
 अस्याः प्रभावो ब्रूयादपि साक्षात्सदाशिवः । सक्षेपेण मया प्रोक्तमितिहासपदानुगम् ॥७६॥
 घर्मायंकाममोक्षाणां साधनं यच्चराचरे । तदत्र विद्यते सर्वमितिहासे सविस्तरे ॥७७॥
 वेदोदितं श्रुतिसकलरहस्यमुक्तं, सत्कारणं समभिधानमिदं सर्वम् ।
 सम्यक्च द्रष्टुं जगतां हिताय, प्रोक्तं पुराणं बहुधर्मयुक्तम् ॥७८॥
 अस्य श्लोकं पदं बाष्पि भक्तितः शृणुयत्पठेत् । गङ्गा गङ्गेति वा वाक्यं स तु पुण्यमवाप्नुयात् ॥७९॥
 कलिकलङ्कविनाशनदक्षमिदं, सकलसिद्धिकरं शुभं शिवम् ।
 जगति पूज्यमभीष्टफलप्रदं, गाङ्गमेतदुदीरितमुत्तमम् ॥८०॥
 साधु गौतम भद्रं ते कोऽप्योऽस्ति सर्वशस्त्वया । य एनां गौतमीं गङ्गां वण्डकारण्यमाप्नुयात् ॥८१॥
 गङ्गा गङ्गेति यो ब्रूयाद्योजनानां शतैरपि । मुच्यते सर्वपापेभ्यो विष्णुलोकं स गच्छति ॥८२॥
 तिलः कोट्योऽर्घ्यकोटी च तीर्थानि भुवनत्रये । तानि स्नानं समायाति गङ्गायां सिंहैः गुरौ ॥८३॥

ब्रह्मा बोले—तब से गणेश मनुष्यों को विघ्न करते हैं। जो उनकी उपासना करता है, उसे छोड़ देते हैं। जो मनुष्य गणेश की वन्दना कर भक्ति से गोदावरी को जाते हैं, वे लोक में कृतार्थ हो जाते हैं और उन्हें कुछ करना शेष नहीं रहता। घर से बाहर जाने वाले नराधम को अनेक विघ्न होते हैं। जो भस्त्रक पर गंगा के चरणों को रखकर (अर्थात् उनका ध्यान करते हुए) प्रयाण करता है, उसे कौन-सा फल नहीं मिलता है? (अर्थात् सब मिलते हैं) ॥७३-७५॥ गंगा का प्रभाव कौन बतला सकता है? साक्षात् सदाशिव भी भस्त्रक बतला सकते हैं। सक्षेप में मैंने इस इतिहास को बतलाया है ॥७६॥ ससार में धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के जितने साधन होते हैं, वे सब इस विस्तृत इतिहास में विद्यमान हैं ॥७७॥ ससार के कल्याण के लिये मैंने अनेक धर्मों से युक्त पुराण गुना दिया, जो वेद प्रतिपादित सम्पूर्ण रहस्यों का सार, सत्कारणस्वरूप, सद्व्यक्तिस्वरूप तथा सम्यक् दर्शनरूप है ॥७८॥ इस पुराण का एक श्लोक या एक पद जो मनुष्य भक्ति से सुनेगा या पढ़ेगा या 'गंगा-गंगा' यह उच्चारण ही करेगा, उसे पुण्य लाभ होगा ॥७९॥ 'गंगा' इस पवित्र नाम का उच्चारण कलियुग के कालको भी नष्ट करने में दक्ष, सकल सिद्धियों को देने वाला कल्याणकारक सुन्दर जगत्पूज्य तथा अभीष्टफलदायक है ॥८०॥ गौतम! तुम्हारा कल्याण हो। तुम्हारे सदृश कौन दूसरा है जो इस गौतमी गंगा को वण्डकारण्य में प्राप्त करे ॥८१॥ जो व्यक्ति सैकड़ों योजन दूर से भी 'गंगा-गंगा' यह उच्चारण करता है वह समस्त पापों से मुक्त होकर विष्णुलोक को जाता है ॥८२॥ तीनों लोकों में साढ़े तीस करोड़ जो तीर्थ हैं, वे सिंह राशि पर बृहस्पति के जाने पर गंगा में स्नान करने आते हैं ॥८३॥ बृहस्पति के सिंह राशि पर अवस्थित होने पर गोदावरी में एक बार स्नान करने से उतना ही फल

पष्टिधर्षसहस्राणि भ.गोरथ्यवगाहनम् । सृष्ट्वगोदावरीस्नानं सिंहयुक्ते बृहस्पती ॥८४॥
इयं तु गौतमी पुत्र यत्र श्वापि ममाऽऽज्ञया । सर्वेषां सर्वदा नृणां स्नानान्मुक्तिं प्रदास्यति ॥८५॥
अश्वमेधसहस्राणि वाजपेयशतानि च । कृत्वा यत्फलमाप्नोति तदस्य श्रवणाद्भवेत् ॥८६॥
यस्यैतत्तिष्ठति गृहे पुराणं ब्रह्मणोदितम् । न भयं विद्यते तस्य कलिकालस्य नारद ॥८७॥
यस्य कस्यापि नाऽऽख्येय पुराणमिदमुत्तमम् । अर्धधानाय शान्ताय वैष्णवाय महात्मने ॥८८॥
इदं कोट्यं भुक्तिमुक्तिदायकं पापनाशकम् । एतच्छ्रवणमात्रेण कृतकृत्यो भवेन्नरः ॥८९॥
लिखित्वा पुस्तकमिदं ब्राह्मणाय प्रयच्छति । सर्वपापविनिर्मुक्तः पुनर्गर्भं न संविशेत् ॥९०॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये ब्रह्मनारदसंवादे शङ्खामाहात्म्यश्रवणा-

दिकलवर्णनं नाम पञ्चसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१७५॥

गौतमीमाहात्म्ये षडधिकशततमोऽध्यायः ॥१०६॥

समाप्तं गौतमीमाहात्म्यम्

अथ षट्सप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः

अनन्तवासुदेवमाहात्म्यवर्णनम्

मुनय ऊचुः

न हि मस्तृप्तिरस्तीह शृण्वतां भगवत्कथाम् । पुनरेव परं गृह्यं वक्तुमर्हस्यशेषतः ॥१॥

होना है, जितना साठ हजार वर्षों तक गंगा में स्नान करने से होता है ॥८४॥ पुर । यह गौतमी गंगा (अपने में) जहाँ-जहाँ भी स्नान करने से मनुष्य को मेरी आज्ञा से मुक्ति दे देती है ॥८५॥ सृष्ट्वो अश्वमेध यज्ञ तथा सैवडो वाजपेय यज्ञ करने से जो फल प्राप्त होता है, वह इसके श्रवणमात्र से होता है ॥८६॥ नारद । जिसके घर में यह ब्रह्मपुराण रहता है, उसके लिए कलिकाल का कोई डर नहीं है ॥८७॥ जिस रिची को यह पुराण नहीं सुनाना चाहिये । अर्धरात्रि, शान्त, विष्णुभक्त तथा महात्मा को यह पापनाशक तथा भुक्ति-मुक्ति-दायक पुराण सुनाना चाहिये ॥८८॥ इसके श्रवणमात्र से मनुष्य कृतकृत्य हो जाता है । जो इस पुस्तक का लिखकर ब्राह्मण का समर्पित करता है, वह सब पापों में निर्मुक्त होकर पुनर्गर्भ में नहीं जाता है ॥८९-९०॥

श्रीब्रह्ममहापुराण न तीर्थमाहात्म्यं न ब्रह्मा और नारद न संवादं न गंगामाहात्म्यं नरः

आदि का पञ्च-वर्णनं नामक एव मौ पञ्चसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः समाप्त ॥१७५॥

अध्याय १७६

अनन्त वासुदेव का माहात्म्य-निरूपण

मुनिगो ने कहा—भगवत्कथा सुनते-सुनते हम तृप्ति नहीं होती है । आप पुनः संपूर्ण रहस्य को बतलायें ।

अनन्तवासुदेवस्य न सम्यग्वर्णितं त्वया । श्रोतुमिच्छामहे देव विस्तरेण वदस्व नः ॥२॥

ब्रह्मोवाच

प्रवक्ष्यामि मुनिश्रेष्ठा । सारात्सारतरं परम् । अनन्तवासुदेवस्य माहात्म्यं भुवि दुर्लभम् ॥३॥
आदिकल्पे पुरा विप्रास्त्वहमव्यक्तजन्मवान् । विश्वकर्माणमाहूय वचनं प्रोक्तवानिदम् ॥४॥
वरिष्ठं देवशिल्पीन्द्रं विश्वकर्माप्रकर्मिणम् । प्रतिमा वासुदेवस्य कुरु शैलमयीं भुवि ॥५॥
यां प्रेक्ष्य विधिवद्भवताः सेन्द्रा वै मानुषादयः । येन दानवरक्षोभ्यो विज्ञाय सुमहद्भयम् ॥६॥
त्रिदिवं समनुप्राप्य सुमेरुशिखर चिरम् । वासुदेवं समाराध्य निरातङ्गा वसन्ति ते ॥७॥
मम तद्वचनं श्रुत्वा विश्वकर्मा तु तत्क्षणात् । चकार प्रतिमा शुद्धां शङ्खलक्षकण्ठदाधराम् ॥८॥
सर्वलक्षणसंयुक्तां पुण्डरीकायतेक्षणाम् । श्वेतसलक्ष्मसंयुक्तामत्युष्मां प्रतिमोत्तमाम् ॥९॥
धनमालावतोरस्का मुकुटाङ्गदधारिणीम् । पीतवस्त्रा सुपीनासां कुण्डलाम्ब्यामलंकृताम् ॥१०॥
एवं सा प्रतिमा दिव्या गुह्यमन्त्रैस्तदा स्वयम् । प्रतिष्ठाकालमासाद्य मयाऽसौ निमिता पुरा ॥११॥
तस्मिन्काले तदा शक्रो देवराट्खेचरः सह । जगाम ब्रह्मसदनमारुह्य गजमुत्तमम् ॥१२॥
प्रसाद्य प्रतिमां शक्रः स्नानदानैः पुनः पुनः । प्रतिमां तां समाराध्य (दाय) स्वपुरं पुनरागमत् ॥१३॥
तां समाराध्य सुचिरं यतवाक्कायमानसः । व्राथायानसुराङ्गूरान्मुचिप्रमुखांस्त च ॥१४॥

अनन्त वासुदेव का आपने सम्यक् वर्णन नहीं किया । देव ! (वही) हम सुनना चाहते हैं । विस्तारपूर्वक कहिये ॥१-२॥

ब्रह्मा बोले—मुनिश्रेष्ठो ! अनन्त वासुदेव का जगद्दुर्लभ तथा सारतम माहात्म्य मैं बतलाऊँगा ॥३॥

विप्रबुद्ध ! पहले आदिकल्प में अव्यक्तजन्मा मैंने अत्यन्त बलवान्, देवताओं के कारीगर और बड़ों के काम में अग्रणी विश्वकर्मा को बुलाकर कहा—पृथ्वी पर वासुदेव की एक ऐसी पत्थर की मूर्ति बनाओ, जिसे विधि पूर्वक देखकर भक्त, इन्द्र तथा मनुष्य आदि, दानव-राक्षसों के महान् भय से स्वयं म आकर अर्थात् सुमेरु पर्वत के शिखर पर चिर-काल तक वासुदेव की आराधना करते हुए सुख से वास करें ॥४-७॥ मेरे वचन को सुनकर तत्काल विश्वकर्मा ने शुद्ध, शङ्ख, चक्र, तथा गदा धारण करने वाली, सर्वलक्षणसम्पन्न, कमल के समान दीर्घ नेत्रों वाली, श्वेतसल चिह्न से युक्त, अत्यन्त उन्नत, धनमाला से आवृत पदास्थल वाली, मुकुट तथा अंगद धारण करने वाली, पीतवस्त्रा, स्थूल स्वर्णों वाली तथा पुण्डली से अलंकृत प्रतिमा को बना डाला ॥८-१०॥ इस प्रकार बनी दिव्य प्रतिमा में मैं स्वयं गुह्य मन्त्रों द्वारा प्राणप्रतिष्ठा करने लगा । उस समय देवबुद्धा के साथ इन्द्र उत्तम हाथी पर चढ़कर ब्रह्मलोक में आये । इन्द्र बार-बार स्नान-दानों से प्रतिमा की आराधना करते अपने नगर को चले गये ॥११-१३॥ चिरकाल तक कायिन, वाचिक तथा मानसिक समय के साथ उस प्रतिमा की आराधना करते इन्द्र ने वृत्र, नमुचि आदि क्रूर राक्षसों को मारकर तीना लोह ना उपमोघ किया ॥१४३॥ द्वितीय युग प्राप्त होन पर अर्थात् वेता आने पर राक्षसायज, प्रतापी

१४ वरमनुवर्णकृत् । प्र० । २४. अदिवेद्यमनुशा० । ३४. पिरे । ४४. ग शुद्धा । ५४. स ० परं-
यंत । ७० ।

निहत्य वानवान्भोमान्भुवनान्भुवनत्रयम् । द्वितीये च युगे प्राप्ते त्रेताया राक्षसाधिप ॥१५॥
 बभूव सुमहावीर्यो दशग्रीव प्रतापवान् । दश यर्पसहस्राणि निराहारो जितेन्द्रिय ॥१६॥
 चत्वार धृतमत्युग्र तप परमदुश्चरम् । तपसा तेन तुष्टोऽह वर तस्मै प्रदत्तवान् ॥१७॥
 अवध्य सर्वदेवानां स दैत्योरगपक्षसाम् । शापप्रहरणैर्गैरवध्यो धर्माधिकरः ॥१८॥
 वर प्रा प्र तश रभो यशः शानिमान् । धनाध्यक्ष विनिर्जित्य शक्र जेतु समुद्यत ॥१९॥
 सग्राम सुमहावीर कृत्वा देवैः स राक्षस । देवराज विनिर्जित्य तदा इन्द्रजितेति वै ॥२०॥
 'राक्षसस्तत्सुतो नाम मेघनाद प्रलब्धवान् । अमरावर्तो तत प्राप्य देवराजगृहे शुभे ॥२१॥
 'ददशाञ्जनसकाशा रावणस्तु बलान्वित । प्रतिमा वासुदेवस्य सर्वलक्षणसयुताम् ॥२२॥
 शीवस्तत्प्रलम्भसयुक्ता पञ्चपत्रादत्तेक्षणां । वनमालावतीरका मुकुटाङ्गदभूषिताम् ॥२३॥
 शङ्खचक्रगदाहस्ता पीतवस्त्रा चतुर्भुजाम् । सर्वाभरणसयुक्ता सर्वकामफलप्रदाम् ॥२४॥
 विहाय रत्नसङ्घाश्च प्रतिमा शुभलक्षणां । पुष्पकेण विमानेन लङ्कां प्रास्यापयद्भुतम् ॥२५॥
 पुराध्यक्ष स्थित श्रीमाध्यमत्मा स विभीषण । रावणस्यानुजो मन्त्री नारायणपरायण ॥२६॥
 दृष्ट्वा ता प्रतिमां दिव्या देवेन्द्रभयनच्युताम् । रोमाञ्चिततनुर्भूत्वा विस्मय समपद्यत ॥२७॥
 प्रणम्य शिरसा देयं प्रहृष्टेनातरात्मना । अद्य मे सफल जन्म अद्य मे सफल तप ॥२८॥
 इत्युक्त्वा स तु धर्मात्मा प्रणिपत्य मुहुर्मह । उयेष्ठ आतरमासाद्य कृताञ्जलिर्भाषत ॥२९॥

तथा महाशक्तिशाली रावण ने पक्ष हट्टार वपों तब निराहार तथा जितेन्द्रिय होकर अत्यन्त उग्र तप किया ॥१५॥ १६॥
 उसकी तपस्या से सतुष्ट होकर मैंने उसे वरदान दिया कि तুম समस्त देवता दैत्य सर्प राक्षस शापप्रहार तथा यम
 हूतो स अवध्य होंगे । तदुपरांत वर प्राप्त कर वह राक्षस यक्षगण सहित कुबेर को जीतकर पञ्च को जीतने के लिये
 उद्यत हुआ ॥१७॥ १९॥ देवताओं के साथ धीरे सग्राम करके उसने देवराज पर विजय प्राप्त की । तब से उसका
 पूज मेघनाद इन्द्रजित् कहलाने लगा ॥२०॥ बलवान् रावण ने अमरावती में घुसकर इन्द्र के पवित्र गृह से अञ्जन
 तुल्य सर्वलक्षणसम्पन्न शीवस्तत्पिह्ल से युक्त वामनपत्र के समान दीर्घ नेत्रा वाली वनमाला से आवृत वक्ष स्पल
 वाली मुकुट तथा अग्न्या से विभूषित हाथी भक्षक चक्र-गदा धारण करने वाली पीतवस्त्रा चतुर्भुजा समस्त आभूषणा
 से युक्त गुम्फलक्षणी से सम्पन्न तथा समस्त वामनाजी के पञ्च को दन वाली वासुदेव की प्रतिमा को लेकर रत्नसमूह
 को बिना छूए ही पुष्पक विमान से लङ्का के लिये शीघ्र प्रस्थान कर दिया ॥२१॥ २५॥ नगर का अग्र्यय श्रीमान्
 धर्मात्मा वासुदेव भक्त मन्त्री तथा रावण का छोटा भाई विभीषण था ॥२६॥ यह इन्द्र भवन से लौटै हुई दिव्य
 प्रतिमा को देवराज आश्चर्य चकित हो गया ॥२७॥ उसे रोमाञ्च्य हो आया । हृदय से गदगद होकर उसने गिर धुना
 कर वासुदेव की प्रणाम किया और कहा—आज मेरा जन्म सफल हुआ आज मेरा तप सफल हुआ ॥२८॥ यह
 कहकर उस धर्मात्मा ने बार-बार प्रणाम किया और हाथ जोड़कर अपने ज्येष्ठ भाई से कहा— राजन् ! यह प्रतिमा

राजन्प्रतिमया त्व मे प्रसाद कर्तुमहसि । यामाराध्य जगन्नाथ निस्तरये भवार्णवम् ॥३०॥
 म्नातुर्वचनमाकण्य रावणस्त तदाऽब्रवीत् । गृहाण प्रतिमा वीर त्वनया किं करोम्यहम् ॥३१॥
 स्वयंभुव समाराध्य त्रैलोक्य विजय त्वहम् । नानाश्चयमय देव सयंभूतभवोद्भवम् ॥३२॥
 विभीषणो महाबुद्धिस्तदा ता (रासाद्य) प्रतिमा शुभाम् । शतमण्डोत्तर चाब्द समाराध्य जनादनम् ॥३३॥
 अजरामरण प्राप्तमणिमादिगुणपूर्वतम् । राज्य लब्ध्वाधिपत्य च भोगाभुङ्क्वते यथेप्सितान् ॥३४॥

मुनय ऊचु

अहो नो विस्मयो जात श्रुत्वेद परमामृतम् । अनतवासुदेवस्य सभव भुवि दुर्लभम् ॥३५॥
 श्रोतुमिच्छामहे देव विस्तरेण यथातथम् । तस्य देवस्य माहात्म्यं वक्तुमहस्यशेषत ॥३६॥

ब्रह्मोवाच

तदा स राक्षस क्रूरो देवगन्धर्वंजिनिरान् । लोकपालासमनुजामुनिसिद्धाश्च पापवृत्त ॥३७॥
 विजित्य समरे सर्वानाजहार तदङ्गना । सस्याप्य नगरं लब्ध्वा पुन सीतार्थं (ता च) मोहित ॥३८॥
 'शङ्कितो मृगरूपेण सोवर्णेन च रावण । तत् क्रुद्धेन रामेण रणे सौमित्रिणा सह ॥३९॥

मुझे दे देने की इया करे। जगत के स्वामी । इसकी आराधना करके मैं सत्कार समझ से पार उतर जाऊँगा ।
 माई का बचन सुनकर रावण ने कहा— वीर ! प्रतिमा ले लो मुझ इससे क्या करेगा है ? मैंने सबमृतमय सत्कार
 को उत्पन्न करने वाले तथा अनेक आश्चर्यजनक वस्तुओं से युक्त श्रेष्ठ की उपासना करने तानों लाभ को जीत लिया
 है। तब महाबुद्धिमान् विभीषण ने प्रतिमा का लेकर एकसो आठ वर्षों तक जनादन की आराधना करके अजरत्व
 अमरत्व शक्ति आदि सिद्धियाँ तथा स्वर्ग का आधिपत्य प्राप्त किया और अनेक अनिलपित भोगों का उपयोग
 किया ॥२९ ३४॥

मुनियो ने कहा—ब्रह्मा । अनतवासुदेव का यह सत्कार-दण्ड वस्तुतः सुनकर हम भन्ना अमन मिल गया
 है तथा आश्चर्य हो रहा है। हे देव हम विष्णारूपवक्त्र यथायथं गुणना चाहते हैं। उम देव का अनिल माहात्म्य
 आप बतलाइय ॥३५ ३६॥

ब्रह्मा बोले—तब उस वीर तथा पापी राक्षसने देव गन्धर्व विष्णु लोकात्मान् मत्स्य मुनि तथा मित्रों को
 समर में जीतकर देवागन्नाज का अहरण कर लिया ॥३७॥ उनको लब्ध्वा पुन उगन सीता व लिय
 मोहित होकर सान के मृग का रण घाटण किया। तन्मन्त्र राम ने लम्बय व साथ रण में रावण के वध के निमित्त

रावणस्य वधार्थाय हत्वा घालि मनोजवम् । अभिविक्तश्च सुग्रीवो युवराजोऽङ्गदस्तथा ॥४०॥
 हनुमान्नलनीलश्च जाम्बवान्पनसस्तथा । गवयश्च गवाक्षश्च पाठीनः परमोजसः ॥४१॥
 एतैश्चान्यैश्च बहुभिर्जनैः समहाबलैः । समावृतो महाघोरं रामो राजीवलोचनः ॥४२॥
 गिरीणां सर्वसंघातैः सेतुं बद्ध्वा महोदधौ । बलेन महता रामः समुत्तीर्य महोदधिम् ॥४३॥
 संग्राममतुलं चक्रे रक्षोगणसमन्वित । षमहस्तं प्रहस्तं च निकुम्भं कुम्भमेव च ॥४४॥
 मरान्तकं महावीर्यं तया चैव यमान्तकम् । मालाढ्यं मालिकाढ्यं च हत्वा रामस्तु वीर्यवान् ॥४५॥
 पुनरिन्द्रजितं हत्वा कुम्भकर्णं सरावणम् । वैदेहीं चाम्पिनाऽऽशोष्य दत्त्वा राज्यं विभीषणे ॥४६॥
 वासुदेवं समादाय यानं पुण्यकमारहत् । लीलया समनुप्रापदयोध्यां पूर्वपालिताम् ॥४७॥
 कनिष्ठं भरतं स्नेहाच्छत्रुघ्नं भवतवत्सलम् । अभियिष्य तदा रामः सर्वराज्येऽधिराजवत् ॥४८॥
 पुरातनौ स्वमूर्तिं च समाराध्य ततो हरिः । दशवर्षसहस्राणि दशवर्षशतानि च ॥४९॥
 भुक्त्वा सागरपर्यन्तां मेदिनीं स तु राघवः । राज्यमासाद्य सुगतिं वंणवं पदमाविशत् ॥५०॥
 तां चापि प्रतिमां रामः समुद्रेशाय दत्तवान् । घन्यो रक्षयितासि त्वं तोयरत्नसमन्वितः ॥५१॥
 द्वारं युगमासाद्य पदा देवो जगत्पति । धरण्याश्चानुरोधेन भावशैथिल्यकारणात् ॥५२॥
 अवतीर्णः स भगवान्वासुदेवकुले प्रभुः । कंसादीनां वधार्थाय संकर्यणसहायवान् ॥५३॥

मन के तुल्य वेग वाले बालि को मारकर सुग्रीव को अभिषिक्त किया एवम् अंगद को युवराज बनाया ॥३८-४०॥
 हनुमान नल, नील जाम्बवान् पनस गवय, गवाक्ष पाठीन आदि ओजस्वी बन्दरी तथा दूसरे भी बहुत से बलवान्
 तथा महामयवर बन्दरा से युक्त हाकर बमालाचन राम ने पर्वतों के समूहों से समुद्र में पुल बंध कर विशाल सेना
 के साथ समुद्र पार करके रावणा के साथ अतुल संग्राम किया । फिर वमहस्त, प्रहस्त, निकुम्भ कुम्भ महानकितशाली
 मरान्तक, यमान्तक, मालाढ्य मालिकाढ्य मेघनाद कुम्भकर्ण तथा रावण को मार कर शक्तिसम्पन्न राम ने जानकी
 को अनिल से गूढकर विभीषण को राज्य दे वासुदेव की प्रतिमा को लेकर पुण्य विमान से प्रस्थान कर दिया ।
 दश वर्षों की पूर्वपालित दयोध्या पर्वतवर भक्तवत्सल राम ने स्नेह से छोटे भाई भरत तथा शत्रुघ्न को सम्पूर्ण राज्य
 में राजा की तरह अभिषिक्त कर अपनी पुरातनी प्रतिमा की आराधना करते हुए ग्यारह हजार वर्षों तक समुद्र
 पर्यन्त पृथ्वी का भोग किया । राज्य-बाल के बाद तुम जल तथा रत्नों से सम्पन्न हो घन्य हो, इसकी रक्षा करो
 यह कहकर समुद्र में अविधित देवता को चढ़ प्रतिमा देकर राम ने विष्णुलोक में प्रवेश किया ॥४१-५१॥ विप्रवृन्द ।
 द्वारं युग मा जब घर्म के नाश होने के कारण तथा पृथ्वी के अनुरोध से जगत्पति भगवान् कस आदि के वच के
 निमित्त बराम सहित वसुदेव के कुल में अवतीर्ण हुए थे तब किसी कारण समस्त वायनाओं के फल का देने वाली

१क प्लवगममम् । २म० न्यवनस्त० । ३ख ०यवचैव वीन्द्रश्च वानरेश महोन० । ४ख ०हामाप्सो रा० ।

५ग ०न ॥५२॥ शतश शाल्वस० । ६क महोदर । ७क मालिन् मात्ववन्त च । ८ग ०मादाय मु० । ९व राजे ।

तदा तां प्रतिमां विप्राः सर्वेवाञ्छाफलप्रदाम् । सर्वलोकहितार्थाय कस्यचित्कारणान्तरे ॥५४॥
 तस्मिन्क्षेत्रवरे पुण्ये दुर्लभे पुरुषोत्तमे । उज्जहार स्वयं तोयात्समुद्रः सरितां पतिः ॥५५॥
 तदा प्रभृति तत्रैव क्षेत्रे मुक्तिप्रदे द्विजाः । आस्ते स देवो देवानां सर्वकामफलप्रदः ॥५६॥
 ये संश्रयन्ति चानन्तं भक्त्या सर्वेश्वरं प्रभुम् । वाइमनः कर्मभिनित्य ते यान्ति परमं पदम् ॥५७॥
 दृष्ट्वाऽनन्तं सकृदभक्त्या संपूज्य प्रणिपत्य च । राजसूयाश्वमेधाम्या फलं दशगुणं लभेत् ॥५८॥
 सर्वकामसमुद्भूतं कामगेन सुखंसा । विमानेनाकं वर्णेन किङ्किणीजालमालिना ॥५९॥
 त्रिःसप्तकुलमुद्धृत्य दिव्यस्त्रोगणसेवितः । उपगीयमानो गन्धर्वैर्नरो विष्णुपुरं व्रजेत् ॥६०॥
 तत्र भुक्त्वा चरान्भोगाञ्जराभरणवर्जितः । दिव्यरूपधरः श्रीमान्वावदाभूतसंप्लवम् ॥६१॥
 पुण्यक्षयादिहाऽऽयातश्चतुर्वेदो द्विजोत्तमः । वेष्णव योममास्थाय ततो भोक्षमवाप्नुयात् ॥६२॥
 एवं मया त्वनन्तोऽसौ कीर्तितो मुनिसत्तमाः । कः श्रवणोति गुणाः बभूव सख्य दयैर्नरैरपि ॥६३॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे स्वयंभुविसंवादेऽनन्तवासुदेवमाहात्म्यनिरूपणं नाम

पदसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१७६॥

उस प्रतिमा को अखिल लोकों के हित के लिये उस पवित्र, उत्तम तथा दुर्लभ पुरुषोत्तम नामक क्षेत्र में सरिताओं के स्वामी समुद्र ने जल से बाहर कर दिया । द्विजगण ! तब से लेकर उसी मुक्तिदायक क्षेत्र में देवों के देव तथा अखिल कामनाओं के दाता भगवान् रहते हैं । जो मनुष्य मत्स्य, बाबा, कर्मणा भक्तिपूर्वक तब के ईश्वर, सर्वराजि-मान्, अनन्त भामुदेव की शरण में आते हैं, वे परम पद को प्राप्त होते हैं । एक बार अनन्त भगवान् के दर्शन, पूजन तथा प्रणाम करने से मनुष्य राजसूय तथा अश्वमेध यज्ञों से दस गुने अधिक फल प्राप्त करते हैं । देहान्त के बाद वे निखिल कामनाओं से सम्पन्न, स्वेच्छाचारी, सूर्य उदय वर्ण वाले तथा धृष्ट घण्टिकाओं में सुन विमान पर चढ़कर अपने इक्कीस कुला का उद्धार करने दिव्य वनिताओं से भुगेविन तथा गन्धर्वों से स्तुत होते हुए विष्णुपुर को जाते हैं । ॥५२-६०॥ यहाँ बृहत्त्व तथा मृत्यु से रहित होकर दिव्य रूप धारण कर बलान्त तब उत्तम मागों को मोगते हैं । फिर पुण्यक्षय होन पर इस लोक में आते हैं और चारों वेदों के ज्ञाता द्विजधर होते हैं । तदनन्तर वेष्णव याग में स्थिर होकर भाग प्राप्त करते हैं । मुनिधेष्ठो ! इस प्रकार मैं अनन्त भगवान् का गुण-नीर्तन किया है । यो तो सकृद्वारों से भी उनके गुणों का वर्णन नहीं किया जा सकता है ॥६१-६३॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में ब्रह्मा और ऋषिभगवत् प्रकरण में अनन्तवासुदेवमाहात्म्यनिरूपण

नामक एक ही छिहत्तरवाँ अध्याय समाप्त ॥१७६॥

अथ सप्तसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः

पुरुषोत्तमक्षेत्रमाहात्म्यवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

एव बोऽनन्तमाहात्म्य क्षेत्रं च पुरुषोत्तमम् । भुक्तिमुक्तप्रदं नृणां मया प्रोक्तं सुदुर्लभम् ॥१॥
यत्राऽऽस्ते पुण्डरीकाक्ष शङ्खचक्रगदाधर । पीताम्बरधर कृष्ण कसकेशिनिपूदन ॥२॥
ये तत्र कृष्ण पश्यन्ति सुरासुरनमस्कृतम् । सकर्षणं सुभद्रा च धन्यास्ते नान सशय ॥३॥
त्रैलोक्याधिपति देव सर्वकामफलप्रदम् । ये प्यायन्ति सदा कृष्ण मुक्तास्ते नात्र सशय ॥४॥
कृष्णे रता कृष्णमनुस्मरन्ति, रात्रौ च कृष्ण पुनरुत्थिता ये ।
ते भिन्नवेहा प्रविशन्ति कृष्ण हविर्यथा भग्नहृत हुताशनम् ॥५॥
तस्मात्सदा मुनिभ्येष्टा कृष्ण कमललोचन । तस्मिन्क्षेत्रे प्रयत्नेन द्रष्टव्यो मोक्षकाङ्क्षिभि ॥६॥
'दायनोत्थापने कृष्ण ये पश्यन्ति मनोविण । हलायुध सुभद्रा च 'हरे' स्थानं व्रजन्ति ते ॥७॥
सर्वकालेऽपि ये भक्त्या पश्यन्ति पुरुषोत्तमम् । रौहिणेय सुभद्रा च विष्णुलोकं व्रजन्ति ते ॥८॥

अध्याय १७७

पुरुषोत्तम क्षेत्र का माहात्म्य-वर्णनं

ब्रह्मा बोले—इस प्रकार अनन्त वा माहात्म्य तथा मनुष्य। के लिये भाग मोक्ष-दायक एवम् अत्यन्त दुर्लभ पुरुषोत्तम क्षेत्र मैंने बताया ॥१॥ उस क्षेत्र में कमललोचन 'गदा चक्र-गदाधारी पीताम्बर तथा कस और बेगी के सहर्ता कृष्ण भास करते हैं ॥२॥ वहाँ जा मनुष्य देव रामसा स वान्नीय कृष्ण बलराम तथा सुभद्रा के दर्शन करते हैं व नि सन्नेह धन्यवादार्ह हैं ॥३॥ जो त्रिगोत्री के स्वामी तथा समस्त कामनाओं के फलदाता कृष्ण का ध्यान करते हैं वे मुक्त हो जाते हैं इसमें कोई शक्य नहीं ॥४॥ जो कृष्ण में निरत होकर सतत कृष्ण का स्मरण करते हैं अर्थात् रात्रि में तथा उठने पर भी कृष्ण का ध्यान करते हैं व 'रात्रौ छत्र पर उठी तरह कृष्ण में प्रवृत्त करते हैं जैसा मन्त्रपूर्वक छात्र गद्य हविर् अग्नि में ॥ ॥ मुनिवर' इसलिये मोक्षानिलापिदा को यत्नपूर्वक उस क्षेत्र में जाकर कमललोचन कृष्ण का दर्शन करना चाहिये ॥६॥ जो साने-उठते सदा कृष्ण बलराम तथा सुभद्रा का दर्शन करते हैं वे विष्णुलोक व्रज जाते हैं ॥७॥ जो सब बातें में कृष्ण बलराम तथा सुभद्रा का दर्शन करते हैं व विष्णुलोक व्रज जाते हैं ॥८॥ जो वष में बार मास पुरुषोत्तम क्षेत्र में रहते हैं व पृथ्वी पर समस्त तापयात्राओं

आस्ते यश्चतुरो मासान्वापिकान्पुरुषोत्तमे । पृथिव्यास्तीर्थयात्राया फल प्राप्नोति चाधिकम् ॥१॥
 ये सर्वकाल तत्रैव निवसन्ति मनीषिण । जितेन्द्रिया जितक्रोधा लभन्ते तपस फलम् ॥१०॥
 तपस्तप्त्वाऽन्यतीर्थेषु वर्षाणामयुत नर । यदाप्नोति तदाप्नोति मासेन पुरुषोत्तमे ॥११॥
 तपसा ब्रह्मचर्येण सङ्गत्यागेन यत्फलम् । तत्फल सततं तत्र प्राप्नुवन्ति मनीषिण ॥१२॥
 सवतीर्थेषु यत्पुण्य स्नानदानेन कौतितम् । तत्फल सततं तत्र प्राप्नुवन्ति मनीषिण ॥१३॥
 'सम्यक्तीर्थेन यत्प्रोक्तं व्रतेन नियमेन च । तत्फल लभते तत्र प्रत्यहं प्रयत शुचि ॥१४॥
 यस्तु नानाविधैर्यज्ञैर्यत्फल लभते नरः । तत्फल लभते तत्र प्रत्यहं सयतेन्द्रिय ॥१५॥
 देहं त्यजन्ति पुरुषास्तत्र ये पुरुषोत्तमे । कल्पवृक्ष समासाद्य भुक्तास्ते नात्र सशय ॥१६॥
 यदसागरयोर्मध्ये ये त्यजन्ति कलेवरम् । ते दुर्लभं पर मोक्षं प्राप्नुवन्ति न सशय ॥१७॥
 अनिच्छन्नपि यस्तत्र प्राणास्त्यजति मानव । सोऽपि दुःखविनिर्मुक्तो भुक्तिं प्राप्नोति दुर्लभाम् ॥१८॥
 कृमिकोटपतङ्गाद्यास्तिर्यग्योनिगताश्च ये । सत्र देहं परित्यज्य ते भान्ति परमा गतिम् ॥१९॥
 भान्ति लोकस्थ पश्यध्वमन्यतीर्थं प्रति द्विजा । पुरुषारथेन यत्प्राप्तमन्यतीर्थफलादिकम् ॥२०॥
 सकृत्पश्यति यो मत्स्यं श्रद्धया पुरुषोत्तमम् । पुरुषाणां सहस्रेषु स भवेदुत्तमं पुमान् ॥२१॥
 प्रकृते स परो यस्मात्पुरुषादपि चोत्तमः । तस्माद्देवे पुराणे च लोकेऽस्मिन्पुरुषोत्तम ॥२२॥

के फल से अधिक फल प्राप्त करते हैं ॥१॥ जो विद्वान् क्रोध तथा इन्द्रिया को जीतकर सब समय वही वास करते हैं वे तपस्या का फल प्राप्त करते हैं ॥१०॥ अन्य तीर्थों में यत्त हजार वर्षों तक तप करने से जितना फल प्राप्त होता है उतना एक पुरुषात्तम में एक मास तक तप करने से होता है ॥११॥ तपस्या ब्रह्मचर्य तथा आसक्ति त्याग से जो फल मिलता है वह फल उस क्षेत्र में विद्वान् का सतत प्राप्त होता है ॥१२॥ सत्र तीर्थों में स्नान-दान करने से जो पुण्य होता है वह फल वहाँ सतत विद्वान् का प्राप्त होता रहता है ॥१३॥ शीघ्र व्रत तथा नियम करने से जो फल मिलता है वह फल प्रतिदिन पवित्रतापूर्वक वहाँ रहने से प्राप्त होता है ॥१४॥ अनेक यज्ञ करने में मनुष्य जो फल प्राप्त करता है वह फल वहाँ प्रतिदिन इन्द्रिय संयम करने से मिलता है ॥१५॥ जो मनुष्य पुरुषात्तम क्षेत्र में कल्पवृक्ष का समीप देहत्याग करते हैं वे निःसन्देह मोक्ष प्राप्त करते हैं ॥१६॥ यद्वृक्ष तथा सागर का मध्य जो गरीरत्याग करते हैं वे दुःख मोक्ष को प्राप्त करते हैं इसमें संशय नहीं ॥१७॥ न चाहत हुए भी जो मनुष्य वहाँ प्राणत्याग करता है वह भी दुःख से रहित होकर दुर्लभ भुक्ति का प्राप्त करता है ॥१८॥ कृमि कीट पतंग आदि तिर्यग् मानि वा के जीव जो वहाँ देहत्याग करने से परम गति को प्राप्त करते हैं ॥१९॥ द्विजगण 'दूगरे तीर्थों का प्रति जो लागे म थडा है उस भान्ति समझिए । क्योंकि अन्य समस्त तीर्थों का फल तो एक पुरुषात्तम से प्राप्त हो जाता है ॥२०॥ जो मनुष्य यथापूर्वक एक बार भी पुरुषात्तम का दान करता है वह हजारों पुरुषों में उत्तम पुरुष होकर जन्म लेता है ॥२१॥ जिगम्यि प्रवृत्ति तथा पुण्य से भी वह उत्तम है इमान्य दग लागे म वेद और पुराण में वह उत्तम माना गया है ॥२२॥ जो पुराण तथा वेदान्त में परमात्मा नाम से पुजारा जाता है

योऽसौ पुराणे वेदान्ते परमात्मैवदाहृतः । 'आस्ते विश्वोपकाराय सेनासौ' पुरुषोत्तमः ॥२३॥
 पथि श्मशाने गृहमण्डपे वा, रथ्याप्रदेशेष्वपि यत्र कुत्र ।
 इच्छन्नच्छन्नपि तत्र देहं, संत्यज्य मोक्षं लभते मनुष्यः ॥२४॥
 तस्मात्सर्वप्रयत्नेन तस्मिन्क्षेत्रे द्विजोत्तमाः । देहत्यागो नरैः कार्यः सम्यग्भोगाभिकाङ्क्षिभिः ॥२५॥
 पुरुषाख्यस्य माहात्म्यं न भूतं न भविष्यति । त्यक्त्वा यत्र नरो देहं मुक्तिं प्राप्नोति दुर्लभम् ॥२६॥
 गुणानामेकदेशोऽयं भया क्षेत्रस्य कीर्तितः । कः समस्तान्गुणान्वक्तुं शक्तो वर्णशतैरपि ॥२७॥
 यदिदं नृनिश्रेष्ठा मोक्षमिच्छन् शश्वतम् । तस्मिन्क्षेत्रवरे पुण्ये निवसध्वमतन्निताः ॥२८॥

व्यास उवाच

ते तस्य वचनं श्रुत्वा ब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मनः । निवासं चक्रे तत्र अवापुः परमं पदम् ॥२९॥
 तस्माद्युध प्रयत्नेन निवसध्व द्विजोत्तमाः । पुरुषाख्ये चरे क्षेत्रे यदि भुक्तिमभीप्सवः ॥३०॥
 इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे ब्रह्मश्रुतिसंवादे क्षेत्रमाहात्म्यवर्णनं नाम सप्तसप्तत्यपि-
 कशततमोऽध्यायः ॥१७७॥

विश्व के उपकार के लिये पुरुषोत्तम कहलाता है ॥२३॥ पुरुषोत्तम क्षेत्र में मार्ग, श्मशान गृहमण्डप तथा गलियों में या जहाँ-कहीं भी चाहते हुए या बिना चाहते हुए भी जो मनुष्य देहत्याग करता है वह मोक्ष प्राप्त करता है ॥२४॥ द्विजश्रेष्ठो ! इसलिये माद्य के इच्छुका को अलिल प्रयत्न करके उस क्षेत्र में घरीरत्याग करना चाहिये ॥२५॥ पुरुषोत्तम के माहात्म्य की समता करने वाला न कोई तीर्थ हुआ है न होगा । वहाँ देहत्याग करने से मानव दुर्लभ मुक्ति को प्राप्त करता है ॥२६॥ यह तो उस क्षेत्र के गुण का एकदेशी वर्णन ही मैंने किया है । क्योंकि उसके निखिल गुणों का वर्णन तो कोई संवादो वर्णों में भी नहीं कर सकता ॥२७॥ मुनिवर ! यदि आप लोग शाश्वत मोक्ष चाहते हैं तो आत्म्य से रहित होकर उस पवित्र तथा उत्तम क्षेत्र में वास कीजिये ॥२८॥

व्यास ने कहा—अव्यक्तजन्मा ब्रह्मा के वचना को सुनकर मुनिवृन्द ने वहाँ निवास करके परमपद को प्राप्त किया । द्विजश्रेष्ठो ! इसलिये यदि आप लोग भी मोक्ष चाहते हों तो प्रयत्नपूर्वक पुरुषोत्तम नामक श्रेष्ठ क्षेत्र में निवास कीजिए ॥२९-३०॥

श्रीब्रह्महमपुराण में ब्रह्मा और श्रुतियों के संवादप्रकरण में क्षेत्रमाहात्म्यवर्णन नामक एक सौ सत्सहस्रवै अध्याय समाप्त ॥१७७॥

अथाष्टसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः

कण्डुचरित्रवर्णनम्

व्यास उवाच

तस्मिन्क्षेत्रे मुनिश्रेष्ठाः सर्वसत्त्वसुखावहे । धर्मार्थकाममोक्षाणां फलदे पुरुषोत्तमे ॥१॥
कण्डुर्नाम महातेजा ऋषिः परमधार्मिकः । सत्यवादी शुचिर्दान्तः सर्वभूतहिते रतः ॥२॥
जितेन्द्रियो जितक्रोधो वेदवेदाङ्गपारगः । अवाप परमा सिद्धिमाराध्यः पुरुषोत्तमम् ॥३॥
अन्येऽपि तत्र संसिद्धा मुनयः सशितव्रताः । सर्वभूतहिता दान्ता जितक्रोधा विमत्सराः ॥४॥

मुनय ऊचुः

कोऽसौ कण्डुः कथं तत्र जगाम परमा गतिम् । श्रोतुमिच्छामहे तस्य चरितं ब्रूहि सत्तम ॥५॥

व्यास उवाच

शृणुष्व मुनिशार्दूलाः कथा तस्य मनोहराम् । प्रवक्ष्यामि समासेन मुनेस्तस्य विचेष्टितम् ॥६॥
'पवित्रे गौतमीतीरे विजने सुमनोहरे । कन्दमूलफलैः पूर्णं प्लवङ्गपुष्पकुशान्वितैः ॥७॥
नानाद्रुमलताकीर्णं नानापुष्पोपशोभिते । नानापक्षिभिरुत्थं नानामृगगणान्विते ॥८॥

अध्याय १७८

कण्डुऋषि के चरित्र का वर्णन

व्यास ने कहा—मुनिवर ! समस्त जीवा के लिये सुखदायक तथा धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के फल देने वाले उस पुरुषोत्तम नामक क्षेत्र में महातेजस्वी, परमधर्मात्मा, सत्यवादी, पवित्र, दान्त, अखिल प्राणियों के हित में निरत, जितेन्द्रिय, जितक्रोध तथा वेद-वेदाङ्ग-पारंगत कण्डु नामक ऋषि ने पुरुषोत्तम विष्णु की आराधना करने सिद्धि प्राप्त की । फिर पूजाव्रती, अशेष भूता के हित में निरत, इन्द्रियो का दमन करने वाले, प्रोध को भीतने वाले तथा डाढ़ से रहित दूसरे मुनिबुद्ध भी वहाँ सिद्धि को प्राप्त हुए ॥१-४॥

मुनियों ने कहा—मुनिश्रेष्ठ ! कण्डु कौन थे ? जैसे उन्होंने परम गति प्राप्त की ? उनका चरित्र वर्णन कीजिए, हम सुनना चाहते हैं ॥५॥

व्यास बोले—मुनिवर ! उनकी मनोहर कथा को सुनिये । मैं संक्षेप में उनकी क्रिया का वर्णन करूँगा । मुनिश्रेष्ठ ! पवित्र, विजने, मनोहर, कन्द-मूल फलों से परिपूर्ण, लक्ष्मी, पुष्प, तथा कुशों से युक्त, अनेक वृक्ष-लताओं से प्रपूर्ण, नाना पुष्पा से सुशोभित विविध पक्षियों से शब्दावमान, रमणीय तथा नाना मृगगणों से युक्त गोदा-

१क. स. ०द्विमाष्य पु० । २क. स. सयतेन्द्रियाः । ३स. ०य यदिमा । ४क. प्रतिदे । ५क. य.

०फलैर्मध्येः स० । ६स. ०प्यजलैः कुपै । ना० ।

तत्राऽऽश्रमपदं कण्डोर्बभूव मुनिसत्तमाः । सर्वर्तुफलपुष्पाढ्यं कदलीखण्डमण्डितम् ॥९॥
 तपस्तेपे मुनिस्तत्र सुमहत्परमाद्भुतम् । व्रतोपवासैर्नियमैः स्नानमौनसुसंयमैः ॥१०॥
 ग्रीष्मे पञ्चतपा भूत्वा वर्षासु स्थण्डिलेशयः । आर्द्रवासास्तु हेमन्ते स तेषु सुमहत्तपः ॥११॥
 दृष्ट्वा तु तपसो वीर्यं मुनेस्तस्य सुविस्मिताः । बभूवुर्देवगन्धर्वाः सिद्धविद्याधरास्तथा ॥१२॥
 भूमिं तयाऽन्तरिक्षं च दिवं च मुनिसत्तमाः । कण्डुः सतापयगमास त्रैलोक्य तपसो बलात् ॥१३॥
 अहोऽस्य परमं धैर्यमहोऽस्य परमं तपः । इत्यब्रुवन्स्तदा दृष्ट्वा देवास्तं तपसि स्थितम् ॥१४॥
 मन्त्रयामासुरव्यघ्राः शक्रेण सहितास्तदा । भयात्तस्य समुद्रिग्नास्तपोविघ्नमभ्योपसवः ॥१५॥
 ज्ञात्वा तेषामभिप्रायं शक्रस्त्रिभुवनेश्वरः । प्रम्लोचाख्या वरारोहा रूपयौवनगविताम् ॥१६॥
 सुमध्यां चारुजङ्घां तां पीनशोणिपयोधराम् । सर्वलक्षणतपन्नां प्रोवाच फलसूदनः ॥१७॥

शक्र उवाच

प्रम्लोचे गच्छ शीघ्रं स्वं यदाऽतो तप्यते मुनिः । विघ्नार्थं तस्य तपसः क्षोभयत्वा (स्वाऽऽ) शु सुप्रभे ॥१८॥

प्रम्लोचोवाच

तत्र वाक्यं सुरश्रेष्ठ करोमि सततं प्रभो । किंतु शङ्का मर्मबाज जीवितस्य च सशयः ॥१९॥
 बिभेमि तं मुनिवरं ब्रह्मचर्यव्रते स्थितम् । अत्युग्रं दीप्ततपस ज्वलनाकंसमप्रभम् ॥२०॥
 ज्ञात्वा मां स मुनिः क्रोधाद्विघ्नार्थं समुपायताम् । कण्डुः परमतेजस्वी शाप दास्यति दुःसहम् ॥२१॥

वरी के तट पर कण्डु का आश्रम था, जो सब ऋतुओं में होने वाले फल-पुष्पों से सुसम्पन्न एवम् कदली वृक्षों से शोभित था । उस आश्रम में मुनि व्रत, उपवास, नियम, स्नान मौन तथा सयम के द्वारा परम अद्भुत तप करते थे । ग्रीष्म-ऋतु में पञ्चवाग्न-सेवन, वर्षा में भूमिशयन और हेमन्त में गोलों बरतों का धारण करके वे महान् तप करते थे । मुनि भी तपशक्ति को देखकर देव, गन्धर्व, सिद्ध तथा विद्याधर अत्यन्त विस्मित हुए । मुनिश्रेष्ठो ! कण्डु ने तप के बल से भूमि, वाकाश, स्वर्ग—तीनों लोक—को तपा डाला । तपस्या में निरत मुनि को देखकर देवताओं ने कहा— 'अहा ! इसका महाम् सूर्य तथा महान् तप आश्चर्यजनक है ।' तब मुनि ने भय से उद्भिन्न होकर तप में विघ्न डालने की इच्छा से इन्द्र सहित देवगण परस्पर मन्त्रणा करने लगे । देवता के अभिप्राय की समझ कर तीना भुवन के ईश्वर तथा फल देने वाले इन्द्र ने वनिताओं में श्रेष्ठ, रूप तथा यौवन से शक्ति, सुन्दर कटि वाली, सुन्दर जघा वाली, स्थूल नितम्ब तथा स्तन वाली और सर्वलक्षण सम्पन्न प्रम्लोचा नामक अप्सरा से कहा ॥१६-१७॥

इन्द्र बोले—प्रम्लोचा ! तुम शीघ्र जाओ ! सुन्दर कान्ति वाली ! ये जो मुनि तपस्या कर रहे हैं, उनके तप में विघ्न डालकर उन्हें शीघ्र विचलित करो ॥१८॥

प्रम्लोचा बोली—सुरश्रेष्ठ ! मैं आप के वचन को सतत पूरा करती हूँ । किन्तु इस बार निश्चित रूप से मेरे जीवन में सन्देह है । ब्रह्मचर्यव्रत में स्थित, अत्यन्त उग्र, प्रदीप्त तप से युक्त तथा आनन्दितमान सूर्य के समान कान्ति वाले उन मुनिवर से मैं डरती हूँ । परम तेजस्वी कण्डु मुनि मुझे विघ्न डालने के लिये आयी हुई समझकर

उर्वशी मेनका रम्भा घृताची पुञ्जिकस्यला । विश्वाची सहजन्या च पूर्वचित्तिस्तिलोत्तमा ॥२२॥
 अलम्बुषा मिश्रकेशी शशिलेखा च वामना । अन्याश्चाप्सरसः सन्ति रूपयौवनगविताः ॥२३॥
 सुमध्याश्चास्वदनाः पीनोन्नतपयोधराः । कामप्रधानकुशलास्तास्तत्र सनियोजय ॥२४॥

ब्रह्मोवाच

तस्यास्तद्वचनं श्रुत्वा पुनः प्राह शचीपतिः । तिष्ठन्तु नाम चाग्न्यास्तास्त्वं धात्र कुशला शुभे ॥२५॥
 कामं वसन्त वायु च सहायार्थे ददामि ते । तं सार्धं गच्छ सुधोणि यथाऽऽस्ते स महामुनिः ॥२६॥
 शनस्य वचनं श्रुत्वा तदा सा चाहलोचना । जगामाऽऽकाशमार्गेण तैः सार्धं चाऽऽश्रमं मुनेः ॥२७॥
 गत्वा सा तत्र रुचिरं ददशं वनमुत्तमम् । मुनिं च दीप्ततपसमाश्रमस्थमकल्मषम् ॥२८॥
 अपश्यत्सा वनं रम्यं तैः सार्धं नन्दनोपमम् । सर्वतुर्वरपुष्पाढ्यं शाखामृगगणकुलम् ॥२९॥
 पुण्यं पद्मबलोपेतं सपल्लवमहाबलम् । श्रोत्ररम्भान्तुमधुराञ्जशब्दान्धनमुखेरितान् ॥३०॥
 सर्वतुल्लभाराढधान्सर्वतुकुसुमञ्ज्वलान् । अपश्यत्पादपादं च विहङ्गं रनुनादितान् ॥३१॥
 आभ्यानाभ्यातकान्भव्याभारिकोरान्सतिन्वुकान् । अथ बिल्वास्तथाजीवाङ्गाडिमाङ्गोजीपूरकान् ॥३२॥
 पनसाल्लिकुचाश्रोपाञ्जिरीवान्सुमनोहरान् । पारावतास्तथा कोलानरिमेदाभ्लवेतसान् ॥३३॥
 भल्लातकानामलकाञ्जशतपण्डिच किशुकान् । इङ्गुदुन्दुकरबीराश्च हरीतकीविभीतकान् ॥३४॥

हु सह शाप देंगे । उर्वशी, मेनका, रम्भा, घृताची, पुञ्जिकस्यला, विश्वाची, सहजन्या, पूर्वचित्ति, तिलोत्तमा, अल-
 म्बुषा, मिश्रकेशी, शशिलेखा, वामना तथा दूसरी भी रूप-यौवन-गविता, सुन्दर बटि वाली, सुन्दर मुख वाली, स्थूल
 एवम् उन्नत स्तन वाली और कामशास्त्र अनिपुण अप्सरायें हैं । उन्हीं को इस कार्य के लिये नियुक्त करे ॥१९-२४॥

ब्रह्मा बोले—उसके वचन को सुनकर पुन इन्द्र ने कहा—‘दूसरी अप्सरायें मही जाएंगी। कामिनी ! तुम्ही
 इस काम में कुछ हो । कामदेव वसन्त तथा वायु को तुम्हारी सहायता के लिये देता है । सुन्दर बटि वाली !
 उनके साथ तुम उम महामुनि के पास जाओ । वन की बात सुनकर वह मनोहर नैत्र वाली अप्सरा उनके साथ आकाश-
 मार्ग से मुनि के आश्रम के लिये चल पड़ी । वहाँ जाकर उसने उत्तम वन तथा आश्रमवासी निष्पाप एवम् अत्यन्त
 तात्स्वी मुनि को देखा ॥२५-२८॥ उसने नन्दनवन तुल्य रमणीय वन को देखा, जो सब ऋतुओं में होने वाले उत्तम
 पुष्पा में समृद्ध शाखाओं तथा मृगगणों से परिपूर्ण, पवित्र और कमलों तथा पल्लवों से युक्त था । वहाँ खगवृन्द
 श्रवणमुषद तथा अत्यन्त मधुर शब्द कर रहे थे । उस वन में ऐसे वृक्ष योग्यमान थे, जो सब ऋतुओं में फलते-
 पड़ते थे और जिन पर पक्षियों का समूह मधुरालाप करता रहता था । आम आमला, सुन्दर मारियल, तिमुर
 (तेंदू), शिख जीव, (वरायन), दाडिम, बीरपूर, बटहल, बडहूर, नन्दम्ब शिरीष, मनोहर पारावत, कोल (बेर),
 अरिमेर (सैर), अम्लनेत्र (अमलबैर), भल्लातक (मिलावा), छतिवन, पलाश, इगुद (हिणोट), बरबीर, हड़,
 बहेरा—इन वृक्षों तथा अन्य वृक्षों को भी उस विनाशाली अप्सरा ने वहाँ देखा ॥२९-३४॥ उसी तरह अशोक

एतान्न्यांश्च सा वृक्षान्ददर्श पृथुलोचना । तथैवाशोकपुन्नागकेतकीवकुलानय ॥३५॥
 पारिजातान्कोविदारान्मन्दारेन्द्वीवरान्स्तथा । पाटलाः पुष्पिता रम्या देवदाह्रुमास्तथा ॥३६॥
 शालास्तालास्तमालाश्च निचुलौल्लोमकास्तथा । अन्याश्च पादपश्रेष्ठानपश्यत्फलपुष्पितान् ॥३७॥
 चकोरैः शतपत्रैश्च भृङ्गराजैस्तथा शुकैः । कोकिलैः कलविद्धैश्च हारीतैर्जीवजीवकैः ॥३८॥
 प्रियपुत्रैश्चातकैश्च तयाऽन्यैर्विविधैः खगेः । धोत्ररम्यं सुमधुरं कूजद्विभञ्ज्याप्यधिष्ठितम् ॥३९॥
 सरासि च मनोज्ञानि प्रसन्नसलिलानि च । कुमुदं पुण्डरीकैश्च तथा नीलोत्पलैः शुभैः ॥४०॥
 कङ्कहारैः कमलैश्चैव आचितानि समन्ततः । कादम्बैश्चक्रवाकैश्च तथैव जलकुवकुटैः ॥४१॥
 कारण्डवैवंकहैसैः कूर्मैर्मन्दगुभिरेव च । एतैश्चान्यैश्च कीर्णानि समन्ताञ्जलचारिभिः ॥४२॥
 क्रमेणैव तथा सा तु वनं बभ्राम तैः सह । एवं दुष्ट्वा वनं रम्यं तैः सार्धं परमाद्भुतम् ॥४३॥
 विस्मयोत्फुल्लनयना सा बभूव वराङ्गना । प्रोवाच वार्युं कामं च वसन्तं च द्विजोत्तमाः ॥४४॥

प्रम्लोचोवाच

कुरुष्व मम साहाय्यं यूयं सर्वे पुण्यपुण्यकृ

॥४५॥

ब्रह्मोवाच

एवमुक्त्वा तदा सा तु तथैत्युक्ता सुरैर्द्विजा । प्रत्युवाचाथ यास्यामि यत्रासौ संस्थितो मुनि ॥४६॥
 अथ त वैहयन्तारं प्रयुक्तेन्द्रियवाजिनम् । स्मरदास्त्रगलद्विजिह्वं करिष्यामि क्रुसारयिम् ॥४७॥
 ब्रह्मा जनार्दनो वाऽपि यदि वा नीललोहितः । तयाऽप्यथ करिष्यामि कामवाणक्षतान्तरम् ॥४८॥

पुन्नाग, केतकी, मीलसिरी, पारिजात, वृक्षतार, मन्दार, नीलकमल, पाटला देवदाह, शाल शाल तमाल निचुल (वैत), लोमक तथा दूसरे भी पञ्च-मुष्णों से युक्त वृक्षा को उसने देखा । चकोर, मयूर मृङ्गराज तोते, कोयल गौरवे हारीत, जीवजीवक, प्रियपुत्र चातक तथा अन्य विविध पक्षीयण मनोरम एवम् सुमधुर शब्द बर्हाकर रहे थे ॥३५-३९॥ वहाँ मनोहर तथा स्वच्छ जल से युक्त अनेक सरोवर थे, जो कुमुद, कमल, नील कमल, रक्तकमल, कलहस, वनवाक जलकुवकुट, कारण्डव वन, हंस, नटुए, मन्दगु तथा अन्य जलजन्तुओं से व्याप्त थे । काम आदि के साथ प्रम्लोचा ने तमसा वन में भ्रमण किया । इस प्रकार परम आश्चर्यजनक मनोरम वन का देखकर उस वराणता के नेत्र विस्मय से प्रदुल्लित हो गये । द्विजश्रेष्ठों ! तब उसने वार्यु काम तथा वसन्त से कहा ॥४०-४४॥

प्रम्लोचा बोली—तुम सब अलग अलग मेरी सहायता करो ॥४५॥

ब्रह्मा बोली—द्विजगण ! उन्होंने उसका वचन स्वीकार किया । तब उसने कहा—'आज मैं मुनि के पास जाऊँगी । देह का समयन करने वाले इन्द्रिय रूपी घोड़ी को जीतने वाले तथा क्रुसारयि से युक्त मुनि के घोडों की शरी को आज मैं कन्दर्प रूपी शस्त्र से काट डालूंगी । ब्रह्मा या विष्णु या महेश ही नवो नहो, उन्हें भी आज मैं काम-

इत्युक्त्वा प्रययौ^१ साऽथ यत्रासी तिष्ठते मुनिः । मुनेस्तपःप्रभावेण प्रशान्तश्वापदाधमम् ॥४९॥
 सा पुंस्कोकिलमाधुर्यं नदीतीरे व्यवस्थिता । स्तोकमात्रं स्थिता तस्मादगायत वराऽऽसराः ॥५०॥
 ततो वसन्तः सहसा^२ बलं समकरोत्तदा । कोकिलारावमधुरमकालिकमनोहरम् ॥५१॥
 वदो गन्धवहश्चैव मलयार्द्रनिकेतनः । पुष्पानुच्चावचान्मेध्यान्पातयश्च शनैः शनैः ॥५२॥
 पुष्पवाणधरश्चैव गत्वा तस्य समीपतः । मुनेश्च क्षोभयामास कामस्तस्यापि मानसम् ॥५३॥
 ततो गीतध्वनिं श्रुत्वा मुनिर्विस्मितमानसः । 'जगाम यत्र सा सुभ्रूः कामवाणप्रपीडितः ॥५४॥
 दृष्ट्वा तामाह संदृष्टो विस्मयोत्फुल्ललोचन' । मण्डोत्तरीयो विकलः पुलकाञ्चितविग्रहः ॥५५॥

ऋषिरुवाच

काऽसि कस्यासि सुश्रोणि सुभगे चारुहासिनि । मनो हरसि मे सुभ्रू ब्रूहि सत्यं सुमध्यमे ॥५६॥

प्रम्लोचोवाच

तव कर्मकरा चाहं 'पुष्पायंमहमागता । आदेशं देहि मे क्षिप्रं किं करोमि तवाऽऽज्ञया ॥५७॥

व्यास उवाच

श्रुत्वं वचनं तस्यास्त्यक्त्वा धैर्यं विमोहितः । आशय हस्ते तां बालां प्रविवेश स्वमाश्रमम् ॥५८॥

बाण से क्षत विक्षत कर धूँगी, इतना कहकर वह वहाँ के लिए चल पड़ी, जहाँ मुनि रहते थे । मुनि के तप प्रभाव से आश्रमस्थ हितैश्वरी जीव भी शान्त हो गये थे । नर कोयलों के मधुरालाप से युक्त नदी तट पर वह रुक गई । मुनि से प्योरी ही दूर पर स्थित होकर वह वरायणा गाने लगी । तब सहसा वसन्त ने आकर असमय में ही कोविलो के आलाप को मनोहर तथा मधुर बना दिया । मलयजल स्थित मुगन्धित वायु भी धीरे-धीरे धट्टे हुए छोटे-बड़े मुल्लित पुष्पा को गिराने लगे । स्वयं बन्धुर्प पुष्पो वा बाण लेकर मुनि के समीप जाकर उनके मन को विचलित करने लगा । गीतध्वनि सुनकर मुनि आश्चर्यान्वित हो गये और काम-वाण से पीडित होकर उठी मुन्दर मौह वाली अपसरा के पास पहुँचे । उसे देखकर विस्मय से मुनि के नेत्र उत्फुल्ल हो गये, उत्तरीय मध्य नीचे गिर पड़ा और शरीर में रोमाञ्च हो आया ॥४९-५५॥

ऋषि बोले—मुन्दर नितम्ब वाली ! मनोहर हास्य करने वाली ! मुन्दरि ! तुम कौन हो ! जिसकी हो ? मुन्दर कटि वाली ! मुन्दर मौह वाली ! तब-तब बतलाओ । तुम मेरे मन का हृण्य कर रही हो ॥५६॥

प्रम्लोचा बोली—मैं आपकी अनुचरी हूँ । पूछो के लिए मैं यहाँ आई हूँ । क्षीप्र आप आदेश करें । मैं आपकी आज्ञा से सब कुछ कर सकती हूँ ॥५७॥

व्यास ने कहा—उसकी बातों को सुनकर सुख मुनि ने धैर्य का पटितपात्र कर उस कामिनी का हाथ पकड़-कर अपने आश्रम में प्रवेश किया ॥५८॥ (द्विच्येष्टो) । तदनन्तर काम, बाण तथा वसन्त ने कृतकृत्य होकर स्वर्ग

ततः कामश्च वायुश्च वसन्तश्च द्विजोत्तमाः । जम्भूर्ययागतं सर्वं कृतकृत्यास्त्रिविष्टपम् ॥५९॥
 शशंसुश्च हरिं गत्वा तस्यास्तस्य च चेष्टितम् । श्रुत्वा शक्रस्तदा देवाः प्रीताः सुमनसोऽभवन् ॥६०॥
 स च कण्डुस्तया सार्धं प्रविशन्नेव चाऽऽश्रमम् । आत्मनः परमं रूपं चकार मदनाकृतिं ॥६१॥
 रूपयोवनसंपन्नमतीव सुमनोहरम् । दिव्यालंकारसंयुक्तं ॥६२॥ [षोडशवत्सराकृति ॥६२॥
 दिव्यवस्त्रधरं कान्तं दिव्यस्त्रगन्धभूषितम् । सर्वोपभोगसंपन्नं सहसा तपसो बलात् ॥६३॥
 दृष्ट्वा सा तस्य तद्वीर्यं परं विस्मयमागता । अहोऽस्य तपसो वीर्यमित्युक्त्वा मुदिताऽभवत् ॥६४॥
 स्नानंसंध्यां जपं होमं स्वाध्यायं देवतार्चनम् । व्रतोपवासनियमं ध्यानं च मुनिसत्तमाः ॥६५॥
 त्यक्त्वा स रेमे मुदितस्तया सार्धमहनिशम् । मन्मथाविष्टहृदयो न बुबोध तपःक्षयम् ॥६६॥
 संध्यारात्रिदिवापक्षमास्तत्वंयनहायनम् । न बुबोध गतं कालं विषयासक्तमानसः ॥६७॥
 सा च तं कामजर्भावंविदग्धा रहसि द्विजाः । वरयामास सुश्रोणिः प्रलापकुशला तदा ॥६८॥
 एवं कण्डुस्तया सार्धं वर्षाणामधिकं शतम् । अतिष्ठन्मन्दरद्रोण्या ग्राम्यधर्मरतो मुनिः ॥६९॥
 सा तं ग्राह्यं महाभाग गन्तुमिच्छाम्यहं दिवम् । प्रसादसुमुखो ब्रह्मघ्ननुतातु त्वमहंसि ॥७०॥
 तपैवमुक्तः स मुनिस्तस्याभासवतमानसः । दिनानि कतिचिद्भूदे स्थीयतामित्यभाषत ॥७१॥

आकर इन्द्र से अप्सरा तथा मुनि की चेष्टाओं का वर्णन कर दिया । यह सुनकर इन्द्र तथा देवगण अत्यन्त प्रसन्न हुए ॥५९-६०॥ उस कण्डु ने अप्सरा के साथ आश्रम में प्रवेश करते ही अपना रूप कामदेव जैसा बना लिया । मुनि तपस्या के बल से एकाएक सोलह वर्ष का युवक रूप-योवन से सम्पन्न, अत्यन्त सुन्दर दिव्य आभूषणों से विभूषित, दिव्यवस्त्रधारी, कमनीय दिव्य माला तथा सुगन्ध से युक्त और सब प्रकार के उपभोग से सम्पन्न हो गया । अप्सरा उसकी वह विमृति देखकर परम आश्चर्यित हुई और यह कहकर प्रसन्न हुई कि अहा ! मैं सा इसके तप का प्रभाव हूँ । मुनिवर ! तत्पश्चात् वह मुनि स्नान, संध्या, जप, होम, स्वाध्याय, देवपूजन, व्रत उपवास, नियम तथा ध्यान छोड़कर दिनरात अप्सरा के साथ आनन्दपूर्वक रमण करने लगा । काम से व्यथित हृदय धाले मुनि ने तपस्या के क्षय की नहीं समझा । विषय में आसक्त चित्त वाले मुनि ने संध्या, रात, दिन, पक्ष मास, ऋतु, अयन तथा वर्ष तक की भी नहीं समझा । द्विजगण ! तदनन्तर वातपीत करने में चतुर एवम् हाव-भाव दिखाने में प्रवीण उस बरागना ने मुनि का वरण कर लिया । इस प्रकार सौ वर्षों से अधिक काल तक कण्डु मुनि ग्राम्यधर्म में निरत होकर उसके साथ मन्दराचल की शील में पड़ा रहा ॥६१-६९॥ (एक दिन) अप्सरा ने महामायाशाली मुनि से कहा— मैं स्वर्ग जाना चाहती हूँ । ब्रह्मन् ! आप प्रसन्न पूर्वक मुझे आज्ञा दीजिये । उसके इतना कहने पर उसमें आसक्त मन वाले मुनि ने कहा—‘मद्रे ! कुछ दिन और ठहरो ।’ तदनन्तर पुनः सौ वर्षों से अधिक समय तक अप्सरा ने उस महात्मा

एवमुक्ता ततस्तेन साधं वर्षशतं पुनः । ब्रुभुजे विषयास्तन्वी तेन साधं महात्मना ॥७२॥
 अनुज्ञा देहि भगवन्नजामि त्रिदशालयम् । उषतस्तयेति स पुनः स्थीयतामित्यभाषत ॥७३॥
 पुनर्गते वर्षशते साधिके सा शुभानना । याम्यह त्रिदिवं ब्रह्मन्प्रणयस्मितशोभनम् ॥७४॥
 उक्तस्तयैवं स मुनिः पुनराहाऽऽयतेक्षणम् । इहाऽऽस्यता मया सुभ्रु चिरं कालं गमिष्यसि ॥७५॥
 तच्छापभीता सुश्रोणी सह तेनयिणा पुनः । शतद्वय किंचिद्वनं वर्षाणा समतिष्ठत ॥७६॥
 गमनाय महाभागो देवराजनिवेशनम् । प्रोक्तः प्रोक्तस्तया तन्व्या स्थीयतामित्यभाषत ॥७७॥
 तस्य शापभयाद्भूरेर्दक्षिण्येन च दक्षिणा । प्रोक्ता प्रणयभङ्गातिवेदिनो न जहौ मुनिम् ॥७८॥
 तया च रमतस्तस्य परमर्षेर्हनिशम् । नवं नवमभूत्प्रेम मग्मयास्तक्तचेतसः ॥७९॥
 एकदा तु त्वरायुक्तो निश्चक्रामोदजान्मुनिः । निष्क्रामन्तं च कुत्रेति गम्यते प्राह सा शुभा ॥८०॥
 इत्युक्त सतया प्राह परिवृत्तमहः शुभे । संध्योपास्ति करिष्यामि क्रियालोपोऽप्यथा भवेत् ॥८१॥
 ततः प्रहस्य मुदिता सा त प्राह महामुनिम् । किमद्य सर्वधर्मज्ञ परिवृत्तमहस्तव ॥
 गतमेतन्न कुरुते विस्मयं कस्य कस्यते ॥८२॥

मुनिरुवाच

प्रातस्त्वमागता भद्रे नदीतीरमिदं शुभम् । मया दृष्टाऽसि सुश्रोणि प्रविष्टा च ममाऽऽश्रमम् ॥८३॥

के साथ विषय का उपभोग किया ॥७०-७२॥ तब उसने मुनि से कहा—‘मगवन् ! आज्ञा दीजिये । मैं स्वर्ग जाऊँगी ।’ उसके कहने पर फिर मुनि ने कहा—‘नदी, अमी ठहरो ।’ पुनः सो वर्ष से अधिक समय तक ठहर कर अन्तरा प्रेम से मुहुरति हुए कहा—‘ब्रह्मन् ! मैं स्वर्ग जाऊँगी ।’ तब मुनि ने दीर्घ नेत्र वाली उस अन्तरा से कहा—‘गुन्दर औ वाली ! चिराल तक मेरे साथ और रहे तब जाना ।’ मुनि के साथ के डर से वह दो सौ वर्षों से कुछ कम बाल तब मुनि के साथ फिर ठहर गई । तत्पश्चात् उसने इन्द्रपुरी जाने के लिये मुनि से आज्ञा मागी । पुनः मुनि ने कहा—‘अमी ठहरो ।’ मुनि के साथ के डर में प्रणयमगवन् पौंडा को समझन वाली उस चतुर अन्तरा ने मुनि का त्याग नहीं किया । उसका साथ रातदिन रमण करने हुए विषयलोभुष मुनि के हृदय में नवीन-नवीन प्रेम का संचार होन लगा । एक दिन आधम स भीषणापूर्वक निरन्तर हुए मुनि से अन्तरा पूछ बैठी—‘कहाँ जा रहे हैं ?’ मुनि ने उत्तर दिया—‘कल्याणि ! दिवान्त हो रहा है मैं सन्ध्यासामन करूँगा, अन्यथा क्रिया का लाभ हो जायगा ।’ तब हँसकर अन्तरा ने महामुनि से कहा—‘अतिल घमों के जाना ! क्या आज ही दिवान्त हो रहा है ? इनने दिन बीत गये । आप क्या करते थे ?’ ॥७३-८२॥

मुनि धोले—भद्रे ! प्रातःकाल तुम पवित्र नदी-सट पर आई । गुन्दर नितम्ब वाली । मैंने गुन्हें देखा

‘इयं च यतंते संध्या परिणाममहो गतम् । अवहासः किमर्थोऽयं सद्भावः कथ्यता मम ॥८४॥

प्रम्लोचोवाच

प्रत्यूषं स्पर्शागता ब्रह्मन्सत्यमेतन्न मे मुषा । किं त्वद्य तस्य कालस्य गतान्यवशतानि ते ॥८५॥
ततः संसाध्वसो विप्रस्तां पप्रच्छाऽऽयतं क्षणम् । कथ्यता भीरु कः कालस्त्वयामे रमतः सदा ॥८६॥

प्रम्लोचोवाच

‘सप्तोत्तराण्यतीतानि नववर्षशतानि च । मासाश्च षट्त्तर्यवान्यत्समतोऽतं दिनत्रयम् ॥८७॥

ऋषिरुवाच

सत्यं भीरु धदस्येतत्परिहासोऽप्यवा शुभे । दिनमेकमह मन्ये त्वया सार्धमिहोपितम् ॥८८॥

प्रम्लोचोवाच

वदिष्याम्यनृतं ब्रह्मन्कथमत्र तवान्तिके । विशेषादद्य भवता पुष्टा मार्गानुगामिना ॥८९॥

व्यास उवाच

निशम्य तद्वचस्तस्याः स मुनिर्द्विजसत्तमाः* । धिग्धिङ्मात्मित्यनाचारं विनिन्द्याऽऽजमानमात्मना ॥९०॥

और तुम मेरे आश्रम में प्रविष्ट हुईं । यह सन्ध्याकाल है । दिन का अवसान हो गया है । क्यों तुम उपहास कर रही हो ? सच्ची बात बतलाओ ॥८३-८४॥

प्रम्लोचा बोली—ब्रह्मन् ! प्रातःकाल में आई—यह कहना आपका ठीक है । किन्तु उस प्रातःकाल को बीते आज सैंकड़ों वर्ष हो गये हैं । तब अत्युक्त मुनि ने लम्बी अँखों वाली प्रम्लोचा से पूछा—‘कहो, तुमसे रमण करते मुझे कितने समय हो गये ?’ ॥८५-८६॥

प्रम्लोचा बोली—नौ सौ वर्ष, छ मास, तीन दिन व्यतीत हुए ॥८७॥

ऋषि बोले—कल्याणि ! क्या यह सत्य कह रही हो या उपहास करती हो ? मैं तो समझ रहा हूँ कि तुम्हारे साथ एक ही दिन बीता है ॥८८॥

प्रम्लोचा बोली—ब्रह्मन् ! विशेष करते जब आपने अन्वेषण की दृष्टि से पूछा है तब मैं आपके समीप बसत्य क्यों बोलू ? ॥८९॥

व्यास बोले—द्विजधैर्यो ! उसका वचन सुनकर मुनि आचारगुण अपने आपको धिक्कारने लगे तथा निन्दा करने लगे ॥९०॥

*स सप्तम्युनायती० । २स. ०एच थोडदीवान सम० । ३क ०मा । विदित्वा हत्य० ।

मुनिरुवाच

तपासि मम नष्टानि हृतं ब्रह्मविदां घनम् । हृतो विवेकः केनापि^१ योषिन्मोहाय निर्मिता ॥९१॥
ऊर्मिपट्कातिगं ब्रह्म ज्ञेयमात्मजयेन मे । गतिरेषा कृता येन धिवतं काममहाग्रहम् ॥९२॥
प्रतानि^२ सर्ववेदाश्च कारणान्यखिलानि च । नरकग्राममार्गेण कामेनाद्य^३ हतानि मे ॥९३॥
विनिन्देत्यं स धर्मज्ञः स्वयमात्मानमात्मना । तामप्सरसमासीनामिदं वचनमब्रवीत् ॥९४॥

ऋषिरुवाच

गच्छ पापे यथाकाम यत्कार्यं तत्त्वया कृतम् । देवराजस्य^४ यत्क्षोभ कुर्वन्त्या भावचेष्टितं ॥९५॥
न त्वां करोम्यहं भस्म क्रोधतोब्रेण वह्निना । सता^५ साप्तपदं^६ मन्थमुपितोऽहं त्वया सह ॥९६॥
अथवा तव दोषः कः किंवा^७ कुयमिहं तव । ममैव दोषो नितरां येनाहमजितेन्द्रियः ॥९७॥
यथा शक्रप्रियायिन्या कृतो मत्तपसो व्ययः । त्वया दृष्टिमहामोहमनुनाऽहं जुगुप्सितः ॥९८॥

ध्यास उवाच

यावदित्यं स विप्रपिस्ता ब्रवीति सुमध्यमात् । तावत्सखलरस्येवजला सा बभूवातिवेपथुः ॥९९॥
प्रवेपमाना स च तां स्विन्नगानलतां सतीम् । गच्छ गच्छेति सत्रोधमुवाच मुनिसत्तमः ॥१००॥

मुनि बोले—मेरे तप नष्ट हो गये, ब्रह्मवेत्ताओं का घन नष्ट हो गया, किसी ने विवेक का अपहरण कर लिया। अहो! मोह भ डालने के लिये ही स्त्रिया की रचना हुई है। वहाँ तो मैं इन्द्रियों को जीतकर ब्रह्म को प्राप्त करने वाला था और वहाँ मेरी यह दशा? उस महाग्रह रूपी काम को धिक्कार है जिसने मेरी यह दशा की है। नरकसमूह में पहुँचाने वाले काम ने आज मेरे व्रत समस्त वेद तथा अखिल कारणों को नष्ट कर दिया। इस प्रकार धर्मज्ञ मुनि ने अपने से अपनी निन्दा करने बंटी हुई उस अप्सरा से कहा ॥९१-९४॥

ऋषि बोले—पापिनी! तुम स्वेच्छा से चली जाओ। इन्द्र का जो काम तुम्हें करना था वह तुमने हाव-भाव दिखलाकर कर दिया। तीव्र क्रोध रूपी अग्नि से मैं तुम्हें जलाऊँगा नहीं। सज्जनों की जो सातपदी मित्रता होती है वह तुमसे हो गई, क्योंकि सात सौ वर्षों से ऊपर मैं तुम्हारे साथ रह चुका हूँ। अथवा तुम्हारा दोष ही क्या है या मैं ही तुम्हारा क्या कर लूँगा? यह भेष ही दोष है कि मैं इन्द्रियों को न जीत सका। इन्द्र के बल्याण करने की इच्छा से तुमने मेरे तप का नाश किया। तुम्हारी दृष्टि पड़ते ही मैं महामोह में पड़कर निन्दा का पात्र बन गया ॥९५-९८॥

ध्यास बोले—इस प्रकार अब वे शाहूण अप्सरा से कह रहे थे तब वह पगीने से तर-बतर होकर नीचे खड़ी थी। उसी अवस्था में मुनि ने त्रोगूर्वक उससे कहा—‘जाओ जाओ!’ पटकार साकर उस अप्सरा ने आधम में

सा तु निर्भत्सिता तेन विनिष्क्रम्य तदाश्रमात् । आकाशगामिनी स्वेदं ममार्जं तरुपल्लवैः ॥१०१॥
 वृक्षाद्भक्षं ययौ बाला उदग्राहणपल्लवैः । निर्ममार्जं च गात्राणि शलत्स्वेदजलानि वै ॥१०२॥
 ऋषिणा यस्तदा गर्भस्तस्या देहे समाहितः । निर्जगाम सरोमाञ्चस्वेदरूपी तवद्भूतः ॥१०३॥
 त वृक्षा जगृहर्गर्भमेकं चक्रे च मारुतः । सोमेनाऽऽप्यायितो गोभिः स तदा धवृधे शनैः ॥१०४॥
 मारिष्या नाम कन्याऽभूद्वृक्षाणां चारुलोचना । प्राचेतसानां सा भार्या दक्षस्य जननी द्विजाः ॥१०५॥
 स चापि भगवान्कण्डुः क्षीणे तपसि सत्तमः । पुरुषोत्तमाख्यं भो विप्रा विष्णोरायतनं ययौ ॥१०६॥
 ददर्श परमं क्षेत्रं मुक्तिदं भुवि दुर्लभम् । दक्षिणस्योदधेस्तीरे सर्वकामफलप्रदम् ॥१०७॥
 सुरम्यं बालुकाकोणं केतकीवनशोभितम् । नानाद्रुमलताकीर्णं नानापक्षिरतं शिवम् ॥१०८॥
 सर्वत्र सुखसंचारं सर्वतुङ्गसुमान्वितम् । सर्वसौख्यप्रदं नृणां धन्यं सर्वगुणाकरम् ॥१०९॥
 भृगवाद्यैः सेवितं पूर्वं मुनिसिद्धवरस्तथा । गन्धर्वैः किन्नरैर्यक्षैस्तथाऽन्यैर्मोक्षकाडक्षिभिः ॥११०॥
 ददर्श च हरिं तत्र देवैः सर्वैरलंकृतम् । ब्राह्मणाद्यैस्तथा वर्णैराश्रमस्थानिषेवितम् ॥१११॥
 दृष्ट्वैव स तदा क्षेत्रं देव च पुरुषोत्तमम् । कृतकृत्यमिवाऽऽत्मानं भजे स मुनिसत्तमः ॥११२॥
 तत्रैकाग्रमना भूत्वा चकाराऽऽराधनं हरेः । ब्रह्मपारमयं कुर्वन्जपमैकाग्रमानसः ॥
 अर्धबाहुर्महायोगी स्थित्वाऽसौ मुनिसत्तमः ॥११३॥

निजल कर आकाश-मार्ग से गमन करती हुई तर पल्लवा से पसीने को पोछ डाला । एक वृक्ष से दूसरे वृक्ष पर होती हुई वह जाती थी और गर्भजल को वृक्ष पल्लवों से पोछ देती थी । ऋषि ने उससे शरीर में जो गमाधान किया था वह गर्भ पसीना बन कर उसके अग्रा से निजल गया । वृक्षों ने उस गर्भ को ग्रहण कर लिया और बाधु ने उसे एकत्रित कर दिया । चन्द्रमा अपनी किरणों द्वारा उसे पालने लगे । तब वह धीरे-धीरे बढ़ने लगा । उसी गर्भ से वृक्षा की चारुनेत्रा मारिष्या नामक कन्या उत्पन्न हुई, जो प्रचेताजा की पत्नी तथा दक्ष की माता बनी । भगवान् कण्डु भी तब के क्षम हो जाने पर पुरुषोत्तम नामक विष्णु-क्षेत्र को चले गये ॥९९-१०६॥ दक्षिण समुद्र के तट पर उन्होंने मोसादायक, पृथ्वी पर दुर्लभ, अखिल कामनाओं में फल को देने वाले, मनोहर, बालुका से परिपूर्ण केतकीवन से सुशोभित, अनङ्ग वृक्ष-लताओं से व्याप्त, नाना पक्षियों से शान्ति तथा कल्याणकारी क्षेत्र को देखा । वहाँ सर्वत्र सुख का साधारण था । सब ऋतुओं में होने वाले पुष्प खिले हुए थे । मनुष्यों को समस्त सुख प्राप्त थे । वह क्षेत्र माना निखिल गुणों की निधि था । पहले भृगु आदि मुनि, सिद्ध, गन्धर्व, किन्नर, यक्ष तथा अन्य मोक्षामिलायिका ने उस क्षेत्र की सेवा की थी । वहाँ पर कण्डु ने देवगणा से अलंकृत तथा ब्राह्मण आदि वर्णों एवं आश्रमवासियों से सुसेविन हरि को देखा । पुरुषोत्तम देव तथा क्षेत्र को देखते ही वे अपने को कृत-कृत्य मानने लगे । वहाँ एकाग्रचित्त होकर हरि की आराधना करने लगे । उन्होंने मुखाग्रा को उठाकर एकाग्र मन से ब्रह्मपार मन्त्र का जप करते हुए योगाभ्यास करता आरम्भ कर दिया ॥१०७-११३॥

मुनय ऊचुः

ब्रह्मपारं 'मुने श्रोतुमिच्छामः परमं' शुभम् । जपता कण्डुना देवो येनाऽऽराध्यत केशवः ॥११४॥

व्यास उवाच

पारं परं विष्णुरपारपारः, परः परेभ्यः 'परमात्मरूपः' ।

स ब्रह्मपारः परपारभूतः, परः पराणामपि पारपारः ॥११५॥

स कारणं 'कारणसंघितोऽपि, तस्यापि हेतुः' परहेतुहेतुः ।

'कार्योऽपि चैव सह कर्मकर्तुः . . . 'रूपैरनेकैरवतीह 'सर्वम्' ॥११६॥

ब्रह्म प्रभुर्ब्रह्म स सर्वभूतो, ब्रह्म प्रजानां पतिरच्युतोऽसौ ।

ब्रह्माव्ययं नित्यमजं स विष्णुरपक्षयाद्यैरखिलैरसङ्गः ॥११७॥

ब्रह्माक्षरमजं नित्यं यथाऽसौ पुरुषोत्तमः । तथा रागादयो दोषाः प्रयान्तु प्रशमं मम ॥११८॥

व्यास उवाच

श्रुत्वा तस्य 'मुनेर्जायं ब्रह्मपारं द्विजोत्तमाः । भवितं च परमां ज्ञात्वा सुदुर्दां पुरुषोत्तमः ॥११९॥

प्रीत्या स परया देवस्तदाऽसौ भवतवत्सलः । श्रुत्वा तस्य 'समोषं' तु प्रोवाच मधुसूदनः ॥१२०॥

मेधगम्भीरया वाचा दिशः संनादयन्निव । आरुह्य गरुडं विप्रा विनताकुलनन्दनम् ॥१२१॥

मुनियों ने कहा—मुने ! हम परम पवित्र ब्रह्मपार मन्त्र के विषय में सुनना चाहते हैं, जिसका जप करते हुए बण्डु ने वैराव की आराधना की थी ॥११४॥

व्यास बोले—विष्णु पारपर, अपारपार, परो से भी परे तथा परमात्मा स्वरूप हैं । वे ब्रह्मपार, परपार-मूल, परो से भी परे तथा पारपार हैं ॥११५॥ वे कारण, कारणों के आश्रय, कारणों के कारण तथा दूसरों के कारणों के कारण हैं । वे कार्य, कर्म, कर्ता होते हुए भी अनेक रूपों से सब की रक्षा करते हैं । वे ब्रह्म, प्रभु, सर्वमूलमय तथा प्रजाओं के स्वामी हैं । वे अविनाशी, नित्य, अजन्मा, विष्णु तथा सत्य आदि से रहित हैं । जैसे पुरुषोत्तम भगवान् ब्रह्म, अविनाशी, अजन्मा तथा नित्य हैं वैसे मेरे राग आदि दोष धान्त हो जायें ॥११६-११८॥

व्यास बोले—द्विजवर ! मुनि ने ब्रह्मपार मन्त्र का जप सुनकर तथा अत्यन्त दुःख मक्ति जानकर भक्तवत्सल भगवान् परम प्रसन्न हो गये । तब विनता के वंश की बढ़ाने वाले गरुड पर चढ़कर मधुसूदन मुनि ने समोष जाकर मेघ के समान गम्भीर वाणी से दिशाओं को शान्तित करते हुए कहने लगे ॥११९-१२१॥

१ मुने । २ स स्तवम् । ३ स परमाचर्मणी । ४ व. ० शतततो० । ५ स ० रपादे० । ६ स ग कापेयुर्ध्वस० । ७ व. स ० रयेरै० । ८ व. विष्णु । ९ व. ० नेवर्त्तयं व० । १० ० नेत्रेण । १० ग समीपे ।

श्रीभगवानुवाच

मुने ब्रूहि परं कार्यं यत्ते मनसि वर्तते । वरदोऽहमनुप्राप्तो वरं वरय सुव्रत ॥१२२॥
 श्रुत्वं वचनं तस्य देवदेवस्य चक्रिणः । चक्षुस्मील्य सहसा वदशं पुरतो हरिम् ॥१२३॥
 अतसीपुष्पसंकाशं पद्मपत्रायतेक्षणम् । शङ्खचक्रमदापाणिं मुकुटाङ्गदधारिणम् ॥१२४॥
 चतुर्बाहुमुदाराङ्गं पीतवस्त्रधरं शुभम् । श्रीवत्सलश्मसंपुवतं वनमालाविभूषितम् ॥१२५॥
 सर्वलक्षणसंपुक्तं सर्वरत्नविभूषितम् । दिव्यचन्दनलिप्ताङ्गं दिव्यमाल्यविभूषितम् ॥१२६॥
 ततः स विस्मयाविष्टो रोमान्जिततनूः । दण्डवत्प्रणिपत्योर्व्यां प्रणाममकरोत्तदा ॥१२७॥
 अद्य मे सफलं जन्म अद्य मे सफलं तपः । इत्युक्त्वा 'मुनिशार्दूलास्तं स्तोतुमुपचक्रमे ॥१२८॥

कण्डुरुवाच

नारायण हरे कृष्ण श्रीवत्साङ्ग जगत्पते । 'जगद्बीज जगद्धाम जगत्साक्षिभ्रमोऽस्तु ते ॥१२९॥
 अश्वत्त जिष्णो' प्रभव प्रधानपुरुषोत्तम । पुण्डरीकाक्ष गोविन्द' लोकनाथ नमोऽस्तु ते ॥१३०॥
 हिरण्यगर्भं श्रीनाथ पद्मनाथ सनातन । भूगर्भं ध्रुव ईशान हृषीकेश नमोऽस्तु ते ॥१३१॥
 अनाद्यन्तामृताजेय जय त्वं जयतां वर । अजिताखण्ड श्रीकृष्ण श्रीनिवास नमोऽस्तु ते ॥१३२॥
 पर्जन्यधर्मकर्ता च दुष्पार दुरधिष्ठित । दुःखातिनाशन हरे जलशायिभ्रमोऽस्तु ते ॥१३३॥

श्री भगवान् बोले—मुने ! तुम्हारे मन में जो हो सो बोलो । मैं तुम्हें वर देने आया हूँ । सुव्रता ! वर मागो । देवों के देव तथा चक्रधारी विष्णु के वचन को सुनकर मुनि ने जब आँखें खोली तो सामने अलसी-पुष्प के समान वर्ण वाले, कमलपत्र के समान दीर्घ नेत्र वाले, हाथों में शङ्ख चक्र तथा गदा धारण करने वाले मुकुट तथा अगद पहिने वाले, चार भुजा वाले, सुडील अंग वाले, पीतवस्त्रधारी, पवित्र, श्रीवत्स चिह्न से युक्त, वनमाला से विभूषित, सर्वलक्षणसम्पन्न, समस्त रत्नों से आभूषित दिव्य चन्दन से लिप्ताङ्ग और दिव्य माला से सुशोभित हरि को देखा । मुनि पर दण्ड की तरह गिर कर मुनि ने नेशव को प्रणाम किया और 'आज मेरा जन्म सफल हुआ आज मेरा तप सफल हुआ' यह कहकर उनकी स्तुति प्रारम्भ की ॥१२२-१२८॥

कण्डु बोले—नारायण ! हरे ! श्रीवत्सचिह्न से युक्त ! जगत्पते ! जगद्बीज ! जगद्धाम ! जगत्-साक्षिन् ! आपको नमस्कार है ॥१२९॥ अश्वत्त ! जयशील ! आधिकारण ! प्रधान ! पुरुषोत्तम ! कमल-लोचन ! गोविन्द ! लोकनाथ ! आपको नमस्कार है ॥१३०॥ हिरण्यगर्भ ! लक्ष्मीनाथ ! पद्मनाथ ! सनातन ! भूगर्भ ! ध्रुव ! ईशान ! हृषीकेश ! आपको नमस्कार है ॥१३१॥ अनादि ! अनन्त ! अमर ! अजेय ! विजे-ताओ में थेष्ट ! आपकी जय हो ! अजित ! अखण्ड ! श्रीकृष्ण ! श्रीनिवास ! आपको नमस्कार है ॥१३२॥ मेघ के धर्मों के कर्ता ! दुष्पार ! दुराग्रय ! दुःख तथा आदि के नाशक ! हरे ! जलशायिन् ! आपको नमस्कार

भूतपाव्यक्त भूतेश भूततत्त्वरत्नाकुल । भूताधिवास भूतात्मन्भूतगर्भं नमोऽस्तु ते ॥१३४॥
 यज्ञयज्वन्यज्ञधर यज्ञधाताऽभयप्रद । यज्ञगर्भं हिरण्याङ्गं पृथिनगर्भं नमोऽस्तु ते ॥१३५॥
 क्षेत्रज्ञ क्षेत्रभूक्षेत्री क्षेत्रहा क्षेत्रकृद्देशी । क्षेत्रात्मक्षेत्ररहित क्षेत्रस्रष्ट्रे नमोऽस्तु ते ॥१३६॥
 गुणालय गुणावास गुणश्रय गुणावह । गुणभोक्तृ गुणाराम गुणत्यागिन्नमोऽस्तु ते ॥१३७॥
 त्व विष्णुस्त्वं हरिश्चक्री त्व जिष्णुस्त्व जनादेन । त्वं भूतस्त्वं वषट्कारस्त्वं भव्यस्त्व भवत्प्रभुः ॥१३८॥
 त्व भूतकृत्वमव्यक्तस्त्व भवो भूतभूद्भवान् । त्वं भूतभावनो देवस्त्वामाहुरजमोदवरम् ॥१३९॥
 त्वमनन्त कृतज्ञस्त्व प्रकृतिस्त्व वृषाकपि । त्वं रुद्रस्त्वं दुराघर्षस्त्वममोघस्त्वमोदवरः ॥१४०॥
 त्व विश्वकर्मा जिष्णुस्त्व त्व शंभुस्त्व वृषाकृतिः । त्व शंकरस्त्वमुशनात्वं सत्यं त्वं तपो जनः ॥१४१॥
 त्व विद्वज्जेता त्व शर्म त्व शरण्यस्त्वमक्षरम् । त्वं शंभुस्त्वं स्वयंभूश्च त्वं ज्येष्ठस्त्वं परायणः ॥१४२॥
 त्वमादित्यस्त्वमोकारस्त्व प्राणस्त्वं तमिस्रहा । त्वं पर्जन्यस्त्वं प्रथितस्त्वं वेधास्त्वं सुरेश्वरः ॥१४३॥
 त्वमग्नयज्ञ सामचैव त्वमात्मा समतो भवान् । त्वमग्निस्त्वं च पवनस्त्वमापो वसुधाभवान् ॥१४४॥
 त्व स्रष्टा त्व तथा भोक्ता होता त्व च हविः ऋतुः । त्वं प्रभुस्त्वं विभुः श्रेष्ठस्त्व लोकपतिरच्युतः ॥१४५॥
 त्व सर्वदर्शन श्रीमांस्त्व सर्वदमनोऽरिहा । त्वमहस्त्व तयगरात्रिस्त्वामाहुर्वत्सरं बुधाः ॥१४६॥
 त्व कालस्त्व कला काष्ठा त्वं मूर्तः क्षणालया । त्व बालस्त्वं तथा वृद्धस्त्वं पुमान्स्त्रीनपुंसकः ॥१४७॥
 त्व विद्वयोनिस्त्व चक्षुस्त्व वेदाङ्गं त्वमग्नयः । त्वं वेदवेदस्त्वं धाता विधाता त्व समाहितः ॥१४८॥

है ॥१३३॥ भूतरक्षक । अध्यक्त । भूतेश । पञ्चमहाभूतो ये तत्त्वो से अव्यय । भूताधिवास । भूतात्मन् । भूत-
 गर्भं । आपको नमस्कार है ॥१३४॥ यज्ञधर्ता । यज्ञधर । यज्ञधाता । अमयदाता । यज्ञगर्भं । हिरण्याङ्ग ।
 पृथिनगर्भं । आपको नमस्कार है ॥१३५॥ क्षेत्रज्ञ । क्षेत्रधर्ता । क्षेत्री । क्षेत्रत्यागी । क्षेत्रकर्ता । वशी । क्षेत्रात्मा ।
 क्षेत्ररहित । क्षत्रस्रष्टा । आपको नमस्कार है ॥१३६॥ गुणालय । गुणावास । गुणाश्रय । गुणावह । गुण-
 भोक्ता । गुणाराम । गुणत्यागी । आपको नमस्कार है ॥१३७॥ आप विष्णु है । आप हरि हैं । आप चक्षुधारी
 है । आप जयशील है । आप जनादेन हैं । आप भूत, वषट्कार, भव्य, प्रभु, भूतकर्ता, अव्यक्त, भव, भूतधर्ता तथा
 भूतो के कारण हैं । आपको अजन्मा तथा ईश्वर कहा गया है ॥१३८-१३९॥ आप अनन्त, कृतज्ञ, प्रकृति, वृषा-
 कपि, रुद्र, अत्युग्र, अमोघ, विश्वकर्मा, शंकर, शुक्र, सत्य, तप, जन, विश्वजेता, कल्याण, शरण्य, अक्षर, स्वयम्भू, ज्येष्ठ
 परायण, आदित्य, भोकार प्राण, सूर्य, मेघ, प्रथित, वेधा, सुरेश्वर, ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, आत्मा, सम्मत, अग्नि,
 वायु, जल पृथ्वी, स्रष्टा भोक्ता, होता, हवि, यज्ञ, प्रभु, विभु, श्रेष्ठ, लोकपति, अच्युत, सर्वदर्शन, श्रीमान्, सर्वदमन,
 शत्रुनाशन, दिन तथा रात्रि हैं । पण्डितों ने आपको वर्ष कहा है ॥१४०-१४६॥ आप काल, कला, काष्ठा, मूर्त,
 क्षण, लव बालक वृद्ध, पुष्प, स्त्री, नपुंसक, विश्वयोनि, भेज, स्थानु, सुचिश्चरा, आश्वत, अजित, इन्द्र, उत्तम, विश्व

१ख पृथ्वीग० । २क ऽष्णुस्त्वमस्मिन्नो त्व जनादेन । त्व । ३क ख ऽश्वरेतास्त्व श० । ४ख त्वमा-
 नाशस्त्व । ५ख द्विजा । ६ग ऽदान्तरस्त्वम० ।

त्व जलनिधिरामूल त्व धाता त्व पुनर्वसु । त्व वैद्यस्त्व घृतात्मा च त्वमतीन्द्रियगोचर ॥१४९॥
 त्वमप्रणीर्ग्रामिणीस्त्व त्व सुपर्णस्त्वमादिमान । त्व सप्रहृस्त्व सुमहत्त्व धृतात्मा त्वमच्युत ॥१५०॥
 त्व यमस्त्व च नियमस्त्व प्रागुस्त्व चतुर्भुज । त्वमेवान्तरात्मा त्व परमात्मा त्वमुच्यते ॥१५१॥
 त्व गुरुस्त्व गुरुतमस्त्व वामस्त्व प्रदक्षिण । त्व पिप्पलस्त्वमगमस्त्व व्यक्तस्त्व प्रजापति ॥१५२॥
 हिरण्यनाभस्त्व देवस्त्व शशी त्व प्रजापति । अनिर्देश्यवपुस्त्व वै त्व यमस्त्व सुरारिहा ॥१५३॥
 त्व च सकपणो देवस्त्व कर्ता त्व सनातन । त्व वासुदेवोऽमेयात्मा त्वमेव गुणवर्जित ॥१५४॥
 त्व ज्येष्ठस्त्व वरिष्ठस्त्व त्व सहिष्णुश्च माधव । सहस्रशीर्षा त्व देवस्त्वमव्यक्त सहस्रदूक ॥१५५॥
 सहस्रपादस्त्व देवस्त्व विराट्स्त्व सुरप्रभु । त्वमेव तिष्ठसे भूयो देवदेव दशाङ्गुल ॥१५६॥
 यदभूत तत्त्वमवोक्त पुरुष शक्र उत्तम । यदभाव्य सत्त्वमीशानस्त्वमृतस्त्व तथाऽमृत ॥१५७॥
 त्वत्तो रोहृत्पथ लोको महीयास्त्वमनुत्तम । त्व ज्यायानुरुपस्त्व च त्व दव दशधा स्थित ॥१५८॥
 विश्वभूतश्चतुर्भागे नवभागोऽमृतो दिवि । नवभागोऽन्तरिक्षस्थ पीरुषेय सनातन ॥१५९॥
 भागद्वय च भूतस्य चतुर्भागेऽयमभूदिह । त्वत्तो यज्ञा सभर्वाति जगतो वृष्टिकारणम् ॥१६०॥
 त्वत्तो विराट्समुत्पन्नो जगतो हृदि य पुमान् । सोऽतिरिच्यत भूतेभ्यस्तजसा यज्ञसा श्रियः ॥१६१॥
 त्यक्त सुराणामाहार पृथदाज्यमजायत । ग्राम्यारण्याश्चौषधयस्त्वत्त पशुमृगादव्य ॥१६२॥
 ध्येयध्यानपरस्त्व च कृतवानसि औपधी । त्व देवदेव सप्तास्य कालाख्या दीप्तिविग्रह ॥१६३॥

को मुख देने वाले वैवाग अभ्यय वेदो के वेद धाता विपाता समाहित समुद्र पुनर्वसु नक्षत्र वय घृतात्मा इन्द्रियो से परे अग्रनेता ग्रामनेता सुपर्ण आदिमान् सप्रह अतिमहान यम नियम पागु चतुर्भुज अन्न अन्तरात्मा परमात्मा गुरु गुरुतम वाम प्रदक्षिण पिप्पल अगम व्यक्त प्रजापति हिरण्यनाभ देव चद्रमा अनिर्दिष्ट शरीर वाले राक्षस नाशन बलराम कर्ता सनातन वामदेव अमितामा गुणवर्जित ज्येष्ठ वरिष्ठ सहिष्णु माधव सहस्र गिर वाले सहस्र नेत्र वाले सहस्र पर वाले विराट तथा देवो के प्रभु हैं । देवदेव । दशाङ्गुल परिमित देव भी आप हा है ॥१५४ १५७॥ भूत आप हा हैं । पुरुषोत्तम एक आप ही को कहा गया है । भविष्य ईशान तथा अमृत भा आप ही है । आप से इस लोक की उत्पत्ति होती है । आप अत्यन्त महान तथा सबसे उत्तम हैं । हे देव । आप ज्येष्ठ पुरुष तथा दस प्रकार से स्मित हैं ॥१५८ १५९॥ आप विश्व में चार भागो से तथा में नौ भागो से आकाश में सा नौ भागो से और पृथ्वी पर दो एवम चार भागो से भी अवस्थित है । आप सनातन पुरुष हैं । ससार में वृष्टि के कारण यज्ञ आप से उत्पन्न होते हैं । आप से ही विराट उत्पन्न हुए हैं, जो ससार के हृदय में पुरुष रूप से विद्यमान हैं । वे तेज यज्ञ तथा सोमा में भूतो से बढकर हैं । आपसे देवताओ का आहार—वर्धिसकित घत—उत्पन्न हुआ । ग्रामाण एवम् आपविधौ तथा पशु मृग आदि आपसे उत्पन्न हुए । आप ध्येय तथा ध्यानपरायण हैं । आपविद्या का निर्माण आपने

जङ्गमाजङ्गम सर्वं जगदेतच्चराचरम् । त्वत्त सर्वमिदं जातं त्वयि सर्वं प्रतिष्ठितम् ॥१६४॥
 अनिरुद्धस्त्व माधवस्त्व प्रद्युम्न सुरारिहा । देव सर्वसुरध्येष्ठ सर्वलोकपरायण ॥१६५॥
 ग्राहि मामरविन्दाक्ष नारायण नमोऽस्तु ते । नमस्ते भगवन्विष्णो नमस्ते पुरुषोत्तम ॥१६६॥
 नमस्ते सर्वलोवेश नमस्ते कमलालय । गुणालय नमस्तेऽस्तु नमस्तेऽस्तु गुणाकर ॥१६७॥
 वासुदेव नमस्तेऽस्तु नमस्तेऽस्तु सुरोत्तम । जनार्दन नमस्तेऽस्तु नमस्तेऽस्तु सनातन ॥१६८॥
 नमस्ते योगिना गम्य योगावास नमोऽस्तु ते । गोपते शोपते विष्णो नमस्तेऽस्तु मरुत्पते ॥१६९॥
 जगत्पते जगत्सूते नमस्ते ज्ञानिना पते । दिवस्पते नमस्तेऽस्तु नमस्तेऽस्तु महोपते ॥१७०॥
 नमस्ते मधुहन्त्रे च नमस्ते पुष्करेक्षणे । कंटभग्न नमस्तेऽस्तु सुब्रह्मण्य नमोऽस्तु ते ॥१७१॥
 नमोऽस्तु ते महामोने श्रुतिपृष्ठधराकृत । समुद्रसलिलक्षोभ पद्मजाह्लावकारिणे ॥१७२॥
 अश्वशीर्षं महाघोणं महापुरुषविग्रह । मधुकंटभहन्त्रे च नमस्ते तुरगानन ॥१७३॥
 महाकमठभोगाय पृथिव्युद्धरणाय च । विधुताद्विस्वरूपाय महाकूर्माय ते नमः ॥१७४॥
 नमो महाबराहाय पृथिव्युद्धारकारिणे । नमश्चाऽऽदिवराहाय विस्वरूपाय वैषसे ॥१७५॥
 नमोऽनन्ताय सूक्ष्माय मुख्याय च बराय च । परमाणुस्वरूपाय योगिगम्याय ते नमः ॥१७६॥

ही किया । देवों के देव । आप देवीप्यमान शरीरधारी काल पुरुष है । स्थावर जगम या चराचर रूप यह सम्पूर्ण जगत आपसे उत्पन्न हुआ है तथा आप में प्रतिष्ठित है । आप अनिरुद्ध माधव प्रद्युम्न तथा राक्षसनाशन हैं ॥१६०-१६५॥ देव । सबल देवों में श्रेष्ठ । समस्त-लोक परायण । मेरी रक्षा करें । कमलाक्ष । नारायण । आपको नमस्कार है । मगवन् । विष्णो । पुरुषोत्तम । आपको नमस्कार है । समस्त लोकों के ईश्वर । आपको नमस्कार है । कमलालय । आपको नमस्कार है । गुणालय । आपको नमस्कार है । गुणाकर । आपको नमस्कार है ॥१६६-१६८॥ वासुदेव । आपको नमस्कार है । सुरोत्तम । आपको नमस्कार है । जनार्दन । आपको नमस्कार है । सनातन । आपको नमस्कार है ॥१६९॥ योगियों के प्राप्य । आपको नमस्कार है । योगावास । आपको नमस्कार है । शिद्रिमपते । लक्ष्मीपते । विष्णो । आपको नमस्कार है । मरुत्पते । जगत्पते । जगदुत्पादक । आपको नमस्कार है । ज्ञानियों के स्वामी । स्वर्ग के स्वामी । आपको नमस्कार है । पृथ्वीपते । आपको नमस्कार है ॥१७०-१७१॥ मधुनाशन । आपको नमस्कार है । कमललोचन । आपको नमस्कार है । कंटभ के मारने वाले । आपको नमस्कार है । सुब्रह्मण्य । आपको नमस्कार है ॥१७२॥ महामत्स्य । आपको नमस्कार है । वेदों को पीठ पर धारण करने वाले । आपको नमस्कार है । समुद्र के जल को सक्षुब्ध करने वाले । ब्रह्मा को प्रसन्न करने वाले । आपको नमस्कार है । अश्व के समान शिर वाले । महानासिका वाले । महापुरुष का शरीर धारण करने वाले । मधु-कंटभ-नाशन । आपको नमस्कार है । अश्व के समान मुख वाले । महाकण्ठ्य का रूप धारण करने वाले । पृथिवी के उद्धारक । पवतस्वरूप । महाकूर्मस्वरूप । आपको नमस्कार है । महाबराहस्वरूप । आपको नमस्कार है । आदिवराहस्वरूप । विस्वरूप । ब्रह्मन् । आपको नमस्कार है । अनन्त । सूक्ष्म । मुख्य । श्रेष्ठ ।

तस्मै नमः कारणकारणाय, योगीन्द्रवृत्तनिलयाय सुदुर्विदाय ।

क्षीराणवाधितमहाहिसुतल्पगाय, सुभ्यं नमः कनकरत्नसुकुण्डलाय

॥१७७॥

व्यास उवाच

इत्थं स्तुतस्तदा तेन प्रीतः प्रोवाच माधवः । क्षिप्रं ब्रूहि मुनिश्रेष्ठ मतो यदभिवाञ्छसि ॥१७८॥

कण्डुर्वाच

संसारोऽस्मिञ्जगन्नाय दुस्तरे लोमहर्षणे । अनित्ये दुःखयहुले कदलीदलतर्निभे ॥१७९॥

निराश्रये निरालम्बे जलबुद्बुदचञ्चले । सर्वोपद्रवसंपुक्ते दुस्तरे चातिभरवे ॥१८०॥

ग्रमामि सुचिरं कालं मायया मोहितस्तव । न चान्तमभिगच्छामि विषयासक्तमानसः ॥१८१॥

त्वामहं चाद्य देवेश संसारभयपीडितः । यतोऽस्मि शरणं कृष्ण मामुद्धर भवाणवात् ॥१८२॥

गन्तुमिच्छामि परमं पदं यत्ते सनातनम् । प्रसादात्तव देवेश पुनरावृत्तिदुर्लभम् ॥१८३॥

श्रीभगवानुवाच

भवतोऽसि मे मुनिश्रेष्ठ मापाराधय नित्यशः । भद्रप्रसादाद्भुवं मोक्षं प्राप्स्यसि त्वं समीहितम् ॥१८४॥

मद्भक्ताः क्षत्रिया वैश्याः स्त्रियः शूद्रान्त्यजातिजाः । प्राप्नुवन्ति परां सिद्धिं किं पुनस्त्वं द्विजोत्तम ॥१८५॥

इयपाकोऽपि च मद्भक्तः सभ्यवभ्रष्टासमन्वितः । प्राप्नोत्यभिमतं सिद्धिमन्येषां तत्र का कथा ॥१८६॥

परमाणुस्वरूप । योगिन्या । आपको नमस्कार है ॥१७३-१७७॥ कारणों के कारण । योगीन्द्रों की वृत्ति के आधार । अत्यन्त दुर्गम । शीरसमुदास्थित महासंपत्ती काय्या पर सोने वाले । सुवर्ण एवम् रत्न के कुण्डल पहिने वाले । आपको नमस्कार है ॥१७८॥

व्यास बोले—इस प्रकार स्तुति करने पर माधव प्रसन्न होकर बहने लगे—‘मुनिश्रेष्ठ । तुम जो चाहते हो, वह शीघ्र मुझसे मार्गो ॥१७९॥

कण्डु बोले—जगन्नाथ ! दुष्टार, रोमाञ्चकारी, अनित्य, विविध दुखों से युक्त, बेलों के पत्तों के समान स्थित, निराश्रय, निरालम्ब, पानी के बुलबुले के समान चञ्चल, अस्थिर उपद्रवों से युक्त तथा अति भयंकर इस संसार में आपकी माया से मोहित होकर मैं बिराल से चक्कर खाट रहा हूँ । मन के विषय में आसक्त होने के कारण मैं इसका अन्त नहीं पा रहा हूँ । देवेश ! संसार के मय से पीडित होकर आज मैं आपकी शरण में प्राप्त हूँ । कृष्ण ! संसाररूपी समुद्र से मेरा उद्धार कीजिये । देवों के स्वामी ! आपकी कृपा से मैं अपने सनातन परम पद को प्राप्त करना चाहता हूँ, वहाँ से फिर लौटना न पड़े ॥१८०-१८४॥

श्रीभगवान् बोले—मुनिवर ! तुम मेरे भक्त हो । निय मेरी आराधना करो : मेरी कृपा से तुम निश्चय अमिलपित मोक्ष को प्राप्त करोगे । मेरे भक्त क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र तथा चाण्डाल तक भी परा सिद्धि को प्राप्त करते

व्यास उवाच

एवमुक्त्वा तु त विप्रा स देवो भवतवत्सल । दुर्विज्ञयगतिर्विष्णुस्तत्रैवान्तरधीयत ॥१८७॥
 गत तस्मिन्निश्रेष्ठा कण्डु सहृष्टमानस । सर्वान्कामापरित्यज्य स्वस्यचित्तोऽभवत्पुन ॥१८८॥
 सर्वेन्द्रियाणि सयम्य निममो निरहृति । एकाग्रमानस सैवमप्यध्यात्वा त पुरुषोत्तमम् ॥१८९॥
 निर्लेप निर्गुण शान्त सत्तामान्स्ववस्थितम् । अवाप परम मोक्षं सुराणामपि दुर्लभम् ॥१९०॥
 य पठच्छृणुयाद्वापि कथा कण्डोर्महात्मन । विमुक्त सवपापस्य स्वर्गलोक स गच्छति ॥१९१॥
 एष मया मुनिश्रेष्ठा कमभूमिरुदाहृत । मोक्षक्षत्र च परम देव च पुरुषोत्तमम् ॥१९२॥
 य पश्यन्ति विभु स्तुवन्ति वरदध्यायन्ति मुक्तिप्रद
 भक्त्या ध्योपुरुषोत्तमाख्यमजर सत्तारदुःखापहम् ॥१९३॥
 ते भुक्त्वा मनुजैर्द्रव्यभोगममला रक्ष्यं च दिव्यसुख
 पश्चाद्यान्ति समस्तदोषरहिता स्थान हररव्ययम् ॥१९४॥

इति श्रीमहापुराण आदिब्राह्म स्वयम्भुवृषिसवादे कण्डोर्षाह्वाननिरूपण नामाष्ट
 सप्तत्यधिकशततमोऽध्याय ॥१७८॥

है। तुम तो फिर ब्राह्मण हो। पूरा थका हुआ मनुष्य बाण्डाल की जमिन्दारी गिरि को प्राप्त करता है। भोरो की तो क्या ही क्या? ॥१८५-१८७॥

व्यास बोले—विप्रवृन्द । भक्तसत्त्वलाल तथा दुर्विज्ञय विष्णु इतना बहुरंग बह्नी अन्तर्धान हो गए। उनके चल जाने पर अत्यन्त प्रेमप्रति चित्त वाले कण्डु गमस्त कामो को छोड़कर पुन स्वस्यचित्त हो गए। निर्लेप इन्द्रियो का सम्यग् वरनिमम निरहृत्वार तथा एकाग्रचित्त होकर निर्लेप निर्गुण शान्त तथा सत्तामान स्ववस्थित पुरुषोत्तम व साम्य ध्यान करने उठ्ठि देवदुःख मोक्ष को प्राप्त किया। महात्म कण्डु की कथा को जो पढ़ना या सुनना वह समस्त पापों व मुक्त होकर स्वर्ग जायगा। मुनिवर! इस प्रकार मैंने कमभूमि मोक्षक्षत्र तथा पुरुषोत्तम देव का वर्णन कर दिया। जो सत्त्वगुणवत् करणवत् मोक्षदायक अजर तथा मगार-दुःखनाश श्री पुरुषोत्तम के प्रतिपूजा ध्यान शान्त तथा स्तुति करते हैं व मनुजैर्द्रव्य तथा समस्त दारों से रहित होकर स्वर्ग में दिव्य सुख का उपभोग करके पश्चात् हरि व अविनाश स्थान का प्राप्त करते हैं ॥१८८-१९४॥

श्रीमहापुराण में ब्रह्मा और शिवों के महात्म्यवर्णन व कण्डु का उपभोग-निरूपण नामक
 एक ही अष्टोत्तरवीं अध्याय समाप्त ॥१७८॥

अथोनाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः

वादेरायणं प्रति श्रीकृष्णावतारविषयका मुनीनां प्रश्नः

लोमहर्षण उवाच

व्यासस्य वचनं श्रुत्वा मुनयः सत्यतेन्द्रियाः प्रीता बभूवुः सहृष्टा विस्मिताश्च पुनः पुनः ॥१॥

मुनय ऊचुः

अहो भारतवर्षस्य स्वयां सकीर्तिता गुणाः । तद्वच्छ्रीपुरुषाक्षयस्य क्षेत्रस्य पुरुषोत्तम ॥२॥

विस्मयो हि न चेकस्य श्रुत्वा माहात्म्यगुतक्षमः । पुरुषाक्षयस्य क्षेत्रस्य प्रीतिश्च वदता धरः ॥३॥

चिरात्प्रभृति चास्माकं सशयो हृदि यतते । त्वद्वत् सशयस्यास्य छेत्ता नाग्योऽस्ति भूतले ॥४॥

उत्पत्तिं बलदेवस्य कृष्णस्य च महोत्तले । भद्रायाश्चैव कात्स्थेन पृच्छामस्त्वां महामुने ॥५॥

किमयं तो समुत्पन्नो कृष्णसकर्मणादुभौ । यत्तु देवसुतो वीरौ स्थितौ मन्दगूहे मुने ॥६॥

नि सारे मृत्युलोकोऽस्मिन् दुःखप्रायेऽतिचञ्चले । जलबुद्बुदसकाशे भँरवे लोमहर्षणे ॥७॥

विण्मूत्रपिच्छल कण्ठ सकण्ठ दुःखदायकम् । कथं घोरतरं तेषां गर्भवासमरोक्षतः ॥८॥

अध्याय १७६

श्रीकृष्णावतार के सबध मे व्यास जी से मुनियों का प्रश्न

सूत बोले—व्यास ने वचन को सुनकर जितेन्द्रिय मुनिगण परम हर्षित तथा आश्चर्य चकित हुए ॥१॥

मुनियो ने कहा—पुरषपुणव ! अहा ! भारतवर्ष का और उसी तरह श्रीपुरुष नामक क्षेत्र का गुण बगन आपने कर दिया ॥२॥ पर वक्तव्या मे थप्ट एक पुरुषसाक्ष के ही उत्तम माहात्म्य को सुनकर हमे सतोष तथा विस्मय मही हो रहा है ॥३॥ क्योंकि चिरकाल से हमारे हृदय मे अनेक सशय हो रहे हैं जिनका निराकरण बिना आपके पृथ्वी पर कोई नहीं कर सकता है ॥४॥ महामुने ! बलदेव कृष्ण तथा सुमद्रा की उत्पत्ति के विषय मे हम विस्तार पूर्वक सुनना चाहते हैं ॥५॥ किसलिये कृष्ण तथा बलराम उत्पन्न हुए और क्यों दोनों वीर वसुदेव के पुत्र होकर मन्द के घर मे पाले-प्राप्ते गये ? ॥६॥ साररहित दुःखयुक्त अत्यन्त चञ्चल पाना के बुलबुले के समान अस्थिर भयंकर तथा रोमाञ्चकारी इस मृत्युलोक मे गर्भवास विषया तथा मूत्र से युक्त सकण्ठमय दुःखदायक और महा भयंकर माना गया है ! तब फिर यह कृष्ण वीर कैसे अच्छा लगा ? वक्तव्या मे थप्ट ! उन्हुनि पृथ्वी पर जन्म लेकर कौन से कम किये ? उन बर्गों की विस्तरपूर्वक हम बतल-इये ॥६८॥ उनके अदभुत तथा लोकोत्तर सम्पूण

१ ग सजिते ० । २ ग विस्मये । ३ क ० रो सा च न ० । ४ ० रो स च तत्र गु ० । ५ स ० बुदु
पापेऽस्ति ० ।

यानि कर्माणि चक्रुस्ते समुत्पन्ना महीतले । विस्तरेण मुने तानि ब्रूहि नो' वदतां वर ॥१॥
 समग्रं चरितं तेषामद्भुतं चातिमानुषम् । कथं स भगवान्देवः सुरेशः सुरसत्तमः ॥१०॥
 वसुदेवकुले धीमान्वासुदेवत्वमागत । अमरंश्चाऽऽवृतं पुण्यं पुण्यकृद्भिरलंकृतम् ॥११॥
 देवलोकं किमुत्सृज्य मर्त्यलोक इहाऽऽगतः । देवमानुषयोर्नेता द्योर्भुवः प्रभवोऽव्ययः ॥१२॥
 किमयं दिव्यमात्मानं मानुषेषु न्ययोजयत् । यश्चक्रं वर्तयत्येको मानुषाणामनामयम् ॥१३॥
 स मानुष्ये कथं बुद्धिं चक्रे चरुगदाधरः । गोपादन यः कुस्ते जगतः सार्वभौतिकम् ॥१४॥
 स कथं गां गतो विष्णुर्गोपत्वमकरोत्प्रभुः । महाभूतानि भूतात्मा यो दधार चकार च ॥१५॥
 श्रीगर्भः स कथं गर्भे स्त्रिया भूचरया धृतः । येन लोकान्त्रमजित्वा त्रिभिर्वै त्रिदशोत्सया ॥१६॥
 स्थापिता जगतो मार्गास्त्रिवर्गश्चाभवत्त्रयः । योऽन्तकाले जगत्पीत्वा कृत्वा तोयमयं वपुः ॥१७॥
 लोकमेकार्णवं चक्रे दृश्यादृश्येन' चाऽऽत्मना । यः पुराणः पुराणात्मा वाराहं रूपमास्थितः ॥१८॥
 विषाणाग्रेण वसुधामुञ्जहारारिसूदनः । यः पुरा पुरुहूतार्थे त्रैलोक्यमिदमव्ययम् ॥१९॥
 ददौ जित्वा वसुमतीं सुराणां सुरसत्तमः । येन संहवपुः कृत्वा द्विधा कृत्वा च तत्पुनः ॥२०॥
 पूर्वदैत्यो महावीर्यो हिरण्यकशिपुर्हन्तः । यः पुरा ह्यनलो भूत्वा और्वः संवर्तको त्रिभुः ॥२१॥
 पातालस्योर्गणवरसं पपी तोयमयं हरिः । सहस्रचरणं स्रष्टु सहस्रांशुसहस्रवम् ॥२२॥

चरित को सुनाइये । देवताओं में धेच्छ, धीमान् तथा देवों के स्वामी भगवान् ने वसुदेव के कुल में वसुदेवत्व को कैसे प्राप्त किया अर्थात् जन्म लिया ? देवताओं से आवृत, पवित्र तथा घर्मात्माओं से अलंकृत देवलोक को छोड़कर क्यों वे मृत्युलोक में आये ? देवता तथा मनुष्यों के नायक, स्वर्ग, मर्त्य के आधिकारण तथा अविनाशी होकर किसलिये उन्होंने दिव्य आरमा को मनुष्य-शरीर में स्थापित किया ? जो चक्र-गदा-धारी भगवान् अकेले मनुष्यमान के चक्र को चलाते हैं, उन्हें मनुष्य-योगि में आने की इच्छा कैसे हुई ? ओ प्रभु विष्णु सम्पूर्ण जगत् का पालन करते हैं, वे पृथ्वी पर आकर गोपाल कैसे बने ? ॥१९-१४॥ आ अखिलात्मा पञ्चमहाभूतों का धारण करते हैं, उनकी भूमि पर चलने वाली एवं सामान्य स्त्री ने कैसे गर्भ में धारण किया ? देवताओं की इच्छा से उन्होंने तीन दगा में तीनों लोको को जीत कर ससार के मार्गों को सुव्यवस्थित कर दिया । तब त्रिवर्ग अर्थात् धर्म, अर्थ और काम भी व्यवस्थित हुए । वे अन्तकाल में जगत् को पीकर जलमय शरीर धारण कर दुग्ध तथा अदुग्ध आत्मा से लोह को एवार्णव अर्थात् जलप्लावित कर देते हैं ॥१५-१७॥ पुराण, पुराणात्मा तथा वायवह्वं धारण कर उन्होंने दण्डा के अग्रभाग से पृथ्वी का उद्धार किया । पूर्वकाल में इन्द्र के लिये तीनों लोक का जीतकर देवधेच्छ विष्णु ने देवताओं को पृथ्वी दे दी । उन्होंने सिंह का शरीर धारण कर पुनः उसने दो भाग करके महावर्मा हिरण्यकशिपु को निहत् किया ॥१८-२०॥ प्राचीन समय में उन्होंने ओर्व तथा सवर्तक नामक अग्नि होकर पाताल में रहकर समुद्र के जलमय रस को पी लिया । उनका सहस्र चरण तथा सहस्र किरण हैं । वे ब्रह्मा हैं तथा सहस्रा के दाता हैं ॥२१-२२॥ प्रतिपुत्र के ये सहस्र शिर धारण करते हैं । उनकी नाभि से कमल की उत्पत्ति हुई, जो ब्रह्मा

सहस्रशिरसं देवं यमाहर्वं युगे युगे। नाम्नां पयं समुद्भूतं यस्य पंतामहं गृहम् ॥२३॥
एकार्णवे नागलोके सद्भिरण्मयपद्भुजम्। येन ते निहता देव्याः संप्राने तारकामये ॥२४॥
येन देवमयं कृत्वा सर्वापिघरं वपुः। गृहासंस्थेन चोत्सिक्तः कालनेर्मिनिपातितः ॥२५॥
उत्तरान्ते समुद्रस्य क्षीरोदस्यामृतोदधौ। यः शीते श्लाश्वतं योगमाख्याय तिमिरं महत् ॥२६॥

सुरारणो^१ गर्भमस्त दिव्यं तपः^२ प्रकर्षादितिः 'पुराणम्

शक्रं च यो दैत्यगणावरुद्धं,^३ गर्भाविधानेन कृतं चकार ॥२७॥

पदानि यो योगमयानि कृत्वा, चकार दैत्यान्सलिलेशयस्थान् ।

कृत्वा स देवास्त्रिदशेश्वरास्तु, चक्रे सुरेशं पुरुहूतमेव ॥२८॥

गार्हपत्येन विधिना अन्वाहर्षेण कर्मणा। अग्निमावहनीयं च वेद दीक्षा समिद्धुक्च ॥२९॥

प्रोक्षणार्थं स्तुवं चैव आवभृष्यं तयैव च। अवावपाणिस्तु यश्चक्रे हव्यभागभुजस्तथा ॥३०॥

हव्यादीश्च सुराश्चक्रे कव्यादाश्च पितृभ्यः। भोगार्थं यज्ञविधिनाऽप्योजयद्यज्ञकर्मणि ॥३१॥

पात्राणि दक्षिणां दीक्षां चरुश्चोलूखलानि च। यूपं समित्स्त्व सोम पवित्रान्परिधीनपि ॥३२॥

यज्ञियानि च ब्रह्म्याणि चमसांश्च तथाऽपरान्। सदस्याग्न्यजमानांश्च मेधादींश्च क्रतूतमान् ॥३३॥

विद्यमाज पुत्रा यस्तु पारमेष्ठ्येन कर्मणा। युगानुरूपं यः कृत्वा लोकाननुपराकमात् ॥३४॥

क्षण निमेषाः काष्ठाश्च कलास्त्रैकाल्यमेव च। मूर्हर्तास्त्रिययो मासा दिनं सवत्सरस्तथा ॥३५॥

ऋतवः कालयोगाश्च प्रमाण^४ त्रिविधं त्रिषु। आयुः क्षेत्राण्युपचयो लक्षण रूपसौष्ठवम् ॥३६॥

का घर कहा गया है। वह कमल एकार्णव रूप नागलोक में सुन्दर सुवर्णमय बहा जाता है। उन्होंने तारकामय नामक संप्रान में दैत्यो को निहल किया। उन्होंने देवमय तथा समस्त आपूषो से युक्त शरीर धारण कर गुफा में स्थित होकर कालनेमि का सहार किया। वे क्षीरसमुद्ररूपी अमृतसमुद्र के उत्तरी भाग में महान् अश्वार कर्षी श्लाश्वत योग में स्थित होकर प्रायन करते हैं ॥२३-२६॥ अब तप की प्रवर्षता से देवमाता अदिति ने इन्द्र को गर्भ में धारण किया तब उन्होंने ही दैत्यगणों से गर्भ को बचाया ॥२७॥ उन्होंने यौगिक चरणों की रचना कर दैत्यो को जल में मुग्न दिया और देवताओंकी स्वर्ण लौटाकर इन्द्र को ही स्वर्ण का अधिनायक बनाया ॥२८॥ विना वाणी और हाथ के ही, उन्होंने गार्हपत्य (गृहस्थोचित) विधान से अन्वाहर्षे कर्म के द्वारा अग्नि, आहवनीय, वेद, दीक्षा, समिधा, ध्रुव, प्रोक्षणीपात्र, स्तुव, आवभृष्य तथा हव्य-भाग भोक्ताओं का निर्माण किया। यज्ञकर्म में यज्ञविधि से माग के लिये देवताओं को हव्यभोक्ता और पितरों को काव्यभोक्ता बनाया। पात्रों, दक्षिणा, दीक्षा, चरु, ओलली, यूप, समिधा, स्तुव सोम पवित्री, परिधि, यज्ञिय द्रव्य, चमस, सदस्य, यजमान तथा यज्ञो में उत्तम मेषा आदि का निर्माण करके उन्होंने ब्रह्मा आदि के कर्मों का भी विमाण किया। युग के अनुरूप ही उन्होंने लोकों को बनाया ॥२९-३४॥ उन्होंने अनन्त कर्मों द्वारा क्षण, निमेष, काष्ठा, कला, तीनों काल, मूर्हर्त, तिथि, मास, दिन, वर्ष, ऋतु, कालयोग तथा तीनों प्रकार के प्रमाण बनाये। आयु, क्षेत्र, वृद्धि, लक्षण, रूप-सौन्दर्य, तीनों लोक, तीनों देव, तीनों विद्या, तीनों अग्नि, तीनों बाल,

त्रयो लोकास्त्रयो देवास्त्रैविद्य पावकास्त्रयः । त्रैकाल्य त्रीणि कर्माणि त्रयो वणस्त्रियोगुणा ॥३७॥
 सृष्टा लोका पुरा सर्वे येनानन्तेन कर्मणा । सर्वभूतगत स्रष्टा सर्वभूतगुणात्मकः ॥३८॥
 नृणामिन्द्रियपूर्वण योगेन रमते च यः । गतागताभ्या योगेन य एव विधिरीश्वरः ॥३९॥
 या गतिर्धर्मपुत्रतानामगति पापकर्मणाम् । चातुर्वर्ण्यस्य प्रभवश्चातुर्वर्ण्यस्य रक्षिता ॥४०॥
 चातुर्विद्यस्य यो वेत्ता चातुराश्रम्यसथयः । दिगन्तरं नमो भूमिर्वायुर्वापि विभावसु ॥४१॥
 चन्द्रसूर्यमय ज्योतिर्युगलं क्षणदाचरः । य पर श्रूयते ज्योतिर्यं पर श्रूयते तपः ॥४२॥
 य पर प्राहुरपर य पर परमात्मवान् । आदित्यानां तु यो देवो यश्च दैत्यातको विभुः ॥४३॥
 युगान्तेष्वन्तको यश्च यश्च लोकान्तकान्तकः । सेतुर्यो लोकसेतूनां मेध्यो यो मेध्यकर्मणाम् ॥४४॥
 वेद्यो यो वदद्विदुषा प्रभुयः प्रभवात्मनाम् । सोमभूतश्च सोम्याशमग्निभूतोऽग्निवर्चसाम् ॥४५॥
 यः शक्राणामीशभूतस्तपोभूतस्तपस्विनाम् । विनयो मयवृत्तीनां तेजस्तजस्विनामपि ॥४६॥
 विप्रहो विप्रहार्हाणां गतिर्गतिमतामपि । आकाशप्रभवो वायुर्वायो प्राणादधुताशनः ॥४७॥
 विवो हुताशनः प्राणः प्राणोऽग्निर्मधुसूदनः । रसाच्छोणितसभूतिः शोणितात्मासमुद्भूते ॥४८॥
 मासात्तु मदसो जन्म मेदसोऽस्य निरुद्ध्यते । अस्थनो मज्जा समभवन्मज्जातः शुक्रतम्भवः ॥४९॥
 शुक्रादगमं समभवदसमूलेन कमणा । तत्रापि प्रयमो भागः स सोम्यो राशिरुद्ध्यते ॥५०॥
 गर्भोऽगमसभवो ज्ञयो द्वितीयो राशिरुद्ध्यते । शुक्र सोमात्मकं विद्यादार्तं पावकात्मकम् ॥५१॥

तनां कम ताना वण तथा तनां गुण का निर्माण विद्या । वे समस्त प्राणियो म व्याप्त स्रष्टा तथा अखिल भूतो वे
 गुण रूप हैं ॥३५ ३८॥ वे मनुष्या के इन्द्रियपूर्वक योग से रमण करते हैं । वे विद्याता तथा ईश्वर हैं । वे धर्मात्माओं
 के आश्रय तथा पापियों के निराश्रय हैं । वे चारों वर्गों के आश्रितारण तथा चारों वर्गों के रक्षक हैं ॥३९ ४०॥
 वे चरा विद्याशास्त्र के ज्ञाता तथा चाराश्रमा के आश्रय हैं । वे दिशा आकाश भूमि वायु अग्नि सूय चन्द्र प्रमाण
 युगा के स्वामी तथा नमस्त्र हैं । वे महाप्राज्ञ तथा महातप पर अपर तथा परमेश्वर कहलाते हैं ॥४१ ४२॥ वे अदि
 त्या के देव दया के प्रभु विष्णु युगान्ता म भी वारुण तथा लोको के बाल के प्रबाल हैं ॥४३॥ वे लोक मर्त्य
 शक्रा के मर्त्यात्मक पवित्र वर्मों के पवित्र वेत्ताओं के प्रभु प्रभु तथा भूतात्मा हैं । सोम्या के सोमभूत अग्नि
 तजा के अग्निभूत तथा इन्द्र के ईशभूत हैं । वे तपस्विना के तप विनयो के विनय तजस्विना के तज गरीरधारियों
 के गरीर तथा मयमना के मयमन हैं ॥४४ ४५॥ आकाश से वायु और प्राणरूपी वायु से अग्नि की उत्पत्ति हुई ।
 आकाश अग्नि तथा प्राण भी विष्णु ही हैं । रस से शोणित शणित मज्जा मय मज्जा मय स हड्डी हड्डी से
 मज्जा मज्जा से वायु और वायु से रस निर्माण विद्या द्वारा गर्भ जनना है ॥४६ ४७॥ जगम पहिले प्राण जल का है
 जिस सोम्य राशि कहते हैं । गम की गर्मी से द्वितीय राशि की उत्पत्ति हुना है । वे चन्द्रमन्त्रियों तथा रज अग्नि
 मन्त्रियों के मन्त्रात्मक हैं । माव रस के अनुगार हुना है और बाज म अग्नि तथा चन्द्रमा हैं । नपवग म वायु होता है

भावा रसानुगाश्चैवा योजे च शशिपादवर्गौ । कफवर्गे भवेच्छुक्र पित्तवर्गे च शोणितम् ॥५२॥
 कफस्य हृदय स्थान नान्या पित्त प्रतिष्ठितम् । देहस्य मध्ये हृदय स्थान तन्मनस स्मृतम् ॥५३॥
 नाभिकोष्ठान्तर यत्तु तत्र देवो हृताशन । मन प्रजापतिर्ज्ञेय कफ सोमो विभाव्यते ॥५४॥
 पित्तमग्नि स्मृत त्वेष्टमग्निरोत्तमक जयत । एव प्रवर्तिते गर्भे वर्धितश्चुदसनिभे ॥५५॥
 वायु प्रवेश सचक्रे सगत परमात्मन । स पञ्चधा शरीरस्यो भिद्यते वर्तते पुन ॥५६॥
 प्रणायामो समानदच उदानो व्यान एव च । प्राणोऽस्य परमात्मान वर्धयपरिवर्तते ॥५७॥
 अपान पश्चिम वायुमुदानोऽर्ध शरीरिण । ध्यानस्तु व्याप्यते येन समान सनिवर्तते ॥५८॥
 भूतावाप्तिस्ततस्तस्य जायेतेन्द्रियपोचरा । पृथिवी वायुराकाशमापो ज्योतिश्च पञ्चमम् ॥५९॥
 तस्येन्द्रियनिविष्टानि स्व स्व भाग प्रचक्रिरे । पार्थिव देहमाह्वस्तु प्राणात्मान च भारतम् ॥६०॥
 छिद्राण्यकाशयोनीनि जगत्स्राव प्रवर्तते । ज्योतिश्चक्षुषि तेजश्च आत्मा तेषा मन स्मृतम् ॥६१॥
 ग्रामाश्च विषयाश्चैव यस्य धीर्यतिप्रवर्तिता । इत्येतांषुष्य सर्वांसृजेलोकान्सनाता ॥६२॥
 नैघनेऽस्मिन्त्य लोके मर्त्य विष्णुरागत । एष न सदायो ब्रह्मत्रेप नो विस्मयो गृहान् ॥६३॥
 कथ गतिगतिमतामापनो मानुर्यो तनुम् । आश्चर्य परम विष्णुर्देवैर्देव्यश्च कथ्यते ॥६४॥
 विष्णोरुत्पत्तिमाश्चर्यं कथयस्व महामुने । प्रख्यातबलवीर्यस्य विष्णोरमिततेजस ॥६५॥

और पित्तवर्ग म शाश्वत ॥५०-५२॥ कफ का स्थान हृदय है और पित्त का नाभि । देह का मध्य म हृदय रहता है और उमम मन । नाभिकोष्ठ के बीच अग्नि का स्थान है । मन प्रजापति कहलाता है और कफ चन्द्रमा । पित्त अग्नि कहलाता है और अग्नि तथा चन्द्रमा रूप ही जगत् माना जाता है । इस प्रकार नाभिकोष्ठ का आकार म गम उत्पन्न होने पर परमात्मा से निकलकर वायु प्रवाह करता है । शरीर म वायु पाँच प्रकार से विभक्त हुआ जाता है । जैसे—प्राण आगत समान उदान और व्यान । प्राण परमात्मा को बनाता है अपान शरीर का पिछले भाग को और उदान आध शरीर का । व्यान सम्पूर्ण शरीर में व्याप्त रहता है और समान लीन जाता है ॥५०-५८॥ तत्र भूता की प्राप्ति उक्त की 'न्द्रियपोचर होने है । यहाँ पृथिवी वायु आकाश 'ल तथा अग्नि अपन-अरने भागा का रचना करते हैं । शरीर पृथिवी का माग है और प्राणात्मा वायु का । शरीर के समस्त छिद्र आकाशमूलक हैं और शोणित आग्नि का प्रस्रवण 'ल स होना है । नेत्र तत्र तथा अन्तरात्मा अग्नि का भाग माना गया है । विषयममह म उन्ही विष्णु के वाय से उत्पन्न हुए हैं । इतने योग का सञ्जन करते हुए सन्ततन पुरुष मत्परा म मनुष्यव को कैसे प्राप्त हुए ? ब्रह्मन् । यन् हमार मार है और यह महान आश्चर्य है ॥५०-६३॥ गतिमाना की गति कह जान का विष्णु मानव-शरीर म कैसे आय ? देव और दैत्य विष्णु को परम आश्चर्य का वस्तु बतलाते हैं । महामुने । विष्णु की आश्चर्यजनक उत्पत्ति के बारे म कहिये । प्रसिद्ध विष्णुमाली अत्यन्त तत्रस्वी तथा आश्चर्यजनक कम

कर्मणाऽऽश्चर्यभूतस्य विष्णोस्तत्त्वमिहोच्यताम् । कथं स देवो देवानामातिहा पुरुषोत्तमः ॥६६॥
 सर्वव्यापी जगन्नाथः सर्वलोकमहेश्वरः । सर्वस्थित्यन्तकृद्देवः सर्वलोकसुखावहः ॥६७॥
 अक्षयः शाश्वतोऽनन्त क्षयवृद्धिविवर्जितः । निर्लेपो निर्गुणः सूक्ष्मो निर्विकारो निरञ्जनः ॥६८॥
 सर्वोपाधिविनिर्मुक्तः सत्तामात्रव्यवस्थितः । अविकारो विभुर्नित्यः परमात्मा सनातनः ॥६९॥
 अचलो निर्मलो व्यापी नित्यतृप्तो निराश्रयः । विशुद्धं श्रूयते यस्य हरित्वं च कृते युगे ॥७०॥
 वंकुण्ठत्वं च देवेषु कृष्णत्वं मानुषेषु च । ईश्वरस्य हि तस्येमां गहनां कर्मणो गतिम् ॥७१॥
 समतीतां भविष्य च श्रोतुमिच्छा प्रवर्तते । अव्यक्तो व्यक्तलिङ्गस्थो य एष भगवान्प्रभुः ॥७२॥
 नारायणो ह्यनन्तत्मा प्रभवोऽव्यय एव च । एष नारायणो भूत्वा हरीरासीत्सनातनः ॥७३॥
 ब्रह्मा शक्रश्च रुद्रश्च धर्मः शुक्रो बृहस्पतिः । प्रधानात्मा पुरा हृष्ये ब्रह्माणमनुजन्मभुः ॥७४॥
 सोऽनुजन्मपूर्वपुरुषः पुरा कल्पे प्रजापतीन् । एवं स भगवान्विष्णुः सर्वलोकमहेश्वरः ॥
 किमर्थं मत्पंलोकेऽस्मिन्मातो यदुकुले हरिः ॥७५॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे स्वयंभुःश्रुतिसंवादे श्रुतिप्रदाननिरूपणं नामोनाशी-
 त्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१७९॥

वरने वाले विष्णु के तत्त्व को बतलाइये । देवों के दुःख निवारण करने वाले, पुरुषों में उत्तम, सर्वव्यापक, जगन्नाथ, समस्त लोको के महान् ईश्वर, उत्पत्ति-स्थिति प्रलय करने वाले अखिल लोको के सुखदायक, अविनाशी, नित्य, अनन्त, ज्ञान तथा वृद्धि स रहित, निर्लेप, निर्गुण, सूक्ष्म, निर्विकार, निरञ्जन, निखिल उपाधियों से रहित, सत्तामात्र से अवस्थित, विनाशरूप्य, विभु परमात्मा, सनातन, अचल, निर्मल, व्यापक, नित्यतृप्त, निराश्रय देव ने कैसे मृत्युलोक में जन्म लिया ॥६४-७०॥ देवों में वंकुण्ठत्व तथा मनुष्यों में कृष्णत्व उन्नत प्रसिद्ध है । ऐसे ईश्वर के बीते हुए तथा होने वाले कर्मों की गहन गति को हम सुनना चाहते हैं । वे अव्यक्त, व्यक्त विह्वो में स्थित, नारायण, अनन्तात्मा, आदिवारण तथा अव्यय हैं । वे नारायण होकर सनातन हरि हैं । ब्रह्मा, इन्द्र, रुद्र, धर्म शुक तथा बृहस्पति भी वे ही हैं । पहिले प्रधानात्मा प्रभु ने ब्रह्मा की सृष्टि की । उस पूर्वपुरुष ब्रह्मा ने प्रजापतियों की रचना की । इस प्रकार भगवान् विष्णु सब लोको के महेश्वर हैं । वे विचलिते मृत्युलोक तथा यदुकुल म उत्तराष्ट्र हुए ? ॥७१-७५॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में ब्रह्मा और श्रुतियों के संवाद-व्यकरण में श्रुतिप्रदाननिरूपण नामक एक ती
 उन्नासीवा अध्याय समाप्त ॥१७९॥

अथाशौत्यधिकशततमोऽध्यायः

श्रीकृष्णचरिताराम्भ.

व्यास उवाच

नमस्कृत्वा सुरेशाय विष्णवे प्रभविष्णवे । पुरुषाय पुराणाय शाश्वतायान्वयाय च ॥१॥
चतुर्व्यूहात्मने तस्मै निर्गुणाय गुणाय च । वरिष्ठाय गरिष्ठाय वरेण्यायामिताय च ॥२॥
यज्ञाङ्गायाखिलाङ्गाय देवाद्यैरोप्सिताय च । यस्मादणुतरं नास्ति यस्मान्नास्ति बृहत्तरम् ॥३॥
येन विश्वमिदं व्याप्तमजेन सवराचरम् । आधिर्भावतिरोभावदृष्टादृष्टयिलक्षणम् ॥४॥
यदन्ति यत्सृष्टमिति तथैवाप्सुपसहृतम् । ब्रह्मणे चाऽऽदिदेवाय नमस्कृत्य समाधिना ॥५॥
अधिकाय ह्युद्धाय नित्याय परमात्मने । सदैकरूपरूपाय जिष्णवे विष्णवे नमः ॥६॥
नमो हिरण्यगर्भाय हरये शंकराय च । वासुदेवाय ताराय सर्गस्थित्यन्तकारिणे ॥७॥
एकानेकस्वरूपाय स्थूलसूक्ष्मात्मने नमः । अव्यक्तव्यक्तभूताय विष्णवे मुक्तिहेतवे ॥८॥
सर्गस्थितिबिनाशानां जगतो यो जगन्मयः । मूलभूतो नमस्तस्मै विष्णवे परमहमने ॥९॥
आधारभूतं विश्वस्याप्सुपणीयात्तमणीयसाम् । प्रणम्य सर्वभूतस्थमच्युतं पुरुषोत्तमम् ॥१०॥

अध्याय १८०

श्रीकृष्ण-चरित का आरम्भ

व्यास ने कहा—सुरेश, विष्णु, प्रभविष्णु, पुरुष, पुराण, शाश्वत, अन्वय, चतुर्व्यूहरूप, निर्गुण, सगुण, वरिष्ठ, गरिष्ठ, वरेण्य, अप्रमेय, यज्ञाङ्ग, अखिलाङ्ग तथा देवता आदि से अभीप्सित विष्णु को नमस्कार है। जिनसे कोई छोटा या बड़ा नहीं है (उन्हें नमस्कार है), जिन अजन्मा हृदिने चराचर विश्व की सृष्टि की, (उन्हें नमस्कार है), आधिर्भाव, तिरोभाव तथा दृष्ट, अदृष्टरूपक जगत् की जिन्होंने सृष्टि की तथा सहारा किया (उन्हें नमस्कार है), जो ब्रह्मा, आदिदेव, विकाररून्य, शुद्ध, नित्य, परमात्मा, सदा एकरूप, जबशील तथा विष्णु हैं उन्हें नमस्कार है ॥१-६॥ हिरण्यगर्भ, हरि, शंकर, वासुदेव, तारने वाले, सृष्टि-स्थिति प्रलय करने वाले, एक तथा अनेक स्वरूप वाले, स्थूल तथा सूक्ष्म रूप वाले, अव्यक्त एवम् व्यक्त रूप वाले तथा मोक्ष के कारण विष्णु को नमस्कार है। ससार की उत्पत्ति, स्थिति तथा विनाश के कारण, जगन्मय, परमात्मा विष्णु को नमस्कार है। विश्व के आधार, अणु से भी अणु, सर्वभूतस्थित, पुरुषोत्तम विष्णु को नमस्कार है। ज्ञान के स्वरूप, तत्त्वतः अत्यन्त निर्मल तथा पदार्थ-

ज्ञानस्वरूपमत्यन्तं निर्मलं परमार्थतः। तमेवार्थस्वरूपेण भ्रान्तिदर्शनतः स्थितम् ॥११॥
 विष्णु प्रसिष्णु विद्वत्स्य स्थितिसर्गे तथा प्रभुम्। अनादि जगतामीशमजमक्षयमव्ययम् ॥१२॥
 कथयामि यथा पूर्वं यक्षाद्यैर्मनिसत्तमैः। पृष्टः प्रोवाच भगवानब्जयोनिः पितामहः ॥१३॥
 ऋक्सामान्युदिगर्ख्वन्नैर्यः पुनाति जगत्त्रयम्। प्रणिपत्य तथेशानमेकार्णवविनिर्गतम् ॥१४॥
 यस्यासुरगणा यज्ञान्विलुम्पन्ति न याजिनाम्। प्रवक्ष्यामि मतं कृत्स्नं ब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मनः ॥१५॥
 येन सृष्टिं समुद्दिश्य धर्मद्याः प्रकटीकृताः। आपो नारा इति प्रोक्ता मुनिभिस्तत्त्वर्दाशभिः ॥१६॥
 अयनं तस्य ता. पूर्वं तेन नारायणः स्मृतः। स देवो भगवान्सर्वं व्याप्य नारायणो विभुः ॥१७॥
 चतुर्धा सस्थितो ब्रह्मा सगुणो निर्गुणस्तथा। एका मूर्तिरनुद्देश्य शुक्ला पश्यन्ति ता बुधाः ॥१८॥
 'ज्वालामालावनद्धाङ्गी निष्ठा सा योयिना परा। दूरस्था चान्तिकस्या च विज्ञेया सा गुणातिगा' ॥१९॥
 चासुदेवाभिधानाऽसौ निर्ममत्वेन दृश्यते। रूपवर्णादयस्तस्या न भावाः 'कल्पनामयाः ॥२०॥
 आस्ते घसा सदा शुद्धा तुप्रतिष्ठंकरूपिणी। द्वितीया पृथिवी मूर्ध्ना शेषाख्या धारयत्यधः ॥२१॥
 तामसी सा समाख्याता तिर्यक्स्वं समुपागता। तृतीया कर्म कुर्वते प्रजापालनतत्परा ॥२२॥
 सत्त्वोद्भिक्ता तु सा ज्ञेया धर्मसंस्थानकारिणी। चतुर्वी जलमध्यस्था शक्ते पन्नगतत्परा ॥२३॥

रूप से भासित विष्णु को नमस्कार है। सत्तार को ग्रसने वाले, जगत् की उत्पत्ति-स्थिति करने में समर्थ, अनादि, सत्तार के स्वामी, अजन्मा, अक्षय तथा अव्यय विष्णु को नमस्कार है ॥७-१२॥ पूर्वकाल में यक्ष आदि मुनियों द्वारा पूछे जाने पर कमल्योनि ब्रह्मा ने जैसे बतलाया था वैसे में कहूँगा। जो ऋग्वेद तथा सामवेद के उच्चारण करने तीनों लोकों को पवित्र करते हैं तथा एवार्णव से निःसृत हैं, उन ईश्वर को प्रणाम है। जिनके यात्रकों के यज्ञों को रास-गण नष्ट नहीं कर पाते हैं, उनको प्रणाम करते अव्यक्तजन्मा ब्रह्मा के सम्पूर्ण मत वा मैं वर्णन करूँगा। विष्णु ने सृष्टि के उद्देश्य से धर्म आदि को प्रकट किया। तत्त्वदर्शी मुनियों ने जल का नाम 'नार' बतलाया है। पहिले विष्णु का अयन (घर) जल था। इसलिए उनका नाम नारायण पड़ा। वे विभु नारायण भगवान् सबको व्याप्त करके चार प्रकार से अवस्थित ब्रह्मा कहलाते हैं। वे सगुण तथा निर्गुण भी हैं। उनकी एक अनुद्देश्य शुक्ल मूर्ति है, जिसे विद्वान् लोग देखते हैं ॥१३-१८॥ वह योयिनी की, ज्वाला-माला से बद्ध अथ वाली परा निष्ठा है। वह दूरस्थ, समीपस्थ तथा त्रिगुणातीत है। उसी की ममत्तारहित बसुदेव सत्ता नहीं गई है। उसके कल्पनामय रूप, वर्ण, भाव आदि नहीं होते। वह सदा शुद्ध, सुप्रतिष्ठित एवम् एकरूपिणी है। दोष नाशक दूसरी मूर्ति नीचे पृथ्वी को धारण करती है। वह तामसी कहलाती है। और वक्र बनी रहती है। तीसरी मूर्ति प्रजापालन में निरत होकर कर्म करती है। उसमें सत्त्वगुण की प्रधानता है। वह धर्म की स्थापना करती है। चौथी मूर्ति जल के बीच संप्राप्त परा सोती है। उसका

रजस्तस्या गुणः सर्गं सा करोति सदैव हि । या तृतीया हरेर्मूर्तिः प्रजापालनतत्परा ॥२४॥
 सा तु धर्मव्यवस्थानं करोति नियतं भुवि । प्रोद्धतानसुरान्हन्ति धर्मं च्छित्तिकारिणः ॥२५॥
 पाति^१ देवान्सगन्धर्वान्धर्मरक्षायणान् । यदा यदा च धर्मस्य ग्लानिः समुपजायते ॥२६॥
 अमृत्यान्मधर्मस्य तदाऽऽत्मानं सृजत्यसौ । भूत्वा पुरा घराहेण तुण्डेनापो निरस्य च ॥२७॥
 एकया दण्डयौत्थाता नलीनीव वसुंधरा । कृत्वा नृसिंहरूपं च हिरण्यकशिपुर्हन्तः ॥२८॥
 विप्रचित्तिमुखाश्चाप्ये दानव विनिपातिताः । वामनं रूपमाश्वाय बालं संयम्य^२ मायया ॥२९॥
 प्रलोक्य^३ क्रान्तवानेव विनिजित्वा दितेः सुतान्^४ । भृगुर्वैश्वे समुत्पन्नो जामदग्न्यः प्रतापवान् ॥३०॥
 जघान क्षत्रियांगामः पितुर्बन्धमनुस्मरन् । तयाऽन्नितनयो भूत्वा वृत्तात्रेयः प्रतापवान् ॥३१॥
 योगमष्टाङ्गमाचख्यावलर्काय महात्मने । रामो दाशरथिर्भूत्वा स तु देवः प्रतापवान् ॥३२॥
 जघान रावणं संख्ये त्रैलोक्यस्य भयंकरम् । यदा चंकारणवे सुप्तो देवदेवो जगत्पतिः ॥३३॥
 सहस्रयुगपर्यन्तं नागपर्यङ्कुगो विभुः । योगनिद्रां समास्थाय स्वे महिम्नि व्यवस्थितः ॥३४॥
 त्रैलोक्यमुदरे कृत्वा जगत्स्थावरजङ्गमम् । जनलोकमर्तः^५ सिद्धैः स्तूयमानो महर्षिभिः ॥३५॥
 तस्य नाभौ समुत्पन्नं पद्मं^६ दिव्यपत्रमण्डितम्^७ । मरुतिकञ्जकसंयुक्तं गृहं पंतामहं वरम् ॥३६॥
 यत्र ब्रह्मा समुत्पन्नो देवदेवश्चतुर्मुखः । तदा कर्ममलोद्भूतो दानवो मधुकण्ठभौ ॥३७॥

गुण रज है। वह सदा ही सृष्टि करती रहती है। हरि की जो तीसरी प्रजापालन में निरत रहने वाली मूर्ति है वह पृथ्वी पर धर्म की व्यवस्था करती है, धर्मसंहारक उद्धत अनुरो को मारती है और धर्म-रक्षा-व्यवस्था देव गणधर्मों का पालन करती है। जब-जब धर्म का ह्रास होता है और अधर्म की वृद्धि होती है तब-तब वह अपनी सृष्टि करती है ॥१९-२६॥ पूर्वकाल में उसने वराह का रूप धारण कर ध्वनी से पानी को हटाकर एक ही दाँत से बमलिनी की तरह पृथ्वी को उखाड़ डाला। नृसिंह रूप धार कर उसने हिरण्यवशिषु को निहत्त किया और विप्रचित्ति आदि दानवों का संहार किया। वामन रूप धारणकर उसने माया से अलि को बाधा और दैत्यो को जीतकर तीनों लोक का भाग लिया। भृगुवश में उत्पन्न होकर प्रतापी परशुराम ने पिता के बैर का स्मरण करके क्षत्रियो का संहार किया ॥२७-३०॥ उसी तरह अग्नि-युत्र तैजस्वी दत्तात्रेय होकर उसने महात्मा अर्जुन को अष्टांग योग का उपदेश दिया। दशरथ पुत्र ओजस्वी राम होकर उसने युद्ध में त्रैलोक्य भयंकर रावण का संहार किया। जब एकाग्रवै देवदेव जगत्पति अपनी महिमा में व्यवस्थित तथा योगनिद्रा में अवस्थित होकर हजारों युग तक तीना लोक (चराचर जगत्) को अपने पैर में रखकर सर्पशय्या पर सो रहे थे तब जनलोकवासी महर्षियो एवम् सिद्धो ने उनकी स्तुति की ॥३१-३५॥ तदनन्तर उनकी नाभि से कमल उत्पन्न हुआ, जो दिया रूपी पद्मे से अलङ्कृत तथा वायुरूपी विज्ज्वल (बमल-पराग) से युक्त था। वह ब्रह्मा का उत्तम गूढ़ हुआ। उसी से चतुर्मुख ब्रह्मा उत्पन्न हुए। उस समय भगवान् के कर्ममल से मधु और बँटेम नामक दो महाबली तथा महापराक्रमी दानव उत्पन्न होकर ब्रह्मा को मारने के लिए

१स ०न्तर्धानान्प०। २व स्यान्न्य। ३व ०वय कृपता तेन निजिताश्च दि०। ४व मुता। ५स ०गर्गं सि०। ६व दिव्यमण्डित०। ७व ०म्। ज्वलनार्चप्रतीकाय शैलेश्वरपण्डितम्। मेरुविज्ज०। ८व धूमम्।

महाबली महावीर्यो ब्रह्माण हतुमुद्यतो । जघान तौ दुराधर्षो^१ उत्थाय^२ शयनोदधे ॥३८॥
 एवमार्दोस्तथवायानसत्पातुमिहोत्सह । अवतारो ह्यजस्यह माथुर साप्रतस्त्वयम ॥३९॥
 इति सा सात्त्विकी मूर्तिरवतार करोति च । प्रचम्नति समाख्याता रक्षाकमण्यवस्थिता ॥४०॥
 दबत्वस्य मनुष्यत्व तियग्योनौ च सस्थिता । गूहणाति तत्स्वभावश्च वासुदवच्छया सदा ॥४१॥
 ददायभिमतकामा पूजिता सा द्विजोत्तमा । एव मया समाख्यात कृतकृत्योऽपि य प्रभु ॥
 मानुषत्व गतो विष्णु शृणुष्व चोत्तर पुन ॥४२॥

इति श्रीमहापुराण आदिब्राह्म व्यासश्रुतिसिवाद् चतुर्व्यूहवर्णन
 नामाशीत्यधिकशततमोऽध्याय ॥१८०॥

अथैकाशीत्यधिकशततमोऽध्याय

अवतारप्रयोजनवर्णनम्

व्यास उवाच

शृणुष्व मुनिशालूला प्रक्षयामि समासत । अवतार हरश्चान् भारवतरणच्छया ॥१॥
 यदा यदा त्वधमस्य वृद्धिर्भवति भो द्विजा । धमश्च ह्रासमम्यति तदा दयो जनादन ॥२॥

सवार हो गये । तब शयन-समय से उठकर विष्णु ने दोनों प्रचण्ड दानवों को मार डाला । इस प्रकार भगवान् ने जितने अवतार हो गये हैं उनकी संख्या मैं नहीं बता सकता । पर अब मैं के इस अवतार का नाम माथुर है ॥३९॥
 ३९ भगवान् की प्रचम्न नमक सात्त्विक मूर्ति जो रक्षाकमण्य रहता है अवतार लेता है । कामुदेव इन्द्र से यह देवयानि मनष्ययानि तथा तियम योनिये मे मा अवतार होकर उस उस यानि का स्वभाव ग्रहण करती है । द्विज मण्डो पूजित होने पर वह अभीष्टित कामनाओं का प्रदान करता है । इस प्रकार कृतकृत्य होते हुए भी विष्णु मनुष्य-योनिये में जैसे अवतीर्ण हुए वह मैं बता दिया । अब इससे आगे मुनिये ॥४०॥ ४२॥

श्री ब्रह्ममहापुराण मे व्यास और ऋषिया ने सत्त्व प्रकरण मे चतुर्व्यूहवर्णन
 नामक अस्माका अध्याय समाप्त ॥८०॥

अध्याय १८१

अवतार का प्रयोजन वर्णन

व्यास बोले—मुनिवर । मार उठा देने का इच्छा से हरि ने जो अवतार लिया उसके विषय मैं सारा ग बतलाऊंगा मुनिये । द्विजगण । जब-जब अधम का वृद्धि और धम का ह्रास होता है तब-तब जनादन साधुओं की

अवतार करोत्यत्र द्विधा कृत्वाऽऽमनस्तनुम् । साधूना रक्षणार्थाय धर्मसंस्थापनाय च ॥३॥
दुष्टानां निग्रहार्थाय अन्येषां च सुरद्विषाम् । प्रजानां रक्षणार्थाय जायतेऽसौ युगे युगे ॥४॥
पुरा किल मही विप्रा भूरिभारावपीडिता । जगाम धरणी मेरो समाजे त्रिदिवीकसाम् ॥५॥
सब्रह्मवान्सुरा सर्वान्प्राणिपत्याय मेदिनी । कथयामास तत्सर्वं खेदात्करुणभाषिणी ॥६॥

घरण्यावाच

अग्निं सुवर्णस्य गुरुं वा सूर्योऽपरो गुरुः । ममाप्यखिललोकानां यन्त्रो नारायणो गुरुः ॥७॥
तत्संप्रतमिमे देव्या कालनेमिपुरोगमा । मर्त्यलोकं समागम्य वाधन्तेऽहनिश प्रजा ॥८॥
कालनेमिहंतो योऽसौ विष्णुना प्रभविष्णुना । उग्रसेनसुत कसं सभूतं सुमहासुरं ॥९॥
अरिष्टो धेनुक केशो प्रलम्बो मरकस्तथा । सुन्दोऽसुरस्तथाऽऽधुशो बाणश्चापि बलं सुत ॥१०॥
तथाऽप्ये च महाबोर्या नृपाणां भवनेषु ये । समुत्पन्ना दुरात्मानस्तात्र सख्यातुमुत्तरे ॥११॥
असौहिण्यां हि बहूना दिव्यमूर्तिधृता सुराः । महाबलानां दृष्टानां दैत्येन्द्राणां मनोपरि ॥१२॥
तव भूरिभारपीडातां न शक्नोम्यमरेदवरा । विभर्तुं मात्मानमहमिति विज्ञापयामि यः ॥१३॥
क्रियता तन्महाभागा मम भारवतारणम् । यया रसातलं नाह गच्छेयमतिबिह्वला ॥१४॥

व्यास उवाच

इत्याकर्ण्य धरावाक्यमशेषं स्त्रिदशैस्ततः । भूषो भारवतारार्थं ब्रह्मा प्राह च चोदित ॥१५॥

एषा घम का स्थापना सुजोही दुष्टों के दण्ड और प्रजा के रक्षण के लिये युग-युग में अपने 'शरीर' को द्विधा विभक्त करके अवतार लेते हैं । प्राचीन काळ में अत्यन्त भार से पीड़ित होकर पृथ्वी सुमेरुपर्वत पर देवताओं के समक्ष आई । ब्रह्मा सहित अखिल देवों को प्रणाम करने के बाद से करुणभाषिणी धरणा अपना वृत्तान्त कहने लगी ॥१६॥

पृथ्वी बोली—बुध के गुरु अग्नि हैं शीशु के गुरु सूर्य हैं और मेरे गुरु अखिल 'नाकचय' नारायण हैं । इस समय कालनेमि आदि दैत्य मृत्युलोक में आकर रातदिन प्रजा का उत्पन्न करते हैं । जिस कालनेमि का विष्णु ने नाश था वही उग्रसेन का पुत्र महारासस कस हुआ है । अरिष्ट धेनुक केगा प्रलम्ब मरक सुन्द बलि-गुप्त अत्यन्त भयंकर बाण तथा अप्य जो दुरात्मा एवम् महाशक्तिशाली राजपण हैं उनही ती मैं सख्या ही नहीं बतला सकता । सुरमण ! मद से तूण महाबली दैत्येन्द्र की दिव्य मूर्तिधारी असौहिण्या सेना भी काफी तादात में मेरे ऊपर भार लाद रही है । अमरवृन्द ! इस महाभार से पीड़ित होकर मैं अपने को नहीं समाल सक्ती । यहा निवेदन करने के लिये मैं आई हूँ । महाभागा ! इसलिये मेरे भार उतारने का कोई प्रयत्न काजिये ताकि मैं अत्यन्त बिह्वल होकर पाताल न चली जाऊँ ॥७१५॥

व्यास बोले—धरती की यह बात सुनकर समस्त देवों ने ब्रह्मा से निवेदन किया । तब पृथ्वी का भार उतारने के निमित्त ब्रह्मा ने कहा ॥१५॥

महाबली महावीर्यो ब्रह्माणं हन्तुमुद्यतो । जघान तो दुराधर्षो उत्थाय^१ शयनोदधेः ॥३८॥
 एवमादीस्तथैवान्धानसंख्यातुमिहोत्सहे । अवतारो ह्यजस्येह मायुरः सांप्रतस्त्वयम् ॥३९॥
 इति सा सात्त्विकी मूर्तिरवतार करोति च^२ । प्रद्युम्नेति समाख्याता रक्षाकर्मण्यवस्थिता ॥४०॥
 देवत्वेऽयं मनुष्यत्वे तिर्यग्योनौ च सस्थिता । गृह्णाति तत्त्वभावश्च वासुदेवैच्छया सदा ॥४१॥
 वदात्यभिमतान्कामान्पूजिता सा द्विजोत्तमा । एवं भया समाख्यातः कृतकृत्योऽपि यः प्रभुः ॥
 मानुषत्वं गतो विष्णुः शृणुष्वं चोत्तरं पुनः ॥४२॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे व्यासश्रुतिसंवादे चतुर्व्यूहवर्णनं

नामाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१८०॥

अथैकाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः

अवतारप्रयोजनवर्णनम्

व्यास उवाच

शृणुष्व मुनिशार्दूल^१ प्रवक्ष्यामि समासतः । अवतार हरेश्चात्र भारवतरणेच्छया ॥१॥
 यदा यदा त्वधर्मस्य वृद्धिर्भवति भो द्विजाः । धर्मश्च ह्रासमस्येति तदा देवो जनार्दनः ॥२॥

तैयार हो गये । सब शयन-समुद्र से उठकर विष्णु ने दोनों प्रचण्ड दानवों को मार डाला । इस प्रकार मगवान् ने जितने अवतार हो गये हैं, उनकी संख्या मैं नहीं बता सकता । पर अजन्मा के इस अवतार का नाम मायुर है ॥३९॥ मगवान् की प्रद्युम्न नामक सात्त्विकी मूर्ति, जो रक्षाकर्म में लगी रहती है, अवतार लेती है । वासुदेव की इच्छा से वह देवयानि, मनुष्ययानि तथा तिर्यग्योनि में भी अवतीर्ण होकर उस उस योनि में स्वभाव ग्रहण करती है । द्विजधेष्ठो^२ । पूजित होने पर वह अभीप्सित कामनाओं को प्रदान करती है । इस प्रकार कृतकृत्य होते हुए भी विष्णु मनुष्य-योनि में जैसे अवतीर्ण हुए, वह मैंने बतला दिया । अब इससे आगे सुनिये ॥४०-४२॥

श्री ब्रह्ममहापुराण में व्यास और श्रुतियों के संवाद प्रकरण में चतुर्व्यूहवर्णन नामक अस्सीवाँ अध्याय समाप्त ॥८०॥

अध्याय १८१

अवतार का प्रयोजन-वर्णन

व्यास बोले—मुनिवर^१ । मार उतारने की इच्छा से हरि ने जो अवतार लिये, उसके विषय में मैं सशेष से बतलाऊँगा, मुनिये । द्विजधेष्ठ^२ । जब-जब अधर्म की वृद्धि और धर्म का ह्रास होता है तब-तब जनार्दन सायुजा की

अवतार करोत्यत्र द्विधा कृत्वाऽऽत्मनस्तनुम् । साधूना रक्षणार्थाय धर्मसंस्थापनाय च ॥३॥
दुष्टाना निग्रहार्थाय अन्येषां च सुरद्विषाम् । प्रजाना रक्षणार्थाय जायतेऽसौ युगे युगे ॥४॥
पुरा किल महो विप्रा भूरभारावपीडिता । जगाम धरणी मेरी समाजे त्रिदिवौवसाम ॥५॥
सब्रह्मवान्सुरान्सर्वाग्रणिपत्याय मेदिनी । कथयामास तत्सर्वं खेदात्करुणभाषिणी ॥६॥

धरण्युवाच

अग्नि सुवर्णस्य गुरुर्वा सूर्योऽपरो गुरु । ममाप्यखिललोकानां बन्धो नारायणो गुरु ॥७॥
तत्ताप्रतमिमे दंत्या कालनेमिपुरोगमा । मर्त्यलोक समागम्य बाधन्तेऽहर्निश प्रजा ॥८॥
कालनेमिर्हतो योऽसौ विष्णुना प्रभविष्णुना । उग्रसेनसुत कस सभूत सुमहासुर ॥९॥
अरिष्टो धेनुक फेदी प्रलम्बो नरकस्तथा । सुन्दोऽसुरस्तथाऽत्युग्रो बाणश्चापि बले सुत ॥१०॥
तथाऽप्ये च महावीर्या नृपाणा भवनेषु ये । समुत्पन्ना दुरात्मानस्ताम्र सख्यानुमत्सहे ॥११॥
असौहिण्यो हि बहुला दिव्यमूर्तिधृता सुरा । महाबलानां द्यूतानां दैत्येन्द्राणां मनोपरि ॥१२॥
तदभूरभारपीडातां न शक्नोम्यमरेश्वरा । विभर्तुमात्मानमहमिति विज्ञापयामि य ॥१३॥
त्रियता तमहाभागा मम भारवतारणम् । यया रसातल नाह गच्छेयमतिविह्वला ॥१४॥

ध्यास उवाच

इत्यगच्छं धरावाक्यमशेषंस्त्रिदशंस्तत । भुवो भारवतारार्यं ब्रह्मा प्राह च चोदित ॥१५॥

रक्षा धर्म का स्थापना सुरद्रोह दुष्टों के दण्ड और प्रजा के रक्षण के लिये युग-युग में अपने शरीर को द्विधा विभक्त करते अवतार लेते हैं । प्राचीन काल में अत्यन्त भार से पादित होकर पृथ्वी सुमेरुवत् पर देवताओं के समक्ष आई । ब्रह्मा सहित अखिल देवों को प्रणाम करते वेद से नरुणभाषिणी धरणी अपना वृत्तान्त कहने लगी ॥१५॥

पृथ्वी बोली—सुवर्ण के गुरु अग्नि हैं औसों के गुरु सूर्य हैं और मेरे गुरु अखिल ओषध नारायण हैं । इस समय कालनेमि आदि दैत्य मृत्युलोक में आकर रातदिन प्रजा का उत्पादन करते हैं । जिस कालनेमि को विष्णु ने मारा था वही उग्रसेन का पुत्र महाराक्षस कस हुआ है । अरिष्ट धेनुक वेशा प्रलम्ब नरक सुद बलि-पुत्र अत्यन्त मयकर बाण तथा अप्य जो दुरात्मा एवम् महासन्तुशाली राजगण हैं उनकी तो मैं सख्या ही नहीं बन सकती । सुरगण ! मद से चूण महाबली दैत्येन्द्रा की दिव्य मूर्तिधारी असौहिणी सेना भी काफी तादाद में मेरे ऊपर भार लाद रही है । अमरबुद्ध ! इस महामार से पादित होकर मैं अपने को नहीं समाल सकती । वहा निवेदन करने के लिये मैं आई हूँ । महामागो ! इसलिये मेरे भार उतारने का कोई प्रयत्न कीजिये ताकि मैं अत्यन्त विह्वल होकर पाताल न चली जाऊँ ॥७ १४॥

ध्यास बोले—धरती की यह बात सुनकर समस्त देवों ने ब्रह्मा से निवेदन किया । तब पृथ्वी ने भार उतारने के निमित्त ब्रह्मा ने कहा ॥१५॥

ब्रह्मोवाच

यदाह वसुधा सर्वं सत्यमेतद्दिवौकसः। अहं भवो भवन्तश्च सर्वं नारायणात्मकम् ॥१६॥
विभूतयस्तु यास्तस्य तासामेव परस्परम्। आधिक्यं न्यूनता बाध्यबाधकत्वेन वर्तते ॥१७॥
तदागच्छत गच्छामः क्षीराब्धेस्तटमुत्तमम्। तत्राऽऽराध्य हरिं तस्मै सर्वं विज्ञापयाम वै ॥१८॥
सर्वदेव जगत्पथं स सर्वात्मा जगन्मयः। स्वल्पाशेनावतीर्योष्यां धर्मस्य कुरुते स्थितिम् ॥१९॥

व्यास उवाच

इत्पुक्त्वा प्रययौ तत्र सह देवः पितामहः। समाहितमना भूत्वा तुष्टाव गरुडध्वजम् ॥२०॥

ब्रह्मोवाच

नमो नमस्तेऽस्तु सहस्रमूर्ते, सहस्रबाहो बहुवक्त्रपाद ।
नमो नमस्ते जगतः प्रवृत्तिविनाशस्थानपराप्रमेय ॥२१॥
सूक्ष्मातिसूक्ष्मं च बृहत्प्रमाणं गरीयसामप्यतिगौरवात्मन् ।
प्रधानबुद्धीन्द्रियबाधप्रधानमूलापरात्मन्भगवन्प्रसीद ॥२२॥
एषा मही देव महीप्रसूतं महासुरैः पीडितशैलवन्धा ।
परायणं त्वां जगतामुपैति, भारावतरार्थमपारपारम् ॥२३॥

ब्रह्मा बोले—देववृन्द ! पृथ्वी ने जो कहा, सब ठीक है। 'मैं, शिव तथा आप लोग सब नारायण के अंश हैं। उनको जो विभूतियाँ हैं, उन्हीं में परस्पर बाध्यबाधक भाव से बर्मी-ज्वेरी होती है। इसलिये आइय हम लोग क्षीरसमुद्र के तट पर चलें। वहाँ हरि की आराधना करने उनसे सब निवेदन करेंगे। जगत् के लिए वे अस्त्रिगत्मा तथा जगन्मय प्रभु पृथ्वी पर अवतार लेकर सदा धर्म की स्थापना करते हैं ॥१६-१९॥

व्यास बोले—इतना कहकर देववृन्द सहित ब्रह्मा वहाँ जाकर एकाग्र चित्त से भगवान् की स्तुति करने लगे ॥२०॥

ब्रह्मा बोले—सहस्र रूप वाले ! सहस्र मुखा वाले ! बहुत मुख तथा चरण वाले ! आपको नमस्कार है। जगत् की उत्पत्ति, स्थिति तथा प्रलय करने वाले ! अप्रमेय ! आपका नमस्कार है। सूक्ष्म से भी अत्यन्त सूक्ष्म ! महान् से भी अत्यन्त महान् ! बुद्धि, इन्द्रिय, वाणी तथा प्रवृत्ति रूप ! परात्मन् ! भगवन् ! प्रसन्न होइये। यह पृथ्वी, अपन पर उत्पन्न हुए महापक्षियों द्वारा पीडित होकर मार उतरवाये के लिये आपसी धारण में आई है। अब समार न रहता है। आपका कोई पार नहीं पा सकता। सुरताप ! हम सब—इन्द्र, अश्विनी कुमार, वरुण,

एते वयं वृत्ररिपुस्तथाऽयं, नास्त्यदस्मै वरुणस्तथैवः ।
इमे च रुद्रा वसवः ससूर्याः, समीरणाग्निप्रमुखास्तथाऽन्ये ॥२४॥
सुराः समस्ताः सुरनाथ कार्यमेभिर्मया यच्च तदीश सर्वम् ।
आज्ञापयाऽऽज्ञां प्रतिपालयन्तस्तवैव तिष्ठाम सदाऽस्तदोपा ॥२५॥

व्यास उवाच

एवं सस्तूयमानस्तु भगवान्परमेश्वरः । उज्जहारोऽऽत्मनः केशी सितकृष्णौ द्विजोत्तमाः ॥२६॥
उवाच च सुरानेतौ मत्केशो वसुधातले । अवतीर्य भुवो भारवलेऽग्राणि करिष्यत ॥२७॥
सुराश्च सकलाः स्वाशिरवतीर्य महीतले । कुर्वन्तु युद्धमुन्मत्तः पूर्वोत्पन्नर्महामुरः ॥२८॥
ततः क्षयमशेषास्ते देतेया धरणीतले । प्रयास्यन्ति न सवेहोः नानापृथग्विचूणिता ॥२९॥
वसुदेवस्य या पत्नी देवकी देवतोपमा । तस्या गर्भोऽष्टमोऽयं तु मत्केशो भविता सुरा ॥३०॥
अवतीर्य च तप्राय कस धातपिता भुवि । कालनेमित्तमुद्भूतमित्पुत्रत्वाज्जन्तवंधे हरिः ॥३१॥
अदृश्याय ततस्तेऽपि प्रणिपत्य महत्तमने । मेरुपृष्ठं सुरा जन्मरवतेरुश्च भूतले ॥३२॥
कसाय चाष्टमो गर्भो देवक्या धरणीतले । भविष्यतीत्याचक्षते भगवान्नारदो मुनि ॥३३॥
कसोऽपि तदुपश्रुत्य नारदात्कुपितस्ततः । देवकीं वसुदेवं च गृहे गुप्तावधारयत् ॥३४॥
जातं जातं च कसाय तेनैवोचत यथा पुरा । तथैव वसुदेवोऽपि पुत्रमपितवान्द्विजा ॥३५॥

रुद्र, वसु, सूर्य, वायु, अग्नि आदि देवगण—सदा दोषो से रहित होकर आपही के आज्ञापालन में निरत रहते हैं ।
इतलिये, ईश ! हमे आज्ञा कीजिये ॥२१-२५॥

व्यास बोले—द्विजश्रेष्ठो ! इस प्रकार स्तुति किये जाने पर भगवान् परमेश्वर ने अपने दो सफेद तथा काले केशों को उखाड़ कर देवताओं से कहा—‘मिरे दोनों केश पृथ्वी पर अवतार लेकर धरती के मारजन्य भूतेशों को दूर करेंगे । सकल देवगण भी अपने अशो से भूतल पर अवतीर्ण होकर पूर्वोत्पन्न भद्रमत महाप्राप्तो से युद्ध करेंगे । तत्पश्चात् अनेक अस्त्र शस्त्रों से धूर-चूर होकर अशेष देख बिनष्ट हो जायेंगे, इसमें सन्देह नहीं । देवगण ! वसुदेव की देवतुल्य देवकी नामक पत्नी के आठवें गर्भ से मेरा केश अवतीर्ण होकर अवर कालनेमि कस को मारेगा ।’ इतना कहकर हरि अन्तर्हित हो गये । तदनन्तर अदृश्य भगवान् को प्रणाम कर समस्त देवगण सुमेरु पर्वत पर चले गये और पृथ्वी पर अवतीर्ण हुए । (इधर) नारद मुनि ने कस से आकर कह दिया—‘पृथ्वी पर ‘देवकी का आठवाँ गर्भ तुम्हारे लिए घातक होगा ।’ नारद की बात सुनकर कस कुपित हो गया । उसने देवकी तथा वसुदेव को जेल में भेज दिया । द्विजगण ! वसुदेव भी अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार जैसे-जैसे पुत्र उत्पन्न होता वैसे-वैसे लाकर कस को समर्पित कर देते थे । द्विरम्बकशिपु के छ गर्भविस्थित पुत्रों को विष्णु की भेजी हुई योगनिद्रा क्रमशः देवकी के गर्भ में

हिरण्यकशिपो पुत्रा पङ्गर्भा इति विभ्रुता । विष्णुप्रयुक्ता तान्निद्रा क्रमाद्गर्भे न्ययोजयत ॥३६॥
योगनिद्रा महामाया वंणवो मोहित यया । अविद्या जगत्सर्वं तामाह भगवान्हिर ॥३७॥

विष्णुह्वाच

गच्छ निद्रे ममाऽऽदेशात्पातालतलसंश्रयान् । एकैकशयेन पङ्गर्भादेवकीजठरे नय ॥३८॥
हृतेषु तपु कसेन शेषारयोऽशस्ततोऽनघ । अशाशेनोदरे तस्या सप्तमं सभविष्यति ॥३९॥
गोकुले वसुदेवस्य भार्या वै रोहिणी स्थिता । तस्या प्रसूतिसमये गर्भो नैयस्त्वयोदरम् ॥४०॥
सप्तमो भोजराजस्य भयाद्रोधोपरोधत । देवक्या पतितो गर्भ इति लोको वदिष्यति ॥४१॥
गभसकपणात्सोऽयं लोके सकयंयेति वै । सज्ञामवाप्स्यते वीर श्वेताद्रिशिखरोपम ॥४२॥
ततोऽहं सभविष्यामि देवकीजठरे शुभे । गर्भे स्वया यशोदाया गन्तव्यमविलम्बितम् ॥४३॥
प्रवृट्काले च नभसि कृष्णाष्टम्यागहं निशि । उत्पत्स्यामि नवम्या च प्रसूतिं त्वमवाप्स्यसि ॥४४॥
यशोदाशयने मा तु देववयस्त्वामनिन्दिते । मच्छक्तिप्रेरितमतिर्वसुदेवो नयिष्यति ॥४५॥
कतस्रश्च त्वामुपादाय दधि शैलशिलातल । प्रक्षेप्यत्यन्तरिक्षे च त्वं स्यान् समवाप्स्यसि ॥४६॥
ततस्त्वा दातया' हारं प्रणम्य मम गौरवात् । प्रणिपातानतश्चिराग्निनीत्वे ग्रहीष्यति ॥४७॥
ततः शुम्भनिशुम्भादीन्हृत्वा दैत्यास्तहृष्यश । स्यान्नैरनेकं पूयिष्विमशेषा मण्डयिष्यसि ॥४८॥

ला-लाकर रख छोडती थी । विष्णु ने अपनी महाविद्या योगनिद्रा से जो अविद्या से तसार को मोहित करती है कहा ॥२६ ३७॥

विष्णु बोले—निद्र । तुम जाओ और मेरी आज्ञा से पातालस्थित छोडो गर्भों को एक एक करके देवकी के पेट में रख छोडो । कस द्वारा उनके निहृत हो जाने पर मेरा शेष सप्तक अश अशों के अश से देवकी के पेट में सातवाँ गम होकर अवस्थित होगा । वसुदेव की दूसरी पत्नी रोहिणी गोकुल में रहती है । प्रसव समय उस गम को लेकर तुम रोहिणी के पेट में रख छोडना । तब कस के अथ से या कंद के कारण देवकी का सातवाँ गम गिर पडा— इस तरह लोक में जनम्रति फैल जायगा । अर्थ से खिच जाने के कारण लोक में उस श्वेतपवततुल्य वीर की सज्ञा संवर्ण हो जायगी । तदुपरान्त मैं देवकी के पवित्र उदर से उत्पन्न हूँगा । तुम शत्रु यशोदा के गम में चली जाओ । वर्षाश्रुतु मे भाद्रपद की कृष्णाष्टमी की रात्रि में मैं जन्म लूँगा और नवमी में तुम्हारी उत्पत्ति होगी ॥३८ ४५॥ मेरी शक्ति से प्रेरणा पाकर वसुदेव जा मूत्र ले आकर यशोदा की पवित्र शय्या पर छोड आँगे और तुम्हें लाकर देवकी के बिछोने पर रख दूँगे । तब कस तुम्हें उठाकर पवत के शिलातल पर पटक देगा पर तुम वहाँ से उडकर आकाश में अपना स्थान प्राप्त कर लोगी । वहाँ इन्द्र मेरी प्रतिष्ठा के कारण तुम्हें माया देक कर सैकडों बार प्रणाम करके अपनी बहुत धनदायगे । तदनंतर तुम अनेक स्थानों पर शुम्भ निशुम्भ आदि सहस्रो दैत्यो को मारकर

त्वं भूतिः संनतिः कीर्तिः कान्तिर्वै पृथिवी घृतिः । लज्जापुण्ड्ररूपा या च काचिदन्या त्वमेव सा ॥४९॥
ये त्वाभार्येति दुर्गेति वेदगर्भेऽम्बिकेति च । भद्रेति भद्रकालीति 'क्षेम्या क्षेमकरोति च ॥५०॥
प्रातश्चैवापराह्णे च स्तोष्यन्त्यानन्धमूर्त्यः । तेषां हि वाञ्छितं सर्वं मत्प्रसादाद्भूविष्यति ॥५१॥
सुरामांसोपहारंस्तु भक्ष्यभोज्यंश्च पूजिता । नृणामशेषकामास्त्व प्रसन्नाया प्रदास्यसि ॥५२॥
ते सर्वे सर्वदा भद्रा मत्प्रसादादसशयम् । असदिग्धं भविष्यन्ति गच्छ देवि ययोदितम् ॥५३॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे हरेरंशावतारनिरूपण
नामकाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१८१॥

अथ द्वयशीत्यधिकशततमोऽध्यायः

श्रीकृष्णोत्पत्तिकथानिरूपणम्

व्यास उवाच

यथोक्तं सा जगद्धात्री देवदेवेन वं पुरा । 'वड्गर्भगर्भविग्यासं चक्रे चाप्यस्य कर्षणम् ॥१॥
सप्तमे रोहिणीं प्राप्ते गर्भे गर्भे ततो हरिः । लोकत्रयोपकाराय देवक्याः प्रविवेश वं ॥२॥

सम्पूर्ण पृथ्वी को भूयित करोगी । भूति, सनति, कीर्ति कान्ति, पृथिवी, घृति, लज्जा, पुण्ड्र, उपा और जो कोई दूसरी है, सब तुम ही हो । जो प्रातः काल तथा सायंकाल मस्तक झुकाकर आर्या, दुर्गा, वेदगर्भा, अम्बिका, भद्रा, भद्रकाली, क्षेम्या तथा क्षेमकरी आदि नामों से तुम्हारी स्तुति करेंगे, उनकी सप्तस्त अभिलाषायें मेरी वृषा से पूरी होगी । जो मनुष्य भय, मांस, भक्ष्य, भोज्य तथा उपहारों से तुम्हारी पूजा करेंगे, उन्हें तुम प्रसन्न होकर अशेष कामनाएँ प्रदान करोगी । वे सब मेरी वृषा से निःसन्देह कल्याण प्राप्त करेंगे । देवी ! अब तुम मेरे वचनानुसार जाओ ॥४५-५३॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में विष्णु का अवतारनिरूपण नामक
एक सौ द्वयासीवाँ अध्याय समाप्त ॥१८१॥

अध्याय १८२

श्रीकृष्ण की उत्पत्ति-कथा का निरूपण

व्यास बोले—विष्णु के वचनानुसार जगद्धात्री ने छहों गर्भों का बीजा ही विन्यास किया और सातवें गर्भ को रोहिणी के उदर में स्थित कर दिया । सब छीनो लोक के उपकार के लिये भगवान् ने देवकी के उदर में प्रवेश

योगनिद्रा यशोदायास्तस्मिन्नेव ततो दिने । समूता जठरे तद्वद्यथोक्त परमपिना ॥३॥
 ततो ग्रहगण सम्यक्प्रचचार दिवि द्विजा । विष्णोरशे महीं यात ऋतवोऽप्यभवञ्जुभा ॥४॥
 नोत्सहे देवकीं द्रष्टुं कश्चिदप्यतितज्जसा । जाज्वल्यमाना ता दृष्ट्वा मनासि क्षोभमाययु ॥५॥
 अदृष्टा पुरुषं स्त्रीभिर्देवकीं देवतागणा । बिग्राणा वपुषा विष्णुं तुष्टुनुस्तामहनिशम् ॥६॥

देवा ऊचुः

त्व स्वाहा त्व स्वषा विद्या सुधा त्व ज्योतिरेव च । त्व सर्वलोकरक्षार्थमवतीर्णा महीतले ॥७॥
 प्रसीद देवि सर्वस्य जगत्तत्त्व शुभ कुरु । प्रीत्यर्थं धारयेशान धृत म्रैनाखिल जगत् ॥८॥

ध्यास उवाच

एव सस्तूयमाना सा 'देवेर्देवमधारयत । गर्भेण पुण्डरीकाक्ष जगता' नानाकारणम् ॥९॥
 ततोऽखिलजगत्पद्मबोधापाच्युतभानुना । देवक्या पूर्वसध्यायामाविर्भूत महात्मना ॥१०॥
 मध्यरात्रिःखिलाधारे जल्यमाने जतरदने । मन्द व्याजर्जलदा गुण्यवृष्टिमुच सुरा ॥११॥
 फुल्लन्दीवरपत्राभ चतुर्बाहुमुदीक्ष्य तम । धीवत्सवक्षस जात तुष्ट्वाऽऽनकदुन्दुभि ॥१२॥
 अभिष्टूय च त वाग्भि प्रसन्नाभिमहामति । विज्ञायापमास तदा कसाद्भूतो द्विजोत्तमा ॥१३॥

ब्रह्मा के कथनानुसार योगनिद्रा भी उसा दिन यशोदा के उदर में प्रविष्ट हुई। द्विजगण । पृथ्वी पर विष्णु के अश के जाने पर ग्रहगण सुचारु रूप से चिक्चर करने लगे। ऋतुर्णे भी सुखदायिनी हो गई। अत्यन्त तेज के कारण देवकी को देखने का किसी को साहस नहीं होता था। तेज से दीप्यमान देवकी को देखकर लोग अत्यन्त क्षुब्ध हो जाते थे। (अतएव) देवकी पुरुष तथा स्त्रियो से अदृश्य रहती थी। देवगण शरीर में विष्णु को धारण किये हुई देवकी की रातदिन स्तुति किया करते थे ॥१६॥

देवो ने कहा—तुम स्वाहा स्वषा विद्या सुधा तथा ज्योति हो। अखिल लोको की रक्षा के निमित्त तुम पृथ्वी पर अवतान हुई हो। देवि! तुम प्रसन्न होओ और ससार का कल्याण करो। अपनी प्राति के लिये तुम उस ईश्वर को धारण करो जिसने सम्पूर्ण जगत् का धारण किया है ॥७८॥

ध्यास बोल—देवो द्वारा इस प्रकार स्तुति की जाने पर देवकी ने ससार की रक्षा के कारण कमललोकन भगवान को गर्भ में धारण किया। यदनन्तर सम्पूर्ण जगत्स्वी कमल को खिलाने के लिये सूर्यस्वी महात्मा हरि रात्रि के प्रथम प्रहर में देवकी से प्रादुर्भूत हुए। सबके आचारभूत जनादन के अवतीर्ण हो जाने पर मध्यरात्रि में मेघ मद-मद गरजने लगे और सुरवृन्द गुण्यवृष्टि करने लगे। विकसित कमलपत्र के समान कान्ति वाले चतुर्भुज तथा वक्ष पर श्रवत्स नामक चिह्न धारण करने वाले भगवान को देखकर वसुदेव स्तुति करने लगे। द्विजश्रेष्ठो! सुन्दर वाणी से उनकी स्तुति करके कस से डरे महाबुद्धिमान वसुदेव ने निवेदन किया ॥९१३॥

१क ०भा । चित्राभि स्तुतिमिचिष्णु । २ख देवदेव० । ३ख ख ०गद्रक्षणवा० । ४ख ०ति ।
 चित्तवा० । ५ख ०स कसाय उदा भीलो द्वि० ।

वसुदेव उवाच

ज्ञातोऽसि देवदेवेश शङ्खचक्रगदाधर । दिव्य रूपमिदं देव प्रसादेनोपसहर ॥१४॥
अद्यैव देव कसोऽयं कुरते मम यातनाम् । अवतीर्णमिति ज्ञात्वा त्वामस्मिन्मन्दिरं मम ॥१५॥

देवदयुवाच

योऽनन्तरूपोऽखिलविश्वरूपो, गर्भेऽपि लोकान्वपुषा विभर्ति ।
प्रसीदतामेव स देवदेव, स्वमाययाऽऽविष्कृतवालरूप ॥१६॥
उपसहर सर्वात्मन् रूपमेतच्चतुर्भुजम् । जानातु माऽवतारं ते कसोऽयं दितजान्तक ॥१७॥

श्रीभगवानुवाच

स्तुतोऽहं यत्त्वया पूर्वं पुनायिन्या तदद्य ते । सफलं देवि सजातं जातोऽहं यत्तबोदरात् ॥१८॥

ध्यास उवाच

इत्युक्त्वा भगवास्तूर्णो बभूव मुनिसत्तमा । वसुदेवोऽपि तं रात्रावादाय प्रययौ बहि ॥१९॥
मोहिताश्चाभवत्तत्र रक्षिणो 'योगनिद्रया' । मथुराद्वारपालाश्च व्रजयानवदुग्धुभौ ॥२०॥
धर्मता जलदाना च ततोऽयमुत्सृज्य निद्रि । सखाद्य तं ययौ शेषं फणेरानकदुग्धुभिः ॥२१॥
यमुनां चातिगम्भीरां नानावर्तशताकुलाम् । वसुदेवो बहन्विष्णुं जानुमानबहा ययौ ॥२२॥

वसुदेव बोले—देवो के देव ! शङ्खचक्रगदाधारी ! मैं आपको पहचान गया । देव ! कृपा करने इस दिव्य रूप को बदल दीजिये । मेरे घर में आप अवतीर्ण हुए हैं—यह जानकर कस आज ही मुझ महाबल देना ॥१४॥
१५॥

देवकी बोलों—जो अनन्तरूप तथा अखिल विश्वरूप होते हुए गम में भी लोको का धारण करते हैं और जो अपनी माया से बाल रूप में प्रकट हुए हैं वे देवों के स्वामी प्रसन्न हो । सर्वात्मन् ! इस चतुर्भुज रूप को हटा दिये, ताकि महादेव कस आपका अवतार न समझ पाए ॥१६ १७॥

श्रीभगवान् बोले—देवि ! पहिले जो तुमने पुत्र की अमिताया से मेरी स्तुति की थी वह प्रायना आज तुम्हारी सफल हुई । मैं तुम्हारे उदर से उत्पन्न हुआ ॥१८॥

ध्यास बोले—मुनिवर ! इतना बहुर भगवान् चुप हो गए । वसुदेव भी रात्रि में ही उन्हें लेकर बाहर निकल गये । वसुदेव के जाते समय वहाँ के रक्षकगण तथा मथुरा के द्वारपाल योगनिद्रा से मोहित हो गये । रात में बरसते हुए बादलों के जल से बचाने के लिये गयनाग ने वसुदेव को अपनी फणाओं से पूषाया बल दिया । अत्यन्त गम्भीर तथा अनेक आवर्तों (मैंबर) से व्याप्त यमुना विष्णु को बोले हुए वसुदेव की जघा बराबर

कसस्य परमाशय त्रैपाशयतास्तदे । नदादीगोपवृद्धाश्च यमुनाया ददर्श स ॥२३॥
 तस्मिन्काले यशोदापि मोहिता योयनिद्वया । तामव कन्या मुनय प्रासूत मोहिते जन ॥२४॥
 वसुदेवोऽपि त्रिजस्य दाशपश्य दारिकाम । यशोदाशयन तूष्णमाजगामामितद्युति ॥२५॥
 ददश च विबुधधा सा यशोदा जातमाभजम् । नीलोपलदलश्याम ततोऽत्यर्थं मुद ययौ ॥२६॥
 आदाय वसुदेवोऽपि दारिका निजमन्दिरम् । दवकीशयन न्यस्य यथापूर्वमतिष्ठत ॥२७॥
 ततो बालध्वनि श्रुत्वा रक्षिण सहस्रोत्थिता । कसमावदयामासुर्देवकीप्रसव द्विजा ॥२८॥
 कसस्तूष्णमुपत्यना ततो जग्राह बालिकाम । मुञ्च मुञ्चति दवक्याऽऽसन्नकण्ठ निवारित ॥२९॥
 चिक्षप च शिलापृष्ठं सा क्षिप्ता विपति स्थितिम् । अवाप रूपं च महत्सायुधाष्टमहामुजम् ॥
 प्रजहास तथैवोच्च कस च रुषिताऽद्भवीत ॥३०॥

योगमायोवाच

किं मयाऽऽक्षिप्तया कस जातो यस्तथा हनिष्यति । सवस्वभूतो दयानामासीन्मृत्यु पुरा स त ॥
 तवत्सप्रधार्याऽऽशु क्रियता हितमारमन् ॥३१॥

बहने लगी। कस क ब बकाने के लिये आये नद आदि बड़ गोपों को वसुदेव ने वही यमना के तट पर देखा। उस समय यशोदा म मागनिद्रा से मोहित हो गई थी। मनिवद । मोहित व्यक्तियों के सामने यशोदा ने उसी कस को प्रसव किया था। अपरिमित वान्ति वाले वसुदेव म बक को यशोदा की शय्या पर मुला कर और कन्या क लेकर ग घन से चल पड़। जगने पर यश दा म ल वरुल के समान श्यामवर्ण पुत्र को देखकर आनन्द विमोद हो गई। वसुदेव म अपने घर में बालिका को देवका का शय्या पर रखकर पहिले की तरह अवस्थित हो गये। द्विजगण तदनन्तर बाल ध्वनि सुनकर रक्षकगण सहसा उठ पड़ और जाकर कस से देवकी के प्रसव का समाचार सुनने लगे। तब कस ने श घ देवकी के पास जाकर कन्या को पकड़ लिया। देवकी छोड़ दो छोड़ दो बहूती ही रह गई। पर उसने बालिका को शिलापृष्ठ पर गटक दिया। हाथ से छूटने ही वह आकाश में उड़ गई और महान अस्व गत्तों से सुसज्जित अष्टभजाधारिण वन गई। अट्टहास करके उसने त्र्योपवर्क कस से कहा। १९ ३०॥

योगमाया बोली—कस ! मझ पटक कर तुम्हें क्या मिता ? जो देवों के सवस्वभूत देव तुम्हें मोत के घट उतरने के तो पहिले ही जन्म ले चके। यह जान कर तुम शीघ्र अपने कयाण के लिये उपाय करो ॥३१॥

व्यास उवाच

इष्टुवत्या प्रपयो देवो दिव्यस्त्रगन्धभूषणा । पश्यतो भोजराजस्य स्तुता सिद्धं विहायसा ॥३२॥

इति श्रीमहापुराणे आदि ब्राह्मे श्रीकृष्णोत्पत्तिकथानिरूपण नाम
द्व्यंशोत्पत्तिकशततमोऽध्याय ॥१८२॥

अथ द्व्यंशोत्पत्तिकशततमोऽध्याय

कसविचारकथनम्

व्यास उवाच

कसस्तवथोद्विग्नमना प्राह सर्वमहासुरान् । प्रलम्बकशिप्रमुखानाहूयासुरपुंगवान् ॥१॥

कस उवाच

हे प्रलम्ब महाबाहो कशिधनुक पूतन । अरिष्टार्द्यस्तया चार्यं श्रूयता वचन मम ॥२॥
मा हतुममरंपरम् कृत किल दुरात्मभि । मदीयतापिताचोराग्र स्वतागणयाम्यहम् ॥३॥

व्यास बोल—इतना कह कर स्थिर माला गंध तथा आभूषणा से युक्त एवम सिद्धगणों से स्तुत भगवता/ कस क देखते ह देखते आकाश म विग्न हो गई ॥३२॥

श्रीब्रह्ममहापुराण म श्रीकृष्णोत्पत्तिकथानिरूपण नामक
एक सौ वयासवा अध्याय समाप्त ॥१८२॥

अध्याय १८३

कस का अपना विचार कहना

व्यास न कहा—एतदुपरान्त कस उद्विग्न मन से प्रलम्ब नेगी आदि महासुरा को बुला कर कहने लगा । १॥

कस बोला—महाभक्तिमाली प्रलम्ब । नेगी । धनुक । पूतने । तुम लोग तथा अरिष्ट आदि दूसरे सब मा मेरे वचन का सुन । दुष्ट दवताओं ने मेरे मारने का उपाय किया है । परंतु मेरे प्रताप से सतप्त इन दवता का मैं परवाह नहीं करता । दत्तधष्टो । कन्या का वात से मुझ आश्रय होता है और उन यन्त्राल देव

१म ०म । परावाक्तेन देवैश्च प्ररितो वासवानुज । म० । २स ०रितैर्वीरा मन्वेनान्मूढा० ।

३म ०म । अमरेषु भगवता वा० ।

आश्चर्यं कन्यया चोषतं जायते दैत्यपुंगवाः। हास्यं मे जायते वीरास्तेषु यत्नपरेष्वपि ॥४॥
 तथाऽपि खलु दुष्टानां तेषामप्यधिकं मया। अपकाराय दैत्येन्द्रा यतनीर्यं दुरात्मनाम् ॥५॥
 उत्पन्नश्चापि मृत्युर्मे भूतभक्ष्यभयतप्रभुः। इत्येतद्बालिका प्राह देवकीगर्भसंभवा ॥६॥
 तस्माद्बालेषु परमो यत्नः कार्यो महीतले। यत्रोद्विक्तं बलं बाले स हन्तव्यः प्रयत्नतः ॥७॥

व्यास उवाच

इत्याज्ञाप्यासुरान्कसं प्रविश्याऽऽत्मगृहं ततः। उवाच च स देवकीमविरोधतः ॥८॥

कंस उवाच

युवयोर्घातिता गर्भा वृथैवंते मयाऽधुना। कोऽप्यन्य एव नाशाय बालो मम समुद्गतः ॥९॥
 तवल परितापेन नूनं यद्वायिनो हि ते। अर्भका युवयोः को वा आयुषोऽन्ते न हन्यते ॥१०॥

व्यास उवाच

इत्याश्वास्य विमुच्यैव कसस्तीं परितोष्य च। अन्तर्गृहं द्विजश्रेष्ठाः प्रविशेश पुनः स्वकम् ॥११॥

इति श्रीमहापुराणे आदिबाले श्रीकृष्णबालचरिते कसविचारकथनं नाम

अथशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१८३॥

राशो के प्रति हँसो भी आती है। तो भी उन दुरात्मा देवों का अब अधिक अपवार हमें करना है। दैत्यपुंगवों !
 इसने लिये कठिबद्ध हो जाओ। देवकी के गर्भ से उत्पन्न कुमारिका ने बतलाया है कि भूत, भविष्य तथा वर्तमान
 के असीश्वर ने तुम्हें मारने के लिये जन्म ले लिया है। इसलिये पृथ्वी-तल के बालकों पर हमें खास करने
 ध्यान रखना है। जिस बालक में बल का आधिक्य दीख पड़े, उसे यत्नपूर्वक मार दिया जाय ॥२-७॥

व्यास ने कहा—असुरों को इस प्रकार आज्ञा देकर कस अपने घर में प्रविष्ट हुआ और बिना विरोध के
 वसुदेव तथा देवकी से कहने लगा ॥८॥

कंस बोला—तुम दोनों के बालकों को मैंने ध्वंस ही मार रक्ता। मेरे नाश के लिये कोई दूसरा ही बालक
 उत्पन्न हुआ है। इसलिये अब तुम सोच मत करो। जो तुम्हारे भाग्य में था, वह होकर रहा। आद्य के अन्त हो
 जाने पर कौन नहीं मरता है ? ॥९-१०॥

व्यास बोले—द्विजवर ! इस प्रकार उन दोनों को सान्त्वना दे बन्धन से मुक्त करके वस ने पुनः अपने
 अन्तर्गृह में प्रवेश किया ॥११॥

श्रीमहापुराण में श्रीकृष्ण के बाल-चरित्र वर्णन प्रसंग में कस विचार-कथन नामक एक सौ
 तिरासीवाँ अध्याय समाप्त ॥१८३॥

अथ चतुरशीत्यधिकशततमोऽध्यायः

श्रीकृष्णबालचरितवर्णनम्

व्यास उवाच

विमुक्तो वसुदेवोऽपि नन्दस्य शकटं गतः । प्रहृष्टं दृष्टवान्मन्त्रं पुत्रो जातो ममेति च ॥१॥
वसुदेशोऽपि तं प्राह दिष्ट्या दिष्टयेति सादरम् । वार्धकेऽपि समुत्पन्नस्तनयोऽयं तवाधुना ॥२॥
दत्तो हि वापिक सर्वो भवद्भिर्भूषते करः । यदर्थमागतस्तस्मान्नान्न स्येयं महात्मना ॥३॥
यदर्थमागतं कार्यं तन्निष्पन्नं किमास्यते । भवद्भिर्गन्ध्यता नन्दं तच्छीघ्रं निजगोकुलम् ॥४॥
ममापि बालकस्तत्र रोहिणीप्रसवो हि यः । स रत्नगीयो भवता यथाऽयं तनयो निजः ॥५॥

व्यास उवाच

इत्पुक्ता प्रयुगौपा नन्दगोपपुरोगमाः । शकटारोपितैर्भाण्डैः करं दत्त्वा महाबला ॥६॥
घसता गोकुले सेवां पूतना बालघातिनी । सुप्तं कृष्णमुपादाय रात्रौ च प्रबद्धी स्तनम् ॥७॥
यस्मै यस्मै स्तनं रात्रौ पूतना सप्रयच्छति । तस्य तस्य क्षणेनाङ्गं बालकस्योपहन्यत ॥८॥
कृष्णस्तस्या स्तनं गाढं करान्ध्यामतिपीडितम् । गृहीत्वा प्राणसहितं पपौ त्रोधसमन्वित ॥९॥

अध्याय १८४

श्रीकृष्ण का बाल-चरित्र वर्णन

व्यास बोले—विमुक्त होने पर वसुदेव भी नन्द की गाड़ी के पास पहुँचे । उन्होंने पुत्रोत्सव से नन्द को प्रसन्न देखकर आदरपूर्वक कहा—आनन्द की बात है कि बूढ़ापे में भी आपको अब पुत्र हो गया । आप लोगा में राजा को वापिक कर अदा कर दिया । जिसके लिये आप लोग महा आये थे वह कार्य सम्पन्न हो गया । नन्द ! अब आप यहाँ न ठहरे । शीघ्र अपने गाबुल चले जाय । मेरा भी बालक जो रोहिणी से उत्पन्न हुआ है वहीं पर है । उसकी भी आप अपने पुत्र की तरह रक्षा करेंगे ॥१-५॥

व्यास बोले—यह बड़े जान पर नन्द आदि महाबलवान् गाप कर देकर बतनों का गाबियो पर लाद कर प्रस्थित हो गये । गोकुल में उन लोगों के रहते ही रात्रि में बालघातिनी पूतना ने साये कृष्ण को उठाकर उनका मुँह में अपना स्तन दे दिया । रात्रि में जिस जिस बालक के मुँह में पूतना अपना स्तन डालता थी उस उस बालक की तत्काल मृत्यु हो जाती थी । कृष्ण ने क्रोध से उसने स्तन को दोनों हाथों से बसकर दबा दिया और प्राण सहित

सा विमुक्तमहारावा विच्छिन्नस्नायुबन्धना । पपात पूतना भूमी म्रियमाणाऽतिभोषणा ॥१०॥
 तन्नादश्रुतिसत्रासाद्विबुद्धास्ते व्रजौकस । ददृशु पूतनोत्सङ्गे कृष्ण ता च निपातिताम् ॥११॥
 आदाय कृष्ण सन्नस्ता यशोदा च ततो द्विजा । गोपुच्छग्रामणाद्यंश्च बालदोषमपाकरोत् ॥१२॥
 गोपुरीषमुपादाय मन्दगोपोऽपि मस्तके । कृष्णस्य प्रददौ रक्षा कुर्वन्निदमुदरयत् ॥१३॥

‘नन्दगोप उवाच

रक्षते त्वामशोषाणा भूताना प्रभवो हरि । यस्य नाभिसमुद्भूतात्पञ्चजादभवज्जगत् ॥१४॥
 येन दष्टाप्रविधृता धारयत्यवनी जगत् । वराहरूपधृग्देव स त्वा रक्षतु केशव ॥१५॥
 गृह्य स जठर विष्णुर्जंघ्या पादौ जनार्दन । वामनो रक्षतु सदा भवन्त य क्षणादभूत् ॥१६॥
 त्रिविक्रमत्रमाक्रान्तत्रैलोक्यस्फुरदामुध । शिरस्ते पातु गोविन्द कण्ठ रक्षतु केशव ॥१७॥
 मुखबाहू प्रबाहू च मन सर्वेन्द्रियाणि च । रक्षत्वव्याहृतं श्वर्यस्तव नारायणोऽयम् ॥१८॥
 त्वा दिक्षु पातु वंकुण्ठो विदिक्षु मधुसूदन । हृयोक्तेऽशोऽम्बरे भूमौ रक्षतु त्वा महीधर ॥१९॥

ध्यास उवाच

एव कृतस्वस्त्ययनो नन्दगोपेन बालक । शायित शकटस्याधो बालपयङ्गिकातले ॥२०॥
 ते च गोपा महद्बृष्टवा पूतनाया कलेश्वरम् । मृताया परम त्रास विस्मय च तदा ययु ॥२१॥

स्तन को पी लिया । स्तन को छोड़ देने पर अतिमयकरी पूतना के समस्त स्नायु-बन्धन छिन्न मिट हो गये और वह महान्गव्य करती हुई निष्प्राण होकर पृथ्वी पर गिर पड़ी । उसने शब्द से समस्त व्रजवासी जाग पड़ और बड़ मममीत हुए । उन्होंने गिरी हुई पूतना तथा उसकी गोद में कृष्ण को देखा । द्विजगण । सब अत्यन्त त्रस्त यशोदा ने कृष्ण को उठाकर उनके ऊपर गो-पुच्छ घुमाने आदि के द्वारा बाल-दोष का निराकरण किया । नन्दगोप ने भी कृष्ण के मस्तक पर गोबर रखकर यह बहते हुए रक्षा की ॥१३॥

नन्द गोप बोले—समस्त मूलों में आदिकारण हरि तुम्हारी रक्षा करें । जिनकी नाभि से उत्पन्न कमल से जगत् की सृष्टि हुई और जिन्होंने वराह रूप बनाकर दष्टा के अग्रभाग से पृथ्वी का उद्धार कर सत्कार कर धारण किया वे केशव तुम्हारी रक्षा कर । केशव तुम्हारे गुप्त स्थान की विष्णु जपाओं की और जनार्दन परो की रक्षा करें । वे वामन तुम्हारी सदा रक्षा करें जा एक ही क्षण में तीन पगों में तीनों लोक को आत्रात कर चमकते हुए अस्त्र शस्त्रों से गुसज्जित हो गये थे । गोविन्द तुम्हारे शिर की केशव कण्ठ की और अप्रतिहत शक्ति वाले अविनाश नारायण मुख बाहू मन तथा समस्त इन्द्रियों की रक्षा करें । दिशाओं में वंकुण्ठ तथा विदिशाओं में मधुसूदन तुम्हारी रक्षा करें । आकाश में हृषीकेश और भूमि पर महीधर तुम्हारी रक्षा करें ॥१४ १५॥

ध्यास बोले—इस प्रकार रक्षा करके नन्दगोप ने बालक को साड़ी के नीचे बच्चों के पंथ पर मुला दिया । मृतक पूतना के महावाय को देखकर शोषण परम त्रस्त तथा विस्मित हुए । किसी समय शकट के नीचे सोये मधु

कदाचिच्छकटस्याध शयानो मधुसूदन । विक्षेप चरणावूर्ध्व स्तनार्थो प्रहरोद च ॥२२॥
 तस्य पादप्रहारेण शकट परिवर्तितम् । विध्वस्तभाण्डकुम्भ तद्विपरीत पपात च ॥२३॥
 ततो हाहाकृत सर्वो गोपगोपीजनो द्विज । आजगाम तदा ज्ञात्वा बालमुत्तानशायिनम् ॥२४॥
 गोपा केनति जगदु शकट परिवर्तितम् । तत्रैव बालका प्रोचुर्बालेनानेन पातितम् ॥२५॥
 रुदता दृष्टमस्माभि पादविक्षेपताडितम् । शकट परिवृत्त च नैतदन्यस्य चेष्टितम् ॥२६॥
 तत पुनरतो वाऽऽसन्नगोपा विस्मितचेतस । नन्दगोपोऽपि जग्राह बालमत्यतविस्मित ॥२७॥
 यशोदा विस्मयाहृष्टा भग्नभाण्डकपालकम् । शकट चाचंयामास दधिपुष्पफलाक्षतं ॥२८॥
 गगंश्च गोकुले तत्र वसुदेवप्रचोदितः । प्रच्छन्न एव गोपाना सत्कारमकरोत्तयो ॥२९॥
 एतेषु च राममित्याह कृष्ण चैव तयाऽपरम् । गर्गो भक्तिमता श्रद्धो नाम कुर्वन्महामति ॥३०॥
 अत्पेनैव हि कालेन विज्ञातो तो महाबली । घृष्टजानुकरी विप्रा बभूवतुस्भावपि ॥३१॥
 करोऽभस्मद्विधाङ्गौ भ्रममाणावितस्तत । न निवारयितु शक्ता यशोदा तो न रोहिणी ॥३२॥
 गोवाटमध्ये क्रीडन्तो घटसवाटगतौ पुन । तदहर्जातगोवत्सपुच्छाकर्षणतत्परी ॥३३॥
 यदा यशोदा तो बालावेकस्यानचराबुभौ । शशाक नो निवारयितु रीडन्तावतिचञ्चलौ ॥३४॥
 बाम्ना बद्ध्वा तदा मध्ये निबबन्ध उलूखले । कृष्णमविलष्टकर्मणमाह चैवमभविता ॥३५॥

सूदन ने अपने पैरो को ऊपर फेंका और स्तन पीने के लिये रोना आरम्भ किया । उनके चरण प्रहार से गाड़ी उलट गई और समीपस्थ घड़े को फोड़ती हुई विपरीत दिशा में गिर पड़ी । द्विजगण । तब समस्त गोप-गोपियाँ हाय हाय करती हुई वहाँ दौड़ आयी । उत्तान सोते हुए बालक को देखकर गोपों ने पूछा— किसने गाड़ी को उलट दिया ? वहाँ जो लड़के थे उन्होंने बतलाया— इसी शिशु ने गाड़ी को गिराया । हमने देखा कि इसने रोते हुए अपने पैरो से गाड़ी म ठोकर मारी जिससे गाड़ी उलट गई । यह दूसरे का काम नहीं है । यह सुनकर पुन गोपगण अत्यन्त आश्चर्य-चकित हुए । नन्दगोप ने अति विस्मित होकर बालक को उठा लिया । यशोदा आश्चर्य में पड़कर वहीं फूल फल तथा अक्षतों से फूटे घड़े के कपाल को तथा गाड़ी को पूजने लगी । वसुदेव की प्रेरणा से गय ने गोकुल में गोपों से छिप कर ही दोनों बालकों का सत्कार किया । विद्वानों में श्रद्ध गय ने बड़ का नाम राम और छोटे का कृष्ण रखा ॥२० २९॥ विप्रवृन्द । थोड़ा ही दिनों में दोनों महाबली कुमार घुटने तथा हाथों के बल चलने लगे । कहीं के भस्म से लिप्टाग्न होकर भगण करते हुए दोनों बालकों को यशोदा और रोहिणी निवारण नहीं कर पाती थी । वे दोनों कौओं के स्थान से क्रीडा करते-करते बछड़ों के स्थान पर चले जाते और नवप्रसूत गायों के बछड़ों की पूछ पकड़ कर खींचने लगते थे । जब यशोदा साथ साथ खेलते हुए दोनों अत्यन्त चञ्चल बालकों का निवारण नहीं कर सकी तब उन्होंने सहज ही में वर्मों को सम्पन्न करने वाले कृष्ण को ओखली के बीच से लगाकर रस्सी से बाँध दिया और क्रोध से कहा ॥३० ३५॥

१क ह । २ग ०गामायददूशे बा० । ३क ०ट प्रार्थयामास तदा सा वेपती मुहुः । ग० । ख ०ट वप्रयामास दूद सप्तसि दाक्षिण । ग० । ४क ०प्रणीदि० । ५ क ०प्ररूपो मुनयः स० । ६ग सेहे । ७ख ०ह चैव प्रहृषि० ।

यशोदोवाच

यदि शक्तोऽसि गच्छ त्वमतित्वञ्चलचेष्टित

॥३६॥

ध्यास उवाच

इत्युक्त्वा च निज कर्म सा चकार^१ कुटुम्बिनी । व्यघ्रायामय तस्यां स कर्ममाण उलूखलम् ॥३७॥
 यमलाजुनयोर्मध्ये जगाम कमलेशण । कर्मता वृक्षयोर्मध्ये तिर्यगेवमूलखलम् ॥३८॥
 भग्नवत्सुज्ञशाखाप्रो तेन तो यमलाजुनी । तत^२ कटकटाशब्दसमाकर्णनवातर ॥३९॥
 आजगाम व्रजजनो ददशे च महाद्रुमौ । भग्नस्वन्धो निपतितो भग्नशाखौ महीतले ॥४०॥
 ददश चाल्पदन्तस्य स्मितहास च बालकम् । तयोमध्यगत बद्ध दाम्ना गाढ तयोदरे ॥४१॥
 ततश्च दामोदरता स ययौ दामव्ययनात् । गोपवृद्धास्ततः सर्वे नन्दगोपपुरोगमा ॥४२॥
 मन्त्रयामासु रुद्रिणा महोत्पातातिभोरव^३ । स्थानेनेह न न कार्यं व्रजानोऽयन्महावनम् ॥४३॥
 उत्पाता बहुवो ह्यपत्र दृश्यन्ते नाशहेतवः । पूतनाया विनाशश्च शकटस्य विपर्यय ॥४४॥
 बिना वातादिदोषेण द्रुमयो पतन तथा । वृन्दावनमित स्थानात्तस्माद्गच्छाम मा चिरम् ॥४५॥
 यावद्भूमिमहोत्पातबोधो^४ नाभिभवेद्वज्रम् । इति कृत्वा मति सर्वे गमने ते व्रजौकस ॥४६॥
 ऊचुः स्व स्व कुल शोभ्र गम्यता मा विलम्ब्यताम् । तत क्षणेन प्रययुः शकटैर्गोघर्नस्तथा ॥४७॥

यशोदा बोली—नटखट^१ अब यदि तुझमें शक्ति है तो जा ॥३६॥

ध्यास बोले—इतना बहुर कुटुम्ब वाली यशोदा अपने बाम में लग गई। जब वह काय में व्यस्त हो गई तब ओखली को खींचते हुए कमललोचन कृष्ण यमलाजुन (नाम से प्रसिद्ध दो वृक्षों) के मध्य में चले गये और वृक्षों के बीच ही ओखली को तिरछी करके खींचने लगे। इससे उत्तुंग शाखा वाले दोनों यमलाजुन टूट कर गिर पड़े। तदनन्तर उनकी धड़के की आवाज से स्रस्त व्रजवासा बहूँ आये। उन्होंने देखा कि टूटे स्कन्ध तथा टूटी शाखा वाले दोनों वृक्ष भूमि पर गिरे पड़े हैं और अल्प दावों से युक्त मुख वाला बालक मुसकर रहा है जो उन्होंने वृक्षों के बीच में सदा है और जिसके पेट में रस्सी से ओखली बँधी हुई है। उसी दिन से रस्सी से बँध जाने के कारण भगवान् दामोदर कहलाने लगे ॥३७-४१॥ नन्दगोप आदि बृद्ध गोप महावन उत्पात के डर से उद्विग्न होकर परस्पर परामर्श करने लगे—इस स्थान में अब हमें नहीं रहना चाहिये। दूसरे महावन में चलना चाहिए। क्योंकि बहुतसे नाग के कारण रूप उपद्रव यहाँ देखे जाते हैं। पूतना का विनाश वादी का उलटना बिना आधी-सूफान के ही वृक्षों का गिरना आदि उपद्रव हो रहे हैं। इसलिये अब तक बड़-बड़ भौतिक उत्पात अब पर आक्रमण न कर उससे पहिले शस्त्र ही हम लोग इस स्थान से वृन्दावन को बल दें। इस प्रकार समस्त व्रजवासी जाने के लिए एकमत्य करके अपने अपने परिवार से बहने लगे—श्रीधर सँवार हो जाओ विलम्ब मत करो। तत्पश्चात् क्षण में ही व्रजवासी शकट

१ख नितम्बिनी। २ख तयो। ३ख ०पमुक्यास्त०। ४ख ०तिगङ्गिकता। स्वा०। ५ख दो मगवचोदमवः। ६०।

यूथशो वत्सपालीश्च कालयन्तो व्रजौकसः^१ । सर्वाविषयनिर्धूत क्षणमात्रेण तत्तदा ॥४८॥
 काककाकीसमाकीर्णं व्रजस्थानमभूद् द्विजा । वृन्दावन भगवता कृष्णेनाविलष्टकर्मणा ॥४९॥
 शुभेन मनसा ध्यात^२ गवा वृद्धिमभीप्सता । ततस्तथातिरुक्षेऽपि घर्मकाले द्विजोत्तमा ॥५०॥
 प्रावृट्काल इवामुच्च नवदाष्प समन्ततः । स समावासित सर्वो व्रजो वृन्दावने ततः ॥५१॥
 शकटोवाटपथेनचन्द्रार्धाकारसंस्थितिः । वत्सबालो च सर्वतो रामदामोदरो ततः ॥५२॥
 ततः स्थितौ तौ गोष्ठे चेतुर्बालिलया । बहिषनकृतापीडो^३ वन्यपुष्पावतसर्को ॥५३॥
 गोपवेणुकृतातोद्यपनवाद्यकृतस्वनौ । काकपक्षधरो बालो कुमारविव पावकी ॥५४॥
 हसन्तो च रमन्ती च चेतुस्तन्महद्वनम् । यवचिद्धसन्तावन्योन्य शोडमानौ तथा परं ॥५५॥
 गोपपुत्रं सम वत्साश्चारयन्ती विचेरतु । कालेन गच्छता तौ तु सप्तवर्षा बभूवतु ॥५६॥
 सर्वस्य जगत पालो वत्सपालो महाव्रजे । प्रावृट्कालस्ततोऽप्रीव मेघोघस्थगिताम्बर ॥५७॥
 बभूव धारिधाराभिरेक्य कुयन्दिशामिव । प्ररुद्धनवपुष्पादघा^४ शक्रगोपवृता मही ॥५८॥
 यथा मारकते वाऽऽतोत्पदमरागविभूयिता । ऊहुरुन्मार्गंगामीनि निम्नगाभ्रांसि सर्वतः ॥५९॥

गोपन बछड आदि अपनी समस्त बीजों को लेकर विदा हो गये। द्विजगण^१ क्षणमात्र में व्रज मनुष्यविहीन हो गया। वहा कौए चारों ओर छा गये। महाव्रजशाली मगवान् कृष्ण ने गौओं की वृद्धि करने का इच्छा से गुन मन से वृन्दावन का ध्यान किया। द्विजधण्डो^२ तदनंतर अत्यंत रुस ग्रीष्म ऋतु में भी वहाँ वर्षा ऋतु का तरह नयी घास-धीय चारों तरफ उग गई। समस्त व्रजवासी वृन्दावन में सुखपूर्वक निवास करने लगे ॥४२-५१॥ गाड़ी के भाग पयन्त उन लोगों का आवास अथवा द्वाकार-सा प्रतीत होता था। राम और कृष्ण बछड़ों को चराने जाते थे। गोष्ठ में रहकर वे दोनों बाल-लीला करते थे। वे मयूर-पक्ष के खिरोमूषण तथा बाय पुष्पों के कणमूषण बनाते बामुद्री बजाते चरवाहे की लाठी रखते और बालों का सिंघार करते थे। इस प्रकार दोनों जन्म के समान तेजस्व कुमार हैंसते खेलते और महावन में विचरण करते थे। वही परस्पर हैंसते कही दूसरों के साथ हैंसते और कही गोप पुत्रों के साथ बछड़ों को चराते हुए विचरण करते थे। इस तरह समय बीतते हुए उन्हें सात वर्ष हो गये। जो समस्त संसार के पालक हैं वे महाव्रज में बछड़ों के पालक बने। तदनन्तर वर्षा ऋतु का आगमन हुआ। आकाश में बादल छा गये। माना वे जलपात्र से दिशाओं को एक करने लगे हो। नवीन पुष्पों तथा द्रव्यगो से आच्छादित होकर पृथ्वी इस तरह सुशोभित हो रही थी मानो यह मरकतमणि तथा पद्मरागमणि से विभूषित हो गई हो। नदा का जल रस प्रकार उत्पन्न होकर बहने लगा जैसे दुष्ट जनों का मन नया घन पाकर (उत्पन्नगामी हो जाता है) तब

१क ख ०स। द्रव्याव०। २क ख व्याप्त। ३य ०त्र स्थानाश्लुतौ। ४क गुञ्जाहारविभूयितो।

५क ०ताम्यासी नानावाद्यविशारदो। का०। ६क प्रभूतन०। ७क ख ०वशापदया।

मनासि दुर्विनीताना प्राप्य लक्ष्मीं नवामिव । विकाले च यथाकाम व्रजमेत्य महाबली ॥
गोपे समानं सहितौ चिक्रीडातेऽमराविव ॥६०॥

इति श्रीमहापुराण आदिब्राह्मे बालचरिते वृन्दावनप्रवेशवर्णनं नाम
चतुरशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१८४॥

अथ पञ्चाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः

कालीयदमनारयानम्

ध्यास उवाच

एकदा तु विना राम कृष्णो वृन्दावनं गयो । विचचार वृतो गोपैर्वन्यपुष्पत्रगुञ्जवत् ॥१॥
स जगानाय कालिं दौ लोलकल्लोलशालिनीम् । तीरसलग्नफनौघैर्हंसस्तीमिव सर्वतः ॥२॥
तस्या चातिमहाभीम विषाग्निकण्डूदितम् । हृद् कालीयनागस्य ददर्शातिविभीषिणम् ॥३॥
विषाग्निना विसरता दग्धतीरमहातरुम् । वाताहतान्बुविर्क्षिपत्पशं दग्धविहङ्गमम् ॥४॥

बोनी महाबली बालक स्वेच्छा से असमय में ही व्रज में आकर समवयस्क गोपों के साथ देवों की तरह खेलने लग ॥५९ ६०॥

श्री ब्रह्ममहापुराण में बाल चरित्र-वर्णन प्रसंग में वृन्दावनप्रवेश निरूपण
नामक एवं सो चौरासवाँ अध्याय समाप्त ॥१८४॥

अध्याय १८५

कालीय दमन का आख्यान

ध्यास बोले—एक समय विना राम के ही कृष्ण वृन्दावन चले गये और वन्य पुष्पों की उ० बल माला पहन कर गोपों के साथ विचरण करने लगे । वे चञ्चल तरंगों से व्याप्त यमुना नदी के तट पर गये जो मानों तीर सलग्न फन-समूहों से हास्य करती-सी दीखती थी । उसमें उन्होंने अत्यन्त भयंकर तथा विषाग्नि के बणों से दूषित कालीय नाग वा हृद (कुण्ड) देखा जो विषाग्नि से तट पर नै बसों की जला रहा था । उसके ऊपर से उड़ने

तमतीव महारौद्र मृत्युवक्त्रमिवत्परम् । विलोक्य चिन्तयामास भगवान्मधुसूदन ॥५॥
अस्मिन्वसति दुष्टात्मा कालीयोऽसौ विषायुध । यो मया निर्जितस्त्यक्त्वा दुष्टो नट पयोनिधौ ॥६॥
तेनेय दूषिता सर्वा यमुना सागरगमा । न नरैर्गोधनैर्वाऽपि तृषार्तेषु पभुज्यते ॥७॥
तदस्य नागराजस्य कर्तव्यो निग्रहो मया । नित्यश्रस्ता सुख येन चरेयुर्ग्रजवास्ति ॥८॥
एतदयं नृलोकेऽस्मिन्नवतारो मया कृत । यदेवामृत्ययस्थाना कार्या शास्तिर्दुरात्मनाम् ॥९॥
तदेतन्नातिदूरस्य कदम्बमुरुशाखिनम् । अधिरुहधोत्पत्तिप्यामि हृदेऽस्मिञ्जीवनाशिन ॥१०॥

व्यास उवाच

इत्य विचिन्त्य बद्ध्वा च गाढ परिकर तत । निपपात ह्रदे तत्र सर्पराजस्य वेगत ॥११॥
तेनापि पतता तत्र क्षोभित स महाह्रद । अत्यर्द्धरज्जाताश्च ताश्चासिञ्चन्महोद्धान् ॥१२॥
तेऽहिदुष्टविषज्वालातप्तान्मृतपत्नोक्षिता । जज्वलु पादपा सद्यो ज्वालाव्याप्तदिगन्तरा ॥१३॥
आस्फोटयामास तदा कृष्णो नागह्रदं भुजं । तच्छब्दध्वनाच्चाय नागराजोऽभ्युपगमत् ॥१४॥
आताम्रनयन कौपाद्विषज्वालाकुलं फणं । मृतो महाविषं चाप्यरुणैरनिलाशनै ॥१५॥
नागपत्न्यश्च शतशो हारिहरोपशोभिता । प्रकम्पिततनूक्षोपचलकुण्डलास्तय ॥१६॥

बाले पक्षियों को कहीं वामु के झोंके से जल के छोटे पड़ जाते तो उनकी मृत्यु हो जाती। उस महामयानक तथा मृत्यु-मुक्ष के समान ह्रद को देखकर भगवान् मधुसूदन सोचने लगे—इसमें वह दुष्टात्मा तथा विषरूप अस्त्र बाला कालीय नाग रहता है जो दुष्ट मेरे द्वारा जीतकर छोड़ दिया जाने पर समुद्र में भाग गया था। उसने समुद्रगामिन। यमुना को दूषित कर दिया है। मनुष्य या गोपन प्यासे होने पर भी इसका जल नहीं पीते हैं। इसलिये मुझ इस नाग राज को दण्ड देना चाहिये ताकि नित्य डरने वाले वज्रवासी मुखपूर्वक विवरण कर सकें। इसीलिये तो मैंने मृत्यु णीक में अवतार भी लिया है ताकि उत्पणामी दुरात्माओं को दण्ड दे सकूँ। विपुल शाखाओं से युक्त यह कदम्ब वृक्ष भी कोई दूर नहीं है। इसी पर चढ़कर जीवनाशी कालीय के ह्रद में कूद पड़ूँगा ॥११॥

व्यास बोले—एसा विचार कर वे दृढता से काष्ठ बाँधकर सपरान्त के ह्रद में वेग से कूद पड़। उनके गिरने से ह्रद में अत्यन्त क्षोभ पैदा हुआ जिससे अत्यन्त दूरस्थ वृक्षों के ऊपर भी जल के छोटे पड़ गये। दुष्ट विष रूपी ज्वाला से सतप्त जल ने पढ़ने से वृक्षों में सद्य इतनी ज्वाला धक्क जड़ी कि चारों ओर ज्वाला ही ज्वाला दाखने लगी। तब वृष्ण ने अपनी भुजाओं से नाग ह्रद में ताल ठोका या आघात किया। वह शब्द सुनते ही नागराज दौड़ पड़ा। क्रोध से आँख लाल कर विष की ज्वाला से व्याप्त फणाओं से कालीय ने कृष्ण को आ-आदत कर दिया। लाल रंग वाले तथा महाविष वाले दूसरे सर्पों ने भी कृष्ण को घेर लिया। वहाँ सैकड़ों मनोहर हारों से सुशोभित नाग-मलिन्याँ थी जिनके शरीर-वस्त्र होने से चञ्चल कुण्डलों की छटा देखते ही बनती थी। तब फणाओं

१ख सागराङ्गना। २क सपरान्तस्य। ३ख नित्यावस्था मु०। ४ख सान्ति०। ५ख स।
६ख ०हरे भुजम्। त०। ७ख ०ता। यमु प्र०। ८ख ०मित्यास्तत्र च०। ९ख ०लजातय।

ततः प्रवेष्टितः सर्पः स कृष्णे भोगबन्धनैः । ददंशुश्चापि ते कृष्णं विपञ्चालाविलम्बुलैः ॥१७॥
त तत्र पतितं दृष्ट्वा नागभोगनिपीडितम् । गोपा यजमुपागत्य चक्रुः शोकलालसाः ॥१८॥

गोपा ऊचुः

एष कृष्णो गतो मोहमग्नौ वै कालिये हृदे । भक्ष्यते सर्पराजेन तदागच्छत मा चिरम् ॥१९॥

व्यास उवाच

एतच्छ्रुत्वा ततो गोपा वज्रपातोपमं वचः । गोप्यश्च त्वरिता जग्मुर्गशोदाप्रमुखाः हृदम् ॥२०॥
हा हा वज्रसाविति जनो गोपीनामतिविह्वलः । यशोदया समं आगतो द्रुतः प्रस्खलितो धयी ॥२१॥
नन्दगोपश्च गोपाश्च रामश्चाद्भुतविक्रमः । त्वरितं यमुना जग्मुः कृष्णदर्शनलालसाः ॥२२॥
ददंशुश्चापि ते तत्र सर्पराजवशागतम् । निष्प्रयत्नं कृतं कृष्णं सर्पभोगेन वेष्टितम् ॥२३॥
नन्दगोपश्च निश्चेष्टः पश्यन्पुत्रमुखं भृशम् । यशोदा च महाभागा बभूव मुनिसत्तमाः ॥२४॥
गोप्यस्त्वग्न्या वदत्पद्मं ददंशुः शोककातराः । प्रोचुश्च केशवं प्रीत्या भयकातरगद्गदम् ॥२५॥
सर्वा यशोदया सार्धं विशाभोऽत्र महाहृदे । नागराजस्य नो गन्तुमस्माकं युज्यते व्रजे ॥२६॥
दिवस को विना सूर्यं विना चन्द्रेण का निशा । विना दुग्धेन वा गावो विना कृष्णेन को व्रजः ॥
विना कृता न यास्यामः कृष्णेनानेन गोकुलम् ॥२७॥

ये कृष्ण को वेष्टित कर सर्पगण विष की धवाला से व्याप्त मुखों से उन्हे काटने भी लगे । नाग की कृपाओं से पीडित कृष्ण को देखकर भीन शोकविह्वल हो व्रज आकर आनोश करने लगे ॥११-१८॥

गोप बोले—कालीय नाग के हृद मे कृष्ण मोहवश चले गये । सर्पराज उन्हे खा रहा है । इसलिये जल्दी आओ ॥१९॥

व्यास बोले—तदुपरांत वज्रपात के सदृश ध्वन गुनकर गोप तथा यशोदा आदि गोपियाँ रोडते हैं। यहाँ गईं। गोपियाँ अत्यन्त शोकातुर होकर रोने लगी—हाय ! हाय , कहीं कृष्ण पडे है ।।' नन्दगोप यशोदा के साथ गिरते-मडते जल्दी जल्दी वहाँ पहुँचे । अन्य गोप तथा अद्भुत पराक्रमी राम भी कृष्ण-दर्शन की लालसा, से मीन हो यमुना के किनारे पहुँच गए । उन लोगों ने देखा—'कृष्ण सर्पराज के घस मे आ गये हैं । अपनी पत्नीओं से वेष्टित करके उसने कृष्ण को निश्चेष्ट बना दिया है ।' पुत्र के मुख को देखते ही नन्दगोप भी अत्यन्त निश्चेष्ट हो गये । मुनिश्रेष्ठों । यशोदा की भी वही दशा हुई । अन्य गोपियाँ शोक से कातर हो रोने लगी और नय से विह्वल होकर कृष्ण से प्रेमपूर्वक कहने लगी—'यशोदा सहित हम सब नागराज के महा हृद मे प्रवेश करती है । यो व्रज मे जाना हम लोगों के लिये उचित नहीं । जैसे विना सूर्य के दिन, विना चन्द्रमा के रात और विना दूध के गाव कुत्तिन है, उसी तरह विना कृष्ण के व्रज निम्न है । विना कृष्ण के हम गोकुल नहीं जायेंगे ॥२०-२७॥

व्यास उवाच

इति गोपीवचः श्रुत्वा रोहिण्यो महाबलः । उवाच गोपान्विधुरान्विलोक्य स्तिमितेक्षणः ॥२८॥
नन्द च दीनमत्ययं न्यस्तदृष्टि सुतानने । मूर्च्छाकुलां यशोदां च कृष्णमाहात्म्यसंज्ञया ॥२९॥

वलराम उवाच

किमयं देवदेवेश भावोऽयं मानुषस्त्वया । व्यज्यते स्वं तमात्मानं किमन्यं त्व न वेत्ति यत् ॥३०॥
त्वमस्य जगते^१ नाभिः सुराणामेव चाऽऽश्रयः । कर्ताऽपिहर्ता पाता च त्रैलोक्य^२ त्वं त्रयोमयः ॥३१॥
अत्रावतीर्णयोः कृष्ण गोपा एव हि बान्धवाः । गोप्यश्च सीदतः कस्मात्त्वं बन्धून्तमुपेक्षसे ॥३२॥
दर्शितो मानुषो भावो दर्शित बालचेष्टितम् । तदयं दम्पता कृष्ण दुरात्मा दशनायुध^३ ॥३३॥

व्यास उवाच

इति संस्मारितः कृष्णः स्मितभिन्नोऽष्टसंपुटः । आस्फाल्य मोचयामास स्वं देह भोगबन्धनात् ॥३४॥
आनाम्य घापि हस्ताभ्यामुभ्याम् । मध्यमं फणम् । आरुह्य^४ भुग्नशिरसः प्रनततो^५ हविक्रमः ॥३५॥
प्रणाः फणेऽभवस्तस्य कृष्णस्याऽऽश्रयिकुट्टनैः । यत्रोन्नतिं च कुरुते ननामास्य ततः शिरः ॥३६॥
मूर्च्छा^६मुपाययौ भ्रान्त्या नागः कृष्णस्य कुट्टनैः । दण्डपातनिपातेन ब्रह्मणो^७ रुधिरं बहु ॥३७॥
तं निर्भुग्नशिरोप्रोब्रमास्यप्रव्रतशोणितम् । विलोक्य शरणं जग्मुस्तत्परयो मधुसूदनम् ॥३८॥

व्यास बोले—गोपियो वा बचन सुनकर महाबलशाली तथा निनिमेष नेत्रा से देखने वाले राम ने दुर्लभ गोपो को, पुत्र के मुख पर दृष्टि गड़ाये अत्यन्त दीन नन्द को तथा मूर्च्छा से आकुल यशोदा को देखकर कृष्ण के माहात्म्य की ओर सकेत करके कहा ॥२८-२९॥

वलराम बोले—देवदेवेश ! क्या आप यह मनुष्य-भाव प्रवृत्त कर रहे हैं ? क्या आप अपनी उस दूसरी आत्मा को नहीं जानते हैं। आप त्रैलोक्य के नर्ता, हर्ता तथा रक्षक हैं। आप वेदमय हैं। कृष्ण ! यहाँ अवतीर्ण हुए हम दोनों ने गोप-गोपियो ही बन्धु हैं। संदिग्ध होते हुए बन्धुओं की क्यों आप उपेक्षा कर रहे हैं ? आपने मनुष्य-भाव दिखला दिया। बाल चेष्टायें भी दिखला दी। कृष्ण ! अब इस दुरात्मा सर्प का दमन कीजिए ॥३०-३३॥

व्यास बोले—इस प्रकार स्मरण दिलाने पर मुस्कराते हुए कृष्ण ने फणाओं को तोड़कर तद्रूप बन्धन से अपने शरीर को मुक्त कर दिया। (दोनों हाथों से बीच की फणाओं को झुका कर टूटे हुए शिर पर चढ़कर महाप्ररागर्भी कृष्ण नाचने लगे।) कृष्ण के चरणप्रहार से सर्प की फणा भ घाव हो गये। जहाँ वह शिर उगाता वही पर मगवान कुचल देते। कृष्ण के कुचलने से नाग अत्यन्त मूर्च्छित हो गया। दण्डप्रहार से यह शोणित वमन करने लगा। भग्न-शिर तथा ग्रीवा से युक्त और शोणित से लय-लय काकीय को देखकर नाग-पत्नियाँ मधुसूदन की शरण में गईं ॥३४-३८॥

१. त ०क्षणम् । न० । २. क ०तो योनिश्चरणामपि सथ० । ३. क. त्रैलोक्ये । ४. त्व गं आस्फोट्य ।

५. त्व ग ०ह्य मज्ज० । ६. त्व रेचकं ।

नागपत्न्य ऊचुः

जातोऽसि देवदेवेश सर्वेशस्त्वमनुत्तम । पर ज्योतिरचिन्त्य यत्तदंशः परमेश्वरः ॥३९॥
न समर्थाः सुर स्तोतु यमनग्यभव प्रभुम् । स्वरूपवर्णनं तस्य कथं योषित्करिष्यति ॥४०॥
यस्याखिलमहोष्णमजलाग्निपवनात्मकम् । ब्रह्माण्डमल्पकांशांशः स्तोष्यामस्तं कथं वयम् ॥४१॥
ततः कुरु जगत्स्वामिन् प्रसादमवसीदत । प्राणांस्त्यजति नागोऽयं भर्तृभिक्षा प्रदीयताम् ॥४२॥

ध्यास उवाच

इत्युक्ते ताभिराश्वस्य क्लान्तदेहोऽपि पन्नगः । प्रसीद देवदेवेति प्राह वाच्यं शनैः शनैः ॥४३॥

कालीय उवाच

तथाष्टगुणमंश्वर्यं नाथ स्वाभाविक परम् । निरस्तातिशयं यस्य तस्य स्तोष्यामि किञ्चहम् ॥४४॥
एव परस्व परस्याऽऽद्यः पर त्व तत्परात्मकम् । परस्मात्परमो यत्त्वं तस्य स्तोष्यामि किञ्चहम् ॥४५॥
यथाऽहं भवता सृष्टो जात्या रूपेण चेश्वरः । स्वभावेन च संपुष्टस्तथेदं चेष्टितं मया ॥४६॥
यद्यन्यथा प्रयतय देवदेय ततो मयि । न्याय्यो दण्डनिपातस्ते तवैव वचनं यथा ॥४७॥
तथाऽपि य जगत्स्वामी दण्डं पातितवान्मयि । स सोढोऽयं वरो दण्डस्त्वत्तो नाग्योऽस्तु मे वरः ॥४८॥
हतवीर्यो हतविद्यो दमितोऽहं त्वयाऽप्युत । जीवितं दीयतामेकमाज्ञापय करोमि हिम् ॥४९॥

नाग-पत्न्या बोलीं—देवदेवेश ! हमने आपको पहिचान लिया । आप सबसे स्वामी तथा सबसे उत्तम हैं । परम ज्योति तथा अचिन्त्य रूप जो हैं, वे भी आप ही के अंश हैं । आप परमेश्वर हैं । जिन स्वतः उत्पन्न होने वाले प्रभु की स्तुति करने में देवता भी समर्थ नहीं होते हैं, उनका स्वरूप-वर्णन मला रत्नी कैसे करेगी ? पृथ्वी, आकाश, जल अग्नि तथा वायु रूप अखिल ब्रह्माण्ड जिनके अला अरा का अंश है, उनही स्तुति हम कैसे करेगी ? इसलिये, जगन्नाथ ! हम दुनियाँ पर कृपा कीजिये । मान प्राणत्याग कर रहा है । स्वामि भिक्षा हमें दीजिये ॥३९-४२॥

ध्यास बोले—स्तुति के बाद यद्यपि सर्व का घरीर तिरछ था, तो भी उमने घीरे-घीरे कहा—‘देवाधिदेव ! प्रमन्न हाइये ।’ ॥४३॥

कालीय बोला—नाथ ! आठ प्रकार के ऐश्वर्य आपने स्वामित्व गुण हैं । आप अनिर्वचनीय हैं । आपकी मैं क्या स्तुति करूँगा ? आपने जैंगी जाति, जैसा रूप और जैसा स्वभाव देकर मेरी सृष्टि की । वैसा ही मैंने व्यवहार किया । देवदेव ! यदि मैं कुरु व्यवहार करूँ तो आप मुझे उधिन दण्ड दें । यह तो आपका कपन ही है । अन्यवासी ने मुझे आ दण्ड दिया, उगता मैंने मार दिया । मेरे लिये आपसे बड़कर दूसरा कौन थोड़ा है ? अश्वत्थ ! आपने मेरा दमन किया । मैं हताश तथा हतविद्य हो गया । आप मुझे केवल जीवन प्रदान करें । आज्ञा दीजिये कि मैं क्या करूँ ॥४४-४९॥

१४ ७४ वृत्ता नाथ प्रमा० ३ २४ ०प्रसीद न मयः । प्रमा० ३ २५ ०को वाच्यता तस्य । ७५

श्रीभगवानुवाच

नात्र स्येष त्वया सर्पं कदाचिन्नमुनाजले । 'सभृत्यपरिवारस्त्व समुद्रसलिलं व्रज ॥५०॥
मत्पदानि च ते सर्पं दृष्ट्वा मूर्धनि सागरे । गरुडं पत्रगारिपुस्तवयि न प्रहरिष्यति ॥५१॥

व्यास उवाच

इत्युक्त्वा सर्पराजान् मुमोच भगवान्हरिः । प्रणम्य सोऽपि कृष्णाय जगाम पयसानिधिम ॥५२॥
पश्यतां सर्वभूतानां सभृत्यापत्यवान्धव । समस्तभार्यासहितं परित्यज्य स्वकं हृदम् ॥५३॥
गन् सर्वे परिष्वज्य मृतं पुनरिवोऽऽगतम् । गोपा मूर्धनि गोविन्दं सिपिचुर्नेत्रजंलं ॥५४॥
कृष्णमविलम्ब्य कर्मणि मन्ये विस्मितचेतसः । तुष्टुवुर्मुदिता गोपा दृष्ट्वा शिवजला नदीम् ॥५५॥
गोपमानोऽथ गोपीभिश्चरितं दृष्ट्वाश्चेष्टितं । सस्तूयमानो गोपालं कृष्णो व्रजमुपागमत ॥५६॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे बालचरिते कालीयदमननिरूपणं नाम
पञ्चाशोऽध्यायः ॥१८५॥

श्री भगवान् बोले—सर्प ! तুম यहा यमुना जल मे कम्हा भी मत ठहरो । अपने नौकर तथा परिवार सहित तूम समुद्र के जल में चले जाओ । सर्प ! समुद्र में तुम्हारे मस्तक पर मेरे पदचिह्नों को देखकर गरुड तुम्हारे अंग पर प्रहार नहीं करेगा ॥५० ५१॥

व्यास बोले—सर्पराज से इतना कहकर भगवान् हरि ने उसे छोड़ दिया । वह भी कृष्ण को प्रणाम कर समस्त भूता के देखते ही देखते अपने नौकर वच्चे वधु तथा अस्त्र पत्थरों समेत अपने हृद को छोड़कर समुद्र में चला गया । सर्प के चले जाने पर गोपी ने भरवर पुन लौट आये की तरह कृष्ण का आलिंगन कर नेत्रजल से उनके मस्तक को मिगो दिया । दूसरे गोप नदी के जल को निदुष्ट देखकर आश्चर्यचकित हो हृष से महापराक्रमी कृष्ण की स्तुति करने लगे । गोपियाँ उनके सुन्दर चरित्र का गान करने लगी और गोपाल उनकी प्रशंसा करने लगे । इस प्रकार कृष्ण व्रज में आये ॥५२ ५६॥

श्रीब्रह्ममहापुराण मे बालचरित्रवर्णन प्रसंग मे कालीयदमन निरूपण नामक
एक सौ पचासीवाँ अध्याय समाप्त ॥१८५॥

अथ पडशीत्यधिकशततमोऽध्यायः

धेनुकवधाख्यानम्

व्यास उवाच

गाः पालयन्ती च पुनः सहितौ^१ रामकेशवौ । अममाणौ बने तत्र रम्यं तालवनं गतौ ॥१॥
तच्च तालवनं नित्यं धेनुको नाम दानवः । नृगोमांसकृताहारः सदाऽध्यास्ते खराकृतिः ॥२॥
तत्र तालवनं रम्यं फलसम्पत्समन्वितम् । दृष्ट्वा स्पृहान्विता गोपाः फलदानेऽद्भुतवचः ॥३॥

गोपा ऊचुः

हे राम हे कृष्ण सदा धेनुकेनैव रक्षयते । भूप्रदेशो^२ यतस्तस्मात्पवनानोमानि सन्ति वै ॥४॥
फलानि पश्य तालानां गन्धमोदयुतानि वै । धयमेतान्यभीप्तामः पात्यन्तां यदि रोचते ॥५॥
इति गोपकुमाराणां श्रुत्वा संकर्षणो वचः । कृष्णश्च पातयामास भुवि तालफलानि वै ॥६॥
तालानां पतता शब्दमाकर्ण्य तुररादततः । आजगाम स दुष्टात्मा कोपाद्वैतेयगर्भवः ॥७॥
पञ्चधामुभाभ्यां स तदा पश्चिमान्यां च तं बली । जघानोरसि तान्यां च स च तैवाप्यगूह्यत ॥८॥
गूहीत्वा ग्रामणेनैव चाम्यरे गतजीवितम् । तस्मिन्नेव प्रविक्षेप वेगेन तृणराजनि ॥९॥

अध्याय १८६

धेनुक नामक असुर का वध

व्यास बोले—पुनः राम और कृष्ण एक साथ वन में गौओं को चराते हुए इधर-उधर घूमते हुए एवं रमणीय तालवन में प्रविष्ट हो गए । उस तालवन का रक्षक धेनुक नामक दानव था । जो मनुष्यों तथा गौओं के मांस का भोजन करता था । फलस्वरूप उस रमणीय तालवन को देखकर गोपों को फल लेने की इच्छा हुई । तब उन्होंने यह वचन कहा ॥१-३॥

गोप बोले—हे राम ! हे कृष्ण ! इस भूमि-प्रदेश की रक्षा धेनुक करता है । इसलिए ये फल लोगी से परित्यक्त हैं । तुम इन सुगन्धित तालपत्रों को देखो । हमें ये चाहिए । यदि तुम्हें पसन्द आए तो इन्हें तोड़ दो । गोप-नात्या का यह वचन सुनकर बलराम तथा कृष्ण ने भूमि पर तालपत्रों को गिरा दिया । गिरते हुए पला का शब्द सुनकर गर्दमरुपधारी दुष्टात्मा दैत्य जोष से वहाँ आ पहुँचा । उस बलवान् ने अपने गिछले दोनों पैरों से राम की छाती पर मारा, पर उन्होंने उसकी टाँघें धक्क कर धुमाते धुमाते आकाश में हो उसे निष्प्राण कर दिया और उसी क्षण वेस स तालपत्रों ने ऊपर फेंक दिया । ताल के ऊपर से गिरते हुए उस गधे ने अनेकों पत्तों

ततः कलान्यनेकानि तालायात्रिपतन्वरः । पृथिव्यां पातयामास महाबातोऽम्बुदानिव ॥१०॥
 अन्यानप्यस्य धं ज्ञातीनागतान्दैत्यगर्दभान् । कृष्णदिचक्षेप तालाग्रे बलभद्रश्च लीलया ॥११॥
 क्षणेनालंकृता पृथ्वी पर्वस्तालफलस्तदा । दैत्यगर्दभदेहैश्च मुनयः शुशुभेऽधिकम् ॥१२॥
 ततो गावो निरावाघास्तस्मिस्तालवने द्विजः । नवशर्पं सुखं चैर्यत्र भुक्तमभूत्पुरा ॥१३॥
 इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे बालचरिते धेनुकवधवर्णनं नाम
 षडशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१८६॥

अथ सप्ताशीत्यधिकशततमोऽध्यायः

रामकृष्णकृतबहुविधलीलावर्णनम्

व्यास उवाच

तस्मिन्नासन्नदैतेये सानुजे विनिपातिते । सर्वगोपालगोपीनां रम्यं तालवनं बभौ ॥१॥
 ततस्ती जातहर्षो तु वसुदेवसुतादुभौ । शुशुभाते महारामानौ बालशृङ्गाविवर्धभौ ॥२॥

को उसी तरह पृथ्वी पर गिरा दिया, जैसे आँवी बादलों को छित-मिस कर देती है। वहाँ आये हुए गर्दभरूपधारी अन्य दैत्यों को भी, जो धेनुक के भाई-बन्धु थे, कृष्ण तथा बलभद्र ने सहज ही ने तालवृक्ष के ऊपर फेंक दिया। मुनिगण ! क्षण भर में पृथ्वी पर्व तालफलों से अलङ्कृत हो गई तथा गर्दभरूपधारी दैत्यों की देहों से वह विशेष रूप से घोरित हुई। द्विजवृन्द ! तब से उस तालवन में गायें निर्वाणपूर्वक नवीन घासों को सुख से चरने लगी, जहाँ वे पहले खाती थी ॥४-१३॥

श्रीब्रह्मपुराण में बालचरित-कथन प्रसंग में धेनुक-वर्णन नामक
 एक सौ छिपासीवाँ अध्याय समाप्त ॥१८६॥

अध्याय १८७

राम और कृष्ण की अनेक लीलाओं का वर्णन

व्यास बोले—बभ्रुवर्गसहित उस राक्षस के विनष्ट हो जाने पर समस्त गोप-गोपियों के लिये तालवन रम-णीय स्थान बन गया। तदनन्तर वसुदेव के दोनों महात्मा पुत्र हर्ष से उसी तरह मुगोमित हुए, जैसे नये सींग

चारयन्ती च गा दूरे व्याहरन्ती च नामभिः । नियोगपाशस्कन्धौ तो वनमालाविभूषिता ॥३॥
 सुवर्णज्जनचूर्णम्या तदा तो भूषिताम्बरी । महेन्द्रायुधसंकाशी श्वेतकृष्णाविवाम्बुदौ ॥४॥
 चेरतुलोकसिद्धाभिः श्रीडाभिरितरेतरम् । समस्तलोकनाथानां नाथभूतो भुवं गतो ॥५॥
 मनुष्यधर्माभिरतो मानयन्तौ मनुष्यताम् । तज्जातिगुणयुक्ताभिः श्रीडाभिश्चेरतुर्वनम् ॥६॥
 ततस्त्वान्दोलिकाभिश्च निपुणैश्च महाबली । व्यायामं चक्रतुस्तत्र क्षेपणीयैस्तथाऽश्मभिः ॥७॥
 तल्लिप्सुरसुरस्तत्र उभयो रममाणयोः । आजगाम प्रलम्बाहयो गोपवेपतिरोहितः ॥८॥
 सोऽवगाहत निःशङ्कं तेषां मध्यममानुषः । मानुषं रूपमास्थाय प्रलम्बो दानवोत्तमः ॥९॥
 तयोश्छिद्धान्तरप्रेप्सुरतिशोघममन्यत । कृष्णं ततो रोहिणेयं हन्तुं चक्रे मनोरथम् ॥१०॥
 हरिणा श्रीडन नाम बालश्रीडनकं ततः । प्रक्रीडितास्तु ते सर्वे द्वौ द्वौ युगपदुत्पन्न ॥११॥
 श्रीदाम्ना सह गोविन्दः प्रलम्बेन तया बलः । गोपालरपरैश्चान्ये गोपालाः सह मुप्लुब्धः ॥१२॥
 श्रीदामान् ततः कृष्णः प्रलम्बं रोहिणोमुतः । जितवान्कृष्णपक्षीयैर्गोपैरन्यैः पराजिताः ॥१३॥
 ते बाहयन्तस्त्वन्योन्यं भाण्डोरस्कन्धमेरय यैः । पुनर्निवृत्तास्ते सर्वे ये ये तत्र पराजिताः ॥१४॥
 संकर्षणं तु स्कन्धेन शोघमनुक्षिप्य दानवः । न तस्यो प्रजगामैव सचन्द्र इव वारिदः ॥१५॥
 अशक्तो बहने तस्य संरम्भाद्दानवोत्तमः । वयुधे सुमहाकायः प्रावृषीव बलाहकः ॥१६॥

बाले बछड़े । वनमाला से विभूषित तथा कंधे पर हाँके की रस्ती रखे हुए कृष्ण एवम् राम गौओं को दूर ले जाकर चराते थे तथा उनके नामा से पुकारते थे । सुवर्ण तथा अञ्जनचूर्ण से भूषित बत्तखारी, (अर्थात् पीताम्बर और मीनाम्बर), इन्द्रधनुष के तुल्य और बादल की तरह श्वेत एवम् कृष्ण दोनों माई परस्पर लोक-प्रसिद्ध श्रीदात्रा से खेल करते थे । समस्त लोकनाथों के नाथ तथा महाबली कृष्ण-राम पृथ्वी पर आकर मनुष्य-धर्म-निरत होकर मनुष्यत्व का परिचय देने हुए मनुष्य जाति के अनुरूप ही बन से क्रीडा करते थे । वे हिंडोले पर झूलते, मुट्ट बरते और फेंकने योग्य पत्थर के टुकड़ा से व्यायाम करते थे । (एक दिन) खेल करते हुए कृष्ण और राम से वदना लेने की इच्छा से प्रलम्ब नामक असुर गोप-वेश में अपने को छिपाकर वहाँ उपस्थित हुआ । वह उन दाना का छिद्धान्वेषण करने लगा । अत्यन्त शीघ्र ही उसे अवसर मी मालूम हो गया । तब वह कृष्ण और बलमद्र को भार देने की वामना करने लगा ॥१-१०॥ हरि ने बालश्रीडन नामक खेल आरम्भ किया । उगमे दो-दो वाल्व एक ही बार दौड़ने लगे । श्रीदामा के साथ गोविन्द, प्रलम्ब के साथ बजराम और अन्य गोपालों के साथ दूसरे गागात्र दौड़ने लगे । कृष्ण ने श्रीदामा को और बलमद्र ने प्रलम्ब को जीत लिया । कृष्ण ने पक्ष के गोपाला न अन्य गागात्रों को जीत लिया । पराजित पक्ष वाले विजयी पक्ष वालों को कन्ये पर दोनर नियत बटवूरा तब तक जाते थे और पुन लौट आते थे । उग समय देव बजराम को पूर्वी से कन्ये पर उड़ाने उमी तरह भागने लगा जैसे चन्द्रमा के साथ बादल । बलमद्र ने भार के कारण जब वह बहने करने में अगम्य हो गया तब उगने वर्षाचक्रु म बादल की तरह बहने सरीर को बहुत दिसुन कर दिया । जले पर्वत

सकपणस्तु त दृष्ट्वा दग्धशैलोपमाकृतिम् । स्रग्दामलम्बाभरण मुकुटाटोपमस्तकम् ॥१७॥
रोद्र शकटचक्राक्ष 'पादग्यासचलत्क्षितिम् । ह्रियमाणस्तत कृष्णमिद वचनमब्रवीत् ॥१८॥

बलराम उवाच

कृष्ण कृष्ण ह्रिये त्वेव पर्वतोदग्रमूर्तिना । केनापि पश्य दैत्येन गोपालच्छद्मरूपिणा ॥१९॥
यदत्र साप्रत कार्यं मया मधुनिषूदन । तत्कथ्यता प्रयात्येव दुरात्माऽतित्वरान्वित ॥२०॥

व्यास उवाच

तमाह राम गोविन्द स्मितभिन्नोष्ठसपुट । महात्मा रीहिण्यस्य बलवीर्यप्रमाणयित् ॥२१॥

कृष्ण उवाच

किमय मानुषो भावो व्यक्तमेवायलम्ब्यते । सर्वात्मन्सर्वगुह्याना गुह्याद्गुह्यात्मना त्वया ॥२२॥
स्मरान्नोपजगदीश कारण कारणाग्रज । अतमानमेक तद्वच्च जगत्पैकाण्वे च य ॥२३॥
भवानह च विश्वात्मन्नेकमेव हि कारणम् । जगतोऽस्य जगत्पर्यं भवेनाऽऽवा व्यवस्थितौ ॥२४॥
तत्समर्प्यताममेयात्मस्तवयाऽऽत्मा जहि दानवम् । मानुष्यमेवमालम्ब्य बधूना क्रियता हितम् ॥२५॥

व्यास उवाच

इति सस्मारितो विप्रा कृष्णेन सुमहार्तना । विहस्य पीडयामास प्रलम्ब बलवान्बल ॥२६॥
मुष्टिना चाहनन्मूर्ध्नि कोपसरवतलोचन । तेन चास्य प्रहारेण बहिर्यति विलोचने ॥२७॥

के समान आकृति वाले पुष्पमाता उदा अभयपणा से यक्त मस्तक पर मुकुट धारण किये भयकर गाड़ी के चक्र के समान नेत्र वाले और पाद प्रक्षय से पृष्ठा को कँपाने वाले उस दानव को देखकर अपहृत किय जाते हुए बलराम ने दृष्ट्वा से कहा ॥११ १८॥

बलराम बोले—कृष्ण ! कृष्ण ! गोपालवेशधारी किसी पर्वताकार दानव के द्वारा मैं अपहृत किया जा रहा हूँ । मधुसूदन ! इस समय मुझ क्या करना चाहिये ? कहिये । यह दुष्टमा तेजी से भाग रहा है ॥१९ २०॥
व्यास बोले—यन्मदं क पराक्रम की इच्छा को जानने वाले महात्मा गोविन्द ने मुस्करा कर उनसे कहा ॥२१॥

कृष्ण बोले—अखिलान् । गुप्त से भी गुप्त को समझने वाले ! आप क्या इस स्पष्ट मनष्य भाव का अवलम्बन कर रहे हैं ? सम्पूर्ण जगत् के स्वामी ! एक आत्मा का स्मरण कीजिये । किसी निमित्त से अग्रज होने वाले वारण का स्मरण कीजिये । विश्वात्मन । जगत् के एकाण्व होने में भी हम और आप एक ही कारण हैं । सत्कार के लिये ही हम दोनों भिन्नतया अवस्थित होते हैं । अग्रमेयामन् ! इसलिये आत्मा का स्मरण कीजिये । दानव का नाश कीजिये । इस प्रकार मनुष्य का अवलम्बन कर धधुधो का हित कीजिये ॥२२ २५॥

व्यास बोले—विप्रवृन्द ! महात्मा कृष्ण के इस प्रकार स्मरण दिलाने पर बलवान् बलराम हँसकर प्रलम्ब को पीडा देने लगे । क्रोध से आँखें लाल कर उन्होंने मुट्ठी से उसके मस्तक पर दे मारा । इस प्रहार से उसकी आँखें

स निष्कासितमस्तिष्को मूखाच्छोणितमुद्धमन् । निपपात महीपृष्ठे दैत्यवर्योममार च ॥२८॥
 प्रलम्ब निहतं दृष्ट्वा बलेनाद्भुतकर्मणा । प्रहृष्टास्तुष्टुवर्गोपा साधु साध्विति चान्नुवन् ॥२९॥
 सस्तूयमानो 'रामस्तु गोपदैत्ये निपातिते । प्रलम्बे सह कृष्णेन पुनर्गोकुलमाययो ॥३०॥

व्यास उवाच

तयोर्विहरतोरेव रामकेशवयोर्ब्रजे । प्रावृड्व्यतीता विकसत्सरोजा चाभवच्छरत् ॥३१॥
 विमलाम्बरनक्षत्रे काले चाभ्यागते ब्रजम् । 'ददर्शेन्द्रोत्सवारम्भप्रवृत्तान्ब्रजवासिन ॥३२॥
 कृष्णस्तानुत्सुकान्दृष्ट्वा गोपानुत्सवलालसान् । कौतूहलादिदं वाक्यं प्राह वृद्धान्महामति ॥३३॥

कृष्ण उवाच

कोऽयं शक्रमहो नाम येन घो हर्षं आगतः । प्राह तं नन्दगोपश्च पृच्छन्तमतिसादरम् ॥३४॥

नन्द उवाच

मेघाना 'पयसामोशो देवराज दातकतु । येन संचोदिता मेघा वर्षत्यम्बुमयं रसम् ॥३५॥
 तद्वृष्टिजनित सस्य वषमग्ये च देहिन । यतंयामोपभुञ्जानास्तर्पयामश्च देवताः ॥३६॥
 क्षीरवत्य इमा गावो घृतसवत्पदच निवृत्ताः । तेन संवर्धितः सस्यै 'पुष्टास्तुष्टा भवन्ति यै ॥३७॥
 नासस्या नामृणा भूमिर्न बुभुक्षादितो जन । दृश्यते यत्र दृश्यन्ते दृष्टिमन्तो दग्धाहवाः ॥३८॥

निष्कल गई शिर टूट गया और मुख से शोणित बहने लगा । इस प्रकार बहु दानव श्रेष्ठ पृथ्वी पर गिर कर मर गया ।
 अद्भुत-कर्म-कारी बलमद्व द्वारा प्रलम्ब के मारे जाने पर गोपगण 'टीक टीक' कहते हुए उनकी प्रशंसा करने लगे ।
 प्रलम्ब ने गिर जाने पर गोपो द्वारा स्तुत होते हुए धलराम कृष्ण के साथ पुन गोकुल आ गये ॥२९-३०॥

व्यास बोले—ब्रज में राम और केशव ने इस प्रकार विहार करते हुए वर्षा ऋतु धीत गई और शरद ऋतु प्रारम्भ हुआ निर्मल आकाश में तारे सुशोभित होने लगे । ब्रजवासी इन्द्रपूजा की तैयारी में लग गये । उत्सव मनाने की लालसा से दौड़-धूप करते हुए गोपो को देखकर महाबुद्धिमान् कृष्ण ने उत्सुकतापूर्वक वृद्धो से पूछा ॥३१-३३॥

कृष्ण बोले—इन्द्र कौन है जिससे आप लोगो को इतना हर्ष हो रहा है । इस प्रकार पूछते हुए कृष्ण ने नन्दगोप अत्यन्त आदरपूर्वक कहने लगे ॥३४॥

नन्द बोले—देवराज इन्द्र मेघा के स्वामी हैं । उन्हीं की प्रेरणा से मेघ जन्मय रग वृष्टि करते हैं । उसी वृष्टि से अन्न पैदा होता है, जिसे खाकर हम तथा दूसरे प्राणी जीते हैं और देवताओं को तृप्त करते हैं । उसी अन्न से गाँव हृष्ट-मुष्ट होकर द्रव्य तथा बछड़े देती हैं । जहाँ मेघ बरसते हैं, वहाँ भूमि सस्यसम्पन्न होती है, ऋण नहीं लेने पड़ते और प्राणी भूसा नहीं मरते हैं । बादल पृथ्वी पर के जल को सूर्य की किरणों द्वारा खींच लेते हैं और

भौममेतत्पयो गोभिर्धत्ते सूर्यस्य वारिदः । पर्जन्यः सर्वलोकस्य भवाय भुवि धर्पति ॥३९॥
तस्मात्प्रावृषि राजानः शक्रं सर्वे मुदान्विताः । महे सुरेशमर्धन्ति वयमन्ये च देहिनः ॥४०॥

व्यास उवाच

नन्दगोपस्य वचनं श्रुत्वेत्यं शक्रपूजने । कोपाय त्रिदशेन्द्रस्य प्राह दामोदरस्तदा ॥४१॥

कृष्ण उवाच

न वयं कृषिकर्तारो वणिज्याजीविनो न च । गावोऽस्मद्देवता तात वयं वनचरा यतः ॥४२॥
आन्वीक्षिकी त्रयी ।वार्ता दण्डनोतिस्तथाऽपरा । विद्याचतुष्टयं त्वेतादृशमत्र शृणुष्व मे ॥४३॥
कृषिर्वणिज्या तद्वच्च तृतीयं पशुपालनम् । विद्या ह्येता (पा) महाभागा वार्ता वृत्तित्रयाश्च या ॥४४॥
कर्मकाणां कृषिवृत्तिः पण्यं तु पणजीविनाम् । अस्माकं गाः परा वृत्तिवार्ता भेदैरियं त्रिभिः ॥४५॥
विद्यया यो यया युक्तस्तस्य सा देवता महत् । सर्वे पूज्याऽर्चनाया च सर्वे तस्योपकारिका ॥४६॥
योज्यस्याः फलमश्नन्त्वं पूजयत्यपरा नरः । इह च प्रेत्य चंवासी तात माऽऽप्नोति शोभनम् ॥४७॥
पूज्यन्ता प्रथिताः सीमाः सीमान्तं च पुनर्वनम् । वनान्ता गिरयः सर्वे सा चास्माकं परा गतिः ॥४८॥
गिरियज्ञस्तव्यं तस्माद्गोयज्ञश्च प्रत्ययन्ताम् । किमस्माकं महेन्द्रेण गावः शैलाश्च देवताः ॥४९॥
मन्त्रयज्ञपरा विप्राः सीरयज्ञश्च कर्मकाः । गिरिगोयज्ञशैलाश्च वयमद्रिवनाश्रयाः ॥५०॥

समस्त लोक के हित के लिये पुन भूमि पर वरस देते हैं । इसलिये बर्षाश्रुतु मे (?) समस्त नृपगण, हम तथा दूसरे लोग भी हर्षपूर्वक इन्द्र की पूजा करते हैं ॥३५-४०॥

व्यास बोले—शक्रपूजन के बारे मे नन्द का यह वचन सुनकर इन्द्र को कुपित करने के लिये दामोदर ने कहा ॥४१॥

कृष्ण बोले—तात । हम न तो कृषक हैं न व्यापारी ही । हम लोग वनवासी हैं । इसलिए गोएँ हमारी देवता हैं । चार प्रकार की विद्याएँ होती हैं—आन्वीक्षिकी, त्रयी, वार्ता और दण्डनीति । इनमे वार्ता के विषय मे मुझसे मुनिमे । दृषि, व्यापार और पशुपालन—इन्ही तीन वृत्तियों के आश्रित वार्ता मानी जाती है । किसानों की वृत्ति खेती, धनियों की व्यापार और हमारी पशुपालन वृत्ति ही कही गई है । वार्ता के यही तीन भेद हैं । जो जिस विद्या से युक्त है, उसका वही देवता है । उसी की पूजा करनी चाहिए । वही उसका उपकार करता है । तात । जो मनुष्य पल प्राप्त करता है किसी देवता से और पूजा करता है किसी और की, उसका इस लोक मे तथा परलोक मे कल्याण नहीं होता है । हम लोग विस्तृत सीमाओं की पूजा करें, फिर सीमान्त वन की और वनान्त पर्वतों की पूजा करें । समस्त पर्वत ही हमारे रक्षक हैं । इसलिये पर्वतयज्ञ और गोयज्ञ हम लोग आरम्भ करें । हमे इन्द्र से क्या प्रयोजन ? हमारे देवता तो गायें तथा पर्वत हैं । ब्राह्मणों को मन्त्रयज्ञ, किसानों को हलयज्ञ और हम वनवासियों को पर्वतों तथा

तस्माद्गोवर्धनः शैलो भवद्भिविविधाहर्षः । अर्च्यतां पूज्यतां मेध्यं पशुं हत्वा विधानतः ॥५१॥
 सर्वघोषस्य संदोहा गृहचन्तं माविचार्यताम् । भोज्यन्तातेन वै विप्रास्तथाऽन्ये चापि वाञ्छकाः ॥५२॥
 तमर्चितं कृते होमे भोजितेषु द्विजातिषु । शरत्पुष्पकृतापीडाः परिगच्छन्तु गोगणाः ॥५३॥
 एतन्मम मतं गोपाः संप्रीत्या क्रियते यदि । ततः कृता भवेत्प्रीतिर्गवामद्रेस्तथा मम ॥५४॥

व्यास उवाच

इति तस्य वचः श्रुत्वा नन्दाद्यास्ते यजौकसः । प्रीत्युत्फुल्लमुखा विप्राः साधु साध्वित्ययान्नुवन् ॥५५॥
 शोभनं ते मत वत्स तदेतद्भूयतोदितम् । तत्करिष्याम्यहं सर्वं गिरियज्ञः प्रवर्त्यताम् ॥५६॥
 तथा च कृतवन्तस्ते गिरियज्ञं यजौकसः । दधिपायसमंसाद्यैर्ददुः शैलर्वाल ततः ॥५७॥
 द्विजाश्च भोजयामासुः शतशोऽप्य सहस्रशः । गावः शैलं ततश्चक्रुरर्चितास्तं प्रदक्षिणम् ॥५८॥
 धूपभाश्चाभिनन्दन्तः सतोषा जलदा इव । गिरिमूर्धनि गोविन्दः शैलोऽहमिति मूर्तिमान् ॥५९॥
 युभुजेऽग्रे बहुविध गोपवर्षाहतं द्विजाः । कृष्णस्तेनैव रूपेण गोपैः सह गिरेः शिरः ॥६०॥
 अधिरह्यार्चयामास द्वितीयां मातमनस्तनुम् । अन्तर्धनि कृते तस्मिन्गोपा लब्ध्वा सतो धरान् ॥
 कृत्वा गिरिमह गोष्ठं निजमन्यापयुः पुनः ॥६१॥

इति श्रीमहापुराणे आदिवाल्मेके बालचरिते गोवर्धनगिरियज्ञप्रवर्तनं नाम

सप्ताशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१८७॥

गौत्रा का यज्ञ करना चाहिए। इसलिये आप लोग विधानपूर्वक पवित्र पशु की बलि देकर गोवर्धन पर्वत की विविध पूजा कीजिये। सब गांव वालों को सूचना दे दीजिये। अब इसमें सोचिये नहीं। ब्राह्मणा की तथा अपेक्षितों को भोजन कराइय। गोवर्धन की पूजा, हवन तथा ब्राह्मण भोजन करने के उपरान्त गो-समूह को धारद्ध्यनु में होने वाले पुण्या से सुश्रृजित कीजिये। यह मेरा विचार है। यदि वापगण प्रसन्नतापूर्वक ऐसा करेंगे तो गौत्रा तथा पर्वत को और मुझे भी परितोष होगा ॥४२-४५॥

व्यास बोले—विश्वरुद्र ! कृष्ण ने वचन सुनकर, नन्द आदि ब्रह्मर्षी प्रेम से गद्गद होकर कहने लगे—
 'दीन-दीन' ! क्या ! तुमने जो कहा, सब अच्छा है। हम बैस ही करेंगे। अब हम पर्वतयज्ञ आरम्भ करें।' तदनन्तर समस्त ब्रह्मर्षिगण न पवन-यज्ञ किया। पवन का दही, खीर, मांस, आदि की बलि दी गई। सैनिकों-हजारों ब्राह्मण सिलाय गए। सुश्रृजित गाया तथा जन्तुओं बादल की तरह दण्ड करते हुए बैला ने पवन की प्रदक्षिणा की। द्विवरुद्र ! पर्वत के शिखर पर प्रतिमा की आहुति में अन्न का पवन बनाते हुए गोविन्द ने गोपा के चढ़ाये हुए अनेक प्रकार के अन्न का खाया। कृष्ण ने उसी रूप से गापा के मांस पर्वत के शिखर पर चढ़कर अपने दूसरे शरीर की पूजा की। मूर्ति के अन्तर्धान हो जान पर गौत्रगण उत्तम करदान प्राप्त कर तथा पर्वतोत्सव सम्पन्न कर पुन गात्रुल आ गये ॥५५-६१॥

श्री ब्रह्ममहापुराण में बालचरित-वचन-प्रथम में गोवर्धनगिरि-यज्ञ-प्रवर्तनं

नामक एव ही सप्ताशीर्वा अध्याय समाप्त ॥१८७॥

अथाष्टाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः

गोवर्धनाख्यानवर्णनम्

व्यास उवाच^१

महे प्रतिहते शक्रो भृशं कोपसमन्वितः । संवर्तकं नाम गणं तोयदानामथाब्रवीत् ॥१॥

इन्द्र उवाच

भो भो मेघा निशम्येतद्वदतो वचनं मम । आज्ञानन्तरमेवाऽशु क्रियतामविचारितम् ॥२॥

नन्दगोपः सुदुर्बुद्धिर्गोपैरन्यैः सहायवान् । कृष्णाथयवलाघ्मातो महभङ्गमचोकरत् ॥३॥

आजीवो यः परं तेषां गोपत्वस्य च कारणम् । सा गावो वृष्टिपातेन पीडयन्तां वचनान्मम ॥४॥

अहमप्यद्रिभृङ्गानं बुद्धिमारह्य वारणम् । साहाय्यं यः करिष्यामि वापूनां संगमेन च ॥५॥

व्यास उवाच

इत्याज्ञप्ताः सुरेन्द्रेण मुमुचुस्ते बलाहकाः । घातव्यं महाभीममभावाय गवां द्विजाः ॥६॥

ततः क्षणेन धरणी ककुभोऽम्बरमेव च । एक धारासहासारपूरणेनाभवद्द्विजाः ॥७॥

गायस्तु तेन पतता वर्षघातेन वेगिना । धृताः प्राणाञ्जहुः सर्वास्तिर्यङ्मुखशिरोधराः ॥८॥

अध्याय १८८

गोवर्धन का आख्यान

व्यास बोले—उत्सव मष्ट हो जाने पर (अर्थात् इन्द्र की पूजा रुक जाने पर) इन्द्र को बहुत क्रोध हुआ । तब बादलों में से संवर्तक नामक गण को बुला कर उन्होंने कहा ॥१॥

इन्द्र बोले—बादलो ! मेरी बात सुनो और आज्ञा के बाद बिना विचारे शीघ्र ही उस कार्यरूप में परिणत कर ढालो । दुष्टबुद्धि नन्दगोप ने अन्य गोपों की सहायता से तथा कृष्ण के बल से मेरे उत्सव का मग किया । जो गोएँ उनकी जीविका हैं तथा गायत्व का कारण हैं, उन्हें ही तुम मेरे वचनानुसार वृष्टिपात से पीड़ित करो । मैं भी पर्वतशिखर के तुल्य उत्तुण हस्ती पर चढ़कर वायु के साथ तुम्हारी सहायता करूँगा ॥२-५॥

व्यास बोले—द्विजवर ! इन्द्र की आज्ञा पाकर बादल शीघ्रों के नाश के लिये घूसलघार वृष्टि करने लगे । तदगन्तर क्षण में ही पृथ्वी, दिशायें तथा आकाश अनन्त धारों से भरकर एक-से बन गये । उस मीषण वृष्टिपात से समस्त गोएँ मुख और ग्रीवा को खिन्ना करके प्राणत्याग करने लगीं । द्विजधेनो ! कितनी गोएँ बछड़ों को क्रोड-

१. च ०च—यने च प्रह० । २. च ०जा पर मयैवाऽऽ० । ३. च ०बलोन्यसो म० । ४. च वायुमुत्सर्ग-
योजितम् । व्या० ।

क्रोडेन वत्सानाक्रम्य तस्युरन्या द्विजोत्तमा । गवो विवत्साश्च कृता वारिपूरेण चापरा ॥१॥
 वत्साश्च दीनवदना 'पवनाकम्पिकधरा । त्राहि त्राहीत्यल्पशब्दा कृष्णमूचुरिवाऽस्तका ॥१०॥
 ततस्तद्गोकुल सर्व गोपोगोपीपसकुलम् । अतीवाऽस्तं हरिदृष्टवा त्राणायान्तिनयत्तदा ॥११॥
 एतत्कृत महेन्द्रेण महभङ्गविरोधिना । तदतदखिल गोष्ठ त्रातव्यमधुना मया ॥१२॥
 इममद्रिमह वीर्यादुत्पाटचोरुशिलातलम् । धारयिष्यामि गोष्ठस्य पृथुच्छत्रमिवोपरि ॥१३॥

व्यास उवाच

इति कृत्वा मति कृष्णो गोवर्धनमहोदधरम् । उत्पाटयैककरेणैव धारयामास लीलया ॥१४॥
 गोपाश्चाऽऽह जगन्नाथ समुत्पाटितभूधर । विशध्वमत्र सहिता कृत वपनिवारणम् ॥१५॥
 सुनिर्वातेषु देशेषु यथायोग्यमिहाऽऽस्पताम् । प्रविश्य नात्र भेतव्य गिरिपातस्य निर्भये ॥१६॥
 इत्युक्तास्तेन ते गोपा विविशुर्गोधनं सह । शकटारोपितैर्भाण्डैर्गोप्यश्चाऽस्तारपीडिता ॥१७॥
 कृष्णोऽपि स दधारैव शैलमत्यन्तनिश्चलम् । व्रजौकोवांसिभिर्हृषयिस्मितार्शोनिरीक्षित ॥१८॥
 गोपगोपीजनैर्हृष्टैः प्रीतिविस्तारितेक्षणैः । सस्तूयमानचरित कृष्ण शैलमधारयत ॥१९॥
 सप्तरात्र महामेघा वज्रपुनन्दगोकुले । इन्द्रेण चोदिता मेघा गोपाना नाशकारिणा ॥२०॥
 सतो धृते महाशैल परित्राते च गोकुले । मिथ्याप्रतिज्ञो यत्रभिद्वारयामास तान्धनान् ॥२१॥

प्रदेग म डिआवर छाडा हो गइ और कितनी गौओं को तो जलघारा ने बल्लरहित ही कर दिया । बाधु रा धरपरते हुए कथ बात्र दीन मुख बाले एवम् भयपीडित बछड़ कृष्ण से रक्षा करो रक्षा करो' की तरह कुछ अल्प शब्दों में कहने लगे । तब गोप-गापा समेत समस्त बोकुल की अत्यन्त पीडित देखकर कृष्ण रक्षा वा उपाय सोचने लगे—
 'उसका क्या भय हुआ जाने स इन्द्र ने ऐसा किया है । इसलिये सम्पूर्ण बाधुन की रक्षा इस समय मुझ परनी चाहिये । मैं अपनी शक्ति से इस विस्तृत गिरिप्रमय पर्वत को उखाड़ कर गोकुल के ऊपर बिना छत्र की तरह उसका धारण करूँगा ॥६॥ १३॥

व्यास बोले—एसा निश्चय करने सहज ही मैं गोवर्धन पर्वत को उखाड़कर कृष्ण ने एक ही हाथ से उत्तरा धारण कर लिया । पर्वत का उखाड़कर जगन्नाथ ने गोपा से कहा—इसने अन्दर सब चीजें जानो धर्या से बच जाओ । यहाँ बाधु भी नहीं है मुख पूर्ववत् रहो । निभय हारकर यहाँ प्रवर्ण करो पर्वत का गिरने की कोई रास्ता न करो । कृष्ण ने बहुत पर व गात्र माँझिया पर माँझिया को लात्र कर माँझिया सहित उसमें प्रविष्ट हो गये । जगन्नाथ स पीडित गापिणी भी वहीं गई । कृष्ण ने अत्यन्त निश्चयता से पर्वत का धारण किया । प्रजवासा आनन्द स विस्मित नेमा स उनका ओर दगल गये । गात्र-माँझिया प्रम से आँस पाड़-पाड़ कर उड़का आर तारन और प्रसन्नतापूर्वक उनके चरित्रा की प्रशंसा करने लगा । गात्रा का नात्र करने व त्रिध इन्द्र स प्रसित महामय सात रात्रा तत्र नन्द व बाधुल म मृष्टि करने रहे । कृष्ण द्वारा महापर्वत के धारण रिय जान पर और बोकुल की रक्षा हो जाने पर इन्द्र की

व्यत्रे नभसि देवेन्द्रे वितथे शकमन्द्रिते । निष्क्रम्य गोकुलं हृष्टः स्वस्थानं पुनरागमत् ॥२२॥
मुमोच कृष्णोऽपि तदा गोवर्धनमहागिरिम् । स्वस्थाने विस्मितमुखैर्दृष्टस्तैर्ब्रजवासिभिः ॥२३॥

व्यास उवाच

धृते गोवर्धने शैले परित्राते च गोकुले । रोचयामास कृष्णस्य दर्शनं पाकशासनः ॥२४॥
सोऽधिहृष्ट्य महानागमं रावतमग्निजित् । गोवर्धनगिरौ कृष्णं ददर्श त्रिदशाधिपः ॥२५॥
चारयन्तं महावीर्यं गावश्च गोपवपुर्धरम् । वृत्तस्तस्य जगतो गोपं वृतं गोपकुमारकैः ॥२६॥
गरुडं च ददर्शोच्चैरन्तर्धानगतं द्विजाः । कृतच्छायां हरेर्मूर्ध्नि पक्षाम्यां पक्षिपुगवम् ॥२७॥
अवरुह्य स नागेन्द्रादिकान्ते मधुसूदनम् । शक्रः सस्मितमाहर्दं प्रीतिविस्फारितेक्षणः ॥२८॥

इन्द्र उवाच

कृष्ण कृष्ण क्षुण्णेष्वेवं यदयं महमागतः । त्वत्समीपं महाबाहो नैतच्चिन्त्यं त्वयाऽन्यथा ॥२९॥
भारावतरणार्थाय पृथिव्याः पृथिवीतलम् । अवतीर्षोऽखिलाधारस्त्वमेव परमेश्वर ॥३०॥
महभङ्गविह्वलेन मया गोकुलनाशकाः । समादिष्टा महामेघार्स्तैश्चतस्कदनं कृतम् ॥३१॥
नातास्तापात्त्वया गावः समुत्पाट्य महागिरिम् । तेनाहं तोयितो वीरः कर्मणाऽत्यद्भुतेन ते ॥३२॥

प्रतिना असत्य हुई। तब उन्होंने मेघों को रोक दिया। इन्द्र के विचार निष्फल हो जाने पर वे गोकुल को छोड़कर पुनः अपने स्थान पर चले गये। आकाश स्वच्छ हो गया। तब कृष्ण ने भी गोवर्धन पर्वत को यथास्थान रख दिया। ब्रजवासियों ने विस्मित मुखों से कृष्ण का अवलोकन किया ॥१४-२३॥

व्यास बोले—गोवर्धनपर्वत के धारण तथा गोकुल की रक्षा करने के कारण इन्द्र को कृष्ण-दर्शन की इच्छा हुई। तब वेनी के अधीश इन्द्र ने ऐरावत नामक महाहस्ती पर आरुढ़ होकर गोवर्धन गिरि पर कृष्ण का दर्शन किया। उस समय अखिल जगत् के रक्षक महाबलशाली कृष्ण गोप-खरीर धारण कर गोपकुमारों के साथ गावें चरा रहे थे और ऊपर से छिपे-छिपे पक्षिघोष्ठ गरुड अपने पखा से भगवान् के मस्तक पर छाया कर रहे थे। तब एकान्त में हाथी पर से उतर कर इन्द्र प्रेम से आँखें पाड़-पाड़ कर कृष्ण की ओर ताकते हुए मुस्कराकर उनसे कहने लगे ॥२४-२८॥

इन्द्र बोले—कृष्ण ! कृष्ण ! मैं जिसलिए आप के समीप आया हूँ, वह सुनिये। महाबाहो ! उसे आप अन्यथा न समझेंगे। पृथ्वी के भार उतारने के लिए आप मूलतः पर अवतीर्ण हुए हैं। आप सबके आधार हैं। आप ही परमेश्वर हैं। उत्सव के मग होने के कारण मैंने गोकुल को नष्ट करने के लिये महामेघों को आदेश दिया था। यह मैंने अपराध किया। आपने महापर्वत को उखाड़कर गाँवों को बच स्त्रे बचा लिया। वीर ! आपके अत्यन्त आश्चर्य-

१क. ०गा गोपै सहित सदा। २क०। २क ०क्षणम्। ३०१ ३क ०चित्र विभो त्वयि। भा०।

४ख. देव।

साधित कृष्ण देवानामद्य मन्ये प्रयोजनम् । त्वयाऽयमद्रिप्रवर करेणैकेन चोद्धत ॥३३॥
 गोभिश्च नोदित कृष्ण त्वत्समीपमिहाऽऽगत । त्वया त्राताभिरत्यर्थं युष्मत्कारणवारणात् ॥३४॥
 स त्वा कृष्णाभिपेक्षयामि गवा वाक्यप्रचोदित । उपेन्द्रत्वे गवामिन्द्रो गोविन्दस्त्व भविष्यसि ॥३५॥
 अयोपवाह्यादादाय घण्टामैरावतादगजात् । अभियेक तया चक्रे पवित्रजलपूण्या ॥३६॥
 क्रियमाणेऽभियेके तु गाव कृष्णस्य तत्क्षणतः । प्रक्षबोदभूतदुग्धाद्रां सद्यश्चकुर्वंसु धराम् ॥३७॥
 अभिविध्य गवा वाक्याद्देवेन्द्रो वै जनार्दनम । प्रीत्यासप्रश्रय कृष्ण पुनराह शचोपति ॥३८॥

इन्द्र उवाच

गवामेतत्कृत वाक्यात्तथाऽन्यदपि मे द्रुणु । यदब्रवीमि महाभाग भारवतरणेच्छया ॥३९॥
 ममाश पुरुषव्याघ्र पृथिव्या पृथिवीधर । अवतीर्णोऽर्जुनो नाम स रक्षयो भवता सदा ॥४०॥
 भारवतरणे सस्य स ते वीर करिष्यति । स रक्षणीयो भवता ययाऽऽत्मा मधुसूदन ॥४१॥

श्रीभगवानुवाच

जानामि भारते वशे जात पार्थ तवाशत । तमह पालयिष्यामि यावदस्मि महीतले ॥४२॥
 यावमहीतले शक्र स्यास्याम्यहमरिदम । न तावदर्जुन कश्चिद्देवेन्द्र युधि जेष्यति ॥४३॥
 कसो नाम महाबाहुर्हंत्योऽरिष्टस्तया पर । केशो कुपलयापीडो नरकाद्यास्तयाऽपरे ॥४४॥

जनक वचन से मैं प्रसन्न हूँ । कृष्ण ! आज मैं मानता हूँ कि आपने देवताओं का पाप सिद्ध कर दिया । आपने एक ही हाथ से इस पवनशब्द का पारण किया । कृष्ण ! आपसे अभिरक्षित गौओं द्वारा प्ररित होकर मैं आपके ही ने कारण आप के पास आया हूँ । मैं गौओं की बातों से प्ररित होकर आपकी उपेन्द्रव के पद पर अभिविक्त रहूँगा । आप गोविन्द तथा गौओं के स्वामी कहलाएँगे । इसका बाद एरावन हाथी से घण्टा उतारकर इन्द्र ने पवित्र जल से कृष्ण का अभिषेक किया । कृष्ण के अभिषेक के समय गोत्रों ने दूध से पृथ्वी को सद्य आप्णुत कर दिया । गौओं के वचन से जनार्दन का अभिषेक करने 'गचाप्रति' ने पुन कृष्ण से प्रेम तथा वियवप्रव' कहा ॥२९-३८॥

इन्द्र बोले—महामाग ! गौओं के वचन से जैसे आपने यह किया वैसे और भी जो मैं कहता हूँ वह सुनिये । पृथ्वीधर ! भार उतारने की इच्छा से मरु अग पुरुषपुंगव होकर अवतीर्ण हुआ है जिसका नाम अर्जुन है । उसकी आप सदा रक्षा करेंगे । भार उतारने में वह वीर आपकी सहायता करेंगा । मधुसूदन ! आमा की तरह आप उसकी रक्षा करेंगे ॥३९-४१॥

श्री भगवान् बोले—मैं जानता हूँ भारतवर्ष में आपने अग से पाप उत्पन्न हुआ है । मैं जब तक पृथ्वी पर रहूँगा तब तक उसका पालन रहूँगा । शक्र ! धनु का दमन करने बाल ! मैं जब तक भूतत् पर रहूँगा तब तक मुझ में अर्जुन का कोई नहीं पराजित कर सकगा । वय नामक एक महाकायकाय दीव है । उसी तरह अरिष्ट वेणी कुपलयापाड नरक आदि भी हैं । देवेन्द्र ! उनसे निहत होने के बाद महासंग्राम होगा जिसमें पृथ्वी

हतेषु तेषु देवेन्द्र भविष्यति महाहवः^१। तत्र विद्धि सहस्राक्ष भारवतरण कृतम् ॥४५॥
स त्वं गच्छ न संतापं पुत्रार्थे कर्तुमर्हसि। नार्जुनस्य रिपु-^२ कश्चिन्ममाग्रे प्रभविष्यति ॥४६॥
अर्जुनार्थं^३ त्वहं सर्वान्मुधिष्ठिरपुरोगमान्। निवृत्ते भारतेयुद्धे कुन्त्यं दास्यामि विक्षतान् ॥४७॥

व्यास उवाच

इत्युक्तः सपरिष्वज्य देवराजो जनादेनम्। आरह्यैरावत नागं पुनरेव दिव ययौ ॥४८॥
कृष्णोऽपि सहितो गोभिर्गोपालेन पुनर्व्रजम्। आजगामाय गोपीनां दृष्टपूतेन वर्त्मना ॥४९॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे बालचरिते गोविन्दाभिषेकवर्णनं

नामाष्टाशोत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१८८॥

अथोननवत्यधिकशततमोऽध्यायः

अरिष्टवधनिरूपणम्

व्यास उवाच

यत्ने शक्ने तु गोपाला, कृष्णमविलट्टकारिणम्। ऊचुः प्रीत्या धृत दण्डका तेन गोवर्धनाचलम् ॥१॥

का भार उठर जायगा। सहस्राक्ष^१ इत्यर्थे आप जाइये। पुन के लिए सोच न कीजिये। मेरे सामने अर्जुन का कोई शत्रु नहीं होगा। अर्जुन के कारण मैं युधिष्ठिर आदि सबको बिना क्षत हुए ही महामारुत युद्ध के अन्त में कुन्ती को समर्पित कर दूँगा ॥४५-४७॥

व्यास बोले—एतदुपरान्त देवराज जनादेन का आतिथ्यन करने ऐरावत हाथी पर बैठकर पुन स्वर्ग चले गये। कृष्ण भी गौआ तथा गोपाला के साथ गोपियों के दृष्टिपात से पवित्र हुए माग से पुन ब्रज में आ गये ॥४८-४९॥

श्रीब्रह्महपुराण म बालचरित कथा-प्रसंग में गोविन्दभिषेक वगन नामक एक सो

अष्टाशोदी अध्याय समाप्त ॥१८८॥

अध्याय १८९

अरिष्ट नामक अशुर का वध

व्यास बोले—इन्द्र के चले जाने के उपरान्त गोवर्धनपर्वत का धारण करने वाले एव बिना क्लेश के बर्ण करने वाले कृष्ण से गोपालो ने प्रेमपूर्वक कहा ॥१॥

गोपा ऊचुः

वयमस्मान्महाभाग भवता महतो भयात् । गावश्च भवता त्राता गिरिधारणकर्मणा ॥२॥
 बालक्रीडेयमतुला गोपालत्वं जुगुप्सितम् । दिव्यं च कर्म भवतः किमेतत्तात कथ्यताम् ॥३॥
 कालियो दमितस्तोये प्रलम्बो विनिपातितः । धृतो गोवर्धनश्चायं शङ्कितानि मनासि नः ॥४॥
 सत्यं सत्यं हरेः पादो श्रयामोऽमितविक्रम । यथा त्वद्वीर्यमालोक्य न त्वां मन्यामहे नरम् ॥५॥
 देवो वा दानवो वा त्वं यक्षो गन्धर्व एव वा । किं चास्माकं विचारेण बान्धवोऽस्ति नमोऽस्तु ते ॥६॥
 प्रीतिः सस्त्रीकुमारस्य व्रजस्य तव केशव । कर्म चेदमशक्यं यत्समस्तैस्त्रिदशैरपि ॥७॥
 बालत्वं चातिवीर्यं च जन्म चास्मात्त्वशोभनम् । चिन्त्यमानममेयात्मजं शङ्कां कृष्ण प्रयच्छति ॥८॥

व्यास उवाच

क्षणं भूत्वा त्वसौ तूष्णीं किञ्चित्प्रणयकोपवान् । इत्येवमुक्तस्तर्गोपराह कृष्णो द्विजोत्तमाः ॥९॥

श्रीकृष्ण उवाच

मत्संग्रन्धेन वो गोपा यदि लज्जा न जायते । इलाप्यो वाऽहं ततः किं धो विचारेण प्रयोजनम् ॥१०॥
 यदि वोऽस्ति मयि प्रीतिः इलाप्योऽहं भवतां यदि । तदर्घ्यं बन्धुसदृशो बान्धवाः क्रियतां मयि ॥११॥
 नाहं देवो न गन्धर्वो न यक्षो न च दानवः । अहं धो बान्धवो जातो नातश्चिन्त्यमतोऽन्यथा ॥१२॥

गोप बोले—महाभाग ! तुमने जबत धारण कर इस महाभय से हमे तथा गोओं को बचाया। यह बाल-
 क्रीडा तो अनुपम है। तुम्हारा कर्म दिव्य है पर गोपालत्व तो निन्दित है। तात ! यह कैसी बात है, मतलब तो
 जल में तुमने पानीय वा दमन किया, प्रलम्बानुर को मारा और गोवर्धन वा धारण किया। इससे हमारे मन में घटा
 हो रही है। अमितपराक्रमी ! हम सत्य यह रहे हैं, हमारा आश्रय हरिचरण ही है। तुम्हारी शक्ति देखकर हम
 तुम्हें भनुष्य नहीं मान रहे हैं। हमारे विचार से तुम देव या दानव, या यक्ष या गन्धर्व हो। फिर भी हमारे बन्धु
 हो। तुम्हें नमस्कार है। केशव ! यक्ष के स्त्री बच्चे सब तुमसे प्रेम करते हैं। तुमने जो काम किया है, उसे अलोक
 देव भी नहीं कर सकते। यहाँ बचपन और यहाँ अतिपराक्रम ! हम लोगो के बीच तुम्हारा जन्म टीक नहीं हुआ।
 अमेयामनू ! यह सोच विचार कर हमें राधा होती है ॥२-८॥

व्यास बोले—द्विजप्रेत्यो ! गोपा से इस प्रकार कहे जाने पर कृष्ण राग भर चुप रहे, फिर कुछ प्रणय-
 कोर दिताते हुए बोले ॥९॥

श्रीकृष्ण ने कहा—गोपमुन्द ! यदि मेरे सम्बन्ध से तुम्हें लज्जा न मान्द पडे तो मुझसे स्नेह करो।
 तुम्हें विचार से क्या प्रयोजन ? बान्धवो ! यदि तुम्हें मुझसे स्नेह है और तुम मेरी प्रशंसा करते हो तो मुझसे
 बन्धुसदृश व्यवहार करो। मैं न देव न गन्धर्व न यक्ष न दानव ही हूँ। मैं तुम्हारा बन्धु हूँ। इससे दूरता कुछ
 मेरे विषय में मत सोचो ॥१०-१२॥

व्यास उवाच

इति श्रुत्वा हरेर्वाक्यं बद्धमोनास्ततो बलम् । ययुर्गोपा महाभागास्तस्मिन्प्रणयकोपिनि ॥१३॥
 कृष्णस्तु विमलव्योमशरच्चन्द्रस्य चन्द्रिकाम् । तथा कुमुदिनीं फुल्लामामोदितदिगन्तराम् ॥१४॥
 धनराजीं तथा कूजदभृङ्गमालामनोरमाम् । विलोक्य सह गोपीभिर्मनश्चक्रे रतिं प्रति ॥१५॥
 सह रामेण मधुरमतीव वनिताप्रियम् । जगौ 'कमलपादोऽसौ नाम तत्र' कृतव्रतः ॥१६॥
 रम्यं गीतध्वनिं श्रुत्वा संत्यज्यावसथास्तदा । आजग्मुस्त्वरिता गोप्यो यत्राऽऽस्ते मधुसूदनः ॥१७॥
 शनः शनंजंगो गोपी काचित्तस्य पदानुगा । दत्तावधाना काचिच्च तमेव मनसाऽस्मरत् ॥१८॥
 काचित्कृष्णेति कृष्णेति चोक्त्वा लज्जामुपापयो।ययो च काचित्प्रेमान्धा 'तत्पाश्वमविलज्जिता ॥१९॥
 काचिदावसथस्यान्तः स्थित्वा दृष्ट्वा बहिर्गुरुम् । तन्मयत्वेन गोविन्दं दध्यौ मीलितलोचना ॥२०॥
 गोपीपरिवृतो रात्रिं शरच्चन्द्रमनोरमाम् । मानयामास गोविन्दो रासारम्भरसोत्सुकः ॥२१॥
 गोप्यश्च घृन्दशः कृष्णचेष्टाभ्यायत्तमूर्तयः । 'अन्यदेशगते कृष्णे चेष्टवु'न्दावनान्तरम् ॥२२॥
 बभ्रमुस्तास्ततो गोप्यः कृष्णदर्शनलालसाः । कृष्णस्य चरणं रात्रौ दृष्ट्वा वृन्दावने द्विजाः ॥२३॥
 एवं नानाप्रकारासु कृष्णचेष्टासु तासु च । गोप्यो व्यग्राः सप्त चेष्ट रम्यं वृन्दायन वनम् ॥२४॥
 निवृत्तास्तास्ततो गोप्यो निराशाः कृष्णदर्शने । यमुनातीरमागम्य जगुस्तच्चरितं द्विजाः ॥२५॥

व्यास बोले—महाभागो ! हरि के बचन सुनकर गोप चुप हो गये और उनका प्रणय-कोप देखकर वहाँ से चले गये । तब कृष्ण ने स्वच्छ, आकाश, शरच्चन्द्र वी चन्द्रिका, विकसित तथा दिशाओं को आमोदित करती हुई कुमुदिनी, वनपत्रित और मनोरम शब्द करती हुई भ्रमरावति को देखकर गोपियों के साथ रमण करना चाहा । बाद में व्रतवारी तथा कमलचरण कृष्ण राम के साथ वनिताओं को माहने वाली मधुमधुर तान छबने लगे । मनोरम गीत-ध्वनि सुनकर गोपियाँ गृहा को छोड़कर क्षीप्र मधुसूदन के पास आ गई ॥१३-१७॥ कोई गोपी उन्हीं के पदों का अनुसरण करती हुई मन्द-मन्द गाने लगी, कोई सावधानतापूर्वक मन से उन्हीं का स्मरण करने लगी कोई कृष्ण-कृष्ण कह कर लज्जा करने लगी, कोई प्रेमान्ध होकर निर्लज्जतापूर्वक उनके पास जाने लगी, कोई घर के बाहर गुरुजन को देखकर उसने अन्दर ही आँखें मूँद कर तन्मयता से गोविन्द का ध्यान करने लगी । रास आरम्भ करने के इच्छुक गोविन्द ने गोपियों से वेष्टित होकर मनोरम शरच्चन्द्रयुक्त रात्रि को ही इसके लिये उपयुक्त समझा । कृष्ण की लीलाओं से बशीभूत होकर गोपियाँ अपने को मूल गई । कृष्ण के छिप जाने पर वे वृन्दावन के बाहर भी उनको इधर-उधर दूढ़ने लगी । द्विजवृन्द । कृष्ण के दर्शन की लालसा करने वाली भ्रमणशील गोपियों ने वृन्दावन म ही रात्रि में कृष्ण के चरण को देखा । इस प्रकार कृष्ण की अनेक चेष्टाओं में आसक्त होकर गोपियों ने रमणीय वृन्दावन में विचरण किया । ॥१८-२४॥ द्विजगण । कृष्ण के दर्शन से निराश होकर गोपियाँ यमुनातट पर आकर उनके चरित्रों का गान करने लगी । तदनन्तर गोपियों ने विकसित वमल के समान मुख वाले, नीलकण्ठक तथा

ततोददृशुरायान्तं विकाशि मुखपङ्कजम् । गोप्यस्त्रैलोक्यगोप्तारं* कृष्णमविलष्टकारिणम् ॥२६॥
 काचिदालोक्य गोविन्दमप्यान्तमतिहृयित । कृष्ण कृष्णेति कृष्णेति प्राहोत्फुल्लविलोचना ॥२७॥
 काचिद्भूभङ्गुर इत्वा ललाटफलक हरिम् । विलोक्य नेत्रभृङ्गाभ्या पपी तन्मुखपङ्कजम् ॥२८॥
 काचिदालोक्य गोविन्दं निमीलितविलोचना । तस्यैव रूपध्यायन्ती योगारूढेव सा बभौ ॥२९॥
 ततः* काचित्प्रियालापे* काचिद्भूभङ्गबीक्षितः* । निन्येऽनुनयमन्याश्च करस्पर्शेन माधवः ॥३०॥
 ताभिः प्रसन्नचित्ताभिर्गोपीभिः सह सादरम् । रराम रासगोष्ठीभिर्हृदारचरितो हरिः ॥३१॥
 रासमण्डलबद्धोऽपि कृष्णपाश्वर्ममनूदगता । गोपीजनो न चंबाभूदेकस्थानस्थिरात्मना ॥३२॥
 हस्ते प्रगृह्य चक्रेका गोपिका रासगण्डलम् । चकार च करस्पर्शनिमीलितदृशं हरिः ॥३३॥
 ततः प्रयवृते* रम्या चलद्दलपतिस्वनेः । अनुयातशरत्काव्यगेयगोतिरनुकमाम् ॥३४॥
 कृष्ण* शरच्चन्द्रमस* कौमुदीकुमुदाकरम् । जगो गोपीजनस्त्येक* कृष्णनाम पुनः पुनः ॥३५॥
 परित्यक्ता* । श्रमेणैका चलद्दलयतापिनी । इदो याहलता* स्कन्धे गोपी मधुविधातिनः ॥३६॥
 काचित्प्रविलसद्वाहुः परिरम्य चुचुम्ब तम् । गोपी गीतस्तुतिव्याजनिपुणा मधुसूदनम् ॥३७॥
 गोपीकपोलसश्लेषमभिपद्य हरेर्भुजौ । पुलकोद्गमशस्याय स्वेदाम्मुघनता गतौ ॥३८॥

अद्भुत कार्यवर्ता कृष्ण को आते देता । गोविन्द को आते देतकर कोई गोपी आयत्त आनन्दित होकर 'कृष्ण, कृष्ण' कहने लगी, हर्ष से उसके नेत्र प्रफुल्लित हो गये । कोई भू-मगी से हरि को और देखती हुई अपने नेत्र रूपी मीरा द्वारा उनका मुख-बमल वा पान करने लगी । कोई गाविन्द को देतकर आँखें मूढ़ कर योगी की तरह उन्हीं के रूप का ध्यान करने लगी ॥२५-२९॥ तब किसी को प्रिय बचना से, किसी को भू-मगिमापूर्वक देखने से तथा किसी को करस्पर्श से माधव ने मना लिया । (एक-लीला में उपस्थित उन प्रसन्नचित्त गोपियों के साथ उदार चरित्र वाले हरि रमण करते रहे । रास-लीला में मठली बंगार कृष्ण को बगल में स्थित गोपियाँ एक स्थान में स्थिर नहीं रहनी थीं । एक-एक गोपी का हाथ पकड़ कर हँसि रास करते थे । मगवान् के कर-रगर्त होने ही गोपियों आत्मविमोह हो आँखें मूढ़ लेती थीं । रास करते समय गोपियों के चल-चरणा के शब्द बहुत ही मनोहारी होने से । वे भक्त शरत्कालीन वाय्य तथा गीत गाती थीं । कृष्ण शरद्-ऋतु के चन्द्रमा एवम् उत्तरी ज्योतिष्ना का वर्णन करते थे और गोपियाँ एक कृष्ण-नाम का ही बार-बार गाती थीं । किसी गोपी ने चञ्चल चरणा से पीड़ा तथा परिधम से घावट का अनुभव कर कृष्ण के कन्धे पर अपनी बाहु-रता डाल दी और गान तथा न्युति करने में निपुण किसी दूसरी गोपी ने मधुसूदन का बाहु-राम में जड़कर धूम किया ॥३०-३७॥ गोपी के कपाट-रस में हरि की मुद्राओं में रोमाञ्च हो आया तथा पमीन टाँवने लग । कृष्ण राग के गीता का गाने से । अब गोपियाँ 'वाह कृष्ण, वाह कृष्ण' कहकर

१४ ०रुद्राः । गो० । २४ ०क्यमरार । ३४ ०त वावि० । ४४ ०पै पावि० । ५४ ०तै ।
 विपामा गमयामास रगत्पन्नं मानिनी । ता० । १४ प्रसन्नचित्ताभिर्गण्ड० । ७४ ०नुतासगिराशाय गायन्ती-
 निर० । ८४ कृष्ण । ९४ शरच्चन्द्रनिम । १०४ ०पुगुमा० । ११४ ०रवेव राम कृष्ण पु० ।
 १२४ ०रिनीय० । १३४ ०नेव वापि० । १४४ ०पुनिगति० ।

‘रासगेयं जगौ कृष्णो यावत्तारतरध्वनिः । साधु कृष्णेति कृष्णेति तावत्ता द्विगुणं जगुः ॥३९॥
गतेऽनुगमनं चक्रुर्बलने संमुखं ययुः । प्रतिलोमानुलोमेन भेजुर्गोपाङ्गना हरिम् ॥४०॥
स तदा सह गोपीभी रराम मधुसूदनः । स वर्षकोटिप्रतिमः क्षणस्तेन विनाऽभवत् ॥४१॥
ता वार्यमाणाः पितृभिः पतिभिर्भ्रातृभिस्तथा । कृष्णं गोपाङ्गना रात्रौ रमयन्ति रतिप्रियाः ॥४२॥
सोऽपि केशोरफवया मानयन्मधुसूदनः । रेमे ताभिरमेयात्मा क्षपासु क्षपिताहितः ॥४३॥
तद्भर्तृषु तथा तासु सर्वभूतेषु चेश्वरः । आत्मस्वरूपरूपोऽसौ व्याप्य सर्वमवस्थितः ॥४४॥
यया समस्तभूतेषु नभोऽग्निः पृथिवी जलम् । वायुश्चाऽऽत्मा तथैवासौ व्याप्य सर्वमवस्थितः ॥४५॥

व्यास उवाच

प्रदोषार्धे कदाचित्तु रासासक्ते जनार्दने । त्रासयन्समदो गोष्ठानरिष्टः समुपागतः ॥४६॥
सतोयतोयदाकारस्तोक्षणशृङ्गोऽकलोचनः । खुराग्रपातैरत्यर्थं दारयन्धरणीतलम् ॥४७॥
लेलिहानः सनिष्पेयं जिह्वयोष्ठौ पुनः पुनः । संरम्भाक्षिप्तलाङ्गूलः कठिनस्कन्धबन्धनः ॥४८॥
उदप्रककुशाभोगः प्रमाणाद्दुरतिक्रमः । विष्णून्नालिप्तपृष्ठाङ्गो गवामुद्देगकारकः ॥४९॥
प्रलम्बकण्ठोऽभिमुलस्तदघाताङ्किताननः । पातयन्स गवां गर्भान्दैत्यो वृषभरूपधृक् ॥५०॥

साक्षियाँ बजाती सब कृष्ण और द्विगुण मात्रा में माने लगते । कृष्ण चलते तो वे भी उनके पीछे चल देती, कृष्ण मुँह घुमाते तो वे उनके सामने आ जाती । इस प्रकार प्रतिलोम-अनुलोम भाव से गोपागनार्थे कृष्ण के साथ कैलि करती थी । मधुसूदन गोपियों के साथ रमण करते थे । विना कृष्ण के गोपियों के लिये एक क्षण भी बरोडो वर्ष के समान मालूम पड़ता था । पिता, पति तथा भाइयों के रोकने पर भी रतिप्रिय गोपियाँ रात में कृष्ण से रमण कराती थी । किशोर मधुसूदन भी, जिनकी शक्ति अग्रयण थी, उनका आवर करते हुए रात में उनसे रमण करते थे । क्योंकि उनके पतियों में उनमें तथा समस्त भूतों में आत्मस्वरूप से व्याप्त होकर कृष्ण ही तो अवस्थित थे । जैसे सकल भूतों में आकाश, अग्नि, जल, पृथिवी तथा वायु अवस्थित हैं उसी तरह परमात्मा कृष्ण भी सबको व्याप्त करके स्थित हैं ॥३८-४५॥)

व्यास बोले—निसी समय अर्ध प्रदोषकाल में जब कृष्ण रास में आसक्त थे तब एक (वृषभरूपधारी) मदमत रासस गौओं को त्रास दिखाते हुए व्रज में आया । उसकी आकृति जलपूर्ण बादल की-सी थी, सींग तीक्ष्ण थे, आँखें सूर्य के समान चमकती थी । वह अपने सुरों के अग्रभाग से धरती को विदीर्ण कर रहा था, जिह्वा से होठों को बार-बार सघर्षपूर्वक चाट रहा था, पुच्छ को बड़े वेग से ऊपर-ऊपर फेंकता था । उसके कन्धे का बन्धन बड़ा बढोर था । उसके ककुद का विस्तार असाधारण था । उसका पृष्ठभाग विष्ठा-भून से लिप्त था । वह गौओं को

१६. ग ०ङ्खल० । २ख ०लोमेन मार्गेण ययुर्गो० । ३ख ०प्य चाऽऽत्मन्यवस्थि० । ४ख ०च ।
परेऽङ्गि च क० । ५क सनिष्कण्ठो । ६क कपिलस्क० । ७क ख ०बन्धुट । ८० । ९क ०रपाता० ।
१६. ०न । घात० ।

सूदयस्तरसा सर्वांस्विनायति य सदा । ततस्तमतिधोराभमवेक्ष्यातिभयातुरा ॥५१॥
 गोपा गोपस्त्रियश्चैव कृष्णकृष्णति चुक्रुशु । सिंहनाद ततश्चक्रे तलशब्द च केशव ॥५२॥
 तच्छब्दश्रवणाच्चासौ दामोदरमुख ययौ । अग्रन्यस्तविषाणाग्र कृष्णकुक्षिकृतेक्षण ॥५३॥
 अभ्यधावत दुष्टात्मा दैत्यो वृषभरूपपृक । आयान्त दैत्यवृषभ दृष्ट्वा कृष्णो महाबलम् ॥५४॥
 न चचाल तत स्यानादवज्ञास्मितलीलया । आसन्न चैव जपाह प्राहवन्मधुसूदन ॥५५॥
 जघान जानुना कुक्षौ विषाणग्रहणाचलम् । तस्य दर्पबल हत्वा गृहीतस्य विषाणयो ॥५६॥
 आपीडयदरिष्टस्य कण्ठ विलसन्निवाम्बरम् । उत्पाद्य शृङ्गमेक च तेनैवाताडयत्तत ॥५७॥
 ममार स महादैत्यो मुखाच्छोणितमुद्धमन । तुष्टुबुनिहते तस्मिन्गोपा दैत्ये जनार्दनम् ॥
 जम्भे हते सहस्राक्ष पुरा देवगणा यया ॥५८॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे बालचरितेऽरिष्टवधनिरूपण
 नामोऽनवत्यधिकशततमोऽध्याय ॥१८९॥

उद्भिन्न कर रहा था । उसका कण्ठ बहुत लम्बा था । उसने भूष पर वृक्षों के आभास करने का विह्वल था । वह
 वृषभरूपधारी दैत्य गायों के गर्भों को गिरा रहा था । वेग से बनो को मष्ट भ्रष्ट करता हुआ वह घूम रहा था ।
 उस अत्यन्त मयानक आँख बाल वृषभ को देखकर गीत गोपियाँ भयातुर होकर 'हृष्ण-हृष्ण' चिल्लाते लग । तब
 केवल ने सिंहनाद करते हुए ताल ठारा ॥५१, ५२॥ उनसे दण्ड सुनते ही दण्ड सींगों के अग्रभाग को सामने करते
 हृष्ण की कुक्षि की ओर पुरत हुए दामोदर के सम्मुख जाने लगा । वृषभरूपधारी दुष्टात्मा दैत्य जोर से दौड़ रहा
 था । महाबली दैत्यहारी वृषभ का आत देखकर हृष्ण तिरस्कारपूर्वक मुखपाते हुए अपने स्थान से विचलित न हुए ।
 मधुसूदन ने समाप्त आने पर उस बाहु की तरह पकड़ लिया । सींगों को पकड़ कर धुटने से उसकी कुर्छि में भार
 दिया । सींगों को पकड़ते ही दण्ड के शव तथा बल को बुर बुर कर उसने गल को गीले पपड़ की तरह निचोड़ दिया ।
 फिर एक सींग को उखाड़ कर उसका सँ उसको मारन लग । यह भट्टादैत्य मृत से नागिन वमन करते हुए मर गया ।
 उस दैत्य ने मर जाने पर गंगा ने हृष्ण की उसा तरह स्तुति की जिस तरह जम्भासुर के मरने पर देवगणों ने इन्द्र
 की स्तुति की था ॥५३, ५८॥

आदिब्राह्मपुराण में बालचरित-वधन प्रमाण में अरिष्ट-वध निरूपण
 नामक एकांशो नवासीवा अध्याय समाप्त ॥१८९॥

अथ नवत्यधिकशततमोऽध्यायः

केशिवधनिरूपणम्

व्यास उवाच

ककुद्मिनि हतेऽरिष्टे धेनुके च निपातिते । प्रलम्बे निधन नीते धृते गोवर्धनाचले ॥१॥
 दमिते कालिये नागे भग्ने तुङ्गद्रुमद्वये । हताया भूतनाया च शकटे परिवर्तिते ॥२॥
 कसाय नारद प्राह यथावृत्तमनु-रमात् । यशोदादेवकीगर्भपरिवर्तचिषोप ॥३॥
 ध्रुवा तत्सकल कसो नारदादेवदर्शनात् । वसुदेव प्रति तदा कोप 'घके स दुर्मति ॥४॥
 सोऽतिकोपावुपालम्य सर्वपादवससदि । जगहँ यादवाश्चापि कार्यं चंतद्वचिन्तयत ॥५॥
 यावन्न बलमारुढौ 'बलकृष्णौ सुबालकौ । तावदेव मया वध्यावसाध्यौ रुढयोवनी ॥६॥
 चाणूरोऽत्र महावीर्यो मुष्टिकश्च महाबल । एताभ्या मल्लयुद्धे तौ घातयिष्यामि । दुर्मदौ ॥७॥
 धनुर्महामहापागव्याजेनाऽऽनीय तौ घजात । तथा तथा करिष्यामि यास्यत सक्षय मया ॥८॥

व्यास उवाच

इत्यालोच्य स दुष्टात्मा कसो रामजनादनी । हतु कृतमतिथौरमकूर बावयमब्रवीत् ॥९॥

अध्याय १६०

केशी नामक असुर का वध

व्यास बोले—वृषभासुर धनुक तथा प्रलम्ब के मारने पर गोवर्धनपर्वत के धारण करने पर कालिय के घमन करने पर दोनों अत्युच्च वृक्षों के तोड़ने पर भूतना के निहत करने पर और शकट के उलटाने पर नारद ने कस से आकर व्रमश सम्पूरा वतास कह दिया । यशोदा तथा देवकी के गर्भ-परिवर्तन का भी अखिल वृणन कर दिया । देवाँपि नारद से सक्त्र वृत्ताति सुनकर दुर्मति कस वसुदेव के प्रति कोप करने लगा । वह अत्यन्त क्रोध में आकर समस्त यादवा की समां में यादवा की भी निंदा करने लगा । उसने सोचा—यावत् बलमद्ग तथा वृष्ण सबल मही होते हैं उससे पहले ही उनको समाप्त कर देना चाहिये अथवा पूरा यौवन प्राप्त करने पर तो ये दोनों असाध्य हो जायेंगे । चाणूर और मुष्टिक महाबलवान् हैं । मल्लयुद्ध में इन्हीं के द्वारा उन दोनों अभिमानियों को मरवाऊंगा । धनुष-जसव रूपी महायन्त्र के व्याज से उनको यहां भँगवाकर मैं बसा ही उपाय कहूँगा जिससे वे विनष्ट हो जायेंगे ॥१८॥

व्यास बोले—यह सोचकर राम तथा कृष्ण को मारने की इच्छा से दुष्टात्मा कस ने चाणूर से यह वचन कहा ॥१॥

कंस उवाच

भो भो दानपते वाक्यं क्रियतां प्रीतये मम । इतःस्थन्दनमारुह्य गम्यतां नन्दगोकुलम् ॥१०॥
 वसुदेवसुतो तत्र विष्णोरदासमुद्भवो । नाशाय किल संभूतो मम दुष्टो प्रवर्धतः ॥११॥
 'घनुर्महमहायागश्चतुर्दश्या' भविष्यति । आनेयो भवता तौ तु मल्लयुग्नद्वयं तत्र वै ॥१२॥
 चाणूरमुष्टिको मल्लो नियुद्धकुशलो मम । ताम्बां सहानयोर्युद्धं सर्वलोकोऽत्र पश्यतु ॥१३॥
 नागः कुवलयापीडो महामात्रप्रचोदितः । स तौ निहंस्यते पापौ वसुदेवात्मजौ शिशू ॥१४॥
 तौ हत्वा वसुदेवं च नन्दगोपं च दुर्मतिम् । हनिष्ये पितरं चैव उपसेनं च दुर्मतिम् ॥१५॥
 ततः समस्तगोपानां गोधनान्यखिलान्यहम् । वित्तं चापहरिष्यामि दुष्टानां मद्बर्धयिष्यामि ॥१६॥
 त्वामृतं पादवाश्चेमे दुष्टा दानपते मम । एतेषां च वधायाहं प्रयतिष्याम्यनुकमात् ॥१७॥
 ततो निष्कण्ठक सर्वं राज्यमेतदयादवम् । प्रसाधिष्ये त्वया तस्मान्मत्प्रोत्था वीर गम्यताम् ॥१८॥
 यथा च माहिषं सर्पिर्दधि चाप्युपहृत्य वै । गोपाः समानयन्त्याशु त्वया वाच्यास्तथा तथा ॥१९॥

ध्यास उवाच

इत्याज्ञप्तस्तदाऽनूरो महाभागवतो द्विजाः । प्रीतिमानभवत्कृष्णं इवो द्रक्ष्यामीति सत्वरः ॥२०॥
 तथेत्युक्त्वा तु राजानं रथमारुह्य सत्वरः । निश्चक्राम तदा पुष्यं मयुराया मधुम्रियः ॥२१॥

कंस बोला—दानवेश्वर ! मेरे परिलोप के लिये मेरी बात मानो । यहाँसे रथ पर चढ़कर नन्द के गोकुल में जाओ । विष्णु के अदा से समुत्पन्न वसुदेव के दो दुष्ट पुत्र मेरे नाश के लिये ही बढ़ रहे हैं । घनुष-महामज्ञ चतुर्दशी को होगा । उसमें मल्लयुद्ध के लिये उन दोनों को तुम ले आना । मेरे दो पहलवान चाणूर और मुष्टिक युद्ध-प्रवीण हैं । उन्हीं के साथ उन दोनों का युद्ध होगा, सब लोग देखेंगे । कुवलयापीड नामक हाथी महाव्रत की प्रेरणा से वसुदेव के दोनों पापी बालकों को मारेगा । उनको मारकर वसुदेव, दुष्टबुद्धि नन्दगोप तथा दुर्मति पिता उपसेन को मैं मारूँगा । सब मेरे वध के इच्छुन समस्त गोपों के अखिल भोजन का मैं अपहरण करूँगा । दानवपते ! केवल तुम्हें छोड़कर इन दुष्ट दादवा के भी अमरा वध करने के लिये मैं बल करूँगा । तदनन्तर पादवरहित सम्पूर्ण निष्कण्ठक राज्य का मैं उपभोग करूँगा । इसलिये वीर ! तुम मेरी सतुष्टि के लिये जाओ । तुम उत ढग से बातचीत करोगे, जिससे कि गोपगण दही धी भी छेते आयेंगे ॥१०-१९॥

ध्यास बोले—द्विजवृद्ध इस प्रकार आज्ञा पाकर महामगवद्भवत अनूर 'वल कृष्ण का दर्शन होगा' यह सोचकर अत्यन्त प्रसन्न हुआ और राजा से 'एवमस्तु' कहकर तुरन्त रथ पर आरुढ़ होकर मयुरापुरी से बाहर निकल गया ॥२०-२१॥

१९ ग ०तां गोपगो० । २० ०महो मयाप्यत्र चतु० । २१ ०गरत्रयोदश्यां । ४८. दया. सर्वे दु० ।
 ५८ तत्तमम् ।

व्यास उवाच

केशी चापि बलोदग्रः कंसदूतः प्रचोदितः । कृष्णस्य निधनाकाङ्क्षी दृन्दावनमुपागमत् ॥२२॥
सखुरक्षतभूपृष्ठः सदाक्षेपयुताम्बुदः । पुनर्विक्रान्तचन्द्रार्कमार्गो गोपान्तमागमत् ॥२३॥
तस्य ह्येपितशब्देन गोपाला दैत्यवाजिनः । गोप्यश्च भयसंविग्ना गोविन्दं शरणं ययुः ॥२४॥
ग्राहि ग्राहीति गोविन्दस्तेषां श्रुत्वा तु तद्वचः । सतोयजलदध्वानगम्भीरमिदमुक्तवान् ॥२५॥

गोविन्द उवाच

अलं ग्रासेन गोपालाः केशिनः किं भयातुरैः । भवद्भिर्गोपजातीयैर्बौरवीर्यं विलोप्यते ॥२६॥
किमनेनाल्पसारेण ह्येपितारोपकारिणा । दैत्यबलबाहयेन बल्यता द्रुष्टवाजिना ॥२७॥
एहोहि द्रुष्ट कृष्णोऽहं पूष्णस्तिवच पिनाकधृक् । पातयिष्यामि दशान्वदनादखिलांस्तव ॥२८॥

व्यास उवाच

इत्युक्त्वा स तु गोविन्दः केशिनः संमुखं ययौ । विवृतास्यदक्ष सोऽप्येनं दैत्येयश्च उपाद्रवत् ॥२९॥
बाहुभामोगिनं कृत्वा मुखे तस्य जनादेनः । प्रवेशयामास तदा केशिनो द्रुष्टवाजिनः ॥३०॥
केशिनो वदनं तेन विशता कृष्णबाहुना । शतिता दशनास्तस्य सितान्भावयया इव ॥३१॥
कृष्णस्य वयुधे बाहुः केशिदेहगतो द्विजाः । विनाशाय यया व्याधिराप्तभूतैरुपेक्षितः ॥३२॥

व्यास बोले—कंस का दूत बलोन्मत्त केशी भी प्रेरित होकर कृष्ण को मारने की इच्छा से दृन्दावन पहुँचा । यह अश्व का रूप बना कर अपने खुरो से भूपृष्ठ को क्षत-विक्षत करते हुए, सदा (गर्दन पर के बाल) के प्रक्षेप से शरीर को कँपाते हुए और सूर्य-चन्द्रमा के मार्ग को अवरोध करते हुए गोपों के पास आया । दैत्य रूपी अश्व के हिन-हिताने से गोप-गोपियाँ भय से उद्भिन्न होकर गोविन्द की शरण में गये । उनके 'बचाओ बचाओ' यह वचन सुनकर जलपूर्ण मेघ की तरह गम्भीर वाणी से सगवान् ने कहा ॥२२-२५॥

गोविन्द बोले—गोपालो ! क्यों मयातुर हो रहे हो ? केशी से क्या डरता है ? तुम लोग गोप जाति के होकर धीर-शक्ति को मूल जाते हो ? इस द्रुष्ट दैत्य रूपी अश्व के सारहीन हिनहिताने से क्यों डरते हो ? द्रुष्ट ! आओ । जैसे शिव ने पूषा के दाँतो को तोड़ा था उसी तरह मैं भी तुम्हारे वदन से अखिल दाँतों को गिरा देता हूँ ॥२६-२८॥

व्यास बोले—इतना कहकर गोविन्द केशी के सामने गये । दैत्य भी मुँह खोलकर इन पर दृष्ट पड़ा । तब मुजा को फैला कर कृष्ण ने केशी नामक उस द्रुष्ट अश्व के मुख में धुंसेड दिया । केशी के मुख में कृष्ण की मुजा के प्रवेश होते ही उसके दाँत स्वच्छ बादल के अवयव की तरह उखलने लगे । द्विजगण ! केशी के देह में प्रविष्ट होने पर कृष्ण की बाह उसको विनष्ट करने के लिए उसी तरह बढ़ने लगी जैसे रोगियों से उपेक्षित होने पर व्याधि ।

विपाटितौष्ठो बहुलं सकेनं रुधिरं वमन् । सुवक्त्रो विवृते चक्रे विदिलष्टे मुक्तबन्धने ॥३३॥
जगाम धरणीं पादः शङ्कन्मूत्रं समुत्सृजन् । स्वेदाद्रङ्गात्रः श्रान्तश्च 'निर्यत्नः सोऽभवत्ततः ॥३४॥
व्यादितास्यो महारौद्रः सोऽसुरः कृष्णबाहुना । निष्पात द्विधाभूतो वंच्युतेन यथा द्रुमः ॥३५॥
द्विपादपृष्ठपुच्छार्धश्ववर्णकाक्षनासिके । केशिनस्ते द्विधा भूते शकले च विरेजतुः ॥३६॥
हत्वा तु केशिन कृष्णो मुदितगोपकंबूतः । अनायस्ततनुः स्वस्यो हसस्तत्रैव 'संस्थितः ॥३७॥
ततो गोपाश्च गोप्यश्च हते केशिनि विस्मिताः । तुष्टुवुः पुण्डरीकाक्षमनुरागमनोरमम् ॥३८॥
आपयौ त्वरितो विप्रो नारदो जलदस्थितः । केशिनं निहतं दृष्ट्वा हर्षनिर्भरमानसः ॥३९॥

नारद उवाच

साधु साधु जगन्नाथ लीलयां व यदच्युत । निहतोऽयं त्वया केशो बलेशदस्त्रिवीकसाम् ॥४०॥
मुकर्माण्यवतारे तु कृतानि भयसूदन । यानि वै विस्मित चेतस्तोपमेतेन मे गतम् ॥४१॥
तुरगस्यास्य शक्रोऽपि कृष्ण देवाश्च बिम्बनि । धृतकेसरजालस्य हृत्पतोऽन्नावलोकितः ॥४२॥
यस्मात्स्वयं दुष्टात्मा हतः केशो जनादेन । तस्मात्केशवनाम्ना एवं लोके गयो भविष्यति ॥४३॥
स्वस्त्यस्तु ते गमिष्यमि कंसपुद्गेऽधुना पुनः । परद्वयोर्हं समेष्मामि त्वया केशिनिपूदन ॥४४॥
अप्रसेनसुते कंसे सानुपे विनिपातिते । भारावतारकर्ता त्वं पृथिव्या धरणीधर ॥४५॥

उसने होठ काट दिये गये, मुख से फेन सहित रुधिर प्रचुर मात्रा में बहने लगा, गलफड़ चीर दिये गये, नत्तें टोड़ दी गईं। तब वह मल-मूत्र त्याग करता हुआ पीरो से धरती की खुरचने लगा। उसने अंगों से पसीना टपकने लगा। वह श्रान्त होकर निश्चेष्ट हो गया। कृष्ण की भुजा ने उस महाभयंकर राक्षस के मुख की विदीर्ण कर दिया। तब वह विच्युत से आहुत वृक्ष की तरह दो दुकड़े होकर गिर पड़ा। उसने पैर, पीठ, पुच्छ, वान, आँख, नाक सब वै दो-दो दुकड़े हो गए। इस प्रकार बेसी ने अंगा वै दो-दो दुकड़े विजयमान हुए। बेसी को मारकर प्रमुदित गोपी वै साय कृष्ण हँसते हुए बड़ी अवस्थित हुए। उनसे शरीर में कोई आयास नहीं हुआ। वे स्वस्थ थे। शतपदात्त बेसी की मृत्यु से विस्मित गोप-गोपियाँ भनोहर कृष्ण की स्तुति करने लगे। बेसी को निहत देखकर मेघ-स्थित विप्र नारद अत्यन्त प्रसन्न हुए और तुरन्त वहाँ आये ॥२९-३९॥

नारद बोले—जगन्नाथ ! आपन समुचित हो किया जो कि देवा को कष्ट देने वाले बेसी को सहज ही मैं मार डाला। भयसूदन ! इस अवतार में आपने जो-जो आश्चर्यजनक मुरमं किये, उनसे मुझे बड़ा सतोष हुआ। केसरजाल (अयाल) की टिगने वाले तथा हिनहिनाने स बाधन की तरह प्रवीण होने वाले इस श्वर से देवगण तथा इन्द्र भी डरते थे। जनादेन ! त्रिमूर्ति आपने इस दुष्टात्मा बेसी को घारा दगलिये केसव नाम से आप लोग में पुकारे जायेंगे। आपका कल्याण हो। इस समय मैं जाता हूँ। बेजिनाशन ! फिर परसो बस के युद्ध में मैं आपसे

१४ निष्पन्नः । २४ ००० गोपावैर्बहुमिबं० । ३३ तस्थिपान् । ४४ ग ०म् । अयाद् त्व० । ५५ लदे०रिप० ।

तत्रानेकप्रकारेण युद्धानि पृथिवीक्षिताम् । द्रष्टव्यानि मया युष्मत्प्रणीतानि जनावन ॥४६॥
सोऽहं यास्यामि गोविन्द देवकार्यं महत्कृतम् । त्वया सभाजितश्चाहं स्वस्ति तेऽस्तु ध्रजाम्यहम् ॥४७॥

व्यास उवाच

नारदे तु गते कृष्ण सह गोपैरविस्मित । विवेश गोकुल गोपीनेत्रपानकभाजनम् ॥४८॥
इति श्रीमहापुराण आदिब्राह्मे कृष्णबालचरिते कशिवधनिरूपण नाम
नवत्यधिकशततमोऽध्याय ॥१९०॥

अथैकनवत्यधिकशततमोऽध्याय

अक्रूरमनवर्णनम्

व्यास उवाच

अक्रूरोऽपि दिनिक्रम्य स्यन्दनेनाऽऽशुगामिना । कृष्णसदशनासकत प्रययौ मन्दगोकुले ॥१॥
चिन्तयामास चाक्रूरो नास्ति ध्येतरो मया । योऽहम्शावतीर्णस्य मुखं द्रक्ष्यामि चञ्चिज्ज ॥२॥
अथ मे सफलं जन्म सुप्रभाता च मे निशा । यदुन्निद्राञ्जपन्नास विष्णोर्द्रक्ष्याम्यहं मुखम् ॥३॥

मिकूना । घरणीवर ! उग्रसेन के पुत्र बसको वपुवर्ग सहित नष्ट कर देने पर आप पृथ्वी का मार हल्ला करगे ।
जनावन ! तब आपके रवाये हुए राजाआ ने अनेक प्रकार के युद्ध का मैं देखना गोविन्द ! अब मैं जाऊंगा ।
आपने देवताआ का महान् कार्य किया । आपका बल्याण हो मैं चलता हूँ ॥४० ४७॥

व्यास बोले—नारद ने चले जाने पर गोपिया के मयना के पीने व एकमात्र पात्र कृष्ण गोपा के साथ बिना
किसी आरक्ष्य के गोकुल में प्रविष्ट हुए ॥४८॥

श्रीब्रह्मपुराण में कृष्ण ने बालचरित-कथन प्रथम में केशिवधनिरूपण नामक एक ही
नववा अध्याय समाप्त ॥१९०॥

अध्याय १६१

अक्रूर के जान का वर्णन

व्यास बोले—कृष्ण-दान के लिए स्थापित अक्रूर भी श्रीभगवती रथ से नन्द-गोकुल के निधे प्रस्थित हुए ।
अक्रूर सोचने लगे—‘मुझसे बढ़कर कोई धर्म नहीं है क्याकि जगत्पूज्य विष्णु का मैं मन्द-दगन नहूंगा । आज मेरा
जन्म सफल हुआ आज मेरी रात सुप्रभात हुई जो मैं विकसित कमल-पत्र के सदा नेत्र वाले विष्णु का मुखवलीजन

पापं हरति यत्पुंसां स्मृतं संकल्पनामयम् । तत्पुण्डरीकनयनं विष्णोर्द्रव्याम्यहं मुखम् ॥४॥
 निर्जग्मुश्च यतो वेदा वेदाङ्गान्यखिलानि च । द्रक्ष्यामि यत्परं धाम देवानां भगवन्मुखम् ॥५॥
 यज्ञेषु यज्ञपुरुषः पुरुषैः पुरुषोत्तमः । इज्यते योऽखिलाधारस्त द्रक्ष्यामि जगत्पतिम् ॥६॥
 इष्ट्वा यमिन्द्रो यज्ञानां शतेनामरराजताम् । अवाप तमनन्तादिमहं द्रक्ष्यामि केशवम् ॥७॥
 न ब्रह्मा नेन्द्रब्रह्माशिवस्वादित्यमरुद्गणाः । यस्य स्वरूपं जानन्ति स्पृशत्यथ स मे हरिः ॥८॥
 सर्वात्मा सर्वंग, सर्वं सर्वभूतेषु सस्थितः । यो भवत्यन्ययो व्यापी स वीक्ष्यते भयाद्य ह ॥९॥
 मत्स्यकूर्मवराहाद्यैः सिंहरूपादिभिः स्थितम् । चकार योगतो योगं स मामालापयिष्यति ॥१०॥
 सांप्रतं च जगत्स्वामी कार्यंजाते व्रजे स्थितिम् । कर्तुं मनुष्यतां प्राप्तः स्वेच्छादेहधुगव्ययः ॥११॥
 योऽनन्तः पृथिवीं धत्ते शिखरस्थितिसंस्थिताम् । सोऽवतीर्णो जगत्पर्यं भामक्रूरंति वक्ष्यति ॥१२॥
 पितृबन्धुसहोद्भूतात्मातृबन्धुमयोमिमाम् । यन्मायां नालमुद्धतुं जगत्तस्मै नमो नमः ॥१३॥
 तरल्यविद्या वितता हृदि यस्मिन्निवेशिते । योगमायामिमां मत्प्राप्तस्मै विद्यात्मने नमः ॥१४॥
 यज्वभिर्यज्ञपुरुषो वासुदेवश्च शाश्वतैः । वेदान्तवेदिर्भविष्णुः प्रोच्यते यो नतोऽस्मि तम् ॥१५॥
 तथा यत्र जगद्भामि धार्यते च प्रतिष्ठितम् । सदसत्त्वं स सत्त्वेन मय्यसौ यातु सौम्यताम् ॥१६॥
 स्मृते सकलकल्याणभाजनं यत्र जायते । पुरुषप्रवरं नित्यं व्रजामि शरणं हरिम् ॥१७॥

बहंगा । स्मरण तथा चिन्ता करने से जो मनुष्यों के पापों का भट्ट करते हैं, उन पुण्डरीकाक्ष विष्णु के मुख को मैं देखूंगा । जिस मुख से वेद तथा वेदों के अखिल अंग नि गूत हुए और जो देवों का परम धाम है, उस भगवन्मुख का मैं दर्शन करूँगा । जो यज्ञ में यज्ञपुरुष, पुरुष में उत्तम तथा सब के आधार हैं, उन जगत्पति का मैं दर्शन करूँगा । सौ यज्ञों से जिसकी आराधना करने इन्द्र ने देवराजत्व का प्राप्त किया, उन्हीं आदि-अन्त-रहितेश्वर का मैं दर्शन करूँगा ॥१-३॥ ब्रह्मा इन्द्र, शंकर, अश्विनीकुमार, वसु, आदित्य तथा मरुद्गण जिनके स्वरूप को नहीं जानते हैं, उन्हीं हरि का आज मैं स्पर्श करूँगा ॥८॥ जो सर्वविद्या, सर्वव्यापी, सब, समस्त भूतों में अवस्थित, अव्यय तथा व्यापक है, उन्हीं को आज मैं देखूंगा ॥९॥ जिन्होंने मत्स्य, कूर्म, वराह, सिंह आदि का रूप धारण किया और योग का मार्ग दिलालाया मे मुझे समापण करेंगे ॥१०॥ इस समय कार्य उपस्थित होने पर जगत्स्वामी, अव्यय तथा स्वेच्छा से रूप धारण करने वाले भगवान् मनुष्य शरीर धारण कर व्रज में अवस्थित हैं । जो अनन्त भगवान् पर्वतादिविद्यिष्ठ पृथिवी का धारण करते हैं वे ही जगन्ने निमित्त अवतीर्ण हुए हैं । वे मुझे 'अक्रूर' कहेंगे जिनके पिता, बन्धु मित्र, भाई तथा माना स्त्री माया का पार सपाट नहीं पाना है, उनको नमस्कार है । हृदय में जिनके प्रविष्ट होने से मनुष्य विस्तृत अविद्यारूपी योगमाया को पार कर जाते हैं उन विद्यात्मा को नमस्कार है । जिनको यज्ञार्ता यज्ञपुरुष ब्रह्मर तथा ब्रह्मवत्ता विष्णु बह्वर पुराणों हैं, उनको मैं नमस्कार करता हूँ । जो मगार का धारण करते हैं अर्थात् जिनके क्षेत्र में सत् अज्ञ रूप यम्य प्रतिष्ठित होता है, वे मेरे प्रति मौम्य हों । जिनके स्मरण करने से सब प्रकार का कल्याण होता है, उन्हीं पुरुषप्रवर हरि की शरण में मैं आ रहा हूँ ॥११-१७॥

ध्यास उवाच

इत्थं स चिन्तयन्विष्णुं भक्तितनयात्ममानसः । अकूरो गोकुलं प्राप्तः^१ किञ्चित्सूर्यं विराजति ॥१८॥
 स ददर्श तदा तत्र^२ कृष्णमावोहने गवाम् । वत्समध्यगतं फुल्लनीलोत्पलदलच्छविम् ॥१९॥
 'प्रफुल्लपदमपनाशं' श्रौवत्साङ्खितवक्षसम् । प्रलम्बबाहुमायामनुङ्गोऽस्त्यलमुन्नसम् ॥२०॥
 सविलासस्मिताधारं बिभ्राणं मुखपङ्कजम् । तुङ्गरवतनखं पद्म्यां धरण्यां सुप्रतिष्ठितम् ॥२१॥
 बिभ्राणं वाससी पीते वन्यपुष्पविभूषितम् । सान्द्रनीललताहस्तं सिताम्भोजावतंसकम् ॥२२॥
 हंसेन्दुकुन्दघवलं नीलाम्बरधरं द्विजाः । तस्यानु बलभद्रं च ददर्श यदुनन्दनम् ॥२३॥
 प्रांशुमुत्तुङ्गबाहुं च विकशिमुखपङ्कजम् । मेघमालापरिवृतं कैलासाद्रिनिवापरम् ॥२४॥
 सौ दृष्ट्वाविकसद्वक्त्रसरोजः स महामतिः । 'पुलकाञ्चितसर्वाङ्गस्तदाऽकूरोऽभवद्द्विजाः'^३ ॥२५॥
 य एतत्परमं धाम एतत्तत्परमं पदम् । अभवद्रसुदेवोऽसौ द्विधा भोज्यं ध्यवस्थितः ॥२६॥
 साफल्यमक्षणोर्युगपन्ममास्तु, दृष्टे जगद्वातरि हासमुच्चैः (?) ।
 अप्यङ्गमेतद्भगवत्प्रसादाद्वाङ्माङ्गसङ्गे फलवर्धनं तत्स्यात् ॥२७॥
 अद्यैव स्पृष्ट्वा मम हस्तपद्मं, करिष्यति श्रीमदनन्तमूर्तिः ।
 यस्याङ्गुलिस्पर्शं हताखिलाधैरवाप्यते सिद्धिरनुत्तमा नरैः ॥२८॥

ध्यास बोले—इस प्रकार विष्णु का ध्यान करते हुए भक्ति से विनम्र चित्त वाले अकूर गोबूलिवैला मे गोकुल पहुँच गये ॥१८॥ वहाँ उन्होंने गायो के दोहन-काल मे बछड़ो के बीच अवस्थित कृष्ण को देखा । कृष्ण की छवि प्रफुल्लित नील कमल के पत्र जैसी थी, उनकी आँखें विकसित कमल-दल के समान थी, हृदय पर श्रीवत्स नामक चिह्न था, बाँहें लम्बी थी, छाती चौड़ी थी नासिका उन्नत थी, मुखकमल सुन्दर हास्य से युक्त था, नख उत्तुग तथा लाल थे, पैर पृथ्वी पर सुप्रतिष्ठित थे । वे पीतवस्त्र पहने हुए थे और वनमाला से विभूषित थे । सघननीललता के समान उनके हाथ थे और उज्ज्वल कमल के आभूषण थे । उनके बाद अकूर ने हस्त, चन्द्रमा तथा कुन्दपुष्प के समान शुभ, नीलवस्त्रधारी, आजानवाहु, विकसित कमल के समान मुख वाले, मेघमाला से परिवृत तथा कैलासपर्वत के तुल्य घवल यदुनन्दन बलभद्र को देखा । द्विजवृन्द । उनको देखते ही महाबुद्धिमान् अकूर के सर्वांग शरीर मे (आनन्द के मारे) रोमाञ्च हो आया और मुखकमल खिल उठा । उन्होंने कहा—'ये ही परमधाम तथा ये ही परमपद हैं । ये अपने को दो करके मासुदेवकृष्ण से व्यवस्थित है ॥१९-२६॥ जगद्वाता के दर्शन करके मेरे दोनो नेत्र एक ही काल मे सफल हो । मेरे अंग भी भगवान् की कृपा से उनके अंग-स्पर्श करके सफल हों । आज ही मेरे हस्तकमल का स्पर्श करके अनन्तमूर्ति भगवान् मुझे कृतायं करेंगे । जिन मनुष्यों को उनकी अङ्गुलि का स्पर्श होता है, वे निष्पाप हो जाते हैं, उत्तम सिद्धि को प्राप्त करते हैं और अश्विन रुद्र, इन्द्र तथा वसु आदि देवता प्रसन्न होकर उन्हें वर देते हैं ।

१क. ०प्ता क्रियतु० । २क. ख दक्ष । ३ग. प्रस्पष्टप० । ४क. ०काङ्क्षितगामोऽसौ तदाऽ० ।

५स. ०तरोमाऽसौ तदाऽ० ।

तथाऽऽश्विनरेन्द्रेन्द्रवसुप्रणीता, देवाः प्रयच्छन्ति वरं प्रहृष्टाः ।

चक्रं धनता वैद्यपतेर्हृतानि, दैत्याङ्गनानां नयनान्तराणि ॥२९॥

यत्रा (तोऽ)म्बु विन्यस्य बलिर्मनोग्याम (ज्ञान) वाप भोगान्वसुधातलस्थः ।

तथाऽमरेशस्त्रिदशाधिपत्यं, मन्वन्तरं पूर्णमवाप शनः ॥३०॥

अथेश (थापि) मां कंसपरिग्रहेण, दोषास्पदीभूतमदोषयुक्तम् ।

कर्ता न मानोपहितं धिगस्तु, यस्मान्मनः साधुबहिष्कृतो यः (?) ॥३१॥

ज्ञानात्मकस्याखिलसत्त्वरशेव्यवृत्तदोषस्य सदाऽस्फुटस्य ।

किं वा जगत्पत्र समस्तपुंसामज्ञातमस्यास्ति हृदि स्थितस्य ॥३२॥

तस्मादहं भक्तिविनम्रगात्रो, व्रजामि विश्वेश्वरमीश्वराणाम् ।

अंशावतारं पुरुषोत्तमस्य, अनादिमध्यान्तमजस्य विष्णोः ॥३३॥

इति श्रीमहापुराणे भाद्रिब्राह्मे कृष्णक्रीडायामक्षूरागमनवर्णनं

नामैकनवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१९१॥

५

दैत्यराज की सेना को विनष्ट करते हुए उन्होंने दैत्य वनिताओं के भयनों को अपनी ओर खींच लिया था। उनसे धान देकर बलि ने पाताल में रहकर भी सकल भोगों को प्राप्त किया। उनकी कृपा से इन्द्र ने पूरे मन्वन्तर तक देवताओं का आधिपत्य प्राप्त किया। ऐसे भगवान् को मैं कस की आशा से लेने आया हूँ। अतएव मैं निर्दोष होता हुआ भी दोषी हूँ। ऐसे मानविगर्हित मुझे चिन्नरार है, क्योंकि मैं मन से साधु-समाज से बहिष्कृत हो गया हूँ। वे भगवान् ज्ञानस्वरूप, अद्विक्त सात्त्विक वृत्तियों के पुञ्ज, दोषों से रहित, सदा अस्पृष्ट तथा सबने हृदय में वास करने वाले हैं। पक्षार में समस्त पुरुषों की ऐसी वीन सी बात है, जो उन्हें अविदित हो? इसलिये मैं मर्त्ति स न्त शरीर होकर पुरुषोत्तम, आदि, मध्य तथा अन्त से रहित एवम् अजन्मा विष्णु के अन्त से अवतीर्ण विदेवेश्वर के समीप जाता हूँ ॥२७-३३॥

श्रीप्रह्लादमहापुराण के कृष्ण-क्रीडा-वर्णन प्रसङ्ग में अक्षूरागमन-वर्णन नामक एक छो

इत्यनेनैवैव अध्याय समाप्त ॥१९१॥

अथ द्विनवत्यधिकशततमोऽध्यायः

अक्रूरप्रत्यागमनवर्णनम्

व्यास उवाच

चिन्तयन्निति गोविन्दमुपगम्य स यादव । अक्रूरोऽस्मीति 'धरणीं ननाम शिरसा हरे ॥१॥
 सोऽप्येन ध्यजवज्राब्जकृतचिह्नेन पाणिना । सस्पृश्याऽऽकृष्य च प्रीत्या सुगाढ परिपस्वजे ॥२॥
 'कृतसवदनो तेन यथावद्वलकेशवौ । तत' प्रविष्टौ सहसा तमादायाऽऽत्ममन्दिरम् ॥३॥
 सह ताम्या तदाऽक्रूर कृतसवन्दनादिक । भुक्तभोज्यो यथान्यायमाचक्षते ततस्तथो ॥४॥
 ययानिर्भस्तिस्तस्तेन कसेनाऽऽनकबुन्दुभि । यथाच देवकी देवी दानवेन दुरात्मना ॥५॥
 उग्रसेने यथा फस स दुरात्मा च घतंते । य चंवार्यं समुद्दिश्य कसेन स विसर्जितः ॥६॥
 तत्सर्वं विस्तराच्छ्रुत्वा भगवान्कोशिसूदन । 'उवाचात्रिलमेतत् ज्ञात दानपते मया ॥७॥
 करिष्ये च महाभाग यवत्रीपायिक मतम् । विचिन्त्यं नान्यर्थतत्ते विद्धि कस हृत मया ॥८॥
 अहं रामश्च मथुरा इवो यास्याव सम त्वया । गोपबृद्धाश्च यात्यन्ति आदायोपायनं बहु ॥९॥
 निशेध नीपता घोर न चिन्ता कर्तुमर्हसि । त्रिरात्राम्यन्तरे कस हनिष्यामि सहानुगम् ॥१०॥

अध्याय १६२

अक्रूर के लौटने का वर्णन

व्यास चोते—इस तरह सोचते हुए वह यदुवशी अक्रूर गोविन्द के पास जाकर उनके चरणों पर शिर झुकाकर प्रणाम करने लगे । कृष्ण ने भी ध्वजा, वज्र तथा कमल के चिह्नों से युक्त हस्त से उनका स्पर्श करते हुए अपनी ओर खींच कर प्रेम से गाढ़ आलिंगन किया । दलमद् तथा कृष्ण व्यवहारपूर्वक अक्रूर से मिलकर उन्हें पकड़े हुए अपने घर ले गये । उन्होंने अक्रूर को विधिपूर्वक भोजन कराया । तब अक्रूर ने उन दानों से जैसे दुरात्मा दानव कस वसुदेव देवता तथा उग्रसेन को सताता था और जिस उद्देश्य से उसने अक्रूर को गोकुल भेजा था वह सब समाचार वह सुनाया । विस्तरपूर्वक अखिल वृत्तान्त सुनकर वैशिनारजन भगवान् ने कहा—'दानपते ! यह सब तो मुझे मालूम ही था । महामाग ! जो उपाय मैंने सोच रखा है वह तो कर्लैषा ही, वह अन्वया नहीं ही सवता । तुम कस को मेरे द्वारा निहत ही समझो । बल मैं और राम तुम्हारे साथ मथुरा जायेंगे । गोपबृद्ध भी बहुत-से उपहार लेकर जायेंगे । वीर ! इस रात को सोतने दो । चिन्ता मत करो । तीन रात के अन्दर ही अनुयायियों सहित कस को मैं मार दूँगा ॥१-१०॥

व्यास उवाच

समाविश्य ततो गोपानकूरोऽपि सकेशव । सुष्वाप बलभद्रश्च नन्दगोपगृहे गत ॥११॥
 तत प्रभाते विमले रामकृष्णौ महाबलौ । अकूरेण सम गन्तुमुद्यतो मथुरा पुरीम् ॥१२॥
 दृष्ट्वा गोपीजन साक्ष श्लयद्वल्यबाहुक । निश्वसश्चातिदुःखार्तं प्राह चेद परस्परम् ॥१३॥
 मथुरां प्राप्य गोविन्द कथं यो कुलमेव्यति । नागरस्त्रीकलालापमधु धोत्रेण पात्यति ॥१४॥
 विलासिवाक्यजातेषु नागरीणा कृतास्पदम् । चित्तमस्य 'कथं ग्राम्यगोपगोपीषु यात्यति ॥१५॥
 सार समस्तगोष्ठस्य विधिना हरता हरिम् । प्रहृत गोपयोपित्सु निघूणेन दुरात्मना ॥१६॥
 भावगर्भस्मित वाक्य विलासललिता गति । नागरीणामतोर्वतत्काटोक्षेक्षितमेव तु ॥१७॥
 ग्राम्यो हरिरयं तासां विलासनिगड्यंत । भवतीनां पुन पार्श्वं कथा मुकथा समेव्यति ॥१८॥
 एषो हि रथमारुह्य मथुरां याति केशव । अकूरकूरकेणापि 'हताशेन प्रतारित ॥१९॥
 किं न वेत्ति नृशतोऽयमनुरागपर जनम् । येनेममक्षराह्लाद मयत्यन्ध्र नो हरिम् ॥२०॥
 एष रामेण सहित प्रयात्यत्यन्तनिघूण । रथमारुह्य गोविन्दस्त्वय्यतामस्य धारणे ॥२१॥
 गुरुणामप्रतो वक्तुं किं श्रवीषि न न क्षमम् । गुरव किं करिष्यन्ति दग्धानां विरहाग्निना ॥२२॥
 मन्वपोपमुजा गोपा गन्तुमेते समुद्यता । नोद्यम क्रुद्धे कश्चिद्गोविन्दविनिवर्तने ॥२३॥

व्यास बोले—तदुपरान्त गोपों को आदेश करके अकूर भी वेशव और बलभद्र के साथ नन्दगोप के घर में जाकर सोये ॥११॥ सुप्रभात होने पर महाबली राम और कृष्ण अकूर के साथ मथुरापुरी जाने के लिये तैयारी करने लगे ॥१२॥ यह देखकर रागिणियों के आँसू बहने लगे और बहो डीली पड़ गईं जिनसे कगन निकलने लगे । उन्होंने शोरशोर होकर 'बी साँस ली और परस्पर बहो—मथुरा जान पर कृष्ण गाबुल क्या आयेगे ? वहाँ नगर की बनिताओं का मथुरा-गप सुनेंगे । नगर-नारिणों के विलासयुक्त बचन। मैं वित्त बैठ जान पर ग्राम्य गाप-नारिणियों की बातों को सुनने के लिये भला कौन आएगा ? हरि को ले जाते हुए विषादा न समस्त व्रज का सार हर लिया । गोपांगनाओं का तो उस निष्ठुर दुरात्मा ने सबस्व ही छीन लिया । नगर की महिलाओं का बचन सारगमित एवम् हास्ययुक्त हुआ है गति सविगस एवम् सुललित होती है और अवलोकन अत्यन्त कटाक्षपूर्ण होता है ॥१३-१७॥ ये हरि गाँव के हैं । उन लोगो के विलास रूप। पाग म बँगदर य फिर गुम लगाने के पास कैसे आयेगे ? यह देखो रथ पर चढ़कर बैगद मथुरा जा रहे हैं । निगोडा एवम कूर अकूर इन्हें टग कर ले जा रहा है । क्या यह हत्याया इनकी प्रमिया को नहीं जानता है जा निच आह लाने देने वाल हयारे हरि का लिय जा रहा है ? यह अत्यन्त निम्न अकूर रथ पर चढ़कर कृष्ण ताम को लिये जा रहा है जल्दी करो इनको रोना दें ॥१८-२१॥ क्या कहती हो कि गुरुजना के सामने हम ऐसा बचन म अत्यमर्ष है । अरे ! विरहाग्नि स जल का गुरुजन क्या करेगे ? नन्दगाप प्रभृति गाप तो जा ही रहे हैं भला गार्थिद का निवारण कौन करे ? आज मथुरा की रमणिया के लिये सुप्रभात हुआ जो

११ ०५५पानेयु । १२ ०५ शूयो ग्राम्यगोपी० । १३ न निगोडन । १४ ०म् । मोऽय पाति दग्गे-
 नैवमुक्त्वा सर्वं सतीव्रनम् । १५ मन्नामिना ।

सुप्रभाताञ्छ रजनी मयुरावासियोषिताम् । यासामच्युतववत्राब्जे याति नेत्रालिभोग्यताम् ॥२४॥
 धन्यास्ते पथि ये कृष्णमितो यान्तमवारिताः । उद्वहिष्यन्ति पश्यन्तः स्वदेहं पुलकाञ्चितम् ॥२५॥
 मयुरानगरीपोरनयनानां महोत्सवः । गोविन्दधनालोकादतीवाद्य भविष्यति ॥२६॥
 को नु स्वप्नः सभाष्याभिर्दृष्टस्ताभिरयोक्षजम् । विस्तारिकान्तनयना या द्रक्ष्यन्त्यनिवारितम् ॥२७॥
 अहो गोपोजनस्यास्य दशंयित्वा महानिधिम् । उद्धृतान्यद्य नेत्राणि विधात्राऽकृष्णात्मना ॥२८॥
 अनुरागेण शंयित्यमस्मासु यजतो हरेः । शंयित्यमुषयान्वाशु करेषु बलयान्यपि ॥२९॥
 अक्रूरः क्रूरहृदयः शोभ्रं प्रेरयते हयान् । एवमार्तसु धोषित्सु घृणा कस्य न जायते ॥३०॥
 हे हे कृष्ण रयस्योच्चंश्चरन्तरेण निरोक्ष्यताम् । दूरोद्धृतो हरिर्मेन सोऽपि रेणुनं लक्षयते ॥३१॥
 इत्येवमतिहासेन गोपोजननिरोक्षितः । तस्याज यजभूभागं सह रामेण वेशवः ॥३२॥
 गच्छन्तो जवनादयेन रथेन यमुनातटम् । प्राप्ता मध्याह्नसमये रामाक्रूरजनार्दनाः ॥३३॥
 अयाञ्छ कृष्णमक्रूरो भवदम्पां तावदास्यताम् । यावत्करोमि कालिन्ध्यामाह्निकाह्णमभसि ॥३४॥
 तथैतयुक्ते ततः स्नातः स्वाद्यान्तः स महामतिः । दध्मौ ब्रह्म परं विभ्राः प्रविश्य यमुनाजले ॥३५॥
 कणासिहस्रमालादधं बलभद्रं ददशं सः । कुन्दामलाङ्गमुन्निद्रपदमपश्रयतेक्षणम् ॥३६॥
 वृत्तं 'वासुकिडिम्भौघंमहद्भि' पयनाग्निभिः । 'सस्तूपमानसद्गन्धिवनमालाविभूषितम् ॥३७॥

उत्तरे नेत्र रूपी भौरे कृष्ण के मुख रूपी नमल का रसास्वादन करेंगे । वे व्यक्ति धन्य हैं, जो मार्ग में कृष्ण का दर्शन करते आनन्द से घायी को रोमाञ्चित करेंगे ॥२२-२५॥ आज गोविन्द के मुखावलोदन से मयूरावासियों को अपार हर्ष होगा । उन लोगों ने वीन सा सुस्वप्न देखा था जो आज प्रफुल्लित नेत्रों से कृष्ण का सदर्शन करेंगे । हाय ! शोरीजनों को महानिधि दिखाकर आज निर्दय विघाता ने उनसे नेत्रों को निवाल लिया । ' हम लोगों में अपने अनुराग को मिथिल करने हरि के चले जाने पर हमारे हाथों के चयन भी मिथिल हो रहे हैं । इस प्रकार आते अव-
 लाभों में प्रति किस दया उत्पन्न नहीं होगी ? किन्तु यह क्रूरहृदय अक्रूर सेनी से घोंदो को हीन रहा है । हा कृष्ण ! हा कृष्ण ! यह बहुत ज़ार रथ में चक्र की घूर्ति देखो । अब तो त्रिस घूर्ति ने कृष्ण को अलक्षित कर दिया, वह भी गिराई नहीं देनी ॥२३-३१॥ इस प्रकार अत्यन्त अनुराग से शोषित सावर्ती ही रही कि राम सहित कृष्ण यज के भू-भाग को पार कर गये । शीघ्रगामी अद्वययुक्त रथ से दीपहर के समय राम, अक्रूर और कृष्ण यमुना-तट पर पहुँचे । तब अक्रूर ने कृष्ण-राम में कहा—'सबतक आप दोनों आराम करें जब तक मैं यमुना-जल में नित्यवर्धं (सध्या-वदन कारि) मग्न रहता हूँ । विप्रबुद्ध ! जबकी स्वोद्यति मिल जाने पर महाबुद्धिमान् अक्रूर यमुना-जल में स्नान कर आश्रमन करने परब्रह्म का ध्यान करने लगे ॥३२-३५॥ उन्होंने जल के भीतर सहस्र पचाश्र में युक्त, कुन्दयुग के तदनु रवेनाग, विरगित कमलपत्र के समान दीर्घ नेत्र वाले, वासुकि के बच्चों से आवृत, महान् शरी से स्तूपमान, वनमाला से विभूषित, नीलवस्त्रधारी, मनीहर आमूषणों से युक्त, चाफ बुध्जलो से सुतोमिव और मद से श्रुते हुए

दधानमसिते वस्त्रे चारुरूपावतंसकम् । चारुकुण्डलिनं मत्तमन्तर्जलतले स्थितम् ॥३८॥
 तस्योत्सङ्गे घनश्याममाताग्रायतलोचनम् । चतुर्बाहुमुदारार्ङ्गं चनाद्यायुधभूषणम् ॥३९॥
 पोते वसानं वसने चित्रमाल्यविभूषितम् । चक्रचापतडिन्मालाविचित्रमिव तोयदम् ॥४०॥
 श्रीवत्सवक्षसं चारुकेयूरमुकुटोज्ज्वलम् । ददर्श कृष्णमविलष्टं पुण्डरीकावतंसयम् ॥४१॥
 सनन्दनाद्यैर्मुनिभिः सिद्धयोगैरकल्मषैः । 'सच्चिन्त्यमानं' मनसा नासाग्रन्यस्तलोचनं ॥४२॥
 बलकृष्णो तदाऽकूरं प्रत्यभिज्ञाय विस्मितः । अचिन्त्यदयो शीघ्रं कथमत्रागताविति ॥४३॥
 विवक्षो स्तम्भयामास वाचं तस्य जगद्गणः । ततो निष्क्रम्य सलिलाद्रयमभ्यागतं पुनः ॥४४॥
 ददर्श तत्र चंबोभौ रयस्योपरि सस्थितौ । रामकृष्णौ यथा पूर्वं मनुष्यवपुषाऽऽवृत्तौ ॥४५॥
 निमग्नश्च पुनस्तोये दृशे स तथैव तौ । सस्तूयमानौ गन्धर्वैर्मुनिसिद्धमहोरगैः ॥४६॥
 ततो विज्ञातसद्भावः स तु दानपतिस्तदा । तुष्टाव सर्वविज्ञानमयमच्युतमीश्वरम् ॥४७॥

अकूर उवाच

तन्मात्ररूपिणेऽचिन्त्यमहिम्ने परमात्मने । व्यापिने नैकलक्ष्मणरूपाय नमो नमः ॥४८॥
 शब्दरूपाय तैऽचिन्त्यहविर्भूताय ते नमः । नमो विज्ञानरूपाय पराय प्रवृत्ते प्रभो ॥४९॥
 भूतात्मा चेन्द्रियात्मा च प्रधानात्मा तथा भवान् । आत्मा च परमात्मा च त्वमेक पञ्चधा स्थितः ॥५०॥

बलमद्र को देता । उनके जोड़ प्रदेश में मेघ के समान श्यामवर्ण वाले, लाल तथा दीर्घ नेत्र वाले, चतुर्भुज, सुन्दर अव-
 यवा से युक्त, चक्र आदि आयुधों से विभूषित पीताम्बर, विचित्र मालाभा से सुशोभित, इन्द्रधनुष, विद्युत् तथा मेघ
 के सदृश दीप्तने वाले, श्रीवत्स नामक चिह्न से युक्त, सुन्दर केयूर तथा उज्ज्वल मुकुट से आभूषित, कमल-मुष्पा के
 आभूषण धारण करने वाले, प्रसन्न और नासिका के अग्रभाग में दृष्टि स्थिर करने निष्पन्न एवम् सिद्ध सनन्दन आदि
 मुनियों द्वारा ध्यान विय आते हुए कृष्ण का भी देता ॥३९-४२॥ तब अकूर 'यही बलमद्र और कृष्ण हैं' यह जानकर
 आश्चर्यान्वित हुए और सात्वन लगे—'इतनी जल्दी यहाँ कैसे आ गये। वे बोलते ही चाहते थे कि कृष्ण ने उनका
 वास्तव्यमान कर दिया। तब वे जल से बाहर निकल कर पुनः तब के पास आये। यहाँ भी पहिले का तट मनुष्य-
 परीक्षार्थी राम-कृष्ण का रूप पर दिखे देता। पुनः वे जल में डूबे तो उनका उत्तीर्ण रूप म देता कि गन्धर्व, मुनि,
 सिद्ध तथा महात्मा उनकी स्तुति कर रहे हैं। तब यथार्थभाव को समझकर अकूर ने सर्वविज्ञानमय ईश्वर कृष्ण
 की स्तुति प्रारम्भ की ॥४३-४७॥

अकूर बोलें—पञ्चतन्मात्राय, अचिन्त्य महिमा से युक्त, व्यापक और एतत् तथा अनन्त रूपा से परे पर-
 मात्मा का नमस्कार है। शब्दरूप तथा अचिन्त्यहविर्भूत आपका नमस्कार है। प्रभो! विज्ञानरूप तथा प्रवृत्ति से
 परे आगमो नमस्कार है। आप भूतात्मा इन्द्रियात्मा प्रधानात्मा, आत्मा तथा परमात्मा हैं। आप एतत् होत हुए
 भी उपर्युक्त पाँचा प्रकार से स्थित हैं ॥४८-५०॥ सर्वमर्त्यम् । क्षराक्षर ! महेश्वर ! प्रसन्न हृदये । ब्रह्मा,

प्रसीद सर्वधर्मात्मन्क्षराक्षर' महेश्वर । ब्रह्मविष्णुशिवाद्याभिः कल्पनाभिर्दोरितः' ॥५१॥
 अनाख्येयस्वरूपात्मन्नाख्येयप्रयोजन । अनाख्येयमभिधानं त्वां नतोऽस्मि परमेश्वरम् ॥५२॥
 न यत्र नाय विद्यन्ते नामजात्यादिकल्पनाः । तद्ब्रह्म परमं नित्यमविकारि भवानजः ॥५३॥
 न कल्पनामृतोऽयस्य सर्वस्याधिगमो यतः । ततः कृष्णाच्युतानन्त विष्णुसंज्ञाभिरोड्यसे ॥५४॥
 सर्वात्मन्स्त्वमज विकल्पनाभिरेतैर्देवास्त्वं जगदखिलं त्वमेव विद्वम् ।
 विश्वात्मन्स्त्वमतिविकारभेदहीनः, सर्वस्मिन् हि भवतोऽस्ति किञ्चिदन्यत् ॥५५॥
 त्वं ब्रह्मा पशुपतिरयमा विघाता, त्वं घाता त्रिददापतिः समीरणोऽग्निः ।
 तोयेशो धनपतिरन्तकस्त्वमेको, भिक्षात्मा जगदपि पाति शक्तिभेदेः ॥५६॥
 यिद्वं भवान्सृजति हन्ति गमस्तिरूपो, विद्वं च ते गुणमयाऽयमज प्रपञ्चः ।
 रूपं परं सदितिवाचकमक्षरं यज्ज्ञानात्मने सदसते प्रणतोऽस्मि तस्मै ॥५७॥
 ओं नमो वासुदेवाय नमःसकर्मणाय च । प्रद्युम्नाय नमस्तुभ्यमनिच्छाया तै नमः ॥५८॥

ध्यास उवाच

एषमन्तर्जले कृष्णमभिष्टूय स यादवः । अर्धयामास सर्वदां धूपपुष्पमनोमयः ॥५९॥
 परित्यज्यान्वविषयं मनस्तत्र निवेद्य सः । 'ब्रह्मभूते चिर स्थित्वा विरराम समाधितः ॥६०॥
 कृतकृत्यमिवाऽऽत्मानं मन्यमानो द्विजोत्तमाः । आजगाम रथं भूयो निर्गम्य' धमूनाम्भसः ॥६१॥

विष्णु, शिव आदि नामों से आप ही पुकारे जाते हैं । आपके स्वरूप, प्रयोजन तथा सत्ता भी अनिर्वचनीय हैं । पर-
 मेश्वर । आपको नमस्कार है । नाथ । जहाँ नाम, जाति आदि की कल्पना नहीं होती है, वह नित्य, अविकारी,
 अनात्मा परब्रह्म आप ही हैं । जिसलिये बिना कल्पना (सत्ता) के अयं (वस्तु) का अवबोध नहीं होता है इसलिये
 कृष्ण, अच्युत, अनन्त, विष्णु आदि संज्ञाओं से आपकी स्तुति की जाती है ॥५१-५४॥ अखिलात्मन । अज । इन
 विक्षोभों से मुक्त आप ही हैं, देव, सम्पूर्ण जगत् तथा विश्व भी आप ही हैं । विश्वात्मन् । आप विकार तथा भेद
 से अत्यन्त रहित हैं । आप सब मे हैं । आपने अतिरिक्त कुछ भी नहीं है । आप ब्रह्मा, शिव, अर्धमा, विघाता, घाता,
 इन्द्र, धाम, अग्नि, वरुण, कुबेर तथा यम हैं । आप एक होने हुए भी त्रिधात्मा हैं । आप शक्तिभेदों से सत्कार वा
 पालन करते हैं ॥५५-५६॥ गमस्ति (मृषं ?) रूप से आप विद्व का सृजन तथा नाश करते हैं । विद्व आपका गुण-
 मय है । यह आप ही का प्रपञ्च है । 'सत्' यह आकार, परम रूप तथा ज्ञानात्मा है । आपने उन सत्-असत् रूप
 को प्रणाम है । कामदेव का नमस्कार है । सकर्मण को नमस्कार है, प्रद्युम्न को नमस्कार है तथा अनिच्छा को
 नमस्कार है ॥५७-५८॥

ध्यास बोले—इस प्रकार जल के भीतर कृष्ण की स्तुति करते यादव ने मनोमय धूप-मुष्णों से सर्वेश्वर को
 अर्च दिया । अन्य विषयों का परित्याग कर ब्रह्मभूत कृष्ण से मन को रूपावर चिरकाल तब के वही समाधि में दूरे

रामकृष्णी ददर्शाय यथापूर्वमवस्थितौ । विस्मितास्त तदाऽक्रूर त च कृष्णोऽभ्यभाषत ॥६२॥

श्रीकृष्ण उवाच

किं त्वया दृष्टमाश्चर्यमक्रूर यमुनाजले । विस्मयोत्फुल्लनयनो भवासलक्ष्यते यतः ॥६३॥

अक्रूर उवाच

अन्तर्जले यदादचर्यं दृष्ट तत्र मयाऽच्युत । तदत्रैव हि पश्यामि मूर्तिमत्पुरतः स्थितम् ॥६४॥
जगदेत महाश्चर्यरूप यस्य महात्मन । तेनाऽऽश्चर्यपरेणाह भवता कृष्ण सगत ॥६५॥
तत्किमेतेन मयुरा प्रयामो मधुसूदन । बिभेमि 'कसाद्विजन्म परमिण्डोपजीविन' ॥६६॥

व्यास उवाच

इत्युक्त्वा धोदयामास साहयान्वातरहस । सप्राप्तश्चापि सायाह्ने सोऽक्रूरो मयुरा गुरीम् ॥
विलोक्य मयुरा कृष्ण राम घाऽह स यादव ॥६७॥

अक्रूर उवाच

पद्भ्यां यात महावीर्यो रयनेको विशाम्यहम् । गन्तव्य वसुदेवस्य नो भवद्भ्यां तथा गृहे ॥
युवयोर्हि वृते वृद्ध कसेन स निरस्यते ॥६८॥

रहे । द्विजश्रेष्ठो ! अपने को वृत्तव्य समझते हुए वे यमुना जल से निगल कर पुन रस पर आये । वहाँ राम-कृष्ण को यथापूर्व अवस्थित देखकर उन्होंने विस्मय से आँखें मूढ़ ली । तब कृष्ण ने उनसे कहा ॥५९-६२॥

श्रीकृष्ण बोले—अक्रूर ! यमुना-जल में तुमने क्या आश्चर्य देखा है जोकि तुम्हारे नेत्र विस्मय से प्रफुल्लित हो रहे हैं ? ॥६३॥

अक्रूर बोले—अच्युत ! जल के भीतर जो मैंने आश्चर्य देखा वह यहीं पर मेरे सामने मूर्तरूप में अवस्थित है । कृष्ण ! जिन महात्मा का यह निगल ससार ही आश्चर्यरूप है उन्हीं आश्चर्यों से भी पर वे साथ में हैं । मधुसूदन ! तो क्यों हम लोग मयुरा जायें ? वस से मुक्त कर लयता है । दूसरे का पिण्ड खाकर जाने वाले के जन्म को विचार है ॥६४-६६॥

व्यास बोले—शुनता कहकर पापु के समान तीव्र चलने वाले घोड़ा का हाँस कर सावधान अक्रूर मयुरा पुरी पहुँचे । मयुरा को देखकर यादव ने कृष्ण तथा राम से कहा ॥६७॥

अक्रूर बोले—महापराक्रमी ! आप दानो पैदल चल और मैं आत्मा ही रख स वसुदेव जी के घर जाता हूँ । आप लोग वहाँ भरी न जायें । ऐसा करने से वस वसुदेव जी को निगल बाहर कर देगा ॥६८॥

व्यास उवाच

पुक्त्वा प्रविवेशासावकूरो मयुरां पुरीम् । प्रविष्टौ रामकृष्णौ च राजमार्गमुपागतौ ॥६९॥
 भिन्नरैश्च सानन्दलोचनैरभिवीक्षितौ । जग्मतुर्लोकया घोरी प्राप्यौ बालगजाविव ॥७०॥
 ममाणी तु तौ वृष्ट्वा रजकं रज्जुकारकम् । अपाचेतां स्वरूपाणि वासांसि श्चिराणि तौ ॥७१॥
 तस्य रजकः सोऽय प्रसादाद्दविस्मयः । बहून्याक्षेपवाक्यानि प्राहोच्चं रामकेशवौ ॥७२॥
 स्तलप्रहारेण कृष्णस्तस्य दुरात्मनः । पातयामास कोपेन रजकस्य शिरो भुवि ॥७३॥
 वाऽऽदाय च वस्त्राणि पीतनीलाम्बरौ ततः । कृष्णरामौ मुदायुवतौ मालाकारगृह गतौ ॥७४॥
 कासिनेत्रयुगलो मालाकारोऽतिविस्मितः । एतौ कस्य कुतो यातौ मनसाऽचिन्तयत्ततः ॥७५॥
 तनीलाम्बरधरो वृष्ट्वाऽतिस्मृतोऽहरो । स तर्कयामास तदा भुव देवायुपागतौ ॥७६॥
 काशिमुज्रपद्मान्यां ताम्बा पुष्पाणि धाचितः । भुवं विष्टम्य हस्ताभ्यां परपशं शिरसा महीम् ॥७७॥
 तावत्सुमुखौ नाथो मम गेहमुपागतौ । धन्योऽहमर्चयिष्यामीत्याह तौ माहयजीविकः ॥७८॥
 तः प्रहृष्टदन्तस्तयोः पुष्पाणि कामतः । चारुभ्येतानि चैतानि प्रवदौ स बिलोभयन् ॥७९॥
 नः पुनः प्रणम्यासौ मालाकारोत्तमो ददौ । पुष्पाणि ताम्बां चारुणि गन्धधन्त्यमलानि च ॥८०॥

व्यास बोले—इतना कहकर अकूर मयुरापुरी में प्रविष्ट हुए और राम-कृष्ण भी राजमार्ग पर चलने लगे । र-नारियाँ आनन्दित नेत्रों से उनको देखने लगीं । वे दोनों बीर बालगज की तरह लीला करते हुए चलते थे । मग करते हुए उन्होंने एक गगरेज घोड़ी को देखा । उससे अपने अनुरूप सुन्दर वस्त्रों की याचना की । वह उस वा घोड़ी पा । इसलिये विस्मित होकर उसने राम-केशव से उच्चस्वर में बहुत व्यायुक्त वचन कहे । तब ण्ण ने त्रीध से उस दुरात्मा घोड़ी ने शिर को हस्त प्रहार से भूमि पर गिरा दिया । उसे मारकर पीले तथा नीले रंगों को लेकर हर्षित कृष्ण तथा राम माली के घर की ओर बढ़े । माली पीत-नीलाम्बरधारी दोनों माद्यों को देखकर तन्त्र आश्चर्यान्वित हुआ और प्रफुल्लित नेत्रों से उनकी ओर टाकते हुए मन में सोचने लगा—‘ये दोनों किसके हैं ? कहाँ जा रहे हैं ?’ ॥६९-७५॥ उसने अनुमान किया कि ये देव हैं । अपने मुखवमल को खोकर दोनों ने उससे पुष्पों की याचना की । माली ने पृथ्वी पर दोनों हाथों को रखकर शिर से भूमि का स्पर्श किया और कहा—‘नाथ ! प्रसन्न मुख वाले ! आप दोनों मेरे घर आये, इसी से मैं अपने को धन्य समझता हूँ । मैं आप दोनों की पूजा दूँगा ।’ इतना कहकर वह प्रसन्नतापूर्वक सुन्दर-सुन्दर फूलों से उन दोनों को लुमाटे हुए पुष्प समर्पित करने लगा । पुन पुन प्रणाम करने मालाकार ने उन्हें मनोहर, सुगन्धित तथा स्वच्छ पुष्प दिये । कृष्ण ने भी प्रसन्न होकर माली को वरदान दिया—‘भद्र ! मेरी आश्रित लक्ष्मी तुम्ह कभी भी न छोड़ेगी । सोम्य ! जब तक पृथ्वी

१क ०णो ततो ८० । २य सुख्याणि । ३. स. य. ०गलो मा० । ४क स जीवन । त० ।
 १ख. ०दन स्वय पु० । ६क. हृष्टात्मा ।

मालाकाराय कृष्णोऽपि प्रसन्नः प्रवदौ वरम् । श्रीस्त्वांमत्संधया भद्रं न कदाचिरप्यजिह्यति ॥८१॥
 बलहानिर्न ते सौम्य धनहानिरपि वा । यावद्धरणिभूयै च संततिः पुत्रपौत्रिकी ॥८२॥
 भुक्त्वा च विपुलाभोगांस्त्वमन्ते मत्प्रसादतः । ममानुस्मरणं प्राप्य दिव्यलोकमवाप्स्यसि ॥८३॥
 धर्मो 'मनश्च ते भद्र सर्वकालं भविष्यति । युष्मत्संततिजातानां दीर्घमायुर्भविष्यति ॥८४॥
 नोपसर्गादिकं दोषं युष्मत्संततिसंभवः । अवाप्स्यति महाभाग यावत्सूर्यो भविष्यति ॥८५॥

व्यास उवाच

इत्युक्त्वा तद्गुहात्कृष्णो बलदेवसहायवान् । निजंगाम मुनिश्रेष्ठा मालाकारेण पूजितः ॥८६॥

इति श्रीमहापुराणे आदिशास्त्रोक्तप्रत्यागमनं नाम द्विनवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१९२॥

अथ त्रिनवत्यधिकशततमोऽध्यायः

कुब्जोद्धारवर्णनम्

व्यास उवाच

राजमार्गे ततः कृष्णः सानुलेपनभाजमाम् । ददर्श कुब्जामायांतीं नवदीपनगोक्षराम् ॥१॥
 तामाह ललित कृष्णः कस्येदमनुलेपनम् । भवत्या नीयते सत्यं वदेद्वीरलोचने ॥२॥

तथा सूर्य रहेगे तब तक तुम्हारी बलहानि, तथा धनहानि नहीं होगी। पुनःपुनः आदि सन्तानें होगी। विपुल भोगों को भोगकर अन्त में तुम मेरी कृपा से मेरे स्मरण करते हुए दिव्यलोक को जाओगे। नन्द ! धर्म में तुम्हारा मन सदा लगेगा। तुम्हारी सन्तानों की लक्ष्मी आयु होगी। महामाया ! जब तक सूर्य रहेगे तब तक तुम्हें किसी प्रकार में उत्साह आदि दोष नहीं हूँ ॥७६-८५॥

व्यास बोले—मुनिश्रेष्ठी ! इतना बहुर मालाकार द्वारा पूजित कृष्ण बलराम के साथ उसके घर से बाहर निकल गए ॥८६॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में अक्षर-प्रत्यागमन नामक एक सो बानबेदा अध्याय समाप्त ॥१९२॥

अध्याय १६३

कुब्जा का उद्धार-वर्णनं

व्यास बोले—तदुपरांत कृष्ण ने राजमार्ग पर अनुलेप (चन्दन, बेसर आदि) के पात्र को लिये आती हुई नवदीपना कुब्जा को देखा। उसको देखकर कृष्ण ने कहा—'बललोचने ! जिसने लिये तुम यह कुललित

सकामेनैव सा प्रोक्ता सानुरागा हरि प्रति। प्राह सा ललित कुब्जा ददर्श च बलात्तत् ॥३॥

कुब्जोवाच

कान्त कस्मान् जानासि कसेनापि नियोजिता। नैकवक्त्रेति विख्यातामनुलेपनकर्मणि ॥४॥
नाग्यपिष्ट हि कसस्य प्रीतये ह्यनुलेपनम्। भवत्यहमतीवास्य प्रसादयन्भाजनम् ॥५॥

थीकृष्ण उवाच

सुगन्धभेताजानाहं रुचिर रुचिरानने। आवधोर्गात्रसदृश दीयतामनुलेपनम् ॥६॥

व्यास उवाच

श्रुत्वा समाह सा कृष्ण गृह्यतामिति सादरम्। अनुलेप च प्रददौ गात्रयोग्यमयोमयो ॥७॥
भविष्यच्छेदानुलिप्ताङ्गी ततस्तौ पुरुषपंभो। सैन्द्रचापो विराजन्तौ सितकृष्णावियाम्बुदौ ॥८॥
ततस्तां चिदुके 'शौरिरल्लापनविधानवित। उल्लाप्य तोलयामास 'द्वयङ्गुलेनाप्रपाणिना ॥९॥
ध्वयं पङ्कजा च तदा शृजुत्व केशयोऽनयत्। तत सा शृजुता प्राप्ता योयितामभवद्वरा ॥१०॥
विलासललित प्राह प्रेमगर्भभरालसम्। यस्ने प्रगृह्य गोविन्द व्रज गेह ममेति वै ॥११॥
आपास्ये भवतीगेहमिति सा प्राह केशव। विससर्ज जहासोर्ध्वं रामस्याऽल्लोषय चाऽननम् ॥१२॥

अनुलेपन लिय जा रही हो? सब बोले। कुब्जा भी तबाम भाव से कृष्ण की ओर देखकर सुन्दर बचन बोली ॥१३॥

कुब्जा ने कहा—बान्त! क्यों नहीं आप जानते कि कुब्जा कस के अनुलेपन कम के लिये रखी गई है। दूसरे का पिसा हुआ चन्दन कस को नहीं गहता है। मैं उसकी अत्यन्त कृपापात्र हूँ ॥४५॥

थीकृष्ण बोले—समुति! राजा ने योग्य यह सुगन्धित अनुलेप हम दोनों के अंगों में लगाने योग्य है। यह हम दे दो ॥६॥

व्यास बोले—यह सुनकर कुब्जा ने कृष्ण से आदरपूर्वक कहा—लौकिके। बाद में उसने उन दोनों के पीरों पर योग्य अनुलेप दे दिया। चित्रकारीपूर्वक अनुलेप के लगाने पर दोनों मरुपुंगव इन्द्रधनुष तथा 'गुर्व-कृष्ण बान्त' की तरह गम्भीर हुए। तदनन्तर उगने के विधान को जानने वाले कृष्ण ने अपनी हाथ की दो अंगुलियाँ को कुब्जा की ठुड्डी में लगाकर ऊपर की उठा दिया और पीरो से घीचा (अर्थात् अपने पीरो से उसका पीरा को दवाकर बिबुन को उठा दिया।) इस प्रकार कृष्ण ने उसको सीखा कर दिया। सीधी होने पर वह अल्प रमणी बन गई। तब गोविन्द ने यन्त्र पण्डितर उसने प्रभ से स्वालम् भरी होने के कारण अन्तायी हुई तथा हाव भाव से सुन्दर बात कृष्ण से बोली कि मरे घर चलिये। 'मैं आऊँगा' ऐसा कृष्ण ने भी उससे कह दिया। राम का मुग देगतर जाकर से

भवितच्छेदानुलिप्ताङ्गी नीलपीताम्बरावुभौ । धनुशाला ततो यातौ चित्रमाल्योपशोभितौ ॥१३॥
 अध्यास्य च धनूरत्न ताम्बा पृष्ठस्तु रक्षिभि । आरयात सहसा कृष्णो गृहीत्वाऽपूरयद्धनु ॥१४॥
 तत पूरयता तेन भज्यमान बलाद्धनु । चकारातिमहाशब्द मधुरा तन पूरिता ॥१५॥
 अनुपुवतौ ततस्ती च भग्ने धनुषि रक्षिभि । रक्षिसस्य निकृत्योभौ निष्कातो कामुकालयात ॥१६॥
 अक्रूरागमवृत्तान्तमुपलभ्य तथा धनु । भग्न श्रुत्वाऽप्य कसोऽपि प्राह चाणूरमुष्टिकौ ॥१७॥

कम उवाच

गोपालदारकी प्राप्ता भवद्भूया ती ममाग्रत । मल्लयुद्धेन हतव्यी मम प्राणहरौ हि तौ ॥१८॥
 निपुद्धे तद्विनाशन भवदभ्या तोषितो ह्यहम् । दास्याम्यभिमता कामान्ता यथैत महाबलौ ॥१९॥
 भ्यायतोऽयायतो वाऽपि भवदभ्या ती ममाहितौ । हन्तव्यौ तद्वधाद्वाऽप्य सामा य वो भविष्यति ॥२०॥

व्यास उवाच

इत्यादिश्य स तौ मल्लौ ततश्चाऽह्य हस्तिपथ । प्रोवाचोच्चैस्त्वया मत्त समाजद्वारि कुञ्जर ॥२१॥
 स्याप्य कुबलयापोडस्तेन तौ गोपदारकौ । घातनीयौ निपुद्धाय रङ्गद्वारमुपागतौ ॥२२॥
 तमाज्ञाप्याय पृष्ठवा च मञ्जुन्तवानुपाहृतान । आसन्नमरण कस सूर्योदयमुर्वक्षत ॥२३॥

हंसते हुए कृष्ण ने उसको बिदा किया । तदुपरांत भवितपूर्वक समर्पित अनुलेप से निष्ठाग नील-पीत-वस्त्रधारी तथा विचित्र मालाओं से सुशोभित राम और कृष्ण धनुष-शाला की ओर प्रस्थित हुए । वहाँ रणका से धनुष के बारे में पूछा । उनके बतलाने पर कृष्ण ने सहसा धनुष को उठाकर खींचा । बलपूर्वक खींचने से धनुष टूट गया । उसने महाशब्द से मधुरापुरी गूज उठी । धनुष के टूट जाने पर रणको ने उनके ऊपर आक्रमण किया । पर रक्षक-सैनिकों को मार-पीट कर दोनों वीर धनुषालय से निराल गये । अक्रूर के आग्रहण का वृत्तान्त एवम धनुष भग का समाचार सुनकर कस ने चाणूर और मुष्टिक से कहा ॥३७॥

कस बोला—दोनों गोपा-कुमार मेरे पास आ गये हैं । वे मेरे प्राणों के ग्राहक हैं । तुम उनको मार-मुह म मार दो । युद्ध में उनके मार दन से मैं प्रसन्न हूँगा और तुम दोनों महाबलवानों को मूढ़ भाग मुराद दूँगा । इतने असह्य न रामगो । पाय से मा जन्वाय से उन दोनों मेरे शत्रुओं को अवश्य मारना । उनके वध करने से राज्य पर तुम्हारा समानाधिकार होगा ॥१८-२०॥

व्यास बोले—उन महलवानों को एगा आगे देकर कस महावत को बुगजर जार से बहने लगा—कुवर्ष मापी नामर मतवाले हाथों को तुम द्वार पर रचना । युद्ध के लिये वे दोनों गोपा-कुल्यव्यारी सभर-द्वार पर आय ल्योही हाथी से डह करवा डारना । उसको आगा देकर समस्त रण-भवा को देखकर धूमपू कम ने सूर्योदय को देगा ।

तत समस्तमञ्चेषु नागर स तदा जन । राजमञ्चेषु चाऽऽहटा सह भूत्यर्मेहीभूत ॥२४॥
मल्लप्राशिनकवर्गश्च रङ्गमध्ये समीपग । कृत कसेन कसोऽपि तुङ्गमञ्चे व्यवस्थित ॥२५॥
अन्तपुराणा मञ्चाश्च यथाऽप्ये परिकल्पिता । अन्ये च वारमुत्पानामन्ये नगरयोपिताम् ॥२६॥
नन्दगोपादयो गोपा मञ्चेष्वन्येष्ववस्थिता । अक्रूरयसुदेवौ च मञ्चप्रान्ते ध्यवस्थितौ ॥२७॥
नगरोयोपिता मध्ये देवको पुत्रार्थिनी । अन्तकालेऽपि पुत्रस्य द्रक्ष्यामीति मुख स्थिता ॥२८॥
वाद्यमानेषु तूर्येषु चाणूरे चातिवल्पति । हाहाकारपरे लोक आस्फोटयति मुष्टिवे ॥२९॥
हत्वा ध्रुवलयपीड हस्त्यारोहप्रचोदितम् । मदासृगनुलिप्ताङ्गी गजदन्तवराधुधी ॥३०॥
मृगमध्ये यथा सिंहो गर्वलीलावलोकितो । प्रविष्टो सुमहारङ्ग बलदेवजनादनौ ॥३१॥
हाहाकारो महाङ्गजो सर्वरङ्गेष्वनन्तरम् । कृष्णोऽयं बलभद्रोऽयमिति लोकस्य विस्मयात् ॥३२॥
सोऽयं येन हता घोरा धृतना सा निशाचरो । प्रक्षिप्त शकटं येन भग्नौ च यमलार्जुनौ ॥३३॥
सोऽयं यः कालिय नागं नतर्ताऽऽरुह्य बालक । धृतो गोवर्धनो येन सप्तरात्र महागिरि ॥३४॥
अरिष्टो धनुर्व केशी लीलार्थं महारमना । हतो येन च दुर्वृत्तो दृश्यते सोऽयमच्युत ॥३५॥
अयं चास्य महाबाहुर्बलदेवोऽग्रजोऽग्रतः । प्रयाति लीलया थोपि मन्मथनयननन्दन ॥३६॥
अयं स' कथ्यते प्राज्ञे पुराणार्थावलोकिभि । गोपालो यादव वंश मन्मथमुद्धरिष्यति ॥३७॥

तब समस्त मन्चों पर नागरिक लोग बैठ गये । राज मन्चों पर अनुचरो समेत राजगण भी बैठ गये । पहलवाना
वा समुदाय रंगमंच के समीप ही अवस्थित हुआ । कस अयुक्च मंच पर विराजमान था । अन्त पुरवासिनी रङ्गाओं
के मंचाया क तथा नागरिक महिलाओं के अथ पुष्क-मृषक बनाये गये थे । नन्दगोप आदि गोप भी अथ मञ्चों
पर बैठ थे । अनूर तथा यमुदेव भी मञ्चप्रान्त में अवस्थित हुए । अन्तकाल में भी पुत्र का मुख देखूँगी इस लालसा
से देवकी नगर-नाटिका के बीच जा बैठी । नगाड बजने लगे । चाणूद अत्यन्त वागाडम्बर कर रहा था । मण्टिक
ताल ठान रहा था । लोग म हाहाकार मच रहा था ॥२१ २९॥ महावत द्वारा प्ररित ध्रुवन्त्यापीड को भारकर
उमक दौना को अस्त्र रूप में धारण कर तथा मव से तमाशा देखने वाले मव एवम शोणित रेलिप्त अग वाल मन्देव
और कृष्ण रंगमूमि में जसी तरह प्रविष्ट हुए जैसे सिंह मृगा के मध्य में । समस्त रंगमूमि में महान् कोराहल मच
गया । यह कृष्ण है यह बलराम है इस प्रकार बहते हुए लोग आश्चर्य के साथ एक दूसरे से पूछने लगे— य धही हैं
जिन्होंने धृतना नामक मयकर राक्षसी को भारा शकट को फका मगलाजुव को तोना कालिय नाग के ऊपर चढ़कर
नृत्य किया सात रात्रि तक गोवधन पर्वत का धारण किया और दुष्टाचारी अरिष्ट धनुर्व तथा बेगी को महन ही म
मार डाला । य अच्युत आज हमारे सामने हैं । ये महाभक्तिगाली बलदेव इनके ज्येष्ठ भाई हैं । य सहज ही म
वनिताया क चित तथा मवना को मुक्त कर देत हैं । इनके विषय में पुराणा के तत्त्ववेत्ता विद्वान् कहत हैं कि ये

अथ स सर्वभूतस्य विष्णोरखिलजन्मन । अवतीर्णो' महोमशो नून भारहरो भुव ॥३८॥
इत्येव वर्णिते पौरं रामे कृष्णे च तत्क्षणात् । उरस्तताप देवक्या स्नेहस्नुतपयोधरम् ॥३९॥
महोत्सवमिवालोक्य पुनाखेव विलोकयन् । युवेव' वसुदेवोऽभूद्विहायाम्यागतो जरात् ॥४०॥
विस्तारिताक्षियुगला राजान्तपुरयोपित । नागरस्त्रोसमूहश्च द्रष्टु न विरराम तो ॥४१॥

स्त्रिय ऊचु

सत्य पश्यत कृष्णस्य मुखमप्यम्बुजेषणम् । यजयुद्धकृतायासस्वेदाम्बुकणिकाञ्चितम् ॥४२॥
विकासोव सरोम्भोजमवदयाप्यजलोक्षितम् । परिभूताक्षर जन्म सफल क्रियता दश ॥४३॥
श्रीवत्साङ्ग जगद्धाम बालस्येत्तद्विलोकयताम् । विपक्षक्षपण वशो भुजयुग्म च भामिनि ॥४४॥
धलता मुष्टिकेनैव चाणूरेण तथा परं । क्रियते चलभद्रस्य हास्यमोषद्विलोक्यताम् ॥४५॥
सत्य पश्यत चाणूर नियुद्धार्थमथ हरि । समुपति न सत्यत्र किं वृद्धा युषतकारिण ॥४६॥
एव यौवनोन्मुखीभूत सुकुमारतनुहरि । वव घञ्जकठिनाभोगशरीरोऽय महासुर ॥४७॥
इमो सुललितो रङ्गे घर्तते नवयौवनो । दंतेयमल्लाश्चाणूरप्रमुखास्वतिदारणा ॥४८॥
निमुद्धप्रादिकाना तु महानेय व्यतिक्रम । यद्बालचलिनोर्युद्ध मध्यस्थं समुपेक्षते ॥४९॥

बूबे हुए मादव वग का उद्धार करे। ये सबजन्मा तथा सबभूत विष्णु के अन्त से पृथ्वी के भार उतारने के लिये धरती पर अवतीर्ण हुए हैं ॥३० ३८॥ इस प्रकार पुरवासी लोग राम और कृष्ण के वर्णन कर रहे थे और देवकी की छाती सतप्त होकर स्नेह से दूध बहा रही था। कमलेश्वर महान् उत्सव की तरह दोनों पुत्रों को ही देखते थे। वे मानो आई हुई वृद्धता का त्याग कर मुक्त हो गये थे। राजा के अन्तपुर की रमणियाँ तथा नगर की ललनाय आँख पाड़-काड़ कर उनकी ओर अविरत गति से देख रही थी ॥३९ ४१॥

स्त्रियो ने कहा—सखियो! कृष्ण के मुखवस्त्र का देखो। यजयुद्धजय प्रस्वेत-जल की वृद्धा से व्याप्त इनका मुख बंसे मुगोमित हो रहा है जैसे हिम-जल से सींचा हुआ विषमिश्र कमल। इनका दर्शन करने आज जन्म सफल करो। त्रिलासिनिया! इनके शीघ्रन बिद्ध 'गुप्ता को दलन करने वाली भुजाया तथा छाती को देखो। बाबाल मुष्टिन तथा चाणूर यन्त्रद्वारा उपहास कर रहे हैं जरा देखो ता। सखियो! चाणूर को देखो यह कृष्ण से लड़ने जा रहा है। क्या यहाँ न्याय करने वाले बद्ध लोग नहीं हैं? वहाँ यौवन को प्राप्त करते हुए ये मुगोमल्ल तनु कृष्ण और वहाँ यह वयस के गमान बठोर तथा मन्त्रावध महामुर? रवमूर्ति भ ये दोनों नवयुवक सुकुमार हैं और चाणूर प्रभूति दीय पहलवान अत्यन्त दारुण है। यद्यपि परीक्षा का यह महान् अवसर है जो य वाच्य तथा वक्तव्यों को रखा रहे है ॥४२ ४९॥

व्यास उवाच

इत्थं पुरस्त्रोलोकस्य बलतदचालयन्भुवम् । ववर्ष हर्षोत्कर्षं च जनस्य भगवान्हरिः ॥५०॥
 बलभद्रोऽपि चाऽऽस्फोटय धवलम् ललितं यदा । पदे पदे तदा भूमिर्न शीर्णा यत्तद्वद्भुतम् ॥५१॥
 चाणूरेण ततः कृष्णो युयुधेऽमितविक्रमः । निपुण्डकुशलो दैत्यो बलदेवेन मुष्टिकः ॥५२॥
 संनिपातावधूतश्च चाणूरेण समं हरिः । क्षेपणैर्मुष्टिभिश्चैव कीलीबज्रनिपातनः ॥५३॥
 पादोद्धूतः प्रमृष्टाभिस्तयोर्पुण्ड्रमभून्महतम् । अशस्त्रमतिघोरं तत्तयोर्पुण्ड्रं सुदारुणम् ॥५४॥
 स्वबलप्राणनिष्पाद्यं समाजोत्सवसन्निधौ । यावदावन्व चाणूरो युयुधे हरिणा सह ॥५५॥
 प्राणहानिमवापायां तावत्तावन्न बाण्यवम् । कृष्णोऽपि युयुधे तेन लीलयैव जगन्मयः ॥५६॥
 खेदाध्वालयता कोपान्निजशोपकरे करम् । बलक्षयं विवृद्धिं च दृष्ट्वा चाणूरकृष्णयोः ॥५७॥
 धारयामास तूर्थाणि कंसः कोपपरायणः । मृदङ्गादिषु बाधेषु प्रतिपिड्डेषु तत्क्षणात् ॥५८॥
 असंगतान्यबाधन्त देवतूर्थाभयनेकशः । जय गोविन्द चाणूर जहि' केशव दानवम् ॥५९॥
 इत्यन्तर्धगता देवास्तुष्टुब्रूते प्रहृषिताः । चाणूरेण क्षिर काल श्री'डिवा मधुसूदनः ॥६०॥
 उत्पाटय भ्रामयामास तद्वधाथ कृतोद्यमः । भ्रामयिषा' शतगुण दैत्यमरैश्चमित्रजित् ॥६१॥
 भूमावास्फोटयामास गगने गतजोदितम् । भूमावास्फोटितरतेन चाणूरः शतधा भवन् ॥६२॥

व्यास बोले—इस प्रकार नगर-नारियाँ पृथ्वी को कंपाती हुई बोल रही थी और भगवान् हरि लोगों को प्रमुदित कर रहे थे। जब बलभद्र भी ताल ठोक कर लज्जारले लग तब पग-पग पर पृथ्वी जो नहीं पटती, वह महान् आश्चर्य समझिये। तब चाणूर के साथ अनिलपरायणी कृष्ण और मुण्डकुशल मुष्टिक के साथ बलदेव लड़ने लगे। चाणूर के साथ कृष्ण टकराकर आचरण कर चक्कर बज्ज के समान कठोर मुक्के मारकर और पैर चलाकर महान् युद्ध करते लगे। चाणूर और कृष्ण का युद्ध बिना अदन-राहन के भी महामयकर था ॥५०-५४॥ समाजोत्सव में अपने बल तथा प्राणों की आहुति देती थी। जब-जब चाणूर हरि से मिटता था तब-तब उसे प्राणहानि मालूम पड़ती थी। कोई वाचक नहीं दीनता था। जगन्मय कृष्ण भी लीलापूर्वक उससे लड़ते थे और कभी घेद से तो कभी जोर से उससे हाथ भी अपन हाथ में पकड़ लेत थे। चाणूर के बलक्षय और कृष्ण की बलवृद्धि को देखकर बोधपरायण कंस ने तत्क्षण तुरही, मृदग आदि बाजा का बोलना रोक्वा दिया। परन्तु आकाश में देवताओं की अनेक तुरहियाँ बोलने लगीं—‘गोविन्द की जय हो। केशव ! दानव को मारिये।’ इस प्रकार अन्तर्हित हुए देवगण हृत्पुर्वक कृष्ण की स्तुति करने लगे। चाणूर ने साथ बिरवाल तक श्री'डा करके मधुसूदन उससे वध के निमित्त उसे उठाकर घुमान लगे। शत्रुविजयी कृष्ण ने दैत्य पहलवान को सी बार घुमाकर आकाश में ही उसे निष्प्राण कर भूमि पर गिरा दिया। घरनी पर गिरते ही चाणूर के सौ टुकड़े हो गये ॥५५-६२॥ तब चले, तब-तब, के पृथ्वी, पर कीलक श्री'कीलक कर दिखे, 'तब, मयम मय'तरी, बलदेव भी,

रक्तस्त्रायमहापङ्कजा चकार स तदा भुवम । बलदेवस्तु^१ तत्काल मुष्टिकेन महाबल ॥६३॥
 युयुधे दत्त्यमल्लेन चाणूरेण यथा हरि । सोऽप्यन मुष्टिना मूर्ध्नि वक्षस्याहत्य जानुना ॥६४॥
 पातयित्वा धरापृष्ठे निष्पिपेय गतायुपम । कृष्णस्तोशलक भूयो मल्लराज महाबलम ॥६५॥
 वाममुष्टिप्रहारण पातयामास भूतल । चाणूरे निहत मल्ल मुष्टिके च निपातिते ॥६६॥
 नोत क्षय तोशलक सर्वे मल्ला प्रदुद्रुवु । धवलगतुस्तदा रङ्ग कृष्णसकण्ठपाशुभौ ॥६७॥
 समानवयसो गोपाबलादाकृष्य हृषितौ । कसोऽपि कोपरवताक्ष 'प्राहोच्चर्व्यायितानरान' ॥६८॥
 'गोपावती' 'समाजोघान्निष्क्रम्यता बलादित । नन्दोऽपि गृह्यता पापो निगडैराशु बध्यताम ॥६९॥
 अवुद्धाह्णेण दण्डन वसुदवोऽपि 'बध्यताम । चलन्ति गोपा कृष्णेन ये चमे सहिता पुन' ॥७०॥
 गावो ह्रियन्तामपा च यच्चास्ति वसु किंचन । एवमाज्ञापयत त प्रहस्य मधुसूदन ॥७१॥
 उत्पत्याऽऽरुह्य तन्मञ्च कस जघाह 'वगित । केशोवाकृत्य विमलकिरीटम् इति तले ॥७२॥
 स कस पातयामास तस्योपरि क्षपात च । नि शयजगदाधारगुरुणा पततोपरि ॥७३॥
 कृष्णन त्वाजित प्रण द्वादसेनोत्तमो नृप । रुदस्य वक्षसु तदा गृहीत्वा मधुसूदन ॥७४॥

मुष्टिके के साथ बैठे ही उठ रहे थे जैसे दैत्य-मल्ल चाणूर के साथ हरि । उन्होंने भी उसने मल्ल पर मुष्टिप्रहार कर पुनः स उसकी छाती पर मारा । इस प्रकार गतजीवित कर पराशायी करने उसे पीस दिया । कृष्ण ने दूसरी बार तागन्ध नामक महाबली मल्लराज को वाम मुष्टिप्रहार से परागायी किया । पहलवान चाणूर मुष्टिके तथा तागन्ध के निहत हो जान पर तब मल्ल भाग गया । तब अलाह ने कृष्ण और राम हुए स अपन समवयस गावों को हठपूर्वक खींच कर उनका साथ लपटन लगा । वसु शेष से आग-बबूला हार कर अपन अनुबरा स बहुत गंगा— इन क्षात्रियों का बगल समोज स निगाँव दा पापी नद को भी कँद कर लो और बुद्धा को न इन साथ दण्ड स धनुष का बंध करे । कृष्ण के साथ जो गाव लपट रहे हैं उनको पकड़ आ और उनका घन तथा गापा का अटहरण कर ला ॥६९॥ ७०॥ इस प्रकार उसका आभा गुनवर मधुसूदन हसन लग और तत्क्षण छलांग मार कर मन्च पर पड़ गया । वहाँ उन्मत्त वन के बाग के पकड़ लिया । उसका मुकुट धरता पर गिर पड़ा । तत्पश्चात् उस धरता पर गिरा कर मगवान् भा उमंग उमंग गिर पड़ा । आग जगत् के आधार कृष्ण के विरुद्ध स उग्रमन का पुत्र निर्भीक हो गया । तब मृता वग के बगल का पकड़ कर मृतावक कृष्ण यमीटल हुए उग्र रथमक के मध्य में आया । यद्यपि वसु का गारा बहुत भारी था ता भी महामा कृष्ण वग से उस घसीट ल गए । कृष्ण द्वारा वन के पकड़ जान पर उन्मा मार

१४ रा ००पोर्नि० । २४ ०वसो गो० । ३४ ०ध्यावृत्तान्० । ४४ ०तान्तरा० । ५४ ०पारिमी
 द्वा रदगानिषदराभादि । ७० । १४ ०भी दुनवर निषदराभादि । अत्राहं । ७४ यथ्याम् । ८४ पुन ।
 १४ वसव । रा वेगा ।

चवर्षं देह कसस्य रङ्गमध्ये महाबल । गौरवेणातिमहता परिपातेन' कृत्यता ॥७५॥
 कृता कसस्य देहेन वेगितेन महात्मना । कसे गृहीते कृष्णेन तद्भ्राताऽन्यागतो ह्य ॥७६॥
 सुनामा बलभद्रेण लीलयेव निपातित । ततो हाहाकृत सर्वमासोत्तद्रङ्गमण्डलम् ॥७७॥
 अवज्ञया' हत दृष्ट्वा कृष्णेन मयुरेश्वरम् । कृष्णोऽपि वसुदेवस्य पादौ अग्राह सत्वरम् ॥७८॥
 देवव्याश्च महाबाहुर्बलदेवसहायवान् । उत्थाप्य वसुदेवस्तु देवकी च जनार्दनम् ॥
 स्मृतजन्मोस्तवचनो तावेव प्रणतो स्थितौ ॥७९॥

वसुदेव उवाच

प्रसीद देवदेवेश देवाना प्रवर प्रभो । तयाऽऽवयो प्रसादेन कृताम्बुद्धार केशव ॥८०॥
 धाराधितो' यद्भगवानवतीर्णो गृहे मम । दुर्वृत्तनिधनार्थाय तेन न पावित कुलम् ॥८१॥
 त्वमन्त सर्वभूताना सर्वभूतेष्ववस्थित । धर्तते च समस्तात्मस्त्वत्तो भूतमविध्यती ॥८२॥
 यतो त्वमिज्यसेऽचिन्त्य सर्वदेवमाध्युत । त्वमेव यज्ञो' यज्ञा' च यज्ञाना परमेश्वर ॥८३॥
 सापल्लव मम मनो धदेतत्त्वयि जायते । देवव्याश्चाऽऽत्मजप्रोद्या तदत्यन्तविदग्धना ॥८४॥
 त्व कर्ता सर्वभूतानामनादिनिधनो भवान् । क्व च मे मानुषस्येषा जिह्वा पुत्रेति यदपि ॥८५॥
 जगदेतज्जगन्नाम सभूतमखिल यत' । कया मुक्त्या विना' माया सोऽस्मत्त सभविष्यति ॥८६॥

सुनामा श्रीव कर्ते हुए वहाँ आया किन्तु बलभद्र ने सहज ही म उसे मार डाला । तब सम्पूर्ण रंग भूमि में हाहाकार मच गया । जिसका प्रवचन कस को मारकर महाबली बन्धक सहित कृष्ण शीघ्र ही जाकर वसुदेव तथा देवकी के चरणों पर गिर । देवता तथा वसुदेव जनार्दन को उठाकर जमनांगन बचना का स्मरण कर उन्हा को प्रणाम करते हुए छोड़े हुए ॥७९७९॥

वसुदेव बोले—द्वन्द्व' देव । म श्रुत् । प्रभो । प्रसन्न होइय । केशव । आपन कृपा करने हम दोनों का उद्धार कर दिया । मेरी आराधना करने पर दुष्टचारिणों के वध के निमित्त जा आपने मेरे घर में अवतार लिया जगमें हमारा कुल पवित्र हो गया । आप समस्त भूता न अन्तःकरण म वास करने हैं । आप अवि' भूतो म अवस्थित हैं । अखिलात्मन् । आप ही से भूत सक्रिय वतमान उत्पन्न हुए हैं । अचिन्त्य । निमित्तदेवमय । अजन्म । य म आप ही की उपासना की जाता है । परमेश्वर । आप ही यन तथा यज्ञकर्ता हैं । मर और देवी का मन जा पुत्र-पुत्र-पुत्र आप म लगता है वह विदग्धनाभाय है । आप समस्त भूता के कर्ता तथा जन्म मरण स रटिन हैं । म मानुष हैं । मेरी जिह्वा पुत्र कर्म कही ? जगन्नाथ । यह सम्पूर्ण जगन् जिनम उत्पन्न हुआ है व विना माया के किम प्रकार हमम उत्पन्न हाय ? जिनम स्थावर-जगम रूप निगल बिम्ब प्रतिष्ठित है वे पंग मानुष स उत्पन्न

१९ परिपातेन । २० परिपातेन । २१ वनयाऽऽह । २२ वा ० नाऽपि मयः । २३ यज्ञे । २४ स यथा । २५ मरेत् । २६ ० यो सादुष्य सः ।

यस्मिन्प्रतिष्ठित सर्वं जगत्स्थावरजङ्गमम् । स कोष्ठोत्सङ्गशयनो मनुष्याज्जायते कथम् ॥८७॥
 स त्व प्रसीद परमेश्वर पाहि विश्वमशावतारकरणेनं ममासि पुत्र
 आब्रह्मपादपमय जगदोश सर्वं, चित्ते विमोहयसि किं परमेश्वरात्मन् ॥८८॥
 मायाविमोहितदृशा तनयो ममेति, कसाद्भय कृतवता तु मयाऽतितीव्रम्
 नीतोऽसि गोकुलमरातिभयाकुलस्य, वृद्धिं गतोऽसि मम चैव गवामधीश ॥८९॥
 कर्माणि रुद्रमरुदशिवशक्ततूना, साध्यानि यानि न भवन्ति निरोक्षितानि
 त्वं विष्णुरोशजगतामुपकारहेतोः, प्राप्तोऽसि न परिगत परमो विमोहः ॥९०॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे बालचरिते कसवधकथन नाम

त्रिनवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१९३॥

अथ चतुर्नवत्यधिकशततमोऽध्यायः

देवकीवसुदेवाभ्या सह कृष्णसंवाद

व्यास उवाच

सौ समुत्पन्नविज्ञानी भगवत्कर्मदशनात् । देवकीवसुदेवौ तु दृष्ट्वा मायां पुनर्हरिः ॥१॥

हुंकर गीब म सोपने ? ॥८० ८७॥ परमेश्वर ! वह आप प्रसन्न होइये विश्व की रक्षा कीजिये। आप अग से अवतीर्ण हुए हैं मेरे पुत्र नहीं हैं। जगदीश ! ब्रह्मा से लेकर स्तम्भ पयन्त सब आप ही हैं। परमेश्वरात्मन् ! क्यों बिस को मोह भ डाल रहे हैं ? माया-मोहित धर्मा से मैंने आपको पुत्र रूप म देया। फिर कल के अत्यन्त भय से मैंने आपको गोकुल पहुँचाया। श्वेत्त्रं शत्रु-भय से मैं व्याकुल था। आपने मेरा उद्धार किया। जो बाप रुद्र मरतु अश्विन तथा इंद्र के साथ नहीं हैं जिहे वे देख भी नहीं सकते उन्ही बापों को आपने सत्कार के कल्याण के लिये किया। ईश ! आप विष्णु हैं। हम महामोह भ प्राप्त हैं ॥८८ ९०॥

श्रीब्रह्ममहापुराण म बालचरित-कथन प्रसंग म कसवध-कथन नाम

एव सौ तिरानवेवा अध्याय समाप्त ॥१९३॥

अध्याय १९४

देवकी और वसुदेव के साथ कृष्ण का संवाद

व्यास बोले—भगवान् कीजिया देखने स देवकी तथा वसुदेव को जान उत्पन्न हो गया। यह देखकर यादवों को मोह भ डालने के लिये हरि न पुन अपनी वैष्णवी माया को पैला दिया और कहा— तात ! अम्ब ! बस से

मोहाय 'यदुचक्रस्य विततान स वेष्ववीम्। उवाच चाम्ब भोस्तात चिरादुत्कण्ठितेन तु' ॥२॥
 भवन्तो' कंसभीतेन' दृष्टौ संकर्षणेन च। कुर्वतां याति यः कालो मातापित्रोरपूजनम् ॥३॥
 स' वृथा बलेशकारी वं साधूनामुपजायते। गुरुदेवद्विजातीनां मातापित्रोश्च पूजनम् ॥४॥
 कुर्वतः सफलं जन्म देहितस्तात जायते। तत्क्षन्तव्यमिव सर्वमतिक्रमकृतं पितः ॥
 'कंसवीर्यप्रतापाम्यामावयोः परवश्ययोः ॥५॥

ध्यास उवाच

इत्युक्त्वाऽप्य प्रणम्योभौ यदुबुद्धाननुक्रमात्। पादानतिभिः सस्नेहं चक्रतुः पौरमानसम् ॥६॥
 कंसपत्न्यस्ततः कंसं परिवार्य हतं भुवि। विलेपुर्मातरश्चास्य शोकदुःखपरिप्लुता ॥७॥
 बहुप्रकारमस्वस्थाः पश्चात्तापातुरा हरिः। ताः समाश्वासयामास स्वयमस्त्राविलेक्षणः ॥८॥
 उप्रसेनं ततो बन्धान्मुमोच मधुसूदनः। अग्न्यपिञ्चत्तर्ष्वनं निजराज्ये हतात्मजम् ॥९॥
 राज्येऽभिषिक्तः कृष्णेन यदुसिंहः सुतस्य सः। चकार प्रेतकार्याणि ये चान्ये तत्र यातिताः ॥१०॥
 कृतोर्ध्वदेहिकं चैनं सिंहासनगतं हरिः। उवाचाऽऽज्ञापय विभो यत्कार्यमविशङ्कया ॥११॥
 यथातिशयाद्विशोऽयमराज्याहोऽपि सांप्रतम्। ममि भूत्ये स्थिते देवानाज्ञापयतु किं नृपैः ॥१२॥
 इत्युक्त्वा धीप्रसेनं तु वायुं प्रतिजगाद ह। नृवाचा चैव भगवान्कोशयः कार्यमानुषः ॥१३॥

इसे हुए बलराम का तथा मुझे चिरकाल से आपके दर्शन करने की उत्कण्ठा थी। सो आज पूरी हुई। जिसका मनय माता-पिता के पूजन किये बिना ही कटता है, वह व्यर्थ है, केवल साधुओं को बलेश देने के लिये वह उत्पन्न होता है। तात! गुरु, देवता, ब्राह्मण तथा माता-पिता की पूजा करने वाले मनुष्य का जन्म सफल है। पिता जी! अतः आप क्षमा करेंगे। कंस के पराक्रम तथा प्रताप से पराधीन होकर हम दोनों ने इन सब का अतिक्रमण किया ॥१-५॥

ध्यास बोले—इतना कहकर दोनों ने क्रमशः यदुबुद्धी बूढ़ों के चरण छूकर प्रणाम किया। पुरवासियों के मन में उनके प्रति अत्यन्त स्नेह हो गया। भूमि पर निहत्त कंस को देखकर कंस की पत्नियाँ तथा मातायें शोकातुर होकर विलाप करने लगीं। परचात्ताप करती हुईं उन अस्वस्थ अवलाया को स्वयम् आँसु बहाते हुए कृष्ण ने बहुत प्रकार से आश्वासन दिया। तब मधुसूदन ने उप्रसेन को बन्धन से उन्मुक्त किया और पुत्र के मर जाने पर अपने राज्य में उन्हीं को अभिषिक्त किया। कृष्ण द्वारा राज्य में अभिषिक्त होकर उप्रसेन ने पुत्र के तथा वहाँ जितने मारे गये थे, उन सबके याद दिये। और्ध्वदेहिक जिया करने के बाद उप्रसेन ने सिंहासनासीन होने पर कृष्ण ने उनसे कहा—'प्रभो! आप नि सक्रोच मुझे आज्ञा दीजिये। यथाति के शाप के कारण यदुबुद्धी तो राजा हो नहीं सकते। फिर भी मेरे जैसे मृत्यु के रहते आप देवराजों का भी आज्ञा दीजिये। राजाओं की तो बात ही क्या।' उप्रसेन से इतना कहकर बार्माय मनुष्यशरीरधारी भगवान् नेशव ने वायु से मनुष्यवाणी यही कहा ॥६-१३॥

१. वसुदेवस्य। २. ग. मे। ३. भवती। ४. नवन कृत सेवन मया। कु०। ५. स तु दुःखयो-
 ज्यर्थं ता०। ६. ०वीर्यप्रवसतोऽयव०।

श्रीकृष्ण उवाच

गच्छेन्द्रं ब्रूहि वायो त्वमलं गर्वेण वासव । द्योयतामुग्रसेनाय सुधर्मा भवता सभा ॥१४॥
कृष्णो ब्रवीति राजाहंमेतद्रत्नमनुत्तमम् । सुधर्माख्या सभा युवतमस्यां यदुभिरासितुम् ॥१५॥

ध्यास उवाच

इत्युक्तः पवनो गत्वा सर्वमाह शचीपतिम् । ददौ सोऽपि सुधर्माख्यां सभां वायोः पुरंदरः ॥१६॥
वायुना चाऽऽहृता दिव्या ते सभा यदुपगवाः । बभूवुः सर्वरत्नाढ्या गोविन्दभुजसंभवाः ॥१७॥
विदिताखिलविज्ञानी सर्वज्ञानमयावपि । शिष्याचार्यश्रमं वीरो व्यापयन्तौ यदुत्तमौ ॥१८॥
ततः सादीपनि काश्यपवन्तिपुरवासिनम् । अस्त्रार्थं जग्मतुर्वीरो बलदेवजनार्दनौ ॥१९॥
तस्य शिष्यत्वमभ्येत्य गुरुवृत्तिपरो हि तौ । दर्शयाचक्रतुर्वीरावाचारमखिले जने ॥२०॥
सरहस्यं धनुर्वेदं ससंग्रहमधीयताम् । अहोरात्रंश्चतुःषष्ट्या तदद्भुतमभूद्विजाः ॥२१॥
सादीपनिरसंभाय तयोः कर्मातिमानुपम् । विचिन्त्य तौ तदा मेने प्राप्तां चन्द्रदिवाकरौ ॥२२॥
अस्त्रप्राममशेषं च प्रोक्तमात्रवाप्य तौ । ऊचतुर्नयितां या ते दातव्या गुरुदक्षिणा ॥२३॥
सोऽप्यतीन्द्रियमालोचय तयोः कर्म महामतिः । अयाचत मृतं पुत्रं प्रभासे रुवणार्णवे ॥२४॥

श्रीकृष्ण बोले—जाओ और इन्द्र से गर्वपूर्वक कहो—‘आप उग्रसेना को सुधर्मा नामक देवसभा दे दीजिये ।
कृष्ण कहते हैं कि यह उत्तम रत्न राजा के योग्य है । सुधर्मा नामक सभा मे यादवों का बैठना उचित है ॥१४-१५॥

ध्यास बोले—एतदुपरांत पवन ने इन्द्र से जाकर सब समाचार कह दिये । उन्होंने भी वायु को सुधर्मा नामक सभा दे दी । वायु देवसभा को ले आये । गोविन्द के भुजबल से यदुपगव अखिल रत्नों से सुसम्पन्न देवसभा का उपभोग करने लगे । निखिल विज्ञान को जानने वाले, सर्वज्ञानमय तथा वीर यादवश्रेष्ठ कृष्ण और बलराम शिष्य तथा आचार्य के श्रम को विख्यात करने के निमित्त अवन्तिपुरवासी सादीपनि से अस्त्र विद्या सीखने के लिये गये । उनके शिष्यत्व को स्वीकार करके गुरुसेवापरायण होकर दोनों वीर लोगों को आचार दिखलाने लगे । द्विज-गण ! यह आश्चर्य की बात है कि चौंसठ अहोरात्र मे ही उन्होंने संग्रह तथा रहस्य सहित धनुर्वेद को सीख लिया ॥१६-२१॥ सादीपनि ने उन दोनों के असंग्रह तथा लोकोत्तर कर्म को देखकर उन्हें सुयं तथा चन्द्रमा समझा । अस्त्र समूह का प्रयोग तो बताते ही उन्होंने सीख लिया । तब उन्होंने गुरु से कहा—‘आप दक्षिणा के लिये हमें आदेश करें ।’ महानुद्दिमान् सादीपनि ने भी उनके अतीन्द्रिय कर्म को देखकर प्रमास नामक क्षात्र समुद्र मे मरे हुए अपने पुत्र के लिये याचना की । तब अस्त्र लेकर वे दोनों रुवण समुद्र को गये और समुद्र से कहा—‘गुरु-पुत्र को दे दो । द्विजश्रेष्ठो ।’

१ख वाहिता । २क ख ता । ३क यदुवन्दवा । ४क शिष्टाचारकमाचार्यो व्या० ।
५क शम्भार्य । ६ शिष्यार्य । ६ख ०ण । असाधारणमा० ।

गृहीतास्तौ ततस्तौ तु' गत्वा त लवणोदधिम् । ऊचतुश्च गुरो पुनो दीयतामिति सागरम् ॥२५॥
 कृताञ्जलिपुटश्चाब्धिस्तावथ द्विजसत्तमा । उवाच न मया पुत्रो हृत सादीपनेरिति ॥२६॥
 दैत्य पञ्चजनो नाम शङ्खरूप' स बालकम् । जप्राह सोऽस्ति सलिले ममैवासुरसूदन ॥२७॥
 इत्युक्तोऽन्तर्जलं गत्वा हत्वा पञ्चजन' तथा । कृष्णो जप्राह तस्यास्थिप्रभव' शङ्खमुत्तमम् ॥२८॥
 यस्य नादेन दैत्याना बलहानि प्रजायते । देवाना वर्धते तेजो यात्यधर्मश्च सक्षयम् ॥२९॥
 त पाञ्चजन्यमापूर्य' गत्वा यमपुरीं हरि । बलदेवश्च बलवाञ्जित्वा बंधवत्त यमम् ॥३०॥
 त बाल यातनास्य यथापूर्वशरीरिणम् । पित्रे प्रदत्तवान्कृष्णो बलश्च बलिना वर ॥३१॥
 मयुरा च पुन प्राप्तावुप्रसेनेन पालिताम् । प्रहृष्टपुरषस्त्रीकावुभौ रामजनार्दनौ ॥३२॥
 इति श्रीमहापुराणे आदिवाह्ये बालचरिते चतुर्नघत्यधिशततमोऽध्याय ॥१९४॥

अथ पञ्चनवत्यधिकशततमोऽध्यायः

जरासधेन सह रामजनार्दनयुद्धवर्णनम्

ਭਯਾਸਿ ਉਦਾਚ

जरासन्धसुते कस उपपन्ने महाबल । अस्ति प्राप्तिश्च भो विप्रास्तयोर्भर्तुं हण हरिम् ॥१॥

समुद्र ने हाथ जोड़कर कहा—अमरमुदन ! सादीपनि के पुत्र का अपहरण मैंने नहीं किया है बल्कि शल का रूप धारण कर पञ्चजन नामक राक्षस मेरे जल में रहता है। उसी ने शलक को पकड़ रखा है। यह सुनकर कृष्ण ने जल के भीतर घुसकर पञ्चजन को मारकर उसकी हड्डियों के बने उत्तम शल को ले लिया जिससे शङ्ख में दैत्यों की बल्हानि देवा की तेजोवृद्धि तथा अथम का क्षय होता है। उस पावकज नामक शल को मज्जाते हुए कृष्ण और बलदेव यमुपुरी को गये। कृष्ण तथा बलवान् बलराम ने वहाँ वैष्णव धर्म को जीत कर यातना भोगते हुए उस बाणक को यथापूर्व शरीर में प्राप्त करने पिता (सादीपनि) को दे दिया। पुनः राय और जनानंद उग्रसेन द्वारा प्रतिपालित यमुरा पुत्री में आकर नर-नारियों को प्रमदित करने लगे। ॥२२३॥ २२॥

श्रीब्रह्ममहापुराण मे वाल्मिकिरित्र-वचन प्रसंग मे एक सौ चौरानवेवाँ अध्याय समाप्त ॥१९४॥

अध्याय १६५

जरासघ के साथ राम-कृष्ण का युद्ध-वर्णन

ध्यास बोले—जरासभ की बलि और प्राप्ति नामक दो बन्धुओं के साथ बस का विवाह हुआ था।

११ तु ऊचमुच महोदधिम् । उवाच न मया पुत्रो हृत सादीप्तेति । दै० । २४ बहुहपी ।
३१ ०१ च तम् । कृ० । ४२ ०स्याद्वयम् ।

महाबलपरीवारो मागधाधिपतिर्बली । हन्तुमभ्यग्रयौ कोपाज्जरासंधः सयादवम् ॥२॥
 उपेत्य मयुरां सोऽयं शरोध मगधेदयरः । अक्षौहिणीभिः सैन्यस्य त्रयोविंशतिभिर्बृत् ॥३॥
 निष्क्रम्याल्पपरीवाराबुभौ रामजनार्दनौ । मयुधाते समं तस्य बलिनो बलिसैनिकं ॥४॥
 ततो चलश्च कृष्णश्च मतिं चक्रे महाबलः । आयुधानां पुराणानामादाने मुनिसत्तमा ॥५॥
 अनन्तरं चक्रशाङ्गं तूष्णीं चाप्यक्षयौ शरैः । आकाशादागतौ वीरौ तदा कौमोदकी गदा ॥६॥
 हलं च बलभद्रस्य गगनादागमत्करम् । बलस्याभिमतं विप्राः सुनन्दं मृशालं तथा ॥७॥
 ततो युद्धे पराजित्य स्वसैन्यं मगधाधिपम् । पुरीं विवशतुर्वीराबुभौ रामजनार्दनौ ॥८॥
 जिते तस्मिन्सुदुर्वृत्ते जरासंधे द्विजोत्तमाः । जीवमाने गते तत्र कृष्णो मेने न तं जितम् ॥९॥
 पुनरप्याजगामाप जरासंधो बलान्वितः । जितश्च रामकृष्णभ्यामपकृत्य द्विजोत्तमा ॥१०॥
 दश चाट्टी च संप्रामानेवमत्यन्तदुर्मदः । यदुभिर्मगधो राजा चक्रे कृष्णपुरोगमः ॥११॥
 सर्वेऽप्येव च युद्धेषु यदुभिः स पराजितः । अपक्रान्तौ जरासंधः स्वल्पसैन्यबलाधिकः ॥१२॥
 तद्वयलं यादवानां वै रक्षितं यदनेकशः । तत्तु सनिधिमाहात्म्यं विष्णोरशस्य घत्रिणः ॥१३॥
 मनुष्यधर्मशीलस्य लीला सा जगतः पते । अक्ष्त्राण्यनेकरूपाणि यदरातिपु मुञ्चति ॥१४॥
 मनसंब जगत्सृष्टिसंहारं तु करोति यः । तत्स्यारिपक्षक्षपणे कियानुद्यमविस्तरः ॥१५॥

कृष्ण द्वारा वस के निहत् हो जाने पर बनी मगधेश्वर जरासन्ध चौध से विचाल सेना को लेकर यादव सहित कृष्ण को मारने के लिये आया । मयुरा पट्टेच कर मगधपति ने तेईस अक्षौहिणी सेनाओं से उसको घेर लिया । घोड़ों-सी सेना लेकर बलशाली राम-जनार्दन निकल आये और जरासन्ध के सैनिकों के साथ जुझ पड़े । मुनिप्रेष्टा ! पहिले तो महाबली बलराम तथा कृष्ण ने प्राचीन आयुधों का ग्रहण किया, फिर बाद में आकाश से समागत चक्र, शाङ्ग नामक घनपुष्पा बाणा से परिसूत्र अथवा तरवस तथा कौमोदकी नामक गदा को ग्रहण किया । बलभद्र का हल भी आकाश से हाथ में आ गया । विप्रगण ! बलराम का प्रिय सुनन्द भाषक युक्ताल भी उनसे पास आ गया । तब युद्ध में सेना सहित मगधेश्वर का जीतिशर सेना वीर राम और कृष्ण नगर में प्रविष्ट हुए । विप्रवर ! दुराचारी जरासन्ध के जीत लिये जाने पर तथा उगने जीवित रहे जाने पर कृष्ण ने उसको पराजित न माना । पुन बनी जरासन्ध आया और बलराम तथा कृष्ण ने द्वारा अपहार करने जीता गया ॥१-१०॥ द्विप्रेष्टो ! इस प्रकार अत्यन्त दुर्मद राजा जरासन्ध ने अट्टारह बार कृष्ण आदि यादवों से युद्ध किया । अन्त्येष्ट युद्ध में यदुओं से पराजित होकर अन्य सेनाओं के साथ वह माग जाया था । यादवों की अनेक सेनाओं की जो रक्षा हो जाती थी, वह तो विष्णु के अग्रभूत कृष्ण के सामीप्य का माहात्म्य था । मनुष्यधर्मशीलजी जगत्तति ने जो रात्रियों के ऊपर अनेक प्रकार के अक्ष्त्रों का प्रयोग किया, वह तो उनकी लीला थी । जो केवल मन में ममार की सृष्टि का सहार कर देने हैं, उन्हें रात्रियों के नाश करने में

तयाऽपि च मनुष्याणां धर्मस्तदनुवर्तनम् । कुर्वन्बलवतां संधिं हीनैर्बुद्धं करोत्यसौ ॥१६॥
सामं चोपप्रदानं च तया भेदं च दर्शयन् । करोति दण्डपातं च बवचिदेव पलायनम् ॥१७॥
मनुष्यदेहिनां चेष्टामित्येवमनुवर्तते । लीला जगत्पतेस्तस्य च्छन्दतः संप्रवर्तते ॥१८॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे श्रीकृष्णचरिते पञ्चनवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१९५॥

अथ पणवत्यधिकशततमोऽध्यायः

कालयवनोपाख्यानम्

व्यास उवाच

गार्ग्यं गोष्ठे द्विजो [ज] श्यालः पण्ड [ण्ड] इत्युक्तवान्द्विजाः । यदूनां सनिधौ सर्वे जहसुर्यादिवास्तदा ॥१॥
ततः कोपसमाविष्टो रक्षिणापयमेत्य सः । सुतमिच्छस्तपस्तेपे यदुधकभयावहम् ॥२॥
'आराधयन्महादेवं' 'सोऽप्यश्चूर्णमभक्षयत् । ददौ वरं च तुष्टोऽसौ वर्षे द्वादशकै हुरः ॥३॥
'संभावयामास स त यवनेशो' ह्यनात्मजम् । 'तद्योपित्संगमाच्चास्य पुत्रोऽभूदलिसप्रभः' ॥४॥

कितना उद्यम करना पड़ता ? तो भी मनुष्य-धर्म वा अवलम्बन करते हुए उन्होंने जरासन्ध के साथ युद्ध किया । वे साम, दान, भेद, दण्ड तथा बर्ही पलायन भी करते थे । मनुष्यों जैसी चेष्टा करते हुए जगत्पति की लीला स्वच्छन्द तथा प्रवृत्त होती है ॥११११८॥

श्रीब्रह्ममहापुराण मे श्रीकृष्णचरित्र-वर्णन प्रसंग मे एक सो पञ्चानवेवाँ अध्याय समाप्त ॥१९५॥

अध्याय १९६

कालयवन का उपाख्यान

व्यास बोले—द्वेजगण ! (एक बार) समा मे यादवो ने द्विज गार्ग्य को साले, नृपुत्तक आदि कहकर गालियाँ दी । तब वे अत्यन्त क्रुद्ध होकर रक्षिणापय मे आकर यदुवसियो के लिए मदाबहु पुत्र उत्पन्न करने की इच्छा से तप करने लगे । उन्होंने शिव की आराधना करते हुए लोहे का चूर्ण मक्षण किया । बारहवें वर्ष मे शंकर ने प्रसन्न होकर उन्हे वरदान दिया । तब वे पुत्र विहीन यवनेश (म्लेच्छों के राजा) से आकर मिले । यवनेश ने उनका सम्मान किया । अनन्तर उन्होंने उसकी स्त्री से सगम करके भार्ये के समान नान्दि वाले पुत्र को उत्पन्न किया । उसका नाम कालयवन

१४. ०४ । शालोज्य द्वित्रिगार्ग्यं पण्डमित्यु० । ३३ ०देवा स्थिता । त० । ३४ ०त्रमुखाव० । ४४ ०देवमोजस्तीक्ष्णममृतदा । ६० । ५६. सोऽय प्रत्यक्षता गत । ६० । ६४ समोजया० । ७४ ०शो जना० । ८४ ०मातस्य । ९४ ०दसमञ्जस । त ।

त कालयवन नाम राज्ञे स्वे यवनेश्वर । अभिविध्य वन यातो वज्राप्रकठिनोरसम् ॥५॥
 स तु वीर्यमदोन्मत्त पृथिव्या बलिनो नृपान । पप्रच्छ नारदश्चास्मै कथयामास यादवान् ॥६॥
 म्लेच्छकोटिसहस्राणां सहस्रं सोऽपि सवत् । गजाश्वरयसपन्नंश्चकार परमोद्यमम् ॥७॥
 प्रययौ चाऽस्तव(प)ञ्चिदं प्रयाणं स दिने दिने । यादवान्प्रति सामर्थ्यं मुनयो मथुरा पुरीम् ॥८॥
 कृष्णोऽपि चिन्तयामास क्षपित यादव 'बलम्' । यवनेन समालोक्य मागध' सप्रयास्यति ॥९॥
 मागधस्य बल क्षोण स कालयवनो बली । हन्ता' तदिदमायात' यदूना व्यसन द्विधा ॥१०॥
 तस्माददुर्गं करिष्यामि यदूनामतिदुर्जयम् । स्त्रियोऽपि यत्र मध्येयु किं पुनर्वृ'णियादवा ॥११॥
 मयि मत्ते प्रमत्ते वा सुप्ते प्रवसितोऽपि वा । यादवाभिभव दुष्टा मा कुर्वन्व(मुंवे) रिणोऽधिकम् ॥१२॥
 इति सचिन्त्य गोविन्दो योजनानि महोदधिम् । ययाचे द्वादश पुरीं द्वारका तत्र निर्ममे ॥१३॥
 महोद्याना' महावप्रा तदागशतशोभिताम् । प्रकारशतसंवापामि द्रष्टव्येवामरावतीम् ॥१४॥
 मथुरावासिन स्त्रोक तत्राऽन्ये जगद्भवे । अस्मिन् वाहयदने' मथुरा च इदं द्यौः ॥१५॥
 बहिरावासित संये मथुराया निरायुध । निजगाम स गोविन्दो द्वादश दक्षनश्च तम् ॥१६॥
 स ज्ञात्वा वासुदेव त बाहुप्रहरणो नृप । अनुयातो महावीरिभक्तोभि प्रायते न य ॥१७॥
 तेनानुयात कृष्णोऽपि प्रविवेश महागुहाम । यत्र शते महावीर्यो मुचुकुन्दो नरेश्वर ॥१८॥

पडा । वज्र के अग्रभाग के समान कठोर छाती वाले कालयवन को राज्य में अभिविद्य करके यवनेश्वर वन को चले गये ॥१५॥ बल के मद से उन्मत्त कालयवन बली राजाओं के बारे में पूछ-ताछ करने लगा । नारद ने उससे यादवों का नाम बताना दिया । तब वह हाथी घोड़ों से सुसज्ज हवाग्रे करोड़ सेनाओं से युक्त होकर यादवों के प्रति कोप करते हुए मथुरा के लिये प्रस्थित हुआ । प्रयाण करती हुई उसकी सेनाओं के चरण रज से सूय आ-छादित हो गये । कृष्ण भी सोचने लगे—यवन द्वारा यादवों के बल का क्षय होते देखकर जरासभ दूट पड़गा । भगवद्गोपी क्षीण सेना तथा बली कालयवन दोनों लड़गे । तब तो यादवों के लिये दो सकट उपस्थित हो जायेंगे । इसलिये यदुवर्गियों के निमित्त मैं अजैय दुर्ग की रचना करूँगा जहाँ से स्थिया भी युद्ध कर सकेंगी । मृगि और यादवों की तो बात ही क्या ? ॥६॥ ११॥ एस। सोचकर गोविन्द ने समुद्र से कोतो लवे-चौडे स्थान की य चन की ओर वहाँ द्वारका पुरी का निर्माण किया । उसमें बड़े-बड़ छ्दान तथा मिट्टी के टीले ये सैंकड़ों तालाब ये और सकड़ों जहा-रदीवारियों से आवृत होकर वह नगरी इन्द्रावती की शोभा प्राप्त कर रही थी । जनादन ने मथुरावासियों को लाकर वहाँ रख दिया । कालयवन के मथुरा पहुँचने पर ये स्वयं वहाँ चले गये ॥१२॥ १५॥ मथुरा के बाहर ही सेनाओं को रखकर गोविन्द नि राख्य होकर जाने लगे । यवन ने उनको देख लिया । तब कृष्ण को पहचान कर भुजाओं से प्रहार करने वाले राजा ने उनका पीछा किया जिहे महावीरियों के चित भी नहीं प्राप्त करते हैं । कृष्ण आगे आगे मागधे हुए महागुह में प्रविष्ट होकर वहाँ पहुँच गये जहाँ महापराक्रमी राजा मुचुकुन्द क्षयन कर रहे थे । दुर्मति यवन ने भी गुफा में पैठ कर

१ख ०म चक स य० । २ख वज्रवत्कठि० । ३क स ०हृत्स्वापि । ४ग कुलम् । ५क ०म । पवते नगरे रम्ये मागधस्य भविष्यति । ६ग ०गधस्य भविष्यति । न मा० । ७ख न्ताऽव० सुसमा० । ८ख बहूना । ९ख महोद्यता । १०ख क द्वारकामानयद्वि । उमत्त का० । ११ख ०वर्गो मथुराया स्व० ।

सोऽपि प्रविष्टो यवनो दृष्ट्वा शय्यागतं नरम् । पादेन ताडयामास कृष्णं मत्वा स दुर्मति ॥१९॥
 दृष्ट्वा तत्रैव तेनासौ जज्वाल यवनोऽग्निना । तत्प्ररोधजेन मुनयो भस्मीभूतश्च तत्क्षणात् ॥२०॥
 स हि देवासुरे युद्धे मत्वा जित्वा महासुरान् । निद्रार्तं सुमहाकालं निद्रां वयं वरं सुरान् ॥२१॥
 प्रोक्तश्च देवं तस्मिन् यस्तवामृत्यापयिष्यति । देहेनेनाग्निना सद्यः स तु भस्मीभविष्यति ॥२२॥
 एव दग्ध्या स त पापं दृष्ट्वा च मधुसूदनम् । कस्त्वमित्याह सोऽप्याह जातोऽहं शशिनं कुले ॥२३॥
 वसुदेवस्य तनयो यदुवशासमुद्भव । मुचुकुन्दोऽपि तच्छ्रुत्वा बृद्धमार्ग्यदेव स्मरन् ॥२४॥
 तस्मैत्यं प्रणिपत्येनं सर्वं सर्वेश्वर हरिम् । ग्राहं ज्ञातो भयान्विष्णोरशस्त्य परमेश्वर ॥२५॥
 पुरा गायेण कथितमष्टाविंशतिमे युगे । द्वापरान्ते हरेर्जन्म यदुवशे भविष्यति ॥२६॥
 स त्वं प्राप्तो न सदेहो मर्त्यानामुपकारकृत् । तथा हि सुमहत्तेजो नालं सोऽदुमहं तव ॥२७॥
 तथा हि सुमहाम्भोदध्यनिधोरत्तरं ततः । वायव्यं तमिति होवाच मुष्मत्पादसुलालितम् ॥२८॥
 देवासुरे महायुद्धे दंष्ट्राश्च सुमहाभटा । न शेकुस्ते महत्तेजस्तत्तेजो न सहाम्यहम् ॥२९॥
 ससारपतितपैको जन्तोस्तस्य क्षरणं परम् । सप्रसीद प्रपन्नार्तिहर्ता हरं भस्माशुभम् ॥३०॥
 त्वं पयोनिधयं शैलं सरितश्च वानि च । मेदिनी गगनं वायुरापोऽग्निस्तस्य तथा पुमान् ॥३१॥

सोये हुए मनुष्य को देखकर उसे कृष्ण समझ कर पैर से मार दिया । मुनिवृन्द । मुचुकुन्द की दृष्टि पड़ते ही उनके श्रोत्र जप अग्नि से यवन तत्क्षण जलकर भस्मसात् हो गया ॥१९॥ २०॥ मुचुकुन्द देवासुर सग्राम में गये थे । वहाँ उन्होंने असुरों को तब देवासुरों से पीड़ित होकर देवताओं से यही वरदान मागा था कि मैं विरजा तक साया रहूँ । वेदों ने उनका कहा था कि जो व्यक्ति सोये हुए तुषको उठावेगा वह देहोत्पन्न अग्नि से सद्यः भस्म हो जायगा । इस प्रकार उस पापी को जगाकर मधुसूदन को देखकर उन्होंने पूछा—तुम क्यों हो ? कृष्ण ने उत्तर दिया । 'मेरी उत्पत्ति चन्द्रकु' म हुई है । मैं वसुदेव का पुत्र हूँ । यदुवा का वंश में उत्पन्न हुआ हूँ । यह सुनकर मुचुकुन्द भी गायत्रि के वचन का स्मरण करते-सर्वेश्वर हरि को प्रणाम करते हुए बहने लगे—मैंने आपको जान लिया । आप विष्णु के अंग हैं अर्थात् परमेश्वर हैं । पहिले गायत्रि ने कहा था कि अट्ठाईसव युग द्वापर के अंत में यदुवंश में हरि का जन्म होगा । मनुष्या का जन्मवार बरन वाले व आप ही पधार हैं । मुझे इसमें तनिय भी सदेह नहीं है । मैं आपके सज को सहन करने में समर्थ नहीं हूँ । आपके गंडासमुद्र के समान घोर वचन भी मुझ असह्य हो रहा है । देवासुर सग्राम में महावीर दैत्यगण भी आपसे तेज को नहीं सह सके थे वही महान् तेज मुझ सह्य नहीं हो रहा है ॥२१॥ २२॥ ससार में पतित जीव के लिये आप ही एक गुरु हैं । गरणागत की आति हरण करने वाले ! प्रसन्न होइये । मेरे अंगुन का नाम कीजिय । आप समुद्र पर्वत पानी वन पृथ्वी आकाश वायु जल अग्नि तथा पुरुष हैं । आप पुरुष

१९ घातयामास । २० ऽट्ठावयगनुस्म० । २१ गणेश । २२ ०हो यादवानु० । २३ ०नुमम पते० । २४ वायु पयोनिधय त० । २५ ०नु । स्वयंप्रिय गुणपत्तर्व व्याप्त ज० ।

पुंसः परतरं सर्वं व्याप्य जन्म विकल्पयत् । शब्दादिहीनमजरं वृद्धिक्षयविवर्जितम् ॥३२॥
 त्वत्तोऽमरास्तु पितरो यक्षगन्धर्वराक्षसाः । सिद्धाश्चाप्सरसस्त्वत्तो मनुष्याः पशवः खगाः ॥३३॥
 सरोसुपा मृगाः सर्वे त्वत्तश्चैव महोरुहाः । यच्च भूतं भविष्यद्वा किञ्चिदत्र धराचरे ॥३४॥
 अमृतं मूर्तमथवा स्थूलं सूक्ष्मतरं तथा । तत्सर्वं त्वं जगत्कर्तृनास्ति किञ्चित्त्वया बिना ॥३५॥
 मया संसारचक्रेऽस्मिन्ग्रमता भगवन्सदा । तापत्रयाभिभूतेन न प्राप्ता निर्वृतिः क्वचित् ॥३६॥
 दुःखान्येव सुखानीति भृगतृष्णा जलाशयः । मया नाथ गृहीतानि तानि तापाय मेऽभवन् ॥३७॥
 राज्यमुर्वी बलं कोशो मित्रपक्षस्तयाऽऽत्मजाः । भार्या भृत्यजना ये च शब्दाद्या विषयाः प्रभो ॥३८॥
 सुखबुद्ध्या मया सर्वं गृहीतमिदमव्यय । परिणामे च देवेश तापात्मकमभूमम ॥३९॥
 देवलोकागतिं प्राप्तो नाथ देवगणोऽपि हि । भक्तः साहाय्यकामोभूच्छाश्वतो कुत्र निर्वृतिः ॥४०॥
 त्वामनाराध्य जगतां सर्वेषां प्रभवस्त्वदम् । शाश्वतो प्राप्यते केन परमेश्वर निर्वृतिः ॥४१॥
 त्वन्मायामूढमनसो जन्ममृत्युजरादिकान् । अवाप्य पापान्पश्यन्ति प्रेतराजानमन्तरा ॥४२॥
 ततः पादाशतैर्बद्धा नरकेष्वतिदारुणम् । प्राप्नुवन्ति महद्दुःखं विश्वरूपमिदं तव ॥४३॥
 अहमत्यन्तविषयी मोहितस्तव मायया । भमत्वागधगतान्ते भ्रमामि परमेश्वर ॥४४॥

ऐ भी परे है । सब मे व्याप्त होकर आप स्थित हैं । आपका जन्म वैकल्पिक, शब्दादि से हीन, अजर तथा ह्रास और क्षय से विवर्जित है । आप ही से देव, पितर, यक्ष, गन्धर्व, राक्षस, सिद्ध, अप्सरा, मनुष्य, पशु, पक्षी, सर्प, मृग तथा वृक्ष उत्पन्न हुए हैं । इस धराचर जगत् मे जो कुछ भी भूत, भविष्य, अमूर्त, मूर्त, स्थूल तथा सूक्ष्म हैं, वह सब आप ही हैं । जगत्कर्ता । बिना आपके कुछ भी नहीं है । भगवन् । इस संसारचक्र मे भ्रमण करते हुए मैंने तापत्रय से अनिमृत् होकर बड़ी शान्ति नहीं पायी ॥३०-३६॥ नाथ । भृगतृष्णा मे पक्कर मैंने दुःख ही को सुख समझा । पर उससे मुझे सताप ही मिला । प्रभो । राज्य, पृथ्वी, सेना, कोष, मित्रसमूह, पुत्र, स्त्री, मृत्यु तथा शब्द आदि जितने विषय हैं, उन सबको मैंने सुख समझकर ग्रहण किया । परन्तु परिणाम मे मुझे ताप ही हुआ । देवेश । मैं देवलोक को गया । वहाँ देवगण ने मुझसे सहायता मागी, फिर नित्य सुख कहाँ है ? परमेश्वर । संसार मे आदि-कारण रूप आपकी आराधना किए बिना शाश्वत सुख कहाँ से मिल सकता है ? आपकी माया से मुग्ध होकर प्राणी जन्म, मृत्यु, जरा आदि को प्राप्त कर बिना यमराज के ही और पापियों को देखते हैं । तब सैकड़ो पाशो मे बद्ध होकर नरको मे अत्यन्त भयकर दुःख पाते है । यह आपका विश्वरूप है । परमेश्वर । मैं अत्यन्त विषयी हूँ । आपकी माया से मोहित होकर भमत्वरूपी अगाध गर्त मे भ्रमण कर रहा हूँ । वही मैं ईश तथा स्तुत्य प्रभु की धारण मे प्राप्त

१ख. ०त् । सुप्यादि० । २ख. ०र जन्मक्ष० । ३ख. ०र्वकिनरा । सि० । ४ख. तापत्रययुतेन
 मो । रा० । ५ख. ०दिकै । शस्त्रवाप्या प्रपश्य० । ६ख. ०गन तदा । त० । ७ख. ०क्ष स्वक्षप
 निन्दतस्तव ।

सोऽह त्वा शरणमपारमौशमीडय, सप्राप्त परमपद यतो न किञ्चित् ।
ससारथमपरितापतप्तचेता निर्विण्णे परिणतधाम्नि साभिलाष

॥४५॥

इति धीमहापुराणे आदिब्राह्मे कालयवनवधे मुचुकुन्दस्तुतिनिरूपण
नाम षण्णवत्यधिकशततमोऽध्याय ॥१९६॥

अथ सप्तनवत्यधिकशततमोऽध्यायः

गोकुले बलप्रत्यागमनवर्णनम्

व्यास उवाच'

इत्य स्तुतस्तदा तेन मुचुकुन्देन धीमता । प्राहेश सर्वभूतानामनादिनिधनो हरि ॥१॥

श्रीकृष्ण उवाच

यथाऽभिवाञ्छितालोकादिद्व्यान्मच्छ नरेश्वर । अव्याहृतपरैश्वर्यो मत्प्रसादोपबृंहित ॥२॥
भुक्त्या दिव्यान्महाभोगाभयिष्मसि महाकुले । जातिस्मरो मत्प्रसादास्ततो भोक्षमवाप्स्यसि ॥३॥

हूँ । आपके अतिरिक्त कोई परमपद नहीं है । सासारिक त्राप से परितप्त होकर मैं विरक्त एवं रूपान्तर को प्राप्त
पाम वाले आपकी अभिलाषा करता हूँ । ॥१७४५॥

धीमहापुराण में कालयवन वध कथन प्रसंग में मुचुकुन्द स्तुति निरूपण
नामक एक सौ छानवेवाँ अध्याय समाप्त ॥१९६॥

अध्याय १९७

गोकुल में बलराम का लोटवा

व्यास बोले—इस प्रकार धीमान् मुचुकुन्द द्वारा प्रस्तुत होने पर सपस्त प्राणियों के ईश तथा जन्म मरण
से रहित कृष्ण ने कहा ॥१॥

श्रीकृष्ण बोले—राजन् ! तुम मेरे कृपापात्र होकर अनिवाञ्छित निम्न लोको को जाओ । वहाँ समस्त
ऐश्वर्यों से सम्पन्न होकर दिव्य महामोर्ष को भोग कर महान् कुल में उत्पन्न होगे । मेरी कृपा से तुम्हें पूर्व जन्मों
का स्मरण रहेगा । इससे बाद तुम मोक्ष पाओगे ॥२३॥

व्यास उवाच

इत्युक्तः प्रणिपत्येशं 'जगतामच्युतं नृप' । गुहामुष्णाद्विनिष्क्रान्ता ददृशे सोऽल्पकान्नरान् ॥४॥
 ततः कलियुगं ज्ञात्वा प्राप्तं तप्तु ततो नृप । नरनारायणस्थानं प्रययौ गन्धमादनम् ॥५॥
 कृष्णोऽपि घातयित्वाऽरिमुपायेन हि तद्बलम् । जप्राह मयुरामेत्य हस्त्यश्वस्यन्दनोज्ज्वलम् ॥६॥
 आनीय चोग्रसेनाय द्वारवत्या न्यवेदयत् । पराभिभवनिःशङ्कं बभूव च^१ यदोः कुलम् ॥७॥
 बलदेवोऽपि विप्रेन्द्राः^२ प्रशान्तखिलविग्रहः । ज्ञातिदर्शनसौत्कण्ठः प्रययौ नन्दगोकुलम् ॥८॥
 ततो गोपाश्च गोप्यश्च यथापूर्वमभिप्रजित् । तथैवाम्यवदत्प्रेम्णा बहुमानपुरःसरम् ॥९॥
 कैश्चापि संपरिष्वक्तः काश्चित्स परिरस्यजे । हासं चक्रे समं कैश्चिद्गोपगोपीजनैस्तथा ॥१०॥
 'प्रियाण्यनेकान्यवदन्नोपास्तन' हलामुधम् । गाप्यश्च प्रेममुदिताः प्रोचुः सैष्यंमथापराः ॥११॥
 गोप्यः पप्रच्छुरपरा नागरीजनबलभः । कच्चिदास्ते सुखं कृष्णश्चलत्प्रेमरसाकुलः ॥१२॥
 अस्मच्चचेदोपहसतं न कच्चिचपुरयोपितम् । सौभाग्यमानमधिक करोति क्षणसौहृदः ॥१३॥
 कच्चित्समरति नः कृष्णो गीतानुगमनं कृतम्^३ । अप्यसौ मातरं द्रष्टुं सकृदप्यागमिष्यति ॥१४॥

व्यास बोले—यह बड़े जाने पर राजा जगत्पति कृष्ण को प्रणाम करके गुफा से बाहर हो गये । उन्होंने षोढे ही मनुष्यों को देखा । तब कलियुग जानकर वे तप करने के लिये विमिश्र गन्धमादनपर्वत पर नरनारायण के स्थान के लिये प्रस्थित हो गये । कृष्ण ने युक्ति से शत्रु को भरवा कर मयुरा आकर उसकी सेना को विनष्ट किया, फिर उसने हाथी, घोड़े तथा उज्ज्वल रथ को लेकर द्वारका में उग्रसेन का दे दिया । तब दण्डुवशी पराजय की आशंका से रहित हो गये । द्विजप्रेम्णों^१ अखिल युद्धों के शान्त हो जाने पर बन्धुओं के दर्शन करने की उत्कण्ठा से बलदेव नन्द के गोकुल गये ॥४-८॥ वहाँ शत्रुजित् बलराम ने गोप-गोपियों साथ अत्यन्त सम्मानपूर्वक प्रेम से वार्तालाप किया । किसी ने उनका आलिंगन किया और किसी का आलिंगन उन्होंने ही किया । किन्तु गोप-गोपियों के साथ उन्होंने हास्य किया । गोपों ने बलराम से अनेक प्रिय बातें कही । गोपियों ने प्रेम से विनम्र होकर ईष्ययुक्त वचन कहा । कुछ गोपियों ने पूछा —नगर नारियों के प्रिय तथा प्रेमलम्पट कृष्ण कुशल से तो हैं ? क्षणिक स्नेह करने वाले हरि नागरिक रमणियों के सौभाग्य तथा मान को खूब बढ़ाते होंगे और हम लोगों का उपहास करते होंगे । कभी कृष्ण हम लोगों के गीतों का स्मरण करते हैं ? क्या वे एक बार भी माता के दर्शन करने के लिये आयेंगे ? अथवा उनके बारे में बातचीत करने से क्या लाभ ? दूसरी कथा कीजिये, जो हमसे और उनसे कोई सम्बन्ध नहीं

१ क ०तामीश्वर नृ० । २ ग ०ज्ज्वलाम् । ३ क ख यदोर्बलम् । ४ क मुनय । ख मुनिमि ।

५ क ०दगोपास्ता० । ६ क ०युध । गो० । ७ क कलम् ।

अथवा किं तदालापं क्रियन्तामपरा कथा । यदस्माभिविना तेन (तस्य) विनाऽस्माकं भविष्यति ॥१५॥
पिता माता तथा भ्राता भर्ता बन्धुजनश्च क' । न त्यक्तस्तत्कृतेऽस्माभिरकृतज्ञस्ततो हि स ॥१६॥
तथाऽपि 'कच्चिदात्मोयमिहाऽऽगमनसश्चयम् । करोति कृष्णो वक्तव्यं भवता' वचनामृतम् ॥१७॥
दामोदरोऽसौ गोविन्द पुरस्त्रोऽवतमानस । अपेतप्रोतिरस्मासु दुर्दर्शः* प्रतिभाति न ॥१८॥

व्यास उवाच

आमन्त्रितः स कृष्णेति पुनर्दामोदरेति च । जहसु सुस्वर गोप्यो हरिणाऽकृष्टचेतसः ॥१९॥
सर्वेशः* सौम्यमधुरं प्रेमगर्भैरगावर्तितः । रामेणाऽऽश्वासिता गोप्य कृष्णस्यातिमधुस्वरं ॥२०॥
गोपंश्च पूर्ववद्राम परिहासमनोहरं । कथाश्चकार प्रेम्णा च सह तर्जन्भूमिषु ॥२१॥
इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे गोकुले बलप्रत्यागमनवर्णनं नाम सप्तनवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१९७॥

अथाष्टनवत्यधिकशततमोऽध्यायः

हलिक्रीडावर्णनम्

व्यास उवाच

वने 'विहरतस्तस्य सह गोपं महात्मनः' । मानुषच्छदमरूपस्य शेषस्य धरणीभूत ॥१॥

रखती हो। उनके निमित्त हमने पिता माता माई स्वामी बन्धुजन तथा जिसका परिचाय नहीं किया? इसलिये वे अहतज्ञ हैं। तो भी आप बतलाइए कि क्या वे नभो यहाँ आने के लिये आत्म-यता दिखलायेगे? नागरिक राम गिषा में आसक्त मन वाले तथा हम लोगों की प्राप्ति की उपेक्षा करने वाले दामोदर गोविन्द का दान तो हम लोगों के लिये असम्भव है ॥१९-१८॥

व्यास बोले—कृष्ण द्वारा आकृष्ट वित्त वाल गोपियाँ कृष्ण! दामोदर! इस प्रकार सम्बोधन करती हुई मधुर स्वर में हँसने लगा। तब राम ने अत्यन्त मधुर स्वर से कृष्ण के सौम्य मधुर प्रेमगर्भित और निरभिमान सदेगा की मुनावर गापियों की आत्मासन दिया। ब्रज में गोपा ने राम के साथ पहले की तरह प्रेम से मनोहर परिहास तथा वातालाप किये ॥२१॥

श्रीब्रह्मपुराण में गोकुल में बलराम के प्रत्यागमन वर्णन नामक एव सौ सप्तानवेर्वा अध्याय समाप्त ॥१९७॥

अध्याय १६८

बलराम की क्रीडा का वर्णन

व्यास बोले—गोपा के साथ वन में विहार करते हुए अजोषधरणी का धारण करने वाले महान् रायों की

१क ग किम् २क स ० दालापमि० । ३क ० ता कृष्ण हृद्गत० । ख ० ता कृष्णपूवज । दा० ।
४क ० दाँ मन्दमागिनाम् । व्या० । ५स ० शं सामम० । ६ स विचर० । ७स ० तमि । मा० ।

निष्पादितोरुकार्यस्य कार्पण्येवावतरिण । उपभोगार्थमत्यर्थं वरुण प्राह वारुणीम् ॥२॥

वरुण उवाच

अभीष्टां सर्वदा ह्यस्य मदिरं त्व महोजस । अनन्तस्योपभोगाय तस्य गच्छ मुदे शुभे ॥३॥

ध्यास उवाच

इत्युक्ता वारुणी तेन सनिधानमयाकरोत् । बृन्दावनतटोत्पन्नकदम्बतलकोटरे ॥४॥
 विचरन्बलदेवोऽपि मदिरागन्धमुद्धतम् । आध्राय मदिराहर्षमवापाय पुरातनम् ॥५॥
 ततः कदम्बात्सहसा मद्यधारा स लाङ्गलो । पतन्तीं बोध्य मुनय प्रययौ परमा मुदम् ॥६॥
 पपी च गोपगोपीभि समवेतो मुदाऽन्वित । उपगीयमानो ललित गीतवाद्यविशारदः ॥७॥
 श्रमतोऽप्यन्तर्धर्मांश्च कणिकामौषितकोऽञ्ज्वल । आगच्छ यमुने स्नातुमिच्छामोत्याह विह्वल ॥८॥
 तस्य वाच नदी सा तु मत्तोक्तामयमन्य वै । नाऽऽजगाम ततः क्रुद्धो हलजप्राह लाङ्गली ॥९॥
 गृहीत्वा तां तटेनैव धक्यं मदविह्वल । पापे नाऽऽयासि नाऽऽयासि गम्यतामिच्छयाऽन्यतः ॥१०॥
 सा कृष्टा तेन सहसा मार्गं सत्यज्य निम्नगा । यत्राऽस्ते बलदेवोऽसौ प्लावयामास तद्वनम् ॥११॥
 क्षरीरिणी तयोपेत्य त्रासविह्वललोचना । प्रसीदेत्यश्ववीक्षाम मुञ्च मा मुदालामुष ॥१२॥
 सोऽश्ववीदवजानासि मम शौर्यबल यदि । सोऽह स्वा हलपातेन नयिष्यामि सहस्रपा ॥१३॥

सम्पन्न करने वाले कामवर्ग अवतार होने वाले तथा मनुष्यक्षरीरधारी महात्मा बलराम के अत्यन्त उपभोग के लिए वरुण ने वारुणी मदिरा से कहा ॥१२॥

वरुण बोले—वत्सागि ! मदिरा ! महातजस्वी बलमद्र के उपभोग के लिये तुम जाओ ॥३॥

ध्यास बोले—इसके बाद बृन्दावन में यमुनातट पर उत्पन्न कदम्बवृक्ष के कोटर में बलमद्र की वारुणी मदिरा प्राप्त हुई। विचरण करते हुए बलदेव ने मदिरा की अत्युत्कट गंध को सूँघ कर अपने पुरातन मदिराश्रय हृषीकेश को प्राप्त किया। मुनिवृन्द ! तदनन्तर सहसा कदम्ब से गिरती हुई मद्यधारा को देखकर बलमद्र परम हर्षित हुए बाद में उन्होंने गोप-गोपियों के साथ आनन्दपूर्वक मदिरा का पान किया। भानु-वज्राने में प्रवीण ध्वनितो ने उन्मत्त स्वागत किया। त्रीडाजल्य श्रम से उनके घबल क्षीर पर पत्थीने की बूँदें मोलियों की तरह सुशोभित होने लगीं तब उन्होंने विह्वल होकर कहा—यमुने ! आओ मैं स्नान करना चाहता हूँ। उनकी वाणी को प्रमत्त की उन्मत्त समझकर यमुना नहीं आई। तब क्रुद्ध होकर उन्होंने हल उठाया और तट पर से ही नदी को सींचते हुए कहा—पापे ! तूही माती हो तो मत्त आओ। इच्छापूर्वक दूसरी तरफ चली जाओ। लिची जाने पर यमुना अपने माथ को त्याग कर जहाँ बलदेव थे वहाँ के कन को बाष्पावित कर दिया। क्षरीरधारण करके भय से कातरनयन यमुना राम से आवृत्त करने लगी—मुशमलमुष ! प्रपन्न होइये मुझे छोड़ दीजिये ! बलमद्र ने कहा—यदि तुम मेरी शौर्यबल का अपमान करती हो तो हल के प्रहार से मैं तुम्हारे सहस्र टुकड़ कर दूँगा ॥४॥ १३॥

व्यास उवाच

इत्युक्तयास्तिस्रस्ततया नद्या प्रसादित । भूभागे प्लाविते तत्र भूमेच यमुना बल ॥१४॥
तत स्नातस्य^१ वै कान्तिराजपाम महावने । अवतसोत्पल चाह गृहीत्वैक च कुण्डलम् ॥१५॥
वर्णप्रहिता चास्मै मालामम्लानपङ्कजाम । समुद्रार्हो^२ तथा वस्त्रे नीले लक्ष्मीर्यच्छत ॥१६॥
वृतावतस स तदा चारुकुण्डलभूषित । नीलाम्बरधर लग्नी शुशुभे कातिसयुत ॥१७॥
इत्य विभूषितो रेमे तत्र रामस्तदा अजे । मासद्वयेन यातश्च पुन स मथुरा पुरीम् ॥१८॥
रैवतीं चैव तनया रैवतस्य महीपते । उपयेमे बलस्तस्या जज्ञाते निशठोत्सुकौ ॥१९॥
इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे हलित्रीडावर्णन नामाष्टनवत्यधिकशततमोऽध्याय ॥१९८॥

अथ नवनवत्यधिकशततमोऽध्यायः

रविमणीविवाहवर्णनम्

व्यास उवाच

भीष्मक कुण्डिने राजा विदमंविषयेऽभवत् । रविमणी तस्य दुहिता रवमी चैव सुतो द्विजा ॥१॥
रविमणीं चकमे कृष्ण सा च त चारुहासिनो । न ददौ धात्रते चैना रवमी द्वेपेन ध्वनि ॥२॥

व्यास बोले—इतना कहने पर यमुना अत्यन्त डर कर उनको बनाने लगी । अन्त में वहाँ के भू प्रदेय के जंगलविन हा जाने पर बलराम न नदी को मुक्त कर लिया । तब महाबल भ स्नान करने पर बलमद्र की कान्ति बढ गई । उन्होंने आभूषण के लिए मुन्दर बमल तथा एक कुण्डल ग्रहण किया । वर्ण ने उनका स्नान न होने बाल कमला की भाग दी । लक्ष्मी ने समुद्र के योग्य दा मील बस्त्र उन्हें प्रदान किये । तब भूषणों से युक्त मनोहर कुण्डल से विभूषित नीलवस्त्रधारी मालाधारी तथा कान्ति से युक्त होकर बलदेव सुगोमित हुए । इस प्रकार विभूषित होकर राम अज मे दा महीना तब रमण करते रहे । पुन वे मथुरा आय । रैवत नामक राजा की रैवती नामक बन्धा से बलमद्र ने विवाह किया और उससे द्विजठ तथा उत्सुक नामक दो पुत्र उत्पन्न किये ॥१४ १५॥

श्रीब्रह्महापुराण म हलित्रीडा वर्णन नामक एव सो अष्टानववेर्वा अध्याय समाप्त ॥१९८॥

अध्याय १९८

रविमणी के विवाह का वर्णन

व्यास ने कहा—द्विजवर ! विन्ध्य राज्य के कुण्डिन नगर मे भीष्मक नामक राजा हुए । उनके रवमी नामक पुत्र और रविमणी नामक बन्धा थी । कृष्ण रविमणी को चाहते थे और मनोहर हास्य करने वाली रविमणी

ददौ स शिशुपालाय जरासंधप्रचोचितः। भीष्मको रुक्मिणा साधे रुक्मिणीमुद्विक्रमः॥३॥
 विवाहाय ततः सर्वे जरासंधमुखा नृपाः। भीष्मकस्य पुरं जम्मुः शिशुपालश्च कुण्डिनम्॥४॥
 कृष्णोऽपि बलमद्राष्टवंदुभिः परिवारितः। प्रययौ कुण्डिनं द्रष्टुं विवाहं चंद्रभूपते॥५॥
 श्वोभाविति विवाहे तु तां कन्या हृतवान्हरिः। विपक्षभावमासाद्य रामाद्यैर्वेद्युः॥६॥
 ततश्च पौण्ड्रकः श्रीमान्दन्तवरो विदूरथः। शिशुपालो जरासंधः शाल्वाद्याश्च महीभूतः॥७॥
 कुपितास्ते हरि हन्तुं चक्रुस्त्रोगमुत्तमम्। निजिताश्च समागम्य रामाद्यैर्यदुपुंगवैः॥८॥
 कुण्डिनं न प्रवेक्ष्यामि अहत्वा युधि केशवम्। कृत्वा प्रतिज्ञां स्वमी च हन्तुं कृष्णमभिद्रुतः॥९॥
 हत्वा बलं स नापादवपत्तिस्पन्दनसंकुलम्। निजितः पातितश्चोर्ध्वा लील्ययं स चक्षिणा॥१०॥
 निजित्य रुक्मिणं सम्प्रगुपयेमे स रुक्मिणोम्। राक्षसेने 'विधानेन संप्राप्तो मधुसूदनः'॥११॥
 तस्यां जज्ञे च प्रद्युम्नो मदनांशः। स वीर्यवान्। जहूर शम्बरौ यं वं धौ जघान च शम्बरम्॥१२॥

इति श्रीमहापुराणे आदिप्राज्ञे श्रीकृष्णचरिते नवनवत्यधिकशततमोऽध्यायः॥१९९॥

उनको चाहती थी। ईर्ष्यावश स्वमी ने आचना करते हुए कृष्ण को रुक्मिणी नहीं दी। जरासंध के कहने से पराक्रमी भीष्मक ने स्वमी के साथ रुक्मिणी को शिशुपाल को दे दिया। तब विवाह के निमित्त जरासंध आदि राजा तथा शिशुपाल भी भीष्मक के कुण्डिन नगर में पहुँचे। कृष्ण भी बलमद्र आदि पादवों सहित शिशुपाल का विवाह देखने के लिये कुण्डिन में पधारे। विवाह कल होता विन्तु आज ही हरि ने उस कन्या का अपहरण कर लिया। राम आदि वन्धुओं ने ही शत्रु-भाव को देखकर पौण्ड्रक, श्रीमान्, दन्तवक्त्र, विदूरथ, शिशुपाल, जरासंध तथा शाल्व आदि नृप-गण कुपित होकर हरि को मारने के लिये महान् प्रयत्न करने लगे। पर राम आदि यदुपुंगवों द्वारा वे पराजित हो गये। तब मुद्र से बिना केशव को मारे मैं कुण्डिन में प्रवेश नहीं करूँगा, इस तरह प्रतिज्ञा करने स्वमी कृष्ण को मारने के लिए दौढ़ पड़ा। पर कृष्ण ने सहज ही मे हार्यो, छोड़े, पैदल सिपाही तथा रथों से युक्त सेना को मारकर स्वमी को जीत कर पृथ्वी पर गिरा दिया। स्वमी को जीतकर मधुसूदन ने राक्षस विधि से रुक्मिणी के साथ बली भाँति विवाह किया। इससे कन्दर्प को अशभूत शक्तिशाली प्रद्युम्न की उत्पत्ति हुई, जिसका शम्बर ने अपहरण किया और जिसने शम्बर को मार दिया॥१-१२॥

श्रीब्रह्ममहापुरुषण मे श्रीकृष्ण-चरित्र वर्णन-प्रसंग मे एक सौ निन्यानवेवाँ

अध्याय समाप्त॥१९९॥

१क ख ०ग कृष्णो रुक्मिणी वरकन्यकाम्। रा०। २क ख विवाहेन। ३ख ०दन्तवक्त्रिवी।

४ग शम्बरम्।

अथ द्विशततमोऽध्यायः

प्रद्युम्नाख्यानवर्णनम्

मुनय ऊचुः

शम्बरं हतो वीरं प्रद्युम्नं स कथं पुनः । शम्बरश्च महावीर्यं प्रद्युम्नेनैव हतः ॥१॥

व्यास उवाच

पठेऽह्नि जातमात्रे प्रद्युम्नं सूतिकागृहात् । ममैव हन्तेति द्विजा हृतवाङ्कालशम्बरः ॥२॥
नीत्वा चिक्षेप चर्वणं प्राहोऽग्रे लवणार्णवे । कल्लोलजनितावर्ते सुधोरे मकरालये ॥३॥
पतितं चैव तत्रैको मत्स्यो जग्राह बालकम् । न भमार च तस्यापि जठरानलदीपितः ॥४॥
मत्स्यबन्धेनैव मत्स्योऽसौ मत्स्यैरन्यै सह द्विजा । घातितोऽसुरवर्षाय शम्बराय निवेदितः ॥५॥
तस्य मायावती नाम पत्नी सर्वगृहेष्वरे । कारयामास सुदानामाधिपत्यमनिन्दिता ॥६॥
दारिते मत्स्यजठरे ब्रूवते सातिशोभनम् । कुमारं भग्नयतरोदङ्गस्य प्रथमाङ्कुरम् ॥७॥
कोऽप्य कथमयं मत्स्यजठरे समुपागतः । इत्येव कौतुकाविष्टा ता तन्वी प्राह नारदः ॥८॥

अध्याय २००

प्रद्युम्न का आख्यान-वर्णन

मुनियो ने कहा—बैसे शम्बर ने वीर प्रद्युम्न का अपहरण किया और कैसे फिर प्रद्युम्न ने महाशक्ति-
शाली शम्बर को मारा ? ॥१॥

व्यास बोले—विप्रवर ! उत्पत्ति के छठे दिन भूमे यह भारेण यह सोवर्कर सूतिकागृह से ही बाल
शम्बर ने प्रद्युम्न का अपहरण कर लिया और उसे ले जा कर लवणसमुद्र में फेंक दिया । अत्यंत मयबूर तथा हिलचिली
झारा उत्पन्न आबती से युक्त समुद्र में पतित बालक को एक मत्स्य निगल गया । वही भी वह जठरान्नि से दान
होकर नहीं मरता । द्विजगण ! मछुओं ने अन्य मत्स्यों के साथ उस मत्स्य को भी मारकर असुरवर शम्बर से निवे-
दन कर दिया । शम्बर की मायावती नामक पत्नी गृहस्वामिनी थी । वही अनिन्द्य रमणी रसाई घर का देव माल
किया करती थी । मत्स्य के पेट फाड़ने पर उसने दग्धममय रूप ब्रूवते प्रथम अङ्कुर रूप अतिमुदर कुमार को
देखकर बहने लगी—‘यह बाल है ? बैसे मत्स्य के पेट में आ गया ? इस प्रकार कुतूहल करती हुई उस वनिता
से नारद ने कहा ॥२॥

१ग शम्बरं । २ग न । शम्बरः । ३ग मत्स्यः । ४क मयबल्लो मत्स्योऽग्रे । ५ग मठरेऽग्रे ।

६ग मपिते । म० ।

नारद उवाच

अथ समस्तजगता सृष्टिस्तहारकारिणा । शम्बरं हृत कृष्णतनय सूक्तिकामूहात ॥९॥
क्षिप्त समुद्रे मत्स्येन निगोणस्त वश गत । नररत्नमिदं सुभ्रुविश्रद्धा परिपालय ॥१०॥

व्यास उवाच

नारदेनैव मुक्ता सा पालयामास तं शिशुम् । बाल्यादशतिरागण रूपातिशयमोहिता ॥११॥
तं यदा यौवनाभोगभूषितोऽभूदद्विजोत्तम । साभिलाषा तदा सा तु बभूव गजगामिनी ॥१२॥
भाषावती ददौ चास्मै मायां सर्वां महत्तमने । प्रद्युम्नायाऽऽत्मभूताय तन्वस्तद्ददयेक्षणा ॥
प्रसज्जन्तो तु तामाह स काष्णिग कमललोचन ॥१३॥

प्रद्युम्न उवाच

मातृभाव विहायैव किमर्थं यतंसेऽयथा ॥१४॥

व्यास उवाच

सा चास्मै कथयामास न पुनस्त्व ममेति यः । तनय त्वामयं विष्णोर्हृत्तवाकालशम्बर ॥१५॥
क्षिप्त समुद्रे मत्स्यस्य सप्राप्तो जठरान्मया । सा तु रोदिति ते माता कान्ताऽप्यतिवत्सला ॥१६॥

व्यास उवाच

इत्युक्तं 'शम्बर युद्धे प्रद्युम्न स समाद्वयत । क्रोधाकुलीकृतमना युयुधे' च महाबल ॥१७॥

नारद बोले—सम्पूर्ण जगत् के सह र करने वाले शम्बर ने सूक्तिकामूह से कृष्ण के पुत्र का अपहरण करने समुद्र में फेंक दिया । उसे एक मत्स्य निगल गया । वह बालक तुम्हें प्राप्त हुआ है । सुधर भी वाली । इस नरपत्न को विश्वासपूर्वक तुम पाल ॥९॥१०॥

व्यास बोले—नारद के इस प्रकार कहने पर वह बालक के अतिशय रूप पर मोहित होकर अत्यंत अनुराग से उसका पालन करने लगे । द्विजवृण्डे । बालक जब युवावस्था से परिपूर्ण हुआ तब वह गजगामिनी उसके प्रति अभिलाषा करने लगे । आत्मा की तरह प्रिय बने हुए प्रद्युम्न से भव तथा मेघों को लपकाकर भाषावती में उसका समस्त माया दे दी (अर्थात् उससे हाथ भाव करने लगे) । इस प्रकार व्यवहार करत हुई भाषावती से कमललोचन प्रद्युम्न ने कहा ॥११॥१२॥

प्रद्युम्न बोले—तुम मातृ भाव को छाड़कर और तुरह से क्यों बरतत हो ? ॥१४॥

व्यास बोले—उसने उससे कहा—तुम मेरे पुत्र नहीं हो । तुम विष्णु के पुत्र हो । कालशम्बर ने तुम्हें अपहृत करने समुद्र में फेंक दिया था । तब मत्स्य के जठर से मैंने तुम्हें प्राप्त किया । तुम्हारी अतिवत्सला माता तो आज भी रा रही है ॥१५॥१६॥

व्यास बोले—यह कहते करते पर क्रोध के व्याकुल बिल बाले महाबल प्रद्युम्न ने शम्बर को युद्ध के लिये

हत्वा सैन्यमशेषं तु तस्य दैत्यस्य माघवि । सप्त माया व्यतिश्रम्य माया संयुज्जेऽष्टमीम् ॥१८॥
तया जघान त दैत्य मायया 'कालशम्बरम्' । उत्पत्य च तया सार्धमाजगाम पितु पुरम् ॥१९॥
अन्त पुरे च पतितं मायावत्या समन्वितम् । त दृष्ट्वा हृष्टसकल्पा बभूव कृष्णयोषित ॥
रविमणौ चाश्रवीत्प्रेम्णाऽऽसक्तदृष्टिरनिन्दता ॥२०॥

रविमण्युवाच

घन्याया खल्वयं पुनो वर्तते नवयौवने । अस्मिन्वयसि पुनो मे प्रद्युम्नो यदि जीवति ॥२१॥
सभाया जननी वत्स त्वया काङ्क्षि विभूषिता । अथवा मादृश स्नेहो मम यादुन्वपुनश्च ते ॥
हरेरपत्य सुव्यक्तं भवान्वत्स भविष्यति ॥२२॥

ध्यास उवाच

एतस्मिन्नन्तरे प्राप्त सह कृष्णेन नारद । अन्त पुरवरा देवी रविमणौ प्राह हृषित ॥२३॥

श्रीकृष्ण उवाच

एव ते तनय सुधु हत्वा शम्बरमागत । हतो येनाभवत्पूर्वं पुनस्ते सूतिकागृहात् ॥२४॥
इय मायावती भार्या तनयस्यास्य ते सती । शम्बरस्य न भार्येय श्रूयतामत्र कारणम् ॥२५॥

आह्वान किया । सपाम म दैत्य की सनस्त सेनाआ वा नाश करने प्रद्युम्न ने सात मायाआ वा अतिश्रमण करन आठवीं माया (मायावती) से संयोग किया । उस माया के द्वारा कालशम्बर वा मारकर उस के साथ उठकर वह पिता के नगर मे आया । अन्त पुर म मायावती, समस्त प्रद्युम्न को घिरे हुए देखकर कृष्ण की स्त्रियाँ प्रमुदित हुई । अनिन्दित रविमणी उसकी ओर टक्करी लगाकर देसती, हुई प्रेम से बोली ॥१७-२०॥

रविमणी बोली—बिसी माय्यालिनी, वा यह पुत्र नवयौवन म संप्राप्त है । वास ! यदि इस अवस्था म मेरा पुत्र प्रद्युम्न जीवित होता । वत्स ! तुमने किस माय्यावती, माता को विभूषित किया है ? अथवा मेरा जैन स्नेह है और तुम्हारा जैसा पदरि है, इससे तुम स्पष्ट ही हरि के पुत्र होये ॥२१-२२॥

ध्यास बोले—हसी बीच कृष्ण के साथ नारद बहा आ पहुँचे । कृष्ण ने अन्त पुर म श्रेष्ठ रमणी रविमणी से कहा ॥२३॥

श्रीकृष्ण बोले—गुप्तर भी बाली, यह तुम्हारा पुत्र जब, शम्बर को मारकर आया है तिमने द्वारा तुम्हारा पुत्र गुजरा-गृह से अग्रहत हुआ था । यह मायावती, तुम्हारे पुत्र की, गर्न, माया है । यह शम्बर की, पत्नी, नहीं है

मन्मथे तु गते नाशं तदुद्भवपरायणा । शम्बर' मोहयामास मायारूपेण रुक्मिणि' ॥२६॥
 विवाहाद्युपभोगेषु रूपं मायामय' शुभम् । दशयामास दैत्यस्य तस्येय मदिरक्षणा ॥२७॥
 कामोऽवतीर्णं पुनस्ते तस्येय दयिता रति । विशङ्कानां नाना वर्तव्या स्नुषेय तव शोभना' ॥२८॥

व्यास उवाच

ततो हर्षसमाविष्टो रुक्मिणीकेशवो तदा । नगरो च समस्ता सा साधु साध्विषयभाषत ॥२९॥
 चिर' नष्टेन पुत्रेण सगत प्रेक्ष्य रुक्मिणीम् । अवाप विस्मय सर्वो द्वारवर्त्या जनस्तदा ॥३०॥
 इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे शम्बरहृतप्रद्युम्नागमनवर्णनं नाम द्विशततमोऽध्यायः ॥२००॥

अथैकाधिकद्विशततमोऽध्यायः

अनिरुद्धविवाहे रुक्मिवधनिरूपणम्

व्यास उवाच

चारुदेण सुदेण च चारुदेह च शोभनम् । सुपेण (विचारं) चारुगुप्त च भद्रचार तथाऽपरम् ॥१॥
 चारुविन्द (चन्द्र) सुचार च चारु च बलिना वरम् । रुक्मिण्यजनयत्पुत्रात्मन्या चारुमती तथा ॥२॥

इसका कारण सुनो । रुक्मिणी, मन्मथ के विनष्ट हो जाने पर उत्तर्क उत्पत्ति के लिए प्रयत्नरत रति ने माया रूप से शम्बर को मोह लिया । इस सुनयना ने विवाह आदि उपभोगों में दैत्य को मायामय सुन्दर रूप दिखा दिया । काम बुम्हार पुत्र होकर अवतीर्ण हुआ । उसी की पत्नी रति यह है । इसमें सारा मत बग । यह बुम्हार पति पुत्र वधू है ॥२४-२८॥

व्यास बोले—तदुपरांत रुक्मिण और शम्बर हर्षित हुए । नगर के समस्त लोग बाह बाह कहने लगे । विरजाल से नष्ट पुत्र के साथ रुक्मिण को देशवार अखिल द्वारकावर्ती आचर्य करने लगे ॥२९-३०॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में शम्बर द्वारा अपहृत प्रद्युम्न के आगमन वर्णन नामक ।
 दो सौवाँ अध्याय समाप्त ॥२००॥

अध्याय २०१

अनिरुद्ध के विवाह में रुक्मी का वध

व्यास ने कहा—रुक्मिण ने—चारुदेण, सुदेण सुन्दर चारुदेह सुपेण चारुगुप्त भद्रचार चारुविन्द सुचार और बलिष्ठ चारु—इन पुत्रों का तथा चारुमती नामक नया को उत्पन्न किया । कृष्ण की दूसरी भी सात
 ११ शम्बर । २१ रुक्मिणी । ३ स मायावह । ४ शोभने । ५ पुत्र ।

अन्याश्च भार्याः कृष्णस्य बभूवुः सप्त शोभनाः । कालिन्दी मित्रविन्दा च सत्या नामजितौ तथा ॥३॥
 देवी जाम्बवती चापि सदा तुष्टा तु रोहिणी । मद्राजसुता चान्या सुशोला शीलमण्डला ॥४॥
 सत्राजितौ सत्यभामा लक्ष्मणा चाहसिनी । दोडशात्र सहस्राणि स्त्रोणामन्यानि चक्रिणः ॥५॥
 प्रद्युम्नोऽपि महावीर्यो हविमणस्तनया शुभाम् । स्वयवरस्या जग्राह साऽपि त तनय हरेः ॥६॥
 तस्यामस्याभवत्पुत्रो - महाबलपराक्रमः । अनिरुद्धो रणे रद्धो वीर्योदधिररिन्दम ॥७॥
 तस्यापि हविमण पौत्रो वरयामास केशवः । दौहित्राय ददौ स्वमी स्पर्धयन्नपि शौरिणा ॥८॥
 तस्या विवाहे रामाद्या यादवा हरिणा सह । हविमणो नगरं जग्मुर्नाम्ना भोजकट द्विजाः ॥९॥
 विवाहे तत्र निवृत्ते प्राद्युम्ने सुमहात्मनः । कलिङ्गराजप्रमुखा हविमणं वाक्यमब्रुवम् ॥१०॥

कलिङ्गादय ऊचुः

अनदातो हलो धृते सत्यास्य व्यसतं महत् । तत्र (ज्ज) धामो बलं तस्माद्धृतेनैव महाधृते ॥११॥

ध्यास उवाच

तवेति तानाह नृपाम्बुवमी बलसमन्वितः । सभाया सह रामेण चक्रे धृतं च वै तदा ॥१२॥
 सहस्रमेक निष्काणा हविमणा विजितो बलः । द्वितीये विवसे धान्यत्सहस्र हविमणा जितः ॥१३॥

सुन्दरी भार्यायै—कालिन्दी कः, पुत्री, मित्रविन्दा नामजित कः, पुत्री, सत्या, देवी, जाम्बवती, तदा प्रसन्न रहने वाली, रोहिणी मद्रराज कः, वन्या सुन्दर स्वभाव वाली, नै लक्ष्मण्डला, सत्राजित् कः, पुत्री, सत्यभामा और मन्तरम हास्य करने वाली, लक्ष्मणा, चक्रवर्ती (कृष्ण) कः, अन्य सैन्धव हजार स्त्रियाँ थीं। महापराक्रमी, प्रद्युम्न न रत्नम्, कः, पक्षि वन्या कः, स्वयंवर से ग्रहण किया। वन्या ने भी, कृष्ण ने पुत्र को, स्वीकार किया। प्रद्युम्न ने यह बलशाली युद्ध करने में समर्थ, पातित वा समृद्ध और धन्यु वा दमन करने वाला अनिरुद्ध नामक पुत्र हुआ। स्वमी, कः, पौत्रो नृ उज्जवा वरण किया। स्वमी, यद्यपि कृष्ण से स्पर्धा करता था, तः, भी, दौहित्र को, उत्तरे वीर्य, व्याहर्त, द्विजगण। उत्तरे विवाह में अस्त्रम आदि दौधव कृष्ण व साथ स्वमी व भोजकट नामक नगर में गये। महात्मा अनिरुद्ध वीर्य विवाह सम्पन्न होने पर वल्लि मरेता आदि (राजाओं) ने रत्नम् से यह वाक्य कहा ॥१-१०॥

वल्लिग आदि ने कहा—महावान्तिम् । बलम पाता चलाना नहीं जानता फिर भी, युद्ध में इससे बड़ा व्यसत है। इसलिए, युद्ध में ही इसे पराजित किया गया ॥११॥

ध्यास ने कहा—बल, स्वमी, ने उन राजाओं से कहा—‘एक हूँ, रहीं और समा में बलराम के नाम जुद्ध, गेलना प्रारम्भ भी, कर दिया। (पहले दिन) स्वमी, ने बलराम से एक हजार निष्क (सोने वा एक प्राचीन

१४ स ०पि रो० । २४ स ०णी कामरूपिणी० । ३० । ३३ मन्तराजमुता । ४ मद्राजमुता । ५४ ०नी । तथा दोडशा । ५४ ०वेद्विष पच चा० ।

कलिङ्गराज चाऽऽदाय विस्फुरन्त बलादबल । बभञ्ज दन्ताकुपितो यं प्रकाश जहास स ॥२४॥
आवृण्य च महास्तम्भं जातहृषमयं बल । जघान ये तत्पक्षास्तान्भूत कुपितो बल ॥२५॥
ततो हाहाकृतं सर्वं पलायनपरं द्विजा । तद्राजमण्डलं सर्वं बभूव कुपितं बल ॥२६॥
बलेन निहतं ध्रुत्वा हविमणं मधुसूदन । नोवाच वचनं विचित्रकिमणीबलयोगभात ॥२७॥
ततोऽनिहृद्धमादाय कृतोद्वाहं द्विजोत्तमा । द्वारकामाजगामाय यदुच्यं सकलवम ॥२८॥

इति श्रीमहापुराण आदिब्राह्मेऽनिहृद्धविवाहं हविमवधनिरूपणं
नामैकाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२०१॥

अथ द्व्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

नरकवधवर्णनम्

ध्यास उवाच

द्वारकया ततः शीरं शकस्त्रिभुवनद्वर । आजगामाय मुनयो 'सत्तरावतपृष्ठग ॥१॥
प्रविश्य द्वारकां सोऽयं समीपे च हरेस्तदा । कथयामास देव्यस्य नरकस्य विचष्टितम् ॥२॥

जिन्हें निवाक कर कह हूँ रहा था । स्वर्णमय महास्तम्भ को उखाड़ कर कुपित बलराम ने स्वर्ण के पक्ष में और
जा राजा के उद्देशे मार दिया । द्विजपण । तदनंतर कुपित बलराम को देखकर स्वर्ण के पक्ष का राज मंडल
हाहाकार करते हुए नीचे गिरा होने लगी । बलराम द्वारा निहत स्वर्ण के विषय में मुनिवर रक्तिमणा और बलराम
के भय से कृष्ण कुछ भी नहीं बोले । द्विजवर । तदनंतर विवाहित अनिहृद्ध को लेकर कृष्ण सहित सुमस्तु यावत्
गण द्वारका चले गये ॥२३ २८॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में अनिहृद्ध विवाह प्रसंग में स्वर्ण का वध निरूपण
नामक दो सौ एन अध्याय समाप्त ॥२०१॥

अध्याय २०२

नरकासुर के वध का वर्णन

ध्यास ने कहा—मुनिवर । तदुपरांत त्रिभुवन के स्वामि इंद्र मत्स्य एरावत का पंठ पर चढ़कर कृष्ण से
मिलने के लिए द्वारका आये । द्वारका में प्रवेश कर हरि के सम पदों में नरक नामक दण्डक वियाओ का वर्णन
किया ॥१ २॥

इन्द्र उवाच

त्वया नाथेन देवानां मनुष्यत्वेऽपि तिष्ठताम् । प्रशम सर्वदुःखानि नीतानि मधुसूदन ॥३॥
 तपस्विजनरक्षायं सोऽरिष्टो धेनुकस्तथा । प्रलम्बाधास्तथा केशी ते सर्वे निहतास्तवया ॥४॥
 कस कुबलापोड पूतना बालधातिनी । नाश नीतास्तवया सर्वे धेन्ये जगदुपद्रवा ॥५॥
 युष्मद्दोषं दसबुद्धिपरित्राते जगत्त्रये । यज्ञे यज्ञहवि प्राश्य तृप्तिं याति द्विबौकस ॥६॥
 सोऽहं साप्रतमायातो यन्निमित्तं जनादेन । तच्छ्रुत्वा तत्प्रतीकारप्रयत्नं कर्तुमहसि ॥७॥
 भीमोऽयं नरको नाम प्राग्योतिषपुरेऽम्बर । करोति सर्वभूतानामपघातमरिदम ॥८॥
 देवसिद्धसुराक्षोना नृपाणां च जनादेन । हत्वा तु सोऽसुरं कन्यां हरोध निजमदिरे ॥९॥
 छात्र यत्सलिलस्त्रावि तज्जहार प्रचेतस । मन्दरस्य सया शृङ्गं हूतवान्मणिपर्वतम् ॥१०॥
 अमृतक्ष्राविणीं दिव्ये मातुर्ममृतकुण्डले । जहार सोऽसुरोऽदित्या वाञ्छयैरावतं द्विपम् ॥११॥
 'दुर्नीतमेवदगोविन्द भया तस्य तबोदितम् । यदत्र 'प्रतिकर्तव्यं तत्तव परिमृश्यताम् ॥१२॥

व्यास उवाच

इति श्रुत्वा स्मित कृत्वा भगवान्देवकीसुत । गृहीत्वा वासव हस्ते समुत्तस्थौ वरासनात् ॥१३॥
 सचिन्तिमुपाहृष्ट गेह उ गगनेऽवरम् । सत्यभामां समारोप्य ययौ प्राग्योतिष पुरम् ॥१४॥

इन्द्र ने कहा—नाथ ! मधुसूदन ! मनुष्यों के भी च रहते हुए भी आपने देवताओं के समस्त बच्चा का निवारण कर लिया । तपस्वियों के रक्षा के निमित्त अरिष्ट धनुष वन तथा प्रलम्ब आदि सब को आपने निहृत किया । कस कुबलापोड इ बालधातिनी पूतना आदि जितने सप्ताह व उपद्रव, जब ये उन सबका आपने नाश किया । आपने बाहु-बल तथा बुद्धिबल से तनो राजाओं के रक्षा होने पर ही देवता लाय यन् म हविष्य भोजन कर सुप्त होते हैं । जनादेन ! इस समय मैं जिसलिए आया हूँ वह सुनकर आप उसका प्रतिकार करें । हे शत्रु के हमन करने वाल ! प्राग्योतिषपुर का राजा नरक नामक दैत्य समस्त प्राणियों का अपघात करता है । भगवन् ! उसने देव सिद्ध सुर आदि का तथा राजाओं को मारकर उनको बन्ध्याओं को अपने घर में रोक रखा है । वरुण का जब जल बहान काटा छाता या उसे अपहृत कर लिया है । मन्दराचल के मणिमय पितर का अपहरण कर लिया है । मेरी माना के अमृत टपकाने वाल दिव्य अमृतकुण्डला का तथा एरावत हाथ को भी हरण करके वह राक्षस ले गया । गतिविन्द उक्त यह दुर्तीति मैं आपसे बचन के । अब इसका जो प्रतिकार हो वह आप स्वयं सोच ल ॥३॥ १३॥

व्यास ने कहा—यह सुनकर मुखराते हुए भगवान् कृष्ण इन्द्र का हाथ पकड़ कर अपने उत्तम आसन पर से

आहूँरावत नाग शक्रोऽपि त्रिदशालयम् । ततो जगाम सुमना पश्यता द्वारकीकसाम् ॥१५॥
प्राग्ज्योतिषपुरस्यास्य समन्ताच्छतयोजनम् । अचित भैरवैः पार्श्वे परसंन्यनिवारणे ॥१६॥
सादिचच्छेद हरि पाशान्क्षिप्त्वा चक्र मुदर्शनम् । ततो मुर समुत्तस्थो त जघान च केशव ॥१७॥
मुरोस्तु (रस्य) तनयान्सप्त सहस्रास्ता (सा ता) स्ततो हरि । चक्रधारान्निनिर्दंभाश्चकार
शलभानिव ॥१८॥

हत्वा मुरं हयग्रीव तथा पञ्चजन द्विजा । प्राग्ज्योतिषपुर धीमास्त्वरावान्समुपाद्रवत् ॥१९॥
नरकेनास्य तत्राभून्महासैयेन सयुग । कृष्णस्य यत्र गोविन्दो जघ्ने दैत्यासहस्रश ॥२०॥
शस्त्रास्त्रवर्ष मुञ्चन्त स भीम नरक बली । क्षिप्त्वा चक्र द्विजाचक्रे चक्रो दैतेयचक्रहा ॥२१॥
हते तु नरके भूमिर्गृहीत्वाऽवितिकुण्डले । उपतस्ये जगन्नाथ वायव्य चेदमथाब्रवीत् ॥२२॥

धरण्युवाच

यदाऽहमुद्रता नाथ स्वया शूकरमूर्तिना । त्वत्सत्पशंभव पुत्रस्तदाऽय मध्यजायत ॥२३॥
सोऽय त्वयैव दत्तो मे त्वयैव विनिपातित । गूहाण कुण्डले चमे पालयास्य च सततिम् ॥२४॥
भारावतरणार्याय मनस्य भगवानितमम् । अशेन लोकमायात प्रसादसुमुख प्रभो ॥२५॥

उठ गये और ध्यान मात्र से उपस्थित आकाशविहारी गह्वर पर सत्यमामा सहित स्वयं चक्रकर प्राग्ज्योतिषपुर के लिए प्रस्थित हो गये । तब इन्द्र भी प्रसन्न मन से ऐरावत हस्ती पर आसढ़ होकर द्वारकावासियों को देखते हुए देखते देवलोक को चले गये । प्राग्ज्योतिषपुर का चारों तरफ सात योजन तक शत्रु सेना के निवारणाय भयकर जाल बिछा हुआ था । उन जालों को मुदशन चक्र से कृष्ण ने काट डाला । तदनन्तर मुर नामक राक्षस उठ खड़ा हुआ । उस कृष्ण ने मार डाला । मुर ने सात हजार पुत्र थे । उनकी हरि ने अपने चक्र के धारानि से पत्यों की तरह जला डाला । द्विजपण । मुर हयग्रीव तथा पञ्चजन को मारकर बुद्धिमान् कृष्ण ने शीघ्रता से प्राग्ज्योतिषपुर पर आक्रमण कर दिया । वहाँ वही सेना से युक्त नरक ने साथ कृष्ण का सन्नाम छिड़ गया । गोविन्द ने हजारों दैत्यों को विनष्ट किया । दैत्या के घनसमूह को नष्ट करने वाले चक्रधारी बली कृष्ण ने अपना चक्र चला कर शस्त्र-अस्त्रों की वर्षा करते हुए नरक के दोटुबूढ़ कर दिये । नरक के मर जाने पर पृथ्वी अदिति के कुण्डलों को लेकर भगवान् ने पास जाकर यह बात कहने लगी ॥१३ २३॥

पृथ्वी ने कहा—नाथ । अब बराह रूप धारण कर आपने मेरा उद्धार किया था तभी आपके स्थल से यह पुत्र मुझमें उत्पन्न हुआ था । सो आपने ही इसको दिया था और आपने ही इसे नष्ट भी किया । अब मैं कुण्डल कीजिये और इसकी सत्ताओं का पालन कीजिये । मेरे ही मार उतारने के लिए आप एक अश से इस लोक में आये

त्वं कर्ता च विकर्ता च संहर्ता प्रभवोऽव्ययः । जगत्स्वरूपो यश्च त्वं स्तूयसेऽच्युत किं मया ॥२६॥
 व्यापो व्याप्यः क्रिया कर्ता कार्यं च भगवान्सदा । सर्वभूतात्मभूतात्मा स्तूयसेऽच्युत किं मया ॥२७॥
 परमात्मा त्वमात्मा च भूतात्मा चाव्ययो भवान् । यदा तदा स्तुतिर्नास्ति किमर्थं ते प्रवर्तताम् ॥२८॥
 प्रसोद सर्वभूतात्मन्नरकेन कृतं च यत् । तत्सम्पत्तामदोषाय^१ मत्सुतः स निपातितः ॥२९॥

व्यास उवाच

तथेति चोक्त्वा धरणीं भगवान्भूतभावनः । रत्नानि^२ नरकावासान्जग्राह^३ मुनिसत्तमा ॥३०॥
 कन्यापुरे स कन्यानां षोडशतुलविक्रमः । शताधिकानि ददुशे सहस्राणि द्विजोत्तमाः^४ ॥३१॥
 चतुर्दशान्जग्रांश्चोप्राण्यद्सहस्राणि दृष्टवान् । काम्बोजानां तथाऽश्वानां नियुतान्येकविंशतिम् ॥३२॥
 कन्यास्ताश्च तथा नगास्तान्द्वन्द्वारकां पुरीम् । प्रापयामास गोविन्दः सद्यो नरकाककरैः ॥३३॥
 ददुशे वारुणं छत्रं तथैव मणिपर्वतम् । आरोपयामास हरिर्गण्डे पतगैर्दशैः ॥३४॥
 आरुह्य च स्वयं कृष्णः सत्यभामासहायवान् । अदित्याः कुण्डले दातुं जगाम त्रिदशालयम् ॥३५॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे कृष्णचरिते नरकवधो नाम

द्व्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२०२॥

हुए हैं । प्रभो ! सुन्दर मूल वाले । प्रसन्न होइये । आप कर्ता, विशिष्टकर्ता, संहर्ता, प्रभु, अव्यय तथा जगत्स्वरूप हैं । अच्युत । मैं क्या आपकी स्तुति करूँ ? आप जब परमात्मा, आत्मा, भूतात्मा तथा अविनाशी हैं, तब तो आपकी स्तुति ही नहीं हो सकती, फिर कैसे की जाय । हे समस्त प्राणियों के आत्मा ! कृपा कीजिये । नरक ने जो अपराध किया, उसे दोष हटाने की दृष्टि से क्षमा कर दीजिये । वह मेरा पुत्र था, जिसे आपने मारा ॥२९-२९॥

व्यास ने कहा—मुनिवर ! (पृथ्वी से) ऐसा ही होगा, इतना बहुर प्राणियों के उत्पादन भगवान् ने नरक के धर से रत्नों को ले लिया । द्विजोत्तम ! अतुल पराक्रमी कृष्ण ने कन्यापुर (रतिभारा) में सोल्ह हजार एन सौ कन्याओं को देता । चार दश वाले छह हजार भवुर हाथियों को तथा इक्कीस लाख बम्बोजी (अफगान) घोड़ों को भी देता । गोविन्द ने सुरन्त उन कन्याया, हाथियों एवं घोड़ों को नरक के तीरों द्वारा द्वारों पहुँचा दिया । भगवान् कृष्ण वरुण के छत्र तथा मणिपर्वत को पक्षि-राज गरुड के ऊपर रखकर सत्यभामा के साथ स्वयं चढ़कर अदिति को कुण्डल देने के लिए देखलौं गये ॥३०-३५॥

श्रीब्रह्ममहापुराण के कृष्ण-चरित-वर्णनोपक्रम में नरकवध नामक

दो सौ दूसरा अध्याय समाप्त ॥२०२॥

१क. ०त् । अम्यः । २क. ०म्यतां स च मे दोष स त्वया विनिः । ३स. ०नि नाटकीयानि प्रशः ।

४न. ०जहार मुः । ५न. स. महामतिः ।

अथ त्र्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

अदिति कृता भगवत्स्तुति

व्यास उवाच

गण्डो वायुण छत्रं तथैव भणिष्वतम् । सभायं च हृषीकेशं लील्यैव वह्न्ययौ ॥१॥
ततः शङ्खमुपाध्माय स्वर्गद्वारं गतो हरिः । उपतस्थुस्ततो देवा सार्धपात्रा जनादनम् ॥२॥
स देवैरचितः कृष्णो देवमातुनिवेशनम् । सिताग्रशिखराकार प्रविश्य ददृशोऽदितिम् ॥३॥
स ता प्रणम्य शक्रेण सहितः कुण्डलोत्तमे । ददौ नरकनाश च शशंसास्यं जनादनं ॥४॥
ततः प्रोता जगन्माता घातार जगता हरिम् । तुष्टावादितिरव्यग्रं कृत्वा तत्प्रवण मन ॥५॥

अदिति उवाच

ममस्ते पुण्डरीकाक्ष भवताममभयकर । सनातनात्मन्भूतात्मन्सर्वात्मन्भूतभावन ॥६॥
प्रणेतर्मनसो बुद्धेरिन्द्रियाणां गुणात्मकः । सितदीर्घादिनि शेषकल्पनापरिवर्जित ॥७॥
जन्मादिनिरसस्पृष्ट स्वप्नादिवरिर्बजित । सध्या रात्रिरहर्भूमिर्गगन धायुरम्बु च ॥८॥
हृन्नाशने मनो बुद्धिर्भूतादिस्त्व तथाऽव्युत । सृष्टिरित्यतिविनाशाना कर्ता कर्तृपतिर्भवान् ॥९॥

अध्याय २०३

अदिति द्वारा भगवान् की स्तुति

व्यास ने कहा—गण्ड वरुण के छत्र, भणिष्वत तथा पत्नी सहित कृष्ण को बड़ी आसानी से बोला हुआ जा रहा था । स्वर्गद्वार पर पहुँचने पर माधव ने शङ्खध्वनि की । अर्धपात्र लिए समस्त देवगण जनादन के पास उपस्थित हुए । देवताओं से पूजित होने पर कृष्ण ने देवमाता के स्वच्छ केशों से आवृत पर्वत-शिखरतुल्य भवन में प्रवेश कर अदिति को देखा । इन्द्रसहित उपेन्द्र ने उनको प्रणाम कर उत्तम कुण्डल दे दिये और नरक का नाश भी उन्हें कह सुनाया । तत्पश्चात् जगन्माता प्रसन्न होकर चित्त को व्यग्रता से रहित करके अगङ्गाता हरि में ही मन को लगा कर उनकी स्तुति करने लगी ॥१५॥

अदिति ने कहा—ममल्लोचन ! ममता को विमय करने वाले ! आपको नमस्कार है । सनातनात्मन् ! मूलात्मन् ! सर्वात्मन् ! मूर्तोत्पादक ! मन बुद्धि और इन्द्रियों के निर्माता ! त्रिगुणात्मक ! शुक्ल, दीर्घ आदि सबल कल्पनाओं से रहित ! आप जन्म आदि से अस्पृष्ट तथा स्वप्न आदि से वर्जित हैं । आप सध्या, रात्रि, दिन, पृथ्वी, आकाश, वायु, जल, अग्नि, मन, बुद्धि तथा प्राणियों के आदि हैं । आप सृष्टि, स्थिति तथा प्रलय के कर्ता, कर्ता

'ब्रह्मविष्णुशिवाख्याभिरात्ममूर्तिभिरीश्वर । मायाभिरेतद्व्याप्त ते जगत्स्यावरजङ्गमम् ॥१०॥
 अनात्मन्यात्मविज्ञान सा ते माया जनार्दन । अहंममेति भावोऽत्र यथा समुपजायते ॥११॥
 सत्तारमध्ये मायायास्तवंतश्चाय चेष्टितम् । ये स्वधर्मपरैर्नाथ नरैराराधितो भवान् ॥१२॥
 ते तरन्त्यखिलामेता मायामात्मविमुक्तये । ब्रह्माद्या सकला देवा मनुष्या पशवस्तथा ॥१३॥
 विष्णुमायामहावर्ते मोहान्यतमसाऽऽवृता । आराध्य त्वामभीप्सन्ते कामानात्मभक्तये ॥१४॥
 पदे ते पुरुषा बद्धा मायया भगवस्तव । मया त्व पुत्रकामिन्या वैरिपक्षयाय च ॥१५॥
 आराधितो न मोक्षाय मायाबिलसित हि तत् । कौपीनाच्छादनप्राया वाञ्छा कल्पद्रुमादपि ॥१६॥
 ज्ञायते यदपुण्याना सोऽपराध स्वदोषज । तत्प्रसीदाखिलजगन्मायामोहकराद्यय ॥१७॥
 अज्ञान ज्ञानसद्भाव भूतभूतेश नाशय । नमस्ते चक्रहस्ताय' शाङ्गहस्ताय ते नम ॥१८॥
 गदाहस्ताय ते विष्णो शङ्खहस्ताय' ते नम । एतत्पश्यामि ते रूप स्थूलचिह्नोपशोभितम् ॥
 न जानामि पर 'यते प्रसीद परमेश्वर ॥१९॥

व्यास उवाच

अदित्यैव स्तुतो विष्णु 'प्रहस्याऽह सुरारणिम्

॥२०॥

के पति और ब्रह्मा विष्णु तथा शिव सत्रज अपनी मूर्तियों से ईश्वर कहलाते हैं । आपकी माया से यह स्थावर
 जगम रूप जगत व्याप्त है । जनार्दन ! अनात्मा मे आत्मा का ज्ञान ही माया है जिससे मैं और मेरा यह नाव
 उत्पन्न होता है । नाथ ! ससार मे आपका माया की यह चेष्टा है । जिन धर्मपरायण मनुष्यों ने आपकी आरा
 घना की । वे आत्ममूर्ति के लिए इस अखिल भाया को पार कर गये । ब्रह्मा आदि सकल देवता मनुष्य तथा
 पशु विष्णु माया रूपा महान् भँवर मे मोहहृषी तिभिर से आवृत हो आपकी उपासना कर अपने तथा सत्तार के नाग
 के लिए अभिशपायें करते हैं ॥१-१४॥ भगवन् ! पुरुष आपकी माया से आपने चरणा म बद्ध हैं । मैंने
 पुत्र का वामना से तथा शत्रु-यक्ष के नाग को इच्छा से आपकी आराधना का परन्तु मोक्ष के लिए नहीं की । यह
 भी माया का (ही) खेल है । प्रापिया को जो बल्यद्रुम से भी केवल कौशान तथा आच्छादन-वस्त्र का इच्छा होती
 है यह उसका निज दापजय अपराध है । इसलिए अखिल जगत् को माया-मोह मे डालने वाल ! अद्वय !
 प्राणिया के अर्वांग ! ज्ञानपूण ! आप प्रसन्न हृदये और मेरे अनान का नाग-वर्जित । चक्र धनुष मया तथा राक्ष
 हायो मे धारण करने वाले । आपको नमस्कार है । स्थूल चिह्नो से मुशक्तिम आपका रूप ही मैं देखती हूँ पर
 इससे भी परे जो आप का रूप है उसे नहीं देख पा रही हूँ । परमेश्वर ! इति वर्जिए ॥१५-१९॥

व्यास ने कहा—अदिति द्वारा इस प्रकार स्तुति करने पर विष्णु हँसकर देवमाता से कहने लगे ॥२०॥

श्रीकृष्ण उवाच

माता दधि त्वमस्माक प्रसीद यददा भव

॥२१॥

अदितिरुवाच

एवमस्तु ययच्छ त त्वमश्वसुराक्षर । अजय पुरुषव्याघ्र मत्पलोक भविष्यसि ॥२२॥

व्यास उवाच

ततोऽन तरमशस्य शकाणीसहिता दितिम् । सत्यभामा प्रणम्याऽऽह प्रसीदति पुन पुन ॥२३॥

अदितिरुवाच

मत्प्रसादान त सुभ्रु जरा वरूपमव च । भविष्यत्यनवच्छाद्भि सवकामा भविष्यसि ॥२४॥

व्यास उवाच

अदित्या तु कृतानुज्ञो दधराजो जनादनम् । यथावपूजयामास बहुमानपुर सरम् ॥२५॥

ततो ददश कृष्णोऽपि सत्यभामासहायवान् । दबोद्यानानि सर्वाणि नदनादीनि सत्तमा ॥२६॥

ददश च सुगन्धाढ्य मञ्जरीपुञ्जधारिणम् । शत्याह्लादकर दिव्य ताम्रपल्लवशोभितम् ॥२७॥

मण्यमान ऽमृत जात जातरूपसमप्रभम् । पारिजात जमघ्नाय वक्ष्य कशिसूचम् ।

त दृष्ट्वा प्राह गोविन्द सत्यभामा द्विजोत्तमा ॥२८॥

श्रीकृष्ण बोले—देवी तुम हमारी मता ही कृपा करो वर दो ॥२१॥

अदिति न कहा—एवमस्तु ! तुम्हारी जसी इच्छा । पुरुषश्रेष्ठ ! मत्पलोक में तुम अशेष देव-दैत्य से अजेय हूँ २२

व्यास न कहा—तदनंतर इच्छाणी सहित सत्यभामा दिति को बार बार प्रणाम कर कहने लगी—प्रसाद होइये ॥२३॥

अदिति न कहा—सुन्दर भौं वाली ! अनिन्द्य अशेष वाली मेरी कृपा से तुम्हें बड़ाया तथा कुरुपत नहीं ग्यायेगी तुम्हारी सारी कामनाय पूरी होगी २४ ।

व्यास न कहा—अदिति की आज्ञा पाकर इंद्र में बहुत आदर से जनादन क विधिपूर्वक पूजा की । त सत्यभामा सहित कृष्ण दैवताओं के नदन आदि समस्त उद्यानों को देखने लगे । वेशी नामक राक्षस के मारने वाले जगन्नाथ वेशम ने सुगन्धि से परिपूर्ण मञ्जरीयों से सुशोभित शीतलता तथा आह्लादवत्ता से सम्पन्न दिव्य ताम्रवर्ण बाल प—वों से विभूषित स्वर्णगुल्फ कान्तिमान् और अमृत-मयन से उत्पन्न वरूपवत्ता को देखा । द्विजवर ! उसे देखकर सत्यभामा ने गोविन्द से कहा ॥२५ २८॥

सत्यभामोवाच

कस्मान्न द्वारकामेव नीयते कृष्ण पादपः^१ । यदि ते तद्वचः सत्यं सत्याज्यर्थं प्रियेति मे ॥२९॥
 मद्गृहे निष्कुटार्याय तदयं नीयतां तवः । न मे जाम्बवती तादृगभोष्टा न च रुक्मिणी ॥३०॥
 सत्ये यथा त्वमित्युक्तं त्वया कृष्णासकृत्प्रियम् । सत्यं तद्यदि गोविन्द नोपचारकृतं यचः^२ ॥३१॥
 तदस्तु पारिजातोऽयं मम गेहविभूषणम् । बिभ्रतो पारिजातस्य केशपाशेन मञ्जरीम् ॥
 सपत्नीनामहं मध्ये शोभेयमिति कामये ॥३२॥

व्यास उवाच

इत्युक्तं स प्रहस्येनं पारिजातं गृह्णति । आरोपयामास हरिस्तमूचुर्यनरक्षणः^३ ॥३३॥

वनपाला ऊचुः

भोः शची देवराजस्य महियो तत्परिग्रहम् । पारिजातं न गोविन्द हर्तुमर्हसि पादपम् ॥३४॥
 चोविभूषणार्याय देवैरभूतमन्यते । उत्पादितोऽयं न क्षेमी गृहीत्वैनं गमिष्यसि^४ ॥३५॥
 रौद्रघात्रार्ययसे क्षेमी गृहीत्वैनं च को व्रजेत्^५ । अवश्यमस्य देवेन्द्रो विकृतिं^६ कृष्ण धारयति ॥३६॥
 श्लोचतकर शक्रमनुपास्यन्ति चामराः । तदलं सकलैर्देवैर्विग्रहेण तवाच्युत ॥
 पाककटु यत्कर्म न तच्छंसन्ति पण्डिताः ॥३७॥

सत्यभामा बोली—कृष्ण ! यदि आपका यह वचन—सत्या ! तुम मुझे अत्यन्त प्रिय हो—सत्य है तो
 ३ वृक्ष को द्वारका क्यों नदी ले चलते हैं ? अन्तःपुर में रखने के लिए इसे मेरे घर ले चलिए । कृष्ण ! आपने
 ४ प्रिय वचन अनेक बार कहा था, कि सत्या ! तुम मुझे जितनी प्रिय हो उतनी न जाम्बवती न रुक्मिणी ही मुझे
 मीष्ट है । गोविन्द ! यदि आपका यह वचन सत्य है, केवल मुखमुखार्थ नदी कहा गया था, तो यह बल्पवृक्ष
 देवराजा भूषण बने । कल्पवृक्ष की मजरी को मैं अपने बालों पर धारण कर सपत्नियों के बीच शोभा प्राप्त
 हूँ ॥२९-३२॥

व्यास ने कहा—इतना बहने पर हरि ने हँस कर बल्पवृक्ष को गड्ढे के ऊपर रख दिया । तब वन-रक्षकों
 उनसे कहा ॥३३॥

वनरक्षकों ने कहा—हे गोविन्द ! इन्द्र की महारानी इन्द्राणी का यह बल्पवृक्ष है । इसका आप हरण न
 १ । अमृतमन्यते ने समय शची के भूषण के निमित्त देवताओं ने इसे उत्पन्न किया था । आप इसे ले जाने में
 २ । सत्य नहीं हो पायेंगे । कृष्ण ! आप मूर्खतावश प्रार्थना कर रहे हैं । वीर सामर्थ्यवान् पुरुष इसे ले जायेगा ?
 ३ । ले जाने से इन्द्र बहुत दुःख होगा । जब इन्द्र हार में बन्ध धारण कर तैयार हो जायेंगे तब समस्त देवगण उनका
 ४ । गुमान करेंगे । अच्युत ! सबल देवबन्दा से आपका बलह करना व्यर्थ है । जिस काम का परिणाम, नष्ट हो,
 ५ । पण्डित लोग अच्छा नहीं कहते हैं ॥३४-३७॥

१ स. मूढः । २ य. तव । ३ क. ० पुस्तकः । ४ य. वृण । ५ क. ० सि । मोहात्प्रा० । स. ० सि ।
 वा प्रार्थ० । ६ य. न. ० यते से० । ७ य. ० द् । यवणेनास्य । ८ क. य. निष्कृतिः ।

व्यास उवाच

॥३८॥

इत्युक्ते तैरुवाच तान्सत्यभामाऽतिकोपिनी

सत्यभामोवाच

का शची पारिजातस्य को वा शक्र सुराधिप । सामान्य सर्वलोकाना यद्येपोऽमृतमन्यते ॥३९॥
समुत्पन्न पुरा कस्मादेवो गृह्णाति वासव । यथा सुरा यथा चेन्दुर्यथा श्रीर्धनरक्षण ॥४०॥
सामान्य सर्वलोकस्य पारिजातस्तथा द्रुम । भर्तृवाहुमहागर्वाद्गुणद्व्येनमयो शची ॥४१॥
तत्कथ्यता द्रुत गत्वा पोलोम्या वचन मम । सत्यभामा वदत्येव भर्तृगर्वादधताक्षरम् ॥४२॥
यदि त्व दयिता भर्तुर्यदि तस्य प्रिया ह्यसि । मद्भर्तुर्हृरतो वृक्ष तत्कारय निवारणम् ॥४३॥
जानामि ते पति शक्र जानामि त्रिदशेश्वरम् । पारिजात तथाऽप्येन मानुषो हारयामिते ॥४४॥

व्यास उवाच

इत्युक्ता रक्षिणो गत्वा प्रोचन् प्रोच्यंथोदितम् । शची चोत्ताहयामास त्रिदशाधिपति पतिम् ॥४५॥
तत समस्तदेवाना सैव परित्युक्तो हरिम् । प्रवृत्त पारिजातार्यमिन्द्रो योधयितुं द्विजा ॥४६॥
तत परिधर्तिस्त्रिदशगदाशूलधरायुधा । बभूवुस्त्रिदशा सज्जा शके वय्यकरे स्थिते ॥४७॥
ततो निरीक्ष्य गोविन्दो मागराजोपरि स्थितम् । शक्र देवपरोवार युद्धाय समुपस्थितम् ॥४८॥

व्यास ने कहा—यह सुन कर क्रोध से तपठमाती हुई सत्यभामा उनसे कहने लग। ॥३८॥

सत्यभामा बोली—कल्पवृक्ष का इद्राणी कौन होती है या देवस्वामी इद्र ही कौन होता है ? यह तो सब लोगों के लिये समान है । यदि यह अमृतमन्यव न समय उत्पन्न हुआ तो अनेक इन्द्र ने क्या इसे ग्रहण किया ? बन रक्षको ! सब लोगों के लिये जैसे सुरा (अमृत) चन्द्रमा तथा लक्ष्मी सामान्य है वैसे कल्पवृक्ष भी है । यदि अपने स्वामी के बाहु-बल के गर्व से शची इसे राखता है तो साध्र जाकर उससे मेरी बात कहा—स्वामी के गव से उदता सत्यभामा इस प्रकार कहती है कि यदि तुम अपने पति की प्रयत्नी हो तो कल्पवृक्ष का हरण करते हुए मेरे स्वाम का निवारण कराओ । मैं तुम्हारे पति इद्र को जानती हूँ देवताओं के ईश्वर को भी जानता हूँ तो मैं मानुषा होकर कल्पवृक्ष का हरण करवाती हूँ ॥३९४४॥

व्यास ने कहा—इतना कहने पर रत्नगण शची के पास जाकर जोर-जोर से सब वृत्तांत कहने लग। शची ने देवताओं के पति इद्र को उत्साहित किया । द्विजगण । तदुपरान्त अश्लिख देवों की सेना से युक्त इद्र कल्पवृक्ष के लिये वृष्ण से युद्ध करने का तैयार हो गये । इद्र ने हाथ में कब्र लिया और अतिरिक्त देवगण न मुद्गर तलवार, गदा, शूल आदि अस्त्र-शस्त्रों का धारण किया । तब गोविन्द ने युद्ध के लिये उपस्थित तथा हस्तिराज पर स्थित

चकार शङ्खनिर्घोषं दिशः शब्देन पूरयन् । भुमोच च शरव्रातं सहस्रायुतसंमितम् ॥४९॥
 ततो दिशो नभश्चैव दृष्ट्वा शरशताचितम् । मुमुक्षुस्त्रिदशः सर्वे शस्त्राण्यस्त्राण्यनेकशः ॥५०॥
 एकैकमस्त्रं शस्त्रं च देवैर्मुक्तं सहस्रधा । चिच्छेद लीलयेवेशो जगतां मधुसूदनः ॥५१॥
 पाशं सलिललराजस्य समाकृष्योरगाशनः । चचाल खण्डशः कृत्वा बालपन्नगदेहवत् ॥५२॥
 यमेन प्रहितं वण्डं गदाप्रक्षेपखण्डितम् । पृथिव्या पातयामास भगवादेवकीसुतः ॥५३॥
 शिविकां च धनेशस्य चक्रेण तिलशो विभुः । चकार शौरिरकेन्द्रं दृष्टिपातहतौजसौ ॥५४॥
 नीतोऽग्निः शतशो बाणैर्द्राविता वसवो दिशः । चक्रविच्छिन्नशूलाग्रा द्वा भुवि निपातिताः ॥५५॥
 साध्या विश्वे च मरुतो गन्धर्वाश्चैव सप्तयकैः । शार्ङ्गिणा प्रेरिताः सर्वे व्योम्नि शाल्मलितूलदत् ॥५६॥
 'गहडश्चापि ध्वजेन पक्ष्माभ्यां च नखाङ्कुरैः । भक्षयन्नहन् देवान्दानवाश्च सदा खग ॥५७॥
 ततः शरसहस्रेण देवेन्द्रमधुसूदनौ । परस्परं ववर्षति धाराभिरिव तोयदौ ॥५८॥
 ऐरावतेन गहडो युयुधे तत्र सकुले । देवैः समेतैर्युयुधे शक्रेण च जनार्दनः ॥५९॥
 छिन्नेषु शीर्यमाणेषु शस्त्रेष्वहरेषु सारवरम् । जग्राह वासवो यत्नं कृष्णश्चक्रं सुदर्शनम् ॥६०॥
 ततो हाहाकृतं सर्वं प्रेलोक्य सवराचरम् । वज्रचक्रधरो दृष्ट्वा देवराजजनार्दनौ ॥६१॥
 क्षिप्तं वज्रमयेन्द्रेण जग्राह भगवान्हरिः । न भुमोच तदा चक्रं तिष्ठति तिष्ठति चाब्रवीत् ॥६२॥

इन्द्र को देव-परिवारो ने साथ देखा । उन्होंने शाल्मल्य की । चारो दिशाएँ शब्द से गूँज उठी । एक लाख की संख्या में बाण छोड़े गए । दिशा एवम् आकाश सँभरे बाणों से भर पड़े । तब देवताओं ने भी अनेकों अस्त्र-शस्त्रों का प्रयोग किया । जगत्सामी मधुसूदन ने लीला से ही देवताओं द्वारा छोड़े गए एव-एव अस्त्र-शस्त्रों के हजार टुकड़े कर दिये । गहड़ ने बाल सौँ की देह ने समान वरुण के पाश को तोड़ कर पृथ्वी पर गिरा दिया । कुबेर की पालकी को वज्र से तिल के बराबर नाट-नाट कर दल दिया, सूर्य-चन्द्रमा को दृष्टिपात से ही तेजोहीन बना दिया । अग्नि को सँभडा बाणों से विद्ध कर दिया । वसुगण चारो दिशाओं में भाग गये । चक्र से बटे त्रिशूल के अग्रभाग वाले दशगण पृथ्वी पर गिर पड़े । शार्ङ्ग नामक धनुष धारण करने वाले कृष्ण के बाणों से आहत साध्य, विश्वदेव, मरुत् तथा गन्धर्वगण सेमल की रुई की तरह आकाश में दीखने लगे । गहड़ भी मुह, पल तथा नखों से देव दानवों को मारने लगा खाने लगे । तब देवेन्द्र और मधुसूदन परस्पर वादल की तरह हजारों बाणों की वृष्टि करने लगे । उस युद्ध में ऐरावत के साथ गहड़ और देवी तथा इन्द्र के साथ जनार्दन युद्ध करते थे ॥५३-५९॥ शीघ्र ही सब अस्त्र-शस्त्रों के छिन्न-भिन्न हो जाने पर इन्द्र ने वज्र तथा कृष्ण ने सुदर्शन चक्र धारण किये । वज्र-वज्रधारी इन्द्र-जनार्दन को देखकर चराचर सहित सौँ लोह हाहाकार करने लगे । भगवान् हरि ने इन्द्र द्वारा प्रक्षिप्त वज्र को पकड़ लिया, पर अपना चक्र नहीं छोड़ा ।

प्रनष्टवज्रं देवेन्द्रं गरुडक्षतबाहनम् । सत्यभामाऽब्रवीद्वाक्यं पलायनपरायणम् ॥६३॥

सत्यभामोवाच

त्रैलोक्येश्वर नो युक्त शचीभर्तुः पलायनम् । पारिजातस्तगाभोगात्स्यामुपस्थास्यते शची ॥६४॥
कोदृश देव राज्य ते पारिजातसगुञ्जबलाम् । अपश्यतो यथापूर्वं प्रणयाम्यागता शचीम् ॥६५॥
अल शक्र प्रयासेन न श्रीडा यातुमर्हसि । नीयता पारिजातोऽय देवा सन्तु गतव्यथा ॥६६॥
पतिगर्वावलेपेन यद्वामनपुर सरम् । न ददर्श गृहायातामुपचारेण मा शची ॥६७॥
स्त्रीत्वाद्गुरुचित्ताऽहं स्वभर्तुः श्लाघनापरा । सत वृत्तवती शक्र भयता सह विप्रहृम् ॥६८॥
तदल पारिजातेन परस्वेन हूतेन वा । रूपेण यशसा चैव भवेत्स्त्री कान गर्विता ॥६९॥

ध्यास उवाच

हृत्पुक्ते वै निववृते 'देवराजस्तथा द्विजा । प्राह चैनामल घण्डि सति' खेदातिविरतारं ॥७०॥
न चाऽपि सर्गसंहारस्थितिवर्त्ताऽखिलस्य य । जितस्य तेन मे श्रीडा जायते विदवस्त्वपि ॥७१॥
यस्मिञ्जगत्सकलमेतदनादिमध्ये, यस्माद्यतदच न भविष्यति सर्वभूतात् ।
तेनोद्भवप्रलयपालनकारणेन, श्रीडा कथं भवति देवि निराकृतस्य ॥७२॥

कथं नष्ट होने के साथ ही ऐरावत भी गरुड द्वारा क्षत विभक्त हो गया । इन्द्र भागन लगे । हरि न कहा — ठहरो ठहरो । सब सत्यभामा इन्द्र से कहने लगी ॥६०-६३॥

सत्यभामा श्रीलोकेश्वर तया शची के स्वामी हावर आपका भागना नहीं चाहिय । कल्प-वृक्ष के पुरषों की माला पहनकर शची आपने पास जायगी । पहले की तरह कल्पवृक्ष की उज्ज्वल माला धारण कर प्रेम से आयी हुई शची क बिना देखे आपका राज्य कैसे ? इन्द्र ! आप व्यय प्रयास कर रहे हैं । आपको लज्जा नहीं बननी चाहिय । आप कल्पवृक्ष ले आइये । देवगण व्यापारहित हो जाय । पति के गव से शची ने गृह में आयी हुई मुझे बहुत आदर के साथ नहीं देया । स्त्री होने के कारण मेरा हृदय विकल नहीं है । अतः अपने पति से हठ करने मैंने आपसे विप्रहृ किया । अब मुझे कल्पवृक्ष की कोई आवश्यकता नहीं है । मैं दूसरे वा घन हरण नहीं करना चाहती । रूप तथा यश (मिलने) से जिस स्त्री को गर्व नहीं होता ॥६४-६९॥

ध्यास ने कहा—द्विजगण ! इतना कहकर चुप हो जाने पर देवराज ने उससे कहा—चण्डिके ! सति ! भेद वा अतिविस्तार करना व्यय है । सृष्टि स्थिति प्रलयकर्ता विद्यात्मा से पराजित होने पर मृग लज्जा क्यों होती ? देख ! जिस आदिमध्य-रहित (परमात्मा) में संपूर्ण जगन लीन हो जाता है तथा जिसमें उत्पन्न होता है उस उत्पत्ति स्थिति तथा प्रलय के कारण (ब्रह्म) से हारने पर लज्जा कैसे ? जिस अखिल जगत् रूप मूर्ति वाले (परमात्मा) की मूर्ति अल्प एवम् अति सूक्ष्म है और जिसे समस्त वेदा ने ज्ञाता ही जानते हैं दूसरे नहीं उक्त अजन्मा,

१क ग^{१०} श्रीश्री ५० । २क स ० भर्तुं ५० । ३क स प्रतापेन । ४य ० न गर्विता सा तु मर्ता स्त्री कालग ० । ५क ० जस्वापात । ६प्र ० । ६क ० सि वरेण वैबलम् । न । ७क ० वारिणा मे श्री ० ।

सकलभुवनमूर्तेर्मूर्तिरल्पा सुसूक्ष्मा, विदितसकलवेदेज्ञायिते यस्य नान्यैः
तमजमकृतमोक्ष शाश्वतं स्वेच्छयैर्न, जगदुपकृतिमाद्य को विजेतुं समर्थः

॥७३॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे पारिजातहरणे शक्रस्तवनिरूपणं
नाम त्र्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२०३॥

अथ चतुरधिकद्विशततमोऽध्यायः

इन्द्रकृष्णसंवादवर्णनम्

व्यास उवाच

संस्तुतो भगवानित्यं देवराजेन केशवः। प्रहृत्य भावगम्भीरमुवाचेदं द्विजोत्तमाः॥१॥

श्रीभगवानुवाच

देवराजो भवानिन्द्रो बवं मर्त्या जगत्पते। क्षन्तव्यं भवर्तवैतदपराधकृतं मम॥२॥
पारिजाततटश्चार्च्यं नीयतामृचितास्पदम्। गृहीतोऽयं मया शक्र सत्मावचनकारणात्॥३॥
बध्नं धेवं गृहाण त्वं यष्टव्यं प्रहितं स्वया। तवैवैतत्प्रहरणं शक्रवैरिविदारणम्॥४॥

अथ, ईश, नित्य, आद्य तथा सत्ता के उपकारी को कौन व्यक्ति स्वेच्छा से जीतने में समर्थ (हो सक्ता) है? ॥७०-७१॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में बल्यवृद्ध के हरण-प्रसंग में इन्द्रस्तुति निरूपण
नामक दो सौ तीसरा अध्याय समाप्त ॥२०३॥

अध्याय २०४

इन्द्र और कृष्ण के संवाद का वर्णन

व्यास ने कहा—द्विजवर ! इन्द्र से इस प्रकार स्तुत होने के उपरान्त केशव ने हेंगार सारगमित वाक्य कहा ॥१॥

श्रीभगवान् ने कहा—जगत्स्वामी ! आप देवताओं के राजा इन्द्र हैं और मैं मनुष्य हूँ। इसलिए आप ही मेरे अपराध को क्षमा करें। इस बल्यवृद्ध को उचित स्थान पर रख दें। शक्र ! मैंने तो वैष्णव सत्मा के दण्डन के कारण इसे ग्रहण किया। इस वस्तु का भी आप के लीलिए। आपसे छोटा क्या यह पुनर्नीय है। शत्रुओं का विदारण करने वाला यह वस्तु आप ही का है ॥२-४॥

शक्र उवाच

विमोहयसि मामीश मर्त्योऽहमिति किं वदन् । जन्मीमस्त्वां भगवतोऽनन्तसौख्यविदो वयम् ॥५॥
योऽसि सोऽसि जगन्नाथ प्रवृत्तो नराय सस्थितः । जगतः शल्यनिष्कर्षं करोष्यसुरसूदन ॥६॥
नीयता पारिजातोऽयं कृष्ण द्वारवर्ती पुरीम् । मर्त्यलोके त्वया भुक्ते नाम संस्थास्यते भुवि ॥७॥

व्यास उवाच

तथेत्युक्त्वा तु देवेन्द्रमाजगाम भुवं हरिः । प्रयुक्तैः सिद्धगन्धर्वैः स्तुयमानस्त्वर्थाभि ॥८॥
जगाम कृष्ण सहसा गृहीत्वा पादपोतमम् । ततः शङ्खमुपाध्माय द्वारकोपरि सस्थितः ॥९॥
हर्षमुत्पादयामास द्वारकावासिनां द्विजा । अवतीर्याथ गरुडासत्यभामासहायवान् ॥१०॥
निष्कुटे स्थापयामास पारिजात महातरुम् । यमम्येत्य जनः सर्वे जातिं स्मरति पौर्विकीम् ॥११॥
यास्यते यस्य पुष्पाणा गन्धेनोर्वो त्रियोजनम् । ततस्ते यास्वाः सर्वे देवगन्धानमानुषान् ॥१२॥
वृक्षान् पादपे 'तस्मिन्कुवतो' मुखदशनम् । किंकरं समुपानीतं हस्त्यश्वादि ततो धनम् ॥१३॥
स्त्रियश्च कृष्णो जग्राह नरकस्य परिग्रहात् । ततः काले शुभे प्राप्त उपयमे जनादनः ॥१४॥
ताः कन्या 'नरकाबासात्सर्वतो' या समाहृताः । एकस्मिन्नेव गोविन्दः कालेनाऽऽस्ता द्विजोत्तमाः ॥१५॥
जग्राह विधिवत्पाणीन्यूयादेहे स्वधर्मतः । षोडश स्त्रीसहस्राणि शतमेकं तयाऽधिकम् ॥१६॥

शक्र ने कहा—ईश । 'मैं मनुष्य हूँ' ऐसा कहकर क्यों आप मुझे मोह में डाल रहे हैं ? मैं आपको जानता हूँ । आप ही से हम सब अनन्त सुखों को प्राप्त करते हैं । जगन्नाथ । 'राक्षसों के सहारक' । आप जो हैं सो हैं, पर आप पृथ्वी पर स्थित होकर ससार का सब कुछ दूर करते हैं । कृष्ण । इस कल्पवृक्ष को आप द्वारका ले जायें । आपने मर्त्यलोक छोड़ देने पर यह पृथ्वी पर नहीं ठहरेगा ॥५-७॥

व्यास ने कहा—इन्द्र से 'एवमस्तु' कहकर गगवान् कृष्ण उतम वृक्ष को लेकर सिद्ध, गन्धर्व तथा ऋषियों द्वारा स्तुत होते हुए धीमे मृत्युलोक आ गये । विप्रवृन्द । द्वारका पहुँचकर उन्होंने पाक्षध्वनि से द्वारकावासियों को आनन्दित किया और गरुड़ पर से सत्यभामा सहित उतर कर अन्त पुर में महातरु कल्पवृक्ष को स्थापित कर दिया । उसको देखकर मनुष्य को पूर्व जाति का स्मरण हो आता था और उसकी सुगन्ध से पृथ्वी तीन योजन तक सुवासित रहती थी । यादवगण उस अलौकिक गन्ध को सूँघते थे, उस वृक्ष में अपना सुखदशन करते थे । सेवकगण उसल हार्पा-धाड़े आदि धन प्राप्त करते थे । 'नरक' नामक राक्षस के बन्धन से उन्मुक्त स्त्रियों को कृष्ण ने स्वर्गार किया । शुम्बाल प्राप्त होने पर जनादन ने उन सब कन्याओं से विवाह कर लिया, जो नरक के गृह से लाई गई थी । विप्रवर । गोविन्द ने पृथक्-पृथक् शरीर धारण कर एक ही समय सब कन्याओं से विधिपूर्वक विवाह किया । सोलह हजार एक सौ स्त्रियाँ थी । गगवान् मधुसूदन ने उतने ही रूप बनाये । उन कन्याओं में मधुसूदन को

तावन्ति चक्रे रूपाणि भगवान्मधुसूदनः। एकैकशश्च ताः कन्या मेनिरे मधुसूदनम् ॥१७॥
ममैव पाणिग्रहणं गोविन्द. कृतवानिति। निशासु जगतः स्रष्टा तासां गेहेषु केशव. ॥
उवास विप्राः सर्वासां विश्वरूपधरो हरिः ॥१८॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे श्रीकृष्णचरिते चतुरधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२०४॥

अथ पञ्चाधिकद्विशततमोऽध्यायः

अनिरुद्धचरित्रवर्णनम्

व्यास उवाच

प्रद्युम्नाद्या हरेः पुत्रा रुक्मिण्या 'कथिता द्विजाः। भान्वादिकाश्च वै पुत्रान्सत्यभामा ध्यायापत ॥१॥
दीप्तिमन्तः प्रपक्षाद्या रोहिण्यास्तनया हरेः। यभूवर्जाम्बवत्याश्च 'ताम्बाद्या बाहुशालिनः ॥२॥
तनया भद्रविन्दाद्या नाम्नजित्यां महाबलाः। संप्रामजित्प्रधानास्तु शैब्यायां चाभयन्सुताः ॥३॥
बृकाद्यास्तु सुता 'माद्री गानवत्प्रमुत्तान्सुतान्। अवाप रुक्मणा पुत्रान्कालिन्द्याश्च क्षुतादयः ॥४॥
अग्यासा चैव भार्वागाः सन्तुवन्नानि चक्रिणः। अष्टायुतानि पुत्राणां सहस्राणि शतं तथा ॥५॥

एक-एक करके माना और समझा कि गोविन्द ने मुझसे ही पाणिग्रहण किया है। द्विजगण। रात्रि में जगत्स्रष्टा केशव विदयर्क धारण कर उन सबके घरो में वास करते थे ॥८-१८॥

श्रीब्रह्महापुराण में श्रीकृष्ण-चरित्र-वर्णन-प्रसंग में दो सौ चौथा अध्याय समाप्त ॥२०४॥

अध्याय २०५

अनिरुद्ध का चरित्र-वर्णन

व्यास ने कहा—द्विजवृन्द! हरि के रुक्मिणी से उत्पन्न प्रद्युम्न आदि पुत्रों के बारे में मैंने कहा। (अब और सुनिये) भानु आदि पुत्र सत्यभामा से उत्पन्न हुए। हरि के राहिनों से प्रपक्ष आदि दीप्तिमात् पुत्र हुए। जाम्बवती से साम्ब आदि प्रतापी पुत्र हुए। नाम्नन्विनी के भद्रविन्द आदि महानरवान् पुत्र हुए। संप्रामजित् आदि पुत्र शैब्या के हुए। माद्री के वृन् आदि पुत्र हुए। रुक्मणा ने गानवान् आदि पुत्रों को प्राप्त किया। कालिन्दी के श्रुन आदि पुत्र हुए। कृष्ण की दूगरी स्त्रिया में आठ करोड़ एवं सौ पुत्र उत्पन्न हुए। उनमें रुक्मिणी का पुत्र प्रद्युम्न

प्रद्युम्नः 'प्रमुखस्तेषां हविष्यास्तु सुतस्ततः। प्रद्युम्नानिच्छदोऽभूद्वज्रस्तस्मादजायत ॥६॥
अनिच्छदो रणे रट्टो बलः पौत्रो महाबलः। बाणस्य तनयाम् (मु) पामुपयेमे द्विजोत्तमाः ॥७॥
यत्र युद्धमभूद्धोरं हरिदांकरयोर्महत्। छिन्नं सद्यं बाहूना यत्र बाणस्य चक्रिणा ॥८॥

मुनय ऊचुः

कथं युद्धमभूद्ब्रह्मन्नुपायं हरकृष्णयोः। कथं क्षयं च बाणस्य बाहूनां हृतवाह्रिः ॥९॥
एतत्सर्वं महाभाग वक्तुमर्हसि नोऽखिलम्। महत्कौतूहलं जातं धीतुमेतां कथां शृणुम ॥१०॥

व्यास उवाच

उपा बाणसुता विप्राः पार्वतीं शंभुना सह। कीडन्तीमुपलक्ष्योच्चैः स्पृहां चक्रे तदा स्वयम् ॥
ततः सकलचित्ता गौरी तामाह भर्तमिनीम् ॥११॥

गौर्युवाच

अलमित्यनुतापेन भर्ता त्वमपि रस्यसे ॥१२॥

व्यास उवाच

इत्युक्ता सा तदा चक्रे वदेति मतिमात्मनः। को वा भर्ता ममेत्येतां पुनरप्याह पार्वती ॥१३॥

प्रधान था। प्रद्युम्न से अनिच्छद की उत्पत्ति हुई। द्विजभेष्टो। रणदुर्मद महाबली अनिच्छद ने बेलि की पौत्री तथा बाण की पुत्री उपा से विवाह किया। उस पिताह ने हरि और शरर के बीच महायुद्ध हुआ। कृष्ण ने बाण की हजारी भुजाओं का काट डाला ॥१-८॥

मुनियो ने कहा—ब्रह्मन्। उपा के लिये क्यों शिव तथा कृष्ण में युद्ध हुआ? क्यों हरि ने बाण की बांह काट डाली? महाभाग! यह सब सन्दिग्ध है हमें बतलाइये। इस शुभ कथा को सुनने के लिये हम बड़ी उत्सुकता से खड़े हैं ॥९-१०॥

व्यास ने कहा—विप्रवृन्द। बाण की बन्धा उपा ने शरर के साथ रीडा करती हुई पार्वती को देखकर इच्छा की, कि बाधा। मैं भी ऐसा दखती। तब उसके पिता को जानने वाली गौरी ने उससे कहा ॥११॥

गौरी घोली—तुम व्यय ही अनुताप कर रही हो, पति के साथ तुम भी रमण करोगी ॥१२॥

व्यास ने कहा—पार्वती क इतना कहने पर उपा मन में सोचने लगी, कि जब कौन मेरा स्वामी होगा। फिर पार्वती ने उससे कहा ॥१३॥

पार्वत्युवाच

वैशाख शुक्लद्वादश्या स्वप्ने योऽभिभव तव । करिष्यति स ते भर्ता राजपुत्रि भविष्यति ॥१४॥

व्यास उवाच

तस्या त्रिथो पुमान्स्वप्ने यथा देव्या उदीरित । तथैवाभिभव चक्रे राग चक्रे च तत्र सा ॥
'सत प्रबुद्धा पुरुषमपश्यन्ती तमुत्सुका ॥१५॥

उषोवाच

वव गतोऽसीति निलंज्जा द्विजादचोक्तवती सखीम । बाणस्य मन्त्री कुम्भाण्डश्चित्रलेखा तु तत्सुता ॥१६॥
तस्या सत्यभवत्सा च प्राह कोऽय त्वयोच्यते । यदा लज्जाकुला नास्य कथयामास सा सखी ॥१७॥
तदा विश्वासमानीय सवमेवान्ववेदयत । विदिताया तु तामाह पुनरुषा ययौदितम् ॥
दव्या तथैव सत्प्राप्तो योऽभ्युपाय कुर्वन् तम ॥१८॥

व्यास उवाच

सत पद सुरार्दत्याग्यधर्वाश्च प्रधानत । मनुष्याश्चाभिलिख्यासौ चित्रलेखाऽप्यदर्शयत ॥१९॥
अयास्य सा तु गन्धर्वास्तभोरगसुरासुरान । मनुष्येषु वदौ दृष्टिं तेष्वप्यन्धकवृष्टिण्यु ॥२०॥

पार्वती ने कहा—राजकुमारी । वैशाख शुक्ल द्वादशी तिथि में जो व्यक्ति स्वप्न में तुमसे प्रसंग करेगा वही तुम्हारा पति होगा ॥१४॥

व्यास ने कहा—पार्वती के वचनानुसार उसी तिथि का एक पुरुष ने स्वप्न में उषा से रमण किया और उषा को उसके साथ प्रसंग भी हो गया । तब जागने पर उस पुरुष को न देखती हुई उषा (उसके लिए) उत्तमिष्ठ हो गई ॥१५॥

उषा बोली—द्विजगण । कहाँ गये हो यह बात उषा निलज्ज होकर अपनी सखी से पूछ बैठी । बाण के मन्त्री कुम्भाण्ड ने चित्रलेखा नामक बच्चा भी । वह उषा की सखी होने के नाते बोली—तुम्हारे बारे में तुम यह रही हो ? जब उषा ने लज्जा के मारे कुछ नहीं कहा तब चित्रलेखा उस विवाह मणि के लिये सब वृत्तान्त निवेदन करने लगी । यह सब समझ गया । ऐसा जानकर उषा न उससे कहा—उसकी प्राप्ति के लिए गौरी ने जो उपाय बतलाया है वह करो ॥१६-१८॥

व्यास ने कहा—तदनन्तर चित्रलेखा ने चित्रमठ पर देव राक्षस गन्धर्व और मुख्य मुख्य मनुष्यों को चित्रित कर दिखलाया । उषा ने गन्धर्व राक्षस तथा देवों को छोड़कर मनुष्यों के ऊपर दृष्टि दीशानी उनमें भी गन्धर्व और वृष्टि का बालों के ऊपर शास तीर से दृष्टिपात किया । गुदर भौं बाँगी उषा कृष्ण राम को देखकर

कृष्णरामो विलोक्याऽऽसीत्सुभ्रूलज्जायतेक्षणम् । प्रद्युम्नदर्शने स्त्रीडादृष्टिं निन्ये ततो द्विजा ॥२१॥
दृष्ट्वाऽनिरुद्धं च ततो लज्जां ववापि निराकृता । सोऽयं सोऽयं ममेत्युक्ते तथा सा योगयामिनी ॥
ययौ द्वारवतीम् (मु)या समाश्वास्य ततः सखी ॥२२॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे वाणयुद्धे पञ्चाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२०५॥

अथ षडधिकद्विशततमोऽध्यायः

वाणयुद्धवर्णनम्

व्यास उवाच

वाणोऽपि प्रणिपत्याग्रे ततश्चाऽहं त्रिलोचनम् ॥१॥

वाण उवाच

देव बाहुसहस्रेण निविण्णोऽहं विनाऽहदम । कञ्चिन्ममैवा बाहूनां साफल्यकरणो रण ॥
भविष्यति विना युद्धं भाराय मम किं भुजं ॥२॥

शकर उवाच

मयूरध्वजभङ्गस्ते यदा वाण भविष्यति । पिशिताग्निजनानां च प्राप्स्यसि त्वं तदा रणम् ॥३॥

काज्जत हा गई। द्विजवृत् । उसने प्रद्युम्न ऊपर लज्जापूर्ण दृष्टि शाली । अनिरुद्ध का देखकर वह यग नाम से चलने वाली उपा लज्जा दूर करके बोल उठी—यही है मेरा यही है। तब उपा को सात्वता देकर सखी द्वारा वापसी ॥१९ २२॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में वाण-युद्ध प्रकरण में दो सौ पचासवाँ अध्याय समाप्त ॥२०५॥

अध्याय २०६

वाण के युद्ध का वर्णन

व्यास ने कहा—वाण सी शिव के सामने माथा टेक कर कहने लग्य ॥१॥

वाण ने कहा—देव । मैं हजार मुजावों से युक्त होकर विना युद्ध के दुःखी हूँ रहा हूँ। यदि कोई ऐसा युद्ध हो जो मेरी बाँहों को चरितार्थ कर सके तो ठीक है। अन्यथा विना युद्ध ने भुजायें भारमात्र हैं ॥२॥

शकर ने कहा—वाण । जब तुम्हारी मयूर-पताका मन्न होगी तब माताहारी जीवों को आनन्द देने वाला रण तुम्हें प्राप्त होगा ॥३॥

व्यास उवाच

ततः प्रणम्य मुदितः शमुभय्यागतो गृहात् । भग्न ध्वजमयाऽऽलोक्य हृष्टो हर्षं परं ययौ ॥४॥
 एतस्मिन्नेव काले तु योगविद्यायत्नेन तम् । अनिरुद्धमयाऽऽनिन्ये चित्रलेखा यया सखी ॥५॥
 कन्यान्तःपुरमध्ये तं रममाणं सहोदया । विज्ञाय रक्षितो गत्वा दशशुद्धैर्त्यभूपते ॥६॥
 व्यादिष्टं किकराणां तु सैन्यं तेन महात्मना । जघान परिघं लौहमावायं परवीरहा ॥७॥
 हतेषु तेषु बाणोऽपि रयस्यस्तद्वधोद्यतः । युध्यमानो यथाशक्ति यया धीरेण निजितः ॥८॥
 मायया युयुधे तेन स तदा मन्त्रचोदितः । ततश्च पद्मगास्त्रेण बन्धं यदुनन्दनम् ॥९॥
 द्वारवत्या वयं यातोऽस्तावनिरुद्धेति जल्पताम् । यदूनामाचक्षते तं बद्धं बाणेन नारदः ॥१०॥
 तं शोणितपुरे ध्रुत्वा नीतं विद्याविदध्या । योषितां प्रत्ययं जग्मुर्यादवा नाम वैरिति (णि) ॥११॥
 ततो गरुडमारुह्य स्मृतमात्रां गतः हरिः । बलप्रद्युम्नसहितो बाणस्य प्रययौ पुरम् ॥१२॥
 पुरीप्रवेशे प्रमथैर्युद्धमातीन्महाबलैः । ययौ बाणपुराभ्याशं नीत्वा तान्सक्षयं हरिः ॥१३॥
 ततस्त्रिपादस्त्रिशिरां ज्वरो माहेश्वरो महान् । बाणरक्षार्थमत्ययं युयुधे शाङ्गधन्वना ॥१४॥
 'तद्भस्मस्पर्शं भूततापं' कृष्णाङ्गसगमात् । 'अवाप बलदेवोऽपि' समं समीलितैक्षण ॥१५॥

व्यास ने कहा—तदुपरान्त शंकर को प्रणाम कर बाण घर से बाहर निकल और पताके को भग्न देखकर बड़ा आनन्दित हुआ ॥४॥ इसी समय योगविद्या ने बल से उत्तमा सखी चित्रलेखा अनिरुद्ध की ले आई ॥५॥ कन्या पुर में उपा के साथ रमण करते हुए अनिरुद्ध का पता पावर रक्षको ने दैत्यराज से जाकर निवेदन कर दिया ॥६॥ उस महात्मा ने अनिरुद्ध को मार देने के लिए सेवकों को आज्ञा दे दी । पर धीरे शत्रुओं के ताशकूर्ता अनिरुद्ध ने कोढ़े का मुँह पर लेकर सैनिकों को मर्ण कर दिया । सेनाओं को निहत्त हो जाने पर अनिरुद्ध का वध करने के लिए उद्यत बाण भी रया रुद्ध होकर शक्तिभर युद्ध करने लगा । पर अनिरुद्ध ने उसे हरा दिया । तब मन्त्रसिद्ध बाण मर्या से युद्ध करने लगा और अतत सर्पास्त्र से यदुकुमार को बाध दिया ॥७-९॥ (अनिरुद्ध के चले जाने पर) द्वारका में भादवगण बोलने लगे—अनिरुद्ध कहाँ गये ?' (उसी समय) नारद ने (कहीं से आकर) बाण द्वारा बाधे गये अनिरुद्ध का समाचार सुना दिया ॥१०॥ विद्या में निपुण स्त्री, अनिरुद्ध को शोणितपुर ले गई यह सुनकर यादवी को विश्वास हो गया ॥११॥ तदनन्तर गरुड पर चढ़कर कृष्ण बलमय और प्रद्युम्न को साथ लेकर शोणितपुर के लिए तुरन्त प्रस्थित हो गये । नगर में प्रवेश करने से पूर्व महाबलशाली प्रमथगणों के साथ उनका युद्ध छिड़ गया । हरि उनका नाश करने बाण-पुर के समीप पहुँचे । तब शंकर का सैन्य पीर सभा तीनों शिर वाला महाज्वर बाण की रक्षा के निमित्त कृष्ण से युद्ध करने लगा ॥१२-१४॥ कृष्ण के अग से स्पर्श हो जाने के कारण बलदेव की भी महा ज्वर के भस्म-स्पर्श से उत्पन्न ताप लग गया । उन्होंने आँखें मूढ़ ली । तब वीजव ज्वर ने कृष्ण के साथ युद्ध करते

ततः संयुध्यमानस्तु सह देवेन शाङ्गिणा । वैष्णवेन ज्वरेणाऽऽशु कृष्णदेहाग्निराकृतः ॥१६॥
 नारायणभुजाघातपरिपीडनविह्वलम् । तं दौक्ष्य क्षम्यतामस्येत्याह देवः पितामहः ॥१७॥
 ततश्च क्षान्तमेवेति प्रोच्य तं वैष्णवं ज्वरम् । आत्मन्येव लयं नित्ये भगवान्मधुसूदनः ॥१८॥
 मम त्वया समं युद्धं ये स्मरिष्यन्ति मानवाः । विज्वरास्ते भविष्यन्तीत्युक्त्वा चैनं ययौ हरिः ॥१९॥
 ततोऽग्नोन्मगवान्पञ्च जित्वा नोत्वा क्षयं तया । दानवानां बलं विष्णुश्चूर्णयामास लीलया ॥२०॥
 ततः समस्तसंन्येन दंतोयानां बलेः सुतः । युयुधे शंकरश्चैव कार्तिकेयश्च शौरिणा ॥२१॥
 हरिशंकरयोर्दुर्मतोवाऽऽसीत्सुबाधणम् । चुक्षुभुः सकला लोकाः शस्त्रास्त्रैर्बहुधाऽद्विताः ॥२२॥
 प्रलयोऽयमशेषस्य जगतो नूनमागतः । मेनिरे त्रिदशा यत्र वर्तमाने महाहवे ॥२३॥
 जूम्भणास्त्रेण गोविन्दो जूम्भयामास शंकरम् । ततः प्रणेशुर्दंतोऽयः प्रमयाश्च समन्ततः ॥२४॥
 जूम्भाभिभूतश्च हरो रथोपस्थमुपाविशत् । न शशाक तदा योद्धुं कृष्णेनाविलम्बकर्मणा ॥२५॥
 गच्छक्षतबाहुश्च प्रद्युम्नास्त्रेण पीडितः । कृष्णहंकारनिर्धूतशक्तिश्चापययौ गुहः ॥२६॥
 जूम्भिते शंकरे नष्टे दैत्यसंन्ये गुहे जिते । नोते प्रमयसंन्ये च सक्षय शार्ङ्गधन्वना ॥२७॥
 नन्दीशसंगृहीताश्चमधिरुद्धा महारथम् । बाणस्तथाऽऽययौ योद्धुं कृष्णकार्पाणबलैः सह ॥२८॥
 बलभद्रो महावीर्यो बाणसंन्यमनेकधा । विव्याध बाणैः प्रद्युम्नो धर्मसद्वापलापतः ॥२९॥

इयं माहेस्वर श्वर को कृष्ण की देह से निकाल दिया ॥१५-१६॥ हरि की भुजाओं के आघात से परिपीडित माहेस्वर श्वर को बैलनर ब्रह्मा ने विष्णु से कहा—‘क्षमा कर दीजिये’ । विष्णु ने कहा—‘क्षमा ही है ।’ तब भगवान् मधु-सूदन ने वैष्णव श्वर को अपने में लीन कर लिया और माहेस्वर श्वर से कहा—‘जो मनुष्य तुम्हारे इस युद्ध का स्मरण करे, वे विजय हो जायेंगे ।’ इतना कहकर हरि आगे बढ़े ॥१७-१९॥ तब भगवान् ने पाँच अग्नियों को जीतकर दानवों की सेना को आसानी से धूर-धूर कर दिया । तब समस्त सैनिकों से युक्त बाण, शंकर और कार्तिकेय कृष्ण से युद्ध करने लगे । हरि और शिव ने बड़ा भयकर युद्ध छिड़ गया । अनेक बार अस्त्र शस्त्रों से पीडित सकल लोक आपने लगे । उस युद्ध की विद्यमानता में दैवगण सोचने लगे कि निश्चय ही अब संपूर्ण जगत् में प्रलय मंच जायगा । गोविन्द ने जूम्भणास्त्र का प्रयोग किया, जिससे शंकर को जैमाई आने लगी । तब चारों ओर दैत्य और प्रमयगण नष्ट होने लगे ॥२०-२४॥ जैमाई से अभिभूत शिव, महापराक्रमी कृष्ण के साथ युद्ध करने में असमर्थ होकर रथ पर बैठ गये । गच्छ ने कार्तिकेय की बाहुओं को क्षत-विक्षत कर दिया । प्रद्युम्न ने अस्त्र से उसे पीडित किया । कृष्ण ने हुंकार से उसकी घनित नष्ट कर दी । फिर वह टिक नहीं सका । जब शंकर जूम्भास्त्र के वशीभूत हो गये, दानव सेनायें नष्ट हो गईं, कार्तिकेय पराजित हो गये और प्रमय-सेना को भी कृष्ण क्षीण कर चुके तब सारथि के रूप में शिव को लेकर रथावृद्ध बाण कृष्ण तथा उनकी सेना से युद्ध करने के लिए वहाँ आ पहुँचा ॥ २५-२८ ॥ महापराक्रमी बलभद्र तथा धर्मत न भागने वाले प्रद्युम्न ने बाणों से बाण की सेना को कई बार आहत किया । बलराय ने हल के अग्रभाग तथा मुसल

ततः प्रणम्य मुदितः शम्भुमभ्यागतो गृहात् । भग्नध्वजमयाऽऽलोक्य हृष्टो हर्षपरयः ॥४॥
 एतस्मिन्नेव काले तु योगविद्याबलेन तम् । अनिरुद्धमयाऽऽनिन्ये चित्रलेखा वरा सखी ॥५॥
 कन्यान्तपुरमध्ये तं रममाणं सहोपया । विज्ञाय रक्षिणो गत्वा शशसुन्दर्यभूपते ॥६॥
 व्यादिष्ट किंकराणां तु संन्यतेन महात्मना । जघान परिघं लोहमादाय परवीरहा ॥७॥
 हृतेषु तेषु बाणोऽपि रयस्यस्तद्वयोद्यतः । युध्यमानो यथाशक्ति यदा वीरेण निर्जितः ॥८॥
 मायया युयुधे तेन स तदा मन्त्रचोदितः । ततश्च पन्नगास्त्रेण ध्वजं यदुनन्दनम् ॥९॥
 द्वारवत्या वयं यातोऽसावनिरुद्धेति जल्पताम् । यद्वनामाचक्षसे तं बद्धबाणेन नारदः ॥१०॥
 तं शोणितपुरे श्रुत्वा नीतविद्याविदग्धया । योषिता प्रत्ययजन्मुर्यादवा नाम वैरिति (णि) ॥११॥
 ततो गरुडमारुह्य स्मृतमात्रं गतः हरिः । बलप्रद्युम्नसहितो बाणस्य प्रययौ पुरम् ॥१२॥
 पुरीप्रवेशे प्रमथैर्युद्धमासीन्महाबलैः । ययौ बाणपुराभ्यां नीत्या तान्सक्षयः हरिः ॥१३॥
 ततस्त्रिपादस्त्रिधिराज्वरो महाेश्वरो महान् । बाणरक्षार्थं मत्पर्यं युयुधे शार्ङ्गध्वजना ॥१४॥
 'तद्भस्मस्पर्शं भूततापं' कृष्णाङ्गसगमात् । 'अवाप बलदेवोऽपि' समं समोल्लिखे ॥१५॥

व्यास ने कहा—तदुपरान्त शवर को प्रणाम कर बाण घर से बाहर निकला और पताने का भग्न ध्वज वर बाणनिन्दित हुआ ॥४॥ इसी समय योगविद्या के बल से उत्तमा सखी चित्रलेखा अनिरुद्ध को ले आई ॥५॥ वन्या पुर में उषा के साथ रमण करते हुए अनिरुद्ध का पता पाकर रक्षको ने दैत्यराज से आकर निवेदन कर दिया ॥६॥ उस महारमा ने अनिरुद्ध को मार देने के लिए सेवकों को आज्ञा दे दी । पर वीर शत्रुओं के नाशकर्ता अनिरुद्ध ने लोहे का मुदगर लेकर सैनिकों को नष्ट कर दिया । सेनाओं को निहत्त हो जाने पर अनिरुद्ध का बंध करने के लिए उद्यत बाण भी रवाहू होकर शक्तिमत् युद्ध करने लगा । पर अनिरुद्ध ने उसे हरा दिया । तब मन्त्रसिद्ध बाण माया से युद्ध करने लगा और अन्ततः सर्पास्त्र से मदुकुमार को बाध दिया ॥७-९॥ (अनिरुद्ध के चले जाने पर) द्वारका में मादवगण बोलने लगे—'अनिरुद्ध कहाँ गये ?' (उसी समय) नारद ने (कहीं से आकर) बाण द्वारा बाध गये अनिरुद्ध का समाचार सुना दिया ॥१०॥ विद्या में निपुण स्त्री, अनिरुद्ध को शोणितपुर ले गई' यह सुनकर मादवों को विश्वास हो गया ॥११॥ तदनन्तर गरुड पर चढ़कर कृष्ण बलमद्र और प्रद्युम्न को साथ लेकर शोणितपुर के लिए सुपुत्र प्रस्थित हो गये । नगर में प्रवेश करने से पूर्व महाबलशाली प्रयवगणों के साथ उनका युद्ध छिड़ गया । हरि उनका नाश करके बाण-पुर के समीप पहुँचे । तब शकर का तीन पैर तथा तीन शिर वाला महाज्वर बाण की रक्षा के निमित्त कृष्ण से युद्ध करने लगा ॥१२-१४॥ कृष्ण के अंग से स्पर्श हो जाने के कारण बलदेव को भी महाज्वर के भस्म-स्पर्श से उत्पन्न ताप लग गया । उन्होंने आलें मूढ़ ली । तब वैष्णव ज्वर ने कृष्ण के साथ युद्ध करते

१४ ०म तैरि० १५ ०मात्र य० १६ तद्वन्ध कृष्णस० १७ ०तस्ताप० कृ० १८ अत्यजहल० ।
 १९ ०पि श्रममुन्मीलि० ।

तत सपुण्यमानस्तु सह देवेन शार्ङ्गिणा । ध्वंशवेन ज्वरेणाऽऽशु कृष्णदेहानिराकृत ॥१६॥
 नारायणभुजाघातपरिपीडनविह्वलम् । त बोध्य क्षम्यतामस्येत्याह देव पितामह ॥१७॥
 ततश्च क्षान्तमेवेति प्रोच्य त ध्वंशव ज्वरम् । आत्मन्येव लय निन्ये भगवान्मधुसूदन ॥१८॥
 मम त्वया सम युद्ध ये स्मरिष्यन्ति मानवा । विज्वरास्ते भविष्यन्तीत्युक्त्वा चैन ययौ हरि ॥१९॥
 ततोऽग्नीन्भगवान्पञ्च जित्वा नीत्वा क्षय तया । दानधानां बल विष्णुश्चूर्णयामास लीलया ॥२०॥
 तत समस्तसंन्येन दंतेयाना बले सुत । युयुपे शकरदन्तव कातिकेयश्च शौरिणा ॥२१॥
 हरिशकरयोर्युद्धमतीबाऽऽसीत्सुदाशनम् । चक्षुभु सकला लोका शस्त्रास्त्रैर्बहुधाऽदिता ॥२२॥
 प्रलयोऽयमशेषस्य जगतो नूनमागत । मेनिरे त्रिदशा यत्र धर्तमाने महाहवे ॥२३॥
 जम्भणास्त्रेण गोविन्दो जम्भयामास शकरम् । तत प्रणेशुर्दंतेया प्रमयाश्च समन्तत ॥२४॥
 जम्भाभिभूतश्च हरो रयोपस्यमुपाविशत । न शशाक तदा धोद्ध कृष्णेनाविलष्टकमणा ॥२५॥
 गण्डकतबाहुश्च प्रद्युम्नास्त्रेण पीडित । कृष्णहृकारनिर्धूतशक्तिश्चापययौ गृह ॥२६॥
 जृम्भिते शकरे नष्टे दंत्पसंन्ये गृहे जिते । नीते प्रमयसंन्ये च सक्षय शार्ङ्गधन्वना ॥२७॥
 नवीशसगृहीताश्चमधिरुद्धा महारथम् । घाणस्तत्राऽऽययौ धोद्ध कृष्णकार्पिणबलं सह ॥२८॥
 बलभद्रो महावीर्यो बाणसंन्यमनेकधा । विव्याध बाणं प्रद्युम्नो धर्मतश्चापलापत ॥२९॥

हुए माहेश्वर ज्वर को कृष्ण की देह से निकाल दिया ॥१५ १६॥ हरि की मुखाओ के आघात से परिपाडित माहेश्वर ज्वर को देखकर ब्रह्मा ने विष्णु से कहा— क्षमा कर दीजिये ! विष्णु ने कहा— क्षमा हुआ है । तब भगवान् मधुसूदन ने ध्वंशव ज्वर को अपने में लीन कर लिया और माहेश्वर ज्वर से कहा— आ मनुष्य तुम्हारे इस युद्ध का स्मरण करोगे वे विज्वर हूँ आयेगे । इतना कहकर हरि आगे बढ़े ॥१७ १९॥ तब भगवान् ने पांच अग्निमो को जीतकर दानवों की सेना का आसना से चूर-चूर कर दिया । तब समस्त सैनिकों से युक्त बाण शत्रु और कातिकेय कृष्ण से युद्ध करने लगे । हरि और शिव ने बड़ा मयकर युद्ध छिड़ गया । अनेक बार अस्त्र शस्त्रों से पाडित सबल लोक कानने लगे । उस युद्ध का विद्यमानता ने देवगण सोचने लगे कि निश्चय ही अब संपूर्ण जगत में प्रलय मच जायगा । गावित्र ने जम्भणास्त्र का प्रयोग किया जिससे शत्रु को जैमाई आने लगी । तब चारों ओर दंष्ट्र और प्रमयगण मल्ट हाने लगे ॥२० २४॥ जैमाई से अभिमूल शिव महापराक्रमी कृष्ण के साथ युद्ध करने से असमर्थ होकर रथ पर बैठ गया । गद्व ने कातिकेय की बाहुओं को क्षत विस्तार कर दिया । प्रद्युम्न ने अस्त्र से उसे पीडित किया । कृष्ण ने हुकार से उसका शक्ति नष्ट कर दा । फिर वह टिक नहीं सका । अब शकर जम्भास्त्र के वशीभूत हो गये दानव सेनाय नष्ट हुआ गद कातिकेय पराजित हो गये और प्रमय-सेना को मा कृष्ण क्षाण कर चुके तब सारथी के रूप में शिव को लेकर रथारू बाण कृष्ण तथा उनकी सेना से युद्ध करने के लिए नहीं आ पहुँचा ॥ २५ २८॥ महापराक्रमी बलभद्र तथा धर्मत न मारने वाले प्रद्युम्न ने बाणों से बाण की सेना को कई बार बाहुत किया । बलराम ने हल के अग्रभाग तथा मुशल

आकृष्य लाङ्गलाग्रेण मुशलेन च पोथितम् । बलं बलेन ददशे बाणो बाणैश्च चक्रिणः ॥३०॥
 ततः कृष्णस्य बाणेन युद्धभासीस्तमासतः । परस्परं तु संदीप्तान्कायत्राणविभेदिनः ॥३१॥
 कृष्णश्चिच्छेद बाणंस्तान्बाणेन प्रहिताञ्जहरेः । विभेद केशवं बाणो बाणं विव्याध चक्रधृक् ॥३२॥
 मुमुचाते तथाऽस्त्राणि बाणकृष्णौ जिगीयया । परस्परक्षतिपरो परिघांश्च ततो द्विजा ॥३३॥
 छिद्यमानेष्वशेषेषु शस्त्रेष्वस्त्रे च सोदति । प्राचुर्येण हरिर्बाणं हन्तुं चक्रे ततो मनः ॥३४॥
 ततोऽर्कशतसंभूततेजसा सदशद्युति । जग्राह दैत्यचक्रारिर्हरिश्चक्रं सुदर्शनम् ॥३५॥
 मुञ्चतो बाणनाशाय तच्चक्रं मधुविद्विषः । नग्ना दैतेयविद्याभूकोटरी पुरतो हरेः ॥३६॥
 तामग्रतो हरिर्दृष्ट्वा भीलिताक्षः सुदर्शनम् । मुभोच बाणमुद्दिश्य छेतुं बाहुवनं रिपोः ॥३७॥
 क्रमेणास्य तु ब्राह्मणो बाणस्याच्युतचोदितम् । छेदं चक्रेऽसुरस्याऽऽसु शस्त्रास्त्रक्षेपणाद्दुतम् ॥३८॥
 छिन्ने बाहुवने तत्तु करस्य मधुसूदनः । मुमुक्षुर्बाणनाशाय विज्ञातस्त्रिपुरद्विषा ॥३९॥
 स उत्पत्याऽऽह गोविन्दं सामपूर्वमुमापतिः । विलोक्य बाणं दोदण्डच्छेदासुखस्त्रावर्षिणम् ॥४०॥

रश्म उवाच

कृष्ण कृष्ण जगन्नाथ जाने त्वा पुष्टोत्तमम् । परेशं परमात्मानमनादिनिधनं परम् ॥४१॥
 देवतिर्यङ्मनुष्येषु शरीरग्रहणात्मिका । लीलेय तव चेष्टा हि दैत्याना यधलक्षणा ॥४२॥
 तत्प्रसीदाभयं दत्तं बाणस्यास्य भया प्रभो । तत्त्वया नानृतं कार्यं यन्मया व्याहृतं यच्च ॥४३॥

से और कृष्ण ने बाणों से शत्रु की सेना को तहस-नहस कर दिया । तब कृष्ण और बाण ने घोर युद्ध होने लगा । बाण के द्वारा प्रक्षिप्त कवचभेदी बाणों को कृष्ण अपने शरीरों से काट देते थे । बाण केशव को घेरा करता था और केशव बाण को । वे दोनों द्विजों की इच्छा से अस्त्रों को छोड़ते थे । तब परस्पर क्षति पहुँचाने में व्याकुल दोनों व्यक्ति मुसलों का प्रयोग करने लगे । समस्त अस्त्र-शस्त्रों के छिन्न-भिन्न हो जाने पर हरि ने बाण को मार देने का विचार किया । अनन्तर दैत्य-समूह नाशन हरि ने सैकड़ों सूर्य के समान प्रकाशमान सुदर्शन चक्र को उठा लिया । ॥२९-३५॥ बाण के नाश के लिये चक्र छोड़ते हुए मधुसूदन के आगे कोटरी नामक राक्षसी विद्या नग्न होकर खड़ी हो गई । उसे सामने देखकर हरि ने नेत्र को बंद कर लिया और शत्रु की मुजा खरी बन को काटने के लिए बाण को उद्देश्य करके सुदर्शन छोड़ दिया । कृष्ण के छोड़े हुए चक्र ने क्रमशः बाण की सारी मुजाओं को शस्त्रास्त्र फेंकने से भी पहले ब्रुत गति से काट डाला । बाहु समूह के विच्छिन्न हो जाने पर शर्वर-ग्रोह-जाता मधु-सूदन ने बाण-नाश के लिए छोड़े हुए चक्र को अपने हाथ में ले लिया । बाँहों के सट जाने से शीतल-वर्षा करते हुए बाण को देखकर महादेव गोविन्द के पास जाकर प्रार्थना करने लगे ॥३६-४०॥

रश्म ने कहा—कृष्ण, कृष्ण ! जगन्नाथ ! मैं जानता हूँ कि आप पुष्टोत्तम, परमात्मा, ईश्वर तथा जन्म-मरण से रहित हैं । दैत्यो का वध करने के लिए देव, पक्षी तथा मनुष्य का शरीर जो आप धारण करते हैं, यह तो आपकी लीला है । प्रभो ! प्रसन्न होइये । मैंने बाण को अमयदान दिया है । मेरे वचन को गिण्या मत कीजिए ।

अस्मत्सश्रयवृद्धोऽयं नापराधस्तवाव्ययः। मया दत्तवरो दैत्यस्ततस्त्वा क्षमयाम्यहम् ॥४४॥

व्यास उवाच

इत्युक्तं प्राह गोविन्द शूलपाणिमुमापतिम्। प्रसन्नवदनो भूत्वा गतामर्षोऽसुर प्रति ॥४५॥

श्रीभगवानुवाच

युष्मद्वत्तवरो बाणो जीवतादेयं शकरो। त्वद्व्ययगौरवादेतन्मया चक्रं निर्वर्तितम् ॥४६॥
त्वया यदभयं दत्तं तद्वत्तमभयं मया। मत्तोऽविभिन्नमात्मानं ब्रष्टुमर्हसि शकरो ॥४७॥
योऽहं स त्वं जगन्वेद सदेवासुरमानुषम्। अविद्यामोहितात्मानं पुरुषा भिन्नदर्शिनः ॥४८॥

व्यास उवाच

इत्युक्त्वा प्रपयो कृष्णं प्राद्युम्निर्पत्रं तिष्ठति। तद्वन्द्यफणिनो नेशुर्गण्डानिलशोषिता ॥४९॥
सतोऽनिरुद्धमारोप्य सप्तलीकं गच्छति। आजग्मुर्द्वारका रामकाष्णिगामोदरा पुरोन् ॥५०॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे बाणपुत्रे षडधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२०६॥

यह मेरे आश्रय में रहकर समुद्र हुआ है। आपका कोई अपराध नहीं है। मैंने इस दैत्य को बरदान दिया था। इस लिए क्षमा कर लें ॥४१-४४॥

व्यास ने कहा—इतना कहने पर गोविन्द राक्षस के प्रति क्रोध त्याग कर प्रसन्नमुख हो शूल पाणि उमापति से कहने लगे ॥४५॥

श्री भगवान् ने कहा—शकरो! आपने जब इसे बरदान दिया है सब यह जीवित रहे। आपके वचन की प्रसिद्धा के कारण मैंने चक्र को निवृत्त कर लिया है। आपने जो अमय दान दिया वह (मानो) मैंने अमय दान दिया। आप मुझ अपने से बल्य न समझें। शिव! जो मैं हूँ वहीं आप तथा देव राक्षस मनुष्य सहित यह संपूर्ण जगत है। अविद्या से मोहित चित्त वाले पुरुष भिन्नदर्शी होते हैं ॥४६-४८॥

व्यास ने कहा—इतना कहकर कृष्ण वहाँ गये जहाँ अनिरुद्ध था। अनिरुद्ध को बाँधे हुए सर्पगण गरुड के वायु से शापित होकर नष्ट हो गये। तदनंतर पत्नी सहित अनिरुद्ध को गरुड पर चढ़ाकर कृष्ण राम अपनी द्वारिकापुरी आ गये ॥४९-५०॥

श्रीब्रह्मपुराण में बाण-युद्ध प्रसंग में दो सौ छठा अध्याय समाप्त ॥२०६॥

अथ सप्ताधिकद्विशततमोऽध्यायः

पोण्ड्रकदधवर्णनम्

मुनय ऊचुः

चक्रे कर्ममहच्छोरिविभ्रद्यो मातुर्यो तनुम् । त्रिणाय शक्र शर्वं च सर्वदेवाश्च लीलया ॥१॥
यच्चान्यदकरोत्कर्म 'दिव्यचेष्टाविधातकृत् । कथ्यतां तन्मुनिषेष्ठ पर कौतूहल हि न ॥२॥

व्यास उवाच

गदतो मे मुनिषेष्टा श्रूयतामिदमादरात् । नरावतारे कृष्णेन दग्धा घाराणसो यथा ॥३॥
पोण्ड्रको वासुदेवदध वासुदेवोऽभवद्भुवि । अवतीर्णस्त्वमित्युक्तो जनैरज्ञानमोहितं ॥४॥
स भेने वासुदेवोऽहमवतीर्णो महोत्तले । नष्टस्मृतिस्तत सर्वं विष्णुचिह्नमचोकरत् ॥
दूत च प्रेषयामास' स कृष्णाय' द्विजोत्तमा ॥५॥

दूत उवाच

एषश्च चक्रादिकं चिह्नं भरीष नाम माऽऽत्मन । वासुदेवात्मकं भूढं मुक्त्वा सर्वमशेषत ॥६॥
आत्मनो जीवितार्थं च तथा मे प्रणतिं व्रज ॥७॥

अध्याय २०७

पोण्ड्रक-दध-वर्णनं

मुनियो ने कहा—कृष्ण ने मनुष्य-शरीर धारण कर महान् काय किया जा कि इन्द्र शिव तथा अखिल देवों को सहज ही में जीत लिया । मुनिषेष्ठ । दिव्यचेष्टानाम्ना कृष्ण ने और जा काय किया वह हमें बतलाइये हमें बड़ा उत्कण्ठा है ॥१॥ २॥

व्यास ने कहा—मुनिवर । आदरपूर्वक मुनिये मैं कहता हूँ । नरावतार मे कृष्ण ने काशीपुरी को जलाया । पोण्ड्रक और वासुदेव—वो कृष्ण पृथ्वी पर हो गये । अर्थात् अज्ञानमाहित व्यक्तियों ने पोण्ड्रक से कहा—तुम अवतार पुरुष हो । उसने स्वयं भी अपने को समझा कि मैं वासुदेव हूँ पृथ्वी पर अवतारण हूँ । द्विजश्रेष्ठ । पदचात जैसने सब कुछ मूलकर अपने शरीर मे विष्णु के चिह्नों का धारण किया और कृष्ण के पास एक दूत भेजा ॥३॥ ५॥

दूत ने कहा—मूख । तू मेरे चक्र आदि चिह्नों को तथा वासुदेव नाम को त्याग दे और यदि जीने की इच्छा है तो मुझ आकर प्रणाम कर ॥६॥ ७॥

व्यास उवाच

इत्युक्त स प्रहर्षय दूत प्राह जनार्दन

॥८॥

श्रीभगवानुवाच

निजचिह्नमह चक्र समुत्सृज्ये त्वयोति वै । चाच्यश्च पौण्ड्रको गत्वा त्वया दूत यचो मम ॥९॥
जातस्त्वद्वाक्यसदभावो यत्कार्यं तद्विधीयता । गृहीतचिह्न एवाहमागमिष्यामि ते पुरम् ॥१०॥
उत्सृज्यामि च ते चक्र निजचिह्नमसशयम् । आज्ञापूर्वं च यदिदमागच्छेति त्वयोदितम् ॥११॥
सपादयिष्ये श्वस्तुभ्य तदप्येषोऽविलम्बितम् । शरण ते समभ्येत्य कर्ताऽस्मि नृपते तथा ॥
मया त्वत्तो भय भूयो नैव किञ्चिदभविष्यति ॥१२॥

व्यास उवाच

इत्युक्तेऽपगतं दूतं सस्मृत्याम्यागत हरि । गल्मन्त समाह्वय त्वरित तत्पुर ययौ ॥१३॥
तस्यापि केशवोद्योग ध्रुवा काशिपतिस्तदा । सर्वसैन्यपरीवारपाणिप्राहमुपाययौ ॥१४॥
ततो बलेन महता काशिराजबलेन च । पौण्ड्रको वामुदेवोऽसौ केशवाभिमुख ययौ ॥१५॥
त ददर्श हरिर्वूरादुदारस्पर्ध्वने स्थितम् । चक्रशङ्खगदापाणि पाणिना विधृताम्बुजम् ॥१६॥
ग्रन्थर धृतशङ्खं च सुपर्णरचनाम्बुजम् । वक्ष स्थलकृत, चास्य श्रीवत्स द्दुशे हरि ॥१७॥
किरीटकुण्डलधर पीतवास समन्वितम् । दृष्ट्वा त भावगम्भीर जहास 'मधुसूदन' ॥१८॥

व्यास ने कहा—इतना कहने पर जनार्दन हँसकर दूत से कहने लगे ॥८॥

श्रीभगवान् ने कहा—दूत 'तुम जाकर पौण्ड्रक से कहना कि मैं उनके सामने अपने चिह्न-चक्र का परि-
त्याग कर दूँगा । उनके वाक्य का आशय मैं समझता हूँ । वे अपना काय करें । मैं चिह्न सहित उनके नगर में आऊँगा ।
यदि तुम्हारे कहने पर वे मुझ आने के लिए आज्ञा देंगे तो निःसन्देह मैं अपने चिह्न चक्र को छाड़ दूँगा । उसका
कल्याण हो । मैं शीघ्र ही यह कार्य करूँगा । उनकी शरण में जाकर मैं सब कुछ कहूँगा जिससे फिर मुझ उनसे
कोई भय न रहे ॥९॥१२॥

व्यास ने कहा—यह सुनकर दूत चला गया । हरि आगतुक का स्मरण कर तुरन्त गड पर चढ़कर
पौण्ड्रक के नगर के लिए प्रस्थित हो गये । कृष्ण के प्रयत्न के बारे में मुनिकर काशीनरेश समस्त सैनिका से युक्त होकर
शत्रु से सघर्ष करने के लिए चल पड़ा । तब अपनी बड़ी सेना तथा काशीपति की सेना के साथ वामुदेव रूपधारी
पौण्ड्रक भी केशव के सामने गया । हरि ने विशाल रथ पर स्थित मालाधारी धनुषधारी गरुडचित्रित पताका स
युक्त, वक्ष स्थल पर श्रीवत्सचिह्न से विभूषित मुकुट-कुण्डलधारी पीतवस्त्रसमन्वित तथा हाथों में शङ्ख,
चक्र, गदा पथ लिये पौण्ड्रक को दूर से ही देखा । भावगम्भीर पौण्ड्रक को देखकर मधुसूदन हँसने लगे । द्विजगण ।

युयुधे च बलेनास्य हस्त्यश्वबलिना द्विजाः। निर्विघ्नशष्टिगदाशूलशक्तिकामुकशालिना ॥१९॥
क्षणेन शार्ङ्गनिर्मुक्तैः शरैरग्निविदारणैः। गदाचक्रातिपातैश्च सूदयामास तद्वलम् ॥२०॥
काशिराजबलं चैव क्षयं नीत्वा जनार्दनः। उवाच पौण्ड्रकं मूढमात्मचिह्नोपलक्षणम् ॥२१॥

श्रीभगवानुवाच

पौण्ड्रकोवर्तं त्वया यत्तद्वृत्तवज्रेण मा प्रति। समुत्सृजेति चिह्नानि तत्ते संपादयाम्यहम् ॥२२॥
चक्रमेतत्समुत्सृष्टं गदेयं ते विसर्जिता। गह्वरमानेय निर्विघ्नः समारोहतु ते ध्वजम् ॥२३॥
इत्युक्त्वायं विमुक्तेन चक्रेणासौ विदारितः। 'पौण्ड्रको' गदया भग्नो गह्वरमांश्च गह्वरमा ॥२४॥
ततो हाहाकृते लोके 'काशिराजमधिपस्तदा। युयुधे वासुदेवेन मित्रस्यापचितौ स्थितः ॥२५॥
ततः शार्ङ्गविनिर्मुक्तैश्छित्त्वा तस्य शरैः शिरः। काशिपुर्यां स चिक्षेव कुर्वल्लोकस्य विमस्यम् ॥२६॥
हत्वा तु पौण्ड्रकं शौरिः काशिराज च सानुगम्। रेमे द्वारवतीं प्राप्तोऽमरः स्वर्गगतो यया ॥२७॥
तच्छिरः पतितं तत्र दृष्ट्वा काशिपतेः पुरे। जनः किमेतदित्याह केनेत्यत्यन्तविस्मितः ॥२८॥
शात्वा तं वासुदेवेन हतं तस्य सुतस्ततः। पुरोहितेन सहितस्तोषयामास शंकरम् ॥२९॥
अविमुक्ते महाक्षेत्रे तोषितस्तेन शंकरः। धरं धृणीष्वेति तदा तं प्रोवाच नृपात्मजम् ॥३०॥
स वज्रे भगवन्कृत्या पितुर्हन्तुर्वंधाय मे। समुत्तिष्ठतु कृष्णस्य त्वत्प्रसादागमहेन्दवरः ॥३१॥

तलवार, गदा, शूल, शक्ति, धनुष तथा हाथी-घोड़े से युक्त सैनिकों से कृष्ण युद्ध करने लगे। क्षण में ही जनार्दन ने अपने अग्निवर्षी बाणों से तथा गदा-चक्र से उसकी सेना को विनष्ट कर दिया। काशीपति की सेना का भी सहार करके कृष्ण ने निजचिह्न से युक्त मूर्ख पौण्ड्रक से बहल ॥१३-२१॥

श्रीभगवान् ने कहा—पौण्ड्रक ! तुमने दूत के मुख से जो मुझे चिह्न स्थाप्य देने को कहा था, उस काम को मैं कर रहा हूँ। इस चक्र को मैंने छोड़ दिया। तुम्हारे लिए इस गदा को भी छोड़ दिया, यह गह्वर तुम्हारी पताका धारण करे। इतना कहकर कृष्ण ने चक्र छोड़ दिया। चक्र ने पौण्ड्रक को फाड़ डाला, गदा ने उसे चूर-चूर कर डाला, गह्वर ने उसकी ध्वजा का नाश कर दिया। तब लोगो में हाहाकार मच गया। मित्र-शत्रु होने पर काशीपति वासुदेव से युद्ध करने लगा। तब लोगो को आश्चर्यित करते हुए कृष्ण ने अपने बाणों से उसका शिर काट कर काशी-पुरी में फेंक दिया। वासुदेव काशिराज सहित पौण्ड्रक को मार कर द्वारका में उसी प्रकार रक्षण करने लगे, जैसे स्वर्ग में देवता। काशीपुरी में गिरे हुए उसके शिर को देखकर लोग 'यह क्या' कहकर अत्यन्त विस्मित हुए। 'वासुदेव ने मारा' यह जानकर काशीपति का पुत्र पुरोहित सहित धर को समुत्सृष्ट करने लगा। अविमुक्त नामक महाक्षेत्र में राज पुत्र से प्रसन्न होकर धर ने उससे वर माग्ने की कहा। उसने वर मागा—'महेन्दर ! आपकी कृपा से मेरे पिता के वधकर्ता कृष्ण को मारने के लिए कृत्या उत्तम हो ॥२२-३१॥

व्यास उवाच

एवं भविष्यतीत्युक्ते दक्षिणाग्नेरनन्तरम् । महाकृत्या समुत्तस्यौ तस्यैवाग्निनिवेशनात् ॥३२॥
ततो ज्वालाकरालास्या ज्वलत्केशफलापिका । कृष्ण कृष्णेति क्रुपिता कृत्वा द्वारवतीं ययौ ॥३३॥
तामवेश्य जन सर्वो रोद्रा विकृतलोचनाम् । ययौ शरण्यं जगता शरणं मधुसूदनम् ॥३४॥

जना ऊचुः

काशिराजसुतेनेयमाराध्य धूपमध्वजम् । उत्पादिता महाकृत्या वधाय तव चन्निनः ॥
जहि कृत्यामिमामुघां वह्निज्वालाजटाकुलाम् ॥३५॥

व्यास उवाच

धरमुत्सृष्टमक्षेपु क्रीडास्रतेन लीलया । तदग्निमालाजटिलं ज्वालोद्गारातिभीषणम् ॥३६॥
कृत्यामनुजगामाऽशु विष्णुचक्र सुदर्शनम् । ततः सा चरन्विध्वस्ता कृत्या माहेन्दवरी तदा ॥३७॥
जगाम बैमिनी बैगात्तदप्यनुजगाम ताम् । कृत्या वाराणसीमेव प्रविवेश स्वराग्निता ॥३८॥
विष्णुचक्रप्रतिहतप्रभावा मुनिसत्तमाः । ततः काशियलं भूरि प्रमथयन्ती तथा बलम् ॥३९॥
समस्तशस्त्रास्त्रपुत धरुत्याभिमुखं ययौ । शस्त्रास्त्रमोक्षबहुलं दग्ध्वा तद्वलयमोजसा ॥४०॥
हृत्वाऽमेमामशेषा सा पुरीं वाराणसीं ययौ । प्रभूतभूत्यपौरा सा सादवमातङ्गमानवाम् ॥४१॥

व्यास ने कहा—शिवने कहा—‘ऐसा ही होगा ।’ वदवात् अग्निकुण्ड से महाकृत्या उत्पन्न हुई, जिसने
मूँह और नेश ज्वालाओं से भयवर हो रहे थे । वह प्रोथ से ‘कृष्ण-कृष्ण’ बोली हुई द्वारवा पहुँची । खर की उस
विकृत नेत्र वाली कृत्या को देखकर लोग अखिललोकसक मधुसूदन की शरण में गये ॥३२-३४॥

लोगों ने कहा—काशिराज के पुत्र ने शवर की आराधना करके आपने धूप के निमित्त महाकृत्या को
उत्पन्न कराया है । अग्निज्वाला से व्याप्त जटा वाली इस भीषण कृत्या को आप मारिये ॥३५॥

व्यास ने कहा—चूत-क्रीडा में आसक्त कृष्ण ने लीला करने के लिए अपना चक्र छोड़ दिया । अग्नि-
पुत्र से व्याप्त तया ज्वालाओं से अतिभयानक सुदर्शन चक्र क्षीघ्रता से कृत्या वा पीछा करने लगा । चक्र की
चोट खाकर शिव की कृत्या बेग से गमन करने लगी । चक्र ने भी वेग से उड़वा अनुसरण किया । विष्णु चक्र ने
उसकी पकित को नष्ट कर दिया । वह क्षीघ्रता से वाराणसी में प्रविष्ट हुई । मुनिवर । तब काशीपति की सेना
वीर प्रमथयण समस्त शस्त्र-अस्त्रा से युक्त होकर चक्र के सामने आये । चक्र ने शस्त्र-अस्त्र छानने में व्यस्त
शारी सेना को दग्न कर सपूर्ण वाराणसी पुरी को नष्ट-भ्रष्ट कर दिया । प्रचुर सेवकों तथा पुरवासियों से युक्त-

अशेषदुर्गकोष्ठां ता वुनिरीक्ष्यां सुरैरपि । ज्वालापरिवृताशेषगृहप्राकारतोरणाम् ॥४२॥
 ददाह' ता पुरीं चक्र सकलामेव सत्वरम्' । अक्षीणामर्षमत्यल्पसाध्यसाधनस्फूहम्' ॥४३॥
 तच्चक्र प्रस्फुरद्दीप्ति विष्णोरभ्यापयौ करम् ॥४४॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे श्रीकृष्णचरिते षोडशवासुदेववधे काशीदाहवर्णनं नाम
 सप्ताधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२०७॥

अष्टाधिकद्विशततमोऽध्यायः

बलदेवमाहात्म्यवर्णनम्

मुनय ऊचुः

धोत्रुमिच्छामहे भूयो बलभद्रस्य धीमत । मुने पराक्रम शौर्यं तन्नो व्याख्यातुमर्हति ॥१॥
 यमुनाकर्पणादीनि ध्रुताग्न्यस्माभिरद्वयै । तत्कल्पता महाभाग यदग्न्यत्कृतवान्बल ॥२॥

व्यास उवाच

शृणुष्व मुनय कर्म यद्रामेणाभवत्कृतम् । अनन्तेनाप्रमेयेन शेषेण धरणीभृता ॥३॥
 दुर्योधनस्य तनया स्वयवरकृतेक्षणात् । यत्नादावत्तयाग्वीर साम्बो जाम्बवतीसुत ॥४॥

परकोटे तथा तोरणा से युक्त उक्त समग्र पुरी को शाव ही चक्र ने जला दिया । अनन्तर साधनो से नि स्फूह अक्षीण
 क्रोध वाला वह कातिमान् चक्र विष्णु के हाथ में आ गया ॥३६४३॥

श्री ब्रह्महापुराण में श्रीकृष्णचरितोपक्रम में षोडश वासुदेव के वध प्रसंग में काशीदाह-वर्णन
 नामक दो सौ सातवाँ अध्याय समाप्त ॥२०७॥

अध्याय २०८

बलदेव का माहात्म्य-वर्णन

मुनियो ने कहा—मुने । पुन हम धीमान बलभद्र की वीरता तथा पराक्रम के बारे में सुनना चाहते हैं
 आप वर्णन करें ॥१२॥

व्यास न दहा—मुनिवृन्द । अनन्त अप्रमेय शेष तथा धरणीधर राम ने जा किया वह आप मुनिये ।
 जाम्बवतपुत्र कीर साम्ब ने दुर्योधन की पुत्री को स्वयवर में बलात् पकड़ लिया । तब क्रुद्ध बलशाली कर्ण दुर्योधन

१ग ०ह तद्वरेरचक्र । २ख ०म् । सुक्षीणसारा कृत्वेमा सा० । ३ख ०नकारकम् ।

ततः क्रुद्धा महावीर्याः कर्णदुर्योधनादयः। भीष्मद्रोणादयश्चैव बलघ्नसुर्गैश्च निजितम् ॥५॥
तच्छ्रुत्वा यादवाः सर्वे क्रोधं दुर्योधनादियु। मुनयः प्रतिचक्रुश्च ताविबहन्तु महोद्यमम् ॥६॥
तान्निवार्य बलः प्राह मदलोककुलाक्षरम्। मोक्षयन्ति ते मद्रचनाद्यास्याम्येको हि कौरवान् ॥७॥
बलदेवस्ततो गत्वा नगरं नागसाहचर्यम्। बाह्योपवनमध्येऽभूध्रं विवेश च तत्पुरम् ॥८॥
बलमागतमाजाय तदा दुर्योधनादयः। रामर्धमुदकं चैव रामाय प्रत्यवेदयन् ॥
गृहीत्वा विधिवत्सर्वं ततस्तानाह कौरवान् ॥९॥

बलदेव उवाच

आज्ञापयत्युग्रसेनः साम्बमाज्ञां विमुञ्चत

॥१०॥

व्यास उवाच

ततस्तद्वचनं श्रुत्वा भीष्मद्रोणादयो द्विजाः। कर्णदुर्योधनाद्याश्च चुक्रुधुर्द्विजसत्तमाः ॥११॥
ऋषयश्च क्रुपिताः सर्वे बाह्लिकाद्याश्च भूमिपाः। अराजार्हं यदोर्वनामवेक्ष्य मुशालायुधम् ॥१२॥
कौरवा उचुः

भो भोः किमेतद्भवता बलभद्रेरितं वचः। आज्ञां कुरुकुलोत्थाना यादवः कः प्रदास्यति ॥१३॥
उग्रसेनोऽपि यद्याज्ञा कौरवाणां प्रदास्यति। तदलं पाण्डुरंश्छत्रं नृपयोग्यैरलङ्कृतैः ॥१४॥
तद्गच्छ बलभद्र त्वं साम्बमन्यायचेष्टितम्। विमोक्ष्यामो न भवतो मोघसेनस्य शासनात् ॥१५॥

भीष्म, द्रोण आदि ने मुद्र ने पराजित साम्ब को बाँध दिया। मुनिगण। यह सुनकर यादवा को दुर्योधन आदि के ऊपर क्रोध हुआ। वे उनको मारने के लिए तैयारी करने लगे। पर बलभद्र ने उन्हें रोक कर अभिमानपूर्ण वाक्य कहा—'मेरे कहने से वे लोग छोड़ देंगे। मैं अकेला ही कौरवों के पास जाऊँगा।' तत्पश्चात् बलदेव हस्तिनापुर पहुँच कर नगर के उपवन में ही ठहरे, पुरी में प्रविष्ट नहीं हुए। बलराम के आगमन को जानकर दुर्योधन प्रभृति ने राम को अर्घ्य—जल—आद्य समर्पित किये। राम ने विधिपूर्वक सब कुछ ग्रहण कर कौरवों से कहा ॥३-९॥

बलदेव बोले—उग्रसेन की आज्ञा है कि तुम लोग शीघ्र साम्ब को छोड़ दो ॥१०॥

व्यास ने कहा—द्विजगण। राम के वचन को सुनकर भीष्म, द्रोण, कर्ण, दुर्योधन आदि क्रुद्ध हो गये। बाह्लिक आदि समस्त नृपगण 'यदुवच राजवच' नहीं है' यह सोचकर बलदेव की ओर लक्ष्य करने बोले ॥११-१२॥

कौरवों ने कहा—बलभद्र जी। यह आपने क्या कह दिया। कौरवों की आज्ञा देने वाला यादव कौन होता है? यदि उग्रसेन भी कौरवों की आज्ञा दे तो नृपयोग्य अलङ्कृत श्वेतच्छत्र चारण करने से क्या लाभ? बलभद्र। इसलिये आप चले जायें। न आपने कहने से न उग्रसेन की आज्ञा से हम इस अन्यायी साम्ब को छोड़ेंगे।

प्रणतिर्या कृतास्माकं मान्यानां कुकुरान्धकैः। न नाम सा कृता केयमाज्ञा स्वामिनि भृत्यतः॥१६॥
 गर्वमारोपिता यूयं समानासनभोजनं। को दोषो भवतां नीतिर्यत्प्रीणात्यनपेक्षिता॥१७॥
 अस्माभिरर्च्यो भवता योऽयं बल निवेदितः। प्रेम्णं न तदस्माकं कुलाद्युपेतुलोचितम्॥१८॥

व्यास उवाच

इत्युक्त्वा कुरवः सर्वे नामुञ्चन्त हरेः सुतम्। कृतकनिश्चया सर्वे विविशुर्गजसाह्वयम्॥१९॥
 मत्तः कोपेन चाऽऽपूर्णं ततोऽधिपेजन्मना। उत्थाय पाण्ण्यां वसुधां जघान स हलायुधः॥२०॥
 ततो विदारिता पृथ्वी पार्ष्णिघाताग्महात्मनः। आस्फोटयामास तदा विशः शब्देन पूरयन्
 उवाच घातिताम्राक्षो भ्रुकुटौकुटिलाननः॥२१॥

बलदेव उवाच

अहो महाबलेपोऽयमसारणां दुरात्मनाम्। कौरवाणामाधिपत्यमरमाक किल कालजम्॥२२॥
 उपसेनस्य ये नाऽज्ञां मग्नन्ते चाप्यलङ्घनाम्। आज्ञा प्रतीच्छेद्धर्मण सह देवं शचीपति॥२३॥
 सदाऽध्यास्ते सुधर्मा तामुग्रसेनः शचीपते। विद्रमनृप्यशतोच्छिष्टे तुष्टिरेषा नृपासने॥२४॥
 पारिजाततरोः पुष्पमञ्जरीर्वेनिततजनः। बिभर्ति यस्य भृत्याना सोऽप्येषा न महोपति॥२५॥
 समस्तभूभुजां नाय उपसेनः स तिष्ठतु। अत्र निष्कौरवामुर्वीं कृत्वा दारयामि तापुरीम्॥२६॥
 कर्णं दुर्योधनं द्रोणमद्य भीष्मं सबाह्विकम्। दुःशासनान्दोन्मूरं च भूरिध्रुवसमेव च॥२७॥
 सौमदत्तं शलं भीममर्जुनं समुधिष्ठिरम्। धर्मजो कौरवाश्चान्यान्यहन्त्या साश्वरथद्विपान्॥२८॥

जिन कुकुर-अन्धक पक्ष वालो ने हमे प्रणाम किया, वे हमे आज्ञा दें। सेवक स्वामी पर शासन करे। हमने आप लोगो को समान आसन-भोजन देकर अभिमान बना दिया। आपना दोष ही क्या है? यह तो नीति है। बल! हम जो आपकी पूजा करते हैं, वह केवल प्रेम के कारण। हमारे कुल का यह घम नहीं है कि हम आपके कुल की प्रविष्टा करें॥१३-१८॥

व्यास ने कहा—इतना कहकर कौरवो ने साम्ब को नहीं छोड़ा। सब एक निश्चय करने हस्तिनापुर में प्रविष्ट हुए। आक्षेपजन्य क्रोध से मत्त होकर बलदेव ने उठकर ऐंडी से पृथ्वी पर ठोकर मारी। महात्मा की ऐंडी के प्रहार से विदारित पृथ्वी दिशावो को शब्द-पूर्ण करती हुई फटने लगी। आँखे लाल कर तथा मुँह-मौँह को कुटिल कर (अर्थात् त्योरी पढाकर) बलदेव बोले॥१९-२१॥

बलदेव ने कहा—अहो! तुच्छ दुरात्माओ को महान् गर्व हो गया है। हमारे ऊपर कौरवो का आधिपत्य हो गया है। उपसेन की अलक्षणीय आज्ञा को कौरव नहीं मानेंगे। देवगण सहित इन्द्र धर्मपूर्वक उपसेन की आज्ञा चाहते हैं। उपसेन इन्द्र की देवसभा के अध्यक्ष हैं। सैकड़ों मनुष्यों के उच्छिष्ट राजसिंहासन से सत्पथ करने वाले इन (कौरवो) को धिक्कार है। जिन (उपसेन) के बासो की स्त्रियाँ नव्यवृक्ष के पुष्पो तथा मज्जरियाँ वारण करती हैं, वे इनके शासक नहीं हैं? उपसेन समस्त राजाओ के अधिपति हो। आज ही मैं पृथ्वी को कौरव विहीन करके उस पुरी में जाऊँगा। आज ही हाथी, घोड़े तथा रथ सहित कर्ण, दुर्योधन, द्रोण,

वीरमादाय त साम्ब सपत्नीक ततः पुरीम् । द्वारकामुप्रसेनादीनात्वा द्रक्ष्यामि बान्धवान् ॥२९॥
अथवा कौरवादीना समस्त कुशभि सह । मारावतरणे शीघ्र देवराजेन चोदित ॥३०॥
भागोरम्या क्षियाम्याशु नगर नागसाह्वयम् ॥३१॥

व्यास उवाच

इत्युक्त्वा 'क्रीधरवताक्षस्तालाङ्गोऽधोमुख हलम्' । प्राकारवप्रे' विन्यस्य चकपं मुशलायुध ॥३२॥
आधूणित तत्सहसा ततो च हस्तिनापुरम् । दृष्ट्वा सक्षुब्धहृदयाश्चक्रुः सर्वकौरवा ॥३३॥

कौरवा ऊचु

राम राम महाबाहो क्षम्यता क्षम्यतास्वया । उपसंह्रियता क्रोप प्रसीद मुशलायुध ॥३४॥
एष साम्ब सपत्नीकस्तव निर्यातितो बल । अविज्ञातप्रभावाणा सम्यतामपराधिनाम् ॥३५॥

व्यास उवाच

ततो निर्यातयामासु साम्ब पत्न्या समवित्तम् । निष्क्रम्य स्वपुरीं तूर्णं कौरवा मुनिसत्तमा ॥३६॥
भीष्मद्रोणकुपादीना प्रणम्य वदता प्रियम् । क्षान्तमेव समेत्याह बल्लो बलवता धर ॥३७॥
अशान्त्याधूणितकार लक्ष्यते तत्पुर द्विजा । एष प्रभावो रामस्य बलशायिवतो द्विजा ॥३८॥

भीष्म बाह्यिक दुःशासन मूरि मूरिश्रवा सोमदत्त बाल भीम अजून युधिष्ठिर नकुल सहदेव तथा अन्य कौरवो
को मैं मार दूंगा । फिर पत्नी सहित वीर साम्ब को लेकर द्वारका जाऊंगा और माई-बापुओं से मिलूंगा । अथवा
इस को प्रणाम से पृथ्वी का मार उतारने के लिये समस्त कौरवों सहित हस्तिनापुर को गया मे दूबो दूंगा ॥२९ ३१॥

व्यास ने कहा—इतना कहकर क्रोध से बाध लाल किये मुशलधारी बलदेव ने हल को अधोमुख करके प्राचीर
वीर स्तूप का विन्यास करके हल को खींचा । जिससे सम्पूर्ण हस्तिनापुर एकाएक धूमने लगा । यह देखकर समस्त
कौरव व्याधितहृदय होकर चिल्लाने लगे ॥३२ ३३॥

कौरवों ने कहा—महाबाहो ! राम ! राम ! क्षमा कीजिये क्षमा कीजिये । मुशलायुध ! कुपा कीजिये
क्रोध को हटाइये । बल ! पत्नी सहित साम्ब प्रस्थान कर चुके । हमने आपके प्रभाव को नहीं जाना । हम अपराधियों
को क्षमा कीजिये ॥३४ ३५॥

व्यास ने कहा—मुनिवर ! कौरवों ने शीघ्रतापूर्वक अपनी चर्री से निकल कर पत्नी सहित साम्ब को
विदा किया । बलवानों से शठ बलदेव ने माप्य द्रोण कुप आदि को प्रणाम करके कहा—क्षमा ही है ।
द्विजगण ! आज भी हस्तिनापुर घूमा हुआ सा प्रतीत होता है । बल-वीरताशाली बलराम का यह प्रभाव

ततस्तु कौरवा साम्य सपूज्य हलिना सह। प्रेपयामासुद्धाहपनभार्यासमन्वितम् ॥३९॥

इति श्रीमहापुराणे आदिप्राज्ञे श्रीकृष्णचरिते बलदेवमाहात्म्यनिरूपण
नामाष्टाधिकद्विशततमोऽध्याय ॥२०८॥

अथ नवाधिकद्विशततमोऽध्याय.

द्विविदवानरवधवर्णनम्

व्यास उवाच

शृणुष्व मुनय सर्वे बलस्य बलशालिनः। कृत यदग्यदेवाभूतदपि श्रूयता द्विजा ॥१॥
नरकस्यासुरेन्द्रस्य देवयसविरोधिनः। सखाऽभयमहावीर्यो द्विविदो नाम वानरः ॥२॥
वैरानुबन्ध बलवान्स चकार सुरान्प्रति ॥३॥

द्विविद उवाच

नरक हतश्राद्धो यज्जपंतमवितम्। करिष्ये सर्वदेवाना तत्मादेय प्रतिक्रियाम् ॥४॥

है। तदुपरांत कौरवों ने बलवान सहित साम्य की पूजा कर दान-दहेज देकर भार्या सहित साम्य को बिदा किया ॥३९॥

श्रीश्रीमहापुराण में श्रीकृष्णचरित प्रसंग में बलदेव-माहात्म्य निरूपण
नामक दो सौ आठवाँ अध्याय समाप्त ॥२०८॥

अध्याय २०९

द्विविद नामक वानर का वध-वर्णन

व्यास ने कहा—मुनिबृद । शक्तिशाली बलदेव ने और भी जो बात किये वे भी आप लोग सुन लीजिये। देवताओं के विरोधी राजसुराज नरक का मित्र द्विविद नामक बंदर था। बल देविद अपने मित्र के कारण देवताओं से बैर करने लगा ॥१॥

द्विविद बोला—कृष्ण मैं बल तथा ग्व से युक्त नरक को धार दिया है। इसलिए मैं समस्त देवों से इसका बदला लूंगा ॥४॥

व्यास उवाच

पञ्चविधस्य कुर्वन्मर्त्यलोकक्षयं तथा । ततो विध्वंसयामास यज्ञानज्ञानमोहित ॥५॥
विभेदं साधुमर्यादा क्षयं चक्रे च देहिनाम् । ददाम् चपलो देशं पुरप्रामान्तराणि च ॥६॥
वचिच्च पर्वतक्षेपाद्रामादीन्समचूर्णयत् । शैलानुत्पादय तोयेषु मुनीचाम्बुनिधौ तथा ॥७॥
पुनश्चाण्डवमध्यस्थ्य शोभयामास सागरम् । तेनातिशोभितश्चाब्धिच्छेदो जायते द्विजा ॥८॥
पञ्चावपत्न्योरजान्ग्रामान्पुरादीन्तिविवेकान् । कामरूपं महारूपं कृत्वा सस्याग्न्यनेकश ॥९॥
लुप्तममणसमदं सचूर्णयति यवानर । तेन विप्रकृतं सर्वं जगदेतद्दुरात्मना ॥१०॥
निस्वाध्यायवपटकारं द्विजाश्चाऽऽसीत्सुदुःखितम् । कदाचिद्वैवतोद्याने धनो पानं हलायुध ॥११॥
रेवनी च महाभागा तपैवान्या वरस्थिय । उदयोपमानो विलसत्ललनामौलिमध्यग ॥१२॥
रमे यदुवरध्रेष्ठ कुबेर इव मन्दरे । ततः स यानरोऽभ्येत्य गृहीत्वा सीरिणो हलम् ॥१३॥
मुशलं च चक्रारास्य समुखं स विदध्वनाम् । तथैव योयिता तासां जहासाभिमुखं कपि ॥१४॥
पानपूणांश्च करकाश्चिन्नेषाऽऽहृत्य वै सदा । ततः कोपपरीतात्मा भर्त्सयामास तं बलम् ॥१५॥
तथापि तमवज्ञाय चक्रे किलकिलाद्यनिम् । ततः समुत्थाय बलीं जगृहे मुशलं दया ॥१६॥
तोषि शैलशिखामोभां जग्राह प्लवगोत्तम । विक्षेपं च स तां क्षिप्त्वा मुशलेन सहस्रधा ॥१७॥

व्यास ने कहा—अज्ञानमोहित द्विविधयज्ञों का विध्वंस तथा लोगों का नाश करने लगा । वह साधु-मर्यादा का भग्न करता प्राणियों का विनाश करता शत्रुओं तथा देशों को जला डालता बड़ी पहाड़ों को फेंककर प्रायः आदि को बुर-बुर कर देता पहाड़ों को उखाड़ कर जल में तथा समुद्र में फेंक देता और पुनः सागर के बीच में पैठकर समुद्र को सलुब्ध कर डालता था । द्विजगण । उससे अति खुब्य समुद्र चल हो उठता और अत्यन्त वेग से तट पर के गावों तथा नगरों को बहा डालता । दह बंदर मनमाना रूप तथा विशालकाय धारण करके सस्यो पर लोट जाता और भ्रमण-समयन से उड़ते कुबल डालता । उस दुष्ट ने सम्पूर्ण सतार में उपद्रव मचा रखा ॥५॥ १०॥ ब्राह्मण लोग स्वर्ण्य तथा यज्ञ आदि से वंचित होकर बड़े दुखी हो गए । किसी समय रेवत के उद्यान में बलराम (सुरा) पान कर रहे थे । महाभागा रेवती तथा दूसरी स्त्रियाँ भी थीं । ललनाओं के बीच में यदुवर बलदेव गाने-बजाने के साथ उसी तरह बिलास कर रहे थे जैसे मन्दराचल पर कुबेर । तब वह बंदर समीप आकर बलदेव के हल और मुशल लेकर उनके सामने ही शेर बूद करने लगा । वह स्त्रियों के सामने हँसता और पान-पानों को कंकड़ों से मार देता । फिर अत्यन्त क्रोध से उसने बलराम की भर्त्सना की और उनकी अवहेलना करते हुए किलकिला शब्द किया । तदनन्तर बलदेव ने क्रोध से उठकर मुशल ग्रहण किया ॥११॥ १६॥ उस ध्रेष्ठ बंदर ने भी मयकर पर्वत-गिला को उठाने फेंका । यादव-अष्ट बल ने मुशल से उसने हजार टुकड़े कर दिये । शिला छिन्न भिन्न होकर

१क व पुरोद्वेश । २क तदा । ३क ०जानुसानरा० । ४क ०म् । एकदा रेव० ।
५क ०यान ययो व डेह्ला० । ६ मन्दरे ।

बिभेद यादवश्रेष्ठ सा पपात महीतले । अपतन्मुशलं चासी समुल्लङ्घ्य प्लवंगमः ॥१८॥
 वेगेनाऽऽयम्य रोपेण बलेनोरस्यताडयत् । ततो बलेन कोपेन मुष्टिना मूर्ध्नि ताडितः ॥१९॥
 पपात रुचिरोद्गारी द्विविदः क्षीणजीवितः । पतता तच्छरीरेण गिरिः शृङ्गमशीयन्त ॥२०॥
 मुनयः क्षतघा वज्रिज्ज्रेणेव हि ताडितम् । पुष्पवृष्टिं ततो देवा रामस्योपरि चिक्षिपुः ॥२१॥
 प्रशशंसुस्तवाऽभ्येत्य साध्वेतत् महत्कृतम् । अनेन द्रुष्टकपिता दैत्यसोपकारिणा ॥
 जगन्निराकृतं वीर दिष्टघा स क्षयमागतः ॥२२॥

व्यास उवाच

एवंविधान्यनेकानि बलदेवस्य धोमतः । कर्माभ्यपरिमेयानि शेषस्य धरणीभूतः ॥२३॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे बलदेवमाहात्म्ये द्विविदयानरवधवर्णनं नाम
 नवाधिकद्विंशततमोऽध्यायः ॥२०९॥

पूर्वा पर गिर पड़ी और मुशल भी गिर गया। बन्दर ने वेग में छलांग मार कर ओर से बनराम की छाती पर मारा। तब बल ने कोप से मुट्ठी बाँधकर बन्दर के गिर पर मारा। द्विविद लिप्याण होकर रुचिर बनकर ते हुए गिर पड़ा। मुनिबुन्द ! गिरते हुए उठो शरीर में पवन का झिलार उठी तरह सौभाग्य शश्वी में परिणत हुआ गया जैसे इन्द्र के बरष से आहत होने पर दृष्ट था। तब देवनाभा ने बनराम के ऊपर पुष्प-वृष्टि की और समीप आकर (इस प्रकार) प्रशंसा की—“यह आपने महान् कार्य किया, बहुत ही अच्छा किया। वीर ! देव ! बलकार करने वाले इस द्रुष्ट बन्दर न गन्धर्व का अविष्ट किया था। भाग्य में, यह गष्ट हो गया है ॥१७-२२॥

व्यास में कहा—भीमान्, धरणीपर तथा देशावतार बन्दर के लगे जोर बना है, जो अनुयाय में पड़े है ॥२३॥

योऽहमहापुराण म बलदेव-माहात्म्य-वचन प्रथम मे द्विविद-आनर-वध-वर्णनं नाम
 सा छी नवा अध्याय समाप्त ॥२०९॥

२. अथ दशाधिकद्विंशततमोऽध्यायः

भूमिभारावतरणकथनम्

व्यास उवाच

एवं दैत्यवधं कृष्णो बलदेवसहायवान् । चक्रे दुष्टक्षितिशानां तथैव जगतः कृते ॥१॥
क्षितेश्च भारं 'भयवान्काल्गुनेन समं विभुः । अवतारयामास हरिः समस्ताक्षौहिणीबघात् ॥२॥
कृत्वा भारावतरणं भूवो हत्वाऽखिलाद्रुपान् । शापव्याजेन विप्राणामुपसंहृतवान्कुलम् ॥३॥
उत्सृज्य द्वारकां कृष्णस्त्यक्त्वा मानुष्यमात्मभूः । स्वांशो विष्णुभयं स्थानं प्रविवेश पुनर्निजम् ॥४॥

मुनय ऊचुः

त विप्रशापव्याजेन संजह्ने स्वकुलं कथम् । कथं च मानुषं देहमुत्ससर्ज जनार्दनः ॥५॥

व्यास उवाच

विश्वामित्रस्तथा कण्वो नारदश्च महामुनिः । पिण्डारकं महातीर्थं दृष्ट्वा यदुकुमारकं ॥६॥
ततस्ते यौवनोन्मत्ता भाविकार्यप्रचोदिताः । साम्बं जाम्बवतीपुत्रं भूषयित्वा स्त्रियं यथा ॥७॥
प्रसूतास्ताम्बुनीनूचुः प्रणिपातपुरः सरम्

अध्याय २१०

पृथ्वी के भार उतारने का वर्णन

व्यास ने कहा—इस प्रकार बलदेव की सहायता से कृष्ण ने सत्तार के लिए दुष्ट राजाओं का वध किया ।
जर्जुन के साथ सर्वशक्तिमान् हरि ने समस्त अक्षौहिणी सेनाओं का वध करके पृथ्वी का भार उतारा । अखिल
राजाओं को मारकर पृथ्वी का भार उतार कर भगवान् ने ब्राह्मणों के साथ वे बहाने कुल का सहार किया । द्वारका
को छोड़कर मनुष्य-शरीर त्याग कर कृष्ण अपने अश्व से पुनः अपने विष्णुभय स्थान पर चले गये ॥१-४॥

मुनियों ने कहा—जनार्दन ने विप्र-शाप के व्याज से कैसे अपने कुल का सहार किया ? कैसे उन्होंने
मनुष्य-शरीर को त्यागा ? ॥५॥

व्यास ने कहा—पिण्डारक नामक महातीर्थ में यदुकुमारो ने विश्वामित्र, कण्व तथा महामुनि नारद
को देखा । तदनन्तर यौवन से उन्मत्त तथा भावी घटना से प्रेरित कुमारो ने जाम्बवती-पुत्र साम्ब को स्त्री की
तरह सज-धज कर मुनियों को प्रणाम करके कहा ॥६-७॥

कुमारा ऊचु

इय स्त्री पुनकामा तु प्रभो कि जनयिष्यति

॥८॥

व्यास उवाच

दिव्यज्ञानोपपन्नास्त विप्रलब्धा कुमारकं । शापदुस्तदा विप्रास्तथा नाशाय सुव्रता ॥९॥
 मुनयः कुपिता प्रोचुर्मुशलं जनयिष्यति । यनाखिलकुलोत्सादो यादवाना भविष्यति ॥१०॥
 इत्युक्तास्तः कुमारास्त आचक्षुषयातथम् । उपसनाय मुशलं जज्ञः साम्बस्य चोदरात् ॥११॥
 तदुपसनां मुशलमयश्चूणमकारयत् । जज्ञः तच्चरका, चूर्णं प्रक्षिप्तं व महोदधौ ॥१२॥
 मुसलस्याय लोहस्य चूणितस्याथकद्विजा । खण्डं चूणयितुं शकुनव ततोमराकृति ॥१३॥
 तदप्यम्बुनिधौ क्षिप्तं मत्स्यो जग्राह जालिभिः । घातितस्योदरात्तस्य हृद्भ्यो जग्राह तज्जरा ॥१४॥
 विज्ञातपरमार्थोऽपि भगवानमघुसूदन । नैच्छत्तदयथा कतुं विधिना यत्समाहृतम् ॥१५॥
 देवंश्च प्रहिती द्रुतं प्रणिपत्याऽऽह कशयम् । रहस्यमहं द्रुतं प्रहिती भगवत्सुर ॥१६॥
 यत्त्वशिवमरुदादिपरद्रुताध्यादिभिः सह । विज्ञापयति यः शनस्तदिदं धूयता प्रभो ॥१७॥

देवा ऊचु

भारावतरणार्थाय यर्पणामधिकं शतम् । भगवानवतीर्णोऽत्र त्रिदश सप्रसादितः ॥१८॥
 दुर्वृत्ता निहता दत्त्वा भुवो भारोऽवतारितः । त्वया सनाथास्त्रिदश व्रजंतु त्रिदिवशताम् ॥१९॥

कुमार बोल—यह क्या दुर्भाग्यापिणा है। बतलाइय यह क्या जनना ? ॥८॥

व्यास ने कहा—कुमारो ने दिव्यज्ञानी मुनियो से छल किया। अतः सुव्रती विप्रो ने उनके नाश के लिए शाप दे दिया। क्रुद्ध मुनियो ने कहा—यह मुगल पदा करेगी जिससे यादवों का संपूर्ण वंश नष्ट हो जायगा। तदुपरान्त कुमार ने उपसेन से वह घटना निवेदन की। साम्ब के पेट से मुगल उत्पन्न हुआ। उपसेन ने उस लोह मय मुगल का चूर चूर करवा दिया। समुद्र में फका जाने पर वह चूर्ण एरवा (तुण विलोप) होकर उत्पन्न हुआ। द्विजगण! उस चूणित मुगल के शोमर (रायदांग) के रक्तान् एण्ड को अथवा वग वाले चूर चूर नहीं कर सका। समुद्र में फका जाने पर एक मछला ने उसे खा लिया। मल्लाहा द्वारा मारी गई उस मछला का पेट से मुगल-चूण निकला जिस पर जरा नामक व्याध ने ले लिया। वस्तुस्थिति का जानते हुए मा मघसूदन ने विधि विधान का अन्वया करना नहीं चाहा। देवताओं का भेजा हुआ द्रुत एवान्त मा काव को प्रणाम करने बोला—भगवन्! मैं देवा का भेजा हुआ द्रुत हूँ। प्रभो! वसु अर्बुनाकुमार भस्व आदिय साम्ब आदि देवगण सहित इन्द्र ने आपसे जो निवेदन किया है वह आप सुन ॥९॥ १७॥

देयताओं ने कहा—पृथ्वी का भार उतारने के लिये देवताओं से स्तुत होकर आपने मूलोत्तम अवतार लिया। सो वर्यो से अधिवृत्त हुआ गया। दुष्टचारी दैत्य गण मार गये। पृथ्वी का भार भी आपने उतार दिया। आपने

१९ ० वामस्थ वधा कि। २१ ० लोच्छदो। ३३ ० निः। न्यातित चाद०। ४४ ० पिः। सबसस्त्रिदश हृदि। न०। ५५ ० मावत्। ६०। ६४ विप्रो।

तदतीतं जगन्नाथं घर्षाणामधिकं क्षतम् । इदानीं गम्यता स्वर्गो भवते यदि रोचते ॥२०॥
देवैर्विनाशितो देवोऽप्यथाश्रवं रतिस्तव । तत्स्थीयता यथाकालमाख्येयमनुजीविभिः ॥२१॥

श्रीभगवानुवाच

पत्न्यमात्याखिलं दूतं वेदमि चैतदहं पुनः । प्रारब्ध एव हि मया यादवानामपि क्षयः ॥२२॥
भूवो 'नामातिभारोऽयं यादवैरनिर्बर्हितः' । अवतारं करोम्यस्य सप्तरात्रेण सत्वरः ॥२३॥
यथागृहीतं चाम्भोर्धो हृत्वाऽहं द्वारकां पुनः । यादवानुपसंहृत्य यास्यामि त्रिदशालयम् ॥२४॥
मनुष्यदेहमुत्सृज्य सकपणसहायवान् । प्राप्त एवास्मि भन्तव्यो देवेन्द्रेण तथा सुरैः ॥२५॥
जरासपादयो येऽन्ये निहता भारहेतवः । क्षितेस्तेभ्यः सृभारो हि यद्वना समधोयतः ॥२६॥
तदेतत्सुमहाभारमवतार्यं क्षितेरहम् । यास्याम्यमरलोकस्य पालनाय ब्रवीहि तान् ॥२७॥

व्यास उवाच

इत्युक्तो यासुदेवेन देवदूतः प्रणम्य तम् । द्विजा स दिव्यया गत्या देवरानान्तिकं ययौ ॥२८॥
भगवानप्यथोत्पातान्दिव्यान्भौमान्तरिक्षयान् । ददर्श द्वारकापुष्पां विनाशाय दिवानिदम् ॥२९॥
ताबुद्ध्वा यादवानाह पश्यध्वमतिदारुणान् । महोत्पातान्दशमार्यपा प्रभासं याम माजिरम् ॥३०॥

सायन्नाथ देवता लोग स्वर्ग पधारें । जगन्नाथ । सौ वर्षों से अधिक हो चुका है । अब यदि आपकी इच्छा हो तो स्वर्ग को प्रस्थान करें । देवताओं का निवेदन सुनकर यदि श्रीमान् को अच्छा लगता हो तो अपने अनुचरों समेत यथाकाल यहीं रहें । इतना ही हमें कहना है ॥१८ २१॥

श्रीभगवान् ने कहा—दूत । जो तुमने कहा है वह सब मुझे मालूम है । मैंने याज्ञो का क्षय करना भी आरम्भ कर दिया है । असंख्य यादवों से पृथ्वी का भार बहुत बढ़ गया है । मैं गीम्र ही रात रात के अन्दर इसको हूर कर दूंगा । दारुणा को समुद्र में स्थापित कर यादवों का सहार बनके मैं स्वयं चला आऊंगा । मनुष्य-शरीर का त्याग कर बलराम के साथ मैं इन्द्र तथा देवताओं के पास पहुँचा ही हूँ—यही समझो । भार के कारण जो जरा सच आदि मारे गये हैं उनसे बचकर यदुओं का भार पृथ्वी पर हो गया है । इसलिए इस महामार को पृथ्वी पर से उतार कर मैं अमरलोक का पालन करने के लिए आऊंगा । तुम उनसे कह देना ॥२२ २७॥

व्यास ने कहा—द्विजगण । यासुदेव ने इतना कहते वर देवदूत उन्हें प्रणाम कर दिव्यगति से इन्द्र के पास चला गया । भगवान् भी रातदिन द्वारकापुष्पी में विनाश-मूकन अलौकिक उत्पातों को पृथ्वी तथा आकाश के बीच देखने लगे । उन्हें देखकर भगवान् न याज्ञो से कहा—इन्द्र महामयकर उत्पातों को देखो । इनकी स्थिति करने के लिए हम क्षीम ही प्रमाद (क्षीरस्थान) को जाना है ॥२८ ३०॥

१ स ग नापादि भा० । २ क रतिव० । ३ ग निवाहितः । ४ य रकानुवम् । ५ या० ।
६ ग ० म् कुमारोऽपि य० । ७ य ० दूनामवपी० । ८ ग ० नां नाचपीये । य० ।

व्यास उवाच

महाभागवतः प्राह प्रणिपत्योद्धवो हरिम्

॥३१॥

उद्धव उवाच

‘भगवन्मया कार्यं तदाज्ञापय सांप्रतम्। मन्ये कुलमिदं सर्वं भगवान्संहरिष्यति॥
नाशायस्य निमित्तानि कुलस्याच्युत लक्षये ॥३२॥

श्रीभगवानुवाच

गच्छ त्वं विषया गत्या मत्प्रसादसमुत्थया। बदरीमाश्रमं पुण्यं गन्धमादनपर्वते॥३३॥
नरनारायणस्थाने पवित्रितमहोत्तले। मन्मना मत्प्रसादेन तत्र सिद्धिमवाप्स्यसि॥३४॥
अहं स्वर्गं गमिष्यामि उपसंहृत्य वं कुलम्। द्वारकां च भयात्यक्तां समुद्रः प्लावयिष्यति॥३५॥

व्यास उवाच

इत्युक्तः प्रणिपत्येनं जगाम स तदोद्धवः। नरनारायणस्थानं केशवेनानुमोदितः॥३६॥
ततस्ते यादवाः सर्वे रयनादह्य शीघ्रगान्। प्रभासं प्रपद्युः सार्धं कृष्णरामादिभिर्द्विजाः॥३७॥
प्राप्य प्रभासं प्रपता प्रीतास्ते कुक्कुरान्धकाः। चतुस्तत्र सुरापानं वासुदेवानुमोदिताः॥३८॥
विबता तत्र वं सेवां सघर्षेण परस्परम्। यादवानां ततो जज्ञे कलहाग्निः क्षयावहः॥३९॥
जघ्नुः परस्परं ते तु शस्त्रैर्दंबलालकृताः। क्षीणशस्त्रास्तु जंगुहः प्रत्यासन्नामधैरकाम्॥४०॥

व्यास ने कहा—महामुक्त उद्धव ने प्रणाम करके हरि से रहा ॥३१॥

उद्धव ने कहा—भगवन्! मुझे जो इस समय करना है, वह आप आता है। मैं समझता हूँ कि भगवान् समस्त कुल का संहार करेंगे। अच्युत! कुल के विनाश के कारणों को मैं देख रहा हूँ ॥३२॥

श्रीभगवान् ने कहा—मेरी कृपा से प्राप्त दिव्यगति से तुम गन्धमादन पर्वत पर स्थित पवित्र बदरिमाश्रम में चले जाओ। उस पवित्र भूमि पर नर नारायण के स्थान में मेरी कृपा से भुज्जमे मन लगाने पर सिद्धि प्राप्त करोगे। मैं कुल का नाश करके स्वर्ग चला जाऊँगा। मुझसे परित्यक्त द्वारका को समुद्र बुनो देगा ॥३३-३५॥

व्यास ने कहा—इतना कहने पर उद्धव केशव से आता लेकर उन्हें प्रणाम करके नरनारायण के स्थान पर चले गये। द्विजगण। तदनन्तर समस्त यादवों ने कृष्ण, राम आदि के साथ शीघ्रगामी रथों पर चढ़ कर प्रभास के लिए प्रस्थान किया। वहाँ पहुँचने पर कुक्कुर और अन्धक वंश वाले बड़े प्रघ्न हुए। वासुदेव की आज्ञा पाकर वे लोग मदिरापान करने लगे। पीते ही पीते उन लोगों में परस्पर सघर्ष हो गया। यादवों ने बीच संहारकारी कलहाग्नि उत्पन्न हो गया। दौर्भाग्य से वे एक दूसरे को मारने लगे। घन क्षीण हो जाने पर उन्होंने सभीपर्वतों एवम् (तुल्य विशेष) को ले लिया। एखा वंश के समान दीवता था। उससे वे लोग परस्पर भयंकर प्रहार

एरका तु गृहीता तैर्वज्रभूतेष्व लक्ष्यते। तया परस्परं जघ्नुः संप्रहारे सुदारुणः॥४१॥
 प्रद्युम्नसाम्बप्रमुखाः कृतवर्माश्च सात्यकिः। अनिरुद्धादयश्चाग्रे पृथुविपृथुरेव च॥४२॥
 चाखर्मा सुचारुश्च तयाऽकूरादयो द्विजाः। एरकाहपिभिवज्रंस्ते निजघ्नुः परस्परम्॥४३॥
 निवारयामास हरिर्यादवास्ते च केशवम्। सहस्रं मेनिरे प्राप्तं ते निजघ्नुः परस्परम्॥४४॥
 कृष्णोऽपि कुपितस्तेषामेरकामुष्टिमाददे। वधाय तेषां मुशलं मुष्टिलोहमभूत्तदा॥४५॥
 जघान तेन नि शेषानातततायी स यादवान्। जघ्नुश्च सहसाऽन्येत्य तयाऽन्ये तु परस्परम्॥४६॥
 ततश्चाणवमध्येन जंत्रोऽसौ चक्रिणो रयः। पश्यतो दारुकस्याऽऽशु हृतोऽश्वद्विजसत्तमाः॥४७॥
 चक्रं गदा तथा शार्ङ्गं तूणो शङ्खोऽसिरेव च। प्रदक्षिणं ततः कृत्वा जम्बुरादित्यवर्त्मना॥४८॥
 क्षणमात्रेण वै तत्र यादवानामभूत्क्षयः। ऋते कृष्णं महाबाहुं दारुकं च द्विजोत्तमाः॥४९॥
 चङ्क्रम्यमाणो तो रामं वृक्षमूलकृतसतनम्। ददृशाते मुखाञ्चास्य निष्क्रामतं महोरगम्॥५०॥
 निष्क्रम्य स मुखात्तस्य महाभोगो भुजंगमः। प्रयातश्चाणवं सिद्धैः पूज्यमानस्तयोरगः॥५१॥
 तमर्घ्यमादाय तदा जलधिः संमुखं गयो। प्रविवेश च ततोयं पूजितः पद्मगोतमैः॥
 ॥५२॥

करने लगे ॥३६-४१॥ प्रद्युम्न, साम्ब, कृतवर्मा, सात्यकि, अनिरुद्ध, पृथु, विपृथु, चाखर्मा, सुचारु तथा अकूर आदि एरका कपी वज्रो से एक दूसरे को मारने लगे। कृष्ण उनका निवारण करना चाहते थे। पर उन्होंने कृष्ण को अपना सहायक समझ लिया। वे मार-पीट करने में बड़े ही रहे। तब कृष्ण ने वृषित होकर एक मुट्ठी एरका के लिया। यादवों के विनाश के निमित्त एरका मुशलरूप में परिणत हो गया। उससे कृष्ण ने आततायी बनकर अयोध यादवों का सहार कर दिया। दूसरे भी सहसा आकर परस्पर वध करने लगे। विप्रवर। तब कृष्ण का जयशील रय दारुक (कृष्ण के सारथि) के देखते ही देखते समुद्र के बीच से अस्वों के द्वारा अग्रहत हो गया। चक्र, गदा, धनुष, तरफण, शख तथा शङ्ख कृष्ण की प्रदक्षिणा करके सूर्य-मार्ग से चले गये। द्विजश्रेष्ठो महाशक्तिशाली कृष्ण तथा दारुण को छोड़कर समस्त यादवों का क्षण भर में क्षय हो गया। फुर्ती से चलते हुए कृष्ण तथा दारुक ने देखा कि एक वृक्ष की जड़ में आसन जमाए हुए बलराम के मुख से एक महासर्प निकल रहा है। महती वण। वाला वह सर्प उनके मुख से निकल कर समुद्र की ओर चल पड़ा। सिद्ध तथा सर्प-समूह उसकी पूजा करने लगे। अर्घ्य लेकर समुद्र उसके सम्मुख आया। उत्तम सर्पों से पूजित होकर वह समुद्रजल में प्रविष्ट हो गया। बलराम का महा-प्राण देखकर केशव ने दारुण से कहा ॥४२-५२॥

श्रीभगवानुवाच

इदं सर्वं त्वमाचक्ष्व वसुदेवो प्रसन्नयो । निर्याण वलदेवस्य यादवानां तथा क्षयम् ॥५३॥
 योगं स्थित्वाऽहमप्यतत्परित्यज्य कलवरम् । वाच्यश्च द्वारकावासी जनः सवस्तथाऽऽहुक ॥५४॥
 ययमां नगरीं सर्वां समुद्रं प्लावयिष्यति । तस्माद्रथं सुसज्जस्तु प्रतीक्ष्यो ह्यर्जुनागम ॥५५॥
 न स्थय द्वारकामध्यं निष्क्रान्ते तत्र पाण्डव । तनव सह गतव्यं यत्र याति स कौरव ॥५६॥
 गत्वा च ब्रूहि कौन्तयमजुन वचनमम । पालनीयस्त्वया शक्यता जनोऽयं मत्परिग्रह ॥५७॥
 इत्यजुनतः सहितो द्वारवत्या भवाञ्जनम् । गृहीत्वा धातुं वज्रश्च यदुराजो भविष्यति ॥५८॥

इति श्रीमहापुराण आदिब्राह्म श्रीकृष्णचरित श्रीकृष्णनिजधाममननिरूपण नाम
 दशाधिकद्विशततमोऽध्याय ॥२१०॥

अथैकादशाधिकद्विशततमोऽध्याय

कृष्णमानुषोत्सर्गकथनम्

व्यास उवाच

इत्युक्तो दारुकः कृष्णं प्रणिपत्य पुनः पुनः । प्रदक्षिणं च बहुश कृत्वा प्रायाद्यथोदितम् ॥१॥
 स च गत्वा तथा चक्रे द्वारकायां तथाऽऽजुनम् । आनिनाय महाब्रुहि वज्रं चक्र तथा नृपम् ॥२॥

श्रीभगवान् न कहां—ये सब बातें—वलदेव का प्रयाण तथा यादवों का क्षय—तुम वसुदेव तथा उग्रसेन से निवेदन कर देता। याग में स्थित हुकर मैं मा इत शरार वा त्याग कर दूंगा। तुम समस्त द्वारिकावासीयों तथा आहुक से मा कह देता कि संपूर्ण नगर को समुद्र अग्न्यावृत कर देगा। इसलिये तुम शेष रथों पर चढ़कर रैवार हो जाओ और अजुन के जाने का प्रस्ताव करो। अजुन के प्रयाण करने पर द्वारका में कोई न रहता। उन्हीं के साथ चल देना चाहें जहाँ वह जाय। फिर तुम जाकर अजुन से मेरा वचन कहना—तुम्हें यथाशक्ति मेरी पत्नियों का पालन करना चाहिए। अजुन के साथ वस द्वारका में भवाञ्जन केकर जायगा और वही यदुजो का राजा होगा ॥५३-५८॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में श्रीकृष्ण चरित्र-वर्णन प्रसंग में श्रीकृष्ण के निज धाम-मनन निरूपण नामक दो सौ दसवीं अध्याय समाप्त ॥२१०॥

अध्याय २११

कृष्ण का मनुष्य देह-त्याग

व्यास न कहां—इसके बाद दारुक कृष्ण का बार-बार प्रणाम कर तथा अनेक बार उनकी प्रशंसा कर चला गया। उसने जाकर कृष्ण का वचन सब को सुनाया तथा द्वारका में अजुन को साबर महाबुद्धिमान् वयस को

भगवानपि गोविन्दो वासुदेवात्मकं परम् । ब्रह्मात्मनि समारोप्य 'सर्वभूतेष्वधारयत्' ॥३॥
 स मानयन्निजवचो दुर्वासा यदुवाच ह । योगयुक्तोऽभवत्पादं कृत्वा जानुनि सत्तमाः ॥४॥
 संप्राप्तो वै जरा नाम तदा तत्र स सुव्यक्तः । मुशलशेषलोहस्य' सायकं' धारयन्परम् ॥५॥
 स तत्पादं मृगाकारं समवेक्ष्य' व्यवस्थितः । ततो' विव्याध तेनैव तोमरेण द्विजोत्तमाः ॥६॥
 गतश्च ददृशे तत्र चतुर्बाहुपरं भरम् । प्रणिपत्याऽऽह चैवं प्रसीदति पुनः पुनः ॥७॥
 अजानता कृतमिदं मया हरिणशङ्कुया । क्षम्यतामात्मपापेन दग्धं मा दग्धुमर्हसि ॥८॥

व्यास उवाच

ततस्तं भगवानाह नास्ति ते भयमण्वपि । गच्छ त्वं मत्प्रसादेन लुब्ध' स्वर्गेश्वरास्पदम् ॥९॥

व्यास उवाच

विमानमागतं सद्यस्तद्वाक्यसमनन्तरम् । आहूय प्रययौ स्वर्गं लुब्धकस्तत्प्रसादतः ॥१०॥
 गते तस्मिन्स भगवान्स्तंयोग्याऽऽत्मानमात्मनि । ब्रह्मभूतेऽप्यप्येचिन्त्ये वासुदेवमयेऽमले ॥११॥
 अजन्मन्यजरऽनाशिन्यप्रमेयेऽखिलात्मनि । त्यक्त्वा स मानुषं देहमवाप त्रिविधां गतिम् ॥१२॥
 इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे व्यासपिसंवादे श्रीकृष्णचरिते कृष्णमानुषोत्सर्गकथनं नार्मका-
 दशाधिकद्विंशततमोऽध्यायः ॥२११॥

राजा बनाया । भगवान् गोविन्द ने भी अपने में वासुदेव रूप परब्रह्म को अधिष्ठित करके अखिल प्राणियों का धारण किया । दुर्वासा के वचन को सत्य करने के लिये उन्होंने योग युक्त होकर घुटने के ऊपर पैर को रखा । तब उसी मुशल के शेष लोहे से बने धनुष को धारण किये वह जरा नामक व्यास बहूँ आ पहुँचा । उसने भगवान् के पैर को मृग समझ कर उसी तोमर (सायबाँस) से बंध कर दिया । समीप जाने पर उसने चार भुजा वाले मनुष्य को देखा । उसको बार-बार प्रणाम करते कहा—'कृपा कीजिये । मैंने अजानता से हरिण समझ कर ऐसा किया । क्षमा कीजिये । मैं अपने ही पाप से जल रहा हूँ । मुझे मत जलाइये' ॥१-८॥

व्यास बोले—तब भगवान् ने कहा—'व्यास ! तुम्हें जरा भी भय नहीं है । तुम मेरी कृपा से स्वर्ग चले जाओ ॥९॥

व्यास ने कहा—कृष्ण के वाक्य समाप्त होते ही एक विमान आ गया, जिस पर चढ़कर व्यास उनकी कृपा से स्वर्ग चला गया । उसके जाने के पश्चात् भगवान् ब्रह्मभूत, अव्यय, अचिन्त्य, वासुदेवमय, निर्मल, जन्म-रहित, अजर, अमर, अखिलात्मा तथा अप्रमेय आत्मा में आत्मा को मिला कर मनुष्य देह का त्याग कर त्रिविध गति (देव-गति) को प्राप्त हुए ॥१०-१२॥

श्रीब्रह्मपुराण में व्यास तथा ऋषियों के संवाद में कृष्ण-चरित्र-वर्णन-प्रसंग में कृष्ण के मनुष्य-स्वीर-न्याय निरूपण नामक चौथी स्मारहवाँ अध्याय समाप्त ॥२११॥

१ख ०प्रकार० । २ख ०तु । चकार भगवान्सर्वं दु० । ३क. ०लोहेन सा० । ४ ०लोहेका० । ५क ०प्रमृगमयोमरः । स । ५ख ०इय ह्य० । ६क य तले । ७ख हरिम् । ८ख. ०व्य सर्वामरास्प० । ९क. निदशा । स. निदिव ।

अथ द्वादशाधिकद्विशततमोऽध्यायः

रविमण्यादीना परलोकगमनम्

व्यास उवाच

येऽपि तदाऽन्विष्य कृष्णरामकलेबरे । सत्कार लम्भयामास तयाऽन्येषामनुक्रमात् ॥१॥
महिष्य कथिता रविमणोप्रमुखास्तु या । उपगृह्य हरेर्देहं विविशुस्ता दृताशनम् ॥२॥
। चैव रामस्य देहमाश्लिष्य सतमा । विवेश ज्वलित बर्हि तत्सङ्गाद्द्वादशीतलम् ॥३॥
तस्तु तच्छ्रुत्वा तयंवाऽऽनकदुन्दुभिः । देवकी रोहिणी चैव विविशुर्जातवेदसम् ॥४॥
नूनं प्रेतकार्यं कृत्वा तेषां ययाविधिः । निश्चक्राम जन सर्वं गृहीत्वा धनमेव च ॥५॥
तया विनिष्क्रान्ता कृष्णपत्न्य सहस्रशः । धनं जनं च कौन्तेयः पालयन्शनैर्ययौ ॥६॥
सुधर्मा कृष्णेन मत्पलोके समाहृता । स्वयं जगाम भो विप्रा पारिजातश्च पादप ॥७॥
दिने हरिर्पातो विव सःपश्य मेदिनीम् । तस्मिन्दिनेऽयतीर्णोऽयं कालकायः कलिः किल ॥८॥
यामास तां शून्यां द्वारकां च महोदधिः । यदुधेष्टगृहं त्वेकमाऽप्लावयत सागरः ॥९॥
कामति भो विप्रास्तदद्यापि महोदधिः । नित्यं सनिहितस्तत्र भगवान्केदावोद्यत ॥१०॥
यं महापुण्यं सर्वपातकनाशनम् । विष्णुःक्रीडावित स्यान् दृष्ट्वा पापात्प्रमुच्यते ॥११॥

अध्याय २१२

रविमणी आदि वा परलोक-गमन

व्यास ने कहा—अनुर ने भी कृष्ण तथा राम के गरीर को बूझकर दाह-संस्कार दिया और जगमग हुए
तें को भी जलाया । कृष्ण की रविमणी आदि आठ स्त्रियों को मैं बतला चुका हूँ । वे हरि के गरीर को
अग्नि में प्रविष्ट हो गईं । राजकी । राम के गरीर का आश्लिष्य बरके देवकी ने प्रवृत्ति अग्नि में प्रवेश दिया ।
स्वर्ग-मुख से अग्नि धीविल हो गया । यह सुनकर देवकी, रोहिणी उषेन तथा यमुने ने भी अग्नि में प्रवेश
। तदुपरांत अनुर ने स्वयं आश दिया और वय तथा सप्त द्वारवायवियों को लेकर वहाँ से प्रयाण
। कृष्ण की हजारों पत्नियाँ भी द्वारका छोड़ कर चली गईं । अनुर वय तथा द्वारवायवियों का पालन
हुए पीरे-पीरे प्रस्थान करने लगे । विप्रबृन्द । सुधर्मा नामक देवसभा तथा बल्युग को कृष्ण मत्पलेश में
दे थे । वे दोनों अब स्वर्ग को चले गये ॥१॥ ७॥ जिस दिन हरि पृथ्वी को छोड़कर स्वर्ग चले गये उसी दिन
लक्ष्मण रविमुक्त अवतीर्ण हुआ । शून्य द्वारका को समुद्र ने व्यापित कर दिया । केवल एक यदुधेष्ट के घर
वृद्ध ने नहीं हुआ । द्वारका ! आज भी समुद्र उसका अतिक्रमण नहीं करता, जिसलिए वहाँ भगवान् केसर

पार्यः' पञ्चनदे देशे बहुधान्यधनान्विते। चकार वासं सर्वस्य जनस्य मुनिसत्तमाः॥१२॥
ततो लोभः समभवत्पार्येनैकेन धन्विता। दृष्ट्वा स्त्रियो नीयमाना दस्यूनां निहतेश्वराः॥१३॥
ततस्ते पापकर्माणो लोभोपहतचेतसः। आभीरा मन्त्रयामासुः समेत्यात्यन्तदुर्मदाः॥१४॥

आभीरा ऊचुः

अयमेकोऽर्जुनो धन्वी स्त्रीजनं निहतेश्वरम्। नयत्यस्मानतिक्रम्य धिगेतत्क्रियता बलम्॥१५॥
हृत्वा गर्वतमालुडो भोष्मद्रोणजपद्रयान्। कर्णदिदिच न जानाति बलं ग्रामनिवासिनाम्॥१६॥
वक्राशेषेऽनुरानन्यान्प्राप्स्यादचैव विशेषतः। सर्वनिवासजानाति किं वो बहुभिरुत्तरैः॥१७॥

व्यास उवाच

ततो मष्टिप्रहरणा दस्यवो लोष्टहारिणः। सहस्रशोऽभ्यधावन्त तं जनं निहतेश्वरम्॥
ततो निवृत्तः कौन्तेय' प्राह्राऽऽभीराहसन्निव

॥१८॥

अर्जुन उवाच

निवर्तध्वमधर्मज्ञा मदीतो न मुमूर्षवः

॥१९॥

व्यास उवाच

अवज्ञाय बचस्तस्य जगृहस्ते तदा धनम्। स्त्रीजनं चापि कौन्तेयाद्विध्वसेनपरिग्रहम्॥२०॥
ततोऽर्जुनो धनुर्विद्यं गाण्डीवमजर युधि। आरोपयितुमारभे न शशाक स बौर्यवान्॥२१॥

का नित्यं सन्निध्य रहता है। इस महापवित्र, सर्वपापनाशन तथा विष्णु-कीड़ा से युक्त स्थान के दर्शन से पाप दूर हो जाते हैं। मुनिश्रेष्ठो! धन-धान्य-सम्पन्न पञ्चनद देश में पार्य ने सबको बसा दिया। मृत पति वाली स्त्रियों को ले जाते हुए अनेक धनुषधारी पार्य को देखकर चोरो को लोग हुआ। लोग से मष्ट चित्त वाले पारी अहीर अत्यन्त मदान्ध होकर परस्पर मन्त्रणा करने लगे॥८-१४॥

अहीरों ने कहा—यह अनेक धनुषधारी अर्जुन हम लोगों की अवहेलना कर विषवाओ को ले जा रहा है। ऐसे साहस को धिक्कार है। हम बल प्रयोग करें। इस अभिमानी ने भीष्म, द्रोण, जयद्रथ तथा कर्ण आदि को ठो मारा। पर इसे ग्रामवासियों की शक्ति का परिचय नहीं है। यह बलशाली मनुष्यों का विशेष कर ग्रामीणों का तथा सबका अपमान करता है। इस सबय में बहुत उत्तर-प्रत्युत्तर करने से क्या लाभ॥१५-१७॥

व्यास ने कहा—तदुपरान्त हजारी को सख्या में चोरालय लाठी-ढेले लेकर विषवाजा के पीछे दौड़ने लगे। अब निश्चिन्त कौन्तेय ने हँसकर अहीरो से कहा॥१८॥

अर्जुन ने कहा—पापियों! यदि मरना नहीं चाहते हो तो यहाँ से लौट जाओ॥१९॥

व्यास ने कहा—अर्जुन की अवहेलना कर अहीरों ने धन के अिया और इष्ट्य की चिन्तों का भी अपहरण किया। तब अर्जुन ने दिव्य तथा अजर गाण्डीव धनुष को चढ़ाना चाहा, पर वह बली ऐंठा में भर

चकार सज्जं कृच्छ्रात् तदभूच्छियलं पुनः । न सस्मार तयाऽस्त्राणि चिन्तयन्नपि पाण्डवः ॥२२॥
 शरान्मुमोच चैतेषु पार्थः शीघ्रान्स हृषितः । न भेदं ते परं चकुरस्ता गाण्डीवधन्वना ॥२३॥
 वह्निना चाक्षया दत्ताः शरास्तेऽपि क्षयं ययुः । युध्यतः सह गोपालैर्जुनस्याभवत्क्षयः ॥२४॥
 अचिन्तयत्तु कौन्तेय कृष्णस्यैव हि तद्बलम् । यन्मया शरसंघातैः सबला भूभृतो जिताः ॥२५॥
 म्रियतः पाण्डुपुत्रस्य ततस्ताः प्रमवोत्तमः । अपाकृष्यन्त चाऽऽभीरैः कामाच्चात्याः प्रवव्रजुः ॥२६॥
 ततः शरेषु क्षीणेषु धनुष्कोटधरा धनंजयः । जघान दस्युंस्ते चास्य प्रहारार्जुनसुद्विजाः ॥२७॥
 पश्यतस्त्वेव पार्थस्य वृष्ण्यन्धकवरस्त्रियः । जम्बुरादाय ते म्लेच्छाः सप्तमत्तान्मुनिसत्तमाः ॥२८॥
 ततः स दुःखितो जिष्णुः कष्टं कष्टमिति ब्रुवन् । अहो भगवता तेन मुवतोऽस्मीति हरोदधे ॥२९॥

अर्जुन उवाच

तदनुत्तानि चास्त्राणि स रयस्ते च वाजिनः । सर्वमेकपदे नष्टं दानमधोत्रिये यथा ॥३०॥
 अहो घाति दलं देवं विना तेन महात्मना । यदसामर्ध्यमुवतोऽहं नोचंर्नीतः पराभवम् ॥३१॥
 तौ बहू स घ मे मुष्टिः स्यान् ततोऽस्मि चार्जुनः । पुष्पेनेव विना तेन गतं सर्वमसारताम् ॥३२॥
 ममार्जुनत्वं भीमस्य भीमत्वं तत्कृतं भ्रुवम् । विना तेन यदाभीरंजितोऽहं कथमन्यथा ॥३३॥

सका । कष्ट करने पर धनुष बढ़ा भी लो बह पुन सिमिल हो गया । ध्यान करने पर भी पाण्डव अस्त्रों का स्मरण नहीं कर पाया । हर्ष से पाण्डव ने अपने अवशिष्ट बाणों को चोरो के ऊपर छोड़ा । निम्नु पाण्डवीव धनुष से छूटे हुए वे बाण अहीरो के कुछ नहीं बिगाड़ सके । अग्नि ने अर्जुन को अक्षय बाण दिये थे । वे भी नष्ट हो गये । अहीरो के साथ युद्ध करते हुए अर्जुन का क्षय हो गया । पाण्डव ने सोचा—'मैंने जो बाण-समूहों से बली राजाओं की पीता वह वृष्ण का ही प्रताप था । 'अहीरो ने पाण्डुपुत्र से बलपूर्वक अवलाओं को छीन लिया । कुछ महिलायें स्वेच्छा से भाग गईं । तब बाण क्षीण हो जाने पर धनञ्जय धनुष के अप्रभवा से चोरो को मारने लगे । चोरगण इसके प्रहारा को देखकर हँसने लगे । मुनिषेण्टो ! पार्थ के देखते ही देखते म्लेच्छगण चारों ओर से वृष्णि तथा अन्यत्र पक्ष वालों की स्त्रियों को लेकर भाग गये । तब दुखी अर्जुन 'नष्ट, कष्ट ! अहो ! भगवान् ने मुझे छोड़ दिया' यह बोलते हुए रोते लगे ॥२०-२९॥

अर्जुन ने कहा—वही धनुष, वही रथ, वे ही अस्त्र, वे ही घोड़े—सब एव ही पक्ष में नष्ट हो गये, जैसे अधोत्रिय को दिया हुआ दान (नष्ट हो जाता है) । अहो ! भाग्य प्रबल है । विना उस महात्मा ने मैं असमर्थ होकर नीचों से पराजित हुआ । वे ही मेरी बाँहें हैं, वही मेरी मुट्ठी है, वही स्यान् है, और वही अर्जुन मैं हूँ । निम्नु जैसे विना पुष्प के त्रिमार्गे निष्फल होती है उसी तरह वृष्ण के बिना मेरा सब कुछ निष्फल हो गया । मेरा अर्जुनत्व तथा भीम का भीमत्व निश्चय ही वृष्ण का दिया हुआ था । अन्यथा जनैः विना क्यों मैं अहीरो से पराजित हुआ ? ॥३०-३३॥

१क ०भीरंस्ते शराः प्रययुः क्षयम् । त० । २क ०मस्ता मुनि० । इत. ह । ४क. प्रष्ट । ५क. ग. ०क्षेत्रिबलवद्देव । ६क. ग. ०युवतेऽपि नीचवर्गं अप्रदम् । ७क. ०मिः सोऽस्मि चाहं तथाऽर्जुन० ।

७ व्यास उवाच ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

इत्थं घटन्यो जिष्णुरिन्द्रप्रस्थं पुरोत्तमम् । चकार तत्र राजानं धर्मं यावदवन्दनम् ॥३४॥
 स ददर्श ततो व्यासं फाल्गुनः कान्तनाश्रयम् । तमुपेत्य महाभागं विनयेनाभ्यवादयत् ॥३५॥
 तं वन्दमानं चरणपावलोक्ष्य सुनिश्चितम् । उवाच पार्यं विच्छाद्यः कथमत्यन्तमीदृशः ॥३६॥
 अजारजोऽनुगमनं ब्रह्महत्याऽथवा कृता । जयाशामभङ्गदुःखी वा भ्रष्टच्छायोऽसि साप्रतम् ॥३७॥
 सान्त्वानिकादयो वा ते याचमाना निराकृताः । अगम्यस्त्रीरतिर्वाऽपि तेनासि विगतप्रभः ॥३८॥
 भुङ्क्ते प्रदाय विप्रेभ्यो मिष्टमेकमयो भवान् । किं वा कृषणवित्तानि हृतानि भवताऽर्जुन ॥३९॥
 कच्चिन्नं सूर्यवातस्य गोचरत्वं गतोऽर्जुन । दुष्टचसुर्हृतो वाऽपि निश्चोकः कथमन्यथा ॥४०॥
 स्पृष्टो नलान्भसा वाऽपि घटान्भ प्रोक्षितोऽपि वा । तेनातीवासि विच्छाद्यो न्यूनं वा युधि निजितः ॥४१॥

व्यास उवाच

सतः पार्यं विनिश्चयस्य श्रूयता भगवन्निति । प्रोक्षतो मया वदाच्छ्वेत विप्राः आत्मपराभवम् ॥४२॥

अर्जुन उवाच

यद्बलं यच्च नस्तेजो यदीयं पत्पराक्रमः । या भीदछाया च नः सोऽस्मान्परित्यज्य हरिर्गतः ॥४३॥

व्यास ने कहा—इस प्रकार कहता हुआ अर्जुन इन्द्रप्रस्थ नामक उत्तम नगर में पहुँचा । वहाँ उसने यादव-
 पुत्र कथ्य को राजा बनाया । तदनन्तर अर्जुन वन में व्यास से मिला । उसने विनयपूर्वक महाभागा व्यास का अभि-
 वादन किया । चरणपद्मता करते हुए पार्यं को देववर व्यास ने पूछा—एसे अत्यन्त शान्तिहीन क्यों हो गये हो ? क्या
 तुमने अजारज (मर्ग में बकरे-बकरियों के बलों से जो घृण उड़ती है वह 'अजारज' है । उसने पड़ने से
 पाप लगता है) का अनुगमन किया है ? अथवा ब्रह्महत्या की है ? या तुम विजय की आशा के मग्न हो जाने से
 दुःखी हो ? या इस समय तुम निराश्रय हो गये हो ? या तुम्हारे पुत्र आदि याचना करते हुए निराल दिये
 गये हैं या तुम अगम्या स्त्री में अनुरक्त हो गये हो जिससे सुहृद्गारी शान्ति नष्ट हो गई है ? क्या तुमने ब्राह्मणों
 को मिष्टान्न देकर स्वयं खा लिया है ? अर्जुन । क्या तुमने कृषणा वा वित्त हरण किया है ? वही तुम भूय-वायु
 के घामने तो मही पड़ गये ? दूषित दुष्टि तो मही लग गई है ? अथवा तुम (इतना) हतधीर क्या होते ?
 तुम्हें नष्ट डाले गये जल का स्पर्श हो गया है या (ऐसे) घड़े के जन से तुमने स्नान कर लिया है । या नीचा से तुम
 युद्ध में हार गये हो । इसलिए तुम अत्यन्त शान्तिहीन मालूम पड़ते हो ॥३४-४१॥

व्यास ने कहा—विप्रवन्द । आह भरवर पार्यं ने कहा—'भववन् ! सुनिये !' तब उसने अपने पराजय
 का सब समाचार सुनाया ॥४२॥

अर्जुन ने कहा—हमारे जो बल, तेज, धक्ति, पराक्रम, यन तथा ऐश्वर्य ये, वे हरि हम छोड़ कर गते

१ ग ० भागो वि० । २ ग तं दुष्ट्वा वै मुनिप्रेष्टा पुष्टयान्भुवन्तम् । अहो विनायं वि० । ३ घ ० ग ।
 पुनरप्योत्र० । ग ० ग । इह राजानु० । ४ क घ ० यो नीचैर्वा । ५ क घ ० प्रापाऽन्यम् ।

इतरेणेव महता स्मितपूर्वाभिभाषिणा । हीना वय मुने तेन जातास्तृणमया इव ॥४४॥
 अस्त्राणां सायकानां च गाण्डीवस्य तथा मम । सारता याऽभवन्मूर्ता स गत पुरयोत्तम ॥४५॥
 यस्यावलोकनादस्माञ्श्रीर्जय सपदुन्नति । न तत्पाज स गोविन्दस्त्यक्त्वाऽस्मान्भगवान्गत ॥४६॥
 भीष्मद्रोणाङ्गाराजाद्यास्तथा दुर्योधनादयः । यत्प्रभावेण निर्दग्धा स कृष्णस्त्यक्तवान्भुवम् ॥४७॥
 तिर्यो'वना हतश्रीका गृष्टच्छायेव मे महो । विभाति तात नैकोऽह विरहे तस्य चम्रिण ॥४८॥
 यस्यानुभावाद्भोष्माद्यैर्मय्यग्नौ शलभापितम् । विना तेनाद्य कृष्णेन गोपालैरस्मि निजित ॥४९॥
 गाण्डीव त्रिषु लोकेषु ख्यात यदनुभावत । मम तेन विनाऽऽभीरैलंगुडैस्तु तिरस्कृतम् ॥५०॥
 स्त्रीसहस्राण्यनेकानि हृषनायानि महामुने । यततो मम नीतानि दस्युभिलंगुडायुधैः ॥५१॥
 आनीयमानमाभीरं सर्वं कृष्णावरोधनम् । हृत यष्टिप्रहरणं परिभूय बल मम ॥५२॥
 नि श्रोकता न मे चित्र यज्जीवामि तदद्भुतम् । नीचावमानपङ्काङ्को निलज्जोऽस्मि पितामह ॥५३॥

व्यास उवाच

श्रुत्वाऽह तस्य सद्वाक्यमग्रव द्विजसत्तमा । दुःखितस्य च दीनस्य पाण्डवस्य महात्मन ॥५४॥
 अल ते व्रीडया'पार्यं न त्व शोचितुमर्हसि । अवेहि' सर्वभूतेषु कालस्य गतिरीदृशी ॥५५॥

गये । मुने । मुसकराकर बोलेने वाले उस महान् महारमा ने इतर व्यक्ति की तरह हमे छोड़ दिया । उससे हम तृण के बराबर हो गये । मेरे अस्त्रों बाणों तथा गाण्डीव धनुष का जो मूत रूप तत्त्व था वे पुरपोतम चले गये । जिनके धन स लक्ष्मी विजय संपत्ति तथा उन्नति हम नहीं छूटते हैं वे भगवान् गोविन्द हम त्याग कर चले गये । जिनके प्रभाव से भीष्म द्रोण अंगराज आदि तथा दुर्योध आदि दम्ब हुए उन कृष्ण ने पृथ्वी का परित्याग कर दिया । तात । मुझे पृथ्वी योक्ताहीन श्रीहीन तथा छायाहीन दीखती है । अकेला मैं ही कृष्ण के विरह में बही घुलता । जिनके प्रताप से भीष्म आदि मुझ रूपी अग्नि में पनयो की तरह विर पड़े थे, उन कृष्ण के बिना आज मैं स्वागे से हार गया । जिनके सामर्थ्य से मेरा गाण्डाव धनुष कीनी लोच' में प्रख्यात हुआ उन कृष्ण के बिना बही धनुष ग्वालों की लाठियों से तिरस्कृत हुआ । महामुने । मेरे बल करने पर भी हजारों अनाय स्थियाँ लटक-घर चोरा द्वारा अपहृत कर ली गई । 'गठी चलाने वाले अहीरा ने मेरे बल को पराजित कर कृष्ण की सारी दलिया को हर लिया । मुझ अपनी श्रीविहीनता से उन आश्चर्य नहीं होता है जितना कि 'मैं जो रहा हूँ इतने आश्चर्य होता है । पितामह । मैं नीचा के अपमान रूपी कचड में पड़ा हूँ, मैं निलज्ज हूँ ॥४३-५३॥

व्यास ने कहा—द्विजवर । मैं दुखी दीन महारमा पाण्डव की बात सुनकर बहने लगा—'पार्यं' गुम व्यर्थ, निजित हो रहे हो । तुम्हें सोच नहीं करना चाहिये । समझा प्राणिमात्र में बाल की गति ऐसी हो होती है ।

कालो भवाय भूतानामभवाय च पाण्डव । कालमूलमिदं ज्ञात्वा पुनः स्थैर्यमतोऽर्जुन ॥५६॥
 नद्यः समुद्रा गिरयः सकला च वसुंधरा । देवा मनुष्याः पशवस्तरवश्च सरोसूयाः ॥५७॥
 सुष्टाः कालेन कालेन पुनर्यस्यन्ति संक्षयम् । कालात्मकमिदं सर्वं ज्ञात्वा शममवाप्नुहि ॥५८॥
 ययाऽऽस्य कृष्णमाहात्म्यं तत्तथैव धनंजय । भारवतारकार्यार्थमवतीर्णः स मेदिनीम् ॥५९॥
 भाराकान्ता घरा याता देवानां संतिथौ पुरा । तदर्थमवतीर्णोऽसौ कामरूपो जनादनः ॥६०॥
 तच्च निष्पादितं कार्यमशेषा भूभूतो हताः । वृष्ण्यन्वककुलं सर्वं तथा पार्योपसंहृतम् ॥६१॥
 न किञ्चिदन्यत्कर्तव्यमस्य भूमितलेऽर्जुन । ततो गतः स भगवान्कृतकृत्यो यथेच्छया ॥६२॥
 सृष्टिं सर्गं करोत्येष देवदेवः स्थितिं स्थितौ । अन्ते ताप(लयं)समर्थोऽयं सांप्रतं वै यया कृतम् ॥६३॥
 तस्मात्पापं न संतापस्त्वया कार्यः पराभवात् । भवन्ति भवकालेषु पुण्याणां पराक्रमाः ॥६४॥
 यतस्त्वयंकेन हता भीष्मद्रोणादयो नृपाः । तेषामर्जुन कालोत्थः किं न्यूनाभिभवो न सः ॥६५॥
 विष्णोस्तत्स्थानुभावेन यया तेषां पराभवः । त्वत्तत्तथैव भवतो दस्युभ्योऽन्ते तदुद्भवः ॥६६॥
 स देवोऽन्यशरीराणि समाविश्य जगत्स्थितिम् । करोति सर्वभूतानां नाशं चान्ते जगत्पतिः ॥६७॥
 भयोद्भवे च कौन्तेय सहायस्ते जनादनः । भवान्ते त्वद्विपश्चात्ते केशवेनावलोकिताः ॥६८॥
 क. भद्भ्यात्सगाङ्गेयान्हन्यास्त्व सर्वकौरवान् । आभीरेभ्यश्च भवतः कः अद्भ्यात्पराभवम् ॥६९॥

पाण्डव । काल ही प्राणियो की उत्पत्ति तथा विनाश करता है । ससार वी बालमूलक जानकर स्वस्थ होओ ।
 काल ने ही नदी, समुद्र, पर्वत, सपूर्ण पृथ्वी, देव मनुष्य, पशु, वृक्ष तथा सर्प की सृष्टि की और ये सब पुन काल ही मे
 विलीन हो जायेंगे । सपूर्ण जगत् की कालरूप जानकर पान्ति धारण करो ॥५४-५८॥ धनजय । जैसे तुमने कृष्ण
 का माहात्म्य-वर्णन किया है, वैसे ही वे भार उतारने के लिए पृथ्वी पर अवतीर्ण हुए थे । पूर्वकाल मे भार से आश्रान्त
 होकर पृथ्वी देवताओं के पास गई थी । इसी निमित्त कामरूपी जनादन ने अवतार लिया । उन्होंने कार्य सम्पन्न
 किया, अशेष राजाओं को मारा और वृष्णि-अन्यत्र कुल का संहार किया ॥५९-६१॥ अर्जुन । मूल पर उनका कोई
 वर्णन नहीं शेष नहीं रहा । भगवान् कृतकृत्य होकर स्वेच्छा से चले गये । देवों के देव समर्थ भगवान् सृष्टिकाल
 मे सृष्टि, स्थिति-काल मे स्थिति तथा प्रलयकाल मे प्रलय करते हैं, जैसे इस समय उन्होंने किया है । पार्य । इसलिए
 तुम्हें पराभव से संताप नहीं करना चाहिये । ससार मे रहने के समय पुण्यो मे पराक्रम होते हैं, जिसलिए तुमने
 अनेक ही भीष्म, द्रोण आदि राजाओं को निहत्त किया । क्या यह उनका कालजन्म पराभव कम हुआ ? ॥६२-६५॥
 उसी विष्णु के प्रताप से जैसे तुमने उनका पराजय हुआ उसी तरह अन्त मे चोरा से तुम्हारा भी हुआ । वह जग-
 त्पति अन्य शरीरों मे प्रवेश कर ससार की स्थिति करते हैं और अन्त मे समस्त प्राणियों का नाश कर देते हैं । कुन्ती-
 पुत्र । तुम्हारे उद्भव-काल मे जनादन सहाय थे और अन्तकाल मे केशव ने तुम्हारे दात्रुओं को देखा था । कौन
 विश्वास करता कि तुम भीष्म सहित अशेष कौरवों-भारोपे और अहीरो से तुम्हारा पराजय होगा ? पार्य ।

पार्थतत्सर्वभूतेषु हरेर्लोलाविचेष्टितम् । त्वया यत्कौरवा ध्वस्ता यदाभीरर्भवाञ्जितः ॥७०॥
 गृहीता दस्युभिर्यच्च रक्षिता भवता स्त्रियः । तदप्यहं यथावृत्तं कथयामि तवाजुन ॥७१॥
 अष्टावक्रः पुरा विप्र उदवासरतोऽभवत् । बहून्वर्षेणान्पार्यं गृणन्ब्रह्म सनातनम् ॥७२॥
 जितेष्वसुरसंघेषु मेरुपृष्ठे महोत्सवः । बभूव तत्र गच्छन्त्यो ददृशुस्तं सुरस्त्रियः ॥७३॥
 रम्भा तिलोत्तमाद्याश्च शतशोऽप्य सहस्रशः । तुष्टुवुस्तं महात्मानं प्रशशंसुश्च पाण्डव ॥७४॥
 आकण्ठमनः सलिले जटाभारधरं मुनिम् । विनयावनताश्चैव प्रणमुः स्तोत्रतत्पराः ॥७५॥
 यया यया प्रसन्नोऽभूत्तुष्टुवुस्तं तथा तथा । सर्वास्ताः कौरवश्रेष्ठ वरिष्ठं तं द्विजन्मनाम् ॥७६॥

अष्टावक्र उवाच

प्रसन्नोऽहं महाभागा भवतीनां यदिष्यते । मत्तस्तद्विषयां सर्वं प्रदास्याम्यपि दुर्लभम् ॥७७॥

व्यास उवाच

रम्भा तिलोत्तमाद्याश्च दिव्याश्चाप्सरसोऽभूवन् ॥७८॥

अप्सरस ऊचुः

प्रसन्ने त्वमर्पसंप्राप्तं किमस्माकमिति द्विजाः ॥७९॥

इतरास्तन्नुवन्विप्र प्रसन्नो भगवन्पदि । तदिच्छाम पतिं प्राप्नुं विप्रेन्द्र पुण्योत्तमम् ॥८०॥

प्राणि-भात्र मे यह सब तो हरि की लीला है । अर्जुन ! तुमने जो कौरवों को मारा, अर्हुरों ने जो तुम्हें जीता और तुमसे रक्षित स्त्रियों का जो जोरो ने हरण किया, वह सब वृत्तान्त मैं तुम्हें सुनाता हूँ ॥६६-७१॥ पार्थ ! प्राचीन-काल में विप्र अष्टावक्र सनातन ब्रह्म की स्तुति करते हुए बहुत वर्षों तक जलवास में निरत रहे । असुरसमूह के पराजय होने के उपलक्ष्य में तुमेष्वर्षत पर महान् उत्सव हो रहा था । उसी में सम्मिलित होने के लिये जाती हुई सैकड़ों हजारों देवानामार्थे तप्य रम्भा, तिलोत्तमा आदि अप्सरायें महात्मा अष्टावक्र को देखकर उनकी स्तुति तथा प्रशंसा करने लगी । पाण्डव ! स्तुति करने में तत्पर बनियार्यों जल में कण्ठ तक तिमन तथा जटामारवारी मुनि को विनय से झुक कर प्रणाम करने लगी । कौरवश्रेष्ठ ! जैसे जैसे मुनि प्रसन्न होते जाते थे वैसे-वैसे दिव्यां उनकी स्तुति करती जाती थीं ॥७२-७६॥

अष्टावक्र ने कहा—महाभागा ! मैं प्रसन्न हूँ । तुम लोगों को जो इच्छा हो, वह सब मुझसे वर माग लो, मैं दुर्लभ वस्तु भी दूँगा ॥७७॥

व्यास ने कहा—रम्भा, तिलोत्तमा आदि दिव्य अप्सरायें बोली ॥७८॥

अप्सरार्यों ने कहा—आपके प्रसन्न होने पर हम क्या मही जिला । द्विजपथ ! इतर स्त्रियों ने कहा—विप्रेन्द्र ! भगवन् ! यदि आप प्रसन्न हैं तो यह वर दीजिये कि पुण्योत्तम हमारे पति हों, ॥७९-८०॥

१ ख प्रसन्नमुवाद्भवन् । आ० । २ क ० कर्म० । ३ कं स ० टाचीर० । ४ क. प. ० ५ व वैदिस्यो-
 ज्य० । ६ ख. ग. द्विज ।

व्यास उवाच

एवं भविष्यतीत्युक्त्वा उत्ततार जलान्मुनिः । तमुत्तीर्णं च ददुर्गुर्विह्वं वनमष्टधा ॥८१॥
तं दृष्ट्वा गूहमानानां यासां हासः स्फुटोऽभवत् । ताः शशाप मुनिः कोपमवाप्य कुरुनन्दनः ॥८२॥

अष्टावक्र उवाच

यस्माद्विह्वरूपं मां भत्वा हासावमानना । भवतीभिः कृता तस्मादेव शापं ददामि यः ॥८३॥
मन्त्रसादेन भर्तारं लब्ध्वा तु पुण्योत्तमम् । मच्छापोपहताः सर्वा दस्युहस्तं गमिष्यन् ॥८४॥

व्यास उवाच

इत्युदीरितमाकण्यं मुनिस्ताभिः प्रसादितः । पुनः सुरेन्द्रलोकं च प्राह भूयो गमिष्यन् ॥८५॥
एवं तस्य मुनेः शापादष्टावक्रस्य कोदायम् । भर्तारं प्राप्य ताः प्राप्ता दस्युहस्तं पराङ्मनाः ॥८६॥
तदृश्या नात्र कर्तव्यः शोकोऽप्येवमपि हि पाण्डव । तेनैवाखिलनायेन सर्वं तदुपसंहृतम् ॥८७॥
भवतां चोपसंहारमासनं तेन कुर्वता । बलं तेजस्तया वीर्यं माहात्म्यं चोपसंहृतम् ॥८८॥
जातस्य नियतो मृत्युः पतनं च तयोन्नतेः । विप्रयोगायसानं तु संयोगः संचयः श (याश्च) यः ॥८९॥
विज्ञाय न युषाः शोकं न हर्षमुपयान्ति ये । तेषामेवेतरे चेष्टां शिक्षन्तः सन्ति साधुराः ॥९०॥
तस्मात्तदृश्या नरभेष्टे शार्व्यतद्भातुभिः सह । परित्यज्यासिलं राज्यं गन्तव्यं तपसे वनम् ॥९१॥
तद्गच्छ धर्मराजाय नियेयंतद्ब्रह्मो मम । परश्वो भ्यातुभिः सार्यं गतिं धीर यथा कुह ॥९२॥

व्यास ने कहा—'ऐसा हूँगा' यह कह कर मुनि जल से बाहर निरले । स्त्रियों ने देखा कि मुनि कुरूप तथा बाढ स्थलों में बरक हैं । उन्हें देखकर जिन स्त्रियों का हास्य छिगने पर भी स्फुट हो गया, उनकी मुनि ने श्राप से शाप दे दिया ॥८१-८२॥

अष्टावक्र ने कहा—जिसलिये मुझे कुरूप गणतार मेरा अपमान करती हुईं तुम हूँगी इसलिए मैं तुम्हें शाप देता हूँ—मेरी कृता से पुरस्कोतम का पतिरूप में प्राप्त करते तुम सब मेरे शाप से चोरों के हाथ में पड़ोगी ॥८३-८४॥

व्यास ने कहा—इतना बलवान् गुनवार स्त्रियों ने मुनि को प्रवन्न किया । पुनः मुनि ने कहा—'तुम लोग फिर देवलोह जाओगी ।' इस प्रकार अष्टावक्र मुनि के शाप से वे स्त्रियाँ बेचन को स्वामी के रूप में श्राप कर चोरों के हाथों में पड़ीं । पाण्डव । इसलिए तुम्हें अत्र भी चोरा नहीं करना चाहिये । उन्नी जगन्नाथ ने तबरा उन-सहार किया है । तुम्हारा भी सहार निरव्यती है । जब तुम्हारे बल, तेज, वीर्य तथा माहात्म्य को उन्होंने समेट लिया है । उनप्र प्राणी का मरण, पतन, उन्नति, विजय, मयापि, संयोग, सबय तथा शर निरिवा है—यह जानकर जो विद्वान् दृष्ट-योग नहीं करते हैं, उन्हीं का चेष्टाओं से इतर व्यक्ति शिवा प्रहा, करते हैं । नरभेष्ट ! इसलिए यह जानकर तुम अतिराम राज्य का परित्याग कर आश्यों के शाप तस्का करने के लिए वन में चले जाओ । मन्त्रः धर्मराज से बाहर मेरा बलन यह देना और परलों आश्यों के शाप प्रसाद कर देना ॥८५-९२॥

व्यास उवाच

इत्युक्तो धर्मराजं तुं समम्येत्य तयोक्तवान् । दृष्टं चैवानुभूतं वा कथितं तदशेषतः ॥१३॥
 व्यासवाक्यं च ते सर्वे श्रुत्वाऽर्जुनसमीरितम् । राज्ये परीक्षितं कृत्वा ययुः पाण्डुसुता वनम् ॥१४॥
 इत्येवं वो मुनिश्रेष्ठा विस्तरेण मयोदितम् । जातस्य च यदोर्वशे वासुदेवस्य चेष्टितम् ॥१५॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे श्रीकृष्णचरितसमाप्तिकथनं नाम
 द्वादशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२१२॥

अथ त्रयोदशाधिकद्विशततमोऽध्यायः

वराहावतारवर्णनम्

मुनय ऊचुः

अहो कृष्णस्य माहात्म्यमद्भुतं घातिमानुषम् । रामस्य च मुनिश्रेष्ठ त्वयोक्तं भुवि दुर्लभम् ॥१॥
 न क्षुप्तिमभिगच्छामः शृण्वन्तो भगवत्कथाम् । तस्माद्ब्रूहि महाभाग भूयो देवस्य चेष्टितम् ॥२॥
 प्रादुर्भावः पुराणेषु विष्णोरमिततेजसः । सतां कथयतामेव वराह इति नः श्रुतम् ॥३॥

व्यास ने कहा—तदुपरान्त अर्जुन ने मुनिष्ठिर के पास जाकर दृष्ट, अनुभूत, कथित—सारी बातें कह सुनायी । अर्जुन द्वारा कथित व्यास-वाक्य को सुनकर वे सब पाण्डु-युव राज्य में परीक्षित को नियुक्त करके वन में चले गये । मुनिश्रेष्ठो ! इस प्रकार मैंने यदुवश में उत्पन्न वासुदेव की लीला का वर्णन कर दिया ॥१३-१५॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में श्रीकृष्णचरित-समाप्तिकथन नामक दो ओ
 वराहर्चा अध्याय समाप्त ॥२१२॥

अध्याय २१३

वाराह-अवतार का वर्णन

मुनियों ने कहा—मुनिश्रेष्ठ ! अहो ! आपने कृष्ण-राम का अद्भुत, अलौकिक तथा पृथ्वी पर दुर्लभ माहात्म्य सुनाया । पर भगवान् की कथा को सुनते-सुनते क्षुप्ति नहीं होती । महामाग ! इसलिये फिर भगवान् की लीला सुनाये । सत्पुरुषों ने मुंह से हमने सुना है कि पुराणों में अमिट तेजस्वी विष्णु का वराह अवतार माना गया

न जानामीत्य चरितं न विधिं च च विस्तरम् । न कर्मगुणसद्भावं न हेतुत्वमनीपितम् ॥४॥
किमात्मको वराहोऽसौ का मूर्तिः का च देवता । किमाचारप्रभाषो वा किंवा तेन तदा कृतम् ॥५॥
यज्ञायै समवेतानां मिषतां च द्विजन्मनाम् । महावराहचरितं सर्वलोकसुखावहम् ॥६॥
यया नारायणो ब्रह्मन्वाराहं रूपमास्थितः । दंष्ट्रया गां समुद्रस्यामुज्जहारारिमर्दनः ॥७॥
विस्तरेणैव कर्माणि सर्वाणि रिपुपातितः । श्योतुं नो यतंते बुद्धिहरेः कृष्णस्य धीमतः ॥८॥
कर्मणामानुपूर्व्या च प्रादुर्भावाश्च ये विभोः । या वाऽस्य प्रकृतिर्विहंस्ताश्चाऽऽख्यातुं त्वमर्हसि ॥९॥

व्यास उवाच

प्रश्नभारो महानेष भवद्भिः समुदाहृतः । यथाशक्त्या तु वक्ष्यामि श्रूयतां वेष्णवं यथा ॥१०॥
विष्णोः प्रभावश्चरणे दिष्ट्या धो मतिरत्यिता । तस्माद्विष्णोः समस्ता वै शृणुध्वं याः प्रवृत्तयः ॥११॥
सहस्राक्षं सहस्राक्षं सहस्रचरणं च यम् । सहस्रशिरसं देवं सहस्रकरमव्ययम् ॥१२॥
सहस्रजिह्वं भास्वन्तं सहस्रमुकुटं प्रभुम् । सहस्रवं सहस्रादिं सहस्रभुजमव्ययम् ॥१३॥
हयनं सयनं चैव होतारं हव्यमेव च । पात्राणि च पवित्राणि वेदिं दीक्षां समित्स्त्रुवम् ॥१४॥
क्षुत्सोमसूर्यमुत्तलं प्रोक्षणीं दक्षिणायनम् । अध्वर्युं सामगं विप्रं सदस्यं सदनं सदः ॥१५॥
यूपं चक्रं ध्रुवां दर्वीं चण्डचोखलालानि च । प्रावन्तं यज्ञभूमिं च होतारं च परं च यत् ॥१६॥

है। परन्तु हम लोग न उसका चरित्र, न विस्तृत विधान, न कर्म-गुण और न अन्वेषण-रहित कारण ही जानते हैं। वराह का क्या स्वरूप है? कौसी मूर्ति है? कौनसा देवता है? क्या आचार तथा प्रभाव है? जिस समय यज्ञ करने के लिए द्विजातिगण एकत्रित हुए थे, उस समय उसने क्या किया? महावराह का चरित्र सब लोगों को सुख देने वाला है। कैसे शत्रुमर्दन नारायण ने वराह का रूप धारण कर दैतों से समुद्र-स्थित पृथ्वी का उद्धार किया? रिपुनाशन धीमान् कृष्ण के सारे कर्मों को विस्तार से हम सुनना चाहते हैं। ब्रह्मन्! हरि के कर्म, प्रादुर्भाव तथा प्रवृत्ति के बारे में हम क्रमशः वतलाइये ॥१-९॥

व्यास ने कहा—यह तो आपने महान् प्रश्न कर दिया। मैं यथाशक्ति बूझूँगा। विष्णु के यथा को सुनिये। माय से विष्णु के प्रताप सुनने की इच्छा आपको हुई है। इसलिए विष्णु की समस्त प्रवृत्तियाँ को सुन लीजिये। ॥१-१०-१॥ जो सहस्र मुख वाले, सहस्र चरण वाले, सहस्र नेत्र वाले, सहस्र शिर वाले, सहस्र हाथ वाले अव्यय, सहस्र जिह्वा वाले, प्रशशमान, सहस्र मुकुट वाले, समर्थ, सहस्रो देने वाले, सहस्रो के आदि, सहस्र भुजा वाले, हवन, सोमपान, होवा, देशप, पात्र, पवित्री, वेदि, दीक्षा, समिधा, सुब, चन्द्रमा, सूर्य, पृथ्वी, प्रोक्षणीपात्र, दक्षिणायन, अध्वर्यु, साम गाने वाले विप्र, सदस्य, सदन, सभा, यूप, चक्र, धुरी, चक्र, ओम्बली, प्रावन्त (यज्ञशाला में हविर्गृह के) पूरक वा घर जिसमें यज्ञमान आदि रहते हैं), यज्ञभूमि, सरसे परे, हव्य, अतिदीर्घ, स्थावर, जगम, प्रायश्चित्त, अर्घ, स्वयंभू, (समत्तल प्रदेश), भुज, मन्त्र तथा यज्ञवाह्य अग्नि, प्राग, प्रागवाह्य, आगे बैठने वाले, सोमप्रोक्ता, अग्नि में हवन करने वाले

हृस्वाण्यतिप्रमाणानि स्यावराणि चराणि च । प्रायश्चित्तानि वाऽर्घ्यं च स्थण्डिलानि कुशास्तथा ॥१७॥
 'मन्त्रयज्ञवहं वीह्नि' भागं भागवहं च यत् । 'अप्राप्तितं' सोमभुजं हृताचिषमुदायुधम् ॥१८॥
 आहुर्वेदविदो विप्रा यं यज्ञे शाश्वतं प्रभुम् । तस्य विष्णोः सुरेशस्य श्रीवत्साङ्गस्य धीमतः ॥१९॥
 प्रादुर्भासहस्त्राणि समतीतान्यनेकशः । भूयश्चैव भविष्यन्ति हृद्येवमाह पितामहः ॥२०॥
 यत्पृच्छध्वं महाभागा दिव्यां पुण्यामिमं कथाम् । प्रादुर्भावाभितां विष्णोः सर्वपापहरां शिवाम् ॥२१॥
 शुगुध्वं तां महाभागस्तद्गतेनान्तरात्मना । प्रवक्ष्याम्यानुपूज्येण यत्पृच्छध्वं ममानघाः ॥२२॥
 वासुदेवस्य माहात्म्यं चरितं च महामतेः । हितार्थं सुरमर्थानां लोकानां प्रभवाय च ॥२३॥
 बहुशः सर्वभूतात्मा प्रादुर्भवति धीर्यवान् । प्रादुर्भावांश्च वक्ष्यामि पुण्यान्दिव्यान्गुणान्वितान् ॥२४॥
 सुप्तो युगसहस्रं यः प्रादुर्भवति कार्पतः । पूर्णं युगसहस्रेऽथ देवदेवो जगत्पतिः ॥२५॥
 ब्रह्मा च कपिलश्चैव त्र्यम्बकस्त्रिदशस्तथा । देवाः सप्तपंथश्चैव नागाश्चाप्सरसस्तथा ॥२६॥
 सनत्कुमारश्च महानुभावो, मनुर्महात्मा 'भगवान्प्रजाकरः' ।
 पुराणदेवोऽप्य पुराणि चक्रे प्रदीप्तवैश्वानरतुल्यतेजाः ॥२७॥
 योजितौ चार्णवमध्यस्थो नष्टे स्यावरजङ्गमे । नष्टे देवासुरनरे प्रनष्टोरगराक्षसे ॥२८॥
 योद्धुकामो वुराधयो तावुभौ सपुर्कन्दभौ । हृत्तौ 'भगवता' तेन तपोर्वैस्वाऽमितं वरम् ॥२९॥
 पुरा कमलनाभस्य स्वपतः सागराम्भसि । पुष्करे सत्रं संभूता देवाः सपिणशास्तथा ॥३०॥

धारण तथा अस्त्र बरने वाले हैं और जिनको वेदवेत्ता ब्राह्मण यज्ञ में 'नित्य' कह कर पुकारते हैं, उन देवता, श्रीवत्सविक्रम से युक्त, धीमान् विष्णु के हजारों अवतार हो चुके हैं और फिर होये—ऐसा ब्रह्मा जी ने कहा है ॥१२-२०॥ महामाग । जो आप विष्णु की सन्तानपतिनी, बत्पापपी, दिव्य, पवित्र तथा अवतार से सम्बन्ध रखने वाली कथा पूछते हैं, वह कृष्ण में मन लगाकर सुनिये । निष्पाप । देव-मनुष्यों के हित के लिए तथा लोगों की उत्पत्ति के लिए मैं महाबुद्धिमान् वासुदेव वा माहात्म्य तथा चरित्र अक्षरशः यात्रार्जुन ॥२१-२३॥ अखिल प्राणिमात्रों के आत्मा सत्कि-शाली कृष्ण के अनेक अवतार हुए हैं, उन दिव्य गुणों से युक्त तथा पवित्र अवतारा के विषय में मैं कहूँगा ॥२४॥ देवदेव जगत्पति हजार युग तक ध्यान करते हैं और सहस्रयुग पूर्ण होते पर कार्यकाय अवतार लेते हैं ॥२५॥ अनन्तर प्रज्वलित अग्नितुल्य तेजस्वी पुराणदेव ब्रह्मा, कपिल, शिव, देवता, सृष्टि, नाग, अप्सरा, महानुभाव सनत्कु-मार, महात्मा मनु, भगवान् प्रजापति तथा पुरो की सृष्टि करते हैं ॥२६-२७॥ जो हरि स्यावर, जगम, देव, अयुध, नर, राक्षस तथा राक्षस के नष्ट हो जाने पर समुद्र-मध्य में विराजमान थे, उन्होंने अतिरक्षणी तथा युद्धानिलायी मधुर्नैटम की अपरिमित वर देकर निहत्त किया था ॥२६-२९॥ पूर्ण काळ में जब कमलनाभ भगवान् समुद्र में ध्यान कर रहे थे उस समय उस कमल से त्रिपिण्ड सहित देवता उत्पन्न हुए थे ॥३०॥ महाराम हरि वा यह पौनर

१३. ०यत् बहिर्धम मा० । २३. अप्राप्तितं । २४. ०य मनीश्वरा । पा० । ४ग. कार्यवान् ।
 ५न. ०वि अनश्वरेयुगा० । ६क. श. धीर्यवान् । ७क. ०यमा० । ८क. ०के सप्राणि य० । ९ग. ०तौ
 प्रम० । १०ग. ०ताप्तेन । ११क. ०सा बरं तत् । पु० । १२ क. यत् ।

एष पौष्करको नाम प्रादुर्भावो महात्मन । पुराण कथ्यते यत्र देवश्रुतिसमाहितम् ॥३१॥
 धाराहस्तु श्रुतिमुख प्रादुर्भावो महात्मन । यत्र विष्णु सुरश्रेष्ठो वाराह रूपमास्थित ॥३२॥
 वेदपादो यूपदण्ड ऋतुदन्तत्रिचतीमुख । अग्निजिह्वो वभरोमा ब्रह्मशीर्षो महातपा ॥३३॥
 अहोरात्रेक्षणो दिव्यो वदाङ्ग श्रुतिभूषण । आज्यनास स्रुवतुण्ड सामघोषस्वरो महान ॥३४॥
 सत्यधर्ममय श्रीमान्कर्मविक्रमसत्कृत । प्रायश्चित्तनखो घोर पशुजानुर्मुखाकृति ॥३५॥
 उद्गातात्रो होमलिङ्गो बीजोपधिमहाफल । वाद्यान्तरात्मा मन्त्रस्फिग्विकृत सोमशोणित ॥३६॥
 वेदिस्कन्धो हविर्गन्धो हव्यकव्यातिवेगवान् । प्राग्वशकायो द्युतिमान्नानादीक्षाभिरन्वित ॥३७॥
 दक्षिणाहृदयो योगी महासत्त्रमयो महान् । उपाकर्माष्टरुचक प्रवर्णवर्तभूषण ॥३८॥
 नानाच्छदोगतिपथो गुह्योपनिषदासन । ध्यापत्नीसहायोऽसौ मणिशृङ्ग इवोत्थित ॥३९॥
 महीं सागरपर्यन्तो सशैलवनकाननान् । एकाणवजलभ्रष्टामेकाणवगत प्रभु ॥४०॥
 दण्डा य समुद्रस्य लोकानां हितकाम्यया । सहस्रशीर्षो लोकादिश्चकार जगतीं पुन ॥४१॥
 एव यज्ञवराहेण भूत्वा भूतहितायिना । उद्धृता पृथिवी देवी सागराम्बुधरा पुरा ॥४२॥

प्रादुर्भाव है जहाँ देवतालोक समाहितचित्त होकर पुराणव्यवस्था करते हैं ॥३१॥ महात्मा (विष्णु) के वराह अवतार का मुख वेद है जहाँ सुरश्रेष्ठ विष्णु वराह रूप से स्थित है ॥३२॥ वेद उनके चरण हैं यूप दण्ड है यज्ञ दातृ है चिति (अग्नि-सत्त्वार) मुख है अग्नि जिह्वा है कुश रोम है ब्रह्म शिर है दिन और रात आँखें हैं वेदांग कण-भूषण हैं धी नाक है स्रुव भूषण है और सम्मान नायि स्वर है ॥३३-३४॥ वे महातपस्वी सत्यधर्ममय श्रीमान् तथा पराक्रम द्वारा सत्कृत हैं । प्रायश्चित्त उनका मयकर नख है और पशु के घुटने उनके मुख की आकृति है ॥३५॥ उद्गाता उनकी अंतर्दा है । होम उनका लिङ्ग है । महाफलवाली ओषधियाँ बीज हैं । अन्तरात्मा बाजा है यज्ञ विहृत घुट है सोम शोणित है वेदि भण्डा है हविष्य भण्ड है, हव्य-कव्य अत्यन्त वेग है और प्राग्वश (मशाला में हविगृह के पूरक का घर) गार है । वे वातिमान् तथा नाना दीक्षाओं से युक्त हैं ॥३६-३७॥ दक्षिणा उनका हृदय है । वे योगी महान् तथा महासत्त्रमय हैं । उपावम उनके कुण्डल हैं प्रवर्ण (होमानि का भेद) आवर्त-भूषण (चक्रदार आभूषण विशेष) है नाना छद मार्ग हैं उपनिषद् आसन है और छाया पत्नी है । वे मणि पवत की तरह उठे हुए हैं ॥३८-३९॥ जब पवत वन तथा कानन सहित समुद्र पर्यन्त पृथिवी एकाणव हो गई तब लोको के आदि तथा सहस्र शिर वाले प्रभु ने लोको के हित के निमित्त एकाणव में प्राप्त होकर दण्ड से पृथ्वा का उद्धार कर पुन ससार बसाया ॥४०-४१॥ इस प्रकार प्राचीन काल में प्राणियों के पल्याण के दृष्टिक्रमगवान् ने यज्ञवराह होकर सागर के जल का धारण करने वाली पृथ्वी देवी का उद्धार किया ॥४२॥ द्विजगण ।

१य यत्र । २य य ० वेदस्तुति० । ३क ०स्तु पठो जात प्रा० । ४य ०तुहस्तादिकीमु० ।
 ५क महासय । ६क ०समुखो । ७क ०पुष्यमु० । ८क ०लिङ्ग फलजीवमहोपधि । वा० ।
 ९क मस्तिष्कविक्र० । १०क ०महम० । ११य उवाक० । १२क ०कर्मोऽष्ट० । १३क ०वर्णावलमु० ।

ह एष कथितो नारसिंहस्ततो द्विजाः । यत्र भूत्वा मृगन्द्रेण हिरण्यकशिपुर्हंतः ॥४३॥
 कृतयुगे नाम सुरारिर्बलदपितः । दैत्यानामाविपुरुषश्चकार सुमहत्तपः ॥४४॥
 वर्षसहस्राणि शतानि दश पञ्च च । 'जपोपवासनिरतस्तस्यौ' मौनव्रतस्थितः ॥४५॥
 शमदमाभ्या च ब्रह्मचर्येण चैव हि । प्रीतोऽभवत्ततस्तस्य तपसा नियमेन च ॥४६॥
 वै स्वयंभूर्भगवान्स्वयमागम्य भो द्विजाः । विमानेनाकंबर्णेन हसयुक्तेन भास्वता ॥४७॥
 इत्येवंसुभिः सार्धं बहुद्विर्देवतस्तथा । रुद्रैर्विश्वसहार्पिश्च यक्षराक्षसकिनरैः ॥४८॥
 भिः प्रदिशाभिश्च नदीभिः सागरैस्तथा । नक्षत्रैश्च मुहूर्तैश्च क्षेत्रैश्च महाग्रहैः ॥४९॥
 पंभिस्तपोवृद्धैः सिद्धैर्विद्वद्भिरैव च । राजर्षिभिः पुण्यतर्मगन्धर्वैरप्सरोगणैः ॥५०॥
 चरगुह्य धीमान्वृतः सर्वैः सुरैस्तथा । ब्रह्मा ब्रह्मविदां श्रेष्ठो दैत्यं वचनमब्रवीत् ॥५१॥

ब्रह्मोवाच

॥५२॥ तव भवतस्य तपसाग्नेन सुव्रत । वरं वरय भद्रं ते यद्येष्टं काममाप्नुहि ॥५२॥

हिरण्यकशिपुर्वाच

वेजासुरगन्धर्वा न यक्षोरगराक्षसाः । ऋषयो याज्य मा शार्पः क्रुद्धा लोकपितामह ॥५३॥
 युस्तपसा युक्ता शर एष व्रतो मया । न शस्त्रेण न वाऽऽस्त्रेण गिरिणा पादपेन वा ॥५४॥
 शुष्केण न चाऽऽर्ध्रेण न चैवोर्ध्वं न चाप्यवः । पाणिग्रहारेणैकोन सभूत्पद्मलवाहनम् ॥५५॥

। बराहअवतार है । इसके बाद नरसिंह अवता ८ हुआ था, जिसमें सिंह होकर भगवान् ने हिरण्यकशिपु को मारा था १॥ पहले सत्ययुग में दैत्यों के आदिपुरुष बलाभिमानी राक्षस (हिरण्यकशिपु) ने महान् तप किया ॥४४॥ ग्यारह ॥ पाँचसौ वर्षों तक वह मौनव्रत में स्थित होकर जप-उपवास करता रहा ॥४५॥ उसने शम, दम, ब्रह्मचर्य, तपस्या ॥ नियम से भगवान् प्रसन्न हुए ॥४६॥ द्विज्वन्द । इस से युक्त, दीक्षमान तथा सूर्य के समान वर्ण वाले विमान ॥ चप ब्रह्माजी आदित्य, वसु, मरुत, देवता, रुद्र, विश्वदेव, यक्ष, राक्षस, निम्बर, दिसा, प्रदिशा, नदी, सागर, नवग्र, तं आवाचर, महाग्रह, देवर्षि, तपोवृद्ध मिद्ध, विद्वान्, राजर्षि, पुण्यतम, गन्धर्व तथा अप्सरागण से आवृत होकर ॥ ने समीप आये । चराचर के गुह तथा ब्रह्मज्ञानियों में श्रेष्ठ ब्रह्मा ने दैत्य से कहा ॥४७-५१॥

ब्रह्मा बोले—हे सुव्रती ! तुम्हारे इस तपस्या से मैं प्रसन्न हूँ । तुम्हारा वत्स्याण हो । तुम यद्येष्ट वर ॥ ५२॥

हिरण्यकशिपु ने कहा—हे नरसिंह । मैं यही वर माँगता हूँ कि देव, असुर, गन्धर्व, यक्ष, सर्प, राक्षस ॥ ऋषि तपस्या से युक्त होकर न पद से मुझ शार्प - दैत्यों न शस्त्र से, न अस्त्र से न पर्वत से, न वृक्ष से, न मूल ॥ नीले पदार्थ से, न ऊपर और न नीचे ही मेरी मृत्यु हो । जो एक ही हस्त-ग्रहण से सेमर, सेना तथा बाहन समेत

यो मां नाशयितुं शक्तः स मे मृत्युर्भविष्यति । भवेयमहमेवाकंः सोमो वायुर्हताशनः ॥५६॥
सलिलं चान्तरिक्षं च आकाशं चैव सर्वशः । अहं क्रोधश्च कामश्च वरुणोऽघातवो यमः ॥५७॥
घनदश्च घनाघ्यक्षो यक्षः किंपुरुषाधिपः ॥५७॥

ब्रह्मोवाच

एते दिव्या शरास्तात मया दत्तास्तवाद्भुताः । सर्वाङ्कामानिमांस्तात प्राप्स्यसि त्वं न संशयः ॥५८॥

व्यास उवाच

एवमुक्त्वा तु भगवान्जगामाऽऽनु पितामहः । वैराजं ब्रह्मसदनं ब्रह्मपिण्णसेवितम् ॥५९॥
अतो देवाश्च नागाश्च गन्धर्वा मुनयस्तथा । वरप्रदानं धृत्वंदं पितामहमुपस्थिताः ॥६०॥

देवा ऊचुः

वरणेनैव भगवन्वाधिप्यति स नोऽसुरः । तत्प्रसीदाऽऽशु भगवन्बन्धोऽप्यस्य विचिन्त्यताम् ॥६१॥
भगवन्सर्वभूतानां स्वयम्भूरादिकृत्प्रभुः । स्रष्टा च हव्यकव्यानामव्ययतं प्रकृतिर्ध्रुवम् ॥६२॥

व्यास उवाच

ततो लोकहितं धार्यं धृत्वा देवः प्रजापतिः । प्रोवाच भगवान्बाक्यं सर्वदेवगणांस्तथा ॥६३॥

ब्रह्मोवाच

अवश्यं त्रिदशास्तेन प्राप्तव्यं तपसः फलम् । तपसोऽन्ते च भगवान्बन्धं विष्णुः करिष्यति ॥६४॥

मुक्तं मारुते मे समर्थं होया, उसी से मेरी मृत्यु हो । मैं ही सूर्य, चन्द्रमा, वायु, अग्नि, जल, अन्तरिक्ष, आकाश, श्राव, शाम, वरुण, इन्द्र, यम, कुबेर और यक्ष होऊँ ॥५३-५७॥

१. ब्रह्मा ने कहा—तब । ये आदिकर्षारी दिव्य वर मैं देता हूँ । तुम्हारी समस्त कामनायें पूरी होगी, इगमें कोई संशय नहीं ॥५८॥

व्यास ने कहा—इसका कहकर शीघ्र ही भगवान् पितामह ब्रह्मपिण्णो से सेवित वैराज नामक ब्रह्मसदन में चले गये । तदनन्तर देव, नाग, गन्धर्व और मुनिवृन्द वरदान सुनकर ब्रह्मा के पास उपस्थित हुए ॥५९-६०॥

देवों ने कहा—भगवन् । इस वर से वह राक्षस हम कष्ट देगा । अतः कृपा करके उसका वध का नीं उपाय सोचिये । भगवन् । आप अति-प्रणिया ने आदिवर्ता स्वयम्भू, हव्य-कव्या ने स्रष्टा, अव्ययत, प्रकृति तथा ध्रुव हैं ॥६१-६२॥

व्यास ने कहा—तुम्हारे आका ने कल्याणकारी वाक्य को सुनकर भगवान् प्रजापति ने समस्त देवगणा से कहा ॥६३॥

ब्रह्मा ने कहा—देववृन्द । वह तपस्या का फल अवश्य पायेगा । तप ने अन्त में भगवान् विष्णु उसका वध करेंगे ॥६४॥

ध्यास उवाच

एतच्छ्रुत्वा सुराः सर्वे वाक्यं पञ्चजन्मनः । स्वानि स्थानानि दिव्यानि जग्मुस्ते वै मुदान्विताः ॥६५॥
 लब्धमात्रे वरे चापि सर्वाः सोऽबाधत प्रजाः । हिरण्यकशिपुर्देवो वरदानेन दपितः ॥६६॥
 आश्रमेयु महाभागान्मुनीन्वं संशितव्रतान् । सत्यधर्मरतान्दान्तास्तदा धर्पितवांस्तथा ॥६७॥
 त्रिदिवस्थांस्तथा देवान्पराजित्य महाबलः । त्रैलोक्यं वशमानीय स्वर्गं वसति सोऽसुरः ॥६८॥
 यदा वरमदोन्मतो विचरन्दानवो भुवि । यज्ञोपानकरोद्देत्यानयज्ञोयाश्च देवताः ॥६९॥
 आदित्या वसवः साध्या विश्वे च भरतस्तथा । शरण्यं शरणं विष्णुमुपतस्युर्महाबलम् ॥७०॥
 देवब्रह्मणं यज्ञं ब्रह्मदेवं सनातनम् । भूतं भव्यं भविष्यं च प्रभुं लोकनमस्कृतम् ॥
 नारायणं विभुं देवं शरण्यं शरणं गताः ॥७१॥

देवा ऊचुः

प्रायस्त्व मोऽग्न देवेश हिरण्यकशिपोर्भयात् । त्वं हि नः परमो देवस्त्वं हि नः परमो गुरुः ॥७२॥
 त्वं हि नः परमो धाता ब्रह्मादीनां सुरोत्तम । उत्कूलामलपत्राक्ष शनुपक्षक्षयंकर ॥
 'क्षमाय दितिवंशस्य शरणं त्वं भवस्व नः ॥७३॥

वासुदेव उवाच

भयं त्यजध्वममरा अभयं वो ददाम्यहम् । तथैव त्रिदिवं देवाः 'प्रतिलप्स्यथ मा चिरम् ॥७४॥
 एषोऽहं सगण दैत्यं वरदानेन दपितम् । 'अवध्यममेन्द्राणां दानवेन्द्रं निहन्मि तम् ॥७५॥

ध्यास ने कहा—पितामह वा ववन मुनिकर देवगण प्रसन्नता से अपने-अपने दिव्य स्थानों पर चले गये । वर प्राप्त करते हैं दैत्य हिरण्यकशिपु वरदान के भव से प्रजा को पीड़ित करने लगा । आश्रमों में व्रतनिष्ठ, सत्य-धर्मपरायण, इन्द्रियों के दमन करने वाले महाभाग मुनियों को बहु वष्ट देने लगा । स्वर्गस्थ देवों को जीतररक्षियों लोक को वश में लाकर बहु महाबली राक्षस स्वर्ग में वास करने लगा । जब बर के मुद से उन्मत्त होकर उस दानव ने पृथ्वी पर विचरण करके दैत्यों की यज्ञ-भाग-भोक्ता तथा देवताओं को यज्ञ से वंचित कर दिया तब आदित्य, वसु, साध्य, विश्वेदेव और भरत-गण महाबली, शरणधाता, देव-ब्रह्मण्य, यज्ञरूप, ब्रह्मदेव, सनातन, भूत, भव्य, भविष्य, प्रभु, लोकों से नमस्कृत, नारायण तथा व्यापक विष्णुदेव ने समीप उपस्थित हुए ॥६५-७१॥

देवों ने कहा—देवताओं के स्वामी । हिरण्यकशिपु ने भय से बचाइये । सुरोत्तम । आप हमारे परमदेव हैं, परम गुरु हैं और हम ब्रह्मा आदि देवों के परम धाता (धारण करने वाले) हैं । विवशित कमल के समान नेत्र-वाले । शनुपक्ष का शय करने वाले । दैत्यों के नाश के लिये हम आपकी शरण में आये हैं ॥७२-७३॥

वासुदेव ने कहा—देवगुरु । भय त्यागो । मैं तुम्हें अभय देता हूँ । पीछे ही तुम स्वर्ग प्राप्त करोगे । अभी मैं वरदान से गर्वित तथा देवताओं से अवध्य दानवेन्द्र को गणसहित मार डालता हूँ । ॥७४-७५॥

व्यास उवाच

एवमुक्त्वा तु भगवान्विसृज्य 'त्रिवशेश्वरान् । हिरण्यकशिपोः स्थानभाजगाम महाबलः ॥७६॥
नरस्वार्थतनुं कृत्वा सिंहस्वार्थतनुं प्रभुः' । नारसिंहेन वपुषा पाणिं संस्पृश्य पाणिना ॥७७॥
घनजीमूतसंकाशो घनजीमूतनिस्वनः । घनजीमूतदोष्टोऽजा जीमूत इव वेगवान् ॥७८॥
दैत्यं सोऽतिबलं दृष्ट्वा वृष्टशार्दूलविक्रमः । दृष्टदैत्यगणैर्गुप्तं हतवानेकपाणिना ॥७९॥
नृसिंह एष कथितो 'भूयोऽयं वामनः' परः । यत्र वामनमास्थाय रूपं दैत्यविनाशनम् ॥८०॥
बलेर्बलवतो यज्ञे बलिना विष्णुना पुरा । विक्रमेस्त्रिभिरक्षोभ्याः क्षोभितास्ते महासुराः ॥८१॥
विप्रचित्तिः शिवः शङ्कर्यः शङ्खस्तथैव च । अयः शिरा अश्वशिरा हयग्रीवश्च वीर्यवान् ॥८२॥
वेगवान्केतुमानुषः 'सोऽग्रव्यग्रो महासुरः' । पुष्करः पुष्कलश्चैव शा (सा) श्वोऽश्वपतिरेव च ॥८३॥
'प्रह्लादोऽश्वपतिः कुम्भः संह्लादो गमनप्रियः । अनुह्लादो हरिहयो वाराहः' 'संहरोऽनुजः ॥८४॥
शरभः शालभद्रश्चैव कुपयः' क्रोधनः क्रयः । बृहत्कीर्तिर्महाजिह्वः शङ्खकर्णो महास्वनः ॥८५॥
दीप्तजिह्वोऽर्कनयनो 'मृगपादो मृगप्रियः । वायुर्गण्डो नमुचिः' 'सम्बरो विस्फुरो महान् ॥८६॥
चन्द्रहस्ता क्रोधहस्ता क्रोधवर्धन एव च । कालकः कालकोपश्च वृत्रः क्रोधो विरोचनः ॥८७॥
गरिष्ठश्च वरिष्ठश्च प्रलम्बनरकावुभौ । इन्द्रतापनवातापी केतुमान्बलदपितः ॥८८॥

व्यास ने कहा—इतना कहकर देवताओं को विदा करके महाबलशाली भगवान् आधा शरीर मनुष्य का और आधा शरीर सिंह का बनाकर हाथ से हाथ को छूते हुए हिरण्यकशिपु के स्थान पर आये ॥७६-७७॥ मेघ के समान वर्ण वाले, मेघतुल्य शब्द वाले, मेघतुल्य क्रान्ति वाले, मेघतुल्य वेग वाले और सिंह के सदृश पराक्रमी हरि ने अतिबलशाली दैत्य को देखकर अमिमानी दैत्यगणों से रक्षित हिरण्यकशिपु को एक ही हाथ से मार डाला ॥७९॥ यह नृसिंह-अवतार बतला दिया । अब दूसरा वामन-अवतार आता है, जिसमें दैत्यविनाशकारी वामन रूप धर कर बली विष्णु ने बलवान् बलि के यज्ञ में महाराक्षसों को समुत्पन्न कर दिया था ॥८०-८१॥ (जैसे—) विप्रचित्ति, शिव, शङ्ख, अश्वशङ्ख, अश्वशिरा, अश्वग्रीव, वीर्यवान् ॥८२॥ वेगवान्, केतुमान्, उग्र, सोऽग्रव्यग्र, महायुध, पुष्कर, पुष्कल, शा (सा) श्व, अश्वपति ॥८३॥ प्रह्लाद, कुम्भ, संह्लाद, गमनप्रिय, अनुह्लाद, हरिहय वाराह, संहार, अनुज, ॥८४॥ शरभ, शालभ, कुपय, क्रोधन, क्रय, बृहत्कीर्ति, महाजिह्व, शङ्खकर्ण, महास्वन ॥८५॥ दीप्तजिह्व, अर्कनयन, मृगपाद, मृगप्रिय, वायु, गरिष्ठ, नमुचि, सम्बर, विस्फुर, महान् ॥८६॥ चन्द्रहस्ता, क्रोधहस्ता, क्रोधवर्धन, कालक, कालकोप, वृत्र, क्रोध, विरोचन ॥८७॥ गरिष्ठ, वरिष्ठ, प्रलम्ब, नरक, इन्द्रतापन, वातापी, केतुमान्, बल-

१श त्रिविश्वः । २क ख हरि । ३क भूयोऽयं वा० । ४क भगवन्तत । य० । ५क सोऽग्रव्यग्रो हि म० । ६क महलाद स्वर० । ७क गमन० । ८क महरो वा० । ९ग वाराह । १०ग महोरजः । ११क कुश । १२क मृदुता० । १३क मृदुभिः । १४क ख सम्बरो । १५क ख विस्फुरो ।

प्रमथ्य सर्वान्वेतेयान्पादहस्ततर्लंबिभु । हृष्य कृत्वा महाभीम 'जहाराऽऽशु स मेदिनीम् ॥१०१॥
 तस्य विक्रमतो भूमि चन्द्रावित्यौ स्तनन्तरे । नम प्रक्रममाणस्य नाम्या किल तथा स्थितौ ॥१०२॥
 'परमाक्रममाणस्य जानुदेशे ध्यवस्थितौ । विष्णोरमितवीर्यस्य वदन्त्येव द्विजातय ॥१०३॥
 हृत्वा स मेदिनीं कृत्स्ना हृत्वा चासुरपुगवान् । ददौ शक्राय वसुधा' विष्णुर्बलवता वर ॥१०४॥
 एष वो वामनो नाम प्रादुर्भावो महात्मन । वेदविद्विद्विजैरेतकथ्यते वैष्णव यश ॥१०५॥
 भूयो भूतात्मनो' विष्णो प्रादुर्भावो महात्मन । दत्तात्रेय इति रयात क्षमया परयायुत ॥१०६॥
 तेन नष्टेषु 'वेदेषु प्रक्रियासु' मलेषु च । चातुर्वर्ण्ये च सफीर्णे धर्मे शिथिलता गते ॥१०७॥
 'अतिवर्षन्ति चायमे' सत्ये नष्टेऽनृते स्थिते । प्रजासु शीयमाणासु धर्मे चाऽऽकुलतागत ॥१०८॥
 सपत्ना सक्रिया वेदा प्रत्यानीता हि तेन वै । चातुर्वर्ण्यमसकीर्णं कृत तेन महात्मना ॥१०९॥
 तेन हंह्यराजस्य फातवीर्यस्य धीमत । वरदेन वरो दत्तो दत्तात्रेयेण धीमता ॥११०॥
 एतदबाहुद्वय यत्ते तत्ते मम कृते' नृप । शतानि दश याहूना भविष्यन्ति न सशय ॥१११॥
 पालयिष्यसि कृत्स्ना च वसुधा वसुधेदवर । दुर्निरीक्ष्योऽरिवृन्दानां युद्धस्यश्च भविष्यसि ॥११२॥
 एष वो वैष्णव श्रीमान्प्रादुर्भावोऽद्भुत शम्भ । भूयश्च जामदग्न्योऽप्य प्रादुर्भावो महात्मन ॥११३॥
 यन बाहुसहस्रेण द्विपता वुर्जय रणे । रामोऽर्जुनमनीकस्य जघान नृपति प्रभु ॥११४॥

पृथ्वी का हरण कर लिया ॥१०१॥ विद्वानो वा बहूनां हि पृथ्वी नापने के समय सुयचन्द्रमा आसन 'गविना'ला
 विष्णु का स्तना का बाध स्थित हुए आकाश नापने के समय व उनकी नाभि में और उससे ऊपर नापन का समय
 वे उनका जानुदेश में अवस्थित हुए ॥१०२॥ १०३॥ संपूर्ण पृथ्वी का हरण कर असुरपुंगवों को मारकर बलवाना में
 शब्द विष्णु ने हृत्वा का पृथ्वी दे दी ॥१०४॥ यह महामा विष्णु का वामन अवतार का कर्ण आपस किया
 गया है । बनेता ब्राह्मण इस विष्णु का यग कहत है ॥१०५॥ पुन अखिलामा विष्णु का दत्तात्रेय नाम स प्रख्यात
 'य' अमन शमा समुक्त अवतार हुआ ॥१०६॥ जिस समय वे 'धमना'स तथा यन नष्ट हो रहे थे चारों वर्णों
 में सार्वभौम हो गया था धर्म में शिथिलता आ गई थी अथवा बढ़ रहा था सत्य नष्ट हो रहा था अथवा कम रहा
 था प्रजा छिन्न भिन्न हो रहा था और धर्म अस्त-व्यस्त हो गया था उस समय उन्होंने यन तथा धमना'स सहित
 वेदा का पुन स्थापित किया । महामा ने चातुर्वर्ण्य का सार्वभौमिक किया ॥१०७॥ १०९॥ वरदात्रेय 'धमना'
 दत्तात्रेय ने हंह्यराज पातक का वरदान दिया—नृप । मर जाये से तुम्हारा दोनों बांह एवं सहस्र भुजाओं
 में परिणत हो जायगा इसमें नई सत्य नहीं ॥११०॥ १११॥ पृथ्वीपति । तुम समस्त वसुधा का पालन करोगे
 और युद्ध में 'गन्धम'हो से दुर्निरीक्ष्य होगे ॥११२॥ यह वैष्णव अवतार अद्भुत तथा 'गुमना'स हुआ । पुन महामा
 का परागुताम अवतार हुआ जिसमें 'गन्तिमान' राम ने रण में सहस्र भुजाओं के कारण 'गन्धम'हो से अत्रय राजा अर्जुन
 (बानव) का मार दिया ॥११३॥ ११४॥ राम ने रथ में स्थित अर्जुन को पृथ्वी पर गिरा दिया । आश्रम करते

रक्षस्यं पार्थिवं राम. पातयित्वाऽर्जुनं भुवि। धर्षयित्वाऽर्जुनं रामः क्रोशमानं च मेघवत् ॥११५॥
 कृत्स्नं बाहुसहस्रं च चिच्छेद भृगुनन्दनः। परश्वधेन दोष्टेन 'ज्ञातिभिः सहितस्य वै ॥११६॥
 कीर्णा क्षत्रियकोटीभिर्मरुमन्दरभूषणा। त्रिः सप्तकृत्वः पृथिवी तेन निक्षत्रिया' कृता ॥११७॥
 कृत्वा निक्षत्रियां चना' भागवः सुमहायशाः। सर्वपापविनाशाय वाजिमेघेन चेष्टवान् ॥११८॥
 यस्मिन्यज्ञे महादाने दक्षिणां भृगुनन्दनः। मारीचाय ददौ प्रीतः कश्यपाय वसुंधराम् ॥११९॥
 'वारणास्तुरगाञ्शुभ्राग्रथाश्च रयिनां वरः। हिरण्यमक्षयं धेनुर्गजेन्द्राश्च 'महीपतिः ॥१२०॥
 ददौ तस्मिन्महायज्ञे वाजिमेघे महायशाः। अद्यापि च हितार्थाय लोकानां भृगुनन्दनः ॥१२१॥
 चरमाणस्तपो धीरं जामदग्न्यः पुनः प्रभुः। आस्ते वै' देववच्छ्रीमानमहेन्द्रे पर्वतोत्तमे ॥१२२॥
 एष विष्णोः सुरेशस्य शाश्वतस्याव्ययस्य च। जामदग्न्य इति ख्यातः प्रादुर्भावो महात्मनः ॥१२३॥
 चतुर्विंशे युगे वाऽपि विश्वामित्रपुरःसरः। जज्ञे दशरथस्याय पुत्रः पद्मायतेक्षणः ॥१२४॥
 कृत्वाऽरमानं महाबाहुदचतुर्धा प्रभुरीश्वरः। लोकं राम इति ख्यातस्तेजसा भास्करोपमः ॥१२५॥
 'प्रसादनार्थं लोकस्य रक्षसां निग्रहाय च। धर्मस्य च विवृद्ध्यर्थं' जज्ञे तत्र महायशाः ॥१२६॥
 तमप्याहुर्मनुष्येन्द्रं सर्वभूतहिते रतम्। यः समाः सर्वधर्मज्ञश्चतुर्दश वनेऽवसत् ॥१२७॥
 लक्ष्मणानुचरो रामः' सर्वभूतहिते रतः। चतुर्दश वने तपत्वा तपो वर्षाणि राघवः ॥१२८॥

हुए अर्जुन को मेघ की तरह फटकार कर भृगुपुत्र ने अपने चमकते हुए करों से उसकी हजार बाहों को काट दिया और उसने भाई-बन्धुओं को भी विध्वस्त कर दिया ॥११५-११६॥ सुमेरु तथा मन्दराचल से भूषित एवम् क्षत्रियों से व्याप्त पृथिवी को राम ने इकट्ठा कर निक्षत्रिय किया ॥११७॥ इसको क्षत्रियविहीन बना कर महायशस्वी राम ने सब पापों के विनाश के लिए अश्वमेध यज्ञ किया ॥११८॥ जिस यज्ञ में भृगुनन्दन ने महादान की दक्षिणा में मारीचपुत्र वश्यप को पृथ्वी दे दी ॥११९॥ उस अश्वमेध नामक महायज्ञ में महायशस्वी राम ने हाथी, उज्ज्वल घोड़े, रथ, अक्षय सुवर्ण, धेनु तथा गजेन्द्र दान किये। आज भी लोकहित के निमित्त जमदग्नि-पुत्र राम महेन्द्र नामक उत्तम पर्वत पर धीर तप करते हुए देवता के समान विद्यमान हैं ॥१२०-१२२॥ सुरेश, नित्य, अक्षय तथा महात्मा विष्णु का यह परमुराम-अवतार हुआ। चौबीसवें युग में भी विश्वामित्र के आगे चलने वाले बमललोचन राम दशरथ ने पुत्र हुए ॥१२३-१२४॥ अपने को चार रूपों में विभक्त करके सूर्य के समान तेजस्वी महाशक्तिमान् ईश्वर लोह में राम नाम से ख्यात हुए ॥१२५॥ लोह को प्रसन्न करने, राक्षसों का दलन करने तथा धर्म की वृद्धि करने के लिए महायशस्वी (राम) ने वहाँ अवतार लिया ॥१२६॥ लोग उन्हें मनुष्यों के राजा तथा अखिल प्राणियों के हित में रत रहते हैं, जिन्होंने चौदह वर्षों तक वनवास किया और जिनके अनुचर लक्ष्मण थे। तमस्त प्राणियों के कल्याण में निरत रघुवर्षी राम ने चौदह वर्ष वन में तप किया। उनकी स्त्री लोह में सीता नाम से प्रख्यात

रूपिणी तस्य पादर्वस्या सीतेति प्रयिता जनैः । पूर्वोदिता तु या लक्ष्मीर्भर्तारमनुगच्छति ॥१२९॥
 जनस्याने वसन्कार्यं त्रिदशाना चकार स । तस्यापकारिण क्रूर पौलस्त्यः मनुजपथं ॥१३०॥
 सीताया पदमन्विच्छन्निजघान महापथा । देवासुरगणानां च यक्षराक्षसभोगिनाम् ॥१३१॥
 यत्रावध्य राक्षसेन्द्र रावण युधि दुजयम् । युक्त राक्षसकोदीर्भर्नालञ्जनचयापमम् ॥१३२॥
 श्रंलाव्यद्रावण क्रूर रावण राक्षसेश्वरम् । दुजय दुर्धरं दृप्त शार्दूलसमविक्रमम् ॥१३३॥
 दुर्निरीक्ष्य सुरगणेश्वरदानेन दपितम् । जघान सच्चिवं सार्धं ससंय रावण युधि ॥१३४॥
 महाभ्रगणसकाश महाकाय महाबलम् । रावण निजघानाञ्जु रामो भूतपति पुरा ॥१३५॥
 सुग्रीवस्य कृते येन वानरेन्द्रो महाबलः । वाली विनिहृत सख्ये सुग्रीवश्चाभिपचितः ॥१३६॥
 मणेश्च तनयो द्रुप्तो लवणो नाम दानवः । हतो मधुवने वीरो वरमत्तो महासुरः ॥१३७॥
 यज्ञविघ्नकरो येन मुनीनां भावितात्मनाम् । मारीचश्च सुबाहुश्च बलेन बलिना वरो ॥१३८॥
 निहतो च निराशो च कृतो तेन महात्मना । समरे युद्धशौण्डेन तथाऽप्ये चापि राक्षसाः ॥१३९॥
 विराटश्च कवचश्च राक्षसो भीमविश्रमो । जघान पुलपव्याघ्रो गणधो शापमोहिनी ॥१४०॥
 हताशनाकांक्षितडिडगुणाभं प्रतप्तजाम्बूनवक्षिणपुङ्खं ।
 महोद्वज्राशनिमुल्यसत्तरे रिपून्स राम समरे निजघने ॥१४१॥

तथा सुदरी वी । लक्ष्मी की तरह वह स्वामी वा अनुगमन करती थी ॥१२७ १२९॥ जनस्यान म निवास करते हुए उन्होंने देवताओं का वाय किया । स ता का अवेपण करते हुए महापथास्वी राम ने अपकारी तथा क्रूर रावण का वध किया । युद्ध म लक्ष्मि राम ने देव अयुर यस राक्षस तथा सर्पों से अवध्य युद्ध मे दुर्जय, श्रंलाव्य के सतापक क्रूर महाभिमान आघ्र के रुमान पराक्रम देवगणों से दुर्निरीक्ष्य वरदान से दपित करोड़ों राक्षसों से युक्त नील अञ्जन की रात्रि तु य महाभेगण के सद्ग महाबाय तथा महाबली रावण की सेना तथा मन्त्रीगण सहित निहृत किया ॥१३० १३४॥ सुग्रीव के लिये उन्होंने युद्ध मे चन्द्रों के स्वामी महाबलशाली वाली को मार और सुग्रीव की अभिपन्न किया ॥१३५ १३६॥ मधुवन में वीर राम ने मधु के पुत्र लवण नामक महाहिमानी दानव को विनष्ट किया ॥१३७॥ उस महामा ने सयतात्मा मुनियों के यज्ञ मे विघ्न करने वाले अयन्त बलशाली मारीच और सुबाहु को गिराया तथा निहृत किया । युद्धरमद राप ने समर में अन्य अनेक राक्षसों को भी विध्वस्त किया ॥१३८ १३९॥ पुलपुल्ल राक्षस ने भयवर पराक्रम विराट और कवच नामक राक्षसों को जो शापमोहित राक्षसों के मार गिराया ॥१४०॥ रण म राम ने अग्नि शूयविरण तप्त सुवण तथा विद्युत् के समान प्रमा वाले और ह्द के वध के समान सारमुक्त बाणों से पापुको भी निहृत किया ॥१४१॥ देवताओं से भी अनेक देवगुप्तों

१४ युधिनी । २४ रामस्य । २४ न जनै । ४क ०स्त्व पुराणमाः सी० । ५त ०पमाः सी० ।
 १४ युधि । ७४ दपद । ८ ०पविसतो । ९४ पवीशितो । ९४ ०साट्ट छट्टे । छट्टेण विमोहितो बलात् । त० ।

तस्मै दत्तानि 'शस्त्राणि विश्वामित्रेण धीमता। वधार्थं देवशत्रूणां दुर्धर्षाणां सुरैरपि ॥१४२॥
वर्तमाने मखे येन जनकस्य महात्मनः। भग्नं माहेश्वरं चापं क्रीडता लोलया पुरा ॥१४३॥
एतानि कृत्वा कर्माणि रामो धर्मभृतां वरः। दशश्वमेधाञ्जारूष्यानाजहार निरगेलान् ॥१४४॥
नाश्रूपन्ताशुभा वाचो^१ नाऽऽकुलं मास्तौ बवौ। न वित्तहरणं चाऽऽसीद्वामे राज्यं प्रशासति ॥१४५॥
परिदेवन्ति विधवा नानर्याश्च कदाचन। 'सर्वमासीच्छुभं' तत्र रामे राज्यं प्रशासति ॥१४६॥
न प्राणिनां भयं चाऽऽसीज्जलान्घनिलघातजम्। न चापि वृद्धा बालानां प्रेतकार्याणि चक्रे ॥१४७॥
'ब्रह्मचर्यपरं क्षत्रं' विशस्तु क्षत्रिये रताः। शूद्राश्चैव हि वर्णास्त्रोऽश्रूपन्त्यनहंकृताः ॥१४८॥
नार्यो नात्यचरन्भर्तृभार्यां नात्यचरत्पतिः। सर्वमासीज्जगद्दान्त^२ निर्दम्पुरभवन्मही ॥१४९॥
राम एकोऽभवद्भूतां रामः पालयिताऽभवत्। आसन्वर्षसहस्राणि तया पुत्रसहस्रिणः ॥१५०॥
अरोगाः प्राणिनश्चाऽऽसन्ग्रामे राज्यं प्रशासति। देवतानामृषीणां च मनुष्याणां च सर्वशः ॥१५१॥
पृथिव्यां 'समवायोऽभूद्वामे राज्यं प्रशासति। पायामप्यत्र गायन्ति ये पुराणविदो जनाः ॥१५२॥
रामे निबद्धतरवार्या माहारम्यं तस्य धीमतः। श्यामो युवा लोहिताक्षो दीप्तास्थो मितभाषितः ॥१५३॥
आजानुबाहुः सुमुखः सिंहस्कन्धो महाभुजः। दश वर्षसहस्राणि रामो राज्यमकारयत् ॥१५४॥
श्रुत्सामयजुषा घोषो ज्याघोपश्च महात्मनः। अव्युच्छिन्नोऽभवद्वाष्ट्रे दीयतां भुजयतामिति ॥१५५॥

के वध के लिए धीमान् विश्वामित्र ने राम को शस्त्र दिये ॥१४२॥ महात्मा जनक के यज्ञ में राम ने खेलते-खेलते सहज ही में शिव के धनुष को तोड़ डाला ॥१४३॥ इतने कर्मों को करके धर्मात्माओं में श्रेष्ठ राम ने विघ्न-बाधाओं से रहित जाक्ष्म्य नामक दश अश्वमेध यज्ञ किये ॥१४४॥ राम के राज्य-काल में अशुभ बाणी मही सुनी जाती थी, व्याकुल करने वाला वायु नहीं बहता था, वित्तों का हरण नहीं होता था, विधवायें अनुताप नहीं करती थी और अनर्थ कभी नहीं होते थे। राम-राज्य में सब कुछ कल्याणमय होते थे, प्राणियों को जल, अग्नि तथा वायु के आघात-जग्य मय नहीं होता था, वृद्धों को बालकों का श्राद्ध नहीं करना पड़ता था, क्षत्रिय ब्राह्मणों की धैर्य क्षत्रियों की और शूद्र सीतों वर्णों की सेवा अभिमानरहित भाव से किया करते थे, पत्नियाँ पतियों को और पति पत्नियों को नहीं छोड़ते थे, सम्पूर्ण जगत् नियंत्रित एवम् चोररहित था, एक राम ही सबके स्वामी तथा पालन-वर्ता थे, प्राणी नीरोग तथा सहस्रो पुत्रों से युक्त होकर हजारों वर्षों तक जीते थे ॥१४५-१५०॥ राम के सत्त्व को जानने वाले पुराणवेत्ता लोग बुद्धिमान् राम के माहारम्य तथा इस विषय में एक गाथा भी गाते हैं कि राम के राज्य-शासन के समय पृथिवी, पर देवता, ऋषि तथा मनुष्यों का मिलन होता था। श्यामवर्ण, युवक, लालनेत्र, प्रदीप्तमुख, मितभाषी, आजानुबाहु, सुमुख, सिंहस्कन्ध तथा महाबाहु राम ने दश हजार वर्षों तक राज्य किया था ॥१५१-१५४॥ उस महात्मा के राष्ट्र में श्रुक्, साम तथा यजुर्वेदों का घोष, धनुष का घोष एवम् 'दान करो और उपभोग करो' का शब्द

सत्त्ववान्गुणसंपन्नो दीप्यमानः स्वतेजसा । अतिचन्द्रं च सूर्यं च रामो दाशरयिर्बभौ ॥१५६॥
 ईजे ऋतुशतं पुण्यं समाप्तवरदक्षिणं । हित्वाऽप्योध्या दिवं यातो राघवो हि महाबलः ॥१५७॥
 एवमेव महाबाहुरिक्ष्वाकु कुलनन्दनः । रावणं सगणं हत्वा दिवमाचक्रमे विभुः ॥१५८॥
 अपरः केशवस्यायं प्रादुर्भावो महात्मनः । विख्यातो मायुरेकत्वे सर्वलोकहिताय वै ॥१५९॥
 यत्र शाल्वं च चैत्रं च कंसं द्विविदमेव च । अरिष्टं वृषभं कैशं पूतनां दैत्यदारिकाम् ॥१६०॥
 नागं कुबलयापीडं चाणूरं मुष्टिकं तथा । दैत्यान्मानुषदेहेन* सूदयामास वीर्यवान् ॥१६१॥
 छिन्नं बाहुसहस्रं च बाणस्याद्भुतकर्मणः । नरकश्च हत* संख्ये यवनश्च महाबलः ॥१६२॥
 हतानि च महीपाना सर्वरत्नानि तेजसा । 'पुराचाराश्च निहिता' पार्थिवा ये महीतले ॥१६३॥
 एष लोकहितार्याय प्रादुर्भावो महात्मनः । कल्की विष्णुयशा नाम* शम्भलप्राप्तसंभव ॥१६४॥
 सर्वलोकहितार्याय भूयो देवो महायशः । एते चान्ये च बहवो दित्या देवगणर्वृतः ॥१६५॥
 प्रादुर्भाव पुराणेषु गीयन्ते ब्रह्मवादिभिः । यत्र देवा विमुह्यन्ति प्रादुर्भावानुकीर्तने ॥१६६॥
 पुराणं धर्तते यत्र* वेदभृतिसमाहितम् । एतद्बुद्धेशमात्रेण प्रादुर्भावानुकीर्तनम् ॥१६७॥
 कीर्तितं कीर्तनीयस्य सर्वलोकगुरोर्विभोः । पीयन्ते पितरस्तस्य प्रादुर्भावानुकीर्तनात् ॥१६८॥
 विष्णोरमितवीर्यस्य यः शृणोति कृताञ्जलिः ॥१६९॥

निरन्तर होता ही रहता था । सात्विक, गुणसंपन्न तथा अपने तेज से दीदीप्यमान दशरथ-पुत्र राम सूर्य-चन्द्र से भी अधिक सुशोभित थे ॥१५५-१५६॥ महाबलशाली राघव ने सैबहो पवित्र यज्ञ किये, उत्तम दक्षिणा दी और (अन्त में) अयोध्या छोड़कर स्वर्ग की यात्रा की। इसी प्रकार इक्ष्वाकु कुलमूल्य महाबाहु राम गणसहित रावण को मार-
 कर स्वर्ग पधारे थे ॥१५७-१५८॥ अखिललोकहित के लिये महात्मा विष्णु का दूसरा (वृष्ण) अवतार मायुर
 बल में प्रसिद्ध ही है, जिसमें शाल्व, मिथुपाल, कंस द्विविद अरिष्ट, वृषभ, कैश, दैत्य-बन्ध्या, पूतना, कुबलयापीड
 नामक हाथी, चाणूर, मुष्टिक तथा दैत्यो को मनुष्यशरीर से शक्तिशाली भगवान् ने विनष्ट किया था। उन्होंने
 अद्भुत कर्म करने वाले बाण की सहस्र मुञ्जाओ को बाटा, युद्ध में नरक तथा महाबली बाल्यवन को मारा तेज से
 राजाओं के अखिल रत्नों का अपहरण किया और धुषीतल पर निजने दुराचारी राजा थे, उन सत्रका निहत किया
 ॥१५९-१६३॥ महात्मा का यह अवतार लोचन-वत्याण के निमित्त हुआ था। पुनः महायशस्वी (विष्णु) देव निखिल-
 लोक-हित के निमित्त शम्भलप्राप्त में विष्णुयशस् नाम से कल्की अवतार लिये ॥१६४॥ ये और दूसरे भी बहुत से
 रस्य तथा देवताओं से आवृत अवतार पुराणों में ब्रह्मवादीयों द्वारा गाये जाते हैं। अवतारों के वर्णन करने में देवगण
 भुण्ण हो जाते हैं। वेद और धृति से सम्मत पुराण इस विषय में प्रमाण हैं। यह अखिल लोकों के गुरु परमात्मा
 के अवतार का वर्णन संक्षेप में दिया गया है। अमित शक्तिशाली विष्णु के अवतारों का वर्णन जो मनुष्य अखिल-
 बद्ध होकर सुनता है, उसके पितर सुप्त हो जाते हैं। योगेश्वर की इस योगशायी को सुनकर मनुष्य सब पापा से मुक्त

एताश्च योगेश्वरयोगमायाः, श्रुत्वा नरो मुच्यति सर्वपापैः।

ऋद्धिं समृद्धिं विपुलांश्च भोगान्प्राप्नोति शीघ्रं भगवत्प्रसादात्

॥१७०॥

एवं मया मुनिश्रेष्ठा विष्णोरमिततेजसः । सर्वपापहराः पुण्याः प्रादुर्भावाः प्रकीर्तिताः ॥१७१॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे विष्णोः प्रादुर्भावानुकीर्तनं नाम

त्रयोदशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२१३॥

अथ चतुर्दशाधिकद्विशततमोऽध्यायः

नरकवर्णनम्

मुनय ऊचुः

न सृष्टिमधिगच्छामः पुण्यधर्माभूतस्य च । मुने त्वन्मुखमीतस्य तया कौतूहलं हि नः ॥१॥

उत्पत्तिं प्रलयं चैव भूतानां कर्मणो गतिम् । वेत्ति सर्वं मुने तेन पृच्छामस्त्वा महामतिम् ॥२॥

ध्रूयते यमलोकस्य मार्गः परमदुर्गमः । दुःखखलेशकरः शश्वत्सर्वभूतभयावहः ॥३॥

कथं तेन नरा यागति मार्गेण यमसादनम् । प्रमाणं चैव मार्गस्य ब्रूहि नो वदतां वर ॥४॥

मुने पृच्छाम सर्वज्ञ ब्रूहि सर्वमशेषतः । कथं नरकदुःखानि नाऽऽप्नुयन्ति नरान्मुने ॥५॥

हो जाता है और यही मैं मगवत्कृपा से ऋद्धि, समृद्धि तथा विपुल भोगों को प्राप्त करता हूँ ॥१६५-१७०॥

मुनिवर ! इस प्रकार मैंने अतितेजस्वी विष्णु के समस्त पापहारी तथा पवित्र अवतारों का वर्णन किया है ॥१७१॥

श्री ब्रह्ममहापुराण में विष्णु का प्रादुर्भाववर्णन नामक दो सौ तेरहवाँ अध्याय समाप्त ॥२१३॥

अध्याय २१४

नरको का वर्णन

मुनियों ने कहा—मुने ! आपके मुख से निष्सृत पवित्र तथा धर्ममय वचनभूत के पान करने से हमें सृष्टि नहीं मिलती, प्रत्युत उत्सुकता बढती ही जा रही है। आप उत्पत्ति, प्रलय तथा प्राणियों के कर्मों की गति को जानते हैं। इसलिये आपसे पूछ रहे हैं। सुनते हैं नि यमलोक का मार्ग परमदुर्गम, कष्टप्रद तथा समस्त प्राणियों के लिये सतत भयावह है। दस्तावेजों में श्रेष्ठ ! कैसे उस मार्ग से प्राणी यमलोक जाते हैं ? उस मार्ग का वितना प्रमाण है ? हमें बतलाइये। सर्वज्ञ ! मुने ! हम पूछते हैं। आप पूर्णतः सब बतलाइये। मुने ! किस उपाय, दान, धर्म तथा नियम के करने से नरकों के दुःख मनुष्यों को प्राप्त नहीं होते ? मनुष्यलोक तथा

केनोपायेन दानेन धर्मेण नियमेन च । मानुषस्य च ग्राम्यस्य लाकस्य कियदन्तरम् ॥६॥
'कयं च स्वर्गातिं यान्ति नरकं केन कर्मणा । स्वर्गस्यानानि कियन्ति कियन्ति नरकाणि च ॥७॥
कयं सुकृतिनो यान्ति कयं दुष्कृतकारिणः । किं रूपं किं प्रमाणं वा को वर्णस्तूभयोरपि ॥
जीवस्य नोयमानस्य यमलोके' ब्रवीहि नः ॥८॥

व्यास उवाच

शृणुध्वं मुनिशार्दूल वदतो मम सुदृताः । संसारचक्रमजरं स्थितिर्यस्य न विद्यते ॥९॥
सोऽहं वदामि वः सर्वं यममार्गस्य निर्णयम् । उत्क्रान्तिकालादारभ्य यथा नाग्यो वदिष्यति ॥१०॥
स्वर्ग्यं चैव मार्गस्य यन्मां पुच्छ्य सत्तमाः । यमलोकस्य चाध्वानमन्तरं मानुषस्य च ॥११॥
योऽनानां सहस्राणि पडशतिस्तदन्तरम् । तप्तताम्रमिवाऽऽतप्तं तदध्वानमुदाहृतम् ॥१२॥
तदवश्यं हि गन्तव्यं प्राणिभिर्जैवसंज्ञकं । पुण्यापुण्यकृतो यान्ति पापान्पापकृतोऽधमा ॥१३॥
द्वाविंशतिश्च नरका यमस्य विषये स्थिता । येषु दुष्कृतकर्माणो विपच्यन्ते पृथक्पृथक् ॥१४॥
नरको रौरवो रौद्रः शूकरस्ताल एव च । कुम्भीपाको महाघोरः शात्मलोऽय विमाह्नः ॥१५॥
कौटोवः कुम्भिशङ्खना (ला) लाभक्षो भ्रमस्तथा । नद्यः पूषवहाश्चाग्न्या रुधिराग्भस्तथैव च ॥१६॥
अग्निज्वाला महाघोरः संदंशः शुनभोजनः । घोरा वैतरणी चैव असिपत्रधनं तथा ॥१७॥
न तत्र वृक्षच्छाया वा न तडागा सरांसि च । न वाप्यो दीपिका वाऽपि न कूपो न प्रपा सभा ॥१८॥

यमलोक में कितना अन्तर है ? कैसे स्वर्ग मिलता है ? जिस वर्ग से नरक प्राप्त होता है ? स्वर्गस्थान कितने है ? नरक कितने हैं ? घर्मात्मा कैसे जाते हैं ? पापी कैसे जाते हैं ? उनका क्या रूप है ? क्या प्रमाण है ? दानों का वर्ण कैसे होना है ? यमलोक की लिये जाते हुए जीव के बारे में भी हमें बताइए ॥१-८॥

व्यास ने कहा—सुवर्तियों ! मुनिश्रेष्ठों ! मुझसे सुनिये । संसारचक्र अजर है, जिसकी स्थिति नहीं है । इसलिए मैं यममार्ग का निर्णय मरणकाल से लेकर बतलाता हूँ, जैसा कि कोई नहीं कह सकेगा ॥९-१०॥ मार्ग का स्वरूप, जो आपने मुझसे पूछा है, बतलाता हूँ । यमलोक तथा मनुष्यलोक में छियासी हजार योजन का अन्तर है । यमलोक का मान तबे तबि ने समान सतप्त कहा गया है ॥११-१२॥ जीव सत्रय प्राणी वहाँ अवश्य जाते हैं । पुण्यात्मा पवित्र ताल को जाते हैं और पापी पापलोक को । यम के राज्य में बाईस नरक हैं, जिनमें पूषक-पृथक् दुष्कर्मी जीव सताये जाते हैं ॥१३-१४॥ जैसे नरक, रौरव, रौद्र, शूकर, ताल, कुम्भीपाक, महाघोर, शात्मल, विमाह्न, कौटोव, कुम्भिशङ्ख, लाभक्ष, भ्रम, घीप बहाने वाली नदियाँ, शाणित रूप जल वाली नदियाँ, अग्निज्वाला, महाघोर, संदश, शुनभोजन, भयंकर वैतरणी तथा असिपत्रधन ॥१५-१७॥ वहाँ न वृक्षों की छाया, न बाकलियाँ, न सरोंवर, न तालाव, न कुआँ, न प्याऊ, न समा, न मण्डप, न घर, न नदियाँ, न पर्वत ही हैं । यम के मार्ग में कोई विधाय स्थान

११ कर्मणा केन नरक स्वर्ग वा मनुजान् मुने । स्व० । १२ स्व नियमात्तस्य । १३ लोके व्र० ।
१४ न न एव मार्ग उदाहृतः । त० । १५ न सत्रये । पु० । १६ महारौद्रः । १७ न नदी प्लवाः । न ।

एताश्च योगेश्वरयोगमाया, श्रुत्वा नरो मुच्यति सर्वपापैः ।

ऋद्धि समृद्धि विपुलाश्च भोगान्प्राप्नोति शीघ्र भगवत्प्रसादात्

॥१७०॥

एव मया मुनिश्रेष्ठा विष्णोरमिततेजसः । सर्वपापहरा पुण्या प्रादुर्भावा प्रकीर्तिता ॥१७१॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे विष्णो प्रादुर्भावानुकीर्तन नाम

त्रयोदशाधिकद्विशततमोऽध्याय ॥२१३॥

अथ चतुर्दशाधिकद्विशततमोऽध्यायः

नरकवर्णनम्

मुनय ऊचुः

न तृप्तिमधिगच्छान् पुण्यधर्माभूतस्य च । मुने त्वन्मुखगीतस्य तथा कौतूहलं हि न ॥१॥

उत्पत्तिं प्रलयं चैव भूतानां कर्मणो गतिम् । वेत्ति सर्वं मुने तेन पृच्छानस्तथा महामतिम् ॥२॥

श्रूयते यमलोकस्य मार्गं परमदुर्गमं । दुःखकलेशकरं शब्दस्त्वसर्वभूतभयावहं ॥३॥

कथं तेन नरा यान्ति मार्गेण यमसादनम् । प्रमाणं चैव मार्गस्य ब्रूहि नो वदता वर ॥४॥

मुने पृच्छाम सर्वज्ञ ब्रूहि सर्वमशेषतः । कथं नरकदुःखानि भाऽऽप्नुवन्ति नरान्मुने ॥५॥

हा जाता है और वा घृहा भगवत्कृपा से ऋद्धि समृद्धि तथा विपुल भाग्य को प्राप्त करता है ॥१६५ १७०॥

मुनिवर । इस प्रकार मैंने अतिवेजस्वी विष्णु के समस्त पापहारी तथा पवित्र अवतारों का वर्णन किया है ॥१७१॥

श्री ब्रह्ममहापुराण मे विष्णु का प्रादुर्भाववर्णन नामक दो सौ तेरहवा अध्याय समाप्त ॥२१३॥

अध्याय २१४

नरको का वर्णन

मुनियों ने कहा—मुने ! आपके मुख से निःसृत पवित्र तथा धममय ध्वन्याभूत क पान करने से हमें तृप्ति नहीं मिलती प्रत्युत उन्मुक्ता बढती हा जा रहा है । आप उत्पत्ति प्रलय तथा प्राणियों क कर्मों का गति को जानते हैं । इसलिये आपसे पूछ रहे हैं । मुने हैं कि यमलोक का मार्ग परमदुर्गम वण्टप्रद तथा समस्त प्राणियों के लिये सतत भयावह है । शक्ताओं मे श्वष्ट । कैसे उस मार्ग से प्राणः यमलोक जाते है ? उस मार्ग का कितना प्रमाण है ? हमें बतलाइये । सबसे । मुने ! हम पूछते हैं । आप प्रणत सब बतलाइये । मुने ! किस उपाय दान धर्म तथा नियम के करने से नरकों के दुःख मनुष्यों को प्राप्त नहीं होते ? मनुष्यलोक तथा

केनोपायेन दानेन धर्मेण नियमेन च। मानुषस्य च याम्यस्य लाकस्य कियदन्तरम् ॥६॥
‘कयं च स्वर्गाति यान्ति नरकं केन कर्मणा। स्वर्गस्यानानि कियन्ति कियन्ति नरकाणि च ॥७॥
कयं मुकृतिनो यान्ति कयं दुष्कृतकारिणः। किं रूपं किं प्रमाणं वा को वर्णस्तूभयोरपि ॥
जीवस्य’ नीयमानस्य यमलोकं’ ब्रवीहि नः ॥८॥

व्यास उवाच

शृणुध्वं मुनिशार्दूला धवतो यम सुवताः। संसारचक्रमजरं स्थितिर्यस्य न विद्यते ॥९॥
सोऽहं वदामि वः सर्वं यममार्गस्य निर्णयम्। उत्क्रान्तिकालादारम्य यया नान्यो वदिष्यति ॥१०॥
स्वरूपं चैव मार्गस्य यन्मां पृच्छय सत्तमा। यमलोकस्य चाध्वानमन्तरं मानुषस्य च ॥११॥
योजनानां सहस्राणि षडशोतिस्तदन्तरम्। तत्पताग्रमिवाऽऽसत्पतं तदध्वानमुदाहृतम् ॥१२॥
तदवश्यं हि गन्तव्यं प्राणिभिर्जीवसंज्ञकैः। पुष्पागुण्यकृतो यान्ति पापात्पापकृतोऽधमाः ॥१३॥
द्वाविंशतिश्च नरका यमस्य विषये स्थिताः। येषु दुष्कृतकर्माणो विपच्यन्ते पृथक्पृथक् ॥१४॥
नरको रौरवो रौद्रः शूकरस्ताल एव च। कुम्भीपाको महाघोरः शाल्मलोऽय विमाहन ॥१५॥
कोटादः कृमिभक्षश्च ना(ला)लाभशो ग्रमस्तथा। नद्यः पूयवहाश्चान्या एधिराम्भस्तथैव च ॥१६॥
अग्निज्वाला महाघोरः संदशः शुनभोजनः। घोरा वंतरणी चैव असिपत्रवनं तथा ॥१७॥
न तत्र वृक्षच्छाया वा न तडागाः सरांसि च। न वाप्यो दीधिका वाऽपि न कूपो न प्रपा सभा ॥१८॥

यमलोक में कितना अन्तर है? कैसे स्वर्ग मिलता है? किस कर्म से नरक प्राप्त होता है? स्वर्गस्थान कितने हैं? नरक कितने हैं? धर्मात्मा कैसे जाते हैं? पापी कैसे जाते हैं? उनका क्या रूप है? क्या प्रमाण है? दानों का वर्ण कैसा होता है? यमलाक को लिये जाते हुए जीव के बारे में भी हमें बताइए ॥१-८॥

व्यास ने कहा—सुनतियों! मुनिश्रेष्ठी! मुझसे सुनिये। संसारचक्र अजर है, जिसकी स्थिति नहीं है। इसलिए मैं यममार्ग का निर्णय मरणपाल से लेकर बतलाता हूँ, जैसा कि कोई नहीं कह सकेगा ॥९-१०॥ मार्ग का स्वरूप, जो आपने मुझसे पूछा है, बतलाता हूँ। यमलोक तथा मनुष्यलोक में छियासी हजार योजन का अन्तर है। यमलोक का मार्ग तपे क्षत्रि के समान सत्पत्त नहीं गया है ॥११-१२॥ जीव सन्नक प्राणी वहाँ अवश्य जाते हैं। पुष्पात्मा पवित्र लाव को जाते हैं और पापी पापलोक का। यम के राज्य में बाईस नरक हैं, जिनमें पृथक्-पृथक् पुष्पात्मा पवित्र लाव को जाते हैं ॥१३-१४॥ जैसे नरक, रौरव, रौद्र, शूकर, ताल, कुम्भीपाक, महाघोर, शाल्मल, विमाहन, कोटाद, कृमिभक्ष, लालाभक्ष, ग्रम, पीप वहाने वाली नदियाँ, शोणित रूप जल वाली नदियाँ, अग्निज्वाला, महाघोर, संदश, शुनभोजन, मयकर वंतरणी तथा असिपत्रवन ॥१५-१७॥ वहाँ न वृक्षों की छाया, न बाघलियाँ, न सरोवर, न तालाव, न कुआँ, न प्याऊ, न सभा, न मण्डप, न घर, न नदियाँ न पर्वतही हैं। यम के मार्ग में कोई विश्राम-स्थान

१ग कर्मणा केन नरक स्वर्गं वा मनुजा मुने। स्व०। २ख ०स्य नियमास्तस्य। ३ख ०लोके प्र०।
४क ०। न एतन्मात्र उदाहृत। ५ग ०संक्षये। पु०। ६क महारौद्रः। ७क न नदी प्लवा। न।

न मण्डपो नाऽऽयतनं न नद्यो न च पर्वताः। न किञ्चिदाश्रमस्थानं विद्यते तत्र वर्तन्ति॥११॥
 यत्र विश्रमते श्रान्तः पुण्योऽतीव कषितः। अवश्यमेव गन्तव्यः स सर्वेऽस्तु महापथः॥१२॥
 प्राप्ते काले तु संत्यज्य सुहृद्बन्धुधनादिकम्। क्षरायुजाण्डजाश्चैव स्वेदजाश्चोद्भिजास्तथा॥१३॥
 जङ्गमाजङ्गमाश्चैव गमिष्यन्ति महापथम्। देवासुरमनुष्यैश्च बंधवस्वतवशानुगैः॥१४॥
 स्त्रीपुंनृपुंसकैश्चैव पृथिव्यां जीवसंज्ञितैः। पूर्वाह्णे चापराह्णे वा मध्याह्ने वा तथा पुनः॥१५॥
 संध्याकालेऽर्धरात्रे वा प्रत्यूषे वाऽप्युपस्थिते। वृद्धैर्वा मध्यमेर्वाऽपि यौवनस्यैस्तथैव च॥१६॥
 गर्भवासेऽथ बाल्ये वा गन्तव्यः स महापथः। प्रवासस्यैर्गृहस्यैर्वा पर्वतस्यैः स्थलेऽपि वा॥१७॥
 क्षेत्रस्यैर्वा जलस्यैर्वा गृहमध्यगतैस्तथा। आसीनैश्चास्थितैर्वाऽपि शयनीयगतैस्तथा॥१८॥
 जाग्रद्विर्वा प्रसुप्तैर्वा गन्तव्यः स महापथः। इहानुभूय निर्दिष्टमायुर्जन्तुः स्वयं तदा॥१९॥
 तस्यान्ते च स्वयं प्राणैरनिच्छन्नपि मुच्यते। जलमग्निविषं शस्त्रं क्षुद्रव्याधिः पतनं गिरेः॥२०॥
 निमित्तं किञ्चिदासाद्य देहो प्राणं विमुच्यते। विहाय सुमहत्कृत्स्नं शरीरं पाञ्चभौतिकम्॥२१॥
 अन्यच्छरीरमादत्ते यातनीयं स्वकर्मजम्। दृढं शरीरमाप्नोति सुखदुःखोपभुक्तये॥२२॥
 तेन भुङ्क्ते स ऋच्छ्राणि पापकर्ता नरो भुजम्। सुखानि धार्मिको हृष्ट इह नीतो यमक्षये॥२३॥
 ऊष्मा प्रकुपितः काये शौत्रावायुसमोरितः। भिनत्ति मर्मस्थानानि क्षीप्यमानो निराधनः॥२४॥
 उदानो नाम पवनस्ततश्चोर्ध्वं प्रवर्तते। भुज्यता (क्ताना) सम्बुभक्ष्याणामधोगतिनिरोधकृत्॥२५॥

मही है, जहाँ अत्यन्त चलने से श्रान्त जीव आराम नरे। उस महापथ से सबको प्रयाण करना ही पड़ता है॥१८-२०॥
 बाल पहुँचने पर भित्र, बन्धु, धन आदिको छोड़कर क्षरायुज, अण्डज, स्वेदज, उद्भिज, स्यावर, जगन-समी महापथ से जाते हैं॥२१॥ वैश्वत (मनु) के अनुयायी देव, राक्षस, मनुष्य, स्त्री, पुरुष, नृपसक तथा पृथ्वी पर जितने जीव-संज्ञक प्राणी हैं, वृद्ध या मध्यवयस्क या युवक या गर्भवासी या बालक होकर वे सब पूर्वाह्ण में या अपराह्ण में या मध्याह्ण में या संध्याकाल या आधी रात को या प्रातःकाल उस महापथ पर जाते हैं। प्रवास में, गृह में, पर्वत पर, स्थल में, क्षेत्र में, जल में तथा गृह-मध्य में रहते, बैठते, खड़े होते, शय्या पर जाते, जागते तथा सोते हुए प्राणी उक्त महापथ पर जाते हैं॥२२-२६॥ यहाँ निर्धारित आयु तक भोग करके स्वयं न चाहता हुआ भी प्राणी प्राणी से मुक्त हो जाता है। जल, अग्नि, विष, शस्त्र, मूल, व्याधि, पर्वत-पतन—इनमें से किसी निमित्त को प्राप्त कर जीव प्राणी से मुक्त हो जाता है और अग्नि महान् पाञ्चभौतिक शरीर को त्याग कर अपने कर्मों से उत्पन्न अन्य यातना-शरीर को प्राप्त करता है। सुख-दुःख के उपभोग के लिए दृढ शरीर प्राप्त होता है॥२७-३०॥ उसी से पापी मनुष्य यमालय में लाया जाने पर अत्यन्त कष्ट भोगता है और धर्मात्मा मनुष्य प्रसन्न होकर सुख भोगता है॥३१॥ शरीर में तीव्र वायु द्वारा प्रेरित गर्मी बढ़ जाती है और जलते हुए अग्नि की तरह मर्मस्थानों को पकाने लगती है॥३२॥ तब साये-पिये हुए मक्ष तथा जल की अधोगति को रोककर उदान नामक वायु ऊपर की ओर बढ़ता जाता

ततो येनान्बुदानानि कृतान्पद्मरसास्तथा । दत्ताः स तस्यामाह्लादमापदि प्रतिपद्यते ॥३४॥
 अन्नानि येन दत्तानि श्रद्धापूतेन चेतसा । सोऽपि तृप्तिमवानोति विनाऽप्यन्नेन वै तदा ॥३५॥
 येनानूतानि नोक्तानि प्रीतिभेदः कृतो न च । आस्तिकः श्रद्धाधानश्च सुखमृत्युं स' गच्छति ॥३६॥
 देवब्राह्मणपूजायां निरताश्चानसूयकाः । शुक्ला वदान्या ह्योमन्तस्ते नराः सुखमृत्यवः ॥३७॥
 यः कामान्नापि संरम्भात् द्वेषाद्धर्ममृत्युञ्जेत् । यथोक्तकारी सौम्यश्च स सुखं मृत्युमुच्छति ॥३८॥
 वारिदास्तृषितानां ये क्षुधिताभ्रप्रदायिनः । प्राप्नुवन्ति नराः काले मृत्युं सुखसमन्वितम् ॥३९॥
 शोतं जयन्ति धनदास्ताप'चन्दनदायिनः । प्राणज्ज्ञी' वेदनां कष्टां ये 'चान्योद्वेगधारिणः' ॥४०॥
 मोहं ज्ञानप्रदातारस्तथा दीपप्रदास्तमः । कूटसाक्षी मृषावादी यो' गुरुर्ननुशास्ति वै ॥४१॥
 ते मोहमृत्यवः सर्वे तथा ये वेदनिन्दकाः । विभो'विषाः भूतिगन्धाः कूटमुद्गरपाणयः ॥४२॥
 आगच्छन्ति' दुरात्मानो यमस्य पुरुषास्तथा' । प्राप्तेषु दूषयं तेषु जायते तस्य शेषयुः ॥४३॥
 कन्दत्यविरतः सोऽय भ्रातृमातृपितृस्तथा । सा तु घागस्कृता विप्रा एकवर्णा विभाव्यते ॥४४॥
 दृष्टिविग्राम्यते' प्रासात्कासावृष्ट्यय (विष्टम) थाऽननम्' । ततः स घेदनाविष्टं तच्छरीरं
 विमुञ्चति ॥४५॥

है । जो मनुष्य अन्नदान तथा जलदान किये रहता है, उसे वह दत्त वस्तु उस विपत्ति में आनन्द देता है । जिसने पवित्र चित्त से श्रद्धापूर्वक अन्नदान किया है, उसे बिना अन्न के भी उस समय तृप्ति मिलती है ॥३३-३५॥ जो बसत्य नहीं बोलता, प्रीतिभेद नहीं करता तथा आस्तिक एवम् श्रद्धालु है, वह सुख से मृत्यु प्राप्त करता है ॥३६॥ जो मनुष्य देव-ब्राह्मणों की पूजा में निरत रहता है, किसी से डाह नहीं करता तथा स्वच्छ, दानी एवम् लज्जाशील है उसकी मृत्यु सुखपूर्वक होती है ॥३७॥ जो न इच्छा से, न कठिनाई से, न द्वेष से ही धर्म का परित्याग करता है और शास्त्रविहित धर्म करता है तथा सौम्य है, वह सुख से मरता है ॥३८॥ जो नर व्यासे को जल तथा मूत्र को अन्न देता है, वह समय आने पर सुखपूर्वक मृत्यु प्राप्त करता है ॥३९॥ धन देने वाले सदाँ को जीतते हैं, चन्दन देने वाले धर्मी को जीतते हैं और दूधरे के उद्गम को दूर करने वाले जन प्राणनाशिनी वेदना को पार कर लेते हैं । ॥४०॥ ज्ञानदाता मोह को, तथा दीपदाता अंधकार को पार करता है । मिथ्या गवाही देने वाले, असत्यवादी तथा वेदनिन्दक व्यक्ति मोह से मृत्यु प्राप्त करते हैं । मयकर, दुर्गन्ध तथा मुद्गर हाथों में लिये यम के दुरात्मा पुरुष उनके पास आते हैं, जिन्हें देखते ही वे नापने लगते हैं ॥४१-४३॥ तब वे माई, भाता, पिता आदि के नाम लेकर बिल्लाने लगते हैं । विप्रवृन्द' उनकी वह अस्कृष्ट वाणी एकाक्षर-सौ प्रतीत होती है ॥४४॥ ठर से आँखें धूमने लगती हैं और मुँह लारों की वृष्टि करने लगता है, तब वे वेदनायुक्त शरीर को छोड़ देते हैं और वायु से प्रेरित होकर दूसरे शरीर को प्राप्त करते हैं । वह शरीर माता-पिता से उत्पन्न नहीं होता । वह केवल कर्म-मोग के लिये

१ग समुच्छ० । २क ०५ पवन० । ३क प्राणितो । ४क प्राणिनो । ५क धान्योद्वेगधारि०
 ५ग ०गकारि० । ६क योऽधर्ममनु० । ७ग ०च्छन्तो दु० । ८क. ०स्तदा । प्रा० । ९क ०भ्रातृन्तेत्रा सा
 कासोच्छ्वासेन शेषितम् । १०क ०म् । अन्तश्च वै ।

वाय्वप्रसारी तद्रूपदेहमन्यत्प्रपद्यते । तत्कर्मयातनार्थं च न मातृपितृसंभवम् ॥४६॥
 'तत्प्रमाणवयवस्यासंस्थानेः' प्राप्यते व्यथा । ततो दूतो यमस्याथ पाशैर्बध्नाति दारणः ॥४७॥
 जन्तोः संप्राप्तकालस्य वेदनातस्य' वै भृशम् । भूतैः संत्यक्तदेहस्य कण्ठप्राप्तानिलस्य च ॥४८॥
 'शरीराच्छ्वावितो जीवो रोरवीति तथोत्पन्नम् । निर्गतो वायुभूतस्तु' पादकोशिककलेवरे ॥४९॥
 मातृभिः पितृभिश्चैव घातृभिर्मातुलैस्तथा' । दारैः पुत्रवैयस्यैश्च' गुह्यमिस्त्यज्यते भुवि ॥५०॥
 दृश्यमानश्च तद्वर्तिनैरभ्युपगम्यैर्भृशम् । स्वशरीरं समुत्सृज्य वायुभूतस्तु गच्छति ॥५१॥
 अन्यकारमपारं च' महाघोरं तमोवृतम् । सुखदुःखप्रदातारं दुर्गमं पापकर्मणाम् ॥५२॥
 दुःसहं च दुरन्तं' च दुर्निरीक्षं दुरासदम् । दुरापमस्तिदुर्मं च पापिष्ठानां सदाऽहितम् ॥५३॥
 कृष्यमाणाश्च' तैर्भूतैर्याम्यैः पातैस्तु सयताः । मुद्गरैस्ताड्यमानाश्च नोयन्ते' तं महापथम् ॥५४॥
 क्षीणायुषं समालोक्य प्राणिनं चाऽप्युपक्षये । निनीयवः समायाजन्ति यमदूता भयङ्कराः ॥५५॥
 आरूढा यानकाले तु ऋक्षव्याघ्रधरेषु च । उद्धृष्टेषु वानरेष्वग्रे वृद्धिर्चक्रेषु बृषेष्ु च ॥५६॥
 उलूकसर्पंमार्जारं तथाऽप्ये गृध्रवाहनाः । श्येनशृगालमालुढाः' सरघाकञ्जवाहनाः ॥५७॥
 ब्राह्मणशुवेतालमहिषास्यास्तथा परे । नानारूपधरा घोराः सर्वप्राणिभयंकराः ॥५८॥

मिलता है ॥४५-४६॥ उस शरीर में नी कर्मनुसार अवस्था प्राप्त कर जीव कण्ठ नोगत हैं । सब समय पूर्ण होने पर वेदना से पीड़ित जीव के शरीर को पञ्चभूत छोड़ देते हैं और प्राणवायु बण्ठगत हो जाता है । उसी समय यमदूत उसे भयकर जाल में बाँध देता है । शरीर से मुक्त जीव बहुत जोर से रोने लगता है । छह कालों से युक्त शरीर से वायुभूत जीव के निकल जाने पर माता, पिता, भाई, मामा, स्त्री, पुत्र, मित्र तथा गुरु उसका पृथ्वी पर छोड़ देते हैं ॥४७-५०॥ वे लोग दीन होकर अधुपूर्य नेत्रों से देखते ही रहते हैं, पर वह वायुभूत जीव अपने शरीर को छोड़कर चल पड़ता है ॥५१॥ तिमिराच्छादित, पाररहित, महाघोर, सुखदुःखदाता, पापियों के लिए दुर्गम, दुःसह, दुष्पार, दुर्निरीक्ष, भीषण, अतिदुर्ग तथा पापिष्ठों के लिये सदा अहितकर उस महापथ पर यमदूत जीव को जाल में दृढ़ता से बाँध कर मुद्गर से पीटते हुए ले जाता है । आयु के क्षय होने पर क्षीणायु प्राणियों को देखकर उसे ले जाने की इच्छा से भयकर यमदूत आते हैं ॥५२-५५॥ रीछ, बाघ, गधा, ऊँट, बिच्छू, भेड़िया, उल्लू, साँप, बिल्लाड, गीध, बाज, छिपार, मयमकड़ी, सफेद बाल आदि चाहनी पर चढ़कर सगस्त प्राणियों के लिये भयानक, नानारूप-धारी, सूजर पशु, वेताल तथा महिष के समान मुख वाले, लंबे अङ्कोश वाले, विकराल मँह वाले, टेढ़े, नाव वाले, तीन नेत्र वाले, महान् ठूड्डी, बपील तथा मुख वाले, लंबे दाँत वाले, अकुर के सदृश दिखले तथा विजित आकार के

१क० ममाणा व० । २क० मस्याशरीरं प्रा० । ३क० ख० मनास्तस्मात् । ४क० ख० मयावनीतोऽसौ जीवो
 रोति त० । ५ग० म्कोषिक० । ६क० ख० गुलादिभिः । दा० । ७क० म० म्दद्विस्त्य० । ८ग० त० । ९क० ख०
 मुद्गर । १०ख० तैर्दृष्टैर्वा० । ११क० म्ने यमसादनम् । १२ग० म्दाः चम्यरीक० ।

दीर्घमुष्काः करालास्या वक्रनासास्त्रिलोचनाः । 'महाहनुकपोलास्याः प्रलम्बदशनच्छदाः ॥५९॥
निर्गतविकृताकारदंशनैरङ्कुरोपमैः । मांसशोणितदिग्वाङ्गा दंष्ट्राभिर्भृशमुत्थणैः ॥६०॥
मुखैः पातालसदृशज्वलज्जिह्वैर्भयंकरैः । नेत्रैः सुविकृताकारज्वलत्पिङ्गलचञ्चलैः ॥६१॥
'मार्जारोलूकखद्योतशृङ्गोपबद्धतैः । केकरैः संकुलेस्तथैर्लोचनैः पावकोपमैः ॥६२॥
भृशमाभरणभोमैराबद्धैर्भुजगोपमैः । शोणासरलगान्धश्च मुण्डमालाविभूषितैः ॥६३॥
कण्ठस्थकृष्णसर्पेश्च फूत्कारारवभोषणैः । वह्निज्वालोपमैः केशैस्तद्वधकृतैर्भयंकरैः ॥६४॥
वध्रुपिङ्गललोचैश्च कटुदमभूतिरावृताः । भुजदण्डैर्महाघोरैः प्रलम्बैः परिघोपमैः ॥६५॥
केचिद् द्विबाहवस्तत्र तथाऽन्ये च चतुर्भुजाः । द्विरष्टबाहवश्चान्ये दशविंशभुजास्तथा ॥६६॥
असंख्यपातभुजाश्चान्ये केचिद्बाहुसहस्रिणः । आयुर्धैर्विकृताकारैः प्रज्वलद्भिर्भयानकैः ॥६७॥
शक्तितोमरचक्राद्यैः सुदीर्घैर्विधायुधैः । पाशशृङ्खलदण्डैश्च भोषयन्तो महाबलाः ॥६८॥
आगच्छन्ति महारौद्रा मर्त्यानामापुयः क्षये । ग्रहीतुं प्राणिनः सर्वं यमस्याऽऽज्ञाकरास्तथा ॥६९॥
यत्तच्छरीरमावृत्ते यातनीयं स्वकर्मजम् । तदस्य नीयते जग्तोर्यमस्य सदनं प्रति ॥७०॥
यदप्या तत्कालपाशैश्च निगडैश्चभृङ्गलैः । ताडयित्वा भृशं नृद्वेर्नीयते यमकिंकरैः ॥७१॥
प्रस्रवन्तं वदन्तं च आक्रोशन्तं मुहुर्मुहुः । हा तासं मातं पुत्रेति वदन्तं कर्मदूषितम् ॥७२॥

दांतो बाले, मांस तथा शोणित से यद्ये'अगो बाले, अत्यन्त तीक्ष्ण दंष्ट्रा बाले, पाताल सदृश मुख बाले, जलती हुई जिह्वा बाले, चञ्चल, पीत तथा विकृताकार नेत्र बाले, विलाड, उल्लू, जुगनू, तथा वीर बहूटी के समान उदित आँखो बाले, अग्नि के समान धमकीले, ऐंसे, सर्काण तथा निर्दिशेय नेत्रा बाले सर्प के समान भ्रंशण भूषणो से आवड, लाल तथा कर्कश शरीर बाले, मुण्ड-मालाओ से विभूषित, भयवर 'पुत्कार' शब्द करने बाले, कृष्ण तपों को गले में धारण करने बाले, अग्निज्वाला तुल्य, कृश, भयवर तथा अचल वेश बाले, चबल तथा धूरे एवम् पीत रंग की दाढ़ी मूळो से आवृत और महामयवर तथा भाले में समान लम्बी भुजा बाले दमदूत आते हैं ॥५९-६५॥ उनमें कोई दो बाँहें बाले, कोई चार भुजा बाले, कोई सत्तह भुजा बाले, कोई तीस (या दस) भुजा बाले, कोई हजार भुजा बाले और कोई असंख्य भुजा बाले होते हैं ॥६६॥ अज्ज्वल्यमान, भयानक तथा विविध आकार के अस्त्र-शस्त्रो से, देदीप्यमान शक्ति, तोमर, चक्र आदि विविध आयुधो से पाश, साँवल तथा दण्डो से डराते हुए महादाहण धमदूत मृत्युलाववासियो के आयु क्षय होने पर प्राणियो को पकड़न के लिये आते हैं ॥६७-६९॥ जब अपने कर्मी से उत्पन्न यातना-शरीर को प्राप्त करता है और वह यमालय ले जाया जाता है ॥७०॥ साँवलो तथा बाल-पाशो से बाँध कर अत्यन्त क्रुपित यमकिंकर पीटते हुए उसे ले जाते हैं ॥७१॥ बिरते, रोते, बार-बार जिल्लाते और 'हा पिता, माता, पुत्र' बालते हुए दुष्कर्मी जब का तीक्ष्ण, शूल, मुद्गर, अत्यन्त तेज तलवार तथा शक्ति के प्रहारो से एवम्

१क. ०कपाला०। २क ख ०त्रापरिवोदगै। ३क ०भूपमै। ४०। ४क ख थापहस्ता।

५क ख गृहीत्वा। ६क र तदाऽन्य। ७क ०रै। इत्वा वज्रमय कायमाशो०। ८क मुहुर्मंदे। ९ग ०त पुन भातेति। हा बलनेति चासकृत्। आ०।

आहत्य निशितैः शूलैर्मुद्गरैर्निशितैर्धनैः । खड्गशक्तिप्रहारैश्च यज्रदण्डैः सुदारुणैः ॥७३॥
 भत्स्यमानो महाराजैर्वैजयन्तसमन्वितैः । एकैकशो भृशं क्रुद्धैस्ताडयद्भिः समन्ततः ॥७४॥
 स मुह्यमानो दुःखात् प्रतपञ्च इतस्ततः । आकृष्य नीयते जन्तुरध्वान सुभयंकरैः ॥७५॥
 कुशकण्टकवल्मीकशङ्खपाषाणशंकरैः । तथा प्रदीप्तज्वलने 'क्षारवज्रशतोत्कटे ॥७६॥
 प्रदीप्तादित्यतपतेन दह्यमानस्तदंशुभिः । क्रुध्यते यमदूतैश्च शिवांसनादभीषणैः ॥७७॥
 विकृष्यमाणस्तर्धोरभक्ष्यमाणः शिवाशतैः । प्रयाति दारुणं मार्गं पापकर्मा यमालयम् ॥७८॥
 ववचिद्भूतैः ववचित्प्रस्तैः प्रस्त्रलद्भिः क्वचित्क्वचित् । दुःखेनाऽक्रन्दमानैश्च गन्तव्यः स महापथः ॥७९॥
 निर्भत्स्यमानैरुद्विग्नैर्विदूतैर्भयविह्वलैः । कम्पमानशरीरैस्तु गन्तव्यं जीवसंज्ञकैः ॥८०॥
 कण्टकाकीर्णमार्गेण संतप्तसिकतेन च । दह्यमानैस्तु गन्तव्यं नरैर्दानविजितैः ॥८१॥
 मेव शोणितदुर्गन्धैर्वेस्तगात्रैश्च पूगशः । 'दग्धस्फुटवद्वाऽऽकीर्णगन्तव्यं जीवघातकैः ॥८२॥
 कूजद्भिः क्रन्दमानैश्च विक्रोशद्भिश्च विस्वरम् । वेदनातैश्च सद्भिश्च गन्तव्यं जीवघातकैः ॥८३॥
 श्वितभिर्भिन्दिपालैश्च खड्गतोमरसायकैः । भिद्यद्भिरतीक्ष्णशूलाग्रैर्गन्तव्यं जीवघातकैः ॥८४॥
 श्वानैर्व्याघ्रैर्बृकैः कङ्कुभक्ष्यमाणैश्च पापिभिः ॥८५॥
 कृन्तद्भिः शक्रघातैर्गन्तव्यं मांसखादिभिः । महिषैर्भक्षुङ्गाभिर्भयमानैः समन्ततः ॥८६॥

कठोर वज्र-दण्डों से पीटते हुए यमदूत ले जाते हैं । ग्लानि करते हुए दधर-वचर तडपते हुए दुःख पीडित जीव को दग्ध-सक्ति सन्निहित महापथवा से पिकरारते हुए महाभयानक तथा अत्यन्त क्रुपित यमदूत मार्ग पर ले जाते हैं ॥७२-७९॥ कुश, वज्र, वल्मीक, शङ्ख, पत्थर तथा बालू-वण से युक्त, जाखल्यमान, सीरडों कठोर वज्र के समान उत्पट एव प्रदीप्त सूर्य-किरणों से जलते हुए मार्ग पर शूलाकी के समान भीषण नाद करने वाले यमदूत जीव को ले जाते हैं ॥७६-७७॥ यमलाद के लिये दारुण मार्ग से प्रयाण करते हुए पापकर्मी जीव को संहरों भयानक शूलाग्नियों खाती हैं और यमदूत खीचातानी करते हैं ॥७८॥ कहीं डरते हुए, कहीं तस्त होते हुए, कहीं गिरते हुए और कहीं आज्ञाएं करते हुए उस महापथ पर चलना पड़ता है ॥७९॥ उद्विग्न तथा भयविल्लस होकर पटवार खाते हुए तथा भागते हुए जीव वांछते हुए घरीर से उस महापथ पर जाते हैं ॥८०॥ दानरहित मनुष्य को संतप्त बाहुन तथा कण्टकाकीर्ण मार्ग से जाना पड़ता है । जीवहत्या करने वाले मनुष्यों को चरबी, घोंगित तथा दुर्गन्ध से युक्त एषम् जल वर फटी हुई त्वचा वाले घोर घारण कर जाना पड़ता है ॥८१-८२॥ जीवघातों को अभ्यस्त शब्द करते, खाते, और से चिल्लाते तथा वेदना से पीडित हाते हुए जाना पड़ता है । जीवघातकों को धक्का, भिन्दिपाल, तलवार, तोमर, बाण तथा रौं, ठण शूल के अक्षमाण से विद्ध होकर जाना पड़ता है । महापथ पर जाते हुए पापियों को कुत्ते, बाघ, भेड़िये तथा रुफेंड चील खाते हैं ॥८३-८५॥ मासाहारी जीवों को आरे से चिरबा कर जाना होता है । वहाँ जाते हुए मासमर्षी जीवों को चारों ओर से महिष तथा बिल साँगों से छिन्न-भिन्न करते

'उल्लिखद्भिः शूकरेश्च गन्तव्यं मांस्तथादकैः। सूचीमरकाकोलमक्षिकाभिश्च' संघशः ॥८७॥
 भुज्यमानेश्च गन्तव्यं पापिष्ठर्मघुघातकैः। विश्वस्तं स्वामिनं मित्रं स्त्रियं वा यस्तु घातयेत् ॥८८॥
 शस्त्रैर्निकृत्यमानेश्च गन्तव्यं चातुरैर्नरैः। घातयन्ति च ये जन्तूस्ताडयन्ति निरागसः ॥८९॥
 राक्षसैर्भक्ष्यमानास्ते यान्ति याम्यपयं नराः। ये हरन्ति परस्त्रीणां वरप्रावरणानि च ॥९०॥
 ते यान्ति विद्रुता नग्नाः प्रेतीभूता यमालयम्। वासो धान्य हिरण्यं वा गृहक्षेत्रमथपि वा ॥९१॥
 ये हरन्ति दुरात्मानः पापिष्ठाः पापकर्मिणः। पायाणैर्लङ्घ्येदं देस्ताड्यमानस्तु जजरैः ॥९२॥
 हृद्भिः शोणितं भूरि गन्तव्यं तु यमालयम्। ब्रह्मस्व ये हरन्तीह नरा नरकनिर्भयाः ॥९३॥
 ताडयन्ति तथा विप्रानाशोयन्ति नराधमाः। शुष्ककाष्ठनियद्वास्ते छिन्नकर्णाक्षितासिकाः ॥९४॥
 पूषशोणितदिग्धास्ते कालगृधेश्च जम्बुकैः। किकरैर्भोग्दंश्चण्डैस्ताड्यमानाश्च दाहणैः ॥९५॥
 त्रिकोशमाना गच्छन्ति पापिनस्ते यमालयम्। एव परमदुर्धर्ममन्वानं ज्वलनप्रभम् ॥९६॥
 रौरव दुर्गन्धिमं निर्दिष्टं मानुषस्य च। प्रनप्तताम्रवर्णाभिं वल्लिज्वालाहकुलिङ्गवत् ॥९७॥
 कुरण्डकण्टकाकोर्णैः पृथुविकटतडनैः। शक्तिवश्यांश्च सप्तोर्जमुग्धवल तीव्रकण्टकम् ॥९८॥
 अङ्गारवालुकामिश्रं वह्निनकीटकदुर्गमम्। ज्वालाभालाकुलं रौद्रं सूर्परश्मिप्रतापितम् ॥९९॥

है तथा सूअर भीरते हैं ॥८६॥ मधुघाती (मधुमक्खि यो को मारने वाले) पापिष्ठ जीवो को, सूई, मीरे, कौए तथा मक्खियो से आहत होकर जाना पडता है ॥८७॥ विवस्वत स्वामी, मित्र तथा स्त्री का जो मारता है, उसे शस्त्रो से आहत होकर जाना पडता है ॥८८॥ जो मनुष्य निरपराध जीवो को मारता है, उसे यमपथ पर राक्षस खाते हैं ॥८९॥ जो मनुष्य परस्त्रियो को आबनी चुरा लेता है। वह मरने पर नग्न होकर यमलोके जाता है ॥९०॥ जो दुरात्मा पापिष्ठ रूपसे, धान्य, सोने तथा वासस्थान का अपहरण करता है, वह पत्थर, हाडी तथा डडो से अजैरयात्र होकर प्रचुर शोणित बहाते हुए यमालय जाता है ॥९१-९२॥ जो नर नरक से निर्भय होकर ब्राह्मणा या घन हरण करता है और विप्रों की पीडता है, वह नराधम शूली लकड़ी से बांध दिया जाता है, उसकी आँख, कान, नाक बाँट दी जाती है, पीप तथा शोणित से उसका सर्वांग सरीर लिप्त हो जाता है, शीघ्र तथा तिवार उसे खाते हैं, प्रचण्ड तथा मयकर यमदूत उसे पीटते हैं, तब वह पापा आकाश करता हुआ यमसन जाता है ॥९३-९५॥ इस प्रकार बहू महापथ मनुष्य के लिए परम बलि, अग्नि तुल्य प्रभा वाला, निषम, भयवर तथा रौरव मरुत तुल्य बतलाया जाता है। तो तबि के तुल्य, अग्नि ग्वालाओ के वण के सदृश कुरण्ट वृक्ष के नाटा से व्याप्त दिशाल तथा विकट लाडनो (चानुका), शक्तिया तथा बखो से भरे हुए, जज्ज्वल, तीखे, नाटो से युक्त, अगार सदृश, बाल से मिश्रित, अग्निाया बीडो के धारण दुर्गम, ज्वालाओं से परिपूर्ण, मयानव तथा सूर्प किरणो से सतप्त माप पर प्राणी बरपत निष्ठुर यमदूता द्वारा पसींटा हुआ ले जाया जाता है ॥९६-९९॥ जर्भ, दुस्त्रपीडित जीव वही पिर वर राने रुडता है

१क ख उत्तिष्ठद्भि। २क ख ०कामि सहस्रश। ३ग ०मंघपा०। ४क ०न्ति घन स्त्री०। ५क मन्वा। ६ग गावो। ७क ०म्। देवद्रव्य ह०। ८क ख ०ह गुणमूर्ति तथैव च। ता०। ९क ०र्ण वृषा वि०। ग ०र्ण वृषावि०। १०ख ०टरङ्गपुरे। ११ग ०टमङ्गपुरे। १२ग ११क ख ०द दीप्तसूर्य प्र०।

अध्यायान नीयते देही कृप्यमाण सुनिष्ठुरं । यदेव ऋन्दते जतुर्दुष्पातं पतितं^१ ववचित् ॥१००॥
 तदेवाऽऽह्वयते सर्वैरामुधैर्यमैकिकरं । एव सताड्यमानश्च लुब्ध पापेषु योऽनय ॥१०१॥
 अवशो नीयते जतुर्दुधैर्यमैकिकरं । सर्वैरेव हि गन्तव्यमध्वान तत्सुदुर्गमम् ॥१०२॥
 नीयते विविधैर्घोरैर्यमदूतैरवज्ञया । नीत्वा सुदारुण भागं प्राणिन यमैकिकरं ॥१०३॥
 प्रवेक्ष्यते पुरीं घोरा साध्रायसमयीं द्विजा । सा पुरी विपुलाकारा^२ लक्षयोजनमायता ॥१०४॥
 'चतुरस्रा विनिर्दिष्टा चतुर्द्वारयती शुभरा । प्रकारा काञ्चनास्तस्या योजनायुतमुच्छ्रिता ॥१०५॥
 इन्द्रनीलमहानीलपद्मरागोपशोभिता । सा पुरी विविधं सधैर्घोरा घोरं समाकुला ॥१०६॥
 देवदानगन्धर्वैर्यक्षराक्षसपन्नगैः । पूर्वद्वारं शुभ तरया पताकाशतशोभितम् ॥१०७॥
 यच्च 'द्रोनीवैदूष्ये'मुक्ताफलविभूषितम् । शीतनृत्ये समाकीर्णं गन्धर्वोत्तरां गणे ॥१०८॥
 प्रवेशस्तेन देवानामुषोणा योगिता सया । ग यर्वसिद्धयक्षाणां विद्याधरविसर्पिणाम् ॥१०९॥
 'उत्तर नगरद्वारं घष्टाचामरभूषितम् । छत्रचामरविन्यास नानारत्नैरलंकृतम् ॥११०॥
 धीमारेणुरवं रम्यैर्गोत्रमङ्गलतादितं^३ । 'ऋषयस्ताननिर्घोषमृन्निवृन्दतमाकुलम् ॥१११॥
 विशन्ति येन धर्मता सत्यप्रवरायणा । शोभे वारिप्रसाये च शीते चाग्निप्रदानरा ॥११२॥
 ध्यान्तसवाहका य च प्रियवावरताश्च ये । ये च दानरता शूरा 'मातापितृपराश्च ये ॥११३॥

१. तम यमदूत विविध अयुजा से उडे अह्न कर देते हैं ॥१००॥ इत प्रकार पापी और अनैतिक जैद को ताड़ते हुए यमदूत के जाते हैं । उस अयुत दुःख भाग पर सबको जाना पड़ता है । द्विगण । अनेक यमदूत यमदूत प्राणी को दारुण भाग पर तिरस्कारपूर्वक के जाते हैं और अन्तर उसे लाभ-नैहमव पुरी में प्रवेश कराते हैं ॥१०१॥ १०२॥
 वह पुरी विस्तृत तावार दानी एवं गल योजन लम्बी चौकट चार द्वार पाली तथा गुरुर है । उत्तरी मुदग मय चहारदीवारी दी हवार यजन विस्तृत है ॥१०४॥ १०५॥ वह पुरी इन्द्रपुरी महान् तथा पयराय गणि से सुश्रुति विविध शेषों से यमदूत और देव दानय गायव दक्ष राक्षस तथा सन्तों से परिपूर्ण है । उत्तरा पूर्वद्वार पवित्र सैवको पताका से गमित यच्च इन्द्र नृत्य वैदूष्य आदि मणिया तथा मोतिया से विभूषित मृत्य-मृतो तथा यमव और अण्डराजा के गणा से प्रपूर्ण है ॥१०६॥ १०८॥ उग द्वार से देव ऋषि योगी यमर्षि सिद्ध, यदा तथा विद्याधरा वा प्रवेश होता है ॥१०९॥ नगर वा उत्तरद्वार घष्टा तथा चामरो से भूषित छत्र तथा नाना रत्नों से अलंकृत रत्ना बाँसुरी वा दाना तथा यम-मण्डल से रम्य ऋषेद मनुर्वेद तथा रामवेद के निर्घोष एवम् मुनि मन्द से परिब्रजता है ॥११०॥ १११॥ उग मय से यमन तथा सत्यप्रवरायण व्यक्ति प्रवेश करते हैं । जो मनुष्य यम-नृत्य म जलान और निवृत्ता से अभिमान करत हैं वे उग भाग से जान हैं ॥११२॥ ज यम मोद के सेवा करत हैं जा प्रियवरा हैं जा दान हैं जो वीर हैं जा मानु मृत मय हैं जा प्रियमय म मृत हैं और जो अनिमित्त हैं वे उग भाग से जाते हैं ॥११३॥ नन्दी वा यमिचमद्वार रत्ना वा विभूषित विविध यमिचम

१. ग पत्ते । २. विविधता । ३. मनुष्यवि । ४. ग ० र तु वर । ५. ० र । यदु ।

६. गमामावरतो । ७. मनुष्यवि । ८. ३० ।

द्विजशुभ्रपणे युक्ता नित्यं येतिथिपूजकाः। पश्चिमतु महाद्वारं पुर्या रत्नैर्विभूषितम्॥११४॥
 विविधमणिशोपानं तोमरैः समलकृतम्। भेरीमृदङ्गसंनद्धैः शङ्खकाहलनावितम्॥११५॥
 सिद्धवृन्दैः सदा हृष्टैर्मञ्जुलैः प्रणितावितम्। प्रवेशस्तेन हृष्टानां शिवभक्तिमतां नृणाम्॥११६॥
 सर्वतोऽप्यनुता ये च पञ्चाग्नेयैश्च सेवकाः। प्रस्थाने ये मृता वीरा मृताः कालंजरे गिरी॥११७॥
 आनी विपन्ना ये धीराः साधितं वैरनाशकम्। ये स्वामिमित्रलोकार्थं गोपहृते संकुले हताः॥११८॥
 ते विशन्ति नराः शूराः पश्चिमेन तपोधनाः। पुर्या तस्या महाधोरं सर्वसत्त्वभयंकरम्॥११९॥
 हाहाकारसमाद्भुष्टं दक्षिणं द्वारमोदयाम्। अन्धकारसमायुक्तं तीक्ष्णशृङ्गैः समन्वितम्॥१२०॥
 कण्टकैर्वृश्चिकैः सपञ्चकटीटैः सुदुर्गमैः। विलुम्पद्भिर्वृक्षैर्व्याघ्रैश्च सिंहैः सज्जम्बुकैः॥१२१॥
 श्वानमार्जारगृध्रैश्च सञ्चालकवलेर्मुलैः। प्रवेशस्तेन ये नित्यं सर्वेषामपकारिणाम्॥१२२॥
 ये घातयन्ति विप्रान्नां बालं वृद्धं तथाऽऽतुरम्। धारणागतं विश्वस्तं स्त्रियं मित्रं निरायुधम्॥१२३॥
 येऽगम्यागामिनो मृदाः परद्रव्यापहरिणः। निक्षेपस्यापहर्तारो विषवहिनः प्रवाञ्च ये॥१२४॥
 परभूमिं गृहं शय्यां वस्त्राञ्छंकारहरिणः। पररक्षेव ये क्रूरा ये सदाऽनृतवादिनः॥१२५॥
 'ग्रामराष्ट्रपुरस्थाने' महाबुधप्रदा हि ये। कूटसाक्षिप्रदादातारः 'कन्याविक्रयकारकाः॥१२६॥
 अमक्षयमक्षयरता ये गच्छन्ति सुतां स्नुषाम्। मातरं पित्र च चंद्रये' वरणि च पौंड्रम्॥१२७॥

सीबिर्गो से युक्त, सीमरों से अलंकृत, बोल, मृदंग, शङ्ख तथा डमरू से युक्त और सदा प्रसन्न रहने वाले सिद्धवृन्दों से युक्त है। उस द्वार से आनन्दयुक्त शिवभक्त मनुष्यों का प्रवेश होता है ॥११४-११५॥ जो तमस्क, तीर्थ-स्नानी हैं, जो पञ्चाग्नि के उपासक हैं, जो वीर युद्ध-यात्रा में मरते हैं जो वायुज्वर पर्वत पर मरते हैं, जो अग्नि में पड़े हुए को बचाते हैं, जो स्वामी, मित्र, गो तथा दूसरों के लिये प्राण देते हैं वे तत्पर्वत तथा वीर मनुष्य पश्चिम-द्वार से जाते हैं ॥११६-११८॥ उस पुरी का दक्षिणद्वार महापाद, अखिल जीवों के लिए भयंकर, हाहाकार शब्दों से व्याप्त, तिमिरावृत, तीक्ष्ण शृंगों से समन्वित, बटि, विष्णू, शंख, वज्र तथा कीलों से अतिदुर्गम, मुहं फैलाने वाला भेडिये, बाघ, चीछ, सिंह, सिंघार, शृते, बिल्ला तथा भीमों से युक्त है। उस द्वार से नित्य पापियों का प्रवेश होता है ॥११९-१२२॥ जो ब्राह्मण, गो, बालक, वृद्ध, आतुर, धारणागत निरक्षर, स्त्री, मित्र तथा निशस्त्र व्यक्ति को मारते हैं, जो अगम्यागामी, मृदू, दूसरों के धन हरण करने वाले, धरोहर के अपहर्ता, विष तथा अग्नि डालने वाले हैं जो दूसरों के भूमि, गृह, शय्या वस्त्र तथा आभूषणों का हरण करते हैं, जो दूसरों के छिद्रान्वेषी, सदा मिथ्या-वादी, ग्राम, राष्ट्र तथा नगरी में अपद्रव भजाने वाले, मिथ्या मन्त्रार्थ देने वाले, वस्त्रा वेषने वाले तथा अमक्षयमक्षय

१४ ०५नमम०। २ग ०द शङ्खकाहलना०। ३क ख मृता ये पतने गि०। ४ल जले। ५क ग ०कार निरालोच सी०। ६क ख ०र्वेषा पाषाण०। ७ल ग्रामे पुरे निरसता। ८०। ८क ०त्रासम०। ९क ०प्रवर्धका। १०। १०क ग ०न्यावादे च येज्जुता। १०। ११ ०र दुहित०। १२ग ये गच्छन्ति स्वगामि। १०।

अध्वानं नीयते देही कृष्यमाणः सुनिष्ठुरः। यदेव क्रन्दते जन्तुर्दुःखातः पतितः। स्वचित् ॥१००॥
 तदेवाऽऽह्वयते सर्वेषामध्वर्यमधिकरः। एव संताड्यमानश्च लुब्धः पापेषु योजनयः ॥१०१॥
 अवशो नीयते जन्तुर्धुर्यमधिकरः। सर्वैरेव हि गन्तव्यमध्वानं तत्सुदुर्गमम् ॥१०२॥
 नीयते विविधैर्धुर्यमदूतरवज्रया। नीत्वा सुदारुण मार्गं प्राणिनं यमधिकरः ॥१०३॥
 प्रवेश्यते पुरीं घोरं ताप्रायसमयीं द्विजाः। सा पुरी विपुलाकारा लक्षयोजनमायता ॥१०४॥
 'चतुरस्या विनिदिष्टा चतुर्द्वारयती शुभा। प्राकाराः कान्चनास्तस्या योजनायुतमुच्छ्रिताः ॥१०५॥
 इन्द्रनीलमहानीलपद्मरागोपशोभिता। सा पुरी विविधैः सपैर्घोरा घोरैः समाकुला ॥१०६॥
 देवदानगन्धर्वैर्धुर्यमक्षराक्षपन्नयः। पूर्वद्वारं शुभं तस्याः पताकाशतशोभितम् ॥१०७॥
 यन्नेन्द्रनीलवैदूर्यमृषताफलबिभूषितम्। गीतनृत्यैः समाकीर्णं गन्धर्वस्ररसां गणैः ॥१०८॥
 प्रवेशस्तेन देवानामुपोषो योगितां तथा। गन्धर्वसिद्धयक्षाणां विद्याधरविर्सापिणाम् ॥१०९॥
 'उत्तर मगरद्वारं षष्ठाचामरभूषितम्। छत्रचामरविन्यासं नानारत्नैरलंकृतम् ॥११०॥
 घीनारेगुरवं रम्यैर्गोमयैश्च नैवितैः'। 'ऋग्यजु सामविर्षोर्वैष्ण्विन्दसमाकुलम् ॥१११॥
 विजगति येन धर्मज्ञाः सत्यव्रतपरायणाः। शोभे चारिप्रशये च शीते चाग्निप्रशानताः ॥११२॥
 धान्तसत्राहुता ये च त्रिपदादरतद्वय ये। ये च दानरताः शूरा मातापितृपराश्च ये ॥११३॥

तर्जः यमदूत विविध आयुषो से उडे आह्वन कर देते हैं ॥१००॥ इत प्रकार घाटी और अर्नतिव जीव को ताड़ते हुए यमद्वार ले जाते हैं। उक्त अत्यन्त दुर्गम मार्ग पर छत्रो जाना पड़ता है। द्विगण। अनेक भयकर यमदूत प्राणी को दारुण मार्ग पर तिरस्कारपूर्ण ले जाते हैं और अन्तर उडे साप्रन्दीहमरी पुरी में प्रवेश करते हैं ॥१०१-१०३॥ यह पुरी विस्तृत यावार वाली, एक लाख योजन लम्बी, चोरी, चार द्वार वाली तथा सुन्दर है। उत्तरी सुवर्ण-मयी, चहार दीवारी दस हजार योजन विस्तृत है ॥१०४-१०५॥ यह पुरी इन्द्रपुरी, महानील तथा पद्मराग रंग से सुशोभित, विविध सभो से भयकर और देव, दानव, गन्धर्व, यज्ञ, राक्षस तथा सभो से परिपूर्ण है। उक्त पुरी द्वार पवित्र, तीन को पताकाओं से शोभित, दश, इन्द्र, नील, वैदूर्य आदि रंगिया तथा मोतियों से विभूषित, नृत्य-गीतों तथा गणवों और अन्धराजों से गणो से श्रुण है ॥१०६-१०८॥ उक्त द्वार से देव, अग्नि, यामी, गन्धर्व, सिद्ध, यक्ष तथा विद्याधरो पर प्रवेश होता है ॥१०९॥ नगर का उत्तरद्वार षष्ठा तथा चामरों से भूषित, छत्र तथा नाना रत्नों से अलङ्कृत, रंग, बाँगी से रंगो तथा रत्न-भूषण से रम्य, ऋग्वेद, यजुर्वेद तथा सामवेद से विर्षो एवम् मुनि-वृन्द से परिष्ण है ॥११०-१११॥ उक्त मार्ग से धर्मज्ञ तथा सत्यव्रतपरायण व्यक्ति प्रवेश करते हैं। जो मातृ-प्रियमन्त्र के अज्ञान और शीतपत्र से अन्विष्ट रहते हैं, वे उक्त मार्ग से जाते हैं ॥११२॥ ज. धर्म-मार्ग की सेवा करते हैं, जो त्रिपदाय है, जो दानी हैं, जो वीर हैं, जो मानु-गि-यज्ञ हैं, जो विभवेया से मिले हैं और जो अनिपिपूज्य हैं, वे उक्त मार्ग से जाते हैं ॥११३॥ नदरी का पवित्रमगर रत्नो से विभूषित, विविध रंगमय

द्विजशूयणे युक्ता नित्यं येऽतिथिपूजकाः। पश्चिमतु महाद्वारं पुर्या रत्नैर्विभूयितम् ॥११४॥
 विचित्रमणिमोयानं तोमरैः समलंकृतम्। भेरीमूदङ्गसैनारैः शङ्खकाहलनादितम् ॥११५॥
 सिद्धवन्देः सदा हृष्टमङ्गलः प्रणिनादितम्। प्रवेशस्तेन हृष्टानां शिवभक्तिमतां नृणाम् ॥११६॥
 सर्वनोर्यल्लुता ये च पञ्चान्नेर्ये च सेवकाः। प्रस्थाने ये मृता वीरा मृताः कालंजरे गिरौ ॥११७॥
 अग्नी विपद्ना ये धीराः साधितं वरनाशकम्। ये स्वामिमित्रलोकार्थं गोपह्रे संकुले हताः ॥११८॥
 ते विशन्ति नराः शूराः पश्चिमेन तपोधनाः। पुर्या तस्या महाघोरं सर्वसत्त्वभयंकरम् ॥११९॥
 हाहाकारसमानुष्टं दक्षिणं द्वारमोदशम्। अन्धकारसमापुनत तोक्षणशृङ्गैः समन्वितम् ॥१२०॥
 कण्टकैर्वृद्धिकैः सपैर्वज्रकीटैः सुदुर्गमैः। विलुम्पद्भिर्वृकैर्व्याघ्रैर्ऋतैः सिंहैः सजम्बुकैः ॥१२१॥
 श्वानमार्जारगुध्रैश्च सख्यालकवल्गुमुखैः। प्रवेशस्तेन वै नित्यं सर्वपापप्रकारिणाम् ॥१२२॥
 ये धातयन्ति विश्रान्ता बालं वृद्धं तथाऽनुरम्। शरणागतं विश्वस्तं स्त्रियं मित्रं निरायुधम् ॥१२३॥
 पेङ्गम्यागामिनो मूढाः परद्रव्यापहारिणः। निक्षेपस्यापहर्तारो विषवह्निमप्रदाश्च ये ॥१२४॥
 परभूमिं गृह्णन्त्या वस्त्राञ्छारहारिणः। पररश्त्रेषु ये क्रूरा ये सदाऽनृतवादिनः ॥१२५॥
 'ग्रामराष्ट्रपुरस्थाने' महादुःखप्रदा' हि ये। कूटताक्षिप्रदादातारः 'कन्याविनयकारकाः ॥१२६॥
 अमक्यमक्षरता ये गच्छन्ति सुतां स्तुपाम्। मातर' विरर' चंद्रमे' वदन्ति च पौषवम् ॥१२७॥

सीडियों से युक्त, सीमरी से अलंकृत, डोल, मृदंग शख तथा डमरू से शक्तिश और सदा प्रकृत रहने वाले सिद्धबुद्धों से सुषेवित है। उस द्वार से जानन्दयुक्त शिवमन्त्र मनुष्यों का प्रवेश होता है ॥११४-११५॥ जो समस्त तीर्थ-
 स्नानी हैं, जो पञ्चाग्नि के उपासक हैं, जो वीर युद्ध-यात्रा में मरते हैं जो बालञ्जर पर्वत पर मरते हैं, जो अग्नि
 में पड़े हुए को बचाते हैं, जो स्वामी, मित्र, गोठवा दूसरा के लिये प्राण देते हैं वे तत्पत्नी तथा वीर मनुष्य परित्रम-
 द्वार से जाते हैं ॥११८॥ उस पुरी का दक्षिणद्वार महाघोर, अखिल जीवों के लिए भयंकर, हाहाकार शब्दों से
 श्याप्त, तिमिरावृत, तीक्ष्ण शृंगों से समन्वित, बटि चिह्न, साँप दन्त तथा कोंडों से अतिदुर्गम मुह पंताये उपद्रवी
 भेडिये, वाघ, चीछ, सिंह, सिंघार, कुत्ते, विलाड तथा गंधों से युक्त है। उस द्वार से नित्य पापियों का प्रवेश होता
 है ॥११९-१२२॥ जो ब्राह्मण गौ, बाल्ब वृद्ध, वानुर, शरणागत विश्वस्त, रुकी मित्र तथा नि शरत्र व्यक्ति
 को मारते हैं, जो अगम्यागामी, मूढ दूसरे के घन हरण करने वाले, घरोहर के अपहर्ता, विष तथा अग्नि डालने
 वाले हैं, जो दूसरे के भूमि, गृह दान्या वस्त्र तथा वामूषणों का हरण करते हैं, जो दूसरे के उद्रान्वेषी, सदा मिथ्या-
 वादी, ग्राम, राष्ट्र तथा नगरी में उपद्रव मचाने वाले, मिथ्या मदीह देने वाले, बन्धा वेषने वाले तथा अमक्यमक्षर

११० ०पापमम०। २१ ०द्वै दृष्टकाहलना०। २३ ख मृता ये पतने गि०। ४३ जल। ५३ ग
 ०कार निरालोच ती०। ६३ ख ०वेषा पापना०। ७३ ग्रामे पुरे निवसता। म०। ८३ ०रनासम०।
 ९३ ०श्वद्वयका। १००। १०३ ग ०न्यावादे च येजुता। १००। ११९ ०र दुहित०। १२३ ये गच्छन्ति
 स्वामिनि। १००।

अन्ये ये चैव निर्दिष्टा महापातककारिण । दक्षिण तु ते सर्वे द्वारण प्रविशन्ति वै ॥१२८॥
इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे व्यासविस्वादे यमलोकस्य भागस्वरूपारयाननिरूपण
नाम चतुदशाधिकद्विशततमोऽध्याय ॥२१४॥

अथ पञ्चदशाधिकद्विशततमोऽध्याय

दक्षिणमार्गवर्णनम्

मुनय ऊचु

कथं दक्षिणमार्गेण विशन्ति पापिनः पुरम् । श्रोतुमिच्छामः तदब्रूहि विस्तरण तपोधन ॥१॥

व्यास उवाच

सुयोध तन्महायोध द्वारं यक्ष्यामि भोक्षणम् । नानाश्लेषदत्तकीर्णं शिवाशतनिनादितम् ॥२॥
फट्काररवसपुत्रतमगम्य लोमहृषगम् । भूतप्रतपिशाचश्च घृतं चायैश्च राक्षसैः ॥३॥
एव दृष्ट्वा सुदूरान्तं द्वारं दुष्कृतकारिणः । मोहं गच्छन्ति सहस्राः प्रासादप्रलपन्ति च ॥४॥
सतस्ताञ्शूङ्खलं पार्श्वदध्ना कपयिनि निभया । ताडयन्ति च दण्डश्च भस्मयन्ति पुनः पुनः ॥५॥

करने वाले हैं जो पुत्र तथा पुत्रव्य से गर्म करते हैं जो माता पिता को कट वचन कहते हैं और जो महापातक
कारा हैं वे निश्चय ही दक्षिण द्वार से प्रवेश करते हैं ॥१२९॥

आ ब्रह्ममहापुराण में व्यास जीर श्रुतियों के सार प्रकरण में यमलोक के भागस्वरूप व्याख्यान
नामक दो सौ चौदहवाँ अध्याय समाप्त ॥२१४॥

अध्याय २१५

दक्षिण मार्ग का वर्णन

मुनियो न कथा—तप धन । पाप जन दक्षिण मार्ग से कसे पुर में प्रवेश करते हैं ? हमें यह सुनने
का इच्छा है, निस्तारपूर्वक वक्तव्य ॥१॥

व्यास न कथा—मैं उस महाधर तथा मयण द्वार के बारे में बूढ़ा । अनेक हितवै जानकारों से प्रपूर्ण
संज्ञा विचारों से गन्धर्व फेरार शब्दा से समृद्ध अवश्य र माच्यार्द्र भूत प्रत पिशाच तथा राक्षसों से
आहत दक्षिणद्वार का दूरह से देखकर दुष्कर्मी जो सहस्रा घबरा जाते हैं आ डर से बिलप वरन लगते हैं ॥२॥
तब मयण यमदूत सावला तथा पाश से लड़े बाधकर दूरे से घेरे होते हैं और धार-धार गाला देते हैं ॥५॥

लब्धसंज्ञास्ततस्ते च रधिरेण परिप्लुताः । व्रजन्ति दक्षिणं द्वारं प्रस्थलन्तः पदे पदे ॥६॥
 तीव्रकण्टकयुक्तेन शकंरानिचितेन च । सूरधारानिर्भस्तोक्षेण पापार्णनिचितेन च ॥७॥
 बवचित्पञ्चने निचिता निरुतारंश्च खातकं । लोहसूचीनिर्भेदन्तः संछन्नेन बवचित्पञ्चचित् ॥८॥
 तटप्रपातविषमैः पर्वतैर्दक्षसंकुलैः । प्रतप्ताङ्गारयुक्तेन यान्ति मार्गेण दुःखितः ॥९॥
 बवचिद्विषमगतीभिः बवचिल्लोष्टैः सुपिच्छलैः । सुतप्तवालकाभिश्च तथा तीक्ष्णंश्च शङ्कुभिः ॥१०॥
 अग्न्यङ्गादकंस्तप्तैः बवचिद्वाग्निना युनम् । बवचित्तप्तशिलाभिश्च बवचिद्व्याप्तं हिमेन च ॥११॥
 बवचिद्वालक्या व्याप्तमाकण्ठान्तःप्रवेशया । बवचिदुष्टाभ्युना व्याप्तं बवचित्कर्पाग्निना पुनः ॥१२॥
 बवचित्सिंहवृकैर्व्याप्रदेशकीटैश्च दारुणैः । बवचिन्महाजलोकाभिः बवचिदजगरैः पुनः ॥१३॥
 मक्षिकाभिश्च रोद्राभिः बवचित्सर्पविपोत्वणैः । बवचिदुष्टगजैश्चैव बलोन्मत्तैः प्रमाथिभिः ॥१४॥
 पण्यानमुल्लिखद्भिश्च तीक्ष्णभृङ्गैर्नहावृणैः । महाभृङ्गैश्च महिषैरुष्ट्रैर्मत्तैश्च खादनैः ॥१५॥
 डाकिनीभिश्च रोद्राभिविकरालैश्च राक्षसैः । व्याधिभिश्च महारोद्रैः पीड्यमाना व्रजन्ति ते ॥१६॥
 महाधूलिविषमश्रेण महाचण्डेन वायुना । महापापाणवर्षेण हन्यमाना निराश्रयाः ॥१७॥
 बवचिद्विद्युन्निपातेन क्षीयमाणा व्रजन्ति ते । महता बाणवर्षेण भिद्यमानाश्च सर्वशः ॥१८॥
 पतद्भिर्वज्रनिघातिरुक्तापातैः सुदारुणैः । प्रदोप्ताङ्गारवर्षेण दह्यमाना विदन्ति च ॥१९॥

पैतना आने पर वे जीव रक्त से लयपय होकर पग-पग पर गिरते हुए दक्षिणद्वार की जाते हैं ॥६॥ तीव्र बाँटों से युक्त, कबडों से व्याप्त, अस्तुरे की धार के समान तीक्ष्ण पत्थरो से समन्वित, बड़ी कबडों से युक्त बड़ी खाइयों से युक्त, बड़ी-बड़ी लोहे की सूई के समान दाँता से युक्त, तट-प्रवेश में विषम पर्वता तथा बृक्षों से संकुल और जाज्वल्यमान अगारों से युक्त मार्ग से दुर्लभ होकर जीव जाते हैं ॥७-९॥ बड़ी विषम बड़ों से, बड़ी पिसलने वाले पत्थरो से, तप्त वालुओं से, तीक्ष्ण छूटियों से, लोहे की तप्त कीलों से बड़ी दादागियों से, बड़ी तप्त शिलाओं से बड़ी पाले से, बड़ी बण्ड के भीतर घुसने वाली वालुओं से, बड़ी क्षुब्ध जल से बड़ी अग्नि से, बड़ी दाहक सिंह, भेड़िये, बाघ तथा हस्तेन वाले कबडों से, बड़ी बड़े-बड़े जंकों से, बड़ी अजगरों से, बड़ी भयंकर मखियों से बड़ी विष भयन करने वाले सर्पों से, बड़ी दुष्ट, बलान्मत्त तथा कुचलने वाले हाथियों से, तीव्र शीशों से मार्ग का जखाने वाले साँडों से, विशाल सींग वाले महिषों से, खा जाने वाले भनवाले ऊँटों से, भयंकर डाकिनियों से विकराल राक्षसों से और महाभयंकर व्याधियों से पीडित होते हुए जीव जाते हैं ॥१०-१६॥ बहुत धूलि मिश्रित प्रचण्ड वायु से तथा भयंकर पत्थरों की वृष्टि से आहत, निरुध्य और बड़ी विजली के घिरने से बिदीर्ण होते हुए जीव जाते हैं ॥१७॥ महान् वाणों की वृष्टि से छिन-भिन्न दारुण जल्पापात तथा बज्रप्रहारों से आहत और जाज्वल्यमान भृशारों की वृष्टि से दण्ड होते हुए जीव प्रवेश करते हैं ॥१८-१९॥ महान् धूलि-वृष्टि से भर-भर जीव रोंते हैं और भयंकर मेघ-वर्जन

महता पांशुवर्षेण पूर्वमाणा रुदन्ति च । मेघारवंः सुघोरंश्च विव्रात्यन्ते मुहुर्मुहुः ॥२०॥
 निःशेषाः शरवर्षेण चूर्ण्यमानाश्च सर्वतः । महाक्षाराम्बुधाराभिः सिच्यमाना व्रजन्ति च ॥२१॥
 महाशीतेन महता रुक्षेण परुषेण च । समन्ताद्दीर्घमाणाश्च शुष्यन्ते संकुचन्ति च ॥२२॥
 इत्थं मार्गेण पुरुषाः^१ पायेयरहितेन च । निरालम्बेन दुर्गेण निर्जलेन समन्ततः ॥२३॥
 अतिश्रमेण महता^२ निर्गतेनाऽश्रमाय वं । नीयन्ते देहिना^३ सर्वे ये मूढाः पापकर्मिणः ॥२४॥
 यमदूतमंहाघोरंस्तदाजाकारिभिर्बलात् । एकाकिनः पराधीना मित्रवन्धुविर्वाजिताः ॥२५॥
 शोचन्तः स्वानि कर्माणि रुदन्ति च मुहुर्मुहुः । प्रेतीभूता निषिद्धास्ते शुष्ककण्ठीघटतालुकाः ॥२६॥
 कृशाङ्गा भोतभीताश्च बहुचमानाः क्षुधाग्निना । बद्धाः शृङ्खलया^४ 'केचित्केचिदुत्तानपादयोः ॥२७॥
 आकृष्यन्ते शुष्यमाणा यमदूतैर्बलोकटैः । नरा अधोमुखान्दान्ये कृष्यमाणाः सुदुःखिताः ॥२८॥
 अन्नपानीयरहिता याचमानाः पुनः पुनः । देहि देहीति भाषन्तः साश्रुगद्गदया गिरा ॥२९॥
 कृताञ्जलिपुटो दीनाः क्षुत्पूष्णापरिपोडिताः । भक्ष्यानुच्चावचान्दृष्ट्वा^५ भोग्यान्पेयाश्च पुष्कलान् ॥३०॥
 सुगन्धद्रव्यसंपुक्तान्याचमानाः पुनः पुनः । 'देविसीरघ्नूतोन्मिश्रं दृष्ट्वा शाल्योद्वेगं तया ॥३१॥
 पानानि च सुगन्धीनि शीतलान्युदकानि च । तान्याचमानास्ते यान्या^६ भर्त्सयन्तस्तदाऽवबुधम् ॥
 षष्ठोभिः पर्यर्भोमा^७, क्रोधरक्तान्तलोचनाः ॥३२॥

से बार-बार नल्ल होते हैं ॥२०॥ बाघों के, बर्षा से नि सैपतया चूर-चूर होते हुए तथा अत्यन्त खारे जल के, बार-बार से सींगते हुए जीव जाते हैं ॥२१॥ बहुत ठंडी, रुखी तथा कठोर वायु से प्राणी फट जाते हैं, सूख जाते हैं तथा संकुचित हो जाते हैं ॥२२॥ इस प्रकार पायेयरहित, निरालम्ब, निर्बल तथा दुर्गम मार्ग से पार-पार मूर्ख जीव अत्यन्त १४ से महामयार यमदूतों द्वारा बलपूर्वक यमाश्रम को ले जाये जाते हैं ॥२३-२४॥ अनेके, पराधीन तथा मित्र-वन्धुआ से रहित जीव अपने-बर्षों को साबते हुए बार-बार राते हैं । प्रेत होने पर जीव दूषित हो जाते हैं; उनके कण्ठ, होठ तथा तालु सूख जाते हैं शरीर रक्षा हो जाते हैं । बलान्धत यमदूत क्षुधाग्नि से दम्ब, भयो से भ्रस्त, साबलो से बद्ध तथा शुष्क जीवों को उत्तानपाद करने छोचते हैं, कियेने जीवों को अधोमुख करके अत्यन्त दुःख देते हुए छोचते हैं ॥२५-२८॥ अन्न-जल से रहित जीव 'दा दा' कहते हुए अश्रुपूर्ण स्वर से बार-बार याचना करते हैं ॥२९॥ भूग प्यास से परितः, बित्त तथा दीन जीव प्रचुर मात्रा मे सुगन्धित द्रव्य मिश्रित भोज्य तथा पेय पदार्थों को देखकर अञ्जलिबद्ध हाकर बार-बार याचना करते हैं । दर्हा, दूध, री, चावल, भात, सुगन्धित पान पदार्थ, तथा शीतल जल—इन चीजा को देखकर जीव जीव मागत है तब मयार यमदूत आखिं लाल कर बटुवचन कहते हुए पटवारते हैं ॥३०-३२॥

याम्या ऊचुः

न भवद्भिर्हुतं काले न दत्तं ब्राह्मणेभ्यु च । प्रसन्नं दीयमानं च वारितं च द्विजातिषु ॥३३॥
तस्य पापस्य च फलं भवतीं समुपायतम् । नाम्नीदग्यं जले नष्टं न हृतं नृपतस्करं ॥३४॥
हुतो वा सांप्रतं विप्रैः यन्न दत्तं पुराऽध्वमाः । यदेतानि तु दानानि साधुभिः सात्त्विकानि तु ॥३५॥
तेषामेते प्रदृश्यन्ते कल्पिता ह्यन्नपर्वताः । भक्ष्यभोज्याश्च पेयाश्च लेह्याश्चोप्याश्च संवृताः ॥३६॥
न यूपमभिलप्स्यध्वे न दत्तं च कर्त्तव्यम् । यस्तु दत्तं हृतं चेष्टं ब्राह्मणाश्चैव पूजिताः ॥३७॥
तेषामन्नं समानीय इह निक्षिप्यते सदा । परस्वं कथमस्माभिर्दत्तं शक्येत नारकाः ॥३८॥

व्यास उवाच

किंकराणां घ्नः भुत्वा निःस्पृहाः क्षुत्तृयादिताः । ततस्ते दारुणश्चास्त्रैः पीडयन्ते यमकिंकरैः ॥३९॥
मुद्गरैर्लोहदण्डैश्च शयिततोमरपट्टिभिः । परिघैर्भिन्दिपालैश्च गदापरशुभिः शरैः ॥४०॥
पृष्ठतो हन्यमानाश्च यमदूतैः सुनिर्दयैः । अग्रतः सिंहव्याघ्राद्यैर्भक्ष्यन्ते पापकारिणः ॥४१॥
न प्रवेष्टुं न निगन्तुं लभन्ते दुःखिता भूशम् । स्वकर्म्मोपहृताः पापाः क्रन्दमानाः सुदादयाः ॥४२॥
तत्र संपीड्य सुभुजं प्रवेदं यमकिंकरैः । नीयन्ते पापिनस्तत्र यत्र तिष्ठेत्त्वयं यमः ॥४३॥
धर्मात्मा धर्मदुर्हयः सर्वसंयमनो यमः । एवं पयाऽतिकष्टेन प्राप्ताः प्रेतपुरं नराः ॥४४॥

यमकिंकर बोले—समय पर न तुमने हवन किया न ब्राह्मणों को दान दिया, प्रत्युत विप्रों को दिये जाने वाले दान को तुमने हठात् रोक दिया । उतनी पाप का फल तुम्हें मिला है । मीचों ! तुम्हारा घन अग्नि में नहीं जला था, जल में नष्ट नहीं हुआ था और राजा तथा बोरों ने भी नहीं लिया था, फिर भी तुमने ब्राह्मणों को नहीं दिया । इसलिए अभी वहाँ से मिलेगा ? जिन घायुओं ने सात्त्विक दान दिये थे, उनके लिये ये अन्नपर्वत, भक्ष्य, भोज्य, पेय, लेह्य (चाटने योग्य) तथा वाय्य (बूझने योग्य) पदार्थ तैयार हैं । तुमने कर्मों का दान नहीं किया । इसलिये पाने की इच्छा मत करो । जिन्होंने दान दिया, हवन किया, यज्ञ किया तथा ब्राह्मणों को पूजा की, उनके लिए अन्न खाकर गहरी रक्षा जाना है । नरक में जाने वालों ! हम दूसरे वा घन तुम्हें कैसे देंगे ? ॥३३-३८॥

व्यास ने कहा—यमदूतों के बचन सुनकर जब भूग-व्यास से व्याकुल तथा इच्छारहित हो जाते हैं । तब यमकिंकर दारुण अस्त्रों से उन्हें बप्ट देते हैं ॥३९॥ मुगरे, लोहे के डंडे, शक्ति, तामर, पट्टिम, परिष, मिन्दिपात्र, गदा, परसे, तथा बाणों से निर्दय यमदूत जब वा का पीछे से मारते हैं ॥४०॥ पापकारों के यों की अग्रभाग से सिंह, बाघ आदि खाते हैं । अमाये दुर्ख अतिमयकर तथा पार्श्वों के न प्रवेश कर पाते हैं न निष्क हीं पाते हैं । यहाँ यमदूत पापिया का अत्यन्त बप्ट देखकर वहाँ ले जाते हैं, जहाँ धर्मात्मा, धर्मवर्ता तथा सर्वनियामक यम स्वयं रहते हैं । इस प्रकार अति बप्टदायक मार्ग से मनुष्य प्रेतपुरं जान हैं ॥४१-४४॥

प्रज्ञापितास्तथा दूतनिवेश्यन्ते यमाग्रतः । ततस्ते पापकर्मणस्त पश्यन्ति भयानकम् ॥४५॥
 पापापविद्वन्प्रज्ञा विपरीतात्मबुद्धयः । दृष्टाकरालवदन भुवूटीकुटिलेक्षणम् ॥४६॥
 ऊर्ध्वकेश महाश्मश्रु प्रस्फुरदधरोत्तरम् । अष्टादशभुज नृद नोलाञ्जनचयोपमम् ॥४७॥
 सर्वायुधोद्यतकर तोवदण्डेन सयुतम् । महामहिषमारूढ दीप्ताग्निसमलोचनम् ॥४८॥
 रक्तमाल्याम्बरधर महामेघमिवोच्छ्रितम् । प्रलयाम्बुदनिर्घोष पिवन्निव महोदधिम् ॥४९॥
 ग्रस्तन्तमिव त्रलोक्षमुदगिरन्तमिदालम् । मृत्यु च तत्समीपस्थ कालानलसमप्रभम् ॥५०॥
 प्रलयानलसकाश कृतात च भयानकम् । मारीचीया महामारी कालरात्री च दाह्या ॥५१॥
 विविधा व्यापय कण्टा नातरूपा भयावहा । शक्तिशूलाङ्कुशधरा पाशाचक्रसिधारिण ॥५२॥
 वज्रदण्डधरा रौद्रा क्षुरतूणधनुर्धरा । असह्याता महावीर्या क्रूरादवाञ्जनसप्रभा ॥५३॥
 सर्वायुधोद्यतकरा यमदूता भयानका । अनेन परिवारेण महाघोरेण सवृतम् ॥५४॥
 यम पश्यन्ति पापिष्ठाश्चित्रगुप्त विभीषणम् । निभर्त्सयति चाज्ञयर्थं यमस्तान्पापकारिण ॥५५॥
 चित्रगुप्तस्तु भगवान्धर्मदायक प्रबोधयन् ॥५६॥

चित्रगुप्त उवाच

भो भो दुष्कृतकर्मण परद्रव्यापहारिण । गर्विता रूपवीर्येण परदारत्रिमर्दका ॥५७॥
 यत्स्वयं कियते कर्म तत्स्वयं भुज्यते पुनः । तत्किमात्मोपघातार्थं भवद्भिर्दुष्कृतं कृतम् ॥५८॥

तब यमदूत उहे यम क सामने उपस्थित करते हैं। पापा स अ ध ना मा क विपरत प्रकार से समझने वाले पापकर्मी ज न समानक दृष्टाओं से विकराल मुख वाले श्री डेढ करक देखने वाले ऊपर उठ केश वाले लम्ब दाढ़ मछ वाले फड़कते होठ वाले अठारह भजा वाले नृद न ल अञ्जन का राशि के तुल्य समस्त अस्त्र-शस्त्रों से सुसज्जित हस्त वाले त्र दण्डधारा जिहास महिष पर आरूढ प्रज्वालित अग्नि के समान तत्र वाले लाल माला तथा वस्त्र धारण किये हुए महामेघ के समान उच्च और प्रलयकाल न बादल के समान शब्द करने वाले यम क देखते हैं। यम देखने में ऐसा लगता है मानः समग्र क प रहा है और अग्नि क उगल रहा है ॥४५ ४९॥ उनके सम प वालाग्नि के समान काँट-आल तथा प्रत्याग्नि तुल्य महामयावक मृत्यु रहत है मार का उग्र महानार कालरात्र दाह्या तथा विविध प्रकार क व्याधिया रहता हैं। नातरूपाधारी भयानक शक्ति शूल अकुश पाश चक्र तलवार वज्र दण्ड छुरे तरकस तथा धनुष धारण करने वाले अञ्जन के समान शक्ति वाले महापराक्रमा तथा समस्त अस्त्र शस्त्रों से सुसज्जित हस्त वाले यमदूत रहते हैं। ऐसे महामयानक परिवार से युक्त यमराज तथा म भग चित्रगुप्त को पापी लोग देखते हैं। उन पापियों को यमराज बहुत फटकारते हैं और नगवान चित्रगुप्त घमवाक्यों से समझाते हैं ॥५० ५६॥

चित्रगुप्त ने कहा—दुष्कर्मियों! दूसरे का धन हरण करने वालों! रूप तथा शक्ति का अस्मिमान करने वालों! दूसरे का स्त्री का सताव लूटने वालों! जा जैसा कर्म करता है वह वैसा फल भागता है! तुम लोग ने

इदानीं किं नु शोचध्वं पीडयमानाः स्वकर्मभिः । भुञ्जध्व स्वानि दुःखानि न हि दोषोऽस्ति कस्यचित् ॥५९॥
य एते पृथिवीपालाः संप्राप्ता मत्समीपतः । स्वकीयैः कर्मभिर्घोरैर्दुष्प्रज्ञा बलगविताः ॥६०॥
भो भो नृपा दुराचाराः प्रजाविध्वंसकारिण । अल्पकालस्य राज्यस्य कृते किं दुष्कृतं कृतम् ॥६१॥
राज्यलोभेन मोहेन बलादन्यायतः प्रजाः । 'यद्दण्डिताः फलं तस्य भुञ्जध्वमधुना नृपाः ॥६२॥
कुतो राज्यं कलत्रं च यदर्थमनुभवं कृतम् । तत्सर्वं संपरित्यज्य यूयमेकाकिनः स्थिताः ॥६३॥
'पश्यामो न धलं सर्वं येन विध्वंसिताः प्रजाः । यमदूतैः पाटयमाना अधुना कीदृशं फलम् ॥६४॥

ध्यास उवाच

एवं बहुविधैर्वर्षैरुपालब्धा यमेन ते । शोचन्तः स्वानि कर्माणि तूष्णीं तिष्ठन्ति पायिवा ॥६५॥
इति कर्म समादिश्य नृपाणां 'धर्मराट्स्वयम् । तत्पातकविशुद्धयर्थमिव वचनमब्रवीत् ॥६६॥

यम उवाच

भो भोश्चण्ड महाचण्ड मूढोत्वा नृपतीनिमान् । विशोधयध्वं पापेभ्यः क्रमेण नरकाग्निम् ॥६७॥

ध्यास उवाच

ततः शीघ्रं समुत्थाय नृपान्संगृह्य पादयोः । ग्रामपित्वा तु वेगेन सिप्त्वा चोर्ध्वं प्रगृह्य च ॥६८॥

आत्महत्या के लिये क्यों दुष्कर्म किया ? अब तुम अपने कर्मों से पीड़ित होकर क्या साच रहे हो ? अपने दुःखों को भोगो, इसमें किसी का दोष नहीं है । ओ ये भूलें बलामिमानों राजा लोग मेरे पास आये हैं, य अपने समय के कर्मों के कारण आये हैं । प्रजा का नाश करने वाले दुराचारी राजाओ ! छोड़े समय के लिये राज्य पाकर क्यों तुमने दुष्कर्म किया ? राज्यलाल से तथा मांह से जो तुमने अन्याय किया तथा बलपूर्वक प्रजा को दण्ड दिया, उसका फल भोगो । जिसके लिये तुमने पाप किया, वह राज्य तथा स्त्री कहाँ है ? क्यों उन सब का परित्याग कर तुम अकेले यहाँ हो ? हम तुम्हारे उस बल को नहीं देख रहे हैं, जिससे तुमने प्रजा का विध्वंस किया था । यमदूतों से पीटे जाने पर अब तुम्हें कैसा फल मिल रहा है ? ॥५७-६४॥

ध्यास ने कहा—इस प्रकार यम द्वारा अनेक बाणों में उल्लाहता सुनकर राजा लोग अपने कर्मों का साचते हुए घुप रहते हैं । स्वयं धर्मराज, राजाओं के लिये कर्मों का आदेश देकर उनके पापों का शुद्धि के लिये ये वचन कहते हैं ॥६५-६६॥

यम कहते हैं—चण्ड ! महाचण्ड ! इन राजाओं को पकड़ कर क्रमशः नरकाग्नियों में डालकर पापों का प्रायश्चित्त कराओ ॥६७॥

ध्यास ने कहा—तदनन्तर यमदूत शीघ्र उठकर राजाओं के दानों पीरों को पकड़कर वेग से घुमाने लगते हैं और ऊपर पेंच कर फिर पकड़ लेते हैं । पदचात् शिला-खण्ड पर इस प्रकार पटकते हैं मानों बज्र से आहत महावृक्ष

१. यत्पीडिता । २. क. परपत । ३. ख. ०म् । सर्वपापवि० । ४. ग. च । सर्वपापेन महता सुयतते चि० ।

तत्तत्पापप्रमाणेन यमदूता - शिलातले । 'आस्फोटयन्ति तरसा वज्रेणेव महाद्रुमम् ॥६९॥
ततस्तु रक्त स्रोतोभि खयते जजरोद्धृत । निसज्ज' स तदा देही निश्चेष्टश्च प्रजापते ॥७०॥
तत स धातुना स्पृष्ट शनैरुज्जीवते पुन । तत पापविशुद्धयर्थं क्षिपन्ति नरकाण्वे ॥७१॥
अन्याश्च ते तदा दूता पापवर्मरताप्ररान् । निवेदयन्ति विप्रेन्द्रा यमाय भृशबु खितान् ॥७२॥

यमदूता ऊचुः

एष देव तवाऽऽदेशादस्मान्निर्मोहितो भृशम् । आनीतो धर्मविमुख सदा पापरत पर ॥७३॥
एष लुब्धो दुराचारो महापातकसयुत । उपपातककर्ता च सदा हिसारत' शुचि ॥७४॥
'अगम्यागामी दुष्टात्मा परद्रव्यापहारक । कन्याश्रयो कूटसाक्षी कृतघ्नो मित्रवञ्चक ॥७५॥
अनेन मदमत्तेन सदा धर्मो विनिन्दित' । पापमाचरितं वर्म मर्त्यलोके दुरात्मना ॥७६॥
'इदानीमस्य देवेश निग्रहानुग्रहौ यद' । प्रभुरस्य क्रियायोगे यय वा परिपन्थिन ॥७७॥

ध्यास उवाच

इति विज्ञाप्य देवेश न्यस्यापे पापवारिणम् । नरकाणां सहस्रेषु' लक्षकोटिशतेषु" च ॥७८॥
किंकरास्ते सतो यान्ति" प्रहीतुमपराप्ररान् । प्रतिपन्ने कृते दोषे यमो वै पापकरिणाम् ॥७९॥
समाविशति सान्धोराग्निप्रहाय स्वर्गिकरान् । यया यस्य विनिर्दिष्टो वसिष्ठार्थविनिग्रह ॥८०॥

मिरा हो । उनका गिरा जरर हो जाता है रवन क धारयें फूट निवर्त्तते हैं । वे सनाहून तथा निष्चेष्ट हो जाते हैं । धातु का स्पर्श होने से पुन प्राण लचार जाता है । तब पाप-शुद्धि कराने के लिये यमदूत उन्हें मर्क समुद्र मे फेंक देते हैं । विप्रवर ! तब तब अय दूत दूसरे अत्यन्त दुष्ठी तथा पापवर्मों मे निरत मनुष्यों को यम राज के सामने उपस्थित कर निवेदन करते हैं ॥६८ ७२॥

यमदूत कहते हैं—देव ! आपकी आज्ञा से मैं अत्यन्त मोहित धर्मविमुख तथा सदा पापा मे रत इस मनुष्य क ले आया हूँ । यह लोभ दुराचारी महापार्ष उपपार्ष सदा हिंसा मे निरत अपवित्र अगम्यागामी दुष्टात्मा दूसरे का धनहर्ता तथा निन्दक है । इस दुरात्मा ने मयल'क' मे पापचरण किया है । देवेश ! अब इस पर आप जा दण्ड या कृपा करें यह बतलाइये । इसने अध्यक्ष आप हैं हम ती केवल आज्ञाकारी हैं ॥७३ ७७॥

व्यास ने कहा—यमराज से इतना निवेदन कर यमदूत उनके सामने पापा का छोड देते हैं और संकडो हजारो लाखो और करोडो नरको से दूसरे मनुष्यों को पकडने के लिये चल पडते हैं ॥७८॥ पापिया के दाप प्रमा पित हा जाने पर धर्मराज उन्हें पकडने के लिये अपने मयवर अनुचरों को आण देते हैं । वसिष्ठ आदि मुनिया ने

१क आस्फालयन्ति । ख आपोषयन्ति । २य निसज्ज । ३ख ०सापरोज्जु० । ४क य ०गम्याग० ।
५क य कन्यानुत्ती । ६ख विनाशित । ७क ख ०दानी तस्य । ८ख य तव । ९क ०क्षण ल० ।
१०क ०तेन च । ११क ०न्ति गृहीत्वा चाप० ।

पापस्य तदभू (तं भू) शं क्रुद्धाः कुर्वन्ति यमकिंकराः । अङ्कुशैर्मुद्गरैर्दण्डैः शक्रचक्रैः शविततोमरैः ॥८१॥
 'सैङ्गशूलनिपातैश्च भिद्यन्ते पापकारिणः । नरकाणां सहस्रेषु लक्षकोटिशतेषु च ॥८२॥
 स्वकर्मापाजितैर्दोषैः पीडयन्ते यमकिंकरैः । शृणुष्व नरकाणां च स्वरूपं च भयकरम् ॥८३॥
 नामानि च प्रमाणं च येन यान्ति नरादयः तान् । महाबावीति विख्यातं नरकं शोणितप्लुतम् ॥८४॥
 यञ्जकण्टकसंमिश्रं योजनायुतविस्तृतम् । तत्र संपीडयते मनो भिद्यते वञ्जकण्टके ॥८५॥
 वर्षलक्षं महाघोरं गोघातो नरके नरः । योजनानां शतं लक्षं कुम्भीपाकं सुदाहणम् ॥८६॥
 ताम्रकुम्भवतो दीप्ता बालुकाङ्गारसंवृता । ब्रह्महा भूमिहर्ता च निक्षेपस्यापहारकः ॥८७॥
 दहयन्ते तत्र संक्षिप्ता यावदाभूतसंश्लयम् । रौरवो वञ्जनाराचैः प्रज्वलद्भिः समावृतः ॥८८॥
 योजनानां सहस्राणि पष्टिरायामविस्तरैः । भिद्यन्ते तत्र नाराचैः सज्वालैर्नरके नराः ॥८९॥
 इक्षुवत्तत्र पीडयन्ते ये नराः कूटसाक्षिणः । अपोमयं प्रज्वलितं मञ्जूर्यं नरकं स्मृतम् ॥९०॥
 निक्षिप्तास्तत्र दहयन्ते यन्दिग्राहकृतादयः ये । अप्रतिष्ठेति नरकं पूषमूत्रपुरोपकम् ॥९१॥
 अपोमुखः पतेत्तत्र ब्राह्मणस्योपपीडकः । लाक्षाप्रज्वलितं घोरं नरकं तु विलेपकम् ॥९२॥

जिस पाप का जो दण्ड बतलाया है, क्रुद्ध यमभूत वही दण्ड देते हैं । अङ्कुश, मुगरे, डंडे, आरे, शक्ति, तीमर, तलवार तथा शूल—इनके प्रहारों से पापी लोग सताये जाते हैं । सैकड़ों, हजारों, लाखों और करोड़ों नरकों में अपने-कर्म जन्म बोधों से जीव यमभूतों द्वारा पीडित किये जाते हैं ॥७८-८२॥ नरकों के अथवा स्वरूप, नाम तथा प्रमाण सुनिये, जिससे मनुष्य बर्हो जाते हैं । महाबावी नाम से विख्यात नरक शोणित से परिपूर्ण, दस्य तुल्य बाँटों से मिश्रित एवम् दस हजार याजन विस्तृत है । उसमें दूब वर और बाँटों से छिन्न मिश्र होकर व्यधित होता है ॥८३-८५॥ कुम्भीपाक नामक नरक अत्यन्त दाहण तथा सो लाख योजन विस्तृत है । ग्राहत्या करने वाला मनुष्य उस नरक में एक लाख वर्षों तक कष्ट भोगता है ॥८६॥ ताम्रकुम्भवती नामक नरक सतप्त बालुआ से प्रपूर्ण है । ब्रह्महा करने वाला, भूमिहरण करने वाला तथा धरौहर वा अपहरण करने वाला मनुष्य उसी नरक में जलान्त एक दण्ड होता है । रौरव नामक नरक जलते हुए लोहे के बाणों से आवृत है ॥८७-८८॥ वह साठ हजार याजन लम्बा-चौड़ा है । उस नरक में ज्वलित लोहे के बाणों से मनुष्यों को वेध किया जाता है । जो मनुष्य मिथ्या गवाही देते हैं, वे उसी नरक में गये की तरह वेधे जाते हैं ॥८९॥ मञ्जूर्य नामक नरक प्रज्वलित लाहमय है । निराशाप व्यक्तिको बर्द, बनाने वाले मनुष्य उसी नरक में पड़कर दण्ड होते हैं । अप्रतिष्ठ नामक नरक पीप मूत्र तथा विष्टा से भरा है । ब्राह्मण को पीसा देने वाले मनुष्य उसी नरक में नीचे मुह करके गिरते हैं ॥९०-९१॥ विलेपक नामक नरक भयकर तथा प्रज्वलित लाहो से प्रपूर्ण है । दिग्बधेष्टो । अथपान म निरत मनुष्य उस नरक में दण्ड होते हैं ॥९२॥ महाप्रम नामक नरक प्रदीप्त धूलो से युक्त तथा बहुत ऊँचा है । पति-पत्नी में भेद कराने

निमग्नास्तत्र दहन्ते मद्यपाने द्विजोत्तमाः। महाप्रभेति नरकं दीप्तशूलमहोच्छ्रयम् ॥९३॥
 तत्र शूलैर्न भिद्यन्ते पतिभार्योपभेदिनः। नरकं च महाघोरं जयन्तो चाऽऽयसो शिला ॥९४॥
 तथा चाऽऽदम्यते पापः परदारोपसेवकः। नरकं शालमलाप्यं तु प्रदीप्तदृढकण्टकम् ॥९५॥
 तथा (दा) लिङ्गति दुःखार्ता नारो बटूनरंगमा। ये वदन्ति सदाऽस्त्य परमर्मावर्तनम् ॥९६॥
 जिह्वा चोच्छ्रय (च्छिद्य) तेतेपा सदस्यैर्यमकिकरैः। ये तु रागं वटाक्षैश्च वीक्षन्ते परयोपितम् ॥९७॥
 तेपा चक्षुषि नाराचं विध्यन्ते यमकिकरैः। मातर येऽपि गच्छन्ति भगिनीं दुहितरं स्नुषाम् ॥९८॥
 स्त्रीबालबृद्धहन्तारो यावदिन्द्राश्चतुर्दश। 'ज्वालामालाकुलं रौद्रं महारौरवसंजितम् ॥९९॥
 नरकं योजनानां च सहस्राणि चतुर्दश'। पुरंक्षेत्रगृहं ग्रामं यो वीपयति वह्निना ॥१००॥
 स तत्र दह्यते मूढो यावत्कल्पस्थितिनरः। तामिस्रमिति विध्यातं सप्तयोजनविस्तृतम् ॥१०१॥
 'निपतद्भि' सदा रौद्रः खड्गपटिदशमुदगरैः। सत्र चौरानराः क्षिप्तास्ताड्यन्ते' यमकिकरैः ॥१०२॥
 शूलशक्तिगदाखड्गर्षावत्कल्पशतत्रयम्। तामिस्राद्विष्णुं प्रोक्तं महातामिस्रसंजितम् ॥१०३॥
 जलौकासपंसंपूर्णा निरालोक सुबु खदम्। मातृहा पितृहा चंय मित्रविलम्बघातकः ॥१०४॥
 तिष्ठन्ति' लक्ष्यमाणाश्च यावत्तिष्ठति मेदिनो। अतिपत्रवनं नाम नरकं भूरिबु खदम् ॥१०५॥
 योजनायुतविस्तारं ज्वलत्खड्गैः समाकुलम्। पातितस्तत्र तैः खड्गैः क्षतधा तु समाहतः ॥१०६॥

बाले मनुष्य वहाँ शूलों से बिद्ध होते हैं। जयन्तो नामक महायमकर नरक लोहमिश्रित परस्पर का है ॥९३-९४॥ दूसरे की स्त्री, से सम्भोग करने वाले पार्थ, मनुष्य उस, नरक में पड़ते हैं। शास्त्रमल नामक नरक जलते हुए दृढ़ कटकों से युक्त है। बहुत पुरानों के साथ उपभोग करने वाली नारी उस नरक में पड़ती है। जो मनुष्य दूसरे के मनो को बतारने वाले वचन बोलते हैं, उनकी आत्म क, यमदूत बाट देते हैं। जो अनुराग भरी वितवन से दूसरे की स्त्री को देखते हैं, उनकी आलो क, यमद्विन्दर लाहे के बाणों से काट डालते हैं ॥९५-९७॥ जो मनुष्य माता, बहिन, पुत्री तथा पुत्र-वधू से सम्भोग करते हैं और जो स्त्री, बालक तथा वृद्ध की हत्या करते हैं, वे चौदह इन्द्र जब तक रहते हैं तब तक, ज्वालामालो के समूह से व्याप्त, चौदह हजार योजन विस्तृत तथा भयकर महारौरव नामक नरक में पड़ते हैं। नगर, क्षेत्र घर तथा ग्राम में जो आग लगता है, वह मूर्ख उस नरक में कल्पान्त तक दग्ध होता रहता है। तामिस्र नामक नरक एक लाख याजन विस्तृत है जहाँ तलवार पट्टिश (पटा) तथा भुदूरों का सदा प्रहार होता रहता है। चार मनुष्य वहाँ फँके जाते हैं और यमदूतों द्वारा पीठित होते हैं ॥९८-१०२॥ तीन सौ कल्पों तक उनके ऊपर शूल, शक्ति, गदा तथा तलवारों का प्रहार होता रहता है। महातामिस्र नामक नरक तामिस्र से दूना है, जो जोक तथा सापो से परिपूर्ण, प्रवासरहित तथा अत्यन्त दुःखदायी है ॥१०३॥ मातृहत्या करने वाले, पितृहत्या करने वाले तथा मित्र के साथ द्विवासाघात करने वाले मनुष्य उस नरक में छँले जाते हुए तब तक रहते हैं जब तक पृथ्वी रहती है ॥१०४॥ अति दुःखदायी अतिपत्रवन नामक नरक दश हजार याजन विस्तृत तथा जलते हुए तलवारों से प्रपूर्ण है। मित्रहत्या करने वाला मनुष्य उस नरक में तलवारों से सैकड़ों जगह आहत होते हुए कल्पान्त तक

मित्रघ्न कृत्यते तावद्यावदाभूतसंलवम । करम्भबालुका नाम नरक योजनायुतम् ॥१०७॥
 कृपाकार वृत दीप्तर्वालुकाङ्गारकण्टकं । दह्यत भिद्यत वपलक्षायुतशतत्रयम् ॥१०८॥
 यन दग्धो ज्ञानो निच मिष्योपायं सुदारणं । काकोल नाम नरक कृमिपयपरिप्लुतम् ॥१०९॥
 भिष्यते तत्र दुष्टात्मा एकाकी मिष्टभुङ्गनर । कुडमल नाम नरक पूष विष्मन्तशोणितं ॥११०॥
 पञ्चपत्रत्रियाहीना क्षिप्यते तत्र वै नरा । सुदुग्ध महाभीम मासशोणितसकुलम् ॥१११॥
 'अमश्यान्ने रतास्तत्र निपतन्ति नराधमा । त्रिमिकीटसमाकीण शवपूष महावटम् ॥११२॥
 अधोमुख पतेत्तत्र कन्याविश्रयकूट्र । नाम्ना वै तिलपाकति नरक दारण इभूतम् ॥११३॥
 तिलवस्त्र पीडयत परपीडारताश्च य । नरक तलपाकति ज्वलत्तलमहीप्लवम् ॥११४॥
 पच्यत तत्र मित्रघ्नो हन्ता च शरणागतम् । नाम्ना वज्रकपाटति वज्रशृङ्खलदयासन्वितम् ॥११५॥
 पीडयत निदय सनय कृत क्षीरविश्रय । निरच्छवास इति प्रोक्त तमोधवातवर्जितम् ॥११६॥
 निष्वट क्षिप्यत तत्र विप्रदाननिरोधकृत । अङ्गारोपचय नाम दीप्ताङ्गारसमुज्ज्वलम् ॥११७॥
 दह्यते तत्र यनोक्त ज्ञान विप्राय नापितम् । महापापीति नरक लक्ष्मोजनमायतम् ॥११८॥

रहता है ॥१०५ १०६॥ करम्भबालुका नामक नरक दण्ड हस्तर याजन विस्तृत प्रज्वलित बालू कृपा अगार
 तथा कण्टका से व्याप्त और कुएँ के आकार का है । जो भयंकर मिष्या प्रपञ्च करने दित्य लागी का जलते हैं
 वे एक लाख बाहुजार तान ली अपीं तब उस नरक में जलाये जाते हैं तथा बाटे जाते हैं ॥१०७ १०८॥ बाकल
 नामक नरक क ड तथा प प स आप्लुत है । अकटे म ठा खान वाला दुष्टात्मा मनुष्य वहाँ पका जाता है ॥१०९॥
 कुडमल नामक नरक विष्टा मूत्र तथा शोणित से परिपूर्ण है । पञ्चपत्रत्रिया से ह न मनुष्य उस नरक में फँके जाते
 हैं ॥११०॥ एक नरक अत्यन्त दुग्ध महाभयंकर तथा मास-शोणित स प्रपूष है । अमश्या अन्न खान में निरत
 मनुष्य उस नरक में गिरते हैं ॥१११॥ महावट नामक नरक कीड कृतिसे तथा 'गो' से आत प्रात है । कन्या बेचने
 वाले मनुष्य अधामुल होकर उस नरक में गिरते हैं ॥११२॥ तिलपाक नामक नरक भयंकर है । दूधरे का उत्प डन
 करने वाले मनुष्य वहाँ तिल क तरह पेड जाते हैं ॥११३॥ तलपाक नामक नरक जलते हुए तल से प्रपूष है ।
 मित्रहया करने वाले तथा शरणागत का भार ले वाले मनुष्य वहाँ पकाये जाते हैं ॥११४॥ वज्रकपाट नामक
 नरक वज्र की तरह दृढ़ सारिहो से युक्त है । दूध भित्रता मनुष्य वहाँ दिव्यताप्रवर प डित लिये जाते हैं ॥११५॥
 निरच्छवास नामक नरक अमकारावृत तथा बायुरहित है । बाह्याणा का दान र रच वाला मनुष्य वहाँ सप्ताह न करके
 फँके जाते हैं ॥११६॥ अगारोपचय नामक नरक जाज्वल्यमान अगार से पूष है । जो बाह्याणा का वह कर दान
 नहीं देता है वह वहाँ दग्ध किया जाता है ॥११७॥ महापापी नामक नरक एक लाख याजन म्मा है । जो
 मनुष्य सग मिष्या भाषण करत हैं व अधामुल नरक वहाँ गिराये जाते हैं ॥११८॥ महाज्वाल नामक नरक

'पात्यन्तेऽधोमुखास्तत्र ये जल्पन्ति सदाऽनृतम् । महाग्वालेति नरकं ज्वालाभास्वरभीषणम् ॥११९॥
 दह्यते तत्र सुचिरं यः पापे बुद्धिकृमरः । नरकं ऋक्वाल्यात् पीडयन्ते तत्र वै नराः ॥१२०॥
 ऋक्चर्वेयधारीप्ररगम्यागमने रताः । नरकं गुडपाकेति ज्वलद्गुडह्लद्वत्तम् ॥१२१॥
 निक्षिप्तो दह्यते तस्मिन्वर्णसंकरकृमरः । क्षुरधारेति नरकं तोक्षणक्षुरसमावृतम् ॥१२२॥
 छिद्यन्ते तत्र कल्पान्तं विप्रभूमिहृता नराः । नरकं 'चाम्दरीपात्यं प्रलयानलदीपितम् ॥१२३॥
 कल्पकोटिशतं तत्र दह्यते स्वर्णहारकः । नाम्ना वज्रकुठारेति नरकं वज्रसंकुलम् ॥१२४॥
 छिद्यन्ते तत्र छेत्तारो द्रुमाणां पापकारिणः । नरकं परितापात्यं प्रलयानलदीपितम् ॥१२५॥
 गरदो मधुहर्ता च पच्यते तत्र पापकृत् । नरकं फालसूत्रं च वज्रसूत्रयिनिर्मितम् ॥१२६॥
 अमन्तस्तत्र च्छिद्यन्ते 'परसस्योपलुण्ठकाः । नरकं कश्मलं नाम इलेमशिङ्घपाणकावृतम् ॥१२७॥
 तत्र सक्षिप्यते 'कल्पं सदा मांसरुचिर्नरः । नरकं घोघगन्धेति लालामूत्रपुरीषवत् ॥१२८॥
 क्षिप्यन्ते तत्र नरके पितृपिण्डाप्रयच्छकाः । नरकं दुर्धरं नाम जलोकावृक्षिकाकुलम् ॥१२९॥
 'उत्कोचभक्षकस्तत्र तिष्ठते धर्षकायुतम् । यच्च वज्रमहापीडा नरकं वज्रनिर्मितम् ॥१३०॥
 तत्र प्रक्षिप्य दह्यन्ते पीडयन्ते यमकिंकरैः । धनं धान्यं हिरण्यं वा परकीयं हरन्ति ये ॥१३१॥

भीषण ज्वालाओं से व्याप्त है । जो मनुष्य पाप में बुद्धि लगाते हैं, वे वहाँ चिरवाल् तब जलाये जाते हैं ॥११९॥
 ऋक् नामक नरक में आगम्यागमन करने वाले मनुष्य वज्र के समान उग्र धार वाले आरे से पीरे जाते हैं ।
 ॥१२०॥ गुडपाक नामक नरक जलते हुए गुडों की झीलों से युक्त है । वर्णचर्व उत्पन्न करने वाले मनुष्य वहाँ वर्ण
 निये जाते हैं ॥१२१॥ क्षुरधार नामक नरक तीक्ष्ण अस्तुरों से आवृत है । ब्राह्मण की भूमि हरण करने वाले मनुष्य वहाँ
 कल्पान्त तक बाटे जाते हैं ॥१२२॥ अम्बरीष नामक नरक प्रलयाम्नि के समान प्रज्वलित है । सोना चुराने वाले
 मनुष्य वहाँ कराड़ा कल्पी तब जलाये जाते हैं ॥१२३॥ वज्रकुठार नामक नरक वज्रो से व्याप्त है । धूर्तों के बाटने
 वाले पापी मनुष्य वहाँ बाटे जाते हैं ॥१२४॥ परिताप नामक नरक प्रलयाम्नि के समान प्रदीप्त है । विष देने
 वाले तथा मधु हरण करने वाले पापी मनुष्य वहाँ पचाये जाते हैं ॥१२५॥ फालसूत्र नामक नरक वज्र तुल्य सूत्रों
 से निर्मित है । दूसरे की कसलों को लूटने वाले मनुष्य वहाँ भ्रमण करते हुए बाटे जाते हैं ॥१२६॥ कश्मल नामक
 नरक वक्त्र तथा नासिकाफल (नकटी) से आवृत है । सदा मांस की अमिलाषा रखने वाला मनुष्य एक कल्प तक
 वहाँ फँसा जाता है ॥१२७॥ उघ गन्ध नामक नरक लार, मूत्र तथा विण्ड से युक्त है । पितरों को पिण्ड देने
 वाले मनुष्य वहाँ फँसे जाते हैं ॥१२८॥ दुर्धर नामक नरक जोको तथा बिज्जुओं से व्याप्त है । घुस लेने वाला
 व्यक्ति वहाँ दश हजार वर्षों तक रहता है ॥१२९॥ वज्रमहापीडा नामक नरक वज्रो का बनाया हुआ है । जो
 दूसरे के धन धान्य तथा सुवर्ण का अपहरण करते हैं, वे वहाँ यमदूता द्वारा जलाये जाते हैं और उत्प्रेक्षित होते
 हैं ॥१३०-१३१॥ जो मूर्ख प्राणिमो को मारकर कोए तथा मीध की तरह खाते हैं, उन्हें कल्पान्त तक यमदूत अपना

यमदूतश्च चौरास्ते छिद्यन्ते लवशः सुरैः । ये हत्वा प्राणिनं मूढाः खादन्ते काकगृध्रवत् ॥१३२॥
 भोज्यन्ते च स्वमांसं ते कल्पान्तं यमकिंकरैः । आसनं शयनं वस्त्रं परकीयं हरन्ति ये ॥१३३॥
 यमदूतश्च ते मूढा भिद्यन्ते शक्तितोमरैः । फलं पत्रं नृणां चाङ्गिषु हृतं यस्तु कुबुद्धिभिः ॥१३४॥
 यमदूतश्च ते क्रुद्धैर्दहन्ते तृणवह्निभिः । परद्रव्ये कलत्रे च यः सदा द्रुष्टधीनरः ॥१३५॥
 यमदूतैर्ज्वलत्तस्य हृदि शूलं निखन्यते । कर्मणा मनसा वाचा ये धर्मविमुखा नराः ॥१३६॥
 यमलोके तु ते घोरा लभन्ते परियातनाः । एवं शतसहस्राणि लक्षकोटिशतानि च ॥१३७॥
 नरकाणि नरैस्तत्र भुज्यन्ते पापकारिभिः । इह कृत्वा स्वल्पमपि नरः कर्माशुभात्मकम् ॥१३८॥
 प्राप्नोति नरके धरे यमलोकेषु यातनाम् । न भृश्वन्ति नरा मूढा धर्मोक्तं साधु भाषितम् ॥१३९॥
 दृष्टं केनेति प्रत्यक्षं प्रत्युक्त्यैव वदन्ति ते । दिवा रात्रौ प्रयत्नेन पापं कुर्वन्ति ये नराः ॥१४०॥
 नाऽञ्चरन्ति हि ते धर्मं प्रमादेनापि मोहिताः । इहैव फलभोक्तारः परत्र विमुखाश्च ये ॥१४१॥
 ते पतन्ति सुषोरेषु नरकेषु नराधमा । दाहणो नरके यासः स्वर्गवासः सुखप्रदः ॥
 नरैः संप्राप्यते तत्र कर्म कृत्या शुभाशुभम् ॥१४२॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे व्यासपिसंवादे नरकगतपृथग्यातनाजीर्तनं नाम
 पञ्चदशाधिकद्विशतमोऽध्यायः ॥२१५॥

मान गिराते हैं ॥१३२॥ जो दूसरे के आसन, शय्या तथा वस्त्र वा अपहरण करते हैं उन मूर्खों को यम दूत शक्ति
 और तामर से खादते हैं ॥१३३॥ जो मनुष्यों के फल तथा पत्र वा भी कुबुद्धिपूर्वक अपहरण करते हैं उन्हें
 यम दूत तृणवह्नि से जगाते हैं ॥१३४॥ जो नर दूसरे के द्रव्य तथा स्त्री व प्रति कुमाश्च रखते हैं यमदूत उससे
 हृदय में जलता हुआ शूल घाटते हैं ॥१३५॥ जो मानव धर्म, मन तथा वाणी से धर्मविमूख हैं, उन्हें यमलोका
 में घोर यातनायें मिलती हैं ॥१३६॥ इस प्रकार पापकारी मनुष्य सैबडो, हजारो, लाखों तथा बरोडो नरकों वा
 भाग मालते हैं ॥१३७॥ इस लाल म पाडा भी पाप करने वाला मनुष्य यमलोका में घोर नरक के यातना प्राप्त
 करता है ॥१३८॥ मूर्ख मनुष्य धर्मशास्त्र-प्रतिपादित सुन्दर वचन को नहीं सुनते हैं, बलि प्रतिवाद करते हुए
 करते हैं—'प्रत्यय किमन देखा है?' जो मनुष्य दिन रात यत्नपूर्वक पाप करते हैं, वे मोहित होकर मूल स भी
 पर्यावरण नहीं करते हैं । जो परलोका को नहीं मानते हैं और 'यही फल वा माण होता है' ऐसा मानते हैं, वे नराधम
 घोर नरक में गिरते हैं । नरक वा दास भयवर है और स्वर्गवास सुखप्रद है । मनुष्य शुभ-अशुभ कर्म करने स्वर्ग-
 नरक प्राप्त करते हैं ॥१३९-१४२॥

श्रीब्रह्मपुराण में ब्रह्मा और ऋषि के संवाद-प्रकरण में नरको में पृथक्-पृथक् यातना-जीर्तन
 नामक दो सौ पन्द्रहवाँ अध्याय समाप्त ॥२१५॥

अथ षोडशाधिकद्विशततमोऽध्यायः

नरकगतदुःखनिवारणाय धर्माचरणवर्णनम्

मुनय ऊचुः

अहोऽतिदुःखं घोरं च यममार्गे त्वयोदितम् । नरकाणि च घोराणि द्वारं याम्यं च सप्तमं ॥१॥
अस्त्युपायो न वा ब्रह्मन्यममार्गेऽतिभीषणे । ब्रूहि येन नरा यान्ति सुखेन यमसादनम् ॥२॥

व्यास उवाच

इह ये धर्मसमुक्तास्त्वहिंसानिरता नराः । गुरुश्रूषणे युक्ता देवब्राह्मणपूजकाः ॥३॥
यस्मिन्मनुष्यलोकास्ते सभार्याः ससृतास्तया । तमध्वानं च गच्छन्ति यथा तत्कथयामि वः ॥४॥
विमानं विविधं दिव्यं : काञ्चनध्वजशोभितं : । धर्मराजपुरं यान्ति सेवमानाप्सरोगणैः ॥५॥
ब्राह्मणेभ्यस्तु दानानि नानारूपाणि भक्षितः । ये प्रयच्छन्ति ते यान्ति सुखैर्नैव महापथे ॥६॥
अन्नं ये तु प्रयच्छन्ति ब्राह्मणेभ्यः सुसंस्कृतम् । श्रोत्रिवेभ्यो विशेषेण भक्त्या परमया युतः ॥७॥
तद्गोभिरंरुश्रीभिः सेव्यमानाः प्रयत्नतः । धर्मराजपुरं यान्ति विमानैर्म्यलंकृतैः ॥८॥
ये च सत्यं प्रभाषन्ते बहिरन्तश्च निर्मलाः । तेऽपि यान्त्यमरप्रस्था विमानैर्ममन्दिरम् ॥९॥

अध्याय २१६

नारकीय दुःख निवारण करने वाले धर्माचरण का वर्णन

मुनियो ने कहा—हे सज्जनों मे श्रेष्ठ ! आपने यममार्ग का महान् षष्ट, मयकर नरक तथा यम-द्वार भी बतलाये । ब्रह्मन् ! अतिभीषण यममार्ग के बारे मे ऐसा कोई उपाय है, जिससे मनुष्य सुखपूर्वक धमलोह जा सकें ? ॥१-२॥

व्यास ने कहा—इस लोक मे जो मनुष्य धार्मिक, अहिंसानिरत, गुरु सेवा मे रत, देव-ब्राह्मणों के पूजक तथा मनुष्यलोकाधारी हैं, वे पत्नी-पुत्र समेत यममार्ग मे जैसे जाते हैं, यह मैं आप लोगों को बतलाता हूँ । ॥३-४॥ सुवर्ण पताकाओं से शोभित विविध दिव्य विमानों से वे यमपुरी जाते हैं, जहाँ अप्सरायें उनको सेवा किया करती हैं ॥५॥ जो भक्ति-पूर्वक ब्राह्मणों को अनेक प्रकार के दान देते हैं, वे सुख से ही महापथ पर जाते हैं ॥६॥ जो ब्राह्मणों को विशेष करके श्रोत्रियो को परम भक्तिपूर्वक पवित्र अन्न देते हैं, वे उत्तम युवती स्त्रियो से सेवित तथा अलंकृत होकर विमानों से यमपुरी जाते हैं ॥७-८॥ जो सत्यभाषण करते हैं तथा बाहर भीतर से निर्मल हैं, वे भी देवतुल्य होकर विमानों से यममन्दिर जाते हैं ॥९॥ जो धर्मज्ञ मनुष्य कृशवय, लफ्फरी साधुओं को दिव्यु के उद्देश्य से पवित्र

गोदानानि पवित्राणि विष्णुमुद्दिश्य साधुषु । ये प्रयच्छन्ति धर्मज्ञाः कृशेषु कृशवृत्तिषु ॥१०॥
 ते यान्ति दिव्यवर्णाभिर्विमानैर्मणिचित्रितैः । धर्मराजपुरं श्रीमान्तेव्य (व) मानाप्सरोगणैः ॥११॥
 उपानद्युगलं छत्रं शय्यासनमयापि वा । ये प्रयच्छन्ति घस्त्राणि तथैवाऽऽभरणानि च ॥१२॥
 ते यान्त्यश्वै रथैश्चैव कुञ्जरैश्चाप्यलंकृताः । धर्मराजपुरं दिव्यं छत्रैः सौवर्णराजतैः ॥१३॥
 ये च भक्त्या प्रयच्छन्ति गुडपातकमचितम् । 'ओदनं च द्विजाश्वेभ्यो विशुद्धेनान्तरात्मना ॥१४॥
 ते यान्ति 'काञ्चनयानिर्विधिस्तु यमालयम् । वरस्त्रीभिर्मयाकामं सेव्यमानाः पुनः पुनः ॥१५॥
 ये च क्षीरं प्रयच्छन्ति घृतं दधि गुडं' मधु । ब्राह्मणेभ्यः 'प्रयत्नेन 'शुद्धयोपेतं सुसंस्कृतम् ॥१६॥
 चक्रवाकप्रयुक्तैश्च विमानैस्तु हिरण्यैः । यान्ति गन्धर्ववादिनैः सेव्यमाना यमालयम् ॥१७॥
 ये फलानि प्रयच्छन्ति पुष्पाणि सुरभीणि च । हंसयुक्तैर्विमानैस्तु यान्ति 'धर्मपुरं' नराः ॥१८॥
 ये तिलांस्तिलधेनुं च घृतधेनुमयापि वा । श्रोत्रियेभ्यः प्रयच्छन्ति विप्रैः श्रद्धयाऽन्विताः ॥१९॥
 सोममण्डलसंकाशैर्निर्गते यान्ति निर्मलैः । गन्धर्वैश्चगीयन्ते पुरे बंधस्वतस्य ते ॥२०॥
 येषां वाप्यश्व कूपारश्च तडागानि सरांसि च । दीधिकाः पुष्करिण्यश्च शीतलाश्च जलाशयाः ॥२१॥
 यान्ति हेमचन्द्राभिर्विद्यधण्डानिनादितैः । व्यजनैस्तारवृत्तैश्च वीज्यमाना महाप्रभाः ॥२२॥
 'येषां देवकुलान्यत्र चित्राण्यायतनानि च । रत्नैः प्रस्फुरमाणानि मनोज्ञानि शुभानि च ॥२३॥

गार्ग्य देते हैं, वे अष्टाश्वों से सेवित होकर मणिलचित दिव्य वर्ण वाले विमानों से यमपुरी जाते हैं ॥१०-११॥
 जो जोडा जूता, छत्ता, शय्या, आसन, वस्त्र तथा मूषण दान करते हैं, वे घोड़े, हाथी, रथ तथा सोने-बादी के दिव्य
 छत्रों से अलङ्कृत होकर यमालय जाते हैं ॥१२-१३॥ जो पवित्र हृदय से भक्तिपूर्वक गुड, पान तथा भात ब्राह्मणों
 को देते हैं, वे सुवर्णमय विमानों से यम-अवन जाते हैं और दिव्याङ्गनायें उनकी पूर्ण सेवा करती हैं ॥१४-१५॥
 जो पवित्र तथा सुसंस्कृत दूध, घी, दही, गुड और मधु यत्नपूर्वक ब्राह्मणों को देते हैं, वे चक्रवाकयुक्त सोने के विमानों
 से यमालय जाते हैं और गन्धर्वगण समीप द्वारा उनकी सेवा करते हैं ॥१६-१७॥ जो सुगन्धित पुष्प तथा फल दान
 करने हैं, वे नर हंसयुक्त विमानों से धर्मपुर जाते हैं ॥१८॥ जो तिल, तिलधेनु (तिलों की बनी गाय) तथा घृत
 धेनु (घी की बनी गाय) श्रद्धापूर्वक श्रोत्रियों को देते हैं, वे चन्द्रमण्डल के समान निर्मल विमानों से यमालय जाते हैं
 और यमपुरी में गन्धर्वगण उनकी सेवा करते हैं ॥१९-२०॥ जो बावली, कुआँ, पीछरा सरोवर, दीधिका, पुष्करिणी
 तथा तालाब दान करते हैं, वे महातेजस्वी होकर दिव्य घण्टा-आदों से युक्त, सुवर्ण तथा चन्द्रमा के समान वान्ति
 वाले विमानों से यमालय जाते हैं और उनके ऊपर पक्षे झेले जाते हैं ॥२१-२२॥ इस लोक में जिन्होंने ब्रिय विचित्र
 रत्नवदित, मनोहर तथा पवित्र देवालय बनवाये हैं, वे लोकपालों के साथ पवनतुल्य वेगवाले विमानों से नाता

१४ दक्षिणा । १५ अयने । २४ ० विमानैर्वीज्यमा० । ३४ स तथा । ४४ पुण्यदिने । ५४ श्रद्धो-
 पेन । स शुद्ध मन्त्रमु० । ६४ धर्मपुरी । ७४ स निर्मल । ८४ ये च कुर्वन्ति मूलोके दिव्यान्वाय० ।

ते यान्ति लोकपालंस्तु विमानं वतिरंहसः। धर्मराजपुरं 'दिव्यं नानाजनसमाकुलम् ॥२४॥
 पानीय ये प्रयच्छन्ति सर्वप्राण्युपजोवितम्'। ते' वितृष्णाः सुखं यान्ति विमानंस्तं महापथम् ॥२५॥
 काष्ठपादुकयानानि पोढकान्यासनानि च। येदंस्तानि द्विजातिभ्यस्तेऽध्वानं यान्ति वै सुखम् ॥२६॥
 सोवर्णमणिपोढेषु पादौ कृत्वोत्तमेषु च। ते प्रयान्ति विमानंस्तु अप्सरोगणमण्डितं ॥२७॥
 आरामाणि विचित्राणि पुष्पाढधानीह मानवाः। रोषयन्ति कलाढयानि नराणामुपकारिणः ॥२८॥
 वृक्षच्छायासु रम्यासु शीतलासु स्वलकृताः। वरस्त्रोगीतवाद्यंश्च सेव्यमाना सजन्ति ते ॥२९॥
 सुवर्णं रजतं चापि विद्रुमं भोजितं तथा। ये प्रयच्छन्ति ते यान्ति विमानंः कनकोज्ज्वलैः ॥३०॥
 भूमिदा दीप्यमानाश्च सर्वकामंस्तु तर्पिताः। उदितादित्यसंकाशं विमानं भूशनादितं' ॥३१॥
 कन्यां तु ये प्रयच्छन्ति ब्रह्मदेयामलंकृताम्। दिव्यकन्यावृता यान्ति विमानंस्ते यमालयम् ॥३२॥
 सुगन्धामुहकपूरान्पुष्पपाण्डिजोत्तमाः। प्रयच्छन्ति द्विजातिभ्यो भक्त्या परमयाऽन्विताः ॥३३॥
 ते सुगन्धा सुवेशाश्च सुप्रभाः सुविभूयिताः। यान्ति धर्मपुरं यानं विचित्रैरभ्यलंकृताः ॥३४॥
 दीपदा यान्ति यानंश्च दीपयन्तो दिशो दश। आदित्यसदृशीयानि दीप्यमाना यथाऽनयः ॥३५॥
 गृहावसथदातारो गृहं काञ्चनमण्डितं। व्रजन्ति बालार्कनिर्भरं धर्मराजगृहं नराः ॥३६॥
 जलभाजनदातारः कुण्डिकाकरचक्रदा'। पूज्यमानाप्सरोभिश्च यान्ति वृप्ता महागजैः ॥३७॥

प्राणिनो से परिपूर्ण दिव्य यमपुरी को जाते हैं ॥२३-२४॥ जो समस्त प्राणियों के जीवन स्वरूप जल दान करते हैं, वे प्यास रहित होकर विमानों से उस महापथ पर जाते हैं ॥२५॥ जो शर्करा की सवारी, पीढा तथा आसन ब्राह्मणों को देते हैं, वे सुवर्णवत् उस मार्ग में जाते हैं ॥२६॥ वे सुवर्ण तथा मणि के उत्तम आसनों पर बैठकर अप्सराओं से मण्डित होकर विमानों से प्रमाण करते हैं ॥२७॥ जो लोगों के उपकार के लिये मनोहर तथा कल-गुप्दी से सम्पन्न उपवन लगाते हैं, वे सुन्दर तथा शीतल वृक्षों की छाया में अलङ्कृत एवं उत्तम वनिता, गीत तथा वाद्यों से सुवेष्टित होकर जाते हैं ॥२८-२९॥ जो सोना, चादी, मूषा तथा मोदी दान करते हैं, वे सुवर्ण के समान उज्ज्वल विमानों से जाते हैं ॥३०॥ भूमिदान करने वाले मनुष्य वान्तिमान् तथा समस्त कामनाओं से तृप्त होकर महानादों से युक्त तथा उदयकालीन सूर्य के समान विमानों से जाते हैं ॥३१॥ जो अलंकृत कन्या ब्राह्मणों को देते हैं, वे दिव्य कन्याओं से आवृत होकर विमानों से यमालय जाते हैं ॥३२॥ द्विजश्रेष्ठो' जो परम भक्ति से सुगन्धित द्रव्य, अगर, कपूर, पुष्प तथा धूप ब्राह्मणों को देते हैं, वे अत्यन्त कान्तिमान्, सुविभूयित तथा सुन्दर गन्धों एवं वेशों से युक्त होकर विभिन्न विमानों से यमलोक जाते हैं ॥३३-३४॥ दीप दान करने वाले मनुष्य दश दिशाओं को आलोकित करते हुए तथा सूर्य सदृश विमानों से अग्नि की तरह प्रदीप्त होते हुए धर्मपुर जाते हैं ॥३५॥ जो मनुष्य गृहदान करते हैं, वे बालभूषण के समान सुवर्णमण्डित गृहों से युक्त होकर यममवन जाते हैं ॥३६॥ जलपात्र देने वाले तथा वमण्डल देने वाले मनुष्य अप्सराओं से पूजित होते हुए गजराज पर चढ़ कर जाते हैं ॥३७॥ जो पैर तथा शिर का उवटन

पादाम्पङ्गं शिरोम्पङ्गं स्नानपानोदकं तथा । ये प्रयच्छन्ति विप्रेभ्यस्ते यान्त्यश्वयंमालयम् ॥३८॥
 विश्रामयन्ति ये विप्राञ्छान्तानध्वनि कशितान् । चक्रवाकप्रयुक्तेन यान्ति यानेन ते सुखम् ॥३९॥
 स्वागतेन च यो विप्रं पूजयेदासनेन च । स गच्छन्ति तमध्वानं सुखं परमनिर्वृतः ॥४०॥
 नमो ब्रह्मण्यदेवेति यो हरिं चाभिवादयेत् । गां च पापहरेत्युक्त्वा सुखं यान्ति च तत्पथम् ॥४१॥
 अनन्तराशिनो ये च दम्भानृतविबजिताः । तेऽपि सारसयुक्तेस्तु यान्ति यानेश्च तत्पथम् ॥४२॥
 वर्तन्ते ह्येकभक्तेन शाठ्यदम्भविबजिताः । हंसयुक्तेर्विमानेस्तु सुखं यान्ति यमालयम् ॥४३॥
 चतुर्थैकभक्तेन वर्तन्ते ये जितेन्द्रियाः । ते यान्ति धर्मनगरं यानेश्वहिनयोजितः ॥४४॥
 तृतीये दिवसे ये तु भुञ्जते नियतव्रताः । तेऽपि हस्तिरथैर्दिव्यैर्यान्ति यानेश्च तत्पथम् ॥४५॥
 षष्ठेऽन्नभक्षको यस्तु शौचनित्यो जितेन्द्रियः । स याति कुञ्जरस्थस्तु शचीपतिरिव स्वयम् ॥४६॥
 धर्मराजपुरं दिव्यं नानामणिबिभूषितम् । नानास्वरसमायुक्तं जयशब्दरवेर्युतम् ॥४७॥
 पक्षोपवासिनो यान्ति यानैः शार्दूलयोजितैः । पुरं तद्वर्मास्य सेव्यमानाः ॥ सुरासुरैः ॥४८॥
 ये च मासोपवासं तु कुर्वन्ते संपतेन्द्रियाः । तेऽपि सूर्यप्रदीप्तैस्तु यान्ति यामर्यमालयम् ॥४९॥
 'महाप्रस्थानमेकाग्रो यः प्रयाति दृढव्रतः । सेव्यमानास्तु गन्धर्वैर्यान्ति यानर्यमालयम् ॥५०॥

और नहाने तथा पीने के लिये जल ब्राह्मणों को देते हैं, वे घोड़ों पर चढ़कर यमालय जाते हैं ॥३८॥ जो रास्ते के बचे हुए तथा दुर्गों की चिन्ता को विश्राम देते हैं, वे चक्रवाक युक्त विमान से सुखपूर्वक यमपुरी जाते हैं ॥३९॥ जो स्वागत तथा आसन से द्विज की पूजा करते हैं, वह परम सुख से उस मार्ग में जाते हैं ॥४०॥ जो 'नमो ब्रह्मण्यदेव' कहकर विष्णु की तथा 'पापहरे' कहकर गाय की वन्दना करते हैं, वे उस मार्ग में सुख से जाते हैं ॥४१॥ जो दूसरी (को खिलाने) के बाद भोजन करते हैं और दम्भ-मिथ्या से रहित हैं, वे सारस पक्षी स युक्त रथों से उस मार्ग में जाते हैं ॥४२॥ जो एक ईश्वर के भक्त हैं, तथा दम्भ मिथ्या से शून्य हैं, वे हंस युक्त विमानों से यमालय जाते हैं ॥४३॥ जो ईश्वरभक्त तथा जितेन्द्रिय हैं, वे मयूरयुक्त रथों से धर्मनगर जाते हैं ॥४४॥ जो नियमपूर्वक व्रत करते हुए तीसरे दिन भोजन करते हैं, वे भी दिव्य गजयुक्त रथों से यमालय जाते हैं ॥४५॥ जो जितेन्द्रिय तथा नित्य शुचि होकर छठे दिन भोजन करते हैं, वे साक्षात् इन्द्र की तरह हाथा पर चढ़ कर नाना मणियों से विभूषित, अनेक स्वारों से युक्त तथा जयसब्दों से समन्वित धर्मराजपुरी को जाते हैं ॥४६-४७॥ जो पक्षिण उपवास करते हैं वे शार्दूलों (परी या बाघ) से युक्त रथा से यमपुरी जाते हैं और देवता तथा अश्वर उनकी सेवा करते हैं ॥४८॥ जो द्वितीय समय पूर्वक मार्गिण उपवास करते हैं, वे भी सूर्य के समान प्रदीप्त रथों से यमालय जाते हैं ॥४९॥ जो दुइव्रती होकर एकाग्रचित्त से शरीर त्याग करते हैं वे गन्धर्वों से सेवित होते हुए विमानों से यमालय जाते

११ ०म् । ये तोषयन्ति पवित्रानसर्वं स्वागतेन । २१ च । ते गच्छन्ति महाध्वा० । ३१ ०वृता । पर० । ४१ ०वृ । गाव सर्वं सहैत्यु० । ५१ तत्पुरम् । ६१ ०पि हंससमायु० । ७१ ०नैर्विमानैर्यान्ति त० । ८१ स ०तदम् । ९१ पापमध्यवि० । १०१ ०मान सु० । १११ स सुममार्हिता । १२१ ०नसमये हरि स्मरति मानव । १३० ।

'शरीरं साधयेद्यस्तु वैष्णवेनान्तरात्मना । स रथेनाग्निवर्णेन यातीह त्रिदशालयम् ॥५१॥
 अग्निप्रवेशं यः कुप्यन्नारायणपरायणः । स यात्यग्निप्रकाशेन विमानेन यमालयम् ॥५२॥
 प्राणांस्त्यजति यो मर्त्यः स्मरन्विष्णुं सनातनम् । यानेनार्कप्रकाशेन याति धर्मपुरं नरः ॥५३॥
 प्रविष्टोऽन्तर्जलं यस्तु प्राणांस्त्यजति मानवः । सोममण्डलकल्पेन याति यानेन वै 'सुखम् ॥५४॥
 स्वशरीरं हि गृध्रेभ्यो वैष्णवो यः प्रयच्छति । स याति रथमुख्येन काञ्चनेन यमालयम् ॥५५॥
 स्त्रीग्रहे गोघ्रहे वाऽपि युद्धे मृत्युमुपैति यः । स यात्यमरकन्याभिः सेव्यमानो रविप्रभः ॥५६॥
 वैष्णवा ये च कुर्वन्ति तोययात्रा जितेन्द्रियाः । तत्पथं यान्ति ते घोरं सुखयानरलंकृताः ॥५७॥
 ये यजन्ति द्विजश्रेष्ठाः ऋतुभिर्भूरिदर्शिनः । तप्तहाटकसंकाशैर्विमानैर्यान्ति ते सुखम् ॥५८॥
 परपीडामकुर्वन्तो भूत्यानां भरणादिकम् । कुर्वन्ति ते सुखं यान्ति विमानैः वनकोज्ज्वलैः ॥५९॥
 ये क्षान्ताः सर्वभूतेषु प्राणिनामभयप्रदाः । शोधमोहविनिर्मुक्ता निमंदाः संपतेन्द्रियाः ॥६०॥
 पूर्णचन्द्रप्रकाशेन विमानेन महाप्रभाः । यान्ति ध्रुवस्वतपुरं देवगन्धर्वसेविताः ॥६१॥
 एकभावेन ये विष्णुं ब्रह्माणं ध्यम्बकं रविम् । पूजयन्ति हि ते यान्ति विमानैर्भास्करप्रभैः ॥६२॥
 ये च मास न खादन्ति सत्यशौचसमन्विताः । तेऽपि यान्ति सुखैर्नैव धर्मराजपुरं नराः ॥६३॥

है ॥५०॥ जो विष्णु के चित्त लगाकर शरीर की साधना करते हैं, वे अग्नि के समान वर्ण वाले रथों से यमालय जाते हैं ॥५१॥ जो नारायणपरायण होकर अग्नि-यवेद्य करते हैं, वे अग्नि तुल्य प्रकाश वाले विमानों से यमालय जाते हैं ॥५२॥ जो मनुष्य सनातन विष्णु का स्मरण करते हुए प्राणत्याग करता है, वह सूर्य के समान प्रकाश वाले रथ से धर्मपुर जाता है ॥५३॥ जो मानव जल के अन्दर प्रवेश कर प्राणत्याग करता है, वह चन्द्रमण्डल तुल्य रथ से सुखपूर्वक यमलोक जाता है ॥५४॥ जो विष्णु-भक्त मीधों को अपना शरीर दे देता है, वह सुवर्ण के उत्तम रथ से यमालय जाता है ॥५५॥ जो स्त्री के लिये या गाय के लिये युद्ध में मरता है, वह रवि तुल्य शान्तिमान् होकर देवकन्याओं से सेवित होते हुए धर्मपुर जाता है ॥५६॥ जो वैष्णव जितेन्द्रिय होकर तीर्थयात्रा करते हैं, वे अलंकृत होकर विमानों से सुखपूर्वक उस मार्ग पर जाते हैं ॥५७॥ द्विजश्रेष्ठो जो बहुत दक्षिणाओं से युक्त करते हैं वे सुवर्ण सदृश विमानों से सुखपूर्वक यमालय जाते हैं ॥५८॥ जो दूसरे को बप्ट नहीं देते तथा नौकरो को उचित पारितोषिक देते हैं, वे वनक समान उज्ज्वल विमानों से सुखपूर्वक जाते हैं ॥५९॥ जो जितेन्द्रिय, क्षमाशील, शोध माह तथा अभिमान से रहित और प्राणीमात्र को अभयदान देने वाले हैं, वे देव-गन्धर्वों से सेवित तथा अति-कान्तियुक्त होकर पूर्णचन्द्र के समान प्रकाश वाले विमानों से यमपुर जाते हैं ॥६०-६१॥ जो एवभाव से विष्णु, ब्रह्मा, शिव तथा दिनकर की पूजा करते हैं, वे सूर्यतुल्य प्रभा वाले विमानों से जाते हैं ॥६२॥ जो नर सत्य-शौच से युक्त हैं तथा मासभक्षण नहीं करते हैं, वे भी सुख से यमपुर जाते हैं ॥६३॥ अथ तथा गोज्य पदार्थों में मांस से बचकर

मांसांमिष्टतरं नास्ति भक्ष्यभोज्यादिकेषु च । तस्मान्मांसं न भुञ्जीत नास्ति मिष्टं सुखोदयः ॥६४॥
 गोसहस्रं तु यो दद्याद्यस्तुमांसं न भक्षयेत् । समावेतो पुरा प्राह ब्रह्मा वेदेविदा वरः ॥६५॥
 सर्वतोयं यत्पुण्यं सर्वयज्ञेषु यत्फलम् । अमांसभक्षणे विप्रास्तच्च तच्च च तत्तामम् ॥६६॥
 एव सुखेन ते यान्ति यमलोकं च धार्मिकाः । दानव्रतपरा यानैर्यत्र देवो रवेः सुतः ॥६७॥
 दृष्ट्वा तान्धार्मिकान्देवः स्वयं संमानयेद्यमः । स्वागतासनदानेन पाद्यार्घ्येण प्रियेण तु ॥६८॥
 धन्या यूयं महात्मान आत्मनो हितकारिणः । येन दिव्यसुखार्थाय भवद्भिः सुकृत कृतम् ॥६९॥
 इदं विमानमारुह्य दिव्यस्त्रीभोगभूयिताः । स्वर्गं गच्छध्वमतुलं सर्वकामसमन्वितम् ॥७०॥
 तत्र भुक्त्वा महाभोगानन्ते पुण्यपरिप्लवात् । यत्किंचिदल्पमशुभं फलं तदिह भोदय ॥७१॥
 ये तु तं धर्मराजानं भराः पुण्यानुभावतः । पश्यन्ति सौम्यमनसं पितृभूतमिवाऽऽत्मनः ॥७२॥
 'तस्माद्धर्मः सेवितव्यः सदा भुक्तिफलप्रदः । धर्मादर्थस्तथा कामो मोक्षश्च परिकीर्त्यते ॥७३॥
 धर्मो माता पिता भ्राता धर्मो नाथः सुहृत्तथा । धर्मः स्वामी सखा गोप्ता' तथा धाता च पोषकः ॥७४॥
 धर्मादर्थोऽर्थतः कामः कामाद्भोगः सुखानि च । धर्माद्विदवर्धर्मकाग्र्यं धर्मात्स्वर्गगतिः परा ॥७५॥
 धर्मस्तु सेवितो विप्रास्त्रायते महतो भयात् । देवत्वं च द्विजत्वं च धर्मात्प्राप्तोत्पन्नतमम् ॥७६॥
 यदा च क्षीयते पाप नराणां पूर्वसंचितम् । तदैवां भजते बुद्धिर्धर्मं चात्र द्विजोत्तमा' ॥७७॥

मीठा कोई नहीं है। इसलिये मांस नहीं खाता चाहिये, क्योंकि मधुरो से सुख नहीं होता है ॥६४॥ जो हज़ार गायें दान करेगा और जो मांस नहीं खायेगा, वे दोनों समान हैं—ऐसा वेदेवेताओ में थोड़ा ब्रह्मा ने पहले ही कहा है ॥६५॥ विप्रबुद्ध! समस्त तीर्थों (के सब) और अखिल यज्ञों (के अनुष्ठान) से जो पुण्य फल मिलता है, वह फल मांस का भक्षण न करने से प्राप्त होता है ॥६६॥ इस प्रकार धार्मिक तथा दान व्रतपरायण मनुष्य सुख से यमलोक जाते हैं, जहाँ सूर्यपुत्र यम स्वयं रहते हैं ॥६७॥ उन धार्मिकों को देखकर स्वयं यम आसन, पाद्य तथा अर्घ्य से स्वागत करते हैं और प्रियवचन कहते हैं (वि)—'हे महत्तमाओ! अपना कल्याण करने काओ! आप धन्य हैं। जिसलिये आपने दिव्यसुख के निमित्त पुण्य किया, अतः इस विमान पर चढ़कर दिव्य-स्त्री-मार्गा से मूर्धित तथा अनेक वामनाओं से परिपूर्ण होकर स्वर्ग जाइये। वहाँ विपुल मोगों के भोगकर अन्त में पुण्यक्षय हान पर जा कुछ पोंदा-ना अनुम बर्षों आपका किया हुआ है, उसका फल यहाँ भोगिये ॥६८-७१॥ पुण्य के प्रताप से मनुष्य धर्मराज का अपने कल्याणमय पिता के रूप में देखते हैं ॥७२॥ इसलिये मोक्ष-फल-दायक धर्म की उपासना सदा करना चाहिये। धर्म से अर्थ, काम, और मोक्ष (का मिलना) भी कहा गया है। ॥७३॥ धर्म ही माता, पिता, माई, स्वामी, मित्र, बन्धु, रक्षक, धाता तथा पोषक है। धर्म से अर्थ, अर्थ से काम और काम से भोग तथा सुख होता है। धर्म से ऐश्वर्य, मन की एकाग्रता और स्वर्ग मिलता है ॥७४-७५॥ विप्रबुद्ध! सुरक्षित धर्म महान् मय से बचाता है। धर्म से देवत्व तथा ब्राह्मणत्व नि सन्देह प्राप्त होता है ॥७६॥ द्विजश्रेष्ठो! जब मनुष्या के पूर्वसंचित पापों का क्षय हो जाता है तब उन्हें धर्म करने की बुद्धि होती है ॥७७॥ हजारों जन्म के बाद दुर्लभ मनुष्य-जन्म

जन्मान्तरसहस्रेषु मानुष्यं प्राप्य दुर्लभम् । यो हि नाऽऽचरते धर्मं भवेत्स खलु वञ्चितः ॥७८॥
 कुत्सिता ये दरिद्राश्च विरूपा व्याधितास्तथा । परप्रेयाश्च भूर्खाश्च ज्ञेया धर्मविराजिताः ॥७९॥
 ये हि दीर्घायुः शूराः पण्डिता भोगिनोऽयिनः । अरोगा रूपवन्तश्च तैस्तु धर्मः पुरा कृतः ॥८०॥
 एवं धर्मरता विप्रा गच्छन्ति गतिभुक्तमाप्नुयन् । अपमं सेवमानास्तु तिर्यग्योनिं व्रजन्ति ते ॥८१॥
 ये नरा नरकध्वंसिवासुदेवमनुग्रता । ते स्वप्नेऽपि न पश्यन्ति यमं वा नरकाणि वा ॥८२॥
 अनादिनिधनं देवं दंत्यदानवदारणम् । ये नमन्ति नरा नित्यं नहि पश्यन्ति ते यमम् ॥८३॥
 कर्मणा मनसा वाचा येऽच्युत शरणं गताः । न समर्थो यमस्तेषां ते मुक्तिफलभागिनः ॥८४॥
 ये जना जगता नाथं नित्यं नारायणं द्विजाः । नमन्ति नहि ते विष्णोः स्थानादन्यत्र गामिनः ॥८५॥
 न ते द्रुताश्च तन्मार्गं न यमं न च सा पुरोम् । प्रणम्य विष्णुं पश्यन्ति नरकाणि 'कथंचन' ॥८६॥
 कृत्वाऽपि बहुशः पापं नरा मोहसमन्विताः । न यान्ति नरकं न तत्र सर्वपापहरं हरिम् ॥८७॥
 शाठ्येनापि नरा नित्यं ये स्मरन्ति जनार्दनम् । तेऽपि यान्ति 'तनुं' स्ववत्त्वा विष्णुलोकमनामयम् ॥८८॥
 अत्यन्तक्रोधसक्तोऽपि कदाचित्कीर्तयेद्धरिम् । सोऽपि दीपक्षयान्मुक्तिं 'लभेच्च' विपतिर्यथा ॥८९॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे व्यासपितृवादे धार्मिकाणां सुगतिनिरूपणं नाम

षोडशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२१६॥

पाप' जो व्यक्ति धर्माचरण नहीं करता है, वह (परम लाभ से) वञ्चित ही रहता है ॥७८॥ जो निम्नित, दरिद्र, कुरूप, रोगी, दूत तथा मूर्ख हैं, उन्हें धर्मविराजित समझना चाहिये ॥७९॥ जो दीर्घायु, वीर, पण्डित, भोगी, धनवान्, मीरोग तथा रूपवान् हैं, उन्होंने पहले धर्म लिया है (ऐसा समझना चाहिए) ॥८०॥ विप्रवृन्द ! इस प्रकार धर्म-परायण मनुष्य उत्तम जाति को प्राप्त करते हैं और अयमंसेवी नर यशु-न्धी योनि में जाते हैं ॥८१॥ जो मनुष्य नरकनाशन कृष्ण के भक्त हैं, वे स्वप्न में भी यम या नरको का नहीं देखते हैं ॥८२॥ जो मनुष्य दैत्य-दानवी वा दलन करने वाले आदिअन्तरहित भगवान् को नित्य प्रणाम किया करते हैं, वे यम को नहीं देखते हैं ॥८३॥ जो मन, कर्म तथा वाणी से भगवान् के शरणागत हो चुके हैं, उन्हें पकड़ने के लिये यमदूत समर्थ नहीं होते और वे मोक्षफल-भागी हो जाते हैं ॥८४॥ द्विजवृन्द ! जो मनुष्य नित्य जगत्पति नारायण को प्रणाम करते हैं, वे वैकुण्ठ छोड़ दूसरी जगह नहीं जाते ॥८५॥ विष्णु को प्रणाम करने वाले मनुष्य न यमदूतों को, न यममार्ग को, न यम-को, न यमपुरी को, न नरको को कभी देखते हैं ॥८६॥ अखिलपापहारी हरि को प्रणाम कर मोहयुक्त मनुष्य अनेक पाप करके भी नरक नहीं जाते ॥८७॥ जो नर शाठ्य से भी नित्य जनार्दन का स्मरण करते हैं, वे भी शरीर त्यागने के बाद सुखमय विष्णुलोक को प्राप्त करते हैं ॥८८॥ यदि अत्यन्त क्रोधी मनुष्य भी कभी हरि का कीर्तन करता है तो वह भी दोषों के क्षय हो जाने से मोक्ष प्राप्त करता है, जैसे विजुपाल ने किया था ॥८९॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में ब्रह्मा और ऋषि के संवाद-प्रकरण में धर्मात्माओं के गतिनिरूपण नामक दो सो

सौलहर्वा अध्याय समाप्त ॥२१६॥

अथ सप्तदशाधिकद्विशततमोऽध्यायः

धर्मश्चेष्टयवर्णनम्

लोमहर्षण उवाच

श्रुत्वं व यममार्गं ते नरकेषु च यातनाम् । पप्रच्छुश्च पुनर्व्यास सशय मुनिसत्तमा ॥१॥

मुनय ऊचुः

भगवन्सर्वधर्मज्ञ सर्वशास्त्रविशारद । मर्त्यस्य क सहायो वै पिता माता सुतो गुरु ॥२॥

ज्ञातिसवन्धिबर्गश्च मित्रवर्गस्तथैव च । गृह शरीरमुत्सृज्य काष्ठलोष्टसम जन ॥

गच्छन्त्यमुत्र लोके वै कश्च तातनुगच्छति ॥३॥

व्यास उवाच

एक प्रसूयते विप्रा एक एव हि नश्यति । एकस्तरति दुर्गाणि गच्छत्येकस्तु दुर्गतिम् ॥४॥

असहाय पिता माता तथा भ्राता सुतो गुरु । ज्ञातिसवन्धिबर्गश्च मित्रवर्गस्तथैव च ॥५॥

मृत शरीरमुत्सृज्य काष्ठलोष्टसम जना । मूर्तमिव रोदित्वा ततो यान्ति पराङ्मुखा ॥६॥

तैस्तच्छरीरमुत्सृष्ट धर्म एकोऽनुगच्छति । तस्माद्धर्मं सहायश्च सेवितव्यं सदा नृभि ॥७॥

अध्याय २१७

धर्म की श्रेष्ठता का वर्णन

लोमहर्षण ने कहा—मुनिवर । इस प्रकार यममार्ग तथा नरको बारे यातना के बारे में सुनकर मुनियो ने फिर व्यास से अपना सशय पूछा ॥१॥

मुनियो ने कहा—भगवन् ! अथेव धर्मों के ज्ञाता । सपरिणास्त्रविशारद । मनुष्य का कौन सहायक होता है—पिता या माता या पुत्र या गुरु या बन्धुवर्ग या मित्रवर्ग ? मनुष्य लकड़ी तथा डले के समान घर एवं मृत् शरीर को छोड़कर चले जाते हैं । मरने पर कौन उनका अनुगमन करता है ? ॥२ ॥

व्यास ने कहा—विप्रबृद्ध । मनुष्य अकेला जन्म लेता है अकेला मरता है अकेला कठिनाइयों को पार करता है और अकेला दुर्गति प्राप्त करता है । पिता माता, भाई पुत्र गुरु बन्धुवर्ग तथा मित्रवर्ग—कोई उसका साथ नहीं देता है । लोग लकड़ी-डले के समान उससे मृत शरीर को त्याग कर दो घड़ी दो घंटे कर निवृत्त हो जाते हैं । उन लोगों से परित्यक्त शरीर का अनुगमन एवं धर्म ही करता है । इसलिए मनुष्यों का अपने सहायक धर्म की सदा

१ध यातनम् । २ग मृत । ३न स्वगतिम् । ४स्त ०तपसि रो० । ५क ख एवानु० ।

प्राणी धर्मसमायुक्तो गच्छेत्स्वर्गं गतिं पराम् । तथैवाधर्मसंयुक्तो नरकं चोपपद्यते ॥८॥
 'तस्मात्पापगतं रथं नानुरज्येत' पण्डितः । धर्मं एको' मनुष्याणां नृहायः परिकीर्तितः ॥९॥
 'लोभान्मोहादनुभवाद्भयान्माद्विषय' बहुभूतः । नरः करोत्यकार्याणि परार्थं लोभमोहितः ॥१०॥
 धर्मश्चाधर्मश्च कामश्च त्रिनयः जीवतः' फलम् । 'एतत्त्रयमवाप्तव्यमधर्मपरिवर्जितम् ॥११॥

मुनय ऊचुः

श्रुतं भगवतो वाक्यं धर्मयुक्तं परं हितम् । शरीरनिचयं ज्ञातुं बुद्धिर्नोऽत्र प्रजायते ॥१२॥
 मृतं शरीरं हि नृणां मूढमव्यक्ततां गतम् । 'अक्षयविषयं प्राप्तं कथं धर्मोऽनुगच्छति ॥१३॥

व्यास उवाच

पृथिवी वायुराकाशमापो ज्योतिर्मनोऽन्तरम् । बुद्धिरात्मा च सहितः धर्मं पश्यन्ति नित्यदा' ॥१४॥
 प्राणिनामिह सर्वेषां 'साक्षिभूता दिवानिशम् । एतंश्च सह धर्मो हि तं जीवमनुगच्छति ॥१५॥
 स्वगस्त्यं मासं द्युनं च शोणितं च द्वितोत्तमा । 'शरीरं 'वर्जयन्मयेते जीवितेन' विवर्जितम् ॥१६॥
 ततो धर्मसमायुक्तः स जीवः सुखमेधते । इह लोके परे चैव किं भूयः कथयामि व ॥१७॥

मुनय ऊचुः

तद्दर्शितं भगवता यथा धर्मोऽनुगच्छति । एतत् ज्ञातुमिच्छामः कथं रेतः प्रवर्तते ॥१८॥

सेवा करनी चाहिये । धर्मात्मा प्राणी उत्कृष्ट स्वर्ग को प्राप्त करता है और पापी नरक में जाता है । अतः पण्डित-जन को चाहिये कि वे अधर्मों से प्राप्त धन में अनुरक्त न हों । मनुष्यों का एक धर्म ही सहायक माना गया है । बहुभूत मनुष्य भी लोभ से, मोह से, दया से या भय से अशायं कर बैठते हैं । धर्म, अर्थ और काम—ये तीन ही जीवन के फल हैं । इन तीनों की प्राप्ति अधर्म पूर्वक नहीं करनी चाहिए ॥४-११॥

मुनियो ने कहा—आपका धर्मयुक्त तथा परमनित्याणकारी वाक्य हमने सुना । अब शरीर के विषय में हम गुनना चाहते हैं । मनुष्यों का मृत शरीर सूक्ष्म तथा अव्यक्त कहा गया है । वह दृष्टिगोचर नहीं होता है । फिर धर्म कैसे उसका अनुगमन करता है ? ॥१२-१३॥

व्यास ने कहा—पृथिवी, वायु, आकाश, जल, अग्नि, मन, बुद्धि और आत्मा—ये सब नित्य धर्म को देखते हैं । ये दिनरात समस्त प्राणियों के साक्षी बने रहते हैं । इन्हीं के साथ धर्म जीव का अनुगमन करता है । द्विजवर ! प्राणों के छोड़ देने पर त्वचा, हड्डी, मांस, रीढ़ और शोणित रूप शरीर को ये भी छोड़ देते हैं । तदनन्तर धर्मयुक्त जीव इस लोक में तथा परलोक में सुख प्राप्त करता है । अब फिर आप लोगों से क्या कहूँ ? ॥१४-१७॥

मुनियो ने कहा—यह तो अज्ञाने बतलाया कि धर्म कैसे अनुगमन करता है । अब हम यह जानना चाहते हैं कि वीर्य कैसे बनता है ॥१८॥

१ख ०स्मान्याग० । २ख ०धर्मं सेव्यस्तु प० । ३ख । पण्डितः ख एष । ५ग ०द्राज्यव० ।

६क ग जीविते । ख जीविन । ७क ०तत्तु धर्मवाक्य मे अथ० । ८ख अतिनिवि० । ९क ख ०दा ।

सर्वथात्विह । १०ग ०तानि चानि० । ११ख ०रीरे वर्तते सर्वं जी० । १२क वर्तय० । १३ख. ०तेनाऽऽवृते पुन । १० ।

व्यास उवाच

अन्नमश्नन्ति ये देवा शरीरस्या द्विजोत्तमा । पृथिवी वायुराकाशमापो ज्योतिर्मनस्तथा ॥१९॥
ततस्तृप्तोपु भो विप्रास्तेषु भूतेषु पञ्चबु । मन षष्ठ्यु शुद्धात्मा रत सपद्यत महत ॥२०॥
ततो गर्भं स भवति श्लेष्मा स्त्रीपुंसयोर्द्विजा । एतद् सवमात्मात किं भूय श्रोतुमिच्छय ॥२१॥

मुनय ऊचु

आख्यात नो भगवता गम सजायत यथा । यथा जातस्तु पुरय प्रपद्येत तदुच्यनाम ॥२२॥

व्यास उवाच

'आसन्नमात्रपुरुषस्तभूतंरभिभूयते' । विप्रयुक्तगु' तंभूतं पुनर्याप्तपरा गतिम् ॥२३॥
'स च भूतसमायुक्त प्राप्नोति जीवमव हि । ततोऽस्य कम पश्यन्ति गुभ वा यदि याऽगुभम् ॥
इवता 'पञ्चभूतस्या किं भूय' श्रोतुमिच्छय ॥२४॥

मुनय ऊचु

स्वगम्य मासमुत्सृज्य तंस्तु भूतंविद्वजित । जीव स भगवत्पदस्य सुखदुःख समश्नुत ॥२५॥

व्यास उवाच

जीव कमसमायुक्त शीघ्र रत' समागन् । स्त्रीणा पुष्य समासाद्य तत कालेन भो द्विजा ॥२६॥

व्यास ने कहा—विप्रवर । तारस्य देव जा अन्नमक्षण करते हैं उससे पृथिवी वायु आकाश जल अग्नि और मन तत्त्व होते हैं । पञ्च महाभूता तथा छठ मन के तत्त्व हैं आने पर शुद्ध आत्मा है महान् ब्रह्म बन जाता है । तब स्व-पुरुषा का रज-वर्ण गम रूप में परिणत होता है । यह सब मैंने आपसे बतला दिया । अब क्या सुनना चाहते हैं ? ॥१९ २१॥

मुनियों ने कहा—गम जैसे उत्पन्न होता है वही तब आपन बतला दिया । अब पुरय कैसे उत्पन्न होता है—यह कहिये ॥२२॥

व्यास ने कहा—पुरय उत्पन्न होते हैं पञ्चमहाभूत से आवात हो जाता है । पुन उन भूतों से विभक्त होने पर वह दूसरी गति को प्राप्त करता है । भूतों से युक्त होने पर वह जीवभाव को प्राप्त करता है । तदुपरांत पञ्चभूतों में रहने वाले देवता उससे गुम-आगुम बर्णों को देखते हैं । फिर आप क्या सुनना चाहते हैं ॥२३ २४॥

मुनियों ने कहा—मणवन् । भूता स परित्यज्य जव जव त्वचा हृद्य तथा मांस का छान देता है तब वह वहां रह कर सुत-पुत्रों का मोह करता है ? ॥२५॥

व्यास ने कहा—द्विजवृन् । बर्णों से युक्त जब धात्र ब्रह्म का प्राप्त करता है । तब समय पाकर स्त्रियां वे रज में समाविष्ट होता है ॥२६॥ मनुष्य सत्साराचक में पड़कर पुन कर्णे धमदूता द्वारा कर्णे तथा

१९ अक्षतमात्तु पु० । २० ख ०१५ स्वगमैरनुमू० । २३ ख ०स्तु त सर्वे पु० । ४५ ख सवमू० । ५५ ख ०ञ्च वि । ६५ ख भूयो मुनयः श्री० । ७६ ख ०त प्रकटते । स्त्री० ।

यमस्य पुरुषः क्लेशो यमस्य पुरुषैर्वधः । दुःखं संसारचक्रं च नरः क्लेशं च त्रिन्दति ॥२७॥
 इह लोके स तु प्राणी जन्मप्रभृति भो द्विजाः । सुकृतं कर्म च भुङ्क्ते धर्मस्य फलमाश्रितः ॥२८॥
 यदि धर्मं समायुज्य जन्मप्रभृति सेवते । ततः स पुरुषो भूत्वा सेवते नित्यदा सुखम् ॥२९॥
 अथान्तरान्तरं धर्ममधर्ममुपसेवते । सुखस्यानन्तरं दुःखं स जीवोऽप्यधिगच्छति ॥३०॥
 अधर्मेण समाप्यतो यमस्य विषयं गतः । महादुःखं समासाद्य तिर्यग्योनौ प्रजायते ॥३१॥
 कर्मणा येन येनेह यस्या योनौ प्रजायते । जीवो मोहसमायुक्तस्तन्मे शृणुत सांप्रतम् ॥३२॥
 यदेतदुच्यते शास्त्रं, सेतिहासंश्च छन्दसि । यमस्य विषयं घोरं मर्त्यलोकं प्रवर्तते ॥३३॥
 इह स्थानानि पुण्यानि देवतुल्यानि भो द्विजाः । तिर्यग्योन्यतिरिक्तानि गतिमन्ति च सर्वशः ॥३४॥
 यमस्य भवने दिव्ये ब्रह्मलोकसमे गुणः । कर्मभिर्नियतंबद्धो जन्तुर्दुःखान्मुपाप्नुते ॥३५॥
 येन येन हि भावेन येन वै कर्मणा यतिम् । प्रयाति पुरुषो घोरं तथा वक्ष्याम्यतः परम् ॥३६॥
 अधोत्य चतुरो वेदान्द्विजो मोहसमन्वितः । पतितस्तप्रतिगृह्याथ खरयोनी प्रजायते ॥३७॥
 खरो जीवति वर्षाणि दश पञ्च च भो द्विजाः । खरो मृतो बलीवर्दः सप्त वर्षाणि जीवति ॥३८॥
 बलीवर्दो मृतश्चापि जायते ब्रह्मराक्षसः । ब्रह्मराक्षसु मासांस्त्रींस्ततो जायेत ब्राह्मणः ॥३९॥
 पतितं याजयित्वा तु कृमियोनी प्रजायते । तत्र जीवति वर्षाणि दश पञ्च च भो द्विजाः ॥४०॥

ममूतो द्वारा वध को प्राप्त करता है ॥२७॥ विप्रगण । इस लोक में वह प्राणी जन्म से लेकर पुण्य करता है और धर्म का फल भोगता है ॥२८॥ यदि वह जन्म से लेकर धर्म की सेवा करता है तो वह पुरुष होकर नित्य सुख प्राप्त करता है ॥२९॥ बीच बीच में वह धर्म-अधर्म दोनों करता है। वह जीव सुख के बाद दुःख भी प्राप्त करता है ॥३०॥ अधर्म करने पर वह यमलोक जाता है। फिर घोर दुःख पाकर पक्षीयोन में जाता है ॥३१॥ जिस-जिस धर्म के करने से मोह-बद्ध जीव जिस योन में उत्पन्न होता है, वह अग्रे मुक्त से सुनिये ॥३२॥ वेद, शास्त्र तथा इतिहास मतलाते हैं कि बीच यम के भयंकर राज्य को छोड़कर मर्त्यलोक में जाता है ॥३३॥ यहाँ अनेको देवतुल्य पवित्र स्थान हैं, जहाँ पशु-पक्षी योन के अतिरिक्त योनियाँ जाती हैं ॥३४॥ यमराज के ब्रह्मलोक के समान गुणी वाले दिव्य भवन में जीव अपने कर्मों से बद्ध होकर दुःख भोगता है ॥३५॥ जिस भाव से या जिस धर्म से मनुष्य घोर गति को प्राप्त करता है, वह मैं इसके बाद बतलाऊँगा ॥३६॥ जो ब्राह्मण चारों वेदों को पढ़कर मोहवश पतितों से दान लेता है, वह मरने पर गधा होता है ॥३७॥ द्विजगण । यथा होकर वह पन्द्रह वर्ष जीता है। फिर मरने पर वह बैल होकर सात वर्ष जीता है ॥३८॥ बैल की देह त्यागने पर वह ब्रह्मराक्षस होता है। तीन महीनों तक ब्रह्मराक्षस रह कर बाद में ब्राह्मण हो जाता है ॥३९॥ पतितों के धाव कराने से कीड़े की योनि में जाना पड़ता है। वहाँ पन्द्रह वर्ष रहने पर कीटयोन से मुक्ति मिल जाती है। तब गधे की योनि में जाना पड़ता है। वहाँ भी

त्रिमिभावाद्भिर्मुक्तस्ततो जायेत गर्दभः । गर्दभः पञ्च वर्षाणि पञ्च वर्षाणि शूकरः ॥४१॥
 कुक्कुटः पञ्च वर्षाणि पञ्च वर्षाणि जम्बुकः । इवा चर्षमेकं भवति ततो जायेत मानवः ॥४२॥
 उपाध्यायस्य यः पापं शिष्यः कुर्यादबुद्धिमान् । स जन्मानोह संसारे त्रीनाप्नोति न संशयः ॥४३॥
 प्रावदा भवति भो यिप्रास्ततः अज्यास्ततः खरः । श्रेयश्च परिमिलष्टेषु पद्माज्जायेत ब्राह्मणः ॥४४॥
 मतसापि गुरोर्भायां यः शिष्यो याति पापकृत् । उदशान्ध्रति संसारानघर्षणेह चेतसा ॥४५॥
 दशयोनी तु स संभूतस्त्रोणि वर्षाणि जीवति । तत्रापि निधनं प्राप्तः त्रिमियोनी प्रजायते ॥४६॥
 कृमिभावमनुप्राप्तो चर्षमेकं तु जीवति । ततस्तु निधनं प्राप्य दशयोनी प्रजायते ॥४७॥
 यदि पुनस्तमं शिष्यं गुरुहंन्यादकारणम् । आत्मनः कामकारेण सोऽपि हिंस्रः प्रजायते ॥४८॥
 विनरं मातरं चैव यस्तु पुनोऽवमन्यते । सोऽपि विप्रा मृतो जन्तुः पूर्वं जायेत गर्दभः ॥४९॥
 गर्दभत्वं तु संप्राप्य दश वर्षाणि जीवति । संवत्सरं तु कुम्भीरस्ततो जायेत मानवः ॥५०॥
 पुत्रस्य मातापितरो यस्य रष्टावुभावपि । गुर्वपघ्याननः सोऽपि मृतो जयेत गर्दभः ॥५१॥
 षरो जीवति मासांश्च दश चापि चतुर्दश । विडालः सप्त मासास्तु ततो जायेत मानवः ॥५२॥
 मातापितराबान्धुस्य सारोक्षः संप्राजयते । तद्व्यतिर्यक् तु तापेव जायते कच्छपो द्विजाः ॥५३॥
 कच्छपो दश वर्षाणि त्रीणि वर्षाणि शल्यकः । ध्यालो भूत्वा तु एणमासास्तनो जायेत मानुषः ॥५४॥
 भर्तृपिण्डमुपाप्नोतीति राजद्विष्टानि सेवते । सोऽपि मोहसमापन्नो मृतो जायेत वानरः ॥५५॥

५१ वषों तक रहकर जीव सूत्रर हाकर जन्म लेता है ॥४०-४१॥ फिर पाँच वर्षों तक मुर्गा और पाँच वर्षों तक गिपार होता पड़ता है । फिर एक वर्ष तक कुत्ते की योगिनी में रहकर जीव मनुष्य-शरीर प्राप्त करता है ॥४२॥ जो मुर्ग शिष्य अपने अध्यापक के प्रति पापाचरण करता है, वह इस संसार में निःसन्देह तीन योगिनियों में जाता है । पहले वह कुत्ता होता है तदनन्तर राक्षस और तदनन्तर गधा । फिर मरने पर अनेकविध कष्टों को सहकर पदचालू वह बाल्मिक होता है ॥४३-४४॥ जो शिष्य मन से भी गुरु-पत्नी के प्रति पापाचरण करता है, वह अधर्मयुक्त जित केर सगर में जन्म लेता है, और कुत्ते की योगिनी में तीन वर्षों तक जीवकर मर जाता है । फिर कीड़े की योगिनी में उत्पन्न होता है ॥४५-४६॥ वहाँ भी एक वर्ष जाता है । तदनन्तर ब्राह्मण-योगिनी में उत्पन्न होता है ॥४७॥ यदि पुत्र तुल्य शिष्य को गुरु अकारण ही या अपने स्वार्थवश मार देता है तो वह भी हिंस्र योगिनी में उत्पन्न होता है ॥४८॥ किम्बुद्धि जा पुत्र माता-पिता की अवहेलना करता है, वह भी मरने पर गधा होता है ॥४९॥ गर्दभ-योगिनी में वह दस वर्षों तक रहता है । तब एक वर्ष तक मगर होकर रहता है । तदनन्तर मनुष्य यानि में उत्पन्न होता है ॥५०॥ जिस पुत्र के ऊपर माता, पिता तथा गुरु रुष्ट रहते हैं, वह मरने पर गधा होता है ॥५१॥ तदनन्तर खोबीस मास तक गधा और सात मास तक बिलाव होकर फिर मनुष्य होता है ॥५२॥ माता-पिता की निन्दा करने वाला मनुष्य सारोक्ष (पक्षी विशेष) होता है और उनकी ताडना करने वाला कच्छपा होता है ॥५३॥ कच्छपयोगिनी में दश वर्षों तक रहकर साही होता है । फिर छह महीनों तक साँप होकर बाद में मनुष्य होता है ॥५४॥ स्वामी के अन्न का खाकर उसने धनुषों की सेवा करने वाला मोहयुक्त मनुष्य मरने पर बन्दर होता है ॥५५॥ दस वर्षों तक बन्दर, सात वर्षों तक बूढ़ा और छह मासों तक कृत्ता रह कर वह मनुष्य होता है ।

वानरो दश वर्षाणि सप्त वर्षाणि मूपकः । इवा च भूत्वा तु घण्मासांस्ततो जायेत मानवः ॥५६॥
 न्यासापहर्ता तु नरो यमस्य विषयं गतः । संसाराणां शतं गत्वा कृमियोनो प्रजायते ॥५७॥
 तत्र जीवति वर्षाणि दश पञ्च च भो द्विजाः । दुष्कृतस्य सद्य कृत्वा ततो जायेत मानुषः ॥५८॥
 असूयको नरश्चापि मृतो जायेत शाड्यगंकः । विश्वामहर्ता च नरो भोनो जायेत दुर्मतिः ॥५९॥
 भूत्वा मोनोऽष्टवर्षाणि मृगो जायेत भो द्विजाः । मृगस्तु चतुरो मासांस्ततश्छागः प्रजायते ॥६०॥
 छागस्तु निधनं प्राप्य पूर्णं सवत्सरे ततः । कीटः सजायते जन्तुस्ततो जायेत मानुषः ॥६१॥
 धान्यान्व्यांस्तिलान्मापाङ्कुलित्यान्सर्पपाशचणान् । कलायानय मुद्गाश्च गोधूमानतसीस्तथा ॥६२॥
 तस्यान्ग्रन्यानि हर्ता च मर्त्यो मोहादचेतनः । सजायते मुनिश्रेष्ठा भूषिको निरपन्नपः ॥६३॥
 ततः प्रेत्य मुनिश्रेष्ठा मृतो जायेत शूकरः । शूकरो जातमात्रस्तु रोगेण म्रियते पुनः ॥६४॥
 इवा तनो जायते मूकः कर्मणा तेन मानवः । भूत्वाऽइवा पञ्च वर्षाणि ततो जायेत मानवः ॥६५॥
 परदारभिमर्शं तु कृत्वा जायेत वै बृकः । इवा शृगालस्ततो गुध्रो व्यालः कङ्कको बकस्तथा ॥६६॥
 भ्रातृभार्या तु पापतमा यो घर्षयति मोहितः । पुस्कोकिलस्वमाप्नोति सोऽपि सवत्सरं द्विजाः ॥६७॥
 'सन्निभायां गुरोर्भायां राजभायां तथैव च । प्रघर्षयित्वा कामात्मा मृतो जायेत शूकरः ॥६८॥
 शूकरः पञ्च वर्षाणि दश वर्षाणि वै बकः । पिपीलिकस्तु मासात्प्रीङ्कोटः स्यान्मासमेव च ॥६९॥

॥५६॥ घोरोहर का अपहरण करने वाला मनुष्य यम के राज्य में पहुँचता है । सौ बार जन्म-मरण पाकर (या नरको का भोगकर) इमि-योनि में उत्पन्न होता है ॥५७॥ वही पन्द्रह वर्षों तक रहकर पापी का क्षय करने मनुष्य-योनि में आता है ॥५८॥ निर्दक मनुष्य मरने पर शाड्यगंक (सींग वाला जीव) होता है । विश्वास-घाती दुष्टद्विष्ट मनुष्य मछली होता है ॥५९॥ आठ वर्षों तक मछली रह कर हरिण होता है चार महीनों तक हरिण रहकर बकरा होता है ॥६०॥ एवं वर्षों तक उस योनि में रहकर कीड़ा होता है । तदनन्तर मनुष्य होता है ॥६१॥ मुनिश्रेष्ठो ! धान, यव, तिल, जड़, कुलर्षी, सरसो, चने, मूग, गेहूँ, लीसी तथा दूसरे अन्न को चुराने वाला मूख मनुष्य निर्लज्ज बूढ़ा होता है ॥६२-६३॥ फिर मरने पर सूअर होता है । शूकर-योनिमें वह जलत्र होते हैं रोग से मर जाता है ॥६४॥ तब वह शृगा बुत्ता होता है । पाँच वर्षों तक उस योनि में रहकर मनुष्य होता है ॥६५॥ दूसरे की पत्नी के साथ समोग करने वाला मनुष्य भेडिया होता है । तदनन्तर वह कुत्ता, छिपार, गीध, साँप, सफेद चील और बगला होता है ॥६६॥ जो मूख मनुष्य भ्रातृ-पत्नी के साथ गमन करता है, वह भी एक वर्ष तक पुस्कोकिल (कोयल का नर) होता है ॥६७॥ निज-पत्नी, गुह-पत्नी तथा राज-पत्नी के पास जाने वाला कामी मनुष्य सूअर होता है ॥६८॥ पाँच वर्षों तक सूअर, दश वर्षों तक बगला, तीन महीनों तक चीटी और एवं मास तक वह कीड़ा होता है ॥६९॥ इतनी योनियों में

एतानासाद्य ससारान्कृमियोनौ प्रजायते । तत्र जीवति मासांस्तु कृमियोनौ चतुर्दश ॥७०॥
 नरोऽयमक्षय कृत्वा ततो जायत मानुष । पूर्वं दत्त्वा तु य कया द्वितीये दातुमिच्छति ॥७१॥
 सोऽपि विप्रा मृतो जन्तु क्रिमियोनौ प्रजायते । तत्र जीवति वर्षाणि त्रयोदश द्विजोत्तमा ॥७२॥
 अधमसक्षये मुक्तस्ततो जायत मानुष । देवकायमकृत्वा तु पितकायमथापि वा ॥७३॥
 अनिर्याप्य पितुर्देवामृतो जायत वायस । वायस शतवर्षाणि ततो जायेत कुक्कुट ॥७४॥
 जायत व्यालकदवापि मास तस्मात्तु मानुष । ज्येष्ठ पितुसम चापि भ्रातर योऽयमयत ॥७५॥
 सोऽपि मृत्युमुपागम्य कौञ्चयोनौ प्रजायत । कौञ्चो जीवति वर्षाणि दश जायेत जीवक ॥७६॥
 ततो निधनमाप्नोति मानुष ब्रमवानुयात । वृषलो द्राह्मणौ गवा कृमियोनौ प्रजायते ॥७७॥
 तत सप्राप्य निधन जायत शूकर पुन । शूकरो जातमात्रस्तु रोगण म्रियत द्विजा ॥७८॥
 इवा च वै जायते मूढ कमणा तनभो द्विजा । इवा भूत्वा कृतकर्माऽसौ जायते मानुषतत ॥७९॥
 तत्रापत्य समुत्पाद्य मृतो जायत मूषिक । कृतघ्नस्तु मृतो विप्रा यमस्य विषम गत ॥८०॥
 यमस्य विषम क्रूरबद्ध प्राप्नोति यदनाम । दण्डक मुदगर गूलमग्निदण्ड च दारुणम् ॥८१॥
 असिपत्रवन घोर बालका कटशा मलीम । एताश्चायाश्च ध्रुवो यमस्य विषम गता ॥८२॥
 यातना प्राप्य घोरान्तु ततो याति च भो द्विजा । ससारचक्रमासाद्य क्रिमियोनौ प्रजायते ॥८३॥

आकर फिर कृमि-योनि में उत्पन्न होता है । कृमि योनि में वह चौदह मास तक जीवित रहता है ॥७०॥ वहाँ जीव पाप-क्षय करने लग्य मनुष्य होता है । जो व्यक्ति पहले एक को कया देकर फिर दूसरे को देना चाहता है वह भी मरने पर कृमि-योनि में उत्पन्न होता है ॥७१॥ वहाँ तेरह वर्षों तक वह जीता है और पाप-क्षय हो जाने पर फिर मनुष्य हो जाता है ॥७२॥ जो मनुष्य देवकर्म पितुकर्म या देव पितरों वा सर्वेण बिना क्रिये ही मर जाता है वह कौञ्च होता है । शौ वर्षों तक कौञ्च होकर फिर मुषा होता है ॥७३॥ तदनन्तर साँप होकर फिर मनुष्य होता है । जो पिता के समान ज्येष्ठ भाई का अपमान करता है वह भी मरने पर वर्राकुल पक्षी होता है । दश वर्षों तक वर्राकुल होकर फिर चकोर होता है । तदनन्तर मनुष्य-योनि में जाता है ॥७४॥ ब्राह्मणा के पास जाने वाला गूढ़ कृमि-योनि में उत्पन्न होता है । वहाँ से मरने पर फिर शूकर होता है । गूकर-योनि में उत्पन्न होते ही वह रोष से मर जाता है ॥७५॥ उस कर्म से वह मूष होता होता है । उस योनि में अपना नाम समाप्त कर वह मनुष्य होता है । वहाँ भी सतान उत्पन्न कर मरने के बाद घूहा होता है ॥७६॥ कृतघ्न व्यक्ति मरने पर यमलोच जाता है । वहाँ वह पूर यमदूता द्वारा बद्ध होकर बन्ध पाता है । दण्डक मुदगर गूल मयकर अग्निदण्ड मयकर असिपत्रवन बालका तथा कूटशाल्मली नामक नरकों की यातनायें तथा दूसर भी बहुउत्स मयानव यातनायें पाकर वह फिर ससारचक्र को प्राप्त कर कृमि योनि में उत्पन्न होता है ॥८०॥ वहाँ तक उस योनि में रहकर फिर गम में जाते ही वहाँ मर जाता है ।

क्रिमिर्भवति वर्षाणि दश पञ्च च भो द्विजाः । ततो गर्भं समासाद्य तत्रैव म्रियते नरः ॥८४॥
 ततो गर्भं शतं जन्तुर्बहुशः संप्रपद्यते । संसारान्सुबहून्गत्वा ततस्तिर्यक् प्रजायते ॥८५॥
 ततो दुःखमनुप्राप्य बहुवर्षगणानि वै । स पुनर्भवसंयुक्तस्ततः कूर्मः प्रजायते ॥८६॥
 वधिं हत्वा बकश्चापि प्लवो मत्स्यान्संस्कृणान् । चोरयित्वा तु दुर्बुद्धिर्मधुदंशः प्रजायते ॥८७॥
 फलं वा मूलकं हत्वा पुपं चापि पिपीलिकः । चोरयित्वा तु निष्पावं जायते फलमूषकः ॥८८॥
 पायसं चोरयित्वा तु तित्तिरस्वमवानुपात् । हत्वा पिष्टमयं पुपं कुम्भोलूकः प्रजायते ॥८९॥
 अपो हत्वा तु दुर्बुद्धिर्वायसो जायते नरः । कांस्यं हत्वा तु दुर्बुद्धिर्हारीतो जायते नरः ॥९०॥
 राजतं भाजनं हत्वा कपोतः सप्रजायते । हत्वा तु काञ्चनं भाण्डं क्रिमियोनौ प्रजायते ॥९१॥
 पत्रोर्णं चोरयित्वा तु कुरुरत्यं नियच्छति । कोशकारं ततो हत्वा नरो जायते नर्तकः ॥९२॥
 अंशुकं चोरयित्वा तु शुको जायेत मानवः । चोरयित्वा दुकूलं तु मृतो हंसः प्रजायते ॥९३॥
 श्रीञ्च कापार्शिकं हत्वा मृतो जायेत मानवः । चोरयित्वा नरः पट्टं त्वाविकं चैव भो द्विजाः ॥९४॥
 क्षौमं च वस्त्रमाहुत्य शशो जन्तुः प्रजायते । चूर्णं तु हत्वा पुरयो मृतो जायेत ब्रह्मिणः ॥९५॥
 हत्वा रक्तानि वस्त्राणि जायते जीवजीवकः । वर्णकादींस्तथा गन्धाश्चोरयित्वेह मानवः ॥९६॥
 चुङ्चुन्वग्नित्यभान्नोति विप्रो लोभपरायणः । तत्र जीवति वर्षाणि सतो दश च पञ्च च ॥९७॥
 अधर्मस्य क्षयं कृत्वा ततो जायेत मानवः । चोरयित्वा पयश्चापि बलाका संप्रजायते ॥९८॥

तदनन्तरं सैकडों गर्भों में वह इसी प्रकार जाता है । अनेको बार जन्म लेकर वह पक्षीघ्रेनि में उत्पन्न होता है । वही बहुत वर्षों तक दुःख भोगकर फिर कष्टा होता है ॥८४-८६॥ वही चुराने वाला मनुष्य बगला होता है । असह्यत मछलियाँ चुराने वाला दुर्बुद्धि मनुष्य मधुमक्खी होता है ॥८७॥ फल-मूल या पुष्पा चुराने वाला पीटो होता है । सेम चुराने वाला गिलहरी होता है ॥८८॥ खीर चुराने वाला तीतर होता है । मालपुष्पा चुराने वाला चल्हू होता है ॥८९॥ जल चुराने वाला मूख मनुष्य कौआ होता है । चाँदा चुराने वाला मूख मनुष्य हारीत पक्षी होता है ॥९०॥ चाँदी या पात्र चुराने वाला बबुतर होता है । सुवर्णपात्र चुराने वाला क्रिमियोनिग उत्पन्न होता है ॥९१॥ रेशमी वस्त्र चुराने वाला कुरुर पक्षी होता है । रेशम या कीडा चुराने वाला नर्तक होता है ॥९२॥ महीन वस्त्र चुराने वाला मनुष्य तोता होता है । दुकूल (चिन्ता और महीन वस्त्र) चुराने वाला व्यक्ति मरने पर हंस होता है ॥९३॥ मृतीवस्त्र चुराने वाला मनुष्य मरने पर करीकुल पक्षी होता है । ऊनीवस्त्र तब रेशमीवस्त्र चुराने वाला खरगोश होता है । चूर्ण हरण करने वाला पुच्छ मरने पर मयूर होता है ॥९४-९५॥ लाल-वस्त्र चुराने वाला मनुष्य चकोर होता है । गन्ध, चन्दन आदि चुराने वाला लोमी मनुष्य छल्लर होता है । यहाँ पन्द्रह वर्षों तक रहकर अधर्मक्षय करने मनुष्य होता है ॥९६-९७॥ दूध चुराने वाला बगली होता है ॥९८॥ जा

१ग सिंगु । २क ०ते । आदिर्भूत्वा ब० । ख ०ते । अहिर्भूत्वा ब० । ३न ०पि ततो जायेत मानवः । चो० । ४क तु वै मत्स्यान्मनुष्यदन्त प्र० । ५क फलमूषकः । ग हल्मोलकः । ६न ० त्वा पुप्य च पत्र च दू० । ७न पुप्यमयः । ८क ०द्विर्वक- योनौ प्रजायते । ९न ० ख कुङ्कुटवः । १०ग वीशिता० । ११ख मर्वटः । १२क वीशो । ख हसी । १३ग वृक्षः ।

यन्तु चोरयते तलं नरो मोहसमन्वितः । सोऽपि विप्रा मृतो जन्तुस्तैलपायो प्रजायते ॥९९॥
 अशस्त्रं पुरुषं हत्वा सशस्त्रः पुरुषाघमः । अर्थायं यदि वा वैरी मृतो जायेत वै खरः ॥१००॥
 परो जीवति धर्मं द्वे ततः शस्त्रेण बध्यते । स मृतो भृगयोनी तु नित्योद्विग्नोऽभिजायते ॥१०१॥
 मृतो विध्येत शस्त्रेण गते संवत्सरे सतः । हतो मृगस्ततो भोनः सोऽपि जालेन बध्यते ॥१०२॥
 मासे चतुर्थे संप्राप्ते श्वापदः संप्रजायते । श्वापदो दश वर्षाणि द्वीपो वर्षाणि पञ्च च ॥१०३॥
 ततस्तु निधनं प्राप्तः कालपर्यायोदितः । अघर्मस्य क्षयं कृत्वा मानुषत्वमवाप्नुयात् ॥१०४॥
 वायं हत्वा तु पुरुषो लोमशः संप्रजायते । तथा पिण्याकसंमिश्रमन्नं यश्चोरयेन्नरः ॥१०५॥
 स जायते यभ्रुसदो दारुणो मूषिको नरः । दशान्वं मानुषान्तिव्यं पापात्मा स द्विजोत्तमाः ॥१०६॥
 घृतं हत्वा तु कुर्वुद्धिः वाको मदगुः प्रजायते । मत्स्यमांसमयो हत्वा काको जायेत मानवः ॥१०७॥
 रुक्मं घोरयिन्या तु चिरिकाकः प्रजायते । विद्यासेन तु निक्षिप्तं शोषनिह्नोति मानवः ॥१०८॥
 स गतायुर्नरस्तेन मत्स्ययोनी प्रजायते । मत्स्ययोनिमनुप्राप्य मृतो जायेत मानुषः ॥१०९॥
 मानुषत्वमनुप्राप्य क्षीणायुर्प्रजायते । पापानि तु नरः कृत्वा तिर्यग्जायेत भो द्विजाः ॥११०॥
 न चाऽऽत्मनः प्रमाणं तु धर्मं जानाति किंचन । ये पापानि नराः कृत्वा निरत्यन्ति कर्तुः सदा ॥१११॥

मनुष्य मोहवश तैल चुराता है, वह भी ठेक पीन वाजा जीव होता है ॥९९॥ घन की इच्छा से या शत्रुता से जो भी मनुष्य शस्त्र लेकर शस्त्रविहीन पुरुष को मारता है, वह मरने पर दया होता है ॥१००॥ वा वर्षों तक गया होकर शस्त्र द्वारा मारा जाता है और मरने के बाद भृगयोनि में जन्म लेकर दिल पड़िग्न बना रहता है ॥१०१॥ एक वर्ष बीतने पर वह शस्त्र से मारा जाता है। तदनन्तर मछली होकर जाल में फँसता है ॥१०२॥ चार मास भ्रूजित होने पर कुत्ता होता है। दश वर्षों तक कुत्ता होकर पाँच वर्षों तक बाघ होता है ॥१०३॥ तब बाद की प्रेरणा से मृत्यु प्राप्त कर पापों का दाय कर मनुष्य होता है ॥१०४॥ वाजा चुराने वाला बहुत रोई वाला जीव होता है। हाँग निश्चिन क्रम चुराने वाला मनुष्य भूरे रंग के रागटों से युक्त भयंकर घृहा होता है। वह पापी मनुष्यों को नित्य बाटना रहता है ॥१०५-१०६॥ घी चुराने वाला बौजा तथा मागुर मछली होता है। मत्स्य-मांस चुराने वाला भी बौजा रहता है। नमक चुराने वाला चिरकाल तक कोजा होता है। जो मनुष्य विशाखपूर्वक रखे गये घराहट को टिपा देता है वह गतायु होकर मत्स्यपानि में जन्म लेता है। मत्स्यपानि के बाद मनुष्य होता है ॥१०७-१०९॥ मनुष्यत्व प्राप्त कर क्षीणायु होता है। पाप करने वाला मनुष्य पक्षी-पानि में जाता है और आत्मा के प्रमाण किसी धर्म को नहीं जानता है। जो नर पाप करता है तथा वना से विमुख रहता है, वह गुन-शुद्धता का भोग करते हुए रोमी होता है। लोभ-मोह से युक्त तथा पापाचरण करने वाले

१ग मयन चोरः। २ग ०समो दा०। ३ग ०र। दशको मरको नित्य। एक क्षीगद्रव्य प्रजा०।

५क पानीय तु। ६क नरो हत्वा। ७क ०त्वा निद्रतापाय मो।

सुखदुःखसमायुक्ता ध्याधिमन्तो भवन्त्युत' । 'असवीता प्रजायन्ते' श्लेच्छाश्चापि न सशय ॥११०॥
 नरा पापसमाचारा लोभमोहसमन्विता । वज्रयन्ति हि पापानि जन्मप्रभृति ये नरा ॥११३॥
 अरोगा रूपवन्तश्च धनिनस्ते भवन्त्युत । स्त्रियोऽप्येतेन कल्पेन कृत्वा पापमवाप्नुयु ॥११४॥
 एतेषामेव पापानां भार्यात्वमुपयान्ति ता । प्रायण हरणे दोषा सब एव प्रकीर्तिता ॥११५॥
 एतद्वै लेशमात्रेण कथितं वो द्विजपथा । अपरस्मिकयायोग भूय श्रोध्यथ भो द्विजा ॥११६॥
 एतन्मया महाभागा ब्रह्मणो वदत पुरा । सुरर्षोणा श्रुत मध्ये पृष्ट चापि यथा तथा ॥११७॥
 मयाऽपि तुम्य कात्स्न्येन यथावदनुवर्णितम् । एतच्छ्रुत्वा मुनिश्चण्डा धर्मं कुर्वत मानसम् ॥११८॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे व्यासपितृवादे सप्तरचक्रनिरूपण नाम
 सप्तदशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२१७॥

अथाष्टादशाधिकद्विशततमोऽध्यायः

अन्नदानप्रशसावर्णनम्

मुनय ऊचुः

अधर्मस्य गतिब्रह्मकथिता नस्त्वयाऽनघ । धर्मस्य च गतिं श्रोतुमिच्छामो वदता वर ॥१॥

मनुष्य मर्यादा के उल्लंघन करने वाले श्लेच्छ होते हैं ॥११० ११२३॥ जो मनुष्य जन्म से लेकर पाप नहीं करते हैं वे नारोग सुन्दर तथा धनी होते हैं । स्त्रिया भी इस प्रकार रहने पापनाशी बनती हैं ॥११३ ११४॥ प्रायश्चित्ती पापिया की स्त्री वे बनती हैं । प्रायश्चित्ते के दोषहरण के प्रकरण में बतलाये गये हैं ॥११५॥ द्विज-श्रद्धो ! यह तो दिग्दानमान करा दिया गया है । दूसरे क्या प्रवर्णन मैं फिर आप सुनेंगे । महामागो ! देव-पितृ के बीच ब्रह्मा के मुख से मैंने यह क्या सुनी थी । मैंने भी उसी प्रकार आप लोगों से निःपतया वचन-
 वर दी । मुनिश्चण्डा ! इसे सुनकर आप लोग धर्म में मन को लगायें ॥११६ ११८॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में व्यास और श्रुतिपुत्रों के संवाद प्रकरण में सप्तरचक्रनिरूपण नामक दो सौ सनहत्ता अध्याय समाप्त ॥२१७॥

अध्याय २१८

अन्नदान की प्रशंसा का वर्णन

मुनियों ने कहा—ब्रह्मन् ! निष्पाप ! आपने पाप की गति ब्रह्म बतला दी । अब हे धन्ताजी मे श्रद्धा !

कृत्वा पापानि कर्माणि कथं यान्त्यनुभां गतिम् । कर्मणा च कृतेनेह येन यान्ति शुभां गतिम् ॥२॥

व्यास उवाच

कृत्वा पापानि 'कर्माणि' स्वधर्मवशात्गतः । मनसा विपरीतेन निरयं प्रतिपद्यते ॥३॥

मोहादधर्मं यः कृत्वा पुनः समनुत्पश्यते । मनःसमाधिसंयुक्तो न स संवेत दुष्कृतम् ॥४॥

यथा यथा मनस्तस्य दुष्कृतं कर्म गृह्यते । तथा तथा शरीरं तु तेनाधर्मेण मुच्यते ॥५॥

'यदि' विप्राः कथयते विप्राणां धर्मवादिनाम् । ततोऽधर्मकृतात्किमपराधात्प्रमुच्यते ॥६॥

यथा यथा नरः 'सम्यग्धर्ममनुभाषते' । समाहितेन मनसा विमुञ्चति तथा तथा ॥७॥

भुजंग इव निर्मोकात्पूर्वभुक्ताञ्जहाति तान् । दत्त्वा विप्रस्य दानानि विविधानि समाहितः ॥८॥

मनःसमाधिसंयुक्तः 'स्वर्गात् प्रतिपद्यते' । दानानि तु प्रवक्ष्यामि यानि दत्त्वा द्विजोत्तमाः ॥९॥

नरः 'वृत्वाऽप्यकार्याणि' ततो धर्मेण युज्यते । सर्वेषामेव दानानामग्नं श्रेष्ठमुदाहृतम् ॥१०॥

सर्वमग्नं प्रदातव्यमृजुना धर्ममिच्छता । प्राणा ह्यग्नं मनुष्याणां तस्माज्जगुः प्रजायते ॥११॥

अग्ने प्रतिष्ठिता लोकास्तस्मादग्नं प्रशस्यते । 'अग्नमेव प्रशंसन्ति देवपितृमानवा' ॥१२॥

अन्नस्य हि प्रदानेन स्वर्गमाप्नोति मानवः । न्यायलब्धं प्रदातव्यं द्विजातिन्योऽन्नमुत्तमम् ॥१३॥

धर्म की गति हन मुनना चाहते है । किन पापकर्मों के करने से जीव को अचुन गति मिलती है और किन धर्म के करने से शुभ गति प्राप्त होती है ? ॥१-२॥

व्यास ने कहा—उलटे मन से पाप कर्मों को करने अधर्म के बंध होकर मनुष्य नरक जाता है ॥३॥ जो मोहवश पाप करने मन की एवाग्रतापूर्वक परचासाप करता है, वह पापमागी नहीं होता ॥४॥ जैसे-जैसे उसका मन पाप की निन्दा करता है, वैसे-वैसे उसका शरीर अधर्म से मुक्त होता है ॥५॥ विप्रद्वन्द्व ! यदि वह धर्म-बादी ब्राह्मणों से अपना पाप बतला देता है तो अधर्मकृत अपराधों से वह शीघ्र मुक्त हो जाता है ॥६॥ जैसे-जैसे मनुष्य एवाग्र मन से ठीक-ठीक अपना अधर्म बतलाता है वैसे-वैसे पाप छूट जाता है ॥७॥ जैसे हाँप बँबूली को छोड़ता है वैसे वह पापों को छोड़ देता है । ब्राह्मण को अनेक दान देकर मन की समाधि लगाकर वह स्वर्ग जाता है । द्विजश्रेष्ठो ! मैं उन दानों को बतलाऊँगा, जिन्हें देकर मनुष्य कुर्वम करने पर भी धर्मात्मा हो जाता है ॥८-९॥ उन दानों में अन्नदान श्रेष्ठ कहा गया है । धर्म से इच्छुक्त व्यक्ति को निष्पट भाव से अन्न-दान करना चाहिये । अन्न ही मनुष्या का प्राण है । उसी से जीव की उत्पत्ति होती है ॥१०-११॥ अन्न में समस्त एतत् प्रतिष्ठित है । इसलिये अन्न प्रशस्त माना गया है । देव, ऋषि पितर तथा मनुष्य अन्न की ही प्रशंसा करते हैं ॥१२॥ अन्नदान करने से मानव स्वर्ग प्राप्त करता है । वैदगादी ब्राह्मणों को प्रसन्नचित्त से न्याय-प्राप्त उत्तम अन्न देना चाहिये ॥१३॥ हृषित मन से जो दस ब्राह्मणा को एक बार भी खिलाता है, वह पशुपति में

१ग ०णि स्वधर्मः । २ग ०दि वाक्प चरेद्विप्राणाः । ३क स ०म्यमुषः । ४क स ०गतिः ।

५क स ०ते । प्रदानानि प्रदः । ६क स ०प्यवर्माणि । ७क ०णि नहि पापन मुः । ८स अग्न चैव ।

९क स ०व । पावलम्ब्य प्रः ।

स्वाध्यायसमुपेत्य प्रहृष्टेनान्तरात्मना । यस्य त्वन्नमुपाश्रयन्ति 'ब्राह्मणाश्च सकृदश ॥१४॥
 हृष्टेन मनसा' दत्त न स तिर्यगतिर्भवेत् । ब्राह्मणाना सहस्राणि दशाऽऽभोज्य द्विजोत्तमा ॥१५॥
 नरोऽधर्मात्प्रमुच्येत पापेत्वभिरत सदा । भिक्षेणाञ्ज' समाहृत्य विप्रो वेदपुरस्कृत ॥१६॥
 'स्वाध्यायनिरते विप्रे दत्त्वेह सुखमेधते । अहिंसन्ब्राह्मणत्वानि न्यायेन परिपात्य च ॥१७॥
 क्षत्रियस्तरसा प्राप्तमन्न यो वै प्रयच्छति । द्विजेभ्यो वेदमुपेभ्य प्रयत सुसमाहित ॥१८॥
 तेनापोहति धर्मात्मा दुष्कृत कर्म भो द्विजा । षड्भागपरिशुद्ध च कृषेर्भागमुपाजितम् ॥१९॥
 वैश्यो ददद्द्विजातिभ्य पापेभ्य परिमुच्यते । अवाप्य प्राणसदेह' 'कार्कश्येन' समाजितम् ॥२०॥
 अन्न दत्त्वा द्विजातिभ्य शूद्र 'पापात्प्रमुच्यते । औरसेन श्लेष्मन्मर्जयित्वा विहितक ॥२१॥
 य प्रयच्छति विप्रेभ्यो न स दुर्गाणि सेवते । न्यायेनावाप्तमन्न तु नरो हर्षसमन्वित ॥२२॥
 द्विजेभ्यो वेदबुद्धेभ्यो दत्त्वा पापात्प्रमुच्यते । अन्नमजंस्कर श्लोके दत्त्वोर्जस्वी भवेन्नर ॥२३॥
 सता पन्नानमावृत्य सर्वपापं प्रमुच्यते । दानविदभि 'कृत पन्था येन यान्ति मनीषिण ॥२४॥
 तेष्वप्यन्नस्य दातारस्तेभ्यो धर्मं साधन । सर्वस्य मनुष्येन न्यायेनान्नमुपाजितम् ॥२५॥
 कार्यान्यायागत नित्यमन्न हि परमा गति । अन्नस्य हि प्रदानेन 'नरो याति परा गतिम् ॥२६॥

नहीं जाता है ॥१४३॥ द्विजश्रेष्ठो ! दस हजार ब्राह्मणों को खिलाकर मनुष्य सदा पापी में निरत रहने पर भी
 अथम से मुक्त हो जाता है ॥१५३॥ वेदवेत्ता विप्र मिश्रानुति से अन्न खाकर वेदाध्ययन में रत ब्राह्मण को
 समर्पित कर सुख प्राप्त करता है ॥१६३॥ द्विजबुद्ध ! जो क्षत्रिय ब्राह्मण के धन का अपहरण नहीं करता, बलि
 न्यायपूर्वक उसकी रक्षा करता है और पवित्र तथा छावपात्र होकर वेदवेत्ता ब्राह्मण को अन्नदान देता है वह पापी
 का त्याग कर धर्मात्मा हो जाता है ॥१७३८३॥ जो वैश्य श्रेष्ठ का छठ पवित्र मास ब्राह्मणों को दे देता है
 वह पापी से मुक्त हो जाता है ॥१९३॥ जो शूद्र प्राणों तथा श्वाकर बट्टिनाई से अन्न उपाजित कर ब्राह्मणों को दे
 देता है वह पापी से मुक्ति पा जाता है ॥२०३॥ जो हिंस्र व्यक्ति अपनी छत्ता के बल से अन्न चुराकर विप्रा
 को देता है वह बप्पी को नहीं मानता है ॥२१३॥ जो मनुष्य न्याय से प्राप्त अन्न वेदवेत्ता ब्राह्मण को हर्षपूर्वक
 देता है उसे पाप से मुक्ति मिल जाती है ॥२२३॥ लोक भक्तवध्वं अन्नदान कर मनुष्य ओजस्वी होता है ॥२३॥
 स्त्रियाँ के माग का अनुसरण करने से मनुष्य अखिल पापों से मुक्त होता है । दानवेत्ताओं ने वह माग बना
 दिया है जिस पर विद्वान् लगे चलते हैं ॥२४॥ अन्नदान करने वाले भी उन्हीं में से हैं । उनसे सदातन धर्म की रक्षा
 होती है । मनुष्य को किसी क्षाम न्याय से ही अन्न चुराना चाहिये । नित्य न्याय से प्राप्त अन्न ही परम गति
 है । अन्न प्रदान करने से परम गति को प्राप्त करता है ॥२५३६॥ उसकी सब अभिजातों पूर्ण होती हैं ।

१४ ग ० गाना दत्त दत्त । २४ ० गाना तस्य पवित्र च पुत्र भवेत् । ३१ भोगदत्त । ४ भोग्यान्न
 च ० । ५ ग ० रता ३० । ५४ ० हिमाया ब्राह्मणभ्योऽप्यन्न दद्याच्च ब्राह्मण । ६० । ६४ ह यन्न
 समुत्ति ० । ७४ वायव्य ० । ८४ दगादि ० । ९४ ० ग । तन्नामन विनाम्ना स स्वर्गयोगे महीपते ।
 पात्र य ० । १०४ वृत्त गुण्य मयायोग्य भवयुः । ११४ ० रोग्यार्थं तेव ० । १२० ।

सर्वकामसमायुक्तः प्रेत्य चाप्यदनुते सुखम् । एवं पुण्यसमायुक्तो नरः पापैः प्रमुच्यते ॥२७॥
 तस्मादन्नं 'प्रदातव्यमन्यायपरिवर्जितम् । यस्तु' प्राणाहृतीपूर्वमन्नं भुङ्कते गृही सदा ॥२८॥
 अयन्ध्यं दिवसं कुर्यादन्नदानेन मानवः । भोजयित्वा शतं नित्यं नरो वेदविदां वरम् ॥२९॥
 न्यायविद्धर्मविदुषामितिहासविदां तथा । न याति नरकं घोरं संसारं न च सेवते ॥३०॥
 सर्वकामसमायुक्तः प्रेत्य चाप्यदनुते सुखम् । एवं कर्मसमायुक्तो रमते विपतज्वरः ॥३१॥
 हृषयान्कीर्तिमांश्चैवं धनवांश्चोपजायते । एतद्धः सर्वमाख्यातमन्नदानफलं महत् ॥
 मूलमेतत्तु धर्माणां प्रदानानां च भो द्विजाः ॥३२॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे व्यासपितृसंवादे संसारचक्रेऽन्नदानप्रशंसावर्णनं
 नामाष्टादशधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२१८॥

अथैकोनविंशत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

श्राद्धविधिवर्णनम्

मुनय ऊचुः

परलोकगतानां तु स्वकर्मस्थानवासिनाम् । तेषां श्राद्धं कथं ज्ञे (दे) यं पुत्रैश्चान्यैश्च बन्धुभिः ॥१॥

मरने पर भी सुख मिलता है । इस प्रकार धर्म से मुक्त मनुष्य पापों से मुक्त होता है ॥२७॥ इसलिये अन्याय से रहित अन्न दान करना चाहिये । गृहस्थ को अग्नि में आहुति डाल कर अन्न खाना चाहिये ॥२८॥ मनुष्य वनवान से दिन को अवन्ध्य (सफल) बनायें । जो मानव वेदवेत्ता, न्यायवेत्ता, धर्मवेत्ता तथा इतिहास-वेत्ताओं से श्रेष्ठ हो मनुष्यों को नित्य भोजन कराता है, वह न तो घोर नरक में जाता है न जन्म ही लेता है ॥२९-३०॥ उसकी समस्त कामनाएँ पूरी होती हैं । वह मरने के बाद भी सुख प्राप्त करता है । इस प्रकार कर्मयोगी मनुष्य व्यवहारहीन होकर रमण करता है और रूपवान्, कीर्तिमान् तथा धनवान् होता है । अन्नदान का यह महाफल मैंने वर्णन कर दिया । द्विजगण ! यह धर्मों तथा दानों का मूल है ॥३१-३२॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में व्यास और ऋषियों के संवादप्रवरण में संसारचक्र में अन्नदान-प्रशंसा वर्णन नामक दो सौ अष्टादशहवीं अध्याय समाप्त ॥२१८॥

अध्याय २१६

श्राद्धविधि का वर्णन

मुनियों ने कहा—मृत्यु के उपरान्त अपने कर्मों से प्राप्त स्थानों में वास करने वाले जीवों का श्राद्ध उनके पुत्र तथा बन्धुवर्ग कैसे करें ? ॥१॥

१५ स ० न्यायेन वि० । २५ ० शु शुद्राण्यपूर्वं हि भोक्तुमश्रू ॥ ३५ ० व नर स० । ग ० व सल्लु स० । ४५. ० पपयने ।

व्यास उवाच

नमस्तृप्त्य जगन्नाथ वाराह लोचभावनम् । शृणुष्व सप्रवक्ष्यामि श्राद्धवत्स यथोदितम् ॥२॥
पुरा कोकाजल 'मग्नापितृनुद्धूतवाचिभु । श्राद्ध कृत्वा तदा ददौ यथा तत्र द्विजोत्तमा ॥३॥

पितर ऊचु

विमथ त तु कोकाया निमग्ना पितरोऽभसि । कथं तनोद्धृतास्त व वाराहेण द्विजोत्तम ॥४॥
तस्मिन्कोकामुख तीर्थे भुक्तिमुक्तिफलप्रद । श्रोतुमिच्छामह ब्रूहि पर वीरूहक हि न ॥५॥

व्यास उवाच

त्रेताद्वापरयो सधी पितरो दिव्यमानुषा । पुरा मेरुगिरे पृष्ठं विन्देद्वैवं सह स्थिता ॥६॥
तेषां समुपविष्टानां पितॄणां सोमसभवा । कथा कात्तिमती दिव्या पुरतः प्राञ्जलि स्थिता ॥७॥
तामचु पितरो दिव्या य सत्राऽऽसत्समागता ॥७॥

पितर ऊचु

कासि भद्रे प्रभु को वा भवत्या वक्तुमहसि ॥८॥

व्यास उवाच

सा प्रोवाच पितृदेवान्यला चाद्रमसीति ह । प्रभुत्ये भयतामेव वरप्रामि यदीच्छथ ॥९॥

व्यास न कहा—लोकलप्ता जगत्पति तथा वाराह (गूजर) रूप धारण करने वाले भगवान् को ममस्वार कर सुनिये । मैं यथावचित-श्राद्धरूप बतलाता हूँ । द्विजश्रेष्ठो ! प्राचीन काल में कोका नामक तपस्वी जल में निमग्न पितरो का श्राद्ध कर भगवान् ने उनका उद्धार किया था ॥२॥ ३॥

भुनियो न कहा—द्विजश्रेष्ठ ! क्यों पितरलोक लोगों के जल में निमग्न हुए ? कैसे वाराह रूप धारण कर भगवान् ने उस भुक्ति मुक्ति फलदायक वातावरण से पितरों का उद्धार किया ? हम सुनना चाहते हैं । कहिये हमें यही उच्छ्वास हो रही है ॥४॥ ५॥

व्यास न कहा—पहले तता और द्वापर युग के अधिपति य दिव्य मानव पितर सुमेरुवन के पृष्ठ पर विन्देवो के पास बैठ हुए थे । उन बैठ हुए पितरों के समक्ष चन्द्रमा की कात्तिमती नामक कथा अजगिबाप कर लड़ी हो गई । वहाँ जा पितर आये हुए थे उन्होंने उससे पूछा ॥६॥ ७॥

पितरा न कहा—मद्र ! तुम कौन हो ? वीर सुहृद्दारा स्वापा है ? कहो ॥८॥

व्यास ने कहा—नन्दा कहते भी—मैं चन्द्रमा की कथा हूँ । स्वामी के विषय में यदि आप लोग चाहें तो मैं आप ही लोग का वरण करूँ ॥९॥ मेरा पहला नाम ऊर्वा है दूसरा स्वधा और तृतीय नाम तो

उर्जा 'नामास्ति प्रथमं स्वधा च तदनन्तरम् । भवद्भिश्चाद्यैव वृत्तं नाम कोऽनेति भाषितम् ॥१०॥
 ते हि तस्या वचः श्रुत्वा पितरो दिव्यमानुषाः । तस्या मुखं निरोक्षन्तो न तृप्तिमधिजग्मिरे ॥११॥
 विश्वेदेवाश्च ताज्जात्वा कन्यामुखं निरोक्षकान् । योगघ्न्युताग्निरीक्ष्येव विहाय त्रिविधं गताः ॥१२॥
 भगवानपि शीतं द्युर्जं नापश्यदात्मजाम् । समाकुलमना दृष्ट्वा न गतेति महायशाः ॥१३॥
 स जिवेद तदा सोमः प्राप्ता पितृंश्च कामतः । तैश्चावलोकिता हार्दास्वीकृता च तपोबलात् ॥१४॥
 ततः श्रोतृपरीतात्मा पितृञ्चाशपरो द्विजाः । शशाप निपतिष्यध्वं योगघ्नष्टा विचेतसः ॥१५॥
 यस्मादस्तां मत्कन्यां कामयध्वं सुबालिदाः । यस्माद्भूतवती चेयं पतीन्पितृमती सती ॥१६॥
 स्वतन्त्रा धर्ममुत्सृज्य तस्माद् भवतु निम्नगा । कोऽनेति प्रथिता लोके शिशिराद्रिसमाधिता ॥१७॥
 इत्य शप्ताश्चन्द्रमता पितरो दिव्यमानुषाः । योगघ्नष्टा निपतिता हिमवन्पादभूनले ॥१८॥
 उर्जा तत्रैव पतिता गिरिराजस्य रिस्तुने । प्रस्थे तीर्थं समासाद्य सप्तसामुद्रमुत्तमम् ॥१९॥
 कोरा नाम ततो वेणाग्रदो तीर्थं शताकुला । प्लानयन्तो गिरेः शृङ्गं सर्पणात्तु सरित्स्फुता ॥२०॥
 अयं ते पितरो विष्ठा योगहीना महानदीम् । ददन्तुः शीतसलिलां न विदुस्तां सुलोचनाम् ॥२१॥
 ततस्तु गिरिराजदुष्ट्या पितृस्तास्तु क्षुधादिताम् । यदरीमादिदेशाय धेनुं धेनून् मधुस्रवान् ॥२२॥

आज ही आर कौंगो ने रण दिया है ॥१०॥ वे दिव्यमानुष्यसरीरगारी पिता उसका वचन सुनकर उसने मुखकी ओर धारने लगे, पर मुक्त नहीं हुए ॥११॥ विश्वेदेव कन्या-मुख निरीक्षण करते हुए पितरों का योगघ्नष्ट समझ-कर उन्हें छोड़ कर स्वर्ग चले गये ॥१२॥ भगवान् चन्द्रमा भी अपनी पुत्री ऊर्जा को न देखकर चिन्तित हो गये और धारने लगे, कि यह वहाँ चली गई ॥१३॥ तब चन्द्रमा ने जान लिया, कि वह कामयदा पितरों के पास गई है। पितरा ने उसे प्रेम की दृष्टि से देखा है और तपोबल से स्वीकार भी कर लिया है ॥१४॥ तब श्रोतृ से आग-बबुला होकर चन्द्रमा ने पितरों को धाप दिया—'मूर्खों! जिस लिये तुम मेरी अक्षयवति कन्या की कामना करते हो इसलिये तुम योगघ्नष्ट तथा हृदयहीन होकर गिर पड़ो ॥१५॥ जिस लिये इस सती कन्या ने पिता पाली होनी हुई भी स्वतन्त्र होकर धर्म का उल्लंघन करने पतिया का वरण किया इसलिये यह नदी हो जाय। हिमालय की आश्रित होकर यह लोहा में कोरा नाम से प्रख्यात हो' ॥१६-१७॥ इस प्रकार चन्द्रमा से अभिप्राय दिव्य मानव-पितर योग-घ्नष्ट होकर हिमालय की तराई में आ गिरे ॥१८॥ वहाँ पर ऊर्जा भी गिरी। गिरिराज के विस्तृत पटप्राय में वह शांता समुद्रा से जल लेकर उत्तम तीर्थ का रूप में परिणत हो गई। कोरा नामक यह नदी तैलडा तीर्थों से मुक्त तथा बेगवती हुई। पर्वत के शिखरों का प्लावित करत हुए बहने के कारण यह सरित बहनायी ॥१९-२०॥ तदनन्तर उन योगघ्नष्ट पितरों ने शीतल जल दागी महानदी का देता पर मुखावना चन्द्रपुत्री को पहचाना नहीं। ॥२१॥ तब हिमालय ने मूस से पीठिन उन पिता को देगतर बेर के वन तथा मधु समान दूध देने का एरा गाव उद्घ दी ॥२२॥ गिरिराज ने उन पाषाण के निर्मित दिव्य कपूरुह दूध, कोरा का जल तथा

क्षीरं मधु च तद्दिव्यं कोकाम्भो बदरीफलम् । इदं गिरिवरेणैषां पोषणाय निरूपितम् ॥२३॥
 तथा घृत्या तु वसतां पितृणा मुनिसत्तमाः । दश वर्षसहस्राणि यपुरेकमहो यथा ॥२४॥
 एवं लोके विपितरि तथैव विगतस्वधे । दंत्या बभूवुर्बलिनो यातुधानाश्च राक्षसाः ॥२५॥
 ते तान्पितृगणान्दंत्या यातुधानाश्च वेगिताः । विश्वेदेवैर्विरहितान्सर्वतः समुपाद्रवन् ॥२६॥
 दंत्यान्यानुधानाश्च दृष्ट्वेवाऽऽपततो द्विजाः । कोकातटस्थामुत्तुङ्गां शिलां ते जगूह रुपा ॥२७॥
 गृहीतायां शिलायां तु कोका वेगवती पितृन् । छादयामास तोयेन प्लावयन्ती हिमाचलम् ॥२८॥
 पितृनन्तर्हिताद्दृष्ट्वा दंत्या राक्षसास्तथा । विभोतकं समारुह्य निराहारास्तिरोहिता ॥२९॥
 सलिलेन विषोदन्तः पितरः क्षुब्धमातुराः । विषोदमानभात्मानं समीक्ष्य सलिलाशयाः ॥
 'जगुर्जनादं देवं पितरः शरणं हरिम् ॥३०॥

मुनय ऊचुः

जयस्य गोविन्द जगन्निवास जयोऽस्तु नः 'वेशव' ते प्रसादात् ।
 जनार्दनास्मान्सलिलान्तरस्यानुद्धर्तुमर्हस्यनघप्रनाप ॥३१॥
 निशाचरैर्दारुणदर्शनैः प्रभो वरेण्य वैकुण्ठ वराह विष्णो ।
 नारायणाशेषमहेश्वरेश प्रयाहि भीताञ्जय पद्मनाभ ॥३२॥

बदरीफल का प्रबन्ध कर दिया ॥२३॥ मुनिश्रेष्ठो । उस वृत्ति से निर्वाह करते हुए पितरों के दस हजार वर्ष एक दिन के समान बीत गए ॥२४॥ इस प्रकार कोक ने पितरों तथा स्वर्षा के न रहने से दंत्या तथा राक्षस बलवान् हो गये ॥२५॥ बलौ राक्षसों ने विरसेदेवी से रहित पितरों के ऊपर सब ओर से आक्रमण कर दिया ॥२६॥ राक्षसों को देखते ही पितर गिर पड़े । कोका के दट पर स्थित एक उत्तुंग शिला को उन्होंने श्रोत्र से पकड़ लिया ॥२७॥ शिला को पकड़ लेने पर हिमालय को प्लावित करती हुई वेगवती कोका ने जल से पितरों को ढक दिया ॥२८॥ पितरों को बिलीन जातकर राक्षसबुन्द एवं बहेड़े के पेड़ के ऊपर चढ़ गये और बिना भोजन के छिप कर रहने लगे । जल में भूख से आतुर तथा सींचित होते हुए जलाधार पितर अपने को घण्ट में देखकर मगवान् जनार्दन की शरण में गये और उनकी स्तुति करने लगे ॥२९-३०॥

पितरों ने कहा—गोविन्द । ससार में निवास करने वाले । आपकी जय हो ! वेशव । आपकी कृपा से हमारी भी जय हो । जनार्दन । निपाट्क प्रताप वाले । जल के भीतर से हमारा उद्धार करें । भयकर दीप्तने वाले राक्षसों से हमें बचायें । प्रभो । श्रेष्ठ । वैकुण्ठ । वराह । विष्णो । नारायण । सबसे प्रभु ! महेश्वर ।

१ ग जगुर्जं० । २ स्व ते । ३ व सप्रसीद । ४० । ४ प्रभाव । नि० । ५ ग प्रनाह्वार्यं भय ।

उपेन्द्र योगिन्मधुकुण्डभध्न विष्णो अनन्ताच्युत वासुदेव ।

श्रीशाङ्गचक्राम्बुजशङ्खपाणे रक्षस्व देवेश्वर राक्षसेभ्यः ॥३३॥

त्वं पिता' जगतः शंभो नान्यः शक्तः प्रबोधितुम् । निशाचरगणं भोममतस्त्वां शरणं गताः ॥३४॥

त्वन्नामसंकीर्तनतो निशाचरा ब्रवन्ति भूतान्यपयान्ति' चारयः ।

नाशं तथा संप्रति यान्ति विष्णो धर्मादि सत्य' भवतोह भूह्वयम् ॥३५॥

व्यास उवाच

इयं स्तुतः स पितृभिर्धरणीधरस्तु तुष्टस्तदाऽऽविष्कृतदिव्यमूर्तिः ।

कोकामुखे पितृगणं सलिले निमग्न देवो ददर्श शिरसाऽथ शिलां ग्रहन्तम् ॥३६॥

तं दृष्ट्वा सलिले भग्नं क्रोडरूपो जनादनः । भोतं पितृगणं विष्णुरुद्धतु' मतिरादधे ॥३७॥

दृष्ट्राग्नेण समाहृत्य शिलां चिक्षेप शूकरः । पितृनादाय च विभूरुज्जहार' शिलातलात् ॥३८॥

'वराहदंष्ट्रासंलग्ना. पितरः कनकोज्ज्वला. । कोकामुखे गतभयाः 'कृता देवेन विष्णुना ॥३९॥

उद्धृत्य च पितृदेवो विष्णुतीर्थं' तु शूकरः । ददौ समाहितस्तेभ्यो' विष्णुलोहागले' जलम् ॥४०॥

प्रमाण कीजिये तथा डरे हुए (राक्षसों) को जीतिये। नामि मे कमल धारण करने वाले। इन्द्र के छोटे भाई। योगी। मधु-कूटम नामक राक्षसों को मारने वाले। विष्णु। अनन्त। अच्युत। वासुदेव। धनुष, चक्र, कमल तथा शङ्ख हाथों मे धारण करने वाले। देवों के ईश्वर। राक्षसों से हमारी रक्षा करें। कल्याण करने वाले। आप ससार के पिता हैं। बिना आपके कोई नहीं भयानक राक्षस-समूह को मार सकता है। अतः हम लाग आपकी शरण मे आये हैं। आपके नाम लेने से ही दैत्यगण भाग जाते हैं, (दुष्ट) प्राणी अलग हो जाते हैं तथा शत्रुसमूह विनष्ट हो जाते हैं। विष्णो! यहाँ धर्म आदि सत्य ही मल्य हैं ॥३१-३५॥

व्यास ने कहा—इस प्रकार पितरों द्वारा स्तुत होने पर धरणीधर भगवान् सतुष्ट हो गये और दिव्यमूर्ति धारण कर कोक' के जल मे डूबे हुए तथा शिर पर शिला को बोधे हुए पितरों की ओर देखने लगे ॥३६॥ वराह-रूपी जनादन भगवान् पितरों को जल मे निमग्न देखकर उन्हें उसमे से निबालने के लिए सोचने लगे ॥३७॥ शूकर रूपी भगवान् ने अपने दाँतों मे अग्रभाग से शिला को तोड़कर शिलातल से पितरों को निबाला ॥३८॥ वराह के दाँतों मे सलग्न एव मुचुर' के समान चमकने वाले पितरों को भगवान् विष्णु ने कोवातीर्थ मे मयरहित कर दिया ॥३९॥ शूकर रूपधारी विष्णु ने पितरों वा उद्धार कर विष्णुतीर्थ मे सावधान होकर लोहे के अर्पल मे उन्हें जल दिया ॥४०॥ तब अपने रोमों से उत्पन्न बुधों को लेकर वैशव ने अपने पसीनों से तिल उत्पन्न किया,

१ ग पाता। २ क स. ०न्यपि या०। ३ ग सर्व भ०। ४ ग ०द्धर्तुमुपचक्रन्। ५ द। ५ स ग ० र रसात्०। ६ ग. ०हृदेहस०। ७ ग. हुता। ८ ग ०यत्त धू०। ९ ख ०स्तेमस्तिरलोमापते ज०। १० ग ०हाकुल ज०।

तत स्वरोमसभूतान्कुशानादाय केशव । स्वेदोद्भवास्तिलाश्चैव चक्रे' चोल्मुकमुत्तमम् ॥४१॥
 ज्योति सूर्यप्रभं कृत्वा पात्र तीर्थं च कामिकम् । स्थित 'कोटिवटस्याधो वारि गङ्गाधरं शुचि' ॥४२॥
 तुङ्गकूटात्समादाय यज्ञीयानोषधीरसान् । मधुक्षीररसान्गान्यान्पुष्पधपानुलेपनान् ॥४३॥
 आदाय धेनु सरसो रत्नान्यादाय चार्णवात् । दष्ट्रयोर्लिलय धरणीमभ्युक्ष्य सलिलेन च ॥४४॥
 धर्मोद्भवनेपोलप्य कुशैर्लिलय ता पुन । 'परिणीयोल्मुकेनेनामभ्युक्ष्य च पुन पुन ॥४५॥
 कुशानादाय प्रागध्याल्लोमकूपान्तरस्थितान् । ऋषोनाहूय पप्रच्छ करिष्ये पितृतर्पणम् ॥४६॥
 तैरप्युक्ते कुरुष्वेति विश्वान्देवास्ततो विभु । आहूय मन्त्रतस्तेषां विष्टराणि ददौ प्रभु ॥४७॥
 आहूय मन्त्रतस्तेषां वेदेवतविधिना हरि । अक्षतदेवतारक्षा चक्रे चक्रगदाधर ॥४८॥
 अक्षतास्तु' यवोपध्य सर्वदेवाशसभवा । रक्षन्ति सर्वत्र' दिशो रक्षाय निर्मिता हि ते ॥४९॥
 देवदानवदैत्येषु यक्षरक्षसु चैव हि । नहि कश्चित्क्षय तेषां कतु शवतश्चराधरे ॥५०॥
 न कैनचित्कृत (रक्षता) यस्मात्तस्मात्ते ह्यक्षता कृता । देवानां ते हि रक्षार्थं नियुक्ता विष्णुना पुरा
 ॥५१॥
 'कुशान्धयवै पुष्परंध्यं कृत्वा च शूकर । विश्वेभ्यो देवेभ्य इति ततस्तात्पर्यं पृच्छत ॥५२॥

एक उत्तम अगार को सूर्य के समान प्रभा से युक्त किया इच्छानुसार तीर्थ को पात्र बनाया और कोटि वट वृक्ष के नाबे स्थित हाकर गया को धारण करने वाला पवित्र जल उत्सव किया । फिर वे पवत के शिखरो पर से पसीय ओषधियाँ मधु दूध गन्ध पुष्प, घूप तथा कन्दन ले आए ॥४१४३॥ सरोवर से धनु तथा समुद्र से रत्न ले आए । शतो से पृथ्वी पर रेखा खींच कर जल से उसे अभिषिक्त किया फिर उसे लीपकर कुशो से रेखा खींच कर पसीने से उत्पन्न प्रणीता-पात्र न जल से उसे बार-बार अभिषिक्त किया ॥४४४५॥ अपने शोम-रूप के मातृ स्थित कुषो के अग्रभाग को पूर्वामुक्त कर श्रवियों को बुलाकर उनसे कहा कि मैं पितृतपण करूँगा ॥४६॥ उन्होंने भी कहा कि कीजिए । तब विश्वेदेवो को बुलाकर विभु ने मन्त्र पढ़कर उन्हें आसन दिया ॥४७॥ वेदोक्त विधि से मन्त्रोच्चारण पूरक उन्हें बुलाकर चक्र-गदा धारी हरि ने अक्षतो से देवताओं को रक्षा की ॥४८॥ यव तथा ओषधियाँ अक्षत हैं । निखिल देवो के अक्ष से इनकी उत्पत्ति हुई है ॥४९॥ सब जगह दिशाओं की रक्षा निमित्त इनका निर्माण हुआ है ॥४९॥ देव दानव दैत्य यक्ष राक्षस तथा चराचरो में इनका नाश कोई नहीं कर सकता ॥५०॥ किसी ने इनका नाश नहीं किया इसलिये इनका नाम अक्षत पड़ा । पहले देवताओं की रक्षा के लिए विष्णु ने द-हें नियुक्त किया था ॥५१॥ शूकर रूपधारी विष्णु ने कुश गन्ध घृण तथा अर्ध लेवर विश्वेदेवो से कहा कि मैं जितने दिव्य देह धारी तथा मनुष्य-शरीर धारी पितर हैं उन सबको बुझाऊँ ? उन्होंने

पितृनावाहयिष्यामि ये दिव्या ये च मानुषाः । आवाहयस्वेति च तैत्तिरीयस्तत्त्वावाहये (य) च्छुचिः ॥५३॥
 शिल्पमूलाप्रदभास्तु 'सतिलावेद वेदवित् । जानावारोप्य हस्तं तु 'ददौ सव्येन चाऽऽसनम् ॥५४॥
 तथैव जानुसंस्थेन करेणकेन तान्पितृन् । 'वाराहः पितृविप्राणामायान्तु' न इतीरयन् ॥५५॥
 अपहृतेत्युधाचैव रक्षणं चापसव्यतः । कृत्वा चाऽऽवाहनं चक्रे पितृणां नामगोत्रतः ॥५६॥
 तत्पितरो (पितरोऽत्र) मनोजरानां वा आ (गच्छत इतीरयन् (?)) । संवत्सरैरित्युदीर्य ततोऽर्घ्यं तेषु
 विन्यसेत् ॥५७॥

यास्तिष्ठन्त्यमृता वाचो 'यन्मेति' च पितुः पितुः । यन्मे 'पितामहेत्येवं ददावर्घ्यं' पितामहे ॥५८॥
 यन्मे प्रपितामहेति' ददौ च प्रपितामहे । कुशगन्धतिलोन्मिश्रं सपुष्पमपसव्यतः ॥५९॥
 तदन्मातामहेभ्यस्तु विधिं चक्रे जनादेनः । तानर्घ्यं भूयो गन्धाद्यैर्घ्रं दत्त्वा तु 'भक्तितः ॥६०॥
 आदित्या वसवो वद्रा इत्युच्चार्य जगत्प्रभुः । ततश्चात्र समादाय 'सपिस्तिलकुशाकुलम् ॥६१॥
 विधाय' पात्रे' तच्चैव पर्यपृच्छततो मुनीन् । 'अग्नौ करिष्य इति तैः कुरुष्वेति च घोदितः ॥६२॥
 'आहुतित्रितयं' 'दद्यात्सोमायान्येयमाय च । ये मामकैति च जपेद्यजुः सप्तकमच्युतम् ॥६३॥

बह्वि—'बुलाजो' । तब वेदवेत्ता हरि ने पवित्र होकर घुटने पर हाथ रखकर तिलयुक्त कुशो के मोटक (मोड़े) पितरों को आसन रूप में दिये । घुटने पर एक हाथ रखे ही वाराह ने 'आयान्तु न' यह मन्त्र पढ़कर 'अपहृता' यह मन्त्र भी जनेऊ को दाहिने कंधे पर रख कर पढ़ा । तब पितरों के नाम-गोत्र उच्चारण कर 'तत्पितरो मनोजरा-नागच्छत, संवत्सरैः' यह पढ़कर आवाहन किया । 'यास्तिष्ठन्त्यमृता वाचो यन्मेति च पितुः' इस मन्त्र से पिता को अर्घ्य दिया । 'यन्मे पितामहे' इस मन्त्र से पितामह को अर्घ्य दिया ॥५२-५८॥ 'यन्मे प्रपितामहे' इस मन्त्र से प्रपिता-मह को दिया । अपसव्य होकर (जनेऊ दाहिने कंधे पर रखकर) कुश, गन्ध, तिल तथा पुष्प दिये ॥५९॥ इसी प्रकार मातामह आदि को भी जनादेन ने सब कुछ दिया । पुनः गन्ध आदि से उनकी पूजा कर भक्तिपूर्वक घृप देकर जगत्स्वामी विष्णु ने 'आदित्या वसवो वद्रा' इस मन्त्र का उच्चारण किया । तब एक पात्र में अन्न, घी, तिल तथा कुछ रखकर मुनियों से निवेदन किया कि मैं अग्नि में आहुति दूंगा । उन्होंने कहा—दीजिये ॥६०-६२॥ तब वाराह ने चन्द्रमा, अग्नि तथा यम के लिये तीन आहुतियाँ डाली । 'ये मामक' इस मन्त्र का जप किया । हवन

१क. ०चि । शिष्टः । २क. ०सलिलावेदवाचिन । जा० ख सलिलावेन वेनवित् । ३क. ०दो चाऽऽवाहनास० ।
 ४. ०दो वय्य सनातन० । ५क. ख ०नू । आप्याययन्तु पितरः सयवास्तिलवह्निषा । वा । ५ग. ०राहोपि त्रिवि० ।
 ६क. ख ०मायाययन्तिवती० । ७क. ०नू । संवत्सरेति दत्त्वायं ततोऽर्घ्यं चा० । ख नू । संवत्सरे ततो दीर्घं तेषु
 तेषु च स० । ८ ०न्मे पितुस्तत्पितुश्च तत् । तन्मे । ९ग. ०ति पितुस्तत्पितु । १०क. ०महीत्ये० । ११क. ०हेऽप्येव
 दद्यावर्घ्यं समाहित । कु० । १२ग. ०महीति । १३ख. ०महम् । कु० । १४क. ख. भक्तितः । १५क. ०सान्वितम् ।
 १६ग. विधाय । १७ख. ग. ०येनान्येन य० । १८ख. ०तिमिरवह० । १९ख. ०मायेति यमा० ।

हुतावशिष्टं च ददौ नामगोत्रसमन्वितम् । त्रिराहुतिकमेकैकं पितरं तु प्रति द्विजा ॥६४॥
 अतोऽवशिष्टमन्नाद्य पिण्डपात्रे तु निक्षिपेत् । ततोऽन सरस स्वाहु ददौ पायसपूर्वकम् ॥६५॥
 प्रत्यग्रमेकदा स्विन्नमपर्युपितमुत्तमम् । अल्पशाक बहुफल षड्सममृतोपमम् ॥६६॥
 यद्ब्राह्मणेषु प्रवदौ पिण्डपात्रे पितृस्तथा । वेद (देव) पूर्वेपितृष्व (ष्व) द्वाग्यप्लुत मधुक्षितम् ॥६७॥
 मन्त्रित पृथिवीत्येव 'मधुवातातृच जगौ । भुञ्जानेषु तु विप्रेषु जपन्वै मन्त्रपञ्चकम् ॥६८॥
 'यत्ते प्रकारमारभ्य 'नाधिक' ते ततो जगौ । त्रिमधु त्रिसुपर्णं च बृहदारण्यक तथा ॥६९॥
 जजाप वंषा जाप्य तु सूक्त सौर सपोरुषम् । भुवतवत्सु च विप्रेषु पृष्ट्वा तृप्ता स्य 'हृत्युत ॥७०॥
 तृप्ता स्मेति 'सकृत्तोय ददौ मौनविमोचनम् । पिण्डपात्र 'समादाय च्छायायै प्रवदौ तत ॥७१॥
 'सा तदन्न द्विधा कृत्वा त्रिधैकैकमयाकरोत् । वाराहो भूमयोऽस्तिष्य समाच्छाद्य' कुशोरपि ॥७२॥
 दक्षिणाग्राङ्कुशान्कृत्वा' तेषामुपरि चाऽऽसनम् । सतिलेषु समूलेषु कुशेष्वेव तु सश्रय ॥७३॥
 गन्धपुष्पादिक कृत्वा तत पिण्डं तु भवितत । पृथिवी 'दधीरित्युक्त्वा तत पिण्ड (पित्रे) प्रदत्तवान् ॥७४॥

पितामहा 'प्रपितामहास्तथेति (?) चान्तरिक्षत । मातामहानामप्येव ददौ पिण्डान्स श्कर ॥७५॥

वे अवशिष्ट पदार्थ भी पितरों के नाम गोत्र उच्चारण करके दे दिये । एक एक पितर के प्रति तीन-तीन आहुतिर्मा दी । तब अवशिष्ट अन्न आदि की पिण्डपात्र में रख कर सरस तथा सुत्वाहु सौर एवम् अन्न दिये ॥६३-६५॥
 नया, ताजा तथा उत्तम शाक, अनेक फल, अमृत के समान छद्मों प्रकार के रस ब्राह्मणों को खिलाये तथा पिण्डपात्र में पितरों को प्रदान किये । अन्न को घी तथा मधु से सिक्त एवम् 'पृथिवी इस मन्त्र से अभिमन्त्रित कर दिया । 'मधुवाता' इस ऋचा का भी पाठ किया ॥६६-६७॥ ॥ ब्राह्मणों को भोजन कराते समय 'यत्ते प्रकारम्, नाधिवम्' त्रिमधु, त्रिसुपर्णम् बृहदारण्यकम् इन पाँच मन्त्रों का जप किया ॥६८-६९॥ फिर 'सहस्र शीर्षा हत्यादि पुरुष भुक्त वा पाठ किया । ब्राह्मणों के भोजन कर लेने पर उनसे पूछा—आप तृप्त तो हुए ?' 'हम तृप्त हैं—ऐसा ब्राह्मणों के कहने पर उन्हें जल दिया और पिण्डपात्र उठाकर छाया को दे दिया ॥७०-७१॥ छाया ने उस अन्न के दो भाग किये और फिर एक-एक के तीन भाग किये । वाराह ने भूमि पर रेखा खीचकर कुशा से उसे आच्छादित कर दिया ॥७२॥ कुशा के अन्न भागों को दक्षिण की ओर नरवे उनके ऊपर आसन दिया । मूल तथा तिल से युक्त कुशों के ऊपर गन्ध, पुष्प आदि रखकर भक्ति से पिण्ड दिया । 'पृथिवी दधी' यह पढ़ कर पिता को पिण्ड दिया ॥७३-७४॥ पितामह तथा प्रपितामह को भी उसी प्रकार पिण्ड दिया । वाराह ने मातामह आदि को भी उसी प्रकार पिण्ड दिया ॥७५॥ पिण्ड के उच्छिष्ट अन्न को लेय माप खाने वाले पितरों को दिया ।

१क स ०नेपु नि० । २क ०दाऽप्यत्रमासास समपूति० । ३य ०वात सतो ज० । ४ग यत । ५ग नाविनेन त० । ६ख ०धिवान्ते त० । ७ग इत्यत्र । ८ख ग ०हृदेवो द० । ९क ०य मधुवाता जगौ त० । १०ख स स । ११ख ग सनुस्तृग्य । १२ग ०धादत्त्वा । १३स दस्युरि० । १४स ०हास्तुप्येचान्तरिक्षत ।

पिण्डनिर्वापणोच्छिष्टमग्नं लेपभुजेष्वदात् । एतद्भः पितरित्युक्त्वा ददौ वासांसि भविततः ॥७६॥
 'द्वयङ्गुलजानि शुक्लानि धौतान्यभिनवानि' च । गन्धपुष्पादिकं दत्त्वा कृत्वा चैषां प्रदक्षिणाम् ॥७७॥
 आचम्याऽऽचमयेद्भिद्रान्पत्रानादौ ततः सुरान् । ततस्त्वभ्युक्ष्य तां भूमिं दत्त्वाऽपः सुमनोक्षतान् ॥७८॥
 सतिलाभ्यु पितृत्वाद्दो दत्त्वा देवेषु साक्षतम् । अक्षय्यं नस्त्विति पितृप्रीयतामिति देवताः ॥७९॥
 प्रीणयित्वा परावृत्य त्रिजपेच्छाद्यमर्पणम् । ततो निवृत्य तु 'जपेद्यन्मे नाम इतीरयन्' ॥८०॥
 गृहाप्तः पितरो दत्त धनधान्यप्रपूरितान् । अर्घ्यपात्राणि पिण्डानामन्तरं स'पवित्रकान्' (?) ॥८१॥
 निशिष्योर्जं वहन्तीति कोकातोयमयोऽजपत् । हिमक्षीरं मधुतिलान्पितॄणां तर्पणं ददौ ॥८२॥
 स्वस्तीत्युक्ते पंतर्कस्तु सोराह्णे ज्वावतर्पयन् (?) । रजतं दक्षिणां दत्त्वा विप्रान्देवो गदाधरः ॥८३॥
 सविभाग मनुष्येभ्यो ददौ स्वदिति" चान्द्रवन् । कश्चि (चि) तसंपन्नमि (त्यु) क्त्वा प्रत्युक्तरस्तेद्भिजोत्तमाः ॥८४॥

अभिरम्यतामित्युवाच प्रोचुस्तेऽभिरताः स्म वै । शिष्टमग्नं च पप्रच्छ तैरिष्टं सह चोदितः ॥८५॥
 पाषाणादाय तान्विप्रान्कुर्यादनुगतस्त' (तं त) दा । याजे याजे इति 'पठन्बहिर्वेदि विनिर्गत ॥८६॥
 कौटिलीयं जलेनासावपसय्यं समुत्क्षिपन् । 'अलग्नान्विपुलान्वालाभ्यर्चयामास चाशिपम् ॥८७॥
 दातारो भौऽभिवर्धन्तां तैस्तयेति समोरित । प्रदक्षिणमुपावृत्य कृत्वा पादाभिवादनम् ॥८८॥

'एतद् पित' इस मंत्र से मन्त्रपूर्वक दो अंगुल प्रमाण स्वच्छ तथा नवीन बरत दिये । फिर गन्ध, पुष्प आदि देकर प्रदक्षिणा की ॥७६-७७॥ तदनन्तर स्वयं आचमन किया और ब्राह्मणों तथा देवताओं को आचमन कराया । तब भूमि को जल से सिक्त कर पितरों तथा देवताओं को जल पुष्प, अक्षत तथा तिल दिया । फिर 'अक्षय्य न भस्तु' इससे पितरों को और 'प्रीयताम्' इससे देवताओं को जल दिया ॥७८-७९॥ जल देकर तीन बार 'अभिमर्पण' मंत्र का जप किया । तदनन्तर 'पन्मे' इसका पाठ किया ॥८०॥ 'गृहाप्त कोकातोयम्' इसका भी जप किया । दूध, मधु तथा तिल से पितरों का तर्पण किया ॥८१-८२॥ गदाधारी हरि ने ब्राह्मणों को दक्षिणा में चांदी देकर उनसे स्वस्तिवाचन करवाया । 'स्वत्' यह पदकर मनुष्यों को माग दिया । माग्य से संपन्न हो गया यह बहुर हरि ने ब्राह्मणों से विराम करने को कहा । उन्होंने उत्तर दिया—'हम विराम कर रहे हैं । तब अवशिष्ट अन्न को हाथ में उठाकर ब्राह्मणों को दे दिया । 'याजे याजे' यह पढ़ते हुए हरि वेदों के पास से उठकर बाहर आये । करोड़ों तीर्थों के जल में अपने विपुल बालों को पोंक कर अपसर्ग होते हुए आसीर्वाद के लिये 'दातारो' इस मन्त्र से पितरों की प्रार्थना की । फिर प्रदक्षिणा करते उनकी चरणबन्धना की ॥८३-८८॥ बाराह ने उन्हें

१क ख द्विगुणयानि । २ख अन्यप्यजितानि । ३क तत सुप्रीसिताः । ४क ख ०म् । आशिपमिति । ५क ख ०तुर्व प्रीयः । ६क ०वेद्येन मेतामिति । ७ख ०न् । पाराशरपितरौ दत्तपाराश्रमप्रदौ ततः । अ० । ग ०न् । वीरायः । पितरौ द्वावीराश्रमप्रदौ ततः । अ० । ८क ०नापितरौ । ९ख समवित्रकान् । राजतं । १०क ०न् । राजतं । ११क, ०दितमीरयन् । १२क ख ०नुषतः । १३क ०ठन्तर्वै । १४ग ०लाग्यानाम्नाः ।

आसन्नानि द्वौ चेपां छादयामास शूकरः । विश्राम्यतां प्रविश्याथ पिण्डं जग्राह मध्यमम् ॥८९॥
 छायामयी मही पत्नी तस्यै पिण्डमदात्प्रभुः । आघत्त पितरो गर्भमित्युक्त्वा साऽपि रपिणी ॥९०॥
 पिण्डं गृहीत्वा विप्राणां चक्ष्रे पादभिर्वन्दनम् । विसर्जनं पितॄणां स कर्तुकामश्च शूकरः ॥९१॥
 कोका च पितरश्चैव प्रोचुः स्वार्थंकरं वचः । शप्ताश्च भगवन्पूर्वं दिवस्था हिमभानुना ॥९२॥
 योगभ्रष्टा भविष्यध्वं सर्वं एव दिवश्च्युताः । तदेव भवता प्राताः प्रविशन्ती रसातलम् ॥९३॥
 योगभ्रष्टाश्च 'विश्वेशस्तत्यजुर्गिरक्षिणः । तत्ते भूयोऽभिरक्षन्तु विश्वे देवा हि नः सदा ॥९४॥
 स्वर्गोयास्यामश्च विभो प्रसादात्तव शूकर । सो (य) मोऽधिदेवोऽस्माकं च भवत्वच्युत योगधृक् ॥९५॥
 योगाधारस्तथा सोमस्त्रायते न कदाचन । दिवि भूमौ सदा वासो भवत्वस्मासु योगतः ॥९६॥
 अन्तरिक्षे च 'केपाचिन्मासं पुष्टिस्तथाऽस्तु नः । ऊर्जां चैर्महि नः पत्नी स्वधानाम्ना तु विश्रुता । ॥९७॥
 भवत्वेषैव योगाद्या योगमाता च खेचरी । इत्येवमुक्तः पितृभिर्वाराहो भूतभावनः ॥९८॥
 प्रोवाचाथ पितृन्विष्णुस्तां च कोकां महानदीम् । यदुक्तं तु भवद्भिर्मे सर्वमेतद्भूविष्यति ॥९९॥
 यमोऽधिदेवो भवतां सोमः स्वाध्याय ईरितः । अधियज्ञस्तयंवाग्निर्भवतां कल्पना त्वियम् ॥१००॥
 अग्निर्वायुश्च सूर्यश्च स्थानं हि भवतामिति । ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च भवतामधिपूषाः ॥१०१॥

आसन्न देकर विश्राम करने की कहा । तदनन्तर प्रभु ने गृह में प्रवेश कर बीच के पिण्ड को उठा लिया और अपनी स्त्री छायामयी पृथ्वी को दे दिया । मुन्दरी छाया ने भी 'आघत्त पितरो गर्भम्' यह कहकर पिण्ड को ग्रहण किया और ब्राह्मणों की वरणवन्दना की । तब वराह ने पितरों का विसर्जन करना चाहा ॥८९-९१॥ उस समय कोका और पितर स्वार्थयुक्त वचन कहने लगे—'भगवन्' पहले स्वर्ग में रहने वाले चन्द्रमा ने हमें शाप दिया था कि तुम लोग योगभ्रष्ट होकर स्वर्गच्युत हो जाओगे । सो इस प्रकार पाताल में प्रवेश करने से हमें आपने बचा लिया । योगरक्षक विश्वेदेव ने हमें योगभ्रष्ट समझकर छोड़ दिया था सो अब विश्वेदेव पुनः सतत हमारी रक्षा करें ॥९२-९४॥ विभो ! आपकी कृपा से फिर हम स्वर्ग जायें । अच्युत ! योगधारण करने वाले चन्द्रमा हमारे अधिनामक हैं । योग के आधार चन्द्रमा सतत हमारी रक्षा करें । योगवत् से सदा हम पृथ्वी पर तथा स्वर्ग में वास करें ॥९५-९६॥ कुछ मासों तक आवास में हमारा पोषण हो । स्वर्गा नाम से प्रख्यात यह ऊर्जा हमारी पत्नी है । यही योग से सम्पन्न होकर आवासचारिणी योगमाता हो ॥९७३॥ पितरों के इतना कहने पर सृष्टिकर्ता वराहरूपधारी विष्णु पितरों तथा महानदी कोका से कहने लगे—'आपने जो कुछ मुझसे कहा है, यह सब होगा ॥९८-९९॥ आप वे यम देवता, चन्द्रमा स्वाध्याय और अग्नि यज्ञ होंगे । आपकी कल्पना तो यही है न ? ॥१००॥ अग्नि, वायु तथा सूर्य आपका स्थान होंगे । ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव आपके पूर्वपुत्र्य कहलायेंगे ॥१०१॥ सूर्य, वसु तथा रुद्र आपकी मूर्तियाँ कहलायेंगे । आप योगी, योगशरीरधारी, योगाधार तथा सुवर्ती

आदित्या वसवो यद्रा भवतां मूर्तयस्त्विमाः । योगिनो योगदेहाश्च योगधाराश्च सुव्रताः ॥१०२॥
 कामतो विचरिष्यध्वं फलदाः सर्वजन्तुषु । स्वर्गस्यान्नरकस्यांश्च भूमिस्थांश्च चराचरान् ॥१०३॥
 निजयोगबलेनैवाऽऽप्यायिष्यध्वमुत्तमाः । इयमूर्जा शशिसुता कीलालमधुविग्रहा ॥१०४॥
 भविष्यति महाभागा दक्षस्य दुहिता स्वधा । तथैवं भवतां पत्नी भविष्यति वरानना ॥१०५॥
 'कोकानदीति विख्याता गिरिराजसमाश्रिता । तीर्थकोटिमहापुण्या मद्रूपपरिपालिता ॥१०६॥
 अस्यामद्य प्रभृति च निवत्स्याम्यघनाशकृत् । वराहदर्शनं पुण्यं पूजनं भुक्तिमुक्तिदम् ॥१०७॥
 कोकासलिलपात्रं च महापातकनाशनम् । तीर्थेष्वप्लवनं पुण्यमुपवासश्च स्वर्गदः ॥१०८॥
 दानमक्षय्यमुदितं जन्ममृत्युजरारहम् । माघे मास्यसिते पक्षे भवद्भिरुपपश्ये ॥१०९॥
 कोकामुखमुपायम्य स्यात्तस्य दिनपञ्चकम् । तस्मिन्काले तु यः श्राद्धं पितॄणां निर्वपिष्यति ॥११०॥
 प्रागुक्तफलभागी स भविष्यति न संशयः । एकादशीं द्वादशीं च स्येयमत्र मया सदा ॥१११॥
 यस्तत्रोपवसेद्धीमान्स प्रागुक्तफलं लभेत् । तद्भजध्वं महाभागाः स्यान्मिष्टं यथेष्टतः ॥११२॥
 अहमप्यत्र व्रतस्यानोत्पुवत्या सोऽन्तरधीयत । गते वराहे पितरः कोकामाभग्न्य ते ययुः ॥११३॥

होकर स्वेच्छा से विचरण करेंगे और समस्त जीवों का फल देंगे ॥१०२॥ आप स्वर्ग में, पृथ्वी पर तथा नरक में रहने वाले समस्त चराचरों को अपने योगबल से समृद्ध करेंगे। यह चन्द्रमा की पुत्री कर्जा, जिसका शरीर जल तथा मधु का है, दक्ष की महाभाग्यवती तथा स्वधा नाम से प्रख्यात बन्धी होगी। वही पर यह सुमुखी आपकी पत्नी होगी ॥१०३-१०५॥ यह हिमालय के अधीन होकर कोकानदी नाम से विख्यात होगी और वरोहो तीर्थ के समान पुण्यदायक एवम् मेरे रूप से सुरक्षित होगी ॥१०६॥ आज से लेकर मैं इसमें निवास करूँगा और लोगो के पापों का नाश करूँगा। वराह के दर्शन तथा पूजन पुण्यकारक तथा भोग-भोग्य-दायक हैं ॥१०७॥ कौवा का जल पान करने से महापापों का नाश होता है। तीर्थों में स्नान पुण्यकारक एवम् उपवास स्वर्गदायक माना जाता है। ॥१०८॥ कौवा मरने न होने वाला दान तो अक्षय्य तथा जन्म, मृत्यु एवम् बुढ़ापे का नाश करने वाला होता है। माघ मास के कृष्ण पक्ष में चन्द्रमा के क्षय होने पर आप लोग कौवा तीर्थ में आकर पाँच दिन ठहरेंगे ॥१०९॥ उन दिनों जो यहाँ पितरों का श्राद्ध करेगा, वह नि सन्देह पूर्वकचित फल का भागी होगा ॥११०॥ एकादशी और द्वादशी तिथि को मैं यहाँ सदा रहूँगा। जो बुद्धिमान् मनुष्य उन तिथियों में यहाँ उपवास करेगा, वह पूर्वकचित फल प्राप्त करेगा ॥१११॥ महाभागी! इस लिये आप लोग स्वेच्छा से अपने वांछित स्थान को जाइय। मैं भी यहाँ निवास करूँगा। इतना कहकर भगवान् अन्तर्हित हो गये ॥११२॥ वराह के विलीन हो जाने पर पितर लोग कौवा से विनम्र लेकर चले गये। कौवा भी तीर्थों के साथ हिमालय पर रहने लगी। पृथ्वीमयी छाया ने, जिसने धूवरी का

१५ ०पा। आनेयदुहिता ५०। २४ दुहिता। ३४ ०वा नाम्ना च वि०। ४४ ०टिवहा।
 ५५. पूजया। ५. पूजाया नृ विमु०। ६४ ०षट्पल तथा दावमु०। ७४ पातेऽसि०। ८ मासि सि०
 ८४ स. नरोत्तम. ए०।

कोकाऽपि तीर्थसहिता सस्थिता गिरिराजनि । छाया महीमयो कोडो पिण्डप्राशनबहिता ॥११४॥
 'गर्भमादाय सश्रद्धा वाराहस्यैव सुन्दरो । ततोऽस्या' प्राभवत्पुत्रो भौमस्तु नरकासुर ॥'
 प्राग्ज्योतिष च नगरमस्य दत्त च विष्णुना ॥११५॥

एव मयोवत वरदस्य विष्णो कोकामुखे दिव्यवराहरूपम् ।

भूत्वा नरस्त्यक्तमलो विषाम्ना दशाश्वमेधेष्टिफल लभेत ॥११६॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे व्यासश्रुतिसवादे श्राद्धविधिनिरूपण
 नामकोनविंशत्यधिकद्विशततमोऽध्याय ॥११९॥

अथ विंशत्यधिकद्विशततमोऽध्याय.

श्राद्धकल्पवर्णनम्

मुनय ऊचु

भूय प्रब्रूहि भगवञ्श्राद्धकल्प सुविस्तरात् । कथं च च कदा कोपु 'कंस्तदब्रूहि तपोधन ॥१॥

व्यास उवाच

शृणुध्व मुनिशार्ङ्गला श्राद्धकल्प सुविस्तरात् । यथा यत्र यदा 'यपु यद्र यंस्तद्वदाम्यहम् ॥२॥

रूप बनाकर पिण्ड का भक्षण किया था श्राद्धपूवक वाराह ही का गर्भ धारण किया । तदनन्तर छाया के नरकासुर भौम नामक पुत्र उत्पन्न हुआ । विष्णु ने उसे प्राग्ज्योतिष नामक नगर (आधुनिक गोहाटा) दिया । इस प्रकार मैंने वरदायक विष्णु के कोकातीर्थ में दिव्यवराह रूप धारण करने का कारण बतला दिया । जो इस आख्यान को सुनेगा वह निमल तथा पापरहित होकर दश अश्वमेध यज्ञों का फल प्राप्त करेगा ॥११३ ११६॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में व्यास और श्रुतियों के संसार प्रवरण में श्राद्धविधिनिरूपण नामक दो सौ
 उनीसवीं अध्याय समाप्त ॥११९॥

अध्याय २२०

श्राद्धकल्प का वर्णन

मुनियों ने कहा—भगवन ! पुन श्राद्धकल्प को विस्तार से बतलाइये । तपोधन ! कैसे वहाँ जिस समय जिन स्थानों में तथा जिन द्रव्यों से श्राद्ध करना चाहिये वह बताइए ॥१॥

व्यास ने कहा—मुनिश्रेष्ठो ! आप लोग श्राद्धकल्प को विस्तारपूर्वक सुनिये । जिस प्रकार जहाँ जब जिन स्थानों में तथा जिन द्रव्यों से श्राद्ध करना चाहिये वह मैं बतलाता हूँ ॥२॥ कुठघर्मों को मानने वाले ब्राह्मण

ब्राह्मणः शत्रिपर्वेश्वरः 'श्राद्धं स्ववरणोचितम् । 'कुलधर्ममनुतिष्ठिद्विदित्यं मन्त्रपूर्वकम् ॥३॥
 स्त्रीभिर्वर्णवरैः 'शूद्रविप्राणामनुशासनात्' । अमन्त्रकं विधिपूर्वं 'श्रद्धियागविवर्जितम् ॥४॥
 पुष्करादिषु तीर्थेषु पुण्येवापतनेषु च । शिखरेषु गिरीन्द्राणां पुण्यदेशेषु भो द्विजाः ॥५॥
 सरित्सु पुण्यतोयासु नदेषु च सरःसु च । संगमेषु नदीनां च समुद्रेषु च सप्तसु ॥६॥
 स्वनलितेषु गेहेषु स्वेष्वनुनापितेषु च । दिव्यपादपमूलेषु यज्ञिषेषु ह्रदेषु च ॥७॥
 श्राद्धमेतेषु दातव्यं वर्ज्यमेतेषु चोच्यते । किरातेषु कलिङ्गेषु कोटकणेषु कृमिष्वपि ॥८॥
 दशार्णेषु कुमार्णेषु तङ्गणेषु क्रयेत्यपि । सिन्धोहस्तरकूलेषु नर्मदायाश्च दक्षिणे ॥९॥
 पूर्वेषु करतोयाया न देयं श्राद्धमुच्यते । श्राद्धं देयमशन्तीह मासि मास्युदुपक्षये ॥१०॥
 पौर्णमासेषु (?) श्राद्धं च 'कतं धर्ममक्षगोचरे । नित्यश्राद्धमदैवं च 'मनुष्यैः सह गोप्यते ॥११॥
 नैमित्तिकं सुरैः साधैः नित्यं नैमित्तिकं तथा । 'काम्याग्न्यानि श्राद्धानि प्रतिशंवत्सरं द्विजैः ॥१२॥
 वृद्धिश्राद्धं च वर्तव्यं जातकर्मादिकेषु च । तत्र 'धुमान्द्रिजानाहुर्मन्त्रपूर्वं तु वै द्विजाः ॥१३॥
 कर्मा गते सवितरि दिनानि दस पञ्च च । पूर्वर्णवेह विधिना श्राद्धं तत्र विधीयते ॥१४॥

शत्रिपर्वेश्वरः अपने वर्णधर्मानुसार मन्त्रपूर्वक श्राद्ध करें ॥३॥ स्त्री तथा वर्णों में नौ शूद्र ब्राह्मणों की आत्मा से बिना मन्त्र के अग्नि तथा यज्ञ से रहित विधिपूर्वक श्राद्ध करें ॥४॥ द्विजवृन्द । पुष्कर आदि तीर्थों में, पवित्र मवनों में, पर्वतों में शिखरों पर, पवित्र देशों में, पवित्र जलवाली नदियों, नदों, सरोवरों, नदियों के संगमों, सातों समुद्रों के किनारे, अच्छी तरह लीपे-मोटे हुए अपने घरों में या आत्मा लेकर दूसरे के घरों में, दिव्य वृक्षों के मूलों में, यज्ञिय स्थानों में तथा झीलों के पास श्राद्ध करना चाहिये । अब वहाँ नहीं करना चाहिये, वह बतलाता है ॥५-७॥ निरातदेश, बलिगदेश, कोकणदेश, कृमिदेश, दशार्णदेश, कुमार्णदेश, तण्णदेश, क्रयदेश, सिन्धु नदी से उत्तर, नर्मदा से दक्षिण तथा वरतीया से पूर्व देशों में श्राद्ध नहीं देना चाहिये ॥८-९॥ प्रत्येक मास में चन्द्रदाय होने पर श्राद्ध देना चाहिये । पूणिमा को नक्षत्रगोचर हान पर श्राद्ध करना चाहिये । मनुष्यों के साथ जो किया जाता है । वह नित्यश्राद्ध तथा अदैव श्राद्ध बहलाता है ॥१०-११॥ देवताओं के साथ हान वाला श्राद्ध नैमित्तिक बहलाता है । अग्न जो प्रतिवर्ष श्राद्ध दिये जाते हैं, वे काम्य बहलाते हैं । द्विजा को जातकर्म आदि सस्तरों में वृद्धिश्राद्ध अर्थात् नान्दीश्राद्ध करना चाहिये । वहाँ दो-दो ब्राह्मणों को बुलाना चाहिये ॥१२-१३॥ बन्ध्यारात्रि में सूर्य के प्रवेश करने पर पञ्च दिन तक पूर्वपरित विधान से ही श्राद्ध करना चाहिये ॥१४॥ प्रतिपदा में श्राद्ध करने से घन

१क ०६ कार्यं यमोदि० । २ग ०धर्माण (य) मनुर्बर्दा० । ३क य ०द्विदेष विप्रानु० । ४क ०त् । समन्त्रविधिं वापि व० । ग. ०त् । बह्विजैः तु पूर्ववद्विजैः । ५क ग ०द्विपाववि० । ६ग वा । ७ग. ०मु । अनु० । ८ख. ०पु त्रिमिष्व० । ९ग कुपेष्वापि । १०क. ख. ०याया नः । ११क ख मासे मासे च पशयो । १० । प० । १२ख. ०र्तव्यं चतुर्गो० । १३ख ०नुना पारिणी० । १४ग. ०म्यान्त्यानि । १५क. ख वै । १६ख ०हर्मावपू० । १७ग. य पावयेनेह ।

प्रतिपद्धन्ताभाय द्वितीया द्विपदप्रदा । पुत्रायिनी तृतीया तु चतुर्थी शत्रुनाशिनी ॥१५॥
 भियं' प्राप्नोति पञ्चम्यां षष्ठ्यां पूज्यो' भवेन्नरः । गणाधिपत्यं सप्तम्यामष्टम्यां बुद्धिमुत्तमाम् ॥१६॥
 स्त्रियो नवम्यां' प्राप्नोति दशम्यां पूर्णकामताम् । वेदांस्तयाऽऽनुयात्सर्वानेकादश्यां श्रियापरः ॥१७॥
 द्वादश्यां जयलभं च प्राप्नोति पितृपूजकः । प्रजावृद्धिं पशुं मेघां स्वातन्त्र्यं पुष्टिमुत्तमाम् ॥१८॥
 दीर्घायुरयवैश्वर्यं कुर्वाणस्तु 'त्रयोदशीम् । अवाप्नोति न संदेहः धाढं' 'अद्धासमन्वितः ॥१९॥
 ययासंभविनाऽग्नेन धाढं अद्धासमन्वितः । युवानः पितरो यस्य मृताः शस्त्रेण वा हताः ॥२०॥
 तेन कार्यं चतुर्दश्यां तेषां तृप्तिमभीप्सता । धाढं कुर्वन्नमावास्यां यत्नेन पुरुषः शुचिः ॥२१॥
 सर्वान्कामानवाप्नोति स्वर्गं चानन्तमनुते । अतःपरं मुनिश्रेष्ठाः शृणुष्वं वदतो मम ॥२२॥
 पितॄणां प्रीतये यत्र' यद्देयं प्रीतिकारिणा' । मासं तृप्तिः पितॄणां तु हविष्याग्नेन जायते ॥२३॥
 मासद्वयं मास्यमासंस्तृप्तिं यान्ति पितामहाः । त्रीन्मासान्हारिणं मासं विज्ञेयं पितृतृप्ते ॥२४॥
 पुष्ट्याति चतुरो मासाञ्जशस्य पिदितं पितृन् । श्राकुनं' पञ्च वै मासान्यभ्यासाञ्शूकरामिषम् ॥२५॥
 छागलं सप्त वै मासानैण्येयं चाष्टमासकान् । करोति तृप्तिं नव वै दशमासं न संशयः ॥२६॥

काम होता है, द्वितीया में सन्तान, तृतीया में पुत्र, चतुर्थी में शत्रुनाश, पञ्चमी में लक्ष्मी-प्राप्ति, षष्ठी में सम्मान, सप्तमी में गणों का आधिपत्य, अष्टमी में उत्तम बुद्धि, नवमी में स्त्री और दशमी में मनोरम पूर्ण होता है । एकादशी को धाढक्रिया में तत्पर व्यक्ति समस्त वेदों का ज्ञान प्राप्त करता है ॥१५-१७॥ द्वादशी में धाढ करने वाला व्यक्ति विजय प्राप्त करता है । त्रयोदशी में यदा से धाढ करने वाला व्यक्ति नि संदेह प्रजा, पशु, बुद्धि, स्वतन्त्रता, उत्तम पुष्टि, दीर्घायु तथा ऐश्वर्य प्राप्त करता है ॥१८-१९॥ जिसका पितर सुधावस्या में ही मर गया हो या शस्त्री से आहत होकर मर गया हो, वह यदि पितर की तृप्ति चाहे तो यथासमय अन्न से चतुर्दशी में यदापूर्वक धाढ करे ॥२०॥ अमावास्या में पवित्र होकर यत्नपूर्वक धाढ करने से मनुष्य की समस्त अमिलापायें पूरी होती हैं और यह अनन्त काल तक स्वर्ग में सुख करता है । मुनियेण्डो ! अब इससे बाद प्रीतिपूर्वक धाढ करने वाले मनुष्य को पितरों की तृप्ति के लिये क्या देना चाहिये, वह मुझसे सुनिये ॥२१-२२॥ हविष्याग्न से पितरों को एक मास तक तृप्ति मिलती है । मास्य-मासों से दो मासों तक तृप्ति मिलती है । हिरण्य के मास से पितरों को तीन मास तक तृप्ति मिलती है । शरणाग्र के मास से पितरों को चार मास तक तृप्ति मिलती है ॥२३-२४॥ पक्षी के मांस से पाँच मास तक और शूकर के मांस से छह मास तक तृप्ति मिलती है ॥२५॥ बकरे के मास से सात मास तक और हरिण के मांस से आठ मास तक तृप्ति मिलती है । कृष्णभुज का मांस नि सन्देह भी मास तक तृप्ति देता है

१५. स्त्रियः । २६. श्रेष्ठो । २७. ०म् । सप्तम्यां श्रियमाप्नोति कार्यप्रदाष्टमी मता । स्त्रि० । ४४. ०म्यां पशुमाप्नो० । ५४. पुत्रश्रमः । १६. छ. धाढे । ७६. छ. ०दापरो नष्टः । य० । ८६. य. पञ्च प्रदेशः । ९६. य. ०शरणम् । मा० । १०६. छागुन्तः ।

'गव्यं' मांसं पितृवृत्तिं करोति दद्यात्मांसिषीम् । तस्यैकादश मासांस्तु ओरध्रं पितृवृत्तिदम् ॥२७॥
 संवत्सरं तथा गव्यं पयः पायसमेव च । याध्रीनमा(र्ध्वीणसा) मिषं लोहं कालशाकं तथा मधु ॥२८॥
 रोहितामिषमन्नं च दत्तान्पातमनुलोद्भवैः । अनन्तं वै प्रयच्छन्ति तृप्तियोगं सुतांस्तथा ॥२९॥
 पितृणां नात्र संदेहो गवाध्राद्धं च भो द्विजाः । यो ददाति गुहोन्मिथांस्तिलान्वा धाढ्वमणि ॥३०॥
 मधु या मधुमिश्रं वा अक्षयं सयमेव सत् । अविनः स कुले भूपाद्यो नो *दद्याज्जलाञ्जलिम् ॥३१॥
 पायसं मधुमं दुग्धं यथासु च मघासु च । एष्टव्या ध्रुवः पुत्रा यद्येवौगपि गवां व्रजेत् ॥३२॥
 गौरो वाऽप्युदहेत्कन्यां नीलं वा दूयमुत्सृजेत् । वृत्तिषासु पितृनृच्यं स्वर्गमाप्नोति मानवः ॥३३॥
 मयःशामो रोहिण्यां सोम्ये तेजस्वितां लभेत् । शौर्यमार्द्रासु चाऽऽप्नोति क्षेत्राणि च पुनर्वसो ॥३४॥
 पुष्ये तु धनमक्षय्यमादलेये" चाऽऽप्नुयत्तमम् । मघासु च प्रज्जोर्गुष्टि सौभाग्यं काल्मुनीषु च ॥३५॥
 प्रधानशीलो भवति शापत्यद्योत्तरासु च । प्रयाति ध्येष्टतां शास्त्रे हस्ते धाढ्वप्रदो नरः ॥३६॥
 इषं तेजश्च चित्रासु तथाऽऽप्यमघाप्नुयात् । याजिष्यताभवा स्यातो" विद्याता पुत्रशामदा ॥३७॥

कुवता चानुराधाम् ता दद्युश्चश्र्वर्तिताम् । आधिपय च ज्येष्ठासु मूले चाऽऽरोग्यमुत्तमम् ॥३८॥
 आपादासु यश प्राप्तिरुत्तरासु विशोक्ता । श्रवणेन शुभाल्लोकान्धनिष्ठासु धनं महत् ॥३९॥
 वदवित्त्वमभिजिति भिषक्सिद्धि च वारुणे । अजाविक प्रोष्ठपथा विददगावस्त (श्च त) योत्तरे ॥४०॥
 रयतोपु तथा कुप्यमश्विनीपु तुरङ्गमान । श्राद्ध कुर्वन्तथाऽऽप्नोति भरणीध्वायुरुत्तमम् ॥४१॥
 एव फलमवाप्नोति ऋक्षस्वतपु तस्ववित् । तस्मात्काम्यानि श्राद्धानि देयानि विधिवद्विजा ॥४२॥
 कयाराशिगत भूयै फलमत्यन्तमिच्छता । या यात्कामानभिध्याय कन्याराशिगत रवौ ॥४३॥
 श्राद्ध कुर्वन्ति मनुजास्तास्ता कामाल्लभन्ति ते । नादोमुखाना कतव्य कयाराशिगते रवौ ॥४४॥
 पौणमास्यां तु कतव्य वाराहवचन यया । दिव्यभौमान्तरिक्षाणि स्यावराणि चराणि च ॥४५॥
 पिण्डमिच्छन्ति पितर कन्याराशिगते रवौ । कया गते सवितरि यान्यहानि तु षोडश ॥४६॥
 प्रतुभिस्तानि तुल्यानि ददो नारायणोऽब्रवीत् । राजसूयाश्वमेधाम्या य इच्छेददुलभ फलम् ॥४७॥
 अप्यम्बुशाकमलाद्य पितुः कयागतस्ययेत् । उत्तराहस्तनक्षत्रगत तीक्ष्णाशुमालिनि ॥४८॥
 श्योऽचयस्वपितभवाया तस्य वासस्त्रिविष्टपे । हस्तक्षम दिनकर पितुराजानुशासनात् ॥४९॥

मे स्वामित्व तथा मूल मे उत्तम आरोग्य की प्राप्ति होती है । पूर्वाषाढ में यश की प्राप्ति तथा उत्तराषाढ में श्रवणा में शुभलोक तथा घनिष्ठा में बहुत धन मिलता है ॥३८३९॥ अभिजित् में श्राद्ध करने से मनुष्य वेदवेत्ता होता है । गतमिषा में वधव की सिद्धि होत है । पूर्वमाद्रपद में भेडे तथा बकरे का लाभ होता है । उत्तरमाद्रपद में गौ का लाभ होता है । रेवती में दस्ते (घातु) की प्राप्ति होती है । अश्विनी म घोडा की प्राप्ति होता है । भरणी में श्राद्ध करनेवाला व्यक्ति उत्तम आयु प्राप्त करता है ॥४०४१॥ इन नक्षत्रों में श्राद्ध करनेवाला तत्त्ववेत्ता मनुष्य इस प्रकार फल प्राप्त करता है । द्विजवन्द । इसलिये काव्य श्राद्ध करना चाहिये ॥४२॥ अत्यन्त फल के इच्छुः मनुष्य सूर्य के कयाराशि में प्रवेग करने पर श्राद्ध करे । कया राशि में सूर्य के जाने पर मनुष्य (मन म) जो ज्ञा कामनाय रखकर श्राद्ध करता है वह सब कामनायें उसका पूरी होती है ॥४३३॥ सूर्य के कयाराशि में जाने पर पौणमासी को नागमुख श्राद्ध करना चाहिये जैसा कि वाराह ने कहा है ॥४४३॥ सूर्य के कयाराशिगत होने पर स्वर्ग में पृथ्वी पर स्यावर जन्म—जित विर्ता भा रूप में रहत हुए पितर पिण्ड चाहते हैं । नारायण भगवान् का कहना है कि सूर्य के कयाराशिगत होने पर जो सोलह दिन होते हैं वे यम तुय हैं । जो राजसूय तथा श्वमेध के दुलभ फल की इच्छा करता है वह सूर्य के कयाराशिगत होने पर जत्र धारा मूल आदि से पितरों की पूजा करे ॥४५४७३॥ उत्तराषाढ तथा हस्त में सूर्य के प्रवेग करने पर जो मन्त्र से पितरों की पूजा करता है उसका वास स्वर्ग में होता है ॥४८३॥ हस्त नक्षत्र में सूर्य के प्रवेग करने पर यमराज की आगा से पितरों का नगर तब तब धूम रहता है जब तब धूरिक क राशि का दर्शन नदी

१ख विनेपः । २ख ए ० गान्धामाचः । ३ख विद्रिपस्तु तथो । ४ख विद्रिपस्तु तथो । ५ख ए ० नि कन्यानि द्विजोत्तमा । ६ख ० यच्च पिः ।

तावन्निवृत्तुरी शूया यावद्वृद्धिचक्षुर्दर्शनम् । वृद्धिचक्षे समतिव्राते पितरो देवतं सह ॥५०॥
 'निन्दस्य प्रतिगच्छन्ति दातव्यं दत्त्वा सुदुःखम्' । अष्टकासु च वर्तय्य आढ मन्वन्तरासु ये ॥५१॥
 अन्वष्टकासु ऋमशो मातृपूये सदिष्यते । ग्रहणे च व्यतीपाते 'रविचन्द्रसमागमे ॥५२॥
 जन्मने ग्रहपोषायां आढ पार्येणमुच्यते । अयनद्वितये आढ विषुवद्वितये तथा ॥५३॥
 तार्क्ष्ये च वर्तय्य आढ विषुवदुत्तमम् । एषु कार्ये द्विजा आढ पिण्डनिर्वापणायते ॥५४॥
 वैशाखस्य तृतीयायां नवम्यां वातिवस्य च । आढ कार्यं तु शुक्लायां सत्रान्तिविधिना नरं ॥५५॥
 प्रयोदश्यां भाद्रपदे माघे च द्वादशयेऽहनि । आढ कार्यं पायसेन दक्षिणायनवच्च तत् ॥५६॥
 यश च धोत्रियोऽम्पेति गृहे ष्वेवविदन्निमान् । तेनैरेन च वर्तय्य आढ विषुवदुत्तमम् ॥५७॥
 आदौषद्रव्यसंप्राप्तियंवा" ह्यात्ताधुसमना । पार्येणेन विधानेन आढ कार्यं तथा द्विजे ॥५८॥
 प्रतिपद्यत्तर कार्यं "मानापिप्रोमृतेऽहनि । पितृष्यस्याप्यपुत्रस्य भ्रातृर्गोष्ठस्य संप हि ॥५९॥
 पार्येण देवपूये ह्यादेवोद्दिष्टं सुरैर्यना । द्वौ देवे "पितृवार्थे श्रीनेत्रं कमुभयत्र या ॥६०॥
 मानामहानामप्येव सार्यमूहेन कीर्तितम् । प्रेतेभूतस्य सततं भुवि पिण्डं जलं तथा ॥६१॥

सतिलं सकुशं दद्याद्बर्हिर्जलसमोपतः । तृतीयेऽह्नि च कर्तव्यं प्रेतास्थिचयनं द्विजैः ॥६२॥
 दशाहे ब्राह्मणः शुद्धो द्वादशाहेन क्षत्रियः । वैश्यः पञ्चदशाहेन शूद्रो मासेन शुध्यति ॥६३॥
 'सूतकान्ते गृहे श्राद्धमेकोद्दिष्टं प्रचक्षते' । द्वादशेऽह्नि मासे च त्रिपक्षे च ततः परम् ॥६४॥
 मासि मासि च कर्तव्यं यावत्संवत्सरं द्विजाः । ततः परतरं कार्यं सपिण्डीकरणं श्रमात् ॥६५॥
 कृते सपिण्डीकरणे पार्वणं प्रोच्यते पुनः । ततः प्रभृति निर्मुक्ताः प्रेतत्वात्पितृतां गताः ॥६६॥
 अमूर्ता मूर्तिमन्तश्च पितरो द्विविधाः स्मृताः । नागदीमुखास्त्वमूर्ताः स्युर्मूर्तिमन्तोऽय पार्वणाः ॥६७॥
 एकोद्दिष्टाशिनः प्रेताः पितृणां निर्णयस्त्रिधा ॥६७॥

मुनय ऊचुः

कथं सपिण्डीकरणं कर्तव्यं द्विजसत्तम । प्रेतीभूतस्य विधिवद्ब्रूहि नो वदतां वर ॥६८॥

व्यास उवाच

सपिण्डीकरणं विप्राः शृणुष्व वदतो मम । तच्चापि देवरहितमेकार्धकपवित्रकम् ॥६९॥
 नैवान्नौकरणं तत्र तद्ब्रूयाद्वाहनवर्जितम् । अपसव्यं च तत्रापि भोजयेदयुजो द्विजान् ॥७०॥
 विशेषस्तत्र चान्योऽस्ति प्रतिमासत्रियादिकः । तं कथ्यमानमेकापाः शृणुष्व मे द्विजोत्तमाः ॥७१॥

बाहुर मे देता चाहिए । द्विजातियो को तीसरे दिन प्रेत वा अस्थिसचय करता चाहिये ॥६१-६२॥ दस दिन पर ब्राह्मण, बारह दिन पर क्षत्रिय, पन्द्रह दिन, पर वैश्य और एव मास मे शूद्र शुद्ध होता है ॥६३॥ अर्धौच वा अन्न होने पर घर मे एकोद्दिष्ट श्राद्ध करना चाहिये । बारहवें दिन एव मास मे, तीन पक्ष मे और उसने बाद प्रत्येक मास मे एव वर्ष तत्र श्राद्ध करना चाहिये । उसने बाद श्रम से सपिण्डीकरण करना चाहिये ॥६४-६५॥ सपिण्डीकरण के हो जाने पर पार्वण हो जाता है । तब से जीव प्रेतत्व से मुक्ति पाकर पितर हो जाता है ॥६६॥ पितर दो प्रकार के होते हैं—एक स्वरूपवान् और दूसरे स्वरूपरहित । उनमे मान्दीमुष श्राद्ध वाले पितर स्वरूपरहित कहलाते हैं और पार्वण श्राद्ध वाले स्वरूपवान् कहलाते हैं । एकोद्दिष्ट श्राद्ध ने पिण्ड छाने वाले प्रेत कहलाते हैं—यह तीन प्रकार वा निर्णय पितरो के विषय मे किया गया है ॥६७॥

मुनियो ने कहा—द्विजवर ! प्रेत वा सपिण्डीकरण कैसे करना चाहिये, वह हमे विस्तार से बतलाइये ॥६८॥

व्यास ने कहा—विप्रबृन्द ! सपिण्डीकरण के बारे मे मुझसे सुनिये । यह एक अर्ध सेतया एव पवित्री से देवरहित करना चाहिये ॥६९॥ वहाँ हवन न हो तथा आवाहन किया जाये । वहाँ भी आसव्य करना चाहिये और अयुम (जोड़े नहीं) ब्राह्मणों को खिलाता चाहिये ॥७०॥ द्विप्रेथेयो ! उसमे प्रतिमास बर्मा आदि करने की दूरी विधेयता है । उस वही जाने वाली विधेयता को आप लोग एवाग्र मन से सुनें ॥७१॥ वहाँ तिल-अण्यों से

१क. य्य प्रत्यपावाहन । ए. य्य प्रत्यगाहवनी द्वि० । २क. भूमिष । ३य. ०न्ते मृतप्रा० । ४क. प्रशस्यते । ५क. ए. ०ये चैव मा० । ए. ०ये चैवमा० । ६क. ए. तदा । ७क. ए. ०ण प्राप्तेत्युक् । ८य. पार्वणे । ९क. ०णाः प्रेतत्वान्निवृत्ता गताः । क० ।

'तिलगन्धोदकयुक्तं' तत्र पात्रचतुष्टयम् । कुर्यात्पितॄणां त्रितयमेकं प्रेतस्य च द्विजाः ॥७२॥
 पात्रत्रये प्रेतपात्रादघं चैव प्रसेचयेत् । ये समाना इति जपपूर्ववच्छेषमाचरेत् ॥७३॥
 स्त्रीणामप्येवमेव स्यादेकोद्दिष्टमुदाहृतम् । सपिण्डीकरणं तासां पुत्राभावे न विद्यते ॥७४॥
 प्रीतसंवत्सरं कार्यमेकोद्दिष्टं नरैः स्त्रियाः । मृताहनि च तत्कार्यं पितॄणां विधिचोदितम् ॥७५॥
 पुत्राभावे सपिण्डास्तु तदभावे सहोदराः । कुर्वुरेतं विधिं सम्यक्पुनस्त्य च सुताः सुताः ॥७६॥
 कुर्यान्मातामहानां तु पुत्रिकातनयस्तथा । च्यामुष्यायणसंज्ञास्तु मातामहपितामहान् ॥७७॥
 पूजयेयुष्यायणाय श्राद्धं नैमित्तिकंरपि । सर्वाभावे स्त्रियः कुर्युः स्वभर्तुणाममग्नकम् ॥७८॥
 तदभावे च नृपतिः कारयेत्स्वकुटुम्बिनम् । तज्जातोयैर्नरैः सम्पावाहाद्याः सकलाः त्रियाः ॥७९॥
 सर्वेषामेव वर्षानां चान्धवो नृपतिर्यतः । एता च कथिता विप्रा नित्या नैमित्तिकास्तथा ॥८०॥
 वश्ये श्राद्धाश्रयामन्यां नित्यनैमित्तिकां त्रियाम् । दर्शस्त (शत) त्र निमित्तं तु विद्यादिनुक्षयान्वितं (तम्) ॥८१॥

नित्यस्तु नियतः कालस्तस्मिन्कुर्याद्यद्योदितम् । सपिण्डीकरणादूर्ध्वं पितॄण्यः प्रपितामहः ॥८२॥
 स तु लेपभुजं याति प्रलुप्तः पितृपिण्डतः । तेषां हि यश्चतुर्थोऽन्यः स तु लेपभुजो भवेत् ॥८३॥

युक्त बार पात्र होने चाहिये, जिनमें तीन तो पितरों के लिये और एक प्रेत के लिये होता चाहिये ॥७२॥ 'ये समाना' इसका जप करते हुए तीनों पात्रों में प्रेतपात्र से जल छेंडना चाहिये और जबसिद्ध विधान पूर्ववत् करना चाहिये । स्त्रियों का भी एकोद्दिष्ट श्राद्ध इसी प्रकार होगा । पर पुत्र के अभाव में उनका सपिण्डीकरण नहीं हो सकता ॥७३-७४॥ मनुष्य स्त्री का एकोद्दिष्ट प्रतिवर्ष किया करे । पितरों का एकाद्दिष्ट उनकी मृत्यु-तिथि पर विधिपूर्वक करना चाहिए ॥७५॥ पुत्र के अभाव में सपिण्ड (पिंड देने के अधिकारी) और उनके अभाव में सहोदर भाई एकोद्दिष्ट करें । पुत्र के पुत्र और उनके भी पुत्र विधान पूर्वक कर सकते हैं ॥७६॥ मातामह का श्राद्ध दोहरा कर सकता है । दोनों की सन्तान बहलाने वाले मनुष्य मातामह तथा पितामह दोनों के नैमित्तिक श्राद्ध न्याय-पूर्वक करें । सब के अभाव में पत्नी पति का श्राद्ध बिना मन्त्र के ही करे ॥७७-७८॥ स्त्री के अभाव में कुटुम्ब-पूज्य व्यक्ति का श्राद्ध राजा कराये । उसकी जाति-विरादरी के लोगों द्वारा उसकी सारी क्रियायें राजा द्वारा सम्पन्न हो जानी चाहिये, जिसलिये कि राजा समस्त वर्षों का बन्धु बहलता है ॥७९॥ विप्रवृद्ध । य नित्य-नैमित्तिक श्राद्ध मैंने बतला दिये । अब श्राद्ध सम्बन्धी नित्य-नैमित्तिक क्रिया को भी मैं बतलाऊंगा ॥८०॥ उसमें चन्द्रशाय-युक्त अमावस्या ही कारण है । नित्य तो निश्चित समय का नाम है । उसमें जैसे बताये गये हैं बस करना चाहिये । सपिण्डीकरण से आगे पिता का जो प्रपितामह है, वह लेपभुज मण्डित होता है । अनएव पितरों का पिण्ड उसे नहीं पड़ता है । मातामह के पक्ष में भी जो चोपा पड़ता है, वह भी लेपभुज है । इसलिये वह भी सम्बन्ध से हीन

१. ०. ल. भो. २. ०. क. कुर्याद्विप्रव. ३. ०. म. पितॄणां तय. त्रि. ४. य. यै स्त्रीणां तद्विधि. ५. ०. पा. आमु. ६. ०. वे. कु. ७. ०. म्यन्दायायाः. ८. स. स. प्राये.

सोऽपि संबन्धतो हीनमुपभोगं प्रपद्यते । पिता पितामहश्चैव तथैव प्रपितामहः ॥८४॥
 पिण्डसंबन्धिनो ह्येते विज्ञेयाः पुरयास्त्रयः । लेपसंबन्धिनश्चान्ये पितामहपितामहात् ॥८५॥
 प्रभृत्युक्तास्त्रयस्तेषां यजमानश्च सप्तमः । इत्येव मुनिभिः प्रोक्तः संबन्धः साप्तपौरुषः ॥८६॥
 यजमानात्प्रभृत्युर्वमनुलेपभुजस्तथा । ततोऽप्ये पूर्वजाः सर्वे ये चान्ये नरकोकसः ॥८७॥
 येऽपि तिर्यक्त्वमापन्ना ये च भूतादिसंस्थिताः । तान्सर्वान्यजमानो वै श्राद्धं कुर्वन्पथाविधि ॥८८॥
 स समाप्यायते विप्रा येन येन वदामि तत् । अन्नप्रकिरणं यत्तु मनुष्यैः त्रियते भुवि ॥८९॥
 तेन तृप्तिमुपायन्ति ये पिशाचस्त्वमागताः । यदम्बु रनानवद्भोज्यं भूमौ पतति भो द्विजाः ॥९०॥
 तेन ये तरता प्राप्तास्तेषां तृप्तिः प्रजापते । यास्तु गन्धाम्बुकणिकाः पतन्ति धरणीतले ॥९१॥
 ताभिराप्यायनं तेषां देवत्वं ये कुले गताः । उद्धृतेष्वपि पिण्डेषु याद्व्याम्बुकणिवा भुवि ॥९२॥
 ताभिराप्यायनं तेषां ये तिर्यक्त्वं कुले गताः । ये चादन्ताः कुले घालाः त्रियायोगाद्वह्निष्कृताः ॥९३॥
 विपद्नास्त्वन्धिकाराः समार्जितजलाग्निनः* । भुक्त्वा चाऽऽक्षामता यच्च यजलं धाद्विघ्नशौचजम् ॥९४॥
 ब्राह्मणानां तथैवान्यत्तेन तृप्तिं प्रयान्ति यैः । एवं यो यजमानस्य यश्च तेषां द्विजन्मनाम् ॥९५॥
 'कश्चिज्जलान्नविशेषः शुचिरच्छिष्ट एव वा । सेनाग्नेन* कुले तत्र ये च घोन्यन्तरं गताः ॥९६॥

होने के कारण पिण्ड नहीं पाता है । पिता, पितामह, प्रपितामह—ये ही तीन पुरुष पिण्डसम्बन्धी कहलाते हैं । पितामह के पितामह से लेकर तीन पुरुष तक लेप सम्बन्धी कहलाते हैं और सातवां यजमान कहलाता है । यही सात पुरुषों का सम्बन्ध मुनिया ने बतलाया है ॥८१-८६॥ यजमान से लेकर ऊपर अनुलेप-भुज कहलाते हैं और उनसे अतिरिक्त सब पूर्वज कहलाते हैं । जो नरक में रहते हैं, जो पक्षियों में प्राप्त हैं तथा जो मूल आदि के मोनि में स्थित हैं, उन सबका श्राद्ध यजमान विधान पूर्वक करे ॥८७-८८॥ द्विप्रवृत्त । अब जो-जो करने से जोष को तृप्ति मिलती है, वह मैं कहता हूँ । भूमि पर जो अन्न बिखरा जाता है, उससे पिशाच-योनि में प्राप्त पितर को तृप्ति मिलती है ॥८९॥ स्नान करने से जो जल पृथ्वी पर गिराया जाता है, उससे वृक्षयोनि में प्राप्त पितरों को तृप्ति मिलती है ॥९०॥ जो मुगन्धित जल के फूहारे मूल पर गिराये जाते हैं, उनसे देवकुल में प्राप्त पितरों को तृप्ति मिलती है ॥९१॥ पिण्डों के उठा लेने पर पृथ्वी पर जो जल-बिन्दु गिरता है, उसमें पक्षियों में प्राप्त पितरों को तृप्ति मिलती है ॥९२॥ ब्राह्मणों को जो जल पिलाया जाता है उससे उन लोगों को (मृत्यु के बाद) तृप्ति मिलती है, जो निर्जंत वालन क्रियायोग से कुलच्युत कर दिये गए हों, जो विपत्ति-ग्रस्त होकर अविचार-वर्चित कर दिये गए हों, जिन्होंने मर्त्याव जल पी लिया हो, और जिन्होंने सागर चरण पोने के बाद बचे जल से आचमन किया हो । इस प्रकार (आदिसत्त्व में) जो यजमान और उन ब्राह्मणों का पवित्र या जूटा जल और अन्न गिरता है, उससे उस (यजमान के) कुल में मरकर अन्य योनि या में गये हुए जोष तृप्ति को प्राप्त करते हैं । ९३-९६॥ द्विजपण । लोग मर्त्य भाँति श्राद्धक्रिया से सम्पन्न व्यक्तियों का अन्यायपूर्वक उपार्जित धन से जो श्राद्ध

११. *मन्त्र ले० । १२. वाग्यथा । १३. योगवशास्थिता । १४. *मार्जनाप्यतादि० । १५. *वाग्ये तेन । १६. *रिचितला० । ७६. तेन तेन ।

प्रयान्त्याप्यायनं विप्राः सम्यक्श्राद्धश्रियावताम् । अन्यायोपाजितैरर्थैश्च्छ्राद्धं त्रियते नरैः ॥१७॥
 तृप्यन्ते ते न चाण्डालपुत्कसाद्यास्तु योनिषु । एवमाप्यायनं विप्रा बहूनामेव बान्धवै ॥१८॥
 श्राद्धं कुर्वद्भिरन्ध्राम्बुविशेषैः संप्रजयते । तस्माच्छ्राद्धं नरो भक्त्या शाक्तेनापि यथाविधि ॥१९॥
 कुर्वीत कुर्वतः श्राद्धं कुले कश्चिन्न सौदति । श्राद्धं देयं तु विप्रेषु सयतेष्वग्निहोत्रिषु ॥२०॥
 अवदतेषु विद्वत्सु श्रोत्रियेषु विशेषतः । त्रिणाचिकेतस्त्रिमधुस्त्रिसुपर्णं पङ्कजवित् ॥२१॥
 मातापितृपरश्चैव स्वस्त्रीयः सामवेदवित् । ऋत्विक्पुरोहिताचार्यमुपाध्याय च भोजयेत् ॥२२॥
 मातुलः श्वशुरः दयालः संबन्धी द्रोणपाठकः । मण्डलब्राह्मणो यस्तु पुराणार्थविशारदः ॥२३॥
 अकल्पः कल्पसंतुष्टः प्रतिग्रहविवर्जितः । एते श्राद्धे नियोज्यन्ते ब्राह्मणाः पङ्क्तिपदावनाः ॥२४॥
 निमन्त्रयेत पूर्वेषु पूर्वोक्ताङ्घ्रिजसत्तमान् । देवैः नियोगे पित्र्ये च तास्तथैवोपकल्पयेत् ॥२५॥
 तैश्च संयमिभिर्भायं यस्तु श्राद्धं करिष्यति । श्राद्धं दत्त्वा च भुक्त्वा च मैथुनं योऽधिगच्छति ॥२६॥
 पितरस्तस्य वै मासं तस्मिन्नेतसि शेरते । गत्वा च योपितं श्राद्धे यो भुङ्क्ते यस्तु ग (य) च्छति ॥२७॥
 रेतोमूत्रकृताहारास्तं मासं पितरस्तयोः । तस्मात्स्व (त्सु) प्रथमं कार्यं प्राज्ञेनोपनिमन्त्रणम् ॥२८॥
 अप्राप्तौ तद्विदने धार्पि वर्ज्यं योपितप्रसङ्गिनः । भिक्षार्थमागतांश्चापि कालेन सयताग्यतीन् ॥२९॥

करते हैं, उस श्राद्ध से चाण्डाल-व्याधि आदि योनियों में भी वे व्यक्ति तृप्त नहीं होते हैं। विप्रवृन्द । इस प्रकार श्राद्ध करते हुए बन्धुओं द्वारा जो जल दिया जाता है, उससे बहुतों को तृप्ति होती है। इसलिये मनुष्य धार लेकर भी भक्ति से विधान पूर्वक श्राद्ध करे ॥१७-१९॥ श्राद्ध करने से कुल में किसी का कष्ट नहीं होता है। सयमी, शनिहीन, शुद्ध, विद्वान् तथा विशेष करके श्रोत्रिय ब्राह्मणों को श्राद्धीय द्रव्य देना चाहिये ॥१०॥ पञ्चाग्नि सेवन करने वाले, 'मधुयाता' इत्यादि मन्त्रों के ज्ञाता, छोटे अगों के ज्ञाता, मातृ पितृ-भक्त, भागिनेय, सामवेदज्ञ, ऋत्विक्, पुरोहित, आचार्य तथा उपाध्याय कः भोजन कराना चाहिए ॥१०१-१०२॥ मामा श्वशुर, साला, सम्बन्धी, पुत्रपार्थ विशारद, मण्डलब्राह्मण, द्रोणपाठक, सप्तपरहित, सन्तुष्ट, प्रतिग्रह-रहित—ये पक्लि-यजिन करने वाले ब्राह्मण श्राद्ध में नियुक्त होने चाहिये ॥१०३-१०४॥ श्राद्ध से पहले ही दिन पूर्वोक्त उत्तम ब्राह्मणों को निमन्त्रण दे देना चाहिये। देवकम तथा पितृवर्मदोषों में उसी प्रकार से बरता चाहिये ॥१०५॥ जा श्राद्ध करे उसे सयमी होता चाहिये। श्राद्ध करके तथा श्राद्धस खाकर जा मैथुन करता है, उसके पिता को उसी वीथ में एक मास तक साना पड़ता है ॥१०६॥ स्त्री के पास जाकर जो श्राद्ध में भोजन करता है और जो भोजन करके स्त्री के पास जाता है, उन दोनों के पितरों को एक मास तक धीर्य तथा मूत्र खाना पड़ता है। इसलिये बुद्धिमान् को चाहिये कि वह पहले ही निमन्त्रण दे दे ॥१०७-१०८॥ पटा छग जाने पर उस दिन भी स्त्री-प्रसन्न करने वालों को छोड़ देना चाहिये। समय से भिक्षा के लिए आये हुए सयमी सन्यासियों को अनुनय-विनय पूर्वक यत्न से भोजन कराये।

भोजयेत्प्रणिपाताद्यः प्रसाद्य यतमानसः । योगिनश्च तदा ध्यादे भोजनीया विपश्चिता ॥११०॥
 योगाधारा हि पितरस्तस्मात्तान्पूजयेत्सदा । ब्राह्मणानां सहस्राणि एको योगी भवेद्यदि ॥१११॥
 यजमानं च भोक्तुंश्च नौरिवाम्भसि तारयेत् । पितृगाया तथैवात्र गोयते ब्रह्मवादिभिः ॥११२॥
 या गीता पितृभिः पूर्वमेतस्याऽऽसीन्महीपतेः । कदा नः संततावाग्र्यः कस्यचिद्भूविता सुतः ॥११३॥
 यो योगिभुवतशोषाग्नौ भुवि पिण्डान्प्रदास्यति । गयामामयवा पिण्डं खड्गमांसं तथा हविः ॥११४॥
 कालशाक तिलाज्यं च तृप्तये कृसरं च नः । वैश्वदेवं च सौम्यं च खड्गमांसं परं हविः ॥११५॥
 विषाणवर्जं शिरस आ पादादाशिषामहे । दद्याच्छ्राद्धं त्रयोदश्यां मघासु च यथाविधि ॥११६॥
 मधुसपि समायुक्तं पायसं दक्षिणापने । तस्मात्संपूजयेद्भवत्या स्वपितृन्विधियन्तरः ॥११७॥
 कामानभोप्सन्तकलान्पापादात्मविमोचनम् । समूयुः श्रांस्तयाऽऽदित्यान्नक्षत्रप्रहृताः ॥११८॥
 प्रीणयन्ति मनुष्याणां पितरः श्राद्धतृपिताः । आयुः प्रजा धनं विद्यां स्वर्गं मोक्षं सुखानि च ॥११९॥
 प्रयच्छन्ति तथा राज्यं पितरः श्राद्धतृपिताः । तथाऽपराह्णः पूर्वाह्णोत्पितृणामतिरिच्यते ॥१२०॥
 संपूज्य स्वागतनेतान्सदनेऽभ्यागतान्द्विजान् । पवित्रपाणिरात्रान्तानासनेपूपवेशयेत् ॥१२१॥
 श्राद्धं कृत्वा विधानेन संभोज्य च द्विजोत्तमान् । विसर्जयेत्प्रियाभ्युक्त्वा प्रणिपत्य च भविततः ॥१२२॥

विद्वान् व्यक्ति यागियो को श्राद्ध में भोजन कराये । जिस लिए पितर योग के आधार माने जाते हैं इसलिए सदा योगियों का सम्मान करे ॥११०-११०३॥ हजरो ब्राह्मणों में यदि एक भी योगी हो तो वह यजमान तथा भोजन करने वालों को जल में नाव की तरह तार देते हैं ॥१११३॥ इस विषय में ब्रह्मवादियों ने एक पितृ-ग्रास गायी है जि 'राजा ऐल के पितरों ने कहा था—'हमारी सन्तानों में जिसको पहले पुत्र होगा, जो योगियों के खाने से बचे अन्न के पिण्ड पृथ्वी पर देगा अथवा गया में पिण्ड देगा और हमारो तुष्टि के लिय गंडे का मांस, घी, बालशाक, तिलमिश्रित धी तथा खिचड़ी देगा । सींग को छोड़कर तिर से पर तक गंडे का मांस विश्वदेव तथा सोम को प्रिय है, उसे हम चाहते हैं ॥११२-११५॥ त्रयोदशी, मघा नक्षत्र तथा दक्षिणापन में मधु तथा घी से युक्त स्त्रीर श्राद्ध में देना चाहिये । इसलिये मनुष्य भक्ति से विधिपूर्वक अपने पितरों की पूजा करे । श्राद्ध में तुष्ट निये गये पितर मनुष्यों की समस्त कामनाओं को पूर्ण करते हैं, उन्हें पाप से मुक्त करते हैं और उनसे प्रति वसुओं, छद्मों, आदित्यों नक्षत्रों, ग्रहों और तारों को अनुकूल बना देते हैं । श्राद्ध से सन्तुष्ट पितर आयु, प्रजा, धन, विद्या, स्वर्ग मोक्ष, राज्य तथा सुख प्रदान करते हैं । पितरों का समय पूर्वाह्ण की अपेक्षा अपराह्ण उत्तम माना जाता है । गृह में आये हुए द्विजों का स्वागत करने पवित्र हाथों से उन्हें जल दे और आचमन कराकर आठनों पर बैठायें ॥११६-१२१॥ विषाणपूर्वक श्राद्ध करने और उत्तम ब्राह्मणों का भोजन कराकर उन्हें भक्तिपूर्वक प्रणाम करे और प्रिय-जातो से उन्हें बिदाई दे ॥१२२॥ द्वार तक उनके पीछे-पीछे चलकर पुन उनकी आज्ञा से

१स. ०दि । योगी च भोजितश्चेत्स्यान्नौरि० । २क. स ०नि सार्धे पू० । ३ग. स. ०स्य भूप० ।

४ग ०वर्ग्यां गह्वाश्च आमदानासायानुते । ५क. ०सान्ये दिव्या य च मानुषा । ६० ।

आहारमनुगच्छेच्च आगच्छेदनुमोदितः । ततो नित्यक्रियां कुर्याद्भोजयेच्च तथाऽतिथीन् ॥१२३॥
 नित्यक्रिया पितृणां च केचिदिच्छन्ति सत्तमा । न पितृणां तथैवान्ये शेषं पूर्ववदाचरेत् ॥१२४॥
 पृथक्त्वेन वदन्त्यप्ये केचित्पूर्वं च पूर्ववत् । ततस्तदन्नं भुञ्जीत सह भृत्यादिभिर्नरैः ॥१२५॥
 एवं कुर्वीत धर्मज्ञः धाढं पित्र्यं समाहितः । यथा च विप्रमुह्यानां परितोषोऽभिजायते ॥१२६॥
 इदानीं संप्रवक्ष्यामि वर्जनीयान्निजायमान् । मित्रघ्नघ्नकुलघ्नो बलीवः क्षयी शुबलो वणिक्पथः ॥१२७॥
 श्यावदन्तोऽप्य खलवाः काणोऽप्यो बधिरो जडः । मूकः पङ्गुः कुण्डः दुश्चर्मा व्यङ्गकेकरो ॥१२८॥
 कुण्डो रक्तक्षेपः कुब्जो वामनो विकटोऽलसः । मित्रशत्रुदुष्कुलीनः पशुपालो निराकृतिः ॥१२९॥
 परिव्रित्तिः परिवेत्ता परिवेदनिकासुतः । बृपलीपतिस्तत्पुत्रश्च न भवेच्छाद्भुङ्गिजः ॥१३०॥
 बृपलीपुत्रसंस्कर्ता अनूढो दिधिपूषतिः । भूतकाध्यापको यस्तु भूतकाध्यापितश्च यः ॥१३१॥
 सूतकाग्नोपजोवी च भृगुपुः सोमविक्रयो । अभिशस्तस्तथा स्तेनः पतितो वार्ष्णिषः शठः ॥१३२॥
 पिशुनो वेदस्त्यागो दानाग्नित्यागनिष्ठुरः । राज्ञः पुरोहितो भृत्यो विद्याहीनोऽप्य मत्सरो ॥१३३॥
 वृद्धद्विदुर्धरः क्रूरो मूढो देवलकस्तथा । नक्षत्रमूचकश्चैव पर्वकारश्च गहितः ॥१३४॥

लौट जाये। तब नित्यक्रिया करने अतिथियों को भोजन कराये ॥१२३॥ मुनिबुद्धः। कोई तो पितरो की नित्य-
 क्रिया करते हैं और कोई नहीं भी करते हैं। शेष क्रिया तो पहले ही की तरह करनी चाहिये ॥१२४॥ कोई कहते
 हैं, पितरो की पूषद्-पूषक् क्रिया होनी चाहिये, कोई कहते हैं नहीं, पहले की तरह ही सब कर्म करने
 चाहिये। धाढ का अर्थ सेवक आदि के साथ खाना चाहिये ॥१२५॥ धर्मज्ञ मनुष्य सावधान होकर पितरो
 का इस प्रकार धाढ करें जिससे ब्राह्मणों को सन्तोष हो जाय ॥१२६॥ अब मैं धाढ में निषिद्ध ब्राह्मणों के
 बारे में बतलाऊँगा। मित्र के साथ शत्रुता करने वाला, खराब नख वाला, नपुंसक, क्षय रोग वाला, श्वेत कुष्ठ
 वाला, व्यापार करने वाला, मद्य पीने वाला, गजे शिर वाला, बाना, अग्न्या, बह्वा, जड, गुणा, लपटा, विहृत
 वाला, धर्म वाला, ऐश्वर्यान्ता, कुष्ठरोगी, लाल नेत्र वाला, बोना, दन्तुल, आलसी, दुष्कुलीन, पशु पालने वाला,
 परिव्रित्ति, (जिसका छाटा भाई उससे पहले विवाह करले), परिवेत्ता, (जो बड़े भाई से पहले विवाह कर ले)
 परिवेदनिका (जिसका सन्तान विवाह करने पर परिवेदन शेष ल्ये) का पुत्र, शूद्रा का पति और उसका पुत्र
 ब्राह्मण धाढ में वर्जनीय है ॥१२६-१३०॥ शूद्रा के पुत्र का सत्कार करने वाला, अविवाहित, दूसरा विवाह
 करने वाला, स्त्री का पति, बेतन लेकर पढ़ाने वाला, बेतन लेकर पढ़ने वाला, सूतक के अन्न से जीने वाला,
 शिवार खेलने वाला, मद्यव्रिक्ता, नलकी चार, पतित, सूदत्तोर, दुष्ट, चुपलत्तोर वेदत्यागी, दान तथा अग्नि
 का त्याग करने वाला निष्ठुर, राजा का पुरोहित, भृत्य, विद्याहीन, बाह रखने वाला, वृद्धों से द्वेष करने वाला,
 उदत, क्रूर, मूर्ख, गुजारी, ग्रह बताने वाला, पर्वकार, निन्दित और यज्ञ के अनधिकारी को यज्ञ कराने वाला,

१क ख ०णा प्राक्वेचि०। २ग ०न च नित्यत्वे के०। ३घ स्वित्री। ४क पण्ड कुकर्मा। ५क कुक्षि-
 कुप्ये रत्नादुत्पातनी। ख कुक्षिकुप्ये रत्न दृष्टिर्वाय०। ६क ०बुद्धिस्तरील० प०। ७ग ०स्तत्पुत्रश्च तथा
 उच्छा०। ८क ०तान्नुतवाग्नि०। ९ख सूतिकाग्निष्टकरी च। १०क णी होताग्नि०।
 १ख ०द्रिग्मिधुनश्चैव पतितस्यैव पोषकः। न०।

अयाज्ययाजक पण्डो गहिता ये च येऽधमा । न ते श्राद्धे नियोज्यव्या दृष्ट्वाऽमी पडिक्तदूपकाः ॥१३५॥
 असता प्रग्रहो यन सता चंवावमानना । दण्डो देवदृतस्तत्र सद्य पतति दारुणः ॥१३६॥
 हित्वाऽऽगम सुबिहित बालिश यस्तु भोजयेत् । आदिधमं समुत्सृज्य दाता तत्र विनश्यति ॥१३७॥
 यन्त्वाधित द्विज त्यक्त्वा अन्यमानीय भोजयेत् । तत्रि श्वासाग्निनिर्दग्धस्तत्र दाता विनश्यति ॥१३८॥
 वस्त्राभावे त्रिया नास्ति यज्ञा वेदास्तपासि च । तस्माद्वासासि देयानि श्राद्धकाले विशेषतः ॥१३९॥
 कौशेय क्षौमकार्पासि दुकूलमहत तथा । श्राद्धे त्वेतानि यो दद्यात्कामानाप्नोति चोत्तमान् ॥१४०॥
 यथा गोषु प्रभूतासु वत्सो विन्वति मातरम् । 'तथाऽग्न' तत्र विप्राणां जनुर्धन्वावतिष्ठते ॥१४१॥
 नामगोत्रं च मन्त्राश्च दत्तमत्र जयन्ति ते । अपि ये निधनं प्राप्तास्तृप्तिस्तानुपतिष्ठते ॥१४२॥
 देवताभ्य पितृभ्यश्च महायोगिभ्य एव च । 'नम स्वाहायै स्वधायै नित्यमेव' भवन्तिवति ॥१४३॥
 आद्यावसाने श्राद्धस्य त्रिरावृत्या जपेत्तदा । पिण्डनिर्वपणे चाऽपि जपेदेव समाहितः ॥१४४॥
 क्षिप्रमायान्ति पितरो राक्षसाः प्रदवन्ति च । 'प्रोयन्ते त्रिषु लोकेषु मन्त्रोऽग्न' तारयत्युत ॥१४५॥
 क्षौमसूत्रं नवश्चाच्छा (च्छो) ण कार्पासिकं तथा । 'पत्रोणं पट्टसूत्रं च कौशेयं च विवर्जयेत् ॥१४६॥

नपुंसक तथा अधम—ये ब्राह्मण श्राद्ध में त्याज्य हैं। ये पवित्र को दूषित करने वाले हैं ॥१३१-१३५॥ जहाँ अष्टद्व
 पुत्र का सम्मान और सत् पुत्र का अपमान होता है वहाँ धीम ही मयकर दैविक दण्ड मिलता है ॥१३६॥ जो
 परम्परागत धर्म का उल्लंघन कर शास्त्रविहित ब्राह्मण का छोड़कर मूर्ख को खिलाता है, उसका नाश हो
 जाता है ॥१३७॥ जो आश्रित द्विज का परिप्राय कर दूसरे को लाकर खिलाता है, वह उसने स्वास खी अग्नि
 से दग्ध होकर नष्ट हो जाता है ॥१३८॥ वस्त्र के अभाव में क्रिया, यज्ञ, वेद तथा तपस्या नहीं होती है। इसलिये
 श्राद्धकाल में विशेष करने वस्त्र देना चाहिये ॥१३९॥ जो रोगी वस्त्र, पट्ट-वस्त्र, सूती वस्त्र तथा महीन वस्त्र
 श्राद्ध में देता है वह उत्तम कामनाओं को प्राप्त करता है ॥१४०॥ जैसे अनेक रावों ने बीच बछड़ा अपनी माँ
 के पास पहुँच जाता है उसी तरह ब्राह्मणों को खिलाया अन्न जीव के पास पहुँच जाता है ॥१४१॥ नाम गोत्र
 उच्चारण करके मन्त्रपूर्वक जो अन्न दिया जाता है वह मृत्यु के बाद भी जीव का प्राप्त होता है ॥१४२॥ श्राद्ध
 के आदि तथा अन्त में देवताभ्य
 'इस मन्त्र का जप तीन बार करे। पिण्डदान व समय भी सावधान होकर
 इसका जप करे। इससे पितर र्श प्र आ जाने हैं और राक्षस भाग जाते हैं। इस मन्त्र से तीनो लोकाँ में पितर प्रसन्न
 होते हैं। यह सब का तारण करने वाला है ॥१४३॥ नवीन रेशमी सूत्र देना चाहिये, पर बपास, ऊन,
 पट्ट तथा कौशेय वस्त्र का सूत्र नहीं देना चाहिये ॥१४४॥ यदि वस्त्र पूरा हो किन्तु उसमें किनारी न हो तो वह

१४ ंण्डो दैवः । ग ंण्डा दैत्यः ० । २क ंस्ति जपये ० । ३क ंषाऽग्नमेति तत्रैव ज० । ४य
 ०म नयो विप्रो ज० । ५ख यान्ति । ६ख ंम स्वधायै स्वाहायै त्रि० । ७ख ंव नमो नमः । आ० । ८ख
 ०वन्तु न । आ० । ९क चापि । १०ख प्रयन्ते । ११म नास्तार० । १२क त्रिषु ।

'वर्जयेच्चादशं प्राज्ञो यद्यप्यध्यातं भवेत् । न प्रीणयन्त्ययंतानि दातुश्चाप्यनयो भवेत् ॥१४७॥
न निवेद्यो भवेत्पिण्डः पितॄणां यस्तु जीवति । इष्टेनाग्नेन भक्ष्येण भोजयेत्तं यथाविधि ॥१४८॥
पिण्डमनो सदा दद्याद्भोगार्थो मत्तन नरः । पत्न्यं दद्यात्प्रजायार्थं च मध्यमं मन्त्रपूर्वकम् ॥१४९॥
'उत्तमा द्युतिमन्विच्छन्पिण्ड गोषु' प्रयच्छति । प्रजां चैव यशः कीर्तिमप्सु' चैव निवेदयेत् ॥१५०॥
प्रायण्यदीर्घमायुश्च वायसेभ्यः प्रयच्छति । कुमारशालामन्विच्छन्कुक्कुटेभ्यः प्रयच्छति ॥१५१॥
एके विप्राः पुनः प्राहुः पिण्डोद्धरणमद्वत । अनुज्ञातस्तु विप्रैस्तैः काममुद्दिश्यतामिति ॥१५२॥
तस्माच्छ्राद्धं तथा कार्यं यथोक्तमृषिभिः पुरा । अन्यथा तु भवेद्दोषः पितॄणां नोपतिष्ठति ॥१५३॥
यवैर्ब्राह्मिहितिलैर्मर्षिर्गोधूमैश्चणकैस्तथा । संतर्पयेत्पितॄन्मुद्गैः श्यामार्कैः सर्पपद्मैः ॥१५४॥
गोवारहंस्तिश्यामार्कैः प्रियङ्गुभिस्तथाऽर्घयेत् । प्रसातिकां (असतिकाः) सतूलिकां द (तिलकान्द)
घ्राच्छ्राद्धे विचक्षणः ॥१५५॥
आम्रपाप्रातक विल्वं दाडिमं बीजपूरकम् । प्राचीनामलकं श्मीरं नारिकेलं परुषकम् ॥१५६॥
नारङ्गं च सखजूरं द्राक्षानीलकपितृकम् । पटोलं च प्रियालं च कर्णपूषद्वराणि च ॥१५७॥
'विकटवत्तं वत्सकं च' कस्तूराह (काह) शरकानपि । एतानि फलजातानि श्राद्धे दद्यानि यत्नतः ॥१५८॥
गुडशर्करमत्स्यण्डौ देवं फाणितमूर्मुरम्' । गन्धं पयो दधि घृतं तैलं च तिलसंभवम् ॥१५९॥

नहीं देना चाहिये । ये वर्जनीय चीजें पितरो को तृप्ति नहीं देतीं । दाता के लिये भी ये हानिकारक हैं ॥१४७॥
पितरों ने जो जीवित हैं, उसे पिण्ड नहीं देना चाहिये, बल्कि विधानपूर्वक उसे सुन्दर भोजन कराना चाहिये ।
॥१४८॥ भोगार्थो मनुष्य सदा धनि मे पिण्ड बढाये । प्रजा वा इच्छुक मनुष्य मन्त्रपूर्वक पत्नी को पिण्ड दे
॥१४९॥ उत्तम शान्ति वा इच्छुक व्यक्ति भी को पिण्ड दे । यदि यश तथा प्रतिष्ठा चाहने वाला मनुष्य जल में
पिण्ड दे ॥१५०॥ दीर्घायु चाहने वाला व्यक्ति कोभी को पिण्ड दे । कुमार-शाला चाहने वाला मुर्गों को दे ॥१५१॥
कुछ विद्वानो वा कहना है कि अप्रमत्त से पिण्ड को उठाना चाहिए । जैसे धियो की आज्ञा लेकर जैसे चाहें वैसे
उठा सकते हैं ॥१५२॥ इसलिये जिस प्रकार श्रद्धियो ने बतलाया है उसी प्रकार श्राद्ध करना चाहिये । अन्यथा
दोष होता है और पितरो को भी तृप्ति नहीं मिलती है ॥१५३॥ यव, ब्रीहि, तिल, उदक, गेहूँ तथा घने से पितरों
वा संर्पण करना चाहिए । मूग श्यामार्क, (साई), सरसो, गोवार, हस्तिश्यामर्क (सामा) तथा प्रियंगु (कपनी)
से पितरो को अर्घ्य देना चाहिये । विद्वान् मनुष्य श्राद्ध मे साधकरण शय्या दान करें ॥१५४-१५५॥ आम, आमला,
बेल, दाडिम, विजोरा नींबू, पानीयामलक नारियल, नारंगी, खजूर, दाख, कटबेल, पटोल, प्रियाल (पियासाल),
वेर, विकटवत्, वत्सक, कस्तूराह ?, शरक ?—ये फल श्राद्ध मे देने चाहिये ॥१५६-१५८॥ गुड, शर्करा, खाँड,
राख, गोवा दूध, दही, घी, तिल वा तैल, सैन्धव नमक, पवित्र गन्ध, चन्दन, अगर, कुकुम, बालशाक, तन्दुलीय, वास्तुक,

१क स ०येवोदश । २क ०मां गति० । ३क ०ति । आप्नोति च य० । ४ ०कीर्ति यस्तु नित्य नि० ।
५स नित्य । ६ग सदा । ७ख तीक्ष्ण । ८ख ०त बीजपूर वीकामपि च पूरकम् । ए० । ९क च सर्वादिचक्रा० ।
१०ख ०तशूम् ।

मैन्धवं सागरोत्थं च' लवणं सारसं तथा । निवेदयेच्छुचीगन्धाश्चन्दनागुरुकुङ्कुमान् ॥१६०॥
 कालशाकं तन्दुलीयं वास्तुकं मूलकं तथा । शाकभारण्यकं चापि दद्यात्पुष्पाण्यमूनि च ॥१६१॥
 जातिचम्पकलोध्राश्च मल्लिकाबाणवर्बरी । वृन्ताशोकाटहयं च तुलसी तिलकं तथा ॥१६२॥
 'पावन्ती' शतपत्रा च गन्धशोफालिकामपि । कुब्जकं तगरं चैव मृगभारण्यकेतकीम् ॥१६३॥
 यूथिकामतिमुक्तं च श्राद्धयोग्यानि भो द्विजा । कमलं कुमुदं पद्मं पुण्डरीकं च यत्नतः ॥१६४॥
 इन्दीवरं कोकनदं फल्हारं च नियोजयेत् । कुष्ठं मासी बालकं च कुक्कुटी जातिपत्रकम् ॥१६५॥
 नलिकोशीरमुस्तं च ग्रन्थिपर्णी च सुन्दरी । पुनरप्येवमादीनि गन्धयोग्यानि चक्षते ॥१६६॥
 गुग्गुलु चन्दनं चैव श्रीवासमगुरु तथा । धूपानि पितृयोग्यानि श्रियिगुग्गुलमेव च ॥१६७॥
 राजमापाश्च चणकान्मसूरान्कोरद्वृषकान् । विप्रयान्मर्कटांश्चैव कोदोवांश्चैव वर्जयेत् ॥१६८॥
 माहिषं चामरं माणंमाविकैकशफोद्भवम् । श्रृंगमौष्ट्रमाविकं च दधि क्षीरं घृतं त्यजेत् ॥१६९॥
 तालं वरुणकाकोलीं बहुपत्रार्जुनीफलम् । जम्बीरं रत्नवित्तं च शालस्यापि फलं त्यजेत् ॥१७०॥
 मत्स्यसूकरकर्मर्षिश्च गायो वर्या विशेपत । पूतिकं भृगुनाभिं च रोचनीं पद्मचन्दनम् ॥१७१॥
 कालेयकं तूषगन्धं तुरष्कं चापि वर्जयेत् । पालङ्कं च कुमारीं च किरातं पिण्डमूलकम् ॥१७२॥
 गृञ्जनं चित्रिकां 'नृत्रं' वरुणा चनपत्रिकाम् । 'जीवं' च 'शानपुष्पां' च नालिकां गन्धशकरम् ॥१७३॥

(वधूई) मूली तथा वन्य शाकं देना चाहिये और ये फूल भी देने चाहिये—॥१५९-१६१॥ मालती, चम्पा, लोथ मल्लिका बाण वर्बरी, वृन्त, अशाक, अटहय, तुलसी, तिलक, शतपत्रा गन्धशोफालिका कुब्जक तगर, मृग जगली नेतवी, जूही तथा अतिमुक्त—ये पुष्प श्राद्ध के योग्य हैं ॥१६२-१६३॥ कमल, कुमुद इवेतकमल, नीलकमल तथा बहूलार श्राद्ध में देना चाहिये। कुष्ठ जदामासी बालक, कुक्कुटी जातिपत्रा मल्लिक, उशीर (खस) मुस्त ग्रन्थिपर्णी—ये पितरों के लिये गन्धयोग्यानि बतलाये जाते हैं ॥१६४-१६६॥ गुग्गुलु, चन्दन, श्रीवास अगर श्रियिगुग्गुलु—ये पितरों के धूपयोग्य माने गये हैं। राजमाप, चणक, मसूर, कोरद्वृषक, विप्रुष, मर्कट, कोदो—ये श्राद्ध में त्याज्य हैं ॥१६७-१६८॥ मत्स्य, चमरी गाय हरिणी, भेड़ एवं खुर वाले जानवर, स्त्री, जैट—इनका दही दूध और घी त्याज्य है ॥१६९॥ ताल, वरुण वाकाल, बहुपत्र अर्जुनीपत्र, जम्बीर, रत्नवित्त तथा शाक का भी पत्र त्याज्य है ॥१७०॥ मछली, सूकर, बछड़ा तथा विशेष करने गायें त्याज्य हैं। पूतिक, वस्तुरी, गारोचन, पद्मचन्दन, कालेयक तथा सीसण मय वाले लोवान का भी परित्याग करे ॥१७१॥ पालक, कुमारी, किरात, पिण्डमूल, गजदन्त, चित्रिका, शुक वरुणा, चनपत्रिका जीव, शानपुष्पा, नालिका, गन्धशुक्ल, हृन्मूल, सरसो, प्याज तथा लशुन का परित्याग करे ॥१७२-

१ ग नियोजये० । २ क पार्ष्वि । ख पार्वी । ३ ख सुश्रुता । ४ क गन्धयोग्यानि । ख श्राद्धयोग्यानि । ५ ख ० माप पत्र र्वय मसू० । ग ० मापातलुर्चव मसू० । ६ ख ० टीरचोपान्नेदो० । ७ क ० टमत्रावीक द० । ख ० टमत्रोद्भूतं द० । ८ क करम्म । ग करण्ड । ९ ग ० क वुक्कुतावरयोक्तिका० । १० ग जीवक श० । ११ ग ० तपत्रा च । १२ क गन्धमूतकीम् । ख गन्धसूचकम् ।

हलभृत्यं सर्पपं च पलाण्डुं लग्नं त्यजेत् । मानकन्दं विषकन्दं वज्रकन्दं गदास्थिकम् ॥१७४॥
 पुष्यात्वं सपिण्डालु आढकर्मणि वर्जयेत् । अलावुं तिक्तपर्णां च कूष्माण्डं कटुकत्रयम् ॥१७५॥
 वार्ताकं शिवजातं च लोमशानि घटानि च । कालीयं रक्तवाणां च बलाकां लकुचं तथा ॥१७६॥
 आढकर्मणि वर्ज्यानि विभीतकफलं तथा । आरनालं च शुक्लं च शीर्षं पर्युषितं तथा ॥१७७॥
 नोग्रगन्धं च दातव्यं 'कोविदारकशिपुकी । अत्यम्लं पिच्छिलं सूक्ष्मं यातयामं च सत्तमाः ॥१७८॥
 न च देयं गतरसं मद्यगन्धं च यदुवेत् । 'हिद्वगूषगन्धं फणिशं भूनिम्बं निम्बराजिकं ॥१७९॥
 कुस्तुम्बुरं कलिङ्गोत्थं यजयेदम्लचेतसम् । दाडिमं मागधीं चैव नागराद्रकं तित्तिडीः ॥१८०॥
 आघ्रातकं जीवकं च तुम्बुरं च नियोजयेत् । पायसं आत्मलोमुद्रान्मोदकादींश्च भविततः ॥१८१॥
 पानकं च रसालं च गोक्षीरं च निवेदयेत् । यानि चाम्यवहार्याणि स्वादुस्निग्धानि भो द्विजा ॥१८२॥
 हृषदम्लकटून्वेव देयानि आढकर्मणि । अत्यम्लं 'चातिलवणमतिरिक्तकट्वं च ॥१८३॥
 आसुराणीह भोग्यानि तान्यतो दूरतस्म्यजेत् । मृदस्निग्धानि यानि स्युरीयकद्वयम्लकानि च ॥१८४॥
 स्वादूनि देवभोग्यानि तानि आढे नियोजयेत् । 'छागमासं वार्तिकं च तत्तिर दाशकामिपम् ॥१८५॥

१७३३॥ मानकन्द, विषकन्द, वज्रकन्द, गदास्थिक, पुष्यात्वं तथा पिण्डालु को मी आढकर्म म छोड दे । अलावु (मौली), तिक्तपर्णा (कैला) कुम्हडा, त्रिकटुक, (सोड, पीपर और चिच) बैंगन शिवजात, लोमश, घट, कालीय, रक्तवाण, बलाका, बडहूर—य आढकर्म म वर्जनीय है । बडेडा आरनाल शुक्ल फटा हुआ बासी तथा तीक्ष्ण गन्ध वाला फल नहीं देना चाहिये । अत्यम्ल खट्टा फिसलने वाला सूक्ष्म बहुत देर का, रसहीन तथा मद्य समान गन्ध वाला फल नहीं देना चाहिये ॥१७४-१७८॥ हींग के समान तीक्ष्ण गन्ध वाला फल फणिश भूनिम्ब, निम्बराजिक, कलिङ्ग देश का कुस्तुम्बुर तथा अमलतास को छोड दे ॥१७९॥ दाडिम मागधी नागर, अदरक, इमली, आंवला, जीवक, तुम्बुर—ये देने चाहिये । क्षीर, शातमली मूग, मोदक पानक, आम तथा गौ का दूध भनितपूर्वक देना चाहिये ॥१८०-१८१॥ जो भोग्य सुस्वादु, स्निग्ध तथा तिक्त खट्टा एवम् बडका पदार्थ हो, वह आढ कर्म में देना चाहिये ॥१८२॥ अत्यन्त खट्टा, अधिक तमकीन और अधिक बडका भोग्य पदार्थ रासली भोग्य बड-फाता है, उसे दूर ही त्याग दे ॥१८३॥ जो मधुर स्निग्ध तथा थोडा बडका एवम् खट्टा हा वह देव भोग्य बहलता है, उसे रखे ॥१८४॥ बकरे का मास, घेरे पक्षी का मास, लीतर का मास, खरहे का मास, और शिवा, लावक तथा सर्पिष का मास आढ में देना चाहिए ॥१८५॥ वाप्रीणल, (बैडा) रक्तशिव, त्वचा से युक्त, लोह (?), सिंहतुण्ड

१४ नरकन्द । २४ कृपस्वन्द । ३क बरकन्द । ४क पुरपाड । ५क तित्तकण ।
 स त्पकार्ण । ६ ग कटुपत्रिका । ७क बालिद्रग रक्तवाण च बीणाजाति कुबालुकम् । था० ।
 ग बालिन्द्र रक्तदार य बीणाका वृत्तशिवम् । था० । ८क कनिशुरी । स कनिश्वरी । ९ग
 हिद्वगुग्या पाणिश च मू० । १०क तित्तिक्न० । ११क स च वार्ताकतै० ।

शिवालावकराजीवमास आढे नियोजयेत् । 'वाघ्नोणस रवतशिव लोह शल्कसमा वतम् ॥१८६॥
 'निहतुण्ड' च खडग च आढे योज्य तथोच्यते । 'यद्यप्युक्त हि मनुना रोहित प्रतियोजयत् ॥१८७॥
 योक्तव्य 'हृष्यकव्येषु तथा न विप्रयोजयेत् । एवमुक्त मया' विप्रा वाराहणावलोकितम् ॥१८८॥
 मया निषिद्ध भुञ्जानो रौरव नरक व्रजेत् । 'एतानि च निषिद्धानि वाराहण तपोधना ॥१८९॥
 अमक्ष्याणि द्विजातीना न देयानि पितृष्वपि । रोहित शूकर कूर्म गोधाहस' च 'व्रजयत् ॥१९०॥
 चक्रवाक च मदगु च शल्कहीनाश्च मत्स्यकान् । कुरुर च निरस्थि च वासहात च (?) कुक्कुटान् ॥१९१॥
 कलविट्टकमयूरांश्च भारद्वाजांश्च शाङ्गकान् । 'नकुलोलकमार्जाराल्लोपान'या सुद्रुग्रहान् ॥१९२॥
 'टिटिढभा'सार्धजम्बूका'व्याघ्रशूकररक्षुकान् । एतान'याश्च 'सदृष्टा'यो भक्षयति दुमति ॥१९३॥
 स महापापकारी तु रौरव नरक व्रजते । पितृष्वतास्तु यो दद्यात्पापात्मा गहितामिषान् ॥१९४॥
 स स्वगस्थानपि पितृभरक पातयिष्यति । कुसुम्भशाक जम्बोर सिपूक कोविदारकम् ॥१९५॥
 पिण्याक विप्रुष' 'चैव मसूर' 'गूञ्जन क्षणम् । कोद्व कौकिलाक्ष च चक्र कम्बुकपत्रकम् ॥१९६॥
 चकोरश्चनमास च वर्तुलालावुतालिलीम् । फल तालतहणा च भुवत्या नरकमृच्छति ॥१९७॥

तथा खड्ग का मास आढ मे देना चाहिए ॥१८६॥ मनु के वचनानुसार रेहू मछल मा देना चाहिए । हृष्य-नव्यो की तयारी मे इन पदार्थों का उपयोग करना चाहिए पर इनका दुष्ययोग न होने पाए । विप्रवृ' । वाराह द्वारा निर्णित मास को मैने आप लोगों से बतला दिया ॥१८७॥ मैने जिनका निषय बतलाया है उनका व्यवहार करने वाला मनुष्य रौरव नरक मे जाता है । तपस्विना । इनका निषय तो वाराह ने दिया है ॥१८९॥ पितृ कर्म मे भी अमक्ष्य वस्तु ब्राह्मणों को नहीं देनी चाहिये । रेहू मछली, शूकर वृक्षआ गो' तथा हस्त आढ मे निषिद्ध है ॥१९०॥ चक्रवाक मदगु (पनिहुन्वी) स्ववाहीन मत्स्य कुरुररक्षा अस्थिविहीन वासहात ? मूर्गा गौरवा मयूर भारद्वाज शाङ्ग नेवला उल्लू विलाठ टिटिहरी सिया बाघ रीछ उरुडवाया—इन दुष्ट जातों को जो दुमति मनुष्य खाता है वह महापाप का भाग्य होकर रौरव नरक मे जाता है ॥१९१॥ जो पार्थी मनुष्य पितरों को यह निर्दिष्ट मास खिलाता है उसके पितर स्वगन्व्युत् हो जाते हैं । कुसुम्भशाक जम्बोर सिपूक कोविदारक पिण्याक विप्रुष मसूर गानर क्षण कोदो कौकिलाक्ष चक्र कम्बक पत्रक चकार तथा वाज का मास गोल लौकी और ताल वृक्ष का फल जो खाता है वह नरक मे जाता है ॥१९७॥ पितरों को ये चारों देकर मनुष्य उनके साथ पीप से भरे नरक मे जाता है । इसलिये सुधीजन यत्न करके इन चीजों को न चढाये । वाराह मगयान् ने पितरों के सम्मान के लिये स्वयं इन चीजों का निषय कर दिया है । मुनिवद । मनुष्य अपना मास भक्षण करे यह उचित

१व बादिनत्रिलालोद्धारण० । २व सिंह तु० । ३क ०मुण्डिकर० । ४त ०यद्युक्त । ५ यद्यप्युक्त । ५ग ०युकापिल न नियो० । ६स प्रिय । ७ ग पुरा । ७न ०जिना । ८ग ०आमास । १०क व चन्द्रमू । ११ग जरि नोस्कायविचवतवान् । १२क मान्गय । १३क ०घणोमुच्छमर्कटान् । १४ व सद्रूपान्यो । १५क स गूञ्जन । १६क ०र वितुष मतम् । १७व वञ्चुव० ।

दत्त्वा पितृषु तैः सार्धं अजेत्पूयवहं नरः । तस्मात्सर्वप्रयत्नेन नाऽऽहरेत्तु विचक्षणः ॥१९८॥
निषिद्धानि वराहेण स्वयं पितॄन्मादरात् । वरमेवाऽऽज्ममांसस्य भक्षणं मुनयः कृतम् ॥१९९॥
न त्वेव हि निषिद्धानामादानं पुंभिरादरात् । अज्ञानाद्वा प्रमादाद्वा सकृदेतानि च द्विजाः ॥२००॥
भक्षितानि निषिद्धानि प्रायश्चित्तं ततश्चरेत् । फलमूलदधिक्षीरतृणगोमूत्रपावकैः ॥२०१॥
'भोग्यान्नभोग्यसंभुक्ते' प्रत्येकं दिनसप्तकम् । एवं निषिद्धाचरणे कृते सकृदपि द्विजैः ॥२०२॥
शुद्धिं नेमं शरीरं तु विष्णुभक्तेर्विशेषतः । निषिद्धं वर्जयेद्द्रव्यं ययोस्तं च द्विजोत्तमाः ॥२०३॥
समाहृत्य ततः श्राद्धं कर्तव्यं निजशक्तितः । एवं विधानतः श्राद्धं कृत्वा स्वविभवोचितम् ॥२०४॥
आब्रह्मस्तम्भपर्यन्तं जगत्प्रीणाति मानवः ।

मुनय ऊचुः

पिता जीवति यस्याय मृतो द्वौ पितरो पितुः । कथं श्राद्धं हि कर्तव्यमेतद्विस्तरशो वद ॥२०५॥

व्यास उवाच

यस्मै दद्यात्पिता श्राद्धं तस्मै दद्यात्सुतः स्वयम् । एवं न ह्यीयेत धर्मो लौकिको वैदिकस्तथा ॥२०६॥

मुनय ऊचुः

मृतः पिता जीवति च यस्य ब्रह्मन्पितामहः । स हि श्राद्धं कथं कुर्यादेतत्त्वं वक्तुमर्हसि ॥२०७॥

हे विन्तु निषिद्ध वस्तुओं का सेवन न करे ॥१९८-१९९॥ मनुष्य अज्ञान से या असाधपानी से एक बार भी निषिद्ध वस्तुओं का भक्षण कर ले तो सात दिनों तक प्रत्येक दिन भोज्य अन्न के साथ फल, मूल, दही, दूध, तृण, गोमूत्र तथा पावक (कुलथी) से प्रायश्चित्त करे ॥२००-२०१॥ ब्राह्मणचर्च यदि एक बार भी इस प्रकार का निषिद्ध भक्षण कर ले तो उन्हें शरीर-शुद्धि करनी चाहिये। विष्णुभक्तों को विशेष करने प्रायश्चित्त करना चाहिये। निषिद्ध द्रव्यों का त्याग कर अपनी शक्ति के अनुसार सामग्री जुटाकर श्राद्ध करना चाहिये। इस तरह विधानपूर्वक भर्षा शक्ति के अनुसार श्राद्ध करने से मनुष्य ब्रह्मा से लेकर तृण तक संपूर्ण जगत् को तृप्त करता है ॥२०२-२०४॥

मुनियों ने कहा—जिसका पिता जीवित है और पिता के माँ-बाप मर चुके हैं, वह कैसे श्राद्ध करे, यह हमें विस्तार से बतलाइये ॥२०५॥

व्यास ने कहा—पिता जिसका श्राद्ध करे पुत्र भी उसी का श्राद्ध करे। ऐसा करने से लौकिक तथा वैदिक धर्म बँ बँ हानि नहीं होती है ॥२०६॥

मुनियों ने कहा—ब्रह्मन् । जिसका पिता मर चुका है और पितामह जीवित है, वह कैसे श्राद्ध करे, यह बतलाइये ॥२०७॥

व्यास उवाच

पितुः पिण्डं प्रदद्याच्च भोजयेच्च पितामहम् । प्रपितामहस्य पिण्डं वै ह्ययं शास्त्रेषु निर्णयः ॥२०८॥
 मृतेषु पिण्डं दातव्यं जीवन्तं चापि भोजयेत् । यपिण्डीकरणं नास्ति न च पार्वणमिष्यते ॥२०९॥
 'आचारमाचरेद्यस्तु पितृमेधाश्रितं नरः । आयुषा घनपुत्रैश्च वर्धेत्याशु न संशयः ॥२१०॥
 'पितृमेधाध्यायमिमं श्राद्धकालेषु यः पठेत् । तदन्नमस्य पितरोऽन्नमस्ति च त्रियुगं द्विजा. ॥२११॥

एवं मयोक्तः पितृमेधकल्पः, पापापहः पुण्यविवर्धनश्च ।

श्रोतव्य एष प्रयत्नैरंशश्च, आद्वेयु चैवाप्यनुकीर्तयेत्

॥२१२॥

इति श्रीमहापुराणे आदिश्नाहो व्यासविसंवादे श्राद्धकल्पनिरूपणं नाम

विंशत्यधिकद्विंशततमोऽध्यायः ॥२२०॥

अथैकविंशत्यधिकद्विंशततमोऽध्यायः

सदाचारवर्णनम्

व्यास उवाच

एवं सम्यग्गृहस्थेन देवता पितरस्तथा । संपूज्या हव्यकव्याभ्यामन्नेनातिथिबान्धवा. ॥१॥

व्यास ने कहा—वह पिता और प्रपितामह को पिण्ड दे तथा पितामह को भोजन कराये—यही शास्त्रों का निर्णय है। वह भरे हुए को पिण्ड दे और जीवित को भोजन दे। उसे सपिण्डीकरण तथा पार्वण नहीं करना चाहिये। जो मनुष्य अपने पूर्वजों के अनुसार आचरण करता है, वह शीघ्र ही आयु, घन तथा पुत्रों से सम्पन्न होता है, इसमें कोई संशय नहीं। द्विजगण। जो श्राद्धकाल में पितरों के इस अध्याय का पाठ करता है, उसका अन्न पितर तीन युगी तब खाते हैं। पापों को दूर करने वाले तथा पुण्य बढ़ाने वाले इस पितृमेधकल्प का दर्शन मैंने कर दिया। मनुष्य को यत्नपूर्वक इसका श्रवण करना चाहिये। श्राद्धों में भी इसका पाठ होना चाहिये ॥२०८-२१२॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में व्यास और ऋषियों के संवाद प्रकरण में श्राद्धकल्प-निरूपण नामक दो सौ बीसवाँ अध्याय समाप्त ॥२२०॥

अध्याय २२१

सदाचार का वर्णन

व्यास ने कहा—इस प्रकार गृहस्थ लोग हव्य-कव्यों से देवता और पितरों की पूजा करें और अन्न से अतिथि

१ ग वै आद्वेयु निर्णय इति । मृ० । २ स ० त्वास्तु पुत्र स्यान्पितृग्रीणाति श्राद्धत । आ० । ३ व ० पामृत पुण्य प्रात का० ।

भूतानि भूत्याः सकलाः पशुपक्षिपिपीलिकाः । भिखवो याचमानाश्च ये चान्ये पान्त्यका गृहे ॥२॥
सदाचाररता विप्राः साधुना गृहमेधिना । पापं भुङ्क्ते समुल्लङ्घ्य नित्यनैमित्तिकीः त्रियाः ॥३॥

मुनय ऊचुः

कथितं भवता विप्र नित्यनैमित्तिकं च यत् । नित्यं नैमित्तिकं काम्यं त्रिविधं कर्म पौरुषम् ॥४॥
सदाचारं मुने श्रोतुमिच्छामो वदतस्तव । यं कुर्वन्सुखमानोति परत्रेह च मानव ॥५॥

व्यास उवाच

गृहस्थेन सदा कार्यमाचारपरिरक्षणम्^१ । न ह्याचारविहीनस्य भद्रमत्र परत्र वा ॥६॥
यज्ञदानतपासोह पुरुषस्य न भूतये । भवन्ति यः सदाचारं समुल्लङ्घ्य प्रवर्तते^२ ॥७॥
दुराचारी हि पुरुषो^३ नेहाऽऽयुर्विन्दते महत् । कार्यो धर्मः सदाचार आचारस्यैव लक्षणम् ॥८॥
‘तस्य स्वरूपं वक्ष्यामि सदाचारस्य’^४ भो द्विजाः । आत्मनःकमना भूत्वा^५ तथैव परिपालयेत् ॥९॥
त्रिवर्गसाधने यत्नं कर्तव्यो गृहमेधिना । नत्सत्सिद्धौ गृहस्थस्य सिद्धिरत्र परत्र च ॥१०॥
पादेनाप्यस्य पारः^६ यः कुर्याच्छ्रेयः स्वमात्मवान् । अर्धेन चाऽऽत्मभरणं नित्यनैमित्तिकानि च ॥११॥

तथा माई-बन्धुओं को सतुष्ट करें। सद्गृहस्थ को चाहिये कि वह घर पर आये हुए समस्त प्राणी, सेवक, पशु, पक्षी, चीटी, मिल्क, पशिक तथा दूसरे भी याचको का सत्कार करे। जो नित्य तथा नैमित्तिक त्रिया का उल्लंघन करता है, वह मानो पाप खाता है ॥१-३॥

मुनियों ने कहा—विप्र ! आपने नित्य-नैमित्तिक कर्म बतला दिये। पुरुष के तीन प्रकार के कर्म होते हैं—नित्य, नैमित्तिक तथा काम्य। मुने ! अब हम सदाचार के बारे में सुनना चाहते हैं, जिसके करने से मनुष्य इस लोक में तथा परलोक में सुख प्राप्त करता है ॥४-५॥

व्यास ने कहा—गृहस्थ को सदा आचार की रक्षा करनी चाहिये। आचारहीन मनुष्य का कल्याण न यहाँ होता है, न परलोक में ॥६॥ जो सदाचार का उल्लंघन करता है, उसके यज्ञ, दान और तप ऐश्वर्यवर्षक नहीं होते ॥७॥ दुराचारी पुरुष की आयु बड़ी नहीं होती है। सदाचारयुक्त धर्म करना चाहिये। द्विजगण ! सदाचार का स्वरूप मैं बतलाऊँगा, जिसका पालन मनुष्य एवंचित होकर करे। गृहस्थ को धर्म, काम और अर्थ के साधन में यत्नशील रहना चाहिये। उनकी सिद्धि होने पर यहाँ और परलोक में भी सिद्धि मिलती है ॥८-१०॥ विचारवान् व्यक्ति उनके चतुर्धा शि साधन करने से भी पारलौकिक श्रेय प्राप्त करता है और अर्ध साधन करने से अपना भरण-पोषण तथा नित्य-नैमित्तिक कर्म कर लेता है ॥११॥ फिर भी चतुर्धा साधन

१क छ ०रिपालनम्। २ख ०ते। सदाचार स पु०। ३ख ०यो ब्रह्मेद विन्द०। ४क ग ०चारो ह्यपल०। ५क तथा च व प्रव०। ६ख तथा। ७क स्वपन्न। ८क ०चार तु भो। ९ख ०त्वा त थैव। १०. पाविष्य।

पादेनैव तथाऽप्यस्य मूलभूतं विवर्धयेत् । एवमाचरतो विप्रा अर्थः साफल्यमुच्छति ॥१२॥
 तद्वत्पापनिवेषार्थं धर्मः कार्यो विपश्चिता । परत्रार्थस्तयैवान्यः 'कार्योऽयं च फलप्रदः ॥१३॥
 प्रत्यवायभयात्कामस्तयाऽन्यश्चाविरोधवान् । द्विधा कामोऽपि रचितस्त्रिवर्गापाविरोधकृत् ॥१४॥
 'परस्परानुबन्धांश्च' सर्वानेतान्विचिन्तयेत् । विपरीतानुबन्धांश्च बुध्यध्वं सान्द्रिजोत्तमाः ॥१५॥
 धर्मो धर्मानुबन्धार्थो धर्मो' नाऽऽत्मार्थपीडकः । उभाभ्यां च द्विधा कामं तेन तौ च द्विधा पुनः ॥१६॥
 ब्राह्मे मूर्ते बुध्येत धर्मार्थानुचिन्तयेत् । समुत्थाय तयाऽऽचम्य 'प्रस्तातो नियतः शुचिः ॥१७॥
 पूर्वा' संध्यां सनक्षत्रां पश्चिमां सदिवकराम् । उपासीत यथान्यायं नैनां जह्यादनापदि ॥१८॥
 'असत्प्रलापमनृतं वाक्पाठ्यं च वर्जयेत् । असच्छास्त्रमसह्यादमसत्सेवां च वै द्विजाः ॥१९॥
 सायंप्रातस्तथा होमं कुर्वीत नियतात्मवान् । नोदयास्तमने चैवमुदीक्षेत विवस्वतः ॥२०॥
 केशप्रसाधनादर्शदन्तधावनमञ्जनम् । पूर्वाह्ण एव कार्याणि देवतानां च तर्पणम् ॥२१॥
 'द्रामावस्यतीर्थानां क्षेत्राणां चैव धर्मनि । न विष्णुमनुष्टेयं न च कृष्टे न गौद्रे ॥२२॥

करते हुए ही उनकी जड़ को दूढ़ बनाया चाहिये । विप्रवृन्द । इस प्रकार आचरण करने से धन सफल होता है ॥१२॥
 उसी प्रकार पाप मिटाने के लिये विद्वान् को धर्म करना चाहिये । परलोक के लिये तथा इहलोक के लिये धर्म करना चाहिए, जो यही फलदायक होता है ॥१३॥ धर्म, काम और अर्थ का अविरोधी काम भी दो प्रकार का भला कष्ट है—एक पाप से डरने वाला और दूसरा सबका अविरोधी । द्विजश्रेष्ठो । ये तीनों परस्पर सम्बद्ध हैं, पर तीनों एक दूसरे के विपरीत हैं । धर्म का सहायक अर्थ भी धर्म ही है और आत्मा तथा धन का नाश करने वाला धर्म भी धर्म नहीं है । धर्म और अर्थ के भेद से काम दो प्रकार का होता है और काम-भेद से धर्म-अर्थ भी दो-दो प्रकार के होते हैं ॥१४-१५॥ ब्राह्म मूर्त में उठकर धर्म-अर्थ का चिन्तन करना चाहिये । उसी प्रकार उठने के बाद शौचादि से निवृत्त हो स्नान करके पवित्रतापूर्वक आचमन कर प्रातः कालीन सन्ध्या सारो के रहते हुए ही कर लेनी चाहिये, और सायंकाल की संध्या सूर्य के रहते करनी चाहिये । ठीक सपन पर इसकी उपासना अवश्य करनी चाहिये । आपत्तिकाल में भी इसका परित्याग न करे ॥१७-१८॥ असत्य भाषण तथा वाणी की बर्तोरता को त्यागना चाहिये । असत् शास्त्र, असत् विवाद तथा असत् सेवा का त्याग कर देना चाहिए । सायंकाल तथा प्रातः काल हवन करे । उदय एवम् अस्त होने के समय सूर्य को न देखे ॥१९-२०॥ बाजों का परिष्कार, दन्तधावन तथा अञ्जन करे । पूर्वाह्ण में ही देवताओं का तर्पण करे ॥२१॥ गाँव, घर, संधि, खेत, मार्ग, जोती हुई भूमि तथा गोष्ठ में मल-मूत्र का त्याग न करे ॥२२॥ नमन स्वी तथा अपनी विष्ठा को न देखे । रजस्वला स्त्री के दर्शन, स्पर्श एवम् समापण न करे । जल में मल-मूत्र-स्याग तथा मेषुन न करे । मल, मूत्र, केश, भस्म, कपाल, मूती, कोयला, रस्ती

१क ग काम्योर्जः । २क ख ०रस्य चातुः । ३क ०बन्धार्थं सः । ४ ०बन्धाच्च सः । ४क. ०र्मां वाज्यार्थपादव । ५ग प्राङ्मुखे । ६क ख ०मत्पथं वाः । ७क पूजनम् । ८क. ०मावासे च तीः । ९ख. ०नि । विष्णुमूत्र न कर्तव्य नः ।

नानां परस्त्रियं नेशेन पश्येवात्मनः शकृत् । 'उदधयादर्शनस्पर्शमेवं संभाषणं तथा ॥२३॥
नाप्नु मूत्रं पुरीषं वा मय्युनं वा समाचरेत् । नावितिष्ठेच्छकृन्मूत्रे केशभस्मसपालिकाः ॥२४॥
तुपाङ्गारविशीर्षाणि रज्जुवस्त्रादिकानि च । नाधितिष्ठेतथा प्राज्ञः पयि वस्त्राणि वा भुवि ॥२५॥
पितृदेवमनुष्याणां भूतानां च तथाऽर्चनम् । कृत्वा विभवतः पश्चाद्गृहस्थो भोक्तुमर्हति ॥२६॥
प्राङ्मुखोदङ्मुखो वाऽपि स्वावान्तो वाग्यतः शुचिः । भुञ्जीत चाऽन्नं तच्चित्तो ह्यन्तर्जानुः सदा नरः ॥२७॥

'उपघातमूत्रे दोषाघ्नान्नस्योदोरयेद्बुधः' । प्रत्यक्षलवणं 'वर्ज्यमन्नमुच्छिष्टमेव च ॥२८॥
न गच्छन्न च तिष्ठन्वं विष्णुनोत्सर्गमात्मवान् । कुर्वीत 'चेवमुच्छिष्टं न किञ्चिदपि भक्षयेत् ॥२९॥
उच्छिष्टो 'नालपेदिकश्चित्तरवाध्यायं न विवर्जयेत् । न पश्येच्च रविं चेन्दुं नक्षत्राणि च कामतः ॥३०॥
मित्रात्सर्पं च शय्या च भाजनं च विवर्जयेत् । गृहणामासनं 'देयमभ्युत्थानादिसत्कृतम् ॥३१॥
अनुकूलं तथाऽऽलापमभिकुर्वीत बुद्धिमान् । तत्रानुगमनं कुर्यात्प्रतिकूलं न संचरेत् ॥३२॥
नैकयस्त्रश्च भुञ्जीत न कुर्याद्देवतार्चनम् । नाऽऽवाहयेद्द्विजानामनौ होमं कुर्वीत बुद्धिमान् ॥३३॥
न स्नायीत नरो ननो न शयीत कदाचन । न पाणिभ्यामुभयभ्यां तु कण्डूयेत शिरस्तथा ॥३४॥
न चाभीर्षं शिरःस्तानं कार्यं निष्कारणं बुधैः । शिरःस्तानञ्च तलेन नाङ्गं किञ्चिदुपस्पृशेत् ॥३५॥

तथा (केवल) वस्त्र आदि पर न बैठे । विद्वान् मनुष्य मार्ग मे भूमि पर वस्त्र बिछा कर न बैठे ॥२३-२५॥ पितर देवता, मनुष्य तथा पशुमृतो की पूजा करते वे उपरान्त गृहस्थ भोजन करे ॥२६॥ पूर्व या उत्तर मूह बैठकर आचमन करने पवित्र हो मौन होकर भोजन करे । मनुष्य अन्न खाते समय उसी मे मन लगाये और जय को नदि बरने भर्मात् पचासन लगा कर बैठे ॥२७॥ विद्वान् व्यक्ति उपघात या क्षति के विना भोजन की निन्दा न करे । जिस भोजन मे अयिज नमक हो, उसको त्याग दे ॥२८॥ चलते हुए तथा खड़ा होकर मल-मूत्र त्याग नहीं करना चाहिये । जूठा कुछ भी नहीं खाना चाहिए । जूठे मूह से कुछ भी न बोले, स्वाध्याय न करे, सूर्य, चन्द्रमा तथा नक्षत्रो को भी स्वेच्छा से न देखे । फटा आसन, पटी शय्या तथा फूटा बरतन नहीं रखना चाहिये । गुरु को उठकर सत्कारपूर्वक आसन देना चाहिये ॥२९-३१॥ बुद्धिमान् मनुष्य गुरु के अनुकूल समापण करे उनका अनुगमन करे और उनसे प्रतिकूल कुछ भी न करे ॥३२॥ बुद्धिमान् व्यक्ति एक वस्त्र धारण कर भोजन, देवपूजा ब्राह्मणों का आह्वान तथा अग्नि मे हवन न करे ॥३३॥ नम्र होकर मनुष्य किसी भी स्नान तथा शयन न करे । दाता हाथों से शिर को न खुजलाये ॥३४॥ विद्वान् बार-बार तथा निष्कारण शिर से स्नान न करे । मिर से स्नान करने अंग मे तेल न लगाये ॥३५॥ अनुध्यायो मे वेदाध्ययन न करे । किसी भी ब्राह्मण, अग्नि, माय तथा सूर्य का

१क. 'स्पर्शं सहस्रं' । २क. 'परयन्त्राणि' । ३क. 'पत्राणि' । ४क. 'पि कुर्याद्वाप्यं च वा' । ५क. उच्चार-
येत्सदा दो० । ६क. 'भस्म भोजने बुधः' । ७क. 'मशुद्ध सत्यकीर्तिरतम्' । न । ८क. 'चैवाऽऽचमनं न' । ९क. 'स'
०लभेत्कि० । १०क. 'मल्युच्च चातिश०' ।

अनघ्यायेषु सर्वेषु स्वाध्यायं च विवर्जयेत्^१ । ब्राह्मणानलग्नसूर्यान्नावमन्येत्कदाचन ॥३६॥
 उदङ्मुखो दिवा रात्रावुत्सर्गं दक्षिणामुख । आवायासु मयाकामं कुर्यामूनपुरीषयो ॥३७॥
 दुष्कृतं न गुरोर्धन्यात्तद्वृद्धं चैनं प्रसादयेत् । परिवादं न शृणुयादन्येषामपि कुर्वताम् ॥३८॥
 पन्था देवो ब्राह्मणानां राज्ञो दुःखातुरस्य^२ च । विद्याधिकस्य गर्भिण्या रोगातंस्य महोदय ॥३९॥
 मूकान्धबधिराणां च मत्तस्योन्मत्तस्य च । देवालयं चैतदथ तथैव च क्षतुप्यथम् ॥४०॥
 विद्याधिनं गुरुं चैव दुष्टं कुर्यात्प्रदक्षिणम् । उपानद्वस्त्रमाल्यादि^३ धृतमन्यन् धारयेत् ॥४१॥
 चतुर्दश्या तथाऽष्टम्या पञ्चदश्या च पर्वसु । तैलाम्पद्ग्नं तथा भोगं योषितश्च विवर्जयेत् ॥४२॥
 नोत्क्षिप्तवाहुजटघश्च प्राज्ञस्तिष्ठेत्कदाचन^४ । न चापि विक्षिपेत्पादौ पादं पादेन नाऽऽक्रमेत् ॥४३॥
 पुद्बल्या कृतकार्यस्य चाश्वस्य पतितस्य च । मर्माभिघातमाक्रोशं पैशुन्यं च विवर्जयेत् ॥४४॥
 दम्भाभिमानं तदप्यथ न कुर्वीत विचक्षणः^५ । मूर्खोन्मत्तव्यसनिनो विरूपानपि वा तथा ॥४५॥
 'मूनाङ्गाश्चाधनाश्चैव मोषहासेन दूषयेत् । परस्य दण्डं प्रोद्यच्छेच्छिक्षार्थं शिष्यपुत्रयो ॥४६॥
 तदन्नोपविशेत्प्राज्ञः पादेनाऽऽकृष्य चाऽऽसनम् । सयाव कृशरमासं नाऽऽमार्थमुपसाधयेत् ॥४७॥
 साथं प्रातश्च भोवतव्यं कृत्वा घातिभिः पूजनम् । प्राङ्मुखोदङ्मुखो वाऽपि बाग्यतो दत्तधावनम्^६ ॥४८॥

अपमान न करे ॥३६॥ दिन में उत्तर मुह दया रात में दक्षिण मुह बैठकर मल मूत्र त्याग करे । सड़क बाल में किसी भी मुह होकर त्याग कर सकता है ॥३७॥ गुरु को कटुवचन न बहे । कुपित होने पर उन्हें प्रसन्न करे । गुरु की निन्दा दूसरे के मुह से भी न सुने ॥३८॥ ब्राह्मणों की राजाओं की दुःखातुरा की अधिक विद्या वालों की गर्भिनियों की महान् रात्रि की गुरो को बहुरो की अधो की तथा पागलों की रास्ता दे देना चाहिये । पण्डित लौक्य देवालय गाँव का सीमा पर के वृक्ष चौराहे अधिक विद्या वाले तथा गुरु का प्रदक्षिणा करे । दूसरे के धारण किये हुए जूते धरन, माला आदि न पहने ॥३९४१॥ चतुर्दशी अष्टमी, अमावास्या तथा त्योहारों में तैल तथा स्त्री-सम्प्राप्त का परित्याग करे ॥४२॥ बाँहों तथा जाँघों को ऊपर उठा कर अवस्थित नहीं होना चाहिये । पैरों को झटकारना नहीं चाहिये । एक पैर को दूसरे पैर से धरना नहीं चाहिए ॥४३॥ पुरुषली स्त्री अपना कार्य किये हुए बालक तथा पतित व्यक्ति के प्रति ममबेबी आरुख तथा पिशुनता का व्यवहार नहीं करना चाहिये । विद्वान् मनुष्य दम्भ अभिमान तथा तीक्ष्णता को छोड़ दे ॥४४३॥ मुख पागल दुष्यसना कुरूप तथा वम-अधिक अंग वाले व्यक्ति का उपहास न करे । शिष्य तथा पुत्र का शिक्षा के निमित्त दूसरे क डड को न उठाये ॥४५४६॥ पैर से आसन छींच कर न बैठे । (केवल) अपने लिए हलुआ तिल का लड्डू तथा मांस नहीं बनाना चाहिए । सायकाल और प्रातः काल (अर्थात् दिन और रात्रि में) अतिथि-सत्कार करके भोजन करना चाहिए । पूब या उत्तर मुह बैठकर मीन

१ श्रु ०त । मिश्राटन सदा कुर्याद्ब्राह्मणानां च स सु । ७० । २क दुःखादितस्य । ३क ०मास्य तु पु० । ४क ०न । नापि सन्नियेत्पा० । ५क ०दयाधिका-माद्व नो० । ६क ०चच्छदन्यत्र मित्रपुत्रयो । ७ख ०म् । ध्यान स० ।

यादृश पुरुषस्येह 'परदारभिमशनम् । देवाग्निपितृकार्याणि तथा गुर्वभिवादनम् ॥६२॥
 कुर्वीत सम्यगाचम्य तद्वदन्नभुजिक्रियाम् । अफेनशब्दगन्धाभिरद्भिरेच्छाभिरावरात ॥६३॥
 'आचामच्चैव तद्वच्च प्राङ्मुखोदङ्मुखोऽपि वा । अतजलादावसयाद्वल्मीका मूपिकास्थलात ॥६४॥
 कृतशौचावशिष्टाश्च वज्रयेत्पञ्च वै मूढ । प्रक्षाय हस्तौ पादौ च समम्युक्ष्य समाहित ॥६५॥
 अतर्जनिस्तथाऽऽचामेत्त्रिज्जलतुर्वाऽपि वै नर । परिमुञ्च्य द्विरावृत्य खानि मर्धानमव च ॥६६॥
 सम्यगाचम्य तोयेन क्रियां कुर्वीत वै शुचि । क्षुतस्वलीढे 'वाते च तथा निष्ठीवनादिषु ॥६७॥
 कुर्यादाचमनं स्पर्शं वाऽस्पृष्टस्याकदशनम् । कुर्वीताऽऽलम्भन चापि दक्षिणध्वजस्य च ॥६८॥
 यथाविभवतो ह्यतस्पूर्वाभावे तत परम् । न विद्यमाने पूर्वोक्त उत्तरप्राप्तिरिष्यते ॥६९॥
 न कुर्याददन्तसर्पणं नाऽऽत्मनो देहताडनम् । स्वागच्छन् तया भुञ्जस्वाध्याय च विवजयत ॥७०॥
 सध्याया मयुन चापि तथा प्रस्थानमव च । तयाऽपराह्ण कुर्वीत श्रद्धया पितृतपणम् ॥७१॥
 गिर स्नानं च कुर्वीत देवपितृमयापि च । प्राङ्मुखोदङ्मुखो वाऽपि श्मश्रुकम च कारयत ॥७२॥
 ध्यङ्गिनीं वज्रयकं वा 'कुलजा' वाऽप्यरोगिणीम् । उद्वहेत्पितृमानोश्च सप्तमीं 'पञ्चमीं तथा ॥७३॥
 रक्षददारास्त्यजदोष्यां तयाऽङ्गि स्वधर्मयुने । परोपतापकं कम जतुषोढां च सवदा ॥७४॥

है । लोक में परस्त्री प्रसंग से बढ़कर आपुण्य करने वाली कोई चीज नहीं है ॥६१॥ देव अग्नि तथा पितरो का कर्म और गुरु की वन्दना करके अन्न खाना चाहिये । फन शब्द सप्ता राधो से रहित एवम् स्वच्छ जल से पूव या उत्तर मुह होकर वे आचमन करे । जल के भीतर की तथा गृह व मीक एव चूहों के स्थान की और शीव की अवशिष्ट मत्तिका—इन पाँचों मत्तिकाओं का त्याग करे । अनुप्य हाथ-पर धोकर जल शरीर पर छिड़के ॥६२ ६५॥ फिर सावधान होकर पश्चासन लगाकर तीन या बार बार आचमन करे । माज्ज करने आस कान नाक मुह तथा मस्तक का स्पर्श करे ॥६६॥ अच्छी तरह जल से आचमन कर पवित्र होकर क्रिया करे । छीकने पर घूबने पर तथा वायु त्याग आदि करने पर आचमन करे या सूर्य का वधन करे और दाहिने कान को उभेड । इनमें शक्ति के अनुसार सब करे अथवा पूर्व-पूव के अमावस्य में उत्तर-उत्तर किया करे । अर्थात् पटला यदि विद्यमान न हो तब पिछला विधान करे । ६७ ६९। दाँतो को न कटकटाने शरीर को न ठीने सोकर रास्ते में चलते हुए तथा खाते हुए नहीं पडना चाहिये ॥७०॥ सध्याकाल में मयुन तथा प्रस्थान नहीं करना चाहिये । अपराह्ण में श्रद्धा से पितरो का तर्पण करना चाहिये ॥७१॥ पूव या उत्तर मुह होकर शिर से स्नान देव पितरो का कम तथा दाढी मूछ कटाना चाहिये ॥७२॥ कम-अधिक अन्न वाली कन्या कुलीन तथा नीरीय होने पर भी त्याग्य है । जो कन्या अपने पिता-माता की सातवी या पाचवी सन्तान हो उससे विवाह न करे ? स्त्री की रक्षा करे । ईर्ष्या का त्याग करे । दिन में शयन तथा भयन करना छोड़ दे । दूसरे को शताप देने वाला तथा जीवों को पीडा देने वाला कर्म न करे ॥७३

१क ०दारोपसेवन० । २ख ०वमदमिश्च प्रा । ३क ०तुर्वा पितृन्नर । ४ ०तुर्वापि वेदप । ५० । ४क वाते । ५ग ०म् । स्वप्नाध्ययनयोग्यानि स्वाध्या० । ६क ०छटा चातिरो० । ७ग ०जा चातिरो० । ८क ०पत्नी ५० । ९ ०ञ्चमी तु या । २० ।

उदकया सर्ववर्णानां यज्यां रात्रिचतुष्टयम् । स्त्रीजन्मपरिहारार्थं पञ्चमीं चापि व्रजेयेत् ॥७५॥
ततः पष्ट्यां व्रजेद्वात्रां ज्येष्ठयुग्मासु^१ रात्रिषु । युग्मासु पुत्रा जायन्ते स्त्रियोऽयुग्मासु रात्रिषु
॥७६॥

विर्धामणो वै 'पर्वदी मंथ्याकालेषु' पण्डकाः । शूरकर्मणि रिक्तां वै वर्जयौत विचक्षणः ॥७७॥
 श्रुत्वामविनीतानां न श्रोतव्यं कदाचन । न चोत्कृष्टासनं देयमनुकृष्टस्य चाऽऽदरात् ॥७८॥
 शूरकर्मणि चा (वा) न्ते च स्तोतृभोगे च भो द्विजाः । स्नायीत चैलवाग्राजः बृट्भूमिमुपेत्य च ॥७९॥
 देववेदद्विजातोना माघुसत्यमहामनाम् । गुरोः पतिद्वतानां च ब्रह्मयज्ञतपस्विनाम् ॥८०॥
 परिवादं न कुर्यौत परिहासं च भो द्विजाः । घयलाम्बरसंबोत सितपुष्पविभूषितः ॥८१॥
 सदा मागल्यवेषः स्थाप्य चाऽमाङ्गल्यवान्भवेत् । मोदितोन्मत्तमूर्धेश्च नाविनीतेश्च पण्डितः ॥८२॥
 'गच्छेन्मन्त्रीमशोक्तेन न ययोजातिदूषिताः । न चातिव्ययशीलेश्च पुरुषेनैव वरिभिः ॥८३॥
 शर्याक्षमनिगदितं न चैव' विटसङ्गिभिः । निस्वर्गं चाद्वैपरं नरेदद्यात्तथाऽधमैः ॥८४॥
 सुहृद्दीक्षितभूपालस्नातकद्वशरैः सह । उत्तिष्ठेद्विभवाच्चनानचयेद्गृहमागतान् ॥८५॥

७४॥ चार रात तक सब बर्गों को रजस्वला स्त्री के पास नहीं जाना चाहिए। कन्या का जन्म अभिप्रेत न हो तो पांचवी रात में स्त्री-प्रसंग नहीं करना चाहिये। छठी रात में स्त्री-प्रसंग बरे। युग रातों में स्त्री-प्रसंग करने से पुत्र होता है और अयुग में कन्या ॥७५-७६॥ चतुर्दशी आदि पर्वकाल में स्त्री-प्रसंग करने से विषर्मा पुत्र होता है और सप्ताहाल में करने से तपुसक। चतुर्थी, चतुर्दशी तथा नवमी तिथि में शौरभ नही करना चाहिये ॥७७॥ अभिर्नित व्यक्ति की बात बर्मा न सुने। नीच मनुष्य को आदर से उच्चातन न दे। शौरभ तथा स्त्री-सम्भोग के बाद तेल लगाकर स्नान करना चाहिये। अपवित्र अगह पर जान से भी साबैल स्नान करना चाहिये ॥७८-७९॥ मित्रवन्द। देवता वेद, ब्राह्मण, साधु, सत्यमहात्मा, गुरु, पतिव्रता, दक्ष तथा राजस्थिया की निन्दा तथा परिहास नहीं करना चाहिए। स्वच्छ वस्त्र पहन। शुक्ल पुष्पा से विमूषित हो ॥८०-८१॥ सदा मंगलमय वेष धारण बरे। अमंगलकारी वेष वदापि धारण न बरे। उजड़, पागल, भूख, अविनयी, शीलहीन, अवस्था तथा जानि से हूषित, अपव्ययी तथा शत्रुता करने वाल पुरुषों के साथ मित्रता बर्मा नहीं करने चाहिये। कार्य करने में अपटु निन्दित, वेश्यागामी, दरिद्र निन्द्य तथा दूसरे भी अवम व्यक्तिपा के साथ मित्रता न बरे ॥८२-८४॥ घर पर आये हुए मित्र, दीक्षित व्यक्ति, राजा, स्वाक्ष तथा दशरु को देखकर उठ जाय और मयाशक्ति उनी पुजा बरे। विप्रवन्द। सपति के अनुसार, प्रतिवर्ष जाय हुए इन लागों की अच्छी तरह पूजा करे।

१स ज्येष्ठायुः। २क स पूर्वदी। ३व वष्टया। ४य सण्डवा। ५स वा। अपवादोऽस्ति,
म. वा। स्थान र्ववानि०। ६स तत्प्य व०। ७क ह्वाचरित०। ८व द्रवतं च नीर्वन्द् ९
मुद्रश्च य०। १०. अग्नेश न शैलूर्ध्वं च वा जा०। ११ अव सर्वघ्न०। १२ स मि। न १३
समाभिर्ननं च देवपरं सह। शु०।

यथाविभवतो विप्रा प्रतिवत्सरोपितान् । सम्पगृहेऽर्चनं कृत्वा यथास्थानमनुक्रमात् ॥८६॥
 सपूजयेत्तथा यज्ञी प्रदद्याच्चाऽहुतो क्रमात् । प्रथमा द्रह्मणे दद्यात्प्रजाता पतये तत ॥८७॥
 तृतीया चैव गृह्येभ्यः कश्यपाय तथाऽपराम् । ततोऽनुमतये दद्याद्दद्याद्बहु (द्वगृह) बलिं तत ॥८८॥
 पूर्वं दद्याता मया या तु नित्यक्रमविधौ क्रिया । वैश्वदेव तत 'कुर्याद्विदत् शृणुत द्विजा ॥८९॥
 यथास्थानविभाग तु देवानुद्दिदश्य वै पृथक् । 'पजन्यापोधरित्रीणा दद्यात् 'मणिके त्रयम् ॥९०॥
 'पायवे च प्रतिदिश दिग्भ्य प्राच्यादिषु प्रमात् । द्रह्मणे चातरिस्थाय सूर्याय च यथाक्रमम् ॥९१॥
 विश्वेभ्यश्चैव दवभ्यो विश्वभूतेभ्य एव च । उपसे भतपतये दद्याद्वोत्तरत शुचि ॥९२॥
 स्पथा च नम इत्युक्त्वा पितृभ्यश्चैव दक्षिणे । कृत्वाऽपसव्य वायव्या व्यश्मंतस्तेति रावदन् ॥९३॥
 अन्नावशयमिध्र पै तोय दद्याद्यथाविधि । देवाना च तत कुर्याद्ब्राह्मणाना नमस्त्रिदाम् ॥९४॥
 'भङ्गुष्टोत्तरतो रक्षा पाणेषां दक्षिणस्य च । एतद्ब्राह्मणमिति द्यात तीर्थमाचमनाय वै ॥९५॥
 तजयङ्गुष्ठयोरतः पितृभ्य तीथमुदाहृतम् । पितृणा तेन सोपानि दद्यान्नान्दीमुखादूते ॥९६॥
 अङ्गुल्यप्र सया देव तेन दिश्यन्निधाविधि । तीर्थे कनिष्ठिकामले काय तत्र 'प्रजापते ॥९७॥
 एवमेभि सदा 'तीर्थे विधान पितृभि सह । सदा, कार्याणि कृर्षात नाम्नतीर्थे कदाचन ॥९८॥

पूजा करने अग्नि में प्रवेश आहुतियाँ दे ॥८५ ८६॥ पहिली आहुति ब्रह्मा का दूसरा प्रजापति ऋ । तत्पर गृह
 वालों को और चौथी ऋषय को दान चाहिए । तब बहुत-सी बलियाँ चढ़ाये ॥८७-८८॥ पहला नित्यक्रम के
 विधान में जो क्रिया मीने दत्तलायी थी उसका अनुसार विश्वदेव का वस्त्र करना चाहिए । द्विजगण । अब मुझसे
 सुनिये ॥८९॥ देवताओं को उद्दय ऋषय पवन-पथक स्थान की रचना करे । मेघ जल तथा पृथ्वी को बलि दे ।
 प्रत्येक दिशा में वायु को बलि दे । पूव आदि दिशाओं को भी क्रम बलि दे । ब्रह्मा आकाश तथा सूर्य को प्रथम
 बलि चढ़ाय ॥९० ९१॥ विश्वदेव तथा विश्वभूत का भी बलि दे । भूतपति उषा को उत्तर दिशा में पवित्रता
 पूर्वक बलि दे ॥९२॥ 'स्पथा च नम यह पद्वार दक्षिण दिशा में पितरों का बलि दे । अपसव्य हुकर 'वर्ध्मं
 तत यह पद्वते हुए वायव्य कोण में अवशिष्ट अन्नमिश्रित जल पितरों को समर्पित करे तब देवताओं और ब्राह्मणों
 को नमस्कार करे ॥९३ ९४॥ बाहिने हाथ में अंगुष्ठ से उत्तर की रेखा ब्राह्मतीथ बहलाती है । इससे आचमन
 करना चाहिये । तजनी तथा अंगुष्ठ व न च पितृयत व माना गया है । उससे पितरों को जल दे केवल नान्दी
 मुख धाद्व मे नही दे ॥९५ ९६॥ अंगुलियों के अग्रभाग में देवत व माना जाता है । उससे देवद्वय करे । कनिष्ठिका
 के मूल में प्रजापति का कायार्थ माना जाता है ॥९७॥ पितृयत में इहा तीर्थों का विधान है । इही तीर्थों से
 सदा काय करे । अत्यतीर्थों से कभी व न करे ॥९८॥ ब्राह्मत व से आचमन प्रशस्त है । पितृयतय से पितृयत

१ग गृह्येभ्य । २ख न न्यायवलय नृ० । ३ख न्यायपो० । ग न्याय घ० । ४क कुपोतु ।
 ५क दिनके । ६ग दीयते । ७ग तपसे । ८ख यमे त से विभोजनात् । अ० । ग यस्मै तत्तज्जिमोजयेत् । अ०
 ९ख ष्टोत्तर० । १०क ख प्रजापते । ११क तीर्थे कुर्यात्क्रय यथोचितम् । ना० ।

ब्राह्मणेऽऽचमनं शस्तं पंच्यं पित्र्येण सर्वदा । देवतीर्येन देवानां प्राजापत्यं जिते (त्यजले) न च ॥१९॥
 नान्दोमुखानां कुर्वीत प्राज्ञः पिण्डोदकक्रियाम् । प्राजापत्येन तीर्येन यच्च किञ्चित्प्राजापते ॥१००॥
 युगपज्जलमग्निं च विभूयान्नं विचक्षणः । गुरुदेवपितृन्विप्रान्न च पादौ प्रसारयेत् ॥१०१॥
 नाऽऽचक्षीत धयन्तीं गा जलं नाञ्जलिना पिबेत् । शौचकालेषु सर्वेषु गुरुध्वत्सेषु वा पुनः ॥
 न विलम्बेत् मेधावी न मुखेनानलं धमेत् ॥१०२॥
 तत्र विप्रा न वस्तव्यं यत्र नास्ति चतुष्टयम् । ऋणप्रदाता वेटश्च श्रोत्रियः सजला नदी ॥१०३॥
 जितभृत्यो नृपो यत्र चलवान्धर्मतत्परः । तत्र नित्यं वसेत्प्राज्ञः कुतः कुनृपतौ सुखम् ॥१०४॥
 पीरा सुसंहता यत्र सततं न्यायवर्तिनः । शान्तामत्सरिणो लोकास्तत्र वासः सुखोदयः ॥१०५॥
 यस्मिन्कुपीबला राक्षसे प्रायशो नातिमानिनः । यत्रोपधान्यशेषाणि धसेत्तत्र विचक्षणः ॥१०६॥
 तत्र विप्रा न वस्तव्यं यत्रैतद्विप्रतपं सदा । जिगीषुः पूर्ववैरश्च जनश्च सततोत्सवः ॥१०७॥
 यसेन्नित्यं सुशौलेषु सहाचारिषु पण्डितः । यत्राप्रधृष्यो नृपतिर्यत्र सत्यप्रदा महो ॥१०८॥
 इत्येतत्कथितं विप्रा मया वो हितकाम्यया । अतः परं प्रवक्ष्यामि भक्ष्यभोग्यविधिक्रियाम् ॥१०९॥
 भोग्यमन्नं पर्युषितं स्नेहावतं चिरसंभृतम्* । अस्नेहा अपि गोधूमयवगोरसविप्रिया ॥११०॥

सदा करना चाहिये । देवतीर्थ से देवताओं का और वायतीर्थ से प्राजापति का व्रत करना चाहिये ॥१९॥
 विद्वान् मनुष्य मन्वीमुख श्राद्ध में पिण्डदान तथा जल क्रिया करे । प्राजापत्य तीर्थ से प्राजापति का व्रत करे । पण्डितजन
 एक समय जल तथा अग्नि का धारण न करे । गुरुदेव पितर तथा ब्राह्मणों के ऊपर पैर न उठाये । बच्चे का पिलाती
 हुई या स्वयं जल पीती हुई गाय को न बहे (अर्थात् दूसरे का बताकर साय के जल पीने में बाधा न डाले) । अजलि
 से जल न पिये । छोटे बड़े सभी प्रकार के शौच के वायों में विलम्ब न लगाये । मेधावी व्यक्ति मुंह से आग को न फूँके
 ॥१००-१०२॥ विप्रवृन्द । वहाँ नहीं वास करना चाहिये, जहाँ ऋणदाता वैद्य, श्रोत्रिय, जलवाली नदी—ये चार
 चीजें न हों ॥१०३॥ सेवकों को वश में रखने वाला चलवान तथा धर्मपरायण राजा जहाँ (के राज्य में) रहता
 है, वही विद्वान् व्यक्ति नित्य वास करे । निच राजा के राज्य में सुख कहाँ ? जहाँ पुरवासी आपस में मिल-जुल कर
 रहते हों तथा सदा न्यायानुगामी, शान्त एवम् ईर्ष्याशून्य हों वहाँ का निवास सुखदायी होता है ॥१०४-१०५॥ जिस
 राष्ट्र में विद्वान् अभिमानी न हों और ओषधियाँ पर्याप्त मिलती हों वहाँ विद्वान् व्यक्ति वास करे ॥१०६॥
 विप्रवृन्द । वहाँ वास नहीं करना चाहिये जहाँ लोग विवश के इच्छु, वैर करने वाले एवम् सदा उत्सवकारी हों ।
 पण्डित व्यक्ति सदा सुधील सहवासियों के साथ रहे । जहाँ राजा धुष्ट न हो और पृथ्वी सत्यसम्पन्ना हो वहाँ वास
 करना चाहिये । विप्रगण । आप लोगों के हित के निमित्त मैंने इतना कहा । अब भक्ष्य माज्य के विधान को
 बतलाऊँगा ॥१०७-१०९॥ स्निग्ध माज्य अन्न वाली हो, चिरकालीन हो, फिर भी ग्राह्य है । स्नेह से रहित
 गेहूँ, मय तथा गोरस के विकार—पी, मट्ठा आदि—ग्राह्य हैं ॥११०॥ खरगोश, कछुआ, गेहूँ साही तथा मत्स्य

१क ०तुमरे न च । २ख ०तवयो जन्तोर्जल । ३ग ०लक्ष्म्ये वात च न । ४ ग सजला । ५ख
 ०श्च तथा न सं । ६ग ०ह्वासिषु । ७क ०सचित ० ।

शशकः कच्छपो गोघा श्वाविन्मत्स्योऽथ शल्यकः । भट्ट्याश्चैते तथा वज्र्यो ग्रामशूकरबुबकुटी ॥१११॥
 पितृदेवादितोषं च 'थाद्धे ब्राह्मणकाम्यया । प्रोक्षितं 'चौपधायं च खादन्मास न दुप्यति ॥११२॥
 शङ्खाश्मत्स्वर्णहृष्याणां 'रज्जुनामय याससाम् । शाकमूलफलानां च तथा विदलचर्मणाम् ॥११३॥
 मणिवस्त्रप्रवालानां तथा मुखताफलस्य च । पात्राणां चमसानां च अम्बुना शौचमिप्यते ॥११४॥
 तथाऽश्मकानां तोयेन अश्मसंधर्पणेन च । सम्नेहानां च पात्राणां शुद्धिर्हृषणेन धारिणा ॥११५॥
 धूर्पाणामजिनानां च मुशलोलूषलस्य च । संहतानां च यस्त्राणां प्रोक्षणात्सचयस्य च ॥११६॥
 'वल्कलानामशोषाणामम्बुमृच्छौचमिप्यते । आविकानां समस्तानां केशानां चैवमिप्यते ॥११७॥
 सिद्धार्थकानां कल्केन तिलकल्केन वा पुनः । शोधनं चैव भवति उपघातवर्ना सदा ॥११८॥
 तथा कार्पासिकानां च शुद्धिः स्यान्नलभसमना । दाहदन्तास्थिशृङ्गाणां तक्षणाच्छुद्धिरित्यते ॥११९॥
 पुनः पाकेन भाण्डानां पार्थिवानामभेद्यता । शुद्धं भक्ष्यं 'काहस्तः 'पण्यं योपिन्मुखं 'तथा ॥१२०॥
 'रथ्यागमनविज्ञान 'दामवर्णो 'सरहृत्तम् । प्रावप्रशर्तं चिरातीतमनेकान्तरितं लघु ॥१२१॥
 अन्तं प्रभूतं बालं च 'वृद्धान्तरविचेष्टितम् । कर्मान्तागारशालाश्च स्तनद्वयं शुचि स्त्रियाः ॥१२२॥

मस्य हैं । गाय वै सूरज तथा मुर्गे अमस्य हैं ॥१११॥ थाद्ध मे पितृ-देव कर्म के अवशिष्ट मास तथा ब्राह्मण और औषध के निमित्त लाये गये मास को संहृत करने के लिये कोई दोष नहीं ॥११२॥ बाज, परपर, सोना तथा चौडी के पात्रो एक चर्मको काँजल से धो देने पर उनकी शुद्धि हो जाती है । रस्सी, बस्त्र, शाक, वस्त्र, फल, बाँस का पात्र, मृग आदि का चर्म, मणि, मृगा तथा मोती जल से धो देने पर शुद्ध हो जाते हैं । परपर जल से या परपरो की रगड़ से शुद्ध होता है । स्नेह (तेल आदि) से युक्त पात्र गरम जल से शुद्ध होता है । सूय चर्म-वस्त्र, मुशल, ओखली, सिला हुआ वस्त्र तथा वल्कल (छाल) जल से शुद्ध होता है । भेड़ का बाल भी जल से शुद्ध हो जाता है ॥११३-११७॥ सरसो या तिल की छली से चट्टिलो या पाथ धात्रो की शुद्धि होती है ॥११८॥ वपास का वस्त्र जल तथा मसम से शुद्ध होता है । लवड़ी, दाँत, हड्डी तथा सींगों की शुद्धि छीलने से होती है । मिट्टी का बरतन पुन पाक करने से अपवित्र हो जाता है । मिट्टा, दुकानदार का हाथ, दुकान में रखी चीजे तथा रस्ती का मुख शुद्ध होता है ॥११९-१२०॥ सेवको द्वारा साफ सुथरा किया गया राजमार्ग शुद्ध होता है । पहले निमर्क, प्रसन्ना की गई हो, ऐसी वस्तु बहुत दिना के बाद भी शुद्ध रहती है । अनेक वस्तुओं से ढकी हुई छोटी चीज शुद्ध होती है । शरीर में सलमन पैसा और वृद्ध की चेष्टा शुद्ध होती है (?) । जहाँ सत्कर्म किये गये हो ऐसी शालायें तथा स्त्रिया के दोनों स्तन शुद्ध होते हैं ॥१२१-१२२॥ गन्वरहित बहता जल शुद्ध होता है । मूत्र जलाने, झाड़ू देने, गोष्ठ बनाने

१क ग थाद्ध । २क देवतानां । ३क रज्ज्वताना च या० । ४क ०णा च फलाना । ५ ०णा वसनानां । ६क ०संहृतस्य । ७क च । कल्कानामप्यथे० । ८क ०म्बुमृच्छो० । ९क ०न्ता चाप्यभेद्यता । सि० । १क ख साधूना । १०क ०हस्तापण्य । ११क पण्ययो० । १२क ०या गतमविज्ञात दा० । १३क ०गतम-विज्ञात दा० । १४क ०वर्गय तत्कृत० । १५क ०म् । बालस० । १६क ०दातुर० ।

शुचयश्च तथेवाऽऽपः स्ववन्त्यो गन्धवजिताः । भूमिविशुद्धते कालाद्वाहमार्जनगोकुलं ॥१२३॥
 लेपादुल्लेखनास्तेकाद्वेदम' संमार्जनादिना । केशकीटावपन्ने च गोघ्राते 'मक्षिकान्विते ॥१२४॥
 मृदम्बु भस्म चाप्यपने प्रक्षेप्तव्यं विशुद्धये' । औदुम्बराणाम्भलेन वारिणा 'त्रपुसोत्तयोः ॥१२५॥
 भस्मान्बुभिश्च कास्थानां शुद्धिः प्लावो द्रवस्य च । अमेघ्यावतस्य 'मृत्तोयंगन्धापहरणेन' च ॥१२६॥
 अन्येषां चैव द्रव्याणा यणंगन्धाश्च हारयेत् । शुचि मांसं तु चाण्डालव्यादिविनिपातितम् ॥१२७॥
 रथ्यागतं च तैलादि शुचि गोतृप्तिदं 'पयः । रजोऽम्बरद्वयोद्यापारक्ष्मय' पवनो मही ॥१२८॥
 बिम्बुयो मक्षिकाद्याश्च दुष्टमङ्गाददोषिणः । अजाश्वं मुखतो मेध्यं न गोर्वतस्य चाऽऽननम् ॥१२९॥
 मातुः प्रत्यवणे (णं) मेध्यं शकुनिः फलपातने । आसनं शयनयानं' तटो नद्यास्तृणानि च ॥१३०॥
 'सोमसूयांशुपवनं' 'शुध्यन्ते तानि पण्डवत् । रथ्यापसर्पणे स्नाने 'क्षुत्पानाना च वर्मसु ॥१३१॥
 आचामेत यथान्यायं घातसः 'परिधापने । स्पृष्टानामथ 'सप्तर्षीं द्विरथ्याकदंमाम्भसि' ॥१३२॥
 पक्ववैष्णवचिताना च मेधयता वायुसंश्रयात् । प्रभूतोपहृतादन्नादप्रमुदस्य सत्यजेत् ॥१३३॥

कीपने, कुडेवने, तथा सिक्त करने से शुद्ध होती है । पर साड़-बहाड़ आदि करने से शुद्ध होता है । अन्न में केश तथा कौड़े पड़ जाय, गाय सूय से या मक्खी बैठ जाय, तो उसे मिट्टी या जल या भस्म से शुद्ध करना चाहिए । ताँबा, रौंदा तथा झींसा खटारयुक्त जल से शुद्ध होता है । वाँसा भस्म तथा जल से शुद्ध होता है । अपवित्र वस्तु से युक्त द्रव्य मिट्टी या जल तथा गन्ध को मिटा देने से शुद्ध होता है ॥१२३-१२६॥ दूसरे की द्रव्य वर्ण गन्धो को मिटा देने से शुद्ध हो जाते हैं । चाण्डाल तथा हिंसक जीवों द्वारा गिराया हुआ मांस शुद्ध होता है । राजमार्ग पर गिरे हुए तैल आदि शुद्ध होते हैं । गाय का तृप्ति देने वाला दूध शुद्ध होता है । बालू, अग्नि, घाड़ी, गाय, छाँद, गिरण, पवन और पृथ्वी शुद्ध होती है ॥१२७-१२८॥ बिन्दु तथा मक्खी आदि चीजें दुष्टमग से दूषित नहीं होती । श्वरी तथा घोड़े का मुख शुद्ध होता है । गाय तथा बछड़े का मुख शुद्ध नहीं होता है । माता के स्तन से निकलता दूध तथा घोड़े का मुख शुद्ध होता है ॥१२९॥ आसन, शय्या, सवारी और नदी-तट का तुण सूर्य चन्द्रमा की निरणों से तथा वायु से शुद्ध हो जाता है जैसे दुकान में रखी हुई चीजें ॥१३०॥ गली में चलने पर, स्नानकाल में खाने-पीने के समय तथा वस्त्र पहनने के समय विधि के अनुसार आचमन करना चाहिए ॥१३१॥ चूरे रास्ते और कँचड़ सने हुए जल वा स्पर्श हो जाने पर वायु लगने से शुद्ध होती है । पकी ईंटों से बनी हुई वस्तुआ भी शुद्ध की वायु से होती है । बहुत गन्ध हुए अन्न के आगे से निताल कर पों दे और

१ ऽन्यवुद्वदा । २व ऽगोत्रम् । ले० । ३ख ऽकादमरमना मा० । ४क ऽते । भस्म चाय तु विद्विष्य प्र० । ५व ऽये । उदु० । ६क ऽयो । तस्मात्तु माधकान्गाना शु० । ७व ऽतोयं शुद्धिमगं० । ८क. ऽपचरणात् । अ० । ९क ख ऽय । राजान्निष्यगो० । १०ख पान । ११व ऽसूर्याम्बुप० । १२क ध्यन्यनानि । १३ क शुद्धा वातारिक० । १४व ऽने । घृष्टा० । १५ख ऽसर्षो द्विर० । १६व. म्भसाम् । प० ।

शेषस्य प्रोक्षणं कुर्यादाचम्याद्भिस्तथा मृदा । उपवासस्त्रिरात्रं तु दुष्टभवताशिनो भवेत् ॥१३४॥
 अज्ञाने ज्ञानपूर्वे तु तद्दोषोपशमे न तु । 'उदवयां' वावलगां च सूनिकान्त्यावसायिनः ॥१३५॥
 स्पृष्ट्वा स्नायीत शीघ्रायै तथैव मूतहारिणः । नारं स्पृष्ट्वाऽस्थि सस्नेहं स्नात्वा विप्रो विदुष्यति ॥१३६॥
 आचम्यैव तु निःस्नेहं गामालभ्यार्कमोक्ष्य वा । न लङ्घयेत्तथैवायं प्लोवनोद्वर्तनानि च ॥१३७॥
 गृहादुच्छिष्टविष्मूत्र पादाम्भस्तत्क्षिपेद्बहिः । पञ्चगण्डाननुद्धृत्य न म्नायात्परवारिणि ॥१३८॥
 स्नायीत देवखालेषु गङ्गाह्रदसरिस्तु च । 'नोद्यानादौ विकालेषु' 'प्राज्ञस्तिष्ठेत्कदाचन' ॥१३९॥
 नाऽऽलपेज्जनविद्विष्टान्धोरहीनास्तथा स्त्रियः । देवतापितृसत्तृष्टास्त्रयज्वसंन्यासिनिन्दकः ॥१४०॥
 कृत्वा तु रपशंनालाप शुष्यत्यर्कावलोकनात् । अवलोच्य तथोदवयां संन्यस्तं पतितं शवम् ॥१४१॥
 'विधर्मसूतिकापण्डविवस्त्रान्त्यावसायिनः' । 'मृतनिर्घातकाश्चैव' परदाररताश्च ये ॥१४२॥
 एतदेव हि कर्तव्यं प्राज्ञं शोधनमन्तमनः । अभोग्यभिभूपाखण्डमार्जारखरकुक्कुटान् ॥१४३॥
 पतितापविद्वद्वाण्डालमृताहारांश्च धर्मवित् । संस्पृश्य शुष्यते स्नानानुदवयाग्रामशूकरी ॥१४४॥
 तद्वच्च 'सूतिकाशौचद्वयितौ' पुरपावपि । यस्य चानुदिनं हानिगृहे नित्यस्य कर्मणः ॥१४५॥

बचे को जल से सिक्त करे । जानकर या बिना जाने दूषित मात खाने से दोषदायि के लिये तीन रात उपवास करे ॥१३२-१३४॥ रजस्वला तथा नवप्रसूता स्त्री वा स्पर्श हो जाने पर पवित्रता के लिये स्नान करे । शव-वाहक व्यक्तियों का स्पर्श होने पर भी स्नान करे । मनुष्य की हृद्दी छू जाने पर ब्राह्मण तेल लगाकर स्नान करने से शुद्ध होता है ॥१३५-१३६॥ अथवा बिना सर्वज्ञ स्नान किये ही गाय को छू लेने से, सूर्य को देख लेने से तथा धावन कर लेने से वह पवित्र हो जाता है । धूक, उवटन, उच्छिष्ट, विष्टा, मूत्र तथा चरण धोने से बचे जल को नहीं लाघना चाहिये । दूसरे के जल में बिना पाँच पिण्ड मिट्टी निकाले स्नान नहीं करना चाहिये ॥१३७-१३८॥ जलाशय, गन्ता, झील तथा सरोवरो में स्नान करना चाहिये । विद्वान् व्यक्ति कुसमय में धनीने आदि में न रहे ॥१३९॥ मनुष्यों से द्रोह करने वाले व्यक्ति से तथा कुलटा स्त्री से समागम नहीं करना चाहिये । देवता, पितर, सत् शास्त्र, यज्ञ-वर्ता तथा सन्यासियों के निन्दन से स्पृश तथा सम्यगण करने मनुष्य सूर्य के दर्शन से शुद्ध होता है ॥१४०॥ रजस्वला, त्यक्त, पतित, शव, विधर्मी नवप्रसूता नपुंसक, वस्त्रहीन स्त्री, चाण्डाल, शव-वाहन तथा परस्त्रीगामी को देखकर विद्वान् मनुष्य यही प्रायश्चित्त करे (अर्थात् सूर्य का दर्शन कर के) ॥१४१-१४२॥ अभोग्य वस्तु, मिश्रक, पाखण्डी, विलाड, गधे, गुर्घे, पतित, चाण्डाल तथा शव डोने वाले वा स्पर्श कर धर्मवेत्ता मनुष्य स्नान से शुद्ध होता है । रजस्वला, शव के शूबर तथा नवप्रसूता के अशौच से दूषित पुरुषों का स्पर्श करने पर मनुष्य स्नान करे । जो प्रतिदिन नित्यकर्म से वचित रहता है, जो ब्राह्मणों से परित्यक्त है और जो पापाशी (बिना मग-

यश्च ब्राह्मणसंत्यक्तः किल्बिषाशी नराधमः । नित्यस्य कर्मणो हानि न कुर्वीत कदाचन ॥१४६॥
 तस्य त्यकरणं वश्ये केवलं मृतजन्मसु । दशाहं ब्राह्मणस्तिष्ठेद्दानहोमविजितः ॥१४७॥
 सत्रियो द्वादशाहं च वेश्यो मासार्धमेव च । शूद्रश्च मासमासीत निजकर्मविजितः ॥१४८॥
 ततः परं निजं कर्म कुर्युः सर्वे ययोचितम् । प्रेताय सलिलं देयं बहिर्गत्वा तु गोत्रकं ॥१४९॥
 प्रथमेऽह्नि क्षतुर्ये च सप्तमे नवमे तथा । तस्यास्थिसंचयः कार्यश्चक्षुर्गोत्रकं ॥१५०॥
 ऊर्ध्वं संवयनात्तेषामङ्गस्पर्शा विधीयते । गोत्रकंस्तु त्रियाः सर्वाः कार्याः संचयनात्परम् ॥१५१॥
 'स्पर्श एव सपिण्डानां मृताहनि तयोभयोः ।' अन्वयमिच्छया 'शस्त्ररज्जुबन्धनवह्निषु ॥१५२॥
 विप्रप्रतापादिमृते' प्रायानाशकथोरपि । बाले देशान्तरस्थे च तथा प्रव्रजिते मृते ॥१५३॥
 सद्यः शीतं भृगुप्याणां द्र्यह्मुक्तमशौचकम् । सपिण्डानां सपिण्डस्तु मृतेऽप्यस्मिन्मृते यदि ॥१५४॥
 पूर्वशौचं समाप्तवान् कार्यास्तत्र दिनत्रियाः । एष एव विधिर्दृष्टो जन्मन्यपि हि सत्के ॥१५५॥
 सपिण्डानां सपिण्डेषु यथावत्सोदकेषु च । पुत्रे जाते पितुः स्नानं सर्वलस्य विधीयते ॥१५६॥
 तत्रापि यदि वाऽऽन्यस्मिन्पुत्रपातस्ततः परम् । तत्रापि शुद्धिरुक्ता पूर्वजन्मवतो दिनैः ॥१५७॥

मान् को समर्पित किये भोजन करने वाला) है, उनसे स्पर्श करने पर भी स्नान करे। नित्यकर्म को कभी नहीं छोड़ना चाहिये ॥१४६-१४६॥ सगौत्र में किसी के मरने पर तथा जन्म लेने पर नित्यकर्म छोड़ दे। अर्थात् अशौच में ब्राह्मण दस दिनों तक दान-होम छोड़ दे ॥१४७॥ शत्रिय बारह दिनों तक, वैश्य पन्द्रह दिनों तक और शूद्र एक मास तक अपने-अपने नित्यकर्मों से वंचित रहे ॥१४८॥ इतने बाद सब अपने-अपने ययोचित कर्म करें। सगौत्र के शौच बाहर जाकर पहले दिन, चौथे दिन, सातवें दिन तथा नवें दिन प्रेत को जल दें और चौथे दिन उसका अस्थि-संचय करें। अस्थि-संचय के बाद शगसर्प वा विषाण है। गोत्र वाले अस्थि-संचय के बाद सारी क्रियाएँ करें ॥१४९-१५१॥ मृत्यु के दिन सपिण्डों द्वारा स्पर्श करना ही विहित है मले ही यह व्यक्ति स्वेच्छा से मरा हो या शस्त्र से या पौसी से या अग्नि से या विष से या अनसन के द्वारा मरा हो। विदेश में बालक के मर जाने तथा संन्यासी के मर जाने पर मनुष्यों को तीन दिनों का सद्यः अशौच लगता है ॥१५२-१५३॥ सगौत्र वालों में एक के मर जाने के बाद दूसरे दिन दूसरा भी कोई मर जाय तो पहले के अनुसार ही अशौच माना जाता है। उसमें केवल दैनिक क्रियाएँ बाली चाहिए। यही विधान जन्माशौच में भी लागू होता है ॥१५४-१५५॥ किन्तु यह नियम सपिण्डों के प्रति तथा जिनके मरने पर जल दिया जाय उनके सम्बन्ध में है। पुत्र के उत्पन्न होने पर पिता सर्वल स्नान करे। वहाँ भी यदि दूसरे दिन दूसरा (बालक) जन्म ले ले तो पहले जो उत्पन्न हुआ हो, उसी के दिनों के अनुसार शुद्धि होगी। समस्त वर्ण दक्ष, बारह, पन्द्रह तथा एक मास के हिसाब से विधिपूर्वक

१४. ०ते। सोदरंस्तु। ग. ०ते। सोदकं०। २ग सर्वं। ३ग अन्विच्छति०। ४य ०स्त्रनेषोद्वर्तन०।

५क. स. ०पप्रमतायुते। दस. ०न्युपस्य न्य०। ग ०न्युपस्य न्य०। ७ग ०स्मिञ्जाते जायेदपाप०।

दशद्वादशमासार्धमाससह्येदिनर्गने । स्वा स्वा कर्मणिग कुयं सर्वे वर्णा यथाविधि ॥१५८॥
 प्रेतमुद्विष्य यत्तव्यमेकोदिदष्टमन परम् । दानानि चैव देयानि द्राहाण्यो मनोपिभि ॥१५९॥
 यद्यदिष्टतम लोके यत्चास्य दयित गृहे । तत्तदगुणवते देय तदेवाक्षयमिच्छता ॥१६०॥
 पूर्णंस्तु दिवसं स्पृष्टया सलिल बाहनायुधं । दत्तप्रेतोदपिण्डाञ्च सर्वे वर्णा कृतप्रिया ॥१६१॥
 कुर्यु समग्रा मुचिन्त परत्रेह च भतये । अध्येतव्या त्रयी नित्य भवितव्य विपश्चिता ॥१६२॥
 धर्मतो धनमाहायं यष्टव्य चापि यत्नत । येन प्रकुपितो नाऽऽत्मा जुगुप्सामेति भो द्विजा ॥१६३॥
 तत्कर्तव्यमशङ्कतेन यन्न गोप्य महाजनं । एवमाचरतो विप्रा पुरपस्य गृहे सतः ॥१६४॥
 धर्मार्थिकाम सप्राप्य परत्रेह च शोभनम् । इद रक्ष्यमापुष्य धय बुद्धिविवर्धनम् ॥१६५॥
 सर्वपापहर पुण्य धोषुष्टयारोग्यद शिवम् । यन्न वीतिप्रद नृणा तेजोबलविवर्धनम् ॥१६६॥
 अनुष्ठय सदा पुंभि स्वगसाधनमुत्तमम् । ब्राह्मणं क्षत्रियर्वैश्यं शूद्रंश्च मुनिसत्तमा ॥१६७॥
 ज्ञातव्य सुप्रमत्तेन सम्प्रवधेयोभिकाङ्क्षिभि । ज्ञातव्यं य सदा बालमनुष्ठान करोति धीः ॥१६८॥
 सर्वपापविनिर्मुक्त स्वर्गलोके महोपते । सारात्सारतर चेदमारयात द्विजसत्तमा ॥१६९॥

अपनी-अपनी दान क्रिया करें ॥१५९-१५८॥ इसने बाद प्रत को उद्घृत्य करके एकानुष्टुत करना चाहिये । विद्वान्
 व्यक्ति ब्राह्मणा को दान भी दें ॥१५९॥ छौं म जो सबसे प्रिय हो और अपने गृह म सुंदर हो उसी राज को
 अक्षय बनाने के, इच्छा से गुणवान् को देना चाहिये ॥१६०॥ दिन पूरे होने पर काहुन तथा दास्य-अस्त्रा से युक्त
 होकर समस्त वन जा वा स्नान करें और प्रत को जल तथा पिण्ड देकर क्रिया सम्पन्न करें ॥१६१॥ इस लोभ से
 तथा परलोभ मे कल्याण व लिय मनुष्य पवित्र होकर क्रिया सम्पन्न करें । विद्वान् व्यक्ति नित्य वेदो वा अध्ययन करें
 ॥१६२॥ धर्मपूर्वक धन बनाना चाहिये और यत्नपूर्वक यज्ञ करना चाहिये । द्विजगण ! जिससे आत्मा कुण्ठित न
 हो तथा निर्द्वन्द्व न बने, यह निश्चय होकर करना चाहिये ॥१६३॥ जो महान् व्यक्तिया से गोपनीय न हो, वह
 भी करना चाहिये । इस प्रकार आचरण करते हुए गृहस्थ मनुष्य धर्म अर्थ और काम की प्राप्ति कर इस छौं म
 तथा परलोभ म मुक्ति होते हैं । यह रहस्य धन आनु तथा बुद्धि बढ़ाने वाला, समस्त पापा वा नाश करने वाला
 पुण्य, लक्ष्मी पुष्टि तथा आरोग्य देने वाला, कल्याणकारक, यस प्रतिष्ठा दायक और तेजावन्वितवर्धक है ॥१६४-
 १६६॥ पुरुषा को स्वयं व इस उत्तम साधन वा अनुष्ठान अवश्य करना चाहिये । मुनिश्रेष्ठो ! कल्याण चाहने
 वाले ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य तथा शूद्रो को यत्नपूर्वक इसे जानना चाहिये ॥१६७॥ इसे जानकर जो सबदा इसका
 अनुष्ठान करता है वह सब पापों से मुक्त होकर स्वर्ग म पूजित होता है । द्विजश्रेष्ठो ! सार से भी सार (सब से

श्रुतिस्मृत्युदित धर्मं न देयं यस्य कस्यचित् । न नास्तिकाय दातव्यं न द्रुष्टमतये द्विजाः ॥
न दाम्भिकाय मूर्खाय न कुतर्कप्रलापिने ॥१७०॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे व्यासमिसंवादे सदाचारनिरूपणं
नामैकाविंशत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२२१॥

अथ द्वाविंशत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

वर्णाश्रमधर्मवर्णनम्

मुनय ऊचुः

श्रोतुमिच्छामहे ब्रह्मन्वर्णधर्मान्विशेषतः । चतुराश्रमधर्मोऽथ द्विजवर्यं श्रोहि तान् ॥१॥

ध्यास उवाच

ब्राह्मणक्षत्रियविशां शूद्राणां च यथाश्रमम् । शृणुध्व संयता भूत्वा वर्णधर्मान्मयोदितान् ॥२॥
'दानदयातपोदेवयज्ञस्वाध्यायतत्परं' । नित्योदकं भवेद्विप्रः कुर्याच्चाम्निपरिग्रहम् ॥३॥
'वृत्त्यर्थं' याजयेदवमान्द्विजानध्यापयेत्तथा । कुर्यात्प्रतिग्रहादानं यज्ञार्थं ज्ञानतो द्विजाः ॥४॥
सर्वलोकहितं कुर्यात्प्राहितं कस्यचिद्विद्वज्जा । मैत्री समस्तसत्त्वेषु ब्राह्मणस्योत्तम धनम् ॥५॥

उत्तम) यह रहस्य मैंने बतला दिया । श्रुति-स्मृति-प्रतिपादित यह धर्म जिस किसी को नहीं देना चाहिए । नास्तिक,
द्रुष्टबुद्धि, दाम्भिक, मूर्ख तथा असंगत बोलने वाले को यह नहीं देना चाहिए ॥१६८-१७०॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में सदाचार निरूपण नामक दो सो इक्कीसवाँ अध्याय समाप्त ॥२२१॥

अध्याय २२२

वर्णाश्रमधर्म का वर्णन

मुनियो ने कहा—ब्रह्मन् । द्विजवर्य । हम चारो आश्रमों में धर्मों को तथा विशेष कर वर्ण-धर्मों को
सुनना चाहते हैं, आप बतलाएँ ॥१॥

ध्यास बोले—श्रमदा ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्रों के वर्णधर्मों को आप लोग ध्यान से सुनिये, मैं कहता
हूँ ॥२॥ ब्राह्मण दान, दया, तप देवयज्ञ तथा स्वाध्याय में तत्पर रहकर नित्य जलधर्म और अग्निहोत्र किया करे
॥३॥ जीविता के लिये अन्य द्विजा को पढ़ाये एवम् यज्ञ कराये । जान-बूझ कर यज्ञ के लिये प्रतिग्रह न स्वीकार
करे ॥४॥ सब का कल्याण करे, अहित किसी का न करे । समस्त प्राणियों से मित्रता ही ब्राह्मण का उत्तम

१व प्रयत्न । २ग दान दयादयेदेवान्यज्ज० । ३स ०र्यान्व प्रयत्न गृह० । ४स ०र्थ सेवयेत्त्व० ।
५ग ०ग्रह दान शूलार्थं न्यायतो । स गृह दान सत्त्वर्थं न्यायतो ।

गवि रत्ने च पारश्वे समबुद्धिर्भवेद्विजा । ऋतावभिगम पत्न्या शस्यते वाऽस्य भो द्विजा ॥६॥
 दानानि दद्याद्विच्छातो द्विजेभ्य क्षत्रियोऽपि हि । यजेन्व विविधैर्वज्रैरधीयीत च भो द्विजा ॥७॥
 शस्त्राजीवो महोरक्षा प्रवरा तस्य जीविका । तस्यापि प्रथमे 'कल्पे पृथिवीपरिपालनम् ॥८॥
 धरित्रीपालनेनैव कृतकृत्या पराधिया । भवन्ति नृपते रक्षा यतो यत्तादिकर्मणाम् ॥९॥
 दुष्टानां शासनाद्वाजा शिष्टानां परिपालनात् । प्राप्नोत्यभिगमताल्लोकान्वर्णसंस्थापको नृप ॥१०॥
 पाशुपाल्य वणिज्या च कृषि च मुनिसत्तमा । वैश्याय जीविका ब्रह्मा ददौ लोकपितामह ॥११॥
 तस्याप्यध्ययन यज्ञो दान धर्मश्च शस्यते । नित्यनैमित्तिकादीनामनुष्ठानं च वर्मणाम् ॥१२॥
 द्विजातिसंश्रय कर्म 'तदर्थं तेन पोषणम् । कस्यविश्वजैर्वाऽपि धनं काहर्भवंतु वा ॥१३॥
 दान दद्याच्च क्षुद्रोऽपि पाकयज्ञैर्व्रजेत च । पित्र्यादिकं च यै सर्वं क्षुद्र कुर्वीत तेन वै ॥१४॥
 भृत्यादिभरणार्थाय सर्वेषां च परिग्रहा । ऋतुकालाभिगमन स्वदारेषु द्विजोत्तमा ॥१५॥
 दया समस्तभूतेषु तितिक्षा नाभिमानिता । सत्य शौचमनायासो मङ्गल प्रियवादिता ॥१६॥
 मैत्री चैवास्पृहा तद्वदकार्पण्यं द्विजोत्तमा । अनमूया च सामान्या वर्णानां कथिता गुणा ॥१७॥
 आश्रमाणां च सर्वेषामेते सामान्यलक्षणाः । गुणास्तयोपधर्माश्च विप्रादीनामिमे द्विजा ॥१८॥
 क्षात्र वर्मं द्विजस्योक्तं वैश्यकर्म तथाऽऽपदि । राजन्यस्य च वैश्योक्तं शूद्रकर्माणि चैतयो ॥१९॥

घन है ॥५॥ गो, रत्न तथा परलोक के निमित्त कर्मों में समबुद्धि रहे । ब्राह्मणों के लिये ऋतुपालन मायागमन करना प्रशस्त है ॥६॥ क्षत्रिय इच्छापूर्वक ब्राह्मणों को दान दे, विविध यज्ञ करे तथा अध्ययन करे ॥७॥ शस्त्र धारण करना और पृथ्वी की रक्षा करना उसकी उत्तम जीविका है । प्रथम कल्प में पृथिवी का परिपालन ही क्षत्रिय का धर्म बतलाया गया है ॥८॥ धरित्रीपालन से ही क्षत्रिय वृत्तवृत्त हो जाते हैं, जिसलिये कि इससे यज्ञ आदि कर्मों की रक्षा होती है ॥९॥ दुष्टों को दण्ड देने से सज्जनों का परिपालन करने से वंश सत्स्थापक राजा क्षात्रिष्ठ लोक में जाते हैं ॥१०॥ मुनिवर ! लोकरूपितामह ब्रह्मा ने वैश्यों को पशुपालन, खेती तथा व्यापार जीविका में दिये हैं ॥११॥ वैश्य भी अध्ययन यज्ञ दान, धर्म और नित्य, नैमित्तिक आदि कर्मों का अनुष्ठान करे ॥१२॥ द्विजातियों के कर्म से या खरीद बिन्दी आदि व्यापार से वह अपना पोषण करे ॥१३॥ शूद्र भी दान दे और पाक-यज्ञ करे । वह पितृ-धर्म आदि सब कुछ करे ॥१४॥ द्विजधृष्टो ! गौवर आदि के भरण के लिये सबका दान लेना, ऋतुपालन से स्त्राप्रसंग करना, समस्त प्राणियों पर दया करना, सहनशीलता अभिमान न करना सत्य, शौच अनायास, मङ्गल, प्रियवादिता मैत्री अस्पृहा, अवापण्य, अनमूया—ये गुण सब वर्गों के लिये सामान्य हैं ॥१५-१७॥ समस्त आश्रमों के लिये ये गुण सामान्य लक्षण हैं । द्विजगण ! ब्राह्मण आदि के लिये ये उपधर्म हैं । आपत्तिवाल में ब्राह्मण क्षत्रिय तथा वैश्य का कर्म कर सकता है और क्षत्रिय वैश्य एवम् शूद्र का कर्म कर सकता है ॥१८-१९॥ सामर्थ्य

स(अ)सामर्थ्यं सति त्याज्यमुभाभ्यामपि च द्विजाः । तदेवाऽऽपदि कर्तव्यं न कुर्यात्कर्मसंकरम् ॥२०॥
 इत्येते कथिता विप्रा वर्णधर्मा मयाऽऽचरं । धर्ममाश्रमिणां सध्यान्नुवतोऽपि निबोधत ॥२१॥
 बालः कृतोपनयनो वेदाहरणतत्परः । गुरोर्गृहे वसन्विप्रा ब्रह्मचारी समाहितः ॥२२॥
 शौचाचाररतस्तत्र कार्यं शुभ्रूषणं गुरोः । व्रतानि चरता 'ग्राह्यो वेदश्च' कृतबुद्धिना ॥२३॥
 उभे संध्ये रवि विप्रास्तयंवाग्निं समाहितः । उपतिष्ठेत्तया कुर्याद्गुरोरप्यभिवादनम् ॥२४॥
 स्थिते तिष्ठेद्दशज्योतिर् नोचैरासीत चाऽऽसितः । शिष्यो गुरो द्विजश्रेष्ठाः प्रतिकूलं च संत्यजेत् ॥२५॥
 तेनैवोक्तं पठेद्देवं नान्यचित्तः पुरस्थितः । अनुज्ञातं च भिक्षान्नमश्नीयाद्गुरुणा ततः ॥२६॥
 अवगाहेदपः पूर्वमाचार्येणावगाहिताः । समिज्जलादिकं चास्य कल्पकल्पमुपाययेत् ॥२७॥
 'गृहीतग्राह्यवेदश्च सतोऽनुज्ञामवाप्य वै । गार्हस्थ्यमावसेत्प्राज्ञो निष्पन्नगुरुनिष्कृतिः ॥२८॥
 विधिनाश्चाप्तदारस्तु धनं प्राप्य स्वकर्मणा । गृहस्थकार्यमखिलं 'कुर्याद्विप्राः स्वशक्तितः ॥२९॥
 निर्वपिण पितृनर्घ्यं यज्ञैर्देवास्तयाऽतिथीन् । अन्नैर्मूर्तोश्च स्वाध्यायैरपत्येन प्रजापतिम् ॥३०॥
 बलिकर्मणा भूतानि धावसत्येनाखिलं जगत् । प्राप्नोति 'श्लोकान्पुरयो निजकर्मसमाजितान् ॥३१॥
 भिक्षामुज्जश्च ये केचित्परिश्राद्ब्रह्मचारिणः । तेऽप्यन' प्रतितिष्ठन्ति गार्हस्थ्यं तेन वै परम् ॥३२॥
 वेदाहरणकार्येण तीर्थस्नानाय च द्विजाः । अदग्निं यत्तुषां विप्राः पुषिवीदर्शनाय च ॥३३॥

रखने पर उन्हें ऐसा नहीं करना चाहिये, परन्तु आपत्तिबाल में करने से कोई दोष नहीं। दूसरे का कर्म दूसरा न करे ॥२०॥ विप्रवृन्द । आपको वर्णधर्म मैंने बतला दिये। अब आश्रमों के धर्म भी आप मुझसे सुन लें ॥२१॥ द्विजगण । बालक का उपनयन हो जाने के बाद वह वेदाध्ययन करने के लिये गुरु के गृह में वास करे। ब्रह्मचर्य, शाकपानी, शौच तथा आचार रखते हुए वह गुरु-बुधूषण में निरत रहे, व्रत करे, ध्यानपूर्वक वेदाध्ययन करे, दोनों संध्या समाहित होकर सूर्य का उपस्थान, अग्निहोत्र एवम् गुरु का अभिवादन करे। ॥२२-२४॥ द्विजश्रेष्ठो । शिष्य गुरु के छात्र होने पर सदा ही जाय, चलने पर चले, बैठने पर नीचे बैठे और उनसे प्रतिकूल कभी न हो ॥२५॥ गुरु ने कथनानुसार अन्त्यचित्त से वेदाध्ययन करे। उनकी आज्ञा लेकर भिक्षा भोजन करे ॥२६॥ आचार्य को गुरु ने कथनानुसार अन्त्यचित्त से वेदाध्ययन करे। उनका आज्ञा लेकर भिक्षा भोजन करे ॥२७॥ वेदाध्ययन करने के उपरान्त गुरु का दक्षिणा देकर उनकी आज्ञा से बुद्धिमान व्यक्ति गृहस्थाश्रम में वास करे ॥२८॥ विधिपूर्वक विवाह पर अपने कर्म से धन प्राप्त कर वाचकानुसार गृहस्थाश्रम के अखिल कार्यों का सम्पन्न करे ॥२९॥ श्राद्ध आदि से पितरों को, यज्ञों से देवों को जनों से अतिथियां को, स्वाध्यायों से मुनियों का सम्पन्न करे ॥३०-३१॥ भिक्षा आदि से भिक्षा की सन्तुष्टि तथा ब्रह्मचारी भी गृहस्थाश्रम कर्मों द्वारा उपार्जन लोगों को प्राप्त करते हैं ॥३२॥ द्विजगण । वेदाध्ययन के लिये, तीर्थस्नान के पर ही निर्भर करते हैं। इसलिये गार्हस्थ्य सबसे श्रेष्ठ है ॥३३॥ द्विजगण । वेदाध्ययन के लिये, तीर्थस्नान के

१क स ग्राह्य। २क स ०दबुद्धि सनातनी उ। ३ख ०वद च त०। ४त ०द्विप्र स्व०।
 ५ग ०नुयदव नि०। ६ग ०प्यवेदावतिष्ठन्ते गा०।

अनिकेता ह्यनाहारा' ये तु साय गृहास्तु ते । तेषा गृहस्थ ' सतत प्रतिष्ठा योनिरुच्यते ॥३४॥
 तेषा स्वागतदानानि वयतश्च मधुर सदा । गृहागताना दद्याच्च शयनासनभोजनम् ॥३५॥
 अतिथिर्यस्य भग्नाशो गृहात्प्रतिनित्यते । स क्षत्या दुष्कृत तस्मै पुण्यमादाय गच्छति ॥३६॥
 अवज्ञानमहकारो दम्भश्चापि गृहे सत । पण्डादोपघातो च पातय च न शस्यते ॥३७॥
 यश्च सम्पक्करोत्येव गृहस्थ 'परम विधिम् । सर्वबन्धविनिर्मुक्तो लोकानाम्नोति चोत्तमान् ॥३८॥
 'वय परिणतो विप्रा कृतकृत्यो गृहाश्रमी । पुत्रेषु भार्या' निक्षिप्य वन गच्छेत्सहैव वा' ॥३९॥
 पर्णमूलपलाहार केशमभ्युज्जटाधर । भूमिशायी भवेत्तत्र मुनि सर्वातिथिद्विजा ॥४०॥
 चर्मकाशकुशं कुयार्तिपरिधानोत्तरीयके । तद्वस्त्रियवण स्नान शस्तमस्य द्विजोत्तमा ॥४१॥
 देवताभ्यर्चनं होम सर्वाभ्यागतपूजनम् । भिक्षा धलिप्रदानं तु शस्तमस्य प्रशस्तम् ॥४२॥
 यन्यस्नेहेन गानाणामभ्यञ्जश्चापि शस्यते । 'तपस्या तस्य विप्रेन्द्रा शीतोष्णादितृष्णुता ॥४३॥
 यस्त्वेता' नियतश्चर्या घानप्रस्थश्चरेन्मुनि । स दहत्यग्निवद्दोषाभ्यजेत्लोकौघं शाश्वतान् ॥४४॥
 चतुर्थश्चाऽऽश्रमो भिक्षो प्रोच्यते यो मनीषिभि । तस्य स्वरूपं गदतो ब्रुम्यध्वं मम सत्तमा ॥४५॥
 पुत्रव्रव्यकलत्रेषु त्यजेत्स्नेहं द्विजोत्तमा । 'चतुर्थमाश्रमस्थानं गच्छेन्निर्धूतमत्सर ॥४६॥

लिये तथा पृथिवी-दान के लिये जो जिना घर तथा भोजन के पृथ्वी पर पर्यटन करते हैं, उनका आश्रम गृहस्थ ही है ॥३३-३४॥ मधुर वाणी से सदा उनका स्वागत करना चाहिये । गृह पर आने पर उन्हें शय्या, आसन तथा भोजन देना चाहिये ॥३५॥ अतिथि निराश होकर जिसके घर से लौट जाते हैं, उसे वे पाप देकर तथा (उसका) पुण्य लेकर चले जाते हैं । गृहस्थ के लिये तिरस्कार अभिमान, दम्भ, निन्दा घात तथा बढोरता प्रशस्त नहीं है ॥३६-३७॥ जो गृहस्थ सम्पक् प्रकार से गृहस्थ-जीवन बिताता है वह समस्त बन्धनों से निर्मुक्त होकर उत्तम लोको को प्राप्त करता है ॥३८॥ 'किप्रवृद्ध' परिपक्व अवस्था होने पर इतइत्य हो पुत्रों के उपर पत्नी का भार सौंप कर गृहाश्रमी अकेले वन जाय या भार्या के साथ जाय ॥३९॥ यहाँ पर पत्र, मूल, फल का जाहार करे भूमि पर सोये, मनन करे, सबका आतिथ्य स्वीकार करे, चर्म, वाश तथा कुशा के परिधान (पहिनने के वस्त्र) तथा उत्तरीय (चादर) धारण करे त्रिवाज स्नान करे, शान्ति रखे, देवपूजन, हवन, अभ्यागता का सत्कार, भिक्षा तथा वस्त्रिप्रदान करे । वह वर्तीय स्निग्ध पदाश्री का उबटन शरीर में लगा सत्ता है । मर्दी गर्मी आदि का सहन उसने लिये तपस्या है ॥४०-४३॥ जो घानप्रस्थ मुनि इस प्रकार नित्यचर्या करते हैं वे अग्नि की तरह दाया बाँ जलाकर शाश्वत लानों को प्राप्त करते हैं ॥४४॥ मुनिवृद्ध । मर्न पियों ने भिक्षु के जिस चतुर्थ आश्रम का निर्देश किया है, उसका भी स्वरूप मुनसं शुन छीजिये ॥४५॥ मनुष्य पुत्र, स्त्री तथा द्रव्य की ममता छोडकर राह से रहित होकर चतुर्थ आश्रम में प्रवेश करे ॥४६॥ वृत्तीना बर्णों के समस्त नर्भों का त्याग करे, मित्र आदि अतित्र

१२ निराहारा । ३४ ह्यनाहारा । ३५ गृहागता । जिघा वृ० । ३६ समये । ३७ गतो वि० । ५२ या । वन्द मृ । ५३ ०पस्तस्य च वि० । ५४ ०पस्तस्य वि० । ५५ य एव नि० । ५६ ०यपारो वा० । १२ स ०नुयाभ्रमस्थानं ।

धैर्वाणिशाम्यजेत्सर्वानारम्भान्विजसत्तमा । मित्रादिषु समो मैत्राः श्रममन्तेष्वेव जन्तुषु ॥४७॥
जरायुजाण्डजादीना वादमन.कर्मभिः क्वचित् । युवतः कुर्वीत न 'द्रोहं सर्वसङ्गादच वज्रयेत् ॥४८॥
एकरात्रस्थितिप्रामे पञ्चरात्रस्थितिः पुरे । तथा प्रीतिर्न तिर्यक्षु द्वेपो वा नास्य जायते ॥४९॥
प्राणयात्रानिमित्तं च व्यङ्ग्यारेऽभुवत्वज्जने । काले 'प्रशस्तवर्णानां भिक्षार्थो पर्यटद्गृहान् ॥५०॥
अलभे न विषादी स्यात्लाभे नैव च हर्षयेत् । प्राणयात्रिकमात्रः स्यान्मात्रासङ्गाद्विमर्गतः ॥५१॥
अतिपूजितश्चाभास्तु जुगुप्सं चै (प्तेच्ये) व सर्वतः । अतिपूजितलाभेस्तु 'यतिर्भुवतोऽपि बध्यते ॥५२॥
कामं क्रोधस्तथा दर्पो लोभमोहादयदच ये । तांस्तु दोषान्परित्यज्य 'परिवाप्तिर्ममो भवेत् ॥५३॥
अभयं सर्वसत्त्वेभ्यो दत्त्वा पश्चरते महीम् । तस्य देहाद्विभुवतस्य भयं नोत्पद्यते क्वचित् ॥५४॥

कृन्वाग्निहोत्रं स्वशरीरसत्थं, शरीरमग्निं स्वनुखे जुहोति ।
विप्रस्तु भिक्षोपगतं हविर्भिद्विचताग्निना स व्रजति स्म लोकान् ॥५५॥
मोक्षार्थं यद्वरते श्रयोक्त, शुचिदच संकल्पितबुद्धियुवत ।
अनिम्बनं ज्योतिरिव प्रशान्तं, स ब्रह्मलोकं व्रजति द्विजतिः ॥५६॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मो ध्यासविस्वादे वर्णाश्रमधर्मवर्णनं नाम
द्वाविंशत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२२२॥

प्राणिमो मे समान भाव से व्यवहार करे, मन, वाणी, तथा कर्म से जरायुज अण्डज आदि का द्रोह न करे, सर्वस्य का परित्याग न करे, एवं रात पाँच मे वास करे वही पाँच रात नगर में रहे । इस तरह सत्यासी किसी से प्रीति तथा द्वेष न करे ॥४७-४९॥ केवल प्राणरक्षा के निमित्त वह प्रशस्त वर्णों के घर मे भिक्षाटन करे, नहीं मिलने पर दुःख न करे और मिलने पर हर्षित न हो । आसक्ति से रहित होकर वह केवल प्राणयात्रा के लिये कर्म करे, अत्यन्त सम्मान तथा काम से भ्रष्ट रहे । क्योंकि अतिमान तथा लाभ से भुवत यति भी बढ़ हो जाता है ॥५०-५२॥ सत्यासी काम, क्रोध, दर्प, लोभ, मोह आदि दोषों का त्याग कर निर्मम हो जाय । जो निर्विक्रम प्राणिमो को अभय-दान देकर धरिती पर विचरण करता है, वह शरीर से भुवत हो जाता है, उसे कहीं मय नहीं होता है ॥५३-५४॥ जो विप्र इस तरह अग्निहोत्र करता है, जिसमे कि अपने शरीरस्य अग्नि को अपने मुख मे डालता है अर्थात् उस अग्नि में भिक्षा से प्राप्त घृत से हुवन करता है और चिताग्नि से शरीर को जलाता है, वह (उत्तम) लोका को प्राप्त करता है । जो द्विजति सकल्पित बुद्धि से युक्त होकर पवित्रतापूर्वक मोक्षार्थमे जीवन व्यतीत करता है, वह इधनहीन अग्नि की तरह प्रशान्त ब्रह्मलोक को प्राप्न करता है ॥५५-५६॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में वर्णाश्रमधर्मवर्णनं नामक दो सौ बाईसवीं अध्याय समाप्त ॥२२२॥

अथ त्रयोविंशत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

संकरजातिलक्षणवर्णनम्

मुनय ऊचुः

सर्वज्ञस्त्वं महाभाग सर्वभूतहिते रतः । भूत भग्यं भविष्यं च न तेऽस्त्व्यवहितं मुने ॥१॥
कर्मणा केन वर्णानामधमा जायते गतिः । उत्तमा च भवेत्केन 'गृहि' तेषां महामते ॥२॥
शूद्रस्तु कर्मणा केन ब्राह्मणत्वं च गच्छति । श्रोतुमिच्छामहे केन ब्राह्मणः शूद्रतामियात् ॥३॥

व्यास उवाच

हिमवच्छिखरे' रम्ये नानाधातुविभूषिते' । नानाद्रुभलताकीर्णे 'नानादचर्यसमन्विते ॥४॥
तत्र स्थित महादेवं त्रिपुरध्न त्रिलोचनम् । शंकराजसुता देवी प्रणिपत्य सुरेन्द्वरम् ॥५॥
इमं प्रश्नं पुरा विप्रा अपृच्छच्छारलोचना । तदहं संप्रवक्ष्यामि शृणुष्वं मम सत्तमाः ॥६॥

उमोवाच

भगवन्भगनेन्द्रध्न पूष्णो दन्तविनाशन । दक्षत्रतुह्र इयं संशयो मे महानयम् ॥७॥
चातुर्वर्ण्यं भगवता पूर्वं सृष्टं स्वयंभुवा । केन कर्मविपाकेन वंद्यो गच्छति शूद्रताम् ॥८॥

अध्याय २२३

संकरजाति ना लक्षण-वर्णन

मुनियो ने कहा—महाभाग ! आप सर्वज्ञ तथा प्राणीमात्र के बलवान् मे निरत हैं। मुने ! आप भूत, भविष्य, वर्तमान जानते हैं। आपसे कुछ अवधि नहीं है। महाबुद्धिमान् ! जिस कर्म से यज्ञों की नीच गति होती है और जिस कर्म से उत्तम—यह हमें बतलाइये। शूद्र जिस कर्म से ब्राह्मणत्व को प्राप्त करता है और ब्राह्मण जिससे शूद्रत्व का—यह हम सुनना चाहते हैं ॥१-३॥

व्यास ने कहा—विप्रबुद्ध ! पहले हिमालय के मनोरम, नाना प्रकार की धातुओं से विभूषित, अनेक वृक्ष-लताओं से व्याप्त तथा आश्चर्यजनक वस्तुओं से युक्त शिखर पर स्थित, देवों के ईश्वर, त्रिपुर नामक राक्षस को मारने वाले तथा तीन नव बालों के प्रणाम कर मुन्दर नयन वाली गिरिधुत्री उमा ने उनसे यह प्रश्न पूछा था। मुनिबुद्ध ! उसे मैं बतलाऊँगा, आप लोग सुनें ॥४-६॥

उमा ने कहा—भगवान् ! मम नामक देवता के नेत्र सोझने वाले। पूषा के दाँत सोझने वाले ! दक्ष के यज्ञ का विनाश करने वाले ! तीक्ष्ण नेत्र वाले ! यह मुझे महान् गदेह है कि भगवान् ब्रह्मा ने पढ़ते पारों यज्ञों

वैश्यो वा क्षत्रियः केन द्विजो वा क्षत्रियो भवेत् । प्रतिलोमे कथं देव' शत्रयो धर्मो निवर्तितुम् ॥९॥
केन वा कर्मणा विप्रः शूद्रयोनीं प्रजायते । क्षत्रियः शूद्रतामेति केन वा कर्मणा विभो ॥१०॥
एतं मे संजयं देव वद भूतपतेऽनघ । त्रयो वर्णाः प्रकृत्येह कथं ब्राह्मण्यमाप्नुयुः ॥११॥

शिव उवाच

ब्राह्मण्यं देवि दुष्प्राप नितर्गाद्ब्राह्मणः 'शुभे । क्षत्रियो वैश्यशूद्रो वा नितर्गादिति मे मतिः ॥१२॥
कर्मणा दुष्कृतेनेह स्याताद्भ्रश्यति स द्विजः । श्रेष्ठं वर्णमनुप्राप्य तस्मादाक्षिप्यते पुनः ॥१३॥
स्थितो ब्राह्मणधर्मेण ब्राह्मण्यमुपजीवति । क्षत्रियो याऽथ वैश्यो' वा 'ब्रह्मभूयं स गच्छति ॥१४॥
पञ्च विप्रत्वमुत्सृज्य' क्षत्रधर्माभिपेक्षते' । ब्राह्मण्यात्स परिभ्रष्टः क्षत्रयोनीं प्रजायते ॥१५॥
वैश्यकर्म च यो विप्रो लोभमोहद्वयपाश्रयः । ब्राह्मण्यं दुर्लभं प्राप्य करोत्यल्पमतिः सदा ॥१६॥
स द्विजो वैश्यतामेति वैश्यो वा शूद्रतामियात् । स्वधर्मात्प्रच्युतो विप्रस्ततः शूद्रत्वमाप्नुयात् ॥१७॥
तत्रासी निरयं प्राप्तो 'वर्णभ्रष्टो बहिष्कृतः । ब्रह्मलोकात्परिभ्रष्टः शूद्रयोनीं' प्रजायते ॥१८॥
क्षत्रियो वा महाभागे वैश्यो वा धर्मचारिणि । स्वानि कर्माण्यपाकृत्य शूद्रकर्म निपेक्षते ॥१९॥

को सुष्टि की । फिर किस कर्म के फल से वैश्य शूद्रत्व को प्राप्त करता है ? अथवा वैश्य किस कर्म से क्षत्रिय हो जाता है या ब्राह्मण किस कर्म से क्षत्रिय हो जाता है ? देव ! विपरीत होने पर धर्म कैसे निवृत्त हो जाता है ? किस कर्म से ब्राह्मण शूद्रयोनि में उत्पन्न होता है ? विभो ! क्षत्रिय किस कर्म से शूद्रत्व को प्राप्त करता है ? भूतपते ! निष्पाप ! देव ! इस लोभ' मे तीनों वर्ण स्वभाव से कैसे ब्राह्मणत्व को प्राप्त करेंगे ? मेरे इस शब्द का निराकरण कीजिए ॥७-११॥

शिव ने कहा—देवी ! ब्रह्माणभमी ! ब्राह्मणत्व पाना बहुत कठिन है । मेरा तो यह विचार है कि ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र स्वभावसिद्ध हैं । ॥१२॥ दुष्कर्म करने से ब्राह्मण स्वान्च्युत होता है । फिर सुकर्म करने से वह श्रेष्ठ वर्ण में आ जाता है ॥१३॥ ब्राह्मणधर्म में स्थित क्षत्रिय या वैश्य ब्रह्मणत्व को प्राप्त करता है ॥१४॥ जो विप्रत्व को त्याग कर क्षत्रधर्म को ग्रहण करता है, वह ब्राह्मणत्व से च्युत होकर क्षत्रिय-योनि में जन्म लेता है ॥१५॥ जो शूद्रवृद्धि ब्राह्मण दुर्लभ ब्राह्मणत्व को प्राप्त कर लोभ-मोह में पड़कर वैश्य का कर्म करता है, वह वैश्य बन जाता है । वैश्य शूद्र का कर्म करने से शूद्र बन जाता है । स्वधर्माच्युत ब्राह्मण शूद्रत्व को प्राप्त करता है ॥१६-१७॥ वह जाति-बहिष्कृत तथा वर्णभ्रष्ट होकर नरक में गिरता है, ब्रह्मलोक से परिभ्रष्ट होकर शूद्रयोनि में जन्म लेता है ॥१८॥ महाभागे ! धर्मचिरण करने वाली । जो क्षत्रिय या वैश्य अपने कर्मों का परि-त्याग कर शूद्र का कर्म करता है, वह अपने स्वान से भ्रष्ट होकर वर्णसंहर हो जाता है । इस तरह करने वाले

१क. ०व वर्णधर्मविवक्षिते । के० । २ख शुभ । ३ग ज्येष्ठ । ४ग शूद्रो । ५क. ०भूत स । ६ख. ख ०ग क्षत्र धर्म निपे ० । ७क. ख. ०ते । तस्य क्षत्रत्वमापन्न क्षत्रयो प्र० । ८ख वर्णाचारव० । ९ख. ग. ०द्वत्तमुपजा० ।

स्वस्थानात्स परिश्रद्धो वर्णसंकरतां गतः । ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यः शूद्रत्वं याति तादृशः ॥२०॥
 यस्तु 'शूद्रः स्वधर्मेण ज्ञानविज्ञानवाञ्छुचि' । धर्मज्ञो धर्मनिरतः स धर्मफलमनुते ॥२१॥
 इदं चैवापरं देवि ब्रह्मणा समुदाहृतम् । अध्यात्म नैष्ठिकी सिद्धिर्धर्मकामैर्निपेक्ष्यते ॥२२॥
 उपान्न गृहीतं देवि गणानां श्राद्धसूतकम् । घृष्टान्नं नैव भोक्तव्यं शूद्रान्नं नैव वा वचिष्यत् ॥२३॥
 शूद्रान्न गृहीतं देवि 'सदा देवमहात्मभिः । पितामहमुखोत्सृष्टं प्रमाणमिति मे मतिः ॥२४॥
 शूद्रान्नेनावरोपेण जठरे क्षियते द्विजः । अहिताग्निरतथा यज्वा स शूद्रगतिभाग्यभवेत् ॥२५॥
 तेन शूद्रान्नशेषेण 'ग्रहस्थानादपाकृतः' । ब्राह्मणः शूद्रतामेति नास्ति तत्र विचारणा ॥२६॥
 यस्यान्नेनावरोपेण जठरे क्षियते द्विजः । तां तां योनौ व्रजेद्विप्रो यस्यान्नमुपजीवति ॥२७॥
 ब्राह्मणत्वं सुखं प्राप्य दुर्लभं योऽवमन्यते । अभोज्यान्नानि वाऽऽनाति स द्विजत्वात्पतते च ॥२८॥
 'सुरापो ब्रह्महा स्तेयो चोरो' भग्नव्रतोऽशुचिः । स्वाध्याययोजितः पापो लुब्धो नैकृतिकः शठः ॥२९॥
 अव्रतो वृषलीभर्ता कुण्डाशी सोमविक्रयो । विहीनसेवो विप्रो हि पतते ब्रह्मयोनितः ॥३०॥

ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य शूद्र हो जाते हैं ॥१९-२०॥ जो शूद्र स्वधर्मपूर्वक ज्ञान-विज्ञान प्राप्त करता है तथा पवित्र, धर्मेत और धर्मेनिरत है, वह धर्मफल वा भोग करता है ॥२१॥ देवी ! यह तथा दूसरा भी अध्यात्म-विषय ब्रह्म द्वारा वर्णित है । धर्माभिलाषियों को परा सिद्धि प्राप्त करनी चाहिये ॥२२॥ देवी ! उपजति वा अन्न, गणों का अन्न, श्राद्ध तथा सूतक का अन्न, निन्दित अन्न और शूद्रान नहीं खाना चाहिये ॥२३॥ देवी ! देव-महात्माओं ने सदा शूद्रान्न को निन्दित बतलाया है । ब्रह्म के मुख से निकला हुआ वचन प्रमाण है—यह मेरा विचार है ॥२४॥ जो अग्न्याधान तथा यज्ञ करने वाला ब्राह्मण पेट में शूद्रान्न का अवशेष रखकर मरता है, वह शूद्र की गति को प्राप्त करता है ॥२५॥ उस शूद्रान्न के शेष रहने के कारण ब्रह्मस्थान से व्युत् ब्राह्मण शूद्रत्व को प्राप्त करता है, इसमें विचार करने की आवश्यकता नहीं ॥२६॥ जिसके अन्न वा अवशेष पेट में रखकर ब्राह्मण मरता है, उसकी योनि में वह शूद्राण्य जन्म लेता है । जो दुर्लभ ब्राह्मणत्व को सुखपूर्वक प्राप्त कर इसका अपमान करता है तथा अभोज्य अन्न भक्षण करता है, वह द्विजत्व से गिर जाता है ॥२७-२८॥ मद्य पीने वाला, ब्रह्महत्या करने वाला, चोर, व्रतभग्न करने वाला, अपवित्र, स्वाध्याय से रहित, पापी, लोभी, दाम्भिक, दुष्ट, अव्रती, शूद्रापति, चार-पुत्र के साथ खाने वाला, मद्यविनेता, तथा नीच की सेवा करने वाला ब्राह्मण ब्रह्मयोनि से गिर जाता है ॥२९-३०॥ गुरु-पत्नीगामी, गुरु से द्वेष करने वाला, गुरु की निन्दा करने वाला तथा ब्राह्मणों से द्रोह करने वाला ब्राह्मण ब्रह्म-

१ग बुद्ध । २ख ०त स्वयं० । ३न ब्राह्मण्य । ४क ०ष्टिकी बुद्धि धर्मकामे निषेध मे । उ० ।
 ५क. घृष्टान्न । न पिष्टान्न । ६०क ०दा प्रोक्त यनीविधि । ख ०दा प्रोक्त महा० । ७न. ०ज्वा गृध्रयोनी
 प्रदा ते । ते० । ८ग ०पाहृत । ९ ०पो ब्राह्मण स्ते० । १०क ०रौस्त्ययन्न० । ११क. सुरापी । १२. क. ०मी ।
 हीनाचारो शुचिर्नित्य ५० ।

सत्य सत्यानि कुरुते नित्य य शुद्धिदर्शन । धर्मदण्डेन निर्दग्धो धर्मकामार्थसाधक ॥४४॥
 यन्नित कार्यकरणं षड्भागकृतलक्षण । ग्राम्यधर्माग्न सेवेत 'स्वच्छन्देनार्थकोविद ॥४५॥
 ऋतुकाले तु धर्मात्मा पत्नीमुपाश्रयेत्सदा । सदोपवासी नियत स्वाध्यायनिरत शुचि ॥४६॥
 वहिस्कान्तरिते (?) नित्य शयानोऽस्ति सदा गृहे । सर्वातिथ्य त्रिवर्गस्य कुर्वाण सुमना सदा ॥४७॥
 श्राद्धाणा 'चाग्नकामाना नित्य 'सिद्धमिति श्रुवन । स्वार्थाद्वा यदि वा कामात् किंचिदुपलक्षणेन ॥४८॥
 पिनदेवातिथिकृते साधन कुरुते च यत । स्ववेश्मनि यथान्यायमुपास्ते भक्ष्यमेव च ॥४९॥
 द्विकालमग्निहोत्रं च जुह्वानो वै यथाविधि । गोब्राह्मणहितायै रणे च अभिमुखो हत ॥५०॥
 त्रेताग्निमन्त्रपूतेन समाविश्य द्विजो भवेत् । ज्ञानविज्ञानसंपन्न सस्कृतो घेदपारग ॥५१॥
 वैश्यो भवति धर्मात्मा क्षत्रिय स्वेन कर्मणा । एतं कमफलं देवि न्यूनजातिकुलोदभव ॥५२॥
 शूद्रोऽप्यागमसंपन्नो द्विजो भवति सस्कृत । ब्राह्मणो याज्यसद्वृत्त सवसकरभोजन ॥५३॥
 स ब्राह्मण्य समुत्सृज्य शूद्रो भवति तादृश । कर्मभि शुचिभिर्देवी शुद्धात्मा विजितेन्द्रिय ॥५४॥
 शूद्रोऽपि द्विजवत्सत्त्व इति सत्याऽश्वतोत्त्वयम । 'स्वभावकर्मणा चैव यत्र (इव) 'शूद्रोऽधिनिष्ठति ॥५५॥
 विशुद्ध स द्विजातिभ्यो विज्ञेय इति मे मति । न योनिर्नापि सत्पारो न श्रुतिर्न च 'सतति ॥५६॥

दण्ड धारण करता है । कार्यों के अनुसार दण्ड (राजनीति) को (सधि विग्रह) आदि छह भागा में विभक्त कर देता है । अर्थात्स न शाता मनुष्य स्वतन्त्रता से ग्राम्य-धर्मों की सेवा न करे ॥४२-४५॥ धर्मात्मा व्यक्ति सदा ऋतुवर्ग म पत्नीगमन करे । नियमपूर्वक उपवास करने वाला स्वाध्याय में निरत पवित्र सदा दीप रहित (?) घर में गमन करने वाला सब वा आतिथ्य करने वाला सदा प्रसन्न मन से धर्म अर्थ और काम का साधन करने वाला अन्नाभिलाषी शूद्रा से नित्य सिद्ध ही है यह कहने वाला स्वार्थ से या काम से किसी की हानि नहीं करने वाला पितर देव तथा अतिथिया का पूजन अपने घर में न्यायपूर्वक भिक्षावृत्ति से रहने वाला दोनों समय विधान पूर्वक अग्निहोत्र करने वाला गो-ब्राह्मण क निर्मित युद्ध न भरने वाला सीनो अग्नियो की उपासना से पवित्र ज्ञान विधान से सम्पन्न सत्कार्ययुक्त और वेदपारग धर्मात्मा वैश्य अपने कर्म से क्षत्रिय हो जाता है ॥४६-५१॥ देवी ! इन धर्मों के फल से नीच कुल म उत्तम शूद्र भी वेदसम्पन्न सत्सुत ब्राह्मण हो जाता है । असद्वृत्ती तथा सबव साय भाजन करने वाला ब्राह्मण या ब्राह्मणत्व को त्याग कर वैसा शूद्र बन जाता है । पवित्र धर्मों से युक्त शुद्धात्मा तथा जितेन्द्रिय शूद्र भी ब्राह्मण की तरह पूज्य है—यह साक्षात् ब्रह्मा ने कहा है । स्वमादित्य धर्मों से युक्त शूद्र द्विजातियों से पवित्र है—यह मेरा मत है ॥५२-५५॥ ब्राह्मणत्व का कारण न योनि है न सत्पार है, न श्रुति है और न सन्तान ही है । वृत्त (आचरण) ही इसका कारण है । जो न य आचरण से ब्राह्मण माना

कारणानि द्विजत्वस्य वृत्तमेव तु कारणम् । सर्वोऽयं ब्राह्मणो लोके वृत्तेन तु विधीयते ॥५७॥
 वृत्ते स्थितश्च शूद्रोऽपि ब्राह्मणत्वं च गच्छति । ब्रह्मस्वभावः सुश्रोणि समः सर्वत्र मे मतः ॥५८॥
 निर्गुणं निर्मलं ब्रह्म यत्र तिष्ठति स द्विजः । एते ये विमला देवि स्थानाभावनिदर्शकाः ॥५९॥
 मयं च वरदेनोक्ता ब्रह्मणा सृजता प्रजाः । ब्रह्मणो हि महत्क्षेत्रं लोके चरति पादवत् ॥६०॥
 यस्तत्र बीजं पतति सा कृपिः प्रेत्य भाविनी । संतुष्टेन सदा भाव्यं सत्पथालम्बिना सदा ॥६१॥
 ब्राह्मं हि मार्गमाश्रम्य वर्तितव्यं दुभूयता । संहिताध्यायिना भाव्यं गृहे वं गृहमेधिना ॥६२॥
 नित्यं स्वाध्याययुक्तेन न चाध्ययनजीविना । एवंभूतो हि यो विप्रः सततं सत्पथे स्थितः ॥६३॥
 आहिताग्निरधीयानो ब्रह्मभूयाय कल्पते । ब्राह्मण्यं देवि संप्राप्य रञ्जितव्यं यतात्मना ॥६४॥
 योनिप्रतिग्रहादानं कर्मभिश्च शुचिस्मिते । एतत्ते गृहमाख्यात यथा शूद्रो भवेद्द्विजः ॥
 ब्राह्मणो वा द्युतो धर्माद्याः शूद्रत्वमानुयात् ॥६५॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे उमामहेश्वरसंवादे संकरजातिलक्षणवर्णनं नाम
 त्रयोविंशत्यधिकद्विंशततमोऽध्यायः ॥२२३॥

आता है ॥५६-५७॥ वृत्त में स्थित शूद्र भी ब्राह्मणत्व को प्राप्त करता है । सुन्दर कटि वाली । ब्राह्मण का स्वभाव
 सब जगह समान है—यह मेरा मत है ॥५८॥ निर्गुण, निर्मल ब्रह्म जिसमें वास करता है, वह ब्राह्मण है । देवी ।
 प्रजा की सृष्टि करने वाले स्वयं वरदायक ब्रह्मा ने कहा है कि स्थानाभाव के उदाहरणस्वरूप निर्मलचिरा वाले जो
 हैं वे ब्राह्मण हैं । लोक में ब्रह्मा का महान् क्षेत्र पैर की तरह चलता है ॥५९-६०॥ उसमें जो बीज डाला जाता है,
 वही कृपि के रूप में उत्पन्न होता है । मनुष्य को सदा संतुष्ट एवम् सत्पथालम्बी होना चाहिये ॥६१॥ होन-
 हार मनुष्य को ब्राह्म मार्ग से चलना चाहिये । गृहस्थ को गृह में संहिताश्री का अध्ययन करना चाहिये ॥६२॥ जो
 ब्राह्मण नित्य स्वाध्याय से युक्त, अध्ययन द्वारा जीविका न कमाने वाला सदा सत्पथ पर स्थित, वेदाध्ययन करने वाला
 और अन्याधान करने वाला है, वह ब्रह्मभाव को प्राप्त हो जाता है ॥६३॥ देवी । ब्राह्मणत्व प्राप्त कर यत्न-
 पूर्वक उत्तरी रथा करनी चाहिये । पवित्र हास्य करने वाली । योनि के आदान-प्रदान (परिवर्तन) से तथा कर्मों
 से जैसे शूद्र ब्राह्मण हो जाता है या ब्राह्मण धर्मच्युत होकर शूद्रत्व को प्राप्त कर लेता है, वह रहस्य तुमसे
 बतला दिया ॥६४-६५॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में संकरजातिलक्षणवर्णनं नामक
 दो सी श्लोकों का अध्याय समाप्त ॥२२३॥

१ व स ०ति । ब्राह्मणदत्त भवेच्छूद्रोऽप्येववृत्तश्च मे । २ व. ०प्राप्य निरयता । ३ व पुरा । ४ व
 दावत् । ५ व. दुगुपुणा । ६ व. योनि प्र० ।

अथ चतुर्विंशत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

उमामहेश्वरसवादे मानवानामुत्तमगतिप्राप्तिवर्णनम्

उमोवाच

भगवन्सर्वभूतेश सुरासुरनमस्कृत । 'धर्माधर्मो नृणा देव दृहि मे सशय विभो ॥१॥
कर्मणा मनसा वाचा त्रिविधैर्दंष्ट्रिण सदा । बध्यन्ते बन्धनं कर्वा मुच्यन्ते वा कथं वद ॥२॥
केन शीलेन वै देव कर्मणा कीदृशेन वा । समाचारेर्गुणं कर्वा स्वर्गं यातीह मानवा ॥३॥

शिव उवाच

देवि धर्मायैतत्त्वज्ञे धर्मनित्य उमे सदा । सर्वप्राणहितं प्रश्नं धूयता 'बुद्धिवर्धन ॥४॥
सत्यधर्मरता शान्ता सर्वलिङ्गविरजिता । नाधर्मेण न धर्मेण 'बध्यन्ते छिन्नसशया ॥५॥
प्रलयोत्पत्तितत्त्वज्ञा सर्वज्ञा सर्वदर्शिन । कीतरागा विमुच्यन्ते पुरुषा कर्मबन्धनं ॥६॥
कर्मणा मनसा वाचा ये न हिंसन्ति किञ्चन । ये न 'मगजन्ति कस्मिंश्चित्ते न 'चघ्नन्ति कर्मभि ॥७॥
'प्राणातिपाताद्विरता ' शीलवन्तो दयान्विता । तुल्यद्वेष्यप्रिया दान्ता मुच्यन्ते कर्मबन्धनं ॥८॥

अध्याय २२४

मनुष्यो को उत्तम गति मिलने का वर्णन

उमा बोली—भगवन् ! अखिल प्राणियों के ईश्वर । देवराक्षसों से नमस्कृत । देव । सबशक्तिमान् । मनुष्यों के धर्म-अधर्म के विषय मैं मुझे सदेह है उसे दूर कीजिये । वायव्य, वायविक, मानसिक—इन तीन प्रकार के कर्मों में जिस कर्म का द्वारा प्राणी सदा बद्ध होता है और जिस कर्म के द्वारा उसकी मुक्ति होती है—यह मुझे बतलाइये । देव । जिस स्वभाव से या जिस कर्म से या जिस तरह से आचरण से या जिन गुणों से मनुष्य स्वर्ग जाते हैं ? ॥१॥ ३॥

शिव बोले—देवी । धर्म-अधर्म के तत्त्व को जानने वाली । सदा धर्म में निरत रहने वाली । मुग्धारा प्रश्न समस्त प्राणियों का कल्याणकारक तथा बुद्धिवर्धक है ॥४॥ सुनो । सत्य और धर्म में रत शांत, सब प्रकार के लालचों से रहित तथा सदेहपूर्ण पुरुष धर्म या अधर्म से बद्ध नहीं होते हैं ॥५॥ उत्पत्ति तथा प्रलय के तत्त्व को जानने वाले सबग, सर्वदर्शी तथा रागद्वेषपूर्ण धर्म-बन्धनों में नहीं पड़ते हैं ॥६॥ जो धर्म से मन से तथा वाणी से किसी की हिंसा नहीं करते हैं और जो किसी में आसक्त नहीं होते हैं, वे कर्मों से बद्ध नहीं होते हैं ॥७॥ जो जीव हिंसा से परे धीलवान् दयावान् शत्रु मित्र में सम बुद्धि वाले तथा इन्द्रियों का दमन करने वाले हैं वे कर्मबन्धनों से मुक्त हो जाते हैं ॥८॥ जो अखिल प्राणियों पर दया करने वाले, समस्त जीवों का विश्वासपात्र

१ग ०धर्मो नृ० । २क बुद्धिवर्धन । ३क स बन्धन । ४क स सान्ति । ५क स बध्यति ।
६ग प्राणनिग्रहकृत् । ७ग ०प्राणिया० ।

सर्वभूतदयावन्तो विश्वाम्याः सर्वजन्तुषु । 'त्यक्तहिंस्रसमाचारास्ते नराः स्वर्गगामिनः ॥१॥
 परस्वनिर्ममा नित्यं परदारविवर्जिताः । धर्मलब्धार्थभोक्तारस्ते नरा स्वर्गगामिनः ॥१०॥
 मातृवत्स्वस्वच्छैव नित्यं दुहितृवच्छ ये । परदारेषु वर्तन्ते ते नराः स्वर्गगामिनः ॥११॥
 स्वदारनिरता ये च श्रतुकालाभिगामिनः । अप्राप्त्यसुखभोगाच्च ते नराः स्वर्गगामिनः ॥१२॥
 स्तन्याश्रिवृत्ताः सततं सतुष्टाः स्वधनेन च । स्वभाग्याभ्युपजीवन्ति ते नरा स्वर्गगामिनः ॥१३॥
 परदारेषु ये नित्यं चारित्रावृत्तलोचनाः । जितेन्द्रियाः शीलपरारते नरा स्वर्गगामिनः ॥१४॥
 एष देवकृतो मार्गः सेवितव्यः सदा नरैः । अकथयितुमशक्यं मार्गः सेव्यः सदा वर्धः ॥१५॥
 अव्यापकृतश्चैव मार्गः सेव्यः सदा धुर्यः । दानकर्मतपोयुक्तः शीलशौचदयात्मकः ॥
 स्वर्गमार्गमभीप्सद्भिर्न सेभ्यस्तथैव उत्तरः ॥१६॥

उमोवाच

वाचा तु 'वध्यते येन' मुच्यते ह्ययं पुनः । तानि कर्माणि मे देव यद भूतपतेऽनघ ॥१७॥

शिव उवाच

आमहेतोः परार्थे वा' अधर्माश्रितमेव च । ये मृषा न यदन्तीह ते नराः स्वर्गगामिनः ॥१८॥

तथा हिंसावृत्ति से निवृत्त हैं, वे स्वर्ग जाते हैं ॥१॥ दूसरे वे धन मेममतान करने वाले, परस्त्री-प्रसंग से रहित तथा धर्मपूर्वक प्राप्त धन के भोक्ता मनुष्य स्वर्गगामी होते हैं ॥१०॥ जो मनुष्य दूसरे की स्त्री को माता, बहुत तथा बेटी की तरह देखते हैं, वे स्वर्ग जाते हैं ॥११॥ जो मनुष्य अपनी स्त्री मे निरत, श्रतुकाल मे स्त्री-प्रसंग करने वाले तथा ग्राम्य-सुख-भोग से रहित हैं, वे स्वर्ग जाते हैं ॥१२॥ जो धीरी से रहित सदा अपने धन से सतुष्ट और और अपने माग्य के भरोसे जाते हैं, वे स्वर्ग जाते हैं ॥१३॥ जो मनुष्य दूसरे की स्त्री को देतकर चरित्ररक्षा के लिये आँखें मूढ़ लेते हैं और जितेन्द्रिय एवम् शीलवान् हैं, वे स्वर्ग जाते हैं ॥१४॥ मनुष्य इस देवमार्ग वा सदा अनुसरण करे । विद्वान् मनुष्य शिष्टसम्मत मार्ग का सदा सेवन करे । पण्डित जन सदा निरुद्ध मार्ग का अवलम्बन करे ॥१५॥ दान, कर्म, तपस्या, शील, शौच तथा दया से युक्त एवम् स्वर्ग की कामना करने वाले मनुष्य इससे भिन्न मार्ग को कभी न अपनार्यें ॥१६॥

उमा बोली—भूतपते ! निष्पाप ! जिन वाचिक कर्मों से मनुष्य बद्ध होता है अथवा मुक्त होता है, वे मुझे बतलाइये ॥१७॥

शिव बोले—जो मनुष्य अपने लिये वा दूसरे के लिये असत्य नहीं बोलते, वे स्वर्ग जाते हैं । जो मनुष्य

१क य ०हिमास० । २व ०या शौचप० । ३य वृषे । ४य ०च । ५मंनिर्देश्य वध्यत यैर्वा मुच्यत पूर्य । ता० । ५व बदते । ६व ये तु मुखते । ७य वा माहृत्यप्रवणातया । ४ ।

वृत्रयं धर्महेतोर्वा कामकारास्तथैव च । अनृतं ये न भाषन्ते ते नराः स्वर्गगामिनः ॥१९॥
 श्लक्ष्णां वाणीं 'मृच्छवर्णां' मधुरां पापवर्जिताम् । स्वर्गतेनाभिभाषन्ते ते नराः स्वर्गगामिनः ॥२०॥
 पश्य ये न भाषन्ते कटुवं निष्ठुरं तथा । न शैश्वर्यरताः सन्तस्ते नराः स्वर्गगामिनः ॥२१॥
 पिशुनं न प्रभाषन्ते मित्रभेदकरं तथा । परपोडाकरं चैव ते नराः स्वर्गगामिनः ॥२२॥
 ये वर्जयन्ति 'परुषं' परद्रोहं च मानवाः । सर्वभूतसमा^१ दान्तास्ते नराः स्वर्गगामिनः ॥२३॥
 शठप्रलापाद्विरता विरुद्धपरिवर्जवाः । सौम्यप्रलापिनो नित्यं ते नराः स्वर्गगामिनः ॥२४॥
 न कोपाद्व्याहरन्ते ये वाचं हृदयदारिणीम् । शान्तिं विन्दति ये वृद्धास्ते नराः स्वर्गगामिनः ॥२५॥
 एष वाणीकृत्ते देवि धर्मः सेव्यः सदा नरैः । शुभसत्यगुणैर्नित्यं वर्जनीया भूया बुधैः ॥२६॥

उमोवाच

मनसा बध्मयते धेन कर्मणा पुरुषः सदा । तन्मे ब्रूहि महाभाग देवदेव पिताकथूक् ॥२७॥

महेश्वर उवाच

मानसेनेह धर्मेण संयुक्ताः पुरुषाः सदा । स्वर्गं गच्छन्ति कस्यापि तन्मे वीर्तयतः । शृणु ॥२८॥
 दुष्प्रणीतेन मनसा दुष्प्रणीतान्तराकृतिः । नरो बध्येत येनेह शृणु या तं शुभानने ॥२९॥
 अरण्ये विजने न्यस्तं परस्वं दृश्यते यदा । मनसाऽपि न गृह्णन्ति ते नराः स्वर्गगामिनः ॥३०॥

जीविका के लिये या धर्म के निमित्त या स्वेच्छा से असत्य भाषण नहीं करते हैं, वे स्वर्गगामी होते हैं । जो मनुष्य कोमल, स्कील, मधुर तथा पाप-रहित वाणी बोलते हैं, वे स्वर्गगामी होते हैं । जो मनुष्य बड़ोर तथा बटु बचन नहीं बोलते हैं तथा शुगली नहीं करते हैं, वे स्वर्ग जाते हैं । जो मनुष्य मित्रों में फूट नहीं डालते हैं और दूसरे को पीडा नहीं देते हैं, वे स्वर्ग जाते हैं । जो मनुष्य दूसरे से द्रोह नहीं करते हैं, समस्त प्राणियों में समान भाव रखते हैं और हृदियों का दमन करते हैं, वे स्वर्ग जाते हैं । जो मनुष्य दुष्टभाषण से रहित, विरोध-शून्य तथा मधुरभाषी हैं, वे स्वर्ग जाते हैं । जो मनुष्य श्रेष्ठ से हृदयविदारक बचन नहीं बोलते हैं और बृद्ध होने पर भी तुल्य शान्त हो जाते हैं, वे स्वर्ग जाते हैं । देवी ! मनुष्य सदा इस वाचिक धर्म का पालन करे । विद्वान् मनुष्य शुभ तथा सत्यगुणों से युक्त होकर असत्य वा परित्याग करे ॥१८-२६॥

उमा बोलीं—महाभाग ! धनुषधारी ! देवों के देव ! जिस मानसिक धर्म से मनुष्य बद्ध होता है, वह मुझे बतलाइये ॥२७॥

महेश्वर ने कहा—वत्प्राणमयी ! मानसिक धर्म से युक्त पुरुष स्वर्ग जाते हैं—इसने बारे में मुझसे सुनो । पवित्र मुख वाली ! जिस मनुष्य का मन तथा अन्तरात्मा दूषित है, वह बद्ध होता है । जो धन में तथा एवान्त स्थान में दूसरे के पडे हुए धन को देखकर मनसे भी उसे ग्रहण नहीं करता है, वह स्वर्ग जाता है । जो मनुष्य एवान्त में दूसरे की स्त्री का देखकर मन से भी उगते साथ पापाचरण नहीं करता है, वह स्वर्ग जाता है । जो

१ न निराश्रयाः । न निरापाराः । २ न ० नवी निरम् । अतः निर्वन्तु भाषन्ते ते । ३ न सनतः । ४ न रा ० गमा शान्ता ० । ५ न बाध्यते ।

तथैव परदारान्ये कामवृत्ता रहोगताः । मनसाऽपि न हिसन्ति ते नराः स्वर्गगामिनः ॥३१॥
 शत्रु मित्रं च ये नित्यं तुल्येन मनसा नराः । भजन्ति धैर्यं संगम्य ते नराः स्वर्गगामिनः ॥३२॥
 श्रुतवन्तो दयावन्तः शुचयः सत्यसंगराः । स्वैरर्थैः परिसंतुष्टास्ते नराः स्वर्गगामिनः ॥३३॥
 अवेरा ये स्वनायासा मन्त्रचित्तरताः । सदा । सर्वभूतदयावन्तस्ते नराः स्वर्गगामिनः ॥३४॥
 ज्ञातवन्तः श्रियावन्तः क्षमावन्तः सुहृत्प्रियाः । धर्मधर्मविदो नित्यं ते नराः स्वर्गगामिनः ॥३५॥
 शुभानामशुभानां च कर्मणा फलसंचये । निराकाङ्क्षाश्च ये देवि ते नराः स्वर्गगामिनः ॥३६॥
 'पापोपेतान्वर्जयन्ति देवद्विजपरा' सदा । 'समुत्थानमनुप्राप्तास्ते नराः स्वर्गगामिनः ॥३७॥
 शुभं' कर्मफलं देवि मयंते परिकीर्तिताः । स्वर्गमार्गपरा भूयः किं त्वं श्रोतुमिहेच्छसि ॥३८॥

उमोवाच

महाग्ने संशयः 'कश्चित्कर्मत्यागप्रति भट्टेश्वर । तस्मात्त्वं निपुणेनाद्य मम व्याख्यातुमर्हसि ॥३९॥
 केनाऽऽयुर्लभते दीर्घं कर्मणा पुरयः प्रभो' । तपसा वापि देवेश केनाऽऽयुर्लभते महत् ॥४०॥
 क्षीणायुः केन भवति कर्मणा भुवि मानवः । विपाकं कर्मणां देव 'वक्तुमर्हस्यनिन्दित ॥४१॥
 अपरे च महाभाग्या मन्दभाग्यास्तथा परे । अकुलीनाः कुलीनाश्च संभवन्ति तया परे ॥४२॥

मनुष्य शत्रु तथा मित्र के साथ समान भाव से व्यवहार करता है, वह स्वर्ग जाता है । जो मनुष्य वेदों के ज्ञाता, दयावान्, पवित्र, सत्यात्मा तथा अपने धन से संतुष्ट हैं, वे स्वर्ग जाते हैं । जो शत्रुता से रहित, अनायास ही सदा सबसे मैत्री करने वाला तथा प्राणी मात्र पर दया करने वाला है, वह पर स्वर्ग जाता है । जो ज्ञानी, क्रियाशील, क्षमावान्, कष्टों का श्रिय तथा धर्म-अधर्म का ज्ञाता है, वह स्वर्ग जाता है । देवी ! जो मनुष्य शुभ-अशुभ कर्मों का फल नहीं चाहता है, वह स्वर्ग जाता है । जो पापियों से अलग रहता है, देव-ब्राह्मणों की सेवा करता है और अपने धर्म में निरत रहता है, वह स्वर्ग जाता है । देवी ! शुभ कर्मों के द्वारा जैसे लोग स्वर्ग जाते हैं, वह मैंने बतला दिया । अब फिर क्या सुनना चाहते हो ? ॥२८-३८॥

उमा ने कहा—महेश्वर ! मनुष्यों के बारे में मुझे एक सदेह है । दसतापूर्वक आप उसका निराकरण कीजिए । प्रभो ! किस कर्म से मनुष्य दीर्घायु लाभ करता है ? देवेश ! किस तप से मनुष्य भी आयु बढ़ जाती है ? पृथ्वी पर मनुष्य किस धर्म से क्षीणायु होता है ? देव ! निन्दा से रहित । कर्मों का परिणाम आप बतलायें । कोई मनुष्य महाभाग्यान् होते हैं तो कोई माग्यहीन होते हैं । कोई कुलीन होते हैं तो कोई अकुलीन होते हैं ।

१क ०न । श्रद्धावन्तो न ये । ख न । श्रद्धावन्तश्च ये । २ख मैत्री । ३ख मैत्रीचिन्तार० । ४ग ०न । श्रद्धावन्तो दयावन्त सौख्या सौख्यजनप्रिया । ५ख म ०चयम् । विपाकज्ञाश्च । ६ख ख पापापेता ये देवि दे० । ७ख ०नपरा ये च ते न० । ८ख ०चित्तसत्त्वान्त्र० । ९ख ०यो । गतापुरपि । १०ख ०स्थयेपतः । अ० ।

दुर्दर्शा केचिदाभान्ति नराः काष्ठमया इव । प्रियदर्शान्तिया चान्ये दर्शनादेव मानवाः ॥४३॥
दुःप्रज्ञा केचिदाभान्ति केचिदाभान्ति पण्डिताः । महाप्रज्ञास्तया चान्ये ज्ञानविज्ञानभाविनः ॥४४॥
अल्पवाचास्तया केचिन्महावाचास्तथा परे । दृश्यन्ते पुरुषा देव ततो व्याख्यातुमर्हन्ति ॥४५॥

शिव उवाच

हन्त तेहं प्रवक्ष्यामि देवि कर्मफलोदयम् । मर्त्यलोके नरः सर्वो येन स्वं फलमश्नुते ॥४६॥
प्राणातिपातनी योगोन्द्रो दण्डहस्तो नरः सदा । नित्यमुद्यतशस्त्रश्च हन्ति भूतगणान्नरः ॥४७॥
निर्दयः सर्वभूतेभ्यो नित्यमुद्वेगकारकः । अपि कीटपतङ्गानामशरण्यः सुनिर्घृणः ॥४८॥
एवंभूतो नरो देवि निरयं प्रतिपद्यते । विपरीतस्तु धर्मात्मा स्वरूपेणाभिजायते ॥४९॥
निरयं याति हिंसात्मा याति स्वर्गमर्हिसकः । यातनां निरये रौद्रां सकृच्छ्द्रा लभते नरः ॥५०॥
यः कश्चिन्निरयात्सस्मात्समुत्तरति कर्हिचित् । मनुष्यं लभते वापि हीनायुस्तत्र जायते ॥५१॥
पापेन कर्मणा देवि युवतो हिंसादिभिर्घतः । अहितः सर्वभूतानां हीनायुश्चजायते ॥५२॥
दुर्मेन बर्म्णा देवि प्राणिघातविवर्जितः । निश्चितज्ञात्त्रो निर्दण्डो न हिसति कदाचन ॥५३॥
न घातयति नो हन्ति घ्नन्तं भवानुमोदते । सर्वभूतेषु मस्नेहो यथाऽऽत्मनि तथा परे ॥५४॥

कोई लव की की तरह देखने में बठोर मालूम पड़ते हैं तो कोई देखने में प्रिय (बोमल) मालूम पड़ते हैं। कोई मूर्ख है तो कोई पण्डित है। कोई ज्ञान-विज्ञान-रूपतः महापण्डित है। कोई मितभाषी है तो कोई बहुभाषी। देव ! ऐसे पुरुष देखे जाते हैं। इसका कारण आप बतलायें ॥३९-४५॥

शिव ने कहा—देवी ! अच्छा, तो मैं कर्मफल बतलाऊँगा। मृत्युलोके में मनुष्य बर्गों के फल भोगते हैं। प्राण देने वाला योगोन्द्र, दण्ड धारण करने वाला, सदा अस्त्र-शस्त्रों से सुसज्जित रहने वाला मनुष्य भूतगणों को मारता है। प्राणीमात्र पर दया न करने वाला, सब को उद्विग्न करने वाला, कीटपतंग पर्यन्त किसी को भी धारण न देने वाला तथा अत्यन्त घृणा करने वाला मनुष्य नरक जाता है। इससे विपरीत धर्मात्मा मनुष्य स्वर्ग जाता है। हिंसा मनुष्य नरक जाता है और अहिंसा स्वर्ग जाता है। नरक में मनुष्य मयकर यातना प्राप्त करता है। जो कोई बर्ग उस नरक से निवृत्त जाता है, वह अत्यायु होकर मनुष्ययोनि में जन्म लेता है। देवी ! जिसलिये मनुष्य हिंसा आदि पापकर्म करता है और समस्त प्राणियों का अहित करता है, इसलिये वह अत्यायु होता है। देवी ! जो धर्म बर्गों से युक्त, जीव-हिंसा से रहित तथा शास्त्र एवम् दण्ड से दूष्य होकर न किसी को मारता है, न मारने वालों का अनुमोदन करता है और अपने आत्मा की तरह अहित प्राणियों से प्रेम करता है, वह देवत्व को

१४० नित्यमुद्यतशस्त्राश्रये । प्रि० २४ स० लघुवाचास्त० । ३४. ०मुल्लङ्घ्य शास्त्रं च ह० ।
४४ स० ०प्रिणीतानाम० । ५४ गुहृच्छ्द्रा । ६१ ०ते । यन्मु दुश्चरामिजानीय प्राणघातविवर्जं । निति० ।
७१ निर्दग्मा ।

ईदृशः पुरुषो नित्यं देवि देवत्वमश्नुते । उपपन्नान्सुखान्भोगान्सदाऽश्नाति मुदा युतः ॥५५॥
अथ चेन्मानुषे लोके कदाचिदुपपद्यते । एष दीर्घायुषां मार्गः सुवृत्तानां सुकर्मणाम् ॥
प्राणिहिंसाविमोक्षेण ब्रह्मणा समुदीरितः ॥५६॥

इति श्रीमहापुराणे आदिश्राव्ये उमामहेश्वरसंवादे धर्मनिरूपणं नाम
चतुर्विंशत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२२४॥

अथ पञ्चविंशत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः
उमामहेश्वरसंवादे देवलोकप्राप्तिकारणकथनम्

उमोवाच

किंशोलः किसमाचारः पुरुषः कैश्च कर्मभिः । स्वर्गं समभिपद्येत संप्रदानेन केन वा ॥१॥

महेश्वर उवाच

दाता ब्राह्मणसत्कर्ता दीनार्तकृपणादिषु । भक्तभोग्यान्नपानानां वाससां च महामतिः ॥२॥
प्रतिभयान्तभां कुर्यात्प्रपाः पुष्करिणीस्तथा । नित्यकादीनि कर्माणि करोति प्रयतः शुचिः ॥३॥
आसनं शयनं धानं गृहं रत्नं धनं तथा । सत्यजातानि सर्वाणि सक्षेत्राण्यप्य धीयितः ॥४॥

प्राप्त करता है । यदि कदाचित् बहु मनुष्यलोक में उत्पन्न होता है तो हर्ष से समस्त सुखों का भोग करता है । सुकर्मों, सदाचारी तथा जीवहिंसारहित दीर्घायु मनुष्यों का यह मार्ग ब्रह्मा द्वारा निर्दिष्ट है ॥४५-५६॥
श्रीब्रह्महपुराण में धर्मनिरूपण नामक दो सो चौबीसवाँ अध्याय समाप्त ॥२२४॥

अध्याय २२४

शिव-पार्वती के संवाद में देवलोक की प्राप्ति का कारण बताना

पार्वती बोली—कैसे स्वभाव तथा आचरण वाला पुरुष किन कर्मों से या किस दान से स्वर्ग-प्राप्ति करता है ? ॥१॥

शिव बोले—देवी ! जो मनुष्य ब्राह्मणों का आदर करता है, दीन-दुखियों को भक्ष्य-भोग्य आदि अन्न, पान तथा वस्त्र देता है, लोगों को आश्रय देता है, प्याऊ, पोखरा आदि खुदवाता है, पवित्रतापूर्वक नित्यकर्म आदि करता है और शान्त चित्त से लोगों को आसन, शय्या, सवारी, घर, रत्न, धन, धान्यसम्पन्न खेत तथा स्त्रियाँ

सुप्रशान्तमना नित्यं यः प्रयच्छति मानवः । एवंभूतो नरो देवि देवलोकोऽभिजायते ॥५॥
 'तत्रोष्य सुचिरं कालं भुक्त्वा भोगाननुत्तमान् । सहापसरोभिर्मुदितो रमित्वा नन्दनादिषु ॥६॥
 तस्माच्छ्रुतो महेशानि मानुषेयपूजयते । महाभागकुले देवि 'धनधान्यसमाचिते ॥७॥
 तत्र कामगुणैः सर्वैः समुपेतो मृदाऽन्वितः । 'महाकार्यो महाभागो धनो भवति मानवः ॥८॥
 एते देवि महाभागाः प्राणिनो दानशालिनः' । ब्रह्मणा वै पुरा प्रोक्ताः सर्वस्य प्रियदर्शनाः ॥९॥
 अपरे भानवा देवि प्रदानरूपणा द्विजाः । येऽन्नानि न प्रयच्छन्ति विद्यमानेऽप्यबुद्धयः ॥१०॥
 दीनान्धकृपणान्दृष्ट्वा भिक्षुकानतिथीनपि । याच्यमाना निवर्तन्ते जिह्वालोलभसमन्विताः ॥११॥
 न धनानि न वासांसि न भोगान्न च काञ्चनम् । न याश्च नाप्रविकृतिं प्रयच्छन्ति कदाचन ॥१२॥
 अप्रलुब्धाश्च' ये लुब्धा नास्तिका दानवर्जिताः । एवंभूता नरा देवि निरयं यान्त्यबुद्धयः ॥१३॥
 ते धै मनुष्यतां यान्ति यदा कालस्य पर्ययात् । धनरिवते कुले जन्म लभन्ते स्वल्पबुद्धयः ॥१४॥
 क्षुत्पिपासापरोताश्च सर्वलोकबहिष्कृताः । निराशाः सर्वभाग्येभ्यो जीवन्त्यधर्मजोविकाः ॥१५॥
 अल्पभोगकुले जाता अल्पभोगरता नराः । अनेन कर्मणा देवि भवन्त्यधनिनो नराः ॥१६॥
 अपरे दम्भिनो नित्यं मानिनः परतो रताः । आसनाहंस्य ये पीठं न पच्छन्त्यल्पचेतसः ॥१७॥
 मार्गाहंस्य च ये मार्गं न प्रयच्छन्त्यबुद्धयः । अर्थाहंस्य च संस्कारैरच्यन्ति ययाविधि ॥१८॥

देता है, वह देवलोक में जन्म लेता है ॥३-५॥ प्रिये ! वह देवलोक में विरहाल तब उत्तम भोगों को भोगकर
 मन्दन दन आदि स्थानों में अप्सराओं के साथ रमण कर स्वर्गव्युत होने पर मनुष्ययोनि में जाता है ॥६॥ देवी !
 मही भी वह किसी धनधान्यसम्पन्न महामाग्यवान् के कुल में जन्म लेकर समस्त गुणों से युक्त, महापार्षदील,
 महायोगी तथा धनी मनुष्य होता है ॥७-८॥ देवी ! ब्रह्मा ने कहा है कि वे दानशील महामाग्यवान् प्राणी सब
 के प्रिय होते हैं ॥९॥ जो मनुष्य दान करने में कृपण है, जो दुर्बुद्धि मनुष्य अन्न रहने पर भी दान नहीं करते हैं,
 जो दीन, अन्धे, दुर्ली, भिक्षु तथा अतिथियों के माँगने पर भी उनकी रसनेन्द्रिय को तृप्त नहीं करते हैं, जो धन,
 वस्त्र, भोग-मदार्थ, सुवर्ण, गाय तथा अन्न नहीं देते हैं, जो लोभी, नास्तिक तथा दानवर्जित हैं, वे सब बुद्धिहीन
 मनुष्य नष्ट जाते हैं ॥१०-१३॥ वे जब बाल की वृत्ति से मनुष्य-योनि में आते हैं तब उन अल्पबुद्धियों का जन्म
 दरिद्रकुल में होता है । मही के भूख-प्यास से व्याकुल, लोभ से बहिष्कृत, समस्त भोगों से वंचित तथा अपर्मपूर्वक
 जीवन बिताते वाले होते हैं ॥१४-१५॥ देवी ! ऐसे कर्मों के द्वारा मनुष्य अल्पभोग भोगने वाले कुल में जन्म लेकर
 दरिद्रता से जीवन बिताते हैं ॥१६॥ जो मनुष्य दम्भ तथा अमिमान करते हैं, जो दुर्बुद्धि आसन देने योग्य पुरुष
 को आसन नहीं देते हैं, जो बुद्धिहीन मार्ग देने योग्य व्यक्ति को मार्ग नहीं देते हैं, जो अर्थ चढ़ाये जाने योग्य व्यक्ति
 को पाद-आचमनीय नहीं देते हैं तथा उनकी पूजा नहीं करते हैं, जो श्रेष्ठ से पुष्ट की पण्डना नहीं करते हैं, जो लोभ

उपक्रामति जन्तूश्च उद्वेगजननं सदा । एवं शीलसमाचारो निरयं प्रतिपद्यते ॥३३॥
 स चेन्ननुप्यतां गच्छेद्यदि कालस्य पर्ययात् । बह्वाधाधापरिविलष्टे कुले जयति सोऽयमे ॥३४॥
 'लोकद्विष्टोऽयमः पुतां स्वयं कर्मकृतं फलैः । एष देवि मनुष्येषु ब्रह्मद्वयो ज्ञातिबन्धुषु ॥३५॥
 अपरः सर्वभूतानि दयावाननुपश्यति । मैत्रो दृष्टिः पितृसमो निर्वरो नियतेन्द्रियः' ॥३६॥
 मोद्वेजयति भूतानि न च हन्ति दयापरः । हस्तपादौश्च नियतैर्विश्वास्य सर्वजन्तुषु ॥३७॥
 न रज्ज्वा न च दण्डेन न लोष्टैर्नाऽऽयुधेन च । उद्वेजयति भूतानि शुभकर्मा दयापरः ॥३८॥
 एवं शीलसमाचारः स्वयं समुपजायते । तत्रासौ भवने दिव्ये भुदा वसति देववत् ॥३९॥
 स 'चेत्स्वर्गक्षयान्मर्त्यो मनुष्येषूपजायते । अल्पायासो निरातद्रकः स जातः सुखमेधते ॥४०॥
 सुखभागी निरायासो निश्छेय सदा नरः । एष देवि सतां मार्गो बाधा यत्र न विद्यते ॥४१॥

उमोवाच

इमे मनुष्या 'दृश्यन्ते ऊहापोहविशारदाः । ज्ञानविज्ञानसंपन्ना प्रज्ञावन्तोऽर्थबोविदाः ॥४२॥
 दुष्प्रज्ञाश्चापरे देव ज्ञानविज्ञानवर्जिताः । केन कर्मविपाकेन प्रज्ञावान्पुरयो भवेत् ॥४३॥
 अल्पप्रज्ञो विरूपाक्ष कथं भवति मानव । एवं त्वं संशयं छिन्धि सर्वधर्मभूतां वर ॥४४॥

उद्विग्न करता है तथा जन्तुओं का दमन करता है, वह स्वभाव तथा आचरण से दूषित व्यक्ति नरक जाता है ॥३१-३३॥ यदि बालक से वह मनुष्ययोनि में जाता है तो अनेक बाधाओं से परिपीडित नीच कुल में जन्म लेता है। लोग उससे द्वेष करते हैं। इस प्रकार वह अयम मनुष्य अपने कर्मों का फल पाता है। देवी। मनुष्यों को सबके साथ नाई-बन्धुओं की तरह व्यवहार करना चाहिये ॥३४-३५॥ जो समस्त प्राणियों पर दया करता है, पितृ के समान भाव रखता है, सबको मित्रता की दृष्टि से देखता है, किसी से वैर नहीं करता है, इन्द्रियों को दया में रखता है। प्राणियों को उद्विग्न नहीं करता है, हाथ-पैरों से किसी का कष्ट नहीं देता है, सबका विश्वासपात्र बनकर रहता है, रस्सी, लाठी, डेले तथा हथियारों से किसी को हानि नहीं पहुँचाता है और दयायुक्त होकर धुम बर्ष करता है, वह सुन्दर स्वभाव तथा आचरण वाला व्यक्ति स्वयं जाता है ॥३६-३८॥ वहाँ वह दिव्य भवन में देवता की तरह हर्ष से रहता है। यदि वह मनुष्य स्वर्गंज्यु होने पर मनुष्ययोनि में जाता है तो बिना कष्ट-परिश्रम से सुखपूर्वक जीवन बिताता है ॥३९-४०॥ उसे किसी प्रकार की चिन्ता नहीं होती, परिश्रम नहीं करता पढ़ता, बल्कि सुख ही सुख मिलता रहता है। देवी। यही सज्जनों का मार्ग है, जहाँ कोई बाधा नहीं होती ॥४१॥

उमा बोलीं—देव। कोई मनुष्य तो तर्क-वितर्क करने में विशारद, ज्ञान-विज्ञान से सम्पन्न, बुद्धिमान् तथा तत्त्व के ज्ञाता होते हैं और कोई ज्ञान-विज्ञान से रहित मूर्ख होते हैं। तीन वेद वाले। (अब कहिये) जिस कर्म से परिणाम से पुरुष विद्वान् होता है और जिस कर्म से मूर्ख होता है? समस्त धर्मपारियों में देखें।

१० •देवनपर स०। ३० •ज्येष्ठवाजित्साहस्र०। ३० •ब्रह्मयोऽय०। ४० विनितेन्द्रिय। ५० न वै हेऽपने सदा। ह०। ६० चेच्छया मर्त्यलोके मर्त्योः। ७० बन्धो। ८० •स्ते महोत्साहा महाबलाः। ९०।

जात्यन्धाश्चापरे देव रोगातश्चापरे तथा । नराः बलीबाधे दृश्यन्ते कारणं ब्रूहि तत्र वै ॥४५॥

महेश्वर उवाच

ब्राह्मणान्वेदविदुषः सिद्धान्धर्मविदस्तथा । परिपृच्छन्त्यहरहः कुशलाकुशलं सदा ॥४६॥
वर्जयन्तोऽशुभं कर्म सेवमानाः शुभं तथा । समन्ते स्वर्गतिं नित्यमिह लोके यथासुखम् ॥४७॥
स चेन्मनुष्यतां याति मेधावी तत्र जायते । श्रुतं यज्ञानुषं यस्य कल्याणमुपजायते ॥४८॥
परदारेषु ये चापि चक्षुर्दुष्टं प्रयुञ्जते । तेन दुष्टस्वभावेन जात्यन्धास्ते भवन्ति हि ॥४९॥
मनसापि प्रदुष्टेन नन्वा पश्यन्ति ये स्त्रियम् । रोगार्तास्ते भवन्तोह नरा दुष्कृतकारिणः ॥५०॥
ये तु मूढा दुराचारा विधोनी मंथुने रताः । पुरुषेषु सुदुष्प्रजाः बलीबलमुपयान्ति ते ॥५१॥
पशून् च ये वै बध्नन्ति ये चैव गुरुतल्पगाः । प्रकीर्णमंथुना ये च बलीबा जायन्ति वै नराः ॥५२॥

उमोवाच

अवधं किं तु वै कर्म निरवधं तथैव च । भयैः कुर्वन्प्रवाप्नोति मानवो देवसत्तम ॥५३॥

महेश्वर उवाच

श्रेयासं मार्गमन्विच्छन्सदा यः पृच्छति द्विजान् । धर्मान्वेदी गुणाकण्डक्षी स स्वर्गं समुपाश्नुते ॥५४॥

इस सद्य को आप धूर कीजिये । कोई मनुष्य तो जन्मान्ध होते हैं और कोई रोगी तथा नपुंसक होते हैं । इसका क्या कारण है ? मुझे बतलाइये ॥४२-४५॥

महेश्वर बोले—जो मनुष्य वेदवेत्ता ब्राह्मणों, सिद्धों तथा धर्मज्ञों से प्रतिदिन कुशल-समाचार पूछते हैं और अपने कर्मों का त्याग कर शुभ कर्म करते हैं, वे स्वर्ग प्राप्त करते हैं और इस लोक में सुख भोगते हैं । वे यदि मनुष्य-योनि में जन्म लेते हैं तो मेधावी, यज्ञकर्ता तथा श्रुतिवेत्ता होते हैं । उन्हें सुख सामान्य प्राप्त होता है । जो परस्त्रियों पर कुदृष्टि डालते हैं, वे दुष्टस्वभाव के कारण जन्मान्ध होते हैं । जो मनुष्य दूषित मन से भी नम स्त्रियों को देखते हैं, वे पापी तथा रोगी होते हैं । जो मूर्ख तथा दुराचारी मनुष्य मनुष्येतर योनि में मंथन करते हैं, वे नपुंसक होते हैं । जो मनुष्य पशुओं को बाधते हैं, जो गुरुपत्नीगमन करते हैं, जो अत्यधिक मंथन करते हैं, वे नपुंसक होते हैं ॥४६-५२॥

उमा बोली—देवों में थोड़ा कौन ऐसा अनिष्ट तथा उतम कार्य है, जिसके करने से मनुष्य का कल्याण होता है ? ॥५३॥

महेश्वर ने कहा—जो धर्मान्वेदी तथा गुणाकण्डक्षी मनुष्य सदा ब्राह्मणों से कल्याण का मार्ग पूछते रहते हैं,

यदि मानुष्यतां देवि कदाचित्सनियच्छति । मेधावी धारणायुक्तः प्राज्ञस्तत्रापि जायते ॥५५॥
एष देवि सतां धर्मो गन्तव्यो भूतिकारकः । नृणां हितार्थाय सदा मया चैवमुदाहृतः ॥५६॥

उमोवाच

अपरे स्वल्पविज्ञाना धर्मविद्वेयिणो नराः । ग्राह्याणान्वेदविदुषो नेच्छन्ति परिसंपितुम् ॥५७॥
व्रतवन्तो नराः केचिच्छ्रद्धादमपरायणाः । अत्रता भ्रष्टनियमास्तयाज्ये राक्षसोपमाः ॥५८॥
यज्वानश्च तथैवान्ये निर्माह्यश्च तथा परे । केन कर्मविपाकेन भवन्तीह वदस्व मे ॥५९॥

महेश्वर उवाच

आप्तमालोकधर्माणा मर्यादा, पूर्वनिर्मिताः । प्रमाणेनानुवर्तन्ते दृश्यन्ते ह दृढव्रताः ॥६०॥
अधर्मं धर्ममित्याहुषे च मोहवशं गताः । अत्रता भ्रष्टमर्यादास्ते नरा ग्रहाराक्षसाः ॥६१॥
ये वै कालकृतोद्योगात्संभवन्तीह मानवाः । निर्होमा निर्वण्डकारास्ते भवन्ति नराधमाः ॥६२॥
एष देवि मया सर्वसंशयच्छेदनाय ते । कुशलाकुशलो नृणां व्याख्यातो धर्मसागरः ॥६३॥

इति श्रीमहापुराणे आदिव्राह्मे उमामहेश्वरसंवादे धर्मनिरूपणं नाम
पञ्चविंशत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२२५॥

वे स्वर्ग का भोग करते हैं। देवी ! यदि कदाचित् यह मनुष्य-योनि मे जन्म लेता है तो धारणायुक्त विद्वान् होता है। देवी ! यही सचर्चों का कल्याणकारक धर्म है। मनुष्यों के हित के लिये मैंने यह बतला दिया ॥५४-५६॥

उमा बोलीं—कोई मनुष्य अल्पज्ञानी, धर्मविद्वेयी तथा वेदवेत्ता ब्राह्मणों के अपमान करने वाले होते हैं। कोई मनुष्य व्रती, यज्ञालु तथा इन्द्रियों का दमन करने वाले होते हैं। कोई व्रत तथा नियमों से च्युत होकर राक्षस के समान होते हैं। कोई यज्ञवर्ता तथा निर्मोही होते हैं। विश्वधर्म के परिणाम से ये ऐसे होते हैं ? मुझे बतलाइये। ॥५७-५९॥

महेश्वर बोले—वेद, शास्त्र एवं धर्मों की मर्यादा पहिले से ही निर्मित है। दृढव्रती मनुष्य इसी के अनुसार व्रतते हैं। जो मनुष्य मोह में पड़कर अधर्म को धर्म मानता है और व्रत तथा मर्यादा को भग्न करता है, वह ब्रह्मराक्षस होता है। जो मनुष्य काल की श्रंखला से निर्मोही तथा बपट्टवार (यज्ञ) से धृष्य होते हैं, वे नराधम होते हैं। देवी ! तुम्हारा संशय मिटाने के लिये मनुष्यों के कल्याण-अवल्याण रयी धर्म-समुद्र का वर्णन किया गया ॥६०-६३॥

श्रीब्रह्ममहापुराण मे धर्मनिरूपण नामक दो सौ पञ्चीसवा अध्याय समाप्त ॥२२५॥

अथ षड्विंशत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

मुनिमहेश्वरसवादे वासुदेवमहिमवर्णनम्

व्यास उवाच

धूर्त्वं सा जगन्माता भर्तुर्वचनमादितः । हृष्टा ध्रुव सुप्रीता विस्मिता च तदा द्विजः ॥१॥
ये तत्राऽऽसन्मुनिवरास्त्रिपुरारेः समीपतः । तीर्थयात्राप्रसङ्गेन गतास्तस्मिन्निगौ द्विजाः ॥२॥
तेऽपि संपूज्य तं देवं शूलपाणिं प्रणम्य च । अप्रच्छुः संशयं चैव लोकानां हितकाम्यया ॥३॥

मुनय ऊचुः

त्रिलोचन नमस्तेऽस्तु दक्षत्रतुविनाशन । पृच्छामस्त्वां जगन्नाथ संशयं हृदि संस्थितम् ॥४॥
संसारोऽस्मिन्महाघोरे भंरये लोमहर्षणे । भ्रमन्ति सुचिरं कालं पुरुषाश्चात्पमेधसः ॥५॥
येनोपायेन मुच्यन्ते जन्मसंसारवन्धनात् । श्रूहि तच्छ्रोतुमिच्छामः परं कौतूहलं हि मः ॥६॥

महेश्वर उवाच

कर्मपाशनिबद्धानां नराणां दुःखभागिनाम् । नान्योपायं प्रपद्यामि वासुदेवात्परं द्विजाः ॥७॥
ये पूजयन्ति तं देवं शङ्खचक्रगदाधारम् । वाङ्मनःकर्मभिः सम्यक्ते यान्ति परमां गतिम् ॥८॥
किं तेषां जीविनेनेह पशुबच्चेष्टितेन च । येषां न प्रवर्णं चित्तं वासुदेवे जगन्मये ॥९॥

अध्याय २२६

शिव और मुनियों के सवाद में वासुदेव की महिमा का वर्णन

व्यास ने कहा—द्विजगण ! स्वामी के वचन को आदि से सुनकर जगन्माता पार्वती अत्यन्त प्रसन्न तथा विस्मित हुई । उस समय शिव के पास बैठे हुए मुनिवृन्द, जो तीर्थ-यात्रा की कामना से उस पर्वत पर गये हुए थे, शूलधारी शंकर को प्रणाम करके लोगों के कल्याण के निमित्त उनसे सदेह पूछने लगे ॥१-३॥

मुनियों ने कहा—तीन भेज वाले ! दक्षत्रतुविनाशन ! आपको नमस्कार है । जगन्नाथ ! हम अपने हृदय का सदेह आपसे पूछते हैं । महाभयकर तथा रोमाञ्चकारी इस दारुण संसार में अल्प बुद्धि वाले पुरुष चिर काल तक भ्रमण करते हैं । वे किस उपाय से जन्मरूपी संसारबन्धन से मुक्त होंगे, यह बतलाइये । उसे सुनने के लिये हमें बड़ी उत्कण्ठा हो रही है ॥४-६॥

महेश्वर ने कहा—द्विजवृन्द ! कर्म-जाल में फँसे दुःखी मनुष्यों के लिये वासुदेव से बढ़कर दूसरा उपाय तो मुझे नहीं दीखता है । जो मनुष्य मनसा, वाचा, कर्मणा उस शङ्ख-चक्र-गदाधारी देव की पूजा करते हैं, वे परम गति को पाते हैं । जिस मनुष्य का चित्त संसार रूप वासुदेव में नहीं लगता है, उसका जीवन व्यर्थ है, उसकी सारी क्रियायें पशु की तरह होती हैं ॥७-९॥

ऋषय ऊचुः

पिनाकिम्भगनेत्रघ्नं सर्वलोचनमस्कृत । माहात्म्यं वासुदेवस्य श्रोतुमिच्छामः शकर ॥१०॥

महेश्वर उवाच

पितामहादपि वरः शाश्वतः पुरुषो हरिः । कृष्णो जाम्बूनदाभासो व्यभ्रे सूर्य इवोदितः ॥११॥
 दशबाहुर्महातेजा 'देवतारिनिषूदन । श्रीवत्साङ्को हृषीकेशः 'सर्वदेवतयूयप ॥१२॥
 ब्रह्मा तस्योदग्भवस्तस्याहं च शिरोभवः । शिरोरुहेभ्यो ज्योतींषि रोमभ्यश्च सुरासुरा ॥१३॥
 ऋषयो देहसभूतास्तस्य लोकाश्च ग्राहयताः । पितामहगृहं साक्षात्सर्वदेवगृहं च सः ॥१४॥
 सोऽस्याः पृथिव्या कृत्स्नायाः स्रष्टा त्रिभुवनेश्वरः । सहर्ता चैव भूतानां स्यावरस्य चरस्य च ॥१५॥
 स हि 'देवदेवः साक्षाद्देवनाथ परतपः । सर्वज्ञः सर्वस्रष्टा सर्वगः सर्वतोमुखः ॥१६॥
 न तस्मात्परमं भूतं त्रिषु लोकेषु किञ्चन । सनतनो महाभागो गोविन्द इति विश्रुतः ॥१७॥
 स सर्वान्पार्थिवान्तरपेः घातयिष्यति भानदः । सुरकार्यार्यमुत्पन्नो मानुष्यं वपुरास्थितः ॥१८॥
 न हि देवगणः शक्तास्त्रिविधमविनाकुताः । भुवने देवकार्याणि कर्तुं नायकवर्जितः ॥१९॥
 नायकः सर्वभूतानां सर्वभूतनमस्कृतः । एतस्य देवनाथस्य कार्यस्य च परस्य च ॥२०॥
 ब्रह्मभूतस्य सततं ब्रह्मपिधारणस्य च । ब्रह्मा यत्सति नाभिस्त्यं शरीरेऽहं च सस्थितः ॥२१॥

ऋषियों ने कहा—पिनाक नामक धनुषपाती । भग्य देवता के नेत्र फोड़ने वाले । सब लोगों के भन्दनीय । शकर । वासुदेव का माहात्म्य हम सुनना चाहते हैं ॥१०॥

महेश्वर ने कहा—नित्य पुरुष वह हरि ब्रह्मा से श्री श्रेष्ठ है । सुपर्ण के समान कान्ति वाले कृष्ण उदयकालीन सूर्य व समान सुशोभित होते हैं ॥११॥ उनकी दस भुजायें हैं । वे महातेजस्वी तथा देवताओं के धनुओं के नायक हैं । उनके दश स्थल पर श्रीवत्स चिह्न सुशोभित है । इन्द्रियों पर उनका अधिकार है । वे समस्त देवों के अधिनायक हैं ॥१२॥ ब्रह्मा उनका पैर से उत्पन्न हुए हैं । मैं उनके शिर से उत्पन्न हुआ हूँ । उनके शिर के बालों से नक्षत्रगण तथा सौंसे सुर-असुर उत्पन्न हुए हैं ॥१३॥ उनकी देह से ऋषि-अमूह की उत्पत्ति हुई है । उनके लोह नित्य हैं । वे ब्रह्मा तथा समस्त देवों के आश्रय हैं ॥१४॥ वे तीनों भुवन के ईश्वर हैं तथा सब पृथ्वी के सृष्टिकर्ता हैं । स्यावर-जगम क नायकता भी वे ही हैं ॥१५॥ वे देवों के देव, देव-नाथ धनुषों के तपाने वाले, सर्वज्ञ, सब के स्रष्टा, सर्वगामी और सब ओर मुख वाले हैं ॥१६॥ तीनों लोक में उनसे बढ़कर कोई या कुछ नहीं है । वे सनातन, महामाग तथा गार्गिद नाम से प्रख्यात हैं ॥१७॥ वे सम्मान-दाता पुरुष देव-कार्य के लिये मनुष्य-शरीर धारण कर युद्ध में राजाओं को मारते हैं ॥१८॥ बिना उनके देवगण कुछ नहीं कर पाते हैं । देवताओं के कार्य के निमित्त उन्हें किसी नायक की आवश्यकता नहीं पड़ती है ॥१९॥ वे समस्त प्राणियों के नायक तथा सबगुण्य हैं । वे देवताओं के स्वामी ब्रह्मभूत तथा ब्रह्मपियों के रक्षण हैं । उनकी नाभि में ब्रह्मा तथा शरीर में मैं वास करता हूँ । उनके शरीर में समस्त देवगण सुखपूर्वक निवास करते हैं ॥२०-२१॥ वे देव नमललोचन श्रीगण, लक्ष्मीरमण, पद्म-धनुष-सङ्ग-

सर्वाः सुखं संस्थिताश्च शरीरे तस्य देवताः । स देवः पुण्डरीकाक्षः श्रीगर्भः श्रीसहोषितः ॥२२॥
 शार्ङ्गचक्रायुधः खड्गी सर्वनागरिपुष्पजः । उत्तमेन सुशीलेन शीघ्रेण च दमेन च ॥२३॥
 पराक्रमेण वीर्येण वपुषा दर्शनेन च । आरोहणप्रमाणेन वीर्येणार्जवसंपदा ॥२४॥
 'आनुशंस्येन रूपेण घलेन च समन्वितः । अस्त्रैः समुदितः सर्वैर्दिव्यैरङ्गैस्तदर्शनेः ॥२५॥
 योगमायासहस्राक्षो विरूपाक्षो महामनाः' । वाचा मित्रजनस्लाघो ज्ञातिबन्धुजनप्रियः ॥२६॥
 समावांश्चानहंवादी स देवो ब्रह्मादायकः' । भयहर्ता भयातानां 'मित्रानन्वविवर्धनः ॥२७॥
 शरण्यः सर्वभूतानां दीनानां पालने रतः । श्रुतवानय संपन्नः सर्वभूतनमस्कृतः ॥२८॥
 समाश्रितानामुपकृच्छ्रूणा' भयकृत्तया । नीतिज्ञो नीतिसंपन्नो ब्रह्मवादी जितेन्द्रियः ॥२९॥
 'भवार्यमेव देवानां बुद्ध्या परमया युतः । प्राजापत्ये शुभे मार्गे मानवे धर्मसंस्कृते ॥३०॥
 समुत्पत्त्यति गोविन्दो मनोर्वंशे महात्मनः । 'अंशो नाम मनोः पुत्रो ह्यन्तर्धामा ततः परम् ॥३१॥
 अन्तर्धाम्नो हविर्धामा प्रजापतिरनिन्दितः । प्राचीनवर्हिर्भविता हविर्धाम्नः सुतो द्विजाः ॥३२॥
 तस्य प्रचेत प्रमुखा भविष्यन्ति दशाऽऽत्मजाः' । प्राचेतसस्तया दशो भवितेह प्रजापतिः ॥३३॥
 दशावप्यस्तथाऽऽदित्यो मनुरादित्यतस्ततः । मनोश्च वंशज इत्य सुधुम्नश्च भविष्यति ॥३४॥
 बुधात्पुत्रद्वयाच्चापि तस्माद्वायुर्भविष्यति । नहुषो भविता तस्मादयतिस्तस्य चाऽऽत्मजः ॥३५॥
 यदुस्तस्मान्महासत्त्वः क्रोष्टा तस्माद्भविष्यति । 'क्रोष्टुश्चैव महापुत्रो वृजिनीवान्भविष्यति ॥३६॥

धारी और गहङ्गज कहलाते हैं । वे उत्तम शील, शीघ्र, दम, पराक्रम, शक्ति, दर्शनीय शरीर, अपरिमित वीर्य, ऋजुता, (सीमापन) सीमा रूप तथा बल से युक्त हैं । उन्हें सब प्रकार के आश्चर्यजनक दिव्य अस्त्र प्राप्त हैं । योगमाया के वे आश्रय हैं । वे महामना सहस्रनेत्रधारी तथा विरूपाक्ष कहलाते हैं । वाणी से वे मित्रों के हलाचनीय हैं तथा मार्ग-बन्धुओं के प्रिय हैं । वे देव क्षमावान्, अमिमानशून्य, ज्ञानदाता, भयपीडितों के भयहर्ता, मित्रों का आनन्द बढ़ाने वाले, सबके रक्षक, दीनों के पालन में निरत, वेदवेत्ता, संपन्न, समस्त प्राणियों से नमस्कृत, आश्रितों के उपकारी, शत्रुओं के लिए भयकारी, नीतिज्ञ, नीतिसंपन्न, ब्रह्मवादी तथा जितेन्द्रिय हैं ॥२२-२९॥ देव-कार्य के लिये परम बुद्धि से युक्त होकर गोविन्द मनु सम्बन्धी प्रजापति के धर्मयुक्त शुभ मार्ग का अनुगमन करते हुए महात्मा मनु के वंश में उत्पन्न होगे । मनु के अश नामक पुत्र होगा । अश के अन्तर्धाम और अन्तर्धाम के अनित्य प्रजापति हविर्धाम उत्पन्न होगा । हविर्धाम का पुत्र प्राचीनवर्हिस् होगा ॥३०-३२॥ उसके प्रचेता आदि दस पुत्र होगे । प्रचेता का पुत्र दश प्रजापति होगा । दश के आदित्य और आदित्य के मनु नामक पुत्र होगा । मनु के वंशज इला और सुधुम्न होगे । वृष से पुत्रद्वय और उससे वायु की उत्पत्ति होगी । वायु से नहुष और उससे ययाति की उत्पत्ति होगी ॥३३-३५॥ उससे महापराक्रमी यदु और यदु से क्रोष्टा उत्पन्न होगा । क्रोष्टा का महापुत्र वृजिनीवान् होगा ॥३६॥

१ ग अनुशंसेन । २ क ० न । वचो मि० । ३ क ग ० ह्नाय० । ४ क ० द्यागा तद्विनाशन । ५ क ० नूनाममि धर्मवित् । नी० । ६ क भवनाशकर श्रीमान्बुद्ध्या । ७ क अशुनीय । ८ क अज्ञो । ९ क ० न । प्रचे० । १० क व क्रोष्टोर्व० ।

वृजिनीवतश्च भविता 'उपङ्गुरपरजितः' । 'उपङ्गोर्भविता पुत्रः शूरश्चित्ररयस्तथा ॥३७॥
 तस्य त्ववरजः पुत्रः शूरो नाम भविष्यति । तेषां विख्यातवीर्याणां चारित्रगुणशालिनाम् ॥३८॥
 यज्विनां च विशुद्धानां वंशे ब्राह्मणसत्तमाः । स शूरः क्षत्रियश्रेष्ठो महावीर्यो महायशः ॥३९॥
 स्ववंशविस्तारकरं जनयिष्यति मानदम् । वसुदेवमिति ख्यात पुत्रमानकदुन्दुभिम् ॥४०॥
 तस्य पुत्रश्चतुर्बाहुर्वासुदेवो भविष्यति । दाता ब्राह्मणसत्कर्ता ब्रह्मभूतो द्विजप्रियः ॥४१॥
 राज्ञो बद्धान्स सर्वावे भोक्षयिष्यति यादवः । जरासंधं तु राजानं निजित्य गिरिगह्वरे ॥४२॥
 सर्वपाथिवरत्नादयो भविष्यति स वीर्यवान् । पृथिव्यामप्रतिहतो वीर्येणापि भविष्यति ॥४३॥
 वित्रमेण च संपन्नः सर्वपाथिवपाथिवः । शूरः 'संहननो' भूतो द्वारकायां वसन्प्रभुः ॥४४॥
 पालयिष्यति गां देवीं विनिजित्य दुराशयान् । त भवन्तः समासाद्य ब्राह्मणैरर्हण्वरैः ॥४५॥
 अर्चयन्तु यथान्याय ब्रह्माणमिव शाश्वतम् । यो हि मां द्रष्टुमिच्छेत ब्रह्माणं च पितामहम् ॥४६॥
 द्रष्टव्यस्तेन भगवान्यासुदेवः प्रतापवान् । द्रष्टे तस्मिन्नहं द्रष्टो न मेऽप्राप्ति विचारणा ॥४७॥
 पितामहो वासुदेव इति वित्त तपोधनाः । स यस्य पुण्डरीकाक्षः प्रीतिमुक्तो भविष्यति ॥४८॥
 तस्य देवगणः प्रीतो ब्रह्मपूर्वो भविष्यति । यस्तु त मानवो लोके संश्रयिष्यति केशवम् ॥४९॥
 तस्य कीर्तयंशश्चैव स्वर्गश्चैव भविष्यति । धर्माणां 'देशिकः' साक्षाद्भविष्यति स 'धर्मवान् ॥५०॥
 धर्मविद्भिः स देवेशो नमस्कार्यः सदाऽच्युतः । धर्म एव सदा हि स्यादस्मिन्नन्यचिते विभौ ॥५१॥

वृजिनीवान् के उच्यु नामक विजयी पुत्र होगा । उपगु के चित्ररय नामक वीर पुत्र होगा ॥३७॥ चित्ररय वा कनिष्ठ शूर नाम से विख्यात होगा । द्विजश्रेष्ठो प्रसिद्ध पराक्रमी, सच्चरित्रगुणशाली, यशस्वी तथा पवित्र राजाओं के वंश में महापराक्रमी तथा महामशहवी क्षत्रियश्रेष्ठ शूर अपने वंश को बढ़ाने वाले तथा प्रतिष्ठा वाले वसुदेव एवम् आनन्ददुन्दुभि नाम से ख्यात पुत्र को उत्पन्न करेंगे । उसने पुत्र चतुर्भुज वासुदेव हागे । वासुदेव ब्राह्मणों के सम्मान करने वाले, ब्रह्मभूत तथा द्विजप्रिय होंगे ॥३८-४१॥ वे समस्त बड़े राजाओं को जन्मवत करेंगे । पर्वत की गुफा में राजा जरासन्ध को जीतकर शक्तिशाली कृष्ण समस्त पृथ्वी के रत्नों से सम्पन्न होंगे । वे पृथ्वी पर अजेय होंगे ॥४२-४३॥ वे पराक्रमी से सम्पन्न तथा सब राजाओं के राजा होंगे । द्वारका में वास करते हुए सर्वशक्तिमान् कृष्ण द्रुष्ट चित्त वाले राजाओं को जीतकर पृथ्वी का पालन करेंगे । उत्तम ब्राह्मणों के साथ आप लोग उनसे समीप जाकर नित्य ब्रह्मा की तरह जनकी उचित सेवा करेंगे ॥४४-४५॥ जो मुझे तथा पितामह ब्रह्मा को देखना चाहता है, उसे प्रतापी भगवान् वासुदेव को देखना चाहिये । उनसे देख लेने पर मैं भी द्रुष्ट (देखा हुआ) हो जाता हूँ, इसमें सोचने की आवश्यकता नहीं है ॥४६-४७॥ जिस परबमललोचन भगवान् प्रसन्न होते हैं, वही तपस्वी सब कुछ वासुदेवमय है, ऐसा समझता है । जो मनुष्य भगवान् केचव का आश्रय लेता है, उस पर ब्रह्मा सहित देवगण प्रसन्न होते हैं । उसका यश बढ़ता है । उसे स्वर्ग प्राप्त होता है । वह धर्मात्मा साक्षात् धर्म का रूप हो जाता है । धर्मवेत्ताओं को सदा अच्युत भगवान् को नमस्कार करने का चाहिये । कृष्ण की पूजा से सदा धर्म ही धर्म होता है ॥४८-५१॥ उन महा-

१४ ०ता श्रृप० । २४ ०पद्मुर० । ३४ ०त । श्रृप० । ४४ ०पद्मोर्म० । ५४ पाता । ६४ पुरा० । ७४ सनहो । ८४ भूपान्दर० । ९४ पोषक । १०४ धर्मनार ।

स हि देवो महातेजाः प्रजाहितचिकीर्षया । धर्मायै पुरुषध्याम्य ऋषिकोटोः ससर्ज च ॥५२॥
ताः सृष्टास्तेन विधिना पर्वते गन्धमादने । सनन्कुमारप्रमुखास्तिष्ठन्ति तपसाऽन्विताः ॥५३॥
तस्मात्स वाग्मी धर्मज्ञो नमस्यो द्विजपुंगवा । वन्दितो हि स वदेत मानितो मानयित च ॥५४॥
दृष्टः पश्येदहरहः संश्रित प्रतिसंध्येत । अचितश्चाच्येन्नित्यं स देवो द्विजसत्तमाः ॥५५॥
एवं तस्यानवद्यस्य विष्णोर्वै परमं तपः । आदिदेवस्य महत् सज्जनाचरितं सदा ॥५६॥
भुवनेऽभ्याचितो नित्यं देवैरपि सनातनः । अभयेनानुरूपेण प्रपद्य तमनुग्रहात् ॥५७॥
कर्मणा मनसा वाचा स नमस्यो द्विजैः सदा । यत्नवद्भिरुपस्याय द्रष्टव्यो देवकीसुतः ॥५८॥
एष वै विहितो मार्गो मया धं मुनिसत्तमा । तं दृष्ट्वा सर्वदेवेश दृष्ट्वा स्युः सुरसत्तमाः ॥५९॥
महावराहं तं देवं सर्वलोकपितामहम् । अहं चैव नमस्यामि नित्यमेव जगत्पतिम् ॥६०॥
तत्र च त्रितयं दृष्टं भविष्यति न सशयः । समस्ता हि धर्यं देवास्तस्य देहे वसामहे ॥६१॥
तस्यैव चाग्रजो भ्राता सिततद्रिनिचयप्रभः । हलो चल इति ह्यातो भविष्यति धराधरः ॥६२॥
त्रिशिरास्तस्य देवस्य दृष्टोऽनन्त इति प्रभो । सुपर्णो यस्य वीर्येण कश्यपस्याऽऽत्मजो बली ॥६३॥
अन्तं नैवाशकद्वष्टुं देवस्य परमात्मनः । स च शेषो विचरते परया धं मुदा युतः ॥६४॥
अन्तर्वसति भोगेन परिरम्य वसुंधराम् । य एष विष्णुः सोऽनन्तो भगवान्बलुधाधरः ॥६५॥

तैजस्वी पुरुषपुगव ने प्रजा की हित-कामना से करोड़ों श्रुषियों की सृष्टि की। पर्वत पर भगवान् ने जिनकी सृष्टि की, वे सनत्कुमार आदि मुनि गन्धमादन पर्वत पर तपस्या कर रहे हैं॥५२-५३॥ द्विजधेष्ठो! इसलिये वे धाम्नी तथा धर्मज्ञ कृष्ण प्रणम्य हैं। वे देव वन्दित होने पर वन्दना करते हैं सम्मानित होने पर सम्मान करते हैं, वृष्टि-गोचर होने पर देखते हैं सेवित होने पर सेवा करते हैं और पूजित होने पर नित्य पूजा करते हैं॥५४-५५॥ इस प्रकार अनित्य एव महान् आदिदेव विष्णु का परम तप तथा सर्वदा सज्जना के अनुकूल आचरण है। अपने लोक में देवगण भी सनातन कृष्ण की पूजा करते हैं। भगवान् सबको उपासना के अनुरूप अमय-दान देते हैं। ब्राह्मणों को कर्म मन तथा वाणी से कृष्ण को नमस्कार करना चाहिये। यत्नपूर्वक उग्नसता करके कृष्ण का दर्शन करना चाहिये॥५७-५८॥ मुनिवर! इसी मार्ग को मैंने अपनाया है। उन अखिल देवों के स्वामी के दर्शन हो जाने पर समस्त देवों के दर्शन हो जाते हैं॥५९॥ मैं भी महाबराहकृष्ण, समस्त लोकों के उदात्त तथा सत्पुरुषों के स्वामी कृष्ण को नित्य नमस्कार करता हूँ॥६०॥ उनमें तीनों देवों का दर्शन निःसन्देह होता है। हम सब देवगण उनकी देह में वास करते हैं॥६१॥ उन्हीं के ज्येष्ठ भ्राता धरणीधर बलराम हैं, जो हल पारण करने वाले तथा स्वच्छ पर्वतराशि की तरह कान्ति वाले हैं। बलराम का नाम अनन्त है। वसुध-पुत्र गृह्य शक्ति से जिन परमात्मा बलदेव के अन्त में नहीं देख सके, वे शेषावतार बलमद्र परम हर्ष से विचरण करते हैं॥६२-६३॥ वे अपनी फणाओं से वसुधरा को वेष्टित कर पृथ्वी के भीतर वास करते हैं। जो विष्णु हैं, वे ही धरणीधर अनन्त हैं॥६४॥ जा बलराम हैं, वे ही सकल पृथ्वीधर अच्युत भगवान् हैं। मनोहर, दिव्य-

यो राम स हृषीकेशोऽयुत सर्वधराधरः । तावुभौ पुण्यव्याघ्रौ दिव्यौ दिव्यपराक्रमौ ॥६६॥
 द्रष्टव्यौ माननीयौ च चक्रलाङ्गलधारिणौ । एष वोऽनुग्रह प्रोक्तो मया पुण्यस्तपोधना ॥
 तद्भवन्तो यदुश्रेष्ठ पूजयेयु प्रयत्नतः ॥६७॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे ऋषिमहेश्वरसवादे
 षड्विंशत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२२६॥

अथ सप्तविंशत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

मुनिव्याससवादे विष्णुपूजाकथनम्

मुनय ऊचुः

अहो कृष्णस्य माहात्म्यं श्रुतमस्माभिरद्भुतम् । सर्वपापहरं पुण्यं धन्यं सत्सारनाशनम् ॥१॥
 संपूज्य विधिवद्भक्त्या वासुदेवं महामुने । का गतिं याति मनुजा वासुदेवार्चने रता ॥२॥
 किं प्राप्नुयन्ति ते मोक्षं किं वा स्वयं महामुने । अथवा किं मुनिश्रेष्ठ प्राप्नुवन्त्युभयं फलम् ॥३॥
 छेतुमहंसि सर्वज्ञं सत्यं नो हवि स्थितम् । छेता नाग्योऽस्ति लोकेऽस्मिन्स्वदुते मुनिसत्तम ॥४॥

व्यास उवाच

साधु साधु मुनिश्रेष्ठा भवद्भिर्पंडुराहुतम् । शृणुष्वमानुपूर्व्येण वर्णयानां सुखावहम् ॥५॥

पराक्रमी, तथा चक्र हठधारी वे दोता श्रेष्ठ पुरुष दर्शनीय एव माननीय हैं। मुनिवृन्द ! यह भगवान् का अनुग्रह समक्षिये जो आपने इस रहस्य को मुझसे प्राप्त किया। इसलिये आपलोग यत्नपूर्वक कृष्ण की पूजा करें ॥६६-६७॥
 श्रीब्रह्मा महापुराण में मुनि-महेश्वर ने सवाद में दो सौ छन्दोसर्वा अध्याय समाप्त ॥२२६॥

अध्याय २२७

मुनियो और व्यास के सवाद में वासुदेव-पूजन का वर्णन

मुनियो ने कहा—अहो ! हमने कृष्ण का अद्भुत, सर्वपापहारी, पवित्र, धन्यवादाहर्तया सत्सारनाशन माहात्म्य सुन लिया। महामुने ! भक्ति से विधिपूर्वक कृष्ण की पूजा करके वासुदेव की उपासना में निरत मनुष्य किस गति को प्राप्त हाते है ? उन्हें क्या मिलता है ? स्वयं या मोक्ष या दानो ? सर्वज्ञ ! मेरे हृदय ने सदेह को आर मिटा सकते हैं। मुनिश्रेष्ठ ! आपके अतिरिक्त इस लोक में कोई भी सत्य का छन्देद करने वाला नहीं है ॥१-३॥

व्यास ने कहा—मुनिधर ! आपने जा कहा खब ठीक है। अब आप साधु विष्णु-भक्ता को सुख देने का उतर सुनें। कृष्ण की दीक्षामात्र लेन से मनुष्य माय प्राप्त करते हैं। मुनिश्रेष्ठ ! जा सदा भक्तिपूर्वक

मन्वन्तरप्रमाणं तु भुक्त्वा कालं पृथक्पृथक् । भुवनानि पृथक्तेषां सर्वभोगैरलंकृताः ॥२०॥
 ततोऽन्तरिक्षं लोकं ते यान्ति सर्वसुखप्रदम् । तत्र भुक्त्वा वरान्भोगान्दशमन्वन्तरं द्विजाः ॥२१॥
 तस्माद्गन्धर्वलोकं तु यान्ति धैर्येणवा द्विजाः । विशन्मन्वन्तरं कालं तत्र भुक्त्वा मनोरमान् ॥२२॥
 भोगानादित्यलोकं तु तस्माद्यान्ति सुपूजिताः । त्रिंशन्मन्वन्तरं तत्र भोगान्भुक्त्वाऽतिदेवतान् ॥२३॥
 तस्माद्ब्रजन्ति ते विप्राश्चन्द्रलोकं सुखप्रदम् । मन्वन्तराणां ते तत्र चत्वारिंशद्गुणान्वितम् ॥२४॥
 कालं भुक्त्वा शुभान्भोगान्ज्वरामरणवर्जिताः । तस्मादक्षत्रलोकं तु विमानैः समलंकृतम् ॥२५॥
 प्रजन्ति ते मुनिधेष्ठा गुणैः सर्वैरलंकृता । मन्वन्तराणां पञ्चाशद्भुक्त्वा भोगान्ययेप्सितान् ॥२६॥
 तस्माद्ब्रजन्ति ते विप्रा देवलोकं सुदुर्लभम् । षष्टिमन्वन्तरं यावत्तत्र भुक्त्वा सुदुर्लभान् ॥२७॥
 भोगान्नानाविधान्विप्रा आर्द्रव्यष्टकसमन्वितान् । द्वायलोकं पुनस्तस्माद्गच्छन्ति सुरपूजिताः ॥२८॥
 मन्वन्तराणां तत्रैव भुक्त्वा कालं च सप्ततिम् । भोगानुच्चावचान्दिव्यान्मनसः प्रीतिवर्धनान् ॥२९॥
 तस्माद्ब्रजन्ति ते लोकं प्राजापत्यमनुत्तमम् । भुक्त्वा तत्रैप्सितान्भोगान्सर्वेषामगुणान्वितान् ॥३०॥
 मन्वन्तरमशीति च कालं सर्वसुखप्रदम् । तस्मात्पततामहं लोकं यान्ति ते वैरण्या द्विजाः ॥३१॥
 मन्वन्तराणां नवति क्रोडित्वा तत्र धैर्यं सुतम् । द्वाहाऽऽगत्य पुनस्तस्माद्विप्राणां प्रवरे कुले ॥३२॥
 जायन्ते योगिनो विप्रा वेदशास्त्रार्थपारगाः । एवं सर्वेषु लोकेषु भुक्त्वा भोगान्ययेप्सितान् ॥३३॥
 द्वाहाऽऽगत्य पुनर्यान्ति उपर्युपरि च क्रमात् । संभवे संभवे ते तु शतवर्षं द्विजोत्तमाः ॥३४॥

मुख देने वाले अन्तरिक्ष-लोक को जाते हैं। वहाँ दस मन्वन्तर बीतने तक उत्तम भोगों को भोगकर गन्धर्वलोक में जाते हैं। वहाँ बीस मन्वन्तरों तक मनोरम भोगों को भोगकर बहुत सम्मान के साथ आदित्यलोक में जाते हैं। ॥२०-२२॥ वहाँ तीस मन्वन्तरों तक देवदुर्गम भोगों को भोगकर सुखदायक चन्द्रलोक में जाते हैं। वहाँ चालीस मन्वन्तरों तक जरा-मरण से रहित होकर उत्तम भोगों को भोगकर विमानों से सुखपूर्वक क्षत्रलोक में जाते हैं। ॥२३-२५॥ मुनिधेष्ठो ! वहाँ के समस्त गुणों से युक्त होकर पचास मन्वन्तरों तक यथेच्छ भोगों को भोगकर दुर्लभ देवलोक में जाते हैं ॥२६॥ वहाँ साठ मन्वन्तरों तक नाना प्रकार के अत्यन्त दुर्गम भोगों को भोगकर देव-शास्त्रों से पूजित होकर इन्द्रलोक में जाते हैं ॥२७-२८॥ वहाँ सत्तर मन्वन्तरों तक मन को दबने वाले गमस्त्र दिग्ग भोगों को भोगकर उत्तम प्रजापतिलोक में जाते हैं। वहाँ अस्सी मन्वन्तरों तक समस्त गुणों से युक्त अमिलपित्र भोगों का भोगकर पितामहलोक में जाते हैं ॥२९-३१॥ वहाँ नब्बे मन्वन्तरों तक शुभ भोगकर इस लोका में ब्राह्मणों के उत्तम कुल में जन्म लेते हैं और वेद-शास्त्र-पारंगत योगी होते हैं ॥३२॥ इस प्रकार समस्त लोकों में यथेष्ट भोगों का भोगकर वहाँ जाते हैं और पुनः क्रमशः ऊपर-ऊपर के लोकों में जाते हैं ॥३३॥ त्रिगुण ! प्रत्येक जन्म में सौ-सौ वर्षों तक यथेष्ट भोगों को भोगकर दूगरे लोक में जाते हैं। इस प्रकार जब उनसे दस जन्म

१४ मवतारः। २४ त ०४ का मुमान्मा०। ३४ ते बीतत००। ४४ त ०४ मुदा युकास्त०।
 ५४ त ०० न्ति पु०। ६४ गता पु०। ७४ त ०० यथास्तम्। ८०। ८४ षष्टिकर्णः।

भुक्त्वा ययेप्सितान्भोगान्यान्ति लोकान्तरं ततः । दशजन्म यदा तेषां क्रमेणैवं प्रपूर्यते ॥३५॥
तदा लोकं हरेर्दिव्यं ब्रह्मलोकोद्भवन्ति ते । गत्वा तत्राक्षयान्भोगान्भुक्त्वा सर्वगुणान्वितान् ॥३६॥
मन्वन्तरशतं यापयज्जन्ममृत्युविवाजिताः । गच्छन्ति भुवनं पञ्चाद्वाराहस्य द्विजोत्तमाः ॥३७॥
दिव्यदेहाः कुण्डलिनो महाकाया महाबलाः । श्रोडन्ति तत्र विप्रेन्द्राः कृत्वा ह्येवं चतुर्भुजम् ॥३८॥
दश कोटिसहस्राणि वर्षाणां द्विजसत्तमाः । तिष्ठन्ति दाश्वते भावे 'सर्वदेवैर्ममसृताः' ॥३९॥
[ततो यान्ति तु ते धीरा नरसिंहगृहं द्विजाः । श्रोडन्ते तत्र मुदिता वर्षकोट्ययुतानि च ॥४०॥
तदन्ते वैष्णव यान्ति पुरं सिद्धनिषेवितम् । श्रोडन्ते तत्र सौख्येन वर्षाणामयुतानि च ॥४१॥
ब्रह्मलोके पुनर्विप्रा गच्छन्ति साधकोत्तमाः । तत्र स्थित्वा चिरं कालं वर्षकोटिशतान्वहन् ॥४२॥
नारायणपुरं यान्ति ततस्ते साधकेश्वरा । भुक्त्वा भोगांश्च विविधान्वर्षकोट्ययुतानि च ॥४३॥
अनिरुद्धपुरं पञ्चादिव्यवस्था महाबलाः । गच्छन्ति साधकवराः स्तूयमानाः सुरासुरैः ॥४४॥
तत्र कोटिसहस्राणि वर्षाणां च चतुर्दश । तिष्ठन्ति वैष्णवास्तत्र जरामरणवर्जिताः ॥४५॥
'प्रद्युम्नस्य पुरं पञ्चाद्वगच्छन्ति विगतज्वराः । तत्र तिष्ठन्ति' ते विप्रा लक्षकोटिशतत्रयम् ॥४६॥
स्वच्छन्दगामिनो हृष्टा बलशक्तिसमन्विताः । गच्छन्ति योगिनः पञ्चाद्यत्र सकर्षणः प्रभुः ॥४७॥
ततोपित्वा चिरं कालं भुक्त्वा भोगान्सहस्रशः । विशन्ति कामुदेवैर्निर्विषाण्ये निरञ्जने ॥४८॥

पूरे हो जाते हैं तब वे ब्रह्मलोक से दिव्यलोक में जाते हैं। वहाँ जन्म-मरण से रहित होकर सौ मन्वन्तरो तक सर्वगुण-सम्पन्न अक्षय भोगों को भोगकर पश्चात् बाराहलोक में जाते हैं। फिर वहाँ कुण्डलयुक्त दिव्य देह पाएँ कर महाकाय, महाबलवान् तथा चतुर्भुज होकर दश सहस्र कोटि वर्ष पर्यन्त जीवा करते हैं और ब्रह्मभूत होकर सब देवा से नमस्कृत होते हैं ॥३४-३९॥ तदनन्तर वे धीर पुरुष नरसिंहलोक में जाते हैं। वहाँ भी दश सहस्र कोटि वर्ष पर्यन्त हर्षपूर्वक जीवा कर अन्त में सिद्धयणों से सुलेखित दिव्यलोक में जाते हैं। वहाँ दश हजार वर्ष पर्यन्त सुख से जीवा कर उत्तम साधक पुनः ब्रह्मलोक में जाते हैं। वहाँ करोड़ों वर्ष तक रहकर श्रेष्ठ साधक नारायणपुर जाते हैं। वहाँ करोड़ा अरब वर्ष पर्यन्त विविध भोगों को भोगकर श्रेष्ठ साधक पश्चात् अनिरुद्धपुर जाते हैं। वहाँ वे जन्म-मरण से रहित, दिव्यकाय तथा महाबलवान् होकर सुर-असुरों से स्तुत होते हुए चौदह सहस्र कोटि वर्ष पर्यन्त रहते हैं। तदनन्तर वे सुखपूर्वक प्रद्युम्नपुर जाते हैं। वहाँ स्वेच्छाकारी, हृष्ट तथा बल-शक्ति-समन्वित होकर करोड़ा वर्ष पर्यन्त रहते हैं ॥४०-४६॥ पश्चात् वे योगी पुरुष बलमद्रालोक में जाते हैं। वहाँ चिरकाल तक हजारों भोगों को भोगकर रूपरहित निरञ्जन कामुदेव में प्रवेश करते हैं। फिर

१क सर्वलोकम० । २क ०घकोत्तमा । मु० । ३क ख प्राद्युम्नेय । ४क ०न्ति वर्षाणि ल० ।

५क स ०तदय० । ६क विप्रा ।

विनिर्मुक्ता परे तत्त्वे जरामरणवर्जिते । तत्र गत्वा विमुक्तास्ते भवेयुर्नात्र सशय ॥४९॥
एव क्रमेण भुक्ति ते प्राप्नुवन्ति मनीषिण । भुक्तिं च मुनिशार्दूला वासुदेवाचने रता ॥५०॥

इति श्रीमहापुराणे आदिवाह्ये वैष्णवानां गतिव्यापन नाम

सप्तविंशत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२२७॥

अथ अष्टाविंशत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

व्यासमुनिसवादे विष्णुपूजाकथनम्

व्यास उवाच

एकादश्यामुभे पक्षे निराहार^१ समाहित । स्नात्वा सम्यग्विधानेन धौतवासा जितेन्द्रिय ॥१॥
सपूज्य विधिवद्विष्णु श्रद्धया सुसमाहित । पुष्पैर्गन्धैस्तथा दोषैर्धूपैर्नैवद्यैर्कस्तथा ॥२॥
उपहारबहुविधैर्जप्यैर्होमप्रदक्षिणैः । स्तोत्रैर्नानाविधैर्दिव्यैर्गौतवाद्यैर्मनोहरैः ॥३॥
दण्डवत्प्रणिपातैश्च जयशब्दैस्तथोत्तमैः । एव सपूज्य विधिवद्वात्रो कृत्वा प्रजागरम् ॥४॥
कथा वा गीतिका विष्णोर्गायन्विष्णुपरायण । याति विष्णो पर त्याग नरो नास्त्यत्र सशय ॥५॥

तो जरा-मरण-वर्जित परम तत्त्व को प्राप्त कर वे नि सन्देह मुक्त हो जाते हैं । मुनिश्रेष्ठो ! वासुदेव की उपासना में निरत विद्वान् लोग इस प्रकार क्रमशः मुक्ति तथा मुक्ति प्राप्त करते हैं ॥४७-५०॥

श्रीब्रह्ममहापुरुषाय न विष्णु भक्तता की गति निरूपण नामक दो सी सताईसवा अध्याय समाप्त ॥ २२७॥

अध्याय २२८

व्यास और मुनियों के सवाद में विष्णु-पूजा आदि का वर्णन

व्यास ने कहा—(विष्णु भक्त मनुष्य) दोनों पक्षों की एकादशी में निराहार तथा सावधान होकर रहे। विधानपूर्वक स्नान करके पवित्र वस्त्र पहन और इन्द्रियों को बन्ध म रखे। पुष्प, गन्ध, दीप, धूप, नैवेद्य, अनेक उपहार, जप होम प्रदक्षिणा विधि दिव्य स्तोत्र मनोहर, शीत-वाय, दण्डवत्प्रणाम तथा उत्तम जयशब्दों से अत्यन्त श्रद्धापूर्वक विष्णु की पूजा करे। इस प्रकार विधिपूर्वक पूजा करके रात्रि में जाग्रत करे और विष्णु की कथा या गीत गाये। ऐसा करने से विष्णुपरायण मनुष्य नि सन्देह विष्णुलोक में जाता है ॥१-५॥

मृनय ऊचुः

प्रजागरे गोतिकाया.' फलं विष्णोर्महामुने । ब्रूहि तच्छ्रेयुमिच्छामः पदं कौतूहलं हि नः ॥६॥

व्यास उवाच

शृणुष्वं मुनिशार्दलाः प्रवक्ष्याम्यनुपूर्वशः । गीतिकायाः फलं विष्णोर्जागरे यदुदाहृतम् ॥७॥
 धवन्ती नाम नगरी बभूव भुवि विश्रुता । तत्राऽस्ते भगवान्विष्णुः शङ्खचक्रगदाधरः ॥८॥
 तस्या नगर्याः पश्चन्ते चाण्डालो शोतिकोविदः । सद्बृत्त्योत्पादितघनो भृत्यानां भरणे रतः ॥९॥
 विष्णुभवतः स चाण्डालो मासि मासि दृढव्रतः । एकादश्यां समागम्य सोपवासोऽयं गायति ॥१०॥
 गीतिका विष्णुनामाङ्काः प्रादुर्भाविस्समाश्रिताः । गान्धारपङ्जनैपादस्वरपञ्चमधैवतैः ॥११॥
 रात्रिजागरणे विष्णुं गाथाभिरुपगयति । प्रभाते च प्रणम्येते द्वादश्यां गृहमेत्य च ॥१२॥
 जामातृभागिनेयाश्च भोजयित्वा सक्तन्यकाः । ततः सपरिवारस्तु पश्चाद्भुङ्क्ते द्विजोत्तमाः ॥१३॥
 एवं तस्याऽऽतस्तत्र कुर्वन्तो विष्णुप्रीणनम् । गीतिकाभिर्विचित्राभिर्ययः प्रतिगतः बहू ॥१४॥
 एकदा चैत्रमासे तु कृष्णकादशिगोचरे । विष्णुशुभ्रपणार्थाय ययौ वनमनुत्तमम् ॥१५॥
 वनजातानि पुष्पाणि ग्रहीतुं भविततत्परः । क्षिप्रतटे महारण्ये विभीतकतरोरधः ॥१६॥
 दृष्टः स राक्षसेनाय गृहीतश्चापि भक्षितुम् । चाण्डालस्तमयोवाच नाथ भक्ष्यस्त्वया ह्यहम् ॥१७॥

मुनियों ने कहा—मुनिश्रेष्ठ ! जागरण में विष्णु के गीत बाने से क्या फल मिलता है ? हम सुतना चाहते हैं। हमें बड़ी उत्कण्ठा हो रही है ॥६॥

[illegible]

१ख ०काया फ० । २क ख गीतको० । ३ख सदा सोऽपि मा० । ४ग स्वग्न्यका । ५क ०चरै । वि० ।

प्रातर्भोदयसि कल्याण सत्यमेव्याम्यहं पुनः । अद्य कार्यं मम महत्तस्मान्मुञ्चस्व राक्षस ॥१८॥
 इवः सत्येन समेव्यामि ततः खादसि मामिति । विष्णुशुभ्रयणार्थाय रात्रिजागरणं मया ॥
 कार्यं न श्रतविघ्नं मे कर्तुमर्हसि राक्षस ॥१९॥

व्यास उवाच

तं राक्षसः प्रत्युवाच दशरात्रमभोजनम् । ममाभूदद्य च भवान्मया लब्धो मतङ्गज ॥२०॥
 न मोक्ष्ये भक्षयिष्यामि क्षुधया पीडितो भूजम् । निशाचरवचः श्रुत्वा मातङ्गस्तमुवाच ह ॥
 सान्त्वयच्छलक्षण्या याचा स सत्यवचनेन्दुदेः ॥२१॥

मातङ्ग उवाच

'सत्यमूलं जगत्सारं ब्रह्मराक्षस तच्छृणु । सत्येनाहं शपिष्यामि पुनरागमनाय च ॥२२॥
 आदित्यश्चन्द्रमा बह्निर्वायुर्भूद्यौर्जलं मनः । अहोरात्रं यमः संप्ये द्वे विदुर्नरचेष्टितम् ॥२३॥
 परदारेषु यत्पापं यत्परद्रव्यहारिषु । यच्च ब्रह्महनः पापं सुरापे मुष्टतल्पे ॥२४॥
 'बन्ध्यापतेश्च यत्पापं यत्पाप वृषलीपतेः । यच्च देवलके पापं मत्स्यमांसाशिनश्च यत् ॥२५॥
 क्रोडमांसाशिनो यच्च' कूर्ममांसाशिनश्च यत् । यूया मांसाशिनो यच्च पृष्ठमांसाशिनश्च यत् ॥२६॥
 कृतघ्ने मित्रघातके यत्पापं विधिपूषतो । भूतकस्य च यत्पापं यत्पापं क्रूरकर्मणः ॥२७॥

मैं सत्य कहता हूँ । फिर मैं आऊँगा । राक्षस । आज मुझे बड़ा कार्य है, इसलिये छोड़ दो । बल मैं अवश्य आऊँगा, तब खा लेता । विष्णु की पट्टिर्था के लिये मुझे रात में जागना है । तुम्हें मेरे व्रत में विघ्न नहीं डालना चाहिये । ॥१५-१९॥

। । व्यास ने कहा—राक्षस ने उसको उत्तर दिया—'चाण्डाल' । मैं दश रात से भूखा हूँ । आज तुमको पाया हूँ । मैं नहीं छोड़ूँगा । क्षुधा से पीडित हूँ । अतः अवश्य खाऊँगा ।' राक्षस की बात सुनकर चाण्डाल घोरमल बाणी से उसे सान्त्वना देते हुए दृढ़ तथा सत्य बचन बोलने लग्य ॥२०-२१॥

चाण्डाल ने कहा—ब्रह्मराक्षस । श्रुतो, सत्यमूलक ही सम्पूर्ण जगत् है । उसी सत्य को लेकर मैं पुन आने के लिये शपथ करता हूँ ॥२२॥ सूर्य, चन्द्रमा, अग्नि, वायु, पृथ्वी, आकाश, जल, मन, दिन, रात, यम तथा दोनों सन्ध्यायें मनुष्यों की क्रियामो को जानती हैं । परस्त्री-गमन में जो पाप होता है, दूसरे के घन चुराने में जो पाप होता है, ब्रह्महत्या में जो पाप होता है, मदिरापन तथा गृह-पत्नी-गमन में जो पाप होता है ॥२३-२४॥ बन्ध्यापति तथा भूदापति होने से जो पाप होता है, गुजारी होने में जो पाप होता है । मत्स्य-मांस खाने में जो पाप होता है शूकर का मांस खाने में जो पाप होता है ॥२५॥ बछुए का मांस, श्वर्ष्य मांस तथा पीठ का मांस खाने में जो पाप होता है, कृतघ्नता तथा मित्र के साथ विश्वासघात करने में जो पाप होता है, पुनर्विवाहिता स्त्री के पति बनने में जो पाप होता है, भूतक, क्रूरकर्म तथा कृपण होने में जो पाप होता है, बन्ध्या स्त्री के अतिथि होने में जो पाप होता है,

कृष्णस्य च यत्पापं यच्च' धन्यातिथेरपि । अमावास्याज्जट्मो पण्डी कृष्णशुक्लचतुर्दशी ॥२८॥
 'तासु' यद्गमनात्पापं 'यद्विप्रो व्रजति स्त्रियम् । रजस्वलां तथा पद्मचाच्छादं कृत्वा स्निग्धं व्रजेत् ॥२९॥
 'सर्वस्वस्नातभोज्यानां यत्पापं' भलभोजने । मित्रभार्या गच्छतां च यत्पापं पिशुनस्य च ॥३०॥
 दम्भमायानुरक्ते च यत्पापं 'मधुधातिनः । ब्राह्मणस्य प्रतिश्रुत्य यत्पापं तदयच्छतः ॥३१॥
 यच्च कम्पानूते पापं यच्च रोदवतरानूते' । स्त्रीबालहन्तुर्यत्पापं यच्च मिथ्याभिभाषिणः ॥३२॥
 'देववेदद्विजनूपपुत्रमित्रसतीस्त्रियः । यच्च निन्दयतां पापं' 'गुरुमिथ्यापचारतः ॥३३॥
 अग्नित्यागिषु यत्पापमग्निदायिषु यद्वनम्' । गृहेष्ट्या पातके यच्च यद्गोघ्ने यद्विजाघमे ॥३४॥
 यत्पापं परिवित्ते च यत्पापं परिवेदिनः । तयोर्दत्तुग्रहीत्रोश्च यत्पापं भ्रूणधातिनः ॥३५॥
 किं चात्र बहुभिः प्रोक्तैः शपथैस्तव राक्षस । श्रूयता शपथं भोमं दुर्वाच्यमपि कथ्यते ॥३६॥
 विकन्याजीविनः पापं 'गूढसत्येन साक्षिणः । अयाज्ययाजके षष्ठे यत्पापं 'श्वर्गोऽघमे ॥३७॥

अमावास्या, जट्मो, पण्डी तथा उमय पक्ष की चतुर्दशी में स्त्रीपूजन करने से जो पाप होता है, रजस्वला स्त्री से सम्भोग करने से जो पाप होता है, धाद करने के बाद स्त्री प्रसंग करने से जो पाप होता है ॥२८-२९॥ बिना स्नान किये भोजन करने से जो पाप होता है, मल-भोजन करने से जो पाप होता है, मित्रपत्नी-नामन में जो पाप होता है, पिशुनता, दम्भ तथा छल करने से जो पाप होता है, मधु सक्लियों के मारने में जो पाप होता है, ब्राह्मण के साथ प्रतिज्ञा करके फिर न देने में जो पाप होता है ॥३०-३१॥ असत्यता से कन्या, गाय एवम् अश्व श्माम करने में जो पाप होता है, स्त्री तथा बालक की हत्या करने में जो पाप होता है मिथ्यामापन करने में जो पाप होता है, देवता, वेद, ब्राह्मण, राजा, वाहन, मित्र तथा सती स्त्री की निन्दा करने में जो पाप होता है, गुरु के साथ मिथ्या व्यवहार करने से जो पाप होता है, अग्निहोत्र स्थापने से वन में अग्नि लगाने से तथा गृह में याग करने से जो पाप होता है, गोहत्या करने से जो पाप होता है, अघम ब्राह्मण को जो पाप होता है परिवित्ता (बहु बड़ा भाई जिसके छोटे भाई ने उससे पहले ही विवाह कर लिया है) परिवेदी, (बहु छोटा भाई जिसने अपने बड़े भाई से पहले ही विवाह कर लिया है) तथा जनको (दान) देने वाले एवम् (उनसे दान को वस्तु) ग्रहण करने वाले को जो पाप होता है, गर्मपात करने वाले को जो पाप होता है, वे सब पाप मुझे ही यदि मैं तुम्हारे पास न आऊँ ॥३२-३५॥ राक्षस ! तुम से अधिक शपथ मैं क्या कहूँ ? मुनी, मयकर तथा दुर्वाच्य शपथ भी मैं तुमसे करता हूँ । अपनी कन्या बेचकर जीविका चलाने वाले को जो पाप होता है, सत्य पर पर्दा डालकर गवाही देने वाले को जो पाप होता है, राज के अनधिकारी के मंत्र करने वाले को तथा नपुंसक को जो पाप

१क यत्पाप ग्रामयाजके । अ० । २ग ०कलत्रयोदशी । ३क तेषु । ४क यच्छरणात्ता० । ५क ०द्विप्रा ध्यायत स्त्रिय० । ६क ०स्वप्रान्तमोज्या० । ७क शल्पमोजिनाम् । ८क ०धुगन्यन । ९क ०पवनरा० । १०क ०पयज्ञसधिस० । ११ग ०प सुरा मिथ्यापचयंत । १२ख ०मिथ्योपरेतत । १३ख ०ने । गूढचेष्टेषु यत्पाप यच्च गोघ्ने द्विजा । १४ग कूटसत्येन । १५ख ०वपाप० ।

प्रव्रज्यावसिते यच्च ब्रह्मचारिणि कामुके । एतैस्तु पापैर्लिप्येऽहं यदि नैष्यामि तेऽन्तिकम् ॥३८॥

ध्यास उवाच

मातङ्गवचनं श्रुत्वा विस्मितो ब्रह्मराक्षसः । प्राह गच्छस्व सत्येन समयं चैव पालय ॥३९॥

इत्युक्तः कुणपाशेन श्वपाकः कुसुमानि तु । समादापाममचैव दिष्णोः स निलयं गतः ॥४०॥

तानि प्रादाद्ब्राह्मणाय सोऽपि प्रक्षाल्य चाम्भसा । विष्णुमभ्यर्च्य निलय जगाम स तपोधनाः ॥४१॥

सोऽपि मातङ्गदायादः सोपवासस्तु तां निशाम् । गायन् हि बाह्यभूमिष्ठः प्रजागरमुपाकरोत् ॥४२॥

प्रभातायां तु शर्वर्यां स्नात्वा देवं नमस्य च । सत्यं स समयं कर्तुं प्रतस्ये यत्र 'राक्षस' ॥४३॥

तं यजन्तं पथि नरः प्राह भद्रं वव गच्छसि । स तथाऽकथयत्सर्वं सोऽप्येनं पुनरब्रवीत् ॥४४॥

धर्मयिकाममोक्षाणां शरीरं साधनं यतः । महता तु प्रयत्नेन शरीरं पालयेद्बुधः ॥४५॥

जीवधर्मयिसुखं नरस्तथाऽऽप्नोति मोक्षगतिमग्याम् ।

जीवन्कीर्तिमुपैति च भवति मृतस्य का कथा लोके ॥४६॥

मातङ्गस्तद्बुधः श्रुत्वा प्रत्युवाचाय हेतुमतं

॥४७॥

मातङ्ग उवाच

भद्रं सत्यं पुरस्कृत्य गच्छामि शपथाः कृताः

॥४८॥

होता है, निम्न बात ध्वज करने में जो पाप होता है, सम्पास लेकर गृहस्वी करने वाले को तथा कामी ब्रह्मचारी को जो पाप होता है, वे सब पाप मुझे हों, यदि मैं तुम्हारे पास न आऊँ ॥३९-३८॥

ध्यास ने कहा—चाण्डाल की बात सुनकर ब्रह्मराक्षस विस्मित हुआ और बोला—‘जो, सत्य की शपथ का ध्यान रखना।’ राक्षस के बहने के बाद चाण्डाल ने फूल लेकर विष्णु-मन्दिर में जाकर ब्राह्मण को दे दिया। ब्राह्मण भी फूल को जल से धोकर विष्णु की पूजा कर अपना घर चला गया ॥३९-४१॥ चाण्डाल उस दिन उपवास करके रात में विष्णु प्रीत्यर्थ गीतो को गाते हुए बाहरी भूमि में रह कर जागरण करने लगा। प्रभात होने पर स्नान करके देवता को नमस्कार करके वचन पूरा करने के लिये राक्षस ने पास चल पड़ा। रास्ते में एक व्यक्ति ने उससे पूछा—‘भद्र! कहाँ जा रहे हो?’ उसने सब वृत्तान्त बतलाया। उस व्यक्ति ने फिर कहा—धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की प्राप्ति का साधन शरीर ही है ॥४२-४५॥ इसलिये विद्वान् मनुष्य महान् प्रयत्न करके इसका पालन करते हैं ॥४२-४५॥ जीवित मनुष्य धर्म, धन, सुख तथा अन्तिम मोक्षगति को प्राप्त करते हैं। जीवित रहने पर ही यश भी मिलता है। मृतक की तो इस लोक में बात ही क्या है?’ चाण्डाल उसका वचन सुनकर सारगमित वाक्य बोला ॥४६-४७॥

चाण्डाल ने कहा—भद्र! मैंने सत्य को आगे करके शपथ की है।

व्यास उवाच

तं भूयः 'प्रत्युवाचाय किमेवं मूढधीर्भवान् । किं न श्रुतं त्वया साधो मनुना यदुदीरितम् ॥४९॥
 गोस्त्रीद्विजानां परिरक्षणार्थं, विवाहकाले 'सुरतप्रसङ्गे ।
 प्राणात्यये 'सर्वधनापहारे, पञ्चानृतान्याहुरपातकानि ॥५०॥
 धर्मवाक्यं न च स्त्रीषु न विवाहे तथा रिपो । वञ्चने चार्थहानी च स्वनाशेऽनृतके तथा ॥
 एवं तद्वाक्यमाकर्ण्य मातङ्गः प्रत्युवाच ह ॥५१॥

मातङ्ग उवाच

मैं वदस्व भद्रं ते सत्यं लोकेषु पूज्यते । सत्येनावाप्यते सौख्यं यत्किञ्चिज्जगतीगतम् ॥५२॥
 सत्येनाकं प्रतपति सत्येनाऽऽपो रसात्मिकाः । ज्वलत्यग्निश्च सत्येन घाति सत्येन मारुत ॥५३॥
 धर्मायकामसंप्राप्तिर्मोक्षप्राप्तिश्च दुर्लभा । सत्येन जायते पुंसां तस्मात्सत्यं न संत्यजेत् ॥५४॥
 सत्यं ब्रह्म परं लोके सत्यं यज्ञेषु चोत्तमम् । सत्यं स्वर्गसमायातं तस्मात्सत्यं न संत्यजेत् ॥५५॥

व्यास उवाच

इत्युक्त्वा सोऽयं मातङ्गस्तं प्रक्षिप्य नरोत्तमम् । जगाम तत्र यत्राऽस्ते प्राणिहा ब्रह्मराक्षस ॥५६॥
 तमागतं समीक्ष्य सो चाण्डाल ब्रह्मराक्षसः । विस्मयोत्कल्लनयनः शिरःकम्पं तमब्रवीत् ॥५७॥

व्यास ने कहा—उस व्यक्ति ने फिर चाण्डाल से कहा—‘तुम मूर्ख हो । क्या तुमने मनु का वचन नहीं सुना है ? उनका कहना है—‘गाय, स्त्री तथा ब्राह्मण की रक्षा के निमित्त, विवाहकाल में, रतिप्रसंग में, प्राण-संकट में और सर्वस्व अपहरण में मिथ्या बोलने से पाप नहीं लगता है । स्त्रियों के साथ बातलाप करने में, विवाह में, शत्रु को ठगने में, और घननाश तथा प्राणनाश के समय धर्मवाक्य नहीं माना जाता है ।’ उसका वचन सुनकर चाण्डाल ने उत्तर दिया ॥४८-५१॥

चाण्डाल ने कहा—‘तुम्हारा कल्याण हो । ऐसा मत नहो । तीनों लोक में सत्य की पूजा होती है । ससार में जो कुछ भी सुख है, वह सत्य से प्राप्त होता है । सत्य से सूर्य प्रकाशित होता है, सत्य से जल रसरूप होता है, सत्य से अग्नि प्रज्वलित होता है, सत्य से वायु बहता है । पुरुषों को धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की दुर्लभ प्राप्ति सत्य से ही होती है । इसलिये सत्य का परित्याग नहीं करना चाहिये । लोक में सत्य परब्रह्म है, सत्य यज्ञों में सबसे उत्तम है, सत्य से स्वर्ग-प्राप्ति होती है । इसलिये सत्य को नष्टो छोड़ना चाहिए ॥५२-५५॥

व्यास ने कहा—इतना कहकर उस मनुष्य को छोड़कर वह चाण्डाल वहाँ से लिये चल पड़ा, जहाँ वह जीवाहिक ब्रह्मराक्षस रहता था । अग्रे हुए चाण्डाल ने देखकर ब्रह्मराक्षस परमविस्मित होकर शिर कंपाते हुए बोला ॥५६-५७॥

१क ख ०चासो कि० । २क ख ०दुदाहृत० । ३ख मुखदे च धर्मं । प्रा० । ग सुहृदा च धर्मं । प्रा० । ४ग ०र्वजनो० । ५ग ०क्षे कुलक भवेत् । ए० । ६ख ०समस्ताव त० ।

ब्रह्मराक्षस उवाच

साधु साधु महाभाग सत्यवाक्यानुपालक । न मातङ्गमह मये भवत सत्यलक्षणम् ॥५८॥
 कर्मणाऽनेन' मन्ये त्वां ब्राह्मण 'शुचिमन्ययम् । यत्किंचित्त्वा भद्रमुख प्रवक्ष्ये धर्मसंश्रयम् ॥
 किं तत्र भवता रात्रौ कृत विष्णुगृहे वद ॥५९॥

व्यास उवाच

तमस्युवाच मातङ्ग शृणु विष्णुगृहे मया । यत्कृत रजनीभागे यथातथ्यं वदामि ते ॥६०॥
 विष्णोर्देवकुलस्यापि स्थितेनाऽनन्तमूर्तिना । प्रजागरः कृतो रात्रौ गाधता विष्णुगीतिकाम ॥६१॥
 तब्रह्मराक्षस प्राह कियत् कालमुच्यताम् । प्रजागरो विष्णुगृहे कृत (तो) भक्तिमता वद ॥६२॥
 तमस्युवाच प्रहसन्विशत्यवदानि राक्षस । एकादश्या मासि मासि कृतस्तत्र प्रजागर ॥

ब्रह्मराक्षस उवाच

मातङ्गवचन श्रुत्वा प्रोवाच ब्रह्मराक्षस ॥६३॥
 यदद्य त्वा प्रवक्ष्यामि तदभयावस्तुमहति । एकरात्रिकृत साधो मम दहि प्रजागरम् ॥६४॥
 एव त्वा मोक्षयिष्यामि मोक्षयिष्यामि नायथा । त्रि सत्येन महाभाग इत्युक्त्वा विरराम ह ॥६५॥

व्यास उवाच

मातङ्गस्तमुवाचाय मयाऽऽप्ता ते निशाचर । निर्वेदित किमुक्तेन ह्यदस्व स्वेच्छयाऽपि माम् ॥६६॥

ब्रह्मराक्षस बोला—महाभाग ! सत्य वचन के पालन-कर्ता ! ठीक ठीक ! ! तुम इतने सत्यात्मा हो कि मैं बन्धी नहीं मान सकता कि तुम चाण्डाल हो । इस कम से मैं तुम्हें पवित्र तथा नाशरहित ब्राह्मण मानता हूँ । तुम अतीव परमात्मा हो कल्याणमय हो । मैं जो कुछ पूछता हूँ वह बतलाओ । रात्रि में तुमने विष्णु मन्दिर में क्या सब किया ? ॥५८-५९॥

व्यास ने कहा—चाण्डाल ने उससे कहा—तुमों रात में मैंने विष्णु मन्दिर में जो किया वह यथापत बतला देता हूँ । विष्णु के नीचे नतमस्तक होकर मैं रात भर विष्णु-गीत गाते हुए जागता रहा । (इस पर) ब्रह्मराक्षस ने उससे पूछा—कितने दिनों से तुम विष्णु मन्दिर में जागरण करते हो ? कहाँ । चाण्डाल ने हसते हुए कहा—राक्षस ! बीस वर्ष से मैं प्रत्येक मास की एकादशी को जागरण करता हूँ । चाण्डाल की बात सुनकर ब्रह्मराक्षस बोला ॥६०-६३॥

ब्रह्मराक्षस बोला—आज जो मैं तुमसे पूछ वह बतलाओ । साधो ! तुम अपना एक रात्रि के जागरण का फल मुझ दे दो । ऐसा करने से मैं तुम्हें छोड़ दूँगा अथवा नहीं छोड़ूँगा । महाभाग ! मैं तीन बार सत्य का साक्षी करके कहता हूँ । इतना कहकर राक्षस चुप हो गया ॥६४-६५॥

व्यास ने कहा—सदन-तर चाण्डाल ने कहा—राक्षस ! मैंने अपने को समर्पित कर दिया । तुम स्वेच्छा से खा डालो । फिर राक्षस ने कहा—अच्छ तो दो घड़ी भर के सगीत के फल देने की कृपा करो ।

तमाह राक्षसो भूयो यामद्वयप्रजागरम् । सगीतं मे प्रयच्छस्व कृपां कर्तुं त्वमर्हसि ॥६७॥
मातङ्गो राक्षसं प्राह किमसंबद्धमुच्यते । खादस्व स्वेच्छया मां त्वं न प्रदास्ये प्रजागरम् ॥
मातङ्गवचनं श्रुत्वा प्राह तं ब्रह्मराक्षसः ॥६८॥

ब्रह्मराक्षस उवाच

को हि दुष्टमतिर्मन्दो भवन्तं द्रष्टुमुत्सहेत् । धर्पयितुं पीडयितुं रक्षितं धर्मकर्मणा ॥६९॥
दीनस्य पापप्रस्तस्य विषयेर्मोहितस्य च । नरकर्तस्य मूढस्य साधवः स्युर्दयान्विताः ॥७०॥
तन्ममत्वं महाभाग कृपां कृत्वा प्रजागरम् । यामस्यैकस्य मे देहि गच्छ वा निलयं स्वकम् ॥७१॥

व्यास उवाच

तं पुनः प्राह चाण्डालो न यास्यामि निजं गृहम् । न चापि तव दास्यामि कथं चिद्यामजागरम् ॥
तं प्रहस्याय चाण्डालं प्रोवाच ब्रह्मराक्षसः ॥७२॥

ब्रह्मराक्षस उवाच

राग्यवसाने या गीता गीतिका कौतुकाश्रया । तस्याः फलं प्रयच्छस्व त्राहि पापात्तमुद्धर ॥७३॥

व्यास उवाच

एवमुच्चारिते तेन मातङ्गस्तमुवाच ह

॥७४॥

चाण्डाल बोला—'क्यों धर्म की बात करते हो? तुम मयेच्छ खाओ। मैं जागरण का फल नहीं दूंगा।' चाण्डाल की बात सुनकर ब्रह्मराक्षस ने कहा ॥६६-६८॥

ब्रह्मराक्षस बोला—कौन ऐसा दुष्टमति होगा, जो मुझे घटकारने या पीडा देने के लिये तुम्हारी ओर दृष्टिपात करेगा? तुम अपने घुम धर्मों के द्वारा सुरक्षित हो। दीन, पापप्रस्त, विषयान्ध, नरक-पीडित तथा मूर्ख पर सामु लोभ दया करते हैं। महाभाग! इसलिये कृपा करके तुम एक घड़ी का जागरण मुझे दे दो अथवा अपने घर चले जाओ ॥६९-७१॥

व्यास ने कहा—चाण्डाल ने फिर उससे कहा—'मैं अपने घर नहीं जाऊंगा और तुम्हें एक घड़ी का जागरण भी नहीं दूंगा।' तब ब्रह्मराक्षस ने हँसकर उससे कहा ॥७२॥

ब्रह्मराक्षस ने कहा—अच्छा तो रात के अन्त में जो तुमने गीत गाया, उसी का फल देकर मुझे पाप से बचाओ ॥७३॥

व्यास ने कहा—इतना रहने पर चाण्डाल ने उससे कहा ॥७४॥

मातङ्ग उवाच

किं पूर्वं भवता कर्म विवृतं कृतमञ्जसा । येन त्वं दोषजातेन 'सभूतो' ब्रह्मराक्षसः ॥७५॥

व्यास उवाच

तस्य तद्वाक्यमाकर्ण्य मातङ्ग ब्रह्मराक्षस । प्रोवाच दुःखसततं सस्मृत्य स्वकृतं कृतम् ॥७६॥

ब्रह्मराक्षस उवाच

'धूयता योऽहमास वै पूर्वं यन्त्र मया कृतम् । यस्मिन्कृते पापयोनिं गतवानस्मि राक्षसीम् ॥७७॥

सोमशर्मं इति हयातं पूर्वमासमहं द्विज । पुनोऽध्ययनशीलस्य देवशर्मस्य यज्वनः ॥७८॥

कस्यचिद्यजमानस्य सूत्रमन्त्रबहिष्कृतं । नृपस्य 'कर्मसत्तेन' यूपकर्मसुनिष्ठितं ॥७९॥

आग्नीध्रं चाकरोद्यते सोममोहप्रपीडित । तस्मिन्परिसमाप्ते तु मोक्षार्थादग्निमनुष्ठितं ॥८०॥

यष्टुमारब्धवानस्मि द्वादशाहं महाश्रुतम् । प्रवर्तमाने तस्मिन्स्तु कुक्षिशूलोऽभवन्मम ॥८१॥

'संपूर्णे' दशरात्रे तु न समाप्ते तथा कृतौ । विटपाक्षस्य दीयन्त्यामाहुत्या राक्षसे क्षणे ॥८२॥

मृतोऽहं तेन दोषेण सभूतो ब्रह्मराक्षसः । 'मूर्खेण' मन्त्रहीनेन सूत्रस्वरविवर्जितम् ॥८३॥

अज्ञानता यद्यविद्या यद्विष्टं यजितं च यत् । तेन कर्मविपाकेन सभूतो ब्रह्मराक्षसः ॥८४॥

तन्मा पापमहाम्भोधो निमग्नं त्वं समुद्धर । प्रजागरे गीतिकां पश्चिमां दातुमर्हसि ॥८५॥

चाण्डाल बोला—तुझे पहले तीन सा कुत्रम किया था, जिसके दोष से तুম ब्रह्मराक्षस हो गये ? ॥७५॥

व्यास न कहा—उसकी बात सुनकर अत्यन्त दुःखी ब्रह्मराक्षस ने अपने बर्गों का स्मरण कर चाण्डाल से कहा ॥७६॥

ब्रह्मराक्षस बोला—पहले जो मैं था जो कर्म किया और जिसके करने से इस पापी राक्षस-योनि में आ गया हूँ वह सब तम मुनो ॥७७॥ पहले मैं योगशर्मा नामक ब्राह्मण था । अध्ययनशील तथा यज्ञकर्ता देवशर्मा का मैं पुत्र था । मैं सूत्र-मन्त्र कुछ नहीं जानता था । फिर भा एक यज्ञमान के यज्ञकर्म में मैंने भाग ले लिया । सोम मोक्ष में फसकर मैंने होता का कायमार ग्रहण किया । यज्ञ समाप्त होने पर मूखता तथा दग्ध के कारण मैंने १२ दिनों में सम्पन्न होने वाला महायज्ञ पूरा कर दिया । यज्ञारम्भ में ही मेरे पेट में पीडा होने लगी । दश रात बात जाने पर जब मैं गिर को आहुति दे रहा था तभी मेरा देहान्त हो गया । उसी दोष से मैं ब्रह्मराक्षस हुआ । मूख मन्त्रहीन तथा सूत्र-स्वर से रहित होकर यद्यविद्या को न जानते हुए भी जो मैंने यज्ञ किया तथा कराया उसी कर्म के दोष से मैं ब्रह्मराक्षस हुआ । इसलिये मैं पापसमुद्र में निमग्न हूँ मेरा उद्धार करो । जागरण काल में पिछले एक गीत का भी फल मुझ दे दो ॥७८ ८५॥

१क प्राप्नो। २क राक्षसयोनिताम। ३क अता हि महाबुद्ध पू०। ४क न। किंचिच्च यज०। ग ०न किंचित्तो यज०। ५क अस्य शूद्रमत्तबहि०। ख अस्य शूद्रस्याग्नब०। ६ख कर्मसत्तेन। ग यूपशाकतस्तु। ७ख ०न पूर्वक०। ८क ख ०मस्वनुष्ठि०। ९ग कमणि। १०ख न अपूर्णं। ११ख मुखेन।

व्यास उवाच

तमुवाचाय चाण्डालो यदि प्राणिवधाद्भवान् । निर्वृत्तिं कुस्ते दद्या तत् पश्चिमगोतिकाम् ॥८६॥
 बाढमित्यवदत्तोऽपि मातङ्गोऽपि ददौ तदा । गोतिकाफलमामृत्यु मूर्धनार्थप्रजागरम् ॥८७॥
 तस्मिन्गोतिकले दत्ते मातङ्ग ब्रह्मराक्षस । प्रणम्य प्रणम्यो हृष्टस्तोत्रैर्वयं पूयूदकम् ॥८८॥
 तत्रानशनसकल्पं कृत्वा प्राणाञ्जहो द्विजा । राक्षसत्वाद्दिनिर्मुक्तो गोतिकाफलवृंहित ॥८९॥
 पूयूदकप्रभावाच्च ब्रह्मलोकं च दुर्लभम् । दश वर्षसहस्राणि निरातङ्गकोऽवसत्तत ॥९०॥
 तत्त्वान्ते ब्राह्मणो जातो बभूव स्मृतिमान्वशो । तस्याहं चरितं भूय कथयिष्यामि भो द्विजा ॥९१॥
 मानङ्गस्य कथाशेषं शृणुध्वं गदतो मम । राक्षसे तु गते धीमान्गृहमेत्य यथात्मवान् ॥९२॥
 तद्विप्रचरितं स्मृत्या निविण्णं शुचिरप्यसौ । पुत्रेषु भार्या निक्षिप्य ददौ भूम्या प्रदक्षिणाम् ॥९३॥
 शोकामुखात्समारम्य धावद्वे स्कन्ददर्शनम् । दृष्ट्वा स्कन्दं पयो धाराचक्रे चापि प्रदक्षिणम् ॥९४॥
 ततोऽद्विवरमगम्य विन्ध्यमुच्चशिलोच्चयम् । पापप्रमोचनं तोयमासताव स तु द्विजा ॥९५॥
 स्नानं पापहरं चक्रे स तु चाण्डालवशज । विमुक्तपापं सस्मार पूर्वजातोऽनेकश ॥९६॥
 स पूर्वजन्मन्यभवेद्भिक्षुं सयतवाद्भिमना । यतकायश्च भतिमान्वेदवेदाङ्गपारग ॥९७॥
 एकदा गोपु नगराद्भ्रियमाणोऽसौ तत्करं । भिक्षावधूता रजसा मुक्ता तैनाय भिक्षुणा ॥९८॥

व्यास ने कहा—तदुपरान्त चाण्डाल ने उससे कहा—यदि तुम प्राणियों का मारना बंद कर दो तो मैं पिछले गीत का फल दे दूँ । उसने कहा—हां निश्चय । तब चाण्डाल ने आधी घड़ी के जागरण तथा गीत का फल उसे दे दिया । गीत-फल दे देने पर ब्रह्मराक्षस चाण्डाल को प्रणाम करने पूयूदक नामक तीर्थ में चला गया ॥८६ ८८॥ द्विजगण वहाँ उसने अन्तर्गम का सत्कृत्य करके प्राणत्याग कर दिया । गीत-फल ले लेने के कारण वह राक्षसयोनि से मुक्त हो गया । पूयूदक तीर्थ के प्रभाव से वह दुर्लभ ब्रह्मलोक में गया । वहाँ दश हजार वर्ष तक वह सुखपूवक वास करता रहा ॥८६ ९०॥ अंत में वह धर्मशास्त्रा तथा जितेन्द्रिय होकर उत्पन्न हुआ । द्विजवृन्द । उसका चरित्र-वर्णन मैं फिर करूँगा । अभी चाण्डाल का कथाशेष आप लोग सुन ॥९१३॥ राक्षस के चले जाने पर वह समय तथा बुद्धिमान चाण्डाल घर आया । उस ब्राह्मण के चरित्र का स्मरण करने-वह स्वयं तीर्थ तक यात्रा की । धाराचक्र की भी प्रदक्षिणा की ॥९२ ९४॥ तब विन्ध्याचल पर्वतपर चढ़कर वह स्कन्द तीर्थ तक यात्रा की । धाराचक्र की भी प्रदक्षिणा की ॥९२ ९४॥ तब विन्ध्याचल पर्वतपर चढ़कर वह पाप प्रमोचन नामक तीर्थ में पहुँचा । उसमें स्नान करके वह पापमुक्त होकर अपने पूर्वजन्म का स्मरण करने लगा ॥९५ ९६॥ वह पूव जन्म में सयमा नाम्नी बुद्धिमान तथा वेदवेदांगपरगत भिक्षुक था ॥९७॥ एक समय बहुत से चौर-नगर से गांधी काटे जा रहे थे । भिक्षावधूत बरते हुए उस भिक्षुक ने देखकर भी गांधी को नहीं छुड़ाया । उसी पाप के दोष से वह चाण्डाल-योनि में उत्पन्न हुआ । पापप्रमोचन में स्नान करके वह नमदा नदी

१क य ०धाराचक्र । २ग स्नान । ३क जितकायश्च । ४य ०वभूता । ५स मुक्ता ।

स 'तेनाधर्मदोषेण चाण्डालो योनिमागतः । पापप्रमोचने स्नातः स भूतो नमंदातटे' ॥१९॥
 मूर्खोऽभूद्ब्राह्मणवरो वाराणस्यां च भो द्विजाः । तत्रास्य वसतोऽब्देस्तु त्रिंशद्भिः सिद्धपुरुषः ॥१००॥
 विरूपरूपो बभ्राम योगमायाबलान्वितः । तं दृष्ट्वा सोपहासार्यमभिवाद्याभ्युवाच ह ॥१०१॥
 कुशलं सिद्धपुरुषं कुतस्त्वागम्यते त्वया ॥१०२॥

व्यास उवाच

एवं संभाषितस्तेन ज्ञातोऽहमिति चिन्त्य तु । प्रत्युवाचाथ वन्द्यस्तं स्वर्गलोकादुपागतः ॥१०३॥
 तं सिद्धं प्राह मूर्खोऽसौ किं त्वं वेत्सि त्रिविष्टपे । नारायणोरुप्रभवामुर्वशीमप्सररोवराम् ॥१०४॥
 सिद्धस्तमाह तां वेद्मि शक्रचामरधारिणीम् । स्वर्गस्याऽऽभरणं मुख्यमुर्वशीं साधुसंभवाम् ॥१०५॥
 विप्रः सिद्धमुवाचाथ ऋजुमार्गविवर्जितः । तन्मित्र मत्कृतं वार्तामुर्वश्या भवताऽऽदरात् ॥१०६॥
 कथनीया यच्च सा ते ब्रूयादास्यास्यते भवान् । बाढमित्यब्रवीत्सिद्धः सोऽपि विप्रो मुदाऽन्वितः ॥१०७॥
 ध्रुवः सिद्धोऽपि ययौ मेरुपृष्ठं सुरालयम् । समेत्य चोर्वशीं प्राह यद्वक्तोऽसौ द्विजेन तु ॥१०८॥
 सा प्राह तं सिद्धवरं नाहं काशिपतिं द्विजम् । जानामि सत्प्रभुवतं ते न चेत्तसि मम स्थितम् ॥१०९॥
 हस्त्यवतः प्रययौ सोऽपि कालेन बहुना पुनः । वाराणसीं ययौ सिद्धो दृष्टो मूर्खेण वै पुनः ॥११०॥

के तट पर जाकर मर गया ॥१८-१९॥ तदनन्तर उसने वाराणसी में महामूर्ख होकर जन्म लिया। वहाँ तीस वर्ष के बाद एक दिन कोई सिद्ध योगी उसे मिले। उन्हें देखकर उपहास करने के लिये उसने प्रणाम करके उनसे पूछा—'कहिये, कुशल है? वहाँ से आ रहे हैं?' ॥१००-१०२॥

व्यास ने कहा—इस प्रकार पूछे जाने पर योगी ने समझा कि इसने मुझे पहचान लिया। इसलिये उन्होंने कहा कि मैं स्वर्गलोक से आ रहा हूँ। तब मूर्ख ने फिर उनसे प्रश्न किया—'स्वर्ग में भगवान् की जया से उत्पन्न उर्वशी नामक अष्ट अप्सरा को आप जानते हैं?' ॥१०३-१०४॥ सिद्ध ने उत्तर दिया—'हाँ, इंद्र को चामर डुलाने वाली, स्वर्ग-मुष्ण तथा महात्म्य से उत्पन्न उर्वशी को मैं जानता हूँ ॥१०५॥' ब्राह्मण ने सरल मार्ग की छोड़ कर सिद्ध से कहा—'मित्र! मेरी बात आप उर्वशी से आदरपूर्वक कह देंगे। तब वह जो वृक्षों से भी बतला देंगे।' सिद्ध ने कहा—'अच्छ।' ब्राह्मण प्रसन्न हो गया ॥१०६-१०७॥ सिद्ध सुमेरुपर्वत पर चले गये। वहाँ उन्होंने उर्वशी से ब्राह्मण का निवेदन कह सुनाया। उर्वशी ने सिद्ध से कहा—'मैं काशी के ब्राह्मण को नहीं जानती हूँ। मैं सत्य कहती हूँ। मेरा उससे कोई परिचय नहीं है।' इसके बाद बहुत दिन बीत जाने पर सिद्ध पुनः वाराणसी गये। फिर उस मूर्ख ने उन्हें देख लिया। देखते ही पूछा—'उर्वशी ने क्या कहा?' सिद्ध ने उत्तर

१क तेन ब्रह्मदो०। ख तेन भमदो०। २ग मुदो। ३क ०टे। मुख्योऽमू०। ख ०टे। मुक्तोऽमू०।
 ४क ख विशदिम। ५क ख बलवान्योग०। ६क ०रुप कु०। ७ख ग चिरात्। ८ख वन्द्य तत्त्व०।
 ९ग. ०गप्रपवितम्। त०।

दृष्ट पृष्टः किल भूयः किमाहोर्भवा तव । सिद्धोऽब्रवीन्न जानामि मामुवाचोर्वशी स्वयम् ॥१११॥
 सिद्धवाक्य ततः श्रुत्वा स्मितभिन्नोऽष्टसप्तुटः । पुनः प्राह कथं चेत्सीत्येवं वाच्या त्वयोर्वशी ॥११२॥
 बाधमेवं करिष्यामीत्युक्त्वा सिद्धो विव गतः । ददर्श शक्रभवनान्निष्कामन्तीमयोर्वशीम् ॥११३॥
 प्रोवाच ता सिद्धवरः सा च तं सिद्धमब्रवीत् । नियम कचिदपि हि करोतु द्विजसत्तम ॥११४॥
 येनाहं कर्मणा सिद्ध त जानामि न चान्यथा । तदुर्वशीवचोऽभ्येत्य तस्मै मूर्खद्विजाय तु ॥११५॥
 कथयामास सिद्धस्तु सोऽप्योमं नियमं जगौ । तवाग्रे सिद्धपुरुष नियमोऽयं कृतो मया ॥११६॥
 न भोक्ष्येऽग्रभूति वं शकटं सत्यमीरितम् । इत्युक्त प्रययौ सिद्धः स्वर्गे दृष्ट्वोर्वशीमय ॥११७॥
 प्राहासौ शकटं भोक्ष्ये नाग्रभूति कर्हिचित् । त सिद्धमुर्वशी प्राह ज्ञातोऽसौ साप्रतं मया ॥११८॥
 नियमग्रहणादेव मूर्खो मा (ऽय) मुपहासकः । इत्युक्त्वा प्रययौ शीघ्र वासं नारायणात्मजा ॥११९॥
 सिद्धोऽपि विचचारासौ कामचारी महोत्तलम् । उर्वशीपि वरारोहा गत्वा वाराणसीं पुरीम् ॥१२०॥
 मत्स्योदरोजले स्नानं चक्रे दिश्यवपुर्धरा । अयासावपि मूर्खस्तु नदीं मत्स्योदरीं मुने ॥१२१॥
 जगामाय ददर्शासौ स्नायमानामयोर्वशीम् । ता दृष्ट्वा बभूधेऽयास्य मनस्य शोभकृद्वदम् ॥१२२॥
 चकार मूर्खश्चेष्टाश्च तं विवेदोर्वशी स्वयम् । तं मूर्खं सिद्धगदित ज्ञात्वा सस्मितमाह तम् ॥१२३॥

विद्या—‘उर्वशी ने कहा—‘मैं उसे नहीं जानती हूँ ॥१०८-१११॥ सिद्ध के वाक्य को सुनकर मुस्कराते हुए ब्राह्मण ने कहा—‘जब की आज उर्वशी से कहिएगा—‘तुम कैसे जान सकती हो ॥११२॥?’ ‘अच्छा’ कहकर सिद्ध स्वर्ग चले गये। चन्द्रमवन से निकलती हुई उर्वशी को देखकर सिद्ध ने ब्राह्मण का कथन सुना दिया। उर्वशी ने सिद्ध से कहा—‘यदि वह ब्राह्मण मुझसे कोई प्रतिज्ञा करे तो मैं उसे जान जाऊँगी। अन्यथा तो जान ही नहीं सकती।’ उर्वशी की बात सिद्ध ने आकर मूल ब्राह्मण से कह दी। ब्राह्मण बोला—‘सिद्धपुरष’ आपक सामने मैं यह प्रतिज्ञा करता हूँ कि आज से मैं शकट (तिनिया या घब बल वा फल वा गाड़ी) नहीं खाऊँगा।’ ॥११३-११६॥ इसके बाद सिद्ध ने स्वर्ग में जाकर उर्वशी से कहा—‘उसने प्रतिज्ञा की है कि आज से लेकर मैं कभी शकट नहीं खाऊँगा।’ तब उर्वशी ने कहा—‘हाँ, अब मैं जान गयी। प्रतिज्ञा करने से ही मैं समझ गयी कि यह मूर्ख मेरा उपहास करने वाला है।’ इतना कहकर वह शीघ्र ही अपने वासस्थान पर चली गयी ॥११७-११९॥ स्वेच्छाचारी सिद्ध भी पृथ्वी पर विचरण करने लगे। तब सुन्दरी उर्वशी वाराणसी जाकर दिव्य शरीर पारण कर मत्स्योदरी नामक नदी के जल में स्नान करने लगी। वह मूर्ख ब्राह्मण भी स्नान करती हुई उर्वशी को देखने के लिये मत्स्योदरी के तट पर पहुँचा। उर्वशी को देखते ही उसका कामवैग बढ़ गया। वह अपनी चेष्टा भी प्रकट करने लगा। उर्वशी उस मूर्ख से बारी म सिद्ध के मुख से मुन चुकी थी। इसलिये स्वयं उसे पहचान कर मुस्कगती हुई बाली ॥१२०-१२३॥

उर्वंश्युवाच

किमिच्छसि महाभाग मत्त शीघ्रमिहोच्यताम् । करिष्यामि वचस्तुभ्य त्वं विप्रश्च करिष्यसि ॥१२४॥

मूर्खब्राह्मण उवाच

आत्मप्रदानेन मम प्राणान्गच्छ शुचिस्मिन्ने

॥१२५॥

व्यास उवाच

तं प्राहायोर्वंशो विप्र नियमस्याऽस्मि साप्रतम् । त्वं तिष्ठस्व क्षणमयं प्रतीक्षस्वाऽऽगतं मम ॥१२६॥

स्थितोऽस्मोत्यब्रवीद्विप्रः सार्धं स्वर्गं जयामह । मासमात्रेण साऽऽयाता ददर्श तं कृशं द्विजम् ॥१२७॥

स्थित मास नदीतीरे निराहार सुरङ्गना । तं दृष्ट्वा निश्चययुतं भूत्वा बृद्धवपुस्ततः ॥१२८॥

सा चकार नदीतीरे शकटं शर्करावृतम् । धृतेन मधुना चैव नदीं मत्स्योदरीं गता ॥१२९॥

स्नात्वाऽप्य भूमौ वसती शकटं च ययार्थं । तं ब्राह्मणं समाहूय वाक्यमाह सुलोचना ॥१३०॥

उर्वंश्युवाच

मया तीव्रं व्रतं विप्रं चोर्णं सौभाग्यकारणात् । व्रतान्ते निष्कृतिं दद्या प्रतिगृह्णीष्व भो द्विज ॥१३१॥

व्यास उवाच

स प्राह किमिदं लोके दीपते शर्करावृतम् । क्षुत्क्षामकं पृच्छामि साधु भद्रे समीरय ॥१३२॥

उर्वंशी बोली—महाभाग ! मुझसे क्या चाहते हो ? शीघ्र बतलाओ । तुम विरवाप्त करो । मैं तुम्हारी बात भानूंगी ॥१२४॥

मूर्ख ब्राह्मण ने कहा—एक हास्य करने वाली ! तुम आभयान देकर मेरे प्राणों की रक्षा करो ॥१२५॥

व्यास ने कहा—तब उवर्षी ने उससे कहा—इस समय मैं नियम-पालन कर रही हूँ । तुम क्षण भर मेरे आगमन की प्रतीक्षा करो । ब्राह्मण ने कहा—मैं ठहरता हूँ । उवर्षी स्वयं चली गई । एक महीने में बाद लौटी । तब तक वह ब्राह्मण नदी तट पर निराहार रहकर कुशवाय हो गया था । उसका वट निश्चय देखकर उवर्षी शकट में शकर धी और मधु मिलाकर मत्स्योदरी में स्नान करके तट पर उस ब्राह्मण को बुलाकर कहने लगा ॥१२६॥ १३०॥

उर्वंशी ने कहा—विप्र ! मैंने सौभाग्य में उग्र व्रत को सम्पन्न किया । अब मैं तुम्हें बदला दूंगी । इसे स्वीकार करो ॥१३१॥

व्यास ने कहा—ब्राह्मण ने पूछा—भद्रे ! यह गुरुमिथित कौन सी चीज तुम दे रही हो ? मैं मुखाभ्यास हूँ । सब बतलाओ । १३२॥ उर्वंशी ने कहा—विप्र ! यह गुरुमिथित शकट है । इसे शीघ्र खाकर तुम आत्म

सा प्राह शकटो विप्र शकंरापिष्टसंयुतः । इमं त्वं समुपादाय प्राणं तर्पय मा चिरम् ॥१३३॥
 स तच्छ्रुत्वाऽयं संस्मृत्य धुषया पीडितोऽपि सन् । प्राह भद्रे न गृह्णामि' नियमो हि कृतो मया ॥१३४॥
 पुरतः सिद्धवर्गस्य न भोक्ष्ये शकटं त्विति । परित्थानार्थमुर्वंश्या ददस्वान्यस्य कस्यचित् ॥१३५॥
 साऽब्रवीन्नियमो भद्र कृतः काष्ठमये त्वया । नासौ काष्ठमयो भुङ्क्ष्य धुषया चातिपीडितः ॥१३६॥
 तां ब्राह्मणः प्रत्युवाच न मया तद्विशेषणम् । कृतं भद्रेऽयं नियमः सामान्येनैव मे कृतः ॥१३७॥
 तं भूय प्राह सा तन्वी न चेद्भोक्ष्यसि ब्राह्मण । गृहं गृहीत्वा गच्छस्व कुटुम्बं तव भोक्ष्यति ॥१३८॥
 स तामुवाच सुवति न तावद्योमि मन्दिरम् । इहाऽऽयाता वरारोहा त्रैलोक्येऽप्यधिका गुणैः ॥१३९॥
 सा मया मदनात्तेन' प्रार्थिताऽऽवसितस्तया । स्वीयतां क्षणमित्येवं स्यास्यामीति मयोदितम् ॥१४०॥
 मासमानं गतायास्तु तस्या भद्रे स्थितस्य च । मम सत्यानुरक्तस्य संगमाय धृतव्रते ॥१४१॥
 तस्य सा वचनं श्रुत्वा कृत्वा स्वं रूपमुत्तमम् । विहस्य भावगम्भीरमुर्वंशी प्राह तं द्विजम् ॥१४२॥

उर्वंशुवाच

सांयु सत्यं स्वया विप्र व्रतं निष्ठितचेतसा । निष्पादितं हठादेव मम दर्शनमिच्छता ॥१४३॥
 अहमेवोर्वंशी विप्र' त्वां 'जिज्ञासार्थमागता । परोक्षितो निश्चितवान्भवान्गत्यतपा ऋषि' ॥१४४॥
 गच्छ' शूकरवोद्वेशं रूपतीर्थेति विभ्रुतम् । सिद्धिं यास्यसि विप्रेन्द्र ततस्त्वं मानवाप्स्यसि ॥१४५॥

गृत्वि करो।' यह सुनते ही उठे स्मरण हो आया। तब धुषा से पीडित होते हुए भी उसने कहा—'भद्रे । मैंने भिन्नपुरुष के सामने प्रतिज्ञा की है कि मैं शकट नहीं खाऊँगा। इसलिये तुम दूसरे किसी को दे दो ॥१३३-१३५॥
 उर्वंशी ने कहा—'भद्र । तुमने शकड़ी के शकट के धारे में प्रतिज्ञा की है। यह तो शकड़ी का नहीं है। तुम अत्यन्त भूखे हो। इसलिये खा लो ॥१३६॥ ब्राह्मण ने कहा—'भद्रे । मैंने सामान्यतया प्रतिज्ञा की थी, विशेष करने नहीं। उर्वंशी ने कहा—ब्राह्मण । यदि साओगे नहीं तो इसे घर ले जाओ, तुम्हारे कुटुम्ब का लेंगे ॥१३७-१३८॥ ब्राह्मण ने कहा—'मनोहर दांत वाली । मैं घर नहीं जाऊँगा। तीनों लोक में सबसे अधिक गुणवती कामिनी यहाँ आई है—यह जानकर मैं तुम्हारे पास आया और कामपीडित होकर मैंने तुमसे प्रार्थना की। तुमने भी आश्वासन दिया कि क्षण भर ठहरो। मैंने उत्तर दिया कि ठहरता हूँ ॥१३९-१४०॥ भद्रे । तुम एक मास तक गद्दी रहो। मैं तब से यहाँ हूँ ।—भूखे तुमसे सच्चा प्रेम है।' उसने वचन सुनकर उर्वंशी उत्तम स्वरूप बनाकर हँसती हुई गम्भीरतापूर्वक उससे बहने लगी ॥१४१-१४२॥

उर्वंशी बोली—विप्र । तुमने सत्य कहा। मेरे दर्शन की इच्छा से तुमने श्रद्धापूर्वक व्रत से हठपूर्वक व्रत सम्पन्न किया। मैं ही उर्वंशी हूँ। तुम्हारी जिज्ञासा करने के लिये आई हूँ। मैंने परीक्षा की। तुम निश्चयी तथा सत्य तपस्वी ऋषि हो। विप्रेन्द्र । तुम तोते के शब्द के अनुसार रूपतीर्थ में जाओ। वहाँ सिद्धि प्राप्त करने में बाद तुम मुझे पा जाओगे ॥१४३-१४५॥

व्यास उवाच

इत्युक्त्वा दिवमुत्पत्य सा जगामोर्वशी द्विजा । स च सत्यतपा विप्रो रूपतीर्थं जगाम ह ॥१४६॥
 तत्र शान्तिपरो भूत्वा नियमव्रतधृक्शुचि । देहोत्सर्गं जगामासी गान्धर्वं लोकमुत्तमम् ॥१४७॥
 तत्र मन्वन्तरशत भोगान्भुक्त्वा ययार्थत । बभूव सुकुले राजा प्रजारञ्जनतत्पर ॥१४८॥
 स यज्वा विविधैर्यज्ञैः समाप्तवरदक्षिणैः । पुत्रेषु राज्यं निक्षिप्य ययौ शौकरव पुन ॥१४९॥
 रूपतीर्थं मृतो भूय शक्रलोकमुपागत । तत्र मन्वन्तरशत भोगान्भुक्त्वा ततश्च्युत ॥१५०॥
 प्रतिष्ठाने पुरवरे बुधपुत्रं पुरुरवा । बभूव तत्र चोर्वश्या सगमाय तपोधना ॥१५१॥
 एव पुरा सत्यतपा द्विजातिस्तीर्थे प्रसिद्धे स हि रूपसने ।
 आराध्य जन्मयथ चार्च्यं विष्णुमवाप्य भोगानय मुवितमेति ॥१५२॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे व्यासार्पितवादे प्रजागरे गीतिकाया प्रशस्तिरूपण
 नाम अष्टाविंशत्यधिकद्विशततमोऽध्याय ॥२२८॥

व्यास ने कहा—द्विजगण ! इतना कहकर उवचा आकाश में उड़ गई। वह सत्यतपस्वा ब्राह्मण रूपतीर्थ के लिये प्रस्थित हुआ। ॥१४६॥ वहाँ शान्ति नियम तथा व्रत धारण कर पवित्रतापूर्वक उसने देहत्याग किया। मृत्यु के पश्चात् वह गान्धर्वलोक में गया। वहाँ ही मन्वन्तरो तक उत्तम भागो को भोग कर सदा ही राजा होकर उत्पन्न हुआ। उसने प्रजापालन में निरत रहकर उत्तम दक्षिणा देकर अनेक यज्ञ किये। पश्चात् पुत्रों को राज्य सौंप कर रूपतीर्थ के लिए प्रस्थान किया। वहाँ पर शरीर त्यागकर वह इन्द्रलोक पहुँचा। वहाँ ही मन्वन्तरो तक भोगों को भोगकर वहाँ से स्थित होने पर प्रतिष्ठान नामक अष्टपुरी में बुध का पुत्र पुरुरवा होकर उत्पन्न हुआ। मुनिवृन्द ! वहाँ उवचा के साथ उसका सगम हुआ। इस प्रकार पूर्वकाल में सत्यतपा नामक ब्राह्मण ने प्रसिद्ध रूपतीर्थ में विष्णु की आराधना कर जन्म के पश्चात् अनेक भोगों को भोगकर मोक्ष प्राप्त किया ॥१४७ १५२॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में व्यास और ऋषियों के संवाद प्रकरण में जागरण-गीत प्रशस्तिरूपण नामक दो सौ अठ्ठाईसवाँ अध्याय समाप्त ॥२२८॥

अथैकोनविंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः

व्यासमुनिसवादे विष्णुभक्तिहेतुकथनम् -

मुनय ऊचुः.

श्रुतं फलं गोतिकाया अस्माभिः सुप्रजापरे । कृष्णस्य येन चाण्डालो गतोऽसौ परमा गतिम् ॥१॥
यथा विष्णो भवेद्भक्तिस्ततो ब्रूहि महामते । तपसा कर्मणा येन श्रोतुमिच्छाम सांप्रतम् ॥२॥

व्यास उवाच

शृणुष्व मुनिशार्दूल प्रवक्ष्याम्यनुपूर्वंश । यथा कृष्णे भवेद्भक्तिं पुरुषस्य महाफला ॥३॥
सत्सारेऽस्मिन्महाघोरे सर्वभूतभयावहे । 'महामोहकरे' नृणां नानादुःखशताकुले' ॥४॥
तिर्यग्योनिसहस्रेषु जायमानं पुनः पुनः । कथंचित्प्रभते जन्म देहो मानुष्यकं द्विजा ॥५॥
मानुषत्वेऽपि विप्रत्वं विप्रत्वेऽपि विवेकिता । विवेकाद्विभुद्विस्तु ब्रुव्या तु ध्येयसा ग्रह ॥६॥
यावत्पापक्षयं पुसा न भवेज्जन्मसंचितम् । तावन्न जायते भक्तिर्वासुदेवे जगन्मये ॥७॥
तस्माद्वक्ष्यामि भो विप्रा भक्तिं कृष्णे यथा भवेत् । अन्यदेवेषु या भक्तिः पुरुषस्येह जायते ॥८॥

अध्याय २२६

व्यास और मुनियों के सवाद में विष्णुभक्ति का कारण-वर्णन

मुनियों ने कहा—महाबुद्धिमान ! हमने जागरण-कालीन कृष्ण गत के फल तथा चाण्डाल के परम गति प्राप्त करने के विषय में सुना । अब विष्णु से जिस प्रकार भक्ति हो वह बतलाइये । जिस तप या कर्म से विष्णु भक्ति होती है वह हम सुनना चाहते हैं ॥१२॥

व्यास ने कहा—मुनिवय ! जिस प्रकार पुरुष को कृष्ण में महाफलदायिनी भक्ति होगी वह मैं अक्षरशः बतलाऊंगा ॥३॥ द्विजगण ! महामयकर समस्त प्राणियों के लिये भयावह महामोहकारी तथा अनेक प्रकार के दुःखा से परिपूर्ण इस सत्सार में प्राणी हजारों नीचयोनियों में बार-बार उत्पन्न होकर कभी मनुष्य-वारीर प्राप्त करता है ॥४॥ मनुष्ययानि में भी ब्राह्मण होना और ब्राह्मणत्व प्राप्त होने पर भी विवेक होना परम दुर्लभ है । विवेक से घमबुद्धि होती है और उससे वस्त्याण होता है ॥५॥ पुरुषों का पूर्वजन्माजित पाप जब तक नष्ट नहीं होता है तब तक विश्वात्मा वासुदेव में भक्ति नहीं होती है ॥६॥ विप्रबुद्ध ! इसलिये जिस उपाय से कृष्ण तथा अथ देवी में पुरुष को भक्ति होगी वह मैं बतलाऊंगा ॥८॥ मुनिभट्टो ! कम मन, वाणी से उसी देव में

कर्मणा मनसा वाचा तद्गतेनान्तरात्मना । तेन तस्य भवेद्भक्तिर्यजने मुनिसत्तमाः ॥९॥
 स करोति ततो जिघ्रा भक्तिं 'चाप्नेः समाहितः । तुष्टे हृताशने तस्य भक्तिर्भवति भास्करे ॥१०॥
 पूजां करोति सततमादित्यस्य ततो द्विजाः । प्रसन्ने भास्करे तस्य भक्तिर्भवति शंकरे ॥११॥
 पूजां करोति विधिवत्स 'तु शभोः प्रयत्नतः । तुष्टे त्रिलोचने तस्य भक्तिर्भवति येशवे ॥१२॥
 संपूज्य तं जगन्नाथं वामुदेवायमव्ययम् । ततो भुक्तिं च मुक्तिं च स प्राप्नोति द्विजोत्तमाः ॥१३॥

मुनय ऊचुः

अवेष्ण्या नरा ये तु दृश्यन्ते च महामुने । किते विष्णुं नार्चयन्ति ब्रूहि तत्कारणं द्विज ॥१४॥

व्यास उवाच

द्वौ भूतसर्गौ विख्यातौ लोकेऽस्मिन्मुनिसत्तमाः । आसुरश्च तथा देवः पुरा सृष्टः स्वयंभुवा ॥१५॥
 देवौ प्रकृतिमासाद्य पूजयन्ति ततोऽच्युतम् । आसुरीं योनिमापन्ना दूषयन्ति नरा हरिम् ॥१६॥
 मायया हतविज्ञाना विष्णोस्ते तु नराधमाः । अप्राप्य तं हरिं विप्रास्ततो यान्त्यधमा गतिम् ॥१७॥
 'तस्य या गह्वरी माया दुर्विज्ञेया सुरासुरैः । महामोहकरी नृणां दुस्तरा चावृतात्मभिः ॥१८॥

मुनय ऊचुः

इच्छामस्तां महामायां ज्ञातुं विष्णोः सुदुस्तराम् । यत्तुमर्हसि धर्मत परं कौतूहलं हि न ॥१९॥

चित्त लगाकर यज्ञ करने से भक्ति होती है । सावधान होकर अग्नि की भक्ति करनी चाहिये । अग्नि के सत्पुष्ट होने पर सूर्य में भक्ति होती है ॥९-१०॥ गतल सूर्य की पूजा करने से उनके प्रसन्न होने पर शंकर में भक्ति होती है । यत्न करके विधिपूर्वक शंकर की पूजा करने से उनके प्रसन्न होने पर ब्रह्म में भक्ति होती है । वामुदेव सगक अविनाशी जगन्नाथ की पूजा करने से भुक्ति-मुक्ति की प्राप्ति होती है ॥११-१३॥

मुनियो ने कहा—महामुने ! जो मनुष्य अवेष्णव देसो जाते हैं, क्या वे विष्णु की पूजा नहीं करते हैं ? विप्र ! इत्यादि वारण शतलाइये ॥१४॥

व्यास ने कहा—मुनिवर ! इस संसार में ब्रह्मा ने प्राणियों की दो प्रशस्ति की—एक आसुरी सृष्टि और दूसरी देवी । देवी प्रकृति के मनुष्य वामुदेव की पूजा करते हैं और आसुरी योनि वाले मनुष्य हरि की निन्दा करते हैं । य नराधम विष्णु की माया से हतबुद्धि होकर हरि को न धाने में अप्रम गति को प्राप्ता करते हैं । विष्णु की जा बटिटा माया है, उसे देवता तथा राक्षस नहीं जानते हैं । वह मनुष्य को महामोह में डालती है । वह अविनाशिय व्यक्तिय। स दुर्जेय है ॥१५-१८॥

मुनियों ने कहा—हम विष्णु का दुर्जेय माया को जानना चाहते हैं । धर्मत । यत्नकरिये । हमें बड़ी उत्पत्ता हो रही है ॥१९॥

व्यास उवाच

स्वप्नेन्द्रजालसकाशा माया सा लोककर्मणी । क दानोति हरेर्माया ज्ञातु ता केशवादृते ॥२०॥
 या वृत्ता 'ब्रह्मणस्याऽऽसीन्मायायै' नारदस्य च । विडम्बना तु ता विप्रा शृणुष्व गदतो मम ॥२१॥
 प्राणासीन्नृपति श्रीमानाम्नोध्र इति विभ्रुत । नगरे कामदमनस्तस्याय तनय शुचि ॥२२॥
 धर्माराम क्षमाशील पितृशुभूपणे रत । प्रजानुरञ्जको दक्ष श्रुतिशास्त्रकृतधम ॥२३॥
 पिताऽस्य स्वकरोद्यत् विद्याहाय न चच्छत । त पिता प्राह किमिति नेच्छसे दारसग्रहम् ॥२४॥
 सर्वमेतत्सुखार्थं हि वाञ्छन्ति मनुजा किल । सुखमूला हि दाराश्च तस्मात् त्व समाचर ॥२५॥
 स पितुर्वचनं श्रुत्वा तूष्णीमास्ते च गौरवात् । मृदुमूर्धुरत च पिता चोदयामास भो द्विजा ॥२६॥
 क्षयातो पितर प्राह तात मामानुरूपता । मया समाश्रिता व्यक्तता वेषणवो परिपालनी ॥२७॥
 त पिता प्राह सगम्य नैप धर्मोऽस्ति पुत्रक । न विचारयितव्या स्यात्पुरुषेण विपश्चिता ॥२८॥
 कुह मद्बचनं पुत्र प्रभुरस्मि पिता तव । मा निमग्ज कुल मह्य नरके सततितलयात् ॥२९॥
 स हि स पितुरादेता श्रुत्वा प्राह सुतो वशी । प्रीत सस्मृत्य पौराणी ससारस्य विचित्रताम् ॥३०॥

पुत्र उवाच

शृणु तात वचो मह्य तत्त्ववाक्य सहैतुकम् । मामानुरूप वर्तय्य सत्य भवति पार्थिव ॥३१॥

व्यास ने कहा—लोगों को मोहित करने वालो वह माया स्वप्न तथा इन्द्रजाल के समान है । बिना मग-
 धान के उसे कौन जान सकता है ? विप्रबुद्ध ! उस माया के कारण विप्र नारद की जो दशा हुई उसे मुझसे सुन
 लीजिये ॥२०-२१॥ प्राचीन समय में ब्रह्माध्र नामक राजा था । उसका पुत्र कामदमन पवित्र धर्मात्मा क्षमा
 शील, प्रजाप्रमी निपुण तथा वेदशास्त्रवेत्ता था । पिता ने पुत्र के विवाह के लिये यत्न किया पर पुत्र ने अस्वी-
 कार कर दिया । तब पिता ने पुत्र से पूछा— क्या तुम विवाह नहीं करना चाहते हो ? मनुष्य सब कुछ सुख
 ही के लिये चाहते हैं । स्त्री सुख की जड़ है । इसलिये तुम विवाह कर लो ॥२२-२५॥ पुत्र पिता का बचन
 सुनकर चुप हो गया । पिता ने बार-बार उससे पूछा ॥२६॥ तब उसने पिता से कहा— तात ! मैंने विष्णु के
 नामानुरूप उनकी लोकपालिता माया का आशय लिया है । पिता ने फिर उससे कहा— पुत्र ! यह धम नहीं है ।
 विद्वान् पुरुष को विष्णु माया का कारण नहीं करना चाहिये । पुत्र ! मेरी बात मानो । मैं तुम्हारा अभ्यस्त तथा
 पिता हूँ । सत्तान्धस्य वर्ग के कुल को नरक में मत डालो ॥२७-२९॥ पिता की आज्ञा सुनकर वस्यात्मा पुत्र समार
 की पुरातनी विचित्रता का स्मरण करके प्रसन्न हुआ ॥३०॥
 पुत्र ने कहा— तात ! मेरे हेतुपूण तत्त्ववचन को आप सुनें । राजन् ! विष्णु की माया के अनुरूप वाप

१क ०गध्रष्टा माया० । २ख ०स्यायै माया० । ३ग जत । म० । ४ग व्यक्त स्वदाज्ञा० । ५ग
 ०इ प्रहस्यमान्य नाम च पू० । ६ग विचारयितव्य । ७ग ०त् । पितुरादेता म० । ८ग कृत्वा ।

मया जन्मसहस्राणि जरामृत्युशतानि च । प्राप्तानि दारसंयोगवियोगानि च सर्वशः ॥३२॥
 तृणगुल्मलतावल्लोसरीसूपमृगद्विजाः । पशुस्त्रीपुरुषाद्यानि प्राप्तानि शतशो मया ॥३३॥
 गणकिनरगन्धर्वविद्याधरमहोरगाः । यक्षगुह्यकरक्षंसि दानवाप्सरसः सुराः ॥३४॥
 नदीश्वरसहस्रं च प्राप्तं तात पुनः पुनः । सृष्टस्तु बहुशः सृष्टौ संहारे चापि संहतः ॥३५॥
 दारसंयोगयुक्तस्य तातेद्दमे विडम्बना । इतस्तुतीये यदुत्तं मम जन्मनि तच्छृणु ॥
 कथयामि समासेन तीर्थमाहात्म्यसंभवम् ॥३६॥

अतीत्य जन्मानि बहूनि तात, मृदेवगन्धर्वमहोरगानाम् ।
 विद्याधराणां खगकिनराणां, जातो हि वंशे सुतया महर्षिः ॥३७॥
 ततो महाभूदचला हि भवितुर्जनादने लोकपती मधुघ्ने ।
 यतोपवासं विविधेन भक्त्या, संतोषतश्चक्रगदास्त्रधारी ॥३८॥
 दुष्टोऽभ्यगात्पक्षिपति महात्मा, विष्णुः समारुह्य वरप्रदो मे ।
 प्राहोच्चशब्दे श्रियतां द्विजाते, यरो हि यं वाञ्छसि तं प्रदास्ये ॥३९॥
 ततोऽहमूचे हरिमीशितारं, तुष्टोऽसि चेत्केशव तद्वृणोमिं ।
 या सा त्वदीया परमा हि माया, तां वेत्तुमिच्छामि जनार्दनोऽहम् ॥४०॥
 अयात्रबोन्मे मधुकंटभारिः, किं ते तया ब्रह्मनामया वै ।
 धर्मायकामानि ददानि तुभ्यं, पुत्राणि मुह्यानि निरामयत्वम् ॥४१॥

ही सत्य है । मैंने हजारों जन्म, सैकड़ों वृद्धत्व तथा मरण प्राप्त किये । त्रिषो से सयांग तथा विषोग भी प्राप्त किये । सैकड़ों तृण, गुल्म, लता, मृग आदि प्राप्त किये । पशु, स्त्री, पुरुष, गण, विन्नर, गन्धर्व, विद्याधर, महाश्वर, पक्ष, गुह्यकर, राक्षस, दानव, अप्सरा, देवता तथा सहस्रो नर्तियां प्राप्त कीं । अनेकों बार मेरा सर्जन तथा संहार हुआ । तात ! इसलिये मेरी समझ से स्त्री-संयोग करना विडम्बनामान है । इससे पिछले तीसरे जन्म में तीर्थ के माहात्म्य से उत्पन्न जो मेरा वृत्तान्त हुआ वह संक्षेप में कहता हूँ ॥३१-३६॥ तात ! मनुष्य, देवता, गन्धर्व, महा-सर्प, विद्याधर, पक्षी, विन्नर आदि अनेक जन्मों के बाद मैं सुतया नामक महर्षि हुआ ॥३७॥ उस समय मधु नामक राक्षस के मारने वाले लोकपति जनार्दन मे मेरी अचल भक्ति हुई । विविध व्रत, उपवास तथा भक्ति से मैंने चक्र, गदा तथा अस्त्र धारण करने वाले विष्णु को सतुष्ट किया ॥३८॥ अतन्त्र होने पर महात्मा विष्णु गरड़ पर चढ़-कर मुझे वरदान देने के लिये आये । उच्च स्वर में विष्णु ने कहा—'विप्र ! वर मांगो । तुम्हें जो अभीष्ट हो, वह मैं दूँगा ॥३९॥ तब मैंने सर्वव्यक्तिमान् हरि से कहा—'केशव ! यदि आप अतन्त्र हैं तो मैं वर मांगता हूँ । जनार्दन ! आपकी जा परमा माया है, उसे मैं जानना चाहता हूँ ॥४०॥ तब मधुकंटभ के दानु भगवान् ने मुझसे कहा—'ब्रह्मन् ! माया से तुम्हें क्या करना है ? मैं तुम्हें धर्म, अर्थ, काम, पुत्र तथा आरोग्य प्रदान करता हूँ ॥४१॥ तब फिर मैंने मुर नाभक राक्षस के दानु भगवान् से कहा—'अर्थ, धर्म, काम की जीतने वाली जो

ततो मुरारि पुनरुत्तवानहं, भूपोऽयं धर्मार्यं जिगीषितं वत् ।
माया तवेमामिह धेतुमिच्छे, ममाद्य तां दर्शय पुष्कराक्ष ॥४२॥
ततोऽभ्युवाचाय नृसिंहमुख्यः, श्रीशः प्रभुविष्णुरिदं वचो मे ॥

विष्णुरुवाच

मायां मदोयां न हि वेत्ति कश्चिन्न चापि वा वेत्स्यति कश्चिदेव ॥४३॥
पूर्वं सुरपिद्विज नारदास्थो, ब्रह्मात्मजोऽभून्मम भक्तियुवतः ।
तेनोपि पूर्वं भवता ययैव, संतोषितो भवितमता हि तद्वत् ॥४४॥
वरं च दत्तं (दातुं) गतवानहं च, स चापि वयं वरमेतदेव ।
निधारितो मामतिमूढभावाद्भवान्ययं वृत्तवान्वरं च ॥४५॥
ततो मयोक्तोऽम्भसि नारद त्वं, मायां हि मे धेत्स्यसि संनिमग्नः ।
ततो निमग्नोऽम्भसि नारदोऽसौ, कन्या बभौ काशिराजः सुशीला ॥४६॥
तां यौवनाद्यामय चारुधर्मिणे, विदभंराजस्तनयाय वं ददौ ।
स्व (सु) धर्मणे सोऽपि तथा समेत, सिषेय कामानतुलान्महोदयः ॥४७॥
स्वर्गे गतेऽसौ पितरि प्रतापवाग्राग्यं क्रमायतमवाप्य हृष्टः ।
विदभंराट् परिपालयान्, पुत्रैः सपौत्रैर्वहुभिर्वृत्तोऽभूत् ॥४८॥
अयाभवद्भूमिपतेः सुधर्मणः, काशीश्वरेणाय समं सुयुद्धम् ।
तत्र क्षयं प्राप्य (प) सपुत्रपौत्रं, विदभंराट्काशिराजश्च युद्धे ॥४९॥

आपनी माया है, उसी को मैं जानना चाहता हूँ। कनछाया! आज मुझे उसका दर्शन कराइये। तदनन्तर नृसिंह, कश्मीपति, प्रभु, विष्णु आदि नाम वाले कनवान् ने मुझसे यह वचन कहा ॥४२॥

विष्णु बोले—मेरी माया को न कोई जानता है न जानेवा। द्विज! पहले ब्रह्मा के पुत्र भक्तिमान् देवि नारद ने सुम्हारी ही तरह अपनी भक्ति से मुझे सतुष्ट किया। जब मैं वर देने के लिये गया तो उसने भी यही वर मागा। मेरे यत्ना करने पर भी उसने अत्यन्त मूर्खता से सुम्हारी ही तरह हठ किया ॥४३-४५॥ तब मैंने कहा—‘नारद! जल में डूबकर तुम मेरी माया का जानोगे।’ तदनन्तर वह नारद जल में निमग्न होने पर काशी-नरेश की सुशीला नामक बालिका वन गया ॥४६॥ उस पूर्ण युवती बन्धा को काशीपति ने चारुधर्मो नामक विदमंपति के पुत्र को ब्याह दिया। सुधर्मा ने उसका साथ अनुत्तरीय वाधा का उपभोग किया ॥४७॥ पिता की मृत्यु हो जाने पर प्रतापी सुधर्मा क्रमागत राज्य को प्राप्त कर स्थित हुआ। विदमं राज्य का परिपालन करते हुए सुधर्मा के अनेको पुत्र-पौत्र हुए ॥४८॥ तत्पश्चात् पृथ्वीपति सुधर्मा की काशीपति ने युद्ध हुआ। उस युद्ध में विदमंराज तथा काशीनरेश दोनों ने सब पुत्र-पौत्र मारे गये ॥४९॥ तब सुशीला पुत्र-पौत्र सहित अपने

तत सुशीला पितर सपुत्र, ज्ञात्वा पतिं चापि सपुत्रपौत्रम्	।
पुराद्विनि सृत्य रणार्वाणि गता, दृष्ट्वा सुशीला कदन महान्तम्	॥५०॥
भर्तृबले तत्र पितृबले च, दुःखान्विता सा सुचिर विलम्ब	।
जगाम सा मातरमार्तरूपा, भ्रातृन्सुतान्भ्रातृसुतान्सपौत्रान्	॥५१॥
भर्तारमेया पितर च गृह्य, महाश्मशाने च महार्चिता सा	।
कृत्वा हुताश प्रददौ स्वयं च, यदा समिद्धो हुतभुग्बभूव	॥५२॥
तदा सुशीला प्रविशदा वेगाद्धा पुत्र हा पुत्र इति युवाणा	।
तदा पुन सा मुनिनरिदोऽभून्, स चापि वल्लि स्फटियामलाभ	॥५३॥
पूर्णं सरोऽभूदय चोत्तार, तस्याप्रतो देववरस्तु केशव	।
प्रहस्य देवपिमुवाच नारदम्	॥५४॥
कस्ते तु पुत्रो वद मे महर्षे भूतं च क शोचसि नष्टबुद्धि	।
श्रीजान्वितोऽभूदय नारदोऽसी, ततोऽहमेन पुनरेव चाऽह	॥५५॥
इतीवृशा नारद कष्टरूपा, माया भदीया कमलासनाद्यं	।
शयया न वेत्तु समहेन्द्ररुद्रं, यथ भवान्वेत्स्यति दुर्विभाव्याम	॥५६॥
स वाक्यमाकण्य महामहर्षिरुवाच भवित मम देहि विष्णो	।
प्राप्तेऽय काले स्मरणं तयैव, सदा च सदशनमोदा तेऽस्तु	॥५७॥
यन्नाहमार्तंश्चितिमद्य हृदस्तत्तीर्थमस्त्वच्युतपापहन्त्रा	।
अधिष्ठित केशव नित्यमेव त्वया सहाऽऽस (हेद) कमलोद्भवेन	॥५८॥

पिता तथा पति की मृत्यु का समाचार पाकर नगर से बाहर निकल कर मुद्राक्ष मे चली गई। पति सेना तथा पुत्र मैना दाला तरफ महान दुःख देखकर बह बड़ी शोकात्तर हुई और फिर बाग-सत विनाश करने अपनी माता के पास गेट आई। फिर उसने मह-श्मशान म जाकर माई पुत्र पौत्र पति पिता सजने लिये। चिता बनाकर अग्नि प्रदान किया। जब अग्नि प्रज्वलित हुआ तब मुनीन् हा पुत्र हा पुत्र योक्ती हुई रेग से अग्नि मे प्रविष्ट हो गई। प्रवेग करते ही वह मुनि नारद के रूप म परिणत हो गई। अग्नि की स्फटिक के ममान स्वच्छ जल से परिपूर्ण सरोवर के रूप म परिणत हो गया। तदनंतर देवश्रुत वेगाव नारद के सामने आकर हँसते हुए कहने लगे ॥५०-५४॥ महर्षे! तुम्हारा बौन पुत्र या ? कहो। मृत्युद्धि की तरफ जिस मूवक के लिये गीव कर रहे हो ? यह सुनकर नारद बहुत रुजित हुआ। तब फिर मैने उससे कहा—नारद ! मेरी माया एसी ही बप्टरूपा है। ब्रह्मा इन्द्र मदेग आदि देवता भी इसे नहीं जान सकते हैं। तब तुम नसे इत अचित्य माया की जानोगे ॥५५-५६॥ यह बात सुनकर महामहर्षि नारद ने कहा—विष्णो ! अत्र मूस अपनी भक्ति दीजिये। और समय पर आपर स्मरण तथा दशन होते रहें ॥५७॥ अभ्युत। आज जहाँ पर मैने बिना बनाई है वहाँ पापहरी तीर्थ हो जाय। ब्रह्मा सहित आप भी वहाँ रहा करें ॥५८॥ तब मैने कहा—इति नारद ! आपकी रची हुई चिता स्वच्छत्रपूज

ततो मयोक्तो द्विज नारदोऽसौ, तीर्थं सितोदे (व) हि चित्तिस्तवास्तु	॥५९॥
स्थास्याग्न्यहं चान सदैव विष्णुर्महेश्वर स्यात्पति चोत्तरेण	॥६०॥
नदा विरञ्चयेद्वन त्रिनेत्र स च्छेत्यथेत्यं च ममु (त्वय चो) प्रवाचम्	॥६१॥
तदा कपालस्य तु मोचनाय, समेष्यते तीर्थमिदं त्वदीयम्	॥६२॥
स्नातस्य तीर्थे त्रिपुरान्तकस्य, पतिष्यते भूमितले कपालम्	॥६३॥
ततस्तु तीर्थेति कपालमोचन, रयात पुण्यव्या च भविष्यते तत्	॥६४॥
तदा प्रभृत्यम्बुदवाहोऽसौ, न मोक्ष्यते तीर्थंवर सुपुण्यम्	॥६५॥
न चैव तस्मिन्द्विज सप्रचक्षते, तत्क्षेत्रमुग्र त्वय ब्रह्मव्या	॥६६॥
यदा न मोक्षयमरारिहन्ता, तत्क्षेत्रमुग्र महदातपुण्यम्	॥६७॥
तदा विमुक्ततेति सुरं रहस्य, तीर्थं स्तुत पुण्यदमध्ययाह्वयम्	॥६८॥
कृत्वा तु पापानि नरो महान्ति, तस्मिन्प्रविष्ट शुचिरप्रमादी	॥६९॥
यदा तु मा चिन्तयते स शुद्ध, प्रयाति मोक्ष भगवत्प्रसादात्	॥७०॥
भूत्वा तस्मिन्नुद्रपिशाचसज्ञो योयन्तरे दुःखमुपाशनुतेऽसौ	॥७१॥
विमुक्तपापो बहुययंपूर्णंरुत्पत्तिमाप्स्यति विप्रगेहे	॥७२॥
शुचिर्पतात्माऽस्य ततोऽस्तकाले, रदो हित सारकमस्य कीर्तयेत्	॥७३॥
इत्येवमुक्त्वा द्विजवर्यं नारद, गतोऽस्मि दुग्धार्णवमात्मगेहम्	॥७४॥
स चापि विप्रस्त्रिविव चचार, गन्धर्वराजेन समर्च्यमान	॥७५॥
एतच्चोक्त ननु बोधनाय माया मदीया नहि क्षयते सा	॥७६॥

तीर्थ हो जायगी। मैं यहाँ सदा वास करूँगा। बाद में शंकर भी रहेंगे। जब शंकर ब्रह्मा के मुख को काटेंगे तब शोषणी को निवाहने के लिये वे इस तीर्थ में आयेंगे। शंकर जब इसमें स्नान करेंगे तब कपाल पृथ्वी पर गिर पड़ेगा। तब से यह तीर्थ कपालमोचन नाम से पृथिवी पर प्रसिद्ध होगी॥५९६१॥ तब से लेकर इन्द्र इस पवित्र तीर्थ का नाम नहीं छोड़ेंगे। द्विज ! इस उग्र क्षत्र में ब्रह्महत्या भी नहीं रह पाएगी (अर्थात् इस तीर्थ के सेवन से ब्रह्म हत्या का पाप नष्ट हो जायगा।) जब इन्द्र इस परम पवित्र तीर्थ को न छुड़ेंगे तब देवता लोग विमुक्त नाम रख कर इस पुण्यदायक तथा अविनाशी तीर्थ की स्तुति करेंगे। जो मनुष्य महान् पाप करके भी पवित्रता तथा सावधानतापूर्वक इसमें प्रवेश कर मेरा ध्यान करेगा वह मेरी कृपा से शुद्ध होकर मोक्ष प्राप्त करेगा॥६२६३॥ जो भयकर पिशाच है या किसी योनि में बन्धन पाता है वह भी इसमें स्नान करके पापमुक्त होकर ब्राह्मण के जो भयकर पिशाच है या किसी योनि में बन्धन पाता है वह भी इसमें स्नान करके पापमुक्त होकर ब्राह्मण के घर में जा सकेगा॥६४॥ वह पवित्र तथा सखी होमा। अतःकाल में शंकर उस तारक मंत्र सुना देंगे। द्विजवर्य ! नारद से इतना कहकर मैं अपना घर क्षारसमुद्र चला गया॥६५॥ वह ब्राह्मण भी गन्धर्वराज ने सम्मानित होते हुए स्वर्ग में विचरण करने लगा। इतना मैंने तुम्हें बोल कराने के लिये कह दिया। मेरे माया को नहीं जान सकते हो॥६७॥ यदि तुम जानना ही चाहते हो तो जल में प्रवेश करो जिससे जान पाओगे।' इस प्रकार

ज्ञातु भवानिच्छति चेत्ततोऽद्य, एव विशस्वाप्सु च वेत्ति येन ।
 एव द्विजातिर्हरिणा प्रबोधितो, भाव्ययंयोगान्निममज्ज तोये ॥६८॥
 कोकामुखे तात ततो हि कन्या, चाण्डालवेशमन्यभवदद्विज स ।
 रूपान्विता शीलगुणोपपन्ना, अवाप सा यौवनमाससाव ॥६९॥
 चाण्डालपुत्रेण सुबाहुनाऽपि, विवाहिता रूपविवाजितेन ।
 पतिर्न तस्या हि मतो बभूव सा तस्य चैवाभिमता बभूव ॥७०॥
 पुत्रद्वय नेत्रहीन बभूव, कन्या च पश्चादबधिरा तथाऽया ।
 पतिदरिद्रस्त्वय साऽपि मुग्धा, नदीगता^१ रोदिति तत्र नित्यम् ॥७१॥
 गता कदाचित्कलश गृहीत्वा, साऽतर्जल स्नातुमय प्रविष्टा ।
 यावदद्विजोऽसौ पुनरेव तावज्जात त्रियायोगरत सुशील ॥७२॥
 तस्या स भर्ताऽय चिरगतेति, द्रष्टुं जगामाय नदीं सुपुण्याम् ।
 ददश कुम्भ न च ता तटस्था, ततोऽतितु खात्प्ररुद नादयन ॥७३॥
 ततोऽन्ययुग्म बधिरा च कन्या, दुःखान्विताऽसौ समुपाजगाम ।
 ते वै रुदन्त पितर च दृष्ट्वा, दुःखान्विता च द्रुतुर्भूशार्ता ॥७४॥
 तत स पप्रच्छ नदीतटस्थान्निजा भवदभिर्मेदि योपिवेका ।
 दृष्टा तु तोयार्थमुपाद्रवन्ती आख्यात ते प्रोचुरिमा प्रविष्टा ॥७५॥
 नदीं न भूयस्तु समुत्तार, एतावदेवेह समीहित न ।

भगवान् द्वारा समझाया जाने पर भी वह ब्राह्मण भावीवश कोकामुख नामक तीर्थ के जल में डूब गया ॥६८॥
 तात ! तब वह द्विज चाण्डाल के घर में क या होकर उत्पन्न हुआ । वह क या रूपवती शील गुण सम्पन्ना तथा
 युवती हुई ॥६९॥ सुबाहु नामक एक कुरुक्ष चाण्डाल-पुत्र से उसका विवाह हुआ । पति उसके मन के अनुरूप
 नहीं हुआ पर वह पति की इच्छानुसार हुई ॥७०॥ उसके दो अर्ध पुत्र हुए और एक बहरी क या हुई । पति दरिद्र
 था । और वह भूखा प्रतिदिन नदीतट पर जाकर रोती थी ॥७१॥ किसी समय घड़ा लेकर वह भीतर जल में स्नान
 करने के लिये प्रविष्ट हुई । प्रवेश करते ही वह योग त्रिया निरत सुशील ब्राह्मण बने गई । उसका पति बहुत देरी
 हुई यह सोच कर पवित्र नदीतट पर देखने को गया । उसने तट पर घड़ को देखा पर पत्नी को नहीं देखा । तब
 वह जोर से रोने लगा । पश्चात् अर्ध पुत्र तथा बहरी क या उसके पास आई । वे सब रोते हुए पिता की देखकर
 अत्यन्त शोकविह्वल होकर रोने लगे ॥७२॥ तब चाण्डालपुत्र ने सर्पपत्न्य ब्राह्मणों से पूछा—जल नग्ने
 के लिए आई हुई एक स्त्री की आपने देखा हो तो बतलाय । द्विजो ने कहा—एक स्त्री इस नदी में प्रविष्ट हुई

स तद्वचो धीरतरं निशम्य, हरोद शोकायुपरिप्लुताक्षः	॥७६॥
त धं रुदन्तं ससृतं सकयं, दृष्ट्वाऽहमार्तं सुतरा बभूव	।
आतिश्च मेऽभूदयं सम्प्रतिश्च, चाण्डालयोयाऽहमिति क्षितोऽश	॥७७॥
ततोऽग्नयं तं नृपते मतङ्ग, किमयं मार्तेन हि रुद्यते त्वया	।
तस्या न लाभो भविताऽतिमोर्ष्यादानन्दितनेह वृथा हि किं ते	॥७८॥
स भामुवाचाऽऽत्मजपुष्पमन्थ, कन्या चैका वधिरये तयं व	।
कयं द्विजाते अधुनाऽऽत्मेतमादवाप्तपिप्येऽयं योपयिष्ये	॥७९॥
इत्येवमुक्त्वा स सुतेदं च सार्धं, पूकृत्य पूकृत्य च रोदिति स्म	।
यया यया रोदिति स श्वपाकस्तथा तथा' मे ह्यभवत्कृताऽपि	॥८०॥
ततोऽहमार्तं तु निवार्यं त धं, स्ववशवृत्ता तमथाऽऽचक्षते	।
ततः स दुःखात्सह पुनर्यं सविवेश क्रोधा मुत्समार्तं हृष्य	॥८१॥
प्रविष्टमात्रे सलिले मतङ्गस्तीक्ष्णप्रभावाच्च विमुक्तपाप	।
विमानमावह्य शशिप्रकाशः, ययौ विव तात भमोपपद्यत	॥८२॥
तस्मिं प्रविष्टे सलिले मृते च, भमार्तिरासीदतिमोर्हृकर्षी	।
ततोऽतिपुण्ये मृपवयं क्रोधागले प्रविष्टस्त्रिविव गतश्च	॥८३॥

पर फिर निवली महा। वस इतना ही हम जानत हैं। ब्राह्मणों का रचन सुनकर मुवाहू रान लगा। उसकी आँखें गोकायु से परिप्लुत हो गई। वया-पुन सहित उसे राते हुए देखकर मैं भी दुखी हो गया। राजन! मुझ दुख हुआ और यह स्मरण भी हुआ कि मैं ही इस चाण्डाल की स्त्री हूँ ॥७६-७७॥ पुष्पपात! तब मैं चाण्डाल म कहा—क्यों दुख से रो रहे हो? यह नहीं मिलेगा। अब राजा अत्यंत मुक्त हो है। तब उसने मुझसे कहा—विप्र! मेरे दो पुत्र अर्घ है तथा एक कन्या बहरी है। उन्हें मैं किस आशयान दू? किस उनका पालन करूँ? इतना नहकर वह पुत्रों के साथ सिसक मिसक कर राने लगा। जैसे-जैसे वह चाण्डाल राता था वैसे वैसे मुझ उस पर दया आती थी ॥७८-८०॥ तब मैंने उसे रोक् कर अपने बंध का वस्त्रात सुना दिया। पश्चात् उसने पुत्रा समेत काकामुख साथ म प्रवेश किया। जल में प्रवेश करते ही चाण्डाल तीक्ष्ण के प्रभाव से पापमुक्त हो गया। तब वह चंद्रमुख प्रकाशमान विमान पर चढ़कर मेरे देखते ही स्वर्ग चला गया ॥८१-८२॥ उसके जल म प्रवेश करने पर तथा मर जाने पर मुझ अत्यंत माहकांरज दुख हुआ। नपवयं। तब मैं भी काकाजल में प्रवेश कर स्वर्ग का चला गया ॥८३॥ पुन मेरी उत्पत्ति वैश्वकुल म हुई। वहाँ मैं परम दुखी था। पर तीक्ष्णराज की

भूयोऽभवं वंश्यकुले व्यथार्तो, 'जातिस्मरस्तोयंवरप्रसादात्	।
ततोऽतिनिविण्णमना गतोऽहं, कोकामुखे' संयतवाक्यचित्त-	॥८४॥
व्रत समाख्याय कलेवरं स्वं, संशोषयित्वा दिवमारोह	।
तस्माच्छ्रुतस्त्वद्भुवने च जातो, जातिस्मरस्तात हरिप्रसादात्	॥८५॥
सोऽहं समाराध्य 'मुरारिदेव, कोकामुखे त्यक्तशुभाशुमेच्छ-	।
इत्येवमुक्त्वा पितरं प्रणम्य, गत्वा च कोकामुखमप्रतीर्यम्'	।
विष्णु समाराध्य वराहरूपमवाप सिद्धिं मनुजपंभोऽसौ	॥८६॥
इत्थं स कामदमन' सहपुत्रपौत्र', कोकामुखे तीर्थवरे सुपुण्ये	।
त्यक्त्वा तनुं दोषमयीं ततस्तु, गतो दिवं सूर्यसमंविमानः	॥८७॥
एव भयोक्ता परमेश्वरस्य, माया सुराणामपि दुर्बिचिन्त्या	।
स्वप्नेन्द्रजालप्रतिमा मुरारेरया जगन्मोहमुपति विप्रा-	॥८८॥

इति श्रीमहापुराणे आदिश्राद्धे विष्णुधर्मानुकीर्तने मायाप्रादुर्भाविनिरूपणं नामकोन-
विंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२२९॥

कृपा से मुझे पूर्वजन्मी का स्मरण था। तब मैं अत्यन्त खिन्न मन से बोझमुख तीर्थ में गया। वहाँ वाक्यसम
रूपा वित्तसमय करन शरीर त्याग कर स्वर्ग पहुँचा। वहाँ से क्युत होने पर आपने घर में मेरा जन्म हुआ है।
सात। हरि की कृपा से मुझे पूर्व जन्मा का स्मरण है। इसलिये सुभ-अनुभ कामनाओं का परित्याग कर मैं कोक-
मुख में विष्णु की आराधना करने। इतना कहकर पिता की प्रणाम करने राजपुत्र तीर्थराज बोझमुख को
पला गया। वहाँ वराहकृपी विष्णु की उपासना करने नरपुत्र राजपुत्र ने सिद्धि प्राप्त की ॥८४-८६॥ इस प्रकार
पुत्र-पौत्र सहित कामदमन अत्यन्त पवित्र बोझमुखतीर्थ में दोषमय शरीर का त्याग कर सूर्यसम विमानों से स्वर्ग
पला गया ॥८७॥ विप्रवन्द देवताओं से भी अचिन्त्य इस परमेश्वर की माया ने बारी में मैंने बतला दिया।
यह स्वप्न तथा इन्द्रजाल के समान है। इसी से सतार मोह में पड़ता है ॥८८॥

श्रीब्रह्महृदपुराण में विष्णु धर्म-कीर्तन-प्रसंग में मायाप्रादुर्भावि निरूपण नामक दो सौ उन्नीसवाँ
अध्याय समाप्त ॥२२९॥

अथ त्रिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः

व्यास-मुनिसंवादे महाप्रलयवर्णनम्

मुनय ऊचुः

अस्माभिस्तु श्रुतं व्यास यत्त्वया समुदाहृतम् । प्रादुर्भावाधितं पुण्यं माया विष्णोश्च दुर्विदा ॥१॥
श्रोतुमिच्छामहे त्वत्तो यथावदुपसंहृतिम् । महाप्रलयसंज्ञां च कल्पान्ते च महामुने ॥२॥

व्यास उवाच

भूयतां भो मुनिश्रेष्ठा यथावदनुसंहृतिः । कल्पान्ते प्राकृते चैव प्रलये जायते यथा ॥३॥
अहोरात्रं पितृणां तु मासोऽब्दं त्रिदिवीकसाम् । चतुर्युगसहस्रे तु ब्रह्मणोऽहद्विजोत्तमाः ॥४॥
कृतं त्रेता द्वापरं च कलिश्चेति चतुर्युगम् । देवैर्वर्षसहस्रेस्तु सद्द्वादशभिश्च्यते ॥५॥
चतुर्युगाण्यशेषाणि सद्दशानि स्वरूपतः । आद्यं कृतयुगं प्रोक्तं मुनयोऽन्यं तथा कलिम् ॥६॥
आद्ये कृतयुगे सर्गो ब्रह्मणा क्रियते यतः । त्रियते चोपसंहारस्तथाऽन्तेऽपि कलौ युगे ॥७॥

मुनय ऊचुः

कलः स्वरूपं भगवन्विस्तराद्वक्तुमर्हति । धर्मश्चतुष्पाद्भूगवान्यस्मिन्वैकलयमृच्छति ॥८॥

२३० अध्याय

व्यास और मुनियों के संवाद में महाप्रलय का वर्णन

मुनियों ने कहा—हे व्यास जी ! विष्णु के अवतार तथा दुर्लभ माया के बारे में आपने जो कहा, उसे हम सुन चुके। महामुनि ! जब कल्पान्त में जो महाप्रलय नाशक उपसंहार होता है, उसके विषय में हम सुनना चाहते हैं ॥१-२॥

व्यास ने कहा—मुनिवर ! कल्पान्त में तथा प्राकृतिक प्रलय में जैसा (जगत् का) संहार होता है, उसे आप यथार्थतः सुन लीजिए । पितरों के अहोरात्रों का जो एक वर्ष होता है वही देवताओं का एक मास हुआ करता है। द्विज-श्रेष्ठो ! जब चारों युग एक सहस्र बार बीत जाता है तब ब्रह्म का एक दिन होता है। इत, त्रेता, द्वापर और कलि—ये चार युग हैं। देवताओं के बारह हजार वर्षों के ये युग होते हैं। समस्त युग स्वरूपतः समान हैं। मुनिवन्द ! पहला कृतयुग है और अन्तिम कलियुग है। क्योंकि आद्य कृतयुग में ब्रह्मा सृष्टि करते हैं और अन्त्य कलियुग में संहार करते हैं ॥३-७॥

मुनियों ने महा—भगवन् ! कलियुग के स्वरूप का वर्णन विस्तार से कीजिये, जिसमें चार चरण वाले भगवान् धर्म की हानि होती है ॥८॥

व्यास उवाच

कलिस्वरूप भो विप्रा यत्पृच्छध्व ममानघा । निबोधध्व समासेन वर्तते यन्महत्तरम् ॥९॥
 वर्णाश्रमाचारवती प्रवृत्तिर कलौ नृणाम् । न सामश्रम्यजुर्वेदविनिष्पादनहेतुको ॥१०॥
 विवाहान् कलौ धर्मान् शिष्या गुरुसंस्थिता । न पुत्रा धार्मिकाश्चैव न च बह्विश्रियाक्रम ॥११॥
 यत्र तत्र कुले जातो यलौ सर्वेश्वर कलौ । सर्वस्य एव वर्णस्यो नर कन्योपजीविन ॥१२॥
 यन तनैव योगेन द्विजातिर्दक्षित कलौ । यैव संव च विप्रेन्द्रा प्रायश्चित्तक्रिया कलौ ॥१३॥
 सवमव कलौ शास्त्र यस्य यद्वचन द्विजा । देवताश्च कलौ सर्वा सव सवस्य चाऽऽश्रम ॥१४॥
 'उपवासस्तथाऽऽयासो वित्तोत्सगस्तथा कलौ । धर्मो यथाभिरुचिर्तरनुष्ठानैरनुष्ठित ॥१५॥
 वित्तन भविता पुसा स्वल्पनैव' मद कलौ । स्त्रोणा रूपमदश्चैव केशैरेव भविष्यति ॥१६॥
 सुवर्णमणिरत्नादौ यस्त्र चापक्षय गते । कलौ स्त्रिया भविष्यन्ति तदा केशैरलंकृता ॥१७॥
 परित्यज्यन्ति भर्तार वित्तहीन तथा स्त्रिय । भर्ता भविष्यति कलौ 'वित्तवानेव शोषिताम् ॥१८॥
 यो यो ददाति बहुल स स स्वामी तदा' नृणाम् । स्वामित्वहतुसबन्धो भविताऽभिजनस्तदा ॥१९॥
 गृहान्ता ब्रह्मसपाता ब्रह्माता च तथा मति । अर्थाश्चाथोपभोगान्ता भविष्यन्ति तदा कलौ ॥२०॥

व्यास ने कहा—निष्पाप विप्रबुद्ध । कलि का जो स्वरूप आप पूछ रहे हैं वह बहुत विस्तृत है । उसे संक्षेप में सुन लीजिए ॥९॥ बलिपुत्र भ मनुष्यों की प्रवृत्ति वर्णाश्रम के आचार की ओर नहीं होगी । साम, श्रम तथा यजुर्वेद का स्वाध्याय नहीं होगा ॥१०॥ कलि में धार्मिक विवाह नहीं होगा । शिष्यों में गुरु भक्ति नहीं होगी । धार्मिक पुत्र नहीं होंगे । अग्निहोत्र आदि क्रिया का भी कोई कद नहीं होगा ॥११॥ जिस किसी कुल में उत्पन्न हुआ मनुष्य बलवान् होने पर सब का नायक बन जाएगा । सभी वर्णों में मनुष्य रूप से जीविका उपार्जन करेगा ॥१२॥ कलि में द्विजाति जिस किसी योग से दीक्षित होगा । विप्रवर । कलि में प्रायश्चित्त का कोई ठिकाना नहीं रहेगा । कलि में जिस किसी का वचन ही शास्त्र माना जाएगा । कलि में सब देवता माने जायेंगे । सब के लिए सब आश्रम होंगे ॥१३ १४॥ उपवास परिश्रम तथा मन का त्याग करना पड़ेगा । धर्म का अनुष्ठान मनमाना होगा । थोड़ा ही धन में गुरुओं की अग्निमान हो जाएगा । स्त्रियों की केवल बालों से ही रूप का अग्निमान होगा । सुवर्ण मणि रत्न वस्त्र आदि वस्त्र हो जाने पर कलि में स्त्रियाँ केवल नेत्रों से ही अलंकृत होंगी ॥१५ १६॥ धनहीन पति को स्त्रियाँ छोड़ देंगी । धनवान् व्यक्ति ही कलि में स्त्रिया का पति होगा ॥१७-१८॥ जो बहुत देगा वही मनुष्यों का स्वामी होगा । स्वामित्व तथा बन्धुत्व केवल स्वापसिद्धि के लिये होगा । द्रव्य घर मरने के लिये बुद्धि द्रव्य बमाने के लिये और धन केवल उपयोग करने के लिये होगा ॥१९ २०॥ कलि

१ ग ० न हेतु० । २ ग न दास्यत्यनभेगव । ३ स ० म्यो ज्येष्ठ बन्धापरोधनी । ४ ० । ४ व ० पा यतो वि० । ५ क ग ० त्येनाऽऽद्यम० । ६ व ० ते । नाभिचस्त्रियो । ७ व चिन्तितरपैव । ८ व सदा ।

अरक्षितारो हर्तारः शुल्काभ्याजेन पार्थिवः । हारिणो जनवित्तानां संप्राप्ते च कलौ युगे ॥३४॥
 यो योऽश्वरथनागादयः स स राजा भविष्यति । यश्च यश्चाबलः सर्वः स स भृत्यः कलौ युगे ॥३५॥
 वैश्याः कृषिवणिज्यादि संत्यज्य निजकर्म यत् । शूद्रवृत्त्या भविष्यन्ति कारकर्मोपजीविनः ॥३६॥
 भक्ष्यव्रतास्तथा शूद्राः प्रव्रज्यालिङ्गिनोऽधमाः । पाखण्डसंश्रयां धृतिमाश्रयिष्यन्त्यसंस्कृताः ॥३७॥
 दुर्भिक्षकरपोडाभिरतोवापद्रुता जनाः । गोघृमान्नयवाभ्राद्यान्देशान्यास्यन्ति दुःखिताः ॥३८॥
 वेदमार्गे प्रलोने च पाखण्डादयः ततो जने । अधर्मवृद्ध्या लोकानामल्पमायुर्भविष्यति ॥३९॥
 अशास्त्रविहितं घोरं तप्यमानेषु वै तपः । नरेषु नृपदोषेण बालमृत्युर्भविष्यति ॥४०॥
 भवित्रो योषितां स्तिः पञ्चषट्सप्तवार्षिकी । नवाष्टदशवर्षाणां मनुष्याणां तथा कलौ ॥४१॥
 पलिनोद्गमश्च भविता तदा द्वादशवार्षिकः । न जीविष्यति वै कश्चित्कलौ वर्षाणि विंशतिम् ॥४२॥
 अल्पप्रज्ञां व्यालिङ्गा दुष्टान्तःकरणाः कलौ । यतस्ततो विनश्यन्ति कालेनाल्पेन मानवाः ॥४३॥
 यदा यदा हि पाखण्डवृत्तिररोपलक्ष्यते । तदा तदा कलेर्वृद्धिरनुमेया विचक्षणैः ॥४४॥
 यदा यदा सतां हानिवेदमार्गानुसारिणाम् । तदा तदा कलेर्वृद्धिरनुमेया विचक्षणैः ॥४५॥
 प्रारम्भादवावसोदन्ति यदा धर्मकृतां नृणाम् । तदाऽनुमेयं प्राधान्यं कलेर्विप्रा विचक्षणैः ॥४६॥
 यदा यदा न यज्ञानामीश्वरः पुरुषोत्तमः । इज्यते पुरुषैर्मनैस्तदा श्रेयं कलेर्वलम् ॥४७॥

यहाने मनुष्यों के घन अपहरण करने वाले होंगे । जिसके पास घोड़े-हाथी होंगे, वह राजा माना जायगा । जो अबल होगा, वही मृत्यु (परिचर्या करनेवाला) होगा ॥३३-३५॥ वैश्य अपने कर्म खेती और व्यापार की छोड़कर शिल्प आदि, शूद्रों का कर्म करेंगे । अधम शूद्र मिश्रावृत्ति तथा गम्यास धारण करेंगे । वे असंस्कृत होते हुए पाखण्डी वृत्ति ग्रहण करेंगे ॥३६-३७॥ मनुष्य दुर्भिक्ष, कर तथा अनेक पीडाओं से दुःखी होंगे । मनुष्य दुःखी होकर उन देशों में जायेंगे, जहाँ गेहूँ, यव आदि अन्न होंगे । वेदमार्ग के लुप्त हो जाने पर और लोगों में घूर्तता के आ जाने पर अधर्म की वृद्धि होगी और मनुष्य अल्पायु होंगे ॥३८-३९॥ ऐसे शास्त्रविहित मार्ग को छोड़कर घोर तप करने लगेंगे तब राजा के दोष से बालमृत्यु होने लगेगी । पुरुषों के नौ, आठ तथा दश वर्ष के होने पर तदा स्त्रियों के पाँच, छ तथा सात वर्ष की होने पर ही सन्तानोत्पत्ति होने लगेगी । बारह वर्षों में ही बुढ़ापा आ जायगा । कल में कोई बीस वर्ष तब जीवित नहीं रहेगा ॥४०-४२॥ मनुष्य अल्पज्ञ, धर्म चिह्न धारण करने वाले तथा दुष्ट अन्तःकरण वाले होंगे । अल्पकाल में ही वे मरट हो जायेंगे ॥४३॥ जब-जब पाखण्डवृत्ति का प्रचार हो तब-तब विद्वान् लोग कलि की वृद्धि का अनुमान करें ॥४४॥ जब-जब वेदमार्ग का अनुसरण करने वाले सत्पुरुषों की हानि हो तब-तब विद्वान् लोग कलि वृद्धि का अनुमान करें ॥४५॥ जब धर्मात्मा मनुष्यों के कार्य में विघ्न पड़े तब विद्वान् लोग कलि की प्रधानता का अनुमान करें ॥४६॥ यज्ञ करने वाले पुरुष जब यज्ञों के स्वामी विष्णु की पूजा न करें तब पण्डित लोग कलि की प्रवृत्ता का अनुमान करें ॥४७॥ जब वेदों में विरति तथा पाखण्डी में रति

१य प्रवृत्त्यन्ति । २क पाखण्डीयोक्ति ज० । ३क. पाखण्डवा० । ४य ०कः । नातजीवति । ५य. न तु जीवति । ६क स प्रज्ञा व० ।

न प्रीतिर्वेदवादेषु पाखण्डेषु यदा रतिः। कलेर्बुद्धिस्तथा प्राज्ञेऽनुमेया द्विजोत्तमाः ॥४८॥
 कलौ जगत्पतिं विष्णुं सर्वलप्टारमोदवरम्। नार्चयिष्यन्ति भो विप्राः पाखण्डोपहृता नराः ॥४९॥
 किं देवैः किं द्विजैर्वेदैः किं शोचेनाभ्युज्यत्प (न्म) ना। इत्येवं प्रलपिष्यन्ति पाखण्डोपहृता नराः ॥५०॥
 अल्पवृष्टिश्च पर्जन्यः स्वल्पं सस्यफलं तथा। फलं तथाऽल्पसारं च विप्राः प्राप्ते कलौ युगे ॥५१॥
 जानुप्रायाणि वस्त्राणि शमीप्राया महोरुहाः। शूद्रप्रायास्तथा वर्णा भविष्यन्ति कलौ युगे ॥५२॥
 अणुप्रायाणि धान्यानि आज्ञप्रायं तथा पयः। भविष्यति कलौ प्राप्त औशीरं चानुलेपनम् ॥५३॥
 श्वश्रूश्च शूरभूमिष्ठा मुरवश्च नृणां कलौ। शालाद्याहारिभार्याश्च सुहृदो भुनिसत्तमाः ॥५४॥
 कस्य माता पिता कस्य यदा कर्मात्मकः पुमान्। इति चोदाहरिष्यन्ति श्वशुरानुगता नराः ॥५५॥
 घाडमनः कायजैर्दोषैरभिभूताः पुनः पुनः। नराः पापान्यनुदिनं करिष्यन्त्यल्पमेघसैः ॥५६॥
 'निःसत्यानामशोचानां निह्रीकाणां तथा द्विजाः। यद्यदुःखाय तत्सर्वं कलिकाले भविष्यति ॥५७॥
 निःस्वाध्यायवपट्कारे' स्वधास्वाहाविवर्जिते। 'तदा प्रविरलौ विप्रः कश्चित् लोके भविष्यति ॥५८॥
 तत्राल्पेनैव' कालेन पुण्यस्कन्धमनुत्तमम्। करोति यः कृतयुगे' त्रियते तपसा हि' यः ॥५९॥

ही तब विद्वान् लोग कलिवृद्धि का अनुमान करें ॥४८॥ विप्रबुद्ध। कलि में पाखण्डी लोग सब का सर्वजन करने वाले तथा ससार के स्वामी विष्णु की पूजा नहीं करेंगे ॥४९॥ (कलि में) पाखण्डी मनुष्य कहाँ करेंगे कि देवता, ब्राह्मण, वेद तथा शुद्धि से हमें क्या प्रयोजन? कलि में मेघ कम बरसेगा, उपज कम होगी और फल भी अल्प मार से पुक्त होगा। लोग अर्धे तक वस्त्र पहनेंगे। वृक्षों में शमी वृक्ष तथा वर्णों में शूद्र वर्ण ही रह जायगा। भी अल्प मार से पुक्त होगा। लोग अर्धे तक वस्त्र पहनेंगे। वृक्षों में शमी वृक्ष तथा वर्णों में शूद्र वर्ण ही रह जायगा। ॥५०-५२॥ अत्रों में (वस्त्र, श्यामा आदि) शूद्र वस्त्र ही होंगे। अधिकतर वक्त्रियों का दूध मिलेगा। लैपो में खस ही रह जायगी। कलि में मनुष्यों के मुखों में वे ही होंगे जिनमें सप्त-सप्तुर की प्रधानता होगी। मुनिश्रेष्ठ। स्वस ही रह जायगी। कलि में मनुष्यों के मुखों में वे ही होंगे जिनमें सप्त-सप्तुर की प्रधानता होगी। मुनिश्रेष्ठ। पाला (गृह) आदि का हरण करने वाली भार्याएँ एवं मित्र हुआ करेंगे। सप्तुर का अनुगमन करने वाले मनुष्य पाला (गृह) आदि का हरण करने वाली भार्याएँ एवं मित्र हुआ करेंगे। सप्तुर का अनुगमन करने वाले मनुष्य कहेंगे कि अब मनुष्य कर्मों से बँधा हुआ है (अर्थात् कर्मानुसार ही जन्म होता है) तब कौन जिसकी माता है और कौन जिसका पिता है? (अर्थात् माता-पिता कुछ नहीं है।) अल्प बुद्धिवाले मनुष्य शरीर, वाणी तथा मन के दोषों से व्याप्त होकर प्रतिदिन पाप किया करेंगे। कलिकाल में सत्य तथा मोक्ष से विहीन एवं निर्लज्ज मनुष्यों को सब प्रकार के दुःख होंगे। मनुष्य स्वाध्याय वपट्कार तथा स्वधा-स्वाहा से विवर्जित होंगे। लोक में विरला ही कोई ब्राह्मण होगा। सत्ययुग में तपस्या से जो फल होता है, वह फल कलियुग में अल्प पुण्य करने से भी हो जाएगा ॥५३-५९॥

१ख विषयार्थ। २क ख ० नि अज०। ३य ० लौ। शीला०। ४क ० हर्षतीह येऽसुरा०। ५ख य ० कायिर्बो०। ६क ० सत्त्वाना०। ७क ० ट्कार स्व०। ८क ० जित। तथा चापरपरो यस्तु विष्णोर्लोके। ९ख तथा पापवृत्तिश्च वक्त्रिलोको म०। १०क ख तदात्पेन च यत्नेन ११ क त्रियते। १२क ख स।

मुनय ऊचु

कस्मिन्कालेऽल्पको धर्मो ददाति 'सुमहाफलम् । वक्तुमर्हस्यशेषेण श्रोतु वाञ्छा प्रवर्तते ॥६०॥

व्यास उवाच

धन्ये कलौ भवेद्विप्रास्त्यल्पकलेशेर्भहृत्फलम् । तथा भवेतां स्त्रीशूद्रौ धन्यौ चान्यन्निबोधत ॥६१॥
यत्कृते दशभिवर्षेऽस्नेताया हायनेन तत् । द्वापरे तच्च मासेन अहोरात्रेण तत्कलौ ॥६२॥
तपसो ब्रह्मचर्यस्य जपादेश्च फलं द्विजा । प्राप्नोति पुरुषस्तेन कलौ साध्विति भाषितुम् ॥६३॥
ध्यायन्कृते यजन्यज्ञेऽस्नेताया द्वापरेऽव्ययम् । यदाप्नोति तदाप्नोति कलौ सकीर्त्यकेशवम् ॥६४॥
धर्मोत्कर्षमतोवात्र प्राप्नोति पुरुष कलौ । स्वल्पायास्तेन धर्मज्ञास्तेन तुष्टोऽस्म्यह कलौ ॥६५॥
व्रतचर्यपरंप्राप्त्या वेदा पूर्वं द्विजातिभिः । ततस्तु धर्मसंप्राप्त्यर्पेणैव विधिवद्धनं ॥६६॥
वृथा कथा वृथा भोज्यवृथा स्व च द्विजन्मनाम् । पतनायूतया भाव्य तैस्तु 'सम्यतिभिः' सह ॥६७॥
असन्यवरकरणे दोषास्तेषा सर्वेषु यस्तुषु । भोज्यपेयादिकं चंपा नैच्छाप्रार्थितकरं द्विजा ॥६८॥
पारतन्त्र्यात्समस्तेषु तेषा कार्येषु वै ततः । लोकान्बलेशेन महता यजन्ति विनयान्विता ॥६९॥
द्विजानुधूपणेनैव पाकयज्ञाधिकारवान् । निज जयति यं लोकं शूद्रो धन्यतरस्ततः ॥७०॥

मुनियों ने कहा—जिस समय अल्प धर्म करने से भी महान फल होता है उसे हम विस्तार से सुनना चाहते हैं । बतलाइये ॥६०॥

व्यास ने कहा—विप्रबृन्द ! इस दृष्टि से यह कलियुग धन्य है कि इसमें थोड़ा ही कलेश को सहन करने से बड़ा भारी फल प्राप्त हो जाता है । इसमें स्त्री और शूद्र भी धन्य हो जाते हैं इसने सिद्धा और भी सुनो ॥६१॥ जो फल सत्ययुग में दान दणों से ज्ञाता में एक वर्ष में और द्वापर में एक मास में मिलता है वह कलियुग में एक अहोरात्र में मिल जाता है ॥६२॥ द्विजगण ! इसी हिसाब से कलियुग में मनुष्य तप ब्रह्मचर्य तथा जप आदि का फल प्राप्त करता है । ॥६३॥ इतयुग में भगवान् के ध्यान से ज्ञाता में यज्ञों से और द्वापर में उपासना से जो फल प्राप्त होता है वह फल कलियुग में केवल मगवल्लीतन से मिल जाता है ॥६४॥ धर्मशो ? कलियुग में मनुष्य अल्प आध्यात्म से ही महान धर्म प्राप्त कर लेता है । इसलिये मैं कलियुग से खुश हूँ । ब्राह्मण लोग पहले धन धारण कर वेदों का स्वाध्याय करते हैं । तब 'यय' से प्राप्त धन से विधिपूर्वक यज्ञ करते हैं ॥६५॥ दूषित भवा दूषित भोज्य तथा दूषित धन ब्राह्मणा के पतन के लिये होता है । ब्राह्मणों को सधर्म होना चाहिये । समस्त वस्तुओं की विपरीत प्रचार में ग्रहण करने से उन्हें दोष लगता है । भोज्य पेय आदि पदार्थ उन्हें दृष्टा के अनुसार प्राप्त नहीं होते हैं (अर्थात् शान-धान में उन्हें समय बरतना पड़ता है) । आसन्न कार्यों में उन्हें परत-व्रता का अनुभव होता है । वे विनयी होकर महान कलेश से घन करते हैं । (किन्तु) पात्रयन का अधिकारी मूढ़ केवल द्विजाति की सेवा करने से ही अपने लोक की जीत सेता है । अतएव अथ द्विजातियों की अपेक्षा वह शूद्र अधिक धन्य है ॥६७॥ मुनिप्रहो ! मध्या और अय या म जिह पात्र लपने की जागा नहीं की जाती है और न कोई

१५ स ० महत्फलः । २क स कालः । न कलिः । ३क मासयान् । ४ग ० वपने । ५त सपविमि । ६क सगः । ७त ०त । यदन्ति ये द्विजा लोः । ८ ०टा द्विजा द्विः ।

भक्ष्यामक्ष्येषु' नाशा (त्रा) स्तिथेया पापेषु वायतः । नियमो मुनिशार्दूलास्तेनासौ साध्वतीरितम् ॥७१॥
 स्वधर्मस्थाविरोधेन नरलंभ्यं धनं सदा । प्रतिपादनीयं पात्रेषु यष्टव्यं च यथाविधि ॥७२॥
 तस्यार्जने महान्क्लेशः पालनेन द्विजोत्तमाः । तथा सद्भिन्नियोगाय विज्ञेय गहनं नृणाम् ॥७३॥
 एभिरन्यैस्तथा क्लेशैः पुरुषा द्विजसत्तमाः । निजाञ्जयन्ति वै लोकान्प्राजापत्यादिकान्क्रमात् ॥७४॥
 योषिच्छुभ्रूणाद्भुतः कर्मणा मनसा गिरा । एतद्विषयमाप्नोति तत्सालोच्यं यतो द्विजाः ॥७५॥
 नातिक्लेशेन महता तानेव पुरुषो यया । तृतीयं व्याहृतं तेन मया साध्वति शोषितम् ॥७६॥
 एतद्ब्रूयः कथितं विप्रा यन्निमित्तमिहाऽऽगताः । तत्पृच्छध्वं यथाकाममहं वक्ष्यामि वः स्फुटम् ॥७७॥
 अल्पेनैव प्रयत्नेन धर्मः सिध्यति वैकलौ । नररात्मगुणान्मोभिः क्षालिताखिलकिल्बिषैः ॥७८॥
 शूद्रंश्च द्विजशुभ्रूयात्परं मुनिसत्तमाः । तथा स्त्रीभिरनायासात्पतिशुभ्रूयैव हि ॥७९॥
 सतस्त्रितयमप्येतन्मम धन्यतम मतम् । धर्मसंराधने क्लेशो द्विजातीना कृतादिषु ॥८०॥
 तथा स्वल्पेन तपसा सिद्धिं यास्यन्ति भानवा । धन्याधर्मं चरिष्यन्ति युगान्ते मुनिसत्तमा ॥८१॥

नियम ही करना पड़ता है ऐसे शूद्रों को इसी कारण अच्छा बर्हा गया है। पुरुषों को सदा अपने धर्म के
 बावरीय से धन का उपार्जन करना, पात्रों को दान देना और विधानपूर्वक यज्ञ करना पड़ता है ॥७१-
 ७५॥ फिर ध्याय से धन कमाने में तथा उसके पालन करने में महान् क्लेश होता है। द्विजधेष्ठो । उस धन
 का सदुपयोग करना तो और भी कठिन है ॥७३॥ द्विजवर । इन कष्टों से तथा दूसरे प्रकार के कष्टों से पुरुष
 अपने लोक को तथा क्रमशः ब्रह्मलोक आदि को जीत लेता है। किन्तु मन, कर्म तथा वाणी से पति की शुभ्रूपा
 करने मात्र से स्त्री इस विषय को अर्थात् पुरुष के समान लोकों को प्राप्त कर लेती है, पुरुष जिन लोकों
 को महान् क्लेश से भी नहीं प्राप्त कर पाता है, उनको स्त्री पतिसेवा से ही प्राप्त कर लेती है, इसीलिये स्त्री
 को यह तीसरा साधुवाद मैंने दिया है। विप्रवृन्द । आप लोग जिस निमित्त यहाँ आये हैं, वह तो मैंने
 बतला दिया। अब पूछिये, क्या पूछना चाहते हैं ? मैं स्पष्ट बतलाऊँगा ॥७४-७७॥ कलि में अल्प प्रयास से
 ही धर्म सिद्ध हो जाता है। आत्मगुण रूपी जल से अखिल पाप रूपी कीचड़ को धो डालने से मनुष्य सिद्ध हो
 जाते हैं। द्विज सेवा में निरत शूद्र और पति-सेवा में उत्तर स्त्री अनायास ही सिद्ध हो जाती है। इसीलिये
 स्त्री, शूद्र और द्विज तीनों इस युग में धन्य हैं—ऐसा मेरा मत है। सत्ययुग आदि में धर्म को आराधना करने
 में महान् क्लेश होता है, पर कलियुग में मनुष्य अल्प तप से ही सिद्ध हो जाते हैं। इस युग में जो धर्मचरण

१ ग नास्यास्ति ये पापे येषु । २ ग तन्वातम् । ३ ग एतद्भिन्नियोगाय भवुलोकं ततो । ४ ग योषिताम् ।

५ क ० म । कर्म० ।

भवदभिर्यदभिप्रेत तदेतत्कथितं मया । अपृष्टेनापि धर्मज्ञा किमन्यत्क्रियता द्विजा ॥८२॥
इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे व्यासपितृसवादे भविष्यकथन
नाम त्रिंशदधिकद्विंशततमोऽध्यायः ॥२३०॥

अथैकत्रिंशदधिकद्विंशततमोऽध्यायः

व्यास मुनिसवादे द्वापरयुगान्तकथनम्

मुनय ऊचुः

आसन्नं विप्रकृष्टं वा यदि कालं न विदमहे । ततो द्वापरविध्वंसं युगान्तं स्पृहयामहे ॥१॥
प्राप्ता वप हि तत्कालमनया धमतृणया । आदद्याम' परं धर्म' सुखमल्पेन कमणा ॥२॥
सत्रासोद्वेगजननं युगात् समुपस्थितम् । प्रनष्टधर्म' धमज्ञ' निमित्तैर्ब्रह्मणोऽहसि ॥३॥

व्यास उवाच

अरक्षितारो हर्तारो बलिभागस्य पार्थिव । युगान्ते प्रभविष्यन्ति स्वरक्षणपरायणा ॥४॥

करते हैं वे धर्म हैं । मुनि गच्छे । आप लोगों का जो अभिप्राय था वह बिना श्रुत भी मैंने बतला दिया । धर्मज्ञों !
कहिये अब (मैं आप लोगों के लिये) और क्या करूँ ? ॥७८-८२॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में व्यास और मुनियों के सवाद प्रकरण में भविष्यकथन नामक
दो सौ तीसवाँ अध्याय समाप्त ॥२३०॥

२३१ अध्याय

व्यास और मुनियों के सवाद में द्वापर युग के अन्त का वर्णन

मुनियों ने कहा—हम लोग समीप तथा दूर के काल को नहीं जानते हैं । इसलिये द्वापर का विध्वंस
करने वाले कलियुग की इच्छा करते हैं । (इसमें) थोड़ा ही कर्मों के करने से हम बहुत धर्म तथा सुख प्राप्त
करेंगे—इसी धमतृणों से हम इस समय तक आ पहुँचे हैं । मय तथा उद्वेगकारी कलियुग उत्पन्नित है जिससे
धर्मों का नाश होता है । धमज्ञ ! अब आप इस युग के अन्त की लक्षणों द्वारा बतलायें ॥१-३॥

व्यास ने कहा—इस युग के अन्त में अपनी रक्षा में निरत राजा लोग अरक्षक तथा बलिभाग के अप
हरण करने वाले होंगे ॥४॥ क्षत्रियेतर राजा होंगे ब्राह्मणों की जीविता शूद्रा में प्राप्त होगी । युगात्त में शूद्र

'अक्षत्रियाश्च राजानो विप्राः शूद्रोपजीविनः । शूद्राश्च ब्राह्मणाचारा भविष्यन्ति युगक्षये ॥५॥
 श्रोत्रियाः । 'काण्डपृष्ठाश्च निष्कर्मणि हवींषि च । एकपक्षायामशिष्यन्ति युगान्ते मुनिसत्तमाः' ॥६॥
 अशिष्टवन्तोऽयं परा नरा मद्यामिषप्रिया । मित्रभायां भविष्यन्ति युगान्ते पुण्याधमाः ॥७॥
 राजवृत्तिस्थिताश्चोरा 'राजानश्चौरादोलिनः । भृत्या ह्यनिदिष्टभुजो भविष्यन्ति युगक्षये' ॥८॥
 घनानि श्लाघनीयानि सता वृत्तमपूजितम् । अकुत्सना च पतिते भविष्यन्ति युगक्षये ॥९॥
 प्रनष्टनासाः । 'पुरुषा मुक्तकेशा विरुपिणः । ऊनपोडशवर्णाश्च प्रसोध्यन्ति तथा स्त्रिय ॥१०॥
 अट्टशूला जनपदाः शिवशूलाश्चतुष्पथाः । प्रमदा केशशूलाश्च भविष्यन्ति युगक्षये ॥११॥
 सर्वे ब्रह्म वदिष्यन्ति द्विजा वाजसनेयिकाः । शूद्राभा चादिनश्चैव 'ब्राह्मणाश्चान्यवासिनः ॥१२॥
 शूलदन्ताः' जिताक्षश्च मुण्डाः काषायवाससः । शूद्राः धर्मं वदिष्यन्ति शाठ्यबुद्ध्योपजीविनः' ॥१३॥
 श्वापदप्रचुरत्व च गवा चैव परिक्षाय । साधूना 'परिवृत्तिश्च विद्यादन्तगते युगे ॥१४॥
 अन्त्यामध्ये निवत्स्यन्ति मध्याश्चान्यनिवासिनः । निर्होकाश्च प्रजाः सर्वा नष्टास्तत्र युगक्षये ॥१५॥
 तपोयज्ञफलानां च विभेतारो द्विजोत्तमा । ऋतवो विपरीताश्च भविष्यन्ति युगक्षये ॥१६॥

ब्राह्मणों का आचरण करेंगे ॥५॥ कहीं कर्म त्रिया तथा हवन आदि नहीं होंगे । मुनिश्रेष्ठो ! श्रोत्रिय तथा क्षत्र-
 जीवी (स्लेच्छ आदि) एक ही पक्षित में भोजन करेंगे ॥६॥ मनुष्य अशिष्ट, घन कमाने में व्यस्त तथा मद्य-
 मासतेवा होंगे । युगान्त में नोच मनुष्य मित्रभायानामी होंगे ॥७॥ चोर राजाओं की वृत्ति में रहेंगे और राजा
 चोरो का आचरण करेंगे । युगक्षय होने पर मृत्युगण अनधिकृत वस्तुओं का उपभोग करेंगे । केवल घन का महत्त्व
 होगा । सज्जनों का सम्मान नहीं होगा । पतितों की निन्दा नहीं होगी ॥८-९॥ पुरुष नासिका विहीन, कुरूप
 तथा कटे भेस वाले होंगे । शीरुह्वै वर्ण से पहले ही स्त्रियाँ सन्तान उत्पन्न करेंगी । देशों में अन्न का विजय
 होगा । चौराहों पर अर्थात् यत्र तत्र वैदों का विजय होगा । स्त्रियाँ भय विजय करेंगी ॥१०-११॥ सब
 यजुर्वेदी ब्राह्मण ब्रह्मवादी होंगे । ब्राह्मण शूद्र के समान तेजोहीन तथा विवाही होंगे ॥ १२॥ बाण्डाल
 स्वच्छ दाँत वाले, माला धारी, मुण्डी तथा काषायवस्त्रधारी होंगे । शठबाहु से जीविका उपार्जन करने
 वाले शूद्र धर्म का व्याख्यात करेंगे ॥१३॥ हिंसक जन्तुओं की अधिकता तथा गायों का क्षय होगा ।
 युगान्त में साधुओं की निन्दा होगी ॥१४॥ अन्तिम वर्ण वाले (शूद्र) मध्य वर्ण (क्षत्रिय आदि)
 हो जायेंगे और मध्य वर्ण वाले अन्तिम वर्ण के हो जायेंगे । युगक्षय में समस्त प्रजा निर्लज्ज तथा
 विनाशशील होगी ॥१५॥ ब्राह्मण लोग तपस्या तथा यज्ञों का फल विजय करेंगे । ऋतुर्वै विपरीत होगी ॥१६॥

१ख कृतपापाश्च । २ख षण्डस्पृहाश्च । ग षण्डस्पृष्टाश्च । ३ख ०मा । सदा साधुदोहृद० । ४क
 ख हरिष्यन्ति । ५ क ०ररुपिण । म० । ६क कली युगे । ७ग षण्डचेतना पुंसो म० । ८क
 ०शूलिग्यो म० । ९ख ०णाश्चैत्यवा० । १०ख ०नलीदाशान्जितोप्याश्च । ११क ०न्तादिनासा च म० ।
 १२क ०द्यधर्मोप० । १३ग दिविवृत्तिश्च ।

तथा द्विहायना 'दम्भा कलौ लाङ्गलधारिणः'। चित्रवर्षी च पर्जन्यो युगे क्षीणे भविष्यति ॥१७॥
 सर्वे शूरकुले जाताः क्षमानाया भवन्ति हि'। यथा निम्ना प्रजा सर्वा भविष्यन्ति युगक्षये ॥१८॥
 पितृदेवानि दत्तानि भविष्यन्ति तथा सुताः। न च धर्मं चरिष्यन्ति मानवा निर्गते युगे ॥१९॥
 ऊपर बह्वला भूमि पन्यानस्तस्करावृताः। सर्वे वाणिकाश्चैव भविष्यन्ति युगक्षये ॥२०॥
 पितृदायान्यदत्तानि 'विभजन्ति तथ्यासुताः। हरणे' यत्नयन्तोऽपि लोभादिभिर्विरोधिनः ॥२१॥
 सौकुमार्यं तथा रूपे रत्ने चोपक्षय गते। भविष्यन्ति युगस्यान्ते नार्यं केशैरलकृता ॥२२॥
 निर्धनस्य रतिस्तत्र गृहस्थस्य भविष्यति। युगान्ते समनुप्राप्ते नान्या भार्यासमा रति ॥२३॥
 कुशोलानार्यभूयिष्ठा वृथारूपसमन्विताः। पुरुषात्प बह्वस्त्रीक तदयुगान्तस्य लक्षणम् ॥२४॥
 बह्व्याचनको लोको न दास्यति परस्परम्। राजचौराग्निदण्डादिकीर्णः क्षयमुपैष्यति ॥२५॥
 अफलानि च सस्यानि तरुणा वृद्धशोलिनः। अशोला सुखिनो लोके भविष्यन्ति युगक्षये ॥२६॥
 धर्मासु परया जाता नोवा शर्करवर्षिणः। सदिग्ध परलोकश्च भविष्यति युगक्षये ॥२७॥
 बंदया इव च राजन्या धनधान्योपजोविनः। युगापक्रमणे पूर्वं भविष्यन्ति न दान्धवा ॥२८॥
 अप्रवृत्ता प्रपश्यन्ति" समया शपयास्तथा। ऋण सविनयप्रश युगे क्षीणे भविष्यति ॥२९॥
 भविष्यत्यफलो हयं प्रोषश्च सफलो नृणाम्। अजाश्चापि निरोत्स्यन्ति पयसोऽयं युगक्षये ॥३०॥

कालि में दो वर्ष के बड़ा हल में जोते जायेंगे। युगान्त में भेष विविध डग से बरसेगा। धीर के कुत्र में उत्पन्न पुष्प क्षमायाचक होंगे। युगक्षय में सारी प्रजायें बड़ी अधम होंगी। पुत्र पिता को जो कुछ दैंगे उसे दान समझेंगे और युगांत में मनुष्य धर्माचरण नहीं करेंगे ॥१७-१९॥ अधिकतर भूमि ऊसर होगी। माय घोरो से आवृत होंगे। सब मनुष्य विनम्रता करेंगे ॥२०॥ पुत्र पिता के बिना दिये हुए धन का बँटवारा करेंगे। जैसे हरण करने में यत्नशील होते हुए भी श्लेष्म आदि के कारण वे परस्पर विरोधी बने रहेंगे। सुदुःखी, रूप तथा रत्न के क्षय हो जाने पर स्त्रियाँ केशों से ही अलङ्कृत होंगी ॥२१-२२॥ शक्तिविहीन गृहस्थ को स्त्रियो में अनुदाग होगा। युगान्त होने पर स्त्री के समान दूसरी रति नहीं होगी (अर्थात् लोग स्त्री प्रसङ्गकर कुछ नहीं मानेंगे)। ल ग दुःशील अनाय प्राय तथा व्यय के रूप में युक्त होंगे। पुत्रों की संख्या कम और स्त्रियों की अधिक होगी। वही युगांत का लक्षण है। मानने वाले बहुत होंगे। लोग परस्पर दान वादान नहीं करेंगे। राजा, चोर, अग्नि दण्ड आदि में लोभ क्षय होगा। सत्य फलहीन होगा। युवक वृद्धत्वमात्र के होंगे। दुःशील लोग सुखी होंगे ॥२३-२६॥ धर्माश्रित्य में तीक्ष्ण वायु बहेगी और बालकान्ध या क्वड की वृष्टि होगी। युगक्षय में परलोक सदेहास्पद हो जायगा ॥२७॥ बंदियों की तरह क्षत्रिय भी धन धान्य से जीविका उपाजन करेंगे। युगान्त में वन्धुता किसी से नहीं होगी ॥२८॥ नियम-अपय का पालन कोई नहीं करेगा। ऋण बहुत अविनयपूवक मिलेगा ॥२९॥ मनुष्यो का हृष अफल होगा और जोष सफल होगा। युग का अवसान म दूष के लिए बरखायी भी

१क वत्सा । २ग ०लवपवा । चि० । ३ख ग ०र्वे चोर० । ४ख ता स्वलेनाया म० । ५ख हि । जना यथाचारयुता य० । ६ख ग भविष्यन्ति । ७ख ग ०रणाय भजिष्यति लो० । ८ख ग ०पिता । सी० । ९क ०ण्डाना तैक्ष्ण्यात्क्षय० । १०ख नीरा । ११ग प्रविश्याति ।

अशास्त्रविहितो यज्ञ एवमेव भविष्यति । अप्रमाणं करिष्यन्ति नरा पण्डितमानिन ॥३१॥
शास्त्रोक्तस्याप्रयत्नतरो भविष्यन्ति न सदाय । सर्वे 'सर्वं विजानाति' ब्रह्माननुपसेव्यं च ॥३२॥
न कश्चिददकधिनमि युगान्ते समुपस्थिते । नक्षत्राणि विद्योयानि न कर्मस्या द्विजातय ॥३३॥
चोरप्रायाश्च' राजानो युगान्ते समुपस्थिते । कुण्डीवृषा नैकृतिका सुरापा ब्रह्मवादिन ॥३४॥
अश्वमेधेन यक्षयन्ते युगान्ते द्विजसत्तमा । याजयिष्यन्त्ययाज्यास्तु 'तयाऽभक्ष्यस्य भक्षिण ॥३५॥
ब्राह्मणा' धनतृष्णांती युगान्ते समुपस्थिते । भो शब्दमभिधास्यन्ति न च कश्चित्पठिष्यति ॥३६॥
एकशब्दास्तया नार्यो गवेषुकपिनद्धका (?) । नक्षत्राणि विवर्णानि विपरीता दिशो दश ॥३७॥
सप्यारागो विदग्धाङ्गो' भविष्यति युगदये । प्रेषयन्ति पितृन्पुत्रा वधू श्वश्रू स्वकर्मसु ॥३८॥
युगेष्वेव' निवत्स्यन्ति प्रमदाश्च नरास्तथा । 'अवृत्त्याऽग्राणि भोक्ष्यन्ति द्विजाश्चैवाहुताग्नय ॥३९॥
भिन्ना बलिमदस्वा च भोक्ष्यन्ति पुरुषा स्वयम् । यञ्चयित्वा पतोन्सुप्तान्गमिष्यन्ति स्त्रियोऽप्यत ॥४०॥
न अधाधिताभ्राप्यरूपाधोद्यताभ्राप्यसूयवान् । कृते न प्रतिकर्ता च युगे क्षीणे भविष्यति ॥४१॥

मुनय ऊचुः

एव विलम्बिते धर्मे मानुषा करयोद्धिता । कुत्र देवो निवत्स्यन्ति किमाहारविहारिण ॥४२॥

बीबी जायसी । अशास्त्रविहित यज्ञ होगा । अपने को पण्डित मानने वाले व्यक्ति बिन प्रमाण के सब कुछ करेंगे ॥३०-३१॥ शास्त्रीय वक्त्रों के वक्ता नहीं मिलेंगे इसमें सन्देह की बात नहीं है । बिना विद्वानों की सेवा रिये ही सब अपने को सत्य समझेंगे । कोई भी अपने को अविद्वान नहीं मानेगा । नक्षत्र आदि का ज्ञात कोई न होगा । द्विजातिगण कमठ नहीं होंगे । युगांत उपस्थित होने पर राजा करीब-करीब चोर ही होंगे । द्विजपण्डित युगांत में पारज पूरा कर्म करने वाले तथा मत्तपायी लोग ब्रह्मवादी होंगे और अश्वमेध यज्ञ करेंगे । वे अनपि-कारिणी को यज्ञ करवायेंगे तथा अमदय यक्षण करेंगे ॥३२-३५॥ युगावसान में धन की तृष्णा से पीड़ित ब्राह्मण 'मा शब्द का उच्चारण करेंगे (अर्थात् अनधिरारिषा समन करावण) पर पढ़ना कोई नहीं (अर्थात् ब्राह्मण लोग मूल होंगे) । स्त्रियाँ एक गत वाली तथा तृण पात्र रखने वाली होंगी । नक्षत्र विषय मालूम पड़ेंगे । दशा दियार्थे विरहीत दीरेंगी । सप्या समय का रण विजय सा दीखेगा । पुत्र पिता का तथा बहू सास का अपने बानी के लिये भेजेगी । इस प्रकार युगावसान में स्त्री-पुरुष रहा करेंगे । द्विजगण बिना अग्नि में अहुतियाँ डाल ही मोत्रन करेंगे । पुरुष स्वयम् बिना निशा तथा मृत-बलि दिय ही सारयेंगे । साय पतिषा का टण्डर स्त्रियाँ अयत्र चली जायेंगी । युग कथय-काय म रोगी कुम्प उपद्रवी तथा निदरा का कोई प्रतीकार करने वाला नहीं होगा ॥३६-४१॥

मुनियो ने कहा—इस प्रकार धर्म का नाश होन पर कर का भार स दबे हुए मनुष्य किस देण में निवास करेंगे ? उनका आहार विहार कैसा होगा ? क्या काम करव ? क्या पाटव ? उनकी खर्बा-चोखाई

१४ ० व न जा ० । २४ ० नत्र प्रसे ० । ३५ ० रत्रिया ० । ४५ ० तया म ० । ५५ ० ना ऋण ० ।
६५ ० तागा ० । ७५ ० गप्यव । ८५ ० ग ० हुताभा ० । ९५ ० वृत्ती ० ।

किं कर्माणः किमोहन्तः किं प्रमाणाः किमायुयः । कां च काष्ठां समासाद्य प्रपत्स्यन्ति' कृतं युगम् ॥४३॥

व्यास उवाच

अत ऊर्ध्वं च्युते धर्मे गुणहीनाः प्रजास्तथा । शीलव्यसनमासाद्य प्राप्स्यन्ति ह्यसमायुयः ॥४४॥
आयुर्हान्यावलग्नानिर्वलग्नान्या विवर्णता । वैवर्ण्याद्ब्याधिसपीडा निर्वेदो ब्याधिपीडनात् ॥४५॥
निर्वेदादात्मसंबोधः संबोधाद्धर्मशीलता । एवं गत्वा परा काष्ठां प्रपत्स्यन्ति कृत युगम् ॥४६॥
उद्देशतो' धर्मशीलाः केचिन्मध्यस्थतां गताः । 'किं धर्मशीलाः' केचित्तु केचिदत्र कुतूहलाः ॥४७॥
प्रत्यक्षमनुमानं च प्रमाणमिति निश्चिता । अप्रमाणं' करिष्यन्ति सर्वमित्यपरे' जनाः ॥४८॥
नास्ति क्वप्यपरताश्चापि केचिद्धर्मविलोपका' । भविष्यन्ति नरा मूढा द्विजाः पण्डितमानिनः ॥४९॥
तदात्वमात्रश्रद्धेया शास्त्रज्ञानवहिष्कृताः । दाम्भिकास्ते भविष्यन्ति नरा ज्ञानविलोपिताः ॥५०॥
तथा' विलुलिते धर्मे जनाः श्रेष्ठपुरस्कृताः । शुभान्तमाचरिष्यन्ति दानशीलपरायणाः ॥५१॥
सर्वभक्ताः स्वयंपुक्ता निर्धूणा निरपत्रपाः । भविष्यन्ति तदा लोके तत्कषायस्य लक्षणम् ॥५२॥
कषायोपप्लवे काले 'ज्ञाननिष्ठाप्रणाशने । सिद्धिमन्येन कालेन प्राप्स्यन्ति निरुपस्कृताः ॥५३॥
विप्राणां शाश्वतौ वृत्तिं यदा वर्णावरे जनाः । 'संश्रमिष्यन्ति भो विप्रास्तत्कषायस्य' लक्षणम् ॥५४॥

का कितन प्रमाण होगा उनकी आयु कितनी होगी ? कितने समय के बाद पुन वे किस सीमा तक पहुँचकर सत्ययुग में प्रवेश करेंगे ? ॥४२-४३॥

व्यास ने कहा—धर्म का ह्रास होने पर प्रजा गुणविहीन होगी और दुर्बल्यस्य के कारण उसकी आयु अल्प होगी ॥४४॥ आयु की हानि होने से बल की हानि होगी । बलहानि से नीचता होगी और नीचता से ब्याधियाँ होगी । ब्याधियां से अत्यन्त खेद और उत्तेजनात्मक होया । आत्म-जागृति के बाद धर्मशीलता होगी । इस प्रकार पराकाष्ठा (अन्तिम सीमा) पर पहुँचकर प्रजा सत्ययुग में पहुँचेगी ॥४५-४६॥ कोई मनुष्य कार्यवश धर्मात्मा बनेगा, कोई न धार्मिक न अधार्मिक अर्थात् मध्य कोटि में रहेगा, कोई शुद्ध धर्म को अपनायेगा; कोई धर्म के सम्बन्ध में उत्सुकता प्रकट करेगा । प्रत्यक्ष और अनुमान दो ही प्रमाण माने जायेंगे । कोई तो प्रमाण को विस्मृत ही नहीं मानेगा ॥४७-४८॥ कोई महानास्तिक होया तो कोई धर्मों का सहारन होया । द्विगण ! मूर्ख मनुष्य भी अपने को पण्डित समझेंगे ॥४९॥ वे वर्तमान समय में होने वाले पदार्थों में थोड़ा रसने वाले और शास्त्रज्ञान से शून्य हो जायेंगे । मनुष्य ज्ञानशून्य तथा दम्भी होंगे । इस प्रकार धर्म के छिन्न-भिन्न हो जाने पर श्रेष्ठ व्यक्तियों से पुरस्कृत लोग दान के स्वभाव में परायण होकर धर्म वशों का समाचरण करेंगे । बलिमुग में मनुष्य सर्वभक्षी, चोर, घृणा करने वाले तथा निर्लज्ज होंगे । यही बलि का लक्षण समझिये ॥५०-५२॥ बलि के उपद्रवकाल में मनुष्यों की ज्ञाननिष्ठा नष्ट हो जायेगी । पर धर्मों की सिद्धि अल्पकाल की ज्ञाननिष्ठा में ही हो जायेगी । ब्राह्मणों की वृत्ति नीच वर्ण के साथ करेंगे । यही बलि का लक्षण समझिये ॥५३-५४॥ बलिमुग

१शु ०परमन्ति । २क उद्देशिनो । ३कि धर्म० । ४व ०चित्तव । स ०चित्तोदू० ५व ०ग धरि० । ६स ०परा प्रजा । ना० । ७व ०बाहिले गते य० । ८न स ०नविद्राघ० । ९ग ०ना । निखिलेन धृष्टीय० । १०ग ०ति तत्त० । ११क स ०श्रुता निष्ठा बले स्मृता । म० ।

महापुङ्गव महावपु महावातं महातपः । भविष्यति युगे क्षीणे तत्कपायस्य लक्षणम् ॥५५॥
 विप्ररूपेण यक्षासि राजानः कर्णवेदिनः । पृथिवीमुपमोक्ष्यन्ति युगान्ते समुपस्थिते ॥५६॥
 नि स्वाध्याप्यवपट्काराः कुनेतारोऽभिमानिनः । ऋग्व्यादा ग्रहारूपेण सर्वभक्ष्या वृथाव्रताः ॥५७॥
 'मूर्खाश्चायं परा लुब्धाः क्षुद्राः क्षुद्रपरिच्छदाः' । व्यवहारोपवृत्ताश्च च्युता धर्माश्च शाश्वतास्तु ॥५८॥
 हर्तारः पररत्नानां परदारप्रघर्षकाः । कामात्मानो दुरात्मानः सोपधाः प्रियसाहसाः ॥५९॥
 तेषु प्रभवमाणेषु जनेष्वपि च सर्वशः । अभावितो भविष्यति मुनयो बहुवृषिणः ॥६०॥
 क्लो यग्रे समुत्पन्नाः प्रधानपुरुषाश्च ये । कथायोगेन तान्सर्वान्मूजयिष्यन्ति मानवाः ॥६१॥
 सत्यचोरा भविष्यन्ति तथा चैलापहारिणः । भोक्ष्यभोज्यहराश्चैव करण्डाना च हारिणः ॥६२॥
 चोराश्चोरस्य हर्तारो हन्ता हन्तुर्भविष्यति । चौरैश्चोरक्षये चापि कृते क्षेमं भविष्यति ॥६३॥
 नि.सारेऽक्षुभिते काले निद्रिये संव्यवस्थिते । नरा वनं ध्रियिष्यन्ति करभारप्रपीडिताः ॥६४॥
 यत्कर्मण्युपरते रक्षांसि द्वापदानि च । कीटमूपिकसर्पाश्च धर्षयिष्यन्ति मानवान् ॥६५॥
 क्षेमं सुभिसमारोग्यं सामग्यं चैव यन्धुषु । उद्देशेयु नराः श्रेष्ठा भविष्यन्ति युगक्षये ॥६६॥

के अवसान में महापुङ्गव होगा, अत्यन्त बृष्टि होगी, वायु बहुत जोर से बहेगी और धूप अत्यन्त तीक्ष्ण होगी ।
 यही कल का लक्षण समझिए ॥५५॥ युगान्त उपस्थित होने पर यक्षराज ब्राह्मण का रूप धारण कर और राजा
 लोग कर्णवेदी होकर (अर्थात् केवल मुनी हुई दाढ़ी पर चलने वाले) पृथिवी का उपनीग करेंगे ॥५६॥ वे स्वाध्याय
 तथा वपट्कार से रहित, अभिमानी, कुभाग पर लोभा को ले जाने वाले, सर्वमयी, निध्याव्रती, मूर्ख, धनलोभुप,
 शोभी, क्षुद्र, तुच्छ साधनो में युक्त, लोकव्यवहार को विगाड़ने वाले, धर्मच्छट, दूसरे के रत्नों के अपहर्ता,
 परस्त्री-गामी, कामी, दुरात्मा, छली तथा दुःसाहसी होंगे । उनके आधिपत्य हो जाने पर पूर्व मनुष्य अनेक
 रूप बनाकर मुनि कहलायेंगे ॥५७-६०॥ कलियुग में जो प्रधान पुरुष उत्पन्न होंगे, उन सबकी मनुष्य कथा के
 योग से (अर्थात् कथा रचकर) पूजा किया करेंगे ॥६१॥ कल में मनुष्य सत्य-हर्ता, तेल हर्ता, भक्ष्य-भोज्य-हर्ता
 करण्ड (हानी) के अपहर्ता, चोरा के चार तथा हत्यारा के हत्यारे होंगे । चोरो के द्वारा चोरो का सब कर दिये
 जाने पर सत्ययुग में जाकर मनुष्या का बल्याण होगा ॥६२-६३॥ साहसीन, क्रियाशून्य तथा उद्देशकारी बाल
 उपस्थित होने पर मनुष्य कर के भार से पीड़ित होकर वन का आश्रय लेंगे ॥६४॥ यज्ञ के नष्ट हो जाने पर
 राक्षस, हिसक पशु कीड़े, चूहे तथा सर्प मनुष्या का नाश साधेंगे ॥६५॥ युग समाप्त हो जाने पर फिर से बल्याण,
 सुमिथ, आरोग्य तथा सकल साधन मनुष्या का प्राप्त होंगे ॥६६॥ कलियुग में मनुष्य स्वयं रक्षक, स्वयं चोर

१. कर्मवादि० । २. कुनरा लोभमा० । ३. स मूर्ता स्वाय० । ४. ल ० रिपहा । व्य० । ५. क
 ० रपायना । ६. अभिमानिनो । ७. वृते । ८. लोके । ९. स नरथे० ।

स्वयंपालाः स्वयं चौराः प्लवसंभारसंभृताः। मण्डलैः संभविष्यन्ति देशे देशे पृथक्पृथक् ॥६७॥
 स्वदेशेभ्यः परिगृष्टा नि.साराः सह बन्धुभिः। नराः सर्वे भविष्यन्ति तदा कालपरिक्षयात् ॥६८॥
 ततः सर्वे समादाय कुमारान्प्रदुता भयात्। कौशिकी संतरिष्यन्ति नराः क्षुद्भयपीडिता ॥६९॥
 'अङ्गान्वङ्गान्कलिङ्गाश्च काश्मीरानय' कौशलान्। श्रृषिकान्तगिरिद्रोणीः संश्रयिष्यन्ति मानवा ॥७०॥
 कृत्स्नं च हिमवत्पाश्वं कूलं च लवणाम्भसः। विविध जीर्णपत्रं च वत्कलान्यजिनानि च ॥७१॥
 स्वयं कृत्वा निवत्स्यन्ति तस्मिन्भूते युगक्षये। अरण्येषु च वत्स्यन्ति नरा भ्लेच्छगर्णः सह ॥७२॥
 नैव शून्या नवारण्या भविष्यति वसुंधरा। अगोप्यारश्च गोप्यारो भविष्यन्ति नराधिपाः ॥७३॥
 मृगमेतस्यैविहङ्गैश्च श्वापदैः सर्पकोटकैः। मधुशाकफलैर्मूलैर्वंत्यिष्यन्ति मानवाः ॥७४॥
 शीर्णपर्णफलाहारा वत्कलान्यजिनानि च। स्वयं कृत्वा निवत्स्यन्ति यया मुनिजनस्तथा ॥७५॥
 'बीजानामकृतस्नेहा' जाहताः 'काष्ठशङ्कुभिः। अजैडक' खरोष्ट्रं च पालयिष्यन्ति नित्यशः ॥७६॥
 नदीलोतासि रीत्स्यन्ति तोपाथं कूलमाश्रिताः। पववात्तव्यवहारेण विपणन्तः परस्परम् ॥७७॥
 'तनूहर्षयथाजातैः' समलान्तरसंभृतैः। बह्वधृत्याः प्रजाहीनाः कुलशीलविर्वजिताः ॥७८॥
 एवं भविष्यन्ति तदा नरादवाधमंजीविनः। हीना' हीनं तथा धर्मं प्रजा समनुवत्स्यति ॥७९॥

तथा उपद्रवों से कातर होकर देश-देश में पृथक्-पृथक् अपना-अपना सप बनायेंगे। युग के अन्त्य होने पर भाई-
 बंधुओं सहित समस्त मनुष्य सारहीन तथा स्वदेश-भ्रष्ट हो जायेंगे। तब सब लोग मय के मारे अपने बाल-
 बच्चों को लेकर कौशिकी नदी के पार करके भाग जायेंगे ॥६७-६९॥ क्षुधा और मय से पीड़ित मनुष्य अग,
 बग, कलिंग, काश्मीर तथा कौशल देश में जाकर वास करेंगे। हिमालय की तराई में तथा क्षारसमुद्र के तटप्रान्त
 में मनुष्य अनेक प्रकार की जीर्ण पत्तियाँ साकर वृक्ष के छाल तथा चर्म पहन कर किसी तरह दिन बाटेगे। वनों
 में भ्लेच्छों के साथ मनुष्य निवास करेंगे ॥७०-७२॥ पृथ्वी पर नये-नये बदन होंगे। यह लोगो से शून्य नहीं होंगी।
 रक्षक राजा लोग ही भक्ष्य हो जायेंगे ॥७३॥ मृग, गत्स्य, पक्षी, हिंसक जीव, साँप तथा कीड़ों के साथ मनुष्य
 मधु, शाक, फल तथा वन्द साकर रहेंगे। सड़े-गले पत्र तथा पल खाकर बत्वाल तथा चर्म पहन कर मनुष्य मुनि
 की तरह रहेंगे। मनुष्य बीज नहीं बोयेंगे, बल्कि बकरे, भेड़ें, गधे तथा ऊँट पालेंगे। वे जल के लिये बाँध बाँधकर
 नदियों की घाटाओं को रोकेंगे, वाजारी में बने-बनाये भोजन का खय विव्रय करेंगे। उनके शरीर बड़े-बड़े रोओं
 से तथा मल से दाच्छादित रहेंगे। वे बहुत सन्तान वाले, सन्तानहीन तथा कुलमर्यादा से शून्य होंगे ॥७४-७८॥
 उस समय ऐसे अधमजीवी मनुष्य होंगे। दीन प्रजा तुच्छ धर्म को अनायेंगी। मनुष्यों की आयु की अवधि

१४ चौरा युगस०। २४ समुदा। ३४ संश्रयिष्य०। ४४ ०२४ तथा मगधमेवला०। ५४ मेर-
 लान्। ६४ श्रृषिक ते गि०। ७४ श्रृषीसत्त्वा गि०। ८४ निक्षुपणै। ९४ न चार०। १०४ ०२४ वृत्ता। म०।
 १०४ बीजना०। ११४ ०कृतस्नेहा हन्तु का०। १२४ ०पठ्यन्तुभि। १३४ अजाण्डजान्तर०।
 १४४ ०पायातममलान्तर०। १५४ समूलोत्तर०। १६४ ०नायीन।

आयुस्तत्र च मर्त्यानां परं त्रिशद्भविष्यति । दुर्बला विषयग्लाना 'जराशोकरं भिष्यताः ॥८०॥
 भविष्यन्ति तदा तेषां रोगैरिन्द्रियसंक्षयः । आयुःप्रत्ययसंरोधोऽपि यदु (यह) परं स्यते ॥८१॥
 शुश्रूषवो भविष्यन्ति साधूनां दर्शने रताः । सत्यं च प्रतिपत्स्यन्ति' व्यवहारोपसंक्षयात् ॥८२॥
 भविष्यन्ति च कामानामलाभाद्धर्मशोलिनः । करिष्यन्ति च' संस्कारं' स्वयं' च क्षयपीडिताः ॥८३॥
 एवं शुश्रूषवो दाने 'सत्ये' 'प्राण्यभिरक्षणे' । ततः पादप्रवृत्ते तु धर्मं श्रेयो 'निपत्स्यते ॥८४॥
 तेषां लब्धानुमानानां गुणेषु परिवर्तताम् । स्यादु किञ्चित् विज्ञाय धर्मं एव च दृश्यते ॥८५॥
 यथा हानिक्रमं प्राप्तास्तथा ऋद्धिक्रमं गताः । प्रपूहीते ततो धर्मं प्रपश्यन्ति' कृत युगम् ॥८६॥
 साधुवृत्तिः कृतयुगे कषाये हानिरुच्यते । एक 'एव तु कालोऽयं हीनवर्णो यथा शशी ॥८७॥
 छन्दश्च तमसा सोमो यथा कलियुगं तथा । मुवतश्च तमसा सोम एवं कृतयुगं च तत् ॥८८॥
 अयंवादः परं ब्रह्म वेदार्थं इति त विदुः । 'अविबिक्तमविज्ञातं' 'दायाद्यमिह' धार्यते ॥८९॥
 इष्टवादस्तपो नाम तपो हि स्यविरौकृतः । गुणैः कर्माभिनिर्वृत्तिगुणाः' दृश्यन्ति कर्मणा ॥९०॥
 आशीस्तु पुरुषं दृष्ट्वा देशकालानुवर्तिनो । युगे युगे यथा कालमृषिभिः समुदाहृता' ॥९१॥

सीस तत्र होगी । वे दुर्बल, विषयग्लान तथा बूढ़ापा और शोक से आज्ञान्त होंगे ॥७९-८०॥ रोगों से उनकी इन्द्रियां क्षीण हो जायेंगी । आयु-क्षय होने के कारण वे विषय से विरत हो जायेंगे । तथा साधुओं की शुश्रूषा एवं दर्शन में निरत होंगे । व्यवहार का क्षय होने पर उनमें सत्यता का उदय होगा । कामों की अप्राप्ति से उनमें धर्म-आगच्छता होगी । तब वे अभाव से पीड़ित होकर स्वयं अपना संस्कार करेंगे ॥८१-८३॥ इस प्रकार सेवा, दान, सत्य तथा जीव रक्षा में उनकी रुचि होगी । तब चारों चरण लेकर धर्म के प्रादुर्भूत होने पर उनका कल्याण होगा ॥८४॥ उनके गुणों में भी परिवर्तन होगा । तब वे अनुमान करेंगे कि धर्म ही ठीक है । पश्चात् जैसे उनकी हानि हुई थी वैसे फिर समृद्धि होगी । धर्म को ग्रहण कर लेने पर वे सत्ययुग का दर्शन करते हैं ॥८५-८६॥ सत्ययुग में मनुष्यों की साधु-वृत्ति होती है और कलियुग में हानि होती है । यही एक काल है, जो चन्द्रमा की तरह मन्दवर्ण है ॥८७॥ जैसे चन्द्रमा अन्धकार से आच्छन्न होता है उसी तरह कलियुग में पापों से आवृत होता है । अन्धकार से मुक्त होने पर चन्द्रमा की तरह कलियुग भी पापों से मुक्त होकर सुशोभित होता है । अयंवाद पत्रब्रह्म है और वेदार्थ भी उसी को जानना चाहिये । वह अपने से अपृथक् तथा अविज्ञेय सृष्टि का धारण करता है । इष्टवाद तप का नाम है और तप को इसी ने सर्वाधिक किया है । गुणों से कर्मों की निष्पत्ति होती है और गुण कर्मों से शुद्ध होते हैं ॥८८-९०॥ युग-युग में समय-समय पर मनुष्यों को देखकर ऋषि लोग देश-काल के अनुसार उन्हें आशीर्वाद देते हैं । प्रति युग में धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष तथा देवताओं की प्रतिक्रिया होती है और

१व ० राक्षसेश्वर ० । २व पश्यन्ति । ३व न । ४व सकोच । ५व स्वपक्षयः ० । ६व स्वपक्षयः ० ।
 ६व सत्यप्रा ० । ७व ० रतिगण । ८व ० । ९व ० ने । चतुष्पदे प्र ० । १०व विपत्स्यति । १०व
 ० पत्स्यन्ति । ११व स ० व चतुष्कालो ही ० । १२व स ० विमुक्त ० । १३व ० यादमि ० । १४व ० मित्रधा ०
 १५व ० गुणैस्तप्येन क ० । १६व ० हृतम् ।

धर्मार्थकाममोक्षाणां देवानां^१ च प्रतिक्रिया। आशिषश्च शिवाः पुण्यास्तथैवाऽऽयुर्युगे युगे ॥९२॥
 तथा युगानां परिवर्तनानि,^२ चिरप्रवृत्तानि विधित्वभावात्
 क्षणं न सतिष्ठति जीवलोकः, क्षयोदयाम्नां परिवर्तमानः ॥९३॥
 इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे व्याससंवादे भविष्यकथनं नाम
 एकं त्रिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः

अथ द्वात्रिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः

व्यास-मुनिसंवादे प्राकृतप्रतिसंवरकथनम्

व्यास उवाच

सर्वेषामेव भूतानां^१ त्रिविधः प्रतिसंवरः। नैमित्तिकः प्राकृतिकस्तथैवाऽऽत्यन्तिको मतः ॥१॥
 ब्राह्मे नैमित्तिकस्तेषां कल्पान्ते प्रतिसंवरः। आत्यन्तिको वै मोक्षश्च प्राकृतो द्विपराधिकः ॥२॥

मुनय ऊचुः

पराधसंख्यां भगवंस्त्वमाचक्ष्व ययोदिताम्। द्विगुणीकृत्यऽज्ञेयः प्राकृतः प्रतिसंवरः ॥३॥

कल्याणमय एवम् पवित्र आशीर्वाद दिये जाते हैं। विषिवशात् युगो वा परिवर्तन होता रहता है। उत्पत्ति तथा प्रलय से मुक्त जीवलोक क्षण भर भी एक रूप में नहीं रहता है ॥९१-९३॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में व्यास और ऋषियों के संवाद-प्रकरण में भविष्यकथन नामक दो सौ एकतीसवाँ अध्याय समाप्त ॥२३१॥

अध्याय २३२

प्राकृत प्रलय का वर्णन

व्यास ने कहा—समस्त प्राणिमो का प्रलय तीन प्रकार का माना गया है। एक नैमित्तिक दूसरा प्राकृतिक और तीसरा आत्यन्तिक। (बल ने अन्त में होने वाला) ब्राह्मप्रलय नैमित्तिक कहलाता है और मोक्ष को आत्यन्तिक कहते हैं। दो परार्थ संख्या तीन जाने पर होने वाला प्रलय प्राकृतिक कहलाता है ॥१-२॥

मुनियों ने कहा—भगवन्! परार्थ संख्या हमें बतलाइये, जिससे द्विगुण कर देने से प्राकृत प्रलय का बोध होता है ॥३॥

ततो यान्यन्पसाराणि तानि सत्त्वान्यनेकदाः । क्षयं यान्ति मुनिश्रेष्ठाः । पार्थिवान्यतिपीडनात् ॥१५॥
 ततः स भगवान्कृष्णो रुद्ररूपो तयाऽव्ययः । क्षयाय यतते कर्तुमात्मस्थाः सकलाः प्रजाः ॥१६॥
 ततः स भगवान्विष्णुर्भानोः सप्तसु रश्मिषु । स्थितः पिबत्यशेषाणि जलानि मुनिसत्तमाः ॥१७॥
 पीत्वाऽम्भांसि समस्तानि प्राणिभूतगतानि वै । शेषं नयति भो विप्राः समस्त पृथिवीतलम् ॥१८॥
 समुद्रान्तरितः शैलाञ्शैलप्रख्यणानि च । पातालेषु च यत्तोयं तत्सर्वं नयति क्षयम् ॥१९॥
 'ततस्तस्याप्यभावेन' तोयाहारोपबृंहितः । सहस्ररश्मयः सप्त जायते तत्र भास्कराः ॥२०॥
 अपश्चोर्ध्वं च ते दीप्तास्ततः सप्त दिवाकराः । दहन्यशेषं त्रैलोक्यं सपातालतलं द्विजाः ॥२१॥
 दह्यमानं तु तैर्दीप्तैस्त्रैलोक्यं दीप्तभास्करैः । साद्रिनगार्णवाभोग्नि स्नेहमभिजायते ॥२२॥
 ततो निर्दग्धवृक्षाम्बु त्रैलोक्यमखिलं द्विजाः । भवत्येषा च वसुधा कूर्मपृष्ठोपमाकृतिः ॥२३॥
 ततः कालाग्निरुद्रोऽसौ भूतसर्गहरो हरः । शेषाहिद्वांससतापात्पातालानि दहत्यधः ॥२४॥
 पातालानि समस्तानि स दग्ध्वा ज्वलतो महान् । भूमिमभ्येत्य सकलं दग्ध्वा तु वसुधातलम् ॥२५॥
 भुवो लोकस्ततः सर्वे स्वर्गलोकं च दाहयन् । ज्वालामालामहावर्तस्तत्रैव परिवर्तते ॥२६॥
 अम्बरीषमिवाऽऽभाति त्रैलोक्यमखिलं तदा । ज्वालावर्तपरीवारमुपक्षीणबलास्ततः ॥२७॥
 ततस्तापपरीतास्तु लोकद्वयनिवासिनः । हृतावकाशा गच्छन्ति महर्लोकं द्विजास्तदा ॥२८॥

रहती है ॥१५॥ उससे जितने अल्प सार वाले जीव हैं, नष्ट हो जाते हैं। मुनिश्रेष्ठी । पृथिवी के जितने पदार्थ हैं, उनका नाश हो जाता है ॥१६॥ तब रुद्र रूपी अविनाशी भगवान् विष्णु समस्त प्रजा को विनष्ट करने के लिये यत्न करते हैं ॥१६॥ तब भगवान् विष्णु सूर्य की सातों रश्मियों में स्थित होकर अशेष जल को सोख लेते हैं ॥१७॥ प्राणियों में व्याप्त समस्त जल का पीकर भगवान् सम्पूर्ण पृथ्वी को सुखा देते हैं। समुद्र, नदियों, पर्वतों, झरनों तथा पातालों में जो जल रहता है, उस सम्पूर्ण जल को सोख लेते हैं। सर्वत्र जल के अभाव हो जाने पर जल पीकर परिपुष्ट हुए सूर्य सात हो जाते हैं। तब ऊपर-नीचे सर्वत्र सूर्य तपाने लगते हैं, पाताल सहित तीनों लोक का जला डालते हैं ॥१८-२१॥ पर्वत और समुद्र भी निर्दग्ध हो जाते हैं। वृक्ष, जल आदि वस्तुओं के जल जाने पर पृथ्वी की आकृति बहुरूप की पीठ के समान हो जाती है ॥२२-२३॥ तब प्राणियों की सृष्टि के सर्वांग रुद्र कालाग्नि का रूप धारण करते हैं। शेषभाग के क्षयस की उष्णता में पाताल जल आता है। समस्त पातालों का जलाकर वह भयंकर रूपसे सम्पूर्ण पृथ्वीतल को जला डालती है ॥ २४-२५॥ तब वह दाहण ज्वाला समूह भूलोक और स्वर्गलोक का निर्दग्ध कर देता है। तीनों लोक भ्राष्ट्र (माड़) की तरह मालूम पड़ते हैं। दोनों लोक (भूलोक और स्वर्गलोक) के निवासी प्राणी ज्वालाओं से सतप्त होकर महर्लोक का जात हैं ॥२६-२८॥ वहाँ से भी अत्यन्त सतप्त होकर जललोक को जाते हैं। तब रुद्ररूपी विष्णु सम्पूर्ण जगत् को जला कर

तस्मादपि महातापतप्ता लोकास्ततः परम् । गच्छन्ति जनलोकं ते' दशावृत्त्या परंपिणः ॥२९॥
 ततो दग्ध्वा जगत्सर्वं स्वरूपी जनार्दनः । मुखनिःश्वासजान्मेघान्करोति मुनिसत्तमाः ॥३०॥
 ततो गजकुलप्रस्थास्तडिद्वन्तो निनादिनः । उत्तिष्ठन्ति तदा व्योम्नि घोराः संवर्तका घनाः ॥३१॥
 केचिदञ्जनसंकाशाः केचित्कुमुदसंनिभाः । धूमवर्णा घनाः केचित्केचित्पीताः पयोधराः ॥३२॥
 केचिद्वरिद्रावर्णाभाः लाक्षारसनिभास्तथा । केचिद्वैदूर्यसंकाशा इन्द्रनीलनिभास्तथा ॥३३॥
 शङ्खकुन्दनिभाश्चान्ये जातीकुन्दनिभास्तथा । इन्द्रगोपनिभाः केचिन्मनःशिलनिभास्तथा ॥३४॥
 पद्मपत्रनिभाः केचिदुत्तिष्ठन्ति घना घनाः । केचित्पुरवराकाराः केचित्पर्वतसंनिभाः ॥३५॥
 'कृतागारनिभाश्चान्ये केचित्स्थलनिभा घनाः । महाकाया महारावा 'पूरयन्ति नभस्तलम् ॥३६॥
 धर्पन्तस्ते महासारास्तमग्निमतिभैरवम् । शमयन्त्यखिलं विप्रास्त्रैलोक्यान्तरिक्षस्तुतम् ॥३७॥
 नष्टे चाग्नौ शतं तेषां वर्षाणामधिक घनाः । प्लावयन्तो जगत्सर्वं वर्षन्ति मुनिसत्तमाः ॥३८॥
 धाराभिरक्षमात्राभिः प्लावयित्वाऽखिला भुवम् । भुवो लोकं तथैवोर्ध्वं प्लावयन्ति दिव द्विजाः ॥३९॥
 अन्धकारीकृते लोके नष्टे स्यावरजङ्गमे । वर्षन्ति ते 'महामेघा वर्षाणामधिक शतम् ॥४०॥
 इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे व्यासपिसंवादे महारलक्षणकथन नाम
 द्वाविंशदधिकद्विंशततमोऽध्यायः ॥२३२॥

अपने मुख के निःश्वास से मेघों का उत्पन्न करते हैं ॥२९-३०॥ फिर हाथी के समान नाव करने वाले मयक
 प्रलयकालीन मेघ अनेक विधुललात्रा से युक्त होकर आकाश में उठते हैं ॥३१॥ उनमें से किसी मेघ का वण
 अञ्जन के समान होता है, किसी का कुमुद के समान होता है, किसी का धूम वर्ण होता है, किसी का पीत वण होता है,
 किसी का वर्ण हल्दी के समान होता है, किसी का लाह के समान होता है किसी का वैदूर्य मणि के समान होता
 है, किसी का इन्द्रनील मणि के समान होता है किसी का शल के समान होता है, किसी का कुन्द पुष्प के समान
 होता है, किसी का जाती पुष्प के समान होता है, किसी का इन्द्रगोप के समान होता है, किसी का मन शिला
 के समान होता है और किसी का पद्मपत्र के समान होता है। किसी मेघ की आकृति महानगर के समान
 होती है, किसी की पर्वत के समान होती है, किसी की श्रीदाम्बू के समान होती है, और किसी की पृथ्वी के
 समान होती है। वे महाशरीर वाले तथा ब्रह्मसूत्र करने वाले मेघ आकाश को भर देते हैं ॥३२-३६॥
 अत्यन्त भोषण वृष्टि करते हैं, जिससे जलनयन में कला हुआ अग्नि शान्त हो जाता है ॥३७॥ मुनिश्रेष्ठा
 अग्नि के नष्ट हो जाने पर भी सौ वर्ष तक वर्ष सम्पूर्ण जगत् का प्लावित करने हुए बरसते रहते हैं ॥३८॥
 द्वादश के समान बूंदों से अखिल पृथ्वी को प्लावित करके भूलाक तथा ऊर्ध्वलाक को प्लावित कर देते हैं
 ॥३९॥ सम्पूर्ण लोक के तिमिरावृत हो जाने पर और स्यावर-जगम के नष्ट हो जाने पर सौ वर्षों से अधिक
 काल तक महामेघ बरसते रहते हैं ॥४०॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में व्यास और ऋषिणा के संवाद-प्रकरण में महारलक्षण कथन नामक दो सौ
 वत्तीसवाँ अध्याय समाप्त ॥२३२॥

१क. ते देशा भूत्या । २ग. ०न । अधनि ० । ३स. कृपाणा ० । ४स. पूरयन्तो । ५ग. ०हामागा व० ।

अथ त्रयस्त्रिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः

प्राकृतलयनिरूपणम्

व्यास उवाच

सप्तपिस्थानमाक्रम्य स्थितेऽम्भसि द्विजोत्तमा । एकाग्रं भवत्येतत्त्रैलोक्यमखिलं तत् ॥१॥
 अयं निश्वास्तजो विष्णोर्वायुस्ताञ्जलदास्तत् । नाशं नयति भो विप्रा वर्षाणामधिकं शतम् ॥२॥
 सर्वभूतमयोऽचिन्त्यो भगवान्भूतभावन । अनादिरादिविद्वस्य पीत्वा वायुमशेषतः ॥३॥
 एकाग्रं ततस्तस्मिन्शेषशय्यास्थितः प्रभुः । ब्रह्मरूपधरः शोते भगवानादिकृद्धिरः ॥४॥
 जनलोकगतं सिद्धं सनकाद्यैर्भिष्टुतं । ब्रह्मलोकगतं ईशं चिन्त्यमानो मुमुक्षुभिः ॥५॥
 आत्ममायामयीं दिव्या योगनिद्रां समास्थितः । आत्मानं वासुदेवाख्यं चिन्त्यन्परमेश्वरः ॥६॥
 एष नैमित्तिको नाम विप्रेन्द्रा प्रतिसत्वरः । निमित्तं तत्र यच्छेते ब्रह्मरूपधरो हरिः ॥७॥
 यदा जायते सर्वात्मा स तदा चेष्टते जगतः । निमोलयेतदखिलं मायाशय्याशयेऽच्युते ॥८॥
 पदमयोनेदिनं यत्तु चतुर्युगसहस्रवत् । एकाग्रं कृते लोके तावती रात्रिरेक्ष्यते ॥९॥
 ततः प्रवृद्धो रात्र्यन्ते पुनः सृष्टिं करोत्यजः । ब्रह्मस्वरूपपृथिविष्णुर्मथा च कथितं पुरा ॥१०॥

अध्याय २३३

प्राकृत लय का निरूपण

ध्यान में ब्रह्मा—द्विजवर । सप्तपिथा के स्थान से लेकर अखिल जगत एकाग्र अर्थात् जलमय हो जाता है ॥१॥ तदनन्तर विष्णु का श्वास्तवायु मयो को नष्ट कर देता है और सौ वर्षों से अधिक काल तक ब्रह्मा रहता है ॥२॥ जब सबजीवमय अचिन्त्य प्राणियों के उत्पादक अनादि तथा विद्वत् के आदि भगवान् अशेष वायु को पीकर उसी एकाग्र में शेषशय्या पर स्थित होते हैं ॥३॥ जब ब्रह्मरूपानी आदिकर्ता भगवान् हरि शयन में रहते हैं तब जनलोक निवासी सनक आदि सिद्धन्द् उनका स्तुति करते हैं । ब्रह्मलोकवासी मुमुक्षु जन भी उनका ध्यान करते हैं । परमेश्वर भगवान् आत्ममायामयी दिव्य योगनिद्रा में स्थित होकर वासुदेव रूप अपने आत्मा की चिन्ता करता है । विप्रश्चन्द्रा ! इसी का नाम नैमित्तिक लय है जिसमें ब्रह्मरूपधारी हरि ही निमित्त है । जब अखिलात्मा भगवान् जागते हैं तब ससार में त्रिपाणिलता जाती है । माया रूपी गय्या पर जब ब्रह्मा जनादन सो जाते हैं तब जगत् भी निद्रिय हो जाता है । एक सप्ताह चतुर्युग का बराबर जो ब्रह्मा का दिन होता है उसी दिन का अनुसार उनको रात होती है जिसमें अखिल लोक एकाग्र के रूप में परिवर्तित हो जाता है ॥४॥ ९॥ तब रात्रि का अन्त में प्रवृद्ध ब्रह्मा पुनः सृष्टि करते हैं । यह तो पहले ही कहा गया है कि ब्रह्मा का रूप में विष्णु ही होते हैं ॥१०॥ द्विजवर ।

१क ०त । मुषनि० । २ग ०सतोवि० । ३क स ०के पुनस्त० । ४क शान्तो । ५क पमयोह । ६ ०द्यम् । ए० ।

इत्येष' कल्पसंहारो अन्तरप्रलयो द्विजाः । नैमित्तिको च' कथितः शृणुष्व' प्राकृतं परम् ॥११॥
 अवष्टुष्यन्त्यादिभिः सम्यक्कृते शाय्यालये' द्विजाः । समस्तेष्वेव लोकेषु पातालैष्वखिलेषु च ॥१२॥
 महादेविकारस्य विशेषात्त्र' संक्षये' । कृष्णेच्छाकारिते तस्मिन्प्रवृत्ते' प्रतिसंचरे ॥१३॥
 आपो प्रसन्ति वं पूर्वं 'भूमेर्गन्धादिकं गुणम् । 'आतगन्धा ततो भूमिः प्रलपय' प्रकल्पते ॥१४॥
 प्रनष्टे गन्धतन्मात्रे भवत्यूर्वा जलात्मिका । आपस्तदा प्रवृत्तास्तु वेगवत्यो महास्वनाः ॥१५॥
 सर्वमापूरयन्तीदं तिष्ठन्ति' विचरन्ति च । सलिलेनैवोभिमता लोकालोकः समन्ततः ॥१६॥
 अपामपि गुणो यस्तु ज्योतिषा' पीयते तु सः । नश्यन्त्यापः सुतप्ताश्च रसतन्मानसक्षयात् ॥१७॥
 ततश्चाऽऽपोऽमृतरसा' ज्योतिष्द्वं प्राप्नुवन्ति वं । अग्न्यवस्थे तु सलिले तेजसा सर्वतो वृते ॥१८॥
 स चाग्निः सर्वतो व्याप्य आदत्ते तज्जलं तदा । सर्वमापूर्यतो चाभि'रयत्यग्नि'स्तदा जगदिदं शनैः ॥१९॥
 अदिभिः संतते तस्मिन्स्तिर्यग्ध्वंमवस्थया । ज्योतिषोऽपि परं रूपं वायुरति प्रभाकरम् ॥२०॥
 प्रलीने च ततस्तस्मिन्वायुभूतेऽखिलात्मके । प्रनष्टे रूपतन्मात्रे कृतहृषो विभावसु ॥२१॥
 प्रशाम्यति तदा ज्योतिर्वायुर्दोषयते महान् । निरालोके तदा लोके वायुसंस्थे च तेजसि ॥२२॥
 तत' प्रलयमासाद्य 'वायुसंभवमात्मनः । 'ऊर्ध्वं च वायुस्तिर्यक्च दोषधीति विशो वद ॥२३॥

इमी का नाम अन्तरप्रलय, कल्पसंहार तथा नैमित्तिक लय है। अब आप लोग प्राकृत रूप के बारे में सुनिये ॥११॥ विप्रबुद्ध । अवष्टि तथा अग्नि आदि से समुद्र, समस्त लोक तथा अखिल पाताल के मध्य ही जाने ॥१२॥ तब कृष्ण की इच्छा से प्राकृत रूप होने लगता है पर महत् आदि विकारों का भी क्षय हो जाता है ॥१३॥ तब कृष्ण की इच्छा से प्राकृत रूप होने लगता है जिसमें जल भूमि के गन्ध आदि गुणों को विनष्ट कर देता है ॥१४॥ तब गन्धशून्य पृथिवी प्रलय मचाने लगती है। गन्ध के मध्य ही जाने पर पृथ्वी जल रूप में परिणत हो जाती है। जल बहुत वेग से महापराव्र कर लेते हुए बहने लगता है, जिससे सम्पूर्ण जगत् भर जाता है। तीनों लोकों में तरंगयुक्त जल ही जल होता है। जल के गुण को भी अग्नि पी जाता है। रस के मध्य ही जाने पर अत्यन्त तप्त जल भी विनष्ट हो जाता है ॥१५॥ तब अमृत रूप रस वाला जल ज्योति रूप में परिवर्तित हो जाता है। जब जल अन्निरूप में परिणत हो जाता है और सब ओर तेज से बह जाता है तब वह अग्नि सब ओर फैलकर उस जल को ग्रहण कर लेता है। तब वह सम्पूर्ण जगत् धीरे धीरे भर जाता है। तिरछे, ऊपर और नीचे ज्वालाओं के फैल जाने पर वायु अग्नि व परम भास्वर रूप को भी निगल जाता है ॥१६-२०॥ जब अग्नि वायुरूप में परिवर्तित हो जाता है और उसका रूप मध्य हो जाता है तब प्रकाश वृद्ध जाता है और 'ह्रस्व' करने बड़े जार से वायु बहने लगता है। अग्नि के वायु रूप में परिणत हो जाने पर समस्त लोक प्रकाशहीन हो जाते हैं। तब वायु प्रलय मचाते हुए दशों दिशाओं को ऊपर, नीचे तथा तिरछे बड़े ओर से कोंपाने लगता है ॥२१-२३॥ वायु के भी स्पर्श गुण का आकाश प्रस

१क ०श्वेव क० । २ख ०त्तिकवच क० । ३ग म । ४ग सत्कानले । ५ग ०तस्य स० । ६ख सनुले । ७क ०प्रकृते प्र० । ८ग ०न्यात्मक रसम् । ९ग शान्तपन्था । १०क ग लयत्वाय क० । ११ग ०न्ति च रमन्ति । १२क. ०तिपि लीय० । १३ग ०पी हृत् । १४ग वायु स० । १५क म ०र्ध्व चाधश्च तिर्य० ।

वायोऽस्त्वपि गुणं स्पर्शमाकाशं ग्रसते ततः । प्रशाम्यति तदा वायुः खं तु तिष्ठत्यनावृतम् ॥२४॥
 अहं परमरसस्पर्शमन्धवदमूर्तिमत् । सर्वमापूरयन्नेह सुमहत्तत्प्रकाशते ॥२५॥
 'परिमण्डलतस्तत् आकाशं शब्दलक्षणम् । शब्दमात्रं तयाऽऽकाशं सर्वमावृत्य तिष्ठति ॥२६॥
 ततः शब्दगुण तस्य भूतादिग्रसते पुनः । भूतेन्द्रियेषु युगपदभूतादौ संस्थितेषु वै ॥२७॥
 अभिमानात्मको ह्येष भूतादिस्तामसः स्मृतः । भूतादि ग्रसते चापि 'महाबुद्धिर्विचक्षणा ॥२८॥
 उर्वो महाश्च जगत् प्रान्तेऽन्तर्बाह्यतस्तथा । 'एवं सप्तमहाबुद्धिः (?) त्रमात्प्रवृत्तयस्तथा ॥२९॥
 प्रत्याहारैस्तु ताः सर्वाः प्रविशन्ति परस्परम् । येनेदमावृतं सर्वमण्डमसु प्रलीयते ॥३०॥
 सप्तद्वीपसमुद्रान्त सप्तलोकं सपर्वतम् । उदकावरणं ह्यथ ज्योतिषा पीयते तु तत् ॥३१॥
 ज्योतिर्वायौ लयं याति यात्याकाशे समोरणः । आकाशं चैव भूतादिग्रसते तं तथा महान् ॥३२॥
 महान्तर्मेभिः सहितं प्रकृतिग्रसते द्विजाः । 'गुणसाम्यमनुद्विक्तमन्यूनं च द्विजोत्तमाः ॥३३॥
 प्रोच्यते प्रकृतिर्हेतुः प्रधानं कारणं परम् । इत्येषा प्रकृतिः सर्वा व्यक्ताव्यक्तस्वरूपिणी ॥३४॥
 व्यक्तस्वरूपमव्यक्ते तस्यां विप्राः प्रलीयते । एकः शुद्धोऽक्षरो' नित्यः सर्वव्यापी तया पुनः ॥३५॥
 सोऽर्ज्यशः सर्वभूतस्य द्विजेन्द्राः परमात्मनः । नश्यन्ति सर्वा यत्रापि नामजात्यादिकल्पनाः ॥३६॥
 सत्तामात्रात्मके ज्ञेये ज्ञानात्मन्यात्मनः परे । स' ब्रह्म' तत्परं धाम परमात्मा' परेश्वरः ॥३७॥

लेता है। तब वायु आकाशरूप में परिणत हो जाता है। रूप, रस, गन्ध, स्पर्श तथा मूर्ति से रहित वह महान् आकाश ही सर्वत्र प्रकाशित होता है। आकाशमण्डल में केवल शब्द ही होता है। शब्दमात्र करने वाला वह आकाश सबको आवृत कर स्थित होता है। तब आकाश के शब्द गुण को भी अहंकार ग्रस लेता है ॥२४-२६॥ यह अहंकार सभी प्राणियों में अभिमान रूप से रहता है और यह तामस है। इस अहंकार को भी विचक्षण महाबुद्धि खा डालती है। महाबुद्धि, उर्वो, महान्, जगत् का आम्पन्तराग, बाह्य प्राण तथा प्रान्त और प्रवृत्तियों में सात महाबुद्धि हैं। प्रलय के समय वे परस्पर एक-दूसरे में प्रविष्ट हो जाती हैं, जिससे यह सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड जल में प्रलीन हो जाता है (??)। जल के आधार समुद्र पर्वत साथी द्वीप तथा पर्वत सहित सातों लोक को धोने पों जाता है ॥२७-३१॥ अग्नि वा स्य वायु म और वायु वा आकाश में हो जाता है। आकाश को भूतादि और उनकी महान् ग्रस लेता है ॥३२॥ भूतादि सहित महान् को प्रवृत्ति ग्रस लेती है। द्विजश्रेष्ठो । गुणा की साम्यावस्था—नम न अपि न—को प्रवृत्ति कहते हैं। इसी के नाम हेतु, प्रधान, कारण तथा पर हैं। यह प्रवृत्ति व्यक्त तथा अव्यक्त स्वरूप वाली है ॥३३-३४॥ विप्रबुद्ध । इसका व्यक्त रूप अव्यक्त रूप में लीन हो जाता है। जो एक, शुद्ध, अक्षर, नित्य, तथा सर्वव्यापी है, वह भी सर्वभूतस्वरूप परमात्मा का अंग है। आत्मा के पर रूप म, जो ज्ञेय तथा सत्तामात्र है नाम, जाति आदि की समस्त कल्पनावेशीन हो जाती है ॥३५-३६॥ वही ब्रह्म, परम धाम, परमात्मा, परेश्वर तथा विष्णु है, जिसमें बिलीन होकर यह सत्ता पुन लीनता नहीं है। जा मैंने

१ग ० षडल तच्छुषिरमारा ० । २ग ० दान । उ । ३ल ० बं मुते महायुदे न ० । ४न ० जा । स्वगुणे मा ० । ५न ० म्यमुद्रि ० । ६न ० शयो नि ० । ७न ० ह्यण परोवात ० । ८ल ० र वात ० । ९न म ० मा स ये १० ।

स विष्णुः सवमेवेदं यतो नाऽऽवर्तते पुनः । प्रकृतिर्या मयाऽऽस्थाता व्यक्ताव्यक्तस्वरूपिणी ॥३८॥
 पुरुषश्चाप्युभावेतो लीयते परमात्मनि । परमात्मा च सर्वेषामाधार परमेश्वर ॥३९॥
 विष्णुनाम्ना स वेदेषु वेदान्तेषु च गीयते । प्रवृत्तं च निवृत्तं च द्विविधं कम धंदिकम् ॥४०॥
 ताम्यामुभाभ्यां पुरुषैर्यजमूर्ति स इज्यते । ऋग्यजुःसामभिर्गानैः प्रवृत्तिरिज्यते ह्यसौ ॥४१॥
 यज्ञेश्वरो 'यज्ञपुमापुरुष' पुरुषोत्तम । ज्ञानात्मा ज्ञानयोगेन ज्ञानमूर्ति स इज्यते ॥४२॥
 निवृत्तयोगमार्गेश्च विष्णुर्मुक्तिफलप्रदः । ह्रस्वदीर्घप्लुतैस्तु किञ्चिद्वस्त्वभिधीयते ॥४३॥
 यच्च वाचामविषयस्तत्सर्वं विष्णुरव्यय । व्यक्तं स एवमव्यक्तं स एव पुरुषोऽव्यय ॥४४॥
 परमात्मा च विश्वात्मा विश्वरूपधरो हरिः । व्यक्ताव्यक्तात्मिका तस्मिन् प्रकृति सा विलीयते ॥४५॥
 पुरुषश्चापि भो विप्रा यस्तदव्याकृतात्मनि । द्विपरार्थात्मकं कालं कथितो यो मया द्विजा ॥४६॥
 तदहस्तस्य विप्रेन्द्रा विष्णोरीशस्य कथ्यते । व्यक्तं तु प्रकृतौ लीने प्रकृत्या पुरुषे तथा ॥४७॥
 'तत्राऽऽस्थितं निशा तस्य तत्प्रमाणा सपोधना' । नैवाहस्तस्य च निशा नित्यस्य परमात्मनः ॥४८॥
 उपचारात्तयाऽप्यतत्तस्यशस्य तु कथ्यते । इत्येष मुनिशार्दूल कथितं प्राकृतौ लयः ॥४९॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्म प्राकृतलयनिरूपणं नाम

त्रयस्त्रिंशदधिकद्विंशततमोऽध्यायः ॥२३३॥

व्यक्त-अव्यक्त स्वरूपा प्रकृति बतलायी है वह और पुरुष दानो परमात्मा में लीन हो जाते हैं। परमात्मा सबके आधार और परमेश्वर है। वेद वेदांतों में वे विष्णु नाम से गाये जाते हैं। वहिक कम दो प्रकार के होते हैं—एक प्रवृत्ति (कर्म) और दूसरा निवृत्ति (साधन) ॥३७४॥ उन दोनों कर्मों से मनुष्य यज्ञमूर्ति परमात्मा की उपासना करते हैं। ऋग यज्ञ तथा साम का माग प्रवृत्त कहलाता है। इस माग से मनुष्य पुरुषोत्तम यज्ञपुरुष तथा यज्ञपति भगवान की आराधना करते हैं। ज्ञानी पुरुष ज्ञानयज्ञ से ज्ञानमूर्ति भगवान की पूजा करते हैं। मागमाग निवृत्त कहलाता है इससे उपासना करने पर विष्णु मोक्षफल देते हैं। ह्रस्व दीर्घ तथा प्लुत से जिनका उच्चारण होता है और जो वाणी से अगाध है वे अविनाशी विष्णु हैं। वे ही व्यक्त अव्यक्त पुरुष अव्यक्त परमात्मा विश्वात्मा तथा विश्वरूपधारी हरि हैं। व्यक्त अव्यक्त स्वरूपा प्रकृति उन्हीं में लीन होती है ॥४१४५॥ विप्र वेद । पुरुष भी उसी परमात्मा में लीन हो जाता है। द्विजगण । दो पराश का काल जो मैंने बतलाया है वह नवभक्तिमान विष्णु का एक दिन माना गया है। व्यक्त के प्रकृति में और प्रकृति में पुरुष में लीन हो जाने पर विष्णु की अपने दिन में धरावर रात भी होती है। नियम परमात्मा का न तो दिन होता है न रात होती है। पर तु उच्चार (उपलक्षण) से यह कहा जाता है। मुनिवर यह प्राकृतिक लय का वर्णन हुआ ॥४६४९॥

आदिब्राह्मपुराण में प्राकृत लय निरूपण नामक दो सौ तीसरी अध्याय समाप्त ॥२३३॥

१ ग यति । २ क ० नारम्भेयु की० । ३ ग प्रवृत्ति । ४ ख ० मान्यज्ञमुक्पु० । ५ क ० वत यो० ।
 ६ क ० माग तु वि० । ७ क ख तत स्थि० । ८ क द्विजोत्तमा ।

अथ चतुस्त्रिंशदधिकद्विंशततमोऽध्यायः

आत्यन्तिकलयनिरूपणम्

व्यास उवाच

आध्यात्मिकादि भो विप्रा शास्त्रा तापत्रयं बुध । उत्पन्नज्ञानवैराग्य प्राप्नोत्यात्यन्तिक लयम् ॥१॥
 आध्यात्मिकोऽपि द्विविधा शारीरो मानसस्तथा । शारीरो बहुभिर्भेदैर्भिद्यते धूमता च स ॥२॥
 शिरोरोगप्रतिश्यायज्वरद्वलभगदरं । गुल्माशंश्वययुश्वासच्छर्द्यादिभिरनेकधा ॥३॥
 तथाऽक्षिरोगातीसारकुष्ठाङ्गामपसजकं । भिद्यते देहजस्तापो मानस ध्योतुमर्ह्य ॥४॥
 कामत्रोधभयद्वेषलोभमोहविषादज । शोकासूषावमानेर्ष्यामात्सर्याभिभवस्तथा ॥५॥
 मानसोऽपि द्विजश्रेष्ठास्तापो भवति नैकधा । इत्येवमादिभिर्भेदैस्तापो ह्यध्यात्मिक स्मृत ॥६॥
 मृगयक्षिमनुष्याद्यं पिशाचोरगराक्षसं । सरोसृषाद्यंश्च नृणा जन्यते चाऽऽधिभौतिक ॥७॥
 शीतोष्णवातवर्षाम्बुबन्धुतादिसमुदभव । तापो द्विजवरश्रेष्ठा कथ्यते चाऽऽधिदैविक ॥८॥
 गर्भजन्मजरान्तानमृत्युनारकज तथा । दुःख सह्यशो भेदैर्भिद्यते मुनिसत्तमा ॥९॥
 सुकुमारतनुर्गर्भं जन्तुबहुमलावृते । उत्पन्नवेष्टितो भग्नपृष्ठग्रीवास्त्रिसहति ॥१०॥

अध्याय २३४

आत्यन्तिक लय का निरूपण

व्यास ने कहा—विप्रवद । विद्वान् लोग को आध्यात्मिक आदि तीन प्रकार के तापो के जानने से ज्ञान और वैराग्य उत्पन्न होता है जिससे वे आत्यन्तिक लय का प्राप्त करते हैं ॥१॥ आध्यात्मिक ताप के भी दो भेद हैं—एक शारीरिक और दूसरा मानसिक । शारीरिक ताप के भी बहुत से भेद हैं मुनिये ॥२॥ शिराव्यथा सर्पों ज्वर मूत्र मगदर प्लीहा कवामार हाथीपाँव खाँसी नेत्रराग अतीसार कुष्ठ आदि अनेक भेद शारीरिक ताप के हैं ॥३॥ अब मानस ताप के भेद मुनिये । काम वाप भय द्वेष लोभ मोह विषाद शोक अमृता अपम न ईर्ष्या मात्सर्य तथा परामर्ष—इन भेदों से मानस ताप भी अनेक प्रकार के होते हैं । द्विजधर्मो । इस प्रकार आध्यात्मिक ताप अनेक भेदों से युक्त है ॥४॥ ६॥ अनुष्या को मृग पक्षी मनुष्य पिशाच तदि राक्षस तथा रक्षने वाले जीवा न जा ताप होता है उसका नाम आधिभौतिक है ॥७॥ विप्रवर । सर्पों गर्मों वायु वर्षा जल विजली आदि म जा ताप होता है उसका नाम आधिदैविक है ॥८॥ गन्ध जन्म जरा अमृतता मृत्यु तथा नरक से जा दुःख होता है उसका कारण भेद है । अनेक प्रकार के मला से युक्त गन्ध म कामल शरीर वाला जीव उत्पन्न म वेष्टित रहता है जिसको पीठ ग्रीवा तथा हड्डियाँ मुड़ी रहती हैं ॥९॥ १०॥ माता जा अत्यन्त

१ ग ०को वै द्वि० । २व ०रोगज० । ३व ०रक्ष्यम० । ४क ०नुष्योपै पि० । ५रा ०न ।
 ६वने व० । ६क ०ता मुन० । ७व ०वात्सर्य० ।

अत्यन्तकटुतीक्ष्णोष्णलवणमार्तुभोजनैः । अतितापिभिरत्यथ वाध्यमानोऽतिवेदनः ॥११॥
 प्रसारणाकुञ्चनादौ नागा (ङ्गा) नां प्रभुरात्मनः । शङ्खमूत्रमहापङ्कशापी सर्वत्र पोडितः ॥१२॥
 निरुच्छ्वासः सचेतन्यः स्मरञ्जन्मशतान्यथ । आस्ते गर्भेऽतिदुःखेन निजकर्मनिबन्धनः ॥१३॥
 जामयानः पुरीषासृड्मूत्रशुक्रविलाननः । प्राजापत्येन वातेन पोड्यमानास्थिवन्धनः ॥१४॥
 अघोमुखस्तः क्रियते प्रबलः सूतिमारुतः । बलेशेनिष्क्रान्तिमाप्नोति जठरान्मातुरातुरः ॥१५॥
 मूर्च्छामवाप्य महतीं संस्पृष्टो बाह्यवायुना । विज्ञानभ्रंशमाप्नोति जातस्तु मुनिसत्तमाः ॥१६॥
 कण्ठकैरिव तुन्नाङ्गः क्रकचैरिव दारितः । पृतिव्यणाग्निपतितो धरण्यां क्रिमिको यथा ॥१७॥
 कण्डूयनेऽपि चाशक्तः परिवर्तैऽप्यनीश्वरः । स्तनपानादिकाहारमवाप्नोति परेच्छया ॥१८॥
 अशुचिस्तरे सुप्तः कोटदंशादिभिस्तथा । भक्ष्यमाणोऽपि नवंपां समर्थो विनिवारणे ॥१९॥
 जन्मुद्विग्नान्यनेकानि 'जन्मनोऽनन्तराणि च । बालभावे यदाप्नोति आधिभूतादिकानि च ॥२०॥
 अज्ञानतमसा छद्मो मूढान्तःकरणो नरः । न जानाति कुतः कोऽहं कुत्र गन्ता किमात्मकः ॥२१॥
 केन बन्धेन बद्धोऽहं कारणं किमकारणम् । किं कार्यं किमकार्यं वा किं वाच्यं किं न चोच्यते ॥२२॥

अश्ल, कटु, तीक्ष्ण, उष्ण तथा लवण मिश्रित भोजन करती है, उससे गर्भस्व जीव को अतिपीड़ा होती है ॥११॥
 जीव अपने अंगों के फैलाने तथा समेटने में भी असमर्थ रहता है । उसे बिछा तथा मूत्र के महापंक में सोता पड़ता है । सर्वत्र उसे पीटा ही पीटा होती रहती है ॥१२॥ श्वास-रहित पर सचेतन रहते हुए जीव को संकटो जन्मों का स्मरण होता है । इस प्रकार कर्मबन्धन में पड़कर जीव गर्भ में अत्यन्त दुःख भोगता है ॥१३॥ उत्पत्ति के समय जीव का मुख बिछा, मूत्र, शोणित तथा वीर्य से लिपटा रहता है प्राजापत्य नामक वायु उसकी हड्डियों की ओर में पीटा पहुँचाता है, सूति नामक प्रबलवायु उसे अघोमुख कर देता है । इस प्रकार अत्यन्त क्लेश से आतुर होकर जीव माता के पेट से निकलता है ॥१४-१५॥ बाहरी वायु के लगते ही उसे अत्यन्त मूर्च्छा आ जाती है । तभी उसका ज्ञान नष्ट हो जाता है ॥१६॥ उस समय उसकी ऐसी दशा होती है कि मनी उसके अंगों में काँट तनी उसका ज्ञान नष्ट हो जाता है ॥१७॥ वह अंगों को सुजलाने में तथा बरबट बदलने में भी असमर्थ रहता है । स्तन उसकी स्मित होती है ॥१८॥ वह अंगों को सुजलाने में तथा बरबट बदलने में भी असमर्थ रहता है । स्तन उसकी स्मित होती है ॥१८॥ अपवित्र विस्तरे पर सोता है । कीड़े-मकोड़े पान आदि आहा, भी उसे दूसरे की इच्छा में मिलता है ॥१९॥ उसे जन्म-दुःख से अनेक होते हैं, जन्म के वे काटने पर भी वह उसका निवारण नहीं कर सकता है ॥२०॥ उसे जन्म-दुःख से अनेक आधिभौतिक दुःख होते हैं । अज्ञानरूपी बाद भी अनेक प्रकार के दुःख होते हैं ॥२०॥ बन्धन में उसे अनेक आधिभौतिक दुःख होते हैं । अज्ञानरूपी बन्धन से आवृत चित्त वाला मूर्ख अनप्य यह नहीं जानता है कि मैं कौन हूँ, कहाँ से आया हूँ, कहाँ जाऊँगा, किस बन्धन में पड़ा हूँ, कौन कारण है बौन नहीं कारण है, कौन कार्य है, कौन अकार्य है, क्या बोलना चाहिये, क्या नहीं बोलना चाहिये, कौन धर्म है, कौन नहीं धर्म है, किसके साथ कैसा व्यवहार करना चाहिये, क्या करना

को धर्मः कश्च वाऽधर्मः कस्मिन्वर्तते वै कथम् । किं कर्तव्यमकर्तव्यं किं वा किं गुणदोषवत् ॥२३॥
 एवं पशुसमैर्मर्दंरजानप्रभवं महत् । अवाप्यते नरैर्दुःखं शिश्नोदरपरामणैः ॥२४॥
 अज्ञानं तामसो भावः कार्यारम्भप्रवृत्तयः । अज्ञानिना प्रवर्तन्ते कर्मलोपस्ततो द्विजाः ॥२५॥
 नरक कर्मणां लोपात्फलमहादुर्महर्षयः । तस्मादज्ञानिनां दुःखमिह चामुत्र चोत्तमम् ॥२६॥
 जराजर्जरदेहश्च शिथिलावयवः पुमान् । विचलच्छोर्णदशनो बलिस्नायुशिरावृतः ॥२७॥
 दूरप्रनष्टनयनो स्योमान्तर्गततारकः । नासाविवरनिघातिरोमपुञ्जश्चलद्विपुः ॥२८॥
 प्रकटीभूतसर्वास्यिनंतपृष्ठास्थिसहतिः । उत्तमजठराग्नित्वादल्पाहारोऽपचेष्टितः ॥२९॥
 कृच्छ्रचंक्रमणोत्थानशयनासनचेष्टितः । मन्दीभवच्छोत्रनेत्रमललालाविलाननः ॥३०॥
 अनायत्तः समस्तैश्च करणैर्मरणोन्मुखः । तत्क्षणेऽप्यनुभूतानामस्मर्ताऽखिलवस्तुनाम् ॥३१॥
 सतृदुष्कारिते दावये समुद्भूतमहाधमः । श्वासकासामयायाससमुद्भूतप्रजामरः ॥३२॥
 अय्येनोत्थाप्यतेऽय्येन तथा संवेक्ष्यते जरी । भृत्यात्मपुत्रदाराणामपमानपराकृतः ॥३३॥
 प्रक्षोणाखिलशौचश्च विहाराहारस्तत्पृहः । हास्य परिजनस्यापि निर्विण्णाशेषबान्धवः ॥३४॥
 अनुभूतमिवान्यस्मिञ्जन्मन्यात्मविचेष्टितम् । संस्मरन्धीबने दीर्घं निःश्वसित्यतितापितः ॥३५॥

चाहिये, क्या नहीं करना चाहिये, कौन गुणयुक्त है तथा कौन दोषयुक्त है ॥२१-२३॥ इस प्रकार इन्द्रिय तथा उदर की पूर्ति में निरत पशुतुल्य मूल्य मनुष्य अज्ञानता से उत्पन्न दुःख का संगत है । द्विजगण ! अज्ञानियों को अज्ञानता रूप तामस भाव कार्यारम्भ-काल में ही जाता है, जिससे वे कर्मों को मही कर पाते । महीधियों ने कर्मों से लग्न हो जाने का फल नरक बतलाया है । इसलिये अज्ञानियों का इस लोक में तथा परलोक में दुःख ही दुःख होता है ॥२४-२६॥ बुढ़ावस्था में मनुष्य के सब अंग जर्जर तथा शिथिल हो जाते हैं, दाँत गगन हा जाते हैं, स्नायु तथा शिरा उग जाती है, आँखों की शक्ति कम हो जाती है, आँखा की पुतली घँस जाती है, नाक के रन्ध्र में राम-पुञ्ज दोखने लगता है, शरीर बर्षने लगता है, हृद्दिग्ध शक्त्वनें लगती हैं, पीठ की हड्डी झुग जाती है, जठराग्नि मन्द पड़ जाती है, भोजन तथा शारीरिक चेष्टा कम हो जाती है, उठने, सोने तथा बैठने सब में भी बहुत कष्ट का अनुभव होता है, कानों तण, नेत्रों की शक्ति क्षीण हो जाती है, लार टपकने से मुख मलिन हो जाता है । समस्त इन्द्रियाँ तथा वे बाहर हो जाती हैं । सब वह मरणोन्मुख हो जाता है । उस समय अनुभूत वस्तुओं का भी स्मरण नहीं होता है । एक बार बोलने में भी महान् आयास करना पड़ता है ॥२७-३१॥ सारी तथा द्वास-आयु की ती बत्ता से नींद खुल जाती है । दूसरे ही क्षण उस बुढ़ को उठाते-बैठाते हैं । नोकर, पुत्र तथा स्त्री भी उसकी अवहेलना करती हैं । शरीर की बुद्धि भी वह नहीं कर पाता है । विहार तथा आहार की इच्छा भी नष्ट हो जाती है । परिजनों का भी वह हास्यास्पद बन जाता है । उसके समस्त बान्धव उससे तप आ जाते हैं ॥३२-३४॥ यह युवावस्था का स्मरण करने अत्यन्त सन्ताप से लम्बी साँस लेता है जैसे कि माना वह दूसरे जन्मा की

एवमादीनि दुःखानि जरायामनुभूय च । मरणे यानि दुःखानि प्राप्नोति शृणु सान्यपि ॥३६॥
 श्लयप्रोवाद्ग्रहस्तोऽयं 'प्राप्तो येपयुना नरः । मुहुर्लानिपरश्चासौ मुहुर्ननिलान्वितः ॥३७॥
 'हृत्पिष्यान्त्यतनयभार्याभृत्यगृहादिषु । एते कथं भविष्यन्तीत्यतोयममताकुलः ॥३८॥
 मर्मविद्भिर्महारोगः ककचैरिव दाहणैः । शरैरिवान्तकस्योऽग्रिद्विद्यमानास्थिबन्धनः ॥३९॥
 परिवर्तमानतारासिंहस्तपादं मूढः क्षिपन् । संशुष्यमाणतात्कोष्ठकण्ठो घुरघुरायते ॥४०॥
 निरुद्धकण्ठदेशोऽपि उदानश्वसपीडितः । तापेन महता व्याप्तस्तृषा व्याप्तस्तृषा क्षुधा ॥४१॥
 वलेशादुत्क्रान्तिमाप्नोति धाम्यकिकरपीडितः । ततश्च यातनादेहं पल्लेन प्रतिपद्यते ॥४२॥
 एतान्यन्यानि चोप्राणि दुःखानि मरणे नृणाम् । शृणुष्व नरके यानि प्राप्यन्ते पुरुषंमृतं ॥४३॥
 धाम्यकिकरपाशादिग्रहणं दण्डताडनम् । यमस्य दर्शनं चोपमुप्रमार्गविलोकनम् ॥४४॥
 कर्मभवाल्कावह्निपद्मशस्त्रादिभीषणैः । प्रत्येकं यातनायाश्च यातनादि द्विजोत्तमाः ॥४५॥
 ककचैःपीडयमानानां (मू०) पायां चापि ध्याप्यताम् । कुठारैः पाटयमानानां भूमौ चापि निक्षिप्यताम् ॥४६॥
 शूलैश्चारोप्यमाणानां व्याघ्रवक्त्रं प्रवेदयताम् । गुर्ध्रैः संभक्ष्यमाणानां द्वीपिभिश्चोपभुज्यताम् ॥४७॥
 वयस्यतां सैलमध्ये च विलग्नतां क्षारकदमे । उच्चाग्निपात्यमानानां क्षिप्यतां क्षेपयन्त्रकैः ॥४८॥

अपनी गियाजी का अनुभव कर रहा हो ॥३६॥ इस प्रकार मनुष्य ब्रह्मावस्था में दुखों का अनुभव करके मरण के समय जिन दुखों का अनुभव करता है, वह सुनिये ॥३६॥ उस समय उसकी प्रीति, वैर तथा हाथ शिथिल पड़ जाते हैं तथा कौपिने लगते हैं । बारम्बार ग्लानि होती है और बेतना भी होती है ॥३७॥ सोना, अन्न, पुत्र, स्त्री, नीकर तथा घर की क्या स्थिति होगी—यह सोचकर वह समता से व्याकुल हो जाता है ॥३८॥ आरे क समान भयकर तथा मर्मवेधी महान् रोगों से उसकी हृदिधियों का बन्धन टूटने लगता है जैसे कि मानो यमदूतों के बाणों से काटा जा रहा हो ॥३९॥ आँखों की पुतली डलने लगती है । हाथ-पैर अस्त-व्यस्त हो जाते हैं । तालू, मोष्ठ और कण्ठ सूख कर घुरघुराने लगता है ॥४०॥ कण्ठप्रदेश अवरुद्ध हो जाता है । उदान वायुपीडा देने लगती है । गर्मी अत्यन्त बढ़ जाती है । भूख-प्यास सताने लगती है ॥४१॥ यमदूतों के द्वारा अत्यन्त पीडित होकर वह कष्टपूर्वक प्राण त्याग करता है । तब उसे यातना-खारीर प्राप्त होता है ॥४२॥ मृत्यु-समय में तथा अन्य भी तीव्र कष्ट मनुष्यों को होते हैं । अब सुनिये कि नरक में मृतात्मा की कौन कौन सी कष्ट होती है ॥४३॥ यमदूत उसे जाल में बाँध देता है और लाठी से पीटता है । एक तो यमदण्डनही नषकर दूसरा यममार्ग तो और भी भयकर है ॥४४॥ तप्त काल्पा, अग्नि, यन्त्र, घस्त्र आदि से यमधर्म में कष्ट दिया जाता है ॥४५॥ जीवों की यमदूत आरे से चीरते हैं, कड़ाह में मूतते हैं, कुल्हाड़ी से काटते हैं, भूमि में गाड़ते हैं शूलों पर बचाते हैं, घाघ के मूह में डालते हैं, गोधों से मोचकाते हैं, सतप्त तेल में डाल कर काड़ा बनाते हैं, कीचड़ में डुबो देते हैं, ऊपर ले जाकर नीचे पिरा देते हैं, प्रक्षोणयन्त्रा द्वारा फेंक देते हैं ॥४६-४८॥ विप्रबुद्ध ! पापी मनुष्य नरक में जो पापजन्य

१ख प्राप्नोति यातना तत । मु० । २ख ०यतात्मु० । ३क ०पणं । प्र० । घ. ०पणम् । प्र० । यण रच पातानां हि द्वि० । ५क. ०म् । यन्त्रैश्चा० ।

नरके यानि दुःखानि पापहेतूद्भवानि यैः। प्राप्यन्ते नारकं विप्रास्तेषां सख्या न विद्यते ॥४९॥
 न केवलं द्विजश्रेष्ठा नरके दुःखपद्धतिः। स्वर्गेष्वपि पातभीतस्य क्षयिष्णोर्नास्ति निर्वृतिः ॥५०॥
 पुनश्च गर्भो भवति जायते च पुनर्नरः। गर्भे विलीयते भूयो जायमानोऽस्तमेति च ॥५१॥
 जातमात्रश्च म्रियते बालभावे च यौवने। यद्यत्प्रीतिकरं पुंसा वस्तु विप्राः प्रजायते ॥५२॥
 तदेव दुःखदुःखस्य बीजत्वमुपगच्छति। 'कलत्रपुत्रमित्रादिगृहक्षेत्रधनादिकैः ॥५३॥
 क्रियते न तथा भूरि सुखं पुंसां यथाऽसुखम्। इति सत्सारदुःखार्कतापतापितचेतसाम् ॥५४॥
 विमुक्तिपादपच्छायायाम्ते कुत्र सुखं नृणाम्। तदस्य त्रिविधस्यापि दुःखजातस्य पण्डितैः ॥५५॥
 गर्भजन्मजरारोग्ये स्थानेषु प्रभविष्यतः। 'निरस्तातिशयाह्लादं' सुखभावंकलक्षणम् ॥५६॥
 भेषजं भगवत्प्राप्तिरेका चाऽऽत्यन्तिकी मता। तस्मात्तत्प्राप्तये यत्नः कर्तव्यः पण्डितैर्नरैः ॥५७॥
 तत्प्राप्तिहेतुर्तानं च कर्म चोक्तं द्विजोत्तमा। आगमोक्तं विवेकाच्च' द्विधा ज्ञानं तथोच्यते ॥५८॥
 शब्दब्रह्माऽऽत्ममयं परं ब्रह्म विवेकजम्। अन्धं तम इवाज्ञानं दीपवच्चैन्द्रियोद्भवम् ॥५९॥
 यथा सूर्यस्तथा ज्ञानं यद्वै विप्रा विवेकजम्। मनुरप्याह वेदार्थं स्मृत्वा यन्मुनिसत्तमाः ॥६०॥
 तवेतच्छ्रयतामत्र संबन्धे गदतो मम। द्वे ब्रह्मणी वेदितव्ये शब्दब्रह्म परं च यत् ॥६१॥
 शब्दब्रह्मणि निष्णातः परं ब्रह्माधितच्छति। द्वे विद्ये वै वेदितव्ये इति चाऽऽयवर्णो भूतिः ॥६२॥

दुःख पाते हैं, उन दुःखों की सख्या नहीं हो सकती ॥४९॥ द्विजश्रेष्ठो! पापियों के लिये केवल नरक में ही दुःखों का बाहुल्य नहीं है। अपितु स्वर्ग में भी उन्हे शान्ति नहीं मिलती है। ॥५०॥ जीव पुन गर्भ में वास करता है और पुन जन्म लेता है। वह फिर गर्भ में विलीन होता है और फिर जन्म लेकर समान होता है ॥५१॥ कभी तो जन्म लेते ही मर जाता है और कभी बचपन में या युवावस्था में पञ्चत्व को प्राप्त करता है। विप्रबन्ध। मनुष्यों की जो प्रिय वस्तु होती है वही दुःख रूपी बुद्ध का बीज बन जाती है। फिर तो स्त्री, पुत्र, मित्र, गृह, क्षेत्र तथा धन आदि जितना अधिक सुख नहीं देते हैं जितना कि दुःख देने लगते हैं। इसलिये सत्सार रूपी सूर्य के ताप से सन्तापित चित्त वाले मनुष्यों के लिये मोक्ष रूपी वृक्षच्छाया को छोड़ कर सुख कहाँ है? ॥५२-५४॥ इस कारण विद्वानो ने बतलाया है कि गर्भ जन्म, बुद्धता आदि स्थानों में होने वाले त्रिविध तापों को मिटाने के लिये अनिशय आह्लादजनन तथा आनन्दरूप भगवत्प्राप्ति ही एक औषध है। इसलिये ज्ञानी मानव भगवत्प्राप्ति के लिये यत्न करें ॥५५-५७॥ द्विजश्रेष्ठो! भगवत्प्राप्ति का कारण ज्ञान तथा कर्म माना गया है। ज्ञान दो प्रकार का माना गया है—एक शास्त्रजन्य और दूसरा विवेकजन्य। शब्दब्रह्म का ज्ञान शास्त्रजन्य है और परब्रह्म का विवेकजन्य। अज्ञान अन्धकार के समान है और ज्ञान दीप के समान है ॥५८-५९॥ विप्रगण। विवेकजन्य ज्ञान सूर्य के समान है। इस सम्बन्ध में वेदार्थ का स्मरण करने मनु ने जो कहा है, उसे आप मुनिये। दो ब्रह्म जानने योग्य हैं—एक शब्दब्रह्म और दूसरा परब्रह्म ॥६०-६१॥ शब्दब्रह्म में निष्णात व्यक्ति परब्रह्म को प्राप्त करता है। अथर्ववेद का भी कहना है कि दो विद्याओं को जानना चाहिये ॥६२॥ परा विद्या से ब्रह्म की प्राप्ति होती

तेजोबलैश्वर्यमहावरोधः, स्वधीर्यशक्त्यादिगुणंकराशिः ।

'परः पराणां सकला न यत्र, बलेशादयः सन्ति परापरेशे'

॥७३॥

स ईश्वरो 'व्यष्टिसमष्टिरूपोऽव्यक्तस्वरूपः प्रकटस्वरूपः ।

सर्वेश्वरः 'सर्वदृक् सर्वदेवता, समस्तशक्तिः परमेश्वराख्यः

॥७४॥

संज्ञायते येन तदस्तदोषं शुद्धं परं निर्मलमेकरूपम् ।

संदृश्यते वाऽऽप्यय गम्यते वा, तज्ज्ञानमज्ञानमतोज्ञयदुक्तम्

॥७५॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे व्यासपितृसंवाद आत्यन्तिकलयनिरूपणं नाम
चतुस्त्रिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२३४॥

अथ पञ्चत्रिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः

योगाभ्यासनिरूपणम्

मुनय ऊचुः

इदानीं ब्रूहि योगं च दुःखसंयोगभेदजम् । यं विदित्वाऽप्ययं तत्र युञ्जामः पुरुषोत्तमम् ॥१॥
श्रुत्वा स वचनं तेषां कृष्णद्वैपायनस्तदा । 'अबबीतपरमप्रीतो योगी' योगविदा वरः ॥२॥

शक्ति आदि गुणों की राशि है। वह परे से भी परे है। उस परास्वर को बलेश आदि नहीं होते हैं ॥७३॥
वह ईश्वर, व्यष्टि-समष्टि रूप, अव्यक्त रूप तथा व्यक्त रूप है। वह सर्वेश्वर, सर्वदृष्टा, सर्वदेवता, सर्वशक्ति-
मान्, तथा परमेश्वर है ॥७४॥ जिसके द्वारा दोषरहित, शुद्ध, पर, निर्मल तथा एकरूप परमात्मा का दर्शन
तथा प्राप्ति होती है, उसी का नाम ज्ञान है। उसके अतिरिक्त अज्ञान भाता जाता है ॥७५॥

श्री ब्रह्मभट्टपुराण में व्यास और श्रुतियों के संवाद-प्रकरण में आत्यन्तिक लय
निरूपण नामक दो सौ बीसवीं अध्याय समाप्त ॥२३४॥

अध्याय २३५

योगाभ्यास का निरूपण

मुनियों ने कहा—अब दुःखों के संयोग के मिटाने में औपधिरूप योग का वर्णन आप करें, जिसे जानकर
हम अविनाशी पुरुषोत्तम को प्राप्त कर सकते हैं। उनका वचन सुनकर योगवेत्ताओं में श्रेष्ठ योगी व्यास परम
हर्ष से कहने लगे ॥१-२॥

१क. स. परावरा०। २ख. ०रावरे०। ३क. व्यस्तस०। ४क. ०मस्तरु०। ५ख. ०वर्तनप्रदृष्टा स०।
६ख. ०प्रीतस्त्वदा योगवि०। ७ग. योनं।

व्यास उवाच

योग वक्ष्यामि भो विप्रा भृशुष्य भवनाशनम् । यमम्यस्याऽऽप्नुयाद्योगी मोक्ष परमदुर्लभम् ॥३॥
 श्रुत्वाऽऽदौ योगशास्त्राणि गुरुमाराध्य भवितत । इतिहास पुराण च वेदाश्चैव विचक्षण ॥४॥
 आहार योगदोषाश्च देशकाल च बुद्धिमान् । ज्ञात्वा 'समम्यसेद्योगं निर्द्वन्द्वो निष्परिग्रह' ॥५॥
 भुञ्जन्सक्तु यवागू च' तन्मूलफल पय । यावक कणपिण्याकमाहार योगसाधनम् ॥६॥
 न मनोविकले ध्माते न ध्यान्ते क्षुधिते तथा । न द्वन्द्वे न च शीते च न चोष्णे नानिलात्मके ॥७॥
 तप्तदे न जलाम्बासे जीर्णोष्णे चतुष्पये । सरीसृपे इमशाने च न नद्यन्तेऽग्निसनिधौ ॥८॥
 न चेत्ये न च बल्मीके सभये कूपसनिधौ । न शुष्कपणनिचये योग युञ्जीत कर्हिचित् ॥९॥
 देशानेताननादृत्य मूढत्वाद्यो युनक्ति च । प्रवक्ष्ये तस्य ये दोषा जायन्ते विघ्नकारका ॥१०॥
 बाधिर्न जडता लोप स्मृतेर्मूलत्वमन्धता । ज्वरश्च जायते 'सद्यस्तद्वदज्ञानसंभव ॥११॥
 तस्मात्सर्वात्मना कार्या रक्षा योगविदा सदा । धर्मार्थकाममोक्षाणा शरीर साधन यत ॥१२॥
 आश्रमे विजने गृह्ये नि शब्दे निर्भये नये । शून्यागारे शुचौऽरम्ये चक्रान्त देवतालये ॥१३॥
 रजया पश्चिमे 'धामे पूर्वे च सुसमाहित । पूर्वाह्णे मध्यमे चाह्नि' युक्ताहारो जितेन्द्रिय ॥१४॥

व्यास बोले—विप्रबन्ध ! सुनिये । मैं सत्कारनाशन योग वा वषण करूँगा जिसका अभ्यास कर यानी पुरुष परमदुर्लभ मोक्ष का प्राप्त करता है ॥३॥ पहले भक्तिपूर्वक गुरु का आराधना करके विद्वान् पुरुष यागशास्त्र इतिहास पुराण तथा वेदों का श्रवण करे ॥४॥ पश्चात् आहार योग के दोष तथा देश-काल का ज्ञान कर द्वन्द्व (मुख दुःख आदि) तथा परिग्रह (दान या मुख साधन) से रहित हाकर याग का अभ्यास करे ॥५॥ सत्तु यवागू (रूपसी) तक मूल, फल दूध यावक (जो की बनी वस्तु या साठा चावल) चावल का कण (खुरी) पिण्याक (केसर)—इनका आहार करे ॥६॥ भन की विकलता की अवस्था में यागाम्बास न करे। आत तथा क्षुधित होने पर भी यागाम्बास न करे। द्वन्द्वावस्था में यागाम्बास न करे। सर्दी गर्मी तथा वायु की तात्त्रावस्था में यागाम्बास न करे। शब्दायमान स्थान में अल के समान पुराने घाण्ट में चारों तरफ भाग पर इमशान में तथा नद्या और अग्नि के सन्निध्य में यागाम्बास न करे। जन समा में बल्मीक पर भवावह स्थान में कूप के समान तथा शुष्क पत्तों के ढेर पर नभ। यागाम्बास न करे ॥७॥ ९॥ इन स्थानों में जा मूलतावा यागाम्बास करता है उमने विघ्नकार दोषों का बतलाता है ॥१०॥ ऐसे व्यक्ति का बहुरूपन जडता स्मृतिगुयता अधापन ज्वर तथा शानशून्यता हो जाता है ॥११॥ इन्द्रिये याग व्यक्ति का सदा चरित्र का रक्षा करने चाहिये। न्यायिक धर्म अथ काम और मय का साधन शरीर है ॥१२॥ एकांत आश्रम में गुप्त तथा निशब्द स्थान में भयगुण्य पर्वत पर शून्य नवन में पवित्र तथा रमणीय स्थान में और एकांत देवालय में रात्रि के प्रथम प्रहर में तथा अन्तिम प्रहर में अत्यन्त सावधान से यागाम्बास करना चाहिए। विदेन्द्रिय तथा समुचितहार हाकर पूर्वाह्ण में तथा मध्याह्ण में भा रम्य

११ ०योगी नि० । २४ ०ह । मूल सक्तु । ३६ च पत्र मू० । ४५ ०द्य शुद्धविज्ञानयोगिन । ४० ।
 ५४ स मागे । ६६ स बाह्नि ।

आसीन 'प्राडमुखो' रम्य आसने सुखनिश्चले । नातिनीचे न चोच्छिन्ने निस्पृह सत्यवाक्शुचि ॥१५॥
 'युक्तनिद्रो जितक्रोध सर्वभूतहिते रत । सर्वद्वन्द्वसहो धीर समकायाडधिमस्तक ॥१६॥
 नाभौ निधाय हस्तौ द्वौ शान्त पदमासने स्थित । सस्याप्य दृष्टि नासाग्रे प्राणानायम्य वाग्यत ॥१७॥
 समाहृत्यैन्द्रियग्राम मनसा हृदये मुनि । प्रणव दीर्घमुद्यम्य सवृतास्य ' सुनिश्चल ॥१८॥
 रजसा तमसो वृत्ति सत्त्वेन रजसस्तथा । सछाद्य निर्मले शान्ते स्थित सबृतलोचन ॥१९॥
 हृत्पदमकोटरे लीन सर्वव्यापि निरञ्जनम । युञ्जोत सतत योगी मुक्तिद पुरुषोत्तमम् ॥२०॥
 करणेन्द्रियभूतानि क्षेत्रज्ञे प्रथम न्यसेत् । क्षेत्रज्ञश्च परे योग्यस्ततो युञ्जति योगवित् ॥२१॥
 मनोऽस्यान्तमभ्येति परमात्मनि चञ्चलम् । सत्यज्य विषयास्तस्य योगसिद्धि प्रकाशिता ॥२२॥
 यदा निर्विषय चित्त परे ब्रह्मणि लीयते । समाधौ योगयुक्तस्य तदाऽभ्यसति पर पदम् ॥२३॥
 'अससवत यदा चित्त योगिन सर्वकर्मसु । 'भवत्यानन्दमासाद्य तदा निर्वाणमुच्छति ॥२४॥
 शुद्ध धामत्रयातीत तुर्याख्य पुर्योत्तमम् । प्राप्य योगबलाद्योगो मुच्यते नात्र तशय ॥२५॥

निश्चल तदा न अधिक उच्च न अधिक नाभ आसन पर पूरवमुह बँटकर निस्पृह सत्यवादी एव पीबत्र होकर योगाभ्यास करे ॥१५॥ योग व्यक्ति को उचित मात्रा में सोना चाहिये । उसे अव्ययी समस्त प्राणियों के हित में निरत मुख दुःखों का सहन करने वाला तथा धीर बनना चाहिये । वह शरीर चरण और मस्तक को समान स्थिति में रखे ॥१६॥ वह नाभि प्रदेश में दोनों हाथों को रखकर शांत होकर पश्चासन लगाये । नासिका के अग्रभाग में दृष्टि को स्थिर कर वक्तव्यम पूर्वक प्राणायाम करे ॥१७॥ मन से इन्द्रिय समूह का निरोध करके हृदय में प्रणव (आ) का ध्यान करे । उस समय वह अपना मुख बन्द कर ले और निश्चल रहे ॥१८॥ राजस वृत्ति से तामस वृत्ति का और सात्त्विक वृत्ति से राजस वृत्ति को आच्छान्ति करने को बन्द करके निमल तथा शांत हृदय कमल की कणिका में ल न सर्वव्यापी निरञ्जन तथा मुक्तिदाता पुरुषोत्तम का योगी सदा ध्यान करे ॥१९॥ योगवेत्ता पुरुष पहले अन्तःकरण सहित इन्द्रियों और पञ्चभूतों को लग्न म स्थापित करे और क्षेत्रज्ञ को परमात्मा में नियुक्त करने योग्य भ्यास करे । जिसका चञ्चल मन विषया का परित्याग करने परमात्मा में लग्न जाता है उसकी योगसिद्धि हो जाती है ॥२१॥ जब योग का चित्त निर्विषय होकर समाधि अवस्था में ब्रह्म में लीन हो जाता है तब वह आनन्दरूप परमात्मा को प्राप्त करने मुक्त हो जाता है ॥२४॥ शुद्ध त्रिगुणातीत तुरीय बहलाने वाले तथा पुरुषोत्तम विष्णु को योगबल से प्राप्त करके योगी निःसंदेह मुक्त हो जाता है ॥२५॥ समस्त कामनाओं से निस्पृह सब का प्रिय एवम राज

१४ ० द्रमुल देव आ० । २ ४ ० सादवा आ० । ३ ४ ० मुक्तिनिद्रो । ४ ४ ० सयतास्य । ५ ४ ० । सोमपा योगयुक्तस्य युञ्जन्त परम पदम् । बाह्यामा सपरित्यज्य योऽन्तर्ध्यानरत सः । अन्तः सुतोऽन्तराराम स मोक्षस्ततः ध्रुवम् । जाग्रत्स्वप्नसुषुप्ति च त्वक्वा स्थानत्रयं बुध । तुरीय पदमासाद्य न शोचति न काङ्क्षति । मनो । ६ ४ ० केवलम् । ७ ४ ० स असाद्य । ८ ४ ० भगवत्पादमा० । ९ ४ ० स ० ६ सूक्ष्म गुणातीत सत्त्वाख्य । १० ४ ० य । बटप० ।

निस्पृह सर्वकामेभ्य सर्वत्र प्रियदर्शन । सर्वत्रशान्तिमबुद्धिस्तु योगी मुच्येत नान्यथा ॥२६॥
इन्द्रियाणि न सेवेत वैराग्येण च योगवित् । सदा चाभ्यासयोगेन मुच्यते नात्र सशय ॥२७॥
न च 'पदमासनाद्योगो न नासाग्रनिरीक्षणतः । मनसश्चेन्द्रियाणां च संयोगो योग उच्यते ॥२८॥
एव मया मुनिश्रेष्ठा योग प्रोक्तो विमुक्तिदः । ससारमोक्षहेतुश्च किमन्यच्छोतुमिच्छथ ॥२९॥

लोमहर्षण उवाच

श्रुत्वा ते वचन तस्य साधुसाध्विति चाबुवन । व्यास प्रशस्य संपूज्य पुन प्रष्टु समुद्यता ॥३०॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे व्याससिखादे योगाभ्यासनिरूपण नाम

पञ्चत्रिंशदधिकद्विंशततमोऽध्यायः ॥२३५॥

अथ षट्त्रिंशदधिकद्विंशततमोऽध्यायः

साख्ययोगनिरूपणम्

मुनय ऊचुः

तव वक्त्राग्निमभूतममृत वाङ्मय मुने । पिबता नो द्विजश्रेष्ठ न तृप्तिरिह दृश्यते ॥१॥
तस्माद्योग मुने ब्रूहि विस्तरेण विमुक्तिदम् । साख्यं च द्विपदाश्रयं श्रोतुमिच्छामहे वयम् ॥२॥

अनित्य बुद्धि रखने वाला योगी नि सदेह मुक्त होता है । इन्द्रियों की सेवा से विरक्त तथा सदा वैराग्य एवं योगाभ्यास में निरत यागी नि सदेह मोक्ष प्राप्त करता है । अपासन कथाना तथा नास्तिकाप्रमाण का निरीक्षण करना योग नहीं कहलाता है । प्रत्युत मन तथा इन्द्रियों का संयोग (एकाग्रता) ही योग कहलाता है । मुनिश्रेष्ठो ! इस प्रकार ससार से मोक्ष पाने का कारण तथा मुक्तिदायक योग मैंने बतला दिया । अब क्या तुमना चाहते हैं ? ॥२६ २९॥

लोमहर्षण ने कहा—व्यास के वचन सुनकर श्रोतागणों ने साधु साधु कहकर उनकी प्रशंसा की और पुन उनसे प्रश्न किया ॥३०॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में व्यास और ऋषियों के संवाद प्रकरण में योगाभ्यासनिरूपण नामक दो सौ पत्तिसवाँ अध्याय समाप्त ॥२३५॥

अध्याय २३६

साख्ययोग का निरूपण

मुनियो ने कहा—मुने ! द्विजश्रेष्ठ ! आपके मुखरूपी समुद्र से उत्पन्न वाङ्मयरूपी अमृत का पान करते-करते हमें तृप्ति नहीं हो रही है । इसलिये मुक्तिदायक योग का विस्तृत वर्णन कीजिये । हम मनुष्यों के

'प्रज्ञावाञ्छ्रोत्रियो यज्वा ह्यात प्राज्ञोऽनसूयक' । सत्यवर्ममतिर्ब्रह्मकय ब्रह्माधिगच्छति ॥३॥
तपसा ब्रह्मचर्येण सर्वं त्यागेन मेधया । साहये वा यदि वा योग एतत्पृष्टो वदस्व न ॥४॥
मनसश्चेन्द्रियाणां च ययं काष्ठाग्रमवाप्यते । धनोपायेन पुरुषस्तत्त्व व्याख्यातुमर्हति ॥५॥

व्यास उवाच

नान्यत्र ज्ञानतपसोर्नायत्रन्द्रियनिग्रहात् । नान्यत्र सर्वसंत्यागात्सिद्धिं विन्दति वश्चन ॥६॥
महाभूताति सर्वाणि पूर्वसृष्टि स्वयभुव । भूयिष्ठ प्राणभूदग्रामे निविष्टानि शरीरिषु ॥७॥
भूमर्देहो जलात्स्नेहो ज्योतिषश्चक्षुषी स्मृते । प्राणापानाश्रयो वायु कोष्ठाकाश शरीरिणाम् ॥८॥
क्रांती विष्णुबले शक्र कोष्ठेऽग्निर्भोक्तुमिच्छति । कर्णयो प्रदिश श्रोत्र जिह्वाया वाक्सरस्वती ॥९॥
कणो त्वक्चक्षुषो जिह्वा नासिका चैव पञ्चमी । दश तानीन्द्रियोवतानि द्वाराण्याहारसिद्धये ॥१०॥
शब्दस्पर्शो तथा रूप रस गन्ध च पञ्चमम । इन्द्रियार्थान्पुण्यविद्यादिन्द्रियेभ्यस्तु नित्यदा ॥११॥
इन्द्रियाणि मनो युद्भवते अवश्या (शा) निव राजिन (ल) । मनश्चापि सदा युद्भवते भूतात्मा हृदयाश्रित ॥१२॥

इन्द्रियाणां तर्पयेया सर्वेषामोदकर मन । नियमे च विसर्गे च भूतात्मा मनस्तथा ॥१३॥
'इन्द्रियाणीन्द्रियार्थाश्च स्वभावश्चेतना' मन । प्राणापानौ च जीवश्च नित्य देहेषु रहितम् ॥१४॥

साहय-दशन के बारे में भी सुनना चाहते हैं। प्रज्ञावान श्रोत्रिय यज्ञकर्ता देवाधी अनिवक तथा सत्य धर्म निष्ठ मनुष्य कैसे ब्रह्म का प्राप्त करता है? तपस्या से या ब्रह्मचर्य से या सव्याय से या मेधा से या साहय से या योग से या जैसे ब्रह्म की प्राप्ति हो वह हमें बतलाइये। जिस उपाय से मन की एकाग्रता प्राप्त हो वह भी बतलाइये ॥१५॥

व्यास बोले—बिना ज्ञान तपस्या इन्द्रियनिग्रह तथा संत्याग के कोई सिद्धि नहीं प्राप्त कर सकता है ॥६॥ ब्रह्मा ने पहले महाभूतों की सृष्टि की। फिर उनका प्राणियों के शरीरों में निविष्ट किया ॥७॥ भूमि से शरीर जल से स्निग्धता अग्नि से नेत्र वायु से प्राण-अपान तथा आवाग से बन्ध (न व बान्ध नि व छन्) उत्पन्न हुए ॥८॥ शरीर की क्रियाओं का देवता विष्णु बल का इन्द्र बाण का अग्नि वण का दिगार्य तथा जिह्वा का वाक्सरस्वती है। कण त्वचा नेत्र जिह्वा य पाँच पावेन्द्रियाँ और पाँच कर्मेन्द्रियाँ आहार सिद्धि के द्वार मानी जाती हैं। शब्द स्पर्श रूप रस गन्ध—ये पाँच इन्द्रियों के विषय कहलाते हैं जिन्हें इन्द्रियों से अलग समझना चाहिये। चञ्चल पादों का तरह इन्द्रियों का मन युक्त होता है और मन को भी हृदयाश्रित भूतात्मा युक्त करता है ॥११॥ नियम तथा उत्सर्ग में समस्त इन्द्रियों का ईश्वर मन है। उसी तरह मन का ईश्वर भूतात्मा है ॥१३॥ देहपारिया के देह में इन्द्रियाँ इन्द्रियों के विषय स्वभाव चेतना मन प्राण अपान तथा जीव नित्य रहते हैं ॥१४॥ सत्त्व का न

१क प्रज्ञावा० । २ग ह्यातप्रज्ञो० । ३स ०क । अभ्यासेन सदा ब्रह्म० । ४ व ०क । अनगतमनिर०
५ल वायुस्वेष्टाकाश वा० । ६क शस्त्र । ७ल वक्तव्य । ८क ०र्षय स्व० । ९क ०नाथय । प्रा० ।

आश्रयो नास्ति सत्त्वस्य गुणशब्दो न चेतनाः । सत्त्वं हि तेजः सृजति न गुणान्वे कथंचन ॥१५॥
 एव सप्तदशं देहं 'वृत्तं षोडशभिर्गुणैः' मनीषी मनसा विप्राः पश्यत्यात्मानमात्मनि ॥१६॥
 न ह्यप्यं चक्षुषा दृश्यो न च सर्वरूपोन्द्रियैः । मनसा तु प्रदीप्तेन महानात्मा प्रकाशते ॥१७॥
 अशब्दस्पर्शरूपं तत्त्व (च्चा) रसागन्धमव्ययम् । अशरीरं 'शरीरे स्वे निरोक्षते निरिन्द्रियम् ॥१८॥
 अव्यक्त सर्वदेहेषु मर्त्येषु परमाचितम् । योज्युपशयति स' प्रेत्य कल्पते ब्रह्मभूयत् ॥१९॥
 'विद्याविनयसंपन्नब्राह्मणे गवि हस्तिनि । शुनि चैव श्वपाके च पण्डिताः समदर्शिनः ॥२०॥
 सहि सर्वेषु भूतेषु जङ्गमेषु ध्रुवेषु च । वसत्येको महानात्मा येन सर्वमिदं ततम् ॥२१॥
 सर्वभूतेषु चाऽऽत्मानं सर्वभूतानि चाऽऽत्मनि' । यदा पश्यति भूतात्मा' ब्रह्म संपद्यते तदा ॥२२॥
 यावानात्मानं वेदाऽऽत्मा तावानात्मा परात्मनि । य एवं सततं वेद सोऽमृतत्वाय कल्पते ॥२३॥
 सर्वभूतात्मभूतस्य 'सर्वभूतहितस्य च । देवापि मामं भुङ्क्षन्ति अपदस्य पदेषिणः ॥२४॥
 शकुन्तानामिवाऽऽकाशो भस्त्र्यानामिव धोदके । यथा 'गतिनं दृश्यते तथा 'ज्ञानविदां गतिः ॥२५॥
 कालः पचति भूतानि सर्वाण्येवाऽऽत्मनाऽऽत्मनि । यस्मिन्सु पच्यते कालरतन्र वेदेह कश्चन' ॥२६॥

आश्रय है, न गुण है, न शब्द है और न चेतना है । सत्त्व तेज का स्रजन करता है, पर गुणों का बन्धी नहीं ॥१५॥
 इस प्रकार सप्तदश शरीर सोलहों गुणों से युक्त है । विप्रबृन्द । विद्वान् पुरुष मन से आत्मा को आत्मा में
 देखता है ॥१६॥ आत्मा को नेत्र से तथा इन्द्रियों से नहीं देखा जा सकता है । मन रूपी दीप से यह महान् आत्मा
 प्रकाशित होता है ॥१७॥ शब्द, स्पर्श, रूप, रस तथा गन्ध से रहित, अविनाशी एवम् अशरीरी आत्मा को अपने
 शरीर में देखना चाहिए ॥१८॥ जो समस्त देहों में उस परम पूज्य आत्मा को देखता है, वह मनुष्य के बाद
 ब्रह्म में लीन हो जाता है ॥१९॥ पण्डित लोग विद्या-विनय-संपन्न ब्राह्मण, गौ, हाथी, कुत्ते तथा बाण्डाल को
 समान भाव से देखते हैं ॥२०॥ वहीं एक महान् आत्मा समस्त भूतों में तथा स्थावर-जगमा में वास करता है
 जिससे संपूर्ण जगत् का निर्माण हुआ है ॥२१॥ जब मनुष्य समस्त भूतों में अपने को तथा अपने में समस्त भूतों
 को देखने लग जाता है तब उसे ब्रह्म की प्राप्ति होती है ॥२२॥ अपने शरीर के मातर जैसा आत्मा है वैसे ही,
 दूसरों के शरीर में भी है, जो ऐसा निरन्तर समझता है, उसे मोक्ष की प्राप्ति होती है ॥२३॥ समस्त प्राणिया
 को अपना आत्मा समझने वाला, समस्त प्राणियों के हित में निरत तथा अपद (परमात्मा) के पद का इच्छुव जा
 व्यक्ति है उसने मार्ग में देवता भी माहित हो जाते हैं ॥२४॥ (सुदूर) आकाश भू-पक्षियों की ओर (अगाध)
 जल म मत्स्यों की गति जैसे नहीं दिखाई पड़ती, वैसे जानियों की गति भी समझ में नहीं आती है ॥२५॥ काल
 समस्त भूतों को अपने से अपने में पचाता है । पर काल जिसमें पकाया जाता है, उसे यहाँ कोई नहीं जानता
 है । उसके ऊपर, नीचे, तिरछे तथा मध्य में कोई कुछ नहीं ग्रहण कर सकता है । ये समस्त लोक उसी

१क. वृत्त । २क. ०त्मना । न । ३क. ख ०रेषु नि० । ४क. सर्वेभ्य कल्पान्ते न तु म्रियते । वि० ।
 ५ग. ०द्याभिजनस० । ६क. ०नि । एव च ख० । ७ग. सर्वात्मा । ८ख. ०तस्य देहिनि । दे० । ९ख.
 ०विनिनश्ये० । १०ख. ०नस्य चोदय । का० । ११क. ०न । नैवोर्ध्व न ।

न तद्वर्धं न तिर्यक्च' नाथो न च पुनः पुनः। न 'मध्ये प्रतिगृह्णीते' नैव किंचिन्न कश्चन ॥२७॥
 सर्वे तत्स्या इमे लोका बाह्यमेषां न किंचन। यद्यप्यग्रे समागच्छेद्यथा बाणो गुणच्युतः ॥२८॥
 नैवान्तं कारणस्येयाद्यद्यपि स्यान्मनोजवः। तस्मात्सूक्ष्मतरं नास्ति नास्ति स्थूलतरं तथा ॥२९॥
 सर्वतः पाणिपादं तत्सर्वतोऽक्षिशिरोमुखम्। सर्वतःश्रुतिमल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठति ॥३०॥
 तदेवाणोरणुतरं तन्महद्म्यो महत्तरम्। तदन्तं सर्वभूतानां ध्रुवं तिष्ठन्न दृश्यते ॥३१॥
 अक्षरं च क्षरं चैव द्वेषा भावोऽयमात्मनः। क्षरं सर्वेषु भूतेषु दिव्यं त्वमृतमक्षरम् ॥३२॥
 नवद्वारं पुरं 'कृत्वा हंसो हि निपत्यो वशी। इंदुशः सर्वभूतस्य स्यावरस्य चरस्य च' ॥३३॥
 हानेनाभिर्विकल्पानां नराणां संचयेन च। 'शरीराणामजस्याऽऽहुर्हंसत्व पारदर्शिनः' ॥३४॥
 हंसोक्तं च क्षरं चैव कूटस्थं यत्तदक्षरम्। तद्विद्वानक्षरं प्राप्य जहाति प्राणजन्मनी ॥३५॥

व्यास उवाच

भवतां पृच्छतां विप्रा यथावदिह तत्त्वतः। सांख्यं ज्ञानेन संयुक्तं तदेतत्कीर्तितं मया ॥३६॥
 योगकृत्यं तु भो विप्राः फौतेर्पिष्याम्यतः परम्। एकत्वं बुद्धिभनसोरिन्द्रियाणां च सर्वशः ॥३७॥
 आत्मनो व्यापिनो ज्ञानं ज्ञानमेतदनुत्तमम्। तदेतदुपशान्तेन शान्तेनाध्यात्मशीलिना ॥३८॥

मे वास करते हैं। उससे बाहर कुछ भी नहीं है। यह उसी भाँति आगे की ओर जाया करता है जैसे धनुष की ओर से च्युत हुआ बाण जाया करता है। यद्यपि इसका मन के समान ही वेग होता है तो भी यह कारण के अंत तक प्राप्त नहीं हो पाता है। क्योंकि उससे कुछ भी अधिक सूक्ष्म तथा स्थूल वस्तु नहीं है। उसके सब ओर हाथ-पैर, आँखें-सिर तथा मुख-कान हैं। वह सब को आवृत करके स्थित है ॥२९-३०॥ वह सूक्ष्म से भी सूक्ष्म और महान् से भी महान् है। समस्त भूतो के भीतर बह स्थित होते हुए भी अदृश्य है ॥३१॥ आत्मा के दो भाग हैं—अक्षर और क्षर। समस्त भूतो में रहने वाला क्षर बहुलात्ता है और दिव्य तथा अमृत स्वरूप चेतन आत्मा अक्षर है ॥३२॥ नियत तथा वशी हंस (आत्मा) नव द्वारयुक्त शरीर रूपी गृह में वास करता है। इसी प्रकार वह समस्त स्यावर-जगमो में वास करता है ॥३३॥ पारदर्शी लोग विभक्त्यो की हानि तथा भनुष्या के सचय से ब्रह्म के शरीरों को ही हंस कहते हैं ॥३४॥ हंस को क्षर कहा जाता है और कूटस्थ अक्षर बहुलात्ता है। ज्ञानी पुरुष उसी अक्षर को प्राप्त करके प्राण और जन्म का परित्याग करते हैं ॥३५॥

व्यास ने कहा—विप्रबन्ध । आपने जो ज्ञानयुक्त सास्य के बारे में पूछा, उसका वर्णन तत्त्वतः मैंने कर दिया ॥३६॥ अब योग-क्रिया का वर्णन मैं करूँगा। बुद्धि, मन तथा इन्द्रियों की एकाग्रता का नाम ही एकता है ॥३७॥ व्यापक आत्मा का ज्ञान ही सर्वोत्तम ज्ञान है। वही ज्ञान शम, दम, अध्यात्म-परिशीलन तथा

१क ०र्यगधो न च भाति पु०। २य मन्ये। ३ग ०ह्णीतो नै०। ४च ०त्वा सोऽथ वै नियत वनेत्।
 ६०। ५क च। ह्रीनेनागत०। ६क ०रीर हि नरस्येह नि सर्व पा०। ७धु य ०प्रा वर्त०।

‘आत्मारामेण बुद्धेन बोद्धव्यं शुचिकर्मणा। योगदोषान्समुच्छिद्य पञ्च’ यान्कवयो विदुः ॥३९॥
कामं क्रोधं च लोभं च भयं स्वप्नं च पञ्चमम्। क्रोधं शमेन जयति कामं संकल्पवर्जनात् ॥४०॥
सत्त्वसंसेवनाद्दीरो निद्रामुच्छेत्तुमर्हति। धृत्या शिश्नोदरं रक्षोत्पाणिपादं च चक्षुषा ॥४१॥
चक्षुः श्रोत्रं च मनसा मनो वाचं च कर्मणा। अप्रमादाद्भूयं जह्याद्भुभं प्राप्नोपसेवनात् ॥४२॥
एवमेतान्योगदोषाञ्जयेद्भ्रित्यमर्तन्द्रितः। अर्गन्दिच ब्राह्मणाश्चाथ देवताः प्रणमेत्सदा ॥४३॥
‘वर्जयेद्बुद्धता वाचं हिंसायुक्तां मनोनुयाम्’। ब्रह्मतेजोमयं शुक्रं यस्य सर्वमिदं जगत् ॥४४॥
एतस्य भूतभूतस्य दृष्टं स्थावरजङ्गमम्। ध्यानमध्ययनं दानं सत्यं ह्रीराजवं क्षमा ॥४५॥
शीघ्रं चैवाऽऽत्मनः शुद्धिरिन्द्रियाणां च निग्रहः। एतैर्विवर्धते तेजः पाप्मानं चापकर्षति ॥४६॥
‘समः सर्वेषु भूतेषु’ ‘लम्ब्यालम्ब्येन वर्तयन्’। धृतपाप्मा तु तेजस्वी लब्धाहारो जितेन्द्रियः ॥४७॥
कामक्रोधौ वशे कृत्वा त्रिपेवेद्ब्रह्मणः पदम्। मनसश्चेन्द्रियाणां च कृत्वाकाग्र्यं समाहितः ॥४८॥
पूर्वरात्रे परार्धे च धारयेन्मन आत्मनः। जन्तोः पञ्चेन्द्रियस्यास्य यत्केनं क्लिन्नमिन्द्रियम् ॥४९॥
ततोऽस्य ‘स्त्ववति प्रज्ञा गिरेः पादादिबोदकम्’। मनसः ‘पूर्वमादद्यात्कूर्माणामिव’ मत्स्यहा ॥५०॥

पवित्र कर्मों के द्वारा आत्मा में रमण करने वाले बुद्धिमान् मनुष्य को प्राप्त होता है। विद्वान् व्यक्ति योग के पाँच दोषों—काम, क्रोध, लोभ, मय तथा मूढत्व स्वप्न रूप दोषों को, जिन्हें भिन्नानों में बताया है, छोड़ दे। काम से क्रोध को तथा सकल्प-त्याग से काम को जीते। घोर पुरुष सात्त्विक वृत्ति के सेवन से निद्रा का जीन लेते हैं। वीर्य से इन्द्रिय तथा उदर की रक्षा करे, नेत्र से हास्यवीर की रक्षा करे, मर से नेत्र तथा कर्ण की रक्षा करे और कर्म से मन तथा बाणी की रक्षा करे। सावधानी से भय का त्याग करे विद्वान् की संज्ञा से दम्भ को छोड़े ॥३८-४२॥ इस प्रकार इन योग-दोषों को निरालस्य पूर्वक त्याग दें। सदा अग्नि, ब्राह्मण और देवताओं को प्रणाम करे ॥४३॥ मन की अनुपामी उद्वत, तथा हिसावत बाणी को त्याग दे। ब्रह्म तथा तेजोमय वीर्य का धारण करे, जिससे स्वावत-जगमगमक संपूर्ण जगत् की उत्पत्ति होती है ॥४४॥ घ्राण, अल्पयन, दाह, सत्य, लज्जा, कोमलता, क्षमा, शौच तथा इन्द्रियों का निग्रह करे। इन सब साधनों से तेज बढ़ता है और पाप नष्ट होता है ॥४५-४६॥ समस्त प्राणियों में समान भाव रखे और जो कुछ मिल जाय उसी से निर्वाह करे। पापरहित होता है ॥४७-४८॥ समस्त भोजन करने वाला तथा जितेन्द्रिय होकर काम-क्रोध को वश में करके ब्रह्मपद का सेवन करे ॥४९॥ तेजस्वी, अल्प भोजन करने वाला तथा जितेन्द्रिय होकर काम-क्रोध को वश में करके ब्रह्मपद का सेवन करे ॥४९॥ सावधानी से मन और इन्द्रियों की एकाग्रता रखे पूर्वरात्रि में मन स आत्मा का धारण करे। मनुष्या की पाँच इन्द्रियों में स एक भी यदि अवश हो जाय तो उसकी प्रज्ञा पवंत पर से जल की तरह प्रस्रवित हो जाती है ॥४८-४९॥ मछुआ पहले बछुआ को पकड़ता है उसी तरह योगी पहले मन को वश में

१ग ०रागेण । २क ख ०ञ्च तात्क० । ३ख ०वेदुसदा वा० । ग ०येत्कुश्रिता वा० ।
४क ०नोजवाम् । ५ख ०म् । ब्राह्म ते० । ६क शकल । ७ग रस । ८क ०एष कीडाऽऽर्ज० । ९ग
सम्यक्त्व० । १०ख ग लब्ध्या लब्धेन । ११ख च उत्तैका० । १२ख क्षरति । १३क ख मनसा । १४क
०घात्कर्मणा ।

तत्र श्रोत्रं ततश्चक्षुर्जिह्वा घ्राणं च योगवित् । तत एतानि सयम्य मनसि स्थापयेद्यदि ॥५१॥
 तथैवापोह्य सकल्पान्मनो हृषात्मनि धारयेत् । पञ्चेन्द्रियाणि मनसि हृदि सस्थापयेद्यदि ॥५२॥
 यदेतान्व्यवतिष्ठन्ते मनः पठानि चाऽऽत्मनि । प्रसीदन्ति च 'सस्थाया' तदा ब्रह्म प्रकाशते ॥५३॥
 विधुम् इव 'दीप्ता'चिरागत्य इव दीप्तिमान् । बँधुतोऽग्निरिवाऽऽकाशे' पश्यन्त्यात्मानमात्मनि ॥५४॥
 'सर्वे' तत्र तु सर्वत्र व्यापकत्वाच्च दृश्यते । त पश्यन्ति महात्मानो ब्राह्मणा ये मनीषिण ॥५५॥
 धृतिमन्तो महाप्राज्ञा सर्वभूतहिते रता । एष परिमित कालमाचरन्सशितव्रत ॥५६॥
 आसीनो हि रहस्येको गच्छेदक्षरसाम्यताम् । प्रमोहो मम आवर्तो घ्राण श्रवणदशने ॥५७॥
 अबभूतानि रस स्पर्श शीतोष्णमास्ताकृति । प्रतिभानुपसर्गाच्च प्रतिमगूह्य योगत ॥५८॥
 तास्तत्त्वविदनादृत्य साम्येनैव निवर्तयेत् । कुर्यात्परिचय योगे प्रेलोक्ये नियतो मुनि ॥५९॥
 गिरिभृङ्गे तथा चैत्ये घृक्षमूलेषु योजयेत् । सनियम्येन्द्रियग्राम 'कोष्ठे' भाण्डमना इव ॥६०॥
 'एकाग्र चिन्तयेन्नित्य' 'योगाग्नोद्विजते' मनः । येनोपयेन श्रवयेत् नियन्तु चञ्चल मनः ॥६१॥
 तत्र युक्तो निषेवेत् न चैव विचलेत्ततः । शून्यागाराणि चैकाग्रो निवासार्यमुपक्रमेत् ॥६२॥
 नातिव्रजेत्पर वाचा कर्मणा 'मनसाऽपि वा । उपेक्षको 'यताहारी' 'लब्धालम्बसमो भवेत् ॥६३॥

बरे। इसके अनन्तर कान और जिह्वा और नासिका का समय करके मन में इनकी स्थापना बरे ॥५०॥ ५१॥
 उसी तरह चक्षुष से मन को हटाकर आत्मा में धारण करे। पाँचो इन्द्रिया को मन में स्थापित करे ॥५२॥
 जब मन सहित पाँचो इन्द्रिया आत्मा में स्थित हो जाती हैं तब ब्रह्म का प्रकाश प्राप्त होता है ॥५३॥ आकाश में
 दीप्तिमान् घूँस की तरह तथा दियुत् अग्नि की तरह मन में आत्मा का दशन होता है। स्थापन होने के कारण
 आत्मा में अखिल वस्तुएँ तथा अखिल वस्तुता में आत्मा दीखता है। उस आत्मा को महात्मा धीरे महापण्डित
 तथा समस्त भूतों के हित में निरत मनीषी ब्राह्मण देख पाते हैं ॥५४॥ ५५॥ दृढप्रती मनुष्य अनेके एवान्त में
 बैठकर थोड़ा समय तक ही इस प्रकार आचरण करते हुए ब्रह्म समानता को प्राप्त कर लेते हैं। महामोह
 भ्रम तथा चक्कर ही नान बान तथा अखि है। हाथ सदा बर्मी तथा बायु अदमृत रस हैं। प्रतिमा तथा
 बापायो का वाग द्वारा राखकर तत्त्ववेत्ता व्यक्ति समता से ही उनको अनादरपूर्वक निवृत्त करे। इस प्रकार
 बड़ेपेन्द्रिय तीना लाख में योग का परिचय प्राप्त करे। पञ्च शिखर पर देवालय में तथा घृक्षमूला में इन्द्रिय
 समूह का समय करके योगाभ्यास करे। नित्य मन को एकाग्र करे। योग से मन को उद्विग्न न होना दे।
 जिस उपाय से चक्कर मन को बन्धीमूत कर सके उसी का अवलम्बन करते योगाभ्यास करना चाहिए। उससे
 विचलित नहीं होना चाहिए ॥५६॥ ६१॥ निवास करने योग्य मवन दृढ़ और एकाग्र होकर रहे। मन बचन
 और कम से कमी भी आसक्त न हो। उपेक्षा करने वाले नियमित भोजन करने वाले तथा हानि लाभ में समान भाव
 रखने वाले व्यक्ति योगाभ्यास करे ॥६२॥ ६३॥ अपने निदक तथा प्रणव दोनों में प्रति समान व्यवहार करे।

१क सञ्छाया। २ख अन्तान्तरा०। ३घ अ० दृश्य०। ४ख सवतत्र च स०।
 ५ख बाष्ठी। ६ख तादृक्मना। ७ख एकान्ते। ८ख अथावा वित्तियन्तर। ९ख स० अ०। १०ख
 पु०। १०क नामिष्वग्येते बाल वा क०। ११ख असा गिरा। १२ख जिताहारी। १३ख लम्बालम्बस०।

यश्चैनमभिनन्देत यश्चैनमभिरादयेत् । समस्तयोश्चाप्यभयोर्नाभिध्यायेच्छुभाशुभम् ॥६४॥
न प्रहृष्येत लाभेषु नालाभेषु च चिन्तयेत् । समः सर्वेषु भूतेषु 'सधर्मा मातरिद्वन' ॥६५॥
एवं स्वस्थ्यात्मनः साधोः सर्वत्र समदर्शिनः । यन्मासान्नित्ययुक्तस्य शब्दब्रह्माभिवर्तते ॥६६॥
'वेदनात्तिगिरान्दृष्ट्वा समलोष्टाश्मकान्चनः । एवं तु निरतो मार्गं विरमेन्न विमोहितः ॥६७॥
अपि वर्णावकृष्टस्तु नारो वा धर्मकादृक्षिणो । तावप्येतेन मार्गेण गच्छेतां परमा गतिम् ॥६८॥
अजपुराणमजरं सनातनं, यमिन्द्रियातिगमगोचरं द्विजः ।
अवेक्ष्य चेमां परमेष्ठिसाम्प्रतां, 'प्रपान्त्यनावृत्तिगतिं मनोविणः' ॥६९॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे व्यासपुत्रसंवादे साख्ययोगनिरूपणं नाम
पञ्चत्रिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२३६॥

अथ सप्तत्रिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः

ज्ञानिनां मोक्षप्राप्तिनिरूपणम्

मुनय ऊचुः

'यद्येवं वेदवचनं कुरु कर्म त्यजेति च । को 'दिशं विद्यया याति कां च गच्छति कर्मणा ॥१॥

मुन अशुभं न, ध्यान न करे ॥६४॥ लाभ होने पर प्रसन्न न हो और हानि होने पर चिन्ता न करे । आयु के समान समस्त प्राणियों, के तुल्य व्यवहार करे ॥६५॥ इस प्रकार स्वस्थता और सर्वत्र समदर्शी होकर छह मास तक निरभ्यास करने वाला को शब्द-ब्रह्म की प्राप्ति होती है ॥६६॥ जिसका चित्त वेदनाओं से पीड़ित व्यक्तिवा न। वेदक, भी उद्विग्न नहीं होता है तथा जो डेले, पत्थर एवम् सीले में समान साध रखता है, वही योगयुक्त बहुलता है। इस प्रकार योगमार्ग पर आरुढ़ होना चाहिये, मोहद्वय उससे भ्रष्ट नहीं होना चाहिये। वह नीच वर्ण का व्यक्ति हो। अन्यथा कर्म काहनं वाली स्त्री हो, वे दोनों ही इस मार्ग के चलने पर परमात्मन की प्राप्ति करते हैं ॥६७६८॥ द्विजगण । अज, पुराण, अजर, सनातन, इन्द्रिया के परे तथा अगोचर परमात्मा का दर्शन करते विद्वान् लोग, ब्रह्म-समानता रूप अर्पित्वर्तनमोल गति का प्राप्ति करते हैं ॥६९॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में व्यास और श्रिययो ने संवाद प्रकरण में साख्ययोग-निरूपण नामक दो सौ छत्तीसवाँ अध्याय समाप्त ॥२३६॥

अध्याय २३७

ज्ञानियों की मोक्षप्राप्ति का निरूपण

मुनियो ने कहा—यदि ऐसा वेद का वचन है कि कर्म करो और त्याग भी करा तो मनुष्य ज्ञान के द्वारा

१ स्व ०मार्ता मुनीद्वर । ए० । २ ग ०नार्ता प्रजा ह० । ३ ग ०तिपत्र म० । ४ ग यद्वि वे० । ५ ग गति ।

एतद्वं श्रोतुमिच्छामस्तद्भवान्प्रब्रवीतु न । एतदन्योन्यवैरूप्यं वर्तते प्रतिकूलत ॥२॥

व्यास उवाच

शृणुष्व मुनिशार्दला यत्पृच्छध्व समासत । 'कर्मविद्यामयी चोभौ ध्याख्यास्यामि' क्षराक्षरो ॥३॥
 या दिश विद्यया यान्ति या गच्छन्ति च कर्मणा । शृणुष्व साप्रत विप्रा गहन हृषेतदुत्तरम् ॥४॥
 अस्ति धर्म इति युक्त नास्ति तत्रैव यो वदेत् । यस्तस्य सादृश्यमिदं यस्तस्येदं भवेदस्य ॥५॥
 द्वाविमात्रय पन्थानौ यत्र वेदा प्रतिष्ठिता । प्रवृत्तिलक्षणो धर्मो निवृत्तो वा विभाषित ॥६॥
 कर्मणा बध्यते जन्तुर्विद्यया च विमुच्यते । तस्मात्कर्म न कुर्वन्ति यतय पारदर्शिन ॥७॥
 कर्मणा जायते प्रत्य मूर्तिमान्योऽज्ञातमक । विद्यया जायते नित्यमव्यक्त हृषक्षरात्मकम् ॥८॥
 कर्म त्वेके प्रशसन्ति स्वल्पबुद्धिरता नरा । तेन ते देहजालेन रमयन्त उपासते ॥९॥
 ये तु बुद्धि परा प्राप्ता धर्मनंपुण्यदर्शिनः । न ते कर्म प्रशसन्ति कूप नद्या पिबन्निव ॥१०॥
 कर्मणा फलमाप्नोति सुखदुःखे भवाभवौ । विद्यया तदवाप्नोति यत्र गत्वा न शोचति ॥११॥
 न म्रियते यत्र गत्वा यत्र गत्वा न जायते । न जीर्यते यत्र गत्वा यत्र गत्वा न वर्धते ॥१२॥
 यत्र तदब्रह्म परममव्यक्तमचल ध्रुवम् । अव्याकृतमनायामममृत 'बाधिमोगवित ॥१३॥

(कर्म 'याग देन से') किस गति का प्राप्त होता है और कर्म से किस गति को प्राप्त होता है? यह हम सुनना चाहते हैं आप बतनाइय। यह परस्पर वैरूप्य प्रतिकूल भाव रखता है ॥१२॥

व्यास बोले—मुनिवर! जा आप पूछते हैं उसे संक्षेप से सुनिव। मैं कर्म तथा ज्ञानमय दाता शर और अक्षर का ध्यान करूँगा। विप्रवृत्त! ज्ञान से मनुष्य जिस गति का प्राप्त करते हैं और कर्म से जिसका प्राप्त करते हैं इसका उत्तर देना बहुत कठिन है। फिर भी अब सुनिव। धर्म है और धर्म नहीं है—यह कहना बँसा ही हाया जस यह एक यक्ष का सादृश्य है और यह यक्ष का सादृश्य नहीं है यह कथन। ये वा माय है जिनम वेद प्रतिष्ठित हैं। एक प्रवृत्तिलक्षण धर्म है और दूसरा निवृत्तिलक्षण धर्म है ॥३॥ ६॥ कर्म से जीव बद्ध होता है और ज्ञान से मुक्त होता है। इसलिये परार्थी सत्यासा से ज्ञान नहीं करते हैं ॥७॥ धर्म से जीव देहात् का बाद सोचते विचार से युक्त मूर्तिमान होता है अर्थात् ज्ञान सेना है और ज्ञान से अनारतमक दिव अव्यक्त हो जाता है ॥८॥ स्वल्प बुद्धि वाले मनुष्य कर्म की प्रशंसा करते हैं। इसलिये वे देहजाल से रमण करते हुए कर्म की उपासना करते हैं ॥९॥ जा परा बुद्धि का प्राप्त है तथा धर्म की निपुणता का देखते हैं वे कर्म की प्रशंसा उसी तरह नहीं करते हैं जैसे नदी का जल पीन शाल पुष्ट की ॥१०॥ कर्मों का फल उत्पत्ति मरण रूप सुख-दुःख हान है। ज्ञान से जीव बंधा जाता है जहाँ ज्ञान पर साध नहीं होता है मृत्यु नहीं होती उत्पत्ति नहीं होती हानि तथा बुद्धि नहीं होती जहाँ परम अव्यक्त अचल ध्रुव नामरूप से रहित अनामय अमृत तथा यागवत्ता ब्रह्म का प्राप्ति होती है और जहाँ धार्मिक कर्म तथा (गीत उच्यते अर्जुन) ॥१३॥

१३ ० पावनो व्या० । २३ चराचरी । ३३ जालानि २० । ४ ० जानानि २० । ४४ ० मज्ञा गुण० । ५४ बाधयागत । ६४ बाधियागिता ।

द्वन्द्वेन यत्र बाध्यन्ते मानसेन च कर्मणा । समाः सर्वत्र मैत्राश्च सर्वभूतहिते रताः ॥१४॥
विद्यामयोऽन्यः पुरुषो द्विजाः कर्ममयोऽपरः । विप्राश्चन्द्रसमत्पशः^१ सूक्ष्मया कलया स्थितः ॥१५॥
तदेतद्विष्णोः प्रोक्तं विस्तरेणानुगोपते । न वक्तुं शक्यते द्रष्टुं च त्रतन्तुमिदाम्बरं ॥१६॥
एकादशविस्मरात्मा कलासंभारसंभूतः । मूर्तिमानिति तं विद्याद्विप्रः कर्मगुणात्मकम् ॥१७॥
देवो यः सञ्चितस्तस्मिन्बुद्धौन्दुरिव^२ पुष्करे । क्षेत्रज्ञं तं विज्ञानीयाप्रित्यं योगजितात्मकम् ॥१८॥
तमो रजश्च सत्त्वं च ज्ञेयं^३ जीवगुणात्मकम् । जीवमात्मगुणं विद्यादात्मानं परमात्मानं ॥१९॥
सचेतनं जीवगुणं वदन्ति, स^४ चेष्टते^५ जीवगुणं च सर्वम्
ततः परं क्षेत्रविदो वदन्ति^६, प्रकल्पयन्तो भुवनानि सप्त ॥२०॥

ध्यास उवाच

प्रवृत्त्यास्तु विकारा ये "क्षेत्रज्ञास्ते" परिश्रुताः । ते चैनं न प्रजानन्ति न जानाति स तानपि ॥२१॥
तैश्चैव कृष्टे कार्ये^७ मनः पण्डरिहेन्द्रियैः । सुदान्तैरिव संयन्ता दृढः^८ परमवाजिभिः ॥२२॥
इन्द्रियैर्म्यः^९ परा ह्यर्था अर्थैर्म्यः परमं मनः । मनस्तस्य परा बुद्धिर्बुद्धेरात्मा महान्वरः ॥२३॥

बाधा नहीं आते हैं ॥११-१३॥ वहाँ जीव समभाव में स्थित, सर्वत्र मित्रतायुक्त एवम् समस्त भूतों के हित में निरत रहते हैं ॥१४॥ द्विजगण । कोई पुरुष ज्ञानमय होता है तो कोई कर्ममय । विप्रबुद्ध । कोई चन्द्रमा के समान शीतल स्वर्ण धागा तथा सूक्ष्म बला (गुण) से युक्त होता है । यह रहस्य ऋषि ने बतलाया है । उसका विस्तार से मैं वर्णन कर रहा हूँ । यह आबाध में चरतन्तु के समान देखा जा सकता है, किन्तु बतलाया नहीं जा सकता है । विप्रगण । कर्मगुण शक्ति को ग्यारह दिशों से युक्त तथा बलाओं से सम्पन्न मूर्तिमान् समझिये ॥१५-१७॥ शालाब में चन्द्र-प्रतिबिम्ब की तरह शरीर में जो देह अदृश्य है, उसे क्षेत्रज्ञ, नित्य तथा योग-नितारमा समझिये । तब, सत्त्व तथा रज को जीव का गुण समझिये, जीव को आत्मा का गुण और आत्मा को परमात्मा का गुण मानिये । जीव का गुण सचेतन है, यह समस्त जीव के गुण की चेष्टा किया करता है और सार्ता मुपना की बलना करते हुए क्षेत्रवेत्ता उससे परे को वदन्ते हैं ॥१८-२०॥

ध्यास बोले—प्रवृत्ति के जो विचार हैं, वे क्षेत्रज्ञ कहलाते हैं । वे पुरुष को नहीं जानते हैं और पुरुष उन्हें ही जानता है । जैसे मुसासित अरबों के दृढ़ कार्यय कार्य नेता है उन्ही तरह मन सहित छोड़े इन्द्रियों से पुरुष कार्य नेता है ॥२१-२२॥ इन्द्रियों से परे उन्हें विषय हैं, विषयों से परे मन है, मन से परे बुद्धि है और बुद्धि से परे महान् आत्मा है ॥२३॥ महान् से परे अक्षय्य है, अक्षय्य से परे अमृत है और अमृत से परे कुछ भी नहीं

१ स विप्रदण ० २ स ० न्द्रमस स्पर्शात्स सूक्ष्मो लोचसत्तय ० ३ य ० न्द्रमस स ० ४ स स्थितम् । ५ न न चक्र शक्ति दृष्ट्वा चरत ० ६ क चरुतद्विवापरे । ७ स ० स्मिप्रमयीन्दु । ८ स जीवात्मकगुणम् । ९ स स विष्टये चेतयते सु स ० १ स ० ते चिन्तयन्तीह स ० १० स ० न्ति प्राक्कल्पयन्तो मु ० ११ स ० चो ते प ० १२ स ० शारद प ० १३ स मनसश्चेन्द्रिये सह । मु ० १४ स दृष्टे । १५ स स अनर्थम् ।

महत परमव्यक्तमव्यक्तत्परतोऽमृतम् । अमृतात्र' परकिंचित्ता काष्ठा परमा गति ॥२४॥
 एव सर्वेषु भूतेषु गूढात्मा न प्रकाशते । दृश्यते त्व'ध्या बुद्ध्या सूक्ष्मया सूक्ष्मदर्शिमि ॥२५॥
 अन्तरात्मनि सलीय मन षष्ठानि मेधया । इन्द्रियैरिन्द्रियायाश्च बहुचित्तमचिन्तयन् ॥२६॥
 ध्यानेऽपि परम कृत्या विद्यासपदित मन । अनीश्वर प्रशान्तात्मा ततो गच्छेत्पर पदम् ॥२७॥
 इन्द्रियाणां तु सर्वेषां वश्यात्मा चलितस्मृति । आत्मन सप्रदानेन मर्त्यो मृत्युमुपाप्नुते ॥२८॥
 विहृत्य सबसकल्पान्सत्त्वे चित्त निवेशयेत् । सत्त्वे चित्त समावेश्य तत 'कालजरो भवेत् ॥२९॥
 चित्तप्रसादेन यतिर्जहातीह शुभाशुभम् । प्रमत्तामाऽप्रमनि स्थित्वा सुखमत्यन्तमप्नुते ॥३०॥
 लक्षणं तु प्रसादस्य यथा स्वप्ने सुख 'भवेत्' । विवर्ति वा यथा दीपो दीप्यमानो न कम्पते ॥३१॥
 एव पूर्वापरे रात्रे युञ्जन्नात्मानमात्मना । लब्धाहारो विशुद्धात्मा पश्यत्यात्मानमात्मनि ॥३२॥
 रहस्य 'सर्ववेदानामनैतिह्यमनायमम् । आत्मप्रत्यायक शास्त्रमिदं पुत्रानुशासनम् ॥३३॥
 धर्माह्वानेषु सर्वेषु सत्प्राप्त्यानेषु 'यद्वसु । दशवर्षसहस्राणि निर्म'यामृतमुद्धृतम् ॥३४॥
 नवनीतं यथा दध्म काष्ठादग्निपथैव च । तथैव विदुषा ज्ञान 'मुवितहेतोः समुद्धृतम् ॥३५॥

है। वह परकाष्ठा तथा परमगति है ॥२४॥ इस प्रकार समस्त भूतों में प्रचलित आत्मा प्रकाशित नहीं होता है। किन्तु सूक्ष्मदर्शी व्यक्ति धृष्ट एव सूक्ष्म बुद्धि से उसको देख लेते हैं ॥२५॥ बुद्धि स मन सहित छोटी इन्द्रियो को अन्तरात्मा में विलीन करके इन्द्रिया से इन्द्रिया के विषया का ध्यान न करके हुए तथा ध्यान हो जाने पर भी मन को विद्या से सुसज्ज करके अनीश्वर तथा प्रशान्तात्मा व्यक्ति परम पद को प्राप्त करता है ॥२६-२७॥ समस्त इन्द्रियो के वश में रहने वाला तथा विचलित ध्यान वाला मनुष्य आत्मा का हनन करके मृत्यु को प्राप्त करता है ॥२८॥ जो समस्त सकल्पा को विनष्ट करके सत्त्व में चित्त का निधिष्ण करता है वह काल को जीत लेता है ॥२९॥ चित्त की प्रसन्नता से सत्याधी शुभानुभ वधों का त्याग करके आत्मस्थित होकर अत्यन्त सुख को प्राप्त करते हैं ॥३०॥ प्रसन्नता का लक्षण यह है कि जैसे रूढ़ि में सुख होता है और निर्वर्ति स्थान में प्रज्वलित दीप कम्पित नहीं होता है उसी तरह पूव रात्रि में तथा अरर रात्रि में आत्मा से मन का सयोग (ध्यान) करे और अल्पभोजन करते हुए विशुद्धात्मा होकर आत्मा में आत्मा को देखे ॥३१-३२॥ यह शास्त्र अखिल वेदों का रहस्य है इतिहास तथा आगम से मिश्र है आत्मा का ज्ञान कराने वाला है और पुत्रानुशासन है अर्थात् जैसे पिता पुत्र के ऊपर अनुशासन करता है वैसे यह भी साधक ने ऊपर शासन करता है ॥३३॥ धर्म के आख्याना में तथा सत्य के आख्याना में जो सार है, वही यह है। दश सहस्र वर्षों तक वेदों का मथन करने यह अमृत निबाला गया है। जैसे बही से नक्कीव और कपट से अग्नि निकलता है उसी प्रकार मोक्ष के कारण से विद्वाना का ज्ञान निःसृत हुआ है। यह पुत्रानुशासन शास्त्र शिष्या को बनलाना चाहिये।

१क स ०ताज्ज ५०। २क ०नेनोप०। ३स ०स्मृत। आ०। ४ग ०लजरो। ५प स्वयम्।
 ६स ०तु। ७नैर्वर्ति ५०। ८स ०भनौषम्यमनायमयम्। ८क यद्वसु। स वस्तुषु। ९ग ०नु। १०
 दध्म०। १०क ०या दुष्पात्काष्ठा०। ११स ०हेती स०।

स्नातकानामिदं शास्त्रं वाच्यं पुत्रानुशासनम् । तदिदं नाप्रशान्ताय नादास्ताय तपस्विने ॥३६॥
 नावेदविदुषे वाच्यं तथा नानुगताय च । नास्यकायानृजवे न चानिर्दिष्टकारिणे ॥३७॥
 न तर्कशास्त्रद्वयाय तथैव पिशुनाय च । श्लाघिने श्लाघनीयाय प्रशान्ताय तपस्विने ॥३८॥
 इदं प्रियाय पुत्राय शिष्यायानुगताय तु । रहस्यधर्मं वक्तव्यं नाग्यस्मं तु कथयन् ॥३९॥
 यदप्यस्य महो दद्याद्रत्नपूर्वमिमां नरः । इदमेव ततः श्रेय इति मन्येत तत्त्ववित् ॥४०॥
 'अतो गृह्यतराय तदध्यात्ममतिमानुदम् । यत्तन्महर्षिभिर्दृष्टं वेदान्तेषु च गीयते ॥४१॥
 तद्युष्मभ्यं प्रयच्छामि यन्मां पृच्छत सत्तमाः । यन्मे मनसि वर्तेत यस्तु वो हृदि सशयः ॥
 श्रुतं भवद्भिस्तत्सर्वं किमन्यत्कथयामि च ॥४२॥

मुनय ऊचुः

अध्यात्मं विस्तरेणेह पुनरेव वदस्व नः । यदध्यात्मं यथा विद्मो भगवन्नृपिसत्तम ॥४३॥

व्यास उवाच

अध्यात्मं यदिदं विप्रः पुरुषस्येह पठ्यते । यद्युष्मभ्यं कथयिष्यामि तस्य व्याख्यास्वधार्यताम् ॥४४॥
 भूमिरापस्तया ज्योतिर्वायुराकाशमेव च । 'महाभूतानि यच्चैव सर्वभूतेषु भूतकृत् ॥४५॥

अशान्त और अदात तनस्वी को नहीं बतलाना चाहिये ॥३६-३९॥ जो वेदा को नहीं जानता है, उस भी नहीं बतलाना चाहिये । जो अनुगमन न करे, उसे नहीं बतलाना चाहिये । निन्दक, कुटिल, बिना निर्देश किये कार्य करने वाले, तर्कशास्त्र से दाघ तथा पिशुन का नहीं बतलाना चाहिये । प्रशसक, प्रशस्तनीय, प्रशान्त तथा तनस्वी को यह बतलाना चाहिये । यह रहस्यधर्म प्रिय पुत्र को तथा अनुगमन करने वाले शिष्य को बतलाया जा सकता है और अन्य को तो कभी भी नहीं ॥३७-३९॥ यदि मनुष्य रत्नपरिपूर्ण सकल पुष्पों को देता भी तत्त्ववेत्ता जन इसी को उससे श्रेष्ठ समझे । अतः अत्यन्त गोप्य तथा लोकोत्तर जो अध्यात्म विद्या है उस महर्षियों ने प्राप्त किया । उसी की कर्वा वेदान्तों में की जाती है । मुनिगण ! आप लोग न जो मुझसे पूछा वह देने बतला दिया और जा मेरे मन में था तथा जो आपके हृदय में सन्देह था वह भी आप मुन चुके हैं । अब और क्या कहूँ ? ॥४०-४२॥

मुनियों ने कहा—भगवन् ! मुनिवर ! पुन अध्यात्म को विस्तार से बतलाइये, ताकि अध्यात्म को हम समझ जाय ॥४३॥

व्यास बोले—विप्रवृन्द ! पुरुष का जो अध्यात्म कहा जाता है, वह मैं आपसे बतलाऊंगा । उसकी व्याख्या सुनिये । भूमि, जल, अग्नि, वायु, आकाश—ये पाँचों महाभूत सभी प्राणियों में स्थित हैं ॥४४-४५॥

१ ग ० ने । ३६ प्रियाय पुत्राय शिष्यायानु० । २ ग ० ने । २० । ३५ इद । ४६ स ततो । ५६ यत्र गृह समुद्दिष्ट । ६६ स प्रवक्ष्यामि । ७६ स विप्रः । ८६ इष्यते । ९ ग तच्छृणुष्वमतन्द्रिता ।
 मू० । १०६ ग ० नि पञ्चैव ।

मुनय ऊचुः

आकार तु भवेद्यस्य यस्मिन्देह न पश्यति। आकाशाद्य शरीरेषु कथं तदुपवर्णयेत् ॥
'इन्द्रियाणां' गुणा कचित्कथं तानुपलक्षयेत् ॥४६॥

व्यास उवाच

एतद्वो वणयिष्यामि 'यथावदनुदर्शनम्'। शृणुष्व तदिहैकाम्ना यथातत्त्वं यथा च तत् ॥४७॥
शब्द श्रोत्र तथा खानि त्रयमाकाशलक्षणम्। प्राणश्चक्षुः तथा स्पृश एते वायुगुणास्त्रय ॥४८॥
रूप चक्षुर्विपाकश्च त्रिधा ज्योतिर्विधीयते। रसोऽप्य रसन स्वेदो गुणास्त्वन्ते त्रयोऽम्भसाम् ॥४९॥
घ्रेय घ्राण शरीर च भूमरत गुणास्त्रय। एतावानिन्द्रियग्रामो व्याख्यात पाञ्चभौतिक ॥५०॥
वायो स्पर्शो रसोऽदभ्यश्च ज्योतिषो रूपमुच्यते। आकाशप्रभव शब्दो गन्धो भूमिगुण स्मृत ॥५१॥
मनो बुद्धि स्वभावश्च गुणा एते स्वयोनिरजाः*। ते गुणानतिवर्तन्ते गुणेष्व परमा मता ॥५२॥
यथा कूर्म इवाङ्गानि प्रसाप सनियच्छति। एवमेबेन्द्रियग्राम बुद्धिर्धेष्ठो नियच्छति ॥५३॥
यदूर्ध्वं पादतलपोरवार्कोर्द्वे च (गणश्च) पश्यति। एतस्मिन्नव कृत्ये सा वर्तते बुद्धिरुत्तमा ॥५४॥

मुनियों ने कहा—जिसका आकार तो होता होगा किंतु जिसमें कोई देह को नहीं देखता है वह आकाश और शरीर में कैसे विद्यमान रहते हैं इसका वर्णन कीजिए। कुछ इंद्रियों के गुण होते हैं वे कैसे होते हैं उन्हें भी बतलाइए ॥४६॥

व्यास बोले—गात्रानुसार मैं ठीक-ठीक इसका वर्णन करूंगा। आप लोग एकाग्रचित्त होकर तत्त्वतः सुनिये ॥४७॥ गन्ध श्रवणश्च तथा सूत्र्य प्रदेह—ये तीन आकाश के लक्षण हैं। प्राण चक्षुः तथा स्पर्श—ये तीन वायु के गुण हैं ॥४८॥ रूप नेत्र तथा परिणाम—ये तीन अग्नि के गुण हैं। रस जिह्वा तथा स्वेद—ये तीन जल के गुण हैं ॥४९॥ सूघने योग्य वस्तु, नाक और शरीर—ये तीन मृण पृथ्वी के हैं। पाँच भूतों के विकार इंद्रिय समूह वा वर्णन कर दिया। वायु से स्पृश जल से रस अग्नि से रूप आकाश से शब्द तथा पृथ्वी से गन्ध उत्पन्न होता है। मन बुद्धि तथा स्वभाव—ये स्वयोनिरज गुण हैं। ये इतर गुणों का अतिक्रमण करते हैं। अतएव दूसरे गुणा से ये थपछ माने जाते हैं ॥५०॥ जैसे कण्ठज अक्षों को फँसाकर फिर समेट लेता है उसी तरह ज्ञानी पुरुष इंद्रियों का नियमन कर लेता है। जो या तो ऊपर आकाश की ओर या नीचे चरणतल की ओर देखे उसकी बुद्धि उत्तम है (कारण बीच में इतर-उपर देखने से बुद्धि भ्रान्त होती है अतएव योगी पुरुष को ऊपर नीचे ही देखना चाहिए) ॥५३॥ गूण बुद्धि का बहान करते हैं और बुद्धि छठ मन सहित पाँच इंद्रिया का

१ग ०कारात्तात वै यस्य। स ०काशस्तु म०। २क ०धनम्। इ०। ३ग इंद्रियाणि। ४व य ०णां विचरतां यय। ५क स ०वस्तुपासन०। ६क ०सोऽवस्तथा स्ये०। ७व ०जा। एते त्रयोऽम्बिव०। ८स न। ९स ०ति। नतूर्ध्वं।

'गुणस्तु नीयते बुद्धिर्बुद्धिरेन्द्रियाण्यपि । मन षष्ठानि सर्वाणि 'बुद्ध्या भावात्कुतो गुणाः ॥५५॥
 इन्द्रियाणि नरैः पञ्च षष्ठं तन्मन उच्यते । सप्तमौ बुद्धिमेवाऽऽहुः क्षेत्रज्ञं विद्धि चाष्टमम् ॥५६॥
 'चक्षुरालोकनार्थं संशयं कुर्वते मनः । बुद्धिरध्यवसानाय साक्षी क्षेत्रज्ञ उच्यते ॥५७॥
 रजस्तमश्च सत्त्वं च त्रय एते स्वयोनिरजाः । 'समाः सर्वेषु भूतेषु तान्गुणानुपलभयेत् ॥५८॥
 तत्र यत्प्रीतिसंयुक्तं किञ्चिदात्मनि लक्षयेत् । प्रशान्तमिव संयुक्तं सत्त्वं तदुपधारयेत् ॥५९॥
 यत्तु संतापसंयुक्तं काये मनसि वा भवेत् । प्रवृत्तं रज इत्येवं तत्र चाप्युपलभयेत् ॥६०॥
 यत्तु 'संमोहसंयुक्तमव्यक्तं' विषयं भवेत् । अप्रतर्क्यमविज्ञेयं तमस्तदुपधारयेत् ॥६१॥
 प्रहृष्यः प्रीतिरानन्दं स्वाम्यं स्वस्यात्मचित्ता । 'अकस्माद्यदि वा कस्माद्बुद्धिर्ना सत्त्विकान्गुणान् ॥६२॥
 'अभिमानो मृषावादो लोभो मोहस्तथा क्षमा । लिङ्गानि रजस्तानि 'वर्तन्ते हेतुतत्त्वतः ॥६३॥
 तथा मोहः प्रमादश्च तन्द्रो निद्राऽप्रबोधिता । कथंचिदभिवर्तन्ते विज्ञेयास्तामसा गुणा ॥६४॥
 मनः प्रसृजते भावं बुद्धिरध्यवसायिनो । हृदयं प्रियमेवेह त्रिविधा कर्मचोदना ॥६५॥
 इन्द्रियेभ्यः परा ह्यर्था अर्थेभ्यश्च परं मनः । मनस्तत्तु परा बुद्धिर्बुद्धेरात्मा परः ॥६६॥
 बुद्धिरात्मा मनुष्यस्य बुद्धिरेवाऽऽत्मनायिका । यदा विकुर्वते भावं' तदा भवति सा मनः ॥६७॥

बहुन करती है। बुद्धि के अभाव में गुण क्या कर सकते हैं (?)। पाँच इन्द्रियाँ तथा छठा मन कहलाता है। सातवीं बुद्धि की और आठवाँ आत्मा को समझिये ॥५५-५६॥ नेत्र अवलोकन के लिये हैं। मन संशय करता है। बुद्धि निश्चय करती है ॥५७॥ क्षेत्रज्ञ (आत्मा) साक्षी कहलाता है। रज, तम, सत्त्व—ये तीनों स्वयोनिरज गुण समस्त भूतो में समाप्त हैं। इन गुणों का परिदर्शन करें। वहाँ प्रीति-संयुक्त जो कुछ भी आत्मा में दीख पड़े, उसे सत्त्व का चान्तिपूर्वक धारण करे ॥५८-५९॥ सरीर में या मन में सतापयुक्त जो कुछ मालूम पड़े, उसे रजोगुण समझना चाहिए ॥६०॥ जो मोहसंयुक्त, अव्यक्त, विषय, अप्रतर्क्य तथा अविज्ञेय है, उसे तमोगुण समझना चाहिये ॥६१॥ महान् हर्ष, प्रीति, आनन्द, स्वाम्य तथा स्वस्वचित्ता यदि अकस्मात् मालूम पड़े तो उन्हें सार्विक गुण समझिये ॥६२॥ अभिमान, मिथ्यावाद, लोभ, मोह, क्षमा—ये रजोगुण के चिह्न हैं। मन भाव का सर्वज्ञ करता है, बुद्धि निश्चय करती है और हृदय प्रिय ही करता है। यह तीन प्रकार की कर्म-प्रेरणाएँ हैं ॥६३-६५॥ इन्द्रियो से परे उनके विषय हैं, विषयों से परे मन है। मन से परे बुद्धि है और बुद्धि से परे आत्मा है। बुद्धि मनुष्य का आत्मा है, बुद्धि ही आत्मा की नेत्री है। बुद्धि जब मान को अमिथ्यक्त करती है तब वह मन कहलाती है ॥६६-६७॥ इन्द्रियो ने पृथक्-पृथक् व्यापार को बुद्धि ही करती है। ध्वज करती हुई वह कर्ण

१क गुणान्ते नी० । २ग गुणागुणाय० । ३क बुद्धिमात्र कृता गु० । ४ग भावे ततो । ५ग ०लोचना० । ६क स सम । ६ख ०त्तु व्यापरो० । ७ग ०व्यक्तविषय म० । ८क अस्माक यदि । ९ख ०नो विषादो वा लो० । १०ग ०न्ते देहत० । ११ग ०नी । कृत्य प्रियाप्रिये चैन वि० । १२ख परो मत । १३ख भाव ।

इन्द्रियाणां पृथग्भावादबुद्धिविक्रुते 'हृत्तनु'। शृण्वती भवति श्रोत्रं स्पर्शती स्पर्श उच्यते ॥६८॥
 पश्यन्ति च भवेददृष्टी रसन्ती रसना भवेत्। जिघ्रन्ती भवति घ्राणं बुद्धिविक्रुते पृथक् ॥६९॥
 इन्द्रियाणि तु तान्याहुस्तेषां वृत्त्या वितिष्ठति। तिष्ठति पुरुषे 'बुद्धिर्बुद्धिभावव्यवस्थिता ॥७०॥
 कदाचित्तमते प्रीति कदाचिदपि शोचति। न सुखेन न दुःखेन कदाचिदहं मुह्यते ॥७१॥
 स्वयं भावात्मिका भावास्त्रोनेतानवितर्कते'। सरिता सागरो भर्ता महाबेलामिवोमिमान् ॥७२॥
 यवा प्रायपते किञ्चित्तदा भवति सा मनः। अधिष्ठाने च वै बुद्ध्या पृथगतानि सत्स्मरेत् ॥७३॥
 इन्द्रियाणि च मध्यानि विचेतव्यानि कृत्स्नता'। सर्वाण्येवानुपूर्वेण यत्तदा च विधीयते ॥७४॥
 अभिभागमना' बुद्धिर्भावो मनसि वर्तते। प्रवर्तमानस्तु रजः सत्त्वमप्यतिवर्तते ॥७५॥
 ये च भावेन वर्तन्ते सर्वेष्वेतेषु ते त्रिषु। अन्वर्थासप्रवर्तन्ते रयनेमिमरा इव ॥७६॥
 'प्रदीपाद्यं मनः कुर्याद्विन्द्रियैर्बुद्धिसत्तमैः। निद्राचरद्भिर्यथायोगमुदासीनैर्यदृच्छया ॥७७॥
 एव स्वभावमेवेदमिति बुद्ध्या' न मुह्यति। अशोचन्सप्रहृष्यन्तिरपि विगतमत्सरः ॥७८॥
 न ह्यात्मा शक्यते द्रष्टुमिन्द्रियं कामणोचरैः। प्रवर्तमानैरनेकैर्बुधैरंरकृतात्मभिः ॥७९॥

कहलाती है स्पर्श करती हुई स्वचा कहलाती है, देखती हुई नेत्र कहलाती है रसास्वाद करती हुई जिह्वा कहलाती है और सूंघती हुई नासिका कहलाती है। इस प्रकार बुद्धि ही सब इन्द्रियों के पृथक् पृथक् काम को करती है ॥६८॥ ६९॥ बुद्धि को इन्द्रियां समझिए। उनकी वृत्ति से वह अवस्थित होती है। पुरुष ने बुद्धि अद्वैतर है और बुद्धि ने मान अवस्थित है ॥७०॥ बुद्धि कभी प्रीति लभ करती है और कभी शोक। यह सुख तथा दुःख से कभी भी मुग्ध नहीं होती है ॥७१॥ अहं मन्त्रियों का स्वामी समुद्र तट वा उत्लपन करता है उसी तरह भावात्मिका बुद्धि तीनों भावा का अतिक्रमण करती है ॥७२॥ अब किसी चीज के लिये प्रायत्न की जाती है तब बुद्धि मन कहलाती है। स्थान विषय ने बुद्धि द्वारा इन्द्रिया का पृथक्-पृथक् स्मरण किया जाता है। सरल इन्द्रिया को क्रमशः पवित्र बनाना चाहिये और सत्त्व्यानी स उत्तम होकर करना चाहिये। बुद्धि मन से अतिरिक्त नहीं है। भाव मन में रहता है। उदीयमान मान रज तथा सत्त्व का भी अतिक्रमण करता है ॥७३॥ ७४॥ ज इन तीन गुणों ने भाव से विद्यमान रहते हैं (अर्थात् इनकी भावना करते रहते हैं) वे विषय से उसी तरह निरत जाते हैं जैसे रथ के पहिये के आगे मर्म रु निपके रहते हैं ॥७५॥ प्रकाश पाने के लिये निरवल तथा उत्तमीन इन्द्रियों द्वारा मन को वा भे करे। शब्द रूप तथा ईश्वरी स गूढ मनुष्य मन का एता ही स्वरूप है यह जान कर मोह में नहीं पड़ता है। वामचारी उद्धत तथा अन्ध इन्द्रिया द्वारा इस आत्मा का दर्शन नहीं हो सकता है।

१क मन २स ०स्तेषु दुःखोचति०। ३ ०स्तेषु दुःखे च ति०। ३क ०दि सत्ता मा०। ४स ग० नमिब०। ५क सगर। विष्ट विनिर्वा भर्ता पू०। स सगर। अविष्ट मित्र वै बुद्ध्या पू०। ६क ०ग। मृतायेवा०। ७क यथावदभिधी०। ८स ०मतो बु०। ९क ०पानोचर०। स ०मानं तु र०। १०ग ०ते। ११रेव भावा वर्तन्ते भावा सर्वेषु तेषु च। अ०। ११क प्रदीप्यर्थः। १२क निद्राचरद्भिर्य०। १३क ग बुद्ध्या।

'तेषां तु मनसा रश्मोन्यदा सम्यङ्निपच्छति । तदा प्रकाशतेऽस्याऽऽत्मा दीपदीप्ता यथाऽऽकृतिः ॥८०॥
 सर्वेषामेव भूतानां तमस्युपगते यथा । प्रकाशं भवते सर्वं तथैवमुपधार्यताम् ॥८१॥
 यथा वारिचरः पक्षी न लिप्यति जले चरन् । विमुक्तात्मा तया योगी गुणदोषेन लिप्यते ॥८२॥
 एवमेव कृतप्रज्ञो न दोषैर्विषयाश्चरन् । असज्जमानः सर्वेषु न कथंचित्प्रलिप्यते ॥८३॥
 त्वस्त्वा पूर्वकृतं कर्म रतिर्यस्य सदाऽऽत्मनि । सर्वभूतात्मभूतस्य गुणसङ्गेन सज्जतः ॥८४॥
 स्वयमात्मा 'प्रसवति गुणेष्वपि' कदाचन । न गुणा विदुरात्मानं गुणान्वेद स सर्वदा ॥८५॥
 परिदध्याद्गुणानां स द्रष्टा चैव यथातथम् । सत्त्वक्षेत्रज्ञयोरेवमन्तरं लक्ष्येन्नरः ॥८६॥
 सृजते तु गुणानेक एको न सृजते गुणान् । पृथग्भूतो प्रकृत्यन्तो संप्रयुक्तो च सर्वदा ॥८७॥
 यथाऽग्निना हिरण्यस्य संप्रयुक्तो तथैव तो । भस्मकोटुम्बरी वाऽपि संप्रयुक्तो यथा सह ॥८८॥
 इपिरा वा यथा मुञ्जे पृथक्च सह चैव ह । तथैव सहितावेतो अन्योन्यस्मिन्प्रतिष्ठितौ ॥८९॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे ध्यासपिसवादे

सप्तत्रिंशदधिकद्विंशततमोऽध्यायः ॥२३७॥

मन द्वारा जब इन्द्रियो का सम्पर्क प्रकार से नियमान होता है तब आत्मा उसी तरह प्रकाशित होता है जैसे दीप
 द्वारा रूप । ॥७७-८०॥ अन्धकार के नष्ट होने पर जैसे समस्त भूलो का सक्षात्कार होता है वैसे आत्मा का भी
 समस्त जीजिमे । जैसे जलचर पक्षी जल में विचरण करते हुए भी लिपन नहीं होता है उसी प्रकार मुक्ततामा
 पाणी गुण-दोषों से लिपित नहीं होता है ॥८१-८२॥ इसी प्रकार प्रजावान् व्यक्ति विषयो का उनमोग करते हुए
 भी समस्त विषयो में अनासक्त रहने के कारण लिपित नहीं होता है ॥८३॥ जो पूर्वकृत कर्म का त्याग करके सदा
 आत्मा में निरत रहता है और सबके आत्मा को अपना आत्मा समझता है वह गुण-दोषों से रहित हो जाता है ।
 कदाचित् गुणों में भी स्वयम् आत्मा उत्पत्ति करता है । गुण आत्मा को नहीं जानते हैं पर आत्मा गुणों को सदा
 जानता है ॥८४-८५॥ द्रष्टा आत्मा गुणों का धारण करता है । मनुष्य प्रकृति और आत्मा में यही अन्तर समझे
 कि एक (प्रकृति) गुणों का सृजन करती है और दूसरा (आत्मा) नहीं करता है । य दोनों स्वरूप से पृथक् होते हुए
 भी सदा साथ रहते हैं । जैसे पत्थर से सुवर्ण का संयोग कीड़ो से उडुम्बर (गूलर) का संयोग और इषिका
 (सीक) से भूँज का संयोग होता है उसी तरह ये दोनों प्रकृति पुरुष परस्पर प्रतिष्ठित (अर्थात् एक दूसरे से समुक्त
 रहते) हैं ॥८६-८९॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में व्यास और ऋषियो ने सवाव-प्रकरण में
 दो सौ सैंतीसवाँ अध्याय समाप्त ॥२३७॥

१ख ०पा मुम० । ग२ ०त । मूर्तिमा० । ३ग प्रसरति । ४ग गुणानपि । ५क स कथयन ।
 ६क स तद्रूपः ।

अथाष्टात्रिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः

गुणसर्जनकथनम्

व्यास उवाच

सृजते तु गुणान्स्त्वं क्षेत्रज्ञस्त्वधितिष्ठति । गुणान्विक्रियतः । सर्वानुदासीनवदीश्वरः ॥१॥
 स्वभावयुक्तं तत्सर्वं 'यदिमान्सृजते गुणान् । ऊर्णनाभिर्यया सूत्रं सृजते तद्गुणान्स्तथा ॥२॥
 'प्रवृत्ता न निवर्तन्ते प्रवृत्तिर्नोपलभ्यते । 'एवमेके व्यवस्यन्ति निवृत्तिमिति चापरे ॥३॥
 उभयं संप्रधार्येतदध्यवस्थेद्यथाभति । अनेनैव विधानेन भवेद्वै संशयो महान् ॥४॥
 अनादिनिघ्नो ह्यहात्मा तं बुद्ध्या 'विहरेन्नरः । अक्रुध्यन्नप्रहृष्यन्श्च नित्यं विगतमत्सरः ॥५॥
 इत्येवं हृदये सर्वो 'बुद्धिचिन्तामयं' दृढम् । अनित्यं सुखमासीनमशोच्यं छिन्नसंशयः ॥६॥
 सरयेत्प्रच्युता पृथ्वी यया पूर्णा नदी नराः । अवगाह्य च विद्वांसो विप्रा लोलमिमं तथा ॥७॥
 न तु तप्पति वै विद्वान्स्थले चरति तत्त्ववित् । एवं विचिन्त्य चाऽऽत्मानं केवलं ज्ञानमात्मनः ॥८॥
 तां(त) तु बुद्ध्या नरः सर्गं भूतानामागतिं गतिम् । समवेष्टश्च वै सम्यग्भते शममुत्तमम् ॥९॥
 एतद्बुद्धिजन्मसामर्थ्यं ब्राह्मणस्य विशेषतः । आत्मज्ञानसमत्नेह्यपरिप्तिं तत्परायणम् ॥१०॥

अध्याय २४८

गुणो की सृष्टि का प्रतिपादन

ध्यास बोले—प्रकृति गुणों का सर्जन करती है और आत्मा उन्का उपभोग करता है । ईश्वर या परमात्मा विहृत होते हुए सभी गुणों को उदासीन की तरह देखता रहता है । प्रकृति जो गुणों की सृष्टि करती है, वह स्वभावयुक्त है । जैसे मकड़ा सूत्र का सर्जन करता है वैसे प्रकृति गुणों का सर्जन करती है ॥१-२॥ किन्हीं का मत है कि तत्त्वज्ञान से जब गुणों का नाश कर दिया जाता है, तब वे फिर उत्पन्न नहीं होते, उनका सर्वथा नाश हो जाता है । इस प्रकार वे भ्रम में आदिवा के निवारण को ही मूर्खता मानते हैं । दूसरों के मत में प्रविष्ट कुछों की आत्यन्तिक निवृत्ति ही मोक्ष है ॥३॥ दोनों (मतों) को समझकर अपनी बुद्धि के अनुसार निश्चय करना चाहिये । अल्पया इसी विधान के महान् सहाय उत्पन्न हो जाएगा ॥४॥ आत्मा को अनादि और अजर-अमर जानकर मनुष्य श्रेष्ठ, हर्ष तथा ईर्ष्या के शून्य होकर विहार करे । इस प्रकार हृदय में बुद्धिपूर्वक दृढता रखकर अनित्य सुख, शोक तथा सहाय का त्याग करे ॥५-६॥ जैसे मनुष्य तीर कर नदी को पार करता है उसी तरह ज्ञानी मनुष्य ससार का सतरण करे । तत्त्ववेत्ता जन ससार में विचरण करते हुए भी सतत नहीं होते हैं । ऐसा सोचकर मनुष्य को आत्मज्ञान प्राप्त करना चाहिये । ज्ञानी जन सृष्टि में रहस्य तथा मृत्यु की गति और अगति सब कुछ समझ कर उत्तम ज्ञान्ति को प्राप्त करते हैं ॥७-९॥ आत्मज्ञान प्राप्त करना द्विकारियों का कार्य है, विशेष करने ब्राह्मण का । तत्त्व को जानकर मनुष्य बुद्ध हो

त्वं बुद्ध्या भवेद्बुद्धः किमन्यद्बुद्धलक्षणम् । विज्ञायतद्विमुच्यन्ते कृतकृत्या मनीषिणः ॥११॥
 न भवति विदुषां महद्भूयं, यदविदुषां सुमहद्भूयं परत्र
 न हि गतिरधिकाऽस्ति कस्यचिद्भवति हि या विदुषः सनातनी ॥१२॥
 लोके मातरमसूयते नरस्तत्र देवमनिरीक्ष्य शोचते
 तत्र चेत्कुशलो न शोचते, ये विदुस्तदुभयं कृताकृतम् ॥१३॥
 यत्करोत्यनभिसंधिपूर्वकं, तच्च निन्दयति यत्पुरा कृतम्
 यत्प्रियं तदुभयं न वाऽप्रियं, तस्य तज्जनयतीह कुर्वतः ॥१४॥

मुनय ऊचुः

यस्माद्भर्मात्परो धर्मो विद्यते नेह कश्चन । यो विशिष्टश्च भूतेभ्यस्तद्भवात्प्रब्रवीतु नः ॥१५॥

व्यास उवाच

धर्मं च सप्रवक्ष्यामि पुराणमृषिभिः स्तुतम् । विशिष्टं सर्वधर्मस्य शृणुष्व मुनिसत्तमाः ॥१६॥
 इन्द्रियाणि प्रमायीनि बुद्ध्या संयम्य तत्त्वतः । सर्वतः प्रसूतानीह पिता बालानिवाऽऽत्मजान् ॥१७॥
 मनसश्चेन्द्रियाणां चाप्येकाग्र्यं परमं तपः । विज्ञेयः सर्वधर्मस्य स धर्मः पर उच्यते ॥१८॥
 तानि सर्वाणि संधाय मनःपठानि मेधया । आत्मनुप्तः स एवाऽऽसीद्बहुचिन्त्यमचिन्तयन् ॥१९॥

जाता है और इसने अतिरिक्त अन्य बुद्ध का क्या लक्षण है—यही जाकर मनीषी लोग कृतकृत्य हो जाते हैं ॥१०-११॥ परलोक में अविद्वान् को जो महामय होता है, वह विद्वान् को नहीं होता है। विद्वान् को जो सनातनी गति प्राप्त होती है, उससे अधिक किसी को नहीं मिलती है। ससार में मनुष्य माता पिता की भी निन्दा कर बैठता है, किन्तु वहाँ देवता को न देखकर ऐसा सोचता है या करता है। जो कर्तव्य और अकर्तव्य दोनों को जानता है, जो निष्पट होकर कर्म करता है, जो पहले के किये कर्म की निन्दा करता है, जो प्रिय अश्रिय दोनों को उत्पन्न करता है, वह शुश्रूषक अर्थात् शोक में नहीं पड़ता है ॥१२-१४॥

मुनियों ने कहा—जिस धर्म से बढ़कर कोई धर्म नहीं है और जो भूतों से विशिष्ट है, उसे आप बतलायें ॥१५॥

व्यास बोले—मुनिवर ! प्राचीन, ऋषियों द्वारा स्तुत तथा समस्त धर्मों से विशिष्ट धर्म को मैं बतलाऊँगा, आप लोग सुनिये ॥१६॥ जैसे पिता शिशुपुत्रों का नियम करता है उसी तरह मनुष्य बुद्धि से बलवान् इन्द्रिया का सयम करे ॥१७॥ मन और इन्द्रियों की एकाग्रता परम तप है, यह समस्त धर्मों से श्रेष्ठ धर्म है ॥१८॥ बुद्धि से मन सहित समस्त इन्द्रियों का सयम करके अनेक प्रकार की चिन्ता न करते हुए सदा आत्मनुप्त रहना चाहिये ॥१९॥ जब इन्द्रियों विषयों से विनिवृत्त होकर आत्मा में स्थित हो जाती हैं तब नित्य आत्मा का

गोचरेभ्यो निवृत्तानि यदा स्यास्यन्ति धेऽस्मिन् । तदा चैवाऽऽत्मनाऽऽत्मानं परं द्रक्ष्यथ शाश्वतम् ॥२०॥
 सर्वात्मानं महात्मानं विधूममिव पावकम् । प्रपश्यन्ति महात्मानं ब्राह्मणा य मनोयिण ॥२१॥
 यथा पुष्पफलोपेतो बहुशाखो महाद्रुमः । आत्मनो नाभिजानीते यव मे पुष्पं यव मे फलम् ॥२२॥
 एवमात्मा न जानीते यव गमिष्ये कुतोऽन्वहम् । अन्यो ह्यस्यान्तरात्माऽस्ति यः सवमनुपश्यति ॥२३॥
 ज्ञानदोषेन दोष्टेन पश्यत्यात्मानमात्मना । दृष्ट्वाऽऽत्मानं तथा यूयं विरागा भवत द्विजा ॥२४॥
 विमुक्ता सवपापेभ्यो मुक्तत्वच इवोरगा । परा बुद्धिमवाप्येहाप्यचिन्ता विगतज्वरा ॥२५॥
 सवत स्रोतस घोरा नदीं लोकप्रवाहिणीम् । पञ्चद्विप्रप्राह्वतीं मनःकल्परोधसम् ॥२६॥
 लोभमोहतुणच्छन्ना कामक्रोधसरीसृपाम् । सत्यतीर्थानृतक्षोभा श्रेयषद्भ्या सरिद्वाराम् ॥२७॥
 अव्यवतप्रभया शोघ्रा कामक्रोधसमाकुलाम् । प्रतरप्य नदीं बुद्ध्या दुस्तरामकृतात्मभि ॥२८॥
 ससारसागरगमा योनिपातालदुस्तराम् । आत्मजन्मोदभवा ता तु जिह्वायतदुरासदाम् ॥२९॥
 या तरन्ति कृतप्रज्ञा धृतिमन्तो मनोयिण । तातीण सवतो मुवतो विष्णूनाऽऽत्मवाङ्मुनि ॥३०॥
 उत्तमा बुद्धिमास्थाय ब्रह्मभूषाम् कल्पते । उत्तीण सवसकलज्ञाप्रसन्नात्मा विकल्मष ॥३१॥
 भूयिष्ठानीव 'भूतानि सवस्यानाञ्जिरीक्ष्य च । अकृष्यन्नप्रसीदश्च ननु'समतिस्तथा ॥३२॥

दानं होता है । विद्वान् ब्राह्मण अपने आत्मा को तथा सब आत्मा को घूमरहित जगत् की तरह देखते हैं ॥२०॥
 २१॥ जब पुष्प फला से मुक्त बहुत गांवा वाला महापुरुष अपने को नहीं जानता है कि कहाँ मेरा पुष्प है और कहाँ मेरा फल उसी प्रकार जीव नहीं जानता है कि कहाँ से मैं आया हूँ और कहाँ जाऊंगा । इसके अतिरिक्त अन्तरात्मा है जो सब कुछ देखता है ॥२२॥ २३॥ 'द्विजगण' ज्ञान रूपी दीप से दीप्त आत्मा द्वारा आत्मा को देखकर आप लोग वैराग्य धारण कीजिए ॥२४॥ जैसे सप कचुली से निमुक्त होता है उसी तरह आप लोग समस्त पापों से विमुक्त होकर परा बुद्धि को प्राप्त कर चिन्ता तथा प्लव से रहित हो जाइये ॥२५॥ आप आप बुद्धि द्वारा सब ओर सोच वाली मयकर लोका को वहाने वाली पाँचों इन्द्रिय रूपी प्राइव की मनःसकल रूपी तट वाली लोभ-मोह रूपी तुषा से आ-उदित काम क्रोध रूपी रेंगने वाले जीवों से मुक्त सत्यरूपी तीर्थ यात्री मिथ्या रूपी तरंगवाली श्रेयस्वरूपी कीचड़ वाली अव्यक्त से उत्पन्न होने वाली 'गीघर्गा'मिनी अन्ध-यात्राया से न पार होने योग्य ससाररूपी सागर से समग करने वाली योनिरूपी पाताल तथा गभीर अपने जन्म से उत्पन्न होने वाली तथा बिहूषा रूपी मकर से बंदिन नदी को पार कीजिये । उस नदी को घीर मनोपी जन पार करते हैं । ॥२६॥ २७॥ उससे पार कर मुक्त निष्पाप तथा तत्त्ववेत्ता मनुष्य परा बुद्धि को प्राप्त कर ब्रह्म में लीन हो जाते हैं । निष्पाप प्रसन्नमा और क्रोध हृय तथा क्रूरता से रहित मनुष्य समस्त भूतों में व्यापक आत्मा का दान करने समस्त क्लेशों से उत्तीर्ण हो जाता है । ऐसा करने से आप आप भूतों की उत्पत्ति तथा प्रलय को भी देखेंगे ।

ततो द्रक्ष्यस्य सर्वेषां भूतानां प्रमवाप्ययात् । एतद्धि सर्वधर्मोभ्यो विशिष्टं मेनिरे बुधाः ॥३३॥
धर्मं धर्मभूतां श्रेष्ठा मुनयः 'सत्यवर्णिनः । आत्मानो व्यापिनो विप्रा इति पुत्रानुशासनम् ॥३४॥
प्रयताय प्रवक्तव्यं हितायानुगताय च । आत्मज्ञानमिदं गुह्यं सर्वगुह्यतमं महत् ॥३५॥
अथर्वं यदहं विप्रा 'आत्मसाक्षिकमञ्जसा । नैव स्त्री न पुमानेवं न चैवेदं नपुंसकम् ॥३६॥
अनुत्तमसुखं ब्रह्म भूतभव्यभवात्मकम् । नैतज्ज्ञात्वा पुमान्स्त्री वा पुनर्भवमवाप्नुयात् ॥३७॥
यथा भूतानि सर्वाणि तथेतानि यथा तथा । कथितानि मया विप्रा भवन्ति न भवन्ति च ॥३८॥
तत्प्रीतियुक्तेन गुणान्वितेन, पुत्रेण सत्पुत्रदयान्वितेन
बुद्ध्या हितं प्रीतमना यदर्थं, श्रूयात्सुतस्पर्ह यदुक्तमेतत् ॥३९॥

मुनय ऊचुः

मोक्षः पितामहेनोक्त उपपायानुपायतः । तमुपायं ययाग्यायं श्रोतुमिच्छामहे मुने ॥४०॥

व्यास उवाच

अस्मात् सग्नहाप्राप्ता युक्तं निपुणदर्शनम् । यदुपायेन सर्वार्थान्मुगध्वं सदाऽनघाः ॥४१॥
घटोपकरणे श्रुद्धिर्घटोत्पत्ती न सा भूता । एवं धर्माद्युपायार्थं नान्यधर्मेषु कारणम् ॥४२॥
पूर्वं समुद्रे यः पन्था न स गच्छति पदिचमम् । एकः पन्था हि मोक्षस्य तच्छृणुष्वं ममानघाः ॥४३॥

विद्वानो ने इसी को अखिल धर्मों से विशिष्ट माना है ॥३०-३३॥ विप्रवर्ण! धर्मात्माओं ने श्रेष्ठ, सत्यवर्णी तथा महारत्ना मुनिवा ने इस धर्म को पुत्रानुशासन (पुत्र को उपदेश करने योग्य) बतलाया है ॥३४॥ अत्यन्त गोपनीय यह आत्मज्ञान सपत्नी, हिंदू तथा अनुगमन करने वाले को देना चाहिये ॥३५॥ द्विजगण! जिस आत्मा के बारे में मैंने कहा है, वह न स्त्री है, न पुरुष है, न नपुंसक है ॥३६॥ वह दुःख-गुल-से परे तथा मृत, अविध्य, वर्तमान तीनों में है। इसको जान लेने से पुरुष या स्त्री का पुनर्जन्म नहीं होता है। त्रिजगण! इस प्रकार के जो मत हैं, वे सब मैंने बता दिये। वे होते भी हैं और नहीं भी होते हैं ॥३७॥ इसलिए प्रीतियुक्त, गुणों से युक्त तथा सत्य-योजित दया से युक्त पुत्र को जानकर प्रसन्न मन से पूर्वोक्त आत्मज्ञान देना चाहिये।

मुनियों ने कहा—मुने! ब्रह्मा ने कहा है कि मोक्ष उपाय से मिलता है बिना उपाय के नहीं। उच उपाय को हम लोग अच्छी तरह सुनना चाहते हैं ॥३९-४०॥

व्यास बोले—महापंडितो! समीचीन दर्शन को ही हम लोग इसका उपाय कह सकते हैं, जिससे समस्त पदार्थों का अन्वेषण किया जा सकता है ॥४१॥ घट की सामग्रियों में जो कारण होता है, वही घटोत्पत्ति में नहीं होता। इसी तरह धर्म के उपाय का जो कारण होता है, वह धर्म का नहीं होता है ॥४२॥ पूर्व समुद्र को जो मार्ग जाता है, वह परिधम समुद्र को नहीं जाता है। निष्पापो! मोक्ष का एक ही मार्ग है, वह

१क स सत्यवादिनः । २ग इदं विप्रानु० । ३क ०त्पदान्वितकर परम् । न० । ४ग पतानि ।

५. युक्त । ६ग ०धर्मापानुवध्व । ७क ०घटोत्पत्ते न । ८स. नागाप० ।

समया क्रोधमुच्छिन्नात्कामं संकल्पवर्जनात् । सत्त्वसंसेवनाद्धोरो निद्रामुच्छेत्तुमर्हति ॥४४॥
 अप्रमादाद्भुयं रक्षेत्रक्षेत्रं च सविदम् । इच्छा द्वेषं च कामं च धैर्येण विनिवर्तयेत् ॥४५॥
 निद्रां च प्रतिभा चैव ज्ञानाभ्यासेन तत्त्ववित् । उपद्रवास्तथा योगी हितजीर्णमिताशनात् ॥४६॥
 लोभं मोहं च संतोषाद्विषयास्तत्त्वदर्शनात् । अनुकोशादधर्मं च जयेद्धर्ममुपेक्षया ॥४७॥
 आपत्या' च जयेदाशा' सामर्थ्यं सङ्गवर्जनात् । अनित्यत्वेन च स्नेहं क्षुधा योगेन पण्डितः ॥४८॥
 कारण्येनाऽऽत्मानाऽऽत्मानं तूष्णां च परितोषत' । उत्पानेन' जयेत्तन्द्रा' वितर्कं निश्चयाञ्जयेत् ॥४९॥
 मौनेन बहुभाषा च शौर्येण च भयं जयेत् । यच्छेद्वाङ्मनसो बुद्ध्या तां यच्छेज्ज्ञानचक्षुषा ॥५०॥
 ज्ञानमात्मा महान्यच्छेत्तं यच्छेच्छान्तिरात्मनः । तदेतदुपशान्तेन बोद्धव्यं शुचिकर्मणा ॥५१॥
 योगदोषान्तमुच्छिद्य पञ्च गान्धर्वो विदुः । कामं क्रोधं च लोभं च भयं स्वप्नं च पञ्चमम् ॥५२॥
 परित्यज्य निषेवेत यथावद्योगसाधनात् । ध्यानमध्ययनं दानं सत्यं ह्रीराजवंक्षमा ॥५३॥
 शौचमाचारतः शुद्धिरिन्द्रियाणां च संयमः । एतैर्विवर्धते तेजः पाप्मानमुपहन्ति च ॥५४॥
 सिध्यन्ति चास्य संकल्पा विज्ञानं च प्रवर्तते । धूतपापं स तेजस्वी लघ्वाहारो जितेन्द्रियः ॥५५॥
 कामक्रोधौ घ्नते कृत्वा निर्विशदब्रह्मण' पदम् । अमूढत्वमसङ्गित्वं कामक्रोधविवर्जनम् ॥५६॥

मुक्तसे सुनिय ॥४३॥ धीर पुण्य समा से क्रोध को नष्ट करे, सकल त्याग से काम को नष्ट करे और सत्त्व गुण के संसेवन से निद्रा का उच्छेद करे ॥४४॥ सावधानता से भय को जीते और शरीर तथा बुद्धि की रक्षा करे । धैर्य से इच्छा, द्वेष तथा काम को निवृत्त करे ॥४५॥ उत्थवेता स्थित ज्ञान के अभ्यास से निद्रा को जीते और प्रतिभा को बढ़ाये । योगी हितकारक गुण एवम् अल्प भोजन से उपद्रवों को दूर करे ॥४६॥ सतोष से लोभ-मोह का तथा तत्त्वदर्शन से विषयों का त्याग करे । अधर्म को निन्दा से तथा धर्म को उपेक्षा से जीते ॥४७॥ उत्तरकाल से आशा को तथा सगत्याग से सामर्थ्य को जीते । अनित्यत्व से स्नेह को तथा योग से भूल को जीते ॥४८॥ कारण से आत्मा को तथा सतोष से तूष्णा को जीते । उत्पान से तन्द्रा को तथा निश्चय से विनर्क को जीते ॥४९॥ मौन से बहुत बोलने को तथा धीरता से भय को जीते । बुद्धि से वाणी तथा मन को समझे । ज्ञानचक्षु से बुद्धि को समझे, ज्ञान को महान् आत्मा समझे, उसको आत्मा की शान्ति समझे और उसको शान्त एव पवित्र नर्म के द्वारा समझना चाहिये ॥५०-५१॥ विद्वानो ने काम, क्रोध, लोभ, भय, स्वप्न रूप विन पाँच पाप-दोषों का बतलाया है, उनका उच्छेद करे ॥५२॥ योगसाधन द्वारा दोषों का परित्याग करने आत्मस्थित होना चाहिये । ध्यान, अध्ययन, दान, सत्य, छज्जा, श्रज्जला, क्षमा, शौच, आचार तथा इन्द्रिया का संयम—इनसे तेज बढ़ता है और पाप नष्ट होता है ॥५३-५४॥ योगी के समस्त सकल सिद्ध होते हैं और विज्ञान बढ़ता है । निष्पाप, तेजस्वी, लघ्वाहारी तथा जितेन्द्रिय होकर काम-क्रोध को वञ्च में करके ब्रह्म पद को प्राप्त करता

अदंग्यमनुदीर्णत्वमनुद्वेगो ह्यवस्थितिः । एष मार्गो हि मोक्षस्य प्रसन्नो विमलः शुचिः ॥
तथा वाक्कायमनसा नियमाः कामतोऽव्ययाः ॥५७॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे सांख्ययोगनिरूपणं नाम
अष्टाविंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२३८॥

अथैकोनचत्वारिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः

योगविधिनिरूपणम्

मुनय ऊचुः

सांख्यं योगस्य नो विप्र विशेषं वक्तुमर्हसि । तव धर्मज्ञ सर्वं हि विदितं मुनिसत्तम ॥१॥

व्यास उवाच

सांख्या. सांख्यं प्रशंसन्ति 'योगान्योपबिदुस्तमाः । वदन्ति कारणः श्रेष्ठः स्वपक्षोद्भवनाय वै ॥२॥
अनौप्यरः कथं मुख्येदित्येव मुनिसत्तमा । वदन्ति कारणः श्रेष्ठ योगं सम्पदमनीयिणः ॥३॥
वदन्ति कारणं वेद सांख्यं सम्पद्विज्ञातय । विज्ञायेह गतो सर्वा विरक्तो विप्रयेयु यः ॥४॥

जाहिये । अमूर्खता, असंगित्व, काम-त्रोधन-याग, अदंग्य, अनुद्वेग, वाणी, शरीर तथा मन वा समय—ये मोक्ष के निर्मल मार्ग बतलाये गये हैं ॥५५-५७॥

श्रीब्रह्महृदपुराण मे सांख्य-योग निरूपण नामक दो सौ अठ्ठीसवी अध्याय समाप्त ॥२३८॥

अध्याय २३६

योगविधि का निरूपण

मुनियों ने कहा—विप्र । सांख्य और योग की विशेषता हम बतलाइये । धर्मज्ञ । मुनिश्रेष्ठ । आ-
सब कुछ जानते हैं ॥१॥

व्यास बोले—सांख्यवेत्ता सांख्य की प्रशंसा करते हैं और यागवेत्ता याग की । दोनों अपने-अपन पक्ष की पुष्टि के लिये उत्तम प्रमाण भी बतलाते हैं । मुनिश्रेष्ठो । ईश्वर की न मानने वाला व्यक्ति कैसे मुक्त होगा यह कह कर मनीषी लोग योग को श्रेष्ठ बतलाते हैं । परन्तु सांख्यवेत्ता द्विजाति वेद की कारण बतलाकर सांख्य

ऊर्ध्वं स देहात्सुष्यवतं विमुच्येदिति नान्यथा । एतद्गृहमहाप्रज्ञाः सांख्यं च मोक्षदर्शनम् ॥५॥
 स्वपक्षे कारणं ग्राह्य समर्थं वचनं हितम् । शिष्टानां हि मतं ग्राह्यं भवद्भिः शिष्टसंमतं ॥६॥
 'प्रत्यक्षं हेतवो योगाः सांख्यः शास्त्रविनिश्चयाः । उभे चैते मते तत्त्वे समवेते द्विजोत्तमा ॥७॥
 उभे चैते मते ज्ञाते मुनीन्द्रा' शिष्टसमते । अनुष्ठिते यथाशास्त्रं नयेतां परमां गतिम् ॥८॥
 तुल्यं शौचं तयोर्युक्तं दया भूतेषु चानघा ॥ वतानां धारणं तुल्यं दर्शनं त्वसमं तपो ॥९॥

मुनय ऊचुः

यदि तुल्यं श्रुतं शौचं दया चात्र महामुने । तुल्यं तद्दर्शनं कस्मात्तन्नो ब्रूहि द्विजोत्तम ॥१०॥

व्यास उवाच

रागं मोहं तथा स्नेहं कामं श्लेष च केवलम् । योगास्त्यरोदितान्दोषाम्पञ्चताम्राप्नुवन्ति तान् ॥११॥
 यथा वाग्निमिथाः स्थूल जाल छित्वा पुनर्जलम् । प्राप्नुवन्ति तथा योगात्तत्पदं बीतकल्मषाः ॥१२॥
 तथैव वागुरां छित्वा बलवन्तो यथा मृदाः । प्राप्नुयुर्विमलं मार्गं विमुक्ताः सर्वबन्धनैः ॥१३॥
 लोभजानि तथा विप्रा द्यधनानि बलान्वित । छित्वा योगात्परं मार्गं गच्छन्ति विमलं शुभम् ॥१४॥
 'अबलास्तवाविज्ञा विप्रा वागुरासु तथाऽऽपरे । विनश्यन्ति न संदेहस्तद्भोगबलादृते ॥१५॥

को ही श्रेष्ठ कहते हैं । समस्त क्रियाओं को जानकर जो मनुष्य विषयो से विरक्त होता है वही मुक्त होता है । महाप्रज्ञा ने इस सांख्य को मोक्षदर्शन बतलाया है । अपने पद को सिद्ध करने के लिये वेदवचन तथा शिष्टा का मत ग्रहण करना चाहिये । योग का प्रत्यक्ष प्रमाण है और सांख्य का शास्त्र प्रमाण है । मुनिश्रेष्ठो ! दोनों के शिष्टसंमत मत ज्ञात होने पर और शास्त्रानुसार उनको अनुष्ठान करने पर परम गति की प्राप्ति होती है । दोनों में शौच, दया, तथा वतों का धारण तुल्य है, परन्तु दर्शन एक जैसा नहीं है ॥२-९॥

मुनियों ने कहा—महामुने ! यदि दोनों में व्रत, शौच और दया तुल्य है तो दर्शन क्या नहीं तुल्य है ? द्विजश्रेष्ठ ! यह हमें बतलाइये ॥१०॥

व्यास बोले—मनुष्य योग में बाधा डालने वाले राग, मोह, स्नेह, काम तथा श्लेष रूपी पाँच दोषों का प्राप्त करता है ॥११॥ जैसे मत्स्य स्थूल जाल को छेदकर पुनः जल में बल जाता है वैसे मनुष्य योग में निष्ठाप होकर साधवत पद को प्राप्त कर लेते हैं ॥१२॥ जैसे बलवान् मृग जाल को तोड़कर निवृत्त होते हैं वैसे योगी समस्त बन्धा का मुक्त होकर विमल मार्ग को प्राप्त कर लेते हैं ॥१३॥ विप्रबुद्ध ! बलान्वित योगी लामबन्ध बन्धनों का ताड़कर निर्मल तथा शुभ मार्ग को प्राप्त करते हैं ॥१४॥ योगबल के बिना मनुष्य ज्ञान में अबल तथा व्याकुल होकर विनष्ट हो जाते हैं, इसमें संदेह नहीं ॥१५॥ बलहीन ब्राह्मण जाल में फँसते हैं । परन्तु निष्ठाप

बलहीनाश्च विप्रेन्द्रा यथा जालं गता द्विजाः। दन्धं न गच्छन्त्यनघायोगास्ते तु सुदुर्लभाः॥१६॥
यथा च शकुनाः सूक्ष्मं प्राप्य जालमरिन्दमाः। तत्राश्रयता विपद्यन्ते मुच्यन्ते तु बलान्विताः॥१७॥
कर्मजंबन्धनैर्वद्धास्तद्वद्योगपरा द्विजाः। अवला न विमुच्यन्ते मुच्यन्ते च बलान्विताः॥१८॥
अल्पकश्च यथा विप्रा वल्लिः शाम्पति 'दुर्बलः। आक्रान्त इन्धनैः स्थूलैस्तद्वद्योगबल. स्मृतः॥१९॥
स एव च तदा विप्रा वल्लिर्जातबलः पुनः। समीरणगतः कृत्स्नां दहेत्तिप्रं महोमिमाम्॥२०॥
'तत्त्वज्ञानबलो योगी दीप्ततेजः महाबलः। अन्तकाल इवाऽऽदित्यः कृत्स्नं संशोपयेज्जगत्॥२१॥
दुर्बलश्च यथा विप्राः श्रोतसा ह्लियते नरः। बलहीनस्तथा योगी 'विपर्यह्लियते च सः॥२२॥
तदेव तु यथा श्रोतो विष्कम्भयति वारणः। तद्वद्योगबलं लब्ध्वा न भवेद्विपर्यहृतः॥२३॥
विशन्ति वा 'धरादाऽय योगाद्योगबलान्विताः। प्रजापतीन्मनुःसर्वान्महामूर्तानि चेश्वराः॥२४॥
न यमो नान्तकः 'क्रुद्धो न मृत्युर्भोमविक्रमः'। विशन्ते तद्विजाः सर्वे योगस्यामिततेजसः॥२५॥
'आत्मना च सहस्राणि बहूनि द्विजसत्तमाः। योगं कुर्याद्वलं प्राप्य तंश्च सर्वमर्हो चरेत्॥२६॥
प्राणुपाद्विषयान्कश्चित्पुनश्चोप्रां तपश्चरेत्। सक्षिप्येच्च पुनर्विप्राः सूर्यस्तेजोगुणानिव॥२७॥
बलस्यस्य हि योगस्य बलाय' मुनिसत्तमाः। विमोक्षप्रभव विष्णुमुपपन्नमसत्तमम्॥२८॥
बलानि योगप्रोक्तानि मयैतानि द्विजोत्तमाः। निदर्शनार्थं सूदमाणि यक्षयामि च पुनर्द्विजाः॥२९॥

योगी बन्धन से नहीं पड़ते ॥१६॥ जैसे पक्षी सूक्ष्म जाल से फँसकर अशक्त होने के कारण विपत्ति में पड़ जाता है वैसे निर्बल मनुष्य भी बड़ हो जाता है। परन्तु बलवान् व्यक्ति मुक्त हो जाता है ॥१७॥ द्विजगण ! कर्मजन्म बन्धना से बड़ होकर बलहीन मनुष्य मुक्त नहीं होता है। परन्तु बलवान् व्यक्ति मुक्त हो जाता है ॥१८॥ विप्रबन्ध ! जैसे अल्प तथा दुर्बल अग्नि स्थूल इन्धन से आक्रान्त होने पर बुझ जाता है वैसे निर्बल योगी भी नष्ट हो जाता है ॥१९॥ पुन जैसे वही बलप्राप्त अग्नि बाघ की सहस्रतया से शीघ्र ही सम्पूर्ण पृथ्वी को जला देने की क्षमता रखता है वैसे तत्त्वज्ञाता, तेजस्वी तथा महाबली योगी प्रलम्बकालीन सूर्य की तरह निखिल जगत् को सुखा डालने की क्षमता रखते हैं ॥२०-२१॥ जैसे दुर्बल मनुष्य घारा में बह जाता है वैसे बलहीन योगी विषयों में धूँस जाता है ॥२२॥ जैसे सखी घारा की हाथी सहज में पार कर जाता है उसी तरह योगबल प्राप्त मनुष्य विषयों को आसानी से पार कर जाता है ॥२३॥ योगबल से मनुष्य ऐश्वर्य प्राप्त कर प्रजापति, मनु तथा महामूर्तों में प्रवेश करते हैं। द्विजगण ! अभित तेजस्वी योगी का क्रुद्ध यम, काल तथा मृत्यु भी कुछ नहीं बिगाड़ सकते ॥२४-२५॥ द्विजश्रेष्ठो ! सहस्रो जन्मों के बाद योगाभ्यास करने बल प्राप्त कर मनुष्य सम्पूर्ण पृथ्वी पर चरते ॥२६॥ कोई योगी विषयों में फँस जाय तो वह पुन उसस्या करव सूर्य की तरह तेज का विचरण करता है ॥२७॥ कोई योगी विषयों में फँस जाय तो वह पुन उसस्या करव सूर्य की तरह तेज का आधान करे ॥२८॥ मुनिश्रेष्ठो ! योगबल प्राप्त करने के लिये मोक्ष के कारण विष्णु की शरण में जाना चाहिये ॥२९॥ द्विजश्रेष्ठो ! योग-प्रतिपादित ऐश्वर्यों के बारे में मैंने इतना कहा, अब योग के सूक्ष्म रहस्य को

आत्मनश्च समाधाने धारणां प्रति वा द्विजाः । निदर्शनानि सूक्ष्माणि शृणुध्वं मुनिसत्तमाः ॥३०॥
 अप्रमत्तो यथा धन्वी लक्ष्यं हन्ति समाहितः । युक्तः सम्यक्तया योगी मोक्षं प्राप्नोत्यसंशयम् ॥३१॥
 स्नेहपात्रे यथा पूर्णं मन आधाय निश्चलम् । पुरुषो युक्तः आरोहेत्सोपानं युक्तमानसः ॥३२॥
 मुक्तस्तथाऽयमात्मानं योगं तद्वत्सुनिश्चलम् । करोत्यमलमात्मानं भास्करोपमदर्शने ॥३३॥
 यथा च नावं विप्रेन्द्राः कर्णधारः समाहितः । महर्णवगता शीघ्रं नयेद्विप्रास्तु पत्तनम् ॥३४॥
 तद्वदात्मसमाधानं युक्तो योगेन योगवित् । दुर्गमं स्थानमाप्नोति हित्वा देहमिमं द्विजाः ॥३५॥
 सारथिश्च यथा युक्तः सदश्वान्सुसमाहितः । देशमिष्टं नयत्याशु धन्विनं पुरुषर्षभम् ॥३६॥
 तथैव च द्विजा योगी धारणासु समाहितः । प्राप्नोत्याशु परं स्थानं लक्ष्यमुक्त इवाऽऽशुगः ॥३७॥
 आविश्याऽऽत्मनि चाऽऽत्मानोऽवतिष्ठति सोऽचलः । पाशं वहत्वे मोनानां पदमाप्नोति सोऽजरम् ॥३८॥
 नान्याः शोयं च कुक्षौ च हृदि वसति पादयोः । दर्शने श्रवणे वाऽपि घ्राणे चामितविक्रमः ॥३९॥
 स्थानेष्वेतेषु यो योगी महाव्रतसमाहितः । आत्मना सूक्ष्ममात्मानं युङ्क्ते सम्यग्द्विजोत्तमाः ॥४०॥
 सुशीघ्रमचलप्रस्थं कर्म दग्ध्वा शुभाशुभम् । उत्तमं योगमास्थाय यदीच्छति विमुच्यते ॥४१॥

मुनय ऊचुः

आहारान्कीदृशान्कृत्वा कानि जित्वा च सत्तम । योगी बलमवाप्नोति तद्भूयान्वक्तुमर्हति ॥४२॥

मुनिये ॥३९॥ आत्मा की समाधि तथा धारणा के प्रति सूक्ष्म विचारों को सुनिये ॥३०॥ जैसे सावधान अनुयायी अपने लक्ष्य को बेश कर देता है उसी तरह सम्यक् योगाभ्यास करने वाला योगी नि सन्देह मोक्ष को प्राप्त करता है ॥३१॥ जैसे तैलपात्र को लेकर सीढ़ी पर चढ़ते समय मन को निश्चल रखना पड़ता है उसी तरह मनुष्य मन को सावधान करने योगाभ्यास करे ॥३२॥ इस प्रकार योगाभ्यास से मन को निश्चल करके मुक्त होकर मनुष्य सूर्य की तरह अमल आत्मा का दर्शन करता है ॥३३॥ जैसे सवधान नाविक महासमुद्र में पड़ी नाव को शीघ्र नियतस्थान पर ले जाता है उसी तरह योगी पुरुष अल्प-समाधान करने देहत्याग के बाद दुर्गम स्थान को प्राप्त करते हैं ॥३४-३५॥ जैसे पूर्ण सावधान सारथि अच्छे घोड़ों को शीघ्र अमिमत स्थान पर ले जाते हैं और उत्तम तीर चलाने वाले के हाथ से मुक्त तीर लक्ष्य पर पहुँच जाता है उसी प्रकार धारणाओं से समाहित योगी परम पद को प्राप्त करते हैं ॥३६-३७॥ जो आत्मा में आत्मा को प्रसिद्ध करके निश्चल हो जाता है वह जाल पाँडवर मछली की तरह अपने स्थान को प्राप्त कर लेता है ॥३८॥ नाभि, मस्तक, कुक्षि, हृदय, पाद, नेत्र, कान, तथा नाक—इन स्थानों में महाव्रतधारी, अमिमतेश्वरी योगी अच्छी तरह आत्ममन सयोग करने अत्यन्त चञ्चल शुभाशुभ कर्मों को दग्ध कर उत्तम योग में स्थित हो इच्छानुसार विमुक्त हो जाता है ॥३९-४१॥

मुनियों ने कहा—योगी को बलप्राप्ति के लिये जिस तरह का भोजन करना चाहिये और जिस तरह का नहीं करना चाहिये, यह हम बतलादिये ॥४२॥

१म मुक्त । २म य युक्तेन । ३क. ०णाया स० । ४क स ०व । अवेद्याऽऽत्म० । ५म नाह्या । ६म प्राणे । ७क योगस्य फलमाप्नो० ।

॥ व्यास उवाच ॥

कणानां भक्षणं युक्तं पिण्याकस्य च भो द्विजा । स्नेहानां वर्जने युक्तो योगी बलमवाप्नुयात् ॥४३॥
 भुञ्जानो यावत् रुक्षं दोषकालं द्विजोत्तमा । एकाहारे विशुद्धात्मा योगी बलमवाप्नुयात् ॥४४॥
 पशान्मासान्तुल्यश्चित्रान्सवरश्च गृहास्तथा । अपि पोत्वा पयोमिश्रा योगी बलमवाप्नुयात् ॥४५॥
 अवगुडमपि वा मासं सततं मुनिसत्तमा । उपोष्य सम्पक्वशुद्धात्मा योगी बलमवाप्नुयात् ॥४६॥
 कामं जित्वा तथा क्रोधं शीतोष्णं वयमेव च । भयं शोकं तथा स्वापं पोरुषान्विषयास्तथा ॥४७॥
 अरतिं दुर्जया चैव घोरं दृष्ट्वा च भो द्विजा । 'स्पर्शं निद्रां तथा' तन्नां दुर्जया मुनिसत्तमा ॥४८॥
 'दोषयन्ति' महात्मानं सूक्ष्ममात्मानमात्मना । वीतरागा महाप्राज्ञा ध्यानाभ्ययनसपदा ॥४९॥
 दुर्गस्तवेप मत्तं पन्था ब्राह्मणानां विपरिचिताम् । यः कश्चिद्व्रजति क्षिप्रं क्षेमेण मुनिपुंगवा ॥५०॥
 यथा कश्चिद्वनं घोरं बहुसंपत्तरोत्सुपम् । श्वश्रवत्तोषहीनं च दुर्गं बहुकण्टकम् ॥५१॥
 भवतमद्वयोप्रायं शब्ददग्धमहोरुहम् । पन्थानं तत्करावोणं क्षेमेणाभिपतते तथा ॥५२॥
 योगमार्गं समासाद्य यः कश्चिद्व्रजते द्विज । 'क्षेमेणोपरमं न मार्गाद्बहुदोषोऽपि' समत ॥५३॥

॥ व्यास बोले—पिण्याव (हँस या कहर) तथा कणों (चावल आदि के महीन टुकड़ा) के भक्षण और स्निग्ध पदार्थों के वर्जन से योगी को बल प्राप्त होती है ॥४३॥ चिरकाल तक रुक्ष भव का भक्षण करने से और एक ही बार भोजन करने से विशुद्धात्मा योगी बल प्राप्त करता है ॥४४॥ पशु, मांस, ऋतुआ तथा अपूर्ण तक गुलाब का मांस करने से और दूध मिश्रित जल पीने से योगी बल प्राप्त करता है ॥४५॥ मुनिपण्डित ! महीना तक अलण्ड उपवास कर शुद्धात्मा योगी बल प्राप्त करता है ॥४६॥ काम क्रोध, सर्प, गर्मी, भय, शोक, रुग्ण, पुरुष सम्बन्धी विषय, दुर्जय एवं भयकर चित्तुष्णा स्पष्ट निद्रा तन्ना को जीतकर वीतराग महाप्राज्ञा पुरुष ध्यान और अभ्ययन के बल से सूक्ष्म आत्मा का दशन करते हैं ॥४७-४९॥ मुनिपुंगव ! विद्वान् ब्राह्मणा का यह मार्ग अत्यंत कठिन है । जो कोई कुशलता से इस मार्ग को पार कर जाता है, वह धन्य है ॥५०॥ जैसे भयकर, अनेक स्रष्टा ऐसा हिंसक जीवा से व्याप्त, जरहीन, दुर्गम, कण्टकाकीर्ण, शार्पादि से दग्ध वृक्षा से युक्त तथा घोर से बानान्त वन का मार्ग चलना कठिन है उसी तरह योगमार्ग पर भी चलना दुस्तर है । जो कोई द्विज योगमार्ग पर आसक्त होकर चल पड़ता है, उसे वही कुशलता से उस मार्ग को तय करना चाहिए, क्योंकि वह मार्ग बहुत दोष से युक्त होने पर भी न्यायप्रद है ॥५१-५३॥ तीव्रण दूर दूर पर उड़रता जैसे दुःसाध्य है वैसे योग की

१ख द्वाषा। २ख भय। ३क ०न्ति तथोऽस्मा०। ४क छ ०संप्रुता। ५ दु० १५ख ०गदिदो०।
 ६क ०दुष्यो हि स०।

- [आस्थेय] क्षुरधारासु निशितासु द्विजोत्तमा । धारणा सा तु योगस्य दुर्गममकृतात्मभि ॥५४॥
 विपमा धारणा विप्रा यान्ति वै न शुभां गतिम् । नेतृहीना यथा नाव पुरुषाणा तु वै द्विजा ॥५५॥
 यस्तु तिष्ठति 'योगायौ' धारणासु यथाविधि । 'मरण' जन्मदुःखित्व सुखित्व स विशिष्यते ॥५६॥
 [म] नानाशास्त्रेषु नियतं नानामुनिनिषेधितम् । पर योगस्य पन्थानं निश्चितं त द्विजातिषु ॥५७॥
 । पर हि 'तद्ब्रह्ममयं मुनीन्द्रा, ब्रह्माणमेश वरद' च विष्णुम् ।
 [५] भव च धर्म च महानुभाव', यद्ब्रह्मपुत्रान्तु महानुभावान् ॥५८॥
 । तमश्च कष्टं सुमहद्वज्रश्च, सत्यं च शुद्धं प्रकृतिं परां च ।
 । सिद्धिं च देवीं वरुणस्य पत्नीं, तेजश्च कृत्स्नं सुमहच्च धैर्यम् ॥५९॥
 । ताराधिपं खे विमलं सुतारं, विदवाश्च देवानुरगाम्पितुश्च ।
 । शैलाश्च कृत्स्नानुदधीश्च चाञ्चलाभ्रदोश्च सर्वाः सनगाश्च नागाश्च ॥६०॥
 । साध्यास्तथा यक्षगणान्दिशश्च, गन्धर्वसिद्धान्पुरुषान्स्त्रियश्च ।
 । परस्परं प्राप्य महान्महात्मा विशते योगो नचिराद्विमुक्तः ॥६१॥
 । कथा च या विप्रवरा प्रसवता, दैवे महावीर्यमती शुभयम् ।
 । योगान्सर्वाननुभूय' मर्त्याः नारायणं त इत्तमानुव्रन्ति ॥६२॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे व्यासपितृवादे योगविधिनिर्णयन

नाम एकोनचत्वारिंशदधिकद्विशततमोऽध्याय ॥२३९॥

धारणा भी अवस्थात्मिका स कठिन है ॥५४॥ विप्रवृन्द ! धारणा में विवमता आने से नाविक विहीन नौका की तरह पुरुषा की शुभ गति नहीं होती है ॥५५॥ जा विपानपूबक धारणा में स्थित होता है वह जन्म-मरण रूप दुःख से मुक्त होकर सुखी हो जाता है ॥५६॥ योग का मार्ग नाना शास्त्रों में निर्णीत अनेक मुनियों द्वारा सुसहित तथा द्विजातियों के लिए सुनिश्चित है ॥५७॥ मुनिवर ! परब्रह्म, ब्रह्मा, देव, ब्रह्मायक विष्णु धर्म, महानुभाव ब्रह्मपुत्र, तम, कष्ट, रज, सत्य, शुद्ध, पराप्रकृति, सिद्धि, वरुण-पत्नी तेज, धैर्य, चन्द्रमा, सूर्य विश्वदेव, देव, सप्त, पितर, पवत, समुद्र, नदी, नाग, साध्व्य, यक्षगण, दिता, गन्धर्व, सिद्ध, पुरुष तथा स्त्रियाँ को परस्पर प्राप्त कर महात्मा योगी धीमत् मुक्त हो जाते हैं । विप्रश्रेष्ठो ! महाकामिगाली दैव के सम्बन्ध में जा कथा प्राप्त है, वह शुभ है । अनुप्य समस्त योगी का अनुभव करने धीमत् नारायण को प्राप्त करते हैं ॥५८-६२॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में व्यास और ऋषियाँ व सवाद प्रकरण में योगविधिनिर्णयन

नामक दो छोटी जनतालीधर्वा अध्याय समाप्त ॥२३९॥

१क ०गान् वै पा० । २क ०रणा तु य० । ३क ०न दुश्चिचित्तस्य च मु० । ४व सा ०पु निष्पन्न योगैर्धैवेमुदाहृतम् । ५ख ०त तद्द्विजा० । ६ख हित ब्रह्म० । ७क ०द करिष्ठम् । ८ग महानर । ९क सुभाव । १०ग ०नसिम्बु० ।

अथ चत्वारिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः

सांख्यविधिनिरूपणम्

मुनय ऊचुः

सम्यक्क्रियेयं विप्रेन्द्र वर्णिता शिष्टसंमता । योगमार्गो यवान्यायं शिष्यायेह हितयिषा ॥१॥
'सांख्ये त्विदानीं धर्मस्य विधिं प्रब्रूहि तत्त्वतः । त्रिषु लोकेषु यज्ज्ञानं सर्वं तद्विवर्तितं' हि ते ॥२॥

व्यास उवाच

शृणुष्वं मुनयः 'सर्वमाख्यानं विदितात्मनाम् । विहितं 'मतिभिर्वृद्धैः कपिलादिभिरोश्वरैः ॥३॥
यस्मिन्सुविग्रमाः केचिद्दृश्यन्ते मुनिसतमाः । गुणाश्च यस्मिन्बहवो दोषहानिश्च केवला ॥४॥
ज्ञानेन परिसंख्याय सदीयान्विषयान्द्विजाः । मानुषान्दुर्जयान्कृत्स्नान्यैशाचान्विषयांस्तया ॥५॥
विषयानौरगाञ्जात्वा गन्धर्वविषयांस्तया । पितृणां विषयाञ्जात्वा तिर्यक्त्वं चरतां द्विजाः ॥६॥
सुपर्णविषयाञ्जात्वा मरुतां विषयांस्तया । मर्हपविषयांश्चैव राजपविषयांस्तया ॥७॥
असुरान्विषयाञ्जात्वा वैश्वदेवांस्तयैव च । देवपविषयाञ्जात्वा 'योगानामपि वै परान् ॥८॥
विषयांश्च प्रमाणस्य ब्रह्मणो विषयांस्तया । आयुषश्च परं कालं लोकांश्चैव तत्त्वतः ॥९॥

अध्याय २४०

सांख्यविधि का निरूपण

मुनियों ने कहा—विप्रेन्द्र ! आपने शिष्ट-समत किया का सम्यक् वर्णन किया । जैसे हितचिन्तक गुरु शिष्य को उपदेश देते हैं उसी तरह आपने हमें योगमार्ग का यथोचित उपदेश दिया । अब सांख्यदर्शन के अनुसार तत्त्वतः धर्म की विधि बतलाइये । तीनों लोक में जो ज्ञान है, वह सब आपको विदित है ॥१-२॥

व्यास बोले—मुनिवृन्द ! ज्ञानियों के समस्त आख्यान को आप लोग सुनें, जिसका विधान वृद्ध कपिल आदि यतियों ने किया है, जिसमें कितने ही लोग विभ्रान्त हो जाते हैं और जिसमें गुण बहुत-से हैं तथा दोषों की हानि बताई गई है ॥३-४॥ द्विजगण ! ज्ञान के द्वारा दोषयुक्त विषयों को समझना चाहिये । मनुष्य सबन्धी तथा पिशाच सबन्धी सकल दुर्जय विषयों का ज्ञान करना चाहिये ॥५॥ सर्प के विषय, गन्धर्वों के विषय, पितरों के विषय, तिर्यग्योनि में प्राप्त जीवों के विषय, मरुदेविषय, वामुविषय, मर्हपविषय, राजपविषय, असुर-विषय, विश्वेदेवों के विषय, देवियों के विषय, योवों के विषय, प्रमाण के विषय, ब्रह्म के विषय तथा आयु से परे काल को तत्त्वतः समझना चाहिये ॥६-९॥ मुनिश्रेष्ठो ! सुख के उत्तरकाल को समझना चाहिये । विषया-

सुखस्य च परं कालं विज्ञाय मुनिसत्तमाः। प्राप्तकाले च यददुःखं पततां विपर्ययिणाम्॥१०॥
 तिर्यक्त्वे पततां विप्रास्तथैव नरकेषु यत्। स्वर्गस्य च गुणाञ्ज्ञात्वा दोषान्सर्वाश्च भो द्विजाः॥११॥
 वेदवादे च ये दोषा गुणा ये चापि वैदिकाः। ज्ञानयोगे च ये दोषा 'ज्ञानयोगे' च ये गुणाः॥१२॥
 सांख्यज्ञाने च ये दोषास्तथैव च गुणा द्विजाः। सत्त्वं दशगुणं ज्ञात्वा रजो नवगुणं तथा॥१३॥
 तमश्चाष्टगुणं ज्ञात्वा बुद्धिं सप्तगुणां तथा। षड्गुणं च नभो ज्ञात्वा तमश्च त्रिगुणं महत्॥१४॥
 द्विगुणं च रजो ज्ञात्वा सत्त्वं चैकगुणं पुनः। मार्गं विज्ञाय तत्त्वेन 'प्रलयप्रेक्षण'ेन तु॥१५॥
 ज्ञानविज्ञानसंपन्नाः कारणभावितात्मभिः। प्राप्नुवन्ति शुभं मोक्षं सूक्ष्मा इव नभः परम्॥१६॥
 रूपेण दृष्टिं संयुक्ता घ्राणं गन्धगुणेन च। शब्दप्राहृषं तथा श्रोत्रं जिह्वां रसगुणेन च॥१७॥
 स्पर्शं स्पर्शं तथा शक्यं वायुं चैव तदाश्रितम्। मोहं तमसि संयुक्तं लोभं मोहेषु संश्रितम्॥१८॥
 विष्णुं कान्ते बले शक्ते कोष्ठे सक्तं तथाऽनलम्। अप्सु देवीं समायुक्तामापस्तेजसि सश्रिताः॥१९॥
 तेजो वायो तु संयुक्तं वायुं नभसि चाऽश्रितम्। नभो महति 'संयुक्तं' तमो महसि सस्यितम्॥२०॥
 रजः सत्त्वं तथा सक्तं सत्त्वं सक्तं तथाऽऽत्मनि। सक्तमात्मानमोक्षे च देवे नारायणे तथा॥२१॥
 देवं मोक्षे च संयुक्तं ततो मोक्षं च न वदित्। ज्ञात्वा सत्त्वगुणं देहं घृतं पोटशभिर्गुणैः॥२२॥

मिलायी जीव के वर्तमानकालीन दुःख, तिर्यग्योनि में प्राप्त होते हुए जीवों के दुःख तथा नरकों के दुःख को समझना चाहिये॥१०॥ द्विगुण। स्वर्ग के समस्त गुण तथा दोषों को समझना चाहिये। वैदिक गुण-दोष, ज्ञानयोग के गुण-दोष तथा सांख्यज्ञान के गुण-दोषों को समझना चाहिये॥११॥ सत्त्वं के दश गुण, रज के नौ गुण, तम के आठ गुण, बुद्धि के सात गुण, आकाश के छह गुण, और पुनः तम के तीन गुण रज के दो गुण तथा सत्त्वं के एक गुण को समझना चाहिए। प्रलय-दर्शनपूर्वक तत्त्वतः मार्ग को जानकर ज्ञान विज्ञान-सम्पन्न मनुष्य अन्तःकरण को पवित्र करने वाले कारणों के द्वारा पवित्र मोक्ष को उसी तरह प्राप्त कर लेते हैं जैसे सूक्ष्म यस्तु आकाश को॥१२-१६॥ रूप से संयुक्त दृष्टि को, गन्धगुण से युक्त श्रुति को, शब्दप्राहृष कर्ण को, रस-गुण से युक्त जिह्वा को, स्पर्शयुक्त स्पर्श को, तदाश्रित वायु को, तमोयुक्त मोह को, मोहयुक्त लोभ को, प्रकान्त बल में विष्णु को, कोष्ठ में इन्द्र तथा अग्नि को, जल में देवी को, तेज से युक्त जल को, वायु में संयुक्त तेज को, आकाश के आश्रित वायु को, महत्त्व से जुड़े हुए आकाश को, तेज में स्थित तम को, रज में आश्रित सत्त्वं को तथा आत्मा में आश्रित सत्त्वं को, ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव में आश्रित आत्मा को और मोक्ष से संयुक्त देव को समझना चाहिए। मोक्ष को किसी में भी आश्रित नहीं समझना चाहिए॥१७-२१॥ सोलह गुणा से भिदे हुए सत्त्वगुण-सम्पन्न शरीर को तथा स्वभाव एव देहाश्रित भावना को जानकर मध्यस्थ की तरह आत्मा को समझना

स्वभावं भावनां चैव ज्ञात्वा देहसमाश्रिताम् । मध्यस्थमिव चाऽऽत्मानं पापं यस्मिन्न विद्यत ॥२३॥
 द्वितीयं कर्म यं ज्ञात्वा विप्रेन्द्रा विपर्ययिष्याम् । इन्द्रियाणीन्द्रियायांश्च सर्वानात्मनि संश्रितान् ॥२४॥
 दुर्लभत्वं च मोक्षस्य विज्ञाय श्रुतिपूर्वकम् । प्राणापानौ समानं च ध्यानोदानौ च तत्त्वतः ॥२५॥
 आर्यं चैवानिलं ज्ञात्वा प्रभव चानिलं पुनः । सप्तधा तांस्तथा शेषान्सप्तधा विधिवत्पुनः ॥२६॥
 प्रजापतीन्परीक्षेच्चैव सर्गाश्च सुबहून्वरान् । सप्तरींश्च बहूञ्ज्ञात्वा राजर्षींश्च परंतपान् ॥२७॥
 सूर्योन्मत्तश्चान्यान्ब्रह्मर्षीन्सूर्यसंनिभान् । ऐश्वर्योन्मत्तश्चावितान्दृष्ट्वा कालेन महता द्विजाः ॥२८॥
 महतां भूतसंधाना श्रुत्वा नाशं च भो द्विजाः । गतिं वाचां शुभां ज्ञात्वा अर्चाहः पापकर्मणाम् ॥२९॥
 वंतरण्यां च यद्दुःखं पतितानां यमक्षये । योगिषु च विचित्रासु संचारानशुभांस्तथा ॥३०॥
 जठरे चाशुभे वातं शोणितोदकभाजने । श्लेष्ममूत्रपुरीषे च तोत्रगन्धसमन्विते ॥३१॥
 शुक्रशोणितसंधाते मज्जास्नायुपरिग्रहे । शिराशतसमाकीर्णं नवद्वारे पुरेऽय वै ॥३२॥
 विज्ञाय हितमात्मानं योगींश्च विविधान्द्विजाः । तामसानां च जन्तूनां रमणीयान्तात्मनान् ॥३३॥
 सार्विकानां च जन्तूनां कुटिसतं मुनिसत्तमाः । गृहितं महतामयं सांख्यानं विदितात्मनान् ॥३४॥
 उपप्लवास्तथा घोरान्शशिनस्तजसस्तथा । साराणां पतनं दृष्ट्वा नक्षत्राणां च पर्ययम् ॥३५॥

चाहिये, जिसमे पाप नहीं है ॥२३-२३॥ द्विजयेष्टो । विपर्यायिष्यामी व्यक्तिषो के द्वितीय कर्म को जानकर इन्द्रिया तथा आत्माश्रित इन्द्रिय-विषयो को समझना चाहिये ॥२४॥ वेदानुसार मोक्ष के दुर्लभत्व को जानकर प्राण, अपान, समान, ध्यान तथा उदान को तत्त्वत जानना चाहिये ॥२५॥ आद्यवायु, कारणवायु और पुन जनबासा वायु को विधिपूर्वक जानकर प्रजापति, ऋषि, सर्व (सृष्टि), सत्त्वयि, राजयि, देवयि, मत्त, सूर्यसदृश ब्रह्मयि तथा ऐश्वर्यव्युत् व्यक्तियों को समझना चाहिये ॥२६-२८॥ द्विजगण । महान् भूतसंधो के नाथ को सुनकर पल्पत्रियों की गति तथा शुभ वाणी को जानना चाहिये । पतित को यममार्ग म वंतरणी मे जो दुःख होता है, उस जानना चाहिय तथा विचित्र योगियों मे जा उनके संचरण एव अमगल होते हैं उन्हें जानना चाहिये ॥२९-३०॥ रक्त तथा जल व पात्र, वष, मूत्र तथा विद्या स युक्त तोत्रगन्धसमन्वित वीर्य, शणित, मज्जा तथा स्नायु स संयुक्त, सैकडा शिराया के समाकीर्ण तथा नवद्वारयुक्त शरीर के अशुभ चर से वास का जानना चाहिये ॥३१॥ आत्मा, हिन, विविध याग, रमणीय एवम् अनुत्तमा तामस जन्तुषो को जानना चाहिय ॥३३॥ सार्विक जन्तुआ के कुटिसत कर्म का तथा विदितत्मा सांख्यका न गृहित कर्म का जानना चाहिये ॥३४॥ घर उपप्लवा, चन्द्रमा के तेज, सारो के पतन, नक्षत्रा के विपर्यय, सुख-दुःख आदि के विप्रयाय तथा कृपण का जानना चाहिये ॥३५॥

१म सतिपतान् । २क स ०व मागश्चैव वस्तुधराम् । स० । ३क स ०मां प्राप्ता पापाश्च क० ।

४स ०सायाहि० ।

'द्विजानां विप्रयोगं च विज्ञाय कृपणं द्विजा । अन्योन्यमक्षणं दृष्ट्वा भूतानामपि चाशुभम् ॥३६॥
 बाल्ये मोहं च विज्ञाय पक्षदेहस्य चाशुभम् । रागं मोहं च संप्राप्तं यच्चित्तस्त्वं समाश्रितम् ॥३७॥
 सहस्रेषु नरं कश्चिन्मोक्षबुद्धिं समाश्रित । दुर्लभत्वं च मोक्षस्य विज्ञानं श्रुतिपूर्वकम् ॥३८॥
 'बहमानमलब्धेषु लब्धे मध्यस्थता पुनः । विषयाणां च दौरात्म्यं विज्ञाय च पुनर्द्विजा ॥३९॥
 गतासूनां च सत्त्वानां देहान्मिच्छां तथा शुभान् । वासं कुलेषु 'जन्तूनां मरणाय धृतात्मनाम् ॥४०॥
 सात्त्विकानां च जन्तूनां दुःखं विज्ञाय भो द्विजा । ब्रह्मणा गतिं ज्ञात्वा पतितानां सुदारुणाम् ॥४१॥
 सुरापाने च सक्तानां ब्राह्मणानां दुरात्मनाम् । गुरुदारप्रसक्तानां गतिं विज्ञाय चाशुभाम् ॥४२॥
 'जननीषु च वर्तन्ते येन सम्पद्भिर्जोत्तमा । 'सदेवकेषु लोकेषु येन वर्तन्ति मानवा ॥४३॥
 तेन ज्ञानेन विज्ञाय गतिं चाशुभकर्मणाम् । तिर्यग्योनिगतानां च विज्ञाय च गतो पुण्यक ॥४४॥
 वेदवादास्तथा' चित्रान्तूनां' पर्ययास्तथा । स्य सवत्सराणां च मासानां च क्षयं तथा ॥४५॥
 पक्षक्षयं तथा दृष्ट्वा दिवसतानां च सक्षयम् । क्षयं वृद्धिं च चन्द्रस्य दृष्ट्वा प्रत्यक्षतस्तथा ॥४६॥
 वृद्धिं दृष्ट्वा समुद्राणां क्षयं तेषां तथा पुनः । क्षयं घनानां दृष्ट्वा च पुनर्बुद्धिं तयैव च ॥४७॥
 सयोगानां तथा दृष्ट्वा युगानां च विशेषतः । देहैर्वलम्बिता' चैव सम्पत्तिविज्ञाय तत्त्वतः ॥४८॥
 आत्मदोषाश्च विज्ञाय सर्वानात्मनि सस्थितान् । स्वदेहादुत्थितान्गन्धास्तथा विज्ञाय चाशुभाम् ॥४९॥

प्राणियों के परस्पर अंगुम मक्षण, बाल्यावस्था के मोह देह के अवल्याण और जीवसमाश्रित राग-मोह को जानना चाहिये ॥३६-३७॥ हजारी मनुष्य में किसी को मोक्षबुद्धि होती है। श्रुतिपूर्वक विज्ञान तथा मोक्ष के दुर्लभत्व को जानना ॥३८॥ अलम्बिता म बहुमान तथा लब्धे मे मध्यस्थता को देखना चाहिये। विषयों के दौरात्म्य को जानना चाहिये ॥३९॥ गतप्राण नरीरिया के पवित्र देहों को छोड़कर मरण के लिए शरीर धारण किये हुए (अन्य) जन्तुओं के कुलों में निवास व तथा सात्त्विक जन्तुओं के दुःख को जानना चाहिये चाहिये ॥४०॥ पतित ब्रह्मपातियों की मदिरापान में आसक्त दुरात्मा ब्राह्मण की और गुरुपत्नीपामियाँ की दारुणगति को जानना चाहिये ॥४१॥ ४२॥ द्विजपण्डितों। मनुष्य जिस ज्ञान से मात आ देवताओं तथा लोका के साथ व्यवहार करते हैं उस ज्ञान से अंगुम यनों की गति को जानना चाहिये ॥४३॥ तिर्यग्योनिया में गये जीवा की पुण्य-पुण्यक गतियों को समझना चाहिये। वेदवादा का, श्रुतिविषयों को वर्ष मास पक्ष तथा दिन के क्षय को, चन्द्रमा के प्रत्यक्ष क्षय तथा वृद्धि को, समुद्र व क्षय तथा वृद्धि को और घन के क्षय एवम् पुनर्बुद्धि को जानना चाहिये। युगों के सयोग को विशेष करके जानना चाहिये। शरीर की विषयता को अच्छी तरह जानना चाहिये। आत्मा में सस्थित दोषों को जानना चाहिये। अपने शरीर से उत्पन्न अंगुम गंधों को जानना चाहिये ॥४४-४९॥

मुनय ऊचुः

कान्त्यातभवान्दोषान्पश्यति ब्रह्मवित्तम् । एतं नः संशयं कृत्स्नं वचतुमर्हस्यशेषतः ॥५०॥

व्यास उवाच

पञ्च दोषान्द्विजा देहे प्रवदन्ति मनीषिणः । मायज्ञाः कपिलाः सांख्याः शृणुष्व मुनिसत्तमाः ॥५१॥
 कामक्रोधो भयं निद्रा पञ्चमः श्वास उच्यते । एते दोषाः शरीरेषु दृश्यन्ते सर्वदेहिनाम् ॥५२॥
 छिन्दन्ति क्षमया शोधं कामं संकल्पवर्जनात् । सत्त्वसंसेवनाग्निद्रामप्रमादाद्भयं तथा ॥५३॥
 छिन्दन्ति पञ्चमं श्वासमत्पाहारतया द्विजः । गुणान्गुणशर्तज्ञात्वा दोषान्दोषशर्तरेपि ॥५४॥
 हेतूहेतुशर्तेश्चरैश्चिन्तान्विज्ञाय तत्त्वतः । अपां फेनोपमं लोकं विष्णोर्मायाशर्तः कृतम् ॥५५॥
 'चित्रभित्तिप्रतीकाशं नलसारमनयकम् । तमःसगमिन् दृष्ट्वा वर्षबुद्बुदसनिभम् ॥५६॥
 नाशप्राप्य सुखाधानं नाशोत्तरमहाभयम् । रजस्तमसि समानं पद्मे द्विपमिवावशम् ॥५७॥
 साक्ष्या विप्रा महाप्राज्ञास्त्यक्त्वा स्नेहं प्रजाकृतम् । ज्ञानज्ञेयं साक्ष्येन व्यापिना महता द्विजाः ॥५८॥
 राजसानुभागाग्न्यास्तामसांश्च तथाविधान् । पुण्याश्च सात्त्विकान्गान्धात्पदंजान्देहसंश्रितान् ॥५९॥
 छित्त्वाऽऽत्मज्ञानशस्त्रेण सपोदण्डेन सत्तमाः । ततो दुःखादिकं घोरं चिन्ताशोकमहाहृदम् ॥६०॥

मुनियों ने कहा—ब्रह्मवेत्ताओं में श्रेष्ठ । आप बिना उत्पत्तिजन्य दास का दखत हैं ? हमारे इस सद्य
 का पूर्ण रूप से समाधान कर दीजिये ॥५०॥

व्यास बोले—मुनिवर ! नागों के जाड़ा, कपिलमत्तानुयायी, साख्यशास्त्र के विद्वान् शरीर में पाँच प्रकार के दोषों को बतलाते हैं ॥५१॥ काम, क्रोध, भय, निद्रा तथा श्वास—ये पाँच दोष समस्त प्राणियों के शरीरों में देखे जाते हैं ॥५२॥ काम से क्रोध का उच्छेद करे, संकल्पत्याग से काम का, सत्त्वसेवन से निद्रा का और अप्रमाद से भय का नाश करे ॥५३॥ द्विजगण ! श्वासाहार से श्वास का उच्छेदन करे । संकड़ा गुणा से गुणों को, संकड़ा दोषों से दोषों को और संकड़ों कारणों से कारणों को छेद करे । विष्णु की संकड़ा मायाओं से रचित लोक को जल के फेन सदृश समझे ॥५४-५५॥ दोषों के चित्र मुख्य साहसीन, अनयक, तिमिरावृत, वर्षा के बुलबुले के समान, मृष्टप्राय, सुखाधान, नाशोत्तर महामय से युक्त, रज तथा तमोगुण से निम्न और पृक्-मण्डल हस्ती की तट्टे विवश सगर का त्याग करना चाहिये ॥५६-५७॥ विप्रवृन्द ! साख्यवेत्ता महापठित ज्ञान से जानन योग्य साध्यदर्शन का बल से सन्तान-सिद्ध का परित्याग करते हैं ॥५८॥ राजस अनुमा को, तामस गन्धा को, सात्त्विक पुण्या को तथा स्पर्शजन्य गन्धा को आत्मज्ञान रूपी शस्त्र से तथा तप रूपी दण्ड से उच्छिन्न कर देना चाहिये ॥५९॥ सदनन्दर महामय रूपी महाहर्ष से युक्त, तम रूपी बल्लभ से समन्वित और रजरूपी मत्स्य से सबलित,

१क. ०ते । पञ्च विध्वंसकर्तारो वर्तन्ते । ख. ०ते । शोषविध्वंसकर्तारो वर्तन्ते । २क. व्योमपर । ३ख. चिन्तामि० । ४ख. सुखासीन । ५क. ख. ०स्यान्विप्रा० । ६क. ख. ०ज्ञानं तानाह प्रजापति । अनेन दोषान्साक्ष्ये० ।

व्याधिमृत्युमहाघोर ॥ महाभयमहोरगम् । तत कूर्म रजोमोन प्रज्ञया सतरन्त्युत ॥६१॥
 स्नेहपङ्क्तु जरावुग्ं, स्पर्शद्वीप द्विजोत्तमा । कर्माग्राध सत्यतीर^१ स्थित व्रतमनीषिण ॥६२॥
 हवसधमहावेग ॥ नानारससमाकुलम् । यानाप्रीतिमहारत्न दुःखज्वरसमीरितम् ॥६३॥
 शोकतृष्णामहावर्त^२ तीक्ष्णव्याधिमहारुजम् ॥ अस्थिसघातसघट्ट श्लेष्मयोग द्विजोत्तमा ॥६४॥
 दानमुवताकर ॥ घोर शोणितोद्गारविद्रुमम् । हस्तितोत्कृष्टनिर्घोष नानाज्ञानसुदुष्करम् ॥६५॥
 रोदनाश्रुमलक्षार^३ सङ्गयोगपरायणम् । प्रलब्धवा जन्मलोको य पुत्रशान्धवपत्तनम् ॥६६॥
 अहिंसासत्यमर्याद^४ प्राणयोगमयोर्मिलम् । वृन्दानुगामिन क्षीर सबभूतपयोदधिम् ॥६७॥
 मोक्षदुर्लभविषय वाडवासुखसागरम् । तरन्ति यतय सिद्धा ज्ञानयोगेन चानघा ॥६८॥
 'तोत्वा च दुस्तर जन्म विशन्ति विमल नभः' । ततस्तान्सुकृतीञ्चात्वा सूर्यो वहति रश्मिभि ॥६९॥
 पद्मतन्तुवदाविदय प्रबहन्विषयान्द्विजा । तत्र तान्प्रवहो वायु प्रतिगृह्णाति चानघा ॥७०॥
 धीतरागान्धतोन्तिद्वान्धोयंयुवतास्तपोधनान् । सूक्ष्म शीत सुगन्धश्च सुखश्च भो द्विजा ॥७१॥
 सप्ताना महता श्वेदो लोकान्गच्छति य शुभान् । सतान्वहति विभ्रेन्द्रा नभस परमा गतिम् ॥७२॥

महाघात, दुःख चित्त, शोक व्याधि तथा मृत्यु रूपी महाहृदय का ज्ञान से धार करे ॥६०॥ ६१॥ स्नेह रूपी कीचड़ वाले, बुद्धता रूपी बुग वाले, स्पर्श रूपी द्वीप वाले, कर्म रूपी अतिगम्भीरता से युक्त, सत्य रूपी तट वाले, हर्षसमूह रूपी महावेग से युक्त, नाना रसा से आकुल, प्रीति रूपी महारत्ना से युक्त, दुःख रूपी ग्वार भाट से युक्त, शोक और तृष्णा रूपी आवर्तों से युक्त, तीक्ष्णव्याधि तथा महारोग भाल, अस्थिसमूह से युक्त, कफ से युक्त, दान रूपी मुवतालोके आकर, भयकर, शोणित रूपी मृगो से युक्त, हास्य रूपी शब्दा से युक्त, अनन्त प्रकार के अज्ञाना से दुलभ, रोदन के अश्रुमल से सार, सग-योग में निरत, पुत्र भार वायु रूप नगर धारि (?) अहिंसा तथा सत्यरूपा अमर्यादा (सीमा) से युक्त, प्राण-योगमय तरंग से युक्त समूह के अनुगामी, क्षीर लक्ष प्राणी रूप दूध या जल के समुद्र, महान् रूपी दुलभ पदार्थ से युक्त और सुख रूपी अद्वयमल से युक्त सद्यार रूपी सागर को छिन्न एव निष्ठाप सत्यासी ज्ञानयोग से धार करते हैं ॥६२॥ ६३॥ दुस्तर जन्म वा सतरण करने सिद्धपुरुष निर्मल आवास में प्रवेश करते हैं । द्विजगण ! तब सुख उन्हे पुण्यात्मा समझ कर अपनी निरणा न द्वारा ऊपर को उठाते हैं और प्रवहनाम के वायु पद्मतन्तु ने भीतर प्रविष्ट होकर मोक्षपदार्थों को जनक पास पहुँचाता है ॥६९॥ ७०॥ विप्रमुद । धीतराग, तपोधन, शक्तिशाली सिद्ध यातया को सूक्ष्म शीत तथा सुगन्धित वायु वा सुधस्तर होता है ॥७१॥ विभ्रेन्द्रो । सात महतो य सबसे श्वेद वायु, जो पवित्र लोका में जाता है, उन सिद्धा को आकाश की परम सीमा पर पहुँचा देता है ॥७२॥ आकाश जनको रजोगुण की परम सीमा पर पहुँचाता है और रजो-

नमो' वहति लोकोशाग्रजसः परमां गतिम् । रजोवहति विप्रेन्द्राः सत्त्वस्य परमां गतिम् ॥७३॥
सत्त्व वहति शुद्धात्मा परं नारायणं प्रभुम् । प्रभुर्वहति शुद्धात्मा परमात्मानमात्मना ॥७४॥
परमात्मानमासाद्य तद्भूता यतयोऽमलाः । अमृतत्वाय कल्पन्ते न निवर्तन्ति च द्विजाः ॥७५॥
परमा सा गतिर्विप्रा निर्वृन्दानां महात्मनाम् । सत्याजंवरतानां वै सर्वभूतदयावताम् ॥७६॥

मुनय ऊचुः

स्थानमुत्तममासाद्य भगवन्तं स्थिरव्रताः । आजन्मभरणं वा ते रमन्ते तत्र वा न वा ॥७७॥
यदन तस्यं तत्त्वं नो यथावद्वक्तुमर्हसि । त्वद्वृत्ते मानवं नान्यं प्रष्टुमर्हामि सत्तम ॥७८॥
'मोक्षदोषो महानेय प्राप्य सिद्धिं गतानुषीन् । यदि तत्रैव विज्ञाने वर्तन्ते यतयः परे ॥७९॥
प्रवृत्तिलक्षणं धर्मं पश्याम परमं द्विज' । मानस्य हि परे जाने किंतु दुःखान्तरं भवेत् ॥८०॥

व्यास उवाच

ययान्यायं मुनिश्रेष्ठाः प्रश्नः पृष्टदत्त संकटः । बुधनामपि समोहः प्रश्नेऽस्मिन्मुनिसत्तमः ॥८१॥
अत्रापि तत्त्वं परमं शृणुष्व यच्च न मम । बुद्धिश्च परमायत्र कपिलानां महात्मनाम् ॥८२॥
इन्द्रियाण्यपि बुध्यन्ते स्वदेह' देहिता द्विजाः । करणान्मात्मनस्तानि सूक्ष्म' पश्यन्ति तैस्तु तः ॥८३॥

गुण सत्त्वगुण की अन्तिम सीमा पर पहुँचा देता है ॥७३॥ शुद्धात्मा सत्त्वगुण उन्हे प्रभु नारायण के पास पहुँचाता है और शुद्धात्मा प्रभु परमात्मा के पास पहुँचा देता है ॥७४॥ परमात्मा को प्राप्त करने निर्मल यति लग्नय हो जाते हैं । द्विजगण ! सब वे अमूल्य का प्राप्त कर वहाँ से निवृत्त नहीं होते हैं ॥७५॥ विप्रबुद्ध ! निर्वृन्द, सत्य तथा ऋजुता से निरत और समस्त भूतों पर दया करने वाले महात्माओं की वह परमगति है ॥७६॥

मुनियों ने कहा—स्थिरव्रती कन्यासौ उत्तम स्थान को प्राप्त कर वहाँ जन्म-मरण तक तमन करते हैं कि नहीं ? इसमें जो तस्य बात है, वह हमें बतलाइये । मूने ! आपको छोड़कर हम दूसरे व्यक्ति से नहीं पूछ सकते । यदि यति लोग वही पर विज्ञान से निरत रहते हैं तो सिद्ध अधिया के लिए यह महान् मोक्षदोष है । द्विज ! यह तो प्रवृत्ति-लक्षण धर्म है जो कि परम ज्ञान से निगमन व्यक्ति के लिए एक दूसरे प्रकार का दुःख है ॥७७-८०॥

व्यास बोले—मुनिश्रेष्ठो ! यह तो बड़ा कठिन प्रश्न आपने पूछ दिया । ऐसे प्रश्न से तो विद्वान् लोग भी धबका जाते हैं ॥८१॥ यहाँ भी परमवृत्त को आप मुखसे सुन लीजिए, जिसका निरचय महात्मा कपिल की उत्कृष्ट बुद्धि ने किया है ॥८२॥ द्विजगण ! प्राणिनों की इन्द्रियों भी अपनी देह को जाननी हैं । मनुष्य इन्द्रियों द्वारा आत्मा के सूक्ष्म कारणों का देखते हैं ॥८३॥ जगदी पर बनाये चित्र जैसे लकड़ी के नष्ट होते ही नष्ट हो

१ख. तमो । २ख. ते स्मरन्त्यत्र सदोपनया । य० । ३ख. मोक्षलानो । ४ख. ०ज । यस्य द्विषापरं ज्ञान कि० । ५ख. य० जायते हि य० । ६ख. स्वदेहे । ७ख. सूक्ष्म ।

॥ आत्मना विप्रहीणानि 'काष्ठकुड्यसमानि तु। विनश्यन्ति न सदेहो वेला इव महान्वे।।८४॥
 ॥ इन्द्रियं सह सुप्तस्य देहितो' द्विजसत्तमा'। सूक्ष्मश्वरति सवत्र नभसीव समोरण ॥८५॥
 ॥ स पश्यति 'यथान्याय स्मृत्वा स्पृशति चानथा। बुध्यमानो यथाभूवमखिलनह भो द्विजा ॥८६॥
 ॥ इन्द्रियाणि ह सर्वाणि स्वे स्व स्थान यथाविधि। अनीशत्वात्प्रलीयन्त सर्पा विपहता इव ॥८७॥
 ॥ इन्द्रियाणां तु सर्वेषां स्वस्थानेष्वेव सवश। आश्रम्य गतय सूक्ष्माव (श्च) रथात्मा न सशय ॥८८॥
 ॥ सत्त्वस्य च गुणान्कृत्स्नाग्रजसश्च गुणान्पुन। गुणाश्च तमस सर्वान्गुणान्बुद्धश्च सत्तमा ॥८९॥
 ॥ गुणाश्च मनसश्चापि नभसश्च गुणास्तथा। गुणान्वायोश्च सवजा स्नहजाश्च गुणान्पुन ॥९०॥
 ॥ अपा गुणास्तथा विप्रा पाथिवाश्च गुणानपि। सर्वानेव 'गुणव्याप्य क्षत्रजान् द्विजोत्तमा ॥९१॥
 ॥ आत्मा 'चरति क्षत्रज कमणा च 'शुभाशुभ। शिष्या इव महात्मानमिन्द्रियाणि घत द्विजा ॥९२॥
 ॥ प्रकृति चाप्यतिक्रम्य शुद्ध सूक्ष्म परात्परम्। नारायण महात्मान निर्विकार परात्परम् ॥९३॥
 ॥ विमुक्त सवपापेभ्य प्रविष्ट च ह्यनामयम्। परमात्मानमगुण निवृत्त त च सत्तमा ॥९४॥
 ॥ श्रेष्ठ तत्र मनो विप्रा इन्द्रियाणि च भो द्विजा। अगच्छन्ति यथाकाल गुरो सदेशकारिण ॥९५॥
 ॥ शपथ बाष्पन कालन' क्षान्तिं प्राप्तु' गुणास्तथा। एवमुक्तेन विप्रन्द्रा साख्ययोगन मोक्षिणीम् ॥९६॥

जाते हैं उसी तरह आत्मा से विमुक्त होते ही इन्द्रियां समुद्र में तरंग की तरह विनष्ट हो जाती हैं, इसमें समय नहीं ॥८४॥ द्विजश्रेष्ठो! प्राणी की सुपुप्तावस्था में जब इन्द्रियां भी सुप्त रहती हैं तब सूक्ष्म वायु जैसे आकाश में सबत्र संचरण करता है वैसे उससे शरीर में भी संचरित होता है ॥८५॥ प्राणी जागने पर पहले की तरह देखता है स्मरण करता है और स्पृश करता है। आत्मा के चले जाने पर शास्त्रविहीन होन के कारण इन्द्रियां उसी तरह विनष्ट हो जाती हैं जैसे दिप कष्ट होन पर तप ॥८६८७॥ इन्द्रियां के अपन अपन स्थानों में ही उनका अतिश्रमण कर आत्मा से सदेह सूक्ष्म गति से चल देता है ॥८९॥ विप्रवृन्द! सत्त्व के अखिल गुणों को पुन रज व गुणों का तम व गुणों को बुद्धि के गुणों को मन व गुणों को आकाश व गुणों को वायु व गुणों को स्नह व गुणों को जल के गुणों का तथा पृथ्वी व क्षत्र गुणों को व्याप्त करने क्षम आत्मा शुन भूमि वनों को करता है। द्विजगण! जैसे शिष्य महात्मा वा कनुशमन करत हैं उसी तरह इन्द्रियां आत्मा का अनुसरण करती हैं ॥८९९२॥ प्रकृति का भी अतिश्रमण करन शुद्ध सूक्ष्म परात्पर, नारायण महात्मा निर्विकार समस्त पापों से विमुक्त अनामय निगुण शास्त्र परमात्मा में मन तथा इन्द्रियां प्रविष्ट होती हैं ॥९३॥ गुरु के आशानादी शिष्य जस यथासमय आ जाते हैं वैसे वे भी उपस्थित होती है ॥९३९५॥ विप्रवर! साख्य-योग से अक्षयवाच में ही माया रूप क्षान्ति प्राप्त हो जाती है। साख्यवेत्ता महापति परमगति को प्राप्त करते हैं।

१क स पापकर्महतानि। २क ०ना व्यापूरय तु। सु०। ३क ०मा। मनो भ्रमति।

४ग ०य स्थानान्पुन। ५ग गुणाव्याप्य। ६ग च क्षति। ७त ०मागुणा। गि०। ८त स ० देहा०।

९क ०न प्राप्तस्वप्नोपगतु०। ख ०न प्राप्तु प्राप्ता गुणमनाम्। ए०। १०ग प्राप्ति गुणादिना। ए०। ११ग स

०म। धीतोणादि परिपश्य न०।

सांख्या विप्रा महाप्राज्ञा गच्छन्ति परमां गतिम् । ज्ञानेनानेन विप्रेन्द्रास्तुल्यं ज्ञानं न विद्यते ॥१७॥
 अत्र वः संशयो मा भूज्ज्ञानं सांख्यं परं मतम् । अक्षरं ध्रुवमेवोक्तं पूर्वं ब्रह्म सनातनम् ॥१८॥ ३
 अनादिमध्यनिधनं निर्द्वन्द्वं कर्तुं शाश्वतम् । कूटस्थं चैव नित्यं च यद्वदन्ति शमात्मकाः ॥१९॥
 यतः सर्वाः प्रवर्तन्ते सगंप्रलयविक्रियाः । एवं शंसन्ति शास्त्रेषु प्रवक्तारो महर्षयः ॥२०॥
 सर्वे विप्राश्च वेदाश्च तथा सामविदो जनाः । ब्रह्मण्यं परमं देवमनन्तं परमाच्युतम् ॥२१॥
 प्रार्षयन्तश्च तं विप्रा ब्रह्मन्ति 'गुणयुद्धयः । सम्यगुक्तास्तथा योगाः' 'सांख्याश्चामितदर्शनाः ॥२२॥
 अमूर्तिस्तस्य विप्रेन्द्राः सांख्यं मूर्तिरिति श्रुतिः । अभिज्ञानानि तस्याऽऽहमहान्ति' मृत्तिसत्तमाः ॥२३॥
 द्विविद्यानि हि भूतानि पृथिव्या द्विजसत्तमाः । अगम्यगम्यसंज्ञानि गम्यं तत्र विशिष्यते ॥२४॥ ५
 ज्ञानं महदं महत्तच्च विप्रा, वेदेषु सांख्येषु तथैव योगे
 यच्चापि दृष्टं विधिवत्पुराणे, सांख्यागतं तन्निखिलं मुनीन्द्राः ॥२५॥
 यच्चैनिहासेषु महत्सु दृष्टं, ययार्थशास्त्रेषु विशिष्टदृष्टम्
 ज्ञानं च लोके यदिहान्ति किञ्चित्सांख्यागतं तच्च महामुनीन्द्राः ॥२६॥
 समस्तदृष्टं परमं बलं च, ज्ञानं च मोक्षश्च यथावदुक्तम्
 तथासि सूक्ष्माणि च यानि चैव, सांख्ये यथावद्विहितानि विप्राः ॥२७॥
 त्रिपर्ययं तस्य हित सदैव, गच्छन्ति सांख्याः सततं सुखेन
 सांश्चापि संपार्यं ततः कृतार्याः, पतन्ति विप्रायतनेषु भूषः ॥२८॥

इस ज्ञान के समान दूसरा ज्ञान नहीं है ॥१६-१७॥ इसमें आप सत्य न करें। सांख्य का ज्ञान महान् है। यह अक्षर, ध्रुव, ब्रह्म, सनातन आदि-मध्य तथा अन्त से रहित, निर्द्वन्द्व, वर्तन, शाश्वत, कूटस्थ तथा नित्य है। प्रवक्ता महर्षि शास्त्रा में ऐसा कहते हैं कि इसीसे सृष्टि, स्थिति तथा प्रलय होते हैं ॥१८-१९॥ समस्त ब्राह्मण, वेद तथा सामवेत्ता जन, ब्रह्मण्य, परमदेव, अनन्त तथा परम अच्युत की प्रार्थना करते हैं। परमात्मा को सगुण समझने वाले लोग ऐसा कहते हैं। योग तथा सांख्य वा सम्यक् वर्णन हो गया। विप्रश्रेष्ठो! सांख्य अमूर्त परमात्मा की मूर्ति है, ऐसा मुना जाता है। उनमें अभिज्ञान महान् है ॥२१-२३॥ पृथिवी पर दो प्रकार के भूत होते हैं—एक अगम्यसंज्ञक और दूसरा गम्यसंज्ञक। उनमें गम्य श्रेष्ठ है ॥२४॥ मुनीन्द्रो! महत्तत्त्व ज्ञान है और महत्तत्त्व से वेद, सांख्य, योग तथा पुराणों में जो कुछ देखा जाता है, वह सांख्य से प्राप्त है। महान् इतिहासों में जो कुछ देखा जाता है, ययार्थशास्त्रों में जो विशेषता देखी जाती है और लोक में जो कुछ ज्ञान है वह सांख्य से प्राप्त है। विप्रबृन्द! समस्त दर्शन, परम बल, ज्ञान, मोक्ष, तप और सूक्ष्म पदार्थ—ये सब सांख्य में वर्तलाये गये हैं। सांख्य का अस्तित्ववाद सदैव हितकर है। सांख्यवेत्ता सतत सुख प्राप्त करते हैं। सांख्य-ज्ञान का धारण करने वाले व्यक्ति कृतार्थ होकर ब्राह्मण-शरीर को प्राप्त करते हैं। फिर उछ देहत्याग के बाद योगी तथा सांख्यक

१क ०५ । शमयुक्ताः । २क योगे । ३क. ०ख्यात्र च आतः । ४क ख. ०मंत हि मु० । ५घ विप्रेषु भवन्ति । भू० ।

हित्वा च देहं प्रविशन्ति मोक्षं, दिवौकसश्चापि च योगसाध्याः ।
 अतोऽधिकं तेऽभिरता महाहं, सांख्ये द्विजा भो इह शिष्टजुष्टे ॥१०९॥
 तेषां तु तिर्यग्गमनं हि दुष्टं, नापो भूतिः पापकृतां निवासः ।
 न वा प्रयाना अपि ते द्विजातयो, ये ज्ञानमेतन्मुनयो न सक्ताः ॥११०॥
 'सांख्यं विशालं परमं पुराणं, महार्णवं विमलमुदारकान्तम् ।
 कृत्स्नं हि सांख्या मुनया महात्मनारायणे धारयताप्रमेयम् ॥१११॥
 एतन्मयोवत् परमं हि तत्त्वं, नारायणाद्विस्वमिदं पुराणम् ।
 स सर्गकाले च करोति सर्गं, संहारकाले च' हरेत्, भूयः ॥११२॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे व्यासश्रुतिसंवादे सांख्यविधिनिरूपणं
 नामैकोनचत्वारिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२४०॥

अथैकचत्वारिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः

वसिष्ठकरालजनकसंवादे क्षराक्षरविचारनिरूपणम्,

मुनय ऊचुः

किं तदक्षरमित्युक्तं यस्माद्वाऽवर्तते पुनः । किंस्वित्क्षरमित्युक्तं यस्मादावर्तते पुन ॥१॥
 अक्षराक्षरयोग्यं किं पृच्छामस्त्वां महामुने । उपलब्धं मुनिश्रेष्ठ तत्त्वेन मुनिर्पुंगव ॥२॥

मोक्ष प्राप्त करते हैं। द्विगण । महापूज्य तथा शिष्ट-जन-संबन्धित सांख्य में जो व्यक्ति निरत रहते हैं वे नीच-
 योनि में नहीं जाते, उनकी अपोगति नहीं होती और पापियों के यहाँ उनका निवास नहीं होता। मुनिबुद्धि
 वे द्विजाति उत्तम नहीं कहलाते हैं जिन्हें सांख्य का ज्ञान नहीं है। सम्पूर्ण सांख्य विशाल, परमपुराण, महार्णव,
 विमल, उदार तथा सुन्दर है। हे सांख्य जानने वाले मुनियो ! महात्मा नारायण ने अप्रमेय ज्ञान का धारण करो।
 यह परम तत्त्व मैंने बतला दिया। नारायण से इस पुरातन विश्व की उत्पत्ति है। वे ही सृष्टिकाल में सृष्टि
 करते हैं और संहार काल में संहार करते हैं ॥१०५-११२॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में व्यास और श्रुतियों ने सवाद प्रकरण में सांख्यविधिनिरूपण
 नामक दो सौ चालीसवाँ अध्याय समाप्त ॥२४०॥

अध्याय २४१

वसिष्ठ और करालजनक के सवाद में क्षर और अक्षर का निरूपण

मुनियो ने कहा—वे अक्षर कौन है, जिसे प्राप्त कर जीव भी पुनरुत्पत्ति नहीं होती है और वे क्षर कौन
 है, जिसे प्राप्त कर पुनरुत्पत्ति होती है। महामुने ! अक्षर और क्षर की अनिवार्यता को तत्त्वतः उपलब्ध करने

१९ साख्या। २५. च तदति भू०।

त्वं हि ज्ञानविदां श्रेष्ठः प्रोच्यसे वेदपारगः । ऋषिभिश्च महाभागैर्यतिभिश्च महात्मभिः ॥३॥
तवेतच्छ्रोतुमिच्छामस्त्वत्तः सर्वं महामते । नत्तुस्मिन्निगच्छाम शृण्वन्तोऽमृतमुत्तमम् ॥४॥

व्यास उवाच

अत्र यो वर्णमिष्यामि इतिहास पुरातनम् । वसिष्ठस्य च संवादं करालजनकस्य च ॥५॥
वसिष्ठं श्रेष्ठमासीनमृषोणां भास्करद्युतिम् । पद्मच्छ जनको राजा ज्ञानं नैऋत्यं परम् ॥६॥
परमात्मनि कुशलमध्यात्मगततिनिश्चयम् । मंत्रावधर्षणमासीनमभिवाद्य कृताञ्जलिः ॥७॥
'स्वच्छन्दं' सुकृतं चैव मधुरं चाप्यनुत्तमम् । पद्मच्छपिवरं राजा करालजनकः पुरा ॥८॥

करालजनक उवाच

भगवन्श्रोतुमिच्छामि परं ब्रह्म सनातनम् । यस्मिन् पुनरावृत्तिं प्राप्नुवन्ति मनीषिणः ॥९॥
यच्च तत्क्षरमित्युक्तं यत्रेद क्षरते जगत् । यच्चाक्षरमिति प्रोक्तं शिवं क्षेममनामयम् ॥१०॥

वसिष्ठ उवाच

श्रूयतां पृथिवीपाल क्षरतोर्वं यथा जगत् । यत्र क्षरति पूर्वेण यावत्कालेन चाप्यय ॥११॥
मुनं द्वादशशतह्रस्वं कल्पं विद्धि चतुर्गुणम् । दशकल्पशतावर्तमहस्तद्ब्राह्ममुच्यते ॥१२॥
रात्रिश्चैतावती राजग्यस्यागते प्रतिबुध्यते । सृजत्यनन्तकर्माणि महान्तं भूतमप्रजम् ॥१३॥

कै लिये हम आपसे पूछते हैं। वेदपारग महाभाग ऋषि और महात्मा यति आपको ज्ञानियों में श्रेष्ठ बतलाते हैं। महामते! हम लोग इस बात को आपसे तत्त्वपूर्वक समझना चाहते हैं। आपके वचनानुसार का पान करते हुए हमने तृप्ति नहीं मिल रही है ॥१-४॥

व्यास बोले—इस विषय में मैं आपको एक पुरातन इतिहास बतलाऊँगा, जिसमें वसिष्ठ तथा कराल-जनक का संवाद है। ऋषियों में श्रेष्ठ, सूर्य सुख कान्ति वाले और आसुन पर निराश्रित वसिष्ठ स राजा जनक ने मोक्ष सम्बन्धी ज्ञान के बारे में प्रश्न किया। पूर्वकाल में, परमात्मा में कुशल तथा अध्यात्मज्ञान का निश्चय करने वाले, समासीन वसिष्ठ को प्रणाम कर राजा करालजनक ने अञ्जलि बौधकर स्वच्छन्द, पवित्र, मधुर तथा अल्पष्ट तत्त्व के बारे में उनसे पूछा ॥५-८॥

करालजनक बोले—भगवन्! मैं सनातन परब्रह्म के बारे में सुनना चाहता हूँ, जिस प्राप्ति कर मनीषी लोग फिर नहीं झोटते हैं। क्षरतो उक्त कहते हैं, जहाँ यह सम्पूर्ण जगत् विनष्ट हो जाता है और अक्षर वह है, जो शिव, कल्याण तथा अनामय (स्थाय) रूप है ॥९-१०॥

वसिष्ठ बोले—पृथिवीपाल! यह जगत् जैसे, जहाँ और जितने कालमें नष्ट होता है, वह पुनर्नये ॥११॥ बार हजार युग का एक रूप होता है और वसती कल्पों से युक्त चतुर्गुण ब्रह्मा का एक दिन होता है। राजन्! (ब्रह्मा की) रात्रि भी इसी परिमाण से होती है, जिसके अन्त में आगकर ब्रह्मा अनन्त कर्मों का सर्जन करते हैं। निराकार

मूर्तिमन्तममूर्तात्मा विश्वं शंभुः स्वयंभुवः । यत्रोत्पत्तिं प्रवक्ष्यामि मूलतो नृपसत्तम ॥१४॥
 अणिमा लघिमा प्राप्तिरोक्षानं ज्योतिरव्ययम् । सर्वतःपाणिपादान्तं सर्वतोऽक्षिशरोमुखम् ॥१५॥
 सर्वतःश्रुतिमल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठति । हिरण्यगर्भो भगवानेष बुद्धिरिति स्मृतिः ॥१६॥
 महानिति च योगेयु विरिञ्चिरिति चाप्यय । सांख्ये च पठ्यते शास्त्रे नामभिर्बहुधात्मकः ॥१७॥
 विचित्ररूपो विश्वात्मा एकाक्षर इति स्मृतः । धृतमेकात्मकं येन कृत्स्नं त्रैलोक्यमात्मना ॥१८॥
 तथैव बहुरूपत्वाद्विश्वरूप इति श्रुतः । एष वै विक्रियापन्नः सृजत्यात्मानमात्मना ॥१९॥
 प्रधानं तस्य संयोगादुत्पन्नं सुमहत्पुण्ड्रम् । अहंकारं महातेजाः प्रजापतितमस्कृतम् ॥२०॥
 अव्यक्तादव्यक्तिमापन्नं विद्यासर्गं वदन्ति तम् । महान्तं चाप्यहंकारमविद्यासर्गं एव च ॥२१॥
 अचरश्च चरश्चैव समुत्पन्नी तथैकतः । विद्याऽविद्येति विख्याते श्रुतिशास्त्रानुचितकः ॥२२॥
 भूतसर्गमहंकारात्ततोयं विद्धि पार्थिव । अहंकारेण नृपते चतुर्यं विद्धि वैकृतम् ॥२३॥
 वायुर्ज्योतिरयाऽऽकाशमापोऽय पृथिवी तथा । शब्दस्पर्शश्च रूपं च रसो गन्धस्तथैव च ॥२४॥
 एवं युगपदुत्पन्नं दशवर्गमसंशयम् । पञ्चमं विद्धि राजेन्द्र भौतिकं सार्गमयंकृतम् ॥२५॥
 शून्यं त्वक्चक्षुषी जिह्वा घ्राणमेव च पञ्चमम् । बाहस्तौ चैव पादौ च पामुर्द्वं तथैव च ॥२६॥
 शुद्धोन्द्रियाणि चैतानि तथा कर्मेन्द्रियाणि च । संभूतानीह युगपन्मनसा सह पार्थिव ॥२७॥

तथा कल्याणकारी ब्रह्मा ने पहिले पञ्चभूतों की सृष्टि करते सत्त्वर विरव का निर्माण किया। नृपश्रेष्ठ ! उत्तकी उत्पत्ति मैं आदि से बतलाऊँगा ॥१२-१४॥ हिरण्यगर्भ भगवान् अणिमा, लघिमा तथा प्राप्ति रूप हैं। वे धाम्, क्षीति तथा अव्यय हैं। उनके सब ओर हाथ, पैर, नेत्र, शिर, मुख तथा कर्ण हैं। वे सबको आवृत कर स्थित हैं। योग ने वे महान् कहे गये हैं। विरिञ्चि भी उनका नाम है। सांख्यशास्त्र ने वे बहुत नामों से पुकारे गये हैं। वे विचित्ररूप विश्वात्मा तथा एकाक्षर (ओं) है ॥१५-१७॥ जिसलिये उन्होंने अनेक रूपों से एवात्मरूप त्रैलोक्य का धारण किया इसलिये वे विश्वरूप कहलाये ॥१८॥ वे विचारयुक्त होकर आत्मा से आत्मा का सर्जन करते हैं। उनसे संयोग से प्रधान उत्पन्न हुआ। तब महातेजस्वी तथा प्रजापति द्वारा नमस्कृत अहंकार उत्पन्न हुआ। वे अव्यक्त से व्यक्त हुए। इसका नाम विद्यासृष्टि है। महान्, अहंकार तथा अविद्यासृष्टि को भी उन्होंने पूरा किया। एक हिरण्यगर्भ से अचर और चर दोनों उत्पन्न हुए। वेद और शास्त्र ने चिन्तकों ने विद्यासृष्टि तथा अविद्यासृष्टि दोनों नाम बताये हैं ॥१९-२२॥ राजन् ! भूतसृष्टि को अहंकार से तृतीय समझिये। अहंकारों से चोया वैकृत-सृष्टि है ॥२३॥ वायु अग्नि, आकाश, जल, पृथिवी, घन्ध, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध—ये दसों एक ही काल में उत्पन्न हुए। राजेन्द्र ! पञ्चम भौतिसृष्टि को समझिये ॥२४-२५॥ कर्ण, त्वचा, नेत्र, जिह्वा, नासिका—ये ज्ञानेन्द्रियाँ और बाणी, हाथ, पैर, गुदा, लिंग—ये कर्मेन्द्रियाँ मन के साथ एक ही काल में उत्पन्न

एषा तत्त्वचतुर्विंश 'सर्वाऽऽकृतिः' प्रवर्तते । यां ज्ञात्वा नाभिश्चोचन्ति ब्राह्मणास्तत्त्वदर्शिनः ॥२८॥
 एवमेतत्तन्मूलं त्रैलोक्यमिदमुत्तमम् । वेदितव्यं नरधेष्ठ सर्वं 'नरकाणंवे' ॥२९॥
 समक्षभूतान्धर्वं सर्किनरमहोरगे । सवारणपिशाचे वै सवेदपिनिशाचरे ॥३०॥
 सर्वशकोटिमशके संपूर्तिकृमिमूषके । शुनि श्वपाके चण्डेये 'सचाण्डाले' सपुलकसे ॥३१॥
 हस्त्यश्वत्थरशार्बूले सबूके गवि चैव ह । या च मूर्तिश्च यत्किंचित्सर्वत्रैतन्निवर्शनम् ॥३२॥
 जले भुवि तथाऽऽकाशे नान्यत्रेति विनिश्चयः । स्यान् देहवतामासीदित्येवमनुशुश्रुम् ॥३३॥
 'कृत्स्नमेतावत्तस्तात क्षरते' 'व्यक्तसंज्ञकः' । अहम्यहनि भूतात्मा 'यच्चाक्षर इति स्मृतम्' ॥३४॥
 ततस्तत्क्षरमित्युक्तं क्षरतीदं यथा जगत् । जगन्मोहात्मकं चाऽऽहुरव्ययताद्वयपतसंज्ञकम् ॥३५॥
 'महादधैवाक्षरो' नित्यमेतत्क्षरवियर्जनम् । कथितं ते महाराज यस्मान्नाऽऽवर्तते पुनः ॥३६॥
 'पञ्चविंशतिकोऽमूर्तः' 'स' नित्यस्तत्त्वसंज्ञकः । सत्त्वसंश्रयणात्तत्त्वं सत्त्वमाहुर्मनीषिणः ॥३७॥
 यदमूर्तः सृजद्व्यक्तं तन्मूर्तिमर्धतिष्ठति । 'चतुर्विंशतिमो व्यक्तो ह्यमूर्तिः पञ्चविंशकः' ॥३८॥
 स एव हृदि सर्वास्तु मूर्तिष्व्यातिष्ठताऽऽभवान् । चेतयश्चेतनो नित्यं सर्वमूर्तिरमूर्तिमान् ॥३९॥
 सर्गप्रलयधर्मेण स सर्गप्रलयात्मकः । गोचरे वर्तते नित्यं निर्गुणो गुणसंजितः ॥४०॥
 'एवमेव महात्मा च सर्गप्रलयकोटिशः । विकुर्वाणः प्रकृतिमात्राभिमन्येत बुद्धिमान् ॥४१॥

हुई ॥२६-२७॥ ये चौबीस प्रकार के तत्त्व हैं, जिन्हें जानकर तत्त्वदर्शी ब्राह्मण सोच नहीं करते हैं । नरधेष्ठ । इस प्रकार ये उत्तम तीनों लोक उत्पन्न हुए, जिनकी स्थिति नरक, समुद्र, वन, मृत, गन्धर्व, विशद, महाधर्म, धारण, पिशाच, देवपि, राक्षस, वस (डीस), कीट, मशक, कृमि, मूषक, बुधे, श्वपाक, कृष्णमृगधर्म, चाण्डाल, पुलकस, हाथी, घोड़े, गवें, बाघ, भेड़िय तथा गाय आदि मे है । सरीसृपादिया की स्थिति जल, पृथ्वी तथा आकाश मे है अन्यत्र नहीं—ऐसा निश्चयपूर्वक हमने सुना है । जिसलिए यह जगत् विनष्ट होगा है इसलिये इसका नाम क्षर पड़ा । ससारको मोहात्मक मतलब आ गया है । अव्यक्त से नि सृज होकर इसने व्यक्त सत्ता धारण की ॥२८-३५॥ महाराज । यह तो मैं कह ही चला हूँ कि अक्षर महान्, नित्य तथा क्षररहित है । इसको प्राप्त कर जीव फिर लौटता नहीं है ॥३६॥ यह पचीसवीं निराकार तथा नित्य सत्त्व है । मनीषियों ने सत्त्व के संश्रयण से तत्त्व को सत्त्व कहा है ॥३७॥ निराकार जिस व्यक्त की सृष्टि करता है, वह व्यक्त साकार होता है । वह चौबीसवीं तत्त्व है और अव्यक्त पचीसवीं तत्त्व है ॥३८॥ वहीं आत्मवान्, चेतन, नित्य, सर्वपूर्व तथा अव्यक्त सब हृदयों मे वास करता है । वह सृष्टि तथा प्रलयरूप है । वह गोचर मे सदा विद्यमान रहता है और वह निर्गुण तथा समुण्मी है ॥३९-४०॥ प्रकृतिमान् वह महात्मा करोड़ों सृष्टि-प्रलयों को करते हुए भी अधिमान नहीं करता ॥४१॥

१क ०वीं प्रवृत्तिर्वर्त । २ग ०कृतिपु व० । ३ख ०र्णवात् । स० । ४क ०के कृपणे पशुचा० । ५ख ०ण्डालपु० । ६क ह । यच्च मूर्तं च य० । ७क सजितम् । अ० । ८ख ०रमा तदक्षरमिति । ९ग ०म् । एत-
 दक्षर० । १० ०वताव्यक्त० । ११क य ०वाग्रयो नि० । १२ख य ०रतिदधेय० । १३ख ०विमो मू० ।
 १४ग विण्णो । १५क ०तिको व्य० । १६ख ०न् । अचैतास्वे० । १७क एष एव म० ।

तम सत्त्वरजोगुणस्तासु तास्विह। योनिषु। १। लीयते। प्रतिबुद्धत्वादबुद्धजनसेवनात् ॥४२॥
 सह्यासनिवासत्वाद्बालोऽहमिति। मृत्युत्। योऽह न सोऽहमित्युक्तो गुणानेवानुवर्तते ॥४३॥
 तमसा तामसान्भावान्विविधान्प्रतिपद्यते। रजसा राजसाश्चैव सात्त्विकान्स्त्वसथेयात् ॥४४॥
 शुक्ललोहितकृष्णानि रूपाण्येतानि धीणि तु। सर्वाण्येतानि रूपाणि जानोहि प्राकृतानि तु ॥४५॥
 तमसा तिरय यान्ति राजसा मानुषानय। सात्त्विका देवलोकाय गच्छन्ति सुखभागिन ॥४६॥
 निष्कवेलेन पापेन तिर्यग्योनिमवाप्नुयात्। पुण्यपापेषु मानुष्य पुण्यमात्रेण देवता ॥४७॥
 'एवमव्यवृत्तविषय मोक्षमाहुर्मनोविण। पञ्चविंशतिभ्यो योऽप्य ज्ञानादेव प्रवर्तते ॥४८॥'
 इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे वसिष्ठकरालजनकसवादे क्षराक्षरविचारनिरूपण
 नाम एकचत्वारिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२४१॥

अथ द्विचत्वारिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः

वसिष्ठकरालजनकसवादवर्णनम्

वसिष्ठ उवाच

'एवमप्रतिबुद्धत्वादबुद्धमनुवर्तते। वेदादेहसहस्राणि तथा च न स भिद्यते ॥१॥

अज्ञानी एव अविद्वान् की सेवा करने से जीव, तम, सत्त्व तथा रज से युक्त होकर सत्तत् योनि में लीन होता है ॥४२॥
 सत्तत् योनि में उत्पन्न व्यक्तित्वा के सहवास से जीव अपने को कहता है— मैं बालक हूँ, जो मैं था वह अब नहीं हूँ।
 इस प्रकार वह गुणों का ही अनुसरण करता है ॥४३॥ तमोगुण से जीव तामस भावों को प्राप्त करता है रजोगुण
 से राजस भाव। जो और सत्त्व के सध्रमण से सात्त्विक भावों को प्राप्त करता है ॥४४॥ सुक्ल, लोहित, कृष्ण—
 इन तीन रूपा जो तथा समस्त रूषों को प्रकृति से उत्पन्न समग्रिये ॥४५॥ तामस भाव वाले नरक जाते हैं राजस
 भाव वाले मनुष्य-यानि में जाते हैं और सात्त्विक भाव वाले सुरासुरी जीव देवलोक को जाते हैं ॥४६॥ बल
 पाप रहने से जीव तिर्यग्योनि में जाता है, पुण्य-पाप दोनों रहने से मनुष्य-योनि में जाता है और बल पुण्य रहने
 से देवयोनि में जाता है। इस प्रकार विद्वान् लोग अव्यक्त में विषय को मोक्ष कहते हैं जो पचीसवाँ तत्त्व है और
 ज्ञान से ही प्राप्त होता है ॥४७-४८॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में वसिष्ठ तथा करालजनक के सवाद में शरद्विंशत विचार निरूपण
 नामक दो सौ इकतालीसवाँ अध्याय समाप्त ॥२४१॥

अध्याय २४२

वसिष्ठ और करालजनक का सवाद-वर्णन

वसिष्ठ बोले—इस प्रकार जीव अज्ञानता से मूकयोनि में ही जाता है। सहस्रो शरीर उसे मिलते हैं

तिपंग्योनिःसहस्रेषु कदाचिद्देवतास्त्वपि । उत्पद्यति तपोयोगाद्गुणैः सह गुणक्षयात् ॥२॥
 मनुष्यत्वाद्विषयं याति, देवो मानुष्यमेति च । मानुष्याभिरयस्थानमालय' प्रतिपद्यते ॥३॥
 कोपकारो यथाऽऽत्मानं कीदृशः समभिरुन्धति । सूत्रतन्तुगुणैर्नित्य' तथाऽयमगुणो गुणैः ॥४॥
 द्वन्द्वमेति च निद्वन्द्वस्तासु तास्विह योनिषु । शीर्षरोगेऽक्षरोगे च दन्तशूले गलग्रहे ॥५॥
 जलोदरेऽतिसारे च गण्डमालाविचर्चिके । शिवत्रकुष्ठेऽग्निदाधे च सिन्ध्वापस्मारयोरेपि ॥६॥
 यानि चान्यानि द्वन्द्वानि प्राकृतानि शरीरिण्याम् । उत्पद्यन्ते विचित्राणि तान्येवाऽऽत्माऽभिमान्यते' ॥७॥
 अभिमानातिमानानां तथैव सुकृतान्यपि । एकवासाश्चतुर्वर्ताः' क्षायी नित्यमधस्तथा ॥८॥
 मण्डूकशायी च तथा घोरभासनगतस्तथा । घोरभासनमाकाशे तथा शयनमेव च ॥९॥
 इन्द्रकाप्रस्तरे चैव' चक्रप्रस्तरे तथा । भस्मप्रस्तरशायी च भूमिशय्यानुलेपनः ॥१०॥
 घोरस्थानाम्बुषाके च शयनं फलकेषु च । विविधास्तु च शय्यास्तु फलगुह्यान्वितास्तु च ॥११॥
 उद्याने खललग्नेषु धौमकृष्णाजिनान्वितः' । मणिवालपरीधानो व्याघ्रचर्मपरिच्छदः ॥१२॥
 सिंहचर्मपरीधानः पट्टवासास्तथैव च । फलक(?) परिधानश्च तथा' कटकवस्त्रधृक् ॥१३॥
 कटकवसनश्चैव घोरवासास्तथैव च । वस्त्राणि चान्यानि यद्गन्धभिर्मन्य च बुद्धिमान् ॥१४॥
 भोजनानि विचित्राणि रत्नानि विविधानि च । एकरात्रान्तराशित्यमेककालिकभोजनम् ॥१५॥

पर बहू निद्रा नहीं होता है ॥१॥ हजारोनीच योनियों में और कदाचित् देवयोनियों में भी बहू तपोबल से गुणा के साथ उत्पन्न होता है ॥२॥ गुणों की शृङ्खला तथा क्षय से जीव मनुष्यत्व से देवत्व की ओर देवत्व से मनुष्यत्व की प्राप्ति करता है । और मनुष्यत्व से प्रलयकाल तक नरक की भी प्राप्ति करता है ॥३॥ जैसे मकरा मूत्र-तन्तु रूप गुणा से अपने को अवद्वन्द्व कर लेता है वैसे यह निर्गुण जीव गुणों से अपने को कँसा लेता है ॥४॥ यह निद्वन्द्व होते हुए भा तत्तत्प्रीतियों में द्वन्द्व को प्राप्त करता है । शरीररोग, नेत्ररोग, दन्तपीडा, गलव्याधि, जलोदर, अतिसार, कण्डमाला, चंचल, श्वेतकुष्ठ, घाव, खुजली, निर्या और ओ दूसरे प्राकृत द्वन्द्व हैं, वे शरीरों में उत्पन्न होते हैं, परन्तु जीव उन्हें अपना मान बैठता है ॥५॥ ७॥ जीव द्वन्द्वों की तरह पुण्यों की भी धनता है । मनुष्य सिद्धि की आकांक्षा से विविध कष्टों की भोगता है । वह एक घसन तथा चार घसन की धारण करता है, भेडक की तरह सोता है, घोरभासन लगाता है, आकाश में घोरभासन लगाकर शयन भी करता है । ईट व आकार के पत्थर, मडलाकार पत्थर तथा मरुभामूत पत्थर पर सोता है, भूमि शय्या पर अवस्थित होकर लेप लगाता है । घोरों के स्थान में जल पीता है पाक बनाता है और सत्वों पर तथा फला व मुच्छों से मुक्त अनेक प्रकार की शय्याओं पर जाता है । खलिहान स लगे हुए उद्यान में रेशमी वसन तथा कृष्ण मृगचर्म से मुक्त होकर अग्नि तथा पूँज के बाल धारण करता है । व्याघ्रचर्म, सिंहचर्म, पट्टवस्त्र, फलक (?) , स्वर्ण-वस्त्र धारण करता है ॥८-१३॥ (कभी) एकवासी स्वर्णवस्त्र तो कभी खड्गवस्त्र धारण करता है । कभी अन्य प्रकार के बहुत से वस्त्रों की पहनता है, अनेक प्रकार के भोजन करता है, विविध रत्नों की धारण

१क ०हृगुप्त० । २ग ०मानुष्य प्र० । ३ख ०विषयच्छति । ख० । ४ख ०स्व दुर्वा० । ५क ०म वृषस्य प्र० । ६प. ०त । धालिवान प्र० । ७ख० पटवा० । ८ख. तपोदकसुव० ।

'चतुर्थाष्टमकालः' च । एष्टकालिकमेव च । यद्वात्रभोजनश्चैव तथा चाष्टाहभोजन ॥१६॥
 मासोपवासो मूलाशी फलाहारस्तथैव च । वायुभक्षश्च^१ पिण्याकदधिगोमयभोजन ॥१७॥
 गोमूत्रभोजनश्चैव काशपुष्पाशनस्तथा । शैवालभोजनश्चैव तथा चान्येन वर्तयन् ॥१८॥
 वर्तयञ्चोर्णपणं^२ श्व प्रकीर्णफलभोजन । विविधानि च कृच्छ्राणि सेवते सिद्धिकाष्ठशया ॥१९॥
 चान्द्रायणानि विधिवल्लिङ्गानि विविधानि च । 'चातुराश्रम्ययुक्तानि धर्माधर्माश्रयाण्यपि ॥२०॥
 उपाश्रयानप्यपरान्माखण्डान्विविधानपि । विविक्ताश्च शिलाछायास्तथा प्रलवणानि च ॥२१॥
 पुलिनानि विविक्तानि विविधानि वनानि च । काननेषु विविक्ताश्च शैलाना महतीर्गुहा ॥२२॥
 नियमान्विविधाश्चापि विविधानि तपासि च । यज्ञाश्च विविधाकारान्विद्याश्च विविधास्तथा ॥२३॥
 घणिकपथ द्विजक्षत्रवंश्यशूद्रास्तथैव च । दानं च विविधाकार दोनान्धकृपणादिषु ॥२४॥
 'अभिभन्येत सधातु तथैव विविधान्गुणान् । सत्त्व रजस्तमश्चैव धर्मार्थौ^३ काम एव च' ॥२५॥
 प्रकृत्याऽऽत्मानमेवाऽऽत्मा एव प्रविभज्यते^४ । स्वाहाकारयपदकारौ स्वधाकारनमस्त्रये ॥२६॥
 यजनाध्ययने दान तथैवाऽऽहु प्रतिग्रहम् । याजनाध्यापने चैव तयाऽन्यदपि किञ्चन ॥२७॥
 जन्ममृत्युविधानेन तथा विशसनन च । शुभाशुभमय सर्वमेतदाहु सनातनम्^५ ॥२८॥
 प्रकृति कुदते देवो भय प्रलयमेव च । दिवसान्ते गुणानेतानतीत्येकोऽवतिष्ठते ॥२९॥

करता है बीच में एक रात को छोड़कर भोजन करता है एक ही समय भोजन करता है चाये आठव तथा छठ प्रहर में भोजन करता है महीने में छह रात भोजन करता है आठ दिन भोजन करता है महीने तक उपवास करता है क'द-मूल फल खाना है वायुभक्षण करता है तिलकला दही तथा गोबर खाता है गोमूत्र तथा काशपुष्प भोजन करता है सिवार भोजन करता है ज ण होकर सड़े हुए फल-पत्ते खाता है चान्द्रायण व्रत करता है विविध बिल्लों को धारण करता है चारों ओर धर्म व धम अवध को करता है, अनेक प्रकार के पालण्डों को करता है एकांत स्थान में शिला-खण्ड पर तथा छाया व नीचे विश्राम करता है पुलिनो पर विविध वर्णों में कानना में पवतों पर तथा गुफाओं में रहता है विविध नियम तथा यज्ञ करता है अनेक विधाओं को पढ़ता है ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य और शूद्र जातियों में उत्पन्न होता है दोन अथ तथा कृपणा को दान देता है 'ज' सत्त्व तथा तमोगुण को धारण करता है धम अय और नाम का साधन करता है ॥१४-२५॥ इस प्रकार आत्मा प्रकृति से आत्मा का विभाग करता है । स्वाहाकार वपदकार स्वधाकार नमस्कार, यजन, अध्ययन, दान प्रतिग्रह याजन अध्यापन जन्म मृत्यु, गुण अगुण—ये सब आत्मा ही है ॥२६-२८॥ प्रकृतिदेवी गय और प्रलय करती है । दिवसान्त (प्रलय) में इन गुणों का अतिक्रमण करने एव आत्मा ही अवस्थित रहता है । जैसे सूर्य रश्मिजाल को समेट लेता है, वैसे आत्मा काज का नियमन करता है । इस प्रकार सम्पूर्ण जगत् आत्मा की क्रीड़ा में लिये माना जाता है । आत्मा विविध गुणों को धारण करके सृष्टि तथा प्रलय करता है । वर्णों के भाग पर आसक्त होकर त्रिगुणात्मक तथा त्रिगुणाधिप आत्मा कर्म एवम्

रश्मिजालमिवाऽऽदित्यस्तत्कलं संनियच्छति । एवमेवैव तत्सर्वं श्रीद्वार्यमभिमन्यते ॥३०॥
 आत्मरूपगुणानेतान्विविधान्द्वयप्रियाण् । एवमेतां प्रकुर्वणः सर्गप्रलयधर्मिणीम् ॥३१॥
 क्रियां क्रियापये रक्तस्त्रिगुणस्त्रिगुणाधिपः । क्रियाक्रियापयोपेतस्तथा तदिति मन्यते ॥३२॥
 प्रकृत्या सर्वमेवेदं जगदग्धीकृतं विभो । रजसा तमसा चैव व्याप्तं सर्वमनेकधा ॥३३॥
 एवं द्वैतान्यतीतानि मम घटन्ति नित्यशः । मत्त एतानि जायन्ते प्रलये यान्ति मामपि ॥३४॥
 निस्तर्तव्याण्येतानि सर्वाणीति नराधिप । मन्यते पञ्चद्वित्वात्तथैव सुकृतान्यपि ॥३५॥
 भोक्तव्यानि ममेतानि देवलोकगतेन वै । इहैव चैनं भोक्ष्यामि शुभाशुभफलोदयम् ॥३६॥
 सुप्तमेव तु कर्तव्यं सकृत्कृत्वा सुखं मम । यावदेव तु मेसौख्यं जात्यां जात्यां भविष्यति ॥३७॥
 भविष्यति न मे दुःखं कृतेनेहाप्प्यनन्तकम् । सुखदुःखं हि मानुष्यं निरये चापि मज्जनम् ॥३८॥
 निरयाच्चापि मानुष्यं कालेनेव्याम्यहं पुनः । मनुष्यत्वाच्च देवत्वं देवत्वात्पौरुषं पुनः ॥३९॥
 मनुष्यत्वाच्च 'निरयं' पर्यायेणोपगच्छति । एष एवं द्विजातीनामात्मा वै स गुरुर्वृतः ॥४०॥
 तेन देवमनुष्येभ्यः निरयं चोपपद्यते । ममत्वेनाऽऽवृतो नित्यं तत्रैव परिवर्तते ॥४१॥
 सर्गकोटिसहस्राणि मरणास्तासु मूर्तिषु । य एवं कुर्वते कर्म शुभाशुभफलात्मकम् ॥४२॥
 स एव फलमाप्नोति त्रिषु लोकेषु मूर्तिमान् । प्रकृतिः कुर्वते कर्म शुभाशुभफलात्मकम् ॥४३॥
 प्रकृतिश्च तमाऽऽप्नोति त्रिषु लोकेषु कामया । तिर्यग्योनिमनुष्यत्वे देवलोकं तथैव च ॥४४॥

कर्ममार्ग से युक्त होकर कर्म करता है ॥३९-३२॥ परमात्मा की प्रकृति ने सम्पूर्ण जगत् को जन्मा बना दिया है । रजोगुण तथा तमोगुण से सब कुछ व्याप्त है ॥३३॥ इस प्रकार जीव के द्वन्द्व नित्य वर्तमान रहते हैं । जीव से ही इनकी उत्पत्ति होती है और प्रलय में ये जीव को ही प्राप्त होते हैं ॥३४॥ राजन् । ये समस्त द्वन्द्व दुष्पर हैं । उसी तरह पुण्यो को भी समझिये । देवलोक जाने पर भी इनका भोग करना पड़ता है । शुभ और अशुभ कर्मों का फल— सुख और दुःख—तब तक भोगना पड़ता है, जब तक जन्म-मरण होते रहते हैं । जीव को सुख, दुःख, मनुष्यत्व तथा नरक-भोग भी प्राप्त होता है । समय पाकर जीव पुनः नरक से मनुष्य-योनि में भी जाता है । वह मनुष्यत्व से देवत्व को, देवत्व से मनुष्यत्व को और मनुष्यत्व से नरक को भी कालक्रम से प्राप्त करता है । इस प्रकार द्विजातियों का आत्मा गुणों से आवृत है ॥३५-४०॥ इसलिये जीव देवयोनि में, मनुष्योनि में तथा नरक में भी जाता है । ममता से युक्त होकर जीव सहस्रो करोड़ सृष्टियों में सुख-दुःख भोगता रहता है ॥४१॥ जो इस प्रकार शुभ-अशुभ कर्म करता है, वह शुभ-अशुभ फल पाता है । तीनों लोक में जाने वाली प्रकृति शुभ-अशुभ कर्म करती है और तदनु रूप फल पाती है । तिर्यग्योनि, मनुष्योनि तथा देवयोनि—ये तीन स्थान प्रकृति के माने जाते हैं ।

त्रोणि स्यान्तानि चैतानि जानीयात्प्राकृतानि ह । अलिङ्गप्रकृतित्वाच्च लिङ्गैरप्यनुमोयते ॥४५॥
 तथैव पौरुषं लिङ्गमनुमानाद्धि मन्यते । स लिङ्गान्तरमासाद्य प्राकृतं लिङ्गमव्रणम् ॥४६॥
 व्रणद्वाराप्यधिष्ठाय 'कर्माण्यात्मनि मन्यते । श्रोत्रादीनि तु सर्वाणि पञ्च कर्मेन्द्रियाप्यपि ॥४७॥
 रागादीनि प्रवर्तन्ते गुणेष्विह । गुणः सह । अहमेतानि ये कुर्वन्ममेतानीन्द्रियाणि ह ॥४८॥
 निरिन्द्रियो हि मन्येत व्रणवानस्मि निव्रणः । अलिङ्गो लिङ्गमात्मानमकालं कालमात्मनः ॥४९॥
 'असत्त्वं सत्त्वमात्मानममृतं मृतमात्मनः' । अमृत्युं । मृत्युमात्मानमचरं चरमात्मनः ॥५०॥
 अक्षेत्रं क्षेत्रमात्मानमसङ्गं सङ्गमात्मनः । अतत्त्वं तत्त्वमात्मानमभयं भवमात्मनः ॥५१॥
 अक्षरं क्षरमात्मानमबुद्धत्वाद्धि मन्यते । एवमप्रतिबुद्धत्वादबुद्धजनसेवनात् ॥५२॥
 सगंकोटिसहस्राणि पतनान्तानि गच्छति । जन्मान्तरसहस्राणि मरणान्तानि गच्छति ॥५३॥
 तिर्यग्योनिमनुष्यत्वे देवलोके तथैव च । चन्द्रमा इव 'फोशानां पुनस्तत्र सहस्रघाः ॥५४॥
 नोयतेऽप्रतिबुद्धत्वादिवमेव । कुबुद्धिमान् । 'कला पञ्चदशी योनिस्तद्गाम' इति पठ्यते ॥५५॥
 'निरामेश विजानीहि सोम दे' 'योऽशोशकः' । 'कलप्रा जायतेऽजघ्रं पुनः पुनरबुद्धिमान्' ॥५६॥
 धीमांश्चायं न भवति नृप एवं हि जायते । योऽशो तु कलासूक्ष्मा स सोम उपधार्यताम् ॥५७॥

जीव अलिङ्गप्रकृति कहते हुए भी लिंगों द्वारा समझा जाता है ॥४२-४५॥ उसी तरह पौरुषलिङ्ग अनुमान से माना जाता है । वह अक्षर प्राकृत लिंग को प्राप्त कर व्रणद्वार को अधिष्ठित करके अपने में कर्मों को मानता है ॥४६॥ श्रोत्र भावि ज्ञानेन्द्रियाँ, कर्मेन्द्रियाँ तथा रागआदि, गुणों में गुणों के साथ विद्यमान रहते हैं । जीव इन्द्रिय-रहित होते हुए भी अज्ञानता से रागश वैठता है कि मैं यह कार्य करता हूँ और मेरी ये इन्द्रियाँ हैं ॥४७-४८॥ वह अलिङ्ग (अरूप) को लिंग, असत्त्व को सत्त्व, अमृत को मृत, अमृत्यु को मृत्यु, अक्षर को चर, अक्षेत्र को क्षेत्र, अक्षय को सग, अतत्त्व को तत्त्व, अभय को भय और अक्षर को क्षर मान लेता है ॥४९-५३॥ इस प्रकार अधिष्ठानों की सेवा से सहस्रकोटि सृष्टि पर्यन्त जीव का अप पतन होता रहता है । सहस्रो बार उसने जन्म-मरण होते हैं ॥५२-५३॥ तिर्यग्योनि, मनुष्योनि तथा देवयोनि में भी वह जाता है । जैसे चन्द्रमा कोतो(लोकों में ?) जाता है वैसे मूर्ख मनुष्य अवोष के कारण तत्सन् योनिमा भ जाता है ॥५४॥ चन्द्रमा की पन्द्रहवीं कला योनि कहलाती है । उसका नाम घाम भी है । सोलह वरी में युक्त चन्द्रमा को नित्य ही समझिये । अबुद्धिमान् मनुष्य बार-बार कला से उत्पन्न होता है । नृप । वह ऐसे ही उत्पन्न होता रहता है, पर बुद्धिमान् नहीं होता । सोलहवीं कला सूक्ष्म है । उसे चन्द्रमा समझिये ॥५५-५७॥

१स ०म् । प्राणान्द्रा० । २न ग कर्मजात० । ३ग ०त्रि । धाम्ना घामस० । ४न. सोमानी ।
 ५ग कला । ६न ग द्र । ७न पयते । ८स ग ०येन्द्रिया० । ९न ०दुष्टात्मनम् । क० । ग. ०शरी
 कलाम् । १० । १०क कला पचदशी तेवली पुनरब कुबु० । ११न. ०न् । घाम तस्योपमुञ्जति भूय एव तु जा० ।

न तूपयुज्यते देवदेवानपि युनक्ति सः। ममत्वं क्षपयित्वा तु जायते नृपसत्तम ॥५८॥
प्रकृतेस्त्रिगुणायास्तु स एव त्रिगुणो भवेत् ॥५९॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे वसिष्ठकरालजनकसंवादे
द्विचत्वारिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२४२॥

अथ त्रिचत्वारिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः

वसिष्ठं प्रति मोक्षधर्मविषयको जनकप्रश्नः

जनक उवाच

अक्षरक्षरयोरेव द्वयोः संबन्ध इष्यते। स्त्रीपुरुषयोर्वा सम्बन्धः स वै पुरुष उच्यते ॥१॥
श्रुते तु पुरुषं नेह स्त्री गर्भधारयत्युत। श्रुते स्त्रियं न पुरुषो रूपं निर्वर्तते तथा ॥२॥
अन्योन्यस्माभिसंयन्वादन्योन्यगुणसंश्रयात्। रूपं निर्वर्तयेदसदेवं सर्वासु योनिषु ॥३॥
रसपर्यमतिसंयोगाद्यन्योन्यगुणसंश्रयात्। श्रुतौ निर्वर्तते रूपं तद्वक्ष्यामि निदर्शनम् ॥४॥
ये गुणाः पुरुषस्येह मे च मातुर्गुणास्तथा। अस्मि स्त्राय च भज्जा च जानीमः पितृतो द्विज ॥५॥

श्रीम वैवाज्यो से उपयुक्त नहीं होते, पर वे देवताओं को उपयुक्त करते हैं। वे ममत्व का नाश करके उत्पन्न होते हैं। वे त्रिगुणात्मिका प्रकृति के तीनों गुण हैं ॥५८॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में वसिष्ठ और करालजनक के संवाद-प्रकरण में
दो सौ वयालीसवाँ अध्याय समाप्त ॥२४२॥

अध्याय २४३

मोक्षधर्म के सम्बन्ध में वसिष्ठ से जनक का प्रश्न

जनक बोले—अक्षर और क्षर (पुरुष और प्रकृति) दोनों का सम्बन्ध होता है। स्त्री-पुरुष का सम्बन्ध पुरुष कहलाता है ॥१॥ पुरुष के बिना स्त्री गर्भ-धारण नहीं करती है और स्त्री के बिना पुरुष रूप धारण नहीं करता है ॥२॥ परस्पर के सम्बन्ध तथा गुणों के आदान प्रदान से समस्त योनियों में रूप की निष्पत्ति होती है ॥३॥ रतिकालिष्ठ अत्यन्त संयोग से तथा परस्पर गुणाधान से श्रुतुषयी होने के पश्चात् रूप का निष्पादन किया जाता है। यह मैं उदाहरण के लिये बतलाऊँगा ॥४॥ कुछ गुण पुरुष के होते हैं और कुछ माता के।

१ न मूलरचयः २ एव त्रिगुणो ३ योर्भगवत्संबन्धस्तु तदुच्यते ४ क ०५ प्रतिनिवर्तते। अ०।
५ अ. ०५। गत्यर्थनिमित्तः ६ क च याति न पि०।

त्वद्भासिशोणितं चेति मातृजान्यनुशुश्रुम् । एवमेतद्विज्यश्रेष्ठ वेदशास्त्रेषु पठ्यते ॥६॥
 प्रमाणं यच्च वेदोक्तं शास्त्रोक्तं यच्च पठ्यते । वेदशास्त्रप्रमाणं च प्रमाणं तत्सनातनम् ॥७॥
 एवमेवाभिसम्बन्धो नित्यं प्रकृतिपूरुषौ । यच्चापि भगवंस्तस्मात्प्रमाणं न विद्यते ॥८॥
 अथवाऽन्तरकृतं किंचिदेव निदर्शनम् । तन्ममाऽऽश्चव तत्त्वेन प्रत्यक्षो ह्यसि सर्वदा ॥९॥
 मोक्षकामा वयं चापि काङ्क्षामो यदनामयम् । अजेयमजरं नित्यमतीन्द्रियमनीश्वरम् ॥१०॥

वसिष्ठ उवाच

यदेतदुक्तं भवता वेदशास्त्रनिदर्शनम् । एवमेतद्यथा वक्ष्ये तत्त्वग्राही यथा भवान् ॥११॥
 धार्यते हि त्वया ग्रन्थ उभयोर्वेदशास्त्रयोः । न च ग्रन्थस्य तत्त्वज्ञो यथातत्त्व नरेश्वर ॥१२॥
 यो हि वेदे च शास्त्रे च ग्रन्थधारणतत्परः । न च ग्रन्थार्थतत्त्वज्ञस्तस्य तद्वारणं वृथा ॥१३॥
 भार स बहते तस्य ग्रन्थस्यार्थं न वेति यः । यस्तु ग्रन्थार्थतत्त्वज्ञो नास्य ग्रन्थागमो वृथा ॥१४॥
 ग्रन्थस्यार्थं स पृच्छतु मादृशो वस्तुमर्हति । यथातत्त्वाभिगमनादर्थं तस्य स विन्दति ॥१५॥
 न यः समुत्सुकः कश्चिद्ग्रन्थार्थं स्थूलबुद्धिमान् । स कथं मन्दबिज्ञानो ग्रन्थं वक्ष्यति निर्णयात् ॥१६॥
 अज्ञात्वा ग्रन्थतत्त्वानि पार्थ यः कुर्वते नरः । लोभाद्वाऽप्यथवा दम्भात्स पापी नरकं व्रजेत् ॥१७॥

द्विज ! अस्मि, स्नायु तथा मञ्जा—ये पिता से प्राप्त होते हैं और स्वचा, भास तथा शोणित—ये माता से प्राप्त होते हैं । वेद-शास्त्रो मे ऐसा ही बतलाया गया है ॥५-६॥ वेदो और शास्त्रो मे जो प्रमाण पठित है तथा वेद-शास्त्रो का जो प्रमाण है, वह सनातन प्रमाण है ॥७॥ प्रकृति-गुरुष का ऐसा ही नित्य सम्बन्ध है । भगवन् ! उससे बढ़कर कोई मोक्षधर्म नहीं है । अथवा इसके बाद कोई उदाहरण हो तो वह मुझे बतलाइए । आपने तत्त्व का प्रत्यक्ष किया है ॥८-९॥ मैं भी मोक्ष का इच्छुक हूँ । अनामय, अजेय, अजर, नित्य, अतीन्द्रिय तथा ईश्वर से भी परे ब्रह्म को प्राप्त करना चाहता हूँ ॥१०॥

वसिष्ठ बोले—आपने वेद-शास्त्रो का उदाहरण देकर कहा है । आप तत्त्वग्राही हैं । मैं उसी प्रकार बतलाऊंगा जैसा आप चाहते हैं ॥११॥ राजन् ! आप वेद-शास्त्रो के ग्रन्थो को धारण करते हैं, पर उनके अर्थार्थ तत्व को नहीं जानते हैं ॥१२॥ जो व्यक्ति वेद-शास्त्रो के ग्रन्थ-धारण मे निरत रहता है, वह ग्रन्थो से तत्त्व को नहीं जानता है, उसका ग्रन्थ-धारण करना व्यर्थ है ॥१३॥ जो ग्रन्थ के अर्थ को नहीं जानता है, वह केवल मातृवाही है । जो ग्रन्थ के तत्त्व को जानता है, उसका ग्रन्थ-धारण व्यर्थ नहीं है ॥१४॥ उससे ग्रन्थ का अर्थ पूछने पर वह मेरी तरह बतला सकता है । क्योंकि वह तत्त्व को समझने के कारण उससे अर्थ को प्राप्त कर लेता है ॥१५॥ जो स्थूलबुद्धि वाला व्यक्ति ग्रन्थ के अर्थ को जानने के लिये उत्सुक नहीं रहता है, वह जलजल जन निर्णयपूर्वक ग्रन्थ को बंसे बतलाएगा ॥१६॥ ग्रन्थ के तत्त्व को न जानकर जो व्यक्ति लोभ से अथवा दम्भ से विवाद करता है, वह पापी

निर्णय चापि छिद्रात्मा न तद्वक्ष्यति तत्त्वतः । सोऽप्यीहास्त्यार्यतत्त्वज्ञो यस्मान्नैवाऽऽत्मवानपि ॥१८॥
तस्मात्त्व शृणु राजन् द्रव्यैतदनुद्दिश्यते । यथा तत्त्वेन साख्येषु योगेषु च महात्मसु ॥१९॥
यदेव योगा पश्यन्ति साख्यः तदनुगम्यते । एक साख्य च योग च य पश्यति स बुद्धिमान् ॥२०॥
त्वदमास रुधिरमेद पित्त मज्जाऽस्थि स्नायु च । एतदेन्द्रियक तात यदभवानित्यमात्थ माम् ॥२१॥
द्रव्यादद्रव्यस्य निर्वृत्तिरिन्द्रियाबिन्द्रिय तथा । देहाददेहमवानोति बीजादबीज तथैव च ॥२२॥
निरिन्द्रियस्य बीजस्य निद्रव्यस्यापि देहिनः । कथं गुणा भविष्यन्ति निर्गुणत्वान्महात्मन ॥२३॥
गुणा गुणेषु जायन्ते तत्रैव विरमन्ति च । एव गुणा प्रकृतिजा जायते न च यान्ति च ॥२४॥
त्वदमास रुधिरमेद पित्त मज्जाऽस्थि स्नायु च । अष्टौ तान्यथ शुरुण जानीहि प्रावृत्तन वै ॥२५॥
गुमाश्चैवागुमाश्चैव स्त्रीलिङ्ग प्राकृत स्मृतम् । चायुरेण गुमाश्चैव रस इत्यभिधीयत ॥२६॥
अलिङ्गा 'प्रकृतिर्लिङ्गैरुपलभ्यते' साऽऽत्मजः । यथा गुण्यफलानित्य मूर्तं चामतयस्तथा ॥२७॥
एवमप्यनुमातेन स लिङ्गमुपलभ्यते । पञ्चविंशतिकस्तात लिङ्गेषु नियतात्मक ॥२८॥
अनादिनिधनोऽनन्त सवदर्शनकेवलः । केवलं त्वभिमानित्वादगुणेषु गुण उच्यते ॥२९॥
गुणा गुणवत सन्ति निर्गुणस्य कुतो गुणा । तस्मादेव विजानन्ति ये जना गुणदर्शिनः ॥३०॥

नरक को जाता है ॥१७॥ छिद्रा वेपी व्यक्ति तत्त्वतः निर्णय भी नहीं कर पाता है । राजन् ! आप जिसलिए तत्त्व को नहीं जानते हैं हस्तलिये सुनिधे । साख्य और योग में तत्त्वतः कुछ भी अंतर नहीं है । योग जो यतशक्ता है साख्य भी वहीं यतशक्ता है । जो साख्य और योग को एक समझता है वहीं बद्धिमान् है ॥१८२०॥ 'यथा मास रक्त मेद पित्त मज्जा अस्थि तथा स्नायु—ये इन्द्रियसम्बन्धी' हैं । द्रव्य से द्रव्य को इन्द्रिय से इन्द्रिय को देह से देह की ओर व 'अ' से बीज की निर्वृत्ति होती है । निरिन्द्रिय निर्वाण तथा निद्रव्य प्राणी से गुणों की उत्पत्ति नसे होगी ॥२१२३॥ गुण गुणों से उत्पन्न होते हैं और वहीं विराम करते हैं । इस प्रकार प्रकृति से गुण उत्पन्न होते हैं विष्णु वे फले नहीं जाते हैं ॥२४॥ त्वचा नाभि रक्त मेद पित्त मज्जा अस्थि स्नायु—ये आठो बीज से उत्पन्न होते हैं । पुरुष स्त्रीलिङ्ग तथा नपुंसक—ये तीन प्राकृतिक हैं । यह वायु पुरुष ही है और इसको रस कहते हैं ॥२५२६॥ प्रकृति अलिङ्ग है । आत्मजन्य लिङ्गों से वह उपलब्ध होती है । जैसे गुप्ता और फलों के नियम मूल रूप तथा अमूर्त रूप की उपलब्धि होती है इसी प्रकार अनुमान से वह लिङ्ग उपलब्ध होता है ॥२७३॥ तात ! पञ्चोक्ता तत्त्व जो आदि, अंत तथा मरण से रहित है और सभस्त दाना न एक है वह लिङ्गा भविष्यत्लिङ्ग है । वह केवल अभिमान से गुणों के बीच गुण बहलता है ॥२८२९॥ गुणवान् वे गुण होते हैं विष्णु के गुण ब्रह्मा से होंगे ? हस्तलिये जो व्यक्ति गुणदर्शी हैं वे ऐसा जानते हैं ॥३०॥ जब वह गुणवान् आत्मा इन प्राकृतिक गुणा का अभिमान करता है

१क ०ते । यायातप्येन । २ग साख्यैस्तदभिकथ्यते । ३न जायन्ते । ४क छ शुभम् । ५क रेत ।
६क ०लिङ्ग उप० । ७न ०ति चात्म० । ८ग ०त्यकम् । ख० । ९ग ०वलम् । के० । १०क ०ल
घलवानीयगुणे० । ११क ०गुणम् कु० ।

यदा त्वेय गुणानेतान्प्राकृतानभिमन्यते । तदा स 'गुणवानेव गुणभेदान्प्रपश्यति ॥३१॥
 यत्तदबुद्ध पर प्राहु साह्ययोग च सर्वस्य । बुध्यमानमहाप्राज्ञा प्रबुद्धपरिवर्जनात् ॥३२॥
 अप्रबुद्ध यथा व्यक्त स्वगुणं प्राहुरीश्वरम् । निर्गुण चश्वर नित्यमधिष्ठातारमेव च ॥३३॥
 प्रकृतेश्च गुणानां च पञ्चविंशतिकं बुधा । साह्ययोगे च कुशला बुध्यन्ते परमेषिण ॥३४॥
 यदा प्रबुद्धमव्यक्तमवस्थात् (प) ननी (भी) रव । 'बुध्यमान न बुध्यन्तेऽवगच्छन्ति सम' तदा ॥३५॥
 एतन्निदर्शनं 'सम्यग्जनं सम्यगनुद्शनम् । बुध्यमानं प्रबुध्यन्ते द्वाभ्यां पृथग्विदम् ॥३६॥
 परस्परगतदुवत् क्षराक्षरनिदर्शनम् । एकत्वमक्षरं प्राहुर्नामत्वं क्षरमुच्यते ॥३७॥
 'पञ्चविंशतिनिष्ठोऽयं तदा सम्यगप्रचक्षते । एकत्वदर्शनं चास्य नानात्वं चास्य दर्शनम् ॥३८॥
 'तत्त्ववित्तत्त्वयोरव पृथग्वत्निदर्शनम् । पञ्चविंशतिभिस्तत्त्व तत्त्वमाहुर्मनीषिण ॥३९॥
 निस्तत्त्व पञ्चविंशस्य परमाहुर्मनीषिण । धर्म्यस्य 'धर्म्यमाचार' तत्त्व तत्त्वात्सनातनम् ॥४०॥

करालजनक उवाच

नानातृकत्वमित्युक्तं त्वयैतदद्विजसत्तम । पश्यतस्तद्दि सदिग्धमेतयोर्वं निदर्शनम् ॥४१॥
 तथा 'बुद्धप्रबुद्धाभ्यां' बुध्यमानस्य धानघ । स्थूलसुक्ष्मा न पश्यामि तत्त्वमतन्न सशय ॥४२॥
 अक्षरक्षरयोर्वत् त्वया यदपि कारणम् । तदप्यस्थिरबुद्धित्वात्प्रगष्टमिव भेज्जघ ॥४३॥

तब यह गुण भेदों को देखता है । महापंडितों ने कहा है कि साक्ष्य और योग बुद्धि से परे होत हुए भी समझे जाते हैं । साक्ष्य और योग में प्रवीण विद्वान् अप्रबुद्ध अव्यक्त ईश्वर निर्गुण नित्य तथा अधिष्ठाता परमात्मा को जो प्रकृति तथा गुणों का पचीसवाँ तत्त्व है जानते हैं । अब प्रबुद्ध और अव्यक्त आत्मा को अवस्थित करने से भी पुरुष जाने जाते हुए आत्मा को नहीं जानते हैं तब वे सम साक्ष को जानते हैं । यह सम्यक् दृष्टान्त है न कि सम्यक् निरीक्षण । हे शत्रुघ्न का दर्शन करने वाले ! तत्त्ववेत्ता जन इन दोनों से पृथक् बुद्धिमान् आत्मा को जानते हैं ॥३१-३६॥ क्षर और अक्षर का निदर्शन परस्पर बतलाया गया है । एवम् अक्षर को बहुत हैं और नानात्व क्षर को कहते हैं । जीव पचीसवें तत्त्व में प्रतिष्ठ होन पर एकत्व तथा नानात्व का दर्शन करता है । तत्त्ववेत्ता और तत्त्व के बारे में ही यह दृष्टान्त बतलाया गया है । मनीषिणा ये पचीस तत्त्व बतलाये हैं परंतु पचीसवें तत्त्व को निस्तत्त्व कहा गया है । वजनीय वा वजनीय आचार तत्त्व से बदलने सनातन तत्त्व है ॥४०॥

करालजनक बोले—द्विजपृष्ठ ! आपने नानात्व तथा एवत्वं का बारे में कहा है । परंतु दोनों में दृष्टान्त में मूढा सदेह है । मैं मन्दबुद्धि होने के कारण इस तत्त्व को नहीं समझ रहा हूँ । निष्ठाप ! अक्षर और क्षर का कारण जो आपने बतलाया वह भी पञ्चलबुद्धि होने के कारण मैं नहीं समझ सका । इसलिये नानात्व तथा एवत्वं

१ग ०व परमेनावयः २ग ०य । प्रबुद्धिमा महाप्राज्ञ प्र० ॥३१ ०माने न । ४ग ०न्ते नयः ॥५ग मयः ॥ ६ग ०म्यग्य पदशतद० । ७ग ०विविष्णोऽयं । ८ग सद्भिस्तत्त्व० । ९ग वमस्य । १०ग सर्वमात्मनः ० । ११ग बुद्ध प्र० । १२ग ०दास्या बु० ।

तदेतच्छ्रोतुमिच्छामि नानास्वकत्वदर्शनम् । इदं, चैवानिदं च बुध्यमानं च तत्त्वतः ॥४४॥
विद्याविद्ये च भगवन्नक्षरं क्षरमेव च । सांख्यमार्गं च कृत्स्नेन बुद्धाबुद्धिं पृथक्पृथक् ॥४५॥

वसिष्ठ उवाच ।

हन्त ते संप्रवक्ष्यामि यदेतदनुपृच्छसि । योगकृत्यं महाराज पृथगेव शृणुष्व मे ॥४६॥
योगकृत्यं तु योगानां ध्यानमेव परं बलम् । तत्त्वापि द्विविधं ध्यानमाहुर्विद्याविदो जनाः ॥४७॥
एकाग्रता च मनसः प्राणायामस्तथैव च । प्राणायामस्तु सगुणो निर्गुणो मानसस्तथा ॥४८॥
मूर्धोत्तारं पुरीषे च भोजने च नराधिप (?) । द्विकालं नोपभुञ्जीत शेषं भुञ्जीत तत्परः ॥४९॥
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यो निवर्त्य मनसा मुनिः । दशहोदशभिर्वापि चतुर्विंशत्परं यतः ॥५०॥
स चोदनाभिर्मतिमान्नास्त्मानं चोदयेदयम् । तिष्ठन्तमजरं तं तु यत्तदुक्तं मनोपिभिः ॥५१॥
विद्यात्मा सततं ज्ञेय इत्येवमनुशुश्रुम् । द्रव्यं ह्यहोहीनमतसो नाग्नयेति विनिश्चयः ॥५२॥
विमुक्तः सर्वसङ्गेभ्यो लयाहारो जितेन्द्रियः । पूर्वरात्रे परार्धे च धारयति मनो हवि ॥५३॥
स्थिराकृत्यैन्द्रियग्रामं मनसा मयिलेश्वर । मनो बुद्ध्या स्थिरं कृत्वा पापाण इव निश्चलः ॥५४॥

४४ दर्शनं मुने वतलाइये । भगवन् । इदं, अनिदं, बुध्यमानं, विद्या, अविद्या, अक्षर, क्षर, सांख्य योग, बुद्धि और अबुद्धि को पृथक्-पृथक् यतलाइये ॥४१-४५॥

वसिष्ठ बोले—अच्छा । जो आपने पूछा है, वह मैं बतलाऊँगा । महाराज । योग-कार्य को अलग ही बात खोजिए ॥४६॥ योग का ध्यान ही परम बल है । विद्वानों का कहना है कि ध्यान दो प्रकार के होते हैं—एक मन की एकाग्रता और दूसरा प्राणायाम । प्राणायाम सगुण होता है और मानसिक एकाग्रता निर्गुण होता है ॥४७-४८॥ नराधिप । मल-मूत्र त्यागने के समय तथा भोजन-काल में (?) प्राणायाम नहीं करना चाहिये । प्रातः-सायंकाल में भोजन नहीं करना चाहिये । अन्य काल में सावधान होकर भोजन करे ॥४९॥ मुनि विषयी से इन्द्रियो को मन से रोककर दस, बारह या चौबीस तत्त्वा से परे आत्मा का भजन करे । वह बुद्धिमान् वर्तमान क्षण अजर आत्मा को प्रेरणाओं (सात्वतोददेशो) से उत्तेजित (तर्क-वितर्क-शील) न करे ऐसा मनोविषयी ने कहा है । (?) विद्याव्रता का ज्ञान सतत रहना चाहिये, ऐसा हमने सुना है ॥५०-५१॥ यह निश्चित बात है कि मन को बस में करने पर ही आत्मज्ञान होता है । सब प्रकार की आत्मविन्यासे विमुक्त तथा जितेन्द्रिय होकर अल्प आहार करते हुए पूर्वरात्रि में एवम् अपर रात्रि में हृदय में मन का धारण करे ॥५२-५३॥ मयिलेश्वर । मन से इन्द्रिय-समूह को स्थिर करके बुद्धि से मन को पापाण की तरह स्थिर करते हुए निश्चल हो जाय ॥५४॥ स्थाणु की तरह निष्कम्प और दाब में समान अचल होना चाहिये । इस प्रकार बुद्धि से विधि-

१ग००॥ बुद्धं महात्मबुद्धं च बु० । २क च सांख्येन पृथक्त्वेन पृथक्त्विति । ब० । ३क० ०त्यं तु योगेन ध्यात० । ४न० ०पि उद्विगताञ्च आह० । ५क ०याम् सत्त्वगु० । ६क उत्तम । ७क ०पि पञ्चविद्या० । ८न० ०रतप । सवासदिभि० । ९क ०वत्त्वं तु । १०क ह्यहीन० । ११क लघुवागभि० । १२क वाचयित्वा

[स्याणुवच्चाप्यकम्प्यः 'स्याद्वाप्यच्चापि निश्चल । बुद्ध्या विधिविधानशस्ततो युक्तं 'प्रचक्षते ॥५५॥
 न शृणोति न चाऽऽद्याति 'न च पश्यति किंचन । न च स्पशे विज्ञानाति न च सकल्पते मनः ॥५६॥
 न चापि' मन्यते किंचिन्न च बुध्येत' काष्ठयत् । तदा प्रकृतिमापन्नं युक्तमाहुर्मनीषिणः ॥५७॥
 न भाति हि यथा दीपो' दीप्तिस्तद्वच्च दृश्यते । निलिङ्गश्चाधश्चोर्ध्वं च तिर्यग्गतिमवाप्नुयात् ॥५८॥
 तदा तदुपपन्नश्च यस्मिन्दृष्टे च कम्प्यते । हृदयस्योन्तरात्मेति शेषो ज्ञस्तात मद्विष्ये ॥५९॥
 निर्धूम इव सप्ताचिरादित्य इव रश्मिवान् । वैद्युतोऽग्निरिवाऽकाशे पश्यत्यात्मानमात्मनि ॥६०॥
 य पश्यन्ति महात्मानो धृतिमन्तो मनीषिणः । ब्राह्मणा ब्रह्मयोनिरथा ह्यधयोनिममृतात्मकम् ॥६१॥
 तदेवाऽऽहुरणुभ्योऽणु तन्महद्भ्यो महत्तरम् । सर्वत्र सर्वभूतेषु ध्रुव तिष्ठन्न दृश्यते ॥६२॥
 'बुद्धिद्वयेण दृश्येन मनोदीपेन लोकवृत् । महत्तममसरतात पारं तिष्ठन्न तामसः ॥६३॥
 तमसो हूर इत्युक्तस्तत्त्वज्ञेर्वेदपारगं । विमलो विमलश्चैव निलिङ्गोऽलिङ्गसज्जकः ॥६४॥
 योग एव हि लोकानां किमन्यद्योगलक्षणम् । एव पश्यन्प्रपश्येन आत्मानमजर परम् ॥६५॥
 योगदर्शनमेतावदुक्तं ते तत्त्वतो मया । साध्यज्ञानं प्रवक्ष्यामि परितरह्यानिदर्शनम् ॥६६॥

विधान को जानने वाला योताभ्यास करे ॥५५॥ जब यागी न सुगता है न सुपता है न देखता है न स्पश को जानता है न श्रवण करता है न मानता है और न काष्ठ की तरह कुछ समझता ही है तब वह प्रकृति का प्राप्त कर लता है ऐसा विद्वाना ने कहा है ॥५७॥ जैसे दीपक यदि बहिया मड़ी है तो उसका प्रकाश भी अच्छा नहीं होगा । दीप की ऊपर नीचे तथा अघर में मड़ी भी रसिए, उसकी ली की गति सदा ठड़ी रहेगी । उसी तरह स्वच्छ अन्त करण में आत्मा प्रकाशित होता है (?) तात । ज्ञात रूप जो आत्मा है उसी को हम लोग हृदयस्थित अन्तरात्मा समझ ॥५९-५९॥ निर्धूम अग्नि के समान, रश्मिमुक्त आदित्य के समान और आवास में विद्युलता के अग्नि के समान आत्मा में आत्मा को देखना चाहिए ॥६०॥ धीर भवापी, ब्रह्मज्ञ तथा महात्मा ब्राह्मण जित अयानिज तथा अमृतरूप आत्मा को देखते हैं वही आत्मा सूक्ष्म से भी सूक्ष्म और महान् से भी महान् है । वह समस्त भूता में निषण्ण होता रहता हुआ भी देखा नहीं जाता है ॥६१-६२॥ बुद्धि रूपा द्वय के सद्व्याप से भन रूपी दीप के द्वारा आत्मा को देखना चाहिये । आत्मा महान् तम से परे रहने के कारण तामस नहीं कहलाता है ॥६३॥ वेदपारगत तत्त्वज्ञान में आत्मा को तम से दूर, तथा निलिप्त कहा है ॥६४॥ लोग में मड़ी याम का लक्षण है । दूसरा क्या को सकता है ? यह विचार कर अजर तथा पर आत्मा को देखना चाहिये ॥६५॥ इतना यो गदान में मीने आप को तत्त्वपूवक बतला दिया, अब परितरह्याविधि (विभक्त विहित विधि के अतिरिक्त अन्य पस्तु का निषेध हो जाता है) के प्रमाण से साक्ष्यदर्शन का प्रवचन कहेंगे ॥६६॥ नृपथ्येष्ट । साध्य में आत्मा को परा प्रकृति को

१क निरप । २ग न रस्यति न पश्यति । न । ३क चावय० । ४ग दृष्यति । ५ग ०ण । निवाते हि ।
 ६ग दीप्यदीप्तो दीप प्रद० । ७व ०दिदृश्येत मानादि येन सत्त्वोर्वाहृतम् । म० । ग ०दि-
 द्रव्ये० । ८व ०प्रनामय । ० । ९क योगानां । १०क साध्ययोग ।

अन्यस्तमाहुः 'प्रख्यातं परं प्रकृतिमात्मनः। तस्मान्महत्तममुत्पन्नं द्वितीयं राजसत्तम ॥६७॥
 अहंकारस्तु महत्तमस्तृतीय इति नः श्रुतम्। पञ्चभूताण्यहंकारादाहुः 'सांख्यमात्मदर्शनः ॥६८॥
 एताः प्रकृतयस्त्वष्टी विकाराश्चापि षोडश। पञ्च चैव विशेषाश्च तथा पञ्चेन्द्रियाणि च ॥६९॥
 एतावदेव तत्त्वानां सांख्यमाहुर्मनीषिणः। सांख्ये सांख्यविधानज्ञा नित्यं सांख्यपथे स्थिताः ॥७०॥
 यस्माद्यदभिजायेत तत्तत्रैव प्रलीयते। लीयन्ते प्रतिलोमानि 'गृह्यन्ते चान्तरात्मना ॥७१॥
 अनुलोम्येन जायन्ते लीयन्ते प्रतिलोमतः। गुणा गुणेषु सततं सागरस्योर्मयो यथा ॥७२॥
 सगंप्रलय एतावान्प्रकृतेर्नृपसत्तम। एकत्व प्रलये चास्य बहुत्वं च तथा सृजि ॥७३॥
 एयमेव च राजेन्द्र विज्ञेयं ज्ञानकोविदः। अधिष्ठातारमव्यक्तमस्याप्येतन्निदर्शनम् ॥७४॥
 एकत्वं च बहुत्वं च प्रकृतेरनुत्स्ववान्। एकत्व प्रलये चास्य बहुत्वं च प्रवर्तनात् ॥७५॥
 बहुयाऽऽत्मा प्रकुर्वीत प्रकृतिं प्रसयात्मिकाम्। तत्त्व क्षेत्रं महानात्मा पञ्चांशोऽर्जपिच्छति ॥७६॥
 अधिष्ठानेन राजेन्द्र प्रोच्यते यनिसत्तमैः। अधिष्ठानादधिष्ठाता क्षेत्राणामिति न श्रुतम् ॥७७॥
 क्षेत्रं जानानि चाव्यक्तं क्षेत्रज्ञ इति चोच्यते। अव्यक्तं कं पुरे क्षेत्रे पुरुषश्चेति कथ्यते ॥७८॥
 अन्यदेव च क्षेत्रं स्याव्यक्तं क्षेत्रज्ञ उच्यते। क्षेत्रमव्यक्तं इत्युक्तं ज्ञातार पञ्चविंशकम् ॥७९॥

अव्यक्त पुरुष कहा गया है। उससे महत्तम की उत्पत्ति हुई जो द्वितीय है ॥६७॥ महान् में अहंकार उत्पन्न हुआ जो तृतीय है ऐसा हमने सुना है। और अहंकार से पञ्चभूतों की सृष्टि हुई, ऐसा सांख्यमात्रदर्शियों का कहना है ॥६८॥ ये आठ प्रकृतिपाँ हैं और सोलह विकार हैं। पाँच विशेष (पदार्थभेद) और पाँच इन्द्रियाँ हैं ॥६९॥ मनीषियों ने सांख्य मतस्था की इतनी ही सख्या बतायी है। सांख्य के विधान को जानने वाले व्यक्ति नित्य सांख्य-पथ पर दृढ़ रहते हैं ॥७०॥ जिससे जिसकी उत्पत्ति होती है वही उसका लय होता है। प्रतिलोम लीन हो जाते हैं और अन्तरात्मा द्वारा उनका ग्रहण किया जाता है ॥७१॥ सागर की लहरों की तरह गुण गुणा में अनुलोम भाव से उत्पन्न होते हैं और प्रतिलोम भाव से लय को प्राप्त करते हैं ॥७२॥ महाराज ! प्रकृति का वही सगंप्रलय है। प्रलय में इसका एकत्व और सृष्टि में बहुत्व जाना गया है ॥७३॥ राजेन्द्र ! इस प्रकार जानिये को समझना चाहिये कि इसका अधिष्ठाता अव्यक्त का भी वही निदर्शन है ॥७४॥ प्रकृति की एकता और अनेकता होती है। एकता प्रलय में और अनेकता सृष्टिकाल में होती है ॥७५॥ बहुधा आत्मा प्रकृति से प्रसव कराता है। उन क्षेत्र को पञ्चांशवा तत्त्व—महान् आत्मा—व्यापक करने स्थित होता है ॥७६॥ नृपेन्द्र ! यतिवर्गों ने महान् आत्मा को अधिष्ठाता कहा है। क्षेत्र का अधिष्ठान करने से यह अधिष्ठाता बहत्वात है, ऐसा हमने सुना है ॥७७॥ अव्यक्त क्षेत्र के जानने से इसका नाम क्षेत्रज्ञ पड़ा। अव्यक्त पुरुष सोने से इसका नाम पुरुष है ॥७८॥ क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ में अन्तर है। क्षेत्र अव्यक्त का नाम है और क्षेत्रज्ञ पञ्चोक्त तत्त्व कहलाता है ॥७९॥ ज्ञान और ज्ञय में भी अन्तर

१ग प्रकृति । २ग •विवादिक । ३क सांख्यविचारदा । ए० । ४ग सृज्यन्ते । ५क प्रीतये । ६क. •सांख्य तत् । ए० । ७क दत्त्वर्थे० । ८क स •कत क्षेत्रों व पञ्चविंशक । स० ।

अन्यदेव च ज्ञान स्यादन्यज्ज्ञेयं तदुच्यते । ज्ञानमव्यक्तमित्युक्तं ज्ञेयो वै पञ्चविंशक ॥८०॥
 अव्यक्त क्षेत्रमित्युक्तं तथा सत्त्वं तयैश्वरम् । अनैश्वरमतत्त्वं च तत्त्वं तत्पञ्चविंशकम् ॥८१॥
 साक्ष्यदर्शनमेतावत्परिसरस्या न विद्यते । सख्या प्रकृते चैव प्रकृति च प्रवक्ष्यते ॥८२॥
 चत्वारिंशच्चतुर्विंशत्प्रतिसख्याय तत्त्वतः । सख्या सहस्रकृत्यां तु निस्तत्त्वं पञ्चविंशक ॥८३॥
 पञ्चविंशत्प्रबुद्धात्मा बुध्यमान इति श्रुतः । यदा बुध्यति आत्मानं तदा भवति वैवल ॥८४॥
 सम्यग्दर्शनमेतावद्भाषितं तव तत्त्वतः । एवमेतद्विज्ञानान्तं साम्यता प्रतिपाद्यते ॥८५॥
 सम्यग्दर्शनं नाम प्रत्यक्षं प्रकृतेस्तथा । गुणवत्त्वाद्ययैतानि निर्गुणेभ्यस्तथा भवेत् ॥८६॥
 न त्वेव वर्तमानानामावृत्तिर्वर्तते पुनः । विद्यते क्षरभावश्च न परस्परमव्ययम् ॥८७॥
 'अक्षय्यममृतयो ये न सम्यक्तेषु च दर्शनम् । ते व्यक्तं प्रतिपद्यन्ते पुनः पुनररिदम् ॥८८॥
 सर्वमेतद्विज्ञानान्तं न सर्वस्य प्रबोधनात् । व्यक्तभूता भविष्यन्ति' व्यक्तस्यैवानुवर्तनात् ॥८९॥
 "सर्वमव्यक्तमित्युक्तमसर्वं पञ्चविंशकः" । य एवमभिजानन्ति न भय तेषु विद्यते ॥९०॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे वसिष्ठकलालजनकसंवादे

त्रिचत्वारिंशदधिकद्विंशततमोऽध्यायः ॥२४३॥

है। ज्ञान अव्यक्त है और क्षेत्र पचीसवाँ तत्त्व है ॥८०॥ क्षेत्र अव्यक्त कहलाता है और सत्त्वं ईश्वर कहलाता है। साक्ष्यदर्शन अनैश्वरवादी और तत्त्व से रहित है। अथवा उसमें पचीस तत्त्व माने गये हैं। अथवा उसकी गिनती नहीं है। अथवा यह गिनता करता ही है और प्रकृति को बदलाता है। अथवा चौवालीस या पचीस सख्या है। अथवा तत्त्वतः सहस्रों सख्या हैं अथवा निस्तत्त्व पचीस सख्या है (?) ॥८१-८३॥ पचासवाँ प्रबुद्धात्मा बुध्यमान कहलाता है। जब वह आत्मा को जानता है तब एक हो जाता है ॥८४॥ इस दर्शन को तत्त्वपूर्वक आपस बतला दिया। इससे जानने वाले सभता को प्राप्त करते हैं ॥८५॥ प्रकृति का प्रत्यक्ष होना अच्छा उदाहरण है। जैसे ये गुण स होते हैं वैसे निर्गुण से भा। किन्तु इस प्रकार वर्तमान रहने वालों की आवृत्ति पुन नहीं होती है। और उसका परस्पर नाश भी होता है। वे अविनाशी नहीं हैं। (?) ॥८६-८७॥

राजन् ! जाग्रताहल भन्व्य इस दर्शन को नहीं जानता है वह बार-बार क्षरभाव को प्राप्त करता है ॥८८॥ व्यक्त से जानने वाले व्यक्त भाव को ही प्राप्त करते हैं। 'सकल पदार्थ अव्यक्त है वैवल पचीसवाँ तत्त्व ही व्यक्त है—एसा जो जगते हैं उह मय नहीं होता ॥८९-९०॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में वसिष्ठ और कलालजनक के संवादे
 दो सौ तीतालीसवाँ अध्याय समाप्त ॥२४३॥

१क स ०कत तथा वै । २ख तन्तृत्वमेकविं । ३घ प्रवक्षते । ४स ०सप्रकृत्या नि० ।
 ५ग ०बुद्धया यो बु० । ६ख स्मृत । ७घ वैवलम् । ८ग ०णतत्त्वापद्य० । ९ग ०त्ययैकम० ।
 १०स ० तो मयान्सर्वप्र० । ११ख प्रविशति । १२घ ०वात्स्यदर्शना० । १३ख ०क्षुक्त च सर्वं य० ।
 १४स ०क्रम् । य ।

अथ चतुश्चत्वारिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः

विद्याविद्ययोः स्वरूपकथनम्

वसिष्ठ उवाच

सांख्यदर्शनमेतावदुक्तं ते नृपसत्तम । विद्याविद्ये त्विदानीं मे त्वं निबोधानुपूर्वशः ॥१॥
अभेद्यमाहुरव्यक्तं सर्गप्रलयधर्मिणः । सर्वप्रलय इत्युक्तं विद्याविद्ये च विदाकः ॥२॥
परस्परस्य विद्या वै तन्निबोधानुपूर्वशः । यथोक्तमपिभिस्तात सांख्यस्यातिनिदर्शनम् ॥३॥
कर्मन्द्रियाणां सर्वेषां विद्या बुद्धीन्द्रियं स्मृतम् । बुद्धीन्द्रियाणां च तथा विद्या इति नः श्रुतम् ॥४॥
विषयाणां मनस्तेषां विद्यामाहुर्मनीषिणः । मनसः पञ्च भूतानि विद्या इत्यभिचक्षते ॥५॥
अहंकारस्तु भूतानां पञ्चानां नात्र संशयः । अहंकारस्तथा विद्या बुद्धिर्विद्या नरेश्वर ॥६॥
धृद्ध्या प्रकृतिरव्यक्तं तत्त्वात् परमेश्वरः । विद्या ज्ञेया नरधेष्ठ विधिश्च परमः स्मृतः ॥७॥
'अव्यक्तमपरं प्राहुर्विद्या वै पञ्चविशक' । सर्वस्य सर्वमित्युक्तं ज्ञेयज्ञानस्य पारम्यः ॥८॥
ज्ञानमव्यक्तमित्युक्तं ज्ञेयं वै पञ्चविशकम् । तथैव ज्ञानमव्यक्तं विज्ञाता पञ्चविशकः ॥९॥

अध्याय २४४

विद्या और अविद्या के स्वरूप का वर्णन

वसिष्ठ बोले—नृपवर १ अब तक आपसे जो कुछ कहा गया वह सांख्य दर्शन के विषय में था, अब विद्या और अविद्या के विषय में मैं कह रहा हूँ, इसकी आनुपूर्वी (अवरोध) आप सुनिये ॥१॥ सृष्टि और प्रलय-धर्मों का स्वरूप अभेद्य और अव्यक्त कहा गया है। इसी प्रकार सर्ग प्रलय और विद्या तथा अविद्या कीस प्रकार की कही गई है ॥२॥ तात ! पहले परस्पर की विद्या को आनुपूर्वीरूप से जान लो जैसा कि ऋषियों ने सांख्य की प्रमाण मान कर कहा है ॥३॥ सब कर्मन्द्रियों के लिये विद्या ज्ञानेन्द्रिय है और ज्ञानेन्द्रियों के लिए वह विद्योप करतु है, ऐसा हमने सुना है ॥४॥ इसी प्रकार मनीषियों ने उन (इन्द्रियों) के विषया के लिये मन को विद्या कहा है और मन की विद्या पाँच महामूर्तों को माना है ॥५॥ पाँचों महामूर्तों की विद्या अहंकार है इसमें तनिक भी सन्देह नहीं । नरेश्वर ! इसी प्रकार अहंकार की विद्या बुद्धि है। बुद्धि की प्रकृति और प्रवृत्ति (अव्यक्त तत्त्वों) की विद्या परमेश्वर है। नरधेष्ठ ! विधि को तो परम विद्या कहा गया है ॥ ६-७॥ अपरधर्मों के अव्यक्त को भी विद्या कहा गया है। सब के सब, एवं ज्ञेय और ज्ञान के पारमार्थी (गुरु) को विद्या कहा गया है ॥८॥ ज्ञान को अव्यक्त कहा गया है, ज्ञेय के पक्षों से भेद है। इसी प्रकार अव्यक्त ज्ञान के एव विद्या के भी पक्षों से भेद कहे गये हैं। उपर्युक्त विद्योप

१ख. ०पर द्विधा चैतस्व निबो० । २ख ०स्यामितिवेदन० । ३ख. ०वतस्य प० । ४ख. ०यहम् । स। ५ ०मित्युक्त ।

विद्याविद्ये' तु तत्त्वेन मयोक्ते' वै विज्ञेयतः। अक्षरं च क्षरं चैव यदुक्तं तन्निबोध मे ॥१०॥
 उभावेतौ क्षराद्युक्तौ उभावेतावन् (या) क्षरौ। कारणं तु प्रवक्ष्यामि' यथाज्ञानं तु ज्ञानतः ॥११॥
 अनादिनिधनावेतौ उभावेवेद्वयौ मतौ। 'तत्त्वसंज्ञावुभावेव प्रोच्यते ज्ञानचिन्तकं' ॥१२॥
 सर्गप्रलयधर्मित्वादव्यक्तं प्राहुरव्ययम्। तदेतद्गुणसर्गाय' विकुर्वीणं पुनः पुनः ॥१३॥
 गुणानां महादोनामृत्पद्यति परस्परम्। अविच्छिन्नं क्षेत्रमाहुरेतदं पञ्चविंशकम् ॥१४॥
 'यद्वन्तर्गुणजालं' तु तदव्यक्तात्मनि सक्षिपेत्। तदहं तद्गुणैस्तत्तु पञ्चविंशते विलीयते ॥१५॥
 गुणा गुणेषु लीयन्ते तदेका प्रकृतिर्भवेत्। क्षेत्रज्ञोऽपि तदा 'सात्वत्क्षेत्रज्ञः' संप्रणीयते ॥१६॥
 यदाऽक्षरं प्रकृतियं गच्छते गुणसंज्ञिता। निर्गुणत्वं च वै देहे गुणेषु परिवर्तनात् ॥१७॥
 एवमेव च क्षेत्रज्ञ क्षेत्रज्ञानपरिक्षयात्। प्रकृत्या निर्गुणस्त्वेष इत्येवमनुशुश्रुम् ॥१८॥
 क्षरो भवत्येष यदा गुणवती गुणैवय"। प्रकृतिं त्वय ज्ञाति निर्गुणत्वं तथात्मनः ॥१९॥
 तथा" विमृद्धो भवति प्रकृते परिवर्तनात्। अन्योऽहमन्येयमिति यदा बुध्यति बुद्धिमान् ॥२०॥
 तदप्योऽव्ययतामेति न च मिश्रत्वमात्रजेत्। प्रकृत्या चैव राजेन्द्र "मिथोऽप्योऽव्ययस्य दृश्यते ॥२१॥

प्रकार से मैंने विद्या और विद्या के विषय में तत्त्वतः कह दिया। अब जो क्षर और अक्षर के विषय में मैं कह रहा हूँ, उसका सुना। य दोनों ज्ञान और ज्ञय (प्रकृतियुक्त) (विद्या, अविद्या) क्षर और अक्षर दोनों कह गये हैं, इसका कारण मैं अपनी बुद्धि के अनुसार कह रहा हूँ। ये दोनों अनादि और निधन (नाश-शील) एव दोनों ही ईश्वर (समय) माने गये हैं। इसी प्रकार तत्त्वचिन्तका ने दोनों को तत्त्व नाम से कहा है ॥१०-११॥ सग और प्रलय धर्मी होने के कारण अव्यक्त को अव्यक्त कहा गया है। यह अव्यक्त गुण सृष्टि के लिये बार-बार विहृत (विकार को प्राप्त) होता है ॥१२॥ महाबाहो गुणों की उत्पत्ति परस्पर में संयोग से होती है। इन पञ्चों प्रकार के गुणों को ही अविच्छिन्न क्षेत्र कहा गया है ॥१४॥ जो अन्तर्गुणों का समूह है वह उस अव्यक्त आत्मा में सक्षिप्त हो जाता है। वह अहं उन गुणों के साथ पचीस तत्त्वा में विलीन हो जाता है ॥१५॥ जब गुण अन्य गुणों में लीन हो जाते हैं तब एक प्रकृति के हो जाते हैं। उस समय क्षेत्र में क्षेत्रज्ञ के रूप में उत्पन्न हो जाता है। जब अक्षर में गुण सत्ता से प्रसिद्ध प्रकृति लीन हो जाती है तब क्षरी शरीर में गुणों के परिवर्तन होने से निर्गुणत्व को प्राप्त होती है। इसी प्रकार क्षेत्र ज्ञान के साथ होने से क्षेत्रज्ञ प्रकृति निर्गुण हो जाता है ऐसा सुना गया है। यह क्षेत्रज्ञ जब गुणवती प्रकृति में गुणों में विलीन होता है तब क्षर हो जाता है, यद्यपि वह प्रकृति और अपने निर्गुणत्व को भली भाँति जानता है। जब बुद्धिमान् पुरुष में अन्य है, वह प्रकृति अन्य है' इस बात को जान लेता है तब वह प्रकृति (माया) के परित्याग से मुक्त हो जाता है ॥१६-२०॥ वह पान्ति का अनुभव करता है और पुनः ससर्वं म नहीं आता है। राजेन्द्र! वह प्रकृति से अय-अय के साथ मिला हुआ सा दीप्त पदता है ॥२१॥ जब वह उस प्राश्य गुण-समूह से मुँह पर लेता

१ग ० विचार्यतः। २ग ० योक्तान्वयि०। ३स ० भाविज्ञानज्ञा। ४ग ० साईमावेन प्री०।

५स. ० संप्रियाय। ६ग ० टानातोय०। ७ग यद्यन्तः। ८ग ० ल तदव्यक्ता०। ९ग तातलते क्षेत्र०। १०स.

० ज्ञानं परिसयेत्। य०। ११स ० इतिस्त्यय०। १२स ० वाजनिनु०। १३स मिथ्याऽप्येव य ५०।

यदा तु गुणजाल तत्प्राकृत विजुगुप्सते । पश्यते च पर पश्यस्तदा पश्यन्तु ससृजेत् ॥२२॥
किं मया कृतमेवावशोऽहं कालनिमज्जन । यथा मत्स्यो ह्यधमिज्ञानादनुवर्तितवाञ्जलम् ॥२३॥
अहमेव हि समोहादन्यमन्य जनाञ्जनम् । मत्स्यो यथोदकज्ञानादनुवर्तितवानिह ॥२४॥
'मत्स्योऽन्यत्वमयाज्ञानादुदकाभ्रमभिमन्यते' । आत्मान 'तदवज्ञानादन्य' चैव न वेदस्यहम् ॥२५॥
ममास्तु धिक्कुबुद्धस्य योऽहं भग्न इमं पुन । अनुवर्तितवान्मोहादन्यमन्य जनाञ्जनम् ॥२६॥
'अयमनुभवेद्बन्धुरनेन सह मे क्षयम् । साम्यमेकत्वता यातो यादृशस्तादृशस्त्वहम् ॥२७॥
तुल्यतामिह पश्यामि सदृशोऽहमनेन वै । अयं हि विमलो व्यक्तमहमोदृशकस्तदा ॥२८॥
योऽहमज्ञानसमोहादज्ञया सप्रवृत्तवान् । 'ससर्गादितिसर्गात्स्थित कालमिमं त्वहम् ॥२९॥
सोऽहमेव वशीभूत कालमेतं न बुद्धवान्' । उत्तमाधममध्याना तामिह कथमावसे ॥३०॥
समानमायया चेहं सहवासमहं कथम् । गच्छाम्यबुद्धभावत्वादिहेदानां स्थिरो भव ॥३१॥
सहवासं न यास्यामि कालमेतं विवञ्चनात् । यच्चित्तो ह्यनया यदि निर्विचारो विकारया ॥३२॥
न तत्तदपराद्धं स्यादपराधो ह्ययं मम । योऽहमज्ञाभव सवत् पराद्धमुखमुपस्थित ॥३३॥

है तब वह पर-स्वरूप का देयन स्वता है और तब वह उस मत्स्य की भांति जो जल को ही केवल जानता है और उसी में इधर उधर घूमता रहता है। सृष्टि भी करने स्वता है क्योंकि वह सोचने लगता है कि क्या मैंने समय के बराबर होकर अब तक इतना ही कार्य किया है। मैं भी मोहवश मत्स्य की भांति केवल भ्रान्त्यागतिक कार्य करता रहा। जिस प्रकार मछली जल व अतिरिक्त और किसी पदार्थ को नहीं जानती है उसी प्रकार मैंने भी भ्रम-अज्ञान के कारण अल्प पदार्थों का ज्ञान नहीं प्राप्त किया ॥२३-२५॥ मेरे समान कुटुम्भिकों को विषकार है कि अब तक मैं केवल इसी में मग्न रहा इस (प्रकृति) का अनुगामी बना रहा। अब इस अज्ञान व साथ ही मेरी वस्तुता हो गई, इसके साथ मेरा क्षय भी होगा। इसके साथ मेरा साम्प्य और एकत्वानुभूति हो गई, जैसा यह है वैसा मैं भी हो गया। मुझ तो अब इसी की समानता दिखाई देती है प्रत्यक्ष होता है कि इसके सत्तण से मैं इसी के समान हो गया ॥२६-२८॥ जो मैं अज्ञानवश इस मोहवश प्रकृति के पीछे बाँझा रहा और इसके अनिष्ट सत्तण से उत्तरे समय तब अपने को मुखावे में रखा इसके लिये विषकार है। ऐसा अज्ञानी मैं इसने बराबर होकर तो उत्तरे समय तब अपने को मुखावे में रखा इसके लिये विषकार है। ऐसा अज्ञानी मैं इसने बराबर होकर मायावाली इस प्रकृति के साथ अब मैं किस प्रकार नाता जोड़ सकता हूँ। इस समय मेरा सारा मोह अपनी अज्ञानता के साथ यही रह। अब मैं वर्षों भी काल का व्यञ्जनता म पटक इस प्रकृति व साहचर्य स्वीकार नहीं करूँगा। विचार युक्त होकर मैं इसने इतने दिनों तब निर्विकार मुझको वञ्चित रखा अब पुनः इस साहचर्य में नहीं फँसेगा। यह इसका अपराध नहीं सारा दोष मेरा है जो कि मैं यह ज्ञान-मन्त्रमुग्ध हो आसक्त मात्र से समय बिताता रहा ॥३१-३३॥ अब तक अमृत मैं बहुत रूप धारण कर इस मोह-निर्दिष्ट मेरे साक्षात् मूर्तिक रूप में स्थित रहा।

१ख पश्यन्व । २ख ० हुकारनि० । ३ग ० ह्रादयमयज्जलाज्जलम् । म० । ४क ० यत्त यथान्यद्वा
उदक नायम० । ५ग ० दक गाभि० । ६ग ० दमिता० । ७ख ग ० दन्यत्त चैव थे० । ८ख ० मत्र मवेदेव
दुरानतसहस्र० । ९क ग ० ह्रादाश० । १० ० गृह्णिस्तु निःसृज्य स्थित । ११क ० नृ । मध्यमोऽह्नीतवरैस्तानह ।

ततोऽस्मिन्बहुरूपोऽयं स्थितो मूर्तिरमूर्तिमान् । अमूर्तिश्चाप्यमूर्तिमा ममत्वेन प्रधायित ॥३४॥
 प्रकृत्वा च तथा तेन तासु तास्विह योनिषु । निर्ममस्य ममत्वेन विकृत तासु तासु च ॥३५॥
 योनिषु वतमानेन नष्टसन्नेन चेतसा । समता न मया काचिदहंकारे कृता मया ॥३६॥
 आत्मानं बहुधा कृत्वा सोऽयं भूयो युनक्ति माम् । इदानीमवबुद्धोऽस्मि निर्ममो निरहंकृतः ॥३७॥
 ममत्वं मनसा नित्यमहंकारकृतात्मकम् । अपलग्नमिमां हित्वा सश्रमिष्ये निरामयम् ॥३८॥
 अनेन साम्यं यास्यामि नानयाऽहमचेतसा । क्षमं मम सहानेन नैवंकमनया सह ॥३९॥
 एव परमसंबोधात्यञ्जविशोऽनुबुद्धान् । अक्षरत्वं निगच्छति त्यक्त्वा क्षरमनामयम् ॥४०॥
 अव्यक्तं व्यक्तधर्माणं सगुणं निर्गुणं तथा । निर्गुणं प्रथमं दृष्ट्वा तादृग्भवति मथिल ॥४१॥
 अक्षरक्षरयोरेतदुक्तं तस्य निदर्शनम् । मयेह ज्ञानसंपन्नं यथा श्रुतिनिदर्शनात् ॥४२॥
 नि सदिग्धं च सूक्ष्मं च विशुद्धं विमलं तथा । प्रवक्ष्यामि तु ते भूयस्तन्निबोध यथाश्रुतम् ॥४३॥
 साध्ययोगो मया प्रोक्तः शास्त्रद्वयनिदर्शनात् । यदेवं साध्यशास्त्रोक्तं योगदर्शनमव तत् ॥४४॥
 प्रबोधनपरं ज्ञानं साधयानामवनोपते । विस्पष्टं प्रोच्यते तत्र शिष्याणां हितकाम्यया ॥४५॥
 'बृहच्चैवमिव शास्त्रमित्याहुर्विदुषो जना । अस्मिन्च शास्त्रे योगानां पुनर्भवपुरःसरम् ॥४६॥

अहो ! अमूर्तिमा अमूर्ति का इस प्रकार समता द्वारा परामव ? ॥३४॥ उस प्रकृति के साथ उन योनिमां मैं भूमता रहा जिनमे निर्मम मुझको यह समता पुपाती रही ? मैं सत्ताहीन हो चेतना छोड़कर अनेक योनियो में मटकता रहा । इस अहंकार मे अज्ञान मे मेरी कोई समता नहीं कर सक्ता ॥३५ ३६॥ देखता हू पुन वही अज्ञान अपने को बहुत रूपों मे बाँट कर मुझको कुपय की ओर लगाना चाहता है पर तु अब मैं मायातीत हूँ प्रबुद्ध हूँ और अहंकार विजेता हूँ ॥३७॥ अब मैं अहंकार पर सखी हुई समता को धन से हटाकर इस अनुचित माया को छोड़कर निर्विकार रूप का जाग्रत ग्रहण करूँगा ॥३८॥ अब उसी निरामय की समता प्राप्त करूँगा अज्ञानवश इस माया का मदी । उस निरामय के साथ ही मेरा एकमात्र वर्णन सबद्ध है इस प्रवृत्ति व साथ मही—इस परमज्ञान के उदबुद्ध होने से पञ्चविंशतमक अव्यक्त जाग्रत हो जाता है और अपने धर माय को छोड़कर अनामय अक्षरत्व को प्राप्त कर लेता है ॥३९ ४०॥ मैथिल ! इस प्रकार अव्यक्त व्यक्त धर्मा सगुण और निर्गुण को देखकर (अनुभव कर) पुन अपने पूर्वरूप (निर्गुण) को श्रमस्कर समझ कर वैसा ही (निरामय) हो जाता है ॥४१॥ मैंने इस प्रकार तुम्हें अक्षर और क्षर का स्वरूप ज्ञान कराया जैसा कि श्रुतियों के अध्ययन से ज्ञान प्राप्त किया था ॥४२॥ अब पुन दयाश्रुत ज्ञान के अनुरूप अश्रदिग्ध सूक्ष्म विशुद्ध और विमल ज्ञान को तुमसे कह रहा हूँ उसको सुनो ॥४३॥ दो शास्त्रों के उदाहरणों के द्वारा साध्ययोग व प्रवचन कर दिया जो साध्यशास्त्र में कहा गया है कि वही योग-ज्ञान मी है ॥४४॥ मुक्तिपति ! उन दोनों में अब शिष्यों के हित के लिये साध्य व मोक्ष प्रद ज्ञान को स्पष्ट रूप से कह रहा हूँ ॥४५॥ विद्वान् जना ने इस शास्त्र को अति बृहत् बताया है । नरपाल ! इस शास्त्र मे योग का पुनर्भव के साथ साथ पंच-

पञ्चविंशत्परं तत्त्वं पठ्यते च नराधिप । साध्यानां तु परं तत्त्वं यथावदनुवर्णितम् ॥४७॥
बुद्धमप्रतिबुद्धं च बुध्यमानं च तत्त्वतः । बुध्यमानं च बुद्धत्वं प्राहुर्योगनिदर्शनम् ॥४८॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे वसिष्ठकरालजनकसंवादे
चतुर्विंशतिशततमोऽध्यायः ॥२४४॥

अथ पञ्चचत्वारिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः

अजस्यापि विक्रियया नानाभवनम्

वसिष्ठ उवाच

अप्रबुद्धमथाप्यवतिमम् । गुणनिधिं सदा । गुणानां धार्यतां तत्त्वं सृजत्याक्षिपते तथा ॥१॥
अजो हि श्रीहृषी भूपः विक्रियां प्राप्त इत्युत । आत्मानं बहुधा कृत्वा मानेन प्रतिचक्षते ॥२॥
एतदेव विकुर्याणो बुध्यमानो न बुध्यते । गुणानां चरते हृष्ये सृजत्याक्षिपते तथा ॥३॥
अप्यवतसोधनाच्चैव बुध्यमानं सदस्यपि । न त्वेव बुध्यतेऽप्यवतं सगुणं ततः निर्गुणम् ॥४॥

विचारक तत्त्व से उत्पन्न तत्त्व भी ब्रह्मा मया है । साध्य न परत्त्व को तो यथावद कह चुका हूँ । बुद्ध अप्रतिबुद्ध और बुध्यमान भा तत्त्वरूप से योग के कहे गये हैं परन्तु बुध्यमान और बुद्धत्व ही योग के परमतत्त्व निदिष्ट किये गये हैं ॥४६-४८॥

श्रीब्रह्ममहापुराण में वसिष्ठ और करालजनक के संवाद में
दो सौ चौअर्द्धसौ अध्याय समाप्त ॥२४४॥

अध्याय २४५

ब्रह्म भी विकार को प्राप्त कर अनेक हो जाते हैं

वसिष्ठ बोले—भूप । अब मा ब्रह्म का हृदय में बीजा की इच्छा से विकार उत्पन्न हो जाता है । उस समय वह अपने को बहुत रूपों में विभक्त कर देता है तब वह नाना रूपों में विभक्त के समान अपने को समझने लगता है । अप्रबुद्ध (सुप्त) अव्यवत गुण समूह की और गुणों के उत्पादक तत्त्वों की सृष्टि और विस्तार करने लगता है । उस समय इस प्रकार अनेक रूपों में विभक्त होने पर भी वह अपने इस रूप की (बहुधा विभक्त) अनन्तता नहीं है यद्यपि बुद्धिपूर्वक ही (जानकर ही) सृष्टि (विकार) गुणों की सृष्टि योग और आक्षेप करता है ।

१ख ०म । शब्द ० । २ख ०तिशुद्धत्वं प्रा० । ३क ०व्यक्त निर्गुणानां नि० । ४ग ०भानुधाय से ह्येय सु० । ५ख ग अनन्त द्विजकीर्णं विकुर्वन्ति जनाधिप । आ० । ६क ग तान्येव । ७ग ०चक्षते । ८क ख ०तस्यपि ।

कदाचित्स्वेव खल्वेतत्तदाहु प्रतिबुद्धकम् । बुध्यते यदि चाव्यक्तमेतद्वै पञ्चविंशकम् ॥५॥
 बुध्यमानो भवत्येष 'ममात्मक' इति श्रुत । अन्येऽप्यप्रतिबुद्धन वदन्त्यव्यक्तमच्युतम् ॥६॥
 अव्यक्तबोधनाच्चैव बुध्यमान वदन्त्युत । पञ्चविंश महात्मान न चासावपि बुध्यते ॥७॥
 षड्विंश विमल बुद्धमप्रमेय सनातनम् । सतत पञ्चविंश तु चतुर्विंश विबुध्यते ॥८॥
 दृश्यादृश्ये 'ह्यनुगततत्त्वभावे' महाद्युते । अव्यक्त चैव तदब्रह्म बुध्यते ' तात केवलम् ॥९॥
 पञ्चविंश 'चतुर्विंशमात्मानमनुपश्यति । बुध्यमानो यदाऽऽत्मानमन्याऽहमिति मन्यते ॥१०॥
 तदा प्रकृतिमानेष भवत्यव्यक्तलोचन । बुध्यते च परा बुद्धिं 'विशुद्धाममला' यया (दा) ॥११॥
 षड्विंश राजशार्ङ्ग तदा बुद्ध 'कृतो यजेत् । ततस्त्यजति सोऽव्यक्तसंगप्रलयधमिणम् ॥१२॥
 'निगुणा प्रकृति वेद गुणयुक्तामचेतनाम् । तत केवलधर्मासौ भवत्यव्यक्तदर्शनात् ॥१३॥
 कबलेन समागम्य विमुक्तात्मानमाप्नुयात् । एतत्तु तत्त्वमित्याहुर्नस्तत्त्वमजरामरम् ॥१४॥
 तत्त्वसम्प्रवणादेव तत्त्वज्ञो जायते नृप । पञ्चविंशतितत्त्वानि प्रवदन्ति मनोपिण ॥१५॥
 न चैव तत्त्ववास्तात्' ससारेषु निमज्जति । एषामुपैति 'तत्त्व हि क्षिप्रं बुध्यस्व' लक्षणम् ॥१६॥

अव्यक्त ज्ञान व कारण हा उसको पडितजन बध्यमान (जानने योग्य) कहते हैं । तात । इस प्रकार वह अव्यक्त सगुण या निगुण किसी भा रूप में नहीं जाना जाता है । बुद्धि ही इसे प्रतिबुद्ध कहते हैं । यदि यह अव्यक्त जाना जाता है तो वह पचासवाँ है ॥१५॥ यह बुध्यमान होता है और मेरा आत्मा है—इस प्रकार प्रसिद्ध है । परस्पर ज्ञान होने के कारण इसको अव्यक्त और अच्युत कहते हैं ॥६॥ अव्यक्त जानने व कारण ही इसे बुध्यमान कहते हैं । 'तु वह मा पचीसवें महान आत्मा को नहीं जानता है ॥७॥ निमल बुद्ध अप्रमेय और सनातन चीबे'सबे पचीसवें और छब्बीसवें आत्मा को वह सतत जानता है ॥८॥ अहोकारित्ताली । दृश्य और अदृश्य स्वल्प पदार्थ उसके स्वभाव का अनुगमन करते हैं । तात । केवल अव्यक्त ब्रह्म हा उसको जानता है ॥९॥ वह चीबे'सबे और पचीसवें आत्मा को देखता है । जी । जब जाने को उसने अलग मानता है तब वह प्रकृति युक्त एक अव्यक्त न वाला होता है ॥१०॥ हे नृपवर । अब वह परा, विशुद्ध एवं निमल बुद्धि को और छब्बीसवें आत्मा या तत्त्व को जान लेता है तब वह बुद्ध होकर परिजनन करता है । तदनन्तर सुख और प्रलय करने वाले अव्यक्त को वह स्थान देता है और निगुण तथा गुणयुक्त अचेतन प्रकृति को जान जाता है ॥११॥ १२॥ तत्परचात अव्यक्त ने दण्ड से वह केवलधर्मा हो जाता है । फिर केवल (ब्रह्म) व साथ समागम करने वह विमुक्त आत्मा को प्राप्त करता है । इतना ही तत्त्व ब्रह्मण्य है और तत्त्व स परे ब्रह्म अजर-अमर है ॥१३॥ राजन । तत्त्वा न सम्यक् ध्वज से ही मन्थ्य तत्त्व जाता हो जाता है । विद्वान् लोग पचास प्रकार व तत्त्व वतलाते हैं ॥१५॥ तात । तत्त्वा का जानकार व्यक्ति ससार में बिलकुल नहीं डूबता है । जो तत्त्व का लक्षण जानते हैं उनके पास तत्त्व शीघ्र पहुँच जाता है ॥१६॥

१ गमात्मक । २ व ०श तु वध्यते । ३ क स ०तमुभावेव म० । ४ क महद्विंश । ५ क स ०ते भावके० । ६ म ०विशच्छतु० । ७ ग ०ग आत्मना च न प० । ८ क स बुद्धिमनु० । ९ क स ०मलो य० । १० ग बुद्धिः । ११ ग निगुण । १२ ख ०त निरस्तस्त्वबुद्धिमान् । ए० । ग ०त निरस्तस्त्वबुद्धिमान् । ए० । १३ व बुद्धि । १४ क बुध्यस्व ।

परश्च परधर्मा च भवत्येव समेत्य वै। विशुद्धधर्माशुद्धेन नाशुद्धेन च बुद्धिमान् ॥२७॥
 विमुषतधर्मा बुद्धेन समेत्य मुख्यर्षभ। वियोगधर्माणा चैव विमुक्तात्मा भवत्ययम् ॥२८॥
 विमोक्षिणा विमोक्षश्च समेत्येह तथा भवेत्। शुचिकर्मा शुचिश्चैव भवत्यमितबुद्धिमान् ॥२९॥
 विमलात्मा च भवति समेत्य विमलात्मना। केवलात्मा तथा चैव केवलेन समेत्य वै ॥
 स्वतन्त्रश्च स्वतन्त्रेण स्वतन्त्रत्वमवाप्यते ३०॥

एतावदेतत्कथितं ममा ते, सध्य महाराज ययार्थतत्त्वम् ।
 अमत्सरस्त्व^१ प्रतिगृह्य^२ बुद्ध्या, सनातनं ब्रह्म विशुद्धमाद्यम्^३ ॥३१॥
 तद्वेदनिष्ठस्य जनस्य राजन्, प्रदेयमेतत्परमं त्वया भवेत् ।
 विधित्समानाय निबोधकारक, प्रबोधहेतोः प्रणतस्य शासनम् ॥३२॥
 न देयमेतच्च ययाऽनृतात्मने, शठाय श्लोवाय न जिह्मबुद्धये ।
 न पण्डितज्ञानपरोपतापिने, देयं तथा शिष्यविबोधनाय ॥३३॥
 श्रद्धान्वितायाय गुणान्विताय, परापवादाद्विरताय नित्यम् ।
 विशुद्धयोगाय बुधाय चैव, कृपावतेऽय क्षमिणे हिताय ॥३४॥

सकता है अन्यथा नहीं यह ध्रुव सत्य है। यह विशुद्ध धर्म वाला जीव पर-धर्म को ग्रहण करने वाला है और
 अय के उपयोग से यह शुद्ध या अशुद्ध हो जाता है अतः इसको शुद्ध बनाने के लिये शुद्ध ज्ञान का ही साहचर्य
 आवश्यक है न कि अशुद्ध का। हे पुरुषपद्म! विमुक्त धर्मा (भुक्ति-कामी) वियोगधर्मा (मुक्त) का साहचर्य
 पाकर ही मुक्तात्मा होता है। अमित बुद्धिमान विमक्त ब्रह्म के सान्निध्य से ही मुक्त होता है और शुचि कर्म
 करने वाला ही अपने शुचि (पवित्र) कर्मों के प्रभाव से पवित्र होता है। विमल आत्मा वाले के साहचर्य से
 जीव विशुद्धात्मा होता केवल ज्ञान प्राप्त के सतस्य से केवल्य-आनी एव स्वतन्त्र की संपत्ति से ही जीव
 स्वतन्त्र हो स्वतन्त्रत्व को प्राप्त करता है ॥२५-३०॥ महाराज! मैंने निष्पक्ष भाव से सनातन, विशुद्ध
 आचर्य ने ययार्थतत्त्व और तत्त्व को इस प्रकार तुमसे कह दिया ॥३१॥ राजन्! इस परमतत्त्व को तुम
 वेदो मश्रदा रखने वाले जनो को ही देना। क्योंकि आर्य ज्ञान प्राप्ति के दृष्टान्त जनो के लिये उपदेश या
 शासन ज्ञान-बद्धक होता है 'एव विनम्र व्यक्ति के प्रति किया हुआ शासनोपदेश उसने उत्थान का कारण
 बनता है ॥३२॥ यह विमल ज्ञान असत्यवादी शठ नपुंसक बुद्धि और अपने पांडित्य से दूसरे के आत्मा को
 पीडा पहुँचाने वाले व्यक्ति को नहीं देना चाहिए किन्तु ऐसे व्यक्ति को देना चाहिये जो विज्ञासु हो श्रद्धान्
 गुण प्रेमी, नित्य दूसरे की निन्दा करने या मुन से से दूर रहता हो जो विगुडयोग प्रेमी, बुद्धिमान् कृपालु, क्षमाशील
 और परहित में निरत रहने वाला हो, जो विद्विक्तासेवी (एकांत प्रेमी), अनुशासन प्रिय विवाद में विरक्त रहने वाला,

विविक्तशीलाय विधिप्रियाय, विवादहीनाय बहुश्रुताय	।
विनीतवेशाय नर्तुकात्मने, सदैव गृह्यं त्विदमेव देयम्	॥३५॥
एतैर्गुणैर्होतृत्वे न देयमेतत्परं ब्रह्म विशुद्धमाहुः	।
न श्रेयसे योक्ष्यति तादृशे कृतं, धर्मप्रवक्तारमपात्रवानात्	॥३६॥
पृथ्वीमिमां वा यदि रत्नपूर्णं, दद्याददेयं त्विदमव्रताय	।
जितेन्द्रियाय प्रयताय देयं, देयं परं तत्त्वविदे नरेन्द्र	॥३७॥
कराल या ते भयमस्ति किंचिदेतच्छ्रुतं ब्रह्म परं त्वयाऽद्य	।
यथावदुक्तं परमं पवित्रं, विशोकमत्यन्तमनादिमध्यम्	॥३८॥
अगाधमेतदजरामरं च, निरामयं धीतभयं शिवं च	।
समीक्ष्य 'मोहं परवादसंज्ञमेतस्य तत्त्वार्थमिमं विदित्वा	॥३९॥
अवाप्तमेतद्धि पुरा सनातनाद्विरभ्यगर्भाद्धि ततो नराधिप	।
प्रसाद्य यत्नेन तमुपतेजसं, सनातनं ब्रह्म यथा स्वयंतत्	॥४०॥
पृष्टस्त्वया चाऽस्मि यथा नरेन्द्र, तथा मयेदं त्वयि नोक्तमत्यत्	।
यथाऽवाप्तं ब्रह्मणो मे नरेन्द्र, महाज्ञानं मोक्षविदा परायणम्	॥४१॥

बहुश्रु, विनीत वेश वाला और जो तर्क करने वाला न हो, ऐसे भट्टाप्रिय शिष्य की ज्ञान-बुद्धि के लिये इस रहस्यमय ज्ञान को देना चाहिये ॥३३-३५॥ उपर्युक्त गुणों से शून्य व्यक्ति को यह विशुद्ध ब्रह्म-ज्ञान नहीं देना चाहिये । अपात्र की दान देने से (ज्ञान-दान से) धर्म-प्रवक्ता बनीं भी उस ब्रह्म को श्रेयस्कर पथ पर नहीं ला सकता ॥३६॥ यदि कोई अनुपमवन्न व्यक्ति रत्नों से परिपूर्ण इस पृथ्वी को भी दे देतव्य भी दत्त-हीन व्यक्ति को यह ज्ञान नहीं देना चाहिये । नरेन्द्र ! यह ज्ञान जितेन्द्रिय प्रयत्न (पवित्र) और तत्त्वज्ञानी को देना चाहिये ॥३७॥ ऋषिवर ! तुमको अब बराल काल का कुछ भी भय नहीं होगा क्योंकि आज तुमने परब्रह्म (ज्ञान) को सुन लिया है । मैंने उस परम-गति, अगाध धीत को दूर करने वाले, आदिमध्यरहित, अनन्त, अजर, अमर, निर्विकार, धीत-मय और कल्याणमय ज्ञान को मध्याय रूप से कहा है । नराधिप ! मोह की व्यापकता को साथ ही इससे निवारक ज्ञान के तत्त्वार्थ (मर्म) को समझ बैठ ही इस ज्ञान को उपतेजस्वी, सनातन ब्रह्म की यत्नपूर्वक प्रसन्न कर उस सनातन हिरण्यगर्भ से आज से बहुत पहले प्राप्त किया । जिस प्रकार आज तुमने सम्पन्न और धृष्टा के साथ मुझसे पूछा है और जिस प्रकार तुमसे आज मैंने कहा है, हे नरेन्द्र ! इस प्रकार अन्य किसी से नहीं कहा । नरेन्द्र ! जिस प्रकार मैंने मोक्ष-ज्ञ या समुद्भूजनों के परमलक्ष्य इस ज्ञान को ब्रह्म से प्राप्त किया उसी प्रकार तुमने यह दिया ॥३९-४१॥

व्यास उवाच

एतदुक्तं परं ब्रह्म यस्मान्नाऽऽवर्तते पुनः । पञ्चविंश मुनिश्रेष्ठा वसिष्ठेन यथा पुरा ॥४२॥
 पुनरावृत्तिमाप्नोति परमं ज्ञानमव्ययम् । नाति बुध्यति तत्त्वेन बुध्यमानोऽजरामरम् ॥४३॥
 एतन्निश्चयेऽसकरो ज्ञानं भो परमं मया । कथितं तत्त्वतो विप्रा श्रुत्वा देवर्षितो द्विजा ॥४४॥
 हिरण्यगर्भाद्विपिणा वसिष्ठेन समाहृतम् । वसिष्ठोऽद्विषादूर्ध्वो नारदोऽवाप्तवानिदम् ॥४५॥
 नारदाद्विदितं मह्यमेतदुक्तं सनातनम् । मा शूषध्वं मुनिश्रेष्ठा श्रुत्वा तत्परमपदम् ॥४६॥
 येन क्षराक्षरे भिन्ने न भयं तस्य विद्यते । विद्यते तु भयं यस्य यो नैनं वेत्ति तत्त्वतः ॥४७॥
 अविज्ञानाच्च 'मूढात्मा पुनः पुनश्च पदवान् । प्रेत्य जातिसहस्राणि मरणान्तान्युपाश्रुते ॥४८॥
 देवलोकं तथा तिर्यङ्मानुष्यमपि चाप्नुते । यदि वा मुच्यते वाऽपि तस्मादज्ञानसागरात् ॥४९॥
 अज्ञानसागरे घोरे हृद्यव्यक्तागाधे उच्यते । अहन्यहनि मज्जति यत्र भूतानि भो द्विजा ॥५०॥
 तस्मादगाधादव्यक्तादुपक्षोणात्सनातनात् । तस्माच्छूयं विरजस्का वितमस्काश्च भो द्विजा ॥५१॥
 एवमया मुनिश्रेष्ठा सारात्सारतरं परम् । कथितं परमं मोक्षं यः ज्ञात्वा न निवर्तते ॥५२॥

व्यास बोले—श्रेष्ठ मुनियो ! जिस प्रकार पहले वसिष्ठ ने इस पञ्चविंशत्क परब्रह्म के विषय में जिसको पाकर कोई पुनः आशङ्कन के बंधन में नहीं पड़ता है, कहा है उसको मैंने कह दिया। इस प्रकार उस वसिष्ठ द्वारा ब्रह्मेग्येशावृत ज्ञान की आज्ञा पुनरावृत्ति हो गई। इसशास्वत अमर ज्ञान को तत्त्वतः समझकर कोई भी बद्धिमान् जगत या माया के पाश में नहीं फँस सकता है। हे विप्रगण ! हे द्विजवय ! इस परम निश्चयस्वरूप ज्ञान को देवर्षि (नारद) के मुख से सुनकर मैंने अध्यायत कह दिया ॥४५॥ इस ज्ञान को ऋषि वसिष्ठ ने हिरण्यगर्भ ब्रह्म से प्राप्त किया। जानी वसिष्ठ से इसको ऋषि गादूल नारद ने प्राप्त किया ॥४५॥ नारद से इस सनातन ज्ञान को जान कर मैंने आप लोगों से कहा। मुनिश्रेष्ठो ! अब तो इस परम पद को सुनकर आप लोगो को लग्न भी भय या काश नहीं करना चाहिये ॥४६॥ जिसने क्षर और अक्षर का व्यापक ज्ञान प्राप्त कर लिया उसको अब किस बात का भय रह गया। भय उसको होना चाहिये जिसको इस परम ज्ञान का तत्त्व ज्ञात नहीं है ॥४७॥ मूढात्मा ही इस विज्ञान का न जानने के कारण बार बार सकटा में फँसकर सहस्रा योनियो में मटक कर मृत्यु कष्ट का अनुभव करता है ॥४८॥ यदि कश्चित् उस अज्ञानसागर से किसी प्रकार मुक्त हो होते है तो भी वे वर्मानुसार देवलोक तिर्यग और मनुष्य यानि का भोग करते हैं ॥४९॥ द्विजगण ! जिस घोर अज्ञान सागर में प्राणी रातदिन डूबते रहते हैं जिसको अव्यक्त और अगाध कहा जाता है उस अगाध अव्यक्त सनातन और उपशान्त (क्षणिक) अज्ञान से तुम लोग सबका अछूते हो। उससे राजसूय एव समागुणात्मक स्वर्ग से सबका परे हो। मुनिवर ! इस प्रकार मैंने तत्त्वतः के तत्त्व परम मोक्ष ज्ञान को कह दिया जिसको जानकर मनुष्य पुनः जन्म

१क ग पञ्चविंशो । २क ०ते न जरामोक्षो य एतद्विदितः । ३क ०च्च मोहान्ता पु० । ४क पदा भवति कालेन त० । ५क ०त मोहान्ताश्च यं यद्व्यक्ता ।

न नास्तिकाय दत्तव्यं नाभक्ताय कदाचन । न दुष्टमतये विप्रा न धर्माविमुखाय च ॥५३॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे वसिष्ठकरालजनकसंवादसमाप्तिनिर्हपण नाम
पञ्चत्वारिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२४५॥

अथ पट्चत्वारिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः

अस्य श्रवणपठनवर्तुणा फलप्राप्तिकथनम्

लोमहर्षण उवाच

एव पुरा मुनोन्व्यास पुराण इत्युच्यते गिरा । दशाष्टदोपरहितं वाक्यं सारतरं द्विजा ॥१॥
पूर्णमस्तमलं 'शुद्धं नानाशास्त्रसमुच्चयं । जातिशुद्धसमायुक्तं' 'साधुशब्दोपशोभितम् ॥२॥
पूर्ववशो वितसिद्धात्परिनिष्ठासमन्वितम् । श्रावयित्वा यथान्याय विरराम महामति ॥३॥
तैऽपि श्रुत्वा मुनिश्रेष्ठा पुराण वेदसमितम् । आद्य ब्राह्माभिधानं च सर्वबाष्ठाफलप्रदम् ॥४॥
दृष्ट्वा बभूव सुप्रोक्ता विस्मिताश्च पुन पुन । प्रशशसुस्तदा व्यास कृष्णद्वैपायन मुनिम् ॥५॥

भरण के व धन म नही कमता है । विप्रगण । इस परमतत्व को किसी नास्त्विक अनन्य दुष्टमति और धर्माहीन
वाक्य को नहीं देना चाहिये ॥५०-५१॥

श्रीब्रह्महृदपुराण म वसिष्ठ-करालजनक-संवाद समाप्ति निरूपण नामक
को सौ वीं तल्लोखनी अध्याय समाप्त ॥२४५॥

अध्याय २४६

इस पुराण के सुनने और पढ़ने का फल-वर्णन

लोमहर्षण बोले—द्विजगण 'पूज वा' म महामति व्यास जी न इस प्रकार मुनियों को अष्टाध्यायी दोषों
स रहित अत्यन्त मरमृत निमल किण्वद नाना धारणा के तत्त्व से पूर्ण साधु शास्त्रों म सुगोमिन सहज गुह्य और
पूज्यगणधन एव मिष्ठान्तवचन के समन्वय स युक्त पुराण को न्य दानुक्कुरीति म मुना कर मीन हो गये ।
वे श्रेष्ठमुनि मी सब मनीषियों की पूर्ण करन वाले तथा वे—नुच्य आद्य ब्रह्मपुराण को सुनकर विस्मित और
आनन्द-मग्न हो गये । प्रसन्नता से मुनि कृष्ण द्वैपायन व्यास की बार बार प्रशंसा करन लगे ॥१-५॥

मुनय ऊचुः

अहो त्वया मुनिश्रेष्ठ पुराणं श्रुतिसमितम् । सर्वाभिप्रेतफलदं सर्वपापहरं 'परम् ॥६॥
 प्रोक्तं श्रुतं तथाऽस्माभिर्विचित्रपदमक्षरम् । न तोऽस्त्यविदितं किंचित्त्रिषु लोकेषु वं प्रभो ॥७॥
 सर्वज्ञस्त्वं महाभाग देवेश्विव बृहस्पतिः । नमस्यामो महाप्राज्ञं ब्रह्मिष्ठं त्वं महामुनिम् ॥८॥
 येन त्वया तु वेदार्था भारते प्रकटीकृताः । कः शक्नोति गुणान्वक्तुं तव सर्वात्महामुने ॥९॥
 अपीत्य चतुरो वेदान्ताङ्गान्व्याकरणानि च । 'कृतवान्भारतं' शास्त्रं तस्मै 'ज्ञानात्मने नमः ॥१०॥

नमोऽस्तु ते व्यास विशालबुद्धे, फुल्लारविन्दायतपत्रनेत्रं

येन त्वया भारततलपूर्णः, प्रज्वालितो ज्ञानमयः प्रदीपः

॥११॥

अज्ञानतिमिरान्धावां 'भ्रामितानां कुदृष्टिभिः । ज्ञानान्जनशलाकेन त्वया चोन्मीलिता दृशः ॥१२॥
 'एवमुक्त्वा समम्यर्च्यं ध्यासं ते चैव पूजिताः । जन्ममृत्यागतं सर्वं कृतकृत्याः स्वमाश्रमम् ॥१३॥
 तथा मया मुनिश्रेष्ठा कथितं हि सनातनम् । पुराणं समहापुण्यं सर्वपापप्रणाशनम् ॥१४॥
 यथा भवद्भिः पृष्टोऽहं संपन्नं द्विजसत्तमाः । ध्यासप्रसादात्तत्सर्वं मया संपरिकीर्तितम् ॥१५॥

मुनियो ने कहा—अहो ! मुनिश्रेष्ठ ! आपने सब प्रकार की अभिप्रेत वस्तुओं को देने वाले, सब पापों को दूर करने वाले, विचित्र पदों वाले और श्रुति मुख्य इस उत्तम पुराण को सुनाया, तथा हम लोगों ने इसे अक्षरशः सुना । प्रभो ! तीनों लोकों में ऐसी कोई वस्तु नहीं है, जो आपको विदित न हो । महामाग ! आप सर्वज्ञ हैं, देवों में बृहस्पति के समान आप का (इस स्वर में) स्थान है, आप ऐसे महाविवेकशील, ब्रह्मज्ञानी महामुनि हैं हम सब नमस्कार करते हैं । आपने इस भारतवर्ष में वेदों के अर्थ प्रवट किये हैं । महामुने ! आपने सब गुणों का वर्णन करने में कौन समर्थ हो सकता है ? ॥६-९॥ आपने अथ (पद्य) सहित वेदों और सम्पूर्ण ध्यानरत शास्त्रों का अध्ययन कर महामागत शास्त्र की रचना की है, ऐसे ज्ञानीपुरुष को नमस्कार है ॥१०॥ हे विशाल (व्यापक) बुद्धि वाले, विकसित कमल की पल्लवियों के समान आयत नेत्र वाले ध्यास ! आपको नमस्कार है, आप जैसे जहामानव को नमस्कार है जिन्होंने महामागत रूपी तेल से परिपूर्ण ज्ञानदीपक को जला दिया है ॥११॥ आपने अज्ञान के गहन अन्धकार में अपनी भ्रान्त दृष्टि के कारण भूले हुये व्यक्तियों की आँखों में ज्ञान की अञ्जन-शलाका को लगाकर उनकी आँखें खोल दी हैं ॥१२॥ इस प्रकार अपनी वृत्तज्ञता प्रवट कर और महामुनि उस ध्यास की पूजाकर वे सब मुनि अपने-अपने आश्रमों को चले गये ॥१३॥

सोमहर्षण बोले—द्विजवर ! जिस प्रकार आप लोगों ने मृगसे पूछा, उसी प्रकार मैंने भी ध्यास की रूप्या से पाये हुये अत्यन्त पुण्यप्रद तथा सब पापों को दूर करने वाले सनातन पुराण को आप लोगों से कह दिया । इस पुराण

१२ शिवम् । १३ महामते । १४ च । रक्षित मार० । १५ वृत्त हि मार० । १६ य येन ।
 १७ योमारमने । १८ कने० । १९ सर्वज्ञान । २० याराधर ।

आवयेद्ब्राह्मणो' यस्तु सदा पवंसु संयतः। एकादश्यां द्वादश्या च विष्णुलोकं स गच्छति ॥२८॥
 इदं यशस्यमाप्नुय्य सुखदं कीर्तिवर्धनम्। बलपुष्टिप्रदं नृणा धन्यं दुःस्वप्ननाशनम् ॥२९॥
 त्रिसध्वं यः पठेद्विद्वाञ्छ्रद्धया सुसमाहितः। इदं चरिष्टमाह्वयानं स सर्वमोप्सितं लभेत् ॥३०॥
 रोगातो मुच्यते रोगाद् बद्धो मुच्येत बन्धनात्। भयाद्विमुच्यते भीतः आपदापन्न आपदः ॥३१॥
 जातिस्मरत्वं विद्यां च पुत्रान्मेघा' पशून्पूतिम्। धर्मं चार्थं च कामं च मोक्षं तु लभते नरः ॥३२॥
 यान्यान्कामानभिप्रेत्य पठेत्प्रयतमानसः। तांस्तान्सर्वानवाप्नोति पुरुषो नाम संशय' ॥३३॥

यश्चेदं सततं शृणोति मनुजः स्वर्गापवर्गप्रद,
 विष्णु लोकगुरु प्रणम्य वरदं भवत्येकचित्तः' शुचिः।
 भुक्त्वा चात्र सुख विमुक्तकलुषः स्वर्गं च दिव्यं सुखं,
 पश्चादाप्नोति हरेः पदं सुविभल मुक्तो गुणैः प्राकृतैः ॥३४॥
 तस्माद्विप्रवरैः 'स्वधर्मनिरतैर्मुक्त्येकमार्गेण' भि-
 स्तद्वरक्षत्रियपुंगवैस्तु' नियतं श्रेयोधिभिः सर्वदा।
 वैश्यैश्चानुदिनं विशुद्धकुलजैः शूद्रैस्तथा धार्मिकैः
 श्रोतव्यं' त्विदमुत्तम बहुफलं धर्मार्थमोक्षप्रदम् ॥३५॥

है। जो ब्राह्मण सर्वदा पर्वों के दिन तथा एकादशी और द्वादशी के दिन यह पुराण गुनात्मा है वह विष्णुलोक प्राप्त करता है ॥२८॥ यह पुराण मनुष्यों का यश बढ़ाने वाला, आयु सुख और कीर्ति बढ़ाने वाला, यश-पुष्टि प्रद, धन्य और दुःस्वप्न के प्रभाव का दूर करने वाला है ॥२९॥ जो व्यक्ति तीनों काल (प्रातः, मध्याह्न एवं सायम्) एकाग्र मन से श्रद्धापूर्वक इस श्रेष्ठ आह्वयन (पुराण) को पढ़ता है वह सब मनोरथों को प्राप्त कर लेता है ॥३०॥ इस पुराण के पाठ से रोगी मनुष्य रोग से और बन्दी कारागार में छूट जाता है। इसी प्रकार मयमीत मय से तथा आपत्तिग्रस्त आपत्तियां से छूट जाता है ॥३१॥ मनुष्य इससे प्रभाव से जातिस्मरत्वं (पूर्वजन्म का ज्ञान) विद्या, पुत्र, मेघा पशुधन, धैर्य धर्म, अर्थ काम यहाँ तक कि मोक्ष भी प्राप्त करता है ॥३२॥ जिन जिन इष्ट वस्तुओं को मन में लेकर सततचित्त से मनुष्य इस पुराण का पाठ करता है उन सबको वह प्राप्त करता है इसमें सन्देह नहीं ॥३३॥ जो मनुष्य शेरगुरु वरदानां विष्णु को प्रणाम कर अतिमात्र से ध्यानपूर्वक पवित्र हो, इन स्वर्ग और अपवर्ग (योग) को देने वाल पुराण का नित्य श्रवण करता है, वह पापमुक्त होकर इमलोक में सुख और स्वर्ग में दिव्य सुखों को भोगन के बाद अपन प्राकृत सुखों से भी मुक्त होकर विष्णु के विमल और शास्त्रा पद को प्राप्त करता है ॥३४॥ इसलिये मूर्खन-शान्ति के इच्छुक तथा अपने धर्म में निरत रहने वाले धेष्ठ रिष, सर्वदा अभ्युदय की इच्छा करने वाले एवं नियम पालन करने वाले उत्तम क्षत्रिय, विशुद्ध कुल में उत्पन्न वैश्य और धर्मप्रेमी शूद्र प्रतिदिन अधिक कल देने वाले एवं धर्म अथ और भोग देने वाले उत्तम पुराण श्रवण करें ॥३५॥ आप पुराण

धर्मं मतिर्भवतु' च पुरुषोत्तमाना, स हृषेक एव परलोकपतस्य यन्धुः ।
 अयां स्त्रियश्च निपुणैरपि सेध्यमाना, नैव प्रभावमुपयान्ति न च स्थिरत्वम् ॥३६॥
 धर्मेण राज्यं लभते मनुष्य, स्वर्गं च धर्मेण नरः प्रयाति ।
 आपुश्च कीर्तिं च तपश्च धर्म, धर्मेण' मोक्षं लभते मनुष्य ॥३७॥
 धर्मोऽत्र मातापितरौ नरस्य, धर्मः सखा चात्र परे च लोके ।
 प्राता च धर्मस्त्वह मोक्षदश्च, धर्मद्विते नास्ति तु किञ्चिदेव ॥३८॥
 इदं रहस्यं श्रेष्ठं च पुराणं वेदसमितम् । न देयं दुष्टमनस्य नास्तिकाय विशेषतः ॥३९॥
 इदं मयोक्त प्रवर पुराणं, पापापह धर्मविवर्धनं च ।
 श्रुतं भवद्भिः परम रहस्यमाज्ञापयस्व मुनयो व्रजामि ॥४०॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे रोमहर्षणमुनिसंवादे पुराणप्रशसनं नाम
 षट्चत्वारिंशदधिकद्विंशततमोऽध्यायः ॥२४६॥
 समाप्तमिदमादिब्राह्माभिधं महापुराणम्

ॐ तत्सद्ब्रह्मार्पणमस्तु

श्रेष्ठो की धर्म की ओर सदा अनिरवि हो गया कि वही परलोक' म सब हुये जीवा (मृत) का एवमात्र सहायक है।
 परम पुण्य व्यक्ति भी यदि अथ और स्त्री की सेवा करे अपना उनका प्रेमी बने तो भी वे न तो कुछ महायत्ना ही
 कर सके और न स्थिर ही रहते हैं ॥३६॥ मनुष्य धर्म म ही राज्य प्राप्त करता, धर्म से ही स्वर्ग प्राप्त करता
 और धर्म से ही आयु, कीर्ति तप और धर्म यही सब कि लोग मा प्राप्त करता है ॥३७॥ इस लोक म धर्म ही
 मनुष्य की माता और पिता है धर्म ही इस लोक तथा परलोक का गुरु है धर्म ही इस लोक का रक्षक और
 मोक्षदाता है धर्म का अनिरवि और कोई शत्रु पडाप समाप्त म नहीं है ॥३८॥ यह श्रेष्ठ पुराण परम मोक्षीय
 तथा वेदगुह्य है। इसकी दुष्ट-वृद्धि विशेषकर भान्तिव व्यक्ति को कभी भी नहीं मुक्तता चाहिये ॥३९॥
 मुनिगण ! मैंने यह पाप-नाशक उत्तम तथा परम मोक्षीय पुराण कह दिया और आप लोग न भी इसे गुप्त
 किया । अब आपा दीजिये, मैं जाता हूँ ॥४०॥

श्रीब्रह्ममहापुराण म रोमहर्षण और मुनिवा क संवाद प्रकरण म पुराण
 प्रस्ता नामक दो ही अध्यायोंमें समाप्त ॥२४६॥

॥ ब्रह्मपुराण समाप्त ॥

(ब्रह्मपुराण के सम्मत श्लोको की गणना १३७८३)

ॐ तत्सद्ब्रह्मार्पणमस्तु

परिशिष्ट

ब्रह्मपुराण में आय व्यक्तिवाची सज्ञा शब्दों की अनुक्रमणी

अ

अग—१६ १२०१।

अनुमान—५५ ४४९।

अनीवानु—३३।

अनन्य—१४६।

अन्या—४८।

अन्य—९३ ९५ १०६ १०८ १०९ ११० ९९१

९९३ ९९५ ९९६ ९९७ ९९८ १००० १००१

१००२ १००४ १००५ १०६७।

अनायास—७४०।

अनाय—९३

अनार्य—४०८ ४१४ ४५२ ४२३ ४६३ ४८५

६४१ ६४२ ६०५ ६९६ ६९७ ७४१

७४२ ८२८ ८२० ८३० ८९६ ९०१।

अनायास—९६।

अनि—३० ३४० ३६१ ३७८ ४१५ ४८५ ५०९

५१३ ५१७ ५३८ ५६७ ५७३ ५८५ ६००

७०१ ७३४ ७१९ ७०० ७२३ ७२३ ७५

७८९ ७९० ७९४ ८०२ ८३० ८३१ ८३८

९५१ ९९९ १०४० १०७२ १०८१ १०८५

१२१० १३३४ १६६६।

अनिवा—३५।

अनिवा—३०१।

अनिवा—८।

अनिवा—८६।

अनिवा—८ २४।

अन्य—८१७ ८१९ ९१७।

अन्यार्य—१९१।

अन्यार्य—८७।

अन्यार्य—५ ८ १४ ३७ ३३ ७१ ८२ १९५

२०३ ३०८ ५१६ ७८९ ८२० ८२८ ९०१।

अन्यार्य—९६८ १०३४।

अन्य—५६।

अन्य—६२ ८२।

अन्यार्य—८६।

अन्यार्य—८२ ८३।

अन्यार्य—३४।

अन्यार्य—३५।

अन्यार्य—८।

अन्यार्य—५४४ ५४५।

अन्यार्य—८०६।

अन्यार्य—१५।

अन्यार्य—४३१ ४३२।

अन्यार्य—१८ ८३।

अन्यार्य—३३।

अन्यार्य—८१२।

अन्यार्य—८००।

अन्यार्य—१०२।

अन्यार्य—८१०३

अन्यार्य—३३

अन्यार्य—८।

अन्यार्य—१ ७ ४ ३३ ३४ ५८ ७३ १८९ १८०

१९५ ३७८, ५२२, ६३७ ६३८, ७८८, ७८९,	अभिमन्यु—८ ८५ ९५।
७९२, ८७२, ९०१।	अभिष्टुत—८७१ ८७३।
अदिनि—१६, १७८, १७९ १८० १८१ १९७	अमात्रमु—६१।
३७८, ४१९ ६८५, ८९४, ९४१, १०३३, १०३४,	अम्बरीष—४३, ५६ ४०८।
१०३५, १०३६, १०३७।	अम्बर्य—८०४।
अदि—४७२।	अम्बष्ठ—७८।
अद्रिका—४७१, ४७२।	अम्बिका—५५७।
अघुष्ट—३४।	अय सक्तु—१०८५।
अम्बरीवान्—३४।	अय विरा—१०८५।
अनय—८०।	अयुताजित—५६, १००।
अनश्न—३६८।	अयोमुख—१७।
अनमिष—५६, ९४, १०३।	अरिषेप—१०६।
अनरण्य—५६।	अरिन्दम—४०८।
अनल—१४।	अरिमर्दन—९३ १०६।
अनाघुष्टि—९४।	अरिमेजय—८४, ९३ १०६।
अनाघुष्टि—१०२।	अरिष्ट—३४, ९४९ ९५७, ९८०, १००५, १०३२,
अनिष्ट—३५२, ३६७, १०२८, १०२९ १०३१	१०९१।
१०४४, १०४५ १०४७, १०४८, १०५१, १०६७।	अरिष्टनेमि—१४, १६, ५५, ९३।
अनिल—१४।	अरिष्टा—१६ १९।
अनु—७२, ७४, ७६, ८६, ८७, ७९४ ७९७।	अरुण—१९ ४९५ ८३२, ८६६, ८६७।
अनुज—१०८५।	अरुण्वर्त—१४, १९७, ४०३, ४१३ ४६६ ६०३,
अनुहृदि—१७ ७०० १०८५।	८९६।
अनेता—४५ ६६, ६८।	अरुन्धत—१०८५।
अन्तर—९७।	अर्जुन—८८ ८९ ९० ९४, ९५, ९८० ९८१
अन्तर्यामि—८।	१०५९, १०६३, १०६८, १०७०, १०७१, १०७२,
अन्तर्यामि—१२०१।	१०७३, १०७५, १०७६ १०७८, १०८८।
अन्तर्यामि—८।	अर्यया—१६, ३७८, ९९९।
अन्य—९२ १०० १०१, १०३ ४०८ ७३३।	अर्यपेण—५६०।
अन्यक—९३।	अलम्बुषा—३९९, ९२४।
अन्यकारक—१२२।	अलर्न—७०, ८१, २०२, ९४०।
अपराजित—१५।	अवलि—९१, १०१।
अपरा—२०१।	अविशिन—८६ ९३।
अभयद—७६।	अविज्ञान गति—१५।
अभिजिज—१०१।	अव्यय—३३।

अमवय—९४।

अव—९३ १०६।

अवप्रव—९३ १०६।

अवत्रर—१९।

अवय—६४१।

अवयामा—३४।

अवपति—१०८५।

अववाहु—९३ १०७।

अवगिरा—१०८५।

अवहनु—९५।

अविन्—३२८ ५१३ ५८५ ९९३ १०१०।

अविनीकुमार—३४ ४० २१२ २२५ २३३ २३४
२७२ २०९ ४९५ ४९६ ५३८ ६८० ८३८
९५० ९९२ १०६४।

अष्टक—६५ ६६ ८३।

अष्टारय—८१।

अष्टावक्र—१०७६ १०७७।

अनमगस—४४८ ४४९।

अनभीजा—१०३।

असिक्नी—१२ ९३।

असिन—१४६।

अगितामा—१०८६।

अस्ति—१०१३।

अहत्या—४८२ ४८३ ४८४ ४८५ ४८६ ४८७
४८८ ५७९ ६५६ ६७२।

अहि—८०८।

अहिर्बुध्न्य—१५।

अहीनगु—५७।

आ

आनीप्र—३२ १२२५।

आग्नेया—८।

आङ्गिरस—७८९।

आत्तपि—५६।

आत्रय—७७४ ७७६ ७७७ ७७८ ७७९।

आत्रया—७८८ ७८९ ७९१।

आदिनेत्र—८७६ ८७७ ८७८।

आदिय—३४ २२५ ४९२ ५१३ ५८० ५८५
६८० ८२० ८२१ ८३१ ९०२ ९९२ १०६४
१०८२ १२०१।

आनकदुर्मुभि—१२०२।

आनद—११९।

आनत—४३ ७१ ८२।

आप—१४ ३२।

आपव—५ ६।

आपस्तम्ब—७३६ ७४० ७४१ ७४२ ७४०।

आयाति—७१।

आयु—६१ ६६ ६५२ १००१।

आयुष्मान्—७।

आरण्य—३३।

आद्र—४५।

आष्टिपण—६९ ७११ ७१३ ७१६ ७१७।

आवा—९९।

आवा—०३ १०६।

आसद्विच—८६७ ८६८।

आगुरि—१४६।

आहुव—१०१ १०६८।

आह्रीद—८७।

■

इक्ष्वाकु—४१ ४२ ४४ ४५ ५४।

इन्द्र—२१ २२ २० ४९ ६२ ६३ ६८ ७१ ७२
८२ ९४ ११० १४९ १५८ १७४ १८७ १८६
१९१ १९३ १९७ २१० २१३ २१५ २०४
२३७ २४३ २६३ २६५ २७१ ३१० ३३१
३६८ २७८ २८१ २८८ ४०९ ४१९ ४२३
४३७ ४४६ ४५३ ४५९ ४६४ ४७२ ४७७
४७८ ४७९ ४८० ४८२ ४८३ ४८४ ४८५
४८६ ४८७ ४८८ ५०९ ५१० ५१३ ५२०

५२१ ५३१ ५३८ ५४१ ५५० ५८० ५८२	उग्र—१०८५।
५८५ ६५३, ६५९ ६५७ ६५८ ६६१ ६६२	उग्रसेन—१०१, १०२, ९४९, ९८८, ९९१ ९९५
६६३ ५८८ ६८६ ६९० ६९१ ६९२ ६९३	१००८, १०१२, १०१३ १०५७, १०५८, १०६४
६९४ ६९५ ६९६ ६९७ ६९९ ७२१ ७२८	१०६८, १०७०।
७२८, ७२९ ७३० ७३१ ७३४ ७३५ ७३६	उग्रसेना—९३, १०६।
७३७ ७४५ ७५५ ७५७ ७५८ ७५९ ७६३	उर्ध्व श्रवा—२२।
७९४ ७९९ ८०० ८११ ८३५ ८३८ ८४४	उत्तल—४२।
८४९ ८७४ ८९० ८९१ ८९४ ९०० ९०२	उत्तला—४२।
९०३ ९१४ ९१५ ९२३ ९२४ ९२७ ९४०	उत्तङ्ग—४६ ४७, ४८।
९४१ ९४४ ९५० ९५२ ९५२ ९७४ ९७५	उत्तम—३१।
९७७ ९७८ ९७९ ९८० ९८१ ९९१ ९९२	उत्तानपाद—७।
९९३ ९९४ ९९९ १०१० १०१२ १०३२	उद्धव—९४, १०६६।
१०३३ १०३५ १०३७ १०३८ १०३९ १०४०	उपादानवी—८०।
१०४१, १०४२ १०५२ १०५८ १०५९ १०६४	उपदेव—९३, १०१, १०६।
१०६५ १०८३ १११७ १२२८ १२२९ १२६६।	उपदेवी—९५, १०१।
हृन्मजित्—१७।	उपवाहारा—१००।
हृन्मतापन—१०८५।	उपमद्गु—९३ १०६।
हृद्दधुम्न—२६६, २७१, २७२, २८४, २९०, २९२,	उपमन्यु—७१६।
२९४, २९६, २९८, ३०९ ३१०, ३१५, ३८५।	उपेक्ष—१०६।
हृन्मसेना—८३।	उमा—२०१, २०४, २०५, २०६, २०९, २१३
हृन्म्राणी—७२८, ७३१ ७३२, ७३६, १०३७ १०३८,	२२३, २३०, ३७९ ४१६, ४२६, ४३४, ४३८,
१०३९।	५६८, ५७५, ५७६, ६०५, ७३४, ७९१, ११८२,
हरा—१६, १९।	११८८, ११८९, ११९०, ११९१, ११९६, ११९७।
हृत्—३२, ५६५, ५६६ ५६७, ५७१, ५७७ ५७८।	११९८।
हृत्—४१, ४२, ४३, ६०, ८०, ४१५ ५७०, ५७१,	उर्वशी—६० ६१, १८७, २५६ ३९९, ५३४, ५३५,
५७२, ५७३, ५७४, ५७५ ५७६, ५७७ १२०१।	७९९ ८०९, ८१०, ८११, ८९०, ८९१, ८९२,
हृत्तल—१७ १८।	९२४, १२१८, १२१९ १२२०, १२२१ १२२२।
हृ	उलूक—१४६, ७००।
हृशान—३२८, ३६८।	उल्मुक—१०२३।
हृश्वर—८६६।	उशीनर—७७, ९५।
हृश्वरी—५५७।	उषङ्ग—१२०२।
■	उषत्—९७।
उक्थ—५७।	उषद्गु—९७ ।
	उषदथ—७८।

उषा—१९७, ४९२, ४९४, ४९५, ४९६, १०४५।

१०४६, १०४७, १०४८।

उष्ण—१२२।

ऊ

ऊर्ज—३२।

ऊर्जा—११३४, ११३५, ११४२, ११४३।

उर्ध्वबाहु—३३।

श्रु

श्रुत—८४।

श्रुचीन—३४, ६३, ६४।

श्रुतवृ—७६।

श्रुतवृत्ता—८०।

श्रुतवृत्त—५६०।

श्रुतवृत्त—५६।

श्रुतवृत्त—७९।

ए

एकचक्र—१७।

एकपणा—२०१, २०२।

एकपाटला—२०१।

एकलब्ध—९४।

एकाल—१०८६।

एकपत्र—१९।

ऐ

ऐहवाकी—९९।

ऐरावत—१९, २२, २९, १०३३, १०४०, १०४१।

ऐशान्य—८६।

ओ

ओर्व—३२, ३४, ८२, ५३, ५५।

व

वस—१०१, ९१७, ९४९, ९५१, ९५२, ९५५, ९५६,

९५७, ९५८, ९८७, ९८८, ९८९, ९९१, ९९४,

९९५, १०००, १००१, १००३, १००४, १००५,

१००७, १००८, १०१०, १०११, १०१३, १०१४,

१०३२, १०९१।

वसवती—१०२।

वसा—१०२।

वसुत्तय—४५, ७१।

वसुधी—४३।

वसोवान्—५२९, ५३०।

वसोयु—७६, ७७।

वसव—१०२।

वसुता—१०२।

वसुतालिनी—८६९।

वसु—५१९।

वसुत्तय—६५।

वसु—६४९, ६५०।

वसु—९२२, ९२३, ९२७, ९३१, ९३३, ९३७,

९३८।

वसु—१४६, ४७३, ४७४, ४७५, ८०१, १०६३।

वसु—६५।

वसु—१६, १९, ५३३, ८३२, ८३३, ८३५, ८३६।

वसु—८७।

वसु—४०८।

वसु—९४, ९५।

वसु—१०२४।

वसु—१५।

वसुलोतव—३४९।

वसुगी—१५।

वसु—१७, १९, ५४, ८०, १४६, ४०२, ४४७,

४४८, ४४९, ८११, ७८०, ७८१, ७८३,

१०८०।

वसुलोतव—४८।

वसुलोतव—३३।

वसुलोतव—१०१।

वसुलोतव—१०८९।

वसुलोतव—४९९।

वसुलोतव—१९।

वसुलोतव—९८, १०३।

करघम—८६।

करम्म—९९।

कराल—१०८६।

करालजनक—१३०१, १३१२।

करप—४१, ४३, ४४।

करुरीम—८७।

ककि—७४०।

ककौटक—१९, ८९।

कर्ण—१०५६, १०५७, १०५८ १०७१।

कदम—७, २२।

कलिङ्ग—१०२९।

कलिन्द—१०२९।

कलमापपाद—५६।

कवय—७७२, ७७३।

कवि—८, ५१६।

कवयप—१२, १४, १५, १६ १७ १९ २० ३२
 ३४, ३६ १४६, १७८, १८१, १८२, १९७ १९८,
 १९९, २००, २११, २६३, २७८ ३७८, ४०४, ४०८,
 ४६८ ४६९ ४९२ ५२२, ५३१ ५३२, ५३३,
 ५३४, ९७०, ६८६ ६८७ ६८८, ६९१ ६९४,
 ६९५ ६९६, ८६६ ९०३, १०८८।

काल्वनप्रम—६१।

काण्ड—८०२।

काम—९२५, ९२६।

कामदमन—१२२५।

कामदग्मह—१०३।

कामदेव—२२१।

कामली—६४।

काम्या—६ ७।

कारुय—४३।

कावयक—६५।

कार्त—८७।

कार्तवीर्य—९१ १०८७।

कारि—७२०।

कार्तियेय—१५ २५२, २६०, ३२८, ४६४, ४६६

५१२ ५६८ ५९७ ७१९ १०४९।

काल—१५, १७ ८७।

काश्व—१०८५।

काशकोप—१०८५।

काशनाम—१७ १८।

कालनेमि—९४१, ९४९।

कालवदन—९६ १०१५, १०१६ १०१९, १०११।

कालरात्रि—५५७।

काशवदन—१०८६।

कालानल—७७।

कालिका—१८।

कालिन्दा—१०४४।

कालिय—९८२, ९८७, १००५।

का—८५।

काशिय—९६४ ९६५ ९६७ ९६८ ९६९।

कावेरी—६२ ८२।

काव्य—३३।

काश—६९।

काशिक—८१।

काशिकग्या—९५।

काशिय—६९।

काशय—१०१।

काशय—३४, ६९।

काश्या—८५, १०१।

काशित—५९ १९७ ४१४।

काशियान्—७।

काशुर—१०१, १०२।

काशित—७, १७।

काशित—८८१, ८८५।

काशित—८।

काशित—९४, ९९।

काशय—१०८५।

काशेर—२१२ २३३, ३२८, ३६८, ४०२, ४१५

कैटभ—३०, ६४१, ६५५, ६४७, ११३७।

कैशिक—९९।

कोका—११४३।

कोलासुर—४०८।

कोष्ठ—९७।

कोशल्या—९९, ६६३, ६७१।

कोशिक—३४, ५०, ८६, ९४, १४६, ९०१।

कोशिकी—६४।

क्रतु—५, ८, ३२, १९५, ३७८, ९०१।

क्रतुद्वयला—३९९।

क्रय—९९, १०८५।

क्रमण—१००।

क्रिमि—१००।

क्रोञ्ची—१९१।

क्रोध—१०८५।

क्रोधन—८६३, १०८५।

क्रोधवर्द्धन—१०८५।

क्रोधवशा—१६।

क्रोधहन्ता—१०८५।

क्रोष्टा—८७, १२०१।

क्राष्टु—९, १०३।

क्षत्रवृद्ध—६९।

क्षमाधान्—१५।

क्षान्ति—४१४।

क्षेम—०।

क्षेमक—६९, ७०, ८१, ११९।

क्षेमघन्वा—५७।

क्ष

क्षट्वाङ्ग—५५।

क्षल्दा—७६।

क्षसा—१६, १९।

क्ष

क्षन्ता—४०९, ४२६, ४४१, ४४२, ६०९, ६४७, ७३८, ७७०, ७८४, ८०८, ८१०, ८९४, ८९६, ११३८।

गणनायक—४३०।

गणपति—४२९।

गणेश—२२७, २६०, ३२८, ४२८, ४३३, ५६८,

५७६, ५९७, ६२८, ६३१, ९०८, ९०९, ९११।

गणेश्वर—९११।

गण्ड—८६३।

गण्डूय—९४।

गद्ग—९६।

गन्धर्वगण—१०४०।

गमस्तिनी—५८५, ५८८।

गमनमित्र—१०८५।

गम्भीरा—८००।

गय—८, ४२, ८०, ४०८।

गया—४२।

गरिष्ठ—१०८५।

गहड—१९, २२, ३५५, ४९७, ४९८, ४९९, ५००,

८३१, ८३२, ८३४, ८३५, ८३६, ८६६, ८६७,

९३२, ९६९, १०३३, १०३४, १०३५, १०४०,

१०४१, १०४३, १०४८, १०४९, १०५३, १०५४,

१२२६।

गर्ग—७२, ८०, ९६, १२८, ९६१।

गर्दमाक्ष—१७।

गवय—९१७।

गवाक्ष—९१७।

गवेवण—९३, १०७।

गात्रवान्—१०४४।

गाधि—६३, ६५, ८३।

गान्दिनी—९३, १०६।

गान्धार—८७।

गान्धारी—८५, ९२, १०३।

गायत्री—३६१।

गायत्री—९६, १४६, १०१५, १०१७।

गालक—३४, ५०, ६५, १४६, ५०२, ५०३, ५०, ५०५, ५०६, ६७०, ९०१।

ज	जगामय—९८।
जटासु—८६६।	ज्योति—३२।
जनक—१६७ ४८९, ४९१, ६७२, १०९० १३०९।	ज्योतिष्मान्—३२।
जनमेजय—७२, ७७, ८४।	॥
जनादन—२८४, ३९८, ६५४, ९१६ ९९१ १०१३	तमु—८०।
१०१४, ११३६।	तभक्त—१९, २२ २९।
जन्तु—८३।	तत्त्वदर्शि—३३।
जप्य—६५।	तनुजं—३२।
जमदग्नि—३४, ६४, ६५। १४६।	तन्त्रिज—९५।
जय—६५, ६९।	तन्त्रिपाल—९५।
जयदेव—६९।	तन्वी—३३।
जयद्वय—१०७१।	तप—३३।
जयध्वज—९१।	तपती—६०९।
जयन्त—७७५।	तपस्य—३३।
जया—४१४, ४२६, ४२७, ४२८, ४२९, ४३०,	तपस्वी—८।
४३१, ४३३, ५८०, ७११।	तपोभूत—३३।
जरा—१०६४, १०६९।	तप—६५२, ६५३, ६५८।
जरातन्त्र—७२, १०१३ १०१४, १०१५, १०१६	ताडना—६७२।
१०२४, १०६५, १२०२।	तापी—४९५ ४९६।
जलज—१२३।	तामस—३३।
जलेयु—७६।	ताम्रा—१६ १९।
जह्नु—३३, ६१, ६२ ८२।	तारक—१७ ४६४, ४६६, ७१९।
जातवेदसु—५२७ ५२८।	ताय—५९, ८१२, ८१४।
जानकी—९१७।	ताड्य—८६६।
बाबाला—७५८, ७५९।	तालवध—९१।
बाबास्—५०१ ६७० ७९२, ९०१।	तिविधु—७७ ७८।
जाम्बवती—१०५ १०२९ १०४४।	तिष्ठि—१०१।
जाम्बवान्—१०५ ८१८, ८१९ ९१७।	तिलोत्तमा—१८७, २५६, ३९९, ७९९, ९२४, १०७६।
जाह्नव्य—१०९०।	तुम्बुह—१८७, २१६ ९०१।
जायति—८०७।	तुर्कसु—७२, ७३, ७४, ७६, ८६, ८७ ७९४, ७९७।
जीमूत—९९।	तुषित—३२।
जीव—५१६।	तुण्यज—१४६।
जीगीषव्य—२०२।	तोषालव—१००८।
जिमिनि—१४६।	तौषिकेर—९१।

ज	ज्यामघ—१८।
जटायु—८६६।	ज्योति—३२।
जनक—१६७ ४८९, ४९१, ६७३, १०९० १३०९।	ज्यानिष्पान्—३२।
जनमेजय—७२, ७७, ८४।	त
जनादन—२८४, ३९८, ६५४, ९१६ ९९१, १०१३,	तसु—८०।
१०१४, ११३६।	तद्यत—१९, २२, २९।
जन्तु—८३।	तत्त्वदर्शी—३३।
जप्य—६५।	तनुजं—३२।
जमदग्नि—३४, ६४, ६५। १४६।	तन्त्रिज—९५।
जय—६५, ६९।	तन्त्रिपाल—९५।
जयत्तन—६९।	तन्वी—३३।
जयद्रथ—१०७१।	तप—३३।
जयध्वज—९१।	तपती—६०९।
जयन्त—७७५।	तपस्य—३३।
जपा—४१४, ४२६, ४२७, ४२८, ४२९, ४३०,	तपस्वी—८।
४३१, ४३३, ५८०, ७११।	तपाभूत—३३।
जरा—१०६४, १०६९।	तम—६५२, ६५३ ६५८।
जरासन्ध—७२, १०१३, १०१४, १०१५, १०१६,	ताडना—६७२।
१०२४, १०६५, १२०२।	तापी—४९५, ४९६।
जलद—१२३।	तामरा—३१।
जलेयु—७६।	ताम्रा—१६ १९।
जल्ल—३३, ६१, ६२, ८२।	तारक—१७, ४६४, ४६६, ७१९।
जलिवदसु—५२७ ५२८।	तारा—५९, ८१२, ८१४।
जानकी—९१७।	तार्क्य—८६६।
जाबाला—७५८, ७५९।	तारुजय—९१।
जाबालि—१०१, ६७० ७९२, ९०१।	तित्तिभु—७७ ७८।
जाम्बवती—१०५, १०२९ १०४४।	तिलिह—१०१।
जाम्बवान्—१०५ ८१८, ८१९, ९१७।	तिलोत्तमा—१८७ २५६, ३९९ ७९९ ९२४, १०७६।
जारुष्य—१०९०।	तुम्बु—१८७ २१६, ९०१।
जोगति—८०७।	तुर्वयु—७२, ७३, ७४, ७६, ८६, ८७, ७९४, ७९७।
जोमूत—९९।	तुपिन—३२।
जोद—५१६।	तृणयज्ञ—१४६।
जंगीषका—२०७।	तोगल्व—१००८।
जमिनि—७	तोचिधेर—९१।

देवघाहु—३३।

देवभाण—९४, ९४।

देवमीदुप—९२, ९३, १०३।

देवयानी—७२, ७९४, ७९५।

देवरक्षित—१०१।

देवरक्षिता—९५, १०१।

देवरात—६५, ६५, ६६ ९९ ९०१।

देवल—१५, ६५, १४६ २०६।

देववान्—१०१।

देवव्रत—८५।

देवसर्मा—१२१६।

देवश्रवा—९४, ९४।

देवह्वान—१४६।

देवानोव—५७।

देवान्त—१०३।

देवापि—८४, ७११, ७१२, ७१३ ७१४, ७१५,

७१६, ७१७, ७१७।

देवापुष—९९, १००।

देवेन्द्र—४६५।

द्युति—३३, ५९।

द्युतिमान्—३२, १२२।

द्युत—८७।

द्रविण—१५।

द्रुपद—८३।

द्रुह—७२, ७६, ७४, ८६, ८७, १९४, ७९७।

द्रोण—१०५७, १०५७, १०५८, १०७१, १०७४,

१०७५।

द्रोणाचार्य—३४।

द्रिमीड—८२।

द्रिमुष्मा—१७।

द्रिपिद—१०६०, १०६२, १०९१।

ध

धनेजय—१९, ८५।

धनु—६९।

धनेयु—७६।

धन्वन्तरि—६९, ८१ ६५२, ६५४, ६५६, ६५८

धन्वी—३३।

धर्म—८७, १०७, ७२१, ७२४, ७२५ ९४४।

धर्मवेतु—७०।

धर्मधृक्—९३।

धर्मनेत्र—८०, ८७।

धर्ममृत—९३ १०६, १०७, ५४।

धर्मरथ—७९।

धर्मराज—४०।

धर्मा—१०६।

धर्मोन्न—९३।

धन—१४, १५।

धातवि—१२४।

धाता—१६, ३३।

धार्यव—४३।

धिपणा—८।

धुन्धु—४५, ४६, ४८।

धुन्धुमार—४५।

धूमिनी—८२, ८३।

धूम—१४६।

धृतराष्ट्र—१७, १९, ८५।

धृतराष्ट्र—५०२, ५०३, ५०५, ५०६।

धृति—५९।

धृतिमान्—३३, ३४।

धृष्ट—४१, ४३, ६३, ९९, १००।

धृष्टवेतु—७१।

धनुव—९४९, ९५७, ९७०, ९७१, ९८७, १००५,

१०३२।

धोम्य—१४६।

ध्या—६५।

धुर—७, १४, १५, ११९।

न

नकु—१०५९।

नदान—१४।

नमजित्—१०२९।

नमिवेत्ता—४०८।

नन्वला—७।

नदीन—६९।

नन्द—९५६, ९५९, ९६०, ९६१, ९६२, ९६६,
९७४, ९७५, ९७६, ९७७, ९७८, ९८८, ९८८,
९९१, ९९६, १००५, १००८, १०२०।

नदिनेश्वर—४९७।

नदी—४१५, ४९८, ४९९, ५००, ५०१, ५१२,
५१५, ५१८, ७१७, ८१५।

नन्दिश्वर—२५२।

नम—३२, ३३, ५७।

नमस्य—३२, ३२।

नमुचि—१८, ४०८, ६६५, ६८९, ७२७, ७३०, ८३८,
९१४, १०८५।

नर—१८, ९४९, ९८०, १०३१, १०३२, १०३३,
१०३५, १०४३, १०६०, १०८५।

नरनारायण—४०८।

नरसिंह—३४२, ३४४, ३४५, ३४७, ३६७।

नयन्त—१०३।

नयान्तक—९१७।

नयिन्त—४१, ४३।

नयंदा—६०९।

नल—१८, ५६, ५७, ५७, ९१७।

नल्दा—७६।

नव—७७, ७८।

नवरय—९९।

नवा—७७।

नक्षत्र—१९, ६६, ७१, ६५६, १२०१, ७९३, ७९७।

नाम्नजिनी—१०४४।

नामाग—४१, ४३, ४३, ५६।

नामागारिष्ट—४४।

नारद—१२, १३, ८८, १४६, १७०, १७३, १८७,

२१६, २३३, ४०३, ४०४, ४०६, ४०७, ४०९,
४१५, ४१७, ४२५, ४३४, ४४१, ४४४, ४४५,
४४८, ४५२, ४५३, ४५४, ४६४, ४६६, ४६७,
४७१, ४९६, ५०१, ५०२, ५०७, ५१५, ५३८,
५३९, ५४०, ५४९, ५५१, ५८०, ५८५, ६४१,
६३५, ६५३, ६६३, ६६५, ६६९, ६७४, ६८०,
४७१, ४९६, ५०१, ५०२, ५०७, ५१५, ५३८,
५३९, ५४०, ५४९, ५५१, ५८०, ५८५, ६१०,
६३५, ६५३, ६६३, ६६५, ६६९, ६७४, ६८४,
६८६, ६८९, ७१०, ७१७, ७२७, ७४३, ६५०,
७५४, ७७२, ७८०, ७८३, ७८४, ७८५, ७८६,
७९२, ८०१, ८११, ८१८, ८२३, ७२४, ८३७,
८३९, ८४०, ८४१, ८४२, ८४३, ८४४, ८५०,
८६६, ८९०, ८९५, ८९७, ९०२, ९०४, ९०५,
९०६, ९०६, ९०७, ९१३, ९५१, ९८७, ९९०,
९९१, १०१६, १०२५, १०२६, १०२६, १०४८,
१०६३, १२२७, १२२८, १२२९, १३२६।

नारायण—३७१, १३२, १९७, ३५९, ३६७, ४११,
८५४, ८७०, ११४८।

नापेय—१०६।

नास्रत्य—४०।

नास्रपौत्रा—१०३।

निषादय—१०३।

निष्ठुम्भ—४८, ७०, ९१७।

निष्पत्त—५६, १०३।

निष्पौत्रा—३९९।

निष्ठुम्भ—३३।

निषादय—१८।

निष्ठुम्भ—९४।

निष्ठ—९५, १०२३।

निषध—५६।

नाल—८७, ९१७।

नीलवेत्ता—३९९।

नीली—८२, ८३।

नृग—७७, ७७।

नृगा—७७।

नृसिंह—३४३, ८०४।

नैगमेय—१५।

नैमिषारण्य—१।

नैऋत—७८५।

नैऋत्य—३६८।

न्यग्रोध—१०१।

॥

पञ्चजन—५५, ८३, १०१३, १०३३।

पञ्चनद—५४।

पञ्चाल—९४

पञ्च—९१७

पयाद—८७

परजित्—९८

परस्तप—३३

परमन्यु—७७

परशु—१०, ८५१, ८५२, ८५३, ८५४, ८५५

पराजिता—७२७

परावती—३९९।

परीशित्—८४, ८५, ७२।

पञ्चन्य—२२, ३३।

पवत्—१४६, २३३, ५३९, ५४०, ९०१।

पयमान—८५६, ८५८, ८५९, ८६०।

पाटीन—९१७।

पाणिन—६५।

पाण्डु—८५, ९४।

पाण्डु—८७।

पातालवेणु—४०८।

पानित्—८।

पारिणि—८५।

पापि—६५।

पावती—२०३, २०४, २०७, २११, २१५, २१९।

२२०, २२२, २२८, २३६, २५१, २५२, २६०,

३५०, ३५१, ४१४, ४६४, ५२५, ५७०, ५७७,

५९७, ६४५, ७२०, ९०८, १०४६, ११९३।

पालित—९८।

पिण्डारव—९५।

पिण्ड—६४१।

पिण्डा—७५०।

पिण्डाद—१४६, ५९४, ५९५, ५९६, ५९६, ५९७,

५९८, ५९९, ६००, ६०२, ६०३, ६०४, ६०५,

६०७, ६०८, ९०१

पीवर—१२२

पुञ्जिवस्यला—९२४

पुण्डरीक—५७।

पुन—३२।

पुनर्वसु—१०१।

पुण्ड्रप—७७, १००।

पुन—८, ७२, ७३, ७४, ७६।

पुण्ड्रत्व—४८।

पुण्ड्राति—८३।

पुण्ड्रान्—९९।

पुण्ड्रीक—८२।

पुण्ड्रा—४२, ४३, ६०, ६१, ५३४, ५३६, ५७३,

५७४, ५७४, ५७६, ५७७, ५७८, ८०९, १२२२।

पुण्ड्रत्व—५, ३२, ९०, १४६, १९५, ३७८, ५२४,

५२५, ५२६, ७८६।

पुण्ड्र—५, ३२, १४६, १८९, १९५, ३७८।

पुण्ड्राभा—१७, १८, १०८६।

पुण्डर—४०९, १०८५।

पुण्डरिणी—७।

पुण्ड्रि—५९, ४१४।

पुण्ड्रिमान्—१०२।

पुण्ड्रपु—१९।

पुण्ड्रा—९५९, ९५७, ९६०, ९६२, ९८७, १००५,

१०१२, १०१३।

पूरण—१४६।

पूरु—७९४, ७९७, ७९८।

पूरुगमद्र—७९।

पूरुचिन्ति—३९९, ९२४।

पूरा—१६, ३७८, ५८०, ८३८, ९८९।

पूया—९४, ९४।

पुष्यिणी—२८, ७८३।

पुष्य—२०, २३, २६, २७, २८, २९, ३०, ३१, ३३,

४५, ९३, १०६, ७८१, ७८२, १०६७।

पुष्यकीर्ति—९४, ९४।

पुष्यकर्म—१८।

पुष्यलाक्ष—७९।

पुष्यशवा—९७, ५२९, ५३०।

पुष्पी—७०८, ७८२, ९४९, १०३३।

पैठीनक्षी—७५१।

पैणलादि—८६।

पैण—१४६।

पैण्य—७७२, ७७३।

पौण्ड्र—१०२४, १०५२, १०५२, १०५३, १०५४,

१०५६।

पौरा—१३।

पौलस्त्य—४१४।

प्रवाह—३३।

प्रवेष्टा—९, १०, १३, ८७, १९६, १९७, ३७८,

९३१, १२०१।

प्रवागति—४१, ४५९, ९८६, ९४३, १०८०, १०८३।

प्रार्थन—७०, ७०, ८८, ८१।

प्रतिज्ञा—१८, १०२।

प्रतिरूप—८०।

प्रतिवाद—९३, १०६।

प्रतीत—३२।

प्रतीन—८४।

प्रत्युप—१४, १५।

प्रदुम्ना—३५२, १०२४, १०२५, १०२६, १०२७,

१०२७, १०२९, १०४९, १०४५, १०४७, १०४८,

१०४९, १०६७।

प्रपल—१०४४।

प्रमा—१८, ५९, ६७।

प्रमानर—७६।

प्रमास—१५, ४०८।

प्रमति—८९०, ८९१, ८९२, ८९४।

प्रमद—१०८६।

प्रम्लोवा—२५६, ३९९, ९२३, ९२५, ९२६, ९२९।

प्रम्व—९४९, ९५७, ९७२, ९७४, ९८२, ९८७,

१०३२, १०८५।

प्रवीर—८०।

प्रसेन—९३, १०३, १०४, १०५।

प्रसेनजित्—४८।

प्रस्तापिनी—१०६।

प्रहस्व—११७।

प्रहृष्टाह—१७, २२, ४०३, १०८५।

प्रियव्रत—६, ५३९।

प्रियत—८३।

प्रियप्र—४१, ४४।

प्र्यागु—४१, ४३।

प्रार्थनवह्नि—१८, १९६, १९७, ७५१, ८१६,

८१७, १२०१।

प्रण—१५, ३२।

प्रातिषेवी—५९२, ५९३, ५९४, ५९९।

प्राप्ति—१०१३।

फ

फेन—७८।

ब

बभ्रव—६५।

बभ्रुदेशपुष—१००।

बभ्रुसेतु—८७।

बह्निरेतु—५४।

बल—१८, १०५८।

बलदपित—१०८५।

बलदेव—४३, १०५, २८४, ३०८, ९३९, १००५,
१०१३, १०२०, १०५६, १०५८, १०५९, १०६०,
१०६३।

बलवर्हिपु—१०१।

बलमद—१०५, १०८, २६५, ९७१, ९७४, ९८७,
९९३, ९९५, ९९६, ९९८, १००६, १००७, १००९,
१०२४, १०३०, १०४८, १०४९, १०५७।बलराम—४३, १०९, २८५, ३१४, ३४२, ३७३,
३७९, ३८२, ३८४, ३८५, ३८६, ३८८, ९१७,
९१९, ९६७, ९७०, ९७३, १००२, १००१२,
१०१४, १०१९, १०२२, १०२३, १०२९, १०३१,
१०६०, १०६१, १०६२, १०६५, १०६७,

१२०३।

बलाकाश्व—६२, ८२।

बलाहक—१९।

बलि—१७, ७८, ७८, ४१८, ४१९, ४२०, ४२१,
४२२, ४२३, ६६३, ८३८, ९९४, १०४५-

बल्लुपुत्र—१४, १६।

बल्लुवाह—९३, १०७।

बल्लुषप—१५।

बल्लुषायु—६१।

बाल—१७, ५९७, ९४९, १०४५, १०४६, १०४७,
१०४८, १०४९, १०५०, १०९१।बालविरय—१४४, १६७, १८७, २६३, २७८, ३२८,
३८१, ४१५, ५११, ५३२।

बाणल—६५, १०८६।

बाहु—५२।

बाह्यता—१००।

बाह्याश्व—८३।

बाहिलव—८४, १५७, १०५९।

बिन्दु, मती—४८।

बुध—४२, ६०, १११, ५७१, ५७२, ५७३, ५८०,
५७६, ५७७, १२०१, १२२२।

बृहत्—८२।

बृहती—७।

बृहत्तर्मा—७९।

बृहत्तीर्थ—८६८, १०८५।

बृहदस्व—४५, ४६, ४७।

बृहद्विपु—८३।

बृहद्वर्मा—७९।

बृहद्वय—७२, ५३५।

बृहन्मता—७९।

बृहत्पति—२९, ३२, ५९, ८०, १६१, २४३, २९२,
४१२, ५१९, ५५४, ५५५, ५७३, ६५६, ६५७,
६५८, ६५९, ७४५, ८०३, ८११, ८१२, ९०३,

९१२।

बृहत्तव—८३।

बृहत्ता—२६, ५८, ५९, १४७, १४८, १५०, १५५,
१५६, १६१, १६७, १७०, १७३, १७४, १७६,
१७८, १७९, १८०, १८१, १८३, १८४, १८५,
१८६, १८८, १९१, १९१, १९३, १९४, १९५,
१९७, १९८, २००, २०२, २०३, २०४, २०५,
२०६, २०७, २०८, २०९, २१०, २१३, २१६,
२२३, २२४, २२६, २२७, २२८, २२९, २३०,
२३१, २३२, २३३, २३५, २३६, २३७, २३८,
२४०, २४८, २४३, २४३, २४४, २५०, २५१,
२६१, २६४, २६६, २७२, २७८, २७९, २८०,
२८१, २८४, २८५, २८८, २८९, २९०, २९१,
२९२, २९५, २९६, ३०२, ३०४, ३०६, ३०७,
३०८, ३१०, ३११, ३१४, ३१५, ३१७, ३१९,
३२१, ३२२, ३२३, ३२६, ३२६, ३२९, ३३०,
३३१, ३३४, ३३५, ४३३६, ३४२, ३४३, ३४९,
३५०, ३५१, ३५५, ३५७, ३५८, ३६०, ३६३,
३६६, ३६९, ३७१, ३७२,

३७४, ३७६, ३७९, ३७२, ३७४, ३७६, ३७८,
 ३८१, ३८५, ३८६, ३८८, ३९५, ४०२, ४०४,
 ४०६, ४०७, ४०९, ४१०, ४११, ४१२, ४१३,
 ४१४, ४१६, ४१७, ४१८, ४१९, ४२०, ४२२,
 ४२३, ४२५, ४२७, ४२८, ४२९, ४३०, ४३१,
 ४३१, ४३३, ४३५, ४३७, ४३८, ४३९, ४४०,
 ४४१, ४४२, ४४३, ४४४, ४४५, ४४६, ४४०,
 ४४१, ४४२, ४४३, ४४५, ४४८, ४६०, ४६१,
 ४६२, ४६३, ४६५, ४६६, ४६७, ४६८, ४६९,
 ४७०, ४७१, ४७३, ४७४, ४७५, ४७६, ४७७,
 ४७८, ४७९, ४८०, ४८२, ४८६, ४८९, ४९०,
 ४९१, ४९२, ४९२, ४९४, ४९५, ४९६, ४९७,
 ४९८, ४९९, ५००, ५०१, ५०४, ५०६, ५०७,
 ५०८, ५०९, ५१०, ५११, ५१२, ५१४, ५१५,
 ५१५, ५१६, ५१७, ५१८, ५१९, ५२०, ५२१,
 ५२३, ५२४, ५२५, ५२७, ५२८, ५२९, ५३०,
 ५३१, ५३२, ५३३, ५३४, ५३५, ५३६, ५३८,
 ५३९, ५४१, ५४२, ५४३, ५४४, ५४५, ५४६,
 ५४७, ५४८, ५४९, ५५०, ५५१, ५५२, ५५३,
 ५५४, ५५५, ५५६, ५५८, ५६०, ५६१, ५६२,
 ५६३, ५६४, ५६५, ५६६, ५६७, ५६९, ५७०,
 ५७१, ५७२, ५७४, ५७५, ५७६, ५७७, ५७९,
 ५८१, ५८२, ५८३, ५८४, ५८६, ५८६, ५९०,
 ५९२, ५९३, ५९४, ५९५, ५९६, ५९८, ५९९,
 ६००, ६०१, ६०२, ६०३, ६०४, ६०५, ६०६,
 ६०७, ६०८, ६०९, ६११, ६१२, ६१३, ६१४,
 ६१५, ६१६, ६१७, ६१८, ६१९, ६२०, ६२१,
 ६२२, ६२४, ६२५, ६२७, ६२८, ६२९, ६३०,
 ६३१, ६३२, ६३४, ६३५, ६३६, ६३६, ६३७,
 ६३८, ६४०, ६४३, ६४४, ६४५, ६४६, ६४७,
 ६४८, ६४९, ६५०, ६५१, ६५३, ६५४, ६५६,
 ६५७, ६५८, ६६०, ६६१, ६६१, ६६३, ६६४,
 ६६६, ६६७, ६६८, ६६९, ६७०, ६७१, ६७२,
 ६७४, ६७५, ६७५, ६७६, ६७७, ६७८, ६७९,

६८०, ६८१, ६८३, ६८४, ६८५, ६८६, ६८६,
 ६८७, ६८८, ६८९, ६९०, ६९१, ६९२, ६९३,
 ६९४, ६९६, ६९७, ६९९, ७००, ७०२, ७०३,
 ७०४, ७०५, ७०६, ७०७, ७०७, ७०९, ७१०,
 ७११, ७१२, ७१३, ७१४, ७१५, ७१६, ७१६,
 ७१७, ७१८, ७१९, ७२०, ७२२, ७२३, ७२४,
 ७२६, ७२८, ७२९, ७३०, ७३१, ७३३, ७२५,
 ७३६, ७३९, ७४०, ७४१, ७४२, ७४३, ७४४,
 ७४५, ७४७, ७४८, ७५०, ७५१, ७५२, ७५३,
 ७५४, ७५५, ७५६, ७५७, ७५८, ७६०, ७६१,
 ७६२, ७६३, ७६४, ७६५, ७६७, ७६८, ७६९,
 ७७१, ७७२, ७७३, ७७४, ७७६, ७७८, ७७९,
 ७८०, ७८१, ७८२, ७८३, ७८४, ७८५, ७८६,
 ७८७, ७८८, ७८९, ७९२, ७९३, ७९४, ७९५,
 ७९६, ७९७, ७९८, ७९९, ८००, ८०४, ८०६,
 ८०८, ८०८, ८१०, ८११, ८१५, ८१६, ८१७,
 ८२०, ८२२, ८२३, ८२५, ८२७, ८२८, ८२९,
 ८३०, ८३१, ८३२, ८३३, ८३४, ८३५, ८३६,
 ८३७, ८३९, ८४०, ८४०, ८४२, ८४४, ८४५,
 ८४७, ८४७, ८४८, ८५०, ८५१, ८५२, ८५३,
 ८५४, ८५५, ८५७, ८५९, ८६०, ८६१, ८६२,
 ८६३, ८६३, ८६४, ८६५, ८६६, ८६७, ८६९,
 ८७०, ८७१, ८७२, ८७३, ८७५, ८७७, ८७९,
 ८८०, ८८१, ८८२, ८८३, ८८४, ८८५, ८८६,
 ८८७, ८८८, ८८९, ८९०, ८९१, ८९२, ८९३,
 ८९४, ८९५, ८९६, ८९७, ८९८, ८९९, ९०१,
 ९०५, ९०६, ९०८, ९०९, ९१०, ९१२, ९१४,
 ९१६, ९१६, ९१९, ९२१, ९२४, ९२५, ९०४०,
 ९४४, ९४४, ९४६, ९४६, ९४७, ९४९, ९५०,
 ९५४, ९५२, ९५८, ९०१०, ९०३६,
 ९०४९, ९०८०, ९०८०, ९०८२, ९०८२,
 ९०८३, ९०८४, ९११८, ९११९, ९१४२,
 ९१८७, ९१९३, ९१९४, ९१९५, ९२५२, ९२६६,
 ९२९२।

म

मग—१६, २११, २१४, २४२, ३७८, ५८१।

मगीरव—५६, ४२५, ४४९, ४५०, ४५१, ४५२।

मङ्गलहाट—१०६।

मजमान—९९, १००, १०१, १०२, १०२।

मद्रवाही—५५७, ५८०।

मद्रवाह—१०२८।

मद्रव—७९, १०४४।

मद्रवण—७०, ८१, ८७, ७६।

मद्रा—७६, ९५।

मद्रादगी—३९९।

मद्रादव—४०८।

मद्र—७११, ७१२, ७१३।

मद्र—८०, ९१, ६७१, ६७३। ६७१।

मद्राज—३४, ६९, ८०, ८४, १४६, ६४९, ६५०,

७५१, ७५२, ७५३।

मद्र—७०।

मद्रभूमि—८२।

मद्र—१७।

मद्रान—२२९, ७१९।

मद्र—७।

मद्र—९९।

मद्रादगी—७५८।

मद्रा—१४, १०४४।

मद्रादव—३४, ४०८, ७९२।

मद्रा—७१।

मद्राभूमि—७१।

मद्राव—८१, ८२, १४६, ४०८, ९०१।

मद्रा—१९।

मद्राकट—८६२, ८६३।

मद्राकटि—१४६।

मद्राग्वैतरण—१०३।

मद्रा—६१, ९९, १०५९, १०७२।

मद्रा—६९, ८१, ८१, ९९।

मीमतेन—८४, ९४।

मीम—८५, १०५७, १०५७, १०५९, १०७१, १०७४,
१०७५।

मीमक—१०२३, १०२४, १०२४।

भूतघटापन—१७।

भूति—३५।

भूति—८४, १०५९।

भूतिववा—८४, १०५९।

भूगु—३३, ६४, ६५, १८९, १९५, ३७८, ४०२, ५१६,
९०१, ९११।

भोगवही—६१५, ६१७, ६१८, ६१९, ६२०, ६२२।

भोज—९१, ९६, १०१।

भोग्या—९३।

भोत्य—३५।

भोवन—४६८, ४६९, ४७०, ८७९।

म

मपवान्—१७।

मणि—१९।

मणिकुण्डल—८८०, ८८२, ८८८।

८८९।

मतिनार—८०।

मत्स्यमाधव—३४९, ४५७।

मद्र—१०८६।

मद्रन—४१२।

मद्रि—९५।

मद्रु—९३, १०६।

मद्रक—७८।

मद्रा—७६।

मद्रु—२९, ३०, ३२, ४६, ९१, ९९, ५२७, ९४७,
१०८९, ११३७, १२२६।मद्रुचन्द्र—६५, ७६७, ७६८, ७६९, ७७०, ७७१,
८९२, ८९३, ८९४।

मद्रुपध्वज—९१।

मद्रुसुदन—३६६, ९६५, १०३२, १०४०, १०६४।

मित्रविन्दा—१०२९।

मित्रसद—५६।

मित्रावरुण—४१, ४२।

मियु—७११, ७१२, ७१६, ७१७।

मिश्रवेणी—३९९, ९२४।

मुक्तावेणी—७५४।

मुचुकुन्द—४८, १०१६, १०१७, १०१९।

मुञ्जिकस्थला—३९९।

मुद्गर—१०६।

मुद्गल—६५, ८३, ७५८।

मुनि—१४, १६, १९, १२२।

मुर—१०३३ १२३६।

मुष्टिक—९८७, ९८८, १००४, १००५, १००६,
१००७, १००८, १०९१।

मूहूर्त—१४।

मूहूर्ता—१४।

मूर्ति—३२।

मूर्तिमाम्—६२।

मृगपाद—१०८५।

मृगप्रिय—१०८५।

मृगव्याघ्र—१५।

मेघनाद—९१५, ९१७।

मेघहास—७८४, ७८५।

मेधुर—९३।

मेघातिथि—३२, ११९, १४६।

मेघ—३२।

मेनका—१८७, २५६, ३९९, ४७९, ९२४।

मेना—१९७, २३०, ४११, ७९९।

मेरुतावर्य—३२।

मेघेय—१४६।

मोदाकि—१२३।

मोहिनी—७५४।

मोद्गल्य—८३, १४६, ७५८, ७५९, ७६०, ७६१,
७६२।

य

यत्तर्ज—७५१, ७५२।

यति—७१।

यतिधर्मा—१३।

यदु—७२, ७३, ७५, ७६, ८६, ८७, ७९४, ७९६
१२०१।

यदुघ्न—३३।

यघ—२२, २९, ३७, ३८, ४०, १२९, १८४, २८३,
२८४, ३६८, ४०८, ४७६, ४८०, ४८१, ४९३,
४९५, ५११, ५१२, ५१३, ५१४, ५१५, ५३८,
५८५, ७०२, ७०३, ७०५, ७४७, ८६४, ८७३,
९९९, १०४०, १०८३, १०९३, १०९५, ११०५,
११०६, ११०७, १११९, ११२०, १२१०।

यमवृत्त—६५।

यमराज—२११, ११०८, ११२४, ११४८।

यमहस्त—९१७।

यमान्तक—९१७।

यमुना—३७, ४०, १८३, ४९२, ४९५, ४९६, ६०९,
१०२२, १०२३।ययाति—७१, ७२, ७३, ७४, ७५, ८६, ८७, ७९३,
७९४, ७९५, ७९६, ७९७, १२०१।

यवन—१०१७।

यवैतर—८३।

यथोदा—९५२, ९५६, ९६०, ९६१, ९६२, ९६६,
९६७, ९८७।

याज्ञवल्क्य—४८९, ४९०, ४९१, ७९२, ९०१।

यानि—७१।

यामी—१४।

युक्त—३३।

युधाजित्—९२ १०३, १०६।

युधिष्ठिर—९४, ०८१, १०५९ १०७८।

युवनाथ—४५, ४८, ६२ ८२।

योगपरायण—९०१।

योगमाया—९५६।

लक्ष्मणा—१०२९, १०४४।

लक्ष्मी—५९, १९७, २७८, २८४, ३५३, ३९८, ४०२,
४१४, ४५९, ७११, ७३५, ७५९, ७६०, ७६३,
७६५, ७६६, ७९१, ८६८, ९०२, १०२३, १०८९।

लम्बा—१४।

लव—८१८।

लवण—४०८, १०८९।

लिखित—३०२।

लोकपाल—८४९, ९०२।

लोपामुद्रा—७०, ८१, ५८५, ६४१।

लोमपाद—७९।

लोमश—१४६, ४१४।

लोमहर्षण—६, ११, १६, २३, २८, ३१, ३६, ३७,
४१, ४४, ४५, ४७, ५०, ५३, ५५, ६०, ६१, ६६,
६८, ६७१, ७६, ९२, ९७, ९९, १०२, १०७, १०८,
११२, ११९, १२६, १२९, १३३, १३७, १४०,
१४५, २५३, ११२१, १२६५, १३२७, १३३८।

लोहित—६५।

लौहि—६६, ८३।

व

वश—१८।

वक्ष—१०६८, १०७०, १०७३।

वक्षनाभ—१७, ५७।

वडवा—९५, ५८५।

वटस—७७, ८१, ८२।

वटसभूमि—७१, ८२।

वत्सवान्—९४।

वनदुह—८७।

वनानु—६१।

वनेयु—७६।

वय—५४४।

वरागी—३९९।

वरिष्ठ—१०८५।

वरीदास—८८।

वल्गु—१६, २२, ९०, २४३, ३१०, ३२८, ३६८,
३७८, ४०३, ४१५, ४६४, ४८२, ४८९, ४९०,
४९१, ४९५, ५१३, ५४१, ५४२, ५४३, ५४६,
५४८, ७२१, ६२८, ७२९, ७३०, ७३१, ७९४,
८३८, ८४९, ८९४, ९००, ९५०, ९९९, १०२२,
१०२३, १०३२, १०३४, १०३५, १०४०, १०८३।

वर्षकेतु—८१।

वशाति—४५।

वसन्त—९२५, ९२६।

वसिष्ठ—५, ३२, ३४, ४५, ४९, ५०, ५१, ५२, ५३,
५४, १४६, १८६, १९५, १९७, ४०८, ४१३, ४१४,
४४६, ५२२, ५३८, ५३९, ५४७, ५६२, ५६६,
५७४, ५७८, ५८०, ६६३, ६७०, ६७२, ६७३,
७५४, ७९२, ७९९, ८०९, ८७२, ९०१, ११०८,
१३०१, १३०४, १३१०, १३१३, १३१७, १३२१।

वसु—७, १४, ३२, ३४, ५९, २२५, ५८०, ९०२,
९५१, ९९२, ९९३, १०६४, १०८२।

वसुगण—१०४०।

वसुदेव—९४, ९४, ९५, १०१, १०६, २२८, ९१७,
९४०, ९५१, ९५२, ९५४, ९५५, ९५६, ९५८,
९५९, ९६१, ९८७, ९८८, ९९५, १०००, १००५,
१००६, १००८, १००९, १०१०, १०१७, १०६८,
१०७०।

वसुन्धरा—१०६।

वसुमेध—१०६।

वसुतोष—८०।

वह्नि—८६।

वाञ्छी—३४।

वानपति—१०६।

वातापि—१८, १०८५।

वात्स्य—१४६।

वामदेव—५४७, ५६२, ६७०, ७८०, ९०१।

वामन—१७, १९, ४१९, ४२०, ४२१।

वामना—९२४।

वामु—१४६ ३६८ ३७८ ६६४ ६६५ ७०८ ७२१
 ८७४ ९२५ ९२६ ९५१ ९९९ १०८३ १०८५
 १२१०।
 वारोह—१०८५।
 वारिप्लव—३३।
 वालि—९१७।
 वाला—१०८९।
 वाल्माकि—१४६ ८१८।
 वामुकि—१९ २२ ९९७।
 वामुदव—७३ १०५ १०६ ३५२ १०५४ १०५६
 ११९९ १२०२ १२०७ १२०८ १२२४ १२६१।
 बाहूलाक—८०१।
 विकण—७९।
 विकुलि—४४ ४५।
 विकृति—९९।
 विज्ञान्त—१७।
 विनोमण—१७।
 विन्नराज—४३१ ४३२ ४३३ ६३०।
 विचित्रवाय—८५।
 विजय—५२ ६९ ९६ ६१५ ९१८।
 विजया—५८०।
 विजय—८०।
 विदभ—९९।
 विदुद—८५।
 विदूदय—८४ १०२ १०२४।
 विद्रावण—१७।
 विद्यागा—९९९।
 विनता—१६ १९ १७८ ८३२ ८३३ ८३४ ८३५
 ८३६।
 विनताव—४२।
 विनायक—४२६ ४२७ ५१२ ५२५ ६२९।
 विन्मावत—६४१।
 विगुलाना—३९९।
 विगुपु—९३ १०६ १०६७।

विप्रचित्ति—१७ १८ २५६ ९४७ १०८५।
 विभ्राण्ड—१४६।
 विभाषण—५२३ ८१८ ८१९ ८२३ ८२४ ८२५
 ८८५ ८८६ ९१५ ९१६ ९१७।
 विभु—७१ ८१ ८२।
 विरजा—३३ ७१ २६१।
 विराट्—५ ७।
 विराघ—१०८९।
 विरोचन—१७ २९ १०८५।
 विवस्वान्—१६ ३३ ५३७।
 विगान्—१५।
 विश्रवः—५२३ ५२६।
 विश्वकर्मा—१५ १८३ १८५ १८७ ३०६ ३०८
 ३१४ ४१४ ४६८ ४७० ५९० ६०२ ७६१
 ९१४।
 विश्ववित्त—७९।
 विश्वघट—४७६।
 विश्वरूप—८६२ ८७३ ८९८ ८९९ ९००।
 विश्वा—१४।
 विश्वाच—७४ १८७ २५६ २९९ ९२४।
 विश्वामित्र—३४ ४९ ५१ ५२ ६५ ६६ ८३ १४६
 ५०७ ५०८ ५०९ ५१० ५३९ ५४७ ५४८
 ६७१ ६७२ ६७३ ७६७ ७७० ७९९ ८०७
 ८९२ ८९८ ८९९ १०६३ १०९०।
 विश्वायु—६१।
 विश्वायु—२३३ ७५० ८९१ ८९२।
 विश्वेदेव—१४ ३४ १०४० १०८२ ११३५।
 विषदृ—९९।
 विष्टरात्र—४५।
 विष्टि—४९३ ८६१ ८६२ ८६३ ८६५।
 विष्णु—१६ ३२२ ४० ४६ ४७ ५४ ९२ ११५
 ११८ १२७ १३६ १५८ १६७ १७४ १८९
 १९१ १९७ २१२ २१४ २२८ २२४ २३५
 २४३ २४८ २७१ २७८ २८७ २९० २९६

३०६	३०७	३०८	३१०	३११	३१५	३२०	वारसोन—५७।
३३१	३३६	३३८	३४१	३५२	३५३	३६०	वह—९५।
३६४	३६८	३७८	३८६	३८८	३८९	३९२	वृक—५२ १०४४।
४०२	४०७	४०९	४१३	४१४	४१५	४१८	वृकदव—९६।
४१९	४२२	४२४	४२८	४५३	४५४	४५९	वृकदेवा—९५ ९६ १०१।
४६३	४७१	४७७	४९८	४९९	५००	५१३	वृकत्र—७।
५१४	५१५	५२२	५३८	५४६	५५५	५६३	वृकलोया—७।
५७३	५७९	५८०	५८१	५८२	५८३	५८४	वृकिन—९००।
५८५	५९६	६२८	६२९	६४५	६४७	६५१	वृजिनावान—९७ १२०१।
६५२	६५६	६५८	६६२	६६४	६८९	७०८	वृत्र—४०८ ६५६ ८३८ ९०० ९१४ १०८५।
७१६	७२५	७२७	७२८	७३२	७३६	७३७	वृत्रहा—७३०।
७३८	७३९	७४०	७४२	७४६	७४७	७४८	वृद्धभीषिक—८८०।
७४९	७५५	७५६	७५९	७६०	७६१	७६२	वृद्धसत्र—९९।
७६५	७८८	७९१	७९२	८०८	८१०	८२१	वृद्धार्मा—६६ ९४।
८२२	८२९	८३०	८३१	८४१	८४२	८४४	वृष—९१।
८४५	८४६	८५३	८५५	८५९	८६०	८६५	वृषण—९१।
८६६	८६७	८६८	८७२	८७४	८८९	८९४	वृषदभ—७८।
८९६	९०३	९०४	९०५	९११	९२२	९२५	वृषपर्व—१७ १८ ७२।
९३२	९३३	९३८	९४०	९४२	९४३	९४४	वृषभ—१०९१।
९४५	९४६	९४८	९४९	९५२	९५३	९५४	वृषभासुर—९८७।
९५५	९८८	९९२	९९३	९९४	९९९	१००६	वृषल—१४।
१०१०	१०२६	१०३६	१०५६	१०७५	१०८०		वृषपत्रा—३९४।
१०८१	१०८३	१०८४	१०८७	१०८८	१०९२		वृषासि—१५ ४०८ ७३६ ७३७३, ७३८।
१११४	१११७	१११८	११३७	११४२	१२०९,		वृष्टि—१०१।
१२२३	१२२६	१२२७	१२३५	११३३	१२३६		वृष्णि—१२ १००।
१२३७	१२५२	१२५४	१२५५	१२६४	१२६६		वृषवान्—१०८९।
१२९२।							वृष—२३ २४ २५।
विष्णुयाम्—१०९१।							वेषुहृय—८७।
विज्जगमन—९४।							वेषुहात्र—७१।
विहवर—१०८५।							व—८७१ ८७६ ८७७ ८७८ ८७९।
वार्तिहात्र—९१।							वग्ग्याग—८५।
वट—६ ७१							वद्विषा—३३१
वारण—७ १५।							वेद—८ ७८० ७८१ ७८३।
वारमद—२३९ २३९ २४० २५२ ५८० ५८१।							वैवध—७९।

वैजयन्त्य—१४।

वैदर्भी—९९।

वैदेही—८१७।

वैभाण्डकि—७९।

वैभीषणि—८८५।

वैदर्भी—१३, १४८८६, ८८७।

वैराज—७, २२।।

वैरिणी—७।

वैरी—३४।

वैवस्वत—२०, २३, ३२, ३५, ४१, १९६, १९७,

४९२, १०१३, १०९४।

वैशम्पायन—१४६।

वैशाखी—९५।

वैश्वानर—१७, १८।

वैश्ववण—१९१, ३३१, ५२६।

व्यय—८६३।

व्यास—३४, १४६, १४७, १४८, २५३, २५४, ४०२,
९२१, ९२२, ९२६, ९२९, ९३०, ९३२, ९३७,
९३८, ९३९, ९४५, ९४८, ९४९, ९५०, ९५१,
९५३, ९५४, ९५५, ९५७, ९५८, ९५९, ९६०,
९६२, ९६४, ९६५, ९६६, ९६७, ९६८, ९६९,
९७०, ९७१, ९७२, ९७४, ९७५, ९७६, ९७७,
९७८, ९७९, ९८१, ९८२, ९८३, ९८५, ९८७,
९८८, ९८९, ९९१, ९९३, ९९५, ९९६, ९९९,
१०००, १००१, १००२, १००३, १००४, १००७,
१०१०, १०११, १०१२, १०१३, १०१५, १०१९,
१०२०, १०२१, १०२२, १०२३, १०२५, १०२६,
१०२७, १०२८, १०२९, १०३०, १०३१, १०३२,
१०३४, १०३५, १०३६, १०३७, १०३८, १०३९,
१०४१, १०४२, १०४३, १०४४, १०४५, १०४६,
१०४७, १०४८, १०५१, १०५२, १०५३, १०५५,
१०५६, १०५७, १०५८, १०५९, १०६०, १०६१,
१०६२, १०६३, १०६४, १०६५, १०६६, १०६८,

१०६९, १०७०, १०७१, १०७३, १०७४, १०७६,
१०७७, १०७८, १०७९, १०८३, १०८४, १०८५,
१०९३, ११०२, ११०५, ११०७, ११०८, १११४,
११२१, ११२२, ११२३, ११३१, ११३४, ११३७,
११४४, ११५०, ११६१, ११६२, ११६३, ११७७,
११८२, ११९९, १२०४, १२०८, १२०९, १२१०,
१२१२, १२१३, १२१४, १२१५, १२१६, १२१७,
१२१८, १२२०, १२२२, १२२३, १२२४, १२२५,
१२३३, १२३४, १२३८, १२४४, १२४८, १२४९,
१२५२, १२५६, १२६३, १२६६, १२६८, १२७२,
१२७३, १२७५, १२७६, १२८०, १२८१, १२८३,
१२८५, १२८६, १२८९, १२९१, १२९५, १२९७,
१३०१, १३२६, १३२७।

व्योमा—९९।

व्रज—८।

वा

शरीमा—पृ० १९।

शकुनि—१७, ४५, ९९।

शक्ति—७३५।

शक्र—२३९।

शक्र—९६, १५८, १८९, १९६, २०२, २०४, २०६,
२१०, २१२, २१६, २२२, २२६, २२९, २३२,
२३७, २५२, २५३, २८४, ३५०, ३५१, ४०२,
४११, ४१२, ४१४, ४१६, ४२३, ४२४, ४२६,
४३३, ४३७, ४३९, ४४९, ४५०, ४५१, ४५३,
४६३, ४६६, ४८३, ४९७, ४९८, ४९९, ५००,
५०१, ५१२, ५१३, ५१७, ५१८, ५१९, ५२५,
५२६, ५३१, ५३३, ५३६, ५५६, ५५८, ५६४,
५६८, ५७०, ५७५, ५७६, ५७९, ५८०, ५८२,
५८३, ५८४, ५९६, ५९९, ६०२, ६०३, ६०४,
६०५, ६०७, ६१०, ६११, ६२२, ६२३, ६२४,
६२६, ६२७, ६२९, ६३३, ६३५, ६३७, ६४०,
६४५, ६५०, ६५६, ६५८, ६६१, ६६४, ६८२,
६९६, ६९७, ६९८, ७१६, ७१७, ७२०, ७२२,
७२३, ७२५, ७२६, ७२७, ७२८, ७२९, ७३०,

७५५ ७६०, ७७३, ७८७, ७८८, ७९२, ७९८, ८००, ८०८, ८१०, ८१३, ८१६, ८२६, ८३८, ८४९, ८५०, ८५३, ८६७, ८७५, ८७६ ८७७, ८७८, ८९४, ८९५, ९०२, ९०५, ९०८, ९१०, १०४५, १०४७, १०४८, १४९, १०५१, १०५४।	५५७, ५६३, ५७५, ५७८, ५८५, ६२०, ६८४, ७२०, ७२४, ७३३। शरण्या—९५। शरद्वान्—३४। शरम—१०८५। शर्मिष्ठा—१८, ७२, ७१४। शर्यावि—४१, ४३, ४४, ७६७, ७६८, ७६९, ७७०। शर्व—१५। शल—५७, ६९, ८४, १०५९। शलदा—७६। शलम—१०८५। शल्य—१८। शार्किन्तु—४८, ९७। शयाद—४५। शयिकेता—३९९, ९२४। शावत्य—८५०, ८५१, ८५२, ८५४। शाव—१५। शयिद्रव्य—१४६। शावानय—९०१। शान्तनु—८४, ८५। शान्तमय—११९। शान्ता—७९। शान्तिदेवा—९५, १०१। शार्दूल—७२४, ७२५। शाल्ङ्काय—६५। शालावती—६५। शाल्व—१०२४, १०९१। शिवगिडनो—८। शिवी—९४। शिवेषु—९७। शिवि—७७। शिव—१७, ५९, ११९, १६७, १९४, १९५, २०१, २०२, २०४, २०५, २१४, २१५, २१७, २२२,
७५५ ७६०, ७७३, ७८७, ७८८, ७९२, ७९८, ८००, ८०८, ८१०, ८१३, ८१६, ८२६, ८३८, ८४९, ८५०, ८५३, ८६७, ८७५, ८७६ ८७७, ८७८, ८९४, ८९५, ९०२, ९०५, ९०८, ९१०, १०४५, १०४७, १०४८, १४९, १०५१, १०५४। शङ्करदेव—१९३। शङ्कु—१०८५। शङ्कुर्ण—१७, १०८५। शङ्ख—१९। शङ्खपद—२२। शङ्खपाल—१९। शर्षा—१९७, ३७९, ४८०, ७३०, ७३७, ७७५, ७६६, ७७८, १०४१। शठ—९५। शतसुम्न—८। शतधन्वा—१०३, १०७, १०८। शतप्रसव—९८ शतकथा—६। शतहृद—१७। शतामिल—१००। शतानन्द—१४६। शकुन्त—९३, ६९४, ७१, ६७३ ९१७। शकुन्ति—१०२। शक्रहा—१०६। शनि—४९३, ४९५ ६४२ ६४३। शनिद्वार—३८ ४०, १९१, ८६१। शक्ताय—१३। शमन—३४। शमो—१०२। शमोष—९४, ९५। शम्बर—१७, ७९४, ८३८, १०२४, १०२५ १०२६, १०२७, १०२८। शम्भु—१५, २५९, ४१३, ४४२, ४६५, ५३७, ५५५,	

२२३, २२४, २२७, २२८, २३४, २३६, २४१, २४२, २४३, २४८, २५०, २५२, २५७, २५८, २६०, २६९, २७०, ३१०, ३३१, ३३५, ३३७, ४१५, ४३५, ४३६, ४३७, ४३८, ४४०, ४४३, ४४४, ४४५, ४५०, ४५१, ४५७, ५११, ५१४, ५१५, ५३८, ५४७, ५७७, ५९७, ५९८, ६००, ६०१, ६०५, ६०७, ६१२, ६२०, ६२१, ६२५, ६३६, ६३७, ६३९, ६५१, ६५२, ६६०, ६७४, ६८१, ६९५, ६९६, ७१६, ७१७, ७३५, ७३६, ७३८, ७३९, ७४०, ७४१, ७४३, ७४९, ७५०, ७५७, ७६४, ७६५, ७७३, ७८४, ७८६, ७९१, ७९३, ८०१, ८१४, ८१५, ८२४, ८३१, ८७४, ८७९, ८८९, ८९७, ९००, ९०२, ९०३, ९०४, ९०९, ९११, ९१२, ९५०, ९८९, ९९९, १०१५, १०३६, १०५२, १०५५, १०८०, १०८५, १०९०, १११८, ११४२, ११८३, ११८८, ११८९, ११९१, ११९३, १२१६, १२९२।	मुञ्ज—९५। गुल्म—९०। गुर—९१, ९३, ९५, १००, १२०२। गुरखेन—९१, ६१२, ६१३, ६१४, ६१६, ६१७। मूला—७६। मुद्गम—४०८। शेष—१९, ६३२। शेषनाभ—१२५०। शैव्या—९८, १०४४। शोणाश्व—१०२। शोनव—६९, ७२, ९०१। शीरि—९५। श्याम—९४, ९५। श्वेती—१९ श्रम—१४। श्रवणा—९३, १०२, १०७। श्रविष्ठा—८६, ९३, १०२, १०७। श्रान्त—१४। श्राव—४५। श्रावस्तव—४५। श्रातुरु—१०१। श्रीदामा—९७२। श्रीदेवी—९५। श्रुन—५६, १०४४। श्रुनदेवी—९४। श्रुनसेन—८४। श्रुतायु—१। स्लिष्टि—७। श्वकल्ल—९२, ९३, १०६। श्वेत—३४९, ३५०, ३५१, ३५२, ३५६, ५१०, ५११, ५१२, ५१३। श्वेतकर्ण—८५। श्वेतमाषव—३४९, ३५१, ३५२, ३५७। श्वेतवाहन—१०२।
सिक्कत्रत—५३८। सिवा—१५, ७५०। सिशिर—१५, ११९। सिशिरायणि—९६। सिन्धुपाल—७२, ९४, १०२४। १०९१, १०२९। सुक—१६७। सुक—८, ३२, १९१, २०२, २३३, ४०२, ४२०, ४२१, ५१७, ५१८, ५१९, ७९४, ७९५, ७९६, ८१३, ८१४, ९४४, १०४३। सुकाचार्य—५९। सुचि—१९, ३२। सुन पुच्छ—६५, ५४५। सुन शेष—६५, ५३९, ५४५, ५४७, ५४८, ८०६, ८०७। सुनक—६९। ४। सुमाना—३९९।	

स

सयता—८६, ८७।

सयाति—७१।

सवरण—८४।

सवर्त—८६ १४६, ४६९।

सहृतादव—४८।

सहृद—१०८५।

सहृद—१०८५।

सहृद—१७ १८, १०८६।

सहा—३७, ३८ १८३ १८४, १८५।

सगर—५२ ५३ ५४ ५५ ४०८ ४४६ ४४७ ४४८, ४४९, ४५२।

सङ्करपण—३३८ ३५२ ९५२।

सङ्कल्पा—१४ ७२१ ७२४।

सङ्कृति—६९।

सङ्क्रामगित्—१०४४।

सञ्जय—६८।

सवी—१९४, १९५, १९७, १९८।

सत्त्वान्—९९।

सत्यक—९४।

सत्यवर्णक—८५।

सत्यवेतु—७०, ८२ ९५।

सत्यतपा—१२२२।

सत्यनेत्र—३३।

सत्यभामा—१०६ १०७, १०८ १०२९ १०३३, १०३४, १०३७ १०३८, १०३९, १०४१, १०४३, १०४४।

सत्यरथा—५२।

सत्यवर्ती—६३, ६५।

सत्यवान्—८, ३३।

सत्यव्रत—४८, ५०, ५१ १०२९, १०४२।

सत्ताजित्—१०२ १०३, १०४, १०६ १०७ १०२९।

सत्त—७३३।

सत्तुसद—५, १४६, २३३ १०८०, १२०३।

सन्न्दन—१३४।

सनाज्वात्—५०२ ५०४, ५०५।

सनातन—३३।

सन्देव—१०१।

सत्तति—७०।

सत्ततेषु—७६।

सत्तल—३२।

समास—१०६।

समानर—७७।

समा—५६६, ५६९।

सामुद्र—८९५ ८९६ १०१३।

सम्पाति—८६६।

सम्बर—१०८५ १०८६।

सम्भूत—४९।

सम्नात्—७।

सरमा—७४४, ७४५।

सरमान—१८।

सरस्वती—३७८,	५३५	५६२
	६०९	६१०, ६५९
	८५४,	१२६६।

सरस्वान्—५३५।

सर्वेक्या—५६।

सर्वजित्—१७।

सर्वन—१२४।

सर्वार्थ—९, ३७, ३८।

सविता—१६।

ससक—१०१।

सह—३२।

सहवन्था—१८७, २९९, ९२४।

सहदेव—६९, ८३, १०५९।

सहदेवा—९५।

सहस्रजित्—१००।

सहस्रद—८७।

सहिष्णु—३३।

साङ्गति—६५।
 साल्यति—९४, १०८, १०६७।
 साध्य—१४, ३४, १०४०, १०६४।
 साध्या—१४।
 सान्दीपनि—१०१२, १०१३।
 साम्ब—१०४४, १०५६, १०५७, १०५८, १०५९,
 १०६०, १०६३, १०६४, १०६५।
 सात्त्विकावत—१००।
 सावर्ण—३४, ३८, ४०।
 सावणि—३२, ४९३।
 सावित्री—२६०।
 साहज्य—८।
 सिद्धिवा—१७, १८, ७८४।
 सिनीवाल—५९।
 सिन्धु—८७६।
 सिन्धुद्वीप—५६, ८७५।
 सिन्धुसेन—४५३, ४५६।
 सीता—५०७, ६७३, ६७६, ६७७, ६७८, ६७९,
 ६८०, ६८१, ८१८, ८१९, ८२३, ८२४, ८५,
 ९१६, १०८८, १०८९।
 सुकन्या—८२।
 सुकुमार—७१, ८२, १२३।
 सुकृति—३२।
 सुनेतु—५४, ७०।
 सुनेत्री—३९९।
 सुखोदय—११९।
 सुप्रीव—८१९, ९१७, १०८९।
 सुप्रीवी—१९।
 सुषारु—८५, १०३, १०२८, १०६७।
 सुचेता—८७।
 सुच्छाया—७।
 सुजात—९१।
 सुतनु—९५, १०५।
 सुतपा—३३, ७८, १२२६।

मुदयु—१०३।
 मुदान्त—१०३।
 मुदास—५६।
 मुदेवा—१०१।
 मुदेण—९४, १०२८।
 मुद्युम्न—८, ४३, १२०१।
 मुपनु—८४।
 मुपत्वा—२२, ५७, ७६, ८४।
 मुषर्मा—९३, १२२७।
 मुषामा—३३।
 मुतद्य—६२।
 मुतहीन—६९।
 मुतामा—९६, १०२, १००९।
 मुताम्नी—९५, १०१।
 मुतीय—७०।
 मुनीया—८, २४।
 मुन्द—९४९।
 मुन्दरी—९३।
 मुषर्मा—५३१।
 मुपावर्त्तक—१०७।
 मुप्रमा—७११।
 मुवाहु—८०, ९३, १०७, १०८९, १२३०,
 १२३१।
 मुमद्रा—९५ २६५, २६६, २७८, २८४, ३०८, ३१४,
 ३३८, ३४१, ३४२, ३६९, ३७३, ३७४, ३७५,
 ३७६, ३७८, ३७९, ३८१, ३८२, ३८१, ३८२,
 ३८४, ३८५, ३८६, ३८७, ३८८ ३९७ ४००,
 ४०५, ९१९, ९३९।
 मुमूषण—१०२।
 मुमति—३४, ८९२ ८९३, ८९४।
 मुपनयु—५।
 मुपनु—१४६।
 मुपन्यु—५६६।
 मुपात्री—२९।

सुमित्रा—६६३, ६७१, ६७३।

सुमुख—१९।

सुमन—९७।

सुमव—८०६।

सुयति—७१।

सुरप—८४।

सुरभि—१६, १९, १५।

सुरसा—१९, १६ ७६।

सुरवि—३०।

सुरेश—७३४।

सुपर्णा—७२१, ७२४।

सुवर्णा—७२१ ७२४, ७२५।

सुवीर—७८, ७६।

सुव्रत—७८, ७७।

सुशान्ति—८३।

सुशीला—१२२७, १२२८ १२३०।

सुश्यामा—५६०।

सुपेण—१०२८।

सुष्मन्त—८०।

सुहोतार—८०।

सुहोत्र—६१, ८०, ८१।

सूत—२, ३, १०, १३, २६ २७ १४६, ९३९।

सूदन—९६१।

सूनुता—७।

सूर्य—१७, २९, ३६, ३८, ३९, ४०, ५७, ७६, ७७,

१५८, १५९, १६२, १६४, १६५, १६६ १६८,

१७३, १७४, १७६ १७७, १७८, १७९, १८०,

१८१ १८२ १८३ १८४, १८५, १८६ १८७,

१८८, १८९, १९१ १९२ १९७ २१२ २४३

२४५ २४९, २५८, २५९ २७० २७२, ३७८,

४७८ ४८०, ४८१ ४९५, ४९६, ५३८ ५६२

५८१, ६०२, ६०१, ६११, ६८०, ७४७, ७४८,

७५६, ७७०, ८१०, ८२९ ८३०, ८३४ ८४५,

८४४, ८६१, ८६२, ८६६ ८६७, ८७२, ९०३

९५१, ९५४, ९७४, १०१२, १०४०, १०८३,

१०८७, १०९१, १२१०, १२२४।

सूर्यापीठ—८५।

सूञ्जय—७७ ८३ १००।

सोमव्यग्र—१०८५।

सोम—१०, १४, १४, ३३, ५८, ७६, १९१, ५३८,

५९४, ५९५, ५८९, ९०२, ९०३।

सोमव—८३।

सोमदत्त—८३, ८४, १०५९।

सोमशर्मा—१२१६।

सौदास—५६।

सौमद्र—८५।

सौमाम्पवती—३९९।

स्मृद—५ १९१, ४०२, ४२६, ४२७, ४२९, ४६५

४६७, ५१२, ५७६।

स्त्रीरत्नकूटा—७६।

स्पर्ण्डिलेयु—७६।

स्पर्ण्डिष्ठा—७६७।

स्वन—१०८६।

स्वपाश्वर्क—९३।

स्वमित्र—१०८६।

स्वयम्भोज—१०२।

स्वरस्वल्प—१८।

स्वर्मानु—१७ १८।

स्वरा—११०।

स्वसुम—१७ १८।

स्वाति—८।

स्वायम्भुव—६, २९, ३१, १३१।

स्वारोचिष—२०, ३१, ३२।

स्वाहा—३७८ ७१८ ७२१।

स्वाहि—९७।

ह

हनुमान्—४७२, ७२७, ८१७, ८१९, ८२४, ८२६

८८५ ८८६, ९१७।

हृष—८७।

हृषीकेश—१०३३, १०८५।

हृषमूर्षा—४०८।

हृषगिरा—१७, १८।

हृष—१५, ३७८, ८३९।

हृषि—२० ९८, ३३५, ४२३, ६७४, ८०५, ८१६,

८३९, ९०२, ९३१, ९४७, ९५१, ९६९, १०४१,

१०४५, १०५३, १०७९, १०८५।

हृषि—५२, १४६।

हृषिदत्त—६५।

हृषिदत्त—५२, ४०८, ५३९, ५४०, ५४१, ५४२,

५४३, ५४६, ५४७, ५४८।

हृषिहृष—१०८५।

हृषिहृष—६६०, ६६१।

हृषग—७९।

हृषत्वत्—६९।

हृषदत्त—१२, १३, ४८।

हृषण—८६३, ८६४, ८६५।

हृषण—३३९।

हृषिन्त—३२।

हृषिर्मान—८।

हृषिर्मान—१२०१।

हृष्य—३२।

हृषित—६५।

हाहा—१८७, २१६।

हिमवान्—२००।

हिमालय—१९७, १९८।

हिरण्य—७२७, ७२८।

हिरण्यक—५३८।

हिरण्यवसिष्ठ—१७, ९४, ३४२, ८०४, ९४०, ९४७,

९५१, १०८२, १०८४, १०८५।

हिरण्यगर्भ—३२।

हिरण्यरोमा—२२, ३३।

हिरण्याल—१७।

हुतहृष्यवाह—१५।

हुत—१८७, २१६।

हेति—७००, ७०१।

हेमवती—४८।

हेह्य—८७।

हृद—१७।

हृद—१७।